रामायणमीमांसा

स्वामी करपात्री जी

रामायणमीमांसा

ब्रह्मलीन अनन्त श्री

स्वामी करपात्री जी महाराज

प्रकाशक :

राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान

रमण रेती,

वृन्दावन-२८११२१ (मथुरा)

तृतीय संस्करण
सम्वत् २०५८
नवम्बर २००१
मूल्य २५०/- रु०

पुस्तक प्राप्तिस्थानम् :

१. श्री राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान,
C/o मैसूर पैट्रो कैमिकल्स लिमिटेड,
४०१/४०४, राहेजा सेण्टर,
२१४, नरीमन पोइण्ट, बम्बई ४०००२१
दूरभाष : ०२२-२८४०७१४

२. श्री राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान,
C/o मैसूर पैट्रो कैमिकल्स लिमिटेड,
११३, पार्क स्ट्रीट, सात तल्ला,
कलकत्ता-७०००७१
दूरभाष : ०३३-२२९४९१६

३. श्री राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान,
C/o मैसूर पैट्रो कैमिकल्स लिमिटेड,
५०४, निर्मल टावर, २६, बाराखम्बा रोड
नई दिल्ली-११०००१
दूरभाष : ०११-३७२५६२७

४. श्री राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान,
धर्मसंघ विद्यालय, रमण रेती,
वृन्दावन-२८११२१ (मथुरा) (उ० प्र०)
दूरभाष : ०५६५-५४००२८, ५४०२७८

५. श्री राधाकृष्ण धानुका प्रकाशन संस्थान,
काशी विश्वनाथ (व्यक्तिगत) मंदिर,
मीरघाट, वाराणसी-२२१००१ (उ० प्र०)
दूरभाष : ४०१४३४

मुद्रक :
प्रेस वर्क्स,
३०, ट्रक पार्किंग सेन्टर,
माल रोड, दिल्ली-११००५४
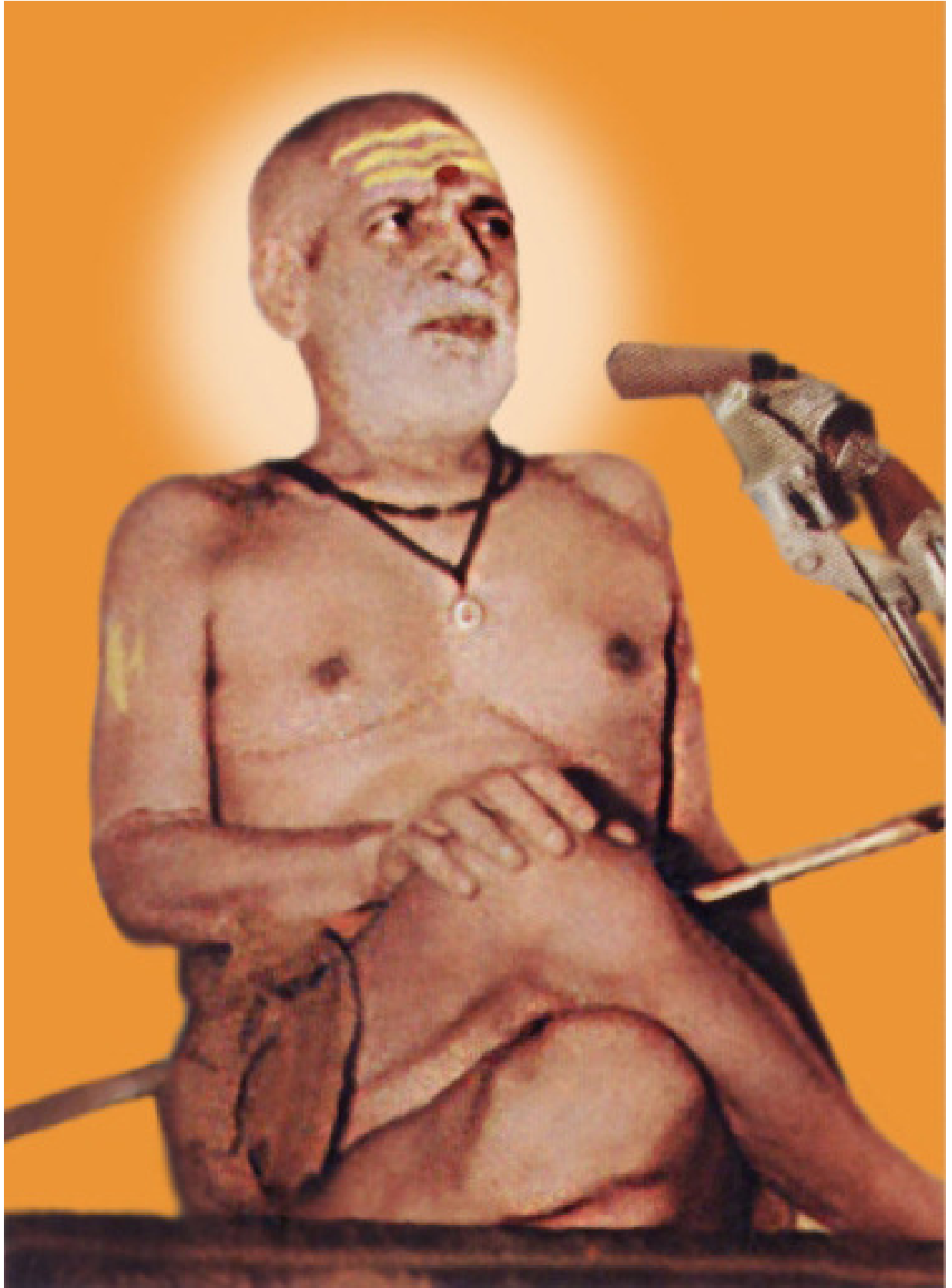
धर्मसापेक्ष, पक्षपातविहीन, लोकतान्त्रिक, अध्यात्मवाद पर आधारित रामराज्य दर्शन के प्रस्तोता "राष्ट्रपुरुष"
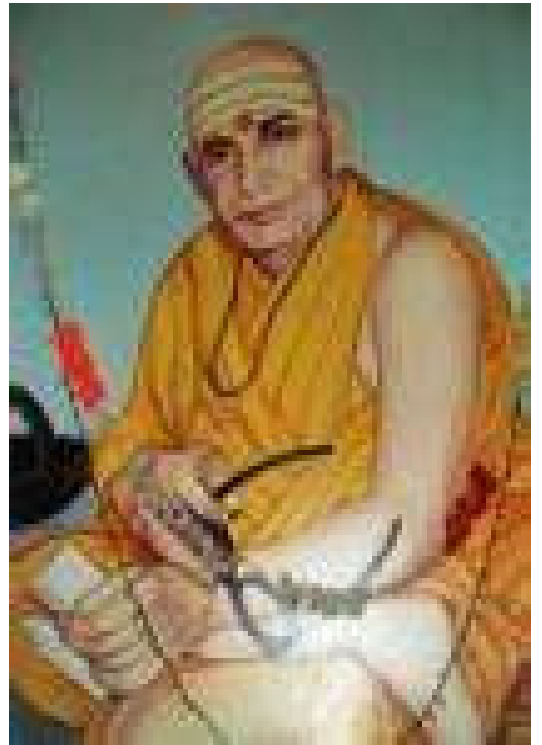
ब्रह्मलीन अनन्त श्री

स्वामी करपात्री जी महाराज

० श्रीहरिः ०

प्रस्तावना

प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता सर्वजीवहितैषी वीतराग तत्त्वदर्शी महात्मा हैं। उनका किसी के प्रति मनोमालिन्य अथवा परिपन्थिता वैसे ही संभव नहीं है जैसे सकलहृदयाह्लादक शीतरश्मि से तिग्मरश्मि के उत्ताप का उद्गम। फिर भी जहां उन्हें अशुद्धि दिखाई देती है, जहाँ अल्पज्ञों द्वारा वेद और शास्त्रों के अर्थ का अनर्थ कर उनपर प्रहार किया हुआ दीख पड़ता है एवं जहाँ संस्कृतवाङ्मय में दुरभिसन्धिवश अथवा अज्ञानवश भारतीयसंस्कृति के विरोधी वातावरण का सर्जन किया रहता है, वहाँ उन्हें लोक-कल्याण के लिए यह अर्थ अशुद्ध है, शास्त्र का तात्पर्य यह है, यह आख्या भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रमर्यादा के विपरीत है; यह कहना उचित ही नहीं परमावश्यक भी है। इस प्रकार का प्रतिपादन करनेवालों के मधुर वाग्जाल में फँस कर जनता अपनी सनातन मर्यादा का त्याग न करे। भारतीय संस्कृति से भिन्न संस्कृतिवाले वेद-शास्त्रों के तात्पर्य के अनभिज्ञ मनीषियों का कथन अनुकरणीय नहीं है। वह किसी दुरभिसन्धि वश—जनता को विधर्मी बनाने के लिए—वागुरा है, मार्ग में तृण आदि से आच्छादित महान् गर्त है। इस मार्ग का पथिक होनेपर गर्तपात का भय है। यह बात कोई शास्त्रतत्त्वाभिज्ञ महान् मनीषी ही बता सकता है। यदि वह भोलीभाली शास्त्रतात्पर्यानभिज्ञ जनता का हितैषी है तो अवश्य ही यह बताना चाहिए। न बताना उनका अपने कर्तव्य से विचलित होना कहा जायगा। महाकवि श्रीहर्ष ने अपने नैषधीयचरित महाकाव्य में कहा है—

"अध्वाग्रजाग्रन्निभृतापदन्धुर्बन्धुर्यदि स्यात् प्रतिबन्धुमर्हः।"

अर्थात् बन्धु के पुरोवर्ती मार्ग में आपत्तिरूपी कूप या महान् गर्त तृण आदि से आच्छादित विद्यमान हो तो हितैषी पुरुष को बता देना उचित है कि इस मार्ग से मत जाओ, यदि जाओगे तो विपत्तिरूपी गहरे गड्ढे में गिर जाओगे।

सत्सङ्ग के सिलसिले में किसी भक्त सज्जन ने कामिक बुल्के पादरी की रामकथा अनन्तश्रीविभूषित परमहंस-परिव्राजकाचार्य हरिहरानन्द सरस्वती करपात्रीजी महाराज को भेंट की एवं उसके अवलोकन का सविनय अनुरोध किया। पुस्तक की अधिकांश सामग्री श्रीस्वामीजी को बहुत खटकी। फलतः रामायणमीमांसा के रूप में स्वामीजी के महान् सदय अवदान का प्रादुर्भाव हुआ। बुल्के की रामकथा चिरकाल से प्रकाशित है। वह उनका शोधग्रन्थ है। उसमें उन्होंने विभिन्न संस्कृति के विविध देशों की नाना रामकथाओं का उल्लेख कर श्रीरामचन्द्रजी के कतिपय चरितों का विशदरूप से जानने के प्रामाणिक साधन आर्ष महाकाव्य बाल्मीकिरामायण को अपने पाश्चात्य दृष्टिकोण से छिन्न-भिन्न कर उसके महत्त्व को न्यून करने की दुरभिसन्धिपूर्ण चेष्टा की है।

भारतीय दर्शन में कुछ मत निरीश्वरवादी हैं। वे वेदविरोधी एवं वेदप्रतिपादित यज्ञयाग आदि के भी विरोधी हैं। उन्होंने रामायण की लोकप्रियता देखकर सोचा, लोकप्रिय रामायण की ओर आकृष्ट हमारे सम्प्रदाय की जनता रामायण-पाठ से ईश्वरभक्त, वेदानुगामी तथा यज्ञयागों के प्रति अभिरुचि रखनेवाली न बन जाय, इस भय से उन्होंने रामायण को अपने सांचे में ढाला है। अन्यान्य देशों में प्रचलित रामकथाओं में से किन्हीं में प्रायः मूल कथा वाल्मीकिरामायण के अनुसार ही है। बीच-बीच में वहाँ अपने देश की संस्कृति का पुट दे दिया गया है। नाम प्रायः सब बदल दिये गये हैं। रामायण का स्थल भी अपना देश ही माना गया है। उनमें हमारी संस्कृति का विरोध अधिक दृष्टिगोचर नहीं होता है, किन्तु अनेकों रामकथाओं में मूलकथा में भी विभेद है और विकृतियाँ प्रभूतमात्रा में

हैं। राम और सीता दोनों को दशरथ की सन्तति एवं भाई-बहन कहकर, अपनी संस्कृति के अनुसार, उनका वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया गया है। राम और लक्ष्मण दोनों का, अपनी संस्कृति के अनुसार, सीता से विवाह प्रतिपादित है। बुद्धघोष की सुत्तनिपात टीका में शाक्य-वंश की उत्पत्ति के सिलसिले में लिखा है—

वाराणसी की पटरानी की नौ सन्तानें थीं चार पुत्र और पाँच पुत्रियाँ। उनके मर जाने के बाद अम्बट्ठ राजा ने नया विवाह किया और अपनी युवती पत्नी को अपनी पटरानी बनाया। नयी पटरानी के पुत्र उत्पन्न होने पर राजा ने उसको एक वर प्रदान किया। उस वर के बल पर उसने अपने पुत्र के लिए राज्यसिंहासन का अधिकार माँगा। राजा ने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। किन्तु महिषी के षड्यन्त्रों से भयभीत होकर उन्होंने अपने पुत्रों को यह कह कर वनवास दिया कि मेरी मृत्यु के पश्चात् आओ और राज्य पर अधिकार करो। बहुत से लोग उसके साथ चल दिये और सभी ने बन में एक नगर बसाया। नगर को कपिलवस्तु नाम दिया गया। राजसन्तान के साथ विवाह करने योग्य वन में कोई नहीं था, अतः चारों राजकुमार अपनी बहनों से विवाह करने के लिए बाध्य हुए।" यह है बौद्ध संस्कृति। उसी का प्रतिफल बौद्धों की रामकथा में प्रतिफलित हुआ है। और भी कई बातें भारतीय संस्कृति एवं इतिहास-पुराण के विरुद्ध हैं जैसे "दशरथ-पुत्र सहस्र-बाहु ने परशुराम के पिता की धेनु चुरायी, जिसके कारण परशुराम सहस्रबाहु को मार डालते हैं। सहस्रबाहु के राम और लक्ष्मण दो पुत्र होते हैं। राम परशुराम का वध कर देते हैं। रामायण का मूल स्रोत बौद्ध जातकों में सुरक्षित है, रामायण कुशीलवों द्वारा जनता की अभिरुचि देखते हुए समय-समय पर बढ़ाया गया है, रामायण में रामावतारबोधक पद्य प्रक्षिप्त हैं, रामायण काव्य अयोध्या काण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक ही आदि कवि की रचना है, मागध और वन्दियों द्वारा बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड पीछे जोड़ दिये गये हैं। मूलकाव्यखण्ड के जातीय नायक आगे जोड़े गये अंशों में जातीय नायक के रूप में परिवर्तित हो गये। वह समस्त जनसमाज के लिए नैतिक आदर्श के प्रतीक बन गये। कुछ प्रक्षिप्त अंशों को छोड़कर मूल पांच काण्डों में मनुष्यनायक के रूप में स्थित राम बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड में देवता के रूप में परिणत होकर विष्णु के साथ एकाकार हो गये।" उनकी (श्रीबुल्के आदि की) कल्पनालोक की असल रामायण (जिसके अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं है एवं जो गगनप्रसूनायमान है) में "राम की भगवत्ता या विष्णु का अवतार होने का कोई उल्लेख नहीं था। रामायण दो उपाख्यानों का ताल-मेल है। उनमें से दूसरा है सीता-हरण के कारण राम और रावण का युद्ध। यह मूलतः एक प्राकृतिक आख्यान है। इसमें अनेक काल्पनिक घटनाओं का समावेश है" इत्यादि, इत्यादि।

ये ही सब दुष्कल्पनाएँ श्रीबुल्के के काल्पनिक प्रासाद की आधार शिलाएँ हैं। इन्हीं दुष्कल्पनाओं को सिद्ध करने के लिए वे कहते हैं—"राम वेदप्रतिपाद्य नहीं हैं, सीता नाम जो वेद में आया है वह लाङ्गलपद्धति का है किसी मानवी का नहीं है।" वास्तविकता—

सुदूर पुराकाल त्रेतायुग में वाल्मीकिरामायण के प्रादुर्भाव का सूत्रपात

महर्षि वाल्मीकिजी ने कष्टप्रद समाधि से परम पुण्यराशि का अर्जन किया। उस पुण्यराशि से भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने देवर्षि नारद को वाल्मीकिजी के निकट जाने की आज्ञा दी। भगवान् की आज्ञा से अपनी संनिधि में पधारे हुए देवर्षि का सविधि अर्चन कर वाल्मीकि महर्षि ने उनसे पूछा—देवर्षे, सम्प्रति इस मर्त्यलोक में कौन गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता, दृढ़व्रती, अनिन्द्य सर्वस्पृहणीय चरित्रों से सम्पन्न, प्रजारञ्जनसमर्थ, सकल जीवों के हितैषी, महान् विद्वान्, कामदेव से भी अधिक सुन्दर, स्वाधीनमना, क्रोधादिविहीन, जिनकी देहकान्ति को देखने के लिए सकल प्राणी उत्कण्ठित हों, रणाङ्गण में क्रुद्ध होने पर जिनके सम्मुख देवता भी न ठहर सकें ऐसा कौन पुरुष है? उसे जानने का मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। हे देवर्षे, आप ऐसे पुरुषरत्न को जानने में नितरां सक्षम हैं।

महर्षि वाल्मीकिजी के प्रश्न पर देवर्षिजी ने सम्पूर्ण रामगुण एवं अत्यन्त संक्षिप्त रामचरित प्रसन्नतापूर्वक उनको बतला दिये। महर्षि द्वारा पूजित और सत्कृत होकर वे आकाशमार्ग से देवलोक को चले गये। देवर्षि के चले जाने के पश्चात् महर्षि वाल्मीकिजी मुहूर्त भर अपने आश्रम में ठहर कर स्नानादि माध्याह्निक कृत्य करने के निमित्त अपने शिष्य भरद्वाज के साथ तमसा नदी के तटपर गये। वहाँ उन्होंने प्रसन्न मुद्रा में दम्पती के रूप में विचरते हुए क्रौञ्चयुगल को देखा। उसमें से एक नरक्रौञ्च को पापात्मा व्याध ने मार डाला। रुधिर से लथपथ भूमिपर लुण्ठित उसे मृत देखकर क्रौञ्ची ने करुण क्रन्दन किया। क्रौञ्ची का करुण क्रन्दन सुनकर मुनि के करुणापूर्ण हृदय में महान् शोकानुभूति हुई। वही शोक करुण रसमय श्लोक बनकर महर्षि वाल्मीकिजी के मुखारविन्द से लोककल्याणार्थ संस्कृतसाहित्य के प्रथम श्लोक के रूप में प्रादुर्भूत हुआ—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

श्लोक बोलते हुए अन्तर्यामी की प्रेरणा से उनके हृदय में चिन्ता हुई कि पक्षी के शोक से पीड़ित हुए मैंने यह क्या कह डाला। यह काम बड़ा अयशस्कर हुआ। ऐसा चिन्तन करते हुए उन्होंने सत्यसङ्कल्प होने के कारण श्लोकवाक्य को शिष्य से कहा। शिष्य ने उसे ग्रहण कर लिया।

श्लोक का आपात अर्थ तो व्याध के लिए शापरूप है—हे व्याध, तुम पुरुषायुष्य तक शान्ति या प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर सकोगे, क्योंकि तुमने क्रौञ्चयुगल में से एक को मार दिया है। परन्तु इसका वास्तविक अर्थ है—हे मानिषाद हे लक्ष्मीपते राम, आपने रावण और मन्दोदरी रूप क्रौञ्चयुगब में से एक लोककण्टक रावण को मार डाला, इसलिए आप शाश्वत काल तक प्रतिष्ठा को प्राप्त हों।

इसके तुरन्त बाद ब्रह्माजी महर्षिश्रेष्ठ से मिलने के लिए आ पहुँचे। महर्षि ने उनका पाद्य, अर्घ्य, आसन, अभिवन्दन आदि से सत्कार-समर्चन किया। महर्षि क्रौञ्ची के करुण क्रन्दनजन्य दुःख को भूले नहीं थे। ब्रह्माजी ने मुसकुराते हुए उनसे कहा—महर्षे, यह श्लोक ही आपने बनाया है, मेरी इच्छा से ही महाशक्ति सरस्वती आपके वदनारविन्द से आविर्भूत हुई हैं। हे ऋषिश्रेष्ठ, आप भगवान् राम का, जो धर्मात्मा एवं सबके अन्तर्यामी हैं, सम्पूर्ण चरित वह चाहे गुप्त हो, चाहे प्रकट हो, वर्णन कीजिए। केवल राम का ही नहीं लक्ष्मण का, सब राक्षसों का एवं विदेहनन्दिनी वैदेही का भी चरित चाहे प्रकट हो चाहे गुप्त हो वह सब वर्णन कीजिये। इस काव्य में आप की वाणी कदापि अनृत नहीं होगी। राम की मनोरम पुण्य कथा को श्लोकबद्ध कीजिए। जब तक पर्वत और नदियाँ भूतल में रहेंगी तब तक आप की रची रामकथा का प्रचार होगा। रामकथा का जब तक प्रचार होगा तब तक मेरे द्वारा निर्मित पुण्य लोकों में आप का निवास होगा।

वेदवेद्य परम पुरुष भगवान् का दशरथ के पुत्र रामरूप में अवतार होने पर साक्षात् वेद का ही वाल्मीकि महर्षि से रामायण के रूप में अवतार हुआ। तपःपूत, अब्भक्ष, वायुभक्ष, वल्कलवसन महर्षि की समाधिजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा प्रसूत, वेदावतारभूत कृति के सम्बन्ध में जो काट-छाँट करने का बुल्के आदि द्वारा दुःसाहस किया गया है, जैसे यहाँ से (अमुक स्थान से) आदि कवि की कृति का प्रारम्भ होता है एवं यहाँ (अमुक स्थान में) उनकी कृति का अवसान हो जाता है। अमुककाण्ड की पुष्पिका से उनकी कृति की समाप्ति सूचित होती है, ये श्लोक कुशीलवों द्वारा जोड़े गये हैं, ग्रन्थ का यह अंश आदि कवि की प्रतिभा के अनुरूप नहीं है, यह अंश पुनरुक्त है, यह शैली और ये विविध सुदीर्घ छन्द आदि कवि के नहीं जँचते, इत्यादि ओछे विचार अभिव्यक्त किये गये हैं। लाखों वर्षों से जनता जिसकी आराधना अध्ययनाध्यापन, टीका, टिप्पणी, व्याख्या एवं पाठ द्वारा कर रही है, जिसके विषय में सृष्टिकर्ता का आशीर्वचन "न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति" प्राप्त है एवं स्कन्दपुराण के अनुसार सप्तर्षियों का आशीर्वाद भी प्राप्त है—

स्वच्छन्दा भारती देवी जिह्वाग्रे ते भविष्यति।
कृत्वा रामायणं काव्यं ततो मोक्षं गमिष्यसि॥

जिस महामहनीय आदि काव्य ने भारतीय वाङ्मय को ही नहीं सारे संसार के वाङ्मय को प्रभावित किया है। भारत के विविध रामायणों एवं अधिकांश काव्य, नाटक, चम्पू, आख्यान, आख्यामिका आदि का उपजीव्य रामायण ही है। जिस रामायण की लोकप्रियता चमत्कारकारिणी है। उसके विषय में अपर्युक्त विचार कदापि श्लाघ्य नहीं।

श्याम देश की रामकथा 'रामकेर्ति' के अनुवाद रामकीर्ति में रामायण का गुणगान इस प्रकार किया गया है—

"जिन काव्य-रचनाओं ने विश्वसाहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है, उनमें रामायण महाकाव्य का स्थान सर्वोपरि है। धर्म और कथा के क्षेत्र में भी अपनी अमर लेखनी से एक विशिष्ट सम्प्रदाय का निर्माण किसी ने किया तो वह मानवता के आदि कवि, संस्कृत काव्य के जनक वाल्मीकि ही हैं। दूर-दूर देश के कवियों ने उनकी अनुकृति के असीम भण्डार से रत्न चुन-चुन कर अपने साहित्य को समृद्ध किया है। कलाकारों ने उनसे चिरस्थायी कला की प्रेरणा लेकर अपनी कलाकृति को अमर बनाया है। खेतों में काम करनेवाले किसान अथवा नाव चलानेवाले नाविक भी उससे अप्रभावित न रह सके। उनके गीतों को गुनगुनाते हुए वे अपनी थकावट भूल जाते हैं। उनकी लेखनी ने जिस सम्पूर्णता से प्रभाव डाला है वैसा और किसी की लेखनी ने नहीं डाला। थाई देश के छठे रामराज को ही यह श्रेय है कि उन्होंने रामकेर्ति के मूलरूप रामायण का पता लगा कर उसके रचयिता वाल्मीकि के बारे में जानकारी दी। कोई लोकप्रिय गीत लोगों को अपने माधुर्य से मोह लेता है तब लोग उसके सम्मोहन में फँस जाते हैं तो धीरे-धीरे इस बात को भूल जाते हैं कि इसका रचयिता कौन है? वाल्मीकि के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ।"

महर्षि वाल्मीकिजी ने अपौरुषेय वेदों, उपनिषदों तथा देवर्षि नारदजी के उपदेशों से श्रीराम की कथावस्तु जानकर एवं समाधिजनित ऋतम्भरा प्रज्ञा से सम्पूर्ण चरित्रों का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर रामायण की रचना की। रामायण शतकोटि प्रविस्तर है, उसका सार २४ सहस्र श्लोकों का वर्तमान रामायण महाकाव्य है। उसके अन्यान्य अंशों के चरित्रों का किन्हीं अन्य महर्षियों को साक्षात्कार हो सकता है। वर्तमान रामायण की अधिकांश कथा-वस्तु तो श्रीराम की ४० वर्ष की आयु के अन्तर्गत की ही है। रामायण के अनुसार ११ हजार वर्षों तक श्रीराम धरातल में राज्य करते रहे, अतएव यदि उनके सम्पूर्ण जीवन का वृत्तान्त लिखा जाय तो शतकोटि श्लोक भी कम ही होंगे।

रामायण की अति प्राचीनता जो रामायण के अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग परीक्षणों से सिद्ध है एवं श्रीराम-चन्द्र के अवतारबोधक वाल्मीकिरामायण के पद्य पाश्चात्य विद्वानों को बहुत अधिक खटकते हैं, इसलिए वे रामायण को अर्वाचीन सिद्ध करने एवं रामावतारबोधक पद्यों को प्रक्षिप्त, बाद के रचे हुए, सिद्ध करने के लिए निराधार एड़ी और चोटी का पसीना एक करते हैं। आधारभूत प्रमाण तो उनके पास कोई है नहीं, युक्तियाँ भी उनकी अत्यन्त लचर हैं। उनकी सब युक्तियों का प्रस्तुत ग्रन्थ में विस्तारपूर्वक निराकरण किया गया है।

श्रीबुल्के कपटपूर्ण वचनों में यह भी कहते जाते हैं कि "भारतीय साहित्य में रामकथा की व्यापकता की अपेक्षा विदेशों में उसकी लोकप्रियता आश्चर्यजनक है। उनमें बौद्ध अनामकं जातकम्, दशरथकथानम् और उनके चीनी भाषानुवाद, तिब्बती, खोतानी रामायण भी है। हिन्देशिया में सेरीराम, सेरतकाण्ड, रामकेर्ति, रामकियेन आदि प्रमुख हैं। रामकथा की इस व्यापकता एवं लोकप्रियता का श्रेय वाल्मीकिरामायण को ही है। विश्वसाहित्य के इतिहास में शायद ही किसी ऐसे कवि का प्रादुर्भाव हुआ हो जिसने भारत के आदि कवि के समान इतने व्यापकरूप से परवर्ती साहित्य को प्रभावित किया हो। रामायण की अद्वितीय लोकप्रियता निरन्तर अक्षुण्ण ही नहीं वरन्

शताब्दियों तक बढ़ती रही, क्योंकि मानवहृदय को आकर्षित करने की अद्वितीय शक्ति जो रामकथा में विद्यमान है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।" परन्तु ऐसा क्यों ? इसका उत्तर उनके पास नहीं है। भारतीय दृष्टि के अनुसार उत्तर स्पष्ट है कि राम और कृष्ण की कथाएँ केवल वाग्विलास या कण्ठशोषणमात्र नहीं हैं, वह अनुपम शान्ति, भक्ति तथा मुक्ति देनेवाली हैं, इसी कारण उनकी लोकप्रियता है। भागवत में स्पष्ट उल्लेख है। श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्, मैंने बड़े-बड़े यशस्वी महापुरुषों की कथाएँ विज्ञान और वैराग्य की विवक्षा से ही कही हैं, उनमें परमार्थ नहीं है। किन्तु कृष्ण में अमल भक्ति चाहनेवाले साधकों को चाहिये कि जो उत्तमश्लोक भगवान् के अमङ्गलघ्न गुणानुवाद नित्य ही सन्त महात्माओं के मध्य संगीयमान हैं, गाये जाते हैं, उन्हें ही सुनें।

भारतीय वाङ्मय में वर्णित रामकथा का आदर्श ठीक यही है कि वह रामचरित श्रवण और पठन से स्वच्छ मनोवृत्ति प्रदान करता है।

जैमिनीयाश्वमेघ में कहा है—

सर्वे धर्माः समुद्दिष्टा बर्णाश्रमविभागतः।

बृहद्धर्मपुराण (१६।९) तथा वाग्देवी के अवतार मम्मट की कृति काव्यप्रकाश का भी यही कहना है—

रामादिवद् वर्तितव्यं न रावणादिवत् (का. प्र. १।२) अर्थात् राम आदि के तुल्य व्यवहार करना चाहिए रावण आदि के तुल्य नहीं।

पद्मपुराण पातालखं० अ० २६ के अनुसार रामचरित में पातिव्रत्य, भ्रातृस्नेह, गुरुभक्ति आदि का आदर्श प्रस्तुत है—

यस्मिन् धर्मविधिः साक्षात् पातिव्रत्यं च यत्स्थितम्।
भ्रातृस्नेहो महान् यत्र गुरुभक्तिस्तथैव च ॥ १२८ ॥
स्वामिसेवकयोर्यत्र नीतिर्मूर्तिमती किल।
अधर्मकरशास्तिर्वै यत्र साक्षाद् रघूद्वहात् ॥ १२९ ॥

यदि रामकथा में बुल्के द्वारा अकुटिल भाव से राम के इसी आदर्श का प्रतिपादन किया जाता तो वह स्पृहणीय वस्तु होता। किन्तु दोषैकदृक्त्व का ही नहीं दोषैकोद्भावनप्रवणत्व का समाश्रयण कर भिन्नदृष्टिकोण रखनेवालों के लिए पुस्तक अस्पृहणीय हो गयी है।

राम साक्षात् मूर्तिमान् धर्म थे। श्रीभागवत आदि में मनुष्यों को धर्म की शिक्षा देकर लोकानुग्रह करना ही राम के अवतार का मुख्य प्रयोजन कहा गया है—

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।"

अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किञ्चन विद्यते।
लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः ॥—कालीदास
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ॥—गीता

लोक-शिक्षा एवं लोकानुग्रह के लिए ही भगवान् राम के अवतार एवं कर्म हैं।

सीता का पातिव्रत्य, राम की गुरुभक्ति एवं आज्ञापालन, लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम, दशरथ की सत्यसन्धता, कौशल्या का वात्सल्य, भरत की भ्रातृभक्ति आदर्श लोकशिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण हैं, अतः रामकथा में कथावस्तु भक्ति और मुक्ति देने के साथ-साथ आदर्श जीवन का एक महान् मार्ग दर्शन भी है। श्रीबुल्के रामकथा को विकास,

कल्पना, परिवर्तन और परिवर्धन मानते हैं और कहते हैं "उसे भारतीय प्रतिभा शताब्दियों से परिष्कृत करती चली आ रही है। किन्तु वस्तुतः भारतीय प्रतिभा तो सदा तत्त्वपक्षपातिनी रही है।

श्रीबुल्के कहते हैं "कैकेयी की कुटिलता वाल्मीकिरामायण में स्पष्टतया वर्णित है। आगे चलकर उसे निर्दोष ठहराने के लिए अनेकों उपायों का सहारा लिया गया है।" पर बेचारे बुल्के को यह पता नहीं है कि कैकेयी रामराज्य की बात सुनकर इतनी प्रसन्न हुई थी कि उसने मंथरा को अपने गले से हार निकाल कर दिया वास्तव में कुटिलता देवताओं की प्रेरणा से मंथरा के सिर चढ़ी।

वस्तुतः इन बातों का समुचित समाधान रामचरितमानस तथा अध्यात्मरामायण में स्पष्टतया वर्णित है। मुख्य बात तो यह है कि रावणत्रस्त देवताओं की प्रार्थना पर ही परब्रह्म परमात्मा अवतीर्ण हुए थे। यदि कैकेयी वनवास का आग्रह न करती तो सीता-राम का वनवास न होता एवं सीताहरण न होता तो रावणवध आदि कार्य कैसे होते और रामायण का आविर्भाव कैसे होता?

आदि कवि वाल्मीकिजी के विषय में महाकवि कालिदास का कैसा गौरवमय दृष्टिकोण है? उसपर भी दृष्टिपात करना अनुचित न होगा। वह कहते हैं, मैं मन्दमति हूँ, पर चाहता हूँ कवि की सी कीर्ति। अवश्य मैं लम्बे पुरुष से प्राप्य फल के लिए ऊपर को बाहें उठाये बौने के तुल्य उपहास्य होऊँगा। अथवा आदि कवि वाल्मीकि ने रघुवंश में प्रवेश करने के लिए दरवाजा बना दिया है, इसलिए जैसे वज्र से छिदी हुई मणि में प्रवेश करने में तागे को कोई कठिनाई नहीं होती वैसी ही मेरी भी स्थिति है। भारतीय संस्कृति में आकण्ठ निमग्न क्रान्तदर्शी महाकवि कालिदास ने महर्षि वसिष्ठजी की महामहनीयता, आदि कवि की परमश्लाघनीयता और रघुवंशी राजाओं का महान् औदार्य, विशुद्धि, विपुल पराक्रम, विद्वत्ता, तपश्चर्या आदि का जो मनोमोहक दिग्दर्शन कराया है उसे सात समुद्र पार के असंस्कृतमति पाश्चात्य कैसे हृदयंगम कर सकते हैं?

रामावतार

वाल्मीकिरामायण में कहा है बलगर्वित उद्धत रावण वध की कामनावाले देवताओं की प्रार्थना पर महातेजस्वी भगवान् विष्णु ही मनुष्यलोक में रामरूप से अवतीर्ण हुए।

उन अमिततेजा राम से कौशल्या वैसे ही शोभित हुई जैसे वज्रपाणि इन्द्र से अदिति देवी शोभित हुई थी। श्रीराम दिव्य लावण्य एवं सौन्दर्यपूर्ण दिव्य रूप से सम्पन्न, वीर्यवान् एवं असूयारहित थे। वे गुणों में दशरथ के तुल्य तथा भूमि भर में अनुपम पुत्र थे। वे नित्य शान्तात्मा, मृदुभाषी एवं स्मितपूर्वभाषी थे। दूसरों के परुष वचन बोलने पर भी वे परुष उत्तर नहीं देते थे। वे किसी के द्वारा किये गये एक उपकार से ही सन्तुष्ट हो जाते थे और आत्मवान् होने के कारण उसके सैकड़ों अपराधों का भी स्मरण नहीं करते थे।

वे शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध एवं वयोवृद्ध सज्जनों से अस्त्र-शस्त्रादिश्रम के भी मध्य में सदा ही वेद-वेदान्त-नीतिसम्बन्धी चर्चा करते ही रहते थे। अन्य अवसरों पर सज्जन पुरुषों से शास्त्ररहस्य की चर्चा ही करते थे। राम परम बुद्धिमान् थे। वे समागत लोगों से पहले कुशलक्षेम आदि पूछते थे। वे शब्दतः मधुराभिभाषी एवं अर्थतः प्रियंवद थे। महान् वीर्यवान् होने पर भी अपने अमित वीर्य का उन्हें गर्व नहीं था। वे अनृत कथा कभी नहीं करते थे। वे विद्वान् थे तथा वृद्धों का सम्मान-सत्कार करते थे। प्रजाजन सदा राम का अनुरञ्जन करते थे और राम भी सदा ही प्रजा का अनुरञ्जन करते थे। प्रजा का अनुरञ्जन करने से ही राजा होता है "प्रजानुरञ्जनाद्राजा" इस उक्ति को वे चरितार्थ करते थे। राम दीन-दुःखियों पर दयार्द्र रहते थे। वे जितक्रोध एवं विशेषतः ब्राह्मणों के प्रतिपूजक थे। वे दीनहीनों पर अनुकम्पा करनेवाले धर्मज्ञ थे। दुष्टनिग्रह तथा इन्द्रियनिग्रह में वे सदा तत्पर एवं पवित्रात्मा थे। अपने कुल के अनुसार दया, दाक्षिण्य, शरणागत-रक्षण आदि धर्मों के प्रति उनकी बुद्धि का सदा झुकाव रहता था,

अतएव वे क्षात्रधर्म प्रजापालनादि का बहुत आदर करते थे एवं उससे महान् स्वर्गफल की प्राप्ति समझते थे। श्रेय के विपरीत कर्म में उनकी कदापि अभिरुचि नहीं होती थी एवं धर्मविरुद्ध कथा की ओर भी उनकी रुचि नहीं थी।

वाद, जल्प आदि कथाओं में वे बृहस्पति के तुल्य स्वसिद्धान्तनिर्वाहक युक्तियों के वक्ता थे। उनका शरीर सत्कर्मानुष्ठानसमर्थ, तरुण, विपुलांसत्व आदि लक्षणों से सम्पन्न था। वे तत्-तत् कर्मयोग्य देश और काल के ज्ञाता थे एवं निग्रह और अनुग्रह के लिए पुरुषों की अधर्मिष्ठता एवं धर्मनिष्ठता जानते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो ब्रह्मा द्वारा वे संसार में एकमात्र सर्वगुणसम्पन्न साधु पुरुष निर्मित हुए हैं। राम गुणों के कारण श्रेष्ठ गुणों से युक्त प्रजाजनों के बहिश्चर प्राणों के तुल्य परम प्रिय थे। वे यथावत् साङ्गोपाङ्ग वेदों के ज्ञाता थे एवं तत्-तत् क्रियाओं के लिए अपेक्षित व्रतों का अनुष्ठान कर व्रतस्नात हुए थे। मन्त्रविहीन शस्त्रों एवं मन्त्रयुक्त शस्त्रास्त्रों में भगवान् श्रीराम अपने पिता से भी श्रेष्ठ थे। वे अखिल कल्याणों के उत्स थे एवं परकार्यसाधक श्रेष्ठ पुरुषों में अग्रगण्य थे। क्षोभहेतु के उपस्थित होने पर भी उनका अन्तःकरण कभी क्षुब्ध नहीं होता था, वे कृच्छ्रकाल में भी सत्य ही बोलते थे, वे धर्मार्थदर्शी वृद्ध ब्राह्मणों द्वारा शिक्षित एवं सौम्य थे। वे धर्म, अर्थ और काम के याथात्म्य के जाननेवाले, स्मृतिमान् तथा प्रतिभासम्पन्न थे। वे लौकिक कार्यों को करने में सामर्थ्यसम्पन्न थे। वे विनीत, गूढ़ अभिप्रायवाले तथा फल-निष्पत्तिपर्यन्त मन्त्रणा को गुप्त रखनेवाले थे। वे मित्रत्वेन सर्वसाधारण को अज्ञात मित्रों से सुरक्षित थे एवं उन्हीं के द्वारा परराष्ट्र-भेद आदि जानने में पूर्ण साहाय्य प्राप्त करते थे। उनके क्रोध और हर्ष दोनों अमोघ थे, जिसपर प्रसन्न होते थे, उसे निहाल कर देते थे। सत्पात्र में वित्तदान एवं न्यायपूर्वक अर्थसंग्रह के वे कालज्ञ थे। वे गुरु आदि में दृढ़भक्तिसम्पन्न तथा स्थिरप्रज्ञ थे। वे असद्ग्राही दुर्वचन कभी नहीं बोलते थे। वे आलस्यरहित, सावधान एवं स्वदोष तथा परदोष के ज्ञाता थे। वे शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ तथा पुरुषों के तारतम्य को जाननेवाले थे। न्यायानुकूल निग्रह, प्रग्रह और अनुग्रह करने में दक्ष थे। वे सत्पुरुषों के संग्रह तथा सपरिवार सत्पुरुषों के पालन एवं दुष्टों के निग्रह का देश और काल जानते थे। वे आयकर्म के उपायों को जानते थे, जैसे मधुकर पुष्पों से रस का संग्रह करता है वैसे ही प्रजा से यथोचित धन ग्रहण करने में चतुर थे एवं शास्त्रदृष्ट व्ययकर्म के भी अच्छे जानकार थे। आय के अर्धभाग, चतुर्भाग या त्रिभाग के व्यय की व्यवस्था जानते थे। वे शास्त्रसमूहों तथा प्राकृतादि भाषा मिश्रित नाटकादि में निपुण थे। निरालस्य होकर धर्म और अर्थ का संग्रह कर धर्म और अर्थ के अविरोधी काम का भी आदर करते थे। क्रीड़ा प्रयोजनवाले गीत, वाद्य, चित्रकर्म आदि के विज्ञाता थे तथा अर्थ के "धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च" इस पञ्चधा विभाग के ज्ञाता एवं अनुष्ठाता थे। अश्व, हस्ती आदि के आरोहण, नियन्त्रण एवं गत्यादिशिक्षण में वे सावधान थे।

वे धनुर्वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ एवं अतिरथों में समादृत थे। वे परसेना के अभिमुख अभियान करनेवाले एवं शत्रुओं पर प्रहार करनेवाले थे। सेनाओं के नयन तथा व्यूहादिनिर्माण आदि में वे विशारद थे। संग्रामाङ्गण में क्रुद्ध हुए वे देवताओं तथा दानवों के द्वारा भी अप्रधृष्य थे। असूया, क्रोध, घमण्ड तथा मत्सर से वे सर्वथा रहित थे। कोई भी प्राणी उनकी अवज्ञा नहीं कर सकता था। प्राकृत पुरुषों के तुल्य वे कालपराधीन न होकर स्वायत्त-सकल परिकर थे। इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त राजकुमार राम प्रजाजनों के परम सम्मत तथा परमप्रीतिपात्र थे। वे अपने क्षमाप्रधान गुणों के कारण पृथिवी के तुल्य, बुद्धि में बृहस्पदि के तुल्य एवं वीर्य में इन्द्र के तुल्य थे। पिता की प्रसन्नता को निःसीम बढ़ानेवाले तथा सभी प्रजाजनों के अभीष्ट उत्तम गुणों से राम इस प्रकार प्रदीप्त हुए जैसे अंशुजालों से सूर्य दीप्त होते हैं। एवं गुणसम्पन्न अप्रधृष्यपराक्रमसमन्वित राम लोकनाथ भगवान् विष्णु के तुल्य थे। उन श्रीरामचन्द्रजी को पृथिवी ने अपना पति बनाना चाहा। महाराज दशरथ को अपनी वृद्धावस्था देखते हुए यह अभिलाषा हुई कि मेरे जीतेजी राम कैसे राजा हों—

अथ राज्ञो बभूवेव वृद्धस्य चिरजीविनः ।
प्रीतिरेषा कथं रामो राजा स्यान्मयि जीवति ।।

एवंगुणगणविशिष्ट दाशरथि श्रीराम भगवान् परब्रह्म परमात्मा के अवतार थे इस सन्दर्भ में प्रस्तुत ग्रन्थ में वेद, रामायण, अष्टादश पुराण, महाभारत, चाणक्य के अर्थशास्त्र, शुक्रनीति आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों के वचन प्रचुर मात्रा में उद्धृत किये गये हैं। हम यहाँ पर पहले महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में अन्यतम क्रान्तदर्शी महाकवि सरस्वती के वरदपुत्र कालिदास के कतिपय अनुष्टुप् छन्दों को उद्धृत करते हैं—

स्रष्टुर्वरातिसर्गात्तु मया तस्य दुरात्मनः ।
अत्यारूढं रिपोः सोढं चन्दनेनेव भोगिनः ।।
धातारं तपसा प्रीतं ययाचे स हि राक्षसः ।
दैवात्सर्गादवध्यत्वं मर्त्येष्वास्थापराङ्मुखः ।।
सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रणभूमेर्बलिक्षमम् ।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरःकमलोच्चयम् ।।
मोक्षध्वे स्वर्गवन्दीनां वेणीबन्धानदूषितान् ।
शापयन्त्रितपौलस्त्यबलात्कारकचग्रहैः ।।

भगवान् विष्णु कहते हैं—ब्रह्माजी के वरप्रदान के कारण मैंने उस दुरात्मा रिपु का दिन पर दिन ऊपर चढ़ना वैसे ही सहा है जैसे सर्प का अपने ऊपर चढ़ना चन्दन का वृक्ष सह लेता है। उसकी तपस्या से प्रसन्न हुए ब्रह्मा से उस राक्षस ने दैवी सृष्टि से अपना अवध्यत्व वर माँगा, मानवी सृष्टि से अवध्यत्व का वर नहीं माँगा, क्योंकि मनुष्यों में उसकी तनिक भी आस्था नहीं थी। इसलिए मैं दशरथ-पुत्र होकर तीक्ष्ण बाणों से उसके सिररूपी कमलराशि को रणभूमि को चढ़ा दूँगा। रावण ने स्वर्ग की जिन देवियों को बन्दी बना रक्खा है, नलकूबर के शाप से नियन्त्रित पौलस्त्य (रावण) के द्वारा केशग्रहण से अदूषित वेणियों (जूड़ों) को अब आप लोग खोलेंगे।

कालिदास का काल ईसवी सन् से समधिक १०० वर्ष से पूर्व का काल निश्चित है। वे विक्रम संवत् के शंस्थापक महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में अन्यतम थे। विक्रम संवत् ईसवी सन् से ५७ वर्ष पूर्व स्थापित हुआ था, उस समय उनकी अवस्था ५० वर्ष की भी मानी जाय तो वे सन् संवत् के आरम्भ में १०७ वर्ष के होंगे।

ब्रह्मा कहते हैं—हे विभो हे विष्णो, आप अपने को चार प्रकार का कर धर्मात्मा, महान् दानी, अयोध्याधिपति राजा दशरथ, जो महर्षियों के तुल्य तेजस्वी हैं, की ह्री, श्री और कीर्ति के तुल्य तीन पत्नियों में पुत्रता को प्राप्त होइये—

राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ।। १९ ।।
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ।
अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ।। २० ।।
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ।
तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ।। २१ ।।
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ।। २२ ।। (वा० रा० १।१५)

परशुरामजी कहते हैं—हे परन्तप, इस वैष्णव धनुष के ग्रहण, आकर्षण आदि से, जिसकी कोई दूसरा प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा सकता, मैं आपको अनाद्यन्त, किसी के द्वारा न जीते जा सकनेवाले सुरेश्वर मधुसूदन जानता हूँ।

उपस्थित ये सब देववृन्द अनुपम कर्मवाले रणाङ्गण में अप्रतिभट (प्रतिभटरहित) आपको देखते हैं। आपके विषय में मेरी यह अशक्ति मेरे लिए लज्जाकर नहीं है, क्योंकि लोकनाथ आपके द्वारा मुझसे विमुख की हुई स्वशक्ति का अपने में नियोजन करने से मैं असमर्थ हो गया हूँ—

अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
धनुषोऽस्य परामर्शात् स्वस्ति तेऽस्तु परन्तप ॥१७॥
एते सुरगणाः सर्वे निरीक्षन्ते समागताः।
त्वामप्रतिमकर्माणमप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥१८॥
न चेयं तव काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति।
त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः ॥१९॥

पद्मपुराण में परशुरामजी कहते हैं—

राम राम महाबाहो न वेद्मि त्वां सनातनम्।
जानाम्यद्यैव काकुत्स्थ तव वीर्यगुणादिभिः ॥
त्वमादिपुरुषः साक्षात् परब्रह्म परोऽव्ययः।
त्वमनन्तो महाविष्णुर्वासुदेवः परात्परः ॥
नारायणस्त्वं श्रीशस्त्वमीश्वरस्त्वं त्रयीमयः।
त्वं कालस्त्वं जगत्सर्वमकाराख्यस्त्वमेव च ॥
स्रष्टा धाता च संहर्ता त्वमेव परमेश्वरः।
त्वमचिन्त्यो महद्भूतं विश्वरूपस्त्वणुर्महान् ॥
चतुःषट्पञ्चगुणवांस्त्वमेव परमेश्वरः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारस्त्रयीमयः ॥
व्यक्ताव्यक्तस्वरूपस्त्वं गुणभृन्निर्गुणः परः।
स्तोतुं त्वाहमशक्तश्च वेदानामप्यगोचरम् ॥
यच्चापमानं कृतवांस्त्वां युयुत्सुतया प्रभो।
तत्क्षन्तव्यं त्वया नाथ इत्यादि ॥

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः ॥

महर्षि विश्वामित्र कहते हैं—

सत्यपराक्रम राम को मैं जानता हूँ, महातेजा महर्षि वसिष्ठ जानते हैं, ये अन्य भी तपोनिष्ठ महात्मा राम को जानते हैं। उन्हें सर्वसाधारण लोग नहीं जानते हैं। भाव यह कि वे साक्षात् परब्रह्म हैं।

आगे वे महर्षि कहते हैं—

अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम्।
तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद् यथा मम ॥

हे राम, आज हम शिद्धाश्रम में जा रहे हैं वह आश्रम जैसा मेरा है वैसा ही आप का भी है, क्योंकि आप विष्णुरूप हैं।

रावण का प्रणिधि अकम्पन कहता है—

असाध्यः कुपितो रामो विक्रमेण महायशाः ।
आपगायास्तु पूर्णाया वेगं परिहरेच्छरैः ॥ २३ ॥
सताराग्रहनक्षत्रं नभश्चाप्यवसादयेत् ।
असौ रामस्तु सीदन्तीं श्रीमानभ्युद्धरेन्महीम् ॥ २४ ॥
भित्वा वेलां समुद्रस्य लोकानाप्लावयेद् विभुः ।
वेगं वापि समुद्रस्य वायुं वा विधमेच्छरैः ॥ २५ ॥
संहृत्य वा पुनर्लोकान् विक्रमेण महायशाः ।
शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः ॥ २६ ॥
नहि रामो दशग्रीव शक्यो जेतुं रणे त्वया ।
रक्षसां वापि लोकेन स्वर्गः पापजनैरिव ॥ २७ ॥(वा० रा० ६।३३।१)

कुपित होकर काल के तुल्य संहार करने में प्रवृत्त हुए राम को और तो और ब्रह्मा आदि भी पराक्रम से नहीं रोक सकते। राम बाढ़ से लबालब भरी नदी का वेग बाणों से रोक सकते हैं, आकाश को भी त्रिविक्रमावतार की तरह तारारहित कर सकते हैं, यज्ञवराह के तुल्य जलमग्न पृथ्वी का उद्धार कर सकते हैं, शरों से समुद्र के तट-बन्धरूप मर्यादा को तोड़ कर सब लोकों को जलमग्न कर सकते हैं। शरों से समुद्र तथा वायु के वेग को रोक सकते हैं। महायशा राम विक्रम द्वारा सब लोकों का संहार कर फिर सारी प्रजा की नई सृष्टि करने में समर्थ हैं। हे दशकन्धर, तुम रण में राम को कदापि नहीं जीत सकते। तुम अकेले तो क्या सब राक्षसों के साथ भी उन्हें नहीं जीत सकते।

रावण द्वारा मायामृग बनने के लिए अनुरोध करने पर मारीच कहता है—

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः ॥ १३ ॥
अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा ।
न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने ॥ १४ ॥

राम मूर्तिमान् धर्म हैं, सज्जनशिरोमणि हैं, उनका पराक्रम परम सत्य है जैसे देवताओं के इन्द्र राजा हैं वैसे ही वे सब लोकों के राजा हैं। वह तेज असीम हैं जिनकी पत्नी जनकनन्दिनी जानकी हैं। रावण, राम के बाणों से सुरक्षित उसे तुम हरने में सक्षम नहीं हो। उसे तुम्हें हरने का विचार नहीं करना चाहिये। ऐसा करना सर्वनाश को निमन्त्रण देना है।

ऋषियों ने, देवताओं और गन्धर्वों ने यज्ञ की पूर्णाहुति एवं मन्त्र-संस्कृत वसोर्धारा के समान प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करती हुई सीता को देखा। धर्मात्मा राम वाष्पाकुललोचन होकर मुहूर्त भर ध्यानपरायण हुए। तदनन्तर ही राजराज वैश्रवण (कुबेर), पितरों सहित यमराज, सहस्रनयन देवराज, जलाधिप वरुण, वृषभध्वज महादेव, ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ लोकपितामह ब्रह्मा आदि देवगण सूर्यसंनिभ विमानों द्वारा लङ्कापुरी में राम के निकट आये एवं प्राञ्जलि हो राम से बोले—आप सब लोकों के कर्ता हैं, ज्ञानवानों में श्रेष्ठ हैं, फिर अग्नि में प्रवेश कर रही सीता की क्यों उपेक्षा कर रहे हैं ? यहाँ देवगण, इन्द्र आदि से भी राम को श्रेष्ठ कहा गया है। नागेश के अनुसार 'विष्णु-मुखा वै देवाः' इस श्रुति से भी यह सिद्ध है। राम ने कहा मैं तो अपने को दशरथ का पुत्र मानव जानता हूँ। मैं वास्तव में जो हूँ और जैसा हूँ वह आप बतायें।

तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने कहा—

भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः ।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥१३॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥१४॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः ॥१५॥
सेनानीर्ग्रामणीः सर्वं त्वं बुद्धिस्त्वं क्षमा दमः ।
प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः ॥१६॥
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् ।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥१७॥
सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः ।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥१८॥
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परात्परः ॥१९॥
प्रभवं निधनं चापि नो विदुः को भवानिति ।
दृश्यसे सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥२०॥
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु नदीषु च ।
सहस्रचरणः श्रीमान् शतशीर्षः सहस्रदृक् ॥२१॥
त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान् ।
अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः ॥२२॥
त्रीन् लोकान् धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान् ।
अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥२३॥
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिताः प्रभो
निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा ॥२४॥
संस्कारास्त्वभवन् वेदा नैतदस्ति त्वया विना ।
जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम् ॥२५॥
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः ।
त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः ॥२६॥
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बध्वा सुदारुणम् ।
सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः ॥२७॥
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ।
तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां वर ॥२८॥
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ।
अमोघं देव वीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमाः ॥२९॥

अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः ।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि ॥३०॥
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥३१॥

अर्थात् आप भोक्ता और भोग्य रूप सकल प्रपञ्च के आश्रय साक्षात् नारायण हैं, सुदर्शनचक्रधारी श्रीविष्णु हैं, एकश्रृङ्ग वराह तथा भूत और भव्य सकल शत्रुओं के विजेता हैं। आप ही आदि, अन्त और मध्य में रहनेवाले सत्य अक्षर हैं। सब लोकों के आप ही परम धर्म हैं। आप ही चतुर्भुज विष्वक्सेन, शार्ङ्गधन्वा, सर्वेन्द्रिय-नियामक हृषीकेश पुरुष एवं पुरुषोत्तम हैं। आप ही अजित खड्गधर विष्णु, बृहद्बल कृष्ण, सेनानी एवं ग्रामणी हैं। आप ही बुद्धि, सत्त्व, क्षमा तथा दम हैं। जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के आप ही एकमात्र कारण हैं एवं आप ही मधुसूदन हैं। आप ही इन्द्रकर्मा इन्द्र की सृष्टि करनेवाले महेन्द्र हैं। रणान्तकृत् पद्मनाभ भी आप ही हैं। दिव्य महर्षि आपको शरणयोग्य परम आश्रय एवं रक्षक कहते हैं। आप ही सहस्रश्रृङ्ग वेद एवं शतशीर्ष महान् धर्म हैं। आप तीनों लोकों के आदिकर्ता स्वयंप्रभु हैं। आपका अन्य कोई प्रभु नहीं है। सिद्धों एवं साध्यों के आप ही आश्रय एवं कारण हैं। आप ही यज्ञ हैं और आप ही वषट्कार हैं। आप ही ॐकार हैं। आप ही परात्पर परमेश्वर हैं। आप की उत्पत्ति और निधन कोई नहीं जानता अर्थात् आप उत्पत्ति और लय से विरहित नित्य हैं। आप कौन हैं यह कोई नहीं जानता, परन्तु आप अन्तर्यामी रूप से सब भूतों में, विशेष रूप से गौ एवं ब्राह्मणों में, दृष्टिगोचर होते हैं। अत्यन्त अचेतन सभी दिशाओं में, आकाश में एवं पर्वतों और नदियों में अन्तर्यामी रूप से आप योगियों के दृष्टिगोचर होते हैं। आप सहस्रचरण, शतशीर्ष तथा सहस्रदृक् हैं। महाविराट् रूप से संसार के सभी चरण, शीर्ष और नेत्र आपके ही हैं। सभी भूतों पर्वतों सहित पृथिवी को आप ही धारण करते हैं। अन्त में पृथिवी के कारण-रूप जल में, देव, गन्धर्व, दानव सहित तीनों लोकों को धारण करनेवाले महोरग शेष आप ही हैं। हे श्रीराम, मैं (ब्रह्मा) आपका हृदय हूँ, सरस्वती आपकी जिह्वा है एवं मेरे द्वारा निर्मित सभी देव आपके गात्र के रोम हैं। आपका नेत्रनिमीलन रात्रि है एवं नेत्रोन्मीलन दिन है। आपके ज्ञान-विज्ञान संस्कार ही वेद हैं। वस्तुतः आपके बिना संसार कुछ भी नहीं है। सारा जगत् आपका वैराज शरीर है। आपकी स्थिरता वसुधातल है। आपका कोप ही अग्नि है। आपका प्रसाद ही श्रीवत्सलक्षण सोम है। आपने अपने तीन पगों से तीनों लोकों को आक्रान्त कर, दारुण बलि को बाँधकर, इन्द्र को राजा बनाया है। सीता लक्ष्मी हैं और आप प्रजापति विष्णु हैं। रावण के वधार्थ ही आप मानव-देह में प्रविष्ट हुए हैं। हे देव, वह रावण-वधादि हम लोगों का (देववृन्द का) कार्य आपके द्वारा सम्पन्न हो गया है। अब आप प्रसन्नतापूर्वक परम धाम में पधारिये। हे देव, आपका अमोघ वीर्य एवं अमोघ पराक्रम है। आपका दर्शन और स्तवन भी अमोघ है। भूतलवर्ती आपके भक्त नर भी अमोघ (सर्वत्र साफल्यसम्पन्न) होंगे। वे भक्त ऐहलौकिक सकल कामनाओं को प्राप्त करेंगे और अन्त में आपके पुराणपुरुषोत्तमरूप को प्राप्त होंगे। देवाधिदेव महादेवजी की सन्निधि में इन्द्रादि दिक्पालों के समक्ष राम के सम्बन्ध में लोकपितामह ब्रह्माजी की यह भूतार्थ व्याहृति है।

श्रीराम के अनन्त गुण हैं अनन्तगुणगणमण्डित परब्रह्म परमात्मा के अवतार राम का पाश्चात्य मति यदि आकलन न कर सके तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? परमतत्त्व राम को जानने के लिए मन की शुद्धि अपेक्षित है। अशुद्ध मन में राम के यथार्थ ज्ञान की क्षमता नहीं। यद्यपि

"अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ॥"

के अनुसार उनका यथार्थ ज्ञान प्रायः सभी के लिए कठिन है। फिर भी जो वेदशास्त्र के वचनों पर श्रद्धा करते हैं, ऋषिमहर्षियों के वाक्यों पर विश्वास करते हैं श्रद्धा-विश्वासरूपी पार्वती-परमेश्वर की कृपा से उनके लिए यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना संभव है। ऋषिमुनियों के वचनों को झुठलाने में तत्पर वेदविरोधियों से उनमें अवश्य तारतम्य है।

राम का एक पत्नीव्रत

आनन्दरामायण के अनुसार राम की प्रतिज्ञा है सीता के सिवा अन्य स्त्री मेरे समक्ष माता कौशल्यातुल्य है। अन्य पत्नी का परिग्रह मुझसे नहीं किया जा सकता, परिग्रह करना तो दूर मैं मन से भी अन्य स्त्री के परिग्रह की बात नहीं सोच सकता—

अन्यत्सीतां विनान्या स्त्री कौशल्यासदृशी मम।
न क्रियतेऽपरा पत्नी मनसापि न चिन्तये ॥

यज्ञार्थ आवश्यक होने पर राम ने सीता से भिन्न भार्या का वरण नहीं किया, इसलिए यज्ञों में पत्नी के स्थान में सीता की काञ्चनी प्रतिमा ही उपयुक्त होती थी—

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत् ॥

श्रीसीता का परित्याग कर रावणारि श्रीराम ने अन्य नारी का वरण नहीं किया, किन्तु सीता की काञ्चनी प्रतिकृति को पत्नी के रूप में अपने दक्षिणाङ्क में स्थापित कर प्रभूत यज्ञयाग किये। पतिदेव के श्रवणपथगामी उस वृत्तान्त से सीता ने परित्याग-दुःख को, जो दुःख से भी हटाया नहीं जा सकता था, किसी प्रकार सहा अर्थात् उस वृत्तान्त से उनका दुःख कुछ हल्का हो गया—

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्तुः सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे ॥

उत्तररामचरित में श्रीराम का स्मरण कर सीता के विह्वल होने पर श्रीसीता की सखी वासन्ती ने कहा—सखि, तुम ऐसे निष्ठुर राम का स्मरण कर क्यों दीर्घ और उष्ण उच्छ्वास लेती हो। सीता ने कहा, सखि, राम निष्ठुर नहीं है। मैं बहिरङ्ग दृष्टि से ही उनसे दूर हूँ वस्तुतः उनके हृदय की रानी मैं ही हूँ।

राम की हृदयसिंहासनाधीश्वरी सीता ही रही। इस सन्दर्भ में कुन्दमालाकार ने कितने सुन्दर शब्दों में राम के भाव का चित्रण किया है—

त्वं देवि चित्तनिहिता गृहदेवता मे स्वप्नागता शयनमध्यसखी त्वमेव।
दारान्तरग्रहणनिःस्पृहमानसस्य यागे तव प्रतिकृतिर्मम धर्मपत्नी ॥

अर्थात् हे देवि, चित्त में स्थापित (सदा स्मृति में रमी हुई—अविस्मृत) तुम्हीं मेरी गृहदेवी हो, स्वप्न में आयी हुई तुम्हीं मेरी शय्या में सहचरी हो। अन्य पत्नी के परिग्रह की मुझे तनिक भी स्पृहा नहीं है। यज्ञयागों में धर्मपत्नी की आवश्यकता होने पर तुम्हारी काञ्चनी प्रतिमा ही यज्ञ में मेरी धर्मपत्नी है।

श्रीराम की नीतिमत्ता

वाल्मीकिरामायण के अनुसार राजतन्त्र होते हुए भी रघुवंशियों के राज्यकाल में लोकतन्त्र अक्षुण्ण था। इसी लिए महाराज दशरथ को राम को यौवराज्य देने के लिए जन-स्वीकृति अपेक्षित हुई थी—

समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान् पृथिवीपतिः। (वा० रा० २।१।४६)

मन्त्री वही होते थे जो पौरों एवं जानपदों के विश्वासपात्र होते थे—

तस्मै मन्त्रः प्रयोक्तव्यो दण्डमाधित्सता सदा ।
पौरजानपदा यस्मिन् विश्वासं धर्मतो गताः ॥ (म० भा० १२।८३।४५,४६)

राजा की सभा में सभी जातियों के मुख्य लोग सभासद् होते थे—सभ्याः सर्वासु जातिषु । (शुक्रनीति)

जातिजानपदान् धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित् ।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत् ॥ (मनु० ८।४१)

के अनुसार राम जातिधर्म, देशधर्म, श्रेणीधर्म तथा कुलधर्मों को जानते एवं उनका पालन करते थे। भारतीय नीति एवं राजधर्म में राजा का आचरण ही आदर्श राज्य का आधार होता है। राजा चाहे व्यक्ति हो या दल। वह अपने व्यवहार से समाज का उन्नायक होता है। अतएव राम ने अपने आचरण द्वारा प्रजा तथा समाज को आदर्शरूप में ढाला था। यद्यपि वैयक्तिक आचरण निजी जीवन से ही सम्बद्ध होता है, परन्तु वस्तुतः राम का वैयक्तिक जीवन भी समाज के लिए ही था। तभी तो वे लोकाराधन के लिए वैयक्तिक स्नेह, दया, सौख्य तथा जानकी तक को त्यागने को तैयार थे।

तुलसी प्रजा सुभाग से भूप भानुसम होय ।
बरसत हरषत लोग सब करषत लखै न कोय ॥

सूर्य धरती से कब कितना रस खींचते हैं यह कोई नहीं देखता, भानुजनित मेघ से रसमय जल बरसता देखकर सभी हर्षित होते हैं वैसे ही रामराज्य में कर के रूप में बहुत परिमित धन लिया जाता था, यज्ञ-यागों में प्रभूत धन दान दिया जाता था।

कालिदास के अनुसार 'सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।' हजारों गुना अधिक बनाकर देने के लिए जैसे सूर्य पृथिवी से अप्रत्यक्ष रसादान करते हैं वैसे राजा हजारों गुना अधिक देने के लिए प्रजा से सीमित अप्रत्यक्ष कर ग्रहण करते थे।

तुलसी के अनुसार ''श्रुतिपालक धर्मधुरन्धर' रामने विधान नहीं बनाया, किन्तु आदर्श आचरण उपस्थित किया। तुलसी के रामने राजधर्म का सर्वस्व यही कहा था—

मुखिआ मुख सों चाहिअइ खान पान कहुं एक ।
पालइ पोसइ सकल अँग तुलसी सहित विवेक ॥

प्रजा के विभिन्न वर्गों का उनकी स्थिति, क्षमता और संस्कार के अनुसार पालन-पोषण करना राजा का कर्तव्य है, परन्तु विवेक के साथ। मुख द्वारा भक्षित अन्न रसरूप से हस्त, पाद, नेत्र, श्रोत्र, हृदय, मन, बुद्धि आदि सबको प्रभावित करता है। परन्तु सबकी योग्यता तथा आवश्यकता एक सी नहीं है। 'हाथी को मन भर चींटी को कन भर' की कहावत प्रसिद्ध ही है। धर्मनियन्त्रित विवेकी राजा ही विभिन्न परिस्थितियों, व्यक्तियों एवं श्रेणियों के साथ यथोचित कुशलता के साथ व्यवहार कर सकता है। भारतीय राजा उतना शासक नहीं होता था जितना प्रजा को हित का परामर्श दाता। श्रीराम प्रजा को आत्मीयता की दृष्टि से उपदेश करते हैं राजा के रुआब में नहीं—

जो अनीति कुछ भाखौं भाई। तो मोहि बरजउ भय बिसराई ॥

यहाँ 'राजा करे सो न्याय' को कोई स्थान नहीं। ऐसा राजा ही प्रजा के हृदयसिंहासन का अधीश्वर होता है।

रामराज्य में सभी सुखी और सभी शोकरहित थे—

हरषित भये गये सब सोका।

राम ने अपने राज्य को 'आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी' के अनुसार बनाया था, जिसमें वसिष्ठादि ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण थे, राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न जैसे शूरवीर राजन्य थे। उस राष्ट्र में पर्याप्त दूध देनेवाली गायें और महान् भार वहन करनेवाले बैल उत्पन्न होते थे। तीव्रगामी घोड़े एवं साध्वी सती पुरन्ध्रियाँ होती थीं। राष्ट्र के रथी विजेता होते थे। राष्ट्र के यजमान सभा में बैठने योग्य सभ्य युवक उत्पन्न करनेवाले होते थे। समय-समय पर वृष्टि होती थी। औषधियाँ फलदायिनी परिपाक को प्राप्त होती थीं। राष्ट्र के योग-क्षेम की पूर्ण व्यवस्था थी। राम गौओं और ब्राह्मणों के रक्षणार्थ तथा देश के हितार्थ अपने अप्रमेय गुरु के अनुसार सदा ही महत् कर्म की साधना में उद्यत रहे—

गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय वै।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः॥

रामराज्य में भौतिक आदि ताप किसी को नहीं व्यापते थे—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा॥ (रामचरितमानस ७।२०।१)

उच्च धर्मनिष्ठता एवं ब्रह्मनिष्ठता का ही परिणाम था कि किसी की अपमृत्यु नहीं होती थी। किसी को कोई पीड़ा नहीं होती थी। सब सुन्दर और नीरोग होते थे। कोई दुःखी, दरिद्र एवं दीन नहीं होता था। कोई मूर्ख एवं दुर्लक्षणवाला भी नहीं होता था—

अलप मृत्यु नहिं कवनेउ पीरा। सब सुन्दर सब निरुजसरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुःखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥
सब उदार सब पर उपकारी। विप्रचरनसेवक नर नारी॥
एकनारिव्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

वाल्मीकिरामायण के अनुसार राम का मन्त्रिमण्डल था, जिसमें विनयशील, सलज्ज, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, अस्त्रशस्त्रकुशल, सुदृढ़, पराक्रमी, यशस्वी तथा सावधान मन्त्री थे।

सीताराम का महत्त्व

पद्मपुराण के अनुसार श्रीहरि का एक-एक नाम समस्त वेदों के समान परमपावन है और हरि के सहस्र नामों के तुल्य एक श्रीरामनाम है। तभी तो भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं—हे वरानने ! मैं मनोरम राम में राम, राम, राम जपता हुआ सदा रमण करता हूँ। राम का एक-एक नाम हरि के सहस्र नामों के तुल्य हैं।

जैसे सच्चिदानन्दघनमूर्ति राम हैं वैसी ही राम की ह्लादिनी, सन्धिनी और संविन्मूर्ति जनकनन्दिनी जानकी हैं। आह्लादिनी आदि शक्तियों से विशिष्ट ही परिपूर्ण ब्रह्म होता है। उसी तरह सर्वालङ्कारों से अलङ्कृता सुवर्णवर्णा द्विभुजा चिद्रूपिणी कमलधारिणी श्रीजनकनन्दिनी सीता से आश्लिष्ट होकर ही श्रीरामचन्द्र परात्पर परब्रह्म हैं।

सकल सत्शास्त्रों का तात्पर्य सीता में पर्यवसित है, क्योंकि सीतोपनिषद् के अनुसार सीता ब्रह्मसत्तासामान्यरूपा है। तभी तो श्रीपराशरभट्ट स्वामी कहते हैं—केवल श्रीसूक्त तथा रामतापिनी उपनिषद् ही हाथ उठाकर आपको ही जगत् की एकमात्र नियन्त्री नहीं कहते हैं, किन्तु रामायण महान् आर्ष ग्रन्थ भी आपके चरित्र का प्रतिपादन कर के ही जीवनधारण करता है। जितने स्मृतियों के प्रणेता मनु आदि हैं वे सभी पुराणों के सहित वेदों को आपकी महिमा में प्रमाण मानते हैं।

भक्त वैष्णवाचार्य तो मुक्तकण्ठ से स्पष्ट कहते हैं—हे माता मैथिली, लङ्का में नित्य अभिनव अपराध करनेवाली राक्षसियों का रोषपूर्ण हनुमान् से, अनेक हेतुदर्शक वचनों द्वारा बिना शरण से आये ही, संरक्षण कर आपने राघवेन्द्र श्रीराम की गोष्ठी (संसद्) को लघु बना दिया, क्योंकि राघवेन्द्र रामचन्द्र भगवान् ने तो जयन्त तथा विभीषण का ही संरक्षण शरण में आनेपर ही किया, किन्तु आपने तो अपने परमोत्कृष्ट क्षमागुण के प्राबल्य से शरण में आये बिना, अहैतुकी कृपा से, उन कई राक्षसियों का संरक्षण किया—आपकी वह आकस्मिकी क्षमा हमें महान् अपराधों से क्षमा कर सुखी करे।

संमोहनतन्त्र के अनुसार गौर तेज (महालक्ष्मीस्वरूपा जनकनन्दिनी जानकी) के बिना श्याम तेज (नीलसरोरुह-द्युति विष्णुरूप भगवान् श्रीराम) के पूजन, भजन तथा ध्यान से पूर्ण सिद्धि मिलना तो दूर पातक ही हाथ लगता है।

ब्रह्माजी श्रीराघवेन्द्र रामचन्द्रजी से कहते हैं—

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्॥ (वा० रा० ६।११७)

विष्णुपुराण के अनुसार जैसे विष्णु सर्वगत हैं वैसे ही उनकी अनपायिनी शक्ति भी सर्वगत एवं नित्य ही है। विष्णु अर्थ हैं तो भगवती वाणी हैं, भगवती नीति है तो भगवान् नय हैं, विष्णु बोध हैं तो लक्ष्मी बुद्धि हैं एवं भगवान् धर्म हैं तो भगवती सत्क्रिया हैं।

आगे विष्णुपुराण में कहा गया है—

महालक्ष्मी ही विष्णु के राघव हो जाने पर सीता बन जाती हैं, कृष्ण होने पर रुक्मिणी बन जाती हैं, जगत्स्वामी विष्णु जब-जब अवतार लेते हैं, महालक्ष्मी उनकी सहायिनी होकर प्रकट होती हैं। अन्य अवतारों में भी विष्णु के अनुरूप ये बन जाती हैं। मनुष्य बनने पर मानुषी बन जाती हैं। सर्वथा विष्णु के अनुरूप ही अपना स्वरूप बना लेती हैं।

आगे लक्ष्मीजी को सम्बोधित कर कहा गया है—माँ, लक्ष्मीजी, आप सब लोगों की माता हैं और देवाधिदेव हरि पिता हैं। आपसे और भगवान् विष्णु से सारा जगत् व्याप्त है।

स्कन्दपुराण में भी कहा गया है—

कमलेयं जगन्माता लीलामानुषविग्रहा।
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी॥
विष्णोर्देहानुरूपा वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम्।

श्रीराम कहते हैं—अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा। अर्थात् सीता मुझसे वैसे ही अभिन्न है जैसे कि भास्कर से उनकी प्रभा अभिन्न है। श्रीसीताजी भी कहती हैं—

अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।

जैसे भास्कर से प्रभा अभिन्न है वैसे हो मैं श्रीराघवेन्द्र से अभिन्न हूँ।

श्रीराम के लोकोत्तर गुण

उत्तररामचरित के अनुसार लोकोत्तर ईश्वरों के चरित्र वज्र से भी कठोर एवं कुसुम से भी कोमल होते हैं। उन्हें कौन जान सकता है। राम कहते हैं—सीते, मैं लक्ष्मण और तुमको भी त्याग सकता हूँ, परन्तु मैं प्रतिज्ञा का, विशेषतः ब्राह्मणों के प्रति की गयी प्रतिज्ञा का, त्याग नहीं कर सकता हूँ।

सत्यपराक्रम राम देते ही हैं, प्रतिग्रह नहीं करते हैं। सत्य ही बोलते हैं, अनृत नहीं बोलते हैं।

राम के क्रोध और प्रसाद निरर्थक नहीं होते, उनके क्रोध और प्रसाद अमोघ हैं। वे वध्य व्यक्ति का अवश्य वध करते हैं और निर्दोष अवध्य के प्रति कभी भी कुपित नहीं होते।

राम की धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता स्तुत्य थी। दान में उनका समुत्साह तथा मित्र के प्रति अवञ्चकता भी लोकोत्तर थी। गुरु के प्रति वे विनयी थे। उनके चित्त में गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुणों में अभिरुचि, शास्त्रों में अभिज्ञता, रूप में सुन्दरता एवं हरि में भक्ति भी अत्यन्त उत्कृष्ट थी, इसी लिए ऋषियों की दृष्टि में राम से भिन्न कोई भी काव्यों के यश का भाजन हो ही नहीं सकता।

मृदुता, करुणा, श्रुत (परम्परा से वेदादि शास्त्रज्ञान), शील, इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह ये छः गुण राघवेन्द्र राम को शोभित करते हैं।

शोभा, कान्ति, छवि, वर्ण, लक्षण, लावण्य, आभिजात्य, सौभाग्य, राग आदि रूप के सभी भेद राम के सम्बन्ध से ही शोभित होते हैं।

अङ्गों की रेखाओं की स्पष्टता रूप है, गौरत्वादि धर्मविशेष वर्ण है, चाकचिक्यादिरूप कान्ति प्रभा है, चक्षुओं को बाँधनेवाला स्मितमुखत्वादि ही राग है, कुसुम के समान कोमल स्पर्शविशेष आभिजात्य है, कटाक्षादि विलास हैं एवं तरलता लावण्य है।

गर्भिणी स्त्री जैसे गर्भस्थ शिशु की हितदृष्टि से ही सब कार्य करती है वैसे ही राजा की सम्पूर्ण चेष्टाएँ प्रजाहित की दृष्टि से ही होती हैं। फिर लोकदृष्टि से कुछ असम्मत भी क्यों न हो। ताटका (ताड़का) के मारने में राम को स्त्री-वध के सम्बन्ध में अधिक संकोच था।

तभी विश्वामित्र ने कहा था—

तुम्हें स्त्रीवधके लिए घृणा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि चातुर्वर्ण्य के रक्षण के लिए राजपुत्र को ऐसी आततायी स्त्री का भी वध करना चाहिये। प्रजारक्षणार्थ राजा को नृशंस, अनृशंस, क्रूर, अक्रूर, पातकयुक्त, सदोष सब कुछ करना पड़ सकता है। जैसे हाथी के पैर में सबका पैर आ जाता है, वैसे ही राजधर्म में सब धर्म आ जाते हैं। प्रजा एवं प्रजाकल्याणकारी वर्णाश्रमधर्म की रक्षा करना राजा का प्रधान कर्म है और सब धर्म-कर्म उसी के अङ्गोपाङ्ग हैं। प्रधान के अविरुद्ध ही अन्य धर्मों का महत्त्व है।

रामचन्द्र परम ब्रह्मण्य थे। वाल्मीकिरामायण में उन्हें ब्राह्मणों का उपासक कहा गया है। फिर भी ब्राह्मण द्वारा आहत निरपराध श्वान को न्याय देने का जब प्रश्न आया तब राम को न्याय का पक्ष ही लेना पड़ा, क्योंकि उनकी दृष्टि में न्याय सबसे बड़ा था। इसी तरह २१ बार पृथ्वी को निःक्षत्र करनेवाले ब्राह्मण परशुराम का उग्र रूप जब राम के क्षात्र तेज को अभिभूत करने लगा तब राम ने बड़ी बुद्धिमानी से अपनी ब्रह्मण्यता की रक्षा करते हुए क्षात्रधर्म की भी रक्षा की और कहा—

भार्गव ! क्षात्रधर्मयुक्त होने पर भी मुझे आपने वीर्यहीन एवं असमर्थ समझकर क्षात्र तेज का अपमान किया है। अतः अब आप मेरा पराक्रम देखिये। यह कहकर राम ने उनसे धनुष लेकर क्षण में उसे चढ़ाकर कहा— आप ब्राह्मण होने से मेरे पूज्य हैं और विश्वामित्र की भगिनी सत्यवती के पौत्र हैं, इसलिए मैं आपके लिए प्राणहर बाण छोड़ नहीं सकता, किन्तु आपकी दिव्यगति अथवा तपोबल से अर्जित लोकों को नष्ट करूँगा।

किन्तु जहाँ धर्मोल्लङ्घन का प्रश्न राम के सामने आया वहाँ राम ने जैसे ही धर्मविमुख शम्बूक शूद्र का वधकर ब्राह्मण-शिशु को पुनर्जीवित किया वैसे ही धर्मविमुख ब्राह्मण रावण का वधकर सम्पूर्ण मानवता को जीवन प्रदान किया।

माता-पिता की आज्ञा के पालन के प्रसङ्ग में श्रीराम ने अखण्डभूमण्डल के राज्य को तृणवत् त्यागकर सहर्ष वनवास स्वीकार किया। बड़े से बड़े आदरणीय कुलपूज्य महर्षि जाबालि से भी जब राम को लौटाने की दृष्टि से ही उनके द्वारा कही गयी वेदशास्त्रविरुद्ध माता-पिता के श्राद्ध, तर्पण, यज्ञ, होम तथा परलोक के अपलाप से युक्त नास्तिकता की बात सुनी तो क्षुब्ध हो उठे और उनके कथन का युक्तियुक्त खण्डन करके यहाँ तक कह दिया कि इस प्रकार की बुद्धि से व्यवहार करनेवाले तथा धर्ममार्ग से हटे हुए आप जैसे नास्तिक को मेरे पिता ने याजक बनाया, मैं उनके उस कार्य की निन्दा करता हूँ।

अपने प्रिय भ्राता लक्ष्मण ने भी जब कैकेयी की उचित निन्दा की तो राम ने स्पष्ट कह दिया—तात, मेरी मध्यमा अम्बा कैकेयी की निन्दा मत करो, भरत की ही चर्चा करो।

यद्यपि वाली ने राम का कोई अपराध नहीं किया था तो भी सुग्रीव का अपराध करने से ही राम ने उसे अपना ही अपराधी माना और उसके वध के अनेक हेतुओं में राम ने उसका भी उल्लेख किया है।

राम धनुर्वेदविदों में सर्वश्रेष्ठ थे एवं अतिरथियों में भी उनकी धाक की। वे शत्रुसेना पर आक्रमण और प्रहार करने में दक्ष और सैन्यसंचालन में विशेष निपुण थे। संग्राम में क्रुद्ध देवता एवं दानव भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। इतने पर भी वे दूसरों की असूया नहीं करते थे और न ही क्रुद्ध होते थे। घमण्ड एवं परोत्कर्ष की असहिष्णुता उनमें नहीं थी। फिर भी उनकी युद्धकुशलता और दृढ़ प्रहार शत्रुओं पर अपना इतना गहरा प्रभाव डालते थे कि वे सदा आतङ्कित रहते थे। तभी तो मारीच राम से इतना प्रभावित था कि रत्न, रथ आदि शब्दों के रकार सुनकर राम समझकर भयभीत हो जाता था।

रावण के गुप्तचर भी यह अनुभव करते हैं कि राम के कुपित होने पर उन्हें कोई वश में नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण लोकों का संहार करके नये सिरे से प्रजासृष्टि करने में समर्थ हैं। सब देवगण एवं असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते। राम के अनुसार शत्रु भी यदि शरण में आये, हाथ जोड़ कर दया की याचना करे तो आनृशंस्य की दृष्टि से कभी भी उसपर प्रहार नहीं करना चाहिये। आर्त हो यदि वह शत्रु के शरण में आया हो तो शत्रु को अपने प्राणों का त्याग कर भी उसकी रक्षा ही करनी चाहिये।

महर्षि वसिष्ठ एवं विश्वामित्र तथा अगस्त्य से राम को उत्तमोत्तम शस्त्रास्त्र प्राप्त थे। वे चाहते तो उन्हें उपयोग में लाकर अनायास ही सबका संहार कर सकते थे, किन्तु राम ने कभी भी उन शस्त्रास्त्रों का प्रयोग नहीं किया। मेघनाद छलपूर्वक ऐसे दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर वानरों, मनुष्यों तथा राम और लक्ष्मण दोनों को परेशान करता था। एक बार लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने की आज्ञा चाही, पर राम ने कहा एक के लिए पृथ्वी भर के अयुद्धचमान, प्रच्छन्न, प्राञ्जलि शरणागत, पलायमान एवं मत्त सबको मारना उचित नहीं है। इन्द्रजित् को मारने के लिए मैं प्रयत्न करता हूँ।

इतना ही क्यों राम ने तो श्रान्त, विरथ तथा निःशस्त्र रावण को भी अवसर दिया कि वह स्वस्थ, रथी, धन्वी होकर आये तब उससे युद्ध किया जाये। तभी मारीच जैसे राक्षस ने भी राम को निर्दोष विग्रहवान् धर्म ही बतलाया था।

राम धर्म के मूर्तिमान् रूप हैं। साधु एवं सत्यपराक्रमी हैं। रावणवध के बाद विभीषण ने पहले शोक व्यक्त करते हुए रावण के गुणों का वर्णन किया, परन्तु अन्त में जब उसकी अन्त्येष्टि का प्रसङ्ग आया तब उसके सीताहरण आदि दुष्कृत्यों का स्मरण करके अन्त्येष्टि करना उन्होंने अस्वीकार कर दिया। तब राम ने कहा—

मरने तक ही बैर रहता है। हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है। अब यह जैसा तुम्हारा भाई है वैसा ही मेरा भी है। तुम इसका दाहादि संस्कार करो। राम ने उसकी प्रशंसा भी की। रावण अधर्मी, असत्यवादी होने पर भी संग्राम में तेजस्वी, बलवान् तथा शूरवीर रहा है। इन्द्रादि देवता भी इसे परास्त नहीं कर सके थे। इसने

अनेकों दान, यज्ञ एवं श्रेष्ठ कर्म भी किये हैं। विराध के इच्छानुसार राम ने विराध का अवट (गर्त) में निक्षेप कर तथा कबन्ध के इच्छानुसार उसका दाह कर दोनों को कृतार्थ किया था।

लङ्का जैसे वैभवशाली राष्ट्र को जीतकर भी राम ने उसके वैभव पर दृष्टि नहीं डाली। रावण के भाई विभीषण को ही लङ्का सौंप दी। इसी लिए रामायण की रामाभिरामी टीका में कहा गया है—

त्यक्त्वा जीर्णदुकूलवद् वसुमतीं बद्धोऽम्बुधिर्बिन्दुवद्
बाणाग्रेण जरत्कपोतक इव व्यापादितो रावणः।
लङ्का कापि विभीषणाय सहसा मुद्रेव हस्तेऽर्पिता
श्रुत्वैवं रघुनायकस्य चरितं को वा नरो नाञ्चति॥

राम दो बार बाण नहीं चलाते और दो बार नहीं बोलते अर्थात् एक ही बाण से सब अभीष्टों की सिद्धि हो जाती थी। श्रीभागवत के अनुसार एक ही बाण से राम ने रावण का वध किया था—

इस तरह धनुष पर सन्धान किये हुए बाण का प्रक्षेप करते हुए राम ने उस बाण से वज्रतुल्य रावण के हृदय को छिन्न-भिन्न कर डाला। वह दसों मुखों से रुधिर वमन करता हुआ वैसे ही विमान से गिर पड़ा जैसे सुकृत-क्षय होने पर लोगों के हाहाकार के बीच सुकृती विमान से गिर पड़ता है।

राम की ऐतिहासिकता

हिन्दूजाति के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवन पर मर्यादापुरुषोत्तम राम का अमिट प्रभाव है। हिन्दू-परिवार में जन्म एवं विवाह के अवसरों पर रामजन्मसम्बन्धी एवं रामविवाहसम्बन्धी गीत गाये जाते हैं। शरीर की अन्तिम यात्रा 'रामनाम सत्य है' की ध्वनि के साथ होती है। भारत के कोने-कोने में राम के मन्दिर हैं। लाखों व्यक्ति प्रतिदिन रामायण का पाठ करते हैं। अयोध्या, रामेश्वर, पञ्चवटी, चित्रकूट आदि तीर्थों की यात्रा करते हैं। करोड़ों हिन्दुओं के ही नहीं श्याम, थाईलैण्ड आदि देशों के निवासियों के नाम भी रामायण से सम्बन्धित होते हैं। राम प्रत्येक हिन्दू के जीवन में रम रहे हैं। ईश्वर के नामों में सर्वप्रसिद्ध नाम राम ही है। भारत के बच्चे-बच्चे की जिह्वा पर रामनाम रहता है। काशी में जीवों की मुक्ति के लिए भगवान् शिव रामनाम का उपदेश करते हैं। फिर भी राम की ऐतिहासिकता पर शङ्का करना केवल मतिविभ्रम ही है।

वस्तुतः परम्पराप्राप्त इतिहास, तज्जीवनवृत्तसम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तकें तथा तत्कालीन या कालान्तरवर्ती पुस्तकों में तत्सम्बन्धी चर्चाएँ उसके द्वारा लिखित पुस्तकें या तन्निर्मित मन्दिर, सेतु तथा तत्सम्बन्धित शिलालेख, ताम्रलेख या मुद्राएँ किसी के ऐतिहासिक होने में प्रमाण कही जाती हैं।

राम के जीवन की प्रमुख घटनाएँ लोक-परम्परा में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। भारत में उनका नाम प्रत्येक जिह्वा पर है। संसार के इतिहास में ऐसी प्रसिद्धि किसी की भी नहीं है जैसी राम की है। भारत में ही नहीं सुदूरदेशों में भी राम के चरित्रों के आधार पर उनकी लीलाएँ तथा नाटक होते है। चौबीस हजार श्लोकों की वाल्मीकिरामायण में उनके जीवनवृत्त का ही वर्णन है।

महर्षि मार्कण्डेय ने वनवास के समय युधिष्ठिर से कहा था, आपकी यह विपत्ति देखकर मुझे रामचन्द्र का स्मरण हो आया। पिता की आज्ञा से धनुष हाथ में लेकर घूमते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर मैंने उन्हें देखा था। उन्होंने यह नहीं कहा कि मैंने केवल सुना है। गीता में कृष्ण कहते हैं कि शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ। शङ्कराचार्य की राम-पद की व्याख्या में दाशरथि राम कहा गया है। लगभग सभी पुराणों तथा काव्यों में, श्रीमद्भागवत भागवतों का परमादरणीय ग्रन्थ है, प्रतिवर्ष उसके हजारों सप्ताह होते हैं, उसमें भी रामायण एवं राम की विशद चर्चा है।

श्रीराम की नीति

शुक्रनीति के अनुसार रामसदृश कोई भी नीतिमान् नहीं हुआ। उनकी नीतिमत्ता से ही बानरों तथा भालुओं ने भी उनकी सुभृत्यता स्वीकार की थी। श्रीराम जैसे न्यायनिष्ठ के प्रभाव से ही वानर और भालु भी राम के साथी हो गये।

ब्रह्मचर्य एवं तपस्या से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। इसके उदाहरण श्रीराम हैं।

नहि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति ॥

जहाँ राम राजा नहीं वह देश राष्ट्र नहीं है, जहाँ राम निवास करेंगे वह वन भी राष्ट्र हो जायेगा। भगवान् के भक्त उनका मङ्गलाशासन करते हैं—

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥

भगवान् मङ्गलों के भी मङ्गल हैं। ब्राह्मण, गौ, अग्नि, हिरण्य, सर्पि, जल तथा राजा गरुड़पुराण (२०५।७४,७५) के अनुसार मङ्गल हैं तथा सिंह, साँड़, हाथी, कलश, व्यजन, वैजयन्ती, भेरी एवं दीप भी मङ्गल हैं। दधि, दूर्वा आदि मङ्गलों के भी मङ्गल, देवताओं के दैवत जो परन्तप एवं परमतेज हैं उन महनीयगुणागार चक्रवर्त्तिसुत सार्वभौम कोसलेन्द्र के लिए मङ्गलाशासन करना महत्त्वपूर्ण है। राम से बढ़कर सन्मार्गस्थित संसार में कोई है ही नहीं—

नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः।

श्रीराम धर्मज्ञ, सत्यसन्ध, प्रजाहितनिरत, यशस्वी, ज्ञानसम्पन्न, सर्वपोषक, रिपुसूदन, सर्वजीवलोक के रक्षक, तत्तद्वर्णाश्रममर्यादाओं का पालन कर के धर्म का पालन करनेवाले, अपने यज्ञ, अध्ययन, दान आदि एवं युद्धादि रूप धर्म का सादर अनुष्ठान करनेवाले तथा स्वभक्त जनों के अवश्यम्भावी अनिष्टों को भी मिटाकर मोक्ष प्रदान कर रक्षण करनेवाले हैं। रघुवंश, भट्टिकाव्य आदि सैकड़ों काव्यों, नाटकों में राम की चर्चा है ही। ऐसे बहुचर्चित राम को अनैतिहासिक कहना अनभिज्ञता का ही परिचय देना है। भागवत आदि पुराणों के अनुसार रामसेतु एवं रामेश्वर की स्थापना भी राम के ऐतिहासिक होने में ज्वलन्त प्रमाण हैं।

नीति, प्रीति, परमार्थ तथा स्वार्थ के रहस्यज्ञ श्रीराम

वस्तुतः नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थ के परमरहस्य को एकमात्र राम ही जानते थे। भगवती सीता के वनवास में नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थ का यथार्थसामञ्जस्य हुआ है।

नीति—लोकतन्त्रात्मक शासन की यही विशेषता होती है कि शासन की सम्पूर्ण गतिविधि जनसमूह की इच्छा का अनुसरण करनेवाली होनी चाहिये। अपने या भाई-भतीजों के स्वार्थ वश शासन कभी जनसामान्य की इच्छा को नहीं ठुकरा सकता। धर्मनियन्त्रित राजतन्त्र में भी लोकतन्त्र के ये गुण बहुत उत्कृष्टरूप में व्यक्त होते हैं। राम ने अपनी प्रतिज्ञा में इन्हीं भावों को व्यक्त किया था। स्नेह, दया, सुख किं बहुना अपनी हृदयेश्वरी जनकनन्दिनी को भी त्यागना पड़े तो मुझे व्यथा न होगी।

यद्यपि श्रीजनकन्दिनी महाराज्ञी सीता के विरोध में बहुमत नहीं था, कुछ ही लोगों को इस बात पर आपत्ति थी कि रावण की लङ्का में कई महीनों तक रहनेवाली सीता को राम ने राजमहलों में क्यों रख दिया। इस प्रकार तो हमारे घर की स्त्रियाँ भी बाहर रहकर घरों में पुनः रहने लग जायेंगी जिससे मर्यादा का अवश्य ही भङ्ग

हो जायगा। उनको यह नहीं विदित था कि श्रीसीता अनन्त ब्रह्माण्डों की जननी, आनन्दसिन्धु रामचन्द्र के माधुर्य-सारसर्वस्व की अधिष्ठात्री महाशक्ति हैं। उन्होंने लङ्का का अन्न-जल-फल ग्रहण किये बिना ही, इन्द्रप्रदत्त विशिष्ट चरु को एक ही बार ग्रहण कर, लङ्का में काल यापन किया था। वे भानु की प्रभा, चन्द्र की चन्द्रिका एवं गङ्गा की पवित्रता के तुल्य आनन्दसिन्धु भगवान् राम की माधुर्यसारसर्वस्वरूपा ही थीं। पुनश्च देवताओं, ऋषियों, वानरों एवं राक्षसों के सामने श्रीसीताजी ने अग्नि-प्रवेश किया और सबके समक्ष साक्षात् वैश्वानर अग्नि ने उनके पावित्र्य को प्रमाणित किया था। श्रीब्रह्मा एवं श्रीशिव ने उनके पावित्र्य को परिपुष्ट किया था। तथापि उसका वर्णन श्रीराम के पक्ष की ओर से होने में शासकीय प्रचारमात्र समझा जा सकता था। अतः श्रीराम ने बहुमत नहीं वरन् अल्पमत का भी आदर करते हुए श्रीसीता को अरण्यवास दिया और निष्पक्ष वीतराग महर्षियों को अवसर दिया कि वे दूध का दूध और पानी का पानी के समान अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा प्रजा के संमुख सत्य वस्तुस्थिति रखें, और हुआ भी ऐसा ही। जिस वन में सीता को निर्वासित किया गया था वहीं कुछ दूर पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था। उनके कुछ ब्रह्मचारी छात्र समित्, कुश आदि लेने के प्रसङ्ग से उधर पहुँचे हुए थे। उन्होंने ही उस अलौकिक दिव्य महाशक्ति के दर्शन एवं रोदन की सूचना महर्षि को दी। महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि ने अपने ध्यानयोग से वस्तुस्थिति को समझ कर सीता से कहा पुत्रि! तुम्हारे पिता जनक मेरे मित्र हैं, तुम्हारे श्वसुर चक्रवर्ती दशरथ भी मेरे शिष्य थे, अतः तुम पितृगृहतुल्य मेरे आश्रम में चलकर रहो। श्रीसीता महर्षि के पीछे-पीछे चलकर आश्रम में आयीं, महर्षि ने आश्रम की ऋषिपत्नियों को, उनकी देख-रेख, रक्षण-पोषण आदि के लिए नियुक्त किया। वहीं उनके लव-कुश नामक दो पुत्ररत्नों का जन्म हुआ, जिनका संस्कार, शिक्षण-रक्षण सब महर्षियों की ही देख-रेख में हुआ।

धर्मधुरन्धर चक्रवर्ती राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र द्वारा निर्वासित सीता को अपने आश्रम में आश्रय देते हुए ही महर्षि ने अपने उत्तरदायित्व को खूब समझ लिया था और उस मिथ्याभिशाप को समूल उन्मूलन कर देने के लिए वे कृतसंकल्प थे। विश्वविधाता ब्रह्मा भी यह सब महर्षि वाल्मीकि के द्वारा ही कराना चाहते थे। तमसा-तट पर विहरणपरायण क्रौञ्चयुग में से एक क्रौञ्च के व्याध द्वारा मारे जाने पर क्रौञ्ची का करुण क्रन्दन सुनकर महान् क्लेशानुभूति करनेवाले महर्षि के सामने सीता के करुण-क्रन्दन का दृश्य आ गया। पहले से ही करुणरसपूरित वाल्मीकि का हृदय इस दृश्य से आहत होकर छलक पड़ा और वही शोक करुणरसमय श्लोक बनकर महर्षि के मुखारबिन्द से विश्वकल्याण के लिए प्रस्फुटित हो आया।

महर्षि ने सीतापुत्र लव-कुश का यथावत् संस्कार किया और वेदों तथा धनुर्वेद, गान्धर्ववेद आदि उपवेदों का भी साङ्गोपाङ्ग शिक्षण दिया। तत्पश्चात् वेदों के उपबृंहरण के लिए ही रामायण का अध्यापन कराया और तन्त्री (वीणा) के ताल स्वर के साथ संगीत के रूप में रामायण का अभ्यास कराया। वे दोनों ही बालक दीप से उद्भूत दो दीपों के समान ही सर्वथा श्रीराम के ही अनुरूप थे। सीताराममय दिव्य दम्पती की दिव्यदीप्ति एवं प्रभाव से वे युक्त थे। वे स्वरसम्पदा से युक्त वीणा-वादनपूर्वक जब रामायण का गायन करते थे तो सभी सुननेवाले मोहित हो जाते थे। उनका रामायण-गान सुनकर ऋषिगण भी मुग्ध हो जाते थे एवं प्रेमविह्वल होकर कोई अपना कमण्डलु, कोई मेखला, कोई वृषी आदि पुरस्कार के रूप में उन बालकों को देने लगते थे। श्रीराम के अश्वमेध-यज्ञ में निमन्त्रित होकर महर्षि प्राचेतस एवं उनके सब आश्रमवासी ऋषि नैमिषारण्य पधारे हुए थे। महर्षि दोनों बालकों (लव-कुश) को फल-मूल-भोजन कराकर कुछ साथ के लिए भी दे देते थे और कहते थे कि जाकर अवधवासियों को रामायण सुनाओ और भूख लगने पर अपना ही फल खाना, प्यास लगने पर अपने आप ही नदी या कूप से जल निकाल कर पीना एवं किसी के कुछ देने पर भी लेना नहीं, परन्तु जो श्रद्धा से सुने उसे रामायण सुनाना।

महर्षि के आदेशानुसार दोनों बालकों ने अयोध्याकाण्ड का ही प्रसङ्ग अवधवासियों को सुनाना प्रारम्भ किया। जो भी इस प्रसङ्ग को सुनता था मन्त्रमुग्ध हो जाता था, आँखों देखी पुरानी घटनाओं का प्रत्यक्ष चित्रण

उनके सामने उपस्थित हो जाता था। कितना सुन्दर, सत्य, सरल एवं हृदयस्पर्शी था वह चरित्र-चित्रण ? उसे सुनकर सबको आश्चर्य होता था। लोग बालकों के गान से प्रभावित होकर उन्हें बहुत कुछ देना चाहते थे, किन्तु वे बालक कुछ लेते न थे। यह समाचार भगवान् राम के दरबार में भी जा पहुँचा। वहाँ भी सबको उस आश्चर्यजनक चरित्रचित्रण के श्रवण-रसास्वादन की उत्सुकता हुई। अश्विनीकुमारों के तुल्य सुभग सीतापुत्रों ने राजर्षि-कुमारों के रूप में वहाँ भी अपने मधुर स्वर, संगीत-सौष्ठव तथा सौम्य सुन्दर दिव्य आकृति से सभी को प्रभावित कर दिया। उनके रामायण-गान से राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, वसिष्ठादि महर्षि एवं अमात्यवर्ग आदि सभी मोहित हो उठे। श्रीरामचन्द्र ने रामायण-गान के अन्त में लक्ष्मण को आदेश दिया कि इन बालकों को शतभार सुवर्ण एवं रत्न प्रदान किये जायँ, परन्तु उन्होंने तो परमनिःस्पृहरूप से स्पष्ट कहा कि हम लोग कन्द-मूल-फलाशी, वल्कलवसनधारी आश्रम-वासी हैं, हमें आपके सुवर्ण-रत्नों की अपेक्षा नहीं है। यदि आप लोगों की इच्छा हो तो हम लोग रामायण श्रवण करा सकते हैं फिर विशेष रूप से रामायण श्रवण का प्रबन्ध किया गया। संसार के सभी गण्य-मान्य ऋषि-महर्षि, राजर्षि, चातुवर्ण्य प्रजा के विशेष प्रतिनिधि एवं देव, असुर, गन्धर्व सभी वहाँ उपस्थित हुए। लोकोत्तर सौन्दर्य, अद्भुत वेदवेदाङ्ग-पाण्डित्य, दिव्य-वीणावादन और मनोहर स्वर से गायन, परम निःस्पृहता एवं अद्भुत त्याग ने सबके मन को वश में कर लिया।

ऊँचे से ऊँचे गुण भी सस्पृहता से फीके पड़ जाते हैं। सस्पृह की अच्छी से अच्छी बातों पर भी लोगों को आदर एवं विश्वास नहीं होता, परन्तु जो वक्ता निःस्पृह एवं त्यागी होता है उसी का जनता पर समुचित प्रभाव पड़ता है। फिर भी यहाँ तो कहना ही क्या है ? निःस्पृह परमविरक्त महर्षि की ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा प्रत्यक्ष दृष्ट "सत्य शिव सुन्दर" रामायण महाकाव्य का निःस्पृह राजर्षिकुमारों द्वारा गायन सुनकर सबको वर्णित घटना के सम्बन्ध में पूर्ण विश्वास हो गया। स्थाली-पुलाक-न्याय से सम्पूर्ण चरित्र की सत्यता में सबको विश्वास हो गया। अयोध्याकाण्ड की सत्य घटनाओं को सुनकर अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर एवं लङ्का काण्डों के चरित्र-श्रवण की सबको उत्कट उत्कण्ठा हुई। सीताचरित्र की जिज्ञासा भी जागरूक थी ही। सभी ने सत्य घटनाओं को मन्त्रमुग्ध की भाँति सुना और श्रद्धा तथा विश्वास से भगवती सीता के परम पवित्र चरित्र की प्रशंसा की। उसमें प्रधानरूप से सीता-चरित्र का वर्णन था, परन्तु पतिव्रता सीता का चरित्र जबतक उनके पति भगवान् के चरित्र का वर्णन न होता, तबतक वह अपूर्ण ही रहता, अतः उसमें रामचरित का भी वर्णन किया गया।

यह वर्णन राजकीय प्रचारमात्र न था, न किसी राज्याश्रित कवि की काव्य-कल्पना थी, किन्तु यह थी राज्याश्रय से दूर रहकर, राजान्न से बचकर, कन्द-मूल, फल तथा वल्कल वसन पर निर्भर रहनेवाले तपोनिष्ठ, समाधिसम्पन्न, त्रिकालज्ञ महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि की समाधिभाषा, जिसका गान कर रहे थे उन महर्षि के ही परम-प्रिय शिष्य, परम विद्वान्, परमत्यागी, वनवासिनी, वनदेवी के पुत्र लव और कुश। ऐसी स्थिति में जनता का सुस्थिर विश्वास क्यों न होता और कुटिल हृदयों के भी काले कल्मष उससे क्यों न धुल जाते। सभी के हृदय पिघल गये, कण्ठ गद्गद हो गये, अङ्ग रोमाञ्च से कण्टकित हो उठे, आँखों से आनन्दाश्रु एवं शोकाश्रु की धाराएँ बह निकलीं। राम भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न एवं माताएँ परिवार के अन्य लोग प्रेम-समुद्र में निमग्न हो गये। वसिष्ठादि महर्षिगण भी प्रेमोद्रेक में अधीर हो उठे। महाशक्ति भगवती चिदानन्दस्वरूपा सीता के उज्ज्वल चरित्र ने सबके अन्तःकरण एवं अन्तरात्मा को उद्योतित कर दिया। महर्षि वाल्मीकि की रामायण से सबको स्पष्ट विदित हुआ कि सीता के असाधारण तेज के सामने रावण का प्रभाव सर्वथा नगण्य था। श्रीसीता अपने अखण्ड-पातिव्रत्य तेज के प्रताप से रावण की लङ्का में रहती हुई भी रावण को तृणतुल्य समझती थी और रावण के साथ बात करते समय सिंही के समान निर्भीकतापूर्वक वाणी में श्रीसीता ने कहा था, दुष्ट रावण, सावधान, मेरे भगवान् राम का सन्देश एवं आदेश न होने और अपनी तपस्या के पालन करने के अभिप्राय से मैं तुझे अपने तेज से भस्म नहीं कर रही हूँ।

ऐसे अवसरों पर रावण में श्रीसीता के सामने स्थित रहने की हिम्मत नहीं रहती थी। यह कोई कवि-कल्पना नहीं अपितु तु महर्षि की समाधिभाषा की सत्य वाणी है।

वहीं कुछ क्षणों के पश्चात् जब राक्षसियों ने सीता को यह समाचार सुनाया कि हे सीते ! जो वानर आपके पास आया था, वह पकड़ लिया गया और उसकी पूंछ में घृत और तेल में सने वस्त्र लपेट कर आग लगा दी गयी। जब सीता ने यह समाचार सुना तो उन्होंने अग्नि से कहा, अग्निदेव ! यदि मैंने समुचित रूप से पति-शुश्रूषा, तपस्या तथा पातिव्रत्य धर्म का पालन किया है तो तुम हनुमान् के लिए शीतल हो जाओ।

सीता के आदेशानुसार दहनशील अग्निदेव परम शीतल हो गये। श्रीहनुमान् को आश्चर्य हो रहा था कि मेरी पुच्छाग्नि से सम्पूर्ण लङ्का भस्मीभूत हो रही है, परन्तु मेरी पूंछ में तो उष्णता का लेश भी नहीं प्रतीत होता है। प्रत्युत दहनशील अग्निदेव मुझे हिम से अधिक सुशीतल प्रतीत हो रहे हैं। हनुमान् ने यह निश्चय किया था कि यह महाशक्ति सीता के तप एवं त्याग तथा पातिव्रत्य का ही प्रभाव है। जो सीता अपने प्रभाव से दाहक अग्नि को ठंडा कर सकती थी वह अपने तेज से रावण को अवश्य ही भस्म कर सकती थी।

साध्वी सीता के विरोधी कुटिल समाज ने भी उनका भक्त होकर पश्चात्ताप की अश्रुधाराओं से अपने कल्मषों को धो डाला। यह थी महर्षि वाल्मीकि की लोकोत्तर सुमधुर कृति की कुशलता। वे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हुए और यह थी श्रीरामचन्द्र की नीति जिसके फलस्वरूप ये घटनाएँ घटित हुईं। जो काम किसी दण्डविधान से कभी भी सम्भव नहीं था वह उनकी नीति से अनायास सुसम्पन्न हुआ। फिर तो वसिष्ठजी ने भी अपनी तपस्या एवं योगबल के प्रभाव से सत्य-वस्तुका साक्षात्कार करके जनता को सीताचरित्र की निर्मलता का ज्ञान कराया। त्रिजटा एवं विभीषण की पत्नी ने भी सीता के परम-पवित्र चरित्र का बखान किया। अन्त में परमानन्द सच्चिन्मयी पराम्बा सीता का अपने परम दिव्यरूप से महामहिम वैभवशालिनी माता धरादेवी के अङ्क में प्रत्यक्ष प्राकट्य भी सबकी भ्रान्तियों को मिटाकर उनकी परम उपास्यता का प्रमाण बना।

श्रीसीता रामचन्द्र की छाया थी। रामरूप भानु की प्रभा एवं रामरूप चन्द्र की चन्द्रिका थी। रामरूप ईश्वर की महाशक्तिरूपा प्रकृति थीं। आनन्दसिन्धु श्रीराम के, माधुर्यसारसर्वस्व की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी थी। बहिरङ्ग दृष्टि से ही राम-सीता का विप्रयोग सम्भव था, अन्तरङ्ग दृष्टि से तो यह विप्रयोग कभी सम्भव न था। इसी लिए जैसे लङ्का में सीता की छाया ही रह सकी थी वैसे वनवास में भी छाया मात्र ही थी। वस्तुतः तो अमृत से जैसे उसकी मधुरिमा का पार्थक्य असम्भव है, वैसे ही आनन्दसिन्धु राम की माधुर्यसार-सर्वस्वभूता सीता का भी पार्थक्य असम्भव ही था। परन्तु वह काल्पनिक विप्रयोग भी राम के लिए असह्य वेदना का विषय था। अपने हाथों को राम निष्करुण कहते थे।

हे हस्त ! तुम आसन्नप्रसवा सीता के निर्वासन में दक्ष राम के हस्त हो, अतः तुममें करुणा कैसे हो सकती है।

परन्तु स्नेह एवं प्रेम के उद्वेग में राम ने कर्तव्य से विचलित न होने की प्रतिज्ञा ले रखी थी। वे किसी भी स्नेह, दया या सुख के मोह में पड़कर लोकाराधन, प्रजारञ्जन, के कार्य से कैसे विमुख हो सकते थे एवं उन्होंने सीता का भी इसी में हित समझा था और वह हुआ भी। इस कठोरता का आश्रयण किये बिना महर्षि वाल्मीकि का समागम नहीं हो सकता था। और न ही उनके द्वारा विश्वपावन रामायण-महाकाव्य का निर्माण ही सम्पन्न हो पाता। इसके अतिरिक्त सीता के सुपुत्र लव-कुश इस प्रकार के संस्कारी विद्वान्, बलवान्, धनुष्मान्, कीर्तिमान् तथा प्रतिभावान् नहीं बन सकते थे। सीता का कष्ट राम का ही कष्ट था। स्वयं राम ने ही सीता को वनवास देकर स्वयं को कष्ट में डालकर सीता के निर्मल, निष्कलङ्क परमपवित्र उज्ज्वल चरित्र को संसार के सामने उपस्थित किया था। परम सानुक्रोश होते हुए भी राम निरनुक्रोश से बन गये थे।

वस्तुतः जगज्जननी राम के हृदय को पहचानती थीं। पहले उन्होंने वन में छोड़कर लौटते हुए लक्ष्मण से कहा था—

> वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
> मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य॥ (रघुवंश १४।६१)

हे लक्ष्मण ! तुम मेरी तरफ से उस राजा से यह कहना कि आपके सामने ही मेरी अग्निपरीक्षा एवं अग्निशुद्धि हुई थी, फिर भी आपने लोकापवाद-श्रवण के कारण जो मेरा परित्याग किया है क्या यह आपके कुल एवं शास्त्रानुशीलन के सदृश है ? परन्तु दूसरे ही क्षण सीता ने कहा नहीं-नहीं प्रभो ! आप तो प्राणिमात्र के हितैषी एवं कल्याण की कामना करनेवाले हैं, फिर मेरे सम्बन्ध में आपकी अन्यथाबुद्धि कैसे हो सकती है। वज्रोपम, असह्य श्रीचरणविप्रयोगरूप दुःख तो मेरे ही पूर्वजन्मों के कर्मों का फल है।

पतिव्रतामुकुटशिरोमणि सीताजी ने आगे कहा कि मैं प्रसव के पश्चात् सूर्य में दृष्टि लगाकर ऐसी तपस्या करूँगी जिससे जन्मान्तर में भी आप ही मेरे भर्ता हों और फिर कभी ऐसा विप्रयोग न हो।

श्रीराम ने सीता को वन भेजकर स्वयं तपस्या करते हुए ग्यारह हजार वर्षों तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए यागादि के लिए विहित होने पर भी दूसरा परिणय नहीं किया। सुवर्णमयी सीता को ही अपने दक्षिणाङ्क में बैठाकर अश्वमेधादि बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया था।

इस प्रकार श्रीराम ने नीति के साथ ही साथ पूर्णरूप से प्रीति का परिपालन किया था। श्रीराम ने अनन्त अद्भुत अनुराग के साथ ही सीता को वनवास देकर, सीता को भी अवसर दिया कि वे महर्षियों के मुखारविन्द से अध्यात्म-चर्चा श्रवण कर सकें और समाधिनिष्ठ होकर आध्यात्मिक उच्च-स्थिति की परमार्थ-साधना में प्रतिष्ठित हो और स्वयं भी विषयविमुख होकर ब्रह्मनिष्ठा का सम्पादन कर सकें। इस प्रकार प्रजारञ्जन के साथ-साथ परमार्थ साधन भी सम्पन्न हो।

सीता के निर्मल चरित्र की एक झलक

वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड के ९४वें सर्ग के अनुसार राम ने अश्वमेध यज्ञ के प्रसङ्ग से महामुनि, राजा, नैगम, वैदिक, शब्दविद्, वृद्ध, द्विजाति सब श्रेणियों के विशेषज्ञों को निमन्त्रित कर उनकी महती सभा में कुश और लव को रामायण का गान करने के लिए आमन्त्रित किया। कुश और लव के अतिमानुष मधुर गन्धर्वस्वर से सभी श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो गये, मुनिगण एवं पार्थिव-गण बारम्बार चक्षु से पान करते हुए से उन दोनों बालकों, कुश और लव को बारम्बार देखते हुए आपस में कह रहे थे कि ये दोनों इस तरह राम के समान लगते हैं जैसे सूर्यबिम्ब से दूसरा सूर्यबिम्ब ही उदित हुआ हो। यदि ये दोनों बालक जटा और बल्कलधारी न होते तो राघवेन्द्र श्रीराम और इन दोनों बालकों में कोई भेद अवगत न होता।

उत्तरकाण्ड के ९५ वें सर्ग में कहा गया है कि राम ने बहुत दिनों तक परम शुभ गीत को मुनियों, राजाओं एवं सुग्रीव, हनुमान् आदि के साथ सुना और उस गानप्रसङ्ग में ही कुश और लव को सीता के पुत्र रूप में जान लिया।

उपर्युक्त प्रकरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वाल्मीकिरामायण का निर्माणकाल राम का सिंहासनारूढ़ होने का ही काल था, क्योंकि राम द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर ही कुश और लव द्वारा इसका गान हुआ था, अतः पूर्ण निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि "इसका निर्माण काल ई० पू० दूसरी शती कदापि नहीं हो सकता।"

इसी सर्ग में यह भी उल्लेख है कि उसी महापरिषद् में शुद्ध आचरणवाले विश्वासपात्र दूतों को बुलाकर राम ने उनसे कहा "भगवान् वाल्मीकि के समीप जाकर यह कहो कि यदि सीता शुद्ध आचरणवाली हैं, पापरहिता हैं, तो मुनि की अनुमति से अपनी आत्मशुद्धि को प्रमाणित करें, यदि मुनि की इच्छा हो तथा सीता प्रत्यय-विश्वास देना चाहती हों तो उनके मनोगत भावों को जानकर बताओ। कल प्रातःकाल जनकात्मजा मैथिली अपनी और मेरी शुद्धि के लिए सभा में सबके समक्ष शपथ करें।" उन दूतों ने जाकर अमितप्रभ महर्षि वाल्मीकि से राम का संदेश कहा। मुनि ने सुनकर और राम की इच्छा को जानकर कहा कि ठीक है, राम जैसा कहते हैं वैसा ही होगा। सीता वैसा ही करेगी, क्योंकि स्त्री का परम देवता पति ही है। राजदूतों ने आकर राम को मुनि का कथन सुनाया। राम प्रसन्न हुए और एकत्रित ऋषियों एवं राजाओं से उन्होंने कहा, शिष्यों सहित सभी ऋषि तथा अपने परिकरों सहित नृपतिगण तथा और भी जो चाहते हों सभी आकर सीता का शपथ (पातिव्रत्य तथा शुद्धि का प्रमाण) देखें। महात्मा राघव के उक्त वचन सुनकर महर्षियों तथा राजाओं में महान् साधुवाद हुआ। प्रभावशाली नृपतिगण तथा मुनि श्रेष्ठगण राघव की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

इसी काण्ड के ९६वें सर्ग के अनुसार रात बीतते ही राम ने वसिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, काबालि, कश्यप, दीर्घतमा, दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, दीर्घायु मार्कण्डेय, महायशा मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, शतानन्द, भरद्वाज, अग्निपुत्र सुप्रभ, नारद, पर्वत, गौतम आदि मुनिवरों को बुलवाया। महावीर्य राक्षस तथा महाबली वानर तथा अन्य सभी लोग कौतूहल वश आये, सहस्रों क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र तथा नाना देशों के ब्राह्मण पतिव्रता का शपथ देखने के लिये आये। सबके आने की बात जानकर सीता के साथ मुनिवर वाल्मीकि वहाँ आये। ऋषि के पीछे-पीछे राम का मन में ध्यान करती हुई अवाङ्मुखी, कृताञ्जलि, वाष्पकलायुक्त सीता आयी। ब्रह्मा का अनुगमन करती हुई श्रुति के समान मुनि के पीछे आती हुई सीता को देखकर जनसमूह में महान् साधुवाद हुआ। सीता और राम के जन्म से लेकर होनेवाली विशाल दुःखपरम्परा का चिन्तन कर सभी के अन्तःकरण क्षुब्ध हो उठे। कोई राम का एवं कोई सीता का साधुवाद करने लगे। कोई दर्शक दोनों का साधुवाद करने लगे। उस समय उस महान् जनौघ में सीता को साथ लिये हुए वाल्मीकि ने कहा—'दाशरथे! सीता सव्रता एवं धर्मचारिणी है। अपवादभय से आप के द्वारा मेरे आश्रम के समीप परित्यक्ता होकर मेरे आश्रम में रही। सीता आप के समक्ष अपने सतीत्व का प्रमाण प्रत्यय देगी। ये दोनों बालक कुश और लव जानकी से ही उत्पन्न तुम्हारे पुत्र हैं। मैं प्रचेता का दसवाँ पुत्र हूँ। मैं कभी अनृत वाक्य का स्मरण नहीं करता। बहुत वर्षों तक मैंने तपश्चर्या की है। यदि मैथिली दुष्टा हो तो मैं उन तपश्चर्याओं का फल न पाऊँ। मनसा, वाचा और कर्मणा मुझसे कभी किल्बिष नहीं हुआ। यदि मैथिली निष्पाप है तो मैं उसका फल भोगूँगा। पञ्च ज्ञानेन्द्रियों सहित मन से चिन्तन करके सीता को अत्यन्त शुद्धआचरणवाली एवं निष्पाप जानकर ही मैंने वन में उसे अपने आश्रम में रखा है। यद्यपि आप भी सीता को शुद्ध मानते हैं तो भी सीता आपके समक्ष प्रत्यय देगी।

सर्ग ९८ में उल्लेख है, राम ने कहा—ब्रह्मन्, आप के अकल्मष वचनों में मुझे पूर्ण विश्वास है। देवताओं के समक्ष जानकी ने पहले भी लङ्का में शपथ दिया है तो भी लोकापवाद-भय से, मैंने जानकी को निष्पाप जानते हुए भी उसका त्याग किया था। ये कुश और लव मेरे पुत्र हैं, यह भी मैं जानता हूँ। सीताशपथ के प्रसङ्ग में मेरा आशय जानकर ही सभी देवगण आये हैं। लोकपितामह ब्रह्मा को आगे कर आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण तथा साध्य देव एवं सभी परम महर्षि, नाग, सुपर्ण और सिद्धगण भी आये हुए हैं। राघव ने सबको देख देखकर कहा—ऋषि के निष्कल्मष वाक्यों में हमें सीता के प्रति पूर्ण प्रत्यय है और संसार में परमपवित्र सीता में मेरी स्थिर प्रीति है। उस समय दिव्य शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु जनौघ को आह्लादित करने लगा। सभी राष्ट्रों से आये हुए मानवों ने सत्ययुगीय उस अद्भुत शीतल, मन्द, सुगन्ध दिव्य वायु का अनुभव किया। काषायवासिनी सीता ने चतुर्दश-

भुवनस्थ जनसमुदाय को देखकर अवाङ्मुखी, अधोदृष्टि तथा प्राञ्जलि-बद्ध होकर कहा —हे अग्निदेव ! मैंने राघव से अन्य किसी का कभी मन से भी चिन्तन नहीं किया है, यह सत्य है तो माधवी, धरित्री देवी, मुझे अवकाश प्रदान करें। इस तरह सीता शपथ कर ही रही थी कि एक अत्यन्त अद्भुत चमत्कार हुआ। भूतल से एक अत्यन्त उत्तम दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ ! जिसे अमितविक्रमवाले दिव्यरत्नभूषित नागों ने अपने फणों पर धारण कर रखा था। धारणी देवी ने मैथिली का स्वागत और अभिनन्दन करके अपनी बाहुओं में ग्रहण कर दिव्य आसन पर बैठाया। उस दिव्य आसन पर समासीन होकर रसातल में प्रविष्ट होती हुई सीता पर देवताओं द्वारा महान् जयजयकार तथा साधुवाद के साथ अविच्छिन्नरूप से दिव्य पुष्पवृष्टि हुई।

"सीते ! साधु, साधु—तुम्हारा शील लोकोत्तर है" इस प्रकार अन्तरिक्षस्थ देवताओं की बहुविध वाणियाँ प्रकट हुईं।

यज्ञवाट के सभी मुनि तथा नृपतिगण विस्मित हुए। अन्तरिक्ष एवं भूमि के सभी स्थावर, जङ्गम तथा महाकाय दानव एवं पाताल के पन्नगेन्द्र विस्मयान्वित होकर कोई प्रहृष्ट होकर 'जय-जय' एवं 'साधु-साधु' नाद करने लगे। कोई ध्यानपरायण हो गये और कोई राम एवं सीता को देखते हुए, निश्चेष्ट से हो गये। सीता के रसातल-प्रवेश से वानर, राक्षस, मानव सभी संतप्त हुए। श्रीराम अत्यन्त संतप्त हुए। ब्रह्माजी ने देवताओं के साथ आकर राम और सीता के दिव्य वैष्णव माहात्म्य का वर्णन करते हुए श्रीराम को सान्त्वना प्रदान की।

अवतारवाद के सम्बन्ध में पाश्चात्यों की भ्रान्तियों का उन्मूलन

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि मनु ने अवनेजन के लिए दोनों हाथों में जल लिया तो उसमें एक मत्स्य आ गया और उसने मनु से कहा—"मेरी रक्षा करो, मैं प्रजासहित तुम्हें प्रलय के महौघ से पार करूँगा।" मनु ने कहा —"कैसे तुम्हारी रक्षा हो ?" मत्स्य ने कहा—"जब तक मत्स्य छोटे रहते हैं तभी तक उनके नाश का भय रहता है। एक मत्स्य ही दूसरे मत्स्य को निगल जाता है, अतः कुम्भ में रखकर मेरा पालन करो।" मनु ने कुम्भ में मत्स्य को रखा जब वह अधिक बढ़ गया तो उसने कहा—"बड़ा सरोवर बनाकर उसमें मुझे रखो।" मनुजी ने वैसा ही किया। जब उससे भी अधिक बढ़ गया तब उसने कहा—"अब मुझे समुद्र में डाल दो।" तब मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया। मत्स्य अत्यधिक बढ़ गया और उसने मनु से कहा—"अमुक समय में महौघ आयेगा तब नौका की रचना कर उसमें आरूढ़ होना। मैं पार करूँगा।"

मत्स्य के कथनानुसार महौघ आया। मनु ने पृथ्वी को नाव बनाकर उसमें स्थान प्राप्त किया और उसी मत्स्य के शृङ्ग में नाव बाँध दी। उसी मत्स्य के द्वारा मनु उत्तर गिरिराज हिमालय में पहुँचे। तत्पश्चात् महामत्स्य ने कहा—"मैंने तुम्हें पार कर दिया। नाव को वृक्ष में बाँध दो।" यह मत्स्यावतार का वर्णन है।"

कूर्मावतार का वर्णन –देवताओं की प्रार्थना से कूर्मराज ने अपने पृष्ठ पर मन्दराचल को धारण किया था जिसको मन्थान दण्ड बनाकर देवताओं एवं असुरों ने समुद्र-मन्थन किया था।

इसी प्रकार महाभारत में परशुराम, राम, बलराम आदि अवतारों का वर्णन है।

"जन्माद्यस्य यतः" (ब्र० सू० १।१।२) इत्यादि ब्रह्मसूत्रों से सम्पूर्ण जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण को ब्रह्म कहा गया है। उपनिषदों, मन्त्रों, ब्राह्मणों एवं आरण्यकों में जहाँ कहीं भी जिसमें उक्त लक्षण घटता हो वह चाहे जिस नाम से व्यपदिष्ट हो उसे ब्रह्म ही समझना चाहिये। इसी लिए "आकाशस्तल्लिङ्गात्" (ब्र० सू० १।१।२२) इत्यादि सूत्रों में आकाश, प्राण तथा आदित्यमण्डलस्थ पुरुष को ब्रह्म ही कहा गया है, क्योंकि श्रुतिप्रमाण से उनमें जगत्कारणता सिद्ध है। इस दृष्टि से प्रकृत में विष्णु और प्रजापति अभिन्न ही तत्त्व हैं।

अतएव वाल्मीकिरामायण में प्रजापति नाम का निर्देश न होकर ब्रह्म का उल्लेख हुआ है। दक्षादि प्रजापति अवान्तर प्रजापति हैं। मुख्य प्रजापति ब्रह्म ही है। वही विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का हेतु है।

वह यद्यपि एक ही है तो भी कार्यभेद से उसके पृथक्-पृथक् भी नाम होते हैं। उत्पादक ब्रह्मा, पालक विष्णु एवं संहारक रुद्र या शिव कहे जाते हैं। इस दृष्टि से प्रजापति, ईश्वर या महाविराट् त्रिमूर्ति होता है। त्रिमूर्ति में भी विष्णु की प्रधानता होने से इन शब्दों द्वारा विष्णु का ही उल्लेख हुआ है। स्वयम्भू ब्रह्मा का देवताओं के साथ आविर्भाव हुआ और उन्होंने वाराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया। पूर्वापर के सभी ग्रन्थों के समन्वित निष्कर्ष से यह सिद्धान्त सिद्ध होता है कि भगवान् विष्णु ही शतपथब्राह्मण आदि में प्रजापति, ब्रह्म आदि शब्दों से उक्त हैं और उन्हीं से मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतार हुए।

महाभारत एवं विष्णुपुराण का समन्वय करने से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि महाभारत का प्रजापति वेदान्तवेद्य ब्रह्म ही है। वही विष्णु भी हैं। 'अहं प्रजापतिर्ब्रह्म' इत्यादि श्लोक का अर्थ यों है—'मैं सृष्टिकर्ता प्रजापति ब्रह्म हूँ मुझसे पर (उत्कृष्ट) कोई भी प्रमाण ज्ञात नहीं है। मैंने ही मत्स्यरूप से महान् भय से तुम देवताओं की रक्षा की थी।' विष्णुपुराण के वचन का अर्थ निम्नोक्त है। जगत् का प्रलय होने पर 'तोयान्तःस्थां महीं ज्ञात्वा' अनुमान से पृथ्वी को जल के भीतर जानकर उसका उद्धार करने की कामना से प्रजापति ने पूर्व कल्पों के समान ही मत्स्य, कूर्म आदि के समान वराहरूप धारण किया।

पूर्वोक्त दृष्टि से ही विष्णुपुराण में विष्णु तथा ब्रह्मस्वरूप नारायण एवं ब्रह्मा के साथ अभिन्नता कही गयी है। अतएव मत्स्य, कूर्म आदि विष्णु के ही अवतार हैं। पाश्चात्य विज्ञ कहते हैं कि विष्णु का महत्त्व बढ़ जाने से प्रजापति के अवतार मत्स्य, कूर्म आदि विष्णु के माने जाने लगे। पर यह कल्पना सर्वथा निराधार है। किसी की इच्छा या भावना से विष्णु का महत्त्व घटता अथवा बढ़ता नहीं है। विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण तथा महाभारत में विष्णु का खूब महत्त्व भी कहा गया है और उन्हीं ग्रन्थों में प्रजापति के अवतारों में मत्स्य, कूर्म आदि का वर्णन भी है। अतः कब से क्यों किस प्रमाण से विष्णु का महत्त्व बढ़ा ? यह कहना और सिद्ध करना असम्भव ही है। महाभारत तथा हरिवंश में पाश्चात्य तथा तदनुयायियों ने भी वराह तथा विष्णु का सम्बन्ध माना है। वस्तुतः हेमाद्रि, पराशरमाधव, मिताक्षरा, निर्णयसिन्धु आदि में जैसे मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, विविध-स्मृतियों, पुराणों और आगमों का समन्वय करके ही निष्कृष्ट अर्थ निकाला जाता है, वैसे ही अवतारों और राम-कथाओं के सम्बन्ध में भी सबका समन्वय करके ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। जब महाभारत, हरिवंश तथा विष्णुपुराण जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों में प्रजापति और विष्णु को एक मानकर मत्स्य आदि अवतारों तथा राम और कृष्ण को विष्णु के अवतार कहा ही जा रहा है तब हठधर्मी के कारण वाल्मीकिरामायण में राम को अवतार बतलानेवाले अंशों को क्षेपक कहने में क्या तुक है ?

पाश्चात्य तथा तदनुयायी कहते है "वामनावतार और नृसिंहावतार प्रारम्भ से विष्णु से ही सम्बन्ध रखते हैं। वामनावतार का उल्लेख तैत्तिरीयसंहिता, शतपथब्राह्मण, तैत्तिरीयब्राह्मण एवं ऐतरेयब्राह्मण में हुआ है। यह अवतार ऋग्वेद की एक कथा से विकसित माना जाता है और शतपथब्राह्मण, महाभारत के नारायणीयोपाख्यान तथा हरिवंशपुराण में इसका विष्णु के अन्य अवतारों के साथ उल्लेख हुआ है। नृसिंहावतार की कथा पहले पहल तैत्तिरीय आरण्यक के परिशिष्ट में मिलती है। नारायणीयोपाख्यान तथा हरिवंशपुराण में इसका उल्लेख है। परशुराम विष्णु के अवतार का प्रारम्भिक कथाओं में उल्लेख नहीं है। उदाहरणार्थ (म० भा० ३।११५।११७) किन्तु नारायणीय उपाख्यान (म० भा० १२।३२६।७७), हरिवंश (१।४१।११२-१२०) तथा विष्णुपुराण (१।६।१४१) में उनको विष्णु का अवतार माना गया है।"

वस्तुतः उक्त सभी ग्रन्थ प्रामाणिक हैं। उनमें कहीं भी किसी अवतार की चर्चा है तो वह प्रामाणिक है। निष्कर्षरूप में सभी विष्णु के अवतार हैं, पर इन पृथक्-पृथक् उक्तियों से अवतारों के विकास की बात सिद्ध नहीं होती। अतः पाश्चात्य विद्वानों का यह निष्कर्ष कि "ब्राह्मणों में तथा अन्य प्राचीन साहित्यों में अवतारवाद विद्यमान है, किन्तु उक्त ग्रन्थों के रचनाकाल में न तो अवतारों की कोई विशेष पूजा की जाती थी और न उनमें विष्णु का

प्राधान्य ही था।" यह मन्तव्य सर्वथा असंगत है। प्रजापति तथा विष्णु का विभिन्न यज्ञों में देवताओं के रूप में उल्लेख है ही। कई स्थलों में इन्द्र और विष्णु का साथ-साथ देवतात्व है और कहीं विष्णु का ही प्राधान्य है। विष्णु पूजा की श्रेष्ठता से ही उनसे अभिन्न अवतारों और पूजा की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध होती है। वस्तुतः जैसे अग्निहोत्र, ज्योतिष्टोम आदि कर्मों का ज्ञान और अनुष्ठान किसी एक ग्रन्थ पर आश्रित नहीं होता, वह तो मन्त्र, ब्राह्मण और कल्पसूत्र तीनों का समन्वय कर के ही समझा जा सकता है। केवल मन्त्र या केवल ब्राह्मण के आधार पर उनका अनुष्ठान नहीं हो सकता। इतना ही क्यों, तीनों के आधार पर बनी हुई परम्पराप्राप्त पद्धतियों के आधार पर ही ज्योतिष्टोमादि का प्रयोग हो सकता है। इसी तरह मन्त्रों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों तथा रामायण, भारत, पुराणों एवं आगमों के आधार पर बने पूजाविधानों के आधार पर ही राम, कृष्ण आदि की आराधनाएँ होती हैं, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इनकी पूजा पहले नहीं होती थी, विकासक्रम से बाद में चल पड़ी।

"अतएव कृष्णावतार के साथ-साथ अवतारवाद के विकास में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। उस समय से लेकर अवतारवाद भक्तिभाव से ओत-प्रोत होने लगा।" पाश्चात्यशिक्षादीक्षितों का यह कथन निराधार है; क्योंकि **महाभारत, हरिवंश, विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत** आदि ग्रन्थों से ही कृष्णावतार की सामग्री प्राप्त होती है और उन्हीं ग्रन्थों में विष्णु, राम आदि की भक्ति की भी चर्चा है। **रामतापनीय, गोपालतापनीय** आदि उपनिषदों में भी राम, कृष्ण आदि अवतारों की भक्ति एवं पूजा आदि का उल्लेख है।

यह कहना भी सर्वथा निराधार है कि "वासुदेव कृष्ण भागवतों के इष्टदेव थे। प्रारम्भ में उनका विष्णु से कोई सम्बन्ध नहीं था।" यह भी कहना गलत है कि "तीसरी शती ई० पू० वासुदेव और कृष्ण की अभिन्नता की भावना उत्पन्न हुई। बौद्ध-धर्म तथा भागवत-सम्प्रदाय का भक्तिमार्ग दोनों समानरूप से ब्राह्मणसाहित्य, कर्मकाण्ड तथा यज्ञप्रधान धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न और विकसित हुए। इसके फलस्वरूप धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणों का एकाधिकार लुप्त हो गया था। बौद्ध धर्म का अधिकाधिक प्रसार देखकर ब्राह्मणों ने भागवतों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए उनके इष्टदेव वासुदेव कृष्ण को विष्णु नारायण का अवतार मान लिया। इससे अवतारवाद को बहुत प्रोत्साहन मिला। साथ ही साथ विष्णु का भी महत्त्व बढ़ने लगा। इस तरह अवतारवाद की सारी भावना धीरे-धीरे विष्णु नारायण में केन्द्रित होने लगी और वैदिक साहित्य के अन्य अवतारों के कार्य विष्णु में ही आरोपित हुए", क्योंकि उक्त कल्पना को सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है। बौद्ध-धर्म वैदिकधर्मका प्रतिक्रियारूप था। इसमें तो प्रमाण बौद्ध-ग्रन्थ ही हैं। बुद्ध तथा बौद्धों ने प्रत्यक्ष तथा अनुमान दो ही प्रमाण माने हैं। आगम प्रमाण नहीं माना। फलतः उनके मत में वेदों की मान्यता नहीं है। बौद्ध बुद्ध को ही सर्वज्ञ मानकर बुद्ध-वचन को ही धर्म में प्रमाण मानते हैं। सुतरां वे लोग वैदिक नित्यात्मवाद तथा यज्ञ, याग आदि विशेषतः पश्वादिसमवेत यज्ञ के विरोधी थे। वे जन्मना जाति नहीं मानते थे, इसलिए ब्राह्मण जाति का भी उनकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं था। परन्तु भागवत भी ऐसे थे, यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भगवान् वासुदेव ने महाभारत तथा गीता में वेद का, आत्मा का तथा वैदिक धर्मों का महत्त्व वर्णन किया है। ऐसी स्थिति में कृष्णभक्त वेद, यज्ञ आदि के विरोधी कैसे हो सकते थे ?

श्रीनारायणीयोपाख्यान, श्रीमद्भागवत तथा सर्वोपरि रामायण में वेद, यज्ञों और ब्राह्मणों का महत्त्व विशद रूप में वर्णित है, अतः भागवतों के भक्ति-सम्प्रदाय को बौद्धों के समान वेद, यज्ञ तथा ब्राह्मणों का विरोधी समझना निरी भ्रान्ति ही है। साथ ही भागवतों के उक्त ग्रन्थों में ही जब वासुदेव कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है तब तो कृष्ण और वासुदेव की भिन्नता की कल्पना को कोई स्थान ही नहीं मिलता। ब्राह्मणों ने भागवतों को आकर्षित करने के लिए ही वासुदेव को विष्णु का अवतार मान लिया, इस कल्पना का भी कोई आधार नहीं है। उल्टे "विष्णुर्गोपा अदाभ्य" इत्यादि रूप से वेदों में ही विष्णु को गोप (कृष्ण) कहा गया है। "गोपवेषस्य विष्णोः" **मेघदूत** में कालिदास ने भी विष्णु को गोपवेषधारी कहा है। वस्तुतः 'विष्णुपुराण आदि ग्रन्थ ब्राह्मणसम्प्रदाय की

स्वार्थपूर्ण कल्पना नहीं हैं,' किन्तु महर्षि व्यास द्वारा वेदार्थ का उपबृंहण या वेद के भाष्यरूप में ही निर्मित हैं— "इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्" ।

वस्तुस्थितिमूलक होने के कारण ही पुराणों में वेदविरोधी बुद्ध को भी विष्णु का अवतार माना गया है। फिर जब वेदस्वरूप तैत्तिरीय आरण्यक में वासुदेव और विष्णु की एकता का प्रमाण मिलता है तब तो भिन्नता का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिये । विष्णु का महत्त्व भी अनादि ही है । वह किसी के संसर्ग से बढ़ने लगा, यह कल्पना भी निर्मूल है ।

पाश्चात्यशिक्षादीक्षितों का यह भी कहना कि "इधर अवतारवाद की भावना फैलती जा रही थी उधर कई शतियों से राम का आदर्श चरित्र भारतीय जनता के सामने आ रहा था । रामायण की लोकप्रियता के साथ-साथ राम का महत्त्व भी बढ़ रहा था । उनकी वीरता के वर्णन में अलौकिकता की मात्रा बढ़ने लगी । रावण पाप और दुष्टता का प्रतीक बन गया और राम पुण्यवान् और सदाचारी थे, अतः इस विकास की स्वाभाविक परिणति यह हुई कि कृष्ण की तरह राम भी विष्णु के अवतारों में गिने जाने लगे । राम तथा विष्णु की अभिन्नता की धारणा कब उत्पन्न हुई इसका ठीक समय निर्धारित करना असम्भव है । फिर भी अवतारवाद वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड में इतना व्याप्त है कि इसे उत्तरकाण्ड की अधिकांश सामग्री के पूर्व का मानना चाहिये । अतः बहुत संभव है कि पहली शती ई० पू० से ही रामावतार की भावना प्रचलित होने लगी थी । रामायण के प्रक्षेपों के अतिरिक्त महाभारत तथा वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य, हरिवंश आदि प्राचीनतम पुराणों में अवतारों को तालिका में दाशरथि राम का भी नाम आया है।" सरासर धोखा देना है ।

वस्तुतः यह कथन नितान्त भ्रम एवं दुरभिसन्धि पूर्ण है, कारण, वेदों तथा उपनिषदों में अनादिकाल से ही राम के अवतार का तथा उनकी उपासना का वर्णन है । जब मन्त्रों, ब्राह्मणों, उपनिषदों और ब्रह्मसूत्रों में परमात्मा का सगुण साकार होना वस्तुस्थिति है तब अवतार केवल भावना की वस्तु कैसे कहा जा सकता है ?

पाश्चात्य वातावरण में पले हुओं का कथन केवल प्रतिज्ञामात्र है, उसमें कोई हेतु नहीं है । हेतु के बिना अनुमान अकिञ्चित्कर ही होता है । जैसे धूम का अग्नि से कार्यकारणभाव होने से निश्चित व्याप्ति है, तभी धूम से वह्नि का अनुमान होता है । इस प्रकार राम विष्णु के अवतार नहीं हैं, इसकी किसी हेतु के साथ व्याप्ति नहीं है । विष्णु और राम दोनों ही पाश्चात्यों एवं उनके अनुयायियों के लिए अप्रत्यक्ष ही हैं । फिर, उनका भेद या अभेद भी अप्रत्यक्ष ही है । अप्रत्यक्ष साध्य के साथ साधन की व्याप्ति का प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है ? जिन ग्रन्थों के आधार पर विष्णु एवं राम का अस्तित्व सिद्ध होता है, उन्हीं से ही उनका अभेद सिद्ध होता है । अतएव जब प्रामाणिक वेदों, आर्ष रामायण, महाभारत इतिहासों से राम की ब्रह्मरूपता सिद्ध है, तब तो तद्विरुद्ध नगण्य जनों की निराधार कल्पना का कोई महत्त्व हो ही नहीं सकता । प्रामाणिक आधार के बिना केवल वीरता एवं लोकप्रियता के कारण ही किसी को अवतार नहीं माना जाता । सिद्धान्ततः महाभारत, भागवत तथा अन्य पुराणों की अपेक्षा भी रामायण अति प्राचीन तथा प्रामाणिक सद्ग्रन्थ है । अतएव कृष्ण से प्रथम ही राम का अवतार प्रसिद्ध है। इसी लिए संसार में राम का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है । भारत में तो बच्चे-बच्चे आस्तिक नास्तिक सभी की जिह्वा पर राम का नाम प्रख्यात है । कृष्ण की कथाओं में भी आता है कि कृष्ण की माता यशोदा कृष्ण को राम की कथा सुना रही थीं, जब सीताहरण की बात आयी तो सोते-सोते कृष्ण बोल पड़े "सौमित्रे क्व धनुर्धनुर्धनुरिति ।" वस्तुतः जब वेद, उपनिषद् तथा रामायण से अवतारवाद सिद्ध है, तब वह भावनामात्र कैसे हो सकता है ? यदि वेद आदि प्रमाण नहीं तो पाश्चात्य कल्पक जैसे लोगों के नगण्य वचनों का ही क्या प्रामाण्य हो सकता है ? कुछ व्यक्तियों की तुच्छ कल्पनाओं के बल पर वेद, उपनिषद्, महर्षियों के रामायण, महाभारत, विष्णुपुराण तथा श्रीमद्भागवत को झूठा मान लेना सर्वथा अनुचित है ।

कुछ पाश्चात्यशिक्षाप्रेमी कहते हैं—"छठी या सातवीं शती ई० से महात्मा बुद्ध भी विष्णु के अवतार माने जाने लगे।" इसके लिए उन्होंने दिखाया है कि "अवतारों की सूची में एकरूपता नहीं है।" किन्तु यह तर्क अकिञ्चित्कर है। यह आवश्यक नहीं कि सब बातें सभी जगह लिखी जायँ। कहा जा चुका है कि ऐसी अनेकरूपता वेदों और उपनिषदों के कर्मों एवं उपासनाओं में भी आती है और इसी लिए मीमांसा के अनुसार समन्वय करके ही सूत्रों के अनुसार पद्धतियाँ बनती हैं। फिर भी नारायणीय उपाख्यान में विष्णु के दस अवतारों की सूची मिलती है। उसके प्रक्षिप्तत्व की कल्पना निराधार है। श्रीमद्भागवत परम प्रामाणिक ग्रन्थ है। बोपदेव ने श्रीमद्भागवत के आधार पर ही मुक्ताफल नामक ग्रन्थ लिखा है और वे हेमाद्रि के समय के हैं। श्रीभागवत में विष्णु के दस अवतारों का वर्णन है। उसमें बुद्ध की भी गणना है। अतः बुद्ध को छठी शती ई० से अवतार माना जाने लगा, यह कल्पना सर्वथा अप्रमाण है।

वस्तुतस्तु; भारतीय साहित्यों के अनुसार राम विष्णु के अवतार ही नहीं, किन्तु किसी दृष्टि से अनन्त अनन्त ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र राम के अंश से प्रकट होते हैं।

"संभु विरंचि विष्णु भगवाना, उपजहिं जासु अंस ते नाना"

श्रीमद्भागवत के अनुसार ब्रह्माजी ने स्पष्ट कहा है कि 'तम, महान्, अहं, आकाश आदि अष्ट आवरणों से आवृत सप्त-वितस्तिकायवाला कहाँ मैं और कहाँ आप जिनके रोमकूपों में इसी प्रकार के अगणित ब्रह्माण्डपरमाणु निरन्तर परिभ्रमण करते रहते हैं। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार विभिन्न ब्रह्माण्डों के उत्पादक, पालक और संहारक ब्रह्म कारणब्रह्म हैं। ऐसी स्थिति में कार्यब्रह्म कारणब्रह्म के अंश ही ठहरते हैं, अतः विष्णुपुराण के विष्णु, शिवपुराण के शिव, रामायण के राम, श्रीभागवत के कृष्ण तथा शाक्तागमों की शक्ति एक ही कारणवस्तुरूप हैं। परन्तु विष्णु-पुराणोक्त विष्णु के अंशभूत अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि कार्यब्रह्म ही हैं। इसी तरह शिवपुराणोक्त शिव के अंशभूत विष्ण्वादि भी कार्यब्रह्म ही हैं। इसी दृष्टि से रामायण एवं भागवत के राम और कृष्ण भी कारणब्रह्मरूप हैं। फलतः उनके रोमकूपों में कार्यब्रह्मरूप अनन्त ब्रह्माण्डों के उत्पादक, पालक और संहारक कार्यब्रह्मरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि उनके अंश ही हैं। इस दृष्टि से राम का स्वतःसिद्ध लोकोत्तरमहत्त्व प्रख्यात है। फिर ईसा की अमुक शती में राम ने ब्राह्मणधर्म में विष्णु के अवतार का पद प्राप्त कर लिया, यह कहना धृष्टतामात्र है।

"रामकथा-साहित्य में अवतारवाद की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई व्यापकता के साथ-साथ भक्तिभावना भी उत्पन्न हुई ओर धीरे-धीरे विकसित होने लगी।" ऐसा कहनेवाले की दृष्टि में अवतारवाद एक भावनामात्र है। 'राम के आदर्श चरित्र के कारण उनमें विष्णु अवतार होने की कल्पना हो गयी। वस्तुतः राम विष्णु अवतार नहीं थे। परन्तु अवतारभावना के साथ-साथ रामभक्ति भी विकसित होने लगी।' यह कथन भी निराधार है। क्योंकि विष्णु, राम और कृष्ण अनादिकाल से ही भारतीय साहित्य में परब्रह्मरूप से ही प्रसिद्ध हैं। अतः उनकी भक्ति अनादिकाल से ही सिद्ध है। उसका विकास या कल्पना नहीं है।

श्रीराम की पितृभक्ति

पिता की आज्ञा से श्रीरामचन्द्रजी के वनगमन के लिए प्रस्तुत होने पर माता कौशल्या ने कहा—वत्स! तुम्हारे पिताजी ने वनगमन की आज्ञा प्रदान की है, परन्तु माता, पिता से हजार गुना अधिक गौरवमयी मानी गयी है अतः मैं तुम्हें वनगमन से रोकती हूँ, तुम वन मत जाओ। श्रीराम ने माता से कहा माँ, पिता के वचन का उल्लङ्घन करने की मुझमें क्षमता नहीं है। मैं किसी प्रकार भी पिता के वचनों का उल्लङ्घन नहीं कर सकता। मैं आपके चरणों में सिर से प्रणाम कर आपको प्रसन्न करता हूँ। मैं अवश्य वन जाना चाहता हूँ। सत्य ही लोक में ईश्वर है, सत्य में धर्म सदा आश्रित है। संसार की सभी वस्तुएँ सत्यमूलक हैं। सत्य से बढ़कर कोई पद नहीं। वेद भी सत्य में ही प्रतिष्ठित है, अतः सत्यपरायण होना चाहिये। अतएव मैं पिता के आदेश का पालन क्यों न करूँ!

मैं किसी भी लोभ से, मोह से तथा अज्ञान से पिता के सत्य-सेतु का कदापि भेदन नहीं कर सकता। पूज्य महाराज दशरथ मेरे पिता हैं, जन्मदाता हैं, उन्होंने मेरे लिए जो आज्ञा प्रदान की है, वह कदापि मेरे द्वारा मिथ्या न होगी। हमारे पूर्वज महाराज सगर के पुत्र पिता की आज्ञा मानकर भूमि का खनन करते हुए विनाश को प्राप्त हुए। परशुराम ने पूज्य पिता की आज्ञा से ही अपनी माता रेणुका का फरसे से गला काट दिया। इन लोगों ने तथा देवसदृश अन्यान्य लोगों ने भी पिता की आज्ञा का बिना किसी हिचकिचाहट के पालन किया, और 'वे स्मरणीय आदर्श पुत्र माने जाने लगे'। अतः मैं पिता का वचन-पालन अवश्य करूँगा। चन्द्रमा से उसकी शोभा भले पृथक् हो जाय, हिमवान् भले ही हिमविहीन हो जाय एवं सागर भले ही अपनी मर्यादा त्याग दे परन्तु मैं पिता की आज्ञा नहीं टाल सकता।

लक्ष्मीचन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः॥

श्रीराम ने कैकेयी और महाराज दशरथ के सम्मुख दृढ़तापूर्वक पिता के वचनों की रक्षा के लिये कहा था। पूज्यतम पिता के लिए जो भी प्रिय कार्य किया जा सकता है मैं प्राणों का परित्याग करके भी वह सब करने के लिए कृतसंकल्प हूँ। पितृचरणों की शुश्रूषा और उनके वचन के आज्ञापालन से बढ़कर पुत्र के लिए दूसरा कोई भी महत्तर धर्माचरण है ही नहीं। पूज्य पिताजी न भी कहें तो भी आपकी आज्ञा से मैं निर्जन वन में १४ वर्ष निवास कर सकता हूँ।

श्रीमद्भागवत में कहा है—

धर्मिष्ठ श्रीराम पूज्य पितृचरणों की आज्ञा से विबुध-स्पृहणीय राज्यलक्ष्मी का त्याग, इस प्रकार करके मानों कोई व्यक्ति जीर्ण डुपट्टे का त्याग कर दे, वन को चले गये—

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्। इत्यादि

कौशल्या के जीवनवत् प्रिय राम को सब माताओं पर तुल्य भक्ति

कौशल्या के तो राम जीवन ही थे। तभी तो वह कहती हैं—

नहि तावद् गुणैर्जुष्टं सर्वशास्त्रविशारदम्।
एकपुत्रा विना पुत्रमहं जीवितुमुत्सहे॥
नहि मे जीविते किंचित्सामर्थ्यमिह कल्पते।
अपश्यन्त्याः प्रियं पुत्रं लक्ष्मणं च महाबलम्॥
अयं हि मां दीपयतेऽद्य वह्निस्तनूजशोकप्रभवो महाहितः।
महीमिमां रश्मिभिरुत्तमप्रभो यथा निदाघे भगवान् दिवाकरः॥

एकपुत्रा मुझे सकल कल्याण गुणों से युक्त सर्वशास्त्रविशारद पुत्र के बिना जीने का उत्साह नहीं है। इस संसार में प्रिय पुत्र एवं महाबलिष्ठ लक्ष्मण को न देख रही मेरे लिए जीवन के निमित्त कुछ भी उत्साह नहीं है। पुत्र-वियोगजनित शोक से उत्पन्न महादुःखदायी यह अग्नि मुझे वैसे ही सन्तप्त कर रही है, जैसे ग्रीष्मकाल में प्रखर किरणों से अत्यधिक चमक रहे भगवान् सूर्य ज्वालावलीकल्प किरणों से भूमि को सन्तप्त करते हैं।

कौशल्या के प्रति राम का जैसा सम्मान था कैकेयी के प्रति उससे भी अधिक था। कैकेयी स्वयं कहती हैं—

कौशल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु।

अन्य माताओं ने भी अनुभव किया था कि राम झूठा कलङ्क लगाने पर भी क्रोध नहीं करते और स्वयं भी क्रोध करानेवाली बातें नहीं करते, क्रुद्ध लोगों को भी प्रसन्न कर लेनेवाले तथा दूसरों के दुःख में समान दुःखवाले राम अब कहाँ चले जा रहे हैं। महातेजा राम जिस प्रकार माता कौशल्या में भक्ति रखते हैं वैसे ही हम सबमें भी भक्ति रखते हैं—

न क्रुद्धयत्यभिशप्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन्।
क्रुद्धान् प्रसादयन् सर्वान् समदुःखः क गच्छति।

माता सुमित्रा कहती हैं—हे आर्ये, तुम्हारे पुत्र राम सद्गुणों से युक्त पुरुषोत्तम हैं। उन्हें कहीं भय और क्लेश नहीं। तुम क्यों विलाप करती हो। तुम्हारे महाबलवान् पुत्र अपने पिता को सत्यवादी सिद्धसङ्कल्प करते हुए राज्य का त्याग कर वन को गये हैं। श्रेष्ठ श्रीराम शिष्टपुरुषों द्वारा आचरित धर्म में स्थित हैं। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। पितृतुल्य उनकी शुश्रूषा करनेवाले लक्ष्मण उनके साथ हैं, उन्हें कदापि दुःख नहीं होगा, सुख ही होगा। अरण्यवास के दुःख को जानती हुई जानकी धर्मात्मा आपके पुत्र राम का अनुगमन कर रही हैं। वे त्रैलोक्य में अपनी कीर्तिपताका फहरा रहे हैं। श्रीराम के परमपवित्र एवं उत्तम माहात्म्य को जानकर सूर्य अपनी किरणों से उनके शरीर को कदापि क्लेश नहीं देगा। समशीतोष्णसुखस्पर्श वायु वनप्रान्त में श्रीराम की सेवा करेगा। राम देवताओं के देव, प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ प्राणी हैं। उनके वन में अथवा नगर में कौन से गुण या दोष हो सकते हैं। शीघ्र ही वसिष्ठादि महर्षि पृथिवी, जानकी तथा विजयलक्ष्मी के साथ उनका अभिषेक करेंगे। देवी, आप शोक और मोह का त्याग करें। लक्ष्मी के तुल्य सीता जिनके अनुगत है एवं महाधनुर्धारी लक्ष्मण जिनके आगे चल रहे हैं उनके लिए क्या दुर्लभ है।

राम का भ्रातृस्नेह

रावण-वध के अनन्तर राम के अयोध्या-गमन के लिए उद्यत होने पर विभीषण ने अति विनम्र भाव से प्रार्थना की—भगवान्, यदि मैं आपका अनुग्राह्य हूँ, आप मेरे गुणों और सेवाओं का स्मरण करते हैं, मुझपर आपका सौहार्द है तो आपका सारा कार्य सम्पन्न हो गया, अब आप कुछ समय मेरे यहाँ निवास करें तथा ससैन्य एवं ससुहृद्गण मेरा सत्कार स्वीकार करें। मैं बड़े प्रणय, सम्मान एवं सौहार्द से आप से विनय करता हूँ। मैं आपका सेवक हूँ। आज्ञा नहीं, प्रार्थना करता हूँ। मेरी सेवा ग्रहण के अनन्तर ही आप अयोध्या को प्रस्थान करें। श्रीराम ने सब वानरों और राक्षसों के बीच में कहा—वीर, मैं तुम्हारे परम सौहार्द, उत्कृष्ट प्रयत्नों तथा उत्कृष्ट मन्त्रणाओं से पूजित हो चुका हूँ। मैं तुम्हारी बात न मानूं, यह संभव नहीं। किन्तु राक्षसराज, अपने उस भ्राता भरत को देखने के लिए मेरा मन अत्यन्त आतुर हो रहा है। जो मुझे लौटाने के लिए सपरिकर चित्रकूट आया था और पादलग्न सिर से लौटाने की मुझसे प्रार्थना कर रहा था। फिर भी उसकी बात मैंने अङ्गीकार नहीं की। कौशल्या, सुमित्रा तथा यशस्विनी कैकेयी आदि माताओं एवं सुहृद् गुहराज तथा पुरवासियों को देखने के लिए मेरा मन त्वरित है। अतः मुझे शीघ्र ही जाने की अनुमति दो। सौम्य, मन्यु नहीं करना। मैं तुमसे अनुमति देने की प्रार्थना करता हूँ। राक्षसेश्वर, अब कृतकार्य होने पर विलम्ब उचित नहीं; शीघ्र ही विमान मँगाओ—

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः॥

तुलसीदासजी कहते हैं—भरत सदृश को राम सनेही।
जग जपु राम राम जपु जेही॥

भाइयों के प्रति राम का कथन—लक्ष्मण, मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और पृथिवी का राज्य तुम भाइयों के लिए ही चाहता हूँ। भ्राताओं के संग्रहार्थ एवं सुखार्थ ही मैं राज्य चाहता हूँ, यह मैं आयुध-स्पर्श कर सत्य कहता हूँ। बिना भरत के, बिना तुम्हारे और बिना शत्रुदमन के जो भी मेरा सुख हो, अग्निदेव उसे जलाकर भस्म कर दें—

धर्ममर्थञ्च कामञ्च पृथिवीञ्चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत्प्रतिशृणोमि ते॥
भ्रातृणां संग्रहार्थं च सुखार्थञ्चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे॥
यद् विना भरतं त्वां वा शत्रुघ्नञ्चापि मानद।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद् भस्म तत्कुरुतांशिखी॥

राम का परम सुहृत्स्नेह

श्रीराम के वनवासार्थ गङ्गातट पर पहुँचने पर निषादराज ने राम का पूर्ण स्वागत सत्कार किया और कहा—नाथ! मेरा सारा राज्य आपका है। हम सभी आपकी आज्ञाओं का अनुवर्तन करेंगे। आप स्वामी, हम सब आपके सेवक हैं। ये भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य, खाद्य पदार्थ तथा ये शय्याएँ एवं घोड़ों के लिये घास, चारा आदि सामग्री भी उपस्थित है। परिस्थिति के अनुसार यद्यपि राम ने निषादराज के दिये गये भोजन, पानी आदि को ग्रहण नही किया, तथापि अपने व्यवहार तथा स्नेह से उन्हें निहाल कर दिया। उन्होने कहा—सुहृद्वर, आप मेरे समीप पैदल ही चले आये, आपके इस परमोत्कृष्ट प्रेम से हम अत्यन्त प्रसन्न एवं अर्चित हो गये हैं। अपनी सुन्दर दोनों भुजाओं से निषादराज का निर्भर आलिङ्गन करते हुए राम ने कहा—प्रियवर! हम कितने भाग्यशाली हैं जो स्वस्थ तथा प्रसन्न बान्धवों से युक्त आप जैसे मित्र का दर्शन कर रहे हैं। आपके मित्रों, वनों एवं राष्ट्र में कुशल तो है? आप जो मेरे लिए लाये हैं वह सब मुझे स्वीकार है, किन्तु मैंने वनचारी तपस्वी का व्रत धारण कर रखा है। इन व्रत के दिनों में मैं वल्कलवसन, कुश एवं अजिन धारण करके कन्द, मूल, फल अशन करता हूँ, अतः आप अन्य सब वस्तुएँ प्रत्यावर्तित कर दें। केवल घोड़ों के लिए चारा दाना मात्र ही मुझे अपेक्षित है। ये मेरे पिताजी के अत्यन्त प्रिय हैं। इनको खिलाने पिलाने से ही मेरा पूर्ण सत्कार हो जायगा।

राम का शरणागतरक्षण व्रत

विभीषण की शरणागति प्रसिद्ध है। भगवान् राम के सचिव सुहृद् सुग्रीव आदि विभीषण को शरण देने के विरुद्ध थे। वे कहते थे कि यह रावण का अनुज रावण का प्रणिधि बनकर हमारा भेद लेने या हममें फूट डालने, यदि मौका मिलें तो हममें से किसी पर सांघातिक प्रहार करने आया है। यदि रावण का प्रणिधि न भी हो, उसका विरोधी ही हो तो भी वह ग्राह्य नहीं है, क्योंकि ऐसे विपत्तिकाल में जो अपने सहोदर भाई का त्याग कर सकता है, अपने सगे भाई का अपना नहीं हुआ तो किसका विश्वस्त या आत्मीय हो सकता है। तस्मात् सर्वथा अग्राह्य है।

भगवान् ने कहा—यदि वह प्रणिधि भी हो, हमारा भेद लेने आया हो तो भी वह रजनीचर हमारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म भी अहित नहीं कर सकता। पृथिवी भर में जितने पिशाच, दानव, यक्ष तथा राक्षस हैं उन सभी का यदि इच्छा करूँ तो एक अङ्गुली के अग्रभाग से संहार कर सकता हूँ—

पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥ (वा० रा० ६।१८।२३)

रन्ध्र मिलने पर विभीषण प्रहार कर सकता है, इस भीति को दूर कर शरणागत की रक्षा करना परम धर्म है। राम ने कहा—सुना जाता है कि एक कपोत ने शरण में आये हुए शत्रु-रूप व्याध का यथान्याय अर्चन किया और अपना मांस भोजन करने की उससे प्रार्थना की। जब कि इस प्रकार शरणागत भार्याहर्ता की तिर्यक् प्राणी ने भी उपेक्षा नहीं की तो मेरे सदृश सकल धर्मों के रहस्य को जाननेवाला क्षत्रिय अपकार न करनेवाले शरणागत की उपेक्षा कैसे कर सकता है ? सत्यवादी महर्षि कण्डु ने शरणागत रक्षा सम्बन्धिनी गाथा गायी है—

हाथ जोड़े हुए दीनता से शरण माँगते हुए शत्रु को भी आश्रितरक्षणरूप परम धर्म की सिद्धि के लिए नहीं मारना चाहिये। इतना ही नहीं आर्त हो अथवा दृप्त हो जो भी शत्रुओं के भय से शरणागत हुआ हो, भले वह शत्रु ही क्यों न हो कृतात्मा प्राणी को चाहिये कि वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी उसकी रक्षा करे। शरण में आया हुआ व्यक्ति यदि रक्षक की दृष्टि के सामने विनष्ट होता है तो वह अरक्षित अरक्षक का सब पुण्य लेकर चला जाता है। इस प्रकार प्रपन्न के अरक्षण से महान् दोष होता है। वह अस्वर्ग्य, अयशस्य और बलवीर्य का विनाशक है। अतः मैं कण्डु के धर्मिष्ठ, यशस्य तथा फलोदयकाल में स्वर्ग्य वचन का अवश्य पालन करूँगा। इसके अतिरिक्त मुझ परमदयालु राम का तो सर्वभूतों के लिए अभय प्रदान करना एक व्रत ही है।

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

सब प्राणियों के लिए अथच सब भूतों से भयभीत सभी प्राणियों के लिए अभय-प्रदान करना मेरा नित्य सत्सहज धर्म है।

कोटि बिप्रबध लागे जाही। आये सरन तजहुँ नहिं ताही॥

भगवान् राम का कथन सुनकर आश्चर्य एवं सौहार्द से परिपूर्ण होकर सुग्रीव ने कहा—धर्मज्ञ, लोकनाथ-शिखामणे, आप सत्त्ववान् एवं सत्पथ में स्थित हैं अतः आपका ऐसा कल्याण भाषण आश्चर्यजनक नहीं है। आपका पुण्य कथन सुनकर मेरा भी अन्तरात्मा विभीषण को ग्राह्य मानने लगा। उसे शरण में लेने के विषय में पहले सबसे प्रमुख विरोधी सुग्रीव द्वारा रामसंनिधि में आनीत विभीषण के साथ राम की वैसी ही मित्रता हुई जैसी गरुड़ से इन्द्र की मैत्री हुई है। विभीषण ने राम के निकट आते ही राम के चरणों में गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः।

भगवन्, सब भूतों के शरण्यभूत परमपुरुष आपकी शरण में आया हूँ।

राम की सत्य प्रतिज्ञा

श्रीरामजी ने अभय प्राप्ति के लिए उनकी (श्रीरामजी की) पुण्यसंनिधि में समागत दण्डकारण्यवासी ऋषियों के अभिरक्षण के लिए युद्ध में राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की थी। परन्तु श्रीसीता को विना वैर पर-प्राणों का अभिहिंसन रुचिकर नहीं हुआ। इसी लिए ऐहिक सुख और पारलौकिक निःश्रेयस के लिए शस्त्रास्त्रों को अपने निकट न रखने का निवेदन करते हुए उन्होंने एक प्राचीन इतिहास श्रीरामजी को सुनाया। श्रीरामजी ने सीता के कथन की सर्वथा अति प्रशंसा कर कहा—

हे सीते, मैं अपने जीवन का त्याग कर सकता हूँ एवं लक्ष्मण सहित तुम्हारा भी त्याग कर सकता हूँ, परन्तु मैं प्रतिज्ञा का, विशेषतः ब्राह्मणों के प्रति की गयी प्रतिज्ञा का, त्याग नहीं कर सकता—

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥

सीता ने राम को परम धार्मिक, सत्यप्रतिज्ञ और पिता की आज्ञा का पालन करनेवाले दृढ़व्रती कहा है। वह कहती हैं आप में धर्म और सत्य सब कुछ पुण्यताहेतु प्रतिष्ठित है। वाल्मीकिजी के द्वारा नारदजी से पूछे गये राम के गुणों में उन्हें धर्मज्ञ और सत्यप्रतिज्ञ कहा गया है।

राम के अपार चरित

रामचरित का प्राचुर्य और उसकी पापराशिविनाशिता प्रसिद्ध है। इसी से कहा गया है—

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥

रामचरित शतकोटि (एक अरब) श्लोकों में विस्तृत है, अर्थात् अपार है और उसके एक एक अक्षर में महापातकों के विनाश की क्षमता है। महाभारत, अष्टादशपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, देवीपुराण, भागवत, उपपुराण आदि की भी विशिष्ट फलश्रुतियाँ हैं किन्तु उनमें विष्णुचरित, शिवचरित, देवीचरित, गनेशचरित, सूर्यचरित का उत्कर्ष भी सोदाहरण दर्शाया गया है।

रामचरित के प्रत्येक अक्षर में महापातकों को विनष्ट करने की अतुलशक्ति निहित है। रामनाम जितना जन-जन प्रख्यात है, उतना और कोई भी विष्णु, कृष्ण, वैकुण्ठ, माधव आदि देवताओं का नाम प्रख्यात न हो सका। पद्मपुराण के अनुसार शिवजी ने पार्वतीजी को बतलाया कि राम ही मेरा धन है। एक बार रामनाम का जप विष्णु के हजार नामों के जप के बराबर होता है। हे मनोरमे ! मैं उसी राम में रमण करता हूँ। हे वरानने ! मैं अतिराम अर्थात् परशुराम का अतिक्रमण करनेवाले राम में अतिरमण करता हूँ।

राम रामेऽतिरामेऽतिरमे रामे मनोरमे।
सहस्रनामतत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

"राम अनंत अनंतगुन अनंत कथा विस्तार" के अनुसार श्रीरामजी के अनन्त गुण हैं, उनका पार पाना संभव नहीं।

कालिदास ने कहा है—

महिमानं यदुत्कीर्य तव संह्रियते वचः।
श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया॥

भगवन्, आपकी थोड़ी बहुत महिमा गाकर जो हम मौनावलम्बन करते हैं, उसका अर्थ यह नहीं है कि आपकी महिमा की इतिश्री हो गयी। उसका कारण हमारी थकावट अथवा अशक्ति है, गुणों की इयत्ता से हमारा मौनावलम्बन नहीं।

पुष्पदन्ताचार्य कहते हैं—

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

भगवन् ! आपकी महिमा का लेखन यदि काले पहाड़ के समान मषी-स्याही हो और सिन्धुरूपी मषीपात्र में घोली जाय तथा कल्पवृक्ष की टहनी की कलम हो और सारी पृथिवी पत्र (लेखाधार कागज का ताव) हो एवं स्वयं शारदा ही सर्वदा रातदिन कल्पवृक्ष की शाखा लेकर आपके गुणों को लिखे तो भी आपके गुणों का, आपकी महिमा का पार नहीं पा सकती।

प्रस्तुत प्रस्तावना में जो कुछ लिखा गया है वह सब पूज्यपाद स्वामीजी द्वारा लिखित इस पुस्तक का प्रसाद है, जैसे गङ्गाजल के द्वारा ही भगवती गङ्गाजी की पूजा अर्चना होती है वैसे ही 'रामायण-मीमांसा' से संकलित कुछ अंशों को पाठकों के समक्ष प्रस्तावना के रूप में रखकर भगवान् राम के आदर्श से अनुप्राणित होनेवाले भक्तों के लिये पवित्र प्रयास किया गया है जिससे पाठक इस महान् ग्रन्थ की विषयवस्तु संक्षेप में अवगत कर सकें। इस ग्रन्थ के प्रकाशन में कुछ संस्थाओं एवं कुछ महानुभावों का जो योगदान हुआ है उसे हम भूल नहीं सकते। कलकत्ते की श्रीभक्तिसुधापरिषद् तथा आदरणीय श्री मोहनलालजी जालान का आर्थिक सहयोग विशेष उल्लेखनीय हैं। आदरणीय पं० श्री श्रीकृष्णपन्तजी शास्त्री साहित्याचार्य के अनवरत परिश्रम से ही ग्रन्थ का साङ्गोपाङ्ग सम्पादन भलीभाँति सम्पन्न हो सका है। अतः ये सभी महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में रामायण-जगत् के माने जाने आधुनिक विद्वान् जो वेद-शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित सनातन सिद्धान्तों से विपरीत बातें जाने या अनजाने में अपनी लेखनी द्वारा भगवान् राम की कथा के प्रसङ्ग में प्रस्तुत करते हैं, उनके प्रति भी मैं अपना आभार प्रदर्शित किये विना नहीं रह सकता जिनके कारण ही अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज द्वारा मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम के चरित का विशद विवेचन 'रामायण-मीमांसा' के रूप में जनता-जनार्दन को प्राप्त हो सका है। रामायण के सम्बन्ध में अब तक जो भी शंकाएँ और समालोचनाएँ प्राप्त हो सकी हैं, उन सबका समाधान वेद-शास्त्रादि सिद्धान्तों के आधार पर आप इस ग्रन्थ से प्राप्त कर सकेंगे।

अन्त में हम परमसुहृद अकारण दयालु भगवान् राम के चरणकमलों में नत-मस्तक होकर विनम्र प्रार्थना करते हैं कि कलिकाल में प्रसूत हम सभी प्राणियों को वे ऐसी सद्‌बुद्धि प्रदान करें कि जिससे अपने युगल सीता-राम के चरणों में हमारी भक्ति और प्रीति दिनानुदिन बढ़ती रहे।

श्याम सुन्दर धानुका

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

अष्टम अध्याय

नवम अध्याय

दशम अध्याय

एकादश अध्याय

द्वादश अध्याय

त्रयोदश अध्याय

चतुर्दश अध्याय

पञ्चदश अध्याय

षोडश अध्याय

सप्तदश अध्याय

अष्टादश अध्याय

एकोनविंश अध्याय

विंश अध्याय

एकविंश अध्याय

द्वाविंश अध्याय

संकेत-सूची

संकेत	पूर्ण नाम
अग्निपु० अ० पु०	अग्निपुराण
अथ० सं० अथर्वसं०	अथर्वसंहिता
अ० रा०	अध्यात्मरामायण
अ० शा०	अर्थशास्त्र
आप० सू०	आपस्तम्बसूत्र
आ० रा०	आनन्दरामायण
ईशा० उ०	ईशावास्योपनिषद्
उ० रा० च०	उत्तररामचरित
ऋ० सं०	ऋग्वेदसंहिता
ऐ० ब्रा०	ऐतरेयब्राह्मण
क० उ० कठ० उ०	कठोपनिषद्
कम० नीति०	कामन्दकीयनीतिशास्त्र
कम्ब० रा०	कम्बरामायण
काव्यप्र०	काव्यप्रकाश
का० मा० का० के० मा० काशी० के० मा०	काशीकेदारमाहात्म्य
का० सं० काठ० सं०	काठकसंहिता
कूर्म० पु०	कूर्मपुराण
कौ० गृ० सू०	कौशिकगृह्यसूत्र
कौ० उ०	कौषीतकि उपनिषद्
कौ० ब्रा०	कौषीतकिब्राह्मण
ग० पु०	गरुड़पुराण
गी०	गीता
गो० ब्रा०	गोपथब्राह्मण
गौ० रा०	गौड़ीयपाठ रामायण
गौ० सू० भा०	गौतमसूत्र-भाष्य
छा० उ०	छान्दोग्योपनिषद्
जै० सू०	जैमिनिसूत्र
त० सं० रा०	तत्वसंग्रहरामायण
ताण्ड्यम०	ताण्ड्यमहाब्राह्मण
तार० उ०	तारसारोपनिषद्
तै० आ०	तैत्तिरीय आरण्यक
तै० उ०	तैत्तिरीयोपनिषद्
तै० ब्रा०	तैत्तिरीयब्राह्मण
तै० सं०	तैत्तिरीयसंहिता
दु० स०	दुर्गासप्तशती
दु० स० मू०	दुर्गासप्तशतीमूर्तिरहस्य
दे० भा०	देवीभागवत
ना० प्र० पत्रिका	नागरीप्रचारिणी पत्रिका
ना० शा०	नाट्यशास्त्र
नृ० उ० ता०	नृसिंहोत्तरतापनीयोपनिषद्
नृसिं० पु०	नृसिंहपुराण
नै०	नैरुक्तवचन
प० पु० पद्म० पु०	पद्मपुराण
पा० गृ० सू०	पारस्करगृह्यसूत्र
पा० सू०	पाणिनिसूत्र
पु० सू०	पुरुषसूक्त
प्र०उ०	प्रश्नोपनिषद्
प्र० वार्तिक	प्रमाणवार्तिक
बुद्ध० च० बु० च०	बुद्धचरित
बृ० उ०	बृहदारण्यकोपनिषद्
बृह० ना० पु०	बृहन्नारदीयपुराण
बृह० पु०	बृहद्धर्मपुराण
बृ० सं०	बृहत्संहिता
ब्रह्मवै० ब्र० वै० पु०	ब्रह्मवैवर्तपुराण
ब्र० पु०	ब्रह्मपुराण
ब्र० सू० शा० भा०	ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य

भ० गी०	भगवद्गीता
भा० भाग० भा० पु०	भागवतपुराण
भा० टी०	भागवतटीका श्रीधरी
म० मनु०	मनुस्मृति
मत्स्यपु० म० पु०	मत्स्यपुराण
महाभा० पु०	महाभागवतपुराण
म० भा० महाभा०	महाभारत
मा० मु०	मानसमुक्तावली
मा० सं०	माध्यन्दिनसंहिता
मी० द०	मीमांसादर्शन
मु० उ०	मुण्डकोपनिषद्
मू० रा०	मूलरामायण
मै० सं०	मैत्रायणीसंहिता
यजुःसं० शुक्लयजुः०	शुक्लयजुर्वेदसंहिता
या० स्मृ०	याज्ञवल्क्यस्मृति
र० वं० रघुवं० रघु०	रघुवंश
रा० उ० ता०	रामोत्तरतापिनी
रा० पू० ता०	रामपूर्वतापिनी
रा० ता०	रामतापनी
रा० मा०	रामचरितमानस
ला० श्रौ० सू०	लाट्यायनश्रौतसूत्र
लि० पु०	लिङ्गपुराण
वा० प०	वाक्यपदीय
वायुपु०	वायु पुराण
वा० रा०	वाल्मीकिरामायण
वा० रा० दा० पा०	वाल्मीकिरामायण दाक्षिणात्य पाठ
वा० रा० प० पा०	वाल्मीकिरामयण पश्चिमोत्तरीय पाठ
गौ० पा०	गौडीय पाठ
विष्णुध० पु०	विष्णुधर्मोत्तरपुराण
विष्णु० विष्णुपु०	विष्णुपुराण
विष्णुस्मृ०	विष्णुस्मृति
श० ब्रा०	शतपथब्राह्मण
शा० भा०	शाङ्करभाष्य
शु० नी०	शुक्रनीति
श्वे० उ०	श्वेताश्वतरोपनिषद्
श्लो० वा०	श्लोकवार्तिक
सीता उ०	सीतोपनिषद्
सौ० पु०	सौरपुराण
स्कन्दपु०	स्कन्दपुराण
हनु० चा०	हनुमानचालीसा
हनु० ना०	हनुमन्नाटक
ह० वं० पु०	हरिवंशपुराण

गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस

ॐ

रामायणमीमांसा

प्रथम अध्याय

परब्रह्मस्वरूप सीता-राम का वेदमूलक लोकोत्तर माहात्म्य

सौन्दर्यसारसर्वस्वं माधुर्यगुणबृंहितम् ।
ब्रह्मैकमद्वितीयं तत् तत्त्वमेकं द्विधा कृतम् ॥
वेदादिशास्त्रसंवेद्यं सीतारामस्वरूपकम् ।
सरहस्यं सतां सेव्यमद्भुतं प्रणमाम्यहम् ॥

श्रीसीता-राम का अनुपम ऐश्वर्य

श्रीसीता और श्रीराम अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के अधिष्ठान स्वप्रकाश परब्रह्मस्वरूप हैं । वे ही सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि बाह्य ज्योतियों तथा श्रोत्र, नेत्र, मन, बुद्धि, चित्त, जीव, दैवत आदि आन्तर ज्योतियों के भी ज्योति हैं । वे ही ईश्वर के ईश्वर, ब्रह्म के ब्रह्म, ज्ञान के ज्ञान, आनन्द के आनन्द तथा अनुपम अचिन्त्य अनन्त कल्याण गुणगणों के निधान हैं और सौन्दर्य, माधुर्य, सौरस्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य, सौशील्य, आभा, प्रभा, शोभा, कान्ति, शान्ति प्रभृति दिव्य गुणों की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी-समुदायों से सेव्य, अतएव अनन्त लक्ष्मियों की भी लक्ष्मी हैं—

"सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः ।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा-क्षमा ॥" (वा० रा० २।४४।१५) ।

श्रीसीता प्रेमसारसर्वस्व राम की सौन्दर्यसारसर्वस्व

श्रीसीता-राम का स्वरूप सुषमाकामधेनु के सौन्दर्य-पयोराशि से जनित नवनीत से निर्मित है । अदिमा की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी के चरणकमल कमल से भी कोटिगुण अधिक सुकोमल हैं । वह अदिमा की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी अपने लोकोत्तर सुकोमल हस्तारविन्द से श्रीसीता के चरणारविन्द का स्पर्श करने में अपने पाणिपङ्कज को कठोर समझ कर सकुचाती है । श्रीतुलसीदासजी के अनुसार सीता अनुपमेय हैं । ज्ञान-विज्ञान की अधिष्ठात्री राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी भी अनेक कारणों से श्रीसीता की उपमानश्रेणी में नहीं आ सकतीं । श्रीमहालक्ष्मी के प्राकट्य के लिए क्षीरसमुद्र का मन्थन करना पड़ा था । तदर्थ मन्दराचल को मन्थानदण्ड बनाना पड़ा था । मन्दराचल को धारण करने के लिए भगवान् को कच्छपावतार धारण करना पड़ा था । वासुकि नागरूपी रज्जु से मन्दराचल को निबद्ध कर देवताओं, दानवों तथा स्वयं श्रीविष्णु को मन्थन करने का आयास करना पड़ा था, तब महालक्ष्मी का प्रादुर्भाव हुआ था, पर आनन्दसिन्धुसार-सर्वस्व भगवान् राम के माधुर्यसार-सर्वस्व की अधिष्ठात्री राघवेन्द्र-प्राणेश्वरी श्रीसीता के उपमान के लिए वह पर्याप्त नहीं है । हाँ, यदि क्षीरसागर के बदले छविसुधा-सागर हो और पाषाणमय

मन्दराचल के स्थान में शृङ्गाररूप मन्दराचल हो और उसका आधारभूत कच्छप भी परम रूपमय हो, वासुकि नाग के स्थान में शोभामयी रज्जु हो और मन्थन करनेवाले देवता आदि के स्थान में साक्षात् आधिदैविक काम ही स्वयं अपने पाणिपद्म से मन्थन का कार्य करें तो इस विधि-विधान से जो अलौकिक लक्ष्मी प्रकट होगी वही कथञ्चित् श्रीसीता का उपमान बन सकती है। विजयलक्ष्मी, साम्राज्यलक्ष्मी, ऐश्वर्यलक्ष्मी, माधुर्यलक्ष्मी, मोक्षलक्ष्मी प्रभृति सब लक्ष्मियाँ अनायास ही वहाँ उपस्थित हो जाती हैं जहाँ श्रीसीता के कृपाकटाक्ष-लेश का उन्मेष होता है।

अनुपम प्रेम, अनुपम सौन्दर्य एक दूसरे से अभिन्न हैं। प्रेमसार-सर्वस्व राम हैं एवं सौन्दर्यसार-सर्वस्व श्रीसीता हैं। राघवेन्द्र-हृदयेश्वरी श्रीसीता के अरुण चरणारविन्द की अरुण रज ही श्रुति-सीमन्तिनीजनों के सीमन्त का सिन्दूर है अर्थात् श्रीसीता के चरणारविन्दों की रज से ही श्रुतियाँ सौभाग्यशालिनी होती हैं।

श्रीसीता राम की महाशक्ति एवं सर्वस्व हैं

सीतोपनिषद् में कहा है, अनेकरूपा श्रीसीता के अनुग्रह से वेद एवं वेदवेद्य परमात्मा सौभाग्यशाली होते हैं। जैसे शीतलता, मधुरता एवं पवित्रता ही गङ्गा के प्रवाह का सार है तथा मधुरिमा अमृत का सर्वस्व है, वैसे ही आनन्द-सिन्धु सुखराशि श्रीराघवेन्द्र के माधुर्यसारसर्वस्व की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी ही सीता हैं। यद्यपि श्रीसीता और राम दोनों परस्पर अभिन्न प्रेमसौन्दर्यसार हैं; उनमें चन्द्र तथा चन्द्रिका का एवं भास्कर तथा प्रभा का जैसा अभेद सम्बन्ध है। अमृतसिन्धु का उसके माधुर्य से विप्रयोग की कल्पना असम्भव है। श्रीसीता और राम का सम्बन्ध तो पूर्वोक्त उदाहरणों से भी अत्यधिक घनिष्ठ है, वह कैसे विच्छिन्न हो सकता है। फिर भी श्रीसीताजी राम की अनन्य भक्ति एवं अनन्य सेवा स्वरूप होने के कारण सम्प्रयोग-विप्रयोगात्मक उद्बुद्ध उभयविध शृङ्गाररससार-सर्वस्वस्वरूपा हैं। यही कारण है कि उनका जहाँ अखण्डरूप से श्रीराम के साथ नित्य सम्बन्ध है, वहीं उनका श्रीराम के साथ चिर-विप्रयोग भी परिलक्षित होता है। विप्रयोग शृङ्गार का महत्त्व रसिकों की दृष्टि में संप्रयोग शृङ्गार से कहीं अधिक है। तभी तो किसी ने कहा है—

"सङ्गमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्य।"

सङ्गम और विरह का वरदान मिल रहा हो तो भक्त विरह का वरदान माँगेगा, सङ्गम का नहीं; क्योंकि सङ्गम से प्रियतम का सम्मिलन सीमित होता है, परन्तु विरह में तो प्रियतम ही सर्वत्र सर्वरूप से अन्तःकरण, अन्तरात्मा, प्राणों तथा रोम-रोम में निरन्तर मिलते रहते हैं। उसी की अनुभूति श्रीराम इस प्रकार करते हैं—

कुवलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा॥
जे हित रहे करत तेई पीरा। उरग-स्वास सम त्रिबिध समीरा॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं॥

(रा० मा० ५।१४।२-४)

लोक में जो उत्कण्ठा प्रिय के विप्रयोग में होती है वह संयोग में नहीं होती, पर प्रियतम के बिना उस उत्कण्ठा का रसास्वादन ही नहीं होता और जब प्रियतम हैं तब वह उत्कण्ठा नहीं होती। इसी दृष्टि से श्रीसीता-राम में सर्वदा सर्वाङ्गीण सम्मिलन-संश्लेष रहने पर भी औपाधिक विश्लेष की अभिव्यक्ति होती है जिसमें प्रियतम की उपस्थिति से भी उत्कट उत्कण्ठा अनुभूत होती है और उत्कट उत्कण्ठा के साथ ही साथ प्रियतम का पूर्ण परिष्वङ्ग प्राप्त होता है। उत्कण्ठापूर्ण परिष्वङ्ग ही पूर्ण भक्ति है, वही पूर्ण सेवा है, वही प्रभु-प्राप्ति का साधन है एवं वही फल भी है। वही सीता है, वही श्रीराम का हृदय है और वही लोकोत्तर माधुर्य है। "श्रीराम" इस महामन्त्र में 'श्री' शब्द से श्रीसीता का ही उल्लेख हुआ है। 'श्री' शब्द का **"श्रयति इति श्रीः"** इस व्युत्पत्ति से सेवा करनेवाली

श्रीसीता महालक्ष्मी का नाम ही 'श्री' है। भावार्थक प्रत्यय करने पर भी श्रीशब्द का अर्थ सेवा एवं भक्ति है। उत्कट उत्कण्ठापूर्वक मन, बुद्धि, चित्त एवं अन्तःकरण तथा अन्तरात्मा का तन्मयतापूर्ण प्रियतम-परिष्वङ्ग ही 'सेवा' है, वही 'श्री' सीता हैं। वही **"श्रीयते सर्वैर्गुणैर्या सा श्रीः"** के अनुसार सकल-कल्याणों की अधिष्ठात्री शक्तियों द्वारा सेव्या और वन्दनीया हैं। कान्ति, शान्ति, आभा, प्रभा, शोभा आदि सभी दिव्य शक्तियाँ उस श्रीसीता की सेविकाएँ हैं। **"श्रीयते हरिणापि या सा श्रीः"** के अनुसार श्रीराम भी उसी श्रीसीता की सेवा एवं आराधना करते हैं। आत्माराम का स्वरूपमाधुर्य ही आत्मा है। उसमें आसमन्तात् रमण करना ही आत्माराम की आत्मारामता है। आत्मा ही परप्रेमास्पद होता है। आत्मज्ञों का वही सेव्य है। आनन्दसिन्धु राम का माधुर्यसारसर्वस्व सीता ही आत्मा है। वही परप्रेमास्पद है, वही परम सम्भजनीय एवं परम वरेण्य राम का स्वरूपभूत भर्ग है। ऐश्वर्य की दृष्टि से भी अद्भुतरामायण के अनुसार श्रीनारद के उपदेश से श्रीराम ने सीता की ध्यान, स्तुति, स्तोत्र आदि द्वारा आराधना की थी और सदा ही करते रहते हैं। माधुर्य की दृष्टि से सीता श्रीराम की विशुद्ध अन्तरात्मा हैं। ऐश्वर्य की दृष्टि से सीता ही श्रीराम के ऐश्वर्य का मूलमन्त्र महाशक्ति हैं। शक्ति के बिना ब्रह्म में अनन्तब्रह्माण्डोत्पादकत्व, सर्वपालकत्व, सर्वसंहारकत्व आदि कुछ भी नहीं हो सकता है। तभी तो अध्यात्मरामायण में श्रीसीता ने कहा है—"सृष्टि, स्थिति आदि तथा शिवधनुर्भङ्ग, रावण-वध आदि सब कार्य मैं ही करती हूँ। श्रीराम तो सर्वथा निर्विकार, कूटस्थ चिदानन्दघनमात्र हैं।"

अभिन्नरूप श्रीसीता-राम की सेवा-शिक्षाप्रदानार्थ भिन्नरूपता

इसी तरह श्रीसीता श्रीराम की सेविका हैं 'श्री' हैं, शोभा हैं और वही श्रीराम की सेवा हैं, आराधना हैं एवं मूर्तिमती अलभ्य, दुर्लभ, भक्तसर्वस्व भक्ति हैं। वही श्रीराम की ऐश्वर्यशक्ति हैं, महाशक्ति हैं, महालक्ष्मी हैं और वही सीता सर्वगुणों की सेव्या तथा आराध्या हैं। वही श्रीराम की आराधनीया हैं एवं वही श्रीराम के स्वरूपभूत माधुर्यसार-सर्वस्व की अधिष्ठात्री परप्रेमास्पदरूपा श्रीराम की आत्मा हैं। इस तरह यद्यपि सीता ही राम हैं, राम ही सीता हैं इसमें किञ्चिन्मात्र भी अन्तर नहीं है तथापि

"सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि" (रा० मा० ७।११९ [क])

के अनुसार वही अभिन्न होते हुए भी उपासना, आराधना तथा सेवा की शिक्षा देने के लिए सीता-राम दो रूपों में प्रकट हैं। **"कृष्णश्चैव बृहद्बलः"** (वा० रा० ६।११९।१५) के अनुसार श्रीराम ही श्रीकृष्णरूप में प्रकट हुए हैं और उस स्थिति में श्रीसीता की मुख्य शक्ति श्रीकृष्ण-प्राणेश्वरी श्रीराधा के रूप में प्रकट होती हैं। अन्य शक्तियाँ रुक्मिणी आदि के रूप में प्रकट होती हैं। श्रीराम ही यथावसर महाकामेश्वर के रूप में प्रकट होते हैं। उस समय श्रीसीता की अभिन्न शक्ति ही कामेश्वराङ्कनिलया राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी के रूप में प्रकट होती है। श्रीराम ही जब अनन्त ब्रह्माण्डों के उत्पादक सर्वविधाता बनते हैं तब श्रीसीता ज्ञान-विज्ञान की अधिष्ठात्री महासंवित् सरस्वती बन जाती हैं। जब श्रीराम विश्वपालक विष्णुरूप में व्यक्त होते हैं तब श्रीसीता ही अनन्त ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री महापालिनी, महालक्ष्मीरूप में प्रकट होती हैं। श्रीसीता रघुकुलकमल-दिवाकर श्रीराम की प्रभा तथा रामचन्द्र की चन्द्रिका हैं। आनन्दसिन्धु श्रीराम में वह माधुर्यसार-सर्वस्व हैं। अध्यात्मरामायण के अनुसार जितने पुरुषवाचक शब्द हैं उनका अर्थ श्रीराम है जितने स्त्रीवाचक शब्द हैं उनका अर्थ श्रीजनकनन्दिनी 'जानकी' ही है। श्रीसीता मूल-प्रकृति ही नहीं किन्तु वह चित्स्वरूप परमतत्त्व भी हैं—

"यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान्"<br>"कलातीता भगवती सीतेति चित्स्वरूपा" (तार० उ० पा० ३)

सर्वनियन्ता परमेश्वर का अस्तित्व अवश्य मान्य है

दिन के पहले रात एवं रात के पहले दिन होता है। बीज के पहले अङ्कुर एवं अङ्कुर के पहले बीज का होना अनिवार्य है। इसी प्रकार सोने के पहले जागना और जागने के पहले सोना होता है, सृष्टि के पहले प्रलय, प्रलय के पहले सृष्टि एवं कर्म के पहले जन्म, जन्म के पहले कर्म का होना अनिवार्य है। जन्ममूलक देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहङ्कार आदि की हलचल ही कर्म है। लोक में शुभ कर्म का शुभ फल एवं अशुभ कर्म का अशुभ फल होता है। संसार में आकस्मिक कोई वस्तु नहीं होती, कार्यकारणभाव सर्वत्र ही स्पष्टरूप से देखा जाता है। मेज, घट, प्रासाद, मोटर, वायुयान, राकेट आदि सभी विलक्षण कार्यों का निर्माण किसी ज्ञानवान्, इच्छावान् तथा क्रियावान् चेतन द्वारा ही देखा जाता है। ठीक इसी प्रकार वृक्ष, भूमि, भूधर, चन्द्र, सूर्य, सागर आदि का निर्माण भी किसी ज्ञानवान्, क्रियावान् तथा चेतन के द्वारा ही सम्भव है। हाँ, लौकिक छोटे-छोटे कार्य अल्पशक्ति अल्पज्ञ चेतन जीव के द्वारा निर्मित होते हैं, परन्तु विश्व-प्रपञ्च का निर्माण अल्पज्ञ अल्पशक्ति जीव द्वारा सम्भव नहीं; अतः उसके निर्माण के लिए सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर स्वीकार्य होते हैं। लोक में भी अचेतन देह आदि या अचेतन कर्म स्वयं अपना फल नहीं दे सकते हैं, उनका फलदाता चेतन राजा आदि ही होता है। उसी प्रकार जीवों के कर्मों का फल भी स्वयं कर्म नहीं दे सकते। जड़ प्रकृति भी फल देने में समर्थ नहीं है। जीव चेतन होने पर भी जब अपने एक जन्म के कर्मों एवं उनके फलों को नहीं जानता है तब अन्य अनेक जन्मों के कर्मों को कैसे जान सकेगा ? उसमें फल देने की भी क्षमता नहीं है, अतः अनन्त ब्रह्माण्डों तथा एक ब्रह्माण्ड के अनन्त जीवों एवं एक जीव के अनन्त अनन्त कर्मों तथा उनके विचित्र फलों को जाननेवाला और तदनुसार फल देने की क्षमता से सम्पन्न सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता परमेश्वर का अस्तित्व अवश्य ही मानना होगा।

संसार का सञ्चालन नियमों पर ही आधृत है। सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, शुक्र आदि ग्रहों की गति और उदय-अस्त सभी नियमित हैं। यदि उनकी गति अनियमित हो तो वे आपस में ही टकराकर विश्व-विप्लव उपस्थित कर सकते हैं। समुद्र का ज्वार-भाटा तथा विभिन्न चेतना-चेतन पदार्थों के गुण और स्वभाव नियमित परिलक्षित होते हैं। कल्प, युग, वर्ष, पक्ष, दिन, प्रहर, दण्ड की कौन कहे क्षण-क्षण का हिसाब-किताब प्रकृति में नियत है। नियमों का पालन भी तभी हो सकता है जब उनके पीछे कोई सावधान नियामक शासक होता है। इस दृष्टि से भी सब प्राकृतिक नियमों का व्यवस्थापक, पालक एवं नियामक सर्वज्ञ सर्वेश्वर अत्यावश्यक है।

अपौरुषेय वेद ही परमेश्वर का शाश्वत संविधान है

इस तरह अनादि जीव, जगत् आदि सभी संसार एवं उसके अनादि प्राकृतिक नियमों के व्यवस्थापक सर्वनियन्ता, सर्वज्ञ तथा सर्व-शक्तिमान् परमेश्वर की सत्ता स्वीकार किये बिना कोई भी व्यवस्था नहीं चल सकती; अतः जैसे लोक में शासक, शिष्ट (शासित) और शासनविधान (काँस्टीट्यूशन) आवश्यक होते हैं, वैसे ही समष्टि विश्व-प्रपञ्च में भी जीव एवं जगत् शासित हैं, परमेश्वर उनका शासक है और वेदादि शास्त्र ही शासन-विधान हैं। लौकिक शासित, शासक आदि सादि होते हैं; अतः उनका संविधान भी सादि होता है, पर विश्व-प्रपञ्च की दृष्टि से अनादि जन्म-कर्म का आधार होने से जीव अनादि है एवं विश्व-निर्माता नियामक भी अनादि है; अतः उसका संविधान वेदादि भी अनादि है।

इसी दृष्टि से वैदिक सनातन हिन्दू-धर्म और दर्शन के सिद्धान्तानुसार वेद अनादि, अपौरुषेय और नित्य कहा जाता है। ऋग्वेद के "**वाचा विरूपनित्यया**" (ऋ० सं० ८।७५।६) इस मन्त्र में वेदवाणी को नित्य कहा गया है। सर्वप्राचीन विधान-विशेषज्ञ मनु ने वेद-वाक्यों से विश्व-प्रपञ्च का निर्माण एवं वेदों से ही धर्म का ज्ञान माना है—

"वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ।" (मनु १।२१)
"प्रमाणं परमं श्रुतिः ।" (मनु २।१३)

व्यासजी ने भी **"शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्"** (ब्र० सू० १।३।२८) से वेद को नित्य कहा है। किसी कर्ता के द्वारा कोई भी कार्य ज्ञानपूर्वक ही होता है और ज्ञान या विचार के साथ कोई न कोई भाषा भी होती है। इस दृष्टि से विश्व-निर्माण के अव्यवहित पूर्व में होनेवाले ईश्वरीय ज्ञान की भाषा वैदिक भाषा ही है। अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान वैदिक शब्दों से अनुविद्ध ही होते हैं। वाक्यपदीय के अनुसार कोई भी ऐसा ज्ञान नहीं होता जिसमें सूक्ष्मरूप में शब्दों का सम्पर्क न हो—

"न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते ।" (वा० प० १।१२३)

सभी ज्ञान शब्द से सम्बद्ध ही होते हैं—

"अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते ॥" (वा० प० १।१२३)
"अत एव च नित्यत्वम्" (ब्र० सू० १।३।२९)

इत्यादि सूत्रों द्वारा वेद को अनादि एवं नित्य कहा गया है।

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ।" (आप सू०) इस आपस्तम्बसूत्र के तथा व्यास, जैमिनि आदि के अनुसार मन्त्र-भाग तथा ब्राह्मण-भाग वेद कहा जाता है। आरण्यक तथा उपनिषदों का भी अन्तर्भाव ब्राह्मणग्रन्थों में ही है। कुछ उपनिषदों का अन्तर्भाव मन्त्र-भाग में है। इस तरह मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ये सभी वेद हैं।

वेदों का स्वतःप्रामाण्य

पुरुष-निर्मित ग्रन्थों में पुरुषाश्रित भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषों से उनके दूषित होने की सम्भावना होती है; क्योंकि पुरुषमात्र में प्रायः उक्त दोष सम्भावित होते हैं। अतएव पौरुषेय ग्रन्थों का प्रामाण्य तभी होता है जब उनके मूल पुरुष का आप्तत्व निश्चित हो जाय। अपौरुषेय वेद तो स्वतः समस्तपुरुषदोषशङ्कारूपी कलङ्क से विरहित होने के कारण स्वतःप्रमाण हैं। सामान्यतः प्रत्यक्षादि प्रमाण भी अपनी उत्पत्ति में कारण की अपेक्षा रखते हैं, पर अपने स्वार्थःबोधनरूप कार्य में अन्य की अपेक्षा न रखने से वे भी स्वतःप्रमाण माने जाते हैं। कारणदोष एवं विषय-बाध से उनका अप्रामाण्य होता है। पित्तादि कारणदोष के ज्ञान से "पीतः शङ्खः", "तिक्तः गुडः" इस ज्ञान का अप्रामाण्य होता है। एवं शुक्ति में "नेदं रजतम्" इस बाध-ज्ञान से "इदं रजतम्" ज्ञान का अप्रामाण्य होता है। जो लोग एक प्रमाण के प्रामाण्य के लिए अन्य प्रमाण की अपेक्षा मानते हैं उनके मत में अनवस्थादोष अनिवार्य है। यदि किसी अन्तिम ज्ञान को स्वतःप्रमाण मानना ही है तो प्रथम को ही स्वतःप्रमाण क्यों न माना जाय ? जो लोग यह समझते हैं कि प्रथम जल-ज्ञान के प्रामाण्य का निश्चय संवादी ज्ञान अर्थात् स्नान, पान आदि सफल प्रवृत्ति-ज्ञान से होता है; उसमें सन्देह का अवकाश नहीं है, वे लोग भ्रान्त हैं, क्योंकि स्वप्न के स्नान, पान आदि ज्ञान तथा रमणी-रमणादि संवादी ज्ञान में भी संशय होता ही है। इस तरह वैदिक वाक्य स्वार्थ-बोधक होने से स्वतः-प्रमाण हैं। अपौरुषेय होने से उनमें कारण-दोष का ज्ञान नहीं होता। अग्निहोत्र और स्वर्ग का कार्य-कारणभाव अलौकिक होने से उसका बाधक ज्ञान भी नहीं होता; अतः कारणदोष, बाधज्ञान आदि न होने से उसका स्वतःप्रामाण्य अकाट्य ही है।

वेदावतार वाल्मीकिरामायण का अकुण्ठ प्रामाण्य

अन्य सभी पौरुषेय ग्रन्थों में कारण-दोष की सम्भावना बनी रहती है। उनमें वेदमूलकत्व तथा पुरुष के आप्तत्व के ज्ञान से ही प्रामाण्य होता है। वाल्मीकिरामायण, महाभारत, मन्वादि-धर्मशास्त्र, पुराण आदि का प्रामाण्य

उनके वेदमूलक होने से है; क्योंकि वे सब वेद के व्याख्यानरूप ही हैं। मनु, व्यास आदि के अनुसार वेद अनादि हैं। आधुनिक इतिहासकारों की दृष्टि से भी ऋग्वेद संसार की सबसे प्राचीन पुस्तक है। वाल्मीकिरामायण वेदों का अवतार तथा वेद-व्याख्यानरूप ही है, यह पुराण का उद्घोष है—

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना॥" (वा० रा० १।१।१)

वेदवेद्य परमेश्वर श्रीराम के अवतीर्ण होने पर वेद ही प्राचेतस महर्षि से रामायण के रूप में प्रकट हुए। वाल्मीकि-रामायण का भी यही मत है कि वेद के उपबृंहणार्थ महर्षि ने लव-कुश को रामायण ग्रन्थ पढ़ाया—

"वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।" (वा० रा० १।४।६)

इस तरह **मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मन्वादि धर्मशास्त्र, पुराण, षड्दर्शन, आगम** आदि सभी सनातनधर्मियों के मान्य ग्रन्थ हैं तथा हिन्दी, मराठी आदि विविध भाषाओं में लिखित **रामचरित-मानस, भावार्थरामायण, ज्ञानेश्वरी-गीता** आदि ग्रन्थ भी वेदमूलक होने से ही प्रमाण हैं।

श्रीसीतारामचरित्र की वेदमूलकता

श्रीसीता एवं श्रीराम का चरित्र **मन्त्ररामायण, पूर्वोत्तरतापनीयोपनिषद्, रामरहस्योपनिषद्** तथा **मुक्तिकोपनिषद्** आदि में स्पष्टरूप से वर्णित है।

इसी प्रकार मन्त्ररामायण में रामकथा का विस्तार से वर्णन है। सीतोपनिषद् में सीता का माहात्म्य वर्णित है। पचासों अन्य उपनिषदों में भी श्रीराम की वन्दना है। वाल्मीकि रामायण में श्रीसीताराम-चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णित है। **अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, अद्भुतरामायण, महाभारत, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण** आदि में भी श्रीराम का चरित्र वर्णित है। इन सब में वेदों का महत्त्व, श्रीराम की परमेश्वरस्वरूपता तथा श्रीसीता का महाशक्ति या राम का स्वरूप होना स्पष्टरूप से वर्णित है। ऋग्वेद-दशममण्डल के तिरानवेवें सूक्त में श्रीरामका राजा के रूप में स्पष्ट वर्णन है।

वाल्मीकिरामायण में श्रीसीता-राम का यथार्थ वर्णन

"प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥" (वा० रा० १।४।१)

भगवान् वाल्मीकि ने राम के राज्यसिंहासनासीन होने के पश्चात् रामचरित रामायण का निर्माण किया। वाल्मीकिरामायण के अनुसार रामायण ग्रन्थ श्रीरामचन्द्र के समय का लिखा हुआ है। यह तथ्य मूलरामायण के प्रश्नोत्तर से भी स्पष्ट है। वहाँ प्रश्न किया गया है।

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्॥" (मू० रा० १।१।२)

इस प्रश्न में 'साम्प्रतम्' से वर्तमान-काल में विशिष्ट गुणसम्पन्न पुरुष के सम्बन्ध में प्रश्न किये गये हैं। उत्तर में अतीत तथा वर्तमान की अनेक घटनाओं के सम्बन्ध में तथा भविष्य की घटनाओं के सम्बन्ध में क्रियाओं का प्रयोग किया गया है। जैसे—

"इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥" (मू० रा० १।१।८)
"स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन्।" (मू० रा० १।१।२४)

"न पुत्रमरणं केचिद् द्रक्ष्यन्ति मनुजाः क्वचित् ॥" (मू० रा० १।१।९१)
"चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन् स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति ॥" (मू० रा० १।१।९६)

इन उत्तरवाक्यों में श्रीराम वन गये। राम-राज्य में कोई पुत्र-मरण नहीं देखेगा। राम चारों वर्णों को अपने-अपने धर्मों में नियुक्त करेंगे। इस प्रकार विभिन्न काल की क्रियाओं का स्पष्ट निर्देश है।

इन प्रमाणों के आधार पर सिद्ध होता है कि वाल्मीकिरामायण ग्रन्थ राम के समकाल का ही है; अतः श्रीसीताराम के सम्बन्ध में वाल्मीकिरामायण ही मुख्य प्रमाण है।

वाल्मीकीय रामायण के अनुसार साक्षात् ब्रह्माजी ने कहा—महर्षे! मेरी प्रेरणा से ही **"मा निषाद प्रतिष्ठाँ त्वम्"** इस श्लोक के रूप में रामायण ग्रन्थ तुम्हारे मुख से प्रकट हुआ है। तुमने धर्मात्मा श्रीराम का चरित्र नारदजी के मुख से जैसा सुना है, वैसा वर्णन करो। श्रीराम के चरित्र का, रहस्य, गुप्त, प्रकट जो भी वृत्त है, वर्णन करो। श्रीराम तथा लक्ष्मण का, वैदेही और राक्षसों का प्रकाश तथा रहस्य चरित्र भी ऋतम्भरा-प्रज्ञा के प्रभाव से तुम्हें विदित हो जायगा। इस काव्य में तुम्हारी कोई भी वाणी मिथ्या नहीं होगी—

"रामस्य सह सौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः।
वैदेह्याश्चैव यद् वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः॥
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥" (वा० रा० १।२।३४,३५)

इस प्रकार श्रीब्रह्मा की आज्ञा होने पर महर्षि ने आचमन कर, प्राचीनाग्र कुशों पर समासीन हो धर्म से समाधिजन्य आर्ष-ज्ञान ऋतम्भरा-प्रज्ञा से श्रीसीता, राम, लक्ष्मण आदि के सब चरित्रों का साक्षात्कार किया। उसमें सीता, राम, लक्ष्मण आदि सब के हसित, भाषित, गति तथा चेष्टित तक का भी धर्म-वीर्य से उन्होंने सम्यक् दर्शन किया। सीता सहित सत्यसन्ध राम तथा लक्ष्मण ने जो किया उन सब का महर्षि ने करतलगत आमलक के तुल्य यथावत् साक्षात्कार किया। संवाददाताओं, तारों, टेलीप्रिण्टर आदि के समाचारों तथा आँखों देखी घटनाओं में भी भ्रान्ति हो सकती है; परन्तु योगज आर्षऋतम्भरा-प्रज्ञाजनित साक्षात्कार में भ्रान्ति की सम्भावना नहीं। महर्षि वाल्मीकि ने जब धर्म के बल पर सब कुछ तत्त्वतः अनुभव में बैठा लिया, तब रामचरित-निर्माण करने के लिए वे उद्यत हुए—

"श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद् धर्मार्थसहितं हितम्।
व्यक्तमन्वेषते भूयो यद् वृत्तं तस्य धीमतः॥
उपस्पृश्योदकं सम्यङ्मुनिः स्थित्वा कृताञ्जलिः।
प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु धर्मेणावेक्षते गतिम्॥
रामलक्ष्मणसीताभी राज्ञा दशरथेन च।
सभार्येण सराष्ट्रेण यत् प्राप्तं तत्र तत्त्वतः॥
हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम्।
तत् सर्वं धर्मवीर्येण यथावत् सम्प्रपश्यति॥" (वा० रा० १।३।१-४)

"ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः।
पुरा यत् तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा॥
तत् सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महामतिः।
अभिरामस्य रामस्य चरितं कर्तुमुद्यतः॥" (वा०रा० १।३।६,७)

चौबीस हजार श्लोकों, पाँच सौ सर्गों, छह काण्डों तथा उत्तरकाण्ड के रूप में सीताचरित्र रामायण का निर्माण वाल्मीकि ने किया और वेदार्थ में परिनिष्ठित सीता-पुत्र कुश और लव को वेद का उपबृंहण करने के उद्देश्य से यह ग्रन्थ पढ़ाया। इससे सिद्ध होता है कि यह रामायण श्रुति-तात्पर्यविषयीभूत परम तत्त्व का ही प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ है—

"स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥" (वा० रा० १।४।६)

यह रामायण सीता का महान् चरित्र है। यह शृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीर आदि विविध रसों से युक्त है। गान्धर्व-तत्त्वज्ञ स्वरसम्पन्न, परम रूपवान् कुश और लव ने वीणा-वादन के साथ इसका गायन कर अभ्यास किया। इनके गान से ऋषि-महर्षि भी विस्मित होकर साधु साधु कहने लगते थे और सन्तुष्ट होकर कमण्डलु, कुठार आदि पुरस्कार के रूप में देने लगते थे। वे अपने दिव्य गायन से सबके शरीरों, अङ्गों, मनों एवं हृदयों तथा कानों को आह्लादित करते थे (वा० रा० १।४)। इतना ही नहीं कुश और लव को पढ़ाकर उस रामायण ग्रन्थ के परीक्षार्थ महर्षि ने तत्कालीन जनता में उसे प्रचारित भी कराया। अधिकांश अयोध्यावासियों के समक्ष जो घटनाएँ घटी थीं, उनके सामने उन घटनाओं का वर्णन हुआ और अयोध्यावासियों की दृष्टि में यह ग्रन्थ अक्षरशः परम सत्य सिद्ध हुआ।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार श्रीविष्णु भगवान् ही राम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं; वाल्मीकिरामायण में यह स्पष्ट उल्लेख है कि महाद्युति, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले विष्णु आये (वा० रा० १।१५।१६)।

देवताओं ने कहा—हे विष्णो! आप अपने को चतुर्धा विभक्त कर मनुष्यरूप में अवतीर्ण हों तथा प्रवृद्ध लोककण्टक रावण को मारें (वा० रा० १।१५।२१,२२)।

तब सुरश्रेष्ठों द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान्, व्यापक नारायण श्रीरामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए (वा० रा० १।१७)।

भगवान् विष्णु पुत्र-भाव को प्राप्त हुए। उत्तम ग्रह और नक्षत्रों के उदित होने पर श्रीकौशल्या ने 'सर्व-लोक नमस्कृत जगन्नाथ परमेश्वर' को रामरूप में प्रकट किया। जो सर्व शुभ लक्षणों से युक्त एवं विष्णु के शुद्ध लक्ष्यार्थ-स्वरूप अर्ध भाग हैं और वही इक्ष्वाकुवंश-वर्धन श्रीराम हैं (वा० रा० १।१८।१०,११)।

विश्वामित्र का कहना है—सत्यपराक्रम परब्रह्मरूप राम को मैं जानता हूँ और जो तपोनिष्ठ लोग हैं वे भी जानते हैं। महातेजा वसिष्ठ भी श्रीराम को उसी रूप में पहचानते हैं (वा० रा० १।१९।१४,१५)।

ये मूर्तिमान् धर्म हैं, वीर्यवानों में सर्वाधिक बुद्धिसम्पन्न (सर्वज्ञ) तथा तपस्या के परम लक्ष्य हैं। ये विविध अस्त्रों को जानते हैं। सचराचर त्रैलोक्य में भक्तिहीन जन इन्हें नहीं जानते और न जानेंगे (वा० रा० १।२१। १०,११)।

श्लेषालङ्कार से विश्वामित्र की भी उक्त श्लोकों में स्तुति है।

महातेजा गौतम ने अहल्या के साथ विधिवत् श्रीराम की पूजा की और अपने तप में लग गये (वा० रा० १।४९।२१,२२)।

परशुराम ने कहा था—त्रैलोक्यनाथ! आपने जो मुझे पराजित किया है इससे मैं आप को मधुहन्ता मधुसूदन समझता हूँ। स्वर्गादि लोकों का दान करना या उन्हें प्रतिबद्ध करना ईश्वर का ही कार्य है (वा० रा० १।७६।१७-१९)।

यही बात "उतामृतत्वस्येशानः" (पु० सू० २) इस श्रुति में कही गयी है ।

उदीर्णदर्प रावण का वध चाहनेवाले देवताओं की प्रार्थना से भगवान् सनातन विष्णु ही मनुष्य-लोक में रामरूप से प्रकट हुए हैं । कोई भी मनुष्य पुरुषोत्तम राम के सौन्दर्य और माधुर्य से पूर्ण स्वरूप के रसास्वादनार्थ गये हुए अपने मन एवं नेत्रों को उनके चले जाने पर भी हटा नहीं सकता । उनके चले जाने पर भी दर्शकों के मन एवं नेत्रों में उनका दिव्य रूप जगमगाता रहता है । जो मनुष्य स्वप्न में या ध्यान में भी निर्गुण अन्तर्यामी या सगुण साकार रूप से श्रीराम को नहीं देखता है और श्रीराम अनुग्रह की दृष्टि से जिसे नहीं देखते वह सब लोकों में निन्दित होता है । उसकी आत्मा, अन्तःकरण आदि भी उसकी निन्दा करते हुए उसे कोसते हैं । वसिष्ठजी कहते हैं, लोक में ऐसी वस्तु की सत्ता ही सम्भव नहीं जो राम की अनुव्रत न हो । सब सत्ताओं के उद्गमस्थान महासत्तास्वरूप श्रीराम ही हैं ।

"यश्च रामं न पश्येत्तु रामो यं नाभिपश्यति ।।"
"निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते ।।" (वा० रा० २।१७।१३,१४)
"लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः ।।" (वा० रा० २।३७।३२)

धर्मरता वैदेही सीता, श्रीराम का अनुगमन करती हुई, कृतकृत्य हैं । जैसे सुमेरु को सूर्यप्रभा कभी नहीं त्यागती वैसे ही सीता राम से कभी वियुक्त नहीं होती (वा० रा० २।४०।२४) ।

श्रीसुमित्रा कहती हैं—कौशल्ये ! श्रीराम सूर्य के भी सूर्य, अग्नि के अग्नि, प्रभु के भी प्रभु, ईश्वर के भी ईश्वर, श्री के भी अग्र्या श्री हैं । वे कीर्ति के भी कीर्ति एवं क्षमा के क्षमा हैं । जैसे दग्ध तप्त लोह-पिण्ड में दाहकत्व देनेवाला अग्नि, दग्धा लोहपिण्ड का भी दग्धा कहा जाता है, वैसे ही सूर्य आदि में प्रकाशकत्व तथा ईश्वर में ईश्वरत्व आदि प्रदान करनेवाले सर्वाधिष्ठान स्वप्रकाश राम सूर्य आदि के भी सूर्य आदि हैं । अर्थात् श्रीराम स्वप्रकाश सर्वान्तर्यामी परब्रह्म हैं (वा० रा० २।४४।१५) ।

सत्यस्वरूप श्रीराम के वचन हैं—संसार में सत्य ही ईश्वर है, सत्य में ही धर्म सदा प्रतिष्ठित है । वेद भी सत्य ब्रह्म में ही प्रतिष्ठित, पर्यवसित हैं, अतः सत्यनिष्ठ होना आवश्यक है—

"सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः ।" (वा० रा० २।१०९।१३)
"वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत् ।।" (वा० रा० २।१०९।१४)

सत्य ब्रह्म-धर्म को छिपाने के कारण तथागत बुद्ध को नास्तिक ही समझना चाहिये (वा० रा० २।१०९।३४) ।

बौद्धों के अनुसार लङ्कावतारसूत्र के बुद्ध ने लङ्कापति रावण को बौद्ध धर्म का उपदेश किया था; अतः शुद्धोदनपुत्र गौतम बुद्ध से पहले भी बुद्ध की प्रसिद्धि थी ।

श्रीअगस्त्यजी ने श्रीराम से कहा—आप मुझे पूज्य एवं मान्य अतिथि के रूप में प्राप्त हैं । उन्होंने श्रीराम की पूजा कर आतिथ्य-सत्कार किया और श्रीराम से कहा, यह विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दिव्य महाचाप इन्द्र ने आपके लिए प्रदान किया है । रावणादि पर विजय प्राप्त करने के लिए आप इसे ग्रहण करें (वा० रा० ३।१२।३०-३२) ।

महर्षियों, सिद्धों, देवताओं और गन्धर्वों ने कहा—गायों एवं ब्राह्मणों का तथा जो लोगों द्वारा लोकहितैषी के रूप से सम्मत हैं उनका कल्याण हो । संग्राम में आप पुलस्त्य-कुलप्रसूत निशाचरों पर विजय प्राप्त करें (वा० रा० ३।२३।२८) ।

अकम्पन ने कहा—महायशा श्रीराम कुपित होने पर विक्रम द्वारा सर्वथा असाध्य हैं, अजेय हैं । महायशा

पुरुषव्याघ्र श्रीराम अपने विक्रम से सब लोकों का संहार कर समस्त प्रजा का पुनः निर्माण कर सकते हैं (वा० रा० ३।३१।२६)।

मारीच ने कहा—श्रीराम मूर्तिमान् धर्म हैं। वे सत्यपराक्रम हैं, देवों में इन्द्र के समान सब लोकों के (पृथ्वी के ही नहीं) राजा हैं (वा० रा० ३।३७।१३)।

वह तेज अप्रमेय है, जिसकी पत्नी जनकात्मजा है (वा० रा० ३।३७।१८)।

सीताके वियोगमें सन्तप्त एवं कुपित होकर श्रीराम ने कहा—मैं सब लोकों का निर्माता हूँ, शूर हूँ। हे लक्ष्मण! लोकहित में रत, दान्त एवं मृदु होनेसे अज्ञानी लोग मेरा अवमान कर रहे हैं। त्रिदशेश्वर मुझे निर्वीर्य समझ रहे हैं। मैं त्रैलोक्य को कालकर्म से संयुक्त (मृत्यु के वशीभूत) कर सकता हूँ और सचराचर जगत् का नाश कर सकता हूँ (वा० रा० ३।६४।५४-६२)।

तारा ने वाली से कहा—युगान्त में उद्भूत प्रलयाग्नि के समान राम शत्रु के बलों का मर्दन करनेवाले हैं। वह साधुओं के निवास-वृक्ष एवं आपद्ग्रस्त प्राणियों के परम आश्रय हैं। वह आर्तों के एकमात्र संश्रय एवं यश के एकमात्र भाजन हैं। उनसे बैर करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। वे ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न हैं, पिता की आज्ञा के पालन में निरत हैं एवं सम्पूर्ण गुणों के आकर हैं (वा० रा० ४।१५।१९-२१)।

तारा ने अदृष्टपूर्व प्रधान पुरुष श्रीराम को देखकर यह काकुत्स्थ हैं ऐसा जाना (वा० रा० ४।२४।२८) और उसने कहा—आप अप्रमेय हैं, देश, काल और वस्तु के परिच्छेद से शून्य हैं, दुरासद, जितेन्द्रिय, उत्तम धार्मिक, अक्षयकीर्ति एवं विलक्षण पुरुष हैं। पृथ्वी के समान क्षमावान् एवं अरुणनेत्र हैं (वा० रा० ४।२४।३१)।

हनुमान् का वचन स्वयम्प्रभा तापसी के प्रति—

दाशरथि राम सर्वलोक के राजा हैं। महेन्द्र एवं वरुण के समान प्रभावशाली हैं।

चतुरानन स्वयम्भू ब्रह्मा, त्रिपुरान्तक त्रिनेत्र रुद्र, देवताओं के राजा महेन्द्र इन्द्र भी राम के सामने युद्ध में टिक नहीं सकते, क्योंकि श्रीराम ही त्रिमूर्ति हैं (वा० रा० ५।५१।४४)।

श्रीराम ने स्वयं कहा—इच्छा करने पर मैं संसारके सभी पिशाच, दानव और राक्षसों का एक अंगुली के अग्रभाग से संहार कर सकता हूँ। सङ्कल्पसिद्धि ईश्वर का लक्षण है। अपरिमेयशक्ति ईश्वर यदि अपनी निरतिशय शक्ति एवं महिमा को प्रकट करें तो उनके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है; परन्तु ब्रह्मा के दिये हुए वरदान के अनुसार नरलोक का अनुसरण करते हुए श्रीराम ने वानर आदि की सहायता की अपेक्षा की है। जो अनन्य-भाव से भगवान् राम की प्रपत्ति स्वीकार कर लेता है अथवा सेव्य-सेवकभाव से, रक्ष्य-रक्षकभाव से भी—'मैं आपका हूँ,' इस प्रकार प्रार्थना करता है उसे वे सब भूतों से तात्कालिक एवं **आत्यन्तिक** अभय प्रदान करते हैं (वा० रा० ६।१८।२३,३३)।

श्रीसीता का वचन है—मैं राघव से वैसे ही अभिन्न हूँ जैसे भास्कर से उसकी प्रभा अभिन्न होती है। जैसे विदितात्मा व्रत-स्नात विप्र की विद्या अनपायिनी होती है वैसे ही मैं श्रीराम की अनपायिनी शक्ति हूँ। जैसे लोपामुद्रा अगस्त्य की, सुकन्या च्यवन की, सावित्री सत्यवान् की एवं श्रीमती कपिल की अनन्य अनपायिनी हैं वैसे ही मैं श्रीराम की अनन्य अनपायिनी हूँ (वा० रा० ५।२१।१६)।

जैसे अरुन्धती वसिष्ठ की तथा रोहिणी चन्द्रमा की अनुगामिनी हैं वैसे ही मैं श्रीराम की अनुगामिनी हूँ (वा० रा० ५।२१।२४)।

महातेजा राम को सुर या असुर कोई भी जीत नहीं सकता (वा० रा० ५।२७।२२)।

त्रिजटा कहती है—हे राक्षसियो ! प्रणिपातमात्र से प्रसन्न होकर जनक-नन्दिनी मैथिली महान् भय (संसार-भय) से भी रक्षा कर सकती हैं। तदनन्तर वही ह्रीमती बाला सीता अपने पति की विजय की बात त्रिजटा के स्वप्न से जानकर प्रसन्न होकर बोली—यदि विजय की बात सत्य होगी तो मैं तुम लोगों का अवश्य रक्षण करूँगी (वा० रा० ५।२७)

श्रीहनुमान् कहते हैं—कमल की पाँखुरी के समान अरुण, स्वच्छ, दीर्घ-आयत नेत्रवाले राम सब प्राणियों के मन को हरण करनेवाले परम प्रिय हैं, (सभी प्राणियों के परप्रेमास्पद आत्मा है), सभी जीवों के रक्षिता (अन्तर्यामी) हैं एवं वेदविद् लोगों द्वारा सुन्दररूप से वे पूजित हैं। राम ब्राह्मणों के उपासक हैं। वही लोगों की मर्यादाओं के ईश्वररूप से कर्त्ता हैं एवं अवताररूप से कारयिता हैं (वा० रा० ५।३५।८-१०)।

देवताओं ने भगवान् विष्णु से प्रार्थना की थी—आप मनुष्य-रूप धारण कर संग्राम में रावण को मारें, क्योंकि ब्रह्मा ने उसे यह वरदान दे रखा है कि मनुष्य को छोड़कर अन्य से तुम्हें कोई भय नहीं है (वा० रा० १।१६।३,५)।

श्रीसीता कहती हैं—वह जयन्त तीनों लोकों में भटका किसी को भी त्राता न पाकर अन्त में राघवेन्द्र की शरण में आया। अपनी शरण में आये और भूमि में पतित जयन्त को देखकर राम ने उसे अभय दिया (वा० रा० ५।३०।३४)।

श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं—अस्त्रवित् राम, महाबल लक्ष्मण एवं राजा सुग्रीव विजयी हों (वा० रा० ५।४३।८)।

त्रिलोकनायक श्रीराम के सामने कोई देवता एवं स्वयम्भू चतुरानन ब्रह्मा भी नहीं टिक सकते (वा० रा० ५।५१।४४)।

अग्नि से हनुमान् की रक्षा के लिए सीता ने अग्नि से कहा था, यदि मैंने गुरुजनों की सेवा की है, यदि मैंने तपश्चर्या की है, यदि मैंने एकपत्नीत्व पातिव्रत्य का पालन किया है तो हे अग्ने ! तुम हनुमान् के लिए शीतल हो जाओ। जो सीता अपने तेज से अग्नि को शीतल कर सकती है, वह अपने तेज से रावण को भी भस्म कर सकती थी। इसीलिए रावण का तर्जन करती हुई सीता ने कहा था कि श्रीराम का सन्देश न होने से और अपनी तपस्या की रक्षा की दृष्टि से ही मैं भस्म करने में समर्थ अपने तेज से तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ—

"असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥" (वा० रा० ५।२२।२०)

श्रीहनुमान् ने यही सोचा था कि श्रीराम के प्रभाव से ही जैसे समुद्र में मेरे विश्राम के लिए मैनाक पर्वत प्रकट हुआ था वैसे ही उनके प्रभाव से अग्नि मेरा दहन नहीं कर रहा है और माता श्रीसीता की मृदुलता तथा दयालुता से एवं मेरे पिता वायुदेव के सखा होने के कारण भी अग्निदेव मुझे नहीं जला रहे हैं (वा० रा० ५।५३)।

श्रीराम ने कहा—मेरा अद्भुत परिष्वङ्ग ब्रह्मानन्दरूप है। यह मुनियों का सर्वस्व है। ऐसे शुभ अवसर पर मैं महात्मा हनुमान् को वही परिष्वङ्ग प्रदान करता हूँ। नागेश भट्ट के अनुसार भगवान् राम का शरीर शुद्ध आनन्दरूप ही है, अतः उनका आलिङ्गन सर्वस्वभूत है; क्योंकि आनन्द ही राम आदि के देहरूप से भासता है। यह गीता एवं विष्णुसहस्रनाम-भाष्य में श्रीशङ्कराचार्य भगवान् ने कहा है (वा० रा० ६।१।१३)।

श्रीराम कहते हैं—मित्र-भाव से सम्प्राप्त विभीषण को किसी प्रकार भी मैं नहीं त्याग सकता, भले ही उसमें दोष हो। सत्पुरुषों की दृष्टि में सदोष शरणागत का भी ग्रहण गर्हित नहीं है। किसी अनिष्ट की शङ्का फिर भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इच्छा करने पर मैं संसार के सभी पिशाचों, दानवों और राक्षसों को अंगुली के अग्रभाग से ही मार सकता हूँ। एक बार भी जो दृढ़ निष्ठा से मुझको प्रपन्न हो जाता है और 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसी प्रार्थना करता है

उसे मैं सब भूतों से सर्वथा अभय प्रदान करता हूँ, यह मेरा व्रत है। सुग्रीव ! तुम विभीषण को लाओ, मैंने उसे अभय-प्रदान कर दिया है। विभीषण ही क्या रावण भी यदि शरण में आये तो उसे भी मेरी ओर से अभय प्राप्त हो सकता है (वा० रा० ६।१८।३,२२,२३,३३,३४)।

रावण का गुप्तचर कहता है—मैं आगम-योग से भली भाँति जानता हूँ कि श्रीराम हरि (विष्णु) हैं। उनके बल, रूप तथा प्रभाव का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। जिनसे कभी भी धर्म चलित नहीं होता और जो धर्म का कभी भी अतिक्रमण नहीं करते, जो वेदविदों में श्रेष्ठ हैं, वेदों और ब्राह्मणों को जानते हैं वे अपने बाणों से आकाश को छिन्न-भिन्न कर सकते हैं, पर्वतों को विदीर्ण कर सकते हैं (वा०रा० ६।२८।१६,१९,२०)। उन राम के सदृश पराक्रम में पृथ्वी में कोई भी नहीं है। भूतल में कोई भी श्रीराम के गुणों का वर्णन नहीं कर सकता (वा० रा० ६।३०।२९,३०)। मानव-देह में विष्णु ही अवतीर्ण हैं। विपुल विक्रमशाली राम मानवमात्र नहीं हैं (वा० रा० ६।३५।३६)।

तदनन्तर गरुड़ भगवान् राम और लक्ष्मण को देखकर प्रसन्न हुए और बोले—काकुत्स्थ ! मैं गरुत्मान् हूँ। मैं आपका बहिश्चर प्राण के तुल्य प्रिय सखा हूँ। आपकी सहायता के लिए आया हूँ (वा० रा० ६।५०।४६)।

श्रीलक्ष्मण ने रावण की शक्ति लगने पर विष्णु के अचिन्त्य अर्ध-भाग के रूप में अपना स्मरण करते हुए शक्ति को सहन किया। रावण अपनी बाहुओं से पूरा बल लगाने पर भी उन्हें उठा नहीं सका, परन्तु श्रीहनुमान् की भक्ति एवं सौहार्द से शत्रुओं के लिए अप्रकम्प्य होने पर भी वे परम लघु हो गये (वा० रा० ६।५९।११०,१११,११७)।

मन्दोदरी ने रावण के मरने पर विलाप करते हुए कहा था—जब वानरों ने महासमुद्र में सेतु बाँध लिया तभी मैंने समझ लिया था कि राम मनुष्य नहीं हैं। ये निस्सन्देह महायोगी, योगेश्वर, सनातन परमात्मा ही हैं। इनका आदि और अन्त नहीं है। ये अज्ञानरूपी तम से परे साक्षात् परमेश्वर हैं। शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले विष्णु हैं। इनके वक्षःस्थल में श्रीवत्स है। ये नित्यश्री, अजेय एवं शाश्वत ध्रुव हैं। सत्य-पराक्रम विष्णु ही मानव-वपु धारण कर वानर-भाव को प्राप्त देवताओं से परिवृत्त होकर श्रीराम के रूप में प्रकट हुए हैं। विजन वन में स्थित वसुधा की वसुधा एवं श्री की भी श्री निरवद्याङ्गी सर्व कल्याणकारिणी सीता को छल से, लङ्का में लाकर आपने अनर्थ किया है। (वा० रा० ६।११४।१४-२२)।

तदनन्तर राजा कुबेर, अमित्रकर्षण यम, सहस्राक्ष महेन्द्र, परन्तप वरुण, तीन नेत्रवाले श्रीमान् वृषभध्वज महादेव तथा सर्वलोक-निर्माता ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ ब्रह्मा ये सब लोग सूर्यतुल्य विमानों में बैठकर लङ्कापुरी में रघुकुल-तिलक राम के समीप आये और बोले—श्रीराम, आप सब लोकों के कर्त्ता विष्णु हैं, ज्ञानवानों में सर्वश्रेष्ठ हैं। आप अग्नि में प्रवेश करती हुई सीता की उपेक्षा कैसे कर रहे हैं ? सब देवताओं में श्रेष्ठ आप अपने को क्यों नहीं समझ रहे हैं ? सत्य ही आपका स्वरूपभूत धाम है। वसुओं के आप पूर्व वसु हैं। आप प्रजापति हैं। तीनों लोकोंके आप आदिकर्त्ता एवं स्वयंप्रभु हैं। आप सबके प्रभु हैं, आपका प्रभु कोई नहीं है। अश्विनीकुमार आपके दोनों श्रोत्र हैं, चन्द्र और सूर्य दोनों आपके नेत्र हैं। हे परन्तप ! सब लोकों के आदि, अन्त एवं मध्य में सर्वद्रष्टा, सर्वाधाररूप से ज्ञानियों द्वारा आप ही परिलक्षित होते हैं। आप प्राकृत मनुष्य की भाँति सीता की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ?

इसी प्रकार सब लोकपालों ने भी लोक-स्वामी श्रीराम से कहा एवं ब्रह्मा ने भी कहा—आप चक्रधारी नारायण देव हैं, विभु हैं। आप ही एकशृङ्ग (एक दंष्ट्रावाले) वराहरूप में प्रकट होते हैं। आप अतीत तथा अनागत सब शत्रुओं को जीतनेवाले हैं। आप अक्षर परब्रह्म हैं। सब लोकों के आदि, मध्य और अन्त में आप ही परम सत्यरूप से विद्यमान रहते हैं। सब लोकों के लिए आप ही परम धर्मस्वरूप हैं। आप ही चतुर्भुज विष्वक्सेन हैं। आप ही शार्ङ्गधन्वा हृषीकेश हैं। आप ही पुराण पुरुषोत्तम हैं—

'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः'। (भ० गी० १५।१८)

अर्थात् क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम ही वेदान्त-वेद्य शुद्धपरब्रह्म-तत्त्व हैं।

आप अजित हैं, खड्गधारी विष्णु हैं एवं बृहद्बल कृष्ण हैं। आप ही सेनानी, नेता, मन्त्री, बुद्धि, सत्त्व, क्षमा, दम तथा सबके प्रभव एवं अप्यय हैं। आप ही उपेन्द्र वामन तथा मधुहन्ता मधुसूदन हैं। आप सर्वात्मा होने के कारण इन्द्रकर्मा महेन्द्र हैं। आप ही पद्मनाभ तथा रण में शत्रुओं का अन्त करनेवाले हैं। दिव्य महर्षि लोग आपको शरणार्ह शरण (आश्रय) कहते हैं। हजारों शाखावाले वेद एवं सैकड़ों जिह्वावाले शेष तथा अपरिगणित महर्षि भी आपको ही शरण्य कहते हैं। आप तीनों लोकों के आदिकर्त्ता और स्वयम्प्रभु हैं। सिद्धों, साध्यों आदि सबके परम-आश्रय और सबके पूर्वज आप ही हैं। आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषट्कार,ॐकार तथा परन्तप हैं। आप कौन हैं, आपका प्रभाव एवं अन्त कहाँ है, यह कोई नहीं जानता। ज्ञानियों को ज्ञान-दृष्टि से सब भूतों में विशेषतः ब्राह्मणों में, गायों में सभी दिशाओं में, गगन में, पर्वतों में वनों में, सर्वात्मरूप में तथा विशिष्ट विभूतियों के रूप में आपका दर्शन होता है। आप महाविराट्रूप से सहस्रों चरण, सहस्रों मस्तक एवं सहस्रों नेत्रवाले होकर शोभित होते हैं। आप सभी भूतों तथा पर्वतों वाली पृथ्वी को धारण करते हैं। प्रलय होने पर जल में महोरग—शेषरूप से आप दिखायी देते हैं। हे राम! देव, दानव और गन्धर्वों सहित तीनों लोकों को आप धारण करते हैं।

ब्रह्मा कहते हैं—राम! मैं आपका हृदय (बुद्धि) हूँ। सरस्वती देवी आपकी जिह्वा हैं, । सब देवता आपके गात्र में रोमों के रूप में मुझसे निर्मित हैं। आपके निमेष से रात्रि तथा उन्मेष से दिन होता है। आपके नित्य ज्ञान से अनुविद्ध शब्द ही वेद हैं। किंबहुना आपके बिना कहीं भी, कोई भी वस्तु नहीं है—

"लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः।" (वा० रा० २।३७।३२)

लोकमें ऐसा कोई नहीं है जो आपका निष्ठावान् भक्त न हो। सारा संसार ही आपका शरीर है। आपका स्थैर्य ही वसुधा है। अग्नि आपका रोष है। आपका प्रसाद ही श्रीवत्सरूप सोम है। प्राचीन काल में आपने ही तीन डगों से तीनों लोकों को नापा था और महान् असुर बलि को बाँध कर महेन्द्रको राजा बनाया था। श्रीसीता साक्षात् लक्ष्मी हैं। आप विष्णु एवं प्रजापति कृष्ण हैं। रावण के वधार्थ आप मानुषी तनु में प्रविष्ट हुए हैं। धार्मिक-श्रेष्ठ! हम लोगों का रावण-वधादि कार्य आपने सम्पन्न कर दिया है। अब आप अपने दिव्य धाम में आइये। आपका बल एवं वीर्य अमोघ है। आपका दर्शन तथा स्तुति भी अमोघ है। आपके प्रति भक्तिसम्पन्न मनुष्य भी अमोघ (सफल कामनावाले) होंगे। (वा० रा० ६।११९।२-३१)।

ये इन्द्र सहित तीनों लोक, सिद्ध, परमर्षि पुरुषोत्तम-स्वरूप आपका अभिवादन कर अर्चन कर रहे हैं। हे सौम्य, इस रामरूप परम तत्त्वको तुम जानो, जिसे भगवती श्रुति ने देवताओंका हृदय कहा है और देवताओं का परम गुह्य महोपनिषद् कहा है। सम्पूर्ण जगतों का कारण नित्य अव्यक्त जो ब्रह्म है वही परन्तप राम हैं (वा० रा० ६।१२२।३०,३१)।

श्रीराम ने कहा—सीता मुझसे वैसे ही अभिन्न है जैसे भास्कर से प्रभा। जनक-पुत्री मैथिली तीनों लोकों में अत्यन्त विशुद्ध हैं। जैसे आत्मवान् प्राणी द्वारा कीर्ति का त्याग अशक्य है वैसे ही सीता का त्याग भी अशक्य है (वा० रा० ६।१२०।१८,१९)।

इस रामायण के पढ़ने और सुनने से श्रीराम सतत प्रसन्न होते हैं और वे राम सनातन विष्णु हैं। वे महाबाहु आदि देव हरि एवं प्रभु नारायण हैं (वा० रा० ६।१३०।११७)।

सब लोग विश्वास के साथ जोर से बोलें—
"भगवान् विष्णु का बल प्रवृद्ध हो।" (वा० रा० ६।१३०।११८)

आप नारायण, चतुर्भुज, सनातन-देव हैं। अप्रमेय अव्यय प्रभु राक्षसों को मारने के लिए श्रीरामरूप में उत्पन्न हुए हैं। समय समय पर नष्ट धर्म को व्यवस्थित करने के लिए प्रजाहितार्थ आप प्रकट होते हैं। हे शरणागतवत्सल! आप दस्यु लोगों के वधार्थ अवतीर्ण होते हैं (वा० रा० ७।८।२६,२७)।

तदनन्तर वे भगवान् विष्णु अपने दिव्य-धाम में प्रतिष्ठित हुए, जिसके द्वारा चराचर त्रैलोक्य व्याप्त है।

✻

द्वितीय अध्याय

कामिल बुल्के की रामकथा

वास्तव में ईसाइयत फैलाने की दृष्टि से ही श्रीबुल्के ने रामकथा लिखी है। वे जानते हैं कि हिन्दुओं में रामकथा का परम सम्मान है, साथ ही वेद में भी उनका परम सम्मान है। हिन्दुओं का यह भी दृढ़ विश्वास है कि इनके धर्म की सभी बातें वेदों में विद्यमान हैं, अतः "रामकथा वेदों में नहीं है" यह कहकर बुल्के ने हिन्दू-विश्वासों पर आघात करना चाहा है।

मैक्समूलर ने अपने पिता को पत्र लिखते हुए कहा था, "ईसाइयत प्रचार के लिए ऋग्वेद का एक विशिष्ट संस्करण प्रकाशित करना अत्यन्त आवश्यक है। इससे हिन्दूधर्म की कई कमजोरियाँ सामने आ जाएँगी, परिणामतः ईसाइयों को अपना धर्म फैलाने में सुविधा होगी।" ठीक इसी प्रकार की दुरभिसन्धि रामकथा के निर्माता के मन में भी हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

कामिल बुल्के ने अपनी 'रामकथा' पुस्तक में वेदों में रामायण के पात्रों की चर्चा करते हुए लिखा है— **'ऋग्वेद'** में इक्ष्वाकु का एक बार उल्लेख हुआ है (ऋ० सं० १०।६०।४)। लेकिन उस सूक्त में इक्ष्वाकु का नाममात्र दिया गया है, जिससे इतना ही प्रतीत होता है कि वे कोई राजा थे। **'यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान् मराय्येधते।'** अर्थात् जिसकी सेवा में धनवान् प्रतापवान् इक्ष्वाकु की वृद्धि होती है।

'अथर्ववेद' में भी एक बार इक्ष्वाकु का नाम आया है—

'त्वा वेद पूर्वं इक्ष्वाको यम्' (अथ० सं० १९।३९।९)।

किन्तु बेचारे बुल्के को पता नहीं कि वेद अनादि, अपौरुषेय, नित्यसिद्ध प्रमाण ग्रन्थ हैं। उनके ही आधार पर विश्व की सृष्टि होती है। अतएव सूत्ररूप से वेद में उन सभी वस्तुओं का उल्लेख है जो सृष्टि में महत्त्वपूर्ण हैं। इतिहास, पुराण आदि आर्ष-ग्रन्थों द्वारा उन्हीं वेदों का विस्तृत व्याख्यान करके उपबृंहण किया जाता है। जिस सूर्यवंश में राघवेन्द्र भगवान् का प्रादुर्भाव हुआ है, इक्ष्वाकु उसके प्रमुख सम्राट् थे, अतः वेदों में उनका उल्लेख होना उचित ही है। इक्ष्वाकु राजा थे और राष्ट्रहित में उपयोगी उन सब विशिष्ट वस्तुओं के ज्ञाता थे, ये बातें वेद से ज्ञात होती हैं। इतना ही पर्याप्त है। वेदों में जो वस्तु सूत्ररूप से कही गयी है, **वाल्मीकिरामायण** में उसी का विस्तार किया गया है। रामायण के अनुसार इक्ष्वाकुवंश में ही श्रीरामचन्द्र का आविर्भाव हुआ था। एतावता 'वेद में इक्ष्वाकु का नाममात्र है। उनका राम के साथ कोई असाधारण सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता है' ये सब बातें निरर्थक हैं। इससे यह भी नहीं समझना चाहिए कि मन्त्र-रचना के पहले इक्ष्वाकु नाम के राजा प्रसिद्ध थे, उनके बाद मन्त्र-रचना हुई, क्योंकि लोक में यद्यपि घटनापूर्वक शब्दोल्लेख होता है, तथापि वेद में शब्दानुसारिणी ही घटना होती है। श्रीबुल्के के अनुसार निम्नोक्त मन्त्र में दशरथ का वर्णन मिलता है—

'चत्वारिंद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।' (ऋ० सं० १।१२६।४)

दशरथ के लाल रङ्ग के चालीस घोड़े एक हजार घोड़ों के दल का नेतृत्व करते हैं।

ठीक ही है। इस मन्त्र में भी उन्हीं प्रभावशाली सम्राट् दशरथ का वर्णन है, जिनके उदात्त चरित्र का रामायण में विस्तार किया गया है। जिस शब्द का अर्थ किसी प्राचीन ग्रन्थ में अप्रसिद्ध हो उसका अर्थ उस ग्रन्थ से

मिलते-जुलते प्रामाणिक अन्य ग्रन्थ के आधार पर निर्धारित किया जाता है। **रामायण** जब वेद का व्याख्यानभूत है तब यह सुतरां सिद्ध है कि वेदों में वर्णित दशरथ वे ही हो सकते हैं जो **रामायण** में प्रसिद्ध हैं। भले ही मध्य एशिया की आर्य-जाति मितन्नि (जिसका शासनकाल ई० पू० १४०० माना जाता है[1]) में दशरथ नाम का कोई राजा रहा हो। उसे रामायण प्रसिद्ध वैदिक दशरथ से भिन्न ही समझना चाहिये, क्योंकि रामायण के अनुसार रामायण के दशरथ का समय उससे लाखों वर्ष प्राचीन है।

ऋग्वेद के—

'प्र तद् दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवस्तु।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥" (ऋ० सं० १०।९३।१४)

मैंने दुःशीम पृथवान, वेन और राम (असुर) इन यजमानों के लिए यह (सूक्त) गाया है।

इस मन्त्र में वर्णित राम भी **रामायण** के ही राम हैं। सूर्यवंशी राजा वेन के अनन्तर वर्णित राम अवश्य ही सूर्यवंशी थे। **रामायण** के राम बड़े-बड़े यज्ञों के कर्ता थे, यह भी प्रसिद्ध है। 'असुर' शब्द जहाँ स्वतन्त्र होता है वहाँ असुर-जाति का बोधक होता है, पर जहाँ विशेषणरूप में प्रयुक्त होता है वहाँ महाप्राणवान्, महाबलवान् अर्थ का ही बोधक होता है। **रामायण** में प्रसिद्ध है—

"ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥" (वा० रा० ५।५१।४४),
"पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्याञ्चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ॥" (वा० रा० ६।१८।२३)।

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" इस आपस्तम्बसूत्र के अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण दोनों की वेदसंज्ञा है। अधिकांश उपनिषदें ब्राह्मण-भाग के अन्तर्गत आती हैं। उपनिषदों में **प्रश्नोपनिषद्, रामतापनीय** उ०, **रामरहस्य** उ० आदि में राम का पर्याप्तरूप से वर्णन आता है, जिससे मन्त्र-वर्णित राम की प्रत्यभिज्ञा होती है। **प्रश्नोपनिषद्** में—

"भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत" (प्र० उ० ६।१)

हिरण्यनाम कौसल्य नाम की चर्चा आयी है। वह **वाल्मीकिरामायण** अयोध्याकांड सर्ग ७५ श्लोक १३ के अनुसार राम का ही नामान्तर है।[2] **रामपूर्वोत्तरतापनीय** उ० में रामायण-वर्णित कथाओं का भी विस्तार से उल्लेख है। फिर भी श्रीबुल्के वेद में **रामायण** के पात्रों का अभाव मानते हैं, यह आश्चर्य है। साथ ही उन्होंने **प्रश्नोपनिषद्** तथा **रामतापनीय उपनिषद्** आदि की भी चर्चा क्यों नहीं की—यह भी आश्चर्य है।

श्रीबुल्के के अनुसार "वैदिक जनक से **रामायण** के जनक की अभिन्नता असम्भव तो नहीं है, पर अत्यन्त सन्दिग्ध प्रतीत होती है।" परन्तु बात ऐसी नहीं है। श्रीबुल्के को 'ब्रह्म' शब्द से ब्राह्मण की भ्रान्ति हुई है। याज्ञवल्क्य कर्म के भी बहुज्ञ थे, उसी पर प्रसन्न होकर उन्होंने याज्ञवल्क्य को उपहार दिया था, एक सहस्र गौएँ प्रदान की थीं।

"याज्ञवल्क्यो वरं ददौ सहोवाच कामप्रश्न एव मे।
त्वयि याज्ञवल्क्यासदिति ततो ब्रह्मा जनक आस ॥" (श० ब्रा० ११।६।२।१०)

याज्ञवल्क्य ब्रह्मविद्या में निष्णात थे; इसलिए जनक ने उनसे यथेष्ट प्रश्न करने का वर प्राप्त किया था। कालान्तर में याज्ञवल्क्य के पुनः जनक के यहाँ आने पर उसी वरदान के अनुसार जनक ने उनसे ब्रह्मसम्बन्धी

---

१. दे० रामकथा पृ० २। २. हिरण्यनाभो यत्रास्ते सुतो मे सुमहाशयाः ॥

विविध प्रश्न किये थे। फिर जनक स्वयं भी याज्ञवल्क्य के समान ब्रह्मिष्ठ हो गये। यहाँ 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ ब्रह्मिष्ठ है। श्रीबुल्के कहते हैं—**"शतपथ** में जनक याज्ञवल्क्य को शिक्षा देते हैं" परन्तु यह तो वरदान मांगने से ही स्पष्ट हो जाता है कि रहस्य में जनक का ज्ञान उत्कृष्ट कोटि का था। उसी पर याज्ञवल्क्य प्रसन्न भी हुए थे। पर ब्रह्मज्ञान में याज्ञवल्क्य का ही ज्ञान सर्वोत्कृष्ट था। इसीलिए वर प्राप्त करके जनक ने उनसे ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त किया और ब्रह्मिष्ठ हो गये। सायण ने भी स्पष्टरूप से कहा है कि याज्ञवल्क्य से वर प्राप्त कर जनक ब्रह्मा अर्थात् ब्रह्मिष्ठ हो गये—

"ततो याज्ञवल्क्यवरप्रदानानन्तरं स जनकः ब्रह्मिष्ठो बभूव।"

"अतः जनक ब्राह्मण हो गये। पहले जनक याज्ञवल्क्य आदि को ज्ञान देते थे। उपनिषद् में याज्ञवल्क्य जनक को शिक्षा देनेवाले हो गये" यह सब बुल्के साहब की भ्रान्ति ही है।

छान्दोग्य उपनिषद् (५।११।४) और **शतपथब्राह्मण** (१०।६।१।२) में जिन कैकेय महाराज अश्वपति का वर्णन आता है वे भी चक्रवर्ती महाराज दशरथ की प्रसिद्ध पटरानी कैकेयी के पिता ही हैं। पूर्वोक्त युक्ति से रामायण में कैकेयी के पिता अश्वपति की वैदिक अश्वपति के रूप में चर्चा होनी चाहिये। कैकेय अश्वपति का ग्रहण होना स्वाभाविक है। **"उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितकल्पने मानाभावात्"** इस न्याय से प्रसिद्ध सम्बन्ध का परित्याग कर अप्रसिद्ध कल्पना असङ्गत है।

श्रीबुल्के ने **"तैत्तिरीयब्राह्मण** (३. १०. ९), **शतपथब्राह्मण** (११. ३. १. २-४), (११. ४. ३. २०), (११. ६. २. १-१०), (११. ६. ३. १) आदि, **जैमिनिब्राह्मण** (१. १९.), (२.७६, ७७) तथा **शतपथब्राह्मण** के अन्तर्गत **बृहदारण्यकोपनिषद्** (३. १. १-२) आदि स्थलों के अनुसार जनक को क्षत्रिय और ब्राह्मण बतलाया है;" यह सर्वथा प्रमाणशून्य है। जिसने अग्निहोत्र-रहस्य का सम्यक् निरूपण कर याज्ञवल्क्य से काम-प्रश्न करने का वरदान प्राप्त किया था, उसी जनक ने कालान्तर में कुछ कहने की इच्छा से आये हुए याज्ञवल्क्य से अपने पूर्व प्राप्त वरदान के अनुसार प्रश्न किये थे और याज्ञवल्क्य ने अपने वरदान के अनुसार उनके यथाकाम किये गये प्रश्नों का उत्तर दिया था। वे भी वैदेह जनक ही हैं। इनमें से किसी को ब्राह्मण मानना और अन्य को क्षत्रिय मानना निराधार है।

जनक एक नहीं थे, किन्तु **वाल्मीकिरामायण** बालकाण्ड सर्ग ७१ श्लोक ४ के अनुसार मिथिके पुत्र प्रथम जनक हुए। वे इतने प्रतापी थे कि उनके नाम से जनक-वंश ही चल पड़ा। उस जनक-वंश में ह्रस्वरोमा जनक के दो पुत्र थे। छोटे का नाम कुशध्वज था और बड़े पुत्र सीता के पिता थे—

"तस्य पुत्रद्वय राज्ञो धर्मज्ञस्य महात्मनः।
ज्येष्ठोऽहमनुजो भ्राता मम वीरः कुशध्वजः॥" (वा० रा० १।७१।१३)

यद्यपि राजा जनक के नाम का उल्लेख यहाँ नहीं है तो भी **विष्णुपुराण** (४।५।३०), **वायुपुराण** (८९।१५), **ब्रह्माण्डपुराण** (३।६४।१५) एवं **पद्मपुराण** पातालखण्ड (५७।५) के अनुसार उनका नाम सीरध्वज था। सीता के पिता सीरध्वज और जनक-याज्ञवल्क्य-संवाद से सम्बद्ध जनक अभिन्न प्रतीत होते हैं। पुराणों के अनुसार सीता के पिता महान् ज्ञानवान् और योगनिष्ठ थे। वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि अपरिगणित महर्षियों से पूर्ण परिचित थे। साक्षात् विष्णुस्वरूप राम के श्वसुर और महालक्ष्मीरूपा सीता के पिता होने का सौभाग्य भी उन्हें प्राप्त था। इससे वैदिक जनक और रामायण के जनक की अभिन्नता समझी जा सकती है, क्योंकि अभिन्नता का बाधक कोई प्रमाण विद्यमान नहीं है।

"वैदिक साहित्य में सीता" इस शीर्षक से विचार करते हुए बुल्के साहब कहते हैं—"वैदिक साहित्य में दो

भिन्न-भिन्न सीताओं की सूची मिलती है। पहली सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी है जिसका उल्लेख **ऋग्वेद** से लेकर सारे वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर मिलता है। दूसरी सीता का परिचय **तैत्तिरीयब्राह्मण** से प्राप्त होता है, जहाँ सीता–सावित्री (सूर्य की पुत्री) और सोम राजा का उपाख्यान विस्तारपूर्वक दिया गया है। इसके अतिरिक्त 'सीता' शब्द का लाङ्गल-पद्धति के अर्थ में वैदिक साहित्य में अनेक बार उल्लेख हुआ है; पर वहाँ सीता में व्यक्तित्व का आरोप नहीं है। अतः प्रस्तुत दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण न होने के कारण उन स्थलों का विश्लेषण अनावश्यक है।" उनका सङ्केत टिप्पणी में दिया गया है—**ऋग्वेद** (१।१४०।४), **अथर्ववेद** (११।३।१२), **यजुर्वेदीय काठकसंहिता** (२०।३), **कपिष्ठलसंहिता** (३२।५,६), **मैत्रायणीसंहिता** (३।२।४,५), **तैत्तिरीयसंहिता** (५।२।५।५), **शतपथब्राह्मण** (१३।८।२।६,७) आदि स्थलों में हल द्वारा खींची हुई सीताओं का सङ्केत है। दूसरे प्रकार की सीता पर विचार करते हुए श्रीबुल्के ने बताया है कि "**कृष्णयजुर्वेद के तैत्तिरीयब्राह्मण** में सीता—सावित्री की कथा मिलती है। उसमें सीता और श्रद्धा दोनों प्रजापति की पुत्रियां मानी जाती हैं। सायण के अनुसार प्रजापति सूर्य हैं। प्रस्तुत उपाख्यान में सीता (सावित्री) सोम राजा का प्रेम अङ्गराग के द्वारा प्राप्त करती है। यद्यपि सोम पहले सीता की बहन श्रद्धा से प्रेम करते थे। इस कथा का मूल **ऋग्वेद के सूर्यसूक्त** (ऋ० सं० १०।८५) में विद्यमान है। वहाँ सूर्य की पुत्री सूर्या का सोम के साथ विवाह वर्णित है। इस सूक्त में सोम से चन्द्रमा का और सूर्या से ऊषा का वर्णन माना जाता है। इस कथा का वर्णन **ऋग्वेद** के दोनों **ब्राह्मणों** में है। प्रजापति ने सोम राजा को अपनी पुत्री सूर्या—सावित्री दे दी (ऐ० ब्रा० ४।७) और (कौ० ब्रा० १८।१)। इसके अतिरिक्त (तै० सं० २।३।५), (का० सं० ११।३) और (मै० सं० २।२।७) इन स्थलों पर प्रजापति की तैंतीस पुत्रियों का सोम राजा के साथ विवाह वर्णित है। इनमें से केवल रोहिणी का नाम दिया गया है।

तैत्तिरीयब्राह्मण में इस कथा का परिवर्तित रूप इस प्रकार है—प्रजापति ने सोम राजा की और तीनों वेदों की सृष्टि की थी। सोम राजा ने तीनों वेदों को हस्तगत कर लिया था। सीता—सावित्री सोम राजा को पतिरूप में चाहती थी। लेकिन सोम श्रद्धा (सीता की बहन) को चाहते थे। सीता ने अपने पिता को नमस्कार कर कहा— मैं आपकी शरण लेती हूँ, मैं सोम राजा को पतिरूप में चाहती हूँ, पर वे श्रद्धा को चाहते हैं। प्रजापति ने स्थागर नामक अङ्गराग तैयार किया और पूर्व दिशा की ओर दस होतृ-मन्त्र पढ़कर, दक्षिण की ओर चार होतृ-मन्त्र, पश्चिम की ओर पाँच होतृ-मन्त्र, उत्तर की ओर छह होतृ-मन्त्र और ऊपर की ओर सात होतृ-मन्त्र पढ़कर तथा सम्भार-मन्त्रों और पत्नी-मन्त्रों से उस अङ्गराग को अभिमन्त्रित कर सीता का मुख अलङ्कृत किया। पुनः वह सोम राजा के पास गयी। सीता को देखकर प्रेमवश होकर उन्होंने कहा—मेरे पास आइये। सीता ने कहा—मैं आपके पास आती हूँ, परन्तु आप प्रतिज्ञा करें कि मुझसे सम्बन्ध रखेंगे और आपके हाथ में जो है, उसे मुझे दे दीजिये।"

आगे **रामकथा** के लेखक श्रीबुल्के कहते हैं—"सीता–सावित्री आदि कथाओं का **वाल्मीकिरामायण** से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता, फिर भी सम्भव है कि अनसूया के अङ्गराग का वृत्तान्त इस उपाख्यान से प्रभावित हुआ हो। वहाँ अत्रि की पत्नी अनसूया सीता को माला, वस्त्र, आभूषणों के साथ एक अनश्वर अङ्गराग भी प्रदान करती हैं, जिससे सीता का शरीर दिव्य सौन्दर्य से युक्त होता है—

> "अङ्गरागेण दिव्येन लिप्ताङ्गी जनकात्मजे।
> शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्रीर्विष्णुमव्ययम् ॥" (वा० रा० २।११८।२०)।

अध्यात्मरामायण में भी इस अङ्गराग का उल्लेख है —

> "अङ्गरागञ्च सीतायै ददौ दिव्यं शुभानना।
> न त्यक्ष्यतेऽङ्गरागेण शोभा त्वां कमलानने॥" (अ० रा० २।९।८९)।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भी **तैत्तिरीयब्राह्मण** के उपाख्यान से परिचित थे और उन्होंने सीता की मर्यादा के विरुद्ध समझकर जानबूझकर इस अङ्गराग की चर्चा नहीं की। वे लिखते हैं—

"दिव्य बसन भूषन पहिराये।
जो नित नूतन अमल सुहाये॥" (रा० मा० ३।४।२)

यह भी कल्पना है कि **महाभारत** और **रामायण** में बलराम एवं परशुराम भी प्रसिद्ध थे, अतः राम के साथ दाशरथि विशेषण लगाया जाता था। बादमें रामभद्र और रामचन्द्र नामों का व्यवहार होने लगा। **उत्तररामचरित**, **पद्मपुराण** आदि रचनाओं में 'रामचन्द्र' सबसे अधिक लोकप्रिय नाम हो गया। राम दाशरथि को 'चन्द्र' उपाधि क्यों मिली ? इस प्रश्न को सुलझाने के लिए डाक्टर वेबर ने सीता—सावित्री के वृत्तान्त का उदाहरण दिया है। **वाल्मीकि-रामायण** में इसका कारण ढूंढ़ना अधिक सङ्गत होगा। राम के सौन्दर्य और लोकप्रियता की अभिव्यञ्जना के लिए वाल्मीकि ने बहुत स्थलों में चन्द्रमा की उपमा दी है—

रामं चन्द्रमिवोदितम्। (२।४४।२२)
राममुखं पूर्णचन्द्रमिवोदितम्। (६।३३।३२)
रामः पूर्णचन्द्राननः। (२।१।४४)
रामः सोमवत् प्रियदर्शनः। (१।१।१८)
रामः लोककान्तः शशी यथा। (५।३४।२८)
रामवदनमुदितपूर्णचन्द्रकान्तम्। (६।११४।३५)

अतः रामचन्द्र नाम का आधार वाल्मीकिरामायण को छोड़कर अन्य कल्पित उपाख्यानों में ढूंढ़ना अनावश्यक है राम के सौन्दर्य, लोकप्रियता, सौम्यता आदि गुणों की अभिव्यक्ति के लिए उनके कोमल शान्त स्वभाव को अभिव्यक्त करने के लिए आदि काव्य में बार-बार श्रीराम की चन्द्र से तुलना की जाती है। राम के लिए **रामायण** में एक ही बार 'रामचन्द्र' शब्द का प्रयोग हुआ है—

"**रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा** ग्रस्तं रावणराहुणा।" (वा० रा० ६।१०२।३२)

अर्थात् रामचन्द्र को रावण-राहु से ग्रस्त देखकर देवता वानर आदि घबरा गये।

यदि प्रारम्भ से ही राम के लिए 'रामचन्द्र' का प्रयोग हुआ होता तो यह कहा जा सकता था कि राम के शील एवं शान्त स्वभाव का कारण यह है कि मूलतः वह चन्द्रमा के देवता थे। तब सीता—सावित्री और सोम राजा का उपाख्यान रामकथा का बीज माना जा सकता था और **रामायण** का अङ्गराग एवं **तैत्तिरीयब्राह्मण** का स्थागर अलङ्कार मूलतः वेद की सीता (लाङ्गल-पद्धति) में पड़ी हुई ओस होती जिसमें चन्द्रमा प्रतिबिंबित है। इसी तरह सीता एवं कृषि की अधिष्ठात्री देवी दोनों का उद्गम एक होता। जिन वेबर ने यह कल्पना की थी उन्होंने भी इसे कल्पना ही माना है। साथ ही यह भी विचारणीय है कि राम सूर्यवंशी हैं। उनका सोम से कोई सम्बन्ध बहुत सम्भव नहीं है।"

पहले, कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता के सम्बन्ध में विचार करते हुए श्रीबुल्के कहते हैं—"प्रारम्भिक वैदिक काल में जिन देवताओं का उल्लेख है वे अधिकतर प्रकृति के देवता हैं। अर्थात् प्रभावशाली प्राकृतिक दृश्यों और शक्तियों में देवताओं की कल्पना कर ली गयी है। कार्यक्षेत्र के अनुसार वे तीन विभागों में विभक्त हैं—द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के देवता। ऋग्वेद में इन्द्र के लिए २५०, अग्नि के लिए २००, सोमलता के मादकरस-देवता के लिए १०० से अधिक सूक्त सर्वप्रधान हैं। फिर भी सूर्य, वायु, उषा, वरुण, मित्र, पर्जन्य आदि बहुत से देवताओं

का उल्लेख हुआ है। इन सबका कार्यक्षेत्र विस्तृत था। आर्यों का कुशल-क्षेम इन्हीं पर निर्भर माना जाता था। इनके अतिरिक्त दूसरे प्रकार के देवताओं की भी कल्पना की गयी है, जिनका कार्यक्षेत्र बहुत सीमित माना जाता था। इनमें क्षेत्रपति, वास्तोष्पति, सीता और उर्वरा प्रधान हैं। धार्मिक चेतना में इनका स्थान गौण था, क्योंकि आर्यों का कुशल-क्षेम पहले प्रकार के देवताओं पर ही निर्भर माना जाता था। सीता, क्षेत्रपति आदि कृषि देवताओं के कम महत्त्व का एक और कारण यह है कि प्रारम्भ में कृषि की अपेक्षा पशुपालन प्रधान रहा होगा। ऋग्वेद के सबसे प्राचीन अंश (२–७ मण्डलों) में केवल एक ही मन्त्र में **कृषि-सम्बन्धी** शब्दों का प्रयोग है और यह सूक्त दसवें मण्डल के समय का माना जाता है। वह ऋग्वेद का एकमात्र स्थल है जहाँ सीता में व्यक्तित्व एवं देवत्व का आरोप किया गया है। इन कृषि की अधिष्ठात्री सीता देवी और सीता—सावित्री का अन्तर यह है कि एक तो इसमें देवत्व का आरोप है, दूसरे इसका उल्लेख आगे चलकर बराबर होता रहा है। यद्यपि वैदिक साहित्य में उनसे सम्बन्धित केवल दो ऋचाओं में प्रार्थना मिलती है फिर भी इनका प्रयोग कृषि-सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त अग्निचयन तथा पितृमेध के अवसरों पर भी होने लगा। **गृह्यसूत्रों में दो नयी प्रार्थनाएँ भी** मिलती हैं।

ऋग्वेद के सूक्त प्रायः एक ही देवता से सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन जिस सूक्त में सीता का उल्लेख है उसमें कृषि-सम्बन्धी अनेक देवताओं से प्रार्थना की जाती है। बहुत सम्भव है कि ये प्रार्थनाएँ अनेक स्वतन्त्र मन्त्रों के अवशेष हों जो एक ही सूक्त में सङ्कलित हो जाने के बाद चौथे मण्डल के अन्तर्गत रखे गये हों। पहले तीन छन्दों का देवता क्षेत्रपति है, चौथे का देवता शुन (सुखकृत् देवता) है, जो अगले छन्द के देवता से भिन्न है। पाँचवें तथा आठवें छन्दों के देवता शुनाशीर हैं। छठे और सातवें छन्दों की देवी सीता हैं। सारे सूक्त का अनुवाद इस प्रकार है—"हितकारी क्षेत्रपति के साथ हम गौ और अश्व के लिए पुष्टिकारक अन्न प्राप्त करते हैं। वह क्षेत्रपति हम लोगों को उक्त प्रकार का अन्न प्रदान करें। हे सौभाग्यवती ! हमारी ओर अभिमुख हो। देवि सीते ! तेरी हम वन्दना करते हैं जिससे तू हमारे लिए सुन्दर धन फल देने वाली हो। इन्द्र सीता को ग्रहण करें। पूषा सूर्य उसका सञ्चालन करें। वह पानी से भरी सीता प्रत्येक वर्षा में हमें धान्य प्रदान करती रहे।

सीता के नाम से वैदिक साहित्य में सीता की प्रार्थना आती है। वह **'सीरा युञ्जन्ति'** इत्यादि प्रसिद्ध है। **'सीरा युञ्जन्ति' अथर्ववेद** (३।१७।१) में है। इसमें अधिकांश सामग्री **ऋग्वेद** के दो सूक्तों से ली गयी है। उसके ४ मन्त्र हैं—

"इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाभिरक्षतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥" (अथ० सं० ३।१७।४)

इन्द्र सीता को ग्रहण करें (दबावें), पूषा सूर्य उसकी रखवाली करें और वह सीता पानी से भरी प्रत्येक वर्षा में हमें धान्य प्रदान करती रहे।

"सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥" (ऋ० सं० ४।५७।८)

हे सीता, तेरी हम वन्दना करते हैं, हे सौभाग्यवती, हमारी ओर अभिमुख हो; जिससे तू हमारे लिए सुन्दर फल देनेवाली होवे।

"घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत्पिन्वमाना ॥" (ऋ० सं० ४।५७।९)

घृत और मधु से ओत-प्रोत सीता विश्वेदेवताओं और मरुतों से अनुमोदित होवे। हे सीते! ओजस्विनी और घी से सींची हुई तू पय (दूध) के साथ हमारे पास विद्यमान रहे।

काठकगृह्यसूत्र में गो-यज्ञ के अन्त में **'सीरा युञ्जन्ति'** मन्त्र का प्रयोग है। वहाँ सीता में घृत और मधु के सिञ्चन का भी भाष्य में उल्लेख किया गया है। अग्नि-चयन में उन मन्त्रों का विस्तृत वर्णन मिलता है।

निम्न प्रार्थनाएँ भी मिलती हैं। हे कामधेनु सीते! आप मित्र, वरुण, इन्द्र, अश्विन, पूषण, प्रजा और औषधियों का मनोरथ पूरा करें।

इस तरह अनेक अन्य गृह्यसूत्रों में भी अनेक कर्मों में इन मन्त्रों का प्रयोग है। पारस्कर-गृह्यसूत्र में सीता-यज्ञ का विस्तृत वर्णन है। खेत के उत्तर या पूर्व में जोते हुए शुद्ध स्थल पर या गाँव में आग जलाकर स्थालीपाक तैयार करते हैं। घृत की आहुति देते समय इन्द्र, सीता एवं उर्वरा से प्रार्थना की जाती है। अनन्तर **सीता, यजा, समा और भूति** को स्थालीपाक चढ़ाया जाता है।

"यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्भवति कर्मणामिन्द्रपत्नी-
मुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायिनी भूयात् कर्मणि कर्मणि स्वाहा ।।"

(पा० गृ० सू० २।१७।४)

इस प्रकार सीता की प्रार्थना की जाती है।

काठकगृह्यसूत्र के अनुसार खस आदि सुगन्धित घास से सीता कुमारी देवी की मूर्ति बनायी जाती है—

"यत्र वोरणादिमयी सीता कुमारी देवता विरच्यते।"

कौशिकसूत्र के तेरहवें अध्याय के अन्त में सीता से विस्तृत प्रार्थना की गयी है। यह सामग्री **सामवेद** के **अद्भुतब्राह्मण** से मिलती-जुलती है। विलक्षण घटनाओं पर अपशकुन के निवारणार्थ दो हलों के उलझ जाने पर पुरोहित को पुरोडाश तैयार करके जङ्गल में पूर्व की ओर एक सीता खींचनी पड़ती थी। उसमें अग्नि जलाकर आहुति देते समय प्रार्थना करनी पड़ती थी—

"वित्तिरसि पुष्टिरसि प्राजापत्यानां त्वाहं मयि····"

इसमें सर्वाङ्गशोभिनी, हिरण्मयी माला धारण करनेवाली, कालनेत्रा, श्यामा, हिरण्मयी पर्जन्य-पत्नी सीता का मानवीकरण स्पष्ट है। **महाभारत** के द्रोणपर्व में शल्य के ध्वजाग्र में सीता का उल्लेख हुआ है। **हरिवश** में भी—

"कर्षकाणां च सीतेति भूतानां धरणीति।" (ह० वं० २।३।१४)

बाल्मीकिरामायण पर भी कृषि अधिष्ठात्री देवी का प्रभाव पड़ा है। अयोनिजा सीता के जन्म और तिरोधान के जो वृत्तान्त मिलते हैं; वे सम्भवतः इस वैदिक सीता के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं।"

अन्त में श्रीबुल्के सारी सामग्री का सिंहावलोकन कर जिस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं वह यह है कि "ऋग्वेद में इक्ष्वाकु, दशरथ और राम इन तीनों का एक एक बार वर्णन हुआ है। ये प्रभावशाली ऐतिहासिक राजा थे। इनका पारस्परिक सम्बन्ध असम्भव नहीं है, लेकिन इसका कोई निर्देश नहीं मिलता। **ऋग्वेद** में सीता का भी एक बार उल्लेख हुआ है, लेकिन इस सीता का रामायण के उपर्युक्त ऐतिहासिक पात्रों से सम्बन्ध असम्भव ही है; क्योंकि उसका व्यक्तित्व ऐतिहासिक न होकर सीता (लाङ्गल-पद्धति) के मानवीकरण का परिणाम है। इस सीता का उल्लेख वैदिक काल के प्रारम्भ से अन्त तक बराबर होता रहा है।

ब्राह्मणों से राम भार्गवेय, राम औपतस्विनि तथा राम क्रातुजातेय इन तीनों का परिचय मिलता है। इनके ऐतिहासिक होने में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है, लेकिन इनका **रामायण** के राम से कोई भी सम्बन्ध सम्भव प्रतीत नहीं होता।

ब्राह्मणों तथा उपनिषदों में अश्वपति और जनक का उल्लेख मिलता है। अश्वपति का रामायण के पात्रों से कोई सम्बन्ध निर्दिष्ट नहीं हुआ है। ब्राह्मणों के जनक और रामायणीय जनक की अभिन्नता की समस्या का निर्णय करना असम्भव प्रतीत होता है। रामायण के रचयिता सीता के पिता जनक का प्रसिद्ध वैदिक जनक से सम्बन्ध जोड़ते हैं। लेकिन इस अभिन्नता के लिए वैदिक साहित्य से कोई प्रमाण नहीं निकाला जा सकता। जनक के सारे वृत्तान्तों में राम-कथा का कोई संकेत विद्यमान नहीं है।

इसी तरह रामायण के एकाध पात्रों के नाम वैदिक रचनाओं में मिलते हैं, लेकिन न तो इनके पारस्परिक सम्बन्ध की कोई सूचना दी गयी है और न इनके विषय में किसी तरह की रामायण की कथावस्तु का किंचित् भी निर्देश किया गया है। जनक और सीता का बार-बार उल्लेख होने पर भी दोनों का, पिता-पुत्री का, सम्बन्ध कहीं भी निर्दिष्ट नहीं हुआ है।

अतः वैदिक काल में रामायण की रचना हुई थी अथवा राम-कथासम्बन्धी गाथाएँ प्रसिद्ध हो चुकी थीं, इसका निर्देश समस्त विस्तृत वैदिक साहित्य में कहीं भी नहीं पाया जाता। अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के नाम रामायण के पात्रों के नामों से मिलते हैं, इससे इतना ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये नाम प्राचीन काल में भी प्रचलित थे।"

यह सब श्रीबुल्के ने "वैदिक साहित्य में राम-कथा का अभाव" शीर्षक से २४-२५ पृष्ठों में कहा है। उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीबुल्के का विवेचन भारतीय वेदविचार-पद्धति से बिलकुल भिन्न, पाश्चात्य ढङ्ग का ही है। भारतीय दृष्टि से अनेक शाखाओंवाले मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् सब वेद हैं एवं वे अनादि अपौरुषेय तथा स्वतःप्रमाण हैं।[1] उनका प्रारम्भ काल और अन्त-काल नहीं है। वेदों के एवं वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में पाश्चात्यों के विचार भ्रान्तिपूर्ण तथा त्रुटिपूर्ण भी हैं।[2] भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में पाश्चात्यों ने जानबूझकर अराजकता फैला रखी है।[3] मैक्समूलर ने वेदों का संस्करण एवं उनका विवेचन जिज्ञासा की दृष्टि से नहीं किन्तु ईसाइयत के प्रचारकों की सुविधा के लिए किया है। यह उन्होंने अपने मतपत्रों में स्पष्टरूपसे लिखा है, अतः उक्त विषयों पर भारतीय दृष्टि से ही विचार करना न्याययुक्त है।

'वेदों में प्राकृतिक दृश्यों एवं शक्तियों में देवताओं की कल्पना कर ली गयी है।' पाश्चात्यों का यह कथन निष्प्रमाण कल्पनामात्र है। **ब्रह्मसूत्र** के देवताधिकरण के अनुसार भौतिक द्यौ, अन्तरिक्ष, अग्नि, वायु, सूर्य, वरुण, मित्र आदि से भिन्न उनके अधिष्ठाता देवता होते हैं और वे ऐश्वर्यशाली होते हैं एवं एक ही समय विभिन्न स्थलीय यज्ञों में पहुँच सकते हैं, ये सब बातें मन्त्रों एवं ब्राह्मणों से सिद्ध हैं।[4] **ऋग्वेद** के कुछ मण्डलों एवं कुछ मन्त्रों को प्राचीन एवं कुछ को नवीन मानना भी निष्प्रमाण है। वेद-मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् अनादि और अनन्त हैं।[5] इस तरह **ऋग्वेद** के सूक्त ४।५७ में कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता वास्तविक देवता है, काल्पनिक देवता नहीं। इसी तरह सीता के साथ कृषि-सम्बन्धी अन्य देवताओं का सामान्यतः उल्लेख होना आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसी स्थिति में—

१. यह आगे स्पष्ट किया जायगा।
२. यह आगे स्पष्ट किया जायगा।
३. दे० भारत में अङ्ग्रेजीराज।
४. दे० देवताधिकरणविवेचन।
५. आगे स्पष्ट किया गया है।

"अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगा ससि यथा नः सुफला ससि ॥
इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानुयच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥" (ऋ० सं० ४।५७।६,७)

इन मन्त्रों में जड़ लाङ्गल-पद्धतिमात्र की स्तुति नही है। हे सौभाग्यवती ! हमारी ओर अभिमुख हो। हे सीते ! हम तुम्हारी वन्दना करते हैं जिससे तुम हमारे लिए धन और फल देनेवाली होओ, यह सम्बोधन एवं प्रार्थना अचेतन की नहीं हो सकती; किन्तु चेतन, शक्तिशाली देवता की ही समझनी चाहिये। इन्द्र सीता का ग्रहण करें, पूषा उसका सञ्चालन करें, सीता उत्तरोत्तर हमें धन, धान्य, फल आदि प्रदान करती रहे। कृषिरूपा सीता का पर्जन्यरूप इन्द्र से सम्बन्ध है, परन्तु कृषि की अधिष्ठात्री हलाग्रसम्भूत सीता का परमात्मस्वरूप इन्द्र से ही सम्बन्ध है। श्रुतियों में इन्द्र का मुख्य अर्थ परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ही है।

सीतासम्बन्धी दो मन्त्रों का सायणानुसार शुद्ध अर्थ निम्नोक्त हैं—

"सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥" (अथ सं० ३।१७।८)

सायण-भाष्य—**हे सीते ! त्वा त्वां। वन्दामहे नमस्कुर्मः। हे सुभगे सुभाग्ये सीताभिमानिदेवते ! त्वम् अर्वाची अस्मदभिमुखी भव। यथा येन प्रकारेण। नः अस्माकम्। सुमनाः शोभनमनस्का। असः स्याः। यथा येन प्रकारेण। नः अस्माकम्। सुफला शोभनफलोपेता। भुवः भवेः। तथा अर्वाची भवेति सम्बन्धः।**

हे सीते ! हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। हे सुन्दर भाग्यवाली सीताभिमानिनी देवी ! आप हमारे वैसे अभिमुख हों जिस प्रकार से हम लोगों के प्रति सुन्दर मनवाली हों एवं जिससे हम लोगों को शोभन फल देनेवाली हों।

"घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥" (अथ० सं० ३।१७।९)

सायण-भाष्य—**घृतेन उदकेन। मधुना मधुररसेन। समक्ता सम्यक् अक्ता सिक्ता। सा सीता। विश्वैः। देवैः। मरुद्भिः च। अनुमता अङ्गीकृता। हे सीते ! सा त्वम्। पयसा उदकेन। नः अस्मान्। अभ्याववृत्स्व अभिमुखम् आवर्तस्व। कथम्भूता ऊर्जस्वती बलोपेता घृतवत् घृतयुक्तमन्नम् पिन्वनामा सिञ्चन्ती।**

सीता घृत अर्थात् उदक एवं मधु अर्थात् मधुर रस से सम्यक् सिक्त होती है। वह सीता सभी देवताओं एवं मरुतों से अङ्गीकृत होती है। हे सीते ! उदक से युक्त होकर घृत-युक्त अन्न का सिञ्चन करती हुई, बलवती होकर हम लोगों के अभिमुख आसमन्तात् वर्तमान रहो।

लाङ्गल-पद्धतिरूप सीता को अधिष्ठात्री महालक्ष्मीरूपा सीता उपासक के अभिमुख होकर अभीष्ट अन्न, जल, घृत, दुग्ध, कन्दमूल, फल आदि प्रदान करती है।

वैदिकपरम्परा के अनुसार **अथर्ववेद** तथा यजुर्वेद के मंत्र **ऋग्वेद** के समान ही मौलिक हैं। इसी लिए उनके स्वरों में भेद मान्य होता है। **अथर्ववेदीय "सीरा युञ्जन्ति"** (अथ० सं० ३।१७।१) आदि मंत्रों में भी अन्य देवताओं के साथ सीता की प्रार्थना है। सीता सम्बन्धी मन्त्र है—

"इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषाभिरक्षतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥" (अथ० सं० ३।१६।४)

इस मन्त्र में पिछले मन्त्र से कुछ पाठभेद भी है। स्वरभेद तो है ही। इन्द्र सीता को ग्रहण करें। पूषा उसकी रक्षा करें। वह पयस्वती सीता, उत्तरोत्तर वर्षों में, हमें धन-धान्य प्रदान करती रहें।

पारस्करगृह्यसूत्र आदि के अनुसार सीता-यज्ञों में भी केवल जड़ लाङ्गल-रेखारूप सीता का ही नहीं किन्तु कृषि की अधिष्ठात्री लक्ष्मीरूपा सीता का ही यजन किया जाता है; इसी लिए उसमें इन्द्र-पत्नी सीता का आह्वान किया गया है—

> "यस्या भावे वैदिकलौकिकानां भूतिर्नवति कर्मणामिन्द्रपत्नी-
> मुपह्वये सीतां सा मे त्वनपायिनी भूयात् कर्मणि कर्मणि स्वाहा॥"

जिसके भाव (अस्तित्व) में वैदिक और लौकिक दोनों कर्मों की सत्ता निहित है वह सीता सब कर्मों में अनपायिनी होकर सन्निहित रहे। इन्द्रपत्नी सीता का हम ध्यान करते हैं।

यहाँ स्पष्टरूप से इन्द्र-पत्नी श्रीराम की पट्टमहिषी सीता का ही वर्णन है। इन्द्र ईश्वर का नाम है। यह पीछे सप्रमाण बतलाया जा चुका है।

"वीरणादिमयी सीता कुमारी देवता विरच्यते"—सूत्र के देवपालीय भाष्य के अनुसार सीता-यज्ञ में उसी की वीरणादिमयी कुमारी देवता मूर्ति बनायी जाती है जैसे विष्णु, शिव, लक्ष्मी, गौरी आदि की मूर्ति बनायी जाती है वैसे ही सीता की भी मूर्ति समझनी चाहिये। **मानवगृह्यसूत्र** में भी इस की पूजा का विधान है।

अथर्ववेद के कौशिकसूत्र के अनुसार अनेक विलक्षण घटनाओं के होने पर अपशकुनों के निवारणार्थ एक विशिष्ट कर्म किया जाता था, उसमें सीता की जो विस्तृत स्तुति मिलती है वह भी किसी जड़ की स्तुति नहीं है किन्तु महालक्ष्मीरूपा सीताजी की ही है।

> "वित्तिरसि पुष्टिरसि प्राजापत्यानां त्वाहं मयि
> पुष्टिकामो जुहोमि स्वाहा॥
> कुमुद्वती पुष्करिणी सीता सर्वाङ्गशोभिनी।
> कृषिः सहस्रप्रकारा प्रत्यष्टा श्रीरियं मयि॥
> उर्वीं त्वाहुर्मनुष्याः श्रियं त्वा मनवो विदुः।
> आशयेऽन्नस्य नो धेह्यनमीवस्य शुष्मिणः॥
> पर्जन्यपत्नि हरिण्यभिजातास्यभि नो वेद।
> कालनेत्रे हविषा नो जुषस्व तृप्तिं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥
> याभिर्देवा असुरानकल्पयन् यातून् गन्धर्वान् राक्षसांश्च।
> ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रापोषं सुभगे रराणा॥
> हिरण्यस्रक् पुष्करिणी श्यामा सर्वाङ्गशोभिनी।
> कृषिर्हिरण्यप्रकारा प्रत्यष्टा श्रीरियं मयि॥
> अश्विभ्यां देवि सह संविदाना इन्द्रेण राधेन
> सह पुष्ट्या न आगहि॥
> विशस्त्वा रासन्तां प्रदिशोऽनु सर्वाहोरात्रार्धमासमास
> आर्तवा ऋतुभिः सह॥
> भर्त्री देवानामुत मर्त्यानां भर्त्री प्रजानामुत मनुष्याणाम्॥

हस्तभिरित्तरासैः क्षेत्रसाराधिभिः सह ।
हिरण्यैरश्वैरा गोभिः प्रत्याष्टा श्रीरियं मयि ।।" (कौ० गृ० सू० अध्याय १३)

हे सीते ! तू हम प्रजापति की सन्तानों को धन और पुष्टि देनेवाली है। मैं पुष्टि की कामना से तुझे आहुति देता हूँ।

कुमुदों और कमलों से सुसज्जित सर्वाङ्गशोभिनी, सहस्रों प्रकारवाली, कृषिरूपा यह व्यापक लक्ष्मी निरन्तर मेरे साथ रहे।

मनुष्य तुमको उर्वी कहते हैं। मननशील लोग तुमको लक्ष्मी कहते हैं। हम लोगों के कोश में आरोग्य-वर्धक और शक्तिशाली पर्याप्त अन्न प्रदान करो।

हे हरी-भरी लहलहाती पर्जन्य-पत्नी ! उपासना के वशीभूत होकर हमारी ओर कृपा की दृष्टि से देखो। हे कालनेत्रे ! हवि प्राप्त कर हमारे द्विपदों और चतुष्पदों को तथा हमें तृप्ति प्रदान करो।

जिन शक्तियों के द्वारा देवगण असुरों, यातुधानों, गन्धर्वों और राक्षसों को नियन्त्रित करने में सफल होते हैं, उन शक्तियों से युक्त और प्रसन्न होकर हमारे पास आओ एवं हे सुभगे ! हमको सहस्रविध पुष्टि प्रदान करो तथा हिरण्मयी माला धारण करनेवाली, कमल से सुशोभित सर्वाङ्गशोभिनी, हे श्यामे ! यह हिरण्यमयी सुनहली कृषिरूपी लक्ष्मी सदा प्रसन्न होकर हमारे साथ रहे।

हे देवि ¡ अश्वी, इन्द्र और राध (नक्षत्र) तथा पुष्टि के साथ हमारे पास आओ।

कृषक लोग सब दिशाओं में तुम्हारी ओर निहारते हैं। दिन, रात, अर्धमास (पक्ष), पूर्णमास, ऋतु आदि सभी तुम्हारी ओर निहारते हैं।

तुम मरणशील मनुष्यादि प्रजाओं तथा देवताओं का पालन करती हो। विविध शीघ्रगामी हस्ती, अश्व आदि वाहनों, अन्न-भण्डारों, स्वर्णादि रत्नों तथा गौ आदि पशुधनों से भरपूर लक्ष्मी हमारे यहाँ अविच्छिन्नरूप से स्थिर रहे।

भारतीय-परम्परा से शास्त्राध्ययन न होने के कारण बुल्के महाशय ने मन्त्रों का सम्यक् अर्थ नहीं समझा, कई अंशों को तो सर्वथा छोड़ ही दिया। उनका अर्थ उनके ग्रन्थ से ही देखना चाहिये। विस्तार-भय से वह यहाँ नहीं दिया जा रहा है। श्रीबुल्के के कथनानुसार लौकिक लाङ्गल-पद्धति ही देवतादिरूपेण विकसित होकर अन्त में मानवी बन गयी है। इस विचार-सरणि के अनुसार "वस्तुतः लाङ्गल-रेखा ही मुख्य सीता है। उसमें ही पीछे से देवता और मानवी पक्षों की कल्पना कर ली गयी है। वस्तुतः न वह देवता है और न मानवी।" किन्तु ये सब बातें सर्वथा असंगत एवं निर्मूल हैं।

इसी प्रकार मार्क्सवादियों की कल्पना है "आदिम-युग वर्षा, ओले, अन्धकार आदि से आवृत उपद्रुत भीरु जङ्गली मनुष्यों ने अपने इर्द-गिर्द अनेक भूत, प्रेत आदि आत्माओं की कल्पना की थी। वही आगे चलकर सभ्यता के साबुन में धुलते-धुलते देव-कल्पना बन गयी। देव-कल्पना भी वैज्ञानिक चमत्कृति से चमत्कृत होकर ईश्वर-कल्पना एवं निर्गुण-ब्रह्म-कल्पना के रूप में विकसित हुई। अर्थात् ईश्वर, निर्गुण ब्रह्म आदि कोई वास्तविक तत्त्व नहीं हैं, किन्तु कल्पनामात्र हैं।" किन्तु ऐसी विविध कल्पनाएँ वस्तु-स्थिति का अपलाप कर प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम आदि दृढ़तर प्रमाणों से सिद्ध वस्तु को आवृत कर देती हैं। प्रसिद्ध ही है—

हरित भूमि तृन संकुल, सूझि पड़े नहि पंथ।
जिमि पाखण्ड वाद ते, लुप्त होहिं सदगंथ ।।

ऊपर उक्त प्रार्थना-मन्त्रों में सर्वाङ्ग-शोभिनी, हिरण्यमालाधारिणी, कालनेत्रा, श्यामा, हिरण्यमयी सीता का स्पष्ट वर्णन है। फिर भी 'यह सब कल्पनामात्र है, सत्य नहीं' यह सिद्ध करने के लिए बुल्के साहब के पास क्या प्रमाण है ?

प्रकृत प्रसंग में यह कहना है कि जैसे रूपग्रहण में नेत्र का वस्तुतः असाधारण प्रामाण्य मान्य होता है वैसे ही धर्म और ब्रह्म रूप वस्तु में वेदादि शास्त्र इतरप्रमाणानपेक्षस्वतन्त्ररूप से प्रमाण मान्य हैं। अतीत घटना आदि इतिवृत्तों के सम्बन्ध में भी शब्द-प्रामाण्य की आवश्यकता सर्वसम्मत है। न्यायालयों में आज भी इतर प्रमाणों के समान ही दस्तावेज आदि लेखों का प्रामाण्य माना जाता है। कारण-दोष तथा बाध-ज्ञान होने से ही उनका अप्रामाण्य होता है। सीतासम्बन्धी प्रकृत मन्त्र सर्वकारण परब्रह्म परमेश्वर की स्वरूपभूत दिव्य सच्चिदानन्दमयी शक्ति का ही प्रतिपादन करते हैं। उसी को लक्ष्मी, श्री, सर्वशक्तियों एवं सर्वदेवों से आराध्य और सर्वोपजीव्य रूप से प्रतिपादित किया गया है। **"वित्तिरसि पुष्टिरसि"** इस अंश से उसी को दिव्य ज्ञानरूपा, दिव्य शक्तिरूपा कहा गया है। यहाँ तक कि सभी प्राजापत्य ईश्वरीय जीवरूप सन्तानों की भी वित्ति और पुष्टिरूप उसी को कहा गया है। उसी का पुराणों में विशेषकर दुर्गासप्तशती में, जिसका कि आर्यों में अविच्छिन्न परम्परा से पाठानुष्ठान किया जाता है, चैतन्य और शक्तिरूप से निरूपण है—

'या देवी सर्वभूतेषु चितिरूपेण संस्थिता'
'या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता'

ये विशेषण जड़ रेखामात्र के लिए कदापि उपयुक्त नहीं हो सकते। दिव्यज्ञानसम्पन्न ऋषि लोग रेखामात्र की वन्दना और पूजा का विधान नहीं कर सकते। उसी महाशक्ति की धरित्रीरूप से भी माना गया है और वही नाना प्रकार के कुमुद और कह्लारों से सुसज्जित सस्यश्यामला सर्वाङ्गशोभिनी, विविध यव, गोधूम, धान्य, फल, पुष्प आदि सहस्रों पौष्टिक पदार्थों से भरपूर लक्ष्मी के रूप में कही गयी है। उक्त मन्त्रों का श्रीसूक्त के साथ बहुत अंशों में समन्वय होता है। **'श्रीरियं मयि' 'श्रियं त्वा'** इत्यादि अंश **'श्रियं देवीमुपह्वये'** इस श्रीसूक्त के अंश से मिलता है। **'पुष्पकरिणी'** और **'पुष्टि'** ये दोनों शब्द **'आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिम्'** से मिलते हैं। **'हरिणी'** शब्द भी दोनों में हैं। **'हिरण्यस्रक्' 'पुष्करिणी'** आदि का **'सुवर्णरजतस्रजाम्'** से मेल मिलता है। **'हिरण्यप्रकारा'** का **'हिरण्यप्राकारा'** से **'पर्जन्यपत्नी'** का **'आर्द्रा'** से, **'हस्तिनाद-प्रबोधिनी'** का **'हिरण्यैरश्वैरा गोभिः'** से एवं **'अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्'** का **"हस्तिभिरित्तरासैर्हिरण्यैरश्वैरा गोभिः"** से मेल मिलता है।

इस मेल से यह स्पष्टतया विदित होता है कि श्रीसूक्त का जो प्रतिपाद्य विषय है वही सीतासम्बन्धी मन्त्रों का भी प्रतिपाद्य है। अश्वी आदि देवताओं एवं असुर, यातुधान, राक्षस आदि पर नियन्त्रण करनेवाली शक्तियों से तथा विविध धन-धान्य एवं पोषक तत्त्वों से युक्त अनन्त ब्रह्माण्ड की ऐश्वर्याधिष्ठात्री महालक्ष्मी ही 'सीता' है। वह इन्द्र से भी युक्त है। यहाँ 'इन्द्र' शब्द परमैश्वर्य के योग से रामरूप सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् ईश्वर का ही बोधक है। **"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते"—श्वेताश्वतर** उ० के इस मन्त्र में स्पष्ट ही 'इन्द्र' शब्द का ईश्वर अर्थ ग्राह्य है। इन्द्र परमेश्वर माया वृत्तियों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, राम, कृष्ण आदि अनेक रूपों से भासमान होते हैं। **अथर्वसंहिता** के **'इन्द्रः सीतां निगृह्णातु'** इस मन्त्र के अनुसार भी सीता से सम्बन्धित इन्द्र, साधारण इन्द्र न होकर, रामरूप परमेश्वर ही सिद्ध होते हैं।

इसी रूप में सीता का स्मरण बौद्धों ने भी किया है। बौद्ध अभिधर्ममहाविभाषा में लिखा है कि कृषक प्रचुरमात्रा में सस्य प्राप्त करने पर कहता है कि यह श्री, सीता और समा इन देवियों का वरदान है। वेद, उपनिषद्, सूत्र, रामायण तथा पुराणों के अनुसार महालक्ष्मी या सीता के अनेक रूप मिलते हैं। प्रथम अनन्त ब्रह्माण्डों के

अधिष्ठान सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की स्वरूपभूता सच्चिदानन्दमयी सीता ऊपर लिखी **'वित्तरासि', 'तृप्ति नो धेहि', 'चितिरूपेण संस्थिता', 'सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि'** (दे० भा० ११।१) **'तद् ब्रह्म सत्तासामान्यम्'** (सीता० उ०) से सिद्ध है। दूसरी भगवच्छक्ति-स्वरूपा और तीसरी अनन्त ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चोत्पादिनी मूलप्रकृति शक्तिरूपा है। श्री, भू और नीला भी इसी के रूप हैं। भगवत्-संकल्पानुसार लोकरक्षणार्थ वही विविध रूप धारण करती है। भूदेवी सप्तसागरपरिवेष्टित सप्तद्वीपा वसुन्धरा तथा चतुर्दश भुवनों की आधारभूता प्रणवात्मिका होकर आराध्या होती हैं। नीला वही शक्ति है जिसका सङ्केत पिछले मन्त्रों से 'श्यामा' शब्द से किया गया है। यही सर्वप्राणियों के पोषण के लिए सर्वौषधिरूपा भी है। कल्पवृक्ष, पुष्प, फल, लता, गुल्म, सोम, विविध सस्य आदि के रूप में वही विश्व का पोषण करती है।

"श्रीदेवी त्रिविधं रूपं कृत्वा भगवत्सङ्कल्पानुगुण्येन लोकरक्षणार्थं रूपं धारयति। भूदेवी ससागराम्भः-सप्तद्वीपा वसुन्धरा भूरादिचतुर्दशभुवनानामाधाराधेया प्रणवात्मिका भवति। नीला च मुखविद्युन्मालिनी सर्वौषधीनां सर्वप्राणिनां पोषणार्थं सर्वरूपा भवति।" (सीता० उ०)

"सोमात्मिका ओषधीनां प्रभवति कल्पवृक्षपुष्पफललतागुल्मात्मिका औषधभेषजात्मिका अमृतरूपा देवानां महत्स्तोमफलप्रदा अमृतेन तृप्तिं जनयन्ती देवानामन्नेन पशूनां तृणेन।" (सीता० उ०)

"पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसञ्चयम्।
काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युजरापहम्॥" (दु० स० मूर्ति र० १४)
"ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः॥
शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।" (दु० स० ११।४८,४९)

शाकम्भरी भगवती पुष्प, पल्लव, मूल आदि प्रचुर एवं अभीष्ट अनन्त रसों से युक्त क्षुधा और तृषा मिटानेवाले शाकसञ्चय को धारण करती है। उसने अपने शरीर से उद्भूत शाकों के द्वारा शतवार्षिकी अनावृष्टि के समय सम्पूर्ण लोकों का पालन किया था।

इत्यादि वचनों से उर्वी कृषि, फल, मूल, सस्य, सोम, कल्याण आदि रूप में उसी महाशक्ति की अभिव्यञ्जना होती है। सीतासूचक ऋगादि-मन्त्रों तथा सूक्तों का उपबृंहण उपर्युक्त रूप में किया गया है। हिरण्यस्रक्, हिरण्मय आदि अंशों की भी विस्तृत व्याख्या सीतोपनिषद् में मिलती है—

"योगशक्तिर्योगरूपा कल्पवृक्षकामधेनुचिन्तामणिशङ्खपद्मनिध्यादिनवनिधिसमाश्रिता" इस रूप में उसी शक्ति का वर्णन है। चारभुजाओंवाली अभय, वर तथा पद्म धारण करनेवाली, किरीटादि आभरणों से अलङ्कृत, सब देवों से परिवृत, कल्पवृक्ष के नीचे चार गजेन्द्रों द्वारा रत्नघटस्थ अमृतमय जल से अभिषिच्यमान, ब्रह्मादि देवों से वन्द्यमान, अणिमादि ऐश्वर्यों से समन्वित, कामधेनु, वेद, शास्त्र आदि से स्तूयमान, जया आदि अप्सराओं से सेव्यमान, आदित्य, सोम आदि दीपों से नीराजित, तुम्बुरु, नारद आदि से गीयमान, राका और सिनीवाली से छत्र द्वारा, आह्लादिनी और माया से चामर द्वारा, स्वाहा और स्वधा से व्यजन द्वारा सेवित, भृगु आदि महर्षियों द्वारा पूजित, दिव्य सिंहासन पर पद्मासन से विराजमान, सकल कारण और कार्यों की महाशक्तिरूपा लक्ष्मी सब देवताओं से पूज्यमान वीर-लक्ष्मीरूप से जानी जाती हैं। इस तरह अनन्त ब्रह्माण्डों के अधिष्ठान, स्वप्रकाश, परब्रह्म-स्वरूप राम की स्वरूपभूता, सच्चिदानन्दमयी सीता ऐश्वर्याधिष्ठात्री महालक्ष्मी, मूल-प्रकृति, उर्वी, वीरलक्ष्मी, विजयलक्ष्मी, मोक्षलक्ष्मी, भोगलक्ष्मी तथा कृषिमयी धनधान्यरूपा, रत्नमयी कल्पवृक्षादिस्वरूपा होकर सर्वजगत्पोषण

करती है और प्राणियों के अभ्युदय एवं परम निःश्रेयस का सम्पादन करती है। यह विकसित काल्पनिक रूप नहीं है, किन्तु स्वाभाविक रूप है। उसके अनन्त अपरिच्छिन्न महामहिम वैभव के एक अंश का भी वर्णन वेदादि नहीं कर सकते, उसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन तो सर्वथा असम्भव ही है। इतिहास, पुराण, तन्त्र आदि उस वैभव की व्याख्या करते हैं, वे अपनी ओर से कल्पना करके कोई अंश नहीं जोड़ते। अतः इस सम्बन्ध में निरर्थक विकासवाद के अनुसार सब कल्पनाएँ निःसार हैं।

"अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगा ससि यथा नः सुफला ससि॥" (ऋ० सं० ४।५७।६)
"इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानुयच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥" (ऋ० सं० ४।५७।७)
"सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः॥" (ऋ० सं० १०।१०।१।८)
"घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वतो घृतवत्पिन्वमाना॥"(ऋ० सं० १०।१०।९)

इत्यादि मन्त्रों के आधार पर सीता देवता का वन्दन और अर्चन सिद्ध होता है। **काठकगृह्यसूत्र** में, गोयज्ञ के अन्त में, सीता में आज्यदान भी विहित है—

"कर्मणि समाप्ते घृतेन सीतेति चतुर्गृहीतेनाज्यस्य प्रदानम्" यह केवल जड़ रेखामात्र के लिए सम्भव नहीं है। अतएव सीता एक दिव्य देवी है। कार्तिक शुक्ल द्वादशी को सीतायज्ञ में उनकी मूर्ति बनाकर उनको अर्घ्य दिया जाता है, जैसे शिव, विष्णु आदि की मूर्तिपूजा की जाती है। यद्यपि ब्राह्मणों, सूत्रों, याज्ञिक पद्धतियों एवं तदनुसारी भाष्यों के अनुसार 'सीता' शब्द लाङ्गल-पद्धति का वाचक है तथापि केवल लाङ्गल-रेखारूपी सीता की, जड़ होने से, वन्दना और अर्चना उपपन्न नहीं हो सकती, अतः लाङ्गल-पद्धति की अधिष्ठात्री महाशक्ति देवी ही उक्त ब्राह्मण, सूत्र आदि की दृष्टि से भी माननी पड़ती है। यद्यपि लाङ्गल-पद्धति की अधिष्ठात्री शक्तिरूप देवी सीमित देवता है, अतः वह अनन्त ब्रह्माण्डों की जननी, परमानन्द-सुधासिन्धुस्वरूप रामचन्द्र की माधुर्यसार-सर्वस्वाधिष्ठात्रीरूप सीता नहीं है। परिच्छिन्न वस्तु की व्यापकता किसी तरह नहीं बन सकती, किन्तु अपरिच्छिन्न की प्रादेशिकता तो उपाधि के द्वारा बन ही सकती है। जैसे समस्त वसुधाधिपति को अयोध्याधिपति भी कहा जा सकता है या व्यापक आकाश भी घटाकाश,मठाकाश आदि रूप से व्यवहृत हो सकता है—

"न तावत्परिच्छिन्नदेशस्य सर्वगतत्वव्यपदेशः कथमप्युपद्यते, सर्वगतस्य तु सर्वदेशेषु विद्यमानत्वात् परिच्छिन्नदेशव्यपदेशोऽपि कयाचिदपेक्षया सम्भवति, यथा समस्तवसुधाधिपतिरपि हि सन्नयोध्याधिपतिरिति व्यपदिश्यते" (ब्र० सू० शा० भा० १।२।७)।

सर्वाधिष्ठात्री श्रीभगवती सीता लाङ्गलशक्ति की अधिष्ठात्री होती हुई भी, शक्तिरूप से भी पूजित होती हैं **और वही यजा, समा, भूति**, उर्वरा आदि की भी अधिष्ठात्री हैं—

"स्थालीपाकस्य जुहोति सीतायै यजायै समायै भूत्या इति।" (पा० गृ० सू० २।१७।१०)

सूत्र, भाष्य आदि याज्ञिक-दृष्टि के अनुसार अर्थ का वर्णन करते हैं। परन्तु मन्त्रों के याज्ञिक अर्थ के समान **ही आध्यात्मिक** और आधिदैविक आदि अर्थ भी होते हैं। अतः आर्षप्रमाण के अनुसार मन्त्रों के यज्ञपरक अर्थ से अन्यपरक अर्थ भी सङ्गत ही हैं। अतएव—

"चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥"

इस मन्त्र का अर्थ भाष्यानुसार यज्ञपरक होने पर भी महाभाष्यकार पतञ्जलि की दृष्टि से व्याकरणशास्त्रपरक अर्थ लिया जाता है और वह अर्थ मान्य भी होता है। विशेषतः **'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'** इस वचन के अनुसार सम्पूर्ण वेदों का अवान्तर तात्पर्य अन्य विषयों में होते हुए भी महातात्पर्य परमात्मस्वरूप में ही है। सीता-राम परमेश्वराभिन्न होने से परमेश्वर ही हैं, अतः उनमें इन मन्त्रों की सङ्गति सुतरां सङ्गत है। अतएव रामायण की सीता का लाङ्गल-पद्धति से ही उत्थान रामायण में वर्णित है—

"अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः ॥
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता।
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा ॥" (वा० रा० १।६६।१३,१४)
"तस्य लाङ्गलहस्तस्य कृषतः क्षेत्रमण्डलम्।
अहं किलोत्थिता भित्त्वा जगतीं नृपतेः सुता ॥" (वा० रा० २।११८।२८)

निर्विशेषण सीता-राम

शुक्लयजुर्वेद की **मुक्तिकोपनिषद्** में सभी उपनिषदों का उद्देशतः वर्णन है। उसमें **सीतोपनिषद्** का भी उल्लेख है। **सीतोपनिषद्** में परब्रह्मस्वरूपिणी, परप्रकृतिस्वरूपिणी आदि रूप से सीता का वर्णन है। उसी में सीता के एक रूप को **हलाग्रसमुत्पन्न** कहा गया है—"द्वितीया **भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना**।" उपनिषदों और तन्त्रों में श्री, भू, नीला आदि रूप से भगवान् की त्रिविध शक्तियों का वर्णन है। उनमें एक भू-समुत्पन्ना वही कही जा सकती है।

श्रीबुल्के ने विभिन्न वैदिक उद्धरणों के अनुसार सावित्री—सीता और सीता की खोज की है। उनमें स्पष्ट ही रामायण की सीता 'निर्विशेषण' सीता ही है। जैसे लक्ष्मी और गृहलक्ष्मी आदि रूप में मुख्यलक्ष्मी 'निर्विशेषण' लक्ष्मी समझी जाती है, गृहलक्ष्मी आदि अनेक लक्ष्मियां सविशेषण हो सकती हैं वैसे ही वेद, उपनिषद् तथा रामायणों द्वारा वर्णित सीता निर्विशेषण सीता ही है। यही स्थिति राम के सम्बन्ध में भी समझ लेनी चाहिये। निर्विशेषण राम ही रामायण के राम हैं। दूसरे सविशेषण राम आदि का नाम अनादिसिद्ध राम के नाम पर रखा गया है। वैदेही, दाशरथि आदि विशेषण अवतारी स्वरूपविशेष के बोधनार्थ ही हैं जैसे आज भी राम और सीता के नाम पर नाम रखे जाते हैं। अतएव सावित्री सीता का नाम भी निर्विशेषण मुख्य सीता के आधार पर ही सीता रखा गया है। **श्रीसूक्त** के अनुसार महालक्ष्मीरूपा सीता 'सूर्या' और 'चन्द्रा' दोनों ही शब्दों से कही गयी है। तथा च महालक्ष्मी की चन्द्रा शक्ति के समान ही सूर्या शक्ति भी सीता शब्द से व्यवहृत हो सकी थी—**'सूर्यां हिरण्मयीं'**, **'चन्द्रां प्रभासाम्'** (श्रीसूक्त)।

स्थागर-चर्चा

यहाँ बुल्के साहब ने **तैत्तिरीयब्राह्मण** में वर्णित सीता सावित्री के मन्त्राभिमन्त्रित स्थागर (अङ्गराग) से **वाल्मीकिरामायण** और **अध्यात्मरामायण** में उल्लिखित अङ्गराग की भिड़न्त भिड़ाकर स्थागर का विकास इस रूप में है, माना है और तुलसीदासजी ने जानबूझकर यह अंश छिपा लिया, ऐसा बतलाया है। परन्तु यह कथन अयथार्थ है, क्योंकि जो बात **वाल्मीकिरामायण** और **अध्यात्मरामायण** दोनों में हो, महात्मा तुलसीदास उसका अपलाप नहीं कर सकते। अतः उनके 'दिव्य वसन भूषण' शब्द से अङ्गराग भी समझ लेना चाहिये। यहाँ एक बात और भी

ध्यान देने योग्य है, वह यह कि ऋषि सर्वज्ञकल्प होते हैं, अतः स्वतन्त्ररूप से अनसूया-समर्पित अङ्गराग दिव्य वसन-भूषण आदि का ज्ञान प्राप्त कर उन्होंने उल्लेख किया है। संसार में मिलती-जुलती समानरूप से अनेकों घटनाएँ हो सकती हैं, अतः यह आवश्यक नहीं कि सावित्री सीता द्वारा प्राप्त अङ्गराग का ही यहाँ आवर्तन किया जाय। अतएव प्रजापति द्वारा सूर्या को दत्त अङ्गराग अन्य वस्तु है और अनसूया द्वारा सीता को प्रदत्त अङ्गराग अन्य वस्तु। सावित्री सीता का स्थागर केवल मुखलेप है तथा अनसूया द्वारा सीता के लिए दी गयी वस्तु अङ्गराग है। मुखलेप वशीकरण के लिए है, यह केवल स्वाभाविक सौन्दर्य का अभिव्यञ्जक है और अङ्गराग सर्वाङ्ग-विलेपन है, इसके साथ दिव्य मालाएँ, वस्त्र एवं आभूषण भी हैं—

"इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च।
अङ्गरागञ्च वैदेहि महार्हमनुलेपनम्॥
मया दत्तमिदं सीते तव गात्राणि शोभयेत्।
अनुरूपमसंक्लिष्टं नित्यमेव भविष्यति॥
अङ्गरागेण दिव्येन लिप्ताङ्गी जनकात्मजे।
शोभयिष्यसि भर्तारं यथा श्रीर्विष्णुमव्ययम्॥" (वा० रा० २।११८।१८-२०)।

वेदों की सूत्रभूत वस्तुएँ

पूर्वकथनानुसार वेदों की सूत्रभूत वस्तुओं का **रामायण, महाभारत** तथा **पुराणादि** में विशेष उपबृंहण होता है। तदनुसार ही पूर्वोक्त मन्त्रों की सीता के प्रतीक का ही **महाभारत** के द्रोणपर्व तथा जयद्रथपर्व में ध्वजवर्णन नामक अध्याय में वर्णन है—

"मद्रराजस्य शल्यस्य ध्वजाग्रेऽग्निशिखामिव।
सौवर्णीं प्रतिपश्यामः सीतामप्रतिमां शुभाम्॥
सा सीता भ्राजते तस्य रथमास्थाय मारिष।
सर्वबीजविरूढेव यथा सीता श्रिया वृता॥" (म० भा० ७।१०५।१८, १९)
"कर्षकाणां च सीतेति भूतानां धारिणीति च।" (हरिवं० २।३।१४)

यहाँ पर कृषकों की कृषि की अधिष्ठात्री शक्ति के रूप में सीता को दुर्गारूप ही बतलाया है। प्राणियों को धारण करनेवाली उर्वीरूपा भी उसी को कहा गया है।

'आधारभूता जगतस्त्वमेका महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।' (दु० स० ११।४)

इस श्लोक में सर्वभूत-धारयित्री धरित्री के रूपमें श्रीदुर्गा का स्तवन है।

स्पष्ट ही वही चयन नामक महान् श्रौत यज्ञ की सीताओं, रेखाओं की एवं क्रतुराट् चयन की अधिष्ठात्री महाशक्ति है। इसी दृष्टि से सीता-रेखाओं का वैदिक चयनादि में यजन होता है।

रामचन्द्रादि नामों की अनादिता

आगे चलकर बुल्के महाशय ने 'राम, रामचन्द्र तथा रामभद्र' नामों की समालोचना की है, उनमें पौर्वापर्य की भी कल्पना की है। वस्तुतः राम और रामचन्द्र आदि नाम अनादि ही हैं। वेद, रामायण, पुराण आदि अनादि राम और रामचरित का ही वर्णन करते हैं। बलराम और परशुराम से निर्विशेष राम स्वतः पृथक् सिद्ध हो जाते हैं। यद्यपि वे भी राम के अंश ही हैं। निर्विशेष राम के व्यवच्छेद के लिए इतर विशेषणों की अपेक्षा न होने पर भी गुणकृत बहुत से गौण नाम विष्णुपुराण आदि में वर्णित हैं। उपास्यगत गुणविशेषों की उन नामों द्वारा अभिव्यञ्जना

उपासना में अपेक्षित होती है। हाँ, रामचन्द्र के सम्बन्ध में उनकी निम्नोक्त कल्पना ठीक भी हो सकती है कि राम के सौन्दर्य तथा लोकप्रियता की अभिव्यञ्जना के लिए वाल्मीकि ने बहुत स्थलों पर चन्द्रमा से राम की तुलना की है—

(रामं) चन्द्रमिवोदितम्	(अयोध्याकाण्ड ४४।२२)
(राममुखं) पूर्णचन्द्रमिवोदितम्	(युद्धकाण्ड ३३।३२)
(रामस्य) पूर्णचन्द्राननस्याथ	(अयोध्याकाण्ड १।४४)
(रामः) सोमवत्प्रियदर्शनः	(बालकाण्ड १।१८)
(रामः) लोककान्तः शशी यथा	(सुन्दरकाण्ड ३४।२८)
(रामवदनम्) उदितपूर्णचन्द्रकान्तम्	(युद्धकाण्ड ११४।३५)

क्या देवता काल्पनिक हैं ?

मिस्टर बुल्के एवं उनके जैसे विचारवाले बहुत से पाश्चात्य और उनसे प्रभावित भारतीय विद्वान् भी देवताओं को केवल काल्पनिक मानते हैं। उनके अनुसार पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ के अग्नि, वायु, इन्द्र या आदित्य आदि प्रकृति और उसकी विभिन्न शक्तियों में ही देवता की कल्पना कर ली गयी है। परन्तु यह वेदादि शास्त्रों का तात्पर्य न समझने के कारण उनका भ्रम ही है; अन्यथा संसार के सर्व-प्राचीन और सर्वश्रेष्ठ **ऋग्वेद** में जिन प्रधान देवताओं का दो सौ सूक्तों के द्वारा स्तवन किया गया है, 'वे केवल जड़ एवं प्राकृतिक वस्तु हैं'—यह कहना कहाँ तक सङ्गत हो सकता है ? जब कि वैदिक ऋषि सदा से ही प्रकृति एवं प्राकृत व्यष्टि, समष्टि, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, सब प्रपञ्चों से अतीत, निर्विकार, असङ्ग चेतन वस्तु को जानते और पूजते रहे हैं। जड़ अचेतन वस्तु की प्रार्थना करना और उससे कुशल-क्षेम की आशा रखना शुद्ध मूर्खता ही हो सकती है, अतः जैसे जड़ देहादि के द्वारा देहत्रयाभिमानी आत्मा के ही अर्चन, प्रार्थना आदि होते हैं वैसे ही पृथिवी आदि लोकों में उनके अग्नि आदि प्रधान तत्त्वों के द्वारा तत्तत् अभिमानी महान् शक्तिशाली चेतन ईश्वर के अंशभूत देवताओं का ही स्तवन आदि किया जाता है—

'यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यमयत्येष त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥' (बृ० उ० ३।७।३)

जो पृथ्वी में रहता हुआ, पृथ्वी के भीतर है, पृथ्वी जिसको नहीं जानती, पृथ्वी जिसका शरीर है, जो पृथ्वी के भीतर रहता हुआ पृथ्वी को नियन्त्रित करता है, वही अन्तर्यामी तुम्हारा आत्मा है और वह अमृत है। यहाँ 'पृथ्वी जिसको नहीं जानती' इस कथन से ज्ञानशक्तिसम्पन्न पृथ्वी की अभिमानिनी देवता विवक्षित है।

'योऽप्सु तिष्ठन्', 'योऽग्नौ तिष्ठन्', 'योऽन्तरिक्षे तिष्ठन्', 'यो वायौ तिष्ठन्', 'य आकाशे तिष्ठन्' 'यः प्राणे तिष्ठन्....' (बृ० उ० ३।७।४,५,६,७,१२,१६)

इत्यादि मन्त्र, उपनिषद् एवं विभिन्न इतिहास आदि में भूत, भौतिक, भोग्य, भोक्ता आदि के रूप में एक व्यापक अन्तर्यामी तत्त्व का विस्तार से वर्णन है। **"अभिमानिव्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्"** (ब्र० सू० २।१।५) में विशेषरूप से भगवान् बादरायण ने पृथिव्यादि के अभिमानी ज्ञान, ऐश्वर्य और शक्ति से सम्पन्न देवता का प्रतिपादन किया है, अतः यह कहना कि 'विकासक्रम से ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र आदि के काल में देवता-तत्त्व का विकास हुआ है' वैदिक सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। अतएव मन्त्रभाग में भी ब्राह्मण, पुराण, सूत्र आदि का उल्लेख मिलता है। अतः मन्त्र, ब्राह्मण, पुराण आदि सब के समन्वय द्वारा निर्धारित अर्थ ही वास्तविक वेदार्थ है।

"तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानुव्यचलन्" (अथ० सं० १५।६।८)
"ऋचः सामानि छदांसि पुराणं यजुषा सह उच्छिष्टाज्जज्ञिरे ।" (अथ० सं० १५।९।२४)
"ऋग्वेदं भगवोध्येमि····इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम् ।" (छा० उ० ७।१।२)
"इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः ।।" (छा० उ० ७।१।४)

इत्यादि रूप से वेद-मन्त्रों तथा उपनिषदों में इतिहास, रामायण, महाभारत और पुराणों का उल्लेख है । अतएव मन्त्र, ब्राह्मण, उपनिषद्, व्याकरणादि षडङ्ग, पूर्वोत्तर मीमांसा, इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि का समन्वय करके ही जो वेदार्थ का निर्धारण किया जाता है, वही वेदार्थ का सम्यक् निर्धारण है, मनमाने ढंग से नहीं । अतएव महर्षि याज्ञवल्क्य ने अष्टादश विद्यास्थानों में सबका संकलन किया है । उनमें उन्होंने पुराणों का सर्वप्रथम स्थान माना है—

**"पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।।"** (या० स्मृ० १।३)

पुराण, न्यायवैशेषिक, पूर्वोत्तर मीमांसा, धर्मशास्त्र, छह अङ्गों (व्याकरण, निरुक्त, शिक्षा आदि) से युक्त चारों वेद इस प्रकार ये चौदह धर्म और विद्याओं के स्थान हैं ।

"बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।" (म० भा० १।१।२६८)
"इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत् ।।" (म० भा० १।१।२६७)

अल्पश्रुत से वेद डरता है कि यह अल्पज्ञ अर्थ का अनर्थ करेगा, अतएव इतिहास-पुराण के द्वारा वेद का तात्पर्य समझना चाहिए । कुछ लोग कहते हैं "वेदों में ब्राह्मणों को ही पुराण माना गया है" पर वह असंगत है । **गोपथब्राह्मण** में

"सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः सान्वाख्यानाः सपुराणाः" (गो० ब्रा० १।२।९) इस प्रकार ब्राह्मणों से पृथक् पुराणों का उल्लेख है ।

"प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेन इतिहासपुराणानां प्रामाण्यमनुज्ञायते ।" (४।१।६२ गौ० सू० भा०)

इस **वात्स्यायनभाष्य** के अनुसार भी ब्राह्मण-ग्रन्थ इतिहास-पुराण का प्रतिपादन करते हैं । एतावता "ब्राह्मण-विशेष इतिहास-पुराण हैं ।" वात्स्यायनभाष्य का यह कथन केवल **बृहदारण्यक** के लिए ही है, अन्य स्थलों के लिए नहीं । अतः अन्य स्थलों के लिए वह कैसे प्रमाण होगा । **पद्मपुराण** को ईसवीय शती का बतलाना भी सर्वथा निराधार ही है ।

प्रामाण्य तथा अप्रामाण्य-चर्चा

"औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात् ।" (जै० सू० १।१।५)

अर्थात् शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य है । प्रत्यक्ष एवं अनुमान से अनधिगत—अज्ञात अग्निहोत्रादिलक्षण धर्म का निमित्त ज्ञापक उपदेश अर्थात् विशिष्ट शब्द का उच्चारण ही होता है अर्थात् **"अग्निहोत्र जुहुयात् स्वर्गकामः"** इत्यादि नित्य वैदिक उपदेश ही धर्म में प्रमाण है और उक्त वैदिक वाक्यों से उत्पन्न होनेवाले ज्ञान का अव्यतिरेक अर्थात् संशय-विपर्यय-बाध-राहित्य भी सिद्ध है, क्योंकि उक्त वाक्यों से उत्पन्न ज्ञान का बाध नहीं होता, अतः वह भ्रमात्मक नहीं है और वह ज्ञान निश्चयात्मक होने से संशयात्मक भी नहीं है । शब्द और उसके अर्थ के सम्बन्ध के ज्ञानवान् नास्तिकको भी उक्त वाक्यों से स्वर्ग एवं अग्निहोत्र का कार्य-कारणभाव स्पष्ट ही मालूम होता है, अतः उक्त

वाक्यों से "धर्म का ज्ञान उत्पन्न ही नहीं होता" यह भी नहीं कहा जा सकता। जो वस्तु जिस प्रमाण से विदित होती है उसका अभाव भी उसी प्रमाण से विदित होता है। यदि धर्म प्रत्यक्षादि से विदित होता तो उसका अभाव भी प्रत्यक्षादि से विदित हो सकता था। नेत्रगम्य रूप का अभाव श्रोत्र से विदित नहीं हो सकता। इसी तरह शास्त्रों से गम्य धर्म का अभाव प्रत्यक्षादि से सिद्ध नहीं हो सकता। प्रत्यक्षादि से अनुपलब्ध धर्म में या अलौकिक साध्यसाधन-भाव में वह उपदेशएवं तज्जन्य ज्ञान ही प्रमाण है और वह प्रमाण भी अनपेक्ष अर्थात् स्वतः है। ऐसे ज्ञान के प्रामाण्य के लिए ज्ञानान्तर या पुरुषान्तर की अपेक्षा नहीं होती। जैसे घटादि-कार्य की उत्पत्ति में ही साधनों की अपेक्षा होती है जलाहरणादि कार्य में उनकी अपेक्षा नहीं होती, वैसे ही ज्ञान को अपनी उत्पत्ति में ही साधनों की अपेक्षा होती है; उत्पन्न ज्ञान अपने कार्य—विषय प्रकाश में अन्य की अपेक्षा नहीं रखता। अन्यथा यदि प्रथम ज्ञान को अपने प्रामाण्य के लिए प्रमाणान्तर की अपेक्षा होगी तो उस प्रमाण को भी प्रमाणान्तर की अपेक्षा होगी। ऐसी स्थिति में अनवस्था का प्रसंग अनिवार्य होगा। अतः प्रमाणों का प्रामाण्य स्वतः ही मान्य होता है। यदि विषय का बाध-ज्ञान तथा कारण-दोष का ज्ञान उत्पन्न हो तो तभी उनका अप्रामाण्य होता है। यही मत बादरायण महर्षि को भी मान्य है।

श्रीबुल्के के अनुसार "वास्तोष्पति और सीता जो कि गृह और क्षेत्र के अधिष्ठाता देवता थे उनका महत्त्व अग्न्यादि देवताओं की अपेक्षा अल्प था; क्योंकि आर्यो का कुशल-क्षेम अग्न्यादि देवताओं पर निर्भर रहता था।" वे कहते हैं कि "सीता, क्षेत्रपति आदि कृषिसम्बन्धी देवताओं के कम महत्त्व का एक और कारण यह है कि प्रारम्भ में कृषि की अपेक्षा पशुपालन प्रधान रहा होगा।" उनके अनुसार यह सूक्त यद्यपि चौथे मण्डल का है जिसे वे प्राचीन मानते हैं, तथापि "इसकी रचना दशवें मण्डल के समकाल में होनी चाहिये; क्योंकि इसमें 'समा' शब्द का प्रयोग है जो दशवें मण्डल को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी प्रयुक्त नहीं है।"

वस्तुतः वेदार्थनिर्णय करने की पद्धति पाश्चात्यों की अपनी निजी है। उसका वैदिक साहित्य एवं वैदिक-परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे तथाकथित भाषाविज्ञान के अनुसार जिन शब्दों को अर्वाचीन मानते हैं उन शब्दों का जिन मन्त्रों में प्रयोग देखते हैं उन मन्त्रों को अर्वाचीन एवं जिनमें प्राचीन शब्दों को देखते हैं उन्हें प्राचीन मानते हैं। यही कारण है कि केवल मात्र 'समा' शब्द को देखकर चौथे मण्डल में आने पर भी, जिसे कि वे प्राचीन मानते हैं, इस सूक्त को नवीन मान लेते हैं। किन्तु वैदिक-दृष्टि से जैमिनि, शबर, कुमारिल आदि मनीषी शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को नित्य मानते हैं।

शब्दार्थसम्बन्ध की आदि परम्परा

पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि आदि वैयाकरण महर्षियों की दृष्टि से भी शब्द और शब्दार्थ का सम्बन्ध नित्य ही माना जाता है, अतः किसी शब्द को अर्वाचीन और किसी को प्राचीन मानना यह वैदिक-परम्परा के सर्वथा विरुद्ध है। आम तौर पर जिन शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध को हम परम्परा से सुनते और समझते चले आ रहे हैं, जिनके निर्माण का कोई काल प्रामाणिक नहीं सिद्ध होता, न हुआ और न होगा उन्हें अनादि मानना ही ठीक है। अपभ्रंश शब्द और उनके किसी नवीन अर्थ में प्रयोग के प्रामाणिक होने पर उनको सादि माना जा सकता है; तथापि ऐसे शब्द 'यदृच्छा' शब्द के नाम से व्यवहृत किये जाते हैं। इस तरह पद तथा पदार्थबोध से सम्पन्न आस्तिक एवं नास्तिक को आसाधारण वाक्य के श्रवणमात्र से वाक्यार्थ-बोध होता ही है। इसी लिए "**अग्निहोत्रम् जुहुयात् स्वर्गकामः।**" इस वाक्य के श्रवण से अग्निहोत्र-होम से स्वर्गप्राप्ति होती है, ऐसा ज्ञान नास्तिक को भी होता ही है।

मीमांसकों का ज्ञान-प्रामाण्य

मीमांसकों के अनुसार ज्ञानों (चाहे वे कैसे भी हों) का प्रामाण्य स्वतः तथा अप्रामाण्य परतः होता है। तदनुसार नास्तिक के उक्त ज्ञान का प्रामाण्य स्वाभाविक है। उसका अप्रामाण्य तभी सम्भव है जब कारण-दोष-ज्ञान अथवा विषय का बाध-ज्ञान हो। पौरुषेय वाक्यों में पुरुषाश्रित भ्रम, प्रमाद आदि के कारण कारण-दोष कहा जा सकता है, किन्तु वेद तो अपौरुषेय हैं अतः वहाँ कारण-दोष का संस्पर्श भी नितान्त असम्भव है। अग्निहोत्रहोम और स्वर्ग का कार्य-कारणभाव **वेदैकगम्य** होने के कारण प्रमाणान्तर से उसका बाध-ज्ञान भी असम्भव ही है। जो वस्तु जिन प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा विदित होती है, उसका अभाव भी उन्हीं प्रमाणों से विदित होता है, इन विचारों के अनुसार सीता-बोधक उपर्युक्त मन्त्र की अर्वाचीनता तथा और भी ऋग्वेद के विभिन्न मण्डलों की अर्वाचीनता की कल्पना पाश्चात्यों की निराधार कल्पना ही है। अतएव आरम्भ काल में आर्यों में पशुपालन का ही प्राधान्य था, कृषि का नहीं, यह भी निराधार कल्पना है। मन्त्रों के आधार पर इतिहासकल्पना भी असङ्गत ही है।

यह भी पीछे कहा जा चुका है कि घटनापूर्वक वैदिकशब्दोल्लेख नहीं होता; यह सम्भव है भले कोई घटना ही वैदिक शब्दोलेखपूर्वक हो। विकासवाद से प्रभावित लोग ही आरम्भ काल में मानव को जङ्गली फल और मूल पर निर्वाह करनेवाला तथा बाद में पशु-पालन करनेवाला और तदनन्तर कृषि के आधार पर निर्वाह करनेवाला मानते हैं। वेद जब कि अनादि, अपौरुषेय, ईश्वरीयज्ञानानुविद्ध शब्द-राशि है तब उसके आधार पर ऐसी कल्पनाएँ सुतरां असङ्गत हैं। वस्तुतः मन्त्र यागाङ्ग तत् तत् देवताओं एवं द्रव्यों के स्तावक और स्मारक माने जाते हैं। मन्त्रों में अन्य बतों का वर्णन आनुषङ्गिकरूप से ही आता है। आनुषङ्गिक बातों का उनमें मुख्य तात्पर्य नहीं होता।

श्रीबुल्के का कहना है कि 'ऋग्वेद के सूक्त प्रायः एक ही देवता से सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन जिस सूक्त में सीता का उल्लेख है, उसमें कृषिसम्बन्धी अनेक देवताओं से प्रार्थना की जाती है। बहुत सम्भव है कि ये प्रार्थनाएँ अनेक स्वतन्त्र मन्त्रों की अवशेष हों जो एक ही सूक्त में सङ्कलित हो जाने पर बाद में चौथे मण्डल के अन्तर्गत रखी गयीं हों।' यह कल्पना भी पाश्चात्यों का दिमागी फितूर ही है; क्योंकि अनेकों मन्त्र अनेकों देवताओं से सम्बन्धित हैं।

वेद-मन्त्रों का स्वरूप निर्धारण

वस्तुतः देवता का निर्णय श्रुति, लिङ्ग, प्रकरण, निरुक्त आदि के अनुसार होता है। महर्षि शौनक की **सर्वानुक्रमणी** में सभी ऋग्मन्त्रों के देवताओं का वर्णन है। इसी लिए मन्त्रों का स्वरूप भी श्रुत्यादि के आधार पर निर्धारित होता है, मनमानी शैली से नहीं। अतएव यह कथन भी सर्वथा निरर्गल है कि 'कई मन्त्रों के अंश जोड़कर सूक्त में सङ्कलित कर लिये गये हैं'।

श्रीबुल्के ऐसा समझते हैं कि पद्य ही मन्त्र हैं और गद्य ब्राह्मण। इसी अभिप्राय से वे कह रहे हैं कि **कृष्णयजुर्वेद** की चारों संहिताओं में कुछ गद्य मिलाया गया है। **शुक्लयजुर्वेद** की एकमात्र **वाजसनेयिसंहिता** में केवल मन्त्र दिये गये हैं और उससे सम्बन्ध रखनेवाला गद्य **शतपथब्राह्मण** में सङ्कलित है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि **'तच्चोदकेषु मन्त्राख्या'** (जै० सू० २।१।३२) इस सूत्र के अनुसार वैदिक सम्प्रदाय के वृद्धों द्वारा जो वाक्य मन्त्ररूप से व्यवहृत हों, उन्हीं को 'मन्त्र' संज्ञा दी जा सकती है। 'तत्' शब्द अभिधान का बोधक है। **'चोदक'** शब्द का प्रयोजक अर्थ है। अर्थात् उन अभिधायक या स्मारक वेद-वाक्यों को मन्त्र कहा जाता है जिनमें वैदिकों का मन्त्रत्व-व्यवहार अनादि काल से प्रचलित है। यह प्रायिक लक्षण है। अतएव **"वसन्ताय कपिञ्जलानालभेत"** (यजु० सं० २४।२०) इत्यादि विधायक वेद-वाक्यों में भी वैदिक सम्प्रदायानुसार मन्त्रत्व-व्यवहार होता है। वैदिकों की मन्त्रत्व-प्रसिद्धि ही मन्त्र का मुख्य लक्षण है। यह लक्षण सब प्रकार के मन्त्रों में चला जाता है। वे

मन्त्र ऋक्, साम और यजु तीन प्रकार के होते हैं। **"तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था"** (उन मन्त्रों में वे 'ऋक्' हैं जिनमें अर्थवशात् पाद-व्यवस्था होती है)। **"गीतिषु सामाख्या"** (गीति में साम-मन्त्रों की प्रसिद्धि है)। **"शेषे यजुःशब्दः"** (ऋक् और साम से अवशिष्ट मन्त्र ही यजु हैं)। **ऋक्संहिता** में पठित ऋक्, **यजुःसंहिता** में पठित यजु इत्यादि ऋक् अथवा यजु के लक्षण नहीं हो सकते। **"देवो वः सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण"** (तै० सं० १।१।५।१) यह मन्त्र यजुर्वेद में पठित होने पर भी यजु नहीं है, क्योंकि 'सावित्र्यर्चा' यह ब्राह्मण इस मन्त्र को 'ऋक्' बतलाता है। इसी तरह **"एतत्साम गायन्नास्ते"** यह प्रतिज्ञा करके **"असितमसि, अच्युतमसि, शंसितमसि"** ये तीन यजुर्मन्त्र साम के कहे गये हैं, अतः निर्णय यह हुआ कि छन्दोबद्ध मन्त्र ऋक् हैं, गीतिरूप मन्त्र साम हैं तथा वृत्त एवं गीति से वर्जित मन्त्र यजु हैं। अतएव **वाजसनेयिसहिता** में पठित **'ब्रह्मणे ब्राह्मणमालभेत'** (३०।५) इत्यादि ब्राह्मण में भी वैदिकप्रसिद्धि से ही मन्त्रत्व-व्यवहार होता है। असल में श्रीबुल्के भ्रम से 'ब्राह्मण' के स्थान पर 'गद्य' शब्द का प्रयोग कर गये हैं। जैसा कि वैदिकों में प्रसिद्ध है कि **तैत्तिरीयसंहिता** में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों मिले हुए हैं, यही उसका **कृष्णयजुष्ट्व** है, किन्तु **वाजसनेयिसंहिता** में मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों अलग अलग हैं, इसी लिए उसमें शुक्लयजुष्ट्व है। उसमें भी **"ब्रह्मणे ब्राह्मणम्"** यह अपवाद है। अर्थात् इस अध्याय को छोड़कर अन्यत्र 'ब्राह्मण' का मिश्रण नहीं है। इस अध्याय के ब्राह्मण को, मन्त्र-धर्म से पठित होने के कारण, 'मन्त्र-ब्राह्मण' कहा जाता है।

मतभेद, असमन्वय और कालभेद

वस्तुतः वैदिक साहित्य और वैदिक सिद्धान्तों से अपरिचित होने के कारण श्रीबुल्के को भिन्न-भिन्न मन्त्र-संहिताओं, ब्राह्मणों और सूत्रों में मतभेद, असमन्वय और काल-भेद भासित होते हैं। वैदिक दृष्टि से **"सर्व-वेदान्तप्रत्ययं चोदनाद्यविशेषात्"** (ब्र० सू० ३।३।१) इस ब्रह्मसूत्र एवं इसी प्रकार के पूर्व-मीमांसा के गुणोपसंहार नामक प्रकरण में भिन्न-भिन्न शाखाओं के समान कर्म और उपासनाओं में अनुक्त गुणों एवं अङ्गों का शाखान्तर से संग्रह बतलाया गया है। तभी समन्वित वेदार्थ अनुष्ठेय होता है। सूत्रों के निर्माण का व्यक्तिशः काल निर्धारण हो सकता है; तथापि सिद्धान्ततः काल-निर्धारण नहीं हो सकता; क्योंकि वैदिक-परम्परा में जो सिद्धान्त अनादि सिद्ध हैं, उन्हीं की समय-समय पर आविर्भूत सूत्रों द्वारा अभिव्यक्ति होती है। सभी मन्त्रों और ब्राह्मणों में अनादिता, नित्यता होने के कारण काल-कल्पना सर्वथा असंगत ही है।

सीता-नामों की गणना

शास्त्रों में जो बात एक जगह आ गयी उसका सर्वत्र उल्लेख हो यह आवश्यक नही है। जहाँ वह उल्लिखित नही भी है, वहाँ भी उसके अन्यत्र हुए उल्लेख के साथ समन्वय कर सिद्धान्त का निर्धारण किया जाता है। यही बात मीमांसापद्धति, मिताक्षरा, दायभाग आदि ग्रन्थों में भी मान्य है, अतः अमुक अमुक सूत्रों में सीता नाम नहीं है अथवा अमुक स्थल पर केवल एक बार आया है ये सब कथन अनर्गल प्रलापमात्र हैं।

यह कहा जा चुका है कि वेद नित्य है। वैदिक काल का अन्तिम काल भी कोई नहीं है। वेद में कृषि का वर्णन है, इतने मात्र से ही उसकी नित्यवेदप्रतिपाद्यता सिद्ध हो जाती है।

उत्तरोत्तर विकास का सिद्धान्त निस्सार है

इसी तरह लाङ्गलयोजन और सीतायज्ञ के अतिरिक्त, बीजवपनीय-यज्ञ (बीज बोने के समय), प्रलवन (धान्य काटने के समय), खल-यज्ञ, तन्त्रीयज्ञ (धान्य साफ करने के समय) और पर्ययण आदि के समय **पारस्करगृह्यसूत्र, गोभिलगृह्यसूत्र, काठकगृह्यसूत्र, मानवगृह्यसूत्र** आदि के अनुसार सांवत्सरिक अन्य पर्वों पर भी

सीतादि देवताओं की पूजा होती थी। उनमें भी सीता की ही प्रधानता रहती थी। इससे सीता और उसकी पूजा का महत्त्व और व्यापकता सिद्ध होती है। श्रीबुल्के यद्यपि इसे उत्तरोत्तर विकास का परिणाम मानते हैं; परन्तु वेदादि शास्त्रों की दृष्टि से यह कथन निःसार है।

रामायणीय राम और वैदिक राम

श्रीबुल्के के अनुसार इक्ष्वाकु, अश्वपति, जनक, दशरथ आदि रामायण के पात्रों का वेद में उल्लेख तो मिलता है और वे प्रभावशाली ऐतिहासिक राजा भी थे। उनका परस्पर सम्बन्ध असम्भव तो नहीं, किन्तु इसका निर्देश नहीं मिलता। फिर भी वे इनका परस्पर सम्बन्ध असम्भव नहीं मानते। इसी प्रकार सीता और राम का भी वेदों में उल्लेख यद्यपि है तथापि उपर्युक्त पात्रों से उनका सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि रामायण के रचयिता रामायण की सीता, राम और अन्य पात्रों का वैदिक सीता आदि पात्रों से सम्बन्ध जोड़ते हैं, तो भी वैदिक निर्देशों से ऐसा निष्कर्ष नहीं निकलता। किन्तु वैदिकसंस्कार शून्य और वेदार्थ-निर्णय की पद्धति से अनभिज्ञ होने के कारण श्रीबुल्के इस असंगत निष्कर्ष पर पहुँचे हैं।

पदार्थ-निर्णय में वाक्य-शेषों का महत्त्व

वैदिक पद्धति में संदिग्ध अर्थ का निर्णय वाक्य-शेष और तत्समान तत्सम्बन्धित शास्त्रान्तरों से किया जाता है। **'व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वा', 'राजा स्वाराज्यकामो राजसूयेन यजेत'** इत्यादि स्थलों में 'यव' और 'राजा' शब्द का अर्थ क्या है? इस सम्बन्ध में वैदिक शब्दों द्वारा निर्णय न होने पर भी आर्य-प्रसिद्धि के अनुसार ही उनका 'दीर्घशूक' और 'क्षत्रिय' अर्थ लिया जाता है।

"वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रशातनम्।
मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः॥"

इसी प्रकार उपनिषदों में आकाश, प्राण आदि शब्दों का अर्थ भी वाक्यशेषों के आधार पर किया जाता है। फिर यहाँ तो **रामतापनीय, रामरहस्य** और **सीतोपनिषद्** आदि उपनिषदों में जब राम, सीता आदि पात्रों का सम्बन्ध, स्वरूप और महत्त्व साङ्गोपाङ्ग वर्णित है एवं वेद-व्याख्यानभूत **रामायण, महाभारत, पुराण** और **तन्त्रों** में इन विषयों का परिपूर्ण उपबृंहण विद्यमान है तो भी वैदिक साहित्य में राम-कथा की यथेष्ट सामग्री का अभाव कहना अनभिज्ञता या निकृष्ट नीयत का द्योतक है।

वैदिक साहित्य में 'रामकथा' की सामग्री

वस्तुतः **'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति'** (कठ० उ० १।२।१५), **'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'** (गी० १५।१५), **'तत्तु समन्वयात्'** (ब्र० सू० १।१।४),

"इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥" (ऋ० सं० १।१६४।४६)

इत्यादि वचनों के अनुसार सम्पूर्ण वेदों का महातात्पर्य परात्पर परब्रह्म परमेश्वर में ही है। फिर भी अधिकांश मन्त्र और ब्राह्मणों द्वारा विविध प्रकार के कर्मकाण्ड एवं उपासनाओं का वर्णन किया गया है। मन्त्रों और उपनिषदों में ब्रह्मतत्त्व का सुस्पष्ट रूप से वर्णन है। वह ब्रह्म जैसे निर्गुण, निराकार और निर्विकार है उसी प्रकार सगुण, निराकार, सर्वान्तिर्यामी स्वरूप भी है और वही ब्रह्म अचिन्त्य, अनन्त, कल्याणगुणगणों एवं अचिन्त्य अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य आदि से परिपूर्ण साकाररूप में भी वर्णित है। जो ब्रह्मरूप ईश्वर अनन्त ब्रह्माण्डों का निर्माण कर अनन्तानन्त प्राणियों के लिए अनन्तानन्त देह, इन्द्रिय आदि का निर्माण कर प्रदान करता है वह अपने

लिए भी दिव्य गुणगण-सम्पन्न, सौन्दर्य, माधुर्य आदि से परिपूर्ण श्रीविग्रह का निर्माण कर ही सकता है। जैसे जीव स्वरूपतः निराकार होते हुए भी साकार विग्रह-सम्पन्न होता है वैसे ही ब्रह्म भी निराकार और निर्गुण होने पर भी, दिव्य लीला-शक्ति से, सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रह धारण करता है। जैसे निराकार काष्ठादि में व्यापक अग्नि, संघर्षणादि व्यापार से, दाहक और प्रकाशक विशिष्ट अग्नि-शिखा के रूप में प्रकट होता है उसी प्रकार निराकार और निर्विकार ब्रह्म भी अपनी अचिन्त्य दिव्य लीला-शक्ति के योग से सगुण और साकार सच्चिदानन्दमय परब्रह्म के रूप में प्रकट होता है अथवा जैसे जल हिम के रूप में व्यक्त होता है उसी प्रकार निराकार ब्रह्म साकार ब्रह्म हो जाता है।

"प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥" (यजुःसं०५।२०)

अर्थात् जिन विष्णु के तीन महान् आक्रमणों (पाद-विक्षेपों) के आधारभूत लोकों में सम्पूर्ण भुवन तथा भूतजात अन्तर्भूत हो जाते हैं वे विष्णु उसी प्रकार अपने पराक्रम से पूजित होते हैं जैसे दुर्गम पर्वतों में रहनेवाला सिंह अपने पराक्रम से पूजित होता है। यहाँ **'भीमो मृगः'** इस शब्द से नृसिंहावतार सूचित होता है। **'कुचरः'** से भूमिचारी राम, कृष्ण आदि का अवतार भी सूचित होता है। **'त्रिषु विक्रमणेषु'** के द्वारा वामनावतार का सूचन है। यही बात **"कौ पृथिव्यां चरतीति कुचरः मत्स्यकूर्मादिरूपेण"** कहकर उव्वट ने भी सूचित की है।

"प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥" (यजुःसं० ३१।१९)

प्रजापति (ईश्वर) गर्भ के भीतर विद्यमान होते हैं। वे वस्तुतः अजायमान नित्य-कूटस्थ होने पर भी राम, कृष्ण आदि रूप से बहुधा आविर्भूत होते हैं।

"एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥" (यजुःसं० ३२।४)

यह देव सभी दिशाओं में व्याप्त होकर स्थित है। हे जनो, वह प्रसिद्ध देव पहले भी अनेक रूपों में उत्पन्न हुआ है और वही गर्भ के मध्य में रहता है। वही जात होकर भी पुनः उत्पत्स्यमान होता है। वही अपनी अचिन्त्य शक्ति से प्रत्येक पदार्थों में व्याप्त होकर सर्वतोमुख रहता है।

"त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्।" (ऋ०सं० १।२२।१८)

व्यापक अदाभ्य अर्थात् किसी के द्वारा जिसका हिंसन असम्भव है वही विष्णु गोप अर्थात् सबका रक्षक है। वह पृथिवी आदि लोकों को अपने तीन पदों से अधिष्ठित करता है। उसी से अग्निहोत्रादि धर्मों का धारण होता है। इस मन्त्र से भी व्यापक सर्वरक्षक परमेश्वर का त्रिविक्रमावतार सिद्ध होता है।

"स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता॥" (ऋ० सं० १।३०।५)

इस मन्त्र से राधापति कृष्ण और राधा का अवतार रूप से अस्तित्व प्रमाणित होता है। राधा शब्द का 'धन' भी अर्थ है। परन्तु 'राधा' का वैभव होने से ही धन 'राधा' पदवाच्य होता है और वही राधातत्त्व परमेश्वर से स्तुत्य होने से वाणी द्वारा उह्यमान होता है। उसी की प्रिय सत्यरूपा लक्ष्मी विभूति है।

"ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥" (ऋ० सं० १।१५४।६)

इस मन्त्र का सायणोक्त अर्थ यह है कि हे पत्नी एवं यजमान ! वां—तुम दोनों के जाने के लिए गन्तव्यत्वेन प्रसिद्ध उन सुखमय निवासयोग्य स्थानों की हम ऋत्विक् लोग कामना करते हैं। तदर्थ विष्णु की कामना करते हैं जिनमें अत्यन्त उन्नत गावः—रश्मियाँ रहती हैं और अयासः—अतिविस्तृत हैं अथवा अत्यन्त प्रकाशयुक्त हैं। जहाँ पर बड़े-बड़े महात्माओं द्वारा स्तुत्य भगवान् का दिव्य धाम स्वमहिमा से ही भासमान होता है। यही मन्त्र निम्न निर्दिष्ट रीति से गोलोकपरक भी माना जाता है। वर्षणशील गोपरूप उरुगाय विष्णु का परम पद भासमान होता है। वहीं बड़े शृङ्गवाली गमनशील बड़ी बड़ी गौएँ हैं। वहीं बहुत से शोभन वास्तु—दिव्य धाम हैं।

"विष्णुर्गोपाः परमं पाति पाथः प्रिया धामान्यमृता दधानः।
अग्निष्टा विश्वा भुवनानि वेद महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥" (ऋ० सं० ३।५५।१०)

सायण के अनुसार इस मन्त्र का यह अर्थ है—सबके पालक प्रियतम क्षयरहित तेज को धारण करनेवाले अग्निदेव परम स्थान की रक्षा करते हैं अथवा लोक-धारक अमृतों—उदकों को धारण करनेवाले उदकस्थान—अन्तरिक्ष की रक्षा करते हैं। वे अग्निदेव उन सब भुवनों को जानते हैं। वे ही देवों के मुख्य असुरत्व—महान् प्राबल्य एवं ऐश्वर्य का प्रातिनिध्य करते हैं।

विनियोग के अनुसार उक्त अर्थ होने पर भी स्वाभाविकरूप से गोपालरूप विष्णु की महिमा का वर्णन भी इस मन्त्र से स्पष्टरूपसे विदित होता है। वे ही विष्णु प्रिय अमृत तेज को धारण करते हैं। वे ही सब भुवनों को जानते हैं। सर्वज्ञता ही उनका महान् ऐश्वर्य है। **"इन्द्रं मित्रं वरुणं"** (ऋ० सं० १।१६४।४६) मन्त्र के अनुसार इन्द्र आदि विष्णु ही हैं। **"या ते धामान्युश्मसि"** यही मन्त्र शुक्लयजुर्वेद (६।३) में भी है। वहाँ यह मन्त्र विनियोग के अनुसार यूप का अवट (गर्त) में निक्षेप करते हुए पढ़ा जाता है। मन्त्र का आशय यह है—हे यूप ! तुम्हारे जाने के लिए हम उन दिव्य धामों की कामना करते हैं जिन स्थानों में गावः रश्मियाँ जाती हैं। यहाँ भी बड़ी बड़ी सींगवाली गायों से युक्त गोलोकपरक अर्थ संगत होता है। आदित्य-मण्डल वर्णन के पक्ष में प्रचुर दीप्ति से युक्त 'रश्मि' ही अर्थ है। वह व्यापक विष्णु का परक उत्कृष्ट पद वहीं शोभित होता है। उरु बहुत गान जिनका होता है वह विष्णु हैं। यह भी प्रस्तुत मन्त्र का आशय मान्य होता है कि बहुत महात्माओं द्वारा जिनकी स्तुति होती है उनके दिव्य स्थान की प्राप्ति के लिए हे यूप ! तुम इस अवट में स्थिर रहो।

"अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥" (अथ० सं० १०।२।३१)

इसमें विष्णु के अवतार श्रीराम एवं उनकी अयोध्यापुरी का वर्णन है। मन्त्र का आशय यों है—

आठ चक्रोंवाली, नव द्वारोंवाली देवताओं की पुरी है। उसका नाम है अयोध्या। उसमें ज्योतिर्मय कोश अर्थात् निधान है। उसी में परमानन्दमय राम ब्रह्मरूप से स्वर्ग-(निरतिशय सुख)-स्थानीय हैं। वह ज्योतियों के ज्योति हैं।

प्रायः इसी आनुपूर्वी का मन्त्र **तैत्तिरीय आरण्यक में** भी मिलता है—

"अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतः।" (तै० आ० १।२।७।३)

दिव्य आठ प्रकृतियाँ ही उसके आठ चक्र हैं। उसके आठों दिशाओं एवं ऊर्ध्व की ओर उसके नव द्वार हैं।

आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर ही आठ चक्र और नव द्वारवाला पुर है। इसमें ज्योतिर्मय विज्ञानमय कोश के भीतर स्वप्रकाश शुद्ध ब्रह्मरूप राम विराजमान हैं। ऊपर के मन्त्र में भी सर्वकारण ब्रह्म एवं उसके पूर्व की चर्चा है।

"ऊर्ध्वोऽनु सृष्टास्तिर्यङ् नु सृष्टाः सर्वा दिशः पुरुष आ बभूवां।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥" (अथ० सं० १०।२।२८)

ऊर्ध्व, तिर्यक् तथा सभी दिशाओं को जिसने रचा है और जो सर्वत्र भरपूर है उस ब्रह्म के पुर को, जिसके सम्बन्ध से ही ब्रह्मपुर में निवास तथा शयन करने के कारण पुरुष संज्ञा प्राप्त होती है, जो जानता है वह पुरुषार्थ का भागी होता है।

"यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः॥" (अथ० सं १०।२।२९)

जो अमृत से आवृत उस ब्रह्मपुर को जानता है ब्रह्म एवं ब्राह्म-शक्तियाँ अथवा वेद एवं वैदिक देवता उसे चक्षु, ज्ञान, प्राण, आयु और प्रजा (अविच्छिन्न सन्तति) प्रदान करते हैं।

इसी आशय का तैत्तिरीय आरण्यक में भी मन्त्र मिलता है—

"यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च आयुः कीर्ति प्रजां ददुः॥" (तै० आ० १।२७।३)

"न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुषः उच्यते॥" (अथ० सं० १०।२।३०)

ब्रह्मपुर अयोध्या को जो जानता है उसको भी चक्षु एवं ज्ञान विज्ञान नहीं त्यागते हैं। अति वृद्धावस्था के पूर्व प्राण उसको नहीं त्यागते। जिसके कारण ब्रह्म पुरुष हो जाता है। उस पुर को जाननेवाला चक्षुष्यान्, दीर्घायु एवं प्रजावान् होता है। यह अवान्तर फल-वर्णन विद्याप्रशंसार्थ है। मुख्य फल तो ब्रह्मप्राप्ति ही है, क्योंकि

"सोऽश्नुते सर्वान्कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति॥" (तै० ब्रा० २।१।१) ऐसी श्रुति है।

"सावरणं ब्रह्माण्डं भित्वा····महदादिसमष्ट्याकारमण्डं तपनीयमयं तप्तजाम्बूनदप्रभमुद्यत्कोटिदिवाकराभं····महाभूतैः पञ्चभिरावृतं महदहङ्कृतितमोभिश्च मूलप्रकृत्या परिवेष्टितम्···· नारायणक्रीड़ाकन्दुकम्····अनन्तकोटिब्रह्माण्डानि सावरणानि प्रज्वलन्ति। चतुर्मुखपञ्चमुखादिसहस्रावधिमुखान्तैर्विधातृभिरधिष्ठितानि जलयन्त्रस्थघटमालिकाजालवन्महाविष्णोरेकैकरोमकूपान्तरेषु तान्यनन्तानन्तानि ब्रह्माण्डानि विराजन्ति। सर्वं ब्रह्मात्मकमिति बुद्ध्वा तीर्त्वा चानन्तानन्ततमःसागरमुत्तीर्य मूलाविद्यापुरं पश्यति। विविधविचित्रानन्तमहामायाविशेषैः परिवेष्टितानन्तानन्तमहामायाशक्तिसमष्ट्याकारामनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालैरलङ्कृतामनन्तानन्तमहामायाविलासानां परमाधिष्ठानविशेषाकारां शश्वदमितानन्तानन्दाचलोपरि विहारिणीं मूलप्रकृतिजननीं महामायां पश्यति। तदाराधनप्रभावात्ततोऽपि परं गत्वा महाविराट्पदं "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोहस्त उत विश्वतस्पात्" इत्यादिलक्षणं मनोवाचामगोचरं दृष्ट्वा ततोऽखण्डपरिपूर्णपरमानन्दलक्षणपरब्रह्मणः समस्तस्वरूपविरोधकारिण्यपरिच्छिन्नतिरस्करिण्याकारां वैष्णवीं महायोगमायां पश्यति। तस्याः परमतिकौतुकमत्याश्चर्यसागरानन्दलक्षणममृतम्। तत्प्रतिबिम्बितनित्यवैकुण्ठप्रतिवैकुण्ठमिव विभाति। ततो पादविभूतिवैकुण्ठपुरमायाति। अत्याश्चर्यानन्तविभूति-

समष्ट्याकारमानन्दरसप्रवाहैरलङ्कृतमभितस्तरङ्गिण्याः प्रवाहैरतिमङ्गलं ब्रह्मतेजोविशेषाकारैरनन्तब्रह्मवनैरभितस्ततं नित्यमुक्तैरभिव्याप्तमनन्तचिन्मयप्रासादजालसङ्कुलतत्पादविभूतिवैकुण्ठं भाति। तन्मध्ये चिदानन्दाचलो विभाति। तदुपरि ज्वलति निरतिशयानन्ददिव्यतेजोराशिः। तदभ्यन्तरे परमानन्दविमानं तदन्तश्चिन्मयासनम्, तत्पद्मकर्णिकायां निरतिशयदिव्यतेजोराश्यन्तरसमासीनं नारायणं पश्यति। ततोऽविद्याण्डं भित्त्वा विद्यापादमुल्लङ्घ्य विद्याविद्ययोः सन्धौ विष्वक्सेनवैकुण्ठपुरमायाति अनन्तदिव्यतेजोज्वालाजालैरमितोदनकं प्रज्वलन्तमनन्तबोधानन्दव्यूहैरभितस्ततं शुद्धबोधविमानावलिभिः विराजितं परमकौतुकमाभाति। एवं बहूनि दिव्यानि धामान्यतिक्रम्य महायन्त्रं प्रज्वलति। तत्र षट्कोणचक्रे षड्दलपद्मं तत्कर्णिकायां प्रणवः, प्रणवमध्ये नारायणबीजम्।····दलेषु रामकृष्णषडक्षरमन्त्रौ।"

त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोनिषदः सप्तमाध्यायस्य सारसङ्कलनम्।

उपर्युक्त **त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्** के प्रघट्टक के अनुसार साधक मायामय प्रपञ्च से विरक्त होकर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के अधिष्ठान भगवान् की आराधना करता है। तमस्तोम को पारकर, मूलाविद्यापुर का अनुभव करके परमतेजोमय अनन्तानन्तसूर्यों की दिव्यद्युति से जगमगाते भगवद्धाम का दर्शन करता है। तदनन्तर एक से एक उत्तरोत्तर परम प्रकाश परमानन्द परम अचिन्त्य सारमय धर्मों का अनुभव करता हुआ वह महायन्त्र और उसमें पद्म तथा पद्म में प्रणव तथा राम, कृष्ण आदि भगवत्स्वरूपों के दिव्य मन्त्रों के दर्शन करता है।

भगवान् की महामहिमा ही उनकी मूर्ति है, अथवा उनसे अभिन्न उनकी महाशक्ति ही उनकी मूर्ति है। उसमें भगवान् का सदा सन्निधान रहता है। उसी में उनका आवाहन, प्रतिष्ठापन एवं सन्निधापन, सन्निरोधन आदि सम्पादित किये जाते हैं। अज्ञान के कारण, दौर्मनस्य के कारण एवं साधन-वैकल्य के कारण पूजा में जिस अपूर्णता की सम्भावना होती है, सम्मुखीकरण द्वारा उसी का निराकरण किया जाता है। भगवान् वाणी, मन, चक्षु, श्रोत्र आदि के अविषय होने से भक्त के लिए अत्यन्त दूर होते हैं। उन्हीं अमितद्युति भगवान् का उनके तेजःपञ्जर से सर्वतोवेष्टन करना ही अवगुण्ठनी मुद्रा से उनका अवगुण्ठन है। सब देवता जिसके दर्शन की कामना करते हैं, उसी मूर्ति में उनका स्वागत किया जाता है। चित्सार, चिन्तामणिमय मन्दिर में अव्याकृत ब्रह्मात्मक महासिंहासन की भावना करना ही भगवान् के लिए आसन-समर्पण करना है। अपने में सर्वथा भगवदधीनत्व की भावना करना ही उनको नमस्कार करना है। जिनके भक्तिलेश से परमानन्द की प्राप्ति होती है उनकी स्वाभाविक पावनता का चिन्तन करना ही उनको पाद्य-समर्पण करना है। तापत्रय का हनन करनेवाले उनके परमानन्द स्वरूप की भावना ही उनको अर्घ्य-प्रदान है। सकल वेदादि सत् शास्त्रों के महातात्पर्यगोचर देवाधिदेव भगवान् की भावना अशुद्धों की भी शुद्धि का हेतु है—यही आचमन है, क्योंकि इसके स्मरणमात्र से उच्छिष्ट एवं अशुचि प्राणी भी शुद्ध हो जाता है। उनके सर्वशोधक मङ्गलमय स्वरूप का चिन्तन करना ही उन्हें आचमन-अर्पण करना है। सर्वकालातीत परिपूर्ण सुखात्मा भगवान् ही सर्वसौगन्ध्य एवं सुस्नेहसार-सर्वस्व के अधिष्ठान हैं ऐसी भावना ही उन्हें उद्वर्तन एवं अभ्यङ्ग का समर्पण करना है। दुग्ध-दधि-घृत-मधु-शर्करामय पञ्चामृतों एवं गङ्गादि तीर्थों में जो भी स्निग्धता और पावनता है, उसका भगवत्तत्त्वरूप में अनुसन्धान करना ही पञ्चामृतादि से स्नान कराना है। भगवान् के परमानन्दबोधसिन्धु में निमग्न रहने की भावना करना ही भगवान् का स्नपन है। भगवान् के मङ्गलमय श्रीविग्रह के तेजोमय परम प्रकाश से भगवान् का स्वरूप प्रावृत है ऐसी भावना करना ही भगवान् को वस्त्र-समर्पण करना है। निर्दृश्य निरावरणस्वरूप का अनुसन्धान करना ही उनके लिए चिन्मय सुवर्ण-वर्ण पीताम्बर का अर्पण है, अथवा निरावरण ब्रह्मस्वरूप को आवरण करनेवाला मायामय आवरण ही भगवान् को कनक-कपिश पिशङ्गवस्त्र का अर्पण है। त्रिवृत्कृत त्रिगुण के अधिष्ठान भगवान् ही हैं, यह भावना करना उनको यज्ञोपवीत अर्पण करना है। भगवान् सर्वगन्ध हैं, सम्पूर्ण दिशाओं में विकीर्ण यशःसौरभ से भगवान् समन्वित हैं, ऐसी भावना करना ही उन्हें गन्ध-समर्पण है। भगवान् स्वभाव से ही परम सुन्दर हैं तथा

नाना शक्तियों के आश्रय हैं। उनके श्रीअङ्ग में स्वाभाविक विचित्र सौन्दर्य ही नाना भूषण हैं ऐसी भावना करना ही उनके लिए नाना भूषणों का समर्पण है। सुन्दर मनवाले भक्तियुक्त भक्तों के विविध भावमय सौगन्ध्यों से युक्त शोभन मन का ही भगवच्चरणों में अर्पण सुमनों (पुष्पों) का अर्पण है, अथवा तुरीयवनसम्भूत नानागुणों से मनोहर अनन्तसौरभ पुष्पों का अर्पण है। भगवद्भावोद्दीप्त चिदग्नि में सर्वाभीष्ट कामों को प्रज्वलित करना ही उन्हें धूप-प्रदान है। जो आन्तर और बाह्य विविध ज्योतियों के भी ज्योति हैं उनके अनिर्वाच्य अज्ञानमय तम का अपोहन ही उनके लिए दीपदान है। चित्तपात्र में सत् सौख्य का अनुसन्धान ही नैवेद्य-निवेदन है। परमताप-शमनहेतुभूत भगवान् के अखण्डानन्द स्वरूप का अनुसन्धान करना ही शीतल गङ्गामृत-समर्पण है। स्वीय सुरुचि सुरागादि भागों को भगवदात्मसात् कर देने की भावना ही ताम्बूल-समर्पण है। भगवान् में ही चतुर्वर्ग परिकल्पित करना फलार्पण है। सूर्य, चन्द्र, मन, बुद्धि आदि सर्वप्रकाशों के प्रकाशक स्वयंप्रकाश भगवान् ही हैं ऐसी भावना करना ही नीराजन-समर्पण करना है। अपने सर्वस्व को तथा स्वयं अपने को भगवान् के ही अर्पण कर देना दक्षिणा-समर्पण है।

श्रीबुल्के की रामकथा में यह कथन कि "ऋग्वेद में 'सीता' नाम का भी एक बार उल्लेख हुआ है, लेकिन इस सीता का रामायण के उपर्युक्त अन्य ऐतिहासिक पात्रों से सम्बन्ध असंभव ही हैं, क्योंकि उसका व्यक्तित्व ऐतिहासिक न होकर सीता अर्थात् लाङ्गल-पद्धति के मानवीकरण का परिणाम है। इस सीता का उल्लेख वैदिक काल से लेकर बराबर होता रहा है। इक्ष्वाकु, दशरथ तथा राम का **ऋग्वेद** में एक एक बार उल्लेख हुआ है और इनका पारस्परिक सम्बन्ध असम्भव नहीं है, परन्तु इनका कोई निर्देश नहीं मिलता। आगे चलकर इनका वैदिक साहित्य में और कहीं उल्लेख नहीं हुआ है।" (पृ० २४,२५) संगत नहीं है, क्योंकि **सीतोपनिषद्** तथा **रामतापनीय** आदि उपनिषदों में उन वैदिक पदार्थों का विस्तृत वर्णन है ही। सीता शब्द लाङ्गल-पद्धति का वाचक होता हुआ भी सर्वशक्तिमयी सर्वाधिष्ठात्री सीता की कृष्यधिष्ठात्री शक्ति के बोध में पर्यवसित होता हुआ सर्वाधिष्ठात्री महाशक्ति का भी बोधक है ही। वही चयन महायज्ञ के क्षेत्र की रेखारूप सीताओं की भी अधिष्ठात्री है। इसी दृष्टि से उसी महाशक्ति भगवती का वर्णन ब्रह्मविद्या, त्रयी तथा वार्त्ता विद्या के रूप में भी भारतीय साहित्यों में मिलता है—

> **'मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-**
> **र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवी ॥"** (दु० स० ४।९)

सर्वदोष-रहित मोक्षार्थी मुनियों द्वारा आप ब्रह्मविद्यारूप से उपासित होती हैं।

> **"देवी त्रयी भगवती भवभावनाय।"** (दु० स० ४।१०)

भव-भावन के लिए आपकी ही त्रयी (**वेदत्रयी**) एवं तत्प्रोक्त यज्ञादिरूप में अभिव्यक्ति होती है।

> **"वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री।"** (दु० स० ४।१०)

जगत् की बुभुक्षा, पिपासा, दारिद्रच आदि विपत्तियों का हनन करनेवाली आप ही वार्ता—कृषि, गोरक्ष्य, वाणिज्य आदि विद्या रूप में प्रकट होती हैं।

यह पहले ही दिखलाया जा चुका है कि वही भगवती रक्तदन्तिका, शाकम्भरी आदिरूप से पुष्प, पल्लव, मूल और फलों से आढ्य तथा काम्य अनन्त रसों से युक्त शाकसञ्चय को धारण कर प्राणियों के क्षुधा-तृष्णा-मृत्युजनित भयों का हनन करती हैं। अतः वही महाशक्ति जैसे ऐश्वर्याधिष्ठात्री महालक्ष्मी, ब्रह्मविद्या, त्रयी, वार्ता आदि विद्याओं के रूप में अभिव्यक्त होती हैं वैसे ही लाङ्गल-पद्धति तथा चयन और क्षेत्र की रेखा में भी आविर्भूत होती हैं।

बुल्के साहब का यह कथन भी सर्वथा अशुद्ध है कि **"वाल्मीकिरामायण** पर भी सीता (कृषि की अधिष्ठत्री देवी) का प्रभाव पड़ा है। यद्यपि रामायण में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है, फिर भी अयोनिजा सीता के जन्म और तिरोधान के जो वृत्तान्त मिलते हैं वे सम्भवतः इस वैदिक सीता के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं।" (पृ० २३), क्योंकि जिस **वाल्मीकिरामायण** की चर्चा आप कर रहे हैं उसी रामायण में यह भी स्पष्ट उल्लेख है कि महर्षि वाल्मीकि ने लव और कुश को वेद का अध्ययन करा कर वेदार्थ के उपबृंहण के लिए ही रामायण ग्रन्थ पढ़ाया—

"स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।।" (वा० रा० १।४।६)

नागेश के अनुसार तत् तत् अर्थों का तात्पर्य-ग्रहण ही वेद का उपबृंहण है। उसी प्रयोजन के लिए श्रुति-तात्पर्यविषयीभूत अर्थ के प्रतिपादकरूप से ही महर्षि ने वेदार्थ परिनिष्ठित लव और कुश को रामायण ग्रन्थ पढ़ाया।

इतर भारतीय संस्कृति में भी इतिहास और पुराण के द्वारा वेदार्थ का उपबृंहण या स्पष्टीकरण करना कहा गया है। ऐसी स्थिति में यह भली-भाँति सिद्ध हो जाता है कि वैदिक सीता से रामायण की सीता का वृत्तान्त प्रभावित नहीं, किन्तु स्पष्टतः वैदिक सीता का ही रामायण में स्पष्टीकरण हुआ है। वैदिक महर्षि वाल्मीकि के शब्दों में भी हलाग्र से सीता का आविर्भाव पहले बताया ही जा चुका है।

श्रीबुल्के के अनुसार "भार्गवेय राम, औतपस्विनि राम तथा क्रातुजातेय राम इन तीनों रामों का परिचय ब्राह्मण ग्रन्थों से मिलता है। हो सकता है कि ये ऐतिहासिक भी हों, किन्तु रामायण के राम से इनका सम्बन्ध सम्भव प्रतीत नहीं होता।" किन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि रामायण के निर्विशेषण राम के ही किसी गुण के संयोग से किन्हीं अन्य लोगों में भी 'राम' शब्द का प्रयोग सम्भव हो सकता है, यह सच है। जैसे **तैत्तिरीयारण्यक** में 'राम' शब्द रमणीय पुत्र के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

"संवत्सरं न मांसमश्नीयात्। न रामामुपेयात्। न मृण्मयेन पिबेत्। नास्य राम उच्छिष्टं पिबेत्। तेज एव तत् संश्यति।" (तै० आ० ५।८।१३)

वह एक वर्ष तक मांस का भक्षण न करे। स्त्री का भी संग न करे। मिट्टी के पात्र से पानी न पीये। उसका पुत्र उच्छिष्ट न पीये। इस प्रकार उस यजमान का तेज पुञ्जीभूत होता है।

फिर भी केवल 'पुत्र' राम शब्द का अर्थ नहीं होता। रमणीय पुत्र या राम जैसा महत्त्वपूर्ण पितृभक्त धर्मनिष्ठ पुत्र ही 'राम' शब्द से यहाँ विवक्षित है। जैसे गौणी वृत्ति से सिंह-भिन्न देवदत्तादि मनुष्य में भी 'सिंह' शब्द का प्रयोग होता है उसी तरह रमणीयता गुण के सम्बन्ध से या राम के अन्यान्य उत्तम गुणों के योग से पुत्र में भी 'राम' शब्द का प्रयोग होता है।

राजाओं को भी आनन्दरामायण के अनुसार राम ने अपना नाम प्रदान किया है।

पाठसम्बन्धी विवेचना

"प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवस्तु।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्।।" (ऋ० सं० १०।९३।१४)

मैंने दुःशीम पृथवान, वेन और राम के लिए यह सूक्त गाया है। इन्होंने पाँच सौ घोड़े अथवा रथ जुतवाये जिससे मुझपर उनका अनुग्रह चारों ओर फैल गया।

वस्तुतः श्रीबुल्के की पुस्तक 'रामकथा' में ऊपर वर्णित मन्त्र अशुद्ध छपा है। शुद्ध मन्त्र यों है—

"प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्॥"

"ये देवा पञ्च शता शतानि रथान् युक्त्वाय अश्वैर्युक्त्वा अस्मयु अस्मत्कामाः सन्तः पथा यज्ञमार्गेण गच्छन्ति तेषाम् एषां देवानां विश्रावि देवानां लोके वा विशेषेण श्रावकगुणयुक्तं तत्स्तोत्रं दुःशीमे तन्नाम्नि पृथवाने पृथवानः पृथिः तस्मिन्वेने च असुरे बलवति रामे चैतेषु राजसु प्रवोचम् प्रब्रवीमि प्रख्यापयामि इत्यर्थः। मघवत्सु अन्येषु धनवत्सु च प्रख्यापयामीत्यर्थः।"

इस सूक्त में पञ्चदश ऋचाएँ हैं। इनके द्वारा अङ्गिरा ऋषि ऋत्विग्रूप से वृत्त होकर देवताओं की स्तुति करते हैं। जो देवगण पाँच सौ रथों को घोड़ों से युक्त करके मेरी कामना से अर्थात् मुझसे स्तुत्य होने की कामना से यज्ञ-मार्ग से आते हैं उन देवताओं के लोक में अथवा उन देवताओं के श्रावकगुण-युक्त स्तोत्र का मैं दुःशीम पृथवान्—बलवान् वेन तथा राम इन राजाओं में प्रवचन या प्रख्यापन करता हूं। इसी तरह अन्य मघवानों अर्थात् धनवानों में मैं उस स्तोत्र का प्रख्यापन करता हूं।

श्रीबुल्के कहते हैं —ऋग्वेद में इक्ष्वाकु का केवल एक बार वर्णन हुआ है, इससे इतना ही प्रतीत होता है कि वे कोई राजा थे :—

"यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान् माराय्येधते" जिसकी सेवा में धनवान् और प्रतापवान् इक्ष्वाकु की वृद्धि होती है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है :—

"यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान् मराय्येधते। दिवोव पञ्च कृष्टयः।" (ऋ० सं० १०।६०।४)

मन्त्र का सायणानुसारी अर्थ यह है—

जिस जनपद का इक्ष्वाकु राजा व्रत में अर्थात् रक्षणरूप व्रत या कर्म में वृद्धि को प्राप्त होता है, वह राजा रेवान् अर्थात् रयिवान्—धनवान् है और मरायी शत्रुओं का मारक है। इन दो विशेषणों से मालूम होता है कि वह जनता को धन-धन्य से समृद्ध बनाता है और परराष्ट्रकृत सब उपद्रवों का निराकरण करता है। उसके राज्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण एवं पञ्चम निषाद—सभी लोग द्युलोक में रहनेवाले सङ्कल्पसिद्ध देवताओं के समान सुखी रहते हैं।

"ब्राह्मण ग्रन्थों तथा प्राचीन उपनिषदों में अश्वपति और जनक का पहले पहल उल्लेख हुआ है। अश्वपति का रामायण के पात्रों से कोई सम्बन्ध निर्दिष्ट नहीं हुआ है। इतना ही विदित होता है कि वे ऐतिहासिक राजा थे जो सम्भवतः जनक के समकालीन थे। ब्राह्मण ग्रन्थों के जनक एवं रामायणीय जनक की अभिन्नता की समस्या का निर्णय असम्भव प्रतीत होता है।"

परन्तु यह कथन संगत नहीं। जब सिद्धान्ततः मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं और ऋग्वेद में दशरथ का वर्णन है ही इधर **रामायण** में भी, जो कि वेद का ही विस्तृत व्याख्यान है, दशरथ और अश्वपति का सम्बन्ध है ही फिर यह क्यों न मान लिया जाय कि महाराजा दशरथ की पत्नी कैकेयी महाराज केकयाधिपति अश्वपति की ही पुत्री हैं तथा वही भरत की माता और राम की विमाता भी हैं।

संदिग्ध अर्थ का निर्णय असन्दिग्ध प्रमाणों से होना उचित है, अतएव श्रीबुल्के का यह कहना भी असंगत है कि "**रामायण** की सीता के पिता जनक का प्रसिद्ध वैदिक जनक के साथ सम्बन्ध तो जुड़ता है, यह स्पष्ट भी

है और स्वाभाविक भी है, लेकिन इस अभिन्नता के लिए वैदिक साहित्य से कोई प्रमाण उद्धृत नहीं किया जा सकता, क्योंकि जनक के सारे वृत्तान्त में रामकथा का कोई सङ्केत विद्यमान नहीं है।"

क्योंकि पूर्वोक्त युक्ति से यह तो स्पष्ट ही है कि जनक एवं विदेह कुल हैं। उनमें अनेक जनक एवं वैदेह उत्पन्न हुए हैं। विशेष वर्णन के आधार पर सामान्य का निर्णय किया जाना स्वाभाविक ही है। अतः सामान्यरूप से प्रसिद्ध वैदिक जनक का विशेषरूप रामायण के वर्णन से निश्चित होना उचित ही है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि रामायण, महाभारत तथा पुराणों का असाधारण सम्बन्ध है। **रामायण** आदि में वैदिक धर्म एवं वैदिक संस्कृति का ही वर्णन है। ये सभी ग्रन्थ वेद की प्रशंसा करते हैं और वेद को ही अपना मूल बतलाते हैं। वेदों में भी **रामायण** आदि से सम्बन्धित व्यक्तियों एवं घटनाओं का भी वर्णन है ही। इसके अतिरिक्त **रामायण, महाभारत** तथा **पुराणों** के रचयिता भी साधारण व्यक्ति नहीं हैं, किन्तु वे सर्वज्ञकल्प महर्षिवृन्द हैं। वे जितना वेद और वेदार्थ जानते थे, उतना भारतीय वैदिक विद्वान् भी नहीं जान सकते, फिर विदेशी विद्वानों को, जिनके आचार-विचार तक वैदिकविधानों के अनुकूल नहीं हैं एवं जिनका वेदाध्ययनाधिकार भी नहीं है, वेद तथा वेदार्थ-ज्ञान कितना हो सकता है!

इसके अतिरिक्त वेद की बहुत सी शाखाएँ कलिकाल में लुप्त भी हो जाती हैं। वाल्मीकि और व्यास आदि के समय में वेद की सभी शाखाएँ उपलब्ध थीं। महाभाष्यकार पतञ्जलि के समय में भी, आज की अपेक्षा अधिक शाखाएँ उपलब्ध थीं, क्योंकि **महाभाष्य** एवं **पुराणों** के अनुसार वेदों की ग्यारह सौ इकतीस (११३१) शाखाएँ प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक शाखा की मन्त्रसंहिता, ब्राह्मण एवं उपनिषदें पृथक्-पृथक् होती हैं। अर्वाचीन देशी या विदेशी कोई भी विद्वान्, जिनके सामने यथाकथञ्चित् ९ या १० शाखाएँ मिलती हैं। फिर वे कैसे कह सकते हैं कि वैदिक जनक या अश्वपति का सम्बन्ध **रामायण** के पात्रों के साथ नहीं है या रामकथा का वेदों में अभाव है।

इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान देने योग्य है कि लौकिक या वैदिक किसी भी ग्रन्थ में किसी के भी जीवन का समग्र वृत्तान्त नहीं मिल सकता, किन्तु कतिपय ही घटनाओं का वर्णन मिल सकता है। **वाल्मीकिरामायण** में भी तो राम के जीवन का पूरा वृत्तान्त कहाँ है। भगवान् राम ने ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य किया। ग्यारह हजार वर्षों में केवल चालीस वर्षों की ही कुछ ही घटनाओं का वर्णन है। पुराणानुसार तो शतकोटि श्लोकों में रामचरित का वर्णन है, पर आज वह भी कहाँ उपलब्ध है?

> "चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
> एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥" (पद्मपु० ५।१।१४)

अर्थात् राघवेन्द्र राम के चरित्र शतकोटि श्लोकों में विस्तृत हैं, उनका एक-एक अक्षर महापातकों को नष्ट करने की क्षमता रखता है।

इसी तरह यह कथन भी असंगत है कि "वैदिक काल में **रामायण** की रचना हुई थी अथवा वैदिक काल में राम-कथा प्रसिद्ध हो चुकी थी। इसका विस्तृत निर्देश वैदिक साहित्य में कहीं नहीं पाया जाता" क्योंकि वैदिक काल कोई काल नहीं है और न ही कभी वैदिक साहित्य की रचना हुई है।

"पूर्वे पूर्वेभ्यो वच एतदूचुः" (तै० ब्रा० ३।१२।९२), **"वाचा विरूपनित्यया"** (ऋ० सं० ८।७५।६) इत्यादि के अनुसार वेद अनादि एवं नित्य हैं, उनकी कभी रचना नहीं होती। ईश्वर ही उनके पठन-पाठनरूप सम्प्रदाय का प्रवर्तन करता है। प्रजापति, अग्नि, वसु, आदित्य आदि विभिन्न मन्त्रद्रष्टा नित्यसिद्ध वेदसूक्तों का दर्शनमात्र करते हैं, निर्माण नहीं। "ऋषिर्दर्शनात्" (नि० २. ३. २) इस **निरुक्त**-वचन से तो यही सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में सभी काल वेद-काल हैं। व्यास के **पुराणों** एवं **ब्रह्मसूत्रों** में भी **"अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा**

स्वयम्भुवा" (म० भा० १२।२३२।२५),"**अत एव च नित्यत्वम्**" (ब्र० सू० १।३।२९), "**शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्**" (ब्र० सू० १।३।२८) आदि से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेद-वाणी अनादि एवं अनन्त है। उसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होता। हाँ, सम्प्रदाय-प्रवर्तन में उत्पत्ति और सम्प्रदाय-लोप में विनाश का व्यवहार होता है।

वेदों में नदी, पर्वत, राजा आदि अनित्य अर्थ मानने पर अनित्य अर्थ से अनित्य शब्द का सम्बन्ध मानना पड़ेगा। अतः शब्द और अर्थ का औत्पत्तिक स्वाभाविक नित्य सम्बन्ध मानने में विरोध होगा। इस पूर्वपक्ष का यह समाधान किया है कि शब्द से अर्थ की सृष्टि होती है, यह बात प्रत्यक्ष अर्थात् श्रुति से और अनुमान अर्थात् स्मृति से सिद्ध है। तथा च, नित्य शब्दों से अनित्य व्यक्तियों की उत्पत्ति मानने पर कोई विरोध नहीं होगा, क्योंकि व्यक्तियों के अनित्य होने पर भी जाति नित्य है। अतः नित्य शब्द का और नित्य जाति का नित्य सम्बन्ध सिद्ध ही है। जैसे न्यायाधीश आदि पदों के वाचक तथा इन्द्र आदि शब्द व्यक्ति के वाचक नहीं क्योंकि न्यायाधीश आदि पदों पर जो भी व्यक्ति आयेंगे वहीं न्यायाधीश तथा इन्द्र आदि कहलावेंगे। अतएव वेदों की नित्यता सिद्ध है।

विष्णु-सहस्रनाम के 'रामो विरामो विरतः' में राम शब्द आता है। **वाल्मीकि रामायण** में भी कहा गया है कि उदीर्ण रावण के बध की कामनावाले देवताओं की प्रार्थना से महातेजा विष्णु ही रामचन्द्र के रूप में प्रकट हुए—

"स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥"(वा० रा० २।१।७)

इस दृष्टि से वेदों में आया हुआ विष्णु का नाम भी राम का ही नाम है। विष्णु की सब कथाएँ राम की कथाएँ हैं, अतः वेदों में राम की विशिष्ट कथाओं का पर्याप्त वर्णन है। ऐसी स्थिति में रामकथा-सम्बन्धी सामग्री का अभाव बताना अपनी दुरभिसन्धि एवं अनभिज्ञता का ही द्योतक है।

महाभारत प्रथम अथवा रामायण ?

दूसरे अध्याय के आरम्भ में श्रीबुल्के ने लिखा है "राम-कथासम्बन्धी आख्यान **वाल्मीकिरामायण** से पूर्व भी प्रचलित थे। इसका आभास **महाभारत** के द्रोणपर्व तथा शान्तिपर्व के संक्षिप्त राम-चरित के निर्देशों से भी मिलता है। ये आख्यान आजकल अप्राप्य हैं। इस प्रकार **वाल्मीकिरामायण** राम-कथा की प्राचीनतम विस्तृत रचना सिद्ध होती है।"

वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण महाभारत** एवं **पुराणों** की अपेक्षा बहुत प्राचीन रचना है। फिर महाभारत के द्रोणपर्व या शान्तिपर्व में रामचरित का निर्देश मिलने से यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि **वाल्मीकिरामायण** से भी पूर्व राम-कथा प्रचलित थी ?

असभ्यता, एकपत्नीव्रत और विकासवाद

वास्तव में यह सब इतिहास बिगाड़नेवाले आजकल के तथाकथित ऐतिहासिकों की दुर्बुद्धि का परिणाम है जिसके आधार पर कहा जाता है कि **वाल्मीकिरामायण** की अपेक्षा **महाभारत** प्राचीन ग्रन्थ है, क्योंकि **महाभारत** में असभ्य एवं जङ्गली युग का प्राधान्येन वर्णन है। तभी उसमें कुन्ती, द्रौपदी आदि का अनेक पुरुषों से सम्बन्ध वर्णित है। रामायण उसकी अपेक्षा अर्वाचीन है, क्योंकि उसमें एकपत्नीव्रत और पातिव्रत्य आदि का वर्णन है। परन्तु यह सब नितान्त अशुद्ध और मनगढ़न्त कल्पना है, क्योंकि **पुराण**-आदि के रचयिता महर्षि व्यास ने वाल्मीकि और उनकी **रामायण** का महत्त्व मानकर ही अपनी विशाल कृति महाभारत में रामचरित्र का वर्णन किया है, यह **वाल्मीकि-रामायण-माहात्म्य** के वर्णन से भली-भाँति विदित होता है।

उत्तरकाण्ड की अर्वाचीनता

आगे चलकर श्रीबुल्के ने **वाल्मीकिरामायण** के पाठ-भेद की चर्चा की है। उन्होंने यह बताया है कि "उत्तरकाण्ड की रचना बहुत बाद में हुई है, क्योंकि उसके तीनों पाठों में महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं है, जब कि शेष काण्डों में स्थान स्थान पर यथेष्ट पाठ-भेद उपलब्ध हैं। **दाक्षिणात्य** पाठ में सीता-त्याग का कारण यह बताया गया है कि भृगु ने अपनी पत्नी की हत्या के कारण ही विष्णु को शाप दिया था। यदि उत्तरकाण्ड प्रारम्भ से **रामायण** का एक अङ्ग होता तो अन्य काण्डों की तरह इस काण्ड में भी परिवर्तन उपलब्ध होते।"

पर ये सब विचार असङ्गत ही हैं। दाक्षिणात्य पाठ, गौडीय पाठ एवं पश्चिमोत्तरीय पाठ सम्प्रदाय-भेद से हुए हैं। काश्मीर तथा नेपाल की प्रतियों में भी पाठ-भेद पाया जाता है। बड़ोदा के शोध-संस्थान में इन प्रतियों का उपयोग भी किया जा रहा है। प्राचीन काल में कण्ठस्थ विद्याओं का ही सर्वाधिक महत्त्व होता था। वेदों के सम्बन्ध में आज भी वही परिपाटी प्रचलित है। **दुर्गासप्तशती** में भी, जिसके बहुत ही अधिक अनुष्ठान आज भी गौड़, मैथिल एवं दाक्षिणात्यों में प्रचलित हैं, पाठ-भेद उपलब्ध हैं।

पाठ-भेद में कमी होने से उत्तरकाण्ड की अर्वाचीनता मानना निष्प्रमाण है। **"सत्यारोपे निमित्तानुसरणं न तु निमितमस्तीत्यारोपः"** इस न्याय के अनुसार आरोप होने पर ही उसके निमित्त का अनुसरण किया जाता है, यह नहीं कि निमित्त के आधार पर आरोप किया जाय। शुक्ति में रजत का आरोप होने पर ही सादृश्यादि निमित्तों को आरोप का हेतु माना जाता है, यह नहीं कि शुक्ति एवं रजत का सादृश्य है, इसलिए शुक्ति में रजत का आरोप अवश्य ही किया जाय। इस दृष्टि से, पाठ-भेद होने पर उसके निमित्त का अन्वेषण करना चाहिये न कि पाठभेद नहीं है, इसलिए उसको वाल्मीकिकृत **रामायण** ही न माना जाय।

वैदिक दशरथ बनाम रामायणीय दशरथ

दशरथ के सम्बन्ध में बुल्के कहते हैं —

"चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।" (ऋ० सं० १।१२६।४)

यानी दशरथ के भूरे रङ्ग के चालीस घोड़े एक हजार घोड़ों के दल का नेतृत्व कर रहे थे।" वस्तुतः यह सात ऋचाओं का सूक्त है। आदि से पाँच ऋचाओं के ऋषि कक्षीवान् हैं। मन्त्रों का द्रष्टा या वक्ता ऋषि होता है। मन्त्रों द्वारा जिसका निरूपण होता है, वह देवता होता है। **"या तेनोच्यते"** (अनु० २।५।१२५)।

सूक्त के भाष्यारम्भ में ही सायण ने एक प्रसिद्ध इतिहास का वर्णन किया :—

दीर्घतमा महर्षि के पुत्र कक्षीवान् ने ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करते हुए वेदाध्ययन के लिए चिरकाल तक गुरुकुल में निवास किया तथा वेदों का भली भाँति अध्ययन कर व्रतों का यथायोग्य परिपालन किया। अनन्तर गुरु की अनुज्ञा लेकर उन्होंने अपने घर की ओर प्रस्थान किया। रात्रि को मार्ग में ही उन्होंने विश्राम किया। वहीं भावयव्य का पुत्र स्वनय नाम का नृपति अपने अनुचरों के साथ सैर करता हुआ अकस्मात् कक्षीवान् के पास आया। कक्षीवान् सहसा जाग उठे। उन्होंने स्वनय को अपने सम्मुख खड़ा पाया। कक्षीवान् सहसा प्रतिबुद्ध होकर उठे ही थे कि राजा ने उनका हाथ पकड़कर उनको अपने आसन पर बैठा लिया और उनके सौन्दर्य से मुग्ध होकर उन्हें अपनी कन्याएँ प्रदान करने की इच्छा व्यक्त की। उनका नाम, गोत्र आदि पूछा। कक्षीवान् ने अपने पिता और अपना वृत्तान्त बताया। राजा ने संभाव्य (कुलीन) समझ कक्षीवान् को अपने घर ले जाकर मधुपर्क, वस्त्र, माल्य आदि से पूजन किया और रथ सहित दस कन्याएँ, दो सौ निष्क (सुवर्णमुद्राएँ), सौ घोड़े, सौ बैल और एक हजार साठ गौएँ उन्हें प्रदान कीं। पुनश्च एकादश रथ भी दिये। कक्षीवान् ने सब सामग्री लेकर अपने पिता दीर्घतमा को अर्पित कर दी।

एक सौ पचीसवें (१२५) सूक्त में दान की स्तुति है, अतः दान ही उसका देवता है। उपर्युक्त विषय ही उस सूक्त के मन्त्रों में वर्णित है —

"प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः॥" (ऋ० सं० १।१२५।१)

अर्थात् स्वनय नाम के राजा ने प्रातःकाल ही मेरे समीप आकर रत्न—रमणीय रत्नादिक मेरे सामने रखे। उन स्थापित समस्त वस्तुओं को मैंने निर्दुष्ट जाना और स्वीकार कर उन्हें अपने पिता को समर्पित कर दिया। "उस निष्क आदि से पुत्र, भृत्य आदिरूप प्रजा का पोषण एवं जीवन-संवर्धन करते हुए शोभन वीरों से युक्त धनों के पुनः पुनर्वर्धन से वह राजा संगत या समुपयुक्त हो।" राजा के लिए ऋषि का यह आशीर्वाद है।

एक सौ छब्बीसवें (१२६) सूक्त की पाँच ऋचाओं के भी वही कक्षीवान् ऋषि हैं। उनमें भी भावयव्यात्मज राजा स्वनय के दान की ही स्तुति है। तीसरे मन्त्र में कहा गया है कि राजा स्वनय के दिये हुए श्यामवर्ण के घोड़ों से युक्त ऐसे दस रथ मेरे समीप उपस्थित हुए जिनमें सुन्दरी नवोढ़ा बधुएँ बैठी हुई थीं। स्वनय के दिये हुए एक हजार साठ गायों का समूह भी मेरे पास आया। अपना परोक्षरूप से निर्देश करते हुए ऋषि कहते हैं—उन सबको स्वीकार कर कक्षीवान् ने सन्निहित दिनों में ही पिता को अर्पित कर दिया।

'अभिपित्व' और **'प्रपित्र'** शब्द सन्निहित-काल के बोधक हैं।

"उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्युः।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात् सनत् कक्षीवां अभिपित्वे अह्नाम्॥"(ऋ० सं० १।१२६।३)

चतुर्थ मन्त्र में उसी दस रथवाले कक्षीवान् का ही वर्णन है।

"चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्रा॥" (ऋ० सं० १।१२६।४)

दस रथवाले सहस्रसंख्यक अनुचरों या सहस्रसंख्यावाले गो-यूथों से युक्त कक्षीवान् के आगे-आगे लाल वर्ण के चालीस घोड़े श्रेणीबद्ध होकर रथों को अभिमत प्रदेश में ले जाते हैं। अथवा चालीस घोड़े अश्व-नियुक्त रथों को श्रेणीबद्ध बनाते हैं। कक्षीवान् के अनुचर उन घोड़ों के मार्गश्रमजनित स्वेद का अपनोदन करने (हटाने) के लिए उत्तम रूप से मार्जन करते हैं। कक्षी अश्वबन्धनी रज्जु का नाम है। उस रज्जु को रखनेवाले कक्षीवान् ऋषि के अनुचर भी कक्षीवान् हुए।

वृद्ध राजा कलिङ्ग ने अपनी रानी में पुत्रोत्पादन के लिए दीर्घतमा ऋषि से प्रार्थना की, परन्तु लज्जावशात् रानी ने स्वयं उनके पास न जाकर अपने ही भूषण-वस्त्रों से अलङ्कृत कर उशिक नामवाली अपनी दासी को भेज दिया। महर्षि ने योगबल से सब जान लिया और मन्त्रपूत जल के द्वारा उसे ऋषि-पुत्री बना लिया और उसमें गर्भाधान किया। उसीसे कक्षीवान् ऋषि की उत्पत्ति हुई। श्रीसायण ने १२५ वें सूक्त के आरम्भ में यह भी कहा है कि अश्वबन्धनी रज्जु के सम्बन्ध से क्षत्रिय-सम्बन्ध सूचनार्थ ही ऋषि का कक्षीवान् नाम भी हुआ था।

अस्तु, कक्षीवान् ऋषि के, अश्व-बन्धनी रज्जु से युक्त अनुचर, घास आदि तथा अन्न आदि से युक्त होकर उन घोड़ों की मार्जनादि परिचर्या करते हैं। वे घोड़े भी मद-स्रावी हैं अर्थात् मत्त या अत्यन्त प्रबल हैं अथवा शत्रुओं का मद चूर्ण करनेवाले हैं और कृशनावान् अर्थात् सुवर्णमय भूषणों से युक्त हैं और अत्य अर्थात् निरन्तर चलनेवाले हैं।

इस तरह उक्त मन्त्र से दस रथ एवं सहस्र गो-यूथवाले कक्षीवान् ऋषि का वर्णन है, दशरथ नाम के किसी राजा का नहीं तथापि आपने (श्रीबुल्के ने) दशरथ राजा का वर्णन उक्त मन्त्र में मान लिया। तीसरे मन्त्र में 'सहस्रं गव्यम्' इस रूप से 'सहस्र' गव्य का विशेषण है। अतः "लाल घोड़े सहस्र घोड़ों का नेतृत्व करते हैं"—यह अर्थ नहीं बन सकता है।

उक्त मन्त्र का पुराण और इतिहासों के अनुसार राजा 'दशरथ' अर्थ निकल सकता है। दसों दिशाओं में जिनके दस प्रधान रथों की अव्याहत गति हो—वह अखण्ड भूमण्डल के प्रसिद्ध साम्राट्, इन्द्र की सहायता के लिए देवलोक की भी यात्रा करनेवाले 'महाराज दशरथ' हैं। अश्वबन्धनी रज्जु उनके हाथ में रहती है, इसलिए वे कक्षीवान् भी हैं। उनके चालीस लाल घोड़े सहस्र अर्थात् अपरिमित सैनिकों एवं अश्वों के आगे-आगे, पंक्तिबद्ध होकर, अभिमत प्रदेश में सम्राट् के रथ को पहुँचाते हैं। वे मदस्रावी एवं शत्रुमद-मोचक, सतत गमनशील एवं दिव्य सौवर्ण भूषणों से अलङ्कृत हैं। सम्राट् का अनुसरण करनेवाले भृत्यगण कक्षीवान् अश्वबन्धनी रज्जु हाथ में लिए घास, दाना आदि लेकर स्नपन, मार्जन आदि द्वारा उनको छरहरे बनाते रहते हैं। इस तरह उक्त मन्त्र 'दशरथ सम्राट्' के अर्थ में भी संगत हो जाता है।

✲

तृतीय अध्याय

पाठभेदादि-समीक्षा तथा ऐतिहासिक वृत्त

सम्प्रदायभेद से ग्रन्थों में प्रामाणिक पाठभेद होते हैं। व्यवहार में अत्यन्त प्रचलित दुर्गासप्तशतीपाठ में भी यह भेद दृष्ट है। वे सब मन्त्र माने जाते हैं। उसी प्रकार **वाल्मीकिरामायण** के धार्मिक अनुष्ठान लाखों की संख्या में हुए हैं, हो रहे हैं और यावच्चदिवाकरौ होते ही रहेंगे। इसी लिए विभिन्न संस्करणों की कई पुस्तकों में, आरम्भ में ही, विभिन्न सम्प्रदायों के मङ्गलाचरण आदि भी दिए हुए होते हैं।

यह ठीक है कि प्राचीनकाल में कण्ठस्थ करने की ही प्रवृत्ति अधिक प्रचलित थी। महर्षि वाल्मीकि ने ही विभिन्न प्रकार के श्लोक बनाए होंगे और शिष्यों को उपदेश करते हुए भिन्न-भिन्न पाठों का उपदेश भी किया होगा।

यह भी प्रसिद्ध है कि उन्होंने शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** का निर्माण किया था। उसी का सार २४ हजार श्लोकों का वर्तमान प्रसिद्ध **वाल्मीकिरामायण** ग्रन्थ है।

इस दृष्टि से शाखाभेद से वेदों के पाठ जैसे भ्रान्ति से नहीं किन्तु प्रामाणिक ही हैं, वैसे ही सम्प्रदाय-भेद से **वाल्मीकिरामायण, दुर्गासप्तशती** आदि के पाठभेद, भूल या भ्रान्ति से नहीं, किन्तु प्रामाणिक ही हैं। इसी दृष्टि से कुछ कथाभेद भी, कल्पभेद होने के कारण, प्रामाणिक ही हैं। प्रसिद्ध है—

"कलपभेद हरिचरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन गाए॥" (रा० मा० १।३२।४) **श्रीमद्भागवत में** भी सम्प्रदायभेद से पाठभेद मान्य है।

पुस्तकें देखकर मनमाने ढङ्ग से पाठ करना या समालोचना करना, यह आधुनिक पद्धति है। प्राचीन काल में ये सभी आर्ष ग्रन्थ गुरु-परम्परा से पढ़े जाते थे, अतः गुरु-परम्परा ही प्रामाणिक पाठ की कसौटी है। कतक, तीर्थ, भूषण, रामाभिरामी आदि टीकाकारों ने **वाल्मीकिरामायण** के कई सर्गों को प्रक्षिप्त बताकर उनकी टीका नहीं की है। नागेश ने कई सर्गों के प्रक्षिप्त होने से उनकी टीका नहीं की और बतलाया है कि कतक ने तथा तीर्थ ने भी इन्हें प्रक्षिप्त माना है।

श्रीमद्भागवत के सम्बन्ध में भी यही बात है। **भागवत** के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी ने लिखा है कि मैं स प्रदाय-परम्परा से पौर्वापर्य के अनुसार टीका कर रहा हूँ—

"सम्प्रदायानुरोधेन पौर्वापर्यानुसारतः।
श्रीभागवतभावार्थदीपिकेयं प्रतन्यते॥ (भा० टी० १।१।१)

इसी आधार पर **वाल्मीकिरामायण** में भी प्रक्षिप्त, अप्रक्षिप्त आदि का निर्णय करना उचित है।

अतः दाक्षिणात्य, गौड़ीय, पश्चिमोत्तरीय, उदीच्य आदि पाठभेदों के कारण किसी अंश को क्षेपक कहना अनुचित है, क्योंकि इस तरह परस्पर विरोध होने से किसी भी पाठ की सत्यता में सन्देह ही बना रहेगा। दाक्षिणात्य पाठ में भी वामनावतार आदि, अगस्त्य द्वारा सूर्यस्तव देना आदि अत्यन्त प्रामाणिक हैं। परम्परा से उनका पाठ प्रचलित है। नागेश आदि ने उन अंशों पर टीका भी लिखी है।

भारत में कोटि कोटि आस्तिक राम और **रामायण** के भक्त हैं। बहुतों में रामायण के पाठ की परम्परा है। **आदित्यहृदय** का पाठ तो आज भी लाखों व्यक्ति करते हैं। यदि भारतीय टीकाकार और उपासकों का पाठ

प्रामाणिक नहीं, तो बाहर के लोगों, जिनकी भाषा, सभ्यता आदि सब कुछ भिन्न है, के निर्णय के आधार पर सत्य पाठ कैसे प्रामाणिक होगा ?

पाश्चात्यों का रोग

इसी प्रकार **"रामायण का रचनाकाल"** शीर्षक पृ० ३२ से विचार करते हुए श्रीबुल्के ने अनेक पाश्चात्य विद्वानों के मत उद्धृत करते हुए कहा है कि "ई० एक शताब्दी के पूर्व पहले पहल **रामायण** ग्रन्थ विख्यात होने लगा था। कुछ विद्वान् इसे बहुत प्राचीन १२ शती से ११ शती ई० पूर्व की रचना मानते हैं। डॉ० वेबर ने **रामायण** पर यूनानी तथा बौद्ध प्रभाव मानकर उसकी रचना अपेक्षाकृत अर्वाचीन मानी है।"

परन्तु ये सब कल्पनाएँ निराधार ही हैं। प्रायः पाश्चात्यों को यह रोग है कि वे लोग ईसा से पूर्वकाल में सभ्यता के विकास को असम्भव समझते हैं। अतः वे ईसा के इधर-उधर ही सब महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों तथा ग्रन्थों का काल निश्चित करने का प्रयत्न करते रहते हैं। मूल ग्रन्थ में ही जब रामायण का रचनाकाल निर्दिष्ट है तब फिर अटकल लगाने की क्या आवश्यकता है ? क्या **वाल्मीकिरामायण** के रचनाकाल के सम्बन्ध में भी ऐसी अटकल लगानी ठीक होगी ? इसी लिए उनका यह भी कहना ठीक नहीं है कि वाल्मीकि की प्रामाणिक रचना **आदिरामायण** और प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** का काल पृथक् पृथक् है। किन्तु प्रामाणिक अप्रामाणिक **रामायण** का निर्णय भारतीय परम्परा से रामायण जानने और मानने वाले ही कर सकते हैं न कि यहाँ की भाषा, सभ्यता आदि से अपरिचित कोई विदेशी व्यक्ति। उत्तरकाण्ड में पाठभेद कम होने से उसे अर्वाचीन मानना भी उपहासास्पद ही है। यह कोई व्याप्ति नहीं है कि जो प्राचीन है उसमें पाठभेद हो तथा जो अर्वाचीन है उसमें पाठभेद न हो। तुलसीकृत **रामचरितमानस** **वाल्मीकिरामायण** की अपेक्षा अत्यन्त नवीन रचना है, पर इसमें भी अधिक पाठभेद हैं।

आठवें अध्याय में श्रीबुल्के ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि "उत्तरकाण्ड और बालकाण्ड वाल्मीकिकृत रचना में विद्यमान नहीं थे।" उत्तरकाण्ड के प्रक्षिप्त होने के प्रमाण में उन्होंने २२ वें से २६ वें तक पाँच अनुच्छेदों में वर्तमान में उपलब्ध अनेक पाठों की तुलना की है। इसका उत्तर पीछे दिया जा चुका है कि प्रामाणिक पाठभेद सम्प्रदाय-भेद के कारण है और उसके आधार पर किसी को क्षेपक नहीं कहा जा सकता। दूसरा कारण श्रीबुल्के ने यह कहा है कि युद्धकाण्ड के अन्त में **"रामायणमिदं कृत्स्नम्"** (वा० रा० ६।१३०।११६) इस फलश्रुति के अनुसार "रामायण ग्रन्थ वहीं समाप्त माना जाता है" यह भी ठीक नहीं है। पहले तो कतक-व्याख्यान के अनुसार फलश्रुतिवाला यह श्लोक युद्धकाण्ड में है ही नहीं, अतः अनिश्चित आधार पर की गयी कल्पना निःसार सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त **रामायण** के उत्तरकाण्ड के आधार पर, उसके पूर्वकाण्ड और उत्तरकाण्ड ये दो प्रमुख काण्ड मान्य हैं और पूर्वकाण्ड चूंकि सबसे बड़ा है, अतः पूर्वकाण्ड की समाप्ति पर फलश्रुति का कथन कोई अनुचित नहीं है। एक और भी सुन्दर तर्क है, वह यह कि यदि फलश्रुति ही ग्रन्थसमाप्ति का चिह्न हो तो पहले ही अध्याय के अन्त में फलश्रुति है—

> **"पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात् स्यात् क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।**
> **वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयात् जनश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्॥"** (वा०रा० १।१।१००)

ऐसी स्थिति में यह भी मानना क्या उचित होगा कि केवल एक प्रथम सर्ग ही रामायण है और शेष सब क्षेपक ही है। पर यह समझना क्या असङ्गत नहीं है ? गीता के १५ वें अध्याय में भगवान् ने कहा है—मैंने यह गुह्यतम शास्त्र तुम्हारे लिए कहा है। इसको जानकर बुद्धिमान् पुरुष कृतकृत्य हो जाता है—

> **"इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।**
> **एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत।"** (गी० १५।२०)

अब क्या श्रीबुल्के के फलश्रुतिवाले सिद्धान्त के अनुसार यह मान लिया जाय कि गीता १५ अध्याय की है ओर अन्त के ३ अध्याय प्रक्षिप्त हैं ? "**रामायणमिदं कृत्स्नम्**"—इस पद्य के '**कृत्स्नं**' शब्द से सम्पूर्ण पूर्वकाण्ड ही निर्दिष्ट हुआ है, ऐसा समझना चाहिये। ब्राह्मण-भाग वेद में ही कहा गया है—

"पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानाप्नोति ॥"

पूर्णाहुति से सब काम प्राप्त होते हैं तो क्या अश्वमेध, राजसूय आदि यज्ञों के भी सभी फल पूर्णाहुति से मिल जाते हैं, यह मान लिया जाय ? वस्तुतः यह अर्थ सङ्गत नहीं है। वहाँ प्रकृत यज्ञ के फल के अभिप्राय से 'सर्व-काम' शब्द का प्रयोग समझना चाहिये। ठीक वैसे ही '**कृत्स्न**' शब्द का तात्पर्य भी पूर्वकाण्ड की सम्पूर्णता में ही है।

इसी तरह बालकाण्ड के प्रक्षिप्त होने का प्रमाण दिया गया है कि "बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में जो अनुक्रमणिका मिलती है, उसमें अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक के विषयों का ही उल्लेख है। बाद में इस अनुक्रमणिका की अपूर्णता का अनुभव हुआ, तब दूसरी अनुक्रमणिका की रचना की गयी, जिसमें बालकाण्ड की सामग्री के साथ उत्तर-काण्ड का भी उल्लेख मिलता है—

"स्वराष्ट्ररञ्जनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम् ॥
अनागतञ्च यत्किञ्चिद् रामस्य वसुधातले।
तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥" (वा० रा० १।३।३८,३९)

अगले सर्ग में भी—

"प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्।'
"कृत्वा तु तन्महाप्राज्ञः सभविष्यं च सोत्तरम् ॥" (वा० रा० १।४।१, ३)

इन दो उद्धरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि बालकाण्ड की इस भूमिका के रचना-काल में उत्तरकाण्ड की सृष्टि प्रारम्भ हो चुकी थी। फिर भी सीता-त्याग को छोड़कर किसी अन्य विषय का उल्लेख न होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरकाण्ड उस समय अपना वर्तमान रूप और विस्तार नहीं प्राप्त कर पाया था। इस तर्क की इससे पुष्टि होती है कि बाद में **वाल्मीकिरामायण** के उदीच्य पाठ में एक तीसरी अनुक्रमणिका जोड़ी गयी है, जिसमें सातों काण्डों की सामग्री का ध्यान रखा गया है।"

विचार करने से श्रीबुल्के के ये सब तर्क निःसार सिद्ध हो जाते हैं। असल में प्रथम सर्ग तो मूलरामायण है। वह **वाल्मीकिरामायण** की अनुक्रमणिका है ही नहीं। उसके वक्ता तो नारदजी हैं। वाल्मीकिजी ने तो उस संवाद को ज्यों का त्यों श्लोकबद्ध भर कर दिया था। उसमें "**को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके**" के अनुसार वर्तमान समय में ऐसा गुणवान् पुरुष कौन है ? वाल्मीकि का प्रश्न था, अतः राम के तात्कालिक स्वरूप से ही वर्णन आरम्भ हो गया। राम के जन्म और विवाह आदि की चर्चा का भी उसी में अन्तर्भाव समझना चाहिये। जैसे दीपक जलने के साथ ही उसकी प्रभा भी प्रकट होती है और उस प्रभा का वर्णन पृथक् न होने पर उसे भी उसी में समझा जा सकता है। जैसे "**राजाऽसौ गच्छति**" कहने पर भी सामात्य सवाहन सोपकरण राजा का गमन प्रतीत होता है वैसे ही सीता और लक्ष्मण सहित राम का वन गमन कहने से ही राम, लक्ष्मण, सीता आदि का जन्म और विवाह आदि भी समझ लेना चाहिये।

मूलरामायण का संक्षेप होना तो उचित ही था। **मूलरामायण** को **वाल्मीकिरामायण** की अनुक्रमणिका मानना विशुद्ध भ्रान्ति ही है। **वाल्मीकिरामायण** की अनुक्रमणिका तो तीसरा सर्ग ही है। तीसरी अनुक्रमणिका के प्रक्षिप्त होने पर भी मुख्य अनुक्रमणिका को प्रक्षिप्त सिद्ध करने में कोई भी तर्क सक्षम नहीं है। एक व्यक्ति के

अन्धे होने मात्र से दूसरे को भी अन्धा कहना अन्धता का ही परिचय देना है। यह कैसे हो सकता था कि राम, सीता आदि का जो विशाल चरित्र हजारों श्लोकों में लिखा गया, उसमें चरितनायक के जन्म, स्थान, पिता, माता और विवाह आदि का उल्लेख तक न किया जाय। जब आज का साधारण लेखक भी ऐसी भूल नहीं करता है तो सर्वज्ञ महर्षि वाल्मीकि ऐसी भूल कैसे कर सकते थे? भूमिका के बारे में यही बात है; क्योंकि जब भूमिका के बिना कोई सामान्य लेख या भाषण भी नहीं होता, तब भूमिका के बिना **"गच्छता मातुलकुलम्"** (वा० रा० २।१।१) **अयोध्याकाण्ड** के इस श्लोक से आदि काव्य **रामायण** का आरम्भ कैसे संगत हो सकता था? साथ ही जब विष्णु या परमात्मा का मर्त्यलोक में किसी कारण से आगमन या अवतार का वर्णन हुआ तब कार्य के सम्पन्न हो जाने पर उनका स्वधाम में प्रवेश-वर्णन भी उचित ही है; अतः उत्तरकाण्ड बालकाण्ड की भाँति ही अत्यन्त संगत है। आज भी किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के जन्म और स्वर्गवास दोनों का ही वर्णन होना अनिवार्य माना जाता है।

अतः ऐसी ऊटपटांग कल्पनाओं के बल पर **वाल्मीकिरामायण** जैसे पवित्रतम पूजनीय ग्रन्थ के पूरे के पूरे दो दो काण्डों को ही क्षेपक बतला देना साहस एवं दुर्नीतिपूर्ण धृष्टता है। महान् विद्वानों ने सम्प्रदाय-परम्परा से अध्ययन करके **वाल्मीकिरामायण** पर पाण्डित्यपूर्ण भाष्य और टीकाएँ लिखी हैं। उन्होंने उनमें 'वेदादि' शास्त्रों से सम्बन्धित कई गम्भीर शङ्काएँ उठाकर उनका समाधान किया है। उनको भी इन दोनों काण्डों के प्रक्षिप्त होने का कोई आभास नहीं मिला, क्योंकि वे वैदिक साहित्य की परम्पराओं और उनकी पद्धतियों से भलीभाँति परिचित थे। वेबर, याकोबी और बुल्के आदि दुःसाहसी विद्वान् उस परम्परा से अपरिचित हैं। आजकल कई लोग व्याकरणज्ञान से सर्वथाशून्य होने पर भी **महाभाष्य** पर रिसर्च करते हैं। उनसे प्रश्न करो तो वे **महाभाष्य** की एक पंक्ति का भी अभिप्राय नहीं बता सकते पर केवल उनमें आये हुए देशों और व्यक्तियों के नामों की लम्बी लिस्ट जुटाकर मिथ्या कल्पनाओं का वायवीय महल खड़ा कर देते हैं। दुर्भाग्यवश ऐसे ही लोग आज वेद और **रामायण** का रिसर्च करने बैठ गये हैं, क्या किया जाय?

श्रीबुल्के कहते हैं "उत्तरकाण्ड की रचनाशैली अन्य प्रामाणिक काण्डों की शैली से सर्वथा भिन्न है।" पर यह ठीक नहीं है, क्योंकि उनकी दृष्टि में कोई भी काण्ड प्रामाणिक काण्ड है ही नहीं। कारण वे सभी काण्डों में अनेक अंशों को प्रक्षिप्त मानते हैं। वे नृग, निमि, ययाति, श्वेत, इन्द्र, इल आदि की सम्पूर्ण कथाओं को असंगत कहते हैं। किन्तु उनका यह सब कथन निर्मूल है। प्रसंगानुसार कोई भी उल्लेख असंगत नहीं कहा जा सकता। संगति की बात शायद बुल्केजी को मालूम ही नहीं है। भारतीय शास्त्रों में उक्त संगति के लक्षण और उसके प्रकार-भेद क्या हैं, यह भी उनको विदित नहीं है।

संगति ६ प्रकार की होती हैं। उनमें प्रसंगसंगति का लक्षण है—

"स्मृतिविषयत्वे सत्युपेक्षानर्हत्वम्"

स्मृति का विषय होकर उपेक्षा के अयोग्य का वर्णन ही प्रसंगसंगति है। इस दृष्टि से ये सभी कथाएँ असंगत नहीं हैं।

"सप्रसङ्ग उपोद्घातो हेतुताऽवसरस्तथा।
निर्वाहकैक्यकार्यैक्ये षोढा सङ्गतिरिष्यते॥"

अर्थात् प्रसंग, उपोद्घात, हेतुता, अवसर, निर्वाहकैक्य तथा कार्यैक्य ये छह प्रकार की संगतियाँ होती हैं। पूर्वोत्तर मीमांसा में इन्हीं के आधार पर अधिकरण चलते हैं। राज्यसिंहासनासीन होने पर पौर-कार्य करने के लिए लक्ष्मण को सावधान करना उचित ही है। पौर-कार्य करने में प्रमाद करने से दोष होता है। इस प्रसंग से नृग के उपाख्यान के वर्णन में प्रसंगसंगति है ही। राजाओं के प्रमाद से महान् अपराध हो जाते हैं। इसी स्थिति को

स्पष्ट करने के लिए निमि की कथा भी संगत ही है। निमि के प्रसंग से वसिष्ठ की कथा भी संगत हो है। इस तरह साधारण विषयानुक्रम पढ़ने से भी संगति स्पष्ट हो जाती है। रावणादि के वध के अनन्तर राज्यासनासीन राम से मिलने कौशिक आदि महर्षियों का आगमन, राम का स्तवन, इन्द्रजित् मेघनाद के वध की प्रशंसा सुनकर राम के म में विशेष जिज्ञासा से प्रश्न और महर्षियों द्वारा रावणादि के जन्म का वर्णन भी संगत ही है।

श्रीबुल्के के मतानुसार "सीता-त्याग, शत्रुघ्न-चरित, शम्बूक-वध, राम का अश्वमेध, सीता-तिरोधान आदि में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।" पर वे कौन सा विशेष सम्बन्ध चाहते हैं यह नहीं बताते। महान् महान् विद्वान् टीकाकारों को उन कथाओं के सम्बन्ध में कोई शङ्का नहीं है। नागेश के **शब्देन्दुशेखर, परिभाषेन्दुशेखर, लघुमञ्जूषा** तथा **बृहन्मञ्जूषा** इतने कठिन एवं गम्भीर ग्रन्थ हैं जिनका कम-से-कम पाश्चात्य देशों में तो कोई विद्वान् है ही नहीं, जो उनकी शङ्काओं की गहराई समझ सके। उन महापण्डित नागेश की लिखी हुई **वाल्मीकिरामायण** की रामाभिरामी टीका है। उनकी दृष्टि में उत्तरकाण्ड एवं उसकी सब कथाएँ पूर्ण सङ्गत हैं। संस्कृत की उन टीकाओं को गुरु-परम्परा से पढ़ने पर ही **वाल्मीकिरामायण** का अभिप्राय अवगत हो सकता है। इसी तरह उत्तर-काण्ड में अवतार की व्यापकता देखकर भी श्रीबुल्के को उत्तरकाण्ड खटकता है। परस्पर विरोध दिखाते हुए बुल्के यह भी कहते हैं कि "युद्धकाण्ड के अन्तिम सर्ग में सुग्रीव आदि के बिदा हो जाने का स्पष्ट उल्लेख हुआ है; फिर भी उत्तरकाण्ड में उनके प्रस्थान का वर्णन किया जाता है।" पर इतना ही क्यों? युद्धकाण्ड के अन्त में रामराज्य का भी तो वर्णन हो चुका था फिर विशेषतः उत्तरकाण्ड की विशेषताओं का वर्णन हुआ। युद्धकाण्ड के अन्तिम सर्ग में जो बातें बहुत संक्षेप में कही गयी थीं, उन्हीं का उत्तरकाण्ड में कुछ विस्तार से कहना असङ्गत नहीं है। ग्रन्थकारों की यह पद्धति होती है। युद्धकाण्ड में सिर्फ छः श्लोकों में सुग्रीव, विभीषण आदि का विसर्जन कहा गया है। उसी वस्तु का उत्तरकाण्ड में ३९वें और ४०वें दो सर्गों में विस्तार से वर्णन कर दिया गया—इसे कोई भी समझदार व्यक्ति विसङ्गत कैसे कहेगा? इसी तरह श्रीबुल्के वेदवती वृत्तान्त का सीता-जन्म के प्रसङ्ग में तथा अन्य काण्डों में न होना भी उसके प्रक्षिप्त होने का कारण समझते हैं। वस्तुतः ये सब इतनी तुच्छ बातें हैं कि इन विषयों पर समय का व्यय करना ही व्यर्थ है। **ब्रह्मसूत्र** में, प्रथमाध्याय के प्रथम पाद के दूसरे सूत्र में ब्रह्म का लक्षण कहा गया है—**"जन्माद्यस्य यतः"** (ब्र० सू० १।१।२) सम्पूर्ण दृश्य विश्वप्रपञ्च का जिससे जन्म, स्थिति एवं प्रलय होता है वह ब्रह्म है। सैकड़ों सूत्रों के पश्चात् पुनः कहा है कि ब्रह्म जगत् का उपादान कारण है, क्योंकि एकविज्ञान से सर्वविज्ञान की प्रतिज्ञा और मृल्लोष्टादि के दृष्टान्त निमित्तकारणमात्र में नहीं बनते हैं, उपादान कारण में ही वे सङ्गत होते हैं। **"प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्"** (ब्र० सू० १।४।२४)। यह सिद्धान्त सर्वमान्य हैं, किन्तु आप के अनुसार तो वह विश्वकारणत्व-निरूपण के प्रसङ्ग में न होने के कारण क्षेपक ही ठहरेगा। वास्तव में ये सब बुल्के महाशय की दुःशङ्काएँ शास्त्रज्ञानशून्यता का ही परिणाम हैं। मीमांसा तथा मीमांसानुसारी निबन्धादि ग्रन्थों का परस्पर असङ्गत-से प्रतीत होनेवाले वचनों का समन्वय करना ही मुख्य कार्य है। विभिन्न उपनिषदों में कहीं-कहीं समान विद्याओं में भी कुछ अंश आवश्यकता से अधिक हैं तथा कुछ अंशों का सर्वथा अभाव है तो भी उन समान विद्याओं में समन्वय कर एक शाखा की विद्या में अनुक्त अङ्गों की पूर्ति दूसरी शाखा से कर ली जाती है। किन विद्याओं में गुणों का शाखान्तरों से उपसंहार होता है और किन में नहीं होता तथा उसमें क्या हेतु है—इसी निर्णय के लिए ब्रह्मसूत्र में **'गुणोपसंहारानुपसंहार'** विचार तीसरे अध्याय के तीसरे पाद में किया गया है।

यह भी श्रीबुल्के को ज्ञात होना चाहिए कि **महाभारत** में वर्णित रामचरित का आधार भी प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** ही है। **महाभारत** में ग्रन्थ का संक्षेप में वर्णन होना या कुछ ही अंश का वर्णन होना भी कोई अनहोनी बात नही है। रामचरितवर्णन का अभिषेक पर ही समाप्त हो जाना भी अनिवार्य नहीं है। मङ्गलान्त

ग्रन्थ लिखने की दृष्टि से कई ग्रन्थकारों ने ऐसा किया भी है, परन्तु उससे सम्पूर्ण चरित्र के वर्णन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं आता। **रावणवध, भट्टिकाव्य, जानकीहरण, अनर्घराघव, बालरामायण** आदि का वैसा रूप होने पर भी, महाकवि कालिदास का रघुवंश वैसा नहीं है। कालिदास ने बालकाण्ड के—**'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः'** की चर्चा करते हुए इसे प्रथम काव्य माना है। हर्षवर्धन ने भी वैसा ही माना है। शैली की दृष्टि से कवि किसी प्रसंग में कभी एक तरह की शैली अपनाता है तो कभी दूसरी तरह की। क्या अन्य काण्डों की शैलियों की अपेक्षा सुन्दरकाण्ड की शैली भिन्न नहीं है? सुन्दरकाण्ड के जैसे अनुप्रासबहुल गम्भीर पाण्डित्यपूर्ण श्लोक क्या अन्यत्र हैं? फिर क्या इतने से ही सुन्दरकाण्ड को प्रक्षिप्त मान लें?

बालकाण्ड में उर्मिला-लक्ष्मण का विवाह होने को भी श्रीबुल्के उस काण्ड के प्रक्षिप्त होने का कारण कहते हैं। अयोध्याकाण्ड में कहीं उर्मिला का उल्लेख नहीं मिलता। अरण्यकाण्ड में लक्ष्मण को अविवाहित कहा कहा गया है—**"अकृतदारः"** (वा० रा० ३।१८।१), यह कथन भी ठीक नहीं, क्योंकि **"स्वेच्छया श्लक्ष्णया वाचा स्मितपूर्वमथाब्रवीत्"** (वा० रा० ३।१८।४) से स्पष्ट विदित होता है कि श्रीराम ने शूर्पणखा से परिहास करते हुए वैसा कहा है। अतएव नागेश कहते हैं **"परिहासविनोदेन"** अर्थात् श्रीराम ने परिहास विनोद में ही उससे बातें की थीं, अन्यथा **"अपूर्वी भार्यया चार्थी"** (३।१८।४) यह असंगत होगा? उसका अर्थ है—लक्ष्मण अपूर्वी इससे पहले वे भार्यास्पर्श-सुख से अपरिचित हैं, अतएव भार्यार्थी हैं, अतः परिहास करते हुए श्रीराम ने, धातुओं के अनेक अर्थ होने से, **असंनिहितदार** के अर्थ में ही **'अकृतदार'** शब्द का प्रयोग किया है। नागेश आदि ने ऐसी ही व्याख्या भी की है। अतः **'अकृतदार'** इस शब्द-मात्र के आधार पर लक्ष्मण के विवाह का अपलाप नहीं किया जा सकता। इससे विपरीत शास्त्रीय व्यवस्था तो यह है कि पूर्व प्रसंग के अनुसार ही उत्तर प्रसंग भी लगाया जाता है। जब बालकाण्ड में लक्ष्मण का विवाह वर्णित है तब तो उसी के अनुसार **अकृतदार** शब्द का **'असंनिहितदार'** अर्थ ही संगत है। इस प्रकार अर्थनिर्धारण मीमांसा के उपक्रम-न्याय से किया जाता है।

"यावतोऽश्वान् प्रतिगृह्णीयात्तावतो वारुणान् चतुष्कपालान् निर्वपेत् ॥"

(तै० सं० २।३।१२।१)

यह ब्राह्मणवचन है। इसका प्रातीतिक अर्थ यह है कि जितने घोड़ों का प्रतिग्रह करे उतने वारुण चतुष्कपाल पुरोडाशों का निर्वाप करना चाहिये, परन्तु यह उपक्रम के विरुद्ध है। उपक्रम के अनुसार, यह इष्टि घोड़े लेनेवाले के लिए नहीं है, किन्तु देनेवाले के लिए है। **"प्रजापतिर्वरुणायाश्वमानयत् स जलोदरेण गृहीतोऽभवत्। एतान् वारुणांश्चतुष्कपालानपश्यत्तान्निरवपत् ॥'** इसके अनुसार विधिवाक्य के उपक्रम में कहा गया है कि प्रजापति ने वरुण को अश्व प्राप्त कराया (दिया)। इससे उसे जलोदर हो गया। तब प्रजापति को वारुण-चतुष्कपालों का दर्शन हुआ। उनका निर्वाप करने से प्रजापति रोगमुक्त हुए। अतः उपक्रम के अनुसार ही **'प्रतिगृह्णीयात्'** का **'प्रतिग्राहयेत्'** ऐसा अर्थ किया जाता है। अतः मीमांसा आदि शास्त्र न जानने और परिहास-विनोद का अभिप्राय न जानने के कारण ही श्रीबुल्के ने लक्ष्मण के अविवाहित होने की कल्पना कर ली। जब तीनों अन्य भ्राताओं का विवाह हुआ तो लक्ष्मण का विवाह क्यों नहीं हुआ। इसका भी तो कुछ कारण होना चाहिए। ठीक वाल्मीकि के अनुसार ही गोस्वामीजी ने भी बालकाण्ड में चारों भ्राताओं के विवाह का वर्णन लिखा है—

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी।
सकल कुँअर ब्याहे तेहि करनी॥ (रा० मा० १।३५।१)

ऐसी स्थिति में अरण्यकाण्ड में राम ने परिहास, विनोद में ही लक्ष्मण के सम्बन्ध में कहा है। यह सहज भावसे समझ में आ सकता है।

'अहै कुमार मोर लघु भ्राता' (रा० मा० ३।१६।६) यहाँ भी उनका यही तात्पर्य था, जैसे तुम (सूर्पणखा) विवाहित होने पर भी, तत्काल पति न होने से ही, अपने को कुमारी कहती हो उसी तरह लक्ष्मण भी असंनिहितदार होने के कारण कुमार हैं ।

भरत का भी तो विवाह अयोध्याकाण्ड में वर्णित नहीं है, फिर क्या उन्हें भी अविवाहित मानें ? बुल्के तो भरत के भी सम्बन्ध में इसी तरह लिखते हैं—**"बाल एव तु मातुल्यं भरतो नायितस्त्वया ।"** (वा० रा० २।८।२८) में भरत की बाल्यावस्था कही गयी है । लेकिन बालकाण्ड में युधाजित् मिथिला पहुँचकर कहते हैं—कैकेय भरत को सस्त्रीक देखना चाहते हैं । इसके बाद चारों भाइयों के विवाह का वर्णन किया जाता है । लेकिन मिथिला में युधाजित् का और उल्लेख नहीं होता । बालकाण्ड के अन्तिम सर्ग में दशरथ भरत को युधाजित् के साथ राजगृह में भेज देते हैं और इसके बाद बहुत समय बीत जाने का उल्लेख **'बहूनृतून्'** (वा० रा० १।७७।२५) से है, फिर भी रामाभिषेक की तैयारी के समय भरत को बालक कहा गया है ।"

परन्तु उक्त सब बातें तात्पर्य-ज्ञान न होने से ही उठती हैं । साधारण **शास्त्रज्ञ** भी समझता है कि दृष्टार्थापत्ति के समान ही श्रुतार्थापत्ति भी प्रमाण है । जिस प्रकार देवदत्त दिन को भोजन नहीं करता और मोटा दिखता है तो बिना देखे और बिना बताये ही समझा जाता है कि वह रात को भोजन करता है । उसी प्रकार देवदत्त जीवित है और घर में नहीं है इतना सुनकर ही देवदत्त का बाहर होना सिद्ध होता है । ठीक इसी न्याय से जब बालकाण्ड के ७३ वें सर्ग में स्पष्ट यह वर्णन है कि "मिथिला में जिस दिन राजा दशरथ ने गोदान किया उसी दिन कैकयराज-पुत्र युधाजित् आये । महाराज से मिलकर कुशल-प्रश्न के बाद उन्होंने अपने पिता का सन्देश सुनाया और यह भी कहा कि पिताजी मेरे भगिनी-पुत्र भरत को देखना चाहते हैं । मैं अयोध्या गया था, पर सुना कि आप लोग पुत्रों के विवाहार्थ मिथिला गये हैं तो मैं यहाँ आया हूँ । दशरथ ने उनका सम्मान किया । अब मिथिला के अन्य प्रसङ्गों में युधाजित् की चर्चा न होने पर भी इससे उनका मिथिला आना तो सिद्ध ही है । फिर मिथिला में विवाहपर्यन्त उनके रहने तथा भोजन-पान करने का भी परिज्ञान हो ही जाता है ।

"कैकेय भरत को सस्त्रीक देखना चाहते हैं" श्रीबुल्के का यह कथन—अत्यन्त मिथ्या है । संभवतः, संस्कृत न समझने के कारण उन्होंने भ्रान्ति से **'स्वस्रियम्'** का अर्थ 'सस्त्रीक' समझ लिया हो । यही है श्रीबुल्के के रिसर्च का नमूना । वस्तुतः **'स्वस्रियम्'** का अर्थ भागिनेय या भानजा ही है ।

'बाल एव तु मातुल्यं' के अनुसार, यह नहीं सिद्ध होता कि भरत विवाह के योग्य ही नहीं थे । क्योंकि दशरथ आदि वयोवृद्धों की अपेक्षा बीस वर्ष तक के लड़के बालक ही माने जाते हैं । आज भी तो २० वर्ष से नीचे के लोग नाबालिग माने जाते हैं । एम० पी० तथा एम० एल० ए० आदि के निर्वाचन के अयोग्य कहे जाते हैं । इस अवस्था में यदि कोई चुनाव जीत भी जाय तो नाबालिग प्रमाणित होने से उसका निर्वाचन अवैध माना जाता है । फिर यहाँ तो मन्थरा भेद-नीति का प्रयोग करती हुई कैकेयी को सम्बोधित कर रही है । "कैकेयी, राजतन्त्र में ज्येष्ठ पुत्र को ही राज्य मिलता है । तुम्हारा पुत्र भरत राजवंश से पृथक् हो जायगा । राम अकण्टक राज्य पाकर भरत को देशान्तर भेज देंगे अथवा लोकान्तर में ही भेज देंगे । संनिकर्ष से स्थावरों में भी सौहार्द पैदा होता है । परन्तु तुमने तो भरत को बाल्यावस्था में ही ननिहाल भेज दिया" इत्यादि । फिर जब अयोध्याकाण्ड के अनुसार राम का विवाह मन्थरा संवाद के पहले हो चुका था तो भरत के विवाह में आपत्ति ही क्या हो सकती थी ? क्योंकि प्रायः सभी **रामायणों** के अनुसार पुत्रेष्टि-यज्ञ में प्राप्त चरु से ही चारों भ्राताओं का, कुछ ही घड़ी-पल के अन्तर से , जन्म हुआ था । तब क्या कारण है कि राम बालक नहीं थे और भरत बालक रह गये । **'बहून् ऋतून्'** का भी कोई विरोध नहीं पड़ता । विवाह से आते ही, भरत मातुल-कुल चले गये । राज्याभिषेक की बात तो कुछ ऋतुओं के ही पश्चात् नहीं अनेक वर्षों के बाद की है । फिर भरत बहुत ऋतु मातुलकुल में रहे तो क्या विरोध है ?

श्रीबुल्के कहते हैं "१ म और ७ म काण्ड कम से कम दूसरी शती के हैं।" पर पूर्वोक्त युक्तियों से यह कथन निःसार ही सिद्ध होता है। एच० याकोबी के अनुसार "प्रचलित **रामायण** का काल पहली या दूसरी शती है। एम० विण्टरनित्स इसे ईसा की दूसरी शती से अधिक प्राचीन समझते हैं। सी० चिन्तामणि वैद्य इसका काल दूसरी ई० शती पूर्व मानते हैं। परन्तु कालिदास के समय **रामायण** ने अपना पूर्ण रूप ले लिया था। **महाभारत** के आरण्यकपर्व के रचना-काल में बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड की कुछ सामग्री प्रचलित हो गयी थी। अतः अधिक सङ्गत है कि प्रचलित **रामायण** का रूप दूसरी शती ई० के बाद का नहीं है।" परन्तु यह सब अटकलमात्र है। किसी के पास **रामायण** के काल का निर्णय करने के लिए ठोस प्रमाण नहीं है। इन अटकलबाजियों का कोई भी आधार नहीं है। **रघुवंश** के महाकवि कालिदास विक्रम के समय के ही हैं; अतः विक्रमीय प्रथम शती की अपेक्षा भी **रामायण** का साङ्गोपाङ्ग पूर्ण रूप सुतरां उनसे बहुत पूर्व का है। **महाभारत** भी व्यास भगवान् की कृति है। उनका काल विक्रम से तीन हजार वर्ष से भी पुराना है। अतः आरण्यकपर्व की रामकथा से भी प्रचलित रूप की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। संक्षिप्त संकलन के कारण आधुनिकों को उससे कुछ सामग्री का ही प्रचलन प्रतीत होता है। **आदिरामायण** के सम्बन्ध में श्रीबुल्के कहते हैं कि "**आदिरामायण** से प्रचलित **रामायण** का रूप इतना भिन्न है कि इस महत्त्वपूर्ण विकास के लिए कई शतियों की आवश्यकता प्रतीत होती है; अतः वाल्मीकिकृत रचना कम से कम तीसरी शती ई० पूर्व की होगी। कई विद्वान् वाल्मीकि का काल और प्राचीन मानते हैं।" पर यह भी निरर्थक उदारता-प्रदर्शन है। पहले तो **आदिरामायण** कौन है? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि जहाँ **रामायण** का जन्म हुआ और प्रचार हुआ, जहाँ करोड़ों मनुष्य उसके अनुसार राम की उपासना करते हैं, जहाँ लाखों व्यक्ति **रामायण** का पाठ, अनुष्ठान करते हैं एवं जहाँ **वाल्मीकिरामायण** के आधार पर सहस्रों पुस्तक-पुस्तिकाएँ निर्मित हुई, वहाँ प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** से भिन्न कोई तथाकथित **आदिरामायण** नहीं है।

श्रीबुल्के कहते हैं कि "प्रामाणिक वाल्मीकिकृत **रामायण** से बौद्ध-धर्म की ओर निर्देश नहीं मिलता, अतः इसकी रचना बुद्ध के पूर्व ही अथवा पांचवीं शती ई० पूर्व में हुई होगी। यह एम० मानियर विलियम्स आदि का प्रधान तर्क है। लेकिन बौद्धसाहित्य जातकों की सामग्री के विश्लेषणसे स्पष्ट है कि **त्रिपिटक** के रचना-काल में रामकथासम्बन्धी स्फुट **आख्यानकाव्य** प्रचलित हो चुका था। लेकिन **रामायण** की रचना नहीं हो पायी थी। डॉ० याकोबी **रामायण** का रचनाकाल ई० पूर्व छठी और आठवीं शती के बीच में समझते हैं। अतः अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि वाल्मीकि ने लगभग ३०० ई० पू० अपनी अमर रचना की सृष्टि की हो। इसकी पुष्टि इससे भी होती है कि पाणिनि-सूत्रों में **रामायण** अथवा वाल्मीकि का उल्लेख नहीं है, लेकिन उनके समय में रामकथा प्रचलित हो गयी होगी; क्योंकि सूत्रों में कैकेयी (पा० सू० ७।३।२), कौशल्या (पा० सू० ४।१।१५५) तथा सूर्पणखा (पा० सू० ६।२।१२१) की ओर संकेत मिलते हैं। गणपाठ में परिवर्धन होता रहा है। अतः उनके उल्लेखों पर तर्क आधारित नहीं किया जा सकता। इसमें रामकथा के पात्रों राम, लक्ष्मण, भरत, रावण आदि आये हैं।"

श्रीबुल्के आदि के उपर्युक्त तर्क निरर्थक ही नहीं दुष्टतापूर्ण भी हैं। **त्रिपिटक में** रामकथा-सम्बन्धी स्फुट **आख्यान काव्य** प्रचलित हो चुका था, यह ठीक है, पर इससे यह कैसे विदित हुआ कि **रामायण** की रचना नहीं हो पायी थी।

अपनी पुस्तक के ८२ वें अनुच्छेद में आप कहते हैं—

"**दशरथ-जातक** में जो वृत्तान्त प्रस्तुत हुआ है वह तो **वाल्मीकिरामकथा** का विकृत रूप है ही, किन्तु इस जातक की गाथाओं का भी मूल स्रोत बौद्ध नहीं है फिर भी इनका आधार **वाल्मीकिरामायण** भी नहीं हो सकता। अतः ये गाथायें पुराने आख्यानों पर निर्भर होंगी।" परन्तु इसमें भी क्या प्रमाण है कि वह **रामायण** पर आधारित न होकर अन्य आख्यानों पर निर्भर है? ७२ वें अनुच्छेद में भी कोई प्रमाण नहीं दिया, किन्तु "ब्राह्मण-धर्म के

वातावरण में निर्मित पुराने आख्यान-साहित्य में और राम-सम्बन्धी प्राचीन गीतों में ढूंढ़ना चाहिए"—यह कहकर समाप्त कर दिया। यह कोई विचार है या मखौल है ? किसी वस्तु का, जहाँ भी हो, साङ्गोपाङ्ग विचार करना चाहिये। एक सम्बन्ध की वस्तु के दोष कहकर अनेक स्थलों का उल्लेख करना और उसमें भी सार की कोई भी बात नहीं रखना तर्क नहीं कहलाता। जो ग्रन्थ प्रामाणिक परम्परा से प्रचलित है, उसको प्रमाण न मानकर, अप्रामाणिक अप्रसिद्ध आख्यानों एवं गीतों को आधार मानना कहाँ तक उचित है ? संस्कृत में कहावत है—"**उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितकल्पने मानाभावात्**" अर्थात् उपस्थित प्रमाण को छोड़कर अनुपस्थित अप्रसिद्ध आधार की कल्पना सर्वथा असङ्गत ही है।

पाणिनि के सूत्र इतिहास ग्रन्थ तो हैं नहीं कि वे सम्पूर्ण रामायण की कथा लिखते। वे तो शब्द-साधुत्व के लिए हैं। पाणिनि के सूत्रग्रन्थ में कौशल्या, कैकेयी, शूर्पणखा आदि शब्दों के साधुत्व के लिए अपेक्षित सूत्रों का उल्लेख किया ही गया है। वे शब्द प्रामाणिक आर्ष काव्य **रामायण** के ही हो सकते हैं। असंस्कृत आख्यानों एवं गीतों में तो शब्द-साधुत्व पर इतना ध्यान भी नहीं होता है। इसी तरह जब गणों का उल्लेख पाणिनि-सूत्रों में है ही तो राम, लक्ष्मण आदि शब्दों का ही अप्रामाणिक परिवर्धन मानना हठात् कुनीयत (दुरभिप्राय) की शङ्का उत्पन्न कर देता है।

भारतीय संस्कृति के संस्कृत भाषा के व्याकरण-सूत्रों में आये हुए कौशल्या, कैकेयी, राम, लक्ष्मण आदि शब्दों का आधार भारतीय संस्कृति के प्रसिद्ध ग्रन्थ **रामायण** को छोड़कर अन्य आधार का अन्वेषण स्पष्टतः भारतीय संस्कृति के प्रति द्वेषभावना के कारण ही हो सकता है। मैक्समूलर आदि की परम्परा से ही उक्त द्वेषभावना पाश्चात्यों में चली आ रही है।

२८ वें अनुच्छेद में बुल्के ने कहा है "युद्धकाण्ड की फलश्रुति तथा बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड और **महाभारत** में वाल्मीकि को **रामायण** का रचयिता माना गया है। इस प्राचीन परम्परा के विरोध में कोई युक्ति सङ्गत तर्क नहीं दिया जा सकता" यहाँ तक तो ठीक है परन्तु आगे वे कहते हैं—"किन्तु यह अवश्य मानना पड़ेगा कि इस महान् कवि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री का नितान्त अभाव है" यह भी असङ्गत ही है। **रामायण**, **महाभारत** तथा पुराणों के आधार पर आदि कवि का जो भी वृत्तान्त उपलब्ध है, उसे ही उनका प्रामाणिक महत्त्वपूर्ण वृत्त मानना चाहिये। बुल्के कहते हैं—"**तैत्तिरीयप्रातिशाख्य** के वैयाकरण वाल्मीकि निश्चितरूप में आदि कवि से भिन्न हैं।" परन्तु इस मत का मिथ्या आधार यही है कि प्रातिशाख्य का काल उनके अभिमत आदिकवि-काल से प्राचीन है। पर जो उन लोगों के उस मत को अशुद्ध मानते हैं उनके अनुसार जब ऋग्वेद के राम और सीता, दशरथ तथा वेदों के वसिष्ठ, दशरथ आदि अति प्राचीन हैं तो वाल्मीकि भी अर्वाचीन न होकर प्राचीन ही हैं। ऋग्वेद के कई सूत्रों के द्रष्टा वम्री-ऋषि हैं। वम्री और वाल्मीकि दोनों एक ही हैं। दीमक जन्तु का ही नाम वम्री है। इन्ही वम्रियों ने विष्णु के धनुष की प्रत्यञ्चा काट दी थी। उनके द्वारा एकत्रित मृत्तिका के विशेष उभरे हुए स्थान को वल्मीक कहा जाता है। उन्ही वम्री जन्तुओं ने निरन्तर तपस्या कर रहे उनपर वल्मीक बना दिया था। वल्मीक से उद्भूत होने के कारण ही उनका नाम **वाल्मीकि** हो गया था। इत्यादि वस्तु का उपपादन नीलकण्ठ ने **मन्त्ररामायण** में किया है। **महाभारत** के सुपर्ण आदि कवि वाल्मीकि से भिन्न हो सकते हैं, क्योंकि सुपर्ण कश्यपपत्नी विनता की सन्तान हैं। वह एक पक्षि-जाति है। जैसे कश्यपपत्नी कद्रू की सन्तानें सर्प और नाग आदि हैं वैसे ही विनता की सन्तान सुपर्ण हैं। हाँ, यह ठीक है कि वे सामान्य नाग और सामान्य पक्षी नहीं थे। गरुत्मान् सुपर्ण विष्णु के प्रिय रथ और वाहन हैं। नागों में 'अनन्त' या 'शेष' विष्णु की शय्या के रूप में सेवारत हैं। वे ही गरुत्मान् या गरुड़ युद्धकाण्ड में विष्णुस्वरूप श्रीराम की सहायता के लिए आये थे। उनके आते ही मेघनाद के मन्त्र और अस्त्र-बल

से जिन नागों ने राम और लक्ष्मण आदि को नागपाश में बाँध रखा था वे सब भाग गये थे, यह निम्न निर्दिष्ट श्लोकों से स्पष्ट है—

'एतस्मिन्नन्तरे वायुर्मेघाश्चापि सविद्युतः।
पर्यस्य सागरे तोयं कम्पयन्निव पर्वतान्॥
महता पक्षवातेन सर्वद्वीपमहाद्रुमाः।
निपेतुर्भग्नविटपाः सलिले लवणाम्भसि॥
ततो मुहूर्ताद् गरुडं वैनतेयं महाबलम्।
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम्॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्तेऽपि प्रदुद्रुवुः।
यैस्तु तौ पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलैः॥" (वा० रा ६।५५।३३,३४,३६,३७)

"अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः।
गरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवयोः साह्यकारणात्॥" (वा० रा० ६।५०।४६)

जैसे सुग्रीव, वाली, हनुमान्, जाम्बवान् आदि भालू और वानर होते हुए भी देवताओं के अवतार होने से दिव्यशक्तिसम्पन्न थे, वैसे ही गरुड़, अनन्त आदि पक्षी और नाग होते हुए भी दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवान् की विशिष्ट विभूति थे। यह कहना तो निःसार है कि 'सुपर्णवंश विष्णुभक्त था, किन्तु वाल्मीकि ने शिव की शरण ली थी। क्योंकि वैदिकों में शिव और विष्णु दोनों ब्रह्मरूप ही हैं, अतः विष्णुभक्त भी शिवभक्त ही होते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि सुपर्णरूप वाल्मीकि पक्षियों में थे, परन्तु शिव की शरण लेनेवाले वाल्मीकि तो मनुष्य थे। और वे ही शिवजी के वरदान से निर्दोष होकर आदि काव्य **रामायण** का निर्माण कर असीम यश के भागी हुए। फिर जब श्रीबुल्के के अनुसार ही महाभारत के द्रोणपर्व (११८।४८) तथा शान्तिपर्व (२००।४) में वाल्मीकि को स्पष्ट शब्दों में कवि माना गया है और शान्तिपर्व (५७।४) में भार्गव कवि का तथा अनुशासनपर्व (१८।८-१०) में श्रेष्ठ यशवाले वाल्मीकि का वर्णन है। आदिपर्व (५०।१४), सभापर्व (७।१४), वनपर्व (८३।१०२) तथा उद्योगपर्व (८१।२७) में वाल्मीकि का वर्णन है तब वाल्मीकि को ई० पूर्व तीन सौ वर्ष का मानने में अभिनिवेश क्यों?

श्रीबुल्के कहते हैं, "विशेषज्ञों के अनुसार द्रोणपर्व का वर्तमान रूप बहुत परिवर्धित है। शान्तिपर्व एवं अनुशासनपर्व निश्चितरूप से अर्वाचीन हैं। बहुत सम्भव है कि **महाभारत** के व्यासों ने अपेक्षाकृत अर्वाचीन काल में कवि वाल्मीकि का परिचय प्राप्त किया हो और ये बहुसंख्यक स्थल आदि कवि वाल्मीकि से भिन्न किसी अन्य वाल्मीकि ऋषि से सम्बन्ध रखते हों इत्यादि।" परन्तु यह भी सङ्गत नहीं है। पाश्चात्यों के अनुसार कोई भी भारतीय संस्कृत का साहित्य प्रामाणिक एवं क्षेपकशून्य नहीं है। जब वे **ऋग्वेद** जैसे **परम्परा प्राप्त** वेद ग्रन्थ में भी क्षेपक होने की कल्पना करते हैं तब किसी अन्य ग्रन्थ को प्राचीन एवं शुद्ध कैसे मान सकते हैं? यही बात श्रीतुलसीदासजी ने कही थी—

"हरित भूमि तृन संकुल सूझि परहि नहि पंथ।
जिमि पाखण्ड बाद तें गुप्त होहिं सदग्रंथ॥"(रा० मा० ४।१४)

अभी भी कोई धर्मभीरू व्यास या विद्वान् आर्ष ग्रन्थों में बाहर से किसी अंश को जोड़ने में पाप मानता है। जो भी कोई चीज जोड़ी जाती है वह प्रक्षिप्तरूप से ही जोड़ी जाती है। **वाल्मीकिरामायण** के बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड से स्पष्ट ही विदित है कि वाल्मीकि महर्षि ही आदि कवि भी हैं और वे राम के समकाल में ही थे। ऐसी

स्थिति में द्वापर में बननेवाले **महाभारत** में उनका नाम आना सुतरां उचित है। उत्तरकाण्ड के अनुसार सीता वनवास-काल में महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में ही रही थीं।

"राज्ञो दशरथस्यैव पितुर्मे मुनिपुङ्गवः ।
सखा परमको विप्रो वाल्मीकिः सुमहायशाः ॥"(वा० रा० ७।४७।१६,१७)

लक्ष्मण ने सीता से कहा था कि मेरे पिता दशरथ के परम सखा विप्र मुनिपुङ्गव वाल्मीकि यहाँ रहते हैं। आप उन्हीं की पादच्छाया का आश्रयण करके समय व्यतीत करें।

इसी तरह—

"प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो राघवनन्दन।
न स्मराम्यनृतं वाक्यमिमौ तु तव पुत्रकौ ॥
बहुवर्षसहस्राणि तपश्चर्या मया कृता।
मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम् ॥" (वा० रा० ७।९६।१८–२०)

वाल्मीकि ने कुश, लव और सीता को लेकर श्रीराम के सामने यह कहा था—मैं प्रचेता का दसवां पुत्र हूँ। मैंने हजारों वर्ष तपश्चर्या की है। मैंने कभी भी असत्य भाषण नहीं किया है। मन, वचन और कर्म से कोई पाप मुझसे नही हुआ। इन प्रमाणों से भी वाल्मीकि राम के समसामयिक ही सिद्ध होते हैं।

वाल्मीकि के आश्रम के सम्बन्ध में बुल्के कहते हैं—"बालकाण्ड (सर्ग २ श्लोक ३) के अनुसार वाल्मीकि का आश्रम तमसा और गङ्गा के समीप था। सर्ग ४५,४६ के अनुसार तमसा से भिन्न गङ्गा की कोई उपनदी है। उत्तरकाण्ड के प्रसंगों से पता चलता है वह नदी गंगा के दक्षिण में थी, क्योंकि लक्ष्मण और सीता अयोध्या से आकर गंगा पार करने के बाद ही वाल्मीकि के आश्रम में पहुँचे थे (सर्ग ४७)। शत्रुघ्न के विषय में कहा गया है कि वाल्मीकि के आश्रम से पश्चिम की ओर जाते हुए वह यमुनातीर पर उतरे (वा० रा० ७।६६।१५)। बाद में अन्य परम्परा प्रचलित होने लगी। जिसके अनुसार वाल्मीकि का आश्रम गंगा के उत्तर माना गया है। रामायण के टीकाकार कतक तथा गोविन्दराज उपर्युक्त **'यमुनातीरम्'** के स्थान में **'गङ्गातीरम्'** को शुद्ध मानते हैं। रामायण के दाक्षिणात्य पाठ के एक प्रक्षेप के अनुसार, जो अन्य पाठों में नहीं मिलता, चित्रकूट के पास वाल्मीकि के आश्रम पर राम, लक्ष्मण और सीता पहुँचते हैं—

"इति सीता च रामश्च लक्ष्मणश्च कृताञ्जलिः।
अभिगम्याश्रमं सर्वे वाल्मीकिमभ्यवादयन् ॥"

अयोध्याकाण्ड (सर्ग ५६), अध्यात्मरामायण (२।६), आनन्दरामायण (१।६) तथा **रामचरितमानस** (२।१२४) में वाल्मीकि का आश्रम यमुना के पार चित्रकूट पर स्थित माना गया है। वस्तुतः बालकाण्ड का वाल्मीकि आश्रम प्रसिद्ध तमसा के तीर ही मानना चाहिये।

"जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः।" (वा० रा० २।१।३) यहाँ अविदूरतः का समीप अर्थ नहीं है, किन्तु जाह्नवी से अधिक दूर भी नही अर्थात् कुछ दूर तो जाह्नवी से तमसा नदी है ही। यों भी दूरत्व और सामीप्य साक्षेप होते हैं।

अयोध्याकाण्ड (सर्ग ४५) की भी तमसा वही है, अन्य कोई गंगा की उपनदी नहीं। इसी लिए तमसा से चलने के पश्चात् श्रीराम आदि को वेदश्रुति, गोमती और उसके पश्चात् गंगा मिली थी।

"ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम्।"
"गोमतीं गोयुतानूपामतरत् सागरङ्गमाम् ॥"

"गोमतीं चाप्यतिक्रम्य राघवः शीघ्रगैर्हयैः ।
मयूरहंसाभिरुतां ततार स्पन्दिकां नदीम् ॥" (वा० रा० २।४९।९,१०,११)

इन प्रमाणों के आधार पर अविदूरतः का अर्थ समीप नहीं; किन्तु अधिक दूर नहीं है। तमसा नाम की गंगा की कोई भी उपनदी प्रसिद्ध है ही नहीं और न वह अयोध्या और प्रयाग के मध्य में मिलती है। **उत्तरकाण्ड** (सर्ग ४७) में तमसा का वर्णन ही नहीं है। वहाँ तो वाल्मीकि आश्रम का वर्णन है। महर्षि का एक आश्रम वहाँ भी रहा होगा। इतना ही क्यों, चित्रकूट से कुछ ही दूर पर अब भी एक वाल्मीकि नाम का पर्वत है, उसे भी वाल्मीकि का आश्रम माना जाता है। आज भी महात्माओं के अनेक आश्रम होते ही हैं। गंगा के तीर पर वाल्मीकि-आश्रम कानपुर से पश्चिम बिठूर के पास है। वहीं सीता को लक्ष्मण ने पहुँचाया था। वहाँ से पश्चिम मथुरा के मार्ग में यमुना भी पड़ती है, अतः शत्रुघ्न का भी उसी आश्रम से पश्चिम की ओर जाना संगत है। वहाँ भी तमसा की चर्चा नहीं है। उत्तरकाण्ड के (सर्ग ६६) में भी तमसा का नाम नहीं है। शत्रुघ्न ने वाल्मीकि के उसी आश्रम में रात्रि में निवास किया था। सीता-पुत्रों का जन्म सुनकर, अभिनन्दन कर तथा प्रातःकालीन कृत्य करके वहाँ से व पश्चिम दिशा की ओर चल पड़े थे और तब यमुना के मार्ग में महर्षियों के आश्रमों में रुकते हुए सात रात्रियों के अनन्तर यमुना के तीर पर पहुँचे थे।

"स गत्वा यमुनातीरं सप्तरात्रोषितः पथि।" (वा० रा० ७।६६।१५)

इस दृष्टि से विचार करने पर **वाल्मीकिरामायण** के विभिन्न काण्डों तथा अन्य **रामायणों** में विरोध दिखाने की चेष्टा निरर्थक ही है। इसी प्रकार भार्गव वाल्मीकि के सम्बन्ध की शङ्काएँ भी निःसार हैं, क्योंकि भार्गव शब्द उपाधि नहीं है, किन्तु भृगुवंश में उद्भूत होनेवाले को भार्गव कहा जाता है। च्यवन तथा परशुराम आदि भी उसी वंश में उद्भूत होने के कारण भार्गव कहे जाते हैं। यह भी आवश्यक नहीं कि जहाँ भार्गव का नाम आये वहाँ दूसरे भार्गवों का भी नाम आये।

दस प्रचेतस प्राचीनबर्ही राजा के पुत्र थे। समानरूप से धर्म तथा व्रतों में स्नात होने के कारण उनके समान ही नाम थे—

"प्रचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन् ।
तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥" (भा० ४।२४।१३)

परन्तु 'प्रचेतस' के अनुसार **वाल्मीकिरामायण** के निर्माता वाल्मीकि ऋषि से सम्बन्ध रखनेवाले प्रचेता वरुण हैं। **"प्रचेता वरुणः पाशी"** (अमर १।१।६१) के अनुसार वरुण का प्रचेता नाम है। वरुण के अंश से जैसे अगस्त्य आदि का जन्म हुआ है वैसे ही वाल्मीकि का जन्म है। अन्यत्र उन्हें ब्रह्मा का अवतार भी माना गया है। जैसे नारद ब्रह्मपुत्र होते हुए शापादि के कारण दासीपुत्र हो गये थे उसी तरह कभी उनका भृगुवंशीय ब्राह्मणों के कुल में जन्म हुआ था।

वाल्मीकि संगवश दस्यु हो गये थे और सप्तर्षियों के सम्बन्ध और उपदेश से राम का उलटा नाम 'मरा' जपने में तल्लीन हो गये। उनके ऊपर दीमकों द्वारा वल्मीक बन गया। उससे निकलने के बाद उनका 'वाल्मीकि' नाम अन्वर्थक हो गया था। उस नवीन जन्म मिलने के बाद उन्होंने महती तपस्या की और सर्वथा निष्किल्बिष रहे। उत्तरकाण्ड का 'मनसा वाचा कर्मणा' यह वचन भी सार्थक हुआ।

उन महर्षि ने स्पष्टरूप से कहा है कि कुश और लव जानकी के दो यम-जात (जुड़वे) पुत्र हैं। एतावता बुल्के का यह कहना दुष्टतापूर्ण है कि कुश तथा लव का अर्थ अर्थशास्त्र के अनुसार गणिकाध्यक्ष होता है। उनका

समाज में कोई विशेष आदर नहीं था। किन्तु इन्हीं उद्देश्यों की सिद्धि के लिए तो वे बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड को अप्रमाण और पीछे का मिलाया हुआ मानते हैं, क्योंकि दोनों काण्डों में कुश और लव श्रीराम के औरस पुत्र कहे गये हैं। उनमें कुश राम के राज्यसिंहासन के अधिकारी हुए थे। महाकवि कालिदास ने भी यही माना है। महर्षि को **रामायण**-निर्माण करके यह चिन्ता हुई कि इस **रामायण** का सभाओं में गान कौन करे? उसी समय सीता-पुत्रों ने आकर महर्षि का चरण-ग्रहण किया। वे दोनों धर्मज्ञ थे, यशस्वी थे और राजपुत्र थे। दोनों वेद-वेदांगपारंगत, स्वरसम्पन्न तथा मेधावी थे। वेदों के उपबृंहण के लिए महर्षि ने उन्हें **रामायण** महाकाव्य पढ़ाया—

"अगृहीतां मुनेः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ ॥
कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ ॥
स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः ॥ (वा० रा० १।४।४-६)

कुश-लव को गणिकाध्यक्ष कहना हृदय-कालुष्यद्योतन है

क्या ये गुण गणिकाध्यक्ष कुशीलवों में हो सकते हैं? इसके अतिरिक्त यदि बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड का प्रामाण्य आपको मान्य नहीं है तो किसी कुशीलव ने **रामायण** महाकाव्य वाल्मीकि से प्राप्त किया और उसका गान किया, यह असिद्ध ही है। यदि उक्त दोनों काण्ड सप्रमाण हैं तो कुशीलव श्रीराम और सीता के पुत्र सिद्ध ही हैं। फिर उन्हें छोड़कर अनर्गल कल्पना, अर्थशास्त्र के प्रसंगान्तरीय अप्रकृत कुशीलव का प्रकृत से सम्बन्ध जोड़ना, कहाँ तक उचित है? इसे ही प्रकृत-परित्याग और अप्रकृतप्रसंग कहा जाता है।

भार्गव ने उपाख्यान समन्वित २४ हजार श्लोकों के **रामायण** ग्रन्थ की रचना की। उसमें उत्तरकाण्ड सहित आदि (बाल) काण्ड से लेकर युद्ध-काण्ड तक छह काण्ड हैं और पाँच सौ सर्ग हैं।

नागेश के अनुसार 'कुशश्च लवश्च' इस द्वन्द्वसमास में यहाँ कुश शब्द पृषोदरादि में पठित होने से कुशी शब्द बन गया है। इस तरह 'कुशीलव' शब्द सम्पन्न हुआ है। सीता-पुत्रों का कुशीलव नाम क्यों पड़ा यह भी उत्तरकाण्ड में स्पष्टरूप से प्रतिपादित है।

महर्षि ने मन्त्र-संस्कृत कुशों से जिसका मार्जन किया था उसका नाम कुश हुआ और जिसका मार्जन लवों से किया उसका नाम लव हुआ। नागेश के अनुसार काट कर दो खण्डों में विभक्त **कुशमुष्टि** का अग्रभाग कुश कहा जाता है एवं शेष अधोभाग लव कहा जाता है। अर्थात् कुछ कुशों को लेकर उनको बीच से दो टुकड़ों में विभक्त करके अग्रभाग से ज्येष्ठका एवं अधो भाग से कनिष्ठ का मार्जन किया गया —

"यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसंस्कृतैः[१]।
निर्मार्जनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत् ॥
यश्चावरो भवेत्ताभ्यां लवेन सुसमाहितः।
निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्लवेति च स नामतः ॥" (वा० रा० ७।६६।७,८)

इतना स्पष्ट विवरण रहने पर भी कुश और लव को कुशीलव गणिकाध्यक्ष मानना हृदय की कलुषता का ही द्योतक है।

---

१. मन्त्रसत्कृतैः, भी पाठ है।

वाल्मीकि ही भार्गव थे

उत्तरकाण्ड में रामायणकार महर्षि वाल्मीकि को भार्गव कहा गया है—

"संनिबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम्।
उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना॥
आदिप्रभृति वै राजन् पञ्चसर्गशतानि च।
काण्डानि षट् कृतानीह सोत्तराणि महात्मना॥" (वा० रा० ७।९४।२५,२६)

इससे बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड तथा रामायण के उपाख्यानों को अर्वाचीन या प्रक्षिप्त कहना सर्वथा निर्मूल सिद्ध होता है। उक्त श्लोकों में वाल्मीकि को ही भार्गव कहा गया है।

नागेश भट्ट के अनुसार काव्यनिर्माण में भार्गव (उशना) के तुल्य होने से वे भार्गव कहे गये हैं। '**कवीनामुशना कविः**' (गी० १०।३७) के अनुसार उशना कवि सभी कवियों में श्रेष्ठ माने जाते हैं। मनुष्य-लोक में वाल्मीकि ही आदि कवि हैं। अथवा प्रचेता वरुण का नाम है। भृगु भी वरुण के ही पुत्र हैं "**भृगुर्वै वारुणिः**। वरुणं पितरमुपससार" (तै० उ० ३।१), 'तस्येदम्' (पा० सू० ४।३।१२०) के अनुसार अण् प्रत्यय हुआ, जिससे '**भृगोर्भ्राता भार्गवः**' भृगु के भ्राता होने से वाल्मीकि भी भार्गव हुए।

मुख्य बात तो यह है कि **मीमांसा-शास्त्रों** एवं **मिताक्षरा** आदि निबन्ध-ग्रन्थों के अनुसार विभिन्न आर्ष ग्रन्थों का समन्वय ही भारतीय पद्धति है। अतः **महाभारत, स्कन्दपुराण** तथा अन्य पुराणों में परस्पर विरोध ढूंढने का प्रयास न कर समन्वय का ही यत्न करना चाहिए।

परन्तु पाश्चात्य विद्वान् ग्रन्थों के परस्पर विरोध ही ढूंढते रहते हैं। वे आर्ष **पुराणादि** ग्रन्थों को ईसवी सन् के भीतर लाने की ही चिन्ता में लगे रहते हैं। वस्तुतः,

"श्लोकश्चायं पुरा गीतो भार्गवेण महात्मना।
आख्याते रामचरिते नृपतिं प्रति भारत॥"
"राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम्॥" (म० भा० १२।५७।४०,४१)

के अनुसार श्रीभीष्मजी ने अत्यन्त प्राचीन भार्गव महर्षि वाल्मीकि के **रामायण** का श्लोक उद्धृत किया था। प्रथम राजा को प्राप्त करना चाहिये, फिर भार्या और तब धन प्राप्त करना चाहिये। राजा के बिना अराजकता में भार्या, धन कुछ भी सुरक्षित नहीं रहता और वह यह है—

"अराजके धनं नास्ति नास्ति भार्याप्यराजके।
इदमत्याहितं चान्यत् कुतः सत्यमराजके॥" (वा० रा० २।६७।११)

अराजकता में धन, भार्या कुछ भी सुरक्षित नही रहता, यह महाभीति[1] होती है फिर अराजकता में सत्य कहाँ; अतः भार्या और धन प्राप्त करने के पहले राजा को प्राप्त करना आवश्यक है। महाभारत के बहुत पहले रामायण की रचना हो चुकी थी, इस बात के ऐसे पुष्ट प्रमाणों के मिलने पर भी पश्चिमी विद्वान् रामायण को महाभारत के बाद का सिद्ध करने की धृष्टता करने का दुःसाहस करते हैं, इससे बढ़कर उनकी हृदयहीनता का दूसरा प्रमाण क्या हो सकता है। विष्णुपुराण (३।३।१८) तथा मत्स्यपुराण (१२।५१) में जो वाल्मीकि को भार्गव कहा गया है वह वस्तुस्थिति का वर्णन है। वह असम्भव नहीं है। आर्षविज्ञान-सम्पन्न व्यास आदि महर्षियों ने अपने आर्ष ज्ञान से निरीक्षण कर च्यवन एवं वाल्मीकि का वृत्तान्त लिखा है। दोनों ही के तपःसंलग्न देह दीमकों द्वारा रचित

१. **अत्याहितं महाभीतिः (अमरकोष)**

वल्मीक से प्रावृत हो गये थे। दोनों के वृत्तान्तों के मिश्रण की बात नहीं है। फिर भी 'वल्मीक' से उद्भूत होने के कारण 'वाल्मीकि' शब्द च्यवन में प्रसिद्ध न होकर **रामायणकार** प्राचेतस महर्षि में ही प्रसिद्ध हुआ है।

'भार्गव' शब्द वाल्मीकि में वरुणस्वरूप प्रचेता के पुत्र होने से एवं वरुण-पुत्र भृगु से संबद्ध होने से उचित ही है। **अध्यात्मरामायण** आदि प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर कालान्तर में शापादि के कारण उन्हीं का जन्म किसी भृगुकुलोद्भूत ब्राह्मणकुल में हुआ था, इससे भी वे भार्गव हुए। इस दृष्टि से भृगुवंशीय होने के कारण भी उन्हें औपचारिक रूप से च्यवन-पुत्र कहा गया है।

सन्तान-परम्परा में उत्पन्न होने पर भी पुत्रत्व का व्यवहार होता है। श्रीभागवतादि पुराणग्रन्थों में सूर्यवंश और सोमवंश के वर्णन के प्रसङ्ग में उस वंश में होनेवाले उत्तरोत्तर के प्रधान-प्रधान पुरुष पूर्व पूर्व के प्रधान पुरुषों के पुत्ररूप में वर्णित किये गये हैं। तभी लाखों वर्षों के दीर्घ काल में वर्णित राजाओं की संख्या बहुत ही कम है।

इसी दृष्टि से **कृत्तिवासीय रामायण** तथा अश्वघोष के **बुद्धचरित** में वाल्मीकि को च्यवन का पुत्र कहा गया है—

"वाल्मीकिरादौ च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः।" (बुद्ध-च० १।४३)

यहाँ यही अभिप्राय विवक्षित है कि पूर्व के लोगों ने जो लोकोत्तर कार्य नहीं किया वह उत्तरोत्तर लोगों ने किया था। वाल्मीकि ने जो आदिपद्य की रचना की उसकी रचना उनके पूर्वज बड़े प्रभावशाली च्यवन भी नहीं कर सके थे। इसी तरह के और भी अनेक उदाहरण हैं।

दस्यु वाल्मीकि

बुल्के यह कहते हैं कि "वाल्मीकि पहले डाकू थे। वे दीर्घकालीन तपस्या के बाद **रामायण** की रचना में समर्थ हुए। इस कथा की प्राचीनता में सन्देह है।

मुनियों के ब्रह्मघ्न कहने पर वाल्मीकि पातक से आविष्ट हो गये थे और शिवपूजा कर वे मुक्त हुए थे। **अनुशासनपर्व** की इस कथा का **स्कन्दपुराण** में विकास हुआ है।"

स्कन्दपुराण भी तो बुल्के की दृष्टि में अधिक से अधिक ई० १० वीं शती की रचना है। पर यह सब असङ्गत है। क्योंकि **वेद, उपनिषद्** तथा **पुराणों** की दृष्टि से अन्य **पुराणों** की भाँति वह भी अनादि ही है। पुराणों का प्रतिकल्प में आविर्भाव होता रहता है। अपौरुषेय वेद में आनुपूर्वी अपरिवर्तित रहती है। **इतिहास-पुराणों** की आनुपूर्वी में महर्षियों द्वारा परिवर्तन होता रहता है। इसी लिए वे पौरुषेय कहे जाते हैं। वर्तमान आनुपूर्वीवाले **पुराणादि** द्वापर में, आज से पाँच हजार वर्षों से भी अधिक पूर्व, निर्मित हुए हैं। व्यास सर्वज्ञ-कल्प थे। अतएव उन्होंने भूत तथा भविष्यत् की भी कथाएँ लिखी हैं। अतः कथाओं के आधार पर उनका उत्पत्तिकाल निश्चित नहीं किया जा सकता। **अनुशासनपर्ववाली** कथा का विकास **स्कन्दपुराणीय** कथा के रूप में हुआ, यह कहना सर्वथा गलत है; क्योंकि उनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं है—

"वाल्मीकिश्चाह भगवान् युधिष्ठिरमिदं वचः।
विवादे साग्निमुनिभिर्ब्रह्मघ्नो वै भवानिति॥
उक्तः क्षणेन चाविष्टस्तेनाधर्मेण भारत।
सोऽहमीशानमनघममोघं शरणं गतः॥

मुक्तश्चास्मि ततः पापैस्ततो दुःखविनाशनः ।
आह मां त्रिपुरघ्नो वै यशस्तेऽग्र्यं भविष्यति ॥" (म० भा० १३।१८।१८-१०)

वाल्मीकि ने युधिष्ठिर से कहा था कि किसी विवाद में आहिताग्नि मुनियों ने मुझसे 'आप ब्रह्मघ्न हैं' कह दिया। उनके ऐसा कहते ही मैं पापों से युक्त हो गया। तब मैं अमोघ, अनघ भगवान् ईशान की शरण में गया। और पापों से मुक्त हो गया। तदनन्तर दुःखविनाशन त्रिपुरघ्न शिव ने मुझसे कहा—तुम्हारा श्रेष्ठ यश होगा।

इस कथा में डाका डालने या तपस्या की कोई बात नहीं है, अतः उन्ही महर्षि के सम्बन्ध में इस स्वतन्त्र घटना का वर्णन समझना चाहिये।

स्कन्दपुराण वैष्णवखण्ड वैशाख-माहात्म्य आदि की कथाओं के अनुसार किसी ने राम-नाम के जप के प्रभाव से यह वरदान प्राप्त कर लिया था कि अगले जन्म में तुम वल्मीक नामक ऋषि के कुल में उत्पन्न होओगे तथा वाल्मीकि नाम धारण कर महान् यशस्वी बन जाओगे। कृणु नामक तपस्वी के शरीर के चारों ओर वल्मीक बन गया था। उसका नाम वल्मीक पड़ा था। व्याध उसी के पुत्ररूप में उत्पन्न होकर वाल्मीकि नाम से प्रसिद्ध हुआ और दिव्य रामकथा रचने में समर्थ हुआ, आदि रूप में वाल्मीकि का इतिवृत्त ज्ञात होता है। अन्य प्रकार के इतिवृत्त भी वाल्मीकि के सम्बन्ध में प्राप्त हैं—

स्कन्दपुराणीय अवन्तीखण्ड के २४ वें अध्याय में अग्निशर्मा की कथा है। वह डाकू था। किसी दिन सप्तर्षियों से उसकी भेंट हो गयी। वह उनको मार डालना चाहता था। ऋषियों ने उसे परिवार से यह पूछने भेज दिया कि क्या वे लोग तुम्हारे पापकर्मों में भी भागीदार होंगे? पूछने पर जब परिवार के लोगों ने पाप-कर्म में भागीदार होना अस्वीकार कर दिया तब अग्निशर्मा ऋषियों के पास लौटा और उनका उपदेश प्राप्त कर ध्यान तथा मन्त्र-जप में निरत हुआ। तेरहवें वर्ष बाद जब ऋषि लोग उसी मार्ग से लौटे तो उन्होंने उसके शरीर के चारो ओर वल्मीक बना देखा। ऋषियों ने वहाँ से निकाल कर उसका 'वाल्मीकि' नाम रखा और रामायण लिखने का आदेश दिया।

नागरखण्ड के १२४ वें अध्याय में लोहजङ्घ की कथा है। वह माता-पिता की सेवा में सदैव तत्पर रहता था। परिवार-पालन की दृष्टि से दस्यु बन गया था। उसकी सप्तर्षियों के साथ भेंट हुई। पूर्व वृत्तान्त के समान उसको भी ऋषियों ने कोई मन्त्र बतलाया, वह उसे जपकर सिद्ध हुआ और वाल्मीकि नाम से प्रसिद्ध हुआ।

प्रभासखण्ड के २९८ वें अध्याय में शमीमुख ब्राह्मण की कथा है। उसका पुत्र वैशाख था। वह चोरी द्वारा अपने परिवार का पालन करता था। उसकी भेंट सप्तर्षियों से हुई। धन के ही हम भागी हैं, पाप के नही, परिवार-वालों से यह सुनकर उसे वैराग्य हो गया। वह भी तप करते करते वल्मीक से आवृत होकर वाल्मीकि बन गया। सप्तर्षियों ने उसके लिए भविष्यवाणी की—

"स्वच्छन्दा भारती देवी जिह्वाग्रे ते भविष्यति।
कृत्वा रामायणं काव्यं ततो मोक्षं गमिष्यसि ॥"

तुम्हारे जिह्वाग्र में स्वच्छन्द (बेरोकटोक) भगवती सरस्वती देवी का निवास होगा। तुम अमर काव्य रामायण की रचना कर तदनन्तर मोक्ष को प्राप्त होओगे।

उपर्युक्त सभी कथाएँ प्रामाणिक ग्रन्थों की होने से प्रामाणिक हैं, अतः **गुणोपसंहारन्याय'** से इन सबका समन्वय करना ही ठीक है। व्याधवाली कथा में कोई नामनिर्देश नहीं है। वह जन्मान्तर में वल्मीक ऋषि का पुत्र होने से वाल्मीकि बना। उन वाल्मीकि ऋषि को अन्य कथाओं के अनुसार भृगुवंशी मानने में भी कोई विरोध नही

है। अन्य कथाओं में तो केवल नाममात्र का भेद है। एक ही व्यक्ति के कई नाम हो सकते हैं, अथवा देश-भेद से उनके नाम-भेद उपपन्न हो जाते हैं। अन्य कथाओं में भी उन्हें भृगुवंशीय मानने में कोई बाधा नहीं है, क्योंकि किसी भी कथा में उसके विपरीत वर्णन नहीं है। **अध्यात्मरामायण** में स्वयं वाल्मीकि द्वारा ही इतिवृत्त वर्णित है। अतः उसी के साथ सबका समन्वय होना ठीक है। जैसे **छान्दोग्योपनिषद्** में तेज, अप् और अन्न पूर्विका सृष्टि का वर्णन है और प्रश्नोपनिषद् में भिन्न क्रम है—

'तत्तेजो असृजत' (छा० उ० ६।२।३), "स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम् ॥" (प्र० उ० ६।४) मुण्डक में और भिन्न है—

" एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥" (मु० उ० २।१।३)

तथा तैत्तिरीय में अन्य है—"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः" (तै० उ० २।१) इस प्रकार प्रश्न, मुण्डक आदि में क्रमरहित सृष्टि का वर्णन है। **तैत्तिरीयोपनिषद्** में आकाश, वायु, तेज, और पृथ्वी के क्रम से सृष्टि का वर्णन है।

उत्तरमीमांसा में **तैत्तिरीयश्रुति** के अनुसार अन्य श्रुतियों का समन्वय किया गया है। इसी तरह **छान्दोग्य** तथा **बृहदारण्यक उपनिषदों** की पञ्चाग्निविद्या का समन्वय है—

"असौ वाव लोको गौतमाग्निः" (छा० उ० ५।४।१),
"अथैनमग्नये हरन्ति तस्याग्निरेवाग्निर्भवति समित् समित् ॥ (बृ० उ० ६।२।१४)

पञ्चाग्नि-विद्या छान्दोग्य और बृहदारण्यक दोनों उपनिषदों में है। वहाँ छान्दोग्य उ० में द्यु, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष, योषित् इन पाँच अग्नियों का वर्णन है। परन्तु बृहदारण्यक उ० में षष्ठ लौकिक अग्नि का भी वर्णन है; पर दोनों शाखाओं की पञ्चाग्निविद्या एक ही है, अतः जैसे बृ० उ० के अनुसार ही छा० उ० की सङ्गति लगा ली जाती है वैसे ही **अध्यात्मरामायण** की कथा के साथ ही वाल्मीकिसम्बन्धी अन्य कथाओं का भी समन्वय समझना चाहिये। उसमें कहा है—

"अहं पुरा किरातेषु किरातैः सह वर्धितः।
जन्ममात्रं द्विजत्वं मे शूद्राचाररतः सदा ॥
"शूद्रायां बहवः पुत्रा उत्पन्ना मेऽजितात्मनः।
ततश्चोरैश्च संगम्य चोरोऽहमभवं पुरा ॥" (अ० रा० २।६।६४,८७)

कथा यों वर्णित है—वाल्मीकि ने कहा, मैं प्राचीनकाल में किरातों के मध्य में रहकर किरातप्राय हो गया था। केवल जन्ममात्र से मैं द्विज (ब्राह्मण) था, परन्तु आचरण सब मेरे शूद्रों के से थे, शूद्रा पत्नी में मेरे बहुत से पुत्र भी उत्पन्न हुए। चोरों के साथ रहते रहते मैं भी चोर हो गया।

एक बार मैंने वन में अग्नि एवं सूर्य के समान दिव्य प्रकाशवाले मुनियों को देखा। उनके वस्त्रादि लेने के लिए मैं उन्हें पकड़ने दौड़ा। मुनियों ने मुझे देखकर पूछा—क्या करना चाहते हो? मैंने कहा, मेरे बहुत से बुभुक्षित पुत्र, स्त्री आदि हैं। उनके रक्षणार्थ में जङ्गल में लोगों को मारकर धन-हरण करता हूँ? उन्होंने कहा—तुम कुटुम्ब के लोगों से जाकर पूछो कि जो मैं तुम लोगों के लिए प्रतिदिन पाप करता हूँ उसमें तुम लोग भी भागीदार हो कि नहीं? मैंने जाकर पूछा तो कुटुम्बवालों ने कहा—हम लोग तो धनादि फल के ही भागी हैं, पाप के नहीं। यह सुनकर मेरे मन में निर्वेद, वैराग्य एवं ग्लानि उत्पन्न हो गयी। मैं मुनियों की शरण में गया। करुणापूर्ण

मानस होकर मुनियों ने कहा—उठो, उठो, सन्तसमागम सफल हो गया। उन लोगों ने परस्पर विचार किया कि यद्यपि यह व्याध बड़ा ही दुर्वृत्त है, उपेक्ष्य ही है, तथापि शरणागत हुआ है; अतः इसकी रक्षा करनी चाहिये।

तब उन्होंने कहा—जब हम लोग लौट कर आयें तब तक तुम यहीं 'मरा मरा' मन्त्र जपते रहो—

"इत्युक्त्वा राम ते नाम व्यत्यस्ताक्षरपूर्वकम्।
एकाग्रमनसा चैव मरेति जप सर्वदा॥"

आपके राम-नाम का व्यत्यस्त (उलटा) 'मरा' नाम जपने को उन्होंने कहा।

यह कहकर मुनि लोग चले गये। मैं उनके कहने के अनुसार एकाग्र मन से जप करते करते बाह्य प्रपञ्च भूल गया। इस तरह बहुत काल तक सङ्गहीन एवं निश्चल होकर रहने के कारण मेरे ऊपर वल्मीक हो गया। युग-सहस्र के अन्त में ऋषि लोगों ने पुनः आकर मुझसे उस वल्मीक से निकलने के लिए कहा।

फिर नीहार के बीच से निकलते हुए भास्कर के तुल्य उस वल्मीक से मैं निकला। जब मैं निकला तब मुनियों ने कहा—अब तुम मुनीश्वर वाल्मीकि हो गये हो। अब यह तुम्हारा दूसरा जन्म है। हे श्रीराम! मैं आपके मन्त्र-जप के प्रभाव से ऐसा हो गया।

इसी कथा के साथ वाल्मीकिसम्बन्धी सब कथाओं की सङ्गति लग जाती है।

इस **रामायण** में भी वाल्मीकि ने अपने को प्रचेता का दसवां पुत्र कहा है—

"सुतौ तवैव दुर्धर्षौ तथ्यमेतत् ब्रवीमि ते।
प्रचेतसोऽहं दशमः पुत्रो रघुकुलोद्वह!॥" (वा० रा० ७।९६।१७,१८)

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि पहले वे प्रचेता के दशम पुत्र थे। पश्चात् किसी शापवशात् पापयुक्त हो गये।

वाल्मीकि-युधिष्ठिर-संवाद से शाप का भी आभास मिलता ही है।

अनन्तर वे किसी भृगुवंशीय ब्राह्मण के यहाँ उत्पन्न हुए। वहाँ दस्युओं के संसर्ग से दस्यु आदि होकर मुनि-समागम के प्रभाव से क्रमेण वाल्मीकि महर्षि हुए। इस अन्तिम जन्म में वे अत्यन्त निष्पाप हो गये। उन्होंने मन से भी कभी मिथ्याभाषण नहीं किया और महती तपश्चर्या की।

इसी अभिप्राय का वर्णन गोस्वामीजी ने किया है—

"ऊल्टा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भये ब्रह्मसमाना॥" (चतुष्पदी १८४)

आनन्दरामायण का भी इसी के साथ समन्वय हो जाता है। **तत्त्वसारसंग्रह** की चमत्कार कथाएँ भी विरुद्ध नहीं हैं।

कृत्तिवासीय रामायण में वाल्मीकि को च्यवन का पुत्र कहा गया है। सन्तान-परम्परा में होनेवाले को भी पुत्र कहा जाता है। इसी दृष्टि से, च्यवन का भार्गव-वंश में जन्म होने से, वाल्मीकि च्यवन के पुत्र कहे गये। श्वपच वाल्मीकि कोई अन्य हुए ही नहीं।

विष्णुधर्मोत्तर के मूर्ति-निर्माण के प्रसङ्ग में वर्णित वाल्मीकि **रामायणकार** ही हैं। तपोनिष्ठ तथा शान्त वाल्मीकि का रूप गौर वर्ण बनाना चाहिये। उनका आकार जटा-मण्डल से आच्छन्न होना चाहिये और वह न कृश होना चाहिये और न स्थूल ही होना चाहिये—

"गौरस्तु कार्यो वाल्मीकिर्जटामण्डलदुर्दृशः ।
तपस्यभिरतः शान्तो न कृशो न च पीवरः ॥" (विष्णुध० पु० ३।८५)

जैसे सीताराम के गुणग्रामरूपी पुण्यारण्य में विहार करनेवाले कपीश्वर की पूजा होती है वैसे ही विशुद्ध विज्ञानवाले कवीश्वर वाल्मीकि की भी पूजा उचित ही है। **मन्त्ररामायण** के प्रसङ्ग में वाल्मीकि को ब्रह्मा का अंश कहा गया है। ब्रह्मा और विष्णु का अभेद होने से विष्णुरूपता भी उनमे अनुपपन्न नहीं है। **विष्णुधर्मोत्तरपुराण** (७४।३८) के अनुसार उनका विष्णु का अंश होना भी ठीक ही है। **विष्णुधर्मोत्तर** को पाँचवीं शती की रचना कहना भी निष्प्रमाण ही है।

पौर्वापर्य-विरोध का समाधान

वाल्मीकि की कथाओं का कल्पभेद से भी समाधान होता है, क्योंकि भिन्न-भिन्न कल्प के देवों और ऋषियों के सुकृत भिन्न भिन्न होने से उनकी उत्पत्ति एवं कर्मों में भेद हो सकता है।

शौनकादि मुनियों ने सूत से प्रश्न किया था—पुराणों में कहीं कहीं पौर्वापर्य-विरोध प्रतीत होता है। कहीं क्षेत्रभेद है तो कहीं भक्तोद्धार की विधि में भेद है, कहीं ब्रह्मा की सृष्टि में ही भेद दिखायी देता है। तीर्थों की उत्पत्ति में भी भेद है। विभिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न कथाएँ भी मिलती हैं। **पुराणों** के आप ही वक्ता हैं। आप बताने की कृपा करें कि इन भेदों का कारण क्या है? (काशीकेदारमाहात्म्य २७।७५।७२) सूतजी ने इन प्रश्नों का निम्नोक्त उत्तर दिया—विभिन्न कल्पों में भगवान् शिव की विचित्र विभिन्न लीलाएँ होती हैं। ब्रह्मादि स्थावरान्त प्राणियों के विभिन्न कर्मों के अनुसार कर्म-फल भी विभिन्न होते हैं; अतः **पुराणों** की कथाओं में भी भेद आ जाता है। शास्त्र सब सत्य हैं। उनमें कृतियों का भेद है, परन्तु तात्पर्य सभी का शिवभक्ति में ही है। शिवजी की अतुलित महिमा सर्वत्र एकरूप है। यही मेरे गुरुदेव व्यासदेव ने कहा है! जो लोग भक्तिबोधक शिवधामदायिनी विचित्र कथाओं का सार जानते हैं, वे अवश्य ही शिव को प्राप्त होते हैं—

"कल्पे कल्पे क्षपासु क्षणिकमभिमता दिव्यलीला विचित्राः ।
या याः पूर्वं बभूवुः श्रवणसुखकरास्ताः पुनस्त्वन्यकल्पे ॥
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताः स्वकृतसुकृतसत्कर्मपाकेन भिन्नाः ।
पौराण्यस्ताः कथाश्च पृथगिव प्रतिभान्त्यर्थतस्तास्त्वभिन्नाः ॥
सर्वं सत्यं च शास्त्रं विविधकृतिभिदा भेदितञ्चापि शम्भोः ।
तात्पर्यं चैकरूपं विमलसुमतिभिर्ग्राह्यमाद्यन्तदृष्ट्या ॥
यावद् वेदेन जातोऽप्यतुलितमहिमा चैकरूपः प्रणेतुः ।
तत्सारं ग्राह्यमीशे विनिहितमतिभिः प्राह चैवं गुरुर्माम् ॥"

—काशीकेदारमाहात्म्य

महाभारत और रामायण

भारतीय शास्त्रों एवं परम्पराओं से अपरिचित पाश्चात्यों का अन्धानुकरण करते हुए बुल्के साहब भी **भारत** और **महाभारत में आदिरामायण** और **प्रचलित रामायण** के समान भेद मानते हैं।

वे **भारत** और **महाभारत** का मध्यकाल ही **रामायण** का काल मानते हैं, पर यह अत्यन्त असंगत है। पाश्चात्यों को यह विश्वास ही नहीं होता कि लाखों वर्ष पहले भी वैदिक सभ्यता थी। ईसाई-भावनाओंसे अभिभूत पाश्चात्य विद्वान् एवं उनके अनुयायी कुछ भारतीय भी अनादि और अनन्त 'वेदों' को भी ईसा से कुछ सहस्र वर्ष

पूर्व की ही रचना मानते हैं। प्रकृत में इतना उनको भी कहना पड़ता है कि **महाभारत** में **रामायण** के पात्रों और **वाल्मीकिरामायण** का भी वर्णन हैं; परन्तु **रायायण** में **महाभारत** के पात्रों का वर्णन नहीं है। कहा जाता है कि पाणिनि-सूत्रों में भारत के विषयों का निर्देश मिलता है परन्तु रामायण के विषयों का नहीं मिलता। पर यह सर्वथा अशुद्ध है। पाणिनि-सूत्रों में कौशल्या, कैकेयी, शूर्पणखा आदि का निर्देश मिलता है यह पीछे कहा जा चुका है। इसी तरह **भारत** का पश्चिम में, **रामायण** का पूर्व में निर्माण मानना भी निर्मूल है। इसी आधार पर कुछ लोग **रामायण** की कथावस्तु को भी **भारत** के बाद की मानते हैं जो सर्वथा **श्रुति**, **स्मृति**, **पुराण** तथा **इतिहास** के विरुद्ध है। **पुराणों** के अनुसार वैवस्वत मन्वन्तर के २४ वें त्रेता में श्रीराम का जन्म हुआ है। श्रीकृष्ण, युधिष्ठिर आदि का जन्म अट्ठाइसवें द्वापर में हुआ, अतः भारतीय शास्त्रों एवं विद्वानों के अनुसार **रामायण** से बहुत काल के पश्चात् **भारत** या **महाभारत** का निर्माण हुआ। महाभारत के ही एक अंश **गीता** में भगवान् कृष्ण कहते हैं, शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ—

"रामः शस्त्रभृतामहम्" (गी० १०।३१)

इसी तरह **आरण्यकपर्व** में भीम कहते हैं, बुद्धि, सत्त्व और बल से सम्पन्न, गुणश्लाघ्य शूर मेरे भ्राता वानरपुंगव हनुमान् रामायण में प्रसिद्ध हैं—

"भ्राता मम गुणश्लाघ्यो बुद्धिसत्त्वबलान्वितः।
रामायणेऽतिविख्यातः शूरो वानरपुङ्गवः॥" (म० भा० ३।१४७।११)

इसी प्रकार हरिवंशोक्त भारत-श्रवण की विधि में कहा है—

"वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥" (म० भा० १८।६।९३)

इस तरह **भारत** में **वेद** के समान ही **रामायण** का उल्लेख है। **महाभारत** में अनेक स्थलों पर वाल्मीकि का तपस्वी महर्षि के रूप में उल्लेख है। इतना ही नहीं वाल्मीकिरामायण का श्लोक भी **महाभारत** में उद्धृत है—

**"अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
पीडाकरममित्राणां यत्स्यात् कर्त्तव्यमेव तत्॥
न हन्तव्याः स्त्रिय इति यद् ब्रवोषि प्लवङ्गम।
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा॥"** (म० भा० ७।११८।४८)

अर्थात् वाल्मीकि ने यह श्लोक गाया है कि **अमित्रों को जो भी अप्रिय हो वह करना ही चाहिये।**

शान्तिपर्व में गोविन्द की महिमा गानेवालों में असित, देवल और मार्कण्डेय के साथ वाल्मीकि का भी उल्लेख है।

नलोपाख्यान के सुदेव का स्वगतभाषण (म० भा० ३।६८।८-२६) **रामायण** से उद्धृत है। इससे स्पष्ट होता है कि **रामायण महाभारत** से प्राचीन है।

भारत तथा महाभारत की कल्पना निर्मूल

बुल्के कहते हैं—"परन्तु **महाभारत** के प्राचीनतम पर्वों में **रामायण** एवं वाल्मीकि का उल्लेख नहीं है। उनमें राम-कथा के पात्रों का उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है भारत के कवि राम-कथा और उसके प्रधान पात्रों से परिचित थे।" यह भी भारतीय शास्त्रों एवं विद्वानों की दृष्टि में अत्यन्त असंगत है।

महाभारत के अनुसार भगवान् व्यास ही **भारत** या **महाभारत** के रचयिता हैं। वे भला राम के समकालिक **रामायण** और उसके कवि से कैसे अपरिचित रह सकते हैं। जैसे पाश्चात्यों की **रामायण** और **आदि-रामायण** की कल्पना निर्मूल है वैसे ही **भारत** एवं **महाभारत** की कल्पना भी निर्मूल है।

संस्कृत भाषा सर्वप्राचीन भाषा है तथापि संस्कृत, जेन्द, लैटिन, ग्रीक आदि भाषाओं का साम्य देखकर पाश्चात्यों ने उनकी जननी किसी नयी भाषा की कल्पना कर डाली, जिसके अस्तित्व में कोई प्रमाण नहीं है। वैसे ही उन्होंने महाभारत से भिन्न एक **भारत** की भी जो निर्मूल कल्पना कर डाली है वह निरी दुरभिसन्धि ही है।

जिन पर्वों में रामकथाएँ कम हैं उन्हें प्राचीन और जिनमें अधिक हैं उन्हें नवीन तथा जिनमें रामकथा का अभाव है एवं उसके पात्रों का अस्तित्व है वह मूल **भारत** है यह कल्पना भी अन्योन्याश्रयदोष से ग्रस्त है। **रामायण** की अर्वाचीनता सिद्ध होने पर ही उसके उल्लेख से पर्वों की अर्वाचीनता सिद्ध होगी। इसी प्रकार पर्वों की अर्वाचीनता सिद्ध होने से ही **रामायण** की अर्वाचीनता सिद्ध होगी। पर जब **रामायण** की प्राचीनता **रामायण महाभारत** दोनों से ही सिद्ध है, तब इस आधार पर किन्हीं पर्वों की अर्वाचीनता कैसे सिद्ध हो सकेगी? इसी लिए कौन सा पर्व प्रामाणिक है एवं कौन-सा अप्रामाणिक इसकी कोई कसौटी पाश्चात्यों के पास नहीं है।

बुल्के के अनुसार "युद्धसम्बन्धी पर्वों में द्रोणपर्व सबसे अर्वाचीन है। उसमें रामकथा का **चौदह** बार उल्लेख है। **भीष्म, कर्ण** और **शल्य पर्वों** में **पाँच** बार उल्लेख आता है। **आरण्यक-पर्व** में रामकथा का दो बार वर्णन है। इसके अतिरिक्त भी उसमें रामकथाओं का पन्द्रह बार सङ्केत मिलता है। यह पर्व अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। यह कथाओं तथा उपाख्यानों का भण्डार है। इस पर्व में राम का अवतार होने का भी उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि पर्वों की अर्वाचीनता का मूल अधिकाधिक रामकथा उल्लेख ही है?" परन्तु यह मूल नहीं सर्वथा ही अमूल है।

आरण्यकपर्व में भीम और हनुमान् की कथा एवं संक्षेप में रामकथा का प्रसंगानुसार वर्णन ठीक ही है। संक्षिप्तकथन में कुछ सामग्रियों का छूट जाना भी असंगत नहीं है।

इसी तरह **द्रोणपर्व** की कथा में भी **बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड** की सामग्री का न होना असंगत नहीं, क्योंकि वहाँ तो **षोडशराजोपाख्यान** का उद्देश्य प्रभावशाली राजाओं के भी परलोक-गमन का वर्णन कर शोक-निवारणमात्र है, अतः सबका वर्णन इष्ट नहीं है। **शान्तिपर्व** में युधिष्ठिर की शोक-निवृत्ति ही इष्ट है। **महाभारतवनपर्व** में हनुमान्-संवाद में हनुमान् ने कहा है—

"अथ दाशरथिर्वीरो रामो नाम महाबलः।
विष्णुर्मानुषरूपेण चचार वसुधातलम् ॥" (म० भा० ३।१४७।३१)

अर्थात् विष्णु ने ही मानुषरूप में दाशरथि राम होकर वसुधा को उपकृत किया था। **रामोपाख्यान** में ब्रह्मा ने कहा कि मेरे अनुरोध से चतुर्भुज विष्णु रावण-वधार्थ हुए हैं, वे रावण-वध करेंगे।
धौम्य ने कहा है —

"विष्णुना वसता चापि गृहे दशरथस्य वै।
दशग्रीवो हतश्छन्नं संयुगे भीमकर्मणा ॥" (म० भा० ३।३१५।२०)
"यमस्य नेता नमुचेश्च हन्ता।" (म० भा० ३।२५।१०)

"असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः।
मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयन्त्यद्भुतं महत् ॥" (म० भा० १२।२०७।४)

"सन्ध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च।
अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः ॥" (म० भा० १२।३३९।८५)
"वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥ (म० भा० १८।६।९३)

शान्तिपर्व में शम्बूक का भी उल्लेख है—

"श्रूयते शम्बुके शूद्रे हते ब्राह्मणदारकः।
जीवितो धर्ममासाद्य रामात् सत्यपराक्रमात् ॥' (म० भा० १२।१५३।६७)

ऊपर के उद्धरणों से राम का अवतार होना एवं **रामायण** तथा वाल्मीकि महर्षि का अति प्राचीन होना सिद्ध है, फिर भी बुल्के इन्हीं उद्धरणों के आधार पर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि ये सब अंश बहुत पीछे के हैं, क्योंकि उक्त सब अंश प्रचलित **रामायण** के हैं जो कि **आदिरामायण** की अपेक्षा बहुत अर्वाचीन हैं। परन्तु यह उनकी केवल दुरभिसन्धि है। हम पहले लिख आये हैं कि उक्त सभी अंश प्रामाणिक हैं एवं वाल्मीकिनिर्मित हैं। **महाभारत** से अतिप्राचीन होने के कारण **महाभारत** में इनका उद्धरण उचित है। **विष्णुपुराण** के अनुसार ऋक्ष नामक भार्गव वाल्मीकि हुए हैं।

"ऋक्षोऽभूद्भार्गवस्तस्माद् वाल्मीकिर्योऽभिधीयते ॥"

वाल्मीकिरामायण में भी—

"सन्निबद्धं हि श्लोकानां चतुर्विंशत्सहस्रकम्।
उपाख्यानशतं चैव भार्गवेण तपस्विना ॥" (वा० रा० ७।९४।२५)

इत्यादि वचनों में वाल्मीकि को भार्गव कहा गया है। **वाल्मीकिरामायण** में ही वाल्मीकि को प्रचेता का दसवां पुत्र कहा गया है। **'वेदः प्राचेतसादासीत्'** इस लव-कुश के मंगलाचरण **पुराणवचन** में भी वाल्मीकि को प्राचेतस कहा गया है। इन सब बचनों के अनुसार विदित होता है कि पृथु के प्रपौत्र प्राचीनबर्हीं राजर्षि ही प्रचेता हुए हैं। उनके ही दस प्रचेतस पुत्र हुए हैं। उन्हीं में अन्तिम वाल्मीकि थे, अथवा पूर्व के प्राचेतस मुनि ही शापवशात् विप्र होकर पुनः वाल्मीकि हुए हैं अथवा भृगु मुनि का ही प्रचेता भी नाम था। उनके दस पुत्रों में अन्तिम वाल्मीकि थे। वही निश्चल होकर तप में संलग्न हुए थे। उनपर वल्मीक बन गया था, पुनः उस वल्मीक से प्रादुर्भूत होने के कारण वे वाल्मीकि कहलाये।

ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार लोक-पितामह ब्रह्मा ने वल्मीकप्रभूत होने से उन्हीं को 'वाल्मीकि' नाम प्रदान किया है—

"अथाब्रवीन्महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः।
वल्मीकप्रभवो यस्मात्तस्माद् वाल्मीकिरित्यसौ ॥"

मातृगर्भ के समान वल्मीक में रहने के कारण वही महात्मा वाल्मीकि कहलाये। **ब्रह्मवैवर्तपुराण** २२ वें अध्याय में कहा गया है—

"कति कल्पान्तरेऽतीते स्रष्टुः सृष्टिविधौ पुनः।
यः पुत्रश्चेतसो धातुः बभूव मुनिपुङ्गवः ॥
तेन प्रचेता इति च नाम चक्रे पितामहः।"

अर्थात् कल्पान्तरों के बीतने पर स्रष्टा के नवीन सृष्टि-विधान में ब्रह्मा के चेतस् से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसे ही, ब्रह्मा के प्रकृष्ट चित्त से आविर्भूत होने के कारण, प्रचेता कहा गया है। तथा च ब्रह्मा के मानस पुत्र ही प्रचेता हुए हैं। ब्रह्मा के दस पुत्र मनु आदि स्मृतियों में प्रसिद्ध हैं—

"अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥" (मनु० १।३४)

ब्रह्मा कहते हैं—'मैंने प्रजा-सृष्टि की इच्छा से सुदुश्चर तप करके दस प्रजापति महर्षियों की सृष्टि की। वे थे मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद—

"मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥" (मनु० १।३५)

महाभारत के सम्भवपर्व में ७५ अध्याय के चौथे श्लोक में कहा गया है प्रचेता के दस पुण्यजन पुत्र हुए हैं—

"दश प्रचेतसः पुत्राः सन्तः पुण्यजनाः स्मृताः।"

प्राचेतस मुनि ही वाल्मीकि हैं, यह मार्कण्डेयपुराण से सिद्ध है—

"उवाच प्रणतो वाक्यं वाल्मीकिं च तपोधनम्।
प्राचेतस महाभाग श्रीरामस्य कथां शुभाम् ॥
कथयस्व महाबुद्धे रामस्य परमात्मनः।"

ब्रह्मा के इन दस पुत्रों में नौ प्रजा-सृष्टिकर्ता हुए हैं। दशम पुत्र ने शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** रचकर ब्रह्मा से सृष्ट प्रजा को ज्ञान-प्रदान किया था। सृष्टिकर्ता न होने से ही नौ प्रजापतियों में उनकी गणना नहीं है। तथा च शिवरामायण में कहा है—

"पुरा स्वायम्भुवो ह्यासीत् प्राचेतस महाद्युतिः।
ब्रह्मात्मजस्तु ब्रह्मर्षिः तेन रामायणं कृतम् ॥
शतकोटिप्रविस्तीर्णं नानाकल्पसमुद्भवम्।
स कदाचिद् ब्रह्मलोके धातारञ्चाप्यनिन्दत ॥
स्वसुताग्रहणात्तेन शप्त आप निषादताम्।
चमत्कारपुरे भूत्वा भार्गवान्वयसम्भवः ॥
लोहजङ्घो द्विजो ह्यासीद् ऋक्षनामान्तरो हि सः।
मातापित्रोः सेवया स कञ्चित्कालं गृहे वसन् ॥
भार्यां पतिव्रतां साध्वीं तां परित्यज्य स द्विजः ॥
ब्राह्मीं वृत्तिं परित्यज्य चोरकर्म समाचरत्।
नारदेनोपदिष्टस्तु तपोनिष्ठां समाश्रितः ॥
वल्मीकमभवत्तस्य शरीरे नारदाज्ञया।
वल्मीकनिर्गमाद् ब्रह्मा वाल्मीकिरिति चाब्रवीत् ॥"

अर्थात् प्राचीनकाल में स्वायंभुव प्राचेतस महामुनि ब्रह्मा के पुत्र हुए थे। उन्होंने ही शतकोटि श्लोकों का सुविस्तृत रामायण ग्रन्थ रचा है। वह राम के विभिन्न कल्पों के चरित्रों का सङ्कलन था। उन्होंने ब्रह्मलोक में ब्रह्मा की, स्वसुता का ग्रहण करने के कारण, निन्दा की थी। इसलिए वे ब्रह्मा के शाप से निषाद हो गये। उसके

पहले वे चमत्कार-पुर में भार्गव-वंश में लोहजङ्घ नामक ब्राह्मण हुए थे। उन्हीं का अन्य नाम ऋक्ष भी था। कुछ समय तक वे माता-पिता की सेवा करते हुए गृह में रहे। पश्चात् साध्वी प्रतिव्रता भार्या को त्याग कर, ब्राह्म-वृत्ति को छोड़कर चौर्य-कर्म करने लगे। अनन्तर नारद के उपदेश से वे तपस्या में लग गये और उनके शरीर पर वल्मीक जम गया। बहुत काल के पश्चात् नारद की ही आज्ञा से वे वल्मीक से निकल कर वाल्मीकि महर्षि हो गये।

समन्वय की दृष्टि से कहा जा सकता है कि किसी कल्प में प्रचेता प्राचीनबर्ही के दसवें पुत्र थे, अतएव प्राचेतस कहलाये। किसी कल्प में प्रचेता वरुण के दसवें पुत्र हुए थे। उसमें वे भृगु के भ्राता होने से भृगुसम्बन्धित होकर भार्गव कहलाये। वर्तमान कल्प में तो प्रकृष्ट चित्तवाले प्रचेता ब्रह्मा के मरीचि आदि दस पुत्रों में दशम होने के कारण प्रचेता कहलाये। स्वार्थ में अण् प्रत्यय होने के कारण प्रचेता ही प्राचेतस शब्द से भी कहे गये हैं। वे ही शापवश भार्गव वंश में ऋक्ष या लोहजङ्घ नाम से उत्पन्न हुए, अतः भार्गव कहलाये थे। चौर्यादि कर्म करते हुए वही किरात या निषाद हो गये थे। सप्तर्षियों या नारद के सम्पर्क से वही तपोनिष्ठ होकर महर्षि वाल्मीकि हुए थे। **स्कन्दपुराण** आदि की अन्य कथाओं से भी इस कथा का समन्वय कर लेना उचित है। अन्य लोगों ने भी वाल्मीकि की ऐतिहासिकता पर पाश्चात्य लोगों द्वारा प्रदर्शित मार्ग का ही अनुसरण किया है। वे लोग **इतिहास** और **पुराण** की वाल्मीकि सम्बन्धित कथाओं को परस्पर असम्बद्ध एवं विशृङ्खलित मानते हैं। कहीं उन्हें सुविज्ञ तपस्वी बताया गया है तो कहीं प्रचण्ड दस्यु। कहीं उन्हें राजा राम से अनेकों वर्ष पूर्व उत्पन्न कहा गया है तो कहीं उनके समकालीन कहा गया है; पर आधुनिक तो उन्हें ईसा से कुछ ही शती पूर्व का मानते हैं। भारतीय दृष्टिकोण से तो महर्षि वाल्मीकि को राम से अनेक वर्ष पूर्व उत्पन्न मानने में कोई आपत्ति नहीं है। वे दीर्घजीवी होने के कारण राम के समकालीन भी थे। पहले उन्होंने शतकोटि श्लोकों का सुविस्तृत **रामायण** काव्य लिखा था। राम के समय में सीताचरित्रशुद्धि तथा कुशी-लव के अधीत वेदों के उपबृंहणार्थ चौबीस सहस्र श्लोकों में गायत्री के चतुर्विंशति अक्षरों का अनुसरण करते हुए चतुर्विंशतिसहस्रसंहितारूप **रामायण** ग्रन्थ लिखा। जब वाल्मीकि के अनुसार राम की ग्यारह सहस्र वर्ष की आयु थी तो वाल्मीकि महर्षि की उससे भी अधिक आयु होना आश्चर्यपूर्ण तथा असम्भावित नहीं कहा जा सकता। ई० श० के कुछ ही शती पूर्व उनका जन्मकाल मानना तो सर्वथा निराधार ही है।

तैत्तिरीयप्रातिशाख्य के तीन सूत्रों से सूचित वाल्मीकि को आदि कवि से पृथक् मानने में कोई समुचित तर्क नहीं है। **'पकारपूर्वश्च वाल्मीकेः'** वाल्मीकिशाखी के मतानुसार पकारपूर्व पकार को छत्वापत्ति नहीं होती। यहाँ 'च' शब्द का 'प्रतिषेध' अर्थ है।

'कपवर्गपरश्चाग्निवेश्यवाल्मीक्योः' अग्निवेश्य और वाल्मीकि शाखा-वाले आचार्यों के मत में कवर्ग एवं पवर्ग पर विसर्जनीय स स्थान उष्मा नहीं बनता है। यहाँ भी 'च' का निषेध ही अर्थ है।

'उदात्तो वाल्मीकेः' वाल्मीकिशाखी के मतानुसार प्रणव का उदात्त स्वर होता है। कहा जाता है—इन वैयाकरण वाल्मीकि की आदि कवि वाल्मीकि के साथ एकता नहीं कही जा सकती; क्योंकि व्याकरणाचार्य के रूप से उनकी प्रशस्ति कहीं नहीं मिलती है। याकोबी इन दोनों व्यक्तियों को पृथक् ही मानते हैं, परन्तु उक्त कथन का कोई आधार नहीं है। **रामायण** सरीखे महाकाव्य का निर्माता महान् संस्कृतज्ञ व्याकरण का आचार्य नहीं था, यह कहना अत्यन्त उपहासास्पद ही है। वाल्मीकि ने हनुमान् की व्याकरणज्ञता का चित्रण किया है। श्रीराम कहते हैं—

"नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥" (वा० रा० ४।३।२८)

जो ऋग्वेद में प्रातिशाख्यज्ञानपूर्वक शिक्षित नहीं है, जो **यजुर्वेद** को धारण नहीं करता एवं जो **सामवेद** नहीं जानता, वह ऐसा भाषण नहीं कर सकता ।

"नूनं व्याकरणं कृत्स्नं अनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम् ॥" (वा० रा० ४।३।२९)

निश्चय ही इसने सम्पूर्ण व्याकरण का खूब श्रवण (अध्ययन) किया है, तभी तो बहुत बोलते हुए भी इसने कहीं भी अपशब्द का प्रयोग नहीं किया ।

"न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा ।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥" (वा० रा० ४।३।३०)

बोलते समय इसके नेत्र, ललाट, भ्रू तथा अन्य सभी अङ्गों में किसी प्रकार की विक्रिया परिलक्षित नहीं होती ।

"अविस्तरमसन्दिग्धमविलम्बितमव्यथम् ।
उरस्थं कण्ठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥" (वा० रा० ४।३।३१)

मध्यमारूप से उरस्थ, वैखरीरूप से कण्ठ में रहनेवाला न अत्यन्त उच्च और न अत्यन्त नीच, मध्यम स्वर का इसके द्वारा उच्चारित वाक्य अविस्तर, असन्दिग्ध, अविलम्बित और अव्यथ (श्रोता के कानों को व्यथित न करनेवाला) अर्थात् श्रुतिकटुदोष से रहित है ।

"संस्कारक्रमसंपन्नामद्रुतामविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम् ॥" (वा० रा० ४।३।३२)

यह ऐसी हृदय को आह्लादित करनेवाली कल्याणी वाणी का उच्चारण करता है जो कि संस्कारक्रम-विशिष्ट है, अर्थात् विशिष्ट आनुपूर्वीरूप से पद, वाक्य आदि के ग्रहणार्थ अन्तःकरण में क्रमविशिष्ट वर्णाकार संस्कार उत्पन्न करनेवाली है; क्योंकि क्रमविशिष्ट वर्णों में ही पदत्व और वाक्यत्व सम्पन्न होता है, तभी वाक्यार्थ-बोध हो सकता है । क्रमहीन या विपरीत क्रम से वर्णों के संस्कारों से अभीष्ट वाक्यार्थ-बोध नहीं हो सकता । साथ ही यह वाणी अद्रुत और अविलम्बित अर्थात् मध्यमस्वरवाली है ।

"अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया ।
कस्य नाराध्यते चित्तं उद्यतासेररेरपि ॥" (वा० रा० ४।३।३३)

यह वाणी उर, कण्ठ, सिर इन तीन स्थानों में व्यक्त होकर श्रोताओं के श्रोत्रों से ग्राह्य होनेवाली है । ऐसी चित्र वाणी सुनकर ऐसा शत्रु भी कौन होगा जिसका चित्त भी अनुकूल न बन जायेगा ।

क्या ऐसा चित्रण कोई **ऋक्, साम, यजु** तथा **शिक्षा, प्रातिशाख्य** आदि से अपरिचित कवि कर सकता है ?

इसी तरह श्रीहनुमान् के अध्ययन की चर्चा करते हुए कहा गया है—

"असौ पुनर्व्याकरणं ग्रहोष्यन् सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः ।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम ग्रन्थं महद् धारयनप्रमेयः ॥

ससूत्रवृत्त्यर्थपदं महार्थं ससंग्रहं सिद्धयति वै कपीन्द्रः ।
नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे वैशारदे छन्दगतौ तथैव ॥
सर्वासु विद्यासु तपोविधाने प्रस्पर्धतेऽयं हि गुरुं सुराणाम् ।"

(वा० रा० ७।३६।४४-४६)

उदयाचल से वे सूर्य के सम्मुख होकर उनसे प्रश्न करते हुए सूर्य से **व्याकरण-वृत्ति, भाष्य, वार्तिक, संग्रह** आदि के स्वरूपतः तथा अर्थतः महान् ग्रन्थों को धारण करते हुए रथ के सामने आकाश में अस्ताचल तक उलटे चलते रहे । पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा आदि द्वारा वेदार्थ के निर्णय एवं पाण्डित्य में हनुमान् से बढ़कर कोई भी नहीं है । हनुमान् सभी विद्याओं तथा तपोविधानों में बृहस्पति से स्पर्धा करते हैं ।

अतः आर्षज्ञानसम्पन्न महर्षि वाल्मीकि व्याकरण के आचार्य नहीं हो सकते, ऐसी कल्पना करना सर्वथा निर्मूल है । याकोबी आदि पाश्चात्य विद्वान् तो भारतीय संस्कारशून्य, आर्षज्ञान पर विश्वास न करनेवाले तथा दुरभिसन्धियुक्त हैं । वे **वाल्मीकिरामायण** की अर्वाचीनता और राम की अनीश्वरता सिद्ध करने में ही प्रयत्नशील रहते हैं ।

यद्यपि **वेद,** वेदान्त, मीमांसा, छन्द, अलङ्कार के आचार्यरूप में उनकी प्रशस्ति नहीं है, तो भी उनकी कृति ही उनके अगाध ज्ञान की गरिमा का परिचय दे रही है । रामायण के जिन अंशों में उनके महत्त्व का वर्णन है, दुर्भाग्यवश, उनको आधुनिक लोग क्षेपक सिद्ध करने में जुटे हुए हैं । उन्हीं लोगों ने **बालकाण्ड** और **उत्तरकाण्ड** को प्रक्षिप्त कहने का साहस किया है, जो सर्वथा उपेक्षणीय है । **पुराणों** की सामग्रियों से भी महर्षि के चरित्र में कोई विषमता नहीं सिद्ध होती है ।

एक प्रचण्ड दस्यु भी सत्सङ्ग से एक सुविज्ञ तपस्वी ही नहीं, किन्तु आर्षज्ञानसम्पन्न महर्षि भी हो ही सकता है—

"सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधातु सुहाई ।"

(रा० मा० १।२।५)

"वालमीकि नारद घटजोनी । निज निज मुखनि कही निज होनी ॥"

(रा० मा० १।२।२)

स्कन्दपुराण आदि अर्वाचीन सामग्री नहीं है और न ही उनका प्राचीन सामग्रियों के साथ कोई विरोध है । **स्कन्दपुराण** वैष्णव-खण्ड वैशाखमाहात्म्य के अनुसार एक व्याध ने शङ्ख नामक द्विज को बाँधकर उसके कुण्डल, छत्र, उपानद् आदि छीनकर छोड़ दिया । गरमी से शङ्ख के पैर जलते देख उसके मन में दया आयी, तो उसने अपना जीर्ण उपानद् उतार कर दे दिया । इसपर द्विज ने व्याध को आशीर्वाद दिया । शङ्ख ने उसे राम नाम का भी उपदेश दिया और आशीर्वाद में कहा कि तुम वाल्मीकि नाम से पृथ्वी पर विख्यात होगे । उसी सरोवर पर कृणु नाम का विप्र तप करता था । अधिक तप करने के कारण उसके ऊपर वल्मीक (दीमकों का बनाया मिट्टी का टीला) बन गया । लोग उसे वल्मीक कहते थे । किसी स्त्री के स्मरण से वीर्य-स्खलन हुआ । उसे किसी शैलूषी ने ग्रहण कर लिया । उसी से वाल्मीकि उत्पन्न हुए ।

दूसरी कथा आवन्त्यखण्ड के **अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्य** में है । वहाँ वाल्मीकेश्वरमाहात्म्य का वर्णन है । सनत्कुमार के कथनानुसार भृगुवंशीय कोई सुमति नामक विप्र था । उसकी कौशिकी पत्नी से अग्निशर्मा उत्पन्न हुआ । वह वेदाध्ययन आदि से विमुख होकर दस्युओं में रहता था और दस्यु ही हो गया । एक बार तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से आये हुए सप्तर्षियों से उसका समागम हुआ । वह उनके भी छत्र, उपानद् आदि छीनने लगा । उन्होंने कहा, हम लोग

तीर्थयात्रार्थ आये हैं, तुम यह पाप क्यों कमाते हो ? उसने कहा, माता-पिता, भार्या, पुत्र आदि के भरणपोषणार्थ मैं ऐसा करता हूँ। उन्होंने कहा—उनसे पूछ लो, वे सब क्या तुम्हारे पाप में भी भागीदार होंगे। जब उसने जाकर पूछा तो सभी ने कहा कि तुम जो करते हो उसका फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा। हम उसके भागी नहीं हैं। यह सुनकर अग्निशर्मा निर्विण्ण होकर सप्तर्षियों की शरण में आ गया। उनके आदेशानुसार अग्नि का ध्यान और महामन्त्र का जप करता हुआ अविचल हो गया। उसके ऊपर वल्मीक बन गया। जब तीर्थयात्रा से वे मुनि उसी मार्ग से लौटे तो उन्होंने वल्मीक में से ध्वनि सुनी, खनन किया तो अग्निशर्मा निकला। उसी ने कुशस्थली में जाकर महेश्वर की आराधना की। उससे सिद्धि-लाभ कर **रामायण महाकाव्य** का निर्माण किया।

तीसरी कथा **नागरखण्ड** में है। मुखार नामक उत्तम तीर्थ है, जहाँ उन श्रेष्ठ मुनियों की चोर से भेंट हुई जिनके प्रभाव से उस चोर ने सिद्धि प्राप्त की और **रामायणकर्ता** वाल्मीकि नाम से प्रख्यात हुआ। पूर्वकाल में चमत्कारपुर में माण्डव्यवंशोद्भव लोहजङ्घ नामक माता-पिता का भक्त द्विज रहता था। परिस्थितिवश चोर हो गया। ऋषिगणों की सङ्गति से उसे वैराग्य हुआ। पुलह नामक हास्यशील ऋषि ने उसे जाटघोटा नामक सिद्धिप्रद मन्त्र प्रदान किया। उसीसे उसको सिद्धि प्राप्त हुई। कहा है—

"मन्त्रे तीर्थे द्विजे चैव दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥"

मन्त्र, तीर्थ, द्विज, दैवज्ञ, भेषज तथा गुरु में जिसका जैसा विश्वास होता है उसको वैसी सिद्धि मिलती है।

चौथी कथा **प्रभासखण्ड** देविकामाहात्म्य के मूलस्थान-माहात्म्य में है। पार्वती के प्रश्न पर शङ्कर ने बताया कि प्राचीनकाल में शमीमुख नामक द्विज को वैशाख नामक पुत्र हुआ। उसे माता-पिता की सेवा के अतिरिक्त कोई इच्छा नहीं थी। वह मनुष्यों को लूट कर माता-पिता तथा पत्नी का पालन करता था। एक बार उसे मार्ग में तीर्थ-यात्रापरायण सप्तर्षि मिले। इस कथा में अङ्गिरा ऋषि से उसका वार्तालाप हुआ। उस तस्कर के माता-पिता ने कहा जब तुम बालक थे, असमर्थ थे, तब हम दोनों ने तुम्हारा लालन-पालन किया था। अब हमारी वृद्धावस्था में तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम हमारी देखभाल करो। हम तुम्हारे पापकर्म के फलभागी नहीं हैं। इससे उसे वैराग्य हुआ। ऋषि ने उसे मन्त्र जपने को कहा। तदनन्तर उस गुरुभक्त की देविका के शुभ तट पर समाधि लग गयी। सहस्र वर्ष बाद ऋषियों ने उसे वल्मीक से निकाला। इस कथा के अनुसार ब्राह्मणों ने वैशाख के सुप्त शरीर पर योगसम्भव भेषजों का मर्दन किया। ऋषियों के आशीर्वाद से वह वाल्मीकि महर्षि हुआ। उसकी जिह्वा पर स्वच्छन्द सरस्वती विचरण करने लगी और उसने **रामायण** की रचना की।

अध्यात्मरामायण के अनुसार महर्षि वाल्मीकि ने अपने आश्रम में आये हुए श्रीराम का पूजन और स्तवन करके अपनी कथा सुनाई थी—मैं पहले किरातों में उत्पन्न होकर उन्हीं में पला और बड़ा हुआ। केवल जन्म से ही मैं द्विज था। शूद्रा के सम्पर्क से मेरे बहुत से पुत्र उत्पन्न हुए। मैं चोर हो गया। एक बार विराट् वन में मैंने सप्तर्षियों को देखा। मैं उनके वस्त्रादि लूटने के लिए उनके पीछे दौड़ा। मुनियों ने कहा—द्विजाधम, क्यों दुःखी हो रहा है। मैंने कहा—कुछ लेने के लिए, क्योंकि मेरे स्त्री-पुत्र आदि भूखे हैं। ऋषियों ने कहा—जाओ उनसे पूछ आओ कि वे तुम्हारे पापसञ्चय में भी भागी होंगे क्या ? मैंने जाकर उनसे पूछा तो उत्तर मिला कि पाप के भागी तुम्हीं होओगे। इसपर मुझे निर्वेद हुआ। मुनियों के दर्शन से मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। मुनियों ने कहा—भद्र ! उठो, तुम्हारा सत्समागम सफल हो गया। तुम 'मरा' शब्द को तब तक जपो जब तक हम पुनः यहाँ न आ जायँ। मैंने वैसा ही किया। मैं बाह्य जगत् भूल गया। निश्चलरूप से खड़ा रहने के कारण मुझपर वल्मीक हो गया।

सहस्रों युगों के बाद ऋषि पुनः आये और मुझसे बोले—बाहर निकलो। मैं नीहार से भास्कर की भाँति वल्मीक से बाहर निकला। मुनियों ने कहा—अब तुम वाल्मीकि मुनीश्वर हो गये हो। यह कह कर वे दिव्यगति ऋषि चले गये। हे राघव ! यह सब आपके नाम का प्रभाव है।

तत्त्वसंग्रहरामायण के अनुसार देवों के साथ भास्कर और विष्णु उन्हें रामायणकार होने का आशीर्वाद देते हैं। शेष कथा अध्यात्मरामायण के तुल्य ही है।

आनन्दरामायण के अनुसार स्तम्भ नामक श्रीवत्सगोत्री ब्राह्मण महापापी तथा शूद्राचरणरत था। वह वेश्यारत भी था। किसी दिन उसके यहाँ एक ब्राह्मण का सत्कार हुआ। उसी से उसका उद्धार हुआ। वह जन्मान्तर में व्याध हुआ। उसने पम्पातीर पर शङ्ख का सब कुछ छीन लिया। शेष कथा स्कन्दपुराण की प्रथम कथा जैसी ही है।

कृत्तिवासीय रामायण में उस व्याध का नाम रत्नाकर तथा उसके पिता का नाम च्यवन था। यहाँ सप्तर्षियों के स्थान पर उसे ब्रह्मा और नारद मिलते हैं। ब्रह्मा के आदेशानुसार वह नदी में स्नान के लिए जाता है। उसके देखनेमात्र से नदी सूख जाती है। ब्रह्मा उसे राम नाम का उपदेश करते हैं। किन्तु वह उसका उच्चारण न कर सकने के कारण 'मरा' नाम जपता है। **मत्स्यपुराण** तथा **पद्मपुराण** में इक्ष्वाकुवंशीय नृपतियों के प्रसङ्ग में जहाँ रामचरित वर्णित है, वहाँ कहा गया है कि भार्गवश्रेष्ठ वाल्मीकि ने रामचरित को निबद्ध किया है। **विष्णुपुराण** के अनुसार भृगुवंशी ऋक्ष व्यास हुए हैं जो वाल्मीकि कहलाते हैं। **वायुपुराण** के अनुसार माहेश्वरावतारयोगवर्णन के अन्तर्गत ऋक्ष के विषय में उल्लेख है कि वह चौवीसवें द्वापर में व्यास बनेगा। **कूर्मपुराण** के अनुसार तेईसवें व्यास तृणबिन्दु के पश्चात् वाल्मीकि का वर्णन है।

महाभारत में वाल्मीकि का परिचय बहुलता से मिलता है। **आदिपर्व** में आस्तीक जनमेजय की प्रशंसा करते हुए कहता है—राजन् ! तुम वाल्मीकि के समान गम्भीर एवं धैर्यशाली हो, वसिष्ठ के समान जितक्रोध हो, इन्द्र के समान ऐश्वर्यशाली हो एवं कान्ति में नारायण के तुल्य हो।

सभापर्व में शक्र की दिव्य सभा का वर्णन करते हुए वहाँ उपस्थित जिन व्यक्तियों का नामोल्लेख है उनमें एक नाम वाल्मीकि का भी है। **आरण्यकपर्व** में जो ऋषि प्रतीक्षा कर रहे थे उनमें वाल्मीकि ऋषि का नाम प्रथम आता है।

(१) "वाल्मीकिर्यस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः ॥" (पद्मपु० ५।८।१५५; मत्स्यपु० १२।५१)
(२) "ऋक्षोऽभूद् भार्गवस्तस्माद् वाल्मीकिर्योऽभिधीयते ॥" (वि० पु० ३।३।१८)
(३) "परिवर्त्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति ॥" (वायुपु० ३३।१६४)
(४) "तृणबिन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तु ततः परम् ।" (कूर्मपु०)
(५) "वाल्मीकिवत्ते निभृतं स्ववीर्यं वसिष्ठवत्ते नियतश्च कोपः ।
प्रभुत्वमिन्द्रेण समं मतं मे द्युतिश्च नारायणवद् विभाति ॥" (म० भा० १।५५।१४)
(६) "सहदेवः सुनीथश्च वाल्मीकिश्च महातपाः ।
समीकः सत्यवाक् चैव प्रचेताः सत्यसंगरः ॥" (म० भा० २।७।१६)
(७) "ऋषिमुख्याः सदा यत्र वाल्मीकिस्त्वथ काश्यपः ।
आत्रेयः कुण्डजठरो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥
एते ऋषिवराः सर्वे त्वत्प्रतीक्षास्तपोधनाः ।"
(म० भा० ३।८५।११९-१२२

इसी तरह **उद्योगपर्व** के भगवद्यानपर्व में कौरवों के सदन जाने से पूर्व जिन महर्षियों ने कृष्ण की पूजा की थी उनमें भी वाल्मीकि का नाम है—

"वसिष्ठो वामदेवश्च भूरिद्युम्नो गयः क्रथः ।
शुक्रनारदवाल्मीका मरुतः कुशिको भृगुः ॥
एवमेतैर्महाभागैर्महर्षिगणसाधुभिः ।
पूजितः प्रययौ कृष्णः कुरूणां सदनं प्रति ॥" (म० भा० ५।८३।२७-२९)

द्रोणपर्व के अन्तर्गत जयद्रथवधपर्व में वाल्मीकि का श्लोक भी उद्धृत है ।

"अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि ।
पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत् ॥" (म० भा० ७।१४३।६८)

शान्तिपर्व के राजधर्मपर्व में कहा गया है—हे भारत ! रामचरित वर्णन में महात्मा भार्गव ने यह श्लोक कहा है । पहले राजा को प्राप्त करना चाहिये और फिर भार्या और फिर धन को प्राप्त करना चाहिये । क्योंकि राजा के न होने पर भार्या और धन कैसे रह सकेंगे ?

"श्लोकश्चायं पुरा गीतो भार्गवेण महात्मना ।
आख्याते रामचरिते नृपतिं प्रति भारत ॥
राजानं प्रथमं विन्देत्ततो भार्यां ततो धनम् ।
राजन्यसति लोकस्य कुतो भार्या कुतो धनम् ॥"
(म० भा० १२।५७।४०-४१)

इसी शान्तिपर्व में युधिष्ठिर के प्रश्न पर भीष्म ने कहा है—

असित, देवल, महातपा वाल्मीकि और मार्कण्डेय नारायण का अद्भुत वृत्तान्त कहते हैं :

"असितो देवलस्तात वाल्मीकिश्च महातपाः ।
मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयन्त्यद्भुतं महत् ॥" (म० भा० १२।२०७।४)

कुछ लोग कहते हैं कि "**स्कन्दपुराण** तथा **अध्यात्मरामायण** जैसी अर्वाचीन कृतियों में वाल्मीकि की जो कथाएँ मिलती हैं, जिनमें उन्हें दस्यु बताया गया है; उनका **मत्स्यपुराण, वायुपुराण, विष्णुपुराण, महाभारत आदि** में संकेत भी नहीं है । **रामायण** एवं प्राचीन **पुराण** तथा **भारत** उनके पूर्वजीवन के सम्बन्ध में मौन हैं । उसके अनुसार वाल्मीकि के सम्बन्ध में इस प्रकार की कथा रचने के दो कारण हैं—

१. वाल्मीकि नाम की व्युत्पत्ति अपेक्षित थी । पुराणकार किसी व्यक्ति का नाम समझाने के लिए कथा गढ़ लेते थे । जैसे जनक-पुत्री सीता के नाम को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने वैदिक सीता (हलकृष्ट भूमि) से सम्बन्ध जोड़कर उसका जन्म ही भूमि से करा दिया । यही बात इक्ष्वाकु, भरद्वाज, सगर आदि के बारे में भी है । इसी तरह वाल्मीकि का अभिधान समझाने के लिए भी किया गया ।

२. किसी महापुरुष के जीवन का लोगों पर पूर्णरूप से प्रभाव डालने की प्रवृत्ति **पुराणों** की रही । उसे अधिक कौतूहलपूर्ण और प्रभावशाली बनाने के लिए यह भी परिपाटी थी कि जो जिस बात के लिए प्रसिद्ध था, प्रारम्भ में उसको विपरीत बताया जाता था । सम्राट् अशोक भारत के इतिहास में धर्मात्मा तथा दयालु नरेश के रूप में विख्यात रहा है । इसी कारण उसे प्रारम्भिक जीवन में क्रूर या निर्दय चित्रित किया गया है । कालिदास

संस्कृत-साहित्य के विद्वान् कवि हो चुके हैं, बाल्यावस्था में उन्हें मूर्ख बताया गया है, क्योंकि विद्वान् का विपरीत मूर्ख ही होता है। तुलसीदास तथा सूरदास त्यागी, तपस्वी एवं महान् ग्रन्थों के प्रणेता थे। उन्हें पूर्वजीवन में विलासी बताया गया है। ऐसे ही ऋषि वाल्मीकि को भी प्रारम्भ में दस्यु माना गया है, क्योंकि ऋषि का वैपरीत्य दस्यु ही हो सकता है। राजाओं की परम्परा का भाट-चारणों को स्मरण रखना पड़ता था, परन्तु ऋषियों के निमित्त ऐसी कोई व्यवस्था नहीं थी। जो ख्यातिप्राप्त होते हैं उन्हीं का नाम सुरक्षित रहता है।"

यद्यपि उक्त बातें आपातरमणीय हैं; किन्तु प्रमाण-शून्य तथा **वेद**, **पुराण**, **भारत** आदि शास्त्रों से सर्वथा विरुद्ध हैं। वस्तुतः अतीत घटनाओं के सम्बन्ध में प्रामाणिक इतिहास ही प्रमाण होता है। अटकलबाजी से तो विपरीत दिशा में भी पहुँचा जा सकता है। भारतीय साहित्य में **वेद, पुराण**, **महाभारत**, **रामायण** आदि का धर्म, ब्रह्म तथा परम्परा, सदाचार आदि के सम्बन्ध में परम प्रामाण्य है। आधुनिक इतिहास में भ्रान्ति भी हो सकती है, परन्तु वाल्मीकि, वसिष्ठ, पराशर, व्यास आदि ऋषियों के द्वारा निर्मित ग्रन्थों में अप्रामाण्य की कल्पना ही निराधार है। प्रत्यक्षादि सभी प्रमाणों का प्रामाण्य स्वतः होता है। यदि प्रमाणों का प्रामाण्य परतः होगा तब तो उस प्रमाण का भी प्रामाण्य परतः होगा, ऐसी स्थिति में अनवस्था दोष होगा। यदि अन्त में किसी प्रमाण का स्वतःप्रामाण्य मानना ही है तो प्रथम का ही स्वतःप्रामाण्य क्यों न मान लिया जाय? अप्रामाण्य परतः विषयबाध या कारण-दोष-ज्ञान से होता है। जैसे चक्षुरूप कारण में पित्त-दोष के ज्ञान से "पीतः शङ्खः" इस ज्ञान का अप्रामाण्य निश्चित होता है। "नेदं रजतम्" इस बाध-ज्ञान से "इदं रजतम्" इस ज्ञान का अप्रामाण्य निश्चित होता है। जिसमें उक्त अप्रामाण्य का कारण नहीं हो उसका प्रामाण्य स्वतः ही होता है। यही स्थिति अनुमान तथा आगमों के सम्बन्ध में भी है। वाक्यों में अर्थबोधकता स्वाभाविक होती है। वक्ता के भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषों के ज्ञान तथा विषयबाध से यहाँ भी अप्रामाण्य होता है। वेद अनादि और अपौरुषेय हैं। पुरुषनिर्मित न होने से उनमें पुरुषाश्रित भ्रम, प्रमाद आदि दूषणों से दूषित होने की सम्भावना ही नहीं है। उनका विषय अलौकिक होने से लौकिक प्रमाणों के द्वारा उनके विषय में बाध-ज्ञान भी सम्भव नहीं है; अतः वे स्वतःप्रमाण हैं। पौरुषेय रामायण, महाभारत, पुराण आदि में भी इतर प्रमाणों के समान प्रामाण्य स्वतः है। पौरुषेय होनेसे पुरुषाश्रित दोषों से दूषित होने की सम्भावना से अप्रामाण्य प्रसक्त होने पर उनके निर्माताओं के आप्तत्व और उनमें श्रुति-मूलकत्व का ज्ञान होने से अप्रामाण्य निरस्त हो जाता है। स्वतःप्रामाण्य ही स्थिर रह जाता है। जहाँ प्रत्यक्ष में श्रुतिमूलत्व उपलब्ध नहीं होता है वहाँ मूलभूत श्रुति का अनुमान किया जाता है। अनुमानप्रकार निम्नोक्त है—

"इयं स्मृतिः श्रुतिमूलिका, स्मृतित्वाद्, मन्वादिस्मृतिवत्।"

विवादास्पद स्मृति भी श्रुतिमूलिका है, स्मृति होने से, मन्वादि स्मृति के समान। इस दृष्टि से सर्वज्ञकल्प, आप्त, आर्षविज्ञानसम्पन्न, श्रुतिनिष्ठ वाल्मीकि, व्यास आदि महर्षियों की कृतियों में भ्रम, प्रमाद आदि की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जहाँ पौरुषेय स्मृत्यादि वचनों के विरुद्ध कोई श्रुति-वचन मिलता है वहाँ श्रुतिविरुद्ध स्मृति वचनों का प्रत्यक्ष श्रुतिवचनों के अविरुद्ध ही अर्थ लगाना उचित है। यह सब बात **"विरोधे त्वनपेक्षं स्यादसति ह्यनुमानम्"** जै० सू० में स्पष्ट है। इसी लिए ***"औदुम्बरीं स्पृष्ट्वा उद्गायति"*** इस श्रुति के विरुद्ध होने से ही ***"औदुम्बरी सर्वा वेष्टयितव्या"*** यह कल्पसूत्र-वचन बाधित हो जाता है।

स्कन्दपुराण भी व्यास निर्मित पुराण है। उसे अर्वाचीन मानना निराधार है। **स्कन्दपुराण** अष्टादश पुराणों में एक है। **श्रीमद्भागवत** आदि अन्य पुराणों में उसका उल्लेख है। साथ ही **आनन्दरामायणादि** प्रोक्त वाल्मीकि-कथा का **मत्स्यपुराण**, **विष्णुपुराण**, **महाभारत** आदि के वचनों से कोई विरोध भी नहीं है!

आप भी मानते हैं कि "**महाभारत** एवं **मत्स्यपुराण**, **विष्णुपुराण** आदि उनके पूर्व जीवन के सम्बन्ध में मौन हैं।" भारतीय साहित्य में सद्ग्रन्थों का समन्वय करके ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। **मिताक्षरा**, **व्यवहारमयूख**, **पराशरमाधव**, **हेमाद्रि** आदि निबन्धों की यही पद्धति है। पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा का भी यही दृष्टिकोण है।

आधुनिक संविधानों (Constitutions) में विभिन्न धाराएँ टकराती हैं तो उनका समन्वय करना पड़ता है। सामान्य, विशेष या उत्सर्ग, अपवाद को ध्यान में रख कर ही बाध्य-बाधक भाव भी मानना पड़ता है। जिस विषय में **महाभारत**, **वायुपुराण**, **विष्णुपुराण** आदि मौन हैं उसके सम्बन्ध में **स्कन्दपुराणादि** की बात मानने में कोई दोष नहीं है। जो कालान्तर में दस्यु होता है वही कालान्तर में महर्षि भी हो सकता है। इससे यही सिद्ध होता है कि आत्मा स्वतः सच्चिदानन्दरूप है। देह, इन्द्रिय आदि उपाधियों के अनियन्त्रित होने से अशुद्ध-सा हो जाता है। उनके नियन्त्रण से शुद्ध हो जाता है। अतः किसी को निराश नहीं होना चाहिये। सच्छास्त्र के अभ्यास और सत्पुरुष के संग से पूर्ण उन्नति हो सकती है।

स्कन्दपुराण आदि की कथाओं में भी विरोध नहीं है। तत् तत् तीर्थों तथा वैशाख मास आदि काल और पर्वों के माहात्म्य-वर्णन के प्रसङ्ग में कुछ भेद वर्णन असङ्गत नहीं है। व्यवहार में एक पुरुष आत्मकल्याणार्थ अनेक जन्मों में अनेक प्रकार के व्रत, जप, तप, तीर्थयात्रा आदि करता ही है।

स्कन्दपुराण के वैष्णवखण्ड के वैशाख-माहात्म्य में एक व्याध के वृत्तान्त में रामनाम-जप के फलस्वरूप तथा वरदान के अनुसार वह व्याध वल्मीक नामक ऋषि से उत्पन्न होकर वाल्मीकि बन कर यशस्वी होता है। कृणु नामक तपस्वी के शरीर के चारों ओर वल्मीक (दीमकों द्वारा एकत्रित मिट्टी का अम्बार) बन जाने से उसका वल्मीक नाम पड़ा था। व्याध उसी के पुत्ररूप में प्रकट होकर वाल्मीकि महर्षि बनकर आदि काव्य **रामायण** का रचयिता हुआ है। **पुराणान्तरों** के साथ एकवाक्यता कर उसी वल्मीक को भृगुवंशीय तथा प्रचेता (वरुण) का अवतार भी माना जा सकता है।

स्कन्दपुराण के अवन्तीखण्ड के अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्य (अ० २४) में अग्निशर्मा डाकू सप्तर्षियों को मार कर उनके वस्त्र आदि छीनने को उद्यत हुआ। ऋषियों ने परिवार से यह पूछने के लिये उसे घर भेजा कि क्या तुम लोग मेरे पापों के भी फलभागी होने को तैयार हो। परिवार के लोगों के अस्वीकार करने पर अग्निशर्मा को निर्वेद हुआ और ऋषियों के उपदेशानुसार वह ध्यान तथा जप करने लगा। उसके चारों ओर वल्मीक हो गया। बारह वर्ष के बाद ऋषियों ने उसे निकाला, उसका वाल्मीकि नाम रखा और **रामायण**-निर्माण का आदेश दिया।

इस कथा को भी उसके साथ मिलाने से यह समझना चाहिए कि कृणु के पुत्र का नाम अग्निशर्मा था और वह दुःसङ्ग से डाकू हो गया था। वही ऋषियों के सम्पर्क से तपस्या एवं ध्यान में मग्न होने पर वल्मीक से प्रावृत्त होकर वाल्मीकि हुआ। **नागरखण्ड** के लोहजङ्घ की कथा के साथ भी एकवाक्यता कर देने से कृणु-पुत्र का ही लोहजङ्घ भी नाम रहा होगा। शेष कथा पूर्ववत् ही है।

प्रभासखण्डीय कथा के अनुसार कृणु का ही नाम शमीमुख भी रहा होगा। उसके पुत्र अग्निशर्मा का वैशाख नाम भी रहा होगा।

अध्यात्मरामायण की कथा भी पूर्वोक्त कथाओं से समन्वित हो सकती। वही किरातों की संगति से जन्मना ब्राह्मण होने पर भी किरातप्राय होकर डाकू हो गया था। मुख्य कथा समान होने पर किञ्चित् परिवर्तन अकिञ्चित्कर है। व्यास के समान ही विभिन्न कल्पों में वाल्मीकि भी विभिन्न होते हैं, अतः कल्पभेद से भी कुछ कथाभेद संभव है।

अश्वघोष के अनुसार च्यवन महर्षि वाल्मीकि के पूर्वज थे। च्यवन भृगुवंशीय थे, अतः वाल्मीकि का भी भार्गव होना स्वाभाविक है।

'वाल्मीकि शब्द की व्युत्पत्ति के लिये वाल्मीकि के पूर्व जीवन की कथा की कल्पना की गयी है', श्रीबुल्के का यह कहना सर्वथा असङ्गत है; क्योंकि सत्यनिष्ठ पुराणकार महर्षि मिथ्याभाषण से सदा ही घृणा करते थे। भरद्वाज, सगर आदि संज्ञाएँ भी अन्वर्थ ही थीं। पुराणोक्त आख्यायिकाओं को कल्पनामात्र कहना आप्तप्रामाण्य को ठुकराना है। **'कठेन प्रोक्तं काठकम्'** आदि समाख्याएँ जैसे अन्वर्थ हैं, वैसे ही 'वाल्मीकि' आदि समाख्याओं को भी समझना चाहिए।

जहाँ वास्तविकता नहीं होती वहाँ आख्यायिका भी नहीं होती। किसी वृक्ष की अश्वकर्ण समाख्या हो तो वह अन्वर्थ नहीं, क्योंकि वृक्ष से अश्व के कान का कोई सम्बन्ध नहीं है।

वेद, पुराण आदि की आख्यायिकाओं के सम्बन्ध में यह नियम है कि यदि आख्यायिका किसी ऐसे अर्थ का प्रतिपादन करती हो जो प्रमाणान्तर से विरुद्ध है तो वह गुणवादिनी आख्यायिका अपने मुख्य अर्थ का प्रतिपादन न कर गौण अर्थ का ही प्रतिपादन करती है। जैसे—**"आदित्यो यूपः"** यह वचन आदित्य एवं यूप का अभेद बोधित करता है, पर वह प्रत्यक्ष से विरुद्ध है; अतः आदित्यसदृश यूप है यह गौण अर्थ ही उसका अर्थ समझना चाहिए। यदि आख्यायिका प्रमाणान्तरसिद्ध अर्थ को बोधित करती है—जैसे **'अग्निर्हिमस्य भेषजम्'** (मा० सं० २३।१०) अग्नि जाड़े की ओषधि है, यह बात प्रत्यक्षसिद्ध ही है, तो यह वाक्य केवल अनुवादक है उसका स्वार्थ में प्रामाण्य नहीं है। परन्तु जो आख्यायिका या वाक्य प्रमाणान्तर से असिद्ध एवं अविरुद्ध अर्थ का बोधक होता है, उसका महातात्पर्य स्तुत्यादि में होने पर भी अवान्तरतात्पर्यगोचर स्वार्थ में भी प्रामाण्य होता है।

इस दृष्टि से वाल्मीकि के पूर्वजीवनवृत्तान्त से किसी प्रमाण का विरोध नहीं है; क्योंकि उस सम्बन्ध में वे मौन हैं। प्रमाणान्तरों से उसकी सिद्धि भी नहीं है, अतः प्रमाणान्तरासिद्ध एवं प्रमाणान्तराविरुद्ध अर्थ में इन आख्यानों का प्रामाण्य सर्वथा मान्य है। अतएव मिथ्या आख्यान के द्वारा किसी नाम की व्युत्पत्ति प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। भरद्वाज, सगर आदि नामों से सम्बन्धित आख्यिकाएँ भी मिथ्या नहीं हैं।

लोक तथा **वेद** में ऐसी कोई व्युत्पत्ति नहीं है, जो मिथ्या कथा पर आधारित हो, प्रत्युत **निरुक्त** आदि में इन्द्र, अग्नि आदि नामों की अन्वर्थ ही व्युत्पत्तियाँ कही गयी हैं। **बृहदारण्यक** में प्राण का **'दूर्नाम'** कहा गया है। उसका यथार्थ में ही यह अर्थ है कि आसङ्गरूप पाप्मा उससे दूर रहता है—

सा वा एषा देवता दूर्नाम दूरं ह्यस्मान्मृत्युर्दूरं ह वा अस्मान्मृत्युर्भवति य एवं वेद"

(बृ० उ० १।३।९)

सीता का नाम भी अन्वर्थ ही है। कृषि की अधिष्ठात्री देवी का अवतार होने तथा हलाग्र से प्रकट होने के कारण ही जनक-पुत्री का सीता नाम हुआ।

वाल्मीकि का पूर्व जीवन दस्युजीवन होने पर भी जप, तप आदि से जो उनका पुनर्जीवन हुआ था उस नव जीवन के ही सम्बन्ध में वे कहते हैं कि मन, वचन तथा कर्म से कोई भी किल्बिष मैंने नहीं किया—

"मनसा कर्मणा वाचा भूतपूर्वं न किल्बिषम् ॥" (वा० रा० ७।९६।२०)

इसी तरह 'कौतूहल और प्रभावशाली बनाने के लिये वाल्मीकि के प्रसिद्ध ऋषिजीवन के विपरीत प्रारम्भिक दस्युजीवन बतलाया गया है' यह कथन भी सङ्गत नहीं है, क्योंकि मिथ्या-वर्णन से ऋषि का महत्त्व घट जाता है, बढ़ता नहीं। सूर और तुलसी के पूर्व जीवन का वर्णन भी यदि मिथ्या वर्णन है तो उससे उनमें प्रभाव

व्यक्त नहीं हो सकता, वैसे ही अशोक सम्राट् के पूर्व जीवन का वर्णन भी मिथ्या न होकर ऐतिहासिक तथ्यों पर ही आधारित है।

जब **वाल्मीकिरामायण** के **बालकाण्ड** और **उत्तरकाण्ड** में ही वाल्मीकि को राम का समकालीन कहा गया है, तब उस वर्णन को मिथ्या मानकर उनका अन्य काल ढूंढ़ना सर्वथा असङ्गत और निराधार ही है। **बालकाण्ड** और **उत्तरकाण्ड** को बाद का संस्करण मानना भी अप्रामाणिक ही है। किसी भी महान् नायक का जन्म, बाल्य-जीवन, शिक्षण, विवाह आदि तथा अन्तिम स्थिति का वर्णन स्वाभाविक ही है। "वाल्मीकि और राम दोनों प्राचीन हैं, इसलिये दोनों को समकालीन कह दिया गया" यह अटकल अशुद्ध है; क्योंकि यदि ऐसा हो तो राम और कृष्ण दोनों ही प्राचीन थे, उन्हें भी समकालिक क्यों नहीं माना गया? राम और व्यास भी तो प्राचीन ही थे, फिर वाल्मीकि के समान ही व्यास को भी राम का समकालिक क्यों नहीं कहा गया?

अतएव "वाल्मीकि की भाषा जिसमें उन्होंने रामायण की रचना की थी, वह वैदिक संस्कृत न होकर लौकिक संस्कृत है; किन्तु राम का नाम **ऋग्वेद** में उपलब्ध होने से उनका वैदिक काल का होना सिद्ध है। यदि वाल्मीकि राम के समकालिक होते तो वैदिक युग में रहकर लौकिक संस्कृत में किस प्रकार अपने काव्य की रचना कर सकते थे। उनकी रचना वैदिक संस्कृत में ही होनी चाहिये, अतः वैदिककाल के पश्चात् और बौद्धकाल के ६०० ई० पूर्व ही रामायण का निर्माण मानना उचित है" यह कथन भी निस्सार है? क्योंकि बौद्धकाल आदि कालों के समान कोई खास काल वैदिककाल नहीं है, कारण कि "वाचा विरूपनित्यया" (ऋ० सं० ८।७५।६) तथा "अत एव च नित्यत्वम्" (ब्र० सू० १।३।२९) के द्वारा **वेद** नित्य कहा गया है। अतएव वैदिक भाषा किसी समयविशेष की भाषा नहीं थी। यह भी नहीं कहा जा सकता है कि उस समय की सभी रचनाएँ वैदिकभाषा में ही होती थीं और सब वेद ही होते थे; इसलिए यह सब कथन निष्प्रमाण एवं वेदविरुद्ध ही है। यह भी नियम नहीं है कि जिस ग्रन्थ में जिसका नाम आता है वह उस ग्रन्थकाल का ही होना चाहिये। हो सकता है, वेदकाल से भी प्राचीनकाल के राम रहे हों और यह भी हो सकता है कि त्रिकालज्ञ वेदकार ने भविष्य के राम का ही वर्णन किया हो।

अथवा आपके अनुसार "जैसे **तैत्तिरीयप्रातिशाख्य** के वाल्मीकि से **रामायण काव्य** के रचयिता वाल्मीकि भिन्न हैं, वैसे हो **वेद** के राम से **रामायण** के राम भिन्न हैं।" वस्तुतः पूर्वकथन के अनुसार **वेद** किसी देश या काल के वर्गविशेष की किसी वैदिकभाषा के मनुष्य या देवों द्वारा रचित ग्रन्थ नहीं हैं; किन्तु वे अनादि ही हैं। हाँ, जिन सत्ययुग, त्रेतायुग आदि कालों में **वेदों** के पठन-पाठन एवं तदर्थानुष्ठान खूब प्रचलित होते हैं उन कालों को वैदिककाल कहा जा सकता है; परन्तु उस समय सब ग्रन्थ वैदिक भाषा में ही होते थे या वेद ही होते थे, यह नहीं कहा जा सकता।

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्" (आप० सू०) के अनुसार 'मन्त्र' और 'ब्राह्मण' दोनों ही **वेद** हैं। उन **वेदों** के अनुसार ही विदित होता है कि वैदिक भाषा कभी किसी वर्गविशेष की भाषा थी ही नहीं। संस्कृत भाषा भी देवभाषा थी, मानुषी भाषा नहीं थी। इसी लिए संस्कृतभाषा को गीर्वाणवाणी या सुरभारती कहा जाता है। अतएव वैदिक यज्ञ, याग आदि में संस्कृत भाषा या देवभाषा बोलने का ही नियम है। उस बीच में यदि भूल से मानुषी भाषा का उच्चारण हो जाय तो प्रायश्चित्तस्वरूप वैष्णव यजुर्मन्त्र या वैष्णवी ऋचा के जप का विधान है—**"स यदिदं पुरा मानुषीं वाचं व्याहरेत् ततो वैष्णवीमृचं वा यजुर्वा जपेद्यज्ञो वै विष्णुस्तद् यज्ञं पुनरारभते तस्यो हैषा प्रायश्चित्तिर्वव्रतीतये त्वा गृह्णामीति देवानवविद्यु हि हविर्गृह्यते"** (श० ब्रा० १।१।४।६)।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि वेदकाल में संस्कृत भाषा (सुरभारती) और उससे भिन्न मानुषी भाषा भी थी। युगों के अनुसार विचार करने से वर्तमान मन्वन्तर के २३ वें त्रेता में श्रीरामचन्द्र का आविर्भाव हुआ था।

उसी समय महर्षि वाल्मीकि और उनके वर्तमान **रामायण महाकाव्य** का आविर्भाव हुआ। **पुराणान्तरों के** अनुसार वाल्मीकि और शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** तो राम के पूर्व ही आविर्भूत हो चुके थे।

स्कान्दे पातालखण्डे अयोध्यामाहात्म्ये तत्रत्यतीर्थाश्रमवर्णनप्रस्तावे--

"शापोक्त्या हृदि सन्तप्तं प्राचेतसमकल्मषम्।
प्रोवाच वचनं ब्रह्मा तत्रागत्य सुसत्कृतः॥
न निषादः स वै रामो मृगयां चर्तुमागतः।
तस्य संवर्णनेनैव सुश्लोक्यस्त्वं भविष्यसि॥
इत्युक्त्वा तु जगामाशु ब्रह्मलोकं सनातनः।
ततः संवर्णयामास राघवं ग्रन्थकोटिभिः॥"

कोटिभिः शतकोटिभिः, चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरमित्यन्यत्रोक्तेः (वा० रा० १।२।१५ रामाभिरामीयटीकायाम्)।

अर्थात् स्कन्दपुराण पातालखण्ड अयोध्यामाहात्म्य में वहाँ के तीर्थ और आश्रमों के वर्णन के सिलसिले में कहा है—

महर्षि वाल्मीकि "**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः**" (वा० रा० १।२।१५) इत्यादि शाप देकर अन्तःसन्तप्त हो रहे थे उसी समय ब्रह्माजी आये। महर्षि से सत्कृत होकर उन्होंने कहा—"वह निषाद नहीं राम ही मृगया के लिए आये थे। तुम उनका चरित्र वर्णन करके सुश्लोक्य (महायशस्वी) होओगे।" यह कहकर ब्रह्मा ब्रह्मलोक चले गये। महर्षि ने शतकोटि श्लोकों द्वारा रामचरित्र का वर्णन किया था। उसी में से कुश और लव के लिए चतुर्विंशत्साहस्रीसंहिता का उपदेश किया था।

✱

चतुर्थ अध्याय

वाल्मीकिरामायण और महाभारत-रामोपाख्यान

महाभारत वनपर्व के **रामोपाख्यान** के आधार के सम्बन्ध में पाश्चात्यों ने चार सम्भावनाएँ व्यक्त की हैं—(१) **रामोपाख्यान रामायण का** आधार है, (२) **रामोपाख्यान** एक ऐसी **रामायण** पर निर्भर है, जो प्रचलित **रामायण** का पूर्वरूप है, (३) **रामोपाख्यान वाल्मीकिरामायण** का संक्षिप्त रूप है एवं (४) **रामोपाख्यान** तथा **रामायण** दोनों किसी सामान्य मूल स्रोत के स्वतन्त्र विकास हैं।

पहला पक्ष ई० हाप्किन्स तथा ए० लुड्विग का है। इसके अनुसार **रामोपाख्यान** और **रामायण** में जो अन्तर है, वह यह सिद्ध करता है कि वह **रामायण** का संक्षिप्त रूप नहीं हो सकता। इसपर डा० याकोबी का उत्तर यह है कि यद्यपि **रामोपाख्यान** के रचयिता ने प्रचलित **रामायण** की हस्तलिपि का सहारा नहीं लिया, पर उसे अपने देश की प्रचलित **रामायण** कण्ठस्थ थी।

संक्षिप्त वर्णन में छोटे-मोटे अन्तर सहज ही आ गये होंगे, यह तीसरा मत है। अधिकांश विशेषज्ञ डा० याकोबी का मत मानते हैं। **महाभारत** के सम्पादक सुकण्ठकर ८६ स्थल उद्धृत करते हैं, जिनमें **रामोपाख्यान** और और **रामायण** में शाब्दिक साम्य मिलता है। साथ ही **रामोपाख्यान** के इन्द्रजित्-यज्ञ, काक-वृत्तान्त आदि **रामायण** के बिना समझ में नहीं आ सकते, अतः **रामोपाख्यान** का वृत्तान्त स्वतन्त्र नहीं है। **महाभारत** में **रामायण** तथा कवि वाल्मीकि का उल्लेख हुआ है; अतः रामायण को **रामोपाख्यान** का आधार मानने में कोई आपत्ति नहीं, यह बुल्के स्वीकार करते हैं।

रामोपाख्यान के बालकाण्ड में राम तथा उनके भाइयों का जन्म वर्णित है। **रामायण** के पुत्रेष्टियज्ञ तथा पायस का उल्लेख नहीं है। सीता जनक-पुत्री हैं, उनकी अयोनिजता का उल्लेख नहीं है।

ब्रह्मर्षि, देवता आदि रावण से त्रस्त होकर ब्रह्मा की शरण लेते हैं। ब्रह्मा राम के अवतार का रहस्य बतलाते हैं। ब्रह्मा के आदेश से देवता विष्णु की सहायता के लिए ऋक्ष, वानर आदि रूपों में प्रकट होते हैं।

चारों भाइयों के विवाह का वर्णन है, पर सीता को छोड़कर अन्य माण्डवी आदि का नाम-निर्देश नहीं है। २य काण्ड में गुह तथा अत्रि का उल्लेख नहीं हैं। कैकेयी को एक वरदान मिलना तथा मन्थरा को गन्धर्वी दुन्दुभी का अवतार कहा गया है।

अरण्यकाण्ड में **वाल्मीकिरामायण** के समान ही कथा है; किन्तु विराध, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य, अयोमुखी और शबरी से सम्बन्धित सामग्री का अभाव है।

किष्किन्धा में राम और सुग्रीव की मैत्री, वालीवध, सीतान्वेषणार्थ वानरों का प्रेषण तथा उनका पूर्व, पश्चिम और उत्तर दिशाओं से प्रत्यागमन वर्णित है। सुग्रीवसख्य के पहले राम की बल-परीक्षा का अभाव, वाली और सुग्रीव का एक ही द्वन्द्वयुद्ध इस अंश में **रामायण** से भिन्नता है। **रामोपाख्यान** के सुन्दरकाण्ड में हनुमान् एवं उनके साथियों की यात्रा के वृत्तान्त का वर्णन लौटकर स्वयं हनुमान् ने ही किया है। इसमें अविन्ध्य को अधिक महत्त्व दिया गया है। **रामायण** में सीता ने हनुमान् से अविन्ध्य की चर्चा की है—

"अविन्ध्यो नाम मेवाधी विद्वान् राक्षसपुङ्गवः।
धृतिमाञ्छीलवान् वृद्धो रावणस्य सुसम्मतः॥
रामात् क्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत्।
न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम्॥"

(वा० रा० ५।३६।१२,१३)

अर्थात् अविन्ध्य विद्वान्, शीलवान् तथा राक्षसों में श्रेष्ठ है। उसने 'राम से राक्षसों का क्षय प्राप्त है' ऐसा कहा, पर दुष्ट रावण ने उसका हित वचन नहीं सुना।

रामोपाख्यान में त्रिजटा ने सीता को अविन्ध्य का यह सन्देश सुनाया था कि राम और सुग्रीव की मैत्री हो गयी है। राम शीघ्र आ रहे हैं।

'अविन्ध्यो नाम मेधावी वृद्धो राक्षसपुङ्गवः।
स रामस्य हितान्वेषी……" (म० भा० ३।२७०।५६)

मेघनाद के मरने पर सीता के वध के लिए उद्यत रावण को अविन्ध्य रोकता है। **रामायण** में सुपार्श्व रोकता है।

युद्धकाण्ड में भी कुछ परिवर्तन है। जैसे—रावण की सभा में राम के मायामय सिर की उपस्थिति एवं रावण और सुग्रीव का युद्ध आदि **रामोपाख्यान** में नहीं हैं।

रामोपाख्यान में सेतु-बन्धन के वृत्तान्त में समुद्र ने स्वप्न में राम को दर्शन देकर सहायता देने का वचन दिया। वहाँ समुद्र के लिए राम के बाणप्रयोग का अभाव है।

अङ्गद का दौत्य कार्य, लङ्कावरोध, पहला शरबन्ध, द्वन्द्वयुद्ध आदि **रामोपाख्यान** में नहीं हैं। **रामोपाख्यान** के अनुसार कुम्भकर्ण का वध लक्ष्मण के द्वारा हुआ है। इन्द्रजित् द्वारा माया सीता की हत्या का उल्लेख रामोपाख्यान में नहीं है। नागपाश का वृत्तान्त **रामायण** में दो बार वर्णित है, पर **रामोपाख्यान** में एक ही बार कहा गया है। उसमें विभीषण राम और लक्ष्मण को प्रज्ञास्त्रसे स्वस्थ कर देते हैं एवं राम को कुबेर का भेजा हुआ जल देते हैं। उस जल से आँखें धोने से राम अदृश्य प्राणियों को देख सकते हैं। हनुमान् का पर्वत से औषधियाँ लाने का उसमें उल्लेख नहीं है।

रामोपाख्यान में लक्ष्मण को शक्ति लगने का वृत्तान्त नहीं है। उसमें रावण माया द्वारा राम और लक्ष्मण का रूप धारण किये हुए मायामय राक्षसों को उत्पन्न करता है। राम उनकी हत्या करते हैं। बाद में ब्रह्मास्त्र द्वारा रावण को ऐसा भस्म करते हैं कि उसकी राख भी शेष नहीं रहती।

"**न च भस्माप्यदृश्यत**" (म० भा० ३।२९०।३३)

रामोपाख्यान में सीता की अग्निपरीक्षा भी नहीं है। **उत्तरकाण्ड** में रामकथा, अयोध्या आगमन, अभिषेक आदि का वर्णन है।

जैसा कि पहले कहा गया है, शतकोटिप्रविस्तर **रामायण महाकाव्य** वाल्मीकि द्वारा वर्णित हुआ है। चौबीस हजार श्लोकोंवाला प्रसिद्ध **वाल्मीकिरामायण** ग्रन्थ उसी का सार है। मार्कण्डेय, व्यास आदि महर्षि भी समाधिसम्पन्न तथा सर्वज्ञ हैं, अतः प्रसिद्ध **रामायण** में अनुक्त अंशों का वर्णन असङ्गत और अप्रामाणिक नहीं है। संक्षिप्त करने की दृष्टि से रामायणोक्त कई अंशों का वर्णन न करना भी सङ्गत ही है। अतएव व्यास द्वारा वर्णित

पद्मपुराण में रामायणोक्त कथाओं से विलक्षण बहुत-सी कथाओं का वर्णन है। **रामाश्वमेध** नामक एक बहुत बड़ा भाग वहाँ वर्णित है। कल्पभेद से भी राम की अवतारकथाओं में भेद पुराणसम्मत है।

महाभारत का रामोपाख्यान

रामोपाख्यान के सहारे बुल्के **रामायण** के बहुत अंशों को प्रक्षिप्त कहते हैं। लङ्कादाह को वे प्रक्षिप्त कहते हैं। परन्तु **रामोपाख्यान** में लङ्कादाह का स्पष्ट उल्लेख है। सेतुबन्ध को भी वे असम्भव समझते हैं, पर वह भी **रामोपाख्यान में** विद्यमान है।

"प्रत्याजहार तां रामः सुग्रीवबलमाश्रितः।
बद्ध्वा सेतुं समुद्रस्य दग्ध्वा लङ्कां शितैः शरैः॥" (म० भा० ३।२७४।३)

अर्थात् राम सुग्रीव की सहायता से समुद्र में सेतु बाँधकर एवं हनुमान् द्वारा लङ्का को जलाकर सीता को लौटा लाये।

रामोपाख्यान में सीता की अलौकिकता का भी वर्णन है—

**"विदेहराजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो।
यां चकार स्वयं त्वष्टा रामस्य महिषीं प्रियाम्॥"** (म० भा० ३।२७४।९)

इसमें असाधारणरूपवती होने से सीता को त्वष्टा द्वारा निर्मित कहा गया है। रावण को भी सर्वलोकस्रष्टा ब्रह्मा का प्रपौत्र एवं कुबेर का भ्राता कहा गया।

पुलस्त्य से उनकी गोनाम्नो पत्नी में वैश्रवण की उत्पत्ति हुई। वैश्रवण पिता को छोड़कर पितामह की उपासना में संलग्न हुए, अतः वैश्रवण के प्रतीकारार्थ क्रुद्ध होकर पुलस्त्य अपने ही अर्धभाग से विश्रवा रूप में उत्पन्न हुए। उधर पितामह ने वैश्रवण पर प्रसन्न होकर उन्हें **धनेशत्व, लोकपालत्व, अमरत्व**, **ईशानसख्य** आदि महान् पद प्रदान किये, इतना ही नहीं उन्हें रक्षोगणान्वित लङ्का राजधानी, कामगामी पुष्पक विमान, यक्षाधिपत्य तथा राजराजत्व भी प्रदान किया।

पुलस्त्य के अर्धदेह से उत्पन्न विश्रवा वैश्रवण को सक्रोध दृष्टि से निहारते थे। उनको प्रसन्न करने के लिए राजराज कुबेर ने उन्हें सेवा के लिए पुष्पोत्कटा, राका और मालिनी नाम की तीन राक्षसियाँ प्रदान कीं। वे परस्पर उत्कर्ष की कामना से महर्षि की सेवा में तत्पर रहीं। उनपर संतुष्ट होकर विश्रवा ने उन्हें लोकपालों के सदृश पुत्र प्रदान किये।

पुष्पोत्कटा से रावण और कुम्भकर्ण की, मालिनी से विभीषण की तथा राका से खर एवं शूर्पणखा की उत्पत्ति हुई। विभीषण सर्वाधिक रूपवान् तथा धार्मिक था। रावण महान् उत्साही तथा महाबलवान् था। कुम्भकर्ण सर्वाधिक बलवान्, मायावी तथा रणकोविद था। खर धनुर्धर और विक्रमी था तथा शूर्पणखा सिद्धिविघ्नकारिणी रौद्री थी। सभी वेदविद् तथा सम्यक् व्रतचारी थे एवं पिता के साथ गन्धमादन पर्वत पर रहते थे। नरवाहन कुबेर का वैभव देखकर ईर्ष्यावश तपस्या में लगकर सबने ब्रह्मा को सन्तुष्ट कर विविध वर प्राप्त किये।

रावण सहस्र वर्ष की तपस्या पूर्ण होने पर अपना सिर अग्नि में होम कर देता है। इससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे अमरत्व छोड़कर इष्ट वर माँगने को कहा। उसने गन्धर्व, देव, असुर, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्नर और भूतों से अवध्यवा का वरदान माँगा। ब्रह्मा ने कहा—मनुष्य को छोड़कर तुम्हें और किसी से भय नहीं होगा। विभीषण ने धर्मबुद्धि होने का वरदान माँगा। फलतः अमरत्व का वरदान उन्हें बिना माँगे ही मिल गया।

दशग्रीव ने वैश्रवण पर आक्रमण कर लङ्का और पुष्पक विमान छीन लिये। वैश्रवण ने शाप दिया था कि वह विमान तुम्हारा वाहन न बन सकेगा, किन्तु जो तुम्हें मारेगा उसी का वाहन बनेगा—

"शशाप तं वैश्रवणो न त्वामेतद् वहिष्यति।
यस्तु त्वां समरे हन्ता तमेवैतद् वहिष्यति॥" (म० भा० ३।२७५।३४)

बुल्के पुष्पक विमान के वर्णन को प्रक्षेप मानते हैं। उनका यह भी तर्क है कि यदि पुष्पक होता तो रावण पुष्पक द्वारा ही सीता का हरण करता, परन्तु उपर्युक्त श्लोक से सिद्ध है कि शापवश पुष्पक विमान रावण का वहन नहीं करता था। उपर्युक्त वचनों में रावण को दशग्रीव भी कहा गया है। कुम्भकर्ण को महती निद्रा का वरदान भी उक्त है। वहीं रावण को कामरूपी तथा आकाशगामी भी कहा गया है—

"कामरूपी विहङ्गमः" (म० भा० ३।२७५।३९) तथा "दशग्रीवः कामबलः" (३।२७५।४०) उसे दशग्रीव एवं कामबल भी कहा गया है।

अग्रिम २७६ वें अध्याय में अग्निसहित सभी देवता ब्रह्मा की शरण में जाते हैं। ब्रह्मा ने बताया, मेरे वरदान के प्रभाव से रावण देव और असुरों से अवध्य है। मेरी प्रार्थना से चतुर्भुज विष्णु ही अवतरित होकर उसका वध करेंगे—

"तदर्थमवतीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः।
विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः स तत्कर्म करिष्यति॥" (म० भा० ३।२७६।५)

वहीं ब्रह्मा ने इन्द्र आदि देवताओं को भी यह आदेश दिया कि तुम लोग ऋक्षियों एवं वानरियों में कामरूप बलान्वित वीरों को उत्पन्न कर विष्णु की सहायता करो। तदनुसार देवताओं ने साल, ताल, शिला आदि आयुधोंवाले वानरों को उत्पन्न किया। वे बल, वीर्य, विद्या, यश आदि में अपने पितृभूत देवों के ही तुल्य थे। वज्र-संहनन, कामबल-वीर्य तथा कामरूप थे। दस हजार हाथियों का बल रखते थे (म० भा० ३।२७६।६-१६)। दुन्दुभी गन्धर्वी कुब्जा मन्थरा बनकर आयी थी।

२६६ वें अध्याय में महाराज दशरथ के यहाँ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के जन्म, ब्रह्मचर्य, वेद, उपवेद के अध्ययन और राम की विशेषता का वर्णन है। राम के यौवराज्य की तैयारी का विचार हुआ। राम मत्तमतङ्गगामी, महाबाहु, लोहिताक्ष, कम्बुग्रीव, महोरस्क, नीलकुञ्चितमूर्धज तथा दिव्यश्री से दीप्यमान थे। वे सब धर्मों में पारङ्गत तथा बुद्धि में बृहस्पति एवं बल में इन्द्र के तुल्य थे। सर्वविद्याविशारद, जितेन्द्रिय तथा अमित्रों के भी नेत्र एवं मन को हरण करनेवाले वे शत्रुओं को भी परम प्रिय लगते थे।

"जितेन्द्रियममित्राणामपि दृष्टिमनोहरम्॥"

वे असाधुओं के नियन्ता तथा साधुओं के गोप्ता थे। धृतिमान्, अप्रधृष्य, जेता एवं अपराजित थे। ऐसे कौशल्यानन्दवर्धन पुत्र को पाकर राजा दशरथ परम प्रसन्न थे। पुरोहित वसिष्ठ की सम्मति से पुष्य नक्षत्र में अभिषेक के लिए संभारों के संग्रहार्थ राजा ने मन्त्रियों को आदेश दिया। यह सब सुनकर मन्थरा ने कैकेयी के सापत्न्य को उकसाया और कैकेयी ने प्रेमवशीभत राजा से वरदान माँग लिया कि राम के लिए उपस्थापित अभिषेक की सामग्री से भरत का अभिषेक किया जाय और राम वन जायँ। राजा दारुण विप्रिय वचन सुनकर कुछ न बोल सके। वीर्यवान् राम ने सब वृत्तान्त जानकर राजा की सत्यरक्षा के लिए वन को प्रस्थान किया। धनुष्मान् लक्ष्मण और पतिप्राणा जानकी ने उनका अनुगमन किया। राम के वन जाने पर राजा का देहान्त हो गया। कैकेयी ने भरत को ननिहाल से बुलाकर निहतकण्टक राज्य करने को कहा।

भरत ने वह सुनकर कैकेयी की भर्त्सना कर मन्त्रियों के समक्ष अपने चरित्र का विशोधन किया और राम को वन से लौटाने की लालसा से भरत दुःखिता कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी को यानों द्वारा प्रस्थापित कर वसिष्ठ, वामदेव तथा अन्य सहस्रों विप्रों तथा पौर-जानपदों को साथ लेकर वन में गये और चित्रकूट में तापस वेषधारी राम और लक्ष्मण को देखा तथा राम से लौटकर राज्य स्वीकार करने की आकांक्षा व्यक्त की। राम ने प्रेम से समझा-बुझाकर भरत को लौटा दिया।

इस प्रसङ्ग में यहाँ गुह निषाद की चर्चा नहीं है। संक्षेप के कारण ही सुमन्त्र की भी चर्चा नहीं है। यज्ञरक्षार्थ राम और लक्ष्मण का विश्वामित्र के साथ वनगमन, जनकपुर-गमन, धनुर्भङ्ग तथा सीता-विवाह का वर्णन भी नहीं है, फिर भी उनका अभाव नहीं समझना चाहिये।

राम पुनः पौरों और जानपदों के आगमन की शङ्का से महारण्य में शरभङ्ग के आश्रम की ओर चले गये और गोदावरी के रम्य तट पर निवास करने लगे। वहाँ उनका शूर्पणखा के कारण खर के साथ महान् वैर हो गया। तापसों के रक्षार्थ धर्म-वत्सल राम ने चौदह हजार राक्षसों का वध किया। दूषण एवं खर को मार कर दण्डकारण्य को धर्मारण्य बना दिया। विकृतनासा और विकृतोष्ठी शूर्पणखा शुष्करुधिरानना होकर लङ्का गयी। दुःख से मूर्छित होकर भ्राता रावण के चरणों में गिर पड़ी। रावण क्रुद्ध होकर आसन से उठा। अपने अमात्यों को हटा कर एकान्त में उसने शूर्पणखा से पूछा—किसने मेरा अपमान कर तुम्हें विरूपित किया है। कौन तीक्ष्ण शूल से अपने सर्वाङ्ग का छेदन कराना चाहता है, कौन सिर पर अग्नि जलाकर विश्वस्त होकर सोता है, कौन घोर नाग का पैर से स्पर्श करना चाहता है और केसरी सिंह का दाँत पकड़कर खड़ा रहना चाहता है। यह कहते उसके नेत्रादि स्रोतों से ज्वालाएँ भभक उठीं।

शूर्पणखा ने रावण को राम का विक्रम तथा खर-दूषण सहित राक्षसों का पराभव बतलाया। वह बहन को आश्वस्त कर, नगररक्षा की व्यवस्था कर तथा महोदधि पार करके शूलपाणि के प्रिय गोकर्ण धाम में मारीच के पास पहुँचा।

२७८ वें अध्याय में मारीच रावण का सम्मान कर और उसके आगमन का उद्देश्य जानकर उसे समझाता है और कहता है मैं राम के वीर्य का जानकार हूँ। राम के बाण-वेग को कौन सहन कर सकता है। जिसने तुम्हें वैसा परामर्श दिया है वह दुरात्मा है। यह तुम्हारे विनाश का मार्ग है। इसपर रावण ने सक्रोध होकर स्पष्ट कहा—मेरी आज्ञा का पालन न करने पर मृत्यु ध्रुव है।

मारीच ने सोचा यदि मरना ही है तो विशिष्ट अरि के हाथ मरना ही श्रेष्ठ है और रावण के इच्छानुसार वह रत्नशृङ्ग, रत्नचित्रलोमा कनकमृग बनकर सीता के सामने गया। रावण भी मुण्डी त्रिदण्ड यति होकर राम के आश्रम के समीप गया। विधिवशात् सीता ने राम से उस विचित्र मृग को लाने के लिए कहा। राम ने धनुष लेकर, लक्ष्मण को सीता की रक्षा में छोड़कर, मृगलाभ की इच्छा से मृग का अनुसरण किया।

मृग कभी अन्तर्हित होता था, कभी प्रकट होता था। इस तरह वह राम को बहुत दूर ले गया। प्रतिभावान् राम ने उसे राक्षस समझ कर अमोघ बाण मारा और वह राम के स्वर के सदृश स्वर में 'हा-सीते', 'हा-लक्ष्मण' यों चीखकर मर गया। राम के सदृश करुण स्वर सुनकर वैदेही उस शब्द की ओर दौड़ पड़ीं। लक्ष्मण ने समझाया, आप डरिये नहीं, राम को कोई भी नहीं मार सकता। आप शीघ्र ही अपने भर्ता को देखेंगी।

ऐसा कहने पर भी रोती हुई सीता स्त्रीस्वभाव से हतबुद्धि होकर लक्ष्मण के प्रति शङ्का करने लगीं। शुक्ल-चरितभूषणा पतिव्रता सीता ने लक्ष्मण के प्रति परुष वचन कहे। सुवृत्त राघवप्रिय लक्ष्मण ने कान मूँद कर राम के मार्ग का अनुसरण किया। इस बीच अभव्य रावण भव्य रूप में भस्मच्छन्न अनल के समान यतिवेश से प्रच्छन्न

होकर सीताहरण की इच्छा से आया। उसे देखकर धर्मज्ञा सीता ने फलादि भोजन के लिए निमन्त्रित किया। सबकी उपेक्षा कर रावण ने कहा—मैं राक्षसराज रावण हूँ। महोदधि के पार मेरी रम्या लङ्कापुरी है। वहाँ तुम हमारी भार्या बनकर शोभित होओगी। सीता ने कान मूँद कर कहा—भले नक्षत्रों सहित अन्तरिक्ष गिर पड़े, भले पृथ्वी छिन्न-भिन्न हो जाय और भले अग्नि शीतल हो जाय, पर मैं राम को त्याग नहीं सकती। करेणु गजेन्द्र को छोड़कर सूकर का अनुसरण कैसे कर सकती है? इत्यादि कहकर सीता क्रुद्ध होकर आश्रम में प्रविष्ट हो गयी। रावण ने दौड़कर रूखे स्वर से सीता की भर्त्सना करके उनके सिर के बालों को पकड़कर आकाश की ओर प्रस्थान किया। गृध्र जटायु ने 'राम' 'राम' कहकर रोती हुई सीता को देखा। २७८ वें अध्याय में यह भी कहा गया है कि वह अरुणपुत्र दशरथ का सखा तथा सम्पाति का भाई था। उसने रावण के अङ्क में पुत्रवधू सीता को देखकर रावण से कहा—मैथिली सीता को छोड़ दो। मेरे जीते जी तुम इस वधू को कैसे ले जा सकते हो। बुल्के कहते हैं कि हरण के पहले राम आदि से जटायु का परिचय नहीं था। पर प्रस्तुत वर्णन से यह कथन सर्वथा विरुद्ध है।

"सखा दशरथस्यासीद् जटायुररुणात्मजः" (म० भा० ३।२७९।१), **"रावणाङ्कगतां स्नुषाम्"** (म० भा० ३।२७९।२), **"यदि नोत्सृज्यसे वधूम्"** (म० भा० ३।२७९।४)

इससे यह स्पष्ट है कि वह सीता को अपनी स्नुषा (पुत्रवधू) मानता था। जटायु ने प्रहारों से रावण को जर्जर कर दिया। अन्त में रावण खड्ग से जटायु के पङ्ख काटकर आकाश मार्ग से चला गया।

सीता जहाँ जहाँ ऋषियों का आश्रम या सरिता और सरोवर देखती थी वहाँ वहाँ अपने आभूषणों को छोड़ती जाती थी। उसने गिरिप्रस्थों पर वानरपुङ्गवों को देखा। वहाँ उसने अपने महद् दिव्य वस्त्र छोड़ दिये। अन्त में रावण सीता को लेकर लङ्का पहुँच गया।

इधर लौटते हुए राम ने लक्ष्मण को देखकर कहा, "तुम राक्षससंकुल वन में सीता को छोड़कर कैसे आये? लक्ष्मण! वैदेही जीवित नहीं हो सकती।" आश्रम के समीप जाकर पर्वततुल्य गृध्र को देखा और उसे राक्षस समझकर धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ायी। उसने कहा, "भद्र, मैं तुम्हारे पिता दशरथ का सखा गृध्रराज हूँ।" राम ने उसकी बात सुन छिन्नपक्ष जटायु को देखा।

जटायु ने सीता को छुड़ाने के लिये रावण से हुए युद्ध में अपने आहत होने की बात बतायी। इशारे से रावण के गगनमार्ग का निर्देश कर गृध्र जटायु ने प्राण त्याग दिये। राम ने पिता के सखा जटायु का संस्कार किया। दुःख और शोक से समाक्रान्त हो श्रीराम सीता की खोज करते हुए दक्षिण की ओर चले।

आगे बढ़ने पर उन्होंने घोर-दर्शन महाभुज कबन्ध को देखा। उसने लक्ष्मण को पकड़ लिया। लक्ष्मण बड़े खिन्न हो उठे। राम ने उन्हें आश्वासन दिया और कबन्ध की वाम बाहु काटकर लक्ष्मण से कहा उसकी दक्षिण बाहु काट डालो। लक्ष्मण ने उसकी दक्षिण बाहु काट दी। लक्ष्मण ने भ्राता की ओर देखकर कबन्ध को पुनः पार्श्व में मारा। वह निष्प्राण होकर गिर पड़ा। उसके शरीर से दिव्यदर्शन सूर्य-तुल्य पुरुष निकल कर अन्तरिक्ष में स्थित हुआ। राम के यह पूछने पर कि तुम कौन हो? उसने बताया, मैं विश्वावसु गन्धर्व हूँ, ब्राह्मण-शाप से राक्षसयोनि में आ गया था। आपकी अनुकम्पा से शापमुक्त हुआ हूँ। लङ्कावासी रावण ने सीता का अपहरण किया है। सुग्रीव के पास आप जायँ। वह आप की सहायता करेगा। यहीं पम्पा है। ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव चार मन्त्रियों के साथ रहता है। उसके सहयोग से सीता को आप प्राप्त करेंगे। वानर-राज सुग्रीव रावण का घर जानता है। यह कहकर विश्वावसु अन्तर्हित हो गया।

२८०वें अध्याय में राम पम्पातट पर प्रिया का स्मरण करके विलाप करते हैं। सौमित्रि उन्हें आश्वासन देते हैं। अन्त में राम पितरों का तर्पण एवं पम्पा का जल पान कर ऋष्यमूक की ओर चले। वहाँ उन्होंने पाँच वानरों को देखा। सुग्रीव ने उनका परिचय जानने के लिये हनुमान् को भेजा। हनुमान् से सम्भाषण कर दोनों सुग्रीव के पास पहुँचे। श्रीराम ने वानरराज से मित्रता की।

सुग्रीव ने सीता के वे दिव्य वस्त्र दिखलाये जिन्हें रावण द्वारा हरी जा रही सीता ने नीचे गिरा दिया था। उन्हें देखकर राम को बड़ा सन्ताप हुआ।

राम ने सुग्रीव को अभिषिक्त कर पृथिवी के सभी वानरों का राजा बना दिया और वाली-वध की प्रतिज्ञा की। सुग्रीव ने वैदेही के प्रत्यानयन का राम को विश्वास दिलाया। इस तरह परस्पर विश्वास प्राप्त कर सब किष्किन्धा गये।

सुग्रीव ने गर्जना की। वाली ने उसको सहन नहीं किया। तारा ने कहा—सुग्रीव जैसी गर्जना कर रहा है उससे प्रतीत होता है कि वह आश्रयवान् है; अतः आप न जायँ। वाली ने कहा—तुम सब भूतों की बोली जानती हो, बुद्धि से देखो सुग्रीव किसके बल का सहारा लेकर आया है। तारा ने विचार कर कहा—'कपीश्वर! सुनिये, हृतदार महासत्त्व राम सुग्रीव के साथ तुल्यारिमित्रता कर चुके हैं। वे तदनुसार परस्पर एक दूसरे के शत्रु को शत्रु और मित्र को मित्र मानने की प्रतिज्ञा कर परस्पर हित साधन के लिए सन्नद्ध हैं। राम के भ्राता अपराजित सौमित्रि, जो महामेधावी हैं, कार्यसिद्धि के लिये तत्पर हैं। मैन्द, द्विविद, हनुमान् एवं जाम्बवान् उनके साथ हैं। ये सभी महासत्त्व, महात्मा एवं महाबली हैं।' वाली ने तारा की हितोक्ति अनसुनी कर दी और उसके मन में ऐसा विचार आया कि इसका मन सुग्रीव पर आसक्त है, इसलिये ऐसा कह रही है।

वाली ने सुग्रीव से कहा—अनेक बार मैंने तुझे स्वज्ञातीय समझकर छोड़ दिया था, तुझे मरने की त्वरा क्यों उत्पन्न हुई है? सुग्रीव ने कहा—जब तुमने मेरे राज्य और पत्नी का हरण कर लिया तो मुझमें जीवन का सामर्थ्य कहाँ है? इसके अनन्तर दोनों भिड़ गये एवं साल, ताल तथा शिलाओं से प्रहार करने लगे। दोनों दोनों पर प्रहार करते हुए भूमि पर गिरे और सँभल कर पुनः मुष्टिप्रहार करने लगे। दोनों नख और दाँतों से क्षतविक्षत होकर रुधिर से लथपथ हो गये थे। परस्पर युद्ध कर रहे उन दोनों में कोई भेद प्रतीत नहीं होता था।

दोनों में परस्पर विभेद के लिये हनुमान् ने सुग्रीव के गले में माला डाल दी। इस तरह माला से चिह्नित देखकर राम ने महाधनुष को खींचकर वाली को लक्ष्य बनाकर बाण प्रहार किया। भयभीत वाली शर से आहत हो गया तथा रुधिर वमन करते हुए उसने लक्ष्मणसहित राम को देखा (यहाँ राम के छिपने का वर्णन नहीं है) और राम की गर्हणा कर भूमि पर गिर पड़ा। वाली के मरने पर सुग्रीव ने किष्किन्धा और तारा दोनों को प्राप्त कर लिया। राम ने वर्षा के चार मास माल्यवान् पर्वत पर निवास किया।

उधर रावण ने लङ्का पहुँचकर सीता को नन्दनोपम अशोकवाटिका में राक्षसियों के पहरे में सुरक्षित रखा। वे सब राक्षसियाँ द्वयक्षी, त्र्यक्षी, ललाटाक्षी, दीर्घजिह्वा, त्रिस्तनी, एकपदा, त्रिजटा, एकलोचना, दीप्ताक्षी आदि भीषण रूप की थीं, और रातदिन जागकर सीता का तर्जन करती थीं। वे कहती थीं, इसे तिल-तिल विभक्त कर हम खा जायँगी। यह हमारे स्वामी की अवहेलना करके कैसे जीवित रह सकती है?

सीता ने कहा—आर्याओ! मुझे खा जाओ, पुण्डरीकाक्ष नीलकुन्तल श्रीराम के वियोग में मुझे जीवन का कोई लोभ नहीं है। प्रियतम से विलग हुई मैं निराहार रहूँगी एवं अपने शरीर का शोषण करूँगी। राघव से भिन्न अन्य पुरुष का मैं कदापि स्पर्श नहीं करूँगी। सीता के ऐसे वचन सुनकर राक्षसियाँ उनका निश्चय सुनाने रावण के पास चली गयीं। उस समय त्रिजटा नाम की राक्षसी ने सीता को सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा—सीते!

तुम मेरी बात पर विश्वास कर निर्भय हो जाओ। अविन्ध्य नाम का मेधावी वृद्ध राक्षस तुम्हारा हितैषी है। उसने मुझसे कहा है कि लक्ष्मणसहित तुम्हारे भर्ता सकुशल हैं। शक्रतुल्य वानरराज से सख्य कर वे तुम्हारी रक्षा के लिए उद्योगशील हैं। तुम गर्हित रावण से मत डरो। रावण को नलकूबर का शाप है कि यदि वह अवशा नारी का स्पर्श करेगा तो नष्ट हो जायगा

सौमित्रिसहित तुम्हारे भर्ता शीघ्र ही आ रहे हैं। मैंने राक्षसों के लिए अनिष्ट फलवाले बहुत से स्वप्न देखे हैं। मैंने स्वप्न में देखा है—यह क्षुद्रकर्मा दारुण रावण मुण्डित एवं तैललिप्त होकर खरयुक्त रथ पर नृत्य कर रहा है। इसी तरह कुम्भकर्ण आदि भी नग्न, मुण्डित एवं लाल माला और लाल ही अङ्गराग से युक्त होकर दक्षिण दिशा की ओर जा रहे हैं।

विभीषण श्वेत छत्र एवं श्वेत उष्णीष धारण किये हुए शुक्ल माला और अङ्गराग से विभूषित होकर श्वेत पर्वत पर आरूढ़ हैं एवं उनके चार सचिव भी शुक्ल माल्यादियुक्त हो श्वेतपर्वत पर आरूढ़ हैं। राम के अस्त्र से सागर सहित पृथिवी पूरित हो गयी है। तुम्हारे पति के यश से सारी पृथिवी पूरित है। लक्ष्मण अस्थियों के अम्बार पर आरूढ़ होकर मधु और पायस भक्षण कर रहे हैं। तुम्हें रोती हुई और रुधिर से सराबोर होकर एवं व्याघ्र के मुख से बच कर उत्तर दिशा की ओर जाते हुए मैंने कई बार देखा है। वैदेहि! तुम शीघ्र ही अपने भर्ता से युक्त होकर हर्ष को प्राप्त होओगी। त्रिजटा के ये वचन सुनकर सीता भर्तृसमागम के लिए आशान्वित हुई। राक्षसियों ने आकर त्रिजटा के साथ शिला पर बैठी हुई सीता को देखा।

२८१ वें अध्याय के अनुसार भर्तृशोकार्ता, दीना, मलिनवसना, मणिमात्र अलङ्कारवाली, रोती हुई, शिलातल पर राक्षसियों के बीच बैठी हुई, पतिव्रता सीता के पास आकर कामार्त रावण ने उसे देखा। जो रावण देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर आदि से कभी भी पराजित नहीं हुआ, पतिप्राणा सीता के सम्मुख उसकी दाल न गली और वह दिव्यभूषण दिव्याम्बरधारी होकर मूर्तिमान् वसन्त के तुल्य प्रतीत होता था; परन्तु भूषित होने पर भी वह कल्पवृक्ष के समान नहीं बन सका, वह चैत्यवृक्ष के तुल्य भयङ्कर लगता था। जैसे रोहिणी के समक्ष शनैश्चर आया हो वैसे ही वह सीता के समीप आया। रावण ने संबोधित कर सीता से कहा—तन्वङ्गि! तुमने अपने भर्ता का पर्याप्त आदर कर लिया है। वरारोहे! महार्ह आभरण एवं वस्त्र धारण कर मुझे स्वीकार करो। मेरे पास देव, गन्धर्व, दानव और दैत्यों की १४ कन्याएँ मेरी भार्याओं के रूप में विद्यमान हैं। मेरे पास १४ करोड़ पिशाच एवं १४ करोड़ नरभक्षी राक्षस हैं। इन सबकी अपेक्षा तिगुनी संख्या यक्षों की है। वे सब मेरे भाई कुबेर के समान ही हैं। पानगोष्ठी में गन्धर्व और अप्सराएँ सामने खड़ी होकर मेरी आराधना करती हैं।

मैं विश्रवा मुनि का पुत्र हूँ। चार लोकपालों के समान ही मेरा यश फैला हुआ है। इन्द्र के समान दिव्य भक्ष्य, भोज्य तथा विविध पान मेरे लिए सदा उपस्थित रहते हैं। तुम्हारा वनवास का हेतुभूत दुष्कृत क्षीण हो जाय, तुम मन्दोदरी के समान मेरी भार्या बन जाओ। यह सुनकर शुभानना वैदेही मुख फेरकर और बीच में तृण रखकर राक्षसों के लिए अमङ्गल सूचक आँसुओं से अपने पीनोन्नत वक्षस्थल को निरन्तर भिगोती हुई उस क्षुद्र राक्षस से बोली—राक्षसेश्वर, तुम्हारे मुख से मुझ अभागिनी ने कई बार अभद्र बातें सुनीं हैं। मैं पतिव्रता परभार्या हूँ, मैं सर्वथा अलभ्य हूँ। भद्र! तुम अपना मन मेरी ओर से हटा लो। मुझ विवशा की धर्षणा से तुम्हें क्या लाभ होगा? ब्रह्मा के वंश में उत्पन्न प्रजापति के समान विश्रवा तुम्हारे पिता हैं। तुम भी लोकपालों के तुल्य हो। अपने को महेश्वर का सखा एवं कुबेर का भाई कहते हो। फिर, ऐसा बरताव करते तुम्हें लज्जा क्यों नहीं आती है? यह कहकर गर्दन और मुख को वस्त्र से ढककर श्रीसीता रोने लगीं।

इस प्रकार सीता के निष्ठुर वचनों से प्रत्याख्यात हुए रावण ने कहा—सीते! भले ही मेरे अङ्ग काम से पीड़ित हों फिर भी मैं अकामा का स्पर्श नहीं करूँगा। यह कहकर वह अन्तर्हित हो गया।

२८२ वें अध्याय में उधर राम ने माल्यवान् पर्वत पर लक्ष्मण के साथ वर्षा ऋतु बिताकर विमल आकाश तथा ग्रह, तारा और नक्षत्रों से युक्त निर्मल चन्द्र को देखा तथा कुमुद और पद्मों की सुगन्ध लेकर बहते हुए शीतल वायु ने उनकी सीताविषयक सुधि उद्बोधित कर दी। लङ्का में रुद्ध सीता का स्मरण कर उनका मन खिन्न हो उठा। उन्होंने लक्ष्मण से कहा—वत्स, जाकर देखो, ग्राम्य धर्मों में प्रमत्त होकर सुग्रीव कृतघ्न तो नहीं हो गया ? वह क्या कर रहा है ? प्रतीत होता है कि वह अपनी प्रतिज्ञा भूल गया है। यदि मेरे लिए उचित प्रयास नहीं कर रहा हो तो उसे साथ लेकर तुरन्त लौट आओ।

अनुशासनपरायण लक्ष्मण किष्किन्धा के द्वार पर जा पहुँचे। सक्रोध हो बिना किसी रोकटोक के भीतर चले गये। राजा सुग्रीव ने आगे आकर उनका स्वागत सम्मान किया। पूजित होकर लक्ष्मण ने राम की बातें कह सुनायीं। तारा सहित कपिराज सुग्रीव ने नम्रता से कहा—मैं अकृतज्ञ नहीं हूँ। सीता के अन्वेषणार्थ मैंने विभिन्न दिशाओं में विनीत वानरों को भेज दिया है। जिस मास के समाप्त होने पर वानरों को लौट आना है उसके समाप्त होने में पाँच रात्रियाँ शेष हैं

यह सुनकर रोष त्याग कर लक्ष्मण ने वानरेन्द्र की प्रशंसा की। सुग्रीव के साथ राम के पास जाकर श्रीलक्ष्मण ने सब वृत्तान्त सुनाया। इसके बाद ही हजारों वानर तीन दिशाओं से लौट आये। लौटनेवाले बन्दरों ने बताया कि हम लोगों ने सागर के तटवर्ती वन और पर्वत सहित सारी भूमि चप्पा चप्पा खोज डाली; परन्तु सीता का पता नहीं लगा। फिर भी दक्षिण दिशा की ओर गये हुए वानरों के प्रति आशावान् होकर व्यथित होने पर भी राम ने धैर्य धारण किया।

दो मास बीतने पर वानर सुग्रीव से आकर कहते हैं—वाली ने और आपने जिस महान् मधुवन की रक्षा की थी, पवनात्मज आदि वानर, राजाज्ञा के बिना ही, उसका उपभोग कर रहे हैं। अङ्गद, हनुमान् आदि दक्षिण दिशा की ओर सीता की खोज में गये थे। उनका अविनय देखकर सुग्रीव ने समझ लिया कि वे लोग अवश्य अपने कार्य में सफल हुए हैं।

मेधावी सुग्रीव ने यह बात राम से कही। राम को भी वैसा ही प्रतीत हुआ। इतने में विश्रान्त होकर हनुमान् आदि सब वानर सुग्रीव के पास आ पहुँचे। उनकी गति एवं मुखवर्ण को देखकर राम को विश्वास हो गया कि इन लोगों ने सीता को देख लिया है।

सबने आकर राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को प्रणाम किया। राम के प्रश्न करने पर हनुमान् ने कहा—मैं आपको प्रिय समाचार सुनाता हूँ। मैंने जानकी का दर्शन किया है। दक्षिण दिशा के पहाड़ों, कन्दराओं और वनों को ढूंढकर हम लोग थक गये थे। यहाँ लौटने का समय भी बीत चुका था। हम लोगों ने एक महती गुफा देखी। बहुयोजन विस्तारवाली गहन वन और अन्धकारवाली गुफा में प्रवेशकर बहुत दूर जाने पर आदित्य के समान प्रकाश हम लोगों को दिखायी दिया और वहाँ हमने मय का एक दिव्य भवन देखा। प्रभावती नामकी तपस्विनी वहाँ तप कर रही थी। उसके द्वारा दिये गये विविध भोज्य और पान से सन्तुष्ट एवं सबल होकर हम लोगों ने उसके बताये मार्ग से जाकर समुद्र के साथ सह्य तथा दर्दुर पर्वत देखे। मलय पर आरूढ़ होकर वरुणालय देखकर हम सब खिन्न हो गये। वहाँ अनशन का सङ्कल्प कर हम सब बैठ गये तथा जटायु की चर्चा करने लगे। इतने में हम लोगों ने पर्वत-शिखर के तुल्य दूसरा गरुड़ जैसा घोररूप भयावह पक्षी देखा। उसने कहा—तुम लोग कौन हो ? मेरे प्रिय भ्राता जटायु की चर्चा कर रहे हो। मैं उसका बड़ा भाई सम्पाति हूँ। हम दोनों अन्योन्य स्पर्धा से आकाश में सूर्यमण्डल तक उड़ने की होड़ कर रहे थे। सूर्य की गरमी से मेरे पङ्ख जल गये; किन्तु जटायु के पङ्ख मेरी छाया से बच गये। हम लोगों ने उसको जटायुवध और श्रीसीता के हरण का वृत्तान्त बताया। सम्पाति उस अप्रिय

समाचार को सुनकर विषण्ण हो गया एवं उसने सारा वृत्तान्त विस्तार से जानना चाहा। हमने उसे सारा वृत्तान्त सुनाया। उसने कहा, मैं रावण तथा लङ्का को जानता हूँ। लङ्का समुद्र से पार त्रिकूट पर बसी है। अवश्य वहाँ जानकी मिलेगी। यह सुनकर शतयोजन समुद्र का लङ्घन कर मैंने जलराक्षसी को मारा और रावण के घर में उपवास और तप में निरत भर्तृ-दर्शनार्थ उत्सुक सीता को देखा।

मैंने आर्या के समीप जाकर कहा, मैं राम का दूत मारुतात्मज हूँ। समुद्र पार कर आया हूँ। श्रीराम और लक्ष्मण कुशली हैं। राम तुम्हारे लिए बहुत बड़ी वानर-सेना के साथ आयेंगे। विश्वास करो, मैं वानर हूँ, राक्षस नहीं हूँ—

"प्रत्ययं कुरु मे देवि वानरोऽस्मि न राक्षसः।"

थोड़ी देर सोचकर सीता ने कहा—अविन्ध्य के कहने से मैं जानती हूँ तुम हनुमान् हो। उसने त्रिजटा के द्वारा सब समाचार दिया है। सीता ने अभिज्ञानस्वरूप मणि दी, जिसे उन्होंने धारण कर रखा था एवं विश्वासार्थ चित्रकूट में कौए के लिए क्षिप्त ईषिका की कथा बतायी। उसके बाद मैंने सारा उपवन उजाड़ दिया। पकड़े जाने पर लङ्का पूरी तरह जला डाली। तदुपरान्त पुनः समुद्र लाँघ कर मैं यहाँ आया हूँ।

बुल्के लङ्का-दाह को क्षेपक मानते हैं। पर यह रामोपाख्यान से विरुद्ध है। वहाँ स्पष्टतः यह उल्लेख है—

"ततो दग्ध्वा पुरीं च ताम् ॥"

२८३ वें अध्याय के अनुसार वहाँ कोटि कोटि वीर वानर एकत्रित हुए। गज, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, पनस, जाम्बवान् आदि महापराक्रमी बड़े-बड़े बानर करोड़ों वानर वीरों के साथ आये।

शुभ मूहूर्त में सेनाव्यूह बनाकर सुग्रीवसहित श्रीराम और लक्ष्मण ने लङ्का के लिए प्रस्थान किया। सेना के मुहाने पर हनुमान् तथा पृष्ठरक्षार्थ लक्ष्मण सन्नद्ध हुए। साल, ताल एवं शिला रूप आयुधवाली नल, नील, अङ्गद, मैन्द, द्विविद आदि से पालित महती सेना ने रामकार्यार्थ चलकर सागरतट के प्रशस्त फल और जल से परिपूर्ण क्षेत्रों में पड़ाव डाल दिया।

अब समुद्रलङ्घन का प्रश्न सामने आया। किसी ने लङ्घन की बात कही, किसी ने नावों का प्रबन्ध करना ठीक समझा। अन्त में राम ने समुद्र से मार्ग माँगने के लिये व्रत करने का निश्चय किया। समुद्र से सदुत्तर न मिलने पर बाण से समुद्र के शोषण की बात कही। सागर ने स्वप्न में दर्शन दिया और राम से कहा—"मैं आपके मार्ग में विघ्न नहीं बनना चाहता हूँ, परन्तु यदि आपके बाण के भय से मार्ग देता हूँ तो अन्य लोग भी धनुष के बल पर मुझे ऐसी ही आज्ञा देंगे।

आपकी सेना में त्वष्टा का पुत्र नल नाम का वानर है। वह जिस काष्ठ, तृण या शिला को समुद्र में डालेगा मैं उसको धारण करूँगा। इस तरह पुल बन जायेगा। राम ने नल को आज्ञा दी और नल ने सेना की सहायता से दस योजन चौड़ा एवं सौ योजन लम्बा सेतु बना दिया। उसी प्रख्यात नल द्वारा निर्मित सेतु से राम ने सेना के साथ समुद्र पार किया। उसके पहले ही विभीषण राम की शरण में आ चुका था। राम ने उसका स्वागत किया। सुग्रीव को शङ्का हुई कि यह रावण का प्रणिधि हो सकता है। परन्तु राम ने विभीषण की सत्य चेष्टाओं तथा उसके आचरणों से सन्तुष्ट होकर उसे सर्वराक्षसराज्य पर अभिषिक्त किया और उसे अपना मन्त्री बनाया। उसकी सम्मति से समुद्र पार कर लङ्का के उद्यानों में श्रीराम ने सेनासहित पड़ाव डाला।

वहाँ वानररूप में शुक तथा सारण नामक रावण के चर आये। वे पकड़े गये और उन्हें सेना दिखाकर छोड़ दिया गया एवं प्राज्ञ अङ्गद को दूत बनाकर लङ्का भेजा गया।

२८४ वें अध्याय के अनुसार रावण की लङ्का नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों से युक्त, कपाट-यन्त्र तथा वीरों से सुरक्षित थी। अङ्गद ने निर्भय होकर लङ्काद्वार पर जाकर रावण को सूचना दी। उसकी अनुमति से वे अनेक करोड़ राक्षसों की सेना के बीच निर्भय होकर पहुँचे। वहाँ बादलों की घटा से घिरे हुए सूर्य के समान वे शोभित हुए। अङ्गद ने मन्त्रियों से परिवृत रावण से कहा—"कोसलेन्द्र ने कहा है कि अन्यायरत अकृतात्मा राजा को पाकर देश, नगर सब नष्ट हो जाते हैं। तुमने सीता का हरण किया है। बल के दर्प से ऋषियों तथा राजर्षियों को मारा है। रोती हुई स्त्रियों का हरण किया है। उस सबका फल तुम्हारे सामने है। मैं तुम्हारा वध करूँगा। साहस हो तो युद्ध करो। मेरे धनुष का बल देखो। जानकी को लौटा दो अन्यथा लोक को राक्षस-हीन बना दूँगा।" यह सुनकर राजा क्रोधमूर्छित हो गया। उसके इङ्गित को जाननेवाले चार राक्षस अङ्गद के चारों अङ्गों को पकड़ने लगे। उनके साथ ही अङ्गद उछलकर महल की छत पर जा चढ़े। अङ्गद के वेग से छूटकर चारों धरणीतल पर गिरे और मर गये। अङ्गद ने राम के पास आकर सब समाचार सुनाया।

राम ने वायु के समान वेगवाले बानरों द्वारा लङ्का के प्राकार को तुड़वा दिया। विभीषण की सम्मति से लङ्का-द्वार को घेर लिया और विविध वानरों को युद्ध करने के लिए आदेश दिया। वे सब लङ्का को नष्ट करने लगे। उधर से राक्षस भी युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। राम और लक्ष्मण के बाणों से राक्षसवीर नष्ट होने लगे। अन्त में राम की आज्ञा से युद्ध का प्रत्यवहार हुआ।

२८५ वें अध्याय के अनुसार जब वानर सैनिक शिबिर में प्रवेश करने लगे तब रावणसेना के पवन, जम्भ, खर आदि ने क्रोधवश उनपर धावा बोल दिया। वे दुरात्मा अन्तर्धानविद्या से अदृश्य होकर वानरों को मारने लगे; परन्तु विभीषण ने अपनी विद्या से उनकी शक्ति नष्ट कर दी। दृश्य होते ही वे वानरों द्वारा मारे जाने लगे। तब सदलबल रावण स्वयं युद्धभूमि में आया। उसने शुक्रनीति के अनुसार व्यूह का निर्माण कर वानरों को घेर लिया। राघव ने बार्हस्पत्य नीति के अनुसार सेना का व्यूह बनाया और श्रीराम रावण का घोर युद्ध हुआ। बड़े बड़े राक्षस वानरों से भिड़ गये, जिससे चराचर जगत् व्यथित हो उठा।

प्रहस्त ने विभीषण पर प्रहार किया, परन्तु शतघण्टावाली महाशक्ति को अभिमन्त्रित कर विभीषण ने प्रहस्त को मार डाला। हनुमान् एवं धूम्राक्ष का महान् युद्ध हुआ। श्रीहनुमान् ने धूम्राक्ष को मार डाला। रावण ने महान् प्रयत्न से कुम्भकर्ण को जगाया। वह भी भीषण युद्ध करते हुए रामदर्शन की लालसा से आगे बढ़ा। सामने धनुष्पाणि लक्ष्मण को देखा। वानरों ने उसपर वृक्षों, शिलाओं तथा विविध प्रहरणों से प्रहार किया। वह हँसता हुआ वानरों को खाने लगा। तब निर्भय होकर सुग्रीव ने कुम्भकर्ण पर भीषण प्रहार किया। कुम्भकर्ण महानाद कर सुग्रीव को दोनों बाहुओं से पकड़कर लङ्का की ओर चल पड़ा। लक्ष्मण ने उसका पीछा किया। अपने भीषण बाणों से उसके कवच को छिन्न-भिन्न कर उसे लहूलुहान कर दिया। वह सुग्रीव को छोड़कर लक्ष्मण की ओर दौड़ा।

महेष्वास कुम्भकर्ण 'तिष्ठ, तिष्ठ' कहता हुआ महती शिला लेकर दौड़ा। लक्ष्मण ने उसके उच्छ्रित हाथों को क्षुरों से काट दिया। दोनों भुजाओं के कटते ही वह चार भुजावाला हो गया—

"स बभूव चतुर्भुजः" उसने चारों भुजाओं से बड़ी चट्टानों को उठा लिया। सौमित्रि ने बड़ी फुर्ती के साथ बाणों से उसकी चारों भुजाएँ काट डाली। अन्त में वह लक्ष्मण के दिव्य अस्त्रों से वज्रदग्ध पादप के तुल्य जलकर मर गया।

तदनन्तर भागती हुई राक्षसी सेना को प्रमाथी ने रोका। श्रीलक्ष्मण का उससे घोर युद्ध हुआ। श्रीहनुमान् ने पर्वतशृङ्ग से वज्रवेग को और नील ने प्रमाथी को मार गिराया। तदनन्तर अन्य राक्षसों एवं वानरों के युद्ध हुए।

२८८ वें अध्याय के अनुसार रावण ने इन्द्रजित् को युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए कहा, वत्स ! तुमने सहस्राक्ष इन्द्र को जीतकर मेरा यश बढ़ाया है। तुम चाहे प्रकट चाहे अन्तर्हित होकर दिव्य शरों से शत्रुओं को मार डालो। प्रहस्त, कुम्भकर्ण आदि ने खर का बदला नहीं चुकाया, तुम उसका बदला चुकाओ। इन्द्रजित् रथारूढ़ हो रणक्षेत्र में पहुँचा। उसने नाम सुनाकर लक्ष्मण का आह्वान किया। लक्ष्मण अपने तलघोष से राक्षसों को त्रस्त करते हुए सामने आये। दोनों का भयङ्कर युद्ध हुआ। रावण-पुत्र इन्द्रजित् बाणों द्वारा लक्ष्मण से आगे बढ़ न सका। तब उसने महान् यत्न से वेगशाली तोमरों की वर्षा की। लक्ष्मण ने उन्हें भी तीक्ष्ण बाणों से काट दिया। अङ्गद ने तीव्र वेग से इन्द्रजित् पर प्रहार किया। इन्द्रजित् ने सावधानी से भीषण प्रास से अङ्गद को मारना चाहा; पर लक्ष्मण ने उसे बीच में ही काट दिया। फिर, उसने गदा से अङ्गद पर प्रहार किया। अङ्गद ने उसपर महान् साल वृक्ष के तने से प्रहार किया। उससे इन्द्रजित् के सारथि, अश्व और रथ नष्ट हो गये। इन्द्रजित् उस समय अन्तर्हित हो गया। महामायावी इन्द्रजित् के अन्तर्हित होने पर राम ने स्वयं आकर सैन्यरक्षा का भार संभाला। इन्द्रजित् ने वरदान में प्राप्त बाणों से राम को क्षत-विक्षत करना आरम्भ कर दिया। राम और लक्ष्मण दोनों ही अदृश्य मेघनाद से लड़ते रहे। उसने सहस्रों बाणों द्वारा राम तथा लक्ष्मण को विद्ध किया। अदृश्य इन्द्रजित् को ढूंढते हुए वानर वीर आकाश में प्रविष्ट हुए। उसने उनपर भी भीषण प्रहार किये।

२८९ वें अध्याय के अनुसार उसने रणाङ्गण में गिरे हुए राम और लक्ष्मण को वरदानप्राप्त बाणों द्वारा सब ओर से बाँध दिया। पिंजड़े में पक्षी के समान दोनों पुरुषव्याघ्र बँध गये। सुग्रीव, सुषेण, मैन्द, द्विविद, कुमुद, अङ्गद, हनुमान्, नल, नील आदि मिलकर दोनों की रक्षा करने लगे। इतने में विभीषण ने आकर प्रज्ञास्त्र द्वारा दोनों को प्रबुद्ध किया एवं सुग्रीव ने अभिमन्त्रित विशल्या औषधि से दोनों को क्षणभर में स्वस्थ कर दिया।

राम और लक्ष्मण दोनों क्षणभर में पुनः युद्धार्थ सन्नद्ध हो गये। विभीषण ने कृताञ्जलि होकर कहा, राजाधिराज कुबेर के आज्ञानुसार एक गुह्यक जल लिये हुए श्वेत पर्वत से आया है। कुबेर के अनुसार इस जल को आँख में लगाने से अदृश्य प्राणियों को भी आप देख सकेंगे। आप यह जल जिसे देंगे वह भी अन्तर्हित प्राणियों को देख सकेगा। दोनों ने उस संस्कृत जल से नेत्र धोये और सुग्रीव, हनुमान्, अङ्गद, जाम्बवान्, नील आदि प्रमुख वानरों ने भी उस जल से अपने अपने नेत्र धोये। सबकी आँखे अतीन्द्रिय पदार्थों को भी देखने लगीं। उधर इन्द्रजित् अपना पराक्रम पिता को बताकर शीघ्रता से पुनः रण-भूमि में आ गया। उसको आते देख विभीषण की सम्मति से लक्ष्मण आगे आये। विजय के उल्लास से इन्द्रजित् ने आह्निक कर्म भी नहीं किया। लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर उसपर भीषण बाणों से प्रहार करना प्रारम्भ किया। दोनों में आश्चर्यजनक युद्ध हुआ। सौमित्रि के बाणों से आहत होकर इन्द्रजित् ने नागतुल्य आठ बाण चलाये। लक्ष्मण ने एक बाण से उसके धनुषयुक्त बाहु को काट दिया, दूसरे बाण से उसके बाण सहित बाहु को काट दिया एवं तृतीय बाण से उसका मुकुट-कुण्डलयुक्त सिर काट दिया। रथ के सूत को भी मार दिया। घोड़ों ने सूत के बिना उसके रथ को लङ्का में पहुँचा दिया। रावण मृत पुत्र को देखकर विक्षुब्ध मन होकर वैदेही को मारने चला। परन्तु अविन्ध्य ने समझाबुझाकर उसे स्त्री-हत्या से निवृत्त किया।

२९० वें अध्याय के अनुसार रथारूढ़ होकर वह स्वयं युद्धभूमि में आया। सब वीरों ने उसपर एक साथ आक्रमण कर दिया, मायावी रावण ने माया का प्रयोग किया। उसके शरीर से सहस्रों राक्षस युद्ध के लिए निकल पड़े। राम ने सबको मार डाला। उसने सहस्रों राम तथा लक्ष्मण के रूप बनाकर राम और लक्ष्मण तथा वानरों पर आक्रमण किया। सौमित्रि की सम्मति से राम ने उस माया को भी नष्ट कर दिया। इतने में मातलि आदित्य के अश्वों के तुल्य हर्यश्वों से युक्त रथ लेकर आया। श्रीराम से उसपर चढ़कर युद्ध करने की प्रार्थना करने लगा। राम को शङ्का हुई कि यह भी कहीं रावण की माया तो नहीं है, परन्तु विभीषण ने कहा—यह माया नहीं है।

राम ने रथारूढ़ होकर बड़े रोष से रावण पर आक्रमण किया। समस्त प्राणी हाहाकार करने लगे। देवलोक में नगाड़े बजने लगे। उन दोनों के युद्ध की और कोई उपमा नहीं थी। उनका युद्ध उनके युद्ध के ही तुल्य था--

"अलब्धोपममन्यत्र तयोरेव तथाभवत् ॥"

राम पर रावण ने ब्रह्मदण्ड तुल्य शूल छोड़ा। राम ने उसे काट दिया। उस दुष्कर कर्म को देखकर रावण को भय हुआ।

फिर उसने बहुत शस्त्रास्त्र चलाये। रावण की माया देख डरकर सब वानर भागने लगे। तब राम ने तूणीर से हेमपुङ्ख सुपत्र सुमुख बाण निकाला। उसे ब्रह्मास्त्र से अभिमन्त्रित कर प्रयुक्त किया। यह देखकर देव, गन्धर्व आदि प्रसन्न हुए। उसके छूटते ही रथ और सारथि से युक्त रावण महाज्वालामाली अग्नि से परिप्लुत होकर प्रज्वलित हो उठा। सबने हर्ष से देखा कि ब्रह्मास्त्र के तेज से वह दग्ध हो उठा।

रावण को मारने पर महर्षियों सहित देवताओं ने महाबाहु राम को विविध आशीर्वाद दिये तथा उनपर पुष्प वृष्टि की। विभीषण और अविन्ध्य ने सीता को लाकर राम से कहा, 'महाबाहो! आप अपनी सद्वृत्ता पत्नी को ग्रहण करें।' राम ने शोककर्षित, मलोपचितसर्वाङ्गी, जटिला, कृष्णवस्त्रा, सीता को देखकर कहा--वैदेही! जाओ, तुमसे मेरा कोई कार्य नहीं है। मुझ जैसे पति को प्राप्त कर वृद्धावस्था तक तुम्हें राक्षस के गृह में न रहना पड़े, इसी लिये मैंने रावण को मारा है।

बुल्के कहते हैं--"राम का सीता में उत्कृष्ट प्रेम था और वह अन्त तक नहीं बदला। वे सीता के प्रति शङ्कायुक्त कटुवचन कैसे कहते, इसी लिये **महाभारत रामोपाख्यान** में अग्निपरीक्षा का संकेत तक नहीं मिलता।" परन्तु उनका यह कथय सरासर धोखा देना है, क्योंकि **रामोपाख्यान** में स्पष्ट ही राम की सीता के प्रति शङ्का और वायु, अग्नि आदि देवों तथा ब्रह्मा द्वारा सीता की शुद्धि का वर्णन है--

"कथं ह्यस्मद्विधो जातु जानन् धर्मविनिश्चयम्।
परहस्तगतां नारीं मुहूर्त्तमपि धारयेत् ॥१२॥
सुवृत्तामसुवृत्तां वाप्यहं त्वामद्य मैथिलि।
नोत्सहे परिभोगाय श्वावलीढं हविर्यथा ॥"१३॥

चाहे तुम सुवृत्त हो या असुवृत्त हो, श्वान के द्वारा स्पृष्ट हवि के समान मैं तुम्हें ग्रहण नहीं कर सकता।

"ततः सा सहसा बाला तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः।
पपात देवी व्यथिता निकृत्ता कदली यथा ॥"१४॥

वैसा दारुण वचन सुनकर सीता सहसा मूर्छित होकर वैसे ही गिर पड़ीं जैसे कटी हुई कदली गिर पड़ती है।

"योऽप्यस्या हर्षसंभूतो मुखरागस्तदाऽभवत्।
क्षणेन स पुनर्नष्टो निःश्वास इव दर्पणे ॥"१५॥

जो क्षण भर के लिये उसके मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ रही थी वह भी निःश्वास से उपहत (मलिन) दर्पण की तरह नष्ट हो गई।

"ततस्ते हरयः सर्वे तच्छ्रुत्वा रामभाषितम्।
गतासुकल्पा निश्चेष्टा बभूवुः सहलक्ष्मणाः ॥"१६॥

राम का वह भाषण सुनकर लक्ष्मण सहित सब वानर मृतकल्प होकर निश्चेष्ट हो गये।

"ततो देवो विशुद्धात्मा विमानेन चतुर्मुखः।
पद्मयोनिर्जगत्स्रष्टा दर्शयामास राघवम्॥"१७॥

उसी समय राघव के सामने तेजस्वी विमान द्वारा विशुद्धात्मा चतुर्मुख जगत्स्रष्टा पद्मयोनि (ब्रह्मा) आये।

"शक्रश्चाग्निश्च वायुश्च यमो वरुण एव च।
यक्षाधिपश्च भगवांस्तथा सप्तर्षयोऽमलाः॥१८॥
राजा दशरथश्चैव दिव्यभास्वरमूर्तिमान्।
विमानेन महार्हेण हंसयुक्तेन भास्वता॥"१९॥

इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, वरुण, कुबेर, सप्तर्षिगण तथा राजा दशरथ बहुमूल्य विमान से राम के समीप आये।

"ततोऽन्तरिक्षं तत् सर्वं देवगन्धर्वसङ्कुलम्।
शुशुभे तारकैश्चित्रं शरदीव नभस्तलम्॥"२०॥

उस समय देवता और गन्धर्वों से संकुल अन्तरिक्ष वैसा ही शोभित हुआ जैसे शरद् ऋतु में तारकों से युक्त आकाश शोभित होता है।

"तत उत्थाय वैदेही तेषां मध्ये यशस्विनी।
उवाच वाक्यं कल्याणी रामं पृथुलवक्षसम्॥"२१॥

देवों के बीच उठकर यशस्विनी सीता ने विशालवक्षःस्थल राम से कहा—

"राजपुत्र न ते दोषं करोमि विदिता हि ते।
गतिः स्त्रीणां नराणां च शृणु चेदं वचो मम॥"२२॥

मैं आपको दोष नहीं देती हूँ। आप सभी स्त्रियों एवं पुरुषों की गति को जानते हैं। मेरे इस वचन को सुनिये।

"अन्तश्चरति भूतनां मातरिश्वा सदागतिः।
स मे विमुञ्चतु प्राणान् यदि पापं करोम्यहम्॥"२३॥

सदा गमनशील मातरिश्वा (वायु) सब भूतों के भीतर विचरण करते हैं। वे मेरे प्राणों को देह से पृथक् कर दें; यदि मैंने कुछ भी पाप किया हो।

"अग्निरापस्तथाकाशं पृथिवी वायुरेव च।
विमुञ्चन्तु मम प्राणान् यदि पापं चराम्यहम्॥"२४॥

इसी प्रकार अग्नि, जल, आकाश, पृथिवी और वायु सब मुझे प्राणों से विमुक्त कर दें; यदि मुझमें पाप हो।

"यद्यहं त्वदृते वीर नान्यं स्वप्नेऽप्यचिन्तयम्।
तथा मे देवनिर्दिष्टस्त्वमेव हि पतिर्भव॥"२५॥

वीर, यदि आपको छोड़कर मैंने स्वप्न में भी अन्य का चिन्तन नहीं किया है तो आप ही मेरे देवनिर्दिष्ट पति हों।

"ततोऽन्तरिक्षे वागासीत् सुभगा लोकसाक्षिणी।
पुण्या संहर्षणी तेषां वानराणां महात्मनाम्॥"२६॥

उस समय अन्तरिक्ष में सब महान् आत्माओं तथा वानरों को हर्षित करनेवाली सुभगा लोकसाक्षिणी दिव्य वाणी हुई।

वायुरुवाच—

"भो भो राघव सत्यं वै वायुरस्मि सदागतिः।
अपापा मैथिली राजन् संगच्छ सह भार्यया।।"२७।।

वायु ने कहा—मैं सदागति वायु हूँ। राघव! मैथिली सर्वथा निष्पाप है। राजन्! आप इन्हें स्वीकार करें।

अग्निरुवाच—

"अहमन्तःशरीरस्थो भूतानां रघुनन्दन।
सुसूक्ष्ममपि काकुत्स्थ मैथिली नापराध्यति।।"२८।।

अग्नि ने कहा—हे रघुनन्दन, मैं सब प्राणियों के शरीर में रहता हूँ। हे काकुत्स्थ, मैथिली का सुसूक्ष्म भी कोई अपराध नहीं है।

वरुण उवाच—

"रसा वै मत्प्रसूता हि भूतदेहेषु राघव।
अहं वै त्वा प्रब्रवीमि मैथिली प्रतिगृह्यताम्।।"२९।।

वरुण ने कहा—हे राघव, सब भूतों में रस मुझ से उत्पन्न होते हैं। तुमसे मैं कहता हूँ—मैथिली को ग्रहण करो।

ब्रह्मोवाच—

"पुत्र नैतदिहाश्चर्यं त्वयि राजर्षिधर्मिणि।
साधो सद्वृत्त काकुत्स्थ शृणु चेदं वचो मम।।"३०।।

ब्रह्मा ने कहा—पुत्र! राजर्षि धर्मयुक्त तुममें ऐसी निष्ठा हो तो आश्चर्य नहीं है। हे सुवृत्त! हे साधो! मेरी बात सुनो।

"शङ्कुरेष त्वया वीर देवगन्धर्वभोगिनाम्।
यक्षाणां दानवानाञ्च महर्षीणां च पातितः।।"३१।।

हे वीर! तुमने देवताओं, नागों, यक्षों, दानवों तथा महर्षियों के इस कंटक (रावण) को मार गिराया।

"वधार्थमात्मनस्तेन हृता सीता दुरात्मना।
नलकूबरशापेन रक्षा चास्याः कृता मया।।"३२।।

अपने वध के लिए ही उस दुरात्मा ने सीता का हरण किया था। नलकूबर के शाप के द्वारा मैंने पहले ही से सीता की रक्षा की व्यवस्था कर रखी थी।

"यदि ह्यकामां सेवेत स्त्रियमन्यामपि ध्रुवम्।।
शतधास्य फलेन्मूर्धा इत्युक्तः सोऽभवत् पुरा।।"३४।।

यदि रावण अकामा किसी भी अन्य स्त्री का सेवन करेगा तो उसके सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे—इस प्रकार उसको नलकूबर का शाप था।

"नात्र शङ्का त्वया कार्या प्रतीच्छेमां महाद्युते।
कृतं त्वया महत्कार्यं देवानाममरप्रभ॥"३५॥

तुम सीता के सम्बन्ध में किञ्चिन्मात्र भी शङ्का मत करो। हे महाद्युते! सीता को ग्रहण करो। हे अमरप्रभ! तुमने देवताओं का महान् कार्य सम्पन्न किया है।

दशरथ उवाच—

"प्रीतोऽस्मि वत्स भद्रं ते पिता दशरथोऽस्मि ते।
अनुजानामि राज्यञ्च प्रशाधि पुरुषोत्तम॥"३६॥[1]

महाराज दशरथ ने कहा—वत्स, मैं तुम्हारा पिता दशरथ हूँ। मैं आज्ञा देता हूँ, सीता को ग्रहण करो और राज्य का प्रशासन भी करो।

राम ने पिता एवं देवताओं का अभिवादन किया। अविन्ध्य एवं त्रिजटा को वरदान दिया। ब्रह्मा ने राम से वरदान माँगने को कहा। राम ने सदा धर्म में स्थिति और रण में अपराजय एवं रण में मारे गये वानरों का पुनर्जीवन माँगा।

सीता ने भी हनुमान् को वर प्रदान किया। पुत्र! राम की कीर्ति के साथ तुम्हारा अनन्त जीवन होगा और मेरे प्रसाद से सदा तुम्हारे लिए दिव्य भोग उपस्थित रहेंगे—

"रामकीर्त्या समं पुत्र जीवनं ते भविष्यति।
उपस्थास्यन्ति हनुमन्निति स्म हरिलोचन॥
दिव्यास्त्वामुपभोगाश्च मत्प्रसादकृताः सदा॥" (म० भा० ३।२९१।४४,४५)

देवता अन्तर्हित हो गये। जानकी के साथ संगत राम को देखकर मातलि ने कहा—आपने देव, गन्धर्व, यक्ष, मानुष, असुर, पन्नग—सबके दुःखों को दूर कर दिया। जब तक भूमि रहेगी आपका यश गाया जायेगा।

इस तरह राम का सम्मान कर मातलि इन्द्रलोक चला गया। राम सीता और सौमित्रि सहित सुग्रीव प्रमुख वानरों के साथ लङ्का की रक्षा का प्रबन्ध कर विभीषण को भी साथ लेकर खेचर पुष्पक विमान के द्वारा वहाँ आये, जहाँ समुद्र-तट पर समुद्र से मार्ग प्राप्त्यर्थ प्रायोपवेशन किया था और सब वीरों को विविध रत्नों से सम्मानित कर वहाँ से सपरिकर किष्किन्धा आये।

अङ्गद को यौवराज्य देकर यथागत मार्ग से अयोध्या के समीप आकर राष्ट्रपति राम ने हनुमान् को भरत के पास भेजा। हनुमान् ने नन्दिग्राम में जाकर पादुका को पुरस्कृत कर बैठे हुए भरत को देखा। अन्त में लक्ष्मण सहित राम भरत और शत्रुघ्न से संगत होकर प्रसन्न हुए।

भरत ने राज्य को अर्पित कर दिया। वसिष्ठ ने शुभ नक्षत्र में राम का अभिषेक किया। राम ने सुग्रीव, विभीषण आदि का सम्मान कर उन्हें बिदा किया और पुष्पक वैश्रवण के पास भेज दिया।

देवर्षियों सहित राम ने गोमती-तट पर स्तुत्य तथा दिव्य दानादि युक्त दस अश्वमेध किये—

"दशाश्वमेधानाजह्रे जारूथ्यान् स निरर्गलान्॥"

महाभारत का यह **रामोपाख्यान** शतकोटिप्रविस्तर **वाल्मीकिरामायण** का अति संक्षिप्त सारमात्र है। इसमें अनेक अंशों का छूट जाना स्वाभाविक है। अतः इसके आधार पर **वाल्मीकिरामायण** में विद्यमान अंशों को प्रक्षिप्त कहना अनभिज्ञता ही है। इसमें भी लङ्का-दहन, सीता-सतीत्वप्रत्यय आदि स्पष्ट वर्णित हैं। अतः श्रीबुल्के की कल्पनाएँ सर्वथा निराधार ही हैं। ✲

---

१. १२ से ३६ तक के सब श्लोक महाभारत वनपर्व रामोपाख्यान अध्याय २९१ से संगृहीत हैं।

पञ्चम अध्याय

बौद्धों द्वारा विकृत रामचरित

दशरथ जातक

दशरथ जातक के अनुसार बुद्धदेव राजा दशरथ श्रीवाराणसी में धर्मपूर्वक राज्य करते थे। उनकी ज्येष्ठा महिषी की तीन सन्तानें थीं। दो पुत्र रामपण्डित और लक्ष्मण एवं एक पुत्री सीता (सीतादेवी)। इस महिषी के पश्चात् राजा ने एक दूसरी को ज्येष्ठा के पद पर नियुक्त किया। उसके भी एक पुत्र (भरत कुमार) उत्पन्न हुआ। राजा ने उसी अवसर पर उसको वर दिया। तब भरत की अवस्था सात वर्ष की थी। रानी ने वरस्वरूप अपने पुत्र के लिए राज्य माँगा; पर राजा ने स्पष्ट इनकार कर दिया। लेकिन जब रानी पुनः पुनः इसके लिए अनुरोध करने लगी तब राजा ने उसके षड्यन्त्रों के भय से अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर कहा—'यहाँ तुम्हारे रहने से अनर्थ होने की सम्भावना है, किसी अन्य राज्य या वन में जाकर रहो। मेरे मरने के बाद लौटकर राज्य पर अधिकार प्राप्त करो।' राजा ने ज्योतिषियों से अपने मरने की अवधि जानकर कहा—पुत्रो, बारह वर्ष बाद आकर छत्र को उठाना। पिता की वन्दना कर दोनों भाई जानेवाले ही थे कि सीतादेवी भी पिता से बिदा लेकर उनके साथ हो ली, तीनों चले। तीनों के साथ और भी बहुत से लोग चल पड़े थे; उन सबको लौटाकर तीनों हिमालय पहुँच गये और वहाँ आश्रम बनाकर रहने लगे।

नौ वर्षों के बाद दशरथ पुत्र-शोक से मर गये। रानी भरत को राजा बनाने में असफल रही, क्योंकि अमात्य और भरत भी इसका विरोध करते रहे। तब भरत चतुरङ्गिणी सेना लेकर राम को लाने के उद्देश्य से वन गये। उस समय राम अकेले ही थे। भरत उनसे पिता के देहान्त का सारा समाचार कहकर रोने लगे। रामपण्डित न तो शोक करते हैं, न रोते हैं—

"रामपण्डितो नैव शोचति न रोदिति"

सन्ध्यासमय लक्ष्मण और सीता लौटते हैं। पिता का मरण सुनकर दोनों रोने लगे। इसपर रामपण्डित ने उनको धैर्य देने के लिए अनित्यता का धर्मोपदेश किया। उसे सुनकर सबों का शोक मिट जाता है।

बाद में भरत के बहुत अनुरोध करने पर भी रामपण्डित ने यह कहकर वन में रहने का निश्चय प्रकट किया कि मेरे पिता ने मुझे बारह वर्ष पर्यन्त वन में रहने का आदेश दिया था। अभी मैं लौटकर उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकूँगा, अतः तीन वर्ष के बाद लौट आऊँगा।

जब भरत भी शासनाधिकार अस्वीकार कर देते हैं, तब रामपण्डित ने अपनी पादुकाएँ देकर कहा कि मेरे आने तक ये शासन करेंगी।

पादुकाओं को लेकर भरत, लक्ष्मण और सीता अन्य लोगों के साथ वाराणसी लौट आये।

अमात्य इन पादुकाओं के आदेश से राज्यकार्य करते थे। अन्याय होते ही 'पादुकाएँ एक दूसरे पर आघात करती थीं '**परिहृण्णन्ति**' और ठीक निर्णय होने पर शान्त रहती थीं।

तीन वर्ष व्यतीत होने पर रामपण्डित लौटकर अपनी बहन सीता से विवाह करते हैं एवं १६ हजार वर्ष तक राज्य करने के बाद स्वर्ग चले जाते हैं।

बुद्धदेव ने कहा कि पूर्वकाल में 'शुद्धोदन ही दशरथ थे, महामाया (बुद्धमाता) राम की माता थी, यशोधरा (राहुल की माता) सीता थी, आनन्द भरत थे और मैं राम था।

अनामक जातक

ऐसा ही एक **अनामक जातक** है। तीसरी शती ई० में **अनामक जातक** का चीनी अनुवाद हुआ है। इस जातक में किसी भी पात्र के नाम का उल्लेख नहीं है, लेकिन राम और सीता का वनवास, सीताहरण, जटायु का वृत्तान्त, वाली और सुग्रीव का युद्ध, सेतुबन्ध, सीता की अग्निपरीक्षा आदि के संकेत मिलते हैं। इसके अनुसार राम की विमाता कैकेयी के कारण पिता द्वारा वनवास नहीं दिया जाता, किन्तु वे अपने मामा के आक्रमण की तैयारियाँ सुनकर स्वेच्छा से राज्य छोड़ देते हैं। वाली के वध का वृत्तान्त भी इसमें बदल गया है। राम के धनुषबाण को देखते ही वाली भयभीत होकर भाग जाता है। शायद बोधिसत्त्व राम के द्वारा वाली का वध उचित नहीं समझा गया हो। उसका सारांश निम्नोक्त है--

एक समय बोधिसत्त्व एक महान् राजा हुआ। वह सदा ही दान, प्रियवचन, न्याय तथा समदर्शिता से सभी जीवों की रक्षा करता था। उसका मामा भी राजा था। वह लोभी, निर्लज्ज, निर्दय तथा दुष्ट था। उसने बोधिसत्त्व का राज्य छीन लेने के लिए सेना तैयार की। बोधिसत्त्व के अमात्यों ने भी सेना तैयार की। सेना का निरीक्षण करके बोधिसत्त्व अपने स्वार्थ के लिए असङ्ख्य मनुष्यों का जीवन नष्ट करना ठीक नहीं यह सोचकर, राज्य छोड़कर वन चला गया।

मामा ने राज्य पर अधिकार कर लिया। बोधिसत्त्व ने वहीं वन में अपनी रानी के साथ निवास किया। एक दुष्ट नाग ने छद्म से उस समय रानी का हरण कर लिया जिस समय बोधिसत्त्व जङ्गल में फल लेने के लिए गया था।

एक पक्षी ने उस दुष्ट नाग का मुकाबला किया। नाग ने पक्षी को मारा और उसका दाहिना पङ्ख तोड़ डाला और स्वयं समुद्र में स्थित अपने द्वीप में चला गया।

राजा फल लेकर लौटा, रानी को न पाकर बाण लेकर रानी की खोज में इधर उधर घूमने लगा। एक नदी के स्रोत पर पहुँच कर राजा ने एक बन्दर को देखा, जो बड़ा उदास था। पूछने पर उस बन्दर ने कहा---मैं एक राजा था, मेरे चाचा ने मेरा राज्य छीन लिया है। अब मेरा कोई साथी नहीं रहा। राजा ने भी अपना वृत्तान्त सुनाया। दोनों ने परस्पर सहायता के लिए वचनबद्ध होकर मैत्री कर ली। दूसरे दिन बन्दर ने अपने चाचा से युद्ध किया। राजा ने धनुष में बाण का सन्धान किया। जिसे देखते ही बन्दर का चाचा डरकर भाग निकला। बन्दर ने अपने साथियों को रानी खोजने के लिए भेजा। बन्दरों ने एक पक्षी देखा। उसने बताया कि नाग ने रानी को चुराया है। कपिराज ने अपनी सेना को समुद्रपार जाने में असमर्थ पाया। इन्द्र ने छोटे बन्दर का रूप धारण कर कहा---"प्रत्येक बन्दर को पर्वत का एक टुकड़ा लाने की आज्ञा दो। इस प्रकार समुद्र एक मार्ग बन जायेगा और आप द्वीप में पहुँच जायेंगे।" बन्दरों ने ऐसा ही करके समुद्र पार किया और नागद्वीप को घेर लिया।

नाग ने एक विषैला घना कुहरा उत्पन्न किया जिससे सभी पृथ्वी पर गिर पड़े। छोटे बन्दर ने एक दैव ओषधि सबकी नाकों में लगायी जिससे सब स्वस्थ हो गये। नाग ने आँधी और बादलों से सूर्य को छिपा लिया। बिजली चमकने लगी। छोटे बन्दर ने बताया कि बिजली ही नाग है। राजा ने एक बाण से नाग को मार डाला। छोटे बन्दर ने रानी को मुक्त किया एवं राजा अपने मामा का देहान्त सुनकर अपने देश चला गया।

राजा ने रानी से कहा---"पति से अलग दूसरे के घर में निवास करने पर लोग स्त्री के आचरण पर सन्देह करते हैं। तुम्हें स्वीकार करने में परम्परा के अनुसार कहाँ तक औचित्य है?"

रानी ने कहा—"मैं एक नीच की गुफा में रही थी तब भी मैं उसमें पङ्कज-पत्र की तरह निर्लेप रही हूँ। यदि मुझमें सतीत्व है, तो पृथ्वी फट जाय।" पृथ्वी फट गयी। रानी ने कहा, "मेरा सतीत्व प्रमाणित हुआ।" राजा और रानी के प्रभाव से सब वर्ण अपने-अपने धर्म का पालन करने लगे। बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा—"तब मैं राजा था, गोपा रानी थी, देवदत्त मामा था और मैत्रेय इन्द्र था। बोधिसत्त्व के आचरण में क्षान्ति की पारमिता असीम है।"

दशरथ-कथानक

चीनी भाषा में अनूदित **दशरथ-कथानक** में कहा गया है कि प्राचीनकाल में, जब कि मनुष्य की आयु चार हजार वर्ष की होती थी, जम्बूद्वीप में एक दशरथ नाम के राजा राज्य करते थे। उनकी महिषी के राम नाम से एक पुत्र हुआ, दूसरी से लक्ष्मण पुत्र हुआ। राम में नारायणीय शक्ति थी। तीसरी रानी से भरत और चौथी रानी से शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। तीसरी रानी पर राजा का अत्यधिक प्रेम था। एक दिन राजा ने कहा—"तुम्हारी किसी भी इच्छा की पूर्ति के लिए मैं अपना सम्पूर्ण धन और कोष देने में संकोच नहीं करूँगा।"

रानी ने कहा—"इस समय मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।" राजा बीमार पड़े और उन्होंने राम का अभिषेक कराया। छोटी रानी ने ईर्ष्या वश कहा—"मैं आपके दिये हुए वर की पूर्ति चाहती हूँ। मैंने दो वर पाये हैं। १ से राम गद्दी से उतार दिये जाएँ और २सरे से मेरे पुत्र का राज्याभिषेक किया जाए।" यह सुनकर राजा दुःखित हुए। राजधर्म के अनुसार वे अपने वचन को तोड़ना नहीं चाहते थे।

इस समय लक्ष्मण ने राम से अपनी शक्ति और साहस दिखाने की प्रार्थना की। राम ने कहा—"अपने पिता की आज्ञा भङ्ग कर पुत्र पितृभक्त नहीं कहला सकता।"

दशरथ ने दोनों पुत्रों को बनवास दिया। बारह वर्ष बाद लौटने की आज्ञा दी। भरत उस समय विदेश में थे। दशरथ की मृत्यु के बाद लौटे। उन्हें अपनी माता के कार्यों से घृणा हो गयी। वे सेना के साथ उस पर्वत पर गये, जहाँ राम निवास करते थे। भरत ने राम से कहा—"मैं आपसे लौटने और राज्य-भार ग्रहण करने की प्रार्थना करता हूँ।"

राम ने कहा, "वनवास के लिए पिता की आज्ञा हो चुकी है। उसे तोड़ने पर मैं आज्ञाकारी पुत्र नही कहलाया जाऊँगा" तब भरत ने राम की खड़ाऊँ माँगीं और अयोध्या लौट गये।

खड़ाऊओं को राज्य-सिंहासन पर रखकर भरत शासन की देखभाल करने लगे। प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल पादुकाओं की पूजा करते थे और उनसे आज्ञा लेते थे। अवधि पूरी होने पर राम अपने देश को लौट आये। भरत के बहुत आग्रह करने पर उन्होंने राज्यसिंहासनाधिकार स्वीकार किया....इत्यादि इत्यादि।

वस्तुतः बौद्ध निरीश्वरवादी होते हैं। उनके यहाँ ईश्वर एवं वेद तथा वेदोक्त धर्म दोनों ही अमान्य हैं; परन्तु लोकप्रिय होने के कारण उनके अनुयायी भी रामचरित्र की ओर आकृष्ट होते थे। वाल्मीकिरामायण आदि में प्रवृत्ति होने से ईश्वर और वेद में उनकी प्रवृत्ति हो सकती थी। अतएव उन्होंने रामायण को ही विकृत करके किसी न किसी रूप में रामचरित्र अपने क्षेत्र में प्रचारित किया। साथ ही उसके माध्यम से सनातनियों और वैदिकों में राम के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न करके अपने धर्म की ओर आकृष्ट करना भी उनका लक्ष्य था। अतः वाल्मीकिरामायण से विरुद्ध अंश अनादरणीय ही हैं। बौद्धों में वेदादि शास्त्र के प्रामाण्य की मान्यता नहीं थी। इसी लिए सीता को राम की भगिनी कहा गया है और भाई बहन के विवाह का समर्थन किया गया है।

राम की कहानी राम की जबानी

राम की कहानी राम की जबानी नाम की पुस्तक में भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने एक आधुनिक नास्तिक विचारवाले युवक के रूप में राम को प्रस्तुत कर वाल्मीकि के वचनाभासों द्वारा अनेक प्रकार की दुःशङ्काएँ पैदा करने का प्रयत्न किया है ।

पूर्वोक्त **दशरथजातक** में श्रीसीता को राम की बहन बनाने का प्रयास किया गया है । वैसे संसार में अनेक व्यक्ति एवं अनेक घटनाएँ होती हैं । उनमें किसी का नाम राम हो जाय, या किसी की कुछ घटनाएँ भी वैसी हो जाएँ तो कोई आश्चर्य नहीं है । परन्तु अनादि अपौरुषेय **मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदों**, उनके अङ्गों और उपाङ्गों एवं तदनुसारी **रामायण, पुराणों, उपपुराणों, धर्मशास्त्रों, तन्त्रों** एवं **आगमों** के अनुसार श्रीराम अनन्तब्रह्माण्डनायक परात्पर ब्रह्मस्वरूप ही हैं । वही कृष्ण, विष्णु आदि शब्दों से भी व्यवहृत होते हैं । उनके मर्यादापुरुषोत्तम-स्वरूप के सभी चरित्र आदर्श चरित्र हैं । **वेदादि शास्त्रों** के अनुसार ही उनके सब चरित्र हैं । सीता सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूपिणी हैं । अवतार-लीला में वे जनकनन्दिनी, श्रीदशरथ की पुत्रवधू एवं श्रीरामचन्द्रजी की पट्टमहिषी हैं ।

जनता जनार्दन के लिए श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों महापुरुष न देव हैं, न मानव, बल्कि भगवान् और विष्णु के अवतार हैं । साथ ही यह भी समझना चाहिए कि वे केवल जनता की भावनामात्र नहीं, किन्तु प्रबल प्रमाण **वेदादि शास्त्रों** से सिद्ध हैं । श्रीरामचन्द्रजी ने अपनी जीवनी स्वयं नहीं लिखी । यह लेखक के अनुसार भी लेखक की अपनी कल्पना ही है ।

कल्पना में वास्तविकता नहीं होती, यह स्पष्ट ही है । आपका यह कथन सही नहीं है कि तुलसीदास के लिखे '**रामचरितमानस**' से उन्हें सन्तोष नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने अपने बारे में महाकवि वाल्मीकि द्वारा उपस्थित की गयी सामग्री को प्रमाण मानकर अपनी कहानी स्वयं लिखने का निश्चय किया है । आपकी उक्त कल्पना निराधार एवं निष्प्रमाण है । तुलसीदासजी ने जो कुछ भी लिखा है वह **वेद, रामायण, पुराणादि** से सम्मत ही है ।

उक्त पुस्तक में लेखक के काल्पनिक राम ने तो **वाल्मीकिरामायण** को भी प्रामाणिक नहीं माना है । **वाल्मीकिरामायण** में विशेषतः लङ्काकाण्ड में ब्रह्मादि देवताओं ने श्रीराम को परब्रह्मस्वरूप कहा है, पर वह लेखक के काल्पनिक राम को कहाँ मान्य है ?

असल में वेद-शास्त्र विरोधियों को तुलसीदासजी के **रामचरितमानस** से भयङ्कर उद्वेग होता है, क्योंकि उसके द्वारा **वेद** और ईश्वर का विश्वास सुदृढ़ होता है । इसलिए लेखक **रामचरितमानस** के प्रभाव को न्यून करने के लिए उसे धुन्ध की संज्ञा देकर अपने हृदय के कालुष्य को प्रकट करते हैं, पर आपकी मनोवाञ्छा की पूर्ति नहीं हो सकती । **रामचरितमानस** का प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा ।

कौसल्यायन आगे कुछ खुलकर स्पष्ट ही कहते हैं—"लेखक के राम, तुलसी के भगवान् राम तो नहीं हैं । वे बहुत कुछ वाल्मीकि के श्रीराम ही हैं ।" आगे अपना हृदय व्यक्त करते हुए लिखते हैं—"वाल्मीकि के राम की अपेक्षा भी वे कुछ भिन्न हैं, कुछ विशिष्ट हैं ।" पर यदि लेखक के काल्पनिक राम **वाल्मीकिरामायण** के राम से भिन्न हैं, तो उनकी जीवनी का आधार **वाल्मीकिरामायण** हो भी कैसे सकता है ?

आगे लेखक अपनी छद्ममयी नीति के अनुसार कहता है कि—'वाल्मीकिजी सत्य के उपासक थे । उन्होंने अधिक से अधिक यथार्थ का चित्रण किया है ।' इसका आन्तर अभिप्राय यह है कि उसमें अयथार्थता है । श्री-कौसल्यायन कहते हैं—"ब्राह्मण उस **याज्ञिक** युग में क्या-क्या कुछ नहीं करते थे ।" ये ही बौद्धवाद के संस्कार हैं ।

ब्राह्मण याज्ञिक वेदप्रमाण के अनुसार यज्ञ, यागादि करते थे। मनमानी कुछ भी नहीं करते थे। यहाँ कौसल्यायन का वैदिक यज्ञ के हिंसामय प्रतीत होनेवाले विधानों पर व्यङ्ग्य है।

'श्रीराम के भोजन में मांस और सुरापान अंग रहा था। आज के वैष्णव पाठक को यह समझना चाहिए कि उसके विष्णु के अवतार भगवान् राम भले ही वैष्णवयुग की उपज हों; किन्तु स्वयं श्रीराम वैष्णव युग की उपज नहीं। वे जिस युग की विभूति थे, उसका प्रतिनिधित्व करना स्वाभाविक था।' यह विचार भी अविवेकमूलक है। श्रीराम विष्णु या विष्णु के अवतार थे—यह शाश्वत सिद्धान्त है, वे किसी युग की उपज नहीं थे। वेदवेद्य श्रीराम के अवतीर्ण होने पर साक्षात् **वेद** ही **रामायण** के रूप में प्रकट हुए थे। श्रीराम सर्वान्तरात्मा हैं, अतः विभिन्न युगों के अनुरूप उनके भोजन में भेद हो सकता है। पर सर्वदा ही मर्यादापुरुषोत्तम के व्यवहार में भी **वेद** का नियन्त्रण तो रहता ही है।

बुद्ध की अहिंसा का बिल्ला बाँधनेवाले बौद्धों के बुद्ध तो किसी धोबिन के द्वारा दत्त शूकरमांस भक्षण करके मृत्यु को प्राप्त होते हैं। क्या कौसल्यायन बतायेंगे कि उन्होंने किस युग का प्रतिनिधित्व किया था। प्रियावियोग में राम के व्याकुल होने आदि की नरलीला भी ध्येय, ज्ञेय, परमाराध्य होकर मुक्तिका हेतु बनती है। गीता कहती हैं कि भगवान् के दिव्य जन्म और कर्म को जो जानता है वह जन्म और कर्म के बन्धनों से मुक्त हो जाता है—

"जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन॥" (गी० ४।९)

अपने समर्थन में कौसल्यायन ने एक जैन श्लोक उद्धृत किया है—

"पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥"

अर्थात्—मेरा महावीर में पक्षपात नहीं एवं कपिलादि में द्वेष नहीं है। जिसका भी वचन प्रकृतिसम्मत, युक्तियुक्त हो उसका ही परिग्रह करना चाहिये। पर यदि कौसल्यायन सचमुच उक्त वचन का आदर करते हैं, तो नैरात्म्यवाद तथा अनेकान्तवाद को त्याग कर उन्हें अनादि अपौरुषेय स्वतःसिद्ध वेदों के अनुसार ही धर्म, ब्रह्म की शरण ग्रहण करनी चाहिये।

कौसल्यायन के कल्पित राम कहते हैं—"जैसे कोई नहीं जानता कि उसका जन्म कब और कहाँ हुआ वैसे ही मैं भी नहीं जानता कि मेरा जन्म कैसे, कब और कहाँ हुआ?" परन्तु यह गीता के विरुद्ध है। गीता के भगवान् कहते हैं—"हमारे और तुम्हारे कई जन्म हुए, पर उन सबको मैं जानता हूँ। हे परन्तप! तुम नहीं जानते हो"—

"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप॥" (गी० ४।५)

कौसल्यायन अपने जन्म के बारे में कहते हैं—"मैंने सुना है कि जब मेरे पिता सन्तानोत्पत्ति की ओर से निराश हो गये, तब उन्होंने वसिष्ठ के सहयोग से 'अश्वमेघ यज्ञ' किया। राजा रोमपाद के जामाता ऋषिशृङ्ग बालब्रह्मचारी थे। वे वेश्याओं के द्वारा लुभाकर अपनी कन्या शान्ता के लिए वररूप में प्राप्त किये गये थे। यज्ञ में ३०० पशु यज्ञस्तम्भों में बाँधे गये थे। उनमें अश्वमेघ का यज्ञीय अश्व भी था। मेरी माता कौशल्या ने धर्म की इच्छा से एक रात उस अश्व के निकट गुजारी थी। इससे पहले भली प्रकार अश्व की परिचर्या करके तीन तलवारों से उसका स्पर्श किया था। इनके बाद याज्ञिकों ने मेरे पिता की अन्य दो भार्याओं को भी घोड़े के साथ नियोजन

किया था। मेरी दूसरी माता सुमित्रा वैश्य जाति की थी और मेरी तीसरी माता (कैकेयी) शूद्र जाति की थी। तीनों को महिषी, वावाता और परिवृत्ति कहा जाता था।"

पाठकों को मालूम होना चाहिये कि यह कथन वाल्मीकिवर्णित मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सम्बन्ध का नहीं है। यह तो मिथ्या वासुदेव के समान मिथ्या काल्पनिक, नास्तिक बौद्ध राम का या आनन्द कौसल्यायन का ही कथन है। वास्तविक राम ने कभी अपनी कहानी नहीं लिखी है। जैसे मिथ्या वासुदेव पौण्ड्रक नकली दो भुजाएँ तथा नकली गरुड़ बनाकर वासुदेव बन गया था, वैसे ही कौसल्यायन नकली मनगढ़न्त कहानी बनाकर नकली बौद्ध नास्तिक राम बन गये हैं। अश्वमेध की इष्टि के याजक महर्षि वसिष्ठ कोई अन्य नहीं। पुत्रेष्टि के याजक ऋषिश्रृङ्ग नहीं ऋष्यश्रृङ्ग थे। वे महात्मा बालब्रह्मचारी थे। वेश्याएँ नहीं, दिव्य अप्सराएँ उन्हें तपोवन से लायी थीं। वे अपने को ऋषि बताकर उनको रोमपाद के राज्य में अनावृष्टि दूर करने के लिए लाने में समर्थ हो गयीं। राजा ने उनके पिता की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये अपनी शान्ता कन्या का उद्वाह उनसे कर दिया था।

"ऋष्यश्रृङ्गो वनचरस्तपःस्वाध्यायसंयुतः।" (वा० रा० १।१०।३)
"अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा।
अनावृष्ट्यां तु वृत्तायां राजा दुःखसमन्वितः॥" (वा० रा० १।९।९)

देश भर में घोर अनावृष्टि हो रही थी। उससे राजा अत्यन्त दुखित थे। विद्वान् ब्राह्मणों ने राजा को यही परामर्श दिया कि 'महर्षि विभाण्डक' के पुत्र परमतेजस्वी ऋष्यश्रृङ्ग महान् बालब्रह्मचारी हैं, वे पि सेवा-परायण हैं एवं सांसारिक विषयों से अत्यन्त अपरिचित हैं। उन्होंने जन्म से लेकर कभी स्त्री या पुरुष कुछ देखा ही नहीं—

"न तेन जन्मप्रभृति दृष्टपूर्वं तपस्विना।
स्त्री वा पुमान् वा यच्चान्यत् सत्त्वं नगरराष्ट्रजम्॥" (वा० रा० १।१०।९)

उन्हें अपने राज्य में लाकर अपनी शान्ता कन्या प्रदान करो। तदनुसार ही राजा ने वेश्याओं को प्रेषित कर युक्ति से उन्हें अपने राज्य में लाने का प्रयत्न किया था और उनके आते ही देवराज ने प्रसन्न होकर राज्य में खूब वर्षा की—

"तत्र चानीयमाने तु विप्रे तस्मिन् महात्मनि।
ववर्ष सहसा देवो जगत् प्रह्लादयंस्तदा॥" (वा० रा० १।१०।२९)

इसी प्रकार सुमित्रा को वैश्यकन्या और कैकेयी को शूद्रकन्या कहना प्रमाणशून्य है। तथा अश्वमेध में महिषी, वावाता तथा परिवृत्ति का नियोजन अवश्य है। तदनुसार ही होता, अध्वर्यु, उद्गाता आदि ऋत्विजों ने तीनों का नियोजन किया।

"महिष्या परिवृत्त्याथ वावातामपरां तथा॥" (वा० रा० १।१४।३५)

परन्तु केकय के राजा क्षत्रिय थे, कैकेयी उनकी पुत्री थी।

'केकयराजानं वृद्धं परमधार्मिकम्।
श्वशुरं राजसिहस्य सपुत्रं तमिहानय॥" (वा० रा० १।१३।२४)

इसमें स्पष्ट ही निर्देश है कि केकय देश के राजा जो कि महाराज दशरथ के श्वसुर हैं उनको भी यज्ञार्थ निमन्त्रित करके लाइये। काशीपति तथा अङ्गेश्वर रोमपाद की उसी प्रसङ्ग में चर्चा है।

फिर **अयोध्याकाण्ड** में भी भरत मातुलकुल गये और अयोध्या आते समय बहुत से राजकीय उपहार उनके साथ भेजे गये। उन महाराज कैकेय की पुत्री कैकेयी को शूद्रा एवं परिवृत्ति कहना साहस ही है।

अन्य **रामायणों** के अनुसार सुमित्रा का वैश्यपुत्री होना भी अप्रामाणिक है। **रघुवंश** ९।१७ के अनुसार सुमित्रा मगधनरेश की पुत्री थी। यहाँ वावाता और परिवृत्ति दोनों शब्द कृताभिषेका महिषी से भिन्न क्रमेण द्वितीय तथा तृतीय भार्याओं के ही बोधक हैं। इसी दृष्टि से सुमित्रा को वावाता और कैकेयी को परिवृत्ति कहा गया है।

"राज्ञां हि विविधाः स्त्रिय उत्तममध्यमाधमजातीयाः।"

इत्यादि **ऐतरेयब्राह्मण** तृतीय पञ्चिका के वावाता शब्द के भाष्य के अनुसार यदि वैश्य और शूद्र जाति की राजवल्लभा पत्नियाँ हों तो उनका भी नियोजन होता है; परन्तु अनिवार्यरूप में वैसा अपेक्षित नहीं है। अतएव श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में कृताभिषेका महिषी सीता की काञ्चनी प्रतिमा का ही उपयोग हुआ था। वहाँ अन्य जातीया भार्याओं का प्रसङ्ग ही नहीं आया। काञ्चनी प्रतिमा से भी यज्ञ सम्पन्न होना वैध है, यह इसी ग्रन्थ में अन्यत्र देखिये।

इसी तरह अन्यत्र भी कौसल्यायन ने वाल्मीकि का नाम लेकर उनका अभिप्राय न समझकर या जान-बूझकर श्लोकों का भ्रामक अर्थ करके जनता को भ्रान्त करने का प्रयत्न किया है।

'हे मिथ्याप्रतिज्ञ! तू शूर वीर हो।' (रामकहानी पृ० ४)

यह अर्थ भी इसी प्रकार का है। मूल में संबोधन रूप में 'मिथ्याप्रतिज्ञ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है—

"यदीदं ते क्षमं राजन् गमिष्यामि यथागतम्।
मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सुहृद्वृतः॥" (वा० रा० १।२१।३)

अर्थात् यदि प्रतिज्ञाहानिरूप दोष आपको सह्य है तो मैं जाता हूँ। आप मिथ्याप्रतिज्ञ होकर अपने सुहृदों के साथ सुखी हों।

'विश्वामित्र के कहने से हमने ताड़का का वध कर डाला। आखिर हम क्या करते, हमसे चलते समय पिताजी ने कहा था कि विश्वामित्र की हर आज्ञा का पालन करना। हम अपनी बुद्धि से विचार करने में स्वतन्त्र न थे।' (रामकहानी पृ० ५१)

यह भी मिथ्यावादी बौद्धों के मिथ्या भाषण का ही नमूना है, क्योंकि **वाल्मीकीयरामायण** में ऐसा उल्लेख नहीं है। श्रीराम ने मारीच को मारा नहीं, किन्तु 'मानव परमास्त्र' से सौ योजन दूर डाल दिया था। सुबाहु तथा अन्य बहुत से राक्षसों का वध कर वे ऋषियों द्वारा पूजित एवं प्रशंसित हुए थे।

हाँ, **अयोध्याकाण्ड** में जब जाबालि ने राम को लौटाने के लिए धर्मविरुद्ध नास्तिकों जैसी बातें करते हुए कहा—"कौन किसका बन्धु है। किसको किससे क्या लेना है। प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता है। जो उसमें माता-पिता की बुद्धि करता है वह उन्मत्त ही है। आप अपने पित्र्य राज्य को त्यागकर बहुकण्टक कुत्सित पथ का आश्रयण कर रहे हैं। जो लोग धर्मपरायण होते हैं, उनके लिए ही हम सोचते हैं। वे यहाँ भी दुःख पाते हैं। अन्त में विनाश को प्राप्त हो जाते हैं आदि।

ब्राह्मण आदि अन्य के भोजन करने से यदि देवताओं तथा पितरों को कुछ मिल सकता हो, तब तो प्रवासी सम्बन्धियों को घर में ही दिया हुआ अन्न आदि मार्ग में मिल जाना चाहिए, फिर मार्गार्थ सामग्री-सङ्कलन व्यर्थ होगा। अतः देवताओं तथा पितरों सम्बन्धी अष्टका श्राद्ध केवल अन्न का अपव्ययमात्र है। यज्ञादि में देवपूजा

करो, अन्नादि-दान करो, चान्द्रायणादि व्रत करो, संन्यास करो इत्यादि वैदिकाचार का प्रतिपादन करनेवाले वेदादि ग्रन्थों का निर्माण मेधावियों ने दानादि प्राप्त करने के लिए तथा देवताओं को वश में करने के लिए ही किया है। पामरों की प्रतारणा कर धनग्रहण करने का यह सब धन्धामात्र है। परलोक आदि कुछ भी नहीं है। प्रत्यक्ष को अपनाओ परोक्ष का त्याग करो।"

तब ऐसी बातों को सुनकर राम ने कहा था—'आपका यह सब उपदेश कर्तव्य के तुल्य प्रतीत होनेवाला अकार्य ही है। पथ्य के तुल्य प्रतीत होने पर भी यह अपथ्य ही है। पापाचारसमन्वित निर्मर्याद पुरुष लोकायत उच्छृङ्खल आचार एवं उच्छृङ्खल दर्शन का अनुगामी होने के कारण सत्पुरुषों में संमान प्राप्त नहीं कर सकता है। वेदानुमत आचाररूप चरित्र ही प्राणी की कुलीनता या अकुलीनता, पवित्रता या अपवित्रता का प्रख्यापन करता है। जिसमें आचार होता है, वही कुलीन एवं पवित्र समझा जाता है। तद्विपरीत अकुलीन एवं अशुचि समझा जाता है। जो आपके उपदेश का अनुसरण करेगा वह आर्य के समान प्रतीत होनेपर भी अनार्य, पवित्रताहीन एवं दुःशील होने पर भी शुचि और शीलवान् जैसा प्रतीत होगा एवं अलक्षण्य होकर लक्षणवान् सा प्रतीत होगा। यदि मैं आपके द्वारा उपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करूँगा एवं धर्मवेश से युक्त होकर शास्त्रोक्त शुभ कर्म को छोड़कर विधिवर्जित क्रिया करूँगा तो अशुभ स्थिति को ही प्राप्त होऊँगा।

कार्य-अकार्य का विवेक रखनेवाला कौन समझदार लोकदूषण दुर्वृत्त का आदर करेगा। प्रतिज्ञाहीन वृत्ति का अनुसरण करने पर किस साधन से स्वर्गादि प्राप्त हो सकेगा। आपके द्वारा उपदिष्ट मार्ग का अनुसरण करने से मैं दुर्वृत्त बन जाऊँगा। राजा के दुर्वृत्त होने से प्रजा भी दुर्वृत्त हो ही जाती है। अतः सत्य और आनृशंस्य ही सनातन राजवृत्त है। सत्यात्मक राज्य सत्य में ही प्रतिष्ठित होता है। ऋषि एवं देवता सत्य का ही आदर करते हैं। सत्यवादी ही इस लोक और परलोक में अक्षय फल का भागी होता है। सत्य ही ईश्वर है, सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित है। सत्य से श्रेष्ठ कोई उत्कृष्ट पद नहीं है। सर्पतुल्य अनृतवादी से सबको उद्वेग होता है। दान, यज्ञ, तप, वेद सब सत्य में प्रतिष्ठित हैं। इसलिए सत्यपरायण होना चाहिये—

"दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्॥" (वा० रा० २।१०९।१४)

इस कर्मभूमि को प्राप्त कर शास्त्रोक्त कर्म ही करना चाहिये। सैकड़ों क्रतुओं, यज्ञों का अनुष्ठान करके ही शतक्रतु देवराज होकर त्रिदिव के आधिपत्य को प्राप्त हुए हैं।

उग्र तप के द्वारा ही ऋषि लोग स्वर्ग गये हैं। सत्य, धर्म, भूतानुकम्पा एवं ब्राह्मण, देवता तथा अतिथियों की पूजा त्रिदिवप्राप्ति के मार्ग हैं।'

अन्त में राम ने कहा—'मैं पिताजी के उस कर्म की निन्दा करता हूँ जिसमें उन्होंने धर्मविमुख विषम-बुद्धिवाले आप जैसे नास्तिक को अपना 'याजक' ऋत्विक् बनाया था।

जैसे चोर दण्ड्य होता है वैसे ही बुद्ध आदि नास्तिक भी दण्ड्य हैं। आस्तिक ब्राह्मण को चाहिए कि ऐसे नास्तिकों के सम्मुख न हो, उनसे भाषणादि न करे। तथागत को नास्तिक ही समझना चाहिये। दण्ड देना शक्य हो तो नास्तिक को चोर के तुल्य दण्डित किया जाय, यदि ऐसा सम्भव न हो तो उससे भाषण आदि न किये जायँ—

"निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद् यस्त्वामगृह्णाद् विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम्॥

यथाहि चोरः स तथाहि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ।
तस्माद्धि यः शक्यतमः प्रजानां स नास्तिके नाभिमुखो बुधः स्यात् ।।"
(वा० रा० २।१०९।३३,३४)

श्रीराम की इन बातों को सुनकर जाबालि ने कहा—"मैं नास्तिक नहीं हूँ । आप को वन से लौटाने के लिये इस प्रकार की बातें मैंने की हैं ।"

वसिष्ठ ने भी श्रीराम से कहा—'जाबालि लोक की गति, अगति को जानते हैं । नास्तिक नहीं हैं । आप को वन से निवृत्त करने के लिये ही इन्होंने वैसा कहा है ।'

बुद्धादि नास्तिक भी प्राचीन हैं । कई लोग बुद्ध और तथागत का नाम देखकर **वाल्मीकिरामायण** का निर्माण गौतम बुद्ध के पश्चात्कालीन मानते हैं, पर यह ठीक नहीं है, क्योंकि अवतार बुद्ध गौतम बुद्ध से भिन्न ही हैं । जैसे मुख्यलक्ष्मी गृहलक्ष्मी से भिन्न होती हैं वैसे ही बुद्ध भी गौतम बुद्ध से भिन्न हैं । बौद्धों के जातकों का भी यही मत है । **लङ्कावतारसूत्र** में लङ्कापति रावण को उपदेश करनेवाले भी एक बुद्ध थे । उसी ग्रन्थ में बुद्ध ने अपने पूर्व के अनेक बुद्धों की चर्चा की है । अतएव

"द्वे सत्त्वे समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना ।"

के अनुसार परमार्थ एवं संवृत सत्त्व स्वीकार करके ही बुद्धों की धर्मदेशना सिद्ध होती है ।

यहाँ 'बुद्धानाम्' यह बहुवचन निर्देश भी सिद्ध करता है कि बुद्ध अनेक हुए हैं । उन्हीं बौद्ध सिद्धान्तों का पुराणों में भी खण्डन है । भगवान् व्यास के सूत्रों में भी बौद्धमत और जैनमत का खण्डन है । एतावता भी व्यास और गौतम बुद्ध तथा महावीर से प्राचीन हैं । पाणिनि के सूत्र **'पाराशर्यशिलालिभ्याम्'** (पा० सू० ४।३।११०) में व्यास की चर्चा है । **महाभारत, गीता, ब्रह्मसूत्र** आदि के रचयिता व्यास पाँच हजार वर्ष से भी अधिक पुराने हैं, यह कहा गया है ।

इसी तरह कौसल्यायन ने गङ्गा के गर्भ से धातुओं की उत्पत्ति पर भी अपना कुतर्क श्रीराम के व्याज से उपस्थित किया है । वे कहते हैं—"यह धातुओं का वर्णन यों ही लालबुझक्कड़ों का वर्णन होगा । क्या कभी किसी के गर्भमल से धातुओं की उत्पत्ति हो सकती है ?"

"उत्ससर्ज महातेजाः स्रोतोभ्यो हि तदानघ ।
यदस्या निर्गतं तस्मात्तप्तजाम्बूनदप्रभम् ।।
काञ्चनं धरणीं प्राप्तं हिरण्यमतुलप्रभम् ।
ताम्रं कार्ष्णायसं चैव तैक्ष्ण्यादेवाभिजायत ।।
मलं तस्याभवत्तत्र त्रपु सीसकमेव च ।
तदेतद् धरणीं प्राप्य नानाधातुरवर्धत ।।
निक्षिप्तमात्रे गर्भे तु तेजोभिरभिरञ्जितम् ।
सर्वपर्वतसन्नद्धं सौवर्णमभवद् वनम् ।।
जातरूपमिति ख्यातं तदाप्रभृति राघव ।।" (वा० रा० १।३७।१८-२२)

प्रसङ्गानुसार शैव तेज को अग्नि ने धारण किया था । अग्नि से गंगा ने उसी तेज को धारण किया था । असह्य होने के कारण गङ्गा के द्वारा त्यक्त वही तेज पारद आदि धातुओं के रूप में परिणत हुआ था । नागेशभट्ट के अनुसार 'ईश्वर का तेज ही पारद है । उत्तम स्त्री के दर्शन से रसेश्वर पारद दो योजन पर्यन्त उच्छलित होकर

उसका अनुसरण करता है। **आनन्दकन्दतन्त्र** में भी ऐसा उल्लेख है। वही पारद विभिन्न योगों से त्रपु, सीसक, सुवर्ण आदि रूप में परिणत होता है।' यद्यपि सामान्य स्त्री-पुरुषों के शुक्र, शोणित से धातुओं का निर्माण सम्भव नहीं है; तथापि शिव-पार्वती का चमत्कार पृथक् ही है।

शिव-शक्ति या प्रकृति-पुरुष सम्पूर्ण विश्व के हेतु हैं, चेतन और अचेतन सम्पूर्ण विश्व के कारण वे ही हैं। विद्युत्-प्रकाश की भी ठण्डे और गरम तार के योग से ही अभिव्यक्ति होती है। प्रकाशस्वरूप शिव हैं और विमर्शस्वरूप शक्ति हैं। सम्पूर्ण विश्व अग्नीषोमात्मक है। पारद, सुवर्ण आदि भी सब उसी के परिणाम हैं। इसी वैज्ञानिक दृष्टि-कोण की अभिव्यक्ति के लिये परम कारण शिव और शक्ति के संयोग के अनन्तर ही अग्नि और सोम का संसर्ग हुआ है। गङ्गा सोम का ही प्रतीक हैं।

देवताओं की प्रार्थना से भगवान् शिव ने अपना तेज पृथिवी में निषिक्त किया। उससे गिरि-काननपूर्ण सम्पूर्ण पृथिवी तप्त हो उठी। तदनन्तर देवताओं ने अग्नि से प्रार्थना की कि तुम वायुसमन्वित होकर रौद्र तेज में प्रवेश करो। वही अग्नि से व्याप्त होकर श्वेत पर्वत हो गया। अग्नि पृथिवी का अभिमानी देवता है, अतः तेज के धारणार्थ पृथिवी में अग्नि का प्रवेश उचित ही था।

वायुयुक्त अग्नि के द्वारा चालनपूर्वक प्रवेश से बद्ध होकर शिवधातु का श्वेत पर्वत रूप होना सङ्गत ही है। तेजःप्रवेश से उसी की महिमा से पावक एवं आदित्य के समान बनकर वह सुवर्णमय हो गया।

'मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।' (गी० १४।३)

इस गीता वचन में भगवान् ने कहा है कि महद् ब्रह्म मेरी प्रकृति (योनि) है। उसमें मैं गर्भाधान करता हूँ और उसी से सम्पूर्ण प्रपञ्च की उत्पत्ति होती है।

ईश्वर का प्रकृति में गर्भाधान सामान्य स्त्री-पुरुषों जैसा नहीं होता; किन्तु प्रकृति में पुरुष का प्रतिबिम्बित होना ही गर्भाधान है। उसी के प्रभाव से जड़ प्रकृति भी चेतनान्वित होकर महदादि प्रपञ्च के निर्माण में सक्षम होती है। इस तरह जब प्रकृति पुरुष या शिव शक्ति से ही सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि होती है तब पारद, स्वर्ण, रजत आदि की उत्पत्ति भी उन्हीं से होती है, इसमें सन्देह का अवसर ही नही है।

"ततो देवाः पुनरिदमूचुश्चापि हुताशनम्।
आविश त्वं महातेजो रौद्रं वायुसमन्वितः॥" (वा० रा० १।३६।१७)

राजा सगर की पत्नी सुमति के उदर से एक तुम्बा निकला। उससे साठ हजार पुत्र निकले। धात्रियों ने पुत्रों को घृतकुम्भ में रखकर सबका पोषण किया था। फिर जब आजकल टेस्ट ट्यूब से बच्चे होने लगे हैं तब इन बातों पर क्यों अविश्वास करें।

कौसल्यायन के कल्पित राम कहते हैं—"हम सोचने लगे कि क्या स्वयं विश्वामित्र भी ऐसी बातों में विश्वास कर सकते हैं। अथवा हमारा ही मनोरञ्जन करने के लिए, रास्ता कटने के लिए ऐसी चण्डूखाने की गप्पें हाँक रहे हैं।" परन्तु यह भी उनका प्रमाद ही है, क्योंकि वहाँ कहा गया है कि महाराज सगर ने अपनी दो पत्नियों के साथ भृगुप्रस्रवण गिरि पर सौ वर्ष तक तपस्या की। तप से आराधित होकर महर्षि भृगु ने वर प्रदान किया। पहली पत्नी ने एक वंशकर पुत्र माँगा। दूसरी ने ६० हजार पुत्र माँगे। इस तरह महर्षि के वर के प्रभाव के कारण होनेवाली उक्त घटना सत्य ही है। असम्भव जैसी कोई वस्तु नहीं है। योगसिद्ध महर्षियों के सङ्कल्प के अनुसार प्रकृति नियन्त्रित होती है। जैसे शुक्र के सूक्ष्मकण गर्भस्थ होकर मनुष्यादि रूप में व्यक्त होते हैं। अनेक बार एक साथ ही चार चार, पाँच पाँच सन्तानें भी पैदा हो जाती हैं। शूकरादि प्राणियों की दर्जनों सन्तानें एक समय में ही

उत्पन्न होती हैं। पक्षियों से अण्डों के रूप में बच्चे उत्पन्न होकर गर्भ से बाहर ही पालित पोषित होते हैं। फिर अगर ६० हजार सन्तानें भृगु जैसे महर्षि के सङ्कल्प से सुरक्षित हो जायें तो आश्चर्य की बात ही क्या है ?

पुनश्च जब वैदिक सिद्धान्त में प्रत्यक्ष और अनुमान के समान ही शब्द भी स्वतन्त्ररूप से प्रमाण है तब शब्द प्रमाण से सिद्ध पदार्थ में किसी आस्तिक की विप्रतिपत्ति ही क्यों होगी ?

आज के वैज्ञानिक युग में तो ऐसी शङ्का ही उपहासास्पद है। कृत्रिम गर्भाधान और पोषण भी असम्भव नहीं है।

आगे कौसल्यायन के काल्पनिक मिथ्या वासुदेव राम कहते हैं—"हमें यह भी बताया गया कि पृथ्वी को खोदने पर सगर-पुत्रों की चार ऐसे गजराजों से भेंट हुई जो पृथ्वी को अपने सिर पर उठाये हुए थे। हमें समझाया गया कि जब गजराज सिर हिलाते हैं तभी भूकम्प होता है। हम सोचने लगे कि पृथिवी तो हाथियों के सिर पर स्थित है, किन्तु स्वयं हाथी किस पर स्थित हैं ? हमें अपनी किसी शङ्का का सन्तोषजनक समाधान मुनि विश्वामित्र से सुनने को नहीं मिला।"

"यदा पर्वणि काकुत्स्थ विश्रमार्थं महागजः।
खेदाच्चालयते शीर्षं भूमिकम्पस्तदा भवेत्॥" (वा० रा० १।४०।१५)

परन्तु यह शङ्का अविवेकमूलक ही है; क्योंकि वहाँ पर आकर्षिणी, विकर्षिणी, धारिणी, पोषणी शक्ति-विशिष्ट चेतन ही गजेन्द्र के रूप में पृथिवी को धारण करते हैं और वे स्वयं स्वप्रकाश स्वप्रतिष्ठ भगवान् में ही प्रतिष्ठित होते हैं।

परस्पर आकर्षण से स्थिति आधुनिक लोगों को भी मान्य है। गणपति भगवान् का भी गजानन प्रतीक **गणपति अथर्वशीर्ष** आदि में वर्णित है। भूमि के भी भीतर होनेवाली रासायनिक प्रक्रिया एवं तन्मूलक विस्फोट आदि भी उन्हीं शक्तियों के परिणाम हैं। प्रतिक्रिया के अनन्तर होनेवाली शान्ति ही उनका उद्देश्य है।

इसी तरह कौसल्यायन के राम ने इन्द्र और अहल्या की चर्चा की है। उन्होंने कहा—"गौतम के शाप से अहल्या पत्थर की हो गयी थी। मेरे चरणस्पर्श से वह पूर्ववत् पुनः जीवित हो गयी। ऐसा कहनेवाले के मन में स्त्रीजाति के लिए तनिक भी आदर भाव नहीं रहा होगा। ऐसा कहनेवाले ने स्त्रीजाति के साथ मेरा भी निरादर किया है।"

परन्तु यह मिथ्या ही है। वाल्मीकिरामायण में राम ने वैसा कुछ भी नहीं कहा है। हाँ, वाल्मीकि के राम ने लक्ष्मण के साथ मुनि-पत्नी का चरणस्पर्श किया, यह ठीक है—

"राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा।" (वा० रा० १।४९।१७)

पर साथ ही राम के स्पर्श से वह शापमुक्त हुई और अनेक सहस्रवर्ष तक वायुभक्षण करती हुई निराहार और भस्मशायिनी होकर तप करती रही। यह सब साधारण लोक से विलक्षण बातें तो थीं ही—

"इह वर्षसहस्राणि बहूनि निवसिष्यसि।
वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी॥" (वा० रा० १।४८।२९,३०)

अहल्या ने समाहित होकर अर्घ्य, पाद्य आदि से श्रीराम का पूजन किया। महातेजा गौतम ने भी आकर राम की विधिवत् पूजा की—

"गौतमोऽपि महातेजा अहल्यासहितः सुखी।
रामं सम्पूज्य विधिवत्तपस्तेपे महातपाः॥" (वा० रा० १।४९।२१,२२)

इससे राम की पूज्यता आदि विशेषताएँ स्पष्टतया विदित होती हैं। अतः किसी कल्प की कथा में अहल्या पाषाण भी हो गयी होगी। जब कि राम ईश्वरावतार हैं ही तब उनके चरणस्पर्श से पापयुक्त गौतमपत्नी का शाप-मुक्त होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

अतएव श्रीव्यासदेव के रामाश्वमेध आदि ग्रन्थों में अनेक ऋषियों ने राम को प्रणाम आदि किया ही है।

आगे कौसल्यायन के राम वसिष्ठ और विश्वामित्र के सङ्घर्ष की चर्चा करते हुए कहते हैं—"जब विश्वामित्र द्वारा बलात् कामधेनु ले जाने के लिए सेना का प्रयोग किया गया तब वसिष्ठ ने कामधेनु से कहा कि ऐसी सेना उत्पन्न करो जो विश्वामित्र को परास्त कर सके। कामधेनु ने दिव्य शक्ति से पहले शक, काम्बोज तथा यवन आदि जातियों के सैनिकों को उत्पन्न किया। उनकी सहायता से पराजित होकर विश्वामित्र ने कहा कि ब्रह्मबल ही श्रेष्ठ बल है। उसके मुकाबले में क्षत्रियबल तुच्छ है।

यदि आपस के कलह में विदेशियों की सहायता लेकर विजय प्राप्त करना ही ब्रह्मबल है, तो क्या ऐसे ब्रह्मबल को भी धिक्कार नहीं है ?"

परन्तु यह भी कुचोद्य ही है, क्योंकि प्रकृत में विदेशी सहायता का कोई प्रसङ्ग ही नहीं है। वहाँ तो स्पष्ट है कि कामधेनु ने ही कहा था—"मुझे राजकर्मचारी दण्डित कर रहे हैं, मैंने क्या अपराध किया जो आपने मुझे त्याग दिया।" ब्रह्मर्षि ने कहा—"मैं नहीं त्याग रहा हूँ। वह राजा है, उसके समान मेरे पास बल नहीं है।"

कामधेनु ने कहा—"आपके बल के सामने उस राजा का कुछ भी बल नहीं है। ब्रह्मतेजसम्पन्न आप मुझे आज्ञा दें तो मैं विश्वामित्र के बल और दर्प को नष्ट कर सकती हूँ।"

इस प्रकार कामधेनु की प्रार्थना पर ही वसिष्ठ ने उसे सेनानिर्माण का आदेश दिया था। सुरभि ने वसिष्ठ के ब्रह्मबल के सहारे अपनी शक्ति से पह्लव, शक आदि का निर्माण किया था। किसी विदेशी से सहायता प्राप्त नहीं की थी। विश्वामित्र के बल से उस बल के नष्ट हो जाने पर पुनः वसिष्ठ ने आज्ञा दी। तब पुनः सुरभि ने हुङ्कार से सूर्यतुल्य काम्बोजों का निर्माण किया, अपने ऊधस् से शस्त्रपाणि बर्बरों का निर्माण किया, योनिदेश से यवनों का निर्माण किया, गोमय के स्थान से शकों की उत्पत्ति की एवं रोमकूपों से म्लेच्छ आदि की उत्पत्ति कर विश्वामित्र के बल को नष्ट कर दिया—

> "तस्या हुङ्कारतो जाताः काम्बोजाः रविसन्निभाः।
> ऊधसश्चाथ सम्भूता बर्बराः शस्त्रपाणयः॥
> योनिदेशाच्च यवनाः शकृद्देशाच्छकाः स्मृताः।
> रोमकूपेषु म्लेच्छाश्च हारीताः सकिरातकाः॥" (वा० रा० १।५५।२,३)

वस्तुतः कौसल्यायन वेदों, शास्त्रों तथा महर्षियों के यौगिक चमत्कारों में विश्वास नहीं रखते। अतएव उन्हें विदेशी सहायता की बात ही सूझी। फिर, जब स्वयं विश्वामित्र ने ही अपने महान् बल को वसिष्ठ के ब्रह्मबल से तुच्छ समझा है, तब दूसरे की विपरीत कल्पना का मूल्य ही क्या है ?

जनकसुता जानकी के सम्बन्ध में वे अपनी अटकल लगाते हैं—"वह राजा जनक को हल चलाते समय खेत में मिल गयी थी। पृथ्वीपुत्र तो हम सभी हैं, किन्तु क्या बिना माता-पिता के संयोग से मात्र पृथिवी से किसी की उत्पत्ति हुई है ? अतः उसके यथार्थ माता-पिता अज्ञात रहे होंगे।" यह भी कथन मिथ्या ही है; क्योंकि वाल्मीकिरामायण में राम ने ऐसा कोई विचार प्रकट नहीं किया है। श्रीराम परम आस्तिक थे। उन्हें शास्त्रों में विश्वास था। देवताधिकरण के अनुसार स्थूल पृथ्वी से अतिरिक्त उसकी एक दिव्य अधिष्ठात्री शक्ति देवता भी शास्त्रप्रमाण बल से सिद्ध है। सीता उसी की पुत्री थी।

सामान्य लोगों की उत्पत्ति में द्यौ, पर्जन्य, भूमि, पुरुष और स्त्री इन पाँच अग्नियों की अपेक्षा होती है। द्रोण स्त्रीनिरपेक्ष चार अग्नियों से ही उत्पन्न हुए थे। सीता, द्रौपदी, धृष्टद्युम्न आदि की उत्पत्ति माता-पिता की अपेक्षा न रखकर तीन ही अग्नियों से हुई थी। दृष्ट ही माननेवाला प्रत्यक्षप्रामाण्यवादी चार्वाक होता है। उसकी दृष्टि में प्रत्यक्ष से भिन्न कोई प्रमाण नहीं है। परन्तु बुद्ध ने अनुमान प्रमाण को भी स्वीकार किया है। बौद्ध तो बुद्ध को सर्वज्ञ मानकर उनके वचनों को भी प्रमाण मानते हैं। पर जब हम सब में कोई सर्वज्ञ नहीं होता तो बुद्ध को ही सर्वज्ञ क्यों माना जाय? यदि बुद्ध में अन्य लोगों की अपेक्षा विलक्षणता मान्य है तो सीता और राम के सम्बन्ध में भी शास्त्रोक्त विलक्षणता क्यों न मान्य हो।

कौसल्यायन के कल्पित राम कहते हैं—"मेरे सामर्थ्य को बढ़ा चढ़ा कर दिखाने के लिए उस धनुष का भी ऐसा वर्णन किया गया है कि पाँच हजार मनुष्यों द्वारा लायी गयी पेटिका में वह धनुष रखा था, यह वर्णन अयथार्थ है।" पर वस्तुतः मिथ्या वासुदेव का यह कथन ही अयथार्थ है, क्योंकि लाखों वर्ष पुरानी घटना जानने में भी तो प्रमाण की अपेक्षा होती है। वाल्मीकि के राम ने ऐसा कुछ भी नहीं कहा है। उनके नाम पर मिथ्या कल्पना करनेवाले बौद्ध भिक्षु कौसल्यायन ने साधारण नैतिकता को भी तिलाञ्जलि दे दी है। शिव एवं विष्णु के धनुष को सर्वसाधारण धनुष जैसा नहीं कहा जा सकता। कौसल्यायन के अनुसार—"मेरा इरादा उसे तोड़ने का नहीं था, वह यूँ ही टूट ही गया।" यह कथन भी निष्प्रमाण होने से मिथ्या है।

अयोध्याकाण्ड में भी इसी तरह **वाल्मीकिरामायण** के नाम पर मिथ्या कल्पित कौसल्यायन के राम ने अनर्गल प्रलाप किया है।

वे कहते हैं—"मेरे बारे में कहा गया है कि मैं साक्षात् विष्णु था और परम प्रचण्ड रावण के वध की अभिलाषा रखनेवाले देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्यलोक में अवतीर्ण हुआ था। पर इस कथन से मेरा वास्तविक रूप प्रच्छन्न हो गया है। एक तरफ मुझे विष्णु कहा गया, दूसरी तरफ मैं स्वर्ग की आशा से धर्म का पालन करता हूँ।"

यह भी काल्पनिक ही राम का कहना है, वास्तविक राम का नहीं। अतएव ऐसी वस्तुओं को राम-कहानी का रूप देना पाखण्ड से सत्य को ढँकनामात्र है और पूर्वप्रतिज्ञा के विरुद्ध ही है। पीछे कहा गया है कि वाल्मीकि ने सत्य सत्य बातें कही हैं; पर अब वाल्मीकि की बातों को झुठलाने का निरर्थक यत्न किया जा रहा है—

"स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥" (वा० रा० २।१।७)

इस वाल्मीकिवचन से स्पष्ट ही राम का विष्णु होना सिद्ध है और यह श्लोक क्षेप भी नहीं है। तभी मिथ्या वासुदेव को इसका विरोध करना पड़ा। इसी प्रकार अनेक मिथ्या कल्पनाएँ जो वाल्मीकि के राम ने कभी भी नहीं सोची थीं उन्हीं के नाम से निर्लज्ज कौसल्यायन ने उठायी हैं।

राजा दशरथ वेदादि शास्त्रों के अनुयायी एवं वेदोक्त धर्म के पालक थे। सत्यप्रतिज्ञ थे। कैकेयी को प्रदत्त दो वरदानों का पालन करना अपना कर्तव्य समझते थे।

अतएव कौसल्यायन का यह प्रलाप निरर्थक ही है कि "यह कैसा धर्मबन्धन था। क्या यह सरासर मूर्खता का बन्धन नहीं था। कैकेयी के मोहपाश में बँधे हुए मेरे पिता धर्मबुद्धि से सर्वथा हाथ धो बैठे थे, क्योंकि बिना यह जाने कि वह क्या वर माँगेगी, दुष्टा कैकेयी को उन्होंने वरदान दे दिया था। उनकी दृष्टि में उस वरदान का तो मूल्य था, किन्तु अपनी सारी प्रजा को उन्होंने जो सूचना दी थी कि ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण मैं राजगद्दी पर बैठाया जाऊँगा, उस वचन का कुछ भी मूल्य न था।"

वेदादिशास्त्रविमुख बौद्ध भिक्षु को यह नहीं विदित हो सका कि ज्ञानपूर्वक की गयी प्रथम प्रतिज्ञा के विरुद्ध होने से तदुत्तरकालीन विचारों का कोई मूल्य नहीं होता। इसके अतिरिक्त प्रजा के सामने कोई प्रतिज्ञा की बात भी नहीं थी। राम को राजगद्दी देने का विचार महाराज का ही था। उन्होंने उसी सम्बन्ध में प्रजा की सम्मति प्राप्त की थी।

किं बहुना इस बौद्ध की रामकहानी में भूल से ही कोई एकाध बात सत्य होगी। प्रायः सबकी सब बातें मनगढ़न्त मिथ्या दुष्कल्पनाएँ ही प्रभूत हैं। जो **वाल्मीकिरामायण** में नहीं है, उसकी कल्पना की गयी है और **रामायण** में उक्त बातों को झुठलाया गया है। फिर भी झूठ के आधार पर कहा गया है कि यह वाल्मीकि के अनुसार है। मिथ्या वासुदेव के मुख से कहलाया गया है कि "मुझसे भी गलती हो गयी जो मेरे पिता ने की थी, बिना यह जाने कि पिता मुझे क्या कहना चाहते हैं और सचमुच कहना चाहते हैं या नहीं मैंने कैकेयी को कह दिया कि मैं प्रतिज्ञा करता हूँ राजा को जो अभीष्ट है उसे मैं पूर्ण करूँगा। राम एक ही बात कहनेवाला है इत्यादि।"

वस्तुतः इससे बढ़कर क्या दुष्टता होगी कि परम पितृभक्त एवं सत्यनिष्ठ राम के द्वारा अनार्य शब्द कहलवाया जाय क्या इसी तरह बुद्ध की कथाओं में भी मनमानी कल्पना करना इस नास्तिक को अभीष्ट होगा?

बुद्ध स्वयं अहिंसा एवं सत्य के पुजारी नहीं थे। वे एवं उनके प्रमुख शिष्य वाममार्गी थे, क्या इस कल्पना का प्रतिरोधक कोई प्रमाण उस नास्तिक के पास है?

वाल्मीकिरामायण के अनुसार जाबालि ने नास्तिकमत का आश्रयण कर राम को वनसे लौटाने का प्रयत्न किया था, किन्तु राम ने उसे धर्मविरुद्ध कहकर तथागत बुद्ध आदि नास्तिकों को चोर के समान दण्डनीय कहा, किन्तु **वाल्मीकिरामायण** में भी स्पष्ट उल्लेख रहने पर भी निन्दा करते हुए कौसल्यायन के कल्पित मिथ्या वासुदेव कहते हैं–"मैं उसके प्रस्ताव से क्यों सहमत न हो सका। इसका कारण मैंने न उसपर प्रकट किया, न किसी अन्य पर, किन्तु मैंने देखा जाबालि के तर्क बड़े जोरदार थे" पर यह निराधार ही है। जो बात राम ने जाबालि को नही बतायी, उसका ज्ञान कौसल्यायन को कैसे हो गया? जाबालि ने बौद्ध मत का समर्थन किया था। इसी लिए बड़ी तत्परता से कौसल्यायन ने जाबालिप्रोक्त बौद्धमत का विवरण बड़े चाव से दिया है--"ऋतुमती माता के द्वारा गर्भ में धारण किया हुआ वीर्य और रज का परस्पर संयोग ही पुरुष के जन्म का वास्तविक कारण होता है। पिता तो एक निमित्त मात्र है। यदि यहाँ दूसरे का खाया हुआ अन्न दूसरे के शरीर में चला जाता है तो परदेश में जानेवालों के लिए श्राद्ध ही कर देना चाहिए। उन्हें मार्ग का भोजन (पाथेय) देना उचित नहीं। जाबालि की बातें काफी बुद्धिसङ्गत थीं, किन्तु मैं भरत या जाबालि के कहने से अयोध्या वापिस चलने की तैयारी कर लेता तो अभी तक मैंने जो सुयश कमाया था, वह सारा धूल में मिल जाता।" पर यदि जाबालि की बातें काफी तर्कपूर्ण थीं तो बौद्ध मत भी टिक नहीं सकता; क्योंकि बौद्ध मत में भी इस लोक में किये गये शुभाशुभ कर्मों का फल जन्मान्तर में मान्य है। दूसरों की सेवा करने के लिए, दुःख दूर करने के लिए धन, सम्पत्ति तथा प्राण देनेवाले प्रशंसनीय होते हैं। अतः लङ्कावतारसूत्र आदि बौद्ध ग्रन्थकारों को परलोक मानना ही पड़ा था। यदि यह ठीक है, तब तो पित्रादि के उद्देश्य से ब्राह्मणादि को भोजन कराने का भी उत्तम परिणाम पित्रादि को प्राप्त हो ही सकता है।

कौसल्यायन के मिथ्या वासुदेव कहते हैं–"किसी वाल्मीकि ने मेरे मुख में यह बात डाल दी है।" वस्तुतः डाल नहीं दी, राम के समकालीन वाल्मीकि ने आर्ष दृष्टि से सत्य घटना को जानकर ही लिखा है। श्रीराम ने कहा—"आपकी बुद्धि विषम मार्ग में स्थित है। आप वेदविरुद्ध मार्ग पर आरूढ़ हैं। आप घोर नास्तिक और धर्म के मार्ग से दूर हैं। ऐसी पाखण्डी बुद्धि के द्वारा अनुचित विचार का प्रचार करनेवाले आपको पिताजी ने अपना याजक बनाया। उनके उस कार्य की मैं निन्दा करता हूँ।" श्रीराम ने जाबालि से यह भी कहा कि आपमें और

चोर में कोई अन्तर नहीं है और तथागत को नास्तिक जानो। इसलिए जनता हित की दृष्टि से नास्तिक को मुख न लगाये, उसका मुख न देखे। पर इस वाल्मीकिप्रोक्त सत्य बात को झुठलाने का प्रयत्न करते हुए मिथ्या वासुदेव कहते हैं—"मैंने कभी किसी के बारे के ऐसे हल्के शब्दों का प्रयोग नहीं किया। गौतम बुद्ध का धर्म बुद्धिप्रधान था। वे वेद को ही सत्यविद्याओं का भण्डार नहीं मानते थे। किसी वर्णविशेष को अन्य वर्णों की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं मानते थे और वे किसी तथाकथित ईश्वर को सृष्टि का रचयिता नहीं मानते थे; लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि वह शुभाशुभ कर्म और उनसे मिलनेवाले फल को न माननेवाले नास्तिक थे। यह जो मेरे मुँह में डाला गया है कि जो दण्ड चोर को दिया जाता है, वहीं नास्तिक को दिया जाय और उसकी शक्ल न देखी जाय। यह मेरे प्रति सरासर अन्याय है।" वस्तुतः अन्याय तो यह है जो परम्परा से प्रचलित **रामायण** के राम द्वारा कही हुई बातों को झुठलाने का प्रयास किया जा रहा है। जब मनु वेदनिन्दक को स्पष्ट ही नास्तिक कहते हैं—**"नास्तिको वेदनिन्दकः।"** (म० २।११) तब वेदनिन्दक बुद्ध को राम नास्तिक क्यों न कहते ? जब कोई सृष्टिरचयिता ईश्वर बुद्ध को मान्य नहीं, तो कर्मफलदाता भी कौन हो सकता है ? जीव अल्पज्ञ है, कर्म स्वयं जड़ है। फिर फलदाता कौन होगा ? वस्तुतः परमेश्वर ही अनन्त ब्रह्माण्ड के अनन्त प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों का वेदादि शास्त्रों के अनुसार निर्णयकर फल देते हैं—इस तथ्य को झुठलानेवाले बुद्ध नास्तिक ही हैं। कौसल्यायन के मिथ्या राम ने ठीक वाल्मीकि के वास्तविक राम से विपरीत मत व्यक्त किया और उन्होंने कहा—"निःसंदेह मुझे इस बात पर विचार करना चाहिए था कि राजा ने मुझसे स्वेच्छा से वनगमन के लिए आज्ञा नहीं दी थी। वे तो मात्र माता कैकेयी द्वारा ठगे गये थे। ऐसी आज्ञा का पालन न बुद्धिगम्य था, न आत्महितसाधक था तथा न परहितसाधक ही था। तब भी उस समय मेरी यही धारणा थी कि पिता के वचनों को, चाहे जैसी भी परिस्थिति में मुँह से निकले हों, शिरोधार्य करना चाहिये।" इसका अर्थ यह है कि उस समय राम का निर्णय भ्रान्तिपूर्ण था, परन्तु ऐसी कल्पना भी निष्प्रमाण ही है। कौसल्यायन के मिथ्या राम की धारणाओं तथा अनर्गल प्रलापों से परिपूर्ण 'राम की कहानी राम की जबानी' से कौसल्यायन ने बौद्धमत में रहे सहे विश्वास को भी नष्ट कर दिया है।

यद्यपि विभिन्न कथनों के अन्त में **वाल्मीकिरामायण** के कुछ श्लोक दिये गये हैं; परन्तु वह केवल धोखा है। शास्त्र एवं धर्म के विपरीत जो कुछ श्रीराम के नाम पर कौसल्यायन ने कहा है, वह सब अत्यन्त निर्मूल है।

"अनसूया स्वयं शिथिल अङ्गवाली वृद्धा थी। बुढ़ापे के कारण उसके बाल सफेद हो गये थे। वह प्रवात में कदली के तुल्य काँपती थी। उसने सीता को दिव्य माल्य, आभरण एवं अङ्गराग कहाँ से दिये ?" यह कौसल्यायन के कल्पित राम की समझ में नहीं आता। परन्तु वाल्मीकि के राम का तो ऋषियों के तपोबल पर विश्वास है। उस तपस्विनी ने अपने तपोबल से ही वैसी वस्तुएँ सीता को प्रदान की थीं। यही क्यों, भरद्वाज भी तो अकिञ्चन मुनि ही थे; परन्तु उन्होंने भरत का जो स्वागत किया था, क्या वह किसी सम्राट् के यहाँ भी सम्भव है ?

अरण्यकाण्ड में कौसल्यायन के कल्पित राम कहते हैं—"वह राक्षस मेरे हाथ से मारा गया, इसलिए स्वर्ग गया; पर ऐसे लोगों का मैं क्या करूँ, जो किसी की पत्नी को उठा ले जानेवाले राक्षस के भी स्वर्ग जाने में विश्वास करते हैं।" परन्तु यह भी सोचना चाहिये कि अन्त में किसी भी पाप का प्रायश्चित्त तो होता ही है। विशेषतः राजदण्ड के द्वारा किसी भी पाप की निवृत्ति धर्मशास्त्रों को मान्य ही है। जैसे पापों के निवृत्त्यर्थ अन्यान्य प्रायश्चित्त मान्य हैं वैसे ही राजदण्ड भी एक महान् प्रायश्चित्त मान्य है ही। श्रीराम तो साक्षात् परब्रह्म हैं। उनके नामोच्चारणमात्र से प्राणियों के सब पाप निवृत्त होते हैं। फिर जिसको साक्षात् श्रीराम का दर्शन हो जाय और उनके द्वारा स्पृष्ट बाणों से जिसका वध हो उसके कल्याण में संशय की कोई बात ही नहीं उठ सकती है।

कौसल्यायन के राम कहते हैं—"उस समय तो मैंने सीता के गले यह बात उतार दी थी कि महर्षि लोग यद्यपि शाप से राक्षसों को भस्म कर सकते हैं; किन्तु वे ऐसा इसलिये नहीं करते कि ऐसा करने से उनका तप क्षीण हो जा सकता है। किन्तु अब मैं सोचता हूँ कि यदि शाप देने से ऋषियों और मुनियों का तप क्षीण हो सकता था तो क्या हम दोनों भाइयों के हाथ से राक्षसों का वध कराने में उनका तप क्षीण नहीं हुआ होगा ?" यद्यपि यह शङ्का राम को नहीं हो सकती थी, क्योंकि वे सर्वज्ञ तथा शास्त्रज्ञ भी थे। तथापि कौसल्यायन के कल्पित राम तो शास्त्रसम्बन्धशून्य होने से वैसी अनर्गल शङ्का कर सकते हैं। न्यायाधीश के द्वारा दिया गया मृत्युदण्ड अपराधी और संसार के कल्याण का हेतु होता है; परन्तु वही मृत्युदण्ड यदि कोई अन्य देता है तो उसे पाप का भागी होना पड़ता है। इस तरह एक क्षत्रिय राजा, जिसका अपराधियों, अन्यायियों को दण्ड देना धर्म है, यदि राक्षसों का वध करता है तो उसमें तपःक्षय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

कौसल्यायन के कल्पित राम कहते हैं—"अगस्त्य मुनि की स्त्रियों के बारे में बहुत ही बुरी राय थी। ....परन्तु मेरा तो अनुभव मुनि के अनुभव से सर्वथा भिन्न था।" यह भी निष्प्रमाण है। अपने दुर्विचारों को राम पर आरोपित करना पाप है। वस्तुतस्तु उक्त प्रसङ्ग में अगस्त्य मुनि ने सीता की प्रशंसा करते हुए साधारण स्त्रियों का स्वभाव बतलाया था। यह सुकुमारी भर्तृस्नेह से प्रेरित होकर राज्य-सुख त्यागकर दोषों से पूर्ण वन में आयी है। तुम्हारा अनुसरण करके इसने दुष्कर कर्म किया है। आम तौर पर स्त्रियाँ अच्छी अवस्था में पति का अनुसरण करती हैं और आपत्तिदशा में उसे त्याग देती हैं। स्त्रियाँ विद्युत् के चाञ्चल्य और शस्त्रों की तीक्ष्णता एवं गरुड़ तथा अनिल की शीघ्रता का अनुसरण करती हैं। परन्तु यह तुम्हारी भार्या सीता इन दोषों से विवर्जित, श्लाघ्या तथा देवियों में अरुन्धती के समान प्रशंसनीय है। श्रीराम यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए थे—

"एषा च सुकुमारी च खेदैश्च न विमानिता।
प्राज्यदोषं वनं प्राप्ता भर्तृस्नेहप्रचोदिता॥
यथैषा रमते राम इह सीता तथा कुरु।
दुष्करं कृतवत्येषा वने त्वामभिगच्छती।
एषा हि प्रकृतिः स्त्रीणामासृष्टे रघुनन्दन।
समस्थमनुरज्यन्ते विषमस्थं त्यजन्ति च॥
शतह्रदानां लोलत्वं शस्त्राणां तीक्ष्णतां यथा।
गरुडानिलयोः शैघ्र्यमनुगच्छन्ति योषितः॥
इयं तु भवतो भार्या दोषैरेतैर्विवर्जिता।
श्लाघ्या च व्यपदेश्या च यथा देवेष्वरुन्धती॥" (वा० रा० ३।१३।३-७)

"रावण ने सीता को दोनों भुजाओं में आबद्ध कर लिया (पृ० १०५)" यह अशुद्ध अनुवाद है। श्लोक निम्नोक्त है—

"वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण सः।
ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना॥" (वा० रा० ३।४९।१७)

रथ पर बैठाने के लिए रावण ने बायें हाथ से सीता के बालों का और दक्षिण हाथ से सीता के दोनों ऊरुओं के पश्चिम भाग को ग्रहण किया था। श्रीराम परब्रह्म परमेश्वर होने पर भी रावण के वधार्थ मनुष्यरूप में प्रकट हुए थे। और उसी प्रसङ्ग में मानवरूप मानवलीलाओं का अनुसरण उन्होंने किया था। तथा च पत्नी के वियोग में सामान्य मनुष्यों के जैसे शोक एवं सन्ताप उन्हें हुए थे।

"राम देखि नर चरित तुम्हारे । बुध हर्षहिं जड़ होहिं दुखारे ।"(रा० मा० २।१२५।८)

अकम्पन, मारीच आदि राक्षसों ने भी श्रीराम की ब्रह्मरूपता का अनुभव किया था । फिर भी बौद्ध एवं जैन प्रायः बहिर्मुखों को राम में लौकिकता ही परिलक्षित होती है ।

किष्किन्धाकाण्ड में लौकिक नरलीला का ही अनुसरण करते हुए श्रीराम ने सीता के विरह में व्याकुल होकर मानव-लीला व्यक्त की है ।

वालिवध पर वाली ने जो श्रीराम पर आक्षेप किया, श्रीराम ने उसका समाधान कर दिया और स्वयं वाली ने अपना अपराध एवं श्रीराम की निर्दोषता मान ली । फिर भी कौसल्यायन के कल्पित राम कहते हैं—"उस समय जो मैंने वाली को उत्तर दिया, उससे आज मेरा ही समाधान नहीं होता है । यदि किसी अपराध का दण्ड दिया जाता है तो उसपर पहले आरोप लगाया जाता है । उसे अपने आपको निर्दोष करने का अवसर दिया जाता है । यदि वह अपने को निर्दोष न सिद्ध कर सके तभी उसे राजदण्ड दिया जाता है । यह कैसा राजदण्ड था कि मैंने वाली को छिपकर मार डाला था ।" परन्तु यह कुतर्क निर्मूल है, कारण कि जहाँ न्यायाधीश दण्डदाता को अपराध का निश्चय न हो, वहीं यह नियम होता है । मरकर प्राणी यमराज के वश में जाकर दण्डस्थान में भेज दिया जाता है । वहाँ उसके पाप का लेखा-जोखा तथा सूर्य, चन्द्र, दिन, रात आदि कर्म के साक्षी भी विद्यमान रहते हैं । यहाँ भी राम ने उसके अपराध का निश्चय करके ही दण्ड दिया । वाली के पूछने पर राम ने बता भी दिया था और वाली इसपर निरुत्तर भी हो गया था । फिर दूसरे को शङ्का उठाने का अवकाश ही कहाँ ?

श्रीराम ने कहा था—सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता है । मैंने उसका राज्य और स्त्री दिलवाने की प्रतिज्ञा की है । शङ्कापक्षी के राम कहते हैं—"यह ममाधान लाचारी का था, क्योंकि ऐसी प्रतिज्ञा ही क्यों की । यह प्रतिज्ञा स्वार्थमूलक थी । सीता की तलाश में मदद करने के कारण वह प्रतिज्ञा थी ।" परन्तु यह भी कुचोद्य कुकल्पना व्यर्थ ही है, क्योंकि एक मित्र दूसरे मित्र का हित करता है । परस्पर उपकार करना ही मित्रता का स्वरूप है । इसमें अनौचित्य का प्रश्न ही नहीं उठता ।

विचार केवल यह होना चाहिये कि वाली ने सुग्रीव के साथ अन्याय किया था या नहीं । उसकी स्त्री तथा सम्पत्ति का हरण किया था कि नहीं । यदि किया था तो उसको दण्ड देना किसी प्रकार भी अनुचित नहीं कहा जा सकता । मित्र का शत्रु शत्रु होता है, यह नीति भी ठीक ही है । इसके बिना कोई भी शासन सुस्थिर रह ही नहीं सकता ।

कौसल्यायन कहते हैं—"मृगया करनेवाले लोग सावधान, असावधान, विमुख तथा भागनेवाले मृगों को भी मारते हैं । ऐसा करने पर भी उनको दोष नहीं लगता । तुम शाखामृग होने से वध्य हो । यदि कोई आज मुझसे प्रश्न करे कि क्या यह हो सकता है कि आप एक व्यक्ति को मानव भी मानें और शाखामृग भी मानें, तो मुझे निरुत्तर हो जाना पड़ेगा । यदि वाली मानव नहीं था, शाखामृगमात्र था और हमें मानवदण्डों से या क्षत्रिय-धर्म के अनुसार उसे कैसे भी मार डालने का अधिकार प्राप्त था, तो फिर एक शाखामृग से यह आशा कैसे कर सकते थे कि वह भाई की पत्नी का परहेज करे । और उसपर यह प्रतिबन्ध कैसे लगा सकते हैं कि वह अपने छोटे भाई की स्त्री के साथ समागम न करे । क्या चतुष्पादों में ऐसे प्रतिबन्ध सुने या माने गये हैं ? मुझे स्वीकार करना चाहिए कि वाली की हत्या करना मेरी गलती थी और गलती के लिए इतिहास मुझे कभी भी क्षमा नहीं करेगा और न उसे क्षमा करना चाहिए ।

राजा का पुत्र होने से उसका पुत्र ही राजगद्दी का अधिकारी हो सकता था । प्रश्न था बड़े भाई के मरने पर उसका छोटा भाई गद्दी सम्भाले अथवा पुत्र ? मुझे सुग्रीव के पक्ष में ही निर्णय देना पड़ा । मैं ऐसा न करता

तो सुग्रीव से मैं सीता को खोज निकालने के कार्य में किसी प्रकार की सहायता की आशा कैसे कर सकता था ?" इस प्रकार की उक्तियाँ मिथ्या वासुदेवरूप कल्पित राम की ही हो सकती हैं। वाल्मीकिवर्णित मर्यादापुरुषोत्तम राम तो ज्ञान, विज्ञान, नीति, प्रीति और परमार्थ के महान् वेत्ता थे। वे ऐसी ऊल-जलूल बातें सोच भी नहीं सकते थे।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार श्रीराम ने वाली द्वारा किये गये विविध अधिक्षेपों का उत्तर देते हुए कहा था कि धर्म, अर्थ और काम के सम्बन्ध में और लौकिक व्यवहार के ज्ञान के बिना बालकपन के कारण तुम मेरी विगर्हणा कर रहे हो, बुद्धिसम्पन्न, आचार्य वृद्धों से बिना प्रश्न किये, वानर-स्वभावसुलभ चपलता के कारण मुझसे कहना चाहते हो। यह शैल, वन, कानन समेत सम्पूर्ण भूमि इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के शासन में है। मृग, पक्षी तथा मनुष्यों के निग्रह-अनुग्रह का उन्हें अधिकार है। इस समय धर्मात्मा भरत समस्त भूमि के शासक हैं। वे स्वयं धर्म, काम तथा अर्थ के तत्त्वज्ञ हैं। वे सत्यवान् तथा ऋजु हैं। उनमें नय और विनय तथा सत्य और विक्रम सुव्यवस्थित हैं। वह देश और काल के भी ज्ञाता हैं। उन्हीं के धर्मकृत आदेश से पृथ्वी में धर्मविस्तार की दृष्टि से हम भ्रमण करते हैं। धर्मात्मा भरत के शासन में धर्म का विप्रिय करना किसी के लिए भी क्षम्य नहीं है। तुम काम-प्रधान होने के कारण राजमार्ग पर प्रतिष्ठित नहीं हो। ज्येष्ठ भ्राता तथा पिता और जो विद्या प्रदान करता है—ये तीनों ही धर्मपथ पर वर्तमान होकर पिता के तुल्य ही माने जाते हैं। छोटा भाई, पुत्र तथा शिष्य—ये तीनों ही पुत्र-वत् चिन्त्य होते हैं। सत्पुरुषों का सूक्ष्म धर्म परम अविज्ञेरूप से सब प्राणियों के हृदय में रहता है। वह शुभ-अशुभ सब जानता है। तुम स्वयं चपल वानर अकृतात्मा चपल वानरों के साथ वैसे ही विफल मन्त्रणा करते हो जैसे जात्यन्ध जन्मान्ध लोगों के निर्देशन में चलते हैं। तुम भ्राता की भार्या के साथ सनातन मर्यादा को छोड़कर बर्ताव करते हो। विशेषतः सुग्रीव जीवित है, उसकी भार्या रुमा, जो तुम्हारी स्नुषा के तुल्य है, उसमें तुम रमण करते हो, इसी लिये तुम्हें दण्ड दिया गया है। लोकवृत्त पराङ्मुख तुम्हारा दण्ड के द्वारा निग्रह युक्त ही है।

कहा जा सकता है कि मनुष्यों के सम्बन्ध में ही विधि-निषेधरूप शास्त्र प्रवृत्त होते हैं और वाली मनुष्य नहीं किन्तु शाखामृग है। आगे स्वयं श्रीराम ने भी कहा है कि मृग होने के कारण उनके द्वारा उसको मारना दोष नहीं। पर यह कहना ठीक नहीं है, क्योंकि मृग होने पर भी मनुष्यों के तुल्य उनमें राज्य, राजा आदि का व्यवहार होता था। मनुष्यों जैसा ही उनमें ज्ञान भी था; अतः उनमें भी विधि-निषेधशास्त्र की प्रवृत्ति हो सकती है। इसके अतिरिक्त इन्द्र आदि देवता अग्निहोत्र आदि धर्म के अधिकारी न होने पर भी निषेध का अतिक्रमण करने से प्रायश्चित्त के अधिकारी अक्सर हो जाते हैं। अतएव वृत्रवध के कारण ब्रह्महत्या आदि दोष इन्द्र को लगे ही थे। उसी प्रकार की स्थिति वाली, सुग्रीव आदि की भी है। वे लोग ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न थे, अतः निषेध के अतिक्रमण में उनको भी दोष होना उचित ही था।

अग्निहोत्र आदि में देवताओं का तो अनधिकार इसलिये था कि कर्मों में इन्द्र आदि देवताओं के ही उद्देश्य से हविष् आदि प्रदान किया जाता है। ऐसी स्थिति में इन्द्रादि द्वारा अर्चनीय अन्य इन्द्र आदि न होने से वे कर्म में अनधिकृत होते हैं। फिर भी जिन दान आदि कर्मों में इन्द्रादि यजनीय देवताओं की अपेक्षा नहीं है, उनमें इन्द्र आदि का भी अधिकार मान्य ही है। ब्रह्मविद्या में उनका अधिकार मान्य है। ये सब बातें पूर्वमीमाँसा तथा उत्तर-मीमांसा में निर्णीत हैं। इसी प्रकार का अधिकार वाली आदि वानरों का भी है। सज्ञान अन्य पशु-पक्षियों का भी ऐसा ही अधिकार होता है। अन्य दृष्टि से यजनीय देवता का वाचक शब्द अन्तर्यामी परमेश्वर का वाचक होता है। इस दृष्टि से यज्ञ आदि में भी देवताओं का अधिकार मान्य है। तभी इन्द्र आदि का भी यजन कहीं कहीं श्रुत है। उनमें भी बृहस्पति, चन्द्र, बुध आदि में ब्राह्मणत्व एवं इन्द्र आदि में, वैवस्वत मनु आदि के समान, क्षत्रियत्व आदि मान्य हैं। चन्द्रादि का यज्ञ भी प्रसिद्ध है। वेदों में त्रैवर्णिकों का अधिकार है। यहाँ त्रैवर्णिक पद वेद-वेदार्थज्ञानवान् का उपलक्षण ही होता है—यही व्यास, वाल्मीकि प्रभृति ऋषियों का आशय है।

मार्कण्डेयपुराण के अनुसार जैमिनि ने विन्ध्यारण्यनिवासी तत्त्वज्ञ पक्षियों से ज्ञान प्राप्त किया था। इससे पक्षियों का भी तत्त्वज्ञान में अधिकार सिद्ध है। गृध्रराज जटायु का भगवान् राम ने ही दाह आदि संस्कार किया था। सम्पाति ने भी अपने भ्राता का मरण सुनकर तर्पण किया था। यह सब **वाल्मीकिरामायण** से सिद्ध ही है। ये सब सामान्य वानर या पक्षी नहीं थे। कोई सूर्य के अंश से, कोई इन्द्र के अंश से, कोई ब्रह्मा के अंश से और कोई अग्नि के अंश से श्रीराम की सहायता के लिए वानररूप में अवतीर्ण हुए थे। वाली चारों समुद्रों में सन्ध्या के लिए जाता था। अतः वे निषेध के उल्लङ्घन से अवश्य दण्डनीय हैं। अपराध निश्चय न होने से ही प्रमाणरूप में साक्षी आदि की अपेक्षा होती है। यहाँ तो दण्ड देनेवाला और दण्ड पानेवाला—दोनों ही जिसे स्वीकार करते हैं उसके लिए सफाई पेश करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।

इसी तरह सुग्रीव की मैत्री का भी प्रश्न था। मित्र के शत्रु को शत्रु मान कर उसका वध भी नीतिशास्त्र सम्मत है ही—"**वयस्यस्योपकर्तव्यं धर्ममेवानुपश्यता**।" (वा० रा० ४।१८।२९) धर्मदृष्टि से तुम्हें भी धर्म का अनुवर्तन करते हुए मेरे द्वारा प्राप्त दण्ड को प्रायश्चित्तरूप में स्वीकार करना चाहिये। पाप की जानकारी होने से शिष्ट लोग स्वेच्छापूर्वक राजदण्ड की माँग करते है; जैसे लिखित महर्षि ने स्वयं जाकर राजदण्ड ग्रहण किया था। मनु ने दो श्लोक कहे हैं। धर्मकुशल लोगों ने उन्हें स्वीकार किया था। १—राजाओं से दण्ड पाकर पाप करनेवाले मनुष्य निर्मल होकर सुकृतियों के समान ही स्वर्ग को जाते हैं। २—दण्डरूप शासन या मोक्ष अर्थात् छुटकारा होने पर स्तेन पाप से मुक्त हो जाता है। पर स्तेन (चोर) का शासन न करने से राजा उस किल्बिष का भागी होता है—

"शक्यं त्वयापि यत्कार्यं धर्ममेवानुवर्तता।
श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ॥
राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥
शासनाद्वापि मोक्षाद्वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्॥" (वा० रा० ४।१८।३०-३२)

मेरे कुल के ही आर्य मान्धाता ने किसी के ऐसा ही पाप करने पर उसे दण्ड दिया था। अन्य राजाओं ने भी प्रमत्त पुरुषों द्वारा किये गये पापों की शुद्धि के लिए दण्डविधान किया है। उसी से पाप नष्ट होता है, इसलिए तुम्हें परिताप न करना चाहिये, यह शास्त्रानुसार ही है। हम लोग भी शास्त्रपरतन्त्र ही हैं, स्वतन्त्र नहीं। (वा० रा० ४।१८।३३-३५)

धर्मकोविंद मृगयार्थी भी शिकार में विविध जालों एवं कूट उपायों से मृगों को मारते हैं। दृश्य या प्रतिच्छन्न, भागते हुए, भयभीत हुए या विश्वस्त हुए मृगों को वे मारते हैं। प्रमत्त, अप्रमत्त और विमुख मृगों को मारना मृगया में धर्म ही है। इसलिए युद्ध बिना भी तुम्हारा वध अनुचित नहीं है। तुम स्वयं धर्म न जान कर परम्पराप्राप्त धर्म में स्थित होने पर भी मुझ पर आक्षेप कर रहे हो। वाली सन्ध्यावन्दन आदि करता था, शास्त्रज्ञ था। उस दृष्टि से भी पूर्वोक्त धर्मोल्लङ्घन के कारण उसका वध शास्त्रीय था। यदि केवल वह मृगमात्र था तो उस दृष्टि से मृगया के दृष्टान्त से उसके वध का समर्थन किया गया है। श्रीराम की उक्त बातों को सुनकर वाली दुःखी हुआ और उसे धर्म का निश्चय हो गया, इसलिए श्रीराम को कोई दोष न देकर उसने उन्हें निर्दोष ही माना और हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा—"नरश्रेष्ठ! आपने जो कहा है वह ठीक है। अपकृष्ट लोग प्रकृष्ठ लोगों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकते। मैंने प्रमाद से जो अप्रिय वचन कहे हैं, उनसे आप मेरे दोषों का विचार न करें; क्योंकि आप दृष्टार्थ, तत्त्वज्ञ हैं। प्रजा के हित में निरत हैं। कार्य-कारण निश्चय में आपकी अनन्यसदृश बुद्धि स्पष्ट है। धर्म से व्यतिक्रान्त मेरा धर्मयुक्त वाणी से रक्षण करें—

"एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम् ।
न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥
प्रत्युवाच ततो रामं प्राञ्जलिर्वानरेश्वरः ।
यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः ॥" (वा० रा० ४।१८।४४।४५।४८)

मिथ्या वासुदेव राम ने इन श्लोकों को छिपाकर अर्थ का अनर्थ किया है। वाली ने स्वयं अङ्गद की रक्षा की प्रार्थना की थी। श्रीराम ने वाली को आश्वस्त किया और तत्त्वार्थयुक्त साधुसम्मत वाणी से आश्वासन देकर कहा—"अब तुम्हें अपने सम्बन्ध में और हम लोगों के सम्बन्ध में चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि धर्म के सम्बन्ध में हमारा निश्चय तुम्हारी अपेक्षा अधिक है। जो दण्ड्य को दण्ड देता है और जो दण्डित होता है दोनों ही कार्य-कारण द्वारा कृतार्थ होते हैं। अवसाद को नहीं प्राप्त होते। तुम दण्ड-व्याज से विगतकल्मष होकर दिष्टमार्ग से अपनी धर्म्या प्रकृति पर स्थित हो गये हो। शोक, मोह और हृदयस्थित भय को त्याग दो। दैवविधान का कोई भी अतिवर्तन नहीं कर सकता। अङ्गद जैसे तुम्हारे संनिधान में स्वस्थ और प्रसन्न था वैसा ही सुग्रीव और मेरे संनिधान में सुखी रहेगा।" मधुर वचन से राम द्वारा धर्मपथानुवर्ती वार्ता सुनकर वाली ने कहा—मैंने अनजान में जो कहा था उसे क्षमा कीजिये—

"इदं महेन्द्रोपम भीमविक्रम प्रसादितस्त्वं क्षम मे हरीश्वर ।" (वा० रा० ४।१८।६६)

इसी तरह अन्य भी छोटी-छोटी बातों पर कौसल्यायन ने विचार किया है। हनुमान् महाबलवान् थे। उन्होंने अपना बड़ा रूप बनाया **"चकार रूपं महदात्मनस्तदा ।"** (वा० रा० ४।६६।३८)। पर सुन्दरकाण्ड के प्रसङ्ग में कौसल्यायन ने कहा है—"हनुमान् के बल-वैभव तथा बुद्धि का चमत्कार दिखानेवाली जो बालकथाएँ प्रचलित हैं, उन्हें ऐतिहासिक तथ्य मानने की कोई आवश्यकता नहीं है तथा गढ़नेवालों ने सचमुच कमाल किया है। हनुमान् के बारे में कहा है कि जब वे बालक थे तो उन्होंने सूर्य को अपने मुख में रख लिया था। उस सूर्य को जो पृथ्वी से भी कई गुना बड़ा है। फिर, यह भी कहा कि जब हनुमान्‌जी लङ्कापुरी जाने के लिए समुद्र पर से उड़े चले जा रहे थे तब सुरसा नाम की एक राक्षसी ने उन्हें निगल जाने के लिए अपना मुँह खोला और हनुमान्‌जी ने अपने शरीर का आकार इतना बढ़ा लिया कि वह किसी भी तरह उन्हें निगल न सकी। तब सुरसा ने अपना मुँह और अधिक खोला। हनुमान्‌जी ने भी अपना आकार और बढ़ा लिया। यह क्रम यहाँ तक चला कि हनुमान्‌जी सैकड़ों मील के हो गये, तब सुरसा सौ योजन की हो गयी। कुछ लोगों को आज भी ऐसी गप्पों में रस आता है।" पर साथ ही हनुमान् का समुद्र पार कर लङ्का जा पहुँचना इस बात पर कौसल्यायन भी विश्वास करते हैं। यह अर्धकुक्कुटीन्याय ही तो है। जब एक बन्दर सौ योजन समुद्र पार कर सकता है तो फिर उसके सम्बन्ध में और चमत्कार के न मानने में तर्क भी क्या है?

बुद्ध अपनी माता के पेट में से ऐसे दिखायी देते थे, जैसे शीशे के पात्र में कोई वस्तु दिखायी दे। बुद्ध को देखते ही गुरु के आश्रम की पाषाणमयी मूर्तियाँ उठ-उठ कर बुद्ध को प्रणाम करने लगीं। बुद्ध की उष्णीषरश्मि ब्रह्मलोक तक पहुँची। जब ऐसी बौद्ध जातकों की कथाएँ सत्य हो सकती हैं, तब आर्ष **वाल्मीकिरामायण** की उक्तियों में अप्रामाण्य का प्रसङ्ग ही क्यों?

वैदिक कथाएँ तो दर्शनों पर आधारित हैं। सूर्य तेजस्तत्त्व के प्रतिनिधि देवता हैं। हनुमान् वायुतत्त्व के प्रतिनिधि देवता हैं। संवर्गविद्या के अनुसार वायु में पृथ्वी, जल और तेज का अन्तर्भाव होता है। प्राण में वागादि इन्द्रियों का विलयन होता है। अतः हनुमान् के मुख में सूर्य का अन्तर्भाव असम्भव नहीं है। इस तरह सुरसा एक सात्त्विक दैवी प्रवृत्ति शक्ति है। हनुमान् ने जैसे छायाग्राहिणी तामसी शक्ति पर विक्रम से विजय प्राप्त की, राजसी

शक्ति लङ्किनी पर नियन्त्रण स्थापित किया, उसी तरह सात्त्विकी शक्ति सुरसा को भी अपनी दक्षता से वशीकृत किया था। यह उचित ही था और सम्भव भी था ही। **रामायण** केवल आधिदैविक ऐतिहासिक ही कथा नहीं है, किन्तु वह आध्यात्मिक कथा भी है। श्रीराम आत्मा हैं, हनुमान् शुद्ध मन हैं, संसार समुद्र है, देह लङ्का है। अहङ्कार रावण है। शान्ति सीता हैं। संसाररूप समुद्र पार करने में सात्त्विकी, राजसी और तामसी प्रवृत्तियाँ बाधिका होती हैं। शुद्ध मन को उनका मुकाबला करना पड़ता है। तामसी प्रवृत्तियों को सर्वथा समाप्त कर राजसी प्रवृत्ति का नियन्त्रण आवश्यक होता है। उसके पहले सात्त्विकी प्रवृत्तिशक्ति का आशीर्वाद ग्रहण करना पड़ता है। इन सब कामों के लिए धीरता, दक्षता, बुद्धिमत्ता, प्रबलता और पराक्रम की अपेक्षा होती है।

जो केवल प्रत्यक्षवादी हैं, वे तो हनुमान् के समुद्रोल्लङ्घन में भी विश्वास नहीं कर सकते। वे बुद्ध की सर्वज्ञता में भी विश्वास नहीं कर सकते, परलोक एवं कर्मफल में भी विश्वास नहीं कर सकते। जो अनुमान और आगम में विश्वास करते हैं, उनके लिए श्रीहनुमान् की बाललीलाओं में किसी प्रकार की असङ्गति नहीं हो सकती।

'यद्यपि हनुमान् ने सौ योजन की दूरीवाले समुद्र को पार किया था तो भी उन्हें किसी प्रकार की थकावट नहीं हुई' ऐसा वाल्मीकि का कथन है। कौसल्यायन कहते हैं—"जहाँ तक समुद्र की चौड़ाई और लम्बाई का प्रश्न है वह अयथार्थ है। १०० योजन का मतलब ८०० मील है। आज की लङ्का भारततट से मुश्किल से ३० या ३२ मील है।" परन्तु कौसल्यायन को मालूम होना चाहिए कि जिसे बौद्ध श्रीलङ्का कहते हैं वह सिंहलद्वीप है। लङ्का नहीं है। श्रीभागवत आदि में सिंहलद्वीप से अतिरिक्त लङ्काद्वीप का वर्णन है। विभीषण के आग्रह से श्रीराम ने लङ्का को अगम्य बना दिया था। यह कथा भी **पद्मपुराण** आदि में वर्णित है।

थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि ३२ मील ही लङ्का है; परन्तु कोई बन्दर या मनुष्य इतने बड़े समुद्र को भी बिना नाव, जहाज या वायुयान का आश्रयण किये क्या पार कर सकता है? कौसल्यायन **वाल्मीकिरामायण** को सत्य लेख मानते हैं, तो उनकी उक्ति को अप्रामाणिक कहना कहाँ तक सङ्गत है।

कौसल्यायन कहते हैं—"अब राम न मांस खाते हैं, न शराब पीते हैं, पाँचवें दिन जङ्गली फल मूल खाकर रह जाते हैं।"

"न माँस राघवो भुङ्क्ते न चैव मधु सेवते।
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम्॥" (वा० रा० ५।३६।४१)

यहाँ कौसल्यायन ने "अब" अपनी तरफ से मिलाया है, मूल में वैसा कोई भी शब्द नहीं है। मूल का अर्थ यह है—श्रीराम मधु, मांस का सेवन नहीं करते, सुविहित आरण्यक भक्त ही प्रातः, सङ्गव, मध्याह्न और अपराह्न इन चार कालों को बिताकर पञ्चम अर्थात् सायाह्न में भोजन करते हैं।

सीता ने अग्नि से प्रार्थना की थी—यदि मैंने पति की सेवा की है और यदि मुझमें तपस्या का बल है तो तुम हनुमान् के लिए शीतल हो जाओ, ऐसा ही हुआ। हनुमान् ने अपनी पूंछ से समस्त लङ्का जला दी; किन्तु स्वयं हनुमान्‌जी नहीं जले। इस चमत्कार में बौद्ध कौसल्यायन को भी इनकार करना असम्भव हो गया। समुद्र लांघकर हनुमान्‌जी अपने सैन्यदल में वापिस आये।

कौसल्यायन ने लिखा है कि "सब वानर मधुवन पहुँचे और सब ने जीभर मधुपान किया। स्वयं हनुमान् ने भी इतनी अधिक पी ली थी कि उसे होश नहीं रहा था।" परन्तु यह सब कौसल्यायन की कल्पना ही है। मधुवन में मधुर फल और मधु (शहद) पर्याप्त था। वे फल और शहद मादक भी थे। यहाँ मधुपद से शराब नहीं गृहीत है।

अन्यथा मधुशाला होती मधुवन का उल्लेख न होता, अतः मधुपान से शराव पीना और हनुमान्‌जी ने भी अधिक पी ली थी इत्यादि कल्पनाएँ निराधार हैं।

कौसल्यायन लिखते हैं कि "श्रीराम कहते हैं आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तु का अभाव है; यह बात मेरे मन में बड़ी कसक पैदा कर रही है। यहाँ जिसने मुझे ऐसा प्रिय संवाद सुनाया उसका मैं कोई वैसा प्रिय कार्य नहीं कर पा रहा हूँ" परन्तु यह उनका अनुवाद अशुद्ध है। मूल श्लोक है—

"इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम्॥"

सीतावियोगजनित दीनता के कारण मेरे मन की यह स्थिति और कष्ट पहुँचाती है कि जिसने मुझे प्रिय संवाद सुनाया उसका उसके सदृश उपकार नहीं कर रहा हूँ। यहाँ पुरस्कार देने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। क्यों ? श्रीहनुमान् किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखते हैं।

श्रीराम ने अपने पराक्रम से सुग्रीव को राज्य प्रदान किया। कोई भी वस्तु उनकी आज्ञा के अनुसार सुग्रीव प्रदान कर सकते थे। विभीषण को भी श्रीराम ने लङ्काधिपति बना दिया था। वैसे भी **वाल्मीकिरामायण के** अनुसार श्रीराम परब्रह्म परमात्मा ही हैं। सङ्कल्पमात्र से वे सब प्रदान कर सकते हैं। फिर वे यह कैसे कह सकते हैं कि आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तुओं का अभाव है। अतः कौसल्यायन का उक्त अर्थ निराधार ही है।

इसी प्रकार—"इस समय इन महात्मा हनुमान् को मैं अपना प्रगाढ़ आलिङ्गन प्रदान करता हूँ; क्योंकि यही मेरा सर्वस्व है।" यह भी कौसल्यायन का अर्थ अशुद्ध है। श्लोक यों है—

"एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः॥" (वा० रा० ६।१।१३)

हनुमत्कृत प्रिय सीताख्यान के सदृश प्रियान्तर न देखते हुए आत्मपरिष्वङ्ग को ही तत्तुल्य देखकर श्रीराम ने हनुमान् के लिए वही आत्मपरिष्वङ्ग (प्रगाढ़ आलिङ्गन) प्रदान किया है; क्योंकि भगवद्देह शुद्ध आनन्दरूप होने से उसका आलिङ्गन ही भगवान् का सर्वस्व है। आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही माया या दिव्यलीलाशक्ति में **राम-देह के** रूप से भासमान होता है। यही बात गीता और विष्णुसहस्रनाम के भाष्य आदि में स्पष्टरूप से वर्णित है। ब्रह्मपरिष्वङ्ग और ब्रह्मप्राप्ति दोनों एक ही वस्तु हैं। वही सर्वोत्कृष्ट वस्तु है, वही सीताप्रियाख्यान के सदृश हो सकता है। उसी का प्रदान हनुमान् के लिए उपयुक्त हो सकता है।

कौसल्यायन ने बीच बीच में रामकथा के साथ अपनी नोन-मिर्च लगायी है, जिसका **वाल्मीकिरामायण** के श्लोकों से कोई सम्बन्ध नहीं है। "सच्ची बात यह थी कि यह सारा वैर-विरोध लक्ष्मण के कारण आरम्भ हुआ था। शूर्पणखा मेरे पास और बाद में लक्ष्मण के पास प्रणय का निवेदन करने ही तो आयी थी। हमें एक गम्भीर पुरुष की तरह उसे समझा देना चाहिये था कि हम दोनों भाई विवाहित हैं। हम दोनों में से कोई भी उसे अङ्गीकृत करने में असमर्थ हैं, किन्तु हमें थोड़ा विनोद करने की सूझी। मैंने शूर्पणखा को लक्ष्मण के पास भेजा और उसने बेचारी को दो दो बार मेरे पास वापस लौटाया। बेचारी तङ्ग आ गयी होगी। उसे लगा होगा कि सीता ही उसके मार्ग का काँटा है। वह सीता की ओर लपकी थी। लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काटकर उसे कुरूप बना दिया। यदि लक्ष्मण ऐसी अनुत्तरदायित्वपूर्ण बात न करता तो सम्भवतः हमारा रावण से किसी प्रकार का वैर-विरोध न होता इत्यादि।" (रामकहानी पृ० १९७) यह सब कौसल्यायन की कल्पना निराधार है। **वाल्मीकिरामायण के** राम ने ऐसा न सोचा और न कहा ही है। **शूर्पणखा के दलाल तो बौद्ध ही या असभ्य बौद्ध ही हो सकते हैं।** सदाचारी,

सभ्य बौद्ध भी शूर्पणखा का पक्ष लेने को कभी भी प्रस्तुत नहीं हो सकता है। जिसका कोई भी धर्म और सदाचार है वह शूर्पणखा की भर्त्सना ही करेगा और लक्ष्मण ने वही दण्ड दिया जो ऐसी कुलटाओं ने लिए उचित था।

हाँ कौसल्यायन ने—'रावण को ब्रह्मा ने शाप दिया था कि तू आज से किसी दूसरी नारी के साथ बल-पूर्वक समागम करेगा तो तेरे मस्तक के सौ टुकड़े हो जायँगे' इसमें संशय नहीं किया और इस बात को स्वीकार कर लिया। विभीषण के सम्बन्ध में भी कौसल्यायन ने अनर्गल कल्पना की है—'इतिहास में जब तक राम रावण की कहानी मुंह से सुनी-सुनायी जाती रहेगी। तब तक लोग विभीषण को भ्रातृद्रोही तथा देशद्रोही के रूप में ही स्मरण करते रहेंगे।' यह भी निराधार है; क्योंकि **वाल्मीकिरामायण** में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं है। वस्तुस्थिति तो यह है कि असत्य एवं अन्याय का पक्ष सर्वथा ही त्याज्य है। रावण असत् पक्ष पर था, उसका त्याग ही प्रशंसनीय है। श्रीशुक्रादि नीतिज्ञों ने तभी तो कहा है—"न्याय के रास्ते पर चलनेवाले के साथ पशु-पक्षी आदि भी हो लेते हैं; परन्तु अन्याय के रास्ते पर चलनेवाले का तो उसका सगा भाई भी साथ छोड़ देता है—

"यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति॥" (अनर्घराघव १।४)

'समुद्र मूर्तिमान् होकर श्रीराम के सामने आया। नल विश्वकर्मा का पुत्र था। समुद्र के परामर्शानुसार उसने पांच दिनों में सौ योजन लम्बे समुद्र पर पुल बाँध दिया।' यह कौसल्यायन ने स्वीकार किया है। आश्चर्य है एक तरफ नास्तिकता और दूसरी तरफ ऐसी चमत्कारपूर्ण बातों में विश्वास करना, दोनों का सम्बन्ध कैसे हो गया ?

कौसल्यायन का यह कथन भी—"मेरे मन में इसका खेद है कि मैंने आँख के ओझल रहकर वाली को क्यों बींध डाला।" (रा० क० पृ० २१) निराधार है। 'गरुड़ ने नागपाश से छुड़ाकर राम को व्रणमुक्त किया।' इस बात में कौसल्यायन को विश्वास करना पड़ा। (रा० क० पृ० २११) 'औषधियों को सूंघकर लक्ष्मण स्वस्थ हो गये।' आदि में भी विश्वास करने से प्राणी आस्तिकता की ओर आता ही है। 'देवराज इन्द्र का रथ राम की सहायता के लिए आया। श्रीराम ने युद्ध में रावण को मारा।' यह सब कौसल्यायन को स्वीकृत है। "विदेहकुमारी ने अग्निदेव की परिक्रमा की और निःशङ्क चित्त से अग्निचिता में समा गयीं। जनसमुदाय ने मिथिलेशकुमारी को इस जलती हुई चिता में प्रविष्ट होते देखा। 'साँच को आँच नहीं' की कहावत प्रसिद्ध ही है। सीता के सतीत्व ने उसकी रक्षा की। दीप्त अग्निशिखा ने उसके रोममात्र को भी स्पर्श नहीं किया।" (रा० क० पृ० २३९) आधुनिक लोग इस बात में विश्वास नहीं कर सकते कि कोई स्त्री अग्निचिता में प्रविष्ट हो सकती है ? और उसमें से जीवित पुनः निकल आना तो और भी कठिन है; परन्तु शायद भूलकर ही सही कौसल्यायन ने ऐसा स्वीकार कर लिया।

श्रीभरत हनुमान् के मुख से श्रीराम के आगमन का समाचार सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उस प्रियाख्यान के बदले में एक सहस्र गायें, सौ ग्राम तथा शुभ आचरणवाली हेमवर्ण सर्वाभरणसम्पन्न सकुण्डला १६ कन्याओं को प्रदान किया। कौसल्यायन कहते हैं—'उस बालब्रह्मचारी पवनसुत को सोलह कन्यायें किस लिये दी।' पर कौसल्यायन यह नहीं जानते, वह तो प्रियाख्यान का पुरस्कारमात्र था। वैसे गायें और ग्राम भी हनुमान् के किस काम के थे ? जैसे देवतादि की प्रसन्नता के लिए ब्राह्मण-भोजन आदि कराये जाते हैं, वैसे ही हनुमान् की प्रसन्नता के लिए श्रीभरत ने गायें, ग्राम तथा कन्याएँ प्रदान की थीं।

उत्तरकाण्ड में भी कौसल्यायन ने श्लोक का मनमाना अर्थ किया है। वे कहते हैं—"जैसे इन्द्र शची को मधु (सुरा) का पान कराते थे वैसे ही मैंने (राम ने) ही सीता को हाथ से पकड़ कर मैरेय शराब पिलाया।" वस्तुतः—

"सीतामादाय हस्तेन मधु मैरेयकं शुचि।
पाययामास काकुत्स्थः शचीमिव पुरन्दरः॥" (वा० रा० ७।४२।१९)

का अर्थ यह है कि काकुत्स्थ श्रीराम ने अपने हाथ से पवित्र मैरेयक मधु श्रीसीता को पिलाया जैसे इन्द्र शची को पिलाते हैं। 'शुचि' विशेषण शराब का नहीं हो सकता।

पुनः कौसल्यायन की—"दूसरों के मन को रिझानेवाले पुरुषों में श्रेष्ठ मैं उत्तम वस्त्राभूषणों से भूषित उन मनोरम रमणियों के साथ रमण करता था।"—यह भी अशुद्ध व्याख्या है। प्रकृत श्लोक यह है—

"मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः।
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः॥" (वा० रा० ७।७२।२२)

इसका आशय यों समझना चाहिए—"**एष ह्येवानन्दयति**" (तै० उ० २।७) यह परमात्मा ही सब प्राणियों को अनेक आनन्द से आनन्दित करते हैं—इस तथ्य के अनुसार प्राणिमात्र को आनन्दित (सुखी) करनेवाले धर्मात्मा राम ने उन ब्रह्म में रमण करनेवाली अभिरामा रामाओं को रमण कराया (सन्तुष्ट किया)। टीकाकारों ने 'तोषयामास' यह अर्थ किया है। अन्यथा 'धर्मात्मा' विशेषण सङ्गत नहीं होगा; क्योंकि अविवाहित स्त्रियों से रमण करनेवाला धर्मात्मा नहीं हो सकता। साथ ही यह भी ध्यान देने योग्य है कि यदि प्रकृत श्लोक में 'रेमे' पाठ होता, तभी 'रमण करना' अर्थ हो सकता था, यहाँ तो 'रमयामास' पाठ है। उसका अर्थ होता है—'रमण कराना' सुखी या आनन्दित करना। श्रीरामचन्द्र का एकपत्नीव्रत प्रसिद्ध ही है। इसी प्रकार पुरवासियों के द्वारा सीतासम्बन्धी आरोपों का अपने लक्ष्मण, भरत आदि भाइयों के प्रति किये गये समाधान में भी कौसल्यायन ने लीपा-पोती करके लङ्का की अग्निपरीक्षा को छिपा डाला है।

प्रकृत में भी "**निर्दोषा मम सन्निधौ**" (वा० रा० ७।४७।१३) से लक्ष्मण ने कहा है कि आप मेरे समक्ष अग्निपरीक्षा से निर्दोष सिद्ध हो चुकी हैं, किन्तु ऐसी पुनीतचरिता आपका राजा ने परित्याग कर दिया, क्योंकि वह लोकापवाद से भीत हैं। "मैं अपनी अन्तरात्मा से सीता को निष्कलङ्क मानता था, इसलिए उसे यहाँ अपने साथ अयोध्या लाया।" (रा० क० पृ० २७४) इसका आधारभूत **वाल्मीकिरामायण** में कोई श्लोक नहीं है।

इसी तरह कौसल्यायन के अनुसार राम ने कहा—"मैंने साध्वी सती सीता का त्याग किया। मैं जानता हूँ, इसके लिए लोग मुझे कभी क्षमा न करेंगे और न उन्हें क्षमा करना चाहिये। हो सकता है आगे चलकर कोई मुझे निर्दोष सिद्ध करने के लिए सारा दोष दैव के माथे मढ़ डाले। अथवा मेरी या किसी के पूर्वजन्म की घटना को इसका जिम्मेदार ठहरावे; किन्तु यह सारा दोष भी नासमझी का था। निःसन्देह सीता मेरी पत्नी थी। उसे त्यागने या अपनाने का मुझे जन्मसिद्ध अधिकार प्राप्त था; किन्तु क्या एक नागरिक के नाते सीता का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व न था। यदि मैं उसके पति के साथ साथ अयोध्या का नरेश न होता या केवल उसका पति ही होता तो क्या वह मेरे ही दरबार में मेरे इस निर्णय के विरुद्ध अपील न कर सकती थी। मेरे बारे में सूत का विचार सुनकर लक्ष्मण ने ठीक ह कहा था—सूत! सीताजी के बारे में अन्यायपूर्ण बात करनेवाले इन पुरवासियों के कारण ऐसे कीर्तिनाशक कर्म में प्रवृत्त होकर श्रीरामचन्द्र ने किस धर्मराशि का उपार्जन कर लिया है?" परन्तु यह सब निराधार है। महर्षि वाल्मीकि निर्मित **रामायण** के अनुसार श्रीराम ने ऐसा विचार कहीं भी प्रकट नहीं किया है। जन्मान्तरीय हेतुओं से कितनी ही घटनाएँ होती हैं। सूत ने जो भी कहा था वह सही ही है। बुद्धदेव ने भी तो आनन्द और चाण्डालकन्या के सम्बन्ध में जन्मान्तरीय बातों का उल्लेख किया ही है।

कौसल्यायन के अनुसार श्रीराम ब्राह्मणपुत्र का मरण और शम्बूक शूद्र की तपस्या तथा शम्बूक के वध से ब्राह्मण के पुत्र के जीवित होने की सब बात वाल्मीकि के अनुसार ही वर्णन करते हैं। इसके बाद कौसल्यायन निराधार

निम्नोक्त बात कहते है—"प्रत्येक पुरुष अपने युग के मिथ्या विश्वासों का शिकार होता है। मैं नहीं जानता था कि कोई स्वर्गलोक है अथवा नहीं। किन्तु मेरे समय के लोग मानते थे कि है और में भी मानता था कि है। मैं नहीं जानता कि मरने के बाद कोई भी किसी भी स्वर्गलोक में जाता है, या नहीं। किन्तु मेरे युग के लोग मानते थे कि आदमी सशरीर भी स्वर्ग जा सकता है। मैं भी ऐसा ही मानता था। मैं नहीं जानता था कि किसी शूद्र के लिए तपस्या करना क्यों निषिद्ध ठहराया गया था। पैर ऊपर सिर नीचे करके तपस्या करने से स्वर्ग होता है या नहीं यह सब मैं नहीं जानता था। परन्तु मेरे युग के सब लोग यह सब मानते थे। तपस्या करना शूद्र का विहित कर्म नहीं है और मैं भी मानता था कि उसका ऐसा करना अधर्म है। मैं यह नहीं जानता था कि शूद्र का तपस्या करना किसी ब्राह्मण के लड़के की मृत्यु का कारण कैसे हो सकता है? किन्तु नारद मुनि ने ऐसा कहा था। मैंने इसपर विश्वास कर लिया था। ये सारे विश्वास सत्ययुग में ब्राह्मणों तक ही सीमित थे। त्रेतायुग में हम क्षत्रिय भी इनके शिकार हो गये और अब वैश्य और शूद्र भी। अन्यथा किसी शूद्र को क्या पड़ी थी कि वह पेड़ पर सिर नीचा और पैर ऊपर करके लटके और सोचे कि वह सशरीर स्वर्ग पहुँच जायगा। जहाँ तक मिथ्या विश्वास का सम्बन्ध है मुझमें और उस शूद्र में कोई अन्तर नहीं था। भावी इतिहासकार मुझे शम्बूक का वध करने के लिए दोषी ठहरायेंगे। वे यह नहीं सोचेंगे कि मैं स्वयं कितने अधिक मिथ्या विश्वासों का शिकार था। सही बात यही है कि मैं द्विजों के स्वार्थों के संरक्षण को साक्षात् मूर्ति था। शम्बूक शूद्रवर्ग की उभरती हुई चेतना का प्रतिनिधि था। ब्राह्मणबालक का मरण ब्राह्मणवाद का मरण था और शम्बूक का वध शूद्रों की जाग्रत् चेतना की हत्या। एक के जीवित रहने के लिए दूसरे का निधन आवश्यक था। मृत ब्राह्मण जी उठे उसके लिए यह अनिवार्य था कि शम्बूक शूद्र की हत्या हो। मैं तो केवल एक निमित्त मात्र था। क्या भावी इतिहास लेखक मुझे क्षमा नहीं करेंगे?" कौसल्यायन की यह अपने फितूरी मस्तिष्क की कल्पना है। इसका **वाल्मीकिरामायण** तथा श्रीराम से कोई सम्बन्ध नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार तो शम्बूक स्वयं अपने को शूद्र योनि में उत्पन्न मानता था और तपस्या से स्वर्ग की प्राप्ति सम्भव मानता था—

"शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः।
देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः॥ (वा० रा० ७।७६।२)

जब ब्राह्मणयोनि और शूद्रयोनि में भेद है तो उसके कर्मों में भी भेद हो ही सकता है। यदि कौसल्यायन थोड़ा और प्रगतिशील हों और बौद्ध धर्म छोड़कर चार्वाक हो जायँ तब तो उनको बौद्ध धर्म भी अन्धविश्वास ही प्रतीत होगा; क्योंकि पुनर्जन्म की मान्यता बौद्ध धर्म में भी है। **लङ्कावतारसूत्र** में हत्या करने से, झूठ बोलने से तथा मांस खाने से अधम योनियों की प्राप्ति बतलायी गयी है। तप और व्रत आदि का महत्त्व भी बौद्ध धर्म में मान्य है। आज भी बौद्धगया में अनेकों बौद्ध भिक्षु दण्डवत् प्रणाम करते दिखायी देते हैं। 'मणिपद्मे हुँ' की चरखी भी चलाते हुए अनेक तिब्बती बौद्ध लामा दिखायी देते हैं। यह सब भी तो क्या मिथ्या विश्वास नहीं है। वस्तुतः कौसल्यायन का उक्त कथन बौद्ध धर्म के विरुद्ध ही है। कारण कि बौद्ध लोग भी धर्म, अधर्म में भगवान् बुद्ध के वचनों को ही प्रमाण मानते हैं। इसी लिए बुद्ध की सर्वज्ञतासिद्धि के लिए उनका महान् प्रयास है। सामान्य और प्रत्यक्ष अनुमान से ही सब काम सिद्ध हो जायँ तो बुद्ध की सर्वज्ञतासिद्धि का कुछ प्रयोजन नहीं रहता है।

नैयायिक आदि ईश्वर को सर्वज्ञ तथा ऋषियों को परावरद्रष्टा मानकर **ईश्वर के वेद** तथा आर्ष ग्रन्थों के आधार पर ही धर्माधर्म का निर्णय करते हैं। पूर्वोत्तरमीमांसक अनादि अपौरुषेय वेद एवं तन्मूलक आर्ष धर्म-ग्रन्थों से धर्मादि का निर्णय करते हैं। जैसे चक्षु द्वारा रूप का ज्ञान मिथ्या ज्ञान या मिथ्या विश्वास नहीं है; श्रोत्र द्वारा शब्द का ज्ञान, मन द्वारा सुख-दुख का ज्ञान मिथ्या ज्ञान नहीं है वैसे ही **वेदादि शास्त्रों** के द्वारा धर्म और ब्रह्म का ज्ञान मिथ्या ज्ञान या मिथ्या विश्वास नहीं है। उसके अनुसार तपस्या का स्वरूप और उसका फल विदित होता है। उनके अनुसार श्वान, शूकर, गौ, गर्दभ, अश्व आदि योनियों के समान ही ब्राह्मण, शूद्र आदि योनियाँ भी सिद्ध होती हैं।

"श्वयोनिं वा शूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा·····" (छा० उ० ५।१०।७)

योनिभेद से कर्मभेद होते हैं। सम्राट् हो जाने पर भी कोई राजसूय का अधिकारी नहीं हो सकता है यदि क्षत्रिय योनि में पैदा न हुआ हो। इसी प्रकार तपस्या में शूद्र का अधिकार नहीं हो सकता। यह भी शास्त्रगम्य धर्म है, अन्धविश्वास नहीं है। ब्राह्मणवाद कोई वाद नहीं है। वेदादिशास्त्रप्रामाण्यवाद आस्तिकमात्र का वाद है। राम उसी शास्त्ररक्षण की साक्षात् मूर्ति थे। उनसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ही नहीं विश्व के प्राणिमात्र का कल्याण होता है। शम्बूक शूद्रवर्ग की उभरती हुई चेतना का प्रतीक न होकर प्रमाद का प्रतीक था। कारण कि जिन शास्त्रों के अनुसार तपस्या का महत्त्व है, तपस्या से स्वर्गप्राप्ति कही गयी है, उन्हीं शास्त्रों में शूद्र के लिए तपस्या वर्जित भी है। क्या आधी मुर्गी पकाने और आधी अण्डा देने के काम में आ सकती है? इसी तरह उन्हीं शास्त्रों का कोई अंश स्वीकार कर लेना, अन्य अंश छोड़ देना क्या उचित है? वैसा करना चेतना नहीं प्रमाद है। जो जिसमें अधिकृत है उसे छोड़ कर अन्य अच्छे कर्म में भी प्रवृत्ति प्रमाद है, अपराध है और ऐसा करनेवाला दण्डनीय भी है।

उदाहरणार्थ मार्गदर्शक या एक यातायातनियामक आरक्षी (पुलिस) यदि अपना काम छोड़कर किन्हीं सभ्य पुरुषों की हमलावर गुण्डों से रक्षा करने के काम में भी लग जाता है तो वह दण्डनीय है। गुण्डों से सभ्य पुरुषों की रक्षा करना अच्छी बात है, परन्तु यदि इसी बीच यातायात का नियन्त्रण न होने के कारण मोटर आदि का एक्सीडेण्ट हो जाने से अनेकों सभ्य पुरुषों की मृत्यु हो जाय तो उसका उत्तरदायित्व उसी पर होगा और वही होगा दण्ड का भागी।

एक न्यायाधीश की दृष्टि में किसी हत्यारे को फाँसी देना आवश्यक है फिर भले ही उसकी फाँसी से उसके बूढ़े माँ-बाप अनाथ हो जायँ, उसकी विधवा स्त्री और छोटे-छोटे बच्चे अनाथ होकर घोर विपत्ति में पड़ जायँ। दया करना बहुत अच्छी बात होने पर भी उस न्यायाधीश का दया करके हत्यारे को फाँसी न देना प्रमाद होगा। उसी तरह एक शासक जो धन, धर्म तथा मर्यादाओं की रक्षा के लिए उत्तरदायी है, उसका स्वकर्तव्यविमुख अन्य के कर्म में तल्लीन नागरिक को दण्ड देना अत्यावश्यक है। यदि कोई सफाई-विभाग या हेल्थ डिपार्टमेण्ट का अधिकारी बिना त्यागपत्र दिये तथा दूसरे अधिकारी को बिना चार्ज दिये अपना काम छोड़कर आसन, प्राणायाम या तपस्या में रत हो जाय और सफाई में गड़बड़ी होने से कॉलरा फैल जाय तथा कई नागरिकों की मृत्यु हो जाय तो उस काण्ड का उत्तरदायी और दण्ड्य वह अधिकारी ही होगा, अन्य नहीं।

इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुए यदि स्वकर्तव्यविमुख होकर तपस्या मे लगने के कारण शम्बूक को श्रीराम ने दण्ड दिया, तो वह सर्वथा उचित ही है। दण्ड्य को दण्ड नहीं देनेवाले और अदण्ड्य को दण्ड देनेवाले शासक समानरूप से दोषी होते हैं। श्रीराम ने जैसे स्वकर्तव्यविमुख शम्बूक शूद्र को दण्ड दिया वैसे ही स्वकर्तव्यविमुख रावण जैसे ब्राह्मण को भी दण्ड दिया था। अतः सचमुच नीति, प्रीति, परमार्थ तथा स्वार्थ का वेत्ता श्रीराम के समान अन्य कोई नहीं हुआ—

"नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ॥" (रा० मा० २।२५२।३)

उच्छृङ्खलता और धर्मनियन्त्रण दोनों परस्पर विरुद्ध ही हैं। एक के उन्मेष में दूसरे की मृत्यु निश्चित है। उच्छृङ्खलता के उज्जीवन से विश्व में विप्लव होगा, उसके विनाश एवं धर्मनियन्त्रण के रक्षण से विश्व का कल्याण होगा। इसी लिए श्रीराम ने देवता, दानव, ब्राह्मण, शूद्र सभी के कल्याणार्थ उच्छृङ्खलता का वध कर धर्मनियन्त्रण का रक्षण किया। यही है शम्बूक के वध से ब्राह्मणपुत्र की रक्षा का अभिप्राय।

सीता के शपथ के सम्बन्ध में कौसल्यानन्दन की कल्पना है—"श्रीराम ने कहा कि किसी के अपमान की कोई हद होती है। अपनी प्राणप्रिया सीता का मैं अनन्त अपमान कर चुका था। जो सीता सारे राजसुखों का त्याग

कर वन-वन भटकने के लिए मेरे साथ चली आयी थी, जिस सीता ने मेरे वल्कलवसन धारण करने पर स्वयं भी वल्कल-वसन धारण कर लिये थे, जिस सीता ने गङ्गातरण के समय मेरे सकुशल अयोध्या लौट आने पर अनेक मिन्नतें (मानताएँ) मानी थीं, जो सीता ऋषिपत्नी अनसूया की आज्ञा मानकर उसके द्वारा प्रदत्त वस्त्राभूषणों को पहनकर वन में भी मेरे पास आयी थी, जिस सीता ने मुझसे निरपराध प्राणियों के न मारने और अहिंसाधर्मपालन करने का अनुरोध किया था, जिस सीता ने उस स्वर्णवर्ण कपटमृग को जीवित या मृत अवस्था में लाने के लिए मुझे उसके पीछे दौड़ाया था, जिस सीता की सुरक्षा के लिए मैं लक्ष्मण को उसके पास छोड़ आया था, जिस सीता ने अपनी तनिक भी चिन्ता न कर लक्ष्मण को मेरी सहायता के लिए जाने को मजबूर किया था, जिस सीता को रोती बिलखती अवस्था में रावण उठाकर ले गया था, जिस सीता को रावण ने अनेक प्रलोभन दिये थे और जिसने मेरे मुकाबले में रावण को हमेशा नगण्य समझा था, जिस सीता को रावण ने केवल दो मास और जीवित रहने की धमकी दी थी, जो इससे भी टस से मस नहीं हुई थी, जिस सीता ने परपुरुष के शरीर तक का स्पर्श न करके अपनी मर्यादा को निभाने के कारण हनुमान् की पीठ पर बैठने से इनकार कर दिया था, जिस सीता के चरित्र पर सन्देह करके मैंने रावणवध के अनन्तर उसे अन्यत्र जाने के लिए कह दिया था, जिस सीता ने अपने पातिव्रत्य धर्म को निष्कलङ्क सिद्ध करने के लिए अग्नि में प्रवेश किया था, जिस सीता को मूर्तिमान् अग्निदेव ने मुझे समर्पित कर उसकी पवित्रता को प्रमाणित किया था और जिसे मैंने सहर्ष स्वीकार किया था, जिस सीता को भद्र की अशुभ सूचना पर मैंने त्याग दिया था और जिसके चरित्र की परिशुद्धता को मुनि वाल्मीकि ने प्रमाणित किया था, उसी सीता को मैंने एक बार फिर भरी सभा में अपनी शुद्धता को प्रमाणित करने के लिए शपथ ग्रहण करने को कहा। मुझे इसमें अब कोई सन्देह नहीं कि मेरे जैसे लोकापवादभीरु पति के साथ रहने की अपेक्षा सीता ने, उस भूमिपुत्री ने, पुनः भुमि में ही समा जाना श्रेयस्कर समझा।

उस समय सीता तपस्विनियों के अनुरूप गेरुवा वस्त्र धारण किये हुए थी। सारी उपस्थित जनमण्डली की ओर करबद्ध मुद्रा अपनाये हुए वे बोलीं—मैं श्रीरघुनाथ के सिवा किसी भी पुरुष का मन से भी चिन्तन नहीं करती; यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दें। श्रीराम को छोड़कर मैं किसी दूसरे पुरुष को नहीं जानती, यदि यह कथन सत्य है तो भगवती पृथ्वी मुझे अपनी गोद में स्थान दें। पृथ्वी माता ने विवर दे दिया। सभी लोगों के देखते-देखते जानकी रसातल प्रयाण कर गयी। वहाँ एकत्रित जनता नाना प्रकार की भिन्न-भिन्न भावनाओं से ग्रस्त हो उठी। मैंने मिथलेशकुमारी के चरित्र पर प्रश्न चिह्न लगाया था और उसने स्वप्न में भी मेरे बारे में अन्य कुछ न सोचा था। मैं पातकी सिद्ध हुआ और वह पतितपावनी। ऋषि-मुनि ही नहीं सभी राक्षस तथा वानर भी पुकार उठे :—साध्वी सीते तुम धन्य हो····।"

कौसल्यायनने अपने बौद्ध स्वभाव के कारण यहाँ भी श्रीराम के द्वारा मैं पातकी हूँ इत्यादि दुष्कल्पना करा ही डाली। परन्तु भाव, कुभाव किसी तरह श्रीरामाचरित पढ़ते-पढ़ते कौसल्यायन की बुद्धि ठिकाने आ गयी और उन्होंने श्रीसीता के निर्मल चरित्र का यथावत् वर्णन कर डाला। सीता का अग्निप्रवेश स्वीकार किया और मूर्तिमान् अग्निदेव ने सीता को राम के लिए समर्पण किया—यह मान लिया और यह दुस्तर्क नहीं किया कि कोई मनुष्य अग्नि में प्रविष्ट होकर जीवित कैसे निकल सकता है, अग्नि मूर्तिमान् देवता कैसे हो सकता है और वह सीता को समर्पित कैसे कर सकता है ?

कौसल्यायन के राम कहते हैं—"श्रीलक्ष्मण ने हाथ में जल लिया और प्राणवायु का अवरोध कर वहीं शान्त हो गये। तब विभीषण को मैंने आशीर्वाद दे दिया। जबतक पृथ्वी रहेगी और जबतक संसार में मेरी कथा प्रचलित रहेंगी तबतक इस भूतल पर तुम्हारा राज्य रहेगा। हनुमान् से भी मैंने कहा—हरीश्वर ! जबतक संसार में मेरी कथाओं का प्रचार रहे तबतक तुम भी मेरी आज्ञाओं का पालन करते हुए प्रसन्नतापूर्वक विचरते रहना। जाम्ब-

वान् आदि वानरनायकों को मैंने द्वापर के अन्ततक जीवित बने रहने का आशीर्वाद दिया।" आश्चर्य है—चार्वाक-प्राय कौसल्यायन को ऐसी बातों में विश्वास कैसे हो गया!

आगे कौसल्यायन के अनुसार "सरयू नदी पर पहुँच कर राम ने तथा राम का अनुसरण करते हुए विशाल जनसमूह ने जलसमाधि ले ली। राम की ही तरह वे भी परम धाम को प्राप्त हुए। सभी पुरवासी राम के पीछे हो लिये एक भी प्राणी पीछे नहीं रहा, कोई पशु-पक्षी भी पीछे नहीं रहे।" प्रश्न यह है कि कौसल्यायन को यह कैसे विश्वास हो गया कि समस्त जनता और पशु-पक्षियों तक ने जलसमाधि (डूबने) के लिए श्रीराम का अनुसरण किया? आगे कौसल्यायन के अनुसार श्रीराम ने कहा कि 'मैं चाहता हूँ कि उन भयावह भूलों से लोग बचें जिन भूलों को मैंने अपने जीवन में बार-बार दुहराया है।' पर यह भी कौसल्यायन की मनगढ़न्त कल्पना ही है; क्योंकि **वाल्मीकिरामायण** में ऐसा कोई भी शब्द नहीं है, जिसका यह अर्थ होता हो। केवल जनता की आँखों में धूल डालने के लिए उन्होंने **वाल्मीकिरामायण** के श्लोकों का उद्धरण किया है। उनकी दुष्कल्पनाएँ **रामायण** तथा **वेदादि शास्त्रों, दर्शनों** तथा **सत्तर्कों** से अत्यन्त विरुद्ध हैं। जलसमाधि बतलानेवाला भी **वाल्मीकिरामायण** का कोई वचन नहीं है। परम्परा से भी दूर से भी किसी श्लोक का ऐसा अर्थ नहीं है।

वाल्मीकिरामायण के उत्तरकाण्ड में स्पष्ट कहा गया है—श्रीराम की अयोध्या के पुरवासी तथा पशु-पक्षी तक सम्पूर्ण जीवित प्राणी राम के साथ हो लिये—

"नोच्छ्वसत्तदयोध्यायां सुसूक्ष्ममपि दृश्यते।
तिर्यग्योनिगताश्चैव सर्वे राममनुव्रताः॥" (वा० रा० ७।१०९।२२)

क्या किसी राजा के साथ पशु-पक्षी सहित सभी पुरवासी जलसमाधि (डूबने) के लिए जा सकते हैं? क्या यह श्रीराम के परब्रह्म होने में प्रमाण नहीं है? श्रीराम सरयूतट पर डेढ़ योजन पश्चिम की ओर गये। उसी समय सब देवों एवं महात्माओं से परिवृत लोकपितामह ब्रह्माजी वहाँ आये; जहाँ श्रीरामजी परमधाम जाने के लिए प्रस्तुत थे। शतकोटि दिव्य विमानों से तथा दिव्य तेजों से वहाँ का आकाश दिव्य ज्योतिर्मय, स्वयम्प्रभ, पुण्यकर्मा स्वर्गियों से दीप्त हो रहा था, दिव्य गन्धवान् पुण्य वायु बह रहा था और पुष्पवृष्टि हो रही थी—

"अथ तस्मिन् मुहूर्ते तु ब्रह्मा लोकपितामह.।
सर्वैः परिवृतो देवैर्भूषितैश्च महात्मभिः॥" (वा० रा० ७।११०।२)
"आययौ यत्र काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थितः।
विमानशतकोटीभिर्दिव्याभिरभिसंवृतः ॥" (वा० रा० ७।११०।७)

बाजे बज रहे थे। गन्धर्व, अप्सरा आदि से वह स्थान सङ्कुल था। श्रीराम ने सरयूसलिल में अपने चरणों से चलना आरम्भ किया—

"सरयूसलिलं रामः पद्भ्यां समुपचक्रमे॥" (वा० रा० ७।२११०।७)

उसी समय आकाश से पितामह ब्रह्मा ने दिव्य वाणी से कहा—"हे विष्णो! आपका भद्र हो। बड़े सौभाग्य से आप प्राप्त हुए हो। देवतुल्य अपने भ्राताओं के साथ अपने सगुण निर्गुण जैसे स्वरूप की इच्छा हो, उसे स्वीकार करो। आप वैष्णवी तनु अथवा शुद्ध सनातन शुद्ध ब्रह्मरूप से विराजमान हों। आप ही सब लोगों को दिव्य गति प्रदान करनेवाले और आप ही सब लोगों के गन्तव्य परमपद हैं। आपकी विशालाक्षी, ज्ञानशक्तिरूपा, पूर्वपरिग्रहा, नित्यसिद्धा सहजा माया के अनुग्रह के बिना अतिशय तपःसम्पन्न लोग भी आपके अचिन्त्य महान् अपरिच्छिन्न अक्षय ब्रह्मरूप को नहीं जानते हैं। श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा भक्ति, ध्यान आदि से प्रसन्न हुई विशालाक्षी, नित्यसिद्धा आपकी चितिरूपा महाशक्ति के अनुग्रह से ही आपका ज्ञान होता है—

"ततः पितामहो वाणीं त्वन्तरिक्षादभाषत।
आगच्छ विष्णो ! भद्रं ते दिष्ट्या प्राप्तोऽपि राघव ॥
भ्रातृभिः सह देवाभैः प्रविशस्व स्विकां तनुम्।
यामिच्छसि महाबाहो तां तनुं प्रविश स्विकाम् ॥
वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाकाशं सनातनम्।
त्वं हि लोकगतिर्देव न त्वां केचित् प्रजानते ॥
ऋते मायां विशालाक्षीं तव पूर्वपरिग्रहाम्।
त्वामचिन्त्यं महद्भूतमक्षयं चाजरं तथा ॥
यामिच्छसि महातेजस्तां तनुं प्रविश स्वयम् ॥" (वा० रा० ७।१००।८-११)

श्रीपितामह का वचन सुनकर महामति राम अनुजों के साथ सशरीर वैष्णव तेज में प्रविष्ट हुए। जैसे जल में जल प्रविष्ट होता है वैसे ही चिन्मय तेजःस्वरूप श्रीराम चिन्मय वैष्णव स्वरूप तेजःपुञ्ज में प्रविष्ट हो गये। एतावता भगवान् का स्वरूप भौतिक न होकर चिन्मय तेजःस्वरूप ही होता है, यह सिद्ध है। **"येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः"** (तै० ब्रा० ३।१२।९।७) जिस चिन्मय तेज से इद्ध होकर सूर्य तपता है वही चिन्मय तेज वैष्णवरूप है। न केवल श्रीराम ही अपितु भरत आदि श्रीभगवान् राम के अनुज भी सशरीर ही वैष्णव तेज में प्रविष्ट हुए थे। उस समय साध्य, मरुद्गण, इन्द्र, अग्नि सहित सब देवता, आदित्य, ऋषिगण, गन्धर्व, अप्सराएँ, दैत्य, दानव, मानव, राक्षस, सुपर्ण, नाग, यक्ष आदि सभी ने भगवान् श्रीराम की अर्चना की। सभी पुष्ट एवं प्रमुदित हो गये। सबके मनोरथ पूर्ण हुए। साधु साधु शब्द का सर्वत्र उद्घोष होने लगा। त्रिदिव त्रिताप रहित हो गया—

"पितामहवचः श्रुत्वा विनिश्चित्य महामतिः।
विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः ॥
ततो विष्णुमयं देवं पूजयन्ति स्म देवताः।
साध्या मरुद्गणाश्चैव सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥
ये च दिव्या ऋषिगणा गन्धर्वाप्सरसश्च याः।
सुपर्णनागयक्षाश्च दैत्यदानवराक्षसाः ॥
सर्वं पुष्टं प्रमुदितं सुसम्पूर्णमनोरथम्।
साधु साध्विति तैर्देवैस्त्रिदिवं गतकल्मषम् ॥ (वा०रा० ७।११०।१२-१५)

उसके बाद विष्णुभावापन्न श्रीराम या रामस्वरूप विष्णु ने पितामह से कहा—"मेरे साथ में आये हुए जनसमूह को उत्तम लोक देने की व्यवस्था करें। ये सब मेरे स्नेह से सब त्याग कर मेरा अनुगमन करनेवाले हैं, भक्त हैं, अतएव भजनीय हैं।" भगवान् विष्णु का वचन सुनकर ब्रह्मा पितामह ने कहा—"ये सब सन्तानक (साकेत) लोक को प्राप्त करेंगे। पशु-पक्षी जो भी आपका चिन्तन करते हुए प्राणत्याग करेंगे वे सभी सन्तानक लोक में निवास करेंगे। वह सन्तानक लोक ब्रह्मलोक के सभी गुणों से युक्त है। ब्रह्मलोक के अनन्तर है। सभी वानर और ऋक्ष आदि तक उसी लोक को प्राप्त हो गये। ब्रह्मलोकनिवासियों के समान ही उन्हें निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार और शुद्धब्रह्म की प्राप्ति भी उनके हस्तगत ही है—

"अथ विष्णुर्महातेजाः पितामहमुवाच ह।
एषां लोकं जनौघानां दातुमर्हसि सुव्रत ॥

इमे हि सर्वे स्नेहान्मामनुयाता यशस्विनः ।
भक्ता हि भजितव्याश्च त्यक्तात्मानश्च मत्कृते ॥
तच्छ्रुत्वा विष्णुवचनं ब्रह्मा लोकगुरुः प्रभुः ।
लोकान् सन्तानकान्नाम यास्यन्तीमे समागताः ॥
यच्च तिर्यग्गतं किञ्चित्त्वामेवमनुचिन्तयत् ।
प्राणांस्त्यक्ष्यति भक्त्या तत् सन्तानेषु निवत्स्यति ॥
सर्वैर्ब्रह्मगुणैर्युक्ते ब्रह्मलोकादनन्तरे ।
वानराश्च स्विकां योनिमृक्षाश्चैव तथा ययुः ॥" (वा० रा० ७।११०।१६-२०)

अवधवासी सभी प्रजा ने प्रसन्नता एवं हर्षपूर्ण आनन्दाश्रु से विह्वल होकर सरयू में स्नान करके स्वेच्छा से प्राणत्याग किया और विमान पर आरूढ़ होकर वे सन्तानकलोक पहुँच गये। न केवल मनुष्य ही; किन्तु पशु-पक्षी भी सरयूजल से क्लिन्न होकर प्रभावान् दिव्य देह से युक्त होकर दिव्य देवलोक में चले गये—

"भेजिरे सरयूं सर्वे हर्षपूर्णाश्रुविक्लवाः ।
अवगाह्याप्सु यो यो वै प्राणांस्त्यक्त्वा प्रहृष्टवत् ॥
मानुषं देहमुत्सृज्य विमानं सोऽध्यरोहत ।
तिर्यग्योनिगतानां च शतानि सरयूजलम् ॥
सम्प्राप्य त्रिदिवं जग्मुः प्रभासुरवपूंषि तु ।
दिव्या दिव्येन वपुषा देवा दीप्ता इवाभवन् ॥
गत्वा तु सरयूतोयं स्थावराणि चराणि च ।
प्राप्य तत्तोयविक्लेदं देवलोकमुपागमन् ॥" (वा० रा० ७।११०।२३-२६)

इतने स्पष्ट उल्लेख पर भी यह कहना कि श्रीराम ने अपनी प्रजा के साथ जलसमाधि ले ली—स्पष्ट ही सत्य का तिरस्कार है और प्रजा की आँखों में धूलिप्रक्षेप करना है। इस तरह स्पष्ट है कि वाल्मीकिरामायण का नाम लेकर मिथ्या कल्पना के आधार पर ही आनन्द कौसल्यायन ने जो 'राम की जबानी राम की कहानी' लिखी है वह निराधार, निष्प्रमाण अतएव उपेक्षणीय ही है।

जैनमत में रामकथा

बुल्के के कथनानुसार जैनधर्म में रामकथा को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। राम (पद्म), लक्ष्मण और रावण न केवल जैनधर्मावलम्बी थे; किन्तु उनकी गणना जैनियों के त्रिषष्टि महापुरुषों में होती है। इन त्रिषष्टि महापुरुषों का वर्णन इस प्रकार है—२४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव। इन सब की जीवनियाँ जैनधर्म में **महाभारत**, **रामायण** तथा पुराणों के समान आदरणीय हैं।

त्रिषष्टिलक्षणमहापुराण, **आदिपुराण**, **उत्तरपुराण** एवं **पउमचरियं** में उनका विस्तृत वर्णन है। **पउमचरियं** (रामचरित) चौथी शती ई० का माना जाता है। प्रत्येक कल्प में ९ बलदेव, ९ **वासुदेव** और ९ प्रतिवासुदेव होते हैं। वे ही क्रमशः राम, लक्ष्मण और रावण माने जाते हैं। बलदेव और **वासुदेव** किसी राजा की विभिन्न

रानियों के पुत्र हैं। वासुदेव अपने बड़े भाई बलदेव के साथ प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) से युद्ध कर उसका वध करते हैं। दिग्विजय कर वे भारत के तीन खण्डों पर अधिकार कर अर्धचक्रवर्ती बन जाते हैं। मरने पर वासुदेव को प्रतिवासुदेव के वध के कारण नरक जाना पड़ता है। नौ वासुदेवों में लक्ष्मण और कृष्ण विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। बलदेव अपने भाई की मृत्यु के कारण शोकाकुल होकर जैनदीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। प्रतिवासुदेव सदैव वासुदेव का विरोध करते हैं और वासुदेव के चक्र से मारे जाते हैं।

जैन कथा के अनुसार वानर और राक्षस दोनों विद्याधरवंश की विभिन्न शाखायें हैं। **कथासरित्सागर, रामायण तथा महाभारत** में विद्याधर देवयोनि का वर्णन अवश्य है। परन्तु महाभारत तथा रामायण के अनुसार उनका कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं है। महाभारत आदि में हनुमान्, वाली, सुग्रीव आदि विद्याधर नहीं, किन्तु वायु, इन्द्र, सूर्य आदि देवताओं के अंशभूत विशिष्ट वानर ही थे। जैनों के अनुसार ऋषभ ने अपने सौ पुत्रों में से भरत को अपना राज्य सौंपकर स्वयं दीक्षा ले ली। पश्चात् नमि और विनमि ने उनके पास पहुँचकर राज्यलक्ष्मी माँगी तो उनको विविध विद्यायें मिलीं। ऋषभ के परामर्शानुसार विन्ध्य-प्रदेश में उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। ये ही दो राजकुमार विद्याधरों के पूर्वज हैं (पउमचरियं पर्व ३)। ये सब मनुष्य ही थे। उनको कामरूपत्व, आकाशगामित्व आदि विद्यायें सिद्ध थीं। वानर-वंशीय विद्याधरों की ध्वजाओं एवं महलों पर वानरों के चिह्न होते थे। इसलिए वे 'वानर' कहलाये (पउमचरियं ६।८९)।

जैन रामकथाओं में प्रारम्भ में ही उन लौकिक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है जिनमें राम का शिकार करना, रावण आदि का मांसाहारी होना, कुम्भकर्ण की छः महीने की निद्रा, रावण के राक्षस तथा सुग्रीव के वानर होने की असत्य कथायें वर्णित हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जैन रामकथा **वाल्मीकिरामायण** के बाद ही प्रचारित हुई है।

वस्तुतः अनादि वेद तथा उपनिषद् मूलक **वाल्मीकिरामायण** ही राम के चरित्र में परम प्रमाण है। रामचरित्र की अत्यन्त लोकप्रियता देखकर जैन तीर्थङ्करों ने यह सोचा होगा कि यदि जैन जनता **वाल्मीकिरामायण** की ओर आकर्षित हुई तो स्वभावतः उनकी प्रीति **वेद** एवं ईश्वर तथा वैदिक कर्मकाण्ड में हो जायगी, परन्तु यह जैनधर्म के विरुद्ध है; अतः **वाल्मीकिरामायण** से रामचरित लेकर उसे विकृत रूप में उपस्थित किया जाय।

श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में विमलसूरि की राम-कथा प्रचलित है; दिगम्बर सम्प्रदाय में विमलसूरि एवं गुणभद्र की रामकथा का प्रचलन है। विमलसूरि की परम्परा की चर्चा करते हुए बुल्के ने स्पष्ट कहा है कि "विमलसूरि ने **पउमचरियं** लिखकर पहले पहल लोकप्रिय रामकथा को जैनधर्म के साँचे में ढालने का प्रयास किया है" (पृ० ६७ अनु० ५८)।

विमलसूरि का काल

जैन-परम्परा के अनुसार (**पउमचरियं** ११८।१०३) **पउमचरियं** ७२ ई० की रचना है। भाषा के आधार पर डा० याकोबी आदि विद्वान् **पउमचरियं** को तीसरी अथवा चौथी शती ई० की रचना मानते हैं। यह ग्रन्थ शुद्ध जैन-महाराष्ट्री में लिखा गया है। इसका संस्कृत रूपान्तर रविषेणाचार्य ने ६६० ई० में किया, जो **पद्मचरित** के नाम से प्रसिद्ध है। बुल्के के अनुसार "संघदासकृत **वसुदेवहिण्डि** में जो संक्षिप्त रामकथा मिलती है वह विमलसूरि की अपेक्षा वाल्मीकि के अधिक निकट है।"

यद्यपि विमलसूरि का कहना है कि **पद्मचरित** आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा है और नामावली-बद्ध था; पर इसका इतना ही अर्थ है कि कथा के प्रधान पात्रों, उनके माता-पिताओं, स्थानों, भवान्तरों आदि के नाम ही उसमें होंगे। पल्लवित कथा का रूप विमलसूरि ने ही निर्मित किया है।

वस्तुतः यह भी वाल्मीकि का ही अनुकरण है; क्योंकि वहाँ भी **रामायण** को वेद-उपनिषद् पर आधारित माना जाता है।

बुल्के ने प्राकृत **पद्मचरित** या **रामचरित** की चर्चा करते हुए विमलसूरिकृत **पउमचरियं** को ईसा की तीसरी या चौथी शताब्दी की रचना स्वीकार किया है, साथ ही ईसा की नवीं शताब्दी में शीलाचार्यकृत **रामलक्खणचरिय** को विमलसूरि की परम्परान्तर्गत मानते हुए भी **वाल्मीकीय रामायण** से अधिक प्रभावित माना है। भद्रेश्वरकृत **कहावली** के अन्तर्गत **रामायण**, भुवनतुङ्गसूरिकृत **सीयाचरिय** तथा **रामलक्खणचरिय को भी ग्यारहवीं** ई० शती की रचना माना है। संस्कृत जैन रामायणों की चर्चा में रविषेणकृत **पद्मचरित** को सन् ६६० ई० का माना है। हेमचन्द्रकृत **योगशास्त्र की टीका** में **सीतारावणकथानकम्**, जिनदासकृत **रामायण** या **रामदेवपुराणम्** को ईसा की १५ वीं; पद्मदेवविजयगणिकृत **रामचरित** और सोमसेनकृत **रामचरित** को १६ वीं तथा सोमप्रभकृत **लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित** और मेघविजयगणिवरकृत **लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित** को ई० १७ वीं शती की रचना माना है। इसी तरह **पद्मपुराण** अथवा **रामचरित्र, सीताचरित्र, रामायणकथानकम्, सीताकथानकम्** आदि ग्रन्थों की भी प्रसिद्धि है। अपभ्रंश में प्राप्त स्वयम्भूदेवकृत **पउमचरिउ** अथवा **रामायणपुराण** ८ वीं ई० शती, रइधूकृत **पद्मपुराण** अथवा **बलभद्रपुराण** १५ वीं शती, कन्नड़ में **पम्परामायण** या **रामचन्द्रचरितपुराण** ११ वीं, कुमुदेन्दुकृत **रामायण** और देवप्पकृत **रामविजयचरित** १६ वीं शती तथा चन्द्रसागरवर्णीकृत **जिनरामायण** १९ वीं शती की रचनाएँ प्रसिद्ध हैं।

उक्त सभी ग्रन्थ ईसा की तीसरी चौथी शती के बाद की ही रचनाएँ हैं, अतः **वाल्मीकिरामायण से अर्वाचीन** ही हैं, सुतरां उन सब का मूल **वाल्मीकिरामायण** ही है।

रावणचरित (पर्व १–२०) के प्रारम्भ में विद्याधरलोक, राक्षस-वंश तथा वानर-वंश का वर्णन है, जो **वाल्मीकिरामायण** के उत्तर-काण्ड में वर्णित रावण से सम्बन्धित होने पर भी उससे पर्याप्त भिन्न भी है। **रावणचरित** के अनुसार राक्षसराज रत्नश्रवा से कैकेसी में दशमुख (रावण), भानुकर्ण (कुम्भकर्ण), चन्द्रनखा (शूर्पणखा) और विभीषण ये चार सन्तानें हुईं। रत्नश्रवा ने जब अपने पुत्र को पहले पहल देखा तब वह अपने गले में एक माला पहने हुए था; उस माला में पिता को बालक के दस सिर दिखाई पड़े; अतः उस शिशु का नाम दशमुख रख दिया गया। अपने मौसेरे भाई वैश्रवण का विभव देखकर दशमुख ने अपने भाइयों के साथ तप किया और विभिन्न विद्याएँ प्राप्त कीं। तदनन्तर उसने मन्दोदरी तथा अन्य छः विद्याधर कन्याओं से विवाह किया और कालान्तर में वैश्रवण और यम को परास्त कर पुष्पक विमान प्राप्त कर लङ्का में प्रवेश किया।

रावणवालि-संघर्ष

रावण ने वाली के पास अपना दूत भेज कर कहलाया कि वह स्वयं आकर उसको प्रणाम करे और अपनी बहन श्रीप्रभा का विवाह उसके साथ कर दे। वाली जिनवरेन्द्र से अन्य किसी को भी प्रणाम नहीं करता था; अतः वह अपने भाई सुग्रीव को राज्य देकर स्वयं जैनदीक्षा लेने चला गया (पर्व ९)। सुग्रीव ने रावण को प्रणाम किया और उसके साथ अपनी बहन श्रीप्रभा का विवाह भी कर दिया। बाद में, वाली द्वारा रावण को पराजित किये जाने का वृत्तान्त एक सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। तदनुसार वाली रामायणीय कथा के शिव का रूप लेता है और रावण द्वारा उठाये हुए पर्वतों को अपने पैर के अंगूठे से दबा देता है। आगे रावण द्वारा इन्द्र, वरुण एवं यम पर विजय प्राप्त करने का भी वर्णन है। जैनकथानुसार रावण एक धर्मभीरु जैनी है। उसने जैन-मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया और ऐसे यज्ञों पर, जिनमें पशुवध होता हो, रोक लगायी (पर्व ११), नलकूबर की पत्नी उपरम्भा के प्रेम-प्रस्ताव को अस्वीकार किया (पर्व १२) और अनन्तवीर्य के धर्मोपदेशों को सुन कर व्रत ले लिया है कि वह विरक्त परनारी के साथ रमण नहीं करेगा।

वस्तुतः अत्यन्त परोक्ष अतीत घटनाओं में प्रामाणिक इतिहास के अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं होता। **वाल्मीकिरामायण** ग्रन्थ रामराज्य-काल में ही लेखबद्ध किया गया था। एकमात्र वही प्रामाणिक ग्रन्थ है; वह अनादि वेदों के उपबृंहणार्थ लिखा हुआ आर्ष इतिहास है। **रामायण** की लोकप्रियता के कारण ही धर्मान्ध लोगों ने उसको विकृत कर अपने धर्म-प्रचारार्थ उसका दुरुपयोग किया है। यदि रावण धर्मभीरु और सदाचारी होता तो वह सीताहरण ही क्यों करता? और राम उसका वध क्यों करते?

इसी तरह हनुमान् के चरित्रवर्णन में भी मनमानी तथा उलटफेर किया गया है। उन्हें पवनञ्जय एवं अञ्जनासुन्दरी का पुत्र माना गया है जैन-कथानुसार हनुमान् वरुण के विरुद्ध रावण की सहायता करते हैं! चन्द्रनखा की पुत्री अनङ्गकुसुमा के साथ विवाह करते हैं, साथ ही अनेक अन्य विवाह भी करते हैं। अखण्डब्रह्मचर्य-व्रतनिष्ठ हनुमान् के सम्बन्ध में उक्त कल्पनाएँ सर्वथा निराधार हैं।

जैनकथा में राम और सीता के जन्म एवं विवाह के सम्बन्ध में बहुत सी कल्पनाएँ हैं जो **वाल्मीकि-रामायण** के सर्वथा विपरीत हैं। तदनुसार (पर्व २१-३२) अपराजिता और सुमित्रा के साथ दशरथ का विवाह हो जाने पर नारद ने उनको सूचना दी कि विभीषण उनको मारना चाहता है, क्योंकि एक नैमित्तिक के कथनानुसार दशरथ का पुत्र सागर के मार्ग से आकर जनक-पुत्री सीता के कारण रावण को मारेगा। नारद ने जनक को भी सावधान किया। दशरथ और जनक दोनों ही राजा अपने अपने राज्य छोड़ कर पृथ्वी-भ्रमण करने लगे और उनके मन्त्रियों ने उनके प्रतिरूप बनवा कर उनके महलों में रखवा दिये। विभीषण ने दशरथ की मूर्ति का सिर कटवाया। रविषेण के अनुसार परदेश में घूमते हुए दशरथ एवं जनक कैकेयी के स्वयंवर में पहुँचे। स्वयंवरा ने दशरथ के गले में माला डाल दी। इसपर अन्य राजाओं के साथ युद्ध हुआ जिसमें कैकेयी ने बड़े कौशल से दशरथ के रथ का संचालन किया। विवाह सम्पन्न होने पर दोनों राजा अपनी अपनी राजधानी लौट गये। घर पहुँच कर दशरथ ने कैकेयी को वर दिया। कैकेयी ने कहा कि अवसर आने पर इच्छित वर माँग लूँगी। श्रीराम या पद्म का अपराजिता (कौशल्या) से, लक्ष्मण का सुमित्रा से और भरत एवं शत्रुघ्न का कैकेयी से जन्म हुआ। रविषेण के अनुसार शत्रुघ्न का जन्म दशरथ की चतुर्थ महिषी सुप्रभा से हुआ था। अधिकांश जैन लेखक रविषेण का ही अनुसरण करते हैं।

राजा जनक की विदेहा रानी से एक पुत्री सीता और एक पुत्र भामण्डल का जन्म हुआ। राम ने म्लेच्छों के विरुद्ध जनक की सहायता की, जिसके फलस्वरूप राम तथा सीता का वाग्दान हुआ। तदनन्तर सीतास्वयंवर के समय राम ने धनुष चढ़ाया और राम सीता का विवाह सम्पन्न हुआ। पश्चात् दशरथ को वैराग्य हुआ। उस समय कैकेयी ने पूर्व वरदान के बल पर भरत के लिए राज्य माँग लिया; यह सुन कर राम, सीता और लक्ष्मण दक्षिण दिशा की ओर वन चले गये। पश्चात्तापिनी कैकेयी के अनुरोध पर भरत ने वन में जाकर राम से राज्य स्वीकार करने का अनुरोध किया। राम के अस्वीकार करने पर भरत अयोध्या लौट आये और राज्यभार ग्रहण किया तथा किसी मुनि के सामने उन्होंने प्रतिज्ञा की कि राम के प्रत्यागमन पर मैं दीक्षा ग्रहण कर लूँगा।

जैन-ग्रन्थों में अपने धर्म के प्रति इतनी धर्मान्धता है कि वे देवता, दानव, मानव सब को जैन-दीक्षा ग्रहण करवा देते हैं।

पउमचरियं के वन-भ्रमण (पर्व ३३–४२) में चित्रकूट का उल्लेख है; परन्तु **वाल्मीकिरामायण** के उल्लेखों से अत्यन्त भिन्न है। 'वन-भ्रमण के उल्लेखानुसार वज्रकर्ण ने ८ तथा सिंहोदर आदि राजाओं ने ३०० कन्याएँ लक्ष्मण को प्रदान की थीं। इसके अतिरिक्त वनमाला; रतिमाला और जितपद्मा नामक कन्याओं को भी लक्ष्मण ने प्राप्त किया।

राम की आज्ञा से राजा सुरप्रभ ने वंशपर्वत पर वहुत से मन्दिर बनवाये थे; इससे उसका नाम रामगिरि हुआ (पर्व ४०)। दण्डकारण्य में प्रवेश करने पर एक मुनिवर ने जटायु से सीता की रक्षा करने के लिए निवेदन किया।

सीताहरण और अन्वेषण (पर्व ४३–५३)

विमलसूरि के कथनानुसार चन्द्रनखा के पुत्र शम्बूकने सूर्यहास खड्ग की सिद्धि के लिए बारह वर्ष पर्यन्त साधना की। उसकी सफल साधना से खड्ग प्रकट हुआ। संयोगवशात् उसी समय लक्ष्मण वहाँ पहुँचे और खड्ग को उठाकर पास के बाँस को काटकर शम्बूक का सिर भी काट दिया। चन्द्रनखा अपने मृत पुत्र को देखकर विलाप करती हुई बन में भटकने लगी। भटकते-भटकते राम-लक्ष्मण के पास पहुँच कर उसने उनकी पत्नी बननेका प्रस्ताव किया। प्रस्ताव के अस्वीकार होने पर वह अपने पति के पास गयी और उसको पुत्र-वध का समाचार सुनाया। रावण को भी सूचना भेजी गयी। इस बीच लक्ष्मण अकेले ही खरदूषण की सेना को रोक लेते हैं। रावण वहाँ पहुँचता है। रावण अवलोकनी-विद्या के द्वारा यह जान लेता है कि लक्ष्मण ने रामको बुलाने के लिए सिंहनाद का संकेत बताया है, अतः वह सिंहनाद कर राम को लक्ष्मण के पास भेज कर सीता हरण-करने में सफल हो जाता है।

सीता-हरण के पश्चात् सुग्रीव तथा राम के सख्य का वर्णन है। साहसगति ने सुग्रीव का रूप धारण कर उसकी पत्नी और राज्य छीन लिया था। राम ने साहसगति को मारकर सुग्रीव को उसका राज्य लौटा दिया। सुग्रीव ने राम के लिए अपनी तेरह कन्याएँ समर्पित कीं; किन्तु सीता के वियोग में राम को उनके संग सुख नहीं मिलता था। सुग्रीव की आज्ञा से विद्याधर सीता की खोज करने जाते हैं। खोज लेते हुए सुग्रीव ने रत्नजटी से सुना कि रावण ने सीता का हरण किया है। यह सुनकर सब विद्याधरों ने रावण से भयभीत हो युद्ध करने से अस्वीकार कर दिया। उस समय सुग्रीव को स्मरण होता हैं कि अनन्तवीर्य ने रावण से कहा था कि जो कोटिशिला उठा सकेगा उससे तेरी मृत्यु होगी। वे सब विमान पर चढ़ कर वहाँ जाते हैं; लक्ष्मण कोटिशिला उठा लेते हैं; परन्तु विद्याधर रावण के भय से मुक्त नहीं हो पाते और हनुमान् को रावण के पास भेज कर विभीषण की सहायता से उसको समझाने का प्रयास करने की सलाह देते हैं। हनुमान् अपनी इस यात्रा में अपने नाना महेन्द्र को परास्त करते हैं; क्योंकि उन्होंने हनुमान् की माता अञ्जना को अपने घर से निकाल दिया था। तदनन्तर वे दधिमुखनगर के राजा की तीन कन्याओं से, जिनका विवाह साहसगति को मारनेवाले के साथ करने का निश्चय किया गया था, भेंट करते हैं। लङ्का के पास पहुँच कर विभीषण द्वारा निर्मित प्राचीर पार कर वज्रमुख का वध करते हैं; तदनन्तर उसकी कन्या लङ्कासुन्दरी को परास्त कर उसके साथ रातभर क्रीड़ा करते हैं। लङ्का में प्रवेश कर सीता से मिलते हैं। वहाँ के महलों एवं उद्यानों का विध्वंस करते हैं। और इन्द्रजित् द्वारा बाँधे जाकर रावण के सामसे उपस्थित किये जाते हैं। हनुमान् रावण को धमका कर अपने बन्धनों को तोड़ रावण का महल ध्वस्त कर सीता का सन्देश राम के पास ले जाते हैं।

युद्ध (पर्व ५४–७७)

युद्धवर्व के उल्लेखों में भी **वाल्मीकिरामायण** के उल्लेखों से निम्नाङ्कित स्थानों में भिन्नता है।

१. **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित सेतुबन्ध प्रसङ्ग का यहाँ सर्वथा भिन्न वर्णन दिया गया है। तदनुसार समुद्र नामक एक राजा वानरों की सेना को रोक लेता है, परन्तु नल द्वारा पराजित होकर लक्ष्मण को अपनी चार कन्याएँ समर्पित कर देता है।

२. विभीषण द्वारा सीता को लौटा देने का अनुरोध किये जाने पर रावण विभीषण को अपने नगर से निकल जाने का आदेश देता है; फलतः वह अपनी समस्त सेना के साथ हंसद्वीप जाकर राम की शरण लेता है। उसी समय सीता के भाई भामण्डल भी राम के साथ युद्ध में भाग लेने के लिए आ पहुँचते हैं।

३. सुग्रीव तथा भामण्डल इन्द्रजित् के नागपाश में बँध जाते हैं और गरुड़-केतु लक्ष्मण द्वारा मुक्त किये जाते हैं। राम और लक्ष्मण नागपाश में नहीं बँधे (पर्व ६०)।

४. लक्ष्मण को रावण की शक्ति लगने पर द्रोणमेघ की कन्या विशल्या उनकी चिकित्सा करती है। तदनन्तर लक्ष्मण और विशिल्या का विवाह सम्पन्न हो जाता है। वे दोनों पूर्वजन्म के पुनर्वसु एवं अनङ्गशरा थे (पर्व ६१–६४)।

५. रावण ने सामन्त नामक अपने दूत को राम के पास सन्धि प्रस्ताव लेकर भेजा। इस सन्धि की शर्त थी—'राम सीता का त्याग कर दें और कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् एवं मेघवाहन को छोड़ दें तो रावण राम को अपने राज्य का एक अंश और तीन हजार कन्याएँ देगा (पर्व ६५)।

६. रावण बहुरूपा साधक विद्या को सिद्ध करने के लिए शान्तिनाथ के मन्दिर में साधना करता है। वानरों के द्वारा उसका ध्यान-भङ्ग करने का निष्फल प्रयास किया जाता है। अन्ततोगत्वा रावण अपनी विद्यासाधना में सफल होता है (पर्व ६६–६८)। बहुरूपा विद्या सिद्ध करने पर रावण सीता के पास जाकर उसको धमकी देता है कि अब मैं अवश्य ही राम का वध कर तुमको अपनी रानी बना लूँगा।

७. सीता उत्तर देती हैं कि मेरा जीवन राम के जीवन पर अवलम्बित है और मूर्च्छा खाकर गिर पड़ती है। राम के प्रति सीता के प्रेम को देखकर रावण पश्चात्ताप करता है कि वह राम एवं लक्ष्मण को संग्राम में हराकर सीता को लौटा देगा (पर्व ६९)।

८. लक्ष्मण (नारायण) ने ही रावण (प्रतिनारायण) का वध किया।

९. रावण के वध के बाद उसके दोनों पुत्र इन्द्रजित् तथा मेघवाहन और कुम्भकर्ण जो युद्ध में बन्दी किये गये थे, मुक्त कर दिये जाते हैं। वे तीनों विरक्त होकर तप करने चले जाते हैं। साथ ही मन्दोदरी, चन्द्रनखा आदि आठ हजार युवतियाँ भी महलों को त्याग कर साधनामय जीवन व्यतीत करने लगती हैं (पर्व ७५)।

१०. लङ्का-प्रवेश कर राम सर्वप्रथम सीता से मिलने जाते हैं। देवता दोनों का मिलन देख कर पुष्पवृष्टि करते हैं तथा सीता के निर्मल चरित्र की साक्षी देते हैं। राम के किसी सन्देह तथा सीता की अग्निपरीक्षा का कोई सङ्केत नहीं मिलता (पर्व ७६)।

११. तदनन्तर राम एवं लक्ष्मण रावण के महलों में रहने लगते हैं और उन कन्याओं को, जिनके साथ उनकी मँगनी हो चुकी थी, बुला कर विवाह करते हैं। यह विवाह लङ्का में ही सम्पन्न होता है। राम एवं लक्ष्मण छः वर्ष पर्यन्त लङ्का में रहते हैं (पर्व ७७)।

उत्तरचरित (पर्व ७८–११८)

नारद लङ्का में राम के पास जाकर पुत्र-वियोग के कारण दुःखित अपराजिता की दशा का वर्णन करते हैं, जिससे राम और लक्ष्मण साकेत लौटने का निश्चय करते हैं (पर्व ७८)। उनके आगमन के पश्चात् भरत को वैराग्य उत्पन्न होता है और वे दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त करते हैं (पर्व ८०–८४)। अनन्तर लक्ष्मण के राज्याभिषेक और उनके द्वारा विद्याधर राजाओं पर विजय प्राप्त करने का वर्णन है। लक्ष्मण की विशल्या आदि आठ पटरानियाँ

तथा सोलह हजार रानियाँ और राम की आठ हजार पत्नियाँ बतायी गयी हैं, जिनमें सीता, प्रभावती, रतिनिभा तथा श्रीदामा प्रधान कही गयी हैं (पर्व ८५–९१) ।

सीता-त्याग की भी कथा वाल्मीकिरामायण से सर्वथा भिन्न नहीं है । इसके अनुसार सीता के दो पुत्र लवण तथा अंकुश थे । वे नारद के भड़काने पर राम एवं लक्ष्मण से युद्ध के लिए आते हैं । युद्ध के अनन्तर सुग्रीव, हनुमान् और विभीषण आदि के अनुरोध पर राम सीता को बुला भेजते हैं, परन्तु उनके सतीत्व का प्रमाण भी चाहते है : सीता अग्निपरीक्षा में सफल होकर दीक्षा ग्रहण कर लेती है और स्वर्ग में इन्द्र बन जाती है[1] ।

राम और लक्ष्मण के प्रेम की परीक्षा के लिए देवताओं ने लक्ष्मण को राम के देहान्त का समाचार दिया, इससे लक्ष्मण का देहान्त हो जाता है । शोकातुर होकर मरने से नरक जाते हैं । लक्ष्मण की अन्त्येष्टि के बाद राम विरक्त होकर दीक्षा लेते हैं और १७ हजार वर्ष साधना कर निर्वाण को प्राप्त होते हैं । अन्त में कहा गया है कि लक्ष्मण, सीता और रावण भी अनेक जन्म लेने के बाद मुक्त हो जायेंगे (पर्व ११०–११२) ।

अनीश्वरवादी जैनाचार्य ईश्वर मानते ही नहीं, अतः अपने मत के रक्षार्थ ही साक्षात् परब्रह्मरूप राम तथा परब्रह्मरूपिणी सीता को मनुष्य ही मानकर उनके दीक्षा-ग्रहण की धृष्ट कथाओं का प्रचार करते हैं । इसी तरह भगवान् राम के स्वरूप लक्ष्मण के नरक जाने को वेद-शास्त्र विरुद्ध जैन-कथा सर्व वैदिक-धर्म-द्वेषमूलक ही है ।

बुल्के कहते हैं—परवर्ती जैन-कथाओं में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं । हरिभद्रकृत **उपदेशपद,** भद्रेश्वरकृत **कहावली** और हेमचन्द्रकृत **जैनरामायण** एवं **रामचरित्र** से रावण का चित्र सीता के परित्याग का कारण माना जाता है । हेमचन्द्रकृत **सीतारावणकथानकम्** के अनुसार कैकेयी अपने दूसरे वरदान के बदले में राम, लक्ष्मण और सीता के लिए १४ वर्ष पर्यन्त का वनवास माँगती है ।

गुणभद्र की रामकथा **उत्तरपुराण** में आठवें बलदेव, नारायण तथा प्रतिनारायण—जो **वाल्मीकिरामायण** के राम, लक्ष्मण तथा रावण हैं—का चरित्र ६७वें और ६८वें पर्वों में १११७ श्लोकों में वर्णित है । यह कथा विमलसूरि और वाल्मीकि दोनों से बहुत भिन्न है । इसमें सीता को रावण एवं मन्दोदरी की औरस पुत्री कहा गया है ।

सीताजन्म की कथा का इस रूप में उल्लेख सर्वप्रथम सङ्घदासकृत **वसुदेवहिण्डि** में प्राप्त होता है । गुणभद्र का आधार अज्ञात है; परन्तु कहा जा सकता है कि वे विमलसूरि तथा सङ्घदास की रचनाओं तथा परम्पराओं से परिचित थे । जिनसेन अपने ग्रन्थ **आदिपुराण** में कवि परमेश्वर की **गद्यकथा** का उल्लेख करते हैं और उसे ही अपनी रचना का आधार मानते हैं । गुणभद्र जिनसेन की अधूरी रचना पूर्ण करते हैं; अतः बहुत सम्भव है कि वे भी परमेश्वर कवि की कथा पर निर्भर रहे हों । परमेश्वर कवि की रचना अप्राप्य है । तिब्बती रामायण तथा अन्य तिब्बती ग्रन्थों में भी सीता मन्दोदरी की पुत्री ही मानी गयी है । जैन कवियों ने इसे अपने जैन धर्म के ग्रन्थों में स्थान दिया होगा ।

चामुण्डराय **त्रिषष्टिलक्षणमहापुरुष** के लेखकों की सूची में कूचिभट्टारक, नन्दिमुनीश्वर, कवि परमेश्वपर, जिनसेन और गुणभद्र का उल्लेख करते हैं । गुणभद्र की रामकथा अन्य जैन-ग्रन्थों में भी सुबद्ध मिलती है । गुणभद्र-

---

१. अपने धर्म के प्रचार और दीक्षा की महत्ता को स्थापित करने की दृष्टि से ही जैन तीर्थङ्कर सीता, राम, भरत आदि के द्वारा जैन-दीक्षा ग्रहण करने की कपोल-कल्पित कथाओं की चर्चा करते हैं । इसी आधार पर जैन-धर्माचार्य तुलसी ने भी अपनी पुस्तक 'अग्निपरीक्षा' में सीता एवं राम के सम्बन्ध में जनापवाद के व्याज से अभद्र शब्दों का प्रयोग किया है ।

कृत संस्कृत **उत्तरपुराण** नवीं श० ई०, कृष्णदासकृत **पुण्यचन्द्रोदयपुराण** १६ वीं श० ई०, **कन्नड़** चामुण्डरायकृत **त्रिषष्टिशलाकापुरुषपुराण** १०वीं श० ई०, बन्धुवर्मा कृत **जीवनसम्बोधन** १२ श० ई० और नागराजकृत **पुण्यश्रव-कथासार** १३३१ ई० की रचनाएँ हैं। इनके अनुसार दशरथ वाराणसी के राजा थे। उनके चार पुत्र हुए। सुबाला के गर्भ से राम और कैकेयी से लक्ष्मण उत्पन्न हुए। कालान्तर में राजा दशरथ ने साकेत को अपनी राजधानी बना लिया। यहाँ आने पर उनके दो और पुत्र भरत एवं शत्रुघ्न किसी अन्य रानी के गर्भ से, जिसका नाम नहीं दिया है, उत्पन्न हुए। दशानन विनमि विद्याधरवंश के पुलस्त्य का पुत्र है। असितवेग की पुत्री मणिमती को तपस्या करते हुए देखकर रावण उस पर आसक्त हो जाता है; अतः उसकी साधना में विघ्न डालता है। विघ्न के कारण मणिमती निदान करती है कि मैं रावण की पुत्री बनकर उसको मारूँगी। रावण की रानी मन्दोदरी के गर्भ से मणिमती का ही पुनर्जन्म सीता के रूप में होता है। ज्योतिषियों द्वारा यह बताये जाने पर कि यह कन्या अपने पिता के नाश का कारण बनेगी। रावण भयभीत हो मारीचि को आज्ञा देता है कि वह उस कन्या को कहीं छोड़ आये। मारीचि कन्या को मञ्जूषा में रखकर मिथिला देश में गाड़ आता है। हलकी नोक से उलझ जाने के कारण वह मञ्जूषा दिखलायी पड़ती हैं, और लोगों द्वारा जनक के पास ले जायी जाती है। मञ्जूषा खोल कर देखने पर जनक ने उसमें एक कन्या को देखा; इस कन्या का नाम सीता रखकर वे उसका पुत्रीवत् पालन करने लगे। बहुत दिनों बाद राजा जनक अपने यज्ञ की रक्षा के लिये राम एवं लक्ष्मण को बुलाते हैं। यज्ञ के सम्पूर्ण होने पर सीता और राम का विवाह हो जाता है। तदनन्तर राम सात अन्य कुमारियों से भी विवाह करते हैं। लक्ष्मण भी पृथ्वीदेवी आदि कई कन्याओं से विवाह करते हैं। राम एवं लक्ष्मण दोनों ही दशरथ की आज्ञा से वाराणसी में ही रहने लगते हैं। नारद से सीता के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर रावण उसे हर लाने का सङ्कल्प करता है; सीता की मनोभावना जानने के लिए रावण शूर्पणखा को भेजता है। शूर्पणखा लौटकर आने पर बताती है कि सीता के मन को चलायमान करना असम्भव है। जब चित्रकूट में राम और सीता वाटिका में विहार कर रहे थे तब मारीच स्वर्णमृग के रूप में आकर राम को दूर ले गया और उसी समय रावण राम का रूप धारण कर आया और सीता से कहा कि मैंने मृग को महल में भेज दिया है; साथ ही, उनको पालकी पर चढ़ने की आज्ञा दी। वह पालकी वास्तव में पुष्पक विमान ही था; उसके द्वारा रावण सीता को लङ्का ले गया। रावण सीता का स्पर्श नहीं करता था; क्योंकि पतिव्रता के स्पर्श से उसकी आकाशगामिनी विद्या नष्ट हो जाती। दशरथ को स्वप्न में ज्ञात हुआ कि रावण ने सीता का हरण कर लिया है, अतः वे राम का समाचार जानने के लिए उनके पास दूत भेजते हैं। उसी समय सुग्रीव और हनुमान् राम के पास वाली के विरुद्ध सहायता माँगने पहुँच जाते हैं। हनुमान् लङ्का जाते हैं और सीता को सान्त्वना देकर लौट आते हैं। तदनन्तर लक्ष्मण के द्वारा वाली का वध होता है और सुग्रीव अपने राज्य का अधिकारी पुनः बन जाता है। वानरों और राम की सेना विमान से लङ्का पहुँचायी जाती है। लक्ष्मण चक्र से रावण का सिर काटते हैं। राम परीक्षा लिए बिना ही सीता को स्वीकार कर लेते हैं। पश्चात् राम लक्ष्मण को साथ लेकर ५२ वर्ष पर्यन्त दिग्विजय यात्रा करते हैं, परन्तु अर्धचक्रवर्ती बनकर अयोध्या लौट आते हैं। दोनों का सम्मिलित अभिषेक होता है। कुछ समय बाद राम एवं लक्ष्मण भरत एवं शत्रुघ्न को राज्य देकर वाराणसी चले जाते हैं। सीता को विजयराम आदि आठ पुत्र होते हैं। इन गाथाओं में सीता के त्याग की चर्चा नहीं है। लक्ष्मण किसी असाध्य रोग से मर जाते हैं और रावण-वध के कारण नरक में जाते हैं। राम लक्ष्मण के पुत्र पृथ्वीचन्द को राज्यपद पर और सीता के कनिष्ठ पुत्र अजितञ्जय को युवराजपद पर अभिषिक्त कर स्वयं सुग्रीव, अणुमान् और विभीषण आदि पाँच सौ राजाओं तथा अपने १८० पुत्रों के साथ साधना करने चले जाते हैं। ३९५ वर्ष बीत जाने के बाद राम को कैवल्य ज्ञान उत्पन्न होता है; सीता भी अन्य अनेक रानियों के साथ दीक्षा लेती हैं। अन्त में राम तथा अणुमान् की मोक्ष-प्राप्ति का उल्लेख हुआ है।

सीता स्वर्ग पहुँचती है। लक्ष्मण के सम्बन्ध में उल्लेख है कि वे भी नरक से निकल कर संयम धारण करेंगे और मोक्ष प्राप्त करेंगे।

प्राचीन एवं अर्वाचीन जैन विद्वानों की दृष्टि में जैनधर्म-दीक्षाप्रचार मुख्य लक्ष्य रहा है। उसी लक्ष्य के अनुसार उन्होंने रामकथा की लोकप्रियता का उपयोग किया है। यदि वास्तविक वाल्मीकीय रामकथा की ओर जैन बन्धुओं की प्रवृत्ति होती तो वेदप्रामाण्य एवं ईश्वरवाद का भाव उनपर अवश्य पड़ता, परन्तु यह इष्ट नहीं था। इसीलिए उन्होंने **वाल्मीकिरामायण** की कथा को ही विकृत करके जैन जनता के सामने उपस्थित किया है।

आजकल लोग अहिंसा और सत्य का नाम लेकर लोगों में प्रतिष्ठा प्राप्त करके उसकी ओट में हिंसा का अकाण्डताण्डव करते हैं। तेरहपन्थी आचार्य तुलसी ने **अग्निपरीक्षा** नाम की पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने श्रीसीता और राम के लिए बहुत अभद्र शब्दों का प्रयोग किया है। अनादि अपौरुषेय मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदों में राम का वर्णन मिलता है। **काण्वसंहिता** में अनेक स्थलों पर राम नाम का प्रयोग मिलता है। **महाभारत** एवं **हरिवंश** के टीकाकार नीलकण्ठ चतुर्धर ने **मन्त्ररामायण** एवं **मन्त्रभागवत** लिखकर **ऋग्वेद** के मन्त्रों के आधार पर श्रीराम-चरित्र तथा श्रीकृष्णचरित्र का वर्णन किया है। **रामतापनीयोपनिषद्**, **रामरहस्योपनिषद्** तथा **सीतोपनिषद्** एवं **मुक्तिकोपनिषद्** में सीता और राम की महिमा वर्णित है। अन्य पचीसों उपनिषदों में भी श्रीरामवन्दनारूप ही मङ्गलाचरण किया गया है। पुराणों के अनुसार वेदवेद्य परमात्मा के श्रीरामरूप से अवतीर्ण होने पर साक्षात् वेद भी महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि के मुखारविन्द से **रामायण** के रूप में प्रकट हुए हैं। महर्षि ने **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार श्रीब्रह्माजी के आदेश से समाधिजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा श्रीराम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, श्रीदशरथ, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता, हनुमान् आदि के हसित, भाषित, इङ्गित, चेष्टित—सभी घटनाओं का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके **रामायण** का निर्माण किया है। **रामायण** आर्ष आदिकाव्य होते हुए भी शुद्ध आर्ष इतिहास भी है और वह आधुनिक इतिहासों के समान संवाददाताओं के तारों एवं टेलीप्रिण्टर के समाचारों के आधार पर विरचित इतिहास नहीं है। इसी लिए ब्रह्माजी का महर्षि वाल्मीकि को वरदान प्राप्त हुआ था कि इस काव्य में तुम्हारा एक वाक्य भी अनृत न होगा—

"न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।" (वा० रा० १।२।३५)

ऋतम्भरा प्रज्ञा ऋत (परम सत्य) ही को धारण करती है। आर्षज्ञान लौकिक प्रत्यक्ष से भी अधिक प्रमाण होता है। लोक में तो आँखों देखी घटनाओं में भी मतभेद हो जाता है। युद्धकाल में आँखों देखी घटनाओं के वर्णन विभिन्न समाचार पत्रों में विभिन्न ढंग के निकलते हैं। तभी यद्यपि श्रीहनुमान्‌जी ने अपने **हनुमन्नाटक** में बहुधा आँखों देखी घटनाओं का ही वर्णन किया है, तथापि रामचरित्र का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ **वाल्मीकिरामायण** ही मान्य है। इसलिए **महाभारत** के भावदीपटीकाकार ने **महाभारत** में लक्ष्मण द्वारा वर्णित कुम्भकर्ण-वध को गौणार्थ मानकर उसे **वाल्मीकिरामायण** के अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। कल्पभेद से रामकथा में भेद हो सकता है। परन्तु मूलतः उसमें भेद नहीं होता। "**राम अनन्त अनन्त गुणानी**" (रा० मा० ७।५१।२) का यह अर्थ नहीं है कि राम ने निरीश्वरवादी जैनमत की भी दीक्षा ले ली थी या राम ने अपनी बहन सीता से विवाह किया था। पर जब ऐतिहासिक तथ्यों एवं प्रमाणों के बिना भी मनमानी कल्पना हो सकती है तब तो परम वैदिक एवं वैदिक धर्म-मार्ग के प्रतिष्ठापक श्रीराम को ईश्वर, वेद एवं वैदिक यज्ञादिविरोधी जैन भी कहा ही जा सकता है। प्रामाणिक व्यक्तियों के लिए ये सब कल्पनाएँ निःसार ही हैं। जैनमत के सज्जन कहते हैं—**अग्निपरीक्षा** सीताराम की आराधना को उजागर करने की दृष्टि से लिखा गया छोटा सा खण्डकाव्य है, पर विचारे साधक को ज्ञात नहीं है कि जैनमत में सीताराम परमेश्वर नहीं, किन्तु एक णमुङ्कार मन्त्र जपनेवाले जैनी हैं। निरीश्वरवादी जैनमत

में ईश्वर भी मान्य नहीं है। फिर उस मत में सीता और राम का ईश्वर होना कैसे सम्भव है। साधक कहते हैं—कवि की प्रतिभा स्वतन्त्र होती है। विधि-निषेधों की रेखाओं से उसे बाँधा नहीं जा सकता। पर साधक यह भूल जाते हैं कि इसी सम्बन्ध में एक जैन सज्जन ने **अग्निपरीक्षा बनाम आर्यपरीक्षा** पुस्तक लिखी है। उसमें लेखक ने लिखा है कि काव्य के कुछ नियम होते हैं। प्रामाणिक इतिहास पुराणादि का आश्रयण करके ही कवि-काव्य यशस्वी होता है। यदि कवि प्रमाणनिरपेक्ष कोई कल्पना करता है तो वह प्रतिभा का स्वातन्त्र्य उच्छृङ्खलता का ही रूप धारण कर लेता है। जो प्रतिभा प्रमाण की भी आवश्यकता नहीं समझती वह भी क्या प्रतिभा कहलाने योग्य है ?

धर्मान्तरण

उक्त सज्जन को लगता है कि जब हिन्दुओं में से किसी के ईसाई, मुसलमान और बौद्ध बनने में कोई बाधा नहीं डाली जाती है तो उनमें से जैन बनाने में ही क्यों बाधा डाली जाती है ? परन्तु क्या यह भी कोई दलील है। क्या यह कोई चोर या डाकू नहीं कह सकता कि जब अमुक अमुक खजाने से बहुत रत्न चुरा लिये, तब हमपर ही प्रतिबन्ध क्यों ? उसे यह समझना चाहिए कि एक पाप के उदाहरण से दूसरा पाप पुण्य नहीं बन जाता ? और किसी सनातनधर्मी प्रहरी के लिए यह कोई उत्तर नहीं है। जो भी वैदिक सनातनियों को बहकाकर, धोखा देकर, धर्मान्तरण की बात करते हैं, वे सब दण्डनीय हैं।

हिन्दू और जैन प्रश्न करते हैं—क्या हिन्दुओं से जैन अलग हैं ? जन्म से मरण तक सारे क्रियाकलाप ब्राह्मणों से करानेवाले जैनों को जानबूझकर हिन्दुसमाज से अलग करना क्या हिन्दुधर्म के हित में होगा ? जो बुद्ध एवं ऋषभदेव को अवतार मानते हैं, चार्वाक जैसे नास्तिक को भी महामुनि मानते हैं, उन अहिंसा को आदर्श माननेवाले जैनों से झगड़ना क्या घर के चिराग से घर में आग लगाना जैसा कार्य नहीं है ? इससे सारी सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायगी। रिश्ते नाते टूट जायँगे। हिन्दुसमाज विभाजित हो जायगा। पर यह प्रश्न तो तुलसी से ही करना चाहिये, क्योंकि तुलसी स्वयं हिन्दू की धर्ममूलक कोई परिभाषा नहीं मानते हैं। उनकी दृष्टि में तो हिन्दुस्तान में रहनेवाला ही हिन्दु होता है। इस दृष्टि से जैसे हिन्दुस्तान में रहनेवाले ईसाई और मुसलमान को हिन्दू या हिन्दी कहा जा सकता है वैसे ही जैन को भी। श्रीविनोवा के साथ हुए वार्तालाप में उन्होंने हिन्दू परिभाषा में गोरक्षा का सन्निवेश भी अनुचित कहा है। हिन्दूपरिभाषा के विचारकों की दृष्टि से तो वैदिक स्मृति-ग्रन्थों पर आधृत मिताक्षरादि निबन्ध ग्रन्थों के अनुसार जन्म-मरणादि संस्कार तथा दायभाग की व्यवस्था स्वीकार करने के कारण जैन भी हिन्दू ही हैं; परन्तु पन्थी जैनाचार्य ही इसका विरोध करते हैं। उनके अनुसार वेद तथा वैदिक ब्राह्मणों द्वारा जैनों को विवाहादि संस्कार नहीं कराना चाहिये। वस्तुतः वैदिक अवैदिक का, ईश्वरवादी निरीश्वरवादी का रिश्ता नाता रहना उचित भी नहीं है। सही बात तो यह है कि जैनधर्म में वर्णाश्रमधर्म मान्य ही नहीं है। फिर भी जैनों में वैश्य जाति के ही लोग अधिकांश हैं। वे व्यापारी होने से निकृति एवं क्षमा का ही आदर करते हैं—**"अर्थस्य मूलं निकृतिः क्षमा च"**। इसी लिए बौद्धों के समान अक्खड़ नहीं हैं। व्यवहार में वर्णभेद मानते रहे हैं। वैश्यों में ही शादी-ब्याह, खान-पान करते रहे हैं। ब्राह्मणों, क्षत्रियों या अन्त्यजों, शूद्रों से शादी-ब्याह उन्होंने नहीं किया; परन्तु बौद्धों ने धड़ल्ले से वर्णधर्म का व्यवहार में भी विरोध किया। मनमानी शादियाँ कीं। मनमाना खानपान किया। इसी कारण वे इस देश में न रह पाये। परन्तु जैन अपनी नीति से नम्र होने के कारण यहाँ रह गये। इसी कारण जैनों का सनातनी वैश्यों में विवाह होता रहा और उस सम्बन्ध से ही उनके कर्मों में ब्राह्मणों का सम्बन्ध रहा। पर आज के कट्टर जैन इसका खुलकर विरोध करते हैं।

जैनों के पक्ष से कहा जाता है—**"ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै"** के अनुसार हिन्दुओं और जैनों में मेल-जोल रहेगा ही। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत एक विशाल देश है। पर क्या ही अच्छा होता यदि

इसके साथ वेद तथा वैदिक यज्ञों तथा ईश्वर का खण्डन करनेवाले ग्रन्थों तथा उनके लेखक और प्रचारक जैनों की भी उपेक्षा की जाती। उनके जाल में फँसे हुए ही अपने बन्धुओं को बचाने का प्रयास किया जाता। पर वस्तुस्थिति भिन्न है। वास्तव में ऐसे लोगों के द्वारा ही भारत की सांस्कृतिक विशालता का खण्डन होता है। जैनपन्थी छद्मनीति से ऐसी बातें कहते हैं पर राम जैसे सर्वमान्यचरित्र कभी भी ऐसी साजिश को सफल नहीं होने देंगे। हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना एवं भावात्मक एकता का प्रतिनिधि राम के अतिरिक्त है कौन ? वास्तव में राम-भक्तों को क्या श्रीराम को ईश्वर न मानकर एक जैन जीव माननेवाले नास्तिकों का खण्डन करने का साहस नहीं करना चाहिए ? वैदिकों ने तो ऋषभदेव एवं बुद्ध को अवतार मानकर उन्हें सम्मानित कर ऊँचे पद पर बैठाया है, पर और लोग अपने उन तुलसी जैसे जैनों के कृत्यों पर ध्यान नहीं देते, जिन्होंने वैदिक दृष्टि से परमेश्वर राम को अपने समान ही णमुक्कार मन्त्र जपनेवाला जीव बनाकर रावणवादियों के समान ही सीता और राम के लिए लोकापवाद के व्याज से अभद्र शब्दों का प्रयोग किया है। साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि जिन ग्रन्थों ने ऋषभदेव या बुद्ध को अवतार बताया है उन्होंने यह भी कह दिया है कि ब्रह्मात्मनिष्ठ ऋषभदेव के सर्वोत्कृष्ट परमहंसभाव को न समझकर ही उनके वाह्य आचरणों के आधार पर किसी राजा ने जिस प्रकार जैनधर्म चला दिया था उसी प्रकार वैदिक धर्म के अनधिकारी कुछ असुरों के व्यामोहनार्थ ही बुद्ध एवं बृहस्पति ने बौद्ध एवं चार्वाक धर्म का उपदेश किया था। अतएव वैदिक ऋषभदेव, बुद्ध एवं बृहस्पति का सम्मान करते हुए भी वेदविरुद्ध जैन, बौद्ध और चार्वाक आदि मतों का आदर नहीं करते। वस्तुतः जैसे आजकल हिन्दुओं के मेलों में ईसाई प्रचारक स्त्री-पुरुष खड़े होकर लोगों को बटोरने के लिए श्रीराम एवं श्रीकृष्ण का गुणगान करते हैं और जब लोग इकट्ठे हो जाते हैं तब उन्हें यीशु की महिमा बताकर पुस्तक बाँटकर हिन्दु धर्म की निन्दा करके उन्हें ईसाई बनने की प्रेरणा देते हैं, ठीक वैसे ही श्रीराम की लोकप्रियता के कारण जैन श्रीराम की चर्चा करते हैं, परन्तु उन्हें ईश्वर न मानकर लोगों को यह बताते हैं कि अन्त में दुःखी होकर राम सोलह हजार राजाओं एवं सीता आदि रानियों के साथ जैनी हो गये। क्या यही श्रीराम की भक्ति है ? तेरापन्थी आचार्य तुलसी आदि का अणुव्रत और सर्वधर्मसम्मेलन आदि आन्दोलन ईसाइयों के समान केवल गैर जैनियों को बटोरकर जैनधर्म-प्रचार करने का साधनमात्र है। उसकी ओट में वे शुद्ध कट्टर साम्प्रदायिकता का प्रचार करते हैं।

जैन रामायण की चाहे कितनी भी प्राचीनता क्यों न मानी जाय, अन्ततः तो वैदिक **रामायण** से वह अर्वाचीन ही है। इतिहास की दृष्टि से सबसे प्राचीन जैन रामकथा विमलसूरि की ही है। वह जैन विद्वानों के अनुसार ही ईशा की प्रथम शती की है। परन्तु आधुनिक इतिहास की दृष्टि से भी **वाल्मीकिरामायण** कम से कम विक्रमशती से ६०० वर्ष प्राचीन है। वास्तव में तो **वाल्मीकिरामायण** ग्रन्थ के अपने अक्षरों के अनुसार वह सिंहासनासीन राम के समकाल में लिखा गया है। व्यास की प्राचीनता भी कुछ कम नहीं है। फिर क्या यह नहीं कहा जा सकता कि वाल्मीकि एवं व्यास द्वारा वर्णित रामकथा को ही जैनियों ने अपने मत के अनुसार परिवर्तित किया। स्पष्ट है कि वाल्मीकि तथा व्यास द्वारा रचित **रामायणों** में, ईश्वर का, वेदों का और यज्ञों का महत्त्व वर्णित है। वहाँ राम को ईश्वर माना गया है। यह सब जैनों के मत से विरुद्ध था। इसलिए जैनों ने उसी रामकथा को विकृत कर अपने रूप में गढ़ा।

आधुनिक जैनपन्थियों का कहना है—महर्षि वाल्मीकि, व्यास, विमलसूरि, रविषेण, हेमचन्द्र, कालिदास आदि अनेक महाकवियों ने **रामायण** काव्य लिखा है। हिन्दुस्तान, नेपाल, बर्मा, जावा, सुमात्रा, श्याम, थाईलैण्ड आदि में रहनेवाले लोगों के भी राम आराध्य हैं। आराध्य की आराधना आराधकों ने लिखी। वह सब रामचरित है। इसी प्रसङ्ग में उन्होंने कामिल बुल्के की **रामकथा** पुस्तक का स्मरण कर **रामायण** क्या है ? उसका विस्तार कैसा है ? उसका किन-किन रूपों में भक्तों ने विस्तार किया, कथाभेद रहने पर भी समूची दुनिया में श्रीराम स्मरणीय क्यों हैं ?

वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन अनेक प्रकार से रामायण से शंबल पाता है। इसी लिए—

"**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**" (ऋ० सं०) एक ही सत्य अनेक रूपों में व्यक्त किया गया है। तब **जैनरामायण** के पुस्तकीकरण से किसी को क्यों आपत्ति होनी चाहिये ? क्या इन समस्त रामायणों के रचयिताओं का व्याख्यावैशिष्ट्य ही तुलसीदास के इस कथन को प्रमाणित नहीं करता ?

> "राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा बिस्तार।
> सुनि आचरजु न मानिहहिं, जिन्ह के बिमल बिचार।।" (रा० मा० १।३३)

यह तो ठीक ही है कि श्रीराम की कथा सब देशों में प्रचलित है और उनमें कुछ भेद भी है; परन्तु वस्तुस्थिति को दृष्टि में रखते हुए तथ्य का मूल्याङ्कन करना चाहिये। क्रिया में विकल्प मान्य होने पर भी वस्तु में विकल्प नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति पैदल चलता है, कोई घोड़े से चलता है, कोई नहीं चलता—ये सब विकल्प सम्भव हैं और यथार्थ हैं, परन्तु मन्दान्धकार में स्थित रज्जु में अनेक विरुद्ध ज्ञानों का समन्वय नहीं हो सकता। कोई उसे रज्जु कहे, कोई उसे सर्प कहे, कोई उसे माला कहे और कोई भूछिद्र कहे, तो उसमें सबका होना संभव नहीं है। वस्तुस्थिति के अनुसार एक ही ज्ञान को सत्य और अन्य को मिथ्या मानना ही पड़ता है। इतिहास भी वस्तुस्थिति से सम्बन्ध रखता है। इसी लिए इतिहास-शोधक प्रमाणों से अन्वेषण कर मिथ्या एवं सत्य इतिहास का भेद खोलते हैं; अतः यदि राम एवं रामचरित काल्पनिक नहीं हैं, कोई वस्तु है तो उसका कोई प्रामाणिक रूप तो जानना ही पड़ेगा। इस दृष्टि से देखने से भी राम के समकाल में निर्मित **वाल्मीकिरामायण** को ही राम एवं उनके चरित्र में मुख्य प्रमाण अवश्य ही मानना पड़ेगा। कामिल बुल्के आदि उस विकासवाद के दृष्टिकोण से ही रामकथा का विकास समझते हैं जिसके अनुसार आत्मा या परमात्मा का विकास हुआ है। उसके अनुसार जङ्गली मनुष्य, जङ्गल के वर्षा, बिजली एवं अन्धकार से भयभीत होकर अपने इर्द-गिर्द हजारों भूतों-प्रेतों की कल्पना करता है ओर फिर वही भूत-प्रेतों की कल्पना सभ्यता के साबुन में धुलते धुलते आत्मा या ईश्वर की कल्पना का रूप धारण कर लेती है; पुनः वही विज्ञान के चमत्कार से चमत्कृत होकर निर्गुण ब्रह्म कल्पना का रूप धारण कर लेती है। पर वास्तव में कल्पना तो कल्पना ही है। यदि इसी तरह राम और उनका चरित्र एक कल्पना है तो अवश्य मनमानी विभिन्नता लायी जा सकती है। पर उसका वस्तुस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं और न वह आराधकों एवं भक्तों का आराध्य या भजनीय ही हो सकता है। ऐसे लोगों की कमी नहीं है, जिनके अनुसार राम या कृष्ण नाम का कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं। पूर्ण ज्ञान में ही कवि-कल्पनाप्रसूत राम एवं उनके चरित्रों की कल्पना है, परन्तु प्रमाणों का आदर करनेवाले वैदिकों की दृष्टि में राम और उनका वर्णन करनेवाला **रामायण** ग्रन्थ कल्पना नहीं है, किन्तु वह अनादि, अपौरुषेय, स्वतःप्रमाण, वेदों, उपनिषदों एवं तन्मूलक **वाल्मीकिरचित रामायण, महाभारत** तथा **पुराणों** के प्रमाणों पर आधृत है। इसलिए श्रीबुल्के ने भी रामकथा के सम्बन्ध में वेदों, आरण्यकों एवं स्मार्त सूत्रों तथा **वाल्मीकिरामायण** को ही प्राथमिकता दी है। हमारे सामने थाईलैण्ड की रामकीर्ति के इङ्गलिश का हिन्दी अनुवाद है स्वामी सत्यानन्दपुरी का। वे लिखते हैं—"जिन काव्यरचनाओं ने विश्व-साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है उनमें रामायण महाकाव्य सर्वोपरि है। भारत ही नहीं बाहर के देशों को भी उसने प्रभावित किया है। और अनेक सदियों की विपरीत परिस्थितियों के बावजूद वहाँ के धर्म, कला तथा साहित्य कौ सुव्यवस्थित किया है। विश्व में यदि कभी कोई ऐसा कवि उत्पन्न हुआ है जिसने न केवल साहित्य के व्यापक क्षेत्र में बल्कि धर्म और कला के क्षेत्र में भी अपनी अमर लेखनी से एक विशिष्ट सम्प्रदाय का निर्माण किया है तो वह मानवता के आदि कवि संस्कृत काव्य के जनक वाल्मीकि ही हैं। उनके अनुयायी विभिन्न कलाकारों ने उनसे चिरस्थायी कला की प्रेरणा लेकर अपनी कलाकृतियों को अमर बनाया है। यही नहीं

बल्कि खेतों में काम करनेवाले किसान और नाव चलानेवाले नाविक लोग भी उनसे अप्रभावित नहीं रहे, जो उनके गीतों को गुनगुनाते हुए अपनी थकावट भूल जाते हैं। निःसन्देह वाल्मीकि की लेखनी ने मानवमात्र पर जिस सम्पूर्णता से प्रभाव डाला है वैसा प्रभाव और किसी कवि की लेखनी डालने में सफल नहीं हुई। **रामकीर्ति के** रचयिता छठे **राम राजा ने** रामकीर्ति के मूल का पता लगाया है। उनके पाण्डित्यपूर्ण विश्लेषण से मूल **रामायण** के रचयिता वाल्मीकि के बारे में ज्ञात हुआ है।"

यद्यपि **रामकीर्ति** की सूलकथा **रामायण** की मुख्य कथा से पूरा मेल खाती है, तथापि विस्तार में वह मूलकथा से एकदम भिन्न है। **रामकीर्ति** में भी राम को नारायण का अवतार माना गया है, अन्य अनेक पात्रों के नामों में भेद है। उसके प्राक्कथन के अनुसार थाईलैण्ड में रामायण भिन्न-भिन्न देशों एवं भिन्न-भिन्न मार्गों से आयी हुई प्रतीत होती है। इसी लिए उसमें अनेक अंशों में भिन्नता पायी जाती है।

यहाँ ध्यान देने योग्य यह है कि जब भारत से दूर-दूर प्रदेशों में पहुँची हुई रामकथाओं का आधार **वाल्मीकिरामायण** है तब भारत में ही विकसित **जैनरामकथा** का आधार **वाल्मीकिरामायण** को छोड़कर अन्य क्या हो सकता है? आधुनिक वैज्ञानिकों का भी इसी भाव से मेल खाता है। समान ज्ञान या समान कला कृतियों का विभिन्न देशों में स्वतन्त्ररूप से विकास मानने की अपेक्षा एक देश से किसी सूत्र द्वारा उसका अन्यत्र पहुँचना ही संभव और उचित माना जाता है; अतः रामकथा का भी स्वतन्त्ररूप से सर्वत्र विकास मानना तर्कशून्य ही है। ऐसी स्थिति में वेद, उपनिषद्, **वाल्मीकिरामायण** आदि ही उसके विकास के भी स्रोत हैं। अतएव मूल के अविरुद्ध कल्पनाएँ क्षम्य हो सकती हैं, पर सिद्धान्त एवं आदर्शविरुद्ध कल्पनाएँ सर्वथा अक्षम्य ही हैं। तुलसीदास के **"राम अनंत अनंत गुन अमित"** (रा० मा० १।३३) के अनुसार रामकथा के सम्बन्ध में मनमानी या अराजकता का समर्थन नहीं किया जा सकता। उनका तात्पर्य तो वेद, **वाल्मीकिरामायण एवं अध्यात्मरामायण** आदि के अविरुद्ध ही रामकथाओं के समन्वय में है। जैन कथाओं में राम को ईश्वर न मानकर मनुष्य माना गया है; पर उसका जोरदार शब्दों में श्रीतुलसीदासजी खण्डन करते हैं।

"रामु मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥" (रा० मा० ६।२५।३)

रे शठ अड़वङ्ग रावण, क्या राम मनुष्य हैं? क्या काम कोई साधारण धन्वी है? क्या गङ्गा कोई नदी है? अब कहिये क्या तुलसीदास की इन बातों को लेखक मानेंगे। श्रीराम परमात्मा या परमेश्वर नहीं हैं, वे एक महापुरुष मनुष्य हैं—ऐसा माननेवाले के प्रति तुलसीदासजी की भर्त्सना सुनिये—

"तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥" (रा० मा० १।११३।४)

"कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाखंडी हरिपद बिमुख, जानहिं झूठ न साच॥" (रा० मा० १।११४)

"अज्ञ अकोविद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल बिसेखी। सपनेहुँ संतसभा नहिं देखी॥
कहहिं ते बेद असंमत बानी। जिन्हके सूझ लाभ नहिं हानी॥
मुकुर मलिन पुनि नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥
बातुल भूत बिबश मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्हकर कहा करिअ नहिं काना॥"

(रा० मा० १।११४।१-४)

शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं कि तुमने जो शङ्का के रूप में यह कहा है कि श्रीराम वेदवेद्य एवं योगीन्द्र मुनीन्द्र ध्येय परमात्मा नहीं हैं, किन्तु परमेश्वर से भिन्न कोई और ही हैं, वह ठीक नहीं, क्योंकि ऐसा तो अधम लोग ही कहते सुनते हैं। जो मोह-पिशाच से ग्रस्त होते हैं। ऐसे लोग पाखण्डी तथा हरिपदविमुख हैं। वे क्या सत्य है क्या मिथ्या है कुछ भी नहीं जानते। वे अज्ञानी, मूर्ख और अभागे हैं। उनके मनरूपी दर्पण में विषयमयी काई लगी है, अतः वे राम को नहीं जान पाते। लम्पट कपटी कुटिल लोग जिन्होंने कभी सन्त-सभा नहीं देखी है, वे ही लोग वेद-असम्मत वाणी बोलते हैं। उनको वास्तविक हानि, लाभ का कुछ ज्ञान नहीं होता। जिनका मनरूप दर्पण मलिन है और जिनके पास वेदादि-शास्त्ररूप नेत्र नहीं हैं वे रामरूप को जान भी कैसे सकते हैं? ऐसे लोग वातुल एवं भूतविवश मतवाले हैं। वे बिना विचार बोलते रहते हैं। जिन्होंने महामोहरूप मदिरा पी रखी है उनकी बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिये। आधुनिक जैन लेखकों को गम्भीरता से सोचना चाहिये कि क्या श्रीतुलसीदासजी श्रीसीताराम को परब्रह्म परमेश्वर नहीं मानते! अवश्य मानते हैं। और जो मानते हैं कि श्रीराम ने दुःखी होकर जैनमन्त्र की दीक्षा ली उनकी राम-कथा का तुलसीदास के **रामचरितमानस** के द्वारा समर्थन हो सकता है?

तुलसीदास स्वयं कपीश्वर हनुमान् से भी प्रथम वाल्मीकि की वन्दना करते हैं।

"वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ।"

वे स्पष्ट कहते हैं जैसे कोई राजा बड़ी नदी पर सेतु निर्माण करता है और चींटी भी उसी पर चढ़कर श्रम के बिना नदी पार कर जाती है, वैसे ही महर्षि वाल्मीकि आदि मुनियों ने जो **रामायण** का निर्माण किया है वही रामचरित महासरिता-सेतु है। उसी मार्ग पर चलने में हम लोगों को सुगमता है—

"मुनिन्ह प्रथम हरिकीरति गाई।
तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई॥" (रा० मा० १।१३)

"अति अपार जे सरितबर जौं नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥" (रा० मा० १।१३)

इसी तरह बिना समझे साधकजी ने "**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**" वेदवाक्य को छेड़ा है। उनके जैनाचार्यों को वेद का प्रामाण्य मान्य ही नहीं है और उस मन्त्र का अर्थ उनके अनुकूल नहीं है। उसके द्वारा यह कहा गया है 'विप्र लोग उस एक ही सर्वाधिष्ठान स्वप्रकाश ब्रह्म का सोपाधिकरूप से अग्नि, यम, मित्र, वरुण, गरुत्मान् आदि अनेक रूपों में वर्णन करते हैं।' मन्त्र का यह अर्थ नहीं है कि वही वेदान्तियों का ब्रह्म है, वही जैनों का पुद्गल तथा मध्यम परिमाण आत्मा है और वही बौद्धों का क्षणभङ्ग विज्ञान है। जो राम को अनन्त मानते हैं, राम को गुणगणधाम मानते हैं तथा उस एक ही अनन्त राम का कल्पभेद से अवतार मानते हैं एवं तदनुसार राम की कल्प-भेद से कथा का भेद मानते हैं वे बिमल विचारवाले लोग कल्प-भेद सम्बन्धी कथाभेद सुनकर आश्चर्य नहीं मानते। यह है आपके उद्धृत—

राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिनके बिमल बिचार॥ (रा० मा० १।३३)

दोहे का अभिप्राय। कहिये, क्या आप या आपके जैनाचार्य श्रीराम को अनन्त मानते हैं या मध्यम परिमाण? श्रीराम को अनन्तगुण परमेश्वर मानते हैं? यदि नहीं, तो इस प्रकार के वचनों को उद्धृत करके लोगों की आँख में धूल क्यों डालते हैं? धर्मान्ध लेखक के उद्धृत—

"रामकथा की मिति जग नाहीं। अस प्रतीति जिनके मन माहीं।
नाना भाँति राम अवतारा। रामायण शतकोटि अपारा ॥"(रा० मा० १।३२ (३)

का भी अभिप्राय है श्रीराम सबके हैं; पर आवश्यकता है मानने की।

इसी तरह उस पुस्तक में कहा गया है—राम किसके हैं ? यदि तुलसीदास की भावना के अनुसार—

"कहाँ कहौं छवि आजु की भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै जब धनुष बाण लो हाथ ॥"

उनका यह वचन सुनकर कृष्ण तत्काल श्रीराम के रूप में परिवर्तित हो गए; तो फिर यह मानने में क्यों झिझक होती है कि भगवान् राम ने जैनों की भावना का रक्षण करना भी अस्वीकार नहीं किया। भावना के भूखे भगवान् को अपने ही साँचे में फिट करने की कल्पना करनेवाले आग्रही हैं, बेसमझ हैं। उन्हीं के कारण असीम को ससीम बनानेवाले सम्प्रदाय फल फूल रहे हैं। वस्तुतः राम सर्वेश्वर हैं, अनन्त ब्रह्माण्ड के कण-कण उनके ही हैं और वे सबके हैं। पर वैसा मानना ही आस्तिकता है न मानना नास्तिकता है।

ऐसी स्थिति में यहाँ लेखक से प्रश्न है कि क्या वे कृष्ण की मूर्ति का रामरूप में परिवर्तित हो जाना सत्य मानते हैं ? यदि नहीं, तो दृष्टान्त ही असिद्ध है फिर उसके आधार पर श्रीराम का जैन भावना के अनुसार जैन हो जाना कैसे मान्य हो सकता है ? इसके अतिरिक्त दृष्टान्तमात्र वस्तुसिद्धि का हेतु नहीं होता। उसमें सद् हेतु भी होना चाहिए। इसी लिए तो अग्नि के दृष्टान्त से जल को उष्ण नहीं कहा जा सकता। यदि उक्त घटना सत्य है तो क्या लेखक और उसके अन्य जैन बन्धु तुलसीदास के समान ही श्रीराम को ईश्वरावतार मानते हैं ? यदि नहीं तो भी उक्त कथन असङ्गत है। यदि मानते हैं, तो लेखक का स्वसिद्धान्तविरोध होगा; क्योंकि जैन-न्यायदर्शन, **न्यायकुमुदचन्द्र** आदि ग्रन्थों में जब समारोह के साथ ईश्वर का ही खण्डन है तब जैनों के अनुसार राम को ईश्वरावतार मानना वदतो व्याघात ही है। वैदिक दृष्टिकोण से तो ईश्वर सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान् है। वही वेदादि शास्त्रों के अनुसार श्रीराम हैं, वही श्रीकृष्ण हैं। फिर तो भक्त की भावना के अनुसार श्रीकृष्ण का श्रीराम हो जाना कोई कठिन बात नहीं है। पर क्या कोई मनुष्य जीव भी किसी की भावना के अनुसार कुछ का कुछ हो सकता है ? यदि कोई सिद्ध आम को कटहल बना दे तो वह उस सिद्ध की ही विशेषता होगी, आम की नहीं। यदि भावना के आधार पर वस्तुस्थिति में परिवर्तन हो तो क्या महावीरस्वामी को भावनावश कोई बौद्ध या वाममार्गी या गोमांस-भक्षक बना सकता है ? और उसे आप का (पूर्वपक्षलेखक का) सिद्धान्त स्वीकार करता है ?

धर्मानन्द कौशाम्बी की 'भगवान् बुद्ध' नामक पुस्तक प्रकाशित है। उसमें उन्होंने लिखा है भगवान् बुद्ध तथा महावीर सूकर आदि का मांस खाकर मरे थे। यदि यह बात उनके प्रमाणों एवं भावना के अनुसार ठीक थी तो जैन विद्वानों ने उसका खण्डन क्यों किया था ? इसी लिए भावनाओं की भी सीमा होती है। शास्त्रानुसार भावना से ईश्वर या देवताओं में भावनानुरूप रूप-भेद शास्त्रसम्मत है। **"तं यथा यथोपासते"** (श० ब्रा० १०।५।२।२०) के अनुसार नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव परमेश्वर बद्ध जीव नहीं बन सकता। देहात्मवादी चार्वाक या वेद-विरोधी जैन, बौद्ध ईश्वर नहीं हो सकता। सब कुछ ब्रह्म ही है यह बाधसमानाधिकरण व्यपदेश है। जैसे सर्प को बाधित कर रज्जु सर्प है वैसे ही सबको बाधित करके ब्रह्म सब है। **प्रबोधचन्द्रोदय** में जैन क्षपणक तथा बौद्ध भिक्षु को वाममार्गी बनते हुए दर्शाया गया है। क्या यह उनके भावनानुसार ठीक है ? आगे लेखक कहता है—ऋषभ को हिन्दुओं ने विकृत करके पेश किया है। वह जैनों की भावनाओं को उभाड़नेवाला है; पर जैन उभड़े नहीं। उन्होंने हिन्दुओं से इसके लिए तकरार नहीं की।

जिन्हके रही भावना जैसी। प्रभुमूरति देखी तिन्ह तैसी ।। (रा० मा० १।२४०।२) के आदर्श को अस्वीकार करने पर भी व्यवहार में उसे मान्य कर लिया।

यहाँ लेखक अपने ही पूर्वापरविरोध को भूल गया। पहले उसने कहा—जैन हिन्दुओं से अलग नहीं हैं, पर अब यहाँ वह स्वयं हिन्दू और जैन का बिलकुल पृथक्-पृथक् उल्लेख करने लगा। यही है लेखक के मन की सत्य भावना जो उसके सिर पर चढ़ कर बोलने लगी। पीछे मैंने लिखा है कि वैदिकों ने ऋषभदेव का अपमान नहीं किया; किन्तु जैन मतानुसार ऋषभदेवजी का वैदिकों ने उन्हें ईश्वर मानकर आदर ही किया। फिर, तकरार का प्रश्न ही कहाँ उठता था। किन्तु जैन ने तो वैदिकों के परमेश्वर राम को एक दुःखी जीव बनाकर उनका अपमान ही किया है। महत्त्व तो उन्होंने उनको जैनदीक्षा में दीक्षित करके दिया।

लेखक ने मुझपर आरोप लगाते हुए कहा है कि 'मैं अपने ही चश्में में सबको देखना चाहता हूँ; पर आर्यसमाजी ही वैसा नहीं मानते।' वस्तुतः यह उल्टी बात है। मैं तो लीपापोती ही को दोष मानता हूँ। स्पष्टरूप से प्रमाण-प्रमेय विचार तो भिन्न-भिन्न मतों के हैं ही; क्योंकि जैनों के श्वेताम्बर, दिगम्बर, तेरापन्थी आदि आपस में ही कुछ कम खण्डन-मण्डन नहीं करते हैं। बौद्ध और जैन दोनों ही अवैदिक, निरीश्वरवादी तथा वर्णाश्रमविरोधी होते हुए भी क्या एक दूसरे की बात मानते हैं? अपने-अपने मत में दृढ़ रहने से सबको अपने ही चश्मे से नहीं देखना चाहते हैं? क्या बुद्ध और महावीर एक दूसरे के सर्वज्ञ होने का दावा मानते थे? आर्यसमाजी तो फिर भी ईश्वर की सत्ता एवं वेद के ही कुछ ग्रन्थों को प्रमाण मानते ही हैं। रामचरित के सम्बन्ध में भी वे **वाल्मीकि-रामायण** को ही प्रमाण मानते हैं, **जैनी रामकथा** को नहीं।

लेखक कहता है, "आखिर **जैनरामायण** में क्या है? क्या राम को रावण बना दिया, क्या राम को गोमांसभक्षी बनाया गया है?" परन्तु जब मनमानी ही है, प्रमाण की अपेक्षा नहीं है तो कोई राम को वैसा भी तो कह और लिख सकता ही है। वैसे साक्षात् परब्रह्म, परमेश्वर को दुःखी मनुष्य मानकर उनका अवैदिक, निरीश्वरवादी जैन मत में दीक्षित होने का वर्णन करना उनका कुछ कम अपमान नहीं है।

आगे लेखक कहता है—"**जैनरामायण** में सर्वत्र नैतिक पक्ष निखारा गया है जो समस्त आर्य-साहित्य का गौरव है। हिंसा के बीच अहिंसा की प्रतिष्ठा का यह साङ्गोपाङ्ग दर्शन है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।" किन्तु विचार करना चाहिए, क्या यह ठीक है? वस्तुतः यही तो मतिभ्रम है। क्या **वाल्मीकिरामायण** के याथातथ्य वर्णन में नैतिकपक्ष कमजोर है? क्या रावण जैसे दुर्दन्त सर्वधर्मघातक का वध हिंसा है? हिंसा के बीच अहिंसा का तो यही अर्थ है कि श्रीराम रावण के अन्यायों के प्रतीकारस्वरूप उसे दण्ड तो देते हैं, पर उसका अहित नहीं चाहते। उससे द्वेष नहीं मानते। विभीषण से श्रीराम ने कह दिया कि तुम रावण का और्ध्वदेहिक संस्कार करो। जैसा यह तुम्हारा है वैसा ही हमारा। श्रीराम ने विराध का वध किया, पर उसका और्ध्वदेहिक कृत्य उसके इच्छानुसार ही किया। गीताकार ने—

"साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।" (गी० ६।९)

इस वचन के अनुसार सुहृद् मित्र, अरि एवं उदासीन तथा साधु एवं असाधु सर्वत्र ब्रह्मदर्शन का उपदेश करते हुए भी धर्मयुक्त संग्राम से मुँह मोड़ने को कायरता बतलाया और कहा—

"क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ!" (गी० २।३)

अर्जुन, तुम क्लैव्य मत धारण करो। यहाँ तक कह दिया कि यदि तुम धर्मयुक्त सङ्ग्राम से विमुख होओगे तो तुम्हारे स्वधर्म एवं कीर्ति का नाश ही नहीं होगा, तुम्हें पाप भी लगेगा। अन्यायियों को दण्ड न देना ही अन्याय एवं

हिंसा को बढ़ावा देना है। वास्तव में जो मुखपर पट्टी बाँधकर अपने को अहिंसाव्रती घोषित करते हैं, साथ ही दूसरों के इष्ट देवताओं को अपमानित करते हैं और वेदों एवं यज्ञों का खण्डन करते हैं वे ही अहिंसा के बीच में हिंसा की प्रतिष्ठा करते हैं। इससे बचना सबसे पहला काम है।

जैसा कि मैंने पहले कहा है, **वाल्मीकिरामायण** में ईश्वर और यज्ञों का वर्णन किया है एवं वेद का महत्त्व वर्णित है, वह जैनाचार्यों के अपने सिद्धान्त के विरुद्ध है। परन्तु रामकथा पर जनसामान्य का अनुराग है; अतः जैन भी यदि **वाल्मीकिरामायण** पढ़ेंगे तो अवश्य ही उससे प्रभावित होंगे, अतः **वाल्मीकिरामायण** को अपने धर्म के साँचे में ही ढालकर रामकथा से वेद, ईश्वर तथा यज्ञ निकाल कर **जैनरामकथाओं** में उसे विकृत किया गया है। यही जैनों की रामायण-रचना है। स्वतन्त्रता हमारी ही नहीं और लोगों की भी है; अतः यदि स्वतन्त्रताएँ टकरायेंगी तो शान्ति और अहिंसा टिक नहीं सकेगी। इसी लिए वैदिकों ने कहा है—

"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।"

जो अपने लिए प्रतिकूल हो वह दूसरों के लिए न करना यह धर्म का सर्वस्व है। जैसे हमारे इष्ट देवता का खण्डन हमारे लिए उद्वेजक है वैसे ही दूसरों के धर्म, धर्मग्रन्थ या देवता का खण्डन दूसरों के लिए भी उद्वेगकर होगा ही और वह हिंसा ही होगी।

तेरापन्थी आचार्य तुलसी आदि की रामकथा के द्वारा तो आर्यमर्यादा एवं नैतिक पक्ष का हनन ही हुआ है। वस्तुतः निखरना या पालिश करना आदि ही कृत्रिमता का हेतु है। सत्य स्वयं में देदीप्यमान होता है। सूर्य को निखारने की आवश्यकता नही होती। निखार का अर्थ है आधुनिक सुधार और आधुनिक सुधार के नाम पर शास्त्रीय एवं स्वाभाविक स्थिति को बिगाड़ कर उसे अपने अभीष्ट अन्य रूप में परिणत करना, किन्तु यह एक घोर अपराध है। अन्यथाभूत वस्तु का अन्यथा वर्णन करना चोरी है, पाप है। इसे कविप्रतिभा का स्वातन्त्र्य नहीं माना जा सकता। भगवान् मनु ने कहा है—

"योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा सत्सु भाषते।
स पापकृत्तमो लाके स्तेन आत्मापहारकः॥" (म० ४।२५५)

महाभारत में भी स्पष्ट कहा है—

"अन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा यः प्रपद्यते।
किं तेन न कृतं पापं चौरेणात्मापहारिणा॥"

जो अन्यथाभूत वस्तु को अन्यथा समझता या वर्णन करता है, उस आत्मापहारी चोर ने कौन सा पाप नहीं किया? सत्य को जैसा का तैसा रहने देना ही ठीक है। उसको निखारने का प्रयत्न करना उसमें विकृति लाना है। आगे लेखक स्वयं स्वीकार करता है—**जैनरामायण की कथा** अपने ढंग की है। उसका सारा विवेचन, दर्शन और परिणाम स्वतन्त्र है। वह वाल्मीकि की नकल नहीं है। पर यह स्वतन्त्रता ही तो उच्छृङ्खलता है। क्या बिना कुड्य के चित्रोल्लेख सम्भव है? आखिर **जैनरामकथा** का आधार क्या है? वाल्मीकि राम के समकाल के महर्षि थे। उस समय की घटना का उन्हें ज्ञान होना असम्भव नहीं। फिर ब्रह्मा के आदेशानुसार समाधिजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा से भी उन्हें परिस्थिति का यथार्थ ज्ञान होना सम्भव है। क्या विमलसूरि या तुलसी आदि जैन आचार्य भी राम के समय में थे? नहीं थे तो स्वतन्त्ररूप से रामचरित्र कैसे विदित हुआ? बिना किसी प्रमाण के कल्पनामात्रप्रसूत कोई गल्प या उपन्यास हो सकता है। उसका वस्तुस्थिति से सम्बन्ध नहीं रहता है। वैदिक लोग भी जैन तीर्थङ्करों के सम्बन्ध में बेसिर-पैर की कल्पना कर सकते थे; पर उन्होंने इसे जघन्य अपराध समझकर वैसा

नहीं किया; किन्तु अहिंसात्मक शान्त आन्दोलन के द्वारा श्रीतुलसी को उसे परिवर्तित करने का ही आग्रह किया है। आपने यह भी लिखा है—

"कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ।
मति अनुरूप राम गुण गाऊँ॥"

जैसे गोस्वामीजी ने रामकथा का विस्तार किया है वैसे हो जैनों ने किया है। आचार्य तुलसी का भी यही आधार है। पर यह भी ठीक नहीं; क्योंकि गोस्वामी तुलसीदास का तो दर्शन परिणाम स्वतन्त्र नहीं है। यह पहले कहा जा चुका है कि वे तो आदि महर्षियों के रचित रामायणरूप सेतु पर चढ़कर चींटी के समान ही अपने रामचरितरूपी अपार सरित्वर के पार जाने की बात करते हैं। कोई भी चरित्र निराधार निष्प्रमाण हो भी कैसे सकता है ? यदि किसी को स्वतन्त्र विवेचन, दर्शन लिखना है तो उसको अ, ब, ख आदि किसी अन्य नाम का प्रयोग करना चाहिये। क्या कोई मुहम्मद साहब का नाम लेकर ऐसा स्वतन्त्र मनमाना विवेचन लिख सकता है।

अग्निपरीक्षा का परिचय

आगे अग्निपरीक्षा पुस्तक का परिचय देते हुए लेखक कहता है—"उसमें सीता को महासती के रूप में प्रस्तुत करके शील और पवित्र जीवन विताने की शिक्षा दी गयी है, जिसमें सीता का शौर्य भरा जीवन दीखता है। सन्देश नया, आदेश नया, उपदेश नया तथा नारी जागृतिका उन्मेष नया; परन्तु यहाँ आधुनिक सुधारवाद की भावना से ओत-प्रोत तेरापन्थी आचार्य तुलसी की अपनी भावना है। प्रामाणिक प्राचीनतम रामायण की भावना नहीं है और आधुनिक नारीस्वातन्त्र्य आन्दोलन से प्रभावित श्रीतुलसी के हृदय में आर्यमर्यादानुरूप नारी का प्राचीन गौरव नहीं है। सुधारकों में नवीनता का भूत चढ़ा ही होता है। लेखक के आर्यसाहित्य के गौरव का यही नमूना है।

महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित आर्य नारी का गौरव देखिये। अपने प्रियतम से परित्यक्त होने के कारण श्रीसीता को उद्वेग हुआ। उसी में वह कह उठीं—"लक्ष्मण ! तुम मेरी ओर से राजा से कहना लङ्का में मेरी आपके समक्ष अग्निपरीक्षा हुई है फिर भी लोकवादश्रवण के कारण आपने जो मेरा त्याग किया है, क्या यह आपके श्रुत—वेदादि-स्वाध्यायाध्ययन अथवा आपके कुल के अनुरूप है ?

"वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकवादश्रवणादहासीः श्रुतस्य तत् किं सदृशं कुलस्य॥" (रघु० १४।६१)

परन्तु तत्क्षण ही वह भारतीय परम्परागत नारीगौरव के अनुसार सँभलकर कहती हैं—

"कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः॥" (रघु० १४।६२)

अथवा आप तो कल्याणबुद्धि हैं, सबका ही हित चाहते हैं, कभी अरि का भी अहित नहीं चाहते।

"अरिहुँ क अनभल कीन्ह न रामा।" (रा० मा० २।१८१।३)

"कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥" (वा० रा० २।१।११)

श्रीराम कभी किसी तरह किये हुए एक उपकार से सन्तुष्ट होते हैं फिर आत्मवान् होने के कारण वे सैकड़ों अपकारों का स्मरण तक नहीं करते; अतः मेरे सम्बन्ध में आपके कामचार (मनमानी) की शङ्का नहीं हो सकती;

किन्तु मेरे ही जन्मान्तरीय दुष्कृतों का यह असह्य दुर्विपाक वज्र मेरे सामने आया है और पुनः श्रीसीता वही भाव व्यक्त करती हैं, जो श्रीसीताजी के ही अनुरूप है। तथा है समस्त वेदादि-शास्त्रानुप्राणित संस्कृति के परम अनुरूप।

"साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥" (रघु० ११।६६)

आपसे परित्यक्ता होने पर भी मैं (सीता) प्रसूति के अनन्तर सूर्यनिविष्टदृष्टि होकर ऐसी तपश्चर्या करूँगी जिससे जन्मान्तर में भी आप ही मेरे भर्ता हों और कभी आपसे मेरा विप्रयोग न हो।

आगे लेखक दलबदलुओं का दृष्टान्त देकर श्रीराम के जैनधर्म में प्रवेश का समर्थन करता है; परन्तु परमेश्वरावतार राम को निरीश्वरवादी जीव बना देना ही तो सबसे बड़ा अपराध है। अति प्राचीन वेद, उपनिषद् तथा **वाल्मीकिरामायण** के द्वारा परमेश्वररूप से प्रतिपादित श्रीराम को जैनी के रूप में देखना ही तो अपने ही चश्मे से देखने का मूढ़ाग्रह है।

आगे लेखक ने गोस्वामी तुलसीदास के **रामचरितमानस** की प्रशंसा करते हुए कहा है 'गोस्वामीजी ने **जैनरामायण** को भी देखा ही होगा। सबको दृष्टि में रखते हुए **रामचरितमानस** लिखा है। इसी लिए किसी ने जैन या जैनेतर ने उसके विरुद्ध कलम नहीं उठायी। वह अनुपम भक्ति-काव्य ग्रन्थ है।" यह ठीक है। पर जब यह मानते हैं तो उसके अनुसार श्रीराम को—

"व्यापक ब्रह्म निरञ्जन निर्गुन बिगत बिनोद।
सोइ अज भक्त प्रेमवश कौशल्या की गोद॥" (रा० मा० १।१०८)

क्यों नहीं मानते? उन्हें जैनी जीव बनाने का जघन्य अपराध क्यों करते हैं? आगे तो लेखक ने बहुत ही छिछले शब्दों से आधुनिक मनचले लेखकों के जैसे आक्षेप करते हुए वस्तुस्थिति को अन्यथा रूप में व्यक्त किया है, जिसका उसी रूप में उत्तर देना मेरे लिए असम्भव ही है। पर साथ ही वह यह भी मान लेता है।

"गये शहर में आप मुझे तब ले न गये साथ।
बकबक करनेवालों को दिखला देता दो हाथ॥

छन्द पढ़ते ही स्पष्ट हो जाता है कि ये पद्य आचार्य तुलसी के प्रौढ़ कवित्व के कितने परिचायक हैं? पर वह यह मानता है—'आजाद भारत के आजाद युवक समाधान की खोज में भटक रहे हैं। उन्हें एक प्यास है। वह प्यास धर्म, दर्शन से नहीं बुझती। उस तृष्णा की पूर्ति का सङ्केतात्मक प्रयास आचार्य तुलसी ने किया है।' लेखक ने यह बात अवश्य पते की कही, तभी सिनेमाप्रिय आजाद युवकों के लिए उन्होंने अग्निपरीक्षा में सिनेमा के गानों का सन्निवेश किया है; परन्तु यह तृष्णापूर्ति तो सिनेमा से ही होगी। इससे तेरापन्थी तुलसी का घासलेट साहित्य सफल न होगा। लेखक ने आठवें पृष्ठ में लिखा है 'आचार्य तुलसी घोषित कर चुके हैं कि मुझे अपनी ओर से इस ग्रन्थ के बारे में कुछ भी कहने की जरूरत नहीं है।' १० वें पृष्ठ में लिखा है 'उन्होंने अपनी कृति में संशोधन करना स्वीकार कर लिया है।' क्या यह बुद्धिमानी है। लेखक ने—

'तुलसी जाके मुखन ते धोखेहु निकसत राम।
ताके पग की पानही मेरे तन की चाम॥"

इस दोहे का स्मरण किया है। यदि यह दाम्भिक भाव से न होकर शुद्ध भाव से स्मरण-पथ में लाया गया हो तो इसका यही अर्थ है—

"भाव कुभाव अनख आलस हूँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।" (रा० मा० १।२७।१)

परन्तु जिन राम का सादर ससम्मान परमेश्वररूप से स्मरण करने से तत्काल शान्ति मिलती है; उनका क्या रावण बनकर शत्रुभाव से नाम लेना बुद्धिमानी की बात है ? १३ वें पन्ने में भी लेखक ने वही तेरापन्थी तुलसी द्वारा उपयुक्त कुलटा, व्यभिचारिणी शब्दों का समर्थन करते हुए उसका खण्डन करने वालों को धर्मान्ध कहने की धृष्टता की है और उनपर भ्रान्ति फैलाने का आरोप लगाया है। गाली का अनुवाद भी पाप है। वस्तुतः लेखक अपने समान ही अपने चश्मे से ही सबको धर्मान्ध एवं पूर्वापर विवेकशून्य मानता है, अन्यथा यह कौन नहीं जानता कि **अग्निपरीक्षा** के षड्यन्त्र-प्रकरण द्वारा लोकापवाद का चित्रण किया गया है, परन्तु ऐसा होने पर ही अग्निपरीक्षा लेखक दोषमुक्त नहीं हो सकता; क्योंकि साक्षात् राघवेन्द्र राम की स्वरूपभूता महालक्ष्मी सीता के लिए या महासती के लिए अथवा अपनी माँ के लिए पिता द्वारा या अन्य दुष्ट जनों द्वारा दी हुई गालियों का अनुवाद भी पाप है। "**कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः**" (शि० २।४०)। पापियों की पापसम्बन्धिनी कथा भी अकल्याणकारिणी होती है। शिशुपाल ने कृष्ण को सौ गालियाँ दी थीं। वे भी ऐसी उद्वेजक नहीं थीं। प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी ने लिखा है कि भगवान् को गाली देने के लिए प्रवर्तित होने पर भी उसकी सरस्वती ने भगवान् की स्तुति ही की है। और तदनुसारी अर्थ भी उन्होंने उन गालियों का व्यक्त किया है। निष्प्रमाण गालो-कल्पना घोर पाप है; परन्तु यहाँ तो वस्तुस्थिति भी वैसी नहीं है। जब पूर्ववर्ती **व्यास-वाल्मीकिरामायणों** में भी ऐसी गालियों का वर्णन नहीं है, तब वस्तुस्थिति के विपरीत वैसी गालियों की कल्पना सुतरां उच्छृङ्खलता है। यहाँ तक कि पूर्व **जैनकथाओं** में भी ऐसे अनुचित शब्दों का उल्लेख नहीं है। कुन्दमालाकार भी एक महान् जैन कवि हैं। **उत्तररामचरित्र** के तुल्य ही उनका उत्तररामचरित्रसम्बन्धी एक दिव्य नाटक है। उसमें उन्होंने भी इस प्रसङ्ग में नियन्त्रित सन्तुलित शब्दों का ही प्रयोग किया है। इसी लिए शास्त्रनियन्त्रित कवि की स्वतन्त्र प्रतिभा उन्मार्गगामिनी और उच्छृङ्खल नहीं होती है। इसी लिए प्रामाणिक ग्रन्थों की कथावस्तु के अनुसार ही काव्य, नाटकों के प्रणयन का निर्देश शास्त्रों में किया गया है।

बिना अपवाद के भी अग्निपरीक्षा

यद्यपि तुलसी झुक गये, **अपनी कृति में संशोधन करना मान लिया**, फिर भी लेखक अपने मूढ़ आग्रह के कारण उसका समर्थन करते हुए कहता है—"जनापवाद को इस सीमा तक पहुँचाये बिना सीता के वनवास की प्रक्रिया नहीं बन सकती थी। सामान्य स्थिति में क्या कोई पति अपनी पत्नी का परित्याग कर सकता है ? पर यह भी कितनी निःसार दलील है। लेखक ने यदि कभी वाल्मीकि आदि के **रामायण ग्रन्थ** पढ़े हैं या उसे कभी आर्यशास्त्र सुनने पढ़ने को मिले हैं तो उसको मालूम होना चाहिये कि एक वैदिक आर्य पुरुष तो स्वतन्त्ररूप से कतिचित् क्षण भी परगृहोषिता पत्नी को त्याग देता है। तभी तो श्रीराम ने लङ्का ही में जब कि किसी ने कुछ भी नहीं कहा था, स्वयं शङ्का उपस्थित कर श्रीसीता को अग्निपरीक्षा का अवसर दिया था। ऐसी स्थिति में यह कैसे कहा जा सकता है कि अपवाद को बिना चरम सीमा पर पहुँचाये सीता के परित्याग की प्रक्रिया नहीं बैठ सकती थी। इतना ही क्यों अग्निपरीक्षा के बाद भी **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार यत्किञ्चित् लोकवाद के कारण ही राम ने सीता को वनवास दिया। यों तो आधुनिक ऐसे भी लोग हैं जो हजार अपवाद होने पर भी पत्नीत्याग नहीं करते। इतना ही क्यों, अनेक लोगों की भूतपूर्व पत्नियों को भी अपनी पत्नी बनाने में कुछ लोग संकोच नहीं करते।

वस्तुतः यह पुस्तक कई वर्षों से छपी थी। इसे कोई जानता भी न था। इस वितण्डावाद के मूल भी आचार्य तुलसी ही हैं। रायपुर में जब उन्होंने एक सार्वजनिक भाषण में श्रीसीता के लिए निन्दित शब्द का प्रयोग किया तो वहाँ के लोगों ने क्षुब्ध होकर उसका आधार पूछा। तब उन्होंने अपनी अग्निपरीक्षा पुस्तक बतायी। उसका भी आधार पूछा गया तो **वाल्मीकिरामायण** को उन्होंने आधार बताया। जब लोगों ने **वाल्मीकिरामायण** दिखाया

और कहा कि इसमें तो ऐसे कोई भी शब्द नहीं हैं। तब उन्होंने **जैनरामायण** का नाम लिया, पर जब **जैनरामायण** में भी उसका कोई आधार नहीं मिला। तब उन्होंने उसे अपनी कल्पना मान लिया था।

तेरापन्थी आचार्य तुलसी के उक्त ग्रन्थ को देखकर श्रीविनोवाजी ने कहा—यह तो किसी बालक का ग्रन्थ है। यदि आचार्य तुलसी का हो तो भी उनकी बाल्यावस्था का ग्रन्थ हो सकता है। जगद्गुरु शङ्कराचार्य पुरीपीठाधीश्वर तथा ब्रह्मीभूत ज्योतिष्पीठाधीश्वर ने भी इसकी निन्दा की।

साधुसमाज के भी प्रतिष्ठित महात्माओं ने इसकी निन्दा की है। स्वामी आत्मानन्द ने कहा कि इसमें लोकापवाद का चित्रण इतने विस्तार और स्थूलता से किया गया है कि वह अत्यन्त मोटी और खटकनेवाली बात हो गयी है। उक्त काव्य में राम को बहुपत्नीधारी बताया गया है और उन्हें एक सामान्य मानव के रूप में दर्शाया गया है। सीता को अणुव्रती बताकर अणुव्रत का प्रोपेगण्डा किया गया है। **अग्निपरीक्षा** हिन्दू-भावना पर ठेस पहुँचानेवाली पुस्तक है। प्रकाशवती मिश्र ने इस पुस्तक का सक्रिय घोर विरोध किया है। बलदेवप्रसाद मिश्र डी. लिट्. ने लिखा है—'अग्निपरीक्षा रामचरित्र के उच्च आदर्शों को नीचे गिराने का उपक्रम करती है। अग्निपरीक्षा साम्प्रदायिकता का प्रचारक साहित्य बन गया है। उच्छृङ्खल बातें लिखकर अपनी कलम की स्वतन्त्रता भले ही मान लें; परन्तु यह शोभा की बात नहीं है।"

उपयोगिता की दृष्टि से **अग्निपरीक्षा** पुस्तक न होती तो कोई हानि न थी। सीता के चरित्र को लिखने की आज कोई आवश्यकता नहीं है। जन-जन के मानस में सीता की जगज्जननी के रूप में संप्रतिष्ठा है ही। इसके लिए **वाल्मीकिरामायण** तथा **रामचरितमानस** पर्याप्त हैं। अपने अणुव्रत या तथोक्त अध्यात्म-प्रचार के लिए अन्य किसी कथा का आश्रयण कर लिया जा सकता था। इस पुस्तक में आदि से अन्त तक सिनेमा के छिछले तर्जों के गायनों में **वाल्मीकिरामायण, रामचरितमानस एवं श्रीसीता** और राम के आदर्शों के विरुद्ध अनेक चित्रण हैं।

रामायणों के अनुसार मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने पिता की आज्ञा का पालन करते हुए अपने परम मित्र के शृङ्गवेरपुर में भी प्रवेश नहीं किया। सुग्रीव एवं विभीषण का राजतिलक करने के लिए भी किष्किन्धा एवं लङ्का में उन्होंने प्रवेश नहीं किया। लक्ष्मण के द्वारा ही उनका तिलक हुआ। ठीक उसके विपरीत **अग्निपरीक्षा** पुस्तक में श्रीराम लङ्का में राज्यसिंहासन पर बैठे दिखाये गये हैं। इस प्रकार ग्रन्थ के आरम्भ से ही श्रीराम की मर्यादाओं का भङ्ग दिखलाया गया है।

प्रासाद दिव्य दशकन्धर का दिखलाता अपनी नव्य प्रभा।
सिंहासन पर रघुवर लक्ष्मण रविचन्द्र तुल्य थे चमक रहे॥" (पृ० १)

वैदिक रामायणों के अनुसार श्रीराम, भरत और माताओं चिन्ता में अधीर हैं। विभीषण उनको शीघ्र ही पुष्पक विमान द्वारा पहुँचाने का आश्वासन देते हैं, पर अग्निपरीक्षा के अनुसार राम माताओं को भूलकर लङ्का में आनन्द मना रहे हैं। सबको भूले हैं।

"तुम तो आनन्द मनाते हो, रोती हैं वे माताएँ।
माता के मन की ममता को, मैं तुम्हें सुनाने आया हूँ।
लो कान खोलकर सुनो करुण, सन्देशा माँ का लाया हूँ॥"

वैदिक रामायण के अनुसार राम एकपत्नीव्रत हैं। इतना ही क्यों, गोस्वामीजी के अनुसार तो **'एक नारि-व्रत सब नर नारी।'** हैं। पर **अग्निपरीक्षा** में श्रीराम बहुत रमणियों के भोक्ता हैं।

वे लिखते हैं—'रमणियाँ राम की सोच रही हैं। सीता रहते किंचित् सुख हमें नहीं है।' (पृ० २३)

जहाँ वैदिक ग्रन्थों ने पत्नी को पति की काया की छाया, चाँद की चाँदनी एवं भानु की प्रभा माना जाता है, वहाँ सुधारवादी तुलसी के रामराज्य में भी नारियों के समानाधिकार का चित्रण नहीं छूटा। वे लिखते हैं—

"नारियों का स्थान पुरुषों से न किञ्चित् हीन था।
आत्मनिर्णय में रहा चिन्तन सदा स्वाधीन था।।"

वैदिक रामायणों के अनुसार राजनीति के चारों अङ्गों से साम और दाम का ही प्रयोग होता था। दण्ड केवल दण्डी संन्यासियों के हाथ में और भेद केवल नर्तक-नृत्यसमाज में ही परिलक्षित होता था। पर **अग्निपरीक्षा** में उसी रामराज्य में भी भीषण षड्यन्त्र चलता है। उसके अनुसार रामराज्य में बहुपत्नी प्रथा, सौतिया डाह, असत्य भाषण तथा भ्रष्टाचार दिखाई पड़ता है। दूत, दूतियाँ प्रलोभनवश सीता का अपवाद घर घर पहुँचाती हैं। प्रलोभनवश ही वे लोग राम से भी अत्यन्त प्रपञ्चयुक्त आपत्तिजनक शब्द कहते हैं। सीता के लिए अत्यन्त निम्न स्तर की भाषा का प्रयोग करते हैं। रावण के चरणों का चित्र बनाकर सीता के द्वारा पूजा करने की कथा भी राम के सामने पहुँचायी जाती है।

बिठा अकेली पुष्पक में, रावण ले जाया करता था।
निर्जन उपवन में प्रमोद से, जी बहलाया करता था।।
विद्या यन्त्र मन्त्र से जिसने, लिए देव देवी भी कील।
क्या सम्भव है उसके आगे, रहा अखण्डित शील।।
हाय कलङ्कित हो रहा, सूर्यवंश अभिराम।
दुराचारिणी के बने, रघुकुल राम गुलाम।। (पृ० ३७)

पत्नी के पीछे पागल बन, राघव ने लोपी कुलकार।
महासती का जामा पहने, कभी न पतिता छिप सकती।
सती साध्वी और रानियां, बैठे बैठे रोती हैं।
उल्टा युग आया देखो, कुलटा पटरानी होती है।।
पर वे देवी रावण के, चरणों की पूजा करती।
इन पापाचारों से कैसे, टिक पायेगी यह धरती।। (पृ० ३८)

देखो भाई दीख रहे हैं, कलियुग के आसार रे।
राजघराने में भी पलते, ऐसे पापाचार रे।।
रावण के साथ रहा निश्चित, उसका अनुचित व्यवहार रे।
हाँ में हाँ भरने वालों की, बनी आज सरकार रे।। (पृ० ३९)
सीता का पापाचार यहाँ। (पृ० ४०)
री पापिन क्यों कर रही, मुझे राम के तुल्य।
जिसने पत्नी के लिए, खोया अपना मूल्य।।
सिंहासन को बदनाम किया, भयभीत वहाँ वह कायर है।
उस दुराचारिणी से अपना, किञ्चित् सम्बन्ध न तो इसका।। (पृ० ४४)

स्पष्ट है ऐसे पापपूर्ण अनुचित शब्द **वैदिक रामायण** में तो क्या **जैनरामायण** में भी नहीं हैं। यही है तेरापन्थी तुलसी का जघन्य अक्षम्य अपराध। जिसके कारण उन्हें रायपुर में उसका फल भोगना पड़ा। यह सब मिथ्या कल्पना है एवं प्रमाणविरुद्ध है। तेरापन्थी की अपनी दुर्भावना और नास्तिकता का दुष्परिणाम है।

वास्तव में श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम प्रजावत्सल राजा हैं। उन्होंने प्रजारञ्जन के लिए स्नेह, राज्य, सौख्य सब कुछ त्यागने की प्रतिज्ञा की थी। और वैसा ही उसका पालन भी किया था—

"स्नेहं दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥" (उ० रा० च० १।१२)

उनके राज्य में, उनकी प्रजा में तेरापन्थी तुलसी वर्णित षड्यन्त्र, मिथ्या प्रलाप, वैर, सौतिया डाह सम्भव ही नहीं था। रामराज्य का वर्णन श्रीगोस्वामीजी ने यों किया है—

वैर न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य काहू नहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥
(रा० मा० ७।१९-२०।४-१)

अग्निपरीक्षा में वर्णित कथानक से आदर्श रामराज्य के आदर्श की पूर्ण हत्या ही व्यक्त होती है। भीषण से भीषण कलयुग में निकृष्ट शासन प्रणाली में जो दुराचार और मिथ्या प्रलाप हो सकता है वही तेरापन्थी तुलसी ने रामराज्य में दिखाया है और निकृष्ट गालियाँ जो हो सकती हैं वे सीता को दिलाई हैं। सिर्फ सीता-त्याग की भूमिका बनाने के लिए जब कि वाल्मीकि के अनुसार कामवासनोपरक्त दुष्ट चक्षु से दृष्ट होने से ही राम ने सीता को त्याज्य समझा था।

"दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा।" (वा० रा० ६।११५।२०)

अग्निपरीक्षा में यद्यपि सीता को महासती कहा गया है, परन्तु वह सब जैनों का णमुक्कार मन्त्र जपने के प्रभाव से बतलाया गया है।

करती है कभी आत्मचिन्तन अन्तरवेग हटाने को।
रटती जाती है णमुक्कार महामन्त्र शान्ति सुख पाने को॥
अरिहन्त सुगुरु सद्धर्म बिना है कोई त्राण नहीं।
डिग जाता ऐसी स्थितियों में जिसकी श्रद्धा सप्राण नहीं॥

अर्थ—सद्गुरु अर्हन् के णमुक्कार मन्त्र को सीता ने जपा ऐसे सुन्दर गुरु के सद्धर्म बिना त्राण का कोई रास्ता नहीं (पृ० ७४)। यह है साम्प्रदायिकता की पराकाष्ठा। ऐसे लोग अपने चश्मे से ईश्वर को भी अपने धर्म में दीक्षित करने का साहस करते हैं। आगे चलकर **अग्निपरीक्षा** के अनुसार वन में श्रीसीता के पास भिक्षोपजीवी अकिंचन जैन सिद्ध पुरुष आते हैं। उनका सीता सम्मान करती है। सीता अपने पुत्रों के पढ़ाने की चिन्ता प्रकट करती है। वह जैन साधु लवण और अङ्कुश को पढ़ाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है।

लेता हूँ दायित्व स्वयं मैं कर मत इसका तनिक विचार।
मेरी विद्याओं के सच्चे पात्र मिले मन के अनुसार॥

वाल्मीकिरामायण के अनुसार वाल्मीकि के आश्रम में ही सीता रही। कालिदास, हर्षवर्धन आदि ने इसका समर्थन किया है। महर्षि वाल्मीकि से ही उन्हें वेदादि शास्त्रों तथा अन्य-शास्त्र आदि की शिक्षा प्राप्त हुई थी। परन्तु उदारता एवं सर्वधर्मसमन्वय का दम्भ रचनेवाले तेरापन्थी तुलसी का वेद-विद्वेष इतना उग्र हो उठा कि वे ठीक उसके विपरीत उनकी किसी जैनी सिद्ध से शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। इतने पर भी दूसरों को साम्प्रदायिक कहने का साहस! स्कूलों में कोई शरारती विद्यार्थी किसी शान्त विद्यार्थी को चिकोटी काटता है। यदि वह रोता है तो

चिकोटी काटनेवाला उसपर कोलाहल मचाने का आरोप लगाता है। ठीक वैसे ही कट्टरसम्प्रदायवादी तेरापन्थी तुलसी वेद, उपनिषद्, **वाल्मीकिरामायण** आदि से सर्वथा निष्कलङ्क प्रमाणित अनादिकाल से सर्वलक्षण सीता और राम के चरित्र को दूषित करते हैं और उनके चेले **तुलसीरामायण** से उसका समर्थन करने का साहस करते हैं। वे इस मिथ्यावाद को भी उचित ठहराते हैं कि—

रामकथा की मिति जग नाहीं, अस प्रतीति जिनके मन माहीं।
नाना भाँति राम अवतारा, रामायण शतकोटि अपारा॥ (रा० मा० १।३२ (३))

किमाश्चर्यमतः परम्। जो ईश्वर नहीं मानता, राम को ईश्वरावतार नहीं मानता वही अपने जघन्य अपराधों को, मिथ्यावादों को शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** में सम्मिलित करना चाहता है और स्वाभिमत किसी जैनी जीव को रामावतार बनाने की दुश्चेष्टा करता है और ऐसे दुष्कृत्य का ही तेरापन्थी तुलसी को शङ्कराचार्य एवं आचार्य विनोवा के समान परम प्रतिष्ठित घोषित करने का दुःसाहस करता है। अन्त में भी तेरापन्थी तुलसी परमेश्वरी श्रीसीता से जैन तीर्थङ्कर की वन्दना कराकर उसका अग्निप्रवेश वर्णन करते हैं—

मंगल लोकोत्तम शरण विघ्नहरण है चार।
अर्हदतनु मुनि धर्म को रटती बारम्बार॥
नमोंकार मन्त्र जप करके हृद् था बना विशाल।
जलती ज्वाला कुण्ड में कूद पड़ी तत्काल॥ (पृ० ९६५)

और उसी मन्त्र के प्रभाव से अग्नि पानी हो गया और कुण्ड एक महान् पानी का सरोवर हो गया।

"सरवर हो रहा तरङ्गाकुल खिल रहे कमल उत्पल शतदल।"

आगे सीता की महिमा का वर्णन किया है। परन्तु वह जैन दीक्षिता सीता की महिमा है वेदादि शास्त्रोक्त ईश्वरस्वरूप सीता की नहीं। अग्निपरीक्षा की भूमिका के लेखक महेन्द्रकुमार ने वाल्मीकि के राम को एक महामानव के रूप में प्रस्तुत किया है। आदि से अन्त तक राम एक मानव रहते हैं। वह कहते हैं उनमें ईश्वरता का आरोप कवि ने नहीं किया। पर यह सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि प्रस्तुत लेख में ही मैंने वाल्मीकि के ही राम को परात्पर ब्रह्म बतलानेवाले सैकड़ों वचन प्रस्तुत किये हैं। युद्धकाण्ड में ब्रह्मा ने स्वयं कहा है—

"भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः॥"

आप चक्रधारी संसार के आदिकर्ता नारायण देव हैं। आगे भूमिका में कहता है—'आज के बुद्धिप्रधान युग में जैनरामायणें बुद्धिगम्यता की दिशा में अधिक प्रशस्त मानी गयी हैं। वहाँ अधिकांश घटनाएँ स्वाभाविक और सम्भवरूप में मिलती हैं। वैदिक रामायणों में रावण के दस मुख माने गये हैं। स्वयम्भूकृत **पद्मचरित** में वैदिक परम्परा में चलनेवाली असङ्गतियों को प्रस्तुत किया गया है। रावण के दस मुख और बीस हाथ कैसे, कुम्भकर्ण छः महीने कैसे सोता था, करोड़ों महिषों को कैसे खा जाता था। कूर्म ने पृथ्वी को कैसे पीठ पर धारण किया था। इस प्रकार अवतारवादिता और विविध अस्वाभाविकताओं को लेकर जैन और वैदिक परम्पराओं में बहुत से भेद आते हैं। परन्तु भूमिका लेखक को यह बात समझ में क्यों नहीं आयी कि णमुक्कार मन्त्र जप कर सीता के अग्निकुण्ड में कूदने से अग्नि पानी कैसे हो गया? अग्निकुण्ड महान् सरोवर कैसे हो गया? उसमें विविध कमल कैसे खिल गये? क्या यह सब महावीर या तेरापन्थी तुलसी के करिश्मे से हो गया? धर्मान्ध साम्प्रदायिक अपने सम्प्रदाय की असम्भव बातों को भी सम्भव मानता है, परन्तु अन्य सम्प्रदाय की तर्कसङ्गत बातें भी उसे असङ्गत जँचती हैं। कहा जाता है "जब वैदिक रामायणों में भी कथाभेद है। किसी रामायण में यह वर्णित है कि सीता जिस पर्णशाला में रहती थीं

रावण वहाँ की जमीन सहित पर्णशाला को ही लङ्का ले गया था। फिर जैन रामकथा का भेद क्यों अनुचित कहा जाय। प्रत्येक रचयिता प्रायः कुछ न कुछ अपनी ओर से जोड़ता ही है। कवि इसे अपना मौलिक अधिकार मानता है।" परन्तु यह बात भी उचित नहीं, क्योंकि वैदिक रामकथाओं के भेद में कल्पभेद से तथा अवतारभेद से कथाओं का भेद सम्भव होता है—

कल्प भेद हरि चरित सुहाये। भाँति अनेक मुनीसन गाये॥ (रा० मा० १।३२।४)

अतः भेद समूल हो सकते हैं परन्तु जिनके मतानुसार ईश्वर एवं अवतारवाद मान्य नहीं है, उनके यहाँ कथाभेद भूमिका-लेख के अनुसार कवि की अपनी ही कल्पना हो सकती है, जो वस्तुस्थिति से विरुद्ध होती है। हाँ, मूल कथावस्तु को ही सजाने और रोचक बनाने में शब्दालङ्कार आदि की योजना में कवियों की स्वतन्त्रता अवश्य मान्य होनी चाहिये। अन्यथा जैसे गल्प, उपन्यास आदि का कोई श्रद्धा से पाठ नहीं करता वैसे ही रामायण का भी पाठ नहीं कर सकेगा। ऐसे ही अप्रामाणिक तथा मिथ्याकल्पनापूर्ण वर्णनों को धार्मिक ग्रन्थ तो कहा ही नहीं जा सकसा।

नागेश के अनुसार वाल्मीकि ने नारद से भगवान् राम के गुणवर्णन का श्रवण किया और स्वयं भी राम-गुणवर्णन की इच्छा की। श्रीराम का गुण करुणरसमय है, अतः अतिकरुण व्यक्ति का ही रामायण-वर्णन में अधिकार है। अतः मुनि के चित्त में कारुण्य जानने के लिए और भृगुदत्त शाप का ही वाल्मीकि द्वारा दृढ़ीकरणार्थ श्रीराम ने ही मुनि के देखते देखते निषाद रूप धारण कर राक्षसविशेषरूप क्रौञ्च को मार दिया। अन्तर्यामी श्रीराम के इच्छानुसार ही उनकी प्रेरणा से ही इसने महान् अधर्म किया, इस क्रोध से महर्षि ने कहा पापबुद्धे जो तू ने काम-मोहित क्रौञ्च जोड़े के एक क्रौञ्च को मारा है अतः तू भी आयुःशेषभूत बहुत वर्षों तक प्रतिष्ठा—स्त्रीसहित होनेवाली सुख-शान्ति—न प्राप्त करेगा, किन्तु अल्पकाल ही सुख पावेगा।

पद्मपुराण के अनुसार स्पष्ट विदित होता है। कोई एक दुर्वृत्त व्यक्ति ही ऐसा था जिसने सीता की निन्दा की थी। रामाभिरामी टीकाकार नागेशभट्ट के अनुसार **पद्मपुराण** में शिवशिवा-संवाद में कहा है—

"ततो जानपदः कश्चित् पामरः काष्ठविक्रयी।
स्ववधूगर्हणद्वारा रावणस्य गृहोषिताम्॥
गर्हयामास वैदेहीं दुर्वृत्तो लोकनिन्दकः।
तच्छ्रुत्वा देवि चारेभ्यो भीतो लोकापवादतः॥
आहूय लक्ष्मणं प्राह रामो राजीवलोचनः।
शृणु मे वचनं गुह्यं सीतासन्त्यागकारणम्॥
वाल्मीकिनाथ भृगुणा शप्तोऽस्मि किल लक्ष्मण।
तस्मादेनां त्यजाम्यद्य जनो नैवात्र कारणम्॥"(वा० रा० १।२।१५ की टीका)

किसी काष्ठविक्रयी दुर्वृत्त लोकनिन्दक ने अपनी स्त्री की निन्दा करते हुए रावणगृहोषिता वैदेही जानकी की निन्दा की थी। गुप्तचरों द्वारा यह सुनकर लोकापवादभय से राजीवलोचन राम ने लक्ष्मण को बुलाकर बतलाया कि वाल्मीकि और भृगु ने मुझे पत्नीवियोगदुःख का शाप दे रखा है। इसलिए साधारण आदमी इसका कारण नहीं है। जानकी का त्याग करना ही है।

शाप के द्वारा अर्थात् शापप्राय श्लोक के मुख से निकलने से अकल्मष प्राचेतस मुनि सन्तप्त हो रहे थे। ब्रह्माजी ने वहाँ आकर महर्षि से सत्कृत होकर महर्षि से कहा—'वह निषाद नहीं था, किन्तु श्रीराम ही थे।

मृगया के लिए आये थे। तुम रामचन्द्र का यश वर्णन करने से ही संसार में सुश्लोक्य (प्रशंसनीय) होगे।' यह कह कर ब्रह्मा ब्रह्मलोक चले गये। तब वाल्मीकि ने कोटि-कोटि ग्रन्थों (श्लोकों) द्वारा राम का वर्णन किया। यह स्कन्दपुराण पातालखण्ड की बात है—

"शापोक्त्या हृदि सन्तप्तं प्राचेतसमकल्मषम्।
प्रोवाच वचनं ब्रह्मा तत्रागत्य सुसत्कृतः॥
न निषादः स वै रामः मृगयां चर्तुमागतः।
तस्य संवर्णनेनैव सुश्लोक्यस्त्वं भविष्यसि॥
ततः स वर्णयामास राघवं ग्रन्थकोटिभिः॥"

कोटिभिः का अर्थ है शतकोटिभिः, क्योंकि **"चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्"** यह अन्यत्र (पद्मपुराण ५।१।२४ में) उक्त है और वह सब ब्रह्मलोक में है। यह ऐतिह्य है। मनुष्यलोक में तो कुश और लव के लिए २४ हजार श्लोकोंवाला **रामायण ग्रन्थ** है। वाल्मीकि ब्रह्मा के अंशभूत थे। उन्होंने नारद के अनुग्रह से निश्शेष **रामचरित** को जानकर भूलोकवर्ती चार वर्णों के तापत्रय-विमोचन के लिए स्वकृत शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** का सार चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्रीरूप ब्रह्मविद्या के विलासभूत चौबीस हजार श्लोकों के रूप में लव और कुश को पढ़ाया। श्रीराम के अवतार और पत्नीवियोगजन्य दुःख के कारण और भी बहुत से पुराणों तथा **योगवासिष्ठ** में उक्त हैं।

यद्यप्येतत्सर्वं वाल्मीकिकृतमेव तथापि कुशलवगेयतयास्य काव्यस्य करणात्तवुक्तितयैवमुक्तिः। अन्यथा स्वचिन्तायाः स्वापरोक्षत्वाद् बभूवेति लिडसंगतिः स्यात्। (वा० रा० १।६।२१ की टीका) प्रथम सर्ग से ही सम्पूर्ण वाल्मीकिरामायण वाल्मीकिकृत ही है। तथापि वह कुश एवं लव के द्वारा गेयरूप से निर्मित है, अतएव इसमें कुश-लव के द्वारा ही वाल्मीकि वृत्तान्त भी वर्णित किया गया है। 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः' (वा० रा० ३।२।१५) इत्यादि श्लोक उच्चारण के बाद महर्षि के हृदय में चिन्ता हुई। यहाँ 'बभूव' लिट्लकार का प्रयोग सङ्गत है। अन्यथा अपनी चिन्ता अपने को प्रत्यक्ष ही होती है, अतः परोक्ष निर्देश सङ्गत न होता।

"त्यक्त्वा जीर्णदुकूलवद्वसुमतीं बद्धोऽम्बुधिर्बिन्दुवद्
बाणाग्रेण जरत्कपोतक इव व्यापादितो रावणः।
लङ्का कापि विभीषणाय सहसा मुद्रेव हस्तेऽर्पिता
श्रुत्वैवं रघुनायकस्य चरितं को वा नरो नाञ्चति॥" (वा० रा० १।२।१५ की टीका)

श्रीरघुनाथजी ने जीर्ण वस्त्र के समान पृथ्वी का राज्य पिता के आज्ञानुसार त्याग दिया। बिन्दु के तुल्य समुद्र को बाँध दिया, बाणाग्र से बूढ़े कबूतर के समान रावण को मार डाला एवं साधारण मुद्रा के समान लङ्का विभीषण को प्रदान कर दी। ऐसे राम के अलौकिक चरित्र को सुनकर कौन मनुष्य उनकी पूजा न करेगा।

नाट्याचार्य भरतमुनि ने काव्य, नाटकों के सम्बन्ध में कुछ निर्देश दिये हैं—

"अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि काव्यबन्धविकल्पनम्।
प्रख्यातवस्तुविषयं प्रख्यातोदात्तनायकं चैव॥
राजर्षिवंशचरितं तथा दिव्याश्रयोपेतम्।
नानाविभूतिसंयुतमृद्धिविलासादिभिर्गुणैश्चापि॥
अङ्कप्रवेशकाढ्यं भवति हि तन्नाटकं नाम।" (ना० शा० २०।९-११)

काव्य तथा नाटक की कथा वस्तु प्रख्यात (इतिहास-पुराण प्रसिद्ध) होनी चाहिए और उसका नायक प्रख्यात एवं उदात्त होना चाहिये। राजर्षिवंश-चरित तथा दिव्य आश्रययुक्त, नाना विभूतियों से संयुक्त, विविध विलासों से युक्त अङ्कप्रवेश सहित नाटक होता है।

दशरूपककार धनञ्जय के अनुसार भी—

"प्रख्यातवंशो राजर्षिर्दिव्यो वा यत्र नायकः।
तत्प्रख्यातं विधातव्यं वृत्तमत्राधिकारिकम्॥
यत्तत्रानुचितं किञ्चिन्नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥" (द० रू० ३।२३–२५)

नाटक का प्रख्यात वंश का राजर्षि या कोई दिव्य पुरुष नायक होना चाहिए। नायक की आधिकारिक (प्रधानभूत) कथावस्तु प्रख्यात (पुराणादि-प्रसिद्ध) ही होनी चाहिये। कथा वस्तु में जो अंश नायक या रस के अनुचित या विरुद्ध हो उसका त्याग कर देना चाहिए अथवा उसकी रस के अनुगुण नवीन कल्पना कर लेनी चाहिए।

साहित्यदर्पण के अनुसार भी नाटक का लक्षण—

"नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात्..................।
प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्॥
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः॥" (६।७—९)

नाटक प्रख्यातवृत्त ही होना चाहिये। प्रख्यात वंश का राजर्षि धीरोदात्त प्रतापवान् दिव्य या दिव्यादिव्य गुणवान् नायक होना चाहिये।

आचार्यदण्डी के काव्यादर्श में महाकाव्य का लक्षण कहा गया है—

"सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम्।
आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वाऽपि तन्मुखम्॥
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम्।
चतुर्वर्गफलोपेतं चतुरोदात्तनायकम्॥
अलङ्कृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्।
सर्गैरनतिविस्तीर्णैः श्रव्यवृत्तैः सुसन्धिभिः॥
सर्वत्र भिन्नवृत्तान्तैरुपेतं लोकरञ्जनम्।
काव्यं कल्पान्तरस्थायि जायते सदलङ्कृति॥"

सर्गबन्धयुक्त चतुर्वर्ग फलोपेत काव्य ग्रन्थ होता है। उसमें आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तु-निर्देशात्मक मङ्गल होना चाहिये। इतिहासकथोद्भूत या अन्य सदाश्रय चतुर तथा उदात्त काव्य का नायक होना चाहिये। वह अलङ्कारों से युक्त, विस्तृत तथा आद्योपान्त निरन्तर रसमय होना चाहिये। अनतिविस्तीर्ण सर्गों एवं सुश्लिष्ट भव्य वृत्तान्तों से युक्त होना चाहिये। विभिन्न प्रकार के वृत्तान्तों से युक्त तथा लोकरञ्जन समीचीन अलङ्कारोंवाला ग्रन्थ काव्य कल्पान्तर पर्यन्त रहता है।

भामह तथा रुद्रट सर्गबन्ध नामक काव्य का लक्षण देते हैं, किन्तु वे यह नहीं लिखते हैं कि उस प्रकार के काव्य या उसकी कथा-वस्तु प्रख्यात या इतिहासप्रसिद्ध हो।

साहित्यदर्पण के अनुसार भी काव्यलक्षण—

"सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकावंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥"

सर्गबन्धयुक्त काव्य होता है। उसका एक नायक होता है। वह देवता हो या सद्वंशीय क्षत्रिय हो। वह धीरोदात्त एवं गुणयुक्त होना चाहिये। एक वंश में उद्भूत एवं कुलप्रसूत बहुत राजा भी नायक हो सकते हैं। इसमें श्रृङ्गार, वीर या शान्त कोई एक अङ्गी रस होना चाहिये और रसों का अङ्गरूप में संनिवेश होना चाहिए।

इस दृष्टि से काव्य और नाटक के नाम पर भी कोई मानमाने अप्रामाणिक मिथ्या कथानकों का उल्लेख नहीं कर सकता है।

श्रीकामिल बुल्के ने आदि कवि वाल्मीकि को अपनी रामकथा समर्पित करते हुए कहा है कि जिनकी प्रतिभा ने रामकथा को भारत तथा निकटवर्ती देशों के साहित्य में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान दिलाया है और भारतीय संस्कृति का एक उज्ज्वल प्रतीक बना दिया, उन आदि कवि वाल्मीकि को रामकथा की दिग्विजय का प्रस्तुत विवरण सश्रद्ध समर्पित है।

"त्वदीयं वस्तु वाल्मीके तुभ्यमेव समर्प्यते।"

जैनकथा की सारी विशेषता का वर्णन करते हुए बुल्के ने दिखाया है कि उनमें प्रारम्भ से ही उन लौकिक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है जिनमें राम का शिकार करना, रावण आदि का मांसाहारी होना, कुम्भकर्ण की ६ महीने की निद्रा, रावण के राक्षस तथा सुग्रीव के वानर होने आदि की असत्य कथाएँ पायी जाती है। इससे स्पष्ट है कि **जैन-रामकथा वाल्मीकिरामायण** के बाद उत्पन्न हुई है।

बुल्के यह भी मानते हैं कि विमलसूरि ने **पउमचरिय** लिखकर पहले पहल लोकप्रिय रामकथा को जैनधर्म के साँचे में ढालने का प्रयास किया है (पृ० ६७)। आगे वे कहते हैं कवि का कहना है कि यह **पद्मचरित्र** आचार्यों की परम्परा से चला आ रहा था और नामावलीबद्ध था। इसका अर्थ यह हो सकता है कि रामचरित केवल नामावली के रूप में रहा होगा अर्थात् उसमें कथा के प्रधान प्रधान पात्रों, उनके माता-पिताओं, स्थानों और भवान्तरों आदि के नाम ही होंगे। वह पल्लवित कथा के रूप में न होगा और इसी की विमलसूरि ने विस्तृत चरित के रूप में रचना की होगी (पृ० ६७)।

बुल्के के अनुसार **वाल्मीकिरामायण** के पूर्व रामकथासम्बन्धी आख्यान प्रचलित थे। इसका आभास **महाभारत** द्रोणपर्व और शान्तिपर्व के संक्षिप्त रामचरित से तथा अन्य निर्देशों से मिलता है। वे आख्यान आजकल अप्राप्य हैं इस प्रकार वाल्मीकिकृत **रामायण** रामकथा की प्राचीनतम विस्तृत रचना सिद्ध होती है (पृ० २७)।

वाल्मीकि के अनुसार सीता की अग्निशुद्धि

श्रीराम ने स्वयं कहा है कि सीते, तुम्हारे चरित्र के सम्बन्ध में सन्देह है। तुम हमारे लिए वैसे ही प्रतिकूल प्रतीत होती हो जैसे नेत्ररोगी के लिए दीप-शिखा। कौन कुलीन पुरुष परगृहोषित नारी को अपने घर रखेगा। रावण के अङ्क में पड़ी हुई और उसके दुष्ट चक्षु से निरीक्षित तुम्हें पुनः कैसे ग्रहण किया जाय। दिव्यरूपा मनोहरा तुम्हें अपने गृह में प्राप्त करके रावण चिरकाल तक कैसे तुमसे दूर रह सका होगा—

"प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा॥
कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम्।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहृल्लोभेन चेतसा॥
रावणाङ्कपरिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन्महत्॥
नहि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोरमाम्।
मर्षयत्यचिरं सीते स्वगृहे पर्यवस्थिताम्॥" (वा० रा० ६।११६।१७-२४)

उक्त वचनों से श्रीसीता के चरित्र के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया गया है। सर्वत्र ही सन्देह शुद्धि की भूमिका होती है। श्रीराम के ही वचनों द्वारा यह स्पष्ट है कि सीता के प्रति उनको कोई सन्देह नहीं था। केवल संसार को विश्वस्त करने की दृष्टि से ही उन्होंने सीता को अग्निपरीक्षा के लिए अवसर दिया था। सीता के प्रति कुछ अन्य लोगों को भी सन्देह हो सकता था, पर सन्देह भिन्न वस्तु है, मत या धारणा अन्य वस्तु है। ईश्वर नहीं है, धर्म नहीं है, वेदप्रामाण्य नहीं है, यह मत नास्तिकता का है। सीता दुश्चरित्रा थी यह मत भी नास्तिकता का है। रामराज्य में वैसा होना असम्भव था, ईश्वर है या नहीं, धर्म है या नहीं, वेदप्रामाण्य है या नहीं, सीता का लङ्का में शीलरक्षण कैसे सम्भव हुआ ? यह शङ्का का स्वरूप है। शङ्का से ही जिज्ञासा, विचार, प्रमाण, पर्येषण, तत्त्वज्ञान एवं संशय-निवृत्ति होती है।

पूर्वोत्तरमीमांसा, **खण्डनखण्डखाद्य**, **न्यायकुसुमाञ्जलि** आदि ग्रन्थों में उसी रीति से तत्त्वनिर्णय किया गया है। '**को हि वेद यद्यमुष्मिंल्लोके अस्ति वा न वा**' कौन जानता है परलोक में कुछ है या नहीं, '**वयं ब्राह्मणाः स्मो वा न वा**' हम लोग ब्राह्मण हैं या नहीं। इस प्रकार की शङ्काएँ अर्थवादरूप में यज्ञ-मण्डप में अतीकाश (वातायन) रखने के लिए और प्रवरानुमन्त्रणा के लिए की गयी है। वस्तुतः परलोक में संशय हो तो यज्ञादि में प्रवृत्ति तथा ब्राह्मणत्व में संशय होने से ब्राह्मणत्वादिमूलक कर्मों में प्रवृत्ति नहीं बन सकेगी। निष्कर्ष यह है कि **वाल्मीकिरामायण** आदि में लङ्का में रहने के कारण सीता के शील में शङ्का व्यक्त की गयी है। वह भी शुद्धि की भूमिका के रूप में। परन्तु तेरापन्थी तुलसी की **अग्निपरीक्षा** में कैसा भौंड़ा लोक-मत वर्णित किया गया है। इसके अतिरिक्त अतीत घटनाओं के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष या अनुमान की प्रवृत्ति नहीं होती। उनमें तो किसी सर्वज्ञ या योगज ऋतम्भरा प्रज्ञावाला परम आप्त ही प्रमाण हो सकता है, न कि कोई दूरस्थ तुकबन्दी करनेवाला। पूर्वोक्त कथनानुसार महर्षि वाल्मीकि ने योगजबल से जैसा दर्शन किया। उसके विपरीत किसी अन्य को कुछ भी कल्पना करने का किञ्चित् भी अधिकार नहीं है। अतः जिन दुराचारिणी या पतिता आदि शब्दों के प्रयोग में कोई प्रमाण नहीं है, उनका प्रयोग सर्वथा अनुचित ही है। माँ के लिए पिता द्वारा या विरोधी द्वारा दी गयी गालियों का पुत्र द्वारा अनुवाद भी पातक-जनक अत्यन्त ही अनुचित व्यवहार है।

वैदिक आदर्शों के अनुसार ही **वाल्मीकिरामायण** में सीता के सामने आते ही राम ने वे शङ्काएँ व्यक्त की थीं जैसे कि कोई भी वैदिक पुरुष परगृहोषिता अपनी पत्नी के विषय में कर सकता था। श्रीसीता ने तत्काल ही अग्नि-प्रवेश कर अपने परम पवित्र चरित्र को प्रमाणित किया। ठीक इसके विपरीत तेरापन्थी तुलसी के जैन राम श्रीसीता के मिलने पर कुछ भी शङ्का नहीं करते। वे तो अयोध्या में राजगद्दी पर बैठने के बहुत दिनों बाद सीता के अन्तर्वत्नी होने के पश्चात् जनापवाद के द्वारा सीता को वनवास देने को प्रस्तुत होते हैं। जनापवाद भी वाल्मीकि के अनुसार बहुत मर्यादितरूप में आता है। सीता रावण द्वारा बलात् लङ्का ले जायी गयी। राक्षसों के पराधीन

अशोकवाटिका में रखी गयी। यदि राम ने ऐसी धर्षणा को सहन कर लिया तो अन्य लोगों के लिए भी वैसा सह्य हो सकेगा।

पुरवासियों को लङ्का की अग्निपरीक्षा का ज्ञान नहीं था। राम चाहते तो उसी का प्रचार कराकर जन-भ्रम दूर कर सकते थे। पर वैसा करना एक सरकारी प्रचार (प्रोपेगण्डा) समझा जाता। सीता की शुद्धि का उल्लेख अब्भक्ष, वायुभक्ष, कन्दमूलफलाशी, वल्कलवसनधारी, परमाप्त, राज्यनिरक्षेप स्वतन्त्र महर्षि के द्वारा होने में ही महत्त्व है। इसी दृष्टि से महर्षियों के आश्रमों के सन्निधान में सीता को छोड़ा गया। श्रीराम के इस कार्य से नीति में बहुमत का ही नहीं अल्पमत का भी आदर हुआ है।

"सर्वजनसुखाय सर्वजनहिताय।"

भाई-भतीजावाद का अत्यन्त उन्मूलन हुआ है। श्रीराम ने एक हजार वर्ष अखण्ड ब्रह्मचर्यव्रत पालन-पूर्वक ब्रह्मात्मनिष्ठा के द्वारा परमार्थ तथा तपोवन में भावी सम्राट् के संस्कार, विद्या, शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था कर परमार्थ और स्वार्थ का समन्वय किया है।

"नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ॥"

(रा० मा० २।२५३।३)

श्रीराम ने एक पत्नीव्रत के अनुसार सीता के वनवास के पश्चात् भी अन्य पत्नी का वरण नहीं किया। यज्ञों में काञ्चनी सीता को ही रखा जाता था।

"काञ्चनीं मम पत्नीं च दीक्षायां ज्ञांश्च कर्मणि।
अग्रतो भरतः कृत्वा गच्छत्वग्रे महायशाः॥" (वा० रा० ७।९१।२५)

यहाँ श्रीराम ने आदेश दिया है कि महायशस्वी भरत मेरी दीक्षानिमित्ता काञ्चनी पत्नी और कर्म के विषय में विज्ञ महर्षियों को लेकर आगे चलें।

यहाँ यह भी विचार है, यह समझना चाहिए कि यज्ञों में पति और पत्नी दोनों का सहाधिकार होता है, अतः पति-पत्नी दोनों ही यजमान होते हैं।

"स्वामिनोऽग्नेर्देवतायाश्चशब्दात् कर्मणश्च प्रतिनिधिर्निवृत्तः।"

इस आपस्तम्ब सूत्र के अनुसार स्वामी, अग्नि तथा देवता का प्रतिनिधि नहीं होता। ऐसी स्थिति में मुख्य पत्नी ही यज्ञ में अपेक्षित होती है। काञ्चनी प्रतिमा सीता का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। तथापि वचनान्तरों के अनुरोध से कई परिस्थितियों में पत्नी का प्रतिनिधि मान्य है।

"यस्य भार्यान्यदेशस्था नेष्यते पतिनाथवा।
अशक्ता प्रतिकूला वा तस्याः प्रतिनिधिक्रिया॥"

जिसकी भार्या अन्य देश में हो या पति को इष्ट न हो, असमर्थ या प्रतिकूल हो वहाँ पत्नी का प्रतिनिधि मान्य है।

"अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः।
अग्निहोत्रमुपासन्ते यावज्जीवमनुव्रताः॥
सौवर्णीं वा षोडशपलैः माषकैः षोडशैरपि।"

"मृतायामपि भार्यायां वैदिकीं न त्यजेद् द्विजः ।
उपाधिनापि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत् ॥" (विष्णु स्मृ०)

इत्यादि वचनों के अनुसार कुशमयी, सौवर्णी या षोडशमाषमयी पत्नी प्रतिनिधि के रूप में धर्मशास्त्र-सम्मत है। विशेषतः प्रकृत में तो श्रीराम की सौवर्णी पत्नी प्रतिनिधि नहीं है किन्तु देवता प्रतिमाओं के समान उसमें सीताबुद्धि ही थी, सादृश्यबुद्धि नहीं। भगवान् के संकल्प से और ऋषियों के आवाहनसामर्थ्य से उसमें ठीक सीताबुद्धि का ही उदय हुआ था। और उसके द्वारा पूर्णरूप से आज्यावेक्षण आदि पत्नीकर्म की निष्पत्ति होती थी। यही बात अन्य सर्गों में उक्त है।

श्रीराम ने सीता से व्यतिरिक्त भार्या का वरण नहीं किया। प्रत्येक यज्ञ में पत्नी का कार्य करने के लिए काञ्चनी जानकी ही राम की पत्नी होती थी। उसी काञ्चनी सीता के द्वारा श्रीराम दस सहस्र वर्ष पर्यन्त वाजिमेघ, वाजपेय, अग्निष्टोम, अतिरात्र आदि बहु सुवर्णादि दक्षिणावाले महाधनसमृद्ध यज्ञों का अनुष्ठान करते रहे।

"न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः ।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत् ॥
दशवर्षसहस्राणि वाजिमेधानथाकरोत् ॥" (वा० रा० ७।९९।७-८)

लोकवाद से भी राम को सीता के प्रति भ्रान्ति नहीं हुई। वे सर्वथा ही सीता को पवित्र मानते रहे हैं। लङ्का में अग्निपरीक्षा के प्रसङ्ग में श्रीराम ने कहा था कि रावण के अन्तःपुर में दीर्घ काल तक सीता रही थी, अतः सीता की अग्निशुद्धिरूप पवित्रता अपेक्षित थी। विना शोधन किये सीता का ग्रहण करने में दशरथात्मज राम कामात्मा एवं वालिश हैं, यह साधारण लोग कह सकते थे। अतः अग्निशुद्धि के लिए सीता के अग्नि-प्रवेश की मैंने अनुमति दी थी। सीता अनन्यहृदया है, मेरे में ही नित्य स्थिर होने के कारण वह अपने शील की रक्षा कर सकती है, ऐसा मैं जानता हूँ। अपने तेज से ही सीता पूर्ण परिरक्षित है। सीता जैसे अग्नि को शीतल कर सकती है वैसे ही रावण को भस्म भी कर सकती थी। तभी तो सीता ने कहा था, राम का आदेश न होने एवं तपस्या-रक्षा की दृष्टि से दशग्रीव, मैं तुझे अपने तेज से भस्म नहीं करती हूँ—

"असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥" (वा० रा० ५।२२।२०)

महोदधि जैसे बेला का अतिक्रमण नहीं कर सकता वैसे ही रावण सीता के तेज का अतिक्रमण नहीं कर सकता था। दुष्टात्मा रावण अप्राप्य दीप्त अग्निशिखा के समान मैथिली का मन से भी प्रधर्षण नहीं कर सकता था। रावण के अन्तःपुर में रहकर भी वह वैक्लव्य कातर्य को नहीं प्राप्त हो सकती थी। भास्कर की प्रभा के समान सीता मुझसे अभिन्न है। सीता तीनों लोकों में विशुद्ध है। आत्मवान् जैसे कीर्ति से रहित नहीं हो सकता वैसे मैं सीता से वियुक्त नहीं हो सकता—

"अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति ।
दीर्घकालोषिता ह्मीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥
बालिशो बत कामात्मा रामो दशरथात्मजः ।
इति वक्ष्यति मां लोको जानकीमविशोध्य हि ॥
अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम् ।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥

इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।
रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥
न च शक्तः सुदृष्टात्मा मनसापि हि मैथिलीम् ।
प्रधर्षयितुमप्राप्यां दीप्तामग्निशिखामिव ॥
नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती ।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥''
(वा० रा० ६।१२०।१३-१९)

"प्रत्ययश्च पुरा वृत्तो वैदेह्याः सुरसन्निधौ ।
शपथश्च कृतस्तत्र तेन वेश्म प्रवेशिता ॥
लोकापवादो बलवान् येन त्यक्ता हि मैथिली ।
सेयं लोकभयाद् ब्रह्मन्नपापेत्यभिजानता ॥
परित्यक्ता मया सीता तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ।" (वा० रा० ७।९७।३,४)

श्रीराम ने वाल्मीकि से कहा कि पहले ही लङ्का में देवताओं के सन्निधान में सीता का शपथ हो चुका है । तभी सीता राजभवन में प्रविष्ट हुई थी । फिर भी लोकापवाद के कारण, सीता निष्पाप हैं, यह समझते हुए भी, सीता का वन में त्याग किया गया है । आप क्षमा करें ।

रामायण से ही यह भी सिद्ध है कि रावण सीता के तेज का अतिक्रमण नहीं कर सकता था । उसे इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार के शाप दिये गये थे कि यदि इतः परं किसी अकामा स्त्री का कामभाव से स्पर्श करेगा तो तत्क्षण भस्म हो जायगा । रावण ने कुबेर-पुत्र नलकूबर की निमन्त्रिता पत्नी रम्भा का बलात् धर्षण किया था । तभी नलकूवर ने शाप दिया था कि यदि किसी भी अकामा स्त्री को कामार्त होकर धर्षित करेगा तो उसी क्षण उसका मस्तक सप्तधा विशीर्ण हो जायगा—

"उत्ससर्ज तदा शापं राक्षसेन्द्राय दारुणम् ।
तस्मात्स युवतीमन्यां नाकामामुपयास्यति ॥
यदा ह्यकामां कामार्तो धर्षयिष्यति योषितम् ।
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा ॥
श्रुत्वा तु स दशग्रीवस्तं शापं रोमहर्षणम् ।
नारीषु मैथुनीभावं नाकामास्वभ्यरोचयत् ॥" (वा० रा० ७।२६।५५-५९)

रावण ने भी कहा है एक बार पुञ्जिकस्थला अप्सरा पितामह के भवन जा रही थी । तब मैंने बलात् सम्भोग किया था । इसपर ब्रह्मा ने शाप दिया था कि आज से तुम यदि बलात् अन्य नारी का भोग करोगे तो तुम्हारे मूर्धा के सौ टुकड़े हो जायेंगे—

"अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि ।
तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः ॥

इत्यहं तस्य शापस्य भीत: प्रसभमेव तां।
नारोहये बलात् सीतां वैदेहीं शयने शुभे ।।" (वा० रा० ६।१३।१४,१५)

वैदिक रामकथा और अग्निपरीक्षा

तेरापन्थी जैन आचार्य तुलसी की **अग्निपरीक्षा** नामक पुस्तक पर लगे प्रतिबन्ध को हटवाने हेतु जबलपुर उच्चन्यायालय में उपस्थापित याचिका में अनेक तर्क दिये गये हैं। किन्तु उनमें से एक भी तर्क ऐसा नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि जैन रामकथा वैदिक रामकथा के बाद की नहीं है और उसे अपने मत के लोकप्रचार के लिए रूपान्तरित नहीं किया गया है।

उच्चन्यायालय में दायर अर्जी में यह स्वीकार किया गया है कि जैन रामकथा का सबसे प्राचीन ग्रन्थ विमलसूरि द्वारा प्राकृत में रचित **पउमचरियं** है। इसका रचनाकाल महावीर के स्वर्गवास के बाद ५३० वाँ वर्ष है। जो लगभग ईसवी सन् का आरम्भ काल है। स्वयं वादी ने भी इसे विक्रम संवत् ६० की कृति कहा है। वैदिक रामकथा का प्राचीनतम ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकि रचित **रामायण** है। जिसे आधुनिक इतिहासकारों ने भी ईसा पूर्व छठी शती की रचना माना है। वैसे सत्य तो यह है कि यह राम की समकालीन कृति है और अत्यन्त प्राचीन है। यह कहा जा चुका है कि यह काव्य संस्कृत भाषा में है। इसका नाम **पौलस्त्यवध** और **रामचरित** है। किन्तु इसका प्रतिपाद्य **सीताचरित** ही है वाल्मीकिरामायण के ही—

"काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रत: ।।" (वा० रा० १।४।७)

इस पद्य से यह तथ्य स्पष्ट है। यह इसलिए भी मान्य है कि **रामायण** का निर्माण निर्वासित सीता के वाल्मीकि आश्रम पहुँचने के पश्चात् आरम्भ होता है और सीता के करुण क्रन्दन से जनित महर्षि का शोक ही क्रौञ्ची के करुण क्रन्दन से अधिक बढ़ जाता है और वही उच्छलित होकर निम्नलिखित श्लोक के रूप में प्रकट होता है—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा:।
यत्क्रौञ्चमथुनादेकमवधी: काममोहितम् ।।"

स्वयं **रामायण** में कहा गया है—

"**शोक: श्लोकत्वमागत:**।" (वा० रा० १।२।४०) शोक ही श्लोक बन गया यह प्रक्षिप्त नहीं है, क्योंकि कालिदास और आनन्दवर्धन ने इस वाक्य को इसी रूप में अपनाया और उद्धृत किया है—

"निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थ: श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक:।" (रघु० १४।७०)
शोक: श्लोकत्वमागत:। (ध्वन्यालोक ४।५)

इस प्रकार भगवती सीता के विषय में भी यही **रामायण** भारतीय साहित्य का आदि स्रोत है। इसी दृष्टि से कालिदास ने इसे 'कविप्रथमपद्धति' बतलाया है। रघुवंश १५।३३ में इसे वेदों के साथ अध्येय बतलाया है।

वाल्मीकीय रामायण की कथा और घटनाओं को वास्तविक और सब प्रकार से सत्य इतिहास भी स्वीकार किया गया है।

ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा प्रत्येक घटना का साक्षात्कार कर ही वाल्मीकि ने इसे लिखा है। इसलिए नैमिषारण्य में रामाश्वमेध के समय उपस्थित अयोध्या की जनता में **रामायण** का गान होने पर उसके अयोध्याकाण्ड की प्रत्येक घटना को प्रत्येक अयोध्यावासी ने सर्वथा यथार्थ माना है।

"साङ्गं च वेदमध्याप्य किञ्चिदुत्क्रान्तशैशवौ ।
स्वकृतिं गापयामास कविप्रथमपद्धतिम् ॥"

यही कारण है कि परवर्ती सभी वैदिक रामकथाएँ उस **रामायण** के अनुरूप रहने पर ही प्रामाणिक मानी जाती हैं। जहाँ कहीं आंशिक अन्तर उपस्थित हुआ है वहाँ उस अंश में इसी **रामायण** को प्रमाण माना गया है। **महाभारत** से लेकर **पद्मपुराण** तक रामकथा के विषय में इसी **रामायण** को मूलमन्त्र माना गया है और उनकी भिन्न योजनाओं की इसके अनुरूप ही व्याख्या की गयी है (नीलकण्ठ)।

इस **रामायण** (वाल्मीकि) में राम को ईश्वर और महासती सीता को उनकी महाशक्ति स्वीकार किया गया है। युद्धकाण्ड की ब्रह्मा-स्तुति (सर्ग १२०) इसका स्पष्ट प्रमाण है। इसी आधार पर सनातन स्थान सर्वातिशायी है। जैन-परम्परा इन दोनों तथ्यों को स्वीकार नहीं करती । उसमें न ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार किया जाता है और न यज्ञों पर ही कोई आस्था रखी जाती है। वे वेदों को प्रमाण नहीं मानते। **वाल्मीकिरामायण** में इन दोनों तथ्यों की प्रतिष्ठा देख उसकी कथा को जैन-सम्प्रदाय ने अपने अनुरूप गढ़ा और एक नवीन झूठी रामकथा को जन्म दिया। बौद्धों ने भी ऐसा ही किया।

इस परिवर्तन को तबतक सहा जा सकता था जबतक इसमें अधिक्षेप और अपमान की भाषा का उपयोग नहीं हुआ था। किन्तु जब यह परिवर्तन इस निम्नस्तर पर जा पहुँचा तो सनातनधर्मावलम्बियों की भावनाओं को ठेस पहुँची। अग्निपरीक्षा इसका प्रमाण है। इसमें राम और सीता को जिस स्तर का बतलाया गया है वह उनका अपमान ही है। सीता को तो बाद में महासती बतलाया भी गया किन्तु राम को उनकी सनातनोचित प्रतिष्ठा इस ग्रन्थ में प्रदान नहीं की गयी। सीता को भी जिन शब्दों से सम्बोधित किया गया है वे शब्द पूर्वपक्ष के रूप में भी ग्राह्य और प्रयोगयोग्य नहीं हैं। प्राचीन **जैनपुराणों** ने भी ऐसा नहीं किया है। इस ग्रन्थ में राम और सीता को णमुक्कार मन्त्र का जप करते हुए जैनधर्म में दीक्षित बतलाया गया है। यह वैसा ही है जैसा महावीरस्वामी को वाममार्ग में दीक्षित बतलाया जाय या मुहम्मदसाहब को वैदिक धर्म में। निश्चित ही राम की महती प्रतिष्ठा का उपयोग जैन-सम्प्रदाय ने अपने पक्ष में करना चाहा है, किन्तु तेरापन्थी आचार्य तुलसी ने उससे आगे बढ़कर पूर्वपक्ष के रूप में राम और सीता की प्रतिष्ठा को सांकेतिक ढङ्ग से उसी प्रकार नीचे गिराना चाहा है जिस प्रकार रावणपन्थी कुछ कर रहे हैं।

राम पर बहुपत्नीत्वाक्षेप सर्वथा निराधार

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि की रामायण ही श्रीराम-चरित्र के सम्बन्ध में परम प्रमाण है। भगवान् वेदव्यास द्वारा **पुराणों** में तथा **अन्यान्य रामायण**, आनन्दादि अन्य **रामायणों** तथा सम्प्रदायान्तर अथवा देशान्तर में प्राप्त राम-कथाओं को तथा हिन्दी में रचित **रामायण** और **रामचरितमानस** आदि ग्रन्थों को मूल आधार के रूप में **वाल्मीकिरामायण** का ही आश्रयण करना पड़ता है।

जैनमुनि की **अग्निपरीक्षा** पुस्तक को देखने में पहले यह सन्देह होता था कि जैनमुनि ने उक्त पुस्तक में जगज्जननी सीता के लिए जिन अपशब्दों का प्रयोग किया है वे सब पूर्वपक्ष के विन्यासरूप हों आगे उनका उत्तर द्वारा खण्डन ही इष्ट हो। कानून में भी सन्देह का लाभ अभियुक्त को देना उचित है, अभियोक्ता को नहीं। इसी कारण जैन आचार्य तुलसी श्रीसीता के चरित्र के प्रति श्रद्धा और भक्ति से प्रेरित हो ऐसे दुर्वचनों का प्रयोग केवल उनके निराकरणार्थ ही करते हों ऐसा सन्देह हो सकता था और उसका लाभ उनको दिया जाना चाहिये था।

किन्तु जब उनके आगे के प्रयास को देखा जिसमें उन्होंने अपनी स्थिति की पुष्टि के लिए **वाल्मीकि-रामायण** के आधार पर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम को बहुपत्नीसम्पन्न अथवा परस्त्रीरमण करनेवाला सिद्ध करने

का दुष्प्रयत्न किया तो उनकी स्थिति सन्दिग्ध नहीं रही। उनके कुत्सित प्रयास से कम से कम इतना स्पष्ट हो गया कि इनमें वैदिक हिन्दू-धर्म के सर्वस्वरूप भगवान् राम और अखिललोकजननी सीताजी के प्रति हार्दिक श्रद्धा और भक्ति का भाव नहीं है। केवल अपने मत के प्रचारार्थ वे हिन्दू देवी-देवताओं तथा भगवदवतारों में दोष दिखाने और छिद्रान्वेषण करने एवं उनके प्रदर्शन में प्रयत्नशील हैं। यद्यपि उनकी यह भावना केवल दुराशामात्र है, यह आगे दिखाया जायगा, किन्तु इतने मात्र से उनकी स्थिति स्पष्ट हो गयी। अतः आस्तिक, धार्मिक तथा रामभक्त जनता को इस सम्बन्ध में सन्देह में नहीं रहना चाहिये।

वाल्मीकीय रामायण में एक बात डिंडिमघोष से स्पष्ट है और वह है राम का अखण्ड एकपत्नीव्रत।

"न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत्॥
दश वर्षसहस्राणि वाजिमेधानथाकरोत्॥" (वा० रा० ७।९९।७,८)

यह निषेध-वचन सभी सामान्य वचनों से बलवान् है, इस कारण दूसरे सामान्य वचनों का समन्वय इसी के अनुसार करना होगा। सीता के अतिरिक्त श्रीरघुनन्दन ने किसी दूसरी भार्या का वरण नहीं किया। दस सहस्र वर्षों तक राम ने अश्वमेधादि यज्ञ किये और सभी यज्ञों में जानकी की स्वर्ण-प्रतिकृति ही पत्नी के स्थान में रहती रही। जैन आचार्य तुलसी के द्वारा प्रस्तुत—

"हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः।
अपहृष्टा भविष्यन्ति स्नुषास्ते भरतक्षये॥" (वा० रा० २।८।१२)

राम की परम स्त्रियाँ (परिचारिकाएँ) प्रसन्न होंगी और भरत का प्रभाव नष्ट होने पर तुम्हारी पुत्रवधुएँ दुःखी होंगी। यह वचन मन्थरा ने कैकेयी से कहा है। यहाँ 'परमाः स्त्रियः' का अर्थ राम की पत्नियाँ नहीं, राम और सीता की उत्तम परिचारिकाएँ हैं। इसी अर्थ में रामाभिरामी टीकाकार श्रीनागेश भट्ट ने इस शब्द का अर्थ किया है 'स्त्रियः इति बहुवचनेन सीतासख्य इत्यर्थः'।

आगे चलकर उत्तरकाण्ड ४२ वें सर्ग के दो श्लोक (२२ और २३) दिये गये हैं—

"उपानृत्यन्त काकुत्स्थं नृत्यगीतविशारदाः।
मनोभिरामा रामास्ता रामो रमयतां वरः॥
रमयामास धर्मात्मा नित्यं परमभूषिताः।
स तया सीतया सार्धमासीनो विरराज ह॥"

ककुत्स्थनन्दन श्रीराम के समक्ष नृत्यगीत में निपुण दिव्य नर्तकियों ने नृत्य किया। प्रसन्न करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ धर्मात्मा राम परम भूषित उन नर्तकियों को वस्त्र, भूषण आदि पुरस्कार से नित्य सन्तुष्ट करते थे। यहाँ राम श्रीसीताजी के साथ सिंहासन पर विराजते थे।

यहाँ राम सीता के सान्निध्य में नर्तकियों के दिव्य नृत्य देखने और राम द्वारा भूषणाच्छादन प्रदान से उनको सन्तुष्ट करने का वर्णन है। जैन आचार्य तुलसी का रमयामास शब्द द्वारा पापभावना सिद्ध करने का दुष्प्रयास-मात्र है, क्योंकि उसी के साथ जुड़ा हुआ शब्द है **धर्मात्मा**। इसी लिए श्रीनागेशभट्ट ने भी यहाँ 'रमयामास' का अर्थ तोषयामास किया है। इसी प्रसंग में विशेष ध्यान देने योग्य अव्यवहित आगे का वाक्य है जिसमें राम को सीताजी के साथ राजासन पर आसीन कहा गया है। अतः ऐसे प्रसंग में 'रमयामास' शब्द की कोई पाप-कल्पना सर्वथा असम्भव और असंगत है। फिर क्रीडार्थक 'रम' धातु को 'यभ' समानार्थक समझना कामुकी मनोवृत्ति का ही द्योतक है।

अनेक के साथ एक समय वैसा करना साहित्य के ही नहीं अपितु कामशास्त्र के भी विरुद्ध है। अनेकों की उपस्थिति में लज्जा स्वाभाविक है। जो कामोत्पत्ति की बाधिका है। अतः रमयामास का हमारा अर्थ ही ठीक है। तुलसी की कल्पना में कोई दम नहीं है और इसी के साथ दूसरा पद है—

"अरुन्धत्या इवासीनो वसिष्ठ इव तेजसा।" (वा० रा० ७।४२।२४)

यहाँ परम पवित्र तेजस्वी दम्पती वसिष्ठ और अरुन्धती को चरित्र के पवित्रतार्थ ही उपमान रूप में प्रस्तुत किया गया है। राम भूल से भी परस्त्री का चिन्तन नहीं करते इसे भी 'कच्चिन्न परदारान् वा राजपुत्रोऽभिमन्यते।' इत्यादि वचन स्पष्ट सिद्ध करते हैं और इसी कारण आनन्दरामायण विलास-काण्ड सर्ग ७ में राम की दिव्य घोषणा है—

"अन्यत्सीतां विनाऽन्या स्त्री कौशल्यासदृशी मम।
न क्रियते परा पत्नी मनसाऽपि न चिन्तये॥"

सीता के अतिरिक्त दूसरी स्त्री मेरे लिए माता कौशल्या के समान है—अन्य पत्नी करना तो दूर रहा मैं मन से भी ऐसा चिन्तन नहीं करता।

ऐसे दिव्य वचनों के समक्ष राम पर बहुपत्नीपरिग्रह अथवा परस्त्री-रमण सर्वथा असम्भव ही नहीं है अपितु ऐसा मिथ्या आरोप करना अवश्य अपराध और घोर पाप है।

यहाँ एक वचन और भी जो आचार्य तुलसी ने नहीं दिया, किन्तु कोई दूसरा सन्देह उत्पादक भाषा में दे सकता है, वह दिया जा रहा है—

"मणिकाञ्चनकेयूरमुक्ताप्रवरभूषणैः।
भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा॥" (वा० रा० ६।२१।३)

श्रीराम का दिव्य अङ्ग अनेक बार मणि और सुवर्ण से भूषित परमनारियों की भुजाओं से परामृष्ट अर्थात् स्पर्श किया जाता था यहाँ भी श्रीनागेशभट्ट ने स्पष्ट कर दिया है।

परमनारीणामेकदारव्रतत्वेनेतरस्त्रीप्रसंगाभावादुत्तमधात्रीजनानां भुजैरनेकधा स्नपनालङ्करणादिकालेऽभिमृष्टं स्पृष्टम्॥

अर्थात् 'परमनारी' का अर्थ एकपत्नीव्रत होने से परस्त्री के प्रसंग के अभाव में श्रीराम की उत्तम धात्रियाँ ही समझना चाहिये जो श्रीराम को स्नान कराने, आभूषण आदि से अलङ्कृत करने के समय अपनी दिव्य तथा अलङ्कृत भुजाओं से उनके शरीर का अनेक प्रकार से स्पर्श करती थीं।

अतः एक बात स्पष्ट है कि **वाल्मीकिरामायण** में श्रीराम मानव मर्यादा के आदर्श हैं और एकपत्नीव्रत के आदर्श का पालन करते हैं—स्वापहेतुरनुपाश्रितोऽन्यया, राम की भुजा भूल कर भी परस्त्री के सिर के नीचे नहीं जा सकती। वैसे तो श्रीराम और सीता के सम्बन्ध में और दिव्य कल्पनाएँ शास्त्रों के आधार पर की जा सकती हैं पर वे सब यहाँ प्रसङ्ग प्राप्त नहीं। यहाँ केवल एकपत्नीव्रत और परपक्ष द्वारा उपस्थापित अंशों के अर्थ का स्पष्टीकरण ही इष्ट है।

बौद्ध जातकसाहित्य की रामकथाओं पर विचार

श्रीराम इतने अधिक लोकप्रिय थे कि उनकी गाथा पढ़ने और सुनने की इच्छा सबको होती थी और होती है। जो लोग बौद्ध या जैन बन जाते हैं। प्राचीन संस्कार वश उन्हें भी रामकथा आकृष्ट करती हैं। परन्तु **वेद, उपनिषद्, रामायण** आदि की कथाएँ रामचरित के साथ ही वेद-प्रामाण्य, यज्ञ-यागादि तथा ईश्वरवाद के भी संस्कार

पैदा करती हैं। अतः उनसे बचने की दृष्टि से ही बौद्धों एवं जैनों ने अपने ढङ्ग से उन्हें विकृत कर उनका वर्णन किया है।

प्राचीनकाल से ही बौद्धों ने रामकथा अपनायी है और इसे **जातकसाहित्य** में स्थान दिया है। जातक-कथा के अनुसार महात्मा बुद्ध अपने असंख्य पूर्वजन्मों में मनुष्य, पशु आदि रूप में उत्पन्न होते हैं। इन जातकों में **दशरथजातक** प्रसिद्ध है।

यह जातक जिस **जातकट्ठवण्णना** में पाया जाता है। वह पाँचवीं शताब्दी ई० की एक सिंहलीपुस्तक का पालीअनुवाद है। इसमें जो कथाएँ पायी जाती हैं वे प्राचीन पाली गाथाओं की टीकारूप में लिखी गयी हैं।

प्रत्येक जातक में पहले वर्तमान कथा दी जाती है जिसमें यह बतलाया जाता है कि किस अवसर पर बुद्ध ने इसे कहा और उसके बाद अतीत कथा दी जाती है। फिर सामञ्जस्य प्रस्तुत किया जाता है अर्थात् व्यतीत तथा वर्तमान कथा के पात्रों की अभिन्नता कही जाती है। गाथाएँ प्रायः अतीत कथा में ही मिलती हैं। परन्तु कभी वर्तमान कथाओं एवं समोधान (सामञ्जस्य) में भी गाथाएँ होती हैं। इनका अर्थ करने के लिए टीका होती है। यह **दशरथजातक** जैतवन में किसी गृहस्थ के पिता के मर जाने पर उसके शोकवशीभूत हो कर्तव्य का पालन त्याग देने पर उससे बुद्ध ने कहा था। प्राचीन काल के पौराण पण्डिता (पण्डित लोग) पिता की मृत्यु होने पर किञ्चित् भी शोक नहीं करते थे ! इसके अनन्तर दशरथ के मरने पर राम के धैर्य का उदाहरण देने के लिए बुद्ध ने **दशरथजातक** सुनाया।

डा० वेबर के अनुसार **दशरथजातक** की रामकथा **रामायण** का मूल है। डा० याकोबी ने इस पक्ष का खण्डन किया है।

डा० वेबर के अनुसार **पालीजातकट्ठवण्णना** में **दशरथजातक** विद्यमान है, परन्तु उक्त ग्रन्थ की प्रामाणिकता विचारणीय है। बौद्ध तिपिटक (बौद्धधर्म ग्रन्थ) तीसरी शती ई० पू० मगध देश में पाली भाषा में लिखा गया था। इसके द्वितीय पिटक (**सुत्तपिटक**) के पाँचवे भाग का नाम **खुद्दकनिकाय** है। इसी **खुद्दकनिकाय** के अन्तर्गत जातकों की गाथाएँ दी गयी हैं और तीसरी शताब्दी ई० पू० से ही सुरक्षित हैं। इन गाथाओं के साथ-साथ प्रारम्भ से ही गद्य की टीका भी प्रचलित हुई होगी, क्योंकि इसके बिना बहुत सी गाथाएँ अपूर्ण और अबोधगम्य हैं। वर्तमान पाली **जातकट्ठवण्णना** पाँचवीं शताब्दी ई० की एक सिंहली पुस्तक का अनुवाद है। मूल सिंहली पुस्तक, जिसमें केवल गाथाएँ पाली में दी गयी थीं, आजकल अप्राप्य है। इसके अज्ञात लेखक का कहना है कि मैंने अनुराधपुर की परम्परा के आधार पर अपनी रचना की है।

उपर्युक्त परिचय से स्पष्ट हो जाता है कि गाथाओं की अपेक्षा जातकों का गद्य बहुत कम महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक है। ये कथाएँ पाँचवीं शताब्दी ई० में परम्परा के आधार पर लिपिबद्ध की गयी हैं। शताब्दियों तक अस्थिर रहने के कारण इनमें परिवर्तन और परिवर्द्धन की सम्भावना रही है। इस गद्य को तीसरी शताब्दी ई० पू० की अखण्ड परम्परा मानना और इसके आधार पर **रामायण** के मूलरूप के सम्बन्ध में किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करना अवैज्ञानिक है। वास्तव में **जातकट्ठवण्णना** में अनेक स्थलों पर गाथाओं और गद्य में विरोध और असङ्गति दिखलायी पड़ती है।[1]

बुल्के के अनुसार ही **दशरथजातक** में जो कथाएँ मिलती हैं वे रामायणीय कथा की विकृति रूप मानी जानी चाहिये।[2] साथ ही इस जातक की गाथाएँ गद्य में ही हैं। प्राचीन गाथाओं से उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

---

१. रामकथा, पृष्ठ ८२। २. वही।

जल-क्रिया (गाथा १)

"एथ लक्खण सीता च उभो ओतरथोदकं।
एवायं भरतो आह राजा दशरथ मतो॥"१॥

लक्ष्मण और सीता दोनों जल में उतरे क्योंकि भरत कहते हैं—राजा दशरथ मर गये।

यह पहली गाथा स्पष्टतया **रामायण** में वर्णित जलक्रिया से सम्बन्ध रखती है। **रामायण** के निम्नाङ्कित श्लोक प्रस्तुत गाथा से मिलते जुलते हैं।

राम लक्ष्मण से कहते हैं—

"भरतो दुःखमाचष्टे स्वर्गतिं पृथिवीपतेः।
जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः॥
सीता पुरस्ताद् व्रजतु त्वमेनामभितो व्रज।
अहं पश्चाद् गमिष्यामि गतिर्ह्येषा सुदारुणा॥" (वा० रा० २।१०५।१५,२०)

पाली **जातकट्ठवण्णना** में इस गाथा को एक भिन्न अर्थ देने का प्रयत्न किया गया है।[1]

गाथा (२–१२) में यह उल्लेख है कि राम से पूछा गया कि हे राम ! शोक का कारण रहते हुए भी आप किस धैर्य के आधार पर शोक नहीं करते ? पिता का देहान्त सुन कर भी आप दुःख के वशीभूत नहीं हैं ?

"केन राम प्पभावेन सोचितब्बं न सोचसि।
पितरं कालकतं सुत्वा तं पसहते दुखं॥ (२)

राम उत्तर देते हैं "बहुत विलाप करने पर भी जो रखा नहीं जा सकता। उसके लिए बुद्धिमान् शोक नहीं करता।" जिस तरह पके फलों के गिरने का नित्य भय बना रहता है उसी तरह जन्म लिये हुए मनुष्यों के मरण का भय सदा ही बना रहता है—

फलानमिव पक्कानं निच्चं पपतना भयं।
एवं जातानं मच्चानं निच्चं मरणतो भयं॥"

इस उपदेश की प्रथम गाथा में राम से उपर्युक्त प्रश्न किया गया है, तदनन्तर अन्य गाथाओं में शोक की व्यर्थता को दर्शानेवाले उपदेश उद्धृत हैं। जातक के गद्य के अनुसार वे राम के वचन कहे जाते हैं। परन्तु इन सम्पूर्ण उपदेशों के अन्तर्गत रामकथाओं का किञ्चित् सङ्केत भी प्राप्त नहीं होता। डा० विंटरनित्स का कहना है कि **वाल्मीकिरामायण** के उल्लेखानुसार राम अपने पिता के देहान्त का समाचार सुनकर अत्यन्त शोक करते हैं (वा० रा० २।१०३।१ आदि) और भरत को सान्त्वना भी देते हैं (वा० रा० २।१०५।१५-५२), परन्तु जातक के राम किञ्चित् भी शोक नहीं करते, इससे बौद्ध प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। उनका अनुमान है कि प्राचीन गाथाओं में श्रीराम को अत्यन्त शोकातुर दिखाया गया था, परन्तु बौद्धों ने इन गाथाओं को नया रूप दिया और शोक-सम्बन्ध का उल्लेख करनेवाली गाथाएँ छोड़ दी गयी हैं। केवल इसी आधार पर गाथाओं के वर्तमान रूप को बौद्धों द्वारा निर्मित मानना निराधार है। **महाभारत** के अनेक स्थलों में भी शोकापनोदन के प्रकरण आते हैं।

जातक गाथाओं की शिक्षा बौद्धों की अपनी नहीं है। जलक्रिया गाथा की ही तरह ये गाथाएँ भी बौद्धों द्वारा ज्यों की त्यों अपना ली गयी होंगी।

---

१. रामकथा, पृष्ठ ८३; वही, पृ० ८७।

इन गाथाओं में से केवल एक—

"यथा फलानां पक्वानां नान्यत्र पतनाद् भयम् ।
एवं नरस्य जातस्य नान्यत्र मरणाद् भयम् ।।"

गाथा **रामायण** से मिलती है । बुल्के का यह मत कि "जातक की गाथाएँ **वाल्मीकिरामायण** पर निर्भर नहीं है : इनका मूल स्रोत कोई प्राचीन आख्यान ही रहा होगा," ठीक नहीं है; क्योंकि यह प्रमाणसिद्ध है कि उपनिषदों में भी रामकथा मिलती है और **वाल्मीकिरामायण ग्रन्थ** तो राम के समकाल का ही है, अतः उपस्थित **रामायण** से भिन्न अन्य किन्हीं अप्रसिद्ध आख्यानों की कल्पना भी निराधार ही है । डा० याकोबी का यह अनुमान ठीक है कि "प्रस्तुत गाथा का मूल स्रोत कोई काव्य रहा होगा और बहुत सम्भव है कि वह **वाल्मीकिरामायण** ही हो ।"

बुल्के का यह कथन कि "बौद्ध-साहित्य से भिन्न ब्राह्मण-धर्म के वातावरण में निर्मित रामसम्बन्धी प्राचीन गीतों में इसका मूल स्रोत खोजा जाना चाहिये," अत्यन्त विचित्र ही है । ब्राह्मण-धर्म के प्रसिद्ध ग्रन्थ **रामायण**, **महाभारत**, **पुराण**, **संहिता** आदि को इन बौद्ध कथाओं का आधार न मान कर किन्ही अज्ञात, अप्रसिद्ध एवं अप्रामाणिक गीतों में उनका आधार ढूंढ़ना कहाँ तक युक्ति-युक्त होगा, यह विचारणीय है ।

कुछ लेखक रामराज्य की तुलना करते हुए **रामायण** एवं **बौद्ध रामकथा** का सम्बन्ध जोड़ते हैं । रामराज्य का काल गाथा १३ में निम्नोक्त है—

"दस वस्ससहस्सानि सट्ठि वस्ससतानि च ।
कंबुगीव महाबाहु रामो रज्जमकारयि ।।"

"कम्बुग्रीव महाबाहु राम ने सोलह सहस्र वर्ष तक राज्य किया ।

वाल्मीकिरामायण, **महाभारत** और **हरिवंश** तीनों में इस गाथा का संस्कृत रूप पाया जाता है ।

रामायण में—

"दशवर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ।।" (वा० रा० ६।१३१।१०६)

श्रीराम ने भ्राताओं के साथ ग्यारह हजार वर्ष राज्य किया ।

"दशवर्षसहस्राणि दशवर्ष शतानि च ।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति ।।"(बा० रा० १।१।९७ अन्य पाठ)

ग्यारह हजार वर्ष तक राज्य करके राम ब्रह्म (परब्रह्म) लोक में जायेंगे ।

महाभारत में—

"दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
राज्यं कारितवान् रामस्ततः स्वभवनं गतः ।।" (३।१४८।१९)

"श्यामो युवा लोहिताक्षो मातङ्ग इव यूथपः ।
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः ।।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
अयोध्याधिपतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत् ।। (म० भा० १२।२९।६०,६१)

श्याम, युवा, लोहिताक्ष, मत्तगज-पराक्रमी, आजानुबाहु, मनोज्ञमुख, सिंहस्कन्ध राम ग्यारह हजार वर्ष राज्य करके परम धाम गये।

हरिवंश में—

"दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
अयोध्याधिपतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत् ॥" (१।४१।१५१)

ग्यारह हजार वर्ष पर्यन्त राम ने अयोध्याधिपति होकर राज्य किया।

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि पाली गाथा और संस्कृत श्लोकों का मूलस्रोत एक ही है। यह पाली गाथा **दशरथ-जातक** के समोधान में दी जाती है। यह समोधान, इस गाथा को छोड़कर, गद्य में ही लिखा गया है। इससे डा० याकोबी ठीक ही अनुमान करते हैं कि "यह गाथा कहीं से उद्‌धृत की गयी है। इस जातक की वर्तमान कथा में पौराण पण्डिता का उल्लेख है, अतः प्रस्तुत गाथा का मूलस्रोत कोई प्राचीन काव्य रहा होगा और बहुत सम्भव है कि यह **वाल्मीकिरामायण** ही हो।[१]"

बुल्के इसका आधार ब्राह्मण-धर्म के वातावरण में निर्मित प्राचीन आख्यान साहित्य में राम-सम्बन्धी प्राचीन गीतों को मानते हैं, क्योंकि उनकी दृष्टि में **रामायण** उनसे अर्वाचीन है। परन्तु यह उनका भ्रम है, क्योंकि यह वा० रा० १म काण्ड से सिद्ध है कि **वाल्मीकिरामायण** का निर्माण राम के समकाल में ही हुआ है, अतः डा० याकोबी का मत ही ठीक है।

डा० वेबर के अनुसार **दशरथजातक** में रामकथा का पूर्वरूप रक्षित है। इसके अतिरिक्त वे पाँचवीं शताब्दी ई० की दो अन्य बौद्ध रचनाओंमें इस कथा के प्राचीनतम तत्त्व पाते हैं। पर यह उनकी कल्पनामात्र है। सो भी बिना प्रमाण की।

धम्मपद की टीका में निम्नलिखित कहानी मिलती है। यह ज्यों की त्यों पाली **जातकट्ठवण्णना** में भी उद्‌धृत है। (देवधम्म-जातक नं० ६ दे०)।

(क) वाराणसी के राजा के दो पुत्र थे महिसास (क) और चन्द्र। उनकी माता के मरने पर राजा ने फिर विवाह किया। नई महिषी के सूर्य नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी अवसर पर राजा से उसको एक वर भी मिला। जब सूर्य युवावस्था को प्राप्त हुआ तब रानी ने वर के बल पर अपने पुत्र के लिए राज्यसिंहासन का अधिकार माँगा। राजा ने स्पष्ट अस्वीकार किया। लेकिन महिषी के षड्यन्त्रों से भयभीत होकर उन्होंने अपने पुत्रों को यह कह कर वनवास दिया कि "मेरे मरने के बाद लौट कर राज्य पर अधिकार प्राप्त करना।" सूर्य अपने दोनों भाइयों के साथ स्वेच्छा से वन चला गया।

राजा के मरने के पश्चात् तीनों बनारस लौटते हैं। महिसास राजा बन जाते हैं, चन्द्र उपराजा और सूर्य सेनापति।

(ख) डा० वेबर के अनुसार यह **दशरथ-जातक** का प्रथम रूप है। आगे चलकर वे बुद्धघोष की **सुत्तनिपात-टीका** में वर्णित शाक्य तथा कोलिय वंशों की उत्पत्ति की कथा में (२, १३) **दशरथ-जातक** का द्वितीय रूप देखते हैं।

---

१. रामकथा, पृष्ठ ८८।

शाक्यों की उत्पत्ति

वाराणसी की पटरानी को नौ सन्तानें थीं—चार पुत्र और पाँच पुत्रियाँ। उसके मर जाने के बाद अंबट्ठ राजा ने नया विवाह किया और अपनी युवती पत्नी को पटरानी बनाया—(**अग्गमहेसि ट्ठाने ठपसि**)। नई पटरानी के पुत्र उत्पन्न होने पर राजा ने उसको एक वर दिया और उसने उस वर के बल पर अपने पुत्र के लिए राज्यसिंहासन माँगा। राजा ने पहले अस्वीकार किया। फिर भी उसने अपने नौ पुत्र-पुत्रियों को यह कह कर वनवास दे दिया "मेरी मृत्यु के पश्चात् आओ और राज्य पर अधिकार प्राप्त करो।" बहुत लोग उनके साथ चल दिये और सबों ने वन में एक नगर बसाया। नगर को 'कपिलवत्थु' नाम दिया गया, क्योंकि उसी स्थान पर कपिल नामक तपस्वी तपस्या करते थे। राजसन्तान से विवाह करने योग्य वन में कोई नहीं था, अतः चारों राजकुमार अपनी बहनों से विवाह करने के लिए बाध्य हुए। ज्येष्ठा कन्या पिया अविवाहित रह कर सबों की माता मानी जाने लगी यही शाक्यों की उत्पत्ति की कथा है।

कोलियों की उत्पत्ति

कुछ समय बाद अविवाहिता पिया को कुष्ट रोग हो गया। इस कारण वह वन के किसी एकान्त स्थान पर छोड़ दी गयी। उसी वन में राम नामक एक राजा रहते थे। कुष्ठ रोग के कारण राजा राम भी; अपने पुत्र को राज्य देकर वन में आये थे और औषधीय पौधों का सेवन कर स्वस्थ हो गये थे। उन्हीं पौधों द्वारा पिया की चिकित्सा कर के राम ने उससे विवाह किया और ३२ पुत्र उत्पन्न किये (१६ यमल) इसके बाद उसने वन में कोलनगर बसाया और शाक्य राजकुमारियों से अपने पुत्रों का विवाह कराया।

शाक्य तथा कोलिय प्रत्येक वंश के २५० राजकुमार भिक्षु बन गये थे। वे अपने वैराग्य में दृढ़ न रह कर लौटने की अभिलाषा करते हैं। तब महात्मा बुद्ध उनको **महाकुणाल-जातक** सुनाकर उनकी संसार में आसक्ति दूर करते हैं।

डा० वेबर के अनुसार रामकथा का विकास इस प्रकार हुआ। **धम्मपद** और **सुत्तनिपात** की टीकाओं में विमाता की ईर्ष्या के कारण राजसन्तति को वनवास दिया जाता है, भाई-बहन का विवाह होता है और राम के के नाम का भी उल्लेख होता है।

दशरथजातक में विमाता के कारण वनवास और भाई-बहन के विवाह के साथ-साथ दशरथ, लक्ष्मण, भरत और सीता, ये नाम मिलते हैं और राम पराये न होकर राजकुमारों के ज्येष्ठ भाई बन जाते हैं।

रामायण में राजकुमारों की राजधानी वाराणसी से अयोध्या बन जाती है। वनवास का स्थान हिमालय से दण्डकारण्य में बदल जाता है ओर राम तथा सीता भाई-बहन न होकर प्रारम्भ से ही विवाहित होते हैं। इन परिवर्तनों के अतिरिक्त सीता-हरण और रावण-वध ये नये वृत्तान्त भी जोड़े गये हैं।

रामायण में सीता के वनवास के अन्त तक कोई सन्तान नहीं होती, यह डा० वेबर के अनुसार **दशरथ-जातक** की कथा का प्रभाव है जिसमें वनवास के बाद ही उनका विवाह होता है। वाराणसी का अयोध्या बनना भी **बौद्ध कथाओं** के कारण हुआ। शाक्य और कोलिय वंशो की राजधानियाँ क्रमशः कपिलवत्थु और कोलनगर दोनों थीं, दोनों नगर अयोध्या के पड़ोस में थे। वनवास का स्थान इसलिए बदल गया कि सीता-हरण और रावण-वध का वृतान्त जोड़ना था। अन्तिम विषय का आधार यूनानी कवि होमर की रचना है जिसमें पैरिस द्वारा हेलेन का हरण है और लङ्का से जो युद्ध हुआ उसका आधार सम्भवतः यूनानी सेना द्वारा त्राय का अवरोध है।

श्रीदिनेशचन्द्र सेन भी **दशरथजातक** में रामकथा का आधार और पूर्वरूप देखते हैं। **रामायण** में एकाध पाली गाथाओं का संस्कृत अनुवाद पाते हैं और अन्तरङ्ग प्रमाण भी देते हैं—**रामायण** और **बौद्धकथा** की तुलना

करने पर स्पष्ट है कि विश्वकवि वाल्मीकि ने कितने कौशल से इस अपरिष्कृत बौद्ध कथा को उत्कर्ष की सीमा तक पहुँचाया है।

बुल्के के अनुसार "इस तर्क का प्रत्युत्तर यह है कि **रामायण** तथा **बौद्धकथा** की तुलना करने पर स्पष्ट है कि बौद्धों ने **रामायण** के कारुणिक कथानक को शोक की व्यर्थता के एक उपदेश मात्र में बदल दिया है। इससे सिद्ध होता है कि **रामायण बौद्धकथा** का मूल एवं प्राचीन है।"

बुल्के यह कहते हैं कि "डा० वेबर और दिनेशचन्द्र गाथाओं और गद्य इन दोनों की प्रामाणिकता में कोई भेद नहीं मानते। यद्यपि दोनों के रचनाकाल में शताब्दियों का अन्तर है। यह तर्क **दशरथजातक** के विषय में विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें प्रायः समस्त कथा गद्य में दी गयी है। पहली गाथा का जो प्रसङ्ग **दशरथजातक** में दिया गया है वह मौलिक नहीं है। अन्य गाथाओं का मूल स्रोत भी रामायण से मिलता-जुलता कोई पुराना उपाख्यान रहा होगा, यह सम्भवतः गाथाओं के उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो गया है।"[1]

वस्तुतः बुल्के आदि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किया गया **उपनिषदों** और **वाल्मीकिरामायण** का काल-निर्णय ही भ्रान्तिपूर्ण है। यदि तत्सम्बधी हमारा विवेचन उनकी समझ में आ जाय तो वे भी मानने लगेंगे कि **जैन-रामकथा** की भाँति ही **बौद्धरामकथा भी वाल्मीकिरामायण** का ही विकृत रूप है। विभिन्न दुरभिसन्धियों से जैनों और बौद्धों ने रामकथा को अपने धार्मिक विश्वासों के साँचे में ढालने का प्रयास किया है।

स्वयं बुल्के का कथन है कि "**दशरथजातक** में प्राप्त रामकथा की अन्तरङ्ग समीक्षा करने पर वह **रामायणकथा** का विकृत रूपमात्र ही सिद्ध होती है[2]।"

साथ ही डा० वेबर का मत इस धारणा पर निर्मित प्रतीत होता है, जिस कथा में अपेक्षाकृत कम पात्र, कम घटनाएँ, कम तत्त्व मिलते हैं वह निस्सन्देह पूर्वकृत होगी। ऐसी धारणा निर्मूल है। इसका प्रमाण **दशरथकथानम्** में मिल जाता है। यह कथा एक सङ्ग्रह में पायी जाती है जिसकी रचना दूसरी शताब्दी ई० के बाद हुई थी। इस **दशरथकथानम्** में सीता का या किसी राजकुमारी का उल्लेख नहीं है।

रामकथा का यह रूप दूसरी शताब्दी ई० के बाद भी बौद्ध जगत् के किसी प्रदेश में प्रचलित रहा होगा। **दशरथकथानम्** के रचना-काल में **वाल्मीकिरामायण** ग्रन्थ भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो चुका था, फिर डा० वेबर की युक्ति के अनुसार **दशरथकथानम्** के वृत्तान्त में इन सब रचनाओं के पहले की रामकथा का रूप विद्यमान है।[3] अस्तु, उनकी यह उक्ति सर्वथा निस्तत्त्व है। वस्तुतः रामकथा का विकसित रूप जो **वाल्मीकिरामायण** में पाया जाता है वह प्राचीनकाल में ही बौद्धों में प्रचलित था। इसके सङ्केत पाली **जातकट्ठवण्णना** की अन्य गाथाओं से मिलते हैं। **जयद्दिशजातक** (नं० ५१३) की गाथा १७ के अनुसार राम का वनवास हिमालय प्रदेश में न होकर दण्डकारण्य में है। एक माता अपने पुत्र से कहती है। जिस तरह दण्डकारण्यवासी राम की सुन्दर माता ने (अपने पुण्य द्वारा पुत्र का) कल्याण किया है, इस तरह मैं तेरा कल्याण (सोत्थानं स्वस्त्ययन) करती हूँ।

यं दण्डकारुण्णगतस्स माता रामस्स सोत्थानं सुगत्ता तं ते अहं सोत्थानं करोमि।

दशरथजातक के अनुसार राम के निर्वासन के समय उनकी माता का देहान्त हो गया था।

वेस्संतरजातक (नं० ५४७) मद्दी, वेस्संतर की पत्नी, कहती है, "मैं एक प्रतापवान् निर्वासित राजकुमार की भार्या हूँ। अनुगामिनी सीता जिस तरह से राम का आदर करती थीं, उसी तरह मैं इनका आदर करती

१. रामकथा, पृष्ठ ९१ पर्यन्त। २. वही, अनुच्छेद—७७१। ३. वही, पृष्ठ ९२।

हूँ। इससे यह ध्वनि निकलती है कि वनवास के समय राम और सीता का सम्बन्ध भाई-बहन का न होकर पति-पत्नी का था। **अनामकजातक** में भी रामकथा का विकसित रूप मिलता है; वह पीछे उद्धृत है।[1] इसके अतिरिक्त अश्वघोष, **अभिधर्म महाविभाषा** आदि प्राचीन बौद्ध-ग्रन्थों में **वाल्मीकिरामायण** के निर्देश मिलते हैं।

अश्वघोषकृत **बुद्धचरित कहाकाव्य** से स्पष्ट पता चलता है कि अश्वघोष (दूसरी शताब्दी ई० पूर्वार्द्ध) न केवल ब्राह्मण-रामकथा से लेकिन **वाल्मीकिरामायण** के पाठ से भी परिचित थे, और इससे अपनी सारी रचना में प्रभावित हुए हैं। राम का आज्ञापालन (९।२५), उनका वन से लौटना (९।६७), दशरथ का पुत्र वियोग के कारण शोक (८।७९, ८१), इन सब में रामकथा के किसी निश्चित रूप की ओर निर्देश नहीं है। लेकिन वनवासी राम से वामदेव की भेंट (९।९), वाल्मीकि (१।४८), तथा सारथि सुमन्त्र (६।३६; ८।८) का उल्लेख—यह रामायणीय रामकथा (विशेष करके अयोध्याकाण्ड) से सम्बन्ध रखता है। इसके अतिरिक्त अश्वघोष के **सौन्दरनन्द** में वाल्मीकि का सीता के दोनों पुत्रों का शिक्षक होने का उल्लेख हुआ है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि अश्वघोष उत्तरकाण्ड की कथावस्तु से भी अभिज्ञ थे।

बुद्धचरित के अनेक स्थलों पर **रामायण** की कथावस्तु से बहुत कुछ समानता मिलती है। सिद्धार्थ के बिना छन्दक के कपिलवस्तु में लौटने का सारा वर्णन सुमन्त्र के प्रत्यागमन से प्रभावित हुआ है। कवि स्वयं दोनों वृत्तान्तों की तुलना करता है।

"त्वामरण्ये परित्यज्य सुमन्त्र इव राघवम्।" (६।२५)

राम के वन से लौटने का भी एक उल्लेख मिलता है—

"महीं विप्रकृतामनार्यैस्तपोवनादेत्य ररक्ष रामः।" (९।५९)

पृथिवी को अनार्यों से पीड़ित देखकर राम ने वन से लौटकर उसकी रक्षा की।[2] यह बात **दशरथजातक** में नहीं है।

बुल्के का यह कहना कि "**रामायण** में इस कथा का रूप नहीं है;" सर्वथा असङ्गत है, क्योंकि **रामायण** के 'उत्तरकाण्ड' से लवण दैत्य के द्वारा मथुरा आदि की भूमि के विप्रकृत होने और राम से प्रेषित शत्रुघ्न के द्वारा उसकी रक्षा की जाने का उल्लेख है।

रामायण और **बुद्धचरित** के कई स्थलों में बहुत समानता है। उदाहरणतः—"**गजेन्द्रमृदिता फुल्ला लता इव महावने**" (वा० रा० ५।९।४७) का उल्लेख है, "**गजभग्ना इव कर्णिकारशाखा**" (बुद्धचरित ५।५१) का उल्लेख है। ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। विंटरनित्स के अनुसार इसका मूल स्रोत **बुद्धचरित** है, **रामायण** में यह प्रक्षिप्त है। कीथ के मतानुसार अश्वघोष ने ही **रामायण** का अनुकरण किया है। वस्तुतः इस सम्बन्ध में कीथ का मत ही युक्तियुक्त है।

"**मुमोक्ष वाष्पं पथि नागरो जनः पुरा रथे दाशरथेरिवागते**" (बु० च० ८।८) जैसी युक्ति गौतमी के विलाप (८।५१–५९) में राजमहल और वनवास का जो विरोध चित्रित है वह **रामायण** के दशरथ-विलाप (वा० रा० २।१२।९७–११०, २।५७–५९) और कौशल्या-विलाप (वा० रा० २।४३।१–२०) का स्मरण दिलाता है। दोनों ही वर्णनों में वनवासी पुत्र के पैदल जाने और भूमि पर शयन करने आदि का उल्लेख हुआ है।

"प्रलम्बबाहुर्मृगराजविक्रमो महर्षभाक्षः कनकोज्ज्वलद्युतिः।
विशालवक्षा घनदुन्दुभिस्वनस्तथाविधोऽप्याश्रमवासमर्हति।।" (बु० च० ८।५३)

---

१. रामकथा, पृष्ठ ९७, अनुच्छेद ८३। २. वही, पृष्ठ ९३।

"नागराजगतिर्वीरो महाबाहुर्धनुर्धरः।
वनमाविशते नूनं सभार्य्यः सहलक्ष्मणः।।" (वा० रा० २।४३।६)

"शुचौ शयित्वा शयने हिरण्मये प्रबोध्यमानो निशि तूर्यनिस्वनैः।
कथं बत स्वप्स्यति सोद्य मे व्रती पटैकदेशान्तरिते महीतले।।" (बु० च० ८।५८)

"दुःखस्यानुचितो दुःखं सुमन्त्र शयनोचितः।
भूमिपालात्मजो भूमौ शेते कथमनाथवत्।।" (वा० रा० २।५८।६)

तीसरी शताब्दी ई० उत्तरार्द्ध की **अभिधर्ममहाविभाषा** में **रामायण** का उल्लेख किया गया है। यह रचना चीनी अनुवाद में सुरक्षित है। इसमें लिखा है--**रामायण** नामक ग्रन्थ में १२००० श्लोक हैं। श्लोक केवल दो विषयों से सम्बन्ध रखते हैं—(१) रावण द्वारा सीता का हरण, (२) राम द्वारा सीता की पुनः प्राप्ति तथा (अयोध्या में) प्रत्यागमन। इसके अतिरिक्त तीन बौद्ध रचनाएँ और मिलती हैं, जिनसे पता चलता है कि **रामायण** का बौद्धों में पर्याप्त प्रचार था। कुमारपालकृत **कल्पनामण्डितिका** में (तीसरी शताब्दी ई० का अन्त) **महाभारत** और **रामायण** का उल्लेख हुआ है। वसुबन्धु (चौथी शताब्दी ई०) की जीवनी में भी यह कहा गया है कि वसुबन्धु **रामायण** की कथा सुना करते थे। **सद्धर्मस्मृत्युपाख्यानसूत्र** में **रामायण** का दिग्वर्णन उद्धृत है। यह रचना पहली शताब्दी ई० की मानी जाती है। इसका छठी शताब्दी में चीनी भाषा में अनुवाद हुआ था।

श्रीबुल्के के अनुसार "रामकथा का जो रूप पाली **दशरथजातक** में मिलता है वह या तो **रामायण** ही पर अथवा **रामायण** से मिलती जुलती किसी अन्य रामकथा पर निर्भर है। यह **दशरथजातक** की अन्तरङ्ग परीक्षा से सिद्ध होता है।"

रामायण में कैकेयी ने वर के बल पर राम के लिए चौदह वर्ष तक वनवास माँग लिया था; अतः राम का दशरथ के मरने के बाद वन में रहना स्वाभाविक और अनिवार्य है। लेकिन **दशरथजातक** में इसके लिए कोई समीचीन कारण नहीं मिलता। इसके अनुसार दशरथ ने राम और लक्ष्मण से कहा था कि वे उनकी मृत्यु के पश्चात् लौटें। तब उन्होंने ज्योतिषियों से अपना अन्तकाल पूछा था। यह जानकर कि मैं बारह वर्ष तक जीवित रहूँगा तो उन्होंने अपने पुत्रों से इस अवधि के अन्त में आने के लिए कहा था। फिर दोनों पुत्रों को एक ही आदेश मिला था। तब लक्ष्मण क्यों नौ वर्ष के बाद लौटते हैं? **रामायण** की कथा में सीता का अपने पति के साथ जाना स्वाभाविक है। **दशरथजातक** में इसके लिए कोई ऐसा कारण नहीं है। विमाता के षड्यन्त्रों की सीता को कोई आशंका नहीं थी। जातक में सीता दशरथ के मरने पर लक्ष्मण के साथ राजधानी को लौट आती है और राम तथा सीता का तीन वर्षों के वियोग के बाद विवाह हो जाता है। इसमें सम्भवतः **रामायण** के सीताहरण के पश्चात् दोनों का संयोग प्रतिबिम्बित है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि **दशरथजातक** ब्राह्मण-रामकथा पर निर्भर है तो दोनों में इतना अन्तर क्यों है? इसके तीन मुख्य कारण स्पष्ट हैं। एक तो **दशरथजातक** का जो रूप **जातकट्ठवण्णना** में प्रस्तुत है, वह शताब्दियों तक अस्थिर रहने के बाद पाँचवीं शताब्दी ई० में लिपिबद्ध किया गया है। अतः इसमें परिवर्तन की सम्भावना रही है। विशेष कर दूर सिंहलद्वीप में जहाँ **रामायण** की कथा उस समय तक कम प्रचलित थी। दूसरे बौद्ध आदर्श और शैली का प्रभाव पड़ना अत्यन्त स्वाभाविक है। तीसरे **दशरथजातक** की वर्तमान कथा के अनुसार महात्मा बुद्ध ने पिता के मरण से शोकातुर पुत्र को धैर्य देने के लिए दशरथ के मरने पर राम के धैर्य का उदाहरण देकर यह जातक कहा था। इस उद्देश्य के लिए सीता-हरण का उल्लेख अनावश्यक था। इसके अतिरिक्त इस जातक

के अनुसार महात्मा बुद्ध ही अपने पूर्व जन्म में राम पण्डित थे। अतः बौद्ध आदर्श के प्रतिकूल होने के कारण रावणवध का अभाव स्वाभाविक है।

बौद्ध जातकों की शैली के अनुसार राजधानी अयोध्या न होकर वाराणसी है। वनवास का स्थान हिमालय है जो बौद्ध कथाओं में अत्यन्त लोकप्रिय है और जिसका उल्लेख जातकों में निरन्तर होता रहता है।

वनवास का कारण विमाता के षड्यन्त्रों का भय है जो अनेक बौद्ध कथाओं में भी मिलता है। राम और सीता, भाई-बहन का विवाह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कहा जा सकता है। लेकिन इसके लिए भी बौद्धसाहित्य में कई उदाहरण प्रस्तुत हैं। दशरथ के अन्तकाल के विषय में ज्योतिषियों का कथन असत्य सिद्ध होता है। इसमें भी चिन्तामणिवैद्य बौद्ध-प्रभाव देखते हैं। बौद्धों की ज्योतिषियों में जो अरुचि थी वह इस भूल में प्रगट की गयी है। सारांश यह है कि **दशरथजातक** में जो आन्तरिक असङ्गति मिलती है वह वाल्मीकीय कथा को इस जातक का आधार होना सिद्ध करती है।

दूसरी ओर **जातक** तथा **रामायण** में जो अन्तर पाये जाते हैं वे भी उपर्युक्त कारणों से स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। बौद्ध साहित्य में जो रामकथासम्बन्धी सामग्री मिलती है, उसके विश्लेषण से सिद्ध होता है कि **दशरथ-जातक** के गद्य में जो वृत्तान्त प्रस्तुत हुआ है वह तो **वाल्मीकीय कथा** का विकृत रूप है ही, किन्तु इस जातक की गाथाओं का भी मूल स्रोत बौद्ध नहीं है। फिर भी इनका आधार प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** भी नहीं हो सकता, अतः ये गाथाएँ पुराने आख्यान काव्य पर निर्भर होंगी।"[1]

बुल्के का उपर्युक्त कथन तब सत्य होता जब कि **वेद, उपनिषद्** तथा **वाल्मीकिरामायण** जैसे ग्रन्थों की बौद्धग्रन्थों से अतिप्राचीनता सिद्ध न होती। **वेद, उपनिषद्** अनादि हैं और **रामायण** राम के समकाल की रचना है। यह बात वा० रा० १म काण्ड तथा तर्कों द्वारा सिद्ध की जा चुकी है, अतः **रामायण** को ही उन गाथाओं का मूल स्रोत मानना उचित है।

जयद्दिसजातक और **वेस्संतरजातक** की कथाएँ **वाल्मीकिरामायण** की प्रतिच्छाया हैं, यह भी कहा जा चुका है।

सामजातक (नं० ५४०) का वृत्तान्त **रामायण** की अंधमुनि-पुत्रवधसम्बन्धी कथा का अन्य रूप है। बौद्ध जगत् मे इस जातक की लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि साँची और अमरावती के स्तूपों पर तत्सम्बन्धी चित्र अङ्कित किये गये हैं। अन्ध मुनि के पुत्र की कथा रघुवंश नवें सर्ग में भी मिलती है पर ये वृत्तान्त **रामायण** की तत्सम्बन्धी कथा पर निर्भर हैं; और **सामजातक** से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रखते।

सामजातक का संक्षिप्त वृत्तान्त इस प्रकार है—निषादों के कुल में उत्पन्न दुकूलक क्षोर पारिका हिमालय प्रदेश के किसी आश्रम में तपोमय जीवन विताते हैं। विवाहित होकर भी वे ब्रह्मचारी ही रहते हैं। बोधिसत्व अलौकिक रीति से पारिका के गर्भ से जन्म लेते हैं और साम कहलाते हैं। साम के १६ नर्ष में दुकूलक और पारिका दोनों को एक सर्प अन्धा कर देता है। उसी समय से साम अपने माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा करने लगता है। एक दिन साम पानी लेने किसी नदी पर जाता है और वहीं काशीराज के विष-दिग्ध बाण से विद्ध हो जाता है। राजा उसके पास जाता है। साम को किञ्चित्मात्र भी क्रोध नहीं होता, परन्तु वह अपने माता-पिता के भाग्य पर फूट-फूट कर रोता है। राजा उसके माता-पिता के पास जाकर उसके वध का समाचार सुनाता है। समाचार सुनकर दोनों विलाप करने लगते हैं। तदनुसार उनके कहने पर राजा उनको मृत पुत्र के पास ले जाते हैं। वहाँ पहुँचने पर

---

१. रामकथा, पृ० ९४-९६।

मर्मस्पर्शी विलाप करते हुए शपथ करते हैं । पारिका कहती है कि "यदि मेरा पुत्र माता-पिता का सच्चा भक्त था तो विष लुप्त हो जाय" दुकूलक भी अपने और अपनी पत्नी के नाम पर शपथ करता है। वनदेवी भी उन्हीं की तरह शपथ करती है । साम उठ बैठता है और राजा का स्वागत करते हुए कहता है कि मैं मूर्च्छित हुआ था, जो माता-पिता की सेवा करता है वह दोनों लोकों में सुख पाता है। तदनन्तर साम राजा पिलियक को राजधर्म का उपदेश देता है ।

रामायण की कथा में आहत मुनि-पुत्र उत्तेजित हो जाता है, उसके माता-पिता का विलाप भी अत्यन्त कारुणिक एवं अधिक हृदय-स्पर्शी है और वह पुनः जीवित भी नहीं होता इन अन्तरों के रहते हुए भी दोनों वृत्तान्तों का पारस्परिक सम्बन्ध सन्दिग्ध नहीं कहा जा सकता ।

रामायण और **गाथा** की कथाओं में शाब्दिक साम्य भी है । उदाहरणतः —

"इयमेकपदी राजन् ।" (वा० रा० २।६३।४४)
"अयं एकपदी राज ।" (गाथा २९)
"वृद्धौ च मातापितरावहं चैकेषुणा हतः ।" (वा० रा० २।६३।३२)
"अदूसक पितापुत्ता तयो एकूसूना हता ।" (गाथा ३९)
"कन्दमूलफल हृत्वा यो मां प्रियमिवातिथिम् ।
भोजयिष्यत्यकर्मण्यमप्रग्रहमनायकम् ॥" (वा० रा० २।६४।३४)
"को दानि भुजयिस्सति वनमूलफलानि च ।
सामो अयं कालकतो अंधानं परिचारक ॥" (गाथा ८५)

बुल्के के कथनानुसार "**सामजातक** के सरल वृत्तान्त में इस रामकथा का प्राचीन रूप सुरक्षित है । यह वृत्तान्त रामकथा से स्वतन्त्ररूप में भी प्रचलित था और कालान्तर में **रामायण** की कथा में उसे एक नया और काव्यात्मक रूप मिला ।"

बुल्के की यह मान्यता असङ्गत है, क्योंकि **वाल्मीकिरामायण** की प्राचीनता सिद्ध है । इतना ही नहीं, इस स्थिति में यही युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है कि कथा के इस अंश को भी बौद्धों ने **वाल्मीकिरामायण** से लेकर अपने साँचे में ढाल लिया है । यदि **रामायण** में बौद्ध-कथा का अनुकरण किया गया होता तो मुनि-पुत्र के क्रोध न करने और माता-पिता के शपथ से उसके जी उठने जैसे अंश भी अवश्य ही अनुकृत होते । जैसे इतर प्राकृत संस्कृत का अपभ्रंश है वैसे ही उक्त प्राकृत गाथाएँ भी संस्कृत **रामायण** का ही अपभ्रंश एवं विकृत रूप हैं ।

'प्रकृतिः संस्कृतं तस्माद्भवं प्राकृतम्' इस प्राकृत नियम के अनुसार संस्कृत प्रकृति है उससे उत्पन्न होनेवाली भाषा प्राकृत है ।

वेस्सन्तर जातक

यह जातक बौद्ध जगत् में सबसे प्रसिद्ध और लोकप्रिय था । इसकी ७८६ गाथाओं में राजकुमार वेस्सन्तर की दानवीरता का चित्रण हुआ है । कथावस्तु इस प्रकार है । राजकुमार वेस्सन्तर ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं किसी भी माँगी हुई वस्तु के देने से इनकार नहीं करूँगा । देश की भलाई का ध्यान न रखते हुए उसने एक अलौकिक हाथी दान में दे दिया । दण्डस्वरूप उसको वनवास दिया गया । उसकी पतिभक्त पत्नी मद्दी और दो पुत्र उसके साथ गये । वह चार घोड़ों के रथ में चले । पथ में एक ब्राह्मण भिखारी ने रथ माँग लिया । वेस्सन्तर ने उसे

निःसङ्कोच रथ दे दिया। अन्त में चारों एक कुटी में पहुँचकर वहाँ निवास करने लगे। तब सक्क (शक्र) एक कुरूप ब्राह्मण के वेश में दिखायी पड़े और उन्होंने वेस्सन्तर के दोनों पुत्रों को दास के रूप में माँगा और प्राप्त किया। तत्पश्चात् ब्राह्मण ने पत्नी को भी माँग लिया। इसपर ब्राह्मण अपना परिचय देता है और कथा आनन्दपूर्वक समाप्त होती है। मद्दी कहती है—

"अवरुद्धस्सहं भरिया राजपुत्तस्य सिरीमतो।
तं चाहं नातिमण्णमि रामनि सीता वनुब्बता॥" (गाथा ५४१)

मैं एक प्रतापवान् निर्वासित राजकुमार की भार्या हूँ। अनुगामिनी सीता जिस तरह राम का आदर करती थी इस तरह मैं इनका आदर करती हूँ।

इस जातक में अनेक स्थलों पर रामकथा से मिलते-जुलते प्रसङ्ग मिलते हैं। राम के समान वेस्सन्तर का वनवास के पहले दान देना, कौशल्या तथा वेस्सन्तर की माता का विलाप, वन और कुटी का वर्णन। मद्दी और सीता दोनों अपने पति के साथ वन जाने का अनुरोध करती हैं।

"अग्गि निज्जालयित्वान एकजालसमाहितम्।
तत्थ मे मरणं सेय्यो यं चे जीवे तया विना॥" (गाथा ७३)

"यदि मां दुःखितामेवं वनं नेतुं न चेच्छसि।
विषमग्निं जलं वाहमास्थास्ये मृत्युकारणात्॥" (वा० रा० २।२९।२१)

पूर्वोद्धृत गाथा में मद्दी ने तो स्पष्टतः सीता का उल्लेख किया है।[२]

बुल्के कहते हैं "**वेस्सन्तर जातक** का रचयिता रामकथा से परिचित था, लेकिन वह **रामायण** भी जानता था, इसके लिए **वेस्सन्तर जातक** में कोई आधार नहीं मिलता।"[३]

वस्तुतः **रामायण** की कथावस्तु का ज्ञान **रामायण** से ही हो सकता हूँ। उससे भिन्न अनुपलब्ध एवं अश्रुत उपाख्यानों एवं गीतों को गाथाओं का आधार मानना सर्वथा निर्मूल है। उपस्थित का परित्याग कर अनुपस्थित की कल्पना ही युक्ति-रहित एवं अमान्य है—

"उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितकल्पने मानाभावात्।"

संबुला जातक

इस 'जातक' की गाथा **रामायण** की कथा से कुछ मिलती है। गाथा (५१९) में पतिभक्त संबुला का वृत्तान्त दिया गया है। अपने कुष्ठरोगी पति राजकुमार सोत्थिसेन के साथ वनवासी बन कर उसकी सेवा में अपना जीवन बिताती है। किसी दिन दानव संबुला को वन में देखता है और उसे अपनी पत्नी बनाना चाहता है। संबुला अस्वीकार करती है और सक्क (शक्र) द्वारा बचायी जाती है। इस घटना का वृत्तान्त सुनकर सोत्थिसेन अपनी पत्नी के सतीत्व पर सन्देह करता है। यह देख कर संबुला एक 'सच्चकिरियम् (सत्यक्रिया) द्वारा अपने पति को नीरोग कर देती है।

"तथा मं सच्चं पालेतु पालयिस्सति चे ममं।
यथानं नाभिजानामि अज्जं पियतरं तया॥
एतेन सच्चवज्जेन व्याधि ते वूपसम्मति (उपशमति)।" (गाथा २७)

---

१. रामकथा—पृष्ठ ९९–१००।   २. "तं चाहं नातिमर्ण्णमि रामनि सीता वनुब्बता।" (५४१)

३. 'राककथा' पृ० १००।

इसके बाद दोनों राजधानी लौटते हैं। कृतघ्न सोत्थिसेन अन्य स्त्रियों के साथ विलास करके अपनी पत्नी को दुःख देता है। अन्त में अपने पिता के कहने पर वह संबुला से क्षमा माँगता है और दोनों का जीवन सुखमय बन जाता है।

संबुला और सीता दोनों वनवासी पति की सेवा करती हैं। संबुला की सच्चक्रिया सीता की अग्निपरीक्षा के समय की शपथ का स्मरण दिलाती है। दानव और रावण दोनों की धमकी में भी शाब्दिक समानता मिलती है। "यदि तुम मेरी महिषी बनने के लिए सहमत न हुई तो तुम मेरा प्रातः का भोजन (पातराशाय—प्रातराश) बन जाओगी।

"नो चे तुवं महेसेय्यं संबुले कारयिस्ससि।
अलं त्वां पातरासाय मज्जे भक्खा भविस्ससि॥" (गाथा १०)

"द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः॥"[1] (वा० रा० ५।२२।९)

यह कथा भी परम प्रसिद्ध एवं व्यापक **रामायण** की रामकथा के अंश का सङ्कलन ही प्रतीत होती है। इन कथाओं को रामकथा का मूल मानना उपहासास्पद है।

महासुतसोम जातक

इस जातक की गाथा (नं० ५३७) भी अत्यन्त एकदेशीय है। 'महासत्तो' (बोधिसत्त्व) एक 'पोरिसाद' (पुरुषाद) को भर्त्सना देकर कहता है—

"पञ्च पञ्चनखा भक्खा खत्तियेन पजानता।
अभक्खं राजा भक्खेसि तस्मा अधम्मिको तुव॥ (गाथा ५८)

यह राम के प्रति वाली की उक्ति का स्मरण दिलाता है—

"पञ्च पञ्चनखा भक्ष्या ब्रह्मक्षत्रेण राघव।" (वा० रा० ४।१७।३९)

श्वाविधं शल्यकं गोधां खड्गकूर्मशशांस्तथा। भक्ष्यान् पञ्चनखेष्वाहुः" (मनु० ५।१८)

दिनेशचन्द्र सेन का अनुमान है कि "जातकों के साहित्य से वाल्मीकि ने अपनी सामग्री प्राप्त की है और इसे अपनी अमर रचना के नये साँचे में ढाला है।" किन्तु यह मत प्रमाणशून्य है। जातकों में रामकथा से सीधा सम्बन्ध रखनेवाली सामग्री इस प्रकार है—

'शोकापनोदन' का एक छोटा सा भाषण,
जलक्रिया के विषय में एक गाथा,
राम के राज्यकाल के विषय में एक गाथा,
राम का दण्डकारण्य में वनवास का उल्लेख और

सीता का अपने पति के साथ वन गमन का उल्लेख। इसके अतिरिक्त **वेस्संतरजातक** की कथावस्तु **रामायण** के वृत्तान्त से कुछ मिलती जुलती है। **संबुला** तथा **महासुतसोम जातक** में एक गाथा पायी जाती है। जिसका रूपान्तर **रामायण** में भी मिलता है। **सामजातक** का वृत्तान्त सम्भवतः दशरथ द्वारा अन्धमुनिपुत्र के वध की कथा का आधार माना जा सकता है।

---

१. रामकथा, पृष्ठ १०१।

बुल्के कहते हैं "इस सामग्री की अल्पता का ध्यान रखकर यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि समस्त **रामायण** का आधार पाली गाथाओं में ढूँढ़ना व्यर्थ है। **रामायण** रामकथा-सम्बन्धी आख्यान काव्य पर निर्भर है और इस आख्यान काव्य की थोड़ी सी सामग्री पाली गाथाओं में आ गयी है। इसका अर्थ यह है कि जिस समय पाली तिपिटक बनता रहा (चौथी शताब्दी ई० पू०) उस समय रामकथा को लेकर पर्याप्त मात्रा में आख्यान-काव्य की रचना हो चुकी थी। आगे बढ़कर यह भी कहा जा सकता है कि **रामायण** की भी रचना हो चुकी थी।"

बुल्के कहते हैं "उपर्युक्त सामग्री से ऐसा प्रतीत नहीं होता। **सामजातक** के अतिरिक्त पाली तिपिटक में केवल पाँच गाथाओं में **रामायण** के श्लोकों से शाब्दिक समानता पायी जाती है। यदि **रामायण** जैसे महाकाव्य की रचना हुई होती तो गाथाओं के कवि इससे कहीं अधिक प्रभावित हुए होते। इसके अतिरिक्त **रामायण** की अपेक्षा पाली तिपिटक की सामग्री पुराने आख्यान काव्य की शैली और छन्द से कहीं अधिक निकट है। **सामजातक** के वृत्तान्त में भी सम्भवतः अन्धमुनि-पुत्र के वध की कथा का प्राचीन रूप सुरक्षित है।"[1]

बुल्के के कथनानुसार **सामजातक** का वृत्तान्त सम्भवतः दशरथ द्वारा अन्धमुनि के पुत्र के वध की कथा का आधार माना जा सकता है। परन्तु वह सङ्गत नहीं है, क्योंकि **वाल्मीकिरामायण** बुद्ध से अति प्राचीन है। आधुनिक दृष्टिकोण से भी मुनि-पुत्र के क्रोध न करने और पुनर्जीवित हो जाने आदि कथाओं का **वाल्मीकिरामायण** में अनुकृत न होने से **रामायण** में उनका अनुकरण सङ्गत नहीं। उपर्युक्त उद्धरणों से यह भी स्पष्ट है कि **रामायण** के रचना-काल-सम्बन्धी (बुल्के द्वारा दिये गये) तर्क भी निस्सार हैं, क्योंकि उनके ही कथनानुसार पर्याप्त मात्रा में आख्यान काव्यों की रचना हो चुकी थी; फिर 'गाथा' के कवि उनसे क्योंकर प्रभावित नहीं हुए ? साथ ही एक और प्रश्न उठता है। अपार बौद्ध-साहित्यान्तर्गत रामकथा सम्बन्धी सामग्री इतनी कम मात्रा में क्यों मिलती है ? वस्तुतः तो रामकथासम्बन्धी उपाख्यानों एवं गीतों का मूल भी **वेद, उपनिषद्** और **वाल्मीकिरामायण** ही हैं। **रामायण महाकाव्य** के विद्यमान रहने पर भी बुद्ध के अनात्मवाद, अनीश्वरवाद और वेदाप्रामाण्यवाद का प्रभाव होने के कारण बौद्धों की **वेद, उपनिषद्** और **वाल्मीकिरामायण** की ओर प्रवृत्ति कम ही हुई। बुल्के भी स्वीकार करते हैं कि "आगे चलकर बौद्धों में रामकथा की लोकप्रियता घटने लगी"।[2] सर्वसम्मति से उस समय **रामायणमहाकाव्य** के विद्यमान रहने पर भी ऐसा क्यों हुआ ? इसका कारण कहा ही जा चुका है।

तिपिटक के ५४७ जातकों में यक्ख, दानव, नाग, रक्खस, बन्दर और अन्य असंख्य पशु आदि के विषय में कितनी ही कहानियाँ मिलती हैं; परन्तु कहीं भी राक्षस रावण अथवा हनुमान् आदि **रामायण** के अन्य कपियों का उल्लेख नहीं हुआ है। निष्कर्ष यह कि तिपिटक के रचनाकाल में रामकथासम्बन्धी स्फुट आख्यान काव्य प्रचलित हो चुका था। लेकिन **रामायण** की रचना उस समय नहीं हो पायी थी।"[3]

उपर्युक्त उद्धरण के अनुसार 'तिपिटक' के ५४७ जातकों में राक्षस रावण और हनुमान् आदि का उल्लेख न होना **रामायण** के रचनाकाल के निर्णय के अपर्याप्त प्रमाण है। केवल इस आधार पर यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि उस समय रामायण की रचना ही नहीं हुई थी। स्वयं बुल्के के कथनानुसार रामकथासम्बन्धी अन्य उपाख्यान पर्याप्त मात्रा में प्रचलित थे ही। अतः प्रश्न होता है कि फिर भी राक्षस रावण और हनुमान् का उल्लेख क्यों नहीं हुआ ? किसी ग्रन्थ में किसी अन्य ग्रन्थ का अनुल्लेख या उसकी कथावस्तु का अनुल्लेखमात्र से यह नहीं कहा जा सकता कि वह ग्रन्थ अथवा उसकी कथावस्तु का अस्तित्व ही नहीं था। स्वयं बुल्के भी यह न कह सकेंगे कि उस समय तक रावण और हनुमान् उत्पन्न ही नहीं हुए थे या उपाख्यानों में उनका वर्णन नहीं था।

वाल्मीकिरामायण पर बौद्ध प्रभाव के प्रसङ्ग में बुल्के का यह कहना कि "पाली-तिपिटक की रचना

---

१. रामकथा, पृष्ठ १०३। २. रामकथा, पृष्ठ ६४ अनुच्छेद ५४। ३. वही; पृष्ठ १०३।

रामायण के पहले हुई थी, अतः **रामायण** पर बौद्ध प्रभाव का पड़ना असम्भव नहीं कहा जा सकता ।"[1] सर्वथा असङ्गत है यह बात पीछे कही जा चुकी है ।

जैसे मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदों के रहने पर भी उनके ईश्वरवाद, आत्मवाद एवं यज्ञवाद का प्रभाव तिपिटक पर इसलिए नहीं पड़ा कि बौद्ध उनके विरोधी थे । इसी लिए **रामायण** के रहने पर भी बौद्धों के ग्रन्थों पर उसका प्रभाव कम पड़ा है । पूर्ववर्ती **रामायण** पर तिपिटक का प्रभाव न होना ठीक ही है ।

दिनेशचन्द्र सेन का अनुमान है कि "वाल्मीकि ने एक विशेष उद्देश्य से **दशरथजातक** का सरल वृत्तान्त विकसित कर दिया है । बौद्ध तपस्या और भिक्षुपन की प्रतिक्रिया स्वरूप आदि कवि ने **रामायण** में हिन्दूगृहस्थ जीवन का आदर्श अपने पाठकों के सामने रखा है ।"

ह्वीलर भी **रामायण** का उद्देश्य बौद्धों के साथ जोड़ते हैं । इनके अनुसार **रामायण** का समस्त काव्य ब्राह्मण और बौद्ध दोनों धर्मों के सङ्घर्ष का प्रतीक है, उसमें सिंहलद्वीप के बौद्धों के प्रति वाल्मीकि का विरोध और द्वेष प्रकट है ।[2]"

बुल्के स्वयं ही उपर्युक्त मतों का खण्डन करते हैं । उनके कथनानुसार "लङ्का और सिंहलद्वीप की अभिन्नता संदिग्ध है । राक्षस ब्राह्मणों के विरोधी अवश्य हैं, लेकिन वे स्वयं भी यज्ञ करते हैं और नरभक्षी भी कहे जाते हैं । **रामायण** में जो राक्षसों का चित्रण मिलता है उसमें उनके बौद्ध होने का कोई निर्देश नहीं मिलता ।"[3] इसके अतिरिक्त जब यह सिद्ध है कि **रामायण** की रचना बुद्ध के जन्म से पहले हो चुकी थी तब उसमें बौद्ध के द्वेष की कल्पना ही क्योंकर सम्भव हो सकती है ?

रामायण में जाबालि-वृत्तान्त के अन्तर्गत बुद्ध के लिए 'चोर' और 'नास्तिक' शब्दों का प्रयोग अवश्य ही हुआ है—

"यथाहि चोरः स तथाहि बुद्धस्तथागतं नास्तिकमत्र विद्धि ।" (वा० रा० २।१०९।३४)

इसी आधार पर ह्वीलर का कथन है कि "जाबालि बौद्ध-धर्म के प्रतिनिधि हैं और राम उनके विरुद्ध ब्राह्मण-धर्म का पक्ष लेते हैं ।"[4] इस पहलू पर भी ह्वीलर से बुल्के का मतभेद है । [5]बुल्के के अनुसार जाबालि बौद्ध-धर्म का पक्ष न लेकर लोकायत (चार्वाक) दर्शन का प्रतिपादन करते हैं और राम उसका खण्डन करते हुए नास्तिकों के प्रसङ्ग से बुद्ध का उल्लेखमात्र करते हैं । वस्तुतः जाबालि केवल लोकायत मत का ही नहीं किन्तु बौद्ध धर्म का भी प्रतिपादन करते हैं । बौद्धों के क्षणभङ्गवाद के अनुसार ही जाबालि भी कहते हैं—

"अन्यो राजा त्वमन्यस्तु तस्मात् कुरु यदुच्यते ।" (वा० रा० २।१०८।१०) । क्षणभङ्गवाद के अनुसार पिता-पुत्र में कार्य-कारण भाव नहीं वन सकता । यद्यपि विज्ञानसन्तान में कार्यकारणभाव होता है तथापि निमित्तकारण की ही उपपत्ति होती है, उपादानकारण की नहीं ।

"बीजमात्रं पिता जन्तोः शुक्रं शोणितमेव च ॥" (वा० रा० २।१०८।११) पिता जन्तु का बीज (निमित्त) मात्र होता है; जैसे यूका, लिक्षा आदि मनुष्य से उत्पन्न होने पर भी उससे उनका कोई सम्बन्ध नहीं बनता वैसे ही तुम्हारा भी दशरथ से कोई सम्बन्ध नहीं ।

"दानसंवनना ह्येते ग्रन्था मेधाविभिः कृताः ।
यजस्व देहि दीक्षस्व तपस्तप्यस्व सन्त्यज ॥"

---

१. रामकथा, पृष्ठ १०४, अनुच्छेद ९० । २. वही, पृष्ठ १०४ । ३. रामकथा, पृष्ठ १०४ ।
४. वही, पृष्ठ १०५ । ५. वही, पृष्ठ १०५ ।

इसी प्रकार के १६ वचनों के द्वारा जाबालि ने बोद्धों के समान ही वेदादि-शास्त्रों का अप्रामाण्य और यज्ञ, तप, दान एवं दीक्षा आदि को निरर्थक कहा है। अस्तु, वेदप्रामाण्यबाधक होने के कारण ही राम ने चोरतुल्य बौद्धादि नास्तिकों को धर्मानुसारी राजा द्वारा दण्डनीय कहा है।

बुल्के के मतानुसार "बुद्धसम्बन्धी श्लोक गौडीय पाठ और पश्चिमोत्तरीय पाठों में अप्राप्त होने के कारण प्रक्षिप्त हैं।" परन्तु उनकी यह मान्यता सङ्गत नहीं, क्योंकि दाक्षिणात्य पाठ में, जो परम प्रामाणिक मान्य है, उक्त श्लोक प्राप्त हैं। हाँ, यहाँ शङ्का की जा सकती है कि जब बुद्ध के जन्म के पूर्व राम के राजसिंहासन होने के समय **रामायण** का निर्माण हुआ तो उसमें बुद्ध का उल्लेख क्यों कर सम्भव हुआ? परन्तु उस शङ्का का खण्डन बहुत ग्रन्थों के ही आधार पर हो जाता है। **बुद्धजातकों** तथा **लङ्कावतारसूत्र** के अनुसार अनेकों बुद्ध गौतम-बुद्ध के पूर्व भी हुए थे। त्रेताकालीन लङ्कापति रावण को उपदेश करनेवाले बुद्ध त्रेता में भी थे। अतः राम के द्वारा बुद्ध का उल्लेख असङ्गत नहीं। **आदिरामायण** की चर्चा भी व्यर्थ है, क्योंकि **वाल्मीकिरामायण** से भिन्न आदिरामायण नामक किसी ग्रन्थ का अस्तित्व प्रमाणशून्य है।

बुल्के के कथनानुसार "**रामायण** के रचना-काल में कोशल में बुद्ध-धर्म का पर्याप्त प्रचार हो चुका था, अतः यह असम्भव नहीं कि वाल्मीकि ब्राह्मण-धर्म के वातावरण में रहते हुए भी परोक्षरूप से बौद्ध आदर्शों से प्रभावित हुए थे। सीता का हिंसा के विरुद्ध भाषण, जो बौद्ध अहिंसा का स्मरण दिलाता है; प्रक्षिप्त माना जा सकता है। लेकिन राम का अत्यन्त शान्त और कोमल स्वभाव, उनकी सौम्यता आदि ध्यान में रखकर स्वीकार करना पड़ता है कि वे मुनि पहले थे, क्षत्रिय बाद में। अतः इनके चरित्रचित्रण में किञ्चित् परोक्ष बौद्ध प्रभाव देखना निर्मूल कल्पना नहीं प्रतीत होती है।[1]" परन्तु उनका यह कथन निरर्थक है, क्योंकि **वेदों**, **उपनिषदों** एवं **रामायण** आदि सभी भरतीय ग्रन्थों में विविध प्रकार के व्यक्तियों का वर्णन मिलता है। जिन अति प्राचीन उपनिषदों का लक्ष्य ही मुनिजनसम्मत अखण्ड अनन्त रामब्रह्म का निरूपण है और जिनका आदर्श ही शान्ति, दान्ति, उपरति और तितिक्षा है उनमें भी क्रूर मारणादि प्रयोगों के वर्णन मिलते हैं, परन्तु उनका लक्ष्य भी उग्र प्रकृतिवाले जनों को वैदिक कर्म-काण्ड में विश्वास दिला कर उनको भी निवृत्तिमार्ग की ओर अग्रसर कर देना ही है। **महाभारत** में भी जहाँ भीम जैसे उग्रतेजा का वर्णन है वहीं राम जैसे ही परम शान्त युधिष्ठिर का भी वर्णन है। शान्ति, दान्ति और अहिंसा आदि का महत्त्व एवं गौरव वैदिक धर्म में बौद्ध धर्म के पूर्व से ही विद्यमान है। वेद, उपनिषदादि अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थ हैं और उनमें वर्णित वसिष्ठ, वामदेव, शुक, सनकादि महर्षियों के चरित्र इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। वस्तु-स्थिति तो यह है कि अति प्राचीन **वेद**, **उपनिषद्**, **रामायण** एवं **महाभारतादि** ग्रन्थों से ही सत्य, अहिंसा आदि को बौद्धों ने कुछ विकृत रूप में अपनाया है। मनु का माहात्म्य **शतपथ** आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में वर्णित है; **रामायण** तथा **महाभारत** में भी उनका नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। इन्हीं मनु महाराज के द्वारा वर्णित अहिंसा और संन्यास-धर्म की शान्ति, दान्ति और अहिंसा आदि का सम्यक् अनुकरण भी बौद्ध नहीं कर पाये। सीता के अहिंसासम्बन्धी भाषण और राम के सौम्य स्वभाव वर्णन पर परोक्षरूप से बौद्ध प्रभाव मानना सर्वथा निर्मूल ही है। जिन वेदों, उपनिषदों तथा मन्वादि शास्त्रों का प्रभाव बौद्धों की विकृत अहिंसा और शान्ति पर पड़ा था उनके अनुसार सीता और राम की अहिंसा, शान्ति आदि समझनी चाहिये।

✲

---

१. रामकथा, पृष्ठ १०५।

षष्ठ अध्याय

रामायण के मूलस्रोत के सम्बन्ध में निराधार कल्पनायें

डा० वेबर का मत

डा० वेबर के मतानुसार रामकथा के दो मूल स्रोत है—एक **दशरथजातक** और दूसरा होमर का काव्य। बुल्के के लेखानुसार ही डा० वेबर के मत से अन्य कोई भी विद्वान् सहमत नहीं। वे स्वयं डा० वेबर के मत का खण्डन करते हैं। "होमर के काव्य में नावों को बहुत महत्त्व दिया गया है। यदि वाल्मीकि इससे परिचित होते तो उन्होंने सेना को समुद्र पार पहुँचाने के लिए सेतु के स्थान पर नावों का सहारा अवश्य लिया होता। होमर तथा वाल्मीकि की रचना में जो साम्य (स्त्री का हरण तथा धनुष-सन्धान) है वह इतना सामान्य और साधारण है कि जब तक अन्य विशेषताओं में कोई साम्य नहीं मिलता तब तक पारस्परिक प्रभाव मानने की आवश्यकता नहीं।"[1]

वस्तुतः उपर्युक्त पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष दोनों ही अकिञ्चित्कर हैं। वाल्मीकि वेद से परिचित थे; **ऋग्वेद** में बड़ी से बड़ी सामुद्री नावों का वर्णन है। तुग्रपुत्र भुज्यु की नाव के समुद्र में भग्न हो जाने पर अश्विनों ने अपनी सौ यन्त्रोंवाली शतारित्रा नाव से भुज्यु को उसके पिता के पास पहुँचाया था। गङ्गा पार करने के लिए राम ने भी नाव का उपयोग किया ही था। महर्षि वाल्मीकि को सत्य घटना का वर्णन अपेक्षित था। किसी काव्य-कल्पना अथवा किसी का अनुसरण नहीं करना था। उन्होंने वेदों तथा उपनिषदों के अध्ययन से जो प्राप्त किया और परम्परा से जो सुना, उसका ब्रह्माजी के आदेश से समाधिजा ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा साक्षात्कार कर उसी का उल्लेख किया। उनका यह **रामायण** किसी अन्य पुस्तक या आख्यान से प्रभावित नहीं है। भले ही, सर्वज्ञ होने के कारण उनको **रामायण**-निर्माण के पूर्व ही पीछे घटी हुई एवं भविष्य में होनेवाली घटनाओं का ज्ञान रहा होगा तो भी उन्होंने **रामायण** में रामचरित्र की घटनाओं एवं वस्तुस्थिति का क्रमिक एवं यथार्थ ही वर्णन किया है। महर्षि वाल्मीकि राम के समकालीन थे और होमर आदि अत्यन्त अर्वाचीन हैं, अतः होमर के काव्य को **रामायण** का आधार मानना युक्तिसङ्गत नहीं है।

डा० याकोबी का मत

डा० याकोबी के अनुसार "**रामायण** की रामकथा स्पष्टतया स्वतन्त्र भागों के संयोग से उत्पन्न हुई है। प्रथम भाग अयोध्या की घटनाओं से सम्बन्ध रखता है और इसमें दशरथ प्रधान नायक हैं। द्वितीय भाग में दण्डकारण्य तथा रावण सम्बन्धी कथा मिलती है। इसका मूलस्रोत देवतासम्बन्धी कथाएँ प्रतीत होती हैं। बहुत से विद्वान डा० याकोबी के इस मत का आजकल भी समर्थन करते हैं।

डा० याकोबी के अनुसार वैदिक सीता और **रामायण** की सीता की अभिन्नता असन्दिग्ध है।[2] इसके अतिरिक्त गृह्यसूत्रों में सीता को पर्जन्यपत्नी कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि राम इन्द्र का एक अन्य रूपमात्र हैं। वैदिक साहित्यमें इन्द्र का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य वृत्र-वध है। इन्द्र वृत्र या अहि को मार कर पर्वत में रोके हुए पानी को विमुक्त कर देते हैं। सायण के अनुसार वृत्र का अर्थ मेघ है जिसमें पानी वृत्र के ही द्वारा रोका जाता है। इन्द्र

---

१. रामकथा, पृष्ठ १०७।   २. वही, पृ० १०८।

और वृत्र का यह वृत्तान्त राम और रावण के युद्ध के रूप में प्रतिबिम्बित होता है। अतः रावण और वृत्र का मूलरूप एक है। इसके अन्य लक्ष्य भी मिलते हैं—रावण के पुत्र मेघनाद की उपाधि इन्द्रजित् है और उसका भाई कुम्भकर्ण एक गुफामें रहकर वृत्र का स्मरण दिलाता है। इन्द्र का दूसरा कार्य पणियों द्वारा चुराई हुई गायों की पुनः प्राप्ति है (ऋ० सं० २।१२)। देवसुनी शरमा रसा नदी को पार कर इन गायों का पता लगाती है (ऋ० सं० १०।१०८)। वैदिक काल में पशुपालन करनेवाले आर्यों के लिए गायों का जो स्थान था वही कृषकों के लिए खेती की सीता का था, अतः गायों का हरण सीता-हरण में बदल गया। जिस तरह सरमा इन्द्र की सहायता करती है उसी तरह हनुमान् भी राम के लिए सीता की खोज करते हैं। हनुमान् का गाँवों में लोकप्रिय होने का एकमात्र कारण यही हो सकता है। याकोबी के अनुसार हनुमान् कृषि से सम्बद्ध कोई देवता थे। सम्भवतः वर्षाकाल के अधिष्ठाता देवता हों। वह वायु-पुत्र हैं। बादलों के समान कामरूपी हैं और आकाश में उड़ते हैं। वह भी दक्षिण की ओर से, जहाँ से वर्षा आती है, सीता अर्थात् कृषि सम्बन्धी शुभ समाचार लेकर राम के पास पहुँचते हैं। इस सबके अतिरिक्त इन्द्र का एकनाम शिप्रवत् भी है (ऋ० ६।१७।२)। **निरुक्त** में "शिप्रे हनू नासिके वा" उल्लेख है। इससे इन्द्र और हनुमान् इन दोनों का वर्षा के देवताओं से सम्बन्ध निर्दिष्ट होता है। लक्ष्मण रामके सहायकमात्र हैं। वे कहीं भी घटनाओं की प्रगति को बदलने की चेष्टा नहीं करते। फिर भी उनका वैदिक देवता मित्र से सम्बन्ध असम्भव नहीं, क्योंकि वे सुमित्रा के पुत्र हैं।"

डा० याकोबी के उपर्युक्त मत की समालोचना करते हुए बुल्के कहते हैं कि उनका मत कल्पनाप्रधान है। इस कल्पना को प्रमाणित करने के लिए तर्क कम हैं। **रामायण** की सीता के वृत्तान्त पर वैदिक सीता के व्यक्तित्व का प्रभाव हम भी मानते हैं, लेकिन दोनों में समानता की अपेक्षा भिन्नता अधिक है।" यद्यपि बुल्के का यह कथन कि डा० याकोबी का मत कल्पनाप्रधान है, ठीक है; तथापि उनका भी मत निराधार है। पिछले प्रकरणों में मैंने यह सिद्ध किया है कि कृषि की अधिष्ठात्री देवता **रामायण** की सीता का ही एक अंश है। इसी तरह राम और वृत्रहन्ता देवराज इन्द्र दोनों भिन्न है। तथापि **"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते"** (बृ० उ० २।५।१९) इत्यादि स्थलों पर परम ऐश्वर्य के योग से परमेश्वर में इन्द्रपद का प्रयोग हुआ है। वही परमेश्वररूप इन्द्र राम के रूप में अवतीर्ण होते हैं। इतना ही नहीं, देवराज इन्द्र परमेश्वर इन्द्र रूप राम का ही एक अंश है। इन्द्र और उपेन्द्र का असाधारण सम्बन्ध भी प्रसिद्ध है, अतः इन्द्र-पत्नी और पर्जन्य-पत्नी शब्दों का प्रयोग भी रामायणीय सीता की अंशभूत कृषि की अधिष्ठात्री देवता में युक्त ही है।

बुल्के कहते हैं कि "हनुमान् के सम्बन्ध में डा० याकोबी का यह अनुमान ठीक है कि **रामायण** में उनका उल्लेख उनकी लोकप्रियता का एकमात्र कारण नहीं हो सकता। इसका कारण यही हो सकता है कि प्राचीन यक्ष पूजा के साथ हनुमान् का सम्बन्ध स्थापित किया गया है", किन्तु उनका यह कथन भी असङ्गत है, क्योंकि वेदों, रामायणों तथा प्राकृतिक भाषा के ग्रन्थों में सर्वत्र रामकथा तथा राम का महत्त्व वर्णित है। **महाभारत** के भीम और अर्जुन के परम हितकर और पूज्य होने के कारण भी उनका महत्त्व है। निर्गुणवादी कबीर प्रभृति भी रामनाम का सहारा लेते रहे हैं। रामनाम का माहात्म्य अत्यन्त प्रसिद्ध है। राम के परम-प्रिय भक्त तथा सीता के परम कृपा-पात्र होकर उनसे अगणित वरदान प्राप्त करने के कारण ही हनुमान् की प्रख्याति बढ़ी। उसी के प्रभाव से राम-भक्ति और रामतत्त्व-ज्ञान के अतिरिक्त लौकिक अभीष्ट सिद्धि भी हनुमान् की पूजा से प्राप्त होने के कारण सर्व-साधारण में उनका महत्त्व और बढ़ गया। महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास ने राष्ट्रोद्धार के लिए गाँव-गाँव में हनुमान् महावीर की स्थापना की। उत्तर भारत में गोस्वामी तुलसीदासकृत **रामचरितमानस, हनुमान्-चलीसा, सङ्कटमोचन** आदि ग्रन्थों एवं रामलीलाओं के विस्तार से घर-घर हनुमान् की पूजा लोकप्रिय हुई। यक्षरूप हनुमान् की पूजा का कोई प्रमाण कहीं भी प्राप्त नहीं होता। ऐसी निराधार कल्पना पाश्चात्यों के उच्छृङ्खल मस्तिष्क

की ही उपज है। अस्तु, जैसे बुल्के के कथनानुसार ही डा० याकोबी का यह मत कि वर्षाकाल के किसी अधिष्ठाता देवता अथवा इन्द्र से हनुमान् की अभिन्नता में कोई प्रमाण या सङ्केत नहीं है वैसे ही बुल्के की उक्त कल्पना भी सर्वथा निराधार ही है क्योंकि उसमें भी कोई प्रमाण नहीं है।

डा० हॉपकिन्स के अनुसार **महाभारत** के 'शान्तिपर्व' में जो रामकथा मिलती है उससे डा० याकोबी के कथन की पुष्टि होती है। इस कथा में जो रामचरित्र मिलता है वह किसी प्राचीन देवतासम्बन्धी आख्यान पर आधारित होगा। बाद में इससे सीता कृषि की अधिष्ठात्री की कथा जोड़ दी गयी। अन्त में वाल्मीकि ने रावण, हनुमान्, लङ्का आदि का वृत्तान्त लेकर उसे बढ़ाया है। बुल्के का कहना है कि "राम का व्यक्तित्व इन्द्र की कथाओं से विकसित हुआ हो, यह तो शान्तिपर्व के प्रसङ्ग से विरुद्ध है। वहाँ १६ राजाओं के संक्षिप्त वृत्तान्त दिये गये हैं। ये सब राजा महान् थे, परन्तु सभी मर गये। अतः सृञ्जय को अपने पुत्र की मृत्यु के कारण शोक नहीं करना चाहिए। पर बेचारे बुल्के नहीं जान सके हैं कि राम विष्णुरूप से साक्षात् परमेश्वर परब्रह्म हैं। उनका जन्म और मरण दोनों ही अतात्त्विक हैं। अवतार लीला में वे नर के तुल्य अत्पन्न हुए और असाधारणरूप से रामरूप से विष्णु-रूप में परिवर्तित हो साकेत धाम चले गये। यह तथ्य **वाल्मीकिरामायण** के उत्तरकाण्ड के वर्णन से अत्यन्त स्पष्ट है तथापि सृञ्जय को धैर्य बँधाने के लिये अत्यन्त स्थूल दृष्टि से उनके भी मर्त्यलोक से प्रस्थान करने की चर्चा की गयी है।

"स चतुर्दश वर्षाणि वने प्रोष्य महातपाः।
दशाश्वमेधान् जारुथ्यानाजहार निरर्गलान्॥" (म० भा० १२।२९।५३)

इस पद्य में चौदह वर्ष पर्यन्त वनवास के बाद अश्वमेध किये जाने का स्पष्ट उल्लेख है। हापकिन्स के अनुसार यहाँ वनवास का अभिप्राय वानप्रस्थाश्रम से है, परन्तु यह मान्यता भी असङ्गत है, क्योंकि वानप्रस्थाश्रम में काल की सीमा नहीं बाँधी जाती है और न उससे लौट कर आना ही सम्भव होता है। अतः यहाँ वनवास का वानप्रस्थ अर्थ नहीं किया जा सकता, इसलिए उक्त श्लोक **वाल्मीकिरामायण** की कथा के अनुसार ही है।

वाल्मीकिरामायण की कथा मुख्यरूप से वेदों पर ही आधारित है। वाल्मीकि स्वयं ही उसको वेद का उपबृंहण ही मानते हैं, यह सिद्धान्त **मन्त्ररामायण** के विवरण से स्पष्ट है। परन्तु पाश्चात्य लोग अपनी कल्पनाओं के आधार पर उस सिद्धान्त को दूषित करने का प्रयास करते हैं। इन्द्र, वृत्र आदि शब्द प्रत्यक्ष वृत्ति से देवराज इन्द्र तथा वृत्रासुर के बोधक होते हुए भी परोक्ष वृत्ति से राम और रावण के बोधक भी होते हैं।

डा० वान नेगैलैन के अनुसार भी रामकथा वैदिक साहित्य सामग्री से ही विकसित हुई है। "बुल्के उसे कष्टकल्पना ही मानते हैं। 'पुरूरवा उर्वशी' (ऋ० सं० १०।९५), 'रामः पृथुवैन्यः' (ऋ० सं० १।११२) उर्वशी आदि अप्सराओं का मनुष्यों के साथ विवाह रामकथा का बीज है। सीता के सौन्दर्य और उनके अलौकिक जन्म का उल्लेख उनके अप्सरा होने का निर्देश है। सीता पृथ्वी के मानवीकरण का परिणाम है। राम और पृथु वैन्य (ऋ० सं० १।११२।१५ आदि) अभिन्न हैं।[1]"

कष्टकल्पना तो नहीं, परन्तु विकृत कल्पना अवश्य ही है। **रामायण** के राम को वैदिक पृथु (वैन्य) से भिन्न मानने पर भी वहीं वर्णित राम से तो अभिन्न मानना ही होगा। प्रत्यक्ष रूप से पुरूरवा और उर्वशी राम एवं सीता से भिन्न होने पर भी परोक्षरूप से अभिन्न ही हैं। **गीता** के अनुसार जो भी विभूतिमत् ऊर्जित सत्त्व है वह सब भगवान् का अंशविशेष है—

---

१. रामकथा, पृ० १११।

"यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंशसम्भवम् ॥" (गी० १०।४१)

डा० याकोबी यह भी कहते हैं कि "ईरानीय 'रामहुवास्त्र' तथा भारतीय राम का मूलस्रोत एक ही है। साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि **अवेस्ता** के देवताओं के अस्पष्ट एवं धुँधले व्यक्तित्व के कारण इस प्रश्न का निर्णय असम्भव है। फिर भी अन्य अनेक ग्रन्थों की अपेक्षा **अवेस्ता** बहुत प्राचीन है। उसकी भाषा भी वैदिक भाषा के अत्यन्त निकट है, अतः वैदिक राम से अवेस्ता लेखक का प्रभावित होना असम्भव नहीं है। रामहुवास्त्र (ह्वास्त्र) का उल्लेख **जेन्द अवेस्ता** में प्रायः वायु तथा मिथ्र के साथ होता है। राम का अर्थ है शान्तिविश्राम, हुवास्त्र का अर्थ चरागाह है, 'रामहुवास्त्र' का अर्थ है चरागाह में विश्राम। कहा जाता है कि प्रारम्भ में वायु एवं मिथ्र देवता से 'रामहुवास्त्र' चरागाह में विश्राम माँगा जाता था। बाद में रामहुवास्त्र स्वयं देवता बन गया। साथ ही वह अ छा वायु स्वरूप हो गया। इसके नाम पर एक पूरा यश्त **जेन्द अवेस्ता** में मिलता है। इसका रचना-काल चौथी शती ई० पू० माना जाता है।" वस्तुतः जैसे वेदों तथा अन्य भारतीय ग्रन्थों में अपनी दुष्कल्पना भिड़ायी गयी है वैसी ही **जेन्द अवेस्ता** आदि में भी दुष्कल्पनाएँ की गयी हैं। जिस रामहुवास्त्र पर जेन्द का एक पूरा यश्त है उसका पीछे देवता बन जाने की बात दुरभिसन्धिमूलक ही है। वस्तुतः 'रामहुवास्त्र' का अर्थ है विश्राम का विस्तृत क्षेत्र; उसका **रामायण** के राम से स्पष्ट ही सम्बन्ध है। प्रसिद्ध भारतीय **हनुमन्नाटक** में रामायणीय दाशरथि राम के नाम को कविवरवचःस्तोम का विश्राम-स्थान कहा गया है—

"विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानाम्।"

इसी तरह असीरियन देवता रम्मन अथवा रम्मान या हिब्रू भाषा का रिमोन, जो मेघगर्जन का देवता माना जाता है, भी रामायणीय राम से भिन्न नहीं है, कारण जैसे संसार के थाईलैण्ड आदि अनेक देशों में रामकथा का प्रसार हुआ वैसे ही असीरिया में रामकथा का प्रसार हुआ हो यह असम्भव नहीं है। भारत में भी देहातों में मेघ का गर्जना और बरसना राम का ही काम माना जाता है।

हिब्रू में राम धातु का अर्थ है श्रेष्ठ। **बाइबिल** में इस धातु से अनेक नगरों के नाम तथा दो तीन व्यक्तियों के नाम भी मिलते हैं। (दे० एफ० बिगु : दिकसियोनेर दि ला बिबल, पेरिस) यह भी **वेदों** एवं **रामायणों** के राम का परोक्ष प्रभाव ही है।

दिनेशचन्द्र सेन के अनुसार "रामकथा के दो प्रधान स्रोत हैं **दशरथजातक** और दक्षिण में प्रचलित रावण-सम्बन्धी आख्यान। तीसरा गौण आधार हनुमान्सम्बन्धी सामग्री भी है। इसमें वानरपूजा का अवशेष भी पाया जाता है। रावण-सम्बन्धी आख्यानों में रावण की धार्मिकता, तपस्या तथा महत्त्व वर्णित है। इस मत की सिद्धि के लिए जैन एवं बौद्ध ग्रन्थों का सहारा लिया जाता है। उनके अनुसार राम की अपेक्षा राक्षस और वानर अधिक लोकप्रिय थे। **लङ्कावतारसूत्र** में रावण तथा बुद्ध का धार्मिक संवाद वर्णित है, परन्तु राम-रावण युद्ध का किञ्चित् भी सङ्केत नहीं है। रावण रामकथा की उत्पत्ति से पूर्व ही प्रसिद्ध था। धर्मकीर्ति (६ठीं शती ई०) आदर्श बौद्ध राजा रावण को **रामायण** के दोषारोपण से बचाने का प्रयत्न करता है।"

आश्चर्य है कि जब **वेद, उपनिषद्** एवं **रामायण** जैसे परम प्रामाणिक सद्ग्रन्थों में ऐतिहासिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक रूप से सुस्पष्ट सुबोध रामकथा वर्णित है तब पाश्चात्य विद्वान् उसको विकृत करने के लिए इतस्ततः कुशकाश का अवलम्बन करते हुए क्यों भटकते हैं? यदि उनकी दृष्टि से **वेद, उपनिषद्** तथा **रामायण** प्रामाणिक नहीं हैं तो जातक एवं उपाख्यानों की प्रामाणिकता का आधार ही क्या है? यदि **रामायण** किसी अन्य मूलस्रोत के आधार पर की गयी काव्यकल्पनामात्र है तो वह स्रोत तथा मूलभूत ग्रन्थ भी किसी अन्य मूलस्रोत के आधार पर

कल्पित कहे जा सकते हैं। इन बातों का उत्तर पाश्चात्यों एवं तदनुयायियों के पास नहीं है। तथापि वे अपनी उच्छृङ्खल कल्पनाओं से विरत नहीं होते।

स्वयं बुल्के ही रावण को कहीं जैन-धर्मावलम्बी तो कहीं बौद्धधर्मावलम्बी कहते हैं। निश्चय ही इन दोनों कथनों में से एक तो भ्रामक है ही। जैन साहित्य में रावण की कथा स्वतंन्त्ररूप से नहीं मिलती, रामकथा के अन्तर्गत ही उसका उल्लेख है। बुल्के के कथनानुसार "जैन साहित्य में प्रचलित रामकथा स्पष्टतः **वाल्मीकिरामायण** पर ही आधारित है। (५७ अनु०) में वे कहते हैं—**जैन-रामकथा** में प्रारम्भ से ही उन लौकिक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है जिनमें राम का शिकार करना, रावणादि का मांसाहारी होना, कुम्भकर्ण की छः महीने की निद्रा, रावण का राक्षस तथा सुग्रीव आदि का वानर होने आदि की असत्य कथाएँ पायी जाती हैं। इससे स्पष्ट है कि **जैन-रामकथा वाल्मीकिरामायण** के बाद उत्पन्न हुई है, अतः **जैन-रामकथा** में रामकथा का मूलस्रोत खोजना व्यर्थ है।"

बौद्ध लङ्कावतारसूत्र

दिनेशचन्द्र सेन के मतानुसार "यह रचना पहले दूसरी शती ई० की मानी जाती थी और इसका प्रथम अध्याय जिसमें लङ्कापति रावण तथा बुद्ध का संवाद मिलता है, प्रामाणिक माना जाता था। लेकिन आजकल इसके प्रमाण मिलते हैं कि **लङ्कावतारसूत्र** चौथी शती ई० का है और उसका प्रथम अध्याय प्रक्षिप्त है। मूल भारतीय पाठ अप्राप्य है। गुणभद्र ने उसका ४४३ ई० में अनुवाद किया था। इसके चीनी अनुवाद में रावण-बुद्ध-संवाद नहीं मिलता और न रावण का कोई उल्लेख ही है। ५१३ ई० में इस रचना का पुनः चीनी भाषा में अनुवाद किया गया है और इस छठी शताब्दी के अनुवाद में एक नया प्रथम अध्याय मिलता है, जिसमें रावण धर्म के विषय में बुद्ध से प्रश्न करता है। इस अध्याय के प्रक्षिप्त होने के अन्तरङ्ग प्रमाण भी मिलते हैं। अन्य अध्यायों में गद्य और पद्य का सम्बन्ध ऐसा है कि पद्य गद्य का अर्थ दुहराता है तथा सारी रचना बुद्ध तथा बोधिसत्त्व महामति के संवाद के रूप में है। उसमें कहीं भी रावण का उल्लेख नहीं मिलता। केवल प्रथम अध्याय में पद्य गद्य का अर्थ नहीं दुहराता और इसमें ऐसी कोई सामग्री नहीं है जो सूत्र को समझने के लिए आवश्यक हो। डी० टी० सुजुकि का अनुमान है कि रामकथा की लोकप्रियता के कारण **लङ्कावतारसूत्र** का सम्बन्ध इससे जोड़ा गया है। **लङ्कावतार** का अर्थ है बुद्ध का लङ्का में अवतार। लङ्का दक्षिण में मानी जाती थी। इसके अतिरिक्त इसमें रामकथा-विषयक कोई भी निर्देश नहीं मिलता।

रावण सिंहलद्वीप का राजा हुआ हो इसके लिए भी वहाँ के प्राचीनतम ग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं पाया जाता। **दीपवंश** (चौथी शती ई०) तथा **महावंश** (पाँचवीं शती ई०) सिंहलद्वीप के सबसे प्राचीन ऐतिहासिक काव्य हैं इनमें रामकथा का निर्देश मिलता है। लेकिन सिंहलद्वीप के राजा रावण का कहीं भी उल्लेख नहीं पाया जाता है।"

(अनु० १०३ में) बुल्के का मत है कि "वाल्मीकि के पहले हनुमान् के विषय में आख्यान-काव्य प्रचलित रहा होगा और वाल्मीकि ने उसका प्रयोग अपनी रामकथा के लिए किया होगा, दिनेशचन्द्र की इस धारणा के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह अनुमानमात्र ही है। वैदिक साहित्य में हनुमान् का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। बौद्ध तिपिटक के जातकों में भी हनुमान् का नाम नहीं आया। अतः उनके विषय में रामकथा के पहले स्वतन्त्र आख्यान प्रचलित थे, यह बहुत सन्दिग्ध है। **समुग्गजातक** (जातक नं० ४३६) में एक वायुस्स पुत्त नामक विद्याधर, जो ऐन्द्रजालिक था, का उल्लेख मिलता है। लेकिन इसके सम्बन्ध में न तो हनुमान् का उल्लेख हुआ है और न किसी अन्य वानर का।

हनुमान् शब्द सम्भवतः एक द्रविड़ शब्द का रूपान्तर है। (आण-नर, मन्दि-कपि) जिसका अर्थ है 'नरकपि'। इसी कारण अनुमान किया गया है कि 'वृषाकपि' तथा हनुमान् दोनों किसी प्राचीन द्रविड़ देवता के नाम

के रूपान्तर हों। इस अनुमान का कोई आधार नहीं है, यह निर्मूल है। 'वृषाकपि' का अर्थ 'नरकपि' न होकर वराह अथवा एकश्रृङ्ग वराह होता है। **महाभारत** में वृषाकपि को अनेक आर्य देवताओं (विष्णु, शिव, इन्द्र आदि) से अभिन्न माना गया है। **ऋग्वेद** (१०। ८६) में जो वृषाकपि का उल्लेख है वह सम्भवतः एक सूर्य देवता है जिसका प्रतीक वराह था, अतः ऋग्वेदीय वृषाकपि का द्रविड़ सभ्यता के साथ कोई भी सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता। यह अवश्य ही बहुत सम्भव है कि 'हनुमान्' नाम एक द्रविड़ शब्द का संस्कृत रूपान्तर है और इसका अर्थ 'नरकपि' है। कारण यह है कि रामायण के अन्य वानरों की तरह हनुमान् भी वानर-गोत्रीय आदिवासी थे। वह एक प्राचीन द्रविड़ देवता थे, इसके लिए सङ्केत भी नहीं मिलता। **रामायण** में हनुमान् की शक्ति के वर्णन में अतिशयोक्ति का सहारा तो लिया गया है फिर भी उनके देवता होने का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है।"[१]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि दिनेशचन्द्र के मत का खण्डन बुल्के स्वयं ही करते हैं। परन्तु बुल्के का कथन भी तर्क-सम्मत नहीं है। क्योंकि **उपनिषद्** भी वैदिक साहित्य है और **रामतापनीय, रामरहस्य** तथा **मुक्तिकोपनिषद्** आदि उपनिषदों में हनुमान् का चरित्र वर्णित है। **समुग्ग जातक** के वायुस्स पुत्र नामक विद्याधर को भी हनुमान् ही समझना चाहिये, क्योंकि हनुमान् वायुपुत्र हैं ही। जैनों ने वानरों को विद्याधर माना ही है। साथ ही, जब हनुमान् द्रविड़ शब्द का संस्कृत रूपान्तर मान्य है और उसका अर्थ नरकपि है तो उसके द्रविड़ देवता होने में क्या आपत्ति है ? **रामायण** के अनुसार लाखों वर्ष प्राचीन राम एवं हनुमान् आदि की उपासना सर्वत्र होती आयी है। द्रविड़ देश में भी विष्णु-भक्ति का प्रचार बहुत प्राचीन है। श्रीमद्भागवत-माहात्म्य में तो यहाँ तक उल्लेख है कि भक्ति द्रविड़ देश में ही उत्पन्न हुई—

"उत्पन्ना द्राविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।" (भाग० मा० १।४८)

आज भी वैष्णव-मन्दिरों में द्राविड़ भाषामय प्रबन्ध बड़े आदर से पढ़े जाते हैं। अतः वहाँ राम के समान ही हनुमान् को भी देवता माना जाना असम्भव नहीं कहा जा सकता। इसी तरह हनुमान् को आदिवासी मनुष्य मानना भी **रामायण** से विरुद्ध है। पाश्चात्यों की निराधार कल्पनाओं से आर्ष **रामायण** का प्रामाण्य कहीं अधिक है। **रामायण** में स्पष्ट उल्लेख है कि रावण ने ब्रह्मा से वरदान माँगा था कि मैं नर एवं वानर से भिन्न अन्य किसी के द्वारा न मारा जा सकूँ। ब्रह्मा ने वैसा ही वरदान उसको दिया। तब सब देवताओं ने भगवान् विष्णु से रावण-वध की प्रार्थना की और भगवान् विष्णु ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तब ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि तुम लोग वानर तथा ऋक्ष बनकर विष्णु की सहायता के लिए भूमि पर प्रकट हो जाओ। ब्रह्मा स्वयं जाम्बवान् हुए, रुद्र और वायु हनुमान् हुए, इन्द्र के अंश से वाली और सूर्य के अंश से सुग्रीव का आविर्भाव हुआ। रामसम्बन्धी **उपनिषदों** में भी इन बातों का वर्णन है। अतः यह कहना सर्वथा गलत है कि हनुमान् को देवता नहीं कहा गया है। इसी तरह हनुमान् की शक्ति के वर्णन में अतिशयोक्ति की कल्पना भी निर्मूल है, क्योंकि रुद्र साक्षात् परमेश्वर हैं। वायु से रहित होने पर प्रत्येक प्राणी की मृत्यु हो जाती है; अतः रुद्रावतार वायु-पुत्र हनुमान् की शक्ति का जो भी वर्णन है वह अपर्याप्त ही कहा जा सकता है। उसमें अतिशयोक्ति की कल्पना भी सम्भव नहीं।

"पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः।
उवाच देवताः सर्वाः स्वयम्भूर्भगवानिदम्॥
सत्यसन्धस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः।
विष्णोः सहायान् बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः॥
मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमान् जवे।

---

१. रामकथा, पृष्ठ ११३–११५।

नयज्ञान् बुद्धिसम्पन्नान् विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥
सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रांस्तुल्यपराक्रमान् ॥" (वा० रा० १।१७।१-४,७)

इस उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि विष्णु की सहायता के लिए शक्तिशाली विष्णुतुल्य पराक्रम से युक्त वानरों को उत्पन्न करने के लिए ब्रह्मा ने देवताओं से कहा था। वहीं ब्रह्मादि देवताओं का जाम्बवान्, वाली, सुग्रीव एवं हनुमान् आदि के रूप में उत्पन्न होना भी वर्णित है।

"पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवानृक्षपुङ्गवः।
वानरेन्द्रं महेन्द्राभमिन्द्रो वालिनमात्मजम् ॥
सुग्रीवं जनयामास तपनस्तपतांवरः।
मारुतस्यौरसः पुत्रो हनुमान्नाम वानरः ॥
वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे।
सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान् बलवानपि ॥"
(वा० रा० १।१७।७,१०,१६,१७)

रामरहस्य उपनिषद् में भी जाम्बवान्, हनुमान् आदि को ब्रह्मा, रुद्र आदि का अवतार कहा गया है।

बुल्के का यह कथन कि "**रामायण** में वर्णित दण्डकारण्य और लङ्का की घटनाएँ अलौकिक एवं काल्पनिक प्रतीत होती हैं," निराधार ही है; क्योंकि वह वर्णन वस्तुस्थिति का ही यथार्थ चित्रण है। रावण जैसे शक्तिशाली तपःप्रभाव से युक्त अनेक अनितरसाधारण शत्रुओं का वध करने के लिए विष्णु एवं विविध महान् देवताओं का नर तथा वानर रूप में आविर्भाव के कारण कथावस्तु की अलौकिकता स्वाभाविक है। हाँ, बुल्के आदि पाश्चात्य विद्वान् अवतारवाद में विश्वास न रखने के कारण ही ऐसे अनितरसाधारण वर्णन में अतिशयोक्ति की कल्पना करें तो उसमें क्या आश्चर्य? संसार में सब घटनाएँ साधारण ही नहीं होतीं; असाधारण घटनाओं का वर्णन भी असाधारण ही होता है। अतः यह यथार्थ है कि सम्पूर्ण **रामायण** घटनामूलक है। उसका कोई अंश कल्पनामूलक नहीं है। **रामायण महाकाव्य** के निर्माता को ब्रह्मा से यह वरदान मिला था कि तुम्हारी कथा में अनृत वाक्य न होगा।

"न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।" (वा० रा० १।२।३५)

इतना ही नहीं, उन महर्षि ने समाधिजा प्रज्ञा से **रामायण** से सम्बद्ध सभी घटनाओं का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर ही उल्लेख किया है। इस कथन में **रामायण** ही प्रमाण है।

डा० वेबर के अनुसार **रामायण** का समस्त काव्य एक रूपकमात्र है जिसके द्वारा दक्षिण की ओर आर्य-सभ्यता और कृषि का प्रचार दिखलाया जाता है। प्रधान पात्र सीता, जिसका हरण पुनः प्राप्ति काव्य की कथावस्तु कोई ऐतिहासिक व्यक्ति न होकर खेत की सीता (लाङ्गलपद्धति), जिसे आर्यकृषि का प्रतीक मानना चाहिये, का मानवीकरणमात्र है। वैदिक सीता, कृषि की अधिष्ठात्री देवी, और **रामायण** की सीता अभिन्न हैं। **रामायण** में सीता के जन्म और तिरोधान सम्बन्धी वृत्तान्त इनकी ओर निर्देश करते हैं। उसकी बहन उर्मिला के नाम का अर्थ लहराता हुआ खेत समझना चाहिये। भवभूति के **उत्तररामचरित** में भी उसके पिता जनक का एक विशेषण 'सीरध्वज' मिलता है जो कृषि से सम्बन्ध रखता है। (डा० बेल्वलकर उसके पुत्र का भी उल्लेख करते हैं। कुश एक घास का नाम है और लव लुनने में आता है।) आदिवासियों के आक्रमणों से इस सीता, आर्यकृषि के प्रतीक, की रक्षा राम पर निर्भर है। डा० वेबर के अनुसार राम दाशरथि और बलराम (हलभृत्) का सम्बन्ध स्वयं सिद्ध है। प्रारम्भ में ये एक थे, बाद के विकास में वे दो भिन्न-भिन्न पात्रों के रूप में प्रसिद्ध हो गये। राम का वनवास हेमन्त ऋतु का प्रतीक है जब प्रकृति और विशेषकर कृषि का कार्य स्थगित होता है। इसके अतिरिक्त **महाभारत** में जहाँ

राम-राज्य का वर्णन है, वहाँ इस बात का उल्लेख मिलता है कि कृषि की असाधारण उन्नति हुई थी। वास्तव में **महाभारत** के द्रोणपर्व और शान्तिपर्व के षोडशराजन्यक-वर्णन में राम-राज्य का वर्णन किया जाता है। इस वर्णन के अनेक श्लोक **रामायण** में मिलते हैं (वा० रा० ६।१२८), शान्तिपर्व (अध्याय २९) में कृषि का उल्लेख है—

"कालवर्षाश्च पर्जन्याः सस्यानि रसवन्ति च।
नित्यं सुभिक्षमेवासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥४८॥
नित्यं पुष्पफलाश्चैव पादपा निरुपद्रवाः।
सर्वा द्रोणदुघा गावो रामे राज्यं प्रशासति ॥५२॥"

पर्जन्य यथासमय जल बरसा कर सस्य उत्पन्न करते थे। उससे राम के राज्य-शासन के समय किसी प्रकार का दुर्भिक्ष नहीं पड़ता था। वृक्ष सदा फल-फूलों से लदे रहते थे; गौएँ द्रोण (घड़े) परिमाण दूध देती थीं।[1]

यह डा० वेबर का मत निष्प्रमाण एवं कल्पनामूलक है; दाशरथि राम और बलराम, दोनों ही विष्णु के अवतार होने के कारण तत्त्वतः एक होने पर भी दाशरथि राम चौबीसवें कल्प के त्रेता में हुए और उनके लाखों वर्ष बाद बलराम २८ वें कल्प के द्वापर में हुए।

स्वयं बुल्के के लेखानुसार "डा० वेबर का उपर्युक्त मत बहुत समीचीन नहीं प्रतीत होता।····दाशरथि राम की दक्षिण-यात्रा के फलस्वरूप रावण और वाली के स्थान पर उनके भाई विभीषण और सुग्रीव तो राजा बनाये जाते हैं, लेकिन दक्षिण की सभ्यता या कृषि में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ हो, **रामायण** में कहीं नहीं दिखलाया जाता। यह कहना पड़ेगा कि जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए **रामायणकाव्य** लिखा गया वह पूरा न हो सका। यदि कवि के मन में कृषिसम्बन्धी देवताओं का विचार सर्वोपरि था तो **रामायण** में कृषि को इतना कम महत्त्व क्यों दिया गया है? वास्तव में रामकथा तथा कृषि का कोई विशेष सम्बन्ध मानने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। आर्यों के आगमन के पहले ही कृषि भारतवर्ष तथा दक्षिण में विद्यमान थी।"

डा० वेबर के पिछले छिछले मत के समान ही डा० बुल्के का मत भी निष्प्रमाण है वानरों, भालुओं तथा रावण आदि को आदिवासी मनुष्य मानना भी **रामायण** के विपरीत कल्पना है। **रामायण** के अनुसार वाली, सुग्रीव और हनुमान् आदि देवताओं के अवतार थे और वे वैदिक आर्यसभ्यता के ही अनुयायी थे। वाली सन्ध्यावन्दन करने के लिए चारों समुद्रों की यात्रा प्रतिदिन करता था। हनुमान्जी ने भी सूर्यनारायण से वेदाङ्ग एवं **व्याकरण** आदि का अध्ययन किया था। रावण स्वयं वेदज्ञ था। लङ्का में हनुमान् ने वेदपाठ सुना था। विभीषण ने रावण को आहिताग्नि तथा वेदान्तपारङ्गत कहा था—

"एषोहिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगः कर्मसु चाग्र्यशूरः।" (वा० रा० ६।१११।२३)
"असौ (हनुमान्) पुनर्व्याकरणं ग्रहीष्यन् सूर्योन्मुखः प्रष्टुमनाः कपीन्द्रः।
उद्यद्गिरेरस्तगिरिं जगाम ग्रन्थं महद्धारयनप्रमेयः॥
नह्यस्य कश्चित् सदृशोऽस्ति शास्त्रे वैशारदे छन्दगतौ तथैव।"
(वा० रा० ७।३६।४४, ४५)

हनुमान् सूर्यनारायण से **व्याकरण** का अध्ययन करते हुए उदयाचल से अस्ताचल तक सूर्याभिमुख होकर पीछे की ओर चलते थे। शास्त्रपाण्डित्य, छन्द आदि के ज्ञान में उनके समान कोई भी नहीं था। अस्तु; रावण तथा हनुमान् आदि को आदिवासी अनार्य कहना साहसमात्र है। इसी तरह भारत में आर्यों के बाहर से आने की कल्पना भी पाश्चात्यों की दुरभिसन्धिपूर्ण दुष्कल्पना ही है। अब इस मत का खण्डन भी हो चुका है। **वेद, रामायण,**

---

१. रामकथा, पृष्ठ ११८।

जेन्दावेस्ता आदि किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में ऐसा कोई उल्लेख, जो इसका द्योतक हो, प्राप्त नहीं होता। वस्तुतः सम्पूर्ण भारतके निवासी भारतीय हैं; हिन्दू हैं और वैदिक हैं। वे सब भारतीय देवी-देवताओं के पूजक हैं, परन्तु जङ्गलों में रहने के कारण नगरवासियों से भिन्न प्रतीत होते हैं तथापि भिन्न नहीं हैं। आदिवासी कोई जाति नहीं है; आर्य लोग भारत के ही (आदि) अनादिवासी हैं। पाश्चात्यों ने फूट का बीज बोने के लिए जङ्गलनिवासी भारतीयों को आदिवासी कहकर आर्यों का बाहर से आना माना है।[1] कृषि की उन्नति रामराज्य का असाधारण गुण तो मान्य ही है। जब कृषि की अधिष्ठात्री देवी सीता महाराज्ञी होकर भूतल पर विराजमान हों तो कृषि की उन्नति होना स्वाभाविक ही है। सुभिक्ष का आधार भी तो उत्तम कृषि तथा उत्तम फल-फूल युक्त वृक्ष एवं दुधारू गायें ही हैं। यही सब रामराज्य की प्रशस्ति के बोधक ग्रन्थों में मिलता है।

रामायण, **महाभारत** आदि की कथाओं में रूपक-कल्पना कोई नवीन वस्तु नहीं है; अतएव श्रीशङ्कराचार्य आदि की रूपककल्पना भी सङ्गत ही है—

"तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषांश्च राक्षसान्।
शान्तिसीतासमायुक्तः आत्मरामो विराजते॥"

अर्थात्, मोहरूपी समुद्र को पार कर और राग, द्वेष आदि राक्षसों को मार कर शान्तिरूपी सीता से युक्त होकर आत्मरूप राम विराजमान होते हैं। तदनुसार ही **आनन्दरामायण** में मनोदुर्वृत्ति के नाश को ही ताड़का-वध तथा मनोवेग-भङ्ग को ही धनुर्भङ्ग, अविवेकवध को वालिवध, अज्ञानतरणोपाय को सेतुबन्ध, मद-निग्रह को कुम्भकर्ण-वध, अहङ्कारघात को रावण वध माना गया है तथा हृदयाकाश-गमन को ही राम का अयोध्यागमन कहा गया है।[2] इसी तरह राम-रावण-सङ्ग्राम और कौरव-पाण्डव-सङ्ग्राम को देवासुर-सङ्ग्राम का ही प्रतीक माना जाता है। सन्त एकनाथ रचित 'भाव-रामायण' के सभी पात्र प्रायः आध्यात्मिक ही हैं। इतने पर भी ऐतिहासिक तथ्यों का अपलाप नहीं किया गया है।

"सति कुड्ये चित्रोल्लेखः।"

अर्थात् भित्ति रहने पर ही चित्र-निर्माण सम्भव है; वैसे ही राम-रावण एवं कौरव-पाण्डवों के ऐतिहासिक अस्तित्व के आधार पर ही इन रूपकों की कल्पना उचित प्रतीत होती है।

अनुच्छेद १०९ में डा० बुल्के लिखते है, "रामकथा का ऐतिहासिक आधार मानते हुए भी एम० वेङ्कटरत्नम् का विश्वास है कि यह वास्तव में मिस्र देश के रैमसेस नामक राजा का इतिहास है। रैमसेस के विषय में आधुनिकतम खोज के आधार पर जो कुछ ज्ञात हुआ है उससे स्पष्ट है कि **वाल्मीकिरामायण** से उस राजा का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता।"[3]

एक पाश्चात्य विद्वान् के कथनानुसार ही वेङ्कटरत्नम् की मान्यता आधुनिकतम शोध से प्राप्त तथ्य के विपरीत है। वस्तुतः ऐसा कथन दासतापूर्ण मनोवृत्ति का ही परिणाम है। दासता की मनोवृत्ति में अपने शास्त्र, अपनी सभ्यता और अपना इतिहास तुच्छ तथा अविश्वसनीय और हर परायी बात सत्य एवं महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगती है। यही कारण है कि बहुत से भारतीय विद्वान् भी पाश्चात्यों का अन्धानुकरण करते हुए **रामायण** एवं **महाभारत** जैसे प्रामाणिक भारतीय आर्ष-इतिहासों का आधार अन्य राष्ट्रों के इतिहासों में खोजने में व्यस्त हैं। संसार के सर्वप्राचीन, अनादि, अपौरुषेय ग्रन्थ **वेद** और **उपनिषदों** में भी जब रामकथा विद्यमान है तब उसका आधार मिस्र के इतिहास में खोजने का—आधुनिक शोध के आधार पर उसके अप्रामाणिक सिद्ध होने पर भी—प्रयास करना, शुद्ध दास-वृत्ति का ही परिचायक है।

---

१. 'चातुर्वर्ण्यसंस्कृति-मीमांसा'। २. आनन्दरामायण, सर्ग ३। ३. रामकथा पृ० १२०।

वानर और राक्षसों के सम्बन्ध में पाश्चात्यों के भ्रामक विचार

परिशिष्ट २ के अन्तर्गत डा० बुल्के लिखते हैं, "**रामायण** के वानर, ऋक्ष और राक्षस विन्ध्यप्रदेश तथा महाभारत की आदिवासी अनार्य जातियाँ थीं। इसके विषय में प्रायः मतभेद नहीं है।" यह कथन **रामायण** के सर्वथा विपरीत पड़ता है, इसकी अप्रामाणिकता पूर्व प्रसङ्गों में सिद्ध की जा चुकी है।[1]

इस परिशिष्ट में डा० बुल्के आगे लिखते हैं, "सी० वैद्य के मतानुसार वानर जाति के लोग सचमुच वानर के समान दिखलायी पड़ते थे और इससे उनका यह नाम पड़ा। अन्य विद्वान् **जैन-रामायण** के अनुसार मानते हैं कि वानर, ऋक्ष आदि नाम उन जातियों की ध्वजा के कारण उत्पन्न हुए। जिस जाति की ध्वजा पर बन्दर का चिह्न था वह वानर जाति कहलाती थी एवं जिसकी ध्वजा पर रीछ का चिह्न था वह रीछ कहलाती थी, जैसा कि आजकल रूसियों की ध्वजा पर रीछ तथा अंग्रेज जाति की ध्वजा पर सिंह का चिह्न होने से उस देश के वीरों को ब्रिटिश लायन्स और रस्सियन बीयर्स कहते हैं। जैनों की राम-रावण कथा में वानरचिह्नाङ्कित ध्वजा-मुकुटधारी जाति वानरवंशीय कही गयी है। यह मत असम्भव नहीं कहा जा सकता है। फिर भी जैनियों ने अनेक स्थलों पर रामकथा में अनेक चिन्त्य परिवर्तन किये हैं। सबसे स्वाभाविक अनुमान यह है कि आजकल के आदिवासियों के समान उन जातियों के विभिन्न कुल विभिन्न पशुओं और वनस्पतियों की पूजा करते थे। जिस कुल के लोग जिस पशु या वनस्पति की पूजा करते थे, वे उसी के नाम से पुकारे जाते थे। इस पशु या वनस्पति पूजा को आजकल के विद्वान् टोटम कहते हैं। आधुनिक भारत के आदिवासियों में ऐसे टोटम या गोत्र विद्यमान हैं, जिनका उल्लेख **रामायण** में हुआ है; अर्थात् वानर, ऋक्ष (जाम्बवान्) और गीध (जटायु, सम्पाति और रावण)। आर० वी० रसेल के अनुसार बन्दर और रीछ तेरह सर्वाधिक प्रचलित टोटमों में सम्मिलित हैं।"[2]

बुल्के के अनुसार ही जैन-रामकथा **वाल्मीकिरामायण** का विकृत रूप है। किसी पशु अथवा वनस्पति की पुजा के कारण उनके नामों से पुकारे जाने अथवा किसी टोटम या गोत्र के नाम पर परिचय दिये जाने की बात **रामायणविरुद्ध** न होकर विचारणीय हो सकती थी। शास्त्र-वचनों का उद्धरण देते हुए बताया जा चुका है कि ब्रह्मा के आदेश से विशिष्ट देवगण ही वानर, रीछ आदि रूपों में अवतीर्ण हुए थे। यही कारण है कि उनमें सामान्य ऋक्ष तथा वानरों से तो विशेषता स्पष्ट ही लक्षित होती है। साथ ही उनकी शक्ति, बल, पराक्रम, विद्या आदि तो देवताओं से भी कहीं अधिक थी। यह प्राप्त वर्णनों से अत्यन्त स्पष्ट है। जटायु, सम्पाति आदि गृध्र, गरुड़, अरुण आदि भी सामान्य पक्षियों के रूप में परिगणित नहीं किये जा सकते, क्योंकि वे विशिष्ट शक्तिशाली श्रीविष्णु एवं राम आदि परमेश्वरस्वरूपों से सम्बद्ध थे। इसी तरह शेष, वासुकि, तक्षक आदि भी साधारण सर्प नहीं थे तथापि मनुष्य भी नहीं थे; यह बात भी उनसे सम्बद्ध कथाओं से स्पष्ट हो जाती है।

बुल्के लिखते हैं, "छोटा नागपुर में रहनेवाली उराँओं तथा मुण्डा जातियों में तिग्गा, हलमान, बजरङ्ग और गड़ी नामक गोत्र मिलते हैं : इन सब का अर्थ बन्दर ही है। इसी प्रकार रेड्डी, बरई, बसोर, भैना एवं खंगार आदि जातियों में बानरद्योतक गोत्र मिलते हैं। सिंहभूम की भुइयाँ जाति हनुमान् के वंशज होने का दावा करती है। वे अपने को पवन-वंश कहते हैं। ऋक्षसूचक गोत्र रेड्डी, बरई, गदबा, केवत, सुध आदि जातियों में मिलते हैं। इसी प्रकार भैना, उराओं और बिर्होर जातियों में गिद्ध या गिधि गोत्र प्रचलित हैं। उराओं, असुरों, खरिया आदि आदिम जातियों की भाषा में 'रावना' शब्द का अर्थ गीध ही है। निष्कर्ष यह है कि हनुमान् की तरह ही रावण का नाम भी एक वास्तविक अनार्य नाम का संस्कृत रूपान्तर ही है। रायपुर जिले के गोंड़ अपने को रावण के वंशज मानते हैं। उराओं का भी कहना है कि रावण से ही उनकी जाति उत्पन्न हुई है, अतः आदिवासियों का

१. रामकथा, पृ० १२१। २. वही, पृष्ठ १२१–१२२।

रामकथा से सम्बन्ध अवश्य ही है। **रामायण** के ऋक्ष तथा वानर वास्तव में ऋक्ष, वानर तथा गीध गोत्रीय आदिवासी थे।[1]''

वस्तुतः पाश्चात्य विद्वानों एवं उनसे प्रभावित अन्य लोगों का उपर्युक्त विचार भ्रामक एवं अशुद्ध है। यत्र तत्र प्रचलित ऐतिह्य एवं किंवन्तियों के आधार पर **वाल्मीकिरामायण** जैसे आर्ष इतिहास का अपलाप नहीं किया जा सकता। पिछले प्रकरणों में स्पष्ट कर दिया गया है कि **रामायण** के ऋक्ष, वानर आदि यथार्थतः देवता थे। नर और वानर से भिन्न अन्य किसी के द्वारा न मारे जाने का वरदान रावण को प्राप्त था, अतः उसे मारने के लिए विभिन्न देवता ही इस रूप में प्रकट हुए थे। इन सब का वैदिक धर्म, कर्म एवं संस्कृति से सम्बन्ध था। यथार्थतः असुर, राक्षस, गिद्ध, गरुड़ एवं नाग आदि विभिन्न पत्नियों से उत्पन्न वैदिक प्रजापति कश्यप की ही सन्तानें थीं। प्रसिद्धि अथवा किंवदन्ती अन्ध-परम्परामात्र होने से प्रमाण नहीं मानी जा सकती। जैसे अश्वकर्ण नामक वृक्ष का अश्व के कानों से अथवा अश्वगन्ध नामक औषध का अश्व के गन्ध से अथवा मुसलमानों के धार्मिक पर्व रमजान से राम का कोई सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही कहीं कही कुछ जातियों के गोत्र, रावन, हनुमान्, वानर, गीध आदि होने पर भी केवल नाम-साम्य के कारण ही प्रामाणिक इतिहासरूप **वाल्मीकिरामायण** के प्रसिद्ध वानरों, ऋक्षों, जटायु, सम्पाति आदि गिद्धों को आदिवासी मनुष्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। **रामायण** के अनुसार सामान्य पशु-पक्षियों से उनकी विशिष्टता सिद्ध होती है। अस्तु, यथार्थतः आर्य वैदिक ही भारत के अनादिवासी आदिवासी हैं; इनसे भिन्न आदिवासियों की चर्चा ही पाश्चात्य भेद-कारक नीति का षड्यन्त्र है।

परिशिष्ट २, अनुच्छेद १११ में डा० बुल्के लिखते हैं—''वैदिक साहित्य, विशेष करके **अथर्ववेद** में रक्षस्, राक्षस, पिशाच आदि भूतों का उल्लेख मिलता है। ये मनुष्यों के शत्रु हैं। इनके विरुद्ध **अथर्ववेद** में बहुत से मन्त्र दिये गये हैं। इसी तरह राक्षस एक प्रकार से अनिष्ट, अशुभ, हिंसा और पाप का प्रतीक बन गया था और बाद में रावण के क्रूर और हिंसात्मक अनुयायियों को भी यह नाम मिला। **रामायण** में राक्षसों का जो वर्णन किया जाता है, वह **ऋग्वेद** में अनार्य दस्युओं के वर्णन से बहुत कुछ मिलता है। उनके मनुष्य होने का रामायण में स्पष्ट उल्लेख मिलता है (दे० वा० रा० ६।३७।३३)। कवि वास्तविक नामों से अपरिचित था। अतः जो नाम मिलते हैं वे सब वर्णनात्मक हैं....कुम्भकर्ण, मेघनाद, दशग्रीव, सुग्रीव, विभीषण, प्रहस्त (लम्बे हाथवाला) इत्यादि।''[2]

आगे अनुच्छेद ११२ में लिखते हैं—''यह सब होते हुए भी **रामायण** में कवि ने अद्भुत रस तथा अतिशयोक्ति का बार-बार सहारा लिया है और इस कारण रामकथा को काल्पनिक ठहराने के लिए समालोचकों को आधार अवश्य मिलता है। रावण के दस सिर थे, हनुमान् समुद्र लाँघते हैं और आकाश में उड़कर औषधि पर्वत ले आते हैं, इस प्रकार के कथन बहुतायत से पाये जाते हैं। फिर भी रावण को केवल एक सिर था, ऐसा वर्णन भी **रामायण** के कई स्थलों पर मिलता है। दशग्रीव नाम पहले रूपक के रूप में प्रयुक्त हुआ होगा (दशग्रीव अर्थात जिसकी ग्रीवा दस अन्य साधारण ग्रीवाओं के समान बलवती हो) और बाद में वस्तुतः दशग्रीव धारण करनेवाले प्राणी के अर्थ में लिया जाने लगा।''

अथर्ववेद में एक दशास्य (दशमुख) दशशीर्ष ब्राह्मण का उल्लेख है। इसका प्रभाव भी रावण के स्वरूप की कल्पना पर पड़ा हो, यह असम्भव नहीं कहा जा सकता है।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम्॥ (अथ० सं० ४।६।१)

हनुमान् के समुद्र लाँघने की कथा सम्भवतः किसी आश्चर्यजनक लङ्घन के आधार पर उत्पन्न हुई है। जब

---
१. रामकथा, पृष्ठ १२२। २. वही, पृष्ठ १२३।

स्पेन की सेना को मेक्सिको से हटना पड़ा तब अलवाराडो नामक सिपाही एक अत्यन्त चौड़ा नाला लाँघने में समर्थ हुआ था। यह देख कर मेक्सिकोनिवासी बोल उठे "यह सचमुच सूर्य-पुत्र है।" इसी तरह हनुमान् की कथा भी[1] उत्पन्न हुई होगी, यह सी० वी० वैद्य का अनुमान है।

बुल्के आदि के उपर्युक्त विचार, जिन्हें वे वैदिक साहित्य तथा **वाल्मीकिरामायण** से उद्धरण देकर सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, वैदिक साहित्य तथा **वाल्मीकिरामायण** से विरुद्ध हैं। उनके विचार अटकलबाजियों पर ही आश्रित हैं। लाखों वर्ष की अतीत घटनाओं के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष तथा अनुमान की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है। केवल प्रमाणभूत आप्तों के वचनों एवं लेखों के आधार पर ही अतीत वस्तुओं और घटनाओं को जाना जा सकता है। जहाँ वह सब न हो, वहाँ किंवदन्तियों तथा कुछ आख्यानों के आधार पर कल्पना की जा सकती है। मिस्र के रैमसेस, या स्पेन के अलवाराडो नामक सिपाही के किसी चौड़े नाले को लाँघने की बात भी तो इतिहास से ही जानी जाती है। यदि अन्य इतिहास ग्रन्थों का प्रामाण्य मान्य है तो सर्वप्राचीन **वेद, उपनिषद्** और उनपर आधारित समाधिजा प्रज्ञा से अनुभूत महर्षि वाल्मीकि द्वारा प्रोक्त **रामायण** का प्रामाण्य अमान्य क्योंकर हो सकता है? यदि समुद्र का लङ्घन असम्भव है तो क्या चौड़े नाले का लङ्घन असम्भव नहीं हैं? जो ईश्वर, देवता एवं उनकी विशिष्ट शक्तियों पर विश्वास नहीं करते उनके लिए तो **वेद, रामायण, महाभारत, पुराण** सब अविश्वसनीय ही होंगे। ऐसी स्थिति में **बाइबिल** एवं **कुरान** की चमत्कारपूर्ण बातों को भी असत्य कल्पना ही मानना पड़ेगा। वस्तुतः आज की अपनी शक्ति के अनुसार ही लाखों वर्ष पूर्व के विशिष्ट व्यक्तियों की शक्ति का अनुमान नहीं किया जा सकता। महाराणा प्रताप का डेढ़ मन का लौह-कवच आज के बड़े-बड़े पहलवान भी उठाने में समर्थ नहीं। क्या इसी से समझ लिया जाय कि यह ऐतिहासिक तथ्य केवल मिथ्या कल्पना है? गुड़गाँव जिले में किसी ग्राम में किसी खुदायी में १३ गज का मनुष्य अस्थिपञ्जर मिला है। कहा जाता है कि उसके ऊपर के दाँतों में एक-एक दाँत साढ़े चार सेर का था। क्या इससे यह बात सिद्ध नहीं होती है कि पूर्व काल के लोगों की शक्तियाँ बहुत बड़ी थीं। आज कोई अखण्ड भूमण्डल का सम्राट् नहीं है तो क्या वैसा कभी कोई नहीं था, यही समझना चाहिये?

पहले लोग **रामायण** में वर्णित पुष्पक विमान को भी असम्भव समझते थे, परन्तु अब वैसा नहीं समझा जाता। आज भी कई बार अनेक सिरवाले लड़के उत्पन्न होते हैं और मर जाते हैं। ऐसे समाचार आये दिन समाचार-पत्रों में छपते रहते हैं। भारतीय दृष्टिकोण से तो प्रत्यक्ष और अनुमानों के समान ही आगम एक स्वतन्त्र प्रमाण है; अतः जैसे नेत्र प्रमाण से सिद्ध रूप को पुनः सिद्ध करने के लिए अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती उसी प्रकार वेदादि शास्त्रों से सिद्ध वस्तु यदि प्रत्यक्षादि से सिद्ध न हो तो भी वेदादि प्रमाण से सिद्ध होने के कारण निस्सन्देह मान्य है। अग्निहोत्रादि वैदिक कर्मों से स्वर्गादि की प्राप्ति होती है यह प्रत्यक्षादि-सिद्ध नहीं है तो भी मान्य है। पिता-पुत्री, भाई-बहन की शादी से पाप होता है यह भी शास्त्र से ही सिद्ध है, इसमें अन्य प्रमाण नहीं, तब भी यह सर्वमान्य है। इसी प्रकार अनादि, अपौरुषेय वेदों द्वारा वर्णित धर्म, ईश्वर, देवता मान्य होते हैं। अतः बुल्के आदि की दृष्टि में दस सिरवाले किसी मनुष्य का होना यद्यपि असम्भव है तो भी **अथर्ववेद** में दस सिर, दस मुखवाले ब्राह्मण का वर्णन है ही। इस वर्णन को ही रावण का वर्णन क्यों न माना जाय? रावण भी ब्राह्मण ही था। वेदों में तीन सिर वाले विरूपाक्ष का भी वर्णन है। केवल पाश्चात्यों की अटकल के आधार पर वेदशास्त्रों की उक्तियों को झुठलाया नहीं जा सकता। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार हनुमान् का समुद्र-लङ्घन कोरी कल्पना नहीं है, सुन्दरकाण्ड के लम्बे सर्ग में इसका विशद वर्णन है। जिस पर्वत से वे उछले और जहाँ वे उतरे तथा मार्ग में सुरसा, छायाग्राहिणी, मैनाक आदि के मिलने का वर्णन कोरी कल्पना नहीं। पाश्चात्यों के समान ऋषि-महर्षि मिथ्या कल्पना नहीं करते थे, न वे मिथ्या भाषण ही करते थे। मिथ्या कल्पना को पाण्डित्यपूर्ण सैकड़ों श्लोकों में लिखने में वे अवश्य ही सङ्कुचित

१. रामकथा, पृ० १२३-१२४।

होते। भारत में लाखों व्यक्ति **वाल्मीकिरामायण** विशेषतः 'सुन्दरकाण्ड' का पाठ कर अपनी-अपनी विविध कामनाओं को प्राप्त करते हैं।

अथर्ववेद में ही नहीं राक्षस, असुर आदि का वर्णन **ऋग्वेद, यजुर्वेद** आदि में भी है।

"पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्।" (यजुःसं० ३०।८)

महीधरभाष्यम्—

"विदलकारीं वंशविदारिणीं वंशपात्रकारिणीम्। कण्टकी कर्म तत्कारिणीम्॥"

यहाँ पिशाचों और यातुधानों के लिए पृथक् विधान है।

'न तद्रक्षांसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजमोजो ह्येतत्॥' (यजुःसं० ३४।५१)

महीधरभाष्यम्—

"रक्षांसि पिशाचाश्च तत् हिरण्यं न तरन्ति न हिंसन्ति। हि यस्मादेतत् हिरण्यं देवानां प्रथमजमोजः। प्रथमोत्पन्नं देवानां तेज एवेदम्। राक्षस और पिशाच हिरण्यधारण करनेवाले की हिंसा नहीं करते, क्योंकि हिरण्य देवताओं का प्रथम उत्पन्न ओज है।

"देवा मनुष्याः पितरस्तेऽन्यत आसन्नसुरा रक्षाँसि पिशाचास्तेऽन्यतस्तेषां देवानामुत यदल्पं लोहितमकुर्वन् तद्रक्षाँसि रात्रीभिरसुभ्नन् तान्त्सुब्धान् मृतानभि व्यौच्छत् ते देवा अविदुर्यो वै नोऽयं म्रियते रक्षाँसि वा इमं घ्नन्तीति ते रक्षाँस्युपामन्त्रयन्त तान्यब्रुवन् वरं वृणामहै यत् (१) असुराञ्जयाम तन्नः सहासदिति ततो वै देवा असुरानजयन्। तेऽसुरान् जित्वा रक्षाँस्यपानुदन्त तानि रक्षांस्यनृतमकर्तेति समन्तं देवान् पर्यविशन् ते देवा अग्नावनाथन्त तेऽग्नये प्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निरवपन्नग्नये विबाधवतेऽग्नये प्रतीकवते यदग्नये प्रवते निरवपन् यान्येव पुरस्ताद्रक्षाँसि (२) आसन् तानि तेन प्राणुदन्त यदग्नये विबाधवते यान्येवाभितो रक्षाँस्यासन् तानि तेन व्यबाधन्त यदग्नये प्रतीकवते यान्येव पश्चाद्रक्षाँस्यासन् तानि तेनापानुदन्त ततो देवा अभवन् पराऽसुरा यो भ्रातृव्यवान् स्यात् स स्पर्धमान एतयेष्ट्या यजेताग्नये प्रवते पुरोडाशमष्टाकपालं निर्वपेदग्नये विबाधवते (३) अग्नये प्रतीकवते यदग्नये प्रवते निर्वपति य एवास्माच्छ्रेयान् भ्रातृव्यस्तं तेन प्रणुदते यदग्नये विबाधवते य एवैनेन सदृङ् तं तेन विबाधवते यदग्नये प्रतीकवते य एवास्मात्पापीयान् तं तेनापनुदते प्रश्रेयाँसं भ्रातृव्यं नुदतेऽतिसदृशं क्रामति नैनं पापीयानाप्नोति य एवं विद्वानेतयेष्ट्या यजते (४)॥" (तैत्तिरीय संहिता काण्ड २ प्रपाठक ४।१)। देव, मनुष्य और पितर एक ओर थे, असुर, राक्षस तथा पिशाच एक तरफ थे। यहाँ देवताओं तथा असुरों का सङ्घर्ष वर्णित है।

उक्त ऋग्वेद मन्त्रों में राक्षस आदि का वर्णन है। हे सोम और इन्द्र! राक्षसों को देखो और मिलकर जागरूक होकर हिंसायुक्त इन राक्षसों पर वज्रतुल्य अपने आयुधों का प्रक्षेप करो।

सभी वेद परम प्रमाण हैं। **वाल्मीकिरामायण** वेदों पर ही आधृत तथा वेदोपबृंहणार्थ ही प्रकट है, अतः **रामायण** में ईश्वर, देवता, राक्षस, असुर तथा ईश्वरावतार आदि का वर्णन वेद-सम्मत है: इसमें किसी अटकलपच्चू कल्पना का अवकाश नहीं।

बुल्के के कथनानुसार **वाल्मीकिरामायण** के श्लोक (६।३७।३३) में राक्षसों के मनुष्य होने का उल्लेख मिलता है; पर उनका यह कथन सार्थक नहीं है।

"न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे।
एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेऽस्मिन् वानरे बले॥" (वा० रा० ६।३७।३३)

अर्थात्, वानरों को इस युद्ध में मनुष्यरूप नहीं धारण करना चाहिये। वानर-दल में हम लोगों का यही सङ्केत रहना चाहिये। इस उक्ति से यह सिद्ध नहीं होता कि राक्षस राक्षस न होकर मनुष्य ही थे, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। इसके विपरीत, इस उक्ति के आधार पर ही, यह सिद्ध होता है कि **रामायण** के वानर और राक्षसों में कामरूप होने के कारण मनुष्यादिरूप धारण करने की क्षमता थी। वहीं यह भी उल्लेख है कि "मैं (राम); लक्ष्मण, और अपने चार मन्त्रियों सहित विभीषण, ये सात मनुष्यरूप में रहेंगे। इन सातों को छोड़कर किसी भी मनुष्याकार व्यक्ति का वध करना होगा।"

"अहमेव सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा।
आत्मना पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः॥" (वा० रा० ६।३७।३५)

राक्षस भी मनुष्यरूप धारण कर सकते थे। रावण मनुष्यरूप धारण कर संन्यासी का रूप धारण कर ही सीता-हरणार्थ गया था। कवि (वाल्मीकि) रावण आदि के वास्तविक नाम से अपरिचित थे यह कहना भी पाश्चात्य विद्वानों का दुःसाहसमात्र है। जो महर्षि राम-रावण के समकाल के हों वह रावणादि का नाम नहीं जानते हैं इस बात को कोई भी विज्ञ व्यक्ति क्योंकर मान सकता है। जब डा० बुल्के आदि को उनका वास्तविक नाम ज्ञात नहीं तो किस तर्क के आधार पर वे कह सकते हैं कि महर्षि वाल्मीकि ने जिन नामों का प्रयोग किया है वे अवास्तविक हैं ? किसी इतिहासकार के सम्बन्ध में यदि कोई कहे कि वह वर्णनीय ऐतिहासिक व्यक्तियों के वास्तविक नाम नहीं जानता था पर मैं भी नहीं जानता तो उसका ऐसा कहना उन्मत्त-प्रलाप ही समझा जाता है। आश्चर्य हैं कि जिनको **रामायण** के प्रामाण्य पर विश्वास नहीं है उन्हें अन्य विषयों में उसके प्रमाणों का उद्धरण करने का क्या अधिकार है ? अतएव वेदादि शास्त्रों तथा **रामायण** को प्रमाण माननेवाले लोगों के लिए डा० बुल्के की 'रामकथा' सर्वथा निरर्थक ही नहीं अपितु हानिकारक भी है।

रावण को एक सिर था कहते हुए बुल्के ने उसके भी प्रमाण में ५।१०।२४ का ही सङ्केत दिया है। (**निश्चक्राम महामुखात्**)—

"काञ्चनाङ्गदसन्नद्धौ ददर्श स महात्मनः।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ॥" (वा० रा० ५।१०।१५)
"तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः॥" (वा० रा० ५।४२।२३)

हनुमान् ने रावण के काञ्चन अङ्गद से सन्नद्ध अलंकृत विक्षिप्त बाहुओं को देखा जो कि इन्द्रध्वज के तुल्य थे। क्रुद्ध रावण के दोनों नेत्रों से इस तरह अश्रुबिन्दु गिरे मानो जैसे दो प्रदीप्त दीपकों से अर्चियुक्त स्नेह (तैल) बिन्दु गिरते हों। सम्भवतः उपर्युक्त कथन के अन्तर्गत दो आँखें और दो भुजाओं के वर्णन के आधार पर रावण के एक सिर होने की बात कही गयी है, परन्तु उसी सर्ग में रावण को कामरूपी कहा गया है जिससे उसमें इच्छानुरूप रूप धारण करने की सामर्थ्य कही गयी है।

"वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम्।" (वा० रा० ५।१०।९)

कामरूपी रावण नाना आभरणों से आवृत होकर सुन्दर रूपवाला था।

अतः वैसा होने पर भी अन्यत्र वर्णित उसकी दस ग्रीवाओं का भी अपलाप नहीं किया जा सकता। रावण का केवल दशग्रीव नाम ही नहीं किन्तु उसके दस मुख एवं बीस भुजाओं का वर्णन भी है और वही उसका निजी रूप था। दण्डकारण्य में वह सीता के सामने पहले भिक्षुरूप में गया। पश्चात् उसने अपने निजी रूप को दिखाया।

"दशास्यो विंशतिभुजो बभूव क्षणदाचरः।
स परिव्राजकच्छद्म महाकायो विहाय तत्॥
प्रतिपेदे स्वकं रूपं रावणो राक्षसाधिपः॥" (वा० रा० ३।४९।८,९)

अर्थात् अपना छद्ममय परिव्राजक रूप त्याग कर दस मुख, बीस भुजावाले अपने वास्तविक रूप को प्राप्त हो गया। यह भी उल्लेख है कि जटायु ने रावण की दस बाहुओं को काट डाला, परन्तु वरदान के प्रभाव से पुनः अन्य दस-दस बाहु उत्पन्न हो गयीं—

"जटायुस्तमतिक्रम्य तुण्डेनास्य खगाधिपः।
वामबाहून् दश तदा व्यपाहरदरिन्दमः॥
संछिन्नबाहोः सद्यो वै बाहवः सहसाऽभवन्।
विषज्वालावलीमुक्ता वल्मीकादिव पन्नगाः॥" (वा० रा० ३।५१।३८,३९)
"संछिन्नबाहोः कर्तितबाहोः टीका रामाभिरामी।"

रावण के दस सिर और बीस भुजाएँ उपर्युक्त वचनों से प्रमाणसिद्ध हैं। उनका अलाप करना या उन्हें कल्पनामात्र या रूपकमात्र कहना परम दुःसाहस है। महर्षि को मिथ्यावादी मानना और उन्हीं के काव्य का विचार करना शुद्ध अज्ञता ही है। इतना ही नहीं, त्रिशिरा नाम का एक अन्य राक्षस भी लङ्का में था। उसके तीनों सिर तीन किरीटों से ऐसे लगते थे जैसे तीन काञ्चन पर्वतों से युक्त हिमवान् शोभित हो।

"त्रिभिः किरीटैस्त्रिशिराः शुशुभे स रथोत्तमे।
हिमवानिव शैलेन्द्रस्त्रिभिः काञ्चनपर्वतैः॥ (वा० रा० ६।६९।२४)

किसी ग्रन्थ के सम्बन्ध में मूलग्रन्थ की उपेक्षा कर अपनी दुष्कल्पनाओं से किसी अंश को प्रक्षिप्त, किसी अंश को रूपक और किसी अंश को अज्ञानमूलक कहना अत्यन्त अनुचित है। इस तरह तो **बाइबिल** और बुल्के की **रामकथा** में ऐसी दुष्ट कल्पनाएँ की जा सकती हैं।

अनुच्छेद ११३ में भूगोल पर विचार करते हुए बुल्के लिखते हैं कि वाल्मीकि दक्षिण तथा मध्य भारत के भूगोल से अपरिचित थे। इसका प्रमाण **रामायण** को पढ़कर मिलता है।" तथापि वे अपने कथन के समर्थन में **रामायण** के किसी प्रसङ्ग को उद्धृत नहीं करते, अतः उक्त कथन निष्प्रमाण ही है। सिंहलद्वीप एवं लङ्का भिन्न-भिन्न हैं, यह भवभूति, मुरारी तथा राजशेखर के ग्रन्थों के एवं वराहमिहिर की **बृहत्संहिता** के अनुसार भी सिद्ध है। बौद्ध-साहित्य में सिंहलद्वीप को लङ्का कहा गया हो तो वह प्रमाणसिद्ध नहीं।

बुल्के आगे लिखते हैं कि "अधिकांश आधुनिक लेखक **रामायण** की लङ्का और किष्किन्धा दोनों को मध्यभारत में रखते हैं।" यह कथन भी निराधार है। मध्यभारत स्थित किसी लङ्का में जाने के लिए हनुमान् को समुद्र पार नही करना पड़ता। यदि समुद्र-लङ्घन का वर्णन ही मिथ्या है तो पाश्चात्यों की **रामायण** के विरुद्ध दुरभिसन्धिपूर्ण कल्पनाएँ सतुरां मिथ्या ही हैं। सुतरां ऐसी कल्पनाओं से पूर्ण मिथ्या ग्रन्थ पर विचार कर समय का अपव्यय करना भी असङ्गत ही है।

उत्तरकाण्ड आदि को प्रक्षिप्त ठहरानेवाले तर्काभासों का खण्डन

अपनी पुस्तक **रामकथा** के आठवें अध्याय के ११४ अनुच्छेद में **रामायण** के क्षेपक अथवा प्रक्षिप्त अंश को दिखाते हुए बुल्के लिखते हैं, "**रामायण** के प्रायः समस्त आलोचक उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानते हैं और इसके लिए भिन्न भिन्न तर्क प्रस्तुत करते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण इस प्रकार हैं—

"वाल्मीकिकृत रामायण के तीन प्रचलित पाठों की तुलना करने से स्पष्ट होता है कि उत्तरकाण्ड की रचना अन्य काण्डों के पश्चात् हुई थी।"

बुल्के के इस तर्क का खण्डन पिछले प्रकरणों में किया जा चुका है। वस्तुतः दाक्षिणात्य, गौड़, मैथिल आदि पाठ-भेद **सप्तशती** में भी हैं पर वे सभी पाठ प्रामाणिक माने जाते हैं। वेदों में भी शाखा-भेद से सभी पाठ-भेद प्रामाणिक ही हैं। अतः वाल्मीकि ने काल-भेद तथा शिष्यों के भेद से कुछ पाठ-भेदों का उपदेश किया हो तो वह असम्भव नहीं कहा जा सकता। अतः **रामायण** में भी दाक्षिणात्य, गौड़, काश्मीर पाठ-भेद सङ्गत हो सकते हैं। अन्य काण्डों के समान उत्तरकाण्ड में पाठ-भेद न होना यह सिद्ध नहीं करता कि वह पीछे का है और प्रक्षिप्त है। संस्कृत में एक कहावत प्रचलित है कि **"सत्यारोपे निमित्तानुसरणं न तु निमित्तमस्तीत्यारोपः"** आरोप होने पर निमित्त की कल्पना होती है, निमित्त से आरोप को कल्पना नहीं की जाती। कभी मन्दान्धकार होने पर रज्जु में सर्प का भ्रम नहीं होता, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि मन्दान्धकार से सर्पभ्रम होना ही चाहिये। जहाँ पाठ-भेद हो वहाँ निमित्त ढूँढ़ा जा सकता है; परन्तु जहाँ पाठ-भेद ही न हो उसे प्रक्षिप्त माना जाय तो जिन सर्गों में पाठ-भेद है उनको भी प्रक्षिप्त मानना पड़ेगा।

बुल्के का दूसरा तर्क है कि "युद्धकाण्ड के अन्त में जो फलश्रुति मिलती है उससे यह प्रमाणित होता है कि इसके रचनाकाल तक **रामायण** की परिसमाप्ति यहीं मानी जाती थी।

"रामायणमिदं कृत्स्नम्" (वा० रा० ६।१२८।११६)।"

उपर्युक्त तर्क भी निस्सार है। श्रीमद्भागवत आदि में कई प्रसङ्गों में फलश्रुति है, अतः बाद के अंश को क्षेपक नहीं माना जाता।

उनका तीसरा तर्क है, "बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में एक अनुक्रमणिका मिलती है जिसमें केवल अयोध्या-काण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक के विषयों का उल्लेख किया है। बाद में इस अनुक्रमणिका की अपूर्णता का अनुभव हुआ और फलस्वरूप एक दूसरी अनुक्रमणिका की रचना की गयी जिसमें बालकाण्ड की सामग्री के साथ उत्तर-काण्ड का भी निर्देश मिलता है।"

उपर्युक्त कल्पना भी भ्रान्तिमूलक है। प्रथम सर्ग अनुक्रमणिका है ही नहीं। उसके मुख्य वक्ता भी नारदजी हैं और वह **मूलरामायण** के नाम से प्रसिद्ध है। तत्पश्चात् ब्रह्मा के आदेशानुसार समाधि द्वारा **मूलरामायण** प्रोक्त विषयों का साक्षात्कार कर **रामायण** का निर्माण किया गया; सम्भवतः बुल्के इसी को दूसरी अनुक्रमणिका कहते हैं। परन्तु यथार्थतः यही पहली अनुक्रमणिका है। इस अनुक्रमणिका में उत्तरकाण्ड का उल्लेख है।

"स्वराष्ट्ररञ्जनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम्।
अनागतं च यत्किंचिद्रामस्य वसुधातले॥
तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषिः॥" (वा० रा० १।३।३८, ३९)

"प्राप्तराजस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥
कृत्वा तु तन्महाप्राज्ञः सभविष्यं सहोत्तरम्॥" (वा० रा० १।४।१–३)

उपर्युक्त श्लोकों का उद्धरण देते हुए बुल्के लिखते हैं[1] "इन दो उद्धरणों से स्पष्ट है कि बालकाण्ड की इस भूमिका के रचनाकाल में उत्तरकाण्ड की सृष्टि प्रारम्भ हो चुकी थी फिर भी सीता-त्याग को छोड़कर किसी

१. रामकथा, पृष्ठ १२७।

अन्य विषय का उल्लेख न होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरकाण्ड उस समय अपना वर्तमान रूप और विस्तार नहीं प्राप्त कर पाया था। इस तर्क की पुष्टि इससे भी होती है कि बाद में **वाल्मीकिरामायण** के उदीच्य पाठ में एक तीसरी अनुक्रमणिका जोड़ी गयी है, जिसमें सातों काण्डों की सामग्री का ध्यान रखा जाता है।''

यह कथन सर्वथा असङ्गत है। किसी भी ग्रन्थ का रचनाकाल उसकी भूमिका के रचनाकाल से भिन्न नहीं होता। अस्तु उत्तरकाण्ड का और सीतात्याग से अन्य विषयों का उल्लेख भी प्रक्षिप्त नहीं है। **महाभारत, रामायण, पुराण** इन सभी ग्रन्थों में प्रसक्तानुप्रसक्त वर्णन की शैली ही होती है। वेदों के मन्त्र और ब्राह्मण भी इसके अपवाद नहीं हैं। उनमें भी याग का वर्णन उसकी एक एक विधियों की प्रशंसा में अर्थवाद के रूप में कई आख्यान उपस्थित किये जाते हैं। उदीच्य-पाठ में तीसरी अनुक्रमणिका का होना 'उत्तरकाण्ड' के क्षेपक होने में प्रमाण नहीं, किन्तु उसकी प्रामाणिकता और अप्रक्षिप्तता ही सिद्ध करता है। परम्परा प्राप्त उदीच्य-पाठ भी प्रामाणिक है।

पुनः बुल्के कहते हैं, ''उत्तरकाण्ड की रचना शैली अन्य प्रामाणिक काण्डों की शैली से भिन्न है। प्रारम्भिक ३३ सर्गों में रावण तथा हनुमान् की कथाओं के बाद ही रामचरित का वर्णन आगे बढ़ा दिया गया है और तब भी असङ्गत अन्तरकथाओं के कारण कथानक में कोई प्रवाह नहीं है। (दे० नृग, निमि, ययाति, श्वेत, इन्द्र, इल आदि के वृत्तान्त)। शेष सामग्री जो आधे से भी कम है रामचरित से सम्बन्ध तो रखती है लेकिन इसमें भी एकता का अभाव खटकता है। सीता-त्याग, शत्रुघ्न-चरित, शम्बूक-वध, राम का अश्वमेध, सीता का तिरोधान आदि में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त उत्तरकाण्ड में अवतारवाद की व्यापकता भी काण्ड को बाद की रचना सिद्ध करती है।''

बुल्के के उपर्युक्त कथन में तर्कसङ्गति का अभाव है। वस्तुतः शैली-भेद भी प्रक्षिप्तता का प्रयोजक नहीं हैं। एक ही लेखक के ग्रन्थ में अथवा वक्ता के प्रवचन में भी विषय-भेद से रचना, शैली एवं भाषा में भेद हो जाना स्वाभाविक ही है। सुन्दरकाण्ड के श्लोकों की शैली भी अन्य काण्डों की शैली से भिन्न है—क्या इस आधार पर उसको भी क्षेपक कहा जा सकता है? **ऋग्वेद से यजुर्वेद** की शैली भिन्न है—क्या इस आधार पर **यजुर्वेद** को वेद ही न माना जाय? अतः उत्तरकाण्ड में नृग, निमि, ययाति, श्वेत, इन्द्र, इल, शत्रुघ्नचरित्र, शम्बूक-वध, अश्वमेध, सीता-त्याग सभी सम्बद्ध एवं अप्रक्षिप्त हैं। केवल असङ्गत कह देने मात्र से कोई ग्रन्थ असङ्गत नहीं हो जाता। वस्तुतः ग्रन्थ के अनुसार ही ग्रन्थ के सम्बन्ध में धारणा बनाना उचित है। पहले से ही एक धारणा बना कर उसके आधार पर ग्रन्थ का परीक्षण और विश्लेषण करना असङ्गत है। एक धारणा बनाकर ही पाश्चात्य भारतीय ग्रन्थों की आलोचना करते हैं। बुल्के साहब सङ्गति क्या है और कितने प्रकार की सङ्गति होती है, यह नहीं समझते हैं। स्मृति का विषय हो और उपेक्षा का अनर्ह हो यही सङ्गति का लक्षण है।

'स्मृतिविषयत्वे सत्युपेक्षानर्हत्वम्।''

यह सङ्गति भी ६ प्रकार की होती है—

''सप्रसङ्ग उपोद्घातो हेतुताऽवसरस्तथा।
निर्वाहकैक्यकार्यैक्ये षोढ़ा सङ्गतिरुच्यते॥''

प्रसङ्ग, उपोद्घात, हेतुता, अवसर, निर्वाहैक्य और कार्यैक्य, यह छः प्रकार की सङ्गति है। जहाँ घटना का वर्णन है, वहाँ तो घटना के अनुसार वर्णन करना पड़ता है। राम का दर्शन करने अनेक ऋषिगण आये, उनसे वार्तालाप के विभिन्न प्रसङ्गों में वानरों एवं राक्षसों की चर्चा छिड़ गयी। राम प्रश्न करते हैं, ऋषिगण उत्तर देते हैं—वाल्मीकि ने उसको अक्षरशः उद्धृत कर दिया। इसमें असङ्गति की कल्पना ही असङ्गत है। **ईशावास्य उप-**

निषद्, शुक्लयजुःसंहिता का ४०वाँ अध्याय है। उसमें पहले मन्त्र में तत्त्व-ज्ञान की बात उठायी गयी है। दूसरे में कर्मकाण्ड की बात आ गयी। पुनः तत्त्व-ज्ञान की बात आ गयी। अकस्मात् विद्या-अविद्या के समुच्चय की और सम्भूति-असम्भूति से समुच्चय की चर्चा है। क्या पाश्चात्यों की धारणा के अनुसार कर्म-काण्ड के मन्त्रों को क्षेपक मान लिया जाय ? प्रामाण्यवादी तो ग्रन्थ के अनुसार उनका तात्पर्य समझ कर सङ्गति लगाते हैं। क्षेपक या असङ्गत समझ कर **वेद** पर पर्य्यनुयोग नहीं किया जा सकता।

"अर्थमवबोद्धुं प्रभवामः न तु पर्य्यनुयोक्तुं शक्ष्यामः ।।"

पुनः बुल्के कहते हैं[1] "उत्तरकाण्ड तथा अन्य काण्डों में पारस्परिक विरोधी बातें भी मिलती हैं। उदाहरणार्थ युद्धकाण्ड के अन्तिम सर्ग में सुग्रीव, विभीषण आदि के चले जाने का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। फिर भी उत्तरकाण्ड में पुनः इनके प्रस्थान का वर्णन किया जाता है।"

उपर्युक्त कथन भी अकिञ्चित्कर है, क्योंकि युद्धकाण्ड में किये गये संक्षिप्त वर्णन का ही उत्तरकाण्ड में विस्तार से वर्णन किया गया है। इसमें पारस्परिक विरोध की गुञ्जाइश ही नहीं। भाष्यों में तो बहुधा सूत्रानुकारी वाक्यों के द्वारा प्रथम अपने मन्तव्य को संक्षिप्तरूप में कहकर बाद में उसका विस्तार किया जाता है। **महाभारत** में सञ्जय युद्ध की घटनाओं को पहले संक्षेप में धृतराष्ट्र को सुना देते हैं और तदनन्तर उसका विस्तार से वर्णन करते हैं।

इसी तरह यह कहना भी निस्सार है कि उत्तरकाण्ड में प्राप्त वेदवती[2] का वृत्तान्त यदि प्रक्षिप्त न होता तो इसका उल्लेख **रामायण** के अन्य काण्डों में जहाँ सीता के जन्म-प्रसङ्ग का वर्णन हुआ है वहाँ अवश्य किया जाता, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि जो वर्णन किसी एक काण्ड में हो वह अन्य काण्डों में भी अवश्यम्भावी है। उदाहरणार्थ, वेदों में सम्भूति एवं असम्भूति का वर्णन केवल शुक्लयजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के अन्त में ही है अन्यत्र नहीं। क्या इस आधार पर वह क्षेपक माना जा सकता है ? वेद की एक शाखा में पञ्चाग्नि विद्या में ६ अग्नियों का उल्लेख है पर अन्य शाखा में ५ ही अग्नियों का उल्लेख है, अतः यह कहा जा सकता है कि यदि यह अंश प्रक्षिप्त न होता तो अन्य शाखा में जहाँ पञ्चाग्नि विद्या का वर्णन है वहाँ भी ६ अग्नियों का ही उल्लेख होना चाहिये था ? यह सब असङ्गत कथन है। **ब्रह्मसूत्रों** में ऐसी सब शाखाओं के पाठों का समन्वय कर ही उपासना के स्वरूप का निर्धारण किया गया है। इसी हेतु गुणोपसंहारानुपसंहार का विचार किया जाता है। यदि निश्चित हो जाय कि दोनों शाखाओं के कर्म या उपासना एक ही हैं तो एक शाखा में अनुक्त गुण का भी दूसरी शाखा में उक्त होने से, सङ्ग्रह कर लिया जाता है। भारत-प्रसिद्ध **हेमाद्रि, पराशरमाधव, मिताक्षरा, व्यवहारमयूख** आदि सभी निबन्ध ग्रन्थों में यत्र-तत्र स्थित वचनों का भी मीमांसा-दृष्टि से समन्वय कर ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।

पुनः बुल्के कहते हैं—"वाल्मीकिकृत **रामायण** के इन अन्तरङ्ग प्रमाणों के अतिरिक्त एक बात और ध्यान देने योग्य है। **महाभारत** का रामोपाख्यान **रामायण** के किसी प्राचीन रूप पर निर्भर है। इसके प्रारम्भ में रावण-चरित की कुछ सामग्री अवश्य मिलती है, किन्तु वह आदिरामायण की तरह रामाभिषेक तथा रामराज्य की स्तुति पर समाप्त होता है। आदिरामायण तथा रामोपाख्यान के कारण एक परम्परा चल पड़ी और शताब्दियों तक चलती रही, जिसके अनुसार रामचरित का वर्णन उनके अभिषेक पर समाप्त किया जाता है।

उदाहरणार्थ—**रावणवह, भट्टिकाव्य**, कुमारदास-कृत **जानकीहरण**, अभिनन्दन-कृत **रामचरित**, भासकृत **अभिषेकनाटक**, मुरारि का **अनर्घ-राघव**, राजशेखर का **बालरामायण**, कम्बनकृत प्राचीनतम **तामिलरामायण**, तेलगु **द्विपदरामायण** तथा जावा का **रामायण ककविन**।[3]"

---

१. **रामकथा**, पृष्ठ १२७। २. वही पृष्ठ १२७। ३. वही, पृ० १२८, अनु० (६)।

उपर्युक्त कथन भी निःसार है। अधिकांशतः मङ्गलान्त या सुखान्त काव्यों को ही लोग अधिक पसन्द करते हैं। विशेषतः नाटकों में उसका बहुत ध्यान रखा जाता है। यही कारण है कि रामाभिषेक अथवा राम-राज्य-स्तुति जैसे महान् माङ्गलिक स्थलों पर ग्रन्थ की समाप्ति की गयी है। परन्तु महर्षि वाल्मीकि को तो अपने काव्य के नायक का साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण जीवनचरित्र देना वाञ्छित था; उनका ग्रन्थ रामकथा का आदिकाव्य, मूल ग्रन्थ है। मूल ग्रन्थ में साङ्गोपाङ्ग सम्पूर्ण चरित्र का उल्लेख अनिवार्य है। अन्य ग्रन्थों में इसके आधार पर यथेष्ट सामग्री लेकर उसका उपयोग किया गया है। निश्चय ही बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड दोनों में से किसी एक के बिना सीता और राम का चरित्र-चित्रण अधूरा ही रह जाता।

बुल्के के मतानुसार ये दोनों ही काण्ड अस्वाभाविक हैं। उनकी यह मान्यता केवल भ्रम ही है। वैसे, एक तरह से वह भी पूर्वकाण्ड की समाप्ति युद्धकाण्ड में ही करते हैं, परन्तु, चरित्र-पूर्ति के लिये उत्तरकाण्ड का निर्माण करना अनिवार्य ही था; इतर लोगों ने उनके पूर्वकाण्ड का ही अनुकरण किया था और दुःखान्त होने के कारण उत्तरकाण्ड की उपेक्षा की।

प्रक्षिप्त सामग्री का उल्लेख करते हुए बुल्के लिखते हैं, "पुत्रेष्टियज्ञ (सर्ग १५-१८); इसमें विष्णु का अवतार लेना विस्तार से वर्णित है। ये सर्ग बालकाण्ड में प्रक्षिप्त माने जाने चाहिये।"[१]

"आठवें अध्याय में समस्त बालकाण्ड के प्रक्षिप्त माने जाने के कारण दिये गये हैं; अतः बहुत सम्भव है कि वाल्मीकिकृत रचना में अयोध्या, दशरथ तथा उनके पुत्रों के परिचय के बाद अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु का वर्णन प्रारम्भ हुआ हो।"[२]

परन्तु बुल्के को यह भी बताना चाहिये कि जब अयोध्याकाण्ड में अयोध्या तथा दशरथ और उनके पुत्रों के परिचय का उल्लेख नहीं है और जिस बालकाण्ड में उन विषयों का उल्लेख है उस समस्त बालकाण्ड को वे प्रक्षिप्त कहते हैं तब क्या अकस्मात् **'गच्छता मातुलकुलम्'** अयोध्याकाण्ड के प्रथम सर्ग से **रामायण** का आरम्भ होना सङ्गत है? क्या यह बुल्के की दृष्टि से ही उनके द्वारा समस्त बालकाण्ड को प्रक्षिप्त मान लेने को गलत सिद्ध नहीं करता?

बुल्के कहते हैं कि "**महाभारत** के द्रोणपर्व, **हरिवंश**, **विष्णुपुराण** आदि के प्राचीन वृत्तान्तों में भी वनवास से ही लेकर रावण-वध तक की रामकथा का वर्णन किया गया है,"[३] परन्तु **महाभारत** के द्रोणपर्व, **हरिवंश**, **विष्णुपुराण** आदि में भी कुछ न कुछ भूमिका के साथ ही वनवास का वर्णन है। और **महाभारत** के रामोपाख्यान में तो वाल्मीकि रामायण का अनुसरण है ही।

आगे बुल्के पुनः लिखते हैं, "दो स्थलों को छोड़कर बालकाण्ड में और कहीं भी अवतारवाद की ओर निर्देश नहीं किया गया है। यही नहीं, वरन् उसकी शेष सामग्री से भी स्पष्ट है कि मूल बालकाण्ड के रचना-काल में राम विष्णु के अवतार नहीं माने जाते थे। अतः ये दोनों स्थल (अर्थात् दशरथ के पुत्रेष्टियज्ञ तथा राम, परशुराम भेंट का वर्णन) बालकाण्ड के अन्तिम विकास के समय जोड़ दिये गये होंगे। पुत्रेष्टियज्ञ के प्रक्षिप्त होने के स्पष्ट प्रमाण बालकाण्ड में मिलते हैं। सर्ग ८ में दशरथ सुतार्थ अश्वमेध यज्ञ करवाने का सङ्कल्प करते हैं। सर्ग १३ और १४ में अश्वमेध यज्ञ का वर्णन किया गया है। १४ वें सर्ग में ब्राह्मणों को दक्षिणा दिये जाने के उल्लेख के बाद ऋष्यशृङ्ग दशरथ को आश्वासन देते हैं कि उनके चार पुत्र उत्पन्न होंगे।

"भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः ॥ ५९ ॥"

ऋष्यशृङ्ग के इस आश्वासन के पश्चात् पुत्रेष्टि की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है। फिर भी इसके

---

१. रामकथा, पृ० १२९, अनु० ११८। २. वही, पृ० २८९; अनु० ३३३।

३. वही, अनु० ३३३।

अनन्तर पुत्रेष्टियज्ञ का वर्णन प्रारम्भ होता है। यह होते हुए भी १८वें सर्ग के प्रारम्भ में अश्वमेध ही की समाप्ति पर—

"निर्वृत्ते तु क्रतौ तस्मिन् हयमेधे।"

देवताओं तथा राजाओं के प्रस्थान का उल्लेख किया गया है। जिसमें स्पष्ट है कि पहले १४ वें सर्ग के पश्चात् १८वाँ सर्ग ही आता था।[1]"

वस्तुतः बुल्के का उपर्युक्त कथन या तो श्लोकों के अर्थ के अज्ञानमूलक है अथवा दुरभिसन्धिमूलक, क्योंकि यहाँ जानबूझकर प्रसङ्ग को छिपाने का प्रयास किया है, ऋष्यश्रृङ्ग ने ब्राह्मणों को दक्षिणा दिये जाने के बाद ही चार पुत्रों के होने का आश्वासन नहीं दिया, किन्तु दक्षिणा देने के अनन्तर राजा दशरथ ने ऋष्यश्रृङ्ग से पुनः प्रार्थना की कि कुलवर्धन (सन्तानोत्पत्ति) का जो उपायभूत कर्म है उसे कीजिये। तब ऋष्यश्रृङ्ग ने 'तथास्तु' कहते हुए कुल-वर्धन चार पुत्र होने का आश्वासन दिया।

"ततोऽब्रवीदृष्यश्रृङ्गं राजा दशरथस्तदा।
कुलस्य वर्धनं तत्तु कर्तुमर्हसि सुव्रत॥
तथेति च स राजानमुवाच द्विजसत्तमः।
भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः॥" (वा० रा० १।१४।५८,६०)

वहीं टीकाकार नागेशभट्ट कहते हैं, **"यद्यपि पुत्रकामेष्ट्यैव पुत्रप्राप्तिः सम्भवति तथापि तपोरतस्य वैश्यस्य श्रवणस्य वधेन तद्वियोगातुरतपोरततन्मातृपितृमरणेन च ब्रह्मवधसमपापोत्पत्त्या तत्प्रायश्चित्तत्वेनाश्वमेधानुष्ठानं बोध्यम्"** अर्थात् यद्यपि पुत्रप्राप्ति तो पुत्रेष्टि से ही संभव थी तथापि तपोनिष्ठ वैश्यजातीय श्रवण का वध होने पर उसके वियोग से सन्तप्त तपोनिष्ठ उसके माता-पिता के मरने से ब्रह्मवध के समान पाप उत्पन्न हो गया था उसके प्रायश्चित्तरूप से पहले अश्वमेध का अनुष्ठान किया गया। अतः यहाँ अश्वमेध परम्परा से ही पुत्रोत्पत्ति का कारण बना पुत्रोत्पत्ति का वेदोक्त उपाय पुत्रेष्टि ही है। कुल-वर्धन कर्म करने की प्रार्थना को 'तथेति' (तथास्तु) शब्द से स्वीकार करके ऋष्यश्रृङ्ग ने उसके द्वारा ही चार पुत्र होने का आश्वासन दिया था।

१५ और १६ वें सर्ग में पुत्रेष्टियज्ञ और विष्णु के अवतार ग्रहण का आश्वासन वर्णित है। १७वें सर्ग में विष्णु के सहायतार्थ देवताओं के भी अवतार की कथा कही गयी है और १८वें सर्ग में प्रधानावतार रामावतार की कथा कही है।

"निर्वृत्ते तु क्रतौ तस्मिन् हयमेधे महात्मनः।
प्रतिगृह्यामरा भागान् प्रतिजग्मुर्यथागतम्॥" (वा० रा० १।१८।१)

नागेश के अनुसार **पुत्रेष्टियुते हयमेधे निर्वृत्ते इति शेषः** अर्थात् पुत्रेष्टियुक्त हयमेध के समाप्त होने पर देवता लोग अपना भाग लेकर जैसे आये थे वैसे ही चले गये। इस तरह १८वें सर्ग की पूर्ण सङ्गति लग जाती है। वेदों में ही ब्रह्मवधादि के प्रायश्चित्त के लिए अश्वमेध विहित है, अतः पुत्र-प्राप्ति में प्रतिबन्धक पाप की निवृत्ति के लिए अश्वमेध किया गया। पुत्र-प्राप्ति के लिए वेदों में पुत्रेष्टि का अनुष्ठान विहित है, अतः दशरथ ने ऋष्यश्रृङ्ग से कुल-वर्धन कर्म करने की प्रार्थना की। यहाँ कुल-वर्धन कर्म का तात्पर्य पुत्रेष्टियज्ञ में ही है। मुनि ने 'तथेति' (तथास्तु) कहते हुए स्वीकार किया और चार पुत्र होने का आश्वासन दिया। यदि दशरथ द्वारा की गयी प्रार्थना के पूर्व ही ऋष्यश्रृङ्ग

---

१. रामकथा, पृ० २८९-२९०, अनु० ३३३।

द्वारा आश्वासन दिया गया होता तो निश्चय ही पुत्रेष्टियज्ञ की अपेक्षा न होती। पर बुल्के की तो केवल बातों को तोड़मरोड़कर धोखा देना ही आता है।

राम साक्षात् विष्णु के अवतार थे, इसके विरोधी वादों का खण्डन

"अक्षय्यं मधुहन्तारं जानामि त्वां सुरेश्वरम्।
न चेयं मम काकुत्स्थ व्रीडा भवितुमर्हति॥
त्वया त्रैलोक्यनाथेन यदहं विमुखीकृतः॥" (वा० रा० १।७६।१७,१९)

श्रीराम से परशुराम ने कहा "आप आदि और अन्त रहित अविनाशी मधुहन्ता (मधुसूदन) हैं, सुरेश्वर हैं, ऐसा मैं जानता हूँ। आप से पराजित होना मेरे लिए कोई लज्जा की बात नहीं है।"

उक्त श्लोक यद्यपि तीनों ही पाठों में प्राप्त हैं तथापि बुल्के इन्हें प्रक्षिप्त ही मानते हैं। और कहते हैं कि बालकाण्ड के रचना-काल में राम अवतार नहीं माने जाते थे इसका बालकाण्ड में ही स्पष्ट प्रमाण है। इतने पर भी कोई प्रमाण उपस्थित करने में समर्थ नहीं हुए। उनके द्वारा उपस्थापित प्रमाण भी प्रमाणाभास ही हैं, जैसा की पीछे स्पष्ट किया गया है।

बुल्के लिखते हैं, राम का उत्कर्ष प्रथम सर्ग का वर्ण्य विषय है। फिर भी उसमें उनके अवतार होने का उल्लेख नहीं है; केवल विष्णु से उनकी तुलना की जाती है। (**विष्णुना सदृशो वीर्ये'** श्लोक १८) और अन्त में कहा जाता है कि राम अपना राज्य भोगकर ब्रह्मलोक जायेंगे—

"रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति।" (वा० रा० १।१।९७)

यदि कवि राम को विष्णु का अवतार मानता होता तो उनकी इहलीला समाप्त होने पर उनके ब्रह्मलोक जाने का उल्लेख नहीं करता। इस तर्क की सङ्गति इससे स्पष्ट है कि उदीच्य पाठ में ब्रह्मलोक के स्थान में 'विष्णु-लोक' रखा गया है।[१]"

बुल्के का यह तर्क भी उनका भारतीय-शास्त्रों के अज्ञान के ही कारण है। श्रीराम रावणवध के लिए नररूप में अवतीर्ण हुए, क्योंकि स्पष्ट विष्णुरूप से प्रकट होने पर ब्रह्मा के वरदान के अनुसार रावण को मार नहीं सकते थे, अतः श्रीराम विष्णु होते हुए भी व्यवहारतः विष्णु से भिन्न रूप में थे। इसलिए उन्हें विष्णु के तुल्य कहा गया है।

बुल्के की ब्रह्मलोकसम्बन्धी शङ्का भी निर्मूल है; क्योंकि वहाँ 'ब्रह्म' शब्द से चतुर्मुखी ब्रह्मा न होकर सगुण 'ब्रह्म' ही अर्थ है। सम्पूर्ण उपनिषदों में तथा ब्रह्मसूत्र में ब्रह्मलोक शब्द का वही अर्थ ग्राह्य है। **यथातो ब्रह्मजिज्ञासा** (ब्र० सू० १।१।२); **ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः** (ब्र० सू० ४।४।५); अतएव टीकाकार नागेश ने भी **ब्रह्मलोकं मायिकवैकुण्ठादिलोकम्** अर्थ किया है। बुल्के पुनः लिखते हैं विश्वामित्र ताड़का के वध करने का अनुरोध कर विष्णु द्वारा भृगु-पत्नी के वध का उदाहरण देते हैं—

"विष्णुना च पुरा राम भृगुपत्नी पतिव्रता।
अनिन्द्रं लोकमिच्छन्ती काव्यमाता निषूदिता॥" (वा० रा० १।२५।२१

तथा सिद्धाश्रम के विषय में कहते हैं कि विष्णु ने वहाँ तप किया—

---

१. रामकथा, पृ० १३०।

"इह राम महाबाहो विष्णुर्देवनमस्कृतः।
वर्षाणि सुबहूनीह तथा युगशतानि च॥
तपश्चरणयोगार्थमुवास सुमहत्तपाः॥" (वा० रा० १।२९।२,३)

इससे स्पष्ट है कि विश्वामित्र राम के अवतार होने से अनभिज्ञ हैं।[1]

उक्त कथन भी असङ्गत है। व्यावहारिक भिन्नता ही विश्वामित्र के कथन का आधार है। जैसे नाटक में नट जब जिस रूप को धारण करता है तब उसी रूप से वह व्यवहार करता है। उसके वास्तविक रूप से व्यवहार प्रायेण नहीं होता। इसी तरह उस समय श्रीराम विश्वामित्र के शिष्यरूप से ही उनके साथ थे, विष्णुरूप से नहीं, अतः शिष्यवत् व्यवहार ही उचित था। गूढ़रूप से विश्वामित्र ने उसी प्रसङ्ग में श्रीराम को विष्णु सूचित किया ही है—

"अद्य गच्छामहे राम सिद्धाश्रममनुत्तमम्।
तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद् यथा मम॥" (वा० रा० १।२९।२४)

हे राम! हम लोग सिद्धाश्रम में जा रहे हैं; वह आश्रम जैसा मेरा है वैसा ही आप का भी है। क्योंकि आप विष्णुरूप हैं।

"अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः॥" (वा० रा० १।१९।१४,१५)

विश्वामित्र कहते हैं सत्यपराक्रम राम को मैं जानता हूँ; महातेजा वसिष्ठ तथा अन्य भी तपोनिष्ठ राम को जानते हैं। तात्पर्य यह कि राम साक्षात् परब्रह्म हैं। उन्हें वसिष्ठ और तपोनिष्ठ लोग जानते हैं। सर्वसाधारण नहीं।

अयोध्याकाण्ड के प्रथम सर्ग के ७ वें श्लोक को भी बुल्के प्रक्षिप्त मानते हैं—

"स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥" (वा० रा० २।१।७)

दृप्त रावण के वधार्थी देवताओं की प्रार्थना से सनातन विष्णु राम के रूप में अवतीर्ण हुए। यद्यपि यह श्लोक भी तीनों ही पाठों में मिलता है। बुल्के के ऐसे कथन का कारण स्पष्ट है। वे लोग रामायण के आधार पर रामायणीय तत्त्वों का विचार नहीं करते। उन्होंने अपनी यह धारणा बना ली है कि राम परब्रह्म नहीं हैं, क्योंकि रामायण में ऐसा उल्लेख नहीं है। अतः रामायण में राम के अवतार होने के जो प्रमाण मिलते हैं उनको वे प्रक्षेप कहने लगते हैं। परन्तु यह तर्कविरुद्ध है। इस तरह से तो किसी भी ग्रन्थ की मुख्य से मुख्य बातों को भी प्रक्षेप कह कर झुठलाया जा सकता है। बुल्के आदि का कहना है कि "अयोध्याकाण्ड में अन्यत्र भी कहीं राम के अवतार होने का निर्देशमात्र भी नहीं है, अतः उपर्युक्त श्लोक प्रक्षिप्त हैं।" यहाँ प्रश्न होता है कि यदि अन्यत्र भी कहीं इस आशय के निर्देश मिलते तो क्या बुल्के उनको भी प्रक्षेप नहीं कह देते?

अरण्यकाण्ड में राम के पराक्रम का वर्णन करते हुए अकम्पन कहते हैं कि राम समस्त लोकों का नाश करके सबकी पुनः सृष्टि करने में समर्थ हैं—

"संहृत्य वा पुनर्लोकान्विक्रमेण महायशाः।
शक्तः श्रेष्ठः स पुरुषः स्रष्टुं पुनरपि प्रजाः॥" (वा० रा० ३।३१।२६)

---

१. रामकथा, पृष्ठ १३०।

बुल्के इस श्लोक को भी प्रक्षिप्त कहते हैं, परन्तु कोई स्पष्ट कारण नहीं दे पाते। सिर्फ पाठभेद की ही चर्चा करते हैं। इसी तरह निम्नाङ्कित श्लोकों को भी वे प्रक्षिप्त ही मानते हैं।

"दिव्यं च मानुषं चैवमात्मनश्च पराक्रमम्।" (वा० रा० ३।६६।१९)
"दिव्यं त्वं मानुषं चास्त्रमात्मनश्च पराक्रमम्।" (गौ० रा० २।७१।१६)

निम्नाङ्कित श्लोक गौडीय पाठ में नहीं मिलता अतः उसको भी प्रक्षेप मानते हैं। वस्तुतः इन श्लोकों से भी राम का अवतार होना सिद्ध होता है।

"नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चद्राग्निमरुद्गणेभ्यः॥"
(वा० रा० ५।१३।५७)

बुल्के द्वारा प्रस्तुत तर्क स्वयं ही अपना खण्डन करते हैं। कोई श्लोक गौडीय पश्चिमोत्तरीय पाठ में न होने के कारण क्षेपक है, परन्तु अन्य कुछ श्लोक जो अवतारबोधक हैं और तीनों पाठों में मिलते हैं, वे भी क्या क्षेपक ही हो सकते हैं। स्पष्ट ही उनके लिए किसी श्लोक का किसी पाठ में होने न होने का प्रश्न अकिञ्चित्कर ही है।

इसी तरह उत्तरकाण्ड को प्रक्षेप मानने का उन्होंने यह हेतु दिया है कि उसकी कथाओं का उल्लेख अन्य प्रामाणिक काण्डों में नहीं मिलता। तदनन्तर बालकाण्ड को प्रक्षिप्त कह कर पाँच काण्डों को प्रामाणिक कहा, फिर उन काण्डों के श्लोकों को भी बिना किसी प्रमाण प्रक्षेप कहने लगे।

"लङ्घनं च समुद्रस्य दर्शनं च हनूमतः।
वधं च रक्षसां युद्धे कः कुर्यान्मानुषो युधि॥" (वा० रा० ६।३४।२२)
"गरुडाधिष्ठितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ॥" (वा० रा० ६।५०।२२)

वस्तुतः अयोध्याकाण्ड में भी बहुत से श्लोक ऐसे हैं जो राम को परब्रह्म ईश्वर सिद्ध करते हैं जैसे—

"यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते॥" (वा० रा० २।१७।१४)

जो राम को नहीं देख पाता और राम जिसको नहीं देखते वह सब लोकों में निन्दित है। उसका आत्मा (अन्तःकरण) भी उसकी निन्दा करता है। यह श्लोक भी अवतार का सूचक है। ईश्वर ही के न जानने से प्राणी की अकृतार्थता और निन्द्यता सिद्ध होती है।

"लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः।(वा० रा० २।३७।३२)

लोक में ऐसा कोई नहीं जो राम का अनुव्रत न हो, क्योंकि राम ही प्राण के प्राण और जीव के जीवन हैं, अतः प्राणिमात्र के परम प्रेमास्पद हैं। जाने बिना जाने राम के आस्तिक-नास्तिक सभी भक्त हैं। जब प्रत्येक प्राणी प्राण, सुख और जीवन का आदर करता है तो जो प्राण का प्राण, सुख का सुख तथा जीव का जीवन है उसमें अनुरक्ति होनी ही चाहिए। जैसे नित्य दाहकत्ववाले अग्नि के संसर्ग से ही लौह आदि में भी अनित्य दाहकत्व आदि होता है वैसे ही शब्दादि के नित्य प्रकाश सामर्थ्यवाले ब्रह्म के सम्बन्ध से ही प्राण, श्रोत्र, नेत्र, आदि में अपने-अपने विषय को प्रकाशित करने की क्षमता आती है। इसी दृष्टि से कहा गया है—

"लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः।"

सुमित्रा भी कहती है—(अयोध्याकाण्ड में ही, जिसे बुल्के क्षेपक नहीं मानते ।)

"सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभो प्रभुः ।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा-क्षमा ॥
दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः ।
तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे ॥ (वा० रा० २।४४।१५,१६)

अर्थात् राम सूर्य के भी सूर्य, अग्नि के भी अग्नि, श्री के भी श्री, कीर्ति के कीर्ति; क्षमा के क्षमा और देवताओं के देवता हैं । सभी भूतों में जो अबाधित सर्वोत्कृष्ट सत्ता है वही राम हैं । अस्तु, अयोध्याकाण्ड के ये श्लोक भी श्रीराम की परब्रह्मता के ही बोधक हैं । इनको क्षेपक कहने का साहस बुल्के भी न कर सके, अतः या तो उन्होंने जानबूझकर इनसे आँखें चुरा लीं, अथवा उनके तात्पर्य से अपरिचित रहे या इनपर उनका ध्यान गया ही नहीं ।

श्रीबुल्के लिखते हैं, "मन्दोदरी-विलाप तीनों पाठों में मिलता है । दाक्षिणात्य पाठ में इसका विस्तार १२५ श्लोकों में है, गौडीय पाठ में ८२ श्लोकों में तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ में केवल ६३ श्लोकों में है । तीनों में राम को विष्णु का अवतार कहा गया है । लेकिन दाक्षिणात्य पाठ के जिन श्लोकों में इसका उल्लेख हुआ है वे अन्य पाठों के अवतार-सम्बन्धी श्लोक दाक्षिणात्य पाठों में नहीं पाये जाते । उदाहरणार्थ—

गौडीय पाठ

"अथवा रामरूपेण विष्णुश्च स्वयमागतः ।
तव नाशाय मायाभिः प्रविश्यानुपलक्षितः ।" (वा० रा० ६।१११।९)

दाक्षिणात्य पाठ

"अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः ।
मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥" (वा० रा० ६।१११।९)

इससे यह ध्वनि निकलती है कि स्वतन्त्र रूप से तीनों पाठों में अवतारवादी सामग्री बाद में आ गयी है ।"

उपर्युक्त वचनों के क्षेपक होने में कोई हेतु नहीं दिया गया है । जब मन्दोदरी-विलाप को क्षेपक नहीं कहने का कारण उनका तीनों पाठों में प्राप्त होना है तब तीनों पाठों में प्राप्त अवतार-सामग्री ही बाद में स्वतन्त्ररूप से आ गयी यह कैसे कहा जा सकता है ? अतः बुल्के का यह कथन भी निराधार ही है ।

बुल्के लिखते हैं, अग्निपरीक्षा के समय देवता आकर राम की विष्णुरूप में स्तुति करते हैं । इस सर्ग के प्रक्षेप होने में कोई सन्देह नहीं है इसमें सीता और लक्ष्मी की अभिन्नता का भी उल्लेख है ।

दाक्षिणात्य पाठ में दशरथ राम से कहते हैं कि वह पुरुषोत्तम ही हैं—

"इदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ।
वधार्थं रावणस्येह पिहितं पुरुषोत्तमम् ॥ (वा० रा० ६।११९।१७

गौडीय पाठ में इस श्लोक में अवतार का उल्लेख नहीं है ।

"इदानीं च विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ।
वधाय रावणस्येह वनवासाय दीक्षितः ।
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥" (वा० रा० ६।११७।२८)

इन सब के प्रक्षेप होने का कारण बतलाया गया है कि गौडीय पाठ में अवतार का उल्लेख नहीं है। उसमें '**वनवासाय दीक्षितः**' शब्द है। परन्तु विचारणीय यह है कि कहीं गौडीय पाठ विरुद्ध होने से दाक्षिणात्य पाठ को ही अप्रामाणिक और कहीं दाक्षिणात्य पाठ विरुद्ध होने से गौडीय पाठ को ही अप्रामाणिक कहा जा रहा है तथापि उसका कोई स्पष्ट हेतु नहीं दिया जाता। इसके अतिरिक्त क्या बुल्के को यह मान्य है कि—

(१) मरने के पश्चात् भी दशरथ राम से मिलने लङ्का आये ?

(२) क्या दशरथ का यह कथन कि देवताओं के कारण ही राम को वनवास हुआ मान्य है ?

(३) क्या ये सब बातें अस्वाभाविक नहीं हैं ? फिर जिस गौडीय पाठ में वे अवतार का उल्लेख नहीं है, ऐसा मानते हैं उसमें भी तो 'प्रविष्टो मानुषीं तनुम्' यह स्पष्ट अवतार वाद सिद्ध हो ही रहा है।

वे पुनः लिखते हैं "इसके बाद दशरथ लक्ष्मण को भी सम्बोधित करके राम को पुरुषोत्तम, अक्षर ब्रह्म आदि मानते हैं यह अंश तीनों पाठों में मिलता है, लेकिन वह राम-दशरथसंवाद का अनुकरण प्रतीत होता है।" बाह रे बुल्के, जब खण्डन का वश न चला तो अनुकरण मात्र कह चले।

बुल्के के कथनानुसार उपर्युक्त अंश तीनों पाठों में मिलता है तथापि उसको भी 'अनुकरणमात्र' कहते हुए क्षेपकमात्र कह दिया गया है। स्पष्ट है कि उनके द्वारा उठायी गयी पाठ-विशेष की चर्चा व्यर्थ है, क्योंकि वे स्वयं किसी एक सिद्धान्त को आधार बना कर उसपर स्थिर नहीं रह पाये हैं। आधारभूत तर्कों द्वारा नहीं, अपितु येन केन प्रकारेण अवतारबोधक वचनों को प्रक्षिप्त सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। अग्नि-परीक्षा के समय ब्रह्मा आदि देवता आकर राम की विष्णुरूप से स्तुति करते हैं। अन्य भी अनेक श्लोक अवतारवाद के बोधक हैं, जिनका बुल्के ने स्पर्श भी नहीं किया है।

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः॥" (वा० रा० ३।३७।१३)

"अप्रमेयं हि तत्तेजो यस्य सा जनकात्मजा।
न त्वं समर्थस्तां हर्तुं रामचापाश्रयां वने॥" (वा० रा० ३।३७।१८)

"कर्तारमपि लोकानां शूरं करुणवेदिनम्।
अज्ञानादवमन्येरन् सर्वभूतानि लक्ष्मण॥" (वा० रा० ३।६४।५४)

"त्रैलोक्यं तु करिष्यामि संयुक्तं कालकर्मणा॥" (वा० रा० ३।६२।६४)

"नाशयामि जगत् सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
यावद् दर्शनमस्या वै तापयामि च सायकैः॥" (वा० रा० ३।६४।७१)

"त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तमधर्मकश्च।
अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः॥" (वा० रा० ४।२४।३१)

राजा सर्वस्य लोकस्य महेन्द्रवरुणोपमः।
रामो दाशरथिः श्रीमान् प्रविष्टो दण्डकावनम्॥" (वा० रा० ४।५२।४)

इत्यादि वचन भी राम की ईश्वरता का बोधन करते हैं।

किष्किन्धाकाण्ड में भी उपर्युक्त श्लोकों द्वारा राम की अप्रमेयता और सर्वलोक-शासकत्वरूप ईश्वरत्व कहा गया है।

ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य ॥ (वा० रा० ५।५१।१०४)

क्या किसी मनुष्य में इतनी शक्ति है कि उसके सामने युद्ध में ब्रह्मा; इन्द्र तथा रुद्र भी खड़े नहीं रह सकते हों ?

राम स्वयं कहते हैं कि यदि इच्छा करूँ तो अंगुली के अग्रभाग से ही पृथ्वी के सम्पूर्ण पिशाच, दानव तथा राक्षसों को मार सकता हूँ । क्या किसी जीव में ऐसी शक्ति हो सकती है ?

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥ (वा० रा० ५।१८।३३)

अर्थात् जो एक बार भी मेरी शरणागति स्वीकार करता है और मैं तुम्हारा हूँ ऐसी प्रार्थना करता है उसे मैं सभी भूतों से अभय प्रदान करता हूँ ।

क्या सर्वभूतों से अभय प्रदान करने की शक्ति ईश्वर से अतिरिक्त किसी जीव में भी सम्भव हो सकती है ?

"विष्णुं मन्यामहे रामं मानुषं देहमास्थितम् ।" (वा० रा० ६।३५।३६)

उक्त वचन से स्पष्ट ही राम का विष्णु होना कहा जा सकता है ।

अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ।" (वा० रा० ६।५०।४६)

राम से गरुड़ कहते हैं, मैं तुम्हारा प्राणतुल्य सखा हूँ । इससे भी राम विष्णु हैं यह सिद्ध होता है ।

"विष्णोरमीमांस्यभागमात्मानं प्रत्यनुस्मरत् ।" (वा० रा० ६।५९।११०)

लक्ष्मण ने अपना विष्णु के अंशरूप से स्मरण किया ।

मन्दोदरी विलाप करती हुई अनेक श्लोकों से राम का अमानव तथा परमेश्वर होना कहती है ।

"यदैव वानरैर्घोरैर्बद्धः सेतुर्महार्णवे ।
तदैव हृदयेनाहं शङ्के रामो न मानुषः ॥"

अर्थात् जब घोर वानरों ने महार्णव में सेतु बाँध लिया तभी मेरे दिल में शङ्का हो गयी थी कि राम मनुष्य नहीं हैं । वह यह भी कहती है कि राम सनातन परमात्मा हैं, अनादि, अनन्त, महान् से भी महान् हैं । तम से परे, शङ्ख-चक्रधारी, श्रीवत्सवक्षा शाश्वत विष्णु हैं—

"व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः ।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान् ॥
तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः ।
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः ॥
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः ।
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः ॥
सर्वलोकेश्वरः श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया ॥" (वा० रा० ६।११३।११-१४)

ऐसे अनेक उदाहरण रामायण के राम-प्रकरण में पाये जाते हैं । इतना ही नहीं, मन्दोदरी सीता को भी वसुधा की वसुधा और श्री की भी श्री कहती है ।

"सीतां धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम्।
वसुधाया हि वसुधां श्रियाः श्रीं भर्तृवत्सलाम्॥" (वा० रा० ६।११३।२१)

तदनन्तर इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण आदि देवताओं के साथ साक्षात् लोकपिता ब्रह्मा ने स्पष्टरूप से राम को परमात्मा, अक्षर, नारायण, पुरुषोत्तम, कर्ता आदि सम्बोधनों से सम्बोधित किया है। यह भी सभी रामायणों के राम-प्रकरण में विस्तार से प्राप्त होता है।

बुल्के उपर्युक्त सभी श्लोकों को प्रक्षेप कहने का साहस करते हैं। वे अनुच्छेद १२३ के (५) में लिखते हैं; "अग्निपरीक्षा के समय देवता आकर राम की विष्णुरूप में स्तुति करते हैं।[1] इस सर्ग के प्रक्षेप होने में कोई सन्देह नहीं है। (दे० आगे अनु० ५६५) इसमें सीता और लक्ष्मी की अभिन्नता का भी उल्लेख है।" परन्तु उनका यह कथन निःसार है, कारण वाल्मीकिरामायण के सभी पाठ प्रामाणिक हैं। पाठ-भेद या समानान्तर में किसी श्लोक का न होना प्रक्षिप्त होने में कारण नहीं कहा जा सकता, ऐसे विभिन्न पाठों के श्लोक समानान्तर में न होने पर भी प्रक्षिप्त नहीं हैं। आश्चर्य तो यह है कि बुल्के पहले युद्धकाण्ड को प्रामाणिक मानते हैं, किन्तु उसमें भी राम के परमात्मा होने के सर्ग और श्लोक मिलते हैं तो वे इन सर्गों और श्लोकों को ही प्रक्षिप्त कह देते हैं।

वाल्मीकिरामायण से श्लोक उद्धृत कर मैंने भी यह बताया ही है कि मन्दोदरी ने सीता को श्री की भी श्री कहा है।

पुनः बुल्के लिखते हैं, "सीता की अग्निपरीक्षा के प्रक्षिप्त होने में कम सन्देह है। इस प्रसङ्ग में सीता के प्रति राम के प्रेम में जो सहसा परिवर्तन दिखाया गया है, वह अप्रत्याशित ही नहीं सर्वथा अस्वाभाविक भी है। सीताहरण के बाद राम के विरह का बहुत से सर्गों में वर्णन किया गया है। युद्धकाण्ड के प्रारम्भ में राम स्वयं कहते हैं कि मेरा विरहजनित शोक दिनों-दिन बढ़ता जाता है—

"शोकश्च किल कालेन गच्छता ह्युपगच्छति।
मम चापश्यतः कान्तामहन्यहनि वर्धते॥"

लङ्कावरोध के बाद भी सीता के लिए राम की अभिलाषा का उल्लेख किया गया है

"जगाम मनसा सीतां दूयमानेन चेतसा।" (वा० रा० ५।४२।७)

इन्द्रजित् द्वारा माया सीता के वध का समाचार सुनकर राम मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े—

"तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः॥" (वा० रा० ५।८३।१०)

इससे स्पष्ट है कि सीता के प्रति राम का प्रेम अपरिवर्तित बना हुआ था, किन्तु यह सब होते हुए भी रावणवध के पश्चात् राम सीता को देख कर उनसे कहते हैं कि मैं अपने शत्रु के अपमान का प्रतीकार कर चुका हूँ। मुझे तुम्हारे प्रति कोई आकर्षण नहीं रहा। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव, अथवा विभीषण किसी को भी पति के रूप में चुन सकती हो। मुझे तुम्हारे चरित्र पर सन्देह है। अग्निपरीक्षा के बाद राम अवश्य स्वीकार करते हैं कि मैंने तो तुम पर सन्देह नहीं किया, किन्तु जनता की दृष्टि से तुम्हारे इस शुद्धिकरण की आवश्यकता थी। इस प्रकार का दिखावा समस्त मूल **वाल्मीकिरामायण** की भावधारा के विरुद्ध है और अवतारवाद स्वीकार होने के पश्चात् ही ऐसा सम्भव था। परवर्ती साहित्य में इसपर बारम्बार बल दिया जाता है कि राम को वास्तविक दुःख नहीं है। वह केवल मनुष्य-चरित्र करते हैं। अतः आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि इस प्रसङ्ग में राम तथा सीता दोनों के अवतार

१. दे० वा० रा० सर्ग ११७ तथा अन्य पाठों के समानान्तर स्थल।

होने का उल्लेख है। ब्रह्मा आदि देवता प्रकट होकर राम की विष्णुरूप में स्तुति करते हैं तथा सीता को लक्ष्मी से अभिन्न मानते हैं (वा० रा० ५।११९।२७)।

यह **वाल्मीकिरामायण** का एकमात्र स्थल है जहाँ सीता तथा लक्ष्मी की अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है।

उपर्युक्त तर्क के अतिरिक्त भी यह ध्यान देने योग्य बात है कि युद्धकाण्ड के बाद दो बार समस्त रामकथा का सिंहावलोकन प्रस्तुत किया गया है (सर्ग १२४ और १२६), किन्तु इसमें अग्निपरीक्षा का उल्लेख नहीं होता। बालकाण्ड के प्रारम्भ की दोनों अनुक्रमणिकाओं (सर्ग १ और सर्ग ३) का प्रामाणिक संस्करण अग्निपरीक्षा के विषय में कुछ नहीं कहता। दो स्थलों पर राम सीता की निर्दोषता के प्रमाण का उल्लेख करते हैं। प्रथम बार सीता-त्याग के समय वह केवल देवताओं के साक्ष्य की चर्चा करते हैं। दूसरी बार वे वाल्मीकि से कहते हैं मैंने लङ्कानिवास के बाद सीता को तभी ग्रहण किया जब उन्होंने अपने सतीत्व की शपथ की थी। यदि उस सर्ग के रचनाकाल में अग्निपरीक्षा का वृत्तान्त प्रचलित होता तो यहाँ पर राम द्वारा अवश्य ही सीता के सतीत्व के सब से महत्त्वपूर्ण प्रमाण का उल्लेख हुआ होता। अतः यह मानना पड़ेगा कि उत्तरकाण्ड की आधिकारिक कथावस्तु के लिपिबद्ध होने के पश्चात् ही अग्निपरीक्षा विषयक प्रक्षेप युद्धकाण्ड का अंश बन गया है।

महाभारत के रामोपाख्यान से भी हमारे निर्णय की पुष्टि होती है। **रामायण** के इस प्राचीनतम संक्षेप में भी कहीं भी अग्निपरीक्षा का निर्देशमात्र भी नहीं मिलता। अग्निपरीक्षा के बाद दो सर्ग (११९ और १२०) भी अनावश्यक हैं और प्रायः प्रक्षिप्त माने जाते हैं। इनमें शिव राम की स्तुति करते हैं, दशरथ दिखायी देते हैं तथा इन्द्र राम का निवेदन स्वीकार कर मृत वानर सैनिकों को जीवित कर देते हैं।[१]"

बुल्के के उक्त शब्दाडम्बर का सार इतना ही है कि राम का सीता में बहुत प्रेम था। अकस्मात् उसमें परिवर्तन कैसे हो सकता था? युद्धकाण्ड, उत्तरकाण्ड तथा बालकाण्ड के संक्षिप्त वृत्तान्तों में अग्निपरीक्षा की चर्चा नहीं है, अतः अग्निपरीक्षा प्रक्षिप्त है।

किन्तु बुल्के भारतीय परम्पराओं एवं संस्कारों से अपरिचित हैं। अतः उनके लिए यह असम्भव प्रतीत होता है कि राम और सीता, विष्णु और लक्ष्मी थे। वे देवताओं का कार्य करने आये थे। यह सर्वथा प्रमाणसिद्ध उन प्रमाणों को बुल्के धूलि-प्रक्षेपमात्र से झुठलाना चाहते हैं। भारतीय धर्म-शास्त्रों की दृष्टि से स्त्री-रक्षा एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पहलू है। स्त्री-रक्षा से ही कुल, गोत्र आदि की रक्षा होती है; इसलिए धर्मशास्त्र कहते हैं—

> "स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च।
> स्वं च धर्मं प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति॥" (मनु० ९।७)
>
> तथा पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
> रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥" (मनु० ९।३)

अर्थात् बाल्यकाल में पिता, यौवनकाल में पति, वृद्धावस्था में पुत्र के संरक्षण में स्त्री को रहना चाहिये; वह कदापि पूर्ण स्वतन्त्र होकर न रहे। स्त्री की पवित्रता पर ही कुल और गोत्र की पवित्रता निर्भर होती है। माता के सदाचारिणी होने पर ही व्यक्ति निश्चयपूर्वक अपने कुल-गोत्र का परिचय दे सकता है। माता का आचरण सन्दिग्ध होने पर उसकी सन्तान का कुल-गोत्र भी सन्दिग्ध ही होगा। इस दृष्टि से, भारतीय सभ्यता के अनुसार, स्त्री पिता, पति एवं पुत्र आदि संरक्षकों के बिना स्वतन्त्ररूप से नहीं रह सकती। पाश्चात्य देशों में ऐसी परम्परा

---

१. रामकथा, पृष्ठ ५३३, ५३४ (अनु० ५६५)।

नहीं है। कोई स्त्री किसी के साथ हाथ मिला सकती है, किसी के साथ नाच सकती है अथवा घूमने जा सकती है। भारतीय सभ्यता इसके विपरीत है। तदनुसार यह सब निन्द्य एवं त्याज्य है। इसी दृष्टि से उत्तरकाण्ड में कुछ पौरों ने भी सीता के सम्बन्ध में शङ्काएँ उठायीं थीं। राम यद्यपि सीता के प्रति अत्यन्त प्रेम रखते थे, तो भी उनका प्रेम अन्धप्रेम नहीं था। वे मर्यादापुरुषोत्तम थे, अतः प्रेम में मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं कर सकते थे। आधुनिक इङ्गलेण्ड की राजकुमारी मार्गरेट ने भी अपने बाइबिल तथा कुल की मर्यादा की रक्षा हेतु प्रेम ठुकराया था। परम प्रिय सीता के हरण पर उनका शोक, विलाप, मूर्च्छा आदि सब उचित ही था। सीता के अन्वेषण और प्राप्ति के लिए समुद्र में सेतु-बन्धन, सैन्य-सङ्ग्रह तथा भीषण युद्ध आदि भी पूर्णतः उचित ही था; परन्तु इन सब के सम्पूर्ण होने पर जब सीता उपस्थित हुई तो मर्यादा का भी प्रश्न स्वतः उत्थित हुआ। जो प्रश्न अयोध्या के पौरों के सामने था वही प्रश्न राम के सामने भी उठना अत्यन्त स्वाभाविक था। फिर भी राम को सीता के सतीत्व के प्रति पूर्ण विश्वास था और साथ ही यह भी विश्वास था कि सीता शपथ और प्रत्यय देकर अपने सतीत्व को प्रमाणित करेगी। इसी लिए प्रेम रहने पर भी परिस्थिति और लोकमर्यादा को ध्यान में रखते हुए राम ने प्रत्यय देने की दृष्टि से ही सीता के प्रति परुष (कठोर) भाषण किया। उस समय अपने मन में उठते भावों को राम ने इस तरह व्यक्त किया है। भद्रे ! मैंने पौरुष से रणाङ्गण में शत्रु को जीतकर, शत्रु के हाथ से तुम्हें जीतकर लौटा लिया। पौरुष यत्न से जो करना चाहिये वह किया। इस तरह अमर्ष का अन्त कर अपने अभिभव का मार्जन किया है। अवमान और शत्रु दोनों को युगपत् नष्ट कर दिया है। आज मेरे पौरुष को लोगों ने देख लिया। मेरा श्रम सफल हो गया। रावण-वध की प्रतिज्ञा को पूर्ण कर अब मैं उससे मुक्त हो गया। दुष्ट-चित्त रावण ने मेरे न रहने पर तुम्हारा हरण किया था, यह दैवकृत दोष था। मैंने मनुष्य-साध्य प्रयत्न से उसे मिटा दिया। जो इस तरह प्राप्त अवमान का अपने तेज से मार्जन नहीं करता उस अल्पचेता के महान् पौरुष से भी क्या अर्थ ? समुद्र-लङ्घन, लङ्का-मर्दन आदि हनुमान् का श्लाघ्य कर्म भी आज सफल हुआ। युद्ध में विक्रम और मेरे हित की मन्त्रणा करनेवाले सैन्य सहित सुग्रीव का भी परिश्रम आज सफल हो गया; जो अपने दुष्ट भ्राता रावण को त्याग कर मेरे पास आये, उन विभीषण का भी परिश्रम सफल हो गया। राम के ऐसे वचनों को सुन कर सीता उनके दर्शन से प्रसन्न होकर मृगी के तुल्य उत्फुल्लनयन हुई और परुष वचन सुन कर अश्रुपरिप्लुत हो खिन्न हुई। वानरों और राक्षसों के बीच में राम ने पुनः कहा—"घर्षणा का मार्जन करते हुए मनुष्य को जो करना चाहिये, मान की आकाङ्क्षा से रावण को मारकर मैंने वह किया। तप से भावितात्मा अगस्त्य ने जैसे इल्वल, वातापी आदि राक्षसों के भय से जीवलोक के लिए दुराधर्ष दक्षिणा दिक् को जीत लिया, वैसा ही, रावण के भय से जीवमात्र के लिए दुराधर्ष तुम (सीता) को मैंने प्रत्याहृत किया। तुम्हें यह विदित होना चाहिये कि सुहृदों के पराक्रम से जैसे मैंने यह श्रम किया है वह तुम्हारे लिए नहीं, किन्तु सर्वतः प्रख्यात अपने वंश के वृत्त की रक्षा और अपवाद तथा न्यग्भाव कलङ्क का मार्जन करने के लिए किया। तुम्हारे चरित्र में सन्देह प्राप्त है। तुम हमारे सम्मुख स्थित होकर नेत्ररोगी को दीपशिखा के समान प्रतिकूल प्रतीत हो रही हो। मैं तुम्हें अनुज्ञा देता हूँ, ये दशों दिशाएँ तुम्हारे लिए पड़ी हैं। जहाँ चाहो जाओ। मेरा तुमसे कोई वास्ता नहीं। भला कौन कुलीन तेजस्वी पुमान् सुहृद् के लोभ से युक्त चित्त से परगृहोषित स्त्री को ग्रहण कर सकता है ? रावण के अङ्क से परिक्लिष्ट और उसकी दुष्ट दृष्टि से दृष्ट होने के कारण अपने महान् कुल का ध्यान रखते हुए मैं तुम्हें पुनः कैसे ग्रहण कर सकता हूँ ? जिसके लिए मैंने रावण को मारकर तुम्हारा प्रत्याहरण किया वह सब सम्पन्न हो गया। तुम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव या विभीषण किसी भी मेरे सम्बन्धी के पास रह सकती हो, अथवा जहाँ भी तुम्हें सुख हो, अपने माता-पिता के पास रह सकती हो। यहाँ बुल्के ने "पतिरूप से चुन सकती हो" जैसे शब्द लिखकर अपनी कलुषित भावनाओं का ही परिचय दिया है, क्योंकि इस अर्थ के द्योतक कोई शब्द उक्त प्रसङ्ग में कहीं प्राप्त नहीं होते।

मनोरमा तथा दिव्य रूपवाली विशेषतः अपने गृह में पर्यवस्थित तुम्हें देखकर रावण अधिक काल तक सहन नहीं कर सकता था।

कालान्तर में अवध के कुछ पौरों ने भी लगभग राम के कथन के सदृश शब्दों में ही वैसी शङ्का उपस्थित की थी। यह सब भारतीय धर्म तथा संस्कृति के अनुसार स्वाभाविक ही था। श्रीसीता ने अग्नि-प्रवेशरूप दिव्य प्रत्यय देकर इन सभी आरोपों एवं अपवादों का समूल उन्मूलन कर अपने अखण्ड अनन्त दिव्य पातिव्रत्य तेज को प्रकट कर दिया। यही भारतीय नारी का आदर्श है। साक्षात् अग्नि ने तथा सब देवताओं ने सीता की शुद्धता का साक्ष्य दिया। तब राम ने सीता को ग्रहण किया।

भारतीय प्रेम और मर्यादा के समन्वय का यही सुन्दर आदर्श है। पाश्चात्य संस्कारों के कारण बुल्के के लिए यह सब अस्वाभाविक एवं असम्भव प्रतीत होता है। यथार्थतः यह सब दिखावा नहीं अपितु वस्तुस्थिति थी। राम को सीता के सतीत्व पर पूर्ण विश्वास होने से ही राम ने उन राक्षसों और वानरों के सम्मुख ही सीता से यह सब कहा। इस कथन का एकमात्र उद्देश्य यही था कि जनता में कोई लोकापवाद न हो। सीता के चरित्र पर कहीं किसी को कोई शङ्का न हो। "मनसा, वाचा, कर्मणा, बुद्ध्या, चक्षुषा किसी तरह भी सीता ने तुम्हारा अतिक्रमण नहीं किया यह अत्यन्त निष्पापा और विशुद्धभावा है।" लोकसाक्षी पावक के यह कहने पर राम ने कहा यद्यपि सीता पवित्र है फिर भी लोक में इसकी पवित्रता व्यक्त होनी चाहिये, क्योंकि वह दीर्घकाल तक रावण की लङ्का में रही है। यदि मैं विना विशुद्धि किये उसको ग्रहण करता तो लोक यही कहता कि दशरथात्मज राम बालिश एवं कामात्मा थे, इसलिए परगृहोषिता सीता की विशुद्धि किये बिना ही उसको ग्रहण कर लिया (सर्ग ११५-११८) अतः सीता शुद्धि नितरां अपेक्षित थी।

मूलरामायण में जिसको बुल्के पहली अनुक्रमणिका कहते हैं, अग्निपरीक्षा का स्पष्ट वर्णन है।

"तेन गत्वा पुरीं लङ्कां हत्वा रावणमाहवे।
रामः सीतामनुप्राप्य परां व्रीडामुपागमत्॥
तामुवाच ततो रामः परुषं जनसंसदि।
अमृष्यमाणा सा सीता विवेश ज्वलनं सती॥
ततोऽग्निवचनात् सीतां ज्ञात्वा विगतकल्मषाम्।
कर्मणा तेन महता त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
सदेवर्षिगणं तुष्टं राघवस्य महात्मनः।
बभौ रामः सम्प्रहृष्टः पूजितः सर्वदैवतैः॥" (वा० रा० १।१।८१-८४)

अर्थात् सेतु के द्वारा लङ्का जाकर, रावण को मारकर एवं सीता को प्राप्त कर सीता के रावणगृह-निवास के कारण राम व्रीड़ा (लज्जा) को प्राप्त हुए और जन-संसद् में ही सीता के प्रति पुरुष वचन बोले। उन्हें अमृष्यमाणा (सहन न कर) सीता ने अग्नि में प्रवेश किया। पुनश्च अग्नि-वचन से सीता को विगतकल्मषा जान कर राम संप्रहृष्ट हुए। उस अग्नि-प्रवेश से देवर्षिगण सहित सचराचर त्रैलोक्य राम पर परितुष्ट हुआ। सब देवताओं से पूजित राम सम्यक् प्रसन्न हुए। प्रस्तुत संस्करण को प्रामाणिक न मानना भी निराधार है। १८५२ शक, १९३० ई० में यह निर्णय सागर में प्रकाशित हुआ है। इसपर अत्यन्त प्रामाणिक रामाभिरामी टीका है। प्रसिद्ध शब्देन्दुशेखरकार नागेशभट्ट ने अपने शिष्य राम के नाम से इस टीका का निर्माण किया है। संक्षिप्त वर्णन में कितनी ही बातें छूट जाती हैं। अतः कहा नहीं कहा जा सकता कि किसी एक वर्णन में सभी कथाएँ अनिवार्य अपेक्षित हैं। फिर भी अग्नि परीक्षा का तो स्पष्ट उल्लेख है ही जिससे बुल्के कितना झूठ बोलते हैं यह भी साफ हो जाता है।

महाभारत में यद्यपि सीता का अग्नि-प्रवेश नहीं कहा गया है, परन्तु सीता के चरित्र पर राम का सन्देह करना वाल्मीकिरामायण के समान ही कहा गया है। सीता का दु:खित होकर मूर्च्छित होना कहा गया है। वायु, अग्नि, वरुण आदि देवताओं तथा ब्रह्मा का स्वयं आकर सीता को शुद्ध बताना कहा गया है। तब जाकर राम द्वारा सीता को स्वीकार किया जाना आदि कथाएँ दी गयी हैं। नागोजीभट्ट ने रामाभिरामी टीका में कहा है कि शास्त्रों के समन्वय की दृष्टि से **महाभारत** में अनुक्त होने पर भी सीता का अग्नि-प्रवेश मध्य में समझ लेना चाहिये, क्योंकि 'रामचरित्र' में **वाल्मीकिरामायण** ही मुख्य प्रमाण है। इतर शास्त्रीय वचनों को उसी के अनुसार ही लगाना चाहिये। अतएव **पद्मपुराण** में भी कहा गया है—

"सा तेन गर्हिता साध्वी विविशे ज्वलनं सती।"

राम के द्वारा गर्हित होने से सीता अग्नि में प्रविष्ट हो गयी।

उत्तरकाण्ड इस सम्बन्ध में मौन है बुल्के का ऐसा कहना भी अशुद्ध है। उत्तरकाण्ड के (४५वें सर्ग) में कहा गता है—

"जानासि त्वं यथा सौम्य दण्डके विजने वने।
रावणेन हृता सीता स च विध्वंसितो मया॥
तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना जनकस्य सुतां प्रति।
अत्रोषितामिमां सीतामानयेयं कथं पुरीम्॥
प्रत्ययार्थं ततः सीता विवेश ज्वलनं तदा।
प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहनः॥
अपापां मैथिलीमाह वायुश्चाकाशगोचरः।
चन्द्रादित्यौ च शंसेते सुराणां संनिधौ पुरा॥
ऋषीणां चैव सर्वेषामपापां जनकात्मजाम्।
एवं शुद्धसमाचारा देवगन्धर्वसंनिधौ॥
लङ्काद्वीपे महेन्द्रेण मम हस्ते निवेशिता।
अन्तरात्मा च मे वेत्ति सीतां शुद्धां यशस्विनीम्॥" (वा० रा ७।४५।५-१०)

अर्थात् राम ने लक्ष्मण से कहा, सौमित्रे! तुम जानते ही हो जिस तरह विजन वन में रावण ने जानकी का हरण किया और मैंने रावण का वध किया। वहाँ जनकजा के प्रति मेरे मन में बुद्धि उत्पन्न हुई कि लङ्का में दीर्घकाल पर्यन्त रहने के कारण मैं सीता को अयोध्या कैसे ले जा सकता हूँ। तब सीता ने प्रत्ययार्थ देवताओं के सन्निधान में अग्नि में प्रवेश किया। तुम्हारे समक्ष ही अग्नि ने सीता को प्रवित्र कहा, आकाशगोचर वायु तथा चन्द्र, आदित्य आदि ने देवताओं एवं ऋषियों के समक्ष सीता को निष्पाप कहा।

वाल्मीकि के समक्ष भी राम ने कहा था—

"प्रत्ययश्च पुरा वृत्तो वैदेह्याः सुरसंनिधौ।
शपथश्च कृतस्तत्र तेन वेश्म प्रवेशिता॥" (वा० रा० ७।९७।३)

अर्थात् देवताओं के सन्निधान में पहले भी जानकी ने प्रत्यय दिया था और शपथ किया था तभी महलों में सीता लायी गयी थीं। बुल्के भी सीता द्वारा शपथ लिये जाने का उल्लेख करते हैं। वस्तुतः यह शपथ भी बुल्के द्वारा उद्धृत "सच्चकिरियम्" (सच्चक्रिया, ८६ अनु०) के समान थी जो कि अग्निप्रवेशरूप ही थी। **महाभारत** में रामोपाख्यान संक्षिप्तरूप से प्राप्त है, अतः उसमें अग्निपरीक्षा ही नहीं अन्य भी अनेक चरित्रों का अभाव हो सकता

है। यदि **रामायण** की सारी बातों का उल्लेख हो तो फिर संक्षिप्तता ही कैसे हो? इसी तरह अग्निपरीक्षा के बाद के सर्गों को प्रक्षिप्त कहना भी निस्सार है। फिर भी उसमें अग्नि द्वारा सीता का पवित्र होना कहा ही गया है। उसे बुल्के अग्निपरीक्षा का उपलक्षण क्यों नहीं मानते?

श्रीराम का विष्णु का अवतार होना बुल्के को मान्य नहीं। उत्तरकाण्ड और बालकाण्ड से भिन्न बीच के पाँच काण्डों को वे प्रामाणिक कहते हैं। उनके द्वारा प्रामाणिक मान्य 'युद्धकाण्ड' में विस्तार से राम के परब्रह्म, अक्षरब्रह्म होने का प्रमाण मिलता है। तब उनके पास सिवा प्रक्षिप्त कहने के कोई चारा नहीं रह गया। वस्तुतस्तु कोई भी घटना एवं तद्विषयक इतिहास किसी की बुद्धि या इच्छा पर निर्भर नहीं। घटनासम्बन्धी इतिहास के आधार पर घटना का निर्णय करना उचित है। घटना औचित्य-अनौचित्य का भी अनुसरण नहीं करती। अन्याय तथा अत्याचार सम्बन्धी घटना अनुचित होने पर भी घटती ही है। अतः बुल्के या अन्य सभी को प्रामाणिक आर्ष इतिहास **रामायण** के आधार पर ही रामकथासम्बन्धी घटनाओं को मानना चाहिये। उन्हें अपनी बुद्धि के अनुसार घटनाओं के भाव तथा अभाव कहने का कोई अधिकार नहीं है। राम का सीता में प्रेम है, इसी लिए राम सीता के प्रति शङ्का नहीं कर सकते एवं परुष वचन नहीं बोल सकते, यह कल्पना सर्वथा गलत है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अनुसार नारी का परगृह-निवास विशेष मर्यादातिक्रमण अत्यन्त शङ्कनीय तथा लोकापवाद का कारण होता है। इस दृष्टि से राम का सीता में अत्यन्त प्रेम होने पर भी सीता की शुद्धि अत्यन्त आवश्यक है। इसी दृष्टि से राम का परुष वचनों का प्रयोग और सीता का अग्निप्रवेश अत्यन्त स्वाभाविक है। कल्पनाएँ तो अनेक प्रकार की हो सकती हैं। परन्तु वस्तुस्थिति इतिहास के अनुसार ही जानी जाती है। कल्पनाओं के आधार पर घटना का ज्ञान असम्भव है। **अध्यात्मरामायण, पद्मपुराण तथा रघुवंश** आदि ग्रन्थों में सीता की अग्निपरीक्षा का विशद वर्णन है।

'नागपाश' का वृत्तान्त भी क्षेपक नहीं है; हाँ पाठों में कुछ भेद हो सकता है। कुम्भकर्ण ने नारदवर्णित विष्णु के अवतार द्वारा रावणवध का रहस्य बतलाया है, यह ठीक ही है। प्रामाणिक पाठ-भेद उपेक्ष्य नहीं है। उनकी उपपत्ति हो सकती है; यह अन्यत्र वर्णित है। उत्तरकाण्ड में ८–१७ आदि अनेक सर्गों में राम का अवतार होने का उल्लेख भी ठीक ही है।

बुल्के कहते हैं—"प्रामाणिक काण्डों के अवतारवाद की सामग्री जो तीनों पाठों में मिलती है नहो के बराबर है और जो सामग्री तीनों पाठों में मिलती है वह एक ऐसे अंश में पायी जाती है जो स्पष्टतया प्रक्षिप्त है।" बुल्के के उक्त विचारों का पूर्व में पूर्णतया खण्डन किया जा चुका है। अपनी भावना के अनुसार प्रक्षेप का वर्णन करना अत्यन्त असङ्गत है। बुल्के ने बारम्बार कई लोगों के समक्ष अपने को गोस्वामी तुलसीदास का अनन्य भक्त कहा है। तुलसीदास ने राम को परब्रह्म का अवतार माना है। अग्नि-परीक्षा का भी उल्लेख किया है। क्या गोस्वामी तुलसीदास के परम भक्त बुल्के के लिए तुलसीदास की उक्ति के विरुद्ध ऐसा अनर्गल प्रलाप उचित हो सकता था?

अनु० १२३ में वे लिखते हैं, "**रामायण** के प्रधान पात्र राम के अवतार होने से परिचित नहीं हैं। इस तर्क के विरुद्ध सम्भवतः कहा जा सकता है कि यह आवश्यक नहीं कि वे राम को अवतार समझें। फिर भी उत्तर-कालीन रामकाव्य में प्रायः सब पात्र राम को अवतार मानकर उनसे प्रार्थना करते हैं, जिससे स्पष्ट है कि इस तर्क में कुछ तत्त्व है।"[1]

बुल्के का उपर्युक्त तर्क तर्क न होकर तर्काभास ही है। करुण-रस-प्रधान वाल्मीकि के आदिकाव्य में ऐश्वर्य-प्रधान कथाओं का विस्तार अभीष्ट नहीं था। रावण-वध के पूर्व ही राम के देवेश्वरत्व एवं वानर तथा भालुओं के देवत्व की प्रख्याति रावण-वध में बाधक हो सकती थी, क्योंकि ब्रह्मा के वरदान के प्रभाव से देव या देवेश्वर द्वारा

१. रामकथा, पृष्ठ १३५।१।

उसका वध नहीं हो सकता था। अतः रावण-मरण के बाद ही ब्रह्मादि देवताओं ने तथा शिव ने सार्वजनिकरूप में राम को ब्रह्मस्वरूप बतलाया।

इसी प्रसङ्ग में वे आगे लिखते हैं, "सीता अपने आपको साधारण स्त्री मानती हैं और अपने इस जन्म के दुःखों का कारण पूर्व जन्म में किये हुए पाप को समझती हैं।[1] यही नहीं राम का अवतार होना भी उनसे छिपा हुआ है। वह राम की तुलना विष्णु से करती हैं।[2] राक्षसों के प्रति राम की हिंसात्मक प्रवृत्ति देखकर वह राम के परलोक के विषय में चिन्तित हैं (वा० रा०,३।९।१२)। और जब रावण उनसे अनुरोध करता है कि वह राम, साधारण मनुष्य, को छोड़ दे, तो वह उत्तर नहीं देती कि राम साधारण मनुष्य नहीं हैं। युद्ध के समय भी वह राम को अमर नहीं समझती।"[3]

बुल्के के उपर्युक्त बालोचित तर्क अकिञ्चित्कर हैं। यदि सीता ने रावण से या अन्य से राम के अवतार होने की बात कही भी होती तो बुल्के उसे प्रक्षेप कह देते। **श्रीमद्भागवत** में श्रीकृष्ण को स्पष्टतः अवतार कहा गया है और अनेक बार नन्द और यशोदा को तथा गोप और गोपिकाओं को भी श्रीकृष्ण का परमेश्वरत्व विदित हुआ है तो भी नन्द, यशोदा एवं गोप तथा गोपिकाएँ विरह से संतप्त होती हैं। क्योंकि मानव-जन्म के कारण मानवीय भावनाओं का पुनः पुनः सञ्चार होना स्वाभाविक है। इसी दृष्टि से सीता एवं राम के व्यवहारों को भी समझना उचित है। तुलसी के राम शुद्ध परमात्मा हैं तो भी लक्ष्मण को शक्ति लगने पर वे मूर्छित होते हैं और तरह तरह के प्रलाप करते हैं। इसी तरह की घटना सीता एवं राम के सम्बन्ध में भी हो तो क्या आश्चर्य ? साधारणतः भाग्यवैषम्य के दोष से पुराकृत दुष्कृतों के अनुसार ही प्राणी को सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। सभी को स्वकृत कर्मों का फल भोगना पड़ता है—इस लौकिकी दृष्टि से ही सीता का उक्त कथन सङ्गत है।

वस्तुतः सीता एवं राम लक्ष्मी एवं विष्णु के अवतार होते हुए भी जिस रूप को धारण कर प्रकट हुए हैं उसके अनुरूप ही उनका व्यवहार होना भी उचित ही है। यदि परब्रह्म या विष्णु नररूप में प्रकट हो सकता है तो नरानुरूप ही अन्य व्यवहार में भी अग्रसर हो सकता है। जब राम विष्णु से भिन्न नररूप में अवतीर्ण हैं तब विष्णु तुलना भी उचित ही है। रावण-वध के लिए भिन्नरूपता ही अपेक्षित भी थी।

किं बहुना परब्रह्म के नरावतार में प्रायः सभी चेष्टाएँ नरानुरूप ही होती हैं; उसी दृष्टि से राम की हिंसात्मक प्रवृत्ति से आपाततः सीता को चिन्ता होती है।

"अनिष्टाशङ्कीनि सुहृदां चेतांसि।"

सुहृदों के चित्तों में स्वभाव से अनिष्ट की चिन्ता बनी रहती है। यशोदा ने अनेक बार कृष्ण की ब्रह्म-रूपता का अनुभव कर लिया था, फिर भी कृष्ण के अनिष्ट की चिन्ता उनके मन में बनी ही रहती थी। ऐसी भावनाएँ वस्तुस्थितिमूलक न होकर सौहार्द-मूलक ही समझी जानी चाहिये।

रावण को उत्तर देने के लिए सीता के द्वारा राम को विष्णु अवतार बताये जाने की अपेक्षा नहीं थी;

"नहि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते।"

कस्तूरी की गन्ध को बताने के लिए शपथ की अपेक्षा नहीं होती। राम के लौकिक रूप से रावण का दर्पदलन होना सीता सम्भव मानती हैं। राम का लौकिक रूप ही रावण के छक्के छुड़ा देता है।

---

१. दे० रा० ५।२५।१८; ६।११३।३६,३७; ७।४८।३,४।

२. दे० रा० ५।२१।२८; ५।३८।६५। ३. रामकथा, पृष्ठ १३५।

"भुञ्जाना मानुषान् भोगान् दिव्यांश्च वरवर्णिनि।
न स्मरिष्यसि रामस्य मानुषस्य गतायुषः ॥" (वा० रा० ३।४८।१४)

रावण के उपर्युक्त वचनों का सीता ने भी राम की विशेषता का वर्णन करते हुए उत्तर दिया है,

"जीवेच्चिरं वज्रधरस्य वज्राच्छचीं प्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम्।
न मादृशीं राक्षस धर्षयित्वा पीतामृतस्यापि तवास्ति मोक्षः ॥" (वा० रा० ३।४८।२४)

अर्थात् वज्रधर इन्द्र की शची का हरण करके भी कोई जीवित रह सकता है, परन्तु मुझ जैसी का धर्षण कर अमृत पी लेने पर भी तुम्हारा बचना कदापि सम्भव नहीं है। इतने पर भी क्या राम विष्णु ही हैं ऐसा कहना ही अनिवार्यतः अपेक्षित है? वस्तुतः ऐसा कथन निरर्थक ही होता, क्योंकि विष्णु आदि के द्वारा अवध्य होने का वरदान उसे प्राप्त था।

सीता पुनः कहती हैं—

"वर्जयेद् वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम्।
त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥" (वा० रा० ५।२१।३२)

अर्थात् इन्द्र द्वारा उत्सृष्ट वज्र कदाचित् तुम्हारे प्राणों को छोड़ दे, साक्षात् अन्तक (काल) भी भले तुम्हें छोड़ दे, परन्तु संक्रुद्ध लोकनाथ राम त्वादृश पापी को प्राणदण्ड दिये बिना कभी नहीं छोड़ सकते। यहाँ लोकनाथ शब्द स्पष्ट ही राम को परमेश्वर बता रहा है। क्या भगवान् से भिन्न भी कोई लोकनाथ हो सकता है?

"रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम्।
शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ॥" (वा० रा० ५।२१।२४)

अर्थात् इन्द्र के छोड़े हुए वज्र की गड़गड़ाहट के समान श्रीरामचन्द्र के धनुष का घोर टंकार तुम शीघ्र ही सुनोगे।

"राक्षसेन्द्रमहासर्पान् स रामगरुडो महान्।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् ॥" (वा० रा० ५।२१।२७)

अर्थात् जैसे विनतानन्दन गरुड़ सर्पों का संहार करते हैं, वैसे ही रामरूपी गरुड़ राक्षसरूपी सर्पों का उन्मूलन करेंगे।

"नहि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया।
शक्यं संदर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ॥" (वा० रा० ५।२१।३१)

अर्थात् जैसे शार्दूल सिंह की गन्ध पाकर श्वान ठहर नहीं सकता वैसे ही राम और लक्ष्मण की गन्ध के आघ्राणमात्र से ही तुम भी नहीं ठहर पाओगे।

"क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥" (वा० रा० ५।२१।२३)

अर्थात् जैसे आदित्य अल्पतोय को अनायास ही सुखा देता है, वैसे ही राम तुम्हारे प्राण ले लेंगे।

"गिरिं कुबेरस्य गतोऽथवाऽऽलयं समागतो वा वरुणस्य राज्ञः।
असंशयं दाशरथेर्न मोक्ष्यसे महाद्रुमः कालहतोऽशनेरिव ॥"
(वा० रा० ५।२१।३४)

अर्थात् तुम कुबेर के कैलास पर्वत पर चले जाओ अथवा वरुण की सभा में जाकर छिपे रहो, किन्तु जैसे काल से आहत विशाल वृक्ष भी वज्र का आघात लगते ही नष्ट हो जाता है निस्सन्देह वैसे ही तुम भी दशरथ-पुत्र के बाणों से तत्क्षण मारे जाओगे।

"अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिन्दमः।
असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः॥" (वा० रा० ५।२१।२८)

अर्थात् जैसे भगवान् विष्णु ने अपने तीन ही पगों द्वारा असुरों से उनकी उद्दीप्त राजलक्ष्मी छीन ली थी, वैसे ही मेरे स्वामी शत्रुसूदन श्रीराम मुझे शीघ्र ही तेरे यहाँ से निकाल ले जायेंगे।

बुल्के लिखते हैं; लक्ष्मण भी राम को सान्त्वना देते हुए कहते हैं—

"प्राप्स्यते त्वं महाप्राज्ञ मैथिलीं जनकात्मजाम्।
यथा विष्णुर्महाबाहो बलिं बद्ध्वा महीमिमाम्॥"

अर्थात् हे महाबाहो, जैसे महातेजस्वी विष्णु ने बलि को बाँध कर यह पृथिवी प्राप्त की वैसे ही आप भी जनकात्मजा सीता को प्राप्त कर लेंगे।

हनुमान् राम की तुलना विष्णु से करते हैं[1] और राम से कहते हैं कि जिस तरह विष्णु गरुड़ पर आरूढ़ होते हैं उसी तरह आप मेरी पीठ पर आरूढ़ होइये—

"मम पृष्ठं समारुह्य राक्षसं शास्तुमर्हसि।
विष्णुर्यथा गरुत्मन्तमारुह्यामरवैरिणम्॥" (वा० रा० ६।५९।१२२)

राम के दूत बनकर हनुमान् रावण से कहते हैं, मैं विष्णु की ओर से नहीं आया हूँ लेकिन राम की ओर से;

"विष्णुना नास्मि चोदितः।
केनचिद्रामकार्येण आगतोऽस्मि तवान्तिकम्॥" (वा० रा० ५।४०।१३,१८)

इसी तरह और उदाहरण दिये जा सकते हैं।

अगस्त्य राम को विष्णु का धनुष देते हुए राम और विष्णु की अभिन्नता से परिचित नहीं हैं;

"इदं दिव्यं महच्चापं हैमवज्रविभूषितम्।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा॥" (वा० रा० ३।१२।२३)"

परन्तु उपर्युक्त उद्धरण से यह नहीं जाना जा सकता है कि ऋषि अगस्त्य विष्णु एवं राम की अभिन्नता से परिचित नहीं थे; प्रत्युत विष्णु का दिव्य धनुष राम को देने से यही सिद्ध होता है कि राम विष्णु ही हैं। अतः उन्हें विष्णु का धनुष दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त यदि सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि सब राम को विष्णु ही बताते और विष्णुरूप से ही उनसे व्यवहार करते तो रावण का वध उनसे, ब्रह्मा द्वारा प्राप्त वरदान के कारण ही, सम्भव न होता। साथ ही, रामरूप में प्रादुर्भाव की उपयोगिता भी सिद्ध नहीं होती। अतः व्यावहारिकरूप में भिन्नता है ही। इसके अतिरिक्त अभेद में भी उपमा या तुल्यता का व्यवहार होता है। उदाहरणार्थ 'वाक् करोति' यहाँ सन्धि के लिए सवर्ण अपेक्षित है। **तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्** (पा० सू० १।१।९) के अनुसार तुल्य आस्य प्रयत्न होना चाहिये। वाक् करोति इस स्थल में अभेद में भी तुल्यता मान्य होती है। **भूवादयो धातवः** (पा० सू० १।३।१) इससे भू आदि वासदृश की धातु संज्ञा होती है। इसमें वा धातु स्वयं भी वासदृश होकर ही धातुसंज्ञक होता है अतः

१. रामकथा, पृष्ठ १३५ में उद्धृत वा० रा० ५।३४।२९; ५।३७।२४।

अभेद में तुल्यता मान्य है । इसी तरह **'सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् । रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।।'** (वा० रा० ६।१०७।५१,५२) इस श्लोक में जैसे गगन और सागर की उपमा गगन और सागर से ही दी गयी है वैसे ही राम-रावण के युद्ध की उपमा राम-रावणयुद्ध से ही दी गयी है ।

बुल्के लिखते हैं, "राम न केवल नारायण तथा मधुसूदन (दे० ३।६।३७) से प्रार्थना करते हैं, विधाता के विरुद्ध अपराध करने से डरते भी हैं । अधर्म और परलोक के भय से राज्याधिकार प्राप्त नहीं करते (२।५३।२६) वरन् वह अपने आपको साधारण मनुष्य समझ कर विश्वास करते हैं कि पूर्व जन्म के किये हुए पापों का मुझे इस जन्म में फल भोगना है—

"पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृत्कृतानि ।।" (वा० रा० ३।६३।४)
"किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि ।" (वा० रा० ६।१०१।१८)

इसके अतिरिक्त अवतारवाद की भावना की नवीनता ब्रह्मा के प्रति राम की उक्ति से स्पष्ट है—मैं तो अपने आपको मनुष्य, दशरथ-पुत्र समझता हूँ । वास्तव में मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, इसे आप मुझसे कहिये—

"आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।
सोऽहं यश्च यतश्चाहं भगवांस्तद् ब्रवीतु मे ।।" (वा० रा० ६।११७।११)"

बुल्के के उपर्युक्त सभी तर्क कुशकाशावलम्बन ही हैं । स्वयं भगवान् विष्णु नररूप में प्रकट हुए हैं, अतः अपने इस स्वीकृत रूप के अनुकूल ही मनुष्य जैसा उनका व्यवहार उचित ही है । वास्तव में बुल्के को हिन्दी विभागाध्यक्ष होते हुए भी साहित्य का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है । यदि होता तो वे 'पूर्वं मया' इस लोक में आये हुए 'नूनम्' शब्द का विश्वास करना अर्थ नहीं करते । क्योंकि 'नूनम्' शब्द यहाँ उत्प्रेक्षा वाचक है, जैसा कि "मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः । उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः ।।" इस कोष से सिद्ध होता है । तदनुसार दुःखों के मूल के रूप में दुष्कृतों की कल्पना भी होती ही है ।

वस्तुतः भारतीय शास्त्रों का परस्पर एक दूसरे से सम्बन्ध होता है । **योगवासिष्ठ** एवं पुराणों के अनुसार देवकार्यार्थ विष्णु ने भृगुपत्नी का वध किया था, भृगु ने शाप दिया था कि तुम अज्ञानी हो जाओगे और स्त्री-निमित्तक दुःख पाओगे । नारद का भी शाप था कि स्त्री-निमित्तक दुःख भोगोगे । तुलसीदासजी ने भी इस शाप की चर्चा की है । यद्यपि वह देव-कार्यार्थ ही था और ईश्वर का पुण्य-पाप से संसर्ग नहीं होता तथापि भगवान् विष्णु ने ऋषियों का शाप अङ्गीकार किया था । इसलिए अज्ञान एवं शोक, विलाप आदि उनमें दृष्ट हुए हैं । इसी दृष्टि से राम कहते हैं कि मैं अपने को साधारण मनुष्य मानता हूँ ।

यदि बुल्के ईमानदारी से विचार करें तो वे भी मानेंगे कि—

"**आत्मानं मानुषं मन्ये**" इस श्लोक से भी राम की ब्रह्मरूपता ही सिद्ध होती है । कब, किससे और किस सन्दर्भ में राम ने उक्त वचन कहा है और साथ ही उसका क्या उत्तर मिला आदि प्रश्नों पर पूर्वापरप्रसङ्गों के तारतम्य को बनाये रखते हुए विचार करने पर निस्सन्देह सिद्ध हो जाता है कि वाल्मीकिरामायण में राम को ब्रह्म कहा गया है और ये वचन अथवा सर्ग प्रक्षेप नहीं हैं । फिर इस पद्य में 'मन्ये' शब्द उत्प्रेक्षावाचक ही है, इसलिए उसका 'समझता हूँ' यह अर्थ करना बुल्के के साहित्य ज्ञान को चुनौती देता है ।

यदि बुल्के उपर्युक्त श्लोक **'आत्मानं मानुषं मन्ये'** (वा० रा० ६।११७।११) को प्रक्षेप मानते हैं तब तो उनके द्वारा राम मनुष्य हैं अवतार नहीं हैं यह भी नहीं कहा जा सकता । यदि यह वचन क्षेपक नहीं है तो इससे सम्बद्ध पूर्वापर भी वचन क्षेपक नहीं हैं ।

रामाभिरामी टीका सम्मत पाठ के अनुसार प्रसङ्ग निम्नाङ्कित है—

११६ वें सर्ग में सीता वानरों, ऋक्षों और राक्षसों के समक्ष प्रज्वलित चिता में निःशङ्क होकर प्रवेश करती है। ऋषियों ने, देवताओं और गन्धर्वों ने यज्ञ की पूर्णाहुति एवं मन्त्र-संस्कृत वरोर्धारा के समान अग्नि में प्रवेश करती हुई सीता को देखा। सर्ग ११७ में धर्मात्मा राम खिन्न तथा वाष्पव्याकुललोचन होकर मुहूर्त भर ध्यान-परायण हुए। तदनन्तर ही राजा वैश्रवण (कुबेर) तथा पितरों के साथ यम तथा सहस्राक्ष देवेन्द्र और जलेश्वर वरुण और त्रिनेत्र वृषभध्वज महादेव तथा लोकपितामह ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ ब्रह्मा आदि देवता सूर्य-संनिभ विमानों द्वारा लङ्का नगरी में राम के पास आये और प्राञ्जलि हो राघव से बोले, "आप सब लोकों के कर्ता हैं, देवताओं में श्रेष्ठ हैं, फिर अग्नि में प्रवेश करती हुई सीता की उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? देवताओं में श्रेष्ठ ! आप अपने को क्यों नहीं जान रहे हैं ? यहाँ देवगण, इन्द्र आदि से भी राम को श्रेष्ठ कहा गया है।

नागेश के अनुसार यह बात **'विष्णुमुखा वै देवाः'** इस श्रुति से भी सिद्ध है। राम ने कहा कि मैं तो अपने को दशरथ-पुत्र (शापादिवशात्) उत्प्रेक्षित करता हूँ। मैं तत्त्वतः जो हूँ और जैसा हूँ वह आप भगवान् बतायें। पश्चात् ब्रह्माजी ने कहा —

भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ॥ १३ ॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ॥ १४ ॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः ॥ १५ ॥
सेनानीर्ग्रामणीः सर्वं त्वं बुद्धिस्त्वं क्षमा दमः।
प्रभवश्चाव्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः ॥ १६ ॥
इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत्।
शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ॥ १७ ॥
सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ॥ १८ ॥
सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चापि पूर्वजः।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परात्परः ॥ १९ ॥
प्रभवं निधनं चापि नो विदुः को भवानिति।
दृश्यसे सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥ २० ॥
दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु नदीषु च।
सहस्रचरणः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रदृक् ॥ २१ ॥
त्वं धारयसि भूतानि पृथिवीं सर्वपर्वतान्।
अन्ते पृथिव्याः सलिले दृश्यते त्वं महोरगः ॥ २२ ॥
त्रींल्लोकान् धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान्।
अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती ॥ २३ ॥
देवा रोमाणि गात्रेषु ब्रह्मणा निर्मिताः प्रभो।
निमेषस्ते स्मृता रात्रिरुन्मेषो दिवसस्तथा ॥ २४ ॥

संस्कारास्त्वभवन् वेदा नैतदस्ति त्वया विना।
जगत् सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्॥ २५॥
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षणः।
त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुरा स्वैर्विक्रमैस्त्रिभिः॥ २६॥
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा सुदारुणम्।
सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः॥ २७॥
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्।
तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां वर॥ २८॥
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम।
अमोघं देव वीर्यं ते न ते मोघाः पराक्रमाः॥ २९॥
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि॥ ३०॥
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च॥ ३१॥ (वा० रा० ६।११९)

अर्थात् आप भोक्ता और भोग्यरूप सकल प्रपञ्च के आश्रय साक्षात् नारायण हैं, सुदर्शन चक्रधारी श्रीविष्णु हैं, आप ही एकशृङ्ग वराह तथा भूत भव्य सभी सपत्नों (शत्रुओं) के विजेता हैं। आप ही आदि, अन्त और मध्य में रहनेवाले सत्य अक्षर हैं। सब लोकों के आप ही परम धर्म हैं। आप ही चतुर्भुज विष्वक्सेन, शार्ङ्गधन्वा, सर्वेन्द्रियनियामक हृषीकेश पुरुष एवं पुरुषोत्तम हैं। आप अजित खड्गधर विष्णु हैं एवं आप ही सेनानी एवं ग्रामणी हैं, आप ही बुद्धि, सत्त्व, क्षमा तथा दम हैं। जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के आप ही एकमात्र कारण हैं एवं आप ही मधुसूदन हैं। आप ही इन्द्रकर्मा इन्द्र की सृष्टि करनेवाले (सबके अधिपति) महेन्द्र हैं। रणान्तकृत् पद्मनाभ भी आप ही हैं। दिव्य महर्षि आपको शरणयोग्य परम आश्रय एवं रक्षक कहते हैं। आप ही सहस्रशृङ्ग वेद एवं शतशीर्ष महान् धर्म हैं। आप तीनों लोकों के आदिकर्ता स्वयंप्रभु हैं। आपका अन्य कोई प्रभु नहीं है। सिद्धों एवं साध्यों के आप ही आश्रय एवं पूर्वज अर्थात् कारण हैं। आप ही यज्ञ हैं और आप ही वषट्कार हैं। आप ही ओंकार हैं। आप परात्पर परमेश्वर हैं। आपकी उत्पत्ति एवं निधन कोई नहीं जानता अर्थात् आप उत्पत्ति तथा लय से रहित नित्य हैं। आप कौन हैं इसे लोग नहीं जानते, परन्तु आप अन्तर्यामी रूप से सब भूतों में विशेषरूप से गौ एवं ब्राह्मणों में दृष्टिगोचर होते हैं। अत्यन्त अचेतन सभी दिशाओं में, आकाश में एवं पर्वतों में, नदियों में अन्तर्यामी रूप से योगियों के आप दृष्टिगोचर होते हैं। आप सहस्रचरण, शतशीर्ष तथा सहस्रदृक् हैं। महाविराट् के रूप से संसार के सभी चरण, शीर्ष और नेत्र आप ही के हैं। सभी भूतों तथा पर्वतसहित पृथ्वी को आप ही धारण करते हैं। अन्त में पृथ्वी के कारणभूत जल में, देव, गन्धर्व, दानव सहित तीनों लोकों को धारण करनेवाले महोरग शेष आप ही हैं। श्रीराम! मैं (ब्रह्मा) आपका हृदय हूँ। सरस्वती आपकी जिह्वा हैं। ब्रह्मा के द्वारा निर्मित सभी देव आपके गात्रों के रोम हैं। आपका नेत्रनिमीलन रात्रि है एवं नेत्रोन्मीलन दिन है। आपके ज्ञान-विज्ञान संस्कार ही वेद हैं। वस्तुतः आपके बिना संसार कुछ भी नहीं है। सारा जगत् आपका वैराज शरीर है। आपकी स्थिरता वसुधातल है। आप का कोप ही अग्नि है। आपका प्रसाद ही श्रीवत्सलक्षण सोम है। आपने अपने तीन विक्रमों (पगों) से तीनों लोकों को आक्रान्त कर दारुण बलि को बाँधकर महेन्द्र को राजा बनाया है। सीता लक्ष्मी हैं। आप प्रजापति विष्णु कृष्ण हैं। रावण के वधार्थ ही आप मानव देह में प्रविष्ट हुए हैं। हे देव, वह रावण-वधादि हम देवताओं का कार्य आपके द्वारा सम्पन्न हो गया है। अब आप प्रसन्नता से परम धाम में पधारिये। हे देव, आपका अमोघ वीर्य एवं अमोघ पराक्रम है। आपका अमोघ दर्शन तथा अमोघ

स्तवन है। भूतल में होनेवाले आपके भक्त नर भी अमोघ (सर्वत्र सफल) होंगे। वे भक्त इहलोक के सब कामों (कामनाओं) को प्राप्त करेंगे और अन्त में आपके पुराण पुरुषोत्तम रूप को ही प्राप्त होंगे।

ब्रह्माजी के इन वचनों से भी स्पष्ट है कि राम ही परात्पर परब्रह्म हैं।

"आत्मानं मानुषं मन्ये" जैसे वचन के आधार पर ही यह समझा जा सकता है कि ब्रह्मा आदि ने राम से कहा था—

"कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुद्ध्यसे" (वा० रा० ६।११७।६)

तभी राम ने कहा कि मैं तो अपने को मनुष्य जानता हूँ, आप बतायें कि मैं कौन हूँ ? इसपर अवश्य ही ब्रह्मा ने भी कुछ कहा होगा। यदि पूर्वापरप्रसङ्ग को छोड़ दिया जाय तो बुल्के के द्वारा उद्धृत उक्त वचन सर्वथा असङ्गत ही होगा। उक्त वचन को बुल्के प्रक्षिप्त भी नहीं मानते।

राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। उनके द्वारा नारायण की प्रार्थना तथा विधाता आदि के प्रति अपराध हो जाने की भावना से डरना उचित ही है, क्योंकि उनके द्वारा मनुष्योचित क्रियाओं का अनुसरण लोकशिक्षार्थ ही है। **श्रीमद्भागवत** में स्पष्ट उल्लेख है कि भगवान् राम का मर्त्यावतार मर्त्य-शिक्षा के लिए ही है; केवल रावणादि राक्षसों के वधमात्र के लिए नहीं—

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्,
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।" (भा० पु० ५।१९।५)

राम चित्रकूट में पर्णशाला का संस्कार करते हैं, वैश्वदेव बलि तथा वैष्णव, रौद्र बलि और जप आदि सभी मनुष्योचित कार्य भी करते हैं—

**"वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च।
वास्तुसंशमनीयानि मङ्गलानि प्रवर्तयन्॥"** (वा० रा० २।५६।३१,३२)

१२८वें अनु० में बुल्के लिखते हैं, "**रामायण** के अनेक पात्र राम की तुलना विष्णु से करते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे राम और विष्णु को भिन्न समझते हैं। अन्य स्थलों पर भी कवि स्वयं इस तुलना का प्रयोग करते हैं (वा० रा० १।७८।२९;६।५९।१२५) अथवा अन्य पात्रों द्वारा करवाते हैं। अनसूया द्वारा (वा० रा० २।११८।२०), देवताओं द्वारा (वा० रा० ३।२३।२९;३।२४।२२;३।३०।३२) एवं अयोध्यानिवासियों द्वारा (वा० रा०२।२।४३)। न केवल राम की परन्तु अन्य पात्रों की भी तुलना विष्णु से की जाती है। उदाहरणार्थ रावण (वा०रा० ७।२०।५), अतिकाय (वा० रा० ६।७१।८), इन्द्रजित् (वा० रा० ६।७३।७) एवं हनुमान् (वा० रा०६।५६।३८)। दूसरी ओर राम की तुलना अन्य देवताओं से भी की जाती है।"

बुल्के का उपर्युक्त कथन भी निरर्थक ही है, क्योंकि काव्यों में कहीं-कहीं आंशिक गुणों के आधार पर भी तुलना की ही जाती है। **"रविरिव राजते राजा"** प्रसिद्ध ही है अर्थात् राजा सूर्य के तुल्य राजमान है।

विष्णु के साथ राम की तुलना किये जाने के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि वे राम को विष्णु से भिन्न मानते थे, क्योंकि वास्तविक अभिन्नता होने पर भी व्यावहारिक भिन्नता के आधार पर ही अभिन्न में भी तुलना होती ही है। इस तुलना में भी प्रकारान्तर से राम के ही महत्त्व का वर्णन किया गया है। प्रथम प्रसिद्ध विष्णु की उपमा दी जा सकती है, क्योंकि उपमान उपमेय की भिन्नता और उपमान की प्रसिद्धता लोकसिद्ध है। शङ्कराचार्य के अनुसार तो अभेद होने पर भी औपाधिक भेद के आधार पर भक्ति की उपपत्ति होती है—

"सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्,
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः।"

भेद न होने पर भी मैं आपका हूँ आप मेरे नहीं, क्योंकि समुद्र का तरङ्ग है यही व्यवहार होता है, तरङ्ग का समुद्र यह व्यवहार नहीं होता। "सागरः सागरोपमः" इत्यादि स्थलों में अभेद में भी तुलना की गयी है।

१२८ वें अनु० में बुल्के लिखते हैं, "राम की तुलना विष्णु से १८ बार की जाती है, इन्द्र से ७७ बार। कई स्थानों पर राम तथा लक्ष्मण की तुलना क्रमशः इन्द्र तथा विष्णु से की गयी है जिससे स्पष्ट है कि विष्णु की अपेक्षा इन्द्र श्रेष्ठ माने जाते हैं (वा० रा० ६।१९।१२;६।३३।२८; ३।६८।२८)।

एक उदाहरण पर्याप्त होगा—

"ततो राममभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थः शक्रस्येन्द्रानुजो यथा॥" (वा० रा० ६।४१।४)

अर्थात्—लक्ष्मण भ्राता राम के समीप आकर अभिवादन कर वैसे ही समीप में बैठ गये जैसे इन्द्र के समीप उपेन्द्र बैठते हैं।

इस उद्धरण में वैदिक साहित्य के अनुसार विष्णु इन्द्र के अनुज माने जाते हैं। वैदिक साहित्य के अनुसार भी प्रामाणिक 'आदिरामायण' में इन्द्र सर्वश्रेष्ठ देवता थे। राम की विजय इन्द्र की सहायता से होती है। यह भी इन्द्र की श्रेष्ठता को सूचित करता है।"

बुल्के का उक्त कथन भी अकिञ्चित्कर है, क्योंकि 'आदिरामायण' नामक कोई ग्रन्थ प्रसिद्ध नहीं है। बुल्के एवं अन्य पाश्चात्य विद्वानों द्वारा **रामायण** एवं **महाभारत** के सम्बन्ध में ऐसी विविध दुष्कल्पनाएँ की गयी हैं जिनका उद्देश्य प्रसिद्ध **रामायण** एवं **महाभारत** में शङ्का उत्पन्न करना है। अपने अनुकूल अर्थवाले कतिपय श्लोकों को आदिरामायणस्थ बताते हुए प्रामाणिक मान लेना प्रतिकूल अर्थ के द्योतक अन्य श्लोकों को प्रक्षेप कह कर अप्रामाणिक कह देना असङ्गत है। विशेषतः जब कि 'आदिरामायण' नामक कोई भी प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

विष्णु की अपेक्षा इन्द्र की श्रेष्ठता की बात भी निराधार है। लक्ष्मण को इन्द्रानुज की उपमा देने मात्र से यह नहीं सिद्ध होता; वस्तुतः वामनावतारधारी विष्णु ही इन्द्र के अनुज हैं। मूलविष्णु नहीं; जैसे रामादि अन्य अवतार हुए हैं वैसे ही उपेन्द्र या वामनावतार भी हुआ है। यह वामन ही इन्द्र के अनुज हैं। यह कथा पुराणों के अतिरिक्त **वाल्मीकिरामायण** में भी वर्णित है। कश्यप ने कठिन तपस्या कर विष्णु से वरदान माँगा है कि आप मेरी पत्नी अदिति के गर्भ से पुत्ररूप में प्रकट होकर इन्द्र के छोटे भाई बनकर शोकार्त देवों की सहायता करें—

"वरं वरद सुप्रीतो दातुमर्हसि सुव्रत।
पुत्रत्वं गच्छ भगवन्नदित्या मम चानघ॥
भ्राता भव यवीयांस्त्वं शक्रस्यासुरसूदनः।
शोकार्तानां तु देवानां साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥" (वा० रा० १।२९।१६, १७)

तदनन्तर विष्णु अदिति में वामनरूप से उत्पन्न हुए और बलि के पास गये—

"अथ विष्णुर्महातेजाः अदित्यां समजायत।
वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत्॥" (वा० रा० १।२९।१९)

इस तरह वामनरूप से भगवान् विष्णु इन्द्र के अनुज हुए और उपेन्द्र कहलाये। उपेन्द्र आख्यात होने पर भी वस्तुतः इन्द्र की अपेक्षा उपेन्द्र का ही सर्वाधिक महत्त्व एवं पूज्यता है—ठीक उसी तरह जैसे **श्रीमद्भागवत** और **महाभारत** के अनुसार श्रीकृष्ण बलराम के छोटे भाई हैं। अतः व्यवहारतः श्रीकृष्ण उनको प्रणाम करते हैं, उनकी आज्ञा भी मानते हैं तथापि श्रीकृष्ण ही पूर्ण परब्रह्म होने के कारण सर्वोत्कृष्ट एवं पूज्य हैं, बलराम श्रीकृष्ण के ही अंश और उपासक हैं। लोकदृष्ट्या श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से छोटे थे, भीष्म की दृष्टि से बहुत ही छोटे थे तो भी भीष्म, युधिष्ठिर आदि सभी कृष्ण के उपासक थे और उनको परब्रह्म और परम पूज्य मानते थे। अस्तु, उपेन्द्र इन्द्र के छोटे भाई होते हुए भी इन्द्र के लिए वैसे ही आदरणीय एवं पूज्य हैं जैसे बलराम के लिए श्रीकृष्ण। उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि विष्णु की अपेक्षा इन्द्र का श्रेष्ठत्व कहना निराधार है।

वेदों में विष्णु को परब्रह्मरूप कहा गया है, परन्तु इन्द्र देवताओं के राजा देवश्रेष्ठमात्र हैं। विष्णु का स्वरूपभूत प्राप्य पद परम उत्कृष्ट है जिसे व्यवहारविरत विद्वान् सूरि ही देख पाते हैं। **"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरय"** (ऋ० सं० १।२२।२१) **"तद्विप्रासो विपन्यवः"** (ऋ० सं १।२२।२१)। मन्त्रों में कहा गया है कि पुराकाल में चतुर्मुख ने जिस परम पुरुष की स्तुति की है और प्रविद्वान् शक्र, इन्द्र ने भी जिसकी स्तुति की है उस परब्रह्म विष्णु को जानकर ही अमृतत्व मिलता है। जहाँ "**इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते**" (ऋ० सं० ६।४७।१८) आदि स्थलों में इन्द्र शब्द का परमेश्वर ही अर्थ है। वहाँ तो इन्द्र और विष्णु, दोनों एक ही तत्त्व हैं। अतः वहाँ एक के उत्कर्ष और दूसरे के अपकर्ष का प्रश्न ही असम्भव हो जाता है।

बुल्के कहते हैं, "राम की विजय इन्द्र की सहायता से होती है। यह भी इन्द्र की श्रेष्ठता को सूचित करता है।" किन्तु वस्तुस्थिति की सर्वथा उपेक्षा कर ही वे ऐसा कह पाते हैं। उपेन्द्र की सहायता से इन्द्र इन्द्रासन पर रह पाते हैं। इस दृष्टि से उपेन्द्र ही इन्द्र की तुलना में श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं. अतः इन्द्र उपेन्द्र से श्रेष्ठ हैं, ऐसा बुल्के का उपर्युक्त कथन सुतरां बाधित हो जाता है। यथार्थतः इन्द्रादि देवताओं के हितार्थ ही राम ने रावण का वध किया; अतः राम की सहायता करना इन्द्र का कर्तव्य ही था। यह सहायता भी वैसी ही थी जैसी की वानर और भालुओं द्वारा की गयी सहायता। क्या इससे यह तात्पर्य लिया जाय कि वानर और भालू राम से श्रेष्ठ थे?

बुल्के लिखते हैं,[१] "इन्द्र शरभङ्ग से बातचीत करते हुए और राम को आते देखकर साथ के देवताओं से कहते हैं—राम इधर आ रहे हैं। उनके यहाँ आने के पूर्व ही हम लोग यहाँ से चले जायँ, क्योंकि राम मुझको देखने योग्य नहीं हैं। जब राम रावण पर विजय प्राप्त करेंगे तब उनकी मुझसे भेंट होगी (वा० रा० ३।५।२२)। इस वृत्तान्त से जो ध्वनि निकलती है वह विष्णु नारायण अक्षर ब्रह्म के अवतार राम (वा० रा० ३।११।७) से कितनी दूर है।"

किन्तु इन्द्र के वाक्यों का यथार्थ अर्थ न समझ कर ही बुल्के वैसा कहते हैं गौ० पाठ के अनुसार—

"यास्याम्यहमयं रामो यावन्मां नाभिभाषते।
कृतार्थमेनमचिराद् द्रष्टास्म्यहमरिन्दम्॥"

हम लोग राम के भाषण से पहले चले जायँ, शीघ्र कृतार्थ होनेपर राम को देखेंगे। दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार—

"यतः समभिगच्छन्तं प्रेक्ष्य रामं शचीपतिः।
शरभङ्गमनुज्ञाप्य विबुधानिदमब्रवीत्॥

१. रामकथा, पृ० १३७।

इहोपयात्यसौ रामो यावन्मां नाभिभाषते।
निष्ठां नयत तावत्तु ततो मा द्रष्टुमर्हति ॥
जितवन्तं कृतार्थं हि तदाहमचिरादिमम्।
कर्म ह्यनेन कर्तव्यं महदन्यैः सुदुष्करम् ॥ (वा० रा० ३।५।२१-२३)

उपर्युक्त श्लोकों का शुद्ध अर्थ है : शरभङ्ग मुनि के आश्रम में आते हुए रामको देखकर इन्द्र ने शरभङ्ग से जाने की अनुमति लेकर देवताओं से कहा कि राम इधर आ रहे हैं। वे मुझसे भाषण करें उसके पूर्व ही हम लोग अदृश्य हो जायँ, क्योंकि विपन्नसी अवस्था में होने के कारण राम का मुझे देखना योग्य नहीं है। नागेशभट्ट कहते हैं कि—"विपदीव स्थितेन वैभवस्थदर्शनम् अनुचितम्" विपद्ग्रस्त के लिए वैभव में स्थित का दर्शन उचित नहीं है। इससे यह नहीं सिद्ध होता कि राम में इन्द्र के दर्शन की योग्यता नहीं है। उनमें कुछ कमी है। हाँ यह प्रश्न हो सकता है कि राम इन्द्र के दर्शन के योग्य क्यों नहीं हैं? इन्द्र जिन शरभङ्ग को लेने के लिए उनके आश्रम में गये थे वे शरभङ्ग राम से कहते हैं—राम, शचीपति इन्द्र मुझे अकृतात्माओं के दुष्प्राप्य उग्र तप से विजित ब्रह्मलोक ले जाना चाहते हैं, परन्तु नर-व्याघ्र तुम्हें समीप में आया जानकर बिना प्रिय अतिथि तुमको देखे मैं ब्रह्मलोक नहीं जाऊँगा—

"अहं ज्ञात्वा नरव्याघ्र वर्तमानमदूरतः।
ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम् ॥" (वा० रा० ३।५।२९)

इसके अतिरिक्त यदि राम इन्द्र के द्वारा देखे जाने योग्य नहीं थे तो रावण-वध के बाद वह योग्यता कैसे आ जाती? बुल्के इस प्रश्न का क्या उत्तर देंगे? इन्द्र स्वयं ही कह रहे हैं कि इनको अति दुष्कर कर्म करना है, अतः विजयी तथा कृतकार्य होने पर ही मैं इनका दर्शन करूँगा। सम्बद्ध श्लोक में "जितवन्तं कृतार्थं" अधूरा वाक्य है, अतः 'द्रक्ष्यामि' क्रिया का अध्याहार करना होगा। तथाच इस इन्द्रवाक्य का निष्कर्ष यह है कि अभी वनवास-दशा में नहीं किन्तु रावण पर विजय प्राप्त करने के अनन्तर पूर्ण वैभव दशा में मैं इनका दर्शन करूँगा। "सर्वथापि राम मुझे देखने योग्य नहीं हैं" बुल्के का यह अर्थ अशुद्ध है।

"स मामनादाय वनं न त्वं प्रस्थितुमर्हसि।" (वा० रा० २।३०।१०)

जनकनन्दिनी सीता कह रही हैं, "मुझको बिना लिए आपको वन जाना उचित नहीं है।" उक्त वचन का यह तात्पर्य कदापि नहीं लिया जा सकता कि सीता को लिये बिना राम में वन जाने की योग्यता नहीं है। ऐसे स्थानों में औचित्यबोध ही 'अर्ह' धातु का अर्थ है; **गन्तुं नार्हसि, वक्तुं नार्हसि, भोक्तुं नार्हसि** इत्यादि प्रयोगों द्वारा किसी में गमन, वचन एवं भोजन की अयोग्यता का प्रतिपादन नहीं होता। 'अर्हति' क्रिया के आधार पर बुल्के ने राम में इन्द्र के दर्शन की योग्यता नहीं है, ऐसा अर्थ लगा कर अपनी ही कलुषित भावनाओं का परिचय दिया है, साथ ही साहित्य ज्ञान शून्यता का भी। **शब्दकल्पद्रुम कोष** के अनुसार "अर्हति योग्यो भवति, उपयुक्तो भवति, उचितो भवति।" अर्थात् 'अर्हति' पद का प्रयोग योग्य, उपयुक्त और उचित, तीनों ही अर्थों में किया जाता है। 'उचित' अर्थ में प्रयुक्त 'अर्हति' शब्द का उदाहरण **श्रीमद्भगवद्गीता** में मिलता है—

"तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान् स्वबान्धवान्।" (भ० गी० १।३७)

अपने बान्धव धार्तराष्ट्रों का हनन करना हम लोगों के लिए उचित नहीं है। यहाँ भी ऐसा अर्थ नहीं किया जाता कि हम लोगों में उन लोगों को मारने की योग्यता नहीं है।

साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यदि इन्द्र राम से मिलते तो वे उनकी वैसी ही स्तुति करते जैसे युद्धकाण्ड में मिलने पर उन्होंने देवताओं के साथ स्तुति की थी। इस स्थिति में राम की विष्णुरूपता स्पष्ट हो जाने से रावण के वध में उसके द्वारा प्राप्त वरदान के कारण ही बाधा पड़ती, क्योंकि उसका वध नर से ही होना

था किसी देवता से नहीं। इस दृष्टि से रावणवध के अनन्तर ही सब देवता राम से मिले थे और उनकी स्तुति करते हुए उन्हें विष्णु या परब्रह्म कहा। 'सुन्दरकाण्ड' में हनुमान् ने स्पष्ट कहा है कि राम के सामने युद्ध में ब्रह्मा, रुद्र या इन्द्र कोई भी टिक नहीं सकता—

"ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा।
इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥"
(वा० रा० ५।५१।४४)

फिर भी इन्द्र को राम से श्रेष्ठ कह कर राम को इन्द्र के दर्शन के अयोग्य ठहराना बुल्के की धृष्टता और अज्ञान ही है।

कृष्णयजुर्वेदीय **तैत्तिरीयसंहिता** द्वितीयाष्टक द्वादश अनुवाक में निम्नाङ्कित एक आख्यायिका है। त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का इन्द्र ने वध किया था, अतः त्वष्टा ने इन्द्ररहित सोमयाग किया। उसमें इन्द्र का आह्वान नहीं किया गया। इन्द्र ने यज्ञ का विघात कर बलात् सोमपान कर लिया। त्वष्टा ने अवशिष्ट सोम से इन्द्र-वध के लिए आहवनीय अग्नि में होम किया। उस होम में "इन्द्रशत्रो विवर्धस्व" मन्त्र का उच्चारण किया गया। इस मन्त्र का अर्थ है इन्द्र का शातयिता (घातक) पुरुष उत्पन्न होकर वृद्धि को प्राप्त हो। परन्तु मन्त्र में स्वर की त्रुटि हो गयी। तत्पुरुषसमास के अनुसार घातक पुरुष की उत्पत्ति हो सकती थी और उसका द्योतक अन्तोदात्त स्वर होता है। त्वष्टा ने मन्त्र में अन्तोदात्त स्वर का प्रयोग न कर भूल से आद्युदात्त स्वर का प्रयोग किया जो बहुव्रीहिसमास का द्योतक हो गया। इस स्वरदोष के कारण मन्त्र का "इन्द्र जिसका शातयिता (घातक) है, वह इन्द्रशत्रु वृद्धि को प्राप्त हो" ऐसा अर्थ हो गया, फलतः होम से वृत्रासुर उत्पन्न हुआ और वृद्धि को भी प्राप्त हुआ, परन्तु वह इन्द्र का घातक न हो सका। इन्द्र ही उसके घातक हुए। वह वृत्र, धनुष द्वारा प्रक्षिप्त बाण जितनी दूर जाता है उतने परिमाण में, प्रतिदिन बढ़ने लगा। इस वृद्धि के द्वारा उसने सब लोकों को आवृत कर लिया। उसका नाम वृत्र हुआ। उसकी इस वृद्धि से ही इन्द्र की ही भाँति स्वयं त्वष्टा भी चिन्तित हुए, अतः वृत्र को मारने के लिए इन दोनों ने मैत्री कर ली। त्वष्टा ने मन्त्र से अभिमन्त्रित जल से वज्र को सिक्त किया। वह वज्र अभिमन्त्रित होने से तपोरूप हो गया। इन्द्र उसे उठाने में समर्थ नहीं हुए। तब इन्द्र ने विष्णु से सहायता के लिए प्रार्थना की। वृत्रासुर के वीर्य का स्मरण कर इन्द्र भयभीत हुए। इन्द्र ने विष्णु से कहा कि हम दोनों वृत्र के वीर्य का हरण करें। विष्णु ने अपनी तीन मूर्तियाँ बनाकर उन्हें लोकरक्षा के लिए स्थापित किया। पृथिवी में स्थापित तीसरे विष्णु-शरीर को आगे कर इन्द्र ने विष्णु के पीछे स्थित होकर वज्र उठाया। वृत्र भयभीत हुआ। उसने कहा मेरे शरीर को मत मारो। मेरे शरीर के वीर्य (शक्ति) में पृथ्वी भर में व्याप्त हो जाने की क्षमता है। वह सब मैं तुम्हें देता हूँ। इन्द्र ने उसको स्वीकार कर विष्णु से कहा आप मुझको धारण करें, यह कहते हुए उस वीर्य को विष्णु के लिए सादर प्रदान कर दिया। विष्णु ने भी इन्द्र के हितार्थ ही उस वीर्य को ग्रहण किया।

पुनश्च विष्णु का जो दूसरा रूप अन्तरिक्ष में था उससे युक्त होकर इन्द्र ने वज्र उठाया; फिर, वृत्र ने कहा, "मुझ पर प्रहार मत करो, मुझमें जो वीर्य है उसे मैं तुम्हें देता हूँ" और उसने प्रदान किया; इन्द्र ने ग्रहण किया और पुनः विष्णु से कहा कि पहले के समान दूसरी बार भी मुझको धारण करो (सँभालो) और विष्णु को वह वीर्य दे दिया। विष्णु ने इन्द्र के हितार्थ ही पुनः उस वीर्य को भी स्वीकार किया।

पुनश्च द्युलोक में जो विष्णु का तीसरा रूप था उससे युक्त होकर इन्द्र ने वज्र उठाया; पुनः वृत्र ने भयभीत होकर अपना वीर्य प्रदान करने को कहा। इन्द्र ने अङ्गीकार किया। इस बार वृत्र ने कहा, "हम दोनों सन्धि कर लें। इन्द्र, मैं तुममें प्रवेश करूँगा।" इन्द्र ने कहा मुझमें प्रवेश कर तुम मुझको ही खा जाओगे। वृत्र ने

कहा नहीं, तुमको नहीं खाऊँगा। तुम्हारे उदर की अग्नि को उद्दीप्त करूँगा जो तुम्हारे लिए बहुविध अन्नभक्षण के लिए उपयोगी होगा। यह कह कर वृत्र इन्द्र में प्रविष्ट हो गया। यह सब इन्द्र के हवि का त्रिधा विभाग और इन्द्र-विष्णुमिलित देवतात्व की प्रशंसा है।

तस्मादिन्द्रोऽबिभेदपि त्वष्टा तस्मै वज्रमसिञ्चत्तपो वै स वज्र आसीत्तमुद्यन्तुं नाशक्नोदथ वै तर्हि विष्णुः (२) अन्या देवतासीत् सोऽब्रवीद्विष्णवे हीदमाहरिष्यावो येनायमिदमिति स विष्णुस्त्रेधात्मानं वि न्यधत्त। पृथिव्यां तृतीयमन्तरिक्षे तृतीयं दिवि तृतीयम् अभिपर्य्या वर्त्ताद्धयबिभेद् यत् पृथिव्यां तृतीयमासीत्तेनेन्द्रो वज्रमुदयच्छत् विष्ण्वनुस्थितः सोऽब्रवीन्मा मे प्रहरास्ति वा इदम् (३) मयि वीर्य्यं तत्ते प्रदास्यामीति तदस्मै प्रायच्छत् तत्प्रत्यगृह्णादधा मेति तद्विष्णवेऽतिप्रायच्छत् तद् विष्णुः प्रत्यगृह्णाद-स्मास्विन्द्र इन्द्रियं दधात्विति।

इस प्रघट्टक से स्पष्ट है कि विष्णु की सहायता से ही इन्द्र वज्र उठाने में समर्थ हुए; विष्णु ने ही वृत्रदत्त वीर्य (शक्ति) को भी धारण किया। अतः इन्द्र की अपेक्षा विष्णु की विशेष महत्ता स्वयं सिद्ध हो जाती है। वैदिक साहित्य में कहीं भी इन्द्र की अपेक्षा विष्णु को अपकृष्ट या विष्णु की अपेक्षा इन्द्र को उत्कृष्ट नहीं कहा गया है। वेद के अनेक मन्त्रों में विष्णु के स्वरूप को ही परमपद और सूरिवेद्य कहा गया है—

"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।" (ऋ० सं० १।२२।२०)

सूरयः विद्वांस ऋत्विगादयः। विष्णोः। परमम् उत्कृष्टम्। तत्तत् शास्त्रप्रसिद्धम्। पदं स्वर्ग-स्थानम्। शास्त्रदृष्ट्या सदा। पश्यन्ति। दिवीव आकाशे यथा। आततं सर्वतः प्रसृतम्। चक्षुः। तद् यथा निरोधाभावेन विशदं पश्यति तद्वत्।

विद्वान् लोग विष्णु के उत्कृष्ट शास्त्रप्रसिद्ध पद (स्वरूप) को शास्त्रदृष्टि से इस तरह सदा देखते हैं जैसे निरोध न रहने के कारण आकाश में सर्वतः प्रसृत चाक्षुष तेज विशदरूप से देखता है।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम् (ऋ० सं० १।२२।२१)।

विष्णोः। यत्। परमं। पदं पूर्वोक्तमस्ति। तत् पदम्। विप्रासो मेधाविनः समन्धिते सम्यक् दीपयन्ति। कीदृशाः, विपन्यवः विशेषेण स्तुतिकर्तारः। विष्णु के पद को मेधावी लोग सम्यक् प्रकाशित करते हैं जो शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में प्रमादरहित रहकर जागरूक रहते हैं।

जागृवांसः शब्दार्थयोः प्रमादराहित्येन जागरूकाः।

उपर्युक्त वचनों से विष्णु की परमेश्वरता प्रसिद्ध है।

✽

सप्तम अध्याय

रामकथा का प्रारम्भिक विकास

बुल्के लिखित **रामकथा** में १२९ वें अनु० में कहा गया है ''वैदिक साहित्य में आख्यान, इतिहास तथा पुराण मिलते हैं। ये ब्राह्मणों के अर्थवाद के एक आवश्यक अङ्ग समझे जाते थे। प्राचीन काल से धार्मिक संस्कारों तथा यज्ञों के अवसर पर ऐतिहासिक तथा पौराणिक इन्हें सुनाते थे। (शत० ब्रा० १३।४।३) तथा अर्वाचीन वैदिक साहित्य (शा० गृ० सू० १।२२।११) में ये पाँचवें वेद कहे जाते हैं—

''अथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमम्।'' (छा० उ० ७।१।२)

आख्यानों के गद्य के साथ जो पद्य दिया जाता था, उसे गाथा कहा गया है। प्रारम्भ से ही दानस्तुति-स्वरूप 'नाराशंसी' गाथाओं का उल्लेख मिलता है (ऋ० सं० १०।८५।६) और इनके विषय में कहा जाता है कि ये सब झूठी हैं **'गाथानृतं नाराशंसी'** (का० सं० १४।५)। इस नाराशंसी गाथासाहित्य के रचयिता तथा रक्षक राजदरबारों में रहनेवाले सूत थे। इनके अतिरिक्त कुशीलव जनसाधारण में इन गीतों का प्रचार करते थे।''[1]

वेद और वेदान्त के रहस्य के अनभिज्ञ प्राश्चात्यों की उक्त कल्पना अशुद्ध एवं निराधार है। वैदिक साहित्य के आख्यान तथा इतिहासपुराण अपौरुषेय वेदरूप ही हैं। ऋक्, साम, यजुः तथा अथर्व के मन्त्रों, ब्राह्मणों, आरण्यकों एवं उपनिषदों में आनेवाले आख्यान या पुराण-इतिहास सब अनादि अपौरुषेय ही हैं। वे ब्राह्मणों के नहीं किन्तु विधियों के अर्थवादरूप होते हैं; विधि-अर्थवाद स्वयं भी ब्राह्मण के अन्तर्गत हैं; इन वैदिक आख्यानों को वैदिक ही सुनाते थे, पौराणिक या ऐतिहासिक नहीं। मन्त्रों तथा ब्राह्मणों में आनेवाले आख्यान तथा इतिहास-पुराण तो वेद ही हैं, पञ्चम वेद नहीं। पञ्चम वेद तो पौरुषेय **महाभारत**, **रामायण**, इतिहास तथा **पद्मपुराण**, **नारदीयपुराण** आदि आर्ष इतिहास-पुराण ही हैं।

आख्यानों के गद्य के साथ जो पद्य दिया जाता है; उसे गाथा बौद्धों के यहाँ ही कहा जाता है। वेदों तथा पुराणों में तो पद्यों के साथ भी पद्यरूप गाथाएँ मिलती हैं। नाराशंसी गाथा वेदरूप ही हैं। मनुष्यों के स्तुतिवाले मन्त्र ही नाराशंसी कहे जाते हैं। मनुष्यों तथा उनके दान आदि के स्तुतिरूप मन्त्र नाराशंसी होते हैं। नरों की आशंसा (प्रशंसा) ही नाराशंसी है। ये सब सुखावबोधार्थ कल्पित आख्यायिका रूप होते हैं। इसी लिए स्वार्थ में अनृत कहे जाते हैं अर्थात् वस्तुतः किसी नर के वर्णन में उनका तात्पर्य नहीं होता है। सम्पूर्ण वेदों का धर्म या ब्रह्म ही मुख्य अर्थ है। परमार्थ वस्तु ब्रह्म ही सब वेदों का अर्थ है—

''सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।''
''वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः॥''

इत्यादि श्रुति और स्मृति इसमें प्रमाण हैं जब कि बुल्के के कथन में कुछ भी प्रमाण नहीं है।

गाथा नाराशंसी भी मन्त्र, ब्राह्मणादिरूप होते हैं। वे भी अपौरुषेय होते हैं। उनका रचयिता कोई नहीं होता। राजदरबारों के सूत आदि को तो इनके पठन का भी अधिकार नहीं है। मुख्य पुराणप्रवक्ता उग्रश्रवा सूत तथा उनके पुत्र सौति भी आर्ष इतिहास-पुराण के ही प्रवचन में अधिकृत थे। इसी लिए **श्रीमद्भागवत** में कहा है—

---

१. एम्. विंटरनित्सः हि० इं० लि० भाग १, पृष्ठ ३१४।

"स्नातमन्यत्र छान्दसात् ।"

अर्थात् सूत छन्दोविषय से अन्यत्र पुराणेतिहास में ही निष्णात थे, छन्द (वेद) में नहीं। यद्यपि वे मुख्य सूत जाति नहीं थे, किन्तु राजा पृथु के यज्ञ में ऐन्द्रबार्हस्पत्य हवि के विपर्यास से अग्निकुण्ड से उद्भूत हुए थे, अतः ऋषियों ने उन्हें इतिहास-पुराण का प्रवक्ता बनाया था। इसी लिए कौटिल्य ने दो प्रकार के सूतों का निर्देश किया है। कुशीलव भी लौकिक गाथाओं का ही प्रचार कर सकते थे, वैदिक गाथाओं का नहीं; क्योंकि वेदों में त्रैवर्णिक संस्कृत द्विज जाति का ही अधिकार है, अन्य का नहीं। यह पूर्वोत्तरमीमांसा अपशूद्राधिकरण में प्रसिद्ध है।

"रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥" (ऋ० स० १०।८६।६)

"सूर्या सावित्री ब्रूते रैभी रैभ्यः काश्चनर्चः।" (रैभीः शंसति ऐ० ब्रा० ६।३२)

रैभी अनुदेयी दीयमानवधूविनोदनायानुदीयमाना वयस्या आसीत्। तथा नाराशंसी मनुष्याणां स्तुतिः। न्योचनी वधूशुश्रूषार्थं दीयमाना दासी। सूर्याया मम भद्रं वासः विचित्रं दुकूलादिकं गाथया परिष्कृतम् अलङ्कृतम्। एति।

उक्त मन्त्र में स्तुति की दृष्टि से कहा गया है कि सूर्या सावित्री के विवाह में रैभी संज्ञक ऋचाएँ सूर्या को वयस्या (सखी) के रूप में, नाराशंसी ऋचाएँ न्योचनी (दासी) के रूप में और गाथा उसके वस्त्र तथा अलङ्कार के रूप में दी गयी थीं। इससे स्पष्ट है कि यहाँ नाराशंसीया गाथा वेद-मन्त्र ही हैं। इनमें सूत आदि का अधिकार नहीं है। **रामायण** के 'कुशीलवौ' तो कुश और लव राम के पुत्र क्षत्रिय थे। वे 'कुशीलव' नृत्य-गीतोपजीवी जाति के नहीं थे। इसी लिए रामायण में 'कुशीलवः' या 'कुशीलवाः' जैसा प्रयोग कहीं नहीं मिलता; जो 'कुशीलवौ' प्रयोग मिलता है वह द्विवचनान्त ही है। अतः यह शब्द कुश और लव के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

गाथाएँ वैदिक, पौराणिक आदि अनेक प्रकार की होती हैं। लौकिक गाथाओं को सूत आदि भी गा सकते थे।

अथ सायं धृतिषु हूयमानासु राजन्यो वीणागाथी दक्षिणत उत्तरमन्द्रामुदाघ्नंस्तिस्रः स्वयं संभृता गाथा गायतीत्ययुध्यतेत्यमुं संग्राममजयदिति तस्योक्तं ब्राह्मणम्।" (श० ब्रा० १३।४।३।५)

उक्त ब्राह्मण में कहा गया है कि वीणागाथी स्वयं रचित गाथा गाता है। इस राजन्य ने अमुक संग्राम जीता है।

"अथाह वीणागाथिनो राजानं सङ्गायतेति।" (शा० गृ० सू० १।२२।११)

यजमान वीणागाथियों से कहता है सोमराजा की गान द्वारा स्तुति करो।

"यस्यैवंविदेतद्धोता पारिप्लवमाख्यानमाचष्टे।" (श० ब्रा० १३।४।३।१५)

उक्त ब्राह्मण से प्रतीत होता है कि होता ही पारिप्लव आख्यान का वर्णन करता है। अश्वमेधादि यज्ञों में यज्ञ के विश्रामकाल में जो प्राचीन कथाएँ कही जाती हैं उन्हीं को पारिप्लव आख्यान कहा जाता है। सांग्रामिक रथ एवं अश्वों के अलङ्कारों की रक्षा का उत्तरदायित्व सूतों पर होना चाहिये। सूत और मागधों द्वारा गाने योग्य अन्य गाथाएँ होती हैं।

सूतमागधाः शूराणां स्वर्गमस्वर्गं भीरूणां जातिसङ्घकुलकर्मवृत्तस्तवं च योधानां वर्णयेयुः।

सूत और मागधों को चाहिये कि शूरों के लिए स्वर्ग और भीरुओं के लिए नरक प्राप्ति का गान एवं योद्धाओं के जाति, सङ्घ और कुल के कर्म तथा वृत्तान्त की स्तुति करें।

बृहदारण्यक-भाष्य में आद्य शङ्कराचार्य ने मन्त्रगत उर्वशी-पुरूरवा की कथा को ही इतिहास कहा है।

"**असद्वा इदमग्र आसीत्**" इत्यादि ब्राह्मणों को पुराण, देवयजन-विद्या को ही विद्या, "**प्रियमित्येतदुपासीत**" इत्यादि ब्राह्मण को ही उपनिषद्, ब्राह्मण-प्रभव मन्त्रों को ही श्लोक, "**आत्मेत्येवोपासीत**" इत्यादि संग्रह वाक्यों को सूत्र, मन्त्र-विवरण को अनुव्याख्यान एवं अर्थवादों को व्याख्यान कहा है (बृ० उ० २।४।१०)।

ऋग्वेद संहिता (१०।८५।६)
इतिहासपुराणम् (६।७।१।२)
गाथानृतं नाराशंसी (का० सं० १४।५)
गाथा अप्यत्र गायन्ति (ह० पु० १।४१।१४९)

उपर्युक्त उद्धरणों के अनुसार गाथाएँ वैदिक तथा लौकिक भी होती हैं। विभिन्न विषयों में सिद्धान्तभूत प्रसिद्ध संग्राहक पद्य ही गाथा है। **गाथासप्तशती** प्राकृत भाषा का ग्रन्थ है। उसमें गाथाओं का ही उल्लेख है।

"तवाभिगमनार्थं तु सर्वतो ब्राह्मणा गताः।
वाक्यानि मम गाथाभिर्गायमाना दिशो दश॥" (म० भा० ३।७६।२७)

महाराज नल के द्वारा ऐसी आशङ्का अभिव्यक्त करने पर कि प्यार करनेवाले पत्नीव्रत पति को छोड़कर कोई पत्नी कभी दूसरे पति का वरण कर सकती है क्या, जैसा कि तुम करने जा रही हो ? दमयन्ती ने अपनी सफाई देते हुए नल से यह बात कही है कि महाराज, आपका पता लगाने के लिए ही चारों ओर ब्राह्मण यहाँ से भेजे गये हैं और उन लोगों ने मेरा अभिप्राय गाथारूप में गाते हुए सर्वत्र फैलाया है।

"अत्राप्युदाहरन्तीमा गाथा देवैरुदाहृताः।
मुनिरासीत्पुरा पुत्र बालधिर्नाम वीर्यवान्॥
लालप्यमानं तं दृष्ट्वा मुनयः परमार्तवत्।
ऊचुर्वेदविदः सर्वे गाथां यां तां निबोध मे॥
न दिष्टमर्थमत्येतुमीशो मर्त्यः कथञ्चन।
महिषैर्भेदयामास धनुषाक्षो महीधरान्॥"(म० भा० ३।१३५।४५,५४,५५)

दो मित्र थे रैभ्य और भरद्वाज। दोनों में बड़ा घनिष्ट प्रेम था। रैभ्य के दो पुत्र थे तथा भरद्वाज को एक ही लड़का था यवक्रीत। रैभ्य दोनों पुत्रों सहित बहुत विद्वान् थे, इसलिये उनकी बहुत प्रशंसा थी। भरद्वाज केवलमात्र तपस्वी थे, अतः उनकी उतनी अधिक प्रशंसा (प्रतिष्ठा) नहीं थी। अपने पिता की ऐसी स्थिति देखकर यवक्रीत मन में जलने लगे और बिना पढ़े ही वेद-विद्या की प्राप्ति के लिए तप करने लगे। यवक्रीत का तप जब बहुत बढ़ा तब उनकी तपोवृद्धि से इन्द्र को सन्ताप हुआ। उन्होंने यवक्रीत के पास जाकर पूछा—"आप इतना कठोर तप किसलिये कर रहे हैं ?" यवक्रीत ने कहा, "बिना पढ़े ही वेदों की प्राप्ति और उनके रहस्य-ज्ञान के लिए तप कर रहा हूँ। मैं अपने तपोबल से सब कुछ जानना चाहता हूँ।" इन्द्र ने कहा, "ब्रह्मर्षे! वेद-प्राप्ति के लिए आपका यह मार्ग ठीक नहीं है। इस मार्ग से आपके विनाश का खतरा है। आपको गुरुमुख से पढ़कर ही वेद प्राप्त करने चाहिए।" यह सुनकर भी यवक्रीत अपने निश्चय पर अडिग रहे। अन्त में इन्द्र ने वरदान दे दिया कि तुम्हें और तुम्हारे पिता भरद्वाज दोनों को ही बिना गुरुमुख से अध्ययन किये ही वेदज्ञान हो जायेगा। यवक्रीत ने वहाँ से अपने पिता के पास आकर यह समाचार सुनाया और कहा कि अब हम पिता और पुत्र दोनों के समान कोई विद्वान् न होगा। भरद्वाज ने उत्तर दिया कि पुत्र, तुमने ऐसा वरदान लेकर अच्छा नहीं किया, क्योंकि ऐसा वेदज्ञान प्राप्त कर तुम अभिमानी हो जाओगे और विद्वानों का अपमान करोगे। फलतः तुम्हारा विनाश हो जायगा। देखो इस

विषय में देवताओं द्वारा उदाहृत एक गाथा प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में बालधि नामक बड़े तपस्वी हो चुके हैं। उनके लड़के हो होकर मर जाते थे। पुत्रशोक से घबराकर उन्होंने अत्यन्त दुष्कर तप किया। देवताओं की कृपा हुई। उन्होंने वरदान माँगा कि मेरा लड़का अमर्त्य (अमरणशील) हो। किन्तु देवताओं ने कहा कि मर्त्य अमरणशील नहीं हो सकता। कुछ आयु का मिमित्त स्वीकार करो। बालधि ने कहा कि ये पहाड़ कितने समय से ऐसे ही पड़े हुए हैं। जब यह नष्ट हो तब हमारे लड़के की आयु समाप्त हो। देवताओं ने इसे मान लिया। बालधि को लड़का हुआ। वह बहुत ही मेधावी और दूसरे का उत्कर्ष देखकर जलनेवाला था। बड़ा होने पर ऋषियों, महात्माओं सज्जनों और प्रतिष्ठितों का पद पद पर अपमान करने लगा। एक समय धनुषाक्ष नामक महाविद्वान् से उसकी मुठभेड़ हो गयी। अपनी प्रतिभा के बल पर उसने धनुषाक्ष को पराजित कर बहुत ही अपमानित किया। धनुषाक्ष ने उसे शाप दिया कि तुम भस्म हो जाओ। किन्तु उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ। फिर धनुषाक्ष ने भैंसों को पाला और भैंसों से पहाड़ तुड़वा दिया। पहाड़ टूटते ही मेधावी पुत्र मर गया। बालधि बहुत रोने कलपने लगे। उन्हें इस तरह रोते-कलपते देखकर वेदवादियों ने जो गाथा कही वह सुना रहा हूँ। मनुष्य भाग्य द्वारा प्राप्त सुख या दुःख का उल्लङ्घन नहीं कर सकता। धनुषाक्ष ने महिषों (भैंसों) से पहाड़ तुड़वाकर बालधि के पुत्र को नष्ट कर दिया। तपस्वी लोग तप द्वारा देवताओं की कृपा से वरदान प्राप्त कर घमण्ड में आकर नष्ट हो जाते हैं। हे पुत्र यवक्रीत, तुम इससे बचना और रैभ्य तथा उनके पुत्रों से कभी सामना न हो, ऐसा प्रयत्न करना।

"अत्राप्युदाहरन्तीमा गाथा नित्यं क्षमावताम्।
गीताः क्षमावतां कृष्णे काश्यपेन महात्मना॥" (महा० ३।२९।३५)

द्रौपदी ने महाराज युधिष्ठिर से कहा था—बलि ने अपने पितामह प्रह्लादजी से पूछा कि क्षमा ठीक है या तेज, आप बतायें। प्रह्लादजी ने उत्तर दिया "न तो बराबर क्षमा ही ठीक होती है और न बराबर तेज ही। समय देख क्षमा अपनानी चाहिए और समय देखकर तेज।" सो आप इस समय दुर्योधन पर क्रोध कर युद्ध द्वारा उसे नष्ट कीजिए। महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—हे कृष्णे, महात्मा काश्यप ने क्षमाशील लोगों में बैठकर क्षमा की प्रशंसा की है। इसके बाद ११ श्लोकों में क्षमा की प्रशंसा है।

"अप्यत्र संश्रयार्थाय प्रजापतिरथो जगौ।
पुष्करेषु कुरुश्रेष्ठ गाथां सुकृतिनां वर॥
मनसाऽप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनस्विनः।
विप्रणश्यन्ति पापानि नाकपृष्ठे च मोदते॥"

महाराज युधिष्ठिर के पुरोहित धौम्य उनसे कहते हैं—हे कुरुश्रेष्ठ, पुष्कर तीर्थ के विषय में प्रजापति ने एक गाथा गायी है। पुष्कर तीर्थ में जाने की इच्छामात्र होने पर पाप दूर होते हैं और प्राणी स्वर्ग जाकर प्रसन्न होता है।

"गाथामप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।
भीष्म यां तां च ते सम्यक् कथयिष्यामि भारत॥
अन्तरात्मन्यभिहते रौषि पत्ररथाशुचि।
अण्डभक्षणकर्मैतत् तव वाचमतीयते॥" (म० भा० २।४१।३९,४०)

शिशुपाल ने भीष्म से कहा कि समुद्र के किनारे एक बूढ़ा हंस रहता था। वह सभी पक्षियों को उपदेश देता था कि धर्माचरण करना चाहिये। तथा उन पक्षियों की नजर बचाकर उनके अण्डे खा जाया करता था। पुराणविद लोग उस विषय में हे भीष्म, एक गाथा कहते हैं, सुनो। दुनियाँ में लोग परोपदेश में ही कुशल होते हैं;

किन्तु अपने व्यवहार में उसे नहीं लाते। इस बात को यह गाथा बताती है—हे हंस, तुम्हारे मन में काम, क्रोध आदि डेरा जमाये हैं और तुम धर्म का उपदेश कर रहे हो। कहाँ तुम्हारा नजर बचाकर अण्डों को खा जाना इतना अपवित्र कर्म और कहाँ यह धर्मोपदेश !

"अत्र पिङ्गलया गीता गाथाः श्रूयन्ति पार्थिव।
यथा सा कृच्छ्रकालेऽपि लेभे धर्मं सनातनम् ॥" (म० भा० २।१७४।४६)

कोई प्रेमी पिङ्गला वेश्या को सङ्केत देकर उसके पास नहीं पहुँचा। वह बहुत आतुरता से उसकी प्रतीक्षा करती रही। जब बहुत ही निराश हुई तो उसी दुःख के समय में उसे नित्य प्रसिद्ध योग (आत्मज्ञान) की प्राप्ति हो गयी। इस नैराश्य के विषय में पिङ्गला द्वारा गायी गाथा अब भी सुनी जाती है।

"गाथाश्चाप्यब्रवीद् विद्वान् गौतमो मुनिसत्तमः।
चिरकारिषु धीरेषु गुणोद्देशसमाश्रयाः ॥
चिरेण मित्रं बध्नीयात् चिरेण च कृतं त्यजेत्।
चिरेण हि कृतं मित्रं चिरं धारणमर्हति ॥"(म० भा० १२।२६६।६८,६९)

महाविद्वान् मुनिश्रेष्ठ गौतम ने चिरकारियों के गुण और कर्तव्य के विषय में गाथाएँ कहीं हैं। किसी को मित्रं बनाना हो तो जल्दी नहीं करनी चाहिये। मित्र बना लेने पर किसी कारण वश मित्र का परित्याग करना पड़े तो उसमें भी जल्दीबाजी नहीं करनी चाहिये। जिसके साथ मित्रता जोड़ने में विलम्ब होता है उससे जल्दी मित्रता टूटती भी नहीं।

उक्त उद्धरणों में अनेक प्रकार की गाथाओं का उल्लेख है। सिद्धान्तभूत गाथाएँ अनृत नहीं हैं। वेदों में वास्तविक इतिहास या घटनोल्लेख मानने से वेद की अपौरुषेयता का भङ्ग होता है, अतः वहाँ की घटनासम्बन्धी गाथाएँ गुणवाद अर्थवादमात्र हैं। जो सुखावबोधार्था आख्यायिका हैं, उनका तात्पर्य ही सत्य होता है। उनका वाच्यार्थ अनृत है, यही 'गाथानृतम्' कहने का अभिप्राय है।

अश्वमेधादि यज्ञों में पुत्रादि-परिवृत राजा को नाना प्रकार के आख्यान सुनाने का विधान है। पर वहाँ भी नियम है। प्रथमेऽह्नि मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह; द्वितीयेऽह्नि यमो वैवस्वतो राजेत्याह; तृतीयेऽह्नि वरुण आदित्यो राजेत्याह आदि वाक्यों से नियत वैदिक आख्यायिकाओं का ही श्रवण कराया जाता है (श० ब्रा० १३।४।३ का ब्र० सू० कल्पतरु ३।४।२३ में उद्धृत वचन)। वेद का अध्यापन, श्रावण आदि वैदिक ब्राह्मण ही करा सकता है, सूत आदि नहीं। सूत, मागध, बन्दी आदि तो प्रसिद्ध लौकिक गाथाओं को सुनाते हैं।

बुल्के १३०वें अनु० में लिखते हैं, "वाल्मीकि के पूर्व रामकथासम्बन्धी गाथाएँ प्रचलित हो चुकी थीं। इसका प्रमाण हमें बौद्ध तिपिटक में मिलता है। एक ओर रामकथासम्बन्धी गाथाएँ **रामायण** पर निर्भर नहीं हो सकती हैं और दूसरी ओर बौद्ध गाथाओं में जो रामकथासम्बन्धी सामग्री मिलती है वह **रामायण** के आधार के लिए पर्याप्त नहीं है। अतः **रामायण** तथा रामकथाविषयक बौद्ध गाथाएँ दोनों प्राचीन रामकथासम्बन्धी आख्यान काव्य पर निर्भर हैं। **दशरथजातक** की वर्तमान कथा में जो पोराण पण्डिताः शब्द आया है, इससे भी इस निर्णय की पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त **हरिवंश** के एक श्लोक में रामकथा के अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् इस प्रकार लिखा है—

"गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः ॥" (ह० पु० १।४१।१३९)

इसमें अवश्य **रामायण** की ओर निर्देश देखा जा सकता। फिर भी इसमें **रामायण** के पूर्व की प्राचीन गाथाओं का निर्देश देखना अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है।''[1]

बुल्के का उक्त कथन **रामायण** के विरुद्ध है। **रामायण** में 'बालकाण्ड' में कहा गया है। वाल्मीकि ने नारद से **मूलरामायण** का श्रवण किया; तत्पश्चात् ब्रह्माजी के आदेशानुसार समाधिजा ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा राम, लक्ष्मण, सीता आदि के सभी वृत्तान्तों का तत्त्वतः प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर **रामायण** में उनका उल्लेख किया। सम्भव है कि उस समय भी रामकथा-सम्बन्धी कुछ आख्यान प्रचलित रहे हों; परन्तु वे भी आधुनिक उपाख्यानों की तरह प्रामाणिक मान्य नहीं हो सकते। अतः वे प्रामाणिक आर्ष इतिहासरूप **रामायण** के आधार नहीं हो सकते। रामकथासम्बन्धी गाथाओं के आधार **रामायण** एवं प्रचलित उपाख्यान हो सकते हैं; बौद्ध गाथाएँ तो **रामायण** की अपेक्षा अत्यन्त अर्वाचीन हैं, अतः वे **रामायण** की आधार हों यह प्रश्न ही नहीं उठता। वाल्मीकि राम के समकालिक थे यह प्रतिपादित किया जा चुका है।

हरिवंशपुराण की गाथाओं का सम्बन्ध इतिहास-पुराणप्रसिद्ध गाथाओं से ही है, क्योंकि **रामायण** एवं पुराणों में रामसम्बन्धित अगणित गाथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनको छोड़कर जिनका कोई प्रामाणिक रूप उपलब्ध नहीं उन उपाख्यानरूप गाथाओं का ग्रहण करना उचित नहीं है। 'पुराणविद' शब्द से भी उन गाथाओं का पुराण से ही सम्बन्ध नहीं मानना चाहिये। इसके अतिरिक्त जब बुल्के की दृष्टि में **हरिवंशपुराण** आदि का प्रामाण्य स्वीकृत ही नहीं, तब उनके आधारपर किसी निर्णय तक कैसे पहुँचा जा सकता है? और वह कहाँ तक मान्य हो सकता है? यदि ऐसा निर्णय मान्य हो तब तो बुल्के को **हरिवंशपुराण** के उल्लेखानुसार ही राम का विष्णु का अवतार होना निःसन्देह मान्य होना चाहिये।

हरिवंशपुराण के ४१वें अध्याय में विष्णु के अवतार का उपक्रम है—

"हन्त विष्णोः प्रवृत्तिं च शृणु दिव्यां मयेरिताम्।'

वहाँ विष्णु के विविध प्रभावों का वर्णन करते हुए अनेक अवतारों का वर्णन किया गया है। तदनन्तर परशुराम के अवतार का वर्णन है—

"एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च।
जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः॥"

इसके अनन्तर विष्णु के ही रामावतार का वर्णन है—

"राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः।
कृत्वात्मानं महाबाहुश्चतुर्धा हरिरीश्वरः॥"

प्रभु ईश्वर अपने को चतुर्धा विभक्त कर राजा दशरथ के यहाँ प्रकट हुए। इस अध्याय की सम्पूर्ण कथा **वाल्मीकिरामायण** से ही मिलती-जुलती है। इसमें सीता को लक्ष्मी कहा गया है—

"रूपिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जनैः।
पूर्वोचिता तस्य लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति॥"

क्या बुल्के उक्त श्लोकों को प्रमाण मानने का साहस करेंगे? वस्तुतः वे किसी भी पक्ष पर टिक नहीं सकते। आर्ष ग्रन्थों में किसी को भी देखा जाय सभी में राम को विष्णुरूप अवश्य माना गया है।

---

१. रामकथा, पृष्ठ १३८, १३९।

१३२वें अनु० में वे लिखते हैं, "इस रामसम्बन्धी गाथासाहित्य की उत्पत्ति इक्ष्वाकुवंश में हुई थी। **रामायण** में लिखा है—

"इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम्॥" (वा० रा० १।५।३)

उनका यह कथन भी अशुद्ध है, क्योंकि इस श्लोक में रामकथासम्बन्धी अन्य आख्यानों की चर्चा नहीं है। इसमें तो **रामायणरूप** महदाख्यान की उत्पत्ति इक्ष्वाकुवंशीय महात्मा राजाओं के वंश में हुई थी यही कहा गया है, अतः इस वाक्य में इक्ष्वाकुवंश के सूतों ने इनके विषय में गाथाएँ तथा आख्यान सुनाये होंगे, बुल्के की इस अटकल के लिए कोई अवकाश ही नहीं है।

वहीं, पृष्ठ १३९ की टिप्पणी में, वे लिखते हैं, "ध्यान देने योग्य है कि वाल्मीकि का **आदिरामायण** सूतों की सम्पत्ति न बनकर काव्योपजीवी कुशीलवों द्वारा पहले जनता में लोकप्रियता प्राप्त करने लगा और बाद में दरबारों में प्रवेश कर सका; ऐसा ही बालकाण्ड के चतुर्थ सर्ग से प्रतीत होता है।"

बुल्के स्वयं ही बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड दोनों को ही प्रक्षिप्त मानते हैं, अतः ईमानदारी की बात यह है कि उपर्युक्त काण्डों के किसी भी अंश या सन्दर्भ को अपने कथन के प्रमाण रूप में उल्लेख करने का उनको अधिकार ही नहीं है। यदि वे उन काण्डों को प्रामाणिक स्वीकार कर लेते हैं तो उन्हें उन काण्डों के ही अनुसार यह भी मानना होगा कि 'रामायण' के कुशीलव बुल्के के तथाकथित काव्योपजीवी न होकर सीता के पुत्र कुश और लव थे और समास के अनुसार कुशीलव कहे गये। यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है। बुल्के यह भी कहते हैं कि "**महाभारत** द्रोणपर्व और शान्तिपर्व में जो संक्षिप्त रामचरित्र मिलता है, वह इस प्राचीन आख्यानकाव्य पर निर्भर प्रतीत होता है।[1]", बुल्के का यह कथन भी असङ्गत है—जब कि **महाभारत** से बहुत पहले का विस्तृत आर्ष **वाल्मीकिरामायण** उपस्थित है तब उसको भुलाकर अपूर्व, अनुपलब्ध तथा अप्रामाणिक आख्यानों को उनका आधार मानना तर्कविरुद्ध ही है। **महाभारत** निर्माणकाल में **रामायण** का सर्वत्र प्रसार था, साथ ही अन्य रामसम्बधी उपाख्यानों का भी सर्वत्र प्रसार रहा है। ऐसा मानने में सिद्धान्त में कोई हानि नहीं होती, परन्तु विस्तृत वैदिक साहित्य में रामसम्बन्धी गाथाओं का कहीं उल्लेख नहीं है, यह कहना निष्प्रमाण है। पिछले प्रकरणों में इसका विस्तार से खण्डन किया जा चुका है।

बुल्के लिखते हैं, "अतः वैदिककाल के बाद और चौथी शती ई० पूर्व के पहले सम्भवतः छठीं शती में इस रामकथासम्बन्धी आख्यान काव्य की उत्पत्ति हुई थी।[2] उनके इस कथन में भी कोई प्रमाण नहीं। **रामायण** के अनुसार रामकाल में ही **रामायण** का निर्माण हुआ, परन्तु पुराणों के अनुसार तो राम के अवतार के पूर्व ही **रामायण** का निर्माण अतीत, अनागत तथा वर्तमान के द्रष्टा महर्षियों ने कर रखा था। वर्तमान **वाल्मीकिरामायण** तो शतकोटि-प्रविस्तर रामायण का सारमात्र है।

"चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।" (रा० माहात्म्य)

१३२वें अनु० में बुल्के लिखते हैं, "जिस दिन किसी कवि ने रामकथाविषयक स्फुट आख्यान काव्य का सङ्कलन करके उसे एक ही कथासूत्र में ग्रथित करने का प्रयास किया था उस दिन **रामायण** उत्पन्न हुआ। वह कवि कौन था? प्राचीनतम परम्परा वाल्मीकि को आदि कवि मानती है। युद्धकाण्ड की फलश्रुति में लिखा है—

"आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्।" (वा० रा० ७।१२८।१०५)

---

१ रामकथा, पृष्ठ १३९। २. रामकथा, पृष्ठ १३९।

कालिदास ने भी वाल्मीकि को आद्यकवि की उपाधि प्रदान की है—

"कवेराद्यस्य शासनात् ।" (रघु० १५।४१)

"वाल्मीकि द्वारा श्लोक-सृष्टि की कथा (वा० रा० १।२) में इतना ऐतिहासिक सत्य अवश्य होगा कि वाल्मीकि ने इस छन्द को परिष्कृत किया है ।"

वस्तुतः बुल्के का यह मत अधूरा ही है। कहा जा चुका है कि **रामायण** के पहले रामकथासम्बन्धी आख्यान भले ही रहे हों, परन्तु **वाल्मीकिरामायण** आर्ष-विज्ञान के आधार पर रचा गया है, स्फुट आख्यानों के आधार पर नहीं। साथ ही, वर्तमान प्रसिद्ध **रामायण** से भिन्न आदिरामायण नामक कोई ग्रन्थ न था और न है। प्रसिद्ध **रामायण** के आदिकवि वाल्मीकि रचयिता हैं; परन्तु वे आधुनिक नहीं हैं। राम के समकालीन हैं। यह भी **रामायण** प्रमाण से ही सिद्ध है। बालकाण्ड और **रघुवंश** के द्वारा प्रथम श्लोक के निर्माण की असत्यता में कोई प्रमाण नहीं, अतः उसकी सत्यता में कोई बाधा नहीं है।

बुल्के १३३वें अनु० में लिखते हैं, "आदिरामायण में न तो बालकाण्ड था और न उत्तरकाण्ड और न अवतारवाद ।" परन्तु अपने कथन के प्रमाण में बुल्के के पास निराधार अनुमान के सिवा और कोई ठोस तर्क नहीं है। आदिरामायण जैसी कोई पुस्तक प्रसिद्ध नहीं है। वह बुल्के जैसे कुछ स्वतन्त्र लोगों के मस्तिष्क की उपजमात्र है। आदिरामायण के नाम पर वे अपनी स्वतन्त्र भावना के अनुसार ही मनमानी करते हुए प्रसिद्ध **वाल्मीकिरामायण** के विभिन्न अंशों को प्रक्षेप बताने का साहस करते हैं।

इस सन्दर्भ में वे आगे कहते हैं,[१] "आदिरामायण के विस्तार के विषय में **बौद्धमहाविभाषा** में कहा जाता है कि **रामायण** में १२००० श्लोक मिलते हैं। अतः आदिरामायण के विकास में एक ऐसा समय हुआ जब इसका विस्तार आजकल प्रचलित **रामायण** का आधा था ।"

परन्तु उपर्युक्त कथन भी निराधार है। यह आश्चर्य है कि जो **वाल्मीकिरामायण** अत्यन्त प्रामाणिक है, परम्परा से जिसका पठन-पाठन और अनुष्ठान होता आया है एवं **महाभारत** तथा पुराणों में जिसका समर्थन मिलता है उसके स्वरूप के निर्धारण में उसका और उससे सम्बन्धित ग्रन्थों का प्रामाण्य न मानकर अनुपलब्ध, अप्रामाणिक एवं यत्र-तत्र, छिन्न-भिन्न प्रमाणाभासों का सहारा लिया गया है और उन्हीं के बल पर **वाल्मीकिरामायण** के वर्तमान रूप को अप्रामाणिक और अविश्वसनीय सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

१३४वें अनु० में बुल्के लिखते हैं, "आदिरामायण क्षत्रियों की सम्पत्ति थी। उसमें आदर्श क्षत्रिय सत्यसन्ध राम की महिमा प्रतिपादित की गयी थी। मोक्ष तथा वैराग्य के स्थान पर आदर्श अन्तगति स्वर्ग माना जाता था और उसे प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों की सहायता की आवश्यकता नहीं होती थी। बाद में सारे काव्य को ब्राह्मण ढाँचे में ढालकर सर्वथा नवीन रूप दिया गया है। यह डा० रूबन का मत है, पर इसके लिए कोई समीचीन प्रमाण नहीं दिया गया है। डा० रूबन के उदाहरण (ऋष्यशृङ्ग तथा विश्वामित्र की कथा, उत्तरकाण्ड के अश्वमेध) स्पष्टतया प्रक्षेप हैं। इनसे इतना ही ज्ञात होता है कि **रामायण** के अर्वाचीन प्रक्षेप में ब्राह्मणों का प्रभाव स्पष्ट है। इस सामग्री से आदिरामायण के रूप के विषय में कोई तर्क नहीं लिया जा सकता है। फिर भी डा० रूबन के इस मत में कुछ तत्त्व है। रामकथासम्बन्धी आख्यान-काव्य क्षत्रिय इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न हुआ और इसका बहुत काल तक इन क्षत्रियों के दरबारों में प्रचार रहा था।

वाल्मीकि ने उस स्फुट काव्य को एक ही प्रबन्ध-काव्य में सङ्कलित करके लगभग ३०० ई० पू० आदिरामायण की रचना की है। यह रचना बहुत कुछ प्राचीन आख्यान-काव्य से मिलती-जुलती रही होगी। बाद के प्रक्षेपों की भावधारा स्पष्टतया भिन्न है।"

वस्तुतः उपर्युक्त शङ्का और समाधान दोनों ही असङ्गत एवं पाश्चात्यों की दुरभिसन्धिपूर्ण दुष्ट कल्पनामात्र हैं। भारतीय संस्कृति के अनुसार **वेद, मन्वादि धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, अष्टादशपुराण, न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, पूर्वोत्तरमीमांसा** ये धर्मग्रन्थ हैं। ब्रह्म-यज्ञ में इनका अध्ययन किया जाता है। उसके लिए गुरु-परम्परा से अध्ययन आवश्यक है। मन्वादि के अनुसार गुरु या आचार्य ब्राह्मण ही होता है। इस दृष्टि से क्षत्रियादि को भी **रामायण** का अध्ययन ब्राह्मण गुरु से ही करना पड़ता है। जब **रामायण** के निर्माता महर्षि वाल्मीकि ब्राह्मण थे तो उनकी रचना **रामायण** क्षत्रियों की ही सम्पत्ति कैसे हो सकती थी ? हाँ, विशेषतः क्षत्रियवंशीय राम का चरित्र होने से क्षत्रियों में इसका अधिक प्रचार एवं सम्मान असम्भावित नहीं।

"आदिरामायण में मोक्ष और वैराग्य के स्थान पर आदर्श गति स्वर्ग को ही माना जाता था।" यह कथन निष्प्रमाण है। कारण **रामायण** वर्णित अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग आदि ऋषि अरण्यवासी वैराग्य एवं मोक्ष के ही प्रतीक थे। **रामायण** में परम गति स्वर्ग ही नहीं है, किन्तु ब्रह्मलोक है। सगुण ब्रह्मलोक की प्राप्ति के अनन्तर निर्गुण ब्रह्मप्राप्ति भी होती है, यह **रामायण** द्वारा आदृत वेदों से ही सिद्ध होता है—

"शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूजितः सदा ॥"
इति लवकुशयोर्मङ्गलाचरणे चतुर्दशः श्लोकः।

जो रामायण को भक्ति से सुनता है वह ब्रह्म के स्थान में जाता है और ब्रह्म द्वारा आदृत हो जाता है।

ब्राह्मणों की सहायता अपेक्षित नहीं थी ऐसा कहना भी असङ्गत है, क्योंकि **रामायण** वैदिक संस्कृति का ग्रन्थ है। जाबालि की समालोचना करते हुए राम ने वेद एवं वैदिक परम्पराओं की प्रामाणिकता को ही सिद्ध किया है। **रामायण** में वैदिक यज्ञों का वर्णन है और उसी से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उन यज्ञों का अनुष्ठान ब्राह्मणों की सहायता के बिना अनुपपन्न है, क्योंकि श्रौतसूत्रों के अनुसार आर्त्विज्य ब्राह्मण के ही हाथों रहता है। ब्राह्मणेतर द्विज यजमान तो हो सकते हैं, परन्तु वे ऋत्विज नहीं होते। यही कारण है कि दशरथ के यज्ञ में भी वसिष्ठ, ऋष्यशृङ्ग आदि ब्राह्मण ऋत्विजों का ही वरण किया गया था।

बालकाण्ड एवं **उत्तरकाण्ड** प्रक्षेप हैं, यह पक्ष खण्डित ही है, अतएव ऋष्यशृङ्ग एवं विश्वामित्र की कथाओं को प्रामाणिक मानने पर भी डा० रूबन का मत सिद्ध नहीं हो सकता। **रामायण** का निर्माण ई० ३०० वर्ष पूर्व हुआ यह मत भी सर्वथा उपेक्षणीय एवं **रामायण** के विरुद्ध है। **रामायण** में ही राजसिंहासनारूढ़ राम के समय में उसका निर्माण होने का उल्लेख है—

"प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत् ॥" (वा० रा० १।४।१)

१३५वें अनु० में बुल्के लिखते हैं, "आदिरामायण की भाषा के विषय में भी सन्देह किया गया है। मूल रचना की भाषा प्राकृत रही होगी। बाद में पहली शताब्दी ई० से इनका संस्कृत रूपान्तर चल पड़ा।" डा० याकोबी ने अकाट्य तर्कों से इस मत का खण्डन किया है। आजकल इस मत का प्रतिपादन कोई नही करता। डा० याकोबी का मुख्य तर्क इस प्रकार है।

(अ) **भारत** में प्राकृत **मूलरामायण** तथा इसके संस्कृत रूपान्तर के विषय में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

(आ) यदि केवल पहली शती ई० में **रामायण** का संस्कृत अनुवाद किया गया था, तो आर्ष प्रयोग कैसे सम्भव होते ?

(इ) प्राकृत साहित्य की मुख्य विशेषता है—शृङ्गार और अद्भुत रस बाहुल्य (दे० कथासरित्सागर)। इसके अतिरिक्त पाली तथा प्राकृत की शैली बहुत अपरिष्कृत है। अतः प्राकृत साहित्य उपर्युक्त कारणों से संस्कृत-काव्य का आधार तथा आदर्श होने के नितान्त अनुपयुक्त सिद्ध होता है।

वस्तुतः **कथासरित्सागर** भी कोई नवीन रचना नहीं है। शिवजी ने ही इतिहासपुराणों की अधिकांश कथाओं का वर्णन किया है। शिव-पार्वती के संवाद का ही पिशाचभाषा में **बृहत्कथा** के रूप में उल्लेख हुआ है। **कथासरित्सागर** उसी पर आधारित है। शृङ्गार और अद्भुत रस पुराणों में कम नहीं है। वेदों में उक्त दोनों बातें हैं ही। ई० पू० दूसरी, तीसरी शताब्दी में **रामायण** का निर्माण मान लेने पर भी आर्ष प्रयोगों का समर्थन नहीं हो सकता, क्योंकि "लक्ष्यैकचक्षुष्क ऋषि" ही आर्ष प्रयोग करता है। लक्षणैकचक्षुष्क कोई कवि आर्ष प्रयोग करने का अधिकारी नहीं होता। समस्त शब्दों की शुद्धि और अशुद्धि जो पाणिनि आदि के समान आर्ष ज्ञान से जान सकता है वही ऋषि पाणिनि आदि के लक्षणों, सूत्रों से असिद्ध परन्तु अपने आर्ष-विज्ञान से सिद्ध शब्दों का प्रयोग कर सकता है। जो लोग समझते हैं प्राकृत का ही संस्कार कर संस्कृत निष्पन्न होता है उनका यह भ्रम है, क्योंकि वह प्राकृत-व्याकरण के विरुद्ध है। प्राकृत व्याकरण में कहा गया है—

"प्रकृतिः संस्कृतं तस्माद्भवं प्राकृतम्।"

संस्कृत ही प्रकृति है, उससे उद्भूत भाषा ही प्राकृत भाषा है। अतएव वेद के मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि की भाषा प्राकृत भाषा से बहुत प्राचीन है और वह संस्कृत ही है। यद्यपि संस्कृत शब्दों के साथ ही अपभ्रंश शब्द भी होते हैं; जैसे चलनी के द्वारा ग्राह्याग्राह्य पदार्थों से ग्राह्य वस्तु का पृथक्करण किया जाता है वैसे ही संस्कृत शब्दों को अपभ्रंश शब्दों से पृथक् कर देना ही शब्दों का संस्कार है। अतएव राम के समकाल में वेदार्थ उपबृंहण की दृष्टि से ही संस्कृत भाषा में ही महर्षि वाल्मीकि ने रामायण का निर्माण किया।

१३६ वें अनु० के अनुसार बुल्के कहते है, "आठवें अध्याय में बालकाण्ड को प्रक्षिप्त सिद्ध किया गया है। डा० याकोबी के अनुसार आदिरामायण का प्रारम्भ बालकाण्ड के निम्नलिखित श्लोकों में सुरक्षित है—

सर्ग ५ श्लोक १–४	**रामायण** की स्तुति।
सर्ग ५, श्लोक ५–६	कोशल तथा अयोध्या की स्तुति।
सर्ग ५, श्लोक ९ सर्ग ६, श्लोक २–४	दशरथ की स्थुति।

सर्ग १८, श्लोक १६–२१ (उत्तरार्द्ध) २२; दशरथ के पुत्रों का उल्लेख।
सर्ग १८, श्लोक २५ पुत्रों की स्तुति (अथवा अयोध्याकाण्ड १, १)।
सर्ग १८, श्लोक २४–१२; राम की श्रेष्ठता (अथवा अयोध्याकाण्ड १,६–८।

इस भूमिका के बाद काव्य की मुख्य वस्तु का प्रारम्भ हुआ होगा। (दे० अयोध्याकाण्ड सर्ग २, श्लोक ३६)"

उपर्युक्त कल्पना के किसी आधार का बुल्के उल्लेख नहीं करते। वस्तुतः उपलब्ध सम्पूर्ण बालकाण्ड प्रामाणिक **रामायण** है और उसके बिना **रामायण** अधूरा ही रहेगा। अयोध्या तथा दशरथ का वर्णन तथा उनका अश्वमेध तथा पुत्रेष्टियज्ञ, पुत्र-जन्म, उनका संस्कार, विश्वामित्र का आगमन, राम-लक्ष्मण का उपनयन, सिद्धाश्रम-गमन, मिथिलागमन, विवाह आदि के बिना अयोध्याकाण्ड का अकस्मात् आरम्भ होना सर्वथा असङ्गत ही है। इसके अतिरिक्त बालकाण्ड को ही प्रक्षिप्त मान लेने पर उपर्युक्त तालिका के कुछ श्लोकों को ही किस आधार पर प्रामाणिक कहा जा सकता है? निश्चय ही किसी पुष्ट प्रमाण के समर्थन के अभाव में ऐसे कथन अमान्य ही हैं।

१३७ वें अनु० में 'आदिरामायण के विकास के सम्बन्ध में बुल्के लिखते हैं, "आदिरामायण का विकास समझने के लिए उसके प्रचार की रीति को ध्यान में रखना परमावश्यक है। बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में लिखा गया है कि वाल्मीकि ने अपने शिष्यों को **रामायण** सिखलाकर उसे राजाओं, ऋषियों तथा जनसाधारण को सुनाने का आदेश दिया—

"कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा।
ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च॥
रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च॥" (वा० रा० ७।९३।४, ५)

इससे ज्ञात होता है **रामायण** काव्य मौखिकरूप से प्रचलित था। कुशीलव सारे देश में उसे गाकर सुनाते थे और इस प्रकार अपनी जीविका चलाते थे। वे काव्योपजीवी ही थे। **रामायण** काव्य उनको कण्ठस्थ था और वे उसे अपने पुत्रों को सिखलाते थे। **रामायण** का कोई ग्रन्थ प्रचलित नहीं था और न प्राचीन फलश्रुति और श्रवणफलस्तुति ही थी।

"श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति।" (वा० रा० ६।१२८।१०९)

बाद में **रामायण** के पढ़ने तथा लिखने का भी उल्लेख मिलता है—

"रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा।" (वा० रा० ६।११७।११८)

"भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम्।
ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे॥" (वा० रा० ६।१२८।१२०)

लेकिन फलश्रुति का यह अंश गौड़ीयपाठ में नहीं मिलता। टीकाकार कतक ने भी उसे प्रक्षिप्त माना है।"

वस्तुतः ऐसे कथन उत्तरदायित्व-हीन हैं। किसी भी ठोस प्रमाण के सर्वथा अभाव में किसी भी ग्रन्थ के किसी भी अंश को प्रक्षेप कह देना और उन्हीं अंशों में से अपने स्वार्थ के अनुगुण कुछ अंशों को स्वीकार कर लेना नितान्त साभिप्राय कुतर्क ही है। यदि ऐसे लेखकों से प्रश्न किया जाय कि वे किस अधार पर यह कहते हैं कि अमुक अंश महर्षि वाल्मीकि की रचना है और अमुक प्रक्षेप है ? इसे किसने देखा है ? किस वर्ष, किस समय, किस पक्ष, किस तिथि में किसने कब इस अंश को लिखकर **रामायण** में जोड़ा था इसका प्रमाण क्या है ? और उस प्रमाण की प्रामाणिकता क्या है ? तो निश्चय ही वे कोई युक्तिसङ्गत उत्तर नहीं दे सकेंगे।

उसी बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त भी कहना और उसमें से ही प्रमाणरूप से श्लोक उद्धृत भी करना अर्धकुक्कुटी-न्याय है। जैसे कोई कुक्कुटी के एक अंश को पाक के लिए और दूसरे अंश को प्रजनन के लिए रखना चाहता हो। उक्त दोनों क्रियाएँ एक ही साथ कदापि सम्भव नहीं, क्योंकि यह असङ्गत है। ठीक इसी तरह बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड को प्रक्षेप कहते हुए उसके कुछ श्लोकों से स्वमन्तव्य की पुष्टि भी करना दोनों ही असङ्गत हैं। यह ठीक है कि उस समय कण्ठस्थ करने की पद्धति ही अधिक थी, परन्तु लेखन प्रणाली थी ही नहीं, यह कहना भी अनभिज्ञता का ही परिचय देना है। बहुत प्राचीनकाल से मन्त्रलेखन की पद्धति प्रचलित है। उसी आधार पर 'ये लिखन्तीह' यह फलश्रुति भी सङ्गत ही है। वह गौड़ीय पाठ में भले न मिलती हो, परन्तु दाक्षिणात्य आदि पाठों में तो मिलती ही है।

रामायण के अनुसार वाल्मीकि ने जिन शिष्यों को **रामायण** पढ़ाकर राजाओं, ऋषियों तथा जनसाधारण में गाने को कहा उनमें प्रमुख कुश और लव थे, जो सीता के पुत्र थे, उन्हीं को कुशीलव भी कह दिया गया है। वे

काव्योपजीवी तथा उसके द्वारा जीविका चलानेवाले नहीं थे। बुल्के का उक्त कथन उपजीव्यविरोधी होने से अत्यन्त हेय है। वे जिस (उत्तरकाण्ड सर्ग ९३) आधार पर **रामायण** के कण्ठस्थ गाने का समर्थन करते हैं और कुश एवं लव को काव्योपजीवी कुशीलव सिद्ध करने का दुःसाहस करते हैं उसी से उनका कथन विरुद्ध है। वहाँ महर्षि ने अन्य शिष्यों को नहीं, किन्तु कुश एवं लव दो ही शिष्यों को **रामायण**-गान का आदेश दिया—

> "स शिष्यावब्रवीद्धृष्टौ युवां गत्वा समाहितौ।
> कृत्स्नं रामायणं काव्यं गायतां परया मुदा॥
> ऋषिवाटेषु पुण्येषु ब्राह्मणावसथेषु च।
> रथ्यासु राजमार्गेषु पार्थिवानां गृहेषु च॥
> रामस्य भवनद्वारि यत्र कर्म च कुर्वते।
> ऋत्विजामग्रतश्चैव तत्र गेयं विशेषतः॥" (वा० रा० ७।९३।४-६)

अर्थात् महर्षि वाल्मीकि ने अपने दोनों शिष्यों—कुश एवं लव को, जो सीता के पुत्र थे, कहा कि तुम दोनों जाकर समाहित होकर प्रसन्नता से सम्पूर्ण रामायण का गान करो। पुण्य ऋषिवाटों (अहातों), ब्राह्मणों के आवासों, रथ्याओं, राजमार्गों; छोटे राजाओं के महलों और रामभवन के द्वार पर और ऋत्विज जहाँ अश्वमेधसम्बन्धी कर्म कर रहे हों विशेषतः वहाँ गान करो। बुल्के यदि उत्तरकाण्ड और बालकाण्ड को प्रमाण मान लेते हैं तो उनके कल्पना के सभी महल ढह जायँगे। इसी लिए वे उन्हें पहले से ही प्रक्षेप कहने की कल्पना करते हैं। वे काव्योपजीवी कुशीलव थे, उसके द्वारा जीविका चलाते थे उनकी यह कल्पना भी आगे के श्लोकों से समूल ध्वस्त हो जाती है। महर्षि कुश और लव को सम्बोधन कर कहते हैं। "वत्सो ! इन उत्तम स्वादवाले विविध फलों को, जो कि पर्वताग्रों में उत्पन्न हुए हैं, खाकर तुम गायन करना, इन सुमृष्ट फल-मूलों को खाने से तुम दोनों को श्रम (थकावट) न होगा और इनके खाने से तुम दोनों का कण्ठमाधुर्यरूप राग भी नहीं मिटेगा। महर्षि ने पुनः सावधान किया कि महीपति राम यदि तुमको श्रवण के लिए बुलायें तो जाना और उपविष्ट ऋषियों के समक्ष यथायोग्य गान करना। परन्तु धन की वाञ्छा से स्वल्प भी लोभ न करना, क्योंकि हम फलमूलाशी आश्रमवासियों के लिए धन का क्या प्रयोजन है—

> "लोभश्चापि न कर्तव्यः स्वल्पोऽपि धनवाञ्छया।
> किं धनेनाश्रमस्थानां फलमूलाशिनां सदा॥" (वा० रा० ७।९३।११)

राम ने पहले ही दिन रामायण के बीस सर्ग सुनने पर प्रसन्न होकर लक्ष्मण को आदेश दिया कि अठारह-अठारह हजार सुवर्ण मुद्राएँ दोनों बालकों को पृथक्-पृथक् दी जायँ और भी जो इनकी इच्छा हो दिया जाय। लक्ष्मण ने वैसा ही किया, परन्तु दोनों ने सुवर्ण मुद्राओं को लेना अस्वीकार किया और कहा "इस सुवर्ण-राशि से हमें क्या प्रयोजन है ? हम लोग तो वनवासी हैं, वन्य फलमूल से ही तृप्त हैं।" उनकी ऐसी बातें सुनकर सभी श्रोताओं और राम को बड़ा कौतूहल और विस्मय हुआ—

> "श्रुत्वा विंशतिसर्गास्तान् भ्रातरं भ्रातृवत्सलः।
> अष्टादशसहस्राणि सुवर्णस्य महात्मनोः॥
> प्रयच्छ शीघ्रं काकुत्स्थ यदन्यदभिकाङ्क्षितम्।
> ददौ स शीघ्रं काकुत्स्थो बालयोर्वै पृथक्-पृथक्॥
> दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ।
> ऊचतुश्च महात्मानौ किमनेनेति विस्मितौ॥

वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ।
सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यावहे वने ।।" (वा० रा० ७।९४।१७-२०)

क्या ऐसी उक्ति काव्योपजीवी जाति कुशीलवों के लिए सम्भव थी ? क्या कुशीलव वनवासी होते थे ? बुल्के इस तथ्य को क्यों नहीं समझना चाह रहे हैं कि "कुशीलवौ" शब्द से प्रकृत में द्वन्द्वसमास के द्वारा कुश और लव सीता के दो पुत्र ही विवक्षित हैं, कोई कुशीलव नामक काव्योपजीवी जाति नहीं।

बालकाण्ड में भी कुश-लव को 'कुशीलवौ' कहा गया गया है—यहाँ एकवचन या बहुवचन का नहीं, किन्तु अश्विनौ के समान द्विवचन का ही सर्वत्र प्रयोग हुआ है। साथ ही उन्हें मुनिवेष-धारी राजकुमार कहा गया है—

"तस्य चिन्तयमानस्य महर्षेर्भावितात्मनः।
अगृहीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ ।।
कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ।
भ्रातरौ स्वरसम्पन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ ।।"(वा० रा० १।४।४,५)

उत्तरकाण्ड में महर्षि वाल्मीकि राम से कुश और लव के सम्बन्ध में कहते हैं, "ये दोनों जानकी से उत्पन्न तुम्हारे ही यमज पुत्र हैं, यह मैं सत्य कहता हूँ—"

"इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ च यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।।" (वा० रा० ६।९६।१७)

बुल्के उपर्युक्त सम्पूर्ण तथ्यों की उपेक्षा कर कुश और लव को काव्योपजीवी कुशीलव कहते हैं। वस्तुतः साङ्गोपाङ्ग रामायण का प्रमाण न मानने से ऐसे ही भ्रान्तिपूर्ण अनर्थ की सम्भावना होती है। बुल्के के लिए यह समझना उचित है कि काव्योपजीवी कुशीलव को काव्य से जीविका चलाना होता तो वे रथ्याओं, राजमार्गों, राजाओं के महलों, ऋषिवाटों, ब्राह्मणावसथों तथा जनसाधारण में रामायण का गान करते हुए क्यों घूमते ?

यदि वे सादर उत्तरकाण्ड का अध्ययन करें तो उनके लिए भी स्पष्ट हो जायगा कि वस्तुतः इस सब का उद्देश्य सीता के चरित्र की पवित्रता और निर्मलता स्थापन करना ही था।

यह भी विचारणीय है कि आश्रम में सीता के आने के बाद ही रामायण के निर्माण का प्रसङ्ग क्यों आता है ? लक्ष्मण वाल्मीकि आश्रम के समीप अन्तर्वत्नी सीता को पहुँचा कर लौट गये। रुदन करती हुई सीता को देखकर मुनि-बालकों ने जाकर वाल्मीकि को बताया कि कोई अदृष्टपूर्वा श्री के समान किसी की पत्नी स्वर्गच्युत देवता के समान दुःखित है। मुनिपुङ्गव वाल्मीकि ने शोकव्याकुल सीता से मधुर एवं आह्लादिनी वाणी से कहा कि तुम दशरथ की स्नुषा और राम की पत्नी तथा जनक की पुत्री हो मैंने सब समाधि से जान लिया है। तुम्हारे त्याग का कारण भी मैंने जान लिया है। तुम निष्पाप हो यह भी मैंने तपोबललब्ध चक्षु से देख लिया है। यहीं समीप में तापसी लोग हैं, ये सब तुम्हारी रक्षा करेंगी। सीता ऋषि की आज्ञा के अनुसार आश्रम में रहने लगी। निर्वासिता सीता के करुण क्रन्दन जनित करुण रस से महर्षि का हृदय परिपूर्ण था; निषाद द्वारा क्रौञ्च के वध से संतप्त क्रौञ्ची के करुण क्रन्दन ने महर्षि के तादृश हृदय को आलोडित कर दिया, वही करुण रस महर्षि के हृदय से उच्छलित हो श्लोक बन गया—

"शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा।" (वा० रा० १।२।१८)

शोकाकुलित वाल्मीकि महर्षि को मार्ग-प्रदर्शन करने के लिए ब्रह्माजी आये और उन्होंने कहा कि मेरी प्रेरणा से ही सरस्वती इस श्लोक रूप में प्रकट हुई है; तुम धर्मात्मा एवं धीर राम के सम्पूर्ण चरित्र को जैसे नारद

से सुना है वैसे और भी उनके जो रहस्य और प्रकाशमय चरित्र हैं, जो अभीतक अविदित हैं वे भी तुम्हें विदित होंगे, इस काव्य में तुम्हारी कोई भी वाणी अनृत नहीं होगी—

"रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।
धर्मात्मनो भगवतो लोके रामस्य धीमतः॥
वृत्तं कथय धीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम्।
रहस्यं च प्रकाशं च यद् वृत्तं तस्य धीमतः॥
रामस्य सहसौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः।
वैदेह्याश्चैव यद् वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः॥
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम्।" (वा० रा० १।२।३२-३५३)

पुनः तीसरे सर्ग में स्पष्टतः कहा गया है—

"उपस्पृश्योदकं सम्यङ्मुनिः स्थित्वा कृताञ्जलिः।
प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु धर्मेणान्वेषते गतिम्॥
रामलक्ष्मणसीताभी राज्ञा दशरथेन च।
सभार्येण सराष्ट्रेण यत् प्राप्तं तत्र तत्त्वतः॥
हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम्।
तत् सर्वं धर्मवीर्येण यथावत् सम्प्रपश्यति॥
स्त्रीतृतीयेन च तथा यत् प्राप्त चरता वने।
सत्यसन्धेन रामेण तत् सर्वं चान्ववेक्षत॥
ततः पश्यति धर्मात्मा तत् सर्वं योगमास्थितः।
पुरा यत् तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा॥
तत् सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महामतिः।
अभिरामस्य रामस्य तत् सर्वं कर्तुमुद्यतः॥" (वा० रा० १।३।२-७)

महर्षि ने आचमन कर प्राचीनाग्र कुशों पर आसीन होकर योगज धर्म से राम आदि के चरित्रों को ध्यान से देखा। राम, लक्ष्मण, सीता तथा सराष्ट्र एवं तीनों भार्याओं सहित दशरथ ने जो कुछ भी हसित, भाषित, चेष्टित, गमन आदि किया धर्मबल से ऋषि ने सब कुछ देखा। योग का आश्रयण करके पुराकाल में जो कुछ भी घटनाएँ घटीं उनको करतल में स्थित आँवले की तरह सम्पूर्णतः और सम्यगरूप से महर्षि ने देख लिया। उन महर्षि के आश्रम में ही सीता के दो पुत्र हुए। उत्तरकाण्ड के ६०वें सर्ग में उल्लेख है कि जिस रात में मथुरा जाते हुए शत्रुघ्न वाल्मीकि महर्षि के आश्रम में जाकर रुके थे उसी रात में सीता ने दो बालकों को जन्म दिया। मुनिबालकों से समाचार पाकर मुनि ने वहाँ जाकर बालकों की राक्षसादि-विनाशिनी रक्षा की व्यवस्था की। कुश से ऋषि ने जिस बालक की रक्षा की व्यवस्था की उसका नाम कुश हुआ और लव से जिसका मार्जन किया उसका नाम लव हुआ।

नागेश के अनुसार छिन्न कुशों का अग्रभाग कुश कहा जाता है एवं अधोभाग लव कहा जाता है। इसी तरह वाल्मीकि मुनि के आश्रम में ही पालित, पोषित एवं संस्कृत होकर उन दोनों बालकों कुश और लव ने मुनिवेष

में महर्षि वाल्मीकि के समीप में ही वेदादि शास्त्रों तथा धनुर्वेद आदि का अध्ययन किया। यह सब पूर्वापरप्रसङ्गों से सुतरां सिद्ध हो जाता है।

राजा द्वारा त्यक्त सीता को अपने आश्रम में आवास देकर मुनि को सीता और उसके बालकों के सम्बन्ध में चिन्ता होनी स्वाभाविक ही थी। इस सबके लिए परमावश्यक था कि सीता के विशुद्ध चरित्र का प्रख्यापन हो, इस दृष्टि से ही ब्रह्मा के आदेशानुसार ऋषि ने ऋतम्भरा प्रज्ञा से सीता, राम, लक्ष्मण आदि के गुप्त और प्रकट हसित, भाषित, इङ्गित, चेष्टित आदि अतीत चरित्रों का साक्षात्कार कर **रामायण** का निर्माण किया (सर्ग ३,४)। वस्तुतः वह सीताचरित्र ही था, परन्तु एक पतिव्रता का चरित्र उसके पति के चरित्र से ही साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न होता है, इसलिए वह रामचरित्र **रामायण** भी है।

"काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः॥" (वा० रा० १।४।७)

रामचरित्र **रामायण** और सीताचरित्र के उस महाकाव्य का पौलस्त्यवध यह नाम रखा गया। सीताचरित्र होने से ही धीरोदात्त नायक राम **रामायण** के श्रवण में प्रवृत्त हुए थे। आत्मचरित्रश्रवण से तो धीरोदात्त नायक को संकोच ही होता है।

सीता के निर्मल चरित्र का काव्य बन गया, परन्तु उसका प्रचार कैसे हो यह विचार मुनि के सामने उपस्थित हो ही रहा था उसी समय कुश और लव दोनों ने आकर मुनि का पाद-वन्दन किया। दोनों राजपुत्र हैं, आश्रमवासी हैं और उन्होंने वेदाध्ययन कर लिया है. अतः वेद के उपबृंहणार्थ मुनि ने उन दोनों बालकों को रामायण का अध्ययन कराया—

"स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥" (वा० रा० १।४।६)

सीता के निर्मल चरित्र के प्रख्यापन के लिए रामायण का प्रखर प्रचार अनिवार्य था, अतः प्रचार का ढङ्ग भी अत्यन्त आकर्षक होना आवश्यक था। **रामायण** पाठ्य होने के साथ ही उत्कृष्ट गेय भी था। कुश और लव दोनों गान्धर्वशास्त्र के भी तत्त्वज्ञ थे। साथ ही स्थान, मूर्छना आदि के भी विद्वान् थे और स्वर (मधुरकण्ठ) सम्पन्न थे एवं गन्धर्वों के समान अत्यन्त रूपवान् भी थे। उत्तम रूप एवं लक्षणों से युक्त तथा मधुरस्वरभाषी वे दोनों राम के पुत्र सूर्य-बिम्ब से उत्थित दो प्रतिबिम्बों के तुल्य ही राम के प्रतिबिम्ब जैसे ही लगते थे। उन दोनों धर्मज्ञ राजपुत्रों ने इस काव्य को वाचाविधेय (कण्ठस्थ) कर लिया। द्रुत, मध्य, विलम्ब तीनों प्रमाणों तथा षड्जादि सप्त स्वरों एवं वीणातन्त्रीलय के साथ इस महाकाव्य **रामायण** को ऋषियों की सभा में गाया। उनके गान को सुनकर सब मुनियों के नेत्र आनन्दाश्रु से पूर्ण हो गये। सभी साधु साधु कहते हुए गानकौशल और माधुर्य से विस्मित तथा प्रसन्न होकर प्रशंसा करने लगे। इस काव्य का वृत्त यद्यपि बहुत पहले का था तो भी लोकोत्तर काव्य के लोकोत्तर गान से सब प्रत्यक्षवत् प्रतीत होने लगा। उनके अति मधुर गान से प्रसन्न हो भिन्न-भिन्न मुनियों ने सुन्दर कलश, वल्कल वसन, कृष्णाजिन, यज्ञसूत्र, कमण्डलु, मौञ्जी, वृषी, कौपीन, कुठार, काषाय वस्त्र, चीर, जटाबन्धन काष्ठरज्जु, यज्ञ-भाण्ड आदि विभिन्न वस्तुएँ पुरस्कार के रूप में उन दोनों राजकुमारों को प्रदान कीं।

उसी समय नैमिषारण्य में राम का अश्वमेध चल रहा था। देश-देशान्तर के सभी प्रतिष्ठित ब्रह्मर्षि, राजर्षि तथा अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति एकत्रित थे। महर्षि वाल्मीकि भी निमन्त्रित होकर वहाँ गये थे। कुश और लव के सर्वश्रुतिमनोहर **रामायण** के गान से सभी प्रभावित थे। उन विशिष्ट जनों तथा जन साधारण से भी कुश, लव की प्रशंसा सुनकर भरताग्रज राम ने उन्हें अपने भवन में बुलाकर उनका सम्मान किया और विशिष्ट जनों की महती

सभा में उन्हें इस काव्य के गान के लिए प्रेरित किया। तब कुश और लव ने विचित्र अर्थ और पदवाले उत्तम **रामायण महाकाव्य** का तन्त्रीलय के साथ अपने मधुर कण्ठों से सबके सर्व गात्र, श्रोत्र, मन और हृदयों को आह्लादित करते हुए गायन किया। समासदों सहित उस समय राम भी सङ्गीत-श्रवण में दत्तचित्त हो गये। उक्त काव्यश्रवण से सीता और राम आदि के गुप्त एवं प्रकट दिव्य चरित्रों का स्फुट प्रकाश हुआ। सीता के प्रति कुछ लोगों के मन में उत्पन्न विविध संशय, विपर्यय आदि का समूल उन्मूलन हो गया; सीता का निर्मल चरित्र सबके हृदय में प्रकाशित हो गया।

उत्तरकाण्ड के ९४वें सर्ग के प्रसङ्गानुसार राम ने अश्वमेध यज्ञ के प्रसङ्ग से महामुनियों, राजाओं तथा नैगमों, वैदिकों, पौराणिकों, शब्दविदों, वृद्धों, द्विजातियों तथा स्वरों के लक्षणज्ञों, उत्कृष्ट द्विजसत्तमों, लक्षणज्ञों, गान्धर्वतत्त्वज्ञों तथा पाद-अक्षर-समास-विदों, छन्दपरिनिष्ठित जनों, कलातत्त्वज्ञों, ज्योतिषविशेषज्ञों, क्रियाकल्पज्ञों, कार्यविशारदों, हेतूपचारकुशल जनों, चित्रकलानिपुण जनों, वृत्तिसूत्रज्ञों तथा नृत्य-गीतविशारदों आदि सब श्रेणी के विशेषज्ञों को निमन्त्रित कर उनकी महती सभा में कुश और लव को **रामायण** का गान करने के लिए आमन्त्रित किया। कुश और लव के अतिमानुष मधुर गन्धर्व-स्वर से सभी श्रोता मन्त्र-मुग्ध हो गये। मुनिगण एवं पार्थिवगण बारम्बार चक्षु से पान करते हुए वे उन दोनों बालकों, कुश और लव को बारम्बार देखते हुए आपस में कह रहे थे कि ये दोनों इस तरह राम के तुल्य लगते हैं जैसे सूर्यविम्ब से दूसरा सूर्य-बिम्ब ही उदित हुआ हो। यदि ये दोनों बालक जटायुक्त और वल्कलधारी न होते तो राघवेन्द्र राम और इन दोनों बालकों में कोई भेद अवगत न होता—

"जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि।
विशेषं नाधिगच्छामो गायतो राघवस्य च॥" (वा० रा० ७।९४।१४)

उपर्युक्त सम्पूर्ण वक्तव्य से स्पष्ट है कि कुश और लव दोनों ही राम के पुत्र, राजकुमार थे न कि तथा-कथित कुशीलव नृत्यगीत-काव्योपजीवी जातिविशेष।

उत्तरकाण्ड के ९५वें सर्ग में कहा गया है राम ने बहुत दिनों तक परम शुभ गीत मुनियों, राजाओं एवं सुग्रीव-हनुमान् वानर आदिकों के साथ सुना और उस गानप्रसङ्ग में ही कुश और लव को सीता पुत्र जान लिया—

"तस्मिन् गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ।
तस्याः परिषदो मध्ये रामो वचनमब्रवीत्॥" (वा० रा० ७।९५।२)

यदि बुल्के ने इन सब बचनों को ध्यान से पढ़ा होता तो निश्चय ही वे ऐसी विपरीत कल्पना नहीं कर सकते थे। अपने काल्पनिक मन्तव्य की रक्षा के लिए ही बुल्के ने इन सब सर्गों को प्रक्षेप कहा है। उपर्युक्त प्रकरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि **वाल्मीकिरामायण** का निर्माणकाल राम का सिंहासनारूढ़ होने का काल ही था, क्योंकि राम द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर ही कुश और लव द्वारा इसका गान हुआ था, अतः निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि इसका निर्माणकाल ई० पू० दूसरी शती कदापि नहीं हो सकता।

आश्चर्य तो यह है कि जिन प्रसङ्गों के आधार पर 'कुशीलव' शब्द को मान लेते हैं उन्हीं प्रसङ्गों से व्यक्त, उन्हीं से सम्बद्ध अन्य बातों को, कुश और लव का सीता-पुत्र या राम-पुत्र होना, राम-सभा में **रामायण** का सुना जाना आदि को, प्रक्षेप मान लेते हैं यही अर्ध-जरतीय न्याय है।

इसी सर्ग में यह भी उल्लेख है कि उसी महापरिषद् में शुद्ध समाचारवाले दूतों को बुलाकर राम ने उनसे कहा "भगवान् बाल्मीकि के समीप जाकर यह कहो कि यदि सीता शुद्धसमाचारा हैं, वीतकल्मषा हैं, तो मुनि की अनुमति से आत्मशुद्धि को प्रमाणित करें; यदि मुनि की इच्छा हो तो उनके मनोगत भावों को जानकर बताओ। कल प्रातः समय जनकात्मजा मैथिली अपनी और मेरी शुद्धि के लिए सभा में सबके समक्ष शपथ करें।" उन दूतों ने

जाकर अमितप्रभ महात्मा वाल्मीकि से सब कुछ कहा। मुनि ने सब सुनकर और राम की इच्छा को जानकर कहा कि ठीक है जैसा राम कहते हैं वैसा ही होगा। सीता वैसा ही करेगी, क्योंकि स्त्री का परम दैवत पति ही होता है। राजदूतों ने आकर राम को मुनि का कथन सुनाया। राम प्रसन्न हुए और एकत्रित ऋषियों और राजाओं से उन्होंने कहा, शिष्यों सहित सभी ऋषि तथा अपने परिकरों सहित नृपतिगण तथा और भी जो चाहते हों सभी आकर सीता का शपथ लेना (पातिव्रत्य तथा शुद्धि का प्रमाण, प्रत्यय) देखें। महात्मा राघव के उक्त वचन सुनकर महर्षियों तथा राजाओं में महान् साधुवाद हुआ। प्रभावशाली महान् राजा तथा मुनिश्रेष्ठगण राघव की प्रशंसा करने लगे।

इसी काण्ड के ९६ वें सर्ग के उल्लेखानुसार रात के बीतते ही राम ने वसिष्ट, विश्वामित्र, वामदेव, जाबालि, कश्यप, दीर्घतमा, दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, दीर्घायु मार्कण्डेय, महायशा मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, शतानन्द, भरद्वाज, अग्निपुत्र सुप्रभ, नारद, पर्वत, गौतम आदि आदि मुनिवरों को बुलवाया और वे सब आये। महावीर्य राक्षस तथा महाबल वानर एवं अन्य सभी लोग कौतूहलवश आये। सहस्रों क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र तथा नाना देशों के ब्राह्मण सीता का शपथ देखने के लिये आये। सबके आने की बात जानकर सीता के साथ मुनिवर वाल्मीकि वहाँ आये। ऋषि के पीछे-पीछे राम को मन में रखकर अवाङ्मुखी कृताञ्जलि, वाष्पकलायुक्त सीता आयीं। ब्रह्मा का अनुगमन करती हुई श्रुति के समान मुनि के पीछे-पीछे आती हुई सीता को देखकर जन-समूह में महान् साधुवाद हुआ। सीता और राम के जन्म से लेकर होनेवाले विशाल दुःख-परम्परा का चिन्तन करके सभी के अन्तःकरण क्षुब्ध हो उठे। कोई राम का और कोई सीता का साधुवाद करने लगे। कोई प्रेक्षक दोनों का साधुवाद करने लगे। उस समय उस महान् जनौघ में सीता को साथ लिए हुए वाल्मीकि बोले, "दाशरथे! सीता सुव्रता एवं धर्मचारिणी है; अपवादभय से आप द्वारा मेरे आश्रम के समीप परित्यक्ता होकर मेरे आश्रम में रही, सीता आप के समक्ष अपने सतीत्व का प्रमाण, प्रत्यय देगी। ये दोनों बालक, कुश और लव जानकी में उत्पन्न तुम्हारे पुत्र हैं। मैं प्रचेता का दसवाँ पुत्र हूँ—मैंने कभी अनृत वाक्य कहा हो तो इसका मुझे स्मरण नहीं होता; बहुत वर्षों तक मैंने तपश्चर्या की है; यदि मैथिली दुष्टा हो तो मैं उन तपश्चर्याओं का फल न पाऊँ। मनसा, वाचा और कर्मणा मुझसे कभी किल्बिष नहीं हुआ। यदि मैथिली निष्पाप है तो मैं उसका फल भोगूंगा, पञ्च ज्ञानन्द्रियों सहित मन से चिन्तन करके सीता को अन्यन्तशुद्धसमाचार एवं निष्पाप जानकर ही मैंने वन में उसे अपने आश्रम में रखा है। यद्यपि आप भी सीता को शुद्ध मानते हैं तो भी सीता प्रत्यय देगी।

सर्ग ९७ में उल्लेख है; राम ने कहा ब्रह्मन्, आप के अकलमष वचनों में मुझे पूर्ण विश्वास है। देवताओं के सन्निधान में जानकी ने पहले भी, लङ्का में, प्रत्यय दिया है तो भी लोकापवाद के भय से मैंने जानकी को निष्पाप जानते हुए भी उनका त्याग किया था। ये कुश और लव मेरे पुत्र हैं, यह भी मैं जानता हूँ। मेरा आशय जानकर सीता-शपथ के प्रसङ्ग में सभी देवगण आये हैं। लोकपितामह ब्रह्मा को आगे कर आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण तथा साध्य देवता एवं सभी परम महर्षि, नाग, सुपर्ण और सिद्ध सब आये हैं। राघव ने सबको देखकर कहा, "ऋषि के निष्कलमष वाक्यों में हमें सीता के प्रति पूर्ण प्रत्यय (विश्वास) है और संसार में परम पवित्र सीता में मेरी स्थिर प्रीति है। उस समय दिव्य, शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु जनौघ को आह्लादित करने लगा। सभी राष्ट्रों से आये हुए मानवों ने सत्ययुगीय उस अद्भुत शीतल, मन्द, सुगन्ध दिव्य वायु का अनुभव किया। काषायवसना सीता ने चतुर्दश भुवनस्थ जनसमुदाय को देखकर अवाङ्मुखी तथा अधोदृष्टि प्राञ्जलि-बद्ध होकर कहा मैं राघव से अन्य किसी का कभी मन से भी चिन्तन नहीं करती, यदि यह सत्य है तो माधवी धरित्री देवी मुझे अवकाश प्रदान करे। इस तरह सीता शपथ कर रही थी कि एक अद्भुतचमत्कार हुआ भूतल से एक अत्यन्त उत्तम दिव्य सिंहासन प्रकट हुआ। जिसे अमित विक्रमवाले दिव्य रत्नभूषित नागों ने अपने फणों पर धारण कर रखा

था। धरणी देवी उसी अलौकिक दिव्य सिंहासन पर स्वागत और अभिनन्दन पूर्वक मैथिली को अपनी वाहुओं से ग्रहण कर दिव्य आसन पर बैठाती हैं। उस दिव्य आसन पर समासीन होकर रसातल में प्रविष्ट होती हुई सीता पर देवताओं द्वारा महान् जय-जयकार तथा साधुकार के साथ अविच्छिन्न रूप से मुक्त दिव्य पुष्प-वृष्टि हुई।

"तथा शपन्त्यां वैदेह्यां प्रादुरासीत् तदद्भुतम्।
भूतलादुत्थितं दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम्॥
ध्रियमाणं शिरोभिस्तु नागैरमितविक्रमैः।
दिव्यं दिव्येन वपुषा दिव्यरत्नविभूषितैः॥
तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत्॥
तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलम्।
पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्या सीतामवाकिरत्॥
साधुकारश्च सुमहान् देवानां सहसोत्थितः।
साधु वै साध्विति सीते यस्यास्ते शीलमीदृशम्॥" (वा० रा० ७।९६।१७–२१)

"सीते! साधु—तुम्हारा शील लोकोत्तर है" इस प्रकार अन्तरिक्षस्थ देवताओं की बहुबिध वाणियाँ प्रकट हुई—यज्ञवाट के सभी राजागण विस्मित हुए। अन्तरिक्ष तथा भूमि के सभी स्थावर, जङ्गम तथा महाकाय दानव एवं पाताल के पन्नगेन्द्र विस्मयान्वित होकर, कोई प्रहृष्ट होकर 'जय जय' एवं 'साधु साधु' नाद करने लगे; कोई ध्यानपरायण हो गये। कोई राम को और कोई सीता को देखते हुए विसंज्ञ हो रहे थे। सीता के रसातल प्रवेश से वानर, राक्षस, मानव सभी संतप्त हुए। श्रीराम अत्यन्त संतप्त हुए। ब्रह्माजी देवताओं के साथ आकर राम और सीता के दिव्य वैष्णव माहात्म्य का वर्णन करके सन्त्वना देते हैं।

पद्मपुराण के उल्लेखानुसार सीता के लिए रसातल से गरुड़जी प्रकट हुए और अपनी पीठ पर रत्नमय सिंहासन को लेकर आये। उसपर धरणी देवी विराजमान थीं। उन्होंने मैथिली का स्वागत और अभिनन्दन कर उन्हें सिंहासन पर बैठाया। सनातनी सीता देवादिकों से पूज्यमान होकर योगिगम्य सनातन परम धाम को चली गयीं—

"नानारत्नमयं पीठं पृष्ठे कृत्वा खगेश्वरः।
रसातलादाविरभूद्विस्मयं जनयन्नृणाम्॥
तस्मिन् पीठे महादेवीं हस्ताभ्यां गृह्य मैथिलीम्।
स्वागतेनाभिनन्द्येमां संनिवेश्य तिरोदधे॥
सा च दिव्याप्सरोभिस्तु पूज्यमाना सनातनी।
वैनतेयं समारुह्य अचिरादिपथाद् रमा॥
दासीगणैः पूर्वभवैः संवृता जगदीश्वरी।
संप्राप्ता परमं धाम योगिगम्यं सनातनम्॥"
रामाभिरामीटीकायां समुद्धृताः लोकाः।

पूर्वापर प्रसङ्ग का भलीभाँति विचार करने पर स्पष्टतः विदित होता है कि वाल्मीकि महर्षि श्रीराम के समकालिक ही हैं। सीता के निर्मल चरित्र का वर्णन और प्रचार कर वे मिथ्या लोकापवाद का समूल उन्मूलन ही करने में सफल हुए हैं। उस दृष्टि से राम ने देवताओं, ऋषियों, राजाओं तथा नाना देशागत मानवों की सभा में **रामायण** का सबके साथ ही श्रवण किया और **रामायण** द्वारा वर्णित कथावस्तु की यथार्थता और सीता के वास्तविक

जीवन-वृत्तान्त का स्वयं अनुभव किया और सबको वैसा ही अनुभव करने का अवसर दिया। सीता के शपथ के प्रभाव से दिव्य सिंहासन के आविर्भाव आदि से तो उसकी सत्यता और भी निखर उठी।

लङ्का में सीता की अग्नि-परीक्षा हो चुकी थी। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वायु, अग्नि आदि देवताओं, वानरों, राक्षसों ने वहाँ का चमत्कार देखा था, परन्तु चतुर्दश भुवन के सभी प्राणी और देश-देशान्तर के सभी मानवों ने यह सब नहीं देखा था। राम द्वारा उसका प्रचार कराकर मिथ्या-लोकापवाद मिटाने का प्रयत्न किया जा सकता था, परन्तु विप्रतिपन्न व्यक्ति उसे राजकीय प्रचार (प्रोपेगेण्डा) कहकर महत्त्वहीन बता सकते थे। परन्तु एक अरण्यवासी, वल्कलधारी, कन्दमूलफलाशी, आप्तकाम, वीतराग महर्षि के अमर काव्य के सम्बन्ध में किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हो सकता था। महर्षि का राम से कोई भी आर्थिक सम्बन्ध नहीं था। **रामायण** के प्रचारक कुश और लव भी कोई कथाकाव्योपजीवी साधारण व्यक्ति नहीं थे। वे दोनों मुनिवेष राजकुमार, श्रीराम के ही पुत्र थे। उनमें वक्ता के सर्वोत्तम गुण विद्यमान थे। वक्ता में उत्तम रूप, सौन्दर्य, कण्ठमाधुर्य, सौस्वर्य्य तथा वेदादि शास्त्र-विज्ञान के साथ ही साथ गान्धर्व कला-कौशल भी आवश्यक होता है। उपर्युक्त सब गुण कुश और लव में थे। उनमें राम के समान ही लोकोत्तर सुन्दरता थी, वे वेद-शास्त्रों में पारङ्गत, **धनुर्वेद**, **गन्धर्ववेद** आदि में पूर्ण निष्णात थे। उनमें उत्तम कण्ठ-माधुर्य, सौस्वर्य्य एवं सङ्गीतकौशल विद्यमान था। वीतराग ऋषिमुनि भी उनके **रामायण**-गान से मुग्ध हो गये। इतने पर भी यदि वक्ता सस्पृह (लोभी) हो तो महान् से महान् गुण भी फीके पड़ जाते हैं। उनका प्रभाव महत्त्वहीन हो जाता है। अतः महर्षि ने उन्हें दिव्य, मधुर फलमूल खिलाकर कह दिया था कि अपने लोग कन्दमूलफलाशी वनवासी हैं, हम लोगों को धन से कोई प्रयोजन नहीं; अतः किसी के देने पर भी कुछ लेना नहीं। पर जो सादर सुनना चाहें उन्हें सुनाना। प्रथम दिन की कथा श्रवण कर ही राम ने प्रभूत सुवर्णराशि देने का प्रयत्न किया, परन्तु कुश-लव ने उसको स्वीकार नहीं किया। ये सब ऐसे गुण थे जिनका प्रभाव अनिवार्यरूप से सब पर पड़ा।

रामायण द्वारा वर्णित कथावस्तु इतनी सत्य थी कि अयोध्या के वृद्ध लोग उसे सुनकर चिरवृत्त वृत्तान्त को प्रत्यक्ष सा अनुभव करने लगे—

"चिरनिर्वृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्।
प्रविश्य तावुभौ सुष्ठु तथाभावमगायताम्॥
सहितौ मधुरं रक्तं सम्पन्नं स्वरसम्पदा।" (वा० रा० १।४।१८)

नैमिषारण्य में श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ हो रहा था। अयोध्यावासी नागरिक अधिक मात्रा में आये हुए थे। अयोध्याकाण्ड की घटनाओं में उन्हें प्रत्यक्ष अनुभूति थी। वे लोग प्रथमतः तो कुश-लव के त्याग, निःस्पृहता, दिव्य सौन्दर्य तथा तन्त्रीनादनपूर्वक मधुर सुस्वर सङ्गीत पर मुग्ध हुए। फिर, स्वानुभूत कथावस्तु का यथावत् वर्णन सुनकर आश्चर्यमग्न होकर चित्रलिखित से स्तब्ध रह गये। चिरप्रवृत्त वृत्तान्त का यथावत् वर्णन **रामायण** में सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ। **वाल्मीकिरामायण** आर्ष कथा होते हुए आर्ष इतिहास भी है। सीता-चरित्र की स्वच्छता की अभिव्यक्ति उसका प्रथम उद्देश्य था, अतः उसमें अप्रिय सत्य का भी स्पष्ट उल्लेख हुआ है। राजा दशरथ का भरत के प्रति शङ्का करना तथा कौशल्या का मातुल-कुल से प्रत्यागत भरत के प्रति व्यवहार अप्रिय सत्य की अभिव्यक्ति ही है। स्वानुभूत घटनाओं के यथावत् वर्णन से अत्यन्त प्रभावित अयोध्यावासियों के मन में इस महाकाव्य के रचयिता के सम्बन्ध में भी जिज्ञासा होना स्वाभाविक ही था। कोई वीतराग निःस्पृह वनवासी महर्षि वाल्मीकि उसके रचयिता हैं यह जानकर और अधिक विश्वास हुआ। स्वभावतः राम के वनवासकालिक वृत्तान्तों और सीताहरण, सुग्रीव-मैत्री, वालि-वध, सेतु-बन्धन, रावण-सीता-संवाद आदि के सम्बन्ध की सत्यता जानने की भी

उत्सुकता होनी स्वाभाविक थी। कुछ लोग जिनकी संख्या नगण्य ही थी सीता के प्रति शङ्का भी करते थे। स्वभावतः निःस्पृह मुनि द्वारा निर्मित तथा निःस्पृह वक्ता द्वारा वर्ण्यमान **रामायण** से अरण्य एवं लङ्का की घटनाओं के प्रति शङ्का की निवृत्ति सम्भव हो सकती थी। इस तरह विविध दृष्टियों तथा भावनाओं से रामचरित्र की ओर लोगों का आकर्षण हुआ। तुलसीदास के अनुसार नीति, प्रीति, परमार्थ तथा स्वार्थ के सम्बन्ध में राम से अधिक कोई नहीं जान सकता है—

"नीति प्रीति परमारथ स्वारथ कोउ न राम सम जान जथारथ।"

(रा० मा० २।२५३।३)

जनापवाद सुनकर राम विचलित नहीं हुए। वे जानते थे कि दण्ड देकर जनता का मुख बन्द नहीं किया जा सकता। दो एक मुख बन्द कर देने पर वही आवाज सैकड़ों मुखों से निकलने लगती है; अतः उन्होंने बहुजन-हिताय बहुजनसुखाय ही नहीं किन्तु सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय का ही सिद्धान्त अपनाकर स्वयं अपने विरुद्ध अल्पमत का भी सम्मान कर परम विशुद्ध जानते हुए भी सीता को वनवास दिया। उनका महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के समीप में छोड़े जाने का भी विशेष उद्देश्य यही था कि सीता-वनवास से विरुद्ध अल्पमत को भी सन्तोष होगा। साथ ही सीता की शुद्धि का उत्तरदायित्व भी महर्षि वाल्मीकि पर होगा। राम जानते थे कि मेरे प्रचार से महर्षि वाल्मीकि की लेखनी का प्रभाव सीतासम्बन्धी लोकापवाद निराकरण पर कहीं अधिक पड़ेगा। आश्रम में रह कर सीता के पुत्रों पर जो उत्तम संस्कार पड़ेगा तथा उत्तम अध्ययन जितना अच्छा होगा वैसा महलों में नहीं हो सकता। सीता के पुत्रों की उत्तम शिक्षा होगी तथा वे अधिक शक्तिशाली बन सकेंगे। सीता भी तपोमय जीवन से आध्यात्मिक लाभ अधिकाधिक उठायेंगी। मैं भी आध्यात्मिक चिन्तन में अधिक समय लगा सकूँगा। सीता का लोकापवाद समाप्त होकर निर्मल यश प्रख्यात होगा। श्रीराम ने यज्ञ के लिए भी अन्य पत्नी का वरण न करके सीता के प्रति शुद्ध प्रेम भी व्यक्त कर दिया है। इस तरह प्रजारञ्जन नीति, सीता के प्रति प्रीति, सीता चरित्र की शुद्धि, पुत्रों की योग्य शिक्षा तथा संस्कार स्वार्थ और दोनों पति-पत्नी आध्यात्मनिष्ठासम्पादन परमार्थ का साधन सब सीता वनवास से एक साथ सम्पन्न होते हैं।

श्रीबुल्के अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड पर्यन्त **रामायण** को प्रमाण कहते है। युद्धकाण्ड की ही फलश्रुति और पुष्पिका में वाल्मीकि का नाम है—

"धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम्।
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम्॥" (वा० रा० ६।१२५।१०७)

ऐसे ही प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर "वाल्मीकीये आदिकाव्ये रामायणे" अमुक काण्ड, अमुक सर्ग सम्पूर्ण हुआ ऐसी पुष्पिका मिलती है, परन्तु युद्धकाण्ड की पुष्पिका बड़ी है। उसमें यह उल्लेख है कि श्रीगोमती के तीर नैमिषारण्य में राम के अश्वमेध के अवसर पर मुनीन्द्र, द्विजेन्द्र तथा मुनिवृन्दारक-वृन्द-वन्द्यपादारविन्द-सद्भ्रातृ-सन्मित्र-सन्मन्त्रिसहित साकेतपुराधीश्वर दीनों का दैन्यहरण करनेवाले तथा उदीर्णवीर्य रावण के वधार्थ देवताओं से प्रार्थित रघुकुलतिलकसंभूत सीताविशेषकलक्ष्मीपति के साम्यांश लक्ष्मीपति राजाधिराज लोकाभिराम राम के निकट राम के आत्मज तथा आदिकवि के शिष्य कुश और लव ने इस चोबीस सहस्र श्लोकों की **वाल्मीकिरामायणसंहिता** का आख्यान वर्णन किया है।

"इति श्रीगोमतीतीरनैमिषारण्याश्वमेधसप्ततन्तुवाटगतमुनीन्द्रद्विजेन्द्रवसुधाधिपेन्द्रपरिवृतस्य मुनि-वृन्दारकवृन्दवन्द्यमानकोरकाकारचरणयुगलस्य सद्भ्रातृ-सन्मित्र-सन्मन्त्रिसहितस्य साकेतपुरवराधीश्वरस्य दीनानां दैन्यहारिण उदोर्णवीर्योत्सिक्तरावणवधार्थं देवैः प्रार्थितस्य रघुकुलतिलकसंभूतस्य श्रीसीता-

विशेषकस्य लक्ष्मीपतेः साम्यांशस्य लक्ष्मीवतो राजाधिराजस्य लोकाभिरामस्य निकटोक्तयोः श्रीरामात्मज-योरादिकविशिष्ययोः कुशलवयोराख्याने श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशत्साहस्रिकायां संहितायां श्रीमद्युद्धकाण्डे पञ्चविंशेऽह्नि वर्तमानकथाप्रसङ्गः समाप्तः।"

इस पुष्पिका में 'कुशीलव' का प्रयोग न होकर 'कुशलवयोः' का प्रयोग है और इसमें उन्हें राम के आत्मज कहा गया है। कुशीलव शब्द का उल्लेख बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड में ही मिलता है, परन्तु बुल्के की दृष्टि से वे दोनों ही काण्ड प्रक्षेप हैं। यदि बुल्के उपर्युक्त काण्डों को प्रक्षेप मानते हैं तो यह भी मानना पड़ेगा कि कुशीलव ने **रामायण** का प्रचार किया अंश भी प्रक्षेप है, अतः प्रामाणिक नहीं है। यदि उन दोनों काण्डों से कुशीलव शब्द को स्वीकार करना है तो उन्हीं काण्डों के आधार पर कुशीलव का व्यक्तित्व भी समझना पड़ेगा—तदनुसार अत्यन्त स्पष्ट है कि कुशीलव नृत्य-गीत-काव्योपजीवी कोई जातिविशेष न होकर राम के आत्मज, राजकुमार आदिकवि वाल्मीकि के शिष्यद्वय कुश और लव थे—वे ही अश्विनौ के समान कुशीलवौ शब्द से निर्दिष्ट हुए हैं।

इसी तरह महर्षि वाल्मीकि ने कैसे **रामायण** की रचना की यह भी बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड से ही सिद्ध होता है। यदि उक्त दोनों काण्ड और पुष्पिका अमान्य हो तो **रामायण** वाल्मीकि-निर्मित है यह सिद्ध करना बुल्के के लिए भी असम्भव है। यदि प्रसिद्धि के आधार पर ऐसा मान लिया जाय तो फिर स्वभावतः वाल्मीकि कुश और लव के गुरु और राम के समकालीन थे तथा उनकी रचना वाल्मीकिरामायण का निर्माण सिंहासनारूढ़ राम के काल में ही हुआ था इन प्रसिद्धियों को भी निश्चितरूप से मानना ही युक्तिसङ्गत होगा।

यह स्वाभाविक है कि ग्रन्थकर्ता ग्रन्थ में ही कहीं न कहीं अपने ग्रन्थ का नाम और स्वात्मसम्बन्ध सूचित करता है। तदनुसार उपर्युक्त दोनों काण्डों में रामायण की उत्पत्ति, भूमिका, लेखक तथा प्रचारक का नाम दिया गया है।

साथ ही उक्त पुष्पिका से स्पष्टरूप से विदित होता है कि सीता लक्ष्मीरूप से और राम विष्णुरूप से वाल्मीकि को मान्य थे। कुश और लव दोनों भाई राम के आत्मज तथा आदिकवि के शिष्य थे। उन्हीं के द्वारा **रामायण** आर्ष महाकाव्य श्रीराम को सुनाया गया था। फलतः राम के समय में ही **रामायण** का निर्माण हो चुका था। लोकापवाद-निवृत्ति और सीता के दिव्य चरित्रों का प्रकाश सीता और राम के समकाल में ही अपेक्षित भी था। तभी महर्षि की प्रचार में इतनी तत्परता तथा सर्वगुणसम्पन्न योग्य कुश और लव जैसे शिष्यों द्वारा सभी श्रेणियों के लोगों में प्रभावी ढङ्ग से प्रचार की बात सङ्गत हो सकती थी।

१३८ वें अनु० में बुल्के लिखते हैं, "बहुत से प्रक्षेप पुनरुक्तिमात्र से उत्पन्न हुए हैं। उदाहरणार्थ—
रावण का मारीच के यहाँ जाना (३, सर्ग ३१ और सर्ग ३५),
रावण के गुप्तचर का वृत्तान्त (६, सर्ग २० और सर्ग २५-३०),
सीता की गंगा-यमुना से प्रार्थना (२।५२ और ५५),

आश्रमों में आगमन। अत्रि, वाल्मीकि, शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य के आश्रमों का उल्लेख आदिरामायण में नहीं मिलता था,

विराध तथा अयोमुखी राक्षसी का वध,

राम के मायामय सिर का वृत्तान्त (६।३१) मायामयी सीता के वध के वृत्तान्त ६।८१ का अनुकरणमात्र है।"

उपर्युक्त कथन मिथ्या है। वस्तुतः अरण्यकाण्ड के सर्ग ३१ में अकम्पन ने रावण के समीप जाकर जनस्थान का समाचार सुनाया था। उसे सुनकर रावण मारीच के निकट गया। मारीच के तत्त्वोपदेश से लौट आया।

३५ वें सर्ग में शूर्पणखा से समाचार पाकर इतिकर्तव्य का निर्णय कर रावण पुनः मारीच के पास गया। आज भी राजाओं को घटनाओं के सम्बन्ध में विभिन्न सूत्रों से समाचार मिलते हैं और यथासमय विभिन्न प्रतिक्रियाएँ भी होती हैं। इतनेमात्र से उसे प्रक्षेप नहीं कहा जा सकता। आदिरामायण का प्रमाण देना भी उचित नहीं है, क्योंकि इस नाम का कोई प्रामाणिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अनुपलब्ध प्रमाण के आधार पर किसी अंश के सम्बन्ध में भी 'इदमित्थम्' कहना सर्वथा तर्क-विरुद्ध है।

३१वें सर्ग में जनस्थान से जाकर अकम्पन ने वहाँ के बहुत से राक्षसों तथा खर के मारे जाने का समाचार बताया। रावण ने क्रुद्ध होकर कहा, जिसने मेरा विप्रिय किया है वह कौन है? मेरा विप्रिय कर इन्द्र, कुबेर, यम तथा विष्णु भी सुखपूर्वक नहीं रह सकते। मैं पावक को भी दग्ध कर सकता हूँ, मृत्यु को भी मार सकता हूँ। मैं काल का भी काल हूँ।" अकम्पन ने यह सुनकर अभय वर माँगकर रावण के सामने राम का पराक्रम वर्णन किया। सब कुछ सुनकर रावण मारीच के पास गया और उससे राम-भार्या के हरण में सहायता माँगी। मारीच ने राम के पराक्रम का वर्णन कर उसे समझाया तब वह लङ्का लौट गया।

३४वें सर्ग की कथा के अनुसार रावण ने शूर्पणखा के मुख से राम का पराक्रम, आयुध और सीता के महत्त्व का विधिवत् श्रवण किया।

३५वें सर्ग की कथा के अनुसार रावण अपने मन्त्रियों से कर्तव्याकर्तव्य पर विचार कर इति-कर्तव्यता का निर्णय कर स्थिर बुद्धि और स्वस्थता के साथ वनों और पर्वतों का अवलोकन करता हुआ पुनः मारीच के पास गया। यह स्वाभाविक घटना-क्रम है, जिसका महर्षि ने यथावत् उल्लेख किया है। इस घटनाक्रम में पुनरुक्ति का आभास भी नहीं है। उपर्युक्त वर्णन को क्षेपक कहना निराधार है।

इसी तरह अत्रि, वाल्मीकि, शरभङ्ग आदि के आश्रमों का वर्णन भी समुचित ही है। वन एवं आश्रमों का वर्णन काव्य का विषय भी होता है। विराध, अयोमुखी आदि राक्षसों के वध का वर्णन क्यों प्रक्षेप है? इसका कोई कारण नहीं दिया गया। राम के मायामय सिर का वृत्तान्त (६।३१), मायामयी सीतावध के वृत्तान्त (६।८१) का अनुकरणमात्र है, ऐसी मान्यता का आधार भी क्या है? क्या दोनों पृथक् पृथक् घटनाएँ नहीं हैं? केवल प्रतिज्ञा-मात्र से कोई वस्तु सिद्ध नहीं होती; हेतु का उपन्यास आवश्यक है। इसी तरह अद्भुत रस की सामग्री, लङ्का-दहन जिसमें हास्य रस का भी समावेश है, ओषधि-पर्वत को दो बार ले आना, अग्निपरीक्षा आदि सब बुल्के के अनुसार क्षेपक हैं। करुणात्मक स्थलों की पुनरुक्ति, विलाप (३, सर्ग ६०, ६१, ६३), हनुमान् का सीता से बिदा लेना (५।५८-६०) तथा हनुमान् द्वारा सीता के भेंट के वर्णन (५।६६-६८) को भी बुल्के प्रक्षेप मानते हैं। वह भी निराधार है, कारण पाश्चात्य लोग वस्तुस्थिति का विचार न कर अपनी भावना की कसौटी पर प्राचीन ग्रन्थों को कसना चाहते हैं। जब विभिन्न प्राणियों के बुद्धि-वैभव और दृष्टि-कोण पाये ही जाते हैं तब यह कैसे कहा जा सकता है कि प्राचीन लोगों के विचार हमारे विचारों जैसे ही रहे होंगे। वस्तुतः ग्रन्थ देख कर उनके विचारों तथा उनकी पद्धतियों का निर्णय करना चाहिये। इतिहास घटना के औचित्य-अनौचित्य का विचार न कर उनकी यथार्थता का ही अनुसरण करता है। व्यक्तिविशेष के विचार अतीत घटनाक्रम के नियामक नहीं हो सकते।

इस दृष्टि से देखने पर ही गङ्गा का वर्णन (२।५२), वर्षाऋतु का वर्णन (४।२८) तथा शरदृऋतु का वर्णन (४।३०) उचित हैं। रामायण को ज्ञान का भण्डार बनाने की प्रवृत्ति (२।१००) नीति के उपदेश, जाबालि का लोकायतदर्शन प्रस्तुत करना (२।१०८), दिग्वर्णन (४।४०-४३) तथा राम का वालिवध को न्यायसङ्गत सिद्ध करने का प्रयास (४।१७,१८) प्रक्षेप हैं, यह कहना अशुद्ध है। वस्तुतः इन्हीं श्लोकों के अनुसार वाल्मीकि के भावों, विचारों तथा पद्धति का निर्णय करना उचित है। किसी के विचारों के अनुसार यह विशृङ्खल प्रतीत हो तो भी इससे

किसी घटना का अपलाप नहीं हो सकता। किसी समय कुछ लोगों को शङ्कराचार्य के भाष्य की शैली असङ्गत प्रतीत हो सकती है, परन्तु एतावता **शाङ्करभाष्य** या उसका कोई अंशविशेष प्रक्षेप नहीं कहा जा सकता। वालिवध के औचित्यानौचित्य का प्रश्न भी स्वाभाविक ही है; फिर वाल्मीकि के अनुसार यह मानने में आपत्ति ही क्या है कि वालि ने राम के इस कार्य को अनुचित कहा और राम ने उसका उत्तर दिया। ऐसी स्थिति में वाली के वध का औचित्य-प्रतिपादन के कारण ही उस अंश को प्रक्षेप कहना भी निष्प्रमाण ही है।

इसी प्रकार बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड और अवतारवाद की सामग्री को प्रक्षेप कहना भी निराधार है। आदि-रामायण खपुष्पतुल्य है, अतः उसमें वर्णित अथवा अवर्णित विषयों के आधार की चर्चा भी निराधार ही है। जब अयोध्याकाण्ड में राम को वनवास क्यों और कैसे हुआ आदि का वर्णन हुआ तो सीता-राम कौन थे, उनका विवाह कब और कैसे हुआ? इन प्रश्नों को जब बुल्के भी नितान्त स्वाभाविक समझते हैं तो यह कैसे कहा जा सकता है कि वाल्मीकि ने इस प्रश्न पर प्रकाश नहीं डाला होगा। अतः उपर्युक्त अंशों को अन्य की रचना कहना दुष्टता ही है।

इतर काण्डों से भी सुन्दरकाण्ड की शैली का भी भेद है। क्या इस आधार पर उसे भी प्रक्षेप माना जाय? पौराणिक सामग्री के सम्मिश्रण की कल्पना भी निराधार है। ब्राह्मणों का प्रभाव तो वैदिक संस्कृति के ग्रन्थों में होना स्वाभाविक ही है। अवतार भी वस्तु-स्थिति है; वेदों, पुराणों तथा वैदिक संस्कृति की असाधारण वस्तु है। अतः वेद के उपबृंहणभूत **वाल्मीकिरामायण** में उसका वर्णन अत्यन्त स्वाभाविक है। **रामायण** में पौराणिक कथाओं का उद्धरण नहीं है, अपितु **रामायण** से ही पुराणों में उन कथाओं का आना कहीं अधिक युक्ति-युक्त है, क्योंकि **रामायण** पुराणों से अधिक प्राचीन है। सार यह है कि जहाँ-जहाँ अवतार का वर्णन, सीता का लक्ष्मी होना कहा गया है और ब्राह्मणों का महत्त्व वर्णन है उन सब स्थलों को बुल्के प्रक्षेप कहते हैं। उक्त वर्ण्य-विषय ही उनकी कसौटी है। अस्तु, कहना पड़ता है कि यह बुल्के और पाश्चात्यों की सनकमात्र है, इसका कोई आधार नहीं है।

अवतारवाद पर विचार करते हुए १४० वें अनु० में बुल्के लिखते हैं, "अवतारवाद की भावना हमें पहले पहल शतपथ-ब्राह्मण में मिलती है। प्रारम्भ में विष्णु की अपेक्षा प्रजापति को इस सम्बन्ध में अधिक महत्त्व दिया जाता था। शतपथब्राह्मण के अनुसार प्रजापति ने ही मत्स्य (१।८।१।१), कूर्म (७।५।१।५; १४।१।२।११) तथा वराह (१४।१।२।११) का अवतार लिया था। प्रजापति के वराहरूप धारण करने की कथा **तैत्तिरीयसंहिता** (७।१।५।१), **तैत्तिरीयब्राह्मण** (१।१।३।६), **तैत्तिरीय आरण्यक** (१०।१।८) तथा **काठकसंहिता** (८।१) में भी प्रारम्भिकरूप में विद्यमान हैं। **रामायण** के दाक्षिणात्य पाठ में इसका उल्लेख है—

"ततः समभवद् ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह।
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम्॥"

अन्य दो पाठों में इस स्थल पर परवर्ती भावना के अनुसार विष्णु का नाम लिया गया है।[1]

शतपथब्राह्मण के अतिरिक्त **तैत्तिरीय आरण्यक** में भी कूर्म को प्रजापति का अवतार माना गया है (दे० १।२३।३)। **महाभारत** में समुद्रमन्थन के प्रसङ्ग में कूर्मराज का उल्लेख तो हुआ है, किन्तु इसमें कहीं भी किसी देवता की ओर निर्देश नहीं मिलता। सुरासुर कूर्मराज से निवेदन करते हैं कि वे मन्दराचल के आधार बनने की कृपा करें—

"ऊचुश्च कूर्मराजानमकूपारे सुरासुराः।
गिरेरधिष्ठानमस्य भवान् भवितुमर्हति॥"

१. दे० गौ० रा० २।११९ और प० रा० २।११३।

रामायण के उदीच्य पाठ में समुद्र-मन्थन के वृत्तान्त में कूर्म का उल्लेख नहीं है,[1] किन्तु दाक्षिणात्य पाठ के एक प्रक्षेप में इस अवसर पर विष्णु के वराह अवतार लेने की कथा मिलती है।[2] मत्स्य अवतार तथा प्रजापति का सम्बन्ध **महाभारत** में उल्लिखित है—

"अहं प्रजापतिर्ब्रह्मा मत्परं नाधिगम्यते।
मत्स्यरूपेण यूयं च मयास्मान्मोक्षिता भयात् ॥" (म० भा० ३।१८७।५२)

विष्णुपुराण में भी मत्स्य, कूर्म तथा वराह तीनों प्रजापति के अवतार माने गये हैं—

"तोयान्तःस्थां महीं ज्ञात्वा जगत्येकार्णवीकृते।
अनुमानात्तदुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः ॥
अकरोत्स्वतनूमन्यां कल्पादिषु यथा पुरा।
मत्स्यकूर्मादिकां तद्वद्वाराहं वपुरास्थितः ॥" (वि० पु० १।४।७,८)

किन्तु **विष्णुपुराण** में विष्णु तथा ब्रह्मस्वरूप नारायण की अभिन्नता का प्रतिपादन किया जाता है; अतः इसी चतुर्थ अध्याय में विष्णु के रूप में वराह की स्तुति की गयी है तथा एक अन्य अध्याय में कूर्म को भी विष्णु का अवतार माना गया है (दे० १।९)।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मत्स्य, कूर्म तथा वराह अवतार प्रारम्भ में प्रजापति से सम्बन्ध रखते थे, किन्तु बाद में विष्णु का महत्त्व बढ़ जाने के कारण तीनों विष्णु के ही अवतार माने जाने लगे। **महाभारत** के नारायणीय उपाख्यान (दे० म० भा० १२।३३६।७२ तथा १२।३३७।३६) तथा **हरिवंशपुराण** (१।१।४१) में वराह तथा विष्णु का सम्बन्ध मान लिया गया है। आगे चलकर तीनों का नाम लेकर एक-एक महापुराण की सृष्टि हुई जिसमें विष्णु से उनकी अभिन्नता प्रतिपादित है।"[3]

उपर्युक्त विचार भारतीय ग्रन्थों की वस्तुस्थिति न जानने का ही दुष्परिणाम है। बुल्के की दृष्टि से विष्णु या उनका उत्कर्ष या अवतार कोई वास्तविक वस्तु नहीं है, किन्तु विचारविकास का ही सब परिणाम है। परन्तु वस्तुस्थिति ठीक इससे विपरीत है। वेद अनादि अपौरुषेय प्रमाणभूत ग्रन्थ हैं। जैसे रूप-ज्ञान में नेत्र स्वतन्त्र प्रमाण है, वैसे ही धर्म, ब्रह्म और ज्ञान के लिए स्वतन्त्र एवं एकमात्र वेद ही प्रमाण हैं (देखें वेदप्रामाण्यवाद)।

विष्णु कौन हैं? प्रजापति कौन हैं? उनका कौन-कौन अवतार कब-कब हुआ यह सब किसने देखा? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर प्रत्यक्ष तथा अनुमान के आधार पर नहीं दिया जा सकता। आधुनिक इतिहास इस सम्बन्ध में कुछ बताने में समर्थ नहीं है। मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् सब वेद हैं, अपौरुषेय हैं। **रामायण, महाभारत, पुराण, उपपुराण, मन्वादि धर्मशास्त्र,** दर्शन सब वेदमूलक होने के कारण ही प्रमाण होते हैं। उन सब का समन्वय है; वे विशृङ्खलित नहीं हैं। जैसे किसी संविधान की एक धारा का अन्य धाराओं के साथ विरोध नहीं होता, साथ ही उनका समन्वय भी अभीष्ट होता है उसी तरह इन सभी ग्रन्थों का समन्वय अभीष्ट होता है। **रामायण, महाभारत** आदि सभी ग्रन्थों का **वेद** के साथ समन्वय होता है। **वेद** में भी आपाततः प्रतीत विरोधों को ऋषियों ने समन्वित कर उनका वास्तविक अविरोध ही बताया है। किसी शाखा में पञ्चाग्नि में ६ अग्नियों का निर्देश है तो किसी में ५ ही अग्नियों का विधान है। गुणोपसंहारानुपसंहार प्रकरण द्वारा महर्षि व्यास ने ऐसे विरोधाभासों का समाधान

१. दे० गौ० रा० १।४६; प० रा० १।४१।
२. दे० रा० १।४५।२७–३२।
३. रामकथा, पृष्ठ १४५–१४७ दे० मत्स्य, कूर्म तथा वराह पुराण।

किया है। तदनुसार विचार करने से स्पष्ट विदित होता है कि अवतारवाद भावनामात्र नहीं है। वह कल्पनामात्र नहीं है अथवा कोई दिमागी फितूर भी नहीं है, किन्तु सूर्य-चन्द्र से भी ज्वलन्त सत्य है जिसका परम प्रमाणभूत **वेदों** में वर्णन है। उसमें प्रारम्भ और अन्त में कोई भेद नहीं है। अतएव प्रारम्भ में "विष्णु की अपेक्षा प्रजापति को उस सम्बन्ध में अधिक महत्त्व दिया जाता था" यह कल्पना निस्सार है। प्रकृत में विष्णु और प्रजापति में भेद नहीं है, नाम-भेद से लक्ष्य भेद नहीं होता, किन्तु लक्षण-भेद से लक्ष्य-भेद होता है। जैसे **ब्रह्मसूत्रों** में 'जन्माद्यस्य यतः' 'प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्'। यह ब्रह्म का लक्षण कहा गया है, उक्त लक्षण जिसमें घटता हो वह ब्रह्म है, फिर नाम भले ही आकाश, प्राण आदि भिन्न-भिन्न हों।

१४५ वें अनु० में बुल्के कहते हैं "रामकथाविषयक गाथाओं से लेकर प्रचलित **वाल्मीकिरामायणरूप** तक रामकथा के प्रारम्भिक विकास की रूपरेखा अङ्कित करने का प्रयत्न प्रस्तुत अध्याय में किया गया है। यह उत्तरोत्तर विकास ही रामकथा की लोकप्रियता का प्रमाण है।" परन्तु बुल्के को यह समझना चाहिए कि भारत में काल्पनिक किसी विकास को महत्त्व नहीं दिया जाता है। क्योंकि वह निराधार होता है। इसी लिए आगम प्रमाण पर विचार करते हुए पौरुषेय तथा अपौरुषेय विविध आगमों पर विचार कर अपौरुषेय आगम का ही मुख्य प्रामाण्य माना गया है। पौरुषेय उसी आगम को प्रमाण माना गया है, जो कि अपौरुषेयवेदमूलक है। पुरुषों में भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषों की सम्भावना प्रायः होती है; इसी लिए पौरुषेय ग्रन्थों का स्वतन्त्र प्रामाण्य मान्य नहीं होता है। नैयायिक, वैशेषिक आदि भी आप्तवाक्य का ही प्रामाण्य मानते हैं। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् आप्त है उसके वचन होने से वेद प्रमाण हैं। अन्य ऋषि, महर्षि वेदानुयायी वेदानुसारी होने से आदरणीय होते हैं। अतएव जिस किसी के ग्रन्थ का प्रामाण्य नहीं माना जाता है।

मार्क्सवादी विकासवादी कहते है, "आदिम मानव वनवासी था, जङ्गली जानवरों के समान ही वह भी वृक्षों पर या कन्दराओं में जीवन व्यतीत करता था। प्राकृत अग्नि, वायु, बादल और बिजली से प्रभावित होता रहता था। उसका भीरु मस्तिष्क अपने इर्द-गिर्द बहुत भूत, प्रेत, पिशाच आदि आत्माओं की कल्पना करता हुआ उनकी पूजा-स्तुति कर आत्मरक्षा की आशा करता था। वही भूत-प्रेत की कल्पना विकसित मानव के मस्तिष्क में सभ्यता के साबुन से धुल-धुलकर देवकल्पना बन गयी। वही वैज्ञानिक विविध चमत्कृतियों से चमत्कृत होकर ईश्वर-कल्पना या ब्रह्म-कल्पना का रूप धारण कर सकी है। समझदार व्यक्ति सहज ही में समझ जायगा कि वस्तुतः भीरु मस्तिष्क की भूत-प्रेत-कल्पना ही देव, ईश्वर या ब्रह्म कल्पना का मूल है। वास्तविक वह कुछ भी नहीं है। इसी तरह विकास-क्रम के अनुसार महिमा का विस्तार है।" किन्तु ईश्वरत्व का विकास किसी में हो जाये एतावता वह ईश्वर नहीं हो सकता। इसी तरह यदि राम वस्तुतः मनुष्यमात्र थे, ईश्वर नहीं थे तो कालक्रम या विकासक्रम से उनकी महिमा बढ़ जाने पर भी उनकी ईश्वरत्व-ख्याति हो जाने पर भी उनको ईश्वर मानना उचित नहीं है और उससे कोई वास्तविक लाभ नहीं हो सकता। उलटा अनीश्वर में ईश्वरत्वभ्रान्ति का दोष भी हो सकता है। अतः स्पष्ट है कि राम का ईश्वरत्व, परब्रह्मत्व, श्रीराम का अनन्त कल्याणगुणगणास्पदत्व स्वाभाविक ही था और यह अपौरुषेय मन्त्रों, ब्राह्मणों, उपनिषदों से ही सिद्ध है। उन्हीं आधारों पर वाल्मीकि ने शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** का आविर्भाव किया। उसी का सार वर्तमान चतुर्विंशतसाहस्रिका संहिता **वाल्मीकिरामायण** है। उसी आधार पर पुराणों में **अध्यात्मरामायण, अद्भुतरामायण, आनन्दरामायण, महारामायण** आदि रामायणों तथा संहिताओं का निर्माण हुआ है। उसी आधार पर अनेक संस्कृत, प्राकृत, देशी, विदेशी भाषाओं में विविध रामकथाओं का आविर्भाव हुआ है। एकस्वर से सर्वत्र राम का परमेश्वरत्व, ब्रह्मत्व प्रसिद्ध है। कोटि-कोटि नर-नारी राम की उपासना करते हैं। केवल मिथ्या विकासवादी कल्पना के आधार पर यह सब नहीं हो सकता था।

"रामायणं महाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम् ।
जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ।।" (ह० पु० विष्णुपर्व अ० ९२)

बुल्के ने **हरिवंश** के उक्त श्लोक का उद्धरण कर कहा है कि प्राचीन काल में रामकथा का अभिनय होता था। किन्तु उसी श्लोक से स्पष्टतः राम को अप्रमेय विष्णुस्वरूप भी कहा गया है, पर उसे बुल्के स्वीकार नहीं करते हैं। श्लोकार्थ यह है—**रामायण महाकाव्य** के आधार पर नाटकों का निर्माण हुआ है। उसमें राक्षसेन्द्र रावण के वधार्थ अप्रमेय विष्णु के जन्म आदि का वर्णन है।

रामकथा की लोकप्रियता राम के स्वाभाविक महत्त्व, परमेश्वरत्व तथा विशेषतः रामावतार के स्वाभाविक मर्यादामयी लीलाओं के कारण थी, किसी के मानने न मानने के आधार पर नहीं। राम के विद्यमान गुणों का भी वर्णन असम्भव है फिर महत्त्व वृद्धयर्थ अविद्यमान गुणों के वर्णन का प्रसङ्ग ही कैसे सम्भव है ? किसी व्यक्ति में अविद्यमान गुणों का आरोप कर वर्णन करना स्तुति कही जाती है। जैसे राजा को सूर्यतुल्य कहा जाता है। **'रविरिव राजते राजा।'** परन्तु ईश्वरस्वरूप राम में विद्यमान ही अनन्त गुण हैं जिनका सामस्त्येन वर्णन नहीं हो सकता। जैसे आकाश में अपनी शक्ति के अनुसार मच्छर और गरुड़ दोनों ही उड़ते हैं, परन्तु आकाश का अन्त कोई नहीं पाता—

"नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः।"

उसी तरह अपनी-अपनी शक्ति भर ब्रह्मादि एवं सामान्य जन भी भगवद्गुणों का वर्णन करते हैं पर अन्त कोई नहीं पाता। अपनी वाणी पवित्र करना ही भगवद्गुण-गणवर्णन करने का उद्देश्य है। स्तुति न सम्भव ही है न उद्देश्य ही है।

बुल्के कहते हैं "रामकथा की लोकप्रियता का एक और महत्त्वपूर्ण प्रमाण बौद्ध तथा जैन साहित्य में मिलता है। बौद्धों ने ईसवी सन् की कई शताब्दियों पहले राम को बोधिसत्त्व मानकर रामकथा की लोकप्रियता, आकर्षकता का साक्ष्य दिया है। जैनियों ने वाल्मीकि की रचना को मिथ्या कहकर कथा के एक नये रूप में राम को (जैनी रूप में) अपनाने का प्रयत्न किया है। इसी तरह रामकथा प्रारम्भ से ही भारत की संस्कृति में इतनी फैल गयी कि राम ने उस समय के प्रचलित तीन धर्मों में प्रमुख स्थान प्राप्त किया ब्राह्मणधर्म में विष्णु के अवतार, बौद्ध-धर्म में बोधिसत्त्व तथा जैनधर्म में आठवें बलदेव के रूप में। आगे चलकर संस्कृतसाहित्य की प्रत्येक शाखा में, अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में एवं भारत के निकटवर्ती देशों में सर्वत्र रामकथा का प्रभाव दिखलायी देता है।" परन्तु यह सब सर्वप्राणिपरप्रेमास्पद राम और उनकी कथा में आकर्षण स्वाभाविक है, विकास-क्रम के अनुसार काल्पनिक विशेषता के आधार पर नहीं। बौद्धों और विशेषकर जैनों ने तो राम की कथा की ओर जन-प्रवृत्ति देखकर बौद्ध तथा जैन जनता की स्वाभाविक रामकथा में प्रवृत्ति होने से वेदप्रामाण्य तथा ईश्वरवाद का खतरा देखकर रामकथा को विकृत कर राम को बौद्ध और जैन बनाकर अपनी जनता को अपना अनुयायी बनाये रखने के उद्देश्य से वैसा किया था। फिर भी सत्यान्वेषी बौद्ध और जैन भी **वाल्मीकिरामायण** की ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रहे हैं।

✲

अष्टम अध्याय

अवतार-सामग्री

"मनवे ह वै प्रातः। अवनेज्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे ।।१।। स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीत्योघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयिताऽस्मीति। कथं ते भृतिरिति ।।२।। स होवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि स यदा तामतिवर्धा अथ कर्षूं खात्वा तस्यां मा बिभरासि स यदा तामतिवर्धा अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ।।३।। शश्वद्ध झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेतिथीं समां तदोघ आगन्ता। तन्मा नावमुप कल्प्योपासासै स ओध उत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति।"

(श० ब्रा० १।८।१।१-४)

उपर्युक्त वचनों में कहा गया हैं कि मनु ने अवनेजन के लिए दोनों हाथों में जल लिया तो उसमें एक मत्स्य आ गया और उसने मनु से कहा, 'मेरी रक्षा करो, मैं प्रजा सहित तुम्हें प्रलय के महौघ से पार करूँगा।' तब मनु ने कहा 'कैसे तुम्हारा भरण हो ?' तो मत्स्य ने कहा जब तक मत्स्य छोटे रहते हैं तभी तक उनके नाश का भय रहता है। एक मत्स्य ही दूसरे मत्स्य का भक्षण करता है, अतः कुम्भी में रखकर मेरा पालन करो। मनु ने कुम्भ में मत्स्य को रखा।" जब वह अधिक बढ़ गया तो उसने कहा, "बड़ा कर्षू 'सरोवर' बनाकर हमें उसमें रखो।" मनुजी ने वैसा ही किया। जब उससे भी अधिक बढ़ गया तब उसने कहा, "अब समुद्र में मुझे रखो।" तब मनु ने समुद्र में रख दिया। मत्स्य अत्यधिक बढ़ गया और उसने मनु से कहा, "अमुक समय में महौध आयेगा तब नौका की कल्पना कर उसमें आरूढ़ होना। मैं पार करूँगा।"

"तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार। स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे। स ओघ उत्थिते नावमापेदे। तं स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरं गिरिमधिदुद्राव ।।५।। स होवाच अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति। स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो ह ताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे ।।६।।"

(श० ब्रा० १।८।१।५,६)

मनु ने समुद्र में मत्स्य को डाल दिया। जितने दिनों में महौध आने को मत्स्य ने कहा था उतने ही दिनों में महौघ आया। मनु ने पृथ्वी को नाव बनाकर उसमें स्थान प्राप्त किया और उसी मत्स्य के शृङ्ग में नाव को बाँध दिया। उसी मत्स्य के द्वारा मनु उत्तर गिरि हिमालय पहुँचे। तत्पश्चात् महामत्स्य ने कहा—मैंने तुम्हें पार कर दिया नाव को वृक्ष में बाँध दो।

"ऊचुश्च कूर्मराजानमकूपारे सुरासुराः।
अधिष्ठानं गिरेरस्य भवान् भवितुमर्हति ।।
कूर्मेण तु तथेत्युक्त्वा पृष्ठमस्य समर्पितम्।
तं शैलं तस्य पृष्ठस्थं यन्त्रेणेन्द्रो न्यपीडयत् ।।

मन्थानं मन्दरं कृत्वा तथा नेत्रं च वासुकिम्।
देवा मथितुमारब्धाः समुद्रं निधिमम्भसाम्॥" (म० भा० १।१८।११-१३)

महाभारत के उपर्युक्त वचनों में कूर्मावतार का वर्णन है। देवताओं की प्रार्थना से उस कूर्म ने अपने पृष्ठ पर मन्दराचल को धारण किया था जिसको मन्थान दण्ड बनाकर देवताओं एवं असुरों ने समुद्रमन्थन किया था।

निम्नोक्त वचनों में परशुराम आदि अवतारों का वर्णन है—

"त्रेतायुगे भविष्यामि रामो भृगुकुलोद्वहः।
क्षत्रं चोत्सादयिष्यामि समृद्धबलवाहनम्॥
सन्ध्यांशे समनुप्राप्ते त्रेताया द्वापरस्य च।
अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः॥
द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पार्यवसानिके।
प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुरायां भविष्यति॥
हंसः कूर्मश्च मत्स्यश्च प्रादुर्भावा द्विजोत्तम।
वराहो नरसिंहश्च वामनो राम एव च॥
रामो दाशरथिश्चैव सात्वतः कल्किरेव च।
यदा वेदश्रुतिर्नष्टा मया प्रत्याहृता पुनः॥
सवेदाः सश्रुतीकाश्च कृताः पूर्वं कृते युगे।
अतिक्रान्ताः पुराणेषु श्रुतास्ते यदि वा क्वचित्॥"

(म० भा० १२।३३९।८४-८९; १०१-१०५)

"जन्माद्यस्य यतः" (ब्र० सू० १।१।२), **"प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात्।"** (ब्र० सू० १।४।२३) इत्यादि ब्रह्मसूत्रों से सम्पूर्ण जगत् के अभिन्न निमित्तोपादान कारण को ब्रह्म कहा गया है। उपनिषदों, मन्त्रों, ब्राह्मणों एवं आरण्यकों में जहाँ कहीं भी जिसमें उक्त लक्षण घटता हो वह चाहे जिस नाम से व्यपदिष्ट हो उसे ब्रह्म ही समझना चाहिये। इसी लिये **"आकाशस्तल्लिङ्गात्"** (ब्र० सू० १।१।२२), **"प्राणस्तथानुगमात्"** (ब्र० सू० १।१।२८), **"अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्"** (ब्र० सू० १।१।२४) इत्यादि सूत्रों में आकाश, प्राण तथा आदित्यमण्डलस्थ पुरुष को ब्रह्म ही कहा गया है, क्योंकि श्रुतिप्रमाण से उनमें जगत्कारणता सिद्ध है। इस दृष्टि से प्रकृत में विष्णु और प्रजापति अभिन्न ही तत्त्व हैं।

अतएव **वाल्मीकिरामायण** में प्रजापति नाम का निर्देश न होकर ब्रह्मा का उल्लेख हुआ है। दक्षादि प्रजापति अवान्तर प्रजापति होते हैं। मुख्य प्रजापति ब्रह्मा ही होता है। वही विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का हेतु होता है। वह यद्यपि एक ही है तो भी कार्य भेद से उसके पृथक्-पृथक् भी नाम होते हैं। उत्पादक ब्रह्मा, पालक विष्णु एवं संहारक रुद्र या शिव कहे जाते हैं। इस दृष्टि से प्रजापति ईश्वर या महाविराट् त्रिमूर्ति होता है। त्रिमूर्ति में भी विष्णु की प्रधानता होने से इन शब्दों द्वारा विष्णु का ही उल्लेख हुआ है। स्वयम्भू ब्रह्मा का देवताओं के साथ आविर्भाव हुआ और उन्होंने वाराह रूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया। पूर्वापर के सभी ग्रन्थों के समन्वित निष्कर्ष से यह सिद्धान्त सिद्ध होता है कि भगवान् विष्णु ही **शतपथ, तैत्तिरीय, काठक** आदि में प्रजापति, ब्रह्मा आदि शब्दों से उक्त हैं और उन्हीं से मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतार हुए।

हर ग्रन्थ में हर बात का निरूपण सम्भव नहीं होता, अपने-अपने अनुसार हि कोई ग्रन्थ मत्स्यावतार का एवं कोई वराहावतार का वर्णन करते हैं। **रामायण** का कोई पाठ परवर्ती नहीं है। सभी पाठ प्रामाणिक एवं

परम्पराप्राप्त हैं। जैसे वेदों में शाखाभेद से सभी पाठभेद प्रामाणिक हैं। **सप्तशती** के परम्पराप्राप्त सभी पाठ प्रामाणिक हैं। वही स्थिति **रामायण** के पाठ-भेदों की भी है। महाभारत में कूर्मराज से देवताओं ने और असुरों ने मन्दराचल का आधार बनने को कहा। परन्तु जब **तैत्तिरीय आरण्यक** में ही कूर्म को प्रजापति ईश्वर का अवतार कहा गया है तब उन कूर्मराज को प्रजापति के अवतारभूत कूर्म से अभिन्न ही मानना स्वाभाविक है। यदि वेदों और आर्ष ग्रन्थों का प्रामाण्य न माना जाय तब तो किसी कच्छप से देवताओं द्वारा प्रार्थना और उसके द्वारा मन्दराचल का धारण आदि सिद्ध ही नहीं हो सकता। उस स्थिति में यह सब कुछ पागल का प्रलापमात्र समझा जायगा।

महाभारत एवं **विष्णुपुराण** का समन्वय करने से भी यही निष्कर्ष निकलता है। **महाभारत** का प्रजापति विष्णुरूप ही है। **महाभारत** के वचन में **'मत्परं नाधिगम्यते'** कहा गया है। जिससे स्पष्ट है कि वह प्रजापति वेदान्तवेद्य ब्रह्म ही है। वही विष्णु भी हैं। **'अहं प्रजापतिर्ब्रह्मा'** इत्यादि का श्लोकार्थ यों है—मैं सृष्टिकर्ता प्रजापति ब्रह्मा हूँ। मुझसे पर (उत्कृष्ट) कोई भी प्रमाण से ज्ञात नहीं है। मैंने ही मत्स्यरूप से महान् भय से तुम देवताओं की रक्षा की थी। **विष्णुपुराण** के वचन का अर्थ निम्नोक्त है। जगत् का प्रलय होने पर **'तोयान्तःस्थां महीं ज्ञात्वा'** अनुमान से पृथ्वी को जल के भीतर जानकर उसका उद्धार करने की कामना से प्रजापति ने पूर्व कल्पों के समान ही मत्स्य, कूर्म आदि के समान वराहरूप धारण किया।

पूर्वोक्त दृष्टि से ही **विष्णुपुराण** में विष्णु तथा ब्रह्मस्वरूप नारायण एवं ब्रह्मा के साथ अभिन्नता कही गयी है, अतएव मत्स्य, कूर्म आदि विष्णु के ही अवतार हैं। आप कहते हैं विष्णु का महत्त्व बढ़ जाने से प्रजापति के अवतार मत्स्य, कूर्म आदि विष्णु के माने जाने लगे? पर यह कल्पना सर्वथा निराधार है। किसी की इच्छा या भावना से विष्णु का महत्त्व घटता अथवा बढ़ता नहीं है। शास्त्रों के आधार पर ही विष्णु का महत्त्व है। **विष्णुपुराण**, **हरिवंशपुराण** तथा **महाभारत** में विष्णु का खूब महत्त्व भी कहा गया है और उन्हीं ग्रन्थों में प्रजापति के अवतारों में मत्स्य, कूर्म आदि का वर्णन भी है। अतः कब से क्यों किस प्रमाण से विष्णु का महत्त्व बढ़ा? यह कहना और सिद्ध करना असम्भव ही है। **महाभारत** तथा **हरिवंश** में बुल्के के अनुसार भी वराह तथा विष्णु का सम्बन्ध माना गया है। वस्तुतः **हेमाद्रि**, **पराशरमाधव**, **मिताक्षरा**, **निर्णयसिन्धु** आदि में जैसे मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, विविध स्मृतियों, पुराणों और आगमों का समन्वय करके ही निष्कृष्ट अर्थ निकाला जाता है वैसे ही अवतारों और रामकथाओं के सम्बन्ध में भी सबका समन्वय करके ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। जब **महाभारत**, **हरिवंश** तथा **विष्णुपुराण** जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों में प्रजापति और विष्णु को एक मानकर मत्स्यादि अवतारों और राम और कृष्ण को विष्णु के अवतार कहा ही जा रहा है तब हठधर्मी के कारण **वाल्मीकिरामायण** में राम को अवतार बतलानेवाले अंशों को क्षेपक कहने में क्या तुक है?

१४१ वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "वामनावतार और नृसिंहावतार प्रारम्भ से विष्णु से ही सम्बन्ध रखते हैं। वामनावतार का उल्लेख **तैत्तिरीयसंहिता** (२।१।३।१), **शतपथब्राह्मण** (१।२।५।५), **तैत्तिरीयब्राह्मण** (१।७।१७) एवं **ऐतरेयब्राह्मण** (६।३।७) में हुआ है। यह अवतार **ऋग्वेद** की एक कथा से विकसित माना जाता है (दे० ऋ० सं० १।२२) और शतपथब्राह्मण (१।२।५।१)। नारायणीय उपाख्यान महाभारत (१२।३२६।७५) तथा हरिवंश (१।४१) में इसका विष्णु के अन्य अवतारों के साथ उल्लेख हुआ है। नृसिंहावतार की कथा पहले पहल **तैत्तिरीय आरण्यक** के परिशिष्ट (१०।१।६) में मिलती है। नारायणीय उपाख्यान महाभारत (१२।३२६।७३ और ३३७।३६) तथा हरिवंशपु० (१।४१) में इसका उल्लेख है। परशुराम विष्णु के अवतार का प्रारम्भिक कथाओं में उल्लेख नहीं है। उदाहरणार्थ महाभारत (३।११५-११७), किन्तु नारायणीय उपाख्यान

महाभारत (१२।३२६।७७), हरिवंश पु० (१।४१।११२-१२०) तथा विष्णुपुराण (१।९।१४३) में उनको विष्णु का अवतार माना गया है।"

वस्तुतः उक्त सभी ग्रन्थ प्रामाणिक हैं। उनमें कहीं भी किसी अवतार की चर्चा है तो वह प्रामाणिक है। निष्कर्षरूप में सभी विष्णु के अवतार हैं, पर इन पृथक्-पृथक् उक्तियों से अवतारों के विकास की बात सिद्ध नहीं होती। अतः बुल्के का यह निष्कर्ष कि "ब्राह्मणों में तथा अन्य प्राचीन साहित्यों में अवतारवाद विद्यमान है, किन्तु उक्त ग्रन्थों के रचनाकाल में न तो अवतारों की कोई विशेष पूजा की जाती थी और न उनमें विष्णु का प्राधान्य ही था" सर्वथा असङ्गत है। प्रजापति तथा विष्णु का विभिन्न यज्ञों में देवताओं के रूप में उल्लेख है ही। कई स्थलों में इन्द्र और विष्णु का साथ-साथ देवतात्व है, कहीं विष्णु का ही प्राधान्य भी। पीछे दिखलाया जा चुका है कि विष्णु की पूज्यता से ही उनसे अभिन्न अवतारों की पूज्यता सिद्ध होती है। वस्तुतः जैसे अग्निहोत्र, ज्योतिष्टोम आदि कर्मों का ज्ञान और अनुष्ठान किसी एक ग्रन्थ पर आश्रित नहीं होता, वह तो मन्त्र, ब्राह्मण और कल्पसूत्र तीनों का समन्वय करके ही समझा जा सकता है। केवल मन्त्र या ब्राह्मण के आधार पर उनका अनुष्ठान नहीं हो सकता। इतना ही क्यों, तीनों के आधार पर बनी हुई परम्पराप्राप्त पद्धतियों के आधार पर ही ज्योतिष्टोमादि का प्रयोग हो सकता है। इसी तरह मन्त्रों, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों तथा **रामायण**, **भारत**, पुराणों एवं आगमों के आधार पर बने पूजाविधानों के आधार पर ही राम, कृष्ण आदि की आराधनाएँ होती हैं, पर इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इनकी पूजा पहले नहीं होती थी, विकास-क्रम के बाद में चल पड़ी।

"अतएव कृष्णावतार के साथ-साथ अवतारवाद के विकास में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। उस समय से लेकर अवतारवाद भक्ति-भाव से ओत-प्रोत होने लगा।" बुल्के का यह कथन भी निराधार है, क्योंकि **महाभारत**, **हरिवंश**, **विष्णुपुराण**, **श्रीमद्भागवत** आदि ग्रन्थों से ही कृष्णावतार की सामग्री प्राप्त होती है और उन्हीं ग्रन्थों में विष्णु की, राम आदि की भक्ति की भी चर्चा है ही। **रामतापनीय**, **गोपालतापनीय** आदि उपनिषदों में भी राम, कृष्ण आदि अवतारों की भक्ति एवं पूजा आदि का उल्लेख है।

यह कहना सर्वथा निराधार है कि "वासुदेव कृष्ण भागवतों के इष्ट देव थे। प्रारम्भ में उनका विष्णु से कोई सम्बन्ध नहीं था।" यह भी कहना गलत है, "तीसरी शती ई० पू० में वासुदेव और कृष्ण की अभिन्नता की भावना उत्पन्न हुई। बौद्ध धर्म तथा भागवत साम्प्रदाय का भक्तिमार्ग दोनों समानरूप से ब्राह्मण-साहित्य. कर्मकाण्ड तथा यज्ञप्रधान धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न और विकसित हुए। इसके फलस्वरूप धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणों का एकाधिकार लुप्त हो गया था। बौद्ध-धर्म का अधिकाधिक प्रसार देखकर ब्राह्मणों ने भागवतों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भागवतों के इष्टदेव वासुदेव कृष्ण को विष्णु नारायण का अवतार मान लिया। इससे अवतारवाद को बहुत प्रोत्साहन मिला। साथ ही साथ विष्णु का भी महत्त्व बढ़ने लगा। इस तरह अवतारवाद की सारी भावना धीरे-धीरे विष्णु नारायण में केन्द्रित होने लगी और वैदिक साहित्य के अन्य अवतारों के कार्य विष्णु में ही आरोपित हुए," क्योंकि उक्त कल्पना को सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है। बौद्ध धर्म वैदिक धर्म का प्रतिक्रियारूप था। इसमें तो प्रमाण बौद्ध ग्रन्थ ही हैं। बुद्ध तथा बौद्धों ने प्रत्यक्ष तथा अनुमान दो ही प्रमाण माने हैं। आगम प्रमाण नहीं माना। फलतः उनके मत में वेदों की मान्यता नहीं है। बौद्ध बुद्ध को ही सर्वज्ञ मानकर बुद्ध-वचन को ही धर्म में प्रमाण मानते हैं। सुतरां वे लोग वैदिक नित्यात्मवाद तथा यज्ञ, याग आदि विशेषतः पश्वादिसमवेत यज्ञ के विरोधी थे। वे जन्मना जाति नहीं मानते थे। सुतरां ब्राह्मण जाति का भी उनकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं था। परन्तु भागवत भी ऐसे थे यह नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भगवान् वासुदेव ने **महाभारत** तथा **गीता** में वेद का, आत्मा का तथा वैदिक धर्मों का महत्त्व वर्णन किया है। ऐसी स्थिति में कृष्णभक्त वेद, यज्ञ आदि का विरोधी कैसे हो सकता था ?

नारायणीयोपाख्यान, श्रीमद्भागवत तथा सर्वोपरि **रामायण** में वेद, यज्ञों और ब्राह्मणों का प्रभूत महत्त्व वर्णित है। अतः भागवतों के भक्तिसम्प्रदाय को बौद्धों के समान वेद, यज्ञ तथा ब्राह्मणों का विरोधी समझना निरी भ्रान्ति ही है। साथ ही भागवतों के उक्त ग्रन्थों में ही जब वासुदेव कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया है तब तो कृष्ण और वासुदेव की भिन्नता की कल्पना को कोई अवकाश ही नहीं मिलता। ब्राह्मणों ने भागवतों को आकर्षित करने के लिए वासुदेव को विष्णु का अवतार मान लिया, इसका भी कोई आधार नहीं है। उलटा **'विष्णुर्गोपा अदाभ्यः'** (ऋ० सं० १।२२।१८) इत्यादिरूप से दोनों में ही विष्णु को गोप (कृष्ण) कहा गया है। **'गोपवेषस्य विष्णोः'** मेघदूत (१।१५) में कालिदास ने भी विष्णु को गोपवेषधारी कहा है। वस्तुतः **विष्णु-पुराण** आदि ग्रन्थ ब्राह्मणसम्प्रदाय की स्वार्थपूर्ण कल्पना नहीं हैं, किन्तु महर्षि व्यास द्वारा वेदार्थ के उपबृंहण या वेद के भाष्यरूप में ही निर्मित हैं—

"इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत् ।"

वस्तुस्थितिमूलक होने के कारण ही पुराणों में वेदविरोधी बुद्ध को भी विष्णु का अवतार माना गया है। फिर जब वेदस्वरूप **तैत्तिरीय आरण्यक** (१०।१।६) में वासुदेव और विष्णु की एकता का प्रमाण मिलता है। वह किसी के संसर्ग से बढ़ने लगा, यह कल्पना भी निर्मूल है।

१४३ वें अनु० में बुल्के का कहना कि "इधर अवतारवाद की भावना फैलती जा रही थी; उधर कई शतियों से राम का आदर्श चरित्र भारतीय जनता के सामने आ रहा था। **रामायण** की लोकप्रियता के साथ-साथ राम का महत्त्व भी बढ़ रहा था। उनकी वीरता के वर्णन में अलोकिकता की मात्रा बढ़ने लगी। रावण पाप और दुष्टता का प्रतीक बन गया और राम पुण्य और सदाचरण के, अतः इस विकास की स्वाभाविक परिणति यह हुई कि कृष्ण की तरह राम भी विष्णु के अवतारों में गिने जाने लगे। राम तथा विष्णु की अभिन्नता की धारणा कब उत्पन्न हुई इसका ठीक समय निर्धारित करना असम्भव है। फिर भी अवतारवाद उत्तरकाण्ड में इतना व्याप्त है कि इसे उत्तरकाण्ड की अधिकांश सामग्री के पूर्व का मानना चाहिए। अतः बहुत सम्भव है कि पहली शती ई० पू० से ही रामावतार की भावना प्रचलित होने लगी थी। **रामायण** के प्रक्षेपों के अतिरिक्त **महाभारत, वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मत्स्य, हरिवंश** आदि प्राचीनतम पुराणों में अवतारों की तालिका में दाशरथि राम का भी नाम आया है।"

यह कथन नितान्त भ्रम एवं दुरभिसन्धिपूर्ण है। कारण कहा जा चुका है कि वेदों, उपनिषदों में अनादिकाल से ही राम के अवतार तथा उनकी उपासना का वर्णन है। जब मन्त्रों, ब्राह्मणों, उपनिषदों तथा ब्रह्म-सूत्रों में परमात्मा का सगुण साकार होना वस्तुस्थिति है तब अवतार केवल भावना की वस्तु कैसे कहा जा सकता है।

बुल्के का कथन केवल प्रतिज्ञामात्र है, उसमें कोई हेतु नहीं है। विना हेतु के अनुमान अकिञ्चित्कर ही होता है। जैसे धूम का अग्नि से कार्य-कारणभाव होने से निश्चित व्याप्ति है तभी धूम से वह्नि का अनुमान होता है। इस प्रकार राम विष्णु के अवतार नहीं हैं इसकी किसी हेतु के साथ व्याप्ति नहीं है। विष्णु और राम दोनों ही पाश्चात्यों एवं बुल्के दोनों के लिए अप्रत्यक्ष ही है। फिर, उनका भेद या अभेद भी अप्रत्यक्ष ही है। अप्रत्यक्ष साध्य के साथ साधन की व्याप्ति का प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है। जिन ग्रन्थों के आधार पर विष्णु एवं राम का अस्तित्व सिद्ध होता है, उन्हीं से उनका अभेद भी सिद्ध होता है। अतएव जब प्रामाणिक वेदों, आर्ष **रामायण** तथा **महाभारत** इतिहासों से राम की ब्रह्मरूपता सिद्ध है, तब तो तद्विरुद्ध नगण्य जनों की निराधार कल्पना का महत्त्व हो ही नहीं सकता। प्रामाणिक आधार के बिना केवल वीरता एवं लोकप्रियता के कारण ही किसी को अवतार नहीं माना जाता है। सिद्धान्ततः **महाभारत, भागवत** तथा अन्य पुराणों की अपेक्षा भी **रामायण** अति प्राचीन तथा प्रामाणिक सद्ग्रन्थ है। अतएव कृष्ण से प्रथम ही राम का अवतार प्रसिद्ध है। इसलिए संसार में राम का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। भारत

में तो बच्चे-बच्चे आस्तिक-नास्तिक सभी की जिह्वा पर राम का नाम प्रख्यात है। कृष्ण की कथाओं में भी आता है कि कृष्ण की माता यशोदा कृष्ण को राम की कथा सुना रही थी, जब सीताहरण की बात आयी तो सोते-सोते कृष्ण बोल पड़े **"सौमित्रे क्व धनुर्धनुर्धनुरिति व्यग्रा गिरः पान्तु वः।"** वस्तुतः जब वेद, उपनिषद् तथा **रामायण** से अवतारवाद सिद्ध है तब वह भावनामात्र कैसे हो सकता है? यदि वेद आदि प्रमाण नहीं तो बुल्के जैसे लोगों के नगण्य वचनों का ही क्या प्रमाण हो सकता है। कुछ व्यक्तियों की तुच्छ कल्पनाओं के बल पर वेद, उपनिषद्, महर्षियों के **रामायण**, **महाभारत**, **विष्णुपुराण** तथा **श्रीमद्भागवत** को झूठा मान लेना सर्वथा अनुचित है।

१४४वें अनु० में बुल्के कहते हैं—"छठी या सातवीं शती ई० से महात्मा बुद्ध भी विष्णु के अवतार माने जाने लगे।" इसके लिए उन्होंने दिखाया है कि अवतारों की सूची में एकरूपता नहीं है, किन्तु यह तर्क अकिञ्चित्कर है। यह आवश्यक नहीं कि सब बातें सभी जगह लिखी जायँ। कहा जा चुका है कि ऐसी अनेकरूपता वेदों और उपनिषदों के कर्मों एवं उपासनाओं में भी आती है और इसी लिए मीमांसा के अनुसार समन्वय करके ही सूत्रों के अनुसार पद्धतियाँ बनती हैं। फिर भी नारायणीय उपाख्यान में विष्णु के दस अवतारों की सूची मिलती है। उसके प्रक्षिप्तत्व की कल्पना निराधार है। **श्रीमद्भागवत** परम प्रामाणिक ग्रन्थ है। वोपदेव ने **श्रीमद्भागवत** के आधार पर ही मुक्ताफल नामक ग्रन्थ लिखा है और वे हेमाद्रि के समय के हैं। **श्रीभागवत** में विष्णु के दस अवतारों का वर्णन है। उसमें बुद्ध की भी गणना है। अतः बुद्ध को छठी शती ई० से अवतार माना जाने लगा यह कल्पना सर्वथा अप्रमाण है।

१४५वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "बौद्धों ने ई० सन् के कई सौ वर्ष पूर्व राम को बोधिसत्त्व मानकर राम-कथा की लोकप्रियता का साक्ष्य दिया है। जैनियों ने भी वाल्मीकि की रचना को मिथ्या कहकर रामकथा के एक नये रूप में राम को अपनाने का प्रयत्न किया है।" एतावता बुल्के ने यह स्वीकार किया है कि जैनियों ने **वाल्मीकि-रामायण** को ही उलट कर रूपान्तर देने की चेष्टा की है, परन्तु रामकथा का प्रारम्भ ई० सन् की कई शतियों पूर्व में हुआ और राम ने ब्राह्मण-धर्म में विष्णु के अवताररूप में निश्चित स्थान प्राप्त कर लिया, इत्यादि बुल्के की उक्तियाँ निराधार हैं। राम ईसा से लाखों वर्ष पूर्व ही वस्तुतः विष्णुरूप में प्रसिद्ध हैं। इसमें सम्पूर्ण भारतीय साहित्य प्रमाण है। परन्तु बुल्के के कथन में कुछ पाश्चात्यों की अटकलबाजियों को छोड़कर कोई भी प्रमाण नहीं है।

वस्तुतस्तु भारतीय साहित्यों के अनुसार राम विष्णु के अवतार ही नहीं किन्तु किसी दृष्टि से अनन्त-अनन्त ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र राम के अंश से प्रकट होते हैं—

"शम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना, उपजहिं जासु अंश ते नाना।"

(रा० मा० १।१४३।३)

श्रीभागवत के अनुसार ब्रह्माजी ने ही स्पष्ट कहा है कि तम, महान्, अहं, आकाश आदि अष्ट आवरणों से आवृत सप्तवितस्तिकायवाला कहाँ मैं और कहाँ आप जिनके रोमकूपों में इसी प्रकार के अगणित ब्रह्माण्ड-परमाणु निरन्तर परिभ्रमण करते रहते हैं। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार विभिन्न ब्रह्माण्डों के उत्पादक, पालक और संहारक ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र कार्यब्रह्म हैं, परन्तु अनन्त ब्रह्माण्डों के उत्पादक, पालक और संहारक ब्रह्म कारण-ब्रह्म हैं। ऐसी स्थिति में कार्यब्रह्म कारणब्रह्म के अंश ही ठहरते हैं, अतः **विष्णुपुराण** के विष्णु, **शिवपुराण** के शिव, **रामायण** के राम, **श्रीभागवत** के कृष्ण तथा शाक्तागमों की शक्ति एक ही कारण वस्तुरूप हैं। परन्तु विष्णुपुराणोक्त विष्णु के अंशभूत अनन्त ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि कार्यब्रह्म ही हैं। इसी तरह शिवपुराणोक्त शिव के अंशभूत विष्णु आदि भी कार्यब्रह्म ही हैं। इसी दृष्टि से **रामायण** एवं **भागवत** के राम और कृष्ण भी कारणब्रह्म रूप हैं। फलतः उनके रोमकूपों में कार्यब्रह्मरूप अनन्त ब्रह्माण्डों के उत्पादक, पालक और संहारक कार्यरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि उनके

अंश ही हैं। इस दृष्टि से राम का स्वतःसिद्ध लोकोत्तर महत्त्व प्रख्यात है। फिर ईसा की अमुक शती में राम ने ब्राह्मणधर्म में विष्णु के अवतार का पद प्राप्त कर लिया, यह कहना धृष्टतामात्र है।

दसवें अध्याय में, १६४वें अनुच्छेद में बुल्के कहते हैं, "रामकथा-साहित्य में अवतारवाद की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई व्यापकता के साथ-साथ भक्ति-भावना भी उत्पन्न हुई और धीरे-धीरे विकसित होने लगी। बुल्के की दृष्टि में अवतारवाद एक भावनामात्र है। राम के आदर्शचरित्र के कारण उनमें विष्णु अवतार होने की कल्पना हो गयी, वस्तुतः राम विष्णु अवतार नहीं थे। परन्तु अवतारभावना के साथ-साथ राम-भक्ति भी विकसित होने लगी।" परन्तु विष्णु, राम, कृष्ण अनादि काल से ही भारतीय साहित्य में परब्रह्म रूप से प्रसिद्ध हैं। अतः उनकी भक्ति भी अनादिकाल से ही सिद्ध है। उसका विकास या कल्पना नहीं है।

बुल्के कहते हैं, "भारतीय भक्ति-मार्ग का सूत्रपात और विकास राम-भक्ति के शताब्दियों पूर्व हुआ था। वेदों में इसका बीजारोपण हुआ और भागवत धर्म में वह पल्लवित हुआ। बौद्ध धर्म और जैन-धर्म की भाँति भागवतों का भक्ति-मार्ग भी कर्मकाण्ड तथा यज्ञप्रधान ब्राह्मण-धर्म की प्रतिक्रिया रूप में उत्पन्न हुआ। लेकिन इसमें वेदों की निन्दा को स्थान नहीं मिला और इस प्रकार बाद में ब्राह्मण तथा भागवत धर्म के समन्वय के साथ वैष्णव धर्म की उत्पत्ति सम्भव हो सकी। इसमें भागवतों के देवता वासुदेव कृष्ण प्राचीन वैदिक देवता विष्णु के अवतार माने गये हैं। भक्ति-भावना इन्हीं विष्णु नारायण वासुदेव कृष्ण में केन्द्रीभूत होकर उत्तरोत्तर विकसित होने लगी। विष्णु के अवतार भी माने जाने लगे। जिनमें से रामावतार भारतीय संस्कृति के दृष्टिकोण से सबसे महत्त्वपूर्ण है। फिर भक्तिमार्ग के इतिहास में भागवत धर्म तथा पाञ्चरात्र के साहित्य में **शाण्डिल्यभक्तिसूत्र, नारदीयभक्तिशास्त्र,** रामानुज, निम्बार्क, मध्व तथा वल्लभाचार्य के सम्प्रदायों में कृष्णावतार को प्रायः एकाधिकार मिला है।"

परन्तु अपने उक्त कथन की पुष्टि में बुल्के ने कोई प्रमाण नहीं दिया। टिप्पणी में **इनसाइक्लोपीडिया आव रिलीजन एण्ड एथिक्स** के भक्तिमार्ग, हेमचन्द्र राय चौधरी के **अर्ली हिस्ट्री आव वैष्णव सेक्ट,** बलदेवप्रसाद मिश्र के **तुलसीदर्शन** को ही अपने कथन का आधार बताया है, जो कि स्वयं में ही प्रमाण नहीं हो सकते, क्योंकि उक्त कथन भारतीय साहित्य के विरुद्ध ही हैं। बुल्के भी वेदों में भक्तिमार्ग का बीज मानते हैं। पर वेद नित्य एवं अनादि हैं (दे० वेदप्रामाण्य)। भागवतों का भक्तिमार्ग ब्राह्मण-धर्म की प्रतिक्रिया के रूप में नहीं, किन्तु वह ब्राह्मण-धर्म का ही एक अंग है। साथ ही वैदिक धर्म से भिन्न कोई ब्राह्मण-धर्म है यह केवल पाश्चात्यों की कल्पना है। वेदों के आरण्यक, उपनिषद् भागों में ही उपासना और ज्ञान काण्ड का प्रतिपादन है। इसी लिए वेद त्रिकाण्ड कहा जाता है। वेदों में कर्मकाण्ड की तथा कर्मकाण्ड में भी अनेक निन्दाएँ मिलती हैं पर उन निन्दाओं का तात्पर्य विधित्सित अर्थ की स्तुति में ही होता है :

> "नहि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्तते अपितु विधेयं स्तोतुम्।
> यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति॥"
> "अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
> ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥" (यजु०: सं० ४०।९)

उक्त प्रसङ्गों में वेदोक्त कर्मकाण्ड और उपासनात्मक ज्ञान दोनों की निन्दा है। पर यह निन्दा दोनों के समुच्चयानुष्ठान विधि के प्रशंसार्थ ही है। इस तरह कहीं कर्मकाण्ड की निन्दा देखकर इसे प्रतिक्रिया समझना भ्रान्ति ही है। **महाभारत** वेद का उपबृंहणमात्र है। **श्रीभागवत** में कहा गया है कि भगवान् व्यास ने भारत के व्यपदेश से वेदार्थ ही प्रदर्शित किया है। फलतः भागवत-धर्म का मूल नारायणीयोपाख्यान आदि भी वेदार्थ का ही उपबृंहणमात्र है। **विष्णुपुराण, हरिवंश, भागवत** आदि सभी पुराण भी वेदार्थ के उपबृंहण और वेद के विस्तृत आर्ष भाष्यमात्र हैं।

शैव, वैष्णव, शाक्त आदि विभिन्न आगम एवं तन्त्र आदि भी वैदिक धर्म की ही शाखा-प्रशाखाओं के ही उपबृंहक हैं। सर्वत्र ही न केवल विष्णु या कृष्ण की ही भक्ति वर्णित है बल्कि शिव, शक्ति, विष्णु एवं राम तथा कृष्ण आदि की भक्ति का स्पष्ट वर्णन है। जैसे उपनिषदों में **रामतापनीय** है वैसे ही **गोपालतापनीय**, **नृसिंहतापनीय** आदि हैं। रामानुज, निम्बार्क, मध्व आदि ने **रामायण, महाभारत, विष्णुपुराण**, **श्रीमद्भागवत** आदि ग्रन्थों को परम प्रमाण माना है। सुतरां उनमें वर्णित राम की भक्ति को भी पूर्णरूप से आदृत किया है। **श्रीमद्भागवत** के नवें स्कन्ध में रामचरित का सर्वोत्तम वर्णन है।

'भक्ति का सूत्रपात ई० सन् के प्रारम्भ के आसपास हुआ' यह कहना सर्वथा असङ्गत है। वेद एवं वेदोक्त भक्ति अनादि है। आधुनिक इतिहास की दृष्टि में भी वेद, वैदिक सभ्यता तथा शिवभक्ति ईसा से हजारों वर्ष पूर्व का है। **ऋग्वेद** में रुद्र शब्द का प्रयोग शिव के लिए मिलता है और जो विशेषण शिवजी के लिए प्रयुक्त हुए हैं, वे प्रायः रुद्र के लिए मिलते हैं। शिव शब्द भी है ही।

आधुनिक मोहनजोदड़ो और हरप्पा की खुदाई ने भारतीय धार्मिक इतिहास पर बहुत प्रभाव डाला है। वहाँ दो प्रकार की शिव-मूर्तियाँ मिली हैं, पहली जो मोहनजोदड़ो की मुहरों में मिली हैं, उसमें योगावस्था में बैठे ध्यानी शिव हैं। इसमें शिवजी बीच में बैठे हैं ओर चारों ओर पशुओं की आकृतियाँ हैं। शिव को पशुपतिनाथ कहा ही जाता है, अतः बाघ, हाथी, गैंड़ा और भैंसा ध्यानी शिव के चारों तरफ खड़े हैं। त्रिशूल की जगह पर शिव के मस्तक पर तीन आकृतियाँ हैं। उसमें शिव के सिंहासन के नीचे दो मृग भी हैं। दूसरी मुहर में शिव के तीन मुख हैं जो ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश त्रिरूप के बोधक हैं। हरप्पा में बहुत सी पत्थर की सामग्रियाँ मिली हैं जो शिव-लिङ्ग जैसी हैं। एतावता शिव-लिङ्ग की पूजा स्वतः प्रमाणित हो जाती है। **ऋग्वेद** में शिश्नदेवाः शब्द (ऋ० सं० ७।२१।५ और १०।१०।१९) आया है। पाश्चात्य लोग इसके आधार पर कहते हैं कि अनार्य लोग शिव-लिङ्ग के पूजक थे, आर्यों में उन्हीं से वह ली गयी है। परन्तु पाश्चात्यों की उक्त धारणा गलत है। यास्क तथा सायण ने इसका 'अब्रह्मचर्य' अर्थ लिया है। शिश्नोदरपरायण बिषयी लोग शिश्नदेव माने जाते थे। अब भी वैसे ही माने जाते हैं। इस आधार पर कम से कम ६ हजार वर्ष पहले शिव-पूजा प्रचलित थी, यह सिद्ध होता है।

ईसा से २०० वर्ष पूर्व पुष्यमित्र शुङ्ग ने वैदिक धर्म का प्रसार किया। ईसा के पूर्व पहली शती में वैक्ट्रियन तथा शक राजाओं ने उत्तर पश्चिम भारत पर राज्य किया था। उनके सिक्कों पर वृषभ के चिह्न हैं।

ईसा की पहली शती में कुषाणवंशीय नरेशों ने एक बहुत बड़ा राज्य स्थापित किया था जिसका विस्तार वाराणसी तक था। राजा बीम ब्रड फाइसीस तो शैव धर्म स्वीकार कर महादेव का पूर्ण उपासक हो गया था। उसके सिक्कों से यह स्पष्ट है। उनमें एक तरफ राजा का चित्र है दूसरी तरफ महादेव नन्दी को साथ लिए खड़े हैं। उनमें शिवजी त्रिशूल और डमरू लिये दिखाये गये हैं। कनिष्क ने भी वैसे ही सिक्के चलाये थे। उसके सिक्कों में शिवजी ईशो या ईश नाम से अङ्कित हैं। उस मूर्ति में महादेव की चार भुजाएँ हैं।

काशीप्रसाद जायसवाल ने नागवंशीय राजाओं का पता लगाया है। यह वंश कुषाणों के बाद और गुप्तकाल के पहले का है। इसके शिलालेखों से विदित होता है कि इस वंश के आदि पुरुष ने शिवलिङ्ग को अपने कन्धे पर रखकर शिवजी को परितुष्ट कर राज्य-स्थापना की थी। अंसभारसंनिवेशितशिवलिङ्गोद्वहनशिवसुपरितुष्टसमुत्थापित-राजवंशानां पराक्रमाधिगतभागीरथ्यमलजलमूर्धाभिषिक्तानां दशाश्वमेधावभृथस्नानानां भारशिवानाम्। (ना० प्र० पत्रिका भाग १९ अङ्क १)। इस वंश का नाम ही भारशिव था। इसके बाद भी गुप्तकाल में और उसके बाद भी शिव की उपासना चलती रही।

रामायण तथा पुराणों द्वारा स्पष्ट है कि श्रीराम ने सेतुबन्ध पर रामेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना की। शिवपूजा की प्राचीनता का सर्वोत्कृष्ट प्रमाण यही है।

"एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः।" (नि० १।१५)
"असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्॥" (यजुः सं० १६।५४)
"यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥" (श्वे० उ० ३।४)

"असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्।" (यजुः सं० १६।५४), रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे।" (ऋ० सं० १०।६४।८), "शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जयाषः।" (ऋ० सं० ७।३५।६) "रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृलयाति नः।" (ऋ० सं० १०।६६।१), "रुद्रं रुद्रेभिरावहा बृहन्तम्।" (ऋ० सं० ७।१०।४)

"योऽग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोऽअस्त्वग्नये।" (अथ० सं० ७।९२।१), "भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ। बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्न मृधग्धुवेम कविनेषितासः॥" (ऋ० सं० ६।४९।१०)

जो रुद्र अग्न्यादि वेदों का कारण है, जो विश्व का एकमात्र स्वामी है, महाज्ञानी और अतीन्द्रियार्थदर्शी है और जो हिरण्यगर्भ को उत्पन्न करता है वह हमें शुभ बुद्धि दे। जो रुद्र अग्नि में, जल में, औषधियों और वनस्पतियों में है और जो भुवनों का निर्माण करता है उस तेजस्वी रुद्र को हमारा नमस्कार हो। जो भुवनों का रक्षक है तथा जो बड़ा ज्ञानी है, प्रेरक और अजर है उसकी हम दिन-रात सदा ही प्रशंसा करते हैं।

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" (ऋ० सं० १।१६४।४६)

श्रीमद्भागवत नवम स्कन्ध के दशवें अध्याय में रामचरित वर्णित है श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

"तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः॥" (भा० पु० ९।१०।३)

राजन्, तत्त्वदर्शी ऋषियों द्वारा वर्णित सीतापति के चरित्र को तुमने बहुत सुना है।

राजा परीक्षित् का समय ई० पू० तीन हजार वर्ष से भी पुराना है। उन्होंने तत्त्वदर्शी ऋषियों द्वारा सीतापति का चरित्र बहुत सुना है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि राम का चरित्र वाल्मीकि आदि महर्षियों द्वारा लाखों वर्ष पहले गाया गया है। भागवत के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीधर स्वामी कहते हैं कोटि-कोटि श्लोकों में फैले हुए श्रीराम के विक्रम का भागवत में दो अध्यायों में संकलन किया गया है और जो दो अध्यायों में कहा गया है वही एक श्लोक में संगृहीत है—

"ग्रन्थकोटिभिराकीर्णमद्भुतं रामविक्रमम्।
अध्यायद्वयतो वक्ष्यन्नेकश्लोके समस्यति॥"
"गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः,
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषारोपितभ्रूविजृम्भः,
त्रस्ताब्धिबद्धसेतुः खलदवदहनः कोशलेन्द्रोऽवतान्नः॥" (भा० पु० ९।१०।४)

जो पिता के सत्यपालनार्थ राज्य त्यागकर वन-वन में पैदल भटकते रहे, उनके चरणकमल इतने अधिक सुकोमल थे कि सुकुमारी सीता के कोमल हस्तकमल का भी स्पर्श असह्य था। वे ही जब वन में चलते-चलते थक जाते

थे तब हनुमान् और लक्ष्मण उन्हें दबा-दबाकर उनकी थकावट दूर करते थे। शूर्पणखा की नाक और कान काटकर विरूप करने के कारण उन्हें अपनी प्रिया का वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोगजनित रोष के कारण भौहें तन गयीं जिन्हें देखकर समुद्र भी भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्र में पुल बाँधा और लङ्का में जाकर दुष्ट राक्षसों के जङ्गल को दावाग्नि के समान दग्ध कर दिया। वे कोशलेन्द्र हम सबकी रक्षा करें।

"नेदं यशो रघुपतेः सुरयाञ्चयाऽऽत्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः॥" (भा० पु० ९।११।२०)

"यस्यामलं नृपसदःसु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये॥" (भा० पु० ९।११।२१)

भगवान् श्रीराम के समान भी यश और ऐश्वर्यवाला कोई नहीं, फिर उनसे अधिक ऐश्वर्यशाली कैसे कोई हो सकता है? भगवान् ने देवताओं की प्रार्थना से ही दिव्य लीलाविग्रह धारण किया था। उन रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीराम के लिए यह कोई बड़े गौरव की बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों से बड़े-बड़े राक्षसों को मार डाला, या समुद्र पर पुल बाँध दिया। भला क्या उन्हें शत्रुओं को मारने के लिए बन्दरों की सहायता की आवश्यकता थी। वस्तुतः सब उनकी लीला ही थी।

भगवान् का निर्मल यश सब पापों को नष्ट करनेवाला है। वह इतना फैल गया कि दिग्गजों का भूषणरूप हो गया है। आज भी बड़े-बड़े मार्कण्डेय आदि ऋषि-महर्षि युधिष्ठिर आदि राजाओं की सभाओं में उस यश का गान करते हैं। स्वर्ग के देवता तथा पृथ्वी के नरपति अपने कमनीय किरीटों से उनके चरणकमल का नीराजन करते हैं।

श्रीमद्भागवत वोपदेवकृत है यह कहना असङ्गत है, क्योंकि १३ वीं शती में देवगिरिस्थ वोपदेव ने भागवत के ही आधार पर मुक्ताफल, भागवतानुक्रमणिका और भागवतसारबोधक ग्रन्थ लिखे हैं। यदि वोपदेव ने भागवत भी बनाया होता तो उसका उल्लेख अवश्य किया होता। जैसे अन्य ग्रन्थों के कर्ता के रूप में वोपदेव का उल्लेख है वैसे ही भागवत में भी उल्लेख होना चाहिए था। परन्तु भागवत के प्रथम स्कन्ध में कर्ता रूप से ही व्यास का उल्लेख है। वोपदेव के आश्रयदाता चतुर्वर्गचिन्तामणि के निर्माता हेमाद्रि थे। उन्होंने महापुराणों के दान के प्रसङ्ग में श्रीमद्भागवत पुराण का भी दान लिखा है। यदि भागवत का निर्माण उसी समय हुआ होता तो महापुराणों के प्रसङ्ग में महापुराणरूप से भागवत का दान वर्णन कैसे होता? फिर, वोपदेव हुए तेरहवीं शती में ग्यारहवीं शती का हस्तलिखित भागवत काशी के सरस्वतीभवन में विद्यमान है।

श्रीमध्वाचार्य ने अपने भागवततात्पर्यनिर्णय ग्रन्थ में लिखा है—

'श्रीशङ्कराचार्यचित्सुखाचार्यप्रभृतिभिर्भागवते टीकाः कृताः।'

अर्थात् श्रीशङ्कराचार्य, चित्सुखाचार्य आदि ने भागवत पर टीकाएँ लिखी थीं। पद्मपुराण के वासुदेव-सहस्रनामभाष्य में श्रीशङ्कराचार्य ने स्वयं भागवत के श्लोक का उद्धरण किया है। श्लोक यह है—"पश्यन्त्यदो रूपमभ्रचक्षुषा।" (भाग० पु० १।३।४)। शङ्कराचार्य के परम गुरु गौड़पादाचार्य ने पञ्चीकरण-टीका में भागवत का उल्लेख किया है—

"स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥" (भा० पु० ९।११।२२)

जिन्होंने राम का स्पर्श किया, जिन्होंने दर्शन किया, जो पास बैठे और जिन्होंने राम का अनुगमन किया वे सभी कोशलवासी जहाँ योगी लोग जाते हैं उस दिव्य साकेत-धाम में पहुँच गये। जब शङ्कराचार्य का समय ही

नेपाल में मिले प्रमाणों के आधार पर ईसा से सात सौ वर्ष पूर्व है तो उनके परमगुरु गौडपादाचार्य के समय की प्राचीनता में क्या सन्देह ? जब उनके द्वारा भी रामभक्ति से ओतप्रोत भागवत-श्लोक उद्धृत है तो भक्तिमार्ग को और भागवत को ईसा से कुछ वर्ष पूर्व के कहने का क्या अर्थ है ।

श्रीकृष्ण भगवान् भी अपनी विश्वविख्यात गीता में जैसा कहते हैं—

"**वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि**" (गी० १०।३७) वृष्णियों में मैं वासुदेव हूँ ।

उसी तरह कहते हैं—'**रामः शस्त्रभृतामहम्**' (गी० १०।३१) । शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ ।

जन-जन में रामनाम जितना प्रख्यात है उतना और कोई भी विष्णु, कृष्ण आदि का नाम प्रख्यात न हो सका । **पद्मपुराण** के अनुसार शिवजी ने पार्वती को बतलाया कि राम ही मेरा धन है । एक बार रामनाम का जप विष्णुसहस्रनाम जप के तुल्य होता है । हे मनोरमे ! मैं उसी राम में रमण करता हूँ । हे वरानने ! मैं अतिराम अर्थात् जामदग्न्य का अतिक्रमण करनेवाले राम में अतिरमण करता हूँ । अतिरामे रामे अतिरामे—

"राम रामेतिरामेतिरमे रामे मनोरमे ।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने ।।"

१४७ वें अनु० में बुल्के का यह कहना भी असङ्गत है कि "**रामायण** के प्रक्षिप्त अंशों में तथा **भारत** में कई स्थलों पर रामावतार का उल्लेख है ।" भ्रान्ति या दुरभिसन्धि से ही बुल्के रामावतार-बोधक श्लोकों को प्रक्षिप्त मानते हैं । उनके पास इसके लिए कोई भी ठोस आधार नहीं है । जब कि अवतार-पक्ष में **वेद**, **रामायण**, **महाभारत** तथा सभी पुराण प्रमाण हैं । सीता को लक्ष्मी बतलानेवाला युद्धकाण्ड का श्लोक भी प्रक्षिप्त नहीं है । अतएव प्राचीन रामसाहित्य में कहीं भी रामभक्ति का निरूपण नहीं मिलता, यह कहना भी गलत है, क्योंकि **रामतापनीय, रामरहस्योपनिषद्**, **वाल्मीकिरामायण**, **महाभारत, अध्यात्मरामायण**, पुराण आदि सब प्राचीन राम-साहित्य हैं । उनमें रामभक्ति का पूर्णतया उल्लेख है । बुल्के का कहना है कि "**हरिवंश** में तथा प्राचीन पुराणों में भी रामभक्ति का उल्लेख नहीं हुआ, अतः रामावतार की भावना के बहुत काल के बाद राम-भक्ति तथा रामपूजा का आविर्भाव हुआ है । सर रामगोपाल भण्डारकर का कहना है—यद्यपि ई० सन् के प्रारम्भ से ही राम विष्णु के अवतार माने गये थे, किन्तु उनकी विशेषरूप से प्रतिष्ठा ११ वीं शती के लगभग प्रारम्भ हुई । डाक्टर श्राडर का भी यह निर्णय है कि जिन वैष्णवसंहिताओं में राम अथवा राधा की ऐकान्तिक पूजा प्रतिपादित की गयी है वे अर्वाचीन हैं और पाञ्चरात्र के प्रामाणिक साहित्य के अनुकरण से उत्पन्न हुई हैं । फिर भी गुप्तकालों में विष्णु के अन्य अवतारों की भाँति राम की भी पूजा प्रचलित थी । **धर्मोत्तरपुराण** तथा वराहमिहिर की **बृहत्संहिता** में राममूर्ति के निर्माण के लिए नियम मिलते हैं । ५वीं शती की वाकाटक महारानी राम गिरिस्वामी की भक्त थी । सम्भवतः वे दाशरथि राम थे । **अग्निपुराण** में मत्स्यादि-प्रतिमा-लक्षण नामक ४९ वें अध्याय में राम की मूर्ति का उल्लेख है ।"

उक्त सभी लेखक पाश्चात्यों के ही प्रभाव से प्रभावित होकर उक्त निष्कर्ष पर पहुँचे हैं । **रामायण** में राम को परब्रह्म पुरुषोत्तम कहा गया है और फलश्रुति में राम-भक्ति करनेवालों को उत्तम फल की प्राप्ति कही गयी है । श्रीराम के रामायण का सादर श्रवण करने से श्रद्धालु जितक्रोध होकर विविध विपत्तियों को पार कर लेता है । उसके सुनने से सब देवता प्रसन्न होते हैं और प्रार्थित वरप्रदान करते हैं । स्त्रियाँ इसके सुनने से उत्तम पुत्र प्राप्त करती हैं । प्राणी सब पापों से मुक्त होता है । **रामायण** सुनने से ऐश्वर्य एवं पुत्र का लाभ होता है । सम्पूर्ण **रामायण** के सुनने से और पढ़ने से राम प्रसन्न होते हैं । राम साक्षात् सनातन विष्णु, आदिदेव हरि एवं नारायण हैं—

"प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः।
आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः॥" (वा० रा० ६।१२८।११७)

राम की स्तुति करते हुए ब्रह्माजी ने कहा है—राम आपका दर्शन अमोघ है एवं आपका संस्तवन अमोघ है। भूतल में आपकी भक्ति करनेवाले मनुष्य भी अमोघ होंगे। ध्रुव, पुराणपुरुषोत्तमस्वरूप आपको जो भजेंगे वे इस लोक और परलोक के सब अभीष्टों को प्राप्त करेंगे—

"अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि॥
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च॥" (वा० रा० ६।११९।३०,३१)

जब इस तरह राम के समकाल में ही ब्रह्मादि देवता ही राम की भक्ति और उसका फल वर्णन करते हैं और **महाभारत** एवं पुराण सभी इसका साक्ष्य दे रहे हैं तब यह कहना कि ११वीं शती से राम की भक्ति चली धृष्टतामात्र है। **हरिवंश** में राम को विष्णु का स्वरूप बताया है तो सुतरां उनकी भक्ति सिद्ध है। भक्ति का अर्थ मूर्ति-पूजा ही नहीं है; श्रवण, पठन, ध्यान आदि भी भक्ति है। वस्तुतस्तु भगवद्गुणगणश्रवणजनित द्रवीभूत अन्तःकरण की भगवदाकाराकारित वृत्ति ही भक्ति है—

"मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥ (भा० पु० ३।२९।११)

जैसे समुद्र की ओर द्रवीभूत निर्मल परम पवित्र गङ्गा का अविच्छिन्न प्रवाह प्रवाहित होता है इसी तरह सर्वगुहाशयी भगवान् की ओर निर्मल द्रवीभूत अन्तःकरण की अविच्छिन्न वृत्ति ही भक्ति है। जो राम का अवतार और राम की भक्ति का वर्णन करने के कारण ही परम प्रामाणिक **रामायण** के अविभाज्य अङ्ग को प्रक्षिप्त कहने का साहस कर सकता है वह प्रामाणिक से प्रामाणिक ग्रन्थ को प्रक्षिप्त कह सकता है। बुल्के को **वाल्मीकिरामायण** के पाँच काण्ड प्रामाणिकरूप से मान्य हैं पर उनमें अवतार-बोधक वचनों को वे प्रक्षेप मानते हैं। वे कहते हैं कि प्राचीन पुराणों में राम की भक्ति का उल्लेख नहीं है। यदि उन प्रामाणिक पुराणों में रामभक्ति का उल्लेख मिल जाय तो बुल्के उनको भी प्रक्षेप कह देंगे। इसकी कोई चिकित्सा ही नहीं है। इस तरह तो ईसाई बुल्के की बाइबिल को भी तो प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

विष्णुधर्मोत्तर और **अग्निपुराण** भी अर्वाचीन नहीं हैं। भारतीय दृष्टिकोण से पुराण अति प्राचीन हैं, अतएव वेदों तथा उपनिषदों में पुराणों का वर्णन है। उन्हें पाँचवे वेद की संज्ञा दी गयी है। यह पीछे कहा जा चुका है। पुराणों के अनुसार राम भी पुराणों का श्रवण करते थे। तुलसीदासजी भी कहते हैं—

"वेदपुरान वसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम यद्यपि सब जानहिं॥" (रा० मा० ७।२५।१)

वेद, पुराण सभी अनादि ही हैं। भेद इतना ही है कि वेदों की आनुपूर्वी कभी नहीं बदलती है, अतः वे अपौरुषेय हैं। इतिहास-पुराण पौरुषेय हैं, अतः उनकी आनुपूर्वी विभिन्न कल्पों में बदलती रहती है। परन्तु कथावस्तु और सिद्धान्त ज्यों के त्यों बने रहते हैं। इतिहास पुराण-कार त्रिकालज्ञ ऋषि हैं। अतः उनके ग्रन्थों में अतीत के समान ही अनागत वृत्तान्तों का भी वर्णन हुआ है। यह न समझने के कारण ही बुल्के आदि किसी अर्वाचीन वस्तु को देखकर उसके आधार पर पुराणों के रचना-काल की खोज करते हैं।

इन्हीं वेद, उपनिषद्, **रामायण**, **महाभारत** तथा पुराणों के अनुसार ही तमिल के प्राचीनतम आल्वारों के स्तोत्रों में राम का उल्लेख हुआ है। कुलशेखर (नवीं शती के) आल्वार द्वारा कृत रामभक्ति का निरूपण स्वतन्त्र

नहीं है, किन्तु वह सब वेदादि के आधार पर ही आधारित है। अतएव यह भी कहना निराधार है, "रामभक्ति तथा रामपूजा का शास्त्रीय प्रतिपादन पहले पहल रामानुजसम्प्रदाय में हुआ है।"

यह कहना भी अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना है कि 'रामानुज ने भी रामभक्ति पर कुछ नहीं लिखा'; परन्तु अपने श्रीभाष्य में उन्होंने विभवों में राम और कृष्ण का उल्लेख किया है (श्रीभाष्य २।२।४२), क्योंकि उनके सम्प्रदाय में प्रथम अर्चावतार की पूजा होती है, उसके पश्चात् विभव की पूजा होती है। अतः राम और कृष्ण को विभव स्वीकार करने से ही उनकी भक्ति भी स्वीकृत हो जाती है।

बुल्के कहते हैं, "रामानुजसम्प्रदाय में **अगस्त्यसंहिता, कलिराघव, बृहद्राधव, राघवीयसंहिता** तथा तीन रामभक्तिसम्बन्धी उपनिषदें सुरक्षित हैं—**रामपूर्वतापनीय, रामोत्तरतापनीय** तथा **रामरहस्योपनिषद्**। इनमें रामयन्त्र, राममन्त्र तथा सीतामन्त्र आदि का उल्लेख है।" पर बुल्के का उक्त कथन सर्वथा अशुद्ध और अप्रामाणिक है, क्योंकि **अगस्त्यसंहिता** ग्रन्थ अतिप्राचीन है। उसका रामानुजसम्प्रदाय में परम आदर अवश्य है। परन्तु वह सम्प्रदाय के किसी आचार्य की कृति है, इसमें कोई प्रमाण नहीं है। बुल्के भी कोई प्रमाण नहीं दे सके।

रामतापनीय आदि उपनिषदें तो अनादि अपौरुषेय वेद के अविभाज्य अङ्ग होने से अपौरुषेय वेद ही हैं। राममन्त्र, सीतामन्त्र आदि अनादि परम्परा से ही प्रचलित हैं। किसी सम्प्रदाय में मन्त्र का निर्माण करके उपदेश नहीं होता, किन्तु अनादिपरम्पराप्राप्त मन्त्र का ही उपदेश होता है। इसी कारण इतर सम्प्रदायों में भी राममन्त्र-परम्परा चलती है। राममन्त्र अति प्राचीन स्मार्त सम्प्रदाय में भी प्रचलित है। अतएव **रामतापनीय** में स्पष्ट कहा गया है कि साक्षात् शङ्कर ने भी राममन्त्र का जप किया था। इसे मिथ्या कहने का साहस करना साहस ही होगा। अपनी बातों की पुष्टि में बुल्के ने भण्डारकर तथा डा० श्राडर के लेखों का स्मरण किया है जो कि स्वयं ही प्रमाणसापेक्ष हैं।

बुल्के के अनुसार "**उत्तरतापनीय तथा रामरहस्योपनिषद्** में अद्वैत भक्ति भी प्रतिपादित है—

"सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः॥"

जो सर्वदा तत्त्व की दृष्टि से अपने को कार्यकारणसङ्घात से भिन्न अखण्डबोध रामरूप ही समझते हैं वे संसारी न होकर राम ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।" यह उद्धरण ही बुल्के के इस कथन को अप्रमाणित सिद्ध करता है कि ये उपनिषदें रामानुजसम्प्रदाय में ही निर्मित हुई हैं। कारण यदि ये किसी रामानुजीय आचार्य से निर्मित होतीं तो इनमें अद्वैत का वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि उस सम्प्रदाय में अपने को राम या विष्णु या ब्रह्म समझना एक प्रकार का अपराध है।

वे यह भी कहते हैं कि "**रामतापनीय** के अनेक स्थलों पर **अध्यात्मरामायण** के रामहृदय का साम्य पाया जाता है (४।७।१९)। इसमें संक्षिप्त रामचरित भी दिया गया है जिसके अनुसार रावण ने मुक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से सीता का हरण किया था '**स्वनिवृत्त्यर्थम्**'। राम और लक्ष्मण (सीता की खोज के व्याज से) पृथिवी का भ्रमण करते थे तथा सुग्रीव ने सीता को ले आने की आज्ञा दी थी।"

वस्तुतः वेद और उपनिषद् ही रामचरित्र रामायणादि ग्रन्थों के भी मूल हैं। यह पीछे स्पष्ट किया जा चुका है, अतः **अध्यात्मरामायण** आदि **रामतापनीय** के अनुसार ही हो सकते हैं। उपनिषद् में निवृत्त्यर्थ में निवृत्ति का अर्थ मुक्ति नहीं है, किन्तु नाश ही अर्थ है। यह व्यावहारिक भाषा है। जैसे कहा जाता है पतङ्ग अपने नाश के लिए दीपादि पर हमला करता है। उसी तरह रावण भी अपने नाश के लिए ही

सीताहरणरूप कार्य में प्रवृत्त हुआ था। **कलिसन्तरण** और **कृष्णोपनिषद्** में भी राम के नाम का माहात्म्य और राम की चर्चा है ही। **तारसार, त्रिपादविभूतिमहानारायण**, मुक्तिकोपनिषद् आदि में राम की चर्चा है ही। **त्रिपादविभूतिमहानारायण** में तो भरताग्रज जानकीवल्लभ सम्बन्धित ७ वें अध्याय में **"दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्"** इस रामगायत्री का उल्लेख है। और भी अनेक उपनिषदों में राममाहात्म्य तथा वन्दना वर्णित है। मुक्तिकोपनिषद् में '**राम त्वं परमात्मासि**' इत्यादि उक्तियाँ ठीक ही हैं। सीतोपनिषद् भी श्रुति ही है।

बुल्के कहते हैं, "उन सब ग्रन्थों की रचना का काल निर्धारित करना असम्भव प्रतीत होता है।" वस्तुतः प्रतीत नहीं असम्भव ही है। कारण, वेद अनादि हैं। उक्त उपनिषदें वेद हैं, अतः अनादि ईश्वर के अनादि निःश्वासभूत हैं। उनका रचनाकाल ढूँढना अनभिज्ञता ही है। संसार में कोई भी व्यक्ति छोटा सा भी लेख लिखता है तो उपाधियों सहित उसमें अपने नाम का उल्लेख करता है। यदि ये उपनिषदें किसी व्यक्तिविशेष की निर्मित होती तो इनमें उस लेखक का नाम अवश्य होता। लेखक का नाम न होने से भी इनकी अपौरुषेयता ही व्यक्त होती है। वेबर ने **रामतापनीय** का प्राचीनतम निर्माणकाल ११वीं शती माना है। उनके अनुसार उस समय से लेकर रामभक्तिविषयक साहित्य का निर्माण होने लगा था। परन्तु वेबर की यह कल्पना अटकल पर ही निर्भर है। **रामार्चनसोपान, सर्वसिद्धान्त, रामार्चनपद्धति, रामपूजापद्धति** आदि पौरुषेय ग्रन्थों के निर्माणकाल की कल्पना ठीक हो सकती है। इसी प्रकार **भगवद्गीता** के अनुकरण पर **रामगीता** नामक ग्रन्थों का उल्लेख मानना भी अशुद्ध है। कारण जिस **महाभारत** का **भगवद्गीता** रत्न माना जाता है उसमें **उत्तरगीता, अनुगीता** आदि अनेक गीताओं का उल्लेख है। इसमें अनुकरण का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव **अध्यात्मरामायण की रामगीता, स्कन्दपुराणीय** निर्वाणखण्ड की **रामगीता** को किसी का अनुकरण नहीं कहा जा सकता। **अध्यात्मरामायण की रामगीता** को तो कथमपि अनुकरण नहीं कहा जा सकता। तत्त्वमस्यादि वाक्यों का विवेचन और श्लोकों का ढङ्ग इसका सर्वथा विलक्षण ही है। गो० तुलसीदासजी का श्रीराचरितमानस किसी सम्प्रदायविशेष पर निर्भर नहीं है, किन्तु उनके ही शब्दों में नानापुराण, निगम, आगम और अपनी परम्परा पर ही निर्भर है।

बुल्के का यह कहना भी अशुद्ध है, "रामभक्ति के विकास के साथ साथ रामकथा को भक्ति के ढाँचे में ढालने की आवश्यकता का अनुभव हुआ। फलस्वरूप बहुत से साम्प्रदायिक रामायणों की सृष्टि होने लगी। जिनमें **अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण तथा अद्भुतरामायण** प्रमुख हैं।" क्योंकि रामभक्ति के विकास के आधार पर भक्तिग्रन्थों का आविर्भाव नहीं हुआ। किन्तु उन वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थों के आधार पर ही भक्ति का आविर्भाव हुआ है। अतः **अध्यात्मरामायण** आदि को अर्वाचीन बतलाने का साहस करना धृष्टता ही है। **अध्यात्मरामायण** का निर्माण शङ्कराचार्य के अद्वैतसिद्धान्त के अनुसार नहीं हुआ, किन्तु शङ्कराचार्य के अद्वैतसिद्धान्त को ही इसके अनुसार कहा जा सकता है। तभी तो इसका सम्मान अन्य सम्प्रदायों में भी है। यदि यह शङ्कराचार्य के सिद्धान्त के आधार पर निर्मित होता तो निश्चित ही विशिष्टाद्वैती तथा रामानन्दीय सम्प्रदाय में इसका इतना आदर न होता। अद्वैतबोधक बहुत से वचन जैसे वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों में मिलते हैं, वैसे ही **अध्यात्मरामायण** में भी हैं। अतः इतने से ही किसी अद्वैतसम्प्रदायी द्वारा उसका निर्माण नहीं कहा जा सकता। **श्रीमद्भागवतपुराण** का भी **रामचरितमानस** में आश्रय लिया गया है। **रामचरितमानस** का भी वह मुख्य आधार पुराणांश होने से ही हुआ है। अतएव वह **अध्यात्मरामायण** तथा **ब्रह्माण्डपुराण** का ही अंश माना जाता है। यदि अन्य कोई रचयिता होता तो वह ऐसे ग्रन्थरत्न के रचयिता के रूप में अपने नाम का अवश्य उल्लेख करता। अतएव १७५ वें अनु० की बुल्के की कल्पनाएँ निराधार ही हैं। एकनाथ **वाल्मीकिरामायण** की अपेक्षा **अध्यात्मरामायण** को अर्वाचीन मानते हैं। सो यह तो ठीक ही है। **वाल्मीकिरामायण** ग्रन्थ चौबीसवीं चतुर्युगी के त्रेतायुग की कृति है और

अध्यात्मरामायण २८वीं चतुर्युगी के द्वापर में व्यास द्वारा निर्मित है, अतः उसकी प्राचीनता **महाभारत** के समान ही असन्दिग्ध है।

भारतीय लेखक मिथ्या संवाद नहीं लिखते। अतएव सर्वज्ञकल्प व्यास ने ही ब्रह्मनारदसंवाद और पार्वती-शङ्कर संवाद के रूप में अध्यात्मरामायण का आविर्भाव किया है। अवतारवाद की व्यापकता वस्तुस्थिति है। श्रीराम परब्रह्म हैं और सीता मूलप्रकृति है, यह उल्लेख ठीक ही है। बालकाण्ड में **भागवत** का अनुकरण करके राम का कौशल्या को अपना विष्णुरूप दिखलाया गया है, यह भी अशुद्ध है, क्योंकि पुराणों में अन्यत्र भी वही पद्धति है। वामन भगवान् भी अपनी माता अदिति के सामने चतुर्भुजरूप से ही प्रकट हुए थे। इसी तरह भगवान् व्यास तथा ब्रह्म, नारद और शिव, पार्वती की परम्परा के राम का कौशल्या में वैसा ही आविर्भाव हुआ है। इसी लिए इस संवाद में वैसा उल्लेख है। अहल्योद्धार, केवट का वृत्तान्त, अभिषेक के पूर्व राम-नारदसंवाद, मन्थरा में सरस्वती का प्रवेश, वाल्मीकि द्वारा अपनी कथा द्वारा रामनाम का माहात्म्य वर्णन, मायामयी सीता का हरण-वृत्तान्त, लक्ष्मण का १९ वर्ष तक उपवास आदि, सेतुबन्ध के पूर्व रामेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना आदि सब वृत्तान्त कल्पना नहीं हैं किन्तु वस्तुस्थिति के अनुसार ही उनका उल्लेख है। तदनुसार ही अनेक पुराणों में भी रामेश्वरस्थापना का वर्णन है। इतना ही नहीं आज तक सेतुबन्ध रामेश्वर नाम से ही धनुष्कोटि के समीप रामेश्वर लिङ्ग स्थित है। देश-देशान्तर से लक्षों लक्ष आस्तिक दर्शन करने जाते हैं। **'नह्यमूलं प्ररोहति'** बिना मूल के यह सब सम्भव नहीं हो सकता।

अद्भुतरामायण को भी अर्वाचीन कहना अशुद्ध ही है। विभिन्न रामायणों और पुराणों में रामकथा की वस्तु के भेद का कारण कल्पभेद ही है। **रामचरितमानस** में कहा गया है—

"कलपभेद हरि चरित सुहाये, भाँति अनेक मुनीसन गाये।" (रा० मा० १।३२।४)

सहस्रमुख रावणवध आदि भी कल्पनामात्र नहीं हैं। अतीत घटनाओं में इतिहास आदि ग्रन्थ ही प्रमाण होते हैं। अतः **अद्भुतरामायण** के अनुसार तथावर्णित उस घटना के अभाव में कोई प्रमाण नहीं।

आनन्दरामायण भी **अद्भुतरामायण** आदि के तुल्य वाल्मीकिकृत ही है। पुराणों तथा वाल्मीकिपरम्परा प्राप्त वचनों के आधार पर प्रत्येक आस्तिक यह जानता है कि **रामायण** ग्रन्थ शतकोटि श्लोकों में विस्तृत हुआ है।

"चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥" (रामरक्षास्तोत्र)

रघुनाथ रामभद्र का चरित्र शतकोटि श्लोकों में विस्तृत हुआ है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

"रामायन सतकोटि अपारा" (रा० मा० १।३२।३),
"रामचरित सतकोटिमहँ, लिय महेश जिय जानि।" (रा० मा० १।२५)

रामचरित मानस में कवीश्वर और कपीश्वर दोनों को 'सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारी' कहा गया है।

"सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥" (रा० मा० १।मंगलाचरण। ४)

तुलसीदास जैसे तत्त्वदर्शी सन्त स्वप्न में भी अनृतवादी होना पाप मानते हैं। फिर वे मिथ्या बातों को अपने अमरकाव्य में कैसे स्थान दे सकते थे? वी. राघवन्, जी. ग्रियर्सन आदि समालोचकों की समालोचना निष्प्रमाण ही है। उन विदेशियों एवं भारतीयसंस्कारशून्य लोगों को इन परम प्रामाणिक आर्षग्रन्थों के सम्बन्ध में

कुछ भी ज्ञात नहीं है। जैसे कुरान, बाइबिल आदि ग्रन्थों के सम्बन्ध में भी उनके रहस्यज्ञ विद्वान् ही कुछ कह सकते हैं, अन्य नहीं वैसे ही **रामायण** के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये।

१५०वें अनु० में बुल्के का कहना है "भारतीय भक्तिमार्ग के इतिहास में कृष्ण तथा बाद में राधा और कृष्ण का स्थान निर्विवाद रूप से प्रधान है और रामभक्ति पर कृष्णभक्ति का प्रभाव पड़ जाना स्वाभाविक था। राम के प्रति दास्यभक्ति के अतिरिक्त माधुर्यभक्ति का भी प्रतिपादन किया गया है। इस माधुर्यभक्ति के आधार पर रसिकसम्प्रदाय का सम्भवतः १६वीं शती ई० के अन्त में प्रवर्तन हुआ।"

यह कथन भी असङ्गत ही है, क्योंकि भारतीय भक्ति का इतिहास अति प्राचीन काल से वेदों में ही वर्णित है।

"मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।" "यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।" (श्वे० उ० ६।२३)। के अनुसार प्रपत्ति, भक्ति तथा शरणागति शब्द एक ही वस्तु के बोधक हैं। निर्गुण निराकार ब्रह्म तथा सगुण साकार ब्रह्म की भी भक्ति वेदों में वर्णित है। वेदों और उपनिषदों में उपासना एवं तत्त्वज्ञान का ही प्राधान्येन वर्णन है। ब्रह्मसूत्रों में भी उपासना और तत्त्वज्ञान की दृष्टि से ही ब्रह्म का विचार प्रस्तुत हुआ है। दर्शन, वेदन, ज्ञान आदि शब्दों का उपासना के प्रसङ्ग में उपासना ही अर्थ है। यह शङ्कर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व तथा वल्लभ सभी को मान्य है। यह उपासना भी भक्ति है। श्रीरामानुजाचार्य ने ध्रुवा स्मृति को भक्ति माना है। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन तथा पूर्णानुरक्ति आदि सभी प्रकार की भक्तियाँ वेदों में वर्णित हैं।

"सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्।"
"त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः॥" (वा० रा० ६।१८।१६,१७)
"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥" (वा० रा० ६।१८।३३)

सर्वमान्य **गीता** में भी भक्ति और शरणागति का खूब उल्लेख है। उसमें स्वयं भगवान् द्वारा ईश्वर (शिव) की शरणागति का उल्लेख है—

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिस्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥" (गीता १८।६२)

अतः भक्ति का प्रचार आधुनिक नहीं है। उक्त वचनों में शरणागति का वर्णन भक्ति का ही वर्णन है। हनुमान्, विभीषण, भरत तथा लक्ष्मण ये भी उत्कृष्ट कोटि के भक्त थे। आजकल भक्तों एवं परम भागवतों में इन सबकी गणना है। श्रीतुलसीदासजी ने कहा है—

"भरत सरिस को रामसनेही। जग जपु राम राम जपु जेही॥" (वा० रा० २।२१७।४)

भागवत आदि में नमस्कार भी वन्दनरूप भक्ति है। वेदों में **'नमस्ते रुद्र मन्यव उतोत इषवे'**, **'नमो हिरण्य-बाहवे'** आदि रूप से भगवान् सगुण साकार शिवजी का स्पष्ट ही वर्णन है। रामेश्वर शिवलिङ्ग की स्थापना करनेवाले राम शिवभक्त ही थे। उपमन्यु से शिवमन्त्र की दीक्षा लेकर शिवजी की उपासना करते थे। **महाभारत** में श्रीकृष्ण ने भीष्म और धर्मराज के अनुरोध पर शिवजी की भक्ति का वर्णन किया है। **महाभारत** में ही श्रीकृष्ण के उपदेश से अर्जुन ने भगवती की स्तुति की थी। अतः भारतीय भक्ति के इतिहास में अनादिकाल से ही शिव, विष्णु, सीताराम तथा राधाकृष्ण की भक्ति प्रचलित है। अतः ११वीं या १७वीं शती से कृष्ण या राम की भक्ति प्रचलित हुई इत्यादि कल्पनाएँ निर्मूल ही हैं।

उत्तररामचरित, जानकीहरण, हनुमन्नाटक आदि ही नहीं वेदों, उपनिषदों और **वाल्मीकिरामायण** में भक्ति-भावना से ही रामचरित्र का वर्णन हुआ है। इसी लिए **"प्रीयते सततं राम."** (वा० रा० ६।१२८।११७) इत्यादि वचनों से कहा गया है कि रामायण-श्रवण से राम प्रसन्न होते हैं। इतना ही नहीं भारतीय दर्शनों के अनुसार **'भूतं भव्याय कल्पते'** प्रत्येक भूत सिद्ध वस्तु का वर्णन उपासना या कर्म के लिए होता है। इसी लिए **'आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्'** (जै० सू० १।२।१) में कहा गया है कि आम्नाय वेदराशि का क्रिया ही प्रयोजन है, अतः क्रिया जिनका अर्थ नहीं है वे अर्थवाद और मन्त्र आदि अनर्थक होंगे। इसी लिए विधि के साथ एकवाक्यता के द्वारा विध्यर्थ की स्तुति करके विधि का अङ्ग बनकर ही अर्थवाद सार्थक होता है। मन्त्र भी विध्यर्थ के अनुष्ठान में अपेक्षित कर्माङ्ग द्रव्य और देवता का स्मरण कराकर विधियोग से ही सार्थक होते हैं। ठीक इसी तरह **रामायण** आदि में राम और रामचरित्र का वर्णन उपास्यस्वरूप के समर्पण द्वारा उपासना में ही उपयुक्त होकर सार्थक होता है। सगुण ब्रह्म और उसका चरित्र उपास्यरूप में ही वर्णित होता है। निर्गुण ब्रह्म के प्रसङ्ग में सृष्टिकारणत्वादि वर्णन निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान के अङ्गरूप में हुआ है। लक्षों करोड़ों श्लोकों में राम और रामचरित्र का वर्णन भक्ति एवं तत्त्वज्ञान के लिए है, अतः भक्ति को अर्वाचीन काल का मानना अत्यन्त असङ्गत है।

अध्यात्मरामायण की बाललीला पर कृष्ण की बाललीला का प्रभाव सुस्पष्ट है। **आनन्दरामायण, सत्योपाख्यान** आदि में जो राम-सीता की विलासक्रीड़ाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है वह भी कृष्णलीला से प्रभावित है। कृष्णलीला के अनुकरण की परमसीमा यह है कि **भुशुण्डिरामायण, हनुमत्संहिता, बृहत्कोसलखण्ड, संगीतरघुनन्दन** आदि ग्रन्थों में राम की रासलीला की कल्पना कर ली गयी है। विवाह के पूर्व तथा पश्चात् राम अयोध्या के आस-पास रासलीला करते हैं तथा वनवास के समय चित्रकूट में भी। आगे चलकर मधुराचार्य आदि रसिक-सम्प्रदाय के आचार्यों ने रामकथा में यह परिवर्तन किया है कि वास्तव में न तो सीता का हरण हुआ और न स्वयं ब्रह्मराम ने एक तुच्छ राक्षस के वध के लिए धनुषबाण ही धारण किया है। वनयात्रा के समय राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट के आगे नहीं बढ़े। वे स्वयं अपनी आह्लादिनी शक्ति सीता के साथ चित्रकूट में विहार करते रहे। इस लीला में कैङ्कर्य और व्यवस्था लक्ष्मण, जो जीवतत्त्व के प्रतिनिधि थे, करते रहे। चित्रकूट के आगे लक्ष्मी, नारायण और शेष उनके वेष में गये थे। परात्पर ब्रह्म रामजी ने रावण का वध करके सीता रूपी लक्ष्मी का उद्धार किया था। चित्रकूट लौट आये। कृपानिवासजी ने स्वरचित रामायण में यह कथा विस्तारपूर्वक लिखी है। मधुराचार्य ने राज्याभिषेक के अनन्तर सीता-वनवास की घटना को इसी प्रकार राम की प्रकाशलीला माना है। उपर्युक्त उल्लेखों के आधार पर भी राम की बाललीला और मधुर आदि लीलाओं को अनुकरण नहीं कहा जा सकता है। यह सब तभी कहा जा सकता है जबकि यह मान लिया जाय कि राम और राम की कथाएँ वस्तुस्थितिमूलक नहीं हैं केवल कल्पना-मूलक हैं; पर यह शतशः खण्डित है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि रामलीला कृष्णलीला की अपेक्षा अति प्राचीन है। कहा जा चुका है कि महर्षि वाल्मीकि ने अपौरुषेय वेदों, उपनिषदों तथा श्रीनारद के उपदेशों से राम की कथावस्तु को जानकर और समाधिजनित ऋतम्भरा प्रज्ञा से सम्पूर्ण चरित्रों का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर **रामायण** का निर्माण किया है। महर्षि व्यास ने इसी तरह **श्रीमद्भागवत** का निर्माण किया है। **रामायण** शतकोटिप्रविस्तर है। उसका सार २४ हजार श्लोकों का वर्तमान **रामायण** ग्रन्थ है। इसके अन्य अंश रामचरित का किन्हीं महर्षियों को वाल्मीकि के समान ही साक्षात्कार हो सकता है। वर्तमान **रामायण** की अधिकांश कथावस्तु तो राम की ४० वर्ष की आयु के भीतर की है। वाल्मीकि के अनुसार ११ हजार वर्ष तक राम धरातल पर राज्य करते रहे हैं। अतः उनके सम्पूर्ण जीवन का वृत्तान्त लिखा जाय तो शतकोटि भी कम ही है। इसके अतिरिक्त यह कहा गया कि अधिकांश वाल्मीकि-रामायण का निर्माण सीताशुद्धि के उद्देश्य से ही हुआ है। इसके अतिरिक्त बहुत से गुप्त चरित्र हो ही सकते हैं

जिनका उल्लेख अन्य रामायणों में या अन्य ऋषियों की कृतियों में हो सकता है। जिनको आर्षविज्ञान नहीं सम्भव है ऐसे कविगण तो **रामायण, महाभारत, पुराण**, **उपपुराण**, **तन्त्र, आगम** आदि प्रामाणिक आर्ष ग्रन्थों के आधार पर ही काव्य-निर्माण करते हैं ! क्योंकि सिद्धान्त ग्रन्थों का ही उन्हें वैसा ही निर्देश है और वैसी ही परम्परा है। आर्ष विज्ञान के आधार पर प्रथम काव्य होने से ही **वाल्मीकिरामायण** आदि काव्य कहा जाता है। विक्रम २००० पूर्व महाकवि कालिदास ने भी **वाल्मीकिरामायण** को आदि काव्य कहा है।

पुराणों के अनुसार वेदवेद्य परमात्मा जब दशरथात्मज राम के रूप में प्रकट हुए तब साक्षात् वेद भी महर्षि प्राचेतस से **रामायण** के रूप में अवतरित हुए—

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥" (लवकुशप्रोक्त मङ्गलाचरण १३)

'अनन्ता वै वेदाः' (तै० ब्रा० ३।१०।११।४) के अनुसार वेद अनन्त हैं, ईश्वर का ज्ञान अनन्त है। कोई भी ज्ञान बिना शब्दानुवेध के नहीं होता है। सुतरां ईश्वर का अनन्त ज्ञान जिन शब्दों से अनुविद्ध था वे ही वैदिक शब्द हैं। अनन्त वेद का अवतार शतकोटि **रामायण** के ही रूप में हो सकता है। वर्तमान **वाल्मीकिरामायण** गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों के आधार पर है। अतः जो वेद या आर्ष ज्ञान राम की लीलाओं के आधार थे वे ही कृष्ण लीलाओं के आधार थे। इसलिए कई अंशों में तुल्यता परिलक्षित होती है। अतः तुल्यता देखकर किसी को किसी का अनुकरण कहना ठीक नहीं। अतएव बुद्ध और ईसा की बहुत अंशों में तुल्यता होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि ईसा के चरित्रलेखक ने बुद्ध के चरित्र का अनुकरण किया है। **श्रीमद्भागवत** के अनुसार भगवान् का अवतार केवल धर्म-ग्लानि (अधर्म) की निवृत्ति तथा धर्मसंस्थापना एवं दुष्टदर्पदलन तथा साधुपरित्राण के लिए ही नहीं, किन्तु मुख्यतया अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रों को भक्तियोग-विधान के लिए ही होता है—

"तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः॥" (भा० पु० १।८।२०)

श्रीमद्भागवत में यह भी उल्लेख है कि भक्त की मनोवाञ्छा के अनुसार ही भगवान् अपना रूप बनाते हैं—

"यद्यद् धिया त उरुगाय विभावयन्ति।
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥" (भा० पु० ३।९।११)

वेद में भी उल्लेख है कि **'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति'** (ऋ० सं० १।१६४।४६) एक ही तत्त्व मित्र, वरुण, अग्नि आदि अनेक रूपों से प्रकट होता है, **'तं यथा यथोपासत'** (श० ब्रा० १०।५।२।२०)। उस परमेश्वर की जिस प्रकार उपासना की जाती है परमेश्वर उन-उन रूपों में ही उपलब्ध होता है। **गीता** में भगवान् को गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी, निवास, शरण तथा सुहृद् रूप से उपास्य कहा गया है—

"गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृद्।" (गी० ९।१८)

अर्जुन ने भी कहा है कि हे देव, जैसे सखा सखा के अपराधों को एवं प्रिय प्रिया के अपराधों को क्षमा करता है वैसे ही आप भी मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये। इन्हीं शास्त्रीय आधारों पर अनादिकाल से ही परमेश्वर के प्रति मधुरभाव की उपासना होती है। **ऋग्वेद** के अपालासूक्त में अपाला ने इन्द्र की कान्तभाव से उपासना की थी। इन्हीं मूल आधारों पर ही **अगस्त्यसंहिता** आदि आर्ष ग्रन्थों में वस्तुस्थिति के अनुसार ही श्रीराम की मधुर उपासनाओं का वर्णन हुआ है। **भागवत** आदि ग्रन्थों में भी उसी के आधार पर मधुर भक्ति का वर्णन है। शिवजी के प्रति भी

ऐसे भावों का वर्णन जगद्धर भट्ट की स्तुतिकुसुमाञ्जलि में हुआ है। निर्गुणवादी कबीर आदि ने अपने इष्ट ब्रह्म को पिया (प्रिय) के रूप में माना है। अतः इन्हीं आधारों पर मधुराचार्य आदि ने अपने ग्रन्थों में मधुर भक्ति का उल्लेख किया है। राम ने रावणवध आदि कार्य नहीं किये। यह तो पारमार्थिक सिद्धान्त का ही उल्लेख है, कोई अजीब नहीं। वेदान्त-मत में आत्मा कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व से रहित अकर्ता और अभोक्ता ही है—

"अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।" (गी० ३।२७)
"न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः॥" (गी० ५।१४)

परमेश्वर वस्तुतः अकर्ता ही है। अनन्त ब्रह्माण्डों का उत्पादकत्व, पालकत्व आदि अनन्तानन्त ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी के सम्बन्ध से ही परमेश्वर में होता है। **अध्यात्मरामायण** में सीता ने हनुमान् को बतलाया है कि शिवधनुषभंग, रावण-वध आदि सब काम मैंने (मूलप्रकृति ने) किये हैं। राम में तो अज्ञानवश ही कर्तृत्व का आरोप है। वेदान्त की दृष्टि से सोपाधिक ब्रह्म संसार की उत्पत्ति, पालन आदि का काम करता है। निरुपाधिक ब्रह्म सदा ही स्वरूपानन्द में ही प्रतिष्ठित रहता है। **रामायण** के राम; **भागवत** के कृष्ण तथा **विष्णुपुराण** के विष्णु वस्तुतः एक ही वस्तु है। तीनों सगुण एवं साकार रूप पृथक् पृथक् हैं। सगुण निराकार रूप तथा निर्गुण रूप तीनों का एक ही है। **शिवपुराण** के शिव तथा **शाक्तागमों** की भगवती भी पूर्वोक्त तीन प्रकार की हैं। **नृसिंहतापनीय, रामतापनीय** आदि उपनिषदों में प्रणव की अ, उ, म् और अर्धमात्रा मानकर अर्धमात्रा का ही रामरूप में अवतार माना गया है। उस दृष्टि से जब तुरीय शुद्ध ब्रह्मरूप राम हैं तब तो उनमें कारणता भी नहीं है। उसी से रावणवध आदि कार्य राम ने नहीं किये, किन्तु मायाविशिष्ट कारणब्रह्मरूप लक्ष्मी नारायण आदि में ही कारणता का वर्णन है। उसी दृष्टि से यह कहना असङ्गत नहीं है कि राम सदा अपनी स्वरूपभूता आह्लादिनी शक्ति सीता में क्रीड़ा करते रहते हैं। ईश्वरी शक्ति जगदुत्पत्ति आदि तथा राक्षस-वध आदि कार्य करती है। हितहरिवंश आदि ने भी कहा है कि कार्य-कारणातीत नित्य निकुञ्जाधिपति कृष्ण सृष्टि आदि प्रपञ्च से दूर रहकर निरन्तर राधा को ही जानते हैं और कुछ जानते ही नहीं।

"श्रीराधामेव जानन् व्रजपतिरनिशं कुञ्जवीथीमुपास्ते।" (राधासुधानिधि)

जिन वेदादि शास्त्रों के आधार पर सिद्धसिद्धान्तों के अनुसार रामभक्तों ने कार्यकारणातीत राम का प्रतिपादन किया है उन्हीं के अनुसार कृष्णभक्तों ने कृष्ण का निरूपण किया है, अतः दोनों में समता प्रतीत होती है। एतावता किसी को किसी का अनुकरण नहीं कहा जा सकता। राम का बहु विवाह भी कल्पभेद से सङ्गत है।

१५१वें अनु० में "**हरिवंश** का रचनाकाल ४०० ई० के लगभग बताया गया है।" इसमें आर० सी० हाजरा इण्डियन कल्चर भाग २ पृ० २३७ तथा न्यू इण्डियन ऐण्टिक्वेरी भाग १ पृ० ५३२ का प्रमाणरूप से निर्देश किया गया है। जो सर्वथा अशुद्ध है। वस्तुतः **हरिवंश** के अनुसार वह **महाभारत** का खिल है तथा भगवान् व्यास की ही कृति है। फलतः जो **महाभारत** का काल है वही **हरिवंश** का भी काल है।

बुल्के कहते हैं "इसके संक्षिप्त रामचरित में दशरथ के यज्ञ तथा अयोनिजा सीता का ही उल्लेख नहीं है।" उनका यह कथन निस्सार है। कारण संक्षिप्त में कुछ घटनाओं का छूट जाना स्वाभाविक ही है। जब हरिवंश के दो स्थलों (२।९३।६ तथा ३।१३२।९५) में **रामायण** का वर्णन है ही। शेष रामचरित्र **वाल्मीकि-रामायण** के अनुसार समझा ही जा सकता है। साथ ही **हरिवंश** (२।३।१८) में **'सरस्वती च वाल्मीकेः'** के अनुसार वाल्मीकि का ब्रह्मा से प्रेरित सरस्वती का सम्बन्ध भी बोधित होता है। इससे **हरिवंश** की दृष्टि में **वाल्मीकिरामायण** परम प्रामाणिक और महर्षि वाल्मीकि की कृति है, यही सिद्ध होता है। साथ ही (१।१५।२६;

१।५४।२६; २।६०।३५ तथा ३।७६।६३) में राम और रामकथा का वर्णन है। राम विष्णु के अवतार हैं, यह भी संक्षिप्त रामचरित्र में वर्णित है, यह पहले स्पष्ट किया जा चुका है।

१५३वें अनु० में बुल्के ने राजेन्द्र हाजरा के अनुसार ही "**मार्कण्डेयपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, भागवतपुराण** तथा **कूर्मपुराण** को प्राचीनतम महापुराण माना है। बुल्के के अनुसार **मार्कण्डेय, ब्रह्माण्ड** तथा **मत्स्य** इन पुराणों में रामचरित का वर्णन नहीं है। अन्य अवतारों के साथ **ब्रह्माण्डपुराण** तथा **मत्स्यपुराण** में राम का नाम लिया गया है (दे० मत्स्य अ० ४७, ब्रह्माण्ड ३।७३)। **ब्रह्माण्डपुराण** के मैथिलवंश के वर्णन में सीता के अलौकिक जन्म का उल्लेख किया गया है (दे० ३।६४।१५)। इसका भी समय चौथी श० ई० है। किन्तु पहले कहा जा चुका है कि पुराणों का वर्णन वेदों में भी मिलता है अतः पुराण अनादि हैं तो भी वेदव्यास के द्वारा उनका आविर्भाव होता है। अतः अन्य पुराणों के समान ही इसका भी समय व्यास का समय है जो कि ई० पू० ३५ सौ वर्ष ठहरता है। सर्वज्ञकल्प महर्षि वर्णित किसी अर्वाचीन व्यक्ति का वर्णन अनागत का ही वर्णन समझना चाहिए। उसके आधार पर किसी भी पुराण को अर्वाचीन नहीं कहा जा सकता। मार्कण्डेय महर्षि ने वनपर्व में युधिष्ठिर को विस्तृत रामचरित्र सुनाया था। **अध्यात्मरामायण ब्रह्माण्डपुराण** का ही खिल है। **मत्स्यपुराण** में अन्य वस्तु न होने पर भी राम का अवतार तो माना ही गया है। एक ही व्यास सब पुराणों के निर्माता हैं। ऐसी स्थिति में किसी में किसी वस्तु का संक्षेप तो किसी में किसी का विस्तार प्रसङ्गानुसार युक्त ही है।

विष्णुपुराण का भी समय चौथी शती ई० उचित नहीं है। इसमें अयोनिजा सीता का उल्लेख है (४, अध्याय ५)। ताटका का वध, अयोनिजा सीता का वर्णन, राम आदि चारों भाइयों के पुत्रों का उल्लेख (४, अध्याय ४) तथा १।१२।४ में लवणासुर-वध का वर्णन है। इसी से वाल्मीकिरामायण के बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है।

वायुपुराण का काल हाजरा के अनुसार ही बुल्के ने ५वीं ई० शती माना है। इन पाश्चात्यों तथा उनके शिष्य भारतीय विद्वानों की दृष्टि में सारा विकास ईसा के बाद ही हुआ। इसी संकीर्णता के कारण वे **रामायण** तथा **महाभारत** के काल के विषय में ही नहीं वेदों के काल के विषय में भी ई० पू० दो या तीन हजार वर्ष से आगे नहीं बढ़ना चाहते हैं। वस्तुतः **वायुपुराण** का भी समय व्यास का ही समय है। इसमें (अध्याय ८०।१९१–२००) में रामचरित्र का और (८९।२२) में अयोनिजा सीता का वर्णन है।

भागवतपुराण का काल ६ठी अथवा ७वीं ई० शती कहना भी निराधार है। **श्रीभागवत** के अनुसार **महाभारत, ब्रह्मसूत्र** तथा १७ पुराणों के निर्माण के पश्चात् भी जब वेदव्यासजी का मन प्रसन्न नहीं हुआ तथा उन्होंने अपने आपको अकृतकृत्यसा असन्तुष्ट पाया तब देवर्षि नारद से प्रश्न किया कि मैंने यह सब किया, फिर भी मेरा मन प्रसन्न नहीं है। इसपर नारदजी संक्षिप्त **भागवत** का उपदेश करके विस्तृतरूप से भगवच्चरित्र-वर्णन का उपदेश करते हैं। साथ ही वे यह भी परामर्श देते हैं कि तुम समाधि द्वारा भगवान् के चरित्रों का अनुस्मरण करो—

"समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्।" (भा० पु० १।५।१३)

तदनन्तर भगवान् व्यास समाधि द्वारा भगवान् के स्वरूप, गुण एवं लीलाओं का अनुभव कर **श्रीमद्भागवत** का निर्माण करते हैं एवं अपने पुत्र शुकदेवजी को उसका अध्ययन कराते हैं। देवसहाय त्रिवेदी के अनुसार आद्य-शङ्कराचार्य का समय ई० पू० ७०० वर्ष है। स्वामी दयानन्द ने अपने **सत्यार्थप्रकाश** में अपने समय से २२ सौ वर्ष पूर्व शङ्कराचार्य का आविर्भाव माना है। शङ्कराचार्य ने अपने **गोविन्दाष्टक** में कृष्ण की मृत्तिकाभक्षणलीला का उल्लेख किया है। वह एकमात्र **श्रीमद्भागवत** में ही उपलब्ध है, अन्यत्र नहीं। शङ्कराचार्य के परम गुरु गौडपादाचार्य ने अपने उत्तरगीता के भाष्य में भगवान् के **'पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा'** (भा० पु० १।३।४) श्लोक का उद्धरण किया है। अतः **भागवत** को छठीं या सातवीं शती का मानना सर्वथा अशुद्ध एवं निरर्गल है।

श्रीमद्भागवत वैष्णवों का परम धन है और सभी सम्प्रदायों का मान्य एवं परम प्रामाणिक ग्रन्थ है। श्रीवल्लभाचार्य ने उसे व्यास की समाधि-भाषा कहकर वेदों से भी उसका अधिक महत्त्व माना है। इसपर अनेक प्रामाणिक टीकाएँ हैं तथा भारतवर्ष में प्रतिवर्ष **श्रीभागवत** के हजारों सप्ताह पाठ होते हैं। मृत पितरों तथा मृत प्रिय व्यक्ति की सद्गति एवं कल्याणार्थ इसका सप्ताह कराया जाता है। **श्रीभागवत** में श्रीराम को परब्रह्म तथा सीता को लक्ष्मी के रूप में प्रतिपादित किया गया है। उसमें सीता-स्वयंवर, धनुष-भङ्ग तथा शूर्पणखा को विरूप करने तथा सीता के त्याग या वनवास का वर्णन है। इससे भी बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। **श्रीभागवत** के अनुसार राजा परीक्षित् को शुकदेवजी ने **श्रीभागवत** सुनाया है। अतः परीक्षित् के ही पहले **भागवत** का निर्माण मानना अनिवार्य है। **श्रीभागवतमाहात्म्य** (पद्मपुराण) में कहा गया है कि कृष्ण के परमधाम जाने के तीस वर्ष पश्चात् भाद्रपदशुक्ल नवमी से श्रीशुकदेवजी ने परीक्षित् को भागवत-सप्ताह-कथा सुनायी थी। उसके पश्चात् दो सौ वर्ष बाद शुचि (आषाढ़) मास में आषाढ़शुक्ल नवमी से ही गोकर्ण ने धुन्धुकारी को भागवत-कथा सुनायी थी—

"आकृष्णनिर्गमाद् त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ।
नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत्॥
परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये।
शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत् कथाम्॥" (भाग० मा० ६।९५-९६)

कूर्मपुराण का समय भी व्यास का ही समय है, ७वीं ई० शती नहीं। उसके पूर्वविभाग १९वें अध्याय में राक्षस-वंश-वर्णन तथा सूर्यवंश-वर्णन के प्रसङ्ग में रामचरित्र वर्णित है। उसमें युद्ध के पश्चात् राम द्वारा शिवलिङ्ग की स्थापना का उल्लेख है। उत्तरविभाग २१वें अध्याय तथा ३४वें अध्याय में सीताहरण का वृत्तान्त है। भारतीय दृष्टिकोण से सभी पुराण व्यासकृत हैं। अतएव जैसे वेदों के विभिन्न शाखावाले ब्राह्मणों तथा उपनिषदों का समन्वय करके ही कर्म, उपासना एवं ब्रह्मज्ञान का रूप निर्धारित किया जाता है। इसी के लिए पूर्वोत्तरमीमांसारूप वाक्य-शास्त्र अपेक्षित है। उसी तरह पूर्वोत्तरमीमांसा के अनुसार ही वेदों के आर्ष भाष्यरूप पुराणों का भी समन्वय करके ही राम, कृष्ण आदि अवतारों के चरित्रों तथा व्रतों, उपवासों और पर्वों का निर्धारण किया जाता है। **हेमाद्रि, पराशरमाधव, वीरमित्रोदय, धर्मसिन्धु** आदि निबन्धग्रन्थ एवं **मिताक्षरा, दायभाग** सब इसी मार्ग पर चलते हैं। पाश्चात्यपद्धति से **पुराण, रामायण, महाभारत, ब्राह्मण, उपनिषद्** एवं **वेद** कोई भी न तो प्रामाणिक सिद्ध होते हैं और न उनका समन्वय ही होता है। उनकी दृष्टि से ये सब के सब कल्पनाप्रसूत हैं; विकास हैं एवं विभिन्न लेखकों के दिमाग की उपज हैं। उनका परस्पर विरोध है। अतएव सुन्द-उपसुन्द न्याय से सब अप्रमाण ही हैं। पर क्या ऐसा मानना उचित है ?

१५७वें अनु० में बुल्के ने शेष महापुराणों को गौण महापुराण बताया है। राजेन्द्र हाजरा के अनुसार इन महापुराणों में कई बार रूपान्तर हुआ है। उनके अनुसार **वराहपुराण** का रचनाकाल ८वीं शती ई० है। परन्तु उनकी यह कल्पना भी पाश्चात्य संस्कारों का ही दुष्परिणाम है। भारतीत **हेमाद्रि** आदि निबन्ध-ग्रन्थों में इन पुराणों का उल्लेख है और प्रमाणरूप में इनके वचनों का उल्लेख किया जाता है। वैशम्पायन उवाच—

"आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्ततो हरिः।
गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन॥

कृष्ण कृष्ण महाविष्णो विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ॥" (म० भा० २।६८।४१-४३)

अर्थात् जब दुःशासन द्रौपदी का वस्त्र आकर्षण करने लगा तो द्रौपदी ने भगवान् का चिन्तन (स्मरण) किया—हे द्वारकावासिन्, कृष्ण, गोपीजनप्रिय ! मैं कौरवों से अभिभूत (पीड़ित-अपमानित) हो रही हूँ क्या आप नहीं जान रहे हैं। हे नाथ, हे रमानाथ, हे व्रजनाथ, हे आर्तिहन्, मैं कौरवरूपी समुद्र में डूब रही हूँ; मेरा उद्धार करो। हे विश्वभावन, हे गोविन्द मैं आपकी शरण में हूँ। कुरुओं के मध्य अवसन्न होती हुई मेरी रक्षा करो। इस तरह **महाभारत** की द्रौपदी ने कृष्ण को गोपीजनप्रिय और व्रजनाथ पदों से सम्बोधित किया था। कृष्ण का गोपीजनप्रियत्व आदि **श्रीभागवत** से ही विदित होता है। **भागवतपुराण** के कर्ता ही **महाभारत** कर्ता थे। तभी उनको कृष्ण का व्रजसम्बन्ध ज्ञात था।

महापुराणों, पुराणों तथा उपपुराणों के कर्ता के रूप से व्यासजी प्रसिद्ध हैं। उसी रूप में विविध निबन्धों और काव्यों में उनका प्रामाण्य मानकर उनका उद्धरण किया जाता है। परन्तु पाश्चात्य विद्वान् उन सबको झूठा बनाकर कहते हैं कि इनके व्यास कर्ता नहीं हैं, किन्तु कोई अन्य लोग ही कर्ता हैं। वे कर्ता कौन हैं और इसमें क्या प्रमाण है? इस प्रश्न का उत्तर उनके पास कुछ नहीं है तो भी वे हठधर्मिता पर अड़े रहते हैं। जिन ग्रन्थों में जिनको कर्ता माना गया है। उनको कर्ता न मानकर प्रमाण के बिना ही किन्हीं अन्य विभिन्न लोगों को कर्ता मान लेना कितना साहस है? क्या पाश्चात्य जगत् में या भारत में ही कोई ऐसा किसी को ज्ञात है जो ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण करे और अपने नाम तक का उल्लेख न करे। छल-कपट भी तो निःस्वार्थ नहीं होता। आखिर कोई क्यों ऐसे ऐसे ग्रन्थरत्नों का निर्माण करके अपना नाम छिपायेगा? साथ ही पाश्चात्य लोग इन ग्रन्थों में वर्णित विषयों को वास्तविक एवं प्रामाणिक न मानकर काल्पनिक एवं अप्रामाणिक भी मानते हैं। यहाँ भी यह प्रश्न उठता है कि विद्वान् तत्त्वज्ञ ऐसे मिथ्या विषय पर पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ लिखकर प्रचार क्यों करना चाहेगा? प्रयोजन के बिना संसार में किसी की किञ्चिन्मात्र भी प्रवृत्ति नहीं होती तब फिर सैकड़ों सहस्रों विद्वानों की निरर्थक काल्पनिक मिथ्याग्रन्थों के निर्माण और प्रचार में प्रवृत्ति क्यों हुई? और इसमें क्या प्रमाण है? सर्वथापि जिन ग्रन्थों का जो कर्ता उस ग्रन्थ से या प्रामाणिक अन्य ग्रन्थों से सिद्ध होता है उसी को उसका कर्ता मानना चाहिए। उसके कर्ता का काल ही उस ग्रन्थ का काल मानना युक्त है। अतः **वराहपुराण** का भी वही काल है जो उसके कर्ता व्यास का काल है। ग्रन्थों के विषय की अर्वाचीनता देखकर ही पाश्चात्य लोग ग्रन्थों का काल-निर्धारण करते हैं। पर यह पद्धति वेदों और आर्षग्रन्थों के लिए उपयुक्त नहीं कही जा सकती, क्योंकि आर्षग्रन्थो के रचयिता योगज सामर्थ्य से अतीत और अनागत विषयों को जानकर ही उनका उल्लेख करते हैं। मिथ्या कल्पना कर उसपर काव्य लिखना तर्कशून्य है। अस्तु, **वराहपुराण** के अनुसार दशरथ ने रामद्वादशी का व्रत किया उसके फलस्वरूप राम, भरत आदि की प्राप्ति हुई (अ० ४५)। इस पुराण के १६३वें अध्याय का रचनाकाल ८वीं ई० शती से १० वीं शती ई० है, यह कहना भी असङ्गत ही है। कर्ता को भविष्यज्ञानशून्य मानने से ही उस अध्याय को अर्वाचीन कहने का प्रयत्न किया गया है। इसी तरह **अग्निपुराण** को भी ८वीं शती ई० के पश्चात् का मानना भी निराधार है। **अग्निपुराण** में **वाल्मीकिरामायण** के सातों काण्डों का संक्षिप्त रूप है, यह ठीक है—इससे बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। मन्थरा को अपने ऊपर राम के अत्याचार का भ्रम हो सकता था। अग्निपुराण (अध्याय ५।११) में उसी का उल्लेख होगा। माल्यवान् पर्वत पर राम के चातुर्मास्य यज्ञ करने का उल्लेख है।

लिङ्गपुराण को दसवीं शती ई० का मानना भी पूर्ववत् भ्रान्ति ही है। इसमें भी अत्यन्त संक्षिप्त राम-चरित्र का वर्णन है (दे० लि० पु० पूर्वार्ध ९६।३५,३६)। अम्बरीषोपाख्यान में राम तथा उनके भाइयों के अवतारत्व का उल्लेख है। वस्तुतः उन ग्रन्थों को अर्वाचीन कहने का आधार यह है कि उनमें भरत और शत्रुघ्न को शङ्ख एवं

चक्र का अवतार माना गया है और उनके अवतारत्व का विकास अर्वाचीन है। पर यह तर्क अन्योन्याश्रयदोष से ग्रस्त है। कारण, उनके अवतारत्व को अर्वाचीन तभी कहा जा सकता है जब उनके बोधक ग्रन्थ अर्वाचीन हों और ग्रन्थ अर्वाचीन तभी सिद्ध होंगे जब उक्त अवतारत्व की अर्वाचीनता सिद्ध हो। वस्तुतः प्राचीन उपनिषद् **रामरहस्य** में भरत, शत्रुघ्न आदि को अवतार माना गया है। अतः उनका अवतारत्व विकास नहीं है।

वामनपुराण भी अर्वाचीन नहीं है। अतएव वेदवती का सीता में सायुज्य प्राप्त करके सीतारूप में प्रादुर्भाव युक्त ही है।

१५८वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "**नारदपुराण** अप्राप्य है। प्रचलित **नारदीयपुराण** दसवीं शती ई० का है। इसमें पीछे से बहुत से प्रक्षेप जोड़े गये हैं।" यह भी अनर्गल कल्पना है। कल्पना के आधार पर किसी प्रामाणिक ग्रन्थ के कुछ अंशों को अप्रामाणिक कहना अक्षम्य अपराध है। इसके पूर्वखण्ड में संक्षिप्त रामचरित बालकाण्ड तक वर्णित है। इससे भी बालकाण्ड की प्रामाणिकता सिद्ध होती है। ७९ वें अध्याय में द्रविड़ देश के ब्राह्मणों द्वारा बाँधे गये विभीषण की राम द्वारा मुक्ति का वर्णन है तथा उत्तरखण्ड में बालकाण्ड से उत्तरकाण्ड तक समस्त **वाल्मीकिरामायण** की कथा वर्णित है। जिसमें राम, लक्ष्मण आदि नारायण, संकर्षण आदि के अवतार बताये गये हैं। ७५वें अध्याय को वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण** का संक्षिप्तीकरण मानने की अपेक्षा महर्षि की स्वतन्त्र कृति मानना ही उचित है।

१५९वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "**ब्रह्मपुराण** की अधिकांश सामग्री अन्य पुराणों से ली गयी है। २१३वें अध्याय का रामचरित्र ज्यों का त्यों **हरिवंश** के ४१वें अध्याय से उद्धृत है।" बुल्के के उक्त कथन से यही सिद्ध होता है कि दोनों के रचयिता एक ही हैं। अतएव **हरिवंश** का रामचरित्र **ब्रह्मपुराण** में उद्धृत किया ही जा सकता है। अस्मदादि के लेखों तथा ग्रन्थों में भी ऐसा होता है। कभी-कभी एक ग्रन्थ की कोई बात ज्यों की त्यों अन्य ग्रन्थ में उद्धृत कर दी जाती है। १७६वें अध्याय में रावण चरित्र के अन्तर्गत रावण की तपस्या के बाद एक संक्षिप्त रामकथा है। उसमें रावण द्वारा अमरावती से चुरायी हुई वासुदेवप्रतिमा का वृत्तान्त है। रावण वध के बाद राम ने वह मूर्ति समुद्र को समर्पित कर दी थी। लेकिन बाद में कृष्ण ने उसे पुरुषोत्तमक्षेत्र में स्थापित किया था।

"**ब्रह्मपुराण** की शेष रामकथासम्बन्धी सामग्री **गौतमीमाहात्म्य** अध्याय ७०–१७५ के अन्तर्गत मिलती है। यह माहात्म्य प्रारम्भ में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ था जिसकी रचना १०वीं शती में अथवा उसके बाद हुई होगी। इसमें भिन्न-भिन्न तीर्थों के माहात्म्य दिखलाने के लिए बहुत सी कथाओं का संकलन किया गया है। **रामतीर्थमाहात्म्य** में रामकथा का वर्णन मिलता है। इसकी निम्नोक्त विशेषताएँ हैं—

कैकेयी द्वारा देव-दानव-युद्ध में तीन वरों की प्राप्ति, श्रवणकुमार-वध के प्रायश्चित्त रूप में दशरथ का अश्वमेध यज्ञ करना तथा उसमें आकाशवाणी द्वारा उन्हें पुत्रोत्पत्ति का आश्वासन दिया जाना। वनवास-काल में गोमती-तट पर राम के पिण्डदान द्वारा नरक से दशरथ की मुक्ति (अध्याय १२३) एवं **सहस्रकुण्ड-माहात्म्य** (अध्याय १५४) में सीता-त्याग का उल्लेख है। इसके बाद वियोगी राम का गौतमी-तट के सहस्र-कुण्ड पर तपस्या करने का वर्णन है।

किष्किन्धा-तीर्थमाहात्म्य १५७वें अध्याय में रावण-वध के बाद अयोध्या की यात्रा करते हुए गौमती-तट पर राम के ५ दिन निवास तथा शिवलिङ्ग-पूजा का उल्लेख किया गया है।"

बुल्के का यह कहना ठीक नहीं है कि **ब्रह्मपुराण** की अधिकांश सामग्री अन्य पुराणों से ली गयी है। किन्तु इतना ही कहा जा सकता है कि इन इन अंशों में अन्य पुराणों से उसकी समानता है। **ऋग्वेद** की विभिन्न शाखाओं में बहुत मन्त्रों की समानता प्रतीत होती है तो भी यह नहीं माना जाता है कि एक शाखा ने दूसरी शाखा से उन मन्त्रों का उद्धरण किया है। विभिन्न वेदों की विभिन्न शाखाओं के पुरुषसूक्तों में बहुत समानता है। फिर भी वे सभी

अनादि, अपौरुषेय और स्वतन्त्र माने जाते है। जैसे **सह्याद्रिखण्ड स्कन्दपुराण** का अंश होता हुआ भी स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित है। उसी तरह **ब्रह्मपुराण** का अंश होता हुआ **गौतमीमाहात्म्य भी** स्वतन्त्र ग्रन्थ समझा जाता है। वस्तुतः वह **ब्रह्मपुराण** का अंश ही है। सुप्रसिद्ध 'गीता' जैसा ग्रन्थ भी तो महाभारत का अंश होते हुए भी स्वतन्त्र ग्रन्थ माना जाता है।

गौतमीमाहात्म्य दसवीं शती ई० का है इसका भी कोई प्रामाणिक आधार नहीं है। किसी आधुनिक व्यक्ति, तीर्थ या घटना का वर्णन होने के कारण ही पाश्चात्य विचार के लोग ग्रन्थों का काल-निर्धारण करते हैं। परन्तु यह नियम आर्षग्रन्थों पर लागू नहीं होता, क्योंकि ऋषि योगबल से भविष्यकाल की वस्तुओं को जानकर अपने ग्रन्थ में लिख सकता है। पुण्य तथा पाप अदृष्ट वस्तु है। उनका ज्ञान किसी सामान्य मनुष्य को नहीं होता। अनादि अपौरुषेय वेद एवं तन्मूलक धर्मशास्त्रों, **महाभारत,** पुराण, उपपुराण आदि आर्षग्रन्थों से ही धर्म, अधर्म अथवा पुण्य तथा पाप का ज्ञान हो सकता है। किस तीर्थ से कौन और कितना पाप नष्ट होता है एवं कितना पुण्य होता है। परलोक में किस तीर्थ के दर्शन, स्पर्शन, अभिषेक, श्राद्ध, पूजा और तपस्या से क्या फल होगा? इसमें आर्षग्रन्थ ही प्रमाण हो सकते हैं। धर्मशास्त्र-निबन्धकार भी तीर्थों तथा व्रतों का विचार आर्ष वचनों के अनुसार ही करते हैं, अतः **गौतमीमाहात्म्य** को आधुनिक तथा सामान्य मनुष्यकृत मानना भारतीय दृष्टि से सर्वथा भ्रान्त धारणा है। पाश्चात्यों की अनर्गल कल्पनाओं के आधार पर विचार करने से अवतार, तीर्थ, पूजा, पाठ तथा भक्ति सब केवल कल्पनामात्र ठहरते हैं। कल्पना भी क्रम से विकसित हुई। राम, कृष्ण आदि सब मनुष्य थे। कुछ समय बाद उनके प्रभाव से प्रभावित लोग उन्हें ईश्वर समझने लगे, अवतार मानने लगे। उनको विष्णु से अभिन्न मानने लगे। विष्णु में भी महत्त्वबुद्धि बाद में हुई। पहले इन्द्र ही मुख्य एवं प्रधान देवता थे। अवतार भी प्रजापति के माने जाते थे। विष्णु का महत्त्व बढ़ने से वही अवतार विष्णु के माने जाने लगे। राधा तथा सीता में अवतारत्व कल्पना और बाद में हुई। लक्ष्मण, भरत आदि में शङ्ख, चक्र आदि के अवतारत्व की कल्पना और बाद में हुई। इसी तरह तीर्थों की भी कल्पना का विकास हुआ है। फलतः जिन ग्रन्थों में सीता को लक्ष्मी या लक्ष्मण को शेष कहा गया हो, वे सब ग्रन्थ १०वीं या ११वीं शती ई० के ठहरा दिये जाते है।

वास्तव में ये सब कल्पनाएँ निष्प्रमाण हैं। भारतीय दृष्टिकोण से प्रत्यक्ष तथा अनुमान के समान ही वेदादि आगम भी स्वतन्त्र प्रमाण हैं। शब्द का प्रामाण्य सर्वत्र मान्य है। पार्लियामेण्ट तथा न्यायालयों में शब्द का प्रामाण्य मान्य है। विधान के शब्दों, न्यायाधीशों के निर्णयों तथा साक्षियों की गवाहियों का आदर होता है। वक्ता के दोष से ही शब्द का अप्रामाण्य होता है। यदि कोई अनादि अपौरुषेय शब्द सिद्ध होता हो तो उसमें वक्ता के भ्रम, प्रमाद आदि दोषों से दूषित होने की कल्पना नहीं होती। सुतरां निर्भ्रान्त आप्त वक्ता का वचन होने से उसका (शब्द का) अधिक प्रामाण्य माना जाता है। मन्त्र, ब्राह्मण तथा उपनिषद वेद हैं। वे सब अपौरुषेय हैं। सर्वज्ञ-कल्प ऋषि-महर्षियों ने वेदों का परम प्रामाण्य माना है। बड़े-बड़े दार्शनिकों, तार्किकों को पाश्चात्यों की निराधार मिथ्या कल्पनाओं के बल पर ठुकराया नहीं जा सकता। निबन्धकारों ने ऋषियों तथा मीमांसा की दृष्टि से आर्ष वचनों में प्रतीत होनेवाले विरोधों का परिहार कर समन्वय कर रखा है। पुराणों के विरोधाभासों का भी सन्तोष-जनक समाधान सुलभ है। अतः बुल्के तथा उनके अन्य साथियों की आर्ष परम्पराविरुद्ध उक्त सभी कल्पनाएँ सर्वथा उपेक्षणीय ही हैं।

अन्य आर्ष गन्थों में **वाल्मीकिरामायण** की कथाओं से विलक्षण कथाएँ होना भी असम्भव नहीं है, क्योंकि किसी एक पुस्तक में जीवन के प्रतिदिन या प्रत्येक घटना का उल्लेख होना सम्भव नहीं। अतः विभिन्न ऋषियों के कहने के लिए बहुत से विषयों का अवशेष रहना सम्भव ही है, इसलिए राम का गोतमी-तट पर पिण्डदान, सहस्रकुण्ड पर तपस्या, शिवलिङ्ग की स्थापना करना आदि सब ठीक है।

१६०वें अनु० **गरुड़पुराण** की रचना का समय भी उसके रचयिता व्यास का ही समय मानना उचित है। इसके विपरीत उसका रचना-काल १०वीं शती ई० मानना असङ्गत है। शूर्पणखा को राम स्वयं विरूप करते हैं। कल्पभेद से यह भी सम्भव ही है। राम गया में अपने पिता का श्राद्ध करते हैं, यह तो मर्यादापुरुषोत्तम राम के स्वरूपानुरूप ही है।

१६१वें अनु० में बुल्के का कथन है कि "**स्कन्दपुराण** की अधिकांश सामग्री की सृष्टि आठवीं शती ई० के बाद हुई है। लेकिन इसमें बहुत से प्रक्षेप हैं। जिनका रचनाकाल अज्ञात है।" किन्तु यह कहना असङ्गत है। **स्कन्दपुराण** को पुराणों में प्रमुख स्थान प्राप्त है। यह प्रसिद्ध व्यासकृति ई० पू० ३५ सौ वर्षों से कम अर्वाचीन नहीं है। **माहेश्वरखण्ड** में रावणचरित, रामावतार और राम के द्वारा रावण का वध वर्णित है। **वैष्णवखण्ड** के अन्तर्गत **कार्तिक-माहात्म्य** में अवतार के कारणों के वर्णन के प्रसङ्ग में वृन्दा-शाप तथा धर्मदत्त और कलहा की कथा है। धर्मदत्त का ही दशरथरूप में जन्म कहा गया है। **वैशाखमासमाहात्म्य** में वाल्मीकि की जन्म-कथा तथा **अयोध्यामाहात्म्य** में राम का स्वधाम-गमन वर्णित है। **ब्रह्माण्ड** के **अन्तर्गत सेतुमाहात्म्य** के २ अध्यायों में संक्षिप्त रामकथा वर्णित है। जिसमें सेतुबन्ध का विशेषरूप से वर्णन है। ७ वें अध्याय में समुद्रबन्धन के पूर्व शिवप्रतिष्ठा का वर्णन है। २२ वें अध्याय में सीता की अग्निपरीक्षा तथा अग्नि द्वारा सीता के सतीत्व की प्रशंसा वर्णित है। २७वें अध्याय में रावणवध से हुई ब्रह्महत्या के प्रायश्चित्तरूप में राम द्वारा कोटितीर्थ पर शिवलिङ्ग की स्थापना का वर्णन है। ३०वें अध्याय में विभीषण द्वारा सेतु तोड़ने के लिए श्रीरामजी से प्रार्थना की गयी है। अध्याय ४४–४७ में रामोपाख्यान पर आधारित संक्षिप्त रामचरित, रावणवध के प्रायश्चित्तरूप में रामेश्वर-लिङ्ग की स्थापना, शिवलिङ्ग ले आने के लिए हनुमान् को कैलाश भेजा जाना तथा मुहूर्त बीत जाने की आशङ्का से राम द्वारा सैकतमय (बालू के) शिवलिङ्ग की स्थापना का वर्णन है।

धर्मारण्यखण्ड अध्याय ३०,३१ में एक संक्षिप्त कालनिर्णय रामायण का वर्णन है। अध्याय ३२–३५ में राम द्वारा धर्मारण्य की तीर्थ-यात्रा वर्णित है। **काशीखण्ड**, इसमें रामकथा का अभाव हैं। **अवन्तीखण्ड** अध्याय २१ में शिवलिङ्ग ले आने के लिए हनुमान् की लङ्का यात्रा, अध्याय २४ में वाल्मीकि-जन्मकथा, अध्याय ७९ में हनुमान् का चरित्र। इसमें हनुमान् रुद्रावतार माने गये हैं। अध्याय ७३ **रेवाखण्ड** में ब्रह्महत्या दोष-निवारणार्थ हनुमान् की तपस्या एवं अहल्योद्धार की कथा; राम से उद्धृत अहल्या नर्मदा-तीर पर शिव की पूजा करने जाती हैं। अध्याय १६८ में रावणादि की तपस्या तथा शिवजी द्वारा वर-प्रदान वर्णित है।

नागरखण्ड अध्याय २० में लक्ष्मण का स्वामिद्रोह और तपस्या। अध्याय ९६–९८ में शनि का दशरथ को वर प्रदान। दशरथ और इन्द्र की मैत्री, कार्तिकेयपुर में पुत्र-प्राप्ति के लिए दशरथ का तपस्या करना तथा ४ पुत्रों एवं एक पुत्री का जन्म। अध्याय ९९–१०२ में राम का स्वर्गारोहण, विभीषण को राम द्वारा धर्मोपदेश तथा राम द्वारा सेतुभङ्ग एवं अनेक तीर्थों में राम द्वारा शिवप्रतिष्ठा। अध्याय १२४ में वाल्मीकि-कथा एवं अध्याय २०८ में अहल्योद्धार। अहल्या की तीर्थयात्रा तथा शिव-पूजा। **प्रभासखण्ड** अध्याय १११–११३ में रामेश्वरतीर्थ में राम और लक्ष्मण द्वारा शिव-प्रतिष्ठा, अध्याय १२३ में रावण द्वारा रावणेश्वर-तीर्थ में शिव-प्रतिष्ठा, अध्याय १७१ में दशरथेश्वर में दशरथ द्वारा पुत्रार्थ शिव-प्रतिष्ठा तथा अध्याय २७८ में वाल्मीकि-कथा। इन उद्धरणों से विदित होता है कि **स्कन्दपुराण** द्वारा भगवान् व्यास ने विभिन्न प्रसङ्गों में राम के मर्यादापुरुषोत्तमरूप को व्यक्त किया है। **श्रीमद्भागवत** में व्यास ने कहा है कि भगवान् राम का मर्त्यावतार मर्त्यों के शिक्षणार्थ ही है। केवल रावणादि राक्षसों के वधार्थ नहीं—

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।" (भा० पु० ५।१९।५)

१६२ वें अनु० में बुल्के के अनुसार "पद्मपुराण के विभिन्न खण्डों का रचनाकाल अलग-अलग है। **पाताल-खण्ड** जिसमें बहुत सी रामकथासम्बन्धी सामग्री मिलती है, १२वीं शती का माना जाता है। **उत्तरखण्ड** अपना वर्तमान रूप १५०० ई० के लगभग प्राप्त कर सका। इसमें भी रामचरित का पूरा वर्णन है। **पातालखण्ड** का एक गौड़ीय पाठ सुरक्षित है, जिसमें प्रारम्भ के २८ अध्यायों में कालिदासकृत रघुवंश से मिलती जुलती कथाएँ मिली हैं। आनन्द-श्रम-संस्करण के **पातालखण्ड** में रामाश्वमेध का विस्तृत वर्णन है।"

उनके इस कथन का आधार भी डा० हाजरा की **'इण्डियन कल्चर'** पुस्तक है जो कि अटकलमात्र तथा सब पुराणों से विरुद्ध है। अनेक प्रामाणिक पुराणों में १८ पुराण तथा १४ उपपुराणों का उल्लेख है। उनमें **स्कन्द-पुराण**, **पद्मपुराण** आदि पुराण वर्णित हैं। केवल अटकलबाजियों से आर्ष पुराणों की उक्तियों को झुठलाया नहीं जा सकता है। जहाँ जहाँ राम की ब्रह्मरूपता, परमेश्वरता तथा राम की भक्ति का वर्णन है उन उन ग्रन्थों या खण्डों को आधुनिक कहना कोई तर्क-युक्तिसंगत नहीं है। वेदों, उपनिषदों, **रामायण**, **भारत** आदि सभी प्रामाणिक ग्रन्थों में अवतारसत्ता, राम की ब्रह्मरूपता और उनकी भक्ति प्रसिद्ध है। अन्यान्य आर्ष ग्रन्थों के विरुद्ध होने के कारण इन ग्रन्थों के काल-निर्णय की उक्त पद्धति ही गलत है।

पातालखण्ड में राम-चरित्र की मुख्य घटनाओं की तिथियों के उल्लेख को बुल्के **स्कन्दपुराण** की नकल मानते हैं। परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है। जैसे वैदिक संहिताओं में समान पाठ होने पर भी एक संहिता का दूसरी संहिता में अनुकरण नहीं माना जाता वैसे ही पुराणों में भी तुल्य वर्णन होने पर भी, वेदों के समान ही, एक में दूसरे का अनुकरण नहीं माना जा सकता। ४४वें अध्याय में हनुमान्‌जी की वीरता का वर्णन, ४४–४६ अध्यायों में राम तथा शिव का अभेद प्रतिपादन, ५५, ५६वें अध्यायों में धोबी के कथन के फलस्वरूप सीता का परित्याग, ५९–६६ अध्यायों में कुश और लव की उत्पत्ति तथा उनका राम की सेना से युद्ध करना, ६७,६८वें अध्यायों में राम और सीता का पुनर्मिलन। **पातालखण्ड** के १०० वें अध्याय में बाँधे हुए विभीषण की राम द्वारा मुक्ति तथा १ २ वें अध्याय में पुराकल्पीय रामायण का वर्णन। उनमें दशरथ की कौशल्या, सुमित्रा, सुरूपा तथा सुवेषा चार पत्नियों का उल्लेख है। बाल-लीलाएँ, सीता-स्वयंवर में इन्द्र, रावण आदि के असफल होने पर राम द्वारा धनुर्भङ्ग की कथा तथा शिव के दिये हुए अजगव धनुष पर वानरसेना द्वारा समुद्र पार करने की कथा है एवं कुम्भकर्ण-वध रावण-वध के बाद माना गया है। ११३ वें अध्याय में राम शिव से शिवभक्ति का वरदान माँगते हैं—

"भक्तिरस्तु स्थिरा त्वयि।"

यह सब मर्यादापुरुषोत्तम राम के स्वाभाविक रूप का ही वर्णन है। शिवमहिम्न आदि अनेक प्रामाणिक ग्रन्थों में यह वर्णन मिलता ही है कि विष्णु भगवान् प्रतिदिन सहस्र कमल अर्पित कर शिव की पूजा करते थे। किसी दिन एक कमल कम होने पर उन्होंने अपना नेत्र ही कमल मानकर शिवजी को चढ़ा दिया।

सृष्टिखण्ड में शम्बूक-वध तथा राम और अगस्त्य का संवाद है। बुल्के कहते हैं इसमें वाल्मीकीय रामायण के उत्तरकाण्ड के सर्ग ७९ से ८३ तक के ५ सर्गों की सामग्री उद्धृत है, उनका यह कथन असङ्गत है। यद्यपि **वाल्मीकि-रामायण** व्यास से भी अतिप्राचीन है, अतः उसके उक्त अंश का उद्धरण करना असंभव नहीं है तथापि बुल्के तो उत्तरकाण्ड को प्रक्षेप ही मानते हैं। व्यास भगवान् ने जैसे स्वयं भी आर्ष विज्ञान से **रामाश्वमेध** आदि का निर्माण किया है वैसे ही वे अगस्त्य-संवाद का भी निर्माण कर ही सकते हैं।

सृष्टिखण्ड के ३९ वें अध्याय में राम का विभीषण को उपदेश और मथुरा में वामन की प्रतिष्ठा करना प्रतिपादित है। **उत्तरखण्ड** में वृन्दा का शाप, रामरक्षास्तोत्र, शम्बूक-वध तथा संक्षिप्त रामसम्बन्धी वृत्तान्त वर्णित हैं।

प्रारम्भ में रामावतार के कारण के वर्णन-प्रसङ्ग में स्वायंभुव मनु की तपस्या का वर्णन है। जिसके फल-स्वरूप वे तीन जन्मों में विष्णु को पुत्र के रूप में प्राप्त कर सके थे। इसमें अवतारवाद के अधिक व्यापक होने से ही बुल्के आदि इसे अर्वाचीन मानते हैं। इसी कारण **वाल्मीकिरामायण** के उन अंशों को भी जिनमें अवतार-सामग्री है, वे आधुनिक प्रक्षेप मानते हैं। यह उनका केवल दुराग्रह ही है। वहाँ राम ने अपनी माता को विष्णुरूप में दर्शन दिया है। राम और सीता विष्णु और लक्ष्मी के पूर्ण अवतार माने जाते हैं। लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न शेष, सुदर्शन तथा पाञ्चजन्य के अवतार माने जाते हैं। इसमें राम ने ही शूर्पणखा को विरूप किया था। इसी के अनुसार गो० तुलसीदासजी ने भी **रामचरितमानस** में स्वायंभुव मनु की तपस्या का वर्णन एवं जन्म-काल में राम द्वारा कौशल्या को चतुर्भुजरूप में दर्शन देने का वर्णन किया है।

१६३वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "**ब्रह्मवैवर्तपुराण** ७०० ई० के पूर्व ही निर्मित हुआ; लेकिन उसका वर्तमान रूप सोलवीं शती का है। इसमें वेदवती के वृत्तान्त के वर्णन के बाद सीताहरण की कथा दी गयी है। अग्नि द्वारा एक मायामयी सीता की सृष्टि करने का उल्लेख है। **प्रकृतिखण्ड** के १४वें अध्याय की यह कथा **श्रीमद्देवीभागवत** के वृत्तान्त से अभिन्न है (स्क० ९ अ० १६)। **कृष्णजन्मखण्ड** (अध्याय ६२) में अहल्योद्धार-वर्णन के प्रसङ्ग में संक्षिप्त रामकथा है जिसमें शूर्पणखा के कुब्जारूप में प्रकट होने का वृत्तान्त है। इसी खण्ड के ५६वें अध्याय में जय और विजय के ३ जन्मों का उल्लेख है।" उपर्युक्त ब्रह्मवैवर्तपुराण का भी कालनिर्णय अशुद्ध है। अन्यान्य पुराणों के समान ही यह भी व्यासकृत ही है। १६ वीं शती में इसका विस्तार हुआ यह कथन भी मान्य नहीं है, क्योंकि अन्यान्य पुराणों के वर्णनप्रसङ्ग में उनके श्लोकों की संख्या भी दी गयी है। तदनुसार ही ब्रह्मवैवर्तपुराण की श्लोक-संख्या है।

उपपुराण

१६४वें अनु० में बुल्के के अनुसार, "**विष्णुधर्मोत्तरपुराण** की रचना संभवतः ५वीं शती के लगभग कश्मीर में हुई है। इसमें लवण-वध की कथा के बाद खण्ड १ के अध्याय २०० में गन्धर्वों के विरुद्ध भरत के युद्ध का विस्तृत वर्णन है। अध्याय २०२–२६९ के अन्तर्गत रावण का चरित वर्णित है। उसमें राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न क्रमानुसार नारायण, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के अवतार बताये गये हैं (दे० अध्याय २१२)।"

उपपुराण भी पुराणों के समय के ही हैं। वे भी आर्ष हैं और प्रामाणिक हैं। पुराणों में उपपुराणों की भी चर्चा है। अतः **विष्णुधर्मोत्तर** का काल पाँचवीं शती न होकर व्यास का काल हो उसका काल है। भारतीय धर्मग्रन्थ परस्पर एक दूसरे से संबद्ध ही हैं। इसलिए अल्पश्रुत के लिए शास्त्रों का अभिप्राय दुरूह ही रहता है। इतिहास, पुराण और उपपुराण का अध्ययन करते समय उनके समन्वय से ही तात्पर्यार्थ निर्धारित होता है। चतुर्व्यूह नारायण, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के रूप में राम आदि का अवतार ठीक ही है। जिनको ईश्वर एवं उसके अवतार में विश्वास नहीं है, जो राम का अवतार नहीं मानते हैं एवं जिन्होंने यह निर्णय कर रखा है कि राम की भक्ति और उनके अवतारत्व की कल्पना अर्वाचीन है, उनकी दृष्टि में जिन ग्रन्थों में अवतार-सामग्री उपलब्ध हो वे ग्रन्थ ही अर्वाचीन प्रतीत होंगे, परन्तु उक्त धारणा ठीक नहीं है, यह कहा जा चुका है।

नृसिंहपुराण

१६५ वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "यह चौथी या पाँचवीं शती ई० का है। इसमें छः अध्याय (४७ से ५२ तक) मिलते हैं जिनमें **वाल्मीकिरामायण** के प्रथम छः काण्डों की कथा का किंचित्-परिवर्तन के साथ वर्णन है। अवतारवाद को अधिक महत्त्व दिये जाने के कारण राम नारायण के पूर्णावतार तथा लक्ष्मण शेष के अवतार बताये

गये हैं । अहल्या अपने पति के शाप से पाषाणभूता कही गयी है । सीता के स्वयंवर के बाद अन्य क्षत्रिय राजाओं का राम पर आक्रमण करने का वर्णन है । सीताहरण का ऐसा रूप प्रस्तुत किया गया है जिसमें रावण सीता का स्पर्श नहीं करता । रावण-वध के पश्चात् राम के यज्ञों तथा स्वर्गारोहण का वर्णन है । इसमें सीता-त्याग का वृत्तान्त नहीं है ।" काल-निर्णय यहाँ भी अशुद्ध ही है । गो० तुलसीदास ने भी स्वयंवर के बाद दुर्वृत्त राजाओं के राम पर आक्रमण के इरादे का वर्णन किया है, परन्तु परशुराम के आ जाने से वे ठण्डे पड़ गये थे ।

वह्निपुराण

१६६ वें अनु० में बुल्के के अनुसार "इसकी सन् १६४६ ई० की एक हस्तलिपि लन्दन में सुरक्षित है । उसमें एक अत्यन्त विस्तृत रामकथा है, जिसमें बालकाण्ड से युद्धकाण्ड तक समस्त रामायण की कथा का वर्णन है । आरम्भ में उसमें रामावतार तथा सीता हरण का कारण भृगुशाप बताया गया है । रावण और कुम्भकर्ण की जन्मकथा, मधु और कैटभ एवं हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष का उल्लेख है । हनुमान् का मूषिका के रूप में लङ्काप्रवेश कहा गया है ।"

लन्दन की हस्तलिपि का इतना ही अर्थ है कि वह १६वीं शती से पहले का है । परन्तु उसका निर्माणकाल वही है यह उससे सिद्ध नहीं हो सकता है ।

१६७वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "**शैवपुराण** तथा **स्कन्दपुराण** को छोड़कर उपर्युक्त पुराणों और उपपुराणों की रामकथाओं में साम्प्रदायिकता का प्रभाव कम पड़ा है । अन्य शैव और शाक्त उपपुराणों में साम्प्रदायिकता की गहरी छाप है । उनमें राम शिव अथवा देवी के भक्त रूप में दिखाये गये हैं ।" यह कथन भी असङ्गत है, क्योंकि राम परब्रह्म होते हुए भी मर्त्यशिक्षण की दृष्टि से मर्यादापुरुषोत्तम हैं । अतः जैसे वर्णाश्रमी शिव एवं भगवती के भक्त होते हैं वैसे ही राम भी शिव, देवी आदि देवताओं के भक्त थे । इसमें साम्प्रदायिकता की कोई बात नहीं है । **वाल्मीकिरामायण** से भी स्पष्ट प्रतीत होता है कि राम के पिता दशरथ तथा राम और उनके सभी पूर्वज वैदिक थे । मर्यादाओं तथा यज्ञ, याग आदि के प्रति उनकी गहरी श्रद्धा थी । अनादि अविच्छिन्न ज्ञान, भक्ति तथा कर्म की परम्परा ही सम्प्रदाय है । साम्प्रदायिक होने के कारण ही "**तुल्यं साम्प्रदायिकम्**" (जै० सू० १।२।८) में भी मन्त्र के तुल्य ही ब्राह्मणभाग को वेद कहा गया है । अतः वैदिक भी साम्प्रदायिक ही होते हैं । परन्तु आजकल तो दुर्भाग्यवश फिरकापरस्ती अर्थ में सम्प्रदायशब्द का प्रयोग होने लगा है ।

बुल्के **शिवपुराण** को १४वीं शती का मानते हैं । इस सबका आधार डा० हाजरा का निर्णय ही है जो कथमपि प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता है । **शिवपुराण** की **शतरुद्रसंहिता** के **सृष्टिखण्ड** में नारदमोह की कथा तृतीय और चतुर्थ अध्यायों में है । **सतीखण्ड** में सती द्वारा राम की परीक्षा वर्णित है । राम सती से कहते हैं कि शङ्कर की आज्ञा से मैंने अवतार लिया है (अध्याय २४-२६) ।

युद्धखण्ड में वृन्दा का शाप (अध्याय २३) तथा **शतरुद्रसंहिता** (अध्याय २०) में शिवजी के वीर्य से हनुमान् का जन्म वर्णित है । आधुनिक विवेचकों द्वारा इस संहिता का रचना-काल १४वीं शती माना जाता है । इसका भी कोई आधार नहीं है । तुलसीदासजी ने इसी के आधार पर नारदमोह, सतीमोह आदि का वर्णन किया है । वे इन पुराणों को परम प्रमाण मानते थे । **उमासंहिता** (अध्याय ३) में राम द्वारा शिवपूजा तथा वरप्राप्ति का वर्णन है ।

गणपति कृष्णजी प्रेस के **शिवपुराण**-संस्करण में **धर्मसंहिता** (अध्याय १३, १४) में संक्षिप्त रामकथा उद्धृत है । **ज्ञानसंहिता** (अध्याय ३०) में वनवास के समय सीता द्वारा दशरथ के लिए पिण्डदान का वर्णन है और

(अध्याय ५७) में सागर को पार करने के लिए राम द्वारा सहायता के लिए शिव की प्रार्थना की गयी है। शिवपुराणोक्त रामसम्बन्धी आख्यान भी राम के परमेश्वरत्व और मर्यादापुरुषोत्तमत्व का ही पोषक है।

१६८ अनु० में बुल्के कहते हैं, "**श्रीमद्देवीभागवतपुराण** के नवरात्रमाहात्म्य में वर्णित रामकथा के अनुसार राम ने शूर्पणखा को विरूप किया। शेष कथा रामायणीय कथा से मिलती जुलती है। इसमें सीताहरण के बाद नारद के उपदेश से राम रावण पर विजय प्राप्त करने के लिए नवरात्रोपवास करते हैं। इसके अन्त में सिंहासनारूढा देवी भगवती राम को दर्शन देकर रावण पर विजय का आश्वासन देती हैं। अनन्तर राम विजया-पूजा कर वानरसेना के साथ समुद्र की ओर प्रस्थान करते हैं (देवीभा० ३।२८-३०)। नवें स्कन्ध में वेदवती-वृत्तान्त तथा छायासीता की कथा भी मिलती है।"

बुल्के इन प्रामाणिक आदरणीय सभी धर्मग्रन्थों को अपनी कल्पना के आधार पर मिथ्या सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। पर सभी प्रामाणिक ऋषि एवं उनके ग्रन्थ एक स्वर से राम को ब्रह्म और मर्यादापुरुषोत्तम ही प्रमाणित करते हैं। गुणोपसंहारन्याय से **वाल्मीकिरामायण** या अन्य ग्रन्थों में अनुक्त होने पर प्रामाणिक ग्रथों की कथाओं को मिलाकर ही रामकथा की पूर्णता का निर्णय किया जाता है। इस तरह मर्यादापुरुषोत्तम राम के द्वारा शिवपूजा और देवीपूजा, सूर्यपूजा आदि सभी सम्भव हैं, क्योंकि अपने आचरण से मनुष्यों को धर्म, कर्म, व्यवहार आदि की शिक्षा देना ही राम के अवतार का मुख्य उद्देश्य है—

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्।" (भा० पु० ५।१९।५)

१६९ अनु० में बुल्के कहते हैं, "हाजरा के अनुसार **महाभागवतपुराण** गुजराती प्रिंटिंग प्रेस बम्बई सन् १९१३ के संस्करण का निर्माण ११वीं शती ई० के लगभग पूर्व बङ्गाल में अथवा कामरूप में हुआ था। इसमें एक रामोपाख्यान मिलता है, जिसकी कथावस्तु रामायण से बहुत भिन्न है। इसके अनुसार देवता रावण का वध करने के लिए विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना करते हैं। विष्णु उनसे कहते हैं जब तक देवी लङ्का में निवास करती हैं, मैं रावण को पराजित नहीं कर सकता। अनन्तर सब मिलकर कैलाश पर्वत पर देवी के पास जाते हैं। देवी सीताहरण के कारण लङ्का छोड़ देने की प्रतिज्ञा करती हैं तथा शिव हनुमान् का रूप धारण कर राम की सहायता करने का वचन देते हैं।

अन्त में राम देवी से अमोघ अस्त्र ग्रहण कर रावण को मारने में समर्थ होते हैं (अ० ४७,६६)। ब्रह्मा भी राम की विजय के लिए देवी की मृण्मयी मूर्ति बनाकर उनकी पूजा करते हैं। इस वृत्तान्त में सीता मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न मानी गयी हैं (अ० ४२।६४)। इस पुराण में अन्यत्र माया सीता का हरण तथा नारदशाप दोनों का उल्लेख है (अध्याय ११।१०७-११२)।" हाजरा महाभागवतपुराण की कथावस्तु वर्णन के आधार पर ही ११वीं शती का अनुमान करते हैं। उनके पास और कोई ठोस प्रमाण नहीं है। यह भी देवीभागवत का ही परिवर्तित रूप है। लोकोत्तर माहात्म्य तो प्रसिद्ध ही है। देवी की कृपा से राम रावण को मारने में समर्थ हैं, यह उनके मर्यादापुरुषोत्तम रूप के अनुरूप ही है। राम की ब्रह्मरूपता इस पुराण से भी सिद्ध ही है।

१७० वें अनु० में बुल्के के अनुसार "**बृहद्धर्मपुराण** १३वीं शती ई० के महाभागवतपुराण की कथा से बहुत भिन्न नहीं है। उसमें सीताहरण का वृत्तान्त **नृसिंहपुराण** की कथा से मिलता-जुलता है। तथा हनुमान् विडालका का रूप धारण कर लङ्का में प्रवेश करते हैं (दे० पूर्वखण्ड अ० १८-२२)। रामकथा के वर्णन के बाद रामायणोत्पत्ति का वृत्तान्त दिया गया है, जिसमें श्लोकोत्पत्ति आदि के बाद रामायण के उत्कर्ष-वर्णन के प्रसङ्ग में **रामायण** के **महाभारत** तथा पुराणों का बीज होने का उल्लेख है (पू० ख० अध्याय २५-३०)।" यह भी १३ वीं शती की रचना है। यह कल्पना पूर्ववत् निराधार ही है। आर्ष सभी पुराण ऋषिकाल के ही हैं। रामायण आदिकाव्य है। अन्य

महाभारत, पुराण आदि का वही बीज है, यह सिद्धान्त ठीक ही है। भारतीय अन्य साहित्यों से भी यही सिद्ध है। कालिदास, हर्षवर्धन आदि भी यही मानते हैं। बौद्ध अश्वघोष भी वाल्मीकि की कृति को अपूर्व मानते हैं।

१७१ वें अनु० में **सौरपुराण** का रचना-काल सन् ९५०–१०५० ई० बताया गया है। प्रायः काल-निर्णय सबका अशुद्ध है। इसमें सूर्य-वंश वर्णन के प्रसङ्ग से जो रामकथा है उसमें राम को महादेवपरायण कहा गया है। शङ्कर के प्रसादस्वरूप राम अपने पद को प्राप्त करते हैं। जनक ने गौरी को सन्तुष्ट करके सीता को प्राप्त किया था (अध्याय ३०)। **सौरपुराण** भी सनातनधर्ममान्य उपपुराण है। इसका वृत्त-वर्णन भी युक्त ही है।

१७२ वें अनु० में **कालिकापुराण** को भी ११ वीं शती का कहा गया है; जो सर्वथा अशुद्ध है। इसमें ब्रह्मा द्वारा राम की विजय के लिए दुर्गा की पूजा का उल्लेख (अध्याय ६२।२०-३८) एवं ३८ वें अध्याय में जनक के हल जोतते समय सीता को तथा अन्य पुत्रों को प्राप्त करने की कथा वर्णित है। इनकी कथाओं से भी रामायण की कथा का समर्थन होता है।

१७३ अनु० में बुल्के कहते हैं दो अर्वाचीन पुराणों में रामकथा की सामग्री मिलती है। वस्तुतः बुल्के की दृष्टि में सभी पुराण अर्वाचीन ही हैं। वैदिक सनातनसिद्धान्तनिष्ठों के अनुसार तथावर्णित सभी ग्रन्थों की दृष्टि से बुल्के और उनके मान्य हाजरा का मत सर्वथा अमान्य है।

हाँ, आदिपुराण में वसुदेव-विवाह से यमलार्जुन कथातक कृष्ण-चरित वर्णित है। नन्ददृष्ट स्वप्न वर्णन नामक १६वें अध्याय में संक्षिप्त रामकथा के अतिरिक्त इसका भी उल्लेख है कि नन्द ने पूर्वजन्म में भक्तिपूर्वक भगवान् से प्रार्थना की थी जिसके फलस्वरूप रामावतार में तथा कृष्णावतार में उनको भगवान् के पिता होने का वरदान प्राप्त हुआ था। **आदिपुराण** का रामचरित **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार है। यहाँ कनकमृग को देखकर राम स्वयं कहते हैं कि अवश्य ही कोई मायावी राक्षस है। वस्तुतः अन्य पुराणों की भाँति यह भी रामायणीय रामकथा का पोषक है।

कल्किपुराण की संक्षिप्त रामकथा (अंश ३।६।२६–५८) की यह विशेषता है कि इसमें राम-सीता के पूर्वानुराग की झलक मिलती है तथा सीता ने अशोकवन में रुक्मिणीव्रत किया था जिसके फलस्वरूप वह राम से पुनः मिल सकीं (३।१७।४०)। बुल्के को इसमें आश्चर्य प्रतीत हो सकता है। परन्तु पुराणों के सिद्धान्तानुसार कृष्ण तथा राम का बराबर विभिन्न कल्पों में अवतार होता रहता है। तदनुसार इस वाराह कल्प के पहले सारस्वत कल्प में भी कृष्ण का अवतार हुआ था, अतः २४वें त्रेता में रामायण के राम की सीता रुक्मिणी-व्रत करे तो इसमें विरोध की कोई बात नहीं है। **कल्किपुराण** को भी अर्वाचीन नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह भी आर्ष है।

पुराणों के लक्षण तथा उनके नाम और संख्या तथा उनकी श्लोक-संख्या भी पुराणों में मिलती है। पुराणों में ही उपपुराण तथा औपपुराणों का भी वर्णन है। उससे उनका भी आर्षत्व और प्रमाणत्व सिद्ध होता है। अतः उनके अनुसार हाजरा या अन्य विद्वानों की तत्सम्बन्धी काल-कल्पना सर्वथा अप्रमाण ही है। जैसा कि कूर्मपुराण में कहा गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥
ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च।
शैवं भागवतं चैव भविष्यं नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेव च।
लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च॥

कौर्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम् ।
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम् ॥
अन्यान्युपपुराणनि मुनिभिः कथितानि तु ।
अष्टादशपुराणानि श्रुत्वा संक्षेपतो द्विजाः ॥
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम् ।
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम् ॥
चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम् ।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदीयमतः परम् ॥
कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम् ।
ब्रह्माण्डं वारुणं चैव कालिकाह्वयमेव च ॥
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम् ।
पराशरोक्तं मारीचं तथैव भार्गवाह्वयम् ॥

(कू० पु० पूर्वार्ध १।१२–२०)

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित ये पाँच लक्षण जिसमें हों वही पञ्चलक्षण पुराण है। इस सूची में ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव, भागवत, भविष्य, नारदीय, मार्कण्डेय, आग्नेय, ब्रह्मवैवर्त, लैङ्ग, वाराह, स्कान्द, वामन, कौर्म, मात्स्य, गारुड़ और ब्रह्माण्ड ये १८ पुराण वर्णित है।

सनत्कुमार, नारसिंह, स्कान्द, (यह पूर्वोक्त स्कान्द से भिन्न है), शिवधर्म, दुर्वासाप्रोक्त आश्चर्यपुराण, नारदीय (यह भी पूर्वोक्त से अन्य है), कापिल, मानव, औशनस, ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिका, माहेश्वर, साम्ब और पराशरोक्त मारीचपुराण तथा भार्गव ये उपपुराण भी आर्ष हैं। अतः इनको आधुनिक कहना सर्वथा असङ्गत है।

धर्मकल्पद्रुम में ज्ञानानन्दजी ने अष्टादश औपपुराणों (जो पुराणों एवं उपपुराणों से पृथक् हैं) की चर्चा की है और **बृहद्विवेकग्रन्थ** में इनका निरूपण बताया है।

ब्रह्माण्डविवेक के तीसरे अध्याय में भी औपपुराणों की चर्चा है। वहाँ के श्लोक उद्धृत किये जा रहे हैं—

आद्यं सनत्कुमारं च नारदीयं बृहच्च यत् ।
आदित्यं मानवं प्रोक्तं नन्दिकेश्वरमेव च ॥
कौर्मं भागवतं ज्ञेयं वासिष्ठं भार्गवं तथा ।
मुद्गलं कल्किदेव्यौ च महाभागवतं ततः ॥
बृहद्धर्मं परानन्दं वह्निं पशुपतिं तथा ।
हारिवंशं ततो ज्ञेयमिदमौपपुराणकम् ॥

उन पुराणों के श्लोकों की संख्या भी निम्नोक्त है। स्कन्दपुराणे रेवाखण्डे—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥
ब्राह्मं पुराणं तत्राद्यं संहितायां विभूषितम् ।
श्लोकानां दशसाहस्रं नानापुण्यकथायुतम् ॥

(१ ब्रह्मपुराण में १०००० श्लोक)

पाद्मं च पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि निगद्यते। (२ पाद्म में ५५००० श्लोक)
तृतीयं वैष्णवं नाम त्रयोविंशतिसंख्यया। (३ वैष्णव में २३००० श्लोक)
चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतम्।
शिवभक्तिसमायोगाच्छैवं तच्चापराख्यया॥
चतुर्विंशतिसंख्यातं सहस्राणि तु शौनक। (४ वायुपुराण में २४००० श्लोक)
चतुर्भिः पर्वभिः प्रोक्तं भविष्यं पञ्चमं तथा।
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च॥ (५ भविष्य १४५०० श्लोक)
मार्कण्डं नवसाहस्रं षष्ठं तत्परिकीर्तितम्॥ (६ठा मार्कण्डेय ९००० श्लोक)
आग्नेयं सप्तमं प्रोक्तं सहस्राणि तु षोडश। (७वां आग्नेय १६००० श्लोक)
अष्टमं नारदीयं तु प्रोक्तं वै पञ्चविंशतिः। (८ वां नारदीय २५००० श्लोक)
नवमं भागवतं नाम भागद्वयविभूषितम्।
तत्राष्टादश साहस्रं प्रोच्यते ग्रन्थसंख्यया। (९वां भागवत १८००० श्लोक)
दशमं ब्रह्मवैवर्तं तावत्संख्यमिहोच्यते। (१०वां ब्रह्मवैवर्त १८००० श्लोक)
लैङ्गमेकादशं ज्ञेयं तथैकादशसंख्यया।
भागद्वयविरचितं तल्लिङ्गमृषिपुङ्गव॥ (११ वां लैङ्ग ११००० श्लोक)
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं द्वादशं विदुः॥ (१२ वां वाराह २४००० श्लोक)
विभक्तं सप्तभिः खण्डैः स्कान्दं भाग्यवतांवर।
तदेकाशीतिसाहस्रं संख्यया वै निरूपितम्॥ (१३ वां स्कान्द ८१००० श्लोक)
ततस्तु वामनं नाम चतुर्दशतमं स्मृतम्।
संख्यया दशसाहस्रं प्रोक्तं कुलपते पुरा॥ (१४ वां वामन पुराण १०००० श्लोक)
कौर्मं पञ्चदशं प्राहुर्भागद्वयविभूषितम्।
दशसप्तसहस्राणि पुरा संख्यायते कलौ॥ (१५ वां कौर्म १७००० श्लोक)
मात्स्यं मत्स्येन यत्प्रोक्तं मनवे षोडशं क्रमात्।
तच्चतुर्दशसाहस्रं संख्यया वदतांवर॥ (१६ वां मत्स्य १४००० श्लोक)
गारुडं सप्तदशमं स्मृतं चैकोनविंशतिः। (१७ वां गारुड १९००० श्लोक)
अष्टादशं तु ब्रह्माण्डं भागद्वयविभूषितम्।
तच्च द्वादशसाहस्रं शतमष्टसमन्वितम्॥ (१८ वां ब्रह्माण्ड १२८०० श्लोक)

यहाँ पुराणों को ब्रह्मप्रोक्त कहा गया है।

इदं ब्रह्मपुराणस्य सुलभं सौरमुत्तमम्।
संहिताद्वयसंयुक्तं पुण्यं शिवकथाश्रयम्॥
आद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूर्यभाषिता।
सनत्कुमारनाम्ना हि तद्विख्यातं महामुने॥
द्वितीयं नारसिंहं च पुराणे पाद्मसंज्ञिते।
शौनकेयं हि तृतीयं पुराणे वैष्णवे मतम्॥
बार्हस्पत्यं चतुर्थं च वायव्यं सम्मतं सदा।
दौर्वाससं पञ्चमं च स्मृतं भागवते सदा॥

भविष्ये नारदोक्तं च सूरिभिः कथितं पुरा ।
कापिलं मानवं चैव तथैवोशनसेरितम् ॥
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथ कालिकाह्वयमेव च ।
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम् ॥
पराशरं भागवतं कौर्मं चाष्टादशं क्रमात् ।
एतान्युपपुराणानि मयोक्तानि यथाक्रमम् ॥

(स्कन्दपुराण रेवाखण्ड उत्तरार्ध १)

"पुराणमेकमेवासीत् सर्वकालेषु मानद ।
चतुर्वर्गस्य बीजं च शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणादभवत्ततः ।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य महामतिः ॥
हरिर्व्यासस्वरूपेण जायते च युगे युगे ।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा ॥
तदष्टादशधा कृत्वा भूर्लोके निर्दिशत्यपि ।
अद्यापि देवलोके तु शतकोटिप्रविस्तरम् ॥
अस्त्येव तस्य सारस्तु चतुर्लक्षेण वर्ण्यते ।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च वायवीयं तथैव च ॥
भागवतं नारदीयं मार्कण्डेयं च कीर्तितम् ।
आग्नेयं च भविष्यं च ब्रह्मवैवर्तलिङ्गके ॥
वाराहं च तथा स्कान्दं वामनं कूर्मसंज्ञकम् ।
मात्स्यं च गारुडं तद्वद् ब्रह्माण्डाख्यमिति त्रिषट् ॥"

(वृह० ना० पु० पूर्वभाग ९२।२२–२८)

ऊपर के वचनों में कहा गया है कि चतुर्वर्ग का बीज शतकोटिप्रविस्तर पुराण पहले एक ही था । उसी से सब शास्त्रों की प्रवृत्ति हुई है । युगह्रास से सामान्य मेधावाले पुरुषों के लिए उनका ग्रहण करना असंभव जानकर भगवान् हरि व्यासरूप में प्रकट होकर प्रति द्वापर में चतुर्लक्ष श्लोकात्मक १८ पुराणों को भूलोक में प्रकट करते हैं । देवलोक में अब भी पुराण शतकोटिप्रविस्तर ही है । उसका सार ही १८ पुराणों में वर्णित है ।

"ब्राह्मं पुराणं प्रथमं द्वितीयं पाद्ममुच्यते ।
तृतीयं वैष्णवं चैव चतुर्थं शैवमुच्यते ॥
अथ भागवतं प्रोक्तं पञ्चमं षष्ठमुच्यते ।
भविष्यं नारदीयं च सप्तमं परिकीर्तितम् ॥
मार्कण्डेयमिति प्रोक्तमष्टमं नवमं तथा ।
आग्नेयं ब्रह्मवैवर्तं दशमं परिकीर्तितम् ॥
लैङ्गं च वामनं चैव स्कान्दं मात्स्यमथैव च ।
कौर्मं वाराहमुदितं गारुडं वाथ कीर्तितम् ॥
ब्रह्माण्डमित्यष्टादश पुराणानि विदुर्बुधाः ।

तथा चोपपुराणानि कथयिष्याम्यतः परम् ॥
आद्यं सनत्कुमाराख्यं नारसिंहमतः परम् ।
तृतीयमाण्डमुद्दिष्टं दौर्वासमेव च ॥
नारदीयमथान्यच्च कापिलं मानवं तथा ।
तद्वदौशनसं प्रोक्तं ब्रह्माण्डं च ततः परम् ॥
वारुणं कौलिकाह्वानं माहेशं साम्बमेव च ।
सौरं पाराशरं चैव मारीचं भार्गवाह्वयम् ॥
कौमारं च पुराणानि कीर्तितान्यष्ट वै दश ।"

(पद्मपु० पातालखण्ड ११५।८९–९७)

ऊपर के श्लोकों में पुराणों के क्रम दिये गये हैं। कल्पभेद से क्रम में भेद भी हो जाता है, अतः **श्रीमद्भागवत** के अनुसार श्री**भागवत** १८वां पुराण है। परन्तु ऊपर **भागवत** को पाँचवाँ कहा गया है।

"अष्टादश पुराणानि यो वेत्ति हरिरेव हि ॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
भविष्यं नारदीयं च स्कान्दं लिङ्गं वराहकम् ॥
मार्कण्डेयं तथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्तमेव च ।
कौर्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम् ॥
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम् ।
अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु ।
आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम् ॥
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम् ।
चतुर्थं शिवधर्माख्यं स्यान्नन्दीश्वरभाषितम् ॥
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदोक्तमतः परम् ।
कापिलं वामनं चैव तथैवोशनसेरितम् ॥
ब्रह्माण्डं वारुणञ्चाथ कालिकाह्वयमेव च ।
माहेश्वरं तथा साम्बमेवं सर्वार्थसञ्चयम् ॥
पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवाह्वयम् ।" (ग० पु० २१५।१३–२१)

उपर्युक्त वचनों में भी पुराणों और उपपुराणों की गणना की गयी है। ऐसे ही अन्य पुराणों में भी पुराणों की गणना की गयी है। कहीं कहीं नामों और पुराणत्व, उपपुराणत्व आदि में परिलक्षित भेद कल्पभेद से समाहित होते हैं। इसी तरह **देवीभागवत** में भी पुराणों का वर्णन है।

शृण्वन्तु संप्रवक्ष्यामि पुराणानि मुनीश्वराः ।
यथाश्रुतानि तत्त्वेन व्यासात् सत्यवतीसुतात् ॥
मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम् ।
अनापलिङ्गकूस्कानि पुराणानि पृथक् पृथक् ॥

चतुर्दशसहस्रं च मात्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम् ।
तथा ग्रहसहस्रंतु मार्कण्डेयं महाद्भुतम् ॥
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्च शतानि च ।
भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ४ ॥

अष्टादशसहस्रं वै पुण्यं भागवतं किल ।
तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्राह्मसंज्ञकम् ॥
द्वादशैव सहस्राणि ब्राह्मण्डं च शताधिकम् ।
तथाष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च ॥
अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च ।
चतुर्विशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक ॥
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम् ।
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम् ॥
षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञकम् ।
पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम् ॥ ९ ॥

पञ्चपञ्चाशत्साहस्रं पाद्माख्यं विपुलं मतम् ।
एकादशसहस्राणि लिङ्गाख्यं चातिविस्तृतम् ॥
एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं परिभाषितम् ।
सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम् ॥
एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दाख्यं परमाद्भुतम् ।
पुराणाख्या च संख्या च विस्तरेण मयानघाः ॥
तथैवोपपुराणानि शृण्वन्तु मुनिसत्तमाः ।
सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम् ॥
कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसं स्मृतम् ।
वारुणं कालिकाख्यं च साम्बं नन्दिकृतं शुभम् ॥
सौरं पराशरप्रोक्तमादित्यं चातिविस्तरम् ।
माहेश्वरं भागवतं वासिष्ठं च सविस्तरम् ॥
एतान्युपपुराणानि कथितानि महात्मभिः ।
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः ॥
भारताख्यानमतुलं चक्रे तदुपबृंहितम् । (देवीभा० पु० १–३)
वेदागमपुराणेतिहासशास्त्रादयोऽखिलाः ।
अनादयः परेशस्य निःश्वासा ह्यञ्जसा स्थिराः ॥
कदाचित्कालपाकेन मलिना विशदा अपि ।
शाश्वतो भगवान् शम्भुः कल्पे कल्पे स्वयंप्रभुः ॥
प्रपञ्चाख्यां महालीलां निर्गुणोऽपि करोति च ।
या कृता तेन वै लीला तां शास्त्राणि वदन्ति हि ॥

(का० के० मा० ब्रह्मवैवर्ते १५।४–७)

तस्मादभूद् भविष्यच्च वर्तमानमपि द्विजाः।
वदन्ति सूक्ष्मं शास्त्राणि तेषु शङ्कां न कारयेत् ॥ (का० के० मा० १५।९-१०)

काशीकेदारमाहात्म्य में कहा गया है कि वेद, आगम, पुराण, इतिहास आदि सभी युगों के अनुसार अनादि हैं, भगवान् के श्वासरूप हैं। कभी वे मलिन कभी विशद होते हैं और वे भगवान् की प्रपञ्च-लीला का वर्णन करते हैं। उनमें भूत, भविष्य तथा वर्तमान का वर्णन होता है, अतः उनमें शङ्का नहीं करनी चाहिये।

इसी प्रकार अन्य पुराणों और उपपुराणों में भी पुराणों तथा उपपुराणों के नाम एवं उनकी श्लोकसंख्या तथा कहीं कहीं अनुक्रमणिका भी निर्दिष्ट है। इससे पुराणों का प्रामाण्य सिद्ध होता है। यदि कोई पुराण किसी आधुनिक वञ्चक द्वारा रचित होता तो अन्य पुराणों में उसका उल्लेख कैसे होता? सभी को वञ्चक कहना तो किसी वञ्चक के लिए ही सम्भव है। प्रमाणरूप से आदृत इन अनेक ग्रन्थों में विभक्त अष्टलक्षाधिक श्लोकों का निर्माण करनेवाले लोग निर्माता के रूप में नाम न देते यह सर्वथा असम्भव ही है। अतः पाश्चात्यों तथा उनके अनुयायी भारतीयों की पुराणसम्बन्धी कालकल्पना सर्वथा अप्रामाणिक ही है।

योगवासिष्ठ, अध्यात्मरामायण को बुल्के १७४ वें अनुच्छेद में साम्प्रदायिक रामायण कहते हैं। इनका भी रचनाकाल एम्. विंटरनित्स तथा एस्. एन्. दास गुप्ता ८वीं शती मानते हैं। डाक्टर वी. राघवन् ११वीं शती इनका रचनाकाल मानते हैं। यह कम से कम योगवासिष्ठ के तो सर्वथा विरुद्ध ही है। जिस ग्रन्थ के काल का विचार किया जाय यदि उसके कथन की उपेक्षा कर मनमाने ढङ्ग से काल का निर्णय किया जाने लगे तो किसी भी ग्रन्थ का मनमाना काल निर्धारित किया जा सकता है। योगवासिष्ठ के अनुसार महर्षि वाल्मीकि ही उक्त ग्रन्थ के रचयिता हैं। ऐसी स्थिति में जो काल उन महर्षि का है वही योगवासिष्ठ का भी काल है। विंटरनित्स के अनुसार योगवासिष्ठ शङ्कराचार्य के अनुयायियों की कृति है। भीखनलाल आत्रेय के अनुसार ७वीं से ८वीं शती में उसकी उत्पत्ति हुई है। भर्तृहरि के वाक्यपदीय के एवं योगवासिष्ठ के कुछ श्लोक परस्पर मिलते जुलते हैं। भर्तृहरि का काल ७वीं शती माना जाता है। इस दृष्टि से भी कम से कम ई० सन् ६०० योगवासिष्ठ का रचनाकाल है। परन्तु यह सब वस्तुतः पाश्चात्य प्रभाव है। पाश्चात्य लोग संसार भर के सभी ग्रन्थों को हजार पन्द्रह सौ वर्ष के भीतर लाने का प्रयास करते हैं। **योगवासिष्ठ** के टीकाकार आनन्दबोधेन्द्रसरस्वती तथा अन्वयारण्य आत्मसुख, गङ्गाधरेन्द्र सरस्वती आदि भी १६वीं शती के आसपास के हैं। मुकुन्दयति के शिष्य रामवनस्वामी की व्याख्या योगवासिष्ठ पर है, वे १४वीं शती से पहले के हैं। उनको **रामार्चनचन्द्रिका** का उल्लेख **निर्णयसिन्धु** आदि निबन्धग्रन्थों में किया गया है। **मधुसूदनसरस्वती** १६वीं शती के आचार्य हैं। उनके **सिद्धान्तबिन्दु** तथा **संक्षेपशारीरकव्याख्या** में तथा **गीताव्याख्या** में **योगवासिष्ठ** के श्लोकों का उद्धरण है। गीता के ६-३२ तथा ३६वें श्लोकों की व्याख्या में **योगवासिष्ठ** के बहुत श्लोकों का उल्लेख हुआ है। 'ऋषिभिर्बहुधा गीतम्' की टीका में **"वासिष्ठविष्णुपुराणादिषु वसिष्ठ-पराशरादिभिर्बहुधा गीतम्।"** श्रीधरस्वामी ने गीता की सुबोधिनी टीका में **योगवासिष्ठ** के श्लोकों का उद्धरण किया है। काश्मीरी विद्वान् गौड़ अभिनन्दी ने, जो ९वीं शती के थे, योगवासिष्ठसार नाम का ग्रन्थ लिखा है।

आद्य श्रीशङ्कराचार्य ने श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य में लिखा है—

"तथा च—वासिष्ठयोगशास्त्रे प्रश्नपूर्वकं दर्शितम्।
तथात्मा निर्गुणः शुद्धः सदानन्दोऽजरोऽमरः॥"

इत्यादि चार श्लोक उन्होंने उद्धृत किये हैं। **सनत्सुजातीयभाष्य** में भी १।१५ से आद्यशङ्कराचार्य कहते हैं—**"तथा चाह भगवान् वसिष्ठः—**

चतुर्वेदोऽपि यो विप्रः सूक्ष्मं ब्रह्म न विन्दति।
वेदभारभराक्रान्तः स वै ब्राह्मणगर्दभः ॥"

३१ वें श्लोक में "तथा चाह भगवान् वासिष्ठः—
यन्न सन्तं न चासन्तम् ॥"

श्वेताश्वतर उपनिषद् शङ्कराचार्य का प्रधान ग्रन्थ है। **शङ्करदिग्विजय** में माधवाचार्य ने कहा है—
"सनत्सुजातीयमसत्सु दूरं ततो नृसिंहस्य च तापनीयम् ॥"

विवेकचूड़ामणि, लघुवाक्यादि में भी योगवासिष्ठ के भाव हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार आद्यशङ्कराचार्य का काल विक्रम से कई शती पूर्व है। फिर योगवासिष्ठ उनसे भी पहले का है ही।

इसके अनुसार वसिष्ठ रामचन्द्र को मोक्षप्राप्ति पर विस्तृत उपदेश करते हैं। इस संवाद को वाल्मीकि अरिष्टनेमि को सुनाते हैं। अगस्त्य ने उसी का उपदेश सुतीक्ष्ण के लिए दिया है। **योगवाशिष्ठ** में भी राम विष्णु के अवतार बताये गये हैं। वस्तुतः रामायण में वेद के पूर्वकाण्ड का ही उपबृंहण है। वेद के उत्तरकाण्ड वेदशीर्ष वेदान्त का उपबृंहण योगवासिष्ठ या महारामायण में किया गया है। मर्यादापुरुषोत्तम राम ने जैसे वेद के पूर्वकाण्ड का स्वयं आचरण कर आदर्श उपस्थित करके लोकशिक्षा दी उसी तरह तीर्थयात्रा, परमवैराग्य एवं उत्तम मुमुक्षा से युक्त होकर उत्तम जिज्ञासु हो गुरूपसदनपूर्वक वेदान्तों के श्रवण, मनन, निदिध्यासन तथा तत्त्वसाक्षात्कार के सम्पादन का भी आदर्श उपस्थित कर लोकशिक्षा दी थी।

इसी प्रकार **अध्यात्मरामायण** को भी साम्प्रदायिक एवं आधुनिक कहना वास्तविकता का अपलाप है, यह पीछे कहा जा चुका है। **अध्यात्मरामायण** और **श्रीमद्भागवत** ये दोनों ग्रन्थ रामचरितमानस के प्रमुख आधार हैं। **अध्यात्मरामायण** में राम को परब्रह्म, सीता को लक्ष्मी तथा लक्ष्मण को शेष कहा गया है। उसमें राम को विष्णु का अवतार भागवत का अनुकरण कर नहीं कहा गया है, किन्तु जन्म-समय में राम ने कौशल्या को विष्णुरूप में जो दर्शन दिया था उस वस्तुस्थिति के अनुसार ही कहा गया है। अहल्योद्धार के अनन्तर केवट का वृत्तान्त दिया गया है। यौवराज्य अभिषेक के पूर्व राम-नारद-संवाद तथा मन्थरा में सरस्वती का प्रवेश बताया गया है। रामनाम-महिमा के वर्णन प्रसङ्ग में वाल्मीकि की आत्मकथा, मायामयी सीता के हरण का वृत्तान्त, लक्ष्मण का द्वादशवर्ष तक उपवास, सेतुबन्ध रामेश्वर की स्थापना, कालनेमि का वृत्तान्त, रावण का शुक्र के परामर्श से यज्ञानुष्ठान करना और अङ्गद के द्वारा उसका भङ्ग किया जाना, रावण की नाभि में अमृत का होना, भगवत्पदप्राप्ति के उद्देश्य से रावण के द्वारा सीताहरण आदि इसकी विशेष कथाएँ हैं। वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण** में राम के माधुर्यप्रधान स्वरूप का वर्णन है। **अध्यात्मरामायण** में ऐश्वर्यप्रधान स्वरूप का वर्णन है। भक्ति-सिद्धान्त में माधुर्य-प्रधान रूप का बड़ा महत्त्व है। उसमें लौकिक रूप का ही अधिकांश प्राकट्य होता है। रागानुगा स्वारसिकी प्रीति होती है। ऐश्वर्यप्रधान रूप में वह भक्ति नहीं हो पाती। एक माता अपने बालक में स्वाभाविक जितना स्नेह या प्यार कर सकती है उतना ईश्वर में नहीं कर सकती है, क्योंकि ऐश्वर्य में भय, संकोच आदि के कारण उद्दाम ममता और स्नेह नहीं बन पाता। यदि यशोदा कृष्ण को ब्रह्म या परमेश्वर समझती तो मृत्तिका-भक्षण के प्रसङ्ग से कृष्ण को उलूखल में बाँधने की हिम्मत कदापि नहीं कर सकती। इसी लिए मृद्भक्षण के प्रसङ्ग में मैंने मिट्टी नहीं खायी। ग्वालबाल सब मिथ्या बोलते हैं। तुझे विश्वास नहीं है तो मेरा मुंह देख ले, कृष्ण के यह कहने पर जब यशोदा ने मुख खोलने को कहा, तब श्रीकृष्ण ने माँ के भय से मुँह खोल दिया। उसके भीतर सूर्य, चन्द्र, भूधर, सागर आदि सारे विश्व को देखकर उसने निश्चय कर लिया कि यह तो साक्षात् परब्रह्म है। यह मेरा पुत्र है, मैं माँ हूँ यह कल्पना मोहमूलक है। भगवान् ने फिर से अपनी मोहनी वैष्णवी माया फैलाकर माता यशोदा के ज्ञान को आवृत कर दिया,

क्योंकि ऐश्वर्यप्रधान स्वरूप में तादृक् स्नेहसम्बन्ध नहीं बन सकता था । अतः **वाल्मीकिरामायण** में लौकिक स्वरूप का आधिक्येन वर्णन है, ऐश्वर्य का अल्प वर्णन है । किन्तु **अध्यात्मरामायण** में ऐश्वर्यप्रधान मार्गीय भक्ति का ही वर्णन है । माधुर्य में ही ऐश्वर्य के वर्णन के बिना कोई लौकिकता का भान होने से प्राकृत साधारणता आ सकती है । अतः **वाल्मीकिरामायण** में भी तत्र-तत्र स्थलों में ईश्वरता का वर्णन है । सनातन सिद्धान्त के अनुसार गुणोपसंहार-न्याय से साङ्गोपाङ्ग रामचरित जानने के लिए सभी रामायणों, **महाभारत**, पुराणों, उपनिषदों संहिताओं तथा आगमों का समन्वय ही मान्य है ।

अद्भुतरामायण के सम्बन्ध में अनु० १७६ में बुल्के का कहना है कि "ऐसा प्रतीत होता है कि अद्भुत-रामायण या अद्भुतोत्तरकाण्ड की रचना **अध्यात्मरामायण** के कुछ काल बाद हुई ।" इस तरह उनकी दृष्टि में वह अत्यन्त अर्वाचीन है, परन्तु यह ठीक नहीं है । उलटे यही कहा जा सकता है कि **अद्भुतरामायण** में **अध्यात्मरामायण** के अंशों का उल्लेख होने से शिवपार्वतीसंवादरूप **अध्यात्मरामायण** अति प्राचीन है । शतकोटिप्रविस्तर रामायण के ही दोनों अंश हैं । अन्यथा ऋषिव्यतिरिक्त कोई लेखक वाल्मीकि और भरद्वाज के संवाद को कैसे जान सकता है ? सर्ग १ में नारद एवं पर्वत के द्वारा विष्णु को दिये जानेवाले शाप के कारण रामरूप में विष्णु के अवतार का ज्ञान भी अर्वाचीन समाधिशून्य को कैसे हो सकता था । अम्बरीष की पुत्री श्रीमती का शापवशात् जानकी बनकर रावण द्वारा अपहृत होना (सर्ग २–४), नारद के शाप से लक्ष्मी का सीतारूप में मन्दोदरी की पुत्री बनना आदि सबको काल्पनिक एवं मिथ्या ही मानना पड़ेगा क्या ? किन्तु कोई भी भारतीय सभ्य विद्वान् निराधार निरर्थक मिथ्या प्रलाप करना उचित नहीं समझता; अतः **अद्भुतरामायण** भी महर्षि वाल्मीकि के आर्षविज्ञान के आधार पर ही निर्मित है । सहस्रमुख रावण का वध (सर्ग १७–२७) देवीमाहात्म्य का अनुकरण नहीं है, किन्तु घटनामूलक है । सत्य घटना में तो उक्त रामायण ही प्रमाण है । परन्तु उक्त घटना के अभाव में बुल्के के पास कुछ भी प्रमाण नहीं है । क्योंकि अतीत विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण की प्रवृत्ति नहीं होती । अतीत से सम्बन्धित कोई लिङ्ग गृहीत नहीं है, अतः अनुमान की प्रवृत्ति भी नहीं हो सकती ।

१७७वें अनु० में **आनन्दरामायण** के सम्बन्ध में भी बुल्के का यह कहना कि इसकी रचना १५वीं शती ई० की है, सङ्गत नहीं है । **आनन्दरामायण** के विषय वाल्मीकिरामायण से कुछ भिन्न हों यह उसकी मौलिकता का ही साधक है । दशरथ और कौशल्या का विवाह तथा रावण द्वारा कौशल्या का हरण, देवदानव-युद्ध में कैकेयी की वरप्राप्ति, श्रवणकुमार का वध, दशरथयज्ञ तथा कैकेयी के पायस का काक द्वारा अपहरण और उसका अञ्जनी के पर्वत पर फेंका जाना (सर्ग १) । **आनन्दरामायण** की विशिष्ट कथाएँ—बाललीला वर्णन (सर्ग २), अहल्योद्धार तथा तदनन्तर नाविकवृत्तान्त (सर्ग ३।२४–२८) ये दोनों वृत्तान्त **अध्यात्मरामायण** के तुल्य हों यह ठीक है, परन्तु ये उसी के अंश के उद्धरण हैं, यह नहीं कहा जा सकता है । सीतास्वयंवर में रावण की उपस्थिति (सर्ग ३), अग्निजा सीता की जन्मकथा (३।१८८ आदि), वृन्दा का शाप, कलहा और धर्मदत्त का कैकेयी तथा दशरथ के रूप में जन्म लेना (सर्ग ४), सीताहरण के बाद सीता का रूप धारण कर उमा का रामपरीक्षा करना (सर्ग ७), रावण का शिव से आत्मलिङ्ग तथा पार्वती को प्राप्त करने तथा दोनों को खो बैठने की कथा (सर्ग ९), मैरावण का राम और लक्ष्मण को पाताल ले जाना, हनुमान् द्वारा राम और लक्ष्मण को वापस लाना (सर्ग ११), सुलोचना की कथा (सर्ग ११।२०५ आदि) एवं आत्ममुक्ति के उद्देश्य से रावण द्वारा सीताहरण करने का उल्लेख (सर्ग १३। ११९ आदि) । **यात्राकाण्ड** में **वाल्मीकिरामायण** की उत्पत्ति (सर्ग १।२–१२) तथा वाल्मीकि द्वारा शतकोटि-प्रविस्तर रामायण की रचना का उल्लेख (सर्ग १, २) । इसके बाद चारों दिशाओं में राम की तीर्थयात्रा का वर्णन मिलता है । पूर्वोक्त सभी विषय रामचरित्र के ही अनिवार्य अङ्ग हैं । **यागकाण्ड** में राम के अश्वमेध का वर्णन है । **विलासकाण्ड** में शङ्करकृत रघुवीर-स्तव (सर्ग १), सीता का नख-शिखवर्णन, सीतालङ्कार, जलक्रीड़ा तथा सीता-

राम की दिनचर्या (सर्ग २–६) । एकपत्नीव्रत के कारण कृष्णावतार में बहुत पत्नियों की प्राप्ति का राम को वरदान (सर्ग ७।१–२८) । कामपीड़ित देवपत्नियों को राम द्वारा गोपिकाएँ बनने का आश्वासन (सर्ग ७।२९ आदि), कृष्णावतार में गुणवती तथा पिंगला को सत्यभामा तथा कुब्जा बनने का आश्वासन देना वर्णित है (सर्ग ८) । इसी में सीता-सहित राम की कुरुक्षेत्र यात्रा का वर्णन है (सर्ग ९) । **जन्मकाण्ड** में राम द्वारा सीता-त्याग (सर्ग १–३), कुशजन्म तथा वाल्मीकि द्वारा लव की सृष्टि (सर्ग ४) । कुश और लव का राम की सेना से युद्ध करना, सीता की शपथ से पृथ्वी का प्रकट होना तथा राम से भयभीत होकर सीता को लौटा देना । उर्मिला, माण्डवी और श्रुतकीर्ति के दो दो पुत्रों का होना वर्णित है (सर्ग ६–९) ।

विवाहकाण्ड में राम आदि के आठों पुत्रों के विवाह वर्णित हैं । **राज्यकाण्ड** में राम के राज्य-शासन का विस्तृत वर्णन है । इसमें रामका स्वरूप-सौन्दर्य देखकर बहुत सी नारियाँ मोहित हुई हैं । कृष्णावतार में उनकी लालसा-पूर्ति का आश्वासन दिया गया है । इसे कृष्णावतार का प्रभाव कहना निष्प्रमाण कल्पनामात्र है । **कृष्णोपनिषत्** से ही राम का लोकोत्तर सौन्दर्य प्रसिद्ध है । उसके अनुसार स्त्रियों की कौन कहे ऋषि-महर्षि लोग भी उनके सौन्दर्य से मोहित हुए हैं और उन्हें भी गोपी बनने का भगवान् ने वरदान दिया है । **मनोहरकाण्ड** में रामोपासना का विधान वर्णित है । **पूर्णकाण्ड** में सोमवंशी राजाओं से युद्ध तथा सन्धि, कुश का अभिषेक और रामादि का वैकुण्ठा-रोहण वर्णित है । इस तरह यह रामायण भी रामचरित के वर्णन में पर्यवसित है । यह भी शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** का ही अङ्ग एवं प्रामाणिक है ।

✲

नवम अध्याय

महाकवि कालीदास द्वारा रघुवंशी राजाओं के स्वभाव और महत्त्व का वर्णन

भारतीय राजाओं का स्वरूप, स्वभाव एवं महत्त्व का वर्णन करते हुए महाकवि कालिदास ने कहा है—

"सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ॥
त्यागाय सम्भृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥" (रघुवं० १।५–८)

जन्मप्रभृति निषेकादि संस्कारों से शुद्ध तथा फलसिद्धिपर्यन्त कर्म करनेवाले, समुद्रपर्यन्त भूमि के एकमात्र स्वामी अर्थात् सार्वभौम, स्वर्ग तक रथ से यात्रा करनेवाले अर्थात् इन्द्र के सहचारी, विधिवत् अग्निहोत्र करनेवाले, कामना के अनुसार याचकों का आदरपूर्वक मनोरथ पूर्ण करनेवाले, अपराध के अनुसार दण्डविधान करनेवाले, समय पर जागनेवाले, त्याग के लिए अर्थसंग्रह करनेवाले, सत्य के लिए मित भाषण करनेवाले, यश के लिए विजय की इच्छावाले, सन्तति के लिए दारसंग्रह करनेवाले, बालकपन में विद्याभ्यास करनेवाले, युवावस्था में भोग की इच्छा-वाले, वृद्धावस्था में मुनिवृत्तिवाले और अन्त में योग से शरीर-त्याग करनेवाले रघुवंशी राजा होते थे ।

"आकारसदृशप्रज्ञः प्रज्ञया सदृशागमः ।
आगमैः सदृशारम्भ आरम्भसदृशोदयः ॥" (रघुवं० १।१५)

महाराज दिलीप की आकार के सदृश बुद्धि थी, बुद्धि के समान ही शास्त्र का परिश्रम था, शास्त्र के समान ही कर्म और कर्म के समान ही फल होता था ।

"प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥" (रघुवं० १।१८)

महाराज दिलीप प्रजा की वृद्धि के लिए ही प्रजा से कर ग्रहण करते थे । भगवान् भास्कर हजारों गुना वर्षा करने के लिए ही गर्मी में जल का शोषण करते हैं ।

महाराज दिलीप स्वयं ही बलवान् थे—

"सेना परिच्छदस्तस्य द्वयमेवार्थसाधनम् ।
शास्त्रेष्वकुण्ठिता बुद्धिर्मौर्वी धनुषि चातता ॥" (रघुवं० १।१९)

सेना उनकी छत्र, चामर के समान उपकरणमात्र थी । शास्त्रों में अकुण्ठित बुद्धि और धनुष पर चढ़ी हुई डोरी ये ही दो उनके कार्यसाधक थे ।

"तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढ़ाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारम्भाः संस्काराः प्राक्तना इव॥" (रघुवं० १।२०)

महाराज दिलीप का मन्त्र गुप्त रहता था और आकार तथा चेष्टा भी गुप्त रहती थी, इसलिए उनके द्वारा प्रयुक्त साम आदि उपायों का पता फल होने पर ही लगता था। जैसे कि फलों के द्वारा ही पूर्वजन्म के संस्कारों का पता लगता है।

"जुगोपात्मानमत्रस्तो भेजे धर्ममनातुरः।
अगृध्नुराददे सोऽर्थमसक्तः सुखमन्वभूत्॥" (रघुवं० १।२१)

महाराज दिलीप अपनी रक्षा करते थे, किन्तु उन्हें डर नहीं था, बिना विपत्ति के ही धर्म का पालन करते थे। अर्थसंग्रह करते हुए भी लोभी नहीं थे। सुख भोगते थे, किन्तु उसमें आसक्ति नहीं थी।

"ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।
गुणा गुणानुबन्धित्वात्तस्य सप्रसवा इव॥" (रघुवं० १।२२)

महाराज दिलीप दूसरे की बात जानते हुए भी मौन रहते थे। प्रतीकार की सामर्थ्य रहने पर भी दूसरे का अपकार सहते थे। दान करके अपनी प्रशंसा नहीं करते थे। इस तरह परस्पर विरोधी भी गुण उनमें ऐसे एक साथ रहते थे जैसे कि सभी सहोदर हों।

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥" (रघुवं० १।२४)

सन्मार्ग में लगाने, विपत्ति दूर करने और अन्न, पान आदि द्वारा पोषण करने से प्रजाओं के मुख्य पिता महाराज दिलीप ही थे। उनके अपने पिता केवल जन्ममात्र देनेवाले थे।

इस प्रकार राजा लोकस्थिति बनाये रखने के लिए ही दण्ड्यों को दण्ड देता था। सन्तानोत्पत्ति के लिए ही विवाह करता था। इस तरह दण्ड और विवाह जो कि अर्थ एवं काम के साधन थे वे भी लोकस्थिति और प्रजोत्पादन के लिए ही थे, सुतरां उनका पर्यवसान भी धर्म में हो गया था। अर्थात् उनके अर्थ और काम भी धर्मरूप ही थे—

"स्थित्यै दण्डयतो दण्ड्यान् परिणेतुः प्रसूतये।
तस्यार्थकामावप्यास्तां धर्म एव मनीषिणः॥" (रघुवं० १।२५)

"दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम्।
सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम्॥" (रघुवं० १।२६)

महाराज दिलीप यज्ञ करने के लिए पृथ्वी से कर ग्रहण करते थे और देवराज इन्द्र धान्यवृद्धि के लिए वर्षा करते थे। इस तरह दोनों परस्पर आदान-प्रदान से दोनों लोकों का धारण (पोषण) करते थे।

"न किलानुययुस्तस्य राजानो रक्षितो यशः।
व्यावृत्ता यत्परस्वेभ्यः श्रुतौ तस्करता स्थिता॥" (रघुवं० १।२७)

अन्य राजाओं के लिए प्रजा-रक्षण में चौकस राजा दिलीप के यश का अनुकरण असम्भव था, क्योंकि उनके राज्य में परस्वापहरण से सभी के डरने के कारण तस्करता (चोरी) पराये धन से हटकर शब्दरूप से कान में ही रह गयी थी।

द्वेष्योऽपि सम्मतः शिष्टस्तस्यार्त्तस्य यथौषधम् ।
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता ॥" (रघुवं० १।२८)

शिष्ट जन (सज्जन) द्वेषी होने पर भी महाराज दिलीप को प्रिय था जैसे रोगी को औषध प्रिय होता है । यदि अपना प्रिय भी दुष्ट होता तो महाराज दिलीप को वैसे ही त्याज्य होता जैसे सर्पदष्ट अङ्गुलि ।

"स वेलावप्रवलयां परिखीकृतसागराम् ।
अनन्यशासनामुर्वीं शशासैकपुरीमिव ॥" (रघुवं० १।३०)

समुद्र का तट जिसकी चहार दीवारी और समुद्र ही जिसकी खाई है उस अखण्ड भूमण्डल के एकमात्र शासक महाराज दिलीप अखण्डभूमण्डल का शासन ऐसे अनायास करते थे जैसे कि एक नगरी का शासन हो ।

"पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः ।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद्ब्रह्मवर्चसम् ॥" (रघुवं० १।६३)

मेरी प्रजा अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ईतियों से रहित होकर निर्भय रह कर पुरुषायुष पर्यन्त जीवित रहती है उसका एकमात्र कारण आपका ब्रह्मतेज है ।

श्रीकालिदास के अनुसार ब्राह्मबल एवं क्षात्रबल के प्रभाव से राजा रघु की जल, स्थल, पर्वत और आकाश सर्वत्र अव्याहत गति थी ।

"वसिष्ठमन्त्रोक्षणजात् प्रभावादुदन्वदाकाशमहीधरेषु ।
मरुत्सखस्येव बलाहकस्य गतिर्विजघ्ने नहि तद्रथस्य ॥" (रघुवं० ५।२७)

जैसे वायु की सहायता से मेघ की सर्वत्र अव्याहत गति होती है वैसे ही वसिष्ठजी के मन्त्र के प्रभाव से महाराज रघु के रथ की गति समुद्र, आकाश तथा पर्वत सर्वत्र ही अव्याहत थी । आजकल के संशयित विमानों की अपेक्षा श्रीरघु का रथ कहीं अधिक शक्तिशाली एवं महत्त्वपूर्ण था । अध्यात्मवाद पर आधारित धर्मनियन्त्रित शासन-तन्त्र का सञ्चालक सम्राट् दिलीप गुरु के आज्ञानुसार काया की छाया बनकर नन्दनी गौ की सेवा में तत्पर हो गया । एतावता गौ तथा ब्राह्मण की सेवापरायणता ऐसे शासकों का स्वाभाविक धर्म था ।

"स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीरः ।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥" (रघुवं० २।६)

महाराज दिलीप नन्दिनी गौ जब खड़ी होती थी तब खड़े हो जाते थे, जब चलती थी तब चलते थे, जब बैठती थी तब बैठते थे, जब वह जल पीती थी तब जल पीते थे इस तरह छाया के समान उसका अनुसरण कर रहे थे ।

"आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च ।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥ (रघुवं २।५)

सम्राट् महाराज दिलीप स्वादिष्ट तृणों के कवलों, कण्डूयनों, दंशों के निवारणों और अव्याहत स्वच्छन्द-गमनों के द्वारा नन्दिनी गौ की आराधना में लगे थे ।

प्रचण्ड शौर्य के साथ ही दयालुता भी उनमें अनिवार्यरूप से विद्यमान थी ।

"धनुर्भृतोऽप्यस्य दयार्द्रभावमाख्यातमन्तःकरणैर्विशङ्कैः ।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णां प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ॥" (रघुवं० २।११)

महाराज दिलीप को धनुर्धर देखते हुए भी हरिणियों के मन में आशङ्का नहीं हुई। इसी लिए समझना चाहिये कि उनका हृदय दया से भरपूर था। दयार्द्र महाराज दिलीप का शरीर देखते हुए हरिणियों ने अपनी आँखों के विस्तार का फल प्राप्त किया।

प्रजा के ऊपर आये हुए भौतिक एवं आधिदैविक सङ्कटों को भी धर्मनिष्ठ राजा अपने प्रभाव से दूर कर सकता है। आज हजारों लौकिक प्रयत्नों से भी अन्नसङ्कट नहीं कट रहा है, काम होने पर भी धार्मिकता के बिना बरकत या समृद्धि नहीं हो रही है, परन्तु महाराज दिलीप के आगमनमात्र से वन के सब सङ्कट दूर हो गये थे।

"शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने॥" (रघुवं० २।१४)

महाराज दिलीप के वन में प्रवेश करते ही वृष्टि के बिना भी जंगल में लगी हुई अग्नि शान्त हो गयी। जंगल में फलों और पुष्पों की विशेष वृद्धि हो गयी। जानवरों में बलवान् जन्तुओं ने दुर्बलों को सताना छोड़ दिया। यह सब सेना, पुलिस या कोर्ट का प्रभाव नहीं, किन्तु धर्मनिष्ठा का ही लोकोत्तर प्रभाव था। धर्मनियन्त्रित शासक दिलीप धर्मपालन के सामने राज्य एवं प्राणों को भी तुच्छ समझते थे।

"क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढः।
राज्येन किं तद्विपरीतवृत्तेः प्राणैरुपक्रोशमलीमसैर्वा॥" (रघुवं० २।३५)

क्षत (विनाश) से रक्षा करने (बचाने) के कारण क्षत्रिय जाति का वाचक क्षत्रशब्द विश्वविख्यात है। इसके विपरीत यदि हम एक नन्दिनी गौ को न बचा सके तो राज्य से ही हमारा क्या लाभ ? अथवा निन्दा से मलिन प्राणों को ढोने से ही क्या फल ? अर्थात् धर्मविमुख निन्दित पुरुष का सब कुछ व्यर्थ है।

धर्मनियन्त्रित शासक धर्म के प्रभाव से न केवल स्थूल शरीर पर ही शासन करता है, अपितु मनपर भी नियन्त्रण करके प्रजा के मन को बुरे कामों से निवृत्त करता है; अपराध रोकने के लिए दण्ड-विधान ही नहीं, किन्तु शासक की विशेष शक्ति भी अपेक्षित होती है।

"अकार्यचिन्तासमकालमेव प्रादुर्भवंश्चापधरः पुरस्तात्।
अन्तःशरीरेष्वपि यः प्रजानां प्रत्यादिदेशाविनयं विनेता॥" (रघुवं० ६।३९)

महाराज कार्तवीर्य असत्कार्य का विचार प्रजा में आते ही धनुष-बाण धारण कर उनके सामने प्रकट हो जाते थे। इस तरह से उन्होंने प्रजा के मन से भी अपराधसृष्टि रोक दी थी। धर्म एवं योग के बल से वह प्रजा के मन के दुर्विचारों को जान लेते थे और तत्काल योगबल से ही प्रकट होकर आतङ्कित करके बुरे विचारों को रोक देते थे। इस तरह शरीर से अपराध की बात कौन कहे मन से भी पाप करने में प्रजा सदा ही डरती रहती थी।

"यस्मिन् महीं शासति वाणिनीनां निद्रां विहारार्धपथे गतानाम्।
वातोऽपि नास्रंसयदंशुकानि को लम्बयेदाहरणाय हस्तम्॥" (रघुवं० ६।७५)

महाराज दिलीप के शासनकाल में उद्यान में घूमने के लिए गयी हुई मत्ताङ्गनाओं के उद्यान में सो जाने पर उनके देहपर से कपड़ा हटा देने की क्षमता वायु में भी नहीं थी। फिर, दूषित वृत्ति से चोरी करने के लिए कोई हाथ कैसे बढ़ा सकता था ? आज की चोरी, डकैती तथा अनुशासनहीनता की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

सीता-वनवास से क्षुब्ध महर्षि वाल्मीकिजी कहते हैं :—

"उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि ।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुषप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे ॥' (रघुवं० १४।७३)

यद्यपि राम ने रावण को मारकर सबके के मार्ग का काँटा दूर किया है, वे सत्यप्रतिज्ञ हैं। सबका उपकार करके भी अपनी प्रशंसा करनेवाले नहीं हैं। इतने गुणगण राम में विद्यमान होने से वे मुझे प्रिय होने चाहिए तथापि तुम्हारे साथ उन्होंने अकस्मात् ऐसा व्यवहार किया है इसलिए हमारी नाराजगी उनपर है ही। अर्थात् सीता के साथ उन्होंने वनवास देकर अन्याय क्यों किया? यद्यपि यह भी आपात दृष्टि से ही अन्याय प्रतीत होता है। वस्तुतः भगवान् राम तो कभी शत्रु का भी अहित नहीं कर सकते थे 'अरिहुँक अनभल कीन न रामा" फिर अपनी ही प्राणेश्वरी सीता का अहित कैसे कर सकते थे? धर्मनियन्त्रित शासकों पर सर्वदा धर्मनिष्ठ महर्षियों का नियन्त्रण रहता था। इसी लिए वसिष्ठ, वाल्मीकि महर्षि भगवान् राम के गुणों और दोषों का विचार कर गुणों की प्रशंसा एवं यत्किञ्चित् दोषों से भी अवगत रहते थे।

नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थ के परम रहस्यज्ञ श्रीराम

वस्तुतः नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थ के परमरहस्य को मात्र राम ही जानते थे, अन्य कोई नहीं। यथा—

"नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोऊ न राम सम जान जथारथ ॥"(रा० मा० २५।३।३)

भगवती सीता के वनवास में नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थ का यथार्थ सामञ्जस्य हुआ है।

नीति, लोकतन्त्रात्मक शासन की यही विशेषता होती है कि शासन की सम्पूर्ण गति-विधि जनसमूह की इच्छा का अनुसरण करनेवाली होनी चाहिये। अपने या भाई भतीजों के स्वार्थ वश, शासन कभी जनसामान्य की इच्छा को नहीं ठुकरा सकता, इस दृष्टि से शासन की सर्वोच्च सत्ता जनता में निहित मानी जाती है। धर्मनियन्त्रित राजतन्त्र में भी लोकतन्त्र के ये गुण बहुत उत्कृष्टरूप में व्यक्त होते हैं। राम ने अपनी प्रतिज्ञा में इन्हीं भावों को व्यक्त किया था—

"स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥"

स्नेह, दया, सुख आदि किं बहुना मेरी हृदयेश्वरी जनकनन्दिनी को भी लोकरञ्जन के लिए त्यागना पड़ेगा तो भी मुझे व्यथा न होगी। आत्मा या आत्मीयों के स्वार्थवश नासमझ शासक जनता की भावनाओं की उपेक्षा करते हुए अर्थदण्ड अथवा कारागार-दण्ड का विधान करते हैं। अस्त्र-शस्त्र एवं तोप-बन्दूक आदि के बल पर जनता का मुख बन्द करने का असफल प्रयत्न करते हैं, परन्तु समझदार शासक जानता है कि मात्र दण्डविधान से जनता का मुंह बन्द नहीं किया जा सकता और यदि जबरदस्ती मुंह बन्द करने का प्रयत्न किया भी गया तो फिर हजारों हजारों मुखों से ही विरोधी आवाजें निकलेंगी। अपनी दुर्नीति बदलने से ही जनता का मुंह बन्द किया जा सकता है। दण्ड-भय से नहीं।

यद्यपि श्रीजनकनन्दिनी महाराज्ञी सीता के विरोध में बहुमत नहीं था; कुछ ही लोगों को इस बात पर आपत्ति थी कि रावण की लङ्का में कई महीनों तक रहनेवाली सीता को राम ने राजमहलों में क्यों रख लिया। इस प्रकार तो हमारे घर की स्त्रियाँ भी बाहर रहकर घरों में पुनः रहने लग जायँगी जिससे मर्यादा अवश्य ही भङ्ग हो

जायगी। उनको यह नहीं विदित था कि श्रीसीता अनन्त ब्रह्माण्डों की जननी, आनन्दसिन्धु रामचन्द्र के माधुर्यसार-सर्वस्व की अधिष्ठात्री महाशक्ति थीं। उन्होंने लङ्का का अन्न-जल-फल ग्रहण किये बिना ही, इन्द्रप्रदत्त विशिष्ट चरु को एक ही बार ग्रहण कर, लङ्का में काल यापन किया था। वे भानु की प्रभा, चन्द्र की चन्द्रिका एवं गङ्गा की पवित्रता के तुल्य आनन्दसिन्धु भगवान् राम की माधुर्यसार-सर्वस्वरूपा ही थीं। पुनश्च देवताओं, ऋषियों, वानरों एवं राक्षसों के सामने श्रीसीताजी ने अग्नि-प्रवेश किया और सबके समक्ष साक्षात् वैश्वानर अग्नि ने उनके पावित्र्य को प्रमाणित किया था। श्रीब्रह्मा एवं श्रीशिव ने उनके पावित्र्य को परिपुष्ट किया था, तथापि उसका वर्णन श्रीराम के पक्ष की ओर से होने में शासकीय प्रचारमात्र समझा जा सकता था। अतः श्रीराम ने बहुमत नहीं, वरन् अल्पमत का भी आदर करते हुए श्रीसीता को अरण्यवास दिया और निष्पक्ष वीतराग महर्षियों को अवसर दिया कि वे दूध का दूध और पानी का पानी के समान अपनी ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा प्रजा के सन्मुख सत्य वस्तुस्थिति रखें, और हुआ भी ऐसा ही। जिस वन में सीता को निर्वासित किया था वहीं कुछ दूर पर महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था। उनके कुछ ब्रह्मचारी छात्र समिधा, कुश आदि लेने के प्रसङ्ग से उधर पहुँच गये और उन्होंने ही उस अलौकिक दिव्य महाशक्ति के दर्शन एवं रोदन की सूचना महर्षि को दी। महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि ने अपने ध्यानयोग से वस्तुस्थिति को समझ कर सीता से कहा—"पुत्रि! तुम्हारे पिता जनक मेरे मित्र हैं, तुम्हारे श्वसुर चक्रवर्ती दशरथ भी मेरे शिष्य थे, अतः पितृगृहतुल्य मेरे आश्रम में चलकर रहो।" श्रीसीता महर्षि के पीछे पीछे चलकर आश्रम में आयीं, महर्षि ने आश्रम की ऋषि-पत्नियों को, उनकी देख-रेख, रक्षण-पोषण आदि के लिए नियुक्त किया। वहीं उनके लव और कुश नामक दो पुत्ररत्नों का जन्म हुआ, जिनका संस्कार, शिक्षण-रक्षण सब महर्षियों की ही देख-रेख में हुआ।

धर्मधुरन्धर चक्रवर्ती नरेन्द्र राघवेन्द्र रामचन्द्र द्वारा निर्वासिता सीता को अपने आश्रम में प्रश्रय देते हुए ही महर्षि ने अपने उत्तरदायित्व को खूब समझ लिया था और उस मिथ्याभिशाप को समूलोन्मूलन कर देने के लिए वे कृतसंकल्प थे। विश्वविधाता ब्रह्मा भी यह सब महर्षि वाल्मीकि के द्वारा ही कराना चाहते थे। तमसा के तटपर विहरणपरायण क्रौञ्च-युग्म में से एक क्रौञ्च के व्याध द्वारा मारे जाने पर क्रौञ्ची का करुण क्रन्दन सुनकर महान् क्लेशानुभूति करनेवाले महर्षि के सामने सीता के करुण-क्रन्दन का दृश्य आ गया। पहले से ही करुणरस पूरित वाल्मीकि का हृदय इस दृश्य से आहत होकर छलक पड़ा और वही शोक करुणरस श्लोक बन महर्षि के मुखारविन्द से विश्वकल्याण के लिए प्रस्फुटित हो आया। "शोकः श्लोकत्वमागतः।" (वा० रा० १।१।४०) शोक श्लोक बन गया।

श्लोक था—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥" (वा० रा० १।२।१५)

भरद्वाज आदि शिष्यों ने आदि काव्य के इस प्रथम श्लोक को सुनकर धारण कर लिया। यह श्लोक, लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा की इच्छा से, ब्राह्मी महाशक्ति सरस्वती की कृपा से व्यक्त हुआ था। श्लोक के ऊपरी अर्थ में तो निषाद (व्याध) के लिए एक प्रकार का शाप ही है, यथा—हे निषाद! तुम पुरुषायुष्य तक शान्ति या प्रतिष्ठा न प्राप्त कर सकोगे, क्योंकि तुमने क्रौञ्च-युग्म में से एक को मार दिया है, परन्तु अन्तरङ्ग अर्थ यह कि रावण-मन्दोदरीरूप युग्म ही वे क्रौञ्च-युग्म थे। रामरूप लक्ष्मीपति ने ही रावण को मारा था। इस दृष्टि से यह श्लोक आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण ही है यथा—

"हे मानिषाव मायां लक्ष्म्यां निषीदतीति मानिषादस्तत्सम्बुद्धौ हे मानिषाद लक्ष्मीपते ! तुम शाश्वतीः समाः अनन्त काल तक प्रतिष्ठित रहो, क्योंकि तुमने रावण-मन्दोदरी रूप युगल के एक रावण को मारकर वेद, धर्म, संस्कृति सब का ही रक्षण किया है।"

अस्तु, महर्षि के हृदय में उक्त दृश्य के कारण नितान्त क्षोभ था ही आश्रम में लौट आने पर भी वे उसी चिन्ता में निमग्न थे कि इतने में ही लोकपितामह ब्रह्माजी आश्रम में पधारे। महर्षि ने पाद्य-अर्घ्य-मधुपर्क से उनका पूजन किया और फिर रामवियुक्ता सीता के चिन्तन में ही निमग्न हो गये।

ब्रह्मा ने बतलाया कि मेरी ही प्रेरणा से आदि काव्य **रामायण** का यह प्रथम श्लोक आप के मुख से प्रगट हुआ है। आप समाधि द्वारा राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, दशरथ, कौशल्या, कैकेयी एवं सुमित्रा आदि सभी के हसित, भाषित, इङ्गित, चेष्टित आदि का प्रत्यक्ष साक्षात्कार कर इसी प्रकार के श्लोकों द्वारा राम-सीता के परम पवित्र चरित्रों का वर्णन करो। मेरे प्रसाद से तुम्हारे इस काव्य में तुम्हारी कोई भी वाणी अनृत न होगी—

"न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।"

इस प्रकार ब्रह्मा की प्रेरणा से महर्षि ने समाधिजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा सम्पूर्ण सीता एवं राम के चरित्र का पूर्ण एवं यथार्थ अनुभव कर दिव्य श्लोकों में शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** का वर्णन किया। वह वर्णन निःसंकोच एवं परम सत्य था। संवाददाताओं एवं टेलीप्रिंटरों द्वारा भेजी गयी अथवा आँखों देखी घटनाओं में भी भ्रान्ति हो सकती है, परन्तु ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा तो सर्वथा ऋत (सत्य) का ही दर्शन होता है। और जगह तो काव्य सौष्ठव आदि की दृष्टि से कुछ औपचारिक बातें भी लायी जाती हैं, परन्तु यहाँ तो सीता-चरित्र-वर्णन की दृष्टि से शुद्ध सत्य का वर्णन अपेक्षित था।

महर्षि ने, सीता-पुत्र लव और कुश का यथावत् संस्कार किया और वेदों; धनुर्वेद, गान्धर्ववेद आदि उपवेदों का भी साङ्गोपाङ्ग उन्हें शिक्षण दिया। तत्पश्चात् वेदों के उपबृंहण के लिए ही **रामायण** का अध्यापन किया और तन्त्री (वीणा) के तालस्वर के साथ संगीतरूप में **रामायण** का अभ्यास कराया। वे दोनों ही बालक दीप से उद्भूत दो दीपों के समान ही सर्वथा श्रीराम के ही अनुरूप थे। सीता-राममय दिव्य दम्पती की दिव्य दीप्ति एवं प्रभाव से युक्त थे। अश्विनीकुमारद्वय से भी अत्यधिक सुन्दर वे दोनों बालक जब स्वरसम्पदा से युक्त वीणा-वादन-पूर्वक **रामायण** का गायन करते थे तो सभी मोहित हो जाते थे। अनेक बार उनका **रामायण** गान सुनकर ऋषिगण मन्त्रमुग्ध हो जाते थे एवं प्रेमविह्वल होकर कोई ऋषि अपना कमण्डलु, कोई मेखला, कोई वृषी आदि पुरस्कार के रूप में देने लगते थे। श्रीराम के अश्वमेधयज्ञ में निमन्त्रित होकर महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि एवं उनके सब आश्रम-वासी नैमिषारण्य पधारे हुए थे। महर्षि दोनों बालकों (लव और कुश) को फल-मूलभोजन कराकर कुछ साथ के लिए भी दे देते थे और कहते कि जाकर अवधवासियों को **रामायण** सुनाओ और भूख लगने पर अपना ही फल खाना, प्यास लगने पर अपने आप ही नदी या कूप से जल निकालकर पीना एवं किसी के कुछ देने पर भी लेना नहीं। परन्तु जो श्रद्धा से सुने उसे **रामायण** सुनाना।

महर्षि के आदेशानुसार दोनों बालकों ने अयोध्याकाण्ड का ही प्रसङ्ग अवधवासियों को सुनाना प्रारम्भ किया : जो भी इस प्रसङ्ग को सुनता मन्त्रमुग्ध हो जाता। आखों देखी पुरानी घटनाओं का प्रत्यक्ष चित्र उनके सामने उपस्थित हो जाता था। कितना सुन्दर, सत्य, सरल एवं हृदयस्पर्शी था वह चरित्रचित्रण। उसे सुनकर सबको आश्चर्य होता था। लोग बालकों के गान से प्रभावित होकर उन्हें बहुत कुछ देना चाहते थे, किन्तु वे कुछ लेते न थे। यह समाचार राम-दरबार में भी गया। वहाँ भी सबको उस आश्चर्यजनक चरित्र-चित्रण के श्रवण द्वारा रसास्वादन की उत्सुकता हुई। अश्विनीकुमारों के तुल्य सुभग सीता-पुत्रों ने ऋषिकुमार के रूप में, वहाँ भी अपने स्वर,

संगीतसौष्ठव तथा सौम्य सुन्दर दिव्य आकृति से सबको प्रभावित किया। उनके **रामायण** गान से राम, भरत, लक्ष्मण शत्रुघ्न, वसिष्ठादि महर्षि एवं अमात्यवर्ग आदि सभी मोहित हो उठे। श्रीरामचन्द्र ने **रामायण गान** के अन्त में लक्ष्मण को आदेश दिया कि इन बालकों को शतभार सुवर्ण एवं रत्न प्रदान किया जाय, परन्तु उन्होंने तो परमनिःस्पृहरूप से स्पष्ट कहा कि हम लोग कन्द-मूलफलाशी, वल्कलवसनधारी आश्रमवासी हैं, हमें आपके सुवर्ण-रत्नों की अपेक्षा नहीं है। पुनश्च यदि आप लोगों की इच्छा हो तो हम लोग **रामायण**-श्रवण करा सकते हैं। विशेषरूप से **रामायण**-श्रवण का प्रबन्ध किया गया। संसार के सभी गण्यमान ऋषि, महर्षि, राजर्षि, चातुर्वर्ण्य प्रजा के विशेष प्रतिनिधि, देव, असुर, गन्धर्व सभी वहाँ उपस्थित हुए। उन्होंने लोकोत्तर सौन्दर्य, अद्भुत वेदवेदाङ्ग-पाण्डित्य, दिव्य वीणावादन और मनोहर स्वर, परम निःस्पृहता एवं अद्भुत त्याग से सब के मन को वश में कर लिया।

ऊँचे से ऊँचे गुण भी सस्पृहता से फीके पड़ जाते हैं। सस्पृह की अच्छी से अच्छी सच्ची बातों पर लोगों को आदर एवं विश्वास नहीं होता, परन्तु जो निःस्पृह एवं त्यागी होता है उसी वक्ता का जनता पर समुचित प्रभाव पड़ता है। फिर भी यहाँ तो कहना क्या? निःस्पृह परमविरक्त महर्षि की ऋतम्भरा प्रज्ञा द्वारा प्रत्यक्ष दृष्ट 'सत्यं शिवं सुन्दरम्'' **रामायण महाकाव्य** का निःस्पृह ऋषिकुमारों द्वारा गायन सुनकर सबको वर्णित घटना के सम्बन्ध में पूर्णविश्वास हो गया। स्थाली-पुलाकन्याय से सम्पूर्ण चरित्र की सत्यता में सबका विश्वास हो गया। अयोध्याकाण्ड की सत्यता में सबका विश्वास हो गया। अयोध्याकाण्ड की सत्यघटनाओं को सुनकर अरण्य, किष्किन्धा एवं लङ्काकाण्ड के चरित्र-श्रवण की सबको उत्कट उत्कण्ठा हुई। सीता-चरित्र की जिज्ञासा भी जागरूक थी ही। सबने सत्य घटनाओं को मन्त्रमुग्ध की भाँति सुना और श्रद्धा तथा विश्वास से भगवती सीता के परम-पवित्र चरित्र की प्रशंसा की। कुटिलों को भी अपनी दुर्भावना पर पश्चात्ताप हुआ। **''सीतायाश्चरितं महत्''** (वा० रा० १।४।७) के अनुसार उसमें प्रधानरूप से सीता-चरित्र का वर्णन था, परन्तु पतिव्रता सीता का चरित्र जब तक उसके पति भगवान् के चरित्र का वर्णन न होता तब तक वह अपूर्ण ही रहता। अतः उसमें राम-चरित्र का वर्णन भी किया गया।

यह वर्णन राजकीय प्रचारमात्र (प्रोपेगण्डा) न था, किसी राजकीय कवि की काव्यकल्पना न थी, किन्तु यह थी राजाश्रय से दूर रहकर, राजान्न से बच कर, कन्दमूल, फल तथा वल्कलवसन पर निर्भर, तपोनिष्ठ, समाधिसम्पन्न महर्षि प्राचेतस बाल्मीकि की समाधि भाषा, जिसका गान कर रहे थे, उन महर्षि के ही परम प्रिय शिष्य, परम विद्वान्, परम त्यागी, वनवासी देवी के पुत्र लव और कुश। ऐसी स्थिति में जनता का सुस्थिर विश्वास क्यों न होता और कुटिल हृदयों के भी काले कल्मष उससे क्यों न धुल जाते? सभी के हृदय पिघल गये, कण्ठ गद्गद हो गये, अङ्ग रोमाञ्चकण्टकित हो उठे, आँखों से आनन्दाश्रु एवं शोकाश्रु की धारा वह निकली। राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, माताएँ एवं परिवार के अन्य लोग भी प्रेम-समुद्र में निमग्न हो गये। वसिष्ठादि ऋषिगण भी प्रेमोद्रेक में अधीर हो उठे। महाशक्ति भगवती चिदानन्दस्वरूपा सीता के उज्ज्वल चरित्र ने सब के अन्तःकरण एवं अन्तरात्मा को उद्योतित कर दिया। महर्षि वाल्मीकि के रामायण महाकाव्य से सबको स्पष्ट विदित हुआ कि सीता के असाधारण तेज के सामने रावण का प्रभाव सर्वथा नगण्य था। श्रीसीता अपने अखण्ड पातिव्रत्य तेज के प्रभाव से रावण की सत्ता में रहती हुई भी रावण को तृणतुल्य समझती थी। और सिंही के तुल्य श्रीसीता ने कहा था—दुष्ट रावण, सावधान, मेरे भगवान् राम का सन्देश एवं आदेश न होने और अपनी तपस्या-पालन करने के अभिप्राय से मैं तुझे अपने तेज से भस्म नहीं कर रही हूँ। अन्यथा मैं क्षण भर में तुम्हें अपने भस्मार्ह तेज से भस्म कर सकती हूँ—

> **''असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।**
> **न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥''** (वा० रा० ५।२२।२०)

ऐसे अवसरों पर रावण में श्रीसीता के सामने स्थिर रहने की हिम्मत नहीं रहती थी। यह कोई कवि-कल्पना नहीं अपितु महर्षि की समाधि-भाषा की सत्य वाणी है।

वहीं कुछ क्षणों के पश्चात् जब राक्षसियों ने सीता को यह समाचार सुनाया कि सीते, जो वानर आपके पास आया था, वह पकड़ लिया गया और उसकी पूंछ में घृत-तेलसने वस्त्र लपेट कर आग लगा दी गयी। जब सीता ने यह समाचार सुना तो उन्होंने अग्नि से कहा, अग्ने ! यदि मैंने समुचितरूप से गुरुशुश्रूषा की है और मेंने ठीक तपस्या तथा पातिव्रत धर्म का परिपालन किया है तो तुम हनुमान् के लिए शीतल हो जाओ—

"यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥" (वा० रा० ५।५३।२६)

सीता के आदेशानुसार दहनशील अग्निदेव शीतल हो गये। श्रीहनुमान् को आश्चर्य हो रहा था कि मेरी पुच्छाग्नि से सम्पूर्ण लङ्का भस्मीभूत हो रही है, परन्तु मेरी पूंछ में तो उष्णता का लेश भी नहीं प्रतीत हो रहा है। हनुमान् ने यह निश्चय किया था कि यह महाशक्ति सीता के तप एवं त्याग तथा पातिव्रत का ही प्रभाव है।

जो सीता अपने प्रभाव से अग्नि को ठण्डा कर सकती थी वह अवश्य ही अपने तेज से रावण को भस्म कर सकती थी, यह बात सरलता से समझी जा सकती है।

श्रीसीता के विरोधी कुटिल समाज ने भी उनका भक्त होकर पश्चात्ताप की अश्रुधाराओं से अपने कल्मषों को धो डाला। यह थी महर्षि वाल्मीकि की लोकोत्तर सुमधुर कृति की कुशलता। वे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल हुए और यह थी श्रीराघवेन्द्र की नीति जिसके फलस्वरूप ये घटनाएँ घटित हुईं। जो काम किसी दण्डविधान से या प्रोपेगण्डा से कभी सम्भव नहीं था वह उनकी नीति से अनायास सुसम्पन्न हुआ। फिर तो वसिष्ठ ने भी अपनी तपस्या एवं योगबल के प्रभाव से सत्य वस्तु का साक्षात्कार करके जनता को सीताचरित्र की निर्मलता का ज्ञान कराया। त्रिजटा एवं विभीषण-पत्नी ने भी सीता के परमपवित्र चरित्र का बखान किया। अन्त में परमानन्द सच्चिन्मयी पराम्बा सीता का अपने परम दिव्य रूप से महामहिम वैभवशालिनी माधवी देवी के अङ्क में प्रत्यक्ष प्राकट्य भी सब की भ्रान्तियों को मिटाकर उनकी परम उपास्यता का प्रमाण बना।

श्रीसीता रामचन्द्र की काया की छाया थी। राम-रूप भानु की प्रभा एवं रामरूप चन्द्र की चन्द्रिका थी, रामरूप ईश्वर की महाशक्तिरूपा प्रकृति थी एवं आनन्दसिन्धु श्रीराम की माधुर्यसार-सर्वस्व की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी थी। बहिरङ्ग दृष्टि से ही राम-सीता का विप्रयोग सम्भव था, अन्तरङ्ग दृष्टि से तो यह विप्रयोग सम्भव ही न था। इसी लिए जैसे लंका में सीता की छाया ही रह सकती थी वैसे वनवास में भी छाया ही थी। वस्तुतः अमृत से जैसे उसकी मधुरिमा का पार्थक्य असम्भव है वैसे ही राघवेन्द्र श्रीराम से सीता का पार्थक्य असम्भव ही था। परन्तु वह काल्पनिक विप्रयोग भी राम के लिए असह्य वेदना का विषय था। अपने हाथों को राम निष्करुण कहते थे—

"निर्भरगर्भखिन्नसीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते।

हे हस्त ! तुम आसन्नप्रसवा सीता के निर्वासन में दक्ष राम के हस्त हो, अतः तुम में करुणा कैसे हो सकती है ?

परन्तु स्नेह एवं प्रेम के उद्रेक में राम ने कर्तव्य से विचलित न होने की प्रतिज्ञा ले रखी थी। वे किसी भी स्नेह, दया या सुख के मोह में पड़ कर लोकाराधन, प्रजारञ्जन के कार्य से कैसे विमुख हो सकते थे और उन्होंने सीता का भी इसी में हित समझा था और वह हुआ भी। इस कठोरता का आश्रयण किये बिना महर्षि वाल्मीकि

का समागम नहीं हो सकता था, उनके द्वारा विश्वपावन **रामायण महाकाव्य** का निर्माण सम्पन्न न हो पाता और सीता के सुपुत्र लव-कुश इस प्रकार के संस्कारी विद्वान्, बलवान्, धनुष्मान्, कीर्तिमान् तथा प्रतिभावान् नहीं बन सकते थे। सीता का कष्ट राम का ही कष्ट था। स्वयं राम ने ही सीता को वनवास देकर स्वयं को कष्ट में डालकर सीता के निर्मल, निष्कलङ्क, परमपवित्र उज्ज्वल चरित्र को संसार के सामने उपस्थित किया था। परम सानुक्रोश होते हुए भी राम निरनुक्रोश से बन गये थे। श्रीराम ने लव-कुश से पूछा था "तुम्हारी माता का क्या नाम है?" उन्होंने कहा "हमारी माँ का नाम वनदेवी है।" पिता का नाम पूछने पर कुश ने कहा "हम लोगों को मालूम नहीं।" परन्तु लव ने कहा मैं जानता हूँ मेरे पिता का नाम निरनुक्रोश है, क्योंकि एक दिन माता ने कहा था "निरनुक्रोशतनयौ।" श्रीराम के नेत्रों में अश्रु आ गये थे।

वस्तुतः जगज्जननी सीता राम के हृदय को पहचानती थीं। पहले उन्होंने वन में छोड़कर लौटते हुए लक्ष्मण से कहा था—

'वाच्यस्त्वया मद्वचनात् स राजा वह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।
मां लोकावादश्रवणादहासीः श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य॥" (रघुवं० १४।६१)

अर्थात् लक्ष्मण, मेरी तरफ से उन राजा से यह कहना कि आप के सामने ही मेरी अग्निपरीक्षा एवं अग्निशुद्धि हुई थी, फिर भी आपने लोकवाद-श्रवण के कारण जो मेरा परित्याग किया है क्या यह आप के कुल एवं श्रुत के सदृश है? परन्तु दूसरे ही क्षण सीता ने फिर कहा—"नहीं, प्रभो! आप तो प्राणिमात्र के हितैषी एवं कल्याण की कामना करनेवाले हैं, फिर मेरे सम्बन्ध में आपकी अन्यथाबुद्धि कैसे हो सकती है। वज्रोपम असह्य श्रीचरणविप्रयोगरूप दुःख तो मेरे ही पूर्वजन्मों के कर्मों का फल है"—

"कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः।
ममैव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः॥" (रघुवं० १४।६२)

पतिव्रतामुकुटशिरोमणि सीताजी ने आगे कहा कि "मैं प्रसव के पश्चात् सूर्य में दृष्टि लगाकर ऐसी तपस्या करूँगी जिससे जन्मान्तर में भी आप ही मेरे भर्ता हों और फिर कभी ऐसा विप्रयोग न हो"—

"साहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥" (रघुवं० १४।६९)

श्रीराम ने सीता को वन भेजकर स्वयं तपस्या करते हुए ग्यारह हजार वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए यागादि के लिए विहित होने पर भी दूसरा परिणय नहीं किया। सुवर्णमयी सीता को ही अपने दक्षिणाङ्क में बैठाकर अश्वमेधादि बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया था। श्रीराम का स्मरण कर विह्वल होने पर श्रीसीता की सखी वासन्ती कहती थी कि सखी! तुम ऐसे निष्ठुर राम का स्मरण करके क्यों दीर्घ एवं उष्ण उच्छ्वास लेती हो। सीता ने कहा; "सखि! राम निष्ठुर नहीं हैं। मैं बहिरङ्ग दृष्टि से ही उनसे दूर हूँ, वस्तुतः उनके हृदय की रानी मैं ही हूँ। सखि, श्रीराम के हृदय को अन्य किन्हीं स्त्रियों का श्वास कभी स्पर्श नहीं कर सका।"

इस प्रकार श्रीराम ने नीति के साथ ही पूर्णरूप से प्रीति का भी परिपालन किया था। श्रीराम ने अनन्त अद्भुत अनुराग के साथ ही सीता को वनवास देकर, सीता को भी अवसर दिया कि वे महर्षियों के मुखारविन्द से अध्यात्मचर्चा श्रवण कर सकें और समाधि-निष्ठ होकर आध्यात्मिक उच्च स्थिति की परमार्थ साधना में प्रतिष्ठित हों। स्वयं भी राम विषयविरक्त होकर ब्रह्मनिष्ठा का सम्पादन कर सके। इस प्रकार प्रजारञ्जन के साथ साथ परमार्थ-साधन भी सम्पन्न हो।

किसी भी मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् के लिए मातृपवित्रता-ख्याति अत्यावश्यक है। अतः अपने उत्तराधिकारी लव-कुश की उच्च स्थिति के लिए सीता-चरित्र का उज्ज्वल निष्कलङ्क होना अत्यावश्यक है। राजमहलों में पालन, पोषण एवं संस्कारों की अपेक्षा, आरण्यक ऋषियों के आश्रमों का पालन, पोषण एवं संस्कार बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसी लिए अपने उत्तराधिकारी पुत्रों का उत्कृष्ट संस्कार एवं उत्कृष्ट शक्तिशाली चरित्र निर्माण हो सके, इस कार्य में सीता का वनवास अधिक उपयोगी था।

महर्षि श्रीवाल्मीकिजी ने स्वयं ही वेदवेदाङ्गों की शिक्षा के समान ही, धनुर्वेद एवं गन्धर्ववेदादि की भी शिक्षा दी थी। इसी लिए लव-कुश धनुर्वेद के भी प्रतिष्ठित रहस्यज्ञ हुए थे। अयोध्या, किष्किन्धा, लङ्का एवं संसार के सभी शूरवीरों ने उनका लोहा माना था। रामाश्वमेध के अश्व को अवरुद्ध कर लव-कुश ने श्रीराम सहित उनके सभी शूर-वीरों के साथ युद्ध में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की थी। इस तरह सीता-निर्वासनरूप एक कार्य में भी नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थ सब का सामञ्जस्य राम ने सम्पादित किया था।

नीतिज्ञों ने नीतिनिष्ठा में राम को ही सर्वोत्कृष्ट आदर्श माना है—

"यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थानन्तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति॥" (अनर्घराघव १।४)

न्याय पर चलनेवाले के साथी वानर, भालू, गृध्र आदि पशु-पक्षी भी बन जाते हैं। न्याय का पथ छोड़कर चलनेवाले का भाई भी साथ छोड़ देता है। दृष्टान्तरूप में श्रीराम एवं रावण को देखा जा सकता है। कुछ पाश्चात्य अज्ञ कुप्रचारक दुःसंस्कारों से दूषित मस्तिष्कवाले अपने अधकचरे **रामायण**-ज्ञान का दुष्प्रचार में दुरुपयोग करते हैं। वे सीता के लङ्का-निवास एवं वनवास दोनों के **रामायण**वर्णित स्वरूप को विकृत करके उससे श्रीसीता के दुश्चरित्र होने तथा दण्डित होने की कल्पना करते हैं। श्रीसीता के निर्वाण को, सीता को राम के द्वारा जीवित धरती में गड़वा देने के रूप में वर्णन करते हैं और इसे राम की क्रूरता और पिछड़े हुए जङ्गलियों के उदाहरण के रूप में उपस्थित करते हैं।

परन्तु यह उनका उपहासास्पद अर्धकुक्कुटीन्याय का उदाहरणमात्र है। जैसे कोई आधी मुर्गी का भक्षण करके आधी को अण्डा देने के लिए रखना चाहता है उसी प्रकार ऐसे लोग **रामायण** के ही आधार पर श्रीसीता एवं राम का अस्तित्व मानकर रामायण के द्वारा ही वर्णित श्रीसीता-राम के परमेश्वरत्व तथा उनके दिव्य अलौकिक चरित्रों को अस्वीकार कर देते हैं।

वस्तुतः **रामायण** आदि भारतीय आर्ष-ग्रन्थों का प्रामाण्य अस्वीकार करने से श्रीसीता एवं राम का अस्तित्व किसी भी आधुनिक इतिहास एवं प्रत्यक्ष तथा अनुमान से नहीं सिद्ध हो सकता। अतः यदि रामायण आदि का प्रामाण्य मान्य है तब तो **रामायण** में वर्णित श्रीसीता और राम के दिव्य चरित्रों को मानना भी अनिवार्य ही है। यदि रामायण का प्रामाण्य नहीं मान्य है तो फिर सीता और राम का अस्तित्व तथा विरोधियों द्वारा कल्पित घटनाओं की भी सिद्धि नहीं हो सकती। अन्यथा ईसा आदि सम्बन्धी इतिहासों में भी उनके विरुद्ध बहुत सी कल्पनाएँ की जा सकती हैं, परन्तु यह शिष्टता, सभ्यता न होकर असभ्यता की पराकाष्ठा ही होगी।

रामायण के अनुसार श्रीसीता के निर्मल निष्कलङ्क परमपवित्र चरित्र की प्रामाणिकता राक्षसों तथा वानरों के समक्ष साक्षात् अग्नि ने, ब्रह्मा ने, इन्द्र ने तथा सभी देवताओं ने सिद्ध कर दी है। सीतावनवास का पवित्र उद्देश्य भी पूर्ववर्णित प्रकार से श्रीराम का नीति, प्रीति, परमार्थ एवं स्वार्थ का सामञ्जस्य सम्पादन करना ही है। श्रीसीता का निर्णय तो **रामायण**वर्णित दिव्य चरित्र है, जिससे सर्वसाधारण को भी सीता के साक्षात् दिव्य परमेश्वरी होने का विश्वास हो जाता है। श्रीसीता ने धरती देवी से प्रार्थना की कि यदि मैं पवित्र तथा निष्कलङ्क हूँ तो कृपा

करके आप स्वयं प्रकट होकर मुझे अपने अङ्क में स्थान दें। यह कहते ही तत्क्षण धरती फटती है, उसमें से एक दिव्य परमतेजोमय प्रकाशमय सिंहासन प्रकट होता है। उसपर विराजमान विष्णु-पत्नी माधवी मूर्तिमती भगवती धरती श्रीसीता को प्यार से अपने अङ्क में बैठा लेती हैं और सबके देखते देखते अन्तर्धान हो जाती हैं। प्रजा में जय-जयकार होने लगता है।

भारत में आज भी कितनी सतियाँ जनसमूह के समक्ष ही अपने शरीर से दिव्य अग्नि प्रकट कर पति-सहगमन करती हैं। श्रीसीता का तो, **रामायण** के अनुसार, जन्म भी पृथ्वी से ही हुआ था। ये सब बातें जड़वादियों की समझ में भले ही न आयें, परन्तु आध्यात्मिक तथा आधिदैविक तत्त्वों में विश्वास करनेवालों के लिए ऐश्वर्य तथा माधुर्य की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी तथा श्रीगङ्गा की अधिष्ठात्री दिव्यसुरेश्वरी के समान ही अखण्ड भूमण्डल की अधिष्ठात्री विष्णुपत्नी माधवी सर्वमान्य तत्त्व है।

अतः उससे श्रीसीता का आविर्भाव तथा उसके अङ्क में निवेश असम्भव नहीं है। साथ ही देवता विग्रहवान् होते हैं। देवता स्वेच्छानुसार दिव्य लीलाविग्रह धारण कर सकते हैं। केन उपनिषद् में ब्रह्म का दिव्य अप्रधृष्य तेजोमय यक्षरूप में आविर्भाव श्रुत है। छान्दोग्य में आदित्यमण्डलान्तर्गत पुरुष का हिरण्यश्मश्रु, हिरण्यकेश, पुण्डरीकनेत्र तथा ज्योतिर्मय स्वरूप स्पष्टरूप से वर्णित है। मन्त्रसंहिताओं में भी नीलग्रीव शिव तथा त्रिविक्रम विष्णु का श्रीविग्रह वर्णित है।

इसी दृष्टि से सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् विष्णु या ब्रह्म का रामस्वरूप में एवं साधिष्ठान दिव्य-शक्ति का श्रीसीतारूप में आविर्भाव शास्त्र एवं युक्तितर्कसङ्गत है। श्रीकामिल बुल्के ने भी अपनी रामकथा में राम के लौकिक रूप का ही वर्णन किया है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वेदों में कहीं भी श्रीराम का वर्णन नहीं है। यद्यपि दशरथ का वर्णन वेदों में है, यह वह स्वयं मानते हैं, परन्तु वे वेदशब्द से केवल मन्त्र-संहिता ही समझते हैं, जब कि पूर्वोत्तरमीमांसक, कल्पसूत्रकार तथा सभी **मिताक्षरा** प्रभृति निबन्धकार मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को ही वेद मानते हैं। उपनिषदों में पूर्णरूप से श्रीराम, श्रीसीता तथा श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीनृसिंह आदि का शुद्ध सच्चिदानन्दघन परब्रह्म होना अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस विषय में **रामतापनीय, रामरहस्य, रामतारसार, गोपालतापनीय, नृसिंहतापनीय** आदि उपनिषदें द्रष्टव्य हैं। मन्त्र भाग में भी रामादि दिखाये जा चुके हैं।

जो ईसाई श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि दिव्य चरित्रों पर विश्वास नहीं करते उन्हें बाइबिल में वर्णित ईसा के दिव्य चरित्रों को भी मिथ्या मानना पड़ेगा। फिर कुमारी के उदर से ईसा का आविर्भाव भी कैसे सिद्ध होगा ?

कुमारीगर्भसंभूत ईसा ईश्वरपुत्र है ? या किसी नारकादि विशेष के सम्बन्ध से विवाह के पूर्व ही किसी कुमारी से ईसा की उत्पत्ति हुई, इसका निर्णय कैसे हो सकेगा ?

रघुवंश के अनुसार रघुवंशियों की नीतिमत्ता

"यदुवाच न तन्मिथ्या यद्ददौ न जहार तत्।
सोऽभूद् भग्नव्रतः शत्रूनुद्धृत्य प्रतिरोपयन्॥" (रघुवं० १७।४२)

महाराज अतिथि ने दान और रक्षा के विषय में जो कुछ कहा वह मिथ्या नहीं हुआ, जो उन्होंने दान दे दिया उसका अपहरण नहीं किया। हाँ, एक ही विषय में उनका व्रत टूटा जो उन्होंने शत्रुओं को उजाड़कर पुनः बसाया।

"वयोरूपविभूतीनामेकैकं मदकारणम्।
तानि तस्मिन् समस्तानि न तस्योत्सिषिचे मनः॥" (रघुवं० १७।४३)

अवस्था (यौवन), रूप (सौन्दर्य), विभूति (धनसम्पत्ति) इनमें से एक एक भी गर्व का कारण होता है। अतिथि में ये सभी वस्तुएँ थीं, परन्तु उनका मन गर्वीला नहीं हुआ।

"तपो रक्षन् स विघ्नेभ्यस्तस्करेभ्यश्च सम्पदः।
यथास्वमाश्रमैश्चक्रे वर्णैरपि षडंशभाक् ॥" (रघुवं० १७।६५)

विघ्नों से तपस्वियों के तप की तथा चोरों से प्रजाओं की सम्पत्ति की रक्षा करने के कारण उस महाराज अतिथि को ब्राह्मणादि वर्णों, ब्रह्मचारी आदि आश्रमियों ने अपने-अपने तप और सम्पत्ति के छठे हिस्से का भागी बना दिया।

"खनिभिः सुषुवे रत्नं क्षेत्रैः सस्यं वनैर्गजान्।
दिदेश वेतनं तस्मै रक्षासदृशमेव भूः ॥" (रघुवं० ७१।६६)

रक्षा के अनुरूप ही पृथ्वी ने खानों से रत्न, खेतों से अन्न और वनों से हाथियों का उत्पादन कर उस राजा अतिथि के लिए वेतन दिया।

"स गुणानां बलानाञ्च षण्णां षण्मुखविक्रमः।
बभूव विनियोगज्ञः साधनीयेषु वस्तुषु ॥" (रघुवं० १७।६७)

कार्तिकेय के समान पराक्रमी वह राजा अतिथि सन्धि, विग्रह आदि छह गुणों एवं मूल भृत्यादि बलों का प्रयोजन के अनुसार विनियोजन का यथार्थ ज्ञाता था।

"कूटयुद्धविधिज्ञेऽपि तस्मिन् सन्मार्गयोधिनि।
भेजेऽभिसारिकावृत्तिं जयश्रीर्वीरगामिनी ॥" (रघुवं० १७।६९)

वह राजा अतिथि कूटयुद्ध का विशेषज्ञ होता हुआ भी अपनी वीरता के कारण सरल धार्मिक युद्ध ही करता था। विजयश्री अभिसारिका के समान उसका स्वयं वरण करती थी, कारण वह वीर पुरुष के ही पास पहुँचती है।

"प्रवृद्धो हीयते चन्द्रः समुद्रोऽपि तथाविधः।
स तु तत्समवृद्धिश्च न चाभूत्ताविव क्षयी ॥" (रघुवं १७।७१)

चन्द्रमा बढ़कर क्षीण होता है और उसी तरह समुद्र भी बढ़कर क्षीण होता है। राजा अतिथि उनके समान बढ़ा अवश्य पर उनके समान क्षीण नहीं हुआ।

"स्तूयमानः स जिह्राय स्तुत्यमेव समाचरन्।
तथापि ववृधे तस्य तत्कारिद्वेषिणो यशः ॥" (रघुवं० १७।७३)

प्रशंसनीय कार्य करने पर भी यदि कोई अतिथि राजा की प्रशंसा करता था तो वह अपनी प्रशंसा सुन कर लज्जित ही होता था। प्रशंसकों का द्वेषी होने पर भी उसका यश बराबर बढ़ता ही गया।

"इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेंऽशवः।
गुणास्तस्य विपक्षेऽपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम् ॥" (रघुवं० १७।७५)

कमल में चन्द्रमा की और कुमुद में सूर्य की किरणे प्रवेश नहीं पा सकती। परन्तु गुणवान् महाराज अतिथि के गुण शत्रुओं के यहाँ भी स्थान पाते थे। अर्थात् शत्रु भी उनके गुणों की प्रशंसा करते थे।

"पराभिसन्धानपरं यद्यप्यस्य विचेष्टितम्।
जिगीषोरश्वमेधाय धर्म्यमेव बभूव तत् ॥" (रघुवं० १७।७६)

अश्वमेधयज्ञ करने के लिए अतिथि राजा ने विजय की कामना से शत्रुओं के साथ छलछद्मप्रधान कर्म किया तथापि छल-छद्म धर्मयुक्त ही रहा।

"अनित्याः शत्रवो बाह्या विप्रकृष्टाश्च ते यतः।
अतः सोऽभ्यन्तरान्नित्यान् षट् पूर्वमजयद्रिपून् ॥" (रघुवं० १७।४५)

बाहर के शत्रु कार्यवशात् कभी शत्रु बन सकते हैं और कभी मित्र भी बन सकते हैं, अतः वे अनित्य शत्रु हैं तथा वे दूर भी रहते हैं, इसलिए अतिथि राजा ने अपने हृदय में रहनेवाले काम, क्रोध आदि छः शत्रुओं के ऊपर पहले विजय प्राप्त की।

"कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम्।
अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेष सः ॥" (रघुवं० १७।४७)

पराक्रमरहित केवल नीति कायरता है और नीतिरहित केवल पराक्रम हिंसकपना है, अतः अतिथि ने नीति और पराक्रम दोनों का सम्बन्ध करके सफलता प्राप्त करने का निश्चय किया।

"न तस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः।
अदृष्टमभवत्किञ्चिद् व्यभ्रस्येव विवस्वतः ॥" (रघुवं० १७।४८)

गुप्तचरों का जाल बिछाने के कारण उस राजा अतिथि को अपने राज्य में कुछ भी वैसे ही अज्ञात नहीं था जैसे मेघरहित सूर्य को कुछ भी अज्ञात नहीं रहता।

"परेषु स्वेषु च क्षिप्तैरविज्ञातपरस्परैः।
सोऽपसर्पैर्जजागार यथाकालं स्वपन्नपि ॥" (रघुवं० १७।५१)

राजा अतिथि समयानुसार सोते हुए भी परस्पर अविज्ञात गुप्तचरों को शत्रु-देश में और अपने अधिकारियों में नियुक्त कर उनके द्वारा सब कुछ जानते रहते थे।

"दुर्गाणि दुर्ग्रहाण्यासंस्तस्य रोद्धुरपि द्विषाम्।
नहि सिंहो गजास्कन्धी भयाद् गिरिगुहाशयः ॥" (रघुवं० १७।५२)

राजा अतिथि स्वयं ही दूसरे (शत्रु) लोगों के किलों का अवरोधक था; अतिथि के किले का दूसरे अवरोध नहीं कर सकते थे। ऐसा कहना ठीक न होगा कि ऐसी स्थिति में उसे किले की क्या आवश्यकता थी ? कारण स्वभाव से ही राजा के लिए किला अपेक्षित होता है। हाथियों के झुण्डपर आक्रमण करनेवाला सिंह भय से गिरिगुहा में नहीं सोता, किन्तु स्वभाव से ही सोता है।

"भव्यमुख्याः समारम्भाः प्रत्यवेक्ष्या निरत्ययाः।
गर्भशालिसधर्माणस्तस्य गूढं विपेचिरे ॥" (रघुवं० १७।५३)

राजा अतिथि के कार्य कल्याणप्रधान होते थे और वे आरम्भ करने के पहले उनपर भली भाँति विचार भी कर लेते थे, इसलिए उनमें किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती थी। जैसे धान के दाने भीतर ही भीतर परिपाक (फल) को प्राप्त होते हैं वैसे ही उनके काम भी गुप्तरूप से आरम्भ होकर पूर्ण हो जाते थे।

"अपथेन प्रववृते न जातूपचितोऽपि सः।
वृद्धौ नदीमुखेनैव प्रस्थानं लवणाम्भसः ॥" (रघुवं० १७।५४)

अतिथि समृद्ध होने पर भी अपथ से नहीं चले अर्थात् मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं किया। ज्वार आने पर समुद्र नदी-प्रवेश के मार्ग से ही बढ़ता है, दूसरे मार्ग से नहीं।

"शक्येष्वेवाभवद्यात्रा तस्य शक्तिमतः सतः ।
समीरणसहायोऽपि नाम्भःप्रार्थी दवानलः ।।" (रघुवं० १७।५६)

अतिथि यद्यपि शक्तिसम्पन्न थे तथापि अपने से हीन शक्तिवाले राजाओं के ऊपर ही उन्होंने आक्रमण किया । दवाग्नि वायु की सहायता पाकर भी जलाने के लिए तृण, काष्ठादि की ही अपेक्षा रखती है, जल की नहीं ।

"न धर्ममर्थकामाभ्यां बबाधे न च तेन तौ ।
नार्थं कामेन कामं वा सोऽर्थेन सदृशस्त्रिषु ।।" (रघुवं० १७।५७)

अतिथि ने अर्थ और काम परायण होकर धर्म को खतरे में नहीं डाला । न तो धर्मपरायण होकर अर्थ और काम को ही सङ्कट में डाला । काम से अर्थ और अर्थ से काम को उन्होंने पीड़ित नहीं किया । वह धर्म, अर्थ और काम तीनों में समवर्ती रहे ।

"हीनान्यनुपकर्तॄणि प्रवृद्धानि विकुर्वते ।
तेन मध्यमशक्तीनि मित्राणि स्थापितान्यतः ।।" (रघुवं० १७।५८)

क्षीणशक्ति मित्र उपकार नहीं कर सकता और बढ़ा हुआ मित्र विकृत हो सकता है, इसलिए अतिथि ने मध्यमशक्ति मित्रों की स्थापना की ।

"परात्मनोः परिच्छिद्य शक्त्यादीनां बलाबलम् ।
ययावेभिर्बलिष्ठश्चेत् परस्मादास्त सोऽन्यथा ।।" (रघुवं० १७।६०)

अतिथि अपने और शत्रु के देश, काल, शक्ति और परिस्थिति का बलाबल पहले निश्चित करते थे । बलवान् होने पर आक्रमण करते थे अन्यथा सन्धि आदि की वार्ता से शत्रुओं को सान्त्वना देते हुए अपने यहाँ रहते थे ।

"कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसङ्ग्रहः ।
अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्द्यते ।।" (रघुवं० १७।५९)

खजाने से ही दुनिया में आदर होता है, इसलिए अतिथि ने खजाने का संग्रह किया, क्योंकि जलपरिपूर्ण मेघ का ही चातक अभिनन्दन करता है ।

"परकर्मापहः सोऽभूदुद्यतः स्वेषु कर्मसु ।
आवृणोदात्मनो रन्ध्रं रन्ध्रेषु प्रहरन् रिपून् ।। (रघुवं० १७।६१)

अतिथि सदा शत्रुओं के कार्यों में रोड़ा अटकाता हुआ अपने कर्म में सदा उद्यत रहता रहा । शत्रुओं के रन्ध्र में प्रहार करता हुआ वह अपना रन्ध्र सदा छिपाये रहता था ।

"सर्पस्येव शिरोरत्नं नास्य शक्तित्रयं परः ।
स चकर्ष परस्मात्तदयस्कान्त इवायसम् ।। (रघुवं० १७।६३)

सर्प के सिर के रत्न को जैसे कोई खींच नहीं सकता वैसे ही अतिथि की तीनों शक्तियों (प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मन्त्रशक्ति) को किसी ने नहीं खींचा, किन्तु चुम्बक जैसे लोहे को खीच लेता है वैसे ही अतिथि ने शत्रुओं की तीनों शक्तियों को खींच लिया ।

तत्त्वसंग्रहरामायणादि की प्राचीनता

बुल्के के अनुसार "**तत्त्वसंग्रहरामायण** की रचना १७वीं शती ई० की है। इसके रचयिता रामब्रह्मानन्द हैं। इनका **रामायणतत्त्वदर्पण** ग्रन्थ भी है। **तत्त्वसंग्रहरामायण** में राम के ब्रह्मत्व पर प्रकाश डाला गया है। इसमें राम को विष्णु के अतिरिक्त शिव-ब्रह्मा-हरिहर त्रिमूर्ति परब्रह्म का भी अवतार माना गया है। तदनन्तर **रामायण** के गायत्रीस्वरूप का भी स्पष्टीकरण किया है। इसके पश्चात् शिव-पार्वती-संवाद के रूप में समस्त रामकथा का वर्णन हुआ है। इसमें राम की दास्यभक्ति के अतिरिक्त अद्वैतरामोपासना का भी उल्लेख है। कई तीर्थों का महत्त्व सिद्ध करने के लिए उनका सम्बन्ध राम से जोड़ा गया है जैसे वाराणसी, गया, गोदावरी, धनुष्कोटि तथा रंगनाथ। इस रचना के निम्न लिखित प्रसङ्ग धर्म-खण्ड पर आधारित हैं। सीता-स्वयंवर में शिव की उपस्थिति, कैकेयी का पश्चात्ताप, सीता-हरण, हस्तरेखा दिखाने के लिए सीता का रखवाली के लिए लक्ष्मण द्वारा खींची हुई रेखा का उल्लङ्घन कर रावण के निकट जाना, अशोकवन में रावण-सीता-संवाद के समय हनुमान्‌जी का प्रकट होना, रावण पर प्रहार करना तथा मृत्यु द्वारा मायासीता का रूप धारण करना। निम्नोक्त विशेषताएँ **तत्त्वसंग्रहरामायण** की हैं— वाल्मीकि-कथा का परिवर्तित रूप, गङ्गा-तट पर उनकी तपस्या के फलस्वरूप सीता को अपने आश्रम में शरण देने की वरप्राप्ति (२।२२–३०;७,६)। सुतीक्ष्ण के आश्रम से बिदा लेते समय सीता भूमिदेवी से रत्नजटित पादुकाओं का एक जोड़ा ग्रहण करती हैं। उन्हें पहनकर राम पादपीड़ा तथा भूख-प्यास से मुक्त होते हैं। मायासीता का वृत्तान्त, जिसके अनुसार वास्तविक सीताजी रामजी के वक्षःस्थल में अव्यक्तरूप से रहती हैं। रावण और जटायु का युद्ध। राम का सुग्रीव को अपना शिवरूप दिखाना। हनुमान् की जन्म-कथा, जिसके अनुसार पार्वती उनकी माता मानी जाती हैं (४।१३)। सीता द्वारा शतानन रावण का वध (७।१–२)। जनक के पूर्वजन्म की कथा। उक्त दोनों रामायण पुराणों, रामायणों तथा परम्पराप्राप्त कथाओं पर निर्भर हैं।" राम का परब्रह्म होना तो उपनिषदों एवं **वाल्मीकि-रामायण**, **अध्यात्मरामायण** आदि पर ही निर्भर है। राम की शिवरूपता भी उपनिषदों पर निर्भर है। ईश्वर होने से त्रिमूर्तिरूपता राम की सुतरां सिद्ध हो जाती है। राम की अद्वैतोपासना भी उपनिषदों में वर्णित है। लक्ष्मण की रेखा की कथा अति प्राचीन परम्पराप्राप्त है। भिक्षा देने के प्रसङ्ग से भी सीता का रेखा से बाहर जाने की कथा प्रसिद्ध है। अवश्य ही सीता को अपने आश्रम में शरण देने की वरप्राप्ति की बात महत्त्वपूर्ण है और वह बिना तपस्या के संभव नहीं थी। किसी कल्प में अशोकवनिका में हनुमान् का प्रकट होकर रावण पर प्रहार करना संभव है। जो वस्तु **वेद**, **रामायण**, **पुराण**, **भारत** आदि से विरुद्ध न हो और परम्परा से श्रुत हो वही वैदिक सनातनधर्म में प्रमाणरूप से ग्राह्य होती है। इसी लिए प्रत्यक्ष श्रुति में इसका संकेत किया है—

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद् विचचक्षिरे। (ईशा० उ० १०)

—इसी कोटि में भूमिदेवी से रत्नजटित पादकाओं की प्राप्ति भी आ सकती है। राम तथा सीता का अभेद और राम में सीता का निवास आदि परम्पराप्राप्त है। अतएव तुलसी के **रामचरितमानस** में भी उसका संकलन किया गया है—

तुम पावक मँह करहु निवासा। जब लगि करहु निशाचर नासा॥ (रा० मा० ३।२३।२)

हनुमान् का पार्वती-पुत्र होना तथा शङ्कर का पुत्र होना भी प्रसिद्ध है। प्रसिद्ध हनुमान् चालीसा में—

"शंकर सुवन केसरी नन्दन। तेज प्रताप महाजगवन्दन॥"

कहा गया है। शतानन रावण के वध का भी **अद्भुतरामायण** आदि में सङ्केत है।

काल-निर्णय रामायण

१७९ वें अनु० में बुल्के ने काल-निर्णय रामायण की चर्चा की है जिसमें राम-कथा को प्रधान घटनाओं की तिथियों का उल्लेख है। परन्तु यह तो सर्वथा प्राचीन ही है। **वाल्मीकिरामायण** के टीकाकार नागेश भट्ट आदि इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर रामकथा की घटनाओं का काल-निर्धारण करते हैं। **स्कन्दपुराण** के ब्रह्मखण्ड में धर्मारण्य-खण्ड के तीसवें अध्याय तथा **पद्मपुराण** में पातालखण्ड के ३६ वें अध्याय में यह सब वर्णन है। **पद्मपुराण** में महर्षि लोमश वक्ता हैं।

अग्निवेश के नाम से भी एक अन्य रामायण प्रचलित है। वे भी ऋषि हैं। वह रामायण भी, जो कि वेंकटेश प्रेस के अनुसार १०५ श्लोकों का है, प्रामाणिक है। **समयादर्शरामायण** लक्ष्मीनारायण प्रेस से प्रकाशित १०३ श्लोकों का है। **समयनिरूपणरामायण** वेंकटेश प्रेस से प्रकाशित ४५ श्लोकों का है। अग्निवेशकृत **रामायण** का राजेन्द्रलाल मिश्र के कैटलाग में (भाग ७ पृष्ठ ५८) तथा **रामायणरहस्य या रामहृदयम्** का (भाग ८ पृष्ठ १२५) उल्लेख है। इस रचना का विस्तार २७७ श्लोकों में बताया गया है। तैंजोर कैटलाग में अग्निवेश कृत ५०० श्लोकों के विस्तारवाले **रामजातकम्** का उल्लेख है। **अग्निवेशरामायण** में विवाह के समय राम और सीता की अवस्था क्रमशः १५ तथा ६ वर्ष की थी, वनवास के समय २७ और १८ वर्ष की थी एवं राज्याभिषेक के समय ४२ और ३३ वर्ष की थी।

इसी तरह **अब्दरामायण** (दे० कल्याण का रामायणाङ्क पृ० ३०४), व्यासकृत **रामायणतात्पर्यदीपिका** (मद्रास कैटलाग, नं० आर १५१८), **रामावतारकालनिर्णय-सूचिका** (मद्रास कैटलाग, नं० डी १९०९), श्रीनिवास-राघवकृत **रामायणसंग्रह** (मद्रास कैटलाग नं० आर० २२३४) में भी उपर्युक्त विषयों का वर्णन है।

१८० वें अनु० में बुल्के ने अर्वाचीन रामकथा-साहित्य में बहुसंख्यक रामायणों का उल्लेख किया है। **आनन्दरामायण** के अनुसार **वाल्मीकिरामायण** से ही अनेक रामायणों का प्रादुर्भाव हुआ है। बुल्के कहते हैं उनमें अधिकांश कल्पित हैं। पर साथ ही वे यह भी कहते हैं कि यदि उनकी रचना हुई भी हो तो इसमें बहुत सन्देह नहीं है कि ये ग्रन्थ अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। परन्तु उनका यह कथन भी अर्ध सत्य ही है, क्योंकि उनमें से बहुत रामायण प्राचीन ही हैं।

भुशुण्डिरामायण या **मूलरामायण** तथा **आदिरामायण** का उल्लेख अधिक होता है। कहा जाता है कि इसकी हस्तलिपि श्रवणकुञ्ज अयोध्या में तथा लक्ष्मणकिला में सुरक्षित है। उसमें पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर चार खण्ड हैं। बुल्के के अनुसार वे स्वयं तो मूल प्रति नहीं देख सके, परन्तु डाक्टर भगवतीप्रसादसिंह को इसकी पूरी प्रति मिली है। बड़ौदा ओरिएण्टल इंस्टिट्यूट में उसके दक्षिण, पश्चिम और उत्तर खण्डों की अर्वाचीन हस्तलिपियाँ विद्यमान हैं। जयपुर में दो रामायण हैं, जिनके वक्ता भुशुण्डि हैं, एक **आदिरामायण** और दूसरा **ब्रह्मरामायण**। इनमें रामजी की रास-लीलाओं का वर्णन है। इण्डिया आफिस के **चित्रकूटमाहात्म्य** की हस्तलिपि में रचना अथवा लिपिकाल का उल्लेख नहीं है। पर यह मैकेञ्जी महोदय के संग्रह की है। अतः कम से कम डेढ़ सौ वर्ष पुरानी है। परन्तु इतनेमात्र से भुशुण्डिरामायण आदि की अर्वाचीनता और अनार्षता सिद्ध नहीं होती है। प्राचीनकाल में ग्रन्थ लिपि सुरक्षित रखने की पद्धति बहुत कम प्रचलित थी, अतः प्राचीन से प्राचीन ग्रन्थों की भी सुरक्षित हस्तलिपि का मिलना असम्भव है। इसमें भरत-अत्रि-संवाद भुशुण्डि द्वारा शाण्डिल्य को सुनाया गया है। श्रोता और वक्ता के अति प्राचीन होने के कारण मूल कथा की प्राचीनता स्पष्ट ही सिद्ध है। उसके अनुसार चित्रकूट के सान्तानिक वन में एक सरोवर है। उसके मध्य में एक रम्य मण्डप है। जहाँ एक वेदिका पर सीता एवं उनकी सखियों के साथ राम रास-लीला करते हैं। डा० भगवतीप्रसाद अपने "रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय" में भुशुण्डिरामायण के कथानक के विषय

में लिखते हैं कि रावण द्वारा भेजे गये राक्षस बाल्यावस्था में ही राम को समाप्त करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु वे स्वयं मारे जाते हैं। उनके डर से दशरथ राम को गुप्त स्थान पर भेज देते हैं। सरयूपार गोपप्रदेश में गोपेन्द्र सुखित और उनकी पत्नी मांगल्या राम का पालन-पोषण करते हैं। विवाह के पूर्व अयोध्या के प्रमोदवन में देवावतार गोपियों एवं परा शक्ति सीता के साथ राम रास-लीला करते हैं। मिथिला पहुँच कर एक पक्षी द्वारा वे सीता के पास अपना एक चित्र भेजते हैं। चित्रदर्शन से सीता उन्हें प्राप्त करने के लिए उत्कण्ठित होती हैं। दशरथ के अश्वमेधयज्ञ में विजित राजाओं की सहस्रों कन्याओं को वे (राम) स्वीकार करते हैं। चित्रकूट में गोप और गोपिकाओं के संग रास-क्रीड़ा का आयोजन होता है। सीता के अतिरिक्त सहजा सखी का भी राम की पत्नी के रूप में उल्लेख है। सहजा भी जनकवंशीय कन्या कही गयी है। सीता ज्ञानपरक भक्ति और सहजा प्रेमा भक्ति की प्रतीक कही गयी हैं (दे० पृष्ठ ९७ रामभक्ति में रसिकसम्प्रदाय)।

बुल्के आदि ऐसे कथनों को अत्यन्त अर्वाचीन और कृष्णलीला का अनुकरणमात्र मानते हैं। परन्तु यह पाश्चात्यों की अशुद्ध विचारपद्धति है। वास्तविक दृष्टि नहीं है। वैदिक ऋषियों की दृष्टि से कोई भी कथावस्तु नवीन नहीं है। वेद, पुराण आदि अनादि हैं। अनादि ही विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि की कथाएँ हैं। **कृष्णोपनिषत्** के अनुसार तो अनेक साधक राम के वरदान से ही कृष्णावतार में गोपीभाव प्राप्त कर सके हैं। **नारदपाञ्चरात्र** आदि आगमों में भी राम को कृष्ण से पहले का माना गया है। फिर जन्मान्तर में कृष्ण भी राम से और पहले के हैं। तभी तो **वाल्मीकिरामायण** में राम को कृष्णरूप भी कहा गया है—

'कृष्णश्चैव बृहद्बलः।' (वा० रा० ६।११९।१५)

अवश्य ही एकपत्नीव्रत मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामजी के सम्बन्ध में उक्त चरित्र सङ्गत नहीं दिखते हैं। तथापि कल्पभेद से राम के साथ उक्त चरित्रों का सम्बन्ध असम्भव नहीं है।

१८१वें अनु० में कहा गया है कि **महारामायण** का भी रामदासकृत हिन्दुत्व में उल्लेख है। इसके पाँच अध्याय (४७-५२) अयोध्या में संवत् १९८५ में छपे हैं। इसमें रामचरणों की ४८ रेखाओं का उल्लेख एवं रामोपासकों के संस्कारों का वर्णन है। जिनमें एक धनुर्बाण-संस्कार है। राम के अक्षरातीत ब्रह्म होने के साथ उनकी सखीभाव से उपासना करने का उल्लेख है। सीता की ३३ शक्तियों की नामावली तथा उनके कार्यों का वर्णन है। रामनाम-माहात्म्य के प्रसङ्ग में रमु धातु से रामनाम की व्युत्पत्ति का प्रतिपादन तथा रास-क्रीड़ा का उल्लेख है।

बुल्के के अनुसार सम्भव है यह **भुशुण्डिरामायण** से अभिन्न हो। परन्तु बुल्के का उक्त कथन असङ्गत एवं निष्प्रमाण है। अनादिकाल से विभिन्न सम्प्रदायों में राम की उपासना होती आयी है। तदनुसार रामायण के सम्बन्ध में विभिन्न आर्ष पद्धतियाँ हैं। समुचित हेतु के बिना किसी को अप्रामाणिक एवं अर्वाचीन कहने का साहस पाश्चात्य एवं तदनुयायी ही कर सकते हैं।

१८२वें अनु० में **मन्त्ररामायण** की चर्चा बुल्के ने की है। उसमें रामायण के वेदमूलकत्व का प्रतिपादन किया गया है।

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥"

यह लव-कुश द्वारा विहित मङ्गलाचरण का श्लोक रामायणपाठकों की परम्परा में प्रचलित है। इसका अर्थ है—वेदवेद्य परमेश्वर जब दशरथात्मज राम के रूप में प्रकट हुए तो साक्षात् वेद भी महर्षि प्राचेतस वाल्मीकि से **रामायण** के रूप में प्रकट हुए।

मन्त्ररामायण के आधार पर नीलकण्ठ ने बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक के सम्पूर्ण चरित्रों का वर्णन किया है। **ऋक्संहिता** के दशवें मण्डल के ९९वें सूक्त में आर्ष 'वभ्र' का उल्लेख है। 'वभ्र' वाल्मीकि ही हैं। इन्द्र, राम, रुद्रगण, हनुमान् तथा उनके साथियों आदि का वर्णन है। बुल्के कहते हैं **मन्त्ररामायण** के रचयिता अपने समालोचकों को लक्ष्य करते हुए लिखते हैं—

"नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति।" (पृ० २६)

बुल्के ने **मन्त्ररामायण** को समझने का प्रयत्न नहीं किया। नीलकण्ठजी ठीक ही कहते हैं कि यह स्थाणु का अपराध नहीं है जो कि अन्धा उसे नहीं देखता। वेदमन्त्र विशेषतः **ऋग्वेद** के मन्त्र बहुत कठिन हैं। इसलिए **निरुक्त, निघण्टु** तथा ब्राह्मण और सूत्र का आश्रय लेकर ही उनका अर्थ किया जाता है। पुराणों तथा **महाभारत** में कहा गया है कि वेद अल्पश्रुत से डरता है कि वह बेसमझ अवश्य मुझपर, अर्थ का अनर्थ कर, प्रहार करेगा।

"बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।"

इसी लिए इतिहासपुराणों द्वारा वेदों का उपबृंहण कहा गया है। **वाल्मीकिरामायण** में भी कहा गया है कि वेदों के उपबृंहणार्थ ही वाल्मीकि ने लव और कुश को रामायण महाकाव्य पढ़ाया था—

"वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।" (वा० रा० १।४।६)

नीलकण्ठ ने प्रमाणों के आधार पर मन्त्रों की व्याख्या करते हुए रामचरित का वर्णन किया है। उलटे बुल्के ने ही मन्त्रार्थ न समझकर **"दशरथस्य शोणाः"** दशरथशब्दमात्र के आधार पर **ऋक्संहिता** में राजा दशरथ का उल्लेख मान लिया है। इसी लिए बुल्के का साहस नहीं हुआ कि नीलकण्ठ के किसी मन्त्र के व्याख्यान का उद्धरण करके उसमें दोष दिखा सकें। **मन्त्ररामायण** की संक्षिप्त व्याख्या पृथक् देखें।

बुल्के कहते हैं **मन्त्ररामायण** के प्रथम श्लोक में गायत्रीस्वरूप का उल्लेख किया गया है। **गायत्रीरामायण** विद्यारण्यकृत **रामायणरहस्य** (श्रीशङ्करगुरुकुल-पत्रिका भाग २), **तत्त्वसंग्रहरामायण** (बालकाण्ड सर्ग ५) गोविन्दराजकृत भूषण टीका आदि में रामायण के गायत्रीस्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। तर्क यह है कि रामायण के २४००० श्लोकों में प्रत्येक सहस्र के प्रथम श्लोक का पहला अक्षर उद्धृत करने से गायत्री का मन्त्र बन जाता है।

"प्रतिश्लोकसहस्रादौ मन्त्रवर्णाः समुद्धृताः।" (रामायणरहस्य ६३)

बुल्के कहते हैं, वास्तव में कोई भी गायत्रीरामायण के प्रत्येक सहस्र समूह का प्रथम श्लोक समुद्धृत नहीं करता है। विद्यारण्य ने वाल्मीकिरामायण के प्रथम सर्ग को भी गायत्रीस्वरूप कहा है।

"गायत्र्याश्च स्वरूपं तद्रामायणमिति स्मृतम्।"

परशुराम ने क्यों क्षत्रियों का नाश किया और फिर भी क्षत्रिय-वंश का नाश क्यों नहीं हुआ ? राम के इन प्रश्नों का समाधान करते हुए वाल्मीकि ने **वेदान्तरामायण** कहा है। इसमें परशुराम के चरित्र का वर्णन है। इसका प्रकाशन, लहरी प्रेस, बनारस (सं १९१४) में हुआ है। हिन्दुत्व में वस्तीनिवासी पं० धनराजशास्त्री की दी हुई टिप्पणी के आधार पर १९ रामायणों की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय दिया है।

जैमिनिभारत

१८५ वाँ अनु० : **जैमिनिभारत** या **जैमिनीयाश्वमेध** की रचना बुल्के के अनुसार "**भागवतपुराण** के बाद १३वीं शती पूर्व की है, क्योंकि **जैमिनीयाश्वमेध** में **भागवत** का उल्लेख है तथा इसका १३वीं शती में कन्नड भाषा में अनुवाद हुआ है। इसका मुख्य विषय युधिष्ठिर के अश्वमेध का वर्णन है। इसमें **कुशलवोपाख्यान** अ० २५–३६ में

दिया गया है। इसके अनुसार धोबी द्वारा सीतानिन्दा के फलस्वरूप सीतात्याग, कुश और लव का जन्म तथा यज्ञाश्व के कारण राम सेना से युद्ध, अनन्तर राम और सीता का सम्मिलन वर्णित। यह सुखान्त रामकथा **पद्मपुराण** के पातालखण्ड के वृत्तान्त से मिलती जुलती है।" वस्तुतः **जैमिनीयाश्वमेध** आर्ष ग्रन्थ है। **भागवत** के नामोल्लेखमात्र से वह अर्वाचीन नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि प्रायः सभी पुराणों में सभी पुराणों के नाम हैं। जो कि सर्वज्ञकल्प व्यासजी के द्वारा ही सम्भव हैं। जैमिनि व्यास के शिष्य तथा उनके समकाल के ही हैं।

मैरावणचरित (मद्रास मैनुस्क्रिप्ट कैटलाग नं० डी २०८२) अथवा **हनुमद्विजय** (वही, डी १२२१५) के अध्यायों की पुष्पिका में इसे 'जैमिनिभारत' का एक अंश माना गया है। इसमें मैरावण पर रुद्रांश हनुमान् की विजय का वर्णन अगस्त्य द्वारा सुनाया गया है। मेघनाद-वध के बाद मैरावण राम तथा लक्ष्मण को पाताल ले जाता है। हनुमान् अपने पुत्र मत्स्यराज या मकरध्वज की सहायता से मैरावण का वध करके राम और लक्ष्मण को फिर से युद्धभूमि में लाते हैं। **रामचरितमानस** के क्षेपकों में भी इस कथा का उल्लेख है। थाईलैण्ड की रामकीर्ति में भी इसका उल्लेख है। मूलतः यह कथा भी आर्ष है।

सहस्रमुखरावणचरित्रम् (मद्रास कैटलाग डी २०९८) यह रचना भी महाभारत के आश्रमवासिपर्व का एक अंश मानी जाती है। **अद्भुतरामायण** के वृत्तान्त से इसकी कथावस्तु मिलती जुलती है। रावण पर सीता की विजय के विषय में हस्तलिपियों का भी पता चला है। **सीताविजय**, जो **वसिष्ठोत्तररामायण** का एक भाग है, में सीता की शतस्कन्ध रावण पर विजय का वर्णन है।

सत्योपाख्यान

"**सत्योपाख्यान** (वेंकटेश्वर प्रेस) में वाल्मीकि-मार्कण्डेय-संवाद वर्णित है। इसकी कथावस्तु से पता चलता है कि यह **अध्यात्मरामायण** के बहुत बाद की रचना है जब रामकथा तथा रामभक्ति पर कृष्णलीला का गहरा प्रभाव पड़ने लगा था।" बुल्के का यह कथन निराधार है, क्योंकि इसका पीछे खण्डन हो चुका है। उसमें राम, लक्ष्मण आदि विष्णु, शेष, सुदर्शन एवं शङ्ख के अवतार हैं, यह उल्लेख (अध्याय १-२) करने के पश्चात् मन्थरा कैकेयी-संवाद दिया गया है, जिसमें दशरथ और कैकेयी के विवाह की चर्चा है (अध्याय ३–९)। तदुपरान्त मन्थरा के पूर्व जन्म की कथा का वर्णन है जिसके अनुसार वह दैत्य विरोचन की पुत्री थी। विष्णु की आज्ञा से इन्द्र द्वारा वज्र से मारी गयी थी (अध्याय १०–१५)। पूर्वार्द्ध के शेष अध्यायों (१६–४९) में राम की बाललीला का विस्तार से वर्णन है। इसकी विशेष कथाएँ यों हैं—देवताओं का अयोध्या में आगमन, दशरथ द्वारा उनका स्वागत (अध्याय १७–२३)। काकभुशुण्डि का राम की रोटी (शष्कुली) चुराना, बाद में राम से क्षमा माँगना, राम में निश्चल भक्ति की प्रार्थना करना एवं उनके द्वारा गरुड़ को रामतत्त्व सिखलाने का उल्लेख है (अध्याय २६)।

जिन ग्रन्थों में राम की भक्ति का वर्णन होगा, बुल्के उन्हें अपनी कसौटी के अनुसार अर्वाचीन कहेंगे। इसका क्या इलाज ? परन्तु आस्तिक लोग तो वाल्मीकिरामायण को भी रामभक्ति का ही ग्रन्थ मानते हैं। पर बुल्के उसमें भी भक्तिवाले अंश को अर्वाचीन प्रक्षेप मान लेते हैं। वस्तुतः यह उनकी कुनीयतमात्र है। कोई विचार नहीं है। तुलसी के **रामचरितमानस** में काकभुशुण्डि-गरुड़संवाद की कथा प्रसिद्ध है। राम की बाललीलाओं का भी वहाँ वर्णन है।

रत्नमाला और उसके पति का वृत्तान्त, अगले जन्म में उनको नन्द और यशोदा बनने का आश्वासन (अध्याय २९, ३०)। राम का गुह से मृगया की शिक्षा पाना (अध्याय ४३ में) है। उत्तरार्द्ध में सीता-स्वयंवर का वर्णन किया गया है। उसमें प्रहस्त की उपस्थिति का उल्लेख भी किया गया है। सीता-राम के विवाह के बाद

उनकी तीर्थयात्रा का वर्णन है। जल-विहार, वन-विहार, सीता की मानलीला, होलिकोत्सव आदि शृङ्गारात्मक वर्णन किये गये हैं।

इन्हीं अंशों को देखकर बुल्के आदि पाश्चात्य विद्वान् श्रीकृष्ण-लीला का प्रभाव मान लेते हैं। परन्तु यह कल्पना निराधार है। राम अवतार श्रीकृष्ण से पहले हुआ। उनकी स्वतन्त्र लीलाएँ हैं। वेदमन्त्र सभी अनादि हैं तो भी मन्त्रों की तुल्यता देखकर उनको एक दूसरे से प्रभावित नहीं कहा जा सकता है। पुरुषसूक्त प्रायः विभिन्न संहिता में हैं। उनमें बहुत कुछ तुल्यता है ही।

धर्मखण्ड

१८९वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "**धर्मखण्ड** की कई हस्तलिपियाँ मद्रास के राजकीय ओरिएण्टल पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। यह रचना **स्कन्दपुराण** का एक अंश है। इसका रचनाकाल १५वीं या १६वीं शती प्रतीत होता है।"

कालनिर्णयसम्बन्धी पूर्व वर्णित अनुमानों के तुल्य यह अनुमान भी निराधार है। स्कन्दपुराण का अंश होने से इसे भी व्यास की कृति ही मानना समुचित है। इस रामकथा में शिव को विशेष रूप से महत्त्व दिया गया है। सीता-स्वयंवर में पार्वती के साथ शिवजी रामजी को धनुष तोड़ने का आदेश देते हैं। इसमें राम और शिव की अभिन्नता दिखलायी गयी है। वनवास के समय शिव ब्राह्मण का रूप धारण कर उनसे मिलते हैं। संवाद में राम सुस्पष्ट शब्दों में अपना तथा शिव का अभेद व्यक्त करते हैं—

"शिवं मां प्रतिजानीहि नावयोरन्तरमणु।" (अध्याय ३८)

अन्यत्र राम ने हनुमान् को भेजते समय उनसे कहा था कि तुम शिव के अवतार हो और मैं स्वयं शिव हूँ (अ० ९८)। **धर्मखण्ड** की रामकथा की निम्नोक्त विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—कैकेयी का पश्चात्ताप (अध्याय ३८), सीता-हरण का वृत्तान्त (अध्याय ८१), अशोकवन में रावण-सीता-संवाद के समय हनुमान् का प्रकट होना तथा रावण को भगा देना (अध्याय १०५) एवं मृत्यु द्वारा मायामयी सीता का रूप धारण करना (अध्याय १३०)।

उपनिषदों में भी राम और शिव का अभेद प्रतिपादित है। तुलसीदास ने भी अपने **रामचरितमानस** में राम और शिव का अभेद कहा है। उनके अनुसार शिवजी रामजी के सेवक, स्वामी तथा सखा भी हैं। ऐसे परम सिद्धान्त के प्रतिपादक ग्रन्थ को बुल्के आधुनिक कहते हैं, यह उनकी मनोवृत्ति का नमूना है। वे यह मानकर चलते हैं कि पहले राम एक अच्छे मनुष्य थे। लोग उन्हें मनुष्य ही मानते थे। उनका ईश्वर का अवतार होना यह बाद की कल्पना है। शिव और राम का अभेद उससे और भी बाद की कल्पना है। परन्तु उनका यह निर्णय भी निराधार है, क्योंकि वेद-उपनिषदों के अनुसार राम का परब्रह्म होना सिद्ध है, अतः शिव का उनसे अभिन्न होना स्वाभाविक है। ईश्वर एवं उसका अवतार होना यह मन्त्रों एवं ब्राह्मणों और उपनिषदों से सिद्ध ही है।

हनुमत्संहिता

१९०वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "**हनुमत्संहिता** की सं० १७१५ की एक हस्तलिपि का उल्लेख राजेन्द्रलाल मित्र के कैटलाग में किया गया है (भाग ७ पृ० २५०)। इस रचना का **महारासोत्सव** के नाम से सन् १९०४ में लखनऊ से प्रकाशन हुआ है। इसमें हनुमान् और अगस्त्य के संवाद के रूप में सरयू-तट पर राम की रासलीला तथा जल-विहार का वर्णन है। इसमें सीता अपने शरीर से १८१०८ नारियों की सृष्टि करती हैं

तथा इनके साथ रास करने के लिए राम कृष्ण की भाँति उतने ही रूप धारण करते हैं। इसका विस्तार २६० श्लोकों का है।"

बुल्के के अनुसार "रामकथा पर यह प्रभाव अपेक्षाकृत अर्वाचीन है। फिर भी सं० १७१५ की हस्तलिपि से पता चलता है गोस्वामी तुलसीदासजी के जीवनकाल में उसका सूत्रपात अवश्य हो चुका होगा।" पर बुल्के की यह कल्पना निराधार है। यह कई बार कहा जा चुका है कि कृष्ण-लीलाओं के अनुसार भी वृन्दावन की रासलीला नित्य रासलीला का एक अंश ही है। गोलोकधाम में रासलीला नित्य प्रचलित है। वृन्दावन की रासलीला में भी मुख्य सिद्धान्त यही है कि श्रीराधा की कायव्यूहरूपा गोपाङ्गनाएँ ही नित्य रासलीला की परिकर हैं। भक्त अपने आप को भगवान् की लीलाओं का अङ्गोपाङ्ग बनाना चाहता है। वह चाहता है मैं कोटि-कोटि कानों से भगवान् का चरित्र सुनूं, कोटि-कोटि नेत्रों से भगवान् का मङ्गलमय रूप देखूं, कोटि-कोटि हाथों से तथा कोटि-कोटि शरीरों से भगवान् की सेवा करूँ। इसी दृष्टि से सीता कोटि-कोटि देहों से भगवान् राम की लीलाओं को प्रोत्साहन देती हैं। ऐसी स्थिति में **हनुमत्संहिता** की कथावस्तु शुद्ध वैदिक सिद्धान्तों पर ही आधारित है।

बृहत्कोसलखण्ड

१९१वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "राजेन्द्रलाल मित्र के कैटलाग में उसकी एक हस्तलिपि सं० १९१४ का विवरण दिया गया है (भाग ९ पृ० ५२)। उन्होंने उसे बेतिया (चम्पारन) में देखा है। उसका विस्तार ३०७२ श्लोकों का बताया गया है। संवत् २००१ में लाहोर के श्रीरोशनलाल अग्रवाल ने हिन्दी टीकासहित इसकी १३० प्रतियाँ छपवायी थी। यह हिन्दी रसवर्धिनी टीका श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज की लिखी हुई है। वेदव्यासकृत **बृहत्कोसलखण्ड ब्रह्मरामायण** का अंश माना जाता है। इसके १५ अध्यायों का कथानक तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। १—विवाह के पूर्व राम की लीला (अ० १–५)। प्रारम्भ में यज्ञोपवीत संस्कार तथा विद्याभ्यास के पश्चात् सखा-रास का वर्णन किया गया है। राम के सखा, जिनमें रुद्र भी शामिल हैं, स्त्री का रूप धारण कर राम के साथ रास का आयोजन करते हैं (अध्याय १)। अनन्तर गोपिकाओं, देवकन्याओं और राजकन्याओं के साथ राम के रास का वर्णन किया गया है। किसी अवसर पर राम को देखकर गोपियों का मन आकर्षित हुआ और वे उनको पतिरूप में प्राप्त करने के उद्देश्य से तप तथा पार्वती की पूजा करने लगीं। पिता की आज्ञा लेकर राम शिकार करने के बहाने यमुनातट पर पहुँचते हैं। शिव की आज्ञा से निकुम्भ आँधी उत्पन्न करता है, जिसमें गोधन भाग जाता है तथा गोप उसका पीछा करते-करते चले जाते हैं। इतने में राम गोपियों के पास चले जाते हैं। उनके साथ वसन्तोत्सव मानते हैं तथा रासलीला भी करते हैं। इसमें लक्ष्मी, सरस्वती, उमा आदि मालिन का रूप धारण कर भाग लेती हैं। अन्त में गोपियों को बिदा कर राम अपने सखाओं को योगनिद्रा से जगाकर अयोध्या लौटते हैं (अध्याय २)। अगले अध्याय में दशरथ राम को दही का कर वसूल करने के लिए गोपों के यहाँ भेज देते हैं। वे राम को अपनी पुत्रियाँ समर्पित कर देते हैं। राम सबसे विवाह कर अयोध्या लौट आते हैं। अनन्तर सान्तानिक वन की लताओं से देवकन्याएँ प्रकट होकर राम के साथ विविध विलास करती हैं। अन्त में उनकी रासलीला का भी विधान होता है (अध्याय ३)। अब देवता अयोध्या पहुँचकर राम से निवेदन करते है कि वे उनकी कन्याओं को भी ग्रहण करें। इसके बाद दशरथ राम को शम्बरासुर का वध करने के लिए भेज देते हैं। राम उसका वैजयन्त नामक पुर घेरकर उसके पुत्र का वध करते हैं तथा शम्बरासुर द्वारा हरण की गयी राजा, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष आदि की कन्याओं को लेकर अयोध्या आते हैं। उनके साथ भी रासक्रीड़ा करते हैं (अध्याय ४,५)।

२—राम और सीता का विवाह (अध्याय ६,७)। एक तपस्विनी से राम के कार्यों का वर्णन सुनकर अष्टवर्षीया सीता विरह से व्याकुल होने लगती हैं। महेश्वर जनक को स्वप्न में दिखायी पड़ते हैं और परामर्श देते

हैं कि स्वयंवर का आयोजन हो जो उनका धनुष चढ़ाने में समर्थ हो वही सीता का पति होने योग्य है। बहुत से राजा असफल होकर युद्ध करते हैं, किन्तु पराजय के बाद वे अपनी पुत्रियों को जानकी की सखी बनाने के लिए मिथिला में ले आते हैं। सीता राम का रूप धारण अपनी सखियों के साथ रास करती हैं (अध्याय ६)। नारद राम के पास जाकर सीता के वियोग का वर्णन करते हैं तथा उनके स्वयंवर का समाचार सुनाकर चले जाते हैं। शिव की प्रेरणा से विश्वामित्र राम तथा लक्ष्मण को मिथिला ले जाते हैं। वहाँ राम धनुष तोड़कर सीता को प्राप्त करते हैं। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के भी विवाह होते हैं।

३—विवाह के पश्चात् राम की लीला (अध्याय ८–१५)। विवाह के बाद राम असंख्य कन्याओं के साथ विश्वकर्मा द्वारा निर्मित प्रासाद में निवास करते हैं। समय-समय पर विविध उत्सव मनाते हैं। वन में जाकर रास-लीला करते हैं।

बुल्के के अनुसार गोप-कन्या, देव-कन्या, गन्धर्व-कन्या, किन्नर-सुता, विद्याधर-कन्या, सिद्धकुमारी, राज-कन्या, साध्य-कन्या, यक्ष-कन्या तथा नागकन्याओं के सङ्ग रासलीला के वर्णन प्रसङ्गों में कृष्ण की रासलीला का स्पष्ट अनुकरण किया गया है। उदाहरणार्थ राम का बहुत से रूप धारण करना, अन्तर्धान हो जाना, सीता की मान-लीला आदि।"

वस्तुतः—

"राम अनन्त अनन्त गुनानी।
अगणित जन्म कर्म नामानी॥" (रा० मा० ७।५१।२)

तुलसीदासजी के अनुसार राम के अनन्त अवतार तथा अनन्त लीलाएँ हैं। किसी कल्प में राम ने भक्तों का मनोरथ पूर्ण करने के लिए रासलीला की है। राम ब्रह्मस्वरूप हैं। प्राणिमात्र उनके अनन्त माधुर्य पर मुग्ध होते हैं।

"पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।" (गी० ११।४४)

पुत्र पर पिता का जैसा, सखा पर सखा का जैसा एवं प्रिया पर प्रिय का जैसा भगवान् का अनुग्रह सब चाहते हैं। किसी कल्प में भगवान् राम ने अपने भक्तों की वाञ्छाएँ कृष्णावतार में पूरी की हैं और किसी कल्प में स्वयं अपने ही रूप में भक्तवाञ्छाकल्पद्रुम भगवान् ने भक्तवाञ्छा पूरी की है। इसमें कृष्ण के अनुकरण की कल्पना निराधार ही है।

हिन्दुत्व में वर्णित रामकथा

अनु० १९२ से अनु० २१० : हिन्दुत्व में प्रदर्शित रामायण में से **महारामायण** शङ्कर-पार्वती-संवादरूप ३,५०,००० श्लोकों का ग्रंथ है। इसमें कनकभवनविहारी राम की ९९ रासलीलाओं का वर्णन है।

नारदकृत **संवृतरामायण** का विस्तार २४,००० श्लोकों का है। इसमें स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की तपस्या तथा दशरथ और कौशल्या के रूप में आविर्भाव का वर्णन है। **लोमशरामायण** लोमश ऋषि की कृति में ३२,००० श्लोक हैं। इसमें राजा कुमुद और वीरवती के दशरथ तथा कोशल्या के रूप में जन्म का वर्णन है। **अगस्त्यरामायण** १६,००० श्लोकों का है। इसमें भानुप्रताप अरिमर्दन की कथा है तथा राजा कुन्तल और सिन्धुमती का दशरथ और कौशल्या के रूप में जन्म वर्णित है। **मञ्जुलरामायण** सुतीक्ष्णकृत १,२०,००० श्लोकों का है। इसमें भानुप्रताप अरिमर्दन की कथा तथा शबरी के प्रति राम द्वारा नवधा भक्ति का वर्णन है।

अत्रिकृत **सौपद्मरामायण** ६२,००० श्लोकों का है। इसमें वाटिकाप्रसङ्ग वर्णित है। **रामायणमहामाला** शिव-पार्वती-संवादरूप ५६,००० श्लोकों का है। इसमें भुशुण्डि द्वारा गरुड़-मोहनिवारण वर्णित है। **सौहार्दरामायण** शरभङ्गकृत ४०,००० श्लोकों का हैं। इसमें राम और लक्ष्मण का वानरी भाषा समझने और बोलने का उल्लेख है। **रामायणमणिरत्न** वसिष्ठ-अरुन्धती-संवादरूप ३६,००० श्लोकों का है। इसमें मिथिला तथा अयोध्या में राम का वसन्तोत्सव मनाने का उल्लेख है। **सौर्यरामायण** में हनुमान् और सूर्य का संवाद वर्णित है। यह ६२,००० श्लोकों का है। इसमें शुकचरित्र तथा शुक का रजक बन कर सीतात्याग का कारण बनना वर्णित है। **चान्द्ररामायण** ७५,००० श्लोकों का है। केवट के पूर्व जन्म की कथा इसकी विशेषता है। **मैन्द रामायण** मैन्द-कौरव-संवाद ५२,००० श्लोकों का है। इसमें वाटिकाप्रसङ्ग विस्तारपूर्वक वर्णित है। **स्वायम्भुवरामायण** ब्रह्म-नारद-संवाद १८,००० श्लोकों का है। इसमें मन्दोदरी के गर्भ से सीता के जन्म का वर्णन है। **सुब्रह्मरामायण** ३२,००० श्लोकों का है। **सुवर्चरामायण** सुग्रीव-तारा-संवाद १५,००० श्लोकों का है। इसमें सुलोचना की कथा, धोबी-धोबिन-संवाद तथा रावण के चित्र के कारण शान्ता की चुगली, शान्ता के प्रति सीता का शाप तथा उसको पक्षी-योनि की प्राप्ति एवं महारावण का वध-वर्णन है। **देवरामायण** १,००,००० श्लोकों का है। इसमें इन्द्र और जयन्त का संवाद वर्णित है। **श्रवणरामायण** इन्द्र-जनक-संवादरूप १,२५,००० श्लोकों का है। इसमें मन्थरा की उत्पत्ति तथा चित्रकूट में भरत की यात्रा के समय जनक का आगमन वर्णित है। **दुरन्तरामायण** वसिष्ठ-जनकसंवादरूप ६१,००० श्लोकों का है। इसमें भरत की महिमा का वर्णन है। **रामायणचम्पू** शिव-नारद-संवादरूप १५,००० श्लोकों का है। इसमें शीलनिधि राजा के यहाँ स्वयंवर का वर्णन है। ये सभी कल्पभेद से प्रमाणकोटि में माने जाने चाहिये।

✻

दशम अध्याय

संस्कृत ललितसाहित्य में रामकथा

२११वें अनु० में बुल्के कहते हैं, प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** के विषय में कहा गया है कि यह कवियों का आधार सिद्ध होगा।

"परं कवीनामाधारम्।" (वा० रा० १।४।२७)

वस्तुस्थिति तो यही है। परन्तु बुल्के तो पूरे बालकाण्ड को प्रक्षिप्त ही मानते हैं। उसी के अनुसार कहा जा सकता है—**रामायण** ही कवियों एवं सभी काव्यों का आधार है। **बृहद्धर्मपुराण** में ठीक ही लिखा है—

'रामायणमहाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।
तन्मूलं सर्वकाव्यानामितिहासपुराणयोः॥
संहितानाञ्च सर्वासां मूलं रामायणं मतम्।
तदेवादर्शमाराध्य वेदव्यासो हरेः कला॥
चक्रे महाभारताख्यमितिहासं पुरातनम्।"

(बृह० पु० पूर्वार्ध २५।२८,२९)

वाल्मीकि द्वारा कृत **रामायण** सभी काव्यों तथा इतिहास-पुराणों का आधार है। वही सभी संहिताओं का मूल है। उसी आदर्श की आराधना करके भगवान् हरि की कला वेदव्यास ने **महाभारत** आख्यानमय इतिहास का निर्माण किया है। ब्रह्मप्रेरिता सरस्वती ही शोकापनोदनार्थं महर्षि के मुख से "**मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।**" इत्यादि श्लोक के रूप में प्रकट हुई थी। 'प्रसन्नराघवम्' की प्रस्तावना में नट सूत्रधार से पूछता है उसके उत्तर में सूत्रधार की निम्नोक्ति भी ठीक ही है।

"स्वसूक्तीनां पात्रं रघुतिलकमेकं कलयतां कवीनां को दोषः स तु गुणगणानामवगुणः।
यदेतैर्निःशेषैरपरगुणलुब्धैरिव जगत्यसावेकश्चक्रे सततसुखसंवासवसतिः॥"

सब कवि क्यों रामचन्द्र का ही पुनः-पुनः वर्णन करते हैं? नट के इस प्रश्न पर सूत्रधार कहता है एकमात्र रघुकुलतिलक राम को ही अपनी सूक्तियों का पात्र बनाते हुए कवियों का यह दोष नहीं है, किन्तु यह तो श्रीराघवेन्द्र राम के गुणगणों का ही अवगुण है जिनपर मुग्ध हो सभी कवियों ने एकमात्र राम को ही अपनी सूक्तियों का विश्राम-स्थान बनाया है।

महाकाव्य

अनु० २१२ में बुल्के का यह कहना ठीक नहीं है कि यह श्रृङ्गारिक वर्णन राक्षसों के विषय में किया गया था। बाद में सीता-राम के सम्बन्ध में भी कवियों ने श्रृङ्गार-वर्णन किया है, क्योंकि **ऋग्वेद** के **वृषाकपिसूक्त** और **अपालासूक्त** में तथा **उर्वशी-पुरूरवासूक्त** आदि में देवताओं और मनुष्यों के सम्बन्ध में पर्याप्त श्रृङ्गार का वर्णन है। (देखो हमारा **भक्तिरसार्णव**)। हर्षवर्धन तथा महाकवि कालिदास का **रघुवंश** वर्तमान **वाल्मीकिरामायण** का ही समर्थन करते हैं। कालिदास विक्रमादित्य की सभा के दिव्य रत्नों में से प्रमुख हैं। फलतः विक्रम शती ही उनका

काल है। ई० चौथी शती उनका काल नहीं है। सीता-त्याग, लवण-वध, कुशलव-जन्म, शम्बूक-वध, अयोनिजा सीता का अलौकिक जन्म तथा सीता की अग्नि-परीक्षा भी कालिदास को मान्य थी। अतः उस सम्बन्ध में बुल्के की कल्पनाएँ सर्वथा निस्सार ही हैं।

२१४ वाँ अनु० : **रावणवध** अथवा **सेतुबन्ध** जो कि बुल्के के अनुसार ५५०-६०० ई० का है। महाराष्ट्री प्राकृत भाषा में वाल्मीकिकृत युद्धकाण्ड का वर्णन है।

२१५ वाँ अनु० : **भट्टिकाव्य** काव्य होता हुआ भी व्याकरण है। इसके आधार पर व्याकरण का सम्यक् प्रबोध होता है। इसमें **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ही रामचरित्र का वर्णन है। इसमें सीता की अग्निपरीक्षा का वर्णन है। यत्र तत्र भेद अकिञ्चित्कर है। **जानकीहरण** तथा अभिनन्दकृत **रामचरित** में मूलरूप से **वाल्मीकिरामायण** का अनुसरण करते हुए भी कतिचित् स्थलों में संकोच-विकास किया गया है। **रामायणमञ्जरी**, **दशावतारचरित**, **उदारराघव** आदि ग्रन्थों में भी लाघव-गौरव तथा संकोच-विकास का आश्रय लिया गया है।

जानकीपरिणय १७ वीं ई० श० का माना जाता है। इसमें दशरथ-यज्ञ से परशुराम के तेजोभङ्ग तक की प्रधान घटनाओं का ८ सर्गों में वर्णन है।

रामलिङ्गामृत, जानकीरामक्रीडाह्निक, **राघवोल्लास, रामरहस्य** आदि ग्रन्थों में राम के व्यष्टि-समष्टि चरित्रों का क्वचिद्विकास और क्वचित्संकोच किया गया है।

राघवोल्लास की रचना बुल्के के अनुसार लन्दन में सुरक्षित है। उसके प्रारम्भिक ३ सर्ग अप्राप्य हैं। शेष नौ सर्गों में १००० छन्द हैं। लिपिक का नाम मानसादि कायस्थ है। लिपिकाल है सन् १६२५ इण्डिया आफिस कैटलॉग नं० ३९१५। **रामचरितमानस** की भाँति मर्यादित श्रृङ्गार इस काव्य की विशेषता है। इसमें राम-सीता के पूर्वानुराग का वर्णन करते हुए कहीं भी सीता का नख-शिख वर्णन नहीं किया गया है। कथानक रामजन्म से प्रारंभ होकर विवाह के पश्चात् अयोध्या प्रत्यागमन पर समाप्त हो जाता है। राम का जन्म, उनका सौन्दर्य-वर्णन, उनके चतुर्भुज रूप का दर्शन, संक्षिप्त बाललीला, विश्वामित्र द्वारा रामावतार की व्याख्या, दशरथ की मूर्च्छा, राम द्वारा शरीर की नश्वरता का उपदेश, ताड़का, सुबाहु, मारीच, विश्वामित्र द्वारा राम-नाममहिमा का वर्णन, पाषाणभूता अहल्या का उद्धार, अहल्या द्वारा राम की स्तुति, जनकपुर में आगमन, सीता का पूर्वानुराग, धनुर्भङ्ग एवं कौतुक-लीला (सीता राम के ललाट पर केसर का तिलक लगाती है) का वर्णन है।

नाटकों के प्रसंग में २२५ वें अनु० में बुल्के लिखते हैं "दसवीं शताब्दी के पूर्व के नाटकों में केवल **उत्तररामचरित** और **कुन्दमाला** में उत्तरकाण्ड की सामग्री का वर्णन किया गया है। दोनों नाटकों को सुखान्त बनाने के लिए सीता के भूमि-प्रवेश की कथा बदल दी गयी है।।"

परन्तु यह परिवर्तन भी मनमानी नहीं हुआ; किन्तु कल्प-भेद से कथा-भेद के ही आधार पर हुआ है। अतएव **जैमिनीयाश्वमेध** तथा **पद्मपुराण** में भी वैसा ही वर्णन है। **आनन्दरामायण** तथा **कथासरित्सागर** में भी वैसा ही वर्णन है।

"कलपभेद हरिचरित सुहाये। भाँति अनेक मुनीसन गाये।।"

(रा० मा० १।३२।४)

उन्होंने **छलितराम** और **रामानन्द** नामक नाटकों की भी चर्चा की है, किन्तु दोनों को अप्राप्य कहा है। उनके अनुसार **प्रतिमानाटक, मैथिलीकल्याण, दूताङ्गद, उन्मत्तराघव** जैसे नाटकों को छोड़कर अन्य सब राम-कथाविषय से सम्बद्ध नाटक रामाभिषेक पर ही समाप्त हो जाते हैं।

२२६ वें अनु० में "प्रतिमानाटक या अभिषेकनाटक के सम्बन्ध में बुल्के का कहना है कि यह भासकृत न होकर किसी दक्षिणनिवासी अन्य कवि द्वारा निर्मित है एवं कालिदास के बहुत बाद रचा गया है।"

किन्तु वास्तव में इसकी गणना भास की कृतियों में ही है। इसमें सीता को लक्ष्मी का अवतार कहा जाना भी स्वाभाविक है। राम-वनवास के समय शत्रुघ्न की उपस्थिति इस नाटक की विशेषता है। राम की अनन्त कथाओं में कोई कथा उक्त प्रकार की भी हो सकती है। जब जैन और बौद्धों ने राम के आदर्श के विरुद्ध भी अपने दृष्टिकोण से कल्पनाएँ की हैं तो तदविरुद्ध कल्पनाओं में कोई न कोई मूल तो हो ही सकता है।

इसी तरह दशरथ की मृत्युशय्या पर दशरथ को दिलीप, रघु, अज आदि पूर्वजों का दर्शन होना भी असम्भव नहीं है। प्रतिमा-गृह में अन्य राजाओं के समान दशरथ की मूर्ति देखकर भरत को दशरथ की मृत्यु का अनुमान हो जाना भी सङ्गत ही है। इसी तरह महर्षिशाप से बचाने के लिए वसिष्ठ एवं वामदेव के परामर्श से कैकेयी राम के वनवासी होने में सहायक हुई थी, यह कथन भी असङ्गत नहीं है। **अध्यात्मरामायण** और **रामचरितमानस** में भी सब घटनाएँ पूर्वनियोजित ही थीं, यह स्वीकृत है। जनस्थान में भरत-राम का मिलन और वहाँ अभिषेक की बात भी कल्पान्तरीय कथा हो सकती है। **अभिषेकनाटक** में सेतुबन्ध के स्थान पर समुद्र विभक्त हो जाता है और सेना समुद्र-तल से ही पार उतरती है, यह कथा भी कल्पान्तरीय है। इसमें राम और लक्ष्मण के मायामय सिर सीता को दिखलाये गये हैं। यह भी कल्पान्तरीय कथा है। उसी का अनुसरण हनुमन्नाटक तथा जावा के प्राचीन **रामायण** और मलय के **सेरीराम** में किया जाना सम्भव हो सकता है।

"इमां भगवतीं लक्ष्मीं जानीहि जनकात्मजाम्।
सा भवन्तमनुप्राप्ता मानुषीं तनुमास्थिता ॥ (हनु० ना० ६।२८)

अग्नि द्वारा उपर्युक्त कथन सङ्गत है। "सीता ही भगवती लक्ष्मी हैं जो मानुषी तनु धारण कर आप को प्राप्त हुई हैं" वैसा कथन **वाल्मीकिरामायण**, **अध्यात्मरामायण** और **रामाश्वमेध** आदि के अनुकूल ही है।

२२८ वें अनु० में बुल्के **महावीरचरित** और **उत्तररामचरित** के सम्बन्ध में कहते हैं। काल की कल्पना अन्य ग्रन्थों जैसी ही इनकी भी वास्तविकता से दूर है। धनुर्भङ्ग के समय रावण के दूत का उपस्थित रहना सङ्गत ही है। रावण जैसा महान् नीतिज्ञ ऐसी महत्त्वपूर्ण घटना से उदासीन कैसे हो सकता था। **रामचरितमानस** के अनुसार रावण और बाणासुर धनुषयज्ञ में आये थे, पर उन्होंने प्रत्यक्षरूप से धनुष उठाने का प्रयत्न नहीं किया।

"रावण बाण छुयो नहिं चापा।" (रा० मा० १।२५५।२)

कैकेयी का जाली पत्र लेकर शूर्पणखा मन्थरा के रूप में मिथिला पहुँचती है। इस पत्र में कैकेयी वर के बलपर राम का वनवास माँगती है जिसके फलस्वरूप राम भरत को अपनी पादुका देकर मिथिला से ही सीता एवं लक्ष्मण के साथ वन चले जाते हैं (अङ्क ४)। वस्तुतः कवि अपनी प्रौढ़ोक्तियों द्वारा अपने मुख्य नायक का महत्त्व वर्णन करता है। श्रीराम इतने राज्यनिरपेक्ष, आप्तकाम, पूर्णकाम और माता-पिता के भक्त थे कि यथाकथञ्चित् पत्रमात्र के आधार पर भी राज्य छोड़कर वन चले गये। यही अंश दिखलाने के उद्देश्य से उसमें यह परिवर्तन हुआ है।

माल्यवान् की प्रेरणा से वाली राम को मार्ग में रोकता है और द्वन्द्वयुद्ध में राम के द्वारा मारा जाता है। वैसी कथा यदि कल्पान्तरीय न भी हो तो भी राम को निर्दोष और वालिवध में समर्थ सिद्ध करने की दृष्टि से यह कविकल्पना भी हो सकती है। यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वाली के सामने जो भी युद्ध करने जाता था उसका आधा बल वाली को मिल जाता था। इसी लिए राम ने वृक्ष की ओट में छिपकर उसे मारा, इसके प्रतिवादस्वरूप द्वन्द्वयुद्ध की कल्पना भी सङ्गत हो सकती है।

काव्य तथा नाटकों के लिए यह तो निर्देश है कि उनकी कथावस्तु किसी आर्ष इतिहास पुराण से प्रमाणित होनी चाहिये, तथापि नायक के महत्त्ववर्णनार्थ, कथासौष्ठव-संपादनार्थ और रोचकता-संपादनार्थ किसी सीमा तक कवि-कल्पना का भी अवकाश मान्य है।

उत्तररामचरित की कथा तो अधिकांशतः **वाल्मीकिरामायण** के उत्तरकाण्ड के अनुसार ही है। गीता-वनवास, वन में कुश और लव का जन्म, शम्बूक-वध आदि मूलतः **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ही हैं। तथापि लक्ष्मण का लौट आना, प्रसव-पीड़ा से निराश होकर सीता का गङ्गा में कूद पड़ना, गङ्गा में ही कुश और लव का जन्म होना, पृथ्वी और गङ्गा द्वारा पुत्रसहित सीता को रसातल ले जाकर उनका पोषण करना, कुछ बड़े होने पर दोनों पुत्रों को शिक्षा के लिए वाल्मीकि को सौंपना आदि अंश भी कल्पान्तरीय कथा ही है।

राम की सेना से लव और कुश का युद्ध करना **उत्तररामचरित** की विशेषता नहीं है—यह तो अति प्राचीन **पद्मपुराण** के पातालखण्ड में विस्तृतरूप से वर्णित है। **उत्तररामचरित** में वाल्मीकि के आश्रम में राम तथा अयोध्या की जनता के सामने सीता-चरितसम्बन्धी एक वाल्मीकिकृत नाटक के अभिनय का वर्णन है, जिसके कारण समस्त प्रेक्षकगण सीता की निर्दोषता पर विश्वास करते हैं और सीता तथा लव और कुश के साथ राम अयोध्या लौट आते हैं। नाटक के अभिनय के अतिरिक्त अन्य सब कथा **पद्मपुराण** और **जैमिनीयाश्वमेध** का ही संक्षिप्त रूप है।

अनु० २३० : बुल्के के अनुसार **उदात्तराघव** नाटक ८वीं श० ई० का है। इसमें सीताहरण का वृत्तान्त नवीन ढंग से अङ्कित किया गया है। राक्षसों द्वारा रामपक्षवालों का रूप धारण कर अनेक प्रकार से वञ्चना करने का प्रयास करना आदि भी इसमें वर्णित है। एक राक्षस हनुमान् का रूप धारण कर सुग्रीव को रावण द्वारा सीता-वध का समाचार देता है। इसपर सुग्रीव अङ्गद को राज्य सौंप कर चिता में प्रवेश करना चाहते हैं। वास्तविक हनुमान् के ठीक समय पर पहुँच जाने से उनकी रक्षा हो जाती है। अन्तिम अङ्क में एक राक्षस वसिष्ठ का शिष्य बनकर भरत को संदेश देता है कि लक्ष्मण युद्ध में मारे गये हैं। एक असुर नारद के रूप में पहुँचकर कहता है कि राम का भी देहान्त हो गया है। एक राक्षस सीता का रूप बनाकर उस कथन का समर्थन करता है। भरत सरयू में डूबकर मरने को प्रस्तुत होते हैं, किन्तु श्रीहनुमान् शुभ समाचार लेकर आते हैं और उनको मरने से रोकते हैं। हनुमान् से यह भी पता लगता है कि एक असुर ने सुमन्त्र का रूप धारण कर राम को समाचार दिया कि भरत मरणासन्न हैं।

अनु० २३१ : **कुन्दमालाकी** कथावस्तु **उत्तररामचरित** से मिलती-जुलती है, परन्तु उसमें कुश-लव युद्ध का वर्णन नहीं है। चतुर्थ अङ्क में कहा गया है कि वाल्मीकि ने अपने तपोबल से आश्रम की स्त्रियों को अदृश्य होने का वरदान दे दिया था, अतः सीता अदृश्य रहकर राम से मिलती हैं। राम जल में सीता की छाया देखकर विरहजन्य तीव्र ताप से मूर्च्छित हो जाते हैं। अन्तिम अङ्क में कुश और लव **रामायण** का गान करते हैं; सब अत्यन्त प्रभावित होते हैं। राम कुश और लव से उनके माता-पिता के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं। कुश वनदेवी को अपनी माता कहते हैं पर पिता के सम्बन्ध में जानकारी का अभाव बताते हैं। पर लव कहते हैं "हाँ, हमें मालूम है हमारे पिता का नाम 'निरनुक्रोश' है, क्योंकि एक दिन माता ने कुपित होकर कहा था 'निरनुक्रोशतनयौ'। सभा में सीता के शपथ करने पर पृथ्वी देवी प्रकट होकर सीता की निर्दोषता का साक्ष्य देती हैं। इसपर राम सीता को स्वीकार करते हैं। पृथ्वी अन्तर्धान हो जाती हैं, यह भी **पद्मपुराण** के अनुसार ही है।

अनु० २३२ : मुरारिकृत **अनर्घराघव** की रचना ९०० ई० की कही जाती है। विश्वामित्र के आगमन से लेकर राम के राज्याभिषेक तक का वृत्तान्त ही उसकी कथा-वस्तु है। इसके तृतीय अङ्क में रावण-दूत शौष्कल मिथिला जाकर रावण की ओर से सीता की माँग करता है। **महावीरचरित** में भी रावण का एक दूत विश्वामित्र के आश्रम में रावण की ओर से सीता की माँग करता है।

अनु० २३३ : राजशेखरकृत **बालरामायण**। इसकी रचना दसवीं शती ई० में हुई थी। सीता-स्वयंवर से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा का इसमें वर्णन है। प्रहस्त धनुषपरीक्षा करना अस्वीकार करता है तथा सीता के पति को शत्रु घोषित कर लौटता है और परशुराम से सहायता भी माँगता है। इसके अनुसार मिथिला में ही परशुराम मिलते हैं, किन्तु लक्ष्मण ही विष्णु-धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाते हैं। इसके अनुसार अयोध्या में दशरथ तथा कैकेयी की अनुपस्थिति पाकर मायामय शूर्पणखा तथा एक परिचारिका कैकेयी और मन्थरा का रूप धारणकर राम को निर्वासित करने में सफल होते हैं।

२३४ अनु० : बुल्के के अनुसार "**हनुमन्नाटक** की प्रथम रचना दशवीं शती ई० में हुई, परन्तु १४वीं शती तक इसमें प्रक्षेप जुड़ते रहे हैं। फलस्वरूप इसमें भिन्नपाठ प्रचलित हैं। दामोदर मिश्र तथा बंगाल के मधुसूदन का पाठ प्रचलित है। दामोदरमिश्र का पाठ मूलरचना के अत्यधिक निकट और प्राचीन है।" वस्तुतः प्रसिद्धि के अनुसार यह श्रीहनुमान्‌जी के द्वारा वर्णित रामकथा है। कहते हैं हनुमान् ने स्वयं राम के साथ रहकर ही बहुत से वृत्तान्तों को प्रत्यक्ष देखा और सुना था। वाल्मीकि ने तो एकान्त में अरण्य में बैठ कर **रामायण** का निर्माण किया था, अतः आँखों देखी घटनाओं का वर्णन ही महत्त्वपूर्ण हो सकता है। परन्तु किसी भी महर्षि ने श्रीहनुमान् की इस रामकथा पर अपनी सम्मति नहीं दी और राम के सन्मुख रखने की ही राय सबने दी। राम के सामने आने पर उन्होंने देखा और उसकी प्रशंसा भी की, परन्तु रामचरित्र के सम्बन्ध में वाल्मीकि की ऋतम्भराप्रज्ञाप्रसूत **वाल्मीकि-रामायण** को ही सर्वाधिक प्रमाण बताया।

कहा जाता है कि राम का अभिप्राय जानकर हनुमान् ने पाषाणों पर लिखी अपनी रामकथा को समुद्र में विसर्जित कर दिया। कालान्तर में किसी को उन पाषाणों में से कुछ पाषाण प्राप्त हुए, कुछ नहीं भी मिले, इसी लिए अनेक स्थानों में यह रचना अपूर्ण है। विरोधी प्रमाणान्तर उपलब्ध न होने से ऐसी प्रसिद्धियाँ भी प्रमाण ही मानी जाती हैं। इसके निम्न विषय उल्लेख्य हैं।

१. सीता-स्वयंवर :—स्वयंवर में रावण के दूत की उपस्थिति तथा परशुराम का मिथिला में ही आगमन वर्णित है।

२. सीता-रामविलास—बुल्के के कथनानुसार इस प्रसङ्ग में शृङ्गार अश्लीलता की सीमा तक पहुँच गया है। पर शृंगार को अश्लीलता समझना उनका भ्रम ही है। वस्तुतः जीवब्रह्म का सम्मिलन और कहीं-कहीं प्रकृति में परमपुरुष द्वारा गर्भाधान का वर्णन गीता तथा वेद जैसे ग्रन्थों में भी विद्यमान है—

"मम योनिर्महद्‌ ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।" (गी० १४।३)

इस उक्ति से स्वयं भगवान् कहते हैं "प्रकृति मेरी योनि—पत्नी है, उसमें मैं गर्भाधान करता हूँ।" "उसी से सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति होती है।" ब्रह्मचैतन्य का प्रतिबिम्बरूप गर्भाधान पाकर ही प्रकृति महदादि के क्रम से विश्वप्रपञ्च का निर्माण करती है। यह वस्तुस्थिति है। गंगा में शीतलता और पवित्रता के समान ही परमानन्दघन राम में माधुर्यसार-सर्वस्व की अधिष्ठात्री ही सीता है। सीता और राम में अत्यन्त अभेद है।

३ राम के वन-गमन के समय भरत का अयोध्या में विद्यमान होना भी इसमें वर्णित है तथा अहल्योद्धार का वृत्तान्त अगस्त्याश्रम से पञ्चवटी की ओर जाते समय वर्णित किया गया है। सीता के रक्षणार्थ भूमि पर धनुष से रेखा खींचकर राम लक्ष्मण को साथ लेकर मायामृग को मारने जाते हैं। कल्पान्तरीय कथा का आश्रयण कर उक्त वृत्तान्त की भी संगति लगायी ही जा सकती है। धनुष-रेखा की कथा तो प्रायः बहुसम्मत है ही।

४. मृग का शिकार—राम तथा लक्ष्मण मृग का शिकार करने के लिए साथ-साथ जाते हैं। वस्तुतः कवि को विवक्षित यह है कि राम को अपनी धनुषरेखा पर पूर्ण विश्वास था कि संसार में किसी की शक्ति नहीं है जो

रेखा का लङ्घन कर या बाहर से ही सीता को छू सके। इसलिए राम लक्ष्मण को भी लेकर निश्चिन्तता के साथ चले जाते हैं। पर मायावियों से महाशक्तिमान् को भी सावधान रहना चाहिये, क्योंकि उनकी माया के कारण ही स्वेच्छा से ही जानकीजी भिक्षा प्रदान करने के लिए रेखा से बाहर आयीं और उनका हरण हुआ।

५. वालिवध का प्रचार—इसमें भी महावीरचरित के समान है। राम को वाली ललकारता है और द्वन्द्वयुद्ध में राम के द्वारा मारा जाता है। हनुमान् को रुद्रावतार बतलाया गया है।

६. हनुमद्विजय—इसमें सीता हनुमान् को तीन अभिज्ञान देती हैं। चूड़ामणि, काक की कथा तथा राम का सीता को तिलक लगाने का वृत्तान्त। यह कथा प्रायः प्रसिद्ध ही है।

७. सेतुबन्ध—राम के बाण चलाने का उल्लेख नहीं है।

८. अंगदाधिक्षेपण—अपने पिता के वध के कारण राम से वैर रखकर अंगद रावण को युद्ध में प्रवृत्त करने के उद्देश्य से रावण का अपमान करते हैं।

९. मन्त्रिसभा—लङ्का की मन्त्रिसभा का वर्णन।

१०. रावण पहले राम और लक्ष्मण के मायामय सिर सीता को दिखलाता है। अनन्तर रावण राम का रूप धारण कर तथा अपने दस मायामय मस्तक हाथ में लेकर सीता को ठगने का प्रयत्न करता है।

११. इसमें अंगद द्वारा राक्षसी प्रभञ्जनी के वध का भी उल्लेख है।

१२. इन्द्रजित्-वध।

१३. लक्ष्मणशक्तिभेद। इसमें लक्ष्मण और रावण के युद्ध के समय नारद हनुमान् के समीप आते हैं और हरिगुण-गान करते हैं। श्रीहनुमान् युद्ध करते हुए भी नारद-कृत हरिगुणगान से आकृष्ट होते हैं। नारद धीरे-धीरे पीछे हटते हैं। इसीसे लक्ष्मण को शक्ति द्वारा आहत करने का अवसर रावण को मिल जाता है। रावण के वैद्य सुषेण द्वारा लक्ष्मण की चिकित्सा का वृत्तान्त भी आता है।

१४. राम की विजय वर्णित है। रावणदूत लोहिताक्ष राम के पास आकर रावण की ओर से सन्धि का प्रस्ताव करता है। जामदग्न्य के परशु के लिए रावण सीता को लौटाना चाहता है। राम प्रस्ताव को अस्वीकार करते हैं। रावण-वध के बाद अंगद अपने पिता का बदला लेने के लिए समस्त सेना को ललकारता है जिसपर आकाशवाणी द्वारा कहा जाता है कि कृष्णावतार में वाली व्याध के रूप में कृष्ण से बदला लेगा? इस तरह किन्हीं अंशों में त्रुटित होने के कारण कहीं कहीं नयी कथाओं के जुड़ जाने से **महानाटक** में कुछ विभिन्नता आ गयी है।

२३५ वाँ अनु० : शक्तिभद्रकृत **आश्चर्यचूड़ामणि**। यह दक्षिण भारत का नाटक ९वीं शती का माना जाता है। कुछ लोग इसकी इतनी प्राचीनता में सन्देह करते हैं। इसमें शूर्पणखा के आगमन से सीता की अग्निपरीक्षा पर्यन्त की कथा सात अङ्कों में वर्णित है। इसकी विशेषता यह है कि राम और सीता के पास मुनियों से प्राप्त एक अँगूठी और चूड़ामणि है। जिनके प्रभाव से छद्मवेशी राक्षस राम अथवा सीता के स्पर्श से अपने वास्तविक रूप में व्यक्त हो जाता है। इस घटना के कारण ही इस नाटक का नाम **आश्चर्यचूड़ामणि** है। राम का रूप धारण करनेवाला रावण लक्ष्मण का रूप धारण करनेवाले सारथि की सहायता से सीता का हरण करता है। इतने में शूर्पणखा सीता के रूप में राम से बातचीत करती है तथा मारीच राम के रूप में लक्ष्मण से। आश्चर्यपूर्ण नाटक निर्माण की दृष्टि से उक्त कल्पना कविकृत भी हो सकती है।

२३६ वाँ अनु० : **राघवानन्द, मायापुष्पक तथा स्वप्नदशानन** रामकथा-सम्बन्धी अप्राप्य नाटक भी काव्य-शास्त्रों के अनेक उद्धरणों से विदित होते हैं। क्षीर-स्वामी कृत **अभिनवराघव** १०वीं शती की रचना है।

इसका उल्लेख हेमचन्द्र के शिष्यों द्वारा हुआ है। **रघुविलास** और **राघवाभ्युदय** भी अप्राप्य हैं। यशोवर्मा का **रामाभ्युदय** ८वीं शती की रचना है। इसमें शूर्पणखा के विरूपीकरण से आरम्भ कर सीता की अग्निपरीक्षा के पश्चात सुग्रीव तथा विभीषण के अयोध्या के लिए प्रस्थान करने तक की ही कथावस्तु वर्णित है।

शारदातनय एक अन्य **रामानन्द** नाटक का उद्धरण करते हैं। उसमें सीता-हरण के पहले ही विभीषण का परिचय मिलता है। **"प्रागेव सीताहरणाद् यद्विभीषणवर्णनम्"** (दे० भावप्रकाशन, ८)। **छलितराम** का भी रचयिता अज्ञात है। उसमें रावण-वध के पश्चात् राम के अयोध्या-गमन से प्रारम्भ कर रामाश्वमेध पर्यन्त का वृत्तान्त वर्णित है। इसके अनुसार सीतात्याग का कारण अयोध्या की जनता का अपवाद नहीं है, किन्तु लवण दो राक्षसों को राम के पास भेजता है जो राम के अन्तरङ्ग सखा बन कर उनको सीता के प्रति अपरक्त करते हैं। लवण के इस छल-कपट के कारण नाटक का नाम छलितराम रखा गया है। लव-कुश का युद्ध भी मौलिक है। लक्ष्मण लव को कैदी बनाकर उनको राम के दरबार में ले जाते हैं। लव अश्वमेध के मण्डप में सुवर्णमयी सीता को देख कर अपनी माता सीता को पहचानते हैं। इससे राम को पता चलता है कि सीता जीवित है। बुल्के इस अंश को मौलिक मानते हैं; अर्थात् जो नवीन कल्पनाएँ होती हैं उन्हें आधुनिक लोग मौलिक कहते हैं। जो मूल-रहित है वही मौलिक है।

कृत्यारावण नाटक में रावण की कृत्या (माया) का वर्णन है। माया-मृग के अतिरिक्त राक्षसी माया का परिचय शूर्पणखा के विभिन्न रूपों से तथा सीता के सामने राम-वध के प्रदर्शन से मिलता है। कथानक का मुख्य परिवर्तन सीता-हरण का एक नवीन रूप है जिसमें सीता लक्ष्मण के प्रति कटु शब्दों का प्रयोग नहीं करतीं, अपितु शूर्पणखा ही सीता का रूप धारण कर लक्ष्मण की भर्त्सना करती है। छठे अङ्क में 'दारुणिका' राक्षसी को सीता का वध करने का आदेश दिया जाता है। वह सीता को आत्महत्या के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से उनके सामने मायामय राम का वध करवाती है। अपने स्वामी की हत्या देख कर सीता अग्नि-प्रवेश का निश्चय करती हैं। इस निश्चय का समाचार राम को दिया जाता है। नाट्य-दर्पण में जो सीता-विपत्तिश्रवण का उद्धरण मिलता है वह इस प्रसङ्ग की ओर ही निर्देश करता है। माया अव्यवस्थित होती है, अतः उसके सम्बन्ध के सभी वर्णन सङ्गति-निरपेक्ष ही होते हैं।

२३७ वाँ अनु० : जयदेवकृत **प्रसन्नराघव** १२वीं या १३वीं शताब्दी की रचना है। इसपर मुरारिकृत **अनर्घराघव** का स्पष्ट प्रभाव है। इसके प्रथम अङ्क में सीता-स्वयंवर में रावण तथा बाणासुर की उपस्थिति और धनुष-संधान का निष्फल प्रयत्न वर्णित है। दूसरे अङ्क में धनुर्भङ्ग के पूर्व राम और सीता का मिथिला के चण्डि-कायतन में मिलना वर्णित है। तुलसीदासजी के रामचरितमानस में भी इन अंशों का वर्णन है। पञ्चम अङ्क में यमुना गङ्गा, गोदावरी और सरयू का मानवीकरण और उनका सागर-तट पर मिल कर अपने भू-भाग से सम्बन्धित राम-कथा का सुनाना भी वर्णित है। वैदिक संस्कृति में "अभिमानिव्यपदेशस्तु" (ब्र० सू० १।१।५) के अनुसार पृथिवी और जल के अधिष्ठाता देवता होते हैं; तदनुसार गङ्गा आदि की भी अधिष्ठात्री देवियाँ हैं। रसगङ्गाधरकार पण्डित-राज जगन्नाथ को उसी गङ्गा का दर्शन हुआ था।

२३८वें अनु० में **उल्लाघराघव** की रचना १३वीं शती की कही जाती है। इसकी अपूर्ण हस्तलिपि भण्डारकर इंस्टिट्यूट पूना में सुरक्षित है। कैटलाग में इसका नाम **रामायणनाटक** लिखा गया है। इसमें **वाल्मीकि-रामायण** के बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड के अन्त तक का वृत्तान्त आठ अङ्कों में प्रस्तुत है।

प्रथम अङ्क में राम-सीता-विवाह के पश्चात् मिथिला से प्रस्थान का वर्णन है। इसके बाद कञ्चुकी हरिदत्त परशुराम के तेजोवध की कथा सुनाते हैं। शेष सब कथा **वाल्मीकिरामायण** की ही है। अनन्तर लवण का एक गुप्तचर मुनि का रूप धारण कर अयोध्या में यह समाचार फैलाता है कि रावण राम और लक्ष्मण का वध कर अयोध्या पर

आक्रमण करने आ रहा है। सेना को बुलाया जाता है। कौशल्या और सुमित्रा अग्नि में प्रवेश की तैयारियाँ करती हैं। लङ्का से सदल राम को लेकर पुष्पक विमान के पहुँचने पर भरत विभीषण पर बाण चलाना चाहते हैं, किन्तु वसिष्ठ उनको रोकते हैं।

२३९ वाँ अनु० : जैनकवि हस्तिमल्ल के **मैथिलीकल्याण** तथा **अञ्जनापवनञ्जय** १२९० ई० के माने जाते हैं। मैथिलीकल्याण शृङ्गारप्रधान रचना है। **अञ्जनापवनञ्जय** में अधिकांश विमलसूरि के **पउमचरियं** का अनुसरण है। प्रथम अङ्क में अञ्जना के स्वयंवर की तैयारियाँ, द्वितीय अङ्क में स्वयंवर और पवनञ्जय एवं अञ्जना का विवाह तथा युद्ध के लिए पवनञ्जय का प्रस्थान। तृतीय अङ्क में पवनञ्जय का रात्रि के समय अञ्जना से मिलना तथा प्रातः छिपकर युद्ध-क्षेत्र में लौट जाना। चतुर्थ अङ्क में गर्भवती अञ्जना का उसके मायके महेन्द्रपुर भेजा जाना। पञ्चम अङ्क में वरुण की पराजय के बाद पवनञ्जय अञ्जना के विषय में सुनते हैं और उसकी खोज करते हैं। छठे अङ्क में गन्धर्वराज मणिचूड़ के राज्य में हनुमान् का जन्मना। **पउमचरियं** के अनुसार विवाह के पश्चात् पवनञ्जय २२ वर्ष तक उदासीन रहता है। युद्ध-क्षेत्र में अचानक अञ्जना के प्रति आकर्षित होकर रात के समय छिपकर अञ्जना के पास जाता है। परन्तु हस्तिमल्ल इस अंश को छोड़कर स्वयंवर का वर्णन कर मौलिकता का प्रदर्शन करते हैं। सिद्धान्तदृष्टि से तो मौलिकता का अर्थ निर्मूलता ही है। यद्यपि **पउमचरियं** भी कल्पनाप्रधान ही है तथापि अपेक्षाकृत वह राम या हनुमान् के चरित्रमूलक हो सकता है। वैदिक **वाल्मीकि-रामायण** के अनुसार हनुमान् रुद्रावतार होने पर भी एक विशिष्ट वानर थे, परन्तु जैनों ने रामकथा को विकृत कर अपने ढंग से रचनाएँ की हैं। उनके अनुसार हनुमान् आदि वानर वानर न होकर विद्याधर थे।

२४० वाँ अनु० : सुभट्टकृत **दूताङ्गद** १२वीं शती की रचना है। अङ्गद के दूतत्व का प्रथम दो अङ्कों में वर्णन है। अनन्तर रावण-पराजय और राम के विजयोत्सव का चित्रण है।

२४१ वाँ अनु० : भास्करभट्टकृत **उन्मत्तराघव** १४वीं शती में दुर्वासा के शाप से सीता के मृगरूप में बदल जाने पर राम का सर्वत्र सीता को ढूँढ़ना तथा अगस्त्य की सहायता से पुनः प्राप्त करने का उल्लेख है। बुल्के के अनुसार यह **विक्रमोर्वशीयं** के चतुर्थ अङ्क का अनुकरण है।

२४२ वाँ अनु० : विरूपाक्षकृत **उन्मत्तराघव** (१५ वीं ई० शती) की रचना है। इसमें विप्रलम्भशृङ्गार प्रधान रस है। इसमें **वाल्मीकीयरामायण** के अनुसार सीताहरण वर्णित है। किन्तु कनकमृग मारने के बाद सीता को न पाकर राम उन्मत्त हो जाते हैं। लक्ष्मण अकेले ही जाकर वानरों की सहायता से रावण को मारकर सीता को राम के सामने उपस्थित करते हैं। श्रीराम की उन्मत्तता जैसी स्थिति तो वाल्मीकि तथा अन्य ग्रन्थों में भी वर्णित है जो कि स्वाभाविक भी है, परन्तु अन्य अंश स्वतन्त्र कवि की कल्पना है।

२४३ वाँ अनु० : व्यासमिश्रदेवकृत **रामाभ्युदय** (१५ वी शती) में लङ्कायुद्ध, सीता की अग्निपरीक्षा, पुष्पक से अयोध्या आगमन तथा अभिषेक वर्णित है।

२४४ वाँ अनु० : दक्षिणनिवासी महादेवकृत **अद्भुतदर्पण** (१७ वीं शती) में राम को एक ऐन्द्रजालिक दर्पण द्वारा लङ्का की घटनाएँ दिखायी गयी हैं। उसी काल के रामभद्र दीक्षित के **जानकीपरिणय** में सीताहरण के उद्देश्य से विराध रामरूप धारण करता है। शूर्पणखा राम को रोकने के उद्देश्य से सीता का रूप धारण करती है। दोनों आश्रम में पहुँचकर एक दूसरे को नहीं पहचानते हैं। फलस्वरूप विराध शूर्पणखा को ले जाता है। अन्त में छद्मवेषी शूर्पणखा रामवध का झूठा समाचार लेकर हनुमान् के पूर्व ही अयोध्या में पहुँच कर भरत और शत्रुघ्न को सूचित करती है। अद्भुत के आस्वादन के लिए रामायण के प्रसिद्ध श्रीराम, श्रीसीता आदि का आश्रयण कर उक्त

काल्पनिक कथाएँ कल्पनामात्र तो हैं ही, परन्तु उन प्रसङ्गों में श्रीराम और सीता का चिन्तन पुण्यजनक भी हो ही सकता है।

स्फुटकाव्य

२४५ वाँ अनु० : **श्लेषकाव्य** का सन्ध्याकरनन्दि ने १२वीं शती में निर्माण किया है। इसमें २२० आर्या छन्दों में समस्त रामकथा की घटनाओं का श्लेषात्मक शब्दों में वर्णन है। उसके साथ ही साथ वङ्गीयराजा रामपाल का चरित्र भी वर्णित है। यह भी कवियों का विनोदमात्र है। **राघवपाण्डवीय** १२वीं शती की रचना है। इसमें भी श्लेषात्मक शब्दों में **रामायण** और **महाभारत** की कथाओं का वर्णन है।

हरदत्तसूरिकृत **राघवनैषधीय** में राम और नल का चरित्र वर्णित है।

सङ्कटनाशनस्तोत्र (१८वीं शती) में राम और कृष्ण का वर्णन है।

सन्नीतिरामायण १५वीं शती) में प्रत्येक श्लोक के पूर्वार्द्ध में नीति-वाक्य है और उत्तरार्द्ध में रामकथा वर्णित है। सात काण्डों में समस्त रामकथा प्रस्तुत है।

यथा—

"धर्मार्थसाधकं कुर्याद् व्यापारं स्वकुलोचितम्।
इक्ष्वाकुवंशजोऽरक्षत् क्षोणीं दशरथोऽखिलाम्॥"

अर्थात् मनुष्य को चाहिये की अपनी कुल-परम्परा के अनुसार धर्म और अर्थ साधक कार्य करे। जैसे इक्ष्वाकुवंशज दशरथ ने अखण्ड भूमण्डल की रक्षा की। यह कार्य उनके धर्म और अर्थ दोनों का साधक था।

२४७ वाँ अनु० : सूर्यदेवकृत **राम-कृष्णविलोमकाव्य** १५४० ई० की रचना ३६ छन्दों में वर्णित है। यह काव्य स्वाभाविक क्रम से राम का वर्णन करता है और विपरीत क्रम से कृष्ण का।

यादवराघवीय (१७ वीं शती) में ३०० छन्दों में राम और कृष्ण का पूर्वोक्त क्रम से ही वर्णन है। **राघवीययादव** ६४ श्लोकों का है; विषय पूर्वोक्त ही है।

२४८ वाँ अनु० : कृष्णमोहनकृत **रामलीलामृत** १२० छन्दों का है। इसमें विश्वामित्र के आगमन से रावण-वध तक की रामकथा का वर्णन है। इनमें पद्मबन्ध, सोपानबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध आदि चित्रालङ्कारों का व्यापक प्रयोग हुआ है।

आन्ध्रदेशनिवासी वेङ्कटेशकृत **चित्रबन्धरामायण** में ६ सर्ग और ६२० छन्द हैं।

२४९ वाँ अनु० : रामसम्बन्धी **शृङ्गारिकखण्डकाव्य** की रचना **मेघदूत** तथा **गीतगोविन्द** के अनुकरण पर हुई है—**हंससंदेश** तथा **हंसदूत** कहा जाता है वेङ्कटदेशिक वेङ्कटनाथ वेदान्ताचार्य ने १३वीं शती में **हंससन्देश** लिखकर रामकाव्य के एक नवीन रूप का प्रवर्तन किया है। इसमें हंस द्वारा सीता के समीप ले जाये गये राम के सन्देश का वर्णन है।

भ्रमरदूत नैयायिक रुद्रवाचस्पति की रचना है। इसमें राम द्वारा सीता के समीप भ्रमर को भेजने का वर्णन है।

कपिदूत में हनुमान् को दूत बनाकर भेजा गया है। **कोकिलसन्देश** वेङ्कटाचार्यकृत ३०० छन्दों का है। **चन्द्रदूत** कृष्णचन्द्रतर्कालङ्कार की रचना है (दे० हरप्रसादशास्त्री नोटिसेस भाग २० पृ० १५३)।

गीतगोविन्द के अनुकरण पर **रामगीतगोविन्द** का निर्माण हुआ है। इसमें शृङ्गारात्मक स्थल मर्यादित हैं। इसमें जन्म के पश्चात् राम का अपना विष्णुरूप दिखलाने का उल्लेख है। कैकेयी के दशरथ-रथ का भग्न अक्ष सँभालने का उल्लेख है।

रामचरितमानस के अनुसार राम-विवाह में देवताओं की उपस्थिति तथा जनक द्वारा रामचरण धोने का भी उल्लेख है तथा जयन्त सीता-चरण पर चोंच मारकर भागता है—

"शक्रसूनुरगमत् खगाकृतिः", "विददार पदाङ्गुष्ठम्।"

पम्पासर पर नारद-राम-संवाद का भी उल्लेख है। इसी प्रसङ्ग में बुल्के ने **गीतराघव, रामविलास, जानकीगीता, सङ्गीतरघुनन्दन, राघवविलास, रामशतक, रामार्याशतक, आर्यारामायण** आदि स्फुट काव्यों की भी चर्चा की है।

कथासाहित्य

२५२ वाँ अनु० : **दशकुमारचरित, वासवदत्ता, हर्षचरित, कादम्बरी** आदि की आख्यायिकाशैली में विस्तृत रामकथा का वर्णन नहीं हो पाया है, परन्तु गुणाढ्यकृत **बृहत्कथा** में, जिसकी रचना सम्भवतः प्रथम शती पूर्व हुई थी, रामकथा का वर्णन होने का अनुमान है; क्योंकि उसके रूपान्तर जैनियों के **वसुदेवहिण्डि** (५ वीं शती) तथा सोमदेवकृत **कथासरित्सागर** में रामकथा का वर्णन है।

वसुदेवहिण्डि (वसुदेवभ्रमण) जैन महाराष्ट्री गद्य में बृहत्कथा का रूपान्तर है। इसमें संक्षेप में रामकथा है। यह जैनी रामकथा से प्रभावित होने पर भी गौण परिवर्तनों के साथ वाल्मीकीय कथा ही है। इसमें सीता का जन्म लङ्का में माना गया है। इसमें रावण-जन्म, वंशावली, लङ्का में प्रवास, मन्दोदरी-विवाह एवं दशरथ तथा उनकी सन्तति का उल्लेख है। कौशल्या के पुत्र राम, सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण तथा कैकेयी के पुत्र भरत और शत्रुघ्न एवं रावण मन्दोदरी से उत्पन्न परित्यक्ता पुत्री सीता की जन्मकथा वर्णित है। वह मेनाक की पुत्री बन जाती है। इसमें सीता-स्वयंवर का वर्णन है। अन्य भाइयों के भी विवाह का संकेत इसमें मिलता है। राम के १२ वर्ष के निर्वासन के वर्णन में मन्थरा तथा कैकेयी के दो वरों का उल्लेख है। दशरथ-मरण के बाद भरत राम के पास जाते हैं। उसी अवसर पर कैकेयी पश्चात्ताप करती हुई राम से राज्य स्वीकार करने का अनुरोध करती है। शूर्पणखा का विरूपीकरण आदि अन्य सब कथा वाल्मीकि के अनुसार है। बुल्के कहते हैं जैनी रामकथा के अनुसार इसमें लक्ष्मण ही रावण को मारते हैं। **महाभारत** में भी कुम्भकर्ण का वध लक्ष्मण के ही द्वारा वर्णित है। फिर भी टीकाकार नीलकण्ठ वहाँ लक्ष्मण के द्वारा कुम्भकर्ण को मृतप्राय कहकर वास्तविक कुम्भकर्ण का मरण राम से ही मानते हैं। देवताओं द्वारा लक्ष्मण को आठवाँ वासुदेव घोषित किया जाना जैनी प्रभाव ही है। वानरों तथा राक्षसों को विद्याधर की पदवी प्रदान भी जैनी प्रभाव ही है। इसके अतिरिक्त सुग्रीव का निमन्त्रण स्वीकार कर भरत की सेना युद्ध में भाग लेती है तथा कैकेयी को दिये गये दो वरों के प्रदान के निमित्त उक्त दो वरों के भिन्न अवसरों की कल्पना की गयी है। प्रथम वर काम-शास्त्र की निपुणता के कारण दिया जाता है। कैकेयी ने सेना का नेतृत्व कर विरोधी राजा को हराकर उनके द्वारा बन्दीकृत राजा को छुड़ाया, इस कारण कैकेयी को दूसरा वरदान मिलता है। यह **वसुदेवहिण्डि** के लेखक संघदास का मौलिक अंश माना जाता है।

२५४ वाँ अनु० : सोमदेव की ११वीं शती की रचना **कथासरित्सागर** के १४वें लम्बक के १०७ तरङ्गों में वनवास से लेकर रावणवध के बाद अयोध्या आने तक की संक्षिप्त कथा वर्णित है। यह अंश **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ही है, पर अलंकारवतीलम्बक में काञ्चनप्रभा विरह-व्याकुल नरवाहनदत्त को सान्त्वना देती हुई रामकथा का जो वर्णन करती है उसमें प्रारम्भ में विष्णु के अंश राम का निर्वासन, सीताहरण, रावण-वध का संक्षिप्त वर्णन के अनुसार धोबीवृत्तान्त से मिलती-जुलती सीता-त्याग की कथा दी गयी है। शेष वृत्तान्त की विशेषताएँ ये हैं— वाल्मीकि आश्रम में सीता की परीक्षा, जिसमें पृथ्वी देवी प्रकट होकर सीता को टिट्टिभसर के उस पार पहुँचाती है।

टिट्टिभसर की कथा यों है—किसी टिट्टिभी के सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए लोकपालों ने टिट्टिभ-सरोवर का निर्माण किया था। आश्रम के कुछ ऋषियों के अनुसार उस टिट्टिभ-सरोवर के पास जाकर सीता अपने सतीत्व की शपथ खाकर जल ने प्रवेश करती है। इसपर पृथ्वी देवी प्रकट होकर सीता को अपनी गोद में लेकर सरोवर के उस पार पहुँचाती है। यह देखकर ऋषि लोग सीता के सतीत्व के प्रति विश्वस्त होकर राम को शाप देना चाहते हैं, परन्तु सीता के अनुरोध पर वे वैसा नहीं करते। इसमें लव के जन्म के बाद कुश के अलौकिक जन्म की कथा है। लव और कुश का रामसेना से युद्ध, राम और सीता के मिलन पर कथा की सुखान्त समाप्ति होती है। वस्तुतः प्रामाणिक ऐतिहासिक कथा **वाल्मीकिरामायण** की ही है। पुराणों तथा संहिताओं की अनेक कथाएँ अनेक भिन्न कल्पानुसारिणी हैं। पर्याप्त कालातिक्रमण के कारण अनेक काल्पनिक कथाएँ भी उनमें जुड़ गयी हैं।

बहुत कवियों ने अपनी वाणी पवित्र करने के लिए, बहुतों ने विनोदवशात् एवं बहुतों ने अद्भुत-रस-वर्णन की दृष्टि से विभिन्न कल्पनाएँ की हैं, पर इतनेमात्र से राम की प्रामाणिक कथा कल्पनामात्र नहीं हो जाती है। किन्तु वह परम सत्य एवं महर्षि वाल्मीकि द्वारा ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा अनुभूत है।

२५५ वाँ अनु० : **चम्पूरामायण** (११वीं शती) विदर्भ के राजा भोज की कृति है। वह **वाल्मीकिरामायण** दाक्षिणात्य-पाठ के अनुसार है। इसमें भोजकृत ५ काण्ड हैं; छठे युद्धकाण्ड का निर्माण लक्ष्मणभट्ट ने किया है। **उत्तररामायणचम्पू** की रचना वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड के अनुसार हुई है।

२५६ वाँ अनु० : वासुदेव ने (१७वीं शती) **रामकथा** में ६ काण्डों की संक्षिप्त कथा **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार गद्य में लिखी है। इसमें **महाभारत** के रामोपाख्यान के अनुसार मन्थरा एक दुन्दुभी नाम की गन्धर्वी का अवतार थी तथा अहल्या के वास्तव में ही पत्थर बन जाने का उल्लेख है।

पिटर्सन की संस्कृत हस्तलिपियों की सूची में एक अनन्तभट्टकृत **रामकल्पद्रुम** का भी नाम मिलता है।

❋

एकादश अध्याय

आधुनिक भारतीय भाषाओं में रामकथा

द्राविड़ भाषाओं के साहित्य में रामकथा

तमिलरामायण

२५७ वाँ अनु० : कहा जाता है **कम्बरकृतरामायण** द्राविड़ भाषा का सबसे प्राचीन काव्यग्रन्थ (१२ वीं-श० ई० का) है। इनमें **बाल्मीकिरामायण** के छहों काण्डों की कथा-वस्तु के साथ अनेक नये वृत्तान्त जोड़े गये हैं। कम्बर के पूर्व ओट्टक्कूतन ने भी तमिल भाषा में रामायण लिखी थी। कम्बर की रामायण सुन कर वे अपना काव्य नष्ट कर रहे थे। कम्बर ने जाकर उत्तर-काव्य को बचाया। **तमिलरामायण** का उत्तर-काण्ड ओट्टक्कूतन का है। उसमें धोबी के कारण सीता-त्याग की कथा है।

इसमें राम और लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ मिथिला में प्रवेश का स्वतन्त्र वर्णन है। विस्तृत मिथिला-वर्णन के पश्चात् इसमें सीता और राम एक दूसरे को देखते हैं और दोनों विरह-व्याकुल होते हैं (बालका० सर्ग १०)। इसके बाद जनक द्वारा राम का स्वागत तथा सीता-स्वयंवर वर्णित है। उसमें सपत्नीक दशरथ की यात्रा का विस्तृत वर्णन है। सीताहरण के वृत्तान्त में रावण सीता को स्पर्श करने के भय से पृथ्वी खोदकर भूमिभाग के साथ-साथ उन्हें ले जाता है (अरण्यकाण्ड सर्ग ८)। युद्धकाण्ड में विभीषण नृसिंहावतार की कथा सुनाकर नारायणावतार राम से युद्ध न करने का रावण से अनुरोध करते हैं (सर्ग ३)। एक राक्षस जनक का रूप धारण कर सीता से अनुरोध करता है कि वे रावण को पतिरूप में स्वीकार कर लें (सर्ग १६)। इन्द्र का विडालरूप धारण करना, इन्द्र तथा अहल्या के प्रति गौतम का शाप, हनुमान् के भूषणों का उल्लेख, लक्ष्मण द्वारा दुन्दुभि के अस्थिकङ्काल का प्रक्षेपण, विभीषण की पुत्री के रूप में त्रिजटा का उल्लेख, मन्दोदरी का सहगमन, केवल लक्ष्मण का नागपाशबन्धन, मायासीता-वध आदि अंशों में वाल्मीकिरामायण से उसमें विभिन्नता है। भक्तिभावना से प्रेरित होकर अनेक रामायणों और संहिताओं के आधार पर वर्णित तथा भावना से साक्षात्कृत अंशों का वर्णन मान्य कृतियों में सम्भव होता है; परन्तु ऐतिहासिक तथ्य की दृष्टि से आर्ष **बाल्मीकिरामायण** तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों का ही अधिक महत्त्व है।

तेलुगुरामायण

२५८ वाँ अनु० : **द्विपदरामायण** १३ वीं शती की रचना मानी जाती है। यह **बाल्मीकिरामायण के** दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार है। इसमें कैकेयी का अपने पति द्वारा अपमानित होना, लङ्का-देवी-वृत्तान्त, रावण-सुग्रीव-युद्ध, अगस्त्य द्वारा राम को सूर्यस्तव का उपदेश, मैनाक, सुरसा, सिंहिका आदि का वर्णन दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार है। रङ्गनाथरामायण में ये सब विद्यमान हैं। उदीच्य पाठ की दशरथ-सागर-मैत्री, रावण-मन्दोदरी-संवाद आदि कथाएँ वर्णित हैं। पश्चिमोत्तर-पाठ के अनुसार कैकेयी के विद्याबल प्राप्त करने की कथा भी है।

वाल्मीकिरामायण गौड़ीय पाठ के अनुसार **द्विपदरामायण** में भरत-हनुमान् का संवाद, इन्द्र द्वारा गौतम ऋषि की तपस्या भङ्ग करने के लिए अहल्या के सतीत्व को भङ्ग करना, जनक का यह कहना कि यज्ञ के समय हल चलाते समय मैंने सीता को एक मञ्जूषा में पाया, लक्ष्मण के द्वारा कुटी के चारों ओर सात रेखाएँ खींची जाने का

वृत्तान्त तथा लक्ष्मण के जागरण के **वृत्तान्त** में निद्रादेवी का मानवीकरण, समुद्र मन्थन के समय वालि-सुग्रीव द्वारा देवताओं की सहायता तथा तारा की उत्पत्ति, नल द्वारा वर-प्राप्ति, रावण के छत्र-चामरों पर राम द्वारा बाण चलाने का वृत्तान्त, सुलोचना के सहगमन की कथा, रावण की नाभि में अमृत की स्थिति, अयोध्या प्रत्यागमन के समय शिव-प्रतिष्ठा, सेतुभङ्ग आदि का वर्णन है।

२५९–२६३ अनु० : **उत्तररामायण, निर्वचनोत्तररामायण**, **भास्कररामायण**, **मोल्लरामायण**, **गोपीनाथ-रामायण** आदि भी तेलगु भाषा में रचित रामायण हैं।

मलयालम में रामचरितसाहित्य

२६४ अनु० : **रामचरितम्** तथा **रामकथप्पाट्टु** की रामकथाओं में **वाल्मीकिरामायण** का अनुसरण है।

२६५ अनु० : **कण्णश्शरामायण (१४वीं शती) वाल्मीकिरामायण** का अनुवाद-मात्र है। उनमें अनावश्यक वृत्तान्त छोड़ दिये हैं। **रामायणचम्पू** आदि भी १५वीं ई० शती के हैं।

२६७ अनु० : **अध्यात्मरामायण** १५७५ ई० में संस्कृत **अध्यात्मरामायण** का मलयाली भाषा में अनुवाद-मात्र है। **केरलवर्मा रामायण वाल्मीकिरामायण** का अनुवाद है।

कन्नड़ रामायण

२६८ अनु० : ११ वीं ई० शताब्दी से कन्नड़ भाषा में एक विस्तृत जैन रामकथा साहित्य की सृष्टि होने लगी थी। १६वी शती में तोरवेनिवासी नरहरि ने **तोरवेरामायण** लिखी है। मैरावण-कालग (मैरावण का युद्ध) भी उन्हीं का है। सोलहवीं शताब्दी का **जैमिनिभारत** कर्नाटक में अत्यन्त लोकप्रिय है। इस कथा में सीता-वनवास का अत्यन्त करुणापूर्ण वर्णन है। इसमें **वाल्मीकिरामायण** दाक्षिणात्य पाठ का अनुसरण है। **तोरवेरामायण** भक्तिभाव से ओत-प्रोत है। इसमें **आनन्दरामायण** का भी अनुकरण है। इसमें रावण का शिव-धनुष के नीचे दब जाना, इन्द्र की माला के कारण वाली की अजेयता, ब्रह्मा के अनुरोध से हनुमान् का पूँछ बढ़ाना बन्द करना, रावण की दाढ़ी का जलना, अन्ध मुनि के पुत्र का ताण्डव, नाम, अत्रि द्वारा जयन्त को शाप, विष्णुमाया के रूप में मन्थरा का उल्लेख, जाबालि का वन में राम से मिलना, ओषधि-पर्वत का अपने आप अदृश्य हो जाना, विभीषण के स्पर्शमात्र से माया सीता के शव का अदृश्य हो जाना आदि इस रामायण को असाधारण सामग्री हैं।

आदिवासियों में प्रचलित रामकथाएँ

२७० अनु०: आदिवासियों के साहित्य सुरक्षित न होने से उनमें राम-कथा ढूँढ़ना व्यर्थ है। उनमें से कई जातियों में शवरी की कथा मिलती है। बोंडो जाति में सीता-त्याग की कथा में धोबी का वृत्तान्त विकृत रूप में मिलता है।

२७१ अनु० : बिहार और बंगाल की संथाल जाति में निम्नोक्त कथाएँ मिलती हैं। गुरु के आज्ञानुसार आम खाकर दशरथ की पत्नियाँ गर्भवती हुई थीं। कैकेयी के गर्भ से भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ है। रावण-वध के बाद लौटकर राम ने संथालों के यहाँ रह कर एक शिव-मन्दिर बनाया था। उसमें वे सीता के साथ नित्य-प्रति पूजा करने आते थे। सीता की खोज के समय राम ने गिलहरी और बेर को वरदान दिया एवं बगुले को दण्ड दिया।

शरच्चन्द्र रायकृत **बिर्होस** ग्रन्थ (पृ० ४०५–४२७) में विर्होर जाति में प्रचलित रामकथा का वर्णन है। उसमें राम के जन्म से लेकर रावण तथा कुम्भकर्ण के वध तक का वृत्तान्त वर्णित है। इसमें दशरथ की सात पत्नियों का उल्लेख है। इसके अनुसार पहले दशरथ ने विश्वामित्र के साथ भरत और शत्रुघ्न को भेज दिया;

विश्वामित्र को इस धोखे का ज्ञान नहीं हुआ। सीता आँगन लीपने के लिए शिव-धनुष उठाती हैं, लक्ष्मण बारह वर्ष तक उपवास रहे, राम की सहायता के लिए जाते समय लक्ष्मण सीता को राई के दाने देते हैं, उनके द्वारा सोता रावण को भस्म कर देती है, हनुमान् का शुकरूप में लङ्का-प्रवेश, राम और लक्ष्मण का हनुमान् की पूँछ पर चढ़कर समुद्र पार करना, लक्ष्मण द्वारा रावण का वध, पश्चात् कुम्भकर्ण का वध आदि वर्णित है। इन सब कथाओं में बहुत सी कथाएँ प्रचलित दन्तकथाओं के आधार पर हैं एवं बहुत सी अनुमान पर आधारित हैं। भरत और शत्रुघ्न तथा राम और लक्ष्मण का जोड़ा प्रसिद्ध होने से उन्हें परस्पर सहोदर होने की कल्पना की गयी है। बहुत सी पुराणों की कथाएँ भी उनमें सम्मिलित हुई हैं।

मुण्डा जाति में एक दन्तकथा प्रचलित है जिसमें सीता की खोज का कुछ वर्णन है। बगुला राम की सहायता नहीं करता, अतः राम उसकी गर्दन खींच देते हैं। बेर वृक्ष राम को सीता की साड़ी के कुछ टुकड़े देता है और अमरत्व का वरदान प्राप्त करता है। गिलहरी सीता का मार्ग बताती है। राम उसकी पीठ पर तीन रेखायें खींच देते है।

डा० डब्ल्यू रूबेन ने छोटा नागपुर की असुर नामक जाति में प्रचलित कथाओं का संकलन किया है। उसमें सीता की खोज और बगुले को दण्डित करने की कथा मिलती है। उसमें हनुमान् अपने ही बाण पर समुद्र पार करते हैं। नर्मदा घाटी की परधान जाति की दन्तकथा के अनुसार सीता लक्ष्मण के संयम की परीक्षा लेती है।

२७६ वें अनु० में मध्यप्रदेश की बैगा-भूमिया जाति की दन्तकथा के अनुसार सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी से सम्बन्ध रखती हैं। सीता की छः अंगुलियाँ थी। सीता ने छठी अंगुली काटकर भूमि में रोप दी। उससे बाँस पैदा हुआ, जिसके काण्डों की गाँठों के बीच में सब प्रकार के बीज छिपे हुए थे। उस जाति में हनुमान् की एक जन्मकथा मिलती है जिसमें हनुमान् शिव के वीर्य से उत्पन्न माने जाते हैं। टी. वी. नायक ने आदिवासियों में प्रचलित रामायणविषयक दन्तकथाओं का सर्वेक्षण किया है। उनके निबन्ध में **भिलोदीरामायण** की चर्चा है। उसमें अगारिया जाति में प्रचलित सहस्रस्कन्ध रावण के वध की भी चर्चा है।

२७८ अनु० : भारत के उत्तरपूर्वी क्षेत्रों की एक कथा के अनुसार किसी राजा की पुत्री उसके हाथ के सूजन से पैदा हुई। एक आठ सिरवाले राक्षस ने उसका हरण कर लिया। राजा राक्षस को मार कर पुत्री को घर लाया। बाद में अन्य राक्षस उसे समुद्र पार ले गया। राजा उसकी खोज में निकला, सफल न होकर उसने वानरों के राजा से सहायता माँगी। वानरों का राजा राजकुमारी का पता लगाने के लिए राक्षस के गाँव पहुँचा। राक्षस ने उसकी पूंछ जलाने का प्रयत्न किया। उसने गाँव में दौड़कर सब घरों में आग लगा दी। लोगों की घबड़ाहट से लाभ उठा कर राजकुमारी को लेकर भाग निकला। उसे उसके पिता के पास ले गया। राजा ने वानर को सुनहला महल भेंट किया। महल में प्रवेश करते हुए वानर के बाल गिर गये। उसके चमड़े का रंग बदल गया। शरीर गोरा हो गया तथा वह प्रथम अंगरेज बना। (द० बुलेटिन आफ दी ट्राइबल रिसर्च इंस्टिट्यूट (छिन्दवारा), भाग १, अंक २)।

नेपाली-साहित्य में रामकथा

नेपालीसाहित्य में सबसे महत्त्वपूर्ण रचना भानुभट्टकृत **रामायण** है। यह **अध्यात्मरामायण** का पद्यानुवाद है, जो १८५२ ई० में पूर्ण हुआ था। इसके पूर्व रघुनाथ उपाध्याय ने **रामायण-सुन्दरकाण्ड** लिखा था।

सिंहली रामकथा

२८० अनु० : सिंहलद्वीप की रामकथा में राम अकेले ही वनवास करते हैं। उनकी अनुपस्थिति में सीता-हरण होना है। वाली हनुमान् का काम करता है। वही लङ्कादहन कर सीता को राम के पास ले आता है।

रावण-चित्र के कारण सीता के त्याग का उल्लेख है। उसके अनुसार सीता के एक पुत्र का जन्म और वाल्मीकि द्वारा दो पुत्रों की सृष्टि तथा तीनों का राम-सेना से युद्ध का वर्णन है। अनेक स्रोतों से दूर देशों में पहुँचने से राम-कथा में अनेक परिवर्तन होने असम्भव नहीं हैं।

काश्मीरीरामायण

२८१ अनु० : **काश्मीरीरामायण** या **रामावतारचरित** का १८वीं शती में निर्माण हुआ। उसमें शिव-पार्वती-संवादरूप से राम-कथा प्रस्तुत है। उसमें अवतारवाद की व्यापकता तथा राम को पूर्णावतार माना गया है। बुल्के के अनुसार इसी हेतु से इसका लिपिबद्ध काल १८ वीं शती है। परन्तु उनकी यह कल्पना सर्वथा निस्सार है। अवतारवाद और राम के पूर्णावतार का सिद्धान्त वेदों एवं उपनिषदों में वर्णित हैं, अतः इन सिद्धान्तों को आधुनिक विकास कहना निष्प्रमाण अथच निराधार ही है। इसमें दशरथयज्ञ से लेकर सीता के भूमि-प्रवेश तथा राम के साकेतगमन तक की सारी कथाएँ प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ही हैं। इसी लिए मानना चाहिए कि **बालकाण्ड** तथा **उत्तरकाण्ड सहित रामायण** ही प्राचीन **रामायण** है और राम पूर्ण परब्रह्मावतार थे।

मन्दोदरी के गर्भ से सीता का जन्म (न० २४) आदि कई कथाएँ **वाल्मीकिरामायण** से विलक्षण भी हैं। नारद द्वारा लङ्का में सीता की खोज करते हुए हनुमान् को रावण-चरित सुनाना (नं० २९)। नल की कथा सुनाना, जिसमें उसके द्वारा फेंके हुए पत्थरों का पानी पर तैरने का कारण बताया है (नं० ३९)।

असमीया-साहित्य में रामकथा

२८२ अनु० : **असमीयारामायण** में दशरथ के प्रति शनि के वरदान की कथा का वर्णन है। यह बंगाली तथा उड़िया रामायणों में भी है। इन ग्रन्थों के अनुसार दशरथ की ७०० से अधिक रानियाँ थीं। सुपार्श्व द्वारा सीता का हरण करते हुए रावण को चुनौती देने का वृत्तान्त **माधवकन्दली** तथा **कृत्तिवास** दोनों में पाया जाता है। असमीयाराम-साहित्य की मुख्य रचना **माधवकन्दलीरामायण** है। इसमें अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक पाँच ही काण्ड हैं। यह बुल्के के लिए डूबते को तिनके का सहारा है, इसी लिए उन्होंने उसकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि वह तीन लब्धप्रतिष्ठ कवियों द्वारा लिखा गया है। शङ्करदेव ने उत्तरकाण्ड तथा उनके शिष्य माधवदेव ने आदिकाण्ड लिखा है। यह रामायण के गौड़ीय पाठ के अनुसार है। इसमें राम की कुशनिर्मित पादुकाओं का उल्लेख है। सीता की जन्म-कथा में मेनका-वृत्तान्त, राम के प्रति तारा का शाप, विभीषण पर रावण का पाद-प्रहार, शरणागति के पहले विभीषण का अपनी माता और कुबेर से भेंट, कालनेमि-वृत्तान्त, समुद्रोल्लङ्घन-प्रसङ्ग में सुरसा का प्रथम स्थान में उल्लेख, सम्पाति के पास सुपार्श्व का आगमन आदि अंश विशेष हैं। उत्तरकाण्ड में सीता-वनवास से राम के साकेत-गमन तक का वर्णन है। इसमें भक्तिमार्ग का प्रचार उद्देश्य कहा गया है। **असमीयाबालकाण्ड** में कैकेयी का स्वयंबर तथा सुमित्रा का सिंहल-नरेश की पुत्री होना, पायस-विभाजन के समय सुमित्रा की प्रतीक्षा, गुह और बालक राम की मैत्री आदि का उल्लेख है।

हरिवरविप्रकृत **लव-कुश-युद्ध** तथा माधवकन्दलीकृत रामायण १४वीं शती के हैं। (१५वीं शती) (१) दुर्गावरकृत '**गीतिरामायण**'। इसमें कथा की दृष्टि से सीता द्वारा पिण्ड-दान तथा चित्रकूट में मायामय अयोध्या की सृष्टि वर्णित है। (२) अनन्तकन्दलीकृत **जीवस्तुतिरामायण, महीरावणवध, पातालखण्डरामायण, सीतार पाताल प्रवेश नाटक**, शङ्करदेवकृत **उत्तरकाण्ड** तथा **राम-विजय नाटक**—इसमें अयोध्या के मार्ग में राम-परशुराम का द्वन्द्वयुद्ध भी वर्णित है। अनन्तठाकुर आता का **श्रीराम-कीर्तन**। १७वीं शती में धनञ्जयकृत **गणकचरित** में हनुमान् का लङ्काप्रवेशविषयक खण्डकाव्य वर्णित है। **सीतावनवास, श्रीरामचन्द्र अश्वमेध**, चन्द्रभारतीकृत **महीरावणवध**, रघुनाथ

महन्तकृत **कथारामायण** तथा **अद्भुतरामायण**, इसमें हनुमान् के पराक्रम के साथ राम-कथा के निर्वहण का एक नया रूप प्रस्तुत है।

बङ्गाली साहित्य में रामकथा

२८५ अनु० : **कृत्तिवासरामायण**, कृत्तिवास ओझा की सर्वाधिक लोकप्रिय रामायण अथवा **श्रीरामपञ्चाली** है। वह १५वीं शती की रचना है। इसमें बहुत प्रक्षेप हैं। यह **वाल्मीकिरामायण** के गौड़ीय पाठ पर निर्भर है। **कृत्तिवास** का प्रारम्भिक कथानक **पद्मपुराण** पातालखण्ड के गौड़ीय पाठ से प्रभावित है। बुल्के कहते हैं राम-भक्ति के प्रभाव से परम्परागत कथाओं में बहुत से परिवर्तन एवं परिवर्धन किये गये हैं। कृत्तिवासीय कथानक पर शैव और शाक्त सम्प्रदायों की गहरी छाप है। हनुमान् शिव के अवतार हैं, शिव-राम का अभेद है आदि आदि।

१७ वीं शती **रामलीलापदावलियाँ** तथा अद्भुतरामायण के अनुसार **आश्चर्यरामायण** अथवा **अद्भुताश्चर्य-रामायण** प्रसिद्ध हैं। सीता देवी का रूपधारण कर लङ्कापति रावण के बड़े भाई सहस्रस्कन्ध रावण का संहार करती हैं। सम्भवतः इसी कारण बङ्गाल में **अद्भुतरामायण** अधिक लोकप्रिय हुआ। चन्द्रावती की **रामायणगाथा** आदि प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

अर्वाचीन बङ्गाली राम-साहित्य में रामानन्द कृत **रामलीला** अद्भुतरामायण पर आधारित है। **रामभक्ति-रसामृत** भी अद्भुतरामायण के अनुसार है।

१८वीं शती के शङ्कर चक्रवर्ती की **अध्यात्मरामायणपाञ्चाली** विष्णुपुरीरामायण के नाम से प्रख्यात है। अङ्गदेर रायवार (दौत्य कार्य), रामकवि भूषण का अङ्गदरायवार, रामचन्द्र का **विभीषणेर रायवार**, काशीराम का **कालनेमिर रायवार**, द्विज तुलसी का **अङ्गदरायवार**, हाराधनदास का **अङ्गदरायवार** तथा रामनारायण का विभीषणेर **खोट्टा रायवार** प्रसिद्ध हैं। साहित्यिक दृष्टिकोण से रघुनन्दन गोस्वामी का **रामरसायन** (१८३१ ई०) सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इसका प्रधान आधार **वाल्मीकिरामायण** है। इसपर कृष्णलीला का प्रभाव है। १९वीं तथा २०वीं शताब्दी में **वाल्मीकिरामायण** का बङ्गला में अनुवाद तथा रामकथा पर मौलिक रचनाएँ हुई हैं तथा माइकेल मधुसूदनकृत **'मेघनादवध'** भी प्रशंसनीय है।

उड़िया

१९१ अनु० : उड़ियासाहित्य के प्राचीनतम राम-कथाकार १५वीं शती के सिद्धेश्वर परिडा हैं। उन्हीं का नाम सारलादास है। उनकी रामायण अप्राप्य है। उनके **महाभारत** के आधार पर ही राम-कथा की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। **विलङ्कारामायण** उनकी कृति न होकर अन्य सिद्धेश्वरदास द्वारा हुई है।

उड़ियासाहित्य के सब से प्रसिद्ध रामायण की रचना **उत्कलवाल्मीकि** बलरामदास द्वारा १५ वीं शती में हुई। इसका प्रधान आधार **वाल्मीकिरामायण** है। फिर भी विकास की दृष्टि से बहुत कुछ परिवर्तन उसमें मिलते हैं। उन्होंने एक **ब्रह्माण्ड भूगोल** की भी रचना की है। जिसमें सम्पूर्ण राम-कथा शरीर में अवतारित की गयी है। **कान्त-कोइलि** बलरामदास कृत एक छोटी सी रचना है। जिसमें हरण के समय में सीता के करुण क्रन्दन की अभिव्यक्ति है।

१५वीं शती **रामविभा**, **रघुनाथविलास**, **बारमासी कोइलि** तथा हलधरदास का **अध्यात्मरामायण** का **उड़िया अनुवाद** है। १८वीं शती की **विलङ्कारामायण**, **विलङ्काखण्ड**, **विचित्ररामायण** आदि अनेक रचनाएँ हैं। उसी शती में उपेन्द्र भञ्ज ने **रामलीलामृत** तथा **वैदेहीशविलास** लिखा है। यह **वाल्मीकिरामायण**, **अध्यात्मरामायण**, भोजकृत **चम्पूरामायण** तथा **महानाटक** पर आधारित पाण्डित्यपूर्ण रचना है। **रामरसामृत**, **रामचन्द्रविहार**,

कान्हदासकृत **रामरसामृतसिन्धु**, **रामकृष्णकेलिकल्लोल** आदि अनेक काव्य-ग्रन्थ हैं। १९वीं शती के कृष्णचरणपट्टनायककृत **रामायण** तथा भुवनेश्वर कविचन्द्र का **सीतेशविलास**, **नृत्यरामायण**, **पूर्णरामायण** आदि उल्लेख्य ग्रन्थ हैं।

सारलादास के महाभारत में वर्णित रामकथा की कुछ विशेषताएँ निम्नोक्त हैं। उसमें रामकथा तथा कृष्णकथा के पात्रों की अभिन्नता कही गयी है। उसमें अवतारवाद के नये रूप का प्रतिपादन है। जिसके अनुसार विष्णु राम के रूप में, इन्द्र भरत के रूप में, ब्रह्मा शत्रुघ्न के रूप में और ईश्वर लक्ष्मण के रूप में अवतरित माने जाते हैं। वस्तुतः यह नया रूप तो नहीं है। पुराणों में इसका उल्लेख है। यह आवेशावतार कहा जाता है। इसके अनुसार ही परशुराम में विष्णु का आवेश था। राम के समागम से वैष्णव अंश के पूर्ण विष्णु राम में प्रविष्ट हो जाने से परशुराम जामदग्न्य एक महान् योद्धा और महर्षि रह गये थे। इसमें दशशिर, शतशिर, सहस्रशिर, लक्षशिर रावण का उल्लेख है, जो विभिन्न कल्पों में राम द्वारा मारे जाते हैं। हनुमान् के वज्र, कौपीन का उल्लेख है तथा ब्रह्मा के वीर्य से वाल्मीकि की उत्पत्ति आदि वर्णित है। बलरामदास रामायण गौडीय पाठ पर निर्भर है।

हिन्दीसाहित्य में रामकथा

गोस्वामी तुलसीदास की रामकथा

२९४ अनु० : गोस्वामी तुलसीदास की रामकथा एवं समस्त रचनाएँ उनके इष्टदेव राम से सम्बन्ध रखती हैं, लेकिन इनमें से **रामचरितमानस** सबसे अधिक लोकप्रिय है। बुल्के कहते हैं प्रारम्भ में तुलसीदास **वाल्मीकिरामायण** से अधिक प्रभावित थे और अपनी बाद की रचनाओं में अन्य रामकथा-साहित्य से भी। मिथिला की वाटिका में राम और सीता के परस्पर दर्शन का उल्लेख **रामाज्ञाप्रश्न** तथा जानकीमङ्गल में नहीं है, लेकिन वह **रामचरितमानस** तथा गीतावली में मिलता है। मिथिला में रावणदूत के आगमन का उल्लेख **रामाज्ञा** में नहीं मिलता, लेकिन **रामचरितमानस** और **गीतावली** में मिलता है। **रामाज्ञाप्रश्न**, **जानकीमङ्गल** तथा **गीतावली** के अनुसार परशुराम तथा राम की भेंट बरात की वापसी में होती है, किन्तु **रामचरितमानस** तथा **कवितावली** में परशुराम के मिथिला में आगमन का वर्णन है। चित्रकूट में जनक का आगमन तथा सेतुबन्ध के समय शिवप्रतिष्ठा का उल्लेख **रामचरितमानस** में है, किन्तु **रामाज्ञाप्रश्न** तथा **गीतावली** में नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ही सीता-त्याग, लव और कुश के जन्म की कथा रामाज्ञाप्रश्न तथा गीतावली में दी गयी है। परन्तु **रामचरितमानस** में इन प्रसङ्गों का उल्लेख नहीं है। **गीतावली** की समस्त रचना पर कृष्णकाव्य का प्रभाव अत्यन्त स्पष्ट है। इस कारण उत्तरकाण्ड में राम और सीता के दोलोत्सव तथा वसन्तविहार का भी वर्णन है। इस रचना में **वाल्मीकिरामायण** के गौडीयपाठ के अनुसार रामशरण लेने के पूर्व विभीषण का अपने भाई कुबेर के पास जाने का वर्णन भी किया गया है। वस्तुतः तुलसीदास एक वैदिक सनातनधर्म के प्रतिष्ठित विद्वान् तथा भगवद्भक्त थे। उनकी दृष्टि में साङ्गोपाङ्ग मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद, उपनिषद्, तन्त्र, आगम, पुराण, रामायण, महाभारतादि इतिहास सभी प्रमाण हैं। उन्होंने नानापुराणनिगमागमसम्मत सिद्धान्त का उल्लेख किया है। रामचरित के सम्बन्ध में वे **वाल्मीकिरामायण** को मुख्य सेतु कहते हैं और अपने को उसपर चलनेवाली लघु पिपीलिका कहते हैं। उन्होंने सीता-राम गुण-ग्राम पुण्यारण्य में विहरण करनेवाले कवीश्वर (वाल्मीकि) और कपीश्वर (हनुमान्) दोनों विशुद्ध-विज्ञानवानों की वन्दना की है—

"सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ॥"

आधुनिक लोगों के समान वे अनिश्चितमति नहीं थे। उन्होंने **रामचरितमानस** के आरम्भ में ही जैसे **वाल्मीकिरामायण** के प्रति अपनी आस्था प्रकट की वैसे ही यह भी बतला दिया कि मैंने अपने गुरु से सूकरक्षेत्र में जो

कथा सुनी है, उसी का वर्णन करूँगा। मूलकथा भगवान् सदाशिव ने रचकर अपने मन में रख छोड़ी थी। उसी का अवसर पाकर उन्होंने पार्वती से वर्णन किया था। जिन्होंने यह कथा पहले न सुनी हो उन्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि भगवान् राम के अनन्त जन्म, अनन्त नाम तथा कर्म हैं। कल्पभेद से भगवान् के विविध चरित्र हुए हैं। उनका अनेक प्रकार से मुनीशों ने इतिहासों, पुराणों तथा संहिताओं में वर्णन किया है। इस दृष्टि से उनकी रामकथा में **वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण**, पुराणों, **श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता**, संहिताओं कि बहुना आस्तिकसम्मत सम्पूर्ण साहित्य का सार-संकलन किया गया है।

वाल्मीकिरामायण तथा अन्य रामसाहित्य सब एक दूसरे के पूरक हैं। **वाल्मीकिरामायण** भी २४ हजार श्लोकों का ही नहीं, किन्तु शतकोटिप्रविस्तर है जो कि अन्य लोकों में प्राप्त है। अतः कल्पभेद के अनुसार विविध कथाओं का समन्वय ही अभीष्ट है। तुलसीसाहित्य इस समन्वय का सर्वोत्तम प्रतीक है।

तुलसीभिन्न हिन्दीसाहित्य में रामकथा

तुलसी के पूर्व हिन्दी-साहित्व में रामानन्द के कुछ भक्तिविषयक पद सुरक्षित हैं। सूरदास ने **सूरसागर** में **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार रामकथा के अनेक स्थलों पर १५० पदों की रचना की है। इनमें केवट-वृत्तान्त **रामचरितमानस** की भाँति वनवास की कथा में रखा गया है। इसमें लक्ष्मण द्वारा कुटी के चारों ओर रेखा खींचने का उल्लेख है।

पृथ्वीराजरासो के द्वितीय समय में दशावतार-कथा के अन्तर्गत रामकथाविषयक लगभग १०० छन्द मिलते हैं, जिनमें लङ्का-युद्ध के वर्णन को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। **ईश्वरदास** के भरतमिलाप में अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु का दोहा और चौपाइयों में वर्णन है। इनके **रामजन्म** और **अङ्गदपैज** भी सुरक्षित हैं। तुलसीदास के समकालीन कवियों में अग्रदास एवं नाभादास प्रमुख हैं। अग्रदास के **अष्टयाम** में राम की रासक्रीड़ा का वर्णन है। इनकी **पदावली** तथा **ध्यानमञ्जरी** में मँजी हुई भाषा के भक्तिपूर्ण पद मिलते हैं। अग्रदास के शिष्य नाभादास ने भी सीता-रामचरित को लेकर **अष्टयाम** की रचना की है।

सोढ़ी मेहरबान का **आदिरामायण** (हिन्दीमिश्रित पंजाबी भाषा में), लालदासकृत **अवधविलास** आदि ग्रन्थ भी मिलते हैं।

राजस्थानी में विस्तृत जैनी राम-साहित्य मिलता है। समयसुन्दर की **सीताराम चौपाई** विशेषरूप से उल्लेखनीय है। जैनेतर रचनाओं में **लक्ष्मणायण** १६ वीं शती का है। नरहरिदास के **अवतारचरित** का रामावतार-विषयक अंश **रामचरितमानस** और **रामचन्द्रिका** पर निर्भर है।

३०० अनु : रीतिकाल का रामसाहित्य महत्त्वपूर्ण न होने पर भी भक्तिकाव्य की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। उस साहित्य पर कृष्ण-काव्य की गहरी छाप है, शृङ्गार की व्यापकता है। उस समय **वाल्मीकिरामायण, जैमिनिपुराण, रामाश्वमेघ, अध्यात्मरामायण, योगवासिष्ठ** आदि के अनुवाद भी हुए हैं। विश्वनाथसिंह, केशव कवि आदि ने हनुमद्भक्तिपरक रचनाएँ की हैं। वस्तुतः शृङ्गारकाव्य वेदों से ही प्रचलित हैं वृषाकपिसूक्त तथा अपाला-सूक्त प्रसिद्ध हैं।

खड़ी बोली गद्य की प्राचीनतम प्रौढ़ रचनाओं में से तीन ग्रन्थ राम-साहित्य से सम्बन्ध रखते हैं—राम-प्रसाद निरञ्जनी का **भाषायोगवासिष्ठ** (१७४१ ई०), दौलतराम का **पद्मपुराण** (१६६१ ई० जैनी रामकथा) तथा सदलमिश्र का **रामचरित** (१८०७ ई०) **अध्यात्मरामायण का अनुवाद**)। रसिकविहारी का **रामरसायन**, रघुनाथदास का **विश्रामसागर**, रघुराजसिंह का **रामस्वयंवर**, बाघेली कुँवरि का **अवधविलास**, बलदेव प्रसाद मिश्र का **कोशल-**

किशोर, मैथिली में **चन्दा झा का रामायण**। १९०० सन् के बाद शिवरत्न शुक्ल का **रामावतार**, वंशीधर शुक्ल का **राममड़ैया**, रामनाथ ज्योतिषी का **श्रीरामचन्द्रोदय**।

रामचरित उपाध्याय का **रामचरितचिन्तामणि,** मैथिलीशरण गुप्त का **साकेत** (१९२९ ई०), हरिऔध का **वैदेहीवनवास** (१९३९ ई०), बलदेव प्रसाद मिश्र का **साकेत-सन्त** (१९४६ ई०), केदारनाथ मिश्र का **कैकेयी** (१९५० ई०), बालकृष्ण शर्मा नवीन का **उर्मिला** (१९५७ ई०) खड़ी बोली के समृद्ध साहित्य हैं। इनमें अवतारवाद को कम महत्त्व दिया गया है। शृङ्गारिकता के स्थान पर सामाजिक तथा राजनीतिक आदर्श तथा पूर्ववर्ती रामकाव्य के उपेक्षित अथवा कम विकसित पात्रों को नायक एवं नायिका बनाने की प्रवृत्ति है। वस्तुतः ऐसे काव्य लोक-निर्माण के लिए ही कल्पित किये जाते हैं। जनसमूह के श्रद्धास्पद होने के कारण ही प्राचीन ग्रन्थों एवं उनके पात्रों का इनमें उपयोग किया जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन केशवदास की **रामचन्द्रिका** में सीता-स्वयंवर में बाणासुर तथा रावण के संवाद का उल्लेख है। मिथिला में परशुराम का तेजोभङ्ग वर्णित है। रावणवध के पश्चात् अयोध्या लौटने पर राम की विरक्ति तथा वसिष्ठ का समझाना उल्लिखित हैं। **पद्मपुराण** तथा **जैमिनीयाश्वमेध** के अनुसार सीता-त्याग, लव-कुश का जन्म और राम-सेना के साथ लव-कुश के युद्ध का वर्णन है।

३०३ अनु० : सिक्खों के दशवें गुरु गोविन्दसिंह ने १६९८ ई० में **रामावतार-कथा** लिखी है जो १९५३ ई० में **गोविन्दरामायण** के नाम से प्रकाशित हुई है। उसकी विशेषताएँ राम और सीता का पूर्वानुराग, अयोध्या में भी परशुराम का तेजोभङ्ग, लक्ष्मण द्वारा सीता की रक्षा के लिए रेखा खींचना, सीता का नाग-मन्त्र पढ़ कर राम और लक्ष्मण को नागपाश से मुक्त करना, लव-कुश-युद्ध के अन्त में सीता अपने सतीत्व की शपथ लेकर राम की सेना को जिला देती है और राम के साथ अयोध्या लौट आती है। रावण-चित्र के कारण राम को सीता पर सन्देह होता है। फलस्वरूप सीता शपथ पर भूमि में प्रवेश करती है। प्रायः प्रचलित विभिन्न रामायणों तथा पुराणों पर ही उक्त आख्यान निर्मित हुआ है।

मराठीसाहित्य में रामकथा

३०४ अनु० : मराठी-साहित्य के **भावार्थरामायण** की रचना १६ वीं शती की है। इसका उत्तरकाण्ड एकनाथ के किसी शिष्य ने लिखा था। समालोचकों के अनुसार युद्धकाण्ड के अहिमहिरावण-वृत्तान्त को छोड़कर युद्ध-काण्ड पर्यन्त सम्पूर्ण **भावार्थरामायण** एकनाथजी की ही रचना है। अहिमहिरावण की कथा जयरामसुत द्वारा लिखी हुई है। उसका कथानक वाल्मीकिरामायण के ढाँचे पर निर्मित हुआ है। उसके आधार वाल्मीकिरामायण, अध्यात्म-रामायण तथा आनन्दरामायण हैं। उसमें भक्तिवातावरण का आधार अध्यात्मरामायण है। वाल्मीकिरामायण से भिन्न नवीन सामग्री का आधार आनन्दरामायण है। दशरथ-पुत्री शान्ता, तारा-शाप आदि का उल्लेख वाल्मीकि-रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में नहीं मिलते किन्तु पश्चिमोत्तरीय पाठ में मिलते हैं। एकनाथ के कथानक पर आनन्दरामायण की गहरी छाप है। दशरथ-कौशल्या-विवाह आदि बहुत-सी नयी सामग्री आनन्दरामायण की ही है। भरत तथा शत्रुघ्न का कैकेयी की सन्तान के रूप में उल्लेख तीनों में नहीं मिलता। अन्य काण्डों की अपेक्षा उत्तर-काण्ड वाल्मीकिरामायण से अधिक साम्य रखता है।

एकनाथ परम आस्तिक थे। उनकी दृष्टि में उक्त तीनों रामायण तथा अन्य रामायण तथा पुराण भी प्रमाण हैं, अतः उन्होंने भी तुलसीदासजी के समान ही सब का संकलन कर भावार्थरामायण ग्रन्थ लिखा है—उसमें मतभेद का समाधान कल्पभेद से किया जा सकता है। एकनाथजी ने शतकोटिप्रविस्तररामायण और शिवजी द्वारा तीनों लोकों के लिए उसका विभाग कहा है। तदनुसार ३३ कोटि ३३ लक्ष ३३ सहस्र ३ सौ ३३ श्लोक और १०

अक्षर एक एक लोक को मिले हैं। एक श्लोक में ३२ अक्षर होते हैं। उसमें से दस दस अक्षर बँट जाने पर दो अक्षर शेष रह गये। उनका बँटवारा नहीं हो सकता था। उन्हें सर्वसार समझ कर शिवजी ने ग्रहण किया था। इसमें रामायण के मुख्य वक्ता शिवजी और श्रोत्री पार्वतीजी कही गयी हैं। एक कथा में शिव वक्ता और राम श्रोता हैं। वह **शिवरामायण** है। **श्वेतकेतुरामायण** तथा **आत्मरामायण** राम द्वारा उक्त हैं। **जैमिनिरामायण** और **अध्यात्मरामायण** अनेक रामायणों के सार हैं—वे अपेक्षा कृत नवीन हैं। उनके अनुसार असंख्यात रामायण हैं। **शिवरामायण, शैवरामायण, आगमपाञ्चरात्ररामायण, गुह्यगुह्यकरामायण, हनुमान्‌रामायणनाटक**, इनके अनुसार हनुमन्नाटक हनुमत्कृत ही है। **भक्त-कूर्म-वराह-रामायण, महाकालीरामायण, स्कन्दरामायण, अगस्ति-पौलस्ति-रामायण, पद्मपुराण, त्रिरामायण, अग्निवरुणरामायण, जटायुरामायण, महाभारतरामायण, महाभारतीरामायण** तथा **धर्मरामायण**। अरण्यकाण्डभावार्थरामायण में राम को सच्चिदानन्द तथा लक्ष्मण को शेष कहा गया है। वैराग्य और ज्ञान का निरूपण करते हुए एकनाथ महाराज ने **योगवासिष्ठ** के अनेकों श्लोकों का उद्धरण किया है—

> न राघव तवास्त्यन्यज्ज्ञेयं ज्ञानवतांवर।
> स्वमेव सूक्ष्मया बुद्ध्या कविं विज्ञातवानसि ॥
> भगवद्व्यासपुत्रस्य शुकस्येव मतिस्तव।
> विश्रान्तिमात्रमेवैतज्ज्ञानाज्ञानमपेक्षते ॥"

अर्थात् राघव, तुम्हारे लिए अन्य कुछ ज्ञातव्य नहीं है। अपनी सूक्ष्म बुद्धि से ही तुमने सब कुछ जान लिया है। भगवान् व्यास के पुत्र शुक की जैसी तुम्हारी प्रज्ञा है। केवलमात्र विश्रान्ति ही अपेक्षित है।

भावार्थरामायण के अनुसार अहमात्मा ही दशरथ है, सद्विद्या कौशल्या है, शुद्ध मेधा सुमित्रा है, अविद्या कैकेयी है और कुविद्या मन्थरा है (बालकाण्ड अध्याय १)।

सीता-स्वयंवर

अन्य अनेक विद्वानों ने **सीतास्वयंवर** ग्रन्थों की रचनाएँ की थीं। **संक्षेपरामायण, अहिमहिरावण-वध**, समर्थ रामदास का **लघुरामायण सुन्दरकाण्ड** तथा युद्धकाण्ड, वेणाबाई का रामायण आदि भी सत्रहवीं शती की रचनाएँ हैं। १७०३ की श्रीधरकृत **रामविजय** सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। इसमें अहल्या गौतम-विवाह की कथा **ब्रह्मपुराण** के अनुसार दी गयी है। मोरो पन्त के ७४ रामायण प्रकाशित हैं। कथानक वाल्मीकिरामायण के अनुसार ही है।

अमृतराव का **शतमुखरामायण** ग्रन्थ १९वीं शती की रचना है। वस्तुतः अपनी वाणी को सफल बनाने के लिए अनेक विद्वानों एवं सन्तों ने रामचरित्र का कीर्तन करने के उद्देश्य से रामकथाओं का संकलन किया है, पर आधुनिक पाश्चात्य लोग तो अश्रद्धा ही उत्पन्न करने की दृष्टि से इस ओर प्रयत्न करते हैं।

गुजरातीसाहित्य में रामकथा

३०६ अनु० : **रामलीला ना पदो** (१४वीं शती), भालणकृत **रामविवाह** और **रामबालचरित** (१५वीं शती), मन्त्री कर्मणकृत **सीता-हरण**, भीमकृत **रामलीला ना पदो** (१५वीं शती), मांडण बंधारो का **रामायण** (१५वीं शती), लावण्यसमयकृत **रावण-मन्दोदरी-संवाद** (१६वीं शती) तथा उद्धवकृत **सीता-हनुमान्‌संवाद**, इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने **लवकुशाख्यान, रणयज्ञ, सीताविरह** आदि रचनाएँ की हैं। १९वीं शती का गिरधरदास-कृत **रामायण** सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। आधुनिक काल में **योगवासिष्ठ, अध्यात्मरामायण, रामचरितमानस** आदि का गुजराती अनुवाद हुआ है। **रामायणनोसार** १९वीं शती की रचना है।

उर्दू-फारसी-साहित्य में रामकथा

३०७ अनु० : सूरजनारायण मेह्र का **रामायणमेह्र**, मुन्शी जगन्नाथ खुश्तर का रामायणखुश्तर। इस सर्वोत्तम तथा सबसे लोकप्रिय उर्दूरामायण की **रामायणखुश्तर** रचना १८६४ ई० में हुई। मुन्शी शङ्करदयाल 'फर्हत' का **रामायणमंजूम**, बाकेविहारीलाल 'बहार' का रामायणबहार। ये चार उर्दूसाहित्य की रामकथा के उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। उर्दू में रामायण पर अधिक रचनाओं का अभाव है।

३०८ अनु० : अकबर के आदेशानुसार अल बदायूनी ने १५८४–१५८९ ई० में वाल्मीकिरामायण का फारसी में पद्यानुवाद किया था। जहाँगीर के समय तुलसी के समकालिक गिरिधरदास ने वाल्मीकिरामायण का संक्षिप्त पद्यानुवाद प्रस्तुत किया था। मुल्ला मसीह का **रामायणमसीही**, **रामायणफैजी**, गोपालकृत **तर्जुमा-इ-रामायण** १७वीं शती, बेदिल चन्द्रभान का **वाल्मीकिरामायण-पद्यानुवाद**, यह औरङ्गजेब के समय का है। लाला अमरसिंह का गद्यात्मक **रामायणअमरप्रकाश** १७०५ ई०। अमानत राय का **वाल्मीकिरामायणपद्यानुवाद** १६५४ ई० की रचना है। रामायणमसीही के निर्माता ईसाई थे, इसी लिए इसमें ईसा, मरियम आदि बाइबिल के पात्रों का उपमान के रूप में उल्लेख हुआ है। इसमें ५००० छन्द हैं। दशरथयज्ञ से लेकर सीता के भूमि-प्रवेश तक की समस्त रामकथा प्रस्तुत है। इसमें पाषाण-भूता अहल्या का उद्धार अरण्यकाण्ड में रखा गया है। विश्वामित्र सीता-जन्म की कथा सुनाते हैं। सीता मञ्जूषा में पायी गयी थी। रावण-वध के बाद स्वयं मन्दोदरी सीता को राम के पास ले आती है। राम की बहन सीता को दशमुख का चित्र अङ्कित करने के लिए प्रेरित करती है और वही राम से जाकर कहती है कि सीता उसी चित्र की पूजा करती रहती है। वाल्मीकि द्वारा सीता के एक पुत्र की सृष्टि, लवकुश-युद्ध में राम को भी पराजित तथा अचेत किया गया था, पर वाल्मीकि जल छिड़क कर राम को प्रबुद्ध करते हैं। प्राचीन लोग जान-बूझ कर किसी कथा को विकृत नहीं करते थे, उनको विभिन्न प्रमाणों से जैसी सामग्रियाँ मिलीं उसी रूप में उन्होंने रामकथा का संकलन किया। किन्तु आधुनिक बुल्के आदि तो अपना एक मत बना कर उसके आधार पर उसी के ढाँचे में रामायण का रूप निर्धारण करना चाहते हैं।

✲

द्वादश अध्याय

विदेशी रामकथा की चर्चा

३१० अनु० : रामकथा की एक धारा उत्तर की ओर फैल गयी। इसका प्रमाण तिब्बती तथा खोतानी रामायणों में मिलता है। वह अपेक्षाकृत प्राचीन है। दूसरी धारा भारत से हिन्देशिया, हिन्दचीन, श्याम आदि की ओर पहुँच गयी।

तिब्बती रामायण

३११ अनु० : **अनामकं जातकं** तथा **दशरथकथानम्** का क्रमशः तीसरी और ५ वीं शती में चीनी अनुवाद हुआ था। रामकथा की तिब्बती भाषा में भी अनेक हस्तलिपियाँ मिलती हैं, जिनमें रावणचरित से लेकर सीता-त्याग और राम-सीतामिलन तक की समस्त कथा मिलती है जो सम्भवतः ७ वीं शती की है। इसमें विष्णु दशरथ के पुत्ररूप में अवतार लेने की प्रतिज्ञा करते हैं। इसके अनुसार दशरथ की दो पत्नियाँ थीं। विष्णु कनिष्ठा के गर्भ से जन्म लेते हैं और रामन कहलाते हैं। तीन दिन बाद विष्णु के पुत्र ज्येष्ठा से जन्म लेते हैं जिसका नाम लक्ष्मण रखा जाता है। इसमें सीता रावण की पुत्री मानी जाती है। इसके अनुसार इस राजपुत्री की जन्मपत्री में पिता का नाश करने का योग देख कर उसे समुद्र में फेंक दिया जाता है। वह भारत के कृषकों द्वारा पाली जाती है। इसका लीलावती तथा अन्य लिपियों में सीता नाम पड़ता है। दो पुत्रों में से किस को राज्य दिया जाय? पिता के इस संशय के कारण रामन स्वेच्छा से ही तप करने आश्रम में चले जाते हैं। कृषकों के अनुरोध से रामन तप छोड़कर सीता से विवाह करते हैं। तिब्बती रामायण में सीता-हरण का वर्णन वनवास के बाद मिलता है। इसमें रावण सीता का स्पर्श नहीं करता तथा जटायु को रक्त से सने पत्थर खिला कर मार डालता है। वानरों से मैत्री, हनुमान् का प्रेषण, रावण-वध, रावण का मर्म-स्थान उसका अंगूठा बताया गया है। इस तरह यह जैनों के उत्तरपुराण, कथासरित्सागर आदि से प्रभावित कथा है।

खोतानी रामायण

३१२ अनु० : खोतान (पूर्वी तुर्किस्तान) की उक्त रामायण ९वीं शती की रचना मानी जाती है। यह तिब्बती रामायण से मिलती है। फिर भी दोनों में से कोई एक दूसरे का आधार नहीं है।

तिब्बती रामायण का उत्तरकाण्ड खोतानी रामायण में नहीं मिलता। अन्य कई वृत्तान्त खोतानी रामायण में मिलते हैं जिनका अस्तित्व तिब्बती में नहीं है। दोनों में निम्नोक्त तुल्यता है—

(१) राम और लक्ष्मण, केवल दो भाइयों का उल्लेख।
(२) सीता (दशग्रीव-पुत्री) की जन्म-कथा।
(३) वनवास के समय सीता के विवाह का वृत्तान्त।
(४) रावण द्वारा जटायु को रक्त मिश्रित पाषाण भक्षण कराना।
(५) द्वन्द्वयुद्ध के समय वानर विजेता की पूँछ में दर्पण बाँधे जाने की कथा।
(६) रावण के मर्म-स्थान का उल्लेख।

इसमें बौद्ध धर्म का प्रभाव स्पष्ट है ।

(१) खोतानी रामायण में अवतार बाद का उल्लेख न होकर राम का बुद्ध तथा लक्ष्मण का मैत्रेय होना कहा गया है ।

(२) यहाँ आहत रावण का वध नहीं किया जाता है ।

(३) इसमें रावण के बाद अर्जुन कार्तवीर्य सहस्रबाहु तथा परशुराम की कथा मिलती है ।

(४) इसमें दाशरथि राम और परशुराम का मिश्रण है ।

(५) इसमें दशरथ-पुत्र सहस्रबाहु, परशुराम के पिता की धेनु चुराता हैं जिसके कारण परशुराम सहस्रबाहु को मारते हैं सहस्रबाहु के राम और लक्ष्मण दो पुत्र होते हैं । राम परशुराम का वध करते हैं ।

(६) राम और लक्ष्मण दोनों वनवास करते हैं । निर्वासन का कारण निर्दिष्ट नहीं है । दोनों सीता से विवाह करते हैं । सीता-हरण वृत्तान्त में रेखा खींची जाने का उल्लेख है । सेतुबन्ध आदि की कथाएँ भी इसमें हैं । वस्तुतः भारतीय संस्कृति और संस्कृत ग्रन्थों का ज्ञान उक्त ग्रन्थकार को नहीं था, इसलिए उसने खोतानी रामायण में अशुद्ध कथाओं का संकलन किया है । दशरथ का पुत्र सहस्रबाहु, सहस्रबाहु के पुत्र राम और लक्ष्मण को बताना सर्वथा भ्रान्तिपूर्ण ही है । वैदिक धर्म-विरोधी बौद्धों में भाई-बहन में शादी एवं एक स्त्री का अनेक पुरुष-सम्बन्ध दोष नहीं माना जाता । इसी लिए लेखक ने बौद्ध रामायणों में सीता को राम की भगिनी मानकर भी विवाह सम्बन्ध माना है । खोतानी में उसी प्रभाव के कारण राम और लक्ष्मण दोनों का ही सीता से विवाह मान लिया है । वस्तुतः वैदिक राम के चरित्र का विकृत रूप ही यह कथा है ।

हिन्देशिया की प्राचीनतम राम-कथा

हिन्देशिया में नवीं शती के एक शिव-मन्दिर में पाषाण चित्रलिपि के आधार पर रामकथा प्रमाणित होती है । उसी आधार पर जावा में विस्तृत राम-साहित्य की रचना हुई है । जावा के प्राचीन रामायण का रूप वाल्मीकि-रामायण से मिलता है । अर्वाचीन रूप में भिन्नता है । जावा के प्राचीनतम रामायण के रचयिता शैव थे । विस्तृत चित्रलिपियाँ भी शिव-मन्दिर में ही हैं ।

३१४ अनु० : हिन्देशिया की प्राचीनतम रामकथा **रामायण ककविन** है (१० वीं शती) । उसका लेखक अज्ञात है । डच अनुवाद से विदित होता कि उसका आधार भट्टिकाव्य है । युद्ध का वर्णन विस्तृत है । **अभिषेकनाटक** तथा **महानाटक** का भी अंश इसमें है । इसमें सीता अभिज्ञानस्वरूप चूड़ामणि के अतिरिक्त एक पत्र भी हनुमान् को देती हैं । शबरी राम से अपनी कथा सुनाती हुई कहती है—विष्णु ने वराहावतार में मेरी माला खायी थी और वे मर गये थे, तो मैंने उनकी लाश खायी थी । इसी लिए मेरा मुँह काला हो गया है । वह राम से उसे शुद्ध कर देने का अनुरोध करती है । ककविन में त्रिजटा का स्थान महत्त्वपूर्ण है । शबरी की उक्त कथा, जिसे बुल्के विशेषता कहते हैं, लेखक की कल्पना अपने संस्कारवशात् ही है । उसका वस्तुस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है । विष्णु एवं उनके सभी अवतार नित्य हैं । उनके मरने का प्रश्न ही नहीं उठता—

"सर्वे देहाः शाश्वताश्च नित्यास्तस्य महात्मनः ।
हानोपादानरहिता नैव प्रकृतिजाः क्वचित् ।।" (विष्णुपु०)

जावा में एक प्राचीन **उत्तरकाण्ड** मिलता है । वह गद्य में वाल्मीकिरामायण के उत्तरकाण्ड का अनुवाद है । **चरितरामायण** में १०१ श्लोकों में रामायण के छहों काण्डों की कथा के साथ व्याकरण के उदाहरण दिये हैं, अतः इसपर भी **भट्टिकाव्य** का प्रभाव है । हिमांशुभूषण सरकार के अनुसार ११ वीं शती की रचना **सुमनसान्तक**

ककविन है। इसमें इन्दुमती का जन्म एवं अज से विवाह और दशरथ-जन्म वर्णित है। **हरिश्रय ककविन** में विष्णु द्वारा सुमाली तथा माल्यवान् का वध वर्णित है। **अर्जुनविजय** (१४ वीं शती) में सहस्रबाहु अर्जुन द्वारा रावण का पराजय वर्णित है। जावा का आधुनिक **सेरतराम** भी **रामायण ककविन** की तरह वाल्मीकिरामायण से मिलता है। वह पद्य में है। कवि का नाम यस० दि० पुरा है।

३१७ अनु० : मध्य जावा मे परमबनन (परब्रह्म) नामक स्थान पर ९ वीं शती का एक शिवमन्दिर है। इस मन्दिर के चारों ओर की ऊँची दीवारों पर रामायण की समस्त घटनाओं का पाषाण चित्रलिपि में चित्रण किया गया है। इसमें वर्णित रामकथा वाल्मीकिरामायण-कथा से मिलती-जुलती है। परन्तु हिन्देशिया की अर्वाचीन रामकथा की अधिकांश विशेषताओं का इसमें निर्देश नहीं मिलता। **सेरीराम** के अनुसार भरत सीता-हरण के बाद ही राम से मिलकर उनकी पादुकाएँ अयोध्या ले जाते हैं, किन्तु परमबनन में भरत-मिलाप का स्थान **रामायण ककविन** के अनुसार सीता-हरण के पूर्व ही माना गया है। वाल्मीकिरामायण से जो किंचित् भिन्नता इसमें है उसका प्रायः भारत में भी उल्लेख पाया जाता है। उदाहरणार्थ जटायु का राम को सीता की अँगूठी देने का वृत्तान्त **महानाटक** में है। मछलियों के द्वारा सेतु नष्ट करने की कथा **सेतुबन्ध** तथा **बालरामायण** में भी पायी जाती है। दशरथ की पुत्री (शान्ता) का उल्लेख **रामायण** के गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ, भवभूति के **उत्तररामचरित** आदि में किया गया है। लेकिन लक्ष्मण के तरकश में सुग्रीव के आँसुओं का पानी जमा होना तथा इस तरह सुग्रीव का पता लगाया जाना, यह वृत्तान्त किसी प्राचीन भारतीय रचना में नहीं मिलता। उपर्युक्त अधिकांश विशेषताएँ हिन्देशिया की अर्वाचीन रामकथा में आ गयी हैं।

३१८ अनु० : पूर्व जावा के पनतरन नामक स्थान के १४ वीं शती पूर्वार्द्ध के एक मन्दिर में रामकथा पाषाण चित्रलिपि में अङ्कित है। यह कथा प्राचीन **रामायण ककविन** के कथानक से अभिन्न है। इससे ज्ञात होता है कि यद्यपि अर्वाचीन राम-कथा अधिक लोकप्रिय हुई फिर भी **रामायण ककविन** का भी कुछ महत्त्व माना जाता रहा है।

हिन्देशिया की अर्वाचीन रामकथा

३१९ वाँ अनु० : प्राचीन परम्परा को छोड़ कर हिन्देशिया में नवीन राम-कथा का रूप प्रचलित हुआ, जो अधिक लोकप्रिय है एवं जिसके अनुसार सुमात्रा तथा जावा में राम-कथा सम्बन्धी नाटकों का अभिनय होता है। जावा का नाटकसाहित्य प्रायः **सेरतकाण्ड तथा राम केलिङ्ग** पर आधारित है। बालीका 'वायांग वोंग' नामक नाटकों का पूरा वर्ग (जिसमें अभिनेता चेहरा नहीं पहनते) केवल रामायण के दृश्य ही प्रस्तुत करता है। रामकथा का यह अर्वाचीन रूप हिन्देशिया से हिन्दचीन, श्याम और ब्रह्मदेश तक फैल गया है।

(अ) मलयन अर्वाचीन रामकथा

हिकायत सेरीराम के तीन साहित्यिक पाठों के अनुसार उक्त नाटक होते हैं।

इसके राफल्स मलय हस्तलिपि पाठ के अनुसार कई वस्तु अन्य पाठों में नहीं मिलती। इसके अनुसार राम के आज्ञानुसार लक्ष्मण शूर्पणखा से विवाह करते हैं और कथा सेरीराम पर निर्भर है।

हिकायत महाराज रावण (ज० रा० ए० सो०, मलयन ब्रैञ्च, भाग ११) कथानक सेरीराम के अनुसार होते हुए भी इसमें एक विशेषता यह है कि रावण की पुत्री सोती हुई सीता के वक्षःस्थल पर रावण का एक चित्र रख देती है जिससे राम सीता को त्याग देते हैं।

श्रीराम (डबल्यू० ई० मैक्सवेल द्वारा संपादित) में हनुमान् के जन्म से लेकर लङ्का में रामविजय तक की कथा सेरीराम के आधार पर दी गयी है।

(आ) जावा की अर्वाचीन राम-कथा हिकायत सेरीराम

राम केलिङ्ग में भी मलयन सेरीराम से कोई महत्त्वपूर्ण विभिन्नता नहीं मिलती। सेरीराम की प्राचीन-तम लिपि १६३३ ई० की मिलती है।

हिकायत सेरीराम

३२० वाँ अनु० : इसमें रावण-चरित से लेकर सीता-त्याग के बाद राम-सीता-मिलन तक की कथा वर्णित है। उसकी विशेषताएँ निम्नोक्त हैं।

(१) रावण चरित—दुराचार के कारण रावण अपने पिता के द्वारा निर्वासित किया जाता है। सिंहलद्वीप पहुँच कर रावण तप करता है और अल्लाह से चार लोकों का अधिकार प्राप्त करता है। प्रत्येक लोक की किसी राजकुमारी से विवाह करता है। अनेकों पुत्र उत्पन्न करता है जो बाद में राजा बन जाते हैं। इन्द्रजित् देवलोक का राजा, महरायन (महिरावण) पाताल का राजा एवं गङ्गामहासूरी नागलोक का राजा। इसके बाद रावण पृथ्वी पर लौट कर लङ्कापुरी बसाता है। अपने भाइयों कुम्भकर्ण. विभीषण, शूर्पणखा के पति वर्गासींगा को क्रमशः सेनापनि, ज्योतिषी तथा प्रधान गुप्तचर बनाता है।

(२) राम का जन्म—दशरथ का मन्दूदारी तथा बलियादारी के साथ विवाहवर्णन के बाद उनके पुत्रेष्टियज्ञ का उल्लेख है जिसमें एक काक बलियादारी का पायस चुरा कर उसे लङ्का ले जाता है। अनन्तर अन्ध मुनि के पुत्र का वध, राम, लक्ष्मण, वर्दन और चित्रदन चार पुत्रों तथा कीकवी नामक पुत्री का जन्म वर्णित है।

(३) सीता का जन्म और विवाह—मन्दूदारी के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर रावण उसे दशरथ से माँगता है तथा एक माया मन्दूदारी को लङ्का ले जाता है जिसके गर्भ से सीता उत्पन्न होती है। अशुभ जन्मपत्र के कारण सीता समुद्र में फेंक दी जाती हैं तथा महारेसि (महर्षि) कली द्वारा पाली जाती है। यहाँ सीता के स्वयंवर में रावण और अन्य राजाओं के असफल प्रयत्नों के पश्चात् राम परीक्षा में सफल होकर सीता से विवाह करते हैं। विश्वामित्र का आगमन और परशुराम-तेजोभङ्ग के वृत्तान्त भी दिये गये हैं।

(४) राम का वनवास—बलियादारी के अनुरोध से दशरथ उसके पुत्र वर्दन को राज्य देने का निश्चय करते हैं। राजा के सोते समय बलियादारी राम को बुलाकर राजा के निर्णय का समाचार सुनाती है। सुनकर राम प्रसन्न होकर ऋषि बनने के लिए सीता और लक्ष्मण के साथ वन को प्रस्थान करते हैं। वन में पहुँच कर और कुटी बनाकर राम कुश-घास से सात लड़कियों तथा पाँच लड़कों की सृष्टि करते हैं। ये नौकर बन कर घर का काम करते हैं जिससे राम, लक्ष्मण और सीता निश्चिन्त होकर साधना कर सकते हैं।

रावण द्वारा शूर्पणखा के पति बर्गासींगा के वध के बाद उसका पुत्र दर्सासींगा अलौकिक खङ्ग सिद्ध करने के लिए तपस्या करने जाता है। अनन्तर वालि-सुग्रीव-युद्ध और अङ्गद (मन्दोदरी के पुत्र) का जन्म वर्णित है। इसके बाद अञ्जनी और वालि-सुग्रीव की उत्पत्ति (तीनों गौतम की पत्नी की संतान हैं) तथा हनुमान् के जन्म का वर्णन किया है। इसके अनुसार हनुमान् राम के वीर्य से उत्पन्न हुए हैं।

(५) सीता का हरण और खोज—किसी दिन लक्ष्मण तप करते हुए शूर्पणखा के पुत्र दर्सासींगा का संयोग से वध कर देते हैं। बाद में शूर्पणखा अपने पुत्र से मिलने आती है, लक्ष्मण द्वारा विरूपित होकर अपने

भाई रावण के पास जाती है। शेष कथा वाल्मीकिरामायण के अनुसार है। वाली के मित्र सम्बूरान की कथा हिन्द-चीन तथा श्याम में भी मिलती हैं।

(६) **युद्ध**—यह प्रायः वाल्मीकिरामायण की कथा के अनुसार है। भस्मलोचन तथा महिरावण की कथा यहाँ भी है। इन्द्रजित् की पत्नी के सती होने का तथा रावण के मर्म स्थान (दाहने कान के पीछे उसका एक छोटा ११वाँ सिर) का भी उल्लेख है। युद्ध के बाद आहत रावण का शरीर सेरन्दीब पर्वत के तल में पड़ा रहता है और सारी सेना उसको देखने जाती है। विभीषण (जो राम के मन्त्री बन जाते हैं) राम की बहन कीकवी देवी से विवाह करते हैं। एक और विशेषता यह है कि कुम्भकर्ण-वध के बाद तथा इन्द्रजित्-वध के बाद भी युद्ध चालीस चालीस दिनों के लिए स्थगित किया जाता है।

(७) **सीता-त्याग और राम-सीता सम्मिलन**—इस अन्तिम भाग में रावण के चित्र के कारण सीता-त्याग का वर्णन है। अनन्तर लव के जन्म तथा महर्षि कलि द्वारा कुश की सृष्टि की कथा दी गयी है। कुश-लव के लक्ष्मण से युद्ध के बाद राम-सीता सम्मिलन वर्णित है। अन्त में कुश और लव तथा वानर-सेना के अनेक सेनापतियों का राक्षसियों से विवाह करने का उल्लेख किया गया है।

बुल्के कहते हैं हिन्देशिया की प्राचीन रामकथा के आधार भट्टिकाव्य, महानाटक तथा अभिषेकनाटक स्पष्ट हैं, किन्तु सेरीराम का मूल स्रोत निर्धारित करना असम्भव प्रतीत होता है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि वाल्मीकि-रामायण से भिन्न जो बहुसंख्यक प्रसङ्ग मिलते हैं उनका आधार भारतीय ही है। प्रमाणस्वरूप में उन्होंने रामकथा (अपनी पुस्तक) के अनेक अनुच्छेदों का उल्लेख किया है जिनमें जैनी, बंगाली, उड़िया, **रङ्गनाथरामायण**, **कम्बरामायण**, **आनन्दरामायण**, **कथासरित्सागर**, मैरावणचरित, **तोरवेरामायण**,मुसल्मानी धर्म की चर्चा की है। वस्तुतः जैसे भारतीय भी अनेक राम-कथाग्रन्थों के कई अंश मौलिक या स्वतन्त्र कल्पना हैं वैसे ही मौलिकता के नाम पर स्वतन्त्र कल्पना यहाँ भी हो ही सकती है।

पातानी रामकथा

पातानी रामकथा में **सेरीराम** के अनेक पात्रों का महासिकु नामक तपस्वी में एकीकरण हुआ है। प्रारम्भ में उनकी पत्नी की चार सन्तानों का वर्णन है। एक पुत्री, वाली, सुग्रीव और बिलों। दूसरे भाग में महासिकु की दत्तक पुत्री मंदुदकी की कथा मिलती है। सीता के त्यक्त किये जाने पर महासिकु उसे पुत्रीस्वरूप ग्रहण करते हैं। उनका एक और सेरावी नामक (राम) दत्तक पुत्र है जिसको महासिकु सीता पर अनुरक्त होने के कारण घर से निकाल देते हैं। अनन्तर सीता स्वयंवर का वर्णन दिया गया है जिसमें रावण भी आया था। शेष कथानक सेरीराम के अनुसार है। लेकिन इसमें केवल रावण-वध तक की कथा मिलती है।

वस्तुतः विप्रकृष्ट देश-काल की घटनाओं में प्रत्यक्षादि प्रमाणों पर आधारित इतिहास या आर्षज्ञान (ऋतम्भरा प्रज्ञा) को छोड़कर और कोई भी प्रमाण नहीं होता है, कल्पना तो कल्पना ही है। उसके आधार पर तथ्य-निर्णय असम्भव ही है। वाल्मीकिरामायण तथा अन्यान्य रामायण, महाभारत, पुराण तथा आर्ष संहिताएँ ही रामचरित में प्रमाण हैं। इन्हीं के आधार पर दूर-दूर देशों में रामकथा फैली थी। उनमें उत्तरोत्तर कल्पनाएँ और किंवदन्तियाँ जुड़ती गयीं। मूल की विकृति में अधिक विकारों की सम्भावना रहती है, इसलिए राम के वास्तविक आदर्शों का दर्शन इनमें दुर्लभ होता है।

जावा का सेरतकाण्ड

३२२ अनु० : सेरतकाण्ड की रामकथा सेरीराम से बहुत भिन्न नहीं है। इसकी विशेषता निम्नोक्त है। इसमें विस्तृत भूमिका के साथ नबी अदम की कथा के बाद जावा के प्राचीन राजाओं की वंशावली तथा उसी में

देवताओं की अनेक पौराणिक कथाएँ वर्णित हैं। रावण का वैश्रवणविजय तथा वैश्रवण-पुत्र के विल्मनरंज (विमान) का रावण का वाहन बन जाना वर्णित है। अनन्तर रावण विष्णु के अवतारों से युद्ध करता है। **सेरतकाण्ड** के अनुसार वासुकि तथा श्री अवतार लेने के उद्देश्य से पृथिवी की ओर प्रस्थान करते हैं। मार्ग में रावण उनसे युद्ध करता है। विष्णु तथा वासुकि भाग कर दशरथ के पुत्रों के रूप में प्रकट होते हैं। रावण के डर से श्री अपने को एक भेड़ के रूप में बदल देती है। रावण उसे खा जाता है। फलस्वरूप श्री मन्दोदरी के गर्भ से सीता के रूप में जन्म लेती है। अन्य कथा **सेरीराम** के समान है। सीता के पुत्र का नाम बुतलव होता है। वह लक्ष्मण से युद्ध करता है। अनन्तर सीता और रोम के सम्मिलन के पश्चात् लव को राज्यभार सौंप कर राम सीता और लक्ष्मण के साथ तपस्या करके अग्नि में प्रवेश करते हैं। इस कथा में भी मूल वाल्मीकिरामायण की छायामात्र होने पर भी विकार अधिक हैं।

हिन्दचीन, श्याम, ब्रह्मदेश

३२३ अनु० : बुल्के कहते हैं, "इतिहासज्ञों का अनुमान है कि पहली शती से लेकर भारतीय व्यापारी अपने यहाँ की संस्कृति का प्रचार हिन्दचीन में करने लगे थे। फलस्वरूप चम्पाराज्य की स्थापना हुई थी, जिसका सातवीं शताब्दी के शिलालेखों से पता चलता हैं कि **वाल्मीकिरामायण** का वहाँ पर्याप्त प्रचार हुआ होगा। राजा प्रकाशधर्म (६५३—६७८) के समय में एक वाल्मीकि-मन्दिर में वाल्मीकि की मूर्ति मिली है। इस मन्दिर के एक शिलालेख में श्लोकोत्पत्ति तथा वाल्मीकि के विष्णु-अवतार होने का उल्लेख किया गया है।

"यस्य शोकात् समुत्पन्नं श्लोकं ब्रह्माभिपूजितम्।
विष्णोः पुंसः पुराणस्य मानुषस्यात्मरूपिणः॥"

श्लोकार्थ यह है—जिसके शोक से ब्रह्मा से पूजित श्लोक उत्पन्न हुआ था, उस पुराण पुरुष मानुषरूपी विष्णु की यह मूर्ति है।

उस समय का कोई साहित्य सुरक्षित नहीं है। अनाम में अठारहवीं शताब्दी की एक संक्षिप्त रामकथा का प्रचार था, जिसका कथानक **वाल्मीकिरामायण** से बहुत भिन्न नहीं है। अन्तर यह है कि दशानन का राज्य अनाम के दक्षिण भाग में तथा दशरथ का राज्य अनाम के उत्तरीय भाग में माना जाता है और रावण सेनासहित दशरथ के राज्य पर आक्रमण कर सीता को हर लेता है।

छठीं शताब्दी ई० में एक सामन्त ने चम्पा के राजा के विरुद्ध विद्रोह कर कम्बोडिया (रूमेर) में एक स्वतंत्र राज्य स्थापित किया था। वहाँ सैकड़ों मन्दिरों के खण्डहर मिलते हैं, जिनका काल नवीं और तेरहवीं शताब्दी के बीच माना जाता है। प्राचीन राजधानी अंगकोरवाट के एक विशाल मन्दिर में **रामायण, महाभारत** तथा **हरिवंश** की कथाओं को लेकर बहुत से पाषाण-चित्र अङ्कित किये गये हैं जिन पर जावा की कला का प्रभाव स्पष्ट है। इस मन्दिर का समय ११वीं या १२वीं शती ई० है।"

वस्तुतः आधुनिक पाश्चात्य ईसाई इतिहासज्ञों को एक भयंकर रोग यह है कि वे ईसवी सन् से पहले की ओर बढ़ना ही नहीं चाहते, वे संसार के सर्वप्राचीन साहित्य **वेद, रामायण** तथा **महाभारत** को भी ईसा के आस-पास ही का सिद्ध करने के फेर में लगे रहते हैं। वे संसार की सभी सभ्यताओं एवं उनके इतिहासों को भी इसी दायरे में लाने का प्रयास करते हैं। अतः उनकी इतिहासकल्पना प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। अन्य देश के लोग भी उनकी इस कल्पना से प्रभावित हुए हैं। इस कथन में इतना ही तथ्य है कि हिन्दचीन में बहुत प्राचीन काल से **वाल्मीकिरामायण** का प्रचार था और वहाँ भी वाल्मीकि के शोक से आविर्भूत **"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः"** यह श्लोक माना जाता था। कम्बोडिया के मन्दिर खण्डगृहों और अंगकोरवाट के मन्दिर के

पाषाण-चित्रों, **रामायण**, **महाभारत** और **हरिवंश** की कथाओं से विदित होता है कि वहाँ अति प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति फैली थी और रामकथा का व्यापक प्रचार था।

३२४ अनु० : ख्मेर-साहित्य की सब से कलात्मक रचना **रामकेर्ति** है जिसका रचयिता तथा रचना-काल अज्ञात है। (रामकेर्ति का उच्चारण—रे आमकेर अथवा रियामके होता है।) इसकी प्राचीनतम हस्तलिपियाँ १७ वीं शताब्दी की हैं, किन्तु वे अपूर्ण हैं। विश्वामित्र के यज्ञ के वर्णन से प्रारम्भ होकर इन्द्रजित्-वध पर उसकी कथा रुक जाती है (सर्ग १–१०)। किन्तु रामकियेन (श्याम के रामायण) से तुलना करने पर अनुमान किया जा सकता है कि सर्ग ८० रामकेर्ति का अन्तिम सर्ग नहीं है। रामकेर्ति के फ्रेंच अनुवाद से इसकी निम्नलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं।

(१) लेखक कोई धार्मिक बौद्ध है जो नारायण का अवतार मानते हुए भी उनको बोधित्त्व की भी उपाधि देता है तथा कई स्थलों पर बौद्ध शब्दावली का प्रयोग करता है।

(२) यद्यपि **रामकेर्ति** पर **सेरीराम** की गहरी छाप है, फिर भी लेखक ने **वाल्मीकिरामायण** तथा **सेरीराम** की कथाओं का समन्वय करने का प्रयत्न किया है। फलस्वरूप **सेरीराम** की अपेक्षा **रामकेर्ति वाल्मीकीय रामायण** के अधिक निकट है। **सेरीराम में** दशरथ की केवल दो रानियों का उल्लेख है, **रामकेर्ति** में तीनों के नाम वाल्मीकि के अनुसार ही दिये गये हैं। **रामकेर्ति** में रावण की सीता-स्वयंवर में उपस्थिति की ओर संकेत नहीं मिलता, **सेरीराम** के अनुसार रावण भी इसमें आया था। **सेरीराम** में राम स्वेच्छा से वन के लिए प्रस्थान करते हैं जब कि **रामकेर्ति** में कैकसी (कैकेयी) के अनुरोध से राम को निर्वासित किया जाता है। **सेरीराम** में लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र के वध का वृत्तान्त मिलता है, जिसका उल्लेख **रामकेर्ति** में नहीं है। **ख्मेररचना** में सीता जनक की दत्तक पुत्री मानी जाती हैं तथा राम द्वारा परित्यक्त होने पर वाल्मीकि के आश्रम में निवास करती हैं। **सेरीराम** में सीता महारेसि कली की दत्तक पुत्री हैं तथा त्याग के बाद उनके यहाँ रहती हैं। **सेरीराम** में हनुमान् राम के पुत्र माने जाते हैं, किन्तु **रामकेर्ति** के अनुसार वह वायु और अञ्जना की सन्तान हैं।

(३) **मलयन सेरीराम** में भी निम्नलिखित सामग्री मिलती है जिससे स्पष्ट है कि **ख्मेररामायण** तथा **सेरीराम** का गहरा सम्बन्ध है।

—एक असुर, काकरूप धारण कर विश्वामित्र यज्ञभङ्ग करने का प्रयत्न करता है और विश्वामित्र उसे मारने के लिए राम तथा लक्ष्मण को धनुष-बाण देते हैं।

—जटायु-रावण-युद्ध में सीता की अंगूठी का उल्लेख।

—लक्ष्मण द्वारा १४ वर्ष तक नींद तथा भोजन का त्याग।

—लक्ष्मण और हनुमान् का युद्ध।

—सुग्रीव को अपनी सामर्थ्य का विश्वास दिलाने के लिए राम सात तालों का एक ही बाण से भेदन करते हैं। ये सात ताल महाराज नाग की पीठ पर स्थित हैं।

—सम्बूरान का वृत्तान्त जिसे हनुमान् राम के पास ले आते हैं।

—सेतु बाँधने के समय मछलियों का उत्पात।

—रावण के चित्र के कारण सीता-त्याग। वाल्मीकि द्वारा सीता के एक पुत्र की सृष्टि। राम-सेना से सीता के पुत्रों का युद्ध।

(४) कथा निर्वहरण मौलिक है।

'अप्रतिषिद्धमनुमतं भवति' न्याय के अनुसार प्रमाणभूत मूल ग्रन्थ से जो विरुद्ध नहीं है वह अनुमत समझा जाता है, अतः **रामकेर्ति** तथा अन्यान्य रामायणों की अविरुद्ध विशेषताएँ मान्य ही समझी जाती हैं। यह कहा ही जा चुका है कि **महाभारत**, पुराण और संहिताएँ भी आर्ष हैं। ऋषियों को विप्रकृष्ट देशकाल की वस्तुओं का भी ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा ज्ञान हो सकता है, अतः वे **वाल्मीकिरामायण** के पूरक समझे जाते हैं।

श्याम

३२५ अनु० : श्यामदेश में राम-कथा रामकियेन (अर्थात् रामकीर्ति) के नाम से प्रसिद्ध है। अपेक्षाकृत प्राचीनकाल से वहाँ के नाटकों में राम-कथा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। प्रारम्भिक नाटकों के दो वर्गों (कोन और रबम) का एकमात्र विषय राम-कथा ही था और एक तीसरा वर्ग (नंग अर्थात् छाया-नाटक) प्रधानतया राम-कथा के दृश्य प्रस्तुत करता था। १८वीं शताब्दी में नाटकों के एक नवीन रूप का प्रचलन हुआ (वेयुक रोंग) जिसकी कथावस्तु **रामकियेन** पर आधारित थी। १८वीं तथा १९वीं शताब्दी की हैं। इस रामायण के दो भिन्न संस्करण १८ वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में निकाले गये थे तथा इसका एक तीसरा संस्करण नाटक के रूप में १९ वीं शती पूर्वार्द्ध में प्रकाशित हुआ था। बांग्कोक के बिरला ओरियण्टल सीरीज में **रामकियेन** का अंग्रेजी संक्षेप **रामकीर्ति** के नाम से प्रकाशित किया गया है। अगले अनुच्छेद में जो **रामकियेन** के कथानक का विश्लेषण किया गया है, वह उस **रामकीर्ति** के दूसरे संस्करण (सन् १९४१) पर निर्भर है।

१७वीं शताब्दी की अनेक छोटी रचनाओं का उल्लेख मिलता है, जिनकी कथावस्तु रामायण की किसी घटना से सम्बन्ध रखती है, उदाहरणार्थ वाली का सुग्रीव को उपदेश देना कि किस प्रकार राम के दरबार में व्यवहार करना चाहिए तथा दशरथ का राम को राजनीति तथा धर्म के विषय में शिक्षा देना।

१८वीं तथा १९वीं शती में कई कवियों ने रामकियेन नामक महाकाव्यों की रचना की है। उदाहरणार्थ थोनबुरी, फुत्तायोत्फा (इनका रामकियेन सर्वाधिक विस्तृत है) तथा फुत्तालेउत्ला।

३२६ अनु० : **रामकियेन** का संक्षिप्त अंग्रेजी रूपान्तर ४५ अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में अयोध्या के राजवंश का परिचय मिलता है तथा द्वितीय अध्याय में राम तथा उनके भाइयों के जन्म का वर्णन दिया गया है। अनन्तर लङ्का का निर्माण, रावण के कृत्य तथा राम-कथा के अनेक पात्रों अर्थात् वाली, सुग्रीव, हनुमान्, अङ्गद और सीता की जन्मकथा मिलती है (अध्याय ३–११)। इसके बाद विश्वामित्र के यज्ञ से लेकर सीता-त्याग के पश्चात् राम-सीता सम्मिलन की समस्त कथा प्रस्तुत की गयी है (अध्याय १२–४५) **रामकियेन** के कथानक की निम्नलिखित विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—

(१) रामकियेन के पात्र सबके सब श्याम देश के निवासी हैं तथा रामायण का घटनास्थल श्याम में ही माना गया है।

(२) इसका मुख्य आधार रूमेर भाषा का **रामकेर्ति** है। दोनों में कथा का निर्वहण सदृश है। रामकेर्ति की भाँति रामकियेन भी सेरीराम की अपेक्षा वाल्मीकीय कथा के अधिक निकट है। **रामकेर्ति** तथा **वाल्मीकिरामायण** की तुलना करते हुए रामकेर्ति की जितनी विशेषताओं का उल्लेख हुआ है, वे प्रायः सब रामकियेन में भी विद्यमान हैं। अन्तर यह है कि रामकियेन में हनुमान् को अञ्जना तथा शिव का पुत्र माना गया है तथा लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र का वध वर्णित है। रामकियेन का एक अन्य प्रसङ्ग राम-सीता का पूर्वानुराग, न **वाल्मीकिरामायण** में मिलता है और न **रामकेर्ति** में, किन्तु कुछ बातों में **रामकियेन रामकेर्ति** की अपेक्षा वाल्मीकीय कथा के अधिक निकट है। अयोमुखी का वृत्तान्त **रामकेर्ति** में नहीं है, किन्तु वह **रामकियेन** में विद्यमान है। **रामकियेन** के अनुसार सीता-स्वयंवर

का धनुष ईश्वर (शिव) का है जब कि **रामकेर्ति** में जनक स्वयं इन्द्रजाल से बनाते हैं। **रामकियेन** में वाल्मीकीय कथा के अनुसार अगस्त्य राम को दिव्य अस्त्र प्रदान करते हैं, किन्तु इसका उल्लेख **रामकेर्ति** में नहीं हुआ है। उपर्युक्त विश्लेषण का निष्कर्ष यह है कि **रामकेर्ति** के अतिरिक्त **रामकियेन** पर **वाल्मीकिरामायण** का भी सीधा प्रभाव पड़ा है।

(३) **रामकेर्ति** की भाँति **रामकियेन** भी बहुत से अर्वाचीन वृत्तान्तों के लिए **मलयन सेरीराम** पर निर्भर है। वाल्मीकि से भिन्न जो सामग्री सामान्यरूप से **रामकेर्ति** तथा **सेरीराम** में मिलती है वह प्रायः सब **रामकियेन** में भी पायी जाती है। अन्तर यह है कि **रामकियेन** में सुग्रीव से मैत्री करने के पूर्व राम की किसी परीक्षा का उल्लेख नहीं है और लक्ष्मण के संयम का भी निर्देश नहीं मिलता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि **रामकियेन** पर **सेरीराम** का सीधा प्रभाव भी पड़ा है, क्योंकि निम्नलिखित सामग्री **रामकेर्ति में** नहीं हैं किन्तु वह **रामकियेन** तथा **सेरीराम** दोनों में विद्यमान है।

महिरावण का राम को पाताल ले जाना।
भस्मलोचन की कथा।
वाली, सुग्रीव तथा अञ्जना का अहल्या की सन्तान के रूप में उल्लेख।
अङ्गद की जन्मकथा जिसके अनुसार वह वाली तथा मन्दोदरी का पुत्र है।
सीता का लङ्का में जन्म।
हनुमान् तथा नल का कलह।

रामकेर्ति, **वाल्मीकिरामायण** तथा **सेरीराम** के अतिरिक्त **रामकियेन** का और कोई आधार ग्रन्थ रहा होगा कि नहीं इस प्रश्न का निश्चयात्मक उत्तर तभी संभव होगा जब **रामकेर्ति** की कोई पूरी हस्तलिपि मिल जायगी। **रामकियेन** में विभीषण मन्दोदरी के विवाह का उल्लेख मिलता है। यह प्रसङ्ग **सेरीराम** अथवा **रामकेर्ति** में नहीं आया है, किन्तु वह अनेक भारतीय राम-कथाओं में उल्लिखित है। निम्नलिखित सामग्री श्याम देश को छोड़ कर अबतक और कहीं नहीं मिली है।

सेतुबन्ध के पूर्व रावण का तपस्वी के रूप में राम के पास पहुँचना और युद्ध छोड़ देने के लिए उनसे अनुरोध करना।

रावण के इस निष्फल प्रयत्न के अनन्तर बेंजकाया (विभीषण की पुत्री) का सीता का रूप धारण कर मृतवत् राम के शिविर के पास की नदी के ऊपर बह जाना। रावण का ब्रह्मा को बुला भेजना; लङ्का में ब्रह्मा का आगमन, रावण द्वारा राम पर अभियोग। ब्रह्मा का राम को बुलाना और बाद में सीता को भी। अन्त में ब्रह्मा का सीता को लौटाने की आज्ञा देना तथा रावण के अस्वीकार करने पर ब्रह्मा का रावण को शाप देना। रावण-वध तथा राम के अयोध्या में प्रत्यागमन के बाद रावण के एक पुत्र का विभीषण के विरुद्ध विद्रोह करना। भरत तथा शत्रुघ्न का रामसेना के साथ लङ्का की ओर प्रस्थान करना और रावण के पुत्र को पराजित कर विभीषण को पुनः राज्य दिलाना। इस युद्ध का विस्तृत वर्णन प्रथम युद्ध की पुनरावृत्तिमात्र है। यह प्रसङ्ग **रामकेर्ति** में तो नहीं मिलता, किन्तु सर्ग ७६ में इसकी ओर संकेत किया गया है। इसका आधार भारतीय है।

समस्त युद्ध की इस पुनरावृत्ति के अतिरिक्त और बहुत से वृत्तान्त दुहराये गये हैं। इन्द्रजित् के यज्ञ-भङ्ग के अतिरिक्त **रामकियेन** में ऐसा वर्णन कुम्भकर्ण (अध्याय २८), रावण (अध्याय ३१) तथा मन्दोदरी (अध्याय- ३४) के विषय में भी मिलता है।

(५) **रामकियेन** की एक अन्तिम विशेषता यह भी है कि उसमें हनुमान् की बहुत सी प्रेमलीलाओं का वर्णन किया गया है । स्वयंप्रभा (अध्याय २३), बेंजकाया (अध्याय २५), नागकन्या सुवर्णमच्छा (अध्याय २६), अप्सरा वानरी (अ० ३१) के अतिरिक्त मन्दोदरी के साथ भी वह क्रीड़ा करते हैं । मन्दोदरी के संजीवनयज्ञ को भङ्ग करने के लिए वह दशकण्ठ के रूप में मन्दोदरी के पास पहुँच कर उसका आलिङ्गन करते हैं (अध्याय ३४) । एक अन्य अवसर पर वह रावण के पास पहुँच कर राम की भर्त्सना करते हैं तथा रावण की ओर से युद्ध करने का प्रस्ताव करते हैं । वास्तव में वह एक दिन तक ऐसा करते हैं और पुरस्कारस्वरूप इन्द्रजित् की समस्त सम्पत्ति के अतिरिक्त मन्दोदरी को भी रावण से प्राप्त कर रातभर उसके साथ क्रीड़ा करते हैं (अध्याय ३५) ।

रामकियेन का अनुवाद हिन्दी में **रामकीर्ति** नाम से प्रकाशित है । यह स्वामी सत्यानन्द पुरी के अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर सस्ता-साहित्यमण्डल नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित है । स्वामी सत्यानन्द पुरी के अनुसार जिन काव्य-रचनाओं ने विश्व-साहित्य पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है उनमें **रामायण महाकाव्य** का स्थान सर्वोपरि है । धर्म और कथा के क्षेत्र में भी अपनी अमर लेखनी से एक विशिष्ट सम्प्रदाय का निर्माण किसी ने किया तो वह मानवता के आदि कवि संस्कृतकाव्य के जनक वाल्मीकि ही हैं । दूर-दूर देश के कवियों ने उनकी अनुकृति के असीम भण्डार से रत्न चुन-चुन कर अपने साहित्य को समृद्ध किया है । कलाकारों ने उनसे चिरस्थायी कला की प्रेरणा लेकर अपनी कलाकृति को अमर बनाया है । खेतों में काम करनेवाले किसान अथवा नाव चलानेवाले नाविक लोग भी उनसे अप्रभावित न रह सके—उनके गीतों को गुनगुनाते हुए अपनी थकावट भूल जाते हैं । उनकी लेखनी ने जिस सम्पूर्णता से प्रभाव डाला है वैसा और किसी ने नहीं डाला । स्वामी सत्यानन्दपुरी के अनुसार थाई देश के छठे राम राजा को ही यह श्रेय है कि उन्होंने **रामकीर्ति** के मूलरूप **रामायण** का पता लगाकर उसके रचयिता वाल्मीकि के बारे में जानकारी दी है । कोई लोकप्रिय गीत जब लोगों को अपने माधुर्य से मोह लेता है जब लोग उसके सम्मोहन में फँस जाते हैं तो धीरे-धीरे इस बात को भूल जाते हैं कि इसका रचयिता कौन है । वाल्मीकि के सम्बन्ध में भी ऐसा ही हुआ ।

थाई देश में **रामायण** का प्रभाव १३ वी शती से ही है । फिर भी इस **रामकीर्ति** के सुन्दर काव्य का १७८१ ई० के प्रारम्भ में निर्माण हुआ । राम की महिमा का जैसा बखान थाई देश में पाया जाता है, उसपर रामायण का सीधा प्रभाव नहीं पड़ा'। **रामकीर्ति** में ऐसी कहानियों का समावेश है जो उत्तर भारत से लेकर मलाया तक अनेक देशों में लोकप्रिय हैं, अतः रामकथा अनेक देशों से होती हुई थाई देश में पहुँचती है । **रामकीर्ति** के अनुसार देवताओं में सबसे बड़े ईश्वर (शिव) हैं । राम उनके अनुग्राह्य हैं । इसमें राम, हनुमान् आदि कुछ नाम **रामायण** से बिलकुल मिलते हैं, परन्तु कुछ नये नाम हैं । उनमें मन्थरा का नाम कुञ्ची लिखा गया है जो कुब्जा का बिगड़ा हुआ रूप है । शत्रुघ्न को शत्रुद, कुवेर को कुवेरन, लक्ष्मण को लक्षण तथा भरत को वरत कहा गया है । इसमें हिरण्याक्ष को हिरन्तयक्ष कहा गया है । ईश्वर से अपराजित होने का वरदान पाने के कारण वह अत्यन्त उद्धत होकर भूमि को जम्बूद्वीप, उत्तरकुरु अमर गोपाल की भूमि से काटकर चटायी की तरह बगल में दबा कर पाताल चला जाता है । उसकी उद्दण्डता से देवताओं का भी हृदय कम्पित हो जाता है । वे सब कैलास पर्वत पर ईश्वर की शरण लेते हैं । ईश्वर द्रवित होकर नारायण को बुलाकर कहते हैं तुरन्त जाकर संसार को हिरन्त के अत्याचार से मुक्त करो । फलतः नारायण ने सूकररूप से हिरन्त का वध किया । नारायण अपने स्थान क्षीरसमुद्र में वेद-ध्वनि में लवलीन हो गये । समुद्र के तल से एक कमल निकला जिसकी सुन्दर सुगन्धित पत्तियों से एक बच्चा निकला । उसे गोद में लेकर नारायण कैलास में ईश्वर के पास गये । ईश्वर की आज्ञा हुई इस बालक को संसार का सबसे पहला सम्राट् नियुक्त किया जाय । उसने संसार की रक्षा करने के लिए नारायण-वंश की नींव डाली । उसकी राजधानी द्वारावती या अयुध्या हुई । बालक का नाम अनोमान था । उसको नारायण का अवतार मानते थे । उसके अजपाल

नाम का पुत्र हुआ। उसके शासन से सब संतुष्ट थे। इसी समय असुर ब्रह्मनामक राक्षस हुआ जिसको ईश्वर ने वरदानरूप गदा दी। उसके प्रभाव से वह अत्याचारी हो गया। अजपाल ने मालीवग नामक अन्य देव की सहायता से उसको मारा उसके बाद दशरथ ने उस वंश-परम्परा को जारी रखा। अजपाल के बाद दशरथ गद्दी पर बैठा। उसकी कोसुरिया, समुद्रा और कौयकेशी तीन रानियाँ थीं। वह पुत्र न होने के कारण दुःखी था। वसिष्ठ, स्वमित्र, वज्जवग्ग और भारद्वाज के परामर्श से सिंगमुनि के पुत्र कलैकटी जो हरिणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था, उसका शरीर मनुष्य जैसा था पर मुँह हरिण का सा था। उसका घोर तप था। उसके तेज से रोमवचन नामक देश में अकाल पड़ गया। उस देश के राजा ने अपनी कन्या को भेजा कि वह ऋषिपुत्र के तप को भङ्गकर ऋषि को गृहस्थाश्रम में प्रवेश कराये। उसके लावण्य से मोहित होकर ऋषि ने तप छोड़ दिया। जिससे विपुल वृष्टि हुई। ऋषि-पुत्र जामाता के रूप में राजमहलों में रहने लगा। राजा दशरथ के निमन्त्रण से ऋषिपुत्र अयोध्या आया और पुत्रेष्टियज्ञ की तैयारी में लग गया। पूर्वोक्त चार ऋषियों को लेकर वह कैलास पर गया। उसी समय देवों के प्रताप से राक्षसों को विशेष वरदान मिले थे। उससे वे बड़े अन्याय करते थे। ऋषि कलैकटी ने ईश्वर से प्रार्थना की, आप नारायण को मृत्युलोक में भेजिये। वे दशरथ के पुत्र के रूप में अवतार लें और पृथ्वी को विपत्ति से मुक्त करायें। ईश्वर की प्रेरणा से नारायण राजी हो गये, परन्तु उनकी शर्त थी कि लक्ष्मी, अनन्त नाग, गदा, चक्र और शङ्ख भी अवतार लें। ईश्वर ने सब शर्त मान लीं। ईश्वर ने ऋषियों से कहा आप चल कर यज्ञ आरम्भ करें। यज्ञाग्नि से एक देवता का प्रादुर्भाव होगा। उनके सिर पर एक पात्र होगा। उसमें चार रोटियाँ होंगी। उसी समय एक कौवा उस पात्र पर झपट्टा मारेगा और आधी रोटी लेकर दक्षिण में भाग जायगा। शेष रोटियों को दशरथ की रानियों में बाँट दिया जाय। रानियों को चार पुत्र होंगे। ईश्वर की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया गया। नारायण ने कौसुरिया के पुत्र के रूप में अवतार लिया। वह हरे वर्ण के थे। चक्र कौयकेशी के पेट से भरतरूप में उत्पन्न हुए। वह रक्त वर्ण के थे। नाग और शङ्ख दोनों ने संयुक्त रूप से जन्म लिया। समुद्रा के पेट से लक्ष्मण हुए वे पीत वर्ण के थे। गदा ने समुद्रा से जन्म लिया उनका नाम शत्रुद था। वे बेगनी वर्ण के थे।

भविष्यवाणी के अनुसार कौआ भी प्रकट हुआ। उसके द्वारा अपहृत रोटी से सीता के रूप में लक्ष्मी की उत्पत्ति लङ्का में हुई। कौए को दशकण्ठ ने भेजा था। उस आधी रोटी को मण्डो ने खाया। उससे सीता का जन्म हुआ। पहले लङ्का का नाम रङ्गका था। नीलकाल पर्वत पर कौए का बहुत बड़ा घोंसला था। इसी लिए इसका नाम रङ्गका था। श्यामी भाषा में का का अर्थ कौआ और रङ्ग का अर्थ घोंसला है। ब्रह्मा ने इसको अपने एक भक्त सहमलिबन के लिए बसाया था। वही लङ्का का पहला राजा था, परन्तु नारायण के डर से वह राजधानी छोड़ कर पाताल चला गया। ब्रह्मा की आज्ञा से विश्वकर्मा ने नीलकाय पर्वत पर एक नया घोंसला बनाया और ब्रह्मा ने उसे अपने भक्त चतुर्वक्र को दे दिया। उसकी रानी मालिका थी। उसका पुत्र लस्तियन गद्दी पर बैठा। यह शक्तिशाली राक्षस था। उसकी पाँच रानियाँ थीं। सुनन्दा कुबेरन की माँ थी, चित्रमाली देवनासुर की, स्वर्णमालै अंशधन्वा की, वरप्रभा भारन की माँ थी। पाचवीं रानी का नाम रजटा था। उसके ६ पुत्र और एक पुत्री थी। उनके नाम दशकण्ठ, कुम्भकर्ण, विभेक, दुःखन, खर, त्रिशिरा और सुमनक्खा था। लस्तियन की सहायता से पाताल के राजा कालनाग ने सहमलिबन पर चढ़ायी कर दी। उस समय सहमलिबन की लङ्का के राजा से मैत्री हो गयी थी। उसने लङ्काधिपति चतुर्वक्र की अधीनता भी स्वीकार कर ली थी। अतः इस समय उसने लस्तियन से सहायता माँगी। उनकी सहायता से कालनाग पराजित हो गया। उसके बाद कालनाग ने अपनी लड़की काल अग्गी लस्तियन को दे दी। लस्तियन ने उक्त लड़की का विवाह अपने लड़के दशकण्ठ से कर दिया। वृद्धावस्था में लस्तियन ने अपने राज्य को बाँट दिया। दशकण्ठ लङ्का का राजा हुआ। कुबेरन कालचक्र का अधिपति हुआ, पुष्पक भी उसी को मिला। देवनासुर के भाग में

चक्रकाल का राज्य आया। अंशधन्वा वादकन का राजा हुआ। भारत सीलाश का, दवन रोमगल का, दुखन चारिक का और त्रिशिरा मञ्जवारी का राजा हुआ। सुमनक्खा का विवाह राजा जिह्वा से कर दिया गया।

दशकण्ठ सबसे अधिक प्रतापी हुआ। कैलास में एक नन्दक देव रहता था। वह ईश्वरदर्शनार्थ कैलास जानेवालों का पैर धोता था। सब उसे छेड़ते थे। उसके सिर पर चपत मारते थे। परिणामस्वरूप वह गञ्जा हो गया। उसने पीड़ित होकर ईश्वर की शरण ली और यह वरदान माँगा कि मैं जिसकी ओर संकेत कर दूं वह वहीं गिरकर मृत्यु का ग्रास बन जाय। ईश्वर ने उसे वैसा ही वरदान दे दिया। फलस्वरूप बहुत से देवता मारे गये। इन्द्र ने ईश्वर से प्रार्थना की कि उससे वरदान वापस लिया जाय। ईश्वर ने नारायण को आदेश दिया कि वे नन्दक को पराजित करें। नारायण ने अप्सरा का रूप धारण कर नन्दक को मोह में फाँस लिया। उसने अप्सरा को प्राप्त करना चाहा। उसने कहा तुम पहले मेरे साथ नाचो, उसके बाद में विवाह करूँगी। उसने स्वीकार कर लिया; अप्सरा ने अपनी अंगुली अपने पैरों की ओर दिखायी नाच की धुन में नन्दक वरदान भूल गया, अतः उसने भी अपनी अंगुली अपने पैरों की ओर दिखायी, फलतः उसकी टांग टूट गयी। अप्सरा ने अपना असली रूप धारण किया और नन्दक को मारने दौड़े। नन्दक ने नारायण से कहा कि यह तो धोखा है, वीरोचित न्याय नहीं है। नारायण ने कहा आगे तुम दक्षकण्ठ २० भुजावाले होओगे। मै एक सिर दो भुजा से ही तुम्हें मारूँगा। नन्दक दशकण्ठ और नारायण राम हुए। विभेक के पास एक चमत्कृत सीसा था जिससे वह भविष्य जान लेता था। इसलिए उसको दशकण्ठ के षड्यन्त्रों का पता लग जाता था। विभेक ने उसी के बल से रावण-नाश में राम की सहायता की।

दशकंठ-मंडो-विवाह

हिमालय में चार ऋषि तप करते थे। वे गायों का दूध पीते थे। गायें स्वयं आकर शीशे के पात्र में दूध डाल जाती थीं। ऋषि लोग बचे हुए दूध को निकट की एक मेढकी को दे देते थे।

पाताललोक की एक नागकन्या बहुत कामुकी थी, वह अतृप्त हो मृत्युलोक में आकर एक सांप से रमण कर रही थी। ऋषियों ने उस कुकृत्य को देख कर उसकी पूंछ पर कुछ मार दिया वह लज्जित हो पाताल चली गयी। वह पुनः मृत्युलोक में आयी और ऋषियों के दुग्धपात्र में विष मिला दिया। मेढकी देख रही थी, वह ऋषियों की भक्त थी। ऋषियों को मृत्यु से बचाने के लिए वह दूध में कूद पड़ी और मर गयी। ऋषियों ने सोचा मेढकी दूध की लालच में फँस कर मर गयी। उन्होंने मन्त्रों से उसे जीवित कर दिया। उसने ऋषियों से सारा हाल बताया। ऋषियों ने उसपर प्रसन्न होकर उसे सुन्दरी कन्या बना दिया। वह मण्डो थी। ऋषियों ने उसे ईश्वर को सौंप दिया। वह उमा की सेवा करती थी। इधर किसी प्रसङ्ग से कैलास पर्वत का कोना धँस गया था। ईश्वर ने कहा जो उसे ठीक करेगा, उसे मुंह माँगा वरदान मिलेगा। बहुत से देवताओं ने प्रयत्न किया, पर वह टस से मस नहीं हुआ। दशकण्ठ ने उस पहाड़ को ठीक कर दिया और पुरस्कारस्वरूप में उसने उमा की माँग की। ईश्वर ने उमा को दे दिया। दशकण्ठ ने उमा को पकड़ लिया, परन्तु उसे अनुभव हुआ कि वह अग्नि के समान तप्त हो रही है। वह उमा को सिर पर लेकर लङ्कापुरी चला। देवता बड़े चिन्तित हुए। तब नारायण एक बूढ़े माली का रूप धारण कर बाग में एक वृक्ष को इस प्रकार लगाने लगे कि जिसका मूल ऊपर की ओर रहे। दशकण्ठ ने देखकर कहा मूर्ख क्या कर रहा है। मालीरूप नारायण ने कहा तू मुझसे भी मूर्ख है जो एक सन्तप्त स्त्री को, जिसका शरीर जल रहा है, कन्धे पर उठाये फिरता है। वह तेरे वंश का विध्वंस कर डालेगी। तुझे तो इससे अच्छी स्त्री माँगनी चाहिये थी। जैसी मण्डो है। यह सुनकर दशकण्ठ ने उमा को लौटा दिया और मण्डो को माँग लिया। इसी बीच खिदखिन (किष्किन्धा) के वाली ने उससे युद्ध कर मण्डो को छीन कर अपनी स्त्री बना लिया। अन्त में उसके गुरु अङ्गद के समझाने पर मण्डो दशकण्ठ को लौटा दी गयी।

वाली-सुग्रीव की उत्पत्ति

साकेत का राजा गौतम सन्तानहीन होने के कारण तप कर रहा था। उसकी जटा और दाढ़ी इतनी बढ़ी कि उसमें दो बया पक्षियों ने घोंसला बना लिया। एक दिन पक्षी किसी कमल-वन में रात भर कमल में बन्द रहा। सबेरे आया तो उसकी पत्नी ने उसकी देह सूँघ कर सोचा कि यह रात भर किसी दूसरी स्त्री के सम्पर्क में रहा है। पक्षी ने कसम खाते हुए कहा कि यदि मैंने ऐसा किया हो तो इस साधु का सारा पाप मुझे लगे। गौतम को बड़ा दुःख हुआ, क्योंकि वह समझता था कि उसमें कोई पाप नहीं है। पूछने पर चिड़िया ने कहा सन्तानहीन होना ही उसका पाप है। उसने तप छोड़कर यज्ञ किया। उससे एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम काल अचना हुआ। गौतम ने उससे विवाह कर लिया। इससे एक लड़की हुई। उसका नाम स्वाहा रखा गया। इधर इन्द्र आदि देवता सोच रहे थे कि हम अपने कर्मों का बँटवारा कैसे करें जिससे कि मृत्युलोक में सैनिकों के रूप में जन्म लेकर लड़ाई में परस्पर सहायता कर सकें। उनकी दृष्टि अचना पर पड़ी। इन्द्र नीचे आया और अपनी दैवी शक्ति से उसको गर्भवती बनाया। उसको पुत्र हुआ, उसका नाम काकाश (वाली) हुआ। आदित्य भी ऊपर से निकले। उन्होंने भी उससे पुत्र उत्पन्न किया। उसका नाम सुग्रीव हुआ। गौतम ने दोनों को अपने पुत्र समझा। स्वाहा को अपनी माता के दुष्कृत्यों की जानकारी थी।

एक दिन गौतम नहाने जा रहे थे, सुग्रीव गोद में था, काकाश कन्धे पर था और स्वाहा अंगुली पकड़े जा रही थी। स्वाहा के मन में डाह हुआ। गौतम को इस बात पर आश्चर्य हुआ। पूछने पर उसने पिता को सब बात बता दी। गौतम को यह विश्वास नहीं हुआ कि मेरी स्त्री अचरित्रा है। उसने सबको नदी में फेंक दिया और कहा जो मेरी सन्तान होगी मेरे पास लौट आयेगी जो दूसरे की होगी वह बन्दर बनकर जङ्गल में चली जायेगी। परिणामतः काकाश और सुग्रीव बन्दर वनकर बन में चले गये। घर लौटकर गौतम ने पत्नी को शाप दिया तू पत्थर वन जा। जव नारायण राक्षसों का संहार करने के लिए लङ्का पर चढ़ायी करेंगे तब तू सेतु बाँधने के काम में आयेगी और सदा समुद्र में डूबी रहेगी।

अचना को लड़की पर बड़ा गुस्सा आया। उसने लड़की को शाप दिया तू एक टाँग पर खड़ी रहेगी, एक हाथ में वृक्ष की शाखा पकड़े रहेगी। जब तू एक अतुल बलधारी वानर को जन्म देगी तब शापमुक्त होगी। इन्द्र ने किष्किन्धा बना कर काकाश और सुग्रीव को दी और संसार के सभी बन्दरों को बुला कर आदेश दिया तुम लोग काकाश को राजा बना लो।

देवता वसन्तोत्सव मना रहे थे। समुद्र की देवी मणिमेखला आनेवाली थी। उसके पास एक दैवी मणि थी। उसकी ख्याति विश्व में फैली थी। एक रामसुर नामक असुर उसके पीछे पड़ा। वह बहुत बली था। अपने पीछे बली असुर को दौड़ते देखकर मणिमेखला प्रसन्न होकर उसे चिढ़ा रही थी। वह बहुत दौड़ा परन्तु देवी और मणि उसके हाथ न आयी। वह असुर अपना क्रोध उतारने के लिए अर्जुन नामक देव से युद्ध कर ठण्डा हो गया। इधर ईश्वर ने देखा सुमेरु का कोना टेढ़ा हो गया है। उसे ठीक करने के लिए देवता बुलाये। उन्होंने सुमेरु को साँप से बाँध कर खींचा पर सफलता न मिली। सुग्रीव ने साँप की नाभि को दबाया, साँप को गुदगुदी लगी। उसने अपने शरीर से सुमेरु को जकड़ लिया। काकाश ने एक ओर कन्धा दिया सुमेरु ठीक हो गया। ईश्वर दोनों पर प्रसन्न हुए। काकाश को त्रिशूल देकर वाली नाम रखा। सुग्रीव उपस्थित न था। उसके लिए रूपवती स्त्री उसके भाई को दे दी। वाली ने उसे हाँडी में रख दिया। नारायण को यह बुरा लगा; उन्होंने कहा किसी युवती का किसी युवक को देना वैसा है जैसे किसी भौंरे को कोई फूल देना। वाली ने आश्वासन दिया कि मैं अपने वचन का पालन करूँगा। यदि न करूँ तो राम के बाण से मारा जाऊँ। वाली आया तो तारा पर मुग्ध हो गया। अपने वचन को भूल गया। सुग्रीव को न देकर उसे अपने ही घर में रख लिया।

इधर स्वाहा की दशा देखकर ईश्वर को दया आयी, अतः राम की सहायता के लिए उन्होंने सब दैवी शस्त्रों की शक्ति को अलग कर दिया और वायु को आदेश दिया कि वह इन सब शक्तियों को उसके मुख में भर दे जिससे एक ऐसा पुत्र बन सके जिसमें सब शस्त्रों की शक्ति एकत्र हो जाय। गदा को उसकी रीढ की हड्डी बना दो जिससे वह आकाश में यात्रा कर सके। विशूल से उसका शरीर तथा हाथ पैर बन जायँ। वह शस्त्र सदा उसकी छाती में चिपका रहे। चक्र से उसका सिर बने और वायु उसका पिता बने। वायु ने ईश्वर की आज्ञा का पालन किया। स्वाहा गर्भवती हो गयी। तीस मास के बाद एक सफेद बन्दर उत्पन्न हुआ जो सोलह साल के लड़के के समान था। परन्तु उसका जन्म माता के मुख से हुआ। वायु ने उसका नाम हनुमान् रखा। माता ने कहा तुम्हारे कानों में दो बालियाँ हैं, दो चमकदार दाँत हैं और एक श्वेत घुंघराला बाल है। इनको नारायण ही देख सकते हैं। जिसको ये चिह्न दिखायी दें उसको नारायण का अवतार समझ उसकी सेवा करना। इस पुत्र के जन्म से स्वाहा का शाप छूट गया।

उमा के बाग में यह हनुमान् तोड़फोड़ कर रहे थे। उमा ने आधी शक्ति हो जाने का शाप दिया, परन्तु हनुमान् की प्रार्थना से वे प्रसन्न हो गयीं और वरदान दिया कि जिस दिन नारायण राम के रूप में स्पर्श करेंगे तुम्हारी पुरानी शक्ति ज्यों की त्यों फिर प्राप्त हो जायगी। वायु के साथ हनुमान् ईश्वर का दर्शन करने गया। ईश्वर ने उसे अन्तर्धान होने की विद्या दी। अमर होने का वरदान भी दिया। हनुमान् वाली और सुग्रीव का भानजा था। ईश्वर ने ही वाली और सुग्रीव से उसका परिचय कराया। ईश्वर ने अपने चमड़े से वाली की सहायता के लिए एक बन्दर उत्पन्न किया। उसका नाम जम्बुवान था, जो बहुत अच्छा चिकित्सक भी था।

जब वाली के पास से मण्डो दशकण्ठ के पास आयी तब वह गर्भवती थी। दशकण्ठ के गुरु अङ्गद ने उसके गर्भ को लेकर बकरी के गर्भाशय में रख दिया। जन्म के समय उस गर्भ को निकाल कर उसे अपना ही नाम देकर वाली को लौटा दिया। रावण अङ्गद के स्नान के समय केकड़े का रूप धारण कर उसे जल में डुबा देना चाहता था। सब बन्दर बचाने में असमर्थ रहे तब वाली आया उसको देखकर लङ्केश ने युद्ध किया और हार कर वाली का बन्दी हो गया। बन्दर उसकी हँसी उड़ाते थे। सात दिन बाद वाली ने उसे छोड़ दिया।

दशकण्ठ का वरदान

अपने गुरु अङ्गद की राय से रावण ने एक यज्ञ किया जिससे उसे ऐसी शक्ति मिल गयी कि वह अपनी आत्मा को शरीर से निकाल कर अन्यत्र सुरक्षित स्थान पर रख सकता था। इससे युद्ध में आहत होने पर भी मरता नहीं था। इस तरह अमरत्व के समान उसे चमत्कारिणी शक्ति मिल गयी। इससे उसका अत्याचार और बढ़ गया। उसने कुबेर पर चढ़ायी कर पुष्पक विमान छीन लिया। ईश्वर से उसकी शिकायत की गयी। ईश्वर ने उसकी छाती पर हाथी के दाँत से आक्रमण किया। रावण आहत होकर लङ्का को भागा और विश्वकर्मा को हाथी दाँत काटने का आदेश दिया। स्वस्थ होने पर उसने मछली का रूप धारण कर मछली से सहवास किया। उससे मत्स्यपरी उत्पन्न हुई। उसका नाम सुवर्णमच्छा हुआ। उसने हाथी बनकर हथिनियों से भी दो पुत्र उत्पन्न किये। उनका शरीर मनुष्य जैसा किन्तु मुख हाथी जैसा था। उनका नाम किरीधर और किरीवन हुआ।

सीता-जन्म

जब रावण के आदेशानुसार राक्षसी काकना कौए का वेश धारण कर दशरथयज्ञ से उत्पन्न दैवी भोजन का थोड़ा अंश चुराकर लायी तो उसके खाने से मण्डो गर्भवती हुई। उससे कन्या उत्पन्न हुई। उत्पन्न होते ही लड़की चिल्ला उठी "दशकण्ठ को मारो, मारो, मारो" परन्तु उसकी यह आवाज माँ बाप को नहीं सुनायी पड़ी। ज्योतिषियों ने, जिनमें विभेक (विभीषण) भी था, भविष्यवाणी की कि इस लड़की के द्वारा दशकण्ठ के सारे परिवार का नाश

होगा। डर कर रावण ने लड़की विभेक को देकर कहा इसको ले जाओ, जो चाहो करो। विभेक ने उसे एक हाँडी में बन्द कर नदी में बहा दिया। दैवी-शक्ति से नदी के तल पर एक कमल दिखायी पड़ा। हाँडी बहती हुई उसपर टिक गयी। समुद्र की देवी मणिमेखला ने अन्य देवियों के सहयोग से उस बच्ची की रक्षा की। लक्ष्मी की दैवी शक्ति से हाँडी एक ऋषि के स्नान करने के घाट से जा लगी। दैवयोग से वह जनक थे। राजा ने उसका पालन किया। ईश्वर की प्रार्थना से राजा जनक की अंगुली में दूध हो गया। राजा ने वन में एक गड्ढा खोद कर कहा यदि इस कन्या को नारायण के अवतार की पत्नी बनना हो तो इसमें एक कमल उत्पन्न हो जाय। वैसा ही हुआ। जनक ने उसी कमल पर लड़की की हाँडी रख दी और पत्रों से छिपा कर गड्ढे को पाट दिया। जनक तपस्या छोड़कर घर लौटना चाहते थे, परन्तु उनको उससे मोह हुआ कि उस स्थान को छोड़कर जाने की उन्हें इच्छा नहीं हुई। सेवकों ने जमीन खोद कर हाँडी निकालना चाहा पर वह हाँडी हाथ न लगी। जनक ने सैनिकों और हलवाहों को भी बुलाया पर फिर भी वह हाँडी हाथ न आयी। तब राजा ने स्वयं हल हाथ में पकड़ा तुरन्त हाँडी प्रकट हो गयी। उसपर एक कमल था। कमल से एक सुन्दर कन्या निकली। हल की लकीर के साथ निकलने के कारण लड़की का नाम सीता रखा गया। उसको लेकर राजा अपने राज्य में लौट आये। महारानी रत्नमणि निःसन्तान थी। सीता उस रानी की आँखों का तारा थी। इधर राम और उनके भाई बड़े हुए एवं गुरु वसिष्ठ और स्वमित्र के पास शिक्षित हुए। उनकी विद्या से प्रसन्न होकर गुरुओं ने एक यज्ञ रचा कि उससे ऐसे शस्त्रास्त्र प्रकट हों जिनसे राक्षसों का संहार हो। हवन की अग्नि प्रज्वलित होने पर ईश्वर ने अग्नि में १२ बाण छोड़े। उस यज्ञ से प्रत्येक भाई के लिए तीन-तीन धनुष-बाण निकले। उनपर हरएक भाई के नाम अङ्कित थे। राम के शस्त्र सर्वोत्कृष्ट थे। उनके नाम थे ब्रह्मास्त्र, अग्निवत और ब्लैवत। इस तरह विद्या और बल से युक्त पुत्रों को देखकर दशरथ और गुरुजन बहुत प्रसन्न हुए। कैकेयी के पिता ने शस्त्रनिपुणता सुनकर राक्षसों को मारने के लिए भरत और शत्रुघ्न को अपने यहाँ बुला लिया।

रावण ने भयभीत होकर ऋषियों की तपस्या भङ्ग करने के लिए काकनासुरी राक्षसी को भेजा। वह सहेलियों के साथ कौआ बनकर ऋषियों के यज्ञों में विघ्न डालने लगी। ऋषि लोग तंग आकर वसिष्ठ और स्वमित्र के पास गये। दोनों ऋषि दशरथ से माँगकर राम और लक्ष्मण को ले आये। काकनासुरी रामबाण से मारी गयी। सुबाहु और मारीच अपनी माता का बदला लेने के लिए युद्ध करने लगे। सुबाहु मारा गया और मारीच लङ्का भाग गया।

राम-सीता का परिणय

जनक के पास ईश्वर का धनुष था। ईश्वर ने इससे त्रिपुर को मारा था। राजा ने घोषित कर दिया जो कोई इस कोदण्ड को उठा सकेगा सीता उसके साथ ब्याही जायगी। स्वमित्र राम और लक्ष्मण को जनक-दरबार में ले गये। राजमहल में सीता ने राम को देखा, राम ने भी सीता को देखा। दोनों परस्पर मुग्ध हो गये। राम-लक्ष्मण के पास धनुष लाया गया। लक्ष्मण ने परीक्षा ली। धनुष उठाना उनके लिए कठिन न था, परन्तु वे ताड़ गये कि राम के हृदय में सीता के लिए प्रेम उत्पन्न हो गया है, अतः उन्होंने नहीं उठाया। राम की बारी आयी तो उन्होंने अनायास ही पक्षी के पंख के समान धनुष उठा लिया। अयोध्या से दशरथ आये। धूम-धाम से सीता और राम का विवाह हुआ।

राम-रामासुर युद्ध

बारात जङ्गल से होकर गुजर रही थी। एक देवता रामासुर ने उसे रोका। उसका अस्त्र परशु था।

रामासुर ने राम के बल की परीक्षा लेनी चाही। वहाँ युद्ध हुआ। अन्त में रामासुर ने अपनी पराजय मान ली। इसके बाद रामासुर ने उन्हें त्रिमेध नामक अस्त्र दिया।

राम-वनवास

दशरथ वृद्ध थे। वे अपना उत्तराधिकारी राम को बनाना चाहते थे। कैकेयी की बाँदी कुब्बी के कान में यह सूचना पड़ी। कुब्बी को राम से बैर था, इसलिए उसकी पीठ में एक कूब था। राम ने तीर मारा तो बाहर आ गया। इसपर बड़ी हँसी हुई थी। राजा ने कैकेयी को वर दिया था। एक बार युद्ध में दैत्य ने बाण से दशरथ के रथ का धुरा तोड़ दिया था। कैकेयी ने अपना हाथ पहिये में डाल कर ईश्वर से प्रार्थना की कि वह राजा की रक्षा करे। रानी की सहायता से राजा विजयी हुए। इसपर राजा ने रानी को वर दिया। कुब्बी ने कैकेयी को यह वर माँगने को तैयार कर लिया कि राम को १४ वर्ष का वनवास और भरत को राज मिले। राजा ने बहुत समझाया पर रानी हठकर गयी। उन्होंने दुःखी हृदय से कैकेयी की बात मान ली। राम वन चले गये। वे मनुष्यों की भलाई में सदा तत्पर रहते थे। उन्होंने भूमि को राक्षसों से मुक्त करने का निश्चय किया। दशरथ को राम के वियोग से बड़ा दुःख हुआ और उनकी मृत्यु हो गयी। राम चलते-चलते सतोंग नदी के तीर पहुँचे वहाँ अहेरियों का राजा खुनन रहता था। उसने कहा कि आप यहाँ जङ्गल का राज करें। राम ने धन्यवादपूर्वक इस भेंट को अस्वीकार कर दिया। राम भरद्वाज के आश्रम में पहुंचे। ऋषि ने उनका बड़ा सत्कार किया। ऋषि ने शरभङ्ग आश्रम जाने को कहा। वह आश्रम भी अयोध्या के निकट था। तब ऋषि ने शतकूट पर्वत पर रहने को कहा। राम वहाँ जाकर रहने लगे। भरत और शत्रुघ्न राम का सिंहासनारोहण सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। अयोध्या पहुंचे तो वहाँ उत्सव के बजाय रोना पीटना हो रहा था। तुरन्त ही वे वस्तुस्थिति को समझ गये। वे राम के परम भक्त थे। वे राम का राज्य कैसे ले लेते? पिता की अन्त्येष्टि करके वे माताओं को साथ लेकर पैदल यात्रा करके राम के पास पहुँचे और उनसे अयोध्या का राज्य करने का आग्रह किया। राम ने पितृभक्ति के कारण वैसा स्वीकार नहीं किया और जो इस विपत्ति का मूल कैकेयी थी, उससे भी द्वेष नहीं माना। पर भरत भी राज करने को तैयार नही हुए। तब राम की पादुकाओं को गद्दी पर बैठा कर राम के प्रतिनिधि होकर भरत राज संभालने को तैयार हुए। भरत ने प्रार्थना की कि यदि आप १४ वर्ष के बाद अयोध्या न लौटे तो हम अग्नि में प्रवेश कर जायँगे। दुःखी मन से भरत अयोध्या लौट आये।

गोदावरी-तट पर

राम उसके बाद और घने जंगलों में चले गये। वहाँ उनको एक राजा, जिसका नाम सुदर्शन था, मिला। वह अपनी रानी के साथ तप करता था। उसने राम से अपने साथ रहने का आग्रह किया, पर राम ने वहाँ रहना स्वीकार नहीं किया। अब वे बीख राक्षस के उपवन में आये। उसको ईश्वर के वरदान से समुद्र एवं अग्निदेव का बल प्राप्त था। राक्षस के कर्मचारियों ने उन्हें रोका। लक्ष्मण ने सबको मार डाला। बीख ने बदला लेने का निश्चय किया, पर वह बली होने पर भी राम-लक्ष्मण का मुकाबला न कर सका। अन्त में मारा गया। आगे उन्हें एक अप्सरा मिली जिसका नाम सोबरी था। ईश्वर की आराधना में त्रुटि होने से उसे जलते हुए जङ्गल में रहने का शाप मिला था। शाप छूटने की शर्त यह थी कि जब राम उस वन में आकर आग बुझायेंगे तब उसकी मुक्ति होगी। राम ने उस दुःखिया की टेर सुनी। आग बुझा दी और अप्सरा को दिव्य रूप प्राप्त करा दिया। आगे राम ऋषि अगत से आश्रम में पहुँचे। ईश्वर ने अपना वह अस्त्र जिससे उन्होंने त्रिपुर को मारा था, इन्हीं अगत के संरक्षण में रख दिया था कि जब राम आयें तो वह उनको दिया जाय। ऋषि से अस्त्र लेकर राम गोदावरी-तट आये। वहाँ इन्द्र ने पहले ही उनके लिए तीन पर्णकुटियाँ बना रखी थीं।

संमनखा

संमनखा और जिह्वा के पुत्र राक्षस कुम्भकस से राम-लक्ष्मण का सामना हो गया। तपस्या से विपुल शक्ति प्राप्त करना उसका उद्देश्य था। ब्रह्मा ने उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर उसके लिए एक तलवार फेंक दी। उसने इसे अपना अपमान समझा, अतः उसने तलवार स्वीकार नहीं की। उसी समय लक्ष्मण फल-फूल लेने जङ्गल में गये थे। तलवार पड़ी देखकर उन्होंने उठा ली और यों ही हिलाने लगे। पास ही कुम्भकस भी समाधि में बैठा था। उसकी आँखें खुली थीं। उसे क्रोध आया, दोनों में युद्ध हुआ। लक्ष्मण के हाथ राक्षस मारा गया। उसका पिता जिह्वा भी उसी समय मारा गया। दशकण्ठ वनयात्रा की तैयारी कर रहा था। लङ्का का रक्षण जिह्वा के अधीन था। उसने साहस और बुद्धिमत्ता से सप्ताह तक बिना नींद के लङ्का की रक्षा की थी। प्रकृतिवश नींद आयी, परन्तु सोने से पहले उसने अपना शरीर इतना बढ़ाया कि उसकी जिह्वा ने लङ्का को चारों ओर से घेर लिया जिससे कि उसके सोते समय कोई लङ्का पर चढ़ाई न कर सके। दशकण्ठ वन से लौटा। उस समय आधी रात थी। चारों ओर अन्धकार था। नगरी में घुसने का कोई मार्ग नहीं था। उसने सोचा किसी शत्रु ने नगरी को घेरा है। उसने मार्ग बनाने के लिए चक्र फेका जो उसकी जिह्वा पर लगा और वह मर गया। पीछे मालूम होने पर उसे बड़ा दुःख हुआ। उसकी बहन संमनखा विलासिनी थी। वैधव्य जीवन उसके लिए असह्य था। वह कुम्भकस को देखने गयी। नये पति की तलाश में थी। सुन्दर स्त्री का वेश बनाकर वह राम के पास पहुँची। उनपर मोहित हो गयी। राम ने उसपर ध्यान नहीं दिया। उसकी आँख सीता पर पड़ी। तो उसने सोचा सीता को समाप्त करने पर राम को उसके आगे झुकना ही पड़ेगा। वह राक्षसी वेष से सीता से लड़ने लगी। राम ने उसे मार भगाया। लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिये। वह रोमगन नगर गयी। खर से झूठी शिकायत की। खर लड़ने गया। राम ने रामासुर के बाण से मार दिया। दूषक और तिसिर भी मारे गये।

सीता-हरण

वह झूठ बोलने में दक्ष थी। उसने दशकण्ठ से कहा मैंने जङ्गल में एक सुन्दरी रमणी देखी है। मैं तुम्हारे लिए उसे ला रही थी, लक्ष्मण ने मेरा जङ्ग-भङ्ग कर दिया। सीता के रूप का हाल सुनकर दशकण्ठ मोहित हो गया। मण्डो से राय ली तो उसने बहुत समझाया, पर वह सीता के लिए विह्वल था। उसने मारीच को आदेश दिया कि तुम हरिण का रूप बना कर जाओ और राम तथा लक्ष्मण को सीता से पृथक् कर दो। मारीच ने आज्ञा का पालन किया। सीता ने सुनहला चुलबुला हरिण देखकर राम से उसे पकड़ने को कहा। राम ने समझाया, पर उन्होंने हठ किया। राम ने उसका पीछा किया, वह थक गया एवं राक्षसरूप में प्रकट हो गया। राम ने तीर मारा, वह घायल हो गया। लक्ष्मण बचाओ कह कर वह चिल्लाया। आवाज सीता के कानों में आयी। उसने लक्ष्मण को जाने को कहा। लक्ष्मण समझ गये कि ये राम के शब्द नहीं हैं, पर सीता ताने मारने लगी। अन्त में लक्ष्मण देवों से सीता-की रक्षा की प्रार्थना करते हुए राम की तलाश में चल दिये। दशकण्ठ को अवसर मिला। वह साधु का रूप बनाकर सीता के पास आया। सीता आतिथ्य करने लगी। उसने कहा 'सीते ! तुम मेरी रानी बन जाओ। मैं दशकण्ठ हूँ।' सीता ने उसे कुटी से निकाल दिया। रावण जबरदस्ती सीता को रथ पर बैठा कर चल पड़ा। एक बलिष्ठ पक्षी शतायु ने, जो राम का मित्र था, कहा सीता को छोड़ दो। रावण नहीं माना, उसने युद्ध किया। उसकी सब सेना मार डाली। रावण ने बड़े प्रबल अस्त्रों को छोड़ा, पर वह हँस रहा था, उसपर कुछ असर नहीं होता था। उसने कहा सिवाय उस अंगूठी के जो सीता के हाथ में है मुझपर किसी का प्रभाव नहीं हो सकता। दशकण्ठ ने यह सुनकर सीता के हाथ से अंगूडी छीन ली और पक्षी पर दे मारी जिससे वह गिर गया, परन्तु वह अपनी चोंच में अंगूठी को पकड़े रहा। उसकी आत्मा राम की प्रतीक्षा कर रही थी। दशकण्ठ लङ्का पहुँच गया। उसने सीता को अपने सहस्र पुत्रों के संरक्षण में रख दिया।

मारीच को मार कर राम लौट रहे थे। मार्ग में लक्ष्मण मिले। राम को भय हुआ। उन्होंने समझ लिया कि किसी ने चालाकी से लक्ष्मण को अलग किया है। सीता अकेली छूट गयी होगी। दोनों भाई जल्दी कुटिया की ओर दौड़े। देखा तो आशङ्का ठीक निकली। आनन्दवर्धिनी सीता वहाँ नहीं थी। दोनों बहुत दुःखी हुए। भाग्यवशात् उसी समय इन्द्र आ गये। उन्होंने बताया कि सीता को इस मार्ग से ले जाया गया है। उसी रास्ते राम और लक्ष्मण चल पड़े। आगे घायल शतायु (जटायु) राम की प्रतीक्षा करता हुआ मिला। पक्षी ने राम को सीता की अंगूठी देकर 'दशकण्ठ सीता को ले गया' कह कर प्राण छोड़ दिये। कृतज्ञ राम ने एक बाण छोड़ा जो अर्थी बन गया, दूसरा बाण छोड़ा जिसने आग प्रज्वलित कर पक्षी के शरीर को जला दिया। तीसरा बाण छोड़कर जलती हुई अग्नि को शान्त कर दिया। आगे चल कर राम को राक्षस मिला, जिसका नाम कुम्बल (कबन्ध) था। उसको ईश्वर ने शाप दिया था जिससे उसका केवल ऊपरी शरीर ही बन पाया था। शाप मिटने की शर्त यह थी कि जब राम वन में आयेंगे तो इस दोष से मुक्त करेंगे। उसने राम और लक्ष्मण को अपने हाथों में पकड़ कर चबा डालना चाहा, परन्तु उसका शरीर विचित्र भय से कम्पित हो गया। उसने समझ लिया कि मैंने जिन मनुष्यों को पकड़ा है वे साधारण मनुष्य नहीं हैं। उसने झट उनको छोड़ दिया। जब उसने राम की विपत्ति का हाल सुना तो उनको परामर्श दिया कि वे किष्किन्धा में राजा वाली से सहायता लें। खिदखिन और जम्बू की सेनाएँ लङ्कापर चढ़ाई कर सीता को छुड़ा लायें। राम ने उसकी बात सुनकर उसको उस योनि से छुड़ाने के लिए तीर छोड़ा और वह मर गया। आगे एक राक्षसी मिली जिसका नाम अशमुखी (अयोमुखी) था। वह भी दोनों भाइयों पर मोहित हो गयी। अपनी माया से चारों ओर अन्धकार फैला कर लक्ष्मण को गोद में लेकर आकाश में उड़ गयी। राम भाई की सहायता के लिए दौड़ न सके, परन्तु राम के बाणों से अन्धकार छिन्न-भिन्न हो गया। लक्ष्मण सावधान हो गये। उन्होंने कुछ मन्त्र पढ़े जिनके प्रभाव से लक्ष्मण सहित वह भूमि पर जा पड़ी। लक्ष्मण ने उसकी भुजाएँ काट डाली। इसपर वह भाग गयी। वे एक छायादार वृक्ष के नीचे बैठे। दैवयोग से उसपर हनुमान् बैठे थे। उन्होंने जानना चाहा कि ये दोनों कौन हैं ? हनुमान् ने ध्यान आकर्षित करने के लिए एक शाखा हिलायी। राम थक कर सो गये थे। लक्ष्मण ने बन्दर को भगाना चाहा, क्योंकि वे पहरे पर थे। परन्तु बन्दर नहीं टला, आग्रहपूर्वक शाखा हिलाता रहा। लक्ष्मण ने धनुष उठाया। हनुमान् ने धनुष छीन लिया। इस धृष्टता को देखकर राम को जगाना पड़ा। राम ने ऊपर देखा तो बन्दर के शरीर पर पूर्वोक्त कुण्डल आदि चिह्न दिखाई पड़े। हनुमान् ने देखा कि उसके चिह्नों को राम ने पहचान लिया। यह अवश्य नारायण के अवतार राम हैं। हनुमान् वृक्ष से उतर आये और अपनी सेवाएँ राम को अर्पित कर दीं।

राम-सुग्रीव भेंट

राम की विपत्ति का हाल सुनकर हनुमान् ने अपने मित्र सुग्रीव से भेंट कराना उचित समझा। कैलास पर्वत का द्वारपाल एक राक्षस नन्दकाल था। ईश्वर की कुछ भक्त अप्सराएँ एक उद्यान में फूल चुनने गयीं। वह राक्षस एक पर मोहित हो गया। अतः उसपर एक पुष्प फेंक दिया। उसकी शिकायत पर ईश्वर ने उसे दरवनामक भैंसा हो जाने का शाप दे दिया और कहा कि तेरा पुत्र तुझे मारेगा तब तेरी मुक्ति होगी। वह भैंसों का सरदार हो गया। वह बहुत सी भैंसों में रहता था। जब कोई नर भैंसा उत्पन्न होता था तो वह उसे मार देता था। एक भैंस गर्भिणी होकर किसी खोह में जा छिपी और वहाँ नर बच्चा पैदा हुआ। उसका नाम दरवी हुआ। उसकी माँ ने उसे बाप की स्थिति बता दी। देवों की रक्षा में वह बड़ा हुआ। उसने बाप से युद्ध कर उसे मार दिया। विजय के घमण्ड से वह उद्दण्ड होकर देवताओं से लड़ने के लिए उत्सुक हुआ। देवताओं ने समुद्र देव को बड़ा कहा पर वे लड़ने को तैयार न हुए। उन्होंने उसे ईश्वर के पास भेज दिया। ईश्वर ने कहा तुम वाली के पास जाओ उसके हाथ से मर कर खर के पुत्र मङ्करकण्ठ होकर राम के तीर से मारे जाओगे। दरवी

युद्ध के लिए वाली के पास गया, खुले मैदान में दोनों बराबर रहे। दूसरे दिन खोह में लड़ाई होने का निश्चय हुआ। वाली ने सुग्रीव को खोह के द्वार पर नियुक्त करके कहा बहता हुआ रुधिर देखना, रुधिर काला हो तो दरवी का रुधिर होगा। रुधिर का रङ्ग हल्का हो तो समझना वाली मारा गया। उस समय खोह का द्वार बन्द कर तुम चले जाना। सात दिन तक युद्ध होता रहा। अन्त में वाली ने पूछा तुममें इतनी शक्ति कैसे आयी। शक्ति के नशे में कृतज्ञता भूल कर वह बोल उठा मेरी शक्ति मेरे सींगों में है। वाली ने देवताओं से कहा यह कृतघ्न है। इसका साथ छोड़ दो। देवों की सहायता से वञ्चित होते ही वाली के घूँसे से वह मर गया। वर्षा के कारण उसके रक्त का काला रंग फीका हो गया। सुग्रीव को वाली के मरने की भ्रान्ति हो गयी। वह खोह का द्वार पाषाण से बन्द कर चला गया। वाली ने दरवी का सिर काट लिया द्वार पर आया तो द्वार को बन्द पाकर सोचा सुग्रीव मेरी गद्दी लेना चाहता है। क्रोध में दरवी का सिर द्वार के पत्थर पर दे मारा जिससे खोह का द्वार खुल गया। महल में आकर उसने सुग्रीव को निकाल दिया। सुग्रीव जङ्गल में भटक रहा था। हनुमान् से भेंट हो गयी। दोनों साथ-साथ रहने लगे। सुग्रीव ने अपनी गाथा राम को सुनायी। दोनों में यह निश्चय हुआ कि सुग्रीव राम की सहायता से वाली से लड़े और सुग्रीव की सहायता से दशकण्ठ को पराजित कर सीता को वापस लाया जाय।

वाली-वध

सुग्रीव ने बताया कि वाली ने प्रतिज्ञा-भङ्ग कर मेरी तारा को धर्मभ्रष्ट किया और ईश्वर का शाप है कि नारायण के अवतार के हाथ उसका वध होगा। वाली को ईश्वर ने एक वर दिया था कि जिस किसी के साथ तुम लड़ोगे उसका आधा बल तुममें आ जायेगा। सुग्रीव को बचाने के लिए राम ने अपने तीरों को जल में भिगोया और जल को सुग्रीव के सिर पर छोड़ दिया। अब किष्किन्धा जाकर सुग्रीव ने वाली को युद्ध करने के लिए ललकारा। राम ने सुग्रीव को वचन दिया था कि लड़ते समय वे वाली को तीर मारेंगे। परन्तु दोनों की कुश्ती होते समय दोनों की तेजी से राम को पहचानना कठिन हुआ। वाली ने शीघ्र ही सुग्रीव को पछाड़ दिया और चक्रवाल पहाड़ पर दे मारा। परन्तु तीर के पवित्र जल ने सुग्रीव की रक्षा की। सुग्रीव ने राम के द्वारा बाण न छोड़ने की शिकायत की। राम ने कहा कि वे वाली को पहचान न सके। सुग्रीव के हाथ में चिह्न बाँध दिया। दूसरे दिन कुश्ती के समय राम ने बाण छोड़ा। बाली ने बाण पकड़ लिया। वाली ने राम को धिक्कारा तब राम ने नारायण रूप धारण कर उसको अपनी प्रतिज्ञा-भङ्ग की याद दिलायी। वाली डर गया, उसने सुग्रीव और अङ्गद को राम की शरण में सौंपा और अपना अन्त करने को तैयार हो गया। राम ने उसकी शर्त को समझा और चाहा कि उसका प्राणान्त न हो। राम ने कहा केवल एक रक्त-बिन्दु दे दो जिससे ब्रह्मास्त्र का प्रभाव बना रहे। तुम्हारे शरीर के बाल के सातवें भाग से अधिक घाव न होगा। परन्तु वाली ने अपमान सूचक घाव को अङ्गीकार नहीं किया और मृत्यु को ही अपनाना उचित समझा, क्योंकि वह यश का पुजारी था। उसने सुग्रीव को रामभक्ति करने का उपदेश दिया और तीर अपने हृदय में बेध कर सदा के लिए आँखें बन्द कर लीं।

युद्ध की तैयारी

वाली की अन्त्येष्टि और सुग्रीव को गद्दी हुई। राम नगर में नहीं गये। सुग्रीव ने राम से गन्धामास पर्वत पर रहने की प्रार्थना की और स्वयं खिदखिन में सेना एकत्रित करने के लिए गया। राम को गन्धामास में एक मोर मिला, जिसने सीता की सूचना दी। एक बन्दर मिला, जिसकी ओर सीता ने वस्त्र फेंक दिया था कि राम को दे देना। राम ने सात दिन प्रतीक्षा की, लेकिन सुग्रीव के लौटने के कोई लक्षण नहीं दीख पड़े। लक्ष्मण उसकी तलाश में निकले। सुग्रीव ने कहा कि देश में कुछ गड़बड़ मची है। सेना एकत्रित करने में समय लगेगा। प्रातः सुग्रीव और हनुमान् राम से मिले। सुग्रीव ने बताया कि वाली का मित्र जम्बू, मित्र की मृत्यु का बदला लेने के लिए,

खिदखिन के लोगों को एकत्रित कर रहा है। राम ने पत्र लिख कर उसको बुलाया। जम्बू को पत्र तो मिला, पर उसे विश्वास नहीं हुआ कि राम का ही पत्र है। फिर भी उसने अपनी भक्ति का आश्वासन दिया। हनुमान् इससे सन्तुष्ट नहीं हुए, अतः उन्होंने माया से महल के सब लोगों को सुला दिया और पलंग सहित जम्बू को राम के समक्ष उपस्थित कर दिया। वह जागा तो देखा कि वह नारायण के समक्ष है। उसने निःसंकोच नारायण के प्रति भक्ति प्रकट की। इस तरह जम्बू और सुग्रीव दोनों की सेना इकट्ठी हो गयी।

हनुमान् की लङ्का-यात्रा

जब सेना की तैयारी हो गयी तब निश्चय हुआ कि हनुमान्, जम्बू, नल तथा नीलवद् की अध्यक्षता में एक परीक्षक दल भेजा जाय। वह सीता के निवास-स्थान का पता लगाये। राम ने हनुमान् को अँगूठी दी और सीता का चीर दिया जिससे सीता जान सके कि यह राम का ही दूत है। हनुमान् को भय था कि शायद वे मुझे शत्रु ही समझें, क्योंकि राक्षस भी इन चिह्नों को कपट से प्राप्त कर सकते हैं। इसपर राम ने मिथिला के महलों की खिड़की में से विवाह के पहले उन दोनों ने एक दूसरे को देखा था और जिस प्रकार दोनों के हृदयों में प्रेम का बीज उगा था इत्यादि ऐसी बातों को बताया जिन्हें वे दोनों ही जानते थे और कोई नहीं। ये लोग उड़ते हुए यमन नगर में आये। वहाँ एक अप्सरा पुष्पमाली दिन काट रही थी। राम के सैनिकों से भेंट होने पर उसकी शाप-मुक्ति होनी थी। हनुमान् ने उससे कहा मैं राम का दूत हूँ; उसे इसमें शङ्का हुई। इसपर हनुमान् ने चतुर्मुखी विराट् रूप दिखाया। उनके चारों मुखों से अनेक सूर्य, चन्द्र तथा तारागण चमकने लगे। पुष्पमाली मान गयी और उसने हनुमान् को लङ्का का रास्ता बता दिया। हनुमान् को उस अप्सरा से प्रेम हो गया। उन्होंने उसे स्वर्ग भेज दिया। वह शाप-मुक्त हो गयी। आगे चलने पर एक अत्यन्त वेगवती नदी मिली, जिसको पार करना कठिन था। हनुमान् ने अपनी पूँछ फैला दी उसी पर चढ़कर सब बन्दर पार हो गये। आगे समुद्र मिला। वह पारावारविहीन था। हनुमान् बोले कि शतायु के समान यशस्वी मृत्यु मुझे प्रिय है, परन्तु यह स्वीकार नहीं कि समुद्र से हार मान लूँ। शतायु का नाम आते ही एक जादू हो गया। निकटस्थ पहाड़ की खोह से समवादी नाम का एक पक्षी निकला जो शतायु का बड़ा भाई था। उसके पर कटे हुए थे। जब शतायु अनजान बालक था तब उसने उषःकाल में खिड़की से सूर्य को देखा तो उसने उसे कोई सुन्दर फल समझा और उसे लेने के लिए उड़ा। भाई को विपत्ति से बचाने के लिए समवादी ने उसको अपने परों में छिपा लिया, अतः सूर्य भगवान् का समस्त क्रोध अपने ही ऊपर ले लिया। उसके समस्त पङ्ख जल गये। सूर्य-नारायण ने कहा कि उसके नये पङ्ख तभी उगेंगे जब राम का दल तीन बार स्वागत-ध्वनि करेगा। अन्त में आज वह अवसर आ ही गया। वह समय हर्ष का भी था, शतायु की मृत्यु का दुःखद समाचार सुना, परन्तु स्वागत-ध्वनि ने नये पर उपजा दिये जिससे नये जीवन तथा नयी शक्ति का संचार हुआ। वह आकाश में उड़ने लगा। कृतज्ञ पक्षी ने कहा कि मेरी पीठ पर बैठ जाओ मैं तुम सबको गन्धशिखर पर ले चलता हूँ, जो हेमतीरन और लङ्का के बीच में है। जब वे वहाँ पहुँचे तो समवादी ने हनुमान् को नीलाचल पर्वत दिखलाया जिसकी ऊँची चोटी आसमान से बात करती थी। हनुमान् ने एक छलाँग मारी और वहाँ से निर्दिष्ट स्थान की ओर उड़े। मार्ग में एक भयानक राक्षसी मिली, जिसको दशकण्ठ ने समुद्र को सुरक्षित रखने के लिए नियुक्त किया था। हनुमान् उसके मुँह में घुस गये और उसकी आँतें बाहर निकाल लीं। वह मर गयी। उनकी छलाँग इतनी बड़ी थी कि वे नीलकाल पर्वत के भी आगे बढ़ गये और सौलाह पर्वत पर पहुँच गये, जहाँ नारद ऋषि रहते थे। हनुमान् ने एक रात रहने की अनुमति माँगी, नारद ने एक झोपड़ी बता दी। हनुमान् ने नारद की महत्ता देखने के लिए अपना शरीर इतना बढ़ा लिया कि वह झोपड़ी में न समाये। पर नारदजी की शक्ति से झोपड़ी बढ़ती गयी। नारद ने ऐसी वर्षा बरसायी कि हनुमान् का शरीर ठिठुर कर पहला जैसा ही हो गया। ऋषि हनुमान् को जाड़ा खाते छोड़ कर तालाब में घुस गये। एक लकड़ी

को जोंक बना दिया । हनुमान् प्रातः स्नानार्थ घुसे तो वह हनुमान् की दाढ़ी में चिपक गयी । हनुमान् ऋषि की शरण गये, तब वह छूट गयी ।

लङ्का-दहन

हनुमान् लङ्का पहुँच गये । उसके संरक्षक चतुर्भुजी और अष्टभुजी थे । उन्हें मार कर हनुमान् राक्षस के रूप में लङ्का में प्रविष्ट हुए । अँधेरी रात थी । सहपति ब्रह्मा की सृष्टि का सौन्दर्य नहीं दिखता था । हनुमान् ने माया के जोर से सब को सुला दिया । दशकण्ठ के महलों में घुस गये । पर सीता को न पाया । नारद के पास जाकर परामर्श किया । उनके परामर्श से छोटे बन्दर के रूप में वाटिका में घुसे । वहाँ सीता इस प्रकार छिपी थी जिस प्रकार बादलों में चन्द्रमा । फिर रात का समय हुआ तो दशकण्ठ नारायण-पत्नी सीता को मनाने लगा । अनुनय-विनय की, परन्तु सीता के भक्तिपूर्ण शुद्ध हृदय में बुरी भावना नहीं उठ सकती थी । वह निराश होकर ल. ट गया । सीता ने संतप्त होकर फाँसी लगानी चाही । यह देख हनुमान् चौंक पड़े । वह वृक्ष पर चढ़ गये रस्सी की गाँठ खोल दी । सीता को जीवित जानकर उन्हें प्रसन्नता हुई । उन्होंने सीता को अपना परिचय दिया । सीता को हनुमान् की सत्यता पर विश्वास हुआ तो मुख पर हर्ष के आँसू बहने लगे । हनुमान् ने चाहा कि सीता को अपनी हथेली पर बैठा कर राम के पास ले जायँ, परन्तु सीता इसके लिए राजी नहीं हुई । दशकण्ठ द्वारा अपहरण किये जाने से उसका बहुत बड़ा अपमान हो चुका था । वह नहीं चाहती थी कि दूसरी बार वह किसी पुरुष के द्वारा भाग निकले । वह राम के लिए जीवित रहने को तैयार हो गयी ।

हनुमान् ने दशकण्ठ के बाग के बहुत से पेड़ उखाड़ दिये । बहुत से राक्षस उनपर झपटे पर सब मारे गये । दशकण्ठ के सहस्र कुमार भी कुछ न कर सके । इन्द्रजित् आगे बढ़ा, राक्षस की शक्ति की परीक्षा के लिए इन्द्रजित् की रस्सी से बँध गये । दशकण्ठ के सामने लाये गये । दशकण्ठ ने उनकी वीरता की प्रशंसा की और अपनी सेना में सम्मिलित होने को कहा । हनुमान् ने स्वीकार नहीं किया । राक्षसों ने उनकी पूँछ में रुई लपेट कर आग लगा दी । समस्त शरीर जल उठा । हनुमान् पर्वताकार हो गये । एक झटके से उन्होंने बन्धन तोड़ दिये । एक छत से दूसरी छत पर कूद कूद कर सारी लङ्का जला डाली । रावण का महल जल कर राख हो गया । समुद्र में कूद कर उन्होंने आग बुझायी, परन्तु पूंछ जलती ही रही । नारद से पूछा तो उन्होंने कहा तुझे अपने छोटे से कुएँ का पता नहीं है । हनुमान् समझ गये । पूंछ मुख में रख ली आग बुझ गयी । बाद में अपने साथियों के पास पहुँच कर राम के पास पहुँच गये । राम को सब समाचार सुनाया । राम की सेना लङ्का पर चढ़ायी करने चल पड़ी । समुद्रदेव लङ्का घेरे हुए हलरें मार रहे थे ।

बिभेक (विभीषण) की रामभक्ति

लङ्का-दहन से हानि अवश्य हुई थी पर दशकण्ठ निश्चिन्त था, क्योंकि सब देवता उसके वश में थे । उसने स्वप्न में देखा काली चील पश्चिम से आयी और सफेद दक्षिण से आयी, दोनों लड़ पड़ीं । काली मर गयी । उसके शरीर से एक राक्षस उत्पन्न हुआ । उसने यह भी देखा कि नारियल में तेल डाल कर बत्ती रख कर अपने हाथ में लिये एक स्त्री आयी । उसने बत्ती जलायी । बत्ती ने समस्त दीपक को जला दिया । आग हथेली तक पहुँच गयी । उसके शरीर में जलन होने लगी । उसकी आँखें खुल गयीं । वह भय से काँप उठा । सुबह उसने बिभेक को बुलाया और स्वप्न का अर्थ पूछा । बिभेक ने बताया काली चील दशकण्ठ है और सफेद चील राम हैं । नारियल लङ्का है, तेल दशकण्ठ-वंश है, बत्ती दशकण्ठ है, स्त्री समनखा है और ज्वाला सीता है । नक्षत्रों द्वारा दशकण्ठ पर आनेवाली विपत्ति के सूचनार्थ ही स्वप्न है । इसका एक ही उपाय है कि सीता को लौटा कर क्षमा माँग ली जाय । पर रावण

को यह सब नहीं सुहाया। वह विभेक पर क्रुद्ध हुआ। विभेक को लङ्का से निकाल दिया। त्रिजटा को सीता पर पहरा देने को नियुक्त कर दिया।

विभेक बन्दरों की छावनी में आया। सेना देख कर उसे आश्चर्य हुआ। सुग्रीव ने बन्दरों को आज्ञा दी। वे अपनी शक्ति प्रदर्शन करें। किसी ने पहाड़ हथेली पर रख लिये, किसी ने सूर्य को छिपाकर संसार को अन्धकारमय बना दिया, किसी ने समुद्र को सुखा डाला और किसी ने प्रलय का तूफान उठा दिया। इसकी खबर दशकण्ठ तक पहुँची। बीसों कान खड़े हो गये। कोलाहल मच गया। दशकण्ठ ने राक्षस शुक्रसर को शक्ति जाँचने के लिए भेजा, क्योंकि उन सबको रामसेना की शक्ति पर विश्वास न था। राक्षस चील बन कर गया। वहाँ जाकर बन्दर बन गया। विभेक ने उसे जान लिया एवं हनुमान् को सूचित कर दिया। हनुमान् ने तुरन्त हथेली इतनी बड़ी बना ली मानो वह कोई बड़ा तम्बू हो। उससे सेना को ढँक लिया। सारे बन्दर एक एक करके उसकी अङ्गुलियों की सन्धियों से निकलने लगे। अन्त में शुक्रसर निकला। उससे और बन्दरों से भिन्नता थी। उसकी छाया नहीं पड़ती थी। उसकी आँखों की पलकों में कम्पन नहीं था। वह पहचान लिया गया। उसपर मार पड़ी। उसने जाकर अपने राजा को सब हाल बताया। दशकण्ठ स्वयं साधु बन कर आया। राम ने आतिथ्य सत्कार किया। विभेक ने पहिचान लिया। फिर भी दशकण्ठ ने अपनी माया से उसे गूंगा कर दिया, जिससे वह बोल न सका। दशकण्ठ राम को लङ्का पर चढ़ाई करने से रोकना चाहता था, परन्तु उसका प्रयत्न व्यर्थ हुआ, क्योंकि राम पीछे हटना जानते ही न थे। दशकण्ठ ने विभेक की लड़की बेंजकाया को आज्ञा दी कि तू सीता का रूप धारण कर शत्रुदल के निकट जलधारा में ऐसे तैरने लग जिससे सब समझें कि सीता मर गयी। राम प्रातः स्नान को गये तो वैसे दृश्य देखकर वे बड़े दुःखी हुए। लक्ष्मण भी मृत सीता को देख कर रोने लगे। विभेक, हनुमान् आदि भी वहाँ गये। राम को लगा कि हनुमान् की धृष्टता का ही रावण ने यह बदला चुकाया होगा। हनुमान् सीता की उस लाश को देखते रहे। उन्होंने सोचा यह बहाव के ऊपर की ओर तैर रही है और सड़ी भी नहीं है। हनुमान् की सूचना पर उसे चिता पर रखा गया तब बेंजकाया चीख पड़ी। पवनसुत ने लपक कर उसे पकड़ लिया। सुग्रीव की मार से उसका भेद खुल गया। विभेक की लड़की जान कर राम ने कहा इसका न्याय विभीषण ही करेंगे। विभेक ने निष्पक्ष हो उसे मृत्युदण्ड सुनाया। इससे प्रसन्न होकर राम ने उसे क्षमा प्रदान किया। हनुमान् का उससे प्रेम हो गया। उससे एक पुत्र हुआ जिसका नाम असुरपाद था।

सेतुबन्ध

सेना पार करने के लिए समुद्र में पुल बाँधने का निर्णय हुआ। काम करने में नीलवद् का हनुमान् से झगड़ा हो गया। राम ने नीलवद् से कहा तुम सुग्रीव के स्थान में राज करो और रसद पहुँचाओ। हनुमान् को सात दिन में पुल तैयार करने की आज्ञा हुई। हनुमान् ने बड़े जोर से काम लगा दिया। दशकण्ठ को पुल बनने का शोर सुनायी पड़ा। उसकी नींद उड़ गयी। उसने अपनी पुत्री स्वर्णमच्छा को पुल में विघ्न डालने को कहा। वह अपनी सहेलियों के साथ समुद्र में डाले गये पत्थरों को समुद्र की तह में लुप्त करने लगी। हनुमान् ने गोता लगा कर सब कुछ जान लिया और उनको वैसा करने से विरत होने को बाध्य कर दिया। हनुमान् का स्वर्णमच्छा से प्रेम हो गया। उससे भी हनुमान् का पुत्र मच्छानु हुआ। पुल तैयार हो गया। इन्द्र ने अपना रथ दिया जिसको मातलि हाँक रहा था। राम पुल से लङ्का पहुँचे। एक हरे भरे स्थान पर जहाँ मखमल के समान घास उगी थी, सेना ने पड़ाव डाला। परन्तु वह एक मायावन था, वहाँ न कोई पक्षी गीत गाता था, न फल खाता था। दशकण्ठ की आज्ञा से भानुराज वानरसेना सहित जंगल को जमीन में धँसा देना चाहता था। हनुमान् यह चाल समझ गये। उन्होंने भूमि के भीतर प्रविष्ट होकर उस भानुराज को एक ही घूँसे से खत्म कर दिया।

राम ने शान्ति की कामना से अङ्गद को दूत बनाकर भेजा। अनेक राक्षसों को मार कर वे दरबार में पहुँचे। अङ्गद ने रावण के दरबार में दूत के बैठने का स्थान न देख कर अपनी पूँछ बढ़ा कर कुण्डली बना कर दशकण्ठ के मंच से भी ऊँचा स्थान बना लिया। उस गद्दी पर बैठकर राम का संदेश बड़ी तीव्र भाषा में कहना उसने आरम्भ किया। दशकण्ठ को क्रोध आया। उसने अपने चार वीरों को अङ्गद को मारने के लिए नियुक्त किया। अङ्गद ने सबको मार गिराया और अपने पड़ाव पर आ गये। दशकण्ठ ने राम की सेना को मारने के लिए माया रचने का स्वयं भी यत्न किया। ब्रह्मा ने उसको एक छत्र दिया था। उसके खुलने से सूर्य छिप जाता था। जगत्भर में अँधेरा छा जाता था। उसने वह छत्र खोल दिया। चारों ओर अँधेरा छा गया। राम-सेना को लङ्का दिखायी नहीं पड़ती थी, परन्तु सुग्रीव ने आक्रमण करके उस छत्र को तोड़ डाला। सूर्य किरणें फिर निकल आयीं। आकाश से लौटते हुए सुग्रीव ने दशकण्ठ के मुकुटों को छीन कर राम के चरणों पर लाकर रखा। अब रावण चिन्तित होने लगा।

राम का हरण

दशकण्ठ ने मारीच-पुत्र वैयविक को पाताल भेजा। सहमालिवन के पुत्र मैयराव को लङ्का बुलाया। उससे सभी डरते थे। उसने अपने गुरु सुमेध मुनि से युद्धविद्या के रहस्य सीखे थे। सुमेध मैयराव से बहुत खुश था। उसने मैयराव की आत्मा को उसके शरीर से निकाल कर भौंरे के रूप में त्रिकूट पर्वत पर छिपा दिया था, इससे वह अमर सा हो गया था। उसको मृत्यु का भय न था। उसके पास एक मायावी राख थी जिससे वह नींद बुला सकता था। वह इस राख को लेकर बन्दरों के पड़ाव पर आया। बहुत सावधानी से आने पर भी वह विभीषण की आँख से न बच सका। विपत्ति से बचने का उपाय सोच लिया गया। हनुमान् ने ब्रह्मा के बराबर मुख बनाकर उसमें राम को रख लिया। फिर भी मैयराव की माया के सामने उसकी कुछ न चल सकी। मैयराव बन्दर बन कर बन्दरों में मिल गया। वहाँ उसे मालूम हुआ कि विभेक पहले ही सचेत कर रहा था कि यह माया प्रातःकाल के पूर्व ही समाप्त हो जावेगी। मैयराव के पास एक बाँसुरी थी। वह सेनादल को छोड़कर पहाड़ पर चढ़ गया और वहाँ उसने अपनी बाँसुरी उठायी। माया के बल से आकाश एक स्थिर समुद्र जैसा दिखाई पड़ने लगा। प्रातःकाल के तारे चमकने लगे, बन्दरों ने हर्ष मनाते हुए सोचा कि वह रात बीत गयी। निश्चिन्त होकर पहरे ढीले कर दिये। मैयराव अपनी माया की राख लेकर आया और बाँसुरी बजाने लगा। धीरे-धीरे सब बन्दरों को नींद आ गयी। सुग्रीव सोया पड़ा था। हनुमान् निर्जीव से दिखायी पड़ते थे। सीता के प्राणप्रिय राम भी बेहोश थे। सबको बेहोश देख मैयराव धीरे-धीरे आया। राम को उठाकर पाताल ले गया। बन्दर जागे तो विपत्ति का पता लगा, पर विभेक तो अपने दिव्य चक्षु से अदृश्य को भी देख रहा था। विभेक के बताये मार्ग से हनुमान् दौड़े। एक तालाब पर पहुँचे। उसमें कमल खिले थे। उन्होंने एक कमल का पत्ता तोड़ा, उसके डंठल में एक खोखला मार्ग दिखायी दिया। हनुमान् उसमें होकर एक दीवार के पास पहुँचे, जहाँ एक राक्षस पहरा दे रहा था। उसे हनुमान् ने लात से मारा, वह मर गया और दीवार टूट गयी। हनुमान् आगे बढ़े। वहाँ एक मदमत्त हाथी मिला। हनुमान् ने उसको पछाड़ दिया। पुनश्च आगे बढ़े, एक पर्वत मिला, जिसपर आग की ज्वाला धधक रही थी। उन्होंने लात मार कर पर्वत की आग बुझा दी। फिर आगे बढ़े, मच्छर मिले जो मुर्गों के बराबर थे। हनुमान् थके नहीं बढ़ते गये। एक अन्य तालाब मिला। उसमें कमल खिले थे। वहाँ एक ऐसे व्यक्ति का मुकाबला करना पड़ा जो उनके जोड़ का था। इसपर हनुमान् के पुत्र मच्छानु का पहरा था। सुवर्णमच्छा उसे तट पर छोड़कर चली गयी थी। मैयराव ने उसे पाला था। पिता और पुत्र का भयंकर युद्ध हुआ। युद्ध होता रहा पर किसी की विजय नहीं हुई। दोनों एक दूसरे की वीरता से चकित रह गये। पूछने पर दोनों पिता-पुत्र निकले। दोनों में युद्ध के बदले प्रेम हो गया। हनुमान् ने पाताल आने का प्रयोजन बताया। मच्छानु

कृतघ्न न था। वह अपने पालक पिता का भेद बताने को तैयार न था पर वह अपने पिता को भी निराश नहीं कर सकता था। अजी, मार्ग तो दीखता है उसी पर क्यों नहीं चलते। हनुमान् समझ गये, उन्होंने एक कमल तोड़ा उसमें एक खोखला मार्ग दिखायी पड़ा। उसी मार्ग से वे पाताल पहुँच गये। उन्हें एक रोती हुई स्त्री के विलाप की ध्वनि सुनायी पड़ी जो समस्त पाताल में गूंज रही थी। वह मैयराव की बहन बीरबक्कन थी, जो पुत्र के लिए शोक कर रही थी। उसको आज्ञा हुई थी कि वह एक कड़ाही चढ़ाये उसमें अपने पुत्र वैयविक को राम के साथ भून डाले, परन्तु कोई माता अपने ही पुत्र को कैसे भूनती? वह रोती पीटती कड़ाही चढ़ा कर पानी डाल रही थी। चुपके से हनुमान् आ गये। उन्होंने ढाढस दिया और कहा कि यदि तुम मुझे वहाँ ले चलो जहाँ राम को रखा गया है तो मैं तुम्हारे पुत्र की जान बचा दूंगा। यह काम कठिन था, क्योंकि बड़े-बड़े बलवान् राक्षस पहरा दे रहे थे यहाँ से गुजरने पर सबको एक तराजू पर तुलना पड़ता था। वह इतना बारीक था कि उसपर बाल बराबर भेद भी मालूम हो जाता था। तिल भर भी बोझ बढ़ने पर मौत निश्चित थी। फिर भी हनुमान् ने फाटक पर ले चलने का आग्रह किया। हनुमान् ने एक बारीक कमलतन्तु का रूप धारण कर लिया। उसके वस्त्र में लग गये, परन्तु जब वह राक्षसी तराजू पर रखी गयी तो तराजू टूट गया, राक्षसों ने उसे मारने को तलवार उठायी। वह चिल्लायी कि मेरा कोई दोष नहीं है, मेरे पास कुछ नहीं है। तलाशी में कमलतन्तु के सिवा और कुछ भी न निकला, अतः उन्होंने उसे जाने दिया। हनुमान् वहाँ पहुँचे, ताड़ वृक्षों में लोहे का पिंजड़ा रखा था उसमें राम पड़े सो रहे थे। उन्हें कुछ पता नहीं था। रामभक्त हनुमान् ने उन्हें धीरे से उठाया और सुरक्षित स्थान पर रख दिया। वे स्वयं मैयराव की खोज में चले। वह मिल गया। दोनों में इतना घोर युद्ध हुआ कि पाताल हिल गया। हनुमान् ताड़ वृक्षों से उसे मारते थे पर उसपर असर नहीं होता था। उस समय बीरबक्कन ने स्मरण दिलाया कि उसकी आत्मा त्रिकूट में भौंरे के रूप में छिपी है। हनुमान् ने अपना शरीर बढ़ाया, अपना हाथ त्रिकूट तक फैलाया। भौंरे के रूप में छिपी उसकी आत्मा को मसल डाला। भौंरे के मरते ही मैयराव प्राणहीन हो गया। हनुमान् ने वैयविक को पाताल की गद्दी दी, मच्छानु को युवराज बनाया और राम को लेकर बन्दरों की छावनी में आ गये। सबको बड़ी खुशी हुई, पर राक्षसों को इससे अवर्णनीय दुःख हुआ।

कुम्भकर्ण

दशकण्ठ मैयराव के मरने से काँप उठा। उसने कुम्भकर्ण से मैयराव का बदला चुकाने के लिए कहा। उसको न्याय में श्रद्धा थी, वह सीता को लौटाने के पक्ष में था। दशकण्ठ ने कहा तू राम से डरता है। वह अस्त्र उठाकर भाई की सहायता के लिए तैयार हो गया। विभेक हाथ जोड़ कर आगे बढ़ा, पर कुम्भकर्ण न्यायप्रिय होने पर भी राजा और देश से मुँह नहीं मोड़ सकता था। उसने विभेक से कहा तुम्हारे पास यही बहाना है कि राम नारायण के अवतार हैं, पर मैं तब यह मानूंगा जब मेरे प्रश्न का समाधान करें। मूर्ख साधु कौन? सीधे दाँत का हाथी कौन? चालाक स्त्री कौन? दुष्ट मनुष्य कौन? पर इसका उत्तर किसी को नहीं सूझा। अङ्गद कुम्भकर्ण के पास भेजा गया कि वह उससे ही उत्तर लाये। अङ्गद ने कहा राम उत्तर जानते हैं, पर सही उत्तर से मिलाना चाहते हैं। कुम्भकर्ण ने राम की खिल्ली उड़ा कर अभिमान से कहा मूर्ख साधु आदमी तो स्वयं राम हैं, जो सीता को जंगल में छोड़कर चले गये। सीधे दाँतवाला हाथी दशकण्ठ है जो अपनी स्त्री से सन्तुष्ट न होकर अन्य पर दृष्टि डालता है। चालाक स्त्री सम्मनखा है। दुष्ट मनुष्य विभेक है जो अपने देश और नरेश का विरोधी है। सुग्रीव कुम्भकर्ण का युद्ध हुआ। सुग्रीव अत्यधिक बलवान् थे। वह पर्वत से विशाल वृक्ष उखाड़ कर लड़ने लगे। सुग्रीव थक गये उन्हें बगल में दबाकर कुम्भकर्ण लङ्का को चल पड़ा। हनुमान् सहायता के लिए दौड़ पड़े। कुम्भकर्ण हनुमान् का मुकाबला न कर सका। सुग्रीव को वहीं छोड़कर लङ्का भाग गया। हनुमान्

ने उसके नाक-कान नोच लिये। अन्त में यश की रक्षा के लिए अपनी मोक्खशक्ति महान् अस्त्र छोड़ने को तैयार हुआ, पर उसके पहले देवों की आराधना आवश्यक थी। इसलिए वह शुभ मुहूर्त में नदी किनारे अनुष्ठान करने लगा। हवन की सुगन्ध फैल गयी, फूल खिल गये, अस्त्र सामने था एवं वह समाधि लगाये बैठा था। कुम्भकर्ण की आँख खुल गयी। दुर्गन्ध से वह घबड़ा गया। देखा तो एक मृत कुत्ता नदी में बहा आ रहा है। कौए नोचकर माँस खा रहे हैं, पर यह विभेक की माया थी। विभेक ने अपने शीशे से कुम्भकर्ण का अभिप्राय जान लिया था। हनुमान् मृत कुत्ता बन गये एवं अङ्गद कौआ। कुम्भकर्ण की समाधि टूट गयी, अतः अस्त्र के महत्त्व का लाभ नही मिला। फिर भी वह निराश नहीं हुआ। मोक्खशक्ति लेकर शत्रुदल पर टूट पड़ा। लक्ष्मण ने सामना किया। मोक्खशक्ति लक्ष्मण के शरीर में घुस गयी। पर विभेक ने उपाय निकाल लिया। हनुमान् को स्वयं पर्वत भेजकर अमरबूटी मँगायी और साथ ही यह कहा कि सूर्य निकलते ही उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। हनुमान् उड़ पड़े। उनके श्वेत अङ्ग पर लाली आ गयी। पता चला सूर्योदय होना ही चाहता है। वैसा होने पर आशाओं पर पानी फिर जाता। वह सूर्य का रथ रोकने के लिए आगे बढ़े, पर सूर्स के ताप से झुलस गये। सूर्य को भेद मालूम हुआ। उनको पश्चात्ताप हुआ कि रामदूत को भ्रम से क्षति पहुँची। सूर्य ने हनुमान् के शरीर को स्वस्थ कर दिया। हनुमान् ने गति मन्द करने की सूर्य से प्रार्थना की। मानवी घृणा या दुःख सृष्टि के नियम को रोक नहीं सकते; परन्तु सूर्य ने कहा मैं चलता तो रहूँगा पर बादलों की ओट में रहूँगा। हनुमान् आगे बढ़े, अमर बूटी को आवाज दी। उसने कहा मैं यहाँ हूँ। वहाँ गये, तो कहा मैं इधर हूँ। हनुमान् हैरान हो गये। हनुमान् ने शरीर बढ़ाकर सारा पर्वत पूँछ से लपेट लिया जिधर से आवाज आई वहीं से उन्होंने बूटी उखाड़ ली। बूटी तो मिल गयी, पर पाँच नदियों का जल भी चाहिये था। अयोध्या भरत के अधिकार में थी। हनुमान् डरना तो जानते ही न थे। तुरन्त अयोध्या दौड़ गये। जल लाये, बूटी आयी। लक्ष्मण स्वस्थ हो गये। लक्ष्मण के स्वस्थ होने पर राम की सेना में हर्ष फैल गया। कुम्भकर्ण ने ब्रह्मा जैसा शरीर बढ़ाकर पहाड़ की उस नदी को रोक दिया जिससे सेना पानी लेती थी। वह सात दिनों तक नदी रोके रहा। बन्दर प्यास से मरने लगे। विभेक जान गया कि कुम्भकर्ण का काम है। परन्तु उसे पता नहीं था कि वह कहाँ है। उसकी फूलदासियों को ही पता था। विभेक की सूचना पर हनुमान् चील बनकर उड़ गये। एक फूलदासी को मार डाला और उसका रूप धारण कर अन्य फूलदासियों के साथ वहाँ पहुँचे जहाँ वह पानी रोके पड़ा था। वहाँ पहुँच कर हनुमान् ने अपने रूप में प्रकट होकर कुम्भकर्ण को ऐसी लात मारी कि वह खड़ा हो गया। पानी बहने लगा। प्यासे बन्दरों की मृत्यु टल गयी। कुम्भकर्ण हनुमान् का सामना न कर सका। दूसरे दिन राम ने उसका सामना किया और वह नारायण के ब्रह्मास्त्र से मर गया। मरते समय उसने देखा साक्षात् नारायण चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और त्रिशूल लिये हैं। उन्होंने पश्चात्तापशील रामभक्त के लिए स्वर्ग का द्वार खोल दिया।

लक्ष्मण-इन्द्रजित् का युद्ध

इन्द्रजित् मण्डो का पुत्र था। ईश्वर से ब्रह्मपाश, ब्रह्मा से नागपाश तथा विष्णु से विष्णुयन उसे प्राप्त थे। इन्हीं अस्त्रों के बल पर उसने इन्द्र को जीता था। लक्ष्मण ने उसका सामना किया। भयंकर युद्ध हुआ। यह पहला अवसर था। जब वह विजय के बिना रणक्षेत्र से लौटा था। उसने कुम्भनीय यज्ञ से अस्त्र-शक्तियों को जगाना चाहा। वह आकाशगिरि में जाकर यज्ञ करने लगा। लङ्का की रक्षा में मङ्ककण्ठ खरपुत्र, जो पिछले जन्म में दरवी था, नियुक्त हुआ। उसने खूब युद्ध किया और राम के हाथ मारा गया। विभेक ने इन्द्रजित् के यज्ञ में बाधा डालने के लिए सब उपाय बना दिये। जिस वृक्ष के नीचे वह यज्ञ करता है, यदि कोई रीछ उसे तोड़ दे तो यज्ञभङ्ग हो जायगा। जम्बूवान ने यह काम अपने ऊपर लिया। रीछ का रूप धारण कर वह वहाँ पहुँचा। इन्द्रजित् ध्यानमग्न था। मन्त्रों के प्रभाव से संसार भर के सर्प नागपाश को घोर विषैला बनाने हेतु अपना विष प्रदान कर रहे थे। इतने में वृक्ष टूट

गया। सर्पों ने समझा गरुड़ आ गये, वे सब भूमि में समा गये। जम्बूवान आकाश में उड़ कर राम-सेना में पहुँच गये। विघ्न के कारण इन्द्रजित् प्रसुप्तशक्ति बाणों को ही लेकर युद्ध के लिए चल पड़ा। उसने बड़ी शक्ति से राम-सेना पर आक्रमण किया, परन्तु लक्ष्मण के सामने राक्षस मरने लगे। घोर युद्ध हुआ। किसी की जीत निश्चित नहीं थी। इन्द्रजित् ने विरूणमुख को परामर्श दिया कि वह इन्द्रजित् का रूप धारण कर उसकी सेना को लेकर लड़ाई करता रहे और आकाश में जाकर नागपाश को छोड़ दे। लक्ष्मण को इसका पता लगने न पाये। शीघ्र वैसा ही हुआ। असली इन्द्रजित् को अवसर मिल गया, नागपाश से सैकड़ों साँप निकल पड़े और विष छोड़ने लगे। सेना के वानर तथा लक्ष्मण सब साँपों की लपेट में आकर बेहोश हो गये। इन्द्रजित् विजय-दुन्दुभि बजाता हुआ घर लौट गया। वानर और लक्ष्मण सब रणक्षेत्र में पड़े रहे। राम रणस्थल पर पहुँचे तो विभेक की प्रेरणा से राम ने अपना क्लैबत तीर आकाश में छोड़ा। फलस्वरूप गरुड़ आ गये और सर्पों का सफाया करने लगे। लक्ष्मण और उनके साथी बन्दर ऐसे उठे मानो वे सो कर उठे हों। इन्द्रजित् को आश्चर्य हुआ। फिर भी इन सबको मौत के जबड़ों में रखने के लिए वह समुद्रतट पर जाकर अस्त्रशक्ति जाग्रत् करने के लिए ईश्वर की आराधना करने लगा। हनुमान् ने इसी बीच कम्पन को मारा। दशकण्ठ ने उसकी सूचना इन्द्रजित् को दी। इस अशुभ समाचार से इन्द्रजित् का यज्ञ खण्डित हो गया। अब एक ही उपाय था कि कृष्ण गोवलि से पाशशक्ति जाग्रत् करे। वैसा करके उसने पाशशक्ति जाग्रत् कर ली। अजेय ब्रह्मास्त्र को लेकर उसने आक्रमण किया। माया के बल से इन्द्रजित् इन्द्र बन गया। देवगणों से आवृत इन्द्र के द्वारा रणक्षेत्र में स्वर्ग का-सा दृश्य आ गया। लक्ष्मण तथा वानर जो कार्य कर रहे थे क्षण भर के लिए वह भूल गये कि हम स्वर्ग में हैं या रणक्षेत्र में। उसने ब्रह्मास्त्र लक्ष्मण पर छोड़ दिया। समस्त सेना धरासायी हो गयी पर हनुमान् जीवित थे। उन्होंने देख लिया अस्त्र किसने छोड़ा। उन्होंने आकाश में छलाँग मार कर नकली इन्द्र के ऐरावत की गर्दन तोड़ दी। पर इन्द्रजित् ने ऐसा घूंसा मारा कि हनुमान् भूमि पर गिर पड़े। वह विजय का डंका पीटकर घर चला गया। राम घटना स्थल पर पहुँच कर लक्ष्मण तथा सेना का हाल देखकर मूर्छित हो गये। सारा रणक्षेत्र श्मशान हो गया। रावण ने प्रसन्न होकर सीता को समाचार भेजा कि तुम्हारे पति का अन्त हो गया है तथा वानर-सेना नष्ट हो गयी है, तुम चाहो तो देख लो। त्रिजटा के साथ सीता पुष्पक पर चढ़ कर घटना-स्थल पर पहुँची। वहाँ का भयानक दृश्य देखकर अयोध्या-नरेश राम की लाश पड़ी है, लक्ष्मण पड़े हैं —सीता का हृदय व्याकुल होकर फटने लगा, पर त्रिजटा ने कहा ध्यान से देखो। राम मूर्छित हैं, मरे नहीं हैं। पुष्पक विमान विधवा को लेकर उड़ नहीं सकता। मण्डो ने इस बात की परीक्षा ली थी। सीता विमान पर बैठ गयी। विमान उड़ गया सीता अशोकवाटिका में आ गयी। सीता को विश्वास हो गया कि राम मरे नहीं हैं। एक न एक दिन मेरा दुःख दूर करेंगे। विभेक कहीं काम से गये थे। लौटने पर उन्होंने सेना की यह दुर्गति देखी, पर वे निराश नहीं हुए। वह जानते थे कि हनुमान् को ईश्वर की ओर से अमरत्व का वरदान मिला है। उन्होंने एक मन्त्र पढ़कर हनुमान् की ओर फूंक मारी। हनुमान् ने आँखें खोल दी। उन्हें परिस्थिति का ज्ञान हो गया। वे उठ खड़े हुए। रात का समय था। पड़ी हुई लाशों पर ओस की बूदों का अमृततुल्य प्रभाव पड़ रहा था। एक एक करके सैनिक उठने लगे, पर लक्ष्मण और ब्रह्मपाश से आहत सैनिक अभी पड़े ही थे। ब्रह्मास्त्र के व्रणों का इलाज विदेह देश के आबुद्ध पर्वत की बूटियाँ ही थीं। उनका ज्ञान जम्बूवान को ही था, क्योंकि ईश्वर सेवा के समय उसे उनका परिचय हुआ था। बूटी के ऊपर एक चक्र घूमता रहता था। बूटी लेनेवाले को वह मार देता था। हनुमान् ही उसे ला सकते थे। हनुमान् दौड़कर उस पर्वत पर पहुँचे। वे जब वहाँ पहुँचे तो देखते हैं कि चाँद छिप गया। आकाश में अन्धकार हो गया। उन्होंने पूरा पहाड़ उठा लिया, पर पहाड़ रखा कहाँ जाय? लङ्का तो जङ्गम द्वीप था, उस पर पर्वत का टिकना संभव नहीं था। उसे उत्तर दिशा में रखा गया। उन बूटियों की सुगन्ध लगने से ब्रह्मास्त्र द्वारा मूर्छित सैनिक जागने लगे। लक्ष्मण एवं उनके साथी सब जी उठे। इन्द्रजित् चिन्तित हुआ, पर उसने सोचा

कि सीता के लिए ही यह सब उपद्रव हो रहा है; सीता का ही अन्त कर दिया जाय तो युद्ध का भी अन्त हो जायगा। परन्तु दशकण्ठ ऐसा नहीं चाहता था, इसलिए नकली सीता बनायी गयी। शुक्रसर ने अपना कर्तव्य पालन नहीं किया था, अतः उसे प्राणदण्ड का हुक्म हो चुका था। इन्द्रजित् के सुझाव पर दशकण्ठ ने शुक्रसर को आदेश दिया कि वह सीता का रूप धारण कर इन्द्रजित् के साथ रथ पर बैठ जाय। इस प्रकार नकली सीता को लेकर इन्द्रजित् रणक्षेत्र में पहुँचा। लक्ष्मण का सामना हुआ, परन्तु लक्ष्मण का तीर उनके धनुष में ही लटका रह गया। दुःखित सीता के ऊपर लक्ष्मण की दृष्टि पड़ी तो उनके होश उड़ गये। इन्द्रजित् ने ललकारा तो उन्हें होश आया। इन्द्रजित् ने कहा आगे आकर सीता को लो और लङ्का का पिण्ड छोड़ो। लक्ष्मण सहर्ष आगे बढ़े, पर वह सीता को शत्रु के हवाले कर अपने यश में बट्टा नहीं लगाना चाहता था। उसने तलवार से सिर काट कर लक्ष्मण की गोद में फेंक दिया। लक्ष्मण सन्न रह गये। इन्द्रिजित् ने दहाड़ कर कहा अभी क्या अभी तो तुम्हारी राजधानी अयोध्या पर भी चढ़ाई करूँगा। इस तरह विजय-पताका फहरा कर अपने स्थान को लौट गया। विभेक जान गया कि यह तो शुक्रसर का सिर है। असली सीता तो अभी जीवित है, क्योंकि इन्द्रजित् कुम्भनीय यज्ञ करना चाहता है, जिससे वह अजेय हो जायेगा। विभेक लक्ष्मण को उसी स्थान पर ले गये जहाँ वह अपने को सुरक्षित समझकर यज्ञ कर रहा था। विघ्न देखकर वह उठ खड़ा हुआ। विघ्नकारियों को ढूँढने लगा वह अन्धकार उत्पन्न कर माता-पिता के दर्शनार्थ गया। आज लक्ष्मण इन्द्रजित् का सिर काटने का निश्चय कर चुके थे, परन्तु ब्रह्मा का उसे ऐसा वरदान था कि इन्द्रजित् का सिर कटकर जिस दिन भूमि में पड़ेगा उसी दिन प्रलय हो जायेगा। प्रलय की अग्नि प्रज्वलित होगी और समस्त संसार उसमें जल जायगा, इसलिए अङ्गद आकाश में उड़ गये। स्वर्गलोक में जाकर वहाँ से ब्रह्मा का एक पात्र उठा लाये, जिससे भूमि पर इन्द्रजित् का सिर गिरने न पाये। ज्यों ही वे लौटे लक्ष्मण ने अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ा। उसका सिर कट कर ब्रह्मा के पात्र में गिर पड़ा। अब राम ने एक ऐसा बाण छोड़ा जिसने अग्नि उत्पन्न कर इन्द्रजित् का सिर जला कर राख कर दिया। जगत् भस्म होने से बच गया। उसका धड़ रणक्षेत्र में गिर पड़ा। वानर-सेना में विजय की उमँग छा गयी।

दशकण्ठ और उसके मित्र

इन्द्रजित् की मृत्यु से दशकण्ठ बहुत दुःखी हुआ और सीता को मार डालने की बात सोचने लगा, पर उसे पौवनासुर ने यह कहकर रोका कि ऐसा करना तो नामर्दी है, बदला लेना है तो राम से लड़ो। दशकण्ठ मैदान में उतरा। सेनाध्यक्ष और दस पुत्र उसके साथ थे, जिन्होंने वायु, अग्नि, सूर्य तथा इन्द्र को परास्त किया था। इधर भी वायुपुत्र हनुमान्, अग्निपुत्र नील नल, सूर्यपुत्र सुग्रीव तथा इन्द्रपौत्र अङ्गद विद्यमान थे। यह विचित्र बात हुई कि उनकी मृत्यु उन्हीं देवों की सन्तानों से हुई। दशकण्ठ दस भुजाओं से आक्रमण करता था, दस से दूसरों का आक्रमण रोकता था, फिर भी विजय न हुई। वह लौट गया। उसने अपने मित्र पंगताल के राजा मूलवलम को बुलाया। वह अपने भाई सहस्तेज के साथ आया। ईश्वर के बरदान से वह सहस्र सिर तथा द्विसहस्र भुजाओंवाला था। वह अजेय था। उसके पास एक गदा थी, जिसके नुकीले सिर से शत्रु की मृत्यु अवश्यंभावी थी। दोनों भाई बड़े उत्साह से रणक्षेत्र में आये। बन्दर उनके तेज से भाग खड़े हुए। लक्ष्मण के तीर ने मूलवलम को ढेर कर दिया, हनुमान् की बुद्धिमत्ता से सहस्तेज की प्रगति रुक गयी। हनुमान् एक छोटा बन्दर बनकर उसके रथपर चढ़ गये। क्रोध के जोश में उसने बन्दर को उठा लिया। बन्दर ने कहा मैं वाली का सेवक हूँ। मालिक का बदला लेने आया हूँ। राक्षस ने विश्वास करके उसे अपना मित्र बना लिया। उसने उसकी मीठी बातों में आकर गदा दे दी। गदा पाते हनुमान् ने विकराल रूप धारण कर लिया। अपनी पूंछ से लपेटकर उसके सिर काटकर राम के सामने रख दिये। सेंगआदित्य मकरकण्ठ का भाई था। उसके पास एक माया का सीसा था। उसमें जिसकी छाया पड़ती वह भस्म

हो जाता था, पर वह सीसा ब्रह्मा के पास रहता था। अङ्गद सेंगआदित्य के सेनाध्यक्ष का रूप धारण कर ब्रह्मा के पास गये और उस सीसे को ले आये। उस विषैले अस्त्र से वञ्चित होने के कारण वह राक्षस भी राम के हाथ मारा गया।

अचानक उसे स्मरण हुआ कि चक्रवाल का राजा सतलुंग और त्रिशिरा का बेटा त्रिमेघ जीवित हैं। उनका उसने आह्वान किया। वे बड़ी सेना लेकर आये। राम के तीर से सतलुंग मारा गया। त्रिमेघ मारे भय के प्राण लेकर भागा। हनुमान् ने उसका पीछा किया। वह भी मारा गया। अब दशकण्ठ ने अपनी शक्ति से लड़ने का निश्चय किया। वह अपने मांस को हीरा बना सकता था। अङ्गुलियों में मृत्युदेव की शक्ति भर सकता था। नन्दक के रूप में ईश्वर की सेवा करके वह शक्तिसंपन्न हुआ था, पर इसमें शर्त यह थी कि वह सात दिन तक प्रसुप्त सागर के समान शान्त रहे। क्षणिक क्रोध या अशान्ति से वरदान निष्फल हो जाता था। वह नीलकाय पर्वत की खोह में तप और यज्ञ करने लगा। परन्तु हनुमान् की शक्ति का अनुमान नहीं था। विभेक के इशारे पर हनुमान्, नील, नल और अङ्गद वहाँ पहुँच गये, पर माया से खोह का द्वार बन्द था। किसी स्त्री के अशुद्ध पैर के धोवन जल के छिड़के जाने पर वह खुल सकता था। हनुमान् अपनी राक्षसी बैञ्जकाया पत्नी से वैसा पानी लाये। उसके छिड़कते ही खोह का द्वार खुल गया। तीनों भीतर जाकर उसको काट कर नोच कर क्रोध भड़काने लगे, पर वह विचलित नहीं हुआ। हनुमान् रानी मण्डों को उठा लाया; लङ्का की रानी को बानर के हाथ में देखकर रावण हनुमान् से युद्ध करने बढ़ा। मन के क्षुब्ध होने से वर का प्रभाव समाप्त हो गया।

अब अष्टाङ्ग राजा सद्धासुर और दूषणपुत्र विरूणचम्बक युद्ध के लिए आये। सद्धासुर को वरदान था कि वह समस्त देवलोक के शस्त्रों को प्राप्त कर सकता था और अपने घोड़े के साथ अदृश्य हो सकता था। हनुमान् ने बन्दरों से कहा तुम बादलों में छिप जाना, सद्धासुर की प्रार्थना पर देवलोक से देव आयुध डालें तो बीच में ही लपक कर ले लेना। इसके बाद हनुमान् ने उसको ललकारा, उसने देवताओं से अस्त्रों की माँग की, पर वे बीच में ही बन्दरों द्वारा लपक कर ले लिये गये। वह अपनी ही शक्ति पर लड़ने आया। हनुमान् के द्वारा मारा गया। विरूण-चम्बक अदृश्य होकर सेना का संहार करने लगा। राम ने एक मौत का बुझा बाण छोड़ा जिससे उसके साथी और अदृश्य घोड़ा मर गया। उसने एक रूमाल निकाला, माया के बल से नकली रूप बना कर लड़ता रहा और स्वयं आकाश पर्वत में चला गया। एक वानरिन अप्सरा ने उसे समुद्रफेन में छिपने का परामर्श दिया, पर वह हनुमान् के चंगुल में आ ही गया। हनुमान् उस पर्वत पर पहुँच कर वानरिन से मिले। वह युगों से उनकी प्रतीक्षा में थी। वह कभी ईश्वर की आज्ञा का पालन करना किसी मित्र से बातचीत के प्रसंग में भूल गयी थी, अतः ईश्वरकोप से वह पतित हो गयी थी। ईश्वर ने कहा था विरूणचम्बक की खोज में जब हनुमान् की सहायता करेगी तब शापमुक्त होगी। हनुमान् ने बड़ा सुन्दर रूप बना कर उसके पास जाकर अपना मुँह खोलकर उसमें चाँद और सूर्य दिखाये। उसे विश्वास हो गया कि यह हनुमान् हैं। वह हनुमान् की हो गयी। उसका शाप छूट गया। इस अप्सरा के बताये मार्ग पर चलकर हनुमान् वहाँ पहुँच गये, जहाँ फेन में वह राक्षस पड़ा था। हनुमान् के वहाँ पहुँचते ही वह माया से समुद्र में छेद कर समुद्र की तलहटी में छिप गया। हनुमान् की लम्बी पूंछ ने उसे वहाँ से भी घसीट लिया और मार दिया।

अब दशकण्ठ को अपने पितामह ब्रह्मा मालीव की याद आयी जो समस्त देवों, गन्धर्वों तथा दिव्य योनियों के अध्यक्ष थे। उनके शाप से राम की मृत्यु हो सकती थी। दशकण्ठ ने इन्हें न्याय के लिए बुलाया। परन्तु वह मालीवराज राम के पितामह महाराज अजपाल का मित्र था। उसने न्यायाधीश बनने की स्वीकृति दे दी। वह स्वर्ग से लङ्का गया परन्तु वह निष्पक्षता की दृष्टि से दशकण्ठ और राम दोनों के यहाँ न जाकर रणक्षेत्र में उतरा, क्योंकि वह रणक्षेत्र तो दोनों का ही था। दशकण्ठ ने आकर शिकायत की राम ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया है। परन्तु

मालीवराज बड़े न्यायकारी थे। उन्होंने सब देवी देवताओं को इकट्ठा करके राम को बुलाया। तुरन्त ही रणक्षेत्र एक न्यायालय बन गया। वहाँ मारकाट के बदले हर्षपूर्वक वार्तालाप होने लगा। राम अपने साथियों के साथ वहाँ आये। मालीवराज ने जानना चाहा कि लड़ाई का सूत्रपात कैसे हुआ? दशकण्ठ ने कहा महाराज! सुनिये, राम ने व्यर्थ ही एक औरत के पीछे यहाँ टण्टा बढ़ा रखा है। यह इतनी बड़ी सेना लेकर मेरी राजधानी घेरे पड़ा है। बात बहुत छोटी है। मैंने एक स्त्री को जङ्गल में अकेली देखा। उस बेचारी के साथ कोई न था। मुझे उसपर दया आयी। उसे अपने नगर में ले आया। बात केवल इतनी ही है। परन्तु राम ने सब ठीक बातें बतायीं कि दशकण्ठ मेरी पत्नी सीता को चुरा कर लाया है। सीता बुलायी गयी। उसके साथ बन्दर भी थे और राक्षस भी थे जिससे सीता को सिखाने के लिए किसी को अवसर न मिले। सीता की गवाही और देवों की साक्षिता से सिद्ध हो गया कि राम का पक्ष सत्य है। दशकण्ठ का मुंह बन्द हो गया। फिर उसने यह बहाना लिया कि उसने कई बार देवताओं को पराजित किया था, अतः वे ईर्ष्या रखते हैं। उसको सताने की तरकीबें सोचते रहते हैं। परन्तु अब मालीवराज का विश्वास दशकण्ठ से उठ गया। अन्तिम बात ने तो उसको स्पष्ट ही दशकण्ठ के विरुद्ध कर दिया। उन्होंने आज्ञा दी कि दशकण्ठ सीता को वापस कर दे, युद्ध समाप्त किया जाय। पर दशकण्ठ अड़ गया। अपनी इच्छा के सामने उसने सत्य और न्याय को त्याग दिया। न्यायाधीश की बात को मानने से इनकार कर दिया। अन्त में वे यह निर्णय करके चले गये कि दशकण्ठ राम के हाथ से मारा जाय। मालीवराज के साथी देवता भी स्वर्ग चले गये।

महास्त्र कपिलवद्

दशकण्ठ ने महास्त्र कपिलवद् को जाग्रत् करना चाहा। उसे ईश्वर की ओर से वरदान मिला था। इसके जाग्रत् होने पर वह देवों सहित मालीवराज को भस्मीभूत कर सकेगा। दशकण्ठ ने साधुवेश में मेरुपर्वत की तलहटी में यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित कर मिट्टी की देवमूर्तियाँ बनायी। वह वेद-मन्त्रों के पाठ से प्रज्वलित हुई अग्नि में देव-मूर्तियों को डालने लगा। देवों में खलबली मच गयी। देवों के राजा ने देखा कि वह उन सबको भस्म करना चाहता है। वे ईश्वर के पास दौड़े। सहायता माँगी। दयालु ईश्वर ने "वाली, जो दूसरा जन्म लेकर देव बन गया था, से कहा जाओ, मेरुपर्वत को आग में झोंक दो।" शान्तिपूर्वक यज्ञ करते हुए दशकण्ठ ने वाली को देखा, परन्तु वाली देव था। दशकण्ठ की उसके सामने कुछ न चली। वह निराश होकर भाग निकला। दशकण्ठ ने देखा ईश्वर ने वाली को देव बना दिया। वह राम का पक्ष लेते हैं तो उसे बहुत बुरा लगा। परन्तु मण्डो ने बहुत समझाया और कहा शायद विभेक के समझाने पर हनुमान् आया होगा। उसी ने वाली का रूप धारण कर लिया होगा। विभेक ही सब बलाओं की जड़ है। पहले उसी को मारना चाहिये। दशकण्ठ को इसपर विश्वास हो गया। दूसरे दिन महास्त्र कपिलवद् को लेकर वह विभेक को मारने चला। उसे राम, लक्ष्मण और विभेक का मुकाबला करना पड़ा। कपिलवद् विभेक का रुधिर पीने लपका। विभेक ने वेग से अपने को बचा लिया। लक्ष्मण ने महास्त्र को वापस भेजा; लक्ष्मण के तीर से महास्त्र का मार्ग तिरछा हो गया, पर दशकण्ठ का तीर लक्ष्मण को लगा। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यह देखकर राम ने भयङ्कर बाण-वर्षा की। दशकण्ठ को छोड़कर कोई राक्षस जीवित न रहा। दशकण्ठ भागकर महलों में जा छिपा। अब लक्ष्मण के घाव को ठीक करने के लिए विभेक ने उपाय किया। इसकी तीन बूटियाँ थीं। तुलुवा, संकरणी एवं त्रिजवा। परन्तु ये बूटियाँ उत्तरकुरु प्रदेश के सञ्जीवसज्जी पर्वत पर ही मिल सकती थीं। इन बूटियों को इन्द्रकाल पर्वत की गुफा स्थित ईश्वर की गाय के गोबर में मिलाना पड़ता था। वहाँ जाने की गति उसी में थी जिसके मुंह में चाँद और नक्षत्र दीखते हों। हनुमान् ही इसके योग्य थे। वे तुरन्त गये। क्षण भर में बूटियाँ ले आये, पीसने की सिल भी पाताल के राजा कालानाग के पास थी और बट्टा दशकण्ठ के पास था। हनुमान् दौड़कर पाताल से सिल लाये, बट्टा लेने दशानन के घर में घुस गये। वह उसे तकिया बनाकर सो रहा था। हनुमान् ने

सिरहाने से बट्टा खींच लिया। चलते समय हनुमान् ने दशकण्ठ की लट रानी की लट से बाँध दी और शाप दिया कि जब तक रानी राजा को तीन थप्पड़ न मारे तब तक लट न खुले। यह शाप रावण के माथे पर लिख दिया। बूटियों के प्रयोग से लक्ष्मण उठ गये। सबको बड़ा हर्ष हुआ। सब उपायों से थककर रावण को लाचारी से पत्नी के तीन थप्पड़ खाकर बन्धन से छुटकारा मिला।

संजीवयज्ञ

महारानी मण्डो पतिव्रता थी। वह मृत्यु को वश में करना जानती थी। उसने उमा की सेवा में रहकर अमृत बनाना सीखा था। अमृत बन जाने पर वह सब पुत्रों तथा सेनाओं सहित रावण को जीवित कर सकती थी और फिर राम के बाणों के लिए भी कठिनाई उत्पन्न हो सकती थी। उसने संजीवयज्ञ आरम्भ कर दिया। इससे दशकण्ठ आशावान् होकर अपने दशगिरिवन और दशगिरिधर दो पुत्रों के साथ रणक्षेत्र में आया। लक्ष्मण ने दोनों को मार भगाया। राम ने दशकण्ठ का रास्ता रोका इसी समय मण्डो का अमृत बनकर तैयार हो गया। अमृत छिड़कते ही सारी सेना जी उठी। कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, सहस्तेज आदि सब जाग उठे। फिर जोरों से युद्ध छिड़ गया। अब युद्ध का अन्त होना बहुत कठिन हो गया। अब इसका यही उपाय था कि मण्डो का यज्ञ रोका जाय। यदि मण्डो में विषयवासना जाग्रत् हो जाय तो यह यज्ञ असफल हो सकता था, क्योंकि यज्ञ के लिए आत्मसंयम अपेक्षित था। हनुमान् ने दशकण्ठ का वेष बनाया। नीलवद् उसका हाथी बन गया, कोई महावत बन गया। वह बनावटी दशकण्ठ विजय की खुशी मनाते हुए लङ्का में जुलूस के साथ आया और वहाँ पहुँचा जहाँ तपस्विनी बनकर मण्डो अमृत बनाने में संलग्न थी। दशकण्ठ ने कहा अब अमृत की आवश्यकता नहीं है। राम और उनकी सेना के सैनिक सब मरे पड़े हैं।

मण्डो हर्ष से उछल पड़ी और नकली दशकण्ठ के गले लिपट गयी। विषयवासनापूर्ण चुम्बन उसके ओठ पर दिया गया और विषयवासनापूर्ण आलिङ्गन से मण्डो की मनोवृत्ति बदल गयी। इस प्रकार हनुमान्जी की बुद्धिमानी से मण्डो का काम विगड़ गया। दशकण्ठरूपी हनुमान् यह बहाना करके वहाँ से निकल गये कि अभी विभेक जीता है उसे मारकर मैं अभी आता हूँ। उधर दशकण्ठ अमृत की राह देख रहा था। पहले जिलाये हुए राक्षस मर चुके थे। उनको फिर से जिलाना था। घण्टों प्रतीक्षा के वाद भी अमृत न आया। वह मण्डो की यज्ञशाला की ओर लपका। उसको हनुमान् के छल का पता लग गया। मण्डो को ज्ञात हुआ कि उसका सतीत्व नष्ट हो गया। वह बेहोश होकर गिर पड़ी। फिर भी मण्डो एवं दशकण्ठ का प्रेम ज्यों का त्यों बना रहा।

आत्मा का पिंजरा

हनुमान् की करनी पर क्रुद्ध होकर दशकण्ठ युद्ध के लिए चल पड़ा। राम ने बेशुमार तीरों की वर्षा से सामना किया। दोनों ओर से तीर छूट रहे थे। आकाश में अँधेरा छा गया था। राम अद्वितीय वीरता से लड़े पर रावण पर विशेष असर नहीं हुआ। उसके सिर और भुजाएँ कटकर गिर जाती परन्तु फिर नये सिर और नयी भुजाएँ बन जाती थीं। तीव्र से तीव्र बाण उसका कुछ विगाड़ न सके। विभेक ने बताया कि दशकण्ठ की आत्मा तो उसके गुरु गोपुत्र के पास एक पिंजड़े में सुरक्षित है। दशकण्ठ तो तभी मरेगा जब उसकी आत्मा को मार डाला जाय। हनुमान् इस काम के लिए चल पड़े, पर उन्होंने राम से कहा महाराज, इस काम को सिद्ध करने में कई चालें चलनी पड़ेंगी। मुझे शत्रुदल में शामिल देखकर मेरी भक्ति में सन्देह न कीजियेगा। इस तरह राम को सचेत कर हनुमान् गोपुत्र की कुटिया पर चले गये। गोपुत्र मूर्ख था। हनुमान् के साथ इन्द्र का पौत्र अङ्गद भी था। हनुमान् गुरु की कुटिया में पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर हनुमान् झूठमूठ का रोना रोने लगे और बोले राम ने हमारे साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया। हमने सदा उनकी सेवा की, पर वे बड़े कृतघ्न निकले। हम दशकण्ठ की सेना में आना

चाहते हैं। पर शायद दशकण्ठ हमको स्वीकार न करें, क्योंकि हमने उनके भाइयों और पुत्रों का वध किया है। गुरुजी ! आप कृपा कर हमें साथ ले चलें। हमको उनसे मिला दें। यह कहकर हनुमान् फिर रोने लगे। आँसुओं की धारा उनके मुख पर बह चली। यह देख गोपुत्र राजी हो गया और वे सब दशकण्ठ के महल की ओर चल पड़े। हनुमान् ने कहा गुरुजी आत्मा के पिंजड़े को घर पर न छोड़िये। राम उसकी ताक में है। अवसर मिलते ही उड़ा ले जायगा, अतः इसको साथ ही रखना चाहिये। वह हनुमान् की बातों में आ गया और पिंजड़ा ले लिया। लङ्का के राक्षस हनुमान् को देखकर डर गये। हनुमान् की उपस्थिति से लङ्का में तूफान आ गया। पर आगे चलने पर विचार हुआ कि दशकण्ठ के पास पिंजड़ा कैसे ले जाया जाय। जैसे पक्षी अपने घोंसले को देखकर उसमें भाग जाता है इसी प्रकार दशकण्ठ की आत्मा उसकी देह में घुस जायगी। हनुमान् ने सुझाया कि आत्मा का पिंजड़ा अङ्गद के हाथ में छोड़ दिया जाय। आप और हम नगर के अन्दर चलें। लौट कर फिर इसे ले लेंगे। इस तरह पिंजड़ा अङ्गद के हाथ में देकर दोनों चल पड़े। चलते-चलते अचानक हनुमान् बोले गुरुजी आप चलिये, मैं अङ्गद को एक बात बता आऊँ कि उसे सावधान रहना चाहिये। कहीं अकेला पाकर शत्रु समझ कर राक्षस उसे मार न डालें। इस बहाने से अङ्गद के पास जाकर नकली पिंजड़ा बनाकर अङ्गद को दिया और बोले असली पिंजड़े को ले जाकर समुद्र के तट पर गाड़ दो। यहाँ आकर नकली पिंजड़ा गुरुजी को दे देना। यह कहकर गुरुजी के साथ दशकण्ठ के पास पहुँच गये। उसके सामने भी राम के दुर्व्यवहार की कहानी सुनायी। वह बोला, क्या लङ्का जलाने का यही पुरस्कार है ? स्नान करने का अंगोछा पकड़ा दिया। दशकण्ठ उछल पड़ा तालियाँ बजाता हुआ खुश होकर बोला आज से तू मेरा धर्मपुत्र हुआ। वह भी हनुमान् का छद्म नहीं जान सका। हनुमान् खुश थे। दूसरे दिन हनुमान् ने कहा आज मैं अकेला ही राम और उनकी सेना से लड़ूँगा। दोनों को पकड़ लेना कोई कठिन काम नहीं है। हनुमान् को रावण की ओर से लड़ता देखकर बन्दर डरकर भागने लगे। लक्ष्मण अकेले रह गये उनको भी इस षड्यन्त्र का पता नहीं था। लक्ष्मण साश्चर्य हनुमान् से लड़ने लगे। हनुमान् झूठमूठ का युद्ध करते रहे। संध्या को युद्ध रुक गया। हनुमान् लङ्कापति के पास पहुँचे और अपनी बड़ाई की डींग मारने लगे। महाराज, सब बन्दर भाग गये। संध्या न होती तो आज ही राम और लक्ष्मण को पकड़ लाता। आप के चरणों में उपस्थित कर देता। दशकण्ठ हर्ष से फूल गया। पुरस्कार के रूप में इन्द्रजित् की सब सम्पत्ति दे दी। उसकी असली स्त्री को भी हनुमान् के हवाले कर दिया।

प्रातः पुनः रणभेरी बजी। इस बार दशकण्ठ भी हनुमान् के साथ हो लिये। निश्चित हुआ कि हनुमान् आकाश में अँधेरा उत्पन्न कर राम और लक्ष्मण को ले जाय। दशकण्ठ पीछे से समस्त दल को नष्ट कर दे। पर जैसे ही हनुमान् आकाश में पहुँचे एक जँभाई ली, उनके मुख में चाँद और सूर्य चमकने लगे। अङ्गद खड़ा समुद्र तट पर देख रहा था। वह कूदा और आत्मा का पिंजरा हनुमान् के हाथ में दिया। हनुमान् ने पिंजरा लाकर राम के हवाले कर दिया। राम हर्ष और कृतज्ञता से फूले न समाये। लक्ष्मण बोल उठे आकाश के तारे गिने जा सकते हैं, समुद्र की थाह लेना भी आसान है, पर हनुमान् की बुद्धि की प्रशंसा करना कठिन है। राम ने कहा हनुमान् रत्नों का रत्न है। तीनो लोकों में हनुमान् जैसा कोई नहीं मिल सकता। यह तय हुआ कि राम ब्रह्मास्त्र छोड़ें और हनुमान् आत्मा पिंजड़े को तोड़ दें। दशकण्ठ हनुमान् की गतिविधि देखकर दंग रह गया और कृतघ्न तथा विश्वासघाती कह कर हनुमान् को धिक्कारने लगा। हनुमान् ने कहा पिंजरा तब दूँगा जब तुम सीता को लौटा दोगे। दशकण्ठ ने यह स्वीकार नहीं किया और मण्डो से मिलने के लिए लौट पड़ा। महलों में जाकर मण्डो से मिला और प्रातः उससे विदा लेना चाहा। मण्डो ने सीता को लौटा देने की सलाह दी, पर वह अपनी जिद पर अड़ा रहा। वह युद्ध के लिए चल पड़ा। राम से मुठभेड़ हुई। उसने एक अस्त्र छोड़ा उसमें से फूल निकल कर राम के चारों तरफ गिरने लगे। राम ने चकित होकर देखा सामने इन्द्र हैं। रावण इन्द्र के समान सुन्दर रूप धारण

कर सामने स्थित है। राम को उसका मारना अच्छा न लगा। हनुमान् ने कहा आप इसके सौन्दर्य पर क्यों मोहित होते हैं। राम सचेत हुए और उसपर ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया। वह उसके हृदय में लगा। उसका असली कुरूप शरीर सामने गिर पड़ा। जिसने संसार भर में मौतें ही मौतें ढायी थीं। वह आज स्वयं मौत का शिकार हो गया। उसने धीरे से आँख खोली सामने विभेक को देखा। उसके मुंह से खेद, क्रोध, पश्चात्ताप और पीड़ा के शब्द निकले। उसने प्राण त्यागते त्यागते विभेक से क्षमा माँगी और उससे राज को सँभालने तथा सुरक्षित रखने को कहा। उसी समय हनुमान् ने आत्मा का पिंजड़ा तोड़ दिया दशकण्ठ का जीवन समाप्त हो गया। आकाश से फूलों का वर्षा हुई एवं दुन्दुभियाँ बजने लगीं। शान्ति का पवन बहने लगा। तूफान की अंधेरी रात का अन्त हुआ।

अग्नि-परीक्षा

लङ्का में शोक छा गया। विभेक ने उसकी अन्त्येष्टि की। विभेक का अभिषेक हुआ। विभेक सीता को राम के पास ले गये। राम यद्यपि सीता से मिलने के लिए प्रेम-विह्वल थे, यद्यपि वे जानते थे कि सीता पवित्र है फिर भी समाज को ऐसा विश्वास कैसे दें यह चिन्तनीय विषय था। सीता की परीक्षा के लिए राम ने कुछ ऐसे शब्द कहे जो सीता को वज्र से भी भीषण प्रतीत हुए। सीता ने अपने सतीत्व की अग्निपरीक्षा देकर देवताओं को चकित कर दिया। सुग्रीव ने चिता बनाई। राम के बाण ने आग लगा दी। सीता सतीत्व के बल से अग्नि में प्रविष्ट हो गयी। एक महान् चमत्कार हुआ। सीता के समक्ष प्रकृति ने अपना नैसर्गिक नियम त्याग दिया। हिरण्यमयी ज्वालाओं से नारायण की दुखिया पत्नी का आविर्भाव हुआ और अग्नि ठण्डी हो गयी। अग्नि की कठोर ज्वालाएँ शीतल कमल पुष्पों में परिणत हो गयीं। उनकी सुगन्ध से संसार मँहक उठा। सीता की सुनहरी जीती-जागती मूर्ति ज्वालाओं से निकल कर सामने खड़ी थी और सन्देह करनेवालों को बता रही थी कि स्त्री के सतीत्व में जलती अग्नि शीतल हो जाती है और अंगारे फूल बन जाते हैं।

राम का अयोध्या प्रत्यागमन

राम का समय बीत रहा था। राम को भय था कि समय पर न वहुँचने पर भरत और शत्रुघ्न प्राण त्याग देंगे। विभेक ने राम से लङ्का का राज्य करने का आग्रह किया। राम ने स्वीकार नहीं किया। इस बीच में दशगिरिवन और दशगिरिधर के धर्मपिता अशकरण ने सुना कि मेरे धर्मपुत्रों सहित दशकण्ठ मारा गया है। उसका बदला लेने के लिए वह दौड़ पड़ा। वह भी युद्ध में राम के हाथ मारा गया। उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये, पर वे टुकड़े भी युद्ध करने लगे। उसे ईश्वर का वरदान था कि उसके चाहे कितने ही टुकड़े क्यों न हो जायं वे सब राक्षस बनकर युद्ध करेंगे। विभेक ने उपाय बताया। राम ने बाण छोड़ा उसके टुकड़े टुकड़े हो गये। फिर उन्होंने दूसरा बाण छोड़ा उससे वे टुकड़े नदी में बहा दिये गये। उन मृत टुकड़ों का जीवित होना असंभव हो गया और वह मर गया। राम इस विचित्र शत्रु को मार कर भाई, भार्या तथा साथियों के साथ अयोध्या को चल पड़े। समुद्र पार होते ही विभेक ने प्रार्थना की कि समुद्र का पुल तोड़ दिया जाय जिससे अनन्त सागर तरंगबाधा-रहित हो जाय। इतने में दशकण्ठ का पुत्र प्रलयकल्प जो कालअग्गी के पेट से उत्पन्न था वज्रकल्प शब्दों से गरज कर बाप का बदला लेने के लिए आगे आ गया। हनुमान् की बुद्धि से वह भी मारा गया। हनुमान् पहले तो भैंसा बनकर कीचड़ में लोट गये। भैंसे से उसने पूछा राम और लक्ष्मण कहाँ हैं। भैंसे ने कहा पहले मुझे कीचड़ से निकालो तब बताऊँगा। उसने बड़ी मुश्किल से निकाला वह थक कर चूर-चूर हो गया और फिर राम को पूछा। हनुमान् ने कहा राम और लक्ष्मण के पीछे क्यों पड़ते हो? पर वह लड़ने के लिए एकदम सन्नद्ध था। हनुमान् ने वन्दर का रूप धारण किया, युद्ध शुरू हो गया। वह थका तो था, परन्तु हारा नहीं; क्योंकि उसका शरीर वरदान के बल से इतना चिकना था कि पकड़ में नहीं आता था। हनुमान् अपनी एक मायावी मूर्ति से लड़ते रहे और स्वयं एक ऋषि के पास परामर्श लेने गये। ऋषि ने भूमि पर रेत फेंक दी।

हनुमान् समझ गये चिकनाहट कम करने के लिए उस पर रेत फेंक दी। चिकनाहट कम हो गयी। उसको जकड़ कर मार दिया। राम अयोध्या पहुँच गये। राक्षसों के षड्यन्त्रों से भरत और शत्रुघ्न निराश होकर प्राण त्यागने के लिए तैयार थे। ठीक समय पर राम आ गये। राम का विधिवत् अभिषेक हुआ। लक्ष्मण को रोमगल प्रदेश का राजा और भरत तथा शत्रुघ्न को युवराज बनाया। सुग्रीव को खिदखिन का तथा विभेक को लङ्का का राजा बनाया गया। अङ्गद को फ्रया इन्द्रानुभाव के नाम से खिदखिन का युवराज बनाया गया। जम्बूवान को पंगताल का राज मिला। हनुमान् को अयोध्या का शासक बनाया गया। उसकी पदवी फ्रया अनुजित चक्र कूष्ण विषदन वोङ्गस हुई, परन्तु वह तो नारायण के वंशजों का राज था। ज्यों ही वह गद्दी पर बैठा उसके शरीर में आग सी लगने लगी। वह झट गद्दी पर से उतर पड़ा और अयोध्या की गद्दी गद्दी के अधिकारी को दे दी। कृतज्ञ राम ने एक तीर मारा और अनुजित को आज्ञा दी कि इसके मार्ग का पीछा करो जहाँ तीर गिरे वहीं तुम अपनी राजधानी बनाओ। तीर नौ चोटियोंवाले पहाड़ पर गिरा वह चूर चूर हो गया। राम ने विश्वकर्मा को आज्ञा दी "वहाँ अनुजित के लिए नगर बसाओ।" उसका नाम नवपुरी हुआ। फ्रया अनुजित वहाँ के राजा बने। राम सबके महाराज बने।

लङ्का में विद्रोह

चक्रवाल के राजा महापाल ने विभेक पर, जो कि दशगिरिवंश के नाम से वहाँ का राज करता था, आक्रमण कर दिया। राम ने अनुजित (हनुमान्) को सहायतार्थ भेजा। हनुमान् ने उसकी टाँग पकड़कर उसे चीर डाला, पर वह फिर से जुड़कर जी गया। विभेक के बताने पर हनुमान् ने उसका हृदय निकाल लिया, तब वह मर गया। कुछ दिन बाद लङ्का में फिर विद्रोह हो गया। मण्डो जब विभेक की रानी हुई तब वह गर्भवती थी। उसके पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम वैणासुरिवंश था। बड़ा होने पर गुरु ने उसके पिता का इतिहास बताया। वह विभेक से बदला लेने को तैयार हुआ। मण्डो ने समझाया पर वह नहीं माना। गुरुवरणीसुर और वैणासुरिवंश चक्रवर्ती मलिवन के पास पहुँचे। उसके पास अग्निमृत्यु और जलमृत्यु की खाइयाँ थीं। दोनों ने एक विधि से कुछ वैदिक मन्त्र पढ़े। उससे अग्नि बुझ गयी, जल पर रेत डालकर वे घुस गये। मलिवन ने उसकी सहायता के लिए लंका पर चढ़ाई कर दी और विभेक को कैद कर वैणासुरीवंश को लंका का राजा बना दिया। हनुमान् का लड़का, जो बैंझकाया से पैदा था, निकल भागा और पिता को सूचना दी। हनुमान् ने अयोध्या और खिदखिन की सेना लेकर लंका पर चढ़ायी की। नीलवद् ने अपना शरीर बढ़ा लिया, सागर पट गया उसी से सेना उतर गयी। भयंकर युद्ध हुआ। वैणासुरिवंश मारा गया। विभेक मुक्त हुए। मलिवन पर भी आक्रमण किया गया, वह भी मारा गया। उसकी गद्दी पर मच्छानु को बैठाया गया।

सीता-वनवास

विपत्ति के दिन बीत गये, आनन्द का समय आया। परन्तु भाग्य तो क्षण-क्षण में बदलता है। सीता गर्भवती थीं। सम्मनखाँ की बेटी अतुल ने संबन्धियों का बदला लेने की दृष्टि से महल की दासियों का रूप लेकर सीता से पूछा दशकण्ठ कैसा लगता था। उसको इस छल का भेद मालूम न था। उसने स्लेट पर उसका चित्र खींच दिया। वह राक्षसी उसी में समा गयी। राम अचानक आ गये। सीता ने चित्र मिटाना चाहा पर वह और अधिक चमक उठा। सीता ने उसको तकिया के नीचे छिपा दिया। राम पलंग पर लेटे तो गर्मी मालूम होने लगी, क्योंकि अतुल स्लेट के द्वारा आग जला रही थी। राम को नींद न आयी। राम ने लक्ष्मण को बुलाया। कमरे भर में गर्मी के कारण की तलाश हुई तो इस स्लेट का पता लगा। राम को आश्चर्य हुआ कि इस हत्यारे का चित्र किसने बनाया। सीता से पूछा तो उन्होंने सच-सच कह दिया। राम को इससे बड़ा आघात लगा। राम ने लक्ष्मण को

आदेश दिया सीता को ले जाओ इसे मारकर इसका कलेजा मेरे सामने लाओ। अयोध्या के भावी राजा की माता ने राम को समझाने का प्रयत्न किया, परन्तु राम ने कुछ नहीं सुना। लक्ष्मण को सन्देह नहीं था। परन्तु राजाज्ञा के सामने वह लाचार थे। दुःखी सीता रोती हुई लक्ष्मण के साथ बन की ओर चल पड़ी। किसी वृक्ष की छाया में सीता बैठ गयी और लक्ष्मण से आज्ञा पूर्ण करने का अनुरोध किया। पर लक्ष्मण निर्दोष सीता को मारने को तैयार नहीं हो सके। सीता ने मर्मभेदी वचन कहकर उन्हें उत्तेजित किया। लक्ष्मण ने लाचारी से तलवार चलायी, किन्तु स्वयं ही बेहोश होकर गिर पड़े। तलवार फूलों की माला के रूप में परिणत हो गयी। यह सीता के सतीत्व का चमत्कार था। होश आने पर लक्ष्मण सीता को जीवित देखकर प्रसन्न हुए। सच ने झूठ का मुँह काला कर दिया। लक्ष्मण देवताओं से सीता की रक्षा की प्रार्थना करके अयोध्या की ओर चल पड़े। सीता की चिन्ता में लक्ष्मण व्याकुल थे। साथ ही सीता का कलेजा भी राम के सामने हाजिर करना था। इन्द्र को दया आयी उसने माया से रेत के मैदान में एक मृत हरिण डाल दिया। लक्ष्मण ने उसका कलेजा निकाल कर राम को उसकी सूचना दे दी। राम ने उसे देखा। सीता की अवस्था पर इन्द्र को दया आयी। वह भैंसे का रूप धारण कर सीता के निकट आया। आँखों से मूक इशारा किया कि उसके साथ आओ। सीता उसके पीछे चल पड़ी। वह ऋषि की कुटिया में पहुँच गयी। दयाल ऋषि ने पितृवत् स्नेह दिया। वहीं भावी अयोध्या के राजा का जन्म हुआ। इन्द्र की पत्नियाँ धाय का काम करने लगीं। ऋषि ने बालक का नाम मङ्कुट रखा। पुत्र के मुख पर सीता के पति के सभी चिह्न थे, जिनको देखकर कलेजा दो टूक हुआ जाता था। एक दिन बालक को ऋषि के संरक्षण में छोड़कर सीता नदी में स्नान करने के लिए गयी। उसने देखा बन्दरियाँ अपने बच्चे को गले से चिपकाये हैं। बन्दरियों को कूदते देख सीता ने उनसे कहा तुम ऐसे क्यों कूदती हो, बच्चे का ध्यान नहीं ? बन्दिरियों ने कहा तुम तो हमसे भी असावधान हो। ऋषि जो कि समाधि में बैठा है, जिसे संसार की खबर ही नहीं है, उसके संरक्षण में बच्चे को छोड़कर आयी हो। सीता पर उसका असर पड़ा। वह लौट कर बच्चे को उठा लायी। इसी बीच ऋषि की समाधि खुली। बच्चा न देखकर उन्होंने दुर्घटना की सम्भावना कर सीता को दुःख से बचाने के लिए पहले बच्चे की आकृति का ही दूसरा बच्चा बना दिया। सीता ने दोनों का पालन किया। दूसरे का नाम लव हुआ। इस तरह सीता दो पुत्रों की माँ बन गयीं। लड़के दस ही वर्ष की आयु में तेजस्विता और वीरता में बड़े-बड़े सूरमाओं से भी बढ़ गये। मङ्कुट ने अपना धनुष लिया निशाना अजमाने के लिए एक वृक्ष की चोटी पर तीर छोड़ा। बाण ने विद्युत्-वेग से वृक्ष के दो टुकड़े कर दिये। उसका धमाका भूकम्प जैसा हुआ। धमाके की आवाज अयोध्या तक पहुँची। अभी तो नारायण नर-लीला कर ही रहे हैं यह कौन नया तेजस्वी पैदा हुआ। राम ने अश्वमेध रचाया। हनुमान्, भरत और शत्रुघ्न घोड़े के रक्षक नियुक्त हुए। घोड़ा घूमते हुए वहीं पहुँच गया जहाँ से वह धमाका हुआ था। घोड़े के गले में एक तख्ती बँधी थी उसमें लिखा था जो घोड़े पर चढ़ेगा विद्रोही समझा जायगा। दोनों भाइयों ने घोड़ा पकड़ लिया। युद्ध हुआ, हनुमान् मूर्छित हुए। परन्तु मूर्च्छा खुल गयी। मङ्कुट ने उसे ऐसा बाँध दिया कि जब तक मालिक न आयेगा बँधा ही रहेगा। भरत आदि ने बहुत यत्न किया पर बन्धन न खुला। हनुमान् लज्जित होकर राम के पास आये तो बन्धन टूटा। राम ने भरत आदि को आज्ञा दी कि लड़कों को पकड़ कर लाओ। घोर युद्ध हुआ। भरत के तीर से मङ्कुट आहत हुआ। लव माता की कुटिया में चला गया। मङ्कुट को भरत कैद कर अयोध्या ले गये। लव ने माँ से सब हाल कहा। सीता के पास एक माया की अंगूठी थी जिससे बड़े से बड़े बन्धन टूट जाते थे। लव उसे लेकर अयोध्या आया। अंगूठी के प्रभाव से मङ्कुट बन्धनमुक्त हो गया। दोनों वन वापस आये। राम ने बड़ी सेना लेकर मङ्कुट का पीछा किया। बाप-बेटों में घोर युद्ध हुआ। पुत्रों के तीर फूल बनकर पिता के चरणों पर गिरते थे पिता के तीर ऊपर ही ऊपर चले जाते थे। राम ने जानना चाहा ये किसके पुत्र हैं। जब उन्होंने सीता के पुत्र हैं, यह कहा तो उनको बड़ा कौतुक हुआ। लक्ष्मण ने राम को सीता की पूरी कहानी सुनायी, राम को बड़ा हर्ष हुआ कि महारानी

सीता का हृदय इतना पवित्र था। दोनों पुत्रों को लेकर कुटिया पर आये जहाँ सीता पुत्रों की प्रतीक्षा कर रही थी। राम को आता जान कर सीता को बड़ा क्रोध आया। राम ने क्षमा माँगी, महलों में लौटने को कहा। सीता ने अस्वीकार कर दिया। कहा लङ्का में तो पहरे में थी, परन्तु जंगल में मैं दस बर्षों से अकेली हूँ। मेरे प्रति सन्देह के लिए अब तो पहले से भी प्रबल कारण हैं। अब मुझको पत्नी के रूप में कैसे स्वीकार कर सकते हैं। राम निरुत्तर थे। पर सीता ने पुत्रों को जाने की अनुमति दे दी। अयोध्या पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत हुआ। दादियों ने बड़ा ही प्रेम किया। सीता को बुलाने के लिए यह मिथ्या कहलाया गया कि राम का देहान्त हो गया है। समाचार सुनकर सीता बहुत दुःखी हुई और वह राम के शरीर का अन्तिम दर्शन करने को आयी। जहाँ राम की कल्पित अर्थी रखी हुई थी, सीता विलाप करने लगी। राम परदे के पीछे खड़े थे, निकल आये और सीता को अपने संतप्त हृदय से लगाना चाहा। पर यह देखकर तो सीता एकदम क्रुद्ध हो गयी। राम ने सीता को बलात् रोकना चाहा, पर उसने अपने मार्ग को अवरुद्ध देखकर पृथ्वी से प्रार्थना की वह उसे स्थान दे—पृथ्वी फट गयी। वह उसमें होकर पाताल चली गयी, भूमि-विवर बन्द हो गया। श्रीराम विभेक की राय से वन में जाकर तप करने लगे और राक्षसों का सफाया भी। यहाँ राम ने कुम्भाण्ड नामक देव का, जो राक्षसयोनि में था, उद्धार किया। इन्द्र ने ईश्वर से प्रार्थना की कि राम के प्रताप से राक्षसों का अन्त हो गया है। उन्होंने सम्पूर्ण जगत् को पीड़ामुक्त कर दिया है, परन्तु वे स्वयं अत्यन्त सन्तप्त हैं। उनकी प्रिय पत्नी सीता उनको त्याग कर चली गयी है। दयालु ईश्वर ने राम और सीता को बुलाया। दोनों कैलास पर्वत पर उपस्थित हुए। राम ने अनुताप से अपना दोष स्वीकार कर लिया। सीता से क्षमा-याचना की। परन्तु सीता अपने अपमान को न भूल सकती थीं और न क्षमा कर सकती थीं। फिर भी ईश्वर की निरन्तर प्रेरणा से सीता का हृदय पिघला। वह फिर राम पर स्नेह करने के लिए राजी हो गयीं। राम हर्ष से गद्गद हो गये। उनका मन आनन्द सागर में किलोलें करने लगा। प्रेम की ज्योति जाग्रत् हुई। राम आनन्द सागर में क्रीड़ा करने लगे। उनके यशपूर्ण पराक्रम से सारा जगत् जगमगा उठा। उनकी ख्याति की सुरभि से युग-युगान्तर और देश-देशान्तर सुरभित हो गये।

इसी तरह अनेक देशों के अनेक विद्वानों, कवियों तथा महापुरुषों ने राम का गुणगान किया है। भले ही, महर्षि वाल्मीकि और व्यास जैसा आर्ष ज्ञान न होने से उनके वर्णनों में कहीं-कहीं रामायण के आदर्श से विभिन्नता आ गयी है। बहुत सी विचित्र एवं नयी बातें भी जुड़ गयी हैं। फिर भी उनकी भावनाएँ शुद्ध हैं। अतः वह सब भी भाव-वश्य भगवान् की आराधना ही है। परन्तु कुछ अनीश्वरवादी जैनों, बौद्धों तथा ईश्वरवादी कुछ ईसाइयों और मुस्लिमों—वेदादि शास्त्र विरोधी तत्त्वों—ने तो दुष्ट भावना से रामचरित्र को विकृत करने की भी चेष्टाएँ की हैं। उनके लिए भी यह कहा जा सकता है कि भाव-कुभाव, जैसे-तैसे, उन लोगों ने भी भगवान् राम का नाम, गुण, प्रभाव आदि का चिन्तन किया है। जैसे अनिच्छा से भी अग्निदेव का स्पर्श हो जाने पर वह दहन करता ही है। अतः उनका भी कल्याण होना उचित है। वैसे ही जाने अनजाने लिया गया भगवन्नाम भी पापों को नष्ट कर देता है—

"हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः॥"

उदयनाचार्य नास्तिकों की सिफारिश करते हुए भगवान् से कहते हैं कि मैंने यद्यपि श्रुति-युक्ति रूप निर्मल जल से नास्तिकों के दुस्तर्क कलङ्क पङ्क से मसृणित मानस का प्रक्षालन किया तब भी यदि उनके मन में आप (परमेश्वर) पर आस्था नहीं होती तो उनके मन या अन्तःकरण को वज्र ही समझना चाहिये। किन्तु हे अकारण-करुणावरुणालय प्रभो! प्रस्तुत ईश्वरसिद्धिविरोध के प्रसङ्ग से नास्तिक भी बड़े अभिनिवेश से आप का चिन्तन करते

हैं। यह अन्य बात है कि आस्तिक मण्डनीय विषया आप का चिन्तन करते हैं पर नास्तिक खण्डनीय विषया आपका चिन्तन करते हैं। परन्तु चिन्तन वह भी आपका अवश्य करते हैं। अतः जैसे आपने अपने विरोधी रावण आदि का कल्याण किया था वैसे ही आप उन नास्तिकों का भी यथासमय कल्याण अवश्य करें—

"इत्येवं श्रुतिनीतिसंप्लवजलैर्भूयोभिराक्षालिते
येषां नास्पदमादधासि हृदये ते शैलसाराशयाः।
किन्तु प्रस्तुतविप्रतीपविधयाऽप्युच्चैर्भवच्चिन्तकाः
काले कारुणिक त्वयैव कृपया ते तारणीया नराः॥"

३२७ वाँ अनु० : श्याम के उत्तर-पूर्वीय प्रान्तों में लावो भाषा बोली जाती है। लावोसाहित्य के पञ्चतन्त्र में दशरथ द्वारा अन्धमुनिपुत्र-वध तथा राम के विभीषण को शरण देने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त १६वीं शती में **रामजातक** की लावो भाषा में रचना की गयी है। **रामकियेन** की भाँति इस जातक में समस्त रामकथा का घटनास्थल श्यामदेश में ही माना गया है। पूर्वार्ध में रामजन्म की कथा दी गयी है जिसके अनुसार राम रावण के चचेरे भाई हैं। राम के केवल एक ही भाई लक्ष्मण तथा शान्ता बहन का उल्लेख है। रावण शान्ता का अपहरण करता है तथा राम और लक्ष्मण द्वारा पराजित होता है। उत्तरार्द्ध में **वाल्मीकिरामायण** के समस्त कथानक **रामकियेन** से मिलते-जुलते हैं। सीता को इन्द्राणी का अवतार माना गया है, किन्तु इनकी शेष जन्म-कथा **रामकियेन** के सदृश ही है।

सीता-स्वयंवर में रावण उपस्थित था। सीता-खोज के समय दो वृत्तान्त अपेक्षाकृत विस्तृत हैं। (१) राम का वानर रूप धारण कर अञ्जना से हनुमान् को उत्पन्न करता। यह कथा **सेरीराम** के वृत्तान्त पर आधारित है। (२) राम का वाली की विधवा से विवाह करना तथा अङ्गद का पिता बनना। यह कथा अन्यत्र नहीं मिलती। इसके अनुसार हनुमान् और अङ्गद दोनों मिलकर सीता की खोज में लङ्का जाते हैं और वहाँ उत्पात भी मचाते हैं। विभीषण रावण की विधवा (शान्ता) से विवाह करते हैं। बेंजकाया के स्थान पर केले का एक वृक्ष संवार कर और उसे सीता का रूप देकर राम के शिविर के पास की नदी में बहाया जाता है।

अन्य विशेषताएँ **रामकियेन** से अभिन्न हैं। नाग-कन्याओं का सेतु नष्ट करने का प्रयास, महिरावण की कथा, रावण के चित्र के कारण सीता का त्याग, वाल्मीकि द्वारा सीता के एक शिशु की सृष्टि, जिसका सीता पुत्रवत् पालन करती है, लव-कुश-युद्ध तथा सुखान्त निर्वहण। अन्त में जातकशैली के अनुसार राम बुद्ध, रावण देवदत्त, दशरथ शुद्धोदन, लक्ष्मण आनन्द, सीता उप्पलवण्णा आदि राम-कथा और बौद्ध इतिहास के पात्रों की अभिन्नता का उल्लेख किया गया है।

रामजातक का एक अन्य रूप **पालक-पालाम** के नाम से विख्यात है। **रामजातक** से इसमें यह अन्तर है कि इसमें ब्रह्मा को रावण रूप में तथा बोधिसत्त्व को राम और लक्ष्मण के रूप में अवतरित माना गया है।

अनु० ३२८ : एक विद्वान् ने ब्रह्मचक्र की एक हस्तिलिपि प्राप्त की है। इसके कथानक का सार १९५७ ई० में प्रकाशित किया है। इसमें रावण, राम तथा सीता की जन्म-कथाओं का वर्णन है। इसमें सीता-स्वयंवर का वृत्तान्त दिया गया है, जिसमें अन्य राजाओं की उपस्थिति में राम धनुष चढ़ाते हैं। हनुमान् की जन्म-कथा तथा सीता-हरण का वृत्तान्त दोनों मौलिक हैं। राम का वनवास, वालि-वध, हनुमान् की लङ्का-यात्रा, लङ्का-दहन, सेतु-बन्धन, विभीषण की शरणागति, अङ्गद का दूतकार्य, महिरावण-कथा आदि सब कथाएँ अन्य रामकथाओं के समान ही हैं। सीता की अग्निपरीक्षा तथा सीता-त्याग में कुछ नये अंश हैं। लव-जन्म के बाद वाल्मीकि दूसरे शिशु कुश की सृष्टि करते हैं। लव-कुश बाद में राम से युद्ध करते हैं। इसमें भी सुखान्त राम-कथा का निर्वहण है।

ब्रह्मदेश

३२९ अनु०। ब्रह्मदेश का रामकथा-साहित्य अर्वाचीन है। यहाँ के एक राजा ने १७६७ ई० में श्याम की राजधानी अयुतिया को नष्ट कर दिया था। इस विजय के बाद राजा ने श्याम के बहुत कैदियों को अपने साथ ले लिया था, जो ब्रह्मदेश में श्याम के राम-नाटक का अभिनय करने लगे। श्याम की रामकथा के आधार पर यू तो ने १८०० ई० के लगभग **राम यागन** की रचना की थी। यह ब्रह्मदेश का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण काव्य माना जाता है। आजकल रामनाटक, जिसे वहाँ की भाषा में **याम प्वे** कहते हैं, बहुत लोकप्रिय है। इसके अभिनेता बहुमूल्य चेहरे पहनते हैं और अभिनय के दिन इन चेहरों की पूजा भी करते हैं। श्याम के **रामकियेन** पर निर्भर होने पर भी कथानक में कहीं-कहीं मौलिकता है। सीता-हरण वहाँ के अभिनय का लोकप्रिय विषय है। इसमें शूर्पणखा, जिसका नाम गाम्बी रखा गया है, मृग का रूप धारण कर राम को दूर ले जाती है और राम से आहत किये जाने पर राक्षसीरूप से प्रकट होती है। राम की सहायता के लिए जाते हुए लक्ष्मण का कुटी के चारों ओर तीन रेखाएँ खींचने का भी इसमें उल्लेख है जो कि भारत तथा हिन्देशिया की कथाओं में मिलता है। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि राम-कथा, भारत में ही नहीं, किन्तु दूर-दूर पहुँची और अत्यन्त लोकप्रिय हुई। परन्तु उसी **वाल्मीकिरामायण** के ऐतिवृत्तिक तथ्य को विभिन्न देशों ने तथा विभिन्न धर्मानुयायियों ने अपने-अपने रूप में ढालने का प्रयत्न किया। फलतः उनकी भावनाओं के मिलजुल जाने से वेदों, उपनिषदों, वाल्मीकिरामायण तथा अन्य रामायणों, आर्ष पुराणों, इतिहासों तथा संहिताओं के आदर्शों के विपरीत भी बहुत सी बातें जुड़ गयी हैं। त्रैलोक्यसुन्दरी सुलोचना राम के दरबार में आती है। राम के दरबार में वानरों की दृष्टि तक तो इधर-उधर नहीं हिलती है। हनुमान् तो भारतीय रामकथाओं के अनुसार अखण्ड ब्रह्मचारी, ज्ञानियों, भक्तों तथा सन्तों में अग्रगण्य हैं, परन्तु बाहरी राम-कथाओं में हनुमान्, राम और लक्ष्मण को भी अपने ही साँचे में ढालने का प्रयास किया गया है।

पाश्चात्य वृत्तान्त

३३० अनु० में बुल्के कहते हैं, १५वीं० शती ई० से लेकर पाश्चात्य यात्रियों तथा मिशनरियों की भारतसम्बन्धी रचनाओं में रामकथा के विषय में बहुत सामग्री मिलती है। अर्वाचीनता तथा लेखकों की भी अपेक्षाकृत कम जानकारी के कारण यह साहित्य महत्त्वपूर्ण नहीं है। फिर भी उपेक्षणीय नहीं है।

(१) जे० फेनचियो (१६०९ ई०)

एक जेसुइट मिशनरी जे० फेनचियो ने १६०९ ई० में **लिब्रो डा० सेटा** की रचना की है, जिसमें दशावतार-निरूपण के अन्तर्गत दक्षिण की उस समय की एक रामकथा का वर्णन किया है। दशरथ के यज्ञ से लेकर सीता की अग्निपरीक्षा के प्रारम्भ तक का वृत्तान्त इसमें मिलता है। इसके बाद की हस्तलिपि के कई पन्ने खो जाने के कारण राम-कथा का पूरा वर्णन नहीं हो पाया। इसमें अधिकांश कथाएँ **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार हैं। इसमें रावण-कथा का उल्लेख अरण्यकाण्ड की कथा के अन्तर्गत किया गया है। अग्निजा सीता तथा राम का स्वेच्छा से वन के लिए प्रस्थान करने का वृत्तान्त **वाल्मीकिरामायण** से सर्वथा भिन्न है।

(२) ए० रोजेरियुस (१७ वीं शती ई०)

ए० रोजेरियुस डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के पादरी की हैसियत से पुलिकत में ११ वर्ष तक रहे। उनकी रचना **दि ओपन दोरे** का प्रकाशन १६५१ में हुआ। इसमें दशावतारवर्णन के अन्तर्गत रावण-चरित से लेकर अयोध्या-प्रत्यागमन तक की रामकथा का वर्णन **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार हुआ है।

(३) पी० वलडेयुस (१७ वीं शती ई०)

वलडेयुस १६५८ ई० से लेकर ६ वर्ष तक सिंहलद्वीप तथा दक्षिण भारत में रहे। उनकी डच भाषा की रचना **आफ गोडेरंय डर ओस्ट इंडिशे हाइडेनन** जो अधिकांश उपर्युक्त वृत्तान्त नं० (१) पर निर्भर है। १६७२ में प्रकाशित हुई थी। इसमें रावण-चरित से लेकर राम के स्वर्गारोहण तक की कथा है। अग्निपरीक्षा के अतिरिक्त सीता की और अनेक परीक्षाओं का उल्लेख इस रचना की एक विशेषता है।

(४) श्रो० डेप्पर (१७ वीं शती ई०)

ओ० डैप्पर की **असिया** नामक रचना वृत्तान्त नं० (२) और (३) पर निर्भर है। इसका प्रकाशन हालैण्ड में १७वीं शती में हुआ।

(५) डे फरिया (१७ वीं शती ई०)

इनकी स्पेनिश रचना **असिया पोर्तुगेसा** का प्रकाशन १६७४ ई० में हुआ। इसकी कथावस्तु वृत्तान्त नं० (१) पर निर्भर है।

(६) रलासियों डेस एरयर (१६४४ ई०)

फ्रेञ्च भाषा की यह रचना सम्भवतः डे नोबिलि के नोट्स के आधार पर लिखी गयी हो। इसकी राम-कथा (पृष्ट १२–७) बहुत संक्षिप्त है। इसमें धोबी के वृत्तान्त के कारण सीता-त्याग का उल्लेख है।

(७) ला जानटिलिटे डु बेंगाल (१६९८ ई०)

फ्रेञ्च भाषा की इस रचना की रामकथा एक पुर्तगाली वृत्तान्त से बहुत भिन्न नहीं है। इसका रचयिता अज्ञात है।

(८) पुर्तगाली वृत्तान्त (क) (१६७० ई०)

डा० कालेंड ने तीन पुर्तगाली रचनाओं के प्रकाशन के साथ-साथ इनका डच अनुवाद भी किया है। उक्त डाक्टर के अनुसार (क) वृत्तान्त १६७० ई० का है। इसमें उत्तरकाण्ड की सामग्री का भी वर्णन किया गया है।

(९) पुर्तगाली वृत्तान्त (ख) (१७७४ ई०)

इस रचना में सीता अग्नि से उत्पन्न होती हैं।

(१०) पुर्तगाली वृत्तान्त (ग) (१७२३ के पूर्व)

यह फ्रेञ्च वृत्तान्त न० ६ पर निर्भर है।

(११) जे० बी० टावर्नियें (१७ वीं शती ई०)

इन्होंने अपनी भारत-यात्रा के वर्णन में, जो फ्रेञ्च भाषा में है, संक्षिप्त रामकथा का वर्णन किया है।

(१२) एम्० सोनेरा (१८ वीं शती ई०)

एम्० सोनेरा ने अपनी रचना **वोयाज ओस इंड ओरियंटाल** १७८२ में पेरिस में प्रकाशित की थी। इसमें एक संक्षिप्त रामकथा मिलती है (पृ० १६३)। इसमें राम १५ वर्ष की अवस्था में अयोध्या छोड़कर सीता तथा लक्ष्मण के साथ चित्रकूट में तपस्या करते हैं।

(१३) डे पोलिये (१८ वीं शती ई०)

इनकी रचना **मिथोलोजी डेस इण्डू** १८०९ ई० में पेरिस में प्रकाशित हुई। इसमें विस्तृत रामचरित (भाग १ पृ० २९०–३९४ में) मिलता है, जिसे डे पोलिये ने लखनऊ में १८ वीं शती के उत्तरार्द्ध में विलियम जोन्स के भूतपूर्व पण्डित से सुना था। इस रामकथा में बहुत सी कथाएँ पायी जाती हैं, जो **वाल्मीकिरामायण** से सर्वथा भिन्न हैं लेकिन जो प्रायः अर्वाचीन वृत्तान्तों में भी मिलती हैं, जैसे रक्तजा सीता की जन्म-कथा, महिरावण के राम और लक्ष्मण को पाताल ले जाने की कथा आदि।

(१४) जे० ए० डुब्बा (१९ वीं श० ई०)

इनकी प्रसिद्ध रचना 'हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स एण्ड सेरेमोनिस' में एक संक्षिप्त रामकथा (पृष्ठ ६१९-२४, तीसरा संस्करण) जो **वाल्मीकिरामायण** से कई स्थलों में भिन्न है। जैसे, कैकेयी राम से अनुरोध करती है कि अपना राज्याधिकार भरत को दान करें। हनुमान् समुद्र की धारा पर चलकर लङ्का पहुँचते हैं।

(१५) बोले ले गोज (१७ वीं श० ई०)

बोले ले गोज की रचना **रैंजे एन ऑपटेकनिंग एमस्टरडम्** १६६० में सीता-हरण, हनुमान् के लङ्का से सीता को राम के पास ले आने की कथा मिलती है।

(१६) पी० एफ० विनजेनजा मरिया (१७ वीं शती ई०)

इनकी रचना **इल वियाजियो अल इंडिये ओरियेन्टालि** रोम में १६७२ में प्रकाशित हुई। इसमें सीता का जन्म लङ्का में माना गया है।

(१७) चीगेमवाल्ग (१८ वीं शती ई०)

इनकी रचना का अंग्रेजी में अनुवाद १८६९ में मद्रास में प्रकाशित हुआ था। इसका मूल जर्मन, जो १८वीं शती के प्रारम्भ में लिखी गयी थी, १८६७ में प्रकाशित हुई।

(१८) एन्० मानुच्ची

इनकी रचना **स्टोरिया डो मोगोर** (१६५३–१७०८) में धोबी के कारण सीता का त्याग कहा गया है तथा राम परमेश्वरी के पुत्र माने गये हैं।

(१९) लेट्रस एडिफियन्ट

यह जेसुइट मिशनरियों के पत्रों का संग्रह पेरिस से प्रकाशित हुआ है। इसके १७१८ ई० में प्रकाशित १३ वें भाग में अग्निजा सीता का जन्म वृत्तान्त पृ० १४० में तथा शूर्पणखा के पुत्र-वध का एक नया रूप पृ० १७२ में मिलता है।

(२०) दिओगो गोंसाल्वेस (सन् १६१५ ई०)।

इन्होंने अपनी रचना **हिस्तोरिया दि मालाबार** के लिए लगभग १६१५ ई० में लिखी थी। इसका संपादन तथा प्रकाशन १९५५ ई० में मंस्टर में हुआ है। इसके द्वितीय भाग के नवें अध्याय में रावण के अत्याचार तथा विष्णु के अवतार ग्रहण से लेकर रावण-वध के बाद रामेश्वरतीर्थ की स्थापना तक की वाल्मीकीय कथा संक्षेप में प्रस्तुत है। इसमें अन्तर यह है कि राम विष्णु के अवतार एवं लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न क्रमशः शेष, शङ्ख और चक्र के अवतार माने गये। लक्ष्मण शूर्पणखा के नाक और कान के अतिरिक्त उसके स्तन भी तलवार से काटते हैं।

राम हनुमान् के कानों में कुण्डल देखते हैं, जिससे हनुमान् राम की सेवा स्वीकार करते हैं, क्योंकि उनकी माता ने उनसे कहा था जब तुम अपना स्वामी देखोगे तभी तुम्हारे कान में कुण्डल दिखाई देंगे। हनुमान् के कुण्डलों का प्रसंग पाश्चात्य वृत्तान्त न० १, सेरीराम, रामकेर्ति तथा रामकियेन में भी मिलता है।

अभी-अभी गत दिनों रूस में **भारत** तथा **रामायण** का रसियन भाषा में प्रकाशन वारेन्निकोव ने २००० वि० में ही तुलसीदास के **रामचरितमानस** का रूसी भाषा में अनुवाद किया है। **रामचरितमानस** का अनुवाद मराठी, गुजराती आदि के अतिरिक्त अन्य विदेशी भाषाओं में भी प्रकाशित हुआ है। पाश्चात्य विद्वानों ने सुनी सुनायी वार्ता के अनुसार अधिकांश वृत लिखे हैं। भारत में ईसाई-धर्म-प्रचार के लिए मैक्समूलर ने वेदों का प्रकाशन अत्यावश्यक समझा था, क्योंकि उनकी दृष्टि से इससे हिन्दूधर्म की बहुत सी कमजोरियाँ विदित हो जायँगी। इसी तरह ईसाई प्रचारकों को रामायण का विशेषतः विकृत रामकथा का प्रसार ईसाइयत के प्रचार में उपयुक्त प्रतीत हुआ होगा।

त्रयोदश अध्याय

बालकाण्ड

रामकथा के १४ वें अध्याय ३३१ वें अनुच्छेद में श्रीबुल्के ने रामकथा के विकास का वर्णन किया है। उसमें उन्होंने बालकाण्ड के अधिकांश भाग को पीछे का विकास अर्थात् प्रक्षेप माना है। विशेषतः देवताओं द्वारा विष्णु से अवतार लेने की प्रार्थना तथा पायस प्राप्त कर दशरथ का उसे अपनी पत्नियों में बाँटना (सर्ग १५ और १६), देवताओं द्वारा अप्सराओं और गन्धर्वियों से वानरों की उत्पत्ति का वर्णन (सर्ग १७), सिद्धाश्रम वामन की कथा (सर्ग २९), सगरपुत्रों का पाताल में भस्म होना (सर्ग ४०), समुद्रमन्थन (सर्ग ४५), विश्वामित्र के वंश की कथा (सर्ग ३२–३४) जनक द्वारा धनुष तथा सीता के अलौकिक जन्म की कथा तथा उनकी सीता-विवाह-विषयक प्रतिज्ञा (सर्ग ६६,६७), उनकी दृष्टि में ये सब विकास ही हैं। परशुरामकथा (सर्ग ५१–६५), उनकी दृष्टि में प्रक्षेप ही है। दाक्षिणात्य, गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय तीनों पाठों की विभिन्नता के आधार पर वे बहुत सी कथाओं को प्रक्षेप कहते हैं। परन्तु स्वयं भी वे निर्णय नहीं कर पाते हैं कि वस्तुतः कौन पाठ ठीक और सही है। अतएव वे इस पाठभेद का दुरुपयोग करते हुए बहुत से अंशों को प्रक्षेप सिद्ध करने का दुःसाहस करते हैं। इतना ही नहीं जो राम के परब्रह्म तथा विष्णु के अवतार होने की बात तीनों ही पाठों में मिलती है उसे भी प्रक्षेप कहने में उन्हें हिचक नहीं होती है। यह पीछे कहा जा चुका है कि जैसे वेदों में विभिन्न शाखाओं में पुरुषसूक्त भिन्न-भिन्न हैं। उनमें पर्याप्त पाठभेद है, परन्तु वे सभी प्रामाणिक हैं। जिस प्रकार उनको प्रक्षेप नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार प्रकृत में दाक्षिणात्य पाठ, गौडीय पाठ तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ तीनों ही पाठ ठीक हैं। शतकोटि-प्रविस्तर रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि ने अपने विभिन्न शिष्यों में कुछ विभिन्न पाठभेदों और कथाभेदों का उपदेश किया हो तो असम्भव नहीं है। आधुनिक विद्वान् भी अपनी विभिन्न रचनाओं में कुछ परिवर्तन, संशोधन और परिष्कार करते ही हैं। इसी तरह दुर्गासप्तशती में जिसके कोटि-कोटि पाठ होते रहते हैं, दाक्षिणात्य, गौडीय तथा मैथिली पाठों में भेद हैं और वे सभी प्रामाणिक माने जाते हैं। जब तीनों पाठों में प्राप्त होनेवाली अवतार-सामग्री को श्रीबुल्के प्रक्षेप मानते हैं तो पाठभेद का नाम लेकर उसी अंश को प्रक्षेप कहने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है।

३३३ वें अनुच्छेद में उन्होंने सम्पूर्ण बालकाण्ड को प्रक्षेप बना दिया है। उक्त प्रसङ्ग में दिये गये उनके कारणों का पूर्व में पूर्णरूप से निराकरण कर दिया गया है। महत्वपूर्ण ऐतिहासिक पुरुषों के चरित्र का वर्णन करते समय उनके जन्म, बाल्यकाल, विवाह आदि का वर्णन किया ही जाता है। फलतः वाल्मीकि द्वारा भी बालकाण्ड में उनके जन्मादि का वर्णन किया जाना उचित ही था।

इस सम्बन्ध में वे अनुमान करते हैं कि वाल्मीकिकृत रचना में अयोध्या, दशरथ और उनके पुत्रों के परिचय के बाद अयोध्याकाण्ड की कथावस्तु का वर्णन प्रारम्भ हुआ होगा। इस अनुमान में वे महाभारत के द्रोणपर्व, हरिवंश तथा विष्णुपुराण का सहारा लेते हैं। जिनमें वनवास से लेकर रावणबध तक की ही घटनाएँ वर्णित हैं। परन्तु वे उन ग्रन्थों को भी सर्वांश में प्रमाण मानने को प्रस्तुत नहीं होते, अन्यथा उन्हीं ग्रन्थों में श्रीराम को स्पष्टरूप से विष्णु का अवतार कहा गया है, पर उसे वे नहीं मानते हैं। वस्तुतः **महाभारत** और **विष्णुपुराण** आदि की रामकथा का मुख्य स्रोत **वाल्मीकिरामायण** को ही मानते हैं, अतः उसी का संक्षिप्त वर्णन कहते हैं। संक्षिप्त करने में कुछ अंशों का छूट जाना स्वाभाविक ही है। परन्तु यदि राम के सम्पूर्ण वृत्तान्त के मूल ग्रन्थ में भी सम्पूर्ण वृत्तान्तों

का वर्णन न किया जाय तो ऐसी स्थिति में उनकी जानकारी का कोई साधन ही नहीं रहेगा। उनके अन्य सभी तर्कों का खण्डन पीछे किया जा चुका है।

दशरथवंशावली

दशरथ की वंशावली के सम्बन्ध में ३३६ वें अनुच्छेद में श्रीबुल्के कहते हैं कि पौराणिक साहित्य और वाल्मीकिरामायण में प्रधान अन्तर यह है कि पौराणिक साहित्य में इक्ष्वाकु से राम तक ६३ राजाओं के नाम दिये गये हैं, किन्तु रामायण में उनकी संख्या केवल ३६ है। रामायण के ३६ नामों में केवल १८ ही नाम दोनों वंशावलियों में विद्यमान हैं। सम्भव है कि रामायण में केवल उन राजाओं के नामों का उल्लेख हो जिनका राज्याभिषेक हुआ हो। रामसाहित्य की दो अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाओं में वंशावली के विषय में एकरूपता नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** की सूची के अनुसार २३ वाँ नाम दिलीप का है, ३६ वाँ रघु का, ३८ वाँ अज का तथा ३९ वाँ दशरथ का है (**वे० बालकाण्ड** सर्ग ७०)। कालिदास के रघुवंश तथा हरिवंशपुराण (१।१५।२५-२६) के अनुसार दिलीप, रघु, अज और दशरथ में क्रमशः पिता और पुत्र का सम्बन्ध है। श्रीरायकृष्णदास के अनुसार इसका समन्वय यह है कि इस वंश में दिलीप तथा रघु नाम के दो-दो राजा हुए हैं। द्वितीय दिलीप का नाम खट्वाङ्ग तथा द्वितीय रघु का नाम दीर्घबाहु था। परन्तु वस्तुस्थिति इससे भी पृथक् ही है, क्योंकि युगों की कल्पव्यवस्था के अनुसार पुराणों तथा रामायण की कोई भी सूची सम्पूर्ण राजाओं की सूची नहीं मानी जा सकती है।

भरतीय दृष्टिकोण के अनुसार ब्रह्मसंवत् सबसे प्राचीन काल-गणना है जो ब्रह्मा की उत्पत्ति से आरम्भ होकर ब्रह्मा की समाप्ति पर समाप्त होती है। २४०००० मानव वर्ष ब्रह्मा का एक पल होता है। इसी तरह घटी, दिन, रात्रि, पक्ष, मास तथा वर्ष के अनुसार ब्रह्मा की द्विपरार्ध आयु होती है। एक, दश, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्वुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, शङ्कु, समुद्र, अल्पपरार्ध, द्विपरार्ध सङ्ख्या होती हैं। ब्रह्मा के एक दिन को कल्प कहते हैं। ब्रह्मा का एक दिन चार अरब बत्तीस करोड़ मानव वर्षों का होता है। उसमें सन्धि सहित १४ मन्वन्तर होते हैं। उनमें से ६ मन्वन्तर बीत चुके हैं। एक मन्वन्तर में ७१ महायुग (चतुर्युग) होते हैं। उनमें से २७ महायुग बीत चुके हैं। २८ वें महायुग के सत्य, त्रेता और द्वापर बीत कर २८ वाँ कलियुग बीत रहा है।

युधिष्ठिर संवत्सर ३०४४, विक्रमी २०२७-२८ या ईसवीय १९७१-७२ में ५०७२ वर्ष कलि के बीत गये; ४२६९२६ वर्ष अवशिष्ट हैं। युगों का—कृत, त्रेता, द्वापर और कलि का—दिव्य मान क्रम से ४०००, ३०००, २००० और १००० वर्ष का है। परन्तु मानव वर्ष के अनुसार कृतयुग का मान १७२८०००, त्रेता का १२९६०००, द्वापर का ८६४००० और कलि का ४३२००० वर्ष है। ऐसी स्थिति में यदि पौराणिक सूर्यवंशी ६३ राजाओं का सौ सौ वर्ष का भी राज्य-काल माना जाय तो भी दशरथ तक ६३ सौ ही वर्ष व्यतीत होते हैं।

अतः यह मानना होगा कि सूर्यवंश के प्रधान प्रधान राजाओं के नामों की ही रामायण और पुराणों में सूचियाँ हैं। साथ ही उनकी आयु भी सामान्य मनुष्यों की आयु से विशिष्ट मानना उचित है, जैसे श्रीराम ने ११ हजार वर्ष तक राज्य किया था, उनके पूर्वजों ने उनसे भी अधिक काल तक राज्य किया है।

नारायण, ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, सूर्य, मनु, इक्ष्वाकु आदि क्रम से दशरथ ६३वें ठहरते हैं। राम ६४वें ठहरते हैं। रामायण में और भी प्रधान प्रधानों का ही सङ्कलन कर संख्या घटायी गयी है। **प्रतिमानाटक, अग्नि-पुराण, लिङ्गपुराण, ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, भविष्यपुराण** आदि की संख्याओं का समन्वय इसी आधार पर किया जा सकता है।

पउमचरियं के पर्व २१-२२ में दशरथसम्बन्धी विस्तृत वंशावली और उनके नाम कल्पनाप्रधान हैं। वे नाम जैनों द्वारा परिकल्पित किसी जैन राम के लिए ही सङ्गत हो सकते हैं। वैदिक रामायण के राम के लिए नहीं। इसी तरह **खोतानीरामायण** के अनुसार सहस्रबाहु दशरथ के पुत्र तथा राम और लक्ष्मण सहस्रबाहु के पुत्र हैं, यह कल्पना भी कल्पना ही है। **सेरीराम** की नामावली के अनुसार नबी आदम, दशरथ रामन, दशरथ चक्रवर्ती तथा दशरथ नामावली भी कल्पनाप्रधान ही है। इसी तरह श्याम के जातक के अनुसार दशरथ को रावण का चाचा माना जाता है। ब्रह्मा के पुत्र तप्परमेस के दशरथ और विरुल्लोक (विश्रवा) दो पुत्र थे। तप्परमेस दशरथ को अच्छा योद्धा न समझकर अपने कनिष्ठ पुत्र विरुल्लोक को राज्याधिकारी बनाता है। दशरथ राज्य छोड़कर अपनी नयी राजधानी बनाते हैं। दशरथ का भतीजा रावण भी एक नयी राजधानी लङ्का बनाता है तथा दशरथ की पुत्री शान्ता को हर लेता है। दशरथ के दो पुत्र राम और लक्ष्मण अपनी बहन शान्ता के हरण का प्रतीकार करने के लिए रावण को पराजित करते हैं। रावण की राजधानी की यात्रा में तथा यात्रा की वापसी में राम और लक्ष्मण दोनों ही अनेक विवाह करते हैं। उन विवाहों से जो पुत्र उत्पन्न होते हैं वे दूसरे राम-रावण युद्ध में राम की सहायता करते हैं। बाद में रावण के साथ सन्धि की जाती है तथा रावण और शान्ता का विवाह सम्पन्न हो जाता है। इस भूमिका के पश्चात् ही रामायण की कथा प्रारम्भ होती है, जिसमें रावण द्वारा सीता-हरण के कारण राम और रावण का नया युद्ध छिड़ जाता है।

किसी भी घटना के सम्बन्ध में जब अनेक प्रकार के परस्पर विरुद्ध वर्णन विभिन्न ग्रन्थों में मिलते हैं तो सुतरां कहना पड़ता है कि उनमें से एक वर्णन ही ऐतिहासिक तथ्य है अन्य सब अप्रामाणिक एवं कल्पनाप्रधान काव्य, नाटकादिवत् मनोरञ्जनार्थ या ऐतिहासिक तथ्य में भ्रान्तिजननार्थ ही हैं। अनादि अपौरुषेय वेदों एवं तदनुसारी वाल्मीकीय आदि रामायण, महाभारत तथा पुराणों के अनुसार वर्णित रामकथा ही वास्तविक रामकथा है। सर्वप्रथम बौद्धों और जैनों ने ही ऐतिहासिक तथ्यभूत रामकथा में भ्रमजननार्थ विकृत कल्पनाएँ की हैं। उसी का असर कुछ परवर्ती अन्य ग्रन्थों पर भी पड़ा है। परन्तु अधिकांश ग्रन्थों ने वाल्मीकीय रामायण का ही अनुसरण कर रामकथा का वर्णन किया है। थाईलैण्ड की **रामकीर्ति** में भी वाल्मीकीय रामायण का ही अधिकांश अनुसरण किया गया है। कुछ अन्य कल्पनाएँ भी हैं, पर वे **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध नहीं हैं।

दशरथ-पूर्वजन्म की चर्चा

रामकथाओं में दशरथ के पूर्वजन्म की चर्चा तो **वाल्मीकिरामायण** से विरुद्ध न होकर उसकी पूरक ही है। **वाल्मीकिरामायण** के पूरक और समर्थक पुराणों द्वारा वर्णित दशरथ के पूर्वजन्म की कथा सत्य है। अन्य सब कल्पनामात्र ही हैं।

दशरथ-विवाह

आगे ३३७वें अनु० में दशरथ के विवाहों की चर्चा की गयी है। **आनन्दरामायण** (१।१।३२–७४) में दशरथ-कौशल्या विवाह का विस्तृत वर्णन है। उसके अनुसार दशरथ तथा कौशल्या के पुत्र तुम्हारा वध करेंगे यह बात ब्रह्मा से जानकर रावण सरयू में दशरथ की नौका तोड़कर उनको पराजित करता है। दशरथ तथा सुमन्त्र एक नौका-खण्ड के सहारे समुद्र की ओर बह जाते हैं। इतने में रावण कौशल्या को हर लेता है। उसे एक पेटिका में बन्द कर तिमिङ्गिल नामक मत्स्य की रक्षा में छोड़ देता है। तिमिङ्गिल उस पेटिका को एक द्वीप में रखकर अन्य मत्स्य से युद्ध करता है। दशरथ और सुमन्त्र उस द्वीप में पहुँचते हैं और पेटिका को देखकर उसे खोलते हैं। दशरथ कौशल्या से गान्धर्व विवाह करते हैं और तीनों पेटिका में छिप जाते हैं। अनन्तर रावण ब्रह्मा के सामने उनकी

भविष्यवाणी को मिथ्या बतलाता है। ब्रह्मा से यह सुनकर कि दशरथ और कौशल्या का विवाह हो चुका है, रावण पेटिका मँगवाता है। उसको खोलकर कौशल्या, दशरथ तथा सुमन्त्र को देखता है। ब्रह्मा रावण को तीनों का वध करने से रोक देते हैं। वह पेटिका साकेत भेज दी जाती है, जहाँ सुमित्रा आदि अन्य सात सौ स्त्रियाँ दशरथ से विवाह करती हैं। **भावार्थरामायण** (५।९), पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १३, **स्वायम्भुवरामायण** तथा **रामचरितमानस** के कुछ संस्करणों में इस कथा का उल्लेख है। **आनन्दरामायण** प्रामाणिक ग्रन्थ है, **भावार्थरामायण** भी प्रामाणिक ग्रन्थों पर ही आधृत है और उक्त कथा **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध न होकर उसकी पूरक ही है। अतः उक्त वृत्तान्त आस्तिकों को मान्य ही है। जैसे वाल्मीकीय रामायण आर्ष ग्रन्थ है वैसे ही **महाभारत, हरिवंश, विष्णुपुराण** आदि भी हैं, अतः उनका भी प्रामाण्य आस्तिकों द्वारा स्वीकृत है। **पउमचरियं** के अनुसार पद्म (राम) की माता का नाम अपराजिता था। वह अरुहस्थल के राजा सुकोशल तथा अमृतप्रभा की पुत्री थी। गुणभद्र के **उत्तरपुराण** के अनुसार राम की माता सुबाला थी। पूर्वजन्मसम्बन्धी कथाओं में कौशल्या को पूर्वजन्म की अदिति तथा शतरूपा माना गया है।

वाल्मीकिरामायण में केकयराज-पुत्री कैकेयी के स्वयंवर की बात नहीं मिलती। **पउमचरियं** में (पर्व २४) इस स्वयंवर का प्रथम वर्णन हुआ है। इसके अनुसार कौतुकमङ्गल नगर के राजा शुभमति तथा उनकी पत्नी पृथ्वीश्री की पुत्री कैकेयी के स्वयंवर का आयोजन किया गया था। उस समय दशरथ तथा जनक रावण के भय से गुप्तवेश में भ्रमण कर रहे थे। संयोग से कैकेयी के स्वयंवर में पहुँच गये। कैकेयी ने दशरथ को चुन लिया। दशरथ का अन्य राजाओं से युद्ध होने लगा। उस समय कैकेयी ने राजा का रथ हाँका था। राजा ने रथ हाँकने के बदले में पुरस्काररूप से वर प्रदान किया। कैकेयी ने कहा जब आवश्यकता होगी तब माँग लूँगी।

कृत्तिवासरामायण (१।२५) के अनुसार गिरिराज नगर में आयोजित कैकेयी के स्वयंवर में पृथ्वी भर के राजा निमन्त्रित थे, किन्तु उसमें युद्ध का उल्लेख नहीं है। **असमीया बालकाण्ड** (८।१०) में भी कैकेयी के स्वयंवर का वृत्तान्त मिलता है।

सत्योपाख्यान के अनुसार किसी दिन नारद ने दशरथ के पास पहुँच कर कैकेयी के सौन्दर्य की प्रशंसा की। उन्होंने यह भी कहा कि कैकेयी की हस्तरेखा के अनुसार उसे एक महान् पुत्र उत्पन्न होगा। बाद में दशरथ ने एक देवयोगिनी को कैकेयी के पास भेजा। उसने दशरथ की प्रशंसा कर दशरथ की पत्नी बनने की इच्छा उसके मन में पैदा की। कैकेयी विरह के कारण उदासीन हो जाती है। माता उसकी उदासीनता का कारण जानकर केकयराज से दशरथ-कैकेयी विवाह का अनुरोध करती हैं। केकयराज ने दशरथ को बुलाकर कैकेयी से विवाह कर दिया और कैकेयी के पुत्र को राज्य अवश्य दिया जाय यह भी कहा।

कैकेयी केकयराज की कन्या थी यह अश्वमेध के आयोजन के प्रसङ्ग में वाल्मीकिरामायण में वर्णित है। अन्य अंश की पूर्ति आर्षग्रन्थों से करनी उचित है। **पउमचरियं** आदि की कल्पना रामायण से ठीक विपरीत दिशा की ओर चलती है। **पउमचरियं** के अनुसार उसका मुख्य नायक पद्म ही है।

पद्म में ही जैन विद्वान् राम का आरोप करते हैं, परन्तु उनके पात्र इनसे पृथक् और विचित्र नामों के हैं। उनका मेल-जोल **रामायण** से नहीं मिलता है। **रामायण** की कथाओं को विकृत रूप में उपस्थित करना उनकी विशिष्ट शैली है। उनके ग्रन्थों में **वाल्मीकिरामायण** के वर्णनों का उल्लेख कर खण्डन भी किया गया है। अतः रामायणप्रेमियों को **पउमचरियं** आदि से दूर ही रहना उचित है।

३३९ वाँ अनु० : सुमित्रा के सम्बन्ध में **रघुवंश** से विदित होता है कि वह मगधनरेश की पुत्री थी (रघुवंश ९।१७) यही प्रामाणिक है।

पउमचरियं के अनुसार (१२।१०७,१०८) कमलसंकुलपुर के राजा सुबन्धुतिलक की कैकेयी नाम की पुत्री थी; दशरथ ने उससे विवाह किया और उसका नाम सुमित्रा रखा।

कृत्तिवास (१।२६) के अनुसार सिंहल के राजा सुमित्र ने अपनी पुत्री सुमित्रा के विवाह का निमन्त्रण दशरथ को भेजा। दशरथ ने कौशल्या तथा कैकेयी से मृगया का बहाना कर वहाँ जाकर उससे विवाह किया। विवाह की द्वितीय रात्रि को दशरथ ने नवविवाहिता पत्नी को लेकर अयोध्या को प्रस्थान किया। बंगाल में उस रात्रि को अशुभ मानकर कालरात्रि कहते हैं। वह अशुभ रात्रि दशरथ ने सुमित्रा के साथ बितायी, इसी कारण सुमित्रा दशरथ से उपेक्षित हुई। सुमित्रा को देखकर कौशल्या और कैकेयी को आशङ्का हुई। वे सोचने लगीं कि यह हमसे अधिक सुन्दरी है। दशरथ हमारी उपेक्षा करेंगे। अतः दोनों ने पार्वती तथा शङ्कर की उपासना की और उनसे वर माँगा कि सुमित्रा अभागिनी हो। बाद में सुमित्रा को प्रमाद हुआ; जिससे सब पत्नियों से सुन्दर होने पर भी दशरथ उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे तथा कैकेयी का अधिक आदर करने लगे।

असमीया रामायण बालकाण्ड (अध्याय ११) के अनुसार सिंहल देश के राजा सुमित्र की पुत्री सुमित्रा थी। श्रीबुल्के की दृष्टि में कृत्तिवास की उक्त बात मौलिक है, परन्तु भारतीय प्राचीन विद्वानों की दृष्टि से मौलिक (निर्मूल) वस्तु प्रामाणिक नहीं होती है। वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण** तथा **अध्यात्मरामायण** आदि की दृष्टि से दशरथ की साढ़े तीन सौ रानियों में कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा तीन पट्टमहिषियाँ थीं। तीनों का अश्वमेध यज्ञ में भी विशेषोल्लेख है। दिव्य चरु के वितरण में भी सुमित्रा का ध्यान रखा गया है। दशरथ ने ही कौशल्या तथा कैकेयी दोनों के द्वारा सुमित्रा को दो भाग दिलाये जिसके परिणामस्वरूप सुमित्रा को लक्ष्मण और शत्रुघ्न दो पुत्र हुए थे। कौशल्या और कैकेयी ज्येष्ठ थीं। उनकी अपेक्षा सुमित्रा कनिष्ठ थी। इस दृष्टि से उनका प्राधान्य होना भी युक्त ही है। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार सुमित्रा स्वयं कौशल्या का अत्यधिक सम्मान करती थीं। वे ब्रह्मविदुषी थीं। अयोध्याकाण्ड में उन्होंने अपने तत्त्वज्ञान से कौशल्या को आश्वस्त किया था। उनके विचार में राम सूर्य के सूर्य, अग्नि के अग्नि, प्रभु के प्रभु, श्री के श्री, कीर्त्ति के कीर्त्ति तथा क्षमा के भी क्षमा थे। जैसे श्रोत्र, मन आदि में शब्दादि-ग्रहण सामर्थ्यवाले श्रोत्रादि में वह सामर्थ्य आत्मा से प्राप्त होती है अतः वह श्रोत्रादि का श्रोत्रादि है—

> सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यः अग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।
> श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्तेः कीर्त्तिः क्षमा-क्षमा ॥ (वा० रा० २।४४।१५)

रामचरितमानस के अनुसार सुमित्रा के विचार से वही युवती पुत्रवती है जिसका पुत्र भगवद्भक्त होता है—

> "पुत्रवती युवती जग सोई, रघुवर भक्त जासु सुत होई।" (रा० मा० २।७४।१)

वाल्मीकिरामायण के अनुसार सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण को उपदेश करती हुई कहती है कि तुम राम को दशरथ समझो, जानकी को मुझे समझो और वन को अवध समझकर जाओ राम की सेवा करो—

> "रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
> अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥" (वा० रा० २।४०।९)

अतः सुमित्रा को अभागिनी बतलानेवाली कथा ही अभागिनी है।

३४० वाँ अनु० : जैन और बौद्धों के अनुसार अपराजिता (कौशल्या), सुमित्रा, कैकेयी तथा सुप्रभा दशरथ की चार रानियाँ थीं। अन्तिम शत्रुघ्न की माता थी। पद्मपुराण के (पाताल ख० अध्याय ११५) में चार पट्टरानियों के नाम मिलते हैं। उसके अनुसार भरत की माता सुरूपा है एवं शत्रुघ्न की माता सुवेषा है। **दशरथजातक** एवं **तिब्बती** तथा खेतानी **रामायणों** के अनुसार दशरथ की दो ही पटरानियाँ थीं। हिन्देशिया की रामायणों में भी दशरथ के दो ही विवाहों का उल्लेख है। **सेरीराम** तथा **हिकायत महाराज रावण** के अनुसार दशरथ ने अपनी नयी राजधानी का निर्माण करते समय बाँसों के समूह में सिंहासन पर बैठी हुई एक सुन्दर स्त्री को देखा जिसका

नाम मन्दूदारी था। दशरथ तथा मन्दूदारी विवाहोत्सव में वलियारी नामक एक उपपत्नी टूटनेवाली पालकी को सँभालती है। इसपर दशरथ उसे अपनी धर्मपत्नी बनाकर उसके भावी पुत्र को राज्य देने की प्रतिज्ञा करते हैं। जावा के **सेरतकाण्ड** में दशरथ बाँस के समूह में वलियादारू नामक एक अप्सरा को देखकर उसके साथ विवाह करते हैं तथा बाद में उसी स्थान पर वांदोदरी को भी प्राप्त करते हैं। वांदोदरी अपना नाम देवीरागो में बदल देती है।

पाश्चात्यवृत्तान्त नं ११ में भी दशरथ की केवल दो रानियों का वर्णन है। भुइंआ माधवदास के उड़िया विचित्र रामायण में २१ पटरानियों की चर्चा है, जिनमें तीन श्रेष्ठ कही गयी हैं।

वाल्मीकि के अनुसार राम ने वनवास के समय ३५० माताओं से बिदा ली थी—

त्रयः शतशतार्धा हि ददर्शावेक्ष्य मातरः।
ताश्चापि तथैवार्ता मातृर्दशरथात्मजः॥
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं निजगाद कृताञ्जलिः।
संवासात् परुषं किञ्चिदज्ञानादपि यत्कृतम्॥
तन्मे समुपजानीत सर्वाश्चामन्त्रयामि वः। (वा० रा० ३।३९।३६-३८)

पउमचरियं (२८।७१) में दशरथ की ५०० उत्तम स्त्रियों का उल्लेख है। **आनन्दरामायण** में दशरथ की तीन महिषियों के अतिरिक्त ७०० रानियों का उल्लेख है। **कृत्तिवास** एवं सारलादास के **महाभारत** के अनुसार दशरथ की ७५० रानियाँ थीं। **असमीया बालकाण्ड** के अनुसार ७०० तथा **दशरथजातक** के अनुसार १६००० दशरथ की स्त्रियाँ थीं। बिर्होर जाति की रामकथा में दशरथ की रानियों की संख्या ७ तथा जावा के सेरतकाण्ड में दो महिषियों के अतिरिक्त ६ अन्य पत्नियाँ दशरथ की थीं। कहना न होगा कि दशरथ के चरित्र के सम्बन्ध में वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण तथा रघुवंश महाकाव्य की कथाएँ ही प्रामाणिक एवं मूल हैं। अन्य लोगों ने उन्हीं के आधार पर विविध कल्पनाएँ की हैं। या अनेक स्रोतों से उन तक पहुंचते-पहुंचते उनमें अनेक विकृतियाँ जुड़ गयी हैं। रघुवंश का प्रत्येक राजा राजर्षि जितेन्द्रिय, सदाचारी तथा वैदिकधर्म का परम पोषक तथा विशुद्ध अधिकारी होता था। अतः दशरथ भी महान् धर्मात्मा थे। महर्षि वसिष्ठ के नेतृत्व में धर्मनियन्त्रित जीवन व्यतीत करते थे, अतः उनके उपपत्नी आदि की कल्पना सर्वथा निराधार एवं विकृतिमात्र है।

वाल्मीकिरामायण तथा **आनन्दरामायण** का मतभेद तो कल्पभेद से समाहित कर लेना ही उचित है। समाधिजा ऋतम्भरा प्रज्ञा से अनूभूत **वाल्मीकिरामायण** रामकथा में निर्भ्रान्त प्रमाण है। व्यास आदि महर्षियों की उक्तियाँ भी श्रद्धेय है। परन्तु अन्यथा कथन तो सुनी सुनायी बातों के आधार पर ही निर्भर है।

दशरथ की सन्तति

वाल्मीकि के अनुसार राजा दशरथ के राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार पुत्र और उदीच्य पाठ के अनुसार एक शान्ता पुत्री थी। लक्ष्मण और शत्रुघ्न यमल थे। **पउमचरियं** में भी भरत और शत्रुघ्न यमल माने गये हैं (२५।१४)। संघदास के **वसुदेवहिण्डि,** गुणभद्र के **उत्तरपुराण,** संथाली रामकथा तथा मराठी **भावार्थरामायण** में भरत और शत्रुघ्न सहोदर भाई माने गये हैं। जावा के **सेरतकाण्ड** में दशरथ की दो पत्नियों के दो-दो पुत्र हुए। ज्येष्ठा के राम और भरत तथा कनिष्ठा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न। **हिकायत महाराज रावण** में राम और लक्ष्मण कनिष्ठा के पुत्र माने गये हैं एवं भरत तथा शत्रुघ्न ज्येष्ठा के पुत्र। **सेरीराम** में राम तथा लक्ष्मण मन्दूदारी के पुत्र

माने जाते हैं। इस रचना में शान्ता भरत और शत्रुघ्न की सहोदरी है। माता का नाम बलियादारी है। **सेरीराम** के पातानी पाठ के अनुसार लक्ष्मण राम के सखा थे, भाई नहीं। राम स्वयं विष्णु के सेनापति के पुत्र हैं। एक अन्य विकृत वृत्तान्त के अनुसार राम परमेश्वरी के पुत्र माने जाते हैं। ज्ञातव्य है कि श्रीबुल्के भी उक्त वृत्तान्त को विकृत ही मानते हैं। इसी प्रकार कहा जाता है कि **वाल्मीकिरामायण** के पाठ-भेदों में भरत तथा लक्ष्मण में कौन ज्येष्ठ है इस संबन्ध में मतभेद है। **दशरथजातक** तथा **वाल्मीकिरामायण** के उदीच्य पाठ में भरत कनिष्ठ माने जाते हैं (**वाल्मीकिरामायण** गौडीय पाठ १।१९।१०।वा० रा० पश्चिमोत्तरीय पाठ १।१४।५)। लेकिन दाक्षिणात्य पाठ में लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न कनिष्ठ हैं। परन्तु दाक्षिणात्य पाठ में भी एक स्थल पर भरत कनिष्ठ प्रतीत होते हैं जैसे—

"ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीञ्च परन्तपः।
अथाभ्यवादयत्प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥" (वा० रा० ६।१२७)

अर्थात् राम से मिलने के बाद भरत ने लक्ष्मण और वैदेही से मिलकर भरत नाम लेकर अभिवादन किया। वस्तुतः उपर्युक्त श्लोक का अर्थ यह समझना चाहिये कि राम से मिलने के बाद परन्तप भरत ने लक्ष्मण से मिलकर अपना भरत नाम लेकर वैदेही का अभिवादन किया, अतएव **भरतज्येष्ठत्वनिर्णय** ग्रन्थ द्वारा भरत का ही ज्येष्ठत्व निश्चित है (दे० मद्रास कैटलाग नं० ३४९२ सी) तथा **प्रतिमानाटक** में भरत को लक्ष्मण का अनुज कहा गया है। श्रीबुल्के के अनुसार भी प्राचीन काल में अधिकांश रामकथाओं में **अग्निपुराण, कूर्मपुराण, रामायणमञ्जरी, रघुवंश** आदि में भरत को ही ज्येष्ठ माना गया है। अतएव युद्ध के बाद लक्ष्मण ही भरत का अभिवादन करते हैं **रघुवंश** (१३।७३)। पाठभेद के आधार पर भरत के कनिष्ठ होने की कथा को कल्पान्तरीय मानना चाहिये। बहुत सी विदेशी कथाओं में दशरथ के केवल दो पुत्रों का उल्लेख है। **तिब्बती रामायण** में दशरथ की दो पत्नियों को एक-एक पुत्र हुआ था। **खोतानी रामायण** में भी राम और लक्ष्मण दो पुत्रों का ही उल्लेख है। किन्तु इस रचना में दोनों सहस्रबाहु के पुत्र तथा दशरथ के पौत्र माने जाते हैं। प्रधानता के कारण संभव है कि विदेशों में राम और लक्ष्मण की ही चर्चा पहुँची होगी, फिर भी प्रामाणिक रामायणों के अनुसार चार पुत्र और शान्ता कन्या की बात ही प्रामाणिक है।

शान्ता दशरथ की औरसी तथा रोमपाद की दत्ता पुत्री

अनु० ३४३ : **वाल्मीकिरामायण** के दक्षिणात्य पाठ में दशरथ तथा रोमपाद की घनिष्ठता का निर्देश है।

"अङ्गराजेन सख्यं च तस्य राज्ञो भविष्यति।" (वा० रा० १।११।३)
"सख्यं सम्बन्धकञ्चैव तदा तं प्रत्यपूजयत्।" (वा० रा० १।११।१८)

यों शान्ता रोमपाद की पुत्री थी (वा० रा० १।९।१३ और १।११।१९)। यह भी स्पष्ट है कि शान्ता को रोमपाद ने ऋष्यशृङ्ग के लिए पत्नीरूप में प्रदान किया था। सुमन्त्र के परामर्शानुसार दशरथ रोमपाद के निकट जाकर निवेदन करते हैं कि ऋष्यशृङ्ग अयोध्या आकर अश्वमेध अनुष्ठान करें। तदनुसार ऋष्यशृङ्ग सपत्नीक दशरथ के साथ अयोध्या आते हैं। पुनश्च शान्ता अपने मायके वापस आयी इसका कोई संकेत नहीं मिलता (वा० रा० १।११।३०)। दशरथ को अपनत्य भी कहा गया है (वा० रा० १।११।५)। गौडीय पश्चिमोत्तरीय पाठों में शान्ता रोमपाद की पुत्री मानी जाती है। **"शान्तां स्वकां दुहितरम्"** (गौ० पा० वा० रा० १।८।२६; प० पा० १।८।२५।)

"उवास तत्र सुखिता कञ्चित् कालं सहद्विजा।" (वा० रा० १।११।३१) के अनुसार विदित होता है कि शान्ता अपने पति के साथ वहाँ कुछ ही काल रही थी। एतावता यज्ञसंपादन के अनन्तर वह अपने मायके गयी ही होगी।

महाभारत में रोमपाद को **'सखा दशरथस्य'** कहा है (म०भा० ३।११०।१९) तथा इसका कई स्थलों पर उल्लेख है कि रोमपाद ने अपनी पुत्री शान्ता को ऋष्यशृङ्ग को प्रदान किया था। (म० भा० ३।११०।५; १२।२२६।३५; १३।१३७।२५)। **हरिवंश** (१।३१।४६), **मत्स्यपुराण** (४८।९९, ९९।१०३) तथा **ब्रह्मपुराण** (१३।४०)। इन सब में शान्ता को रोमपाद की पुत्री कहा गया है। फिर भी यह असंभव नहीं है कि दाक्षिणात्य पाठ के कुछ द्व्यर्थक स्थलों के कारण शान्ता दशरथ की पुत्री मानी जाने लगी हो। सुमन्त्र दशरथ से कहते हैं, **"ऋष्यशृङ्गस्तु जामाता पुत्रांस्तव विधास्यति"** (वा० रा० १।९।१९)। यहाँ पर सन्दर्भ के कारण ऋष्यशृङ्ग को रोमपाद का ही जामाता समझना चाहिये, किन्तु व्याकरण की दृष्टि से वह दशरथ के भी जामाता हो सकते हैं। **इसी कारण** टीकाकार गोविन्दराज लिखते हैं—

"जामाता रोमपादस्य दशरथस्यापि
दशरथस्यौरसी शान्ता दत्ता रोमपादस्य।"

१. यह कहना चिन्त्य है। १।११।३० श्लोकार्थ पर दृष्टि देने से संकेत स्पष्टतः प्रतीत होता है— विशालाक्षी शान्ता को पति के साथ आयी हुई देखकर राजा दशरथ का सारा अन्तःपुर शान्ताविषयक प्रेम से अत्यन्त आनन्दित हुआ। रामाभिरामीय टीका में नागेशजी लिखते हैं—बहुकालविश्लेषोत्तरं मिलितत्वाच्चानन्दामिरन्तःपुरस्य। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि नागेशजी को भी शान्ता दशरथ की औरसी पुत्री है यह इष्ट था। रोमपाद की वह दत्ता पुत्री थी।

वस्तुतः शान्ता दशरथ की औरसी पुत्री तथा रोमपाद की दत्ता पुत्री थी। यहाँ व्याकरण की कोई बात नहीं है, अतएव महावैयाकरण नागेश अपनी रामाभिरामीया टीका में यही समाधान करते हैं कि अङ्गराज रोमपाद दशरथ के मित्र हैं, अतः मित्र के जामाता होने से दशरथ के भी जामाता हैं। **"मित्रजामाता स्वस्यापि जामातैवेत्यतो जामातेत्युक्तिः।"**

इसी तरह

"इक्ष्वाकूणां कुले जातो भविष्यति सुधार्मिकः।
नाम्ना दशरथो राजा श्रीमान् सत्यप्रतिश्रवः॥" (वा० रा० १।११।२)

तथा

अङ्गराजेन सख्यं च तस्य राज्ञो भविष्यति।
कन्या चास्य महाभागा शान्ता नाम भविष्यति।" (वा० रा० १।११।३)

यहाँ 'अस्य' शब्द स्पष्टरूप से रोमपाद से सम्बन्ध रखता है भले किसी संस्करण में तस्य पाठ भी मिलता हो तथापि मूल व्यापक पाठ 'अस्य' ही है। नागेश ने 'अस्य' का 'अङ्गराजस्य' अर्थ किया है।

"अङ्गोराजोऽनपत्यस्तु लोमपादो भविष्यति।
स राजानं दशरथं प्रार्थयिष्यति भूमिपः॥
अनपत्याय मे कन्यां सखे दातुं त्वमर्हसि।
शान्तां शान्तेन मनसा पुत्रार्थं वरवर्णिनीम्॥"

(गौ० पा० वा० रा० १।१०।४); प० पा० वा० रा० १।९।४,५)। उदीच्य पाठों के उसी सर्ग में लोमपाद ऋष्यशृङ्ग के पास जाकर दशरथ के विषय में कहते हैं—

"अनेन मेऽनपत्याय दत्तेयं वरर्णिनी।
याचते पुत्रकृत्यार्थं शान्ता प्रियतमात्मजा॥"

इससे स्पष्ट है कि गौडीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ के अनुसार शान्ता दशरथ की ही पुत्री थी, जिसे दशरथ ने लोमपाद को दत्तकरूप में प्रदान किया था। श्रीबुल्के के अनुसार उदीच्य पाठों की यह धारणा दाक्षिणात्य पाठ की द्व्यर्थता से उत्पन्न तो हो सकी है, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इसका वास्तविक कारण अन्यत्र ढूंढना चाहिए।

हरिवंश, मत्स्यपुराण, वायुपुराण तथा **ब्रह्मपुराण** के अनुसार अङ्गराज चित्ररथ के दो नाम थे दशरथ तथा लोमपाद, अतः शान्ता पहले अङ्गराज दशरथ की पुत्री मानी गयी थी; किन्तु अयोध्यानरेश अज-पुत्र दशरथ कहीं अधिक विख्यात थे, शान्ता बाद में उन्हीं दशरथ की पुत्री मानी जाने लगी।

"अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत्।
लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताऽभवत्॥" (ह० व० १।३१।४६)

परवर्त्ती रचनाओं, में बहुधा अयोध्यानरेश दशरथ की पुत्री शान्ता का उल्लेख किया गया। उदाहरणार्थ **विष्णुपुराण** (४।१२।१६), भवभूति का **उत्तररामचरित** (अङ्क १ की प्रस्तावना), **स्कन्दपुराण** (नागरखण्ड अध्याय ९८) **पद्मपुराण** (पातालखण्ड अ० १२) **आनन्दरामायण** (१।१।१६,१७), **असमीया बालकाण्ड** (अ० १८), मराठी **भावार्थरामायण** तथा सारलादास का उड़िया **महाभारत**। **भावार्थरामायण** में इन्द्र दशरथ को शान्ता तथा ऋष्यशृङ्ग का विवाह सम्पन्न करने का परामर्श देते हैं (१।१)।

गोविन्दराज ने (१।९।१९) उद्धरण में शान्ता को दशरथ की औरसी पुत्री माना है। इसी प्रकार सर्ग ११ में रोमपाद तथा दशरथ के जो 'सम्बन्धकम्' का उल्लेख है उसका रामवर्मा तथा गोविन्दराज यह अर्थ करते हैं कि शान्ता दशरथ की पुत्री थी जिसे उन्होंने रोमपाद को प्रदान किया था (वा० रा० १।११।१८)। **कृत्तिवास रामायण** (१।२९) के अनुसार दशरथ ने निःसन्तान लोमपाद को अपनी पहली सन्तान देने की प्रतिज्ञा की थी। अतः जब उनकी पत्नी (भार्गव राजा की पुत्री) एक कन्या को जन्म देती है, दशरथ उसका नाम हेमलता रखकर उसे लोमपाद के यहाँ भेजते हैं। बाद में हेमलता के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु दशरथ की कन्या का नाम शान्ता ही माना जाता है। बङ्गाल की रामकथाओं में दशरथ की पुत्री का प्रायः उल्लेख मिलता है। अद्भुताचार्य के **रामायण** में इनका नाम शान्ता ही है, किन्तु चन्द्रावतीकृत **रामायण** में कुकुआ नाम की कैकेयी की एक पुत्री की चर्चा है (दे० दिनेशचन्द्र सेन पृ० १९७)। **सुवर्चस् रामायण** में शान्ता के प्रति सीता के शाप तथा उसके पक्षी योनि प्राप्त करने की कथा पायी जाती है।

विदेश की कुछ ही कथाओं में दशरथ की पुत्री का उल्लेख है। हिन्देशिया के **सेरीराम** में इनका नाम कीकवी है और वह भरत और शत्रुघ्न की सहोदरी मानी जाती है। श्याम के **रामजातक** तथा **पालकपालाम** में दशरथात्मजा शान्ता का विवाह रावण से होता है। **दशरथजातक** में सीता को दशरथ की पुत्री माना जाता है। माधवदासकृत **विचित्ररामायण** के अनुसार शान्ता की उत्पत्ति निम्नोक्त प्रकार से हुई है, दशरथ ने इन्द्र के यहाँ जाते समय उतावली के कारण गोमाता तथा मुनि तारक्ष्य की अवज्ञा की थी और मुनि ने उन्हें निःसन्तान होने का शाप दिया था। लौटते समय दशरथ मुनि से मिले। दशरथ की अनुनयविनय को सुनकर मुनि ने शाप बदल कर कहा तुम्हारी पहली सन्तान एक लड़की होगी; तुमको उसे ऋष्यशृङ्ग को देना चाहिये। ऋष्यशृङ्ग से यज्ञ कराने से तुम्हें पुत्र उत्पन्न होंगे। बाद में शान्ता के स्वयंवर के अवसर पर परशुराम आ पहुँचते हैं तथा ऋष्यशृङ्ग के साथ कन्या का विवाह कराने का आदेश देते हैं। इस पर एक वेश्या को भेजकर ऋष्यशृङ्ग को बुलाया जाता है और उनके साथ शान्ता का विवाह सम्पन्न किया जाता है। श्रीबुल्के के अनुसार दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार शान्ता दशरथ की पुत्री नहीं है, परन्तु द्व्यर्थकता से उदीच्य पाठों की यह धारणा बनी कि शान्ता दशरथ की पुत्री है। परन्तु उनके

अनुसार इसका कारण अन्यत्र ढूढ़ना चाहिये ओर **हरिवंशपुराण** आदि के अनुसार अङ्गराज चित्ररथ के पुत्र ही दशरथ और लोमपाद दो नाम थे, अतः लोमपाद की पुत्री ही दशरथ-पुत्री है, किन्तु अयोध्यानरेश दशरथ की प्रधानता के कारण उस दशरथ को भूलकर लोग भ्रान्तिवश अयोध्यानरेश की पुत्री शान्ता को समझने लगे। अतः परवर्ती **विष्णुपुराण** आदि प्रायः सभी ग्रन्थों में भ्रान्ति से ही अयोध्यानरेश दशरथ की पुत्री शान्ता मानी जाने लगी।

वस्तुतः यह श्रीबुल्के का महान् दुःसाहस ही है, क्योंकि इसमें उदीच्य, पश्चिमीय सभी पाठों तथा **विष्णुपुराण** आदि सभी ग्रन्थों को भ्रान्तिमूलक मानना पड़ेगा, जो सर्वथा असंगत है। **वाल्मीकिरामायण** के उदीच्य तथा पश्चिमीय पाठ भी प्रामाणिक ही हैं। यह ठीक है कि दाक्षिणात्य पाठ में शान्ता दशरथ की पुत्री नहीं मानी गयी। यद्यपि गोविन्दराज अन्य पाठों और पुराणों के समन्वय की दृष्टि से शान्ता को दशरथ की औरसी पुत्री मानकर दाक्षिणात्य पाठ को तदनुगुण ही लगाते हैं, तथापि रामवर्मा के नाम से रामाभिरामीय टीका रचनेवाले उनके गुरु नागेश भट्ट ने तत्र तत्र लोमपाद की ही पुत्री शान्ता है यही कहा है। "**संख्य सम्बन्धकञ्चैव**" (वा रा० १।११।१८) की टीका में भी उन्होंने यही कहा है कि स्वमैत्रीसम्बन्ध जानकर ऋष्यशृङ्ग ने दशरथ का आदर किया। यह सम्बन्ध वैसा है जिससे ऋष्यशृङ्ग दशरथ के भी जामातृत्व व्यवहार के योग्य सिद्ध होते हैं। इसी अभिप्राय से पीछे ऋष्यशृङ्ग को जामाता कहा गया है। 'संख्यं स्वमैत्रीसम्बन्धकं यौनादिसम्बन्धः ऋषिपुत्राय रोमपादेनाख्यातं कथितं तदा तच्छ्रवणसमनन्तरकाले तं दशरथं प्रत्यपूजयत् ऋष्यशृङ्ग इति शेषः। तेन सह रोमपादेन सम्बन्धश्चायं तादृशो येन दशरथस्यापि जामातृत्वव्यवहारयोग्यः ऋष्यशृङ्गः, एतदेवाभिप्रेत्योक्तं प्राक् तत्र जामातेति' इतना ही नहीं रामाभिरामीय तिलक व्याख्या में पाठान्तर का भी स्मरण किया है—

कचिच्चैवं पठ्यतेऽपि

"अनेन मेऽनपत्याय दत्तेयं वरवर्णिनी।
याचते पुत्रतुल्यैषा शान्ता प्रियतरात्मजा।"

अर्थात् इन्होंने मेरी प्रार्थना पर मुझ अनपत्य को यह पुत्रतुल्य सुन्दर रूपवाली प्रियतरा पुत्री प्रदान की थी। अतः तिलक या रामाभिरामीयकार को भी पाठान्तर ज्ञात है। वह पाठान्तर-भ्रान्तिकृत नहीं है, किन्तु सम्प्रदाय-भेदकृत है और वह सम्प्रदायभेद कल्पभेद को लेकर उपपन्न हो जाता है। रामाभिरामीय टीका की दृष्टि से यद्यपि दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार शान्ता दशरथ की पुत्री नहीं है। वह लोमपाद की ही पुत्री है। दशरथ के वे मित्र थे, अतः ऋष्यशृङ्ग मित्र के जामाता होने के कारण दशरथ के भी जामाता कहे गये हैं। तथापि गोविन्दराज **विष्णुपुराण** तथा दाक्षिणात्य पाठ को भी उसके अनुगुण लगाते हैं। इस पक्ष में कोई दोष न होने से कल्पभेद मानने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है। गौडीय आदि **वाल्मीकिरामायणपाठ** तथा **विष्णुपुराण** आदि भ्रान्तिमूलक नहीं हैं। **विष्णुपुराण** भी आर्ष ग्रन्थ है। श्रीबुल्के की धारणा के अनुसार वह ७वीं श० ई० का नहीं है। **हरिवंश** के अनुसार चित्ररथ के पुत्र लोमपाद का दशरथ नाम भी इसीलिए था कि वे दशरथ के अभिन्नहृदय मित्र थे। इसीलिए लोग उन्हें दशरथ ही समझते थे। अन्य वचनों के साथ एकवाक्यता करने पर दशरथ की शान्ता औरसी पुत्री थी और लोमपाद की दत्ता पुत्री थी। इस तरह **हरिवंश** की भी संगति लग जाती है। दाक्षिणात्य, गौडीय, उदीच्य, पश्चिमीय पाठों तथा **विष्णुपुराण** आदि की संगति लग जाती है। किसी को भी भ्रान्तिमूलक मानने की आवश्यकता नहीं रहती। इसके अनुसार मित्र के जमाता होने के कारण ऋष्यशृङ्ग दशरथ के भी जामाता कहे जा सकते हैं। वैसे ही दत्तक पुत्री होने पर भी शान्ता रोमपाद की दुहिता कही ही जा सकती है। इसी दृष्टि से **हरिवंशपुराण** (१।३१।४६) की तथा **विष्णुपुराण** और **ब्रह्मपुराण** की भी संगति लग जाती है। जिनमें कि शान्ता को लोमपाद की पुत्री और उनके द्वारा ऋष्यशृङ्ग को उसका प्रदान करना कहा गया है, क्योंकि दत्तक पुत्री होने से भी शान्ता लोमपाद की पत्री ही

है। **स्कन्दपुराण**, **आनन्दरामायण** आदि भी आर्ष और प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। उनको आधुनिक मानना भी असङ्गत ही है। शान्ता भार्गवराजपुत्री कि कन्या है या कैकेयी की कन्या है या शत्रुघ्न की सहोदरी है यह अवान्तर प्रश्न है। सीता दशरथ की पुत्री है यह तो वर्णाश्रमविरोधी बौद्धों द्वारा अपनी भावनाओं का प्रदर्शनमात्र है। उनकी दृष्टि में भाई-बहन की शादी में भी कोई दोष नहीं होता।

अहल्योद्धार

२४४ वें अनुच्छेद में अहल्योद्धार के प्रसङ्ग पर श्रीबुल्के का कहना है कि शतपथब्राह्मण से लेकर वैदिक साहित्य के अनेक ग्रन्थों में इन्द्र और अहल्या की कथा का बीज मिलता है। उनमें इन्द्र को अहल्या का जार कहा गया है। वैदिक साहित्य के टीकाकारों ने अहल्या की कथा को रूपकमात्र माना है तथा उस रूपक की अनेक प्रकार से व्याख्या की है। अहल्या भूमि, जिसमें हल नहीं चलाया जाता, तथा वर्षा के अधिष्ठाता देवता इन्द्र का सम्बन्ध स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। परवर्ती साहित्य में अहल्या की कथा का पर्याप्त विकास हुआ तथा उसका सम्बन्ध राम से जोड़ा गया है। **महाभारत** में गौतम को अहल्या का पति माना गया है। वास्तव में वैदिक साहित्य में लिखा है कि इन्द्र अपने को गौतम कहलाते थे **कौशिक ब्राह्मण गौतमब्रुवाणेति** (शत० ब्रा० ३।३।४।१८), **जैमिनीयब्राह्मण** (२।७९) तथा **षड्विंशब्राह्मण** (१।१।२४) में इसके विषय में निम्नोक्त कथा मिलती है। देवता तथा असुर युद्ध कर रहे थे। गौतम दोनों सेनाओं के बीच तपस्या कर रहे थे। इन्द्र ने उनके पास जाकर निवेदन किया कि वे देवताओं के गुप्तचर बन जायँ। गौतम ने उनका निवेदन अस्वीकार कर दिया, जिसपर इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर गुप्तचर बन जाने का प्रस्ताव रखा। गौतम ने इसे स्वीकार कर लिया। इस कथा के आधार पर इन्द्र के 'अहल्याजार' नाम को दृष्टि में रखकर यह माना जाने लगा होगा कि अहल्या के पति का नाम गौतम ही था। अहल्या की वंशावली के विषय में **हरिवंशपुराण** (१।३२।२८-३२) में माना गया है कि मुद्गल, मौद्गल, इन्द्रसेन तथा वध्र्यश्व में क्रमशः पिता-पुत्र का सम्बन्ध था। वध्र्यश्व तथा मेनका की दो सन्तानें थीं—दिवोदास तथा अहल्या। अहल्या ने गौतम की पत्नी बनकर शतानन्द को जन्म दिया था। अहल्या के पिता का नाम **विष्णुपुराण** (४।१९।६१) में बृहदश्व, **मत्स्यपुराण** (५०।६१) में विन्ध्याश्व तथा **भागवत** (९।२१।३४) में मुद्गल ही माना गया है। **वाल्मीकिरामायण** के उत्तरकाण्ड में पहलेपहल अहल्या की उत्पत्ति तथा गौतम-अहल्या के विवाह का वर्णन है। ब्रह्मा ने दूसरे प्राणियों के सर्वश्रेष्ठ अङ्गों को लेकर एक ऐसी स्त्री का निर्माण किया जिसमें हल (कुरूपता) का सर्वथा अभाव था। इन्द्र अहल्या की अभिलाषा करते थे, किन्तु ब्रह्मा ने उसे धरोहर के रूप में गौतम ऋषि के यहाँ रखा था। बहुत वर्षों के बाद गौतम ने उसे ब्रह्मा के पास लौटाया। ब्रह्मा ने तपस्वी गौतम की सिद्धि देखकर उन्हें अहल्या को पत्नीरूप में प्रदान किया। **ब्रह्मपुराण** (अ० ८७) में इस वृत्तान्त का विकसित रूप पाया जाता है। उसके अनुसार ब्रह्मा ने गौतम को अहल्या के पालन-पोषण का भार सौंपा था। अहल्या की यौवन-प्राप्ति पर समस्त देवता, मुनि, दानव, यक्ष तथा राक्षस उसे माँगने लगे; किन्तु इन्द्र ने विशेष आग्रह किया। यह देखकर ब्रह्मा ने कहा कि जो पृथ्वी की प्रदक्षिणा करके सर्वप्रथम मेरे पास आये, उसी को अहल्या दी जायगी। इसपर समस्त देवता पृथ्वी की प्रदक्षिणा करने निकले, किन्तु गौतम ने अर्धप्रसूता सुरभि तथा शिवलिङ्ग की प्रदक्षिणा की और अहल्या को प्राप्त किया। **आनन्दरामायण** में इस कथा की ओर संकेत किया गया है—

"ब्रह्मणा निर्मिताऽहल्या द्विमुखीगोः परिक्रमात्। दत्ता पुरा गौतमाय" (आ० रा० १।३।१८)

पउमचरियं (पर्व १३) के अनुसार अहल्या ज्वलनसिंह तथा वेगवती की पुत्री है, जिसने अपने स्वयंवर के अवसर पर इन्द्र को ठुकरा कर नन्दिमाली (अथवा आनन्दमालिवर) को चुन लिया था। बाद में नन्दिमाली को वैराग्य हुआ और उन्होंने दीक्षा ले ली। किसी दिन इन्द्र ने उस ध्यानस्थ नन्दिमाली को बाँधा था, जिसका परिणाम

यह हुआ कि इन्द्र रावण से हार गये। पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १ में अहल्या को भूल से विश्वामित्र की पत्नी माना गया है।

गौतमपत्नी अहल्या के साथ इन्द्र के दुराचर का वर्णन पहलेपहल **महाभारत** में मिलता है। जहाँ चिरकारिता की प्रशंसा करते हुए गौतम के पुत्र चिरकारी का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। अपनी स्त्री के व्यभिचार से क्रुद्ध गौतम ने चिरकारी को अहल्या का वध करने का आदेश दिया तथा वन चले गये। अपने स्वभाव के अनुसार चिरकारी ने अपने पिता की इस आज्ञा पर बहुत समय तक विचार किया। इतने में गौतम वन में सोचने लगे कि मैंने अपनी निर्दोष पत्नी के वध का आदेश देकर अच्छा नहीं किया। इन्द्र ब्राह्मण के वेष में मेरे आश्रम में आये थे, मैंने उनका आतिथ्यसत्कार किया था। बाद में जो दुःखद घटना हुई उसमें मेरी स्त्री का कोई दोष नहीं था। "**अत्र चाकुशले जाते स्त्रिया नास्ति व्यतिक्रमः**।" (म० भा० १२।२५८।४६)। अतः वह घर लौटे तथा अपनी पत्नी को सकुशल पाकर अपने पुत्र की चिरकारिता की प्रशंसा करने लगे। **महाभारत** के कई स्थलों पर इन्द्र के प्रति गौतम के शाप का उल्लेख है, किन्तु अहल्या को **महाभारत** में सर्वत्र निर्दोष ही माना गया है। **वाल्मीकिरामायण** (उत्तरकाण्ड सर्ग ३०) के अनुसार भी अहल्या निर्दोष है किन्तु बालकाण्ड (अध्याय ४८) में कहा गया है कि कुतूहल से प्रेरित होकर अहल्या ने इन्द्र को गौतम के वेष में पहचानते हुए भी उनका प्रस्ताव स्वीकार किया था।

"मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥" (वा० रा० १।४८।१९)

परवर्ती कथाओं में इसपर बल दिया जाता है कि अहल्या ने इन्द्र को नहीं पहचाना था। **ब्रह्मपुराण** (अध्याय ८७) के अनुसार गौतम अपनी पत्नी के साथ ब्रह्मगिरि पर तप करते थे। अहल्या के विवाह के पहले से इन्द्र उसपर आसक्त थे, अतः गौतम की अनुपस्थिति में इन्द्र गौतम का रूप धारण करके अहल्या के पास आया करते थे, किन्तु वह उन्हें गौतम समझती थी—

"न बुबोध अहल्या तं जारं मेने तु गौतमम्" ॥४४॥

किसी दिन संयोगवश आश्रम में दोनों ही गौतम दिखायी पड़े। आश्रमवासी यह आश्चर्य देखकर इसे तप का प्रभाव समझकर गौतम से कहने लगे—

"भगवन् किमिदं चित्रं बहिरन्तश्च दृश्यसे।
प्रिययाऽन्तः प्रविष्टोऽसि तथैव च बहिर्भवान् ॥
अहो तपःप्रभावोऽयं नानारूपधरो भवान् ॥" (ब्र० पु० ८७।४८)

यह सुनकर गौतम अपने घर गये तथा इन्द्र ने गौतम के आगमन पर बिडाल का रूप धारण कर लिया। वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड के अनुसार इन्द्र ने देवताओं के पास जाकर कहा था कि गौतम की तपस्या में विघ्न डालकर उनमें क्रोध उत्पन्न कर मैंने देवताओं का उपकार किया है (वा० रा० १।४९।२)। परवर्ती रचनाओं में इन्द्र के इस उद्देश्य को अधिक महत्व दिया गया है। **असमीया बालकाण्ड** (अध्याय ३८) के अनुसार इन्द्र गौतम की घोर तपस्या देखकर डर गये थे। वह उस तपस्या में विघ्न डालने के विचार से उनके आश्रम में गये थे, किन्तु अहल्या को देखकर आसक्त हो गये।

रङ्गनाथरामायण (१।२९) के अनुसार गौतम की तपस्या में विघ्न डालने के उद्देश्य से इन्द्र ने अहल्या का सतीत्व नष्ट किया था। **ब्रह्मवैवर्तपुराण** (कृष्णजन्मखण्ड अध्याय ४७ और ६१) दो स्थलों पर इन्द्र के दुराचार का वर्णन है। दोनों वृत्तान्तों में अहल्या को निर्दोष माना गया है। अध्याय ६१ के अनुसार इन्द्र कामशास्त्र में अपनी

पहुँच का उल्लेख करते हुए अहल्या को प्रलोभन देते हैं तथा शची को अहल्या की दासी बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं। अहल्या अविचलित रहकर घर आती है और गौतम को सब कुछ बतलाती है। बाद में इन्द्र गौतम का रूप धारण कर अहल्या के साथ रमण करते हैं। किन्तु सर्वज्ञ मुनि घर लौटकर उनको शाप देते हैं। **कृत्तिवासरामायण** (१।५९) में इन्द्र को गौतम का प्रियतम शिष्य माना गया है; उन्होंने गौतम का वेष धारण कर अहल्या के साथ रमण किया। गौतम अहल्या के शरीर पर शृङ्गार के लक्षण देखकर इन्द्र का दुराचार जान गये। इन्द्र आश्रम में ही रहते थे। बुलाये जाने पर पुस्तकें काँख में दबाये गौतम के पास आये। **रङ्गनाथरामायण** (१।२९) तथा **तत्त्वसंग्रहरामायण** (१।२५) के अनुसार इन्द्र ने मुर्गे का रूप धारण कर रात्रि में बांग दिया और गौतम को भ्रम में डाला कि पौ फटने पर है।

अधिकांश रचनाओं के अनुसार गौतम अचानक घर पहुँच कर इन्द्र तथा अहल्या दोनों को शाप देते हैं। कुछ ही वृत्तान्तों में उनकी पुत्री भी उनकी कोपभाजन बन जाती है। **वाल्मीकिरामायण** उत्तरकाण्ड के अनुसार गौतम शाप देकर आश्रम में निवास करते हैं, किन्तु बालकाण्ड के अनुसार उन्होंने अहल्या को छोड़कर हिमालय की ओर प्रस्थान किया। **अध्यात्मरामायण** (१।५।३३) के अनुसार भी गौतम हिमालय जाते हैं। गौतम-शाप के कई रूप मिलते हैं। **महाभारत** के अनुसार इस शाप के कारण इन्द्र की दाढ़ी पीली पड़ गयी थी।

"अहल्याधर्षणनिमित्तं हि गौतमाद् हरिश्मश्रुतामिन्द्रः प्राप्तः" (म० भा० १२।३२९।१४; ३४२।२३)। **वाल्मीकिरामायण** उत्तरकाण्ड के अनुसार गौतम ने इन्द्र को पराजित होने का शाप दिया। फलस्वरूप इन्द्रजित् मेघनाद ने इन्द्र को हरा दिया था। इसके अतिरिक्त गौतम ने कहा था कि मनुष्यों के ऐसे पापों का आधा दोष इन्द्र का ही रहेगा और इन्द्र (अथवा किसी भी भावी सुरेन्द्र) का पद स्थिर नहीं हो पायेगा। (वा० रा० ७।३०।३१-३६)। **लिङ्गपुराण** (अध्याय २९) में किसी शाप का उल्लेख नहीं है, किन्तु माना गया है कि गौतम ने इन्द्र का वृषण काटकर भूमि पर फेंक दिया था :

"इन्द्रस्यापि च धर्मज्ञ छिन्नं तु वृषणं पुरा।
ऋषिणा गौतमेनोर्व्यां क्रुद्धेन विनिपातितम्॥' २७॥

वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड के वृत्तान्त में गौतम-शाप द्वारा इन्द्र को नपुंसक बना देते हैं। परवर्ती रचनाओं में बालकाण्ड के इस शाप का उल्लेख तो मिलता है, किन्तु गौतमशाप का सर्वाधिक रूप यह है कि इन्द्र के शरीर में सहस्र भग प्रकट हुए—ब्रह्मपुराण (८७।५९), **स्कन्दपुराण** (नागरखण्ड अध्याय २०७), **कथासरित्सागर** (३।१७), **पद्मपुराण** (५।५१।२८), अध्यात्मरामायण (१।५।२६) कम्बरामायण (१।९), ब्रह्मवैवर्तपुराण (कृष्णजन्मखण्ड अध्याय ४७ और ६१), **आनन्दरामायण** (१।३।१९), **बलरामदासरामायण**, **तत्त्वसंग्रहरामायण** (१।२५), **तोरवेरामायण** (१।१२), **कृत्तिवासरामायण** (१।५९) आदि।

इन सब रचनाओं में प्रायः इसका उल्लेख मिलता है कि सहस्रभगवान् इन्द्र बाद में सहस्राक्ष बन गये। **ब्रह्मपुराण** के अनुसार गौतमी नदी में स्नान करने से इन्द्र में यह परिवर्तन हुआ। **पद्मपुराण** (५।५१।४८) के अनुसार देवी के वरदान से इन्द्र सहस्राक्ष हुए।

माधवदेव के **असमीया बालकाण्ड** (अध्याय ३८) के अनुसार इन्द्र भिक्षार्थी ब्राह्मणवेष से गौतम के आश्रम में गये थे। रास्ते में गौतम से भेंट होने पर इन्द्र काँपने लगे; गौतम को यह देखकर सन्देह हुआ और उन्होंने इन्द्र को पहचान कर नपुंसक और सहस्रभग हो जाने का शाप दिया। इन्द्र लज्जित होकर पद्मकोष में छिपे रहे। बृहस्पति ने दुर्गा से इन्द्र के छिपने का स्थान जानकर वहाँ जाकर उन्हें दुर्गापूजा करने का परामर्श दिया। इन्द्र की पूजा से सन्तुष्ट होकर दुर्गा ने कहा मैं शाप दूर करने में असमर्थ हूँ, किन्तु बदल सकती हूँ; इसपर दुर्गा ने इन्द्र को

सहस्रनयन बना दिया। घर पहुँच कर इन्द्र ने अश्वनीकुमारों को बुलाया और उन्होंने इन्द्र को अज का वृषण लगा दिया। इसी कारण अज पवित्र हो गया तथा पितृकार्य में उसका मांस उपयुक्त होता है।

महाभारत के अनुसार अहल्या के प्रति कोई शाप नहीं दिया गया। किन्तु **वाल्मीकिरामायण** उत्तरकाण्ड के अनुसार गौतम ने अहल्या से कहा कि तुम्हारे सौन्दर्य के कारण यह अनर्थ हुआ है, अतः अब से तुम अकेली ही सुन्दरी नहीं होगी, अपितु सभी लोग तुम्हारे सौन्दर्य के भागी होंगे।

> "तस्माद्रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यति।
> रूपं च ते प्रजाः सर्वा गमिष्यन्ति न संशयः॥" (वा० रा० ७।३०।३७,३८)

वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड (४८।२९,३०) के अनुसार गौतम अहल्या को आदेश देते हैं कि वह अदृश्य होकर राम के पहुँचने तक तपस्या करे। इसी आश्रम में बहुत वर्षों तक वातभक्ष निराहार होकर तप करती हुई भस्मशायिनी तथा सर्वभूतों से अदृश्य होकर रहेगी और यह भी उन्होंने कहा कि राम का आतिथ्य सत्कार करने के पश्चात् तुम पूर्ववत अपना रूप धारण कर मेरे पास आओगी। **'स्वं वपुर्धारयिष्यसि'** (वा० रा० १।४८।-३२)। संभवतः इस वाक्यांश के कारण यह धारणा उत्पन्न हुई कि अहल्या शापवश शिला बन गयी थी। शाप का यह परिणाम पहले-पहल **रघुवंश** (११।३४) में पाया जाता है। आगे चलकर पाषाणभूता अहल्या का बहुत सी रचनाओं में उल्लेख मिलता है। **नृसिंहपुराण** (अध्याय ४७), **स्कन्दपुराण** (रेवाखण्ड अध्याय १३६, नागरखण्ड अध्याय २७८), **कथासरित्सागर** (३।१७), **महानाटक** (३।१७), **वह्निपुराण** (पृ० १८२), **कम्बरामायण** (१।९), **रङ्गनाथरामायण** (१।२९), **सरलादासकृत महाभारत** (मध्य पर्व पृ० २०३), **कृत्तिवास रामायण** (१।५९) **ब्रह्मवैवर्तपुराण** (कृष्णजन्मखण्ड अ० ४७ और ६१), **गणेशपुराण**, **पद्मपुराण** (उत्तरखण्ड अ० २६९ तथा पातालखण्ड अ० १६), **आनन्दरामायण** (१।३।२६), **राघवोल्लास काव्य** (सर्ग ६), **तोरवेरामायण** (१।१२), **रामचरितमानस** (१।२१०), **गीतावली** (१।५७), **असमीया बालकाण्ड**, **सूरसागर** (नवम स्कन्द पद ४६६), **सत्योपाख्यान** (१।५), **मराठी भावार्थरामायण** (१।१४), **तत्त्वसंग्रहरामायण** (१।२५), पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १० आदि।

रामकियेन के अनुसार गौतम ने अहल्या को इसी उद्देश्य से पत्थर बनने का शाप दिया था कि रामावतार के समय वहाँ सेतु बनाने के काम में आये, इस प्रकार सदा के लिए सागर में दफनायी जाय (अ० ६)।

गौतम-शाप का एक अन्य रूप कम प्रचलित है; उसके अनुसार अहल्या नदी बन गयी थी—**ब्रह्मपुराण** (८७।५९) में शाप इस प्रकार है—**"शुष्कनदी भव"** तथा **आनन्दरामायण** (१।३।२३) के अनुसार अहल्या जन-स्थान में नदी के रूप में प्रकट हुई। **पद्मपुराण** (सृष्टिखण्ड ५१।३४) के अनुसार गौतम-शाप के कारण अहल्या का शरीर सूख गया था—**"अस्थिचर्मसमाविष्टा निर्मांसा"**।

योगवासिष्ठ के रचयिता ने पूर्वोक्त पौराणिक कथा के अनुसार एक अन्य अहल्या और इन्द्र को एक दूसरे के अनन्यप्रेमियों के रूप में चित्रित किया है—(दे० उत्पत्तिप्रकरण सर्ग ८९)।

अहल्याकथा का एक अन्य रूप भी मिलता है। जिसमें अञ्जनी उसकी पुत्री मानी गयी है। इसका बीज **कथासरित्सागर** (३।१०) में है। गौतम ऋषि दिव्य ज्ञान से इन्द्र और अहल्या का दुराचार जानकर अकस्मात् घर पहुँचते हैं। इन्द्र ने मार्जार का रूप धारण कर लिया। गौतम के पूछने पर अहल्या ने प्राकृत में कहा **एसो ठिओ खु मज्जारो (एष स्थितः खलु मार्जारः)**। इसके दोनों अर्थ हैं। यह मार्जार है अथवा मेरा जार है। यह सुनकर गौतम ने दोनों को शाप दिया; अहल्या को शिला बनने का और इन्द्र को सहस्रभग होने का। इस वृत्तान्त पर

आधारित अञ्जनी के विषय में पञ्जाब में निम्नोक्त कथा प्रचलित है कि—गौतम ने गङ्गास्नान से लौटकर अञ्जनी से पूँछा कि घर में कौन है अञ्जनी ने उत्तर दिया कि माजार (मार्जार अथवा माँ का जार)। द्वयर्थता के कारण गौतम ने अपनी पुत्री को गर्भिणी हो जाने का शाप दिया, फलस्वरूप उसने हनुमान् को जन्म दिया। **मैकॉजिफ, दि० सिक्ख रेलीजन** (भाग ६ पृ० ५२)। इस कथा के विकसित रूप में गौतम-पत्नी अहल्या की तीन सन्तानें थीं। अञ्जनी और वाली तथा सुग्रीव, जिन्हें गौतम अपनी सन्तान समझते थे। किन्तु वास्तव में इन्द्र और सूर्य के पुत्र थे। **महाभारत** में अहल्या की कथा के प्रसंग में इसका उल्लेख नहीं है। श्रीराम के द्वारा अहल्योद्धार का प्राचीनतमरूप **वाल्मीकिरामायण** में सुरक्षित है।

उत्तरकाण्ड में गौतम ने अहल्या को आश्वासन दिया था कि विष्णु-अवतार में राम के दर्शनमात्र से वह पवित्र हो जायगी—

"तं द्रक्ष्यसि यदा भद्रे तदा पूता भविष्यसि ॥" (वा० रा० ७।३०।४३)

पर बालकाण्ड के वृत्तान्त में राम के विष्णुत्व की ओर निर्देश नहीं किया गया है। गौतम ने अहल्या से कहा कि तपस्या करो तथा राम के आने पर उनका आतिथ्य-सत्कार करने के बाद मेरे पास लौटो। राम के आगमन तक वह शाप के कारण अदृश्य होकर तपस्या करती है। विश्वामित्र से यह कथा सुनकर राम तथा लक्ष्मण आश्रम में प्रवेश करते हैं। उसी समय शाप की अवधि समाप्त होती है। अतः वे अहल्या को देखने में समर्थ होते हैं और ऋषि-पत्नी का पैर छूते हैं—

"शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता।
राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा ॥" (वा० रा० १।४९।१७)

राम-लक्ष्मण का आतिथ्य सत्कार करने के पश्चात् अहल्या अपने पति के पास लौट जाती है।

अधिकांश परवर्ती रचनाओं के अनुसार वह वास्तव में शिला बन गयी थी और राम उसे अपने चरणस्पर्श से पुनर्जीवन प्रदान करते हैं। उदाहरणार्थ **महानाटक** (३।१७), **आनन्दरामायण** (१।३।२०), **ब्रह्मवैवर्तपुराण** (कृष्णजन्मखण्ड अ० ४७ और ६१) आदि। **कृत्तिवासरामायण** के अनुसार राम ने अहल्या के मस्तक पर ही पैर रखकर उसे पाषाण से प्रकट किया था। **स्कन्दपुराण** में राम ने हाथ से शिला का स्पर्श कर अहल्या का उद्धार किया और उसे विभिन्न तीर्थों की यात्रा का आदेश दिया। अहल्या ने वैसा किया और अनेक तीर्थों में जाकर शिव-लिङ्ग की स्थापना की (स्क० पु० नागरखण्ड अ० २०८)।

नदीरूप अहल्या का उद्धार दो प्रकार से वर्णित है। **ब्रह्मपुराण** मे राम का उल्लेख नहीं है। गौतमी नदी से मिलने पर अहल्या ने अपना पूर्व रूप धारण किया था—

"तया तु सङ्गता देव्या (गौतम्या) अहल्या गौतमप्रिया।
पुनस्तद्रूपमभवत्" (ब्र० पु० ८७।६६)।

आनन्दरामायण के अनुसार राम ने मिथिला जाते समय पाषाणभूता अहल्या का उद्धार किया था। किन्तु उसी रचना में कल्पभेद का भी उल्लेख है जिसके अनुसार राम ने वनवास के समय नदीरूपा अहल्या का स्पर्श करके उसको शाप से मुक्त किया था—

"रामेण भ्रमतारण्ये स्वाङ्घ्रिस्पर्शात् समुद्धृता। नदीरूपाऽहल्या" (१।३।२१)।

रामभक्ति से अनुप्राणित रचनाओं में उक्त वृत्तान्त का वातावरण नितान्त बदल गया। **अध्यात्मरामायण** के रचयिता पाषाणभूता अहल्या की कथा से अनभिज्ञ नहीं हैं (१।६।३)। फिर भी वे मानते हैं कि अहल्या शिला पर खड़ी होकर तपस्या करती रही—

"तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम" (अ० रा० १।५।२७)। राम ने उस आश्रम शिला को अपने चरण से स्पर्श किया और अपना विष्णुरूप दिखाया। अहल्या ने राम की विधिवत् पूजा की। अनन्तर एक विस्तृत स्तुति में राम के ब्रह्मस्वरूप का निरूपण किया और भक्ति का वरदान माँगा (अ० रा० १।५)। इस स्तुति को **राघवोल्लास काव्य** (सर्ग ७) में तथा **रामचरितमानस** में भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।

इस तरह अहल्योद्धार की प्रसिद्ध पौराणिक कथा ब्राह्मणग्रन्थों के अहल्याजार इन्द्र से आरम्भ होकर अनेक रूप धारण करके पश्चात् अहल्यातारक राम की भक्ति में पर्यवक्षित हो जाती है। अधिकांश रचनाओं में राम ने मिथिला की यात्रा में अहल्योद्धार किया था। फिर भी अनेक राम-कथाओं में राम के वनवास के समय इस घटना का वर्णन किया गया है। **महानाटक** में अगस्त्याश्रम से चले जाने के उपरान्त राम अहल्या का उद्धार करते हैं (अङ्क ३)। **रामलिङ्गामृत** में राम सीता की खोज करते समय अहल्या को शापमुक्त करते हैं। **आनन्दरामायण** में भी वनवास के समय इसका वर्णन है। **रामायण मसीही** के अरण्यकाण्ड में राम द्वारा पाषाणभूता अहल्या के उद्धार की कथा मिलती है। **काश्मीरी रामायण** में अरण्यकाण्ड के प्रारम्भ में राम सीता से अहल्या का परिचय कराते हैं।

नाटककारों ने राम-कथा को बदलने में संकोच नहीं किया। **जानकीपरिणय** में अहल्योद्धार की कथा इस प्रकार है: सीता-स्वयंवर के पूर्व राक्षसों द्वारा निर्मित एक माया-सीता के प्राणों को संकट में देखकर राम आत्म-हत्या करने के उद्देश्य से एक चट्टान पर से कूदना चाहते हैं लेकिन राम-स्पर्श से प्रकट होकर अहल्या राम को राक्षसी माया का रहस्य बतलाती है।

श्रीबुल्के की दृष्टि में रामकथा कभी सूक्ष्मरूपेण विद्यमान रही होगी। परन्तु उसका क्रमशः विकास, परिवर्तन और परिवर्धन होता रहा है। अतः वर्तमान रामकथा केवल काल्पनिक वस्तु है। उसका वस्तुस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है। नाटककार निःसंकोच रामकथा में परिवर्तन और परिवर्धन करते रहे हैं। राम विष्णु या परब्रह्म थे, राम विष्णु के अवतार थे, यह सब कल्पनामात्र है। भक्तों ने ही विविध कल्पनाओं से रामकथाओं का उपबृंहण किया है। उनकी दृष्टि में यही स्थिति अहल्या के सम्बन्ध में है, किन्तु श्रीबुल्के का उक्त विचार वास्तविकता के स्पर्श से विहीन तथा भ्रमात्मक है। वस्तुतः रूपककल्पना कभी किसी आधार पर ही होती है। **सति कुड्ये चित्रोल्लेखः'** भित्ति होने पर ही उसपर चित्र-कल्पना हो सकती है। **शतपथ** आदि ब्राह्मणग्रन्थों तथा **ऋग्वेद** आदि संहिताओं के मन्त्रों में इन्द्र की स्तुतियों में अहल्या का उल्लेख है। वस्तुतः बुल्के मैकडॉनल, कीथ, **वैदिक इंडेक्स—अहल्या तथा धीरेन्द्र वर्मा अहल्योद्धार** की कथा का विकास, विचारधारा (पृ० २९।३४) आदि के आधार पर अपनी कल्पनाओं के महल तैयार करते हैं। जो कि स्वतः प्रमाणसापेक्ष हैं। आपने कई जगह इन्द्र को अहल्या यार कहा है, परन्तु वह अशुद्ध है। वस्तुतः वेदमन्त्रों में इन्द्र को अहल्या-जार ही कहा गया है। यार नहीं, जार का अर्थ उपपति होता है। अतएव इन्द्र को अहल्या का उपपति कहा गया है। यार शब्द संस्कृत भाषा का न होकर हिन्दी या उर्दू भाषा का ही शब्द है। अर्थ उसका भी उपपति होता है। यद्यपि जार शब्द निन्दापरक हो सकता है, तथापि महामहिम देवता के सम्बन्ध में वही स्तुतिवाचक हो जाता है। तभी तो कृष्ण को 'चोरजार-शिखामणि' कहकर स्तुति की गयी है। ईश्वर, सर्वान्तरात्मा, सर्वेश्वर, सर्व-पति तथा सब प्राणियों का पर प्रेमास्पद है। जैसे कामिनी को जार परम प्रिय होता है वैसे ही भगवान् सर्वप्रिय हैं, अतः 'सर्वप्राणिपरप्रेमास्पद' होते हैं। अविद्या तथा तत्कार्य कोषपञ्चक के जलानेवाला परमात्मा 'जरयति इति जारः' इस व्युत्पत्ति से जार कहा जाता है। **कौषीतकि उपनिषद्** में इन्द्र-प्रतर्दन की आख्यायिका निर्दिष्ट है। उसमें प्रतर्दन

इन्द्र पर विजयार्थ आक्रमण करते हैं, जिससे इन्द्र उनके साहस पर प्रसन्न होकर उन्हें वर प्रदान करते हैं। प्रतर्दन कहते है कि जिसे मनुष्यों के लिए आप हिततम समझते हैं वह वरप्रदान करें, तब इन्द्र कहते हैं '**मामेव विजानीहि,** तुम मुझको ही जानो, और इसके साथ अपने बहुत से कर्मों का उल्लेख करते हैं। मैंने त्रिशीर्ष त्वाष्ट्र का वध किया और बहुत से अरुन्मुख यतियों को जिनके मुख में वेदान्तवाक्यरूपी रुत (शब्द) नहीं थे, उन अरुन्मुख यतियों को मारकर कुत्तों को खिला दिया, फिर भी मेरा बाल भी टेढ़ा नहीं हुआ। "**त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनम् अरुन्मुखान् यतीन् हत्वा शालावृकेभ्यः प्रायच्छम्......तस्य मे तत्र लोम च न मीयते।**" (कौषी० उ० ३।१)। यहाँ शङ्का की जा सकती है कि क्या यहाँ इन्द्र अपने देवतास्वरूप या जीव स्वरूप की अथवा मुख्य प्राण की उपासना का विधान करते हैं या प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्मस्वरूप की उपासना का विधान करते हैं। पूर्वपक्ष का निराकरण करके सिद्धान्त की दृष्टि से कहा गया है कि यहाँ मुख्यप्राण जीव या देवता की उपासना का विधान नहीं है, किन्तु '**तत्त्वमस्यादि**' शास्त्रदृष्टि से सिद्ध प्रत्यक्चैतन्याभिन्न परब्रह्म की ही उपासना या विज्ञान का विधान है। "**शास्त्रदृष्टया तूपदेशो वामदेववत्**" (ब्र० सू० १।१।३०) अर्थात् इन्द्र ने अपने जीव या देवता रूप का उपदेश नहीं किया, किन्तु शास्त्रसिद्ध जीव का जो ब्रह्मरूप है उसी को जानने का निर्देश किया है। शास्त्र-दृष्टि से अखण्ड अनन्त आनन्द तथा बोध ही आत्मा का रूप है। उसमें अविद्या या अन्तःकरणरूप उपाधि से जीवभाव का आरोप होता है। शास्त्र-दृष्टि से जीव का ब्रह्म ही रूप है, अतः इन्द्र के '**मामेव विजानीहि**' (कौषी० उ० ३।१) इस वाक्य का अर्थ यह है कि मुझे अर्थात् 'अस्मद्' शब्द के लक्ष्यार्थभूत शुद्ध परमात्मा को ही जानो। कहा जा सकता है कि यदि ऐसा ही है तो अपने शरीर द्वारा किये गये कर्मों का कीर्तन करके आत्मप्रशंसा का उससे क्या सम्बन्ध है? त्रिशीर्ष त्वाष्ट्र का हनन आदि कार्य तो ब्रह्म के नहीं हैं; फिर उन कर्मों का ब्रह्म-प्रसङ्ग में निरूपण का क्या अर्थ है? इसका समाधान यह है कि वह सब ब्रह्म-ज्ञान की प्रशंसा है। उस ब्रह्मज्ञान के ही माहात्म्य से उक्त जघन्य दुष्कृत्य करने पर भी मेरा बाल भी बाँका नहीं हुआ, यह सब ब्रह्मज्ञान की महिमा है। किसी कर्म से ज्ञानवान् की महिमा न तो बढ़ती है और न किसी भी कर्म से उसकी महिमा घटती है। "**न कर्मणा वर्धते नो कनीयान्**"। किसी कर्म से उसका लोक (स्वरूपभूत फल) नष्ट नहीं होता। "**नास्य केनचन कर्मणा लोको मीयते**" (कौषी० उ० ३।१)। गीता भी कहती है कि जिसमें अहङ्कार का भाव नहीं होता, जिसकी बुद्धि में कर्म का लेप नहीं होता वह इन सब लोकों का हनन करके भी हनन नहीं करता है और न निबद्ध होता है—

"यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमांल्लोकान् न हन्ति न निबद्ध्यते॥" (गी० १८।१७)

इसी दृष्टि से जारत्व (औपपत्य) यद्यपि निन्द्य है तथापि ब्रह्मज्ञान के लोकोत्तर माहात्म्य से इन्द्र उस कर्म से भी दूषित नहीं होते हैं। प्रत्युत स्तुत होते हैं। स्तुतिपक्ष में श्रुति का अर्थ यों लगाया जाता है कि इन्द्र सूर्य है अहल्या रात्रि है 'अहनि लीयते—इत्यहल्या' दिन में जो लीन रहती है वह अहल्या है अर्थात् रात्रि। सूर्य के द्वारा यही अहल्या का घर्षण है अथवा अहल्या कृषि की अधिष्ठात्री देवी है और इन्द्र वर्षा के अधिष्ठाता देव हैं। उनका सम्बन्ध स्वाभाविक है।

मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदों की पुराण-इतिहासों द्वारा व्याख्या की जाती है। व्याख्या का अर्थ परिवर्तन और परिवर्धन नहीं है जैसा कि बुल्के आदि मान बैठे हैं। किन्तु वास्तविक अर्थ को व्यक्त करना ही है। इन्द्र को अहल्या का जार कहा गया है। परन्तु इन्द्र कब कैसे अहल्या-जार हुए। इसका वास्तविक अर्थ क्या है? इसका स्पष्टीकरण पुराणों तथा इतिहासों द्वारा ही होता है। इसी लिए कहा गया है—

"इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्" । अर्थात् इतिहास और पुराणों के द्वारा वेदार्थ का उपबृंहण करना चाहिये । इतना ही नहीं, यह भी कहा गया है कि अल्पश्रुत से वेद को भय होता है कि अल्पश्रुत, अल्पज्ञ होने के कारण, वेद के अर्थ का अनर्थ करके उसपर प्रहार ही करेगा—

"बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।"

इस तरह वेदों में इन्द्र को अहल्या का जार कहा गया है । उसका ऐतिहासिक, आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक दृष्टि से पुराणों द्वारा अर्थ अभिव्यक्त किया गया है ।

राम से अहल्या का सम्बन्ध जोड़ा नहीं गया जैसा कि बुल्के साहब मान बैठे हैं । किन्तु ऐतिहासिक तथ्य के आधार पर सिद्ध सम्बन्ध की ही **वाल्मीकिरामायण** तथा पुराणेतिहासों द्वारा अभिव्यक्ति की गयी है ।

महाभारत में भी वस्तुस्थिति के अनुसार ही गौतम को अहल्या का पति माना गया है ।

इसी तरह **कौशिक ब्राह्मण गौतमब्रुवाणेति**, शतपथब्राह्मण, **जैमिनीयब्राह्मण** तथा **षड्विंशब्राह्मण** का यह अर्थ नहीं है कि इन्द्र अपने को गौतम कहलाते थे, क्योंकि इसका अर्थ यही है कि वे वास्तविक गौतम न होने पर भी नकली गौतम बनकर अपने को गौतम कहलाते थे । जो वास्तविक ब्राह्मण न होकर व्रात्य ब्राह्मण है वही ब्राह्मणब्रुव या ब्राह्मणब्रुवाण कहलाता है । सिद्धान्त में जो ब्राह्मण से ब्राह्मणी में उत्पन्न और उपनयनपूर्वक वेदाध्ययन, तप, विद्या आदि से युक्त होता है, वही मुख्य ब्राह्मण होता है । किन्तु जो—तादृशी विद्या एवं तप से रहित होता है वह वास्तविक ब्राह्मण न होकर जातिब्राह्मण या ब्राह्मणब्रुवाणमात्र होता है—

"तपः श्रुतं च योनिश्चेत्येतद् ब्राह्मणकारणम् ।
तपःश्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः ॥"

(महाभाष्य २।२।६ तथा ५।१।११५)

अर्थात् विद्या, तप और योनि तीनों से ब्राह्मण्य होता है । जो विद्या और तप से हीन है वह जातिब्राह्मण ही होता है, मुख्य ब्राह्मण नहीं । अतः गौतमब्रुवाण से भी यह नहीं सिद्ध होता है कि गौतम अहल्या के पति नहीं थे । बुल्के का यह कहना भी अशुद्ध है कि **ऋग्वेद** (१।१०।११) के समय से कौशिक इन्द्र का नाम रहा है । अतः **षड्विंशब्राह्मण** का वाक्यांश **"कौशिको हि स्मैनां ब्राह्मण उपन्यैति"** (१।१।२२) का अर्थ यह नहीं है कि इन्द्र कौशिक का रूप धारण करके अहल्या से मिलने जाया करते थे । इस अर्थ के आधार पर सायण मानते हैं कि अहल्या के पति का नाम कौशिक था, क्योंकि बुल्के वेदार्थ-निर्धारण की पद्धति से अपरिचित हैं । **"औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः"** (जै० सू० १।१।५) के अनुसार वैदिक शब्दों एवं उनके अर्थों का औत्पत्तिक (स्वाभाविक या नित्य) सम्बन्ध होता है, अतः **ऋग्वेद** के समय इन्द्र का कौशिक नाम रहा है, यह कथन सर्वथा असत्य है । वेदों के शब्दों के मुख्य और गौण दोनों प्रकार के अर्थ होते हैं और दोनों ही अर्थ नित्य हैं । अतएव इन्द्र शब्द का मुख्य अर्थ मघवा होते हुए भी **'ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते'** इस श्रुति के अनुसार **'कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे'** अर्थात् हे इन्द्र तुम कभी भी घातक मत बनो, आहुति देनेवाले यजमान को सदा तृप्त करते रहो, इस श्रुति के अनुसार इन्द्र पद का गौण अर्थ गार्हपत्य अग्नि ही है । इसी प्रकार गौतम और कौशिक दोनों ही शब्द इन्द्र में प्रयुक्त होते हैं, परन्तु पूर्वापर के प्रसङ्गानुसार दोनों ही इन्द्र के मुख्य नाम नहीं हैं । किन्तु जैसे ब्राह्मणब्रुव में भी ब्राह्मण शब्द प्रयुक्त होता है, वैसे ही गौतमब्रुव एवं कौशिकब्रुव में भी गौतम और कौशिक शब्द प्रयुक्त होते हैं और यह सब विकासवादियों के समान अमुक अमुक काल में नहीं, किन्तु सर्वदा ही । इसी लिए आज और प्राचीन काल तथा अनन्त काल तक जब भी वैदिक यज्ञ, यागादि चलते रहेंगे, तब तक इन्द्र के लिए 'अहल्याजार' शब्द का प्रयोग

होता रहेगा। अतः सायण का ही अर्थ उचित है। **कौशिक** ब्राह्मण बनकर अहल्या के पास इन्द्र जाता था। यही उक्त वाक्य का अर्थ है। यदि कौशिक इन्द्र का ही नाम हो तो उसमें ब्राह्मण इस विशेषण की क्या गति होगी?

षड्विंशब्राह्मण की कथा के अनुसार देवासुरसंग्राम में इन्द्र का गौतम-रूप धारण कर गुप्तचर बन जाने के प्रस्ताव का गौतम द्वारा स्वीकार करना भी मूलमन्त्रसूचित अर्थ के विरुद्ध नहीं है। प्रत्युत इससे इन्द्र वास्तविक गौतम नहीं थे, किन्तु वे काल्पनिकरूप बनाये हुए गौतम थे। अतएव गौतमब्रुवाण ही थे। वही स्थिति **कौशिकशब्द** के सम्बन्ध में भी जाननी चाहिये। इसी लिए इन्द्र के स्वाभाविक नामों में ये दोनों नाम नहीं आये या आते हैं।

श्रव्य तथा दृश्य काव्य, नाट्य आदि में चमत्कृतिविशेष लाने की दृष्टि से किन्हीं अंशों में नवीन कल्पना को भी प्रश्रय दिया जाता है। पर उसके द्वारा आर्ष विज्ञान से दृष्ट **वाल्मीकिरामायण** द्वारा वर्णित ऐतिहासिक तथ्य अपने स्थान पर अडिग ही रहते हैं।

अतः सीता-स्वयंवर के पूर्व राक्षसों द्वारा मायानिर्मित सीता के प्राणों को संकट में देखकर प्राणत्याग की दृष्टि से राम चट्टान पर से कूदना चहते हैं। इस बीच उनके चरण-स्पर्श से चट्टान से प्रकट होकर अहल्या राक्षसी माया का रहस्य बताती है। **जानकीपरिणय** के इस वर्णन को **वाल्मीकिरामायण**-कथा के विरुद्ध नहीं समझना चाहिये।

पद्मपुराण के अनुसार भी शुष्करूपा प्रतिमा के रूप में अहल्या को देखकर राम वसिष्ठ से उसके सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं और वसिष्ठ के द्वारा निर्दोष घोषित होकर वह दिव्य रूप धारण कर गौतम के पास जाती है। पूर्वापर के समन्वय से यही समझना चाहिये कि राम के स्पर्श से ही वह निर्दोष घोषित होती है।

ब्रह्मपुराण के अनुसार अहल्या नदीरूप हो गयी थी और वह गौतमी नदी से संगत होकर पुनः गौतमपत्नी अहल्या हो गयी। **आनन्दरामायण** का यह कहना ठीक ही है कि नदी होने की कथा कल्पान्तरीय है। **आनन्दरामायण** के अनुसार भी नदीरूपा अहल्या का उद्धार भी वन में भ्रमण करते हुए राम ने अपने पादस्पर्श से किया था। **ब्रह्मपुराण** की कथा में राम का सम्बन्ध वर्णित न होने पर भी दूसरी कथाओं से समन्वय करने से **आनन्दरामायण** के साथ समन्वय कर राम का सम्बन्ध भी अवश्य जोड़ लेना चाहिये। **ब्रह्मपुराण** का तात्पर्य भी गौतमी-माहात्म्य के वर्णन में ही है। अहल्या के उद्धार में वचनबलात् गौतमी-सङ्गति को भी हेतु जान लेना चाहिये।

श्री बुल्के का यह कहना निःसार है कि **अध्यात्मरामायण** का रचयिता पाषाणभूता अहल्या की कथा से परिचित होकर भी मानता है कि वह शिला पर खड़ी होकर तपस्या करती रही—**"तिष्ठ दुर्वृत्ते शिलायामाश्रमे मम"**। राम ने आश्रम-शिला का स्पर्श किया, क्योंकि उक्त संस्कृत पद्य का यह अर्थ नहीं है कि तुम शिला पर खड़ी रहो, किन्तु शिला के रूप में स्थित होकर रहो यही उसका अर्थ है।

शाप के कारण अहल्या का अदृश रहने का अर्थ यही समझना चाहिये कि वह अपने अहल्या-रूप से तब तक अदृश्य थी जब तक राम नहीं आये। किन्तु अन्य कथाओं के अनुसार वह शिलारूप में दृश्य ही थी। अतएव शिला होने की अवस्था में उसे राम का चरण-स्पर्श प्राप्त हुआ। शाप का अन्त होने पर वह अपने अहल्यारूप में प्रकट हुई। उस समय राम और लक्ष्मण दोनों ने उसका पादस्पर्श किया।

"शापस्यान्तमुपागम्य तेषां दर्शनमागता।
राघवौ नु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा॥" (वा० रा० १।४९।१६,१७)

शाप के अन्त में पहुँचकर अहल्या राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र के दृष्टिगोचर हुई, तब राम और लक्ष्मण दोनों ने उसका पाद-स्पर्श किया, इस तरह अदृश्यता और शिलारूपता दोनों का समन्वय हो जाता है।

स्कन्दपुराण में तीर्थयात्रा तथा शिवलिङ्ग-स्थापना का महत्त्व वर्णन करने में भी अहल्या की कथा का उपयोग किया गया है। अतः "**यत्परःशब्दः स शब्दार्थः**" (शब्दों का जिसमें तात्पर्य होता है वही शब्दार्थ होता है) के अनुसार अर्थवादरूप होने के कारण इस कथा का तीर्थ एवं शिवलिङ्ग-माहात्म्य के वर्णन में ही तात्पर्य है, **वाल्मीकिरामायण** प्रोक्त कथा के विरोध में तात्पर्य नहीं है।

ब्रह्मपुराण के 'शुष्कनदी भव' के अनुसार अहल्या शुष्क नदी हो गयी थी। **आनन्दरामायण** के अनुसार वह जनस्थान में नदी के रूप में प्रकट हुई थी। इस कथा को कल्पान्तरीय समझना चाहिये। **पद्मपुराण** (सृष्टिखण्ड ५१।३३) के अनुसार अहल्या का शरीर शुष्क होकर अस्थिचर्ममात्र रह गया था। **योगवासिष्ठ** के काल्पनिक इन्द्र और अहल्या जिस आधार पर कल्पित है उसकी कथाओं में पूर्व कथा से कोई विशेष अन्तर नहीं है।

रामकेर्ति के अनुसार अञ्जना और वाली तथा सुग्रीव तीनों ही अहल्या की सन्तति हैं। यद्यपि **रामकेर्ति** का मुख्य स्रोत **वाल्मीकिरामायण** ही है तथापि अनेक देशों तथा क्षेत्रों से होकर पहुँचने के कारण उसमें कई अंशों में विकृति आ गयी है। अखण्ड-ब्रह्मचर्यनिष्ठ हनुमान् उसके अनुसार बड़े रसिक और अनेक स्त्रियों से संपर्क करनेवाले बताये गये हैं। सुग्रीव, वाली और अञ्जना हनुमान् आदि **वाल्मीकिरामायण** में वानररूप ही वर्णित हैं। अति सुन्दरी अहल्या में इन्द्र तथा सूर्य से वानरस्वरूप वाली और सुग्रीव की उत्पत्ति यद्यपि असंगत सी प्रतीत होती है फिर भी रावणादि के वधार्थ देवताओं के संकल्पविशेष से वानररूप में उनका प्रकट होना संभव हो सकता है।

महाभारत की अहल्या का राम के साथ सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि **भारत** की कथा कल्पान्तरीय कथा है। **महाभारत** की अपेक्षा **रामायण** अति प्राचीन है, अतः **वाल्मीकिरामायण** द्वारा वर्णित राम द्वारा अहल्योद्धार की कथा में विष्णु के अवतार राम के दर्शनमात्र से उसके पवित्र होने की बात भी ठीक ही है।

अहल्या की स्थिति

वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड के अनुसार गौतम ने कहा था—तुम इसी आश्रम में अनेक सहस्र वर्षों तक वातभक्षा तथा निराहारा तप करती हुई भस्मशायिनी तथा सब भूतों से अदृश होकर रहोगी·········राम का आतिथ्य कर फिर अपना पूर्वरूप धारण करोगी—

"स्वं वपुर्धारयिष्यसि" (वा० रा० १।४८।३२)।

बुल्के कहते हैं "इसी वाक्यांश के अनुसार अहल्या के शिला बन जाने की धारणा बन गयी" पर वह संगत नहीं है, क्योंकि "**स्वं वपुः**" का तो यह भी अर्थ हो ही सकता है—रूपध्वंस के पूर्व का रूप—अर्थात् वैरूप्य-रहित अत्यन्त सुन्दर अहल्यारूप प्राप्त करोगी, किन्तु शिला बनने की धारणा नहीं; प्रामाणिकता **नृसिंहपुराण** (अध्याय ४७), **स्कन्दपुराण** (रेवाखण्ड अध्याय १३६; नागरखण्ड अध्याय २०८) आदि आर्ष प्रमाणों पर निर्भर है। काव्य ग्रन्थों की यह परम्परा है कि किसी इतिहास-पुराणप्रसिद्ध अर्थ के आधार पर ही काव्य-निर्मिति होती है। अतः रघुवंश में कालिदास ने इन पुराणों के आधार पर ही अहल्या के शिला बनने का उल्लेख किया है।

"तेन नीतो विनीतात्मा अहल्या यत्र तिष्ठति।
व्यभिचारान्महेन्द्रेण भर्त्रा शप्ता हि सा पुरा॥
पाषाणभूता राजेन्द्र तस्य रामस्य दर्शनात्।
अहल्या मुक्तशापा च जगाम गौतमं प्रति॥" (अग्निपु० अ० ४७)।

विनीतात्मा राम विश्वामित्र द्वारा वहाँ ले जाये गये जहाँ महेन्द्र से व्यभिचार के कारण शापवशात् **गौतम-**

पत्नी पाषाणभूता हो गयी थी। राम के दर्शन से वह शापमुक्त होकर अपने पति गौतम के पास चली गयी। इन्हीं प्रमाणों के आधार पर महाकवि कालिदास ने कहा है—

"प्रत्यपद्यत चिराय यत्पुनश्चारु गौतमवधूः शिलामयी।
स्वं वपुः स किल किल्बिषच्छिदां रामपादरजसामनुग्रहः ॥" (रघुवं० ११।३४)।

अर्थात् शिलामयी गौतमवधू बहुत काल के अनन्तर जो पुनः अपने दिव्य रूप को प्राप्त हो गयी, उसे सकलकल्मषहारी राम पादरजों का ही अनुग्रह समझना चाहिये।

कथासरित्सागर, **हनुमन्नाटक** (३।१७), **वह्निपुराण**, **गणेशपुराण**, **पद्मपुराण**, **आनन्दरामायण** (१।३।१६) **भावार्थरामायण** आदि भी प्रामाणिक ग्रन्थ हैं इनमें तथा अन्य रामकथाओं में अहल्या की शिलाभावप्राप्ति वर्णित है।

शाप के कई रूप

महाभारत के अनुसार गौतमशाप के कारण इन्द्र की दाढ़ी हरी हो गयी तथा मुष्कवियोग हुआ। बाद में मेष का वृषण धारण करना पड़ा। **वाल्मीकिरामायण** उत्तरकाण्ड के अनुसार इन्द्र को शाप के ही कारण मेघनाद से पराजित होना पड़ा तथा मनुष्यकृत तादृश व्यभिचारों का अर्धभाग इन्द्र को मिलने लगा और इन्द्रपद की अस्थिरता हो गयी। **वाल्मीकिरामायण** बालकाण्ड के अनुसार गौतम-शाप से ही इन्द्र नपुंसक हो गया। परवर्त्ती नहीं, किन्तु प्राचीन ही आर्ष ग्रन्थों के अनुसार इन्द्र के शरीर में सहस्र भग प्रकट हुए जैसे **ब्रह्मपुराण** (८७।५९), **स्कन्दपुराण** (नागरखण्ड अध्याय २०७), **कथासरित्सागर** (३।१७), **पद्मपुराण** (५।५१।२८) **अध्यात्मरामायण** (१।५।२६), **ब्रह्मवैवर्त्तपुराण** (कृष्णजन्मखण्ड अध्याय ४६), **आनन्दरामायण** (१।३।१९) आदि। और इन्द्र के सहस्र भग ही सहस्र नेत्र हो गये। उक्त विषयों में समन्वय करना ही उचित है, क्योंकि सभी प्रामाणिक ग्रन्थों पर निर्भर हैं। **ब्रह्मपुराण** के अनुसार गौतमीस्नान से इन्द्र में यह परिवर्तन हुआ। **ब्रह्मवैवर्त्त** के अनुसार सहस्र वर्ष पर्यन्त सूर्य की उपासना से यह परिवर्तन हुआ। किन्हीं प्रचलित कथाओं में राम के द्वारा शिवधनुर्भङ्ग की टङ्कार सुनकर इन्द्र के सहस्र भग सहस्र नेत्र हो गये। अश्वमेधयज्ञ और देवी का वरदान भी उक्त परिवर्तन में हेतु हैं।

"तं द्रक्ष्यसि यदा भद्रे ततः पूता भविष्यसि।
स हि पावयितुं शक्तस्त्वया यद् दुष्कृतं कृतम् ॥ (वा० रा० ७।३०।४३)

उत्तरकाण्ड तथा अन्य अनेक ग्रन्थों के अनुसार अहल्या निर्दोष नहीं थी—मुनिवेष में इन्द्र को जान कर भी देवराज के कुतुहल से उसमें वैसी दुर्बुद्धि हो गयी—

"मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन।
मतिं चकार दुर्मेधा देवराजकुतूहलात् ॥" (वा० रा० १।४८।१९,)

बुल्के के अनुसार परवर्ती कथाओं में इस बात पर बल दिया गया है कि अहल्या ने इन्द्र को नहीं पहचाना—जैसे **ब्रह्मपुराण** (अध्याय ८७) के वृत्तान्त में कहा गया है कि विवाह के पहले इन्द्र अहल्या में आसक्त थे। वे गौतम की अनुपस्थिति में गौतम का रूप धारण कर अहल्या के पास आया करते थे—इत्यादि ठीक नहीं, क्योंकि प्रामाणिक ग्रन्थों और ऋषियों के लिए यह कहना असङ्गत है कि उन्होंने वस्तुस्थिति के विपरीत किसी बात पर बल दिया था। **महाभारत**, **ब्रह्मपुराण**, **ब्रह्मवैवर्तपुराण** आदि सभी प्राचीन ग्रन्थ हैं। सर्वज्ञकल्प महर्षि व्यास ही इन ग्रन्थों के रचयिता हैं। अतः कल्पभेद के आधार पर विभिन्न वस्तुस्थिति के अनुसार उन्होंने वैसा ही लिखा भी है। मुर्गे का रूप धारण कर मुर्गे की बोली बोल कर गौतम को भ्रम पैदा कर उनके स्नानार्थ गङ्गा जाने पर इन्द्रने गौतम-वेष धारण कर अहल्या से छल किया।

यह ठीक ही है कि अधिकांश ग्रन्थों में इन्द्र और अहल्या को ही गौतम का शाप मिला है, पर **रामकियेन** आदि कुछ ग्रन्थों के अनुसार गौतम ने अपनी पुत्री को भी शाप दिया है। मुनि ने भार्या की भर्त्सना की और कहा क्योंकि तुम अनवस्थित (अव्यवस्थित, चञ्चल) होकर पातिव्रत्य से विचलित हो गयी, अतः तुम्हारा रूप भी स्थिर नहीं रहेगा—

तां तु भार्यां विनिर्भर्त्स्य सोऽब्रवीत् सुमहातपाः।
दुर्विनीते विनिध्वंस ममाश्रमसमीपतः॥
रूपयौवनसम्पन्ना यस्मात्त्वमनवस्थिता।
तस्माद्रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यसि॥ (वा० रा० ७।३०।३६,३७)

यद्यपि अहल्या ने मुनि का प्रसाद करते हुए कहा कि मुझसे अज्ञानवशात् यह कार्य हो गया, कामकार से मैंने ऐसा नहीं किया, परन्तु बालकाण्ड के वृत्तान्त से एकवाक्यता करके या तो यही समझना चाहिये कि उसने प्रसादनार्थ ही वैसा कहा है, अथवा दोनों कथाओं को दो भिन्न कल्पों की मानकर यह मानना चाहिये कि किसी कल्प में गौतम-पत्नी ने अज्ञानपूर्वक इन्द्रसंगम किया तो किसी कल्प के अनुसार ज्ञानपूर्वक वैसा दुष्कर्म किया था। ज्ञानपूर्वक दुष्कृत पक्ष में ही शिला हो जाने का भी शाप समझना चाहिये। तुम राम का दर्शन करके पवित्र हो जाओगी। तुम्हारे दुष्कृत को मिटाकर तुम्हें पवित्र करने की शक्ति उन्हीं में है। तुम उन राम का आतिथ्यसत्कार करके पुनः वरवर्णिनी होकर मेरे पास रह सकोगी। राम ही तुम्हें पवित्र कर सकते हैं। इन कथनों से ज्ञानपूर्वक ही दुष्कृत प्रतीत होता है। **महाभारत** (१२।२६६।४) के अनुसार गौतम और अहल्या के चिरकारी पुत्र था। उनकी पुत्री का भी उल्लेख है, जिसका विवाह उत्तङ्क से हुआ था (म० भा० १४।५६।२४)।

गौतम जिनके पुत्र शरद्वान् जो सरकण्डे से उत्पन्न हुए थे उन्हें अहल्यापति गौतम से भिन्न ही समझना चाहिये। **वाल्मीकिरामायण** तथा **महावीरचरित** आदि के अनुसार जनकपुरोहित शतानन्दजी गौतम और अहल्या के पुत्र थे।

रामकीर्ति के अनुसार अञ्जना, बाली और सुग्रीव भी अहल्या की सन्तान हैं। चिरकारी की माता अहल्या की कथा कल्पान्तरीय कथा है। **वाल्मीकिरामायण** की कथा की अहल्या सदोष थी और उसके अनुसार गौतम ने इन्द्र और अहल्या दोनों को ही शाप दिया था। उसी अहल्या का राम द्वारा उद्धार हुआ।

उत्तरकाण्ड के अहल्या-वृत्तान्त की बालकाण्ड के वृत्तान्त के साथ एकवाक्यता ही समझनी चाहिये, क्योंकि उत्तरकाण्ड की कथा के अनुसार इद्रजित् द्वारा इन्द्र के पराजित होने पर देवताओं के साथ प्रजापति ने जाकर विविध वर प्रदान कर इन्द्र को मुक्त कराया। भ्रष्ट-तेजा चिन्तापरीतात्मा इन्द्र के प्रश्न करने पर प्रजापति ने अहल्या-धर्षण का वृत्तान्त सुना कर यह बताया कि अहल्याधर्षण के कारण गौतम महर्षि के शाप से यह तुम्हारा पराभव हुआ है—

"यस्मान्मे धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयात्।
तस्मात् त्वं समरे शक्र शत्रुहस्तं गमिष्यसि॥" (वा० रा० ७।३०।३२)

यह व्यभिचार दोष मनुष्यों में भी उत्पन्न होगा और उसमें आधा पाप पापी को होगा और आधा तुम्हें (इन्द्र को) मिलेगा। तुम्हारा ऐन्द्र पद भी स्थिर नहीं रहेगा। कौशिक के शाप के कारण इन्द्र का मुष्क नष्ट हो गया। फिर, मेष का वृषण धारण कर उन्हें मेषवृषण बनना पड़ा।

अन्यत्र यह भी उल्लेख है कि गौतम ने इन्द्र के वृषण को छिन्न करके पृथ्वी पर डाल दिया—

"इन्द्रस्यापि च धर्मज्ञ छिन्नं तु वृषणं पुरा।
ऋषिणा गौतमेनोर्व्यां क्रुद्धेन विनिपातितम् ॥" (लि० पु० २९।२७)

इससे ज्ञात होता है कि गौतम का कौशिक नाम भी था। अतएव इन्द्र का उनका रूप बनाकर अहल्या के पास जाने के कारण कौशिक द्वारा इन्द्र के वृषणवियोग और मेषवृषण की कथा भी सङ्गत है।

इन्द्र कभी कौशिक (गाधि) रूप में उत्पन्न हुए थे, इसलिए भी इन्द्र कौशिकब्राह्मण नाम से प्रख्यात थे और कौशिक (गौतम) का रूप धारण कर अहल्या के पास आये। इसलिए भी कौशिकब्राह्मणरूप से प्रख्यात थे, यह **"कौशिको हि स्मैनामुपनिन्ये"** के सायण भाष्य से स्पष्ट है।

मुद्गलवंशीय वध्र्यश्व या बृहदश्व या विन्ध्याश्व ही अहल्या के पिता हैं। कल्पभेद से भी समाधान संभव है। अतः **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार साक्षात् ब्रह्मा द्वारा निर्मित अहल्या गौतम को प्रदान की गयी। गौतम की ब्रह्मचर्यनिष्ठा और तपःसिद्धि से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने गौतम को अहल्या का प्रदान किया। **ब्रह्माण्डपुराण** (अ० ७) के अनुसार अर्धप्रसूता सुरभि (गौ) तथा शिवलिङ्ग की परिक्रमा के माहात्म्य के वर्णन के प्रसंग से उसका रूपान्तर वर्णन भी असङ्गत नहीं है। एक इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट की निवृत्ति में अनेक शुभ कर्मों का उपयोग होता है। ब्रह्मचर्य व्रत से अथवा द्विमुखी गौ के परिक्रमण आदि अनेकों हेतुओं से ब्रह्मा की प्रसन्नता हो सकती है। इसके अतिरिक्त अर्थवाद वचनों का तात्पर्य स्वार्थ में न होकर विधित्सित अर्थ की स्तुति में ही होता है। पृथ्वी-परिक्रमा आदि की बात द्विमुखी गौ की परिक्रमा का अर्थवाद ही है।

बुल्के ने लिखा है—पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १ में अहल्या को भूल से विश्वामित्र की पत्नी कहा गया है। परन्तु इसका भी कुछ आधार भारत में मिलता है, जहाँ लिखा है—**"अहल्याधर्षणनिमित्तं हि गोतमात् हरितश्मश्रुतामिन्द्रः प्राप्तः"**—अहल्या के धर्षण के कारण गौतम के शाप से इन्द्र हरितश्मश्रु हो गये थे। वहीं यह भी उल्लिखित है—**"कौशिकनिमित्तं चेन्द्रो मुष्कवियोगं मेषवृषणत्वं चावाप"** (म० भा० १२।३४२।२३)। अहल्या के पति का नाम गौतम था यह प्रमाणसिद्धि ही है।

अहल्या की वंशावली के सम्बन्ध में **हरिवंश, विष्णुपुराण** आदि के मतभेद का भी समन्वय कर लेना चाहिए। **श्रीभागवतपुराण** (९।२१।३४) के अनुसार अहल्या के पिता मुद्गल थे। इसका अर्थ है कि मुद्गलवंश में अहल्या की उत्पत्ति हुई थी। अतएव **हरिवंश** (१।३२।२८–३२) के अनुसार वध्र्यश्व मुद्गल से मोद्गल, उनसे इन्द्रसेन और उनसे वध्र्यश्व और बध्र्यश्व से दिवोदास तथा अहल्या की उत्पत्ति हुई थी। **विष्णुपुराण** (४।१९।६१) के बृहदश्व तथा **मत्स्यपुराण** (५०।६०) के विन्ध्याश्व को वध्र्यश्व से अभिन्न ही समझना चाहिए। **वाल्मीकिरामायण** के बालकाण्ड के अनुसार ब्रह्मा ने सब प्राणियों के तथा सहस्रों सुन्दरियों के अङ्गों के सौन्दर्य को लेकर अहल्या का निर्माण किया और उसमें कुरूपता का अत्यन्त अभाव था, इसी लिए उसका नाम अहल्या हुआ। अतः अहल्या ब्रह्मा की पुत्री थी। वैसे तो सभी प्राणियों के रचयिता ब्रह्मा ही होते हैं, तथापि अहल्या को विशेषरूप से रचा गया, इसी लिए उसे ब्रह्मा की पुत्री कहा जा सकता है, किन्तु मनुष्यलोक में वह मुद्गल-वंश में उत्पन्न हुई।

इसी दृष्टि से "आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब।
नव्यमायुः प्रसूतिर कृधी सहस्रसामृषिम्।" ऋक्संहिता (१।१०।११) में इन्द्र को कौशिक कहा गया है। सायणानुसारी मन्त्रार्थ यह है—

इन्द्र, तू शीघ्र ही, **नः अस्मान् प्रति**, हमारे पास आओ। हे **कौशिक** कुशिकपुत्र **इन्द्र, मन्दसानः** प्रसन्न होकर **सुतं** सोम का पान करो। हे इन्द्र नव्य स्तुत्य कर्मानुष्ठान तत्पर प्रकृष्ट सुसुन्दर आयु बढ़ाओ। तदनन्तर **मुझे**

सहस्रों लाभों से युक्त ऋषि (अतीन्द्रिय द्रष्टा) कृधि बनाओ। यद्यपि विश्वामित्र कौशिक नाम से प्रसिद्ध हैं, तथापि प्रामाणिक वचनों से इन्द्र का भी कौशिक होना सिद्ध है। अनुक्रमणिका के अनुसार यह वृत्तान्त प्रसिद्ध है कि इन्द्रतुल्य पुत्र की इच्छा से कुशिक ने ब्रह्मचर्य तप किया। तब इन्द्र कुशिक के पुत्ररूप में उत्पन्न हुए थे—

"कुशिकस्त्वैषी रथिरिन्द्रतुल्यं पुत्रमिच्छन् ब्रह्मचर्यं चचार। तस्येन्द्र एव गाथी पुत्रो जज्ञे"— अनु० (ऋ० सं० ३।१)। पूर्वोक्त हरिवंश की कथा से इसकी संगति मिलती है। अतएव मन्त्रों की व्याख्या पुराणों में की जाती है। वेद इतने गूढ़रहस्यमय हैं कि उनका अर्थ अटकलबाजी के आधार पर नहीं किया जा सकता। सर्वज्ञ-कल्प महर्षि ही वेदार्थ निर्णय कर सकते हैं, अतः वाल्मीकि, व्यास, पराशर आदि महर्षियों ने ही पुराणेतिहासों के द्वारा स्पष्ट अर्थ बतलाया है।

गौरावस्कन्दी (स्कन्दिर गतौ) इन्द्र कहे जाते हैं। उक्त अर्थ षड्विंशब्राह्मण में स्पष्ट है। गौतमपत्नी अहल्या के जार इन्द्र हैं—यह पुराणों में प्रसिद्ध है। कौशिकनामक ब्राह्मण के समीप में ब्राह्मणवेश से आकर इन्द्र ने उनकी स्तुति की थी, इसलिए वे 'गौतमब्रुवाण' नाम से सम्बोधित होते हैं। **वाल्मीकिरामायण** बालकाण्ड के अनुसार विश्वामित्र सहस्र वर्ष पर्यन्त तप करने के व्रत के पूर्ण होने पर जब भोजन करने को प्रस्तुत हुए तभी द्विजाति के वेष में आकर इन्द्र ने उनसे सिद्ध अन्न माँगा—

"स कृत्वा निश्चयं राम तप आतिष्ठताव्ययम्।
तस्य वर्षसहस्रस्य व्रते पूर्णे महाव्रतः॥
भोक्तुमारब्धवानन्नं तस्मिन् काले रघूत्तम।
इन्द्रो द्विजातिर्भूत्वा तं सिद्धमन्नमयाचत॥" (वा० रा० १।६५।४,५)

हरिवंश के अनुसार आदित्य के समान तेजस्वी इन्द्र को तीनों लोकों एवं आदित्यों का राजा बनाया गया। वज्री, कवची और जिष्णु, स्मृतियुक्त, द्युतिमान् इन्द्र अदिति से उत्पन्न हुए थे, अध्वर्युवों ने उनकी स्तुति की। उत्पन्न होते ही उन्हें कुशयुक्त ब्राह्मणों ने धारण किया, अतः वे कौशिक कहलाये—

"जातमात्रोऽथ भगवान् सकुशैर्ब्राह्मणैर्धृतः।
तदाप्रभृति देवेशः कौशिकत्वमुपागतः॥" (हरिवं० ३।३७।३)

कुशिक-पुत्र गाधि के रूप में इन्द्र का जन्म होने से भी इन्द्र कौशिक कहलाये, यह भी पीछे कहा गया है।

"त्रयाणामपि लोकानामादित्यानां च भारत।
चकार शक्रं राजानमादित्यसमतेजसम्॥
स वज्री कवची जिष्णुरदित्यामभिजज्ञिवान्।
स्मृतेः सहायो द्युतिमान् यथा सोऽध्वर्युभिः स्तुतः॥" (हरिवं० ३।३७।१,२)

उस समय इन्द्र "मैं गौतम हूँ" ऐसा कहकर गौतमरूप से व्यवह्रियमाण होकर विचरते थे, इसलिए उन्हें गौतमब्रुवाण कहा जाता है।

इन्द्रागच्छ इत्यादि मन्त्र की व्याख्या शतपथ में भी की गयी है। उसमें कहा गया है—इन्द्र के जो चरण (चरित्र) हैं उन्हीं के द्वारा इन्द्र को प्रमुदित करना अभीष्ट है—

"यान्येवास्य चरणानि तैरेवैनमेतत्प्रमुमोदयिषति" (श० ब्रा० ३।३।४।१८)। तैत्तिरीय आरण्यक में भी उपर्युक्त मन्त्र की व्याख्या की गयी है। उसका सायणानुसारी अर्थ यह है—हे परमैश्वर्ययुक्त इन्द्र, इस यज्ञकर्म में

आइये, हरी—हरि नामक दो घोड़े—जिसके हैं वह इन्द्र हरिवान् है। शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के अभिमानी दोनों देवता इन्द्र के अश्व बनकर रथवहन करते हैं, इसलिए इन्द्र हरिवान् हैं। सम्बोधन में नकार को रुत्व हो जाता है, अतः वह हरिवः रूप से सम्बोधित होते हैं। मेधातिथि को मेषरूप धारण कर हरण करके स्वर्ग में ले जानेवाले इन्द्र मेधातिथिसम्बन्धी मेषरूप से सम्बोधित होते हैं। इसी प्रकार वृषणश्व नामक ऋषि को मेनका नाम्नी दुहिता की कामना करनेवाले इन्द्र वृषणश्वमेने रूप से सम्बोधित होते हैं। गौर मृगरूप से यज्ञ-भाग के मध्य में आकर सोम पीनेवाले इन्द्र गौरवास्कन्दिन् रूप से सम्बोधित होते हैं। क्वचित् कुशिक गोत्रोत्पन्न होकर इन्द्र कौशिकब्राह्मण हुए थे। इसी लिए उन्हें कौशिकब्राह्मण नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। कुशिक ने इन्द्रतुल्य पुत्र की प्राप्ति के लिए तप किया था। कुशिक का उग्र तप देखकर त्रस्त होकर इन्द्र ने अपने आप को ही गाधि के रूप में प्रदान किया था। इस प्रकार इन्द्र का नाम कौशिक हुआ है—

> कुशिकस्तु तपस्तेते पुत्रमिन्द्रसमप्रभम्।
> लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान्॥
> पूर्णे वर्षसहस्रे वै तं तु शक्रो ह्यपश्यत।
> अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः॥
> समर्थः पुत्रजनने स्वमेवांशमवासयत्।
> पुत्रत्वे कल्पयामास स देवेन्द्रः सुरोत्तमः॥
> स गाधिरभवत् राजा मघवान कौशिकः स्वयम्।"
> (हरि० पु० १।२७।१३-१५; १।३२।५१,५२)

उप एवं नि उपसर्गपूर्वक इण गतौ धातु से परोक्षार्थक लिट् लकार में उपन्येति रूप बना है, अर्थात् अहल्या का उपगमन करके इन्द्र उसके भर्त्ता बने थे—

"कौशिको ह स्मैनामुपन्येति"

के अनुसार इन्द्र ही विश्वामित्र के रूप में गाधि से उत्पन्न हुए थे, अतः उपचार से इन्द्र को कौशिक-ब्राह्मण भी कहा जाता है। गौतमब्रुवाण गौतमरूप से व्यवह्रियमाण होने के कारण इन्द्र को गौतमब्रुवाण नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस सम्बन्ध में आख्यायिका प्रसिद्ध है कि कभी देवता और असुर दोनों युद्ध के लिए तत्पर हुए थे। गौतम दोनों पक्षों के मध्य में तप कर रहे थे। इन्द्र ने उनके पास जाकर कहा कि असुर लोग आपको बाधित करेंगे, अतः आप हमारे चार (गुप्तचर) बन जाइये। परन्तु ऋषि ने कहा मैं चार नहीं बनूंगा। तब इन्द्र ने कहा यदि आपकी अनुमति हो तो आपके रूप से मैं स्पश (चार) हो जाऊँ। इस पर गौतम ने कहा यदि आप चाहें तो ऐसा कर सकते हैं, अतः गौतमब्रुवाणरूप से सम्बोधित होते हैं। इन्द्र उस देवता का प्रत्यक्ष नाम है, अतः इन्द्र नाम से उस देवता का आह्वान किया गया है।

शुक्लकृष्णपक्षौ हरी अश्वौ स्तोऽस्य इति सम्बुद्धौ हरिवः। हरिवः आगच्छ—"**मतुवसो रु संबुद्धौ छन्दसि**" (पा० सू० ८।३।१) के द्वारा हरिवन् के नकार को रु हो जाता है। **गौरावस्कन्दिन्**—गौर मृग होकर इन्द्र सोमरस का पान करता है, इसी लिए इन्द्र को गौरावस्कन्दी कहा जाता है। **अहल्यायै जार मित्र दुहिता—मैत्रेयी** के जार उपपति होने के कारण इन्द्र को अहल्यायै जार कह कर सम्बोधित किया जाता है।

उपन्येति गौतमब्रुवाणेति देवासुरा ह्व संयत्ता आसंस्तानन्तरेण—गौतमः शश्राम तमिन्द्र उत्पेत्योवाचेह नो भवां स्पृशांश्चरत्विति नाहमुत्सह इत्यथाहं भवतो रूपेण चराणीति यथा मन्यसे इति स यत्तद्गौतमो वा ब्रुवाणश्चचार गोतमरूपेण वा तदेतदाह।

पूर्वोक्त सुब्रह्मण्या, यद्यपि ब्राह्मणोक्त है तथापि वह साम-मन्त्र है, अतएव उद्गातृ-वर्ग का सुब्रह्मण्य ऋत्विक् सुब्रह्मण्य का गान करता है। उद्गाता तीन बार **सुब्रह्मण्यो३ं सुब्रह्मण्यो३ = सुब्रह्मण्यो३म्** का उच्चारण करता है। सुब्रह्मण्या स्त्रीलिङ्ग है। इन्द्र देवता का ही सुब्रह्मण्यो३म् के द्वारा आह्वान किया जाता है। **इन्द्रागच्छ, हरिव आगच्छ मेधातिथेः मेषवृषणश्वस्य मेने, गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै जार, कौशिकब्राह्मण, गौतमब्रुवाण इति** (प्र० आ० १।१२।४)।

मेधातिथैर्मेष वृषणश्वस्य (१) मेने गौरावस्कन्दिन्नहल्यायै (२) जार कौशिकब्राह्मण गौतम-ब्रुवाणेतावदेहे सुत्यामिति यावदहे स्यात् १। (ला० श्रौ० सू० कण्डिका ३।१)

आतिथ्या इष्टि समाप्त होने पर अध्वर्यु के सम्प्रैष के अनन्तर उद्गाता सुब्रह्मण्यो३म् इस मन्त्र का तीन बार उच्चारण करके इन्द्रागच्छ इत्यादि निगद मन्त्र कहे। मेधातिथेः इत्यादि सुत्या का प्रयोग करता है। यह सब **षड्विंशब्राह्मण** में प्रारम्भ में ही उक्त है। सुब्रह्मण्यो३म्

इन्द्रागच्छेति यदाहेन्द्रागच्छेत्येतद्वा अस्य प्रत्यक्षं नाम तेनैवैनं तदाह्वयति हरिव आगच्छेति पूर्वपक्षापरपक्षौ वा इन्द्रस्य हरी हीदं सर्वं हरति मेधातिथिं काण्वायनं मेषो भूत्वा जहार वृषणश्वस्य मेन इति। वृषणश्वस्य मेना मेनका नाम दुहिता हेन्द्रश्चकमे। गौरवास्कन्दिन्निति। गौरमृगो स्म भूत्वा स्कन्द-धरण्याद्राजानं पिबत्यहल्यायै जारेत्यहल्याया मैत्रेय्या जार आस कौशिकब्राह्मणेति।

श्रीभगवानुवाच—

ततस्तां चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वा मन्मथपीड़ितः।

इन्द्र उवाच—

अलं प्रिये न वक्तव्यं हृच्छयो मे प्रजायते।
कर्तव्यं चाप्यकर्तव्यं पत्युर्वचनसम्मतम् ॥२०॥
इत्युक्त्वा तां परिष्वज्य कृतस्तेन मनोरथः।
एतस्मिन्नन्तरे विप्र मुने हृद्यं च कल्पितम् ॥२४॥
ततो ध्यानं समारभ्याजानाद् वृत्तं शचीपतेः।
तूर्णमेव द्वारदेशे गत्वा च समुपस्थितः ॥२५॥
शक्रो मुनिं तु संलक्ष्य चौतुदेहं विवेश ह।
गच्छतो वृषदंशस्य पद्धतौ प्रचचाल ह ॥२६॥
मुनिस्तत्रावदत्तं वै कस्त्वं मार्जाररूपधृक्।
भयात्तस्य मुनेरग्रे शक्रः प्राञ्जलिरास्थितः ॥
मघवन्तं पुरी दृष्ट्वा चुकोप मुनिपुङ्गवः ॥२७॥

मुनिरुवाच—

यत्त्वया चेदृशं कर्म भगत्वाच्छलसाहसम्।
कृतं तस्मात्तवाङ्गं तु सहस्रभगमुत्तमम् ॥२८॥
भवत्विह तु पापिष्ठ लिङ्गं ते निपतिष्यति।
गच्छ मे पुरतो मूढ सुरस्थानं दिवौकसः ॥२९॥
एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठो रुदतीं तां पतिव्रताम्।
पप्रच्छ किमिदानीं ते कर्म दारुणमागतम् ॥३१॥

अहल्योवाच—

अज्ञानाद्यकृतं कर्म क्षन्तुमर्हसि वै प्रभो ॥३२॥

मुनिरुवाच—

परेणाभिगतासि त्वममेध्या पापचारिणी।
अस्थिचर्मसमाविष्टा निर्मांसा नखवर्जिता॥
चिरं स्थास्यसि चैकापि त्वां पश्यन्तु जनाः स्त्रियः॥३३॥

श्रीभगवानुवाच—

दुःखिता तमुवाचेदं शापस्यान्तो विधीयताम् ॥३४॥
जगाद गौतमो वाक्यं रामो दाशरथिर्मदा।
वनमभ्यागतो विष्णुः सीतालक्ष्मणसंयुतः॥३५॥
दृष्ट्वा त्वां दुःखितां शुष्कां निर्देहां पथि संस्थिताम्।
गदिष्यति च वै रामो वसिष्ठस्याग्रतो हसन् ॥३६॥
किमियं शुष्करूपा च प्रतिमास्थिमयी शिवा।
न दृष्टं मे पुरा ब्रह्मन् रूपं लोकविपर्ययम् ॥३७॥

अर्थ—उक्त वचनों में कहा गया है कि इन्द्र ने गौतमपत्नी से दुराचार किया। गौतम के आने पर इन्द्र ने विडाल का रूप धारण कर लिया। मुनि ने पूछा तुम विडालरूपधारी कौन हो? यह सुनकर भयभीत होकर साञ्जलि इन्द्र खड़े हो गये। मुनि ने इन्द्र के साहसपूर्ण छल से कुपित होकर उसके शरीर में सहस्र भग होने और लिङ्गनिपात का शाप दिया।

अहल्या ने कहा मैंने अज्ञानवश यह दुष्कर्म किया, आप क्षमा कर दें। फिर भी मुनि ने उसे अस्थिचर्मसमाविष्ट निर्मांस तथा नखवर्जित होने का शाप दिया। उसकी प्रार्थना पर यह कहा कि जब लक्ष्मण और सीता के साथ राम यहाँ आकर शुष्क देहवाली मार्ग में पड़ी हुई तुम्हें देखेंगे और यह अस्थिमयी शुष्क प्रतिमा क्या है? ऐसा रूपविपर्यय मैंने कभी नहीं देखा है, ऐसा वसिष्ठ से प्रश्न करेंगे।

ततो रामं महाभागं विष्णु मानुषविग्रहम्।
वसिष्ठः कथयामास यद्वृत्तमखिलं च तत् ॥३८॥
वसिष्ठवचनं श्रुत्वा पुनराह स धर्मवित्।
अस्या दोषो न चैवास्ति दोषोऽयं पाकशासने ॥३९॥
एतदुक्ते तु रामे त्वं त्यक्त्वा रूपं जुगुप्सितम्।
दिव्यं रूपं समास्थाय मद्गृहं चागमिष्यसि ॥४९॥

(पद्मपु० सृष्टिख० अध्याय ५१)

अर्थ—तब मनुष्यविग्रह राम से वे सब वृत्तान्त वर्णन करेंगे। वसिष्ठ के वचन सुनकर धर्मवित् राम कहेंगे कि इसका दोष नहीं; यह तो इन्द्र का ही दोष है। तब तुम कुत्सित रूप त्याग कर दिव्य देह धारण कर मेरे समीप आओगी।

"तेन नीतो विनीतात्मा अहल्या यत्र तिष्ठति।
व्यभिचारान्महेन्द्रेण भर्त्रा शप्ता हि सा पुरा ॥९६॥

पाषाणभूता राजेन्द्र तस्य रामस्य दर्शनात् ।
अहल्या मुक्तशापा च जगाम गौतमं प्रति ॥९७॥" (नृ० पु० अध्याय ४७)

नृसिंहपुराण के अनुसार अहल्या पाषाणप्रतिमा हो गयी थी । राम के दर्शन से वह शापमुक्त हुई—

"जगाम शक्रः स्नानार्थं स्वर्णदीं सुमनोहराम् ।
ददर्श तत्र रुचिरां मार्जन्तीं च नितिम्बिनीम् ॥१९॥
सस्मितां सकटाक्षां तामहल्यां गौतमप्रियाम् ।
दृष्ट्वा च विपुलश्रोणीं स्तनयुग्मं मनोहरम् ॥२०॥
मूर्ति विधाय तद्भर्तुः तत्समीपं जगाम ह ।
गत्वा तु स्निग्धवस्त्रां तां समाकृष्य स्मरातुरः ॥२२॥
एतस्मिन्नन्तरे तप्त्वा समागत्य मुनीश्वरः ।
ददर्श गेहे मिथुनं मैथुने च रतिप्रिये ॥२५॥
विज्ञानेनातिरोषेण बभञ्ज सुरतिक्षणम् ॥२६॥
वेदं विज्ञाय नीच त्वं योनिलुब्धोऽसि कर्मणा ॥३०॥
योनीनां च सहस्रं च तव गात्रे भवत्विह ।
पूर्णं वर्षं च सततं योनिगन्धमवाप्नुहि ॥३१॥
पादानतामहल्यां तामुवाच मुनिपुङ्गवः ॥३६॥
वनं गत्वा चिरं तिष्ठ विधाय मूर्तिमश्मनः ॥३७॥
श्रीरामचरणस्पर्शात् सद्यःशुद्धा बभूव ह ॥४३॥"

(ब्र० वै० पु० कृष्णजन्मखण्ड अध्याय ४७)

इन वचनों में इन्द्र को सहस्रभग तथा योनिगन्ध होने का शाप दिया है और सूर्य की आराधना से इन्द्र को सहस्राक्ष होने का शापानुग्रह किया गया है और अहल्या को पाषाण शिला बनकर रहने एवं रामपादस्पर्श से उद्धार की बात कही गयी है।

"कस्यचित्त्वथ कालस्य गौतमस्य मुनेः प्रिया ॥ ७ ॥
अहल्या नाम भार्याभूद् रूपेणाप्रतिमा भुवि ।
तां दृष्ट्वा चकमे शक्रः कामदेववशं गतः ॥ ८ ॥
नित्यमेव समागत्य स्वर्गलोकात् स कामभाक् ।
गौतमे निर्गते राजन् समिदिध्मार्थमेव हि ॥
दर्भार्थं फलमूलार्थं स्वयमेव महात्मभिः ॥ ९ ॥
अथ तस्य समाचख्यौ नारदो मुनिसत्तमः ।
शक्रस्य चेष्टितं सर्वं तथाहल्यासमुद्भवम् ॥१०॥
तच्छ्रुत्वा सहसा तूर्णं गौतमो गृहमभ्यगात् ।
यावत्पश्यति देवेशं सह पत्न्या समागतम् ॥११॥
शक्रोऽपि गौतमं दृष्ट्वा पलायनपरायणः ।
निर्जगामाश्रमात्तस्मात् विवस्त्रोऽपि भयाकुलः ॥१२॥
अहल्या च भयत्रस्ता दृष्ट्वा भर्तारमागतम् ।
अधोमुखी स्थिता राजन् तदा व्याकुलितेन्द्रिया ॥१३॥

गौतमोऽपि च तद् दृष्ट्वा सम्यग्भार्याविचेष्टितम् ।
ददौ शापं महाराज कोपसंरक्तलोचनः ॥१४॥

यस्माच्छक्र पापकर्म कृतमीदृग् विगर्हितम् ।
भार्या मे दूषिता साध्वी तस्मादवृषणो भव ॥१५॥

सहस्रं च भगानां ते वक्त्रे भवतु मा चिरम् ।
येन त्वं विप्लवं यासि त्रैलोक्ये सचराचरे ॥१६॥

अपरं मर्त्यलोकेऽत्र यद्यागच्छसि वासव ।
पूजाकृते ततो मूर्धा शतधा ते भविष्यति ॥१७॥

एवं शप्त्वा च तं शक्रं ततोऽहल्यामुवाच सः ।
कोपसंरक्तनेत्रस्तु भर्त्सयित्वा मुहुर्मुहुः ॥१८॥

यस्मात्पापे त्वया कर्म कृतमेतद् विगर्हितम् ।
तस्माच्छिलामयी भूत्वा त्वं तिष्ठ वसुधातले ॥"१९॥

(स्कन्दपु० नागरखण्ड अध्याय २०७)

अर्थ—उपर्युक्त वचनों में कहा गया है कि अहल्या के सौन्दर्य से मोहित होकर काम के वशीभूत हो इन्द्र सदा अहल्या के पास आया करते थे। नारदजी ने गौतम से इन्द्र-अहल्या का सब वृत्तान्त बताया। यह सुनकर गौतम तुरन्त घर गये। इन्द्र भयभीत होकर विवस्त्र ही भागे। अहल्या भी भयभीत हो गयी। गौतम ने इन्द्र को सहस्र भग होने का शाप दिया और यह भी कहा कि मर्त्यलोक में आते ही तुम्हारा मूर्धा शतधा विदीर्ण हो जायेगा। अहल्या को शिला होने का शाप दिया।

"पुराभूद् गौतमो नाम त्रिकालज्ञो महामुनिः ।
अहल्येति च तस्यासीद् भार्या रूपजिताप्सराः ॥१३७॥

एकदा रूपलुब्धस्तामिन्द्रः प्रार्थितवान् रहः ।
प्रभूणां हि विभूत्यन्धा धावत्यविषये मतिः ॥१३८॥

सानुमेने च तं मूढा वृषस्यन्ती शचीपतिम् ।
तच्च प्रभावतो बुद्ध्वा तत्रागाद् गौतमो मुनिः ॥१३९॥

मार्जाररूपं चक्रे च भयादिन्द्रोऽपि तत्क्षणम् ।
कः स्थितोऽत्रेति सोऽपृच्छदहल्यामथ गौतमः ॥१४०॥

एसो ठिओ खु मज्जारो इत्यपभ्रष्टवक्त्रया ।
गिरा सत्यानुरोधिन्या सा तं प्रत्यब्रवीत् पतिम् ॥१४१॥

सत्यं त्वज्जार इत्युक्त्वा विहसन् स ततो मुनिः ।
सत्यानुरोधक्लृप्तान्तं शापं तस्यामपातयत् ॥१४२॥
पापशीले शिलाभावं भूरिकालमवाप्नुहि ।
आ वनान्तरसंचारिराघवालोकनादिति ॥१४३॥
वराङ्गलुब्धस्याङ्गे ते तत्सहस्रं भविष्यति ।
दिव्यस्त्रीं विश्वकर्मा यां निर्मास्यति तिलोत्तमाम् ॥१४४॥

तां विलोक्य तदैवाक्ष्णां सहस्रं भविता च ते ।
इतीन्द्रमपि तत्कालं शपति स्म स गौतमः ॥"१४५॥

(कथासरित्सागर—३।३)

अर्थ—उपर्युक्त वचनों में भी इन्द्र और अहल्या दोनों सदोष हैं। मार्जाररूप में इन्द्र को सत्यानुरोधिनी प्राकृत भाषा में अहल्या ने मार्जार-बोधन की दृष्टि से मज्जार कहा। जिसका वास्तविक अर्थ मज्जार मेरा जार ही था। गौतम ने उपहास करते हुए कहा सत्य ही यह त्वज्जार तुम्हारा जार (उपपति) ही है। उन्होंने उसे शाप दिया पापशीले तुम बहुत काल तक शिलाभाव को प्राप्त होओ और तबतक शिला बनी रहो जबतक वनान्तर संचारी राघव का दर्शन नहीं होता। इन्द्र के लिए पुनः कहा वराङ्गलुब्ध इन्द्र, तुम्हारे शरीर में सहस्र भग तबतक रहेंगे जबतक विश्वकर्मा द्वारा निर्मित दिव्यस्त्री तिलोत्तमा नहीं प्राप्त होती। उसको देखते ही वे सहस्र भग सहस्र नेत्रों के रूप में परिणत हो जायेंगे।

"दत्वाऽस्य वृषणौ भूमौ नाशयित्वा भगानिमान् ।
मर्त्यलोके गतिश्चास्य यथा स्यात्तत्समाचर ॥४६॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां स मुनिर्देवगौरवात् ।
वृषणौ मेषसम्भूतौ योजयामास तौ तदा ॥४७॥
तान् भगान् पाणिना स्पृष्ट्वा चक्रे नेत्राणि सन्मुनिः ।
ततः प्रोवाच तान् देवान् गौतमश्च महातपाः ॥४८॥
सहस्राक्षो मया शक्रो निर्मितोऽयं सुरोत्तमाः ।
समेषवृषणश्चापि स्वं च राज्यं करिष्यति ॥४९॥
शोभास्य नेत्रजा वक्त्रे सुरम्या सम्भविष्यति ।
पुंस्त्वं च मेषजोत्थाभ्यां वृषणाभ्यां भविष्यति ॥"५०॥

(स्कन्दपु० नागरखण्ड अ० २०७)

उक्त वचनों के अनुसार गौतम से अनुग्रह करके इन्द्र को वृषण प्रदान करने और भगों को मिटाने तथा मर्त्यलोक आ सकने की देवताओं ने प्रार्थना की। देवताओं के गौरव से मुनि ने मेषवृषण लगाकर, अपने हाथ से भगों का स्पर्श करके उन्हें नेत्र बना दिया और मर्त्यलोक-गति की भी अनुमति दे दी।

"ततो मार्गे मया दृष्टा गौतमस्याश्रमे शुभे ।
अहल्या सा शिलारूपा प्रमाणेन महत्तमा ॥२४॥
ततः प्रोक्तो मया रामः स्पृशेमां वत्स पाणिना ।
मानुषत्वं लभेद्येन गौतमस्य प्रिया मुनेः ॥२५॥
अविकल्पं ततो रामो मम वाक्येन तां शिलाम् ।
पस्पर्श पार्थिवश्रेष्ठ कौतूहलसमन्वितः ॥२६॥
अथ रामेण संस्पृष्टा सहसैवाङ्गना मुनेः ।
शुशुभे मानुषी जाता दिव्यरूपवपुर्धरा ॥"२७॥

(स्कन्दपु० नागरखण्ड अ० २०८)

इन वचनों के अनुसार शिलारूप में पड़ी अहल्या का परिचय देकर मुनि ने उसे हाथ से स्पर्श करने के लिए राम को प्रेरित किया। राम के स्पर्श करते ही वह दिव्यदेहधारिणी दिव्य स्त्री हो गयी।

"गौतमो ब्राह्मणस्त्वासीत्साक्षाद् ब्रह्मेव चापरः।
सत्यधर्मसमायुक्तो वानप्रस्थाश्रमे रतः ॥२॥
तस्य पत्नी महाभागा अहल्या नाम विश्रुता।
रूपयौवनसम्पन्ना त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥३॥
अस्या अप्यतिरूपेण देवराजः शतक्रतुः।
मोहितो लोभयामास ह्यहल्यां बलसूदनः ॥४॥
मां भजस्व वरारोहे देवराजमनिन्दिते।
क्रीडयस्व मया सार्धं त्रिषु लोकेषु पूजिता ॥५॥
किं करिष्यसि विप्रेण शौचाचारकृशेन तु।
तपःस्वाध्यायशीलेन क्लिश्यन्तीव सुलोचने ॥६॥
एवमुक्ता वरारोहा स्त्रीस्वभावात् सुलोचना।
मनसाध्याय शक्रं सा कामेन कलुषीकृता ॥७॥
तस्या विदित्वा तं भावं स देवः पाकशासनः।
गौतमं वञ्चयामास दुष्टभावेन भावितः ॥८॥
विदित्वा चान्तरं तस्या गृहीत्वा वेषमुत्तमम्।
अहल्यां रमयामास विश्वस्तां मन्दिरान्तिके ॥९॥
क्षणमात्रान्तरे तत्र देवराजस्य भारत।
आजगाम मुनिश्रेष्ठो मन्दिरं त्वरयान्वितः ॥१०॥
आगतं गौतमं दृष्ट्वा भीतभीतः पुरन्दरः।
निर्गतः स ततो दृष्ट्वा शक्रोऽयमिति चिन्तयन् ॥११॥
ततः शशाप देवेन्द्रं गौतमः क्रोधमूर्च्छितः।
अजितेन्द्रियोऽसि यस्मात्त्वं तस्माद् बहुभगो भव ॥१२॥
एवमुक्तस्तु देवेन्द्रः तत्क्षणादेव भारत।
भगानां तु सहस्रेण तत्क्षणादेव वेष्टितः ॥१३॥
त्यक्त्वा राज्यं सुरैः सार्धं गतश्रीको जगाम ह।
तपश्चचार विपुलं गौतमेन महीतले ॥१४॥
अहल्यापि ततः शप्ता यस्मात्त्वं दुष्टचारिणी।
प्रेक्ष्य मां रमसे शक्रं तस्मादश्ममयी भव ॥१५॥
गते वर्षसहस्रान्ते रामं दृष्ट्वा यशस्विनम्।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन धौतपापा भविष्यसि ॥१६॥"

(स्कन्दपु० रेवाखण्ड अ० १३६)

उपर्युक्त वचनों से विदित होता है कि इन्द्र और अहल्या दोनों ही सदोष थे। देवराज के अनेक चाटुमय वचनों से मोहित हुई उसकी बुद्धि स्त्रीस्वभाववशात् चञ्चल हो गयी। तब इन्द्र ने उत्तम वेष ग्रहण करके उसे रमण कराया। गौतम ने क्रोधमूर्च्छित होकर इन्द्र को बहुभग होने का शाप दिया तथा अहल्या को पाषाणमयी होने का शाप दिया। सहस्र वर्षों के अन्त में राम के दर्शन से शापमुक्त होने का अनुग्रह भी किया।

परशुराम

जैसे "काशी में राम ने गङ्गास्नान किया" और "काशी दशाश्वमेध घाट पर राम ने गङ्गास्नान किया" इन वचनों का आपस में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि प्रथम वाक्य सामान्य है, द्वितीय विशेष है। गङ्गा में किसी विशेष घाट पर ही स्नान बन सकता है, अतः उसकी दशाश्वमेध घाट के साथ एकवाक्यता बन जाती है। इसी प्रकार—असति विरोधे—सभी विशेषों का सामान्य के साथ समन्वय हो जाता है। इस नीति से राम, सीता, लक्ष्मण और परशुराम सभी के चरित्रों में समन्वय कर लेना उचित है। **महावीरचरित, अनर्घराघव, बालरामायण, महानाटक, प्रसन्नराघव, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका** आदि में परशुराम के तेजोभङ्ग का मिथिला में वर्णन किया गया है। इनमें परशुराम के वाग्युद्ध का विस्तृत वर्णन है। परशुराम का क्रोध उग्र होता है। वे वध करने की धमकी देते हैं। राजशेखर के **बालरामायण** के अनुसार दशरथ तथा परशुराम सीता और राम के विवाह के बाद मिथिला में पहुँचते हैं। उसके अनुसार विश्वामित्र का आदेश पाकर लक्ष्मण ही नारायणीय धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाते हैं। जिसपर जनक, लक्ष्मण और उर्मिला के विवाह का प्रस्ताव करते हैं। विश्वामित्र के सुझाव के अनुसार भरत और माण्डवी एवं शत्रुघ्न ओर श्रुतकीर्ति का विवाह होता है।

अद्भुतरामायण के अनुसार राम ने धनुष चढ़ाकर परशुराम को विराट् रूप दिखाया और बाण छोड़कर उनका तेज ले लिया। तब परशुराम ने होश में आकर राम को विष्णु का अवतार मानकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से महेन्द्र पर्वत पर चले गये। पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १३ के अनुसार राम ने क्षत्रिय-विध्वंस के प्रायश्चित्तार्थ तप के उद्देश्य से उन्हें महादेव के पास भेजा था। इनमें कई अंशों को प्रशंसार्थवाद समझकर उनका समाधान करना उचित है। **रामकीर्ति** में रामपरमसू को एक क्रूर यक्ष माना है। राम उनसे कहते हैं कि मैं नारायण का अवतार हूँ। उसपर वे प्रमाण चाहते हैं कि राम उनका चाप उठा लें। राम बायें हाथ से लीलापूर्वक उस धनुष को उठाकर बाण चढ़ाते हैं। तब रामपरमसू क्षमा माँगते हैं तथा राम को अपना ऐन्द्रजालिक बाण भी दे देते हैं। यह भी **वाल्मीकिरामायण** की कथा का ही संवर्धित रूप है।

कृत्तिवासरामायण में सीता को शङ्का होती है कि एक धनुष को तोड़कर मेरे साथ विवाह किया, अब भृगुमुनि एक धनुष और लाये हैं। न जाने मेरी कितनी सपत्नियाँ होंगी।

अध्यात्मरामायण, आन्दरामायण, राघवोल्लास तथा **रामचरितमानस** में तेजोभंग के पश्चात् परशुराम राम की स्तुति करते हैं। रामभक्ति का वरदान लेकर चले जाते हैं। **राघवोल्लास** में राम की प्रभावपूर्ण बातों से ही परशुराम शान्त हो जाते हैं। विष्णु-धनुष चढ़ाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। वे अपने सब अस्त्र-शस्त्र राम के चरणों में अर्पित कर देते हैं। **कम्बरामायण** के अनुसार तेजोभङ्ग के पश्चात् देवता पुष्पवृष्टि करते हैं और राम विष्णु का धनुष वरुण को अर्पित कर देते हैं।

सामान्य विशेषपर्यवसायी होता है, अतएव सामान्य का विशेष से विरोध भी नहीं होता। हाँ, विरुद्ध विशेष्यों में विरोध हो सकता है। विष्णु के हुंकार से स्तम्भित होकर शिव ने धनुष छोड़ दिया था। वही धनुष जनक को प्राप्त हुआ था। उसी का भंग होने से परशुराम क्षुब्ध हुए थे। देवता लोगों ने "शिव और विष्णु में कौन श्रेष्ठ है" यह प्रश्न पितामह ब्रह्मा से किया। ब्रह्मा ने शङ्का दूर करने के लिए अपने सत्य संकल्प से दोनों में विरोध उत्पन्न कर दिया। ब्रह्मा की संकल्पसिद्धि के लिए ही दोनों ने विरोध स्वीकार किया। विष्णु के हुंकार से शिव का धनुष शिथिल हो गया और स्वयं महादेव स्तम्भित हो गये। देवताओं की प्रार्थना से दोनों ने युद्ध बन्द कर दिया। देवताओं ने इस घटना से विष्णु को अधिक श्रेष्ठ माना। **रामाभिरामी** टीका के अनुसार इस युद्ध में विष्णु की उत्कृष्टता सिद्ध हुई है। त्रिपुरवध में विष्णु बाण बनकर शिव के उपकरण हुए थे। अतः दोनों समान ही हैं।

शिवपुराण एवं **शिवमहिम्न** के अनुसार ब्रह्मा और विष्णु दोनों ही ज्योतिर्लिङ्गरूप भगवान् का अन्त नहीं पा सके। अतएव विष्णु भगवान् सदा सहस्र कमलों से शिव की अर्चा किया करते थे। भक्ति-परीक्षा के लिए एक दिन शिवजी ने एक कमल लुप्त कर दिया, तब विष्णु ने अपना नेत्रकमल ही चढ़ा दिया। शिव भगवान् के वरदान से वह नेत्र ही सुदर्शनचक्र हो गया।

इस तरह शिव और विष्णु दोनों ही वस्तुतः एक हैं, फिर भी एक दूसरे की उपासना करते हैं तथा एक दूसरे को अपने से उत्कृष्ट प्रख्यापित करते हैं।

वाल्मीकिरामायण तथा अन्य राम-कथाओं में विवाह के पश्चात् अयोध्या की यात्रा के समय परशुराम आते हैं।

"राम रामापति कर धनु लेहू। खेंचहु चाप मिटै सन्देहू॥ (रा० मा० १।२८३।४)

उनके यह कहने पर ज्यों ही राम विष्णु का धनुष चढ़ाते हैं, परशुराम निस्तेज हो जाते हैं और युद्ध का अवसर ही नहीं आता। वे राम को विष्णु समझकर प्रणाम करते हैं।

राम ने चढ़े हुए बाण से परशुराम के तपोबल से संचित लोकों को नष्ट कर दिया, क्योंकि राम का बाण अमोघ था और ब्राह्मण परशुराम पर प्रहार करना राम को इष्ट नहीं था। उनकी दिव्य गति पर बाण का प्रयोग इसलिए नहीं किया कि परशुराम ने यह कहा कि कश्यप के अनुरोध से मैं पृथ्वी पर निवास नहीं कर सकता। मैं समुद्र से नया स्थान महेन्द्राचल लेकर वहीं रहता हूँ। दिव्यगति नष्ट होने पर वहाँ पहुँचना असंभव होगा, अतः मेरे तपोबल से अर्जित लोकों पर ही बाण चलाइये।

कहते हैं, परशुराम एक सुयोग्य प्रतिद्वन्द्वी क्षत्रिय से युद्ध करना चाहते थे। पर यह कथन निष्प्रमाण ही है। सहस्रबाहु कार्त्तवीर्यार्जुन जैसे महान् क्षत्रियों से वे द्वन्द्वयुद्ध कर ही चुके थे।

महाभारत के अनुसार उन्होंने भीष्म से २१ दिन तक द्वन्द्वयुद्ध किया था।

परशुराम राम से कहते हैं विष्णु-धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा दो तो मैं तुमसे द्वन्द्वयुद्ध करूँगा। शिव-धनुष और विष्णु-धनुष दोनों ही विश्वकर्मा से निर्मित थे। **अध्यात्मरामायण** के अनुसार परशुराम कहते हैं—या तो अपना राम नाम छोड़ दो अथवा मुझसे युद्ध करो। **नृसिंहपुराण** में भी ऐसा उल्लेख है—

"त्यज त्वं रामसंज्ञां तु मया वा समरं कुरु।"
"त्वं राम इति नाम्ना मे चरसि क्षत्रियाधम।
द्वन्द्वयुद्धं प्रयच्छाशु यदि त्वं क्षत्रियोऽसि वै॥ अध्यात्मरामायण (१।७।११)

तथा **आनन्दरामायण** (१।३।३५) में भी ऐसा ही उल्लेख है।

अध्यात्मरामायण के अनुसार "पुराणं जर्जरं चापं भङ्क्त्वा त्वं कत्थसे मुधा।" (१।७।८२)

परशुराम कहते हैं तुम जर्जर पुराने धनुष को तोड़कर व्यर्थ डींग हाँकते हो। यहाँ वे शिव-धनुष का अपमान नहीं करते हैं, परन्तु उसकी प्राचीनता कहकर राम के पराक्रम का ही अपकर्ष बताना चाहते हैं। अतएव अन्यत्र परशुराम को शिव का शिष्य माना गया है और शिव-धनुष तोड़ने को वे अपने गुरु का अनादर समझते हैं—

"सुनहु राम जो शिव-धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥"
(रा० मा० १।२७०।२)

वस्तुतः इनका कोई विरोध नहीं है।

वाल्मीकिरामायण के बालकाण्ड में वर्णित परशुराम की कथा को बुल्के विकास या प्रक्षिप्त मानते हैं, क्योंकि **महाभारत** के **रामोपाख्यान** में उसका संकेत नहीं है। परन्तु उनका यह मत सर्वथा अशुद्ध है, कारण **रामोपाख्यान** में संक्षिप्त रामकथा का वर्णन है। जब **वाल्मीकिरामायण महाभारत** से प्राचीन है तो उसकी कथावस्तु का अस्तित्व अर्वाचीन **महाभारत** पर कैसे निर्भर हो सकता है? अतः परशुराम की कथा को अर्वाचीन नहीं कहा जा सकता है।

महाभारत के अनुसार परशुराम ने अपने पिता जमदग्नि की आज्ञा के अनुसार अपनी माता रेणुका का वध किया था। आज्ञापालन के फलस्वरूप वर पाकर उसे पुनः जिलाया था (म० भा० ३।११६)। रामचरितमानस में भी उसकी चर्चा है—

"परशुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
(रा० मा० २।१७२।४)।

इसी तरह कार्तवीर्यार्जुन ने जमदग्नि की कामधेनु का हरण किया था तब परशुराम ने उसका वध किया था। सहस्रार्जुन के पुत्रों ने जामदग्न्य की अनुपस्थिति में जमदग्नि को मार डाला। उन्होंने उसके प्रतीकारस्वरूप पृथिवी को इक्कीस बार क्षत्रियविहीन बना दिया था। कश्यप को पृथ्वी देकर स्वयं महेन्द्र पर्वत पर रहने लगे—म० भा० ३।११७।१४ तथा **शान्तिपर्व** ४९ अध्याय—

'त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः॥ ६४॥' वाल्मीकिरामायण के अनुसार परशुराम क्षत्रियविरोधी थे। वे राम द्वारा धनुर्भङ्ग सुनकर उनसे द्वन्द्वयुद्ध करने के लिए प्रस्तुत थे।

प्रसन्नराघव, रामचरितमानस तथा **कृत्तिवासरामायण** में लक्ष्मण परशुराम से कुछ उग्रता से बातें करते हैं। **रामचन्द्रिका** में भरत तथा शत्रुघ्न भी वार्तालाप में भाग लेते हैं। अन्त में महादेव आकर विवाद शान्त करते हैं। **महावीरचरित, अनर्घराघव** तथा **प्रसन्नराघव** में राम तथा परशुराम युद्ध करने के लिए रङ्गमञ्च पर आ जाते हैं; परन्तु राम के वैष्णव धनुष चढ़ाने से परशुराम का तेजोभङ्ग होने के कारण युद्ध की नौबत नहीं आती। शङ्करदेवकृत **रामविजय** के अनुसार अयोध्या के मार्ग में परशुराम राम का वध करने का प्रयत्न करते हैं, क्योंकि उन्होंने उनके गुरु का धनुष तोड़ डाला था। द्वन्द्वयुद्ध में राम ने उन्हें पराजित किया। **तोरवेरामायण** में राम ने तोमर से परशुराम का परशु आकाश में फेंक दिया तथा अपने रथ से उतरकर, परशुराम का धनुष छीन लिया। इन अंशों को वस्तुतः विकार ही समझना चाहिये, क्योंकि ये सब राम की ब्रह्मण्यता तथा धीरोदात्तता के विरुद्ध हैं। विदेशी रामकथाओं में उक्त संघर्ष और भी उग्र हो जाता है। **खोतानी रामायण** के अनुसार दशरथ ने परशुराम के पिता के आश्रम में कामधेनु गाय देखी तथा दशरथ का पुत्र सहस्रबाहु उसका अपहरण करने को गया। परशुराम ने तपस्या द्वारा कुठार प्राप्त कर सहस्रबाहु का वध किया। बाद में सहस्रबाहु के पुत्र राम तथा लक्ष्मण परशुराम को खोज में निकले। अन्त में राम ने बाण से परशुराम को मार डाला। यह भी विदेशियों के भारतीय शास्त्रानभिज्ञता का ही परिणाम है। उन्हें हैहयवंश तथा रघुवंश का भेद ज्ञात न होने से इस प्रकार का विपर्यय हुआ है। **सेरीराम** के अनुसार पुष्पराम (परशुराम) राम को आदेश देते हैं कि अपना राम नाम छोड़ दो। अस्वीकार करने पर राम से उनका युद्ध होता है। अगले दिन राम का बाण पुष्पराम का पीछा करता है। वे स्वर्ग, पाताल और सागर में भ्रमण करके कहीं त्राण न पाकर राम की ही शरण लेते हैं। **रामकियेन** के अनुसार राम ने द्वन्द्वयुद्ध के अन्त में अपने को नारायण के रूप में प्रकट किया, इसपर रामासुर ने राम को ईश्वर का धनुष प्रदान किया। राम ने उसे ले लिया। उसे आकाश में फेंक दिया, जिससे आवश्यकता पड़ने पर वह धनुष उनके काम आ सके। कहना न होगा कि विविध देशों में होकर के उन देशों में पहुँचने तक राम-कथा में अनेक विकृतियाँ आ गयी हैं।

श्रीबुल्के कहते हैं, "**महाभारत** में परशुराम की कथा अनेक स्थलों में वर्णित है, किन्तु इसमें कहीं भी उनके विष्णुत्व की ओर संकेत नहीं मिलता। फिर भी **नारायणीयोपाख्यान** में (म० भा० १२।३२६।७७), **हरिवंश** (१।४१ ११२–१२०;२।२२।२–४८,) **विष्णुपुराण** (१।९।१४३), **भागवतपुराण** (१।३।२०;२।७।२२) में उनका अवतारों में उल्लेख विद्यमान है।" परन्तु बुल्केजी भारतीय विचार-पद्धति से बिलकुल अपरिचित हैं, अतएव आर्ष ग्रन्थों के समन्वय का दृष्टिकोण उन्हें विदित नहीं है और मान्य भी नहीं है। **नारायणीयोपाख्यान** में जो अंश है उसका अन्य स्थलों के साथ समन्वय ही अभीष्ट है। **विष्णुपुराण** आदि भी आर्ष ग्रन्थ एवं प्रमाण ही हैं। यदि **विष्णुपुराण** आदि में परशुराम को स्पष्टरूप से विष्णु का अवतार कहा गया है और **महाभारत** में भी **नारायणीयोपाख्यान** में परशुराम का विष्णु अवतार होना भी प्रसिद्ध ही है फिर भी **महाभारत के** ही कई स्थलों में उनका विष्णुत्व-वर्णन न होने से परशुराम विष्णु के अवतार नहीं हैं यह कैसे कहा जा सकता है? यह स्पष्ट जान लेना चाहिये कि केवल एक ग्रन्थ **वाल्मीकिरामायण** या **महाभारत** के कुछ अंशों के आधार पर नहीं, किन्तु सनातनधर्म में प्रसिद्ध आर्ष ग्रन्थों के समन्वय से ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

श्रीबुल्के के अनुसार "**नृसिंहपुराण** प्राचीनतम रचना है, जिसमें उनके तेजोभङ्ग के प्रसङ्ग में परशुराम के अवतार होने का संकेत है।" परन्तु यह भी उनका कहना सङ्गत नहीं है; क्योंकि विष्णुपुराण, **श्रीभागवतपुराण** आदि सम्बन्धी उनकी कालनिश्चिति अप्रामाणिक ही है, 'अतः व्यासनिर्मित सभी पुराण व्यासकालिक ही हैं। **विष्णुपुराण** आदि में स्पष्टरूप से परशुराम को विष्णु का अवतार कहा ही है। अतः—

"**परशुरामस्य देहाद् निष्क्रम्य तद् वैष्णवम्। पश्यतां सर्वभूतानां तेजो राममुखेऽविशत्**॥" (नृसिं० पु० ४७।१४८,१४९) अर्थात् वैष्णव तेज परशुराम के शरीर से निकल कर सब प्राणियों के देखते-देखते राम के मुख में प्रविष्ट हो गया। इस वचन के अनुसार वैष्णव तेज के राम में प्रवेश की चर्चा भले ही सर्वप्रथम **नृसिंहपुराण** में हो परन्तु परशुराम की विष्णुरूपता तो **अध्यात्मरामायण** (१।७।२४), **आनन्दरामायण** (१।३।३६४–३६६), **पद्मपुराण** (उत्तरखं० २६९।१६२), श्रीमद्भागवतपुराण (१।३।२०) आदि अन्य पुराणों से सिद्ध ही है। उन्हें विष्णु का अंशावतार कहना उचित ही है।

नवीन सामग्री शीर्षक से बुल्के कहते हैं, वाल्मीकि के पश्चात् राम-कथाओं में बालकाण्ड के अन्तर्गत प्रचुरमात्रा में सर्वथा नवीन सामग्री रखी गयी है।

१. अवतार के कारणों का विस्तृत निरूपण उन भूमिकाओं में सूर्यवंश अथवा इक्ष्वाकुवंश के राजाओं का इतिहास तथा रावण की कथा भी बहुतसी रचनाओं में प्रारम्भ में ही वर्णित है।

२. दशरथ के विवाहों तथा अन्धमुनि-पुत्रवध का वर्णन भी प्रायः रामकथा के प्रारम्भ में किया जाता है।

३. कृष्णबाललीला के अनुकरण पर राम की बाललीलाओं का वर्णन तथा हनुमान् के साथ बालक राम की मित्रता का वर्णन मिलता है।

४. राम के प्रारम्भिक कृत्यों के वर्णन में सर्वथा नवीन प्रसङ्ग आये हैं। उदाहरणार्थ म्लेच्छों से युद्ध, गुह से मैत्री, तीर्थ-यात्राएँ, वैराग्य तथा रासलीला।

५. सीता-स्वयंवर तथा राम-सीता के पूर्वानुराग का वर्णन जो कि **वाल्मीकिरामायण** में नहीं है।

६. बालकाण्ड की कथावस्तु में आगे चलकर शृङ्गाररस का भी प्रवेश हुआ है। जानकीहरण (सर्ग ८) तथा महानाटक (अङ्क २) में विवाह के उपरान्त राम और सीता के संभोग का वर्णन किया गया है। जानकीहरण (सर्ग ३) तथा कम्बरामायण (१।१३-१७) में दशरथ की क्रीड़ा का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। सत्योपाख्यान के उत्तरार्ध में राम तथा सीता के जलविहार, वनविहार, मानलीला आदि का चित्रण किया गया है।

परन्तु उक्त कथन अर्धसत्य ही है, क्योंकि अवतार के कारणों का निरूपण तो **बालकाण्ड वाल्मीकिरामायण** में भी है ही। विवाह के प्रसङ्ग में सूर्यवंश या इक्ष्वाकुवंश का वर्णन भी **वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड** में है ही (१।७०।२१–४३)। दशरथ के विवाह और अन्धमुनि की कथा भी **वाल्मीकिरामायण** में है ही। कृष्णलीला का अनुकरण राम में संभव नहीं है, क्योंकि राम कृष्ण से प्राचीन ही हैं, यही कहना युक्त भी है। आर्ष वर्णन सभी प्रामाणिक हैं। **वाल्मीकिरामायण** में अनुक्त होने पर भी कोई विरोध नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** से अनुक्त भी अविरुद्ध विशेष मान्य होता ही है—**'अनुक्तमप्रतिषिद्धमनुमतं भवति।'** तीर्थ-यात्रा, वैराग्य आदि भी **योगवासिष्ठ** प्रोक्त होने से प्रामाणिक ही हैं। इसी तरह **वाल्मीकिरामायण** में अनुक्त भी विशेष अन्य ग्रन्थों द्वारा वर्णित होने पर मान्य ही है। शतकोटिप्रविस्तर रामायण में अविरुद्ध अन्य विशेषों का वर्णन संभव ही है।

अवतारवाद

अवतारवाद के विरुद्ध बुल्के द्वारा प्रस्तुत तर्कों का पीछे विस्तार से खण्डन किया जा चुका है। अतएव इस सम्बन्ध में अधिक वक्तव्य अपेक्षित नहीं है।

श्रीबुल्के का पुत्रेष्टियज्ञ के प्रसङ्ग को प्रक्षिप्त कहना भी असङ्गत ही है। अन्यान्य अंशों में श्रीबुल्के **महाभारत के रामोपाख्यान** का सहारा पकड़ते हैं, पर वह इस प्रसङ्ग में यह मानते हैं कि उसमें अवतारवाद का उल्लेख है। फिर भी **वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड** में वर्णित अवतारवाद को प्रक्षिप्त मानने का हठ करते हैं। साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि संक्षिप्त **रामोपाख्यान** में विस्तृत रामकथा के सर्वांश का वर्णन हो। एक प्राचीन ग्रन्थ का प्रामाण्य अर्वाचीन ग्रन्थ पर निर्भर नहीं हो सकता। बुल्के कहते हैं **हरिवंशपुराण, वायुपुराण** एवं **भागवतपुराण** में दशरथ के यज्ञ का वर्णन नहीं है; परन्तु यदि वर्णन होता तो भी जैसे उनमें वर्णित अवतारवाद उन्हें मान्य नहीं है वैसे ही उनमें वर्णित यज्ञ भी मान्य न होता या बुल्के उसे भी प्रक्षिप्त मान बैठते।

"सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद् वंशकरः सुतः।" वाल्मीकिरामायण (१।८) के अनुसार श्रीदशरथजी तप्त हो रहे थे, परन्तु कोई वंशकर पुत्र नहीं हुआ था अथवा 'तप्यमानस्य' का अभिप्राय यह है कि राजा दशरथ विविध प्रकार के तप कर रहे थे। जैसा कि **स्कन्दपुराण** के दो स्थलों में उनकी तपस्या का वर्णन है, **नागरखण्ड के** अनुसार दशरथ का शनैश्चर के साथ युद्ध होने के पश्चात् इन्द्र ने उनसे कहा—

"अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" अपुत्र की गति नहीं होती। इसपर राजा कार्तिकेयपुर में १०० वर्ष तक तपस्या करते हैं। अन्त में जनार्दन प्रकट होकर स्वयं चार पुत्रों के रूप में प्रकट होने का वरदान देते हैं। बाद में दशरथ को चार पुत्रों एवं एक पुत्री की प्राप्ति होती है। **प्रभासखण्ड** के अनुसार प्रभास में तप करने और शिवलिङ्ग-स्थापना करने की भी चर्चा आती है। **वाराहपुराण** के अनुसार दशरथ वसिष्ठ के परामर्श से राम-द्वादशी का व्रत करते हैं। फलस्वरूप विष्णु उनके सन्तानरूप में प्रकट हुए। वस्तुतः किसी महाफल की प्राप्ति के लिए लोग अनेक प्रकार की तपस्याएँ तथा आराधनाएँ करते ही हैं। तदनुसार दशरथ के भी अनेक तप और व्रतों की बात सङ्गत ही है।

सारलादास के **महाभारत** के अनुसार इन्द्र के यहाँ से लौटते हुए दशरथ के द्वारा कपिला की अवज्ञा हो गयी थी, इसलिए कपिला के शाप से पुत्र-प्राप्ति में बाधा हुई; परन्तु बाद में व्याघ्र के आक्रमण से कपिला को बचाने के कारण कपिला के वरदान से उन्हें चार पुत्रों की प्राप्ति होती है। ग्रामगीतों के अनुसार किसी योगी के प्रसाद से उन्हें पुत्र-प्राप्ति होती है। बिर्होर के अनुसार किसी ब्राह्मण को अपने ज्येष्ठ पुत्र देने की प्रतिज्ञा से दशरथ को पुत्र-प्राप्ति हुई है। संथाळ जाति में प्रचलित कथा के अनुसार किसी योगी ने चार आम दिये थे। उन्हें अपनी पत्नियों को खिलाने से उन्हें पुत्र-प्राप्ति होती है।

सबका निष्कर्ष यही है कि श्रीदशरथजी को अनेक तपस्याओं, यज्ञों तथा व्रतों एवं योगियों और मुनियों के अनुग्रह से ही राम, लक्ष्मण आदि जैसे दिव्य सुपुत्रों की प्राप्ति हुई। **तिब्बती रामायण** के अनुसार ५०० पाँच सौ कैलासवासी ऋषियों से दशरथ ने पुत्र-प्राप्ति की प्रार्थना की थी। उनके दिये हुए एक फल के खाने से उनकी दो पत्नियों को राम और लक्ष्मण दो पुत्र हुए थे। **असमीया बालकाण्ड** के अनुसार अन्धकमुनि के दिये फल से दशरथ को पुत्र-प्राप्ति हुई। **सेरीराम** के अनुसार एक योगी ने सन्तान-प्राप्ति के लिए चार "वाजहर" नामक पत्थर प्रदान किये थे। एक अन्य पाठ के अनुसार दशरथ को दस हजार हाथियों के वध का परामर्श दिया गया था। देशान्तर और कालान्तर में विविध संसर्गों से **रामायण** की मूल कथाओं में अनेक प्रकार की विकृतियों का आ जाना स्वाभाविक ही है, अतः राम की कथाओं में **वाल्मीकिरामायण** मुख्य प्रमाण है। तदनुसार आर्ष रामायण एवं पुराणों, संहिताओं की कथाएँ प्रमाण हैं। अन्य कथाएँ भी पूर्वोक्त आर्ष ग्रन्थों से अविरुद्ध ही प्रमाण हैं। विरुद्ध कथाओं को विकृति ही समझना चाहिये।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार एक अश्वमेधयज्ञ एवं एक पुत्रेष्टियज्ञ का वर्णन मिलता है। इसी अवसर पर हविर्भाग-ग्रहणार्थ देवता, गन्धर्व, सिद्ध तथा परमर्षि आते हैं और ब्रह्मा से निवेदन करते हैं कि आपके वरदान से दृप्त होकर रावण हम सबको बाधित करता है। उसके वध का आप मार्ग निकालिये। ब्रह्मा कहते हैं मनुष्य के द्वारा उसका वध संभव है। उसी समय वहाँ विष्णु भगवान् का भी आगमन होता है। वह सब की प्रार्थना पर दशरथ के पुत्ररूप में प्रकट होकर रावण-वध करने का आश्वासन देते हैं।

पुत्रेष्टियज्ञ की अग्नि से प्रकट होकर अग्निदेव दशरथ को पायसान्न प्रदान करते हैं। श्रीदशरथजी उसे अपनी पत्नियों में बांट देते हैं, जिससे तीनों गर्भवती होती हैं (वा० रा० १। सर्ग १५ और १६)। अनन्तर विष्णु के अवतार भूत राम की सहायता के लिए ब्रह्मा की आज्ञा के अनुसार देवता लोग अप्सराओं और गन्धर्वियों से वानरों के रूप में प्रकट होते हैं (वा० रा० १। सर्ग १७)।

बुल्के कहते हैं, "**वाल्मीकिरामायण** में पहले अश्वमेध का ही वर्णन किया था; बाद में पुत्रेष्टियज्ञ का वर्णन जोड़ दिया गया है।" परन्तु यह उनकी भ्रान्ति ही है। उनकी दृष्टि में तो अश्वमेध-वर्णन भी प्रक्षिप्त ही है। वही क्यों वे तो सारे बालकाण्ड को ही प्रक्षिप्त मानते हैं, जिसका कि हम पीछे खण्डन कर चुके हैं। वस्तुतः अश्वमेधयज्ञ तो श्रवणकुमार-वध आदि पापों के प्रायश्चित्तार्थ किया गया था। पुत्र के लिए पुत्रेष्टियज्ञ का ही अनुष्ठान किया गया था। अतएव **पद्मपुराण, नृसिंहपुराण, रघुवंश, भट्टिकाव्य, जानकीहरण, अध्यात्मरामायण, रामचरितमानस** आदि में पुत्रेष्टियज्ञ का ही वर्णन है।

ब्रह्मपुराण (अध्याय १२३) में श्रवणकुमार-वध का प्रायश्चित्त करने के लिए ही अश्वमेधयज्ञ के आयोजन का उल्लेख है। यज्ञ में आकाशवाणी भी हुई थी कि राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र के प्रसाद से पापमुक्त हो जायँगे।

अन्य कथाओं के अनुसार पुत्रेष्टियज्ञ-वर्णन के प्रसङ्ग में ही हनुमान्, विभीषण और सीता तथा वानर-सेनापतियों के भी जन्म का निर्देश है। **आनन्दरामायण** के अनुसार एक गीध ने कैकेयी का पायस उसके हाथ से छीन लिया था और अञ्जनी पर्वत पर फेंक दिया था। इसपर अन्य रानियों ने पायस का कुछ अंश कैकेयी को दे दिया। **भावार्थरामायण** में भी ऐसी ही कथा है। अन्य रचनाओं के अनुसार दशरथ ने सर्वप्रथम कैकेयी को पायस प्रदान नहीं किया था, अतः वह मानिनी हो रही थी। इतने में चील ने उसके हाथ से पायस लेकर अञ्जनी के मुख में डाल दिया। उसी से हनुमान् को उत्पत्ति हुई। **आनन्दरामायण** (१।१।९६), **भावार्थरामायण** (१।१), पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १ तथा दक्षिण भारतीय एक वृत्तान्त के अनुसार ऋषि ने दशरथ की पत्नियों का नाम पूछा। भूल से दशरथ के मुख से कैकसी रावण की माता का नाम निकला। इसपर ऋषि ने पायस के चार भागों के पाँच भाग

बना दिये । एक काक ने उसका एक भाग चुराकर **कैकसी के** पास पहुँचा दिया । उसे खाने के कारण कैकसी ने विभीषण को जन्म दिया । **सेरीराम** तथा **रामकियेन** में सीता के जन्म का सम्बन्ध पुत्रेष्टियज्ञ से स्थापित किया गया है । **सेरीराम** के अनुसार एक काक पायस का षष्ठांश चुराता है । इसपर याज्ञिक कहता है कि यह काक दशरथ-पत्नी के पुत्र द्वारा मारा जायगा तथा जो इस पायस को खायेगा उसे एक पुत्री उत्पन्न होगी, जिसका विवाह राम के साथ होगा । बाद में रावण उस पायस को खाता है । **रामकियेन** के अनुसार यज्ञ के उस पायस की सुगन्धि लङ्का तक पहुँच गयी । मन्दोदरी ने रावण से उसे माँगा । रावण ने काकना राक्षसी को पायस लाने का आदेश दिया । राक्षसी ने पायस का अष्टमांश चुराया । वह मन्दोदरी को दिया गया । उसी से सीता का जन्म होता है (अ० १०) । भुइयां माधवदासकृत **विचित्ररामायण** के अनुसार डाकिनियाँ आकर पुत्रेष्टियज्ञ के धूम का पान करती हैं और गर्भवती होकर वानर-सेना के २५ सेनापतियों को जन्म देती हैं ।

भट्टिकाव्य तथा **रामायण ककविन** में दशरथयज्ञ का वर्णन है, पर किसी दिव्य पुरुष द्वारा पायस प्रदान का उल्लेख नहीं है । भट्टिकाव्य के अनुसार वे हुतावशिष्ट हवि का कुछ अंश खाती हैं (सर्ग १) ।

पद्मपुराण (पातालखण्ड ११२।२३ और उत्तरखण्ड १८९।४७) के अनुसार विष्णु ही यज्ञाग्नि से प्रकट होकर पायस प्रदान करते हैं । **रामरहस्य** (२।१४३) में भी वैसा ही उल्लेख है । वस्तुतः अग्निमुखेन विष्णु आदि सभी देवताओं का तर्पण होता है । अग्नि के अन्तर्यामी विष्णु ही हैं । **बृहद्धर्मपुराण** (पूर्वखं० अ० १८) तथा वाल्मीकिरामायण (१ । सर्ग १५) के अनुसार विष्णु देवताओं को आश्वासन देते हैं कि मैं राम के रूप में अवतार लूँगा । उसी समय शिव हनुमान् के रूप में राम को सहायता देने की प्रतिज्ञा करते हैं । **अध्यात्मरामायण** के अनुसार गोरूपधारिणी धरित्री देवताओं और मुनियों के साथ ब्रह्मा की शरण लेती है । ब्रह्मा सबको साथ लेकर क्षीरसमुद्र-वासी विष्णु के पास जाते हैं और स्तुति कर रावण-वध की प्रार्थना करते हैं । विष्णु कश्यप और अदिति के वर प्रदान की चर्चा करते हुए लक्ष्मी सहित अवतार लेने का आश्वासन देते हैं । ब्रह्मा देवताओं को वानरवंश में अवतरित होने का आदेश देते हैं । **पद्मपुराण** (गौडीय पातालखण्ड अध्याय १४) में शान्ता अपने पिता दशरथ से अपने पति ऋष्यशृङ्ग की शक्ति का वर्णन करती है, दशरथ उनके द्वारा पुत्रेष्टियज्ञ कराते हैं ।

कृत्तिवासरामायण के अनुसार दशरथ अपने मन्त्रियों से कहते हैं कि मुझे अन्धक मुनि ने वर दिया है । ऋष्यशृङ्ग द्वारा यज्ञ कराने से पुत्र-प्राप्ति होगी । यह ऋष्यशृङ्ग कौन हैं ? इसपर वसिष्ठ ने उनकी कथा बतायी । तब दशरथ लोमपाद के यहाँ जाकर ऋष्यशृङ्ग को अयोध्या लाकर यज्ञ कराते हैं । **विचित्ररामायण** के अनुसार पुत्रेष्टि के समय परशुराम प्रकट होकर आदेश देते हैं जो ज्येष्ठ पुत्र हो उसका मेरा नाम रखना । **काश्मीरीरामायण** के अनुसार नारायण ने दशरथ को स्वप्न में कहा कि मैं तुम्हारा पुत्र बनूंगा ।

अवतारवाद का विकास ?

श्रीबुल्के यह मानते हैं कि पहले **वाल्मीकिरामायण** में अवतार का वर्णन नहीं था । यह पीछे का विकास है, परन्तु उनका यह मत सर्वथा अशुद्ध और निराधार है, क्योंकि मन्त्रों, ब्राह्मणों, पुराणों, **महाभारत**, **गीता** आदि में सर्वत्र **अवतारवाद** प्रसिद्ध है । अतः **वाल्मीकिरामायण** के अवतार-वर्णन को प्रक्षिप्त कहना सर्वथा निर्मूल ही है ।

दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार कौशल्या को पायस का आधा भाग प्राप्त हुआ । सुमित्रा को एक चतुर्थांश तथा कैकेयी को एक अष्टमांश दिया गया है ।

वाल्मीकिरामायण उदीच्यपाठ तथा **रामचरितमानस** का पायस-विभाग निम्नोक्त है—

कौशल्या को अर्धभाग, कैकेयी को एक चतुर्थांश और सुमित्रा को दो अष्टमांश। **रघुवंश, आध्यात्मरामायण** आदि में चारों भाई एक एक चतुर्थांश से जन्म लेते हैं।

श्रीबुल्के कहते हैं, किन्तु आगे चलकर तीनों भाई भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न एक एक चतुर्थांश से समन्वित माने जाते जाते हैं (वा० रा० १।१८।१३,१४)। यह अन्तिम रूप सबसे प्राचीन है। चारों भाई विष्णु के चतुर्थांश माने जाते हैं। हरिवंश, विष्णुपुराण, वायुपुराण आदि में विष्णु का चार रूपों में प्रकट होने का उल्लेख है।

"कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः।" (हरिवं० १।४१।१२२)

"कौशल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः॥
कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्।
प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम्॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः।" (वा० रा० १।१६।२७,२८)

राजा ने कौशल्या के लिए पायस का अर्धभाग प्रदान किया, अर्ध से अर्ध अर्थात् चतुर्थांश सुमित्रा को दिया गया एवं अवशिष्टार्ध अर्थात् चतुर्थांश का अर्ध यानी अष्टमांश कैकेयी को प्रदान किया। पुनश्च अन्य अष्टमांश सुमित्रा को दिया गया। कैकेयी की अपेक्षा ज्येष्ठ और कौशल्या की अपेक्षा कनिष्ठ सुमित्रा को पादोन अर्धांश प्रदान किया गया। संभोग-पक्षपात होने पर भी धर्मविभाग कर्म में पक्षपात नहीं होता। तथा च भरत और शत्रुघ्न दोनों पाद (चतुर्थांश) के अर्ध-अर्ध हैं। अन्य दृष्टि से राम और भरत प्रत्येक त्र्यंश हैं। लक्ष्मण और शत्रुघ्न दो अष्टमांश हैं। कौशल्या को दिये गये अर्धांश का अर्धांश (चतुर्थांश) सुमित्रा को कौशल्या द्वारा दिलाया गया अर्थात् कौशल्या के लिए दत्त भाग से अवशिष्ट भाग में दो भाग करके एक भाग सुमित्रा को दिया गया था। अवशिष्ट अन्य भाग कैकेयी को दिया गया, परन्तु उसमें से अर्धभाग पुनः कैकेयी द्वारा सुमित्रा को प्रदान किया गया। कौशल्या के लिए दिये हुए अर्धांश से अर्धावशिष्ट—अवशिष्ट अर्ध–भाग कैकेयी को प्रदान किया गया। पुनश्च उसमें से अर्धांशभाग कैकेयी के द्वारा पुनः सुमित्रा को दिलाया गया।

कालिदास भी यही कहते हैं—

"स तेजो वैष्णवं पत्न्योर्विभेजे चरुसंज्ञितम्।
द्यावापृथिव्योः प्रत्यग्रमहर्पतिरिवातपम्॥
अर्चिता तस्य कौशल्या प्रिया केकयवंशजा।
अतः सम्भावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वरः॥
ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः।
चरोरर्धार्धभागाभ्यां तामयोजयतामुभे॥
सा हि प्रणयवत्यासीत् सपत्न्योरुभयोरपि॥" (रघुवं० १०।५४–५७)

जैसे अहर्पति अर्थात् सूर्य अपने अभिनव आतप (घाम) को द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों के लिए विभक्त कर देते हैं वैसे ही राजा ने उस चरुरूप वैष्णव तेज को ज्येष्ठ होने से धर्मतः आदरणीय कौशल्या और प्रिय होने से कैकेयी के लिए बराबर विभक्त कर दिया। राजा दशरथ ने यह भी चाहा कि दोनों रानियाँ सुमित्रा को सम्मानित करें। राजा के मन की बात को जाननेवाली कौशल्या और कैकेयी ने चतुर्थांश अर्थात् अपने अर्ध से अर्ध भाग सुमित्रा को प्रदान कर दिया, क्योंकि वह दोनों ही सपत्नियों से स्नेह करती थी। इस व्याख्या के अनुसार ही

राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्न की घनिष्ठता और एकवाक्यता सिद्ध होती है। अन्यथा इसका कोई बीज नहीं सिद्ध होगा। **पद्मपुराण** में पायस विभाग के अनुसार ही उनकी घनिष्ठता कही गयी है—

"युगं बभूवतुस्तत्र सुस्निग्धौ रामलक्ष्मणौ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ पायसांशवशात् स्वतः॥"

मल्लिनाथ के अनुसार, रघुवंश में "चरोरर्धार्धभागाभ्याम्" का अर्थ निम्नोक्त है। "चरोरर्धभागौ समभागौ तयोर्यावर्धभागौ तौ च तौ भागौ च।" अर्थात् अपने भाग के अर्ध का जो अर्ध भाग है वह भाग दोनों ने सुमित्रा को प्रदान किया। मल्लिनाथ के अनुसार यह विभाग **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार नहीं है, किन्तु **नृसिंहपुराण** के अनुसार है—

"ते पिण्डप्राशने काले सुमित्रायै महीपतेः।
पिण्डाभ्यामल्पमल्पन्तु स्वभगिन्यै प्रयच्छतः॥"

अर्थात् पिण्डप्राशन-काल में कौशल्या और कैकेयी ने अपने अपने पिण्ड में से थोड़ा-थोड़ा भाग अपनी भगिनी सुमित्रा को प्रदान किया। परन्तु रामाभिरामी टीका के अनुसार रामायण का भी वही अर्थ है। उनके अनुसार कौशल्या के अर्धभाग से ही अर्धार्ध सुमित्रा को दिया गया है। इस पक्ष में छः छः आना भाग से राम और भरत तथा दो-दो आना भाग से लक्ष्मण और शत्रुघ्न होते हैं। **वाल्मीकिरामायण** के अन्य टीकाकारों के अनुसार राजा ने ज्येष्ठ पत्नी होने से कुछ अधिक पायस का आधा अंश कौशल्या को प्रदान किया। फिर यह बिचार करके कि सुमित्रा का एक पुत्र राम का अनुयायी हो और एक भरत का अनुयायी हो, कौशल्या के भाग से ही अर्ध अर्थात् कुछ न्यून अर्ध अंश राजा ने कौशल्या से सुमित्रा को दिलाया। इसी तरह कौशल्या के भाग से कुछ न्यून अवशिष्ट अर्धभाग कैकेयी को प्रदान किया। पुनश्च कैकेयी के भाग से अर्धभाग सुमित्रा को कैकेयी के द्वारा दिलाया। इनके अनुसार पायस में आठ भाग किये गये। उनमें पाँच अंश कौशल्या को दिये गये, कौशल्या के भाग से डेढ़ अंश सुमित्रा को दिया गया। कौशल्या के भाग से अवशिष्ट तीन अंश कैकेयी को दिये गये। कैकेयी के भाग से डेढ़ अंश पुनः कैकेयी के द्वारा सुमित्रा को दिया गया। साढ़े तीन अंशों को एक करके कौशल्या ने खाया, उसी से राम का प्रादुर्भाव हुआ। डेढ़ अंश कैकेयी ने खाया उससे भरत का आविर्भाव हुआ। सुमित्रा ने पहले कौशल्या दत्त डेढ़ अंश खाया उससे लक्ष्मण का आविर्भाव हुआ। पश्चात् कैकेयी द्वारा दत्त डेढ़ अंश खाया उससे शत्रुघ्न का जन्म हुआ। **रामाभिरामी** टीका के दृष्टिकोण से भी 'अर्धार्धभागाभ्याम्' रघुवंश के इस पद्यांश का अर्थ है—स्वस्वलब्धांशसम्बन्ध्यर्धार्धभागाभ्याम्। स्वस्वलब्ध अंशसम्बन्धी अर्ध के अर्धभाग को दोनों ने सुमित्रा के लिए प्रदान किया। इससे **नृसिंहपुराण** की यह उक्ति भी अपने पिण्ड से **अल्पम् अल्पम्** (थोड़ा-थोड़ा) दोनों ने सुमित्रा को दिया, अपने समान भाग नहीं दिया, सिद्ध होती है। **पद्मपुराण** उत्तरखण्ड के अनुसार राजा ने अपनी ज्येष्ठा और कनिष्ठा पत्नियों को देखकर दिव्य पायस प्रदान किया। इसी बीच उनकी मध्यमा पत्नी सुमित्रा आ गयी। वह भी पुत्रकामा थी, उसको देखकर कौशल्या और कैकेयी ने अपना आधा-आधा भाग सुमित्रा को प्रदान किया—

"स राजा तत्र दृष्ट्वाऽथ पत्नीं ज्येष्ठां कनीयसीम्।
विभज्य पायसं दिव्यं प्रददौ सुसमाहितः॥
एतस्मिन्नन्तरे पत्नी सुमित्रा तस्य मध्यमा।
तत्समीपं प्रयाता सा पुत्रकामा सुलोचना॥
तां दृष्ट्वा तत्र कौशल्या कैकेयी च सुमध्यमा।
अर्धमर्धं प्रददतुस्ते तस्यै पायसं स्वयम्॥" (पद्मपु० उत्तरखं० २४२।५९-६१)

एतावता यह भी निश्चित होता है कि सुमित्रा मध्यमा और कैकेयी कनीयसी पत्नी थी। इसी अध्याय में तीनों को क्रमिक प्रथमा, द्वितीया और तृतीया भी कहा गया है—

"कोशलस्य नृपस्याथ पुत्री सर्वाङ्गशोभना।
कौशल्यां नाम तां कन्यामुपयेमे स पार्थिवः॥
मागधस्य नृपस्याथ तनयात्र शुचिस्मिता।
सुमित्रा नाम नाम्ना च द्वितीया तस्य भामिनी।
तृतीया केकयस्याथ नृपतेर्दुहिता तथा।
भार्याभूत् पद्मपत्राक्षी कैकेयी नाम नामतः॥"

स्कन्दपुराण (नागरखण्ड अध्याय ९८) में यह भी कहा गया है—कौशल्या नाम की विख्याता ज्येष्ठ पत्नी में प्रथम पुत्र राम उत्पन्न हुए, कनिष्ठा कैकेयी में भरत नामक पुत्र उत्पन्न हुए एवं सुमित्रा नाम्नी मध्यमा पत्नी में शत्रुघ्न और लक्ष्मण उत्पन्न हुए—

"कौशल्या नाम विख्याता तस्य भार्या सुशोभना।
ज्येष्ठा तस्यां सुतो जज्ञे रामाख्यः प्रथमः सुतः॥
[illegible]ान्या कैकेयी नाम तस्य भार्या कनिष्ठिका।
भरतो नाम विख्यातस्तस्याः पुत्रो भवत्यसौ॥
सुमित्राख्या तथा अन्या पत्नी या मध्यमा स्थिता।
शत्रुघ्नलक्ष्मणौ पुत्रौ तस्यां जातौ महाबलौ॥"
(स्कन्दपु० नागरखं० ९८।१९–२२)

कुछ लोगों के अनुसार भरत और शत्रुघ्न कैकेयी के यमल पुत्र थे, इसके अनुसार "**निज जननी के एक कुमारा**" की संगति लग जाती है।

"प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौशल्याऽजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥" (वा० रा० १।१८।१०)

उत्तम ग्रह, नक्षत्र, लग्न आदि का उदय होने पर सर्वलोकनमस्कृत दिव्यलक्षणसम्पन्न जगदीश्वर राम को कौशल्या ने जन्म दिया। **रामाभिरामी** के अनुसार सर्वलोकनमस्कृत से यह सूचित किया गया है कि प्रादुर्भाव-काल में कौशल्या को भगवान् के विराट् रूप का दर्शन हुआ और उस रूप के दर्शन से विस्मित होकर कौशल्या ने उन्हें नमस्कार किया और वालरूप धारण करने की प्रार्थना की एवं भगवान् बालरूप से प्रकट हुए।

"विष्णोरर्धं महाभागं पुत्रमिक्ष्वाकुनन्दनम्।
लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभिस्वनम्॥" (वा० रा० १।१८।११)

रामाभिरामी के अनुसार इन श्लोकों का भी पूर्वोक्त श्लोकों के साथ समन्वय ही करना चाहिये तथा शङ्ख, चक्र और अनन्त (शेष) से विशिष्ट विष्णु का अर्ध अर्थात् किञ्चित् न्यून भाग शङ्ख, चक्र और शेष हैं। शङ्खादि-रहित विष्णु रामरूप में अवतीर्ण हुए।

"भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
साक्षाद् विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः॥" (वा० रा० १।१८।१३)

साक्षात् विष्णु का चतुर्भाग (चतुर्थांश से न्यून भाग) सर्वगुणों से युक्त सत्यपराक्रम भरत के रूप में प्रकट हुआ, क्योंकि पूर्व श्लोकों की व्याख्या के अनुसार पायस के चतुर्थांश न्यून अर्धभाग से ही भरत का जन्म हुआ है। मध्यमपदलोपी समास न समझने के कारण ही श्रीबुल्के आदि ने चतुर्भागः का चतुर्थ भाग अर्थ समझ लिया है, जो कि पूर्व व्याख्या के सर्वथा विरुद्ध है। जब एक साधारण लेख के वाक्यों में भी पूर्वापर का विरोध परिहार करके समन्वय किया जाता है, तब महान् आर्ष **रामायण** में समन्वय न करके विरोध व्यक्त करना अज्ञता ही है। भरत को पाञ्चजन्य का अवतार समझना चाहिये।

"अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राऽजनयत्सुतौ।
वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ॥" (वा० रा० १।१८।१४)

विष्णु के अर्ध भाग से समन्वित सर्वास्त्रकुशल लक्ष्मण और शत्रुघ्न को सुमित्रा ने उत्पन्न किया। यहाँ अर्धशब्द भाग का बोधक है, अंश का नहीं; अतः पूर्वोक्त विभाग के अनुसार पायस के दो अष्टमांशों से लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उत्पत्ति हुई। उपर्युक्त मतभेदों का समाधान कल्पभेद से कर लेना चाहिये। श्रीतुलसीदासजी ने भी अपनी एक स्वतन्त्र परम्परा का निर्देश **रामचरितमानस** में किया है। उन्होंने बताया है कि श्रीभगवान् शिव ने मानस का निर्माण करके अपने मन में रखा था। उसी को उन्होंने शिवा (पार्वती) से कहा था। शिव ने ही काकभुशुण्डि को भी दिया। भुशुण्डि से याज्ञवल्क्य ने पाया। उन्होंने भरद्वाज को सुनाया। उसे मेरे [illegible] ने सूकरक्षेत्र में मुझे प्रदान किया था। जिन्होंने यह कथा नहीं सुनी हो, उन्हें आश्चर्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि [illegible]रि अनन्त हैं। उनके गुण, कर्म और नाम भी अनन्त हैं। उनके विविध अवतार होते हैं, अतः किसी कल्प के अनुसार इस कथा की भी संगति लगा लेनी चाहिये।

"संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा॥
सोइ शिव काकभुसुंडिहि दीन्हा। रामभगत अधिकारी चीन्हा॥
तेहिसन जागबलिक मुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥"
(रा० मा० १।२९ (ग)। २, ३)

"मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकरखेत।" (रा० मा० १।३० (क))

"जेहि यह कथा सुनी नहि होई। जनि आचरजु करै सुनि सोई॥
राम कथा कै मिति जग नाही। असि प्रतीति तिनके मन माही॥
नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥
कलप भेद हरि चरित सुहाये। भाँति अनेक मुनीसन गाये॥"
(रा० मा० १।३२।२-४)

रामकथा की इयत्ता नहीं है। राम के अवतार अनेक प्रकार के होते हैं। **रामायण** शतकोटिप्रविस्तर है। कल्पभेद से मुनीशों ने अनेक प्रकार के चरित्रों का वर्णन किया है। यद्यपि तुलसीदास अपने **रामचरितमानस** को नानापुराणनिगमागमसम्मत मानते हैं तथापि क्वचिदन्यतोऽपि से परम्पराप्राप्त अन्यान्य वस्तुओं का प्रवेश भी उन्हें मान्य प्रतीत होता है। इसी दृष्टि से **रामचरितमानस** का चरु-विभाग वाल्मीकि आदि से विलक्षण प्रतीत होता है। उसके अनुसार पायस का अर्ध भाग कौशल्या को प्रदान किया गया। उससे राम का आविर्भाव हुआ। आधे में दो भाग करके एक भाग कैकेयी को प्रदान किया गया, जिससे भरत का जन्म हुआ। अवशिष्ट अर्ध में दो विभाग कर एक-एक भाग कौशल्या और कैकेयी के हाथ से सुमित्रा को दिया गया। उनमें से कौशल्यादत्त भाग से रामानुज लक्ष्मण का प्रादुर्भाव एवं कैकेयीदत्त चरुभाग से भरतानुज शत्रुघ्न का आविर्भाव हुआ। टीकानिरपेक्ष मूल वाल्मीकि के (१।१६।

२७) और (१८।११) के अनुसार भी चरु के अर्ध भाग से राम का आविर्भाव स्पष्टतया सिद्ध है। किन्तु अन्य भागों में **वाल्मीकिरामायण रामचरितमानस** में भिन्नता है। शङ्ख, चक्र और शेष सहित विष्णु की अपेक्षा केवल विष्णु अर्ध समझे जा सकते हैं, अर्ध भाग में शङ्ख, चक्र और शेष समझे जा सकते हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध की दृष्टि से क्रमेण राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का आविर्भाव समझना चाहिये। माण्डूक्य उपनिषद् की दृष्टि से राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को क्रमशः तुरीय ब्रह्म, आनन्दमय, हिरण्यगर्भ और विराट् समझना चाहिये। **नृसिंहतापनीय** उपनिषद् की दृष्टि से ओत अर्थात् विराट् तुरीय को शत्रुघ्न, अनुज्ञाता हिरण्यगर्भ तुर्य को लक्ष्मण, अनुज्ञा आनन्दमय (अव्याकृत) तुरीय को भरत और अविकल्प तुर्य तुरीय को राम समझना चाहिये।

"क्वैषानुज्ञेत्येष एवात्मेति होवाच। ते होचुर्नमस्तुभ्यं वयं त इति ह प्रजापतिर्देवाननुशशासेति। ओतमोतेन जानीयादनुज्ञातारमान्तरम्। अनुज्ञामद्वयं लब्ध्वा उपद्रष्टारमाव्रजेदित्युपद्रष्टारमाव्रजेदिति।

(नृसिंहोत्तरतापनीय खण्ड ९)

"अथ तुरीयेण ओतश्च प्रोतश्च ह्ययमात्मा नृसिंहोऽस्मिन् सर्वमयं सर्वात्मायं हि सर्वं नैवोतोऽद्वयो ह्ययमात्मैकल एवाविकल्पः। नहि वस्तु सदयं ह्योत इव सद्घनोऽयं चिद्घनः····। अनुज्ञाता ह्ययमात्मैष ह्यस्य सर्वस्य स्वात्मानमनुजानाति।

ओमिति ह्यनुजानाति·······················

अनुज्ञैकरसो ह्ययमात्मा·······················

न ह्ययमोतो नानुज्ञाता·······················

अनुज्ञैकरसो ह्ययमोङ्कारः·······················ओङ्कारकश्चिदेवानुज्ञा।

"अविकल्पो ह्ययमोङ्कारः····परमेश्वर एवैकमेव तद्भवत्यविकल्पोऽपि नात्र काचन भिदास्ति नैव तत्र काचन हि भिदास्त्यत्र भिदामिव मन्यमानः शतधा सहस्रधा भिन्नो मृत्योर्मृत्युमाप्नोति।"

(नृ० उ० ता० खण्ड ८)

"अनुज्ञाया निर्विकल्पस्य चान्तरत्वमवगन्तव्यम्।" (शां० भा०)

रामतापनीय की दृष्टि से अकाराक्षरसंभूत लक्ष्मण विश्व या विराट् हैं, उकाराक्षरसंभूत शत्रुघ्न तैजस या हिरण्यगर्भ हैं, मकाराक्षरसंभूत भरत अव्याकृत या प्राज्ञ हैं एवं अर्धमात्रासंभूत राम तुरीय ब्रह्म हैं—

"अकाराक्षरसंभूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षरसंभूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसंभवः।
अर्धमात्रात्मको रामः ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥

विश्वभावनो विरञ्चिरूपः जाग्रदभिमानी संकर्षणः। तैजसात्मकः स्वप्नाभिमानी शत्रुघ्नः प्रद्युम्नः। प्राज्ञात्मकः सुषुप्ताभिमानी भरतः।

"रामस्तुरीयावस्थं ब्रह्म वासुदेवात्परम् श्रीरामसान्निध्यवशाज्जगदानन्ददायिनी। उत्पत्ति-स्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥ सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिता। (बिन्द्वंशवाच्या कार्योन्मुखी नादांशवाच्या शक्तिशान्ताख्ये अप्यवस्थे अस्या एव।) प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥"

वस्तुतः **रामतापनीय** के सौमित्रि शब्द का शत्रुघ्न अर्थ करना चाहिये और शत्रुघ्न शब्द का यौगिक अर्थ शत्रुहन्ता लक्ष्मण करना अभीष्ट है। जिस प्रकार गीता में—

"भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥" (गी० ७।४)।

इस श्लोक में मन का अर्थ अहङ्कार, बुद्धि का अर्थ महत्तत्त्व और अहङ्कार का अर्थ अव्यक्त तत्त्व करके अष्ट प्रकृतियों की गणना की जाती है। प्रकृत में भी वैसा ही समझना चाहिये। इस दृष्टि से पायस को निर्विशेष तथा सविशेष उभयविध सम्पूर्ण ब्रह्म समझना चाहिये। (**एको विष्णुर्महद्भूतम्**) पायस का प्रथम अर्धभाग अर्धमात्रालक्ष्य निर्विशेष ब्रह्म का प्रतीक है। उसी से राम का प्रादुर्भाव है। द्वितीय अर्धभाग को स्थूल-सूक्ष्म कार्यब्रह्म और कारण-ब्रह्मरूप सविशेष ब्रह्म का प्रतीक समझना चाहिये। सविशेष के प्रथम दो विभाग हुए कारण और कार्य विभाग। कारण विभाग के प्रतीकभूत प्रथम भाग से भरत का आविर्भाव है और द्वितीय भाग के सूक्ष्म और स्थूल कार्य के भेद से पुनः दो विभाग हुए। सूक्ष्म कार्यब्रह्म का लक्ष्मण और स्थूल कार्यब्रह्म का शत्रुघ्न के रूप में आविर्भाव हुआ। कार्य में स्पष्टता होने के कारण लक्ष्मण और शत्रुघ्न का गौर रूप है। कारण एवं कारणातीत निर्विशेष ब्रह्म में अव्यक्तता के कारण नीलाम्बुजश्यामलता है। निराकार आकाश की श्यामलता के समान ही निराकार कारण और तुरीय ब्रह्म को श्यामल समझा जा सकता है। परन्तु एक दृष्टि से लक्ष्मण को ही शेष, अनन्त या अव्याकृत कहा गया है। अव्याकृतब्रह्म अक्षरब्रह्म को ही व्यापी वैकुण्ठ एवं भगवान् का आसन शेष (अनन्त) या सिंहासन माना जाता है। शेष शब्द अव्याकृत या कारणब्रह्म है, क्योंकि प्रपञ्च-प्रलय के बाद वही अवशिष्ट रहता है। "शिष्यते यः स शेषः" जो बाकी बचता है वही शेष है।

"नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु।
व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यते शेषसंज्ञः॥" (भा० पु० १०।३।२५)

प्रलयकाल में सब लोकों के नष्ट होने पर सब भूत, भूतादि अहङ्कार में लीन हो जाते हैं। व्यक्त अहङ्कार, महान् आदि भी अव्यक्त में प्रलीन हो जाते हैं। तब केवल आप ही रह जाते हैं, अतः आपकी शेषसंज्ञा होती है। अकार-प्रश्लेष से अशेष संसार की संज्ञा (शान्त) आप में होती है। इस दृष्टि से शेष ही संकर्षण या कारणब्रह्म होते हैं और वे अनन्यभक्ति से सर्वशेषी भगवान् का अपने को शेष (अङ्ग) बना देते हैं। अपने आपको ही भगवान् की शय्या, सिंहासन, पादुका आदि बनाकर अपने आप को ही पहरेदार या अङ्गरक्षक बना देते हैं, इसलिए भी वे शेष हैं। जो अपने आपको मुख्य भगवान् का अङ्ग बना देता है वही अशेष अर्थात् सब कुछ होता है। इसी दृष्टि से **वाल्मीकिरामायण** में अवशिष्ट पायस के अर्धांश सविशेष ब्रह्म का अर्धांश कारण ब्रह्मांश सुमित्रा को दिया गया है और उससे लक्ष्मण का आविर्भाव हुआ। शेष अर्ध अर्थात् कार्यब्रह्म में दो विभाग किये गये एक सूक्ष्म कार्यब्रह्म और अन्य स्थूल कार्यब्रह्म दोनों ही कैकेयी को प्रदान किये गये। उनमें से एक भाग स्थूल कार्य ब्रह्मरूप पुनः सुमित्रा को दिया गया। उसीसे शत्रुघ्न की उत्पत्ति हुई। सूक्ष्म कार्यब्रह्म का कैकेयी से भरत के रूप में प्रादुर्भाव हुआ। उन दोनों भागों को शङ्ख और चक्र रूप भी कहा जा सकता है। श्रीराम के अनन्त यशःसौरभ तथा विजय के ज्ञापक पाञ्चजन्य शङ्खरूप भरत हैं।

"रघुपतिकीरति विमल पतका। दण्ड समान भयो जस जाका॥"
(रा० मा० १।१६।३)

दैत्यादि शत्रुओं का सूदन करनेवाला चक्र ही श्रीरिपुदमन शत्रुघ्न के रूप में प्रकट हुआ। इस तरह दोनों ही पक्षों का कल्पभेद एवं अभिप्रायभेद से समन्वय है। **नृसिंहपुराण, पद्मपुराण, रघुवंश** आदि के अनुसार कारण

एवं कारणातीत अव्यक्त होने से पायस का जो प्रथमार्ध भाग है, वह कौशल्या को प्रदान किया गया। उसी में से कारणांश अर्ध या अल्पांश सुमित्रा को दिया गया जिससे लक्ष्मण की उत्पत्ति हुई। कारणातीत ब्रह्मांश से कौशल्या ने राम को जन्म दिया। सूक्ष्म और स्थूल उभय कार्यब्रह्ममय पायसार्द्ध कैकेयी को प्रदान किया गया। उसी में से कैकेयी ने अर्ध या अल्प स्थूल कार्यब्रह्मात्मक अंश सुमित्रा को प्रदान किया। उसीसे शत्रुघ्न की उत्पत्ति हुई। शेष सूक्ष्म कार्यब्रह्मात्मक भाग से कैकेयी में भरत का आविर्भाव हुआ। यहाँ भी सूक्ष्म व्यापक ब्रह्म की अपेक्षा स्थूल ब्रह्म व्याप्य एवं अल्प ही होता है। पृथिवी, जल, वायु आदि में पृथिव्यादि कार्यों की अपेक्षा जलादि कारणों में उत्तरोत्तर व्यापकता, सूक्ष्मता तथा स्वच्छता श्रुति, स्मृति एवं युक्तियों से भी सिद्ध ही है। इस तरह इन पक्षों में विरोध की कल्पना न कर समन्वय ही समझना चाहिये। साङ्गोपाङ्ग सविशेष अथवा निर्विशेष विष्णु ही चार रूपों में विभक्त होकर राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के रूप में प्रकट हुए, अतः **हरिवंश** आदि के श्लोकों की भी संगति लग जाती है। **"कृत्वात्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः।"** इस वचन में यह नहीं कहा गया है कि चारों भाग बराबर ही थे। यदि वैसा कहा भी हो तो भी पूर्ण के सब अंश पूर्ण ही होते हैं, इस दृष्टि से साम्यकथन भी सङ्गत हो सकेगा।

वासुदेव, संकर्षण आदि का राम आदि के रूप में प्रादुर्भाव हुआ है, यह पक्ष भी **विष्णुधर्मोत्तर** (अ० २१२) तथा **नारदपुराण** (उत्तरखण्ड अ० ७५) के अनुसार ठीक ही है। ये पुराण भी आस्तिकों की दृष्टि से परम प्रमाण हैं। इनमें बुद्धि, चित्त, अहङ्कार एवं अन्तर्यामी का ही क्रमेण राम आदि के रूप में प्रादुर्भाव समझना चाहिये।

श्रीबुल्के का बाद की अधिकांश कथाओं में राम विष्णु के पूर्ण अवतार माने गये हैं, यह कहना असङ्गत है, क्योंकि वस्तुतः सभी कथाओं में राम का पूर्णावतार ही माना गया है। जहाँ कहीं **"अंशेनावततार"** कहा गया है। उसका समन्वय करके अंशेन भरतादिना अथवा ज्ञानैश्वर्यादिना अर्थात् भरतादि अंशों के साथ अथवा दिव्य ज्ञान, ऐश्वर्य आदि के साथ पूर्णतम भगवान् अवतीर्ण हुए यही अर्थ समझना चाहिये, क्योंकि **वाल्मीकिरामायण** में भगवान् की स्तुति करते हुए ब्रह्मादि देवता स्पष्ट कहते हैं कि आप आदिकर्ता स्वयंप्रभु नारायण हैं।

"त्रयाणामपि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः।" (वा० रा० ६।११७।७)
"भवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।" (वा० रा० ६।११७।१३)

इसी तरह **"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्"** (भाग० पु० १।३।२८) में भी कृष्ण को स्वयं भगवान् माना गया है, अंश नहीं।

तिब्बती रामायण में विष्णु एवं विष्णु के पुत्र का राम और लक्ष्मण के रूप में अवतार वर्णन है। किन्तु उसपर अनीश्वरवादी बौद्धों का प्रभाव होने से वह **वाल्मीकिरामायण** के तुल्य प्रमाण नहीं है।

नृसिंहपुराण (अ० ४७), **देवीपुराण** (१।३०) आदि में तथा जावा के **सेरतकाण्ड** में लक्ष्मण को शेषावतार कहा गया है, यह ठीक है। **नृसिंहपुराण** को परवर्ती कहना अनभिज्ञता ही है। **रघुवंश** के टीकाकार मल्लिनाथ ने तो **रघुवंश** के चरुविभाग का आधार ही **नृसिंहपुराण** को माना है। इसी तरह **"भरतशत्रुघ्नौ शङ्खचक्रे"** **अध्यात्मरामायण** (१।४।१८) तथा **"शङ्खचक्रे द्वे भरतं सानुजम्"** (३।२।१६)।

"शङ्खो बभूव भरतः श्रीविष्णोः सव्यसत्करे।
वामे करे बभूवास्य शत्रुघ्नश्च सुदर्शनम्॥" (आ० रा० ९।६।१६)

पद्मपुराण (उत्तरखण्ड १६९।९३-९५), **रामरहस्य** (अ० ३) आदि में भी इसी तरह का प्रतिपादन है। रामरहस्य आदि को अर्वाचीन कहना भी असङ्गत है। इसी तरह **आनन्दरामायण** (३।९।४७) में **"बभूवतुश्चक्रदरौ कैकेयीसूनुर्लवणान्तकश्च।।"** में भरत को चक्र और शत्रुघ्न को शङ्ख कहा गया है। **उदारराघव** (सर्ग २), **तत्त्वसंग्रहरामायण** (१।१४) तथा **काश्मीरीरामायण** (२।१३) में भी भरत और शत्रुघ्न को क्रमशः चक्र और शङ्ख का अवतार माना गया है। इस परिवर्तन को कल्पान्तरीय ही मानना उचित है। इसी तरह **लिङ्गपुराण** (२।५।१४७,१४८) तथा **अद्भुतरामायण** (४।६६,६७) में भरत और शत्रुघ्न को विष्णु की दाईं और बाईं बाहुओं का अवतार माना गया है। इसका अभिप्राय यही है कि वे दोनों राम की दाईं और बाईं भुजाओं के तुल्य सहायक एवं प्रिय हैं। जैसा कि **वाल्मीकिरामायण** में लक्ष्मण के सम्बन्ध में कहा गया है कि वे राम के बहिश्चर प्राण ही थे—**"नित्यं प्राणो बहिश्चरः।"** पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १ का यह कथन कि चक्र भरत हैं और शङ्ख लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न दोनों के रूप अवतीर्ण हुए हैं, प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि भारत की ही सुनी सुनायी बातों का पाश्चात्यों ने विकृतरूप में वर्णन किया है।

रामकियेन (अ० २) के अनुसार भरत को चक्र और शत्रुघ्न को गदा मानना भी वैसा ही है। सारलादास के **उड़ियामहाभारत** वनपर्व (पृ० २२८) में विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा महादेव राम, शत्रुघ्न, भरत तथा लक्ष्मण के रूप में प्रकट हुए, इस कथन का आधार उपनिषद् ही है। रामतापनीय उपनिषद् आदि के अनुसार विराट् ब्रह्मा का शत्रुघ्न रूप स्वीकृत है। राम को शुद्ध ब्रह्म, विष्णु या इन्द्र को भरत और अव्याकृत महादेव को लक्ष्मण कहा जा सकता है। तारसार उपनिषद् के अनुसार शिव का हनुमान् के रूप में, विष्णु का सुग्रीव के रूप में तथा ब्रह्मा का जाम्बवान् के रूप में एवं नाद, बिन्दु, कला, कलातीत तथा परतत्त्व तत्त्वों का शत्रुघ्न, भरत, लक्ष्मण, सीता और राम के रूप में प्रादुर्भाव माना गया है। (देखिये उपनिषद्भा० में)

बुल्के का यह कहना अशुद्ध है कि अवतारवाद का विकास हुआ है। रामतापनीय उपनिषद्, जो सनातनी जगत् की दृष्टि में वेद है, उसमें राम को परब्रह्म का अवतार माना गया है, अतएव राम को अवतार मानना विकास नहीं है, किन्तु स्वाभाविक वस्तु का वर्णन है। बुल्के साहब के परम प्रमाण युद्धकाण्ड में भी राम को ऋत ब्रह्म स्वरूप ही माना गया है।

"अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।" (वा० रा० ६।११७।१४)
"त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः।········त्वमोङ्कारः परात्परः॥"
(६।११७।१८,१९)।

पद्मपुराण (पातालखण्ड अ० ४६) में राम का शिव से यह कहना ठीक है कि हममें और तुममें अन्तर (भेद) समझनेवाले अज्ञ हैं, ऐसे लोगों को नरक की यातना भोगनी पड़ेगी। बुल्के ऐसी बातों से परस्पर शास्त्रवचनों का विरोध दिखाकर अवतारवाद को अर्वाचीन कल्पनामात्र कहना चाहते हैं। परन्तु वे समन्वय की पद्धति न जानने के कारण ही ऐसी भ्रान्तियों से ग्रस्त हुए हैं।

"ममासि हृदये शर्व भवतो हृदयं त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥"

(पद्मपु० पातालखं० ४६।२०,२१)

यह ठीक ही है। **कृत्तिवासरामायण** के अनुसार दुर्गा का यह कहना भी ठीक ही है कि राम शिव के गुरु हैं, उनमें भेद नहीं है। रामचरितमानस में भी शिव एवं राम को अभिन्न कहा गया है। वहाँ तो शिवजी को

राम का सेवक, स्वामी और सखा भी कहा गया है—

"सेवक स्वामि सखा सियपिय के।" (रा० मा०, १।१४।२)

जो शिवभक्त नहीं है वह राम को कभी भी नहीं सुहाता है—

"सिवपद कमल जिन्हहि रति नाहीं।
रामहिं ते सपनेहु न सोहाहीं॥" (रा० मा० १।१०३।३)।

इसी तरह **आनन्दरामायण** (मनोहरखण्ड ७।१२), **रामलिङ्गामृत** (सर्ग १०) तथा **धर्मखण्ड** (अध्याय २९) में राम और शिव का अभेद कहना भी उचित ही है।

"त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा।
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा॥"
(अ० रा० २।१।१३)

हे राम आप विष्णु हैं एवं जानकी लक्ष्मी हैं। इसी तरह आप दोनों ही शिव एवं पार्वती, ब्रह्मा और वाणी, सूर्य तथा प्रभा हैं। इतना ही क्यों **अध्यात्मरामायण** में यह भी कहा गया है कि लोक में जितने पुरुष हैं सब आप हैं और सभी स्त्रियाँ जानकी हैं।

आनन्दरामायण के अनुसार—"**राम एवात्र कृष्णः स कृष्ण एवात्र राघवः। उभयोर्नान्तरम्**" (१।११४)। राम ही कृष्ण हैं और कृष्ण ही राम हैं। दोनों में अन्तर नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** युद्धकाण्ड में भी राम को कृष्ण कहा गया है "**कृष्णश्चैव बृहद्बलः**।" (वा० रा० ६।११७।१५)। कृष्णोपनिषद् के अनुसार राम ही कृष्ण हुए हैं। **तत्त्वसंग्रहरामायण** आदि के अनुसार शिव, ब्रह्मा और हरि त्रिमूर्ति सच्चिदानन्द ब्रह्म के अवतार राम हैं। **बालरामदासरामायण** के अनुसार विष्णु ही राम आदि चारों भाइयों के रूप में अवतरित होते हैं और लक्ष्मी ही सीता के रूप में प्रकट होती हैं।

आरण्यकाण्ड के मङ्गलाचरण और **दण्डकारण्य** के वृत्तान्त में उड़िया के लोकप्रिय देवताओं को भी राम से अभिन्न कहा गया है। तदनुसार राम, सीता और लक्ष्मण को क्रमशः जगन्नाथ, सुभद्रा तथा बलभद्र से अभिन्न माना जाता है। इसमें भी कोई असङ्गति नहीं है।

बौद्धों के ग्रन्थों में राम को बोधिसत्त्व माना गया है। कहीं-कहीं बुद्ध को भी राम का अवतार माना गया है।

"यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥" (गी० १०।४१)

के अनुसार सभी उत्कृष्ट विभूतियाँ भगवान् के ही अंश हैं। इस दृष्टि से बुद्ध भी भगवान् के ही तेजोंश से उद्भूत हों यह स्वाभाविक है।

जैन कथाओं में राम आदि के पूर्वजन्म की कथा का विशेष वर्णन किया गया है। उसमें उनका उद्देश्य राम का अनीश्वरत्व वर्णन ही है, क्योंकि जैन अनीश्वरवादी होते हैं। राम का ईश्वरत्व तथा वैदिक मार्गरक्षकत्व आदि उनके धर्म के विरुद्ध हैं। इसी लिए जैनों ने वाल्मीकिरामायण तथा पुराणों की प्रसिद्ध राम-कथाओं को विकृत कर अपने ग्रन्थ निर्मित किये। श्रीबुल्के ने भी यह स्वीकार किया है कि जैन राम-कथा वाल्मीकिरामायण का ही विकृत रूप है।

सीता के लक्ष्मीत्व तथा राम के विष्णुत्व का विकास मानना भी बुल्के की भूल है। अतएव सीता के लक्ष्मीत्व के उल्लेख को **वाल्मीकिरामायण** में अर्वाचीन कहना भी निराधार है, यह पीछे विस्तृतरूप से कहा जा चुका है। राम की कृष्ण से अभिन्नता के प्रतिपादक **वाल्मीकिरामायण** "कृष्णश्चैव बृहद्बलः" (६।११७।१५) इस अध्याय को प्रक्षेप कहना भी निराधार ही है। यह कहना भी निरर्थक ही है कि **वायुपुराण**, **ब्रह्माण्डपुराण**, **विष्णुपुराण** जैसे प्राचीन महापुराणों तथा **रघुवंश** में सीता तथा लक्ष्मी का अभेदनिर्देश नहीं है। यद्यपि इन रचनाओं में राम को विष्णु कहा गया है, क्योंकि उक्त महापुराणों में राम को विष्णु कहा गया है, जब उसे ही बुल्के स्वीकार नहीं करते हैं तो सीता का लक्ष्मीत्व उन पुराणों में वर्णित होता तो भी उन्हें मानना नहीं था। वस्तुतः सभी पुराणों का समन्वय करके ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। **श्रीभागवतपुराण** एवं **रामतापनीय उपनिषद्** में सीता की लक्ष्मी या प्रकृतिरूपता उक्त है तथा **सीतोपनिषद्** में भी वह प्रतिपादित है। इससे समझ लेना चाहिये कि पुराणों, महापुराणों को औपनिषद मत मानने में कोई आपत्ति है ही नहीं। **अध्यात्मरामायण** आदि इन्हीं वचनों के आधार पर सीता को लक्ष्मी, योगमाया तथा मूलप्रकृति आदि मानते हैं।

"पार्वत्यंशसमुद्भूता। जनकेन पुरा गौरी तपसा तोषिता यतः॥" (सौ० पु० ३०।४१)

तथा भागवत में भी सीता एवं लक्ष्मी की अभिन्नता प्रतिपादित है—

"जित्वाऽनुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम्।" (भा० पु० ९।१०।७)

श्रीबुल्के का यह कथन भी निःसार है कि **महाभागवतपुराण** में सीता को लक्ष्मी कहा गया है, परन्तु लक्ष्मी की देवी के अंश से उत्पत्ति मानी गयी है (महा० भा० पु० अ० ३६), क्योंकि अंश-अंशिभाव अव्यवस्थित होता है, अतएव अनेक स्थानों में पार्वती आदि को भी सीता का अंश ही कहा गया है।

महारामायण में कहा गया है—

"श्रीर्भूर्लीला तथोत्कृष्टा कृपा भोगोन्नती तथा।
शान्तापूर्वी तथा सत्या कथिता चाप्यनुग्रहा॥
ईशाना चैव कीर्तिश्च विद्येला कान्तिलम्बिनी।
चन्द्रिकाऽपि तथा क्रूरा कान्ता वै भीषणी तथा॥
क्षान्ता च नन्दिनी शोका शान्ता च विमला तथा।
शुभदा शोभना पुण्या कला चाप्यथ मालिनी॥
महोदया ह्लादिनी च शक्तिरेकादशत्रिका।
पश्यन्ति भ्रुकुटिं तस्या जानक्या नित्यमेव च॥
जानक्यंशादिसंभूताऽनेकब्रह्माण्डकारणम्।
सा मूलप्रकृतिर्ज्ञेया महामाया स्वरूपिणी॥" (सर्ग ५)।

इत्यादि **महारामायण** के वचनों में सीता से ही श्री, भू, लीला ईशाना आदि अनेक शक्तियाँ आविर्भूत होती हैं। **सीतोपनिषद** से भी उक्त सिद्धान्त का समर्थन होता है। इतना ही नहीं ईशाना, त्रिपुरा आदि तत्त्व का विश्लेषण करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भगवती केवल शक्ति या मूलप्रकृतिरूप ही नहीं हैं, किन्तु वह सच्चिदानन्दरूपिणी हैं। नवार्ण आदि मन्त्रों में सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती की आराधना निर्दिष्ट है। इसी दृष्टि से उसे **'चितिरूपेण संस्थिता'** माना गया है। शरीरत्रयरूप त्रिपुर की साक्षिणी ही त्रिपुरसुन्दरी है। उसी का विस्तृत विवेचन आद्य शङ्कराचार्य ने अपने **सौन्दर्यलहरी** आदि ग्रन्थों में किया है। इस दृष्टि से सीता सच्चिद्ब्रह्मरूपिणी ही है। एक ही ब्रह्मज्योति दो रूपों में प्रकट है—

"एकं ज्योतिरभूद् द्वेधा राधामाधवरूपकम् ।" वेद भी **'त्वं कुमारः'** के समान ही **'उत वा कुमारी'** कहकर ब्रह्म को कुमार और कुमारी दोनों ही कहता है। उससे भी बढ़कर यह कहना चाहिये कि जैसे गङ्गा का ही अंश तरङ्ग है उसी तरह ब्रह्म का ही अंश सीता है। इतना ही नहीं, गङ्गाजल में तरङ्ग से भी अन्तरङ्ग शीतलता, मधुरता और पवित्रता होती है, अमृतसिन्धु में मधुरिमा होती है उसी तरह आनन्दसिन्धु सुखराशि राम में माधुर्यसार-सर्वस्व की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी सीता हैं। अभेद होने में भी विशेष विवक्षा की जाय तो सौन्दर्यसार-सर्वस्व की अधिष्ठात्री सीता हैं तथा प्रेमसार-सर्वस्व के अधिष्ठाता देवता राम हैं। इस तरह राम के विष्णुत्व या परब्रह्मत्व से सीता की तद्रूपता सुतरां सिद्ध है। संमोहनतन्त्र का निम्नोक्त वचन प्रकृत प्रसङ्ग में भी लागू है—

> "गौरतेजः परित्यज्य श्यामतेजः समर्चयेत् ।
> जपेद्वा ध्यायते वापि स भवेत्पातकी शिवे ॥"

जो गौर तेज के विना केवल श्याम तेज को भजता है, वह पातकी होता है। अतः गौर तेज सीता के बिना श्याम तेज राम की उपासना अधूरी ही होती है। एक अखण्ड ब्रह्मज्योति ही सीता-रामयुगलरूप में भक्तानुग्रहार्थ अभिव्यक्त होती है। मूलप्रकृति आदि सब उसकी विशेष शक्तियाँ हैं। ब्रह्मविद्या भी उसी की एक विशेष शक्ति है। ब्रह्मविद्या के बिना ब्रह्म का साक्षात्कार तथा मोक्ष या भगवत्पद-प्राप्ति आदि कुछ भी नहीं होते हैं, अतः ब्रह्मोपासना के लिए ब्रह्मविद्या की आराधना भी अनिवार्य ही है। वेद, उपनिषद्, वाल्मीकिरामायण, महाभारत, पुराण और तन्त्रों से सबका समन्वित रूप ही **रामचरितमानस** में व्यक्त किया गया है—

> "जासु अंश उपजहिं गुनखानी। अगणित उमा रमा ब्रह्मानी ॥" (रा० मा० १।१४७।२)

श्याम के **रामजातक** के अनुसार स्वर्ग की रानी, **अद्भुतरामायण** के अनुसार अम्बरीष की पुत्री तथा **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार वेदवती सीता के रूप में प्रकट हुई। इसका अर्थ यही है कि उक्त देवियाँ भी अनन्त-शक्ति सीता की ही कतिचित् शक्तियाँ थीं, अतः सीता के अवतार में वे भी संमिलित हैं।

अवतार हेतु

श्रीबुल्के कहते हैं, "प्रारम्भ में रावण-वधार्थ ही विष्णु का राम के रूप में प्रकट होने का उद्देश्य कहा गया है (दे० वा० रा० १।१६)। बाद में **भगवद्गीता** के अनुकरण पर रामावतार के विषय में विष्णु अवतारों के सामान्य उद्देश्य का भी उल्लेख होने लगा।" परन्तु बुल्के यह नहीं समझ पाते कि **वाल्मीकिरामायण** और रामावतार **भगवद्गीता** से लाखों वर्ष पूर्व निष्पन्न हुए हैं। **रामचरितमानस** में अवश्य समन्वय की दृष्टि से भगवद्गीतोक्त हेतुओं का भी उल्लेख किया है—

> **"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥**
> परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
> धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥" (गीता ४।७,८)

जब-जब धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब-तब मैं अपने आपको सगुण साकार रूप में उत्पन्न करता हूँ। साधुओं के परित्राण और दुष्कृतियों के नाश के लिए तथा धर्मसंस्थापन के लिए मैं युग-युग में अवतार धारण करता हूँ।

> "जब-जब होइ धरम कै हानी। बाढै असुर अधम अभिमानी ॥

होइ अनीति जाइ नहि बरनी। सीदहिं विप्र धेनु सुर धरनी॥
तब तब हरि धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जनपीरा॥"
(रा० मा० १।१२०।३,४)

"असुर मारि थापहिं सुरन्ह पालहिं निज श्रुतिसेतु"॥ (रा० मा० १।१२१)

यह भी कहना असङ्गत है कि "रामभक्ति पल्लवित होने के बाद इसका भी प्रायः उल्लेख मिल ा है कि भक्तों को भवसागर पार करने के लिए और अपना सगुण रूप दिखलाने के लिए ही निर्गुण ब्रह्म राम के रूप में प्रकट होते हैं," क्योंकि सिद्धान्तानुसार तो कलियुग में रामभक्ति का पल्लवन नहीं, किन्तु ह्रास ही हुआ है। अतः प्रा ा युग से ही यह निश्चित सिद्धान्त है कि भक्तानुग्रहार्थ निर्गुण ब्रह्म सगुण ब्रह्म के रूप में प्रकट होते हैं। **श्रीमद्भागवत** के अनुसार अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रों के भक्तियोग का विधान कर उनको परमहंस से श्रीपरमहंस बनाने के उद्देश्य से निर्गुण ब्रह्म का सगुण ब्रह्म होना कहा गया है—

"तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येमहि स्त्रियः॥" (भा० पु० १।८।२०)

नैष्कर्म्य ज्ञान भी भक्ति के बिना शोभित नहीं होता फिर भक्तिविहीन कर्म कैसे शोभित हो सकेगा—

"नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्॥" (भा० पु० १।५।१२)।

भगवद्भक्ति से ही परमहंस होता है। आत्माऽनात्मविवेकी हंस सांख्यनिष्ठ हैं, अनात्मबाधपूर्वक अनन्तब्रह्मात्मनिष्ठ परमहंस होता है और ब्रह्मात्मनिष्ठ होकर भक्तिनिष्ठ होने से श्रीपरमहंस की प्राप्ति होती है। फिर भी जैसे अग्निहोत्रादि के लिए अरणिमन्थनपूर्वक अग्नि प्रकट होने पर उसी से भोजनादि निर्माण कार्य भी सम्पन्न होता है वैसे ही भक्तिविधानार्थ उत्पन्न भगवान् से भी धर्मग्लानि तथा अधर्म की निवृत्ति, धर्म-संस्थापन तथा साधुपरित्राण, दुष्कृतिविनाश आदि कार्य भी सम्पन्न होते हैं। अथवा यों भी समझा जा सकता है कि यद्यपि सत्यसङ्कल्प भगवान् अपने सङ्कल्प से ही सब कार्य कर सकते हैं तथापि पूर्वोक्त भक्तियोग विधानरूप कार्य तो भजनीय स्वरूप के उपस्थान के बिना हो ही नहीं सकता था, अतः ध्येय या भजनीय रूप का आविर्भाव अनिवार्य ही है। इसी प्रकार श्रीगोपाङ्गना जैसे साधुओं के परित्राणार्थ उनका आविर्भाव होता है। गोविन्ददर्शन के बिना अन्य मार्ग से उनका रक्षण संभव ही नही था, इसलिए भगवान् का अवतार अनिवार्य था।

उन्हीं दुष्कृतियों के लिए जो भगवान् की युद्धचिक्रीडिषा की पूर्ति के लिए ही स्वेच्छापूर्वक दुष्कृती हो स्वयं प्रतिभट होकर उपस्थित हुए थे, उनका विनाश अन्य लोगों से अभीष्ट भी नहीं था और संभव भी नहीं था, इस प्रकार गीता का पद्य भी विशेषार्थ में पर्यवसित होता है। जय और विजय के लिए भगवान् का आविर्भाव हुआ है, यह भी **श्रीमद्भागवत** तथा **विष्णुपुराण** के अनुसार ही है। इसी का उल्लेख **रामचरितमानस** में किया गया है—

"मुकुत न भये हते भगवाना। तीनि जन्म द्विजवचन प्रमाना॥" (रा० मा० १।१२२।१)

एक साधारण व्यक्ति भी जानता है कि एक ग्रन्थ में या एक लेखक के अनेक ग्रंथों में अथवा एक सिद्धान्तनिष्ठ विभिन्न व्यक्तियों के भी ग्रन्थों में परस्पर विरोध अभीष्ट नहीं होता। किसी संविधान की विभिन्न धाराएँ यदि विरुद्धसी प्रतीत होती हैं तो उनका भी समन्वय करके पूर्वापरविरोध का परिहार किया जाता है। इसपर विचार करने के लिए ही सर्वोच्च न्यायालयों, न्यायाधीशों तथा न्यायवादियों की अपेक्षा होती है। अतः वेदों तथा वैदिक पुराणों एवं **महाभारत**, **वाल्मीकिरामायण** आदि में विरोधाभास मिटा कर समन्वय किया जाता है। परन्तु बुल्के उक्त ग्रन्थों में विरोध ही विरोध खोजने में व्यस्त दिखायी देते हैं। वे कहते हैं, "कश्यप और अदिति का सम्बन्ध पहले-पहल

वामनावतार से जोड़ा जाता था। बाद में कृष्ण और राम की कथाओं में भी उनका उल्लेख मिलता है।" वे इसे विकास समझते हैं, अर्थात् सत्य न मानकर उन्हें पीछे की कल्पना या प्रक्षिप्त मानते हैं। वे समझते हैं कि वामनावतार की प्राचीनतम कथाओं में कश्यप और अदिति की चर्चा नहीं है। किन्तु **महाभारत** (आदि पर्व १।२७) में कश्यप तथा विनता की तपस्या का वर्णन किया गया है, जिसके फलस्वरूप उनको अरुण तथा गरुड़ दो पुत्र प्राप्त हुए। **महाभारत** के अन्य स्थलों में अदिति की आराधना (३।१३५।३) तथा तपस्या (१३।८३।२६,२७) का उल्लेख मिलता है, जिससे वह विष्णु की माँ बन सकीं। **हरिवंश** (अध्याय ३।६७।६९) तथा **मत्स्यपुराण** (अध्याय २४३।९) में देवता, कश्यप तथा अदिति सब मिलकर १००० वर्ष तक तपस्या करते हैं और अन्त में विष्णु से यह वरदान प्राप्त करते हैं कि विष्णु वामन के रूप में अदिति से जन्म लेकर बलि को परास्त करें। **वाल्मीकिरामायण** (दाक्षिणात्य पाठ १।२९।१०-१७) तथा **वामनपुराण** (अ० २४–२८) में कश्यप तथा अदिति की तपस्या एवं वरप्राप्ति का वर्णन है। यदि वेद या ब्राह्मणों में वामन का नाम या कर्ममात्र श्रुत है, तो भी उनके कोई माता-पिता होंगे ही; फिर जब वेदों के व्याख्यानभूत आर्ष पुराण वामन के माता और पिता का वर्णन करते हैं तो उन्हें ही वेदोक्त वामन की माता क्यों न माना जाय। विशेषतः पूर्वोक्त १४१ अनुच्छेद का उत्तर पीछे दिया जा चुका है। कश्यप और अदिति वेदों के अनुसार भी विशिष्ट दम्पति हैं। पुराणों के अनुसार देवता, दैत्य आदि सब उन्हीं की सन्तान हैं; अतः अरुण और गरुड़ की प्राप्ति के लिए भी उनकी तपस्या सङ्गत है। दिति और अदिति के समान ही कद्रू और विनता भी उन्हीं की पत्नियां थीं। उन कश्यप और अदिति का विष्णु या वामन की प्राप्ति के लिए भी तपस्या करना सङ्गत ही है। अतः इन अंशो को विकास या प्रक्षिप्त कहना साहस ही है। **महाभारत के शान्तिपर्व** में विष्णु के विषय में "अदित्यां सप्तधा विष्णु; पुराणे गर्भतां गतः।" या "अदित्याः सप्तरात्रं तु पुराणे गर्भतां गतः।" (१२।४३।६) का उल्लेख तभी महत्त्वपूर्ण हो सकता है। यदि बुल्के उसका प्रामाण्य मानते हों। वे तो केवल विरोध दिखाने के लिए ही विभिन्न ग्रन्थों के बचनों का उल्लेख करते हैं। श्लोक में सप्तधा पाठ अधिक संगत है। क्यों ? पुराणों के साथ उसकी सङ्गति बैठ जाती है। अदिति के गर्भ से अनेकों बार विष्णु का वामन, राम, कृष्ण आदि रूप में आविर्भाव हुआ है। **मत्स्यपुराण** (४७।९), **ब्रह्माण्डपुराण** (२।७१।२०० और २३८), **ब्रह्मवैवर्तपुराण** (कृष्णजन्मखण्ड अ० ७) आदि में कश्यप और अदिति को वसुदेव तथा देवकी से अभिन्न माना गया है। **भागवत** के अनुसार सुतपा तथा पृश्नि ने स्वायम्भुव मन्वन्तर में १२००० वर्ष तक तपस्या कर भगवान् से वर प्राप्त किया था कि वह तीन बार उनके पुत्र बने। फलतः विष्णु पृश्निगर्भ के रूप से सुतपा के पुत्र हुए, उपेन्द्र या वामनरूप से कश्यप-पुत्र हुए तथा कृष्णरूप से वसुदेव के पुत्र हुए (भा० पु० १०।३।३२-४५)। **अध्यात्मरामायण**, **रामचरितमानस**, **काश्मीरीरामायण** आदि में कश्यप और अदिति का दशरथ और कौशल्या के रूप में भी आविर्भाव मान्य है। **आदि-पुराण** में वर्णित एक स्वप्न के अनुसार नन्द पूर्वजन्म में दशरथ थे (अ० १६)। **कृत्तिवासरामायण** के अनुसार विष्णु कश्यप और अदिति की ओर निर्देश करते हुए देवताओं से कहते हैं कि दशरथ तथा कौशल्या ने मेरी सेवा की है और मैं उनको वर दे चुका हूँ कि मैं तुम्हारे घर में जन्म लूँगा (बालकाण्ड अ० ३९)।

ब्रह्मा के पुत्र मनु की तपस्या का प्रथम उल्लेख (श० ब्रा० १।८।१।७) में है। प्रजा की कामना से प्रेरित होकर वह आराधना तथा तपस्या में प्रवृत्त हुए, "**प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत**" (प्र० उ० १।४) तथा **विष्णुपुराण** (१ अ० ७) में स्वायम्भुव की सृष्टि, उसकी तपश्चर्या, शतरूपा की प्राप्ति तथा इन दोनों की सन्तति का वर्णन है।

भागवत में स्वायम्भुव के विरक्त होने, राज्य छोड़ने और पत्नी के साथ वन में तपस्या करने की कथा वर्णित है (भा० पु० ८।१)। **देवीभागवत** के अनुसार स्वायम्भुव मनु ने १०० वर्ष तक तपस्या तथा देवी की

आराधना की और अन्त में उनसे यह वर माँगा **"सर्गकार्ये विघ्ना नश्यन्तु मे"** मेरे सृष्टि के कार्य में सब विघ्न नष्ट हों। देवी ने उन्हें अकण्टक राज्य तथा पुत्रों की प्राप्ति का वर प्रदान किया था—

"राज्यं निष्कण्टकं तेऽस्तु पुत्रा वंशकरा अपि।" (दे० भा० १०।२।३)।

बुल्के कहते हैं, "परन्तु उक्त कथाओं में किसी अवतार का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः वैवस्वत मनु की कथा के प्रभाव के कारण अर्वाचीन रचनाओं में स्वायम्भुव मनु की तपस्या तथा अवतार का सम्बन्ध जोड़ा गया है।" बस यही पाश्चात्यों की दुर्भावना का नमूना है। किसी अंग्रेज सज्जन ने सिक्ख धर्म स्वीकार कर लिया। केश, कङ्घी, कच्छ आदि पञ्च ककार धारण कर ग्रन्थ साहब का अध्ययन किया तथा उसका एक उत्तम संस्करण निकाल कर उसपर टिप्पणी करते हुए लिखा कि "गुरुओं ने कहीं ग्रन्थसाहब में अपने को हिन्दू नहीं लिखा और कहीं गौमांस का निषेध नहीं किया।" यही जहर का बीज बोकर वे सज्जन अपने देश चले गये और जो थे वही पुनः हो गये। उसी का दुष्परिणाम है कि आज सिक्ख अपने को हिन्दू कहने में लज्जित होता है, परन्तु वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत थी। दशम गुरु ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—**"जगै धर्म हिन्दू सभी भण्ड भागें।"** इसी तरह जिन ग्रन्थों में स्पष्टरूप से स्वायम्भुव मनु और शतरूपा का तप वर्णित है उन्हें वे अर्वाचीन बना कर यह सिद्ध करना चाहते हैं कि "प्राचीन **शतपथ-ब्राह्मण** आदि ग्रन्थों में स्वायम्भुव के तप आदि का वर्णन तो है, परन्तु उनसे किसी अवतार विशेष का सम्बन्ध नहीं है; किन्तु वैवस्वत मनु की तपस्या के प्रभाव से हुए मत्स्यावतार का वर्णन देखकर अर्वाचीन लोगों ने स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की तपस्या और विष्णु के अवतार की कल्पना कर ली है; अवतारवाद केवल कल्पना है, बाद का है; अतएव **मूल वाल्मीकिरामायण** में वह नहीं था। प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** में अवतारवाद की सब बातें प्रक्षिप्त हैं।" बुल्के साहब की यह कल्पना निराधार, निष्प्रमाण एवं अशुद्ध है, क्योंकि **पद्मपुराण** के उत्तरखण्ड के अनुसार स्वायम्भुव मनु ने १००० वर्ष तक तपस्या कर विष्णु से यह वर प्राप्त किया था कि विष्णु तीन जन्मों में उनके पुत्र बनें। तदनुसार स्वायम्भुव मनु और शतरूपा क्रमशः दशरथ-कौशल्या, वसुदेव-देवकी तथा कलियुग में शम्भलग्रामवासी ब्राह्मण विष्णुयश या हरिगुप्त तथा उसकी पत्नी देवप्रभा के रूप में प्रकट होते हैं पद्मपुराण (उत्तरखं० अ० २६९), **रामरहस्य** (सर्ग १) तथा **तत्त्वसंग्रहरामायण** (१।१३)। रामरहस्य में हरिगुप्त के स्थान में हरिव्रत नाम का उल्लेख है। **रामचरितमानस** (१।४१) तथा पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १३ में मनु-शतरूपा तथा दशरथ-कौशल्या की अभिन्नता का उल्लेख है। **पद्मपुराण** व्यासनिर्मित है, अतः व्यासनिर्मित अन्य पुराणों के साथ उसका समन्वय अनिवार्य है। अतएव कल्पना, प्रक्षेप या आधुनिक कल्पना कहना दुरभिसन्धिमात्र है। **स्कन्दपुराण** (वैष्णवखण्ड अध्याय २४), पद्मपुराण (उत्तरखं० अ० १०९) तथा आनन्दरामायण (१।४।११७–१७०) के अनुसार विष्णुभक्त धर्मदत्त और कलहा की कथा का समन्वय भी करना उचित है।

मनु-शतरूपा **बृहदारण्यक उपनिषद्** के अनुसार हिरण्यगर्भ एवं महाविराट् प्रजापति से अभिन्न हैं। सृष्टि-क्रम में प्रजापति इच्छा एवं आलोचन रूप तप से स्वयं ही पति और पत्नी दो रूपों में हो गये थे। जैसे एक चणक या मुद्ग (चना या मूँग) आदि के दो दल हो जाते हैं वैसे ही प्रजापति ही मनु और शतरूपा हो गये। शतरूपा का अर्थ है अनन्तरूपा। प्रजापति मनु से लज्जित होकर वह गौ, बडवा, अजा आदि अनेक रूप धारण करती गयी। तदनुसार ही मनु भी वृषभ, अश्व, अज आदि रूप धारण करते गये। इसी आधार पर संसार में अपरिगणित प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए हैं। वे मनु-शतरूपा एक प्रकार से सम्पूर्ण प्राणियों के ही माता-पिता हैं। उनकी दीर्घकाल की आयु है। उसमें अनेक बार तपस्याएँ तथा विविध प्रकार के कार्य हुए हैं। मन्त्रों, ब्राह्मणों तथा पुराणों में भी सबका उल्लेख सम्भव नहीं है, फिर भी उनकी महत्त्वपूर्ण तपस्याओं एवं कार्यों का उल्लेख हुआ है। अतः **पद्मपुराण** के अनुसार उनकी तपस्या और उनका दशरथ और कौशस्या के रूप में परब्रह्म राम को पुत्ररूप में प्राप्त करना आदि सर्वथा सङ्गत है। **रामचरितमानस** में मनु-शतरूपा का पूरा परिचय दिया गया है—

"स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा। जिन्हते भइ नर सृष्टि अनूपा ॥
दम्पति धरम आचरन नीका। अजहुं गाव श्रुति जिन्हके लीका ॥
नृप उत्तानपाद सुत तासू। ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू ॥
लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही। बेद पुराण प्रसंसहिं जाही ॥
देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ॥
आदि देव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ॥
साँख्य शास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्वबिचार निपुन भगवाना ॥
(रा० मा० १।१४१।१-४)

इन मनु का जीवनवृत्त **श्रीमागवत** में भी इसी प्रकार वर्णित है—

"ब्रह्मावर्तं योऽधिवसन् शास्ति सप्तार्णवां महीम्।" (भा० पु० ३।२१।२५)

जो ब्रह्मावर्त में निवास करते हुए सप्तार्णवा मेदिनी का शासन करते थे। "मनुर्वै यत्किञ्चावदत्तद् भेषजं भेषजतायै" (ताण्ड्यम० ब्रा० १३।१६।७), "यद्वै किञ्च मनुरवदत् तद् भेषजम्।" (तै० सं० २।२।१०।२) मनु ने जो भी धर्म मनुस्मृति में कहा है वह भेषजवत् परमकल्याणकारी है। **भागवतपुराण** के अनुसार इन्हीं के वंश में भगवान् राम का अवतार हुआ है एवं इन्हीं की पुत्री में कपिल का अवतार हुआ था, अतः **पद्मपुराण** आदि पुराणों के अनुसार भगवान् राम को पुत्ररूप में प्राप्त करने के लिए मनु की तपस्या का वर्णन अत्यन्त सङ्गत है।

अनु० ३७० वें में शाप पर विचार किया गया है। श्रीबुल्के कहते हैं, "भृगु-शाप की कथा के प्राचीनतम रूप में किसी अवतार विशेष का उल्लेख नहीं किया गया है;" परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि **मत्स्यपुराण** भी प्राचीनतम ही है। उसमें भृगुपत्नी का वध करने के कारण भृगु ने विष्णु को सात बार मनुष्यों में अवतार लेने का शाप दिया है—

"तस्मात् त्वं सप्त कृत्वेह मानुषेषूपपत्स्यसे।" (म० पु० ४७।१०६)।

लिङ्गपुराण के अनुसार भी भृगुशाप से विष्णु का दस बार अवतार लेना सिद्ध होता है—

"भृगोरपि च शापेन विष्णुः परमवीर्यवान्।
प्रादुर्भावान् दश प्राप्तो दुःखितश्च सदा कृतः ॥ (लि० पु० २९।२६)

वायुपुराण (अ० ९७), **ब्रह्माण्डपुराण** (२। अ० ७२) एवं **देवीभागवत** (४।अ० १२) में भी उक्त कथा का समर्थन मिलता ही है। **वाल्मीकिरामायण** (७।५१।१३-१५) के अनुसार तथा **वह्निपुराण** (५।१७) के अनुसार भी भृगुशाप के कारण राम को पत्नी-वियोग का कष्ट होना प्रमाणित है। **योगवासिष्ठ** (वै० प्र० १।६१)। योगवासिष्ठ में दो अन्य कथाओं का भी उल्लेख है: ब्रह्मलोक में विष्णु के गमन पर सबने स्वागत किया, किन्तु सनत्कुमार ने उनका अभ्युत्थान नहीं किया, इस कारण विष्णु ने उन्हें कामातुर होने का शाप दिया। उसके प्रत्युत्तर में सनत्कुमार ने भी विष्णु को अशान्त बन जाने का शाप दिया (यो० वा० १।१।५९,६०)।

वाल्मीकिरामायण युद्धकाण्ड में राम का वचन है—"**आत्मानं मानुषं मन्ये जातं दशरथात्मजम्।**" (६।११७।११) अर्थात् मैं अपने को दशरथ-पुत्र तथा मनुष्य समझता हूँ। यही अशान्त होने का प्रमाण है। **योगवासिष्ठ** (१।१।६३,६४) के अनुसार विष्णु ने **नृसिंहरूप** से देवशर्मा की पत्नी को डराया था, जिससे वह मर गयी। तब देवशर्मा ने विष्णु को पत्नीवियोगजनित दुःख भोगने का शाप दिया। एक कार्य में अनेक हेतु हो ही सकते हैं। इसी तरह **स्कन्दपुराण** (वैष्णव खं० कार्तिकमाहात्म्य अ० २०।१), **शिवपुराण** (रुद्रसंहिता उ० ख० अ०

२३), योगवासिष्ठ, **आनन्दरामायण** तथा **लोमशरामायण** के अनुसार वृन्दा-शाप के कारण भी विष्णु का रामरूप में प्रकट होना समन्वित है। विष्णु ने जय और विजय की सहायता से जलन्धर के पराजयार्थ वृन्दा का प्रधर्षण किया था, अतः वृन्दा ने जय और विजय को राक्षस बनने का शाप दिया एवं विष्णु को यह शाप दिया कि तुम मनुष्य बनोगे। ये राक्षस ही तुम्हारी पत्नी का अपहरण करेंगे। अतएव **तत्त्वसंग्रहरामायण** ने वृन्दा-शाप को ही सीता-हरण का कारण कहा है (त० सं० रा० ३।१६)। **स्कन्दपुराण** (अ० २१।२८) में कहा गया है—

> "यौ त्वया मायया द्वाःस्थौ स्वकीयौ दर्शितौ मम।
> तावेव राक्षसौ भूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः॥"

पद्मपुराण में कहा गया है—

> "अहं मोहं यथा नीता त्वया मायातपस्विना।
> तथा तव वधूं मायातपस्वी कोऽपि नेष्यति॥"

जैसे तुमने मायामय तपस्वी बनकर मुझे मोहित किया है वैसे ही कोई मायामय तुम्हारी पत्नी को ले जायगा।

बुल्के कहते हैं, यह शाप का रूप बदल गया है। परन्तु उनका यह कथन असङ्गत है, क्योंकि पूर्वोक्त कथा से इसकी भी सङ्गति कर लेना उचित है। **रामचरितमानस** में भी मनमानी कल्पना नहीं की गयी है, किन्तु नाना-पुराणनिगमागमसम्मत अर्थ का ही उल्लेख किया है।

> "छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
> जब तेहिं जानेउ मरम तब शाप कोप करि दीन्ह॥ (रा० मा० १।१२३)

> तासु शाप हरि कीन्ह प्रमाना। कौतुकनिधि कृपाल भगवाना॥
> (रा० मा० १।१२३।१)

इन कथनों में सब कथाओं का ही सार-संकलित है। इस प्रसङ्ग में व्रत का अर्थ पातिव्रत्य है, उसको भगवान् ने छल कर अर्थात् जलन्धर का वेष धारण कर टाल दिया और जलन्धर को मार कर देवकार्य किया। अगणित पातिव्रत्य नष्ट करनेवाला जलन्धर अपनी पतिव्रता स्त्री वृन्दा के पातिव्रत्य के कारण अजेय एवं अवध्य था। उसका वध करना अनिवार्य था। इसी लिए कौतुकनिधि भगवान् विष्णु ने अपरिगणित पतिव्रताओं के पातिव्रत्य-रक्षण के लिए जलन्धर के वधार्थ उसकी पत्नी का व्रत छल से भङ्ग किया। तुलसीदास की शिव, काकभुशुण्डि, याज्ञवल्क्य तथा भरद्वाज की परम्परा में यह भी कथा थी कि जलन्धर ने ही रावण बनकर रामपत्नी सीता का हरण किया। इसी लिए राम ने उसका वध कर उसे निजधाम दिया—

> "तहाँ जलन्धर रावन भयऊ। रन हति राम परम पद दयऊ॥"
> (रा० मा० १।१२३।१)

विष्णु ईश्वर हैं। ईश्वर 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' समर्थ होता है एवं निर्लेप होता है। ईश्वर की उपासना तथा ईश्वरतत्त्व के साक्षात्कार से सम्पन्न जीव भी पुण्य और पाप से निर्लेप होते हैं। फिर ईश्वर के लिए तो कर्मलेप का प्रसङ्ग ही नहीं आ सकता। विशेषतः परोपकारार्थ, अपरिगणित पतिव्रताओं के पातिव्रत्य रक्षणार्थ एवं देवताओं के कार्यार्थ विष्णु के उक्त कार्य में दूषण का प्रश्न ही नहीं उठता, तथापि कौतुकनिधि भगवान् ने शाप अङ्गीकार करके पातिव्रत्य धर्म का लोकोत्तर महत्त्व सूचित किया। स्वयं वृन्दा के शाप से पाषाण (शालग्राम) हो गये। पातिव्रत्य सर्वोत्कृष्ट व्रत है जिसके प्रभाव से अन्यायी अत्याचारी पति का भी नाश करना शिव, विष्णु आदि के लिए भी दुष्कर

है। साथ ही पतिव्रता विष्णु (ईश्वर) को भी अपने शाप से पाषाण बना सकती है, अतः उसके साथ छल करना महान् पाप है। जब विष्णु भी छल से पत्थर हो सकते हैं तब अन्य जीवों की तो बात ही क्या है ? उन्हें तो उससे भी कितना भीषण और अधिक दुःख भोगना पड़ेगा।

बुल्के नारद-शाप को भी अर्वाचीन बनाने का साहस करते हुए कहते हैं—"नारद के मोह तथा विष्णु के प्रति उनके शाप की कथा अर्वाचीन है", किन्तु उक्त कथा के तत्त्व प्राचीन साहित्य में मिलते हैं। **महाभारत** में नारद और पर्वत का अनेक स्थलों में उल्लेख है। नारद और पर्वत परस्पर मातुल और भागिनेय हैं (म० भा० १२।३०।५)। शान्तिपर्व में दोनों सृञ्जय के यहाँ पहुँचते हैं। उसकी पुत्री के सम्बन्ध से दोनों एक दूसरे को शाप देते हैं। नारद पर्वत की स्वर्गगति रोक देते हैं एवं पर्वत के शापानुसार नारद सृञ्जय की पुत्री से विवाह कर वानर मुखवाले हो जाते हैं, किन्तु बाद में दोनों मिलकर एक दूसरे को शापमुक्त करते हैं (म० भा० १२।३०,३१)। समन्वय की दृष्टि से उक्त कथाओं के प्रसिद्ध नारद **भागवत** के अनुसार विष्णु के सूर्य-वंश में राम के रूप में जन्म लेने और सीताहरण के भी कारण बनते हैं। **अद्भुतरामायण** के अनुसार अम्बरीष की पुत्री श्रीमती को देखकर नारद और पर्वत दोनों ने ही उसे अम्बरीष से माँगा। अम्बरीष ने कहा वह जिसे वरे, वही उसका पति होगा, यह सुनकर नारद और पर्वत दोनों ही अलग-अलग विष्णु के पास जाकर एक दूसरे को वानर-मुख दिलाते हैं। विष्णु हँसकर दोनों की प्रार्थना पूर्ण करते हैं। फलतः श्रीमती ने स्वयंवर के समय नारद तथा पर्वत को न देखकर दो वानरों को देखा। दोनों के बीच में सुन्दर युवक के रूप में विष्णु को देखा और उन्हीं का वरण कर लिया। विष्णु उसे वैकुण्ठ ले गये। बाद में नारद और पर्वत दोनों ने ही श्रीमती और विष्णु को सीता और राम के रूप में जन्म लेने का शाप दिया। **लिङ्गपुराण** उत्तरार्ध अध्याय ५ में भी यह उल्लेख है कि विष्णु की माया के कारण श्रीमती ने नारद और पर्वत को वानर के रूप में देखा तथा विष्णु को वरमाला पहना दी, किन्तु इस वृत्तान्त में नारद के किसी शाप का उल्लेख नहीं है। **शिवमहापुराण** के अनुसार श्रीमती को प्राप्त करने के लिए नारद ने विष्णु के पास जाकर उनसे हरि-रूप माँगा। विष्णु ने उन्हें हरि अर्थात् वानर का रूप दे दिया और स्वयं श्रीमती के स्वयंवर में जाकर उसे प्राप्त किया। इस स्वयंवर में दो शिव-गणों ने नारद का उपहास किया था। नारद-शाप के कारण वे रावण और कुम्भकर्ण बन गये। नारद ने विष्णु को यह शाप दिया कि तुम मनुष्य बनकर वानरों के साथ विरह का दुःख भोगोगे। **रुद्रसंहिता** (सृष्टिखण्ड अ० ३,४) तथा **रामचरितमानस** में भी ऐसी ही कथा है, परन्तु उसमें अम्बरीष के स्थान में शीलनिधि और श्रीमती के स्थान में विश्वविमोहिनी का उल्लेख है। किसी रामायण में लीलावती भी नाम है। वस्तुतः आस्तिकों की दृष्टि में **लिङ्गपुराण** एवं **शिवपुराण** दोनों व्यासकृत प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। उन्हें अर्वाचीन समझना और कहना बुल्के जैसों की भ्रान्ति ही है। वस्तुतः ऐसे ग्रन्थों के अनुसार ही अन्य ग्रन्थों का समन्वय करना उचित है। नामभेद या किञ्चित् कथा का भेद कल्पभेद एवं सम्प्रदायभेद से समाहित हो ही जाते हैं।

बुल्के के ही विभिन्न उद्धरणों का सामान्य-विशेष न्याय से समन्वय हो जाता है। किसी ग्रन्थ में नारद का काशी में आना लिखा हो और दशाश्वमेध घाट पर स्नान करने का उल्लेख न हो और किसी अन्य ग्रन्थ में दशाश्वमेध घाट पर स्नान करने और एकादशी-व्रत करने का भी उल्लेख हो तो दोनों में विरोध समझना अनभिज्ञता ही है। इसी तरह कहीं नारद और पर्वत का नाम ही वर्णित हो, कहीं उनका मामा और भानजे का सम्बन्ध भी वर्णित हो, कहीं नारद का शाप भी वर्णित हो और कहीं उनके साथ पर्वत का भी स्वयंवर में सम्मिलित होने का उल्लेख हो तो इन उक्तियों में समन्वय ही होना उचित है। परस्पर विरोध उद्भावित कर सभी को या किसी एक को मिथ्या कल्पना या प्रक्षेप कहना केवल दुरभिसन्धि ही कही जायगी। राम के प्रादुर्भाव में वृन्दा का शाप, नारद का शाप तथा देवशर्मा का शाप भी समन्वित होता है। किसी बड़े कार्य में बहुत से हेतुओं का समुच्चय असंभव

नहीं है। लोक में कोई व्यक्ति पुत्र-प्राप्ति के लिए अनेक महात्माओं और अनेक देवताओं की सेवा करता है, अनेक व्रत और अनेक तपस्याएँ भी करता है सभी को कृपा का फल एक हो सकता है। इसी प्रकार जलन्धर रावण हुआ या हरगण रावण और कुम्भकर्ण हुए या जय और विजय रावण-कुम्भकर्ण हुए, इस सम्बन्ध में कल्पभेद से समाधान सम्भव है। **रामचरितमानस** का भानुप्रताप भी कल्पभेद से रावण हुआ था। शापवश जय और विजय के तीन जन्म होने प्रसिद्ध हैं। जैसे अनेक सात्त्विकी शक्तियों का विष्णु एवं सीता में सायुज्य सम्भव है वैसे ही अनेक राजस और तामस शक्तियों का रावण में भी सायुज्य सम्भव ही है अर्थात् जब जय-विजय रावण-कुम्भकर्ण हुए तब उन्हीं में जलन्धर, भानुप्रताप और उनके साथियों का सम्मिलितरूप से अवतार मानना श्रुतार्थापत्ति प्रमाण सम्मत ही है। "**पीनोऽयं देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते**" यहाँ दिवा भोजन न करके भी दृष्ट पीनता की उपपत्ति के लिए जैसे अर्थापत्ति द्वारा रात्रिभोजन की कल्पना होती है वैसे ही प्रामाणिक श्रुत अर्थ की उपपत्ति के लिए भी उपपादक की कल्पना की जाती है। उक्त पुराणादि भारतीय परम्परा में परम प्रामाणिक हैं ही। उनके लेखक व्यास सर्वज्ञकल्प थे, अतः उनकी रचनाओं में भविष्य वृत्तों का वर्णन भी हुआ है। किसी अर्वाचीन घटना के वर्णनमात्र से पुराणों की अर्वाचीनता नहीं सिद्ध हो जाती है। **अद्भुतरामायण** के अनुसार लक्ष्मी की परिचारिकाओं द्वारा नारद का अपमान हुआ था, अतः नारद के शाप के अनुसार राक्षसों के यहाँ लक्ष्मी के जन्म लेने की कथा का भी समन्वय हो जाता है, क्योंकि सीता की अन्य शक्तियों के समान ही लक्ष्मी का भी अभेद है।

नारद

श्रीबुल्के के अनुसार "**प्रामाणिक वाल्मीकिरामायण** में नारद का उल्लेख नहीं था, किन्तु परवर्ती **प्रचलित रामायण** से लेकर परवर्ती राम-कथाओं की यह विशेषता है कि उनमें नारद का महत्त्व बढ़ता गया है।" परन्तु यह उनका नितान्त विभ्रम है। उनका **प्रामाणिक रामायण** ही वस्तुतः अप्रामाणिक है, क्योंकि उसका नाम निशान आज तक दुनियाँ में कहीं नहीं है। वर्तमान परम्पराप्राप्त वाल्मीकिरामायण ही प्रामाणिक रामायण है। इसी पर तीर्थ, कतक, भूषण, रामाभिरामी आदि प्रामाणिक टीकाएँ हैं। आस्तिक लोग इसी का पाठ करते हैं। बुल्के के सभी तर्क निःसार हैं। उनके अनुसार बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड दोनों ही अप्रामाणिक रामायण हैं। पाँच काण्डों में भी अवतारवर्णन तथा सीता को लक्ष्मी बतलानेवाले सब अंश प्रक्षेप ही हैं। उनकी **प्रामाणिक रामायण** उनके सिवा किसी भी आस्तिक को मान्य नहीं है। **वर्तमान रामायण** का प्रथम सर्ग **मूलरामायण** के नाम से प्रसिद्ध है। वह वाल्मीकि-नारद-संवादरूप है। बुल्के की भ्रान्त दृष्टि में वह सब प्रक्षेप ही है। उत्तरकाण्ड की नारद-सम्बन्धित कथाओं को भी प्रक्षेप कहना भ्रान्ति ही है। (वा० रा० ७। सर्ग २०,२१) के अनुसार नारद ने रावण को यम पर आक्रमण करने को उकसाया नहीं, किन्तु मनुष्यलोक को बाधित नहीं करना चाहिए। देव, दानव, दैत्य, यक्ष, गन्धर्व तथा राक्षसों द्वारा तुम अवध्य हो, तुम्हें मनुष्य-लोक को क्लेश नहीं पहुँचाना चाहिए। सदा ही श्रेयःप्राप्ति में संमूढ़, नाना प्रकार के बड़े-बड़े दुःखों तथा बुढ़ापा एवं विविध व्याधियों से पीड़ित, सदा ही अनिष्टों से पूर्ण, क्षुधा-पिपासा से एवं विषाद-शोक से व्याप्त मनुष्यलोक को मत सताओ। यदि तुम्हें लड़ना ही है तो यम पर आक्रमण करो, क्योंकि अन्त में सबको ही यम के वश में होना पड़ता है। यम के जीत लेने से सबपर विजय अपने आप हो जायगी।

"किमयं वध्यते तात त्वयाऽवध्येन दैवतैः।
हत एव ह्ययं लोको यदा मृत्युवशं गतः॥
देवदानवदैत्यानां यक्षगन्धर्वरक्षसाम्।
अवध्येन त्वया लोकः क्लेष्टुं योग्यो न मानुषः॥
नित्यं श्रयेसि संमुढं महद्भिर्व्यसनैर्वृतम्।
हन्यात् कस्तादृशं लोकं जराव्याधिशतैर्युतम्॥" (वा० रा० ७।२०।७-९)।

ब्राह्मण-पुत्र की अकाल मृत्यु का रहस्योद्घाटन (सर्ग ७४) भी ठीक ही है। वाल्मीकिरामायण पश्चिमोत्तरीय पाठ (६।२७।७-४१) के अनुसार नारद द्वारा राम को उनके नारायणत्व का स्मरण दिलाकर गरुड़ को बुलाने का परामर्श देना तथा वाल्मीकिरामायण (गौ० पा० ६।६० पश्चिमो० पा० ६।४१) के अनुसार कुम्भकर्ण द्वारा यह कहा जाना कि नारद ने मुझे विष्णु अवतार द्वारा रावण-वध की योजना बतायी थी और दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार नारद के द्वारा प्रेषित रावण श्वेतद्वीप जाकर वहाँ की स्त्रियों द्वारा पराजित होता है इत्यादि सभी नारद-सम्बन्धी घटनाएँ ऋषि-स्वरूप के अनुरूप तथा प्रामाणिक एवं पुराणों के संगत भी हैं।

बुल्के भारतीय शास्त्रों एवं पुराणों से अपरिचित हैं। इसी लिए उन्हें विविध कार्यों में नारद का हस्तक्षेप अस्वाभाविकसा प्रतीत होता है। परन्तु भारतीय दृष्टिकोण से नारद वसिष्ठ के समान ही एक महान् आधिकारिक पुरुष हैं। जगत्कल्याणार्थ विविध क्षेत्रों में इसी लिए उनकी प्रख्याति उपलब्ध होती है। अतएव वे वाल्मीकि के हृदयपरिवर्त्तन के भी कारण बनते हैं। जयन्त को राम के पास भेजना सन्त-हृदय के अनुकूल ही था।

"नारद देखा विकल जयंता। लागि दया कोमलचित संता॥" (रा० मा० ३।१।५)

नारद द्वारा रावण को सीता-हरण के लिए उकसाना भी देव-कार्य के लिए उपयोगी था। **श्रीमागवत** में भी कंस को कृष्ण-जन्म का भेद बतलाकर नारद ने उसे मृत्यु की ओर बढ़ने की ही प्रेरणा दी है। अतएव तुलसीदास ने उन्हें एक आदर्श सन्त और रामभक्त के रूप में ही चित्रित किया है और वे बार-बार अयोध्या आया करते थे।

"बार-बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम कर गावहिं॥" (रा० मा० ७।४१।२)

अतः बुल्के का यह निष्कर्ष भी अशुद्ध है कि "**प्रामाणिक रामायण** में भले ही नारद का नाम तक न आया हो, किन्तु परवर्ती कथाओं में हमें पग-पग पर नारद का दर्शन होता है", क्योंकि वस्तुतः प्रामाणिक रामायण का सूत्रपात ही नारद के द्वारा ही होता है। इसी लिए उसका प्रसिद्ध नाम ही **मूलरामायण** है।

राम का बाल-चरित

३७५ वें अनुच्छेद में बुल्के कहते है "**वाल्मीकिरामायण** दाक्षिणात्य पाठ के अर्वाचीन प्रक्षेप के अनुसार राम तथा उनके भाइयों की जन्मतिथि चैत्र शुक्ल नवमी बतायी गयी है", परन्तु क्या वे अपनी तथाकथित प्रामाणिक रामायण के अनुसार कोई तिथि बतला सकते हैं? अथवा क्या प्रामाणिक रामायण के राम का जन्म ही नहीं हुआ? सामान्य चरितनायक की भी जन्मतिथि का वर्णन आवश्यक होता है तब क्या महर्षि वाल्मीकि जिन राम का विस्तृत चरित्र वर्णन करने जा रहे हैं, उनके जन्म और जन्मकाल का वर्णन न करते, यह संभव है। वस्तुतः बुल्के भ्रान्ति एवं दुरभिसन्धि से ही रामजन्म के काल-वर्णन को प्रक्षेप कहते हैं। अतः **वाल्मीकिरामायण** (१।१८।८–१५) श्लोकों में राम एवं उनके भाइयों के जन्म का वर्णन है और उन श्लोकों पर सभी टीकाकारों ने टीकाएँ की हैं। वे टीकाकार भी प्रामाणिक ही हैं। **अध्यात्मरामायण** (१।३), **पद्मपुराण** (उत्तरखण्ड अ० २६९), **कृत्तिवासीय रामायण** (१।४२), **रामचरितमानस** (१।१९१), **भावार्थरामायण** आदि में वही राम आदि के जन्म का समय वर्णित है। राम-जन्म के समय अलौकिक घटनाओं का होना भी स्वाभाविक ही है। अतएव **पउमचरियं** के अनुसार भी राम की माता ने सिंह, सूर्य और चन्द्रमा को देखा था एवं सुमित्रा ने कमलधारिणी लक्ष्मी को देखा था। कालिदास ने रघुवंश (१०।६०–६४) में लिखा है कि रामादि के जन्म के पूर्व दशरथ की रानियों को ऐसे स्वप्न दिखाई देते थे कि कमल, खड्ग, गदा, धनुष और चक्र लिए कोई बौना-सा पुरुष हमारी रक्षा कर रहा है; गरुड़ हमें आकाश में उड़ाकर ले जा रहे हैं, लक्ष्मी हाथ में कमल का पङ्खा लेकर हमारी सेवा कर रही हैं एवं सप्तर्षिगण वेदपाठ करते हुए

हमारी उपासना कर रहे हैं। अपनी रानियों से इन स्वप्नों को सुनकर दशरथ प्रसन्न हुए और समझ गये कि मैं जगद्गुरु का पिता बनने जा रहा हूँ। बुल्के का यह कहना कि कालिदास ने **पउमचरियं** से प्रभावित होकर ऐसा लिखा है अशुद्ध है, क्योंकि महाकवि कालिदास विक्रम की सभा के विद्वान् थे। वे **पउमचरियं** के निर्माण से प्राचीनकालिक हैं। दूसरे वे वैदिक विद्वान् थे। वे **वेद**, **रामायण**, **महाभारत**, पुराणों और उपपुराणों के आधार पर ही रघुवंश महाकाव्य लिखने में प्रवृत्त हुए थे। वेद, ईश्वर तथा वैदिक धर्म-कर्मविरोधी जैनों और बौद्धों का अनुसरण करना उन्हें कदापि अभीष्ट नहीं था। महाकवि के अनुसार बालक के तेज से सूतिका-गृह के दीपकों की ज्योति मन्द पड़ गयी तथा उस समय संसार के सारे दोष भाग गये, चारों ओर गुण ही गुण फैल गये। मानो भगवान् विष्णु का अनुसरण करता हुआ स्वर्ग भी पृथ्वी पर उतर आया हो—

"**अन्वगादिव हि स्वर्गो गां गतं पुरुषोत्तमम्**" (रघुवंश १०।७२)। उसी समय लङ्का में अपशकुन होने लगे। रावण के मुकुटों से कुछ मणियाँ पृथिवी पर गिर पड़ीं मानो राक्षसों की लक्ष्मी अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहा रही हो। ठीक ही है राम परब्रह्म थे, ज्योतियों के भी ज्योति थे—"**ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः।**", "**सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यः।**"

फिर उनके उदय होने पर दीपक आदि की ज्योतियों का मन्द पड़ जाना उचित ही था। जैसे सूर्य के उदय से तमिस्रा रात्रि एवं उसके दोष भाग जाते हैं वैसे ही सकलगुणधाम राम के प्राकट्य से दोषों का पलायन करना भी उचित ही था। देवताओं की सौभाग्यलक्ष्मी के प्रकट होने पर रावणादि की सौभाग्यलक्ष्मी का अश्रुनिर्मोचन भी ठीक ही था। **कृत्तिवासीय रामायण** के अनुसार रावण का मुकुट भूमि पर गिर पड़ा। आकाशवाणी से रावण को यह विदित हो गया कि विष्णु का अवतार हो गया है और रावण ने उन्हें मारने के लिए शुक और सारण को भेजा। वे शिशु को प्रणाम करते हैं और भक्ति का वरदान पाकर लङ्का लौट जाते हैं। मूलप्रोक्त सामान्य के अविरुद्ध विशेष को स्वीकार करने में कोई बाधा न होने से ऐसे अन्य अंश भी मान्य ही हैं। **अध्यात्मरामायण** के अनुसार कौशल्या राम को विष्णु के ही रूप में देखती हैं—

"**नीलोत्पलदलश्यामः पीतवासाश्चतुर्भुजः।**" और उनकी स्तुति करती हैं इसपर राम अपनी माता को उनके पूर्वजन्म की तपस्या तथा वरप्राप्ति का स्मरण दिलाकर बालक का रूप धारण कर लेते हैं।

बुल्के कहते हैं, "**अध्यात्मरामामण** में **श्रीमद्भागवत** के अनुकरण पर यह उल्लेख है। **अध्यात्मरामायण** के अनुसार अन्य ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख हुआ है", परन्तु उनका यह कथन भी अशुद्ध है। वस्तुतः

"प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्।
कौशल्याऽजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम्॥" (वा० रा० १।१८।१०)

इस श्लोक के द्वारा भी यह सब सूचित ही किया गया है, इसलिए रामाभिरामी तिलक टीका में स्पष्ट कहा गया है—

"तेनादौ प्रादुर्भावसमये मायाविराड्रूपस्य दर्शनमेव ततस्तद्रूपदर्शनविस्मयात्तया नमस्कृतः सन्मायया बालभावं दधाविति सूचितम्।" अर्थात् 'जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम्' इससे ही यह सूचित होता है कि श्रीराम जगन्नाथ हैं, सर्वलोकनमस्कृत हैं। कौशल्या ने विराट्रूप में उन्हें देखा और नमस्कार किया एवं प्रार्थना की कि आप शिशुरूप में ही प्रकट हों। इसपर राम बालकरूप में प्रकट हुए। इसी सूचित अर्थ का **पद्मपुराण** (उत्तरखण्ड-२६९।८०) में वर्णन है। पद्मपुराण भी आर्ष ग्रन्थ ही है। **अध्यात्मरामायण**, **आनन्दरामायण**, **रामचरितमानस**, **तत्त्वसंग्रहरामायण** आदि में सब ने इन्हीं आर्ष प्रमाणों पर वैसा उल्लेख किया है। **रामचरितमानस** के अनुसार काकभुशुण्डि और शिव दोनों मनुष्य का रूप धारण कर रामजन्म-महोत्सव के समय अयोध्या आये थे, यह ठीक ही

है। शिव, भुशुण्डि, याज्ञवल्क्य तथा भरद्वाज की परम्परा के अनुसार ही रामचरित का आविर्भाव हुआ है। कृष्ण भगवान् ने विराट् रूप अर्जुन को दिखलाया था (गी० अ० ११)। यशोदा को कृष्ण ने अपने मुख में ब्रह्माण्ड दिखाया था, रामकथाओं में भी वैसा उल्लेख है। बुल्के इसे भी अनुकरण और प्रक्षिप्त मानते हैं। इन सब बातों का एक ही मूल कारण है कि वे **पद्मपुराण** आदि को आधुनिक और काल्पनिक मानते हैं; परन्तु यह उनका नितान्त भ्रम है। **रामलिङ्गामृत** और **रामचरितमानस** में ही नहीं **पद्मपुराण** (उत्तरखण्ड १६९।८) के अनुसार भी राम ने अपने को विष्णुरूप में प्रकट करते हुए अपने विश्वरूप का भी दर्शन कराया था; अतएव नानापुराणनिगमागमानुगामी तुलसी-दास ने भी उसका उल्लेख किया है—

"लोचन अभिरामा तनु घनश्यामा निज आयुध भुज चारी।" (रा० मा० १।१९१।१)

"दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड।
रोम रोम प्रति राजहिं कोटि-कोटि ब्रह्मंड॥" (रा० मा० १।२०१)

इसी तरह परशुराम, हनुमान् तथा भुशुण्डि को भी भगवान् का दिव्य रूप दिखाना सङ्गत है। भगवान् राम की बाल-लीला या अन्य लीलाओं पर कृष्ण-लीलाओं का प्रभाव मानने का अर्थ यह होता है कि वैसी वस्तुस्थिति नहीं है, किन्तु भक्तों ने वैसी कल्पना कर ली है, परन्तु यह अनुकरणशील (नकलची) कवियों के सम्बन्ध में भले ही कहा जा सके, किन्तु व्यासादि कवियों तथा तुलसीदासादि सन्तों के सम्बन्ध में ऐसा कहना साहसपूर्ण पाप ही है। धीरोदात्त राम में भी अवस्थानुरूप चापल्य संभव ही है। राक्षसों का आक्रमण भी अस्वाभाविक नहीं है, अतः संहिताओं में वैसा वर्णन स्वतन्त्र ही समझना चाहिये। किंबहुना बहुत सी बातें तो प्राकृत बालकों में भी कृष्ण जैसी ही मिलती है "**बबन्ध प्राकृतं यथा।**" फिर, राम में वैसी बात न हुई होगी यह कैसे कहा जा सकता है।

३७७ वें अनु० में **वाल्मीकिरामायण** में वसिष्ठ द्वारा नामकरण के अवसर पर राम तथा लक्ष्मण के विषय में कहा गया है—

"**रामस्य लोकरामस्य**" (वा० रा० १।१८।२९) लोक को रमण करानेवाले राम हैं।

"**लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः**" (वा० रा० १।१८।२८) "**लक्ष्मणो लक्ष्मिसंपन्नः**" (वा० रा० १।१८।३०)। लक्ष्मीवर्धन या लक्ष्मीसम्पन्न ही लक्ष्मण हुए हैं। **अध्यात्मरामायण** में भरत और शत्रुघ्न के भी सम्बन्ध में लिखकर न्यूनता की पूर्ति ही की गयी है—

"रमणाद्राम इत्यपि।
भरणाद्भरतो नाम लक्ष्मणं लक्षणान्वितम्।
शत्रुघ्नं शत्रुहन्तारमेवं गुरुरभाषत॥ (अध्या० रा० १।३।४०,४१)

पद्मपुराण में त्रिभुवनाभिरामता राम शब्द का प्रवृत्तिनिमित्त कहा गया गया है और रूपशौर्यादि लक्ष्मी की योग्यता को लक्ष्मण शब्द की प्रवृत्ति का निमित्त कहा गया है। दूसरे भाइयों के सम्बन्ध में भी कहा गया है—

"भवं भारात्तारयतीति भरतः। शत्रून् हन्तीति शत्रुघ्नः॥" (पद्मपु० पातालखं० ११२।३३,३४)। अर्थात् संसार को भार से तारनेवाले भरत हैं और शत्रुहनन करनेवाले शत्रुघ्न हैं। **पद्मपुराण** (उ० खं० अ० २६९) में वसिष्ठ द्वारा राम का जातकर्म सम्पन्न होता है। केवल राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के नाम का कारण बताया गया है।

"श्रियः कमलवासिन्या रमणोऽयं महाप्रभुः।
तस्माच्छ्रीराम इत्यस्य नाम सिद्धं पुरातनम्॥७४॥"

कमलवासिनी श्री के यह रमण (पति) हैं अतएव श्रीराम इनका पुरातन नाम है। लक्ष्मण को 'शुभलक्षण' और शत्रुघ्न को देवशत्रुतापक कहा गया है।

बुल्के को इनमें परस्पर विरोध दिखता है; परन्तु तुलसीदास तो सबका समन्वय और सार संकलन करते हुए कहते हैं—

"सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक विश्रामा॥
विश्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥
जाके सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन वेद प्रकासा॥"
(रा० मा० १।१९६।३,४)।

"लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥" (रा० मा० १।१९७)।

बुल्के ३९७ वें अनु० में कहते हैं "अध्यात्मरामायण में राम की नटखटी, माखनचोरी, बरतनों का फोड़ना आदि स्पष्टतः भागवतपुराण पर निर्भर है," परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि बालस्वभावसुलभ ऐसी अनेक लीलाएँ राम में भी संभव ही हैं। ईसा की बहुत सी घटनाएँ बुद्ध जैसी हैं तो क्या बुल्के यह मानते हैं कि वे सब बुद्धचरित्र पर ही निर्भर हैं? इसी तरह पद्मपुराण (पातालखण्ड ११२।३९-४६) के अनुसार एक ब्रह्मराक्षस वात्या का रूप धारण कर आता है और राम को गिरा कर मूर्छित कर देता है। वसिष्ठ मन्त्र पढ़कर राक्षस को शापमुक्त करते हैं। ब्रह्मराक्षस बतलाता है कि मैं पूर्वजन्म में वेदगर्वित ब्राह्मण था। परधन हथियाने के कारण ब्रह्मराक्षस बन गया। पद्मपुराण (गौड़ीय पातालखण्ड अ० १५) के अनुसार बालक राम एक पुष्पनिर्मित धनुष से एक राक्षस को, जो मृग के रूप में आया था, मार डालते हैं। भुशुण्डिरामायण में भी रावण द्वारा राम को मारने के लिए भेजे गये अनेक राक्षसों को राम मार डालते हैं। दशरथ राम को गुप्त स्थान पर भेज देते हैं। सरयूपार गोपप्रदेश में गोपेन्द्र सुखित एवं उनकी स्त्री माङ्गल्या राम का पालन-पोषण करते हैं। कृत्तिवासरामायण में अनेक राक्षस रामभक्त बन जाते हैं। बुल्के की भ्रान्त दृष्टि में यह सब भागवत या कृष्ण-कथा का ही प्रभाव है, परन्तु यही बात वे ईसा के सम्बन्ध में मानने को तैयार न होंगे।

भुशुण्डि

३८१ वें अनु० में भुशुण्डि के सम्बन्ध में बुल्के योगवासिष्ठ के अनुसार यह तो मानते हैं कि पिता के कहने से वे सुमेरु पर्वत पर निर्विकार एवं चिरजीवी होकर रहे (निर्वा० प्रकरण १४।२४)। परन्तु वे कहते हैं वहां उनके पूर्वजन्म की कथा तथा रामभक्ति का उल्लेख नहीं है। वस्तुतः यह कहना बुल्के का ठीक नहीं, क्योंकि यह आवश्यक नहीं होता कि किसी व्यक्ति के सम्बन्ध में एक ही स्थान में सब कथाएँ वर्णित की जायँ। रामचरितमानस में अपनी परम्परा के अनुसार वे पूर्व काल में अयोध्यावासी शूद्र थे। गुरु का सत्कार न करने से वह शिव-शाप से सर्प हो गये। बाद में वह गुरु एवं शिव की कृपा से सगुण राम के उपासक बन गये। लोमश ऋषि आदि के शाप से उन्हें काक-योनि की प्राप्ति हुई। इतना ही क्यों काकभुशुण्डि ने शिवजी के सङ्ग राम-जन्म के उत्सव में अयोध्या जाकर भगवान् की लीलाओं का रसास्वादन किया।

सत्योपाख्यान में ही नहीं रामचरितमानस में भी राम को शष्कुली खाते देखकर काकभुशुण्डि को राम के नारायण होने में सन्देह होता है और वे परीक्षार्थ राम के हाथ से शष्कुली लेकर भागते हैं, परन्तु राम की भुजा उनका पीछा करती है। रामचरितमानस के अनुसार वे ब्रह्माण्ड के सप्तावरण का भी भेद कर भागे परन्तु वे राम की भुजा को अपने पास ही देखते रहे।

"सप्तावरन भेद करि जहां लगै गति मोरि।
गयउ तहां प्रभु निरखि व्याकुल भयउ बहोरि ॥" (रा० मा० ७।७९)

भयभीत होकर उन्होंने आँखें बन्द कर लीं और अपने को अयोध्या में पाया। राम उनके सामने हँसते हुए खड़े रहे। भुशुण्डि ने मुख में प्रविष्ट होकर भीतर बहुत से ब्रह्माण्ड देखे। इस तरह उनका मोह दूर हुआ। उक्त कथा चतुर्विंशत्साहस्रीसंहितारूप रामायण में यद्यपि नहीं मिलती है तो भी इसे मिथ्या या कल्पनामात्र नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह विशेष कथा सामान्य कथा से अविरुद्ध ही है। इसी प्रकार बालक राम से हनुमान् की मित्रता का उल्लेख भी **रामचरितमानस** के क्षेपकों तथा **विश्रामसागर** के २० वें संस्करण सन् १९५९ ई० पृ० ४१८ में वर्णित है। शिवजी मदारी बनकर हनुमान् बन्दर को लेकर अयोध्या आते हैं। राम बन्दर को देखकर उसपर मुग्ध हो जाते हैं। मदारी बन्दर को अयोध्या में ही छोड़ जाता है। हनुमान् राम के साथ रहकर उनकी सेवा और मनोरञ्जन करते हैं और बाद में राम उन्हें किष्किन्धा भेज देते हैं। वस्तुतः सनातनधर्मी आस्तिकों की प्रामाणिक दृष्टि के अनुसार ईश्वर अनादि, अनन्त तथा सर्वशक्तिमान् है। उसी का अवतार श्रीराम, श्रीकृष्ण आदि के रूप में होता है। ईश्वर की सभी लीलाएँ नित्य हैं। उपासकों को उन लीलाओं का उपासना के प्रभाव से साक्षात्कार होता है। उसी दृष्टि से कई अपूर्व लीलाओं की भी अनुभूति होती है।

इसी दृष्टि से **श्रीभागवत** में अनुक्त भी अनेक लीलाओं का वर्णन सूरदास, हरिदास, हरिवंश, ध्रुवदास आदि भक्तों ने किया है। इसी तरह रामसम्बन्धी भी अनेक लीलाओं का वर्णन समझना चाहिये।

प्रारम्भिक कृत्य

वाल्मीकिरामायण (१।१८।३१) के अनुसार राम मृगया खेलने जाते थे तो लक्ष्मण धनुष लेकर उनके साथ जाते थे—

"यदा हि हयमारुढो मृगयां याति राघवः।
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् ॥" (वा० रा० १।१८।३१,३२)

इस सामान्य वर्णन का विशेष **अध्यात्मरामायण** आदि से समझना चाहिये। अध्यात्मरामायण (१।३।६२,६३) के अनुसार राम और लक्ष्मण नित्य प्रति दुष्ट पशुओं का शिकार करते थे। मानस ने यह भी विशेष बताया कि—

"जो मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुर लोक सिधारे ॥"
(रा० मा० १।२०४।२)।

सत्योपाख्यान के अनुसार वे पशु दिव्य रूप धारण कर अपना परिचय भी देते थे। इस तरह राम का आखेट भी मुक्तिप्रद कहा गया है।

"**निर्वाणदायक क्रोध जाकर**" (रा० मा० ३।२५ छन्द)। "**क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः**" (भागवत ?)। **सत्योपाख्यान** के अनुसार किसी दिन राम एक नराकृति वल्मीक देखते हैं। उनके स्पर्शमात्र से वह दिव्य देह धारण कर अपना परिचय देता है कि वह एक किरात था। ऋषियों के उपदेश से तपस्या करने लगा। वह रामावतार का रहस्य जानता है तथा राम द्वारा रावण-वध की भविष्यवाणी करता है। अन्त में राम उसे वैकुण्ठवास का वरदान देते हैं (अ० ४२)। **कृत्तिवासरामायण** के अनुसार मृगया में ही राम ने मारीच को देखा था। ब्रह्मा ने मृगया के कारण राम की थकावट मिटाने के लिए इन्द्र को इसलिए भेजा कि वे उस मृणाल में अमृत भर दें, जिसे राम और लक्ष्मण दोनों खानेवाले हैं। **बृहत्कोशलखण्ड** के अनुसार दशरथ ने राम को शम्बरासुर

के वधार्थ भेजा था (अ० ४)। **पउमचरियं** के अनुसार राम-लक्ष्मण ने उन म्लेच्छों को हरा दिया था जो जनक के राज्य पर आक्रमण की तैयारियाँ कर रहे थे (पर्व २७)। **वाल्मीकिरामायण** में गुह को राम का सखा कहा गया है—

"तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा ।" (२।५०।३३)। उसी का विशेष विवरण **सत्योपाख्यान** में किया गया है। वनवास से पूर्व राम गुह से मृगया की शिक्षा प्राप्त करते हैं (पूर्वार्ध अ० ४३)। अन्यत्र इसका और भी विस्तृत वर्णन है। **कृत्तिवासरामायण** के अनुसार किसी दिन दशरथ अपने पुत्रों के साथ गङ्गास्नान करने गये थे। वहाँ गुहक अपने तीन करोड़ सैनिकों द्वारा दशरथ की सेना को रोक लेता है तथा राम को देखने की इच्छा प्रकट करता है, पर दशरथ राम को रथ में छिपा कर उससे युद्ध करके उसे हराकर और बाँधकर रथपर रखवा देते हैं। इसपर गुहक पैर के अंगूठे से बाण मारता है। राम यह कौतुक देखने आते हैं। वह राम का दर्शन कर अपने पूर्वजन्म की कथा सुनाता है कि मैं पूर्वजन्म में वसिष्ठ-पुत्र वामदेव था। दशरथ अन्ध मुनि के पुत्रवध का प्रायश्चित्त पूछने गये थे। उस दिन वसिष्ठ धर पर नहीं थे। मैंने ही दशरथ को तीन बार राम-नाम जपने का परामर्श दिया था। पिताजी के आने पर जब मैंने वह प्रसङ्ग सुनाया तब उन्होंने क्रुद्ध होकर मुझे चण्डाल बन जाने का शाप दिया। उन्होंने कहा एक ही बार के रामनाम के उच्चारण से सब पाप कट जाते हैं, फिर तीन बार रामनाम जपने का उपदेश तुमने क्यों किया ? वसिष्ठ ने मुझसे कहा जब दशरथ के घर राम-जन्म होगा तब उनका चरण-स्पर्श कर तुम मुक्त होओगे। राम ने दशरथ की अनुमति से उसे बन्धनमुक्त किया और उससे मैत्री की (१।५३)। **असमीया बालकाण्ड** के अनुसार गङ्गास्नान के समय वहीं गुहक भी स्नान करने का साहस करता है। अनुचरों ने उसे पकड़कर राजा के सम्मुख उपस्थित किया। राम भी वहाँ थे। राम का दर्शन करने पर उसे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो आया। उसने कहा मैं ब्राह्मण था, पर गङ्गा की उपेक्षा करने के कारण गङ्गा ने मुझे चण्डाल बनने का शाप दिया। बाद में कहा राम का दर्शन करके मुक्त होओगे। ये सब कथाएँ भी शिष्टसंमत हैं एवं सामान्य से अविरुद्ध हैं, अतः आदरणीय हैं।

विश्वामित्र के आगमन के पूर्व राम की तीर्थयात्राओं का वर्णन **योगवासिष्ठ** वैराग्यप्रकरण ३ में वर्णित है। वह **भावार्थरामायण** (१।७) से मिलता है। **सत्योपाख्यान** में विवाह के बाद तीर्थयात्राओं का उल्लेख है, अन्य रचनाओं में रावण-वध के बाद तीर्थयात्राओं का वर्णन मिलता है। परन्तु इन वर्णनों में कोई विरोध नहीं है। तीर्थ-यात्रा तीन बार भी हो ही सकती है। वैराग्य-काल में राम ने वैयक्तिक रूप से तीर्थयात्रा की, विवाह के बाद सपत्नीक राम ने तीर्थयात्रा की एवं रावण-वध के अनन्तर प्रायश्चित्त के रूप में तीर्थ-यात्रा की। इनमें बुल्केजी को किस दर्पण में विरोध दिखा। **सेरीराम** के अनुसार राम और लक्ष्मण विवाह के पूर्व तीन महीने नीलपूर्व नामक मुनि के यहाँ रहकर तपस्या करते हैं तथा उनसे जादू सीखते हैं। नीलपूर्व उनको एक धनुष तथा नागस्कन्द पतील देव नामक तपस्वी उनको तीन बाण प्रदान करते हैं। **योगवासिष्ठ** के राम १६ वर्ष की अवस्था में विरक्त होकर वसिष्ठ के उपदेशानुसार कर्तव्य-पालन में तत्पर होते हैं। **भावार्थरामायण** में भी इसका वर्णन है। **रामलिङ्गामृत** के अनुसार तथा बृहत्कोशलखण्ड के अनुसार बाल-क्रीडा के अनन्तर ही उनकी रास-क्रीडा भी प्रारम्भ होती है। बुल्के इसे कृष्णलीला का अनुकरणमात्र मानते हैं। यह उनका भ्रम है, क्योंकि राम को ईश्वर का अवतार माननेवाले भक्त अपनी भावना के अनुसार उनकी रास-लीला का भी अनुभव कर ही सकते हैं। **वाल्मीकिरामायण** (१।१९) के अनुसार विश्वामित्र मारीच तथा सुबाहु के उपद्रवों से यज्ञरक्षार्थ राम की सहायता माँगने आते हैं। **सत्योपाख्यान** के अनुसार वे शिव की प्रेरणा से आते हैं। **कृत्तिवासरामायण** के अनुसार राक्षसों के उत्पात से मिथिलाप्रदेश को यज्ञहीन देखकर जनक विश्वामित्र को प्रेषित करते हैं। **रामकेर्ति** के अनुसार काकनासुर के वधार्थ विश्वामित्र राम को लेने के लिए अयोध्या आते हैं। **रामकियेन** के अनुसार सुबाहु और मारीच दोनों काकनासुर के पुत्र माने जाते हैं।

बुल्के कहते हैं, "**कृत्तिवासरामायण** के अनुसार दशरथ ने राम और लक्ष्मण के स्थान पर भरत और शत्रुघ्न को विश्वामित्र के साथ भेज दिया था।" सरयूतट पर जाकर विश्वामित्र ने राजकुमारों से कहा—"यहाँ से दो पथ हैं। पहले पथ से जाने में तीन दिन लगेंगे और दूसरे पथ से तीसरे पहर पहुँच जायंगे। किन्तु इस पथ पर ताड़का राक्षसी का भय है।" भरत ने कहा—"दूसरे पथ से हमें क्या प्रयोजन है।" यह सुनकर विश्वामित्र समझ गये कि दशरथ ने हमें धोखा दिया है और वे अयोध्या जाकर राम को माँग लाते हैं। यह कथा पूर्व भारत में उत्पन्न होकर हिन्देशिया तक फैल गयी। एक आदिवासी कथा के अनुसार विश्वामित्र का प्रस्ताव था कि पहला मार्ग सुगम है और सुन्दर नगर की ओर ले जाता है; दूसरा भयङ्कर वन की ओर ले जाता है जहाँ व्याघ्र, ऋक्ष आदि हिंसक पशु रहते हैं। वस्तुतः दशरथ का राम में प्रेमातिशय दिखाने के उद्देश्य से अन्य कल्पना अर्थवादरूप ही है। उसका स्वार्थ में तात्पर्य न समझकर प्रेम-स्तुति में ही तात्पर्य समझना चाहिये। **सेरीराम** के अनुसार महारीसी कली सीता के पोषक पिता (पोष्य नहीं) दशरथ से निवेदन करते हैं कि उनके पुत्र स्वयंवर में भाग लें। दशरथ भरत और शत्रुघ्न को भेजते हैं। कली उनसे १७।२०।२५ और ४० दिनों में तय होने वाले मार्गों में से एक मार्ग चुनने को कहते हैं। वे अन्तिम मार्ग को निरापद तथा अन्य मार्गों में क्रमशः राक्षसी, गैंडे और नागिन का भय बताते हैं। भरत और शत्रुघ्न, ४० दिन का लम्बा मार्ग चुनने के कारण, अयोग्य ठहरते हैं। कली (विश्वामित्र) लौटकर दूसरी बार राम और लक्ष्मण को साथ में ले जाते हैं। वस्तुतः भरत और शत्रुघ्न विष्णु के ही अंश और शङ्ख और चक्र के अवतार हैं। उनकी अयोग्यता की बात अप्रामाणिक है। निरापद मार्ग चुनना बुद्धिमानी है। वह अयोग्यता का परिचायक नहीं कहा जा सकता, अतः उक्त कल्पना दशरथ के सर्वाधिक रामप्रेम वर्णन में ही पर्यवसित है।

३८९ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "**वाल्मीकिरामायण** में विश्वामित्र के साथ राम तथा लक्ष्मण के प्रस्थान से लेकर मिथिला पहुँचने तक का वृत्तान्त ३४ सर्गों में वर्णित है। इसकी अधिकांश सामग्री पौराणिक कथाएँ हैं, जिनका प्रायः उस प्रदेश से सम्बन्ध है, जिसे विश्वामित्र पार कर रहे हैं। यात्रा के पूर्वार्ध में काम-दहन (सर्ग २३), ताड़का (सर्ग २४) तथा वामनावतार (सर्ग २९) की कथाएँ और मिथिला के रास्ते में विश्वामित्रवंश, गङ्गा का स्वर्गारोहण, शिव-उमाविवाह, गङ्गावतरण, समुद्रमथन तथा अहल्या की कथा (सर्ग ३१-४८) सुनाते हैं। मिथिला में शतानन्द ने विश्वामित्र के ब्राह्मण बनने का वृत्तान्त (सर्ग ५९-६५) सुनाया है। इन कथाओं में केवल अहल्या की कथा का राम से सीधा सम्बन्ध है, अतः यह सब विकास या प्रक्षेप ही है।" पर बुल्के की उपर्युक्त दलील कितनी लचर है, इसे कोई भी समझ सकता है। विश्वामित्र चक्रवर्ती नरेश दशरथ के प्रिय पुत्र राम तथा लक्ष्मण को अपने यज्ञ के रक्षार्थ लाये हैं। पदयात्रा करनी है। तो क्या यह समझना चाहिए कि वे सब गुमसुम मौन ही चलते रहे? परन्तु यह समझना असङ्गत है। यहाँ तो उचित यही था कि वे जिस-जिस प्रदेश से होकर जा रहे थे उस-उस प्रदेश के सम्बन्ध में राम ने प्रश्न किया होगा विश्वामित्र ने उनका मन बहलाव एवं ऐतिहासिक तथा भौगोलिक ज्ञान सिखाने की दृष्टि से तत्तत्सम्बन्धित कथाओं का वर्णन किया होगा। शास्त्रीय दृष्टि से, स्मृति का विषय होकर उपेक्षा के अनर्ह (अयोग्य) होना ही सङ्गति है। "**स्मृतिविषयत्वे सत्युपेक्षानर्हत्वं सङ्गतित्वम्**" इस तरह तत्तत् प्रदेशों से सम्बन्धित काम-दहन तथा ताटका की कथाएँ अत्यन्त सङ्गत हैं। ताटका-वध के सम्बन्ध से भी ताटका का वर्णन सङ्गत है। २७ वें सर्ग में ताटका के वध से प्रसन्न होकर विश्वामित्र राम को नाना प्रकार के शस्त्रास्त्र प्रदान करते हैं। २८ वें सर्ग में उन शस्त्रास्त्रों का राम के वशवर्ती होने का वर्णन है। २९ वें सर्ग में स्वयं विश्वामित्र जिस आश्रम में रहते हैं, जहाँ यज्ञ करते हैं, उसकी कथा के प्रसङ्ग से वामन-कथा का वर्णन स्वाभाविक ही है। वे अन्त में यह भी कहते हैं कि वामन की भक्ति से ही मैं उनके इस आश्रम में रहता हूँ। यह आश्रम जैसा मेरा है वैसा ही आप का भी है, क्योंकि आप ही तो वामनरूपधारी विष्णु हैं, यह ध्वन्यर्थ है—

"**तदाश्रमपदं तात तवाप्येतद् यथा मम ।**" (वा० रा० १९।२४) । "**तदेतदाश्रमपदं यथा मम स्वभूतं तथा तवापि विष्ण्ववतारत्वादिति गूढाभिसन्धिः**"—तिलक । यज्ञपूर्ति के बाद ३१वें सर्ग में राम विश्वामित्र के साथ मिथिला के मार्ग में पुनः प्रश्न करते हैं । तब विश्वामित्र कुशवंश का वर्णन करते हैं सर्ग ३३ तक । इसके पश्चात् शोण-गङ्गा-समागम स्थल पर जाकर किसी भी आस्तिक को गङ्गा के सम्बन्ध में जिज्ञासा हो सकती थी, फिर मर्यादा-पुरुषोत्तम राम को जिज्ञासा क्यों न होती ? अतः रामने प्रश्न किया, "भगवन्, त्रिपथगा नदी के सम्बन्ध में मैं सुनना चाहता हूँ । इसपर मुनि ने गङ्गा की कथा प्रारम्भ कर दी । गङ्गा का वर्णन सुनने पर भी संतुष्ट न होकर पुनः राम तथा लक्ष्मण दोनों ही प्रश्न करते हैं और विस्तार से पूछते हैं । गङ्गा तीन लोकों में जाकर त्रिपथगामिनी कैसे हुई इत्यादि प्रश्न पर प्रसङ्गानुसार उमा की कथा कहकर गङ्गा की कथा, कार्तिकेय की उत्पत्ति आदि का वर्णन किया । इसी प्रकार प्रसङ्गानुसार सगर की कथा का वर्णन भी संगत है । सङ्गति के छः भेद होते हैं—'**सप्रसङ्ग उपोद्घातो हेतुतावसरस्तथा । निर्वाहकैक्यकार्यैक्ये षोढा सङ्गतिरुच्यते ॥**" प्रसङ्ग १, उपोद्घात २, हेतुता ३, अवसर ४, निर्वाहैक्य ५, एककार्यत्व ६, ये छः प्रकार की सङ्गतियाँ होती हैं । इनमें से किसी भी सङ्गति के अनुसार वस्तु का निरूपण सङ्गत होता है । प्रसङ्गानुसार विशाला के राजवंशसम्बन्धी प्रश्न के अनुसार इन्द्र, सागरमन्थन, अमृतोत्पत्ति, दितिपुत्र मरुतों की उत्पत्ति आदि का वर्णन है । अहल्या-कथा को आप सङ्गत मानते ही हैं । अहल्यापुत्र शतानन्द ने विश्वामित्र से अपनी माता अहल्या के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के अनन्तर राम से कहा कि राम तुम धन्य हो जो तुम्हें महातेजा विश्वामित्र का संरक्षण प्राप्त है । इसी प्रसङ्ग में विश्वामित्र के वृत्तान्त का सर्णन सङ्गत ही है । वेदों में भी पुराणों का महत्त्व वर्णित है—

"ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे तस्माद् दिवि देवा दिवि श्रिताः ॥"

अर्थववेद के इस मन्त्र में कहा गया है कि ऋक्, साम और यजु के साथ पुराण भी उस उच्छिष्ट परमेश्वर से उत्पन्न हुए, अतः राम और विश्वामित्र के संवाद में पौराणिक कथाओं का वर्णन असङ्गत नहीं कहा जा सकता है । आश्चर्य है कि एक प्रामाणिक ग्रन्थ के अनेकों सर्गो को तोड़मरोड़ कर अपने मस्तिष्क के फितूरों के आधार पर प्रक्षेप कहने का साहस किया जाता है । महाकवि कालिदास तथा आनन्दवर्धनाचार्य जैसे महाविद्वान् बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड सहित समस्त रामायण को आदि कवि वाल्मीकि की कृति कहते हैं । फिर भी दुरभिसन्धिपूर्ण कुछ पाश्चात्यों के अनुयायी बुल्के दोनों काण्डों को प्रक्षेप कहते हैं । उसी प्रामाणिक **वाल्मीकिरामायण** में राम और विश्वामित्र के संवाद में अन्य कथाओं का वर्णन है यह तो प्रमाणसिद्ध है, परन्तु यह मिथ्या है कि राम ने प्रश्न नहीं किया तथा विश्वामित्र ने उक्त कथाओं का निरूपण नहीं किया । इसमें बुल्के के पास कोई प्रमाण है ?

बला और अतिबला विद्या या जया और विजया विद्या की प्राप्ति का वर्णन ठीक ही है । **असमीया बालकाण्ड** (अ० २७) के अनुसार दशरथ किसी समय अपने चारों पुत्रों सहित भारद्वाज के आश्रम में गये थे । वहाँ राम ने स्वप्न में देखा कि इन्द्र ने उनका अभिषेक कर उन्हें मन्त्र सिखलाया और धनुष-वाण भी प्रदान किये । जागने पर राम ने अपने हाथ में धनुष-बाण देखे और मन्त्र का भी उच्चारण किया । विशेष कथा सामान्य कथा से अविरुद्ध होने से मान्य ही है । ताटका-वध, यज्ञ-रक्षण, सुबाहु आदि राक्षसों का वध और मानवास्त्र द्वारा मारीच के शतयोजन दूर प्रक्षेप की कथा के सम्बन्ध में विप्रतिपत्ति न होने पर भी बुल्के को ताटका की कथा में विकास दिखता है । **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ताटका राम के बाणों से विद्ध होकर भूमि पर गिर कर मर जाती है, किन्तु **अध्यात्मरामायण**, **पद्मपुराण** (उ० खं० २६९।१२१) तथा **रामचरितमानस** के अनुसार ताटका दिव्य रूप धारण कर स्वर्ग के लिए प्रस्थान करती है, परन्तु यह विशेष प्रमाणसिद्ध है; अतः **वाल्मीकिरामायण** के सामान्य से अविरुद्ध होने से आदरणीय ही है । अन्य रामायणों के अनुसार तीन करोड़ राक्षसों, महाकाय गैंडों, सुनागिन, काकनासुर आदि के वध का वर्णन

भी उन-उन देशों में प्रचलित कथानकों पर ही निर्भर है। रामकथा में **वाल्मीकिरामायण** की ही सर्वोत्कृष्ट प्रामाणिकता है, क्योंकि वह समाधिजा प्रज्ञा के आधार पर महर्षि द्वारा निर्मित वेदमूलक आर्ष ग्रन्थ है। व्यास आदि महर्षियों की उक्तियाँ भी उससे समन्वित हैं। अन्य सब उक्तियाँ तदनुगुण होकर ही प्रमाण हैं।

राम-सीता-विवाह

३९० वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "प्रचलित वाल्मीकिरामायण में धनुर्भङ्ग के बाद चारों भाइयों के विवाह का वर्णन है। **महाभारत** रामोपाख्यान में, जो रामायण के किसी प्राचीन रूप पर निर्भर है, न तो धनुर्भङ्ग है और न राम को छोड़ अन्य भाइयों के विवाह का निर्देश किया गया है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में केवल राम और सीता के विवाह का ही उल्लेख रहा होगा। धनुर्भङ्ग तथा अन्य भाइयों का विवाह बाद में जोड़ा गया होगा। इस अनुमान की पुष्टि **वाल्मीकिरामायण** के अरण्यकाण्ड से होती है, जिसमें लक्ष्मण को अविवाहित कहा गया है।" इन अंशों का सविस्तर खण्डन पीछे हो चुका है। वस्तुतः बुल्के की दृष्टि में अरण्यकाण्ड भी पूर्ण प्रामाणिक नहीं है। उसमें भी अवतार-प्रसङ्ग उन्हें मान्य नहीं है। फिर, अटकलमात्र से धनुर्भङ्ग और चारों भाइयों के विवाह को प्रक्षिप्त कैसे कहा जा सकता है? महाभारत रामोपाख्यान में तो संक्षिप्त राम-कथा का ही वर्णन है। संक्षेप-कथन में बहुत से अंश छूटते ही हैं। अरण्यकाण्ड में राम ने उपहास विनोद में ही कहा है—

"श्रीमानकृतदारश्च लक्ष्मणो नाम वीर्यवान्।" (वा० रा० ३।१८।४)

टीकाकारों ने बालकाण्ड के विवाह का ध्यान रखते हुए **अकृतदार** का **'असंनिहितदारः'** अर्थ किया है। मीमांसा के उपक्रमन्याय से आरम्भ के अनुसार ही अन्त के वाक्यों का अर्थ लगाया जाता है। अतः बालकाण्ड में लक्ष्मण का विवाह हो चुका है; तदनुसार 'अकृतदार' का अर्थ 'असंनिहितदार' ही है अर्थात् लक्ष्मण की पत्नी उनके साथ नहीं है।

"स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया याश्च वराङ्गनाः।
ऐश्वर्यञ्च विशालायां .... ॥
पितरं मातरं चापि संमान्याभिप्रसाद्य च।
अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजा॥" (वा० रा० ५।३८।५४-५६)

उक्त वचनों के आधार पर भी बुल्के लक्ष्मण के अविवाहित होने का समर्थन करते हैं, पर उक्त वचन उनके विरुद्ध ही पड़ते हैं, क्योंकि त्याग तो विद्यमान का ही होता है। जैसे माता-पिता विद्यमान थे, अपूर्व सुख-संपदाएँ प्राप्त थीं वैसे ही प्रिय वराङ्गनाएँ भी प्राप्त थीं। तभी उनका परित्याग कहा जा सकता है।

धनुर्भङ्ग **वाल्मीकिरामायण** प्रोक्त है, अतः अन्य रचनाओं में भी उसका महत्त्व होना स्वाभाविक ही है। **महावीरचरित** के अनुसार विश्वामित्र के आश्रम में ही राम और लक्ष्मण सीता और उर्मिला को देखकर उनकी ओर आकृष्ट होते हैं। उसी आश्रम में रावण एक दूत द्वारा सीता को माँगता है तथा राम द्वारा धनुर्भङ्ग किया जाता है। **अनर्घराघव** में भी रावण की माँग का उल्लेख है। **सत्योपाख्यान** में बहुत से राजा परीक्षा में असफल होते हैं। इसमें प्रहस्त आकर कहता है कि शिव के प्रति श्रद्धा रखने के कारण रावण धनुष-परीक्षा में सम्मिलित नहीं होते। स्वयंवर के पश्चात् राम द्वारा धनुर्भङ्ग का वर्णन है (उत्तरार्ध सर्ग ३)। **देवीभागवत** में रावण सीता से कहता है कि शिवचाप के भय से मैं स्वयंवर में नहीं आया। उपर्युक्त वृत्तान्तों तथा **रघुवंश** आदि अधिकांश रामकथाओं में वाल्मीकि के अनुसार धनुर्भङ्ग के अवसर पर अन्य राजाओं की उपस्थिति का उल्लेख नहीं है तथा चारों भाइयों के विवाह का उल्लेख है। वस्तुतः **सत्योपाख्यान** के अनुसार यहाँ भी समन्वय ही अभीष्ट है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार यहाँ भी धनुर्भङ्ग की शर्त पर ही सीता का विवाह निश्चित है। तो यह मानना चाहिये कि राम के पूर्व अनेक राजा उस

परीक्षा में असफल होकर निवृत्त हो गये थे। तब राम आये और सफल हुए। **वाल्मीकिरामायण** के बालकाण्ड के ६६ वें सर्ग में जनक ने विश्वामित्र से कहा ही है। **'वीर्यशुल्का'** सीता के लिए बहुत से राजा शिव-धनुष की परीक्षा में शामिल हुए, परन्तु कोई उसे उठाने या ग्रहण करने में भी सफल नहीं हुआ। तब परम कोप से राजाओं ने मिथिला घेर ली। देवताओं की सहायता से मैंने उनको पराजित कर दिया। यदि राम इस धनुष को चढ़ा दें तो मैं अपनी अयोनिजा सीता कन्या राम को दूंगा। **महानाटक** में कहा गया है कि सभी सुरगण, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर तथा महोरग किसी की भी सामर्थ्य इस धनुष के उठाने, चढ़ाने तथा हिलाने तक की नहीं हुई फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या थी—

"नैतत् सुरगणाः सर्वे सासुरा न च राक्षसाः।
गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिन्नरमहोरगाः॥
क्व गतिर्मानुषाणाञ्च धनुषोऽस्य प्रपूरणे।
आरोपणे समायोगे वेपने तोलने तथा॥"९,१०॥

इससे स्पष्ट ही है कि धनुष की परीक्षा में अगणित राजा ही नहीं देवता, दानव आदि भी आये थे। **महाभारत** में संक्षेप के कारण ही धनुर्भङ्ग का उल्लेख नहीं हुआ। जैनों के **उत्तरपुराण** में जनक ही अपने यज्ञ के रक्षार्थ राम और लक्ष्मण को दशरथ से माँग कर लाते हैं और यज्ञरक्षा के पुरस्कारस्वरूप अपनी दत्तक पुत्री सीता का प्रदान करते हैं। जैनों द्वारा **वाल्मीकिरामायण** को ही विकृत करने का प्रयत्न किया है। **तिब्बती रामायण** में सीता कृषकों द्वारा पाली जाती है। उन्हीं के अनुरोध से राम ने अपनी तपस्या छोड़कर सीता के साथ ब्याह किया। **खोतानी-रामायण** के अनुसार राम और लक्ष्मण दोनों ही सीता से विवाह करते हैं। **दशरथजातक** में राम सहोदरी बहन सीता से विवाह करते हैं। कहना न होगा कि वर्णाश्रम तथा वेद-शास्त्र के विरोधी बौद्धों ने भी अपनी भावनाओं के अनुसार रामायण गढ़ने का प्रयास किया है, अतः वह **वाल्मीकिरामायण** से विरुद्ध रामकथा का विकृत रूप ही है। उसका वस्तुस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार जनक का कथन है कि देवताओं ने मेरे पूर्वज निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवरात को शिव-धनुष दिया था (वा० रा० १।६६।८-१२)। परशुरामतेजोभङ्ग के प्रसङ्ग में कहा गया है कि स्वयं शिव ने ही देवरात को धनुष दिया था, किन्तु अनसूया से सीता ने कहा था कि वरुण ने देवरात को धनुष दिया था (वा० रा० २।११८)। **अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण** तथा **पद्मपुराण** के अनुसार शिव ने उससे त्रिपुर को नष्ट किया था।

सत्योपाख्यान (उत्तरार्द्ध अ० २) तथा **बृहत्कोशलखण्ड** (अ० ६) के अनुसार शिव ने स्वप्न में जनक को दर्शन देकर कहा था कि धनुर्भङ्ग करनेवाला ही सीता के साथ विवाह करे।

अनेक राम-कथाओं में जनक ने ही उस धनुष को प्राप्त किया था। **पद्मपुराण** (पातालखण्ड अ० ११२) के अनुसार जनक को चिन्ता थी कि राम के साथ सीता-विवाह कैसे निश्चित हो। वह शिव और पार्वती से प्रार्थना करते हैं। फलतः शिव उन्हें अजगव धनुष प्रदान कर कहते हैं कि उसे तोड़ने में राम ही समर्थ होंगे। **कृत्तिवास-रामायण** के अनुसार ब्रह्मा ने शिव से कहा था ऐसी युक्ति सोची जाय, जिससे सीता का विवाह राम से ही हो। इसपर शिव ने परशुराम को अपना धनुष देकर आदेश दिया कि मेरा यह धनुष जनक के घर में रख दो और जनक से कहना कि सीता के साथ वही विवाह करे जो इस धनुष को तोड़ सके। **काश्मीरीरामायण** के अनुसार शिव ने इस शर्त पर जनक को एक धनुष दिया कि जो इसे चढ़ा सके वही सीता से विवाह करे। **सेरीराम** के अनुसार देवताओं ने इस धनुष को किसी महर्षि की अस्थियों से बनाया था; शिव ने उसे ब्रह्मा को दिया एवं ब्रह्मा ने सीता

के पिता को दिया। **सेरतकाण्ड** के अनुसार जनक के पास वह आकाश से गिरकर आया। **रामकीर्ति** के अनुसार सीता का अपूर्व सौन्दर्य देखकर जनक ने मन्त्रों द्वारा एक दिव्य धनुष की सृष्टि की थी और यह प्रण किया था कि जो इस धनुष को उठाने में समर्थ होगा उसी को मैं सीता प्रदान करूँगा (सर्ग १)।

आनन्दरामायण (१।३।४७) तथा **भावार्थरामायण** (१।१७) में कहा गया है कि जो शिव-धनुष जनक के पास है उसी धनुष से परशुराम ने २१ बार क्षत्रियों का नाश किया था। एक अन्य वृत्तान्त के अनुसार धनुष के साथ ही सीता यज्ञ की अग्नि से प्रकट हुई थी। **आनन्दरामायण**, **भावार्थरामायण**, बिर्होरराम-कथा आदि के अनुसार सीता ने धनुष उठाकर उस जगह को लीपा था तब जनक ने यह प्रण किया कि जो इसे तोड़ेगा उसी से सीता का विवाह होगा। उसी से जनक ने सीता को लक्ष्मी जाना। **भावार्थरामायण** (१।१७) के अनुसार परशुराम ने जनक के महल में उस धनुष से सीता को खेलते देखकर जनक को यह सुझाव दिया था कि जो धनुष-भङ्ग करने में समर्थ हो वही सीता का पति बने। जो भी हो, अनेक वर्णनों में विकृतियाँ हो सकती हैं। परन्तु आर्ष प्रमाणों में कल्पभेद या सामान्य-विशेष भाव से समन्वय किया जाना उचित है। नाटक, काव्य आदि में रसोत्पत्ति के लिए मूल कथा में कुछ हेरफेर करने की परिपाटी है ही; किन्तु सबकी दृष्टि से धनुर्भङ्ग और धनुष की असाधारणता स्पष्ट है। सीता-स्वयंवर के प्रसङ्ग में बहुत से राजाओं की धनुष तोड़ने या चढ़ाने में असफलता के पश्चात् उनका मिथिला पर आक्रमण कहा गया है। उसके बाद **"सुदीर्घस्य तु कालस्य"** बहुत दिनों बाद राम ने धनुष तोड़कर सीता से विवाह किया (वा० रा० २।११८)। यहाँ बुल्के कहते हैं बाद की कथाओं में सीता-स्वयंवर तथा राजाओं के आक्रमण का राम से सम्बन्ध स्थापित हो गया। परन्तु यह कोई असम्भावित बात नहीं है। सुदीर्घ काल का अर्थ सौ दो सौ वर्ष न होकर आपेक्षिक महीना १५ दिन भी हो सकता है और राजाओं के सीता-प्राप्त्यर्थ धनुषपरीक्षण की प्रवृत्ति कुछ-कुछ चलती ही रही, इसलिए दोनों बातें सङ्गत हो जाती हैं। प्रथम अधिकाधिक राजा लोग एकत्रित हुए। तभी असफल होकर जनक पर आक्रमण किया। जब देवताओं से चतुरङ्ग बल पाकर जनक ने उन्हें पराजित कर दिया तब वैसी प्रवृत्ति धीमी पड़ गयी। राम के आगमन पर भी कुछ राजा या राजकुमार धनुष के परीक्षणार्थ आये होंगे। राम की सफलता देखकर ईर्ष्यावश राम पर आक्रमण की बात सोचते रहे होंगे। कल्पभेद से भी दोनों स्थितियों का समाधान कर लेना उचित है। **पउंमचरियं** के अनुसार राम ने म्लेच्छों के विरुद्ध जनक की सहायता की थी, अतः पुरस्कारस्वरूप जनक ने उन्हें सीता-प्रदान किया। विवाह के पूर्व नारद सीता को देखने आते हैं। सीता भयभीत होकर छिप गयी, इसपर नारद को महल से निकाल दिया गया। नारद ने भामण्डल के उद्यान में सीता का चित्र बना दिया, जिसे देखकर भामण्डल उसपर अनुरक्त हो गया। उसकी विरहव्यथा देख उसके पालक पिता ने एक मायावी विद्याधर द्वारा जनक को अपने पास बुला लिया और भामण्डल से सीता के विवाह का अनुरोध किया। जनक ने उत्तर दिया कि मैंने राम को सीता देने की प्रतिज्ञा कर ली है। फिर उसके अनुरोध से जनक ने यह शर्त स्वीकार कर ली कि राम को पहले वज्रावर्त्त धनुष चढ़ाना होगा इसपर स्वयंवर का आयोजन हुआ। राम ने धनुष चढ़ा दिया। विभिन्न लेखक अपनी कृति में चमत्कार लाने के लिए बहुत से काल्पनिक अंशों को जोड़ देते हैं; परन्तु आर्ष ग्रन्थों में तो वस्तुस्थिति का ध्यान रखते हुए ही कृति में सौष्ठव लाने का प्रयास किया जाता है। **नृसिंहपुराण** (अ० ४७), **भागवतपुराण** (९।१०), **अध्यात्मरामायण** (१।६।२४), **कम्ब-रामायण**, **सूरसागर** आदि के अनुसार अन्य राजाओं की उपस्थिति में स्वयंवर के समय राम धनुष उठाते हैं। **पद्मपुराण** (पातालखण्ड) के अनुसार नारद के अनुरोध पर सीता-स्वयंवर का आयोजन हुआ। दशरथ ने अपने पुत्रों के विवाहार्थ अपने दूतों को नाना देशों में भेजा था। एक ने शीघ्र ही लौटकर समाचार दिया कि विदेह की पुत्री वैदेही विवाहयोग्य है, इसपर वसिष्ठ को भेजा गया जो लग्न निश्चित कर अयोध्या लौटते हैं। अनन्तर विवाह-मङ्गल गाती हुई युवतियों आदि के साथ बरात मिथिला के लिए प्रस्थान करती है। जनक स्वागत कर उन्हें विदेह-

नगर के एक महल में ठहराते हैं। वहाँ नारद आते हैं और अगले दिन विवाह के लिए जनक द्वारा आमन्त्रित किये जाते हैं। नारद कहते हैं यह मुहूर्त ठीक नहीं है। नारद गर्ग आदि के साथ परामर्श कर दशरथ की अनुमति से स्वयंवर में अन्य राजाओं को भी बुलाते हैं। उसी रात शिवजी से जनक अजगव धनुष प्राप्त करते हैं, जिसे राम को छोड़कर कोई भी उठाने में समर्थ नहीं होता (पद्मपु० पातालखण्ड १११।४९-९०)। **नृसिंहपुराण, पद्मपुराण** आदि अर्वाचीन नहीं, आर्ष ग्रन्थ हैं। उनका परस्पर समन्वय करना ही उचित है। किसी वस्तु की प्रशंसा के लिए अर्थवाद वेदों में भी होते हैं। अर्थवादों का स्वार्थ में तात्पर्य न होकर स्तुति में ही तात्पर्य होता है। सीता-राम के विवाह का उत्कर्ष वर्णन करने की दृष्टि से कुछ विरुद्ध भी अर्थवाद हो सकते हैं। **महावीरचरित** आदि में सीता-स्वयंवर में रावण का दूत उपस्थित रहता है।

राजशेखरकृत **बालरामायण** आदि ग्रन्थों में सीता-स्वयंवर के समय रावण भी उपस्थित रहता है और वह धनुष-परीक्षा में शामिल नहीं होता। परन्तु **प्रसन्नराघव** आदि के अनुसार रावण तथा बाणासुर दोनों धनुष चढ़ाने में असफल होते हैं। रामलिङ्गामृत आदि के अनुसार रावण ने धनुष उठाने का प्रयत्न किया, किन्तु धनुष उलट गया और वह उसके नीचे दबकर छटपटाने लगा। जब कोई भी धनुष नहीं उठा सका तब विश्वामित्र ने राम को रावण के प्राण बचाने का आदेश दिया। **आनन्दरामायण** (१।३।७७–८५) तथा **तोरवेरामायण** में भी ऐसा वृत्तान्त है।

बलरामदासरामायण में पुष्पक में ही बैठा रावण धनुर्भङ्ग देखकर डरकर लङ्का लौट जाता है। **सेरीराम** में उल्लेख है कि इन्द्रजित् भी स्वयंवर में विद्यमान था, पर वह इसलिए धनुष के पास नहीं गया कि वह पुत्री-कोमालदेवी नामक अपनी प्राणप्यारी सहधर्मिणी के लिए किसी को सपत्नी नहीं बनाना चाहता था। जो भी हो, मूल अर्थ **वाल्मीकिरामायण** के अविरुद्ध अन्य घटनाएँ भी प्रामाणिक हो सकती हैं, अतः उनका अपलाप करने का कोई प्रश्न नहीं उठता है। अर्वाचीन राम कथाओं में ही क्यों प्राचीन आर्ष ग्रन्थों में भी देवताओं की उपस्थिति सीता-स्वयंवर में थी। **पद्मपुराण** (पा० ख० ११२।९९–१०३) के अनुसार महेन्द्र, सूर्य तथा वायु ने धनुष उठाने का निष्फल प्रयास किया था। **रामचरितमानस** के अनुसार देवता मनुष्य का रूप धारण कर विवाह में सम्मिलित होते हैं। अन्य देव विमानों में चढ़कर स्वयंवर देखते हैं—

"देखहिं सुर नर चढ़े बिमाना" (रा० मा० १।२४५।४) तथा

"देव दनुज धरि मनुजसरीरा।" (रा० मा० १।२५०।४)। **सेरतकाण्ड** के अनुसार सीता के पोषक पिता रंसिकल को आकाश से गिरा एक धनुष मिला और उसने संकल्प किया कि जो इस धनुष से चलाए हुए बाण के द्वारा सप्त ताल वृक्षों को विद्ध करे उसी को सीता मिलेगी। रावण छः वृक्षों को विद्ध कर सका। ये ताल एक साँप की पीठ पर खड़े थे। लक्ष्मण ने उस साँप को दबाकर सीधा कर दिया, तब राम ने लक्ष्मण की सहायता से सप्ततालों को वेध दिया। **रामकेर्ति** में ब्रह्मा, इन्द्र, शिव, वायु, अग्नि आदि कई देवताओं की चर्चा है जो एक-एक करके धनुष के उत्तोलन में असफल हुए थे। यह धनुष की गुरुता की प्रशंसामात्र समझना चाहिए। वस्तुतः ब्रह्मा, शिव ईश्वरकोटि के देव हैं। उन्हें राम और सीता के असाधारण स्वरूप का ज्ञान था ही, अतः वे सीता की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील नहीं हो सकते थे।

सेरीराम के अनुसार जनक काकासुर का वध करने के लिए राम से निवेदन करते हैं। यह काकासुर यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाला दूध पीकर यज्ञों में विघ्न डाला करता था। राम का बाण काक का पीछा करता हुआ समुद्र के एक टापू पर पहुँचता हैं। काक भयभीत होकर प्रतिज्ञा करता है कि आगे वह महारीसी कली को कष्ट नहीं देगा। राम का बाण काक का सन्देश लेकर मिथिला वापस आता है। इसके बाद विवाह होता है।

विवाहोत्सव

वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड के अनुसार राम के विवाह के साथ लक्ष्मण का ऊर्मिला से, भरत और शत्रुघ्न का क्रमशः माण्डवी और श्रुतकीर्ति से विवाह होता है। गुणभद्र के **उत्तरपुराण, तिब्बती रामायण, खोतानी रामायण** तथा बौद्ध जातकों में सीता और राम का ही विवाह वर्णित है। **भट्टिकाव्य, सेरीराम, रामकेर्ति, रामकियेन** आदि में राम और लक्ष्मण का विवाह वर्णित है। **वह्निपुराण** और **पद्मपुराण** (गौडीय पातालखण्ड) में राम और भरत का विवाह वर्णित है। राम और सीता के विवाह के कारण भरत को उदास देखकर कैकेयी ने भरत और सुभद्रा के विवाह का प्रस्ताव किया। सुभद्रा जनक के भाई कनक की कन्या है। इसपर सुभद्रा के स्वयंवर का आयोजन होता है। स्वयंवर में सुभद्रा भरत को चुनती है। **तत्त्वसंग्रहरामायण** में विवाह में ब्रह्मा की उपस्थिति का उल्लेख है। रामचरितमानस में देवता ब्राह्मण का रूप धारण कर विवाह में भाग लेते हैं। होम के समय पूजा स्वीकार करते हैं।

"सिव ब्रह्मादिक बिबुध बरूथा। चढ़े बिमानहिं नाना जूथा॥
प्रेमपुलक तन हृदय उछाहू। चले बिलोकन राम बिआहू॥"(रा० मा० १।३१३।१,२)
"ब्रह्मादि सुरवर विप्रवेष बनाई कौतुक देखहीं॥" (रा० मा० १।३१९ छन्द)

उनकी स्त्रियां छद्मवेश में परछन के समय राम की आरती उतारती हैं।

"सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी।
कपटनारि बर बेष बनाई। मिली सकल रनिवासहिं जाई॥"(रा० मा० १।३१७।३,४)

कृत्तिवासरामायण में चन्द्रमा ने नर्तकी का रूप धारण कर अपने नृत्य से सबको मन्त्रमुग्ध कर दिया, जिससे शुभ मुहूर्त्त टल गया जिसे देवता चाहते थे (१।६२)। अतएव लौकिक दृष्टि से वह विवाह सुखदायक नहीं हुआ। इसी के आधार पर अन्य कल्पनाएँ हुई हैं।

विवाह की अवस्था

वाल्मीकिरामायण में उक्त 'ऊनषोडशवर्षः (१।२०) के अनुसार राम की १६ वर्ष से कम उम्र थी एवं (वा० रा० १।७७।१४) तथा अनसूयासंवाद (वा० रा० २।११८।२७–५२) के अनुसार सीता की पतिसंयोगसुलभ अवस्था का उल्लेख है। पर बुल्के इसे और अनसूया-संबाद को प्रक्षेप कहते हैं, परन्तु उनकी यह कल्पना भी निराधार ही है। क्योंकि भारतीय टीकाकारों ने उसे परम्पराप्राप्त मानकर ही उसपर टीकाएँ की है। अरण्यकाण्ड (३।४७) के अनुसार विवाह के पश्चात् सीता १२ वर्ष तक अयोध्या में रही थीं। वनगमन के समय राम और सीता की अवस्था क्रमशः २५ तथा १८ की थी (वा० रा० ३।४७।१०-११)। विवाह के समय राम तथा सीता की उम्र १३ और ६ वर्ष की थी। अयोध्याकाण्ड के (वा० रा० २।२०।४५) के अनुसार राम की अवस्था १७ वर्ष की थी। (वा० रा० ५।३३।१७) में वनवास के पहले १२ वर्ष अयोध्या में रहना कहा गया है। **स्कन्दपुराण** (ब्राह्मखण्ड धर्मारण्यखण्ड अ० ३०) तथा **पद्मपुराण** (पातालखण्ड अ० ३३) में विवाह के समय दोनों की उम्र क्रमशः १५ और ६ वर्ष की मानी गयी है। बुल्के उन सबमें परस्पर मतभेद भी दिखला कर प्रक्षेप सिद्ध करना चाहते हैं। परन्तु वस्तुतः इन सबका समन्वय ही है। सीता अयोनिजा एवं दिव्य होने के कारण ६ वर्ष की अवस्था में भी पतिसंयोगसुलभ प्रतीत होती थीं।

'ऊनषोडशवर्षः' यह वचन कहकर दशरथ ने विश्वामित्र से यह कहना चाहा था कि १६ वर्ष का क्षत्रिय-पुत्र युद्धयोग्य होता है, किन्तु राम अभी षोडश वर्ष के नहीं हुए, अतः युद्ध के अयोग्य हैं। उपक्रमन्याय से बालकाण्ड

के अनुसार ही अयोध्याकाण्ड के वचन का अर्थ लगाना उचित है। **"सप्त दश च वर्षाणि जातस्य तव राघव।"** (वा० रा० २।२०।४५) का अर्थ रामाभिरामी के अनुसार यह है कि उपनयन संस्कार रूप द्वितीय जन्म से राम वनवास के समय १७ वर्ष के थे। इस तरह राम विश्वामित्र-यज्ञ के समय १५ वर्ष के थे। १२ वर्ष विवाह के बाद अयोध्या में रहे और वनगमन के समय २७ वर्ष के ही थे। दश वर्ष की अवस्था में उपनयन हुआ था।

यद्यपि "मम भर्ता महातेजा वयसा पञ्चविंशकः।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते॥ (वा० रा० ३।४७।१०-११)

इस वचन से वनगमन के समय में क्रमशः राम और सीता की आयु २५ और १८ वर्ष की प्रतीत होती है तथापि इस वचन का भी पूर्व वचनों के अनुसार ही अर्थ करना उचित है। अतएव टीकाकारों ने पञ्चविंशक का अतितरुण अर्थ किया है। अथवा २४ तत्त्वों से पृथक् पञ्चविंशक सांख्यीय चैतन्य पुरुष ही राम हैं। पञ्चतन्मात्राएँ, पञ्चमहाभूत, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, अहङ्कार, बुद्धि, मनरूप १८ वर्ष पर्व मेरे कार्य गिने जाते हैं। मैं मूलप्रकृति हूँ। **'पतिसंयोगसुलभम्'** का भी अर्थ पाणिग्रहणयोग्यता ही विवक्षित है। यही रामाभिरामी टीका का मत है।

पूर्वराग

अनेक रामायणों के अनुसार सीता और राम का परस्पर प्रेम हो जाता है। **आनन्दरामायण** (१।३।११९–१२०) स्वयंवर के समय रामाभिराम को देखकर सीता प्रेमविह्वल हो जाती हैं। वे देवताओं से प्रार्थना करती हैं कि धनुष को पुष्पवत् बना दें।

कल्किपुराण (३।३।२९) के अनुसार जनकनन्दिनी सीता के कटाक्ष से अर्चित होकर राम धनुष चढ़ाते हैं—**'जनकजेक्षितैरर्चितः'**। **कम्बरामायण** के अनुसार सीता कन्या-भवन पर खड़ी थी और राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ आ रहे थे। दोनों की दृष्टि दोनों पर पड़ी। दोनों प्रेमनिमग्न हो गये। **रामचरितमानस** के अनुसार पुष्पवाटिका में दोनों एक दूसरे को देखकर प्रभावित होते हैं—

"सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥" (रा० मा० १।२२९)

"..............................सियमुख ससि भय नयन चकोरा।
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल॥
देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा॥"
(रा० मा० १।२२९।२,३)

"सियसोभा हिय बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि॥" (रा० मा० १।२३०)

सीताजी भी—

"देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥
थके नयन रघुपतिछबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें॥
अधिक सनेह देह भै भोरी। सरदससिहि जनु चितव चकोरी॥
लोचनमग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥"
(रा० मा० १।२३१।२-४)

और सीता राम-प्राप्ति के लिए गौरी से मूक प्रार्थना करती हैं—

"मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के॥" (रा० मा० १।२३५।२)

भवानी ने भी प्रसन्नता से वरदान दिया, यह जानकर सीता प्रसन्न होती हैं—

"जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥" (रा० मा० १।२३६)

राघवोल्लास के अनुसार स्वप्न में सीता को राम का दर्शन होने से वे अनुरागवती होती हैं। **भुशुण्डि-रामायण के** अनुसार पक्षी के द्वारा रामप्रेषित राम का चित्र देखकर और बृहत्कोशलखण्ड में गुणश्रवण द्वारा सीता पूर्वानुरागवती होती हैं। तुलसीदास के अनुसार यह स्वाभाविक पुनीत प्रेम था और सीता के नयन निजनिधि पहचान कर ललक उठे। आर्ष रामायण के अविरुद्ध ऐसी स्थितियों का वर्णन भी असङ्गत नहीं है।

राम एकपत्नीव्रत थे। वाल्मीकि के अनुसार राम सत्यपराक्रम, पितृभक्त एवं स्वदारनिरत थे। अन्य रामायणों में भी राम को एकपत्नीव्रत कहा गया है। परन्तु बुल्के इसे भी विकास मानते हैं। यहाँ बुल्के कहते हैं, "उच्चाशय मानव का चित्रण करते हुए भी वाल्मीकि का दृष्टिकोण यथार्थवादी ही था, अतः उनकी रचना में ऐसी उक्तियाँ भी मिलती हैं जो परवर्ती रामकथाओं के मर्यादावाद को आघात पहुँचाती हैं। जैसे—

"हृष्टाः खलु भविष्यन्ति रामस्य परमाः स्त्रियः।" (वा० रा० २।१८।१२) अर्थात् राम के अभिषेक के बाद राम की परम स्त्रियाँ प्रहृष्ट होंगी। ऐसे ही—

"भुजैः परमनारीणामभिमृष्टमनेकधा।" (वा० रा० ६।२१।३)। अनेकधा परम नारियों की भुजाओं से स्पृष्ट राम की बाँह का उल्लेख किया गया है।" परन्तु बुल्के भारतीय शास्त्रीय समन्वय की पद्धति से अपरिचित हैं। इसी लिए उन्हें इस प्रकार का भ्रम हुआ है। ऐसे प्रसङ्गों में टीकाकारों ने एकपत्नीव्रत के अनुकूल ही अर्थ किया है। राम की सीता एवं सीता की सखियाँ प्रसन्न होंगी। स्त्री का अर्थ पत्नी ही नहीं होता है। रामसम्बन्धिनी परम उत्कृष्ट स्त्रियां प्रसन्न होंगी। यही उक्त वचन का अर्थ है।

उपनिषद में आया है "**ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके**" (कठ उ० १।३।१)। यहाँ पिबन्तौ से यही प्रतीत होता है कि जीव और ईश्वर दोनों ऋत (कर्मफल) का पान करनेवाले हैं। परन्तु जीव और ईश्वर के स्वभाव भिन्न होने के कारण ईश्वर भोक्ता नहीं होता। "**अनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति**" (मु० उ० ३।१।१) ईश्वर भोजन न करता हुआ केवल प्रकाशक रहता है। इस श्रुति के कारण पिबन्तौ का मीमांसासम्मत अर्थ यह होता है कि—"**जीवः पिबति ईश्वरः पाययति**" अर्थात् जीव कर्म-फल का भोक्ता है ईश्वर जीव को कर्मफल भोगार्थ प्रेरित करता है। इसी तरह '**परमाः स्त्रियः**' में राम की पत्नी सीता एवं उसकी सखियाँ ही गृहीत होती हैं। अतएव "**बहुवचनेन सीतासख्यः**" यही अर्थ रामाभिरामी टीका में किया गया है। इसी प्रकार दूसरे वचन का भी अर्थ यह है कि मणि, काञ्चन, मुक्तादि सर्वोत्तम भूषण युक्त परम नारियों (धात्रीजनों) के द्वारा स्नान, अलङ्करण आदि के समय राम की बाहें स्पृष्ट होती हैं। रामाभिरामी का स्पष्टतः कहना है—

"परमनारीणामेकदारव्रतत्वेनेतरस्त्रीप्रसङ्गाभावादुत्तमधात्रीजनानां भुजैरनेकधा स्नपनालङ्करणादिकाले स्पृष्टम्।" अर्थात् राम एकदारव्रत हैं, अतः उनका अन्य नारी-स्पर्श का प्रसङ्ग न होने से धात्रीजनों की भुजाओं से स्नान, अलङ्करण आदि के समय राम की भुजा स्पृष्ट होती थी। वाल्मीकिरामायण में ही राम को एकपत्नीव्रत कहा गया है और उसी के कारण यज्ञों में भी सुवर्णमयी सीता की प्रतिमा का प्रयोग हुआ।

न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत्॥ (वा० रा० ७।९९।७)

अर्थात् राम ने सीता से भिन्न भार्या का वरण नहीं किया, इसलिए पत्नी के स्थान में यज्ञों में सीता की काञ्चनी प्रतिमा ही उपयुक्त होती थी। इसी प्रकार बुल्के यह भी कहते हैं कि यद्यपि सीता के प्रति

राम-प्रेम की असंख्य बार रामायण में चर्चा है तथापि भरत के अभिषेक की बात सुनकर राम ने कहा है कि पिता की आज्ञा से मैं भरत को अपना राज्य, सम्पत्ति, अपना जीवन तथा सीता को भी सहर्ष प्रदान कर सकता हूँ।

"अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः॥" (वा० रा० २।१९।७)

परन्तु इससे सीता-प्रेम में विरोध कैसे प्रतीत होता है ? यह तो वही जानें, पर वस्तुतः प्राण या जीवन से ही पत्नी का सम्बन्ध होता है, जो अपने प्राण एवं जीवन ही भरत को प्रदान करने को प्रस्तुत है तब उसके सीता के प्रदान में प्रेम की न्यूनता कहाँ आती है। इसी तरह घोर शरपाशबन्धन से मूर्च्छित लक्ष्मण को देखकर विलाप करते हुए राम कहते हैं, मैं युद्ध में मूर्च्छित लक्ष्मण को देख रहा हूँ। इस स्थिति में सीता के मिलने या जीवन से भी मुझे क्या करना है। ढूँढने पर मर्त्यलोक में सीता जैसी नारी मिल सकती है, पर लक्ष्मणसदृश साम्परायिक (युद्ध का सच्चा साथी) भ्राता नहीं मिल सकता (वा० रा० ६।४७।५,६)। इससे भी बुल्के को सीता-प्रेम में कमी दिखती है, परन्तु वस्तुतः यहाँ शोकसन्तप्त राम का तात्पर्य लक्ष्मण के महत्त्व-वर्णन में ही है, सीता के अपकर्ष-वर्णन में नहीं। **"यत्परः शब्दः स शब्दार्थः"** शब्द का जिसमें तात्पर्य होता है वही शब्दार्थ होता है। फिर भी बुल्के अनिश्चितता की ही स्थिति में रह जाते हैं और कहते हैं कि उपर्युक्त उद्धरणों का उत्तरदायित्व वाल्मीकि पर है या प्राचीन गायकों पर है, इसका निर्णय असंभव है। परन्तु आर्ष **वाल्मीकिरामायण** पर विश्वास करनेवाले आस्तिकों को तो पूर्वोक्त ढंग से समन्वित अर्थ ही प्रतीत होता है, विरोध का अवकाश ही नहीं। **वाल्मीकिरामायण** (२।६४।४३) में वर्णित— **'एकपत्नीव्रतस्य'** राम के एकपत्नीव्रत की महिमा ठीक ही है। सीता को भी राम के **'स्वदारनिरतः'** (वा० रा० ३।९।६) के अनुसार स्वदाररत होने का पूर्ण विश्वास है ही। वे उन्हें 'स्थिरानुराग' मानती हैं। कैकेयी भी यह स्पष्ट कहती है कि राम कभी परस्त्री को चक्षु से भी नहीं देखते।

"न रामः परदारान् स चक्षुर्भ्यामपि पश्यति।" (वा० रा० २।७२।४८)

आनन्दरामायण में तो राम स्वयं ही कहते हैं कि सीता को छोड़कर सभी नारियाँ उनके लिए कौशल्या के तुल्य हैं—

अन्यत् सीतां विनाऽन्या स्त्री कौशल्यासदृशी मम।
न क्रियते परा पत्नी मनसाऽपि न चिन्तये॥
(आ० रा० विलासकाण्ड सर्ग ७)

जैनों ने राम की ८००० और लक्ष्मण को १६००० पत्नियाँ मानी हैं, जो आर्षरामायणविरुद्ध होने से अग्राह्य ही है। रसिकसम्प्रदाय की दृष्टि में राम परमेश्वर हैं। उनमें बहुतों की पतिभावना हो सकती है, परन्तु वह भावना की बात है, व्यावहारिक नहीं। इसी प्रकार राम और लक्ष्मण दोनों के सीता से विवाह करने की बात **खोतानी रामायण**, राम वानररूप धारण कर अञ्जना से हनुमान् को उत्पन्न करते हैं (सेरीराम), राम वाली की विधवा से विवाह कर अङ्गद के पिता बनते हैं (अनु० ३२७) रामकथा, आदि सब को रामायण की विकृतियाँ ही समझना चाहिये।

अयोनिजा सीता

४०५ वें अनु० में बुल्के सीता के जन्म के सम्बन्ध में कहते हैं "सीता के कुलपरम्परासम्बन्धी तथ्यों के अभाव के कारण अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हुई हैं। जनक, रावण और दशरथ तीनों ही सीता के पिता माने गये हैं।" परन्तु यह उनका भ्रम ही है। रामायण के अनुसार सीता अयोनिजा ही हैं। उनके अनुसार **महाभारत,**

हरिवंश, पउमचरियं और आदि**वाल्मीकिरामायण** के अनुसार सीता जनकजा है। यद्यपि प्रचलित रामायण से भिन्न आदिरामायण नाम की कोई वस्तु नहीं है। वह केवल पाश्चात्यों के मस्तिष्क का फितूर ही है। **महाभारत** रामोपाख्यान में सीता को जनक की आत्मजा अवश्य कहा गया है।

विदेहराजो जनकः सीता तस्यात्मजा विभो।" (म० भा० ३।१५८।९) परन्तु यहाँ आत्मजा शब्द पुत्री का ही बोधक है जैसे अग्निजा द्रौपदी भी द्रुपदात्मजा या द्रौपदी हुई वैसे ही अयोनिजा सीता भी पुत्रीत्वेन जनक द्वारा स्वीकृत होने के कारण जनकात्मजा या जानकी हो ही जाती हैं। **हरिवंश** (१।४१) का भी यही समाधान है। संक्षेपकथा के कारण ही उनमें सीताजन्म का विशेष विवरण न होना स्वाभाविक ही है। अनसूया-सीता-संवाद में, अशोकवाटिका में हनुमान् द्वारा तथा अग्निपरीक्षा प्रसंग में सीता को भूमिजा अयोनिजा कहा गया है और इन काण्डों को बुल्के प्रामाणिक भी कहते हैं फिर भी इन प्रसङ्गों को वे प्रक्षेप कहते हैं, जिसका कि मैंने अनेक प्रसङ्गों में खण्डन कर दिया है। प्रामाणिक टीकाकारों ने सातों काण्ड रामायण को प्रमाण मानकर उन सभी काण्डों और उक्त सर्गों पर भी टीकाएँ लिखी हैं। अयोध्याकाण्ड के ११८ वें सर्ग के अनुसार अत्रि-पत्नी अनसूया सीता से प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य वस्त्र, आभरण और महार्ह दिव्य अङ्गराग तथा मालाएँ प्रदान करती हैं और सीता से उनके स्वयंवर की कथा पूछती हैं। उसी प्रसङ्ग में सीता कहती हैं मेरे पिता मिथिलाधिपति हल से (चयन-यज्ञप्रसङ्ग में) यज्ञयोग्य क्षेत्रमण्डल का कर्षण कर रहे थे मैं पृथिवी-भेदन करके निकल पड़ी थी। गुण्ठित सर्वाङ्गवाली मुझे देख विस्मित होकर जनक ने अनपत्य होने के कारण स्नेह से अङ्क में मेरी पुत्री कह कर उठा लिया और मुझे अपनी ज्येष्ठ पत्नी को प्रदान किया। उसने मातृभाव से मेरा पालन किया। उसी प्रसङ्ग में सीता ने अपने को अयोनिजा भी कहा है—

"तस्य लाङ्गलहस्तस्य कृषतः क्षेत्रमण्डलम्।
अहं किलोत्थिता भित्त्वा जगतीं नृपतेः सुता।
अनपत्येन च स्नेहादङ्कमारोप्य च स्वयम्।
ममेयं तनयेत्युक्त्वा स्नेहो मयि निपातितः।
अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छत् स चिन्तयन्॥" (वा० रा० २।११८ २८-३७)

यही बात वाल्मीकिरामायण (५।१६) में कही गयी है जो हलमुखक्षत क्षेत्रमण्डल में मेदनी-भेदन करके उत्पन्न हुई है वह धर्मशील जनकराज की पतिव्रता पुत्री है—

"उत्थिता मेदिनीं भित्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते।
पद्मरेणुनिभैः कीर्णा शुभैः केदारपांसुभिः॥"

इसी तरह अग्निपरीक्षा के प्रसङ्ग में भी सीता ने साधारण स्त्रियों से अपनी विशेषता बतलाते हुए अपने को अयोनिजा या भूमिजा कहा है—

"अपदेशो हि जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात्।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु ते न पुरस्कृतम्॥" (वा० रा० ६।११६।१५)

नृपशार्दूल, आपने रोष का ही अनुवर्त्तन करते हुए सामान्य पुरुषों के समान स्त्रीत्वमात्र की दृष्टि से मेरे सम्बन्ध में शङ्काएँ व्यक्त की हैं। इसपर ध्यान नहीं दिया कि मेरा वैदेही ऐसा नाम और व्यवहार जनकयज्ञ भूमिमात्र के सम्बन्ध से ही है। जनक से मेरी उत्पत्ति नहीं हुई, किन्तु वसुधातल से ही मेरी अभिव्यक्ति हुई है। इस तरह मनुष्य-योनि से अनुत्पत्ति के कारण मुझे प्राकृत स्त्री नहीं कहा जा सकता और मेरे बहुमान चरित्र को भी आपने महत्त्व नहीं दिया।

वाल्मीकिरामायण के उक्त सभी स्थलों में कतक, तीर्थ, तिलक, भूषण आदि टीकाएँ हैं, अतः इन्हें प्रक्षेप कह देना साहसमात्र है। अतएव यह कहना कि आदिरामायण के अनुसार सीता जनक की औरसी पुत्री थी, सर्वथा अशुद्ध है (वा० रा० १।१।२७; ५।१३।४; २।२८।३ तथा ३।४७।३) के वचनों का भी यही अर्थ हैं कि विदेहकुल में सीता जनक द्वारा पुत्रीरूप से गृहीत हुई है।

"जनकस्य कुले जाता देवमायेव निर्मिता।" (वा० रा० १।१।२७)

यहाँ नागेश रामाभिरामी में लिखते हैं—

"यद्यप्येषाऽयोनिजा तथापि सीरध्वजस्य देवयजनलाङ्गलपद्धतावाविर्भूतत्वादेवमुक्तिः।" यद्यपि सीता अयोनिजा हैं फिर भी सीरध्वज जनक के देवयजनक्षेत्र की लाङ्गल पद्धति से उनका आविर्भाव हुआ है, अतः जनक के कुल में उद्भूत मानी गयी हैं। आश्चर्य है, स्वाभिमत विरुद्ध होने से स्वयं प्रमाणत्वेन स्वीकृत २–६ काण्डों में सीता के अयोनिजा कही जाने पर भी बुल्के उसे स्वीकार नहीं करते हैं और बालकाण्ड को प्रामाणिक न मानने पर भी उसके अनुसार सीता को जनक की औरसी पुत्री सिद्ध करने की निर्लज्ज चेष्टा करते हैं। **"जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा।"** (वा० रा० ५।१३।१४) इस प्रसङ्ग में भी पूर्वोक्त ही अभिप्राय है। विशेषतः जनककुल की कन्या और राम की पत्नी रावण के वश में कथमपि नहीं हो सकती।

"सीते महाकुलीनासि धर्मे च निरता सदा।" (वा० रा० २।१८।३)

यहाँ भी सीता जनक की औरसी पुत्री नहीं कही गयी हैं। इसी तरह अन्य उद्धरणों को भी उपक्रमन्याय से बालकाण्ड-कथा के अनुसार ही लगाना चाहिये। बालकाण्ड के ६६वें सर्ग में विवाह के समय स्वयं ही जनक ने सीता की उत्पत्ति का वर्णन किया था—

"अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गलादुत्थिता ततः।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता॥
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा।
वीर्यशुल्केति मे कन्या स्थापितेयमयोनिजा॥"

(वा० रा० १।६६।१३-१५)

क्षेत्र-शोधनार्थ अग्निचयन के लिए देवयजन क्षेत्रमण्डल का कर्षण करते हुए मेरी लाङ्गलपद्धति से सीता का उत्थान हुआ था, इसी लिए उसका नाम सीता रखा गया है। भूतल से उत्थित अतएव अयोनिजा सीता मेरी पुत्री है। टीकाकारों ने भी ऐसी ही व्याख्या की है।

पद्मपुराण में

"अथ लोकेश्वरी लक्ष्मीर्जनकस्य पुरे स्वतः।
शुभक्षेत्रे हलोत्खाते तारे चोत्तरफाल्गुने॥
अयोनिजा पद्मकरा बालार्कशतसन्निभा।
सीतामुखे समुत्पन्ना बालभावेन सुन्दरी॥
सीतामुखोद्भवात्सीता इत्यस्यै नाम चाकरोत्।"

लोकेश्वरी लक्ष्मी जनकपुर में उत्तराफाल्गुनी शुभ नक्षत्र में हलोत्खात यज्ञीय शुभ क्षेत्र में अयोनिजा पद्मकरा बालार्कशतभास्वरा स्वतः आविर्भूत हुई। टीकाकारों ने भी यही सब बातें लिखी हैं। लङ्काकाण्ड के अनुसार अग्नि में प्रविष्ट होकर भी सीता ने अपने दिव्य रूप का अनुभव कराया और अन्त में उत्तरकाण्ड के अनुसार दिव्य-

सिंहासनासीन होकर दिव्य लोक पधार गयीं । इन सबको प्रक्षेप कहना सचमुच पाश्चात्य-मनोवृत्ति का साहस ही है । बुल्के ने यह भी लिखा है कि व्रज के प्रचलित लोकगीत के अनुसार सीता भाट की बेटी थी । शिकार खेलते समय राम का उनसे परिचय हुआ । वस्तुतः आर्ष **वाल्मीकिरामायण** तथा अन्य पुराणादि आर्ष ग्रन्थ ही राम और सीता के वृत्त में प्रमाण हो सकते हैं । तद्विरुद्ध कल्पनाएँ निराधार तथा निरर्गल ही हैं । आश्चर्य तो यह है कि एक ओर बुल्के भाटों के लोकगीतों को प्रमाण मानते हैं और दूसरी ओर वाल्मीकि जैसे महर्षि की खिल्ली उड़ाने में नहीं सकुचाते । **पउमचरियं** के अनुसार जनक की पत्नी विदेहा से सीता अपने भ्राता भामण्डल के साथ उत्पन्न हुई थीं । जन्मते ही भामण्डल को कोई देवता उठा ले जाकर किसी अन्य राजा के यहाँ छोड़ देता है । यह वृत्तान्त भी **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध होने से अनादरणीय ही है ।

कालिकापुराण (अ० ३८) के अनुसार नारद निःसन्तान जनक को यज्ञ करने का परामर्श देते हुए कहते हैं कि यज्ञ के प्रभाव से दशरथ के चार पुत्र हुए हैं । तदनुसार जनक यज्ञ के लिए क्षेत्र तैयार करते समय एक पुत्री और पुत्र पाते हैं । यह कथा भी किसी कल्प की हो सकती है, पर इसके अनुसार भी सीता अयोनिजा ही हैं । **विष्णुपुराण** में यज्ञभूमि से ही सीता के आविर्भाव का वर्णन है । **पद्मपुराणीय** उत्तरखण्ड के बङ्गीय पाठ के अनुसार जनक को भूमि में पेटिकानिहित एक धनुष मिला था, जिसे खोलने पर जनक ने एक कन्या देखी । उसे सीता नाम देकर ग्रहण किया । **सीतोपनिषद्** में भी हलाग्रजात होने के कारण सीता नाम का उल्लेख हुआ है । उसके अनुसार भी सीता ही श्री, भू, नीला आदि दिव्य शक्तियों का दिव्य केन्द्र हैं । वीरलक्ष्मी, ऐश्वर्यलक्ष्मी, विजयलक्ष्मी, मोक्षलक्ष्मी आदि सब उसी के अंश हैं । इसी दृष्टि से वह कृषि की अधिष्ठात्री देवी भी मानी जाती हैं । अतएव वैदिक सीता ऐतिहासिक न होकर लाङ्गलपद्धति के मानवीकरण का परिणाम है, बुल्के का यह कथन सर्वथा निराधार है । क्योंकि वैदिक साहित्य की व्याख्या ही रामायण, महाभारत आदि आर्ष इतिहासों एवं पुराणों में की गयी है । कृषि की अधिष्ठात्री देवी जिसका अंश है, वह महालक्ष्मी ही ऐतिहासिक राजकुमारी सीता के रूप में प्रकट हुई थी । यही भारतीय आस्तिकसमाज सम्मत वेद, रामायण, भारत तथा पुराणों का सारार्थ है । गौडीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों की मेनका सम्बन्धित जनक की मानसी पुत्री भी हलाग्रसमुद्भूत सीता में ही गतार्थ है ।

बुल्के का यह कथन भी असङ्गत है कि सीता की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई एक वृत्तान्त प्रामाणिक नहीं माना जाता था, क्योंकि वेद, उपनिषद्, वाल्मीकिरामायण तथा पुराणों में अयोनिजा सीता प्रामाणिक है ही । **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ही **असमीयारामायण, कृत्तिवासरामायण** तथा **बलरामदासरामायण** का भी अभिप्राय लगाना उचित है । मेनका या उर्वशी को देखकर उसी के समान कन्या प्राप्त करने की इच्छा जनक जैसे ज्ञानी को नहीं हो सकती है । ज्ञानी को कामवासना नहीं हो सकती है । जनक का तपोमय तेज भी परम्परा से भूमिजा सीता में हेतु हुआ हो तब भी सीता अयोनिजा तो रही ही । **वाल्मीकिरामायण** के उत्तरकाण्ड सर्ग १७ में वेदवती सीता के रूप में उत्पन्न हुई ।

४१० वें अनुच्छेद में बुल्के कहते हैं कि "वेदवती की कथा में सीता के पूर्वजन्म का वर्णन किया गया है, अतः उसकी उत्पत्ति के समय सीता के लक्ष्मी के अवतार होने का सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं था ।" उनका यह कथन भी असङ्गत ही है, क्योंकि पूर्वजन्म की कथा-मात्र से अवतारत्व का विरोध नहीं होता, क्योंकि पुराणों में सीता का जन्मान्तर में रुक्मिणी होना भी प्रसिद्ध ही है । राम का भी जन्मान्तर में कृष्ण होना प्रसिद्ध है ।

"राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि ।" (वि० पु०)

लक्ष्मी ही विष्णु के राघव होने पर सीता होती हैं एवं कृष्ण होने पर रुक्मिणी होती हैं । सभी जीव सीताराम के ही अंश होते हैं । उपासना और तपस्या के बलपर उन्हें उनका सायुज्य भी प्राप्त होता है । वेदवती ने

नारायण को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए घोर तप किया था—

"नारायणो मम पतिर्न त्वन्यः पुरुषोत्तमात् ।
आश्रये नियमं घोरं नारायणपरीप्सया ।।" (वा० रा० ७।१७।१८)

काममोहित रावण ने जब उसका केशग्रहण किया तब उसने क्रुद्ध होकर असिभूत हाथों से केशों को छिन्न कर दिया और धर्मी (जनक) की अयोनिजा पुत्री होकर मैं तेरे वध के लिए प्रकट होऊँगी यह कहकर वह अग्नि में प्रविष्ट हो गयी—

"तस्मात्त्वयोनिजा साध्वी भवेयं धर्मिणः सुता ।" (वा० रा० ७।१७।३२) ।

ऋषियों ने राम से कहा है कि आप विष्णु हैं और वेदवती जनकजा हैं। यहाँ भी सीता को अयोनिजा कहते हुए भी ऋषियों ने उसे जनक-कुल में उत्पन्न होने का उपचार किया है । **"अयोनिजा धर्मिणः सुता"**, **"उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः ।"** (वा० रा० ७।१७।३७), अतः पूर्वोक्त वचनों का भी यही अर्थ समझना चाहिये । वेदवती तप के बल से महालक्ष्मी के साथ सायुज्यभाव को प्राप्त हो गयी, अतः महालक्ष्मी के सीतारूप में जन्म लेने से ही उसका भी सीतारूप जन्म समझा गया । वस्तुतः वेदवती भी लक्ष्मी की अवतारभूता ही थी । उसने स्वयं कहा था कि ब्रह्मर्षि कुशध्वज से वाङ्मयी वेदमयी महालक्ष्मी ही वेदवती के रूप में प्रकट हुई थी । यहाँ भी वे अयोनिजा ही हैं । **सीतोपनिषद्** में सीता को वेदमयी भी कहा गया है । वही रावण को शाप देने और उसका वध करने के लिए आविर्भुत हुई थीं ।

"तस्याहं कुर्वतो नित्यं वेदाभ्यासं महात्मनः । संभूता वाङ्मयी कन्या नाम्ना वेदवती स्मृता ।।"
(वा० रा० ७।१९।९)

यही बात **रामाभिरामी टीका** में स्पष्ट है—

"भगवतः शक्तिर्महालक्ष्मीरेव रावणवधाय रावणं शप्तुमवतीर्णा अस्या वाङ्मयीत्वं सार्वात्म्यात् ।"

अतएव इसी प्रसङ्ग में यह भी कहा गया है कि यह महाभागा वेदी में अग्निशिखा के समान अन्य युगों में भी हलोत्कृष्ट क्षेत्र से पुनः उत्पन्न होगी—

"एवमेषा महाभागा मर्त्येषूत्पत्स्यते पुनः ।
क्षेत्रे हलमुखोत्कृष्टे वेद्यामग्निशिखोपमा ।।" (वा० रा० ७।१७।३६)

महासुन्दरीतन्त्र का वचन उद्धृत करके रामाभिरामी में कहा गया है कि वैशाख शुक्ल नवमी के दिन भूमिसुता सीता सीतामुख से उत्पन्न हुई । जनक ने उसका पालन किया । वही महाभागा रामपत्नी हुई । उस दिन श्रद्धाभक्तियुक्त लोगों को वित्तशाठ्य छोड़कर सम्यक् महोत्सव मनाना चाहिये । गीत, वादित्र, नृत्य तथा पुराणपाठ, लक्ष्मीसूक्तपाठ आदि करना चाहिये । इससे धन, धान्य, सौभाग्य तथा पुत्रादि, सेनादि का विस्तार होता है । राम के प्रसाद से प्राणी ऐसा करने से सब बाधाओं से मुक्त हो जाता है और सनातन राम को प्राप्त कर लेता है—

"वैशाखे शुक्लनवम्यामुत्पन्ना साऽवनीसुता ।
सीतामुखात् सा सञ्जाता पालिता जनकेन च ।।
रामपत्नी महाभागा सीता नामेति विश्रुता ।
तस्मिन् दिने रामभक्ताः श्रद्धाभक्तिसमन्विताः ।।
महोत्सवपराः सर्वे वित्तशाठ्यविवर्जिताः ।
गीतवादित्रनृत्याद्यै रामभक्तिपरायणाः ।।

वैशाखसितनवम्यां पुराणपठनं तथा ।
लक्ष्मीसूक्तं पठंस्तत्र याति रामं सनातनम् ॥
सौभाग्यं धनधान्यञ्च पुत्रसन्ततिविस्तृतम् ।
रामप्रसादाल्लभते मुच्यते सर्वपातकात् ॥"
(वा० रा० ७।१७।३७ की टीका)

अतएव **देवीभागवत** (९।१६) तथा **ब्रह्मवैवर्तपुराण** (प्रकृतिखण्ड अ० १४) में इसी कथा का स्पष्टीकरण किया गया है। बुल्के का परिमार्जन शब्द असङ्गत है। उनकी दृष्टि में ये सभी ग्रन्थकार मिथ्याभाषी तथा मिथ्यालेखक हैं और उसी मिथ्या भाषण और लेखन द्वारा कथाओं में सुधार करते हैं। ईसाई-संख्या बढ़ाने की धुन में ही वे लोग हिन्दूशास्त्रों में इस प्रकार दुरभिसन्धिपूर्ण दुष्कल्पना करते हैं।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार स्पष्टरूप से कहा गया है कि कुशध्वज और उनकी पत्नी लक्ष्मी की उपासना से पुत्रीरूप में लक्ष्मी के प्रकट होने का वरदान प्राप्त करते हैं। जन्म-ग्रहण करते ही लक्ष्मी वैदिक मन्त्रों का गान करती हैं। इस कारण उन्हें वेदवती कहा गया है। कुछ समय बाद वह हरि को प्राप्त करने के लिए तप करती है। रावण से अपमानित होकर रावण को उसके नाश का शाप देकर योगबल से देह-त्याग कर सीता के रूप में उत्पन्न होती है। सीता तथा लक्ष्मी की अभिन्नता के विश्वास की प्रेरणा से वेदवती की कथा को यह नवीन रूप दिया गया है। बुल्के की इस धारणा का आधार बुल्के की दुर्भावना छोड़कर अन्य कुछ नहीं है। क्योंकि पूर्वोक्त व्याख्या के अनुसार वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड में ही उसको वाङ्मयी कहा गया है और युग युग में उसका पुनः पुनः प्रादुर्भाव कहा गया है।

कृत्तिवासरामायण में भी उसी का विवरण दिया है। कुशध्वज वेदपाठ कर रहे थे उस समय उनके मुख से एक कन्या उत्पन्न हुई। उन्होंने उसका नाम वेदवती ही रखा। शुम्भदैत्य ने कुशध्वज को मार डाला एवं वेदवती तपस्या करने गयी। तप करते समय रावण से अपमानित होकर वेदवती ने अग्नि में प्रवेश किया (वा० रा० ७।१७)। वेदवती सागरतट पर तपस्या करती थी।

बलरामदासरामायण में उस कथा में कुछ विकार जुड़ गया है। रावण के द्वारा अपमानित होने के पश्चात् वह उसे शाप देती है एवं अपने तपोबल से अग्नि उत्पन्न कर उसमें प्रवेश करती है। कुछ दिन बाद रावण वहाँ जाकर देखता है कि वेदवती का शरीर जला नहीं। वह उसे पुष्पक द्वारा लङ्का ले जाता है। मन्दोदरी को उसके मांस का भोजन निर्माण करने का आदेश देता है। नारद के परामर्श से मन्दोदरी दूसरा मांस तैयार कराती है तथा वेदवती का शरीर समुद्र में बहा देती है। वरुण उसे जम्बूद्वीप पहुँचा देता है। वहाँ जनक हल चलाते समय सीता के रूप में उसे प्राप्त करते हैं। **देवीभागवत** एवं **ब्रह्मवैवर्त** की कथा जो सर्वथा **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार है उसे तो बुल्के परिमार्जन मानते हैं, परन्तु **पउमचरियं** की अत्यन्त विलक्षण कथा को **वाल्मीकिरामायण** का विस्तार-मात्र मान लेते हैं। यही है भ्रान्ति और दुराग्रह का नमूना। **पउमचरियं** के अनुसार सागरदत्त की पुत्री गुणवती की सगायी धनदत्त (भावी राम) के साथ होती है। उसकी माता रत्नप्रभा उसे धनी श्रीकान्त (भावी रावण) को देना चाहती है। फलतः धनदत्त के भाई वसुदत्त (भावी लक्ष्मण) तथा श्रीकान्त द्वन्द्व युद्ध में एक दूसरे का वध करते हैं। मरणोपरान्त दोनों हरिण बन जाते हैं। गुणवती भी मरकर हरिणी बनती है। उसी के कारण फिर दोनों हरिण लड़कर मर जाते हैं। अनेक जन्मों के बाद गुणवती पुरोहित श्रीभूति की वेदवती कन्या बनती है। स्वायम्भू राजकुमार वेदवती को चाहता है पर श्रीभूति उसे कन्या देना नहीं चाहता है। स्वायम्भू उसकी हत्या कर देता है। वेदवती के साथ बलात्कार करता है। वेदवती उसे शाप देकर श्राविका बन जाती है। बाद में स्वायम्भू और वेदवती

क्रमशः सीता और दशमुख बनते हैं। **वाल्मीकिरामायण** के आदर्श में और उक्त कथा में महान् अन्तर है। **वाल्मीकिरामायण** की वेदवती का रावण स्पर्श तक नहीं कर पाता, केशस्पर्श होने से भी वेदवती अपने हाथ को ही तलवार बनाकर केशों को छिन्नकर देती है, किन्तु **पउमचरियं** के अनुसार रावण उससे बलात्कार करता है। इसमें रावण और लक्ष्मण का पहले भी कई बार युद्ध होता है। इसमें जैसे मादा पशु के लिए दो पशु लड़ते हैं वैसे ही लक्ष्मण और रावण लड़ते हैं। इसपर भी दोनों ही ग्रन्थ समानरूप में रखे जाते हैं, यह भी कम आश्चर्य नहीं है। जैनों के अनुसार रावण एक धर्मभीरु जैनी ही है।

असमीया बालकाण्ड के अनुसार भगवान् ने राम के रूप में अवतार लेने की प्रतिज्ञा की तो लक्ष्मी ने पूछा मैं क्या करूँ? उन्होंने कहा तुम जनक के यहाँ जन्म लो। लक्ष्मी पृथ्वी पर उतर कर एक पर्वत के शिखर पर बैठ गयीं। रावण उन्हें देखकर मोहित हुआ। लक्ष्मी ने उसे डाँटा कि तुमको मारनेवाला जन्म ले चुका है। यह कहकर वह सागर में कूदकर अन्तर्धान हो जाती है। तब सागर में एक सौ योजन का द्वीप ऊपर आया और लक्ष्मी उसपर विराजमान रही। वसुमती ने आकर लक्ष्मी को आदरपूर्वक अपने गर्भ में धारण कर लिया। बाद में यज्ञ के लिए लोगों ने हल जोतते समय पृथ्वी में एक डिम्ब पाया तथा उसे मिथिलानगर में ले गये। राजा जनक ने डिम्ब को तोड़कर उसमें से एक कन्या निकाली (अध्याय २३)।

बुल्के कहते हैं, "रामायण की अलौकिक सीता-जन्मकथा का परिवर्धन किया जाना अत्यन्त स्वाभाविक था। भूमि में पड़ी हुई कन्या आयी कहाँ से? और वह रावण-नाश का कारण क्यों सिद्ध हुई। वेदवती की कथा में इन प्रश्नों का उत्तर मिलता है। सीता-हरण के पूर्व ही सीता-रावण-सम्बन्ध का इस कथा में प्राचीनतम उल्लेख मिलता है। बाद की कथाओं में यह सम्बन्ध अधिक निकट का हो जाता है। जनक द्वारा प्राप्त होने के पूर्व सीता का किसी न किसी तरह लङ्का से सम्बन्ध स्थापित किया गया है", पर यह ठीक नहीं है, क्योंकि रामायण की सीता की अलौकिक जन्मकथा निरपेक्ष ही है। भारतीय शास्त्रों की पद्धति से परिचित लोगों के लिए ईश्वर एवं उसकी शक्तियाँ प्रयोजन के अनुसार कहीं भी प्रकट हो सकती हैं—

"हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम तें प्रकट होहिं मैं जाना॥" (रा० मा० १।१८४।३)

पाषाणस्तम्भ से नृसिंह का प्राकट्य होता है। मत्स्य, कूर्म, वराह रूपधारी भगवान् के प्राकट्य भी कुछ ऐसे ही हैं। फिर भी कृषि की अधिष्ठात्री शक्तिविशिष्ट महालक्ष्मी का तो भूमि से प्रादुर्भूत होना अत्यन्त स्वाभाविक ही था। एक ब्रह्मज्योति ही सीता-राम, राधा-कृष्ण, लक्ष्मी-नारायण, कामेश्वरी-कामेश्वर आदि दो रूपों में प्रकट होती है। विष्णु और लक्ष्मी के समान ही राम और सीता का प्रादुर्भाव होना अनिवार्य है। राम के आविर्भाव का हेतु बालकाण्ड में निर्दिष्ट रावण-वधादि ही है। वेदवती की कथा को भी नवीन बतलाना उसे प्रक्षेप कहने का ही उपक्रम है। **वाल्मीकिरामायण** की दृष्टि से वह प्राचीन है। प्रसङ्गानुसार ऋषियों ने उसे उत्तरकाण्ड में राम को सुनाया था। सीता तथा लङ्का के सम्बन्ध का पुराणों में भी अनेक शापों के रूप में वर्णन है।

बुल्के कहते हैं—"अनेक ग्रन्थों में सीता को रावणात्मजा कहा गया है। भारत, तिब्बत, खोतान, हिन्देशिया, श्याम और वसुदेवहिण्डि में यह कथा मिलती है। उसके अनुसार विद्याधर मय ने रावण के पास अपनी पुत्री मन्दोदरी के विवाह का प्रस्ताव रखा था, लक्षणज्ञों ने कहा कि इसकी प्रथम सन्तान अपने कुलनाश का हेतु बनेगी। पर रावण उसपर मोहित हो गया था, अतः प्रथम सन्तान के त्याग का निर्णय कर उसने उससे विवाह कर लिया। मन्दोदरी को जब प्रथम पुत्री उत्पन्न हुई तो नाना रत्नों के साथ एक मञ्जूषा में रखकर उसे कहीं छोड़ देने को कहा गया। मन्त्री ने उसे मिथिला में जनक के खेत में रख दिया। बाद में जनक से कहा गया कि यह बालिका हल की रेखा से उत्पन्न हुई है। जनक ने उसे ग्रहण कर अपनी रानी को सौंप दिया। गुणभद्र के **उत्तरपुराण** की

निम्न कथा में इसका और वेदवतीकथा का समन्वय किया गया है। अलकापुरी के राजा अमितवेग की पुत्री राजकुमारी मणिमती विन्ध्यगिरि पर विजयार्थ तप कर रही थी। रावण ने उसे प्राप्त करने का प्रयास किया। सिद्धि में विघ्न उत्पन्न होने के कारण मणिमती ने क्रुद्ध होकर संकल्प किया कि मैं रावण की पुत्री बन कर उसके नाश का कारण बनूँगी। फलस्वरूप वह मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई। उसका जन्म होते ही लङ्का में भूकम्प आदि अपशकुन हुए। यह देख ज्योतिषियों ने कहा यह कन्या रावण के नाश का कारण होगी। इसपर रावण ने मारीच को आदेश दिया कि वह उसे किसी दूर देश में छोड़ दे। मन्दोदरी ने कन्या को द्रव्य तथा परिचयात्मक पत्र के साथ एक मञ्जूषा में रख दिया, मारीच ने उसे मिथिला-भूमि में गाड़ दिया, जहाँ उसी दिन वह कृषकों द्वारा पायी गयी। वे उसे जनक के पास ले गये। जनक ने मञ्जूषा खोलकर उससे कन्या को निकाल कर उसे अपनी पत्नी वसुधा को सौंप दिया। यह वृत्तान्त वेदवती की कथा पर ही आधारित है। सीता की धर्ममाता वसुधा होना भी यह सूचित करता है कि रचयिता वाल्मीकि भी उस कथा से परिचित था जिसमें सीता को पृथ्वी की पुत्री कहा गया है। **महाभागवत देवीपुराण** के अनुसार भी सीता मन्दोदरी से उत्पन्न हुई थी। बाद में वह पृथ्वी से आविर्भूत हुई है।" वस्तुतः **वसुदेवहिण्डि** और **उत्तरपुराण** कोई आर्ष ग्रन्थ नहीं हैं। सीता और राम के सम्बन्ध में **वाल्मीकिरामायण** तथा अन्य आर्ष पुराण ही प्रमाण हैं। **महाभागवत, देवीपुराण** अवश्य आर्ष ग्रन्थ हैं, परन्तु उनका **वाल्मीकिरामायण** से समन्वय करके यही अर्थ समझना चाहिये कि तथोक्त मन्दोदरी-कन्या भी महालक्ष्मी के साथ सायुज्य को प्राप्त हो गयी। अत-एव महालक्ष्मी की अवतारभूत सीता में उसका भी संनिवेश था।

"सीता मन्दोदरीगर्भे संभूता चारुरूपिणी।
क्षेत्रजा तनयाप्यस्य रावणस्य रघूत्तम॥" (महाभा० ४२।६२)

मन्दोदरी के गर्भ से चारुरूपिणी कन्या आविर्भूत हुई। रावण की तो वह क्षेत्रजा ही कन्या थी, औरसी नहीं। इस दृष्टि से श्रीदशरथ के यज्ञलब्धचरु के अंश से सीता के जन्म की बात भी संगत होती है। अन्यथा यदि सीता मन्दोदरी की प्रथम सन्तान होती तो यह भी कहना होगा कि मेघनाद आदि सब उससे छोटे होंगे फिर इतनी कम उम्र में उनकी विशिष्ट तपस्या तथा इन्द्रादि पर विजय कैसे संभव होती है?

काश्मीरीरामायण की यह कथा कि 'मन्दोदरी कन्या के गले में पत्थर बाँधकर उसे समुद्र में फेंक देती है' तथा अन्य कथा के अनुसार रावण द्वारा कन्या को मञ्जूषा में बन्द कर समुद्र में फेंक देने की कथा में विकृति ही है।

यह भी कथा वैसी ही है कि एक ब्राह्मण ने किसी बालिका के सम्बन्ध में रावण से कहा कि यह तुम्हारे निधन का कारण बनेगी। यह सुनकर रावण ने उसपर कड़ा पहरा लगा दिया। जब वह कन्या केवल छः मास की थी ऐसी भयङ्कर वर्षा हुई कि उसके पास के सभी व्यक्ति डूबकर मर गये। वह कन्या मञ्जूषा में होने के कारण जल-प्रवाह के द्वारा सिंहलद्वीप पहुँच गयी। इसी कन्या ने उन राम से विवाह कर लिया जिनके द्वारा रावण का वध हुआ।

तिब्बती तथा खोतानी रामायणों में रावण की पुत्री जन्म-कुण्डली के अशुभ ग्रहों के कारण परित्यक्त की जाती है एवं उसे एक पेटिका में रखकर जल में फेंक दिया जाता है। तिब्बती रामायण के अनुसार पेटिका खोलने-वाला जनक के स्थान पर एक कृषक है। **खोतानी रामायण** के अनुसार एक ऋषि उसका भरण-पोषण करते हैं। **सेरतकाण्ड** में भी रावण-महिषी एक पुत्री को जन्म देती है, जो श्री का अवतार थी, पर उसे यह मालूम था कि यदि उसकी सन्तान पुत्री हो तो रावण को उसमें अनुरक्ति होगी। इसी लिए वह उसे पेटी में बन्द कर समुद्र में फेंकवा देती है। बाद में मंतिलीनिवासी कल नामक ऋषि उसको पाते और पालते हैं। उसका नाम सीता रखते हैं। बुल्के

को मंतिली से मिथिला का स्मरण होता है और यह कथा भी वाल्मीकि की सीता-कथा से मिलती है। **सेरीराम के** पातानी पाठ के अनुसार मन्दोदरी की उस कन्या के मुख का तालू काला था, अतः लक्षणज्ञों ने उसे अशुभ कहा। वह समुद्र में फेंकी गयी। उसे मकर ने डूबने से बचाया। मकर की प्रार्थना से मरुतों ने उसे एक ऋषि की वाटिका में एक पद्म पर रख दिया। ऋषि ने उसका पुत्री की तरह पालन किया। इस कथा पर पद्मजा सीता का प्रभाव पड़ा है। कम्बोडिया के **रामकेर्ति** के अनुसार जनक यमुना के तीर पर यज्ञ के लिए हल चलाते हुए सीता को एक बेड़े पर देखते हैं। उसे जनक ने पुत्री बनाया। श्याम के **रामकियेन** के अनुसार दशरथ-यज्ञ के चरुसम्बन्धी अष्टमांश को खाकर मन्दोदरी ने एक कन्या उत्पन्न की, जो वास्तव में लक्ष्मी की अवतार थी। रावण विभीषण आदि ज्योतिषियों से उसे अपने वंश के नाश का कारण जानकर उसे विभीषण को देता है। वह उसे घड़े में रखकर नदी में डाल देता है। नदी में एक कमल उत्पन्न होता है जो उस घड़े का आधार बन जाता है। लक्ष्मी की दिव्य शक्ति से वह घड़ा जनक के पास पहुँचता है। जनक वन में उसी नदी पर तप कर रहे थे। वे घड़ा उठाकर वन में ले जाते हैं तथा एक पेड़ के नीचे खोदकर प्रार्थना करते हैं : यदि यह कन्या राजा के रूप में उत्पन्न नारायणावतार की रानी बननेवाली हो तो इस स्थान पर एक कमल उत्पन्न हो जाय, जो उस घड़े को धारण कर सके। उसी क्षण वहाँ कमल उत्पन्न हो जाता है। उसपर घड़ा रखकर उसे मिट्टी से ढँक कर जनक पुनः तपस्या करने लगते हैं। तपस्या से संतोष न पाकर १६ वर्ष बाद जनक अपनी राजधानी लौटने का निश्चय करते हैं। किन्तु ढूँढने पर भी वे उस घड़े को नहीं पाते। सेना बुलायी गयी। सैनिक भी खोज में असफल होते हैं। अन्त में जनक हल चलाते हैं तब वह घड़ा अपने आप हल-पद्धति से प्रकट होता है। उसमें एक अत्यन्त सुन्दर कन्या पद्म पर बैठी प्राप्त होती है। सीता (लाङ्गल-पद्धति) से उत्पन्न होने के कारण उसका सीता नाम पड़ता है (अ० रा०)। वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण** और पुराणों की कथा ही विभिन्न देशों से होती हुई वहाँ पहुँची है, अतः अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उसके साथ जुड़ गयीं। किन्तु राम विष्णु हैं, सीता लक्ष्मी हैं और जनक से सीता का पिता-पुत्री का सम्बन्ध है। **वाल्मीकिरामायण** तथा पुराणों का यह अंश प्रायः सर्वत्र व्याप्त है। सीता लक्ष्मी हैं, इस दृष्टि से विविध कमलों तथा पद्मों का सम्बन्ध भी उनके साथ है। **रामजातक** तथा **पालकपालाम** के अनुसार रावण ने इन्द्र का रूप धारण कर इन्द्राणी को धोखा दिया था, अतः इन्द्राणी ही सीता बनकर रावण के नाश का हेतु बनती है। **पालकपालाम** के अनुसार—रावण इन्द्र से इन्द्रजाल सीखता था। कालान्तर में इन्द्राणी सीता के रूप में प्रकट होकर अपने पिता रावण पर छूरी का प्रहार करती है, इसपर बालिका वेड़े पर रखकर समुद्र में बहायी जाती है। किसी टापू में उसका ऋषि ने पुत्रीवत् पालन किया है, यह सब **वाल्मीकिरामायण** का ही विकृत रूप हैं।

पद्मजा सीता

क्षेमेन्द्रकृत **दशावतारचरित** (१०।१०४) के अनुसार रावण एक विशिष्ट स्थान पर बार-बार जाता है। वह आरम्भ में एक पर्वत देखता है, वहीं फिर नगर, फिर जङ्गल देखता है, पुनः वहीं विस्तृत गड्ढा और फिर कमलयुक्त सरोवर देखता है। वहाँ एक शिवलिङ्ग स्थापित कर कमलों से शिव की पूजा करता है। पुनः वह एक कनकपद्म पर एक दिव्य कन्या, जो लक्ष्मी है, देखता है। उसे पुत्री के रूप में ग्रहण कर लङ्का लाता है। नारद मन्दोदरी की गोद में उसे देखकर कहते हैं। यह कन्या चपलेन्द्रिय रावण की अभिलाषा की भूमि बनेगी—

"कन्या भविष्यत्यभिलाषभूमिश्चपलेन्द्रियस्य"

यह सुनकर मन्दोदरी उसे स्वर्णपेटिका में बन्द कर किसी दूसरे देश में गाड़ देने का आदेश देती है। जनक यज्ञार्थ हल चलाते हुए उसे प्राप्त करते हैं। **तोरवेरामायण** (१।१६) के अनुसार हल जोतते समय जनक ने पृथ्वी के नीचे एक कमलों का सरोवर पाया और वहाँ कमल पर विराजमान एक शिशु देखा। जनक अलौकिक दृश्य से भयभीत होकर लक्ष्मी के इस स्थान को छोड़ देने की बात सोच रहे थे कि नारद आ गये और कहा कि इसका

नाम सीता रखो और इसका पालन करो। विष्णु भी अवतार लेनेवाले हैं। वे सीता को पत्नी के रूप में ग्रहण करेंगे। तुम इसका स्वयंवर करना, शिव-धनुष चढ़ानेवाले को ही इसे देना।

वाल्मीकिरामायण की टीका में गोविन्दराज के अनुसार वेदवती एक पद्मपर पुनः उत्पन्न होती है। रावण उसे लङ्का ले जाता है और लक्षणज्ञों से उसे अपनी मृत्यु का कारण जानकर उसे समुद्र में फेंक देता है। वहीं कन्या जनक को मिलती है। वस्तुतः उक्त कथाओं का इतना ही तात्पर्य है कि सीता साक्षात् लक्ष्मी का अवतार थी। उसके वर्णन में कवियों की कल्पनाओं में भेद है। वस्तुतत्त्व एक ही है।

रक्तजा सीता

अद्भुतरामायण (सर्ग ८) के अनुसार रावण दिग्विजय के प्रसङ्ग में ऋषियों से राजकर लेता है। द्रव्य के अभाव में ऋषि लोग कुछ रक्त देते हैं। वह ऋषि गृत्समद के पात्र में एकत्रित किया जाता है। उस पात्र में कुश का किञ्चित् रस था जिसमें गृत्समद के मन्त्रों के फलस्वरूप लक्ष्मी विद्यमान थी। रावण उस पात्र को लङ्का ले जाता है। मन्दोदरी को यह कह कर देता है कि इसमें विष भरा है। कभी रावण की परस्त्री-अनुरक्ति से खिन्न मन्दोदरी आत्महत्या के विचार से उस रक्त का पान कर लेती है, गर्भवती हो जाती है एवं वह तीर्थयात्रा के लिए निकलती है। कुरुक्षेत्र में उस गर्भ को गाड़ देती है बाद में जनक के हल चलाने से वही कन्या भूमि से निकलती। जनक उसे पुत्रीवत् पालते हैं। सिंहलद्वीप की रामकथा में भी उक्त कथा का निर्देश है। एक अन्य कथा के अनुसार मन्दोदरी ने उस रक्त में से कुछ ही बूंदों का पान किया था। उसी से उससे कन्या उत्पन्न होती है। रावण-कोप की शङ्का से उसी घट में उसे रखकर समुद्र में छोड़ देती है। वही जनक के राज्य में पहुँच कर कृषकों द्वारा जनक के पास लायी जाती है।

एक अन्य कथा के अनुसार महादेव के धनुष के प्रताप से जनक ने रावण को कई बार पराजित किया था। **अद्भुतरामायण** के अनुसार रावण राजस्व के स्थान में ऋषियों से रक्त लेता है। ऋषि यह शाप देते हैं कि इस रक्त से तुम्हारा नाश होगा। रावण शाप की अवज्ञा कर उसे लङ्का ले जाता है। उससे वहाँ अनावृष्टि आदि अनिष्ट घटित होते हैं। ज्योतिषियों ने कहा जब तक यह रक्त लङ्का में रहेगा विपत्तियों का अन्त नहीं होगा। यह सुनकर रावण जनक से हुई पराजय का बदला लेने के लिए उस घड़े को मिथिला में गड़वा देता है। वहाँ भी अनावृष्टि हुई। तब मन्त्रिगण राजा को रानी के साथ हल चलाने का परामर्श देते हैं। वैसा करने पर राजा ने उस घड़े को पाया। उसमें ऋषिरक्त से उत्पन्न सीता दिखायी पड़ी। उसके बाद सब अनर्थ शान्त हो गये। पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १३ एवं बिहोंररामकथा में भी ऐसा ही उल्लेख है।

इन कथाओं का भी तात्पर्य यही हैं कि सीता मोक्षलक्ष्मी, राज्यलक्ष्मी तथा ऐश्वर्यलक्ष्मी के साथ ही ऋषियों की तपोमयी लक्ष्मी-भी हैं।

आनन्दरामायण के अनुसार राजा पद्माक्ष कठोर तपस्या के बाद लक्ष्मी को पुत्री के रूप में प्राप्त कर उसका पद्मा नाम रखता है। पद्मा के स्वयंवर में पद्माक्ष युद्ध के कारण मारा जाता है। यह देखकर पद्मा ने अग्नि में प्रवेश किया। एक दिन उसके अग्निकुण्ड से निकलने पर रावण ने उसे देख लिया। इस पर वह शीघ्र ही अग्नि में प्रविष्ट हो गयी। रावण अग्नि बुझाकर उसकी राख में पाँच दिव्य रत्न देखकर एवं उन्हें एक पेटिका में बन्द कर लङ्का ले जाता है। लङ्का में कोई भी उस पैटिका को उठा नहीं सकता। उसे खोलने पर उसमें कन्या मिली। मन्दोदरी के परामर्श से पेटिका मिथिला में गड़वा दी जाती है। बाद में उसे एक शूद्र पाता है, जो ब्राह्मण के लिए खेती कर रहा था। वह ब्राह्मण पेटी जनक को प्रदान करता है। खोलकर जनक ने उसमें कन्या देखी और अपनी पुत्री बनाया। इससे भी हिरण्मयी लक्ष्मी का हिरण्यरेता अग्नि में निवास और उसी से आविर्भाव सूचित किया गया है।

दक्षिण भारत के वृत्तान्त के अनुसार लक्ष्मी एक फल से उत्पन्न होती है। वेदमुनि नामक एक ऋषि द्वारा उसका पोषण होता है। उसका नाम सीता था। बाद में वह समुद्र तट पर तप करने जाती है। इसके सौन्दर्य की चर्चा सुनकर रावण उसके पास पहुँचता है, जिसपर वह अग्नि में प्रवेश करके भस्म हो जाती है। राख को वेदमुनि एक स्वर्णयष्टि में बन्द कर देते हैं। बाद में वह यष्टि रावण के पास पहुँचती है, जिसे वह अपने कोषागार में रख देता है। कुछ दिनों के बाद उसमें आवाज सुनायी पड़ती है। उसे खोला जाता है। उसमें कन्या के रूप में सीता दिखायी पड़ती है। ज्यौतिषी कहते हैं, इससे सिंहल का नाश होगा। रावण उसे स्वर्णमञ्जूषा में बन्द कर समुद्र में फेंक देता है। वह मञ्जूषा लहरों द्वारा गङ्गा में प्रविष्ट होकर खेत में पहुँचती है। कृषक उसे पाकर अपने राजा को देता है।

बुल्के कहते हैं—जिस वृक्ष से सीता का जन्म हुआ वह अवश्य सीताफल ही है। वस्तुतः कृषि, पुष्प, फल आदि सभी लक्ष्मी के ही रूपान्तर हैं। **सीतोपनिषद्** में भी इसका उल्लेख है। **सप्तशतीरहस्य** में कहा गया है—

> "पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसञ्चयम्।
> काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृण्मृत्युजरापहम्॥"

परमेश्वरी क्षुधा और तृष्णा मिटानेवाले तथा काम्य अनन्त रसों से युक्त पुष्प, पल्लव, मूल और फल से आढ्य शाकसञ्चय को धारण करती है। विविध रत्नमयी लक्ष्मीरूप से भी **सीतोपनिषद्** में सीता का प्राकट्य कहा गया है।

किसी कथा में सीता का अग्निकुण्ड से उत्पन्न होना कहा गया है। कहा जाता है कि योगी का रूप धारण कर ईश्वर लङ्का में निवास करते थे। उसमें अनेकानेक उपद्रव उत्पन्न होने लगे। वे बाद में नगर के एक फाटक पर रहने लगे। वहाँ उन्होंने बहुत-सी राख एकत्रित कर ली जिससे एक बहुत बड़ा वृक्ष उत्पन्न हुआ। योगी चले गये। रावण ने वृक्ष के चार टुकड़े कर समुद्र में फेंकवा दिये। उनमें से एक टुकड़ा जनक के राज्य में पहुँच गया। वहाँ उसका यज्ञाग्नि में उपयोग हुआ। तब उस अग्नि से एक धनुष के साथ सीता की उत्पत्ति हुई। उसमें लिखा था जो इसे तोड़ेगा वही इस कन्या का पति होगा (पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १)।

इसी तरह रावण की वाटिका के एक वृक्ष से किसी दिन एक कन्या उत्पन्न हुई। माली उसे रावण के पास ले जाता है। रावण को देखकर वह यक्षिणी का रूप धारण कर लेती है। रावण उसे घड़े में बन्द कर समुद्र में बहा देता है। वह घड़ा कन्नक नामक नगर में पहुँचता है। वहाँ का राजा सन्तानहीन था। किसी ऋषि ने राजा को घड़े का रहस्य बताया। राजा ने उसे प्राप्त किया। कन्या को अपनी कन्या बनाकर राजा ने उसका पालन किया। यहाँ भी देश और काल के भेद से वाल्मीकिरामायण की कथा के आधार पर ही उक्त विभिन्न कल्पनाएँ समझनी चाहिये। पर बुल्के का यह कहना ठीक नहीं है कि सीता और लक्ष्मी के अभेद की कल्पना वाल्मीकि के बहुत बाद ही संभव हुई होगी, क्योंकि भूमिजा और वेदवती की कथा में ही पूर्वोक्त व्याख्या के अनुसार सीता तथा लक्ष्मी का अभेद स्पष्टरूप से कह दिया गया है। युद्धकाण्ड में भी सीता को लक्ष्मी कहा ही गया है। उसे प्रक्षेप कहना तो प्रमाणों से पिण्ड छुड़ाने का निष्फल प्रयासमात्र है—**"सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।"** (वा० रा० ६।११७।२७) टीकाकार भी कहते हैं **"प्रसिद्धविष्णुपत्न्यभिन्नत्वात्"** (तिलक)। अतएव यह भी कहना अशुद्ध है कि सीता के कुल परम्परा के तथ्य के अभाव की पूर्ति के उद्देश्य से भूमिजा सीता के वृत्तान्त की उत्पत्ति हुई है और वेदवती-वृत्तान्त भूमिजा सीता की जन्मकथा की एक पूर्तिमात्र है, क्योंकि अटकलबाजी के आधार पर मनमानी कल्पना की अपेक्षा आर्ष वाल्मीकिरामायण के आधार पर ही तत्त्वनिर्णय करना उचित है। कई लोग कहते हैं यीशू क्राइष्ट की उत्पत्ति प्राकृत ढङ्ग से ही हुई थी, परन्तु अविवाहिता स्त्री से उत्पत्ति का कलङ्क धोने की दृष्टि से ही उसे कुमारी

कन्या से ईश्वर द्वारा उत्पन्न होने की कथा गढ़ी गयी है। ईसाई फादर बुल्के विचार करें यदि सीता की भूमि से उत्पत्ति असंभव है तो क्या उपर्युक्त बातें संभव हैं ?

जैसे महाभारत में अग्निकुण्ड से द्रौपदी, धृष्टद्युम्न आदि की उत्पत्ति होने पर कुल-परम्परा के तथ्यों में कोई बाधा नहीं पड़ी। द्रुपद के आयोजित अग्निकुण्ड से आविर्भूत होने के कारण सब द्रुपद के पुत्र-पुत्री माने गये वैसे ही जनक के यज्ञक्षेत्र में जनक की हलपद्धति से उत्पन्न होने के कारण सीता भी जनकपुत्री कहलायीं। वेदवती की कथा भी वस्तुस्थिति से सम्बन्धित है। किसी की पूर्ति के लिए कल्पित नहीं है, क्योंकि बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड सहित सारा वाल्मीकिरामायण प्रमाण है। सीता नाम के आधार पर भूमिजावृत्तान्त नहीं उत्पन्न हुआ, किन्तु भूमिजा-वृत्तान्त के अनुसार सीता नाम ही हुआ। क्योंकि अर्थों के अनुसार अन्वर्थ चातुर्होत्र, इन्द्र, अग्नि आदि नामों की पद्धति वैदिक वाङ्मय में प्रचुरमात्रा में मिलती है। राम आदि नामों की भी उत्पत्ति अर्थानुसारी ही हुई।

दशरथजातक के अनुसार सीता दशरथ की पुत्री और राम की बहन थी, यह बौद्धों के वेदादि शास्त्रों के विरोध का नमूना ही है, क्योंकि उनके यहां वेदादि शास्त्र मान्य न होने से भगिनी से विवाह में भी कोई बाधा नहीं होती। बुल्के ने भी ४१९वें अनु० में इसे निर्मूल माना है। उड़ीसा में सुभद्रा वहाँ की इष्ट देवी हैं, अतः उत्कल लोग सीता को सुभद्रा से अभिन्न ही मानते हैं।

जावा के **रामकेलिङ्ग**, मलय के **सेरीराम** तथा **हिकायत महाराज रावण** के अनुसार दशरथ की पटरानी मन्दोदरी के सौन्दर्य का वर्णन सुनकर रावण दशरथ से उसकी माँग करता है। मन्दोदरी प्रदान के लिए पति को उद्यत देखकर जादू द्वारा एक दूसरी मन्दोदरी बना देती हैं जिसे रावण ले जाता है। बाद में दशरथ मन्दोदरी से सत्य वृत्तान्त सुनकर घबड़ाते हैं कि रावण अक्षतयोनि नयी मन्दोदरी का अनुभव करके धोखा समझ जायगा। दशरथ छिप कर लङ्का जाकर नयी मन्दोदरी से मिलते हैं। बाद में रावण मन्दोदरी का विवाह होता है और मन्दोदरी को एक पुत्री होती है। उसकी जन्मकुण्डली से विदित होता है कि उसका पति रावणहन्ता होगा। अतः वह रावण द्वारा पेटिका में बन्द कर समुद्र में फेंक दी जाती है। महर्षि कलि उसे पाकर पालते हैं। महर्षि कलि जावा के सेरतकाण्ड के ऋषि कल ही प्रतीत होते हैं, जिन्हें मिथिलानिवासी (मंतिलीनिवासी) माना है। दशरथ की पत्नी के रूप में मन्दोदरी का उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं है। बुल्के ही कहते हैं कि ऐसी कल्पना **दशरथजातक** के आधार पर हुई होगी। फिर भी रावण द्वारा पार्वती के स्थान पर मन्दोदरी को प्राप्त करने की कथा का यह विकृत रूप ही प्रतीत होता है।

अयोध्याकाण्ड का विश्लेषण करते हुए बुल्के कहते हैं कि इस काण्ड में तीनों पाठों में अभिन्नता महत्त्वपूर्ण है। दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार कैकेयी की माता के अपने पति द्वारा त्यक्त किये जाने की कथा सर्ग ३५।४–२९ में है। वे प्रथम सर्ग के प्रारम्भिक श्लोकों (१–३५) को, बालकाण्ड के अन्तिम श्लोकों की पुनरावृत्तिमात्र होने के कारण प्रक्षिप्त मानते हैं। परन्तु यह सर्वथा असङ्गत है, क्योंकि पहले तो बालकाण्ड के अन्त में केवल चार पाँच श्लोक ही राम के गुण और स्वभाव का वर्णन करनेवाले हैं, किन्तु अयोध्याकाण्ड के प्रथम सर्ग के ३५ श्लोकों में राम के गुण और स्वभाव का वर्णन है। इसके अतिरिक्त टीकाकारों ने विस्तृत टीकाएँ भी इन श्लोकों पर लिखी हैं। यदि वे पूर्व श्लोकों के ही आवृत्तिमात्र होते तो उनपर टीका करने की आवश्यकता क्यों होती ? अतः स्पष्ट है कि यहाँ शब्दतः तथा अर्थतः किसी प्रकार की आवृत्ति नहीं कही जा सकती।

बालकाण्ड के श्लोकों का सार यह है : राम और लक्ष्मण अपने देवतुल्य पिता की सदा पूजा करते थे और पिता की आज्ञा के अनुसार सब पौर कार्य करते थे। राम सभी के प्रिय एवं हित कार्य करते थे। परम नियन्त्रित श्रुति तथा स्मृति की मर्यादा के अनुसार माताओं के लिए मातृकार्य करते थे। यथासमय गुरुओं के सुश्रूषादि गुरुकार्यों की भी देखभाल करते थे। इस तरह राजा दशरथ तथा ब्राह्मण, वैश्य और विषयवासी सभी नागरिक राम के शील एवं सदाचार से प्रसन्न थे। चारों ही पुत्रों में सत्यपराक्रम राम भूतों में स्वयम्भू के समान अतियशस्वी एवं गुणवत्तर हुए थे।

✲

चतुर्दश अध्याय

अयोध्याकाण्ड

अयोध्याकाण्ड में कहा गया है कि रामादि चारों भ्राता राजा दशरथ को अपने शरीर से आविर्भूत चार भुजाओं के तुल्य प्रिय थे। उनमें भी महातेजा राम पिता के लिए अत्यन्त रतिकर थे। प्राणियों में चतुर्मुख के समान राम उन सबमें गुणवत्तर थे, क्योंकि वे साक्षात् सनातन विष्णु थे। उदीर्ण रावण का वध चाहनेवाले देवताओं की प्रार्थना से विष्णु ही राम के रूप में प्रकट हुए थे—

"स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥" (वा० रा० २।१।७)

उन अमिततेजा राम से कौशल्या वैसे ही शोभित हुई जैसे वज्रपाणि इन्द्र से अदिति देवी शोभित हुई थी। श्रीराम दिव्य लावण्य और सौन्दर्यपूर्ण दिव्य रूप से सम्पन्न, वीर्यवान् एवं असूयारहित थे। वे गुणों में दशरथ के तुल्य तथा भूमि भर में अनुपम पुत्र थे। वे नित्य शान्तात्मा, मृदुभाषी एवं पहले ही बोलते थे। दूसरे के परुष वचन बोलने पर भी वे परुष उत्तर नहीं देते थे। वे किसी के द्वारा किये गये एक उपकार से ही सन्तुष्ट हो जाते थे और आत्मवान् होने के कारण उसके सैकड़ों अपराधों का भी स्मरण नहीं करते थे—

"स च नित्यं प्रशान्तात्मा मृदु पूर्वं प्रभाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते॥
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
विस्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥" (वा० रा० २।१।१०,११)

वे शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध एवं सज्जनों से अस्त्र-शस्त्रादि श्रम के भी मध्य में सदा ही वेद-वेदान्त-नीति सम्बन्धी चर्चा करते रहते थे। अन्य समय में सुतरां सज्जनों से शास्त्ररहस्य की चर्चा ही करते थे। राम परम बुद्धिमान् तथा आये हुए लोगों से पहले ही बोलते थे। शब्दतः मधुराभिभाषी एवं अर्थतः प्रियंवद थे। वीर्यवान् होने पर भी अपने महान् वीर्य से विस्मित नहीं होते थे। अनृत कथा कभी नहीं करते थे। वे विद्वान् थे और वृद्धों के पूजक थे। प्रजा सदा राम का अनुरञ्जन करती थी और राम सदा ही प्रजा का अनुरञ्जन करते थे। प्रजा का रञ्जन करने से ही राजा होता है, "**रञ्जनाद्राजा**" इस उक्ति को वे चरितार्थ करते थे। राम सानुक्रोश अर्थात् दुखियों के प्रति दयालु थे। जितक्रोध एवं विशेषतः ब्राह्मणों के प्रतिपूजक थे। दीनों पर अनुकम्पा करनेवाले, धर्मज्ञ एवं नित्य ही दुष्टनिग्रह एवं इन्द्रियनिग्रह में तत्पर तथा पवित्र थे। कुलोचित बुद्धि अर्थात् अपने कुल के अनुसार दया, दाक्षिण्य, शरणागतरक्षण आदि धर्मों में उनकी बुद्धि सदा प्रवण रहती थी, अतएव वे क्षात्र धर्म प्रजापालनादि का बहुत आदर करते थे और उसके द्वारा महान् स्वर्ग की प्राप्ति समझते थे। श्रेय के विपरीत कर्म में उनको कभी रति नहीं होती थी एवं उनकी धर्मविरुद्ध कथा में कभी रुचि नहीं होती थी।

राम कभी भी अश्रेयस्कर निषिद्ध कर्म में प्रवृत्त नहीं होते थे तथा धर्मविरुद्ध कथा में रुचि नहीं रखते थे। वाद, जल्प आदि कथाओं में वे बृहस्पति के समान स्वसिद्धान्तनिर्वाहक युक्तियों के वक्ता थे। वे अरोग अर्थात् सत्कर्मानुष्ठानसमर्थ, तरुण, विपुलांशत्व आदि उत्तम लक्षणवाले वपु से युक्त, तत्तत्कर्मयोग्य देश तथा काल के ज्ञाता थे एवं निग्रह और अनुग्रह के लिए पुरुषों की अधर्मिष्ठता आदि जानते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों ब्रह्मा द्वारा वे संसार में

एकमात्र सर्वगुणयुक्त साधु पुरुष निर्मित हुए हैं। राम गुणों के कारण श्रेष्ठ गुणों से युक्त प्रजाजनों के बहिश्चर प्राणों के तुल्य परम प्रिय थे। वे यथावत् साङ्गोपाङ्ग वेदों के ज्ञाता थे और तत्तद् विद्याओं के लिए अपेक्षित व्रतों का अनुष्ठान कर व्रतस्नात हुए थे। मन्त्रहीन शस्त्रों एवं मन्त्रयुक्त अस्त्रों में भरताग्रज राम अपने पिता से भी श्रेष्ठ थे। विविध कल्याणों की वे जन्मभूमि थे। वे साधु तथा क्षोभ के हेतु उपस्थित होने पर भी अक्षुब्ध अन्तःकरणवाले, सत्यवाक् एवं धर्मार्थदर्शी वृद्ध ब्राह्मणों द्वारा शिक्षित तथा सौम्य थे। वे धर्म, अर्थ और काम के याथात्म्य को जाननेवाले और स्मृतिमान् तथा प्रतिभासंपन्न थे। वे लौकिक कार्यों के करने में सामर्थ्यसम्पन्न तथा समयाचार धर्म में कुशल थे। वे विनीत, गूढ़ अभिप्रायवाले तथा फल-निष्पत्ति-पर्यन्त मन्त्रणा को गुप्त रखनेवाले थे और मित्रत्वेन सब लोगों द्वारा अज्ञात मित्रों से सुरक्षित थे एवं उन्हीं के द्वारा परराष्ट्र-भेद आदि में पूर्ण साहाय्य प्राप्त करते थे। राम के क्रोध और हर्ष दोनों अमोघ थे जिसपर प्रसन्न होते उसे निहाल कर देते थे। सत्पात्र में वित्तदान एवं न्यायपूर्वक धनसंग्रह के वे कालज्ञ थे। वे गुरु आदि में दृढ़ भक्तिवाले तथा स्थिरप्रज्ञ अर्थात् विस्मृतिरहित थे। वे असद्ग्राही दुर्वचन बोलनेवाले नहीं थे, आलस्यरहित, सावधान एवं स्वदोष तथा परदोष को जाननेवाले थे। वे शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ तथा परकृत अल्प उपकारों को भी जानते थे और वे पुरुषों के अन्तर (तारतम्य) को जाननेवाले थे अथवा पुरुषों के अन्तर अर्थात् अभिप्राय को जाननेवाले थे। न्याय के अनुसार प्रग्रह, निग्रह एवं अनुग्रह करने में दक्ष थे। वे सत्पुरुषों के संग्रह और सपरिवार सत्पुरुषों के पालन तथा दुष्टों के निग्रह का देश और काल जानते थे और वे आय कर्म के उपायों को जानते थे। जैसे मधुकर पुष्पों से रस का संग्रह करता है वैसे ही प्रजा से यथोचित धन ग्रहण करने में वे चतुर थे एवं शास्त्रदृष्ट व्यय कर्म के भी अच्छे जानकार थे। आय के अर्धभाग, चतुर्भाग या त्रिभाग के व्यय की व्यवस्था जानते थे। शास्त्रसमूहों तथा प्राकृतादि भाषामिश्रित नाटकादि में वे निपुण थे। निरालस्य होकर अर्थ और धर्म का संग्रह कर अर्थ और धर्म के अविरुद्ध काम का भी आदर करते थे। क्रीड़ा प्रयोजनवाले गीत, वाद्य, चित्रकर्म आदि के विज्ञाता थे तथा अर्थ के 'धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।' पञ्चधा विभाग के ज्ञाता एवं अनुष्ठाता थे। अश्व, हस्ती आदि के आरोहण, नियन्त्रण, गत्यादि-शिक्षण में वे सावधान थे। धनुर्वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ और अतिरथों से आदृत थे। वे परसेना के संमुख अभियान करनेवाले एवं शत्रुओं पर प्रहार करनेवाले थे। सेनाओं के नयन तथा व्यूहनिर्माण आदि में विशारद थे। संग्राम में क्रुद्ध हुए देवताओं तथा दानवों के द्वारा भी सर्वदा अप्रधृष्य थे। असूया, क्रोध, घमण्ड तथा मत्सर से रहित थे। कोई प्राणी उनकी अवज्ञा नहीं कर सकता था। प्राकृत पुरुषों के समान वे कालपराधीन न होकर स्वायत्त परिकर थे। सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त राजकुमार राम प्रजाजनों के सम्मत सर्वश्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं यह तीन बार कहकर राम में श्रेष्ठ गुणों की दृढ़ता कही गयी। वे अपने क्षमाप्रधान गुणों के कारण वसुधा के तुल्य, बुद्धि से बृहस्पति के तुल्य तथा वीर्य में इन्द्र के तुल्य थे। पिता को प्रसन्नता देनेवाले तथा सभी प्रजाजनों के अभीष्ट उत्तम गुणों से राम इस प्रकार प्रदीप्त हुए जैसे अंशुजालों के द्वारा सूर्य दीप्त होता है। एवंगुणसम्पन्न तथा अप्रधृष्य पराक्रमवाले राम लोकनाथ विष्णु के तुल्य हैं। उन राम को मेदिनी ने अपना पति बनाना चाहा (वा० रा० २।१।३-३४)।

यह दोनों अंशों की संक्षिप्त व्याख्या है। इसमें बालकाण्ड के अंश की आवृत्तिमात्र है' यह कहना अज्ञजनप्रतारण छोड़कर कुछ तथ्य नहीं है। वस्तुतः यह भी "**वदतो व्याघातः**" है जब बुल्के की दृष्टि में बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड वाल्मीकि की कृति में थे ही नहीं तब अयोध्याकाण्ड के इस अंश को पूर्व की आवृत्ति कैसे कहा जा सकता है? वस्तुतः यह बुल्के की भी अज्ञता का स्पष्ट नमूना है। यदि यह प्रक्षिप्त है तब राम कौन हैं, क्यों वे राजा

> "अथ राज्ञो बभूवैव वृद्धस्य चिरजीविनः।
> प्रीतिरेषा कथं रामो राजा स्यान्मयि जीवति ॥ (वा० रा० २।१।३६)

हों, क्यों राजा के मन में ऐसी प्रीति थी? इत्यादि सब बातों का समाधान बिना उक्त श्लोकों के अधूरा ही

रहेगा । **'अथ राज्ञः'** यहीं से रामायण का आरम्भ है, यह कहना भी असङ्गत ही है । जब किसी सामान्य लेख का भी कोई उपोद्घात या भूमिका होती है तब बिना उपोद्घात के वाल्मीकिरामायण का आरम्भ मान लेना कैसे सङ्गत होगा ? पूर्वोक्त पंक्तियों में न तो शब्दतः और नहीं अर्थतः पुनरुक्ति है । शुक्लयजु : के ४० वें अध्याय में **"अनेजदेकं मनसो जवीयो"** (ईशा० उ० ३) **"तदेजति तन्नैजति"** (ईशा० उ० ५) इत्यादि समान शब्द और समान अर्थ का आवर्तन होने पर भी किसी को प्रक्षिप्त नहीं माना जाता है । गीता में दूसरे अध्याय के स्थितप्रज्ञ-लक्षणों तथा १२ वें अध्याय के भक्त-लक्षणों और १४ वें के गुणातीत-लक्षणों में बहुत कुछ समानता है । क्या उन्हें भी प्रक्षेप माना जाय ? ११ वे अध्याय के अन्त में **'मत्कर्मकृन्मत्परमो भद्भक्तः'** (गी० ११।५४) जो कुछ कहा गया है वही १२ वें अध्याय में कहा गया है । विशेषतः भारतीय दृष्टिकोण से सिद्धों के जो स्वाभाविक लक्षण होते हैं वे ही साधकों के लिए साधन होते हैं । **'अमानित्वम्, अदम्भित्वम्'** (गी० १२।७) आदि सिद्ध ज्ञानी के स्वाभाविक गुणों का इसलिए विस्तृत वर्णन किया जाता है कि वे सब धार्मिक तथा राजनीतिक साधकों के लिए परम अनुकरणीय एवं अनुष्ठेय हैं । विशेषतः उत्तरमीमांसा के अनुसार ईश्वर के गुणों का वर्णन उपासनार्थ अपेक्षित होता है जैसे सर्वगन्धत्व, सर्वरसत्व, भामनीत्व, वामनीत्व आदि गुणों से विशिष्ट परमेश्वर की उपासना करने से उपासकों को वे ही सब गुण फल के रूप में मिलते हैं । उसी तरह उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट राम की उपासना करने से वे सब गुण उपासकों को फलरूप में मिलते हैं । अतः गुणों का वर्णन निरर्थक नहीं है । पर राम के द्वेषी बुल्के को रामोपासना से क्या लेना देना है । आवृत्ति तो है ही नहीं, साथ ही प्रशंसा भी नहीं है, क्योंकि अविद्यमान गुणों का वर्णन ही प्रशंसा है । भगवान् के तो विद्यमान गुणों का भी पूरा वर्णन सम्भव नहीं है, फिर अविद्यमान गुणों के वर्णन का तो प्रसङ्ग ही कहाँ है ? सर्वथापि अयोध्याकाण्ड के प्रथम सर्ग को प्रक्षिप्त कहना अत्यन्त निराधार एवं दुरभिसन्धिपूर्ण है । वस्तुतः इस सर्ग को प्रक्षिप्त कहने का बुल्के का उद्देश्य यह है कि इससे उनके अभिमत के विरुद्ध राम विष्णु के अवतार सिद्ध होते हैं । उसमें स्पष्ट कहा गया है दृस रावण के वध के लिए देवताओं की प्रार्थना से विष्णु राम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं । बुल्के अयोध्यादि पाँच ही काण्डों को प्रमाण मानते हैं । उनमें भी अवतारवाद सिद्ध होने से बुल्के का पक्ष निर्बल होता है । इसी लिए वे उसे प्रक्षिप्त कहने का वृथा साहस करते हैं । परन्तु उनके तर्क निःसार हैं । यदि उनके मन्तव्यानुसार बालकाण्ड वाल्मीकिरामायण का है नहीं तो उसकी आवृत्ति कैसे कही जा सकती है ? डा० याकोबी का यह कथन भी निराधार है कि आदिरामायण में राम के प्रस्थान के अनन्तर उनकी चित्रकूट तक की यात्रा का वर्णन किया गया था, क्योंकि जिसका वनप्रस्थान से लेकर युद्धकाण्ड तक विस्तृत चरित्रवर्णन है उसके जन्म और जन्मस्थान तथा उसके गुण और स्वभाव का वर्णन न हो तो उस ग्रन्थ की बड़ी न्यूनता ही समझी जायगी । जिस सीता के वनगमन एवं हरण का वर्णन है, जिसके लिए समुद्र में सेतुबन्धन हुआ वह कौन थी, कहाँ की थी, उसका विवाह कब कैसे हुआ था ? इसका वर्णन न होना भी एक चरित्रचित्रण की त्रुटि ही मानी जायेगी । सर्ग ४१–४९ को प्रक्षिप्त कहना भी वैसा ही है । इसी तरह उनका यह कथन भी असङ्गत ही है कि प्रतीत होता है कि अन्ध मुनि के पुत्र के वध-प्रसङ्ग **रामायण** के पूर्व प्रचलित थे; बहुत संभव है सर्ग ६३ और ६४ की भी अधिकांश सामग्री प्रक्षिप्त हो । सर्ग ६६–९६ में भी पुनरावृत्तियाँ पायी जाती हैं । वाल्मीकिकृत **रामायण** में प्रसङ्ग इतना विस्तृत नहीं था । वस्तुतः वस्तुस्थिति अनुमान पर निर्भर नहीं होती । अनुमान लोग अपने-अपने संस्कारों के अनुसार कर लेते हैं । कई लोग यह भी अनुमान कर सकते हैं कि बाइबिल का इतना विस्तृत रूप प्रारम्भ में नहीं रहा होगा । बहुत कुछ विशेषतः चमत्कार की बातें मत-प्रचारक ईसाइयों ने जोड़ ली होंगी ? पुनरावृत्तियों की भ्रान्ति भी वैसे ही है । **ऋक्संहिता, अथर्वसंहिता** तथा **यजुःसंहिता** में पुरुषसूक्त हैं । सबमें बहुत कुछ समानता ही है, फिर भी शाखा-भेद से सभी प्रामाणिक पाठ माने जाते हैं । कभी प्रसङ्गानुसार भी वही बात दुबारा कहनी आवश्यक हो जाती है । १०० वें सर्ग के प्रक्षिप्त होने का कारण यह कहा गया है कि उसमें राम भरत से उनके राज्य के विषय में बहुत से

प्रश्न पूछते हैं। मानो भरत दीर्घकाल तक शासन कर चुके हों। १०१ वें सर्ग के प्रारम्भिक श्लोक में कहा गया है **'प्रष्टुं समुपचक्रमे'**। वास्तव में १०० वें सर्ग की सामग्री **महाभारत** के सभापर्व अध्याय ५ से उद्धृत की गयी है, पर यह सब असङ्गत है। इन प्रश्नों के लिए यह आवश्यक नहीं है कि अधिक काल तक शासन करनेवाले से ये प्रश्न होने चाहिए। एक उत्तमाभिजनसम्पन्न धार्मिक राज्य के शासक से आरम्भ में ही पूछना उचित है, जिससे कि वह सावधान होकर उन नीतियों तथा आचारों को ध्यान में रखकर सदा व्यवहार करे। इसी लिए किसी भी भारतीय विद्वान् टीकाकार ने इन श्लोकों के प्रक्षिप्त होने का सन्देह नहीं किया। दण्डवत् प्रणाम करते हुए भरत को जटिल और चीरवसनधारी देखकर राम को ऐसा लगा जैसे दुर्दर्श भास्कर ही युगान्त में गिर पड़े हों। राम ने किसी तरह विवर्णवदन तथा कृशगात्र भ्राता भरत को पहचान कर हाथ से उठाया और मूर्धा का आघ्राण कर आलिङ्गन किया एवं अङ्क में बैठा कर सादर पूछा; तात, तुम्हारे पिता कहाँ हैं जो तुम वन में आये हो। उनके रहते उनकी सेवा छोड़कर तुम्हें वन में नहीं आना चाहिये। बहुत दिनों पर दूर से आये हुए तुम्हें देख रहा हूँ। वैवर्ण्य एवं कृशता से पहचानने में कठिनाई हो गयी है। पिताजी क्या जीवित हैं? तुम ऐसे घोर वन में क्यों आये हो? कहीं ऐसा तो नहीं है कि दीन होकर राजा सहसा परलोकवासी हो गये हों? सौम्य, कहीं ऐसा तो नहीं कि बालक होने के कारण तुम्हारा राज्य नष्ट हो गया हो? सत्यसंगर, राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञों के अनुष्ठाता धर्मनिष्ठ राजा जीवित तो हैं? तात, क्या धर्मनिष्ठ महाद्युति विद्वान् ब्राह्मण इक्ष्वाकुओं के पुरोहित वसिष्ठ का तुम यथावत् पूजन करते हो? तात, क्या कौशल्या, सुमित्रा तथा प्रजावती सुखिनी आर्या कैकेयी देवी प्रसन्न तो हैं? क्या तुमने विनयसम्पन्न, बहुश्रुत, अनिन्दक, महाकूलप्रसूत, सकल हित के निर्वाहक पुरोहित को सत्कृत तो किया है? क्या तुम्हारे आहवनीय आदि अग्नियों के सम्बन्ध में सावधान मतिमान् विधिज्ञ अध्वर्युगण अवसर के अनुसार अतीत-अनागत होम के अधिकरण अग्नि का ध्यान तो रखते हैं और तुम देवताओं, पितरों, भृत्यों, गुरुओं तथा पितृतुल्य वृद्ध वैदिक ब्राह्मणों का बहुमान तो करते हो? क्या अस्त्र-शस्त्रविद्यासम्पन्न, अर्थशास्त्र-निष्णात तथा धनुर्वेद के आचार्य सुधन्वा का तुम सम्मान तो करते हो? तात, क्या तुमने अपने समान शूर तथा श्रुतसम्पन्न, जितेन्द्रिय, कुलीन, इङ्गितज्ञ लोगों को मन्त्री बनाया है? क्योंकि शास्त्रकोविद श्रेष्ठ मन्त्री अमात्यों द्वारा सुसंवृत मन्त्र ही राजाओं के विजय का मूल होता है। तुम निद्रा के पराधीन तो नहीं होते हो? ठीक समय पर जाग तो जाते हो? और अपररात्र में जाग कर अर्थ-प्राप्ति का उपाय सोचते हो? अकेले तो मन्त्रणा नहीं करते और बहुतों के साथ तो मन्त्रणा नहीं करते? तुम्हारा मन्त्रित मन्त्र कहीं राष्ट्र में तो नहीं फैल जाता? इस तरह किसी राजा या राजपुत्र के लिए जो आवश्यक कर्तव्य हैं उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में राम ने भरत से प्रश्न कर उसी व्याज से उन्हें प्रासङ्गिक कर्त्तव्य तत्त्व का उपदेश किया है।

इस प्रकार प्रश्न करने के अनन्तर भी अपने को राजा न समझ कर भरत ने जब कुछ उत्तर नहीं दिया तब राम ने पुनः उनके आगमन का प्रयोजन पूछा। महाभारत सभापर्व अध्याय ५ के श्लोक १७ वें से ११० तक नारद के धर्मसम्बन्धित प्रश्नव्याज से उपदेश हैं, १११ वें श्लोक से युधिष्ठिर का प्रश्न है। उसके बाद पुनः नारद के उपदेशात्मक प्रश्न हैं। **वाल्मीकिरामायण** में प्रथम प्रश्न ही हैं, अन्त में कुछ प्रश्नव्याज से उपदेश भी हैं।

प्रायः यह माना जाता है कि पूर्ववर्ती लेख अधिक सुन्दर और स्पष्ट होता है, क्योंकि वह पूर्ववर्ती की सहायता लेकर अधिक परिष्कृत होता है। इस दृष्टि से भी **वाल्मीकिरामायण** का प्रश्न ही प्राचीन प्रतीत होता है। **वाल्मीकिरामायण** में ६५ श्लोक हैं, **महाभारत** में १२८ श्लोक हैं। **महाभारत** के श्लोक **वाल्मीकिरामायण** के छायामात्र हैं।

यदि १०० वें सर्ग को प्रक्षिप्त कहा जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि राम भरत की दशा को बिना देखे, बिना पूछे और दशरथ का हाल बिना पूछे ही भरत से बातें करने लगे। परन्तु यह सर्वथा अस्वाभाविक ही

है। 'प्रष्टुं समुपचक्रमे' की संगति पूर्व में बतलायी जा चुकी है। १०० वें सर्ग के बिना १०१ वाँ सर्ग सर्वथा अपूर्ण और असङ्गत ही ठहरता है। **महाभारत सभापर्व वाल्मीकिरामायण** के बाद का ग्रन्थ है, अतः **वाल्मीकिरामायण से** ही वहाँ कुछ श्लोकों का उद्धृत होना अधिक सङ्गत है।

इसी प्रकार कहा जाता है कि जाबालि का वृत्तान्त प्रक्षिप्त है।

राम के अयोध्या न लौटने का दृढ़ सङ्कल्प

"प्रवेक्ष्ये दण्डकारण्यमहमप्यविलम्बयन्।
आभ्यां तु सहितो वीर वैदेह्या लक्ष्मणेन च ॥" (वा० रा० २।१०७।१६)

अर्थात् मैं शीघ्र ही सीता और लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में प्रवेश करनेवाला हूँ। के पश्चात् भरत के प्रत्युपवेशन का प्रसङ्ग आना चाहिये—

"एवमुक्तेन रामेण भरतः प्रत्यनन्तरम्।
उवाच विपुलोरस्कः सूतं परमदुर्मनाः ॥
इह तु स्थण्डिले शीघ्रं कुशानास्तर सारथे।
आर्यं प्रत्युपवेक्ष्यामि यावन्मे सम्प्रसीदति ॥" (वा० रा० २।१११।१२,१३)

पिता ने जो मुझे वनवास की आज्ञा दी है वह मिथ्या नहीं हो सकती, राम के ऐसा कहने पर विशाल वक्षस्थलवाले भरत ने बहुत दुःखी होकर सूत को आज्ञा दी कि सारथे, स्थण्डिल पर कुश बिछा दो। जब तक आर्य (राम) प्रसन्न नहीं होते तब तक मैं उनके प्रति प्रायोपवेशनव्रत करूँगा। प्रचलित पाठ के अनुसार राम के सङ्कल्प के पश्चात् जाबालि लोकायत दर्शन का प्रतिपादन करने लगते हैं (सर्ग १०८)। राम जाबालि को उत्तर देकर अपना संकल्प पुनः प्रकट करते हैं (सर्ग १०९।१–२९)। इसके अनन्तर राम के प्रत्युत्तर का सार उपजाति छन्दों में दोहराया जाता है (सर्ग १०९।३०-३९)।

इस अंश में जो दाक्षिणात्य पाठ में मिलता है कि राम बुद्ध को चोर और नास्तिक कहते हैं वह सर्ग १०९ पश्चिमोत्तरीय पाठ में नहीं मिलता है। इसके अनन्तर वसिष्ठ रामवंशावली सुनाकर राज्यभार स्वीकार करने के लिए राम से अनुरोध करते हैं (सर्ग ११०), परन्तु उपर्युक्त तर्क निःसार ही है। संसार की सभी घटनाएँ पुरुषविशेषों के अटकलों के आधार पर नहीं घटती हैं। पुरुषों के अनुमानों के विपरीत भी घटनाएँ घटती ही हैं। चित्रकूट के घटनास्थलपर राम और भरत केवल दो ही होते तब कदाचित् यह कहा भी जा सकता था, परन्तु जब वहाँ पर वसिष्ठ तथा जाबालि जैसे विद्वान् भी बैठे ही थे तो वे सर्वथा मौन कैसे रहते? राम के वनगमन से न लौटने की बात सुनकर भरत के कुछ कहने से पहले ही जाबालि का प्रतिज्ञा के विरुद्ध कुछ कहना असङ्गत नहीं है। सबका एक ही उद्देश्य था कि राम को अयोध्या लौटा ले जाना, अतः जाबालि ने लोकायत तथा बौद्ध मत लेकर वेदादि शास्त्रों एवं तदुक्त सदाचारपरम्पराओं को खण्डित कर राम को पिता की आज्ञा की परवाह न करने की सलाह देते हुए लौटने का अनुरोध किया। वैदिक सदाचार का प्रतिपादन कर राम ने जाबालिमत के खण्डन-प्रसङ्ग में बुद्धमतानुयायियों को नास्तिक और चोरवत् दण्डनीय कहा। वेदप्रामाण्य का अपहर्त्ता होने के कारण यहाँ नास्तिक को चोरवत् दण्डनीय कहा गया। प्रजाहित के लिए जैसे चोर दण्ड्य है वैसे ही नास्तिक भी दण्ड्य है। संक्षेप में जाबालि ने कहा—राघव, प्राकृत मनुष्यों की जैसी तुम्हारी प्राकृत बुद्धि नहीं होनी चाहिये। संसार में कौन किसका बन्धु है? जन्तु अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही मरता है। माता-पिता आदि बुद्धि में जो आसक्त होता है वह उन्मत्त ही है। जैसे कोई मनुष्य एक ग्राम छोड़कर दूसरे ग्राम में जाता हुआ मार्ग में कहीं आवास करता है। दूसरे दिन आवास छोड़कर

अन्यत्र चला जाता है। इसी तरह मनुष्यों के पिता, माता, गृह, वन आदि हैं। कहीं भी आसक्ति उचित नहीं। अपना राज्य छोड़कर बहुकण्टकाकीर्ण पथ में जाना उचित नहीं। अयोध्यानगरी एकवेणीधरा प्रोषितभर्तृका पत्नी के समान तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। दशरथ अन्य थे, तुम अन्य हो। क्षणभङ्गवाद के अनुसार कोई स्थिर नहीं है। शोणित और बीज ही माता-पिता हैं, माता-पिता और कोई नहीं। जहाँ जाना था राजा गये। यह सभी भूतों की गति है। निरर्थक तुम क्यों राज्य से वञ्चित होते हो ? मैं तो धर्मपरायणों के लिए सोचता हूँ। जो इस लोक में दुःख पाकर विनाश को प्राप्त होते हैं। पितृदैवत्य श्राद्ध आदि का प्रपञ्च केवल अन्न का उपद्रवमात्र (अपव्यय) है। भला जो मर गया वह परलोक में भी क्या भोगेगा ? यदि यहाँ अन्य के भोजन से अन्य की तृप्ति होती तब तो परलोकगत पितरों का श्राद्ध आदि मिलने की कल्पना हो भी सकती थी, और यदि ऐसा ही है तब घर में किसी को भोजन करा देने से प्रवासी बन्धुओं को भी भोजन मिल जाना चाहिये। फिर तो किसी प्रवासी को घर से भोजनादि सामग्री ढोने का प्रयास क्यों करना चाहिये ? दान, यज्ञ, तप आदि की महिमा का वर्णन करनेवाले ग्रन्थ स्वार्थियों ने ही गढ़ रखे हैं, अतः परोक्ष परलोकबुद्धि का त्याग कर प्रत्यक्ष का आश्रयण करो।

जाबालि का वचन सुनकर जाबालि द्वारा उक्त अर्थ के विपरीत प्रतिपत्तियुक्त बुद्धि एवं वेदोक्ति रूप सूक्ति का आलम्बन कर सत्यपराक्रम राम बोले—आपने मेरे प्रिय लाभ के लिए जो कुछ कहा है वह परमार्थतः अकार्य है जो कार्यसदृश प्रतीत होता है, वह पथ्याभास अपथ्य ही है। निर्मर्याद पापाचारसमन्वित प्राणी कहीं भी सम्मान पाने योग्य नहीं है, क्योंकि वह साधुसम्मत चरित्र प्रतिपादक वेदादि शास्त्रों से विपरीत है, 'लोकायतादि' शास्त्रप्रसक्त है। वस्तुतः कुलीन अकुलीन पुरुषमानी वीर की पवित्रता या अपवित्रता का स्पष्ट प्रतिपादन वेदसम्मत आचार ही करता है। वेदसम्मत आचारवाला ही कुलीन एवं शुचि है, तद्भिन्न अशुचि आदि ही है। आपके सम्मत पथ का आलम्बन करने से सर्वथा अनर्थ ही सम्भावित है। वैसा करने पर मैं अनार्य के तुल्य आर्य, शौचहीन होकर शुचि, अलक्षण्य होने पर भी लक्षणवान् तथा दुःशील होकर भी शीलवान् सा बनकर धर्मवेष से अधर्म का आचरण कर लोकसंकरकारक मार्ग का अनुसरण कर श्रुतिविधिविवर्जित क्रिया का आलम्बन कर अशुभ गति को ही प्राप्त होऊँगा। उस स्थिति में भला कौन समझदार कार्याकार्यविचक्षण पुरुष लोकदूषण और दुर्वृत्त व्यक्ति का सम्मान करेगा। यदि मैं तुम्हारे उपदेश का आदर करूँ, सत्य परिपालनरूप पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन करूँ तो हीनप्रतिज्ञवृत्ति से कैसे स्वर्ग पा सकूँगा और किसके वृत्त का अनुसरण करूँगा ? शास्त्रों में तो पितादि परम्परा का अनुसरण करना कहा है—

"येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्………………………………॥" (मनु० ४।१७८)

जिस रास्ते से पिता, पितामह आदि चले हैं उसी रास्ते से चलना उचित है। सामान्य तथा सर्वसाधारण लोक कामवृत्त ही होता है। जैसे आचारवाले राजा होते हैं वैसी ही प्रजा होती है। अनृशंस (सब प्राणियों पर दयाप्रधान) अनादिशास्त्रसिद्ध सत्य ही सनातन राजवृत्त है। इसी लिए राज्य भी सत्यात्मक होता है। सत्य ही में लोक प्रतिष्ठित हैं। ऋषियों एवं देवों ने भी सत्यलोकान्त सब लोकों की प्राप्ति का हेतु सत्य ही माना है। सत्यवादी ही अक्षय उत्कृष्ट लोक प्राप्त करता है। सर्पवत् अनृतवादी से सभी उद्विग्न होते हैं। सत्य ही सबका मूल है, सत्य ही ईश्वर है, धर्म भी सत्य ही में प्रतिष्ठित है। सत्य से पर कुछ भी नहीं। दत्त, इष्ट, हुत, तप तथा जगत् का उत्पादक सर्वाधिष्ठान ब्रह्म भी अत्यन्त अबाध्यरूप सत्य ही है। एतावता चेतन से अनधिष्ठित परमाणु, प्रकृति आदि ही जगत् के उपादान कारण हैं, यह मत खण्डित हो जाता है, क्योंकि वे परिणामी तथा मिथ्या होने से चेतन जीव आदि के अधिष्ठान नहीं हो सकते। साथ ही व्रत, यज्ञ, दान, तप आदि धर्म का प्रतिपादन करनेवाले वेद भी सत्य ईश्वर से श्वास-प्रश्वासवत् आविर्भूत होते हैं। अतः वक्तृगत भ्रम, प्रमाद आदि दोषों की शङ्का से रहित होने एवं

उनके द्वारा प्रतिपादित दान आदि के फल का संवाद देखने से अप्रामाण्यशङ्काशून्य होने के कारण वेद स्वतःप्रमाण हैं, अतः सत्य ही ईश्वररूप है, इसलिए सत्यपालन में तत्पर होना ही युक्त है।

"दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत् ॥" (वा० रा० २।१०७।१४)

अतः मैं पिता की आज्ञा का क्यों न पालन करूँ। पिता सत्यप्रतिज्ञ तथा समयी (सदाचारवान्) थे, अतः सत्य के कारण ही उन्होंने सत्यपालन द्वारा मुझे सत्यनिष्ठ बनाया है। लोभ से या मोह से किसी तरह मैं सत्य-सन्ध पिता के सेतु का अतिक्रमण न करूँगा। असत्यसन्ध अस्थिरचेता चपल मनुष्य के हव्य, कव्य आदि को देवता और पितर ग्रहण नहीं करते, यह धर्म सभी प्राणियों के हितार्थ ध्रुव है। सत्पुरुषों ने उसका आचरण और अभिनन्दन किया है। पिता की आज्ञा का पालन आदि छोड़कर राज्य-पालन आदि धर्माभास अधर्म ही हैं। यह नृशंस एवं पाप कर्म क्षुद्र लोगों द्वारा ही सेवित है। प्राणी मन से निश्चय कर जिह्वा से अनृत भाषण करके शरीर से पाप करता है। भूमि, कीर्ति, यश तथा लक्ष्मी सभी सत्यनिष्ठ पुरुष का अनुवर्तन करते हैं, अतः सत्य का आश्रयण ही ठीक है। आपने जिन युक्त्याभासों से मुझसे राज्य करने के लिए कहा है वे अनार्य—अश्रेष्ठ ही हैं। मैंने पिता के सामने वनवास की प्रतिज्ञा की है, कैकेयी भी उससे प्रसन्न हुई थीं, अतः उसके विपरीत भरत की बातें कैसे मैं मानूं ? पवित्रतापूर्वक वनवास करते हुए नियत भोजन करते हुए पुण्य मूल, पुष्प और फलों से पितरों तथा देवताओं का तर्पण करते हुए उसी से पञ्चेन्द्रियवर्ग को पुष्ट कर पितृवचन पालनरूप लोक (यात्रा) व्यवहार को निष्कपट तथा श्रद्धा के साथ कार्याकार्यविचक्षण होकर चलाऊँगा। इस कर्मभूमि को प्राप्त करके जो शुभ कर्म है वही कर्तव्य है। अग्नि, वायु और सोम सभी कर्म के ही प्रभाव से उच्च फल के भागी हुए हैं। सौ अश्वमेध करके ही शतक्रतु इन्द्र त्रिदिवाधिपति हुए हैं। उग्र तप करके ही महर्षि लोग द्युलोकभागी हुए हैं।

पुनश्च उग्रतेजा राम उक्त नास्तिक्यपूर्ण '**यदि भुक्तमिहान्येन**' इत्यादि शुष्क तर्क युक्त वाक्य की विगर्हणा करते हुए बोले, सत्य एवं धर्मयुक्त पराक्रम, भूतानुकम्पा, प्रियवादिता, द्विजाति, देवता तथा अतिथि के पूजन को सन्त लोग त्रिदिव-प्राप्ति का साधन कहते हैं। इस तरह सत्पुरुष फलवान् निश्चित कर्मों को जानकर श्रुति के अनुकूल तर्कों से निर्णय करके सावधान होकर लोकप्राप्ति की आकाङ्क्षा करते हैं। अन्य की भुक्ति से अन्य की तृप्ति आदि तो युक्ति और प्रमाण से हीन ही है। मैं पिता के उस कर्म की निन्दा करता हूँ जिसमें उन्होंने वेदविमुख तथा अवैदिक दुर्मार्ग में प्रतिष्ठित बुद्धिवाले चार्वाकानुसारिणी बुद्धि से धर्मपथ से अपेत नास्तिकमत का अनुसरण करनेवाले आपको आर्त्विज्य प्रदान किया है। जैसे चोर दण्डच होता है वैसे ही बुद्धादि नास्तिक मतानुसारी भी दण्डच है, क्योंकि वह वेद-प्रामाण्य का हरण करता है। नास्तिक को चोर सदृश ही दण्डच समझना चाहिये, जहाँ दण्ड देना सम्भव न हो वहाँ ब्राह्मण को नास्तिक के अभिमुख संभाषणादि नहीं करना चाहिये। वेदोक्त धर्म में शिष्टाचार दिखलाते हुए राम फिर कहते हैं, आपसे पूर्व और पूर्वतर ब्राह्मणों ने बहुत से शुभ कर्म किये हैं। लोक और परलोक की कामना छोड़कर भी कर्तव्य बुद्धि से वे कल्याणमय अहिंसा, तप, भिक्षादि कर्म करते रहे हैं। वेदप्रामाण्य से ही तेजस्वी लोग दानगुणप्रधान, अहिंसक, वीतमल, प्रधान मुनि लोकपूज्य हुए हैं। जाबालि ने भी अन्त में कहा, मैं नास्तिक नहीं हूँ। आर्य ! आपको अयोध्या लौटाने के लिए ही मैंने नास्तिक-वाक् का प्रयोग किया था। इस तरह इस संवादमयी घटना को अकस्मात् प्रक्षिप्त कहना साहसमात्र है। केवल पश्चिमोत्तर पाठ में यह नहीं है, एतावता भी इसे प्रक्षिप्त नहीं कहा जा सकता। ऐसे कई अंश हैं जो पश्चिमोत्तरीय पाठ में होने पर भी पाश्चात्यों को मान्य नहीं हैं जैसे अवतारवाद सभी पाठों में स्पष्टरूप से है, फिर भी बुल्के आदि उसे नहीं मानते।

कुछ लोग यह शङ्का करते हैं कि बुद्ध तो राम से अर्वाचीन थे, फिर राम बुद्ध की चर्चा कैसे कर सकते थे ? परन्तु यह शङ्का भी निर्मूल है, क्योंकि **"असद्वा इदमग्र आसीत्"** (तै० उ० २।७) इत्यादि श्रुतियों में ही शून्यवाद आदि बौद्धवाद अनादिकाल से ही पूर्वपक्ष के रूप में प्रचलित है। बौद्धों के अनुसार भी **लङ्कावतारसूत्र** में अमिताभ आदि अनेक नामवाले बुद्ध गौतम बुद्ध से पहले भी हो चुके हैं। **लङ्कावतारसूत्र** में बुद्ध को लङ्कापति रावण का उपदेष्टा गुरु कहा गया है, अतः बुद्धमतानुयायी बुद्ध का निराकरण करना अत्यन्त सम्भव है।

इसी तरह याकोबी का राम के अत्रि के आश्रम में जाने के वृत्तान्त को (वाल्मीकिरामायण २।११७।५ से काण्ड के अन्त तक को) प्रक्षिप्त मानना भी निराधार है। प्रामाणिक रामायण में बालकाण्ड की घटनाओं का निर्देश नहीं मिलता, लेकिन सीता-अनसूया-संवाद के अन्तर्गत लक्ष्मण और उर्मिला के विवाह का उल्लेख किया गया है। अरण्यकाण्ड में लक्ष्मण को अविवाहित कहा गया है, इस अंश में अयोनिजा सीता का तथा दक्षयज्ञ के अवसर पर वरुण के द्वारा देवरात को धनुष देने का उल्लेख मिलता है। अन्यत्र देवताओं द्वारा देवरात को धनुषदान का उल्लेख है। वस्तुतः पाश्चात्यों को ग्रन्थों के समन्वय की पद्धति विदित नहीं है, इसी लिए उन्हें पद-पद पर विरोध भासित होता है और वे इतने मात्र से प्रक्षेप कहना आरम्भ कर देते हैं। पर भारत का एक लघुकौमुदी का विद्यार्थी भी जानता है कि 'हरी' पद कैसे बनेगा। हरि-इ इस अवस्था में **'इको यणचि'** (पा० सू० ६।१।७७) से यण् क्यों नहीं होता ? **'अकः सवर्णे दीर्घः'** (पा० सू० ६।१।१०१) से दीर्घ क्यों होता है ? यहाँ सामान्यविशेषभाव या उत्सर्ग-अपवादभाव मानकर बाध्यबाधकभाव का निर्णय किया जाता है। भारतीय संविधान के मूलाधिकार में धार्मिक स्वाधीनता प्राप्त है, फिर उसके विरुद्ध सनातनधर्मविरुद्ध मन्दिर-प्रवेश आदि कानूनों की क्या सङ्गति है। पर यदि वे अपवाद मूल धाराओं को भी देखेंगे तो कह देंगे कि ये धाराएँ ही प्रक्षिप्त हैं। याकोबी आदि की दृष्टि की प्रामाणिक रामायण कोई वास्तविक रामायण है ही नहीं। वे लोग पाँच काण्डों को भी प्रामाणिक नहीं मानते। उनमें भी प्रक्षेप की कल्पना करते हैं। अतः उनकी प्रामाणिक रामायण उनके मन की कल्पना मात्र है, अन्यथा तो अयोध्याकाण्ड प्राचीन रामायण ही है। फिर उसका अनसूयावृत्तान्त प्रक्षिप्त क्यों ? यदि बालकाण्ड का उर्मिला-लक्ष्मण विवाह अप्रामाणिक है तो वह विवाह प्रामाणिक रूप से कहाँ वर्णित है ? क्या लक्ष्मण का विवाह ही नहीं हुआ था ? यदि अन्यदा यह विवाह हुआ होता तो उसकी चर्चा क्यों न होती। अरण्यकाण्ड के 'अकृतदारः' का अर्थ 'असंनिहितदारः' है यह बात पीछे कही जा चुकी है।

देवताओं द्वारा एवं देवविशेष वरुण द्वारा धनुषदान का समन्वय असम्भव नहीं है। क्या देवताओं के एक साथ धनुष को उठाकर देने से ही देवताओं द्वारा धनुषदान माना जायगा। व्यवहार में देखते हैं कई लोग मिलकर किसी से चन्दा माँगने जाते हैं, पर चन्दा किसी एक के ही हाथ में दिया जाता है तब भी सभी लोगों का चन्दा माँगना और पाना माना जाता है। इसी तरह देवताओं ने या देवताओं के साथ वरुण ने धनुष दिया हो तो भी वह देवताओं द्वारा धनुषदान ही समझा जाता है। पर इतनेमात्र से बालकाण्ड और लक्ष्मणविवाह आदि को अप्रामाणिक कहना साहस ही है। बल्कि यह भी कहते हैं कि "परस्परविरोधी बातें पायी जाने के कारण भी स्पष्ट है कि आदि कवि की रचना अपने मूल रूप में हमारे सामने नहीं है। उदाहरणार्थ राम कौशल्या से कहते हैं मैं वन में मांस-सेवन नहीं करूँगा, कन्द, मूल और फलों से जीवन निर्वाह करूँगा—**"कन्दमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्।"** (वा० रा० २।२०।२९) पर आगे चलकर मांस खाने का कई स्थलों पर उल्लेख है (२।५२।११२; ५४।१७; ५५।३२ तथा ९६।१-६)।"

परन्तु उनका यह कथन भी विरुद्ध है, क्योंकि टीकाकारों ने इन परस्पर विरुद्ध वचनों का समन्वय किया है। 'सूदों द्वारा विशिष्ट संस्कार से संस्कृत मांस ही आमिष है, अतः जैसे मुनि लोग आमिष नहीं खाते वैसे ही मैं भी

आमिष न खाकर कन्द, मूल, फलों और अग्निपक्व मांस आदि से ही जीवन चलाते हुए वन में निवास करूँगा। **"एणेयं मांसमाहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम्।"** (वा० रा० २।४६।२२) के अनुसार ऐणेय मांस से ही वास्तुशान्ति आदि कार्य भी राम ने किया था। अतएव श्राद्धादि धर्म में भी शुद्ध मांस का प्रयोग होता है।

इस दृष्टि से **"इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना।"** (वा० रा० २।९।६२) इन वचनों के साथ समन्वय हो जाता है (तिलक)। २।४२।१०२ की टीका में तिलककार कहते हैं—**'मांसस्य वन्याहारान्तर्गतत्वान्न दोषः, मृगयाधर्मकत्वाच्च न मृगहनने दोषः।'** अर्थात् शुद्ध मांस वन्य आहार के अन्तर्गत होने से शुद्ध मृगमांस खाना दोष नहीं है। इसके अतिरिक्त मृगयाधर्म से मृग मारना भी दोष नहीं है। यदि मृगया भी अप्रामाणिक कही जाय तब तो मारीचवध आदि सभी कथाओं को प्रक्षेप ही कहना पड़ेगा (तिलक)।

बुल्के कहते हैं कि "**महाभारत** के रामोपाख्यान में गुह का उल्लेख नहीं है। किन्तु **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार राम चित्रकूट की यात्रा में अपने सखा गुह के यहाँ रात बिताते हैं। गुह लक्ष्मण तथा सुमन्त्र के साथ सोते हुए राम और सीता की रक्षा करता है। अगले दिन नौका मँगाकर राम, सीता और लक्ष्मण को गङ्गा पार पहुँचाता है।" पर रामोपाख्यान में तो **वाल्मीकिरामायण** की ही संक्षिप्त कथा वर्णित है। केवट की कथा भी मूल से अविरुद्ध है, अतः शतकोटिप्रविस्तर रामायण का ही अंश समझना चाहिये। **अध्यात्मरामायण** के अनुसार चित्रकूट-यात्रा प्रसङ्ग में ही उसका वर्णन सङ्गत है। राम के चरित्र अनन्त हैं, अतः तापस-वन्दना तथा ग्राम-वधूटियों की कथा भी प्रामाणिक है।

अन्धमुनि-पुत्र के वध की कथा अन्य पुराणों और रामायण के अनुसार तो है ही, परन्तु **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार भी उसे विकास या प्रक्षेप कहना साहस है। तिलक आदि टीकाकारों को वह पाठ सम्मत भी है। (वा०-रा० २।६३।४०,४१) में स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्महत्या का भय हृदय से निकाल दो। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हूँ—

> "ब्रह्महत्याकृतं पापं हृदयादपनीयताम्।
> न द्विजातिरहं राजन् मा भूत्ते मनसो व्यथा॥
> शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप।"

उसकी विभिन्न कथाओं का यथासम्भव समन्वय किया जा सकता है। अन्धमुनि और उसका पुत्र तपोनिष्ठ था, इसी दृष्टि से क्वचित् उसके ब्राह्मणत्व का व्यवहार हुआ है। "ब्रह्महत्या स्पृशेन्न त्वां वैश्योऽहं तपसि स्थितः।" (वा० रा० २।७।२७) के अनुसार वह वैश्य था, अतः ब्रह्महत्या का स्पर्श नहीं हुआ। नामभेद की प्रसिद्धि देशभेद से भिन्न भी हो सकती है।

सेरीराम और श्याम की कथाओं का समन्वय करने से यही प्रतीत होता है कि हानिकारक हाथियों के ही मारने का अनुरोध दशरथ से विभिन्न सूत्रों द्वारा किया गया था। उसी प्रसङ्ग में हाथी के भ्रम से दशरथ ने अन्ध-मुनि-पुत्र को मारा था। अन्धमुनि के अन्ध होने और पुत्रदुःख-प्राप्ति के विभिन्न कारण भी हो ही सकते हैं, अतः वैसे वर्णन भी अप्रामाणिक नहीं।

कई कथाओं में कल्पभेद से भेद हुआ है। उसके अनुसार भी रामायणों का समन्वय संभव है। **रामचरित-मानस** के अनुसार जनक के चित्रकूटगमन की कथा स्वाभाविक ही लगती है। इतनी बड़ी घटना का पता न लगना भी संभव नहीं और पता लगने पर तटस्थ या उदासीन रहना भी सम्भव नहीं था, अतः शिव-भुशुण्डि-परम्परा में जनक की कथा का होना स्वाभाविक है।

सीताहरण का समाचार सुनकर राम और लक्ष्मण की माताओं के मर जाने की **सेरीराम** की बात **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध होने के कारण श्रद्धेय नहीं है। दशरथ के लिए राम के द्वारा इङ्गुदी की खली का पिण्डदान-वर्णन अन्यत्र किञ्चित् भिन्न हो सकता है। **ब्रह्मपुराण** (अध्याय १२३) के अनुसार दशरथ अपने पुत्रों को दर्शन देकर ब्रह्महत्या के कारण अपनी नरकयातना का वर्णन करते हैं और उनसे गौतमी-तट पर पिण्डप्रदान करने का अनुरोध करते हैं। अनन्तर राम के पिण्डदान द्वारा दशरथ नरक से मुक्ति पाते हैं तथा **स्कन्दपुराण** (प्रभासक्षेत्र-माहात्म्य अ० १११) के अनुसार दशरथ राम को स्वप्न में दिखाई देते हैं। राम ब्राह्मणों से परामर्श कर पिण्ड-दानादि धार्मिक क्रिया करते हैं। **पद्मपुराण** (सृष्टिखण्ड अ० २८।४८-९०) के अनुसार वनवास के समय इसी स्वप्नदर्शनाध्याय के फलस्वरूप श्राद्ध के आयोजन का वर्णन मिलता है। **गरुड़पुराण** (अध्याय १४३) के अनुसार राम अयोध्या लौटने पर पितृकर्म के लिए गयाशिर (गया) जाते हैं। प्रतिमानाटक में भी इसका उल्लेख है। **शिवपुराण** (ज्ञानखण्ड अध्याय ३०) के अनुसार राम और लक्ष्मण श्राद्धसामग्री लेने गये थे आने में विलम्ब होने पर सीता श्राद्ध-काल की किञ्चित् अवधि शेष जानकर स्वयं श्राद्ध करती है। दशरथ प्रकट होकर कहते हैं मैं दशरथ हूँ। तुम्हारे सफल श्राद्ध से मैं तृप्त हुआ हूँ। बाद में राम के अर्पण करने पर दशरथ उनसे कहते हैं कि पुत्र, अब क्यों प्रदान कर रहे हो, सीता के द्वारा मैं तृप्त हो गया हूँ—

"किमर्थं हूयते पुत्र त्वनया तर्पिता वयम्।"

आनन्दरामायण में भी सीता फल्गुस्नान करने जाती हैं। माहेश्वरी-पूजा के लिए १०२ बालू के पिण्ड तैयार करती हैं। वहाँ धरती से दशरथ का हाथ प्रकट होता है और सीता एक-एक कर १०२ पिण्ड दशरथ के हाथ पर रख देती हैं। सीता भयभीत होकर यह वृत्तान्त छिपाकर रखती हैं। बाद में जब राम पिण्ड चढ़ाने आते हैं तब दशरथ का हाथ नहीं प्रकट होता है, जिससे सबको आश्चर्य होता है। सीता अपना रहस्य प्रकट करती हैं कि दशरथ मुझसे पिण्ड-ग्रहण कर चुके हैं। राम साक्षी चाहते हैं। सीता आम वृक्ष, फल्गु नदी, ब्राह्मण, बिडाल, गौ और अश्वत्थ को साक्ष्य देने को कहती हैं। सब अस्वीकार कर सीता से शप्त होते हैं। अन्त में स्मरण कर सीता का समर्थन करते हैं। दशरथ स्वयं विमान द्वारा आते हैं और कहते हैं कि राम, मैथिली के पिण्डदान से दुस्तर नरक से मैं तर गया और मेरी पूर्ण तृप्ति हुई।

सारलादास के अनुसार वनवास के समय राम अनेक तीर्थयात्राएँ करते हैं। किसी दिन राम गया पहुँचे। पितृ-कर्म के लिए गैंडा आवश्यक समझकर लक्ष्मण के साथ राम उसकी खोज में शिकार के लिए गये। सीता ब्रह्मा के पुत्र फल्गु नदी के संरक्षण में रामगया में ही रह गयीं। राम को समय पर न आते देख सीता ने पूर्वजों को सात बालू के पिण्ड समर्पित किये। दशरथ का हाथ प्रकट हुआ जिससे सीता को मालूम हुआ कि दशरथ का देहान्त हो चुका। सीता ने फल्गु से निवेदन किया कि वह इस घटना को राम से छिपा रखे। फल्गु ने सीता से अनुचित प्रस्ताव किया, उसके ठुकराये जाने पर ब्राह्मणों से कह दिया कि सीता ने पिण्डदान किया है। ब्राह्मण दक्षिणा के लिए अनुरोध करने लगे तथा राम के प्रत्यागमन तक प्रतीक्षा करना उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इसपर सीता ने अपने कपड़े दे दिये और पद्मपत्रों से अपना अङ्ग ढक लिया। वापस आकर सब वृत्तान्त जानकर राम ने फल्गु तथा ब्राह्मणों को शाप दिया।

कृत्तिवासरामायण के अनुसार दशरथ की मृत्यु के पश्चात् उनका श्राद्ध उचित रीति से करने के लिए राम और लक्ष्मण अँगूठी बेचने जाते हैं। इतने में सीता फल्गु के किनारे खेलती हैं। दशरथ देखकर कहते हैं, भूख की पीड़ा असह्य हो उठी है। रेत का पिण्ड देकर भूख शान्त कर दो। बाद में ब्राह्मण, तुलसी और फल्गु सीता के पक्ष में साक्ष्य नहीं देते हैं। उनको सीता शाप देती हैं। वट वृक्ष सीता का समर्थन करता है तथा राम और सीता दोनों से आशीर्वाद प्राप्त करता है।

दुर्गावरकृत असमीया **गीतिरामायण** में भी इस प्रसङ्ग का वर्णन है। उसमें सीता चन्द्रमा, वायु, पृथिवी, फल्गु तथा ब्राह्मणों को शाप देती हैं। **बालरामदासरामायण** के अनुसार राम स्वयं फल्गु को अन्तःसलिला बन जाने का शाप देते हैं। प्रार्थना करने पर वर्षा ऋतु में प्रकट होने का अनुग्रह करते हैं। वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित श्राद्ध का ही भिन्न-भिन्न पुराणों एवं रामायणों में पल्लवन किया गया है। दशरथजी के नरकयातना भोगने और क्षुधातुर होने आदि का वर्णन गुणवादी अर्थवाद ही समझना चाहिए। उसका तात्पर्य गौतमी नदी पर श्राद्ध एवं गयाश्राद्ध तथा फल्गुश्राद्ध के माहात्म्य-वर्णन में है। **"नहि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्तते अपितु विधेयं स्तोतुम्"** निन्दा का तात्पर्य निन्द्य की निन्दा में न होकर विधित्सित अर्थ की स्तुति में ही होता है। श्रीराम का नाम स्मरण करने से भी प्राणियों की मुक्ति हो जाती है फिर राम के परमानुरागी दशरथ के लिए नरक-यातना की कल्पना भी कैसे की जा सकती है। **रामचरितमानस** में कहा गया है—

"राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुवर बिरह राउ गयऊ सुरधाम॥" (रा० मा० २।१५५)

"जिअन मरन फलु दशरथ पावा। अण्ड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत रामविधुवदन निहारा। रामविरह करि मरन सँवारा॥"

(रा० मा० १।१५४।१)

ऐसे ही **देवी-भागवत** में परीक्षित् के अन्तरिक्ष-मरण के कारण दुर्गति का वर्णन भी निन्दार्थवाद ही है। प्रमाणान्तर विरुद्ध अर्थवाद का स्वार्थ ग्राह्य न होकर केवल स्तुति में ही उसका तात्पर्य होता है। उदाहरणार्थ **शुक्लयजुःसंहिता** के ४० वें अध्याय में विद्या और अविद्या (कर्म और उपासना) दोनों की ही निन्दा की गयी है। "अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ततो भूय इव तमो य उ विद्यायां रताः।" (ईशा० उ० ७) वे लोग अन्धन्तम में प्रवेश करते हैं जो कर्म में लगे हैं और उससे भी अधिक घोर तम में वे प्रवेश करते हैं जो कि उपासना में लगे हैं। परन्तु ये दोनों ही बातें **"कर्मणा पितृलोकः विद्यया देवलोकः।"** इन श्रुति-वचनों से विरुद्ध हैं; क्योंकि इनमें कर्म से पितृलोक और विद्या से देवलोक की प्राप्ति कही गयी है। अतः ऊपर के वचनों का तात्पर्य विद्या और अविद्या दोनों के समुच्चयानुष्ठान में ही है, किसी की निन्दा में नहीं। ठीक इसी तरह रामनाम का स्मरण राम-भक्ति परम मोक्ष का कारण है, यह श्रुति, स्मृति और पुराणों से सिद्ध है। ऐसी स्थिति में परम राम-भक्त दशरथ की नरक-प्राप्ति सर्वथा विरुद्ध ही है। अतः वैसे वचनों का तात्पर्य गौतमी तथा गया आदि क्षेत्रों एवं वहाँ के श्राद्धादि कर्मों के माहात्म्य-वर्णन में ही है अर्थात् दशरथ जैसे परम सम्मान्य पुरुषों की सद्गति यहीं हुई थी।

पादुकाओं का वृत्तान्त

इसे (पादुकाओं के वृत्तान्त को) भी बुल्के बाद में जोड़ा हुआ समझते हैं। वे कहते हैं कि "दाक्षिणात्य पाठ (वा० रा० १।११२।२१) के अनुसार भरत राम की हेमविभूषित पादुकाएँ ले जाने की प्रार्थना करते हैं—

"अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः॥" (वा० रा० २।११२।२१)

पर गौड़ीय पाठ के अनुसार भरत के प्रस्थान के समय शरभङ्ग राम को कुशपादुकाओं का एक जोड़ा भेजते हैं। वसिष्ठ के अनुरोध से राम उन्हें प्रदान करते हैं। **माधवकन्दली** और **बलरामदासरामायण** में भी कुशपादुकाओं की ही चर्चा है। पश्चिमोत्तरीय पाठ में वसिष्ठ के कहने पर राम अपनी पादुकाएँ भरत को देते हैं।

दशरथजातक के अनुसार भी अमात्य लोग राम की पादुकाओं के सामने राजकार्य करते हैं। अन्याय होते ही पादुकाएँ एक दूसरे पर आघात करती हैं एवं ठीक निर्णय होने पर शान्त हो जाती हैं।

पादुकाओं के स्वरूप में कुछ मतभेद होने पर भी पादुकाओं में कोई मतभेद नहीं है। अतः पादुकावृत्तान्त को ही प्रक्षेप कहना साहसमात्र है और मतभेद से नाजायज फायदा उठाने की दुश्चेष्टामात्र है। चित्रकूटनिवास, पर्णशाला-निर्माण आदि सभी प्रामाणिक ही हैं।

काक-वृत्तान्त

जयन्त काक का वृत्तान्त सुन्दरकाण्ड में हनुमान् के लिए अभिज्ञान के रूप में सुनाया था। राम के द्वारा प्रयुक्त अस्त्र से वह कहीं भी त्राण न पाकर राम की शरण में आकर प्राण बचाता है। यह घटना अयोध्याकाण्ड की ही है। अतः क्षेपक में या पुराणों में उसका वर्णन स्वाभाविक था। इसी दृष्टि से गौड़ीय पाठ ने उस सर्ग को प्रक्षिप्त नहीं माना। **नृसिंहपुराण, पद्मपुराण तथा रामचरितमानस** में भी इसका वर्णन है। **अध्यात्मरामायण** तथा **आनन्दरामायण** में भी उक्त वृत्तान्त है ही। **रामकेर्ति** तथा **रामकियेन** में काकासुर का वध वर्णित है, पर वह असुर है। अयोध्याकाण्ड के काक-वृत्तान्त का काक तो इन्द्रपुत्र जयन्त है।

४४०वें अनु० में रसिकसम्प्रदाय की रचनाओं में रासलीला का वर्णन भावराज्य का विषय है। श्रीराम परब्रह्म हैं। उनमें विविध भावनाओं से उपासक उनकी उपासना कर सकते हैं। **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित मर्यादा-पुरुषोत्तम की लीलाएँ प्रकट लीलाएँ हैं।

राम-वनगमन

राम-वनगमन की कथा में **वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण** एवं पुराणों का ही मुख्य प्रामाण्य है।

बौद्ध और जैन कथाओं में तो उसका विकृत रूप ही है। अतएव बौद्धों के अनुसार अशोकवनिका से सीता का हरण या रावण द्वारा अयोध्या से सीता को ले जाना या राम का हिमालय प्रदेश में वनवास करना आदि काल्पनिक ही हैं। राम ईश्वरावतार थे, इसलिए नारद का आना और अवतार का उद्देश्य स्मरण कराना **अध्यात्म-रामायण** की कथा ठीक ही है।

अनेक रामायण

वाल्मीकिरामायण के अनुसार सीता ने कहा है कि लक्षणज्ञ ब्राह्मणों ने मेरे लिए वनवास कह रखा है— "**वस्तव्यं किल मे वने**" (वा० रा० २।२९।८)। वे यह भी कहती हैं कि मैंने जितने **रामायण** सुने हैं। उनमें सबमें सीता राम के साथ वन जाती हैं। **आनन्दरामायण** के अनुसार यह भी तर्क दिया है कि स्वयंवर के समय राम को पतिस्वरूप में प्राप्त करने के लिए १४ वर्ष वनवास का व्रत किया है। बुल्के कहते हैं, "रामवनवास के अन्य कई कारण बताये गये हैं। दशरथ द्वारा प्राणियों का वध (वा० रा० २।३९।४), अन्धमुनि-पुत्र-वध (वा० रा० २।६३।११) एवं पूर्वजन्म में कौशल्या द्वारा गायों के स्तनों का काटना (वा० रा० २।५३।१९)।

"मन्ये खलु मया पूर्वं विवत्सा बहवः कृताः।
प्राणिनो हिंसिता वापि तन्मामिदमुपस्थितम् ॥" (वा० रा० २।३९।४)

"निःसंशयं मया मन्ये पुरा वीर कदर्यया।
पातुकामेषु वत्सेषु मातॄणां शातिताः स्तनाः ॥" (वा० रा० २।४३।१७)

"नूनं जात्यन्तरे तात स्त्रियः पुत्रैर्वियोजिताः।
जनन्या मम सौमित्रे तदद्यैतदुपस्थितम् ॥" (वा० रा० ५।५३।१९)

इन वचनों का उक्त निष्कर्ष निकालना सर्वथा अनभिज्ञता ही है। यह तो दुःखाभिभूत प्राणियों की मनोभावना का निदर्शन है। इसलिए 'मन्ये', 'नूनम्' आदि संभावना के सूचक शब्द हैं। कौशल्या अपना दुःख देखकर दुःख के आधार पर कल्पना करती है, मैं समझती हूँ कि मैंने बहुत प्राणियों का वध किया होगा। उनका फल सामने उपस्थित है। मैंने निःसंशय पयःपानार्थी बछड़ों की माताओं के (गायों के) स्तनों को काटा होगा। मैंने बहुत सी माताओं को उनके पुत्रों से वियुक्त किया होगा। वस्तुतः बुल्के बेचारे संस्कृत ज्ञानशून्य होने के कारण 'मन्ये' शब्द का उत्प्रेक्षा अर्थ मानने में समर्थ नहीं। अतः ये सब वनगमन के हेतु नहीं हैं। दुःखी हृदय की कल्पना मात्र हैं। आश्चर्य है बुल्के को यह कैसे विश्वास हो गया कि कौशल्या या दशरथ या राम को जन्मान्तरीय हेतुओं का किस प्रकार ज्ञान हो गया। अन्धमुनि-शाप की हेतुता कही जा सकती है और दशरथ को शाप का ज्ञान था ही। प्रत्यक्ष हेतु तो कैकेयी के लिए वरदान हैं।

अनु० ४४४ वें में बुल्के कहते हैं कि "लक्ष्मण कैकेयी का वध करना चाहते थे। वाल्मीकिरामायण सर्ग २१ के अनुसार लक्ष्मण ने दशरथ को मार डालने का प्रस्ताव किया था एवं कौशल्या ने लक्ष्मण के उस प्रस्ताव का समर्थन किया था। सभी रामकथाओं में राम इस परीक्षा में खरे उतर कर पिता की आज्ञा के पालन में दृढ़ रहे। परन्तु उक्त विचार अशुद्ध हैं। वस्तुतः लक्ष्मण जैसे धर्मनिष्ठ व्यक्ति में दशरथ के वध की कल्पना नहीं की जा सकती है। राम-प्रेमपरतन्त्र लक्ष्मण राम के विरुद्ध जो भी हो उसके प्रति अपना क्रोधमात्र व्यक्त कर रहे थे। वध शब्द का वहाँ बन्धन भी अर्थ है। कैकेयी के भी वध की बात वहाँ नहीं है। अतएव अगले श्लोक में कहा गया है कि उत्पथ प्रतिपन्न कार्याकार्य विवेकशून्य गुरु का भी शासन करना चाहिये। कौशल्या ने वध का समर्थन किया, यह कहना सर्वथा ही निर्मूल है। लक्ष्मण की बात सुनकर रोती हुई शोकव्याकुल कौशल्या ने कहा पुत्र, तुमने लक्ष्मण की बात सुन ली। अब जो उचित लगता है वह करो—**"यदत्रानन्तरं तत्त्वं कुरुष्व यदि रोचते।" अनन्तरं युक्तं कार्यम्** (**तिलक**)। जो उचित है, अच्छा लगता है सो करो—**"अनेन कौशल्याया गूढं स्वानभिमतत्वं लक्ष्मणोक्तस्य सूचितम्।"** (तिलक) इससे स्पष्ट विदित होता है कि कोशल्या को लक्ष्मण की बात अभिमत नहीं है। **"यदत्रानन्तरं तत्त्वं कुरुष्व यदि रोचते।"** इस वाक्य में समर्थन का सूचक कोई भी शब्द नहीं है। **'अनन्तरम्' 'यदि' 'रोचते'** तीनों बुल्के के विरुद्ध हैं।

लक्ष्मण ने कहा—देवकल्प, ऋजु, दान्त तथा शत्रुओं पर भी अनुग्रह करनेवाले राम ऐसे पुत्र का त्याग कौन कर सकता है। अतः पुनः बाल्यभाव को प्राप्त राजा को वनवास सम्बन्धी बात को राजवृत्त का स्मरण करनेवाला कौन पुत्र हृदय में ला सकता है। अतः वनवास की बात प्रकट होने के पहले ही मेरे साथ आप को शीघ्र शासन हस्तगत कर लेना चाहिए। धनुषयुक्त मेरे द्वारा सुरक्षित कृतान्त के समान आप के अभिषेक में विघ्न कौन कर सकता है। भरत या भरतपक्षीय जो भी विपरीत होगा सबका वध कर दूँगा। यदि कैकेयी के प्रोत्साहन में पिता भी प्रतिकूल होंगे तो उन्हें बन्धन में डाल दूँगा।

सेनासहित भरत के चित्रकूट पहुँचने पर लक्ष्मण ने जब भरत के बध करने की बात कही तब राम ने लक्ष्मण को शान्त किया और कहा कि जब स्वयं भरत आये हैं तब धनुष की क्या आवश्यकता है? भरत को मारकर सापवाद राज्य से क्या लाभ? बान्धवों और मित्रों के क्षय से जो द्रव्य मिलता है उसे विषमिश्रित भक्ष्य के समान मैं कभी नहीं ले सकता हूँ (वा० रा० २।९८।३४)। वन में लक्ष्मण ने कैकेयी को क्रूरदर्शिनी कहा तो राम ने लक्ष्मण से कहा कि मध्यमा माँ कैकेयी की गर्हणा नहीं करनी चाहिये—**"न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या।"** (वा० रा० ३।१६।३७) अतः स्पष्ट है कि प्रकृत में कैकेयी या दशरथ के मार डालने की बात यदि लक्ष्मण ने कही होती तो राम ने अवश्य ही उसका विरोध किया होता। **दशरथकथानम्** के अनुसार सौतेली माँ के षड्यन्त्र के भय से

दशरथ राम और लक्ष्मण दोनों पुत्रों को बन में भेज देते हैं। **अनामकं जातकं** के अनुसार मामा के आक्रमण की तैयारियाँ सुनकर स्वेच्छा से राम वन जाते हैं। **पउमचरियं** के अनुसार भी भरत को राज्य देने का समाचार सुनकर वे स्वेच्छा से वन जाते हैं।

तिब्बती रामायण के अनुसार जब पिता 'किसको राज्य दें ?' इस सम्बन्ध में किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये तब राम आश्रम में जाकर तपस्या करने लगे। **सेरीरामरामायण** के अनुसार मन्थरा को पीटने के कारण राम की बदनामी हो गयी थी। सीता-स्वयंवर के समय भरत को राज्य दिये जाने का समाचार सुनकर राम राजधानी न लौटकर सीता एवं लक्ष्मण के साथ वन चले गये। **सेरीराम** के अन्य पाठ के अनुसार सीता, राम और लक्ष्मण घर लौट आते हैं। भरत की माता भरत के लिए राज्य माँग लेती है और दशरथ के सोते समय ही राम को राज्य से वञ्चित होने का समाचार सुनाती है। राम प्रसन्न होकर ऋषि बनने के लिए वन चले जाते हैं।

सिंहली रामकथा के अनुसार शनि की अशुभ दशा से बचने के लिए राम राजधानी छोड़कर सात वर्ष वन में रहते हैं। पाश्चात्य वृतान्त नं० १ के अनुसार ताड़का-वध के प्रायश्चित्तस्वरूप राम तपस्या करने के लिए बन चले जाते हैं। किसी अन्य वृत्तान्त के अनुसार एक ब्राह्मण के शाप से राम का ईश्वरीय ज्ञान लुप्त हो गया था। बाद में कैकेयी की प्रार्थना से राम स्वेच्छा से ही वन में प्रवेश करते हैं। वस्तुतः मूल प्रमाण से जो लोग जितने दूर हुए हैं उन लोगों की रामकथाओं में उतनी ही अधिक विकृतियाँ हुई हैं। भारतीय रामायणों, पुराणों, महाभारत तथा संहिताओं की रामकथाओं तथा दूरत्व के दोषों के कारण या दुरभिसन्धि के कारण ये विकृतियाँ आ गयी हैं उनका समन्वय निरर्थक एवं असम्भव ही हैं। यही कहा जा सकता है कि जिस किसी तरह भी राम-सम्बन्ध होना अच्छा ही है।

'भाव कुभाब अनख आलसहूँ। नाम जपत मङ्गल दिसि दसहूँ ॥'
(रा० मा० १।२७।१)

फिर भी रामायण तथा रामतत्त्व का याथात्म्य समझने के लिए **वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, महाभारत** तथा पुराणों का ही आश्रयण अपेक्षित है। उसके बिना मूल आदर्श से वञ्चित रह जाने की अधिक सम्भावना है।

कैकेयी को वर-प्राप्ति

४४७ वें अनु० में बुल्के कहते हैं "**वाल्मीकिरामायण** के अनुसार देवासुरसंग्राम में शम्बरासुर से युद्ध करते हुए दशरथ आहत होकर कैकेयी द्वारा रणभूमि से हटाये जाते हैं। इसके लिए दशरथ उन्हें दो वर प्रदान करते हैं। इनमें से वह एक से भरत के लिए राज्य और दूसरे से राम के लिए वनवास माँगती है—

"तत्राकरोन्महायुद्धं राजा दशरथस्तदा।
असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः॥
अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः।
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया॥
तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने।
स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदेच्छेयं तदा वरम्॥
गृह्णीयाम्....................।" (वा० रा० २।९।१५–१७)

वाल्मीकिरामायण पश्चिमोत्तरीय पाठ में कहा गया है कि एक ब्राह्मण को प्रसन्न कर कैकेयी ने विद्याबल पाया था। जिससे वह पति को बचाने में सफल हो सकी थी। शम्बर युद्ध में माया का सहारा लेता था, पर कैकेयी

को भी वह माया विदित थी, अतः कैकेयी ने शम्बर का माया-प्रभाव नष्ट कर दशरथ को बचाया था। **तेलगू द्विपद-रामायण** (२।२) में ऐसा भी वृत्तान्त है कि युद्ध में दशरथ के रथ का अक्ष टूटा देखकर कैकेयी ने उसमें अपना हाथ डाल दिया (उन्हें उसी का वरदान मिला था कि हाथ लोहसार का हो जायेगा)। ब्रह्मपुराण (अ० १२३), पद्मपुराण, अध्यात्मरामायण (२।१।६६), आनन्दरामायण (१।१।८२) तथा **रामकियेन** (अध्याय १४)।

भावार्थरामायण के अनुसार अन्ध मुनि के शाप के कारण दशरथ के राज्य में अनावृष्टि हो गयी थी। दशरथ इन्द्र से युद्ध करने गये। उसमें अक्ष टूट जाने पर कैकेयी ने अपनी भुजा से रथ संभाला था। इन्द्र की पराजय हुई थी। **कृत्तिवासरामायण** और **असमिया बालकाण्ड** के अनुसार एक वर शम्बरासुर के युद्ध में मिला था और दूसरा वर दशरथ के व्रण की पीब चूस लेने के कारण मिला था। पाश्चात्य वृत्तान्त नं० ३ तथा नं० १३ के अनुसार बिच्छू के डंक से पीड़ित दशरथ को स्वस्थ करने के कारण दूसरा वर मिला था।

सेरीराम में भी ऐसी ही कथा है। **वसुदेवहिण्डि** में कामशास्त्रनिपुणता के कारण कैकेयी को एक वर मिला था। दूसरा वर, युद्ध में किसी राजा ने दशरथ को बन्दी बना लिया था, कैकेयी ने सेना का नेतृत्व कर विरोधी राजा को हराकर दशरथ को मुक्त कराया था, तब मिला था।

कहना न होगा कि आर्ष **वाल्मीकिरामायण** और पुराणों की ही कथाएँ श्रद्धेय हैं। बहुत से लोग अपनी रचनाओं में मौलिकता और चमत्कृति लाने की दृष्टि से भी अपनी अभिनव कल्पनाओं को निविष्ट कर देते हैं। **पउमचरियं** के अनुसार स्वयंवर में दशरथ का रथ हाँक कर अन्य राजाओं के विरुद्ध दशरथ की सहायता करने के कारण वर मिला था।

महाभारत (३।२६१।२१), **रामकियेन तथा पद्मपुराण** के अनुसार एक ही वरदान से भरत के लिए राज्य और राम के लिए वनवास माँगा गया था। परन्तु कई स्थलों में जातित्वात् एकवचन का प्रयोग हो जाता है, अतः दो वरदानों की बात ही प्रामाणिक है। **ब्रह्मपुराण** (अध्याय १२३) के अनुसार देवासुरयुद्ध में कैकेयी ने अपने हाथ से दशरथ-रथ का टूटा हुआ अक्ष सम्भाला था। इसपर प्रसन्न होकर दशरथ ने तीन वर दिये थे। कल्पभेद से भी पुराणों का समन्वय किया जा सकता है।

कैकेयी का दोष निवारण

आदि कवि वाल्मीकि ने कैकेयी की कुटिलता का स्पष्ट शब्दों में चित्रण किया है। कहा जाता है कि राम ने कैकेयी के सम्बन्ध में यह शङ्का की थी कि वह देवी राज्य के कारण कहीं महाराज दशरथ का ही प्राण न ले ले और कहीं कौशल्या और सुमित्रा को जहर न दे दे। (वा० रा० २।५३।७–१८)। युद्धकाण्ड में सीता ने भी श्रीराम का माया सिर तथा धनुष उनके सामने उपस्थित करने पर कहा था कि कलहशीला कैकेयी ने सारे कुल का उत्सादन कर डाला—

"कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया" (वा० रा० ६।३२।४)

परन्तु ऐसी सभी बातें दुःख और शोक के आवेश का तात्कालिक परिणाम हैं। ये उनके हृद्‌गत भावों के सूचक नहीं हैं। भारद्वाज ठीक कहते हैं—राम के वनवास से देवताओं, दानवों तथा भावितात्मा ऋषियों का हित ही होगा। इसमें कैकेयी का कोई दोष नहीं है (वा० रा० २।९२।३१)।

राम ने भी भरत से कहा था—विवाह के समय महाराज ने माँ कैकेयी के पिता से कैकेयी के पुत्र के लिए राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी (वा० रा० २।१०७।३)। गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों में कहा गया है कि शाप-मोहित होकर कैकेयी मन्थरा के जाल में फँस गयी थी। विमलसूरि के अनुसार भरत का वैराग्य दूर करने के

लिए राज्य माँगा गया था। सीता और लक्ष्मण के साथ राम स्वेच्छा से ही वन चले गये। सबको शोकातुर देखकर कैकेयी ने ही भरत को राम को लौटा लाने के लिए भेजा था, किन्तु राम भरत का अभिषेक करके उन्हें अयोध्या लौटा देते हैं। **तत्त्वसंग्रहरामायण** के अनुसार अयोध्यावासियों को दुखी देखकर कैकेयी स्वयं द्रवित हो जाती है। वह राम की आराधना करके क्षमा माँगती है। **प्रतिमानाटक** के अनुसार शाप के कारण पुत्रवियोग से दशरथ की मृत्यु अनिवार्य थी। कैकेयी ने राम को विकट विपत्ति से बचाने के लिए वसिष्ठादि से परामर्श करके राम को वनवास दिलाया था। १४ दिन के स्थान में भूल से १४ वर्ष मुख से निकल गया। **महावीरचरित** तथा **अनर्घराघव** के अनुसार स्वयंवर के समय शूर्पणखा मन्थरा के वेष में मिथिला पहुँच कर दशरथ को कैकेयी का जाली पत्र देती है जिसमें वर केवल राम का वनवास ही मांगा गया है। फलतः राम मिथिला से ही वन चले जाते हैं। अध्यात्मरामायण (२।२।४४-४६) के अनुसार सरस्वती की प्रेरणा से कैकेयी वैसा करती है। **आनन्दरामायण** तथा **रामचरितमानस** में भी यही बात है। **रामलिङ्गामृत** (सर्ग १२) के अनुसार देवेन्द्र की प्रेरणा से कैकेयी राम को वन भेजती है। **अध्यात्मरामायण** के अनुसार राम ने कहा था कि वाणी मुझसे प्रेरित होकर आपके मुख से निकली थी—

"मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद् विनिर्गता।" (२।७।६३)

किन्हीं सूक्ष्म अदृष्ट कारणों से विविध घटनाएँ घटती ही हैं। इसमें **वाल्मीकिरामायण** का भी कोई विरोध नहीं है।

मन्थरा

मन्थरा के सम्बन्ध की भी विभिन्न कथाएँ संगत हैं। **अग्निपुराण** (अध्याय ६६।८) के अनुसार राम ने बाल्यावस्था में मन्थरा का पैर पकड़ कर खींचा था। इस कारण उसने कैकेयी को उकसाया था। अन्य रामकथाओं में इसी का पल्लवन किया गया है। **सत्योपाख्यान** के अनुसार विरोचन दैत्य की पुत्री ने देवासुरयुद्ध में देवताओं के विमानों और वाहनों को अपने पाशों से बाँध दिया था। इसपर विष्णु की आज्ञा से इन्द्र ने उसे वज्र से मारा था। उस वैर से ही उसने मन्थरा बनकर बदला चुकाया। **आनन्दरामायण** (९।५।३५) के अनुसार वही पूतना बनी है। कल्पान्तर में वही कुब्जा हुई थी (आ० रा० १।२।३)। भारतीय संस्कृति के अनुसार राम और कृष्ण साक्षात् परब्रह्मस्वरूप ही हैं। उनका यथाकथञ्चित् सम्बन्ध भी कल्याणकारक है, अतः उनके अनुकूल तथा प्रतिकूल सभी का कुछ विशिष्ट स्थान है। इसी दृष्टि से उनकी जन्मान्तरीय कथाओं की छानबीन की गयी है। पर जन्मान्तरीय ज्ञान ऋषियों को ही हो सकता है, अन्य को नहीं, अतः आर्ष पुराणादि ही उस सम्बन्ध में प्रमाण हैं, अन्य नहीं।

❋

पञ्चदश अध्याय

अरण्यकाण्ड

अरण्यकाण्ड में ३१ वें सर्ग के सम्बन्ध में भी ऋषियों के स्वागत को बुल्के प्रक्षेप कहते हैं। इसके अनुसार अकम्पन रावण के पास जाकर खर के वध का समाचार सुनाता है। सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा कर उनको हर लेने का परामर्श देता है। रावण इसके लिए मारीच के पास जाकर सहायता माँगता है। मारीच राम की वीरता की प्रशंसा करके सीता-हरण रोक देता है। **वाल्मीकिरामायण** के गौड़ीय व पश्चिमोत्तरीय पाठ में यह सर्ग नहीं है। उनके अनुसार शूर्पणखा ही सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करती है। इसी तरह ६० वें सर्ग में राम वृक्षों एवं पशुओं को सम्बोधित करके सीता का पता पूछते हैं—यह गौड़ीय पाठ में बुल्के के अनुसार ६२ वें तथा ६३ वें सर्ग में वर्णित राम का विलाप ६० वें सर्ग की पुनरावृत्ति है।

अयोमुखीवध-वृत्तान्त भी दाक्षिणात्य पाठ में ही है। इन्द्र द्वारा सीता के पास पायस लाने का वृत्तान्त दाक्षिणात्य पाठ सर्ग ५६ में प्रक्षिप्त है, परन्तु वह अन्य पाठों में प्रक्षिप्त नहीं है।

याकोबी के अनुसार "आदिरामायण में चित्रकूट के लिए प्रस्थान करने के बाद अरण्यकाण्ड के ११ वें सर्ग का आरम्भ मिलता है।

"अग्रत: प्रययौ राम: सीता मध्ये सुशोभना।
पृष्ठतस्तु धनुष्पाणिर्लक्ष्मणोऽनुजगाम ह ॥"

अनन्तर पञ्चवटी में आगमन का वर्णन था (१५ वां सर्ग)। उनके अनुसार विराध-वध, शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य के आश्रमों में गमन, सीताहरण से पहले जटायु से भेंट ये सब वृत्तान्त आदि**वाल्मीकिरामायण** में नहीं थे, क्योंकि आधिकारिक कथावस्तु के दृष्टिकोण से उनका महत्त्व नहीं है। भरत के प्रस्थान के पश्चात् शूर्पणखा आगमन तक की ११-१२ वर्ष की अवधि का कुछ वर्णन करने के उद्देश्य से उपर्युक्त वृत्तान्त रखे गये होंगे।" बुल्के की दृष्टि में भी उनका यह अनुमान न्यायसङ्गत है। ऐसी भी रामकथाएँ हैं जिनमें सीताहरण के पश्चात् ही राम जटायु से मिलते हैं तथा रामायण से भी ऐसी ही ध्वनि निकलती है। परन्तु यह ठीक नहीं है। केवल अनुमानमात्र के आधार पर प्रामाणिक परम्पराप्राप्त पाठों का अपलाप नहीं किया जा सकता। पाठ के अनुसार घटनाओं का अस्तित्व जानना उचित है। अनुमान के अनुसार विद्यमान पाठों का अपलाप नहीं किया जा सकता। पाठभेद के आधार पर भी ऐसी कल्पना करना पाठभेद का दुरुपयोग करना ही है। कहा जाता है—

"अनेन सीता वैदेही भक्षिता नात्र संशय:।
गृध्ररूपमिदं व्यक्तं रक्षो भ्रमति काननम् ॥" (वा० रा० ३।६७।११)

इस वचन से यही ध्वनि निकलती है कि जटायु को राम पहले से नहीं जानते थे, परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि यह तो शोकव्याकुल राम का भ्रममात्र था। पिछले प्रसंग से विदित होता है कि सीता जटायु से परिचित थीं। अतएव सीता ने कहा था जटायो! राम और लक्ष्मण के लिए मेरे हरण का सारा वृत्तान्त कह देना—

"रामाय तु यथातथ्यं जटायो हरणं मम।
लक्ष्मणाय च तत्सर्वमाख्यातव्यमशेषत: ॥" (वा० रा० ३।४९।४०)

इससे यह भी ध्वनि निकलती है कि सीता जटायु से परिचित थीं। राम जिस वन में विचरण कर रहे हैं वहीं अगस्त्य, सुतीक्ष्ण आदि के आश्रम हैं। परम आस्तिक वैदिक राम उन लोगों से न मिलते यह कैसे संभव हो सकता था। वस्तुतः याकोबी या बुल्के इन कथाओं के सर्गों को इसलिए प्रक्षिप्त कहते हैं कि इनमें राम की दिव्यता और अलौकिकता का वर्णन है। शरभङ्ग और अगस्त्य के आश्रमों में देवताओं सहित इन्द्र का वर्णन है। अगस्त्य द्वारा राम के लिए दिव्य धनुष का प्रदान वर्णित है। राम के अवतारत्व का भी वर्णन है। अकम्पन के वृत्तान्त में भी राम के अवतारत्व का वर्णन है। इसी लिए अवतारत्व-स्वीकार अभीष्ट न होने से ये सब दुष्ट कल्पनाएँ हैं। रामायण के अनुसार रावणादि राक्षसों के वधार्थ राम का अवतार हुआ है। ऋषियों और देवताओं का असुरों और राक्षसों से मुख्य विरोध है। अतः राम का देवताओं तथा ऋषियों से परामर्श ग्रहण करके कार्य करना महत्त्वपूर्ण ही है। फिर मौसरे भाई याकोबी या बुल्के का इन्हें महत्त्वपूर्ण न मानना निरी अज्ञानता ही है।

इसी तरह अनसूया-सीता-संवाद को भी प्रक्षिप्त कहना प्रमाद है, यह कहा जा चुका है।

विराध-वध के बाद उसके दिव्य रूप धारण करने का उल्लेख दाक्षिणात्य पाठ में न होने पर भी **"अप्रतिषिद्धं परमतमनुमतं भवति"** के अनुसार अप्रतिषिद्ध परमत अनुमत ही माना जाता है और वह गौडीय पाठ तथा अध्यात्मरामायण के अनुसार ठीक ही है। कल्पभेद से कभी तुम्बुरु कुबेर के शाप से विराध बना था। उसी कल्प में दुर्वासा द्वारा शापित विद्याधर विराध बनता है।

४५९ वें अनु० का खण्डन पिछले प्रसंग में किया जा चुका है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार राम मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं। **श्रीभागवत** के अनुसार भी राम का अवतार मर्त्यशिक्षणार्थ है, अतः राम ऋषियों के आश्रम में जाते हैं, उनका दर्शन करते हैं। वे मुनियों का पाद-स्पर्श करते हैं। ऋषि लोग राम को प्रिय अतिथि मानकर इतना आदर करते हैं कि वे उनको बिना देखे ब्रह्मलोक भी जाना नहीं चाहते—

ब्रह्मलोकं न गच्छामि त्वामदृष्ट्वा प्रियातिथिम्।" (वा० रा० ५।२९।३)

इस सम्बन्ध में **कम्बरामायण** (३।२) का वर्णन ठीक ही है कि इन्द्र शरभङ्ग को ब्रह्मलोक ले जाने के लिए आये थे, परब्रह्म विष्णुरूप राम से मिलकर ही वे मुक्ति के पद को प्राप्त हुए। "राम अगस्त्य के पास पहुँचकर उनके पैर छूते हैं" **वाल्मीकिरामायण** की यह बात ठीक ही है। परन्तु अगस्त्य उनको केवल एक राजा मानकर नहीं, किन्तु सर्वलोक का राजा ईश्वर मानकर उनका आतिथ्य करते हैं। लौकिक राजा एक राज्य का राजा होता है। सर्वलोक का राजा ईश्वर ही हो सकता है, वही ऋषियों का भी पूज्य हो सकता है, सामान्य राजा नहीं।

"राजा सर्वस्य लोकस्य धर्मचारी महारथः।
पूजनीयश्च मान्यश्च भवान् प्राप्तः प्रियातिथिः॥"

अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, भावार्थरामायण तथा तुलसीकृत **रामचरितमानस** में राम के ऐश्वर्य-प्रधान रूप का वर्णन है, अतः उनके अनुसार ऋषि लोग उनकी स्तुति, पूजा आदि करते हैं। ऋषि लोग उनका परमेश्वर के रूप में सम्मान करते थे। **अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण** तथा पुराणों का यही दृष्टिकोण है।

लक्ष्मण का संयम

अध्यात्मरामायण के अनुसार जो बारह वर्ष तक निद्रा एवं आहार छोड़ सकता है, वही मेघनाद का वध भी कर सकता है—**युद्धकाण्ड** सर्ग ८। **कृत्तिवासरामायण** में इसी बात का उपबृंहण है।

"नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥" (वा० रा० ४।६।२२)

यह श्लोक भी लक्ष्मण के संयम का सूचक है। लक्ष्मण कहते हैं कि मैं सीता के केयूरों और कुण्डलों को नहीं पहचानता, किन्तु नित्य पादवन्दना के कारण उनके नूपुरों को पहचानता हूँ, ये उन्हीं के हैं। विश्वामित्र की बला और अतिबला विद्याओं में ये गुण विद्यमान थे जिनसे श्रम, ताप और रूपविपर्यय तथा क्षुधा-पिपासा की बाधा नही होती थी—

"मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा।
न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः॥
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋताः।
क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम॥" (वा० रा० १।२२।१३,१८)

यद्यपि **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार विश्वामित्र ने यह विद्या राम को ही प्रदान की थी। तिलकटीकाकार कहते हैं—"गृहाण त्वं" में 'त्वम्' उपलक्षण है। लक्ष्मण को भी वह विद्या दी गयी है, क्योंकि क्षुधा और पिपासा के सहनरूप फल दोनों में ही परिलक्षित होते हैं। राक्षसरूपी अरियों के बधार्थ इसकी अपेक्षा भी दोनों को ही थी।

"तौ तत्र हत्वा चतुरो महामृगान् वराहमृश्यं पृषतं महारुरुम्।
आदाय मेध्यं त्वरितं बुभुक्षितौ वासाय काले ययतुर्वनस्पतिम्॥"
(वा० रा० ३।५५।३२)

"बहून् मेध्यान् मृगान् हत्वा चेरतुर्यमुनातटे।" (वा० रा० ३।५५।३२)

इत्यादि जहाँ कहीं राम, लक्ष्मण आदि का साथ भोजन करना वर्णित है वहाँ भी 'ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके' (क० उ० १।३।१) "अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति" के अनुसार "एकः पिबति अन्यः पाययति पिबन्तौ" की तरह समझना चाहिये।

जीव कर्मफल का भोक्ता है ईश्वर अभोक्ता द्रष्टा ही है तथापि जैसे एक के छत्री होने पर भी बहुत छत्रहीन यात्रियों में **'छत्रिणो यान्ति'** का व्यवहार होता है वैसे ही एक के भोक्ता होने पर भी दोनों में भोक्तृत्व का व्यवहार होता है, उसी तरह राम और सीता के भोजन में ही तीनों के भोक्तृत्व का व्यवहार हो सकता है। **कम्बरामायण** की कल्पना ठीक ही है कि शृङ्गवेर में निद्रादेवी लक्ष्मण के सामने आयी तब उन्होंने कह दिया कि अयोध्या लौटकर आयेंगे, तब आना (कम्ब रा० २।६।११)।

द्विपदरामायण के अनुसार उन्होंने उसे उर्मिला के पास भेज दिया। अतएव लक्ष्मण के लौटने तक उर्मिला सोती ही रही। **रामकेर्ति** (सर्ग १) के अनुसार निद्रा लक्ष्मण की एक हितैषिणी थी। जो नींद देने आया करती थी। गुह मिलने के बाद उन्होंने उससे कहा कि तुम १४ वर्ष बाद आना। इस अवधि में भोजन भी नहीं करूँगा। तुम क्षुधा को मुझसे हटाकर स्वस्थ सबल बनाये रखो। निद्रा ने वैसा ही करने की प्रतिज्ञा की।

सीताहरण के पश्चात् राम सीता के पलंग पर मूर्च्छित होकर गिर जाते हैं। लक्ष्मण चालीस दिन तक तक निद्रा और अन्न त्याग कर राम का सिर गोद में लेकर निश्चल बैठे रहे। आकाशवाणी उनके इस संयम की प्रशंसा करती है। यह भी कहती है कि राम-सीता का वियोग १२ वर्ष बाद समाप्त होगा। इन सबमें आर्षवचन ही प्रमाण हैं। अन्य कथाओं में अनेक कल्पनाएँ जुड़ गयी हैं।

अनु० ४६२ में बुल्के कहते हैं कि "**वाल्मीकिरामायण** में सीता लक्ष्मण के सम्बन्ध का कोई विशेष ध्यान नहीं रखा गया। लक्ष्मण राम और सीता दोनों की सेवा करते हुए निःसंकोच बातचीत तथा व्यवहार करते थे। लक्ष्मण राम तथा सीता दोनों ही के पैर धोते थे।" (वा० रा० २।५०।४९)

परन्तु इसमें संकोच का प्रश्न ही नहीं था। क्योंकि लक्ष्मण सीता और राम को अपने माता-पिता मानते थे। फिर पैर धोने में क्या आपत्ति हो सकती है। वस्तुतः श्लोक का वैसा अर्थ स्पष्ट नहीं है, जैसा अज्ञानी बुल्के ने किया। श्लोक यह है—

"तस्य भूमौ शयानस्य पादौ प्रक्षाल्य लक्ष्मणः।
सभार्यस्य ततोऽभ्येत्य तस्थौ वृक्षमुपाश्रितः॥ वा० रा० २।५०।४९)

अर्थ—भूमि पर भार्या के सहित सोये राम के दोनों पैरों का प्रक्षालन करके वहाँ से हटकर वृक्षमूल में लक्ष्मण खड़े हो गये।

बुल्के यह भी कहते हैं—राम लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं कि वह सीता को उठाकर नाव पर रख दे—

"सीतां चारोपयान्वक्षं परिगृह्य मनस्विनीम्।" (वा० रा० २।५२।७५)

वस्तुतः भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत से अपरिचित बुल्के अनेक स्थलों पर अर्थ समझने में प्रमाद करते हैं। पीछे भी लिखा है कि रावण को मारने के बाद राम हमारे दर्शन के योग्य बनेंगे, वैसे ही यहाँ भी प्रमाद ही है।

श्लोक यह है—"आरोह त्वं नरव्याघ्र स्थितां नावमिमां शनैः।
सीतां चारोपयान्वक्षं परिगृह्य मनस्विनीम्॥"

श्लोकार्थ यह है कि हे नरव्याघ्र! घाट पर स्थित इस नाव को पकड़ कर सीता को नाव पर चढ़ाओ और पश्चात् तुम चढ़ो। "उठाकर नाव पर रख दो" यह तो किसी शब्द का अर्थ नहीं है। चढ़ाने का भी यही अर्थ है कि चढ़ने में सहायता दे दो।

"एक ही पर्णशाला का निर्माण हुआ था, अतः तीनों एक में ही रहते थे।" यह कथन भी ठीक नहीं है। यद्यपि माता, पिता और पुत्र के समान एक पर्णशाला में भी रहने में कोई दोष नहीं है, फिर भी ऐसा कोई वचन नही है कि तीनों एक ही पर्णशाला में सोते थे। प्रत्युत सर्वदा राम और सीता के रक्षण की दृष्टि से धनुष-बाण लेकर लक्ष्मण कुछ दूर ही रहकर प्रहरी का काम करते थे। राम के सोने पर तमसातीर पर सुमन्त्र और सूत दोनों ही जागते हुए पहरा दे रहे थे—

"जाग्रतोरेव तां रात्रिं सौमित्रेरुदितो रविः।
सूतस्य तमसा तीरे रामस्य ब्रुवतो गुणान्॥" (वा० रा० २।४६।१६)
"तं जाग्रतमदम्भेन भ्रातुरर्थाय लक्ष्मणम्।
गुहः संतापसंतप्तो राघवं वाक्यमब्रवीत्॥" (वा० रा० २।५१।१)

गुह के प्रार्थना करने पर भी कि किसी भय से नहीं, किन्तु धर्मबुद्धि से हम जागरण करते हैं। सीता के साथ राम के भूमि पर सोते हुए निद्रा और सुख कहाँ?

बुल्के भी यह कहते है "अपहरण के ठीक पहले राम की आर्त वाणी सुनकर अपने पति की सुरक्षा के विषय में चिन्तित सीता उत्तेजित होकर अपने देवर पर यह आरोप लगाती हैं कि वह अपनी भाभी पर अनुरक्त हैं, इसी लिए राम के साथ वन में चले आये हैं।" वस्तुतः यहाँ भी बहिर्मुखता के कारण ही अन्यथा कल्पना की जाती है। तिलक आदि टीकाओं में स्पष्ट वर्णन है।

व्यावहारिक दृष्टि से यह सब शोकावेश का प्रभाव था। परमार्थतः तो लोकव्यवहार के अनुसार वह नाटचमात्र था। लक्ष्मण ने भी लोकवत् ही व्यवहार किया था।

एवं विबोधिततत्त्वोऽपि मनुष्यनाटनेन लोकव्यवहारविल्लक्ष्मणोऽवददित्याह ।

बुल्के कहते हैं "सीता की इसी लाञ्छना के अनुसार **स्कन्दपुराण के** नागरखण्ड (अ० २) में लक्ष्मण के स्वामिद्रोह की कल्पना कर ली गयी है।" परन्तु यह प्रमाद ही है। बुल्के भारतीय अर्थवादों की स्थिति से अपरिचित ही हैं।

यह ठीक है निम्नोक्त वर्णन पुराणों में है कि—

पितृकूपिका तीर्थ में राम श्राद्ध करते हैं, सीता कहीं छिप जाती हैं। लक्ष्मण को विप्रों की सेवा करनी पड़ती है। श्राद्ध के बाद सीता दिखायी पड़ती हैं जिससे लक्ष्मण को क्रोध होता है। वह सांथरी के लीपने तथा पैर धोने के लिए पानी ले आना भी अस्वीकार करते हैं। बाद में कोपसंरक्त लक्ष्मण दूर से राम को देखते हैं तो उनके मनमें राम का वध करके सीता को पत्नी बना लेने का विचार उठता है।

"हत्वैवं राघवं सुप्तं सीतां पत्नीं विधाय च ।
किं गच्छामि निजं स्थानं विदेशं वापि दूरतः" ॥४५॥

प्रातः राम और सीता दक्षिण के लिए प्रस्थान करते हैं। लक्ष्मण राम के वध का अवसर ढूँढ़ते हुए दिन-भर उनका पीछा करते हैं—

"लक्ष्मणोऽपि धनुः सज्यं कृत्वा संधाय सायकम् ।
अनुव्रजति पृष्ठस्थस्तस्य छिद्रं विलोकयन्" ॥४९॥

शाम को गोकर्ण पहुँचकर लक्ष्मण राम के पास जाकर अपना अपराध स्वीकार करते हैं और राम से क्षमा पाते हैं। लक्ष्मण आत्मशुद्धि के उद्देश्य से राम के हाथ से मृत्यु चाहते हैं। नहीं तो अग्नि में प्रवेश करने की सोच रहे थे। उसी समय मार्कण्डेय आ पहुँचते हैं तथा स्वामिद्रोह के लिए बालमण्डन तीर्थ में स्नान करने का परामर्श देते हैं। पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड २९।१२६-१९०) में लक्ष्मण का विद्रोह और पश्चात्ताप वर्णित है, किन्तु वहाँ सीता के प्रति दुर्भाव का वर्णन नहीं है।

"एहि लक्ष्मण शीघ्रं त्वं पुष्कराज्जलमानय ।
पादप्रक्षालनं कृत्वा शयनं कुरु सत्वरम् ॥१२६॥
विभावर्यां निवृत्तायां यास्यामो दक्षिणां दिशम् ।
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद् रामं सीतयाऽऽनीयतां पयः ॥१२७॥
नाहं राम सर्वकालं दासभावं करोमि ते ।
इयं पुष्टा च सुभृशं पीवरी च ममाप्युत ॥१२८॥
करिष्यसि किमनया भार्यया वद साम्प्रतम् ।
किं वा मृतस्य ते प्रेत्य इयं यास्यति ते प्रिया ॥१२९॥
रक्षसि त्वं सदाकालं सुपुष्टां चैव सर्वदा ।
करोषि क्लेशवहनं सततं मां रघूद्वह ॥१३०॥
मय्यपि क्लेशिते राम परत्र जायते क्षतिः ।
त्वत्कृते च सदा चाहं पिपासां क्षुधया सह ॥१३१॥
सुसहामि न सन्देहः परत्र च निशामय ।
मृतानां पृष्ठतः कश्चित् गतो नैवेह दृश्यते ॥१३२॥

करिष्यसे किमनया वद राघव साम्प्रतम्।
श्रुत्वा स नोक्तपूर्वं तु वाक्यं लक्ष्मणभाषितम् ॥१३६॥
विमना राघवस्तस्थौ सीता चापि वरानना ॥१३७॥

श्रीराम उवाच

एह्युत्तिष्ठस्व सौमित्रे व्रजामो दक्षिणां दिशम्।
सौमित्रिरब्रवीद् वाक्यं नाहं यास्ये कथञ्चन ॥१३९॥
व्रज त्वमनया सार्धं भार्यया कमलेक्षण ॥१४०॥
अनारतं दिवा चाहं रात्रौ चैव परन्तप ॥१४६॥
कर्म कर्तुं न शक्नोमि व्रज सौम्य यथासुखम् ॥१४७॥
मा मानुव्रज सौमित्र एको यास्यामि काननम्।
द्वितीया मे त्वियं सीता रामेणोक्तस्तु लक्ष्मणः ॥१५२॥
अथ गृह्य समुत्तस्थौ रामवाक्यं स लक्ष्मणः।
मर्यादापर्वतं प्राप्तः क्षेत्रसीमां परन्तप ॥१५३॥
इन्द्रमार्गां नदीं प्राप्य जटाजूटं नियम्य च।
विहस्य लक्ष्मणेत्युक्त्वा इदमर्पय मे धनुः ॥१८१॥
नापराध्यामि रामस्य कर्मणा मनसा गिरा।
उभौ हस्तौ मुखे कृत्वा साश्रुकण्ठोऽब्रवीदिदम् ॥१८६॥
स्पृष्टौ ते चरणौ देव मम नान्या गतिर्भवेत्।
ततः सीताब्रवीद् रामं त्यक्तः किमनुजस्त्वया।
वैषम्यं त्यज्यतां बाले लक्ष्मणे लक्ष्मिवर्धने ॥१८७॥
राघवस्त्वब्रवीत्सीतां नाहं त्यक्ष्यामि लक्ष्मणम् ॥
न कदाचिदपि स्वप्ने लक्ष्मणस्येदृशं प्रिये।
श्रुतपूर्वं च सुश्रोणि क्षेत्रस्यास्य विचेष्टितम् ॥१८८॥
अत्र क्षेत्रे न सौभ्रात्रं सर्वे हि स्वार्थतत्पराः।
परस्परं न मन्यन्ते स्वार्थनिष्ठैकहेतवः ॥१८९॥
न शृण्वन्ति पितुः पुत्राः पुत्राणां च तथा पिता।
न शिष्यो हि गुरोर्वाक्यं शिष्यस्यापि तथा गुरुः ॥
अर्थानुबन्धिनी प्रीतिर्न कश्चित्कस्यचित्प्रियः[1]॥"१९०॥

× × ×

"हत्वैनं राघवं सुप्तं सीतां पत्नीं विधाय च।
किं गच्छामि निजस्थानं विदेशं वापि दूरतः ॥
लक्ष्मणोऽपि धनुः सज्यं कृत्वा सन्धाय सायकम्।
अनुव्रजति पृष्ठस्थस्तस्य च्छिद्रं विलोकयन्[2] ॥"

× × ×

---

१. पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अध्याय १९ श्लो० १२६-१९० बालमण्डनतीर्थ-माहात्म्य।

२. स्कन्दपुराण नागरखण्ड अ० २०।

"ईदृक् क्षेत्रप्रभावोऽयं सौभ्रात्रेण विवर्जितः।
पञ्चक्रोशात्मके क्षेत्रे ये वसन्त्यत्र लक्ष्मण ॥७२॥
अपि स्वल्पं न सौभ्रात्रं तेषां सञ्जायते क्वचित् ॥७३॥
तावत्स्नेहपरो मर्त्यः तावद्वदति कोमलम्।
चमत्कारोद्भवं क्षेत्रं यावन्न स्पृशतेऽङ्घ्रिभिः ॥७४॥
येऽन्येपि निवसन्त्यत्र पक्षिणः पशवो मृगाः।
तेऽपि सौहार्दनिर्मुक्ताः सस्पर्धा इतरेतरम् ॥७५॥
कस्यचित्केनचित्सार्धं सौहार्दं नैव विद्यते।
तस्मान्नैवास्ति ते दोष ईदृक् क्षेत्रस्य संस्थितिः[1] ॥"७६॥

श्रीराम ने कहा लक्ष्मण पुष्कर से जल लाओ पादप्रक्षालन कर शीघ्र ही शयन करो। रात बीत जाने पर हम सब लोग दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान करेंगे। लक्ष्मण ने कहा सीता ही जल लाये। मैं सब समय दासता नहीं करूँगा। ये तो मुझसे भी अधिक पुष्ट और मोटी हैं, ऐसी पत्नी का क्या करोगे? क्या मरने पर यह साथ जायेगी। इसके लिए मैं भी कष्ट पाता हूँ। तुम्हारे लिए भी क्षुधा-पिपासा सहता हूँ। लक्ष्मण की इस प्रकार की बातें पहले कभी नहीं सुनी थीं। राम और सीता आश्चर्य में पड़कर विमना हो गये। फिर राम ने कहा आओ लक्ष्मण, हम लोग दक्षिण की ओर प्रस्थान करें। लक्ष्मण ने कहा हम नहीं जायेंगे। कमलेक्षण, आप इसके साथ जाओ। मैं अब दिन रात परिश्रम नहीं कर सकता। राम ने कहा अच्छा मेरे साथ मत जाओ। सीता ही जायगी। यह सुनकर लक्ष्मण उठे। मर्यादापर्वत के पास क्षेत्र की सीमा इन्द्रमार्गा नदी पर जाकर जटाजूट बाँधकर राम ने कहा लक्ष्मण लाओ मेरा धनुष दे दो। लक्ष्मण ने सोचा मैं मनसा, वाचा, कर्मणा कभी राम का अपराध नहीं करता हूँ। लक्ष्मण ने दोनों हाथों को मुख पर रखकर साश्रुकण्ठ होकर कहा मैं आपका चरणस्पर्श करके कहता हूँ मेरी आपको छोड़कर दूसरी गति नहीं है। सीता ने कहा क्या आपने अनुज को त्याग दिया। लक्ष्मिवर्धन लक्ष्मण बालक हैं। इनके प्रति वैषम्य त्याग दीजिये। राम ने कहा—सीते, मैं स्वप्न में भी लक्ष्मण को त्याग नहीं सकता, फिर भी अश्रुतपूर्व बात लक्ष्मण के मुख से सुनी है यह इस क्षेत्र का प्रभाव है। यहाँ सौभ्रात्र रहता ही नहीं। सभी स्वार्थतत्पर ही रहते हैं। परस्पर किसी का किसी से प्रेम नहीं होता। यहाँ पुत्र पिता की बात नहीं सुनते और पुत्रों की बात पिता भी नहीं सुनता। शिष्य गुरु को गुरु शिष्य की बात नहीं सुनते। सभी की अर्थानुबन्धिनी ही प्रीति होती है (पद्मपुराण सृष्टिखण्ड)।

स्कन्दपुराण में वहाँ लक्ष्मण सोचते हैं सोते हुए राम को मारकर सीता को पत्नी बनाकर अपने ही स्थान पर अथवा कहीं दूर चले जायेंगे और सज्य धनुष पर बाण रखकर राम का छिद्र अन्वेषण करते हुए पीछे जाते हैं। आगे चलकर श्रीराम ने बतलाया था कि इस पञ्चक्रोशात्मक क्षेत्र का यह प्रभाव है कि यहाँ सौभ्रात्र है ही नहीं। प्राणी तब तक ही स्नेहवान् रहता है, तभी तक कोमलभाषी होता है जब तक इस क्षेत्र का स्पर्श नहीं करता। यहाँ के पशु, पक्षी, मृग सभी सौहार्दमुक्त एवं परस्पर स्पर्धावान् ही होते हैं। यहाँ किसी का किसी के साथ सौहार्द नहीं होता है। अतः लक्ष्मण तुम्हारा कोई दोष नहीं है, यह इस प्रकार के क्षेत्र का ही प्रभाव है। जैसे शुभ क्षेत्र का शुभ प्रभाव होता है वैसे ही अशुभ क्षेत्र का अशुभ प्रभाव भी होता है, यह भी अर्थवाद ही है। किन्तु बुल्के ने स्थान के प्रभाव की चर्चा न कर सीता लक्ष्मण को दोषी दिखाने की कपटपूर्ण मनोवृत्ति से पाठकों को धोखा दिया है।

---

१. स्कन्दपुराण नागरखण्ड अ० २० हाटकेश्वर-माहात्म्य के अन्तर्गत बालमण्डनतीर्थ-माहात्म्य में लक्ष्मण के प्रति मार्कण्डेय मुनि की उक्ति।

परन्तु उक्त कथाओं का तात्पर्य तीर्थों के माहात्म्य-वर्णन में ही है। कहा जा चुका है कि वेदों में कर्म और उपासना की खूब महिमा वर्णित होने पर भी समुच्चय-विधान की दृष्टि से एक-एक की निन्दा की गयी है। इस प्रकार लक्ष्मण की सीता और राम में अखण्ड भक्ति होने पर भी उनके द्वारा भी स्वामि-द्रोह हो जाने पर उसकी भी निवृत्ति बालमण्डनतीर्थ स्नान से हो सकती है। दूसरी बात यह है **रामचरितमानस** में सुमित्रा ने बड़ी ही तत्परता से लक्ष्मण को उपदेश किया था। राग, रोष, ईर्ष्या, मद तथा मोह इनके वश में कभी भी न होना। सब प्रकार के विकारों को छोड़कर श्रीरामजी की सेवा करना।

राग रोष इरखा मद मोहू। जनि सपनेहुँ इनके बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करहु सेवकाई॥ (वा० रा० १।७४।३)

सेवाधर्म परम गहन है—

"सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।"

अति परिचय और अति सन्निधान से अवज्ञा, राग, रोष, ईर्ष्या आदि दोषों का सन्निवेश हो सकता है। इसी लिए सुमित्रा का सावधान करना उचित था। यहाँ पर और भी सावधानी वरतने का यह अर्थवाद है। अर्थात् इतने सावधान और संयमी के मन में भी क्रोध हो सकता है अतः अत्यन्त सावधान रहना उचित है।

शास्त्रों में कहा गया है—माता, दुहिता और स्वसा के साथ भी कभी विविक्तासन (एकान्त) में नहीं बैठना चाहिये। बलवान् इन्द्रियसमूह विद्वान् को भी आकृष्ट कर लेता है—

"मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥" (मनु० २।२१५)

इसी के अर्थवाद रूप में ब्रह्मादि बड़े-बड़े लोगों की कामवश्यता की बातें कही गयी हैं। इसी तरह पुराणों में भी लक्ष्मण के मन में क्रोध आदि का चित्रण करके अत्यन्त सावधानी बरतने का संकेत किया गया है। जिसे बुल्के ने उलटकर अपनी दूषित मनोवृत्ति से लक्ष्मण जैसे संयमी पर दोषारोप का साधन बना लिया है।

पुराणों में यह भी कथा है कि पूर्वोक्त प्रकार से लक्ष्मण के मन में विकार हुआ, परन्तु कुछ दूर जाने पर वह विकार शान्त हो गया और उन्होंनें बड़े दुःख के साथ राम से अपने दोषों का निवेदन कर दिया था। अन्त में राम के कुछ दूर पर स्थित किसी महर्षि से प्रश्न करने से ज्ञात हुआ कि जिस स्थल पर लक्ष्मण को मोह हुआ था, वहाँ कुछ अत्यन्त अनाचार-पूर्ण व्यक्तियों का निवास रह चुका है। उनके संस्कारों का वह प्रभाव था। ऐसे कई निकृष्ट स्थल होते हैं, जहाँ पहुँचते ही अनेक प्रकार की दुर्भावनाओं का जन्म होता है और कई स्थल ऐसे भी होते हैं जहाँ पहुँचते ही अत्यन्त उत्कृष्ट भावनाएँ जन्म लेती हैं। इसी लिए विशिष्ट देश और विशिष्ट काल का वर्णन शास्त्रों में मिलता है। इससे यह भी समझा जा सकता है कि जैसे नारद, काकभुशुण्डि, गरुड़ आदि महापुरुषों में माया का प्रभाव कभी कभी पड़ा करता है। उसी तरह लक्ष्मण, यद्यपि राम के बहिश्चर प्राण ही थे— **'नित्यं प्राणो बहिश्चरः'** (वा० रा० ३।३४।१३)—तथापि माया का प्रभाव उनपर भी पड़ा। केवल उत्कर्ष दिखाने के लिए ही पुराणों में वैसा वर्णन है।

वाल्मीकिरामायण आर्ष इतिहास है। उसके द्वारा जो लक्ष्मण का स्वरूपवर्णन है वही ऐतिहासिक तथ्य है। तदनुसार—

"नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥" (वा० रा० ४।६।२२)

मैं सीता के केयूर और कुण्डलों को नहीं पहचानता क्योंकि मेरी दृष्टि ऊपर के अङ्गों पर गयी ही नहीं— मैं नूपुरों को पहचानता हूँ, क्योंकि नित्य ही उनके चरणों का वन्दन करता हूँ, अतः उन्हें पहचानता हूँ। **खोतानी रामायण** का यह कथन कि राम और लक्ष्मण दोनों का विवाह सीता से हुआ है, यह सर्वथा अशुद्ध है और वहाँ के बहुपति-प्रथा के संस्कारों का प्रभाव है। वाल्मीकिरामायण के उपर्युक्त श्लोक को प्रक्षिप्त कहना असङ्गत है, क्योंकि टीकाकारों ने इसपर व्याख्या की है। अन्य पाठों में उनका न मिलना प्रक्षेप होने में हेतु नहीं है। अवतारवाद सभी पाठों में मिलता है तब भी बुल्के आदि उसे प्रक्षिप्त ही मानते हैं। यह सब कथन भारतीय-संस्कृति-द्वेषमूलक ही है। अतएव **भावार्थरामायण** की यह कथा ठीक ही है, जिसमें कहा गया है कि राम किसी दिन लक्ष्मण की रक्षा में सीता को छोड़कर बाहर गये थे। सीता को नींद आ गयी। नींद में ही उनके कपड़े अस्त-व्यस्त हो गये, जिससे उनका शरीर अनावृत हो गया। साधना में लीन होने के कारण लक्ष्मण ने उधर ध्यान नहीं दिया। राम ने आकर लक्ष्मण से पूछा कि स्त्री का रूप देखकर किसका मन स्थिर रह सकता है। लक्ष्मण ने उत्तर दिया "रामभक्त का ही मन इससे प्रभावित नहीं होता।" लक्ष्मण किसी मन्दिर में रहकर १२ वर्ष तक तप करते हैं, अन्त में सीता कहती है कि मैंने स्वप्न में तुम्हें कलसापुर के राजा से युद्ध करते हुए देखा है। उसमें तुम्हारी जीत हुई थी। लक्ष्मण स्वप्न की सचाई की परीक्षा के लिए उस ओर चल पड़े। सीता ने महल छोड़कर लोमड़ी, अञ्जीर-वृक्ष तथा जलस्रोत बनकर उनको रोका, पर लक्ष्मण नहीं रुके। वहाँ जाकर उन्होंनें युद्ध किया, फलस्वरूप उनका वध हो गया। पीछे राम ने जाकर उन्हें जिला लिया।

आदिवासियों में प्रचलित उक्त रामकथा का तात्पर्य लक्ष्मण की संयमशीलता का वर्णन करने में ही है। शास्त्रसम्बन्धशून्य कथाओं में विकृतियाँ अनेक प्रकार से आ जाती है, यह भी इसी का उदाहरण है। सर्वथाऽपि रामायण के विविध पात्रों और धटनाओं की वास्तविकता जानने के लिए **वाल्मीकिरामायण** का आश्रयण उचित है।

शूर्पणखा

४६३ वाँ अनुच्छेद। शूर्पणखा रावण की भगिनी तथा विद्युज्जिह्व की पत्नी थी। विद्युज्जिह्व के मरने पर वह खर के पास रहती थी। खर चाहे मातृस्वसेय (मौसेरा भाई) ही हो तब भी भाई ही हुआ। अतः **"भ्रातरौ खरदूषणौ"** (वा० रा० ३।१७।२२) के अनुसार खर और दूषण को भाई कहना असङ्गत नहीं है।

विद्युज्जिह्व का वध रावण की दिग्विजय-यात्रा में रावण द्वारा हुआ (वा० रा० ७।२३।१७,१८)। **रामकेर्ति** के अनुसार उसका नाम वर्गासींगा था। रावण उसे लङ्का की रक्षा में नियुक्त करके कहीं गया हुआ था। उसने अपनी जिह्वा को फैला कर लङ्का को ढँक लिया था। रावण ने उसे भी शत्रु का उपद्रव समझ कर अनजान में उसे काट डाला। उस समय शूर्पणखा गर्भिणी थी। वह दर्सासींगा को जन्म देती है। वह पिता का बदला लेने के लिए शक्तिप्राप्त्यर्थ तपस्या करता है। **पउमचरियं** के अनुसार उसका नाम चन्द्रनखा था। उसका विवाह विद्याधरवंशीय राजकुमार खरदूषण से होता है। उसका पुत्र शम्बूक लक्ष्मण द्वारा मारा जाता है।

राफल्स हस्तलिपि के अनुसार शम्बूकवध के बाद लक्ष्मण शूर्पणखा से विवाह करते हैं। **पउमचरियं** के अनुसार लक्ष्मण उसपर अनुरक्त थे। किसी बहाने से वे राम से अलग होकर उसे ढूँढते हैं। उसे न पाकर आतुर होते हैं (४३, ४८)। यह सब भी राम की पवित्र कथा में विकृति पहुँचाने का प्रयास है।

सारलादास के महाभारत वनपर्व में सीता सखी पाने की इच्छा से चाहती है कि लक्ष्मण शूर्पणखा से विवाह करें। राम भी अनुरोध करते हैं, परन्तु लक्ष्मण अस्वीकार करते हैं और उसके नाक-कान काट लेते हैं। यह भी अंशतः **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध ही है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार शूर्पणखा राम से उनकी पत्नी बनने का प्रस्ताव करती है। राम उसे लक्ष्मण के पास भेजते हैं। वे पुनः उसे राम के पास वापस भेजते हैं। राम की अस्वी-

कृति से वह सीता पर आक्रमण करती है। तब राम की आज्ञा के अनुसार लक्ष्मण उसकी नाक और कान काट देते हैं। **भागवत** (९।१०।९), **गरुड़पुराण** (अध्याय १४३), **पद्मपुराण** (पातालखण्ड अध्याय ३६) तथा **देवीभागवत** (३।२८) में भी यही वृत्तान्त उल्लिखित है। **नृसिंहपुराण** के अनुसार उसके एक पत्र की भी चर्चा है, जिसमें वह कहती है—

"अतीव निपुणा चाहं रतिकर्मणि।"

मैं रतिकर्म में अति निपुण हूँ। राम भी पत्र द्वारा ही लक्ष्मण को संकेत करते हैं कि उसके नाक-कान काट दिये जायें। साहित्यिकों के यहाँ पत्र का भी रसाङ्गरूप में सन्निवेश है। अतः यह विरुद्ध नहीं है। अतएव **भावार्थरामायण** (३।८) में भी उसका उल्लेख ठीक ही है। **सेरीराम** के अनुसार वह खरदूषण के पास जाकर कहती है मैंने लक्ष्मण का प्रेमप्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था, इसलिए उसने मेरे पुत्र का वध कर दिया है। मन्त्री के परामर्शानुसार वह सुन्दर रूप धारण कर राम को आकर्षित करने का प्रयत्न करती है। राम उसे लक्ष्मण के पास भेजते हैं। पर साधना में लीन लक्ष्मण उसकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करते। पुनः राम के पास जाकर वह सीता का अपमान करती है तब राम पत्र द्वारा लक्ष्मण को उसके नाक-कान काटने का आदेश देते हैं। **कम्बरामायण** (३।५), **आनन्दरामायण** (१।७।५५) आदि के अनुसार लक्ष्मण ने शूर्पणखा के स्तन भी काट दिये थे। किसी में बाल काटने की बात भी है। **बालरामायण** अङ्क ५ के अनुसार वह वनवास के पूर्व ही राम और लक्ष्मण द्वारा ठुकरायी गयी थी। जैनरामायणों में शूर्पणखा के विरूपकरण का वृत्तान्त नहीं है। वह लक्ष्मण पर मोहित होती है, असफल होने पर अपने नाखूनों से ही शरीर क्षत-विक्षत कर धूलिधूसरित होकर बाल बिखेर कर अपने भवन में विलाप करती है। पूछने पर कहती है कि शम्बूकहन्ता लक्ष्मण ने मेरा आलिङ्गन किया तथा मुझसे बलात्कार करना चाहा, किन्तु मैं छुड़ा कर भाग आयी। यह सब प्राचीन कथा में कुछ नवीनता लाने का प्रयासमात्र है, जो सर्वथा असंगत है।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार विरूपित होकर वह खर के पास जाती है। वह पहले १४, पश्चात् १४ सहस्र राक्षसों को भेजता है और स्वयं भी जाता है। राक्षसों की सेना को आते देख राम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वे सीता को लेकर गुहा का आश्रयण करें—

"तस्माद् गृहीत्वा वैदेहीं शरपाणिर्धनुर्धरः।
गुहामाश्रय शैलस्य दुर्गां पादपसङ्कुलाम्॥" (वा० रा० ३।२४।१२)

बल्कि कहते हैं—"गुफा में छिप जायें" पर यह श्लोकार्थ नहीं है। राम अनेकों राक्षसों का, दूषण, त्रिशिरा तथा खर का भी वध कर देते हैं। शूर्पणखा रावण के पास जाकर यह वृत्तान्त कहती है। गौड़ीय पाठ के अनुसार गान्धर्वास्त्र के प्रभाव से राक्षस अपने साथियों को रामरूप देखकर आपस में ही एक दूसरे को मारते हैं। **ब्रह्मवैवर्त** में लक्ष्मण द्वारा खर और दूषण के वध की कथा है। इसका समाधान कल्पभेद से करना चाहिये। **सेरीराम** में भी वैसी ही कथा है। उसके अनुसार "दरकालहसीन" खरदूषण का पुत्र रावण के पास जाता है। रामनाटकों के अनुसार शूर्पणखा मन्थरा अथवा कैकेयी का रूप धारण कर राम के निर्वासन का सफल प्रयास करती है। **कृत्तिवास-रामायण** तथा **भावार्थरामायण** में सीता से मिलने वह अशोकवाटिका में आयी थी (५।१०)। श्यामदेश के **ब्रह्मचक्र** के अनुसार शूर्पणखा ही कनकमृग बनी थी। **आश्चर्यचूडामणि** के अनुसार वह सीता बन जाती है। **कृत्यारावण** में वह पहले गौतमी पश्चात् सीता बनती है। **ब्रह्मचक्र** के अनुसार शूर्पणखा रावण का चित्र बनाने के लिए सीता को प्रेरित करती है और सीतात्याग का कारण बनती है। **ब्रह्मवैवर्त** के अनुसार राम से ठुकराये जाने पर राम को शाप देती है, तुम्हारी भार्या का अपहरण होगा—

"मम शापात्तथा रामो हृतभार्यो भविष्यति।" (ब्रह्मवै० कृष्णजन्मखण्ड ६२।४४)

और वह पुष्कर में तपस्या करने जाती है। वहाँ वह ब्रह्मा से वरदान प्राप्त करती है। अपने शरीर को अग्नि में जला कर कुब्जा बनकर कृष्ण को प्राप्त करती हैं। जिस किसी तरह भी भगवान् में मन लगाकर प्राणी को सद्गति मिलती है। भगवान् राम तथा भगवान् कृष्ण का स्वरूप दिव्य शक्ति से विशिष्ट ब्रह्मरूप ही था। गुणकृत आवरण-शून्य होने से वे निरावरण परब्रह्मरूप ही थे, अतः काम, क्रोध, भय और स्नेह जिस किसी तरह भी भजने से कल्याणकारी होते हैं—

"नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतः प्रभोः।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः॥
कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते॥" (भाग १०।२९।१४,१५)

जटायु

४७० वें अनु० में बुल्के यह मानते हैं कि तीनों पाठों में जटायु की राम से भेंट सीता-हरण से पहले हुई थी तथा उसने सीता की रक्षा की प्रतिज्ञा की थी। पर तब भी वे उसे प्रक्षेप मानते हैं और उसमें हेतु देते हैं कि सीता को ढूंढते हुए राम ने जटायु को देखा तो यह समझा कि यह कोई राक्षस है। इसी ने सीता को खा लिया होगा (वा० रा० ३।६७।११)। परन्तु उनकी समझ में यह नहीं आता है कि शोक-व्याकुल होने से राम को ऐसा भ्रम हुआ था कि सीता मेरी परीक्षा लेने के लिए कहीं छिप गयी है (वा० रा० ३।६१।१६,१७)।

आगे सीता स्वयं जटायु से राम के लिए सन्देश भी कहती हैं। यह सब पूर्वपरिचय का ही सङ्केत है। जटायु रावण की निन्दा कर उसे युद्ध के लिए ललकारता है और युद्ध में नखों से रावण को आहत करता है। धनुष छीनकर नष्ट कर देता है। रथ के खरों का वध कर रथ को तोड़ देता है। अन्य राक्षसों और सारथि को मार डालता है। रावण भी भूमि पर गिर जाता है—"**पपात भुवि रावणः**" (वा० रा० ३।५१।१३)। फिर वह उठ कर आकाश में सीता को ले जाता है। **जटायु** उसकी बायी भुजाएँ काट डालता है, किन्तु वे फिर उत्पन्न हो जाती हैं। अन्त में वह सीता को छोड़कर जटायु के पक्ष, पाद तथा पार्श्व को काटकर गिरा देता है। सीता जटायु के पास पितृस्नेह से विलाप करती हैं—

"अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता।" (वा० रा० ३।५१।४४)

इससे भी प्राचीन परिचय ध्वनित होता है। आश्चर्य है कि जो बुल्के राम के विष्णु अवतार होने में विश्वास नहीं करते वे यह विश्वास कैसे कर लेते हैं कि रावण की भुजाएँ कट गयीं और फिर से नवीन भुजाएँ उत्पन्न हो गयीं और यीशू के चमत्कारों में कैसे विश्वास करते हैं।

रावण अपने जीवन का अन्त करने के लिए सीता को केशों से पकड़ कर आकाशमार्ग से प्रस्थान करता है। केशग्रहण के कारण चराचर वित्रस्त हो गया। घोर तम से आवृत हो गया। वायु निश्चल और सूर्य निष्प्रभ हो गये। श्रीब्रह्मा ने दिव्यचक्षु से रावण का विनाश देखकर अवतार-कार्य की सफलता देखी। ऋषि लोग प्रहृष्ट और प्रव्यथित हो गये। रावण का संहार देख प्रसन्न हो गये परन्तु सीता का तात्कालिक दुःख देखकर प्रव्यथित हुए (वा० रा० ३।५२।८-११)।

काश्मीरीरामायण में यह देखकर कि रावण तलवार से जटायु को मारनेवाला है सीता कहती है इसे रक्त से सने पत्थर खिलाइये वह गिर जायेगा। रावण वैसा ही करता है। किसी कथा में रावण अपनी जाँघ से रक्त

निकाल कर रक्त से सना पत्थर खिलाता है—पाश्चात्य वृत्तान्त नं० ३। इसमें सीता का उद्देश्य यही रहा होगा कि इससे जटायु कम से कम जीवित तो रहेगा। हिन्देशिया के **सेरीराम** के अनुसार सात दिन युद्ध करने के बाद दोनों एक दूसरे को अपना मर्मस्थान बताते हैं। पर रावण धोखा देकर अपने पैर का अँगूठा बतलाता है। सीता पक्षियों की भाषा में जटायु को मर्मस्थान न कहने का अनुरोध करती हैं, पर जटायु अपने पङ्ख के अग्रभाग को मर्मस्थान बताकर मारा जाता है। सीता अपनी अँगूठी उसके मुख में रख देती है। **तत्त्वसंग्रहरामायण** (३।५) तथा **भावार्थ-रामायण** (३।१७) में भी यह कथा है। **रामकेर्ति** एवं **रामकियेन** में सीता की अँगूठी छीन कर रावण उससे जटायु को मारता है और वह गिर जाता है। **रामोपाख्यान** (महाभारत) के अनुसार राम-लक्ष्मण कनकमृगवध के बाद वापस आते हुए जटायु से भेंट करते हैं। उनसे वह कहता है कि रावण सीता का अपहरण करके दक्षिण दिशा की ओर चला गया। पर **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार पहले वे पर्णशाला को शून्य देखते हैं। फिर सीता की खोज करते हैं। आगे युद्ध का चिह्न (टूटा रथ) देखकर राक्षसों द्वारा सीताहरण एवं वध की आशङ्का करते हैं। आगे बढ़कर आहत रक्तार्द्र जटायु को देखते हैं। बुल्के इन वर्णनों में बहुत अंशों को छोड़ते जाते हैं, क्योंकि अधिकांश भागों को प्रक्षेप मान कर वे चलते हैं। जटायु राम और लक्ष्मण के सामने ही प्राण त्याग देता है। राम विधिवत् उसकी अन्त्येष्टि करते हैं। **उदात्तराघव** के अनुसार जटायु रक्तयुक्त चोंच से पत्तों पर लिख कर राम से रावण को मारने का अनुरोध करता है तथा किसी ऋषि के हाथ पत्र को राम के पास भेज देता है।

बुल्के के अनुसार राम मृत जटायु के प्रति शुभकामना प्रकट हुए कहते हैं—

"मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान्।" (वा० रा० ६८।३०)

परन्तु इस वचन से शुभकामना तो प्रकट नहीं होती, किन्तु साधिकार अनुज्ञा प्रकट होती है। राम कहते हैं कि मेरी आज्ञा से तुम सर्वोत्कृष्ट लोकों को प्राप्त करो। ऐसी आज्ञा ईश्वर ही दे सकता है, अन्य नहीं। शुभकामना में तो प्रार्थना होती है कि ईश्वर तुम्हें सद्गति प्रदान करें। तिलकटीका में कहा गया है कि जटायु को सायुज्य मुक्ति प्राप्त हुई थी। इससे स्पष्ट होता है कि सङ्कल्पमात्र से कर्मों में अनधिकृत एवं साधनहीन जटायु को अनुत्तम ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाले राम सर्वथा परमेश्वर हैं। एतावता जो कहते हैं कि राम का ज्ञान माया से आवृत था, उनका मुख ध्वस्त हो जाता है। शोकादि का तो नटन नाट्यमात्र ही है। अतएव **पद्मपुराण** में कहा गया है—

"संस्कारमकरोत्तस्य रामो ब्रह्म विधानतः।
स्वपदं च ददौ तस्मै सोऽपि रामप्रसादतः॥
हरेः सामान्यरूपेण प्रययौ परमं पदम्।"

जटायु का श्राद्ध, तर्पण आदि भी राम ने विधिपूर्वक किया। अतएव **अध्यात्मरामायण** (२।८) में उसके दिव्य रूप धारण करने की बात कही गयी है।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार जटायु दशरथ का सखा तथा सम्पाति का भाई था। ये दोनों विनतासुत अरुण के पुत्र थे। दोनों होड़ में सूर्य के पास पहुँच गये। सम्पाति ने अनुज को किरणों से व्याकुल देख कर उसे अपने पङ्खों से ढँक लिया। इस तरह जटायु तो बच गया पर सम्पाति के पङ्ख जल गये। वह विन्ध्य पर्वत पर गिर गया। सीताहरण के समय जटायु की आयु ६०००० वर्ष की थी (वा० रा० ३।५०।२०)। **महाभारत के रामोपाख्यान** में जटायु को दशरथ का सखा कहा गया है। **पद्मपुराण** के पतालखण्ड तथा **कृत्तिवासरामायण** (१।२७) में कहा गया है कि कभी अयोध्या में अनावृष्टि हुई थी। नारद से उसका कारण रोहिणी नक्षत्र पर शनि का दृष्टिपात जानकर दशरथ शनि से युद्ध करने गये। शनि की दृष्टि से दशरथ का रथ टूट गया, जटायु ने उसे सँभाला। दशरथ की विजय हुई। फलस्वरूप अग्नि को साक्षी करके दोनों ने मित्रता की।

पउमचरियं के अनुसार दण्डक ही जटायु था। **वाल्मीकिरामायण** उत्तरकाण्ड के अनुसार जिसने उशना की पुत्री अरजा से बलात्कार किया था, जिसे भार्गव के शाप से इन्द्र ने समस्त राज्य के साथ भस्म कर दिया था एवं जिससे दण्डकारण्य प्रसिद्ध हुआ था। **पउमचरियं** के अनुसार दण्डक एक श्रमण का धैर्य देख कर श्रमणों का आदर करने लगा। किसी यात्री ने निर्ग्रन्थक मुनि का वेष धारण कर अन्तःपुर में अनधिकार प्रवेश किया। राजा ने क्रोध में आकर सब श्रमणों को यन्त्र में पेरने का आदेश दिया। एक श्रमण ने क्रोधाग्नि से समस्त शहर को भस्म कर दिया। दण्डक भटक-भटक कर मर गया तथा इस गीध के रूप में प्रकट हुआ। अन्त में मुनि ने गीध को सदुपदेश दिया। वह श्रावक धर्म में सम्मिलित हुआ। मुनि ने सीता से निवेदन किया कि वह उसकी रक्षा करें। उसके सिर की जटाएँ देखकर राम ने उसे जटायु कहा। रामायण, महाभारत तथा पुराणों की कथाओं को विकृत रूप में वर्णन करने का यह भी एक उदाहरण है।

सीता की खोज

४७३ वें अनु० में सीता की खोज पर विश्लेषण है। **वाल्मीकिरामायण** की कथावस्तु का संक्षिप्त वर्णन है। बुल्के के अनुसार अयोमुखी-वृत्तान्त सूर्पणखा के वृत्तान्त की आवृत्ति मात्र है। पर यह कथन निरर्थक है, क्योंकि दो सामान्य घटनाओं का होना असम्भव नहीं है। कबन्ध राम और लक्ष्मण द्वारा भुजाएँ काटी जाने के बाद भूमि पर गिर गया। अनन्तर उसने दो शापों का उल्लेख किया। कबन्ध भयानक रूप धारण कर ऋषियों को सताया करता था। स्थूलशिरा ऋषि ने उसे शाप दिया कि तुम यही भयंकर रूप धारण किये रहो। विनय करने पर उन्होंने कहा—जब राम तुम्हारी भुजाएँ काटकर तुम्हारा शरीर जला देंगे तब फिर तुम शुभ रूप ग्रहण करोगे। दूसरी कथा के अनुसार वह दनु का सुन्दर पुत्र था। उग्र तप से उसने दीर्घायु होने का ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया। इन्द्र के वज्र से उसका सिर उदर में धँस गया। ब्रह्मा के वरदान को ध्यान में रखकर इन्द्र ने उसे एक योजन लम्बी भुजाएँ देकर उदर में मुख बनाकर आश्वासन दिया कि राम और लक्ष्मण द्वारा तुम्हारी भुजाएँ काटी जाने पर तुम स्वर्ग पाओगे। राम-लक्ष्मण द्वारा जलाये जाने पर चिता से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। उसने राम को सुग्रीव के पास जाने का परामर्श दिया। **रामोपाख्यान** में इसी का संक्षिप्त वर्णन है। पर उसके अनुसार वह दिव्य रूप धारण करके कहता है कि मैं विश्वावसु गन्धर्व हूँ। ब्रह्मशाप से राक्षस बना था। रावण ने सीताहरण किया है। **अध्यात्मरामायण** तथा **आनन्दरामायण** के अनुसार भी वह रूप-यौवनदर्पित गन्धर्व था। अष्टावक्र का उपहास करने पर वह राक्षस हुआ। इन्द्र के वज्र से उसकी उक्त अवस्था बनी। उसने राम को शबरी के पास जाने का परामर्श दिया (अ० रा० ३।१०।१-३)। मानस के अनुसार वह दुर्वासा के शाप में कबन्ध-गति को प्राप्त हुआ (रा० मा० ३।३३)। इन आर्ष कथाओं का कल्पभेद से ही समाधान करना युक्त है। जैसे जय और विजय तथा शिवजी के गण तथा प्रतापभानु आदि विभिन्न कल्पों में रावण हुए थे वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। **सेरीराम** में दो पक्षियों की कथा है। एक राम का उपहास करता है, दूसरा सहायक बनता है। पहले की चार पत्नियाँ हैं। वह कहता है कि राम अपनी एक पत्नी की भी रक्षा नहीं कर पाये। इसपर राम उसे अन्धा बना देते हैं, जिससे उसकी पत्नियाँ चली जाती हैं। अन्य पक्षी रावण द्वारा सीता हरण का समाचार देता है। वरदान में वह लम्बी ग्रीवा माँगता है जिससे सुगमता से भोजन प्राप्त कर सके। उसे एक बालक फँसा कर बाजार में बेचने जाता है। राम उसे अपनी अंगूठी देकर खरीद लेते हैं। राम लम्बी ग्रीवा के बदले उसे चार मादाएँ प्रदान करते है जो उसके लिए भोजन ले आती रहेंगी। बुल्के के अनुसार भारतीय आदिवासी वृत्तान्तों में यह कथा मिलती है।

बलरामदास की रामायण के अनुसार राम ने पम्पासरोवर में चक्रवाक-चक्रवाकी को क्रीड़ा करते देखकर पास जाकर सीता का समाचार पूछा। उसने निन्दा करते हुए कहा कि तुम यह भी नहीं जानते कि इस समय बाधा

डालना अनुचित है। राम ने शाप दिया कि तुम दोनों का मिलन कभी न होगा। आराधना करने पर राम ने शापानुग्रह किया कि दिन में ही तुम्हारा मिलन होगा। रात में तुम विरह सन्तप्त रहोगे। किसी व्याध ने दोनों को फँसा कर एक टोकरी में बन्द कर दिया। वे कहने लगे कि हमारे साथ रहने से राम का कथन असत्य हो जायगा। किन्तु रात के पूर्व ही टोकरी अपने आप खुल गयी, दोनों अलग हो गये (अरण्यकाण्ड में)। किष्किन्धाकाण्ड में माल्यवान् पर्वत पर विरही राम को देखकर बगुले ने कहा तुम कैसे महात्मा हो जो रोते हो ? राम ने सीता का समाचार पूछा तो उसने आश्वासन दिया। लङ्का का रावण सीता को ले गया है। उनको मैंने रोते देखा है। उनका अश्रुजल मुझपर पड़ा और मैं सफेद हो गया। दुर्गा मुझपर प्रसन्न होंगी और फिर सीता मिल जायगी। राम ने उसे वर दिया तो उसने कहा कि वर्षा में भोजन मिलने की कठिनाई पड़ती है। मुझे यहाँ बैठे-बैठे आहार मिलना चाहिये। राम ने कहा कि तुम्हारी मादा बरसात में भोजन ला देगी। बगुले ने कहा कि वह मुझसे छोटी है। उसका जूठन खाकर मैं उपहास का पात्र बन जाऊँगा। राम ने कहा पति-पत्नी एक ही हैं। बड़ा छोटा कोई नहीं। अन्त में राम ने कहा कि कार्तिक शुक्ल दशमी से पूर्णिमा तक कोई आमिष का सेवन नहीं करेगा। तुम्हारे आदर में इस व्रत का नाम बकपञ्चक रखा जायगा। बाद में कुक्कुट ने भी सहानुभूति व्यक्त करते हुए राम से कहा तुम क्यों रोते हो ? यहाँ अकेले क्यों रहते हो ? राम ने सीताहरण की सब कथा सुना दी और उसे वर दिया कि तुम्हारे सिर पर सप्तशाखा-वाला लाल मुकुट होगा। जो तुमको मारेगा वह मेरा शत्रु होगा। सम्भवतः इसी कारण उड़ीसा में कुक्कुट को राम पक्षी कहा जाता है।

असमीया गीतिरामायण में पीपल वृक्ष से सीता का समाचार पूछे जाने का वृत्तान्त मिलता है। सन्ताल, बिर्होर और मुण्डा जातियों में सीता की खोज के वर्णन के प्रसंग में बगुले, गिलहरी और बेरवृक्ष की कथाएँ हैं। किसी वृक्ष की डाल पर गिलहरी रो रही थी। राम ने उससे रोने का समाचार पूछा तो उसने कहा कि उन्हीं के लिए तो मैं रो रही हूँ। रावण ने सीता-हरण किया है। राम ने पीठ थपथपाकर वर दिया कि कितनी भी ऊँचाई से गिरने पर तुम्हें चोट न लगेगी। सन्ताली कथा में बेर में चिथड़ा लटका हुआ देखकर राम ने पूछा, बेर ने बताया कि इसी रास्ते से रावण सीता को ले गया। मैंने छुड़ाने का प्रयत्न किया भी, परन्तु मुझे उनकी साड़ी के चिथड़े के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। राम ने आशीर्वाद दिया तुमको कितना भी काटने पर तुम्हारा कोई भी नाश नहीं कर सकता। इन सब कथाओं का इतना ही सार है कि राम और उनकी कथा बहुत व्यापक है। भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न जातियों में, यहाँ तक कि पशु-पक्षियों में भी उनकी चर्चा रही है।

शिवपुराण (सतीखण्ड अध्याय २४–२६) में सती द्वारा सीता का रूप धारण कर राम की परीक्षा का वृत्तान्त है। **रामचरिमानस, भावार्थरामायण** (३।२०) तथा **आनन्दरामायण** (१।७।१४) में इसका विस्तार है। वाल्मीकिरामायण से अविरुद्ध आर्षग्रन्थ पर आधारित यह कथा प्रामाणिक ही है। विरही राम से नारद के मिलने और भक्ति वरदान पाने की कथा **रामचरितमानस** तथा **रामगीतगोविन्द** (४।७) इस परम्परा की होने से प्रामाणिक ही है। **तोरवेरामायण** (३।२) के अनुसार भरत को दुखी होते देखकर जाबालि राम के पास जाते हैं। राम भी भरत का समाचार न मिलने पर चिन्तित थे। जाबालि ने सान्त्वना दी और हरिश्चन्द्र की कथा सुनायी।

४७७ वें अनु० में शबरी की कथा को बुल्के प्रक्षेप मानते हैं। उनके अनुसार आधिकारिक कथावस्तु से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। पर वे यह सिद्धान्त नहीं जानते कि "**वस्तुसत्त्वं प्रयोजनं नापेक्षते**"—अर्थात् वस्तु-सत्ता प्रयोजन की अपेक्षा नहीं रखती है। कई वस्तुओं का हमसे कुछ प्रयोजन नहीं हैं, पर वे हैं। इसी तरह भले ही कथा का सम्बन्ध न हो तो भी वह अरण्य में राम से मिली। उसका राम से वार्तालाप हुआ। तब महर्षि उसका वर्णन क्यों न करते ? परन्तु प्रकृत प्रसङ्ग में तो जब राम वृक्षों और लताओं से भी सीता का समाचार पूछ रहे हैं तब धर्मचारिणी

शबरी या श्रमणी से क्यों न मिलते और इसकी कथा वाल्मीकिरामायण में क्यों न आती ? इसके अतिरिक्त कबन्ध ने दिव्यरूप धारण कर राम को सीता के अन्वेषण का मार्ग बताते हुए मतङ्ग के आश्रम में जाने का संकेत किया था। उसने मतङ्गाश्रम के विविध चमत्कारों का वर्णन करके कहा कि महर्षि मतङ्ग और उनके शिष्यगण तो परम धाम चले गये, पर परिचारिणी श्रमणी शबरी अब भी वहीं है। वह चिरजीविनी है। धर्मनिष्ठ है। सर्वलोकनमस्कृत देवोपम तुमको देखकर स्वर्गलोक जायगी—

"तेषां गतानामद्यापि दृश्यते परिचारिणी।
श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी॥
त्वां तु धर्मे स्थिता नित्यं सर्वलोकनमस्कृतम्।
दृष्ट्वा देवोपमं राम स्वर्गलोकं गमिष्यति॥" (वा० रा० ३।७३।२६,२७)

ऐसी स्थिति में उक्त सर्ग और उसकी कथाओं को प्रक्षिप्त कहना साहसमात्र है।

जब राम शबरी के आश्रम पहुँचे तो उसने राम का आतिथ्य किया। राम उसकी तपश्चर्या के संबन्ध में प्रश्न करते हैं। उसने बताया कि जब आप चित्रकूट में थे तभी यहाँ के ऋषि, जिनकी सेवा में मैं थी, स्वर्ग चले गये। जाते समय उन्होंने कहा था—लक्ष्मण के साथ राम यहाँ आयेंगे; तुम उनका आतिथ्य करके दिव्य लोकों को प्राप्त करोगी। उसने यह भी कहा था कि आज मेरा जप, तप देवश्रेष्ठ आपकी पूजा से सफल हो गया। स्वर्ग भी निश्चित हो गया—

"अद्य मे सफलं तप्तं स्वर्गश्चैव भविष्यति।
त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ॥" (वा० रा० ३।७४।१२)

यहाँ शबरी ने राम को देववर—देवश्रेष्ठ विष्णु—कहा है। इसी लिए बुल्के ने इस सर्ग और कथा को ही प्रक्षेप कहने का यत्न किया है। राम, मैं आपके सौम्य चक्षुओं से पूत होकर आपकी कृपा से अक्षय लोकों को जाऊँगी—

"तवाहं चक्षुषा सौम्य पूता सौम्येन मानद।
गमिष्याम्यक्षयांल्लोकांस्त्वत्प्रसादादरिन्दम॥" (वा० रा० ३।७४।१३)

इससे भी राम की ईश्वरता स्पष्ट होती है। इतना ही नहीं किन्तु **अध्यात्मरामायण, रामचरितमानस** आदि की कथाओं का मूल भी स्पष्ट है। वह कहती है कि धर्मज्ञ महाभाग महर्षियों ने जिनकी मैं परिचर्या करती थी, मुझसे कहा था कि तुम्हारे आश्रम में राम और लक्ष्मण आयेंगे। तुम उनका सत्कार करके दिव्य लोकों को प्राप्त करोगी। सो मैंने पम्पातीर समुद्भूत विविध वन्य पदार्थ आपके लिये सञ्चित कर रखे हैं (वा० रा० ३।७४ १६-१८)।

इससे यह सूचित होता है कि अपने गुरु की आज्ञा के अनुसार राम के आतिथ्य के लिए पुण्य फल, मूल आदि का संग्रह करती कई दिनों से वह प्रतीक्षा कर रही थी और उत्तम उत्तम वृक्षों और लताओं के फलों, मूलों की परीक्षा करके उनका संग्रहण करती थी।

इसी का उपबृंहण **पद्मपुराण** में है। राम ने कबन्ध से सुने हुए उस आश्रम के चमत्कारों को देखना चाहा। उसने सब दिखाया और बताया कि यहाँ मेरे गुरु महर्षि ने मन्त्रपूर्वक अपने नीड (शरीरपञ्जर) को हुत किया था। यहीं वेदी पर वे अपने कम्पयुक्त हाथों से पुष्पोपहार अर्पण करते थे। उनके तप के प्रभाव से अतुलप्रभा वेदी आज भी अपनी दिव्यश्री से दिशाओं को प्रकाशित कर रही है। उपवासश्रम से स्नान 'अभिषेक' के लिए जाने में असमर्थ होने से उनके लिए चिन्तन मात्र से सप्त सागर यहीं आकर उपस्थित हो गये थे। उनके द्वारा स्पृष्ट पुष्प

अब तक भी परिम्लान नहीं हुए। फिर उसने कहा कि अब मैं आपकी अनुज्ञा से शरीर त्याग कर उन महर्षियों के पास जाना चाहती हूँ। राम ने कहा भद्रे, मैं तुम्हारे द्वारा अर्चित हुआ हूँ। यथासुख जाओ। चीर-कृष्णाजिनधारिणी शबरी राम से अनुज्ञात होकर अग्नि में अपने आप को आहुत कर ज्वलत्पावकतुल्य दिव्याभरणधारिणी, दिव्यमाल्यानुलेपना तथा दिव्याम्बरधारिणी होकर उस दिव्यधाम में चली गयी जहाँ महर्षि विहरण करते हैं (वा० रा० ३।७४। २८-३५) बुल्के कहते हैं—शरभङ्ग के प्रसंग की भाँति यहाँ भी राम को महान् अतिथि के रूप में देखा गया है, परन्तु यह भी असङ्गत ही है। पूर्वोक्त प्रसङ्गों में राम को सर्वलोकनमस्कृत देववर कहा गया है और उनके ही प्रसाद से शबरी दिव्यधाम जाती है। शबरी के गुरुओं ने भी यही कहा था कि राम का आदर करके तुम अक्षय लोकों को प्राप्त करोगी। ऐसे युक्तियुक्त कारणों के रहने पर भी यह कहना कि शबरी का आधिकारिक कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है, मात्र साहस ही है।

पद्मपुराण में कहा गया—

प्रत्युद्गम्य प्रणम्याथ निवेश्य कुशविष्टरे।
पादप्रक्षालनं कृत्वा तत्तोयं पापनाशनम्॥
शिरसा धार्य पीत्वा च वन्यैः पुष्पैरथार्चयत्।
फलानि च सुपक्वानि मूलानि मधुराणि च॥
स्वयमास्वाद्य माधुर्यं परीक्ष्य परिभक्ष्य च।
पश्चान्निवेदयामास राघवाभ्यां दृढ़व्रता॥
फलान्यास्वाद्य काकुत्स्थस्तस्यै मुक्तिं परां ददौ।

इन श्लोकों में परीक्ष्य तथा परिभक्ष्य शब्दों के आने से यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि शबरी ने जूठे फल भगवान को खिलाये। क्योंकि धर्मचारिणी शबरी ऐसा कदापि कर नहीं सकती। स्पष्ट अर्थ यही है कि वृक्षों के फलों को चखकर मीठा पहिचानकर उन्हीं वृक्षों के फल तोड़कर लाती थी न कि जूठे कर रखती थी।

शबरी ने राम का प्रत्युत्थान तथा प्रणाम करके उन्हें कुशविष्टर पर बैठा कर पादप्रक्षालन करके पवित्र पापनाशक जल सिर पर धारण किया और उसका पान किया। वन्य पुष्पों से पूजन कर स्वयं आस्वादन करके, परीक्षण करके सुपक्व मधुर फल निवेदन किये। राघव ने मधुरफल ग्रहण कर उसे परम मुक्ति प्रदान की। **अध्यात्मरामायण** के अनुसार भी विराध के परामर्श देने पर कि शबरी सीता के सम्बन्ध में सब बातें बतायेगी। राम उसके पास जाते हैं। शबरी भक्तिपूर्वक राम और लक्ष्मण का आतिथ्य करती है। इकट्ठे किये हुए फल समर्पित करती है। वह अपने गुरु की आज्ञा से राम की प्रतीक्षा करती रही है। मैं मूढ़ स्त्री दर्शन के योग्य कैसे हो सकती हूँ। राम कहते हैं—पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व जाति, नाम आदि का भक्ति में कोई महत्त्व नहीं है, भक्ति का ही महत्त्व है। राम शबरी से नवधा भक्ति का वर्णन करते हैं। राम सीता के विषय में पूछते हैं। वह रामको सर्वज्ञता का स्मरण कराकर कहती है। आप लोकाचार के अनुसार ही प्रश्न कर रहे हैं। वह बताती है कि सीता लङ्का में हैं। सुग्रीव के पास जाने का परामर्श देती है। उसमें भक्ति पर बल दिया गया है। आनन्दरामायण, **पद्मपुराण**, **रामचरितमानस** आदि में इसी प्रकार भक्ति का महत्त्व वर्णित है। **पद्मपुराण** परवर्ती नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** के समान ही पुराणों का भी प्रामाण्य है। **तत्त्वसंग्रहरामायण** आदि में कहा गया है कि गोदावरी ने सीता के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उत्तर नहीं दिया तो राम ने उसे शाप दिया कि तुममें नहानेवाला चाण्डाल हो जायगा। ब्रह्मादि देवताओं के पार्थना करने पर अनुग्रह करके राम ने अपने चाप से गोदावरी की धारा को उस कूप से मिला दिया जिसमें शबरी नहाती थी।

शबरी के माहात्म्य-वर्णन में ही उक्त कथा का तात्पर्य है। कई लोगों ने लिखा है कि वे जूठे ही फल थे, जिन्हें शबरी ने राम को दिया था। वस्तुतः उसका अभिप्राय यही है कि वह खट्टे मीठे का परीक्षण करके उसी वृक्ष के या उसी ढँग के फलों का संग्रह करती है।

वलरामदास के वृत्तान्त के अनुसार वह अपने पति के साथ राम से मिलती है। उसके अनुसार राम उन फलों को नहीं खाते जिनमें दाँतों के निशान नहीं हैं। परन्तु इसका भी तात्पर्य शबरी की भक्ति की प्रशंसा में ही है। क्योंकि जब—

"नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्यात् नाद्याच्चैव तथान्तरा" (मनु० २।५६)—मनु के अनुसार किसी सामान्य व्यक्ति के लिए भी उच्छिष्ट देना निषिद्ध है तो फिर ब्राह्मण, देवता, राजा या ईश्वर के लिए तो उच्छिष्ट अन्न या फल का प्रदान करना परम निषिद्ध ही है। अतः प्रमाणविरुद्ध आख्यायिका गुणवाद होकर भक्ति की प्रशंसा-मात्र में ही पर्यवसित होती है। **भक्तमाल** की प्रियादासकृत टीका में कहा गया है। ऋषियों की सेवा करने की अभिलाषा से प्रेरित होकर शबरी रात के पिछले प्रहर में उनके आश्रमों में प्रवेश करती थी। ऋषियों के स्नान करने जाने का मार्ग झाड़-बुहार कर साफ करती थी। उनके लिए लकड़ियाँ भी लाया करती थी। मतङ्ग के मन में जानने की इच्छा हुई कि यह सब कौन करता है। शिष्यों ने रात को जागकर उसे उपस्थित किया। उन्होंने शबरी को रामभक्ति की दीक्षा देकर उसे आश्रम में रहने की अनुमति दे दी। परलोक जाने से पूर्व मतङ्ग ने शबरी को आश्वासन दिया था कि उसे राम के दर्शन होंगे। किसी दिन अनजान में उससे एक ऋषि का स्पर्श हो गया। ऋषि उसपर क्रुद्ध हुए। ऋषि स्नान करने पहुँचे तो सरोवर कृमियों से भरा मिला। बहुत दिनों के बाद राम ने आकर उसका आतिथ्य ग्रहण किया। ऋषियों ने आकर सरोवर को स्वच्छ करने की प्रार्थना की तब राम ने सरोवर के अपवित्र होने का रहस्य प्रकट किया और बताया कि शबरी के स्पर्श से पवित्र हो जायेगा। रघुराजसिंह की **रसिकावली** में भी उल्लेख है कि मुनियों के निवेदन पर—

शबरी सकुचि सलिल पग डारी। तुरतहि भो निर्मल सरवारी॥

ये सभी कथाएँ भक्ति के महिमावर्णन में ही तात्पर्य रखती हैं। शास्त्रविरुद्ध कृत्य के समर्थन में उनका तात्पर्य नहीं है, अतएव महान् भक्तों ने स्पष्ट कहा है कि श्रुति, स्मृति, पुराण तथा पाञ्चरात्र विधान के विरुद्ध हरि-भक्ति उत्पात का ही मूल है—

"श्रुतिस्मृतिपुराणादिपाञ्चरात्रविधिं विना।
ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव केवलम्॥"

कहा जाता है कि मध्यभारत के कोल, भील अपने को शबरी के वंशज मानते हैं। उनके अनुसार किसी दिन वनवास के समय सबरी से सीता, राम और लक्ष्मण की भेंट हुई। तीनों भूखे थे। शबरी ने जंगली बेर खिलाकर तृप्त किया। इस कथा में भी उच्छिष्ट फल देने की बात लिखी गयी है। **रामायण कर्कविन** के अनुसार उसने विष्णु अवतार वराह की लाश खायी थी जिससे उसका मुख काला हो गया था। राम ने उसका मुख पोंछकर शुद्ध कर दिया था। **रामकियेन** के अनुसार वह एक अप्सरा थी। ईश्वर की सेवा में असावधानी के कारण उसे शाप हुआ था कि वह एक जलते हुए जंगल के पास तब तक निवास करे जब तक राम स्वयं आकर उसे बुझा न दें। शबरी के निवेदन पर राम ने आग बुझा दी। जिससे वह फिर अप्सरा के रूप में स्वर्ग चली गयी। वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार शबरी एक धर्मचारिणी ब्राह्मणी श्रमणी थी। विभिन्न देशों के सम्पर्क से उस कथा में विकृतियाँ आ गयी हैं। **रामरसिकावली** के अनुसार शबरी एक मुनिपत्नी थी। किसी समय मुनि वन से साधना करके लौटे तो उसने उनका चरण धोया।

ऋषि को उसकी अशुचिता का ज्ञान होने पर उन्होंने पत्नी को वनवास दे दिया। उसका विलाप सुनकर अनुग्रह किया और कहा कि तुम वन में मुनियों की सेवा करोगी और तुम्हें राम का दर्शन होगा। कहते हैं कि उच्च तथा सम्पन्न परिवार में जन्म होने से उसे सत्सङ्ग और साधना का अवकाश नहीं मिलता था, अतः उसने नीच जाति में जन्म माँगा। इसी लिए भीलों में उसका जन्म हुआ। विवाहयोग्य होने पर घर में सैकड़ों पशुओं को इकट्ठे देखकर कारण पूछा तो विदित हुआ कि विवाह में उन सबका बलिदान होगा। अतः घबड़ा कर जानवरों को मुक्त कर वन में झोपड़ी बनाकर ऋषियों की सेवा करने लगी।

परन्तु आर्ष **वाल्मीकिरामायण** से तो उसका शबरी नाम कहा गया है। वह शबर जाति की नहीं थी और श्रमणी अर्थात् तापसी थी—"श्रमणी शबरी नाम काकुत्स्थ चिरजीविनी।" (वा० रा० ३।७३।२६) श्रमणी का तिलककार ने तापसी अर्थ ही किया है। वहीं उसको 'धर्मसंस्थिता' भी कहा गया है—"श्रमणीं धर्मसंस्थिताम्" (वा० रा० ३।७४।७)। उसने राम को यथाविधि अर्घ्य, पाद्य, आचमन आदि अर्पित किया—'पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि।" (वा० रा० ३।७४।७)। राम ने भी उसे तपोधने कहकर संबोधित किया था—(वा० रा० ३।७४।८)। उसके तप एवं नियमों के सम्बन्ध में कुशल-प्रश्न किया था। वहाँ उसको "सिद्धा सिद्धसम्मता" भी कहा गया है। अतः उसका शबर जाति का होना और जूठे फल देना आदि प्रामाणिक न होकर प्रेमस्तुत्यर्थ ही हैं। मैंने विविध वन्य फल आपके लिए संचित किये हैं—'मया तु संचितं वन्यम्" (वा० रा० ३।७४।१७) यही वस्तुस्थिति है कि न तो वह भीलनी थी और न उसने जूठे फल खिलाये थे।

सीताहरण

४८२ वें अनु० में बुल्के ने बतलाया है कि बौद्ध साहित्य में सीताहरण की चर्चा नहीं है। बोधिसत्त्व राम के द्वारा रावण का वध किया जाना बौद्ध आदर्श के प्रतिकूल था। **महाभारत के शान्तिपर्व** में भी सीताहरण का वर्णन नहीं है। अन्यथा सभी रामकथाओं में सीता-हरण तथा रावण-युद्ध वर्णित है। सीता-हरण के कारणों के विषय में ४८३वें अनु० में कहा गया है कि सीता-हरण का मूल कारण शूर्पणखा का विरूपण ही है। विरूपित शूर्पणखा खर-सेना की पराजय देखकर लङ्का में जाती है और रावण को विशाल सेना सहित खर-दूषण का वध सुनाती है। वह सीता का सौन्दर्य वर्णन कर यह भी कहती है कि मैं सीता को तुम्हारे पास लाना चाहती थी, इसी लिए मेरा विरूपण किया गया है। उसने सीताहरण के लिए रावण को प्रोत्साहित किया। यहाँ बुल्के का यह कथन आंशिक ही सत्य है, क्योंकि रावण एक नीतिज्ञ राजा था, वह असावधान नहीं था। उसके गुप्तचरों ने विशेषतः अकम्पन ने उसे सब समाचार दे रखा था। सीता-हरण के लिए वह पहले भी गया था, परन्तु मारीच ने उसे समझाबुझाकर लौटा दिया था। अतएव दाक्षिणात्य पाठ का ३१ वाँ सर्ग प्रक्षिप्त है यह कहना सर्वथा असंगत है। वस्तुतः तो विरूपण मुख्य कारण नहीं अपितु सीता-सौन्दर्य का प्रलोभन और खरदूषण-विध्वंस ही सीता-हरण के मुख्य कारण हैं। अन्त में बुल्के के अनुसार भी जब शूर्पणखा विरूपण की कथा प्रक्षिप्त ही है तब फिर वह (विरूपण) वास्तविक सीता-हरण का कारण कैसे हो सकता है? यहाँ बुल्के कहते हैं कि "अधिक संभव है कि (उनके तथाकथित) आदिरामायण में शूर्पणखा के विरूपण की कथा नहीं होगी, क्योंकि युद्धकाण्ड के दो स्थल इसके आधार हो सकते हैं रावण की सभा (सर्ग ९) में विभीषण ने सीताहरण के कारण के विषय में खर का ही उल्लेख किया है। विभीषण ने कहा कि राम ने रावण का क्या बिगाड़ा था कि उसने उनकी भार्या का अपहरण किया। खर ने सीमा उल्लङ्घन किया था (अतिवृत्तः), इसी लिए वह राम के द्वारा मारा गया—

"किं च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा।
आजहार जनस्थानाद्यस्य भार्यां यशस्विनः॥

खरो यद्यतिवृत्तस्तु स रामेण हतो रणे।
अवश्यं प्राणिनां प्राणा रक्षितव्या यथाबलम् ॥" (वा० रा० ६।९।१३,१४)

युद्धकाण्ड के अन्तिम (१२६ वें) सर्ग में हनुमान् द्वारा जो संक्षिप्त रामचरित सुनाया जाता है उसमें दण्डकारण्य के तपस्वियों की रक्षा के निमित्त राम द्वारा खर, दूषण, त्रिशिरा आदि राक्षसों के वध का वर्णन है। केवल बाद में शूर्पणखा के विरूपण का वर्णन है।

अतः यह असंभव नहीं है कि राक्षसों के वध के कारण ही रावण का विरोध उत्पन्न हुआ था। बाद में शूर्पणखा के विरूपण की कथा प्रचलित होने लगी। परवर्ती राम-कथाओं में सीता-हरण का यह कारण व्यापक रूप में प्रामाणिक माना गया है, परन्तु यह कहना उचित नहीं, क्योंकि भले ही सीता-हरण का वह मुख्य कारण नहीं जैसा कि मैंने कहा है। तथापि शूर्पणखा की कथा का अपलाप करना उचित नहीं है। विभीषण द्वारा उसकी चर्चा न होने या हनुमान् द्वारा बाद में चर्चा होना मात्र उसके प्रक्षेप होने का हेतु नहीं हो सकता, क्योंकि अनुमान के आधार पर प्रत्यक्ष का अपलाप नहीं हो सकता है। जहाँ भी प्रत्यक्ष का विरोध होता है वहाँ बाध होने के कारण अनुमान-साधक हेतु हेत्वाभास ही ठहरते हैं। विभीषण ने तो शूर्पणखा की कथा कहने लायक भी नहीं समझी, क्योंकि राज-परिवार की बहन-बेटी स्वैरिणी होकर वन में राम के पास क्यों गयी ? इसी कारण रावण ने भी उसकी चर्चा नहीं की और सर्ग ११ में यही कहा है कि वह मैथिली-कामना से मोहित होने के कारण ही सुहृदों से समझाने पर भी सीता को देने के लिए प्रस्तुत नहीं था "**मैथिलीकाममोहितः**" (वा० रा० ६।११।१)। विचित्र बात है बुल्के अकम्पन की कथा को प्रक्षेप मानते हैं। यदि शूर्पणखा की कथा प्रक्षेप है तब रावण को जनस्थान की विशाल सेना और खर, दूषण आदि के विध्वंस का पता कैसे लगा ? और खर, दूषण आदि भी राम से विरोध करने क्यों गये ? **वाल्मीकि-रामायण** के अनुसार तो शूर्पणखा के विरूपण से ही खर आदि की राम-विरोध में प्रवृत्ति हुई (वा० रा० ३। सर्ग १८, १९) में स्पष्ट वर्णन है कि विरूपित होकर शूर्पणखा उग्रतेजा अपने भाई खर के पास गयी और अपने विरूपण का हेतुवर्णन किया। उसको वैसी देखकर ही वह उत्तेजित हुआ और उसने १४ राक्षसों को राम को मारने के लिए भेजा। हनुमान् की दृष्टि में तपस्वियों के रक्षणार्थ ही राक्षस-वध में राम की प्रवृत्ति हुई है। प्रारम्भ में भी तपस्वियों में धनुष, बाण आदि धारण के सम्बन्ध में सीता ने जब अनौचित्य बतलाया था तब भी राम ने ऋषियों की रक्षा ही धनुष-बाण धारण का उद्देश्य कहा था :—

"ऋषीणां दण्डकारण्ये संश्रुतं जनकात्मजे।
संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् ॥" (वा० रा० ३।१०।१७)

"क्षत्रियैर्धार्यते चापो नार्तशब्दो भवेदिति।" (वा० रा० ३।१०।३)

क्षत्रिय लोग इसी लिए धनुष धारण करते हैं कि आर्तशब्द संसार में सुनायी न पड़े।

"तां तथा पतितां दृष्ट्वा विरूपां शोणितोक्षिताम्।
भगिनीं क्रोधसंतप्तः खरः पप्रच्छ राक्षसः ॥" (वा० रा० ३।१९।१)

इन सभी को क्षेपक कह देना अत्यन्त अनभिज्ञता ही है। यह तो राम-कथा का अन्वेषण नहीं विरूपण ही है। किसी अंश को आपात हेतुओं से प्रक्षेप कह देना सरल है, परन्तु समन्वय करना तात्पर्यज्ञानसापेक्ष होता है। अतएव शूर्पणखा की कथा **पउमचरियं**, **भावार्थरामायण**, **आनन्दरामायण** आदि में भी है ही। शम्बूक-वध आदि भी सीता-हरण का गौण ही कारण है। मुख्य कारण सीता के प्रति उसकी कामना ही है। अतएव विविध कथाओं में सीतास्वयंवर से ही उसकी प्रवृत्ति सीता की ओर रही है। **रामलिङ्गामृत** के अनुसार शूर्पणखा-विरूपण के बाद नारद

रावण से सीता का सौन्दर्य-वर्णन करते हैं। तभी वह सीता-हरण में प्रवृत्त होता है। १८ वीं शती के उसी वृत्तान्त के अनुसार राम ने चित्रकूट में पहुँच कर अपने बहुत शिष्यों को पुनर्जन्म का सिद्धान्त सिखाया था। वे सिंहल में भी अपने सिद्धान्त का प्रचार चाहते थे। रावण ने इसका विरोध किया और राम को पराजित करके सीता को छीन लिया। विभीषण की सहायता से राम ने ब्रह्मा द्वारा भेजी गयी सेना से रावण को जीत लिया (पाश्चात्यवृ० न० १२)।

उक्त कथाएँ **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध विकृति तथा विपर्यास के ही परिणाम हैं। रावण स्वयं भी पुनर्जन्म का सिद्धान्त माननेवाला था। वह वैदिक आहिताग्नि था।

रावण ने सनत्कुमार से यह सुना था कि भगवान् विष्णु का क्रोध भी वर के तुल्य होता है—**क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः**" (वा० रा० दा० प्र० २।२२), अतएव विष्णु द्वारा मारे जानेवाले लोगों को परम धाम मिलता है। मुनि के यह बतलाये जाने पर कि त्रेतायुग में नारायण रामरूप में प्रकट होंगे। वह पिता की आज्ञा से लक्ष्मीरूप सीता के साथ वनवास करेंगे; अतः रावण ने राम के हाथ से मरण की कामना से ही सीता का हरण किया था—"**अपहृता सीता त्वत्तो मरणकाङ्क्षया।**" (वा० रा० दाक्षिणात्य पाठ उत्तरकाण्ड सर्ग ३७ के बाद जो प्रक्षिप्त सर्ग हैं उनमें सर्ग ५ श्लोक ४३)। रावण माता के समान ही सीता की लङ्का में रक्षा करता था—"**लङ्कामानीय यत्नेन मातेव परिरक्षिता।**" (वही सर्ग ५ श्लोक ५४)। वाल्मीकिरामायण गौडीय पाठ ६।४१।२५ तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ ६।४२।२४ के अनुसार भी रावण राम के हाथों मर कर मुक्ति प्राप्त करना चाहता था—

"निहतो गन्तुमिच्छामि तद्विष्णोः परमं पदम्।"

इसकी पुष्टि रामतापनीय उपनिषद् (४।१७) से होती है। वह परवर्ती नहीं, किन्तु वेद का अंश होने से अनादि ही है। **अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण** तथा **भावार्थरामायण** में भी इसका समर्थन है। वस्तुस्थिति यह है कि **वाल्मीकिरामायण** के द्वारा अधिकांश राम के लौकिक मानवीय रूप का वर्णन है जब कि **रामतापनीय** आदि में उनके वास्तविक रूप का ही प्राधान्येन वर्णन है। **शिवपुराण** के अनुसार रावण ने पाताल में विष्णु से प्रार्थना की थी कि तुम्हारे हाथ से मेरी मृत्यु हो—"**त्वद्धस्ताद् भगवन् मृत्युर्ममास्तु।**" इन्हीं प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर **रामचरितमानस** में रावण के अभिप्राय का वर्णन है—

"सुररञ्जन भञ्जन महिभारा। जौ भगवन्त लीन्ह अवतारा॥
तौ मैं जाय बैयरु हठि करिहूँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरिहूँ॥
होइ भजन नहिं तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र दृढ़ एहा॥"

भृगुशाप, नारदशाप आदि अन्य कारण भी सीताहरण के हैं ही। बुल्के यह भी कहते हैं "**धिक् त्वामद्य विनश्यन्तीं यन्मामेवं विशङ्कसे।**" (वा० रा० ३।४५।३२) के अनुसार लक्ष्मण का शाप भी सीता हरण का कारण है। **भट्टिकाव्य** के अनुसार शाप का रूप इस प्रकार है "**शत्रुहस्तं गमिष्यसि**" (५।६०) **देवीभागवत** तथा **अध्यात्मरामायण** में भी इस शाप का निर्देश है।" परन्तु उनका कहना सङ्गत नहीं है, क्योंकि राम और सीता के प्रति लक्ष्मण अनिष्ट की आशंसा नहीं कर सकते थे। किसी के प्रति अनिष्ट की आकाङ्क्षा करना शाप होता है। किन्तु प्रकृत में तो लक्ष्मण ने सीता की विपरीत मति के अनुसार शत्रुहस्त में पड़ने की सम्भावनामात्र व्यक्त की है न कि शाप दिया है।

यह अवश्य है कि परोक्षरूप से महाभागवत लक्ष्मण का अपमान अवश्य सीता के उस दुःख का कारण बना था, पर लक्ष्मण के शाप की कल्पना निरर्थक ही है। उसी शङ्का को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं समग्र वन

देवता तुम्हारी रक्षा करें। घोर निमित्त अपशकुन दिखायी दे रहे हैं। क्या मैं राम के साथ युक्त तुम्हें फिर देख सकूंगा ? तुम्हारा कल्याण हो, मैं जा रहा हूँ।

"स्वस्ति तेऽस्तु" (वा० रा० ३।४५।३३)
"रक्षन्तु त्वां विशालाक्षि समग्रा वनदेवता:।
अपि त्वां सह रामेण पश्येयं पुनरागतः॥" (वा० रा० ३।४५।३४)

इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मण के मन में सीता के प्रति हित की आशंसा है। यही हनुमान् से सन्देश कहते हुए सीता ने भी कहा था। जो विविध मालाओं और रत्नों तथा प्रिय श्रेष्ठ अङ्गना तथा विशाल पृथ्वी के दुर्लभ ऐश्वर्य का त्याग कर अपने माता-पिता को सम्मानित करके राम के साथ वनवासी हुए हैं, सुमित्रा जिनके द्वारा सुप्रजा हुई हैं वह धर्मात्मा सौमित्रि राम में पितृवत् तथा मुझमें मातृवत् व्यवहार करते हैं वे लक्ष्मण मेरा हरण नहीं जानते थे। जो लक्ष्मीवान् और वृद्धोपसेवी हैं वे बहुत नहीं बोलते, राम के परमप्रिय मेरे श्वसुर महाराज दशरथ के तुल्य मेरे रक्षक और हितकारी हैं। वे मुझसे भी अधिक राम के प्रिय हैं। वे जो भार वहन के योग्य नहीं है उस भार को भी वहन करते हैं। जिसको देखकर राम पिता के रक्षणकार्य का भी स्मरण नहीं करते उनसे मेरी ओर से कुशल प्रश्न करना। वे मृदु, नित्य पवित्र, दक्ष तथा राम के शिष्य लक्ष्मण जिस तरह मेरी दुःखनिवृत्ति के लिए प्रयत्नशील हों वैसा करना (वा० रा० ३।३८।५४-६२)।

ब्रह्मवैवर्त के अनुसार शूर्पणखा ने भी राम से ठुकरायी जाकर यह शाप दिया था कि तुम्हारी पत्नी का हरण होगा। **कृत्तिवासरामायण** के अनुसार चन्द्रमा के नृत्य से विवाह का मुहूर्त टल गया था, इसलिए सीता-हरण हुआ है।

कथञ्चित् कारणों में ऐसे ही और भी अनेक कारण गिनाये जा सकते हैं।

सीताहरण के मूलरूप पर विचार करते हुए बुल्के चिन्तामणि विनायक के अनुमान का उल्लेख करते हैं और कहते हैं—तथाकथित **आदिरामायण** में कनकमृग का कोई उल्लेख नहीं था, किन्तु वह अद्भुत रस की लोकप्रियता के कारण बाद में रखा गया है। उनका तर्क है कि "यदि कनकमृग की घटना का वर्णन सचमुच रामायण में था तो सीता और रावण का संवाद अस्वाभाविक प्रतीत होता है। यदि सीता राम के सम्बन्ध में इतनी चिन्तित थीं कि उन्होंने लक्ष्मण को अत्यन्त कटु शब्द सुनाकर उन्हें राम की सहायता के लिए भेजा था तो उन्होंने राम के विषय में अपनी आशङ्का का उल्लेख रावण से क्यों नहीं किया ? यदि कहा जाय कि सीता रावण पर विश्वास नहीं करती थीं तो उन्होंने अपनी आत्मकथा विस्तृतरूप से क्यों सुनायी ? वास्तव में सीता-रावण-संवाद के अन्तर्गत स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि श्रीसीता राम की प्रतीक्षा कर रही थीं जो लक्ष्मण के साथ मृगया खेलने गये थे—

"ततः सुवेषं मृगयागतं पतिं प्रतीक्षमाणा सहलक्ष्मणं तदा।" (वा० रा० ३।४३।३२)। इसके अतिरिक्त सीता रावण से कहती हैं मेरे पति मृग, वराह आदि मारकर बहुत-सा मांस लिये लौटनेवाले हैं—

"आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय पुष्कलम्।
रुरून् गोधान् वराहांश्च हत्वादायामिषं बहु॥" (वा० रा० ३।४७।२३)

बुल्के और भी कहते हैं—**अनामकं जातकं** (तीसरी श० ई०) में कनकमृग का उल्लेख नहीं है। उसके अनुसार जब राजा फल लेने चले गये थे तब एक दुष्ट नाग ने रानी का अपहरण किया था। **पउमचरियं** (चौथी श० ई०) के अनुसार खरदूषण अपनी पत्नी चन्द्रनखा से पुत्र के वध का समाचार सुनकर वन में उसे देखने गया था। लौटकर उसने रावण को इसका समाचार दे दिया था। रावण के आने में विलम्ब होने के कारण १४ सहस्र

राक्षसों को लेकर वन की ओर उसने प्रस्थान किया। सेना को आते देखकर लक्ष्मण ने कहा, आप सीता की रक्षा कीजिये, मैं युद्ध करूँगा जब मैं सिंहनाद करूँ उस समय आप अवश्य जल्दी आना। लक्ष्मण युद्ध में संलग्न थे, इतने में रावण आ पहुँचा। सीता को देखकर वह आसक्त हो गया। अवलोकनी विद्या से उसने सब कुछ जान लिया था। उसने सिंहनाद किया, जिसे सुनकर राम लक्ष्मण की सहायता के लिए चले गये। रावण ने सीता को उठा कर पुष्पक विमान में रख लिया। जटायु को गिरा कर लङ्का चला गया। राम और लक्ष्मण लौटकर सीता को न पाकर मूर्च्छित होते हैं। **कूर्मपुराण** में भी रावण द्वारा अकेली वन में टहलती हुई सीता के अपहरण का उल्लेख मिलता है—

"सीतां विशालनयनां चकमे कालनोदितः।
गृहीत्वा मायया वेषं चरन्तीं विजने वने॥" (उत्तरविभाग अ० ३४)।

इसी तरह **सिंहली रामकथा** तथा अन्य कथाओं में भी कनकमृग का उल्लेख नहीं है।

वस्तुतः पाश्चात्यों एवं पाश्चात्यभावापन्न भारतीयों की दृष्टि से **रामायण** और **महाभारत** ही क्यों वेदों में भी प्रक्षेप ही प्रक्षेप दिखायी देते हैं। किसी आधुनिक लेखक के ग्रन्थ में भी ऐसे तर्काभासों के आधार पर अनेक अंश झुठलाये जा सकते हैं। परन्तु जब लेखक उन अंशों को भी अपनी कृति कह देता है तब समालोचक लाचार हो जाता है। **बाइबिल, कुरान** एवं किसी भी संविधान के विभिन्न अंशों को प्रक्षेप कहने के लिए वैसे ही तर्काभास मिल सकते हैं जैसे कि बुल्के आदि के हैं। और कहा जा सकता है कि अद्भुत रस लोकप्रिय है, अतः अन्धों को आँख, कुष्ठों को कञ्चन काया का दान आदि की बातें बाद में जोड़ी गयी होंगी। अतः किन्हीं ग्रन्थों में कनकमृग की कथा न मिलने से कनकमृग-कथा को प्रक्षेप नहीं कहा जा सकता। **वाल्मीकिरामायण** विभिन्न सम्प्रदायों में प्रचलित अनुष्ठान तथा पूजा-पाठ का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अनेक टीकाकारों ने उसपर टीकाएँ लिखी हैं। अनेक पुराणों में भी कञ्चनमृग की कथा है, अतः **रामायण** की अंशभूत कनकमृग-कथा की प्रामाणिकता ही है। वस्तुतः 'विद्यमान ग्रन्थ का अभिप्राय समझने का प्रयास करना ही हमारा कर्त्तव्य है। ग्रन्थ के स्वरूप का पर्यनुयोग करने का अधिकार अस्मदादि को अथवा अन्य किसी को नहीं है'—"अभिप्रायमवगन्तुं प्रभवामः न स्वरूपं पर्यनुयोक्तुं शक्ष्यामः।" प्रामाणिक लोगों का कहना है कि किसी प्रमाण के प्रामाण्य पर शङ्का हो तो उसका समाधान करना तो ठीक है। परन्तु सर्वत्र दोष की कल्पना करके अप्रामाण्य उपस्थापन करना उचित नहीं है। अन्यथा सभी व्यवहारों में सभी स्थलों में अप्रामाण्य की शङ्का होने से भोजन, पानादि में भी विष की कल्पना से भोजन, पानादि में भी बाधा पड़ सकती है—

"उत्प्रेक्षेत हि यो मोहादजातमपि बाधनम्।
स सर्वव्यवहारेषु संशयात्मा क्षयं व्रजेत्॥" (श्लो० वा० २)

सीता राम के विचार में चिन्तित थीं। यह तो ४५ वें सर्ग से विदित होता है। परन्तु चिन्तित होने का यह तो अर्थ नहीं है कि वे सबसे ही उसकी चर्चा करने लगें। फिर भी किसी भी स्थिति में अतिथि का सत्कार करना गृहमेधियों का धर्म है। इस दृष्टि से द्विजातिवेष में आये हुए रावण के लिए सीता ने आसन, पाद्य, अर्घ्य तथा वन्य आहार ग्रहण की प्रार्थना की थी। रावण से वैसे ही सीता ने आत्म-कथा कहनी नहीं प्रारम्भ कर दी थी। किन्तु जब रावण ने प्रश्न किया कि तुम कौन हो? वन में क्यों रहते हो? तब यह सोचकर कि यह ब्राह्मण और अतिथि है उत्तर न देने से कुपित होकर शाप दे सकता है। इसलिए सीता ने संक्षेप में अपना वृत्तान्त बतलाया था—

"रावणेन तु वैदेही तदा पृष्टा जिहीर्षुणा।
परिव्राजकरूपेण शशंसात्मानमात्मना॥

ब्राह्मणश्चातिथिश्चैष अनुक्तो हि शपेत माम्।
इति ध्यात्वा मुहूर्तं तु सीता वचनमब्रवीत्॥ (वा० रा० ३।४७।१,२)

शङ्का करनेवालों को यह भी जानना चाहिये कि प्रक्षेप लिखनेवाले भी बुद्धिमान् होते हैं। वे भी पूर्वापर प्रसङ्ग को ध्यान में रखकर ही प्रक्षेप भी रखते हैं।

"ततः सुवेषं मृगयागतं पतिं प्रतीक्षमाणा सहलक्ष्मणं तदा।" (वा० रा० ३।४६।३८)

इस वचन का कनकमृग-कथा से वैद्य और बुल्के जैसे लोगों को ही विरोध भासित हो सकता है अन्य को नहीं, क्योंकि कनकमृग को मारना भी मृगया ही है। मांस-प्राप्ति ही मृगया का फल नहीं है, किन्तु राजधर्म में चललक्ष्यसंधान, मेदः-क्षय, स्फूर्ति आदि भी उसके फल हैं, अतः "मृगयागतं पतिं" के बल पर कनकमृग के पीछे न जाकर सामान्य मृगों के लिए ही राम गये थे, यह कथमपि सिद्ध नहीं है। रामचरितमानस के अनुसार तो राम ने खर, दूषण आदि को अपना परिचय यही दिया था कि—

"हम क्षत्रिय मृगया बन करहीं। तुम सम खल मृग खोजत फिरहीं॥" (रा० मा० ३।१८।५)

इतना ही नहीं, इस श्लोक से भी यह विदित होता है कि लक्ष्मण भी राम के साथ हैं। परन्तु सामान्य मृगया के लिए दोनों भाइयों के जाने की आवश्यकता नहीं थी। इस प्रसङ्ग में राम ने लक्ष्मण को कह दिया था कि वे सावधानी से सीता की रक्षा करें—

"अप्रमत्तेन ते भाव्यमाश्रमस्थेन।" (वा० रा० ३।४३।४९)।

शूर्पणखा की नाक और कान काटकर रावण सहित समस्त राक्षसों को चुनौती दी जा चुकी है। खर, दूषण और त्रिशिरा १४ हजार सेना सहित मारे गये हैं। इस स्थिति में सीता को अकेले छोड़कर जाना कैसे संभव हो सकता था ? राम ने भी कहा था—

"त्वयि प्रमत्ते रक्षोभिर्भक्षिता वा तपस्विनी।" (वा० रा० ३।५८।११)

लक्ष्मण तुम्हारे प्रमाद से राक्षसों ने सीता को अवश्य खा लिया होगा। खर के वध से राक्षस दुःखी हैं। उन्होंने अवश्य सीता को मार दिया होगा। तुमने राक्षसों को बदला लेने का अवकाश दे दिया (वा० रा० ३।५८। १५,१६)। ऐसी स्थिति में सामान्य मृगयार्थ दोनों का जाना सर्वथा असंभव था। इसी तरह, "आगमिष्यति मे भर्ता वन्यमादाय" का भी कनकमृग-कथा से कोई विरोध नहीं है। कोई भी सोच सकता है कि कनकमृग को लेकर या मारकर लौटते समय भोजनार्थ फल, मूल, मांसादि लेकर ही लौटेंगे।

बुल्के का तर्क भी निःसार ही है, क्योंकि अगर **पउमचरियं** में न होने से कनकमृग की कथा आदिरामायण में भी न मानी जायगी तब तो **पउमचरियं** के अनुसार राम को जैनी भी मानना पड़ेगा और यह भी कहना पड़ेगा कि चौदह हजार राक्षसों और खर, दूषण तथा रावण आदि को लक्ष्मण ने ही मारा था। राम सीता की ही रक्षा में रहे। तथा च राम के द्वारा चौदह हजार राक्षसों के साथ खर, दूषण तथा रावण आदि का मारा जाना भी आदिरामायण में नहीं था। इसके अतिरिक्त आप स्वयं मानते हैं कि **पउमचरियं** में **वाल्मीकिरामायण** की लोकप्रिय रामकथा को पहले पहल जैनधर्म के साँचे में ढालने का प्रयत्न किया गया है (दे० अनु० ५७)। **कूर्मपुराण** की कथा का भी यह अर्थ नहीं है कि सीता अपनी इच्छा से राम और लक्ष्मण को छोड़कर वन में टहल रही थीं। किन्तु उसका इतना ही अर्थ है कि कनकमृग के पीछे राम गये थे। मारीच के मायामय रामानुकरणकारी शब्द को सुनकर सीता की प्रेरणा से लक्ष्मण को भी जाना पड़ा था। उस समय वन में सीता अकेली ही थीं। अतः यह प्रबल प्रश्न है कि किसी भी हालत में सामान्य मृगया के लिए राम और लक्ष्मण दोनों ही नहीं जा सकते थे। १४ हजार राक्षसों से

युद्ध करते समय लक्ष्मण को सीता की रक्षा के लिए नियुक्त किया ही गया था, अतः दोनों भाई सीता को छोड़कर सामान्य मृगया के लिए गये होंगे, यह कल्पना कोई भी समझदार कर ही नहीं सकता है।

उसी हालत में उन्हें रावण ले गया। "चरन्तीं विजने वने" का यही सरल अर्थ है। विरोधी राक्षसों से आकीर्ण उस घोर वन में अकेले सीता के टहलने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता था। चर धातु के गति और भक्षण दोनों अर्थ हैं। गति के अर्थ ज्ञान और गमन दोनों ही हैं। प्रतीक्षा भी ज्ञान ही है। अतः वन में राम की प्रतीक्षा करती हुई सीता को रावण ले गया था। रामचरित में **रामायण** मुख्य प्रमाण है, अतः पुराण के आधार पर **रामायण** के किसी अंश का अपमान या अपलाप नहीं किया जा सकता। अपितु **रामायण** के अनुसार पुराण का ही अर्थ निर्णय करना उचित है।

४९१ वें अनु० में "**महाभारत के रामोपाख्यान** में सीता-हरण के समय रावण के रथ का निर्देश नहीं मिलता। **वाल्मीकिरामायण** के एक स्थल से भी यह आभास मिलता है कि संभवतः मूल कथा में रथ का उल्लेख नहीं था। किष्किन्धाकाण्ड में सम्पाति अपने पुत्र सुपार्श्व का वृत्तान्त हनुमान् आदि वानरों को सुनाता है कि सुपार्श्व महेन्द्र की घाटी को रोकते हुए पहरा दे रहा था (वा० रा० ४।४९।१२)। उसने देखा कि कोई एक सुन्दर स्त्री को लिये जा रहा है। सुपार्श्व ने उन दोनों को अपने पिता के भोजन के लिए ले जाने का निश्चय किया था, किन्तु उसने विनीत भाव से मार्ग माँगा। सुपार्श्व ने उसे जाने दिया (श्लोक १४, १५)।" वस्तुतः सर्वतोऽभिशङ्की प्राणी को भोजन-पान में भी विष की शङ्का बनी ही रहती है। विशेषतः जिन लोगों के यहाँ सर्वत्र झूठ का ही बोलबाला हो, वे लोग कभी यह विश्वास ही नहीं कर सकते कि ऋषि-महर्षि लोग झूठ नहीं बोलते थे। आर्ष ग्रन्थ तत्तत् देवताओं का वाङ्मयस्वरूप ही होता है। उसमें से कुछ अंशों को निकालना वाङ्मयस्वरूप का अङ्ग-विच्छेद करना है। नवीन वस्तु डाल देना कण्टक चुभाने के तुल्य है। बुल्के इतने दोष-दृष्टि-परायण हैं कि उन्हें सर्वत्र क्षेपक ही क्षेपक दिखायी देते हैं। अन्यथा (वा० रा० ३।४९।२०) में स्पष्ट कहा गया है कि रावण ने सीता को रथ में चढ़ाया—

"अङ्केनादाय वैदेहीं रथमारोपयत्तदा।"

तथा सर्ग ५१ में भी स्पष्ट कहा गया है कि जटायु ने उसके रथ को तोड़ डाला—

"मणिसोपानचित्राङ्गं बभञ्ज च महारथम्" ॥१६॥
"स भग्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः" ॥१८॥

उसके धनुष, रथ, अश्व, सारथि सभी जटायु ने छिन्न-भिन्न कर दिये एवं मार दिये थे। सर्ग ५२ में यह भी स्पष्ट है कि राम और लक्ष्मण का नाम लेकर रोती हुई सीता को लेकर आकाश-मार्ग से रावण लङ्का की ओर गया—

"जगामादाय चाकाशं रावणो राक्षसेश्वरः" ॥१३॥

अब ऐसी स्थिति में यदि सुपार्श्व ने बिना रथ के ही सीता को ले जाते हुए रावण को देखा तो इसमें विरोध का प्रसङ्ग ही कहाँ है? क्योंकि रथ तो जटायु ने खत्म ही कर दिया था। पर बुल्के तो दुनिया को धोखा देने पर ही तुले हुए थे।

"तत्र कश्चिन्मया दृष्टः सूर्योदयसमप्रभाम्।
स्त्रियमादाय गच्छन् वै भिन्नाञ्जनचयोपमः॥" (वा० रा० ४।५९।१४)

मैंने देखा कि सूर्योदय-प्रभा के तुल्य किसी स्त्री को लिये हुए अञ्जनचयतुल्य कोई पुरुष जा रहा है। अर्थात् रथ नष्ट हो जाने से रावण अन्त में विरथ ही सीता को ले जा रहा था। यही है आजकल का अन्वेषण (रिसर्च)। **महाभारत का रामोपाख्यान** तो **वाल्मीकिरामायण** के ही आधार पर संक्षिप्त संकलनमात्र है, अतः उसके आधार पर **वाल्मीकिरामायण** के अंशों को प्रक्षेप मानना शुद्ध अनभिज्ञता ही है।

४९२वें अनु० में कञ्चनमृग के सम्बन्ध में चर्चा की गयी है। वह अंश भी उनका अपूर्ण है। वस्तुस्थिति यह है कि शूर्पणखा से पहले ही अकम्पन के मुख से जनस्थान के राक्षसों का वध, राम का पराक्रम और सीता की सुन्दरता सुनकर ही रावण सीताहरण के लिए सहायतार्थ मारीच के पास गया था। परन्तु मारीच ने रावण को राम का पराक्रम बताकर लौटा दिया था। पश्चात् विरूपित शूर्पणखा ने जाकर खर के वध का समाचार और सीता के सौन्दर्य का वर्णन किया। रावण पुनः मारीच के पास गया। मारीच फिर उससे राम के पराक्रम का वर्णन करता है और आपबीती घटनाओं का वर्णन करता है। विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के समय राम ने एक बाण मारकर मुझे शत-योजन की दूरी पर फेंक दिया था। बाद में भी दो राक्षसों के साथ दण्डक वन जाने पर राम ने साथियों को मार दिया और मैं भयभीत होकर भाग गया और अब तपोमय जीवन बिता रहा हूँ। मारीच ने स्पष्ट कहा यदि तुम नहीं मानोगे तो लङ्का का सर्वनाश हो जायेगा।

इसपर रावण मारीच को वध की धमकी देता है। मारीच ने सोचा कि मैं किसी प्रकार बच नहीं सकता। वह रावण से स्पष्ट कहता है, राम दर्शनमात्र से मुझे मार कर अन्त में बन्धुबान्धव सहित तुम्हारा भी वध करेंगे। मैं राम के हाथों मरकर अवश्य कृतकृत्य होकर मुक्ति को प्राप्त हो जाऊँगा—

"अनेन कृतकृत्योऽस्मि म्रिये चाप्यरिणा हतः।" (वा० रा० ३।४१।१७)

मारीच की स्वीकृति के बाद रावण उसे रथ पर बैठा कर जनस्थान की ओर प्रस्थान करता है। वहाँ पहुँच कर मारीच नाना मणियों से जटित कनकमृग का रूप धारण करता है। उधर सीता का ध्यान जाता है। वह राम और लक्ष्मण को बुलाकर कनकमृग दिखाती हैं और उसे पाने के लिए अनुरोध करती हैं। सीता को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़कर राम कनकमृग का शिकार करने जाते हैं। मारीच राम को दूर ले जाता है। अन्त में राम-बाण से आहत होकर अपना रूप धारण करता है तथा पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार राम-वाणी का अनुकरण करता हुआ हा सीता, हा लक्ष्मण कहकर महानाद करता है। राम उस मृत मायामारीच को छोड़कर आशङ्का करते हुए लौटते हैं। सीता मारीच की पुकार सुनकर लक्ष्मण से अनुरोध करती हैं कि वे भाई की सहायता के लिए शीघ्र जायँ। लक्ष्मण पहले अस्वीकार करते हैं, किन्तु सीता के कटु शब्द सुनकर चले जाते हैं। रावण ब्राह्मणरूप में सीता के पास आता है। वे उसे आतिथ्य के लिए निमन्त्रित करती हैं। रावण सीता को अपना परिचय देकर उनके सामने लङ्का की महारानी बनने का प्रस्ताव रखता है। सीता का कटु उत्तर सुनकर रावण राक्षसरूप में प्रकट होकर उन्हें रथ में बैठाकर लङ्का की ओर चल देता है। सीताहरण का यही रूप देश-विदेशों की सभी रामकथाओं में प्रचलित है। किन्तु दामोदर के **महानाटक** (३।३७) के अनुसार राम और लक्ष्मण दोनों ही कनकमृग शिकार के लिए जाते हैं। **उदात्तराघव** के अनुसार लक्ष्मण कनकमृग के वधार्थ जाते हैं। रावण कुलपति के रूप में राम और सीता के पास आता है तथा राम की निन्दा करता है, क्योंकि उन्होंने लक्ष्मण को भेज दिया है। उसी समय एक छद्मवेषी राक्षस आकर समाचार देता है कि कनकमृग राक्षस बनकर लक्ष्मण को ले जा रहा है। इसपर राम सीता को रावण की रक्षा में छोड़कर लक्ष्मण की सहायता करने जाते हैं।

सेरीराम के अनुसार सीताहरण के पहले शक्ति प्राप्त करने के लिए राम यज्ञ करते हैं। उस समय गागक-नासिर नामक राक्षस काक बनकर यज्ञ-भङ्ग करने आता है। राम द्वारा उसका वध किया जाता है। तब रावण

गागकनासिर के दो पुत्रों को मृग का रूप धारण करने का आदेश देता है एक सुवर्ण और एक रजत ।

४९२ वें अनु० में **ब्रह्मचक्र** के अनुसार शूर्पणखा अपनी दो पुत्रियों के साथ लङ्का तथा किष्किन्धा की सीमा की रखवाली करती है । किसी दिन राम, लक्ष्मण और सीता को देखकर उनपर आक्रमण करती है । लक्ष्मण उन दोनों का वध करते हैं तथा राम शूर्पणखा को हटने के लिए विवश करते हैं । शूर्पणखा लङ्का जाती है और स्वयं कनकमृग बनकर सीताहरण में सहायता करती है । राम कनकमृग का शिकार करने जाते हैं । लक्ष्मण राम की पुकार सुनकर राम को जोखम में समझ कर सीता को नङ्गथो रानी (पृथ्वी) को सौंप कर उस ओर चले जाते हैं । रावण सीता को ले जाने का प्रयास करता है । किन्तु पृथ्वी सीता को पैर पकड़ कर रोक लेती है । रावण का कुछ वश नहीं चलता है । राम लक्ष्मण को देखकर सीता के सम्बन्ध में चिन्ता प्रकट करते हैं । लक्ष्मण आश्वासन देते हैं कि पृथिवी रक्षा करेगी । मैं पृथिवी पर विश्वास नहीं करता, राम के इन शब्दों को जानकर पृथिवी सीता को छोड़ देती है और रावण सीता को लङ्का ले जाता है । वस्तुतः भारतीय परम्पराओं एवं **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध होने से यह कथा विश्वसनीय नहीं है ।

४९४ वें अनु० में और परिवर्तन दिखाया गया है । राम और लक्ष्मण के चले जाने पर रावण आकर सीता को विश्वास दिलाता है कि अब अयोध्या जाना है । इसपर विश्वास करके सीता स्वयं रथ पर चढ़ती हैं । कथा का यह रूप **नृसिंहपुराण** (अध्याय ४९) में कहा गया है । संन्यासी के रूप में रावण कहता है, भरत आ गये हैं । आपको लेने के लिए मुझे भेजा है । राम भी मृग को फँसाकर अयोध्या जा रहे हैं । यह सुनकर सीता विमान में चढ़ जाती हैं । **बृहद्धर्मपुराण** के अनुसार रावण कहता है, कौशल्या आपको देखने को उत्सुक हैं (पूर्वखण्ड अध्याय १९) । दक्षिण भारत के (१६०९ ई० के) एक वृत्तान्त के अनुसार रावण एक ऋषि के वेष में रथ के साथ सीता के पास आता है । अयोध्या के नागरिकों के रूप में राक्षस उसमें बैठे हैं । रावण ने कहा—हम भरत की ओर से आये हैं । राम का राज्याभिषेक होनेवाला है । राम ने स्वयं अयोध्या के लिए प्रस्थान किया है । **आश्चर्यचूड़ामणि** के अनुसार लक्ष्मण के जाने के बाद रावण और उसके सारथि ने क्रमशः राम और लक्ष्मण का रूप धारण किया था । सारथि (लक्ष्मण) राम (रावण) से कहता है कि भरत का राज्य सङ्कट में है । उनकी सहायता के लिए यह रथ तपस्वियों ने भेजा है । तीनों रथ पर चढ़कर चले जाते हैं । शूर्पणखा सीता के रूप में राम के साथ बातचीत करती है ।

गुणभद्रकृत जैन **उत्तरपुराण** के अनुसार वनवास नहीं है । नगर के समीपस्थ चित्रकूट नामक उपवन से सीताहरण होता है । इसमें लक्ष्मण का उल्लेख नहीं है । मृग के लिए राम के जाने पर रावण राम के रूप में सीता के पास आकर कहता है मैंने मृग को फँसा कर बनारस भेजा है । अब घर जाने का समय आ गया है । यह सुनकर सीता पुष्पक पर बैठ जाती है । धोखा देने के लिए पुष्पक पालकी बन जाता है । स्पष्टतः इन कथाओं का तात्पर्य अद्भुतता लाने और रावणस्पर्श के विना ही सीता का लङ्कागमन दिखाना ही है । जैसे **'विषं भुङ्क्ष्व'** इस वाक्य का विषभक्षण इस वाच्यार्थ में तात्पर्य नहीं है, किन्तु शत्रुगृहभोजननिवृत्ति इस लक्ष्यार्थ में ही है, वैसे ही **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध अपने वाच्यार्थ में उक्त कथाओं का तात्पर्य न होकर सीता की रावणस्पर्शरहितता और अद्भुतरसाभिव्यक्ति में ही है, क्योंकि भारतीय परम्परा के अनुसार जिन किन्हीं अपरिचित महात्माओं एवं ऋषियों के वचनों में भी इतना विश्वास करना निषिद्ध है **"न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।"** अविश्वस्त में विश्वास नहीं करना चाहिये । विश्वस्त में भी अतिविश्वास करना सर्वथा असङ्गत है । उक्त कथाओं में उत्तरोत्तर जोड़ लगाया गया है । अन्त में राम और लक्ष्मण के रूप में ही रावण और उसके सारथि को चित्रित किया गया है । भरत के आने पर भी वसिष्ठ आदि के प्रयास करने पर भी जो राम पिता के आज्ञानुसार अवध नहीं गये वे कैसे अयोध्या जाने को तैयार हो जायेंगे, सीता विश्वास कैसे करती । इसके अतिरिक्त सीता जैसी पतिव्रता जो हनुमान् के लिए अग्नि को शीतल बना सकी थीं उनके सामने रावण का कृत्रिम रामस्वरूप कैसे टिक सकता था ।

भासकृत **प्रतिमानाटक** के अनुसार दशरथ के वार्षिक श्राद्ध के लिए सीता और राम विचार कर रहे थे, उसी समय परिव्राजक के रूप में रावण आता है और वह परिचय देकर विभिन्न शास्त्रों के सम्बन्ध में अपनी जानकारी बताता है। इसमें प्राचेतसश्राद्धकल्प की बात करता है। राम श्राद्ध के सम्बन्ध में जिज्ञासा प्रकट करते हैं। तब वह कहता है। हिमालय के काञ्चनपार्श्व मृग से पितर विशेषरूप से प्रसन्न होते हैं। उसी क्षण मारीच वैसा मृग बनकर दिखायी देता है। लक्ष्मण उस समय आश्रम के कुलपति का स्वागत करते थे। अतः सीता को रावण के पास छोड़कर राम मृग के पीछे चले जाते हैं। तब रावण अपना रूप धारण कर सीता को लङ्का ले जाता है।

इसमें भी अद्भुतता एवं नवीनता लाना ही उद्देश्य है। **वाल्मीकिरामायण** के ऐतिहासिक तथ्य के अपलाप में तात्पर्य नहीं है, क्योंकि अपरिचित शास्त्रज्ञ के सन्निधान से भी सीता को छोड़ना सम्भव नहीं था।

इसी प्रकार **कृत्यारावण** में शूर्पणखा गौतमी तपस्विनी का रूप धारण कर सीता को दूर ले जाती है। फिर वही सीता के रूप में लक्ष्मण के पास आकर कटु शब्दों में राम की सहायता के लिए जाने को बाध्य करती है (अङ्क १)। इतने में रावण सीता के समीप आकर उन्हें यह कहकर पुष्पक पर चढ़ने को बाध्य कर देता है—यदि तुम स्वेच्छा से पुष्पक पर नहीं चढ़ोगी तो मैं आश्रम के सभी तपस्वियों का सिर काट दूँगा (अङ्क २)। बुल्के यहाँ स्वयं ही मानते हैं कि इस कथानक का सीता को लक्ष्मण पर कटु अभियोग लगाने के दोष से बचाना ही उद्देश्य है।

एक अन्य वृत्तान्त के अनुसार रावण स्वयं ही दो सिरवाले मृग का रूप धारण कर लेता है। सीता उसके चर्म के प्रति स्पृहा प्रकट करती है। राम उसके पीछे जाकर उसे मारते हैं। उसी क्षण रावण का जीव एक साधु के शरीर में प्रविष्ट होकर पर्णशाला के पास आकर लक्ष्मण से कहता है। तुम्हारा भाई वैरियों से घिरा हुआ है। उसकी सहायता करने जाओ। सीता के अनुरोध से लक्ष्मण जाते हैं। रावण सीता को लेकर लङ्का की ओर प्रस्थान करता है। किसी की आँखों देखी घटनाओं की भी यथार्थता में मतभेद हो जाता है। वर्तमान काल में युद्धों के सम्बन्ध में विभिन्न पक्षों के मतभेद इसके सुन्दर उदाहरण हैं। इसी लिए वास्तविक इतिहास संवाद-दाताओं के तारों एवं टेलीप्रिण्टरों पर निर्भर नहीं हो सकते। अतएव **वाल्मीकिरामायण** के आरम्भ में ही स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि ब्रह्मा के आदेशानुसार महर्षि वाल्मीकि ने समाधिजा प्रज्ञा प्राप्त कर उस दिव्य ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा सम्पूर्ण घटनाओं का अपरोक्ष साक्षात्कार कर के ही **वाल्मीकिरामायण** ग्रन्थ लिखा है। ऐसी स्थिति में **वाल्मीकि-रामायण** के विरुद्ध ऐसी सभी कल्पनाएँ गौणार्थ ही समझी जानी चाहिये।

राम की सहायता के लिए जाते समय लक्ष्मण सीता की सहायता के लिए कुटी के चारों ओर धनुष से रेखा खींचते हैं और देवताओं की शपथ लेकर कहते हैं कि जो इसके भीतर घुसेगा उसका सिर फट जायेगा। बाद में छद्मवेषी रावण के अनुरोध से सीता उसे भोजन देने के लिए हाथ रेखा के बाहर बढ़ाती हैं और रावण उन्हें खींच लेता है। यह कथा **आनन्दरामायण** (१।७।९८), **भावार्थरामायण** (३।१५), **सूरसागर** (नवाँ स्कन्ध, पद ५०३ नागरीप्रचारिणी सभा संस्करण), **रामचरितमानस** (६।३६।२), **असमिया गीतिरामायण, रामचन्द्रिका** (१२-१८), **खोतानीरामायण, सेरीराम, हिकायत महाराज** रावण तथा **पाश्चात्य वृत्तान्त** (नं० १३) में पायी जाती है।

एक पाश्चात्य वृत्तान्त के अनुसार जब रावण रेखा पार करना चाहता था तब अग्नि की लपटें उठकर उसे भीतर घुसने से रोक देती थीं। **मधुसूदन सम्पादित महानाटक** (३।६९-७२) में रावण सीता को तुलसी देना चाहता है। किन्तु सीता रेखा उल्लङ्घन अस्वीकार करती हैं। पर रावण रेखा पार कर सीता को ले जाता है। **तत्त्वसंग्रह-रामायण** (३।१५) में सीता अपने पति के कुशल-क्षेम के सम्बन्ध में चिन्तित हैं। किन्तु रावण उनकी हस्तरेखा देखकर ही उत्तर देने की प्रतिज्ञा करता है। अवध में प्रचलित कथा के अनुसार रावण कहता है, मैं बँधी भिक्षा नहीं ले सकता। बाहर आकर दो तभी भिक्षा लूँगा। **बिर्होर** नामक आदिवासियों के अनुसार लक्ष्मण जाने के पहले सीता

को **अभिमन्त्रित** राई देते हैं। यदि कोई आये तो राई फेंक देना। जितने दाने फेंके जायँगे उतने ही घन्टे तक वह मूर्छित रहेगा। रावण के आने पर सीता ने एक दाना फेंका, वह मूर्छित हो गया। पुनः मूर्छित होने के बाद रावण ने कहा इतना कष्ट क्यों देती हो। सब दाने एक साथ फेंक दो जिससे मर जाऊँ। सीता ने वैसा ही किया। वह भस्मीभूत हो गया। लेकिन भस्म से उठकर रावण सीता के बालों को पकड़ कर उनको ले गया। बुल्के कहते हैं कि रामभक्ति की प्रेरणा से लिखित परवर्ती रामसाहित्य में मारीच को सायुज्य मुक्ति प्राप्ति का उल्लेख है। वस्तुतः यह राम-भक्ति की प्रेरणा से लिखित रामसाहित्य के उल्लेखानुसार नहीं है, किन्तु वस्तुस्थिति यही थी। **श्रीभागवत** आदि में स्पष्ट ही है कि निरावरण ब्रह्मस्वरूप राम एवं कृष्ण के साथ द्वेष करनेवाले चैद्य आदि भी मुक्ति के भागी हुए थे। फिर मारीच को भी वैसी गति होनी स्वाभाविक ही थी। **अध्यात्मरामायण** (३।७।२०) तथा **देवीभागवत** (९।१६।४०) के अनुसार वह वैकुण्ठ के द्वारपालों का किङ्कर था। मरने पर वहीं लौट गया। जटायु से किसी तरह बचकर रावण सीता को ले जा रहा था। सीता ने अपना उत्तरीय और अपने कुछ आभूषण सुग्रीव आदि बन्दरों के मध्य में डाल दिये थे (वा० रा० ३।५४।१,२)। लङ्का पहुँचकर रावण ने सीता को अन्तःपुर में रखकर राक्षसियों की रक्षा में छोड़ दिया और राम का पता लेने एवं मारने के लिए आठ गुप्तचरों को भेज दिया। रावण ने सीता को लङ्का का वैभव दिखलाया। उन्हें अडिग देखकर अशोकवाटिका में एक वर्ष का समय देकर भेज दिया। **काश्मीरीरामायण** के अनुसार रावण सीता को एक वाटिका में रखकर उनकी रक्षा का भार मन्दोदरी पर छोड़ता है। मन्दोदरी अपनी पुत्री को पहचानती है। सीता अपना वृत्तान्त सुनाती है। दोनों रोती हैं। **पउमचरियं** के अनुसार सीता को पहले देव-रमण उद्यान में और बाद में समन्तकुसुम उद्यान में रखा गया था। **गुणभद्र** के अनुसार सीता को **नन्दनवन** (६८।३०७) में रखा गया था। **पाश्चात्य वृत्तान्त न० १** के अनुसार सीता चारों ओर अग्नि से घिरी हुई थी। इसी कारण रावण सीता को महल में नहीं रख सकता था। बुल्के कहते हैं परवर्ती साहित्यों में सीता के प्रति रावण के व्यवहारों के लिए कई मार्ग अपनाये गये हैं। एक के अनुसार रावण को शाप था कि वह अनासक्त स्त्री का कामना से स्पर्श करेगा तो उसका सिर फट जायेगा। वस्तुतः परवर्ती साहित्यों में ही नहीं, **वाल्मीकिरामायण** युद्धकाण्ड (सर्ग १३) में ही ब्रह्मा के शाप का स्पष्ट उल्लेख है—

"अद्यप्रभृति यामन्यां बलान्नारीं गमिष्यसि।
तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न संशयः॥"

आज से यदि किसी अन्य नारी को बलात् स्पर्श करेगा तो तेरा मूर्धा शतधा फट जायेगा। इसी लिए रावण ने कहा मैं उसी ब्रह्मशाप से भयभीत होकर सीता को अपने शयन पर लाने के लिए बलप्रयोग नहीं करता हूँ। यह पाठ टीकाकारों को सम्मत है, अतः इसे प्रक्षेप कहना अनुचित है। **उत्तरपुराण** के अनुसार आकाशगामिनी शक्ति के नाश के भय से रावण पतिव्रता सीता के स्पर्श से बचता है (६८।२१३)। **पउमचरियं** के अनुसार मन्दोदरी बलप्रयोग का परामर्श देती है तो वह कहता है मेरे व्रत के कारण यह असम्भव है। उसका विरक्त परनारी स्पर्श न करने का व्रत था।

बुल्के कहते हैं कि सुन्दरकाण्ड के एक प्रक्षिप्त सर्ग के अनुसार ब्रह्मा की आज्ञा से इन्द्र निद्रा द्वारा राक्षसों को मोहित करके सीता के पास जाकर राम के आगमन का आश्वासन देकर उन्हें क्षुधा और तृषा मिटानेवाला पायस खिलाकर चले जाते हैं, यह कथा **बृहद्धर्मपुराण** (**पूर्वख०** अ० १६), **देवीभागवतपुराण** (३।३०), **आनन्द-रामायण** (१।७), **कृत्तिवासरामायण** (३।२३) आदि में भी मिलती है। बुल्के कहते हैं उपवासकृशा (वा० रा० ५।११) के अनुसार **वाल्मीकिरामायण** में उक्त सर्ग अवश्य प्रक्षिप्त है। परन्तु उनका यह कथन ठीक नहीं है, भले ही **वाल्मीकिरामायण** में उक्त सर्ग प्रक्षिप्त हो, परन्तु **देवीभागवत** तथा **आनन्दरामायण** के अनुसार यह घटना सत्य

ही है। इसकी सत्यता में उपवासकृशा यह वचन बाधक नहीं है, क्योंकि महिनों तक भोजन के बिना रहने की कल्पना की अपेक्षा यह कहीं स्वाभाविक है कि इन्द्र के द्वारा आनीत दिव्य पायस को ग्रहण कर लङ्का का फल, जल, अन्न आदि न लेकर सीता रही होंगी। स्वाभाविक रूप से अन्न, जल न लेना उपवास ही है। उससे भी कृशता होती है। लोक में अन्नादित्याग में भी उपवास पद का प्रयोग होता है।

"उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम् ॥" (वा० रा० ५।१९।२०)

इसी लिए अल्पाहारा कहा गया है। अर्थात् एक बार लिये हुए पायस पर ही उनका जीवन चल रहा था। क्षीणता के और कई कारण वहीं कहे गये हैं : उपवास, शोक, चिन्ता एवं भय से सीता परिक्षीण एवं कृश थीं।

मायासीता

५०१ अनु० में बुल्के कहते हैं, "**वाल्मीकिरामायण** में सीता-हरण का जो चित्र खींचा गया है वह बीभत्स कहा जा सकता है", परन्तु सच्ची घटना का वर्णन इतिहास में अपेक्षित होता है। रावण बाये हाथ से पद्माक्षी सीता के बालों को पकड़ कर दायें हाथ से जंघाओं को वकड़ कर रथ पर बैठाता है—

"वामेन सीतां पद्माक्षीं मूर्धजेषु करेण च।
ऊर्वोस्तु दक्षिणेनैव परिजग्राह पाणिना ॥" (वा० रा० ३।४९।१ ७)

तिलककार के अनुसार वेदवती के अंश से दिये हुए शाप के अनुसार समूल विनाश करने की दृष्टि से सीता न तत्काल शाप से रावण को दग्ध नहीं किया। दूसरे यह भी दृष्टि थी कि ऋषियों के समक्ष राम ने राक्षसों के वध की भी प्रतिज्ञा की थी, उसकी पूर्ति अपेक्षित थी। रावण ने वाम हाथ से बालों को पकड़ कर बैठाना इसलिए भी उचित समझा था कि अनन्यपतिव्रता के स्पर्श से शाप का भी भय था—

"स्ववामाङ्गासनत्वनिवारणायैवं ग्रहणमित्याहुः।"

स्ववामाङ्ग में आसन निवारण के लिए रावण ने उस प्रकार सीता का ग्रहण किया। पर फिर भी भक्ति-भावना के अनुकूल अन्य कथाकारों ने उसे बचाने का प्रयत्न किया है। अतएव **नृसिंहपुराण** के अनुसार बिना स्पर्श किये ही सीता का रथारोहण वर्णन किया गया है। **तत्त्वसंग्रहरामायण** (३।१५) में रावण पृथ्वी को खोदकर भूभाग सहित सीता को रथ पर बैठाता है। **तमिलरामायण** (३।२) के अनुसार एक योजन की गहराई तक पृथ्वी खोदकर पर्णशाला सहित सीता को रथ पर रखकर रावण लङ्का ले गया है। परस्त्रीस्पर्श से तुम मर जाओगे, इस शाप से डर कर उसने वैसा किया था। **अध्यात्मरामायण** के अनुसार—

ततो विदार्य धरणीं नखैरुद्धृत्य बाहुभिः।
तोलयित्वा रथे क्षिप्त्वा ययौ क्षिप्रं विहायसा ॥" (अरण्यका० सर्ग ७)

रावण नख से धरणी का विदारण कर, बाहु से उठाकर तथा रथ पर रखकर आकाश मार्ग से चला गया।

प्रसन्नराघव में गोदावरी आदि अन्य नदियाँ सागर को सीता-हरण की कथा सुनाती हैं। सागर पूछता है—"**अपि नाम मम वधूटिका स्पृष्टा निशाचरेण**" क्या मेरी बधूटिका (पुत्रवधू) का निशाचर ने स्पर्श किया था ? गोदावरी ने उत्तर दिया—'**न स्पृष्टा**' स्पर्श नहीं किया और कहती है, जब रावण ने सीता पर हाथ डालना चाहा तब अनसूया का दिया हुआ अङ्गराग अग्नि के रूप में सीता का आवरण बन गया। तब रावण ने वरुणमन्त्र द्वारा बादल बुलाया और उस बादल रूपी अञ्चल से ढक कर सीता को ले गया। वस्तुतस्तु मायामयी सीता का ही अपहरण रावण कर सकता था। वास्तविक सीता ने अग्नि में निवास किया था।

यद्यपि बुल्के के अनुसार "लङ्काकाण्ड में विद्युज्जिह्व द्वारा राम का मायामय सिर दिखाया गया है (सर्ग ३१)। बाद में इन्द्रजित् वानरसेना के सामने मायामयी सीता का सिर काटता है (सर्ग ८१)। इन्हीं दो कथाओं के आधार पर मायामयी सीता की कल्पना हुई होगी। इस तरह "**निदधे रावणः सीतां मयो मायामिवासुरीम्** ।" (वा० रा० ३।५४।२४)। रावण ने सीता को लङ्का में वैसे ही रखा था जैसे मय ने आसुरी माया को रखा। इसे भी इस कल्पना का आधार मान लेते हैं।" परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि जब अनेक पुराणों के अनुसार वैसी ही वस्तुस्थिति थी तब कल्पना क्यों मानी जाय। इसी लिए टीकाकारों ने **वाल्मीकिरामायण** के उपर्युक्त पद्य से यह ध्वनि निकाली है कि वस्तुतः लङ्का में आगता सीता मायामयी ही थी। "**मायामिवासुरीमित्यनेन मायारूपैवेषा सीता लङ्कामागतेति ध्वनितम्** ।" (तिलक)। वास्तविक सीता अग्नि में निवास कर रही थीं। अग्निपरीक्षा के अवसर पर अग्नि ने सीता की रक्षा करके उनके पातिव्रत्य का साक्ष्य देकर उन्हें राम को प्रदान किया था। इसे भी कल्पनामात्र मानना निर्मूल है।

देवीभागवत (३।२९) के अनुसार रावण का प्रस्ताव सुनकर सीता गार्हपत्य अग्नि की ओर शरण के लिए जाती है तथा **अद्भुतरामायण** के अनुसार भी वास्तविक सीता का हरण न होकर काल्पनिक सीता का ही हरण हुआ था।

"तव भार्या महाभाग रावणेन हृतेति यत्।
विश्वं यथेदमाभाति तथेदं प्रतिभाति मे॥ (सर्ग १६।३)

द्विपदरामायण (३।१८) में लक्ष्मण सीता को अग्नि के लिए सौंप कर जाते हैं। **कूर्मपुराण** के अनुसार रावण को देखकर सीता ने अग्नि की शरण ग्रहण की। बुल्के के अनुसार यह पुराण ९ वीं शती का है। परन्तु यह उनकी धारणा गलत है। प्रायः पाश्चात्य लेखकों को एक व्यापक भयंकर रोग होता है कि वे प्राचीन से प्राचीन वेदादि शास्त्रों को भी ईसा के आसपास ही रखना चाहते हैं। वेदव्यास ही इन पुराणों के निर्माता हैं। उनका काल ईसा से ३६ सौ वर्ष पूर्व है। पुराण भी अनादिसिद्ध हैं। उनका प्रतिद्वापर आविर्भावमात्र होता है। अस्तु "**जगाम शरणं वह्निमावसथ्यम्। सीतामादाय रामेष्टां पावकोऽन्तरधीयत** ॥" बुल्के का अर्थ है, अग्नि ने मायासीता का निर्माण कर वास्तविक सीता को ग्रहण कर उसको छिपा दिया, परन्तु यह अशुद्ध अर्थ है। व्याकरण के अनुसार इसका अर्थ यह है कि माया सीता रचकर राम की इष्टा प्रिया सीता को लेकर पावक स्वयं अन्तर्हित हो गया। इससे यह भी स्पष्ट है कि मायामयी सीता को रावण लङ्का ले गया। रावणवध के बाद राम ने मायासीता पर शङ्काएँ की फलस्वरूप वह अग्नि में प्रविष्ट हो गयी। तब अग्नि ने वास्तविक सीता प्रकट की और राम ने उन्हें स्वीकार किया।

"गृहाण चैतां विमलां जानकीं वचनान्मम।
पश्य नारायणं देवं स्वात्मानं प्रभवाप्ययम्॥"[1]

ब्रह्मवैवर्त्त के अनुसार सीताहरण के पूर्व ही अग्निदेव ब्राह्मण के वेष में आकर कहते हैं, सीताहरण का समय आ गया है। सीता को मुझ में रखकर उसकी छाया अपने पास रखो। अग्निपरीक्षा के अवसर पर सीता को पुनः लौटा दूँगा। राम ने वैसा ही किया। अग्निपरीक्षा के समय वास्तविक सीता राम को समर्पण कर देने के बाद छायासीता ने पूछा कि मैं क्या करूँ? तब अग्नि ने उन्हें पुष्कर भेज दिया। वहाँ उन्होंने तीन लाख वर्ष तप करके लक्ष्मीपद प्राप्त कर लिया। देवीभागवत में भी अग्निदेव राम के पास जाकर उनको छायासीता देते हैं। **ब्रह्मवैवर्त** (प्रकृतिखण्ड अ० १४), **देवीभागवत** (९।१६) तथा अध्यात्मरामायण में ये ही सब बातें रूपान्तर से कही हैं।

---

१. कूर्मपुराण उत्तर विभाग अध्याय ३४; कलकत्ता संस्करण पृ० ६९२।

"मायासीतां बहिः स्थाप्य स्वयमन्तर्दधेऽनले ।" (युद्धकाण्ड सर्ग १२)

मायासीता अग्नि में प्रवेश करती हैं तथा अग्निदेव राम को वास्तविक सीता प्रदान करते हैं (सर्ग १३)। उपर्युक्त प्रमाणों को बुल्के केवल कल्पनामात्र मानते हैं। परन्तु भारतीय आस्तिक समाज की दृष्टि में पुराण परम प्रमाण हैं। श्रीतुलसीदासजी ने भी अपने **मानस** में इसका उल्लेख किया है—

"जौ लगि करौं निशाचर नासा। तुम पावक महँ करहु निवासा।" (रा० मा० ३।२३।१)

भावार्थरामायण (३।१६) के अनुसार देवताओं को आशङ्का थी कि सीता-स्पर्श करने से रावण भस्म हो जायेगा, किन्तु सभी राक्षसों के विनाश के लिए उसका भस्म हो जाना ठीक न होगा, अतः देवताओं के हितार्थ सीता अपनी छाया को लेकर प्रेषित करती है। **बलरामदासरामायण** (उत्तरखण्ड) के अनुसार नारद की शिक्षा से सीता ने वैसा किया। **धर्मखण्ड** (अ० १३) तथा **तत्त्वसंग्रहरामायण** (३।१३) नारद के परामर्श से राम ने माया-सीता का निर्माण करके मृत्युदेवी से कहा कि वे सीता के रूप में लङ्का में प्रवेश करें और वास्तविक सीता को राम ने अपने वक्षस्थल में रख लिया। लङ्कायुद्ध के पहले सीता अपनी माता पृथ्वी की शरण में चली गयीं।

आनन्दरामायण के अनुसार सीता रजोरूप से अग्नि में, सत्त्वरूप से राम के समीप और तमोरूप से रावण के मोहनार्थ वन में रहीं।

"सीते त्वं त्रिविधा भूत्वा रजोरूपा वसानले।
वामाङ्के मे सत्त्वरूपा वस च्छाया तमोमयी॥
पञ्चवट्यां दशास्यस्य मोहनार्थं वसात्र वै॥" (आ० रा० ७।६७,६८)

५०८ वें अनु० में बुल्के कहते हैं यूनानी होमर के काव्य में हेलेन पतिता बनकर अपने अपहर्त्ता पेरिस के साथ स्वेच्छा से भाग निकलती है और युद्ध के बाद अपने पति मेनेलोस को पुनः प्राप्त होती है। यूनानी धार्मिक विकास में वही हेलेन बाद में देवी मानी गयी। फलस्वरूप भक्तों ने होमर का वृत्तान्त, इष्ट देवी की मर्यादा के प्रति-कूल समझकर, इस तरह बदल दिया कि पेरिस हेलेन की एक छाया (एडोलोन मायामयी मूर्ति, छाया) अपने साथ ले जाता है। इसी तरह भक्ति भावना ने दोनों देशों में एक ही उपाय का सहारा लिया है। परन्तु इन दोनों कथाओं में परस्पर प्रभाव मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। दोनों कथाओं का स्वतन्त्ररूप से विकास हुआ है। यह है बुल्के का हृदय। फिर भी जो लोग उन्हें **रामायणभक्त** समझते हैं उनकी बुद्धि पर तरस आना चाहिये।

परन्तु बुल्के को यह जानना चाहिये कि किसी बाह्य अंश की समानता से वस्तु का अपलाप नहीं किया जा सकता है। आज देश-विदेशों में सैकड़ों कुमारियों से अवैध सन्तानें पैदा होती हैं। फिर भी यीशू क्राइष्ट की मां कुमारी मेरी को ईसाई वैसा ही नहीं मानते। पुराण तो होमर काव्य से प्राचीन हैं, अतः होमर काव्य में पुराणप्रसिद्ध मायासीता के अनुसार पर हेलन की मायामयी मूर्ति की चर्चा की गयी होगी। फिर वहाँ हेलन के स्वेच्छा से भाग निकलने के कारण दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है।

वस्तुतः जैसा कमल के पराग, मकरन्द, किञ्जल्क आदि का विश्लेषण कार्य बन्दर के हाथों में देना खतरनाक है। वैदिक संस्कृति-संस्कारों से शून्य पाश्चात्यों के द्वारा भारतीय आर्ष ग्रन्थों का विश्लेषण भी वैसा ही होता है। पुराणों ने ठीक ही कहा है कि अल्पश्रुत से वेद डरता है। यह अवश्य अर्थ का अनर्थ कर के वेद पर प्रहार करेगा।

"बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।" (म० भा० १।१।२६८)

इसी तरह **वेद, रामायण, महाभारत** तथा **पुराणों** का स्वरूप और प्रामाण्य न समझनेवाले पाश्चात्य **रामायण** आदि के सम्बन्ध में भी अर्थ का अनर्थ करते हैं। वस्तुतः पूर्वोत्तर-मीमांसाओं तथा अन्य दर्शनों में वेदों की अपौरुषेयता, अनादिता एवं स्वतःप्रामाण्य पर पूर्णरूप से विचार किया गया है। **रामायण, महाभारत** तथा **पुराण** आदि आर्ष पौरुषेय ग्रन्थों का भी प्रामाण्य कहा गया है। उस दृष्टि से वेदों, इतिहासों और पुराणों का समन्वय करके निर्धारित अर्थ ही वेदार्थ या पुराणार्थ होता है। अन्यथा तो **रामायण** एवं तथाकथित आदिरामायण का भी प्रामाण्य कैसे होगा ? सर्वत्र अनास्था होने से सीता और राम नाम की कोई वस्तु भी सिद्ध न हो सकेगी। यही स्थिति ईसाई, मोहमडन आदि के ग्रन्थों की भी होगी। **वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत** तथा पुराणों के अनुसार यह निश्चित है कि धर्मग्लानि और अधर्माभ्युत्थान के निवारणार्थ धर्म-संस्थापनार्थ, विशेषतः अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रों के लिए भक्तियोग विधानार्थ परब्रह्म का ही विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि के रूप में आविर्भाव होता है। **"एकं ज्योतिरभूद् द्वेधा"** के अनुसार एक ही दिव्य ब्रह्मज्योति सीता-राम के रूप में व्यक्त होती है। जल और तरङ्ग, सूर्य और प्रभा, चन्द्र और चन्द्रिका तथा अमृत और मधुरता के तुल्य आनन्दसिन्धु एवं उसका माधुर्यसारसर्वस्व अभिन्न ही वस्तु है। इस दृष्टि से जलतरङ्ग एवं अमृत-माधुर्य के समान ही उनका विरह (विश्लेष) भी असम्भव है।

इस दृष्टि से सीता-राम का वियोग असम्भव ही है। लक्ष्मीरूप से सीता सदा राम के वक्षःस्थल पर श्रीचिह्न के रूप में विराजमान हैं। व्यावहारिकरूप में एक ब्रह्मज्योति ही सीता-राम के रूप में व्यक्त है। लङ्कागमन आदि कार्यार्थ मायासीता की कल्पना स्वाभाविक ही है। जैसे **वाल्मीकिरामायण** के द्वारा सीता-राम का आविर्भाव उक्त है वैसे ही पुराणों द्वारा मायासीता का लङ्कागमन तथा वनवास आदि भी उक्त है। बुल्के की दृष्टि में **वाल्मीकिरामायण** भी मिलावट से रहित नहीं है। इतना ही क्यों पाश्चात्यों ने तो वेदों में भी मिलावट की कल्पना की है, पर उनकी ये सब कल्पनाएँ निष्प्रमाण ही हैं।

✲

षोडश अध्याय

किष्किन्धाकाण्ड

५०९वें अनु० में किष्किन्धाकाण्ड की कथावस्तु का विश्लेषण किया गया है। राम द्वारा हनुमान् की शुद्ध भाषा और व्याकरण का अध्ययन दाक्षिणात्य पाठ में है, अन्य दो पाठों में नहीं है (वा० स० ४।३।२८-३८)। वालि-वध के पश्चात् सुग्रीव का पश्चात्ताप तथा राम द्वारा तारा को सान्त्वना प्रदान (सर्ग २४), प्रस्रवण गिरि का वर्णन, वर्षा-ऋतु का त्रिष्टुप् छन्द में वर्णन, तारा और लक्ष्मण का संवाद, लक्ष्मण को क्रुद्ध देखकर उनको शान्त करने के लिए सुग्रीव द्वारा तारा को भेजना। इसके अतिरिक्त दाक्षिणात्य पाठ २१वाँ तथा ३९वाँ सर्ग पश्चिमोत्तरीय पाठ में नहीं मिलता। उक्त दोनों सर्ग गौड़ीय पाठ में विद्यमान हैं। भारतीय परम्परा में शाखाभेद से वेदों के पाठ-भेद के समान **वाल्मीकिरामायण**, **सप्तशती** आदि के भी सभी पाठ-भेद प्रामाणिक ही हैं।

परन्तु बुल्के इसी कारण प्रक्षेप सिद्ध करने का भी प्रयत्न करते हैं। राम के प्रति तारा का यह शाप कि सीता थोड़े समय तक आपके पास रहकर भूतल में प्रवेश करेगी। सम्पाति का अपने पुत्र सुपार्श्व को बुलाना जो अङ्गद को अपनी पीठ पर समुद्र के उस पार ले जाने का प्रस्ताव करता है। केसरी द्वारा दिग्गज धवल का वध, जिसके लिए उसने वरस्वरूप मरुत्-विक्रम पुत्र हनुमान् को प्राप्त किया था। उक्त वृत्तान्त गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ में मिलते हैं, दाक्षिणात्य पाठ में नहीं मिलते तथापि सिद्धान्तदृष्टि से समन्वित अर्थ का ग्रहण करना उचित है।

५११वें अनु० में बुल्के कहते हैं वालिवध के दोष से राम को बचाने का मार्ग अपनाया गया है। सर्ग १७ और १८ प्रक्षेप हैं। इस अंश का खण्डन पीछे किया जा चुका है। वस्तुतः ये सर्ग प्रक्षिप्त नहीं हैं।

दिग्वर्णन को भी वे प्रक्षिप्त मानते हैं : हेतु यह देते हैं कि **महाभारत के रामोपाख्यान** में इसका वर्णन नहीं है। सर्ग ४५ में सभी दिशाओं में वानरों का प्रस्थान वर्णित है। परन्तु उनका यह सब कथन निस्सार है। **महाभारत का रामोपाख्यान** कसौटी नहीं है। वह तो **वाल्मीकिरामायण** का संक्षेप माना गया है। भारतीय शास्त्रों में संक्षेप और विस्तार से वर्णन की पद्धति होती है। **महाभारत** में भी पहले संक्षेप में वर्णन किया जाता है। पश्चात् उसी अंश का विस्तृत वर्णन होता है। बुल्के का प्रामाणिक पाठ निर्धारण भी वानरीय पङ्कज-विश्लेषण से अधिक कुछ भी नहीं है। तभी तो उनकी दृष्टि में ६०० श्लोकों में १५० प्रामाणिक ठहरते हैं। उनसे भी कोई और महामति विश्लेषण करेगा तो पाँच ही श्लोक प्रामाणिक सिद्ध होंगे। परन्तु उनकी प्रामाणिकता स्वयं में ही प्रमाणशून्य है। सर्ग ३१, ३२,३५, ३७, ३९ आदि भी याकोबी के अनुसार प्रक्षिप्त हैं, परन्तु भारतीय परम्परा में वे सभी पाठ प्रामाणिक हैं। उनका पाठानुष्ठान होता है। टीकाकारों ने उनपर टीकाएँ लिखी हैं। ऋषि निशाकर और सम्पाति की कथा को भी सर्ग ६०—६३ वे प्रक्षिप्त कहते हैं। इसमें भी अनावश्यक विस्तृत वर्णन को ही हेतु कहा गया है जो कि हेत्वाभास ही सिद्ध होता है। हनुमान् की जन्मकथावाले सर्ग को भी वे वाल्मीकिकृत नहीं मानते हैं। ये सब कल्पनाएँ वैसी ही हैं जैसे कोई अल्पज्ञ प्राणी अपने घर में बैठा हुआ कामायनी के अंशों को अस्पष्टता के कारण प्रक्षेप कहने का साहस करे। इसी तरह किष्किन्धा के अन्य सर्गों को भी परस्पर विरोधी उल्लेखों के कारण वे प्रतिभाशाली वाल्मीकि की कृति नहीं मानते हैं। जैसे ४।२४, ७।२ तथा ५९।३ में कहा गया है कि राम अथवा वानर सीता के अपहर्ता के नाम से अनभिज्ञ हैं। परन्तु ७।१९, १७।५०, २६।१७ आदि में उनके नाम तथा उनकी राजधानी लङ्का (३५।१५) का बारम्बार उल्लेख हुआ है। सर्ग ५८ में सम्पाति का कहना कि मैंने स्त्री का अपहरण करते हुए रावण को आकाश में

देखा था (श्लोक १५)। किन्तु अगले सर्ग में वही फिर कहता है मैंने अपने पुत्र सुपार्श्व से सीता के अपहरण के विषय में सुना था (५९।६), अतः यह सब प्रक्षेप ही है; परन्तु यह सब कथन भी अनभिज्ञताजन्य ही है। यदि उन्होंने परम्पराप्राप्त टीकाओं को देखा होता तो उनकी भ्रान्ति दूर हो जाती। तिलककार ने **"तच्च न ज्ञायते रक्षः"** (४।१४) **पर "विशिष्येति शेषः"** कहकर उसी का समाधान किया है। अर्थात् सामान्य ज्ञान होने पर भी उसकी विशेषताएँ अज्ञात हैं। यों तो **"घटमहं न जानामि"** कहनेवाला भी सामान्यरूप से घट को जानता ही है। तभी तो अज्ञान को घटविशेषण से विशेषित करता है।

"न जाने निलयं तस्य सर्वथा पापरक्षसः।
सामर्थ्यं विक्रमं वापि दौष्कुलेयस्य वा कुलम् ॥" (७२)

इसकी भी तिलक टीका देखनी चाहिये। वस्तुतः पूर्वापरविरोध का परिहार किये बिना तो **वेद, रामायण, धर्मशास्त्र** किसी का भी अर्थ निश्चित न होगा।

किसी भी संविधान में ऐसे पूर्वापर विरोध का परिहार करना अनिवार्य है। तिलककार के अनुसार सुग्रीव कहते हैं उस पाप करनेवाले राक्षस के निलय स्थान (गुप्तवास स्थान) को मैं नहीं जानता हूँ। बुल्के ने निलय का अर्थ केवल घर समझ लिया है, इसी लिए उन्हें ऐसी भ्रान्ति हुई है। किन्तु यहाँ निलीयतेऽस्मिन् जिसमें छिपा जाय इस विशेष अर्थ में 'निलय' शब्द का प्रयोग है। क्योंकि पाप करनेवाला राजधानी में रहना पसन्द नहीं कर सकता। साथ ही उसके सामर्थ्य, शौर्य और "विक्रमं पादविक्षेपं करोति यत्र" इस व्युत्पत्ति के अनुसार वासनगर को मैं नहीं जानता। दौष्कुलेय से यह ध्वनित होता है कि वह राक्षसकुलप्रसूत है इतना विदित है। टीकाकार आगे स्वयं लिखते हैं कि अतः हनुमान् आदि को भेजते समय सुग्रीव ने लङ्का की चर्चा करके यह कहा था कि इन्द्रतुल्य दुरात्मा रावण का वही देश है—

"स हि देशस्तु वध्यस्य रावणस्य दुरात्मनः।
राक्षसाधिपतेर्वासः सहस्राक्षसमद्युतेः ॥" (वा० रा० ४।४१।२५)

पर इसका पूर्व से विरोध नहीं होगा, क्योंकि इतना जाननेमात्र से उसका वध सम्भव नहीं है। अतः इतनी जानकारी निष्फल ही है। आज भी सामान्य ज्ञान होने पर भी संग्राम के लिए विशेष जानकारी अपेक्षित होती है। इसी लिए गुप्तचरों द्वारा शत्रु के विभिन्न रहस्यस्थानों, विशिष्ट बलों तथा शस्त्रास्त्रों की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाता है। यही समाधान अन्य अंशों का भी है। (७।१९) आदि में रावण आदि के नाम का निर्देश और अज्ञान दोनों का यही समन्वय है।

इसी तरह टीकाकारों ने ५८ एवं ५९ वें सर्ग के विरोधाभास का भी परिहार किया है। सर्ग ५८ वें में सम्पाति ने बताया है कि सर्वाभरणभूषिता रूपसंपन्ना तरुणी रावण द्वारा हरण की जाती हुई मैंने देखी थी। वहीं और भी कहा गया है—वह राम नाम और लक्ष्मण नाम बराबर पुकार रही थी एवं गात्रविधूनन करती हुई भूषणों को फेंक रही थी। राम नाम के कीर्तन से मैं उसे सीता समझता हूँ (वा० रा० ४।५८।१४-२३)।

किन्तु सर्ग ५९ श्लो० ६ से अपनी बात को प्रमाणान्तर से प्रत्यायित करने के लिए उसने सुपार्श्व के द्वारा सुनी हुई कथा का वर्णन किया। उस कथा में ऋषियों ने सुपार्श्व को बताया था दाशरथि राम की पत्नी जनकात्मजा का रावण ने हरण किया है। स्वयं उसने राम राम की पुकार से उस तरुणी को राम-पत्नी समझा। परन्तु सुपार्श्व द्वारा उसे विदित हुआ कि ऋषियों ने उसे राम-पत्नी बताया है। टीकाकार ने कहा है—"**प्रतिसंमुक्तान् त्यक्तप्रायोपवेशनान् सीताश्रुतिसमाहितान् सीताविषयवृत्तान्तश्रवणे सावधानान् पुनराश्वासयन्नन्यसाक्षिकताप्रदर्शनेन भूयः स्वोक्तार्थं प्रत्याययन्** अर्थात् सम्पाति का वचन सुनकर वानरों ने प्रायोपवेशन त्याग दिया और सीता के वृत्तान्त का

श्रवण करने के लिए सावधान हो गये तब सम्पाति ने उन्हें पुनः आश्वस्त करते हुए, अपनी बातों के सम्बन्ध में अन्य की साक्षिता दिखलाते हुए स्वोक्त अर्थ में विश्वास उत्पन्न कराते हुए सुपार्श्ववर्णित वृत्तान्त सुनाया—

"स हरीन् प्रतिसंमूक्तान् सीताश्रुतिसमाहितान् ।
पुनराश्वासयन् प्रीत इदं वचनमब्रवीत् ।।" (वा० रा० ४।५९।५)

इस तरह विचार करने पर यहाँ असमन्वय का प्रश्न ही नहीं है। संगति का लक्षण, उसके भेद, विरोधाभास एवं विरोध-परिहार सम्बन्धी भारतीय परम्परा न जानने के कारण ही पाश्चात्य विद्वानों को भारतीय शास्त्रों में पद पद पर भ्रान्ति होती है। भारतीय विचारपद्धति न समझने के कारण ही पाश्चात्य लोग वेदों में भी असंगति दिखलाने का साहस करते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है—

"**अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्**" (तै० उ० ३।२) "**प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्**" (तै० उ० ३।३) तथा "**मनो ब्रह्मेति। विज्ञानं ब्रह्मेति। आनन्दो ब्रह्मेति** (तै० उ० ३।४, ५,६)। इन बचनों को देखकर वे कहते हैं वैदिक बहुत शीघ्रता से अपनी कही बातों को भूल जाते हैं। पहले वायु के लिए कहा "**नमस्ते वायो त्वमेव ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि**" (तै० उ० १।१) और फिर अन्न, प्राण आदि को कह दिया, परन्तु यह वेद का दोष नहीं उनकी शक्ति, लक्षणा आदि विविध वृत्तियों को न जानने से अनभिज्ञों को भ्रान्ति होती है।

"**भ्रमयति भारती त उरुवृत्तिभिरुक्थजडान्।**" (भा० पु० १०।८७।३६) वेदस्तुति में कहा गया है भगवन्, आपकी वेदरूप वाणी विविध वृत्तियों द्वारा उक्थजड़ों को भ्रम में डाल देती है।

५१२ वें अनु० में बुल्के किष्किन्धाकाण्ड के विकास पर विचार करते हैं। वस्तुतः विकास का भी अर्थ वही है जो उनकी तथाकथित आदिरामायण में नहीं था उस अंश का विस्तार ही विकास है। **वाल्मीकिरामायण के** अनुसार सुग्रीव राम-लक्ष्मण को देखकर तथा उनको बाली द्वारा प्रेषित समझकर भयभीत होकर हनुमान् को उनके निकट भेजता है। हनुमान् भिक्षुकरूप धारण कर राम और लक्ष्मण के पास आते हैं और अपना परिचय देकर कहते हैं कि सुग्रीव आपसे मैत्री करना चाहते हैं। राम ने सुग्रीव की सहायता करने का वचन दिया। पश्चात् हनुमान् लक्ष्मण से सीता-हरण का वृत्तान्त सुनकर सुग्रीव की सहायता का आश्वासन देते हैं। तथा अपने वानर रूप में प्रकट होकर राम और लक्ष्मण को अपने कन्धे पर चढ़ाकर दोनों को पर्वत के शिखर पर सुग्रीव के पास पहुँचाते हैं (सर्ग २-४)।

बंगाली राम-कथाओं में "शिवरामेश्वर-युद्ध" का भी वर्णन है। लक्ष्मण शिव की वाटिका में फल तोड़ने जाते हैं। वहाँ के द्वारपाल हनुमान् से युद्ध करते हैं। देर होने पर राम स्वयं जाते हैं। इतने में शिवजी भी आ जाते हैं। दोनों युद्ध करते हैं। अन्त में शिव राम के लिए सहायतार्थ हनुमान् को समर्पित करते हैं। हनुमान् राम के भक्त हो गये। उत्तर भारत के एकवृत्तान्त के अनुसार राम के लिए फल तोड़ते हुए लक्ष्मण रुद्रावतार हनुमान् से युद्ध करते हैं। लक्ष्मण राम के भाई हैं, यह सुनकर हनुमान् राम की शरण लेते हैं और राम तथा लक्ष्मण को सुग्रीव के पास ले जाते हैं। (पा० वृ० नं० १३)।

संताली राम-कथा के अनुसार हनुमान् तरबूजों की रखवाली करते हैं। लक्ष्मण उनमें से कुछ लेना चाहते हैं। जिसमें दोनों की भिड़न्त हो गयी। अन्त में हनुमान् ने दोनों को फल खिलाया। मूल ग्रन्थ का सीधा सम्बन्ध न होने से दन्तकथाओं का सम्बन्ध जुड़ जाने का ही यह परिणाम है। **भावार्थरामायण** के अनुसार राम की शक्ति देखने के लिए हाथ में साल वृक्ष लेकर राम और लक्ष्मण के पास पहुँचकर हनुमान् ने धमकी के साथ पूछा तुम लोग कौन हो ? राम ने बाण चलाकर हनुमान् को परास्त किया। तब हनुमान् ने वायु का सुझाव मान कर राम से क्षमा माँगी।

रामकियेन के अनुसार जन्म से ही हनुमान् के कानों में कुण्डल थे। आकाशवाणी में यह बताया गया था कि जो व्यक्ति बालक के इन कुण्डलों को देखेगा वही उसका स्वामी होगा (पिता होगा)। हनुमान् किसी वृक्ष पर चढ़कर फल खा रहे थे। हनुमान् ने पेड़ के नीचे लक्ष्मण की गोद में सिर रख कर सोते हुए राम को देखा। लक्ष्मण का ध्यान आकृष्ट करने के लिए हनुमान् उनपर पत्ते और फल फेंकने लगे। अन्त में नीचे उतर कर लक्ष्मण से युद्ध किया। लक्ष्मण के तीन बाण छीनकर पत्तों में छिप गये। लक्ष्मण ने राम को जगाया। राम ने उस वानर के कानों में कुण्डलों को देखा और हनुमान् को अपने पुत्र के रूप में स्वीकार किया। **सेरीराम के पातानी** पाठ के अनुसार हनुमान् राम से युद्ध करते हैं। अन्त में राम को पहचान कर उनके भक्त बन जाते हैं। **रामकेर्ति** (सर्ग ५) के अनुसार हनुमान् वायुपुत्र थे।

रंगनाथरामायण (४।३) के अनुसार हनुमान् तपस्या द्वारा ब्रह्मा से वरदान पाते हैं और पूछते हैं कि मेरे मोक्ष और कार्यसिद्धि के लिए मेरा आराध्य कौन होगा? ब्रह्मा ने कहा जो तुम्हारे आभूषणों को देख सकेगा वही तुम्हारा प्रभु होगा। **पद्मपुराण** (पातालखण्ड ११२।१३५) में उल्लेख है कि राम लक्ष्मण की गोद में सिर रखकर विश्राम कर रहे थे। राम ने एक वानर देखा जो हेम के समान पिङ्गल और मणिकुण्डल पहने था। **कम्बरामायण** (४।२।३५) तथा **बालरामदासरामायण** में भी कुण्डलों की चर्चा है। **भावार्थरामायण** (४।१) के अनुसार अञ्जना ने हनुमान् से कहा था कि जो तुम्हारी लंगोटी देख सकेगा वहीं तुम्हारा स्वामी होगा। उसके अनुसार लंगोटी पहने ही हनुमान् का जन्म हुआ था। वस्तुतः हनुमान् की राम में अनन्यभक्ति और राम का उनके प्रति वात्सल्यभाव तथा हनुमान् की अखण्डब्रह्मचर्यनिष्ठा की अभिव्यञ्जना के लिए उक्त कथाओं का प्राकट्य है।

बिर्होररामकथा में हनुमान् ने अपनी माता के गर्भ से राम को पहिचान लिया था और जन्मते ही वह उनके साथ चल दिये। **अद्भुतरामायण** के अनुसार राम ने हनुमान् को अपने विष्णुरूप का दर्शन कराया। **सेरीराम** के एक पाठ के अनुसार लक्ष्मण राम के लिए पानी लाये। राम ने पानी पीकर उसे (सुग्रीव के आँसुओं से) नमकीन पाया। कारण का पता लगाने पर सुग्रीव से भेंट होती है। रामकेर्ति (सर्ग ५) में भी यहीं कथा मिलती है। **सेरीराम** के शेल्लाबेर पाठ के अनुसार लक्ष्मण द्वारा लाये गये पानी को पीकर राम लक्ष्मण की गोद में सिर रखकर चार दिन तक सोते रहे। सुग्रीव पेड़ से लक्ष्मण का यह भ्रातृ-प्रेम देख कर रोने लगा। सुग्रीव के एक आँसू ने राम की छाती पर पड़कर उन्हें जगाया। राम ने इसे लक्ष्मण का आँसू समझकर उन्हें घर लौटने का आदेश दे दिया। इसपर लक्ष्मण की प्रार्थना से पेड़ के पत्ते छोटे हो गये तथा सुग्रीव दिखायी पड़ने लगा। तब राम-सुग्रीव की मैत्री हुई। **सेरतकाण्ड** तथा **हिकायत महाराज रावण** के अनुसार वाली ने सुग्रीव को दूर फेंक दिया था। वह अधमरा होकर वृक्ष की शाखाओं पर पड़ा था। राम ने उसी वृक्ष के नीचे विश्राम किया और सुग्रीव के आँसू राम पर पड़े। इन सभी कथाओं का तात्पर्य **वाल्मीकिरामायण** के अविरुद्ध ही लगा लेना उचित है। सुग्रीव अत्यन्त आर्त था। भगवान् राम के साथ सम्बन्ध होने से वह कृतार्थ हो गया। यही इन कथाओं का सार है।

अनु० ५१३ में बुल्के कहते हैं आदिरामायण में वाली और सुग्रीव की जन्म-कथा नहीं थी। परन्तु यह समझना उनकी भूल है। दाक्षिणात्य बालकाण्ड (१७।१०) में वाली और सुग्रीव को क्रमशः इन्द्र एवं सूर्य का पुत्र कहा गया है। उसको प्रक्षेप कहना भी निराधार है। अन्य पाठों के अनुसार युद्धकाण्ड (सर्ग ४) में शुक रावण को उनका वृत्तान्त सुनाता है। **महाभारत** में प्रायः प्रत्येक पात्र के सम्बन्ध में विस्तृत कथा मिलती है। तदनुसार **रामायण** में भी सभी पात्रों की विस्तृत न सही प्रत्येक प्रधान पात्र का कुछ तो वर्णन उचित ही था। दाक्षिणात्य पाठ की कथा का सार यही है कि ब्रह्मा के अश्रु से ऋक्षरजा वानर की उत्पत्ति हुई। वह सरोवर में अपनी छाया को ही अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ कर उसमें कूद पड़ता है और एक सुन्दर स्त्री हो जाता है। तब उसी समय वहाँ इन्द्र और सूर्य आते हैं और उसपर मोहित होते हैं। इन्द्र का तेज उसके वालों पर गिरा उससे वाली एवं सूर्य का तेज

उसकी ग्रीवा पर गिरा उससे सुग्रीव की उत्पत्ति हुई। इन्द्र ने अपने पुत्र को एक अक्षयगुणपूर्ण सुवर्णमाला दी। सूर्य ने अपने पुत्र की सेवा में हनुमान् को नियुक्त कर दिया। ऋक्षरजा पुनः अपना वानररूप पाकर अपने पुत्रों के साथ ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा ने एक देवदूत के साथ उसे विश्वकर्मा द्वारा निर्मित किष्किन्धा भेज दिया। देवदूत ने ऋक्षरजा का वानरराजपद पर अभिषेक कर दिया।

उत्तरकाण्ड (सर्ग ३७) के अनन्तर प्रक्षिप्त सर्गों की कथाओं के अनुसार किसी दिन प्रजापति के वाम नेत्र में एक रजकण पड़ गया। उसे बाँये हाथ से दूर फेंकने से उसमें से एक स्त्री उत्पन्न हुई। पश्चात् सूर्य ने उसका आलिङ्गन किया और वरदान दिया कि तुम्हें एक वीर पुत्र उत्पन्न होगा। किसी समय इन्द्र भी उसे देखकर आकृष्ट हुए। उन्होंने उसको अपने हाथ से स्पर्श करके आशीर्वाद दिया कि तुमसे वाली और सुग्रीव दो कामरूपी यमल वानर उत्पन्न होंगे। किष्किन्धा में राज्य करेंगे।

भावार्थरामायण में बताया गया है कि किसी दिन कैलास के एक सरोवर में शिवपार्वती क्रीड़ा कर रहे थे। अचानक कुछ मुनि आ गये, जिससे दोनों अर्न्तधान हो गये। पार्वती ने शाप दिया कि जो इस सरोवर में स्नान करेगा वह नारी के रूप में इससे निकलेगा। उस शाप से अनभिज्ञ होने के कारण ऋक्षरजा स्नान करके स्त्री हो गया।

बलरामदासरामायण के अनुसार मदनिका अप्सरा के इन्द्र-सभा में अकस्मात् हँसने के कारण इन्द्र ने उसे शाप दिया कि तू वानरमुखी होकर मानसरोवर के निकट पृथ्वी पर निवास करेगी और कश्यप से पुत्र उत्पन्न कर मुक्ति प्राप्त करेगी, अतः मदनिका वहाँ रहने लगी। किसी दिन उर्वशी का सौन्दर्य देखकर कश्यप के तेज का पतन होता है। वह उसे जल में फेंक देते हैं। उसे पीकर मदनिका गर्भवती हो गयी। वह एक ऐसा पुत्र पैदा करती है जिसका शरीर मनुष्य का और मुख वानर का है। एक शबरी उस शिशु का पालन करती है। ब्रह्मा उसे ऋक्षपति नाम देकर आरण्य के राजपद पर अभिषिक्त करते हैं। ब्रह्मा ऋक्षपति को पार्वती-वन के पश्चिमी भाग में प्रवेश करने से मना करते हैं। किन्तु वह निषेधोल्लङ्घन करके उसमें प्रविष्ट होते ही नारी बन गया। इसका कारण यही था किसी दिन पार्वती ने अतृप्ति से वैसा शाप दिया था। अनन्तर **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ही नारी भावापन्न ऋक्षपति से बाली और सुग्रीव का जन्म होता है। ब्रह्मा के आदेशानुसार वह दोनों पुत्रों को दण्डकारण्य में छोड़ देता है। गौतमपत्नी अहल्या दोनों को गौतम नदी के तटपर पाकर दोनों का धर्मपुत्र के रूप में पालन करती है। जब वे तीन वर्ष के होते हैं तब किष्किन्धा का राजा खडगद मृगया के अवसर पर गौतम से मिलकर बताता है कि अञ्जना नामक पुत्री को छोड़कर मेरे कोई सन्तान नहीं है। ऋषि वाली और सुग्रीव को राजा के हाथ में सौंप देते हैं। खडगद वाली को राजा एवं सुग्रीव को युवराज बना देते हैं।

पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १ के अनुसार गरुड़ का भ्राता अरुण दो स्त्रियों को सूर्य का रथ हाँकते देखकर हँस पड़ा। सूर्य ने अरुण को रथ हाँकने के लिए कहा। अरुण ने स्वीकार कर लिया। वहीं अप्सराओं का नाच देखकर वह स्त्री बन गया। इन्द्र एवं सूर्य से उसे एक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अरुण ने दोनों को अगस्त्य की सेवा में सौंप दिया। तपस्या में संलग्न अगस्त्य पर पानी छिड़कने से अगस्त्य के शाप से दोनों वानर बन गये। **पउमचरियं** की रामकथाओं के अनुसार आदिरजा तथा इन्द्रमाली की वाली, सुग्रीव तथा श्रीप्रभा तीन सन्तानें थीं।

सारलादासमहाभारत वनपर्व के अनुसार गौतम अपनी पत्नी का जीव लेकर स्नानार्थ जाया करते थे। किसी दिन इन्द्र और सूर्य दोनों उस निर्जीव शरीर पर आसक्त हो गये। इन्द्र के प्रवेश से सजीव अहल्या से सूर्य का सम्बन्ध हुआ और सूर्य के प्रवेश से सजीव उसी शरीर से इन्द्र का सम्बन्ध हुआ, उससे श्यामशील और जवशील दो पुत्र उत्पन्न हुए। अञ्जना ने इसका भेद गौतम को बतला दिया था। परीक्षा लेने के लिए गौतम ने

दोनों को जल में फेंक दिया। जिससे दोनों वानर हो गये। गौतम ने दोनों को निःसन्तान राजा खडगद को प्रदान कर दिया।

सेरतकाण्ड और **सेरीराम** की कथाओं में भी उससे मिलती जुलती कथा है। **रामकियेन** की कथा पीछे दी जा चुकी है। बुल्के ने भी पाश्चात्य वृत्तान्त नं० १ को विकृत रूप ही माना है। मूल सम्बन्धविच्छेद से अनेक कल्पनाओं को अवकाश मिलता ही है। **वाल्मीकिरामायण** बालकाण्ड (सर्ग १७) के अनुसार भगवान् विष्णु जब दशरथ के गृह में पुत्ररूप में प्राप्त हुए तब ब्रह्मा ने सब देवताओं से कहा "विष्णु की सहायता के लिए वानर-रूप में अपने ऐसे पुत्रों को रचो जो बलवान्, कामरूपी, शूर, मायाविद्, वायु के समान वेगवाले, नयज्ञ, बुद्धिसम्पन्न और विष्णुतुल्य पराक्रमवाले हों और जो असंहार्य, उपायज्ञ तथा दिव्यसंहनन और देवताओं के समान ही सर्वास्त्र-सम्पन्न हों। तदनुसार देवताओं ने अप्सराओं, गन्धर्वियों, यक्ष तथा पन्नगों की कन्याओं, विद्याधरियों आदि में विविध सन्तानें उत्पन्न कीं।

स्वयं ब्रह्मा ने ऋक्षपुंगव जाम्बवान् को उत्पन्न किया था, इन्द्र ने वाली को, सूर्य ने सुग्रीव को, बृहस्पति ने तार को, धनद ने गन्धमादन को, विश्वकर्मा ने नल को, अग्नि ने नील को, अश्वियों ने मैन्द और द्विविद को, वरुण ने सुषेण को, पर्जन्य ने शरभ को तथा पवन ने वज्राङ्ग वैनतेयतुल्य हनुमान् को जन्म दिया।

वाली और सुग्रीव के जन्म की विशेष कथा उत्तरकाण्ड में प्रक्षिप्त सर्ग से समझी जा सकती है। इसी के अनुसार अन्य कथाओं का अभिप्राय भी लगा लेना चाहिये।

५१५ वें अनु० में वाली और सुग्रीव की शत्रुता के कारणों पर विचार है। दुन्दुभि-पुत्र मायावी के ललकारने पर वाली उसे मारने निकला। सुग्रीव भी निकला। मायावी एक बिल में प्रविष्ट हो गया। वाली सुग्रीव को बिलद्वार पर खड़ा करके अन्दर चला गया। एक वर्ष बाद बिल से फेनयुक्त रक्त-धारा निकलती देखकर तथा असुरों का गर्जन सुनकर सुग्रीव ने समझ लिया कि वाली मारा गया। पत्थरों से बिल का द्वार बन्द कर अपने भाई की उदक-क्रिया सम्पन्न करके किष्किन्धा लौट आया। मन्त्रियों ने उसे अभिषिक्त कर दिया और वह न्यायपूर्वक शासन करने लगा। वाली अपने शत्रु को मारकर लौटा। सुग्रीव ने विनयपूर्वक राज्यसिंहासन उसे सौंप दिया। परन्तु उसने उसकी पत्नी रुमा को लेकर उसे निर्वासित कर दिया। सुग्रीव सारी पृथ्वी में भटक कर वाली के लिए अगम्य ऋष्यमूक पर्वत पर रहने लगा। दिग्वर्णन के बाद सुग्रीव ने वही कथा राम को सुनायी थी। इस वृत्तान्त में असुर का नाम दुन्दुभि ही था। सुग्रीव के राजा बनने पर तारा और रुमा दोनों उसकी पत्नियाँ बन गयीं। वाली ने सर्वत्र उसका पीछा किया। तब हनुमान् ने सुग्रीव को मतङ्ग के शाप का स्मरण दिलाया जिससे सुग्रीव ऋष्यमूक पर रहने लगा। **अध्यात्मरामायण** के मायावी मय दानव का परम दुर्मद पुत्र था (४।१।४७)। **अध्यात्मरामायण** (१।४।१६) के अनुसार उसका दुर्मद नाम है। **सेरीराम** के अनुसार वाली ने गुफा में प्रवेश करने के पहले सुग्रीव से कहा था कि यदि सफेद रक्त गुफा से निकले तो मुझे मृत समझना, यदि लाल रक्त निकले तो शत्रु का मरण समझना। परन्तु सफेद रुधिर निकलने से सुग्रीव ने वाली को मृत समझ लिया। किष्किन्धा पहुँचकर सुग्रीव ने वाली की पत्नी के सामने विवाह का प्रस्ताव किया। उसने सप्ताह की अवधि माँगी, इसी बीच वाली लौट आया। **पद्मपुराण** (४।११२।१६३) के अनुसार वाली ने ६०,००० वर्ष पूर्व दशरथ के अभिषेक के दिन ही सुग्रीव को निर्वासित किया था।

पउमचरियं के अनुसार राम के आगमन से पूर्व ही वाली को वैराग्य हो गया था। सुग्रीव ने तारा से विवाह किया और उससे अङ्गदभट और जवानन्द दो पुत्र हुए। **महानाटक** के अनुसार तारा सुग्रीव की ही पत्नी थी। **रङ्गनाथरामायण** के अनुसार समुद्र-मन्थन में वाली और सुग्रीव ने देवताओं की सहायता की थी, फलतः लक्ष्मी के बाद समुद्र-मन्थन से निकली देवाङ्गनाओं में से तारा वाली और सुग्रीव को दी गयी। **रामकियेन** के अनुसार ईश्वर के

सुमेरु-पर्वत को पूर्ववत् सीधा कर देने के पुरस्कारस्वरूप वाली को एक त्रिशूल और सुग्रीव को तारा मिली थी। किन्तु वाली ने छिपाकर तारा से विवाह कर लिया। दुन्दुभि वध के अतिरिक्त रावण की पराजय भी वाली ने की थी।

सुग्रीव ने दुन्दभि के अस्थिनिचय तथा सप्त तालों को दिखला कर राम से कहा था इनको वाली एक ही समय में निष्पत्र कर देता था। सुग्रीव का अभिप्राय समझकर राम ने पादाङ्गुष्ठ से दुन्दुभि के अस्थि-कङ्काल को दस योजन दूर फेंक दिया और राम का एक बाण सप्त तालों का भेदन कर गिरिप्रस्थ सप्त भूमि का भेदन करके पुनः तूणीर में प्रविष्ट हो गया।

नृसिंहपुराण के अनुसार वे सप्तताल एक सर्प की पीठ पर चढ़कर स्थित थे। **आनन्दरामायण** के अनुसार वाली ने किसी गुफा में तालवृक्ष के फल रखे थे। कोई उनमें से सात ले गया। वाली ने गुफा में एक सर्प देखा और उसे ही चोर समझ कर शाप दिया कि तुम्हारे शरीर पर सात ताल के वृक्ष उत्पन्न होंगे। सर्प ने प्रतिशाप दिया था कि जो उनको काटेगा वही तुम्हारा घातक होगा। राम ने शेषांश लक्ष्मण के पैर को अपने पैर से दबाकर सर्प को सीधा कर दिया और एक बाण से सातों को काट डाला। सुग्रीव ने फिर भी कहा कश्यप ने महती तपस्या से माला प्राप्त कर वह माला इन्द्र को दी थी। इन्द्र ने वही माला वाली को प्रदान कर दी। उसे देखते ही शत्रुगण युद्ध में बलहीन हो जाते हैं। बाली सदा माला को पहने रहता हैं। राम ने शापमुक्त उसी सर्प को आदेश दिया कि वह माला चुराकर ले जाये। सर्प ने माला चुराकर इन्द्र को दे दी। तभी सुग्रीव वाली से द्वन्द्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हुआ।

तत्त्वसंग्रहरामायण के अनुसार राम ने सुग्रीव को विश्वरूप दिखाया और ज्ञानमुद्रा तथा रामसहस्रनामस्तोत्र बताया। **सेरीराम** के अनुसार राम ने अपने एक बाण से सहस्र वन काट डाले। उस समय उनके धनुष की टङ्कार से सुग्रीव आदि मूर्च्छित हो गये थे।

इन अनेक उद्धरणों का तात्पर्य यही है कि वाली महान् पराक्रमी था। उसके वध में अनेक प्रतिबन्ध थे, इसी लिए सुग्रीव भयभीत होकर राम की विशिष्ट सामर्थ्य के सम्बन्ध में पूर्ण आश्वस्त होकर ही द्वन्द्वयुद्ध में प्रवृत्त हुआ था। राम ने उसकी इच्छा से बहुत अधिक अपनी सामर्थ्य सिद्ध कर दिखायी।

वाली का वध

प्रथम द्वन्द्वयुद्ध में दोनों के एकरूप होने के कारण राम ने बाण नहीं छोड़ा। जिससे पराजित होकर सुग्रीव को ऋष्यमूक लौट जाना पड़ा। दूसरी बार राम ने सुग्रीव के गले में गजपुष्प की माला पहना दी। दुबारा सुग्रीव का आह्वान सुनकर तारा के अनुरोध को ठुकराकर वाली पुनः निकला। सुग्रीव से द्वन्द्वयुद्ध करते समय राम-बाण से आहत होकर वाली गिर पड़ा (सर्ग १३-१६)। अनन्तर के दो (१७,१८) सर्गों को बुल्के प्रक्षिप्त कहते हैं। इसका खण्डन पीछे किया जा चुका है।

बुल्के ५१९ वें अनु० में कहते हैं, **महाभारत के रामोपाख्यान** में एक ही द्वन्द्वयुद्ध मिलता है। संक्षिप्त संकलन के नाते यह ठीक ही है, पर इससे **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित दो द्वन्द्वयुद्धों का अपलाप नहीं किया जा सकता।

विभिन्न अन्य राम-कथाओं में सुग्रीव को पहिचानने के लिए उसकी पूँछ में दर्पण तथा कमर में एक जड़ का लपेटना आदि भी उक्त है। **सेरीराम** के अनुसार वाली ने बाण हाथ से पकड़ लिया था। राम की निर्दोषता सिद्ध होने पर विष्णुस्वरूप राम के बाण की अमोघता के लिए बाण छोड़ दिया और वह छाती में घुस गया। आहत वाली ने राम का हाथ पकड़ कर अपनी पुत्री और पुत्र को सौंप दिया। राम ने वाली को जीवित रखना चाहा, पर उसने स्वीकार नहीं किया। **पद्मपुराण** (४।१११।१६७) में कहा गया है कि मरने के पूर्व वाली ने राम को उनका बाण लौटा दिया था।

बुल्के का यह कहना ठीक नहीं है कि अर्वाचीन कथाओं में वाली की मुक्ति का वर्णन है, क्योंकि **पद्मपुराण** आदि अर्वाचीन नहीं हैं। **पद्मपुराण** (४।११२।१६६-१६९), **अध्यात्मरामायण** (४।२), **आनन्दरामायण** (१।८।६३), **रङ्गनाथरामायण** (४।९), **कम्बरामायण**, **रामचरितमानस** (४।१०।१) आदि के अनुसार राम को परब्रह्म विष्णुस्वरूप मानकर बाली ने उनकी स्तुति की और अनायास ही देह-त्याग किया—

"रामचरन दृढ़ प्रीति करि बालि कीन्ह तनुत्याग।
सुमन माल जिमि कण्ठ ते गिरत न जानइ नाग॥" (रा० मा० ४।१०)

कुछ राम-कथाओं में कहा गया है कि द्वापरान्त में वाली ने भील के रूप में प्रकट होकर विष्णुस्वरूप राम से अन्य (कृष्ण) जन्म में बदला लिया था। **महाभारत** मुसलपर्व अध्याय ५ के अनुसार जरानामक व्याध ने सुप्त मृग समझ कर कृष्ण पर बाण चलाया था। **महानाटक** (५।५७;१४।७५) तथा **आनन्दरामायण** (१।८।६६-६८) के अनुसार राम ने आहत वाली से कहा था, तुम द्वापरान्त में भील बनकर मेरे पैर में बाण चलाओगे, तभी तुम्हारी मुक्ति होगी। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार राम ने मनुस्मृति के दो श्लोक उद्धृत किये थे—

"राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥
शासनाद् वापि मोक्षाद् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्॥"(वा० रा० ४।१८।३१,३२)

उनके अनुसार पाप करनेवाले प्राणी राजा के द्वारा दण्डित होकर निर्मल हो सुकृती सन्तों के समान स्वर्ग जाते हैं। राजा दण्ड दें अथवा छोड़ दें, पाप करनेवाला सर्वथा पाप से मुक्त हो जाता है। परन्तु उचित दण्ड न देने से राजा उस पाप का भागी होता है। उसके अनुसार वाली का कल्याण उसी जन्म में हो गया। **रामचरितमानस** की परम्परा के अनुसार उसे दिव्य भगवत्पादपद्म की प्राप्ति हो गयी। कल्पान्तरीय कथाओं के अनुसार वाली कृष्ण के दर्शन के अनन्तर मुक्त हुआ है। इस तरह कल्पभेद से दोनों ही कथाएँ सङ्गत हैं। तारा के शाप की बात भी कल्पान्तरीय समझनी चाहिये।

५२१ वें अनु० में **वाल्मीकिरामायण** में अङ्गद बार-बार सुग्रीव की कठोरता का उल्लेख करता है। इस प्रसङ्ग में राम का नाम भी लेता है—

"भेतव्यं तस्य सततं रामस्य च महात्मनः।" (वा० रा० ४।४९।९)

"इहास्ति नो नैव भयं पुरन्दरान्न राघवाद् वानरराजतोऽपि वा।" (वा० रा० ४।५३।२६)

अर्थात् तीक्ष्णदण्ड सुग्रीव से डरना चाहिये और महात्मा राम से भी डरना चाहिये। इस मायानिर्मित बिल में हम लोगों को इन्द्र तथा राघव तथा वानरराज से भी भय नहीं है। परन्तु यह केवल विपन्न अवस्था की उक्ति है। वस्तुस्थिति की परिचायिका नहीं है।

बुल्के आदि कहते हैं, **महानाटक** में कहा गया है कि अङ्गद ने दूतकार्य के लिए जाते समय राम के प्रति वैर तथा उनका वध करने की अभिलाषा प्रकट की थी (अङ्क ८।३)। युद्ध के पश्चात् अयोध्या पहुँच कर अङ्गद ने राम का युद्ध के लिए आह्वान किया था, किन्तु एक आकाशवाणी से यह जानकर शान्त हो गया था कि वालि-वध का प्रतीकार कृष्णावतार के समय भीलरूपी वाली के द्वारा होनेवाला है (अङ्क १४।७१–७६)। **हिकायत महाराज रावण** के अनुसार अङ्गद ने द्वन्द्वयुद्ध में राम को हरा दिया। राम ने विभीषण को वाली की समाधि पर भेजा था। विभीषण वाली को देखकर अङ्गद को राजा बनाने का आदेश देकर अन्तर्धान हो गया। वस्तुतः ऐसी कथाएँ प्रतिक्रिया

के रूप में सामने आती हैं, यथार्थता के आधार पर नहीं। महर्षि वाल्मीकि की ऋतम्भरा प्रज्ञा प्रसूत **वाल्मीकिरामायण** ग्रन्थ ही वस्तुस्थिति का परिचायक है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार राम के सम्मुख इन्द्र, महेन्द्र, ब्रह्मा तथा त्रिपुरान्तक भी खड़े नहीं हो सकते थे। फिर अन्य की तो बात ही क्या है—

"इन्द्रो महेन्द्रः सुरनायको वा ब्रह्मा स्वयम्भूश्चतुराननो वा।
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य।" (वा० रा० सुन्दरकाण्ड)

रामचरितमानस के अनुसार अङ्गद एवं हनुमान् दोनों ही राम के परम प्रिय भक्त हैं—

प्रभु अज्ञा धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुनसागर ईस राम कृपा जापर करहु॥
स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदर दयउ।
अस विचारि युवराज तन पुलकित हरषित भयउ॥"
(रा० मा० ६।१७ क और ख)

वालि-वध के दोष का निवारण **वाल्मीकिरामायण** में स्पष्ट है, परन्तु बुल्के जैसे पाश्चात्य लोग तो केवल प्रक्षिप्त कहकर ही सब कुछ उड़ा देना चाहते हैं। **आनन्दरामायण** के अनुसार इन्द्रप्रदत्त हेममाला के कारण शत्रु बलहीन हो जाता था। इसी लिए कहा जाता है कि राम ने वाली को छिप कर मारा था। **तोरवेरामायण** (४।४) के अनुसार शत्रु की आधी शक्ति वाली को मिल जाती थी। **भावार्थरामायण** में भी यही बात उल्लिखित है। जो भी हो, आर्ष **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार राम ने वाली को मारा। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार छिपने की कोई बात नहीं है। युद्ध करते करते जब सुग्रीव क्षीण होने लगा तब राम ने बाण चलाया—

"ततो रामो महातेजा आर्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम्।
स शरं वीक्षते वीरो वालिनो वधकाङ्क्षया॥" (वा० रा० ४।१६।३३)

ज्यातल के निर्घोष से पक्षिगण त्रस्त हो गये। मृगगण भाग चले। ऐसा लगा मानो प्रलय होने जा रहा हो। **वाल्मीकिरामायण** से इतना ही विदित होता है कि माला के प्रभाव से प्राण एवं तेज तथा पराक्रम ने वालि को नहीं छोड़ा। प्रतीत होता था कि माला, उसका देह और राम का वह बाण लक्ष्मी ही त्रिविध रूप से दीप्त हो रही है (वा० रा० ४।५।७)। वाली ने भी राम पर यह दोष नहीं लगाया कि आपने मुझे छिपकर मारा है।

किन्तु उसका यही आरोप था कि अन्य से युद्ध करते हुए को आपने मारा।

"न मान्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि।" (वा० रा० ४।१७।२१)

यह हो सकता है कि युद्ध करनेवाले प्रतिद्वन्द्वी का अर्धबल उसमें आ जाता हो। परन्तु राम ने तो दण्डधर के रूप में उसे दण्ड दिया था, अतः उनके सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं हो सकती थी।

पउमचरियं के अनुसार वाली सुग्रीव को राज देकर श्रमण हो गया। किन्तु साहसगति नामक विद्याधर ने सुग्रीव का रूप धारण कर उसकी पत्नी और राज्य छीन लिया। राम सेना को लेकर सुग्रीव के साथ किष्किन्धा पहुँचे। साहसगति ने सामना किया। दोनों में घोर युद्ध हुआ। सुग्रीव आहत हो गया। राम ने बताया कि पहचानने में गड़बड़ी होने से साहसगति को नहीं मारा। दुबारा युद्ध में साहसगति को मारा। **उत्तरपुराण** (६८।४४०-४६३) के अनुसार लक्ष्मण ने वाली को मारा था। **अनामकं जातकं** के अनुसार राम का धनुष देखकर वाली भाग गया। **महावीरचरित** एवं **अनर्घराघव** में वाली राम द्वारा द्वन्द्वयुद्ध में मारा जाता है।

राम की चातुर्मास्य-साधना

५२३ वें अनु० में बुल्के राम की वर्षाकालीन साधना के सम्बन्ध में कहते हैं। राम ने लक्ष्मण के साथ प्रस्रवण गिरि की एक गुफा में वर्षाऋतु बितायी (वा० रा० ४। सर्ग २७,२८)। **अग्निपुराण** (८।५) के अनुसार माल्यवान् पर्वत पर राम ने चातुर्मास्य यज्ञ किया। **देवीभागवत** (३।३०) के अनुसार नारद के परामर्श से राम ने नवरात्रोपासना की।

सिंहारूढ़ा भगवती से राम विजय का वरदान पाते हैं। विजयापूजा के बाद राम लङ्का को प्रस्थान करते हैं। **शिवपुराण** (वेङ्कटेश प्रेस उमासंहिता ३।५३–५५) में कहा गया है कि राम ने शिव की आराधना की है। उससे उन्हें शिव से धनुष, बाण तथा ज्ञान प्राप्त हुआ। **शिवपुराण** (नवलकिशोर प्रेस शतरुद्रसंहिता अध्याय ३४–३९) में राम की शिवपूजा का विस्तृत वर्णन है। अन्त में अन्य देवताओं के साथ शिव प्रकट होते हैं और राम को धनुष तथा अपने अन्य अस्त्र देते हैं। अन्य देवताओं ने भी अपने अपने अस्त्र राम को दिये और उनकी सहायता के लिए देवता लोग रीछ और वानर हुए। शिवजी ने भी हनुमान् के रूप में प्रकट होकर प्रत्यक्ष ही राम की सहायता करने का वचन दिया और राम को शिवगीता का उपदेश दिया। **शिवगीता** (वेङ्कटेश प्रेस) में अगस्त्य ने राम को पाशुपतव्रत करने का उपदेश दिया था। राम के द्वारा पाशुपतव्रत करने पर शिवजी ने दिव्य धनुष के साथ पाशुपत अस्त्र प्रदान किया था। प्रायः पाश्चात्य इन अनेक विचित्र उपासनाओं का भेद देख कर भी सबकी अप्रामाणिकता की कल्पना करते हैं। परन्तु भारतीय दृष्टिकोण से सबका समन्वय ही उचित है। अतः श्रीराम ने शिवजी की तथा भगवती की भी उपासना की हो तो इसमें कोई विरोध की बात नहीं है। कल्पभेद का समाधान तो है ही।

वानरों का प्रेषण

५२४ वें अनु० में बुल्के कहते हैं, प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** की अधिकांश सामग्री प्रक्षिप्त है। इसमें वानरों के प्रेषण का अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से वर्णन किया गया है (सर्ग २९–४७)। यह कहना भी गलत है, क्योंकि वह सब परम्पराप्राप्त है और टीकाकारों ने उसपर टीकाएँ लिखी हैं।

५१०–५११ अनु० का खण्डन पीछे हो चुका है। **महाभारत** के उद्योग पर्व का विस्तार देखते हुए यहाँ यह संक्षेप ही है। बुल्के की अपनी बुद्धि को छोड़कर इन सर्गों के प्रक्षिप्त होने में कोई भी प्रमाण नहीं है। हनुमान् के परामर्श से सुग्रीव ने नील को सेना बुलाने का आदेश दिया (सर्ग २९)। राम की प्रेरणा से लक्ष्मण ने किष्किन्धा में प्रवेश किया। उनको कुपित जानकर तारा को पुरस्कृत कर नम्रतापूर्वक सुग्रीव ने क्षमा माँग ली। राम ने सुग्रीव का प्रेमपूर्वक स्वागत किया।

सेरीराम के अनुसार सम्बूरान (जम्बू) महाजम्बू इन्द्र के शाप से वानर बन गया था। वह वाली का मित्र था। सुग्रीव सम्बूरान के कारण राम की सहायता से डरता था। लक्ष्मण ने पत्र लिखकर सम्बूरान से विष्णु के अवतारी राम की अधीनता स्वीकार करने को कहा, पर उसने राम अवतार पर विश्वास नहीं किया। जब हनुमान् रात्रि में हरण कर उसे राम के पास ले गये। तब उसने राम को देखकर उनका अवतारत्व स्वीकार किया। जाम्बवान् ने ज्योतिष द्वारा यह जान लिया कि सीता ने देह-त्याग का विचार छोड़ दिया है। और रावण चार धनुष की दूरी तक ही सीता के पास जा सकता है उससे अधिक निकट जाने में असमर्थ है। इसपर राम ने कहा कि जाम्बवान् की बात की सचाई जानने के लिए लङ्का जाने को कौन तैयार है। सबों की अनिच्छा देखकर राम ने वाली का स्मरण किया और हनुमान् को बुलाया। हनुमान् इस शर्त पर जाने को तैयार हुए कि राम के साथ एक पत्तल में भोजन की अनुमति मिल जाय। राम ने समुद्र-स्नान करने का आदेश दिया और इस शर्त को स्वीकार किया। वस्तुतः यह

विकृति ही है, क्योंकि भारतीय दृष्टि के अनुसार राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं । **वाल्मीकिरामायण** वेद का उपबृंहणरूप ही है । **भागवत** के अनुसार मर्त्यशिक्षण ही राम के अवतार का मुख्य उद्देश्य है । हनुमान् शिव के अवतार थे । वे भी लोकशिक्षार्थ दास्यभाव के आदर्श के संस्थापक हैं । उनके द्वारा उक्त शर्त सङ्गत नहीं है और राम द्वारा उस शर्त को स्वीकार करना भी सङ्गत नहीं है ।

भारतीय धर्म में किसी का उच्छिष्ट खाना या किसी को उच्छिष्ट देना निषिद्ध ही है—"नोच्छिष्टं कस्यचिद् दद्याद् नाद्याच्चैव तथान्तरा ।" (मनु० २।५६) । वाल्मीकिरामायण (४।४४।१२) के अनुसार राम हनुमान् को अभिज्ञान के रूप में अङ्गुलीयक (मुद्रिका) प्रदान करते हैं । पर बुल्के के अनुसार यह सब प्रक्षिप्त है । सीता द्वारा दिये हुए अभिज्ञानों के अनुकरण पर राम द्वारा दिये गये अभिज्ञान की भी कल्पना की गयी है । **महाभारत के रामोपाख्यान** में भी इसकी चर्चा नहीं है, परन्तु यह कोई हेतु नहीं है । जब आर्ष ग्रन्थ में उसका प्रतिपादन है ही तब उसे प्रक्षेप कहने का कोई औचित्य नहीं है ।

आनन्दरामायण (१।८।९३–९७) के अनुसार राम ने हनुमान् को निजमन्त्र दिया था एवं सीता के भाल पर तिलक तथा कपोलों पर पत्रावलीरचना का वृत्तान्त सुनाया था । **तोरवेरामायण** में चित्रकूट के जल-विहार को अभिज्ञान माना गया है । इस प्रकार अन्य भी अभिज्ञान हो सकते हैं । **कम्बरामायण** के अनुसार राम ने सीता का नख-शिख स्वरूप भी बतलाया था, जिससे वानरों को खोजने में सुविधा हो ।

गुहाप्रवेश

५२६ वें अनु० में तृषित वानरों ने विन्ध्य की दक्षिण-पश्चिम कोटि पर ऋक्षबिल गुफा से जल पक्षियों को निकलते देख हनुमान् के नेतृत्व में प्रवेश किया । आगे बढ़कर उस प्रकाशमय सुवर्णनगरी में तापसी मेरुसावर्णि की पुत्री स्वयम्प्रभा को देखा । मय ने उस नगरी का निर्माण किया था । हेमा अप्सरा में आसक्त होने के कारण इन्द्र ने मय का वध किया था । स्वयम्प्रभा ने वानरों को विविध फल भोजनार्थ दिये । आँखें बन्द कर सबको गुफा के बाहर ला दिया । **वाल्मीकिरामायण** (४।५२।१–३२) में बड़े उत्तम ढङ्ग से इस प्रसङ्ग का वर्णन है । उत्तरकाण्ड के अनुसार देवताओं ने मय को हेमा का प्रदान किया था । देवकार्यवश वह मय को छोड़ कर चली गयी । वियुक्त मय ने उस नगरी का निर्माण किया था । मय ने हेमा से मन्दोदरी पुत्री और दुन्दुभि तथा मायावी दो पुत्र उत्पन्न किये थे । हेमा से प्रेरित स्वयम्प्रभा मय को सूचना देने आयी, पर मय हेमा के विरह से मर चुका था । स्वयम्प्रभा का लौटकर हेमा को यह समाचार देने का साहस नहीं हुआ, अतः उसने वहीं तप करने का निश्चय कर लिया । **नृसिंहपुराण** तथा **अग्निपुराण** में तापसी के प्रभा, सुप्रभा आदि नाम दिये गये हैं । अभिनन्दकृत **रामचरित** में अङ्गद ने गुफा के द्वार पर दुर्दम दैत्य का वध किया था । **अध्यात्मरामायण** (४।६६।५१–८४) में कहा गया है कि विश्वकर्मा की पुत्री हेमा ने अपने नृत्य से शिव को प्रसन्न कर वह नगर प्राप्त किया था । ब्रह्मलोक जाते समय उसने अपनी सखी स्वयम्प्रभा को आदेश दिया तुम तपस्या करती रहो । त्रेतायुग में जब राम के दूत आयेंगे तब उनका आतिथ्य करना । तदनुसार स्वयम्प्रभा वानरों का सत्कार करके सबको गुफा के बाहर लायी और राम के दर्शन और स्तुति करके वह बदरीवन चली गयी ।

बाहर निकल कर वानरों ने देखा कि एक मास की अवधि पूरी हो चुकी है । सब लोग अत्यन्त निरुत्साह हो गये । अङ्गद के पुनः गुफा में प्रवेश कर वहीं निवास करने का प्रस्ताव किया । हनुमान् ने इसका विरोध किया । अन्त में सब प्रायोपवेशन में बैठ गये । सम्पाति ने उपवास करनेवाले वानरों से अपने भाई जटायु का नाम सुना और पास जाकर समाचार पूछा । अपनी कथा भी सुनायी और यह भी बताया कि सीता को रावण ले गया है । वह एक सौ योजन दूर समुद्र पार निवास करता है । उसने वानरों को समुद्र पार करने का परामर्श दिया । अन्त में जामवन्त

ने हनुमान् को उनके जन्म की कथा सुनाते हुए समुद्र-लङ्घन का आदेश दिया। हनुमान् की महिमा सुनकर सब वानरों ने विषादरहित होकर हनुमान् की स्तुति की। संस्तुत होकर महाबल हनुमान् महान् तेज से पूर्ण होकर अपने स्वाभाविक बल का स्मरण करके बोले—मैं समुद्र पार जाकर भूमि का स्पर्श किये बिना पुनः लौट सकता हूँ। गरुड़, वायु और मेरी शक्ति समान है। इन दोनों को छोड़कर कोई भी मेरी गति का अनुसरण नहीं कर सकता। बादलों से उदित विद्युत् के समान में निमेषान्वरमात्र में निरालम्बन आकाश में उत्पतन कर सकता हूँ।

सौ योजन ही नहीं हजारों योजन जाना मेरे लिए कुछ कठिन नहीं है। इन्द्र या ब्रह्मा के हाथ से अमृत लाऊँ या लङ्का को ही उठा लाऊँ। जाम्बवान् ने आश्वस्त करके कहा कि सीता का समाचार लेकर शीघ्र आ जाओ। तुम्हारे आने तक हम सब तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे। बुल्के ने यहाँ भी प्रक्षेप की कल्पना की है, जिसका निराकरण पीछे किया जा चुका है।

सम्पाति की कथा के सम्बन्ध में बुल्के कहते हैं कि सम्पाति की कथा दो बार आयी है। प्रथम के अनुसार वृत्र-वध के बाद सम्पाति और जटायु दोनों भाई इन्द्र पर विजय प्राप्त करने के लिए आकाश-मार्ग से स्वर्ग जा रहे थे। सूर्यमण्डल के समीप पहुँचने पर जटायु को प्रचण्ड सूर्य किरणों से संत्रस्त देखकर सम्पाति ने अपने पङ्खों से उसे ढँक लिया। फलतः सम्पाति के पङ्ख जल गये और वह विन्ध्यगिरि पर गिर गया। बाद में सम्पाति को जटायु के सम्बन्ध में कुछ समाचार नहीं मिला। द्वितीय अपेक्षाकृत विस्तृत कथा में कहा गया है पहले सम्पाति जटायु के साथ निशाकर मुनि के पास जाया करता था। अतः पङ्ख जलने के बाद भी सम्पाति निशाकर से भेंट करने गया था। वहाँ पहुँचकर उसने निशाकर से कहा हम दोनों भाई शक्ति-परीक्षा के लिए आकाश में सूर्य की ओर बढ़ने लगे। सूर्य के पास पहुँच कर हम दोनों भयभीत हो गये। जटायु पहले गिर गया। सम्पाति के पङ्खों से सुरक्षित होकर वह जनस्थान में सकुशल पहुँच गया। सम्पाति निःसहाय होकर विन्ध्य पर गिर गया उसने देहत्याग का विचार किया पर निशाकर ने उसे आश्वासन दिया कि राम के दूत सीता की खोज करने इधर आयेंगे। तुम उनको सीता का समाचार दोगे तब अपने पङ्ख पुनः प्राप्त करोगे। कथा सुनाते सुनाते सम्पाति ने अनुभव किया कि उसके पङ्ख बढ़ रहे हैं। उसने इसका श्रेय निशाकर को दिया (सर्ग ६०–६३)। अन्य पाठों में भी सम्पाति निशाकर को ही अपने स्वास्थ्य-लाभ का श्रेय देता है। पर वानर इसे राम और लक्ष्मण का प्रभाव मानते हैं। आकाशवाणी ने वानरों के कथन का समर्थन किया।

बुल्के द्वितीय वृत्तान्त को प्रक्षेप मानते हैं। इसी लिए उन्होंने दोनों कथाओं में परस्पर विरुद्ध बातों को दिखलाने का प्रयत्न किया है। परन्तु उनका यह प्रयत्न निराधार है, क्योंकि प्रथम कही हुई संक्षिप्त कथा का ही दूसरा विस्तृत रूप है। दोनों के अक्षरों पर ध्यान दिया जाता तो विरोध भी प्रतीत न होता। तिलक व्याख्याकार ने दोनों कथाओं का समन्वय किया है।

"पुरा वृत्रवधे वृत्ते स चाहं च जयैषिणौ।
आदित्यमुपयातौ स्वो ज्वलन्तं रश्मिमालिनम् ॥" (वा० रा० ४।५८।४)

पुराकाल में वृत्रवध के अनुसार इन्द्र को अति प्रबल जानकर उनको जीतने के लिए जटायु और मैं दोनों स्वर्ग गये। गरुड़ के समान शीघ्र ही इन्द्र को जीतकर लौटते समय दर्प से दोनों आदित्य के पास गये। हम दोनों में जटायु अवसाद को प्राप्त होने लगा। मैंने स्नेह से परम विह्वल जटायु को अपने पङ्खों से बचाया—

"आवृत्याकाशमार्गेण जवेन स्वर्गतौ भृशम्।
मध्ये प्राप्ते तु सूर्ये तु जटायुरवसीदति ॥" (वा० रा० ४।५८।५)

यहाँ कुछ टीकाकार मानते हैं कि परस्पर जय की इच्छा से ही प्रथम आदित्य को जो प्राप्त कर ले वही प्रबल मान्य होगा। इस प्रतिज्ञा से आदित्य के पास दोनों गये। परन्तु उनके मतानुसार आवृत्त्या इस पर और इन्द्र-कर्तृक वृत्रवध-प्रसङ्ग की असंगति होगी। बुल्के ने भी वृत्र-वध के बाद (इन्द्र पर) विजय प्राप्त करने की इच्छा से आकाश-मार्ग से स्वर्ग जा रहे थे, यह अर्थ किया है। उनके अर्थ में इन्द्रप्रसंग की संगति तो हो जाती है, परन्तु जा रहे थे, यह उक्त श्लोक के किसी भी शब्द का अर्थ नहीं है। "स्वर्गतौ" शब्द का अर्थ तो यही है कि आकाश मार्ग से स्वर्ग पहुँच गये। साथ ही 'आवृत्त्या' शब्द का उन्होंने स्पर्श भी नहीं किया। अतः आवृत्त्या का यही अर्थ ठीक है कि लौटते समय दर्प से हम दोनों आदित्य के पास पहुँच गये। इस तरह पहली कथा में ही इन्द्रविजय की इच्छा से हम दोनों स्वर्ग गये। लौटते समय दर्प से हम लोग आदित्य के पास गये। अर्थात् विजय करके लौट रहे थे।

दूसरी बार उसी कथा का सम्पाति ने विस्तार से वर्णन किया। वहीं उसका कारण भी कहा गया है—"**जनितप्रत्ययो हर्षात् सम्पातिः पुनरब्रवीत्।**" (वा० रा० ४।७०।२) तिलककार के अनुसार सीता को ढूंढनेवाले आयेंगे निशाकर मुनि के कथनानुसार रामदूतों के आगमनदर्शन से और पुनः पक्षदर्शन से सम्पाति को निशाकर के वचनों में पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो गया। इसलिए हर्ष से सम्पाति ने विस्तृत रूप से पुनः वर्णन किया। विश्वास के कारण ही निशाकर मुनि एवं उनके आश्रम की सर्वभूतहितैषिता तथा उनके प्रभाव से आश्रम में आते ही विविध विरुद्ध प्राणियों की निर्वैरता आदि का वर्णन किया था।

"अहमस्मिन् वसन् भ्रातुः प्रवृत्तिं नोपलक्षये।" (वा० रा० ४।५८।७)

इस वाक्य का यही अर्थ है कि अब बहुत दिनों से जटायु का मुझे कुछ पता नहीं है। अथवा यह भी अर्थ है कि विन्ध्य पर गिरने पर कई दिनों तक मुझे कुछ पता नहीं था। 'लक्षये' क्रिया के आगे 'स्म' का शेष समझना चाहिये। विस्तृत कथा में भी यही कहा है कि छः दिन के बाद मुझे होश आया। विवश और विह्वल होकर मैं दिशाओं को देखता हुआ भी कुछ समझ नहीं रहा था। यहाँ भी 'स्म' का शेष समझना चाहिये। इससे वर्त्तमान काल की क्रिया भी अतीत काल की बोधिका हो जाती है—

"लब्धसंज्ञस्तु षड्रात्राद् विवशो विह्वलन्निव।
वीक्षमाणो दिशः सर्वा नाभिजानामि किञ्चन॥" (वा० रा० ४।६०।५)

वस्तुतः दूसरी कथा पहली कथा की पूरक ही है। इतने सुन्दर साहित्यिक अर्थ वर्णन को क्षेपक कहना अनभिज्ञता ही है। पूर्व (५२ वें) सर्ग में तो ४–७ चार श्लोकों में ही संक्षिप्त वर्णन है। किन्तु दुबारा कही गयी कथा का ६१–६३ तीन सर्गो में वर्णन किया गया है। विषयों एवं श्लोकों की पुनरुक्ति भी नहीं है। दूसरी कथा से भी उक्त अर्थ का समर्थन होता है।

"ततस्तद् दारुणं कर्म दुष्करं सहसा कृतम्।
आचचक्षे मुनेः सर्वं सूर्यानुगमनं तथा।
भगवन् व्रणयुक्तत्वाल्लज्जया चाकुलेन्द्रियः॥" (वा० रा० ४।६१।१,२)

ऋषि ने पूछा—सौम्य, तुम्हारे रोमों के वैकल्य से ठीक पहिचान नहीं होती है। तुम्हारे पक्ष और प्राण क्या अग्निदग्ध हो गये हैं ? वायु के समान वेगवाले कामरूपी दो गृध्रराजों को मैंने देखा था। तुम ज्येष्ठ हो जटायु छोटा था। क्या तुम्हें कोई व्याधि हो गयी है ?। तुम्हारे पङ्खों का पतन कैसे हुआ ? क्या किसी ने शाप दे दिया ? मुनि के इस प्रश्न के अनन्तर सम्पाति ने पहले इन्द्र के साथ युद्धरूप दुष्कर कर्म की बात बतलायी। तदनन्तर सूर्य

अनुगमन से विन्ध्यगिरि में पतन आदि सुनाया। भगवन्, इन्द्रयुद्ध में हुए वज्रपातजनित व्रणों के कारण परिश्रान्त होने से सूर्यानुगमन से होनेवाले पक्षनाश के कारण लज्जा से व्याकुल होने से उत्तर देने में मैं समर्थ नहीं हूँ। इससे भी स्पष्ट है कि इन कथाओं में पूर्वापर विरोध नहीं है। पङ्खों की पुनरुत्पत्ति तथा स्वास्थ्य-लाभ में निशाकर के वचन का प्रभाव होते हुए भी राम और लक्ष्मण के प्रभाव का भी अपलाप नहीं किया जा सकता है।

"उत्पेततुस्तदा पक्षौ समक्षं वनचारिणाम्।
स दृष्ट्वा स्वां तनुं पक्षैरुद्‌गतैररुणच्छदैः॥
प्रहर्षमतुलं लेभे वानरांश्चेदमब्रवीत्।
निशाकरस्य राजर्षेः प्रसादादमितौजसः॥" (वा० रा० ४।६२।८-९)

वानरों के देखते देखते उसके पङ्ख पुनः उत्पन्न हो गये। अरुणपत्रतुल्य उगते पङ्खों से युक्त अपने शरीर को देखकर उसे अतुल प्रसन्नता हुई और उसने कहा कि अमिततेजा मुनि के प्रभाव से आदित्य-किरणों से दग्ध मेरे पङ्ख पुनः नवीन हो गये हैं। यौवन काल में जो बल था वही फिर मुझमें हो गया है। मेरे पङ्खों की पुनरुत्पत्ति आप लोगों की सिद्धि की प्रत्यायक है।

जैसे गुरु का कृतज्ञ भी ईश्वर का कृतज्ञ माना जाता है वैसे ही निशाकर मुनि की कृतज्ञता स्वीकार करनेवाला सम्पाति राम और लक्ष्मण का भी कृतज्ञ है ही। मुनि ने भी कहा था कि तुम्हारे पुनः उत्तम नवीन पङ्ख हो जायेंगे। पुराण में मैंने सुना है बहुत बड़ा कार्य होनेवाला है। मैंने तप से भी सब कुछ जाना है। राजा दशरथ के महातेजस्वी पुत्र राम होंगे। वे लक्ष्मण और सीता के साथ दण्डकारण्य में आयेंगे। देवताओं तथा दानवों से अवध्य राजा रावण सीता का हरण करेगा। वह सीता को नाना प्रकार का प्रलोभन देगा। परन्तु वह महाभागा यशस्विनी सीता अन्न-पान का त्याग कर देगी। इन्द्र उन्हें देवदुर्लभ अमृतप्रख्य परमान्न प्रदान करेंगे। सीता अग्राशन राम और लक्ष्मण के नाम पर भूमि में निर्वापकर उसे ग्रहण करेंगी। रामदूत वानर तुम्हारे पास आयेंगे। तुम उनसे राममहिषी सीता का समाचार कहना। तुम कहीं न जाकर देश और काल की प्रतीक्षा करो। तुम्हें पुनः पङ्ख प्राप्त होंगे। हम तुम्हें अभी सपङ्ख बना सकते हैं। परन्तु तुम यहाँ रहकर लोकों का परम कार्य करोगे। तुम्हें दोनों राजकुमारों राम और लक्ष्मण का, ब्राह्मणों का, गुरुओं का, मुनियों का, देवताओं का और इन्द्र का भी काम करना है। अर्थात् रामदूतों को सीता का पता बताने से रावण का वध होगा। उससे सभी का हित होगा। मैं भी राम और लक्ष्मण को देखना चाहता हूँ। परन्तु अब अधिक काल तक प्राणों का धारण करना नहीं चाहता। अतः कलेवर त्याग रहा हूँ (सर्ग ६२)। इससे स्पष्ट है कि महर्षि भी राम और लक्ष्मण का महत्त्व मानते थे। राम का कार्य करने के अनन्तर ही उसका सपङ्ख होना वे उचित समझते थे।

इस सर्ग से सीता के लिए इन्द्रदत्त पायस की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है और बुल्के का पक्ष खण्डित होता है। इसीलिए बुल्के ने इन सर्गों को ही प्रक्षिप्त मान लिया है।

कम्बरामायण (४।१५) के अनुसार सूर्य ने सबसे पहले सम्पाति को आश्वासन दिया था कि जब वानर राम का नाम उच्चारण करेंगे उस समय तुम्हारे पङ्ख फिर से निकल आयेंगे। **भावार्थरामायण** (४।१६) में भी सूर्य के इस आश्वासन का उल्लेख है। **अध्यात्मरामायण** में मुनि का चन्द्रमा नाम है। उन्होंने सम्पाति को उपदेश देकर उसे शरीर त्यागने से रोका और नारायणावतार राम के दूतों की प्रतीक्षा करने का आदेश दिया। पङ्खों के पुनः निकलने से सम्पाति ने वानरों से कहा—जिनके नामस्मरणमात्र से दुष्ट जन भी इस अपार संसारसागर को पारकर विष्णु के शाश्वत स्थान को प्राप्त करते हैं। तुम लोग उन्हीं भगवान् के भक्त हो। फिर समुद्र के पार करने

में क्यों असमर्थ होओगे । बुल्के कहते हैं इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पाति की कथा धीरे-धीरे अलौकिक घटनाओं के परिवर्धन से विकसित होकर अन्त में भगवान् राम के गुणगान में परिणत हुई । इससे स्पष्ट है, बुल्के इसे वस्तुस्थिति नहीं मानते, किन्तु द्वितीय कथा को भक्तकृत कल्पनामात्र मानते हैं । परन्तु यह उनकी केवल दुरभिसन्धि है, क्योंकि जब आर्ष विज्ञान पर आधारित **वाल्मीकिरामायण** में सम्पाति की विस्तृत कथा विद्यमान है तब केवल अलौकिक घटनाओं के कारण उसे प्रक्षेप या कल्पनामात्र कैसे कहा जाय ? क्या **बाइबिल** की कथाओं में अलौकिक घटनाओं के कारण **बाइबिल** का प्रामाण्य मान्य नहीं है ?

✲

सप्तदश अध्याय

सुन्दरकाण्ड

५२८ अनुच्छेद, लङ्का में हनुमान् का प्रवेश—लङ्का-वर्णन, लङ्कादेवी को परास्त करना, नगर, महल, पुष्पक विमान, शयनागार आदि का वर्णन एवं सीता का दर्शन न होने से अशोकवन में प्रवेश, सीता का दर्शन, सीता-रावण-संवाद, सीता द्वारा रावण के अनुरोध को ठुकराया जाना, दो महीने की अवधि का दिया जाना, राक्षसियों की रावण द्वारा नियुक्ति, त्रिजटा का राक्षसपराजयसूचक स्वप्नवर्णन, हनुमान्-सीता का संवाद, सीता को शकुन होना, हनुमान् द्वारा राम-कथा का वर्णन, सीता का भयभीत होना, हनुमान् का प्रकट होना, सीता-सन्देह, हनुमान् द्वारा राम का वर्णन, सीता का विश्वास होना, हनुमान् द्वारा मुद्रिका देना और शीघ्र दुःख-निवृत्ति का आश्वासन, हनुमान् की पीठ पर बैठकर जाने का सीता द्वारा अस्वीकार करना, अभिज्ञानस्वरूप काक-वृत्तान्त सुनाना और चूड़ामणि देना, बिदा, अशोकवन और चैत्य का विध्वंसन, जम्बूमाली और अक्षयकुमार का वध, दण्डरूप में हनुमान् की पूंछ का जलाया जाना, लङ्का-दहन की चारणों की बात-चीत से हनुमान् को सीता-रक्षा का आश्वासन, हनुमान् का लौटना, समुद्र का लङ्घन, मधुवन में वानरों का उत्पात तथा राम को सुखद समाचार सुनाना।

यहाँ भी बुल्के ने पाठभेद की चर्चा की है। सिद्धान्ततः पाठभेद मान्य ही हैं।

५३० वें अनु० में सुन्दरकाण्ड में भी प्रक्षेप कल्पना की गयी है। दाक्षिणात्य पाठ के प्रथम सर्ग का अन्य पाठों की अपेक्षा विस्तृत वर्णन, २–११ सर्गों में पुनरावृत्ति के अतिरिक्त दीर्घ छन्दों में कई अनावश्यक सर्ग मिलते हैं। पुष्पक-वर्णन अर्वाचीन है। सर्ग १४ अशोकवन का पहले विध्वंस, सर्ग २३–२६ भीषण राक्षसियों का वर्णन और उनकी धमकियाँ; सर्ग २८, २९ में पूर्वापरसम्बन्ध का अभाव तथा बहुत सी प्रतिलिपियों में इन (२८, २९) दो सर्गों का अभाव है, परन्तु उक्त तर्क निःसार हैं। दाक्षिणात्य पाठ भी प्रामाणिक ही है। उसपर तिलक व्याख्या है। व्याख्याकार प्रक्षिप्त सर्गों एवं श्लोकों का पृथक् निर्देश कर देते हैं। उक्त श्लोकों के सम्बन्ध में कोई ऐसा निर्देश नहीं है। दीर्घ छन्द बुल्के की दृष्टि में भले अनावश्यक हों परन्तु टीकाकारों की दृष्टि में प्रत्येक श्लोक संगत ही है एवं काव्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। दीर्घ छन्दों का भी साहित्यिक महत्त्व है। स्थूल प्रयोजन तो अन्य काव्य ग्रन्थों के भी साहित्यिक छन्दों में भी नहीं उपलब्ध होते हैं। दूत के लिए लङ्का की आवश्यक जानकारी महत्त्वपूर्ण है। नगरवर्णन भी काव्य का एक अङ्ग है। वस्तुतः २–११ सर्ग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। उनका अपलाप करना अरसज्ञता ही है। सर्ग १४ को भी अनावश्यक कहना असंगत है। कवि साहित्यिक ढङ्ग से जिस वस्तु का विस्तृत वर्णन करता है वह संक्षेप में एक या दो श्लोकों में भी कही जा सकती है। सर्ग २३–२६ का वर्णन घटना का ही वर्णन है। कोई भी घटना बुद्धिसापेक्ष नहीं होती। भारत का विभाजन अभीष्ट नहीं था। फिर भी घटना घट गयी। उसका वर्णन करना पड़ता है। सर्ग २३–२६ का पूर्वापरसम्बन्ध भी अवश्य है। २७ वें सर्ग में त्रिजटा के स्वप्नवर्णन द्वारा प्रसन्न होकर सीता आश्वासन देती है कि यदि स्वप्न की बात सत्य हुई तो मैं अवश्य तुम सबका रक्षण करूँगी—

"अवोचद् यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः॥" ४७॥

पुनश्च दुःख का अन्त न देखकर जो सीता ने व्याकुलता में प्रलाप किया है, उसी का वर्णन २७ वें सर्ग में है। तिलककार ने कहा है—

"पुनर्दुःखपारमदृष्ट्वैव सीताप्रलापः" यह इतना स्वाभाविक वर्णन है कि कोई भी समझदार अनावश्यक कहकर इसे क्षेपक नहीं कह सकता। शोकसन्तप्त होकर सीता जब अपनी वेणी द्वारा फाँसी लगाकर देहत्याग कर यमलोक जाने के लिए वृक्ष की शाखा पकड़ कर समीप में खड़ी होती है तब उसको शोकरहित करनेवाले और धैर्य बँधानेवाले लोकप्रसिद्ध एवं पहले भी जिनका फल अनुभूत हो चुका है ऐसे विभिन्न शकुन होने लगे—

"तस्या विशोकानि तदा बहूनि धैर्यार्जितानि प्रवराणि लोके।
प्रादुर्निमित्तानि तदा बभूवुः पुरापि सिद्धान्युपलक्षितानि॥" (२८।१९)

स्वाभाविक बात है, अत्यन्त संताप होने पर देहत्याग की प्रवृत्ति होती है। उस अवसर पर शुभ कर्मों के फलस्वरूप धैर्य धारण करानेवाले शुभ शकुन होते हैं। सर्ग २९ में उन्हीं शुभ शकुनों का वर्णन है। ३० वें सर्ग में हनुमान् ने तत्त्वतः सीता तथा त्रिजटा के कथोपकथन को और राक्षसियों के तर्जन-गर्जन को सुना—

"हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः।"

इस तरह पूर्वापर की स्पष्ट संगति है। कुछ हस्तप्रतिलिपियों में दोनों सर्गों का न होना लेखक का प्रमाद ही है। तिलककार ने इन्हें प्रामाणिक मानकर ही इनकी व्याख्या की है।

इस प्रकार सीता और हनुमान् के संवाद की बहुत-सी सामग्री को प्रक्षिप्त कहना भी प्रमाद ही है। ३२ वें सर्ग का दीर्घ छन्दों में वर्णन अनावश्यक है, यह कहना भी प्रमाद ही है। जिस ऋषि ने उस घटना का दर्शन किया वह उस वर्णन को आवश्यक समझकर ही उसके वर्णन में प्रवृत्त हुआ था। ३१ वें सर्ग के अन्त में सीता ऊपर, नीचे और तिर्यक् निरीक्षण करती हुई उन अचिन्त्यबुद्धि वातात्मज हनुमान् को उदयाचल स्थित सूर्य के समान देखती है, यह संक्षेप में निरूपण करके तत्सम्बन्धी विशेष वृत्तान्त का निरूपण ३२ वें सर्ग में किया गया है। उस भीमसत्त्व वानर के दुरासद और दुर्निरीक्ष्य रूप को देखकर सीता को मोह हो गया और वह भय से मोहित होकर राम और लक्ष्मण का नाम लेकर रोने लगी। वह विचार करने लगी कि मैंने यह विकृत स्वप्न ही देखा है और वह अनिष्टाशङ्की चित्त होने के कारण ही राम, लक्ष्मण तथा जनक की स्वस्ति मनाती है और फिर—

'नमोऽस्तु वाचस्पतये सवज्रिणे' (वा० रा० ५।३२।१४) रूप मङ्गलाचरण करती है। और प्रार्थना करती है कि वानर ने जो सुनाया वह वैसे ही हो। इतने में विद्रुमप्रतिम लाल मुख वाले विनीतवेष हनुमान् उस द्रुम से उतर कर प्रणाम कर के समीप आ गये। ऋतम्भरा प्रज्ञा से इस घटना का अनुभव करनेवाले ऋषि उसका वर्णन कैसे न करेंगे।

सर्ग ३३ में सीता के विश्वस्त हो जाने के पूर्व उनका आत्मपरिचय देना अस्वाभाविक है, यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि यह काव्यमय इतिहास है। अर्धमात्रा के लाघव से पुत्रोत्सव मनानेवाले वैय्याकरणों का व्याकरण ग्रन्थ नहीं है। तिलककार कहते हैं लिङ्गों से सीता का निश्चय हो जाने पर भी उनके द्वारा कहलाने के लिए अनजान से होकर हनुमान् ने प्रश्न किया था।

पद्मपलाशाक्षि, क्लिष्टकौशेयवासिनि, आप कौन हैं और पुण्डरीक पलाशों से विप्रकीर्ण उदक के तुल्य आपके नेत्रों से शोकजनित जल क्यों बह रहा है इत्यादि। श्रीसीता ने अगले श्लोकों में उत्तर दिया। इसी वस्तुस्थिति का महर्षि ने वर्णन किया। इस तरह सर्ग ३५ में सर्ग ३१ की आवृत्ति तथा अनावश्यक विस्तार कहना भी अनभिज्ञता ही है।

क्योंकि कोई भी शोकव्याकुल प्राणी विशेषतः स्त्री अपने प्रिय से वियुक्त होकर बहुत काल के अनन्तर प्रिय का समाचार पाकर संक्षिप्त समाचारमात्र से सन्तुष्ट हो यह सम्भव नहीं है। उसे अवश्य ही विस्तृत वर्णन सुनने की

इच्छा होगी। विशेष जानकारी के लिए पुनः पुनः प्रश्न करना स्वाभाविक ही है। विशेष निश्चय के लिए राम के साथ तुम्हारा कहाँ समागम हुआ ? वानरों का और नरों का संगम कैसे हुआ ? तुमने राम और लक्ष्मण को कैसे जाना ? राम के और लक्ष्मण के कौन कौन विशेष चिह्न हैं ? इत्यादि प्रश्न एवं हनुमान् द्वारा उन महत्त्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर अत्यन्त संगत है। इस वर्णन में राम के महत्त्वपूर्ण बाह्य तथा आन्तर लक्षण और उनके स्वभाव का वर्णन है।

इसी तरह सर्ग ४० में ३८ वें सर्ग की आवृत्ति मानना भी अनभिज्ञता ही है। सीता का हनुमान् से पुनः पुनः प्रिय की चर्चा करना, प्रिय के लिए पुनः पुनः सन्देश कहना और हनुमान् द्वारा पुनः पुनः आश्वासन देना स्वाभाविक ही है।

अनु० ५३०. अतएव याकोबी के अनुसार आदिरामायण में लङ्का-दहन सर्ग ४१–५५ का वर्णन नहीं मिलता था, यह कथन तथा उनके तीन तर्क सर्वथा असङ्गत हैं।

सीता का हनुमान् को बिदा करने का वर्णन लङ्का-दहन के पूर्व ३९ वें तथा लङ्का-दहन के पश्चात् ५६ वें और राम-हनुमान्-संवाद में ६८ वें सर्ग में उचित ही है। वृत्तान्त का वर्णन करनेवाला यदि वृत्तान्त न होने पर वर्णन करे तभी दोषी है। यथाभूत वृत्तान्त का वर्णन करना सर्वथा उचित ही है। अतएव यह कहना भी निरर्थक है कि बिदा वर्णन का ३९ वाँ सर्ग ही मौलिक स्थान है, क्योंकि इसमें सीता हनुमान् से एक रात रहने का अनुरोध करती हैं। वह लङ्का-दहन के पश्चात स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। लङ्का-दहन के पूर्व यह नितान्त स्वाभाविक प्रतीत होता है, क्योंकि ३९ वें सर्ग में हनुमान् की बिदा का वर्णन और उनसे एक रात रहने के लिए अनुरोध करने का अपलाप कैसे किया जा सकता है। ३९वें सर्ग में बिदा करती हुई सीता का यह प्रश्न भी उचित ही था कि राम, लक्ष्मण और वानर सैनिक इस भीषण समुद्र को पार कर सकेंगे ? हनुमान् द्वारा इसका उत्तर देना भी उचित ही है। ४० वें सर्ग में पुनः सीता राम के प्रति अपनी अभिलाषाएँ प्रकट करती हुई सन्देश कहती हैं। ४१वें सर्ग में हनुमान् सीता के पास से कुछ दूर चलकर यह विचार करते हैं कि सीता का दर्शन हो गया। यह प्रधान कार्य तो हो गया, परन्तु शत्रु का बल-ज्ञानरूप कार्य शेष ही है। उसका साधन साम, दान और भेद छोड़कर चतुर्थ दण्ड ही हो सकता है। प्रधान कार्य के सम्पादन के साथ ही पूर्व कार्य के अविरोधेन अन्य बहुत कार्यों का सम्पादन करना है इत्यादि बहुत बातें सोचकर हनुमान् तोड़-फोड़ कर रावण के प्रमदवन को उजाड़ने लगे। तदनन्तर जम्बू-माली, अक्षयकुमार, मेघनाद आदि से युद्ध और बन्धन, लङ्का-दहन आदि कार्यों का सम्पादन किया। लङ्का-दहन के बाद सीता के जल जाने की आशङ्का होती है और उससे उन्हें महती आत्मग्लानि होती है। पुनः उन्हें शुभ निमित्त दर्शन से यह विचार आता है कि सीता अपने तेज से ही सुरक्षित होंगी। अग्नि के दहनार्थ अग्नि की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। धर्मात्मा राम की भार्या सीता अपने चरित्र से सर्वथा सुरक्षित हैं। पावक उनका स्पर्श नहीं कर सकता। राम के प्रभाव और वैदेही के पुण्य प्रभाव से दहन-कर्मा अग्नि ने मुझे नहीं जलाया। फिर भरत आदि तीनों भ्राताओं की जो देवता हैं और जो राम की मनःकान्ता हैं वह कैसे अग्नि द्वारा नष्ट हो सकती हैं। इतने में चारणों के द्वारा सीता की रक्षा का समाचार सुनकर पुनः प्रत्यक्षतः सीता को देखकर लौटना उचित ही था। एवं इतना महत्त्वपूर्ण कार्य करके भी सीता-दर्शन उचित ही था। मिलने पर सीता द्वारा पुनः दैन्य और छुटकारा पाने की अभिलाषा व्यक्त करना भी स्वाभाविक है और हनुमान्-राम-संवाद में भी वही बात ज्यों की त्यों सुनाना भी उचित ही था। परन्तु इसका यह निष्कर्ष निकालना कि लङ्का-दहन की विस्तृत कथा प्रक्षेप है अत्यन्त असङ्गत है। पूर्वोक्त प्रकार से प्रकरण-सङ्गति में कोई कठिनाई है ही नहीं। सङ्गति की परिभाषा और उसके प्रकारभेद न जानने के कारण ही पाश्चात्यों को इस प्रकार दुष्कल्पना का अवकाश प्राप्त होता है। लङ्का-दहन के प्रक्षेप होने का यह भी कारण कहा गया है कि "हनुमान् सीता से दो बार भेंट करते हैं, लेकिन लङ्का-दहन का कोई उल्लेख नहीं करते। इसके अतिरिक्त

लङ्कावरोध के समय लङ्का के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है, जिसमें कहीं भी दहन का निर्देश नहीं मिलता (६।३८–३९)।" परन्तु यह सब निस्सार ही है, क्योंकि पहली बार तो लङ्का-दहन हुआ ही नहीं था। सीता से बिदा लेने के बाद ही हनुमान् के मन में पर-बलजिज्ञासा से वन उजाड़ने आदि में प्रवृत्ति हुई। आत्मश्लाघा या आत्मोत्कर्ष पर्यवसायी आत्मकृत्य वर्णन में प्रवृत्ति अल्पसत्त्व की हो सकती थी। महासत्त्व हनुमान् की वैसी प्रवृत्ति नहीं हो सकती थी, अतः दूसरी बार मिलने पर भी हनुमान् ने लङ्का-दहन आदि आत्मकृत्य का वर्णन नहीं किया। इसके अतिरिक्त लङ्का-दहन जैसा व्यापक और ज्वलन्त कार्य स्वयं प्रख्यात था। उसके वर्णन की आवश्यकता भी हनुमान् ने नहीं समझी। राक्षसियों ने पहले ही सीता को सुनाया था कि हनुमान् को राक्षसों ने पकड़ लिया है और अब उनकी पूँछ में अग्नि लगायी जा रही है। उस समय सीता ने अपने प्रभाव से हनुमान् के प्रति शीतल हो जाने का अग्नि से अनुरोध किया था—

"यद्यस्ति गुरुशुश्रूषा यदि वाचरितं तपः।
यदि वाप्येकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥" (वा० रा० ५।५३।२६,२७)

रावण महाप्रभावशाली था। चन्द्र, इन्द्र, पवन, पर्जन्य आदि भी उसके आज्ञाकारी थे। अतः उसने शीघ्र ही परिष्कार कराकर पुनः लङ्का का सौन्दर्य सम्पादित कर लिया था। इसलिए अवरोध के समय का सौन्दर्य-वर्णन भी सङ्गत ही है। आधुनिक काल में भी भीषण बमवर्षा के बाद भी पेरिस आदि नगरों को शीघ्र ही सुन्दर बना लिया गया था। शब्दप्रामाण्यवादी आपात विरोधमात्र से शब्द का अप्रामाण्य नहीं मानते, किन्तु उपपत्ति के अनुकूल कल्पना करते हैं; जैसे किसी व्यक्ति के दिन में न खाने पर भी पीनता देखकर उसके रात्रिभोजन की कल्पना कर ली जाती है। घर में न देखकर भी देवदत्त जीवित है, इस प्रामाणिक श्रवण के बल पर ही उसके बाहर अस्तित्व की कल्पना होती है। इसी प्रकार लङ्कादहन के कुछ दिनों बाद भी लङ्का की शोभा का वर्णन श्रवण करके मध्य में उसके पुनरुद्धार तथा पुनर्मार्जन की कल्पना करनी ही चाहिये। इतने मात्र से किसी वर्णन को अप्रामाणिक कहना साहसमात्र है। अतएव सेरीराम के अनुसार एक महर्षि के प्रार्थनानुसार एवं बलरामदास के अनुसार देवताओं ने विश्वकर्मा को भेजकर लङ्का का पुनर्निर्माण किया था। मिथ्या कल्पना की आदत भारतीय मानवों विशेषतः ऋषियों को तो नहीं थी। सुन्दरकाण्ड सर्ग ५४ में लङ्का का दाह वर्णित है। प्रमुख-प्रमुख महापार्श्व, वज्रदंष्ट्र, शुक, सारण, इन्द्रजित्, जम्बूमाली, सुमाली, रश्मितनु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण, रोमश, युद्धोन्मत्त, मत्त, विद्युज्जिह्व, हस्तिमुख, कराल, विशाल, शोणिताक्ष, कुम्भकर्ण, नरान्तक, कुम्भ, निकुम्भ आदि के भवनों के साथ ही राक्षसेन्द्र रावण के भवन का दाह किया गया था। महापवन से उद्दीप्त अग्नि ने इस प्रकार लङ्का-दहन किया कि अग्नि के कारण काञ्चनमय, मुक्तामणिमय एवं महान् रत्नों से युक्त बहुत से भवन विशीर्ण हो गये। भूषण, वसन, अन्न आदि सभी वस्तुएँ प्रज्वलित हो गयी थीं। अगणित राक्षस भी जल गये थे। यह सब होने पर भी इन्द्र, वरुण आदि को जीतने की सामर्थ्य रखनेवाले राक्षसों में निर्माण-क्षमता की भी कमी नहीं थी। इसी लिए थोड़े ही दिनों में लङ्का की शोभा पूर्ववत् पुनः सम्पादित कर ली गयी थी। कहा जाता है कि विरूपाक्ष तथा यूपाक्ष के वध का वर्णन लङ्का-दहन प्रसङ्ग में (४६ वें सर्ग में) किया गया है। पुनश्च युद्धकाण्ड सर्ग ७५ श्लो० ४७ में यूपाक्ष का तथा सर्ग ७६ श्लोक ३४ में मैन्द द्वारा विरूपाक्ष का वध वर्णित है। विरूपाक्ष की चर्चा सर्ग ९६ में है, अतः लङ्का-दहन क्षेपक ही है। परन्तु यह कथन भी असङ्गत है, क्योंकि उक्त लेखानुसार ही अनेक यूपाक्ष तथा विरूपाक्ष का मानना उचित है।

यदि लङ्का-दहन का प्रसङ्ग प्रक्षेप होता तो अक्षयकुमार का भी वध पृथक् से युद्धकाण्ड में वर्णित होना चाहिये था—

इसी प्रकार—"मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः ।
भवेद् व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥" (वा० रा० ५।२।४०)

के अनुसार हनुमान् ने स्वयं कहा था कि यदि मैं राक्षसों द्वारा देखा गया तो राम के कार्य में बाधा पड़ जायगी, इसका भी कोई विरोध नहीं है, क्योंकि वह सब वितर्कमात्र है। वितर्क में बहुत आरोप हो सकते हैं। अतः वही कहा गया है कि यहाँ कोई व्यक्ति राक्षसरूप में भी राक्षसों से अविज्ञात नहीं रह सकता, फिर अन्यरूप में तो कहना ही क्या है ? (सर्ग ४१)। वायु भी यहाँ अज्ञात नहीं रह सकता। भीमकर्मा राक्षसों के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं रह सकता (सर्ग ४२)। फिर भी वहीं से विदित होता है कि वे कहते हैं मैं दिन में कहीं छिपकर रहूँगा और रात्रि में अपने ही रूप में, किन्तु छोटे रूप में, लङ्का में प्रवेश करूँगा (सर्ग ४४)। और उन्होंने किया भी वैसा ही। इसके अतिरिक्त सीता के अन्वेषण के पूर्व ही उन्होंने विज्ञात होने में अनर्थ की सम्भावना की थी, क्योंकि विज्ञातरूप में सब जगह जा सकना सम्भव नहीं था, परन्तु सीता के विज्ञात हो जाने के बाद और सीता की पूर्ण परिस्थिति जान लेने पर फिर वैसी किसी सम्भावना का प्रश्न नहीं रह गया था।

यह भी कहना निःसार है कि "राम के लौटने पर भरद्वाज ने अन्य सभी घटनाओं का वर्णन किया था, पर लङ्का-दहन का वर्णन नहीं किया, इसलिए भी लङ्का-दहन प्रक्षेप है।" क्योंकि बुल्के आदि पाश्चात्य विद्वान् अलौकिकता से पूर्ण इस सर्ग को प्रमाण ही नहीं मान सकते। इसमें भरद्वाज कहते हैं कि मैंने तपस्या के बल पर सब घटनाओं को जान लिया है—

"सर्वं ममैतद्विदितं तपसा धर्मवत्सल ।" (वा० रा० ६।१२४।१६)

इसके अतिरिक्त संक्षिप्त कथन में लङ्का-दहन का छूट जाना भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वस्तुतस्तु **"कर्म वातात्मजस्य च"** (वा० रा० ६।१२४।१२) इस अंश का यही अर्थ है कि हनुमान् का समुद्रलङ्घनादि लङ्कादहनान्त कर्म भी मैंने जाना है। यदि **"वातात्मज-कर्म"** का उक्त अर्थ न करेंगे तो समुद्र-लङ्घन का भी भरद्वाज द्वारा वर्णन न होने से हनुमान् के समुद्र-लङ्घन को भी प्रक्षेप कहना पड़ेगा। कहा जाता है कि "यद्यपि लङ्का-दहन का वर्णन निश्चितरूप से प्रक्षिप्त है। फिर वह विभिन्न पाठों के पृथक् हो जाने के पूर्व प्राचीन काल से किष्किन्धाकाण्ड का अङ्ग बन चुका था। इसका उल्लेख **महाभारत के रामोपाख्यान** (३।२६६-६८) तथा **बालकाण्ड** की अनुक्रमणिकाओं (१।१।७७; १।३।३३) में भी मिलता है।" परन्तु यह सब बुल्के का निराधार प्रलाप है, क्योंकि पूर्वोक्त तर्कों एवं प्रमाणों से लङ्कादहन **वाल्मीकिरामायण** का अविभाज्य अंश ही है। उनके संकेतित प्रमाणों से यह भी नहीं सिद्ध होता है कि लङ्का-दहन किष्किन्धाकाण्ड का अंश ही है। बालकाण्ड के १।१।७७ में काण्ड-भेद का प्रदर्शन है ही नहीं। उसमें भी लङ्का-दहन कहा ही गया है।

"ततो दग्ध्वा पुरीं लङ्कामृते सीतांच मैथिलीम् ।
रामाय प्रियमाख्यातुं पुनरायान्महाकपिः ॥" (वा० रा० १।१।७७)

तीसरे सर्ग में भी श्लोक ३२, ३३ में वृक्षभङ्ग, किन्नरनिवर्हण, लङ्का-दाह आदि का वर्णन है ही। इसमें भी अङ्गाङ्गिभाव का वर्णन नहीं है। अतः लङ्कादहन किष्किन्धाकाण्ड का अंश नहीं कहा जा सकता।

इसी तरह ५६ वें सर्ग की आंशिक आवृत्ति अनावश्यक नहीं है, क्योंकि यह आवश्यक था कि अपने महान् नेता जाम्बवान् से ज्यों की त्यों सभी बातें सुनायी जायँ। फिर उनकी सम्मति से जितनी आवश्यक हों उतनी ही बातें राम से कही जायँ। जाम्बवान् ने विस्तार से सारा वृत्तान्त पूछा था। तुमने सीता देवी को कैसे देखा ? वह वहाँ कैसे हैं ? क्रूर दशानन का उनके साथ कैसा व्यवहार है ? तुमने उनका अन्वेषण कैसे किया ? सीता ने क्या कहा ?

यह सब सुनकर हम सब निर्णय करेंगे कि राम, लक्ष्मण और सुग्रीव के पास जाकर क्या कहना है और क्या नहीं कहना है—

"यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान् ।
रक्षितव्यं च यत्तत्र तद् भवान् व्याकरोतु नः ॥" (वा० रा० ५।५८।६)

रामसम्बन्धी विस्तृत चरित्र जहाँ आध्यात्मिक, धार्मिक एवं शिक्षाप्रद है वहीं श्रवणमात्र से कल्याणप्रद भी है, अतः संक्षेप तथा विस्तार दोनों ही प्रकार का वर्णन है। ५९,६० में भी परमावश्यक ही आंशिक पुनरावृत्ति है। मधुवन का उत्पात कथावस्तु की गति में बाधक नहीं है, किन्तु कथा का अङ्ग ही है। आज भी महान् कार्य करने के बाद कुछ आमोद-प्रमोद की खुली छूट देखी ही जाती है। विजयोत्सव में भी ऐसी स्थितियाँ आती हैं। **वाल्मीकि-रामायण महाकाव्य** है, अतः प्रासङ्गिक हास्य भी महाकाव्य का पूरक ही है। कोई भी कार्य सीधा नहीं होता, बीच में कई अन्य कार्य और समस्याएँ आती ही हैं।

इस तरह आधुनिक नास्तिक एवं विधर्मी लोगों ने अनेक अनर्गल दुष्कल्पनाओं द्वारा प्रचलित **रामायण** को संदिग्ध बनाने का प्रयास किया है। उनकी तथाकथित आदिरामायण नाम की वस्तु खपुष्पतुल्य ही है। उसका कोई सर्वसम्मत रूप है ही नहीं। उनका अन्वेषण केवल अव्यवस्था का ही मूल है। जिन पाँच काण्डों को वे प्रामाणिक मानते हैं जब उन काण्डों के सम्बन्ध में यह स्थिति है तब फिर अनभिमत दो काण्डों के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है ?

५३१ वें अनु० में दाक्षिणात्य पाठ में समुद्रलङ्घन के विस्तार के सम्बन्ध में भी बुल्के की दुर्दृष्टि है। परन्तु वह सर्वथा असङ्गत है। **वाल्मीकिरामायण** में मैनाक, सुरसा और सिंहिका के मिलने का क्रम है। **वाल्मीकिरामायण** गौडीय पाठ में, **अध्यात्मरामायण**, **आनन्दरामायण** तथा **भावार्थरामायण** में एवं **कृत्तिवासरामायण** आदि में सुरसा, मैनाक और सिंहिका के मिलने का क्रम है। **कम्बरामायण**, उड़िया **बलरामदासरामायण** तथा **तोरवेरामायण** में दाक्षिणात्य पाठ का ही क्रम रखा गया है। श्याम के **रामजातक** में हनुमान् और अङ्गद दोनों का साथ लङ्का जाना लिखा है। **सेरीराम** के अनुसार कोई दृढ़ आधार न देखकर हनुमान् राम की बाहु से ही समुद्र का लङ्घन करते हैं। इस कथा में समुद्र में हनुमान् का वीर्य गिर गया है, उसे समुद्र की रानी मछली ने खाकर मकरध्वज को उत्पन्न किया।

बिर्होर तथा सन्ताल आदिवासियों की कथा के अनुसार राम द्वारा चलाये गये बाण के आधार पर हनुमान् ने समुद्र पार किया था। एक अन्य कथा के अनुसार हनुमान् पहले एक बाण चलाते हैं तब कूद कर उस पर सवार होते हैं। अनेक वृत्तान्तों के अनुसार हनुमान् अपने लक्ष्य से बहुत दूर आगे जाकर उतरते हैं। **सेरीराम** के अनुसार वे किसी महर्षि के आश्रम में जाकर उनका आतिथ्य ग्रहण करते हैं। पुनः उनके मार्ग-प्रदर्शन में लङ्का-प्रवेश करते हैं। **रामकियेन** के अनुसार नारद के आश्रम में उतरकर उनके अनुग्रह से लङ्का-प्रवेश करते हैं। **तोरवेरामायण** के अनुसार हनुमान् लङ्का से ७०० योजन दूर एक टापू पर उतर कर तृणबिन्दु मुनि के निर्देश से पुनः पीछे लौटकर लङ्का गये।

आनन्दरामायण (१।९।१७) के अनुसार हनुमान् परलङ्का में पहुँचकर रावण की बहन क्रौञ्चा का वध करते हैं। **भावार्थरामायण** (५।१८) के अनुसार लङ्का की उपनगरी परलङ्का थी। वहाँ रावण की विधवा बहन अपनी १८००० दासियों के साथ निवास करती थी। हनुमान् ने दासियों को समुद्र में फेंककर क्रौञ्चा का वध किया। समुद्र-लङ्घन को बुल्के ने प्रक्षेप नहीं कहा, यही गनीमत है। मूल कथा **वाल्मीकिरामायण** का ही कहीं विकास और कहीं विकृति हुई समझना उचित है। हनुमान् का छद्मवेष **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार बिडाल के

आकार के छोटे बन्दर का रूप था। उसी रूप को धारण कर हनुमान् लङ्का में प्रवेश करते हैं—

"सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः॥" (वा० रा० ५।२।४७)

बृहद्धर्मपुराण (पू० ख० अ० २०।२), **पद्मपुराण** (बंगीय पाठ १८४२ पृ० ११२६) आदि में बिडाल के रूप में ही हनुमान् का लङ्का-प्रवेश कहा गया है। **रामचरितमानस** के अनुसार मशक के समान रूप धारण कर हनुमान् ने लङ्का-प्रवेश किया—

"मशक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥" (रा० मा० ५।३।१)

सम्भवतः लङ्का के मच्छर भी छोटे बन्दरों के तुल्य रहे होंगे। **उत्तरपुराण** (६८।२९८) में भ्रमरतुल्य रूप धारण कहा गया है। **रामकियेन** (अ० २४) के अनुसार राक्षसरूप धारण करके हनुमान् ने लङ्का-प्रवेश किया था। **अध्यात्मरामायण** (५।३।२०) के अनुसार चटक पक्षी के तुल्य बन्दर होकर वे प्रविष्ट हुए थे। **आनन्दरामायण** (८।७।२९) के अनुसार छोटे बालक के रूप में वे सीता के सामने प्रकट हुए थे। धनञ्जयकृत **गणकचरित्र** के अनुसार हनुमान् क्रमशः भ्रमर, बिडाल तथा ज्योतिषी का रूप धारण करते हैं। कई कथाएँ कल्पभेद से संगत हो सकती हैं।

लङ्कादेवी

वाल्मीकिरामायण (दाक्षिणात्य पाठ प्रक्षेप ३।२०–५१) के अनुसार लङ्कादेवी राक्षसी के रूप में हनुमान् को रोक लेती है। हनुमान् से पराजित होकर वह कहती है, स्वयंभू ने कहा है कि तुम्हारी पराजय के बाद राक्षसों का विनाश होगा।

अध्यात्मरामायण (५।१।५७) में वह कहती है आज बहुत दिनों के बाद मुझे संसार-बन्धन से मुक्ति देनेवाली राघव की स्मृति हुई है। उनके भक्त का अति दुर्लभ सत्संग मिला है। मैं धन्य हूँ। **आनन्दरामायण** (१।९।२१) में लङ्कादेवी हनुमान् से सीता के रहने के स्थान का रहस्य प्रकट करती है। **रामचन्द्रिका** (१३।४४) के अनुसार हनुमान् से पराजित होने के बाद वह (सुन्दरी नारी) हो जाती है।

रामदूत हनुमान् का दर्शन पाकर उसके मन में भी भक्तिभावना उत्पन्न हुई हो यह असम्भव नहीं है। तभी **रामचरितमानसकार** ने भी इसे स्वीकार किया है—

"तात मोर अति पुण्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता॥" (रा० मा० ५।३।४)
तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥" (रा० मा० ५।४)
"प्रबिसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसलपुर राजा॥" (रा० मा० ५।४।१)

पउमचरियं के अनुसार लङ्कासुन्दरी के साथ हनुमान् रात भर प्रेमक्रीड़ा करते हैं। यह **वाल्मीकिरामायण** आदि से स्पष्टतः विरुद्ध ही है। **बृहद्धर्मपुराण** (अध्याय २०) के अनुसार चण्डिकादेवी लङ्का में निवास करती थी। शिवावतार हनुमान् उनसे लङ्का त्याग देने की प्रार्थना करते हैं। सीता के अपमान के कारण वह लङ्का त्याग देती हैं।

लङ्का में सीता की खोज

वाल्मीकिरामायण में कहा गया है कि हनुमान् ने मुख्य राक्षसों के महलों में तथा रावण के अन्तःपुर में सीता की खोज की (सर्ग १०,११)। फिर अशोकवन में चले गये। परन्तु परवर्ती कथाओं में वे विभीषण से भेंट

करते हैं। **पउमचरियं** के अनुसार विभीषण ने हनुमान् का स्वागत किया और सीता को लौटाने के लिए रावण से आग्रह करने की प्रतिज्ञा की थी। **गुणभद्र** के अनुसार हनुमान् दूसरी बार जाकर विभीषण से मिलते हैं। विभीषण रावण को समझाते हैं और हनुमान् को रावण के पास ले जाते हैं। उनके समझाने पर भी वह नहीं मानता, यह सब नवीनता लाने का प्रयत्नमात्र है। तुलसीदास के अनुसार विभीषण के रामनामस्मरण से उसे भक्त जानकर हनुमान् उससे पहिचान करते हैं और राम की महिमा का वर्णन करते हैं—

"राम नाम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरषि कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउ पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी॥"
(रा० मा० ५।५।२)

"प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥"
(रा० मा० ५।६।४)

"अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन-नीर॥" (रा० मा० ५।७)

तत्त्वसंग्रहरामायण के अनुसार हनुमान् रावण तथा उसकी पत्नियों के सब वस्त्र समेट कर ले गये थे। **रामकेर्ति** और **रामजातक** के अनुसार हनुमान् ने रावण तथा मन्दोदरी के बालों को बाँधकर मन्त्र पढ़कर लिख दिया था कि जब मन्दोदरी रावण को थप्पड़ मारेगी तभी यह गाँठ खुलेगी। **भावार्थरामायण** के अनुसार हनुमान् ने रावण के सामने ही अनेक उत्पात किये थे। रावण की सभा के दीपकों को बुझा दिया था।

सीता-रावण-संवाद

५४० वाँ अनु० सीता को लङ्का में न पाकर अशोकवन में प्रवेश कर हनुमान् सीता को देखते हैं। रावण अपनी पत्नियों के साथ दीनतापूर्वक सीता से निवेदन करता है कि वह उसे पति के रूप में स्वीकार कर लें। सीता ने उसके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर उसको उपदेश दिया कि मुझको राम के पास पहुँचा दे, अन्यथा राम अवश्य उसका वध करेंगे। रावण ने क्रुद्ध होकर दो मास की अवधि दी कि यदि तुम दो महीने में मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं करोगी तो तुम्हारा शरीर काटकर राक्षस लोग उसे मेरे प्रातः भोजन (कलेवा) के लिए तैयार करेंगे यह कह-कर उसने राक्षसियों को आदेश दिया कि वे सब सीता को वश में लाने का प्रयत्न करती रहें।

वाल्मीकिरामायण (५।१८।५) के अनुसार रावण का यह अशोकवन में आगमन कामवासनामूलक ही था। परन्तु **अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, तत्त्वसंग्रहरामायण** आदि के अनुसार रावण उत्सुकतापूर्वक राम के आगमन की प्रतीक्षा करता था, क्योंकि उसे विष्णु के हाथों से मरकर मुक्ति प्राप्त करने की अभिलाषा थी। उसी दिन उसने स्वप्न देखा था कि राम का सन्देश लेकर कोई कामरूपी वानर वृक्ष की शाखा पर बैठकर सीता को देख रहा है। स्वप्न की सत्यता की सम्भावना से ही वह वाग्बाणों से सीता को दुःख पहुँचाने के लिए गया, जिससे वानर यह सब देखकर राम को सुनावे और मुझे शीघ्र ही मुक्ति मिल जाय। यह कहा जा चुका है कि **वाल्मीकिरामायण** में लौकिक ऐतिहासिक वर्णन की प्रधानता होने से उसमें अधिकांश लौकिक ही वर्णन मिलता है; किन्तु **अध्यात्मरामायण** आदि आध्यात्मिक रहस्यों का भी वर्णन करते हैं। अतः बाह्यरूप से रावण की काममूलक प्रवृत्ति होने पर अन्तरङ्ग अभिरुचि मुक्ति की ही थी।

धर्मखण्ड (अ० १०५) के अनुसार रावण सीता को मार डालना चाहता था, किन्तु मन्दोदरी उसे वैसा करने से रोक देती है। हनुमान् प्रकट होकर उसकी छाती पर मुष्टिप्रहार करते हैं। जिससे वह भयभीत होकर भाग जाता है।

प्रसन्नराघव (अङ्क ६।३४) में यह दिखाया गया है कि रावण सीता का वध करना ही चाहता था कि हनुमान् ने रावण के हाथ पर अक्षयकुमार का मस्तक रख दिया। जिसे देखकर वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। बाद में सचेत होकर हनुमान् को पकड़ने के लिए सीता को छोड़कर चला गया। यह सब वर्णन चमत्कृति की अभिव्यक्ति के उद्देश्य से ही है।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार सीता को प्रलोभन देने के लिए उसने लङ्का का वैभव दिखाया था। परवर्ती रचनाओं में अनेक उपायों का सहारा लिया गया है। **उत्तरपुराण** के अनुसार मञ्जरिका नाम की रावण-दूती की चर्चा है। **गणकचरित** में रावण ने मायामय राम और लक्ष्मण की सृष्टि की। रावण चाहता था कि वे राम और लक्ष्मण सीता से अनुरोध करें कि वह रावण को पति मान लें। इतने में हनुमान् ज्योतिषी के रूप में लङ्का में प्रवेश कर गये। बाद में वह भ्रमर बनकर मालिनी के फूलों पर बैठकर मन्दोदरी के महल में पहुँच गये। मन्दोदरी के यहाँ हनुमान् ने बिडाल का रूप धारण कर लिया। मन्दोदरी ने बिडाल को खिलाया। बिडाल उसका माणिक्य छीनकर उसके स्तनों पर नखक्षत कर भाग गया। तब हनुमान् अशोकवन में पहुँचे। जब मायामय राम रावण से जीवन की भिक्षा माँग रहे थे। रावण को ज्योतिषी के गले में कण्ठमाणिक्य देखकर आश्चर्य हुआ। हनुमान् ने कहा यह माणिक्य एक गन्धर्व से मिला है। जिसका मन्दोदरी से अनुचित सम्बन्ध है। उसने मन्दोदरी के स्तनों में नखक्षत किया है। इसपर रावण ने क्रुद्ध होकर ज्योतिषी को पकड़ लिया और कहा कि यदि तुम्हारा अभियोग सच निकलेगा तो इनाम मिलेगा। अन्यथा तुम्हारा वध होगा। अन्त में हनुमान् का कहा सच निकला। नखक्षत मिल गया। बाद में हनुमान् सीता के पास आकर उनका समाचार लेकर राम के पास लौटे। रावण के तिरस्कार के कारण विरक्त होकर मन्दोदरी नारायण का स्मरण करती थी।

बाद में उसने अपने सतीत्व की शपथ खाकर भूकम्प उत्पन्न किया। सूर्य को रोक लिया। इन्द्र द्वारा पुष्पवृष्टि करा दी। फिर भी रावण का सन्देह दूर न हुआ। मन्दोदरी की अग्निपरीक्षा हुई। अग्नि लगाई गयी, तब-तक दुबरी नाम की स्त्री ने रावण को विश्वास दिलाया कि हनुमान् का अभियोग मिथ्या है। मन्दोदरी ने कहा कि तुमने सीता का अपहरण किया है। इसी लिए हनुमान् ने मेरा अपमान किया है। सीता को लौटाओ। बिर्होर जाति की कथाओं में सीता ने रावण के बलप्रयोग से बचने के लिए जादू द्वारा अपने शरीर में भयंकर फोड़े उत्पन्न कर लिए। उक्त अनेक कल्पनाओं में वस्तुस्थितिनिरपेक्ष अपनी अपनी भावनाओं को जोड़ा गया है। इसी प्रकार ५४३ वें अनु० में कहा गया है, **वाल्मीकिरामायण** (प्रक्षिप्त सर्ग ५८) में जब रावण सीता को मारने उठा तो मन्दोदरी ने उसे रोका। इस वृत्तान्त के आधार पर परवर्ती रचनाओं में **रंगनाथरामायण** (५।७), **धर्मखण्ड** (अ० १०५), **अध्यात्मरामायण** (५।२।३८), **आनन्दरामायण** (१।९।८४), **भावार्थरामायण** (५।८) तथा **रामचरितमानस** (५।१०) के अनुसार भी मन्दोदरी सीतावध को रोकती है। **बलरामदासरामायण** के अनुसार त्रिजटा रोकती है। **काश्मीरीरामायण** के अनुसार हरण के बाद ही सीता को मन्दोदरी की देख-रेख में रखा गया था।

५४४ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि प्रामाणिक **वाल्मीकिरामायण** में रावण-वध के पूर्व मन्दोदरी के हस्तक्षेप का उल्लेख नहीं था। सुन्दरकाण्ड के एक प्रक्षेप, जो तीनों पाठों में मिलता है, के अनुसार मन्दोदरी ने रावण को सीता का वध करने से रोका था। **उत्तरपुराण** के अनुसार मन्दोदरी ने यह भी याद दिलाया था कि किसी पतिव्रता का स्पर्श करने से तुम्हारी आकाशगामिनी विद्या नष्ट हो जायेगी। उदीच्य पाठ के अनुसार प्रहस्तवध के बाद भी मन्दोदरी ने परामर्श दिया था। राम से युद्ध मत करो, क्योंकि राम मनुष्यमात्र नहीं हैं। पश्चिमोत्तर पाठ के अनुसार यज्ञध्वंस के प्रसङ्ग में मन्दोदरी के केशग्रहण का भी वर्णन है।

पीछे कहा जा चुका है कि सुन्दरकाण्ड का ५८ वाँ सर्ग प्रक्षेप नहीं है। बुल्के के अनुसार भी जब वह तीनों पाठों में विद्यमान है और उसपर टीकाकारों ने टीकाएँ की हैं। जो सर्ग परम्पराप्राप्त नहीं उनपर टीकाकारों ने

टीकाएँ नहीं लिखी हैं। अन्य राम-कथाओं में उसी का विस्तार हुआ है।

"नह्यमूलं प्ररोहति" सर्वथा निर्मूल का प्ररोहण नहीं हो सकता है। ५८ वें सर्ग को प्रामाणिक रामायण में अविद्यमान कहना बुल्के का साहस ही है।

भावार्थरामायण (६।५५) में इन्द्रजित्-वध के बाद रावण मन्दोदरी को धमकी देकर बाध्य करता है कि वह अशोकवन में जाकर रावण की इच्छा-पूर्ति के लिए सीता से अनुरोध करे। कई रचनाओं में उसी समय मन्दोदरी ने सीता-वध से रावण को रोका था। **अध्यात्मरामायण** तथा **आनन्दरामायण** में यज्ञविध्वंस के बाद भी मन्दोदरी ने सीता को लौटाने का रावण से अनुरोध किया था। **रामचरितमानस** में वह तीन बार रावण को भगवान् की शरण लेने को कहती है। **वाल्मीकिरामायण** युद्धकाण्ड (सर्ग १११) में रावण-वध के बाद मन्दोदरी का विलाप विस्तृतरूप से वर्णित है। पर बुल्के इसे भी प्रक्षेप कहकर आर्ष काव्य में उसका अभाव मानते हैं, जो कि निराधार प्रलापमात्र है। वस्तुतः वह सर्ग भी प्रामाणिक ही है। अतएव टीकाएँ उसपर भी उपलब्ध होती हैं। **भावार्थरामायण** (६।५५) के अनुसार मन्दोदरी रावण के साथ सती हो गयी। पर कहीं-कहीं विभीषण के साथ उसके विवाह का भी वर्णन है। **काश्मीरीरामायण** के अनुसार मन्दोदरी एक अप्सरा थी, जो रावण के विनाशार्थ पृथ्वी पर आयी थी।

त्रिजटा

वाल्मीकिरामायण के अनुसार त्रिजटा सीता का चरित्र देखकर उनकी ओर आकर्षित हुई थी। रावण के चले जाने पर राक्षसियाँ सीता को डरा रही थीं तब त्रिजटा ने डाँट कर उनसे कहा, मैंने ऐसा स्वप्न देखा है जिससे राक्षसों का विनाश और राम की विजय की सूचना मिलती है। तुम लोग सीता की शरण ग्रहण करो। यही तुम लोगों को महान् भय से बचा सकती है—

"प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ॥" (वा० रा० ५।२७।३९)

युद्धकाण्ड में जब इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को नागपाश में बाँधा था तब रावण ने सीता तथा त्रिजटा को पुष्पक पर बैठा कर रणभूमि में निःसहाय पड़े हुए राम और लक्ष्मण को दिखाया था। सीता दोनों को मृत समझकर करुण विलाप करने लगी थी तब त्रिजटा ने आश्वासन दिया था कि राम और लक्ष्मण जीवित हैं। सीता के प्रति उसने स्नेह को व्यक्त किया था—

"स्नेहादेतद् ब्रवीमि ते।" (वा० रा० ६।४८।२८)

रामायणककविन (सर्ग २१) के अनुसार सीता राम को शरपाश में बँधा देखकर चिता तैयार करने का निवेदन करती है, किन्तु त्रिजटा अपने पिता विभीषण से मिलने जाती है और राम के कुशल-क्षेम का शुभ समाचार लेकर लौटती है।

५४६ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "सीता की त्रिजटा से अन्य हितैषिणी राक्षसियों की भी चर्चा है। **वाल्मीकिरामायण सुन्दरकाण्ड** में विभीषण की पुत्री तथा पत्नी की चर्चा है। सीता कहती है कलानामक विभीषण की ज्येष्ठा पुत्री ने अपनी माता के आदेशानुसार मुझसे कहा है कि विभीषण तथा अविन्ध्य के सत्परामर्शों की अवज्ञा करके रावण ने सीता को लौटाना हठपूर्वक अस्वीकार कर दिया है। उदीच्य पाठ के अनुसार उसका नाम नन्दा था। **जानकीपरिणय** में उसका अनला नाम उल्लिखित है। रावण ने राम का मायामय शीर्ष दिखलाया था। किन्तु सरमा ने सीता के पास आकर रावण के छल-कपट का रहस्य प्रकट किया था। सरमा ने सीता को यह शुभ समाचार दिया

कि राम समुद्र पार कर लङ्का के निकट आ गये हैं। उसने यह भी समाचार दिया कि रावण ने अपनी माता और सभासदों का अनुरोध ठुकरा कर सीता को लौटाना अस्वीकार कर दिया है। सरमा सीता की प्रणयिनी सखी है। उसके साथ सीता की मैत्री थी (वा० रा० ६।३३।३)। उदीच्य पाठ तथा गौड़ीय पाठ ५।५२ एवं पश्चिमोत्तरीय पाठ ५।५१ में **"सरमावाक्य"** नामक सर्ग पाया जाता है, जिससे सरमा सीता के लिए लङ्का-दहन का वर्णन करती है। उपर्युक्त वृत्तान्तों में सरमा तथा विभीषण का कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता है। सीता-हनुमान्-संवाद के अन्तर्गत सीता हितकारिणी के रूप में विभीषण की पत्नी का उल्लेख है। बाद में सीता की प्रिय सखी सरमा के उन उपकारों का वर्णन मिलता है। बुल्के कहते हैं उत्तरकाण्ड के व्यासों ने सरमा को विभीषण की पत्नी घोषित कर दोनों को अभिन्न माना है। उत्तरकाण्ड के अनुसार धर्मज्ञा सरमा गन्धर्वराज शैलूष की पुत्री है। उसके नाम की व्युत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि सरोवर की बाढ़ आते देख कर शिशु रोने लगा तो माँ ने कहा था "सरो मा वर्धत" इसी लिए शिशु का नाम सरमा हो गया (वा० रा० ७।१२।२४-२६)।"

वस्तुतः बुल्के भारतीय विचारपद्धति से अपरिचित हैं; इसी लिए वे जैसी तैसी शङ्काएँ उठाते हैं और उन्हीं के आधार पर कुछ का कुछ निर्णय कर बैठते हैं। पहले उनकी यह कल्पना ही असंगत है कि उत्तरकाण्ड और **बालकाण्ड वाल्मीकिरामायण** के अंश नहीं हैं। वस्तुतः पूर्वकथनानुसार सातों काण्ड रामायण वाल्मीकिकृत हैं। जब वाल्मीकिरामायण में ही एक स्थल में विभीषण के पत्नीमात्र का उल्लेख है और अन्य स्थल में उसके नाम का भी उल्लेख है। ऐसी स्थिति में दोनों का समन्वय ही कर लेना उचित है। संदिग्ध वाक्यों के अर्थ का वाक्यशेष से निर्णय किया ही जाता है। जैसे—'यवैर्यजेत्' वाक्य में 'यवों' से यजन करने का उल्लेख है, परन्तु 'यव' शब्द से कई स्थलों में प्रियङ्गु का ग्रहण होता है। परन्तु—

> "वसन्ते सर्वसस्यानां जायते पत्रशातनम्।
> मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः॥"

इस वाक्य के अनुसार वसन्त में होनेवाला कणिशशाली औषधि यव है। प्रियङ्गु तो वसन्त में रहती ही नहीं। यह निर्णय होता है। **वाल्मीकिरामायण** में न सही अन्य पुराणों में भी अगर विभीषण-पत्नी का नाम सरमा निश्चित हो तो भी उसके अनुसार **वाल्मीकिरामायण** में विभीषण-पत्नी का वही नाम निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि सामान्य का विशेष के साथ समन्वय होता है। विभीषण-पत्नी का कोई नाम होगा ही। उपलब्ध विशिष्ट नाम से सामान्य की विशेष आकांक्षा पूर्ण हो जाती है। अतः विभीषण की पत्नी का 'सरमा' नामनिर्धारण उचित ही है और यह व्यासों का निर्णय न होकर उत्तरकाण्ड **वाल्मीकिरामायण** का ही निर्णय है। उसे **वाल्मीकिरामायण** न मानना दुराग्रह ही है।

५४७ वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "**रामायण** और **महाभारत** में कहीं भी विभीषण और त्रिजटा के सम्बन्ध का उल्लेख नहीं है। किन्तु परवर्त्ती साहित्यों में सीता के प्रति कला तथा सरमा के उपकारों का श्रेय त्रिजटा को दिया गया है। फलस्वरूप त्रिजटा को विभीषण की पत्नी या पुत्री माना गया है। उदाहरणार्थ—**गोविन्दराजटीका** (५।२७।४), **कम्बरामायण** (५।६) तथा **आनन्दरामायण** में त्रिजटा को विभीषण की पत्नी माना है—

"त्रिजटानाम्नी विभीषणप्रियानुगा" (आ० रा० १।९।११)। रामकियेन के अनुसार रावण ने विभीषण को निर्वासित कर उसकी पत्नी त्रिजटा को सीता की सेवा में नियुक्त किया था।" किन्तु इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान देना उचित है कि आपातमात्र विरोध विरोधाभास ही कहा जाता है। उस विरोधाभास का परिहार करना उचित है। अतएव गोविन्दराज त्रिजटा को सरमा से अन्य विभीषण की दूसरी पत्नी कहते हैं। **महाभारत रामोपाख्यान** में सीता ने हनुमान् से कहा था कि त्रिजटा ने मुझे अविन्ध्य का यह सन्देश दिया है कि राम और लक्ष्मण सकुशल हैं।

वे वानर-सेना लेकर तुम्हें छुड़ाने आ रहे हैं। रावण से मत डरना, क्योंकि नलकूबर के शाप के कारण वह तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता है (म० भा० ३।२६४।५८)।

बुल्के कहते हैं "**वाल्मीकिरामायण** के अनुसार सीता ने कला नामक विभीषण की पुत्री की चर्चा की है। त्रिजटा के स्वप्न के प्रसङ्ग के अतिरिक्त **महाभारत** के अन्य स्थल पर त्रिजटा का उल्लेख है। रावणवध के बाद लङ्का से चलने के समय राम ने त्रिजटा को अर्थ और सम्मान प्रदान किया था—

"त्रिजटां चार्थमानाभ्यां योजयामास राक्षसीम्।" (म० भा० ३।२७५।३९)"

परन्तु वस्तुतः इससे भी रामायणोक्त वृत्तान्त का बाध नहीं होता है। विभीषण-पत्नी होने के नाते और सीता की अधिक प्रिय होने के कारण त्रिजटा का अधिक सम्मान असङ्गत नहीं है।

रघुवंश (१२।७४), **सेतुबन्ध** (सर्ग ११) आदि में मायाशीर्ष के प्रसङ्ग में त्रिजटा ही सरमा का स्थान लेती है। **प्रसन्नराघव** में सीता के अनुरोध से त्रिजटा आकाश में स्थित होकर मेघनाद द्वारा हनुमान् के बन्धन और लङ्का-दहन का वर्णन करती है। उदीच्य पाठ में इस प्रसङ्ग में सरमा की चर्चा है। बुल्के इसमें इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "**वाल्मीकिरामायण** के अनुसार विभिन्न राक्षसियों ने जो कुछ भी उपकार किया था, वह सब बाद में त्रिजटा का उपकार माना गया है। राम-कथा के कवियों ने इतने से ही सन्तुष्ट न होकर कथानक में त्रिजटा का महत्त्वपूर्ण स्थान बना दिया है।" परन्तु बुल्के को यह जानना चाहिये कि वस्तुस्थितिहीन कल्पना का कोई महत्त्व नहीं होता। **वाल्मीकिरामायण** में ही त्रिजटा का महत्त्व वर्णित है। त्रिजटा के स्वप्न को ही ले लिया जाय तो केवल एक वही त्रिजटा का महत्त्व ख्यापन के लिए पर्याप्त है। अतएव **महाभारत रामोपाख्यान** में भी त्रिजटा को महत्त्व दिया गया है। सरमा और कला का भी राम-भक्तों के हृदय में आदर है। परन्तु संक्षेप की दृष्टि से सब का वर्णन सम्भव नहीं होता। **वाल्मीकिरामायण** तो सबका आकर ग्रन्थ है ही। उसमें सरमा तथा कला का भी महत्त्व-वर्णन है ही।

यह ठीक है कि त्रिजटा ने गुप्तचर बनकर सीता को रावण की सभा के समाचार भी दिये थे। **बालरामायण** (अंक ८) के अनुसार सुमुख तथा दुर्मुख द्वारा नरान्तक-वध, कुम्भकर्ण-जागरण तथा इन्द्रजित् के निकुम्भिला-प्रवेश आदि के समाचार भी सीता को त्रिजटा ने दिये थे। इन्द्रजित्-वध के बाद लक्ष्मण का शङ्खनाद सुनकर सीता ने त्रिजटा को भेज दिया था और उससे युद्ध का सब समाचार सुनकर प्रसन्न हुई थी। **रामचरितमानस** के अनुसार वह रामचरणरत एवं विवेकनिपुण थी, इत्यादि बातें **वाल्मीकिरामायण** के अविरुद्ध होने तथा परम्पराप्राप्त होने से प्रामाणिक ही हैं।

यहीं बुल्के ने जैनी राम-साहित्य की रचनाओं की चर्चा करते हुए बतलाया है कि "यद्यपि **पउमचरियं** और **उत्तरपुराण** में त्रिजटा का उल्लेख नहीं है। तथापि स्वयम्भूदेवकृत **पउमचरियं** (४९।१०) में त्रिजटा को सीता की हितैषिणी नहीं माना गया है। जब हनुमान् द्वारा गिरायी गयी राम-मुद्रिका को देखकर सीता आह्लादित हो उठी तो त्रिजटा रावण के पास जाकर कहती है कि आज आपका जीवन सफल है। आपकी प्रतिज्ञा पूरी होगी, क्योंकि भट्टारिका सीता हँस रही है। हेमचन्द्र के ग्रन्थों में भी ऐसी ही बातें हैं। उनके अनुसार सीता को उपवन में रखने के बाद सीता प्रलोभन देने के लिए त्रिजटा को ही रखा गया है (**योगशास्त्र**[1] ११७)।" प्रायः **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध और विलक्षण रचना के लिए जैन विद्वान् प्रस्तुत ही रहते हैं, अतः वैसा होना आश्चर्य की बात नहीं है, किन्तु है यह सब जैनों का पाखण्ड।

---

१. यह योगशास्त्र जैनों का है। पातञ्जल योगदर्शन नहीं है।

रामायणककविन के अनुसार ३०० राक्षसियाँ तो सीता को डराने धमकाने के लिए नियुक्त की गयी थीं। उनमें एक त्रिजटा भी थी, जो सीता का पक्ष लेती थी। उसकी सहानुभूति पाकर सीता ने अपनी कथा उसे सुनायी थी। दोनों मन्दिर में प्रार्थना करने गयी थीं। राम और लक्ष्मण के मायामय शीर्ष देखकर सीता अग्नि में प्रवेश करने के लिए प्रस्तुत हुई थी, किन्तु त्रिजटा ने उनका साथ दिया। उसने विभीषण से समाचार लेकर राम और लक्ष्मण के जीवित रहने का समाचार देकर सीता को अग्नि-प्रवेश से विरत किया। ऐसे ही शरबन्ध से बँधे हुए राम और लक्ष्मण को देखकर भी सीता विकल हुई थीं। उस समय भी त्रिजटा ने विभीषण से मिलकर सीता को आश्वासन दिया था। अग्निपरीक्षा के समय भी त्रिजटा ने सीता के सतीत्व का साक्ष्य दिया था। वह बाद में सीता के साथ अयोध्या चली आयी थी (सर्ग २४)। **वाल्मीकिरामायण** से अनुप्राणित कथाओं में त्रिजटा का महत्त्व-वर्णन होना स्वाभाविक ही है।

५४८वें अनु० में बुल्के का यह कहना असङ्गत ही है कि "रामायण के प्रक्षिप्त सर्ग २८,२९ के अनुसार सीता हनुमान् के आगमन के ठीक पहले देहत्याग के लिए फाँसी लगाने का विचार कर रही थी। इतने में शुभ शकुन प्रकट हुए", क्योंकि उक्त दोनों सर्ग प्रक्षेप नहीं हैं। उनकी सङ्गति है, अतएव उनपर टीकाएँ हैं। इसी लिए **अध्यात्म-रामायण**, **आनन्दरामायण** आदि में भी उक्त वर्णन है। **रामकियेन** के अनुसार सीता फाँसी लगा चुकी थी। हनुमान् ने फाँसी की गाँठ खोल दी।

सीता-हनुमान्-संवाद

वाल्मीकिरामायण के अनुसार यह ठीक ही है कि हनुमान् अशोकवाटिका में सीता को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और सोचने लगे कि यदि मैं सीता से बिना भाषण किये एवं उन्हें आश्वस्त बिना किये जाता हूँ तो सीता ने क्या कहा है ? राम के यह पूछने पर क्या उत्तर दूंगा ? इसके अतिरिक्त आश्वासन दिये बिना जाने से सीता राम के आगमन से पहले ही प्राणत्याग कर सकती हैं। फिर सेनासहित राम का लङ्का आगमन ही व्यर्थ हो जायेगा, अतः मैं सूक्ष्म वानरतनु से सीता से मानुषी संस्कृता वाणी से भाषण करूँगा। यदि मैं द्विजाति के समान संस्कृत देववाणी बोलूंगा तो मुझे रावण समझकर सीता भयभीत हो सकती हैं। अतः अवश्य ही मुझे मानुष-वाक्य ही बोलना चाहिये—

"वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्॥
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्॥
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥" (वा० रा० ५।३०।१७–१९)

हनुमान् ने सीता के सुनने योग्य स्वर में रामचरित का संक्षिप्त वर्णन किया। उसे सुनकर सीता को विस्मय हुआ। उन्होंने आँखें उठाकर शिंशपा वृक्ष पर हनुमान् को देखा। हनुमान् ने अपने को रामदूत कहकर राम के कुशल-क्षेम का समाचार सुनाया। सीता को हर्ष हुआ। पश्चात् कामरूपी रावण समझकर सीता सन्देह में पड़ गयी। हनुमान् ने सीता को राम की मुद्रिका अर्पित की तथा आश्वासन दिया कि राम शीघ्र आनेवाले हैं। सीता विश्वस्त होकर यह सन्देश देने लगी कि राम मुझे जीवित पाना चाहें तो दो महीनों के अन्दर आ जायँ। हनुमान् सीता को अपनी पीठ पर ले जाने का प्रस्ताव करते हैं। सीता पहले तो हनुमान् की सामर्थ्य पर सन्देह करती हैं। जब हनुमान् ने अपनी शक्ति को प्रमाणित किया तो पीछे अनेक अन्य न जाने के हेतु देकर अन्त में कहती हैं, मैं राम को छोड़कर स्वतः दूसरे का शरीरस्पर्श नहीं करना चाहती—

"भर्तुर्भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम॥" (वा० रा० ५।३७।६२)

हनुमान् ने यह तर्क मान लिया (सर्ग ३९)। सीता ने पुनः कहा—राम ही रावण को परास्त कर मुझे ले जायँ—

"रावणमुत्पाट्य राघवो मां नयतु॥" (वा० रा० ५।५८।१०१)

लुक छिपकर मुझे ले जाना राम को शोभा नहीं देगा। उनकी कीर्ति के लिए आवश्यक है कि रावण पर विजय प्राप्त कर लें—

"बलैः समग्रैर्युधि मां रावणं जित्य संयुगे।
विजयी स्वपुरीं यायात् तत्तस्य सदृशं भवेत्॥" (वा० रा० ५।३९।२९)

"बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे।
विजयी स्वपुरं रामो नयेत्तत्स्याद्यशस्करम्॥" (वा० रा० ५।६८।१२)

"यथाहं तस्य वीरस्य वनादुपधिना हृता।
रक्षसा तद्भयादेव तथा नार्हति राघवः॥" (वा० रा० ५।६८।१३)

बुल्के इस सर्ग को भी प्रक्षेप कहते हैं। परन्तु यह भी उनकी धारणा गलत है। यह सर्ग टीकाकारसम्मत तथा परम्पराप्राप्त है।

अभिज्ञान

बुल्के कहते हैं, **वाल्मीकिरामायण** के प्रामाणिक सर्गों में चूड़ामणि तथा काकवृत्तान्त दो अभिज्ञानों की चर्चा है। **महाभारत** के **रामोपाख्यान** में भी दो का ही वर्णन है (३।२६६।६६,६७)। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार हनुमान् मैनशिल के तिलक का स्मरण दिलाकर राम को एक तीसरा अभिज्ञान देते हैं—

"मनःशिलायास्तिलको गण्डपार्श्वे निवेशितः।" (वा० रा० ५।४०।५)

लङ्का-दहन

लङ्का-दहन अंश को भी बुल्के प्रक्षेप मानते हैं, पर उनका यह मन्तव्य असङ्गत है। यह बात पहले कही जा चुकी है। रावण के बल का परिज्ञान एक सफल दूत के लिए परम आवश्यक था। इसी उद्देश्य से हनुमान् ने अशोकवन नष्ट किया और रावण के भेजे योद्धाओं जम्बूमाली, सात मन्त्रि-पुत्रों, पाँच सेनापतियों तथा रावण-पुत्र अक्षय का वध किया। इन्द्रजित् द्वारा ब्रह्मास्त्र से बद्ध होकर हनुमान् ने रावण के पास पहुँच कर अपने को सुग्रीव द्वारा भेजा हुआ राम-दूत बतलाया और सीता को लौटाने का अनुरोध किया। रावण क्रुद्ध होकर उन्हें वध का दण्ड देना चाहता था, पर विभीषण की आपत्ति पर ध्यान देकर घृत और तेल युक्त वस्त्रों से वेष्टित पूँछ में आग लगा देने का निर्णय हुआ। सीता को समाचार मिलने पर उन्होंने अग्निदेव से प्रार्थना की कि वह हनुमान् के लिए ठण्डे हो जायँ—"**शीतो भव हनूमते**" (वा० रा० ५।५३।२७)। फलस्वरूप हनुमान् ने शीतलता का अनुभव किया। उन्होंने इसे सीता की दयालुता, राम का प्रभाव तथा अग्नि से अपने पिता की मित्रता का परिणाम माना। हनुमान् ने अपना शरीर बढ़ा कर पुनः लघु करके उस बन्धन से अपने को मुक्त कर लिया और फिर आकार बढ़ा कर विभीषण का गृह छोड़ कर शेष लङ्का को भस्म कर डाला।

अन्त में जलती हुई पूंछ समुद्र में बुझा ली। तब उन्हें सीता की कुशल के सम्बन्ध में चिन्ता हुई। किन्तु शकुनों तथा चारणों के गीतों से उन्हें आश्वासन मिला (वा० रा० ५।५५।२९–३४)। **अध्यात्मरामायण** के अनुसार

हनुमान् को भूख लगी थी। उन्होंने सीता की अनुमति लेकर अशोकवन के फल खाये और प्रणाम करके चले गये, कुछ दूर चले जाने पर उन्होंने सोचा कि रावण से मिलकर जाना अच्छा है। इसलिए वे अशोकवन उजाड़ने लगे। **आनन्दरामायण** के अनुसार उन्होंने सीता की आज्ञा लेकर पूँछ से वृक्षों को हिलाकर फल गिरा दिये और खाये। वृक्ष भी गिरा दिये।

रामचरितमानस के अनुसार—

"रहा न नगर बसन घृत तेला।
बाढी पूंछ कीन कपि खेला॥" (रा० मा० ५।२४।३)

आनन्दरामायण आदि कई ग्रन्थों के अनुसार हनुमान् की पूंछ में आग लगाने के सब प्रयास व्यर्थ होने पर हनुमान् ने कहा—यदि रावण स्वयं फूंक मारें तो अग्नि प्रदीप्त हो सकेगी। रावण ने वैसा किया तो उसके दसों सिरों और मूंछ दाढ़ी में अग्नि लग गयी। मुंह पर थप्पड़ मार कर वह बुझाने लगा जिससे सब राक्षस खिलखिला कर हँसने लगे।

आनन्दरामायण (१।९।२०९–२११) के अनुसार दस करोड़ राक्षसों को लेकर रावण लड़ने निकला। हनुमान् ने लोहस्तम्भ से सबको मारा। पूंछ में करोड़ों राक्षसों को लपेट कर उन्हें रावण के सिर पर दे मारा जिससे वह मूच्छित हो गया। उसी समय देवकन्याओं एवं देवताओं की मुक्ति की चर्चा भी है। वस्तुतः **रामायण** की अविभाज्य अङ्गभूत लङ्का-दहन की घटना महत्त्वपूर्ण वस्तु है। उस समय अनेक घटनाएँ घटी होंगी। शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** में उनका विस्तार होगा ही। उपलब्ध **वाल्मीकिरामायण** में तो उसका संक्षेप ही हो सकता है। अनेक लोगों ने उसको विकृत करके अन्यथा भी वर्णन किया ही है।

५५३ वें अनु० में बुल्के कहते हैं, "लङ्का-दहन के पश्चात् केवल दो ही सर्ग प्रामाणिक हैं। उनके अनुसार लङ्का की घटनाओं के सम्बन्ध में हनुमान् ने यही कहा कि मैंने सीता को देखा, परन्तु यह कितनी अस्वाभाविक बात है यह बताने की आवश्यकता नहीं। सर्ग ६५ वें में हनुमान् चूड़ामणि देकर राम से अपनी लङ्का-यात्रा का यों वर्णन करते हैं—समुद्र-लङ्घन करके मैंने रावण के यहाँ सीता को देखा। वह राक्षसियों से घिरकर आप ही का चिन्तन करती हैं। वह आपका समाचार पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा अभिज्ञान स्वरूप उन्होंने चूड़ामणि के अतिरिक्त काकवृत्तान्त तथा मैनशिल के तिलक के विषय में आपको स्मरण दिलाने को कहा है तथा यह भी निवेदन किया है कि मैं केवल एक महीने तक ही जीवित रह सकूंगी। अन्त में हनुमान् ने राम से यह प्रस्ताव किया कि 'समुद्र पार करने की तैयारियाँ प्रारम्भ हो जायँ।" वस्तुतः बुल्के आदि लेखक के अभिप्राय से नहीं, किन्तु अपने दृष्टिकोण से उसके लेख की छान-बीन और काट-छाँट करते हैं, पर यह सङ्गत नहीं है। समालोचकों की दृष्टि भी एक-सी नहीं होती है। एक साहित्यिक और दार्शनिक तथा न्यायवादी की दृष्टि समान नहीं हो सकती।

संक्षेप और विस्तार की भी पृथक्-पृथक् दृष्टियाँ होती हैं। एक न्यायवादी एडवोकेट विषय के अनुसार अन्यूनानतिरिक्त शब्दों का प्रयोग करना चाहेगा। वैयाकरण एक मात्रा के लाघव से पुत्रोत्सव मनायेगा। परन्तु साहित्यिक और दार्शनिक अपनी बातों को रोचकता के साथ हृदयङ्गम कराने के लिए शब्ददारिद्रय और ग्रन्थदारिद्रय का आदर कदापि नहीं करेगा। महर्षि वाल्मीकि महान् दार्शनिक एवं साहित्यिक हैं। हमें उनकी कृतियों का विश्लेषण, अर्थलाघव तथा गुण-दोष-विचार का अधिकार हो सकता है, परन्तु अपनी दृष्टि के अनुसार यह कहने का अधिकार नहीं है कि अमुक सर्ग अनावश्यक है, अतएव वह प्रक्षेप है। पुनरावृत्ति अनेक स्थलों में दूषण नहीं होती और आंशिक पुनरावृत्ति तो उत्तम लेखकों में भी होती है। वेदों एवं उपनिषदों में भी वह दृष्ट है। हनुमान् ने ५७ वें सर्ग में पहले सीता को देखा इतना ही कहा, इसपर वानरों में खुशी की लहर दौड़ गयी। कोई किलकिला शब्द तो कोई

गर्जन करते हुए उछल-कूद करने एवं पूंछ पटकने लगे और सब एकस्वर से हनुमान् की प्रशंसा करने लगे। ५८ वें सर्ग में जाम्बवान् ने सारा वृत्तान्त विस्तार सहित कहने का अनुरोध किया। क्रूरकर्मा रावण का सीता से कैसा व्यवहार है ? तुमने सीता को कैसे ढूंढ़ा ? उन्होंने क्या कहा ? सब सुनकर हम लोग विचार करेंगे कि राम के पास जाकर क्या कहना है एवं क्या नहीं कहना है--

> यश्चार्थस्तत्र वक्तव्यो गतैरस्माभिरात्मवान्।
> रक्षितव्यं च यत्तत्र तद् भवान् व्याकरोतु नः ॥"

यह सुनकर हनुमान् ने रोमाञ्चयुक्त होकर हर्ष से उन सीतादेवी को नमस्कार कर अपनी यात्रा का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया। इसी में मैनाक; सुरसा, सिंहिका तथा लङ्किनी का वृत्तान्त भी कहा। सीतान्वेषण, सीतादर्शन, सीता-रावण-संवाद, सीता की दृढ़ता, त्रिजटा का स्वप्न एवं उसके द्वारा सीता का आश्वासन, सीता से संभाषण, मुद्रिकासमर्पण, सीता का आश्वासन, अभिज्ञानग्रहण, अशोकवन का उत्सादन, राक्षसों से युद्ध, मेघनाद से युद्ध, ब्रह्मास्त्र से बन्धन, रावण-भाषण, लङ्का-दहन, पुनः सीतादर्शन और लौटने का वर्णन किया। पुनः सीतामाहात्म्य और उनकी स्थिति का वर्णन ५९ वें सर्ग में किया है। ६० वें सर्ग में अङ्गद ने कहा कि हम सब लङ्का को नष्ट करके, रावण को मारकर एवं सीता को लेकर राम के सामने रख दें; यही ठीक है। परन्तु जाम्बवान् की बात मानकर सब लोगों ने राम, लक्ष्मण और सुग्रीव के पास जाना ही उचित समझा। जाम्बवान्, अङ्गद, हनुमान् आदि के साथ सभी बलवान् वानर आनन्द एवं आह्लाद के उद्रेक में मधुवन में जाकर रक्षकों एवं दधिमुख आदि को निगृहीत कर मधु-पान, फल-भक्षण आदि करके आमोद-प्रमोद करने लगे। परिस्थिति के अनुसार मधुवन में प्रवेश कर मधु तथा फल आदि का खान-पान करना असङ्गत नहीं है। महान् कार्य सम्पादित करने के अनन्तर खुशियों में ऐसे कार्य होते ही हैं। रक्षकों के पुकार करने पर सब समाचार जानकर सुग्रीव ने सारी स्थिति का अनुमान कर लिया एवं रक्षकों के द्वारा ही सबको बुलाया। ६४ वें सर्ग में अङ्गद और हनुमान् को पुरस्कृत कर (नेता बनाकर) सब लोग राम के पास आये। सुग्रीव ने कमललोचन रामको बतलाया कि अङ्गद की प्रसन्नता से स्पष्ट होता है कि कार्य करके वे लोग आये हैं, बिना कार्य किये मधुवनध्वंस करने का साहस नहीं हो सकता था और वह कार्य हनुमान् से ही हो सकता है। उनमें सिद्धि, मति, अध्यवसाय एवं शौर्य सब प्रतिष्ठित हैं। जहाँ जाम्बवान् नेता हो, हनुमान् और अङ्गद अधिष्ठाता हों वहाँ कार्यसिद्धि में अन्यथा मति नहीं हो सकती। ६५ वें सर्ग में राम के सन्निधान में आकर हनुमान् ने सीता का वृत्तान्त बतलाया। सीता कहाँ हैं ? मेरे प्रति उनका कैसा भाव है ? राम के इस कथन को सुनकर हनुमान् ने जिधर सीता थी उस दिशा की ओर सीता को प्रणाम करके सीता का दर्शन बताया और देदीप्यमान काञ्चनमय दिव्यमणि राम को प्रदान की और हाथ जोड़कर राम से कहा कि सौ योजन समुद्र का लङ्घन कर मैं सीता-दर्शन की इच्छा से लङ्का गया। वहाँ दुरात्मा रावण के यहाँ मैंने सीता को देखा। वह आप में ही जीवन अर्पित करके राक्षसीगण द्वारा बार बार तर्जित होकर रह रही हैं। वे एकवेणीधारिणी, चिन्तापरायण, भूमिशयन से विशीर्णाङ्गी होकर हिमागम से पद्मिनी के समान मुरझायी हुई, मरने का निश्चय किये हुए, रावण से सर्वथा विमुख तथा आप में मन लगा कर स्थित हैं। मैंने शनैः शनैः इक्ष्वाकुवंश का कीर्तन करते हुए उन्हें आश्वासन दिया और उनसे भाषण किया। उन्हें यहाँ की स्थिति बतलायी। राम और सुग्रीव के सख्य का समाचार सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुईं। उनका उदात्त समाचार नियत है। आपमें उनकी सदा स्थिर भक्ति है। उग्र तपस्या और आपकी भक्ति से युक्त जनकनन्दिनी को मैंने देखा। यह काञ्चन मणिरूप अभिज्ञान देकर उन्होंने काकवृत्तान्त भी कहा। मनःशिला के तिलक का भी स्मरण दिलाया और कहा है कि मैं मास भर से अधिक जीवन नहीं रख सकूंगी। हनुमान् ने कहा, अतः शीघ्र ही सागर पारकर प्रस्थान करना चाहिये।

बुल्के तो अप्टूडेट वकालती वर्णन चाहते हैं। वस्तुस्थिति या तो समझते ही नहीं या भूल जाते हैं। स्वाभाविक वर्णन को भी प्रक्षेप कहने का निराधार साहस करते हैं। ६६ वें सर्ग में हनुमान् की बात सुनकर मणि को हृदय से लगाकर राम रोने लगे और अश्रुपूर्ण नयनों से मणि को देखते हुए सुग्रीव से कहते हैं जैसे वत्स को देखकर वत्सला धेनु स्नेहस्रुत होती है वैसे ही इस मणिश्रेष्ठ को देखकर मेरा हृदय स्रुत होता है। यज्ञ से सन्तुष्ट होकर देवराज ने जनक को यह मणि प्रदान की थी। जनक ने विवाहकाल में सीता की माता के हाथ से लेकर मेरे पिता दशरथ के हाथ में दी थी। उन्होंने वैदेही के मूर्धा को उससे अलङ्कृत किया था। आज उस मणि के दर्शन से मैं वैदेही के मिलने के सुख का अनुभव कर रहा हूँ। राम पुनः हनुमान् से पूछने लगे, वैदेही ने और क्या कहा है। सौमित्रे, वैदेही के बिना आयी हुई मणि को मैं देख रहा हूँ। इससे अधिक क्या दुःख होगा। वैदेही मास भर जीवित रहेगी यह तो बहुत है मैं तो क्षणभर भी उनके बिना जीवित नहीं रह सकता। इस प्रकार ६६ वें सर्ग में राम ने विलाप किया। हनुमान् ने पुनः ६७ वें सर्ग में सविस्तर सीता का सन्देश सुनाया। राम सेना सहित आकर लङ्का को विध्वस्त करके मुझे ले जायें, यही उनके स्वरूप के अनुरूप है। परन्तु समुद्र पारकर यहाँ सेना सहित राघव का आना कैसे हो सकेगा। इसपर मैंने कहा देवि, वानरों और भालुओं के राजा सुग्रीव के पास बहुत बड़े बलशाली तथा विक्रम-संपन्न योद्धा हैं। उनकी गति ऊपर, नीचे तथा तिर्यक् कहीं भी रुद्ध नहीं होती। मैं तो उनमें से एक बहुत छोटा हूँ। एक छलाँग में हरिवीर यहाँ आ जायेंगे। राम और लक्ष्मण दोनों सूर्य और चन्द्र के तुल्य मेरे पृष्ठ पर आरूढ़ होकर आ जायेंगे। देवि, तुम नख-दंष्ट्रा आयुधवाले वीरों का गर्जन शीघ्र ही सुनोगी और शीघ्र ही वनवास की अवधि पूरी कर अयोध्या में अभिषिक्त राम को देखोगी। इस तरह कल्याणमयी अभीष्ट उदारवाणी द्वारा प्रसादित होकर अदीनभाषिणी एवं आपके विरह से अतिपीड़ित सीता ने शान्ति प्राप्त की (सर्ग ६८)।

कानूनी लिखा-पढ़ी की बात पृथक् है। व्यावहारिक स्वाभाविक बात यही है कि बहुत काल के अनन्तर प्रियजन के सम्बन्ध में समाचार मिलने पर उससे बार-बार पूछा जाता ही है। सविस्तर जानकारी की इच्छा होती ही है। उन्हीं स्वाभाविक व्यावहारिक चरित्रों का चित्रण वाल्मीकि ने किया है। यह भूमिका भी न भूलनी चाहिए कि सीता वाल्मीकि के आश्रम में थीं। सीता के चरित्रों के सम्बन्ध में कुछ विपरीत चर्चाओं के कारण उन्हें बनवास दिया गया था। उसके लिए अनेक अन्य उपायों के बदले आप्तकाम, पूर्णकाम, अब्भक्ष, वायुभक्ष, कन्दमूलफलाशी, वल्कलवसनधारी, वीतराग महर्षि के द्वारा सीता के पवित्र चरित्रों का सत्य वर्णन किया जाय। इसी दृष्टि से पुनः पुनः विभिन्न प्रसङ्गों द्वारा सीता के चरित्रों का वर्णन करना आवश्यक था। जाम्बवान् तथा राम की भी जिज्ञासा के प्रसङ्ग से महर्षि ने सीता की जीवनचर्या, वार्तालाप, सीता-रावण-संवाद तथा सीता की दृढ़ तपस्या और उनके तनिक तनिक व्यवहारों और वार्तालापों का वर्णन किया है। इसी दृष्टि से विभिन्न घटनाओं का भी यथावत वर्णन किया गया है, जिससे उस समय के उन लोगों को जिन्होंने उन घटनाओं को आँखों से देखा था, आँखों देखी घटनाओं का यथावत् वर्णन सुनकर उस इतिहास या काव्य में विश्वास होना स्वाभाविक था। उसी सम्बन्ध से उन लोगों ने सीतासम्बन्धी घटनाओं की भी सचाई जानना चाहा होगा और महर्षि वाल्मीकि द्वारा ठीक वर्णन सुनकर उन्हें अवश्य ही समाधान प्राप्त हुआ होगा।

✲

अष्टादश अध्याय

युद्धकाण्ड

वाल्मीकिरामायण **युद्धकाण्ड** में लङ्काभियान, राम द्वारा हनुमान् के कार्यों की प्रशंसा और उनको स्वात्म-परिष्वङ्ग प्रदान, समुद्र की बाधा के विचार से राम की निराशा तथा प्रोत्साहन देते हुए सुग्रीव का सेतुबन्ध का प्रस्ताव, हनुमान् द्वारा लङ्का का वर्णन, समुद्र तक पहुँचना, राम का विरहवर्णन, रावण के सभासदों द्वारा रावण को विजय का आश्वासन, विभीषण द्वारा चेतावनी, कुम्भकर्ण का जगना, रावण को दोष देना, अन्त में युद्ध में सहायता करने की प्रतिज्ञा करना, पुञ्जिकस्थली के कारण पितामह के शाप का रावण द्वारा वर्णन करना (सर्ग १३), विभीषण की शरणागति, सुग्रीवादि का विभीषण को ग्रहण करने में मतभेद, हनुमान् की सहमति, शरणागतरक्षण व्रत के कारण विभीषण का ग्रहण, अङ्गुल्यग्रमात्र से पृथिवी भर के सभी दैत्यों, दानवों, राक्षसों और पिशाचों का वध करने की सामर्थ्य बतलाकर राम का सबको आश्वस्त करना।

विभीषण का राम द्वारा अभिषेक, प्रायोपवेशन द्वारा समुद्र को अनुकूल बनाने की विभीषण की मन्त्रणा, शार्दूल द्वारा रावण को रामसेना की सूचना देना, सेतुबन्ध, शुक्र, सारण, शार्दूल तथा विद्युज्जिह्व द्वारा राम का मायामय शीर्ष प्रदर्शन। वानर भटों द्वारा लङ्कावरोध, शरपाशबन्धन, राम और रावण का द्वन्द्वयुद्ध, कुम्भकर्ण का वध, द्वन्द्वयुद्ध, पुनः लंका-दहन, इन्द्रजित्-वध, विभिन्न युद्धों में रावण-वध, अग्निपरीक्षा, प्रत्यावर्तन, अयोध्याप्रवेश ये सभी अंश **रामायण** के हैं। तीनों पाठों में अनेक पाठ-भेद हैं और सब प्रामाणिक हैं। वेदों में तथा **सप्तशती** में भी ऐसे पाठभेद मिलते हैं। पाठभेदों का अनुचित लाभ उठाकर बुल्के आदि पाश्चात्य प्रक्षेप सिद्ध करते हैं। साथ ही जो तीनों पाठों में भी उनके स्वाभिमत-विरुद्ध होता है उसको भी वे प्रक्षेप कहने का साहस करते हैं।

५६१ वें अनु० में बुल्के का यह कहना ठीक नहीं है कि "तीनों पाठों की उपर्युक्त विभिन्नता से स्पष्ट है कि गायकों ने युद्धकाण्ड का कलेवर बढ़ाने में संकोच नहीं किया", क्योंकि यदि गायकों को मूलपाठ में बढ़ाने का अधिकार होता तो आज भी पाठभेद बढ़ाया जा सकता है। आधुनिक साहित्यिकों एवं व्यासों में श्लोकनिर्माण की क्षमता कम नहीं है। अतएव सर्ग १–३, ६–८, १०–१५ तथा २० को प्रक्षेप मानना निराधार है। याकोबी के अनुसार सर्ग २३–४० को प्रक्षिप्त कहना भी तर्काभास के आधार पर है। क्योंकि बहुत-सी वास्तविक घटनाओं को भी हटा देने पर किसी अंश का अभाव परिलक्षित नहीं होगा। विधि का विधान या घटनाएँ किसी की सङ्गति की अपेक्षा नहीं रखतीं हैं। अपितु घटनाओं के अनुसार कथाएँ होती हैं। उनका यह भी कहना सङ्गत नहीं है कि "इस अंश में बालकाण्ड में वर्णित वानरों की उत्पत्ति का निर्देश मिलता है (२८।५ और ३०।२७); प्रामाणिक सर्गों में बालकाण्ड की सामग्री का उल्लेख नहीं होता", इससे तो यही सिद्ध होता है कि बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड दोनों ही काण्डों को अर्वाचीन कहने की धृष्टता सर्वथा अनुचित है। तभी तो युद्धकाण्ड के उक्त वर्णनों से बालकाण्ड का सम्बन्ध जुड़ता है। इसके अतिरिक्त बुल्के, याकोवी आदि के यहाँ कोई भी काण्ड प्रामाणिक है ही नहीं। क्योंकि वे सर्वत्र प्रक्षेप कहने को प्रस्तुत रहते हैं। केवल जो अंश पाश्चात्यों के विचार से फिट बैठता हो वही उनका प्रामाणिक अंश है। प्रामाणिकता की कसौटी संभवतः उनके पास है ही नहीं। सर्ग २८ और ३० दोनों ही स्थलों में विशिष्ट वानर वीरों की उत्पत्ति और विशिष्ट देवताओं का वानर आदि योनियों में अवतार-ग्रहण प्रमाणित होता है।

५६३वें अनु० में बुल्के कहते हैं "सर्ग ४२–११२ से इतनी पुनरावृत्ति और नीरसता पायी जाती है कि यह समस्त सामग्री वाल्मीकि जैसे महान् कवि की रचना हो ही नहीं सकती" पर उनका यह तर्क तर्काभास है, क्योंकि ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन भावुकता एवं रसिकता निरपेक्ष ही होता है। दर्शन एवं गणित का विषय नीरस होने पर भी व्यास आदि ने श्रीमद्भागवत आदि में उसका वर्णन किया ही है। पूर्वमीमांसा तथा उत्तरमीमांसा के अत्यन्त जटिल नीरस विषयों का भी वर्णन वेदान्तदेशिक आदि ने अपने काव्यों में किया ही है। आपके परस्पर विरोधी उदाहरण भी अकिञ्चित्कर हैं।

आप कहते हैं "सर्ग ५० में गरुड़ के आगमन का वर्णन किया गया है। राम और लक्ष्मण मूर्च्छित होकर पड़े हुए हैं और गरुड़ के आने पर नागपाश के मुक्त हो जाते हैं। किन्तु सर्ग ४९ में शरपाशबद्ध राम के जागने का उल्लेख हो चुका है। अतः सर्ग ५० का अनावश्यक वृत्तान्त बाद का प्रक्षेप सिद्ध होता है।" परन्तु उक्त कथन बुल्के की अनभिज्ञता का ही सूचक है, क्योंकि ४९वें सर्ग में यह नहीं कहा गया है कि राम नागपाशमुक्त हो गये थे।

४४वें सर्ग के अनुसार भीमकर्मा वालिपुत्र से निर्जित होकर, इन्द्रजित् अन्तर्धान होकर ब्रह्मा से वर प्राप्त करने के कारण अदृश्य रहकर ही वज्रतुल्य निशित बाण छोड़ने लगा। वह नागमय बाणों के द्वारा राम और लक्ष्मण दोनों के सर्व गात्रों का भेदन करने लगा। कूटयोधी इन्द्रजित् ने क्रुद्ध होकर मायासंवृत रहकर युद्ध में दोनों राघववीरों को मोहित करते हुए शरबन्ध से बाँध दिया।

"रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः।" (वा० रा० ६।४४।३४)

भीषण नाग ही शररूप में परिणत हुए थे। उन्हीं के द्वारा उसने राम और लक्ष्मण को बाँध दिया—

"बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।" (वा० रा० ६।४४।३६)

४५ वें सर्ग में इन्द्रजित्कृत बन्धन का ही विस्तार है। राम ने उसकी स्थिति जानने के लिए नील, अङ्गद, शरभ, द्विविद, हनुमान्, ऋषभ आदि दस वीरों को आदेश दिया। वे उसे ढूँढ़ने आकाश में प्रविष्ट हुए। परन्तु उस अस्त्रवित् ने अपने परमास्त्र से उन्हें वारित कर दिया। वे भीमवेगवाले भीषण बाणों से विक्षत होकर मेघ से आवृत सूर्य के समान उसको नहीं देख सके। पुनश्च वह और वेग से राम एवं लक्ष्मण के गात्रों में सर्वदेहभेदी बाणों को छोड़ने लगा। बाणरूपता को प्राप्त हुए पन्नगों के द्वारा उसने दोनों के शरीरों को सब ओर से विद्ध कर दिया। "पन्नगैः शरतां गतैः" (वा० रा० ६।४५।८) बड़े ही भीषण वेग से गर्जन के साथ बाणों से भेदन करते हुए उसने सभी स्थानों में बाणों को ठूँस दिया। रणभूमि में दोनों भाई शरबन्धन से बँध गये। शरवेष्टितसर्वाङ्ग तथा रुधिर से सराबोर होकर दोनों वीर शयन में शयान हो गये। उनके गात्र में एक अङ्गुल भी भीषण बाणों से अविद्ध तथा अक्षत प्रदेश नहीं रहा। ४६ वें सर्ग में इन्द्रजित् अपनी सेना को हर्षित करता हुआ सब को निर्भय करके लङ्का चला गया। विभीषण सब को धैर्य बँधाते रहे। ४७ वें सर्ग में रावण पुष्पक पर त्रिजटा के साथ सीता को बैठाकर रणाङ्गण में शयान राम और लक्ष्मण को देखने के लिए भेजता है। सीता उनकी स्थिति देखकर संतप्त होती है। सर्ग ४८ में संतप्त सीता को त्रिजटा आश्वासन देती है। ४९ वें में घोर शरबन्धों से बद्ध, रुधिर से लथपथ तथा रणभूमि में शयान राम और लक्ष्मण को घेरकर बैठे वानरश्रेष्ठों में शोक की लहर व्याप्त हो रही थी। इसी बीच नागबाणों से निबद्ध होते हुए भी स्थिर होने तथा विशिष्ट सत्त्व के योग से राम प्रतिबुद्ध हो गये और लक्ष्मण की दशा को देखकर विविध प्रकार से विलाप करने लगे। यहाँ ध्यान देने योग्य है कि राम को तात्कालिक प्रबोधमात्र हुआ था—

"एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यबुद्ध्यत वीर्यवान्।
स्थिरत्वात् सत्त्वयोगाच्च शरैः संदानितोऽपि सन् ॥ (वा० रा० ६।४९।३)

अभी तक वे नागपाश से मुक्त नहीं हुए थे। इससे प्रतीत होता था कि वे नागपाश से बद्ध होने पर भी विशिष्ट सत्त्वयोग से कुछ क्षणों के लिए ही प्रतिबुद्ध होकर लक्ष्मण के लिए शोक करने लगे थे। उसी बीच गदाधारी विभीषण सम्पूर्ण सेना को व्यवस्थित कर वहाँ आये। उनको दूर से आते देखकर इन्द्रजित् समझ कर वानर इधर उधर दौड़ने लगे। सेना को अव्यवस्थित देख अङ्गद और जाम्बवान् ने सेना को आश्वासन दिया। विभीषण ने आकर राम और लक्ष्मण दोनों को देखा और उनकी अवस्था पर विषण्ण हुए। सुषेण (वैद्य) के परामर्श से क्षीरोद सन्निहित पर्वतस्थ महौषधि को लाने के लिए हनुमान् को प्रेषित करने की बात चल रही थी कि इसी बीच विद्युत्-सहित मेघों और द्वीप के महाद्रुमों को अपने पक्षवात से प्रकम्पित करते हुए सुपर्ण (गरुड़) आ गये। उनके आते ही त्रस्त होकर बाणरूपी पन्नग भाग गये। दोनों भ्राता बन्धनमुक्त हो गये। वैनतेय के स्पर्श से राम और लक्ष्मण दोनों के व्रण नष्ट हो गये। दोनों के शरीर सुन्दर वर्णवाले तथा स्निग्ध हो गये। तेज, वीर्य, बल, ओज, उत्साह, बुद्धि, स्मृति आदि द्विगुण हो गये। इस तरह पूर्वापर के प्रसङ्ग से ५० वाँ सर्ग अत्यन्त महत्त्व का है। उसके बिना नाग-बाणबन्ध की निवृत्ति की उपपत्ति ही नहीं होती। ऐसे पाश्चात्यों की बुद्धि पर दया आती है जो बिना सोचे समझे आर्ष ग्रन्थों पर अपनी कलमकुल्हाड़ी चलाने को तैयार रहते हैं। वस्तुस्थिति प्रदर्शनार्थ इतना लिखा गया है। वस्तुतः यह ४९ वें सर्ग के ३ श्लोकों की केवल व्याख्या है जिससे बुल्के के उक्त तर्कों का खण्डन होता है।

इसी तरह उनका दूसरा तर्क निम्नोक्त है—"सर्ग ५९ में अकम्पन और नरान्तक को जीवित माना गया है, किन्तु उनके वध का उल्लेख क्रमशः ५६ और ५८ सर्गों में हो चुका है। इसके अतिरिक्त इस सर्ग में राम और रावण के युद्ध का वर्णन है। यद्यपि आगे चलकर राम के प्रथम बार रावण से युद्ध करने का स्पष्ट उल्लेख है (दे० ६।१००।४६–५१)। वास्तव में लक्ष्मण के शक्ति से आहत होने का जो वर्णन इस सर्ग में किया गया है वह १०० वें सर्ग का अनुकरणमात्र प्रतीत होता है। अतः सर्ग ५९ की प्रक्षिप्तता असंदिग्ध है," परन्तु यह भी उनका कथन आपातरमणीय है, क्योंकि—"शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम्।" (वा० रा० ६।५६।२९)। "द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम्।" (वा० रा० ६।५८।२०)। यद्यपि इन वचनों से अकम्पन तथा नरान्तक का वध वर्णित है। तथापि उनसे भिन्न भी सर्ग ५९ के १४ और २२ वें श्लोकों के—

"ह्यकम्पनं त्वेनमवेहि राजन्", "नरान्तकोऽसौ नगशृङ्गयोधी"

इन बचनों द्वारा अन्य अकम्पन तथा नरान्तक का होना मानना चाहिये। इसी लिए विशेषणों का भी प्रयोग किया गया है। सर्ग ५६ के अकम्पन को राक्षसेन्द्र कहा गया है, किन्तु ५९ का गजारूढ़ अकम्पन रावण का अङ्गरक्षक है। अतएव तिलककार ने स्पष्ट लिखा है कि यह पूर्वहत अकम्पन से भिन्न ही है। इसका विशेषण नगशृङ्ग-योधी है। तिलककार कहते हैं। अर्थात् इसके मुकाबले का कोई प्रतियोद्धा नहीं उपलब्ध होता तो वह अपनी भुजाओं की कण्डू (खुजलाहट) दूर करने के लिए महान् गिरिशृङ्गों से ही युद्ध करता है "प्रतियोद्ध्रभावाद् भुजकण्डू-निवृत्त्यर्थमिति भावः।" इतना ही क्यों त्रिशिरा यद्यपि खर-दूषण के साथ मारा जा चुका था तथापि यहाँ १९ वें श्लोक में उससे अन्य त्रिशिरा का भी वर्णन है। जब आजकल भी कालिदास और वाचस्पति मिश्र अनेक हो सकते हैं तो अभिन्न नाम के अनेक राक्षसों के होने में शङ्का क्यों होनी चाहिए। प्रमाणयुक्त होने से अनेक अदृष्टों की कल्पना की जा सकती है—'प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि सुबहून्यपि' केवल समान नाम मात्र देखकर प्रमाणभूत महत्त्व-पूर्ण ५९ वें सर्ग का ही अपलाप करना अत्यन्त असङ्गत है। यदि ऐसा ही है तब तो जिन पाँच काण्डों को आप सब प्रमाण मानते हैं जब उनमें भी अनेक प्रक्षेप हैं तो उन पाँच काण्डों को ही अप्रमाण क्यों न माना जाये? इष्टापत्ति करने पर आपकी रामकथा भी समुद्र में फेंकने लायक रह जायगी।

सर्ग ५९ का राम और रावण का मुकाबला सहेतुक ५९ वें सर्ग के प्रारम्भ में ही दिखलाया गया है। ५८ वें सर्ग के अनुसार वानरी सेना के सेनापति नील के द्वारा राक्षसी सेना के सेनापति प्रहस्त का वध हो गया तो रावण उत्तेजित हो उठा। उसने प्रधान प्रधान राक्षसयूथमुख्यों से कहा कि उन रिपुओं की अवज्ञा की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये जिन्होंने हमारे ससैन्य सकुञ्जर सेनापति को मार डाला है। अतः अब मैं स्वयं विजय के लिए रणभूमि में जा रहा हूँ। यह कहकर अमरराजशत्रु राक्षसराज रावण रणभेरी, पवण आदि के प्रणादों और आस्फोटों, शौर्यप्रकाशक शब्दों, सिंहनादों तथा पुण्यस्तवों से स्तूयमान होता हुआ अपने दलबल के साथ भूतों से घिरे हुए रुद्र के समान रणाङ्गण की ओर चल पड़ा। महार्णवों एवं बादलों के गर्जनों के तुल्य गर्जती हुई तथा महान् वृक्षों एवं शैलों को हाथों में ली हुई प्रचण्ड राक्षसी सेना को देखकर राम ने विभीषण से पूछा कि वह अक्षोम्य अभीरु वीरों तथा महेन्द्रपर्वतसदृश गजेन्द्रों से युक्त किसकी सेना है। विभीषण ने मुख्य वीरों का वर्णन करते हुए बताया कि यह प्रबलप्रताप तेजोमय रावण है जो कि दैत्यों और देवताओं के भी दर्प का हनन करनेवाला है। उसे देख श्रीराम भी सीता-हरणसंभव क्रोध को उसके ऊपर छोड़ने के लिए सन्नद्ध हो गये। किन्तु लक्ष्मण के अनुरोध करने पर उन्हें युद्ध करने की अनुमति दे दी। पहले सुग्रीव से रावण का संग्राम हुआ। बाद में गवाक्ष, गवय, सुषेण, ऋषभ, नल आदि वानरों ने भी युद्ध किया। अन्त में लक्ष्मण सामने उपस्थित हुए। बीच में हनुमान् से रावण का युद्ध होने लगा। एक बार तो रावण ने तलप्रहार से हनुमान् को विचलित कर दिया, पर तेजस्वी महामति हनुमान् ने तल से आहत होकर दशग्रीव भूकम्प में महापर्वत के समान विचलित एवं विकम्पित हो उठा। पुनः हनुमान् पर मुष्टिप्रहार कर वह नील से भीड़ गया। भीषण युद्ध के बाद उसने आग्नेय अस्त्र से नील को मारा परन्तु अग्निपुत्र नील अत्यन्त आहत होने पर भी मृत नहीं हुए। तदनन्तर लक्ष्मण और रावण का तुमुल संग्राम हुआ। लक्ष्मण के हस्तलाघव से रावण विस्मित हुआ। रावण ने कालाग्निप्रभ स्वयम्भूदत्त शर से लक्ष्मण के सिर पर प्रहार किया तो लक्ष्मण सायक से पीड़ित होकर मूर्छित हो गये। कठिनाई से होश में आकर राक्षसराष्ट्रनाथ रावण ने स्वयम्भू से प्राप्त रिपुवित्रासनी महाशक्ति का प्रवोग किया। लक्ष्मण ने अनेक अग्नितुल्यबाणों से उसका प्रतीकार किया, किन्तु वह अमोघ दिव्य शक्ति थी। उसने लक्ष्मण को घायल कर दिया। रावण ने घायल लक्ष्मण को दोनों भुजाओं से उठाने का प्रयास किया। जो हिमाचल, मन्दर एवं त्रैलोक्य को उठा सकता था वह लक्ष्मण को उठा नहीं सका। ब्राह्मी शक्ति से ताड़ित होने पर भी लक्ष्मण ने विष्णु के अमीमांस्य भाग स्वात्मा का अनुसन्धान किया, अतः रावण उन्हें उठाने में समर्थ नहीं हुआ। इसी बीच हनुमान् ने आकर रावण पर मुष्टिप्रहार किया, वह मूर्छित होकर जानुओं के बल से रथ-पृष्ठभूमि पर गिर पड़ा। उसके मुख, नेत्र और कानों से रक्त की धारा बह चली। वह निश्चेष्ट होकर रथ-मध्य में बेहोश हो गिर गया। हनुमान् ने अपनी बाहुओं से लक्ष्मण को उठा लिया। वायुपुत्र हनुमान् के सौहार्द एवं परम भक्ति से वे अनायास ही उठ गये। फिर महातेजा रावण होश में आकर वानर सेना को विद्रावित करने लगा। तब गरुड़ारूढ़ विष्णु के समान हनुमान् पर आरूढ़ होकर राम ने रावण से संग्राम किया।

रावण ने हनुमान् पर भी बहुत बाण चलाये, पर स्वाभाविक तेज से सम्पन्न हनुमान् उनसे अधिकाधिक तेजस्वी हो गये। राम ने रावण पर ऐसा भीषण प्रहार किया कि उसका चक्र, अश्व, ध्वज, पताका, सारथि तथा वज्र, शूल और खड्ग सहित रथ नष्ट हो गया। फिर वज्रतुल्य बाण से उसकी भुजा में ऐसा प्रहार किया कि वह अत्यन्त आर्त होकर विचलित हो गया। उसके हाथ से धनुष छूट गया। उसे विह्वल देखकर राम ने पुनः अर्धचन्द्र से विशालकाय रावण के किरीटों को काट डाला। अनन्तर राम ने कहा तुम आज बहुत थक गये हो, अतः आज तुम्हें मृत्यु के वश में नहीं भेजूँगा। रात्रिञ्चर, जा लङ्का में विश्राम कर। पुनः रथी धन्वी होकर आना तब मेरा बल देखना। इस तरह शरार्दित, निकृत्तचाप तथा भग्नकिरीटकूट होने से रावण का हर्ष और दर्प चूरचूर हो गया। वह लङ्का चला गया। इस महत्त्वपूर्ण सर्ग को प्रक्षेप कहने का प्रयास दुरभिसन्धिमूलक ही है। इसमें राम, लक्ष्मण,

हनुमान् आदि का अलौकिक महत्त्व वर्णित है। इसमें भी राम और लक्ष्मण की विष्णुरूपता सिद्ध होती है, इसलिए बुल्के हठात् इसे प्रक्षेप कहने का साहस करते हैं। किन्हीं समान घटनाओं में एक दूसरे का अनुकरण नहीं कहा जा सकता। महर्षि वाल्मोकि ने घटनाओं का वर्णन सत्यता के आधार पर ही किया है। "सन्तुष्यतु दुर्जनः" न्याय से ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा जा सकता है कि ५९ वें सर्ग में अकम्पन और नरान्तक का वर्णन प्रक्षेप है, परन्तु सिर्फ दो नामों की पुनरुक्ति के आधार पर इतने महत्त्वपूर्ण सर्ग को प्रक्षेप कहना ही अति साहस है। १०० वें सर्ग में लक्ष्मण पर रावण द्वारा शक्ति-प्रयोग का वर्णन है। परन्तु दोनों के स्वरूप में बहुत भेद है। सर्ग १०० में लक्ष्मण ने रावण के रथ, सारथि तथा मनुष्यशीर्ष ध्वज काट कर रावण के धनुष एवं घोड़ों को नष्ट कर दिया। उस समय विभीषण ने रावण पर प्रहार किया था। भग्न रथ से हटकर रावण ने विभीषण पर क्रोध करके शक्ति का प्रयोग किया पर लक्ष्मण ने उसे बीच में ही नष्ट कर दिया। उसके बाद रावण ने और भी तीव्र काल से भी भीषण वज्रोपम शक्ति का प्रयोग किया। लक्ष्मण फिर विभीषण को बचाकर स्वयं सामने आकर भीषण बाणों से रावण पर प्रहार करने लगे तब उसने अष्ट घण्टावाली महास्वना शक्ति का प्रयोग लक्ष्मण पर ही कर डाला। उस समय राम ने—

"स्वस्त्यस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा।"

कहकर शक्ति को मोघ बनाया और राम ने स्वयं उस महाशक्ति को लक्ष्मण की छाती से निकाला और तोड़ डाला। इस बीच रावण ने शक्ति निकालते समय राम पर भीषण मर्मभेदी बाण चलाये। उनकी कुछ चिन्ता न करते हुए राम हनुमान् आदि वानरों को लक्ष्मण की रक्षा में छोड़कर स्वयं रावण से निबटने के लिए प्रस्तुत हुए। (श्लोक ४६–५२) तक में यह नहीं कहा गया है कि राम ने पहले पहल ही रावण को देखा है। किन्तु इसकी ५९ वें सर्ग से सङ्गति लगाकर यही निश्चित करना चाहिये कि आज के पराक्रम का यह काल बहुत समय से ईप्सित था। उस दिन परिश्रान्त जानकर रावण को पराजित करके छोड़ दिया था। मौत के घाट उसे नहीं उतारा था। तब से वह अब तक सामने नहीं आया। अब इस समय पापात्मा दशग्रीव का वध अवश्य करना है। जैसे ग्रीष्मान्त में चातक को मेघदर्शन अभीष्ट होता है वैसे ही वध के लिए मुझे रावण का दृष्टिगत होना अभीष्ट है। इस क्षण मैं प्रतिज्ञा करता हूँ अब वानर लोग जगत् को अरावण या अराम ही देखेंगे। अतः यह चक्षु के गोचर होकर जीवित नहीं रह सकता—

"सोऽयमद्य रणे पापश्चक्षुर्विषयमागतः।
चक्षुर्विषयमागम्य नायं जीवितुमर्हति॥" ५१॥

आज यह पापी मेरे चक्षु का विषय बनकर जीवित नहीं रह सकता। इससे यह नहीं निकलता कि अभी तक राम के सामने रावण आया ही नहीं था। इतना ही क्यों सर्ग के अन्त में भी कहा गया है कि दीप्तधनुष्मान् राम से अर्दित रावण भय से वैसे ही भाग गया जैसे प्रबल वायु के भय से बलाहक भाग जाते हैं। पुनः रावण सर्ग १०३ में तैयार होकर आता है। अतः सर्ग १०० के श्लो० ४६–५२ के बलपर भी ५९ वें सर्ग को प्रक्षेप नहीं कहा जा सकता।

बुल्के का यह भी कहना है कि सर्ग ६९ और ७० भी प्रक्षेप हैं। यत्र तत्र इन्द्रवज्रा छन्दों के प्रयोग के अतिरिक्त इन सर्गों की कथावस्तु इन्हें प्रक्षिप्त ठहराती है। इनमें दो राक्षसों का वध वर्णित है, जो पहले मारे जा चुके हैं। त्रिशिरा (३।२७।१८,१९) तथा नरान्तक (६।५८।२०) में। महोदर और महापार्श्व एवं दो अन्य राक्षसों के वध का उल्लेख है जिनका वध बाद में फिर किया गया है। महोदर का (६।९७) तथा महापार्श्व का (६।९८) में। परन्तु बुल्के की यह भ्रान्ति ही है। वस्तुतः यह किसी भ्रान्त व्यास द्वारा वर्णित प्रक्षेप नहीं है, किन्तु सत्य घटना के आधार पर ही वाल्मीकिरामायण का वर्णन है। ६।७०।९४–९६ में नरान्तक का वध अङ्गद द्वारा हुआ है एवं नील के द्वारा महोदर का वध ७०।१२६ में हुआ है। त्रिशिरा रावण पुत्र था तथा महोदर उसका पितृव्य था।

त्रिशिरा का वध राम के द्वारा ७०।१३८–१४२–१४४ में वर्णित है। ३।२७ में दूषण के भाई त्रिशिरा का वध राम के द्वारा हुआ था।

महापार्श्व का वध ऋषभ द्वारा उसी की गदा से ७०।१५३–१६१ में हुआ है। द्विविद द्वारा नरान्तक का वध (५८।२०) में हुआ है। यह नरान्तक प्रहस्त के सचिवों में एक था—

"नरान्तकः कुम्भहनुः महानादः समुन्नतः। एते प्रहस्तसचिवाः॥"

अङ्गद द्वारा निहत नरान्तक इससे भिन्न ही था। (६।९७) में महोदर एवं सुग्रीव का तुमुल युद्ध होता है। (६–३७) श्लोकों में इसका वध वर्णित है। इससे रावण के महान् शोक एवं राघव को महती प्रसन्नता हुई थी। महापार्श्व का वध अङ्गद द्वारा (६।७८।१–२२) श्लोकों में होता है। उक्त वर्णन भ्रान्ति के परिणाम नहीं हैं। बुल्के को विदित होना चाहिये कि विभिन्न त्रिशिरों, नरान्तकों, महोदरों एवं महापार्श्वों के अस्त्र-शस्त्रों, युद्धप्रकारों एवं प्रतिद्वन्द्वियों में भेद है। अतः नाम समान होने पर भी उन व्यक्तियों में भेद है। यदि वस्तुस्थिति वैसी न होती तो नामान्तर भी कल्पित किये जा सकते थे।

पुनः बुल्के कहते हैं, "इन्द्रजित् के वध के बाद स्पष्ट शब्दों में उल्लेख (९१।१६) है कि उस समय तक युद्ध केवल तीन दिन से चल रहा था। रावणवध के लिए एक दिन और रखने पर अनुमान किया जाता है कि **आदि-रामायण** के अनुसार प्रथम दिन सामूहिक युद्ध और नागपाश-प्रसङ्ग, दूसरे दिन कुम्भकर्ण-वध, तीसरे दिन इन्द्रजित्-वध और चौथे दिन रावण-वध हुआ होगा।" परन्तु उनकी यह कल्पना निराधार ही नहीं किन्तु प्रमाणान्तरों से विरुद्ध भी है। ९१।१६वाँ श्लोक निम्नोक्त है—

"अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथंचिद्विनिपातितः।
निरमित्रः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः॥"

अर्थात् तीन दिन रातों में वीर इन्द्रजित् मारा गया है। इससे आज मैं निरमित्रप्राय हो गया हूँ। शत्रु का मुख्य वीर मारा गया। अब रावण स्वयं युद्ध में आयेगा। तिलककार के अनुसार दशमी के चतुर्थ प्रहर से इन्द्रजित् से युद्ध प्रारम्भ हुआ था और त्रयोदशी के चतुर्थ प्रहर में वह मारा गया था। इस कथन से चार दिन में युद्ध की समाप्ति की अटकलें लगाना अनभिज्ञता ही है, क्योंकि इस श्लोक का स्पष्ट अर्थ यह है कि तीन दिनों में मेघनाद मारा गया न कि सारा युद्ध तीन दिन चला।

१०८वें सर्ग के ३४वें श्लोक में कतक तथा तीर्थ टीकाकारों के अनुसार श्रीराम ने जिस दिन सुवेल पर्वत पर आरोहण किया था वहीं सूर्य अस्त हो गये थे।

"ततोऽस्तमगमत् सूर्यः सन्ध्ययाप्रविरञ्जितः।
पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता च क्षपा समतिवर्तत॥"

इससे प्रतीत होता है कि उस दिन पूर्णिमा की रात्रि थी। इस दृष्टि से कृष्णपक्ष से युद्ध प्रारम्भ हुआ था। उसी रात्रि में नागपाश-बन्ध और उससे मुक्ति हुई थी। द्वितीया के दिन धूम्राक्ष-वध, तृतीया को वज्रदंष्ट्र का वध तथा चतुर्थी को अकम्पन का वध हुआ था। षष्ठी को रावण का मान-भङ्ग एवं सप्तमी को कुम्भकर्ण-वध हुआ था। अष्टमी को अतिकाय-वध तथा नवमी को इन्द्रजित् द्वारा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग हुआ था। दशमी को निकुम्भ-वध और उसी रात्रि को मकराक्ष-वध हुआ था। एकादशी से त्रयोदशी तक इन्द्रजित् का वध हुआ था। चतुर्दशी को मूलबल का वध, अमावस्या को रावण-युद्ध एवं उसका वध हुआ था।

तिलककार के अनुसार महाभारत में जिस प्रकार पाण्डवों का १३ वर्ष का वनवास अधिक मास को लेकर जोड़ा गया था। यह विराट्पर्व के भीष्मवाक्य से सिद्ध है। इसी तरह श्रीरामजी का १४ वर्ष का वनवास भी अधिक मास को लेकर ही पूरा हुआ था। इस तरह अमान्त मान से आश्विन कृष्ण चतुर्दशी में पूर्णिमान्त मान से कार्तिक कृष्ण षष्ठी में १४ वर्षों की पूर्ति होती है। अन्यथा चैत्रमास की शुक्ला दशमी से आरम्भ होकर १४ वर्ष की समाप्ति षष्ठी को नहीं हो सकती थी। परन्तु अधिक मास की गणना से ११ दिन कम ६ मास की वृद्धि हो जाती है। तभी १४ वें वर्ष की पूर्ति षष्ठी को हो सकती है।

अतः १२ वर्ष पूरे होने पर १३ वें वर्ष के कुछ समय बीतने पर फाल्गुनशुक्ल अष्टमी को सीताहरण हुआ था। १४वें वर्ष के कुछ दिन बीतने पर श्रीरामजी लङ्का के समीप पहुँचे थे।

"वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम।" (वा० रा० ५।३७।८)

इसी सीतोक्ति के अनुसार सावन मान से स्वहरण दिन से १० मास बीत चुकने पर हनुमान् का सीता-संवाद हुआ था। **"पूर्णचन्द्रप्रदीप्ता"** इस रामोक्ति के अनुसार पौष शुक्ल १४शी या पूर्णिमा को श्रीरामजी त्रिकूट-शिखर पर आये थे। हनुमान् के लङ्का प्रवेशकाल में—

"हिमव्यपायेन च शीतरश्मिरभ्युत्थितो नैकसहस्ररश्मिः।"
"द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः।"

इन वाक्यों से प्रतीत होता है कि मार्गशीर्ष शुक्ल दशमी के बाद दो दिन के भीतर हनुमान् का लङ्काप्रवेश हुआ है। अन्यत्र मार्गशीर्षकृष्ण अष्टमी को राम का प्रस्थान कहा गया है। पौषपूर्णिमा को राम त्रिकूट पर आये। उसके बाद १५ दिन सेनानिवेश, दूतप्रेषण आदि में बीत गये। तब युद्धारम्भ हुआ। तब से लेकर भाद्र और श्रावण उभय अमान्त पर्यन्त लङ्कापुर के बाहर दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ तथा बहुत राक्षसों के क्षय से भयभीत होकर राक्षस लङ्का में प्रविष्ट हो गये। उस दिन युद्ध का अवहार (युद्धबन्दी) रहा। तदुत्तर प्रतिपदा को शरवद्ध राम का सीता ने दर्शन किया और उन्होंने कहा कि अक्षोभ्य सागर पार करके गोष्पद में दोनों भाई मारे गये—

"तीर्त्वा सागरमक्षोभ्यं भ्रातरौ गोष्पदे हतौ।"

इससे प्रतीत होता है बहुत दिन के युद्ध में बहुत से राक्षस मारे गये थे। कतिपय यूथपों सहित थोड़ी ही सेना बाकी थी। उसी समय शरबन्ध हुआ था।

"अयं ते सुमहान् कालः शयानस्य महाबल।"

यह कुम्भकर्ण के प्रति रावण ने कहा था। इससे प्रतीत होता है कि छः मास से अधिक कुम्भकर्ण को सोते बीत गये थे। सेतुबन्ध आदि वृत्तान्त तुम नहीं जानते। रावण के इस कथन से प्रतीत होता है कि मन्त्रणा के अनन्तर बीच में कुम्भकर्ण नहीं जगा था।

यह भी प्रतीत होता है कि शरबन्धन कृष्णप्रतिपदा को नहीं हुआ, क्योंकि पूर्णिमा के अनन्तर की प्रतिपदा में सम्पूर्ण रात्रि में चन्द्रमा रहता है। इस स्थिति में **"तस्मिंस्तमसि दारुणे"** यह उक्ति सङ्गत नहीं होगी। अतः शुक्लपक्ष की प्रतिपदा ही मानना युक्त है। अमावस्या को ही रावण-वध हुआ है, यह कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि इन्द्रजित् वध के अनन्तर यह कहा गया है कि तुम आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को अभ्युत्थान करके अमावस्या में ही शत्रु-विजय के लिए गमन करो। यह रावण के प्रति सुपार्श्व ने कहा था। इससे प्रतीत होता है कि चतुर्दशी को रावण-वलं-वध के अनन्तर अमावस्या को रावण रणभूमि में आया और रात्रि में उसने राम तथा लक्ष्मण से युद्ध किया। शक्तिघात के अनन्तर वह राम से पराभूत होकर लङ्का चला गया—

लक्ष्मण की चिकित्सा के अनन्तर पुनः राम और रावण का युद्ध वाल्मीकि द्वारा वर्णित है। अतः अमावस्या का रावण-वध होना संभव ही नहीं था। अगस्त्य ने आदित्यहृदय का उपदेश दिन को ही दिया था, क्योंकि वहीं यह उल्लेख है कि आदित्य का दर्शन कर तथा आदित्यहृदय का जप करके राम प्रसन्न हुए—

"आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान्।" (वा० रा० ६।१०५।२९)

उसके बाद ही रावण वध और इसके अनन्तर आदित्य का स्थिरप्रभ होना कहा गया है—

"स्थिरप्रभश्चाप्यभवद् दिवाकरः।" (वा० रा० ६।१०८।३२)

इससे प्रतीत होता है कि दिन में ही रावण वध हुआ था, अतः चिरकाल तक युद्ध होने के बाद लक्ष्मण पर शक्तिघात हुआ, तदर्थ औषधपर्वत का आनयन हुआ था। अमावस्या की रात्रि को शक्तिघात और रावण का मानभङ्ग कहा गया है इससे अमावस्या को रावण-वध नहीं कहा जा सकता। **पद्मपुराण** में कहा गया है—

"ततो जज्ञे महायुद्धं संकुलं कपिरक्षसाम्।
मध्याह्ने प्रथमं युद्धं प्रारब्धं प्रतिपद्यभूत्॥"

यहाँ प्रतिपदा का अर्थ शुक्ल प्रतिपदा है। उस दिन मध्याह्न में वानरों और राक्षसों का भीषण युद्ध हुआ। पर उसी दिन रात्रि को मायावी इन्द्रजित् ने नागपाश से दोनों भाइयों (राम और लक्ष्मण) को बाँध दिया था।

"ततो निशि समागम्य मायावी शक्रजिद् बली।
बबन्ध नागपाशैस्तौ राघवौ च हरिव्रजान्॥"

यहाँ ततः का अर्थ है बहुत काल तक युद्ध के बाद उसी दिन नहीं अन्यथा **'तस्यामेव निशि'** ऐसा कहना उचित होता। अगले प्रसङ्गों में **'द्वितीयेऽह्नि षष्ठयां'** कहा गया है। और रामायण में **"दारुणे तमसि"** भी कहा गया है। अतः भाद्रश्रावणोत्तर प्रतिपदा की रात्रि को इन्द्रजित् ने नागपाश का प्रयोग किया था।

"वैनतेयस्तदाभ्येत्य तानि चास्त्राण्यमोचयत्।
द्वितीयेऽह्नि धूम्राक्षं हनूमान्निजघान वै॥"
"तृतीयेऽह्नि वज्रदंष्ट्रं खड्गाच्चिच्छेद चाङ्गदः।
जघान हनूमान् भूयश्चतुर्थेऽह्न्यकम्पनम्॥"
"प्रहस्तं पञ्चमीतिथ्यां नीलश्चिच्छेद मूर्धनि।
रावणः परिभूतोऽभूत् षष्ठयां रामेण धन्विना॥"
"अथ लङ्केश्वरः खिन्नः कुम्भकर्णं सहोदरम्॥
शैलमुद्गरघाताश्वधावनाद्यैरबोधयत्।
जघान तं कुम्भकर्णं रामः सप्तमवासरे॥"

अर्थात् तब गरुड़ ने आकर नागपाश से राम और लक्ष्मण को मुक्त किया। द्वितीय दिन हनुमान् ने धूम्राक्ष को मारा, तीसरे दिन वज्रदंष्ट्र को अङ्गद ने मारा। चौथे दिन हनुमान् ने अकम्पन को मारा। पञ्चमी तिथि को नील ने प्रहस्त का वध किया। षष्ठी को रावण राम के द्वारा अभिभूत हुआ। इससे स्पष्ट है कि **पद्मपुराण** से भी यही सिद्ध होता है कि प्रहस्त-वध के बाद रावण और राम का मुकाबला हुआ था। अतः बुल्के जो इसे प्रक्षेप कहते हैं, वह निर्मूल है। तब लङ्केश्वर ने खिन्न होकर कुम्भकर्ण को जगाने का प्रयास किया। जगाने के लिए उसपर शैल और मुद्गर गिराये गये तथा घोड़े दौड़ाए गये। कुम्भकर्ण को राम ने मारा। दो दिन में कुम्भकर्ण को जगाया गया।

बोधित कुम्भकर्ण को बोधनोत्तर सातवें दिन मारा गया। इसी लिए सप्तमी का उल्लेख न होकर सप्तम वासर का उल्लेख है। जो लोग कहते हैं षष्ठी को जागरण और सप्तमी को ही वध हो गया उनका कथन ठीक नहीं है। उसके प्रबोधन का प्रयास दो दिन में सम्भव नहीं था। जागकर वह रावण मन्दिर में गया। वहाँ कहा गया है कि सूर्य की प्रभा से रावण का मन्दिर अत्यन्त भास्वर हो रहा था। मन्त्रणा आदि में समय लगने से सप्तमी के दिन युद्ध ही नहीं हो सकता था। इन्द्रजित् का वध तीन दिनों में हुआ था, पर इसका वध छः प्रहरों में हुआ है। अन्यथा—**"वधोऽस्य यामषट्केन"** इसके साथ सङ्गति न हो सकेगी। अतः भाद्रपद पूर्णिमा को इसका वध युक्त है। दूसरे दिन लक्ष्मण ने रावण-पुत्र अतिकाय को मारा था। अन्य दिन में इन्द्रजित् ने सुग्रीव, विभीषण एवं वानरों को ब्रह्मास्त्र से बाँधा था। उसी दिन हनुमान् ओषधिपर्वत लाये थे। उस पर्वत के औषधस्पृष्ट वायु से सब वानर उठ पड़े थे—

"जघान लक्ष्मणोऽन्येद्युरतिकायं दशास्यजम्।
बबन्धान्येद्युरिन्द्रारिर्ब्रह्मास्त्रेण नृपौ कपीन्॥
हनूमता समानीतो महौषधमहीधरः।
तस्यानिलस्पर्शवशात् सर्वं एते समुत्थिताः॥"

× × ×

"अन्येद्युः कपिराट् कुम्भं निकुम्भं वायुजोऽवधीत्।
तस्यां निशि रघुश्रेष्ठो जघान मकरेक्षणम्॥
मायासीतावधं चक्रे शक्रजिद् रणमूर्धनि।
तेन खिन्नोऽभवद्रामः आश्वस्तो लक्ष्मणेन सः॥
त्रयोदशाहे सौमित्रिस्त्रिदिनं योधयन् बली।
जघान शक्रजेतारं रामध्यानेन हेतुना॥"

अन्य दिन सुग्रीव ने कुम्भ को तथा हनुमान् ने निकुम्भ को मारा। उसी दिन राम ने मकराक्ष को मारा। उसी रात को इन्द्रजित् ने मायासीता का रणभूमि में वध किया। उससे राम बहुत खिन्न हुए। लक्ष्मण ने उन्हें आश्वस्त किया। तेरहवें दिवस सौमित्रि ने रामध्यान के प्रभाव से तीन दिनों में मेघनाद को मारा। यहाँ अतिकाय के ग्रहण को त्रिशिरा, देवान्तक, नरान्तक, महोदर तथा महापार्श्व का उपलक्षण समझना चाहिये। अतः 'अन्येद्युः' का अर्थ अन्य दिनों में ऐसा करना चाहिये। तथाच छः दिनों में इन छहों का वध हुआ था, क्योंकि रामायण में क्रम से ही उनका वध कहा गया है। अन्येद्युः अर्थात् सप्तमी को इन्द्रजित् ने ब्रह्मास्त्र से वानरों को बाँधा। हनुमान् महौषध-पर्वत अष्टमी को लाये और अन्येद्यु अर्थात् नवमी को कुम्भ तथा निकुम्भ का वध हुआ। उसी रात्रि को राम ने मकराक्ष को मारा। उसी रात्रि के अन्त में इन्द्रजित् ने मायासीता का वध किया। दशमी के चौथे प्रहर से लेकर त्रयोदशी के चौथे प्रहर की अवधि में लक्ष्मण ने इन्द्रजित् को मारा।

"ततोऽवधीन्मूलबलं चतुर्दश्यां रघूद्वहः।
दर्शेऽथ निर्ययौ राजा योद्धुं रामेण संयुगे॥
चतुरङ्गबलैः सार्धं मन्त्रिभिर्दशकन्धरः।
छत्रचामरसंयुक्तः सर्वाभरणभूषितः॥
महारथगतो द्वारादुत्तरान्निर्ययौ बहिः।
आगतो रक्षसां राजा ब्रह्मघ्नो देवकण्टकः॥

योद्धुं रघुवरेणेति शुश्रुवे कलहध्वनिः ।
तत्र युद्धं समभवद् वानराणाञ्च रक्षसाम् ।।
रामरावणयोश्चैव तथा सौमित्रिणा सह ।
शक्ति चिक्षेप संक्रुद्धः सोऽनुजं प्रति रावणः ।।
वक्षसा धारयामास सौमित्रिस्तां वियद्गताम् ।
तया स वध्यमानः सन् पपात धरणीतले ।।
हनूमता जीवितोऽभूदोषध्यानयनात् पुनः ।
ततः क्रुद्धो महातेजा राघवो राक्षसान्तकः ।।
जघान राक्षसान् सर्वान् शरैः कालान्तकोपमैः ।
भयात् प्रदुद्राव रणे लङ्कां प्रति निशाचरः ।।
जगद् राममयं पश्यन् निर्वेदात् स्वगृहं विशत् ।
निकुम्भिलां ततः प्राप्तो होमं चक्रे जिगीषया ।।
ध्वंसितं वानरेन्द्रैस्तदभिचारात्मकं रिपोः ।
पुनरुत्थाय पौलस्त्यो रामेण सह योधितुम् ।
दिव्यं स्यन्दनमारुह्य राक्षसैर्निर्ययौ बहिः ।।"

चतुर्दशी को राघव ने रावण के मूलबल (खास सेना) को मारा । अमावस्या को रावण राम से लड़ने निकला । उसके साथ चतुरङ्गिणी सेना और उत्तम मन्त्री थे । छत्र, चामर तथा सर्वाभरणसम्पन्न राजा रावण महारथ पर आरूढ़ होकर उत्तर द्वार से बाहर निकला । राक्षसों का राजा, देवकण्टक तथा ब्रह्मघ्न रावण रघुवर से युद्धार्थ बाहर आया ऐसा हल्ला सुनायी दिया । वहाँ वानर और राक्षसों का घोर युद्ध हुआ । राम के साथ तथा सौमित्रि के साथ भी रावण का युद्ध हुआ । रावण ने विभीषण के प्रति शक्ति चलायी । लक्ष्मण ने उसे अपनी छाती पर रोका और उससे बाधित होकर वे धरती पर गिर पड़े । हनुमान् ने औषधि लाकर लक्ष्मण को जिलाया । उसके बाद राम ने काल तथा यम के तुल्य बाणों द्वारा सभी राक्षसों को मारा । भयभीत होकर रावण लङ्का भाग गया । रावण भय से सारे जगत् को राममय देखने लगा । उसने निकुम्भिला में प्रवेश कर होम करना आरम्भ किया । वानरेन्द्रों ने उस होम का विध्वंस किया । पुनः उठकर पौलस्त्य रावण राम से युद्ध करने के लिए दिव्य स्यन्दन द्वारा राक्षसों के साथ निकला । रावण का निर्गमन आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को हुआ ।

"ततः शतमखो दिव्यं रथं हर्यश्वसंयुतम् ।
राघवाय स्वसूतेन प्रेषयामास भक्तिमान् ।।
तं तु मातलिनानीतमारुह्य रथसत्तमम् ।
स्तूयमानः सुरगणैः युयुधे तेन रक्षसा ।।
ततो युद्धमभूद् घोरं रामरावणयोर्महत् ।
साप्ताह्निकमहोरात्रं शस्त्रास्त्रैरतिभीषणैः ।।"

इन्द्र ने हर्यश्वों से युक्त रथ मातलि के द्वारा भेजा । देवताओं से स्तूयमान राम ने स्यन्दन पर आरूढ़ होकर रावण से युद्ध किया । राम-रावण का घोर युद्ध हुआ । मातलि द्वारा रथ लाने के बाद सात दिन तक घोर युद्ध के पश्चात् रावण का वध हुआ ।

इसी पक्ष का समर्थन कालिकापुराण से होता है—

"रामस्यानुग्रहार्थं वै रावणस्य वधाय च।
रात्रावेव महादेवी ब्रह्मणा बोधिता पुरा॥
ततस्तु त्यक्तनिद्रा सा नन्दायामाश्विने सिते।
जगाम नगरीं लङ्कां यत्रासीद् राघवः पुरा॥
आगत इति शेषः। इदमागमनं रात्र्यन्ते, तदैव
मातलि-रथागमनम्।
रामेण घातयामास महामाया जगन्मयी।
यावत्तयोः स्वयं देवी युद्धकेलिमुदैक्षत॥
तावत्तु अष्टरात्राणि सर्वैर्देवैः सुपूजिता।
निहते रावणे वीरे नवम्यां सकलैः सुरैः।
विशेषपूजां दुर्गायाश्चक्रे लोकपितामहः॥"

राम के अनुग्रहार्थ और रावण के वधार्थ ब्रह्मा द्वारा प्रबोधित देवी लङ्का में आयी। राम और रावण का सात दिन तक युद्ध कराया। नवमी को राम से रावण का वध कराया। सब देवताओं तथा ब्रह्मा के द्वारा ८ दिन तक दुर्गा की पूजा होती रही।

अग्निवेश्य प्रसिद्ध रामायण में कहा गया है—

मार्गशुक्लदशम्यां तु वसन्तीं रावणालये।
सम्पातिर्दशमे मासि आचख्यौ वानरेषु ताम्॥
एकादश्यां महेन्द्राग्रात् पुप्लुवे शतयोजनम्।
तद्रात्रिशेषे सीताया दर्शनं हि हनूमतः॥
द्वादश्यां शिंशपावृक्षे हनूमान् पर्यवस्थितः।
तस्यां निशायां सीताया विश्वासालापसत्कथाः॥
अक्षादिभिस्त्रयोदश्यां ततो युद्धमवर्तत।
वधो ह्यक्षकुमारस्य वनविध्वंसनं तथा॥

× × ×

पौषशुक्लप्रतिपदस्तृतीयां यावदम्बुधेः।
उपस्थानं ससैन्यस्य राघवस्य बभूव ह॥
विभीषणश्चतुर्थ्यां वै रामेण सह संगतः।
समुद्रतरणार्थाय पञ्चम्यां मन्त्र उद्गमः॥
प्रायोपवेशनं चक्रे रामो दिनचतुष्टयम्।
समुद्रवरलाभश्च सेतूपायप्रकीर्तनम्॥
सेतोर्दशम्यामारम्भस्त्रयोदश्यां समापनम्।
चतुर्दश्यां सुवेलाग्रे रामः सैन्यं न्यवेशयत्॥
पौर्णमास्यां द्वितीयान्तं सम्पन्नं सैन्यतारणम्।
दशम्यन्तं मन्त्रणमेकादश्यां शुकसारणयोः
सैन्यप्राप्तिः। माघेऽसितायां द्वादश्यां सैन्यसंख्या कृता।
सारणेन कपीनां तु सारासारोपवर्णनम्॥

अग्निवेश्यरामायण के अनुसार मार्गशुक्ल दशमी को सीता लङ्का में लायी गयी। दशवें मास में सम्पाति ने वानरों को उनका समाचार बताया। ११वें दिन महेन्द्र पर्वत से कूदकर हनुमान् १०० योजन समुद्र पारकर लङ्का गये। उसी दिन रात को सीता का दर्शन हुआ। द्वादशी को शिंशपा में हनुमान् स्थित रहे। उसी रात्रि को सीता से वार्तालाप हुआ। त्रयोदशी को अक्षकुमार का वध हुआ। चतुर्दशी को इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र से बन्धन हुआ। चतुर्दशी को लङ्कादाह हुआ। सप्तमी को लौटकर राम को प्रत्यभिज्ञान दिया। अष्टमी उत्तराफाल्गुनी में अभिजित् मुहूर्त में लङ्का के लिए राम का प्रस्थान हुआ। सातवें दिन में समुद्र के तीर पर सेनानिवेश हुआ। पौषशुक्ल प्रतिपदा से ४ दिन तक समुद्र के प्रति प्रायोपवेशन, १० मी से १३शी तक सेतुबन्ध, चतुर्दशी को सुवेलारोहण, पूर्णमासी से द्वितीया तक सैन्यतारण, ३या से १० मी० तक मन्त्रणा, माघशुक्ल १२शी को सारण ने सेना की संख्या की, फिर सारण ने वानरों के सारासार का वर्णन किया।

यथावथाङ्गदो दौत्यं माघशुक्लादिवासरे।
माघशुक्लद्वितीयादिदिनैः सप्तभिरेव तु॥
रक्षसां वानराणां तु युद्धमासीत् सुदारुणम्।
माघशुक्लनवम्यां तु रात्राविन्द्रजिता रणे॥
रामलक्ष्मणयोर्नागपाशैर्बन्धो बभूव ह।
नागपाशविमोक्षार्थं दशम्यां गरुडोऽभ्यगात्॥
अत्रावहारः कथितः दशम्यादिदिनद्वयम्।
द्वादश्यामाञ्जनेयेन धूम्राक्षस्य वधः कृतः॥
त्रयोदश्यां तु तेनैव निहतोऽकम्पनो रणे।
माघशुक्लचतुर्दश्यां यावत् कृष्णादिवासरम्॥
त्रिदिनेन प्रहस्तस्य नीलेन विहितो वधः।
माघासितद्वितीयायाश्चतुर्थ्यन्तं त्रिभिर्दिनैः॥
रामेण तुमुले युद्धे रावणो द्रावितो रणात्।
पञ्चम्यास्त्वष्टमीं यावद् रावणेन प्रबोधितः॥
कुम्भकर्णः समुत्तस्थावत्रायुद्धयच्चतुर्दिनम्।
कुम्भकर्णो दिनैः षड्भिर्नवम्यास्तु चतुर्दशीम्॥
रामेण निहतो युद्धे बहुवानरभक्षकः।
अमावस्या दिने शोकादवहारो बभूव ह॥
फाल्गुनादिप्रतिपदश्चतुर्थ्यन्तदिने नरान्तकप्रभृतयः
पञ्च राक्षसा हताः। पञ्चम्याः सप्तमीं
यावदतिकायो हतः। अष्टम्या द्वादशीं यावत्
निकुम्भकुम्भावूर्ध्वं मकराक्षश्चतुर्दिनैः।
फाल्गुनकृष्णद्वितीयायां शक्रजिता जितम्।
ततः पञ्च दिनान्यवहारः। त्रयोदशीमारभ्य
षड्भिर्दिनैः लक्ष्मणेनेन्द्रजित् हतः।
अमावस्यां ययौ वीरः युद्धाय दशकन्धरः॥
चैत्रशुक्लप्रतिपदः पञ्चमीं दिनपञ्चकैः।
रावणस्य प्रधानानां युद्ध्यतामभवत् क्षयः॥

चैत्रषष्ठ्यष्टमीं यावन्महापार्श्वादिमारणम् ।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु सौमित्रेः शक्तिभेदनम् ॥
द्रोणाद्रिराञ्जनेयेन लक्ष्मणार्थमुपाहृतः ।
दशम्यामवहारोऽभूद् रात्रौ युद्धं नृरक्षसोः ॥
एकादश्यां तु रामाय रथो मातलिसारथिः ।
अष्टादशदिने रामो द्वैरथे रावणं वधीत् ॥
द्वादश्याः शुक्लपक्षस्य यावत्कृष्णचतुर्दशीम् ।
माघशुक्लद्वितीयायाश्चैत्रकृष्णचतुर्दशीम् ॥
अष्टाशीतिदिनं युद्धं मध्ये पञ्चदशाहकम् ।
युद्धावहारं संग्रामस्त्रिसप्तविदिनान्यभूत् ॥
संस्कारो रावणदीनाममावास्या दिनेऽभवत् ।
वैशाखादितिथौ रामः सुवेलं पुनरागमत् ॥
अभिषिक्तो द्वितीयायां लङ्काराज्ये विभीषणः ।
सीताशुद्धिस्तृतीयायां देवेभ्यो वरलम्भनम् ॥
वैशाखस्य चतुर्थ्यां तु रामः पुष्पकमास्थितः ।
पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां माधवस्य तु ॥
भरद्वाजाश्रमं रामः ससीतः पुनरागमत् ।
नन्दिग्रामे तु षष्ठ्यां वै भरतेन समागतः ॥
सप्तम्यामभिषिक्तोऽसावयोध्यायां रघूत्तमः ।

माघ शुक्ल १ को अङ्गद-दौत्य, २ या से सात दिन तक वानरों और राक्षसों का भीषण युद्ध, माघ शुक्ल ९ मी को नागपाशबन्ध, १० मी को गरुड़ द्वारा मुक्ति, दो दिन अवहार, १२ शी को धूम्राक्ष-वध, १३ शी को अकम्पन का हनुमान् द्वारा वध, माघशुक्ल १४ शी से तीन दिन में प्रहस्तवध, २ या से चतुर्थी तक राम से युद्ध में रावण का विद्रावणम्। पञ्चमी से ८ मी तक ४ दिनों में कुम्भकर्ण-प्रबोधन। नवमी से १४ शी तक ६ दिनों में कुम्भकर्णवध, ३० अमावस्या को अवहार, फा० शु० १ से ४ तक नरान्तकादिवध, ५ मी से ७ मी तक तीन दिन में अतिकाय-वध, ८ मी से १२ शी तक निकुम्भादि-वध, ४ दिनों में मकराक्ष-वध, फा० कृ० २ या को शक्रजित् की विजय, ३ या को औषधि आनयन, तदनन्तर ५ दिनों का अवहार (युद्धबन्दी), १३ शी से ६ दिन में इन्द्रजित् का वध, ३० अमा० को रावण की युद्ध यात्रा, चै० शु० ३ या से पाँच दिनों में रावण के प्रधानों का वध, चै० शु० ६ छी से ८ मी तक महापार्श्वादि का वध, शुक्ल ९ मी को लक्ष्मण पर शक्ति औषधपर्वतानयन, १० मी को अवहार, ११ शी को मातलि आगमन, तदनन्तर १८ दिनों में रावण-वध। इस तरह माघशुक्ल २ या से चैत्रकृष्ण चतुर्दशी तक ८८ दिन तक युद्ध चला। बीच में १५ दिन अवहार रहा। अमा को रावण-संस्कार हुआ। वैशाख २ या को विभीषण का अभिषेक, ३ या को सीताशुद्धि, चतुर्थी को पुष्पकारोहण, वै० ५ मी को १४ वर्ष पर भरद्वाजाश्रम आगमन, ६छी को भरतभेंट और ७ मी को राम का अभिषेक।

यद्यपि रावण-वध के अनन्तर सीता के दर्शन में विलम्ब होना अस्वाभाविक-सा लगता है तथापि कल्पभेद से कालगणनाभेद वश अग्निवेश्य-कथा की भी संगति हो सकती है। सर्वथापि ४ दिन में ही युद्धसमाप्ति की बात असम्भव ही है। अभी अभी बंगलादेश की स्वाधीनता का युद्ध १४ दिनों में समाप्त हुआ है। परन्तु अटकल के आधार पर कोई कह सकता है कि दो दिन में खुलना, कुष्टिया आदि पर अधिकार, तीन दिन में चटगाँव, ढाका आदि पर

अधिकार कर लिया गया होगा। स्पष्ट ही है कि वस्तुस्थिति एवं अटकल में बहुत भेद होता है। बुल्के स्वयं मानते हैं कि प्रक्षिप्त सर्गों का ठीक-ठीक निर्णय करना कठिन है।

हनुमान् की हिमालय-यात्रा

५६४ वें अनु० में वे कहते हैं, "हनुमान् की हिमालय-यात्रा का दो बार सर्ग ७४ और सर्ग १०१ में वर्णन है। वे कहते हैं इसके प्रक्षिप्त होने का सबसे महत्त्वपूर्ण तर्क हनुमान् के समुद्र-लङ्घन का वर्णन है (वा० रा० ५।१)। हिमालय की यात्रा इस लङ्घन से कहीं अधिक असाधारण है। फिर भी इस कार्य की कठिनाई का वर्णन नहीं किया गया। यदि समुद्र-लङ्घन तथा हिमालय यात्रा का वर्णन दोनों एक के ही द्वारा रचित होते तो हिमालय-यात्रा को अधिक महत्त्व दिया जाता। महाभारत में हनुमान् की हिमालय-यात्रा का उल्लेख नहीं है।" परन्तु यह भी उनकी भ्रान्ति ही है, कारण स्पष्ट है। १०० योजन समुद्र का लङ्घन ही कठिन काम था, क्योंकि उसमें बीच में कहीं ठहरने या रुकने का अवकाश नहीं था। हिमालय-यात्रा में वह कठिनाई नहीं थी। पर्वतों और वृक्षों को उखाड़ कर लाना तो उन असाधारण बन्दरों के लिए कठिन था ही नहीं। इसके अतिरिक्त एक बड़ी कठिनाई के वर्णन के बाद पुनः पुनः वैसा ही वर्णन महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता। महाभारत का **रामोपाख्यान** तो संक्षेप कथानक ही है। अतः उसमें हिमालय-यात्रा का वर्णन न होना लाघवार्थ ही है।

बुल्के कहते हैं कि "त्रिष्टुप् छन्दों का बाहुल्य भी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न करता है। सर्ग १०१ को हटाने पर १०० का १०२ से सुगमता से मेल बैठ जाता है। १०० के कुछ श्लोक १०२ में दुहराये गये हैं। इससे भी १०० का प्रक्षिप्त होना सिद्ध होता है," पर यह भी तर्क लचर ही है, क्योंकि महाकाव्यों में विविध छन्दों का होना दूषण न होकर भूषण ही है। मेल तो सर्गान्ति के श्लोकों से ही हो जाता है फिर तो बीच के सभी श्लोक प्रक्षिप्त ही ठहरेंगे। इस दृष्टि से देखा जायगा तो सारी बाइबिल प्रक्षिप्त ही सिद्ध होगी। चमत्कारवाली सारी घटनाएँ **बाइबिल** की प्रक्षिप्त ही सिद्ध होंगी।

अग्नि-परीक्षा

५६५ अनु०, अग्नि-परीक्षा के सम्बन्ध में पिछले प्रकरण में विचार हो ही चुका है। इसी तरह ५६६ वें अनु० में पुष्पक-यात्रा सर्ग १२३ को बुल्के प्रक्षेप कहते हैं। "यदि रावण के पास पुष्पक होता तो सीता-हरण में उसका उपयोग वर्णित होता, किन्तु अरण्यकाण्ड में उसका उल्लेख नहीं है। सुन्दरकाण्ड का पुष्पक-वर्णन सर्ग भी प्रक्षिप्त है। युद्धकाण्ड की अन्तरङ्ग परीक्षा से भी प्रतीत होता है कि आदिरामायण में वापसी यात्रा में पुष्पक का कोई उल्लेख नहीं था। सर्ग १२३ के अन्त में पुष्पक द्वारा अयोध्या के पास पहुँचने का उल्लेख किया गया है, किन्तु सर्ग १२४ में वनवास की समाप्ति पर राम के भरद्वाज आश्रम में पहुँचने का वर्णन है। लङ्का में राम ने विभीषण से दुर्गम मार्ग का उल्लेख किया था—

"अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः।" (वा० रा० ६।१२१।७)

भरद्वाज आश्रम में राम ने मुनि से यह वरदान माँग लिया था कि मार्ग में सभी वृक्ष अकाल में भी फलदार हों "**अकालफलिनो वृक्षाः**।" इसके अतिरिक्त हनुमान् से समाचार प्राप्त करने के पश्चात् जब अयोध्यावासी राम के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे तब वानर-सेना द्वारा गोतमी नदी पार करने का तथा उनके द्वारा उड़ायी गयी धूल का उल्लेख किया गया है—

"मन्ये वानर-सेना सा नदीं तरति गोमतीम्।
रजोवर्षं समुद्भूतं पश्य सालवनं प्रति॥" (वा० रा० ६।१२७।२८)

इन उद्धरणों से अनुमान किया जा सकता है कि आदिरामायण में राम स्थल-मार्ग से ही अयोध्या लौटे थे। अतः पुष्पकविषयक सामग्री को विशेषकर सर्ग १२३ को प्रक्षिप्त माना जाना चाहिये।" बुल्के की उक्तियाँ कुशकाशावलम्बन के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। पहले नास्तिक लोग यह विश्वास ही नहीं करते थे कि उड़नेवाला यथेष्ट मनुष्यों को लेकर चलनेवाला भी विमान हो सकता है ? परन्तु आज विमानों के बाहुल्यकाल में समझदार लोग अब वैसी शङ्का नहीं करते हैं, पर फिर भी पाश्चात्यों का यह अन्धविश्वास आज भी बना हुआ है कि दुनिया में सभ्यता या विज्ञान का विकास ईसा के पहले हो ही नहीं सकता। इसी कारण **वाल्मीकिरामायण** तथा सभी रामायणों में प्रसिद्ध पुष्पक यान को बुल्के झुठलाने का प्रयत्न करते हैं। इसी लिए वे सुन्दरकाण्ड के पुष्पक-वर्णन को भी झुठलाते हैं। यह कोई तर्क ही नहीं है कि यदि पुष्पक होता तो सीता-हरण में उसी का प्रयोग होता। आज भी वायुयान रहने पर कई बार राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री मोटर पर भी यात्रा करते हैं। एतावता कौन कह सकता है कि राष्ट्रपति को वायुयान सुलभ नहीं है। इतना ही क्यों पुष्पक यान द्वारा ही रावण ने युद्ध क्यों नहीं किया ? यह भी शङ्का हो सकती है। बुल्के को क्या अभीष्ट है ? क्या वे यह कहना चाहते हैं कि पुष्पक यान था ही नही ? या था तो परन्तु उसका प्रयोग ही नहीं हुआ ? दोनों बातों में उक्त हेतु सङ्गत नहीं है, क्योंकि अमुक समय पर उसके प्रयोग का उल्लेख न होना उसके अभाव का साधक नहीं होता। जब कि उसके विपरीत सुन्दरकाण्ड में पुष्पक का वर्णन है। पुष्पक द्वारा राम की यात्रा का भी वर्णन है। केवल एक स्थल के अनुल्लेख से दो स्थलों के उल्लेख को अनुल्लेख कैसे मान लिया जाय ? यदि अरण्यकाण्ड में उल्लेख होता भी तो भी सुन्दरकाण्ड के उल्लेख के समान ही उसको प्रक्षिप्त कहने में आपको क्या बाधा हो सकती थी ? दूसरा तर्क और भी निस्सार है। यदि आप सर्ग १२१ के ७ वें श्लोक को प्रमाण मानते हैं तो उसके पूर्वापर के श्लोकों को भी प्रमाण मानना ही पड़ेगा। अयोध्या का दुर्गम मार्ग है, यह कहने का प्रसङ्ग ही क्यों आया और फिर उसका समाधान क्या हुआ ? इन बातों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि विभीषण ने प्रार्थना की कि ये अलङ्कारकुशल पद्माक्षी स्त्रियाँ आपको विधिवत् उद्वर्तन, अभ्यङ्ग, स्नान, अङ्गराग, वस्त्राभरण, चन्दन तथा दिव्य माल्य धारण करायेंगी। इसपर राम ने विभीषण से कहा कि सुग्रीव प्रभृति मुख्य वानरों को स्नानादि करने को निमन्त्रित करो। वह धर्मात्मा सुखोचित सुकुमार सत्यसंश्रय महाबाहु भरत मेरे लिए तपस्याभिरत होकर संतप्त हैं। उन कैकेयीपुत्र धर्मचारी भरत के विना मुझे स्नान, वस्त्राभरण आदि कुछ भी इष्ट नहीं है। अतः हम शीघ्र ही जाना चाहते हैं। अयोध्या जाने का रास्ता बड़ा ही दुर्गम है। राम का ऐसा वचन सुनकर ही विभीषण ने कहा कि मैं आपको एक ही दिन में अथवा झटिति अयोध्या पहुँचाऊँगा। सूर्यसंनिभ पुष्पक नामक विमान, जो कि कुबेर का था, जिसे बलवान् रावण ने जीत लिया था। वह कामगामी दिव्य विमान आपके लिए प्रस्तुत है। इससे आप शीघ्र ही अयोध्या पहुँच जायँगे। इससे स्पष्ट है कि अयोध्या का मार्ग दुर्गम है। भरत का विश्लेष अधिक काल तक अब सह्य नहीं है। इस स्थिति में पुष्पक का प्रयोग उपयुक्त ही है। बुल्के के अनुसार यदि पद-यात्रा होती तो लङ्का से अयोध्या पहुँचने में कम से कम तो एक मास का समय अपेक्षित होता। बहुसंख्यक वानर दल को लेकर इतनी दूर की यात्रा का उल्लेख भी कहीं नहीं है, अतः सर्ग १२१ के ७ वें श्लोक से ही पुष्पक यान द्वारा राम की अयोध्या-यात्रा प्रमाणित होती है। वहीं विभीषण ने यह भी कहा, यदि मैं आपका अनुग्राह्य हूँ, यदि आप मेरे गुणों और सेवाओं को स्मरण करते हैं, यदि मुझमें आपका सौहार्द है तो आप यहाँ सर्वकामों से अर्चित होकर कुछ समय निवास करें। ससैन्य तथा ससुहृद्गण मेरी सत्क्रिया को स्वीकार करें। मैं बड़े प्रणय, संमान तथा सौहार्द से आपसे प्रार्थना करता हूँ। मैं आपका प्रेष्य (सेवक) हूँ, आज्ञा नहीं प्रार्थना करता हूँ। मेरी सेवा ग्रहण के अनन्तर ही आप अयोध्या का प्रस्थान करें। राम ने सुन रहे सभी वानरों और राक्षसों के बीच में कहा कि वीर, मैं तुम्हारे परम सौहार्द, उत्कृष्ट प्रयत्नों तथा उत्कृष्ट साचिव्य (मन्त्रणा) से पूजित हो चुका हूँ। मैं तुम्हारी बात न मानूंगा यह नहीं, किन्तु राक्षसेश्वर, अपने उस भरत को

देखने के लिए मेरा मन अत्यन्त आतुर है, जो मुझे लौटाने के लिए चित्रकूट आया था और पादलग्न सिर से लौटाने के लिए प्रार्थना कर रहा था, फिर भी जिसकी बात को मैंने नहीं स्वीकार किया। कौशल्या, सुमित्रा तथा यशस्विनी कैकेयी, सुहृद् गुहराज तथा जानपदों को देखने के लिए मेरा मन त्वरित है, अतः मुझे जाने की ही अनुमति दो। सौम्य, मन्यु नहीं करना। मैं तुमसे अनुमति देने की प्रार्थना करता हूँ। राक्षसेश्वर, अब कृतकार्य होने पर विलम्ब उचित नहीं। शीघ्र ही विमान लाओ—

"स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः।
सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः॥
तं विना कैकेयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम्।
न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राद्याभरणानि च॥
एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छामि तां पुरीम्।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः॥
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज॥
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसन्निभम्।
त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रम॥
येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः॥"(वा० रा० ६।१२१।५–११)

इस प्रसङ्ग से स्पष्ट ही पुष्पक-यात्रा की सङ्गति प्रतीत होती है। सर्ग १२३ को प्रक्षिप्त मान लेने से यही कहना पड़ेगा कि एकदम १४ वर्ष पूर्ण होने पर पञ्चमी के दिन भरद्वाज के आश्रम में आ गये। पर यह वर्णन अस्वाभाविक ही होगा, स्वाभाविक यही है कि पुष्पक यान के द्वारा लौटते हुए राम सीता को त्रिकूटशिखरस्थित लङ्का, युद्धस्थली, रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि के वधस्थलों को बतलाते हुए सेतुबन्ध महादेव आदि की चर्चा करते हुए किष्किन्धा आये। वहाँ से सुग्रीवादि के अन्तःपुर को लेकर ऋष्यमूक, पम्पा, कबन्ध-वधस्थल, जटायुमुक्ति-स्थान, गोदावरी, अगस्त्य और शरभङ्ग के आश्रम और चित्रकूट दिखलाते हुए ऊपर से दिखायी देनेवाली अयोध्या को दिखलाकर भरद्वाज के आश्रम में उतरे। कोई दुस्तर्क ही करने बैठे तो कह सकता है राम अगस्त्य के आश्रम में तथा चित्रकूट आदि में क्यों नहीं रुके। भरद्वाज के आश्रम में ही क्यों रुके, सीधे अयोध्या क्यों नहीं चले आये?

अस्तु, सर्ग १२४ में राम ने स्वयं वरदान नहीं माँगा, किन्तु महर्षि ने ही सम्पूर्ण वृत्तान्त का वर्णन कर कहा कि जैसे ब्रह्मादि देवताओं ने वरप्रदान किया था वैसे ही मैं भी आपको वरप्रदान करता हूँ। तब राम ने वानरों के सुख के लिए वरदान माँगा कि सभी वृक्ष उत्तमोत्तम अमृततुल्य रस और गन्धयुक्त फलवाले तथा उत्तमोत्तम मधुस्रावी हो जायँ। पर इससे यह नहीं सिद्ध होता है कि राम पदाति वानरों के साथ चल रहे थे। इसी तरह वानर-सेना गोमती पार कर रही थी, उससे उड़ी हुई धूलि से इतना ही सिद्ध होता है कि वानर-सेना नदी पार कर रही थी और वही वहाँ पदाति चल रही थी। सेतुबन्ध होने पर भी वहुत से बन्दर उड़कर तथा कूदकर पार जा रहे थे। हनुमान् तथा अङ्गद पर आरूढ़ होकर राम और लक्ष्मण वानरी-सेना के आगे चल रहे थे। बहुत से वानर बीच में, बहुत से अगल बगल चल रहे थे, कई लोग सलिल मार्ग से चल रहे थे एवं बहुत से सुपर्ण के तुल्य आकाशमार्ग से ही चल रहे थे—

"सलिलं प्रपतन्त्यन्ये मार्गमन्ये प्रपेदिरे।
केचिद् वैहायसगताः सुपर्णा इव पुप्लुवुः॥" (वा० रा० ६।२२।८१)

इसी तरह वानर लोग मधुर फल एवं सुगन्धित मधु पान करते हुए भूमिमार्ग पर चल रहे थे। वे ही लोग गोमती पार करते हुए धूलि उड़ा रहे थे। उसी सर्ग १२७ का जहां वानरों के गोमती पार करने की चर्चा है वहीं यह भी वर्णन है कि हनुमान् ने बतलाया यह तरुणादित्य संकाश विमान आ रहा है। इसमें वैदेही के साथ राम और लक्ष्मण विराजमान हैं। उनके साथ सुग्रीव एवं राक्षसराज विभीषण बैठे हैं। इस तरह प्रधान प्रधान लोग विमान में थे। अन्य बहुत से लोग आकाश-मार्ग तथा स्थल-मार्ग से चल रहे थे।

"विमानं पुष्पकं दिव्यं मनसा ब्रह्मनिर्मितम्।"३०॥
"एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या सह राघवौ।
सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसश्च विभीषणः॥"३२॥ (वा० रा० ६।१२९)

यदि इसे प्रक्षेप कहें तो गोमती तरणवाले श्लोक को ही क्यों न प्रक्षेप कहा जाय? अतः १२५ वें सर्ग के अनुसार समझना चाहिये कि आकाश-मार्ग से आते हुए राम ने अयोध्या देखकर विचार किया कि आज पञ्चमी को ही १४ वाँ वर्ष पूर्ण हो रहा है। भरद्वाज के आश्रम में विलम्ब हो सकता है। भरत की प्रतिज्ञा थी कि यदि १४ वर्ष पूर्ण होने पर आपका दर्शन न होगा तो मैं अग्नि में प्रवेश करूँगा। इसलिए राम ने हनुमान् पर दृष्टि डाली और कहा तुम अयोध्या शीघ्र जाओ और जानो कि सब लोग सकुशल हैं? श्रृङ्गवेरपुर जाकर मेरे आत्मतुल्य सखा निषादराज से कुशल कहो। वे सब अयोध्या की स्थिति बतलायेंगे। भरत को सब समाचार बताओ और भरत आदि का अभिप्राय जानो। यदि वे राज्य चाहते हों तो वही सम्पूर्ण वसुधा का शासन करें। इस तरह भरत का अभिप्राय जान जब तक आश्रम से दूर अयोध्या के समीप न पहुँचें तभी तक लौटकर सब समाचार बताओ। हनुमान् आकाशमार्ग से शीघ्र ही गुहराज से मिल कर भरत से मिले। भरत को सविस्तर राम का सारा समाचार सुनाया और भरत की दृढ़ प्रीति की स्थिति का प्रत्यक्ष दर्शन किया। **पद्मपुराण** के अनुसार पञ्चमी को ही हनुमान् ने अयोध्या जाकर देखा कि भरत अग्नि-प्रवेश की तैयारी कर रहे हैं—

"अग्निप्रवेशे सोद्योगः काले भ्रातुरनागमात्।
न्यवेदयत्तदा तस्मै श्रीरामागमनोत्सवम्॥"

(वा० रा० ६।१२५।१ टीकोद्धृत पद्मपुराणवचन)

भ्राता राम के न आने के कारण भरत अग्नि-प्रवेश की तैयारी कर रहे थे। हनुमान् ने जाकर उन्हें श्रीराम के आगमन का शुभ समाचार सुनाया था। अपने सखा वानरेन्द्र सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गदादि तथा विभीषण आदि की प्रियकामना से ही समुचित स्वागत आदि के लिए राम ने हनुमान् को अयोध्या भेजा था—

"प्रियकामः प्रियं रामस्ततस्त्वरितविक्रमः।" (वा० रा० ६।१२६।१)

सभी वानरों के सम्मान एवं स्वागत के लिए ही राम ने भरद्वाज से दिव्य गन्ध और रस से युक्त अमृतोपम फलों से युक्त एवं मधुस्रावी वृक्षों के होने का वरदान माँगा था। भरद्वाज के वर-प्रदान से सभी वृक्ष कल्पवृक्ष के समान दिव्य पुष्प और फलों से लद गये थे। शुष्क वृक्ष भी पत्र, पुष्प, फल तथा दिव्य मधु प्रस्रवणशील हो गये। अयोध्या के मार्ग में सब तरफ तीन तीन योजन तक यही स्थिति रही—

"अभवन् पादपास्तत्र स्वर्गपादपसन्निभाः।
निष्फलाः फलिनश्चासन् विपुष्पाः पुष्पशालिनः॥
शुष्काः समग्रपत्रास्ते नगाश्चैव मधुस्रवाः।
सर्वतो योजनास्तिस्रो[१] गच्छतामभवंस्तदा॥"(वा० रा० ६।१२६।२१,२२)

१. योजना त्रीणि इति वा पाठः।

यह सब वानरों के विश्रामार्थ ही हुआ । यहाँ तिलककार ने "**वानराणां विश्रामार्थमिति शेषः**" कहा है । अतएव वानर भरद्वाज के आश्रम से फलों, फूलों तथा मधुररस फलों का स्वाद लेते हुए पुष्पक छोड़कर आकाश-मार्ग एवं स्थल-मार्ग से ही चल पड़े । इसी लिए वानर-सेना के पदाति चलने तथा गोमती पार करने का उल्लेख सार्थक ही है । यदि पुष्पक-प्रयोग न हुआ होता तो अवश्य ही उल्लेख होना आवश्यक था कि राम पैदल चले या किसी रथ पर चले । रथ भी तो कौन ? रावण-रथ के समान आकाशचारी रथ था या भूमिचारी था और राम कितने दिनों में भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे ? पूर्वोक्त गणना के क्रम से और सर्ग १२१ की भरतसम्बन्धी रामचिन्ता से स्पष्ट निश्चय होता है १४ वर्ष पूरे होने में एक दो दिन ही शेष थे । अतः पुष्पक यान के बिना इतनी शीघ्रता से अयोध्या पहुँचना असम्भव ही था ।

बुल्के आगे चलकर ५६७ वें अनु० में युद्धकाण्ड में विकास की बात करते हैं । वस्तुतः प्राणी को एक झूठ का समर्थन करने के लिए सौ झूठ बोलने पड़ते हैं । ऐसे ही बुल्के को एक अंश को प्रक्षिप्त सिद्ध करने के लिए तत्सम्बन्धित अनेक स्थलों को भी क्षेपक कहना पड़ता है । युद्धकाण्ड के प्रारम्भ में राम हनुमान् की प्रशंसा करते हुए लङ्का-दहन का उल्लेख करते हैं तथा समुद्र के कारण चिन्तित होते हैं । इस अंश को बुल्के इसलिए प्रक्षेप कहते हैं कि वे लङ्का-दहन को प्रक्षिप्त कह चुके हैं ।

सर्ग २ और ३ को भी वे विकास मानते हैं, क्योंकि उनमें लङ्का-दहन की बात है । सेतुनिर्माण के उल्लेख को वे इसलिए प्रक्षेप मानते हैं कि सेतुनिर्माण का अब तक निर्णय हुआ ही नहीं था, क्योंकि राम ने समुद्र के तट पर पहुँचकर कहा कि अब हमें समुद्र पार करने के उपाय पर परामर्श करना चाहिये—

"सम्प्राप्तो मन्त्रकालो नः सागरस्येह लङ्घने ।" (वा० रा० ६।४।१०१)

इस सर्ग में सेना के अभियान का वर्णन किया गया है । बुल्के का यह तर्क निराधार है, कारण कि अन्तिम निर्णय होने के पहले भी संभावना के आधार पर आश्वासन देना असम्भव नहीं है । समुद्रपार लङ्कास्थित सीता का आनयन करना ही है । हनुमान् जैसे अध्यवसायी, उद्योगी और प्रयत्नशील हैं वैसे सब नहीं हैं, अतः समुद्र में सेतुबन्ध द्वारा ही इतनी बड़ी सेना उतारी जा सकती है । सुग्रीव का यह आश्वासन देना कि समुद्र में सेतु बाँधकर हम लोग समुद्र उतरेंगे असम्भव नहीं कहा जा सकता है । इतनेमात्र से सर्ग के सर्ग को प्रक्षिप्त मानना असङ्गत ही है । मन्त्रणा द्वारा अन्तिम निर्णय किया जाता है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि मन्त्रणा के पहले वैसी बातें किसी के मन में आ ही नहीं सकतीं । अतएव सुग्रीव का यह वाक्य युक्त ही है—

"अबध्वा सागरे सेतुं घोरे च वरुणालये ।
लङ्का न मर्दितुं शक्या सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥" (वा० रा० ६।२।११)

घोर वरुणालय समुद्र में सेतुबन्ध के बिना सेन्द्रादि सुरासुर भी लङ्का का मर्दन नहीं कर सकते । अतः—

"सेतुरत्र यथा बध्येद्यथा पश्येम तां पुरीम् ।" (वा० रा० ६।२।९)

वाल्मीकिरामायण के उत्तरकाण्ड के अनुसार भरत ने भी सीताहरण का समाचार सुनकर राजाओं को आमन्त्रित कर युद्ध की तैयारी की थी । परन्तु उनके वहाँ गमन के पहले ही वानर-सेना सहित राम ने लङ्काविजय कर ली थी ।

"भरतेन वयं पश्चात् समानीता निरर्थकम् ।" (वा० रा० ७।३९।४)

गौड़ीय पाठ

५६८ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि विभीषण-चरित रावणसभा-सम्बन्धी सर्गों में से दो ही सर्ग प्रामाणिक प्रतीत होते हैं। सर्ग ९ की मुख्य कथावस्तु है विभीषण द्वारा लङ्का के विनाश की आशङ्का तथा सीता को लौटाने का रावण से अनुरोध। १६ वें सर्ग में रावण सम्बन्धियों की सामान्य निन्दा करते हुए कहता है जाति के लोग ही स्वार्थ-प्रयुक्त घोर भयावह होते हैं। विभीषण को कुलपांसन भी कहा गया है। इस घोर भर्त्सना से घबराकर विभीषण चार राक्षसों के साथ लङ्का छोड़ देता है (सर्ग १६)।

किन्तु बुल्के का यह कहना भी अशुद्ध है। इन सर्गों को प्रक्षिप्त मानना भी प्रमाद ही है। क्योंकि ९ वें सर्ग में विभीषण ने रावण के पार्श्ववर्तियों के बड़े-बड़े अनर्गल प्रलापों को सुनकर बड़ी नम्रता से सबको बैठाकर समझाया और कहा कि तात! जो अर्थ प्राप्त हो सकता है उसी के लिए विक्रम किया जाना उचित है। प्रमत्तों में, शस्त्रादि आक्रान्त जनों में एवं दैव से प्रहत लोगों में विधिप्रयुक्त विक्रम सफल नहीं होते हैं। जो विजिगीषु अप्रमत्त है और बलयुक्त है, जितरोष एवं दुराधर्ष है उसकी धर्षणा नहीं हो सकती। नदनदीपति-समुद्र का उल्लङ्घन कर लङ्का आनेवाले हनुमान् की गति को कौन जान सकता है और कौन उस सम्बन्ध में तर्क भी कर सकता है? शत्रु के अपरिमेय बलों एवं वीर्यों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। राम ने राक्षसराज रावण का क्या अपराध किया था जो जनस्थान से उनकी भार्या को अपहरण करके ले आये हैं। यदि खर ने मर्यादा का अतिक्रमण किया तो उसे दण्ड दिया गया। प्राणी को अपने प्राणों की रक्षा का अधिकार तो है ही। इन सबका निमित्त वैदेही का अपहरण है। उसका शीघ्र ही परित्याग करना चाहिये। धर्मानुवर्ती वीर्यवान् राम से निरर्थक कलह में कोई लाभ नहीं। जब तक राम साश्व, सगज, बहुरत्नसमाकुला पुरी को अपने वाणों से विदीर्ण न करें उसके पहले ही मैथिली को प्रदान कर देना चाहिये।

१० वें सर्ग में साहित्यिक ढङ्ग से वर्णन किया गया है कि विभीषण पुनः रावण के समृद्धि-सम्पन्न भवन में पहुँचे। वहाँ वेदविद् विद्वानों द्वारा विजयानुगुण पुण्य घोष सुना, लोक-परलोकविद् आचारकोविद विभीषण ने शिष्टाचार के साथ तेजों से दीप्यमान राक्षसों से पूजित ज्येष्ठ भ्राता रावण का वन्दन किया और मन्त्रियों की सन्निधि में सान्त्वना के साथ रावण का प्रसादन करते हुए अत्यन्त युक्तियुक्त एवं हित की वैसी ही बात कही जो देश, काल एवं अर्थ के अनुगुण थी। उन्होंने बतलाया कि जब से वैदेही लङ्का में आयी हैं उसी समय से अशुभ निमित्त परिलक्षित हो रहे हैं। अरणि-मन्थनादि द्वारा उत्पन्न होते हुए तथा प्रणयन काल में धूम-कलुषित चिनगारीयुक्त अग्नि का उदय होता है। विधिवत् मन्त्रसंघ से होम करने पर भी अग्निदेव अभिवृद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं। आपकी अग्निशाला तथा वेदाध्ययन स्थान में सर्प दिखायी देते हैं। हवनीय हवि में पिपीलिकाएँ मिलती हैं। गायों का दूध सूख गया है, कुञ्जर मदहीन हो रहे हैं, अश्व दीन शब्दों में हिनहिनाते हैं और खूब खाने पर भी भूखे ही बने रहते हैं। खर, उष्ट्र और अश्वतर ऊर्ध्वरोमा (जिनके रोयें खड़े हैं) होकर आँसू गिराते हैं, नाना प्रकार की चिकित्सा होने पर भी स्वस्थ नहीं होते हैं। कौए संघ के संघ एकत्रित होकर विमानों के अग्रभाग में स्थित होकर क्रूर बोली बोलते हैं। सायं प्रातः गृध्र पुरी के ऊपर मँडराते रहते हैं। शृगालियाँ अमंगल नाद करती हैं। पुरी के द्वारों पर संघबद्ध भेड़िये और मृग एकत्रित होते हैं। विद्युत्पात तथा घनगर्जन के निर्घोष सुनायी पड़ते हैं। इन सबका प्रायश्चित्त यही है कि सीता राघव को दे दी जायें। मोह से या लोभ से आप मेरे वचनों में दोषबुद्धि न करें। मैंने जो कहा है, वह सबको प्रत्यक्ष है, बाहर भीतर राक्षस राक्षसी सभी अनुभव करते हैं। आपके भय से मन्त्री लोग कुछ नहीं कहते हैं तथापि जो देखा और सुना है, उसके अनुसार आपके हितार्थ सब कुछ कहना कर्तव्य है।

११ वें सर्ग में भी बड़े उत्तम ढङ्ग से महान् ऐश्वर्यपूर्ण सपरिकर राजा रावण का तथा विभीषण का समागमन और यथायोग्य उपवेशन वर्णित है। १२ वें सर्ग में प्रहस्त सेनापति अपने आभ्यन्तर एवं बाह्य रक्षा-प्रबन्ध

का निरूपण करता है। प्रहस्त का वचन सुनकर रावण अपनी सीताविषयिणी कामना का निरूपण करते हुए अपना दैन्य व्यक्त करता हुआ कहता है सीता को प्राप्त करने के लिए राम और लक्ष्मण समुद्र-तट पर आ गये हैं। जिस तरह सीता न देनी पड़े और वे दोनों मारे जायँ इस प्रकार की मन्त्रणा करें—

"अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ।
भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतं चाभिधीयताम् ॥" (वा० रा० ६।१२।२५)

कामव्याकुल रावण का परिदेवन, काम, शोक और प्रलाप सुनकर क्रुद्ध होकर कुम्भकर्ण ने कहा "यदि पहले ही विचार कर यह कार्य किया गया होता तो आपके चित्त की यह दशा न होती। हम लोगों के साथ पहले से ही विचार करना आवश्यक था। जो राजा न्याय से राजकार्य करता है, उसे पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता। जैसे अभिचारप्राय अपवित्र यज्ञों में हुत हवि उलट कर प्रयोक्ता के लिए ही अशुभकारक होते हैं **"प्रत्यगेनमभिचारस्तृणुते"** उसी तरह मन्त्रियों द्वारा सामादि उपायों का बिचार बिना किये मोह से स्वयं जो विपरीत अनुचित कार्यों को करता है वे कर्म ही कर्ता के लिए अनिष्टकारक होते हैं। जो प्रथम कार्य को पीछे करना चाहता है और पश्चात् कर्तव्य को पहले ही कर डालता है वह नय-अनय कुछ भी नहीं जानता। जैसे प्रथम सामप्रयोग के स्थान पर दण्ड का प्रयोग करता है और पश्चात् प्रयोक्तव्य दण्ड का प्रथम ही प्रयोग करता है। शत्रु लोग अधिक बल देखकर भी विषय-चापल्य के कारण उसी तरह रन्ध्र ढूँढ़ ही लेते हैं जैसे हंस लोग दुर्लङ्घ्य भी क्रौञ्च पर्वत को लाँघने के लिए उसमें कीर्तिकेय-शक्ति द्वारा किये हुए छिद्रों को ढूँढ़ लेते हैं। ऐसा अप्रचिन्तित महान् अनुचित कर्म करने पर राम ने आपका वध नहीं किया आप जीवित हैं, यह सौभाग्य की बात है। विषमिश्र आमिष भक्षण के तुल्य प्रबल दारहरणरूप कार्य आपने अप्रतिम अनुचित कार्य किया है। फिर भी मैं तुम्हारे शत्रुओं का हनन करके तुम्हारा कार्य सब ठीक करूँगा।" १३ वें सर्ग में कुम्भकर्ण की बात से क्रुद्ध रावण को देखकर महापार्श्व ने रावण से अनुरोध किया कि वह बल-प्रयोग से अपनी कामनापूर्ण करें, पर रावण ने पुञ्जिकस्थली के कारण पितामह के शाप की चर्चा करके बल-प्रयोग में लाचारी प्रकट की। १४ वें सर्ग में विभीषण ने पुनः रावण से राम के प्रबल पराक्रम और उनके घोर बाणों की चर्चा करते हुए कुम्भकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, कुम्भ, निकुम्भ, अतिकाय आदि को अकिञ्चित्कर बतलाया और यह कहा कि यह सब मित्रकल्प अमित्र ही हैं जो असमीक्ष्यकारी राजा का अनुसरण कर रहे हैं। निष्काम सुहृदों का कर्तव्य है कि सहस्रमूर्धावाले अनन्त देहवाले महाबल भीम नागपाश से वेष्टित राजा की केशग्रहणान्त अनुचित कार्य करके भी वैसे ही रक्षा करें जैसे भीमबलवाले भूतों से गृहीत पुरुष की उसके अभिभावक निगृहीत करके रक्षा करते हैं। विभीषण ने कहा सुचरित्ररूपी जल से पूर्ण राघवरूप सागर से प्रच्छाद्यमान तथा निमज्ज्यमान और पाताल-मुख में गिरते हुए राजा को मेरा यह कथन पुर और राष्ट्र सहित, राक्षस जाति सहित तथा सुहृदों सहित राजा के लिए अत्यन्त पथ्य है कि राम को मैथिली प्रदान की जाय, परकीय बल एवं स्वबल को देखकर बलस्थिति और उसके उपचय को देखकर मन्त्री को यथावत् करना चाहिए। प्रकृत में वानरों की सहायता से परकीय बल का उपचय हुआ है। हमारा बल खर, दूषण आदि के नाश से क्षीण हुआ है। १५ वें सर्ग में बृहस्पतितुल्य बुद्धिवाले विभीषण की बात को सुनकर नैर्ऋतराजमुख्य इन्द्रजित् ने कहा—तात कनिष्ठ, आप बहुत भययुक्त अनर्थक बात कह रहे हैं। जो इस महान् पौलस्त्य-कुल में नहीं उत्पन्न हुआ वह भी ऐसा नहीं बोल सकता। सत्त्व, वीर्य, पराक्रम, धैर्य, शौर्य और तेज से रहित एक ही पुरुष तात कनिष्ठ विभीषण ही इस कुल में हुए हैं—

"सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण धैर्येण शौर्येण च तेजसा च।
एकः कुलेऽस्मिन् पुरुषो विमुक्तो विभीषणस्तातकनिष्ठ एषः ॥" (वा० रा० ६।१५।३)

वे मानुषपुत्र राम और लक्ष्मण क्या हैं ? एक प्राकृत राक्षस भी उन्हें मार सकता है। भीरो! क्या

डरवाते हो त्रिलोकनाथ देवराज इन्द्र को भी जीतकर मैंने धरातल में निविष्ट कर दिया था। भयभीत होकर देवगण विभिन्न दिशाओं की ओर भाग गये थे। निःस्वन उन्नाद करते हुए ऐरावत को भी मैंने भूमि में गिरा दिया था। उसके दाँतों को बलात् खींच कर मैंने समग्र देवताओं को डराया था। मैं देवताओं का दर्पहन्ता एवं दैत्योत्तमों का शोकहर्ता हूँ। क्या मैं प्राकृत दो मनुष्य राजपुत्रों का निग्रह नहीं कर सकता ?

इस तरह इन्द्रकल्प सुदुरासद-महोजा इन्द्रजित् का बचन सुनकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण महार्थ वचन बोले, हे तातपुत्र ! अभी भी तुम अपरिपक्वबुद्धि बालक हो, मन्त्र में कृत्याकृत्य-विचार में तुम्हारी सामर्थ्य नहीं है। इन्द्रजित्, पुत्रप्रवाद से तुम भी रावण के मित्रशत्रु ही हो, क्योंकि तुम राघव के द्वारा मोहवश रावण को विनाश की अनुमति दे रहे हो। तुम दुर्मति एवं वध्य हो। इतना ही नहीं वह भी वध्य है जो तुम्हारे जैसे बालक एवं दृढ़साहसिक को मन्त्रणा करनेवालों के बीच में लाया है। इन्द्रजित्, तुम कृत्याकृत्यविवेकहीन, मतिप्रागल्म्यहीन, अविनीत, अनयमति, दुरात्मा एक साहसी हो, बालकपन के कारण प्रलाप कर रहे हो। ब्रह्मदण्ड के समान प्रकाशवाले कालतुल्य ज्योतिष्मान् तथा यमदण्डतुल्य राम के बाणों को युद्ध में कौन सहन कर सकेगा ? अतः धन, रत्न, सुन्दर भूषणों, वसनों, दिव्यमणियों के साथ राम को सीता समर्पण करने से ही हम लोग सुख से रह सकेंगे।

१६ वें सर्ग में युक्तियुक्त हित वाक्य बोलनेवाले विभीषण को कालचोदित रावण ने परुष वचन कहे और सामान्यतया ज्ञातियों से सबको भय होता है, यह भी कहा—कुलपांसन, यदि अन्य कोई ऐसा कहता तो वह जीवित नहीं रह सकता था। तुम सोदर होने से वधानर्ह हो। तुम्हारे लिये धिक्कार ही दण्ड है। ऐसा परुष वचन सुनकर न्यायवादी विभीषण ने क्रुद्ध होकर चार साथी राक्षसों के साथ अन्तरिक्ष में जाकर राक्षसाधिप रावण से कहा—राजन्, आप भ्रान्त हो, जो इच्छा हो सो कहो। आप मेरे ज्येष्ठ, मान्य तथा पितृसमान हैं। आप धर्मपथ पर स्थित नहीं हैं। राजन्, कालवश हुए अकृतात्मा प्राणी हितैषी के हित वाक्य को नहीं सुनते। राजन्, प्रियवादी पुरुष सदा सुलभ होते हैं, परन्तु अप्रिय किन्तु पथ्य के वक्ता और श्रोता दुर्लभ ही होते हैं—

"सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता सुदुर्लभः॥" (वा० रा० ६।१६।२१)

आप अपनी एवं राक्षसों सहित अपने पुर और राष्ट्र की रक्षा करो। आपका स्वस्ति हो, मैं जा रहा हूँ। आप सुखी हों।

बुल्के कहते हैं कि "घबराकर विभीषण लङ्का छोड़ देता है, परन्तु इन श्लोकों में घबराने जैसी कोई बात ही नहीं है। इतने महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गों को साधारण बाजारू तर्कों के बलपर बुल्के प्रक्षिप्त कहना चाहते हैं। वस्तुतः ज्ञान-विज्ञान तथा नीतिसार सर्वस्वसंयुक्त स्वाभाविक स्थिति का चित्रण करनेवाले इन सर्गों का अपलाप करना वस्तु-स्थिति का ही अपलाप है। इसी तरह विभीषण की महत्त्वपूर्ण शरणागति के प्रसङ्ग को भी बुल्के महत्त्वहीन बनाने के लिए सचेष्ट हैं।

१७ वें सर्ग के अनुसार विभीषण मुहूर्त्तमात्र में उत्पथप्रतिपन्न रावण का त्यागकर जहाँ लक्ष्मण के साथ राम विराजमान थे वहाँ पहुँच गया। वानराधिपों ने मेरुशिखर के तुल्य दीप्त विद्युत के तुल्य गगनस्थ विभीषण को देखा। विभीषण के अनुचर भीमविक्रम और कवच, आयुध आदि से युक्त तथा भूषणोत्तमों से भूषित थे। विभीषण मेघपर्वत तुल्य वज्रायुध के समान दीप्यमान वरायुध धारण करनेवाला दिव्याभरणभूषित था। बुद्धिमान् वानरेन्द्र सुग्रीव ने वानरों से विचार कर हनुमत्प्रमुख वानरों से कहा—देखो, सर्वायुधसम्पन्न चार राक्षसों के साथ यह राक्षस हम लोगों के अभिघात के लिए आया है। सुग्रीव का वचन सुनकर शैल और शाल वृक्ष लेकर वानर भट उनके वध के लिए प्रस्तुत हो गये। वे आपस में विमर्श कर ही रहे थे कि आकाश में ही स्थिर रहकर महाप्राज्ञ विभीषण ने सुग्रीव

एवं उनके साथियों को देखकर धीर गम्भीर महान् स्वर से कहा, रावण नामक दुर्वृत्त राक्षसराज का मैं छोटा भाई विभीषण हूँ। रावण ने जनस्थान से जटायु को मारकर सीता का हरण किया है। विवश, दीन तथा अवरुद्ध सीता राक्षसियों द्वारा सुरक्षित हैं। मैंने युक्तियुक्त वाक्यों से उसे राम को सीता प्रदान करने के लिए समझाया पर काल-प्रेरित होकर उसने स्वीकार नहीं किया। मैं रावण से परुषित तथा दासवत् अपमानित होकर पुत्रों और पत्नी को छोड़कर राम की शरण में आया हूँ। सर्वलोकशरण्य महात्मा राम को निवेदन कर दो कि विभीषण उपस्थित है—

"सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः॥
निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्॥" (वा० रा० ६।१७।१६,१७)

ऐसा बचन सुनकर सुग्रीव ने लक्ष्मण के सामने राम से संरम्भ के साथ कहा, अतर्कित यह शत्रु शत्रुसैन्य में आ गया है। छिद्र पाकर उलूक ने जैसे वायसों का संहार किया था वैसे ही यह अवसर पाकर घातक हो सकता है। परन्तप! मन्त्र, कार्याकार्य-विचार, सेनासंनिवेश तथा सेनानयन में परबल-वृत्तान्तादि के ज्ञानार्थ चार पुरुष प्रवर्त्तन में अत्यन्त सावधान होना उचित है। कामरूपी राक्षस अन्तर्धान रहकर कपटोपाय से विप्रियकरण में चतुर होते हैं। इनपर विश्वास करना कभी भी युक्त नहीं। यह रावण का प्रणिधि (चार) हो सकता है अथवा रावण भी हो सकता है। हम लोगों में प्रविष्ट होकर हम लोगों में भेदनीति का प्रयोग कर सकता है अथवा स्वयं ही विश्वास प्राप्त कर प्रहार कर सकता है। नीति के अनुसार आरण्यक मित्र से प्रेषित बल एवं आप्त बन्धुओं से प्रेषित बल तथा तात्कालिक वेतनदान से प्राप्त बल का संग्रह करना उचित है। परन्तु शत्रुबल का सदा परिहार ही करना चाहिये। प्रकृत्या राक्षस कुटिल होते हैं। तत्रापि अमित्र रावण का भाई यह रिपु ही है। इसमें कैसे विश्वास किया जा सकता है? क्षमाशीलों में श्रेष्ठ, मेरी दृष्टि में तो इसका निग्रह करना ही श्रेष्ठ है। यह नृशंस रावण का भ्राता है, तीव्र दण्ड से इसे दण्डित करना ही उचित है। राम ने हनुमान् प्रभृति वानरों से कहा, कपिराज ने विभीषण के प्रति जो सहेतु बातें कहीं हैं, उन्हें आप सबने सुना है। बुद्धिमान् और समर्थ को चाहिये कि संकट की घड़ी में शाश्वती भूति चाहनेवाले मित्र को उचित परामर्श दे। इस तरह राम के पूछने पर रामप्रियचिकीर्षु सभी मित्रों ने अपना अपना मत व्यक्त किया। राघव, तीनों लोकों में कोई बात आप से अज्ञात नहीं है, तो भी सुहृद्भाव से हम सबको सम्मान देने की दृष्टि से ही आपका यह प्रश्न है। आप सत्यव्रत तथा शूर हैं, धार्मिक एवं दृढ़विक्रम हैं एवं परीक्ष्यकारी, स्मृतिमान् और सुहृदों में विश्वास करनेवाले हैं। अतः आपके सभी सचिव मतिमान् तथा समर्थ हैं। अपना अपना मत प्रकट करें। इसपर अङ्गद ने कहा, शत्रु के पक्ष से आया हुआ व्यक्ति अवश्य शङ्कास्पद है। सहसा विश्वास न कर उसकी परीक्षा करनी चाहिये। आत्मा को आवृत करके शठबुद्धि व्यवहार करते हैं। रन्ध्र पाने पर वे अवश्य ही प्रहार करते हैं। अतः अर्थानर्थ का निश्चय करके गुण होने के संग्रह करना उचित है। शरभ ने कहा शीघ्र ही चार का प्रयोग करना उचित है। सूक्ष्मबुद्धि चार के द्वारा परीक्षण करके यथान्याय ग्रहण करना उचित है। विचक्षण जाम्बवान् ने शास्त्रबुद्धि से दोषवर्जित तथा गुणयुक्त वाक्य कहा, राम से वैर बाँधनेवाले पाप-युक्त रावण के समीप से अदेशकाल में आनेवाला विभीषण सर्वथा शङ्कास्पद है। अर्थात् स्वामिदेश को छोड़कर शत्रुदेश में आना और स्वामी के संकटकाल में उससे विपरीत होकर उसपर प्रहार करना अनुचित है। इस तरह अदेशकाल में आने से विभीषण शङ्कनीय है। जो अपने पुराने मालिक के प्रति निष्ठावान् नहीं है वह अन्यत्र भी लाभदायक नहीं हो सकता। नयानयकोविद मैन्द ने कहा—यह रावण का अनुज है। नरपतीश्वर, धीरे से मधुरता से इससे बात की जाय। इसके भाव का ज्ञान प्राप्त करके कार्य किया जाय। यदि दुष्ट न हो तो ग्रहण किया जाय। सचिवश्रेष्ठ हनुमान् ने स्निग्ध मधुर गम्भीर अर्थ युक्त थोड़े शब्दों में कहा वक्ताओं में श्रेष्ठ, समर्थ एवं मतिवान् आपसे

अधिक बृहस्पति भी क्या कह सकते हैं। राघवेन्द्र, मैं तर्ककुशलता दिखलाने के लिए नहीं, आपके अन्य मन्त्रियों की स्पर्धा से नहीं, अधिक बुद्धिमत्ता के अभिमान से नहीं तथा अपनी इच्छा से भी नहीं, किन्तु कार्य-गौरव की दृष्टि से यथार्थ बात यह कहता हूँ कि आपके सचिवों मे अर्थानर्थ निमित्त जो बातें कही हैं, उनमें मैं अंशतः वैगुण्य देखता हूँ। विभीषण शङ्कनीय है, परीक्षणीय है यह तो ठीक है, किन्तु कुछ निश्चय न होने के कारण यह उत्तर नहीं है। परीक्षणरूपा क्रिया का यह समय नहीं है। नियोग के बिना सामर्थ्य का ज्ञान नहीं हो सकता। अर्थात् उसे बुलाकर सब वृत्तान्त सुने बिना त्याग या परिग्रह के औचित्य का निर्णय नहीं किया जा सकता। साथ ही सहसा नियोग भी उचित नहीं है अर्थात् सहसा राजसंनिधि में लाकर वृत्तान्त प्रतिपादन का अनुज्ञादानरूप नियोग भी मुझे दोष प्रतीत होता है। तस्मात् किसी समर्थ अधिकृत द्वारा उससे सम्पूर्ण वृत्तान्त जानकर ही आपके पास विभीषण का लाया जाना उचित है। कहा जा सकता है कि फिर तो शरभ का ही मत आपका भी है, पर यह ठीक नहीं; क्योंकि चार के प्रेषण का यहाँ कोई कारण नहीं दिखता है। चार-प्रेषण से सिद्ध होनेवाले प्रयोजन की यहाँ अनुपपत्ति ही है। यदि परीक्षणीय व्यक्ति सन्निहित न हो और उसका वृत्तान्त प्रकट न हो तभी चार-प्रेषण उचित होता है। जो प्रत्यक्ष उपस्थित है एवं अपना वृत्तान्त निवेदन करने के लिए प्रस्तुत ही है, उसके प्रति चार-प्रेषण व्यर्थ है। कहा जा सकता है कि कपटयुक्त व्यक्ति प्रत्यक्षरूप से सामने स्थित होकर भी अपनी स्थिति एवं वृत्तान्त को अन्यथा व्यक्त कर सकता है, यह ठीक है, किन्तु चार द्वारा परोक्षरूप से ही वस्तुस्थिति का ज्ञान हो सकता है और उसके लिए परोक्षता और अधिक काल अपेक्षित होता है। तत्काल तो कपटयुक्त व्यक्ति भी सावधानी से कपट के साथ अपने को चार के प्रति भी अन्यथा व्यक्त कर ही सकता है। जो यह कहा गया है कि अदेशकाल में विभीषण आया है। इसके सम्बन्ध में भी मेरा यह कहना है कि रावण जैसे पापी पुरुष की अपेक्षा उत्तम पुरुष को प्राप्त कर के बुद्धि से गुण और दोष का विवेचन कर जो विभीषण ने रावण को त्यागकर राम की शरण ग्रहण करने का निर्णय किया है यह तो उसकी बुद्धिमत्ता ही है। वस्तुतः विभीषण के शरण में आने का यही योग्य देश एवं योग्य काल है। रावण का परदार-हरणरूप दौरात्म्य देखकर एवं जिसने रावण को बगल में दबाकर चारों समुद्रों का परिक्रमण किया था उस वाली को एक बाण से मारनेवाले आपका लोकोत्तर विक्रम देखकर इस समय उसका आगमन उसकी बुद्धिमत्ता के अनुरूप ही है। जो यह कहा गया है कि अज्ञात कुल, शील और प्रयोजनवाले गुप्तचरों के द्वारा उसका हृदय जानना चाहिये। यह भी उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि यह क्रिया बहुकाल सापेक्ष होती है। अज्ञात पुरुष के पास जाकर आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? ऐसा प्रश्न करने पर प्रष्टा के स्वरूपज्ञान के बिना बुद्धिमान् पुरुष सहसा शङ्का कर सकता है कि मैं इसे जानता नहीं, यह किसके द्वारा प्रेषित है और क्यों पूछता है ? केवल इस प्रकार शङ्काकुल ही नहीं होगा, किन्तु उत्तर भी नहीं देगा। यदि प्रष्टा का शनैः शनैः ज्ञान होगा, तब तो स्वागत हो करेगा। यदि मित्रभाव ज्ञात होगा तो प्रश्न से मित्रभाव में दूषण भी आ सकता है। यह सोचा जा सकता है कि क्यों अन्य पुरुष के द्वारा इस प्रकार का विचार किया जा रहा है ? उससे स्नेह कुण्ठित हो सकता है और मित्रता में व्यवधान आ सकता है। यदि वस्तुतः शत्रु होगा तो चारों के द्वारा सहसा प्रश्नमात्र से उसका अभिप्राय विदित नहीं हो सकता। अज्ञातकुलशील द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक ही नहीं समझा जाता है। उलटे शत्रुप्रेषित होने से दण्ड देना ही सम्भव है। कहा जा सकता है कि इस तरह तो संसार में चार-प्रेषण ही निरर्थक समझा जायगा, पर यह भी ठीक नहीं। बहुत काल तक साथ में स्थिति संभव होने से उसके स्वाभाविक वचनों और व्यवहारों से हर्ष, अमर्ष आदि से शत्रुत्व तथा मित्रत्व जानने के लिए चार-प्रेषण सार्थक हो ही सकता है। अतः आप स्वयं ही उसके व्यवहार के मध्य में ही उसके विलक्षण स्वरों, कण्ठध्वनियों से निपुणतया उसकी साधुता या असाधुता का निर्णय कर सकते हैं। भय से, वाष्पकण्ठ से तथा पूर्वापर असंगत कथन ने असाधु समझा जा सकता है अन्यथा साधु समझा जा सकता है—

"अशक्यं सहसा राजन् भावो बोद्धुं परस्य वै[1]।
अन्तरेण स्वरैर्भिन्नैर्नैपुण्यं पश्यतां भृशम्॥" (वा० रा० ६।१७।६१)

सामान्यतया अपने में निपुणता देखनेवाला व्यक्ति भी आपाततः प्रसन्नार्थ वाक्यों से भी गूढ अभिप्रायवाले भाषणों से परकीय अभिप्राय को सहसा नहीं समझ सकता। यदि यह कहा जाय कि पहले तुम्हीं परीक्षण करो तो मैंने तो परीक्षा कर ली है। मुझे तो उसके भाषण में कोई दुष्टता, वचन एवं चेष्टाओं से उसके अन्तःकरण की दुष्टता नहीं प्रतीत होती। प्रसन्नवदनता स्पष्ट परिलक्षित होती है। अतः मुझे उसके प्रति तथा उसकी बुद्धि के प्रति कोई संशय नहीं है। रामशरणगमन ही मेरा इष्टसाधन है, इस तरह वह निःशङ्क एवं स्वस्थ अर्थात् साधुस्वभाववाला ही शरणागत हुआ है। गूढविप्रियबुद्धिवाला नहीं है। उसकी वाणी में कोई भी दोष नहीं है। यद्यपि शठ भी वैसा भाषण कर सकता है तथापि आन्तर भाव को छिपाने का शक्तिभर प्रयत्न करने पर भी वह सर्वथा छिपाया नहीं जा सकता, किन्तु अन्तर्यामी देवता बलात् भीतर की असाधुता या साधुता को, तादृश वचनादि की प्रेरणा कर, प्रकट कर देता है। कार्यविदों में श्रेष्ठ, उसका इस समय का आगमन देश-काल के अनुसार है। प्रयोग से, अनुष्ठान से सम्पादित ईदृश कार्य को शीघ्र ही सफल करें। आपका रावणवधविषयक उद्योग तथा मिथ्याबलगर्वित पापवृत्त रावण को देखकर रावण से भी अधिक बलवाले वाली का वध एवं सुग्रीव का अभिषेक सुनकर उसने बुद्धि से निश्चय किया है कि वाली के समान ही राम रावण को मार कर सुग्रीव के समान ही मुझे लङ्का का राज्य देंगे। शरणागतवत्सल राम अवश्य मेरी रक्षा करेंगे। इस तरह बुद्धिपूर्वक वह शरण में आया है। उसका संग्रह करना उचित है। इस तरह मैंने यथाशक्ति विभीषण का आर्जव वर्णन किया है। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ आप से अधिक कहना उचित नहीं, शेष कृत्य के निर्णय में आप ही प्रमाण हैं।

हनुमान् का वचन सुनकर १८ वें सर्ग में राम ने अपना अभिप्राय भी सुनने के लिए सबसे अनुरोध करके कहा—मित्रभाव से सम्यक् प्राप्त शरणागत विभीषण का त्याग उचित नहीं है। यदि उसमें सुग्रीव आदि के कथनानुसार रन्ध्र में प्रहरण-कामना आदि दोष भी हों तो भी शरणागत दुष्ट का रक्षण भी सत्पुरुषों की दृष्टि से गर्हित नहीं है। हनुमान् ने निर्दोषत्व प्रतिपादनपूर्वक इसकी ग्राह्यता कही है। अन्य लोगों ने दोषनिरूपणपूर्वक अग्राह्यता का प्रतिपादन किया है। पर भगवान् ने तो प्रौढ़िवाद से रन्ध्र-प्रहारित्वरूप दोष स्वीकार कर के भी ग्राह्यता का ही प्रतिपादन किया है।

'राघवं शरणं गतः' इस प्रसन्न वचन से मित्रभावना का अनुमान होता है। स्निग्धभाव से पति को सम्यक् प्राप्त होनेवाली पत्नी के समान मित्रभाव से प्राप्त विभीषण को रन्ध्रप्रहारित्व के भय से मैं किसी भी देश, काल और अवस्था में त्याग नहीं सकता। वस्तुतः तो विभीषण में कोई दोष है ही नहीं। शरणागत होने के कारण शत्रुपक्षीय होने के भय से उसका त्याग नहीं किया जा सकता। आप लोगों ने जो दोष कहे हैं वे और उनसे अतिरिक्त भी दोष उसमें हों तो भी उसका मैं त्याग नहीं करूँगा। यद्यपि दुष्टजनपरिग्रह शिष्टविगर्हित है तथापि **"वध्यं प्रपन्नं न प्रतियच्छन्ति"** वध्य होने पर भी प्रपन्न (शरणागत) का परित्याग नहीं करना चाहिये। शास्त्रवचन के अनुसार सदोष शरणागत का ग्रहण भी पूजित ही है। इसपर पुनः सुग्रीव ने कहा कि भले यह दुष्ट हो अथवा अदुष्ट भी हो तो भी क्या है, जो ऐसी विपत्ति में पड़े हुए अपने बड़े भ्राता का परित्याग कर सकता है वह ऐसा कौन है जिसका त्याग नहीं कर सकता। अतः विश्वासघाती एवं कृतघ्न होने से विभीषण सर्वथा त्याज्य ही है। वानराधिपति का वचन सुनकर सबकी ओर निहार कर, लक्ष्मण की ओर भी देखकर थोड़ा हँसते हुए सत्यपराक्रम काकुत्स्थ राम ने कहा—सुग्रीव ने जैसी बात कही है शास्त्रों का सम्यक् अध्ययन बिना किये और वृद्धों

---

१. 'अन्तःस्वभावैर्गीतैस्तैर्नैपुण्यं पश्यता भृशम्।' इति पाठान्तरम्।

की सम्यक् सेवा बिना किये वैसी बात नहीं कही जा सकती है तो भी इस सम्बन्ध में मुझे कुछ सूक्ष्मतर बात प्रतीत होती है। भ्रातृ-त्यागरूप दोष सभी राजाओं में प्रत्यक्षसिद्ध है और सब लोकों में प्रसिद्ध होने से वह लौकिक ही है।

लोक-स्थिति यह है कि राजाओं के अमित्र (शत्रु) दो प्रकार के होते हैं। एक तो तत्कुलीन अर्थात् उनकी ज्ञाति के लोग और दूसरे आसन्न देशवासी लोग। ये दोनों ही प्रकार के शत्रु आध्यात्मिकादि त्रिविध कष्टों के द्वारा प्रहार करते हैं। अतः नाना प्रकार के उत्पीड़क प्रहर्त्ता ज्ञातिजनों के भय से स्वात्मत्राणार्थ विभीषण का शरण में आना सम्भव है अथवा व्यसन में प्रहार करनेवाले स्वज्ञातीय होने के कारण व्यसनी रावण पर प्रहार करने की दृष्टि से उसका आना सम्भव है। केवल ज्ञातिमात्र का होना ही शत्रुता का प्रयोजक नहीं होता, किन्तु परस्पर अनिष्ट चिन्तन के कारण भी शत्रुता होती है। परस्पर अनिष्ट चिन्तारहित पापशून्य लोग परस्पर हितैषी होकर अपने हित का रक्षण करते हैं, परन्तु राजाओं की स्थिति इससे भिन्न होती है। उनमें तो शोभन मित्र भी ज्ञाति के व्यक्ति शङ्कनीय होते हैं, क्योंकि उन्हें भी महत्तर राज्य एवं ऐश्वर्य का लोभ होना सम्भव होता है। भेदनीति का प्रभाव भरत की माता कैकेयी आदि में भी देखा गया है। इस दृष्टि से अपने से शङ्कित रावण से अनिष्ट की सम्भावना से रावण को त्याग कर विभीषण आया होगा।

"यो हिंसार्थमभिक्रान्तं हन्ति मन्युरेव मन्युं स्पृशति न तस्मिन् दोषः।"

इस आपस्तम्ब-वचन के अनुसार जो हिंसार्थ उद्यत शत्रु का हनन करता है। मन्यु ही मन्यु का हनन करता है, इस दृष्टि से यदि रावण के नाशार्थ विभीषण आया है तो भी दोष नहीं है। शत्रुपक्ष के परिग्रह में जो दोष कहा गया है उसका भी समाधान यह है कि हम लोग न रावण के ज्ञातीय हैं और नहीं उसके प्रातिदेश्य हैं। अतः हममें राज्य की जिघृक्षा नहीं हो सकती है। इसलिए हम लोगों में प्रहार की कल्पना नहीं हो सकती। किन्तु हम लोगों के द्वारा स्वजाति शत्रु का विनाश कर निज राज्य की आकाङ्क्षा हो सकती है। अतः हम लोगों पर प्रहार करना उपजीव्य-विरोध ही होगा। यद्यपि तमःप्रधान मूर्ख राक्षसों में ऐसा विचार करना कम सम्भव है तथापि पर्यालोचनापूर्वक कर्तव्यनिश्चय में समर्थ पण्डित सर्वत्र ही होते हैं। एकपितृजन्य होने पर भी जैसे कुम्भकर्ण अति-तामस है, रावण अतिराजस है, इसी तरह विभीषण अतिसात्त्विक होने से ऐसा विचार विभीषण में असम्भव नहीं है, अतः विभीषण ग्राह्य है।

अव्यग्र, अनाकुल तथा प्रहृष्ट सौभ्रात्र से परस्पर मिलजुल कर रहते हैं। परन्तु विपरीत जातीय लोग राज्य-लोभादि से भेदभाव को प्राप्त होते हैं। तभी उनमें युद्धादि कोलाहल होता है। सौभ्रात्र के अपगत होने पर किसी हेतु से वैर उत्पन्न हो जाने से शरण में आना सम्भव ही है। कहा जा सकता है कि भरत आदि भ्राताओं में ऐसा दोष नहीं देखा जाता है। उन्होंने तो प्राप्त राज्य का भी परित्याग करके सौभ्रात्र को निभाया है। परन्तु भरत के समान प्राप्त राज्य को त्याग कर सौभ्रात्र निभानेवाले भ्राता, मेरे तुल्य सुखलोभ से पिता की आज्ञा का उल्लङ्घन न करनेवाले पुत्र और कपिराज सुग्रीवादि जैसे सब सुख त्याग कर सर्व बल से तथा सब यत्नों से मित्रकार्यसाधक सुहृद् सब नहीं हो सकते—

"न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥" (वा० रा० ६।१८।१५)

राम के ऐसे वचनों को सुनकर लक्ष्मण सहित महाप्राज्ञ सुग्रीव ने प्रणत होकर कहा कि विभीषण रावण द्वारा भेजा हुआ गुप्तचर ही है। अतः उसका निग्रह करना ही उचित है। यह कुटिलबुद्धि से संदिष्ट होकर आया हुआ है। विश्वास प्राप्त कर लेने पर आपपर या विश्वस्त होने से मुझपर या लक्ष्मण पर प्रहार कर सकता है,

क्योंकि यह नृशंस रावण का भ्राता है। ऐसा कहकर सुग्रीव मौन हो गये। सुग्रीव के वाक्य को सुनकर विचार कर राम ने सुग्रीव के प्रति शुभतर बात कही। कपिराज, दुष्ट हो या अदुष्ट तो भी यह रजनीचर क्या कर सकता है? मेरा यह सूक्ष्म भी अहित नहीं कर सकता है। पृथिवी भर में जितने पिशाच, दानव, यक्ष तथा राक्षस हैं उन सभी का इच्छा करूँ तो एक अँगुली के अग्रभाग से संहार कर सकता हूँ—

"पिशाचान् दानवान् यक्षान् पृथिव्यां चैव राक्षसान्।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥" (वा० रा० ६।१८।२३)

राम के ईश्वरत्वसाधक ऐसे वचनों से घबड़ा कर ही बुल्के ऐसे महत्त्वपूर्ण सर्गों एवं वचनों को क्षेपक कहने का साहस करते हैं।

कहा जाता है कि फिर तो सुग्रीव, हनुमान् तथा वानर-सेना का संग्रह करना व्यर्थ ही होगा? इसी का उत्तर देते हुए कहते हैं यदि इच्छा करूँ तो किन्तु इस समय तो रावण को ब्रह्मा के रूप में मैंने ही वर प्रदान कर रखा है कि देवभावोपेत निज अशेष विलासों से भी उसका वध नहीं होगा। अतः उसके कल्याणार्थ स्वशक्ति से ही अपने दिव्य भाव को छिपाकर मानवमर्यादा में ही स्थित रहकर आप ऐसे सहायों का संग्रह किया गया है। वस्तुतः तो मुझे स्वातिरिक्त किसी भी अन्य की अपेक्षा नहीं है। वस्तुतः रन्ध्र मिलने पर प्रहार कर सकता है, इस भीति को दूर कर भी शरणागत की रक्षा करना परम धर्म है, यह कपोत के दृष्टान्त से भगवान् राम ने स्पष्ट किया। उन्होंने कहा—सुना जाता है कि एक कपोत ने शरण में आये हुए शत्रु व्याध का यथान्याय अर्चन किया और अपना मांस भोजन करने के लिए उससे प्रार्थना की। उसी व्याध ने उसकी भार्या का अपहरण किया था, तो भी कपोत ने उसका आतिथ्य किया। जब इस प्रकार तिर्यक् प्राणी ने भी शरण में आये हुए भार्या-हर्ता की भी उपेक्षा नहीं की तो फिर मेरे सदृश सकल धर्मों के रहस्यज्ञ क्षत्रिय अपकार न करनेवाले शरणागत की उपेक्षा कैसे कर सकता है? उसकी काया तथा वाणी के व्यवहारों से शरणागति स्पष्ट ही लक्षित होती है। सत्यवादी महर्षि कण्डु ने प्राचीनकाल में शरणागत-रक्षणसम्बन्धिनी धर्मिष्ठा गाथा गायी है। उसे सुनो—हाथ जोड़े हुए दीनता से शरण माँगते हुए शत्रु को भी आनृशंस्य (अघातुकतासिद्धि) के लिए या आश्रितरक्षणरूप परमधर्मसिद्धि के लिए नहीं मारना चाहिये। इतना ही नहीं आर्त हो अथवा दृप्त (घमण्डी) हो जो भी शत्रुओं के भय से शरणागत हुआ हो, भले वह शत्रु ही क्यों न हो, कृतात्मा प्राणी को चाहिये कि वह अपने प्राणों का परित्याग कर के भी उसकी रक्षा करे। जो उससे या उसके शत्रु द्वारा सम्भावित भय से या कार्यान्तर में व्यस्तता से होनेवाली विस्मृति से या उसके शत्रु द्वारा मिलनेवाले लाभ के लोभ से अपनी शक्ति द्वारा सहायता या धनदानादि द्वारा यथान्याय रक्षा नहीं करता वह अरक्षित के पाप तथा लोकगर्हित निन्दा को प्राप्त होता है। इतना ही नहीं शरण में आया हुआ व्यक्ति अगर रक्षक के देखते देखते विनष्ट होता है तो वह अरक्षित रक्षक का सब पुण्य लेकर चला जाता है। इस तरह प्रपन्न के अरक्षण से महान् दोष होता है। वह अस्वर्ग्य, अयशस्य और बल-वीर्य का विनाश करनेवाला है। अतः मैं कण्डु के धर्मिष्ठ, यशस्य तथा फलोदय काल में स्वर्ग्य वचन का पालन करूँगा। इसके अतिरिक्त मुझ परम कारुणिक ईश्वर का तो सर्वभूत अभय प्रदानरूप एक व्रत (संकल्प) ही है—

"सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥" (वा० रा० ६।१८।३३)

जो **'तत्त्वमसि'** आदि वाक्यजन्य अखण्डाकार वृत्ति से मुझे प्रपन्न होता है अथवा जो औपाधिक भेद का आश्रयण कर आप मेरे आश्रय या रक्षक हैं, मैं आपका आश्रित या रक्षणीय हूँ इस रूप से आश्रयणदान या रक्षण की याच्ञा करता है उसे मैं सर्वभूतों से अभय प्रदान करता हूँ। सब प्राणियों के लिए अथ च सर्वभूतों से भयभीत सभी

प्राणियों के लिए अभय-प्रदान करना मेरा नित्य सत्सहज धर्म है। **'ददामि'** इस वर्तमान काल की क्रिया के प्रयोग से नित्य प्रगृहीत नित्य निज प्रतिष्ठित धर्म है। तात्कालिक चोर, शत्रु, व्याघ्रादि से जनित भय की निवृत्तिरूप और आत्यन्तिक संसारभय की निवृत्तिरूप दोनों ही प्रकार का अभयप्रदान करता हूँ। प्रपत्ति या शरणागति ही अभय प्रदान में हेतु है, अतः प्रपत्ति या शरणागति विहीन को अभय न मिलने पर भी ईश्वर में वैषम्य तथा नैर्घृण्य दोष नहीं होता। साधन, अभ्यास और परिपाक भेद से वह प्रपत्ति या शरणागति तीन प्रकार की होती है। साधनकाल में **''तस्यैवाहम्'** मैं भगवान् का ही हूँ ऐसी एक स्थिर निष्ठा होती है, अभ्यासदशा में **''ममैवासौ''** भगवान् मेरा ही है ऐसी निष्ठा होती है और पाकदशा में **''सोऽहम्'** मैं प्रभु से अभिन्न ही हूँ, **'तत्त्वमसि'** आदि महावाक्यजन्य ऐसी निष्ठा होती है। प्रथम का उदाहरण है—

> ''सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
> सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः॥'' (षट्पदी)

अद्वैतवाद के अनुसार यद्यपि मुझमें और आपमें भेद नहीं है फिर भी मैं आपका हूँ आप मेरे नहीं, जैसे समुद्र का और तरङ्ग का अभेद होने पर भी समुद्र का ही तरङ्ग कहलाता है, तरङ्ग का समुद्र नहीं कहलाता है।

दूसरी निष्ठा का उदाहरण है—

> ''हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्‌भुतम्।
> हृदयाद् यदि चेद् यासि पौरुषं गणयामि ते॥''

कृष्ण! हाथ छुड़ाकर जा रहे हो यह कोई अद्‌भुत बात नहीं है। सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् अल्पज्ञ अल्पशक्तिमान् से हाथ छुड़ा सकता है। यदि आप मेरे हृदय से निकल जायँ तो मैं भी आपकी सर्वशक्तिमत्ता देखूँगा।

तीसरी निष्ठा का उदाहरण है—

> ''सकलमिदमहं च वासुदेवः।'', ''वासुदेवः सर्वमिति।'' (गी० ७।१९)

यह सब कुछ वासुदेव है और मैं भी तदभिन्न ही हूँ। वस्तुतः शरणागति या प्रपत्ति सम्पूर्ण सच्छास्त्रों का सिद्धान्त है—

> ''यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
> तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥'' (श्वे० उ० ६।१८)

जो परमेश्वर ब्रह्मा का निर्माण कर उनको वेद प्रदान करते हैं उन्हीं आत्मबुद्धिप्रकाश भगवान् को हम शरण (''शरणं गृहरक्षित्रोः'' अमर० ३।३।५३) आश्रयरूप रक्षकरूप से प्रपन्न होते हैं।

> ''तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।'' (गी० १५।४)

जिससे पुरानी विश्व-प्रवृत्ति प्रसृत है उस आद्य पुरुष परमात्मा को मैं आश्रयरूप से प्रपन्न होता हूँ।

> ''मामेकं शरणं व्रज'' (गी० १८।६६)

मुझे 'अस्मत्' पद के लक्ष्यार्थ एक सर्वभेदवर्जित परमात्मा को शरण (आश्रय) निश्चय करो अथवा मुझ परमेश्वर को रक्षक समझो—

''माम् 'अहम्' पदलक्ष्यार्थम् एकमद्वितीयं परमात्मानं शरणं आश्रयं रक्षकं वा व्रज अवगच्छ निश्चिनु।''

जैसे अध्वर्यु या आचार्य का यज्ञनिर्वाहकत्वेन वरण किया जाता है, जैसे 'वृतोऽस्मि' कहकर आचार्य आदि वरण स्वीकार कर लेते हैं तो निश्चिन्तता हो जाती है इसी तरह भगवान् भी यदि 'वृतोऽस्मि' कहकर वरण अङ्गीकार कर लेते हैं तो प्राणी सदा सर्वदा के लिए निश्चिन्त हो जाता है। इसी दृष्टि से वेद तथा महाभारत के समान ही वाल्मीकिरामायण का भी यही सिद्धान्त "सकृदेव प्रपन्नाय" इत्यादि वाक्य से घोषित किया गया है। परन्तु बुल्के आदि तो ईश्वरत्वबोधक एवं अवतारप्रतिपादक ऐसे सभी वचनों को मोहवश प्रक्षेप ही कहने का आग्रह करते हैं। अस्तु, वेदान्त के महावाक्यों द्वारा जनित 'सोऽहम्' इस प्रकार की पाकदशापन्न शरणागति या प्रपत्तिवाला व्यक्ति तत्काल आत्यन्तिक अभयप्रदान का पात्र होता है। औपाधिक भेद का अवलम्बन कर अन्य साधन तथा अभ्यास दशा-वाली शरणागति से युक्त प्राणी भी तात्कालिक अभयदान का पात्र होकर सगुण ब्रह्मलोक-प्राप्ति के क्रम से आत्यन्तिक अभयदान का भी पात्र हो जाता है। श्रीराम अपरिग्राह्यतावादी वानरेन्द्र सुग्रीव को ही परिग्राह्यता स्वीकार कराकर भेजते हैं हरिश्रेष्ठ, उसे लाओ मैंने अभय-प्रदान कर दिया। सुग्रीव, विभीषण हो या रावण हो शरण आये हुए को मैं सर्वथा अभय प्रदान करता हूँ—

कोटि विप्रबध लागे जाही। आये शरण तजउँ नहिं ताही॥ (रा० मा० ५।४३।१)

राघवेन्द्र का वचन सुनकर विस्मययुक्त एवं सौहार्द से परिपूरित होकर सुग्रीव ने कहा—धर्मज्ञ, लोक-नाथशिखामणे, आप सत्त्ववान् एवं सत्पथ में स्थित हैं अतः आपका ऐसा आर्य (कल्याण) भाषण आश्चर्य नहीं है। आपका वाक्य सुनकर मेरा भी अन्तरात्मा विभीषण को शुद्ध मानता है। परन्तु चतुर हनुमान् ने भी प्रसन्नवदन, निर्दुष्ट वाक्काय-व्यापार तथा आकारानुमित भाव द्वारा उसकी परीक्षा कर ही ली है। अतः अब महाप्राज्ञ विभीषण भी हम लोगों के समान ही सख्यभाव को प्राप्त करे। सुग्रीव द्वारा आनीत विभीषण के साथ राम की वैसी ही मैत्री हुई जैसी गरुड़ की इन्द्र से मैत्री हुई है। इस तरह राघवेन्द्र के अभयदान करने पर महाप्राज्ञ विभीषण ने अनुचरों के साथ आकाश से पृथिवी पर आकर राम के चरणों में गिर कर प्रणाम किया और तदनन्तर धर्मयुक्त सम्प्रहर्षण वाक्य कहे—भगवन्, मैं रावण का अनुज हूँ, रावण से अपमानित होकर सर्वभूतों के शरण्यभूत आपकी शरण में आया हूँ—

"भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः।" (वा० रा० ६।१९।५)

इस वचन से भी राम परमेश्वर ही हैं यह सूचित होता है। तिलककार कहते हैं कि इससे विदित होता है कि विभीषण को यह विदित था कि राम भगवदवतार हैं। मैंने लङ्का, मित्रों एवं धनों का परित्याग कर दिया है। अब मेरा राज्य, जीवित एवं सब सुख आपके अधीन है—

"परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च॥"५॥
"भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितञ्च सुखानि च॥"६॥(वा० रा० यु० का० सर्ग १९)

राम ने मधुर वाणी से विभीषण को सान्त्वना दी। गौड़ीय पाठ तथा उदीच्य पाठ की कथाएँ भी प्रामाणिक ही है। विभीषण पूर्वकथानुसार सुग्रीव के समान ही राम के सखा हो गये। विभीषण विशेषतः लङ्का एवं रावण आदि के रहस्यज्ञ थे। फलतः युद्धकाण्ड में उनका बहुमूल्य परामर्श लिया जाना उचित ही है। वे ही रावण के गुप्तचर शुक, सारण तथा शार्दूल को पहचान कर पकड़वाते हैं। उनके मन्त्री राक्षसों की सेना का समाचार लाते हैं। वे ही राम को कुम्भकर्ण तथा प्रहस्त का परिचय देते हैं। मायासीता के वध के अवसर पर वे ही रावण आदि की माया का रहस्य बतलाते हैं।

यह ठीक है कि परवर्ती साहित्यों में विभीषण को ज्योतिषी और मायावी माना गया है। वाल्मीकि-रामायण इसका मूल है। अन्तर्हित इन्द्रजित् को देखने में विभीषण ही समर्थ हुए थे (सर्ग ४६)। विभीषण ने

ही सुग्रीव की (सर्ग ४६) तथा बाद में राम और लक्ष्मण की आँखों को जल से धोया था (सर्ग ५०) । महाभारत के अनुसार यह जल कुबेर ने भेजा था । विभीषण सामान्यतया युद्ध में भाग लेते ही थे । सर्ग ४३, ८९ और ९० के अनुसार उन्होंने इन्द्रजित् की सेना का सामना किया था । सर्ग १०० के अनुसार लक्ष्मण के विरुद्ध लड़ते हुए रावण के घोड़ों का वध किया था । रावण ने विभीषण पर घातक शक्ति का प्रयोग किया पर उसे लक्ष्मण ने अपनी छाती पर रोककर उन्हें बचा लिया, यह पीछे कहा जा चुका है ।

बुल्के कहते हैं कि "रावण-वध के बाद विभीषण ने पहले रावण की अन्त्येष्टि करना अस्वीकार कर दिया था, किन्तु जब राम ने समझाया **"मरणान्तानि वैराणि"** (वा० रा० ६।१११) तब उन्होंने रावण का दाहकर्म संस्कार किया । अतः रावण-वध पर विभीषण विलापसम्बन्धी सर्ग अस्वाभाविक प्रतीत होता है । दा० पा० १०९ और गौ० पा० ९३ वास्तव में यह सर्ग प्रक्षिप्त है । प० पा० में यह नहीं मिलता ।" परन्तु यह संगत नहीं है, क्योंकि १०९ सर्ग प्रामाणिक है । टीकाकारों ने इसपर टीकाएँ की हैं । किसी पाठ में न मिलना उसके प्रक्षेप होने में हेतु नहीं है । बन्धु के साथ वैर या मतभेद होने पर भी मृत्यु के बाद उसके गुणों का स्मरण तथा विलाप आदि स्वाभाविक ही हैं । सुग्रीव का भी वाली के साथ विरोध था फिर भी वाली के मरने पर सुग्रीव को भी शोक हुआ ही था—

"तत शोकाभिसंतप्तं सुग्रीवं क्लिन्नवाससम् ।" (वा० रा० ४।२६।१)

पश्चात् शोकवेग कम होने पर परदाराभिमर्शनरूप दोष के कारण विभीषण ने रावण का संस्कार करना अनुचित माना । परन्तु राम के समझाने पर वे संस्कार करने के लिए प्रवृत्त हुए । राम ने कहा भले ही यह राक्षसेश्वर अधर्म-अनृतयुक्त रहा है तथापि तेजस्वी, बलवान् एवं शूर था । इन्द्र प्रभृति देवताओं से भी वह कभी पराजित नहीं हुआ । मरणान्त ही वैर होते हैं । मेरा कार्य सम्पन्न हो गया । अब इसका संस्कार करना उचित है । जैसे यह तुम्हारा सम्बन्धी है वैसा ही मेरा भी है, क्योंकि मित्र का सम्बन्धी भी सम्बन्धी ही होता है—

"क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ।" (वा० रा० ६।१११।१०१)

राम की आज्ञा से लक्ष्मण विभीषण का अभिषेक करते हैं । राम के साथ ही विभीषण अयोध्या में राम के अभिषेकोत्सव में सम्मिलित होते हैं ।

विभीषण-चरित

उत्तरकाण्ड के अनुसार विभीषण की धर्मनिष्ठा प्रसिद्ध ही है । वे धार्मिक, स्वाध्यायनिरत, नियताहार तथा जितेन्द्रिय (वा० रा० ७।९।३९) थे । घोर तपस्या के बाद वर पाकर भी धर्मबुद्धि ही वर के रूप में उन्होंने माँगी थी—

"परमापद्गतस्यापि धर्मे मम मतिर्भवेत् ।" (वा० रा० ७।१०।३०)

परम धाम पधारते समय राम ने विभीषण के लिए कहा था जब तक प्रजा रहेगी तब तक तुम लङ्का में रहोगे । सूर्य, चन्द्र और मेदिनी जब तक रहेगी एवं जब तक मेरी कथा रहेगी तब तक तुम्हारा लङ्का में राज्य रहेगा (वा० रा० ७।१०८।२४,२५) ।

रामचरितमानस के अनुसार प्रतापभानु के मन्त्री धर्मरुचि ही विभीषण हुए थे । **रामलिङ्गामृत** के असनुरा विभीषण प्रह्लाद के अवतार थे (१।३०) । **महाभागवतपुराण** के अनुसार विभीषण धर्म के अवतार थे (३७।१४) । एक कथा के अनुसार विभीषण विष्णु के अंश थे । **रामकियेन** (अध्याय ४) के अनुसार विस्सुञ्जन नामक देवता राम की सहायता के लिए विभेक के रूप में अवतीर्ण हुए थे । उनके पास एक मायावी दर्पण था जिससे वे भविष्य

जान लेते थे। तुलसीदास के **रामचरितमानस** (१।७७) के अनुसार विभीषण ने तपस्या से भगवान् के चरणों में अमल अनुराग माँगा था।

बुल्के इन सब बातों को भावुकतावश कल्पनामात्र मानते हैं। परन्तु यह कहा जा चुका है कि **रामचरितमानस** की कथा एक प्रामाणिक परम्परा पर आधारित है। अन्य अनेक विषयों में विभीषण की कथाओं में भेद है। उनमें आर्ष कथाओं का समाधान कल्पभेद से होता है। तद्विरुद्ध तद्भिन्न अंशों में कल्पभेद न होकर कल्पना का ही भेद समझना चाहिये।

बुल्के कहते हैं कि "लङ्का-दहन प्रक्षिप्त होने के कारण विभीषण के पूर्वपरिचय का उल्लेख नहीं मिलता।" परन्तु यह कथन अशुद्ध है, क्योंकि पूर्वकथनानुसार लङ्का-दहन प्रामाणिक है। हनुमान् ने जो विभीषण की ग्राह्यता का प्रतिपादन किया था यह कौन कह सकता है कि उसमें पूर्वपरिचय भी मूल नहीं था। सामूहिक मन्त्रणा में व्यक्तिगत सम्बन्ध गौण होते हैं। इसी लिए विशेष अनुल्लेख सङ्गत है। **पउमचरियं** की कथा का उद्देश्य तो जैनदीक्षा प्रचारमात्र है। **सरस्वतीकण्ठाभरण** के अनुसार विभीषण ने राम के प्रसाद से मय द्वारा निर्मित लङ्का एवं मन्दोदरी को भी प्राप्त किया था। अन्य भी बहुत सी विकृत कथाएँ हैं, उन्हें अप्रमाण ही समझना चाहिये। विभीषण के अनुरोध से सेतुभङ्ग किये जाने और राम द्वारा ब्राह्मणों के कारागार से विभीषण की मुक्ति पुराणों में प्रतिपादित है।

सेतुबन्ध

५७३वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि अनेक कथाओं में सेतुबन्ध का उल्लेख नही है। **पउमचरियं** के अनुसार समुद्र नामक राजा नल द्वारा पराजित किया जाता है।

हेमचन्द्रकृत **जैनरामायण** के अनुसार राम-लक्ष्मण सेना सहित आकाश-मार्ग से लङ्का के पास पहुँचते हैं, नल और नील द्वारा समुद्र एवं सेतु नाम के राजाओं को पराजित किया जाता है। **उत्तरपुराण** (सर्ग ६८।५२२) के अनुसार राम और लक्ष्मण विमान के द्वारा जाकर सेना सहित लङ्का के समीप उतरते हैं। **अभिषेकनाटक** के अनुसार जब राम बाण चलाने को तत्पर होते हैं तब वरुण प्रकट होकर समुद्र के जल को दो विभागों में विभक्त कर देते हैं, जिससे राम की सेना समुद्रतल से पार होती है। **पद्मपुराण** (पातालखण्ड अध्याय ११२) के अनुसार राम ने सहायता के लिए शिव की प्रार्थना की थी। शिव ने प्रसन्न होकर अजगव धनुष दिया। राम ने उस धनुष को समुद्र में फेंक दिया और उसी पर समस्त सेना ने समुद्र पार किया। **बिर्होररामकथा** में हनुमान् अपनी पूँछ बढ़ाते हैं। उसी पर राम, लक्ष्मण आदि पार होते हैं। वस्तुतः आर्ष विज्ञान पर आधृत **वाल्मीकिरामायण** की कथा ही परम प्रमाण है। अन्य कथाओं को उसके अनुगुण ही जोड़ना उचित है।

५७४वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "**प्रचलितरामायण** में अधिकांश सेतुबन्धविषयक सामग्री प्रक्षिप्त है। तत्सम्बन्धी वर्णन में अलौकिक तत्त्वों का बाहुल्य है और तीनों पाठों का वैभिन्य इस अनुमान का आधार है।" परन्तु इस तरह तो बुल्के की सारी ही बाइबिल प्रक्षिप्त हो जायगी, क्योंकि उसमें भी सम्प्रदायभेद, पाठभेद तथा अलौकिक तत्त्वों का बाहुल्य है ही। उनके अनुसार "नल के नेतृत्व में वृक्षों तथा पत्थरों से वानरों द्वारा सेतु का निर्माण तथा बाद में वानर-सेना का समुद्रतरण इस प्रसङ्ग का मूलरूप रहा होगा (वा० रा० ६।२१।४१–७७)।" परन्तु वे यह भी मानते हैं कि अपेक्षाकृत प्राचीनकाल से ही सेतुबन्धवर्णन में अलौकिक तत्त्वों का समावेश किया गया है। तीनों पाठों में राम का तीन दिन प्रायोपवेशन करने तथा क्रुद्ध होकर समुद्र को अपने बाणों से क्षुब्ध करने का वर्णन किया गया है। सर्ग २१ में सागर का प्रकट होकर विश्वकर्मा के पुत्र नल द्वारा सेतु-निर्माण का सुझाव देना भी तीनों पाठों में समान है।

बुल्के यत्र-तत्र पाठभेद के कारण प्रक्षेप कह देते हैं। परन्तु यहाँ तीनों पाठों में समान वर्णन होने पर भी अलौकिकता के कारण प्रक्षेप कह देते हैं। इस तरह ईसाइयत को छोड़कर और कोई कारण नहीं कि उक्त टीकाकारों से सम्मत परम्पराप्राप्त सर्गों को प्रक्षेप कह दिया जाय। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार राम साक्षात् परब्रह्म के अवतार ही थे। तब उनके बाण से भयभीत होकर समुद्र के अधिष्ठाता देव का प्रकट होना और सेतुबन्ध का सुझाव देना सर्वथा ही सङ्गत है। इसमें असङ्गति का स्वप्न बुल्के ही सोच सकते हैं। ऐसे लोग पहले तो कूटनीति से जहाँ तहाँ से ऐसी सामग्री उपस्थित करते हैं, जिससे पहले यह विश्वास किया जा सके कि सेतुबन्ध के बिना काम चल सकता था, पर अगर सेतुबन्ध मानना ही पड़े तो सामान्य रूप से बन्दरों ने वृक्षों और पत्थरों को डालकर सेतु बाँधा होगा। राम या उनके बाण की विशिष्ट शक्ति तथा नल और नील की विशेषता को झुठलाना बुल्के के उक्त प्रपञ्च का उद्देश्य है। अतः सेतुबन्ध-सम्बन्धी अलौकिक घटनाएँ सर्वथा प्रामाणिक ही हैं।

द्रुमकुल्य-विनाश

राम के ब्रह्मास्त्र का संधान करते ही सागर प्रकट होता है। राम ने कहा मेरा बाण अमोघ है। इसे कहाँ चलाऊँ। सागर ने द्रुमकुल्य देश पर चलाने का सुझाव दिया, जहाँ बहुत से दस्यु निवास करते थे। राम ने बाण चलाया। बाद में वह देश मरुकान्तार के नाम से विख्यात हुआ (वा० रा० ६।२२।२५–४०)।

गौड़ीय पाठ के अनुसार दशरथ और सागर की मैत्री तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ के अनुसार समुद्रतरण के पश्चात् समुद्र का प्रकट होकर राम और लक्ष्मण को कवच एवं आयुध प्रदान करना भी प्रामाणिक ही है। सम्प्रदाय-भेद से पाठभेद प्रामाणिक ही होते हैं। **पद्मपुराण** भी आर्ष एवं प्राचीन ग्रन्थ है, अतः उसके २६९ वें अध्याय के अनुसार राम ने अपने बाणों से समुद्र को सोख लिया तथा सागर के विनय करने पर वारुणास्त्र द्वारा उसमें पुनः जल भर दिया। कल्पभेद से उक्त कथा की सङ्गति हो जाती है। विभिन्न कल्पों में राम के अवतार होते हैं। उनमें अधिकांश चरितों में समता होने पर भी किन्हीं अंशों में विलक्षणता भी होती है। राम सर्वशक्तिमान् परमेश्वरावतार थे, अतः उनका बाणों से समुद्र सोख लेना और वारुणास्त्र से पुनः समुद्र को भर देना असम्भव नहीं है। **महाभारत** की रामोपाख्यानकथा तो **वाल्मीकिरामायण** से मिलती ही है। राम को स्वप्न में समुद्र दर्शन देकर कहता है कि नल द्वारा फेंके पदार्थ समुद्र में नहीं डूबेंगे। अतः नल के द्वारा पाषाण आदि के न डूबने से सेतु-निर्माण योजना सफल होती है। **स्कन्दपुराण** सेतुमाहात्म्य (अध्याय २) की भी सङ्गति हो जाती है। **अद्भुतरामायण** के अनुसार क्रुद्ध लक्ष्मण के शरीरताप से समुद्र सूखता है और राम के सीता-विरहजन्य आँसुओं से समुद्र पुनः भर जाता है (सर्ग १६)। इस कथन का आशय स्पष्टतः यही है कि लक्ष्मण के प्रखर प्रताप से सागर भी शुष्क हो सकता है और राम के कारुण्य से समुद्र भी भर सकता है। **अनामकं जातकं** के अनुसार लघु वानर के रूप में इन्द्र ने सेतु-निर्माण का परामर्श दिया और हनुमान् ने ही सेतु का निर्माण किया। शरीर के जितने बाल थे उतने ही पत्थर वे प्रत्येक बार लाते थे। **तत्त्वसंग्रहरामायण** (६।६) के अनुसार सागरपुत्री कन्याकुमारी ने राम के पास विवाह का प्रस्ताव किया। राम ने युद्धव्याज से विवाह अस्वीकार करके सेतु बनवाने की अनुमति माँगी।

वाल्मीकिरामायण (६।२२।४१) के अनुसार नल राम से कहता है मुझे अपने पिता विश्वकर्मा की सामर्थ्य प्राप्त है। विश्वकर्मा ने नल की माता को यह वरदान दिया था कि तुम्हारा पुत्र मेरे ही समान होगा—

"मया तु सदृशः पुत्रस्तव देवि भविष्यति।" (वा० रा० ६।२२।४७)

रङ्गनाथरामायण (६।२५) के अनुसार नल मुनियों की पूजा की प्रतिमाओं को समुद्र में फेंक देते थे। अतः मुनि ने यह कह दिया था कि यह बालक जो कुछ भी वस्तु समुद्र में फेंकेगा वह जल पर तैरती रहेगी। तुलसीदास ने नल और नील दोनों भाइयों को ऐसे वर की प्राप्ति मानी है। इस तरह की अन्यान्य कथाओं का भी निष्कर्ष

इतना ही है कि नल और नील के स्पर्श से पाषाण समुद्र में डूबते नहीं थे। फलतः आसानी से समुद्र में सेतु बना दिया गया। **वाल्मीकिरामायण** से अविरुद्ध अन्य कथाओं का उसके साथ समन्वय करना ही उचित है। **रामकियेन** तथा **सेरीराम** आदि में हनुमान् एवं नल-नील के विवाद की कथा विकृति ही है। **वाल्मीकिरामायण** तथा **अध्यात्मरामायण** आदि के अनुसार हनुमान् एक महान् दिव्यगुणसम्पन्न ज्ञानी तथा भक्त थे। नल और नील भी देवांश थे। उनके समन्वय से ही सेतुबन्ध जैसा महान् कार्य सम्पन्न हो सका था। **आनन्दरामायण** तथा **भावार्थरामायण** का यह कथन भी विरुद्ध नहीं है कि रामनाम के दोनों अक्षरों से अङ्कित होने के कारण पत्थरों में आपस में दृढ़ संयोग बना रहा। गिलहरियों ने समुद्र में गोता लगाकर अपने अंग के बालू को सेतु पर गिरागिराकर पुल बाँधने में सहायता की थी। इसपर राम ने उनपर अनुग्रह कर अपना हाथ उनपर फेरा था। यह कथा राम की सर्वप्रियता ही व्यक्त करती है। इसका मूलकथा से कोई विरोध तो है ही नहीं। बुल्के कहते हैं तुलसीदास ने तो सभी जलचरों को रामभक्त बना दिया, परन्तु इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? जब राम ब्रह्मरूप ही हैं उनका दर्शन जिन जिन लोगों को प्राप्त हुआ वे भगवद्भक्त ही हो सकते हैं—

> देखन कहुं प्रभु करुणा कन्दा। प्रकट भये सब जलचर बृन्दा॥
> प्रभुहि बिलोकहिं टरहिं न टारे। मन हरषित सब भये सुखारे॥

सेरीराम के अनुसार रावण अपने पुत्र गङ्गामहासूरा को बुलाता है जो समुद्र की रानी गंगा महादेवी के गर्भ से उत्पन्न है। गंगामहासूरा मछलियों को समुद्र-सेतु नष्ट करने का आदेश देता है। उनका आक्रमण देखकर हनुमान् अपनी पूंछ हिलाते हैं। उससे समुद्र का जल पंकिल हो जाता है। मछलियाँ ऊपर आ जाती हैं। वानरों द्वारा फँसायी और खायी जाती हैं। बाद में एक केकड़ा सेतु पर आक्रमण करता है। हनुमान् केकड़े को स्थल पर पटक देते हैं। वह इतना बड़ा था कि उसे खाकर समस्त सेना तृप्त हो जाती है। हनुमान् रानी के पास जाकर उससे सेतु पुनः बनवाते हैं। उससे एक पुत्र उत्पन्न करते हैं।

रामकेर्ति (सर्ग ७) के अनुसार सागर ने नागों और मछलियों को सेतु नष्ट करने का आदेश दिया। जब राम समुद्र पर बाण चलाने को तैयार हुए तो समुद्र ने क्षमा माँग ली। **रामकियेन** (अध्याय २६) के अनुसार रावण अपनी पुत्री सुवर्णमच्छा को सेतु नष्ट करने का आदेश देता है। वह अपनी सेना लेकर सेतु नष्ट करने गयी। हनुमान् उससे पुनः सेतु बनवाते हैं और उससे एक पुत्र मच्छानु को भी उत्पन्न करते हैं। **सेरीराम** के अनुसार सागर का एक स्थल नहीं पटता था। जब राम क्रुद्ध होकर बाण चलाना चाहते थे तब एक सुन्दरी ने प्रकट होकर कहा—यह स्थल पाताल जाने का मार्ग है। यहाँ का जल पीकर आपके सैनिक अजेय हो जायँगे। राम ने सेना को जल पीने का आदेश दिया। उक्त अनेक ऐसी कथाओं का तात्पर्य राम और हनुमान् की महिमा वर्णन करने में ही है। **"यत्परः शब्दः स शब्दार्थः"** शब्दों का जिसमें तात्पर्य होता है, वही उनका अर्थ होता है।

५७९ वें अनु० में **बालरामायण** के अनुसार रावण मायामय जानकी का वध करता है। पश्चात् रावण-पुत्र सिंहनाद प्रकट होता है, उसका राम के द्वारा वध किया जाता है। एक प्रभञ्जनी राक्षसी राम-लक्ष्मण का वध करने के लिए आती है। उसे अङ्गद मारते हैं। **रामकियेन** के अनुसार विभीषण पुत्री बेंजकाया रावण की आज्ञा के अनुसार सीता के रूप में मृतवत् बहती हुई दिखती है। उसे देख राम निराश होते हैं। हनुमान् उस बनावटी सीता को चिता पर रखते हैं तब वह चिल्लाकर अपने रूप में प्रकट होती है। सुग्रीव के द्वारा कोड़ों से पिटने पर वह अपने को विभीषण की पुत्री बताती है। इसपर राम विभीषण को उसे उचित दण्ड देने का आदेश देते हैं। विभीषण ने उसे प्राणदण्ड की सजा सुनायी। राम विभीषण की निष्पक्षता देखकर हनुमान् के साथ उसे लङ्का भेज देते हैं। हनुमान् द्वारा उससे एक पुत्र भी उत्पन्न होता है। राम, लक्ष्मण एवं हनुमान् के आदर्शों एवं आचारों के सम्बन्ध में **वाल्मीकिरामायण** ही परम प्रमाण है। उसके विपरीत आचरण का उल्लेख विकृति ही है।

रामेश्वर-प्रतिष्ठा

५८० वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि **वाल्मीकिरामायण दाक्षिणात्य पाठ** के अनुसार सीता को सेतु दिखलाकर राम कहते हैं कि यहाँ महादेव ने मुझपर अनुग्रह किया था—

"अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद् विभुः।" (वा० रा० ६।१२३।२०)

वाल्मीकिरामायण के अन्य पाठों में न होने पर भी दाक्षिणात्य पाठ में उपलब्ध होने से यह प्रामाणिक ही है। पर बुल्के कहते हैं "बाद की रामकथाओं में सेतुबन्ध के समय शिवप्रतिष्ठा का प्रायः उल्लेख किया गया है। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि पहले राम द्वारा शिवप्रतिष्ठा युद्ध के पश्चात् ही मानी जाती थी। **नारदीयपुराण** (उत्तरार्द्ध अ० ७६), **नृसिंहपुराण** (अ० ५२), **कूर्मपुराण** (अ० २१), **सौरपुराण** (अ० ३०) तथा **पद्मपुराण** (पा० ख० अ० ११२। २२१; सृष्टिख० अ० ४०) में युद्ध के पश्चात् ही शिवलिङ्ग-स्थापना का उल्लेख है। **स्कन्दपुराण** (ब्राह्मख० सेतुमाहात्म्य अ० ७ और अ० ४४—४७) में सेतुबन्ध के समय और युद्ध के बाद दोनों बार इसका वर्णन है। सेतु-माहात्म्य में द्वितीय बार की शिव-प्रतिष्ठा का वृत्तान्त इस प्रकार है : युद्ध के पश्चात् गन्धमादन पर्वत पर जाकर राम दण्डकारण्य से आये हुए मुनियों से पूछते हैं कि रावण-वध का प्रायश्चित्त किस प्रकार किया जाय ? वे रामेश्वरलिङ्ग-स्थापना का परामर्श देते हैं। इसपर राम हनुमान् को शिव-लिङ्ग लाने के लिए कैलास भेजते हैं। वहाँ जाकर हनुमान् को उसे प्राप्त करने के लिए तपस्या करनी पड़ती है। मुहूर्त बीत जाने के भय से मुनि सैकतलिङ्ग स्थापित कराते हैं। सैकत-लिङ्ग की प्रतिष्ठा के बाद पहुँचने पर हनुमान् दुःखित होते हैं। राम हनुमान् को स्थापित सैकत लिङ्ग उठाने की आज्ञा देते हैं। हनुमान् प्रयत्न कर असफल होकर मूर्च्छित हो जाते हैं। बाद में राम की आज्ञा से हनुमान् अपने लाये लिङ्ग को रामेश्वर से उत्तर में स्थापित करते हैं। **आनन्दरामायण** में ऐसी ही कथा युद्ध के पूर्व है। उसके अनुसार हनुमान् को काशी भेजा था। शिव ने दो लिङ्ग दिये थे। बाद में शिव ने समुद्र-तट पर राम को दर्शन देकर बारह ज्योतिर्लिङ्गों की कथा और रामेश्वर का माहात्म्य बताया था।" वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार युद्ध के पहले सेतुबन्ध के समय ही रामेश्वर की स्थापना हुई, यह **"अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद् विभुः।"** से ही स्पष्ट है। अन्य कथाएँ कल्पान्तरीय ही समझनी चाहिये।

भावार्थरामायण के अनुसार वानरों ने राम को उठाकर सेतु के उस पार किया था कि कहीं राम के चरण-स्पर्श से अहल्या के समान पत्थरों से सुन्दरियाँ न प्रकट हो जायँ। **सेरीराम** के अनुसार हनुमान् सहस्रस्कन्ध सिंह का रूप धारण करते हैं। राम उनपर चढ़ कर सेतु पार करते हैं। कहा जाता है कि हनुमान् सेतु के लिए एक पहाड़ ला रहे थे। उन्हें ज्ञात हुआ कि सेतु-निर्माण पूरा हो गया। अतः हनुमान् पहाड़ को वहीं छोड़कर राम के पास गये। राम ने कहा कि वह पर्वत मेरा प्रेम-पात्र है। मैं कृष्णावतार में सात दिनों तक उसे अपनी कनिष्ठिका पर रख-कर व्रजवासियों की रक्षा करूँगा। वही पर्वत व्रज का गोवर्धन कहलाया। **वाल्मीकिरामायण** की कथा से विरोध न होने से एवं आप्त भक्तों में प्रसिद्धि से उक्त कथाएँ भी प्रामाणिक ही हैं।

लङ्कावरोध

शुक तथा सारण राम की सेना की टोह लगाने गये, पर वे पहचान लिये गये। फिर भी राम ने उन्हें छुड़ा दिया। उन्होंने लङ्का लौटकर सीता को लौटाने का परामर्श दिया। रावण ने स्वीकार नहीं किया। शुक के साथ रावण ने उच्च भवन पर आरूढ़ होकर वानर-सेना देखी। शत्रु राम की प्रशंसा करने के कारण रावण ने उन दोनों की भर्त्सना की और शार्दूल के नेतृत्व में नये गुप्तचरों को भेजा। वह भी पकड़ा गया। राम ने उसे भी मुक्त किया। उसने लौटकर समाचार दिया कि राम सुवेल पर आ गये हैं। शुक आदि के वर्णन में विभिन्न वानर भटों एवं राम और लक्ष्मण का शौर्य, पराक्रम और माहात्म्य वर्णित है। किन्तु बुल्के गुप्तचर-वृत्तान्त को प्रक्षेप कहते हैं। उनका

यह कथन निर्मूल है, क्योंकि वह परम्पराप्राप्त और टीकाकारसम्मत है। राजकीय वृत्तान्तों में यह अर्थात् गुप्तचर-वृत्तान्त अनिवार्य होता है। पढ़ते ही वे महत्त्वपूर्ण वर्णन अत्यन्त उपयुक्त प्रतीत होते हैं। इन सर्गों में देवांशभूत वानरों का अतुल पराक्रम वर्णित है। कहा गया है कि जाम्बवान् ने देवासुर-संग्राम में इन्द्र की बड़ी सहायता की थी। वानरों के पितामह संनादन के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसने इन्द्र से युद्ध करके पराजय नहीं पायी। मैन्द तथा द्विविद का महान् पराक्रम तथा हनुमान् के पराक्रम की चर्चा में कहा गया है कि उसने उदित होते हुए सूर्य को फल समझकर खाने का उपक्रम किया था। आगमयोग से मैं उसे जानता हूँ। उसके प्रभाव का वर्णन नहीं हो सकता। वह अकेले ही लङ्का का मर्दन कर सकता है। उसी के द्वारा लगायी गयी लङ्का की अग्नि अभी तक शान्त नही हुई है। इन सर्गों में विविध वानरों एवं उनकी अपार संख्या का वर्णन है। जिनमें धर्म नहीं चलित होता है, जो कभी धर्म का अतिक्रमण नहीं करते, जो वेदविदों में श्रेष्ठ हैं, जो ब्राह्म अस्त्र जानते हैं, जो बाणों से आकाश और पृथिवी को विदीर्ण कर सकते हैं, मृत्यु के समान जिनका क्रोध और शक्र के समान पराक्रम है वह राम हैं, जो नीति में और युद्ध में कुशल हैं, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं और जो दुर्गम जेता एवं अमर्षी, विक्रान्त, जयी और बली हैं वे राम के दक्षिण बाहु एवं बहिश्चर प्राण ही लक्ष्मण हैं। विभीषण तथा सुग्रीव का भी महत्त्व-वर्णन है। अङ्गद, कुमुद, नल, नील, गज, पनस, गवाक्ष तथा द्विविद का वर्णन है।

शुक और सारण द्वारा शत्रुसेना का प्रशंसापूर्ण वर्णन सुनकर रावण क्षुब्ध होता है और ये लोग राम, लक्ष्मण और उनकी सेना से प्रभावित हो गये हैं, यह समझ कर उनकी भर्त्सना करता है और पुनः विश्वस्त, धीर, शूर और भय तथा आतङ्क से रहित गुप्तचरों को आदेश करता है कि शत्रु कैसे सोता है? कब क्या करता है? सब कुछ निपुणता से जानकर आओ। चारचक्षु नराधिप चारों द्वारा शत्रु की स्थिति जानकर स्वल्प यत्न से ही शत्रु का विनाश कर सकते हैं। चारों ने जयजयकार कर शार्दूल के नेतृत्व में रावण की प्रदक्षिणा करके प्रस्थान किया। वे जहाँ राम और लक्ष्मण थे वहाँ गये एवं जहाँ सुग्रीव और विभीषण थे वहाँ भी प्रच्छन्नरूप से गये। परन्तु राम, लक्ष्मण तथा प्रभावशाली महान् शूरवीरों से अधिष्ठित महती सेना को देखकर भय से विह्वल हो गये। सहसा विभीषण द्वारा पहचाने गये वे विक्रान्त वानरों द्वारा अर्दित हो रहे थे, राम ने पुनः उन्हें छुड़ा दिया।

उन चारों ने भी राम के अक्षोभ्य बल का वर्णन किया। उद्विग्न होकर रावण के पूछने पर शार्दूल ने कहा—राजन्! उन विक्रान्त बलवान् राघवेन्द्र से रक्षित वानरपुङ्गवों में कोई चार सफल नहीं हो सकता। उनसे संभाषण करना भी कठिन है। पर्वततुल्य वानरों से सब ओर का मार्ग सुरक्षित है। प्रविष्ट होते ही हम लोग पकड़ लिये गये। वे अमर्षणशील वानर जानु, मुष्टि, दातों एवं तल-प्रहारों से आहत करके हम सबको राम की सभा में ले गये। राघव ने हम सब को बचाया। पहाड़ों और शिलाओं से समुद्र को पाट कर के सेतु बाँधकर सायुध और सपरिकर राम लङ्का-द्वार पर आकर गरुड़व्यूह रचकर स्थित हैं। उन्हीं ने हमें मुक्त किया है। अब या तो उन्हें सीता लौटा दीजिये अथवा युद्ध कीजिए। रावण ने कहा—देव, दानव तथा गन्धर्व सब लोग मुझसे युद्ध करेंगे तो भी मैं सीता को नहीं लौटाऊंगा।

३० वें सर्ग में रावण ने पुनः उस सेना के प्रधान वीरों की उत्पत्ति और प्रभाव के सम्बन्ध में प्रश्न किया। सौम्य, उन दुरासद वीरों का कैसा तेज है? वे कैसे हैं? किसके पुत्र या किसके पौत्र हैं? विजिगीषु को इन बातों पर विचार करना आवश्यक होता है। शार्दूल ने बताया सुग्रीव ऋक्षरजा के पुत्र हैं। गद्गद के क्षेत्र से जृम्भमाण ब्रह्मा की शक्ति से उत्पन्न जाम्बवान् प्रसिद्ध हैं। दूसरा धूम्र है जो कि इन्द्रगुरु बृहस्पति का पुत्र है। सुषेण धर्म का पुत्र है। दधिमुख सोमपुत्र है। सुमुख, दुर्मुख और वेगदर्शी को निश्चित रूप से स्वयम्भू ने मृत्यु ही बनाया है। नील अग्नि का पुत्र है। हनुमान् वायु का पुत्र है। अङ्गद इन्द्रपुत्र वाली का पुत्र है। मैन्द और द्विविद दोनों अश्विद्वय के पुत्र हैं। गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गन्धमादन ये पाँच वैवस्वत के पुत्र हैं। ये काल और यम के ही तुल्य हैं। राजन्, सिंह-

सहनन युवा राम दशरथ के पुत्र हैं। इन्होंने ही दूषण, खर एवं त्रिशिरा का वध किया था। इनके समान भूमण्डल में कोई भी शूर नहीं है। कालतुल्य विराध को इन्होंने ही मारा है। संसार में कोई मनुष्य राम के गुणों का वर्णन करने में समर्थ नहीं है। जनस्थान के राक्षसों का संहार भी इन्होंने ही किया है। धर्मात्मा लक्ष्मण इनके भ्राता ऐसे प्रभावी हैं कि इन्द्र भी उनके बाणपथ में आकर बच नहीं सकता। श्वेत और ज्योतिर्मुख भास्कर के पुत्र हैं। हेमकूट वरुण का पुत्र है। नल विश्वकर्मा का पुत्र है। वेगवान् दुर्धर वसु का पुत्र है। राक्षसों में श्रेष्ठ आपके भ्राता श्रीमान् विभीषण हैं।

पहले बुल्के ही बालकाण्ड तथा उसमें वर्णित वानरों के देवांश होने का खण्डन कर चुके हैं। परन्तु इन सर्गों में भी वही सब वर्णित है। अतएव उनके सामने इन सर्गों को भी प्रक्षेप कहने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है, परन्तु उनके सब तर्क निःसार हैं।

राजशेखर के अनुसार शुक और सारण गुप्तचर न होकर रावण के दूत बनकर जाते हैं और राम के सामने द्वन्द्वयुद्ध का प्रस्ताव रखते हैं। राम उसके लिए अङ्गद को चुनते हैं और रावण नरान्तक को चुनता है। अङ्गद नरान्तक को मार डालता है। **अध्यात्मरामायण** के अनुसार शुक पूर्वजन्म में एक धर्मभीरु ब्राह्मण था। वह रामभक्त था। तुलसीदास के अनुसार उसने रावण को लक्ष्मण का एक पत्र भी दिया था, जिसमें सीता को लौटाने की चेतावनी थी। **रामकियेन** के अनुसार कोई गुप्तचर गीध बनकर आया था। विभीषण के संकेत से हनुमान् ने उसे पकड़ लिया था। वह कोड़ों की मार खाकर रावण के पास लौट गया। तब रावण संन्यासी बनकर राम के समीप गया और राम से युद्ध न करने का अनुरोध करने लगा, किन्तु राम का दृढ़ सङ्कल्प पाकर लौट गया। **पद्मपुराण** के अनुसार अतिकाय और महाकाय वानरों द्वारा फँसाये गये थे। अतिकाय ने शुक्राचार्य की एक भविष्यवाणी का उल्लेख किया था कि लङ्का के द्वार पर अङ्कित 'दारुपञ्चवक्त्र' के विच्छिन्न हो जाने पर रावण का वध होगा। यह सुनकर राम ने अपने बाण से उसे छिन्न-भिन्न कर दिया (पद्मपु० पा० ख० ११२।२०८-२१०)। **वाल्मीकिरामायण** से अप्रतिषिद्ध अविरुद्ध अन्य कथाएँ भी मान्य ही हैं।

राम के मायाशीर्ष का वृत्तान्त

उस वृत्तान्त को भी, **महाभारत के रामोपाख्यान** में वर्णन न होने से, बुल्के सीतावध का अनुकरणमात्र मानते हैं। परन्तु यह बुल्के की भ्रान्ति ही है। टीकाकारों ने उस वृत्तान्त पर भी टीका की ही है। ऐसी स्थिति में सीतावधवृत्तान्त को ही रामशीर्ष के वृत्तान्त का अनुकरण क्यों न मान लिया जाय ? कथा यों है—रावण की आज्ञा के अनुसार मायावी विद्युज्जिह्व ने राम का मायामय शीर्ष और शरसहित धनुष बनाकर अशोकवन में जहाँ जानकी थी रावण के साथ प्रवेश किया। रावण ने वहाँ जाकर प्रहस्त के द्वारा रामवध का समाचार सीता को बताया। सीता करुण विलाप करने लगी। मन्त्रियों ने रावण को बुला लिया। रावण के चले जाने पर वह मायामय शीर्ष भी लुप्त हो गया। तब सरमा ने जाकर सीता के सामने रावण की माया का रहस्य बताया। यह भी बताया कि मैंने अपनी आँखों से देखा है कि राम लङ्का के द्वार पर आ गये हैं (सर्ग ३३)।

सीता के आदेशानुसार सरमा ने रावण सभा का यह निर्णय भी सीता को सुनाया (सर्ग ३४) कि वह मन्त्रियों के सत्परामर्श को अस्वीकार कर सीता को लौटाना नहीं चाहता है। कहीं कहीं त्रिजटा द्वारा उक्त कार्यों का उल्लेख किया गया है। **रङ्गनाथरामायण** के अनुसार एक आकाशवाणी सीता से कहती है कि यह वास्तविक राम का सिर नहीं है।

आनन्दरामायण (१।११।२२१) के अनुसार ब्रह्मा ने सीता को पहले ही बता दिया था कि रावण तुम्हें राम का कृत्रिम सिर दिखलायेगा। **कृत्यारामायण** के अनुसार रावण ने दारुणिका राक्षसी को सीता-वध के लिए नियुक्त किया था, पर उसे यह साहस नहीं हुआ। उसी ने मायामय राम का वध इसलिए दिखाया कि सीता स्वयं ही

आत्महत्या कर ले। सीता चिता जलाकर जलने को तैयार हुई तब त्रिजटा ने विभीषण से राम का कुशल वृत्तान्त जानकर सीता को आश्वस्त किया। तात्पर्य प्रायः सबका एक ही है, अवान्तर कथाओं में कुछ भेद संभव है, फिर भी इतिहास की दृष्टि से **वाल्मीकिरामायण**-कथा ही ठीक है।

५८४ अनु०, **वाल्मीकिरामायण** के केवल दाक्षिणात्य पाठ में अङ्गद के दौत्य कार्य से पहले ही सुग्रीव और रावण का द्वन्द्वयुद्ध वर्णित है। सुग्रीव सहसा पर्वत से लङ्का के गोपुर पर कूद कर रावण के पास पहुँचता है और द्वन्द्वयुद्ध करता है। सुग्रीव रावण को द्वन्द्वयुद्ध में परास्त करता है (अ० रा० ६।५।४१–४५)। सुवेल से ही राम ने रावण को उसके मन्त्रियों सहित देखा और एक ही बाण से उसके हजारों श्वेत छत्र काट डाले। रावण लज्जित होकर अपने भवन के अन्दर चला गया।

रामकियेन (अध्याय २६) के अनुसार ब्रह्मा ने रावण को एक चमत्कारी छत्र दिया था। जब रावण उसे खोल देता था तब लङ्का के चारों ओर गहन अन्धकार छा जाता था। जिससे कोई योद्धा लङ्का को देख नहीं सकता था। सुग्रीव ने कूदकर उस छत्र को छिन्न-भिन्न कर दिया। लङ्का का गहन अन्धकार दूर हो गया।

कृत्तिवासरामायण के अनुसार अन्तरिक्ष में स्थित देवता युद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे। पार्वती ने शिव से अनुरोध किया कि वह अपने भक्त रावण की रक्षा करें। शिवजी ने कहा, रावण को अमरत्व का वर नहीं प्राप्त है। विष्णु अवतार लेकर उसका वध करने आये हैं। अब उसका बचना संभव नहीं है। **बालरामायण** (८।२) के अनुसार रावण ने शुक और सारण को भेजने के बाद शिव की पूजा की, किन्तु स्त्री समझकर उमा को प्रणाम नहीं किया। उन्होंने क्रुद्ध होकर शिव के वरदायक हाथ को खींच लिया था। उक्त कथाएँ **वाल्मीकिरामायण** के अविरुद्ध होने से असंभव नहीं हैं।

५८५ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "**वाल्मीकिरामायण के** अनुसार लङ्कावरोध के पहले विभीषण के परामर्शानुसार अङ्गद द्वारा यह संदेश भेजा गया था कि यदि रावण सीता को लौटा दे तो मैं राक्षसों का विनाश नहीं करूँगा।" सन्देश से क्रुद्ध होकर रावण ने अङ्गद के वध का आदेश दिया। चार राक्षसों ने अङ्गद को पकड़ना चाहा। अङ्गद बाहुसम्बद्ध चारों के साथ ही वेग से एक भवन पर कूदा। चारों निस्सहाय भूमि पर गिरे ऊपर से भवन को ढहाकर अङ्गद राम के पास चला गया। **रामचरितमानस** आदि में अङ्गद और रावण का संवाद विस्तार से वर्णित है। उस परम्परा के अनुसार वह ठीक ही है। **आनन्दरामायण** तथा **भावार्थरामायण** के अनुसार अङ्गद अपनी पूंछ का कुण्डल बनाकर सिंहासन की भाँति उसपर बैठा था।

बुल्के कहते हैं कि "अङ्गद द्वारा बलप्रदर्शन तथा राक्षसों की पराजय के विषय में अनेक नयी घटनाओं की कल्पना कर ली गयी है।"

बुल्के यह नहीं जानते कि भारतीय विद्वान् या तुलसीदास जैसे सन्त अप्रामाणिक कल्पना को पाप समझते हैं। झूठे इतिहास के निर्माण की परम्परा पाश्चात्यों में ही प्रसिद्ध है। अतएव **रामचरितमानस** के अनुसार अङ्गद का प्रण कर पैर रोपना और उसे उठाने में कोटि कोटि सुभटों का असमर्थ होना कल्पना नहीं है, किन्तु वह सत्य घटना थी।

तुलसीदास ने जिस परम्परा की चर्चा की है वह ऐतिहासिक तथ्य है। शतकोटि-प्रविस्तर रामायण में उक्त कथानक विद्यमान ही है। **रामचरितमानस** के अनुसार अङ्गद के बलप्रदर्शन पर पृथिवी हिलने लगी, रावण के मुकुट गिर पड़े। कुछ तो रावण ने उठाकर अपने सिर पर रख लिये और कुछ अङ्गद ने राम के पास प्रेषित कर दिये। अङ्गद प्रेषित मुकुटों को आते देख वानरों ने उन्हें उल्कापात समझा था या रावण प्रेषित वज्र समझा था। राम ने

बतलाया कि ये अङ्गद-प्रेषित दशमुख के किरीट हैं। हनुमान् ने उनको पकड़कर राम के पास रखा। सूर्य के समान प्रकाशवाले उन मुकुटों को कौतुक से वानर देख रहे थे—

ये किरीट दशकन्धर केरे। आवत वालिनयके प्रेरे॥" (रा० मा० ६।३१।५)

आश्चर्य है, बुल्के तुलसीदास में श्रद्धा प्रकट करते हैं, परन्तु उन्हें मिथ्याकल्पनाकार भी लिखते हैं। **गुणभद्र** आदि के अनुसार हनुमान् को ही दौत्य के लिए भेजा गया है। **सेरीराम** के अनुसार कुम्भकर्ण-वध के बाद राम हनुमान् के द्वारा पत्र भेजते हैं जिसमें सीता को लौटाने का प्रस्ताव था। शूर्पणखा को विरूपित करनेवाले लक्ष्मण को बाँधकर लङ्का भेज दिया जाय तो रावण इस प्रस्ताव को स्वीकार करने को तैयार था। **रामचन्द्रिका** (१६।३२) के अनुसार रावण निम्नोक्त शर्तों के साथ सीता को लौटाने को तैयार था। सुग्रीव को मारकर अङ्गद को राज्य दिया जाय, विभीषण को बाँधकर लङ्का भेजा जाय, सेतु नष्ट कर दिया जाय, हनुमान् की पूँछ जला दी जाय तथा राम रुद्र की पूजा करें।

वस्तुतः रावण सीता को लौटाना नहीं चाहता था। तदनुसार कवियों ने असंभावित शर्तों की भी कल्पना की है। **वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, महाभारत,** विभिन्न पुराणों तथा **रामचरितमानस** की परम्पराप्राप्त कथाओं में ही कल्पभेद से समन्वय होता है। अन्य कथाओं को उनके अनुसार ही लगाना चाहिये। सर्वथा विपरीत जैनबौद्ध कथाएँ त्याज्य ही हैं।

नागपाश

५८६ वें अनु० में लङ्कावरोध के अनन्तर रावण युद्ध का आदेश देता है। इसमें अनेक द्वन्द्वयुद्धों का वर्णन है। अङ्गद द्वारा इन्द्रजित् की पराजय तथा इन्द्रजित् के द्वारा राम और लक्ष्मण का नागपाश में बाँधा जाना सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। ब्रह्मा के वरदान से अदृश्य होकर इन्द्रजित् नागमय शरों से राम और लक्ष्मण को आहत करता है। दोनों निश्चेष्ट होकर रणभूमि में शयन करते हैं। इन्द्रजित् दोनों को मृत समझकर रावण को सूचना देता है— (वा० रा० ६। सर्ग ४३–४६)।

रावण ने सीता तथा त्रिजटा को पुष्पक विमान द्वारा मूर्च्छित राम और लक्ष्मण को दिखलाया। सीता विलाप करने लगी तब त्रिजटा ने कहा कि राम जीवित हैं। यदि राम जीवित न होते तो तुम पुष्पक में बैठ ही नहीं सकती, क्योंकि पुष्पक विधवा का वहन नहीं करता है तथा राम और लक्ष्मण के मुख पर मृत्यु का विकार लक्षित नहीं होता (वा० रा० ६। सर्ग ४७, ४८)।

बाद में राम चेतना प्राप्त कर लक्ष्मण के लिए विलाप करते हैं। सुषेण औषध लेने हनुमान् को भेजने का प्रस्ताव करते हैं। इतने में गरुड़ के आगमन से नाग भाग जाते हैं। उनके स्पर्श से दोनों स्वस्थ हो जाते हैं (वा० रा० ६। सर्ग ५०)।

बुल्के गरुडागमन को प्रक्षिप्त मानते हैं। पर उनके श्रद्धेय तुलसीदास के **रामचरित** का मुख्य आधार ही गरुड़-भुशुण्डिसंवाद है। गरुड़ को नागपाशबद्ध राम के दर्शन से ही मोह होता है।

महाभारत के रामोपाख्यान में विभीषण स्वयं ही प्रज्ञास्त्र से राम और लक्ष्मण को शरपाश से मुक्त करते हैं।

गोविन्दरामायण के अनुसार सीता नागमन्त्र पढ़कर नागपाश काट देती हैं। वस्तुतः विभीषण का प्रज्ञास्त्र सही समझना चाहिये। उन्होंने जान लिया कि नाग ही बाण बनकर बन्धन बने हैं। अतः गरुड़ से ही उनका निवारण होगा। इसी तरह सीता के मन्त्र का प्रभाव भी गरुड़ के आगमन में हेतु कहा जा सकता है। इसी दृष्टि से

कथाओं का परस्पर समन्वय किया जा सकता है। अन्यथा यह कहना होगा कि सभी कथाएँ परस्पर असंबद्ध ही हैं। किन्तु प्रामाणिक कथाओं के सम्बन्ध में ऐसा कहना उचित नहीं।

चतुर्लक्षणी **ब्रह्मसूत्र** और द्वादशलक्षणी **पूर्वमीमांसा** तथा तदनुसारी धर्मशास्त्रों के निबन्धग्रन्थ सभी निरर्थक सिद्ध होंगे। यदि उनके अनुसार परस्परविरुद्ध वाक्यों का समन्वय न किया जायगा तो सम्पूर्ण **वेद**, **उपनिषद्**, **धर्मशास्त्र**, **तन्त्र**, **आगम** सभी असम्बद्ध एवं अप्रामाणिक ही समझे जायंगे। अतः जैसे पूर्वोत्तरमीमांसाओं के अनुसार मन्त्र-ब्राह्मणरूप वेदों का समन्वय किया जाता है उसी तरह रामायण और पुराणों का समन्वय करना उचित है। तिलक आदि टीकाकारों ने उसी सरणि का अवलम्बन किया है। उनकी दृष्टि से विचार करने पर असंगति तथा असमन्वय का प्रश्न ही नहीं उठता है।

सेरीराम के अनुसार इन्द्रजित् की एक विशाल सेना को आकाशमार्ग से आती देखकर हनुमान् ने राम को परामर्श दिया कि वानर-सेना की रक्षा के लिए गरुड़ महावीर को बुलाया जाय। राम ने गरुड़ को बुलाया। इन्द्रजित् पत्थर बरसाने लगा। गरुड़ ने राम के आदेशानुसार समस्त वानर-सेना पर अपने पङ्ख फैला दिये। बाद में गरुड़ ने पत्थरों की मार से व्यग्र होकर राम से सहायता माँगी। राम ने गरुड़ को ऊपर उठाकर उनका शरीर हिलाकर पत्थर भार से मुक्त किया। ४० दिन तक वैसी ही पत्थर वर्षा होती रही।

कृत्तिवास के अनुसार गरुड़ ने नागपाशमुक्ति के पश्चात् कृष्ण-रूप देखने की इच्छा प्रकट की। राम ने कहा मुझे न देखकर वानर-सेना किंकर्तव्यविमूढ़ हो जायगी। तब गरुड़ ने पङ्ख फैलाकर राम को छिपा लिया और राम ने उन्हें कृष्ण-रूप दिखाया। हनुमान् ने योगबल से सब वृत्तान्त जान लिया। उन्होंने कृष्णावतार के समय बदला लेने का निश्चय किया। किसी पौराणिक कथा के अनुसार श्रीकृष्ण ने हनुमान् को बुलाने के लिए गरुड़ को भेजा। गरुड़ ने आकर हनुमान् से कहा कि आपको श्रीकृष्ण ने बुलाया है। मैं आपको ले चलूँगा। हनुमान् ने कहा आप चलो, मैं आ जाऊँगा। गरुड़ को अभिमान हो गया कि ये मुझसे पहले कैसे पहुँचेंगे ? वे बड़े वेग से चले तो मनोजव हनुमान् उनके पहले ही भगवान् के पास पहुँच गये। बीच में किसी उद्यान से पुष्प लेने भी गये। वहाँ सुदर्शन चक्र का पहरा था, उन्होंने भी बाधा डाली। हनुमान् ने उन्हें मुद्रिका बनाकर अपनी अँगुली में पहन लिया। ऐसी अनेक कथाएँ पुराणों में मिलती हैं। वस्तुतः हनुमान् के माहात्म्य के वर्णन में ही उक्त आख्यायिकाओं का तात्पर्य है।

"नहि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्तते किन्तु विधेयं स्तोतुम्।"

इस मीमांसा-सिद्धान्त के अनुसार निन्दा का तात्पर्य गरुड़ या चक्र आदि का अपकर्ष वर्णन करने में न होकर विधित्सित हनुमान् की उपासना—स्तुति में ही है।

बुल्के कहते हैं कि **वाल्मीकिरामायण** में तारा के पिता वानर-सेनापति सुषेण को वैद्य भी माना गया है। वह लक्ष्मण एवं योद्धाओं की चिकित्सा करता है (सर्ग ९१)। हनुमान् द्वारा लायी गयी औषधियों से वह रावण की शक्ति से आहत लक्ष्मण को स्वस्थ करता है (सर्ग १०१)।

महानाटक, **रामचरितमानस** आदि में वह राक्षस-वैद्य माना जाता है, जिसे हनुमान् लङ्का से ले आते हैं। इस विरोध का समाधान भी कल्पभेद ही है।

हनुमान् की हिमालय-यात्रा

५८७ वें अनु० में बुल्के हनुमान् की हिमालय-यात्राविषयक सामग्री को प्रक्षिप्त मानते हैं। उनके तद्विषयक तर्क का खण्डन पीछे किया जा चुका है।

कुम्भकर्ण-वध के पश्चात् इन्द्रजित् युद्ध में अदृश्य होकर ब्रह्मास्त्र से लक्ष्मण को आहत करता है और बहुत से योद्धाओं का वध करता है। जाम्बवान् के आदेशानुसार हनुमान् रात को हिमालय जाते हैं। वहाँ औषधियों को न देखकर औषधपर्वत को ही उठा लाते हैं। उसकी सुगन्ध से सब योद्धा स्वस्थ हो जाते हैं। वे पुनः पर्वत को वहीं पहुँचा देते हैं। बुल्के यह भी मानते हैं कि कालनेमि तथा मकरी (ग्राही) का वृत्तान्त और हिमालय के गन्धर्वों की चुनौती तथा उनका हनुमान् द्वारा वध, औषधपर्वत ले जाते समय राक्षसों का आक्रमण और पराजय भी उदीच्य पाठ में है।

गौड़ीय पाठ में भरत और हनुमान् का विवाद भी वर्णित है। हमने पहले लिखा है कि सभी पाठ प्रामाणिक हैं। अतः उक्त कथाएँ बाद में विकसित हुई हैं, बुल्के की यह कल्पना निराधार ही है। अतएव तुलसीदास-जी ने अपने **रामचरितमानस** में कालनेमि आदि का वृत्तान्त दिया है। रावण की प्रेरणा से रामकाज में विघ्न डालने के लिए कालनेमि तपस्वी बनकर मायामय आश्रम में हनुमान् से भूत-भविष्य की बातें करता है। हनुमान्जी उससे दीक्षा लेने के लिए सरोवर में स्नान करने जाते हैं। वहाँ मकरी उनको निगलना चाहती है। पर वह हनुमान् के द्वारा मारी जाकर दिव्यरूप धारण करती है एवं कालनेमि का रहस्य बतलाती है। पश्चात् हनुमान् कामनेमि का भी वध करते हैं। गौड़ीय पाठ तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ के अनुसार सूर्योदय के पहले ही हनुमान् को लौटने के लिए कहा गया था। **कृत्तिवास** के अनुसार मध्यरात्रि में रावण की आज्ञा के अनुसार सूर्योदय हुआ था, किन्तु हनुमान् ने सूर्य को अपनी काँख में दबा लिया था। **भावार्थरामायण** के अनुसार राम के डर से, हनुमान् के लङ्का पहुँचने के पहले, सूर्यदेव उदित होने का साहस नहीं करते। उक्त कथाओं का तात्पर्य रावण का प्रभाव तथा उससे भी अधिक हनुमान् और राम का महत्त्ववर्णन करने में ही है। फिर भी सूर्य के उदय में विलम्ब होना अत्यन्त असंभव नहीं। अतएव शाण्डिली ब्राह्मणी अपने पातिव्रत्य के बल से सूर्योदय रोक सकी थी।

गौड़ीय पाठ (६।८२।९०–१२८) के अनुसार हिमालय की ओर जाते हुए हनुमान् को देखकर भरत को कौतूहल हुआ। उन्होंने बाण मारकर हनुमान् को गिराना चाहा, पर हनुमान् अपना परिचय देकर अपनी यात्रा का उद्देश्य बताते हैं। सब कथा सुनाकर विजयी राम के शीघ्र प्रत्यावर्तन का आश्वासन देकर हनुमान् हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं। अन्यत्र प्रस्तुत प्रसङ्ग में स्वप्न का भी उल्लेख मिलता है। सुमित्रा ने देखा कि एक साँप उनकी बाईं भुजा खा रहा है। अपशकुन की शान्ति के लिए तुरन्त देवार्चन का आयोजन हुआ। शान्ति-मण्डप से ही भरत ने आकाश में जाते हुए हनुमान् को गिरा दिया। राम-लक्ष्मण का नाम स्मरण करते हुए हनुमान् मूच्छित हो गये। तब वसिष्ठ ने पर्वत की औषधियों द्वारा उन्हें स्वस्थ किया। भरत की परीक्षा लेने की दृष्टि से हनुमान् ने कहा कि श्रान्त होने के कारण मेरा सूर्योदय के पहले पहुँचना कठिन है। यह सुनकर भरत ने पर्वत सहित हनुमान् को बाण पर चढ़ाकर धनुष से प्रेषित करने का उपक्रम किया। भरत का पराक्रम देखकर हनुमान् को सन्तोष हुआ। बाण से उतरकर उन्होंने भरत के बाहुबल की प्रशंसा की। पश्चात् रुद्रावतार हनुमान् पर्वत उठाकर लङ्का पहुँच गये।

रङ्गनाथरामायण के अनुसार भरत ने ही अशुभ स्वप्न देखा था। उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर हवन आदि शान्तिक कर्म कराया।

हनुमान् ने आकाश से भरत को देखा तो उन्हें भ्रम हुआ कि राम सीता और लक्ष्मण के बिना यहाँ कैसे आये ? भरत ने हनुमान् को देखकर गिराने का निश्चय किया तो आकाशवाणी ने उन्हें रोका।

आनन्दरामायण के अनुसार भरत ने बाण मारकर उनके हाथों से पर्वत गिरा दिया। हनुमान् ने भरत को देखकर उन्हें राम ही समझा। जब भरत पुनः बाण मारने को तैयार हुए तो उनका भ्रम दूर हुआ और उन्होंने भरत को अपना परिचय दिया। अन्त में भरत ने पर्वत लौटा दिया हनुमान् उसे लङ्का ले गये।

सूरसागर, रामचरितमानस आदि के अनुसार भरत ने बाण मारकर हनुमान् को नीचे गिराया था। **भावार्थरामायण** के अनुसार भरत ने हनुमान् को इन्द्र समझकर रामनामाङ्कित बाण चलाया था। वह हनुमान् के पैरों को पकड़कर उन्हें नीचे की ओर खींचने लगा। हनुमान् ने रामनामाङ्कित बाण देखकर समझा कि राम अयोध्या चले आये और भरत से कहा कि आप अपने मित्रों को छोड़कर यहाँ कैसे आ गये। **रामचरितमानस** के अनुसार भरत बाण पर बैठाकर पर्वत सहित हनुमान् को लङ्का भेजने का प्रस्ताव करते हैं, पर हनुमान् नम्रता से अस्वीकार कर शीघ्र ही पहुँच जाने का आश्वासन देते हैं। उक्त कथाओं का तात्पर्य हनुमान् और भरत दोनों की लोकोत्तर महिमा का वर्णन करने में ही है। अतः वाच्यार्थ में कुछ विरोधाभास होने पर भी तात्पर्यतः अविरोध ही है।

कुम्भकर्ण वध

५८९वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "कुम्भकर्ण (वा० रा० ६।१२ में) सीता को लौटाने के लिए रावण से अनुरोध करता है। **महाभारत** में इसका उल्लेख नहीं है, इसलिए वे इसे प्रक्षिप्त कहते हैं, क्योंकि रावण के आदेशानुसार जगाये जाने पर कुम्भकर्ण सीता-हरण, लङ्कावरोध आदि घटनाओं से अनभिज्ञ प्रतीत होता है (सर्ग ५१)।" बुल्के का उक्त कथन असङ्गत है। वस्तुतः ५१ वें सर्ग में नहीं दाक्षिणात्य पाठ ६० वें सर्ग में कुम्भकर्ण को जगाया गया था। अस्वाभाविक जागरण के कारण ही कुम्भकर्ण को पिछली बातों का स्मरण नहीं रहा। आज भी घोर निद्रा से जगाये जाने पर प्राणी को यह भी समझ में नहीं आता है कि मैं कौन हूँ और कहाँ हूँ ? अस्वाभाविक प्रबोधन के कारण ही कुम्भकर्ण ने अकाल-बोधन से विस्मित होकर कहा कि आप लोगों ने मुझे क्यों जगाया ?

"बोधनाद्विस्मितश्चापि राक्षसानिदमब्रवीत्।
किमर्थमहमाहृत्य भवद्भिः प्रतिबोधितः॥
नह्यल्पकारणे सुप्तं बोधयिष्यति मादृशम्॥" (वा० रा० ६।६०।६६–७०)

तिलककार ने लिखा है—

"स्वभावतो निद्रापगमाभावेनाकालबोधनादिति भावः"

अर्थात् स्वभावतः निद्रा नहीं गयी, क्योंकि अकाल में जगाया था। अतएव जब वह नेत्र-मुखप्रक्षालन कर स्नान, पान, भोजन आदि करके रावण के पास पहुँचा और रावण का परिदेवन सुना तो उसने ६३ वें सर्ग में कहा है—मन्त्रकाल में हम लोगों ने जो सर्वनाशरूप दोष देखा था वही आज उपस्थित है—

"दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये।
हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया॥" (वा० रा० ६।६३।२)

मन्दोदरी ने और विभीषण ने हित की बात कही थी, पर आपने किसी की नहीं सुनी—

"यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च।
तदेव नो हितं वाक्यं यथेच्छसि तथा कुरु॥" (वा० रा० ६।६३।२१)

इन पूर्वापर प्रसङ्गों से स्पष्ट है कि केवल ६०वें सर्ग में निद्राक्रान्ति की दशा में सीता-हरण तथा लङ्कावरोध की चर्चा न करने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि १२ वाँ सर्ग ही प्रक्षिप्त है। ६३ वें सर्ग में १२ वें सर्ग के मन्त्र की चर्चा करने से उसको प्रक्षेप कहनेवाले का मुखबन्द हो जाता है।

बुल्के कहते हैं कि **वाल्मीकिरामायण** दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार कुम्भकर्ण के जगाने में विभिन्न प्रयत्नों का अतिरञ्जित वर्णन है। अन्त में सहस्र हाथियों से उसके सरीर को कुचलवा कर वह जगाया गया था। **वा० रा०**

उदीच्यपाठ के अनुसार यक्ष, राक्षस तथा गन्धर्वों को कन्याओं के आभूषणों की झनकार, सङ्गीत तथा स्पर्श से उसका जागरण हुआ। **वा० रा० गोड़ीय पाठ, भावार्थरामायण** आदि के अनुसार घृताची, रम्भा, मेनका, उर्वशी आदि अप्सराओं द्वारा उसे जगाया गया था। **सेरीराम** के अनुसार चार दासियाँ कुम्भकर्ण की नाक में प्रवेश कर बाल उखाड़ती हैं। वे कुम्भकर्ण की छींक से बाहर फेंकी जाती हैं। अन्त में पैर के बाल उखाड़े जाने पर वह जागता है। **वाल्मीकिरामायण के विभिन्न पाठों** का समन्वय होने में कोई बाधा नहीं है। अन्य कथाओं का तात्पर्य उसकी निद्रा की भीषणता के प्रतिपादन में ही है।

रामायण के सभी पाठों के अनुसार राम ने कुम्भकर्ण का वध किया है। **उदीच्य पाठ** के अनुसार कुम्भकर्ण ने रावण से कहा था कि नारद ने विष्णु के अवतार राम का रहस्य मुझसे प्रकट किया था। रावण ने उत्तर में कहा था कि मैं विष्णु के हाथ मरकर परम गति प्राप्त करना चाहता हूँ—

"निहतो गन्तुमिच्छामि तद्विष्णोः परमं पदम्।"

दाक्षिणात्य पाठ में यह प्रसङ्ग नहीं मिलता, किन्तु **अध्यात्मरामायण (६।७), आनन्दरामायण (१।११।१४), रङ्गनाथरामायण (६।७०), भावार्थरामायण (६।२२) तथा रामचरितमानस (६।६३)** आदि में पाया जाता है। **वा० रा० पश्चिमोत्तरीय पाठ** (४६।८२–९१) के अनुसार रणभूमि में विभीषण से मिलकर रामशरण लेने के कारण उसकी प्रशंसा कुम्भकर्ण ने की थी। **वाल्मीकिरामायण** के अन्य पाठों में इसका उल्लेख नहीं है, किन्तु यह प्रसङ्ग **अध्यात्मरामायण** (६।८), **आनन्दरामायण** (१।११।१२५), **रामचरितमानस** (६।१४) **तथा भावार्थरामायण** (६।२५) में वर्णित है। अन्य पाठों में वैसा उल्लेख न होने पर भी पश्चिमोत्तरीय पाठ तथा अन्य ग्रन्थों से सम्मत होने के कारण उक्त वृत्तान्त को प्रामाणिक ही समझना चाहिये।

रङ्गनाथरामायण के अनुसार कुम्भकर्ण का सिर लङ्का की ऊँची अट्टालिकाओं को चूर्ण करता हुआ एवं समुद्र के विविध प्राणियों को नष्ट करता हुआ समुद्र में डूब गया। **भावार्थरामायण** के अनुसार कुम्भकर्ण का सिर कट जाने के पश्चात् कबन्ध राक्षसों पर गिरा एवं उसने बहुतों को नष्ट कर दिया। **सेरीराम** के अनुसार राम ने कुम्भकर्ण का सिर रावण के शिविर में फेंक कर बहुत से राक्षसों का वध किया था।

महाभारत के रामोपाख्यान (अध्याय २७१), स्कन्दपुराण (सेतुमाहात्म्य अध्याय ४४) आदि में लक्ष्मण के द्वारा कुम्भकर्ण का वध वर्णित है। परन्तु भावदीपकार नीलकण्ठ ने कहा है कि रामचरित में **वाल्मीकिरामायण** ही मुख्य प्रमाण है, अतः अन्य ग्रन्थों को तदनुसार लगाना ही उचित है। अतः लक्ष्मण के द्वारा कुम्भकर्ण मृतप्राय हो गया था। यही लक्ष्मण द्वारा उसके वध का अभिप्राय है। परन्तु उसकी मृत्यु राम के ही बाण से स्वीकार करना उचित है, क्योंकि जय-विजयरूप रावण और कुम्भकर्ण दोनों का वध विष्णु के द्वारा ही प्रमाणसिद्ध है।

५९० अनु० में बुल्के कहते हैं कि "इन्द्रजित् के द्वितीय युद्ध में प्रथम युद्ध के नागपाश-वृत्तान्त का अनुकरणमात्र प्रतीत होता है," परन्तु यह सङ्गत नहीं हैं; क्योंकि उन्होंने आगे स्वयं उसकी विशेषताएँ स्वीकार की हैं कि द्वितीय युद्ध के पूर्व इन्द्रजित् पावक को होम देकर ब्रह्मास्त्र प्राप्त करता है और अदृश्य होकर वानर-सेनापतियों तथा राम और लक्ष्मण को घायल करता है, फिर विजयी के रूप में लङ्का लौटता है। युद्ध में किसी अंश में तो तुल्यता होती ही है। इतनेमात्र से वह अनुकरण नहीं कहा जा सकता है। वस्तुतः इस युद्ध में इन्द्रशत्रु ने इन्द्र, वैवस्वत, विष्णु एवं रुद्र, साध्य, वैश्वानर, चन्द्र और सूर्य को अपना अप्रमेय पराक्रम दिखाया था। वह तान्त्रिक आभिचारिक विधानों का अनुकरण कर अपने प्रयोग को सिद्ध कर विजयसूचक चिह्नों से प्रेरित होकर अपने रथ, धनुष तथा ब्रह्मास्त्र को अभिमन्त्रित कर सम्पूर्ण सेनानियों तथा वानरसेना को शरजाल से व्याकुल कर देता है। राम और लक्ष्मण

पर भी मन्त्रयुक्त तीव्र बाणों का प्रयोग करता है। स्वयम्भू के अचिन्त्य अस्त्र के प्रभाव को देखकर राम लक्ष्मण से अव्यग्रता से उसके बाण-वृष्टिकाल को सहने के लिए कहते हैं—

"बाणावपातं त्वमिहाद्य धीमन् मया सहाव्यग्रमनाः सहस्व।" (वा० रा० ६।७३।६६)

राम यह भी कहते हैं कि हम दोनों को रणभूमि में शयान देखकर ही यह लौटेगा और अस्त्रजालों से मेघनाद ने दोनों को पीड़ित तथा मूर्च्छित कर दिया। दूसरी विशेषता यह है कि पूर्व युद्ध में नाग ही बाणरूप में छोड़े गये थे। अतएव उनकी निवृत्ति के लिए गरुड़ की ही आवश्यकता थी। पर ७३वें सर्ग के युद्ध में वह बात नहीं थी। ७४वें सर्ग में तो ब्रह्मास्त्र को सम्भावित करके मारुति हनुमान् उठ खड़े हुए। विभीषण और हनुमान् रात्रि में उल्का (मशाल) हाथ में लेकर जीवित वीरों को आश्वस्त करने में लग गये। सागरौघतुल्य बाणों से अर्दित भीमबल में विभीषण सहित हनुमान् वृद्ध जाम्बवान् को ढूँढ़ते हैं। जाम्बवान् प्रजापति के पुत्र थे। अवस्था से वृद्ध तथा सैकड़ों बाणों से आहत होने के कारण पावक के समान प्रशान्त हो रहे थे। विभीषण ने उनके मिलने पर कहा—आर्य! तीक्ष्ण बाणों से आपके प्राण तो ध्वस्त नहीं हुए। विभीषण की बात को सुनकर बड़ी कठिनाई से बोलते हुए उन्होंने कहा राक्षसेन्द्र! मैं तुम्हें स्वर से पहचान रहा हूँ। तीक्ष्ण बाणों से अतिविद्ध होने के कारण मैं चक्षु से तुम्हें देख नहीं पा रहा हूँ। जिसके द्वारा अञ्जना और मरुत् दोनों ही सुपुत्र हुए हैं वह वानरश्रेष्ठ हनुमान् क्या जीवित है? जाम्बवान् की बात सुनकर साश्चर्य विभीषण ने कहा—क्या कारण है कि आपने आर्यपुत्र राम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव एवं अङ्गद के सम्बन्ध में वैसा स्नेह नहीं प्रदर्शित किया। जाम्बवान् ने कहा नैर्ऋतशार्दूल, सुनो वह कारण, जिससे मैं हनुमान् को पूछ रहा हूँ। हनुमान् के जीवित रहने पर सब सेना नष्ट होने पर भी अनष्ट ही समझिये और उसके मृत हो जाने पर हम सब जीवित रहते हुए भी मृत होंगे। यदि मारुततुल्य तथा वैश्वानरोपम हनुमान् जीवित हैं तो हम सबको जीवन की आशा बनी रहेगी।

हनुमान् ने बड़ी नम्रता से वृद्ध जाम्बवान् के पास जाकर पादग्रहण कर अभिवादन किया। जाम्बवान् ने प्रसन्न होकर अपना पुनर्जन्म समझा और कहा, हरिशार्दूल! यह तुम्हारे पराक्रम का काल है। आकाश-मार्ग से नगश्रेष्ठ हिमवान् में जाकर अत्युग्र काञ्चन पर्वत ऋषभ और कैलास के मध्य में स्थित ओषधि-पर्वत है। वहाँ स्थित मृतसञ्जीवनी, विशल्यकारिणी, सुवर्णकरणी तथा सन्धानी इन चारो औषधों को लाओ।

हनुमान् भीषण नाद कर लङ्कास्थ राक्षसों को भयभीत एवं स्तब्धकर वेग से आकाश-मण्डल में धावन करते हुए शैलों, शिलाओं तथा सामान्य वानरों को आकृष्ट करते हुए हिमालय की ओर गये और ओषधि पर्वत ही उठा लाये। समस्त वानर-सेना और राम-लक्ष्मण स्वस्थ हो गये। ऐसे महत्त्वपूर्ण वर्णन को बुल्के इसी लिए प्रक्षेप कहने का साहस करते हैं, क्योंकि वे हिमालय-यात्रा को ही प्रक्षेप कह चुके हैं। ऐसे ही उसके तीसरे युद्ध की भी अपनी विशेषताएँ हैं ही।

उत्तरकाण्ड के अनुसार इन्द्रजित् ने अग्निष्टोम, राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञों का अनुष्ठान किया था। माहेश्वर यज्ञों से सन्तुष्ट पशुपति से कामग रथ, अक्षय तूणीर तथा अदृश्य रहने की शक्ति प्राप्त की थी। मेघनाद ने इन्द्र को भी जीतकर लङ्का के कारावास में रख दिया था। ब्रह्मादि देवताओं ने 'इन्द्रजित्' उपाधि प्रदान कर उसके अतिरिक्त भी एक वर प्रदान किया था। जिससे उसने यह माँगा कि विधिवत् होम करने पर अग्नि से एक अश्वयुक्त रथ उत्पन्न हो जब तक मैं उसपर रहूँ अमर बना रहूँ (सर्ग ३०)।

अन्त में उसने यह भी कहा कि जप, होम आदि की समाप्ति के पहले यदि मैं संग्राम करूँ तभी मेरा विनाश हो। इस तरह बिना तपस्या के उसने अमरत्व प्राप्त किया था।

५९१ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "मायामय सीता के वध का वृत्तान्त **आदिरामायण** में नहीं पाया जाता था, क्योंकि **महाभारत** के **रामोपाख्यान** में इसका अभाव है।" परन्तु उनका यह कहना भी असङ्गत है, क्योंकि **रामोपाख्यान** में संक्षेप के कारण ही कई सामग्रियों का छूट जाना स्वाभाविक ही है। शाखाभूत किसी ग्रन्थ में किसी चरित्र के न मिलने पर भी मूल ग्रन्थों में जो चरित्र विद्यमान है उसको शाखा ग्रन्थ में न होने से प्रक्षिप्त कहना अजीब बात है। **रामायण, महाभारत**, पुराण और धर्मशास्त्र सभी ग्रन्थ वेदमूलक ही हैं। फिर वेद की अनेक बातें उनमें अविद्यमान हो सकती हैं और हैं भी तथापि मूल वैदिक वस्तुओं को प्रक्षेप नहीं कहा जा सकता।

वाल्मीकिरामायण (सर्ग ८१ और ८२) के अनुसार इन्द्रजित् हनुमान् तथा अन्य वानरों के सामने अपने रथ पर मायासीता का सिर काटता है। हनुमान् से समाचार जानकर राम व्याकुल होते हैं, किन्तु विभीषण आश्वासन देते हुए कहते हैं कि यह तो राक्षसी माया है, क्योंकि दुरात्मा रावण का सीता में प्रेम है, वह सीता का वध कभी न होने देगा।

"मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम्।" (वा० रा० ६।८४।१३)

विभीषण सचाई जानने के लिए मधुमक्खी का रूप या अन्य सूक्ष्म रूप धारण कर के जाता है। **रामकियेन** आदि में सीता-वध का कुछ विलक्षण वृत्तान्त है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार विभीषण ने राम को सावधान किया कि इन्द्रजित् निकुम्भिला में अपना यज्ञ करने के पश्चात् अजेय बन जायगा, अतः यज्ञ का विध्वंस करना अत्यावश्यक है। अतएव विभीषण तथा अङ्गद, हनुमान् आदि वानरों को साथ लेकर लक्ष्मण ने इन्द्रजित् की रक्षा करनेवाली सेना पर आक्रमण कर दिया। युद्ध का कोलाहल सुनकर इन्द्रजित् अपूर्ण यज्ञ छोड़कर युद्ध करने के लिए उठ खड़ा हुआ। विभीषण को देखकर इन्द्रजित् ने उनकी निन्दा की। अनन्तर लक्ष्मण इन्द्रजित् का घोर संग्राम हुआ। लक्ष्मण ने उनके सारथि को मार डाला। इन्द्रजित् पैदल लङ्का लौट गया। पुनः वह नये रथपर चढ़कर आया। पुनः लक्ष्मण ने उसके सारथि एवं घोड़ों को मार डाला। अन्त में लक्ष्मण ने ऐन्द्र अस्त्र से इन्द्रजित् का वध किया। बाद में सुषेण ने लक्ष्मण, विभीषण आदि की चिकित्सा की। इन्द्रजित् की मृत्यु का समाचार सुनकर रावण ने सीता का वध करना चाहा, पर सुपार्श्व ने रोक दिया।

महानाटक के अनुसार इन्द्रजित् का कटा सिर रावण के हाथों में फेंका गया था। **कम्बरामायण** के अनुसार इन्द्रजित् ने युद्ध करते हुए यह जान लिया था कि लक्ष्मण विष्णु के अवतार हैं। अतः उसने रावण से अनुरोध किया कि सीता राम को दे दी जाय। रावण ने नहीं माना, तब रणभूमि में लौटकर उसने पुनः युद्ध किया। लक्ष्मण ने उसका बायाँ हाथ काटा और सिर काटकर राम के चरणों में धर दिया।

आनन्दरामायण के अनुसार हनुमान् ने उसका सिर उठाकर राम को दिखलाया। बहुत सी कथाओं में कहा गया गया है कि बारह वर्ष नींद, नारी तथा भोजन त्याग के प्रभाव से लक्ष्मण ने मेघनाद को मारा था।

सेरीराम के अनुसार उसका वध राम के द्वारा होता है। समाचार सुनकर रावण रणभूमि में आकर उसके कबन्ध को लेकर ऐसा विलाप करता है कि सभी वानर और राम भी रो पड़ते हैं। पर कुछ वानर उसको दसों मुखों से रोते देखकर हँसी नहीं रोक पाते। अन्त में वह उसके देह को लङ्का ले जाता है। जहाँ उसकी पत्नी चिता पर बैठकर सती होती है। **द्विपदरामायण** (६।१११–११३), **भावार्थरामायण** तथा **आनन्दरामायण** में उल्लेख है कि सुलोचना कटी हुई पति की भुजा देखकर विलाप करने लगती है। भुजा ने बाण द्वारा अपने रक्त से लिखा कि मैंने शेष के हाथ से मरकर मुक्ति पायी है। **रामचरितमानस** के क्षेपकों के अनुसार वह कहती है कि जो बारह वर्ष नींद, नारी और भोजन त्याग सकता हैं उससे मेरे पति का मरण हो सकता है। इस भुजा ने लिखा—

"नींद नारि भोजन शत कोटी।
तजब तासु महिमा अति छोटी ।।" (रा० मा० परिशिष्ट ७।३।२)

अर्थात् बारह वर्ष ही नहीं शतकोटि वर्ष भी नींद, नारी तथा भोजन का त्याग करना लक्ष्मण के लिए कोई बड़ी बात नहीं है। सुलोचना रावण से पति के सिर की प्राप्ति के लिए कहती है। रावण कहता है—धैर्य रखो, मैं राम और लक्ष्मण के सिर के साथ ही इन्द्रजित् का सिर ला दूँगा। परन्तु मन्दोदरी उसे परामर्श देती है कि वह स्वयं राम के दरबार में जाकर सिर प्राप्त करे। उसने कहा वहाँ विभीषण तुम्हारे ससुर हैं। लक्ष्मण की महिमा भुजा ने ही लिखी है। अङ्गद मेरा पुत्र है। हनुमान् रुद्रावतार हैं। राम सदा नीतिनिष्ठ हैं फिर वहाँ जाने में क्या संकोच ?

"सदा नीतिरत राम नरेशा।
तहाँ जात कहु कौन कलेशा ।।" (रा० मा० परिशिष्ट ६।१२।५)

सुलोचना जाती है। त्रिलोकसुन्दरी नागकन्या सुलोचना को देखकर भी अनुशासननिष्ठ वानर-सेना प्रशान्त थी। सुलोचना ने इन्द्रजित् की भुजा द्वारा लिखित लक्ष्मण की महिमा का उल्लेख करके सहगमन के लिए सिर माँगा। किन्हीं लोगों ने कहा कि मृत भुजा द्वारा उल्लेख का विश्वास तभी किया जा सकता है। जब यह सिर हँसे। इसपर सुलोचना ने सिर को अपनी गोद में लेकर बहुत सी बातें कहीं और यह भी कहा कि यदि मुझे यह मालूम होता तो मैं अपने पिता शेष को तुम्हारी सहायता के लिए बुलाती। इसपर वह सिर बहुत जोर से हँसा, जिसका आशय यह था कि शेष द्वारा हीं मेरा वध हुआ है।

वाल्मीकिरामायण से अनुक्त होने पर भी **आनन्दरामायण** आदि की उक्तियाँ तथा अप्रतिषिद्ध अन्य उक्तियाँ भी अनुमत ही हैं।

रावण-वध

५९५ अनु०, **खोतानी रामायण** के अनुसार राम द्वारा आहत होकर दशग्रीव राजकर देने की प्रतिज्ञा करता है। युद्ध स्थगित हो जाता है। **जैन राम-कथाओं, उन्मत्तराघव** तथा **बिहोंररराम-कथा** के अनुसार लक्ष्मण द्वारा रावण का वध होता है। परन्तु इसे भी **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ही लगाना उचित है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार महोदर, महापार्श्व तथा विरूपाक्ष के वध के बाद रावण रणभूमि में स्वयं प्रवेश करता है। वह लक्ष्मण को अपनी शक्ति से आहत करता है, किन्तु राम द्वारा पराजित होकर लङ्का भाग जाता है। बाद में वह महान् रथ-पर चढ़कर युद्ध-भूमि में आता है। इन्द्र अपने रथ सहित मातलि सारथि को भेज देते हैं। द्वन्द्वयुद्ध हुआ। स्वामी को मूच्छित देखकर रावण-सारथि रथ को रणभूमि से दूर ले जाता है। चेतना प्राप्त कर रावण ने फिर युद्ध-भूमि में रथ ले जाने का आदेश दिया। अन्तिम युद्ध में रामने रावण के पुनः पुनः सिर काटे और वे पुनः पुनः उत्पन्न होते गये। इस तरह सैकड़ों बार उसके सिर कटे और उत्पन्न हुए।

मातलि के परामर्श से राम ने अगस्त्य द्वारा प्रदत्त ब्रह्मास्त्र से रावण के हृदय को विदीर्ण कर दिया। **महाभारत** में न मिलने के कारण बुल्के रावण की शक्ति द्वारा लक्ष्मण के आहत होने को प्रक्षिप्त या परिवर्धन मानते हैं, परन्तु यह असङ्गत है, क्योंकि **वाल्मीकिरामायण** की परम्परा तथा टीकाकारों की संमति से वह प्रक्षिप्त नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार विभीषण ने रावण के रथ के घोड़ों का वध किया था, फलस्वरूप रावण ने विभीषण की ओर शक्ति का प्रहार किया। लक्ष्मण ने उसे बीच में ही छिन्न-भिन्न कर दिया। रावण ने पुनः अन्य शक्ति विभीषण पर चलायी। लक्ष्मण ने उससे भी विभीषण को बचा लिया। अन्त में रावण ने मय द्वारा निर्मित अमोघ

शक्ति से लक्ष्मण को मारा । राम ने लक्ष्मण की छाती से शक्ति को निकाल कर तोड़ दिया । लक्ष्मण को हनुमान् आदि वानरों की रक्षा में छोड़कर राम ने पुनः रावण को रणभूमि छोड़कर भागने को बाध्य कर दिया । हनुमान् ने हिमालय से औषध लाकर लक्ष्मण को जिलाया ।

महानाटक के अनुसार रावण की शक्ति को हनुमान् रोक लेते हैं । कहा जाता है कि रावण के अनुरोध से नारद हरिकीर्तन द्वारा हनुमान् को प्रेमविभोर कर के रण से असावधान करते हैं । तब रावण लक्ष्मण को आहत करने में समर्थ होता है ।

पउमचरियं के अनुसार विशल्या द्रोणमेघ की कन्या थी, ओषधि नहीं । इसके स्नान जल से लक्ष्मण की चिकित्सा हुई थी । अन्त में हनुमान् ने उससे विवाह किया था ।

बुल्के ने मातलि-रथ के प्रसङ्ग को भी प्रक्षिप्त कहा है, क्योंकि रावण की पत्नियों ने रावण-वध के बाद विलाप करते हुए कहा था कि जिसे देवता भी नहीं मार सके, वह एक पदाति मनुष्य द्वारा मारा गया—

"अवध्यो देवतानां यस्तथा दानवरक्षसाम् ।
हतः सोऽयं रणे शेते मानुषेण पादतिना ॥" (वा० रा० ११०।१५)

पर बुल्के यह नहीं समझते हैं कि—'बाहुल्येन व्यपदेशा भवन्ति ।'

बहुलता के अनुसार व्यवहार होता है । राम ने अधिकांश युद्ध पदाति ही किया था और अब भी राम की सेना में कोई रथ नहीं था । राम पदाति ही थे । बीच में इन्द्रप्रेषित रथ और मातलि आया भी तो उन स्त्रियों को ज्ञात न होगा । अतः आकुल-व्याकुल विलाप-प्रलाप और परिदेवन करती हुई नारियों के केवल 'पदातिना' एक संदिग्धार्थ पद के आधार पर मातलिसम्बन्धी अनेकों असंदिग्ध सर्गों को प्रक्षेप कहना केवल दुराग्रह ही है । ठीक इससे उल्टा यही कहा जा सकता है कि अनेक सर्गों और श्लोकों से विरुद्ध होने के कारण उस एक ही श्लोक को प्रक्षिप्त मानना युक्त है । वस्तुतः तो पूर्वोक्त प्रकार से कोई भी प्रक्षिप्त नहीं, दोनों की सङ्गति ही है । १०२ वें सर्ग तक मातलिरथ की चर्चा है । एक श्लोक के आधार पर महत्त्वपूर्ण इन सर्गों को प्रक्षेप कहना अत्यन्त असङ्गत है ।

इस तरह बुल्के युद्ध के समय अगस्त्य द्वारा राम को उपदिष्ट आदित्यहृदय को भी प्रक्षिप्त ही कहते हैं । यह भी प्रमाद ही है, कारण वह परम्पराप्राप्त एवं टीकाकारसम्मत है । आज तक लक्षों पुरुषों के द्वारा अनुष्ठान रूप में प्रतिदिन उसका पाठ किया जाता है ।

सेरीराम के अनुसार रावण के रथ में १०० सिंह और १०० अश्व जुते हुए थे । लक्ष्मणचिकित्सा सम्बन्धी अनेकविध कथाएँ **सेरीराम, रामकियेन** आदि में विस्तार से वर्णित है ।

रावण के होम का आयोजन जानकर विभीषण राम को सावधान करता है कि इस यज्ञ के विध्वंस करने की आवश्यकता है, नही तो रावण शिव के प्रसाद से अजेय हो जायगा ।

वानर-भट हनुमान् के नेतृत्व में यज्ञस्थल पर पहुँच कर विघ्न करते हैं । परन्तु उसका ध्यान-भङ्ग करने में असमर्थ होते हैं । तब अङ्गद हनुमान् की आज्ञा से मन्दोदरी के केशों को खींचकर उसे रावण के पास ले आता है । तब रावण उत्तेजित होकर यज्ञ को अपूर्ण छोड़कर अङ्गद पर आक्रमण करता है ।

पउमचरियं के अनुसार रावण बहुरूपिणी सिद्धि के लिए शान्तिनाथ के मन्दिर में आराधना करता है । मन्दोदरी लङ्का के सभी नागरिकों से अहिंसा-पालन के लिए निवेदन करती है । विभीषण सुझाव देता है कि राम जाकर रावण को मन्दिर से निकाल कर कैदी बना लें । किन्तु राम यह प्रस्ताव अस्वीकार करते हैं । वानरों का एक दल ध्यानस्थ रावण को क्षुब्ध करने के उद्देश्य से लङ्का में प्रवेश करता है । अन्तःपुर की स्त्रियों का अपमान

करता है। फिर भी रावण विचलित नहीं हुआ और उसने **बहुरूपिणी विद्यासिद्धि** प्राप्त कर ली। **गुणभद्र** के अनुसार रावण विद्याएँ सिद्ध करने के लिए आदित्यपाद पर्वत पर तप करता है। राम एक विशाल सेना के साथ आक्रमण करते हैं। परिणामतः रावण साधना छोड़कर लङ्का चला जाता है।

अनेक रामकथाओं में यह उल्लेख है कि रावण ने दैत्य-गुरु शुक्राचार्य के परामर्श से यज्ञ आरम्भ किया था।

कृत्तिवास के अनुसार रावण ने शान्तिकर्म का आयोजन किया। **चण्डीपाठ** के लिए बृहस्पति को बुलाया। देवताओं ने पवन के द्वारा राम को **चण्डीपाठ** अशुद्ध कराने का परामर्श दिया। हनुमान् मक्खीरूप धारण कर जाकर चण्डीपाठ के दो अक्षर चाट आये। परन्तु बृहस्पति ने अभ्यास वश शुद्ध ही पाठ किया। हनुमान् ने विक्रमरूप दिखाया, बृहस्पति डर गये। हनुमान् ने ग्रन्थ छीनकर प्रथम अध्याय के तीन श्लोक मिटा दिये। अशुद्ध पाठ देखकर माहेश्वरी कैलास चली गयी।

सेरीराम के अनुसार रावण अपने यज्ञ के धूम से राम की साँस रोकना चाहता था। **रामकेर्ति** (सर्ग १०) के अनुसार रावण के पास विष था वह रावण की प्रार्थना पूर्ण होते ही अजेय हो जाता इत्यादि। यद्यपि यज्ञों में विघ्न करना अनुचित कार्य माना जाता है तथापि दुष्ट भावना होने से यज्ञ, तप, दान आदि सभी कर्म अधर्म हो जाते हैं।

"तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः स्वाभाविको वेदविधिर्न कल्कः।
प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्कः तान्येव भावोपहतानि कल्कः॥" (म० भा० १।१।२७५)

तप, अध्ययन, स्वाभाविक दारपरिग्रह, अग्निहोत्र आदि कर्म, उञ्छवृत्ति, शिलवृत्ति आदि पाप नहीं हैं परन्तु भावदोष से उक्त सभी कर्म पाप बन जाते हैं। रावण और इन्द्रजित् दूसरों की पत्नी, बहू-बेटियों का हरण एवं हजम करने की शक्ति प्राप्त करने के लिए ही यज्ञादि कर्म करते थे, अतः वह पाप ही था। "**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**" (जै० सू० १।१।२) सूत्र में अर्थ शब्द का ग्रहण इसी लिए है कि अनर्थ श्येनयाग आदि धर्मकोटि में न गृहीत हों। '**पशुना यजेत**' आदि वेद-वचनों में यज्ञ के उद्देश्य से पशु का आलम्भन विहित होने से पाप नहीं है। किन्तु '**शत्रुमारणकामः श्येनेनाभिचरन् यजेत्**' इस आभिचारिक श्येनयाग में शत्रुमारणरूप हिंसा उद्देश्य है विधेय नहीं है। क्योंकि वह रागप्राप्त हिंसा '**न हिंस्यात् सर्वाभूतानि**' निषिद्ध ही है। किन्तु 'पशुना यजेत' में हिंसा उद्देश्य एवं राग-प्राप्त नहीं है, विहित है, अतः वह धर्म ही है। सर्वथापि आभिचारिक कर्म पाप ही है। अतः उसका विध्वंस करना धर्म ही है। परन्तु हनुमान् द्वारा जो मन्दोदरी का सतीत्वभङ्ग आदि का वर्णन है तथा हनुमान् का यत्र तत्र स्त्रियों से विवाह या भोग आदि का वर्णन है वह सब विकृति ही है।

काश्मीरीरामायण के अनुसार रावण ने कैलास जाकर शिव की सहायता माँगी थी। शिव ने उसे मकेश्वर लिङ्ग देकर आश्वासन दिया कि इस लिङ्ग के लङ्का में स्थापित हो जाने पर राम की विजय नहीं होगी। पर इस लिङ्ग को कहीं पृथ्वी पर नहीं धरना चाहिये। मार्ग में रावण को लघुशङ्का लगी। उस मकेश्वर लिङ्ग को उसने नारद के हाथ में थमा दिया जो कि वृद्ध ब्राह्मण के रूप में आ पहुँचे थे। नारद भूमि पर लिङ्ग रखकर चले गये। रावण पुनः उस लिङ्ग को उठाने में सफल नहीं हुआ। रावण के अन्य भी कई प्रयत्न **रामकियेन** में वर्णित हैं। उन्हें पिछले प्रसङ्ग में देखना चाहिये।

पउमचरियं के अनुसार बहुरूपा विद्या सिद्ध करने के पश्चात् रावण सीता से मिलने गया। सीता ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया और सीता यह कहकर मूर्च्छित हो गयीं कि मैं तभी तक जीवित रहूँगी जब तक राम, लक्ष्मण तथा भामण्डल की मृत्यु का समाचार नहीं पाती।

रावण सीता का पातिव्रत्य देखकर दयार्द्र हो गया और सोचने लगा कि मैंने सीता का हरण कर पाप किया। परन्तु बिना युद्ध के लौटाने से अपयश होगा। अतः वह युद्ध में राम और लक्ष्मण को हराकर सीता को लौटा देने का संकल्प करता है।

तोरवेरामायण के अनुसार युद्ध के लिए प्रस्थान करने से पहले वह अपनी सारी सम्पत्ति दरिद्रों में बाँट देता है, जेल के बन्दियों को रिहा कर देता है और आदेश निकालता है कि यदि मैं युद्ध में मारा गया तो विश्वासपात्र विभीषण को गद्दी पर बैठाया जाय, अनेक परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न भावनाएँ प्राणियों के हृदय में उठती ही हैं। उक्त कथा में उन्हीं का उल्लेख हुआ है।

मर्मस्थान

अध्यात्मरामायण (६।११।५३) के अनुसार रावण की नाभि में अमृतकुण्ड था। विभीषण से यह रहस्य जानकर राम ने आग्नेय बाण से उसे सुखाया था। **आनन्दरामायण**, **रङ्गनाथरामायण** आदि में भी इसका उल्लेख है।

कृत्तिवास के अनुसार तपस्या के पश्चात् ब्रह्मा ने कहा था कि तुम्हारे सिर एवं भुजाएँ कटने पर फिर उत्पन्न हो जायेंगी और रावण को ब्रह्मास्त्र देकर कहा इसी ब्रह्मास्त्र से तुम्हारा मर्मस्थान भेदित होने पर ही मृत्यु होगी। रावण ने उसे मन्दोदरी के रक्षण में दे रखा था। विभीषण ने यह रहस्य राम को बताया। हनुमान् ने मन्दोदरी के पास ब्राह्मण वेष में जाकर कहा, जब तक ब्रह्मास्त्र तुम्हारे पास है रावण नहीं मर सकता है, किन्तु मुझे शङ्का है कि विभीषण कहीं यह जान न ले। तुमने उसे कहाँ छिपा रखा है। मन्दोदरी ने कहा मैं सावधान हूँ। मैंने उसे स्फटिक के खंभे में छिपा रखा है। हनुमान् ने लाठी से खंभा तोड़ दिया तथा ब्रह्मास्त्र राम के पास ले गये।

सेरीराम के अनुसार सीता ने हनुमान् से कहा था कि इसके पास एक मायावी खड्ग है। मन्दोदरी उसकी पूजा करती है। हनुमान् ने जाकर मन्दोदरी से रावण की मृत्यु का समाचार सुनाया। वह शोकसन्तप्त हुई। हनुमान् ने उससे लाभ उठाया और खड्ग लेकर राम को दे दिया।

विर्होरराम-कथा के अनुसार रावण का जीव मञ्जूषा में बन्द था। हनुमान् और लक्ष्मण ने मञ्जूषा लेकर उसे मुक्त किया। **रामकियेन** के अनुसार रावण का जीव उसके गुरु के पास था। हनुमान् और अङ्गद उसे छल से प्राप्त करते हैं।

ब्रह्मचक्र के अनुसार लङ्का-दहन के पश्चात् रावण ने अपना हृदय किसी ऋषि के यहाँ सुरक्षित रखा था। हनुमान् ने रावण का रूप धरकर उसे प्राप्त कर लिया।

पद्मपुराण (पातालखण्ड ११२ अध्याय) के अनुसार अतिकाय और महाकाय गुप्तचर राम की सेना में पकड़े गये। **महानाटक** तथा **रामचरितमानस** के अनुसार रावण के हृदय में सीता और सीता के हृदय में राम और राम के हृदय में विश्व था। अतः रावण जब सिर कटते-कटते व्याकुल हो सीता को भूलता है, तब हृदय में बाण मारकर राम रावण को मारते हैं।

महाभारत (३।२७४) के अनुसार रावण ने राम और लक्ष्मण का रूप धारण करनेवाले बहुत से मायामय योद्धाओं को उत्पन्न किया था। **महाभारत** (३।२७४।३१) के अनुसार ब्रह्मास्त्र से राम ने रावण को इस प्रकार जलाया था कि उसका भस्म भी शेष नहीं रहा। किसी कथा के अनुसार मन्दोदरी रावण की चिता पर सती हो गयी थी।

आनन्दरामायण (राज्यकाण्ड सर्ग २०) के अनुसार रावण-वध के बहुत काल बाद तक अयोध्या में एक आवाज सुनायी देती थी। उसका रहस्य वसिष्ठ ने बतलाया था। रावण ने जिस शरीर से बार-बार ब्रह्म-हत्या की थी, वह शरीर आज भी जल रहा है। हनुमान् उसमें सौ भार काष्ठ रोज डालते हैं। रावण ने राम से एक वर माँगा था। जिससे लोग उसे सदा स्मरण करते रहें। राम ने कहा तुम्हारे शरीर को जलानेवाली अग्नि की आवाज सप्त द्वीपों के लोगों को सुनायी पड़ेगी।

सेरीराम के अनुसार राम द्वारा पराजित तथा आहत रावण रण-भूमि में जीवित ही पड़ा था। अग्नि-परीक्षा के बाद राम अपने भाइयों के साथ मिलने जाते हैं और बात चीत भी करते हैं।

यह भी प्रसिद्ध कथा है कि राम ने लक्ष्मण को नीति सीखने के लिए रावण के पास भेजा था। पहले रावण बोला ही नहीं, लक्ष्मण लौट आये। राम ने लक्ष्मण से नम्रता से पूछने के लिए कहा। जब लक्ष्मण ने नम्रता से पूछा तब उसने कहा कि मनुष्य को चाहिये कि वह जो करना चाहता है कर ले, समय न टाले। मैंने सोचा था मृत्यु को नष्ट कर दूँ पर आज-कल करता रह गया। आज मैं मृत्यु का शिकार हो रहा हूँ। मैंने सोचा था स्वर्गधाम के लिए सीढ़ी बना दूँगा जिससे लोग बिना श्रम वहाँ पहूँच जायँ पर वह भी संकल्प टलता ही गया, पूरा न हो सका।

कहा जाता है कि रामेश्वरलिङ्ग-स्थापना के लिए सीता की अपेक्षा थी। सीता लङ्का में थी। ऋषियों की सम्मति से राम ने रावण को रामेश्वरलिङ्ग-प्रतिष्ठा कराने को बुलाया था। रावण ने सोचा बिना सीता के अकेले राम कैसे प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न करेंगे? तदर्थ वह त्रिजटा के साथ पुष्पक यान पर सीता को ले गया और राम के दक्षिणाङ्क में बैठा कर प्रतिष्ठा करायी फिर सीता को पुष्पक में बैठाया। राम ने दक्षिणा के लिए प्रार्थना की तो उसने कहा कि आप क्या दे सकते हैं। तुम्हारी अयोध्या मिट्टी की है और मेरी लङ्का सोने की है, तुम्हारे नगर में सरयू नदी है, हमारे यहाँ समुद्र है। तुम्हारे पुत्र पिता दोनों नहीं हैं; मेरे आगे पीछे अनेक पीढ़ियाँ हैं। अतः यही दक्षिणा दो कि मेरा तुम से वैर बढ़ता ही जाय। तुम्हारे स्वरूप, ऐश्वर्य तथा माधुर्य के प्रभाव से घटे नहीं।

मुक्ति

अध्यात्मरामायण (६।११।७८) के अनुसार रावण की ज्योति राम के रूप में मिल गयी थी। **विष्णुपुराण के** अनुसार सनकादि के शाप से जय और विजय को तीन जन्म तक असुर योनि में जन्म लेना पड़ता है। हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु, रावण और कुम्भकर्ण के रूप से मुक्त न होकर वे शिशुपाल और दन्तवक्त्र के रूप में कृष्ण के हाथ मरकर मुक्ति पाते हैं।

अग्नि-परीक्षा का विवेचन पीछे हो चुका है। **पउमचरियं** के अनुसार अग्नि-परीक्षा के लिए तीन सौ हाथ गहरा अग्निकुण्ड बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित की गयी। सीता ने सतीत्व की शपथ लेकर उसमें प्रवेश किया। सीता के प्रवेश करते ही अग्निकुण्ड अपने आप स्वच्छ जल से भर गया। धीरे-धीरे उमड़ कर वह सर्वत्र फैलने लगा। जनता की प्रार्थना पर सीता उसे सीमित कर देती है। सबने देखा कि बावड़ी के मध्य सहस्रदल कमल पर सीता विराजमान हैं। राम ने सीता से क्षमा याचना कर अयोध्या चलने को कहा पर सीता सब छोड़ कर विरक्त हो गयी। यहाँ जैनों की साम्प्रदायिकता की दृष्टि से सीता ने जैन दीक्षा ले ली। जो सर्वथा मिथ्या है।

कथासरित्सागर के अनुसार सीता टिट्टिभ सरोवर के तट पर जाकर सतीत्व की शपथ लेकर जल में प्रवेश करती है। पृथ्वी देवी प्रकट होकर उसे गोद में लेकर सरोवर के उस पार पहुँचा देती हैं। कहीं केवल मायासीता का ही अग्नि में प्रवेश माना गया है।

बुल्के इन सब कथाओं को विकास, कल्पना या परिवर्धन नाम देकर अवास्तविक कहते हैं। परन्तु यह भूल है कारण **वाल्मीकिरामायण** के समान ही पुराणों की परम्पराओं का भी प्रामाण्य मान्य है। अतः **वाल्मीकिरामायण**

में अनुक्त अविरुद्ध अंश का समन्वय और विरुद्ध अंश का कल्पभेद से समाधान करना उचित है। तुलसीदास का भी यही विचार है। अवश्य कई कथाओं में सीता का महत्त्व वर्णन की दृष्टि से विविध परीक्षाएँ वर्णित हैं।

भोजपुरी ग्रामगीत के अनुसार सीता ने अग्नि को हाथ में लिया वह ठंडी हो गयी। सूर्य को हाथ में लिया वह भी लुप्त हो गया। सर्प को हाथ में लिया वह फन फैलाकर बैठ गया। गङ्गा को हाथ में लिया वह सूख गयी। सब का तात्पर्य सीता की परम पवित्रता के प्रतिपादन में ही है।

अयोध्या-प्रत्यावर्त्तन

वाल्मीकिरामायण में अयोध्या-प्रत्यावर्तन के पहले ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं के द्वारा राम की स्तुति, इन्द्र का वरदान, दशरथ का आगमन, शिवजी द्वारा स्तुति आदि वर्णित है। परन्तु बुल्के उन सब को प्रक्षिप्त मानते हैं, क्योंकि उन सर्गों में राम को परब्रह्म परविष्णु रूप कहा गया है। सीता को भी साक्षात् लक्ष्मी कहा गया है।

६०४ अनु०, **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार विभीषण आतिथ्य ग्रहण की प्रार्थना करते हैं पर राम उनका संमान करते हुए भरत का चिन्तन कर के अयोध्या-यात्रा की अनुमति माँगते हैं। विभीषण द्वारा उपस्थित पुष्पक द्वारा चलते हुए सीता को संबोधित करके तत्तत् स्थानों में घटित वृत्तान्तों का वर्णन करते हैं। भरद्वाज आश्रम पहुँचकर अयोध्या का वृत्तान्त जानकर हनुमान् को गुह एवं भरत के पास भेज देते हैं। जनता भरत के साथ नन्दिग्राम में सबका स्वागत करती है। किन्तु **पउमचरियं** आदि **जैन कथाओं** के अनुसार राम और लक्ष्मण लङ्का के राजमहल में ६ वर्ष बिताते हैं। वहाँ राम और लक्ष्मण की बहुत पत्नियाँ भी होती हैं। नारद के द्वारा वर्णित अपराजिता (कौशल्या) की दीन दशा सुनकर राम साकेत की यात्रा करते हैं। किन्तु यह सब **वाल्मीकिरामायण** का ही विकृत रूप है। **रामकियेन** की युद्धसम्बन्धी अन्य कथाएँ पूर्व में ही दी गयी हैं।

वाल्मीकिरामायण (६।१२३।२३–३८) में सीता के सनुरोध से तारा आदि वानरियाँ भी पुष्पक पर बैठकर अयोध्या जाती हैं। **अध्यात्मरामायण** (६।१४।८) तथा **आनन्दरामायण** (१।१२।५६) में भी उक्त वृत्तान्त उल्लिखित है। **वाल्मीकिरामायण** तथा **आनन्दरामायण** (१।१२।४४) में कृतज्ञ सीता त्रिजटा और सरमा दोनों को अपने साथ अयोध्या ले जाती हैं। परन्तु बुल्के का यह कहना कि आदिरामायण पुष्पक के सम्बन्ध में मौन है। पूर्व में खण्डित कर दिया गया है। जैसे वानरों को किसी फोड़े की चिकित्सा की छूट देने से घाव भरने की अपेक्षा बढ़ेगा ही उसी तरह दुरभिसन्धिपूर्वक शुष्क निःसार तर्कों के आधार पर पाश्चात्यों को भारतीय ग्रन्थों की छानबीन करने की छूट देने पर कोई भी ग्रन्थ सुरक्षित नहीं रह सकता। **वाल्मीकिरामायण** के अनेकों सर्गों में पुष्पक की चर्चा होने पर भी वे आसानी से उसे अपनी धारणामात्र के आधार पर प्रक्षेप कह देते हैं।

खोतानीरामायण के अनुसार समुद्र पार करते ही सेतु को नष्ट कर दिया गया था, जिससे रामसेना का कोई भी योद्धा युद्ध छोड़कर भाग न जाय। यह **वाल्मीकिरामायण** आदि के विरुद्ध होने से अग्राह्य ही है। रावण-वध के बाद सेतुभङ्ग की बात अनेक रामायणों से सङ्गत है। **स्कन्दपुराण** (सेतुमाहात्म्य अ० ३०), **आनन्दरामायण** (१।१२।४८), **पद्मपुराण** (सृष्टिखण्ड ३५।१३५) आदि में रावणवध के बहुत काल बाद राम की लङ्का यात्रा के समय सेतुभङ्ग का वर्णन है।

लङ्का की सुरक्षा की दृष्टि

जिज्ञासादृष्टि से बहुत से लोग लङ्का-यात्रा कर सकते थे और राक्षस उन्हें प्रतिबन्ध होने पर भी खा सकते थे, अतः विभीषण की प्रार्थना से तथा **कृत्तिवास** के अनुसार समुद्र की प्रार्थना से सेतुभङ्ग किया गया था।

बुल्के कहते हैं कि यथार्थवादी वाल्मीकि के अनुसार भरद्वाज आश्रम में पहुँचकर हनुमान् को इसलिए भरत के पास भेज दिया था कि वह राम के प्रति भरत की परीक्षा ले लें, क्योंकि यह सर्वथा सम्भव था कि राज्य करते करते भरत का मन बदल गया हो—

"**कस्य नावर्तयेन्मनः**" (वा० रा० ६।१२५।१६), यदि वास्तव में भरत राज्य चाहते हैं तो राम उनका विरोध नहीं करना चाहेंगे। "**प्रशास्तु वसुधां सर्वाम्**" (वा० रा० ६।१२५।१७) पर राम की आशङ्का निर्मूल सिद्ध हुई। राम का आगमन सुनकर भरत आनन्दित हो उठे।

मैंने पहले ही लिखा है कि सम्पूर्ण ही **वाल्मीकिरामायण** का यथार्थवादी दृष्टिकोण है। कौशल्या, दशरथ, सीता, राम, लक्ष्मण आदि सभी के जिस समय अनुकूल या प्रतिकूल जैसे भी भाव उद्भूत हुए हैं, महर्षि वाल्मीकि ने उनका वैसा ही वर्णन किया है। इसी लिए यह आदिकाव्य होता हुआ आर्ष इतिहास भी है। सीताचरित्र की शुद्धि के सम्पादन में यथार्थवादी दृष्टिकोण का अत्यन्त महत्त्व था। अवधवासियों को इस यथार्थवाद से स्थालीपुलाकन्याय से सीताचरित्र की शुद्धि पर उसी दृष्टि से विश्वास करना स्वाभाविक हो गया था। दशरथ द्वारा राज्याभिषेक के पूर्व राम को शिक्षा देते समय भरत के चित्त के सम्बन्ध में शङ्का प्रकट करना तथा ननिहाल से लौटे हुए भरत से कौशल्या का प्रथम कुछ रोषपूर्ण व्यवहार तथा अरण्य में लक्ष्मण के प्रति सीता की कटूक्तियाँ भावुकों के हृदयों को प्रतिकूल लगती हैं। परन्तु सत्य घटना होने के कारण महर्षि वाल्मीकि ने उनका स्पष्ट वर्णन कर दिया। ऐसे ही यदि रावण के प्रति सीता के मन में भी कोई आकर्षण होता या किसी प्रकार की चारित्रिक त्रुटि होती तो महर्षि ने अवश्य ही उसका निःसंकोच वर्णन किया होता। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राम को भरत की भक्ति एवं सद्भावना में विश्वास नहीं था। अवश्य ही भरत की भक्ति में पूर्ण विश्वास रखते हुए भी राज्य एवं राजनीति की दृष्टि से वैसा व्यवहार अत्यन्त सङ्गत है। "**विश्वस्ते नातिविश्वसेत्**" के अनुसार विश्वस्त के प्रति देश, काल और परिस्थिति वश भावजिज्ञासा उचित ही है। किन्तु बुल्के तो यथार्थवादी दृष्टिकोण का दुरुपयोग करके **रामायण** में तात्पर्यविधया वर्णित राम की ब्रह्मरूपता को ही यथार्थ न मानकर काल्पनिक मानने लगते हैं। पर क्या इस यथार्थवादी दृष्टि से **बाइबिल** की चमत्कार की अनेक घटनाएँ अप्रामाणिक नहीं सिद्ध होंगी?

उदात्तराघव आदि अनेक नाटकों में राक्षसों के अनेक छलों का वर्णन है। एक राक्षस वसिष्ठ-शिष्य का रूप धारण कर भरत के पास आकर कहता है कि मैंने सुना है कि लक्ष्मण युद्ध में मारे गये हैं। दूसरा राक्षस नारद के रूप में आकर कहता है कि राम का देहान्त हो गया है। सीता अकेले ही अयोध्या आ गयी। एक राक्षसी सीता का रूप धारण करके पति एवं देवर की मृत्यु का समाचार सुनाती है। यह सुनकर भरत सरयू में शरीर त्यागने को प्रस्तुत होते हैं। किन्तु हनुमान् समय से पहुँचकर भरत को सही समाचार देकर वैसा करने से रोक देते हैं। एक राक्षस सुमन्त्र के रूप में राम को समाचार देता है कि भरत मरणासन्न हैं। **जानकीपरिणय** में छद्मवेशी शूर्पणखा अयोध्या में राम के देहान्त का मिथ्या समाचार फैलाती है।

बुल्के कहते हैं—युद्धकाण्ड के अन्तिम सर्ग में वाल्मीकि ने अपने काव्य का निर्वहण किया।

भरत ने राज्य लौटाते हुए कहा कि मैं चोरों आदि के कारण दुःसह राज्यभार सँभालने में असमर्थ हूँ—

"किशोरवद् गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे।
वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन्॥
दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम्।" (वा० रा० ६।१२८।३,४)

जैसे बलवान् एकाकी वृषभ द्वारा न्यस्त गुरु भार को किशोर नहीं वहन कर सकता, जैसे महान् वारिवेग से दरार पड़ने के कारण क्षरण करता हुआ भिन्न सेतु (टूटा बाँध) दुर्बन्धन होता है (कठिनाई से बाँधा जाता है) उसी प्रकार चोर आदि के कारण असंवृत राज्यच्छिद्र का संवरण करना कठिन है। परन्तु यह भरत का अनौद्धत्यमात्र है, जो बुल्के की समझ के बाहर है।

अनन्तर राम पहले ब्राह्मणों को तथा बाद में विभीषण, सुग्रीवादि वानरों को विविध सम्मान देकर निष्कण्टक राज्य करने लगे। राम ने लक्ष्मण को युवराज बनाना चाहा, किन्तु लक्ष्मण ने अस्वीकार किया, जिससे भरत युवराज बनाये गये। राम १०००० वर्ष तक राज्य करते रहे। उन्होंने अन्यान्य यज्ञों के अतिरिक्त अपने पुत्रों के साथ दस बार अश्वमेधयज्ञ सम्पन्न किया था। रामराज्य के गुणगान तथा रामायण की फलश्रुति पर वाल्मीकिकृत आदिकाव्य समाप्त हो जाता है। परन्तु इस प्रसङ्ग में भी समझ लेना चाहिये कि बालकाण्ड में तथा उत्तरकाण्ड में सोत्तर आदिकाव्य का वर्णन है। अतः आदिकाव्य की पूर्ण समाप्ति उत्तरकाण्ड की समाप्ति पर ही है।

बुल्के कहते हैं कि "उत्तरकाण्ड (सर्ग ३७–४०) में रामाभिषेक के लिए आमन्त्रित राजाओं तथा सुग्रीव, विभीषण, हनुमान् आदि की बिदाई का पुनः वर्णन है।" परन्तु उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** ही नहीं किन्तु **गीतादि** ग्रन्थों में भी अध्याय के अन्त में भावी अध्याय का सूत्ररूप में वर्णन किया जाता है। अगले अध्याय में उसकी विस्तृत व्याख्या की जाती है। अन्य काव्यों में भी यह पद्धति अपनायी गयी है।

गीता के ११ वें अध्याय के अन्त में **"मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः"** की व्याख्या १२ वें अध्याय में है।

आनन्दरामायण (१।१२।८४) के अनुसार राम भरत का आलिङ्गन करने के पश्चात् बहुत से रूप धारण कर एक ही समय सबों से मिले थे। तुलसीदासजी ने भी कहा है—

"छन महँ मिले सबहिं भगवाना। उमा मरम यह काहु न जाना।।" (रा० मा० ७।५।४)

रामकियेन (अध्याय २६) के अनुसार समुद्र पार करने के पश्चात् राम-सेना ने लङ्का के निकट पहुँचकर मायावन देखा था। राम-सेना को आकर्षित करने तथा भूमि को नीचे खींच लेने के उद्देश्य से भानुराज ने मायावन अपने सिर पर धारण किया था। हनुमान् ने उसकी माया जानकर भूमि में प्रवेश किया तथा उसे मार डाला।

हरिवंश (२।५७), **विष्णुपुराण** (५।३३) तथा **कृत्तिवासरामायण** (५।४७) के अनुसार भस्मलोचन नामक राक्षस की दृष्टि जिसपर पड़ती थी वह उसी क्षण भस्मीभूत हो जाता था। इस कारण भस्मलोचन प्रायः अपनी आँखों को चमड़े के परदे से ढके रखता था। जब रामसेना समुद्र पारकर लङ्का की ओर बढ़ रही थी तब रावण ने उसके विरुद्ध भस्मलोचन को भेज दिया। विभीषण के परामर्श से राम ने ब्रह्मास्त्र छोड़कर उसके सामने असंख्य दर्पण रख दिये जिनपर दृष्टि डालकर उसने स्वयं को देखकर अपने आपको ही जला लिया।

सेरीराम के अनुसार वीलावीस, जो रावण-पुत्र था, से राम की सेना को नष्ट करने के लिए कहा गया। वह दृष्टि से विनाश कर देता था। विभीषण के परामर्श से एक विस्तृत दर्पण पूँछ में बाँधकर हनुमान् ने उसके सामने रखा, जिसमें वह अपना प्रतिबिम्ब निहार कर मर गया।

रामकियेन (अध्याय ३१) के अनुसार सहस्रतेज नाम का राक्षस अपनी गदा के अग्रभाग से जिसकी ओर इशारा करता था वह नष्ट हो जाता था। हनुमान् अपने को वाली का दास कहकर उसके विश्वासपात्र बनकर उसकी गदा प्राप्त कर लेते हैं और उसी से सहस्रतेज के सहस्र सिरों को काटकर राम के पास आ जाते हैं। सांग

आदित्य के पास मायावी दर्पण था, जिसपर उस दर्पण का प्रतिबिम्बित प्रकाश पड़ता था वह तुरन्त मर जाता था। वह दर्पण ब्रह्मा के संरणक्ष में था। रावण ने सांग आदित्य को राम की सेना का संहार करने के लिए नियुक्त किया। अङ्गद सांग आदित्य के राज्यपाल का रूप धारणकर ब्रह्मा से वह दर्पण प्राप्त कर लेते हैं। इस तरह वह दर्पण से वंचित होकर राम के द्वारा मारा जाता है। सद्धासुर युद्ध करते समय देवताओं के आयुध अपने पास बुला सकता था। हनुमान् ने वानरों को यह आदेश दिया कि वे बादलों में छिपकर देवताओं द्वारा भेजे गये आयुधों को बीच में ही छीन लें। तब हनुमान् ने युद्ध के लिए सद्धासुर को ललकारा। सद्धासुर ने देवताओं से आयुध मँगाये। वानरों ने बीच में ही छीन लिये, जिससे हनुमान् ने उसे मार डाला।

एक अदृश्य घोड़े पर चढ़कर अदृश्य होकर विरूंचंबंग युद्ध करता था। राम ने उसके अदृश्य घोड़े को मार दिया, किन्तु वह राक्षस माया करके भाग गया। वहाँ उसकी एक वानरी से भेंट हुई, उसने उसे समुद्रफेन में छिपने का परामर्श दिया। वह वानरी एक शापित अप्सरा थी जो विरूंचंबंग की खोज में हनुमान् की सहायता करने के पश्चात् शाप से मुक्ति पानेवाली थी। उस अप्सरा की सहायता से हनुमान् ने उसका वध किया।

रावणचरित के अनुसार मैरावण ने रावण से कहा—मैं राम और लक्ष्मण को पाताल-लङ्का ले जाकर दुर्गा को बलि चढ़ाऊँगा। विभीषण ने वानरों को सावधान कर दिया। हनुमान् अपने विशाल रूप से सेना की रक्षा करने लगे, पर मैरावण पहले दो गुप्तचरों को भेज कर मायाविभीषण के रूप में सेना में जाकर मायाचूर्ण के प्रभाव से वानरों को सुला देता है एवं राम और लक्ष्मण को पेटिका में बन्द कर पाताल चला जाता है। हनुमान् सूक्ष्मरूप से पद्मनाल द्वारा जाकर द्वन्द्वयुद्ध में उसे मारकर राम और लक्ष्मण को ले आते हैं। मैरावण के प्राण राजधानी से दूर सात भृङ्गों में निवास करते थे। दुर्दण्डी नाम की राक्षसी के संकेत से हनुमान् पहले उन्हें मारते हैं। बाद में मैरावण को मारकर दुर्दण्डी के पुत्र नीलमेघ को मुक्त करते हैं। **आनन्दरामायण** (७।१४) के अनुसार शापवश अश्वनीकुमार मैरावण और ऐरावण बने हुए थे। दोनों आकाश-मार्ग से हनुमान् की बढ़ायी हुई पूँछ की परिध को पारकर निद्रामग्न राम और लक्ष्मण को ले जाते हैं। हनुमान् अपने पुत्र मकरध्वज से रहस्य जानकर कामाक्षा देवी के मन्दिर में सूक्ष्मरूप से प्रवेश करते हैं। वह देवी की वाणी में आदेश देते हैं कि जीवित ही राम और लक्ष्मण देवी के सामने लाये जायँ। इस प्रकार राम और लक्ष्मण बन्धनमुक्त होकर १०० बार दोनों को मार डालते हैं पर वे दोनों पुनः पुनः जीवित हो जाते हैं। अन्त में ऐरावण की भोगपत्नी राम उसे पत्नीरूप में स्वीकार करें इस शर्त पर बतलाती है कि मैरावण और ऐरावण के शयनागार में जो भ्रमर रहते हैं वे ही अमृत लाकर दोनों को जिला देते हैं।

हनुमान् ने उसका प्रस्ताव इस शर्त पर स्वीकार किया कि यदि उसकी पलँग राम के भार से न टूट जाय तो उसे पत्नीरूप में स्वीकार करेंगे। हनुमान् एक भ्रमर को छोड़कर सब को मार डालते हैं। उस भ्रमर को आदेश देते हैं कि वह उसकी पलँग की लकड़ी को खोखला कर दे। अन्त में राम दोनों राक्षसों को मार देते हैं तथा ऐरावण की भोगपत्नी को आश्वासन देते हैं कि वह तीसरे जन्म में कन्या कुमारी बनकर उनकी पत्नी बनेगी। हनुमान् राम को तथा मकरध्वज लक्ष्मण को लङ्का पहुँचा देते हैं।

कृत्तिवास (६।७९–८७) के अनुसार महीरावण अष्टावक्र द्वारा शापित शक्रधनु गन्धर्व था। निकषा के परामर्श से रावण ने उसे बुलाया था, किन्तु विभीषण ने पक्षी के रूप में दोनों की मन्त्रणा सुन ली और राम को सावधान कर दिया। हनुमान् अपनी पूँछ बढ़ाकर चारों ओर से सेना की रक्षा करते हैं। राम ने आकाश में विष्णु-चक्र रख दिया था। नल ने पाताल में माया का विस्तार किया। महीरावण ने क्रमशः दशरथ, कौशल्या और जनक के रूप में आकर हनुमान् को धोखा देने का असफल प्रयास किया। अन्त में वह विभीषण के रूप में प्रवेश पाकर माया-चूर्ण से राम और लक्ष्मण को निद्रामग्न करके दोनों को अपने भवन में ले गया।

हनुमान् पाताल पहुँच कर किसी वृद्धा से राम और लक्ष्मण का वृत्तान्त जानकर मक्षिका-रूप धारण कर महल में जाकर राम और लक्ष्मण को प्रणाम करते हैं। बाद में हनुमान् महामाया-मन्दिर में देवी को राम का समाचार सुनाते हैं। देवी राम और शिव की अभिन्नता का उल्लेख करती हुई महीरावण के वध का उपाय बताती है कि जब राम और लक्ष्मण देवी के सामने उपस्थित किये जायँ तो उनको महीरावण से कहना चाहिए कि हम साष्टाङ्ग प्रणाम करना नहीं जानते, हमें करके बतलाइये। जब वह साष्टाङ्ग प्रणाम करे तब उसी समय उसे मार डालना चाहिये। देवी के इस निर्देश के अनुसार ही हनुमान् ने महीरावण का वध कर दिया। बाद में महीरावण की पत्नी भी युद्ध में आती है। हनुमान् के पादप्रहार से उसके गर्भ से चार सिरवाले अहिरावण का जन्म हुआ। उसने तुरन्त हनुमान् का मुकाबला किया तथा हनुमान् के हाथ मारा गया।

सेरीराम के अनुसार रावण का पुत्र पातालमहरायन हनुमान् का रूप धारण कर वानर-सेना में प्रवेश कर जाता है और राम को मायालेप से निद्रामग्न कर अपने घर ले जाता है। हनुमान् राम की खोज में पाताल जाकर एक राजकुमारी से भेंट करते हैं। जो अपने पुत्र के स्नान के लिए जल ले जानेवाली थी। ज्योतिषियों ने कहा था कि उसका पुत्र पाताल महरायन का उत्तराधिकारी होगा, अतः महरायन ने उसे राम के साथ ही मारने का निश्चय कर दिया था। हनुमान् उसे राजा बनाने की प्रतिज्ञा करते हैं। वह हनुमान् को छिपकली के रूप में अपने जलपात्र में छिपाकर किले के भीतर ले जाती है। फाटक पर हनुमान् अपने पुत्र तुगंग से द्वन्द्वयुद्ध कर उसकी सहायता अस्वीकार करते हैं। पाताल महरायन को हराकर सोये हुए राम को लङ्का ले जाते हैं। राम तभी जागते हैं जब विभीषण उनके चेहरे पर के मायालेप को धो डालते हैं। अगले दिन राम रणभूमि में ही पातालमहरायन का वध करते है।

सेरीराम के शेलावेर पाठ के अनुसार पाताल महरायन पहले दो सेनापतियों को भेजता है। बाद में वह कीट का रूप धारण कर हनुमान् का शरीर पार कर जाता है तथा क्रमशः सुग्रीव, जाम्बवान् और विभीषण के वेश में वह सेना में घुसने का असफल प्रयास करता है। रात के पिछले पहर में वह राम को पद्मनाल के मार्ग से ले जाता है। हनुमान् की जिससे भेंट होती है वह राजकुमारी अमीर अरब (महरायन) की बहन है। वह रावण का मामा था जिसने भानजे को कैद कर रखा था।

हनुमान् पक्षी का रूप धारण कर जलपात्र में छिप जाते हैं। अमीर अरब को मार कर भानजे को राजा बनाते हैं।

रामकियेन के अनुसार मैयरब को सहमालिवन का पोता माना गया है। उसके गुरू सुमेघ ने उसका जीव मक्खी के रूप में त्रिकूट पर्वत पर छिपाया था। वह मायाचूर्ण से वानरों को सुला देता है। राम को हनुमान् के मुख से निकालकर पाताल ले जाता है। हनुमान् वहाँ जाकर अपने पुत्र मच्छानु तथा बाद में बिरक्वन नामक मैयरब की बहन से भेंट करते हैं। बिरक्वन को आदेश मिला कि वह एक हण्डा जल से भर दे; उसमें उसका पुत्र उबाला जायगा। बिरक्वन हनुमान् को पद्मतन्तु के रूप में अपने दुपट्टे में छिपाकर ले जाती है। तथा मैयरब के वध की युक्ति बताती है। हनुमान् राम के साथ लौटने के पहले बिरक्वन के पुत्र वैयविक को राजा तथा मच्छानु को युवराज नियुक्त करते हैं।

बुल्के इसी तरह की अनेक कथाओं का संकलन कर राम-कथा का परिवर्तन, परिवर्धन, विकास या कल्पना सिद्ध करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** भी परिवर्धित, विकसित तथा कल्पित कथाओं से पूर्ण है। उनकी तथाकथित आदिरामायण का कोई व्यावहारिक रूप उपलब्ध नहीं है। उनकी कल्पना ही उसका आधार है। इसी तरह कुछ लोगों की दृष्टि में उनकी आदिरामायण में भी बहुत अंश कल्पित कहे जा सकेंगे।

परिणामस्वरूप सम्पूर्ण **रामायण** के प्रति अनास्था और अविश्वास ही उत्पन्न होगा। यह सब ईसाइयत के प्रचार की भूमिका है। यही बुल्के का उद्देश्य है। वस्तुतः अनादि अपौरुषेय मन्त्र, ब्राह्मण और उपनिषद् रूप वेद परम प्रमाण है। वही रामकथा का मूल है। **वाल्मीकिरामायण** द्वारा उसी का उपबृंहण होता है। शतकोटिप्रविस्तर **रामायण**, पुराण आदि राम-कथा के भिन्न-भिन्न प्रस्थान हैं। कल्पभेद से उनमें कुछ विलक्षणताएँ भी होती हैं। अन्य अर्वाचीन भारतीय एवं अभारतीय रामायणों के वही स्रोत हैं। देश और काल के व्यवधान से उनमें **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध विकृतियाँ भी आ गयी हैं। **रामकियेन** आदि का तो अधिकांश भाग **वाल्मीकिरामायण** पर ही निर्भर है। कुछ अंशों में विकृतियाँ भी हैं। राम, लक्ष्मण, सीता, हनुमान् आदि का आदर्श वैदिक धर्म की मर्यादाओं के अनुरूप ही है।

✱

एकोनविंश अध्याय

उत्तरकाण्ड

बुल्के उत्तरकाण्ड, जो उनकी दृष्टि में प्रक्षेप है, में रावणचरित को प्रक्षेप मानते हैं। रामचरित से अलग रावण के विषय में स्वतन्त्र काव्य का कहीं निर्देश नहीं है। वैदिक साहित्य में रावण, कुबेर, विश्रवा, वैश्रवण आदि का संकेत नहीं किया गया है।

पाली **जातकट्ठवण्णना** में **वेस्सवण** (यक्षों के राजा) का बहुत स्थलों पर उल्लेख है, रावण का कहीं भी उल्लेख नहीं है, किन्तु धनेश, कुबेर, वैश्रवण आदि का उल्लेख स्वतन्त्ररूप से बहुत स्थलों पर किया गया है।

इससे यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि वैश्रवण अथवा कुबेर रावण-कथा से पूर्व ही प्रसिद्ध हो चुके थे। बाद में ही रावण के साथ उनका सम्बन्ध स्थापित किया गया है। पर बुल्के का उक्त कथन निस्सार एवं निराधार ही है। वैदिक साहित्य में कुबेर, वैश्रवण नाम हैं तो वैदिक साहित्य में राम, दशरथ, जनक आदि के नाम भी हैं ही। रावण का नाम भी **रामतापनीय** आदि उपनिषदों में है ही। **अथर्ववेद** में दशशीर्ष ब्राह्मण का भी स्पष्ट उल्लेख है। उपनिषद् भी वैदिक साहित्य ही हैं। रावण भी विश्रवा का पुत्र है, यह **रामायण** से सिद्ध ही है। रामायण वेद का ही उपबृंहण है। वेद का विवरण धर्मशास्त्र, पुराण, रामायण आदि द्वारा ही होता है। शिखा और यज्ञोपवीत का नाममात्र वेदमन्त्रों में है। परन्तु शिखा कहाँ हो, यज्ञोपवीत कैसे बने और कहाँ पहना जाय, इसका स्पष्ट निरूपण धर्मशास्त्रों से ही होता है। इसी तरह वैश्रवण, कुबेर कौन हैं ? विश्रवा कौन हैं ? उनके पिता कौन हैं ? पत्नी कौन है ? वैश्रवण के कितने भाई थे ? इन सब बातों का परिज्ञान इतिहास-पुराणों से ही होता है। तत्तद्वैदिक शाखाओं में प्रवक्ता कौन हैं ? गोत्र क्या है ? वेदाधिकारी कौन होते हैं ? इत्यादि सब बातों का पूरा परिज्ञान इतिहास-पुराण से ही संभव है। अन्यथा मिथ्या सम्बन्ध कल्पना किसने की ? किसने देखा ? इत्यादि बातों का उत्तर देना बुल्के के लिए मुश्किल हो जायगा।

बुल्के यह भी कहते हैं कि रावण के नाम से बहुत सी अर्वाचीन रचनाओं का उल्लेख मिलता है— **अर्कप्रकाश** (वैद्यक), **कुमारतन्त्र**, **इन्द्रजाल** (उड्डीश), **प्राकृतकामधेनु**, **प्राकृतलङ्केश्वर**, **ऋग्वेदभाष्य**, **रावणमेरु** आदि। **बलरामदास** के **रामायण** में माना गया है कि रावण ने वैदिक मन्त्रों का सम्पादन कर वेदों की एक नयी शाखा चलायी थी। बुल्के का यह भी कथन निस्सार है कि वे अपने मतानुसार ही इन ग्रन्थों को अर्वाचीन कहते हैं। उनके अनुसार तो वेद भी, जो लाखों वर्ष पुराने ही नहीं, किन्तु अनादि हैं, रावण की अपेक्षा अर्वाचीन ही ठहरेंगे, क्योंकि पाश्चात्य ई० पू० दो या तीन हजार वर्ष की ही वेदरचना मानते हैं। परन्तु यह मत असङ्गत है, क्योंकि वेद नित्य, अनादि और अपौरुषेय हैं। (देखिये वेद की अपौरुषेयता)। वेद के साथ ही वेदाङ्ग भी होते हैं। किसी को क्या आवश्यकता पड़ी है कि जो स्वयं **ऋग्भाष्य** लिखकर उसे रावण के नाम से प्रसिद्ध करे। वेदों की कोई नई शाखा मान्य नहीं होती है, अतः रावणनिर्मित वेदशाखा सर्वथा अप्रामाणिक है।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार रामाभिषेक के बाद तपस्वी लोग राम का अभिनन्दन करने आये थे। इसी अवसर पर अगस्त्य ने राक्षसवंश का इतिहास सुनाया था। **महाभारत** में रावणचरितवर्णन **रामोपाख्यान** के प्रारम्भ में है। **पउमचरियं** राक्षस तथा वानरों के वंश के इतिहास से प्रारम्भ होता है।

तिब्बती तथा **खोतानी रामायण**, हिन्देशिया के **सेरीराम** तथा **सेरतकाण्ड**, श्याम के **रामकियेन** में रावण-चरित का कुछ वर्णन भूमिका में ही रखा गया है।

काश्मीरीरामायण में प्रस्तुत रावणचरित की सामग्री सुन्दरकाण्ड के अन्तर्गत रखी गयी है। सुन्दरकाण्ड में लङ्का में सीता की खोज करते हुए हनुमान् रावण का वर्णन नारद से सुनते हैं।

बुल्के कहते हैं कि रावण के चरित के सम्बन्ध में प्रामाणिक काण्ड मौन हैं, परन्तु उनकी यह भ्रान्ति है। बाल और उत्तर दोनों ही प्रामाणिक काण्ड हैं। बुल्के के तथाकथित प्रामाणिक काण्ड में यदि रावणचरित होता भी तो उसे प्रक्षेप कहने में उन्हें क्या कठिनाई होती?

वाल्मीकिरामायण के अनुसार शूर्पणखा रावण की बहन है। कुम्भकर्ण और विभीषण दो भाइयों के अतिरिक्त तीसरे भाई खर का भी उल्लेख है जिसका सेनापति दूषण था। दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार रावण की माता कैकसी थी। अन्य पाठों के अनुसार रावण की माता का नाम निकषा है। (**वाल्मीकिरामायण** गौ० पा० ५।७६; प० पा० ५।७५) तथा **भागवत** (७।१।४३) में उसे केशिन कहा गया है।

बुल्के कहते हैं युद्धकाण्ड में रावण को क्षत्रिय उपाधि दी गयी है (वा० रा० ६।१०९।१९)। परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि रावण जन्मना ब्राह्मण है। युद्ध प्रधानरूप से क्षत्रिय-धर्म है। क्षत्रधर्म में प्रतिष्ठित होने के कारण ही उसे क्षत्रिय कहा गया है—

> "नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः।
> वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे॥"

क्षत्रधर्म में व्यवस्थित रणनिहत क्षत्रिय शोचनीय नहीं होता—

> "क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः।" (वा० रा० ७।१०९।१५-१८)

वे यह भी कहते हैं कि राम-कथा के विकास के साथ-साथ रावण का महत्त्व भी बढ़ने लगा था। जिससे उत्तरकाण्ड की रचना के समय तक रावण को ब्रह्मा का वंशज माना गया है। यह भी बुल्के का प्रमाद ही है। मिथ्या कल्पना को विकास कहना भी भ्रामक है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार तो रावण ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य का पौत्र एवं विश्रवा का पुत्र है। बुल्के को बतलाना चाहिये कि रावण किसका पुत्र है? और वह भी किस प्रमाण के बल से? पुराण भी **रामायण** के ही पक्ष को अङ्गीकार करते हैं।

प्रजापति ने जल की सृष्टि के बाद प्राणियों की सृष्टि की। उनको जल की रक्षा करने का आदेश दिया। उनमें से कुछ ने 'रक्षामः' कहा और कुछ ने 'यक्षामः' कहा। अतः ब्रह्मा ने क्रम से उन्हें राक्षस एवं यक्ष कह दिया (वा० रा० ७।४।९-१२)।

राक्षसों के हेति, तथा प्रहेति दो नेता थे। हेति के पुत्र विद्युत्केश से सुकेश उत्पन्न हुआ। सुकेश के माल्यवान्, सुमाली और माली तीन पुत्र हुए। तीनों ने तपस्या कर अमरत्व का वरदान पाया। विश्वकर्मा ने उनके लिए त्रिकूट पर लङ्का बना दी। **आनन्दरामायण** के अनुसार गरुड़ एक गज, ग्राह तथा गृध्र को लेकर क्षीरसागर के स्वर्णवृक्ष पर बैठे। उनके भार से वह शाखा टूट पड़ी। उसके नीचे ऋषि तप करते थे, अतः उस शाखा को भी लेकर गरुड़ ने लङ्का पहुँच कर तीनों को खा लिया। तीनों की अस्थियों का ही त्रिकूट पर्वत बन गया। वह स्वर्णशाखा पाषाण बन गयी। लङ्का-दहन के समय वह द्रवित हो गयी, अतः लङ्काभूमि स्वर्णमयी हो गयी। **रंगनाथ** के अनुसार वायु द्वारा हेमाद्रि का एक हेममय शिखर उड़कर वहाँ आ पड़ा था, वही त्रिकूट हो गया। **वाल्मीकिरामायण** (३।३५।२७-३२)

में कहा गया है कि गरुड़ के हस्ती और कच्छप को लेकर महान् न्यग्रोध पर बैठने से उसकी सौ योजन की एक शाखा टूट पड़ी थी। ऋषियों की रक्षा के लिए गरुड़ ने उस शाखा को भी लेकर सिन्धु के अनूप में एक पाद से उनका भक्षण किया था। वे तीनों राक्षस देवताओं तथा तपस्वियों को सताते थे। विष्णु ने माली का वधकर राक्षसों को परास्त किया। वे सुमाली के नेतृत्व में लङ्का छोड़कर रसातल चले गये। कुछ दिनों के बाद सुमाली अपनी पुत्री कैकसी के साथ पृथ्वी पर भ्रमण करने लगा। सुमाली ने विश्रवा के पुत्र वैश्रवण को पुष्पक पर विराजमान देखकर अपनी पुत्री को विश्रवा के पास भेजने का निश्चय किया। पिता के आदेशानुसार कैकसी विश्रवा के पास गयी। विश्रवा अग्निहोत्र कर रहे थे। उन्होंने उसे पत्नी के रूप में स्वीकार किया और कहा तुम दारुण वेला में आयी हो, अतः तुम्हारे पुत्र क्रूरकर्मा राक्षस होंगे। कैकसी के अनुनय पर अन्तिम पुत्र के धर्मात्मा होने का वरदान दिया। कैकसी ने—दशग्रीव, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण को जन्म दिया। दशग्रीव और कुम्भकर्ण लोक के उद्वेजक हुए। पर विभीषण धर्मात्मा, वेदों के अध्ययन में तत्पर, जितेन्द्रिय तथा नियताहार हुए (सर्ग ९)।

महाभारत के **रामोपाख्यान** (अध्याय २५९) में पुलस्त्य वैश्रवण के पिता बन जाने के बाद स्वयं विश्रवा का रूप धारण करते हैं तथा विभिन्न पत्नियों से रावणादि को उत्पन्न करते हैं। पुष्पोत्कटा से रावण और कुम्भकर्ण को, मालिनी से विभीषण को तथा राका से खर तथा शूर्पणखा को उत्पन्न करते हैं। **रामोपाख्यान रामायण** का ही संक्षेप है। अतः उसके अनुसार ही **रामोपाख्यान** की संगति लगानी चाहिये।

आत्मा ही पुत्ररूप में प्रकट होता है, अतः पुलस्त्य का विश्रवारूप धारण करना सङ्गत ही है। पुष्पोत्कटा आदि को कैकसी का ही रूपान्तर समझना उचित है।

कूर्मपुराण के अनुसार विश्रवा ने देववर्णिनी से वैश्रवण को, कैकसी से रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण को उत्पन्न किया था, पुष्पोत्कटा से महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व, खर तथा कुम्भीनसी को एवं वाका से त्रिशिरा, दूषण तथा विद्युज्जिह्व को उत्पन्न किया था। **सौरपुराण** (अध्याय ३०) में भी वैसी ही उत्पत्ति वर्णित है। किन्तु उसमें पुष्पोत्कटा के पुत्र खर का उल्लेख नहीं है। क्षेमेन्द्र के **दशावतारचरित** में रावणादि को पुष्पोत्कटा की सन्तान माना गया है। **आनन्दरामायण** (१।१३।२४) में विश्रवा तथा कैकसी के तीन पुत्र तथा तीन पुत्रियों का उल्लेख है—रावण, कुम्भकर्ण, क्रौञ्ची, शूर्पणखा, कुम्भीनसी तथा विभीषण।

काश्मीरीरामायण आदि के अनुसार रावण, खर, शूर्पणखा, कुम्भकर्ण, विभीषण तथा वैश्रवण सब सहोदर भाई-बहन हैं। **अद्भुतरामायण** के अनुसार सहस्रस्कन्ध रावण भी विश्रवा तथा कैकसी का पुत्र था।

वस्तुतः उपनिषदों में विभिन्न प्रकार की सृष्टि का विगान है। कहीं तेज, आप और अन्न की सृष्टि वर्णित है। कहीं आकाश, वायु, तेज, आप और पृथ्वी की उत्पत्ति वर्णित है। कहीं सीधे लोकों की सृष्टि कही गयी है। कहीं अन्य प्रकार से सृष्टि वर्णित है। यद्यपि **तैत्तिरीय** उपनिषद् के अनुसार सबका समन्वय करके आकाश आदि के क्रम से सृष्टि का निर्णय किया गया है तथापि विगान के कारण सृष्टि को मायामयी अतात्त्विक माना गया है। उसी तरह रावणादि की सृष्टि में विगान या विविधता के कारण इसे भी मायामयी मानना उचित है।

पउमचरियं के अनुसार सुकेश के माली, सुमाली और माल्यवान् पुत्र होते हैं। सुमाली का पुत्र रत्नश्रवा अपनी पत्नी कैकसी से क्रमशः दशमुख, भानुकर्ण, चन्द्रनखा और विभीषण को उत्पन्न करते हैं। वैश्रवण को यक्षपुर के राजा विश्वसेन तथा कैकसी की बहन कौशिकी का पुत्र माना जाता है। गुणभद्र के **उत्तरपुराण** में रावण के पूर्वजों की वंशावली निम्नोक्त है—सहस्रग्रीव, शतग्रीव, पञ्चाशद्ग्रीव, पुलस्त्य एवं रावण। **वसुदेवहिण्डि** में क्रमशः बलि, सहस्रग्रीव, पञ्चशतग्रीव, शतग्रीव, पञ्चाशद्ग्रीव और विंशतिग्रीव। विंशतिग्रीव की चार पत्नियाँ हैं—१—देववर्णिनी

२—वक्रा ३—कैकेयी (कैकसी) और ४—पुष्पकूट। इनसे रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, त्रिजटा तथा शूर्पणखा का जन्म होता है। जैनियों ने मनगढ़न्त ही नामों की कल्पनाएँ की हैं।

केदारखण्ड के अनुसार शिव के भद्र-सुभद्र नामक गण ही जय-विजय तथा वे ही रावण-कुम्भकर्ण हुए हैं।

काशी केदारखण्ड के अनुसार ब्रह्मा की प्रार्थना तथा श्रीशिव की आज्ञा के अनुसार श्रीगणेश सनक, वीरभद्र सनन्दन, नन्दिकेश्वर सनातन तथा कार्तिकेय सनत्कुमार नाम से ब्रह्मा के मानस पुत्र हुए थे। वे सदा पञ्चवर्षवयस्क ही रहते थे। सभी परम तत्त्वविद् तथा शिवभक्त थे। उनकी सर्वत्र ही अव्याहत गति थी। उधर भगवान् शङ्कर के ही सुभद्र और भद्र नामक गण भी भगवान् विष्णु की प्रार्थना से और शिवजी की आज्ञा से विष्णु के पार्षद हुए थे।

"सुभद्रभद्रनानानौ स्वगणौ प्राह चाह्वयन् ॥" २३-४१

यद्यपि गणों को भगवान् शिव का वियोग असह्य था तो भी शिवाज्ञा भी दुर्लङ्घ्य थी। शिवजी ने कल्प के पश्चात् सनकादि के शाप के व्याज से पुनः अपने धाम में बुला लेने का आश्वासन दिया था। सुभद्र और भद्र ने विष्णु के विरोधी बहुत से दैत्यों और दानवों को पराजित करके विष्णु के लिए विजयप्रदान किया था, इसी लिए विष्णु ने उनका नाम जय और विजय रखा था।

बहुत काल के अनन्तर शिवेच्छा से ही सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार विष्णु के दर्शनार्थ विष्णु-लोक में गये। विष्णु लक्ष्मी के साथ एकान्त में थे। जय और विजय द्वारपाल थे। उन्होंने भीतर जाने से उन्हें रोक दिया। तभी उन्होंने जय और विजय को तीन जन्म तक आसुरी योनि में जन्म लेने का शाप दे दिया। पश्चात् विष्णु सहित लक्ष्मी की प्रार्थना तथा जय और विजय की प्रार्थना से उन्हें उनके उद्धार का आश्वासन दिया। सनक ही हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद के रूप में उत्पन्न हुए थे—

"कशिपोः पुत्रभावेन प्रह्लादः सनकस्त्वभूत्।" (का० मा० २३।८)

लक्ष्मी ने आश्वासन दिया कि दूसरे जन्म में इन्हें मोहित कर के शिवाविष्ट विष्णु के द्वारा वध कराकर मैं इनका उद्धार करूँगी। तीसरे जन्म में विष्णु ने कहा मैं स्वयं इनका उद्धार करूँगा। वही सुभद्र और भद्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष, रावण तथा कुम्भकर्ण एवं शिशुपाल और दन्तवक्त्र होकर अन्त में पुनः शिवभाव को प्राप्त हो गये थे।

काशीकेदारखण्ड के अध्याय २३ के अनुसार नित्यसिद्ध ज्ञानी निर्विकार भाव से जन्मादि से भी मोहित नहीं होते हैं। शिवाज्ञा-पालनतत्पर ज्ञानी शिवभक्त कोटि कोटि जन्मों से भी उद्विग्न नहीं होते हैं।

एक बार गौरी को स्वात्मतत्त्वोपदेश करने के लिए शिव ने शिवा को आदेश दिया कि सभी प्राणियों को हटा दिया जाय। शिवा ने प्राणिमात्र कीट, पतङ्ग आदि तक को हटा दिया। एक पारावत रुग्ण था और दूर वृक्ष के कोटर में था; वह नहीं हटाया जा सका। शिव ने बतलाया कि मुझ अखण्ड चिदात्मा में संसारप्रपञ्च का अभाव रहता हुआ भी प्रातिभासिक रूप से जगत् भासमान होता है। अखण्ड चेतन ही 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों का सार है। नेति नेति इत्यादि उपनिषद्वाक्यों से स्वात्मैकवेद्य स्वानुभवमात्र चिद्घन वस्तु लक्षित होती है। वह अनादि, अनन्त, अखण्डैकसच्चिदानन्दनिर्भर है। वही शिव है, शान्त है, तुरीयातीत अद्वय हैं। सारे जगत् का कारण मिथ्या माया ही विश्ववैचित्र्य का निदान हैं। आत्मा स्वतः भासमान है, स्वतः सत्य है, स्वतः स्थितः है। वही श्रुत्यनुग्राहित सहस्रों अनुमानों से भी वेद्य है। वह स्वस्वरूप है, स्वप्रतिष्ठ है तथा भावाभावविवर्जित है—

"स्वात्मन्यभाववद्भावतत्त्वब्रह्मात्मनिर्णयम् ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थसारं चाखण्डचेतनम् ॥
नेति नेतीत्युपनिषद्बोधशीर्षनिरञ्जनम् ।
स्वात्मैकवेद्यं स्वानुभवमात्रं तद्धि चिद्घनम् ॥
अनाद्यनन्ताखण्डैकसच्चिदानन्दनिर्भरम् ।
शिवं शान्तं तुरीयांशं तुरीयातीतमद्वयम् ॥
कारणं जगतां माया मिथ्यावैचित्र्यसद्मनाम् ।
स्वतो भान्तं स्वतः सत्यं स्वतः सिद्धं स्वतः स्थितम् ॥
श्रुत्यनुग्राहिताशेषानुमानैकानुमोदितम् ।
स्वातन्त्र्यं स्वप्रतिष्ठानं भावाभावविवर्जितम् ॥"

इस प्रकार महागुरु शिव के उपदेश से गौरी देहाद्यतीत स्वानन्यभाव से शिवतत्त्व को जानकर तदनन्य हो गयीं। भावनावर्जित देहादिसंघात वासनाशून्य होकर गिर गया। कोटरस्थ पक्षी भी गुरु की महिमा से देहात्मवासना-शून्य होकर अखण्ड ब्रह्मात्मभाव को प्राप्त हो गया। उसका देहादिसंघात कोटर से नीचे गिर पड़ा। आश्चर्यचकित होकर शिव ने ज्ञानदृष्टि से सब कुछ जान लिया। लोकलीला विनोदार्थ देवी के शरीर का स्पर्श किया। देवी ने उत्थित होकर पक्षी को देखा और शिव से पक्षी को ज्ञानप्राप्ति की बात जानकर शिव से प्रार्थना की कि इसे पुनः जीवित कर दें, क्योंकि इसने आज्ञा का उल्लङ्घन किया है, अतः इसका ब्राह्मणयोनि में एक जन्म होगा। शिव-शक्ति से पक्षी जीवित हो गया। उसने गुरुदम्पति को प्रणाम कर प्रसन्नता से हँसते हुए कहा—सद्गुरु, अब अनेक कोटि जन्म भी हों तो भी मेरी कोई हानि नहीं। द्विजत्व, क्षत्रियत्व तथा कोई भी जन्म हो या त्रिमूर्ति ब्रह्मादिजन्म भी हो मैं उनसे रागवान् नहीं होऊँगा। स्वात्मानन्द गुरु की कृपा से अब मैं स्वयंभासमान आत्मा ही हूँ। पक्षी की बात सुनकर गौरी और हर दोनों ही ने जाना कि इसका ज्ञान परिपक्व हो गया है तो भी एक जन्म होगा और गर्भ में ही इसे पुनः स्वात्मसाक्षात्कार होगा। उससे कहा—तुम्हें ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया है तथापि अब्राह्मण होने से वह सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि उपनिषद्ज्ञान के लिए द्विजत्व अपेक्षित है, तस्मात् एक ब्राह्मणजन्म प्राप्त कर तुम मुक्त हो जाओगे।

"लब्धमप्यात्मविज्ञानमद्विजत्वान्न सिद्ध्यति
द्विजत्वमुपनिषदामर्थज्ञानाय कारणं मतम् ।
तस्मादेकं विप्रजन्म प्राप्य मामाप्स्यसि ध्रुवम् ॥"

सेरीराम के अनुसार ब्रह्मराजनामक इन्द्रपुर का राजा 'ब्रह्मा का वंशज था। उसके एक पुत्र का नाम चित्रवहा (विश्रवा) था। चित्रवहा ने दतिआ कूअच नामक राक्षस को परास्त कर उसकी पुत्री रक्षपन्दी से विवाह किया। उससे दशग्रीव रावण का जन्म हुआ। रावण दुराचारी था। निर्वासित होकर लङ्का पहुँच गया। इसके बाद ही कुम्भकर्ण, विनुसनम (विभीषण) तथा सूरपंदाकी (शूर्पणखा) उत्पन्न हुई।

सेरतकाण्ड में चित्रवहा इन्द्रतनी से रावण को उत्पन्न करते हैं तथा दूसरी पत्नी सुकेशी से अम्बकर्ण (कुम्भकर्ण), शूर्पणखा तथा विभीषण को उत्पन्न करते हैं।

रामकियेन (अ० ३) में चतुर्वक्त्र के पुत्र लस्तियेन (पुलस्त्य) की पाँच पत्नियों का उल्लेख है : १—सुनन्दा कुबेर की माता, १—चित्रमाली देवनासुर की माता, ३—सुवर्णमाला अशधाता की माता, ४—वरप्रभा मारण की माता तथा ५—रजता दशकण्ठ, कुम्भकर्ण, विभेक, दूषण, खर और सम्मक्खा (शूर्पणखा) की माता हुई।

पालकपालाम के अनुसार ब्रह्मा ही दशरथ की देवरानी के गर्भ में प्रवेश करके हाथ में धनुष तथा तलवार लिये जन्म लेकर रावण कहलाते हैं।

ब्रह्मचक्र के अनुसार लङ्का के महाराज की पुत्री विवाह करना अस्वीकार करती है। किसी ऋषि के यहाँ साधना करने जाती है। किसी दिन ब्रह्मा आकर उससे कहते हैं—तुम तीन पुत्रों की माँ बनोगी। उसकी नाभि तीन बार छूकर चले जाते हैं। बाद में वह ब्रह्मचक्र (रावण), कुम्भकर्ण तथा विभीषण को जन्म देती है। तीनों ब्रह्मा की सन्तान माने जाते हैं। ब्रह्मा का वर पाकर रावण पृथ्वी का सबसे बड़ा योद्धा बनना चाहता है, कुम्भकर्ण नींद माँगता है एवं विभीषण प्रज्ञा और धार्मिकता का वर माँगता है। ब्रह्मा ने रावण को आश्वासन दिया कि तुम बुद्ध तथा वानरों को छोड़कर और सबों पर विजय पाओगे। आर्ष ग्रन्थों से दूर होने के कारण इन कथाओं में अनेक विकृतियाँ आ गयी हैं।

बुल्के कहते हैं कि "**वाल्मीकिरामायण** तथा **महाभारत** में रावण और कुम्भकर्ण के पूर्वजन्म अथवा शाप के कारण उनकी राक्षसयोनि की प्राप्ति का उल्लेख नहीं मिलता।" परन्तु बुल्के को ज्ञात होना चाहिए कि बैदिक ग्रन्थों में विभिन्न ग्रन्थों के समन्वय से ही तत्त्वज्ञान होता है। भले **भारत** और **रामायण** में वैसा वर्णन न हो, परन्तु अन्य पुराणों के अनुसार यह सिद्ध ही है कि विष्णु के द्वारपाल जय और विजय शापवश हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष, रावण तथा कुम्भकर्ण एवं शिशुपाल और दन्तवक्त्र के रूप में उत्पन्न हुए थे।

पुराण सर्वाधिक प्राचीन हैं। बुल्के जैसे पाश्चात्य लोग विभिन्न ग्रन्थों की विभिन्न कथाओं के समन्वय के बिना किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते हैं। अतएव वे सब को मिथ्या कल्पना या विकास कहकर भ्रम पैदा करते हैं। सिद्धान्ततः **वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण, तन्त्र** तथा **आगमों** का समन्वय ही है। अन्य कथाओं को भी उनके अनुसार ही लगाना चाहिये। देशभेद से एक ही स्त्री या पुरुष का नामभेद सङ्गत हो जाता है। समन्वय न कर सकने के कारण ही बुल्के स्वयं भ्रान्त होकर अपने पाठकों को भी भ्रम में ही डालते हैं। वे कहते हैं कि हिरण्यकशिपु की प्राचीनतम कथाएँ जय-विजय के सम्बन्ध में मौन हैं। **महाभारत** (आदि पर्व ६१।५) में दितिपुत्र हिरण्यकशिपु का उल्लेख है। वह नृसिंह द्वारा नहीं मारा जाता। उसका पुत्र प्रह्लाद विष्णुभक्त नहीं होता। उसके भाई हिरण्याक्ष का निर्देशमात्र भी नहीं मिलता। **शान्तिपर्व** (अ० ३२६।७३) में नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का वध तथा वराह द्वारा हिरण्याक्ष का वध वर्णित है। किन्तु दोनों में किसी प्रकार के सम्बन्ध का उल्लेख नहीं है। पर बुल्के को जानना चाहिये कि जिस विषय में एक ग्रन्थ मौन है, उसका ज्ञान अन्य वचनशील ग्रन्थ से जानना चाहिये। अतएव हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु का कोई सम्बन्ध उक्त नहीं है, हिरण्यकशिपु का नृसिंह द्वारा वध नहीं हुआ, उसका पुत्र प्रह्लाद विष्णुभक्त नहीं हुआ इत्यादि उक्तियाँ बालभाषित ही हैं। आगे वे स्वयं **हरिवंश** के प्रथम पर्व (अध्याय ४१) की कथा का वर्णन करते हुए मानते हैं कि वह ११५०० वर्ष तपस्या करके देव, असुर, गन्धर्व आदि द्वारा अवध्यता का वर प्राप्त कर अत्याचार करता है। विष्णु ने नृसिंहरूप धारण कर उसका वध किया। २य पर्व के अनेक स्थलों पर (अर्थात् अध्याय २२, ४७ और ७१ में) नृसिंह द्वारा हिरण्यकशिपु का तथा वराह द्वारा हिरण्याक्ष का वध वर्णित है। अन्तिम पर्व (अ० ३६।३२) में हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दोनों को दिति का पुत्र माना गया है। प्रह्लाद ने नृसिंह का दिव्यरूप देखा था और पिता को सावधान किया था (अध्याय ४३)।

पुनः बुल्के कहते है कि **हरिवंश** में कहीं भी हिरण्यकशिपु तथा रावण में किसी सम्बन्ध का उल्लेख नहीं है। परन्तु बुल्के को इसी लिए समझ जाना चाहिये कि अल्पश्रुत अल्पज्ञ किसी एक ग्रन्थ के सहारे किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकता। **अल्पश्रुत** से वेद डरता है कि यह अल्पज्ञ मुझपर प्रहार करेगा अर्थ का अनर्थ करेगा—

"बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।"

फिर वे कहते हैं कि पहले पहल विष्णुपुराण (१। अध्याय १७–२०) में हिरण्यकशिपु एवं उसके विष्णुभक्त पुत्र प्रह्लाद के संघर्ष की कथा मिलती है और यह भी वर्णन है कि हिरण्यकशिपु ने पहले रावण पश्चात् शिशुपाल के रूप में जन्म लिया। यह उनका प्रलाप मात्र है, क्योंकि जैसे वेदों की विभिन्न शाखाएँ अनादि हैं। उनमें कोई पहली और कोई पिछली नहीं है। वैसे ही पुराण सभी अनादि हैं। उनमें कोई पहला और कोई पिछला नहीं, अतः सबका समन्वय करके यह निश्चित होता है कि हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दोनों कश्यप एवं दिति के पुत्र थे। दोनों सगे भाई थे। प्रह्लाद हिरण्यकशिपु का पुत्र था। वह महान् विष्णुभक्त था। उसकी रक्षा के लिए विष्णु ने नृसिंहरूप धारण कर हिरण्यकशिपु को मारा। हिरण्याक्ष को वाराहरूप धारण कर के विष्णु ने मारा था। वे दोनों विष्णु के द्वारपाल जय और विजय थे। सनकादि के शाप से तीन जन्म के लिए उन्हें आसुरी योनि प्राप्त हुई थी।

ये सब बातें **भागवतपुराण** (३। अध्याय १५–१९) से भी सिद्ध हैं। **ब्रह्मवैवर्तपुराण** (कृष्णजन्मखण्ड ५६।४६–४९), **पद्मपुराण** (उत्तरखण्ड २६९।४) आदि में भी यही बात स्पष्ट है।

किसी समय विष्णु के द्वारपाल चण्ड और प्रचण्ड ने लक्ष्मी को नारायण की सभा में जाने से रोका था। अतः क्रुद्ध होकर लक्ष्मी के शाप से वे दोनों राक्षस बने। नारायण ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—तुम पृथ्वी को जीत कर जय और विजय नामों से प्रसिद्ध होओगे। लक्ष्मी को सीता के रूप में जन्म लेना पड़ेगा। कहीं कहीं वृन्दा ने जय और विजय को राक्षस बनने का शाप दिया था, ऐसी कथा उल्लिखित है। इसी तरह शापों के योग भी उक्त हैं।

बालरामदास के अनुसार दुर्वासा नारायण से मिलना चाहते थे। नारायण लक्ष्मी के साथ एकान्त में थे। दुर्वासा ने हठ किया। द्वारपालों ने उन्हें गला पकड़ कर हटा दिया। उन्होंने १०० जन्मों तक राक्षस होने का उन्हें शाप दे दिया। नारायण ने उसे तीन जन्मों तक ही सीमित कर दिया। अन्य कथाएँ भी कल्पभेद से सङ्गत हैं।

शिवपुराण के अनुसार दो शिवगण नारद के शाप से रावण, कुम्भकर्ण बने थे। **वह्निपुराण** में वर्णित है कि मधु और कैटभ ही हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष बने थे। **रामचरितमानस** के अनुसार एक बार जलन्धर रावण बना था तथा किसी कल्प में रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण क्रम से पूर्व जन्म के प्रतापभानु, अरिमर्दन और धर्म-रुचि थे। **रामकियेन** के अनुसार नन्दक ने रावण के रूप में जन्म लिया, जो शिव के गणों में एक था। उसने ईश्वर से वरदान प्राप्त किया था कि वह जिसकी ओर इशारा करे वह मर जाय। उसने उक्त वर के प्रभाव से बहुत देवताओं का वध किया। अन्त में नारायण अप्सरा का रूप धारण कर नन्दक को नृत्य सिखाने लगे। जिसमें नन्दक अँगुली से अपने शरीर की ओर इशारा करके मर गया था। वही दशग्रीव बना था। अप्रतिषिद्ध अन्य मत भी अनुमत होता है। अतः **वाल्मीकिरामायण** द्वारा अप्रतिषिद्ध उक्त मत भी किसी कल्प के अनुसार सत्य है ही। ऐसे ही अन्य जैन, बौद्ध आदि ग्रन्थों में उनके पूर्व जन्म के नामान्तर भी प्रसिद्ध हैं। किन्तु उनमें साम्प्रदायादिक दुराग्रह तथा मिथ्या आडम्बरों का प्राधान्य है।

तप और वर

वाल्मीकिरामायण के अनुसार वैश्रवण ने तपस्या कर चतुर्थ लोकपाल का पद तथा पुष्पक विमान प्राप्त किया था। विश्रवा के आदेशानुसार वे लङ्का में रहते थे। वैश्रवण का वैभव देखकर विश्रवा की द्वितीय पत्नी कैकसी ने उस ओर रावण का ध्यान आकर्षित किया। दशग्रीव माता की प्रेरणा से तप करने गोकर्ण गया (वा० रा० ७।९।४७)। वहाँ तीनों भाई १०००० वर्ष तक घोर तप करते रहे। दशग्रीव प्रति हजारवर्षों के अन्त में अपना सिर

अग्नि में अर्पित करता था। उसने नौ हजार वर्ष तक नौ सिरों का अग्नि में होम कर दिया। दसवें हजार वर्ष में दसवाँ सिर काटनेवाला ही था कि ब्रह्मा संतुष्ट होकर प्रकट हुए। उन्होंने उसे सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देवताओं द्वारा अवध्य होने का वरदान दिया एवं उसके नौ सिर लौटाकर उसे कामरूपी होने का भी वरदान दिया। विभीषण ने धार्मिक होने का वर माँगा, कुम्भकर्ण ने सरस्वती की प्रेरणा से निद्रा माँग ली। रावण ने सुमाली की प्रेरणा से प्रहस्त को भेजकर लङ्का की माँग की। पिता के परामर्श से वैश्रवण लङ्का छोड़कर कैलास चले गये।

वाल्मीकिरामायण (युद्धकाण्ड अध्याय ६१) के अनुसार ब्रह्मा ने कुम्भकर्ण के अत्याचार के कारण उसे शाप दिया था कि वह छः महीने सोयेगा और एक ही दिन जागेगा। उसी दिन वह पृथ्वी पर विचरता हुआ बहुत लोगों को खा जायगा।

बुल्के कहते हैं कि **महाभारत** (३।२५९।२८) के अनुसार कुम्भकर्ण ने सरस्वती की प्रेरणा से नहीं वरन् अपनी ही तामसी दुर्बुद्धि के कारण दीर्घ नींद का वरदान माँग लिया था—

"स वव्रे महतीं निद्रां तमसा ग्रस्तचेतनः॥" (३।२५९।२८)

परन्तु इसमें कोई विरोध नहीं है। सरस्वती की प्रेरणा से ही तामसी शक्ति का विकास मानना चाहिये। अतएव **आनन्दरामायण** (१।१३।५५) में कहा गया है कि सरस्वती से मोहित होकर कुम्भकर्ण ने छः महीने की निद्रा माँगी।

कृत्तिवासरामायण के अनुसार ब्रह्मा ने कहा था कि नर और वानरों के सिवा कोई भी तुम्हें न मार सकेगा। सिर कटने पर तुम न मर सकोगे।

रावण की शिवशक्ति प्रसिद्ध है। **स्कन्दपुराण** (माहेश्वरखण्ड अ० ८) तथा **पद्मपुराण** (उत्तरख० अ० २६९) के अनुसार शिव ही रावण तथा उसके भाइयों को वर देते हैं।

पउमचरियं के अनुसार तपस्या द्वारा रावण ने ५५ विद्याएँ, भानुकर्ण ने ५ विद्याएँ एवं विभीषण ने ४ विद्याएँ सिद्ध कर लीं तथा आकाशगामिमी विद्या तीनों भाइयों ने प्राप्त की थी।

सेरीराम के अनुसार केवल रावण ने ही घोर तप किया था। अल्लाह ने नवी आदम का निवेदन स्वीकार कर रावण को चार (१ स्वर्ग, २ पृथ्वी, ३ पाताल और ४ महासागर) लोकों में राज्यस्थापन का अधिकार दिया बशर्ते कि वह न्यायपूर्वक शासन करे।

रामकियेन (अध्याय ९) के अनुसार रावण ने अपने गुरु के परामर्श से ऐसा यज्ञ किया था जिसके फलस्वरूप वह जीवित रहते हुए अपना जीवन शरीर से अलग करने में समर्थ हुआ था। रावण अपना जीव गुरु की रक्षा में छोड़कर अत्याचार करता हुआ भी अवध्य रहा।

विवाह और सन्तति

वाल्मीकिरामायण (उत्तरकाण्ड सर्ग १२) के अनुसार रावण ने मृगया के समय अपनी पुत्री के साथ टहलते हुए मय को देखा। परस्पर परिचय के बाद मय ने रावण को कन्यादान के साथ एक अमोघ शक्ति भी दी। जिससे उसने लक्ष्मण को आहत किया था।

आनन्दरामायण के अनुसार रावण ने गान द्वारा शिव को प्रसन्न कर अपनी माता कैकसी के लिए शिवलिङ्ग और अपने लिए पार्वती को माँग लिया। शिव ने सावधान करके कैकसी के लिए पूजनार्थ शिवलिङ्ग देकर कहा

कि कहीं पृथ्वी पर रख देने पर यह अटल हो जायगा। रावण लिङ्ग एवं पार्वती को लेकर चला। पार्वती ने विष्णु का स्मरण किया। विष्णु ने अपने अंग के चन्दन से सुन्दरी मन्दोदरी की सृष्टि कर उसे मय के घर धर दिया। स्वयं ब्राह्मण वेष में रावण से कहा शिव ने धोखा देकर वास्तविक पार्वती को पाताल में मय के यहाँ छिपा दिया है। यह सुनकर रावण वास्तविक पार्वती को लौटा कर पाताल जाने लगा। रास्ते में लघुशङ्का करने के लिए आत्मलिङ्ग उस विष्णुरूपी ब्राह्मण को दे दिया। देर तक लघुशङ्का होती रही। ब्राह्मण आत्मलिङ्ग को गोकर्ण में भूमि पर रख कर अन्तर्धान हो गये। रावण आत्मलिङ्ग उठाने में समर्थ नहीं हुआ तब उसने पाताल से मन्दोदरी को प्राप्त किया।

रामकियेन (अध्याय ५) के अनुसार कोई मण्डूकी चार ऋषियों के पास रहती थी। कोई गाय वहीं एक पात्र में दूध दे जाती थी। ऋषि लोग स्वयं पीकर कुछ मण्डूकी को दे देते थे। किसी दिन सर्पिणी ने अपना विष डाल दिया। मण्डूकी ने सोचा ऋषि लोग मर जायेंगे ! अतः उनके प्राण बचाने के लिए वह स्वयं दूध में कूदकर मर गयी। ऋषियों को रहस्य विदित हुआ। उन्होंने उसे दिव्य सुन्दरी युवती बनाकर ईश्वर को समर्पित कर दिया। ईश्वर ने उमा को दे दिया। रावण ने ईश्वर को प्रसन्न कर उमा को प्राप्त कर लिया किन्तु उमा स्वयं तप्त लोहप्रतिमा के तुल्य हो गयीं। रावण स्पर्श करने में असमर्थ होकर उन्हें सिर पर धारण कर ले चला। नारायण माली का रूप धारण कर उल्टे ढंग से वृक्ष का रोपण कर रहे थे। रावण माली की मूर्खता पर हँसने लगा तो माली ने कहा—तुम मन्दोदरी को छोड़कर इस तप्त प्रतिमा को सिर पर ढो रहे हो, अतः तुम हमसे भी अधिक मूर्ख हो, सुनकर रावण ने ईश्वर के पास जाकर उमा को लौटाकर मण्डो को ले लिया।

अतिकाय की माता धान्यमालिनी भी रावण की एक और पत्नी थी एवं अनेक और भी उसकी पत्नियाँ थीं। जैन कथाओं के अनुसार सुग्रीव की बहन श्रीप्रभा भी रावण की पत्नी थी। इनके अतिरिक्त ६०० विद्याधरियाँ उसकी पत्नियाँ थीं। पुत्रों में इन्द्रजित् सर्वाधिक प्रसिद्ध था। अक्षकुमार, अतिकाय आदि तथा देवान्तक, नरान्तक अन्य भी अनेक उसके पुत्र थे। पाताल का महीरावण, गङ्गामहासूरा आदि भी उसके पुत्र थे। कुछ ग्रन्थों में सीता को रावण की पुत्री माना गया है।

वाल्मीकिरामायण (सर्ग ९) के अनुसार रावण वर प्राप्त कर देव, ऋषि, गन्धर्व और यक्षों को सताता था। कुबेर ने दूत भेजकर सदुपदेश दिया, पर उसने दूत को ही मार डाला। कुबेर पर आक्रमण कर पुष्पक छीन लिया। **वाल्मीकिरामायण** उत्तरकाण्ड के अनुसार रावण ने मरुत्त, दुष्यन्त, सुरथ, गाधि, मय, पुरूरवा, अनरण्य आदि को जीत लिया। अन्त में नारद के परामर्श से उसने यम पर आक्रमण किया। यम ने रावण का वध करना चाहा, किन्तु ब्रह्मा का अनुरोध मानकर अन्तर्धान हो गये। रावण ने यमलोक जीत कर वरुणालय के वासुकि को परास्त किया। दैत्यों से सन्धि कर ली। विद्युज्जिह्व का वध कर वरुण की सेना को हराया।

रावण की अन्य विजय-यात्राएँ

रावण की अनुपस्थिति में मधु ने कुम्भीनसी का अपहरण किया। रावण ने मधु पर आक्रमण किया। किन्तु कुम्भीनसी ने रावण का स्वागत करके मधु के लिए अभयदान माँग लिया। रावण कुम्भीनसी की प्रार्थना मानकर कैलास की ओर बढ़ा। मार्ग में रम्भा के साथ बलात्कार करने के कारण नलकूबर के शाप का भागी हुआ। इन्द्रलोक में राक्षसों और देवताओं का घोर युद्ध हुआ। वहाँ सुमाली मारा गया। तब मेघनाद जयन्त को परास्त कर इन्द्र को वन्दी बनाकर लङ्का ले आया। ब्रह्मा ने इन्द्रजित् नाम देकर इन्द्र को छुड़ाया। प्रक्षिप्त सर्गों में रावण की सूर्यलोक तथा चन्द्रलोक की यात्रा भी वर्णित है।

पउमचरियं के अनुसार यम, सहस्रकिरण, इन्द्र, वरुण आदि देवता न होकर राजा ही थे, पर यह सब **वाल्मीकिरामायण** के विरुद्ध है।

वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड के अनुसार रावण कैलास के ऊपर जा रहा था तो पुष्पक अचानक रुक गया। रावण पुष्पक से उतरा, नन्दी का उपहास करके उसने कैलास पर्वत उठाया। पर्वत हिलने लगा। महादेव ने पादाङ्गुष्ठ से पर्वत को दबाया। रावण की भुजाएँ कैलास के नीचे जकड़ गयीं। वह क्रोध और पीड़ा से चिल्लाने लगा। मन्त्रियों के परामर्श से वह विविध स्तोत्रों से महादेव को सन्तुष्ट करने लगा। सहस्र वर्ष तक विलाप करता रहा तब भगवान् प्रसन्न हुए। उन्होंने दशग्रीव की भुजाएँ मुक्त कर दीं। उसका नाम रावण रखा, क्योंकि उसने पर्वत से आक्रान्त होकर दारुण राव किया था। दाक्षिणात्य पाठ के अनुसार शिव ने उसको चन्द्रहासनामक खड्ग दिया था (सर्ग १६)। उत्तरकाण्ड (सर्ग ३१) में यह भी मिलता है कि रावण सदा ही सुवर्णलिङ्ग अपने पास रखता था और उसकी पूजा करता था।

पउमचरियं के अनुसार रावण ने उस चन्द्रहासनामक खड्ग से भुजा काटकर उसकी शिराओं से वीणा का तार बनाकर जिन की स्तुति की थी। यह देखकर धरणेन्द्र मुनि ने रावण को अमोघविजया शक्ति का वर दिया था। अन्य रचनाओं के अनुसार शिव ने रावण को अपनी अँगुली से दबा लिया था। इसपर रावण ने एक सिर तथा एक भुजा मुक्त कर उस सिर से वीणा बनाकर शिव को अपने गायन से प्रसन्न किया था। इस तरह रावण को त्रिलोक पर अधिकार मिला।

रामकियेन के अनुसार एक देवता ने किसी दिन कैलास पर एक छिपकली पर इतना प्रबल प्रहार किया कि पर्वत एक ओर झुक गया। देवता कैलास सीधा करने में असमर्थ रहे। तब ईश्वर ने रावण को बुलाया। उसने कैलास को उठाकर पूर्ववत् सीधा कर दिया। वर पाकर रावण ने उमा को माँग लिया और विष्णु की माया से उसने उमा को छोड़कर मण्डो को प्राप्त किया।

बुल्के कहते हैं कि **रामायण** के प्रामाणिक सर्गों में कहीं भी रावण के प्रति किसी शाप का उल्लेख नहीं है, परन्तु शापबोधक सर्गों को अप्रामाणिक कहना सर्वथा निराधार ही है। युद्धकाण्ड (सर्ग ९४।३५) के अनुसार महादेव ने देवताओं को आश्वासन दिया था कि एक स्त्री के कारण रावण का नाश होगा। **महाभारत का रामोपाख्यान** बुल्के की दृष्टि से **रामायण** के प्रक्षेपों की कसौटी है। परन्तु उसमें भी नलकूबर के शाप का उल्लेख है। इससे स्पष्ट है कि उनकी कसौटी भी तभी तक कसौटी है जब तक उनके मत की वह पोषक है।

सुन्दरकाण्ड में त्रिजटा कहती है कि रम्भा के कारण अभिशप्त रावण किसी अनिच्छुक नारी का कुछ बिगाड़ नहीं सकता (म० भा० ३।२६४।५९)। रावण-वध के बाद राम को सीता के विषय में सन्देह होता है और उसी समय देवता प्रकट होते हैं। ब्रह्मा कहते हैं कि मैंने नलकूबर-शाप के द्वारा सीता की रक्षा का प्रबन्ध कर लिया था। नलकूबर-शाप यह था कि उसे न चाहनेवाली पराई स्त्री का सेवन करने पर रावण के सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जायँगे—

"यदि ह्यकामामासेवेत् स्त्रियमन्यामपि ध्रुवम्।
शतधाऽस्य फलेन्मूर्धा इत्युक्तः सोऽभवत् पुरा॥" (म० भा० ३।२९१।३४)

वाल्मीकिरामायण (७। सर्ग २६) में इसका विस्तृत वर्णन है। रम्भा को देखकर रावण उसपर आसक्त हुआ। रम्भा ने कहा—मैं आपकी पुत्रवधू नलकूबर की पत्नी हूँ। रावण ने कहा—अप्सराओं का कोई पति नहीं होता। बाद में नलकूबर ने कहा था—

"यदि ह्यकामां कामार्त्तो धर्षयिष्यति योषितम्।
मूर्धा तु सप्तधा तस्य शकलीभविता तदा॥"

इस प्रकार बुल्के के माने हुए युद्धकाण्ड में भी शाप का उल्लेख होने पर भी बुल्के झूठ बोलने में कितने निपुण हैं, यह पाठक विचार करें।

पउमचरियं के अनुसार रावण ही उपरम्भा का प्रेम-प्रस्ताव अस्वीकार करता है, क्योंकि अनन्तवीर्य का उपदेश सुनकर विरक्त हुए उसने परनारी के साथ रमण न करने का व्रत लिया था। जैनों और बौद्धों के अनुसार रावण पक्का धर्मभीरु जैनी या बोधिसत्त्व है। परन्तु यह सब उनके वैदिकधर्मविरोधी होने का ही दुष्परिणाम है।

वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड (सर्ग १६) के अनुसार रावण ने नन्दी को वानरमुख देखकर उसका उपहास किया था। नन्दी ने यह शाप दिया था कि तुम्हारे कुल के नाश के लिए मेरे समान रूप और बल से सम्पन्न वानर होंगे (वा० रा० ७। सर्ग १६, १७)। वेदवती का शाप भी उत्तरकाण्ड में उल्लिखित है।

उत्तरकाण्ड (सर्ग १९) के अनुसार अयोध्या के राजा अनरण्य द्वन्द्वयुद्ध में रावण द्वारा मारे गये थे। उन्होंने शाप दिया था कि इक्ष्वाकु-कुल में उत्पन्न राम तुम्हारा वध करेंगे। पुञ्जिकस्थला अप्सरा से उसकी इच्छा के विरुद्ध रावण ने रमण किया था। ब्रह्मा ने सारा हाल जानकर शाप दिया था कि आज से यदि बलात् किसी नारी का गमन करोगे तो तुम्हारा सिर शतधा फट जायगा (वा० रा० ६।१३।१४)। यह शाप भी बुल्के के मान्य काण्ड का है। फिर बुल्के किस मुँह से कहते हैं कि वाल्मीकिरामायण में शाप नहीं है। कैलास-शिखरचालन के समय उमा ने भी कहा कि स्त्रीनिमित्त से ही रावण का मरण होगा (वा० रा० ७।१६।२६)।

रावण-पराजय

महाभारत में परशुराम द्वारा कार्तवीर्य के वध का उल्लेख है (अध्याय १३३)। **हरिवंश** के अनुसार कार्तवीर्य ने उग्र तप द्वारा सहस्र भुजाएँ प्राप्त कीं और सबको जीत लिया। कीर्तवीर्य ने सेना सहित रावण को परास्त किया था और उसे बन्दी बना लिया था। पुलस्त्य ने जाकर उसे छुड़ाया। उत्तरकाण्ड (सर्ग ३४) कार्तवीर्य के कारावास से मुक्त होकर योग्य प्रतिद्वन्द्वियों की खोज में रावण पृथ्वी पर भ्रमण कर रहा था। किष्किन्धा पहुँचकर उसने सुना वाली दक्षिणी समुद्र पर सन्ध्या कर रहा है। रावण पुष्पक द्वारा वाली के पास गया। वाली रावण को अपनी काँख में दबाकर आकाश-मार्ग से पश्चिम सागर और उत्तर सागर पर गया, सन्ध्या समाप्त कर किष्किन्धा लौटा तभी उसने रावण को मुक्त किया। रावण ने वाली के पराक्रम की प्रशंसा की और उससे सख्य करने की प्रतिज्ञा की।

आनन्दरामायण (सर्ग १।१३।१००) में अङ्गद के पालने के नीचे बद्ध रावण—**"अङ्गदस्य मूत्रधाराधौताननः"** होता है। **सेरीराम** के अनुसार वाली अपने राज्य पर पुष्पक को उड़ते देख रावण पर आक्रमण करता है तथा मन्दूदा (मन्दोदरी) को छीनकर पुष्पक सहित रावण को समुद्र में फेंक देता है। मन्दूदा से विवाह कर लेता है। कुछ दिनों बाद उसने हनुमान् को आदेश दिया कि गर्भवती मन्दूदा की सेवा के लिए २४ राजकुमारियों को लायें। रावण ने वाली के गुरु के पास जाकर मन्दूदारी के हरण का समाचार बताया। गुरु ने आश्वासन दिया कि वह तुमको वापस मिल जायगी, पर तुम तपस्वियों के आश्रमों को नष्ट न करो। गुरु के अनुरोध से वाली ने कहा—वह गर्भवती है। गुरु ने गर्भ निकाल कर बकरी के शरीर में रख दिया। रावण मन्दूदा को पाकर घर चला गया।

गुरु ने हनुमान् से इन्द्रपवानम पर्वत से फूल लाने को कहा—वे समस्त पर्वत उठा लाये। गुरु ने मन्त्रों की सहायता से उन फूलों से एक मण्डूक की सृष्टि की और मण्डूक से सुन्दर स्त्री की सृष्टि की। गुरु ने उसका नाम देवीवरमाकोमाल रखा। उसे वाली को पत्नी के रूप में प्रदान किया। बकरी से उत्पन्न पुत्र का नाम अंगाद रखा गया। वरमाकोमाल ने अनूल नामक पुत्र उत्पन्न किया। अन्त में हनुमान् और वाली दोनों तप के लिए चले गये।

सेरीराम के पातानी पाठ के अनुसार रावण वाली के भवन में कैदी के रूप में रखा गया था। महासिकुल के अनुरोध से वाली ने मुक्त किया। जब अङ्गद की अवस्था दस वर्ष की थी, रावण उसे मारना चाहता था; क्योंकि अङ्गद मण्डो के अपमान का स्मरण दिलाता था। रावण छिपकर किष्किन्धा आया, किन्तु सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। वाली ने द्वन्द्वयुद्ध में उसे परास्त कर अपने यहाँ बन्दी बनाकर रखा।

उत्तरकाण्ड (सर्ग २३) के बाद प्रक्षिप्त सर्ग में रावण यमलोक से बलि के भवन पहुँचा। बलि ने रावण को बता दिया कि भवन के द्वार पर जिस श्याम पुरुष से तुम्हारी भेंट हुई थी वही विष्णु हैं। यह सुनकर रावण लड़ने गया। किन्तु ब्रह्मा के वर का ध्यान रखकर विष्णु अन्तर्धान हो गये। **दाक्षिणात्य पाठ** के अनुसार बलि ने अपने यहाँ पड़े चक्र को दिखाकर रावण से कहा, उसे उठाकर मेरे पास लाओ। रावण उसे हिलाने में समर्थ नहीं हुआ। अन्त में सारी शक्ति लगाकर उसे उठाया किन्तु मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। बलि ने कहा—यह चक्र मेरे पूर्वज का कुण्डल है तुम जिसे उठा नहीं सके। विष्णु ने उस महाशक्तिशाली को भी मार दिया था, जिसने इस कुण्डल को कान में पहना था।

अध्यात्मरामायण (सर्ग १।१३।१०७–११५) के अनुसार बलि पत्नी के साथ चौसर खेलता था। बलि के हाथ से पासा गिर गया। बलि ने रावण से उठाने को कहा, वह रावण से उठा ही नहीं। दासी ने झट उठा दिया। भवन से रावण के निकलने पर बलि के अनुचरों ने उसे पकड़ लिया। घोड़े की लीद फेंकने का रावण से काम लिया। कुछ समय बाद द्वारस्थित विष्णु से उसने प्रार्थना की। विष्णु ने उसे पादाङ्गुष्ठ से आकाश में उछाल दिया और वह लङ्का पहुँच गया।

रावण ने किसी दिन पश्चिम सागर में भीषणाकार कपिल को देखा। उनसे युद्ध करने की इच्छा की। कपिल ने प्रहार कर रावण को भूमि पर गिरा दिया और पाताल चले गये। रावण ने पीछा किया। वहाँ कपिल के समान तीन कोटि पुरुषों को देखकर वह वहाँ से शीघ्रता से निकल गया।

एक अन्य स्थल पर रावण ने शयन कर रहे विष्णु के पास बैठी लक्ष्मी को देखा। लक्ष्मी को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाना चाहा। विष्णु हँस पड़े और वह भूमि पर गिर पड़ा। विष्णु ने रावण को अभयदान दिया एवं परिचय पूछने पर अपना विराट् रूप दिखा दिया (सर्ग २३ के बाद पञ्चम प्रक्षिप्त सर्ग)।

रावण किसी दिन श्वेतद्वीप गया। वहाँ की युवतियों ने उसे लीलापूर्वक एक दूसरे के पास फेंक दिया। भयातुर रावण सागर मध्य में गिर गया। **आनन्दरामायण** के अनुसार श्वेतद्वीप की एक स्त्री ने रावण को परलङ्का तक फेंक दिया एवं वह अपनी बहन क्रौञ्चा के शौचकूपक में जा गिरा। **भविष्यपुराण** में हनुमान् द्वारा भी रावण की पराजय वर्णित है।

उत्तरकाण्ड की कथा वस्तु

वैश्रवण—विश्रवा और देववर्णिनी के पुत्र वैश्रवण का चतुर्थ लोकपाल तथा धनेश बनना एवं पुष्पक विमान प्राप्त कर लङ्का निवास (सर्ग १–३)।

प्रहेति के वंश और हेति के वंश में उत्पन्न राक्षसों का लङ्का में निवास तथा विष्णु द्वारा पराजित होकर पाताल प्रवेश। रावण का जन्म, विश्रवा और कैकसी से दसग्रीव, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषण का जन्म। तीनों भाइयों की तपस्या तथा ब्रह्मा से वरप्राप्ति (सर्ग ९, १०) रावण की आशङ्का से वैश्रवण का लङ्का त्याग तथा कैलास पर निवाम। राक्षसों का लङ्का में प्रवेश तथा मन्दोदरी के साथ रावण का विवाह (सर्ग ११–१२)।

रावण की विजय-यात्रा—वैश्रवण को पराजित कर पुष्पक-प्राप्ति (सर्ग १३–१५)। रावण को नन्दी का शाप, रावण का कैलास उठाना, शिव से रावण नाम तथा चन्द्रहास खड्ग की प्राप्ति (सर्ग १६)। वेदवती का रावण को शाप प्रदान (सर्ग १७)। रावण द्वारा अनेक राजाओं को पराजित करना तथा राजा अनरण्य का रावण को शाप देना (सर्ग १८, १९)। रावण का यम पर आक्रमण तथा ब्रह्मा द्वारा उनकी रक्षा (सर्ग २०–२२)। शूर्पणखा के पति विद्युज्जिह्व का रावण द्वारा वध तथा वरुण-पुत्रों की पराजय (सर्ग २३)।

रावण द्वारा अनेक कन्याओं और पत्नियों का हरण, नलकूबर का रावण को शाप देना (सर्ग २४–२६)। मेघनाद द्वारा इन्द्रबन्धन, देवताओं की प्रार्थना से मुक्ति और देवताओं से मेघनाद को वरप्राप्ति।

हनुमत्कथा—हनुमान् की जन्मकथा और चरित्र (सर्ग ३५,३६), सीतात्याग (सर्ग ३७), अतिथियों का प्रस्थान (सर्ग ३८–४०), नृग, निमि ययाति की कथाएँ (सर्ग ५३–५९)। शत्रुघ्न चरित (सर्ग ६०–७२), शम्बूक-वध (सर्ग ७३–८२), अश्वमेध और उसका माहात्म्य (सर्ग ८३–९०), नैमिषारण्य में अश्वमेध के अवसर पर लव-कुश का राम की सभा में रामायण का गान करना, कुशलव को सीता-पुत्र जान कर राम का वाल्मीकि के पास सन्देश भेजना, सभा के सम्मुख अपनी शुद्धि का साक्ष्य देने के लिए सीता से अनुरोध करना, सीता का शपथ-ग्रहण, पृथिवी का सीता को अपने साथ ले जाना (सर्ग ९१–९५), राम द्वारा सीता को लौटाने का पृथिवी से अनुरोध (सर्ग ९६–९८), कुश और लव द्वारा उत्तरकाण्ड का गान, सभाविसर्जन, माताओं का देहान्त (सर्ग ९९)।

विजय-यात्राएँ—भरत-पुत्रों (तक्ष और पुष्कल) के तक्षशिला, पुष्कलावती में राज्यों की स्थापना, लक्ष्मण-पुत्रों (अङ्गद और चन्द्रकेतु) के अङ्गद्वीप और चन्द्रकान्त में राज्यों की स्थापना, काल का राम को विष्णु-रूप में आने का स्मरण कराना, दुर्वासा के आग्रह से लक्ष्मण का राम और काल के पास जाना, इसके कारण, काल के साथ हुई शर्त के अनुसार राम द्वारा लक्ष्मण का त्याग और लक्ष्मण का देह त्याग कर शेषरूप में व्यक्त होना, राम का कुशावती में कुश एवं श्रावस्ती में लव को प्रतिष्ठित करना, अपने पुत्रों (सुबाहु तथा शत्रुघाती) को राज्य देकर शत्रुघ्न का अयोध्या आना, सुग्रीव और वानरों का आना, राम द्वारा विभीषण एवं हनुमान् को अमरत्व का वरदान देना, राम का अपने भाइयों सहित विष्णुरूप में तथा वानरों का अंशानुसार देवताओं में प्रवेश करना एवं नागरिकों की सगुण ब्रह्मलोक की प्राप्ति। फलश्रुति (सर्ग १०९–१११)।

उत्तरकाण्ड का विश्लेषण

उत्तरकाण्ड के विश्लेषण में बुल्के कहते हैं कि "तीनों पाठों में इतनी ही विभिन्नता है कि दाक्षिणात्य पाठ में भृगु द्वारा विष्णु को प्रदत्त शाप सीता-त्याग का कारण माना गया है।" इतनी कम विभिन्नता से भी वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इसकी रचना अन्य काण्डों के बाद में हुई थी। यद्यपि यह स्वाभाविक ही है कि अन्तिम चरित्र की रचना अन्त में होती है तथापि उनका आशय इतना ही नहीं है। उनका अभिप्राय तो यह है कि उत्तर-काण्ड महर्षि वाल्मीकि की कृति ही नहीं है। यह तो किन्हीं अन्य व्यासों ने पीछे से जोड़ दिया है। परन्तु यह कथन अशुद्ध एवं दुरभिसन्धिपूर्ण है। क्योंकि पाठों एवं टीकाकारों की परम्पराओं में बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड भी सम्मिलित हैं ही। टीकाकारों ने समानरूप से सब पर टीकाएँ भी लिखी हैं। उत्तरकाण्ड के प्रक्षिप्त होने के तर्कों का पीछे खण्डन किया जा चुका है।

बुल्के कहते हैं कि "वाल्मीकिरामायण में दो ही विस्तृत अंश हैं, जिनमें अशुद्ध श्लोकों का बाहुल्य पाया जाता है। विश्वामित्र की कथा (बालकाण्ड सर्ग ५७–६५) तथा रावणचरित (उत्तरकाण्ड सर्ग १–३६)। अशुद्धियों का बाहुल्य इन दोनों वृत्तान्तों को प्रक्षेप सिद्ध करता है।" परन्तु बुल्के के ये तर्क बिलकुल गलत हैं। वस्तुतः जिन अंशों को बुल्के अशुद्धियाँ कहते हैं वे आर्ष पाठ हैं, अशुद्धियाँ नहीं हैं। अन्यथा रघुवंश, माघ, किरात आदि में

बिलकुल अशुद्धियाँ न होने से उन्हें वेदों से भी प्राचीन मानना पड़ेगा और वेदों में वैसी अशुद्धियाँ होने से उन्हें अत्यन्त अर्वाचीन कहना होगा, परन्तु यह सब वस्तुस्थिति के बिलकुल विरुद्ध है।

'वर्धसे' के स्थान में 'वर्धसि' प्रयोग कर (१।२८ इत्यादि स्थानों में) टीकाकारों ने समाधान भी किया है। विशेषकर 'तिलक' व्याख्याकार तो महावैयाकरण नागेश भट्ट हैं। अतिथियों की पुनः बिदाई का वैसा ही समाधान है जैसा कि पहले संक्षेप में वर्णनीय विषय का वर्णन कर उसका विस्तृत रूप में पुनः वर्णन किया जाता है।

इतना ही नहीं सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड को प्रक्षेप मानकर भी उस प्रक्षेप में भी प्रक्षेप की वे कल्पना करते हैं। अतएव रावणचरित आदि को वे प्रक्षेप में प्रक्षेप मानते हैं। उनकी दृष्टि में "उत्तरकाण्ड का मूल रूप सीता-त्याग के वर्णन से प्रारम्भ हुआ होगा (सर्ग ४२–५२)। शेष सामग्री से पौराणिक कथाओं को तथा शम्बूकवध की कथा को हटाने पर जो वृत्तान्त रह जाता है वही प्रारम्भिक उत्तरकाण्ड रहा होगा। अर्थात् शत्रुघ्नचरित, कुश और लव का जन्म, राम का अश्वमेध, कुश तथा लव द्वारा रामायणगान, सीता का भूमि-प्रवेश, रामादि के पुत्रों की राज्य-स्थापना, लक्ष्मण का देहान्त, राम का स्वर्गारोहण।" परन्तु यह सब बुल्के की अटकलमात्र है। कोई ठोस आधार और प्रमाण उनकी इस कल्पना में नहीं है। परम्परा एवं टीकाएँ तो प्रचलित सम्पूर्ण उत्तरकाण्ड की प्रामाणिकता ही सिद्ध करती हैं। उत्तरकाण्ड का अर्थ ही यह है कि जो वस्तु छः काण्डों में अपेक्षित थी, उसका वर्णन किया जाय। रावण, मेघनाद आदि का जन्म, कार्य तथा हनुमान् आदि का भी जन्म तथा चरित आदि का वर्णन प्रासङ्गिक ही है। परस्पर विचारविनिमय के प्रसङ्ग में निमि, नृग, ययाति आदि का वर्णन भी अत्यन्त प्रासङ्गिक है, अतः इतने बड़े अंशों को प्रक्षेप कहना अवश्य ही साहस है। शत्रुघ्न-चरित प्रचलित **रामायण** में वर्णित ज्यों का त्यों प्रामाणिक ही है।

सौदास की कथा

वाल्मीकिरामायण उत्तरकाण्ड (सर्ग ६५) में वाल्मीकि ने शत्रुघ्न को सौदास की कथा सुनायी थी। सौदास ने मृगया के समय व्याघ्ररूपधारी दो राक्षसों को देखकर एक को मार डाला। प्रतीकार करने का संकल्प लेकर दूसरा राक्षस अन्तर्हित हो गया। कालान्तर में सौदास वसिष्ठ के नेतृत्व में अश्वमेध यज्ञ करते हैं। यज्ञान्त में राक्षस ने वसिष्ठरूप धारण कर सामिष भोजन माँगा। राजा ने तैयार करने का आदेश दिया। राक्षस नरमांस का भोजन हाथ में लेकर रसोइये के रूप में राजा के सामने उपस्थित हुआ। राजा ने अपनी पत्नी मदयन्ती के साथ यह भोजन परोस दिया। मानुष्यामिष भोजन समझ कर वसिष्ठ ने राजा को यह शाप दे दिया कि यही तुम्हारा भोजन होगा। शाप सुनकर क्रोधवश सौदास भी प्रतिशाप देने के लिए प्रस्तुत हुए, किन्तु मदयन्ती के रोकने से सौदास ने क्रोधमय शाप-जल को अपने पैर पर ही डाल दिया जिससे उसके पैर पर काले धब्बे पड़ गये। इसी लिए कल्माषपाद नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई। अन्त में राक्षस का कपट जानकर वसिष्ठ ने शाप १२ वर्ष के लिए सीमित कर दिया। फलतः १२ वर्ष के बाद कल्माषपाद शापमुक्त होकर पुनः राज्याधिकारी होकर प्रजापालन करने लगे।

विष्णुपुराण (४।४।३८–५८); **भागवत** (९।९।२०–२५) तथा **स्कन्दपुराण** (३।३।२) में भी यह कथा है। **स्कन्दपुराण** के अनुसार वसिष्ठ द्वारा सन्तति प्राप्त कर वह तपस्या के लिए बन जाता है। वहाँ ब्रह्महत्या सामने आती है। उससे मुक्ति के लिए वह तीर्थों में भ्रमण करता है। अन्त में वह गौतम के आदेशानुसार गोकर्ण में शिवलिङ्ग के दर्शन कर मुक्त होता है। **कृत्तिवासरामायण** के अनुसार वह गङ्गाजल से मुक्त होता है।

बुल्के के अनुसार "रामकथासाहित्य में इस कथा के तीन रूप मिलते हैं। कोई व्यक्ति अनजान में मांसाहार परोसने के कारण ब्राह्मण-शाप का भाजन बनता है और वह राम द्वारा मुक्त होता है। अन्तिम दो कथाओं में किसी शत्रु के षड्यन्त्र के कारण नरमांस परोसा गया था तथा तीसरी कथा के अनुसार राजा प्रतापभानु ब्राह्मणों का

कोपभाजन बनकर रामायण **का** प्रतिनायक राक्षस रावण के रूप में प्रकट होता है।" परन्तु उनकी यह कल्पना निराधार है। प्रतापभानु की कथा सौदास की कथा से सर्वथा भिन्न है। दोनों के नामों एवं रूपों में भी भिन्नता है। संसार में मांसभक्षण, सुरापान की सैकड़ों समान घटनाएँ घटती हैं। किन्तु सब की अभिन्नता नहीं कही जा सकती।

वाल्मीकिरामायण के उत्तरकाण्ड के सर्ग ५९ के अनन्तर प्रक्षिप्त सर्ग के अनुसार गौतम नामक ब्राह्मण ने किसी दिन राजा ब्रह्मदत्त के यहाँ भोजन माँगा। संयोग वश आहार में कुछ माँस पड़ गया जिससे गौतम ने राजा को गीध बन जाने का शाप दिया। राजा के विनय से गौतम ने कहा कि राम के स्पर्श से तुम मुक्त होओगे। ब्रह्मदत्त गीध बन गया। वह राम का स्पर्श कर दिव्य रूपधारी पुरुष बन गया। इस कथा का भी सौदास के साथ सम्बन्ध जोड़ना निराधार है। नामभेद तथा परिणामभेद भिन्नता के हेतु स्पष्ट ही हैं। मनुष्यमांस का निषेध सदा ही था। ज्ञानाज्ञानवश उसके प्रयोग से अनेक स्थलों पर अनर्थ संभावित हैं ही।

अध्यात्मरामायण (६।५।५–५४) तथा **आनन्दरामायण** (१।१०।२१५–२१९) में रावण के गुप्तचर शुक के पूर्वजन्म के विषय में कथा मिलती है कि शुक नामक वनवासी ब्राह्मण देवताओं का हितकारी होने के कारण राक्षसों का शत्रु बन गया। एक दिन अगस्त्य उसके आश्रम में आये तो अवसर का लाभ उठाकर वज्रदंष्ट्र नामक राक्षस ने अगस्त्य का रूप धारण कर लिया और शुक से सामिष भोजन माँगा। वज्रदंष्ट्र ने शुक की पत्नी को मूर्च्छित कर दिया और स्वयं उसी का रूप धारण कर नरमांस परोसा और अन्तर्हित हो गया। इसपर अगस्त्य ने शाप दिया कि तुम नरमांसभक्षी राक्षस बन जाओ। शुक के द्वारा कारण पूछे जाने पर मुनि ने राक्षस की करतूत जान ली और शुक को आश्वासन दिया कि राम के आगमन पर तुम रावण-दूत बनकर राम का दर्शन पाओगे। रावण को तत्त्वज्ञान का उपदेश कर परम पद पाओगे। इस कथा का भी सौदास के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

बुल्के ने सौदास या सुदास नाममात्र के आधार पर ६२१ वें अनु० में अनेक व्यक्तियों का सम्बन्ध जोड़ लिया है। ऋग्वेद के अनुसार सुदास नामक राजा के दो पुरोहित थे। विश्वामित्र और वसिष्ठ। उन दोनों में वैर उत्पन्न हुआ। वैदिक साहित्य में (विश्वामित्र की प्रेरणा से) सौदासों द्वारा वसिष्ठ-पुत्र का वध तथा यज्ञ के प्रभाव से सौदासों पर वसिष्ठ की विजय उल्लिखित हैं। यहाँ भी सुदास पुरोहित ब्राह्मण थे। सौदास राजा से उनका सम्बन्ध जोड़ना व्यर्थ है। जब वसिष्ठ और विश्वामित्र दोनों ही सुदास थे तब वसिष्ठ का सौदासों पर विजय की कहानी भी कल्पनामात्र ही है।

बृहद्देवता में अध्याय ६ में कहा गया है कि वसिष्ठ ने सुदास को राक्षस बन जाने का शाप दिया था। इसी से यह क्यों न समझा जाय कि वसिष्ठ सुदास या सुदासों से भिन्न थे।

बुल्के कहते हैं कि "इस कथा पर बौद्ध संसार में प्रसिद्ध सुतसोमजातक का प्रभाव पड़ा है। ब्राह्मण-धर्म के ग्रन्थों में सौदास की कथा के दो रूप मिलते हैं। एक **महाभारत** का रूप, जिसमें वसिष्ठ दूसरों द्वारा अभिशप्त सौदास को मुक्त करते हैं और दूसरा **रामायण** का रूप जिसके अनुसार वसिष्ठ ने सौदास को राक्षस बन जाने का शाप दिया था। दोनों में समान रूप से यह तत्त्व विद्यमान है कि नरमांसाहार प्रदान करने के कारण सौदास को १२ वर्ष तक राक्षस बनना पड़ा था।" सौदासीय कथा के रूपान्तर भी मिलते हैं। जिनके द्वारा राम का महत्त्व तथा उनकी दयालुता का भी प्रतिपादन है।

महाभारत और **रामायण** के दोनों सौदासों पर विचार आगे किया जायगा। दोनों में तुल्यता होने पर भी उसका आधार बौद्ध साहित्य नहीं माना जा सकता है, क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से **महाभारत** और **रामायण** दोनों ही बौद्ध साहित्य के पूर्ववर्ती हैं। बुद्ध के जन्म से बहुत पहले **महाभारत** की रचना हो चुकी थी। रामायण तो

बुद्ध एवं बौद्ध साहित्य से लाखों वर्ष पहले निर्मित हो चुकी थी। यह इतिहास-विवेचन में देखें। इसके अतिरिक्त बौद्ध साहित्य के महासुतसोम की इनसे भिन्नता भी है।

६२२ वें अनु० में सुतसोम के सम्बन्ध में कहा गया है कि सुतसोम इन्द्रप्रस्थ के राजा कौरव्य का राजकुमार था। जो तक्षशिला में ब्रह्मदत्त के रूप कल्माषपाद का सहपाठी था। बाद में अपने पिता के स्थान पर राजा बन गया था। कल्माषपाद भी वाराणसी का राजा था। वह पूर्व जन्म में नरभक्षक यक्ष था। अतः वह प्रतिदिन मांस खाता था। किसी दिन कुत्ते राजा का मांसाहार ले गये। रसोइये ने मनुष्य मांस बनाकर परोस दिया। राजा ने उसे पसन्द किया। तब रसोइये ने रहस्य खोला। राजा ने प्रतिदिन के लिए नरमांस तैयार करने का आदेश दिया। राजा ने सब कैदियों को खा लिया। बाद में नागरिकों का भी वध होने लगा। जनता में खलबली मच गयी। रसोइया रँगे हाथ पकड़ा गया। उसने कहा—राजा को नरमांस अपेक्षित होता है। राजा तथा रसोइया दोनों निर्वासित कर दिये गये। राजा वन में मनुष्य-वध किया करता था और रसोइया उनका मांस भूनकर परोसता था। किसी दिन राजा रसोइये को भी खा गया। एक ब्राह्मण के अपहरण के कारण लोगों ने राजा का पीछा किया। राजा के पैर में चोट आ गयी। राजा ने एक वृक्ष-देवता से यह प्रतिज्ञा की कि अच्छा होने पर मैं तुम्हें भारतवर्ष भर के १०१ राजकुमारों को अर्पित करूँगा। सात दिन भोजन न करने के कारण उसका घाव भर गया। उसने समझा कि यह देवता की कृपा है। वह पूर्व जन्म के अपने साथी यक्ष से मन्त्र पाकर शीघ्रगामी यक्ष बन गया और उसने एक सौ राजाओं को कैद कर लिया। इसके बाद उसने देवता के आदेश से सुतसोम को भी पकड़ लिया। सुतसोम ने उन दिन पूजा करते समय किसी ब्राह्मण को आश्वासन दिया था कि स्नान से लौटकर आपकी बात सुनूंगा, इसलिए उसने नरभक्षक से निवेदन किया मुझे ब्राह्मण के प्रति अपनी प्रतिज्ञा पूरा करने का अवसर दिया जाय। नरभक्षक ने उसे अनुमति दे दी। सुतसोम ब्राह्मण के पास जाकर चार गाथाएँ सीखकर और बदले में उसे चार हजार मुद्राएँ देकर कल्माषपाद के पास लौटा। वह इन चार गाथाओं को सुनकर प्रसन्न हुआ और उसने सुतसोम से चार वर माँगने को कहा। सुतसोम ने कहा १. मैं आपको सौ वर्ष तक जीवित देखना चाहता हूँ। २. आप उन एक सौ राजकुमारों को न खायें। ३. आप उनका राज्य वापस कर दें। ४. आप नरभक्षण त्याग दें। दोनों में देर तक वार्तालाप होता रहा। फलतः कल्माषपाद ने अपनी आदत को छोड़ना स्वीकार कर लिया। राजकुमारों को छोड़ दिया और उनके राज्य भी वापस दे दिये। जिस स्थान पर नरभक्षक का हृदय-परिवर्तन हुआ, वहाँ कम्मासदम्म नामक नगर बस गया।

बौद्ध साहित्य की परवर्ती रचनाओं में मांसाहारी कल्माषपाद को तथा सौदास को अभिन्न माना गया है और सौदास के मांसाहारी बनने का कारण यह बताया गया है कि वह सिंहिनी की सन्तान था। कथा का यह रूप जातकमाला के **सुतसोमजातक**, **लङ्कावतारसूत्र**, **सिंहसोदासमांसभक्षणनिवृत्ति** के चीनी अनुवाद, **भद्रकल्पावदान** आदि में सुरक्षित है। जैनी ग्रन्थों में इसकी चर्चा है (**पउमचरियं** २२।७२-९५)।

महाभारत अश्वमेधपर्व (अध्याय ५६–५८) में सत्यसन्ध उत्तंक तथा सौदास के विषय में जो कथा मिलती है उसपर बौद्ध जातक की छाप स्पष्ट है। किन्तु बुल्के का यह अनुमान सही नहीं है कि बौद्ध साहित्य का प्रभाव **रामायण** या **महाभारत** पर पड़ा है। जैसा कहा जा चुका है कि **महाभारत** और **रामायण** उससे पूर्ववर्ती हैं। बौद्ध-कथा तो अहिंसा एवं मांसभक्षणनिवृत्ति के उद्देश्य से लिखी गयी है। वह ऐतिहासिक ही हो यह आवश्यक नहीं है। सुखावबोधार्थ आख्यायिकाएँ कल्पित भी होती हैं। कल्माषपाद नाम और नरमांसभक्षण तुल्य होने पर भी **रामायण** के अनुसार यह अनजान में हुए अपराध के कारण वसिष्ठ-शाप से १२ वर्ष के लिए राक्षस हुआ था। उसके कल्माषपाद होने का हेतु भी क्षमा एवं सहिष्णुता का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। उसके विपरीत **सुतसोमजातक** के कल्माषपाद की

कथा में कहीं अधिक नरमांसभक्षण की उद्दाम प्रवृत्ति है। दोनों कथाओं में एकता का परिचायक कोई सूत्र नहीं है। बौद्धों का कल्माषपाद सौदास से भिन्न है। विकासवाद एवं ऐतिहासिकों के अनुसार विकसित कथा को नवीन एवं संक्षिप्त को प्राचीन माना जाता है। क्योंकि पूर्व की बातों को जानकर और परिष्कृत एवं रोचक बनाकर उनका निरूपण करना उत्तर वक्ता के लिए स्वाभाविक ही है। **रामायण** और **महाभारत** दोनों की अपेक्षा बौद्धों की कथा कहीं अधिक विकसित है, अतः उसकी नवीनता ही सिद्ध होती है।

महाभारत आदिपर्व (अध्याय ११६–१६८) के अनुसार राजा कल्माषपाद किसी दिन मृगया के समय वन में वसिष्ठपुत्र शक्ति से मिलते हैं। मार्ग देने के प्रश्न पर विवाद छिड़ जाने पर राजा शक्ति पर कोड़े का प्रहार करते हैं। जिस पर शक्ति राजा को पुरुषाद बन जाने का शाप देते हैं। दोनों का विवाद सुनकर वसिष्ठ का अनर्थ चाहनेवाले विश्वामित्र किंकर राक्षस को आदेश देते हैं कि वह कल्माषपाद के शरीर में प्रवेश करे। बाद में किसी दिन एक ब्राह्मण ने कल्माषपाद से सामिष भोजन माँगा। राक्षसग्रस्त राजा ने अन्य मांस अप्राप्त होने के कारण ब्राह्मण को नरमांस खिलाने का आदेश दिया। पाचक ने वैसा ही किया, जिससे ब्राह्मण ने शक्ति के शाप का स्मरण दिलाकर राजा को पुरुषाद बनने का पुनः शाप दिया। राक्षस के आवेश तथा उपर्युक्त दो शापों के कारण कल्माषपाद वास्तव में नरभक्षक बन गया। उसने सर्वप्रथम शक्ति का ही भक्षण किया। अनन्तर विश्वामित्र के आदेश से किंकर राक्षस ने राजा को वसिष्ठ के १०० पुत्रों को खाने के लिए प्रेरित किया। पुत्रों की मृत्यु से वसिष्ठ आत्महत्या का असफल प्रयत्न करते हैं। बहुत समय बाद वन में कल्माषपाद वसिष्ठ के सामने आता है। अभिमन्त्रित जल द्वारा वसिष्ठ राक्षसत्व एवं शापों से उसे मुक्त कर देते हैं। इतना ही नहीं कल्माषपाद की प्रार्थना पर उसके लिए सन्तति भी उत्पन्न करते हैं। १२ वर्ष तक गर्भधारण करने के बाद अश्म से उदर खोलने से उसका जन्म होने से उसका नाम अश्मक हुआ।

बुल्के कहते हैं कि "वैदिक साहित्य में वसिष्ठ और विश्वामित्र का वैर प्रसिद्ध है। **महाभारत** की और वैदिक साहित्य की कथा में मुख्य अन्तर यह है कि **महाभारत** के अनुसार वसिष्ठ शाप नहीं देते उल्टे वह कल्माषपाद को शाप से मुक्त कर देते हैं। अतएव कल्माषपाद के राक्षस बनने के शक्ति का शाप, किंकर राक्षस का प्रवेश एवं नरमांसाहार देने के कारण किसी ब्राह्मण का शाप इत्यादि अन्य कारण बताये गये हैं। अन्तिम कारण में **सुतसोमजातक** का प्रभाव देखा जा सकता है। सुतसोम में साधारण मांस के अभाव में राजा को नरमांस परोसा जाता है जैसा कि यहाँ अन्य मांस अप्राप्य होने से ब्राह्मण को नरमांस दिया जाता है।" परन्तु यह भी सङ्गत नहीं है, क्योंकि प्रमेयत्व और वाच्यत्व रूप से तो सर्वत्र साम्य होता ही है, पर कथा में वह सादृश्य अभेद का प्रयोजक नहीं होता। **सुतसोमजातक** एवं **महाभारत** की परस्पर अत्यन्त विलक्षणता उसकी भिन्नता ही सिद्ध करती है। "**आत्मा वै पुत्रनामासि**" आत्मा ही पुत्र होता है। इस दृष्टि से वसिष्ठ-पुत्र शक्ति का शाप भी वसिष्ठ का ही शाप माना जा सकता है। वसिष्ठ शापमुक्त होने की बात तो **रामायणसम्मत** है ही। वैदिक साहित्य का सौदास या सुदास पुरोहित होने से ब्राह्मण है। **रामायण तथा महाभारत** का सौदास क्षत्रिय राजा है। **सुतसोमजातक** का कल्माषपाद तो सौदास से भिन्न ही है। परवर्ती कथाओं में उन दोनों का अभेद पूर्णतया विरुद्ध होने से काल्पनिक ही है।

बुल्के कहते हैं कि "**बृहद्देवता** के अनुसार वसिष्ठ ने सौ पुत्रों के वध के कारण सुदास को शाप दिया था। किन्तु **महाभारत** में सौदास शापग्रस्त होने के पश्चात् ही वसिष्ठ-पुत्रों का भक्षण करता है जैसा कि **सुतसोमजातक** में कल्माषपाद नरभक्षक बनने के बाद ही १०१ राजाओं का बलिदान तैयार करता है। जातक में बोधिसत्त्व सुतसोम नरभक्षक को उपदेश देकर व्यसन छोड़ने को प्रेरित करता है। जैसा कि **महाभारत** के अनुसार वसिष्ठ अभिमन्त्रित जल से कल्माषपाद को मुक्त करते हैं। इस प्रकार **महाभारत** की कथा पर सुतसोम की गहरी छाप है।" परन्तु यह भी संगत नहीं, क्योंकि कहा जा चुका है कि **महाभारत** प्राचीन है। **सुतसोमजातक** उसकी अपेक्षा अर्वाचीन है। इसके अतिरिक्त **महाभारत** का कल्माषपाद शाप आदि वश ही नरभक्षक बनता है, किन्तु सुत-

सोम का कल्माषपाद प्राचीन संस्कार वशात् पहले मांसभक्षक और फिर शाप आदि के बिना ही नरभक्षक बनता है। **महाभारत** का कल्माषपाद १०० ब्राह्मणों को खाता है, किन्तु सुतसोम जातक का कल्माषपाद देवता को बलिदान करने के लिए १०१ राजकुमारों को बटोरता भर है, खाता नहीं और बाद में उनको छोड़कर उनका राज्य लौटा देता है। महाभारत का कल्माषपाद शाप से एवं राक्षसावेश से नरभक्षक बनता है और अभिमन्त्रित जलप्रोक्षण कर वसिष्ठ के अनुग्रह वश मुक्त होता है। जातक का कल्माषपाद सुतसोम के उपदेश से ही आदत छोड़ता है। इस तरह दोनों में महान् अन्तर है। **सुतसोमजातक** का आख्यान लौकिक स्वाभाविक होने से भी अर्वाचीन प्रतीत होता है, किन्तु **महाभारत** और **रामायण** के दोनों आख्यान वर, शाप आदि अलौकिकता से सम्बन्ध रखते हैं, अतः वे प्राचीन हैं। **महाभारत** और **रामायण** की कथा संक्षिप्त है तथा **सुतसोमजातक** की कथा सविस्तर है। इस तरह दोनों में महान् अन्तर है। वेद के उपबृंहणार्थ ही **महाभारत** तथा **रामायण** का आविर्भाव है, अतः वैदिक साहित्य की कथा से उनका मेलजोल हो सकता है। **बृहद्देवता** की कथा का सुतसोमजातक की कथा से साम्य नहीं है, यह बुल्के भी मानते हैं।

महाभारत में दो शापों का उल्लेख है। बुल्के कहते हैं कि "कल्माषपाद नाम का वैदिक साहित्य में सर्वथा अभाव है। **महासुतसोमजातक** गाथा ४७२, **महाभारत** तथा **रामायण** तीनों में समानरूप से मिलता है। इनमें **सुतसोमजातक** सबसे प्राचीन है। अतः पहले पहल यह नाम बौद्ध साहित्य में ही प्रयुक्त हुआ है। **महाभारत**, **रामायण** तथा पुराणों में सौदास, मित्रसह तथा कल्माणपाद तीनों नाम दिये हैं", पर यह सभी कुशकाशावलम्बन है। **महाभारत** और **रामायण** की बुद्ध से भी प्राचीनता सिद्ध की जा चुकी है। **हरिवंशपुराण** भी **महाभारत** समकालीन ही है। उसमें स्पष्ट उल्लेख है—

"सुदासस्य सुतस्त्वासीत् सौदासो नाम पार्थिवः।
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा॥" (हरिवं० १।१५।२१)

अतः बुल्के का यह कहना "एक दीर्घकालीन विकास के अन्त में सौदास की कथा भक्तवत्सल भगवान् राम के गुणगान में परिणत हो गयी।" कथमपि सङ्गत नहीं है, अवश्य ही सौदास की कथा प्राचीन ही नहीं अतिप्राचीन है। परन्तु वह अतिप्राचीन काल से ही **रामायण** के अन्तर्गत होने से राम गुणगान के रूप में स्वीकृत है, पर बुल्के के विकासक्रम से नही। **महाभारत**, **रामायण** तथा **पुराण** सभी वेद के उपबृंहणार्थ ही निर्मित हैं। अतः वैदिक साहित्य से ही उनका सम्बन्ध है। किञ्चित् भेद होने पर कल्पभेद से समाधान है ही।

आश्चर्य है कि बुल्के वेद में आनेवाले राम, सीता, दशरथ, जनक आदि का सम्बन्ध **रामायण** के राम, सीता, दशरथ आदि से मानने में आनाकानी करते हैं। **वेदप्रातिशाख्य** के वाल्मीकि से **रामायण** के वाल्मीकि का सम्बन्ध वे नहीं मानते हैं। वैदिक सौदास से **सुतसोमजातक** के सौदास का अत्यन्त वैलक्षण्य होने पर भी वे यथा-कथञ्चित् बादरायणसम्बन्ध-स्थापना का हठ करते हैं। '**किमाश्चर्यमतः परम्**।'

शम्बूक-वध

६२८ वें अनु० में शम्बूक-वध के सम्बन्ध में उत्तरकाण्ड के अनुसार कहा गया है कि राम नारद से यह जान लेते हैं कि एक शूद्र का तपस्या करना ही ब्राह्मण-पुत्र की अकाल मृत्यु का हेतु है। राम पुष्पक पर आरूढ़ होकर शूद्र का पता लगाकर उसका वध करते हैं। राम के इस कार्य से वह स्वर्ग प्राप्त न कर सकेगा। इस कथन का इतना ही अभिप्राय है कि शम्बूक जो सदेह स्वर्ग प्राप्त करना चाहता था वह न कर सकेगा। किन्तु राजदण्ड से मृत्यु प्राप्त कर तो वह स्वर्गभागी होगा ही, अतः इसका अन्य वचनों के साथ समन्वय ही है, विरोध नहीं है। राम मृत पुत्र के पुनर्जीवन का वरदान माँग लेते हैं। अगस्त्य राम को श्वेत राजा और दण्डकारण्य की कथा सुनाते हैं।

पद्मपुराण (सृष्टिखण्ड अध्याय ३२।८९ तथा उत्तरखण्ड अध्याय २३०।४७) में भी देवताओं के वरदान से द्विज-पुत्र के जीवित होने का उल्लेख है। **महाभारत** शान्तिपर्व में कहा गया है कि—

"श्रूयते शम्बुके शूद्रे हते ब्राह्मणदारकः।
जीवितो धर्ममासाद्य रामात् सत्यपराक्रमात् ॥" (म० भा० १२।१४९।६२)

इसमें देवताओं के वरदान से नहीं किन्तु राम के धर्म से द्विजपुत्र का पुनर्जीवन होना माना गया है। वस्तुतः बुल्के समन्वय की बात सोचते ही नहीं। उन्हें सर्वत्र विरोध ही दिखायी देता है। अन्यथा देवताओं के प्रसाद या धर्म से पुनर्जीवन में विरोध ही क्या है। धर्म भी तो देवता-प्रसाद का साधन है, अतः राम के धर्म से देवता-प्रसाद और उससे द्विजपुत्र का पुनर्जीवन होने में विरोध का लेश भी तो नहीं है। यही श्लोक इस बात का भी परम प्रमाण है कि रामायण महाभारत की अपेक्षा अति प्राचीन है। अतः रामकथा पर कृष्णकथा का प्रभाव अथवा महाभारत के रामोपाख्यान को वाल्मीकिरामायण का मूल मानना सर्वथा भ्रान्ति ही है।

कालिदास के **रघुवंश** एवं **उत्तररामचरित** के अनुसार शम्बूक-वध के द्वारा ही ब्राह्मण पुत्र पुनर्जीवन प्राप्त करता है—

"कृतदण्डः स्वयं राज्ञा लेभे शूद्रः सतां गतिम्।
तपसा दुश्चरेणापि न स्वमार्गविलङ्घिना ॥" (र० वं० १५।५३)

राजा के द्वारा दण्ड दिये जाने के कारण शूद्र को उत्कृष्ट सद्गति मिल गयी, जो कि स्वमार्गविपरीत दुश्चर तप से भी नहीं मिल सकती थी।

उत्तररामचरित के अनुसार शम्बूक, वध के बाद, दिव्य रूप में प्रकट होकर राम से कहता है, मैं आपके प्रसाद से शाश्वत पद प्राप्त करूँगा।

बुल्के कहते हैं कि परवर्ती राम-कथाओं में देवताओं के वरदान का उल्लेख नहीं है, किन्तु राम द्वारा शम्बूक-वध की क्रिया ही ब्राह्मण-पुत्र के पुनर्जीवन एवं शम्बूक की स्वर्गप्राप्ति दोनों घटनाओं की कारण मानी गयी है।

किन्तु बुल्के यह नहीं समझते कि मीमांसकों के अनुसार कर्म ही फल देता है। उत्तरमीमांसा के अनुसार देवताप्रसाद द्वारा कर्म फल देता है। परिणाम दोनों का एक ही है। देवताओं का वरदान भी सत्कर्म द्वारा होता है। इसी लिए कहा गया है कि—

"कर्मप्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा ॥" (रा० मा० २।२७।२)

अतः प्रकृत में दोनों का समन्वय ही है।

आनन्दरामायण के अनुसार मृत ब्राह्मण-बालक के माता-पिता को प्रीतिपूर्वक कहा गया था कि यदि उनका पुत्र पुनर्जीवित न होगा तो उन्हें कुश और लव मिल जायेंगे। ब्राह्मण ही नहीं अयोध्या में पाँच शव और एकत्रित हो गये थे : एक क्षत्रिय, एक वैश्य, एक तेली, एक लुहार की पुत्र-वधू एवं एक चमार। राम ने जैसे शूद्र को मारा सब जीवित हो गये। राम ने पहले शूद्र को वरदान दिया। उसने अपने उद्धार के अतिरिक्त अपनी जाति के लिए सद्गति माँगी। राम ने रामनाम का जप और कीर्तन शूद्रों की सद्गति का उपाय बताया। यह भी कहा कि शूद्र लोग आपस में मिल कर एक दूसरे से मिलते हुए नमस्कार के रूप में राम राम कहेंगे। इसी से उनका उद्धार होगा। तुम भी मेरे हाथ से मरकर वैकुण्ठ जाओगे।

कुछ अनभिज्ञ इसे राम की क्रूरता कह सकते हैं और स्वयं राम भी अपने दक्षिण हाथ को क्रूर कहते हैं—हे दक्षिण हस्त ! तुम ब्राह्मण-पुत्र के जीवन के लिए शूद्र मुनि पर कृपाण चलाओ, कतराते क्यों हो, तुम तो उस राम के बाहु हो जिसने निर्भरगर्भखिन्ना सीता के निर्वासन में अपनी पटुता दिखायी थी, फिर तुम्हें करुणा कैसी ?

"हे हस्त दक्षिण मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम् ।
रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ।।" (उ० रा० च०)

वेदादि शास्त्रोक्त कर्म ही धर्म है । यह—

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।" (गीता १६।२४)
"चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ।" (मी० द० १।१।१२)

आदि से स्पष्ट है । तदनुसार चातुर्वर्ण्यधर्म के विपरीत आचरण अधर्म है । राम ने शम्बूक शूद्र को ही नहीं धर्मविपरीत ब्राह्मण रावण को भी प्राणदण्ड दिया था । अतः उनकी निष्पक्षता स्पष्ट है । धर्म पर चलनेवाले वानरों, भालुओं, गीध, काक तथा कोल, भिल्ल, किरात, निषाद आदि सबका ही आदर किया था । कोई भी कर्म अधिकारानुसार ही पुण्य हो सकता है । अनधिकारी का वेदाध्ययन, यज्ञ और तप भी पाप ही हो सकता है । यति को काञ्चन, ब्रह्मचारी को ताम्बूल तथा चोर को अभय का दान पाप ही है—

"यतये काञ्चनं दत्त्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे ।
चौराय चाभयं दत्त्वा दातापि नरकं व्रजेत् ।।"

एक यातायातनियामक का अपना काज छोड़कर किसी शिष्ट की रक्षा जैसे अच्छे काज में लगना भी अपराध है । स्वकर्तव्य में निष्ठा ही धर्म है—

"स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।" (गीता० १८।४५)

"स्वे स्वेऽधिकारे या निष्ठा स गुणः परिकीर्तितः ।
विपरीतस्तु दोषः स्यादुभयोरेष निश्चयः ।।" (पुराणवचन)

यातायातनियामक के अन्यकार्याभिमुख होने पर यदि मोटर आदि का एक्सीडेन्ट हो जाय तो इसका उत्तरदायित्व सिवा नियामक के किसके ऊपर होगा ? वह एक मनुष्य को बचाने के लिए अपने कर्तव्य से विमुख होता है तो नियन्त्रण न-होने से अनेक एक्सीडेन्ट हो सकते हैं । सैकड़ों शिष्टों का जीवन संकटग्रस्त हो सकता है । अतः स्वधर्मविमुख अवश्य ही दण्डनीय है ।

एक न्यायाधीश के सामने किसी हत्यारे का हत्या का अपराध सिद्ध हो जाने पर न्यायाधीश का कर्तव्य है कि उसे प्राणदण्ड का आदेश दे, फिर भले ही उसके बूढ़े माँ, बाप तथा युवती स्त्री एवं दुधमुंहे बालकों का जीवन खतरे में पड़ जाय । यदि शम्बूक के समान कोई स्वास्थ्य अधिकारी (हेल्थ डिपार्टमेण्ट का अधिकारी) सफाई का इन्चार्ज अपने पद का चार्ज बिना दिये तपस्या में बैठ जाय और सफाई की गड़बड़ी से प्लेग, कालरा आदि फैलने से ब्राह्मण आदि वर्णों के बालक मर जायँ तो स्पष्ट ही इसका उत्तरदायित्व उसी पर है । जो अपना काम छोड़कर तप में बैठा है । हरएक समझदार उसके लिए प्राणदण्ड उचित ही समझेगा । कर्तव्यपालन की उपेक्षा का दुष्परिणाम सर्वप्रसिद्ध ही है । शास्त्रों में तप का विधान चतुर्थ वर्ण के लिए नहीं है । वैदिक चातुर्वर्ण्यधर्म का उल्लङ्घन करने के

कारण ही ब्राह्मण रावण और शूद्र शम्बूक दोनों को दण्ड दिया गया था। कोई भी बुद्धिमान् यह भलीभाँति समझ सकता है कि जैसे ब्राह्मण अपना कर्म छोड़कर शूद्र का कर्म करे तो अवश्य अपराधी होगा वैसे ही शूद्र अपना कर्म छोड़कर ब्राह्मण का कर्म करने पर अपराधी क्यों न होगा ?

पउमचरियं (पर्व ४३) के अनुसार खरदूषण-पत्नी शूर्पणखा का पुत्र शम्बूक सूर्यहास खड्ग प्राप्त करने के लिए १२ वर्ष तप करता है। खड्ग प्राप्त होता है। संयोग से उसी समय लक्ष्मण पहुँच जाते हैं। खड्ग को देख उठाकर बाँस काटते हैं और शम्बूक का सिर भी काटते हैं। चन्द्रनखा (शूर्पणखा) पुत्र से प्रतिदिन मिलने आती थी। उसे मरा देखकर विलाप करती है। वन में भटकती हुई राम और लक्ष्मण को देखकर उनपर आसक्त होती है। दोनों से अस्वीकृत होकर खर, दूषण एवं रावण को शम्बूक-वध की सूचना देती है। इस प्रकार शम्बूक-वध के कारण ही सीताहरण और राम-रावण-युद्ध होता है। किन्तु यह सब वि[illegible]त कल्पनामात्र है।

तेलगू **द्विपदरामायण** के अनुसार शूर्पणखा का [illegible] विद्युज्जिह्व रावण के विरुद्ध विद्रोह करने के कारण रावण द्वारा मारा जाता है। उसका पुत्र जम्बूमाली या जम्बुकुमार माता से पिता के वध का वृत्तान्त सुनकर खड्ग की प्राप्ति के उद्देश्य से साधना करता है और लक्ष्मण द्वारा मारा जाता है (अरण्यकाण्ड १०)।

आनन्दरामायण में शूर्पणखा-पुत्र साम्ब राक्षस है। वह ब्रह्मा से दिव्य खड्ग प्राप्त करता है। लक्ष्मण द्वारा मारा जाता है (आ० रा० १।७।४१-४३)।

कन्नड़ **तोरवेरामायण** के अनुसार शम्बूक राक्षस इन्द्रपद प्राप्त्यर्थ तपस्या करता है। उसके चारों ओर वाल्मीक बन गया। इन्द्र और नारद व्याघ्र के रूप में मिलकर लक्ष्मण को मृगया का निमन्त्रण देते हैं। इन्द्र एक वराह की सृष्टि करते हैं जो वल्मीक की ओर जाता है। लक्ष्मण के बाण से वराह और शम्बूक दोनों का वध होता है।

सेरतकाण्ड के अनुसार शूर्पणखा का दर्सासींगा तपस्या से चन्द्रवाली नामक खड्ग प्राप्त करता है। संयोग से वह लक्ष्मण द्वारा मारा जाता है।

रामकियेन के अनुसार रावण-भगिनी सम्मनखा थी। जिसका पति जिह्व तथा पुत्र कुम्भकश था। कुम्भकश ने गोदावरी के तट पर एक दिव्य खड्ग प्राप्त किया। परन्तु ब्रह्मा ने कुम्भकश को वह खड्ग हाथ में न देकर सामने गिरा दिया। उसने हाथ में न देने के कारण अपमान समझकर उसे नहीं लिया। लक्ष्मण आकर उसे उठाते हैं। कुम्भकश उनसे युद्ध करता है और मारा जाता है। रावण बाद में जिह्व का भी वध करता है। **ब्रह्मचक्र** में लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा की दो पुत्रियों का वध वर्णित है।

वस्तुतः जम्बूक, जम्बुमाली, शम्बूक राक्षस आदि शूर्पणखा सम्बन्धी व्यक्ति पृथक् है एवं **वाल्मीकिरामायण** का शम्बूक शूद्र पृथक् है। नामसाम्य से ही दोनों की एकता की भ्रान्ति हुई है।

राम का अश्वमेध

राम ने पहले राजसूय यज्ञ करने का विचार किया था, किन्तु भरत के विरोध करने पर लक्ष्मण के प्रस्तावानुसार अश्वमेध किया। उसी के प्रसङ्ग से सीता ने सतीत्व का प्रत्यय दिया और प्रकट दिव्य सिंहासन पर बैठकर भूमि में प्रविष्ट हो गयीं। राम ने बाद में भी बहुत से यज्ञ किये, किन्तु सर्वत्र काञ्चनी सीता ही उनके साथ रहीं। उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया—

"न सीतायाः परां भार्यां वव्रे स रघुनन्दनः।
यज्ञे यज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चनी भवत् ॥" ९९।७

रघुवंश आदि में भी काञ्चनी सीता का उल्लेख है।

यह शङ्का होती थी कि राम तो स्वयं ही सर्वदेव विष्णु थे फिर उन्होंने किस अन्य देव का यजन किया होगा ? उसी का समाधान करते हुए **अग्निपुराण** ने कहा है—"राम वासुदेव स्वरूप ही थे। अश्वमेध से उन्होंने ब्रह्म-स्वरूप स्वात्मा का ही यजन किया था—

"वासुदेवं स्वमात्मानमश्वमेधैरथायजत्।" (अ० पु० १०।३३)

आनन्दरामायण के अनुसार राम ने १०० अश्वमेध किये।

रामचरितमानस के अनुसार राम ने कोटि अश्वमेध किये थे—

"कोटिन वाजिमेध प्रभु कीन्हे।
अमित दान विप्रन कहँ दीन्हे॥

कल्पभेद से स्वयं किये अथवा अन्य अधिकारियों को प्रेरणा देकर राम ने साक्षात् एवं परम्परा से कोटि-कोटि अश्वमेध किये। कोटि-कोटि शिवलिङ्गों की स्थापना भी राम ने की थी—

"कोटिशः स्थापयामास शिवलिङ्गानि सर्वशः।

६३६ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "**वाल्मीकिरामायण** में राम के लिए ब्रह्महत्या का उल्लेख नहीं है। परन्तु पुराणों में इसका उल्लेख है। उसके प्रायश्चित्तस्वरूप राम ने अश्वमेध किया था।" वाल्मीकिरामायण से अविरुद्ध होने के कारण यह भी ठीक ही है।

स्कन्दपुराण सेतुमाहात्म्य के अनुसार रावण-वधजन्य ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त करने के लिए राम ने कोटि-तीर्थ में (अध्याय २७) तथा गन्धमादन में (अध्याय ४४) शिवलिङ्गों की स्थापना की थी। ब्राह्मखण्ड में राम ने वसिष्ठ से कहा था कि मेरे द्वारा बहुत से ब्रह्मराक्षसों की हत्या हुई है। उसके प्रायश्चित्तार्थ उत्तम तीर्थ का आप निर्देश करें—

"मया तु सीताहरणे निहता ब्रह्मराक्षसाः।
तत्पापस्य विशुद्ध्यर्थं वद तीर्थोत्तमोत्तमम्॥"

वसिष्ठ धर्मारण्य की यात्रा और उस तीर्थ के जीर्णोद्धार का उपदेश करते हैं (धर्मारण्यखण्ड अध्याय ३१)।

जैमिनीय अश्वमेध (अ० २९) के अनुसार राम ने प्रायश्चित्तस्वरूप अश्वमेध किया था। **पद्मपुराण** (अध्याय ४४) में राम के अश्वमेध का विस्तृत वर्णन है। उसमें हनुमान् का शिव एवं इन्द्र आदि देवताओं के साथ युद्ध वर्णित है।

राम की यात्राएँ

राम की लङ्कायात्रा सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है। **नृसिंहपुराण** (अध्याय २७) के अनुसार राम ने उस अवसर पर लङ्का में पुण्यारण्य की स्थापना की थी। **स्कन्दपुराण** (नागरखण्ड अध्याय १०१) के अनुसार लक्ष्मण के परमधाम प्रस्थान के बाद सुग्रीव को लेकर राम ने लङ्का-यात्रा की थी एवं विभीषण को देवपूजा का आदेश दिया था।

वस्तुतः रामायण और पुराणों का समन्वय ही है। रामायण के अनुसार ही पुराणों की संगति लगानी उचित है। राम मर्यादापुरुषोत्तम थे। रावण ब्राह्मण था। भले ही वह अधम ब्राह्मण हो, पर उसके वध से भी धर्मशास्त्रानुसार ब्रह्महत्या होती ही है, क्योंकि "**ब्राह्मणो न हन्तव्यः**" इस वचन में ब्राह्मणजाति के हनन का निषेध

है। ब्राह्मण जाति में उत्तम, अधम, स्त्री, पुरुष सब आ जाते हैं। ब्राह्मण शब्द उद्देश्य है। उद्देश्यगत लिङ्ग और संख्या विवक्षित नहीं होती।

स्कन्दपुराण नागरखण्ड के अनुसार विभीषण के अनुरोध से राम ने सेतु नष्ट कर दिया था। **पद्मपुराण** (सृष्टिखण्ड अध्याय ३५) के अनुसार सीता के भूमिप्रवेश के बाद राम ने लक्ष्मण को अयोध्या का राज्यभार सौंपकर भरत के साथ पुष्पक पर चढ़कर पश्चिम में भरत के पुत्रों तथा लक्ष्मण के पुत्रों से मिलकर दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और सुग्रीव को साथ लेकर लङ्का पहुँच गये।

विभीषण ने राम को वामन की वैष्णवी मूर्ति प्रदान की तथा राम ने सेतुभङ्ग किया। शत्रुघ्न से मिलकर कान्यकुब्ज देश में जाकर राम ने वामन की मूर्ति स्थापित की।

नारदपुराण (पूर्वखण्ड ७९।२९) के अनुसार राम ने द्रविड़ देश में विभीषण को मुक्त किया था। किन्तु **पद्मपुराण** (पातालखण्ड अध्याय १००) में यह उल्लेख है कि भगवान् शङ्कर शम्भु नामक ब्राह्मण के रूप में किसी दिन अयोध्या आये थे। राम को समाचार मिला कि द्रविड़ों ने विभीषण को कैदी बना लिया है। राम शम्भु के साथ दक्षिण जाकर श्रीरङ्गम् के कारावास में विभीषण से मिले। वहाँ पता लगा कि विभीषण ने अनजाने एक विप्र को पैरों तले कुचलकर मार डाला था। उसके बाद विभीषण एक पग भी आगे नहीं बढ़ सका, पर ब्राह्मणों द्वारा मारे जाने पर भी वह नहीं मर सका। ब्राह्मणों ने उसके वध के लिए राम से आग्रह किया। राम ने विभीषण को अपना भक्त कहकर उसे छुड़ाया तथा विभीषण अज्ञान से हुई ब्रह्महत्या का उचित प्रायश्चित्त कर के अपनी राजधानी में लौटा।

आनन्दरामायण के अनुसार राम तथा सीता ने शतस्कन्ध रावण तथा मूलकासुर द्वारा पराजित विभीषण की सहायता के लिए लङ्का-यात्रा की थी।

वाल्मीकिरामायण में भरत की गन्धर्वदेश की विजययात्रा का वर्णन है (सर्ग १००,१०१)। इसके बाद उन्होंने लक्ष्मण के पुत्रों के लिए कारुपथ तथा मल्लदेश को वश में किया था।

आनन्दरामायण (राज्यकाण्ड सर्ग ६) के अनुसार राम स्वयं पृथ्वी के समस्त राजाओं पर विजय प्राप्त करते हैं। जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप आदि सप्त द्वीपों की यात्रा करते हैं (आ० रा० राज्यका० सर्ग ७–९)। **आनन्दरामायण** (राज्यका० सर्ग २१) के अनुसार एक बार राम को वाल्मीकि और विश्वामित्र दोनों ने एक ही समय दूत भेजकर यज्ञ के लिए निमन्त्रण दिया। राम ने दोनों का निमन्त्रण स्वीकार किया। वहाँ अपने अन्य साथियों के दो-दो देह बना लिये और एक ही समय दोनों मुनियों के यहाँ पहुँच गये। सर्ग २४ में राम की यमपुर-यात्रा वर्णित है। सुमन्त्र की आयु ९ दिन शेष रहते हुए वह मर गया। राम ने यमपुर प्रस्थान किया। मार्ग में ही यमदूतों से भेंट हुइ। राम ने उनको परास्त कर सुमन्त्र को लौटा लिया।

आनन्दरामायण के पूर्णकाण्ड (सर्ग १-४) में सोमवंशी राजाओं के आक्रमण का वर्णन है। राम अपनी सेना के साथ उनका सामना करने गये। हस्तिनापुर में ६ महीने तक भीषण युद्ध हुआ। अन्त में सीता के अनुरोध पर सन्धि हुई। बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड के कथानकों के अन्तर्गत भी राम की तीर्थयात्राएँ वर्णित हैं। **स्कन्दपुराण** (ब्राह्मख० धर्मारण्यमा० अध्याय ३३) में राम की धर्मारण्य की तीर्थयात्रा वर्णित है।

६३८ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "**वाल्मीकिरामायण** (७।४२) में रामाभिषेक के बाद तथा सीता-त्याग के पूर्व राम और सीता के विहार में अप्सराओं के नृत्य और मदिरा तथा मांस के सेवन का उल्लेख है।" परन्तु बुल्के को जानना चाहिये कि यज्ञ, यागादि में अनिषिद्ध तथा विहित मांस तथा दिव्य मधु निषिद्ध नहीं है।

राम ईश्वर थे। उनके वरदान से ही बहुत से ऋषि, मुनि तथा स्त्रियाँ व्रज की गोपाङ्गनाएँ हुई थीं। हिंडोल, होलिकोत्सव आदि तो अनादि काल से सनातन धर्म के महोत्सव अवतारों द्वारा आदृत होते ही रहे हैं। इसमें कृष्ण-लीला का प्रभाव देखना अनभिज्ञता ही है।

अद्भुतरामायण भी शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** के अन्तर्गत ही है। उसमें सर्ग १७–२७ के अनुसार एक बार विश्वामित्र आदि मुनियों ने आकर रावणवध के कारण राम की प्रशंसा की। इसपर सीता ने मुस्कुरा कर विश्रवा और कैकसी के पुत्र सहस्रस्कन्ध रावण की कथा सुनायी, जिसने इन्द्र आदि देवताओं को पुष्कर में कारागार में कैद किया था। कथा सुनकर राम सेना सहित पुष्कर जाते हैं। रावण वायव्य शर से समस्त सेना को अयोध्या तक उड़ा देता है तथा द्वन्द्वयुद्ध में राम मृतप्राय हो जाते हैं। तब सीता देवी महाविकट रूप धारण कर सहस्रस्कन्ध रावण तथा उसके योद्धाओं का सिर काटकर नाचने लगती हैं, जिससे सारी सृष्टि संकट में पड़ जाती है—

"ननर्त्त जानकी देवी घोरकाली महाबला।" २३-६३

ब्रह्मा आदि देवता सीता से नृत्य समाप्त करने का अनुरोध करते हैं। ब्रह्मा राम को पुनः जीवित करते हैं। राम परमशक्ति के रूप सीता की स्तुति करके उनसे अनुरोध करते हैं कि वह अपना विकट रूप त्याग दें तब सीता विकटरूप त्यागकर सौम्य रूप धारण करती हैं और राम के साथ पुष्पक पर चढ़कर अयोध्या जाती हैं। उक्त प्रसङ्ग **सीतामाहात्म्य-वर्णन** का अर्थवाद है। युद्ध-शोभार्थ जैसे राम इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र से मूर्च्छित हुए थे। वैसे ही प्रकृत प्रसङ्ग में भी समझना चाहिये।

उड़िया राम-साहित्य में प्रस्तुत प्रसङ्ग के दो अन्य रूप मिलते हैं। **विलङ्कारामायण** के पूर्वखण्ड के अनुसार सहस्रस्कन्ध रावण ने राम, लक्ष्मण तथा हनुमान् को परास्त किया था। तब सीता ने मङ्गलादेवी से पुष्पधनुष तथा पाँच शर प्राप्त कर रावण पर चलाये और राम ने कामातुर रावण के समस्त सिर काट दिये। **विलङ्काखण्ड** के अनुसार दशशिर रावण के वध के अनन्तर सहस्रस्कन्ध रावण सन्धि प्रस्ताव ठुकरा कर युद्ध करने आया। शक्ति के प्रहार से उसने राम और लक्ष्मण को मूर्च्छित कर सीता का हरण करना चाहा, किन्तु सीता के शरीर से एक गन्धर्व-सेना निकली जिसने सहस्रस्कन्ध रावण का वध किया।

आगारिया आदिवासियों में प्रचलित कथा के अनुसार सीता ने पातालवासी सहस्रस्कन्ध रावण की चर्चा की। राम ने एक बाण से उसे आहत कर दिया। पर उसने अपने पैर से बाण निकालकर राम को मारने के लिए उसी बाण को भेज दिया। राम मूर्च्छित हो गये। तब सीता ने लोगुन्दी के पास जाकर उससे कोयले का एक पात्र माँग लिया और यह निवेदन किया कि आज्ञासुर और लोहासुर को मेरे साथ भेज दीजिये। राजा की स्वीकृति हो गयी। कोयले का पात्र तथा तलवार लेकर सीता दोनों को साथ लेकर चल पड़ी। कोयले के धुएँ से सीता का रङ्ग काला पड़ गया। उन्होंने रावण के सिर काट डाले। आज्ञासुर तथा लोहासुर दोनों ने रावण का रक्त पी लिया।

आनन्दरामायण (राज्यका० सर्ग ४।८०–८५) के अनुसार शतशीर्ष रावण शोण नदी के तटपर माया-पुरी में रहता था। कुम्भकर्ण का पौत्र पौण्ड्रक उससे सहायता माँगने गया था। दोनों ने मिलकर विभीषण को पराजित कर दिया। विभीषण राम के पास सहायता के लिए आये। राम और सीता दोनों गये। युद्ध में राम परास्त हुए, किन्तु सीता ने दोनों का वध किया।

तत्त्वसंग्रहरामायण के अनुसार सीता ने अष्टादशभुजावाला विकट रूप धारण कर शतानन रावण का वध किया था। **विलङ्कारामायण** उत्तरखण्ड के अनुसार काली का रूप धारणकर सीता ने लक्षशीर्ष रावण का वध किया था।

आनन्दरामायण (सर्ग ४–६) के अनुसार पातालवासी रावणपुत्र मूलकासुर से पराजित होकर विभीषण पुनः राम के पास गये। राम सहायतार्थ गये। सात दिनों तक मूलकासुर के साथ युद्ध हुआ। हनुमान् ने पहले की भाँति द्रोणाचल लाकर मृत वानरों को जिलाया। ब्रह्मा ने आकर कहा कि मेरे वरदान के अनुसार यह किसी वीर के हाथ न मरेगा। किसी ऋषि ने इसे सीता के हाथ मरने का शाप दिया है। राम ने गरुड़ को सीता लाने भेजा। सीता ने लङ्का पहुँचकर तामसी छाया को युद्ध के लिए प्रेरित किया। इतने में वानर मूलकासुर का यज्ञ विध्वंस कर लौटे। सीता की तामसी छाया ने चण्डी का रूप धारणकर मूलकासुर का वध किया।

हनुमच्चरित

वाल्मीकिरामायण के अनुसार हनुमान् का चरित्र महत्त्वपूर्ण है। हनुमान् ही राम और लक्ष्मण को सुग्रीव के पास ले जाकर मैत्री कराते हैं। वर्षा ऋतु के पश्चात् सुग्रीव को राम के प्रति कर्तव्यपालन का स्मरण दिलाते हैं। राम की मुद्रिका लेकर सीता की खोज में वानरों के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान करते हैं और समुद्रलङ्घन कर सीता का पता लगाते हैं। उनका सन्देश लेकर राम के पास लौटते हैं। लङ्का-दहन वृत्तान्त को बुल्के प्रक्षिप्त कहते हैं, परन्तु वह उनकी भूल है। हनुमान् द्वारा लङ्का-दाह **वाल्मीकिरामायण** से सिद्ध है। अक्षकुमार का वध भी लङ्का-दाह के प्रसङ्ग में वर्णित है। युद्ध में भी हनुमान् का प्रमुख भाग रहा है और अनेक बार औषध-पर्वत लाकर उन्होंने लक्ष्मण एवं अन्य वानरवीरों के प्राण बचाये हैं। इन अंशों को बुल्के प्रक्षिप्त कहते हैं।

बुल्के यह भी कहते हैं कि प्राचीन रामायण में हनुमान् की जन्म-कथा का अभाव रहा होगा। परन्तु यह सब भी उनके निःसार अनुमान हैं। **रामायण** राम-पुत्र कुश और लव द्वारा गाया गया है, बुल्के के तथाकथित कुशीलवों द्वारा नहीं। अतएव उनके (कुशीलवों के) द्वारा **रामायण** की पूर्ति की गयी है, यह उनकी कल्पना निःसार है। प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** ही प्रामाणिक रामायण है।

हनुमान् की कथा

पराक्रम, बुद्धिमत्ता, चिरजीवित्व, ब्रह्मचर्य, रामभक्ति, देवत्व ये हनुमान् के विशिष्ट गुण हैं।

पउमचरियं के अनुसार हनुमान् रावण तथा सुग्रीव दोनों के रिश्तेदार माने गये हैं। रावण ने अपनी बहन चन्द्रनखा की पुत्री अनङ्गकुसुमा का तथा सुग्रीव ने अपनी पुत्री पद्मरागा का हनुमान् से विवाह किया था। युद्ध के बाद राम ने हनुमान् को राजा बनाकर उन्हें श्रीपर्वत के शिखर पर स्थित श्रीपुर प्रदान किया था। अन्त में दीक्षा लेकर हनुमान् निर्वाण प्राप्त करते हैं। जैनों की दीक्षा का मिथ्या प्रचार प्रसिद्ध ही है।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार तो हनुमान् सूर्यनारायण से सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन करते हैं और ब्रह्मविद्या में वे प्रधानतया निष्णात हैं। **रामायण के अनुसार वे अञ्जनापुत्र हैं,** यह निर्विवाद है। बुल्के कहते हैं कि इसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। परन्तु बुल्के का पक्ष ही प्रमाणशून्य है। हनुमान् का अञ्जना-पुत्रत्व तो **वाल्मीकि-रामायण** से सिद्ध ही है।

अध्यात्मरामायण (४।७।१९,२०) के अनुसार हनुमान् और अङ्गद नारायण की आराधना कर उनके पार्षद बने थे और मायाशक्ति के प्रभाव से वानररूप में उत्पन्न हुए थे। बुल्के **प्रचलितरामायण** की हनुमज्जन्म-कथा के विरुद्ध दो तर्क देते हैं—एक तो **वाल्मीकिरामायण** में केसरी एवं अञ्जना के उल्लेखों की कमी है। दूसरे हनुमान् की उपाधि वायु-पुत्र का निरन्तर उल्लेख मिलता है। परन्तु यह तर्क भी तर्काभास ही है, क्योंकि प्रामाणिक एक स्थल के वचन पर्याप्त होते हैं। प्रमाणाभास सैकड़ों वचन भी अकिञ्चित्कर होते हैं। फिर स्वयं बुल्के भी यह मानते हैं कि एक स्थल में तीनों पाठों के अनुसार हनुमान् के पिता के रूप में केसरी का उल्लेख हुआ है। फिर कई बार केसरी

का उल्लेख होने पर भी कमी बतलाना सरासर झूठ है। देखो—सीता-हनुमान्-संवाद में वे सीता से कहते हैं—

"अहं सुग्रीवसचिवो हनुमान् नाम वानरः।" (वा० रा० ५।३४।३८)

अगले सर्ग में वे पुनः अपना परिचय देते हैं—मैं केसरी की पत्नी से उत्पन्न हनुमान् हूँ—

"माल्यवान् नाम वैदेहि गिरीणामुत्तमो गिरिः।
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः॥
यस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि।
हनूमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा॥"(वा० रा० ५।३५।७९–८१)

वस्तुतः वानररूप में हनुमान् को देखकर सीता को यह शङ्का उत्पन्न हो गयी कि कहीं यह रावण ही तो नहीं है?

"स्वं परित्यज्य रूप यः परिव्राजकरूपवान्।
जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एव हि रावणः॥" (वा० रा० ५।३५।१५)

सीता शङ्का मिटाने के लिए उन्हें राम के गुण कहने को प्रेरित करती हैं, क्योंकि रावण राम का द्वेषी है। यदि यह रावण होगा तो राम का गुण-वर्णन नहीं करेगा। यदि कृत्रिम भावना से वर्णन करेगा तो कृत्रिमता व्यक्त हो ही जायेगी।

हनुमान् राम का गुण-वर्णन करते हैं और अपना परिचय देते हुए कहते हैं—मैं हनुमान् नामक वानर सुग्रीव का सचिव हूँ, मैं मायावी राक्षस नहीं हूँ—

"अहं सुग्रीवसचिवो हनुमान्नाम वानरः।
नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि॥" (वा० रा० ५।३४।३८)

सीता पुनः राम और सुग्रीव के समागम के सम्बन्ध में एवं राम तथा लक्ष्मण के चिह्नों को पूछती है। हनुमान् गुणों तथा लक्षणों सहित राम का वर्णन तथा वानरों के साथ समागम आदि की कथा का वर्णन कर के शङ्का मिटाने के लिए पुनः कहते हैं—देवि! मुझपर विश्वास कर मुझसे बोलो। मैं राम का दूत हूँ। तुम्हारे लिए जो राम का उद्योग है, तदर्थ ही आया हूँ—

"अभिभाषस्व मां देवि! दूतो दाशरथेरहम्।"

मुझे सुग्रीव-सचिव एवं पवनपुत्र हनुमान् ही समझो—

"सुग्रीवसचिवं देवि! बुद्ध्यस्व पवनात्मजम्।"

पवन-पुत्र होने से ही मैं समुद्र-लङ्घन कर सकने में समर्थ हुआ हूँ।

शङ्का हो सकती थी कि तुम्हारा तिर्यग्देह है। तुम पवन-पुत्र कैसे हो? इस बात का समाधान करते हुए हनुमान् ने अपने जन्म की बात कही। देवर्षियों से आदिष्ट होकर मेरे पिता केसरी ने शम्बसादन असुर का वध किया था। उन केसरी के क्षेत्र अञ्जना में वायु के द्वारा मेरा जन्म हुआ है।

"यस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि।"

इससे दोनों बातों का स्पष्ट समाधान हो जाता है। केसरी के पुत्र हैं एवं वायु के तेज से जन्म होने के कारण वायु-पुत्र भी हैं। इस तरह केसरी-पुत्र तथा वायु-पुत्र दोनों का समन्वय हो जाता है। अञ्जनापुत्र होने में तो विवाद का प्रश्न ही नहीं है। अतएव इन श्लोकों को प्रक्षिप्त कहना भी निर्मूल है।

"मुख्यो वानरमुख्यानां केसरी नाम यूथपः।" (वा० रा० ६।७३।५९)

जब केसरी का नामनिर्देश है ही तब इसकी कोई आवश्यकता नहीं है कि अनेक बार उनका उल्लेख हो। स्वयं बुल्के यह भी मानते हैं कि युद्धकाण्ड में केसरी नाम तीन बार आया है। दो बार अन्य नामों के साथ और एक बार स्वतन्त्र—

"केसरिं हरिलोमानं विद्युद्दंष्ट्रं च वानरम्।" (वा० रा० ६।७३।५९)
"केसरी पनसो गजः।" (वा० रा० ६।४।३३)
"युद्धं केसरिणा संख्ये घोरं सम्पातिना कृतम्।" (वा० रा० ६।४९।२६)

अन्य सूचियों में नाम होने से भी उक्त उल्लेखों को प्रक्षेप कैसे कहा जा सकता है ?

बुल्के कहते हैं कि युद्धकाण्ड के अन्त में भरत द्वारा वानरों का स्वागत किया गया है। उसमें हनुमान् के अतिरिक्त १३ नाम आये हैं। पर उनमें केसरी का नाम नहीं है। दाक्षिणात्य पाठ के बालकाण्ड में वानरों की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में १२ वानरों के नाम हैं। वाली और केसरी को छोड़कर सब नाम युद्धकाण्ड के अन्त में भी आये हैं। ये ही प्रमुख माने जा सकते हैं, किन्तु केसरी उनमें नहीं है। बुल्के की उक्त बातों का सार यही है कि केसरी हनुमान् के पिता होते तो उनका भी प्रमुख स्थान होता। परन्तु यह आवश्यक नहीं है। जब केसरी को स्वतन्त्र रूप से वानरमुख्यों में मुख्य कहा गया है तब उनकी मुख्यता में सन्देह ही नहीं। थोड़ी देर के लिए मान भी लें कि वे उतने मुख्य नहीं थे तो भी वे हनुमान् के पिता नहीं थे, यह कैसे सिद्ध होगा ? व्यवहार में कई स्थलों में देखा जाता है कि पिता की अपेक्षा भी पुत्र का महत्त्व अधिक होता है। श्रीशङ्कराचार्य का नाम जितना प्रसिद्ध है, उतना उनके पिता का नाम कहाँ प्रसिद्ध है ? किं बहुना राम का ही नाम जितना प्रसिद्ध है, उतना दशरथ का नाम कहाँ प्रसिद्ध है ? हनुमान् की जन्मकथा (सर्ग ३५,३६) में स्पष्टरूप से केसरी, अञ्जना और वायु का सम्बन्ध उल्लिखित है—

"सूर्यदत्तवरस्वर्णः सुमेरुर्नाम पर्वतः।
यत्र राज्यं प्रशास्त्यस्य केसरी नाम वै पिता॥
तस्य भार्या बभूवेष्टा ह्यञ्जनेति परिश्रुता।
जनयामास तस्यां वै वायुरात्मजमुत्तमम्॥" (वा० रा० ७।३५।१९, २०)

कमी का बहाना बनाकर बुल्के निरर्थक ही महत्त्वपूर्ण हनुमान्-कथा को प्रक्षेप कहने का साहस करते हैं। बुल्के की दृष्टि में हनुमान् की जन्मकथा तीनों पाठों में मान्य है। उसके अतिरिक्त दान-वितरण के प्रसङ्ग में केसरी का नामोल्लेख अन्य नामों के साथ हुआ है। यह भी तीनों पाठों को सम्मत है। किसी पाठ में उल्लेख न होने को भी वे क्षेपक होने में हेतु मानते हैं, पर तीनों पाठों में भी हनुमान् की जन्मकथा और केसरी का उल्लेख होने पर भी वे इन अंशों को प्रक्षेप कह देते हैं। इससे बढ़कर धूल झोंकना और क्या हो सकता है। अतः उनका यह कहना नितान्त भ्रान्तिपूर्ण है कि प्रारम्भ में केसरी के नाम का मुख्य वानर के रूप में चित्रण नहीं हुआ था। आदिरामायण में इसका उल्लेख तक नहीं था। **महाभारत** के **रामोपाख्यान** में केसरी का कहीं भी उल्लेख नहीं है। पर इससे हमारे निष्कर्ष की ही पुष्टि होती है, कारण ऊपर बताया जा चुका है कि **रामोपाख्यान** स्वयं ही **वाल्मीकिरामायण** पर निर्भर है और वह संक्षेप है। अतः उसमें हनुमान् के जन्म या केसरी का उल्लेख न होना **वामीकिरामायण** में उसके अभाव का सूचक नहीं है। परम्पराप्राप्त तथा टीकाकारों की सम्मति प्रक्षेप न होने में दृढ़तर प्रमाण है। अञ्जना का नाम और हनुमान् की जन्मकथा का वाल्मीकिरामायण (६।७४।१८) में उल्लेख है। फिर एक ही बार उल्लेख कैसे ? की बात सुतरां अशुद्ध है।

वायुपुत्र नाम के सम्बन्ध में बुल्के ६६२ वें अनु० में कहते हैं "**रामायणरचना** के पहले ही वायुपुत्र शब्द एक निश्चित अर्थ में प्रचलित था। **सुमग्गाजातक** में वायुस्स पुत्त अर्थात् विद्याधर की कथा मिलती है, जिसमें न तो हनुमान् का उल्लेख है और न किसी अन्य वानर का। यह विद्याधर ऐन्द्रजालिक है और वायुस्स पुत्त का अर्थ अन्यत्र भी विद्याधर अथवा जादूगर है। **महाभारत** में भी वातिक शब्द इससे मिलता जुलता अर्थ रखता है।

रामायण में हनुमान् समुद्र लाँघते हैं। सीता का पता लगाते हैं। अन्य वानरों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान् तथा कार्यकुशल माने जाते हैं। अद्भुतरस से पूर्ण उनके उस चरित्रचित्रण को ध्यान में रखकर उनको वायुपुत्र (अर्थात् विद्याधर, ऐन्द्रजालिक) की उपाधि मिली होगी। बाद में वायुपुत्र नाम के आधार पर प्रचलित जन्मकथा का विकास हुआ होगा। इसके अनुसार वायु ने किसी शापभ्रष्टा अप्सरा से हनुमान् को उत्पन्न किया था, यह कथा गढ़ ली गयी।"

यह पाश्चात्यों के रिसर्च का नमूना है। वे अपने दिमागी फितूर के आधार पर धड़ल्ले के साथ प्रामाणिक आधारों को प्रक्षिप्त घोषित करने का दुःसाहस कर बैठते हैं—

"उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितकल्पने मानाभावात्।"

की उन्हें चिन्ता नहीं होती। साथ ही वे इतनी पक्षपातपूर्ण संकीर्ण मनोवृत्ति के होते हैं कि उसके लिए कुछ भी अनर्थ कर डालना उनके लिए असंभव नहीं। उन्हें वैदिक **उपनिषदों**, **वाल्मीकिरामायण** तथा **महाभारत** में प्रामाण्य बुद्धि नहीं, परन्तु केवल कपोलकल्पित बौद्ध जातकों में अटल विश्वास न भी रखते हों तो भी वैदिक वाङ्मय को दूषित करने के लिए उनका सहारा अवश्य लेते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि बौद्ध जातक स्वयं में ही प्रामाणिक नहीं हैं। बौद्धधर्म के अनुयायियों ने बौद्ध माहात्म्य-वर्णन के लिए उनकी कल्पनाएँ की हैं। क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से बुद्ध एवं सभी बौद्ध जातक अर्वाचीन हैं।

वाल्मीकिरामायण महाकाव्य लाखों वर्ष प्राचीन भगवान् राम का समकालीन है। सुतरां **सुमग्गा जातक** के वायुस्स पुत्त के आधार पर **वाल्मीकिरामायण** के वायुपुत्र की कल्पना कोई भी समझदार नहीं कर सकता। **सुमग्गाजातक** को भारत में कोई जानता तक नहीं, जब कि **वाल्मीकिरामायण** को बच्चा बच्चा जानता है। **वाल्मीकिरामायण** का परम्परा से अध्ययन, पाठ एवं अनुष्ठान होता आ रहा है। उसपर अनेक संस्कृत की गम्भीर टीकाएँ हुई हैं। **वाल्मीकिरामायण** के आधार पर देश-विदेशों में सहस्रों **रामायण** आदि ग्रन्थ लिखे गये हैं। उस रामायणमहामाला के दिव्य रत्न हनुमान् या वायुपुत्र का आधार **सुमग्गाजातक** में ढूँढ़ना जब कि उसमें हनुमान् या किसी वानर का नाम तक नहीं है, अनभिज्ञता की पराकाष्ठा ही कही जायगी।

अन्य भाषा तथा अन्य सभ्यता में उसी शब्द के अन्य अर्थ हो सकते हैं। परन्तु दूसरी भाषा या दूसरी सभ्यता में उसका वही अर्थ हो यह नहीं कहा जा सकता है। आर्य शब्द का अन्य भाषा में जो भी अर्थ होता हो भारतीय भाषा में उसका श्रेष्ठ ही अर्थ है। दस्त शब्द का किसी भाषा में हाथ अर्थ हो, परन्तु भारतीय भाषा में उसका वही अर्थ नहीं है।

वाल्मीकिरामायण में हनुमान् के लिए वायुपुत्र शब्द का अन्वर्थ ही प्रयोग हुआ है और वे वायु के पुत्र थे। इस सन्दर्भ की कथा भी वहीं प्रसिद्ध है। इतना ही नहीं रावण आदि ने वरदान माँगा था कि हम नर और वानरों से अतिरिक्त और किसी से न मरें। तदर्थ ही विष्णु नररूप में तथा अन्य देवता वानररूप में उत्पन्न हुए हैं। न केवल हनुमान् ही अपितु जाम्बवान्, सुग्रीव, वाली, नल, नील आदि भी तत्तद्देवताओं के अवतार हैं। इन पूर्वापर की सभी कथाओं को प्रक्षेप या मिथ्या कहकर अप्रसिद्ध अर्वाचीन **सुमग्गाजातक** के वायुस्स पुत्त का वायुपुत्र से सम्बन्ध जोड़ना सर्वथा उपहासास्पद ही है। वायुस्स पुत्त शब्द का विद्याधर या ऐन्द्रजालिक स्वाभाविक अर्थ भी नहीं है,

किन्तु अश्वकर्ण आदि शब्दों के समान रूढ़ ही हो सकता है। उसका हनुमान् की कथा से क्या सम्बन्ध हो सकता है ? जैसे वेद के "**अहमन्नाद**" का सम्बन्ध मुसलमानों के अहमद नाद के साथ जोड़ना असङ्गत है। वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये।

हनुमान् का जन्म

किष्किन्धाकाण्ड (सर्ग ६६) के अनुसार पुञ्जिकस्थला अप्सरा शाप-वश वानर-योनि को प्राप्त हुई थी। वह कुञ्जर की पुत्री अञ्जना के रूप में प्रकट होकर केसरी की पत्नी बनी। कामरूपिणी होने के कारण उसने किसी दिन रूपयौवन-सम्पन्न मानवस्त्री का रूप ग्रहण किया। मरुत् देवता ने उसे इस रूप में देखा और आसक्त होकर उसका आलिङ्गन किया। अञ्जना के आपत्ति करने पर मरुत् ने उसे एक वीर्यवान् बुद्धिसम्पन्न पुत्र, जिसकी गति वायु के समान होगी, उत्पन्न होने का वर प्रदान किया।

"मनसाऽस्मि गतो यत्त्वां परिष्वज्य यशस्विनि।
वीर्यवान् बुद्धिसम्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति ॥१८॥

महासत्त्वो महातेजा महाबलपराक्रमः।
लङ्घने प्लवने चैव भविष्यति मया समः ॥"१९॥

इस प्रामाणिक कथा को मिथ्या कल्पना कहना उन अंग्रेजों के लिए ही सम्भव है जिनके यहाँ मिथ्या इतिहास प्रामाणिक करने के लिए मिथ्या पार्लियामेन्ट्री प्रस्ताव भी बन सकता है। भारत में ऐसी मिथ्या कल्पनाओं को कोई स्थान नहीं है।

वरदान के फलस्वरूप अञ्जना गर्भवती होकर एक गुफा में हनुमान् को जन्म देती है। उदीयमान सूर्य को देखकर और उसे फल समझकर शिशु उसे पकड़ने के लिए आकाश में कूद पड़ा। इन्द्र के वज्र से आहत होकर गिरि-शिखर पर गिरने से वायीं ठोढ़ी भग्न होने से उसका नाम हनुमान् पड़ा—

"तदा शैलाग्रशिखरे वामो हनुरभज्यत।
ततोऽभिनामधेयं ते हनुमानिति कीर्तितम् ॥२४॥"

पुत्र की वैसी हालत देखकर वायुदेव ने कुपित हो अपनी गति बन्द कर दी। फलस्वरूप सब प्राणी व्याकुल हो उठे। तब सब देवता आकर वायु को मनाने लगे। ब्रह्मा ने हनुमान् को ब्रह्मास्त्रादि से अवध्यता, इन्द्र ने स्वेच्छा-मरण आदि वरदान दिये।

बुल्के अपनी बात को सिद्ध करने के लिए ७४ वें सर्ग को ही प्रक्षिप्त कह देते हैं जो कि सर्वथा निराधार है। **महाभारत** में अञ्जना नाम न होने से भी **रामायण** की अञ्जना का अपलाप करना अनभिज्ञता ही है। वेदसार **गीता** में "**इषे त्वा**" मन्त्र का उल्लेख न होने पर भी वेद में उसका अस्तित्व है वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। उपनिषत्सार गीता में 'ईशा वास्यम्', 'अन्धं तमः प्रविशन्ति' शब्द नहीं हैं तो भी उपनिषद् में उक्त पाठ प्रक्षिप्त नहीं माना जाता है। ऐसे ही वाल्मीकिरामायण के सार महाभारत रामोपाख्यान में अञ्जना नाम न होनेपर भी वाल्मीकिरामायण के अञ्जना नाम को प्रक्षिप्त कहना निरी धृष्टता ही है।

उपाधियों के बल पर हनुमान् की जन्मकथा को प्रक्षेप कहा जाता है। "**महाभारत** में हनुमान् को पाँच बार मारुतात्मज कहा गया है, तीन बार पवनात्मज कहा गया है, दो बार अनिलात्मज तथा एक बार वायुपुत्र कहा गया है। एक बार वायुतनय भी कहा गया है। किन्तु केसरीपुत्र और अञ्जनापुत्र एक बार भी नहीं कहा गया है। अतः प्रतीत होता है कि हनुमान् पहले वायु-तनय के नाम से विख्यात थे, बाद में केसरीपुत्र, अञ्जनापुत्र के रूप में

प्रसिद्ध हुए। **रामायण** में हनुमान् के निम्नलिखित नाम सर्वाधिक प्रयुक्त हुए हैं—मारुतात्मज, मारुति, पवनात्मज, वायुपुत्र, वायुसूनु, वायुसुत तथा अनिलात्मज इनके अतिरिक्त वातात्मज, मारुत, पवनसुत, अनिलसुत ये नाम भी कई बार आये हैं। वायुनन्दन, वायुसम्भव, मारुतनन्दन, वासवदूतसूनु, गन्धवहात्मज नाम एक एक बार आये हैं। हनुमान् की उत्पत्तिविषयक उपाधियों का बाहुल्य तथा केसरी अथवा अञ्जना के उल्लेख का अभाव देखकर दृढ़ धारणा बनती है कि **वाल्मीकिरामायण** के गायक बहुत दिनों तक हनुमान् को वायुपुत्र ही मानते थे और उस कथा से अनभिज्ञ थे जिसके अनुसार हनुमान् केसरी की पत्नी अथवा अञ्जना की सन्तान हैं।

बालकाण्ड में जहाँ देवताओं द्वारा अप्सराओं, गन्धर्वियों और वानर-वानरियों से वानर और ऋक्षों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है वहाँ मारुत को ही हनुमान् का पिता माना है।" अतः बुल्के का उक्त तर्क स्वयं ही सापेक्ष एवं आधाररहित है। हनुमान् वायुपुत्र हैं यह तो सिद्धान्त में भी मान्य ही है। परन्तु वायु पवन देवता हैं। उनसे किसी वानरी में हनुमान् का वानररूप में जन्म मानना आवश्यक है। ऐसी स्थिति में प्रमाणसिद्ध का परित्याग कर अप्रसिद्ध की कल्पना करना न्यायविरुद्ध है—

"उपस्थितं परित्यानुपस्थितकल्पने भानाभावात्।"

वैसे सामान्यकल्पना भी विशेषपर्यवसायिनी होती है। इस तरह जब अञ्जना वानरी हनुमान् की माता सिद्ध हो जाती है तब उसके जिस किसी भी पति की कल्पना करनी होगी। पर जब यहाँ भी केसरी उसका पति प्रसिद्ध है तब पत्यन्तर की कल्पना भी निरर्थक ही है। प्रभावशाली भी वानर को अपेक्षा वायुदेवता का प्राणरूप से, हिरण्यगर्भरूप से एवं अष्टमूर्ति शिव का रूप होने से महत्त्व अधिक है। इसी लिए वातात्मज आदि नामों का अधिक प्रयोग हनुमान् के लिए हुआ है और यह उपाधि नहीं वस्तुस्थिति है। इस वस्तुस्थिति के रहते हुए भी अञ्जना-सुत केसरी-नन्दन आदि के साथ उसका विरोध नहीं है। जैसे—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि की धर्मपुत्र, इन्द्रसूनु तथा पवनात्मज के रूप से प्रसिद्धि होने पर भी उनके कौन्तेय एवं पाण्डव होने में कोई बाधा नहीं पड़ती है।

बुल्के यह भी कहते हैं कि "उत्तरकाण्ड की जन्मकथा में अञ्जनीसुत मिलता ही है। किन्तु वह दाक्षिणात्य पाठ में ही मिलता है। गौड़ीय और पश्चिमोत्तरीय पाठों में नहीं मिलता है। समानान्तर स्थलों में इसका अभाव है। अतः यह प्रक्षेप ही है।" किन्तु उनका यह प्रलाप ही है, कारण जब पूर्व कथन के अनुसार तीनों पाठों में केसरी नाम मिलने पर भी उसे क्षेपक मानने में हिचक नहीं फिर किसी पाठ में न मिलने का अन्तर ढूँढ़ना क्या अज्ञता नहीं है। सिद्धान्त में तो तीनों ही पाठ प्रमाण हैं, अतः प्रक्षेप होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

"तथा केसरिणा त्वेष वायुना सोऽञ्जनीसुतः।
प्रतिषिद्धोऽपि मर्यादां लङ्घयत्येष वानरः॥" (वा०रा०दा०पा० सर्ग ३६)

"यदा केसरिणा ह्येष वायुनाञ्जनया तथा।
प्रतिषिद्धोऽपि मर्यादां लङ्घयत्येष वानरः॥" (प० पा० सर्ग ३९)

"यदा केसरिणा त्वेष वायुना स्वजनैः सह।
प्रतिषिद्धोऽपि मर्यादां लङ्घयत्येष वानरः॥" (गौ० पा० सर्ग ४०)

भले ही समानान्तर स्थल में न हो। परन्तु उपर्युक्त तीनों ही पाठों में केसरी एवं अञ्जना का नाम है ही। इनके प्रक्षेप होने में भी कोई प्रमाण नहीं है। श्लोकार्थ यह है कि जब केसरी एवं वायु तथा अञ्जना के द्वारा प्रतिषेध करने पर भी यह हनुमान् वानर मर्यादा का उल्लङ्घन करता है। अर्थात् हनुमान् आश्रमों में ऋषियों के स्रुक् तथा वल्कलों को नष्ट कर देते थे। तब ऋषियों ने मृदु कोप से ही शाप दे दिया कि दीर्घकाल तक तुम अपने महान् बल पराक्रम को भूले रहोगे जब कोई तुम्हें तुम्हारे बल का स्मरण करायेगा तब तुम्हारा बल—तेज बढ़ेगा।

हनुमान् का बाल चरित

वाल्मीकिरामायण (७।३५) में हनुमान् का बालचरित वर्णित है। राम ने अगस्त्य से प्रश्न करते हुए कहा था कि हनुमान् इतने शक्तिशाली होते हुए वाली के विरुद्ध सुग्रीव की सहायता करने में असमर्थ कैसे रहे ? मेरे विचार में तो हनुमान् अपना बल जानते ही नहीं थे। अगस्त्य ने बतलाया कि मुनियों के शाप से महान् बलवान् हनुमान् अपना बल भूले रहते थे। अगस्त्य ने बताया कि पर्वतराज सुमेरु का राजा केसरी था। उसकी पत्नी अञ्जना में वायुदेवता के तेज से हनुमान् की उत्पत्ति हुई। उत्पन्न होते ही भूख से व्याकुल होकर वह बालक सूर्य को फल समझकर पकड़ने के लिए आकाश में छलांग मारता है। उसे शिशु समझ तथा भावी महत्त्वपूर्ण कार्य-कलाप जानकर सूर्य ने अपने तेज से उसे जलने नहीं दिया। संयोग से उसी दिन सूर्यग्रहण था। राहु सूर्य के पास पहुँचा। वह हनुमान् का आक्रमण देखकर भागा और इन्द्र के पास जाकर उसने शिकायत की कि चन्द्र और सूर्य मेरे भक्ष्य हैं, आपने वे दूसरे को क्यों दे दिये ? आज एक अन्य राहु सूर्य को पकड़ रहा है। इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर सूर्य के पास आते हैं। पहले तो हनुमान् सूर्य से बड़ा समझकर राहु की ओर झपटे, राहु इन्द्र को परित्राणार्थ पुकारने लगा। इन्द्र को देख ऐरावत को बड़ा फल समझकर हनुमान् उसपर टूट पड़े। तब इन्द्र ने वज्र-प्रहार किया, जिससे हनुभग्न होने के कारण वे हनुमान् कहलाये। पुत्र को आहत देखकर वायु ने सबके श्वासों को निरुद्ध कर दिया। अन्त में देवता, असुर एवं गन्धर्व सब ने मिलकर ब्रह्मा की शरण ली। ब्रह्मा उन सबके कष्ट का रहस्य प्रकट कर सब को साथ लेकर वायु के पास गये। ब्रह्मा ने अपने स्पर्शमात्र से हनुमान् को स्वस्थ कर दिया। भावी कार्य को ध्यान रख ब्रह्मा ने देवताओं से हनुमान् को वर प्रदान करने को कहा—इन्द्र ने काञ्चन पद्मों की माला प्रदान कर कहा मेरे वज्र से हनुभग्न होने से इसका नाम हनुमान् होगा और वरदान दिया कि अब इसपर वज्र का प्रभाव नहीं पड़ेगा। भगवान् सूर्य ने अपने तेज की शक्ति की १०० वीं कला प्रदान की और अध्ययन के समय शास्त्र-प्रदान का आश्वासन दिया। वरुण ने कहा—मेरे शस्त्रास्त्रों, वर्षा-जल तथा वरुणपाश से इसकी मृत्यु नहीं होगी। यम ने काल-दण्ड से अवध्य होने का वरदान दिया। कुबेर तथा भगवान् शङ्कर ने भी बहुत वर प्रदान किये। विश्वकर्मा ने कहा मेरे द्वारा निर्मित कोई शस्त्रास्त्र तुम पर सफल नहीं होगा। ब्रह्मा ने अजेय, कामचारी, कामरूप, कामग तथा अव्याहतगति, कीर्तिमान् तथा रोमहर्षकरकर्मकारी होने का वरदान दिया। वरदान के बाद हनुमान् ऋषियों के आश्रमों में स्रुव, स्रुक्, वल्कल आदि को अस्त-व्यस्त करने लगे, इस कारण ऋषियों ने मृदु कोप वश हनुमान् को अपना बल भूले रहने का शाप दिया और कहा कि यदि कोई तुम्हारे बल का स्मरण करायेगा तभी तुम्हारा बल प्रकट होगा। वाली और सुग्रीव के विवाद के समय किसी ने उनके बल का स्मरण नहीं कराया। जब समुद्र-लङ्घन का अवसर आया तो जाम्बवान् ने उनके बल का उन्हें स्मरण दिलाया था। पराक्रम, उत्साह, मति, प्रताप, सौशील्य, माधुर्य, नयानय-विज्ञान, गाम्भीर्य, चातुर्य, वीर्य, धैर्य आदि गुणों में हनुमान् की समता कोई भी नहीं कर सकता है। व्याकरण शास्त्र का अध्ययन करने के लिए सूर्य के उन्मुख होकर वे उदयगिरि से लेकर अस्ताचल तक पश्चात्पद चलते थे। वेद, वेदाङ्ग आदि सभी विद्याओं में तथा तपोनिधान में हनुमान् बृहस्पति से भी प्रतिस्पर्धा करते थे।

रावण एवं वाली का महत्त्व सुनकर राम ने कहा था कि रावण तथा वाली का बहुत बड़ा बल था तथापि हनुमान् के समान उनका बल नहीं था। शौर्य, दक्षता, बल, धैर्य, प्रज्ञा, नीतिमत्ता, विक्रम तथा प्रभाव बहुत से गुण हनुमान् में ही रहते हैं।

जाम्बवान् से आत्मकथा सुनकर हनुमान् विशाल रूप धारण करते हैं एवं समुद्रलङ्घन के लिए उद्यत होकर अपने बल का वर्णन करते हैं।

बुल्के कहते हैं कि पश्चिमोत्तरीय तथा गौड़ीय पाठों के अनुसार हनुमान् अपनी जन्मकथा का पुनः विवरण कर के अपने पिता केसरी के एक वरदान का उल्लेख करते हैं।

पश्चिम समुद्र के तट पर प्रभासतीर्थ में एक महान् गज ऋषियों को तंग किया करता था। केसरी ने उसका वध किया। ऋषियों के अनुरोध से उन्होंने वायु के समान वीर्यवान् कामरूपी अव्यय पुत्र माँगा था। यद्यपि इसमें पुञ्जिक-स्थला का नाम नहीं है। इसमें बालचरित का वर्णन नहीं है। फिर भी **वाल्मीकिरामायण** तथा पुराणों की कथाओं का समन्वय कर के ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचना उचित है।

ब्रह्मपुराण (अध्याय ८४) के **अनुसार** केसरी की अञ्जना और अद्रिका दो पत्नियाँ थीं। अगस्त्य का आतिथ्यसत्कार कर के दोनों ने उत्तम बलवान् लोकोपकारक पुत्र माँगा। पश्चात् वायु से अञ्जना में हनुमान् तथा निऋति से अद्रिका में पिचाशराज अद्रि की उत्पत्ति होती है। अद्रि गौतमी नदी के किसी तीर्थ में स्नान कराने के लिए अञ्जना को ले गये। वहाँ स्नान करने से अञ्जना, जो पहले अप्सरा थी, मुक्त हो गयी। उस तीर्थ का नाम अञ्जनं अथवा पैशाचं हुआ। अद्रिका को हनुमान् ने किसी दूसरे तीर्थ में स्नान कराया, जिससे वह भी मुक्त हो गयी। उस तीर्थ का नाम मार्जारं अथवा हनुमन्त पड़ा।

स्कन्दपुराण के अनुसार शिव की कृपा से हनुमान् को अनेक वर मिले हैं। **भविष्यपुराण** (३।४।१३) के अनुसार वज्र से मारे जाने पर हनुमान् ने सूर्य को हाथ से नहीं जाने दिया। सूर्य का आर्त्त वचन सुनकर रावण आकर हनुमान् की पूँछ खींचने लगा। हनुमान् ने सूर्य को छोड़कर रावण से एक वर्ष पर्यन्त मल्ल युद्ध किया। अन्त में रावण की हार हुई। विश्रवा ने आकर रुद्रावतार हनुमान् को तुष्ट किया।

आनन्दरामायण (१।१३।१६४-१६८) तथा **भावार्थरामायण** (७।३५) के अनुसार वायु अपने पुत्र को सूर्य की ओर बढ़ते देखकर उसे प्रचण्ड ताप से बचाने के लिए दौड़े, पर उसे लौटाने में असमर्थ होकर शीतल समीर द्वारा उसे ठंढा करने लगे। सूर्य के पास पहुँचकर सूर्य को निगलते राहु को देखकर पूंछ के प्रहार से हनुमान् ने राहु को अचेत कर दिया। तब केतु राहु की सहायता करने आया, किन्तु हनुमान् ने दोनों को परास्त किया। अन्त में दोनों इन्द्र की शरण में गये।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार पुराण की कथाओं का समन्वय हो ही जाता है।

पउमचरियं के अनुसार आदित्यपुर के पवनञ्जय राजकुमार ने महेन्द्रपुर की राजकुमारी अञ्जना से विवाह किया, किन्तु २२ वर्ष तक पत्नी से उदासीन रहा। जब वह रावण की ओर से वरुण से युद्ध करने गया तब किसी दिन उसका अञ्जना के प्रति अनुराग जाग्रत हुआ। वह गुप्तरूप से उससे मिलने गया। अञ्जना गर्भिणी हुई। अतः सखी वसन्तमाला के साथ निर्वासित होकर किसी गुफा में पुत्र को जन्म देती है। बाद में अञ्जना का मामा प्रतिसूर्यक पुत्र सहित अञ्जना को हनुरुहपुर की ओर ले गया। बालक माता की गोद से उछलकर पर्वत-शिला पर गिरता है। माता ने देखा बालक के गिरने से पर्वत चूर-चूर हो गया। उससे उनका नाम श्रीशैल हुआ। पवनञ्जय ने अपनी पत्नी के सतीत्व का साक्ष्य दिया। पुत्रसहित अञ्जना ससुराल लौटी। हनुरुहपुर में रहने से बालक का नाम हनुमान् हुआ।

गुणभद्र के **उत्तरपुराण** के अनुसार प्रभञ्जन ने अपनी पत्नी से अमिततेज नामक पुत्र उत्पन्न किया अमिततेज ने विजय-यात्रा में पर्वत पर दाहिना पैर रख कर बायें से सूर्य पर प्रहार किया। अपना शरीर त्रसरेणु जैसा बनाने से उसका नाम अणुमान् हुआ। यह सब **वाल्मीकिरामायण** को ही विकृत कर रूपान्तरण किया गया है।

जैनों और बौद्धों द्वारा इन कथाओं को विकृत करने में यह भी प्रमाण है कि उन्होंने नगरों, ग्रामों आदि तथा पात्रों के जो नाम गढ़े हैं वे सर्वथा अप्रचलित तथा अव्यवहार्य हैं और उन नगरों और ग्रामों का कहीं अस्तित्व ऐतिहासिक नहीं है जब कि प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित नगर, ग्राम आदि ज्यों के त्यों अभी तक मिलते हैं।

बुल्के कहते हैं कि शैवपुराणों तथा अर्वाचीन रचनाओं में हनुमान् को रुद्रावतार कहा गया है। पर यह उनकी दुष्कल्पना असङ्गत है। पुराण अतिप्राचीन हैं। तदनुसार हनुमान् रुद्रांश या रुद्रावतार ही हैं। विष्णु रावण के नाशार्थ आविर्भूत हुए। तब उनकी सहायता के लिए शिव हनुमान् के रूप में आये। **नारदपुराण** (पूर्वखण्ड अ० ७९) तथा **ब्रह्मवैवर्तपुराण** (कृष्णजन्मखण्ड अ० ६२) में हनुमान् को शिव का अंश कहा गया है। **महानाटक** (६।२७) में लङ्का को जलते देखकर रावण कहता है—मैंने अपने दस सिर चढ़ाकर दस रुद्रों को प्रसन्न किया था। हनुमान् ११वें रुद्र के अवतार हैं। **तत्त्वसंग्रहरामायण** (७।२) में हनुमान् को रुद्रावतार कहा गया है। **कृत्तिवासीय रामायण** (६।१२९) के अनुसार सीता रामाभिषेक के बाद हनुमान् को परोस कर तृप्त कराने में असमर्थ हो ध्यान से जानती है कि वे रुद्रावतार हैं। **आनन्दरामायण** (१।११), तुलसीकृत **दोहावली** (१४२-३), **विनयपत्रिका** आदि में भी हनुमान् को रुद्रावतार कहा गया है। **भविष्यपुराण** (प्रतिसर्गपर्व चतुर्थ. खण्ड १३।३१-३६) में भी केसरी ही हनुमान् के पिता कहे गये हैं। किन्तु रुद्र और वायु सहायक हैं। रावण से त्रस्त देवताओं ने ११ वर्ष शिव की पूजा कर के वर पाया है कि शिव रावण का दमन करने के लिए अवतार लेंगे। अञ्जना गौतम की पुत्री थी। शिव ने रौद्र तेज से केसरी के मुख में प्रवेश किया। केसरी तुरन्त कामातुर हुआ। वायु ने भी केसरीदेह में प्रवेश किया। इस तरह १२ वर्ष तक रमण करने के बाद अञ्जना गर्भिणी हुई और उसने वानरानन पुत्र को जन्म दिया। पुत्र को कुरूप देखकर अञ्जना ने उसे पर्वत से नीचे फेंक दिया। वानरानन पुत्र के फेंकने से भूकम्प हुआ। **शिवपुराण** (शतरुद्रखण्ड अ० ३९–४२) के अनुसार प्रभञ्जन ने केसरी की पत्नी अञ्जनी से रुद्रावतार हनुमान् को उत्पन्न किया।

कथासरित्सागर की कथाओं के अनुसार गौतम अपनी पुत्री को गर्भिणी होने का शाप देते हैं, क्योंकि उसने अपनी माता अहल्या का व्यभिचार प्रकट किया था। शाप सुनकर वह शिव की आराधना करती है। शिव की आज्ञा से नारद ने उसके कान में मन्त्र कह दिया। जिसके प्रभाव से उसने हनुमान् को जन्म दिया। मन्त्र-ग्रहण करते समय वह केसरी नामक वानर की ओर देख रही थी। इसी लिए वानरमुखवाला पुत्र हुआ।

रामकियेन के अनुसार उसका नाम स्वाहा था। माता का व्यभिचार प्रकट करने पर माता ने उसको पुत्रप्रसव करने तक एक पैर पर खड़े रहने का शाप दिया था। शिव दयार्द्र होकर अपनी शक्ति तथा अपने अस्त्रों की शक्ति के साथ वायु को स्वाहा के पास भेज कर उसके मुख में रखने का आदेश देते हैं। फलतः तीन महीने के बाद हनुमान् वानर के रूप में स्वाहा के मुख से निकलते हैं।

शिवपुराण (शतरुद्रसंहिता अ० २०) के अनुसार विष्णु को मोहिनीरूप में देखकर आविर्भूत शिव-शुक्र को सप्तर्षियों ने अञ्जना के कान में रख दिया। उसी से हनुमान् का जन्म हुआ।

सारलादास के महाभारत (वनपर्व) के अनुसार अहल्या ने यह शाप दिया था कि तुम्हारा पुत्र बन्दर होगा। अञ्जना ने विवाह न करने का निश्चय किया। तपस्या करने लगी। उसके शरीर के चारों ओर वल्मीक हो गया। गौतम के अनुरोध से पवन उसे सप्ताह में भोजन देते हैं। उधर विवाह के पश्चात् शिव पशुओं का रूप धारण कर क्रीडा कर रहे थे। वानर-वानरी के रूप में रमण करते समय शिव का तेज पार्वती धारण न कर सकीं। तेज पृथ्वी पर गिर गया। उससे विभिन्न धातुएँ बनीं। शिव ने थोड़ा तेज वायु को दिया। पवन ने उसे अञ्जना को दिया। हनुमान् का जन्म हुआ।

दक्षिण की किसी कथा के अनुसार वानर-वानरी के रूप में परमेश्वर और परमेश्वरी की क्रीड़ा से परमेश्वरी गर्भिणी हो गयी। वानर-पुत्र होने की आशङ्का से वायु से कहा कि वह भ्रूण को निकाल कर अन्य स्त्री के पेट में रख दे। वायु ने उस भ्रूण को अञ्जना के गर्भ में पहुँचाया। उसने वानर को प्रसव किया।

पुराणों पर आधारित कथाओं का **वाल्मीकिरामायण** के साथ समन्वय करना उचित है। वायु का सम्बन्ध प्रायः सब कथाओं से जुड़ा है। तुलसीदासजी ने भी हनुमान् चालीसा में हनुमान् को **"शंकरसुवन केसरी-नन्दन"** कहा है।

शिव का तेज शिवस्वरूप ही है। वायु, अग्नि आदि सभी ईश्वर की शक्ति से ही शक्तिमान् होते हैं। जैसे शिव-तेज धारणकर अग्नि ने उसे गङ्गा में निहित किया था उसी तरह शिवतेज धारणकर वायु ने अञ्जना में निहित किया है। अञ्जना गौतमपुत्री थी। उससे भी पहले पुञ्जिकस्थला अप्सरा थी, जो भी हो, वह शाप वश वानरी हुई।

सेरीराम के अनुसार गौतम ने पुत्री अञ्जना को शाप दिया कि सौ वर्ष तक मुख बाकर सुई की नोक पर समुद्र के बीच में खड़ी रहो। वनवास के समय राम, लक्ष्मण और सीता एक स्थल पर पहुँचे जहाँ दो सरोवर थे। एक ऋषि ने कहा—स्वच्छजलवाले सरोवर में स्नान करने से मनुष्य पशुरूप धारण कर लेते हैं। पङ्किल जलवाले सरोवर में स्नान करने से पुनः मनुष्य बन जाते हैं। राम और सीता ने स्वच्छजलवाले सरोवर में स्नान कर लिया और दोनों वानर-वानरी हो गये। वृक्षों पर क्रीडा करने लगे, जिससे सीता गर्भिणी हो गयी। लक्ष्मण ने बड़ी कठिनाई से पुनः दोनों को पङ्किल जलवाले सरोवर में नहलाया तब वे पुनः मनुष्यरूप बन गये। राम ने सीता का भ्रूण निकाल दिया। वायु ने उसे सुई की नोक पर खड़ी अञ्जनी के मुख में रख दिया। बाद में अञ्जनी ने कुण्डलों से अलङ्कृत हनुमान् को जन्म दिया। **सेरीराम** के अन्य पाठानुसार अञ्जनी को देखकर राम अनुरक्त होते हैं, अपने तेज को वायु के द्वारा अञ्जना के मुख में रखवाते हैं।

रामजातक के अनुसार सीता को खोजते समय राम एक फल खाने से वानर बन जाते हैं। अञ्जनी ने भी वही फल खाया वह भी वानरी हो गयी। दोनों हनुमान् को उत्पन्न करते हैं। हनुमान् के प्रति सीता और राम दोनों का वात्सल्य था। इसी आधार पर यह कथा बनी है। ईश्वर ही हिरण्यगर्भ तथा विराट् बनकर मनु-शतरूपा रूप में विभिन्न प्राणियों के रूप में सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों का निर्माण करते हैं। फिर भी मर्यादापुरुषोत्तम राम एकपत्नीव्रत पालन करते हैं। **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित राम और सीता के आदर्श के विपरीत कथाओं का वाच्यार्थ में प्रामाण्य नहीं है। पूर्वोक्त लक्ष्यार्थ में तो कोई विरोध नहीं है। वस्तुतः बौद्धजातक और उनके अनुसार उलटी सीधी गढ़ी गयी कथाओं का किसी प्रकार प्रामाण्य नहीं है।

दशरथयज्ञ के पायस का एक अंश अञ्जना को प्राप्त हुआ था। उससे हनुमान् का जन्म होना उनकी विष्णुरूपता में भी प्रमाण है (आ० रा० १।१।१०४–१०७)।

सुवर्चला अप्सरा को नृत्य-दोष के कारण ब्रह्मा ने गृध्री होने का शाप दिया तथा उसे यह वरदान दिया कि कैकेयी का पायस अञ्जनी पर्वत पर फेंकने पर वह पुनः अप्सरा हो जायगी। समय आने पर गृध्री ने कैकेयी के हाथ से कुछ पायस छीनकर अञ्जनी पर्वत पर फेंका और अप्सरा होकर स्वर्ग चली गयी। वह पायस अञ्जना को मिला। उससे हनुमान् का जन्म हुआ। उसी रचना में अन्य स्थल पर उसके बाद वायु से भी सम्पर्क हुआ, जिससे हनुमान् की उत्पत्ति हुई। **भावार्थरामायण** में इसका समन्वय मिलता है। सुवर्चला अप्सरा शापवशात् गृध्री हुई। कैकेयी से पायस का कुछ अंश छीनकर उसे खाकर वही वानरी बन गयी। वानरी के रूप में वह गौतम की पुत्री और केसरी की पत्नी बन गयी। पायस खाने के फलस्वरूप हनुमान् का जन्म होता है (बालकाण्ड २–२ तथा किष्किन्धा-काण्ड १–१०)।

वाल्मीकिरामायण जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों के अनुसार हनुमान् केसरी के क्षेत्रज और वायु के औरस पुत्र हैं। अञ्जना उनकी माता है। बुल्के के अनुसार विशेषताओं की दृष्टि से वायु-पुत्र उनकी काल्पनिक उपाधि नहीं है।

उनका ऐन्द्रजालिक या विद्याधर होना वायुपुत्र शब्द से कथमपि सिद्ध नहीं होता। जैनकथा भी रामायणीय कथा पर जहाँ तक निर्भर है वहीं तक मान्य है। रामायण विरोधी अंश सभी त्याज्य हैं।

बुल्के का यह कहना भी अशुद्ध है कि ८ वीं या १० वीं शती से हनुमान् शिव के अवतार माने जाते हैं, क्योंकि पुराण कम से कम व्यास-काल के हैं जो कि ईसा से तीन हजार वर्ष से अधिक प्राचीन हैं। यह कहना भी गलत है कि **रामायण** की आधिकारिक कथावस्तु में शिव के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि **रामायण** में शिव के रामेश्वर-प्रसाद की चर्चा है। दशरथ के साथ शिवजी प्रकट होकर राम को विविध आशीर्वाद देते हैं। जब पुराणों के अनुसार हनुमान् रुद्रावतार हैं यह वस्तुस्थिति है, तब शैवों ने हनुमान् को रुद्रावतार मान लिया यह कहना प्रलापमात्र ही है।

उपनिषद्ग्रन्थ वेद हैं। **रामरहस्योपनिषद्** में हनुमान् को शिव, सुग्रीव को विष्णु और जाम्बवान् को ब्रह्मा कहा गया है।

६८० वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "हनुमान् वानरगोत्रीय आदिवासी थे। किन्तु आगे चलकर उन्हें राम-कथा के अन्य आदिवासियों के समान वानर भी माना गया है। प्रचलित **रामायण** में हनुमान् के वानरत्वविषयक विशेषणों का बाहुल्य देखकर प्रतीत होता है कि वाल्मीकि के समय के पूर्व ही यह धारणा मान्यता प्राप्त करने लगी थी कि वे सब वस्तुतः वानर थे। फिर भी रामायण के वानर मनुष्यों की तरह बुद्धिमान् थे तथा मानवभाषा बोलते थे, कपड़े पहनते थे, घरों में रहते थे, विवाह-संस्कार को मान्यता देते थे एवं राजा का शासन मानते थे। अतः कवि की दृष्टि से वे निरे वानर नहीं थे। उनकी अपनी संस्कृति और सामाजिक व्यवस्था थी। अतः वे वास्तव में एक मानवजनजाति ही थे।" परन्तु बुल्के का उक्त कथन उनकी कल्पना पर ही निर्भर है, प्रामाणिक नहीं है।

विद्या, बुद्धिमत्ता तथा पराक्रम

हनुमान्, सुग्रीव आदि वास्तव में ही वानर थे। **वाल्मीकिरामायण** से यही सिद्ध है, अन्यथा पुच्छ आदि भी सब काल्पनिक ही मानने पड़ेंगे। जिसे किसी भी अंश को क्षेपक कहने में कुछ संकोच नहीं, वही ऐसी निराधार कल्पना कर सकता है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार भी वे सामान्य वानर थे, किन्तु ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, सूर्य आदि देवता हो रावण आदि राक्षसों के वधार्थ वास्तव में वानरों के रूप में उत्पन्न हुए थे। अतएव उनकी मानवों जैसी ही नहीं मानवों से भी अत्यन्त उत्कृष्ट बुद्धि थी तथा उनमें उत्कृष्ट बल था। वे विद्वान् वेदज्ञ भी थे। यह सब **रामायण** से ही सिद्ध है। जैसे ब्रज की गोपिकाएँ कोई सामान्य गोपिकाएँ नहीं हैं, वे विशिष्ट शक्तिरूपा हैं उसी तरह इन विशिष्ट अवतारी वानरों को भी समझना चाहिए। वे निरे वानर नहीं थे। उनकी धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था थी, यह सब ठीक है।

वाल्मीकिरामायण में हनुमान् को सुग्रीव का पराक्रमी तथा बुद्धिमान् मन्त्री माना गया है। सर्वत्र ही रामसाहित्य में हनुमान् के पराक्रम तथा बुद्धिमत्ता को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। **महाभारत** के वनपर्व में भीम हनुमान् का परिचय देते हुए कहते हैं—

"भ्राता मम गुणश्लाघ्यो बुद्धिसत्त्वबलान्वितः।
रामायणेऽतिविख्यातो शूरो वानरपुङ्गवः॥" (११।१४७)

मेरा भ्राता गुणों से श्लाघ्य, बुद्धि, सत्त्व और बल से युक्त वानरपुङ्गव हनुमान् रामायण में अति विख्यात है। यह श्लोक भी रामायण पहले और महाभारत बाद का है इसमें प्रबल प्रमाण है। अतः कुछ पाश्चात्यों का तथा उनके अनुयायियों का महाभारत को रामायण से पुराना मानना निरा भ्रम ही है।

रामायण में अनेक स्थलों पर हनुमान् की प्रशंसा है। सर्वत्र उनकी वीरता एवं विशिष्ट प्रज्ञा का वर्णन है। हनुमान् का देवत्व भी स्वाभाविक ही है। हनुमान् ही क्यों सुग्रीव आदि सभी वानर देवता ही हैं। उपनिषद् में हनुमान् को शिव कहा गया है। उपनिषद् को अर्वाचीन कहना सर्वथा निराधार ही है। हनुमान् का पराक्रम प्रसिद्ध है। **वाल्मीकिरामायण** में हनुमान् के लिए निम्नोक्त विशेषण प्रयुक्त हैं—वीर, वीर्यवान्, महाबल, महातेज, महाबाहु, महावेग, भीमविक्रम, अरिन्दम, बलवीर्यसंवृत, जितश्रम, वज्रसंहनन, महाकाय, महोत्कट, अमितौज, मारुततुल्यवेग, मारुतवेगविक्रम, मनोजव, मेघस्वन, महास्वन, घननादनिःस्वन, चण्डविक्रम, गरुडानिलविक्रम, रणचण्डविक्रम, अरिमर्दन, शत्रुसैन्यानां निहन्ता आदि।

६८३ वें अनु० में बुल्के यह भी कहते हैं कि "उनके समुद्रलङ्घन की कथा संभवतः किसी आश्चर्यजनक तथा असाधारण लङ्घन के आधार पर उत्पन्न हुई। लङ्कादहन, औषधपर्वत का आनयन, जन्म के बाद ही सूर्य तक छलांग मारना ये वृत्तान्त प्रचलित **रामायण** में प्रक्षिप्त हैं।" यह सब कथन दुरभिसन्धिपूर्ण ईसाइयत मनोवृत्ति का परिचायक है। परन्तु उन्हें ईसा के चमत्कारों में अविश्वास और प्रक्षेप की कल्पना करने का साहस नहीं होता। निश्चित ही **वाल्मीकिरामायण** अनादि अपौरुषेय वेदों के आधार पर आधारित है। उसमें अप्रामाण्य की शङ्का भी नहीं होती। उपनिषदों में हनुमान् के समुद्रलङ्घन, लङ्का-दहन आदि की चर्चा है। क्या किसी नाले के पार कूद जाने से समुद्रलङ्घन की कल्पना हो सकती है? जिसने **वाल्मीकिरामायण** का समुद्रोल्लङ्घन का वर्णन सुना है वह बुल्के के कथन को प्रलाप ही मानेगा? औषध-पर्वत का आनयन भी साधारण पत्थर लाने का उपचार नहीं है और न ही सूर्य तक छलांग लगाने की कल्पना का कोई लौकिक आधार है। परन्तु दैवी और आसुरी शक्तियों की ओर ध्यान देने से यह असंभव नहीं है। **रामकियेन** आदि ने भी इन घटनाओं को काल्पनिक नहीं माना है। ईसा ने अन्धे की आँखें दे दी और कुष्ठी को निर्मल काया दी। यदि ईसाइयों के अनुसार यह सत्य है तो अनादि वैदिक धर्म के विशिष्ट पुरुषों में उक्त चमत्कार में कोई आश्चर्य ही नहीं है।

बाइबिल आदि ही अर्वाचीन ग्रन्थ हैं। उनके पाठ और वृत्तान्तों के सम्बन्ध में ईसाइयों में ही बहुत मतभेद हैं। बुल्के को चाहिए कि वे अपना घर संभालें। वस्तुतः वेद और रामायण के अध्ययन के वे अधिकारी ही नहीं हैं। उनकी अनधिकार चेष्टा का ही दुष्परिणाम उनकी तथाकथित रामकथा है। अतएव केवल रामायणों में ही नहीं महाभारत आदि में भी हनुमान् के लोकोत्तर पराक्रम का वर्णन है।

महाभारत के अनुसार हिमालय के मार्ग में सोये हुए हनुमान् को जगाकर भीम ने उन्हें हट जाने को कहा—हनुमान् ने कहा, लाँघकर चले जाओ अन्यथा पूंछ हटाकर चले जाओ। भीम पूंछ हटाने लगे। वे पूंछ को हिलाने में भी समर्थ नहीं हुए। दोनों हाथ लगाने से भी पूंछ टस से मस नहीं हुई। भीम ने समझ लिया कि ये हनुमान् हैं। भीम के अनुरोध पर उन्होंने भीम को समुद्रलङ्घन करनेवाला रूप दिखाया और चतुर्युगीन चातुवर्ण्य का उपदेश दिया एवं भावी युद्ध में उन्हें सहायता देने का आश्वासन दिया (म० भा० ३।१५७।१५०)। इससे भी रामायण की प्राचीनता तथा महाभारत की अर्वाचीनता स्पष्ट सिद्ध है।

आनन्दरामायण मनोहरकाण्ड के अनुसार द्वापर के अन्त में अर्जुन की धनुष्कोटि तीर्थ में हनुमान् से भेंट हुई। अर्जुन ने कहा सेतु-निर्माण में व्यर्थ ही परिश्रम हुआ। शरसेतु क्यों नहीं बनाया गया। हनुमान् ने कहा मुझ जैसे वानरों के भार से सेतु डूब जाता। अर्जुन ने कहा मैं अभी सेतु बनाता हूँ यदि वह आपके भार से डूब जाय तो मैं अग्निप्रवेश करूँगा। हनुमान् ने भी कहा—यदि मेरे भार से सेतु न टूटा न तो मैं आपकी ध्वजा पर बैठकर सहायता करूँगा। अर्जुन ने शतयोजन सेतु का निर्माण कर दिया। हनुमान् ने अपने अँगूठे से ही सेतु भग्न कर दिया। अर्जुन

चिता में बैठने को तैयार हो गये। कृष्ण वहाँ बटु के रूप में पहुँचे। सारा हाल सुनकर बोले साक्षी के अभाव में आप दोनों का काम व्यर्थ हुआ। मेरे सामने अपनी सामर्थ्य दिखाइये। अब की बार कृष्ण ने सेतु के नीचे अपना चक्र रख दिया जिससे हनुमान् के भार से भी सेतु न टूटा। वे तुरन्त जान गये कि ये भगवान् हैं।

किसी कथा के अनुसार भगवान् ने कच्छप-रूप धारण कर शरसेतु की रक्षा की। हनुमान् ने समझ लिया। भगवान् ने कृष्णरूप में दर्शन देकर उनका आलिङ्गन किया।

भगवान् ने सेतु भी समुद्र में डुबाकर अर्जुन का गर्व दूर किया। उस समय से हनुमान् अर्जुन की ध्वजा पर विराजमान हुए। इन सब प्रमाणों के रहते बुल्के आदि कैसे महाभारत को प्राचीन मानकर रामायण पर उसका प्रभाव बतलाते हैं, यही आश्चर्य है।

तत्त्वसंग्रहरामायण के अनुसार अर्जुन ने कृष्ण से कहा—मैं समुद्र पर सेतु बना सकता हूँ। राम ने सेतु क्यों बनवाया ? कृष्ण ने कहा वह महाकाय वानर वीरों के लिए बनाया गया था। अर्जुन ने गर्व से कहा—मेरा सेतु किसी भी भार का सहन कर सकता है। कृष्ण ने हनुमान् को बुलवाया। अर्जुन ने सेतु बनाया। पर वह हनुमान् के चढ़ते ही चूर्ण हो गया। भगवान् ने वराहरूप से संभाला। हनुमान् ने कृष्ण के अनुरोध से **महाभारत** में अर्जुन के ध्वजपर बैठना स्वीकार किया।

कर्णदान काव्य में कहा गया है कि **सारलादास** के **महाभारत कर्णपर्व** के अनुसार कर्ण के साथ युद्ध करते समय अर्जुन को गर्व हुआ कि कर्ण के बाण से मेरा रथ थोड़ा ही पीछे हटता है, किन्तु मेरे बाणों से कर्ण का रथ चौगुनी दूरी तक पीछे हट जाता है। किन्तु कृष्ण ने यह कहकर कर्ण की ही प्रशंसा की कि कर्ण का रथ हल्का है और यह रथ मेरु-मन्दर के तुल्य भारी है, इसपर सभी देवता विद्यमान हैं। ध्वज में हनुमान् हैं, फिर भी कर्ण इसे अपने बाणों से हटा देता है।

कृष्णावतार के समय भगवान् ने हनुमान् को बुलाकर द्वारका के किसी उपवन में निवास कराया। कृष्ण ने सत्यभामा, सुदर्शन तथा गरुड़ तीनों का गर्व दूर करना चाहा। गरुड़ से कहा—अमुक वन में रहनेवाले वानर को पकड़ लाओ। हनुमान् ने उन्हें ६०,००० योजन पार समुद्र में फेंक दिया। बाद में कृष्ण ने पुनः गरुड़ को भेजा कि हनुमान् को द्वारका के राजभवन में आने का निमन्त्रण दे आओ स्वयं धनुर्धारी राम बन गये। सत्यभामा को सीता का रूप धारण करने को कहा। सुदर्शन से कहा—सावधान ! कोई भी प्रवेश न करने पाये। हनुमान् गरुड़ के बहुत पहले द्वारका पहुँच गये। सुदर्शन चक्र को मुख में रखकर राजभवन में प्रवेश किया। वे रामरूपी कृष्ण के सामने नतमस्तक होकर तुरन्त पहचान गये कि सत्यभामा सीता नहीं है। कृष्ण ने हनुमान् को द्वारपाल नियुक्त किया।

दाशरथि (१८०६ ई०—१८५७ ई०) की **पाञ्चाली** के "सत्यभामा, सुदर्शनचक्र ओ गरुड़ेर दर्पचूर्ण" अध्याय के अनुसार कृष्ण ने गरुड़ को हिमालय से एक नील कमल लाने को भेजा। वहाँ उनका हनुमान् से युद्ध हुआ। हनुमान् ने गरुड़ को काँख में दबाकर एक नील कमल के साथ द्वारका के लिए प्रस्थान किया। सुदर्शन ने हनुमान् को महल के द्वार पर रोकने का प्रयास किया, किन्तु सुदर्शन हनुमान् का एक बाल भी बाँका न कर सके। उन्होंने अपनी हार मान ली। इतने में कृष्ण ने यह देखकर कि हनुमान् आ रहे हैं राम का रूप धारण कर लिया। सत्यभामा को सीता का रूप धारण करने को कहा, किन्तु वह समर्थ नहीं हुई। रुक्मिणी ने सीता का रूप धारण किया। सत्यभामा और उनकी सखियाँ उनकी हँसी उड़ाने लगीं। हनुमान् ने राम के चरणों पर नील कमल रखकर गरुड़ को काँख से निकाल दिया। ऐसी कथाएँ अन्यत्र भी हैं।

पउमचरियं के अनुसार हनुमान् ने वरुण के १०० पुत्रों को कैद कर लिया था। पर्व ५० में हनुमान् ने अपने दादा महेन्द्र को सेना सहित पराजित किया था।

स्कन्दपुराण (ब्राह्मखण्ड धर्मारण्यमा० अ० ३६,३७) में हनुमान् के प्रभाव से धर्मारण्य के निवासियों की सुख-शान्ति तथा हनुमान् द्वारा कुम्भीपाल की पराजय से वहाँ के ब्राह्मणों की सुरक्षा का वर्णन है।

आनन्दरामायण (राज्यकाण्ड सर्ग १८) के अनुसार राम ने ब्राह्मणों को रामनाथपुर का राज्य प्रदान किया तथा हनुमान् को उनकी सहायता के लिए नियुक्त किया। बाद में हनुमान् ने देवालय की पाषाण मूर्ति से प्रकट होकर एक दुष्ट राजा को शूली पर चढ़ाया था।

आनन्दरामायण (मनोहरकाण्ड सर्ग १२२) में स्त्रीराज्य की कथा मिलती है। एक रामभक्त ब्राह्मण की सहायता के लिए प्रकट होकर हनुमान् ने अपने गर्जन से ही सब पुरुषों को मार डाला, जिससे उस देश का स्त्रीराज्य नाम पड़ा। **भावार्थरामायण** (७।१) में भी हनुमान् को राम द्वारा स्त्रीराज्य में भेजने की कथा है।

यह भी कहा जाता है कि वीरमाता अञ्जना ने अपने दूध की धारा से एक पर्वतश्रेणी को बहा दिया था।

रामायण में हनुमान् के लिए सचिवोत्तम, **मन्त्रिसत्तम**, पिङ्गाधिपमन्त्री, कपिराजहितकर, प्लवङ्गाधिप-**मन्त्रिसत्तम** आदि विशेषण आते हैं। प्रज्ञासूचक विशेषणों में मतिमान्, महामति, महाप्राज्ञ, मेधावी, बुद्धिमतां वरिष्ठ, धीमान्, साधुबुद्धि, अचिन्त्यबुद्धि, वाक्यज्ञ, वाक्यविशारद आदि विशेषण विशेषरूप से आते हैं। हनुमान् संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं के विद्वान् थे। अशोकवाटिका में वे इसी लिए संस्कृत नहीं बोलते कि संस्कृत बोलने से सीता उन्हें रावण न समझ लें—

> "वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।
> यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्॥
> रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।
> **अवश्यमेव वक्तव्यं** मानुषं वाक्यमर्थवत्॥ (वा० रा० ५।३०।१७,१८)

६८९ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "हनुमान् की विभिन्न शास्त्रों में पहुँच का उल्लेख **मूलरामायण** में नहीं रहा होगा। हनुमान् की जन्म-कथा में उनको **सर्वशास्त्रविदांवर** की उपाधि दी गयी है (वा० रा० ४।६६।२)।"

सर्वत्र ही बुल्के को अपनी अनर्गल बात को सिद्ध करने के लिए **रामायण** 'की कथाओं को क्षेपक कहना पड़ता है। अन्यथा **वाल्मीकिरामायण** में तो हनुमान् को सर्वशास्त्रविदों में श्रेष्ठ कहा ही गया है। वाल्मीकिरामायण ४।५४।५ में भी हनुमान् को सर्वशास्त्रविशारद कहा गया है। अन्य स्थलों में भी हनुमान् की तत्त्वज्ञता वर्णित है—

> "निश्चितार्थोऽर्थतत्त्वज्ञः कालधर्मविशेषवित्।" (वा० रा० ४।२९।६)

तथा— "विदिताः सर्वलोकास्ते" (वा० रा० ४।४४।४)।

बुल्के कहते हैं कि अधिक संभव है कि ये बाद के प्रक्षेप हों, पर वे सात जन्म लेकर भी हनुमान् की सब शास्त्रों में पहुँच नहीं थी, इसमें कोई प्रमाण नहीं बतला सकते। उत्तरकाण्ड की कथा में अगस्त्यजी ने राम को स्पष्ट बताया ही था कि हनुमान् ने सूर्य भगवान् से व्याकरणादि वेदाङ्ग, वेद, छन्द आदि का अध्ययन कर सब को धारण किया था। परन्तु बुल्के के पास इन सबको प्रक्षेप कहने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। **महाभारत** आरण्यक पर्व में भी हनुमान् और भीम के संवाद में हनुमान् को शास्त्रज्ञ कहा गया है। वे भीम को चार युगों (अध्याय

१४८) तथा चार वर्णों (अध्याय १४९) के धर्मों का उपदेश करते हैं। किन्तु बुल्के अन्यत्र **महाभारत** में न होने के कारण **वाल्मीकिरामायण** में विद्यमान अंशों को क्षेपक कहते हैं परन्तु **महाभारत** के आरण्यक पर्व में हनुमान् के लिए शास्त्रज्ञ होने का उल्लेख होते देखकर कहते हैं कि यह उल्लेख उत्तरकाण्ड के प्रभाव से हुआ है। उत्तरकाण्ड को तो वे प्रक्षेप मानते ही हैं। वस्तुतः उनके ही पूर्वोक्त तर्कों के अनुसार **महाभारत** आरण्यकं पर्व से समर्थित होने के कारण उत्तरकाण्ड को प्रामाणिक काण्ड मानने के लिए उन्हें बाध्य होना चाहिये। साथ ही उन्हें इस बात का भी ध्यान नहीं है कि वे महाभारत के स्वयं रामोपाख्यान की छाप वाल्मीकिरामायण पर मान चुके हैं। फिर उन्हें महाभारत पर उत्तरकाण्ड का प्रभाव मानने का क्या अधिकार है। यों उनकी अधिकांश बाते उन्हीं के विरुद्ध हैं।

सिद्धान्ततः दाक्षिणात्य पाठ भी प्रामाणिक ही है। उसमें स्पष्ट कहा है कि हनुमान् तीनों वेदों एवं व्याकरण के महान् विद्वान् थे—

"नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्यारताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम्॥" (वा० रा० ४।३।२८,२९)

राम कहते हैं जिसे **ऋग्वेद** में शिक्षा नहीं प्राप्त है, जो **यजुर्वेद** नहीं जानता तथा जो **सामवेद** का विद्वान् नहीं है वह ऐसा भाषण नहीं कर सकता जैसा हनुमान् ने भाषण किया। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण **व्याकरण शास्त्र** का बहुत प्रकार से अध्ययन किया है। तभी बहुत बोलने पर भी किसी अपशब्द का उच्चारण नहीं किया। इन उद्धरणों से स्पष्ट ही हनुमान् की वेद-वेदाङ्गविज्ञता सिद्ध होती है। वस्तुस्थिति तो यह है कि वे विद्याधिपति शिव ही हैं। उनके अनुग्रह से आज भी बड़े बड़े विद्वान् पैदा होते हैं। परन्तु बुल्के अपनी मनोवृत्ति का परिचय देते हुए कहते हैं—"**रामायण** के कुशीलव (गायक) हनुमान् का ज्ञान-भण्डार बढ़ाते रहे हैं।" परन्तु आज के **रामायण** गायक तो वेचारे हनुमान् की कृपा से अपना ज्ञान-भण्डार बढ़ाते हैं, किन्तु हनुमान् का ज्ञानभण्डार कोई मनुष्य कैसे बढ़ा सकता है? बुल्के समझते हैं कि हनुमान् वस्तुतः वैसे नहीं थे, किन्तु व्यासों ने बढ़ाकर वैसा वर्णन किया है। पर उनकी यह समझ भ्रान्तिपूर्ण ही है। भारतीय व्यास पाश्चात्यों के समान मिथ्या इतिहास गढ़ने के अभ्यासी नहीं हैं। **छन्दःशास्त्र** के भी हनुमान् विद्वान् थे। बुल्के कहते हैं "इसी लिए **हनुमन्नाटक** की रचना का श्रेय हनुमान् को दिया गया है।" पर बुल्के को यह सोचना चाहिये था कि कोई भी ग्रन्थकर्ता के रूप में अपना ही नाम चाहता है। स्वयं ग्रन्थ लिखकर अपना उससे सम्बन्ध न जोड़कर अन्य को रचयिता के रूप में प्रसिद्ध करना बुल्के के यहाँ प्रसिद्ध है? तो फिर अपनी रामकथा को ही दूसरे की रचना क्यों नहीं कहते?

कहा जाता है कि वाल्मीकि महर्षि की रुचिरक्षा की दृष्टि से हनुमान् ने अपनी रचना को समुद्र में फेंक दिया था। तुलसीदास ने **विनयपत्रिका** में वस्तुस्थिति के अनुसार ही हनुमान् को वेदवेदान्तविद् कहा है, केवल उपाधि नहीं दी।

अध्यात्मरामायण (१।१।३२–५२) के अनुसार सीता और राम हनुमान् को वेदान्त का उत्कृष्ट तत्त्व बतलाते हैं। **मुक्तिकोपनिषद्** तथा **रामगीता** में हनुमान् को उच्च दार्शनिक शिक्षा दी जाने का उल्लेख है। **अद्भुत-रामायण** (सर्ग १०–१५) में राम हनुमान् को अपना विष्णुरूप दिखा कर उन्हें सांख्ययोग तथा भक्तियोग का उपदेश करते हैं। **रामरहस्योपनिषद्** अर्वाचीन नहीं अतिप्राचीन साक्षात् वेदस्वरूप है। उसके अनुसार हनुमान् सनकादिकों को रामोपासना की पद्धति बतलाते हैं।

हनुमत्संहिता के अनुसार हनुमान राम की चारुशीलानामक प्रधान सखी के रूप में अगस्त्य को भक्ति की शिक्षा देते हैं। **शिवसंहिता** में हनुमान् और अगस्त्य के संवादरूप में तत्त्वज्ञान वर्णित है।

दि बंगाली रामायणस पृ० ५१ के अनुसार हनुमान् ज्योतिषी एवं संगीतज्ञ भी थे। परन्तु यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। **महाभारत** के भीम और हनुमान् के संवाद के अनुसार हनुमान् गन्धर्वों एवं अप्सराओं से **रामायण** का गान नित्य ही सुनते रहते हैं। तुलसीदास ने भी **विनयपत्रिका** में 'गानगुनगरवगन्धर्वजेता' कहा है। सामगायक, सामगानाग्रणी आदि भी उन्हें कहा है। यह सब कोरी कल्पना नहीं है। ऋषि, महर्षि, सन्त, सत्यवक्ता लोग मिथ्या भावना या कल्पना की सृष्टि नहीं करते हैं।

रामकथाओं में हनुमान् के महायशा, कीर्तिमान्, यशस्वी, चिरञ्जीवी होने का भी वर्णन है। बुल्के अनु० ६९३ में कहते हैं कि "**महाभारत** का **रामोपाख्यान रामायण** के किसी प्राचीन रूप पर निर्भर है। उसमें राम अथवा देवताओं द्वारा हनुमान् को प्रदत्त किसी वरदान का उल्लेख नहीं है।" पर यह भी उनकी भ्रान्ति ही है। **महाभारत रामोपाख्यान** तथाकथित किसी अन्य रामायण पर नहीं **प्रचलित वाल्मीकिरामायण** पर ही निर्भर है। परन्तु वह संक्षेप है, अतः प्रचलित रामायण की सभी बातों का उसमें समावेश न होना स्वाभाविक ही है।

"रामकीर्त्या समं पुत्र! जीवितं ते भविष्यति।" (म० भा० ३।२७५।४३)

सीता ने कहा है—पुत्र ! रामकीर्ति के समान ही तुम्हारा भी जीवन अमर रहेगा।

बुल्के अपनी दुष्कल्पना के अनुसार कहते हैं कि "बहुत संभव है, इस उक्ति के अनुसार हनुमान् के विषय में यह माना जाने लगा कि जीवित रहकर हनुमान् हिमालय पर निवास करते हैं। इस विश्वास का प्राचीनतम उल्लेख हनुमान् और भीम के संवाद में सुरक्षित है। जिसमें हनुमान् कहते हैं कि मैंने राम से यह वरदान माँगा था कि जब तक रामकथा पृथ्वी पर प्रचलित रहेगी तब तक मैं जीवित रहूँ (म० भा० ३।१४७।३७)।

पर हनुमान् यह भी कहते हैं—इस स्थान पर अप्सराएँ तथा गन्धर्व रामचरित गाकर मुझे आनन्दित करते रहते हैं। रामोपाख्यान का सहारा लेकर बुल्के प्रचलित **रामायण** को अर्वाचीन एवं प्रक्षेपपूर्ण कहते हैं। परन्तु मौके पर **रामोपाख्यान** को भी किसी विश्वासमात्र पर निर्भर मान लेते हैं। आश्चर्य है ऐसे पूर्वापर विरुद्ध अनर्गल प्रलाप करके बुल्के अपना और दूसरों का समय नष्ट करने में क्यों प्रवृत्त हुए ? वस्तुतः—

"यावद्रामकथा वीर भवेल्लोकेषु शत्रुहन्।
तावज्जीवेयमित्येवं तथास्त्विति च सोऽब्रवीत् ॥" (वा० रा० ३।१४७।३७)

जब इस तरह **रामोपाख्यान** में भी राम के वरदान का उल्लेख है ही तब यह कैसे कहा जाय कि **मूल-रामायण** में हनुमान् को प्रदत्त किसी वरदान की बात नहीं थी। जैसे राम अनन्त हैं वैसे रामकथा भी अनन्त है। तदनुसार हनुमान् का जीवन भी अनन्त ही है। **रामायण** में भी यही कहा गया है—

"मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर।
तावद्रमस्व सुप्रातो मद्वाक्यमनुपालयन् ॥" (वा० रा० ७।१०८।३०)

रामायण उत्तरकाण्ड में राम द्वारा हनुमान् को दो बार वरदान देने का उल्लेख है। स्वर्गारोहण के पूर्व राम कहते हैं—हरीश्वर ! लोक में जब तक मेरी कथाएँ प्रचलित रहेंगी तब तक तुम मेरी आज्ञा का पालन करते हुए सुप्रसन्न होकर मेरी कथा में रमण करो—

"मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावल्लोके हरीश्वर।
तावद्रमस्व सुप्रीतो मद्वाक्यमनुपालयन् ॥" (वा० रा० ७।१०८।३०)।

उत्तरकाण्ड के ४० वें सर्ग में यह प्रसङ्ग विस्तृत रूप से वर्णित है ।

महाभारत में हनुमान् ने कहा था कि हिमालय के जिस स्थान पर वे रहते हैं वहाँ गन्धर्वादि रामचरित गाया करते हैं । बुल्के कहते हैं कि "अब रामचरित का यह गान वरदान का रूप धारण कर लेता है ।" परन्तु यह बुल्के की भ्रान्ति ही है, क्योंकि **रामायण** की बात ही पहली है । **महाभारत** का **रामोपाख्यान** तो उसी का संक्षेप है । अतः वरप्रदान की चर्चा न करके **महाभारत** में परिस्थितिमात्र का वर्णन किया गया है । **रामायण** की मूल बात यही है कि अभिषेक के बाद अयोध्या से बिदा लेते समय हनुमान् राम से चिरञ्जीवित्वपूर्वक रामकथाश्रवण तथा रामभक्ति का वरदान माँगते हैं—

"स्नेहो मे परमो राजंस्त्वयि तिष्ठतु नित्यदा ।
भक्तिश्च नियता वीर भावो नान्यत्र गच्छतु ॥
यावद्रामकथा वीर चरिष्यति महीतले ।
तावच्छरीरे वत्स्यन्तु मम प्राणा न संशयः ॥
यच्चैतच्चरितं दिव्यं कथा ते रघुनन्दन ।
तन्ममाप्सरसो राम श्रावयेयुर्नरर्षभ ॥" (वा० रा० ७।४०।१६-१८)

हे राजेन्द्र ! आपमें मेरा स्मरण-हेतुभूत स्नेह नित्य बना रहे और परलोकगति की हेतुभूत उपास्यत्वबुद्धिरूप भक्ति सदा बनी रहे । जैसे जल के बिना मछली का जीवन नहीं रहता वैसे ही आपकी कथा के बिना मेरा जीवन अशक्य रहे, मेरा भाव कहीं अन्यत्र न हो । अतः जब तक आपकी कथाएँ संसार में प्रचलित रहें तभी तक मेरे प्राण इस देह में रहें । आपके दिव्य चरित्र को अप्सरा, गन्धर्व आदि मुझे सदा ही सुनाते रहें । वस्तुतः महाभारत के उक्त श्लोक ३।१४७।३७ में भी वरदान स्पष्ट है ही ।

बुल्के किष्किन्धाकाण्ड की हनुमज्जन्मकथा को प्राचीनतमरूप मानते हैं । बंगीय पाठ में इस प्रसङ्ग में किसी वरदान का उल्लेख नहीं हुआ । पश्चिमीय पाठ में अस्त्रों से अवध्यता तथा दाक्षिणात्य पाठ में इन्द्र का भी वरदान मिलता है । इस तरह से प्राप्त वरों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है । पर रामभक्ति पर बल सर्वत्र दिया गया है । इस प्रकार स्पष्ट सिद्ध है कि बुल्के झूठ बोलनेवालों के सिरताज हैं ।

भविष्यपुराण तथा **आनन्दरामायण** के अनुसार ब्रह्मा ही हनुमान् को रामभक्ति का वरदान देते हैं । इसके अतिरिक्त भविष्य में हनुमत्पूजा का भी वरदान है । **स्कन्दपुराण आनन्दरामायण** तथा **कृत्तिवासीय रामायण** के अनुसार जहाँ कहीं **रामकथा** का पाठ होता है, वहाँ अदृश्यरूप में हनुमान्‌जी विराजमान रहते हैं ।

बुल्के कहते हैं कि "हनुमान् का चिरजीवित्व रामकथा के प्रचलित रहने पर निर्भर है । संभवतः इसी कारण से यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि जहाँ-जहाँ रामकथा होती है वहाँ-वहाँ हनुमान् अदृश्यरूप से विद्यमान रहते हैं ।" पाश्चात्य लोग सर्वत्र ही विकासवाद का स्वप्न देखते रहते हैं । अतएव भगवद्‌गुणों तथा हनुमान् के गुणों एवं वरदानों में भी वे विकास ही देखते हैं । परन्तु उनका यह काल्पनिक स्वप्न ही है ।

वेद, रामायण, महाभारत तथा **पुराणों** के अनुसार भगवान् के विद्यमान अनन्त गुणों का यथासंभव वर्णन किया जाता है । जैसे **बृहदारण्यक** उपनिषद्, छान्दोग्य उपनिषद्, कौषीतकि उपनिषद् आदि उपनिषदें सभी अनादि हैं । उनमें पञ्चाग्निविद्या का वर्णन है तो भी कहीं किन्हीं अंशोंका वर्णन अधिक है, कहीं कम है । वहाँ गुणोपसंहार-प्रकरण के अनुसार एक शाखा के गुणों का दूसरी शाखा में भी उपसंहार कर लिया जाता है । इसी तरह **वाल्मीकि-रामायण, महाभारत** तथा अन्यान्य **पुराणों** का समन्वय करके ही उपास्य गुणों एवं कथाओं का रूप निर्धारित किया

जाता है। अतः वरदानों को विकास या कल्पना कहना भारी भूल ही है। जहाँ राम-कथा होती है वहाँ हनुमान् रहते हैं, यह विश्वास न होकर वस्तुस्थिति है।। रामायण की अनुष्ठान-परम्परा में यह पाठ मिलता —

"यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्।।"

जहाँ-जहाँ रघुनाथ के गुणों, नामों तथा कथाओं का कीर्तन होता है वहाँ-वहाँ हाथ जोड़े, सिर झुकाये तथा वाष्पजल से परिपूर्णलोचन राक्षसान्तक हनुमान् विराजमान रहते हैं, उन्हें नमस्कार करो।

ब्रह्मचर्य

६९६ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "महीरावण की कथा में हनुमान् के एक पुत्र का उल्लेख है। लङ्का-दहन के अनन्तर समुद्र में स्नान करते समय हनुमान् का स्वेद अथवा श्लेष्मा निगलकर कोई मछली गर्भिणी हो गयी। उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

मैरावणचरितम् (अ० १०) के अनुसार उस पुत्र का नाम मत्स्यराज है। वह हनुमान् को अपना परिचय देते हुए कहता है—

"तिमिङ्गिला हि मन्माता पिता च हनुमान्।"

हनुमान् यह कहकर आपत्ति करते हैं—

"हनुमान् ब्रह्मचारीति विख्यातं भुवनेष्वपि।"

अतः पूर्वोक्त प्रसङ्ग से भी ब्रह्मचर्य में कोई बाधा नहीं।

हनुमान् का ब्रह्मचर्य **स्कन्दपुराण** (अवन्तीखण्ड अ० ८०) से भी सिद्ध है। वहाँ का शिवलिङ्ग हनुमान् के ब्रह्मचर्य के प्रभाव से तथा ईश्वर के प्रसाद से कामप्रद है—

"यद्यहं ब्रह्मचर्यञ्च जन्मपर्यन्तमुद्यतः।
ईश्वरस्य प्रसादेन लिङ्गं कामप्रदं हि तत्।। (पद्मपु० पातालख० ४५।३१)

पद्मपुराण रामाश्वमेध-वृत्तान्त में हनुमान् अपने को आजीवन ब्रह्मचारी कहते हैं—

"आत्मयोगबलेनैव ब्रह्मचर्यप्रभावतः।
पालयामि तदा वीर! शत्रुघ्नो जीवतु क्षणात्।। (स्कन्दपु० अव०ख० ८३।३३)

यदि मैंने जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन किया है तो क्षणभर में ही शत्रुघ्न जीवित हो जायँ। पुराण परम प्रमाण हैं। **लाङ्गूलोपनिद्** (अड्यारसंस्करण, पृ० २१३) तथा **आनन्दरामायण** (मनोहरकाण्ड सर्ग १३) में हनुमान् को कुमारब्रह्मचारी कहा गया है। हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र में ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय आदि नाम आये हैं। तुलसीदास ने हनुमान् को मन्मथमथन तथा ऊर्ध्वरेता कहा है।

इस सम्बन्ध में उनके प्राकृतिक कौपीन का उल्लेख मिलता है। **उड़िया महाभारत** वनपर्व के अनुसार हनुमान् ने माता से कहा, जब तक मुझे वज्रकौपीन न मिले मैं जन्म नहीं लूँगा। पवन ने यह समाचार शिव को सुनाया। शिव ने अञ्जना को खिलाने के लिए कपड़े दिये। उसके फलस्वरूप हनुमान् ने कौपीन पहने हुए ही जन्म लिया। अर्जुनदासकृत **रामविभा** में भी ऐसी ही कथा है। **भावार्थरामायण** के अनुसार कौपीनयुक्त ही हनुमान् का जन्म हुआ (७।३५)। **पद्मपुराण** (पातालखण्ड ११२,१३५ में) हनुमान् को सुदृढबद्धमौञ्जकौपीन और श्रीमारुतिस्तव-राज में कौपीनधारी कहा गया है।

कहा जाता है कि हनुमान् ने किसी ऋषि के पास कौपीनमात्र छोड़कर उसका सर्वस्व लूट लिया था। ऋषि ने शाप दिया कि तुम्हारे पास भी कौपीन के अतिरिक्त कुछ न रहेगा। पुराणादि शास्त्रों के अनुसार हनुमान् का अखण्ड ब्रह्मचर्य प्रमाणित है। स्कन्द, हनुमान्, भीष्म आदि शास्त्रों में मुख्य ब्रह्मचारी गिने गये हैं। इसके विरुद्ध **पउमचरियं** तथा **रामकियेन** आदि में वर्णित हनुमान् का अनेक स्त्रियों से सम्बन्ध विकृति ही समझना चाहिये।

वाल्मीकिरामायण (६।१२५।४४) के अनुसार विजयी राम के प्रत्यागमन का समाचार सुनकर भरत ने दस हजार गायों, सैकड़ों ग्रामों के अतिरिक्त दिव्यरूप भूषणसम्पन्ना १६ कन्याएँ भी पत्नीरूप में हनुमान् को प्रदान की थीं।

"सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्यास्तु षोडश।"

परन्तु हर्षोद्रेक में भरत ने हनुमान् के लिए उक्त वस्तुएँ प्रदान कीं। इससे यह नहीं सिद्ध होता कि हनुमान् ने उन वस्तुओं को रख लिया।

भागवत आदि ग्रन्थों के अनुसार राम आदि ने यज्ञ में ब्राह्मणों को समस्त भूमण्डल का दान दिया था। परन्तु ब्राह्मणों ने उसे स्वीकार नहीं किया। अतः हनुमान् के निमित्त उक्त वस्तुएँ प्रदान की गयीं। हनुमान् ने उन्हें अन्य अधिकारियों को प्रदान कर दिया होगा। पूर्वोक्त वचनों के साथ समन्वय करने से यही अर्थ निश्चित होता है। जैसे आज भी देवता तृप्त्यर्थ ब्राह्मणभोजन कराया जाता है। देवता को ग्रामादि समर्पण किये जाते हैं। उसी तरह भरत ने हनुमान् के निमित्त ग्राम आदि प्रदान किये थे।

७०० वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "हनुमान् की अन्य विशेताओं की भाँति ब्रह्मचर्य का मूल स्रोत **वाल्मीकिरामायण** को माना जा सकता है। रावण के अन्तःपुर में प्रविष्ट होकर वहाँ सुप्त अर्धनग्न स्त्रियों को निहार कर उनके सुव्यवस्थित मन में कोई विकार नहीं उत्पन्न हुआ—

"कामं दृष्टा या सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसः किञ्चिद्वैकृत्यमुपपद्यते॥
मनो हि……………………मे सुव्यवस्थितम्।" (वा० रा० ५।४१, ४२)

हनुमान् के संयम तथा धार्मिकता की दृष्टि से **वाल्मीकिरामायण** में उनके लिए महात्मा, महामनाः, संस्कारसम्पन्नः, कृतात्मा आदि विशेषण मिलते हैं। रावण के अन्तःपुर में प्रवेश करने पर उनको पाप की शङ्का होती है :

"जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः।"

धर्मलोप निमित्त भय से शङ्कित हो वे महती शङ्का को प्राप्त हुए। ये सब बातें धार्मिक ब्रह्मचारी के ही मन में आ सकती हैं। आगे फिर बुल्के कहते हैं—

"एष दोषो महान् हि स्यान्मम सीताभिभाषणे।" (वा० रा० ५।३०।३८)

सीता के साथ बातचीत करने के कारण अपने को दोषी मानते हैं। अतः बहुत संभव है कि **वाल्मीकिरामायण** में जो पापशङ्कालु तथा संयमी हनुमान् का चित्र प्रस्तुत किया गया है उसी के आधार पर उनके ब्रह्मचर्य की कल्पना की गयी है।" बुल्के की पहले की बातें तो कुछ संगत सी थीं, परन्तु उनका निष्कर्ष उन्होंने गलत निकाला है। वस्तुतः उससे तो यह निष्कर्ष निकालना उचित है कि उक्त वचन उनके अखण्ड ब्रह्मचारी होने में प्रमाण हैं, क्योंकि धार्मिक ब्रह्मचारी पापभीरु के मन में ही इस प्रकार की बातें उठ सकती हैं। परन्तु यह नहीं कि उक्त पापशङ्कालु आदि होने के कारण पीछे से उनके अखण्ड ब्रह्मचारी होने की कल्पना कर ली गयी है।

अर्थापत्ति प्रमाण द्वारा निश्चित अर्थ कल्पनामात्र नहीं होता। जैसे 'दिवा अभुञ्जान' होकर पीन होने से रात्रिभोजन का निश्चय प्रमा है कल्पनामात्र नहीं है। उसी तरह रावण की अर्धनग्न स्त्रियों के दर्शन से भी निर्विकार रहना और परस्त्रीदर्शन से पाप की शङ्का करना उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य की कल्पना भी प्रमाण ही है। किन्तु सीता के साथ अभिभाषण से धर्म-लोप के भय की शङ्का का कोई प्रश्न ही नहीं है। वहाँ मूल में ही अन्य प्रकार के दोष का स्पष्ट ही वर्णन है। क्योंकि हनुमान् सोचते हैं कि यदि मैं आज ही रात्रि-शेष में सीता को आश्वासन नहीं देता हूँ तो वह निश्चित देह त्याग देंगी। फिर वहाँ राम पूछेंगे कि सीता ने क्या कहा तो मैं उनसे क्या कहूँगा। यदि सेनासहित राम को लङ्का पर चढ़ाई के लिए लाऊँ भी तो सीता के देह त्यागने से वह व्यर्थ ही होगा। मैं सूक्ष्मरूप से वानररूप में मानुषी (नागरिकभाषा) में बोलूँगा। यदि द्विजाति के तुल्य संस्कृत (देवभाषा) में बोलूंगा तो मुझे रावण समझकर सीता शङ्कित होंगी एवं मेरे रूप और भाषण को सुनकर राक्षसों से त्रस्त सीता पुनः त्रास को प्राप्त होंगी। यदि त्रासवशात् मुझे रावण समझकर कुछ शब्द किया तो यमतुल्य शस्त्रास्त्रधारी राक्षस आयेंगे और मेरे वध या ग्रहण का प्रयत्न करेंगे। मेरे विशाल रूप को देखकर शङ्कित होंगे, राक्षसियाँ डरेंगी एवं राक्षसों को बुलायेंगी। मैं राक्षस-बल का निग्रह कर सकता हूँ। परन्तु तत्काल समुद्र पार करने में कठिनाई हो सकती है। मैं निगृहीत हुआ तो सीता का भी कोई लाभ न होगा। हो सकता है हिंसारुचि राक्षस सीता का वध ही कर डालें। युद्ध में मेरे मारे जाने या निगृहीत होने पर दूसरा कोई दिखायी नहीं देता है जो सागर से परिक्षिप्त राक्षसों से परिवारित इस गुप्त लङ्का में स्थित सीता का पता लगा सके।

युद्धों में जीत निश्चित नहीं रहती। संशयित पक्ष मुझे नहीं रुचता। निश्चितफलवाले कार्य को कौन विद्वान् संशयित बनाना चाहेगा। सीता से मेरे भाषण से ये पूर्वोक्त दोष हो सकते हैं। परन्तु भाषण करके आश्वासन न देने पर वैदेही का प्राणत्याग संभव है। अयुक्त दूत के कारण सिद्धप्राय कार्य भी देशकालविरुद्ध होने से वैसे ही नष्ट हो जाते हैं जैसे सूर्योदय होने पर तम नष्ट हो जाता है। इस प्रसंग में ब्रह्मचर्य-नाश या धर्म-लोप आदि दोष की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। अतः बुल्के द्वारा उक्त प्रसंग का प्रकृत में उद्धरण सर्वथा ही असंगत है।

अनु० ७०१ में पुनः बुल्के अपनी दुष्कल्पनाओं को प्रमाणित करना चाहते हैं। वे कहते हैं, "रामभक्ति का भाव मध्यकालीन रामसाहित्य में व्याप्त है। अतः यह स्वाभाविक ही था कि आदिरामायण के उत्साही एवं विश्वस्त रामसेवक हनुमान् को उस साहित्य में आदर्श रामभक्त के रूप में प्रस्तुत किया जाय।" अर्थात् बुल्के की दृष्टि में वस्तुतः हनुमान् रामभक्त नहीं थे। साहित्यिकों ने उन्हें आदर्श रामभक्त के रूप में कल्पित किया है। यह कहा जा चुका है कि आदिरामायण नाम का कोई ग्रन्थ नहीं है। प्रचलित रामायण ही मुख्य रामायण है। उसमें हनुमान् आदर्श भक्तरूप में वर्णित ही हैं और वह वस्तुस्थिति का चित्रण है, मिथ्या कल्पना नहीं है। अतएव **शिवपुराण** (शतरुद्र-संहिता अ० २०) में हनुमान् को भक्तप्रवर के अतिरिक्त रामभक्ति का प्रवर्तक होने का भी श्रेय दिया गया है।

बुल्के का प्रत्येक शब्द आपत्तिजनक है, क्योंकि प्रमाणभूत **शिवपुराण** आदि के अनुसार हनुमान् श्रेष्ठ रामभक्त हैं और रामभक्ति के प्रचारक भी हैं ही। उन्हें श्रेय कौन दे सकता है—

"स्थापयामास भूलोके रामभक्तिं कपीश्वरः।
स्वयं भक्तवरो भूत्वा सीतारामसुखप्रदः॥"

स्वयं सीतारामसुखप्रद भक्तवर हनुमान् ने भूलोक में रामभक्ति की स्थापना की। फिर भी रामभक्ति पहले नहीं थी, यह नहीं कहा जा सकता। जैसे व्यास, वसिष्ठ आदि को अनादिसिद्ध वैदिक धर्म का प्रतिष्ठापक माना जाता है वैसे ही हनुमान् भी अनादिसिद्ध रामभक्ति के प्रतिष्ठापक हैं। अतएव बुल्के का यह कहना भी असंगत है कि "हनुमान् की रामभक्ति का प्राचीनतम उल्लेख **रामायण** के उत्तरकाण्ड सर्ग ४० में मिलता है," क्योंकि उनकी दृष्टि में

उत्तरकाण्ड सम्पूर्ण प्रक्षेप ही है। उनकी तथाकथित आदिरामायण भी ई० पू० २०० की है। परन्तु रामभक्ति तो व्यास, वसिष्ठ, वाल्मीकि आदि के समय से ही प्रचलित है। तभी तो व्यास के **महाभारत** तथा पुराणों एवं रामसमकालीन **वाल्मीकिरामायण** में रामभक्ति का उल्लेख है ही। वरप्राप्ति का प्राचीनतम वृत्तान्त रामभक्ति के विषय में मौन है, यह कहना भी निराधार ही है, कारण **वाल्मीकिरामायण** का वर्तमान रूप ही प्राचीनतम रूप है। उसमें रामभक्ति वरप्राप्ति का उल्लेख है ही।

श्रीमागवत, पाञ्चरात्र आदि में भी हनुमान् की रामभक्ति का सर्वाधिक महत्त्व वर्णित है। उनके चिरजीवित्व का उद्देश्य भी भक्ति ही है। अतएव **अध्यात्मरामायण** उत्तरकाण्ड में रामाभिषेक के अनन्ततर हनुमान् यही वरदान माँगते हैं कि मैं निरन्तर रामनाम का स्मरण करते हुए सशरीर जीवित रहूँ—

"त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम।
अतस्त्वन्नाम सततं स्मरन् स्थास्यामि भूतले॥
यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम्।
मम तिष्ठतु राजेन्द्र वरोऽयं मेऽभिकाङ्क्षितः॥" (अ० रा० ७।१६।१२,१३)

हे राम! आपका नाम स्मरण करते हुए मेरा मन तृप्त नहीं होता। अतः मैं सतत आपका नाम स्मरण करता हुआ भूतल में रहूँगा। राम! जब तक भूतल में आपका नाम रहेगा तब तक मेरा शरीर बना रहे। यही मुझे वरदान अभीष्ट है। **आनन्दरामायण** (सारकाण्ड) में कहा गया है—

"यत्र तत्र कथा लोके प्रचरिष्यति ते शुभा।
तत्र तत्र गतिर्मेऽस्तु श्रवणार्थं सदैव हि॥" (आ० रा० १।१२।१४३)

जहाँ-जहाँ संसार में आपकी कथा प्रचारित हो वहाँ-वहाँ कथा-श्रवणार्थ मेरी गति हो।

तत्त्वसंग्रहरामायण (५।११) में कहा गया है, जब हनुमान् सीता का पता लगाकर राम के पास पहुँचे तब राम ने उनको हृदय से लगाकर यह आशीर्वाद दिया कि जहाँ कहीं भी मेरे नाम का उच्चारण होगा वहाँ तुम भी उपस्थित रहोगे। अन्त में तुम चतुरानन ब्रह्मा बनकर संसार की सृष्टि करोगे। पश्चात् मुझमें मिल जाओगे।

आनन्दरामायण (१।१३।१७६,१७७) के अनुसार ब्रह्मा ने हनुमान् को वरदान दिया कि तुम अमर और अबाधगति होओगे एवं हरिभक्त बनकर विष्णु की सहायता करोगे। **भविष्यपुराण** में भी इसका उल्लेख है। भविष्यपु० (प्रतिसर्गपर्वखण्ड ४।१३।४६,४७) के अनुसार तपस्या करके हनुमान् ने ब्रह्मा से यह वरदान पाया था कि त्रेतायुग में राम प्रकट होंगे। तुम उनकी भक्ति कर पूर्णकाम हो जाओगे—

"तस्य भक्तिञ्च सम्प्राप्य पूर्णकामो भविष्यसि।"

श्रीभागवत (५।१९।१–५) के अनुसार हनुमान् हिमालय के किंपुरुषवर्ष में किन्नरों के साथ अविचल भक्तिभाव से राम की उपासना करते रहते हैं। बङ्गाल की राम-कथाओं के अनुसार लक्ष्मण शिव की वाटिका में फल तोड़ने गये थे। वहाँ हनुमान् द्वारपाल थे। उनसे लक्ष्मण का युद्ध हुआ। अन्त में शिव और राम भी आ पहुँचे। उनका भी युद्ध हुआ। शिव ने हनुमान् को राम की सेवा के लिए प्रदान किया।

स्कन्दपुराण के अनुसार हनुमान् ने कई स्थलों पर शिवलिङ्गों की स्थापना की थी। **पद्मपुराण** (पाताळखण्ड ११०।१७०–१८१) के अनुसार हनुमान् शिव की भक्ति करते हैं। वहाँ राम और शिव की एकता का वर्णन है। शिव और विष्णु की अभिन्नता तथा हनुमान् द्वारा दोनों की उपासना भी पुराणों में वर्णित है।

बुल्के कहते हैं कि "**वाल्मीकिरामायण** (६।१२८।७८,७९) के अनुसार रामाभिषेक के बाद राम से मिली हुई माला सीता ने हनुमान् को प्रदान की। हनुमान् की रामभक्ति सिद्ध करने के लिए अर्वाचीन साहित्य में इस घटना को एक नवीन रूप दिया गया है।

कृत्तिवासरामायण (६।१२८) के अनुसार हनुमान् ने माला हाथ में लेकर उसे ध्यान से देखा और उसकी बहुमूल्य मणियाँ तोड़कर वे खाने लगे। पूछने पर इस व्यवहार का कारण यह बताया कि इसमें रामनाम अङ्कित नहीं है। अतः मेरी दृष्टि में इसका कोई मूल्य नहीं है। इसपर किसी ने पूछा क्या तुम्हारे शरीर में राम-नाम अङ्कित है। यह सुनकर हनुमान् ने नखों से छाती फाड़कर दिखलाया। उनके शरीर में सर्वत्र रामनाम का उल्लेख था। **भावार्थरामायण** (६।८७) के अनुसार माला ग्रहण कर हनुमान् ने विचार किया। इस माला के कारण मेरे हृदय में अहङ्कार उत्पन्न हो सकता है, अतः उन्होंने दातों से मणियों को फोड़ा और कहा हम वानरों को भोजन से अतिरिक्त क्या चाहिये।" परन्तु मिथ्या भाषण से बचनेवाले भक्त निरर्थक मिथ्या कल्पना से सदा परहेज ही करते हैं। अतः '**नह्यमूलं प्ररोहति**' के आधार पर वह कल्पना निर्मूल नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** में इसका विरोध भी नहीं है।

बुल्के कहते हैं कि "**वाल्मीकिरामायण** (७।३९।२६,२७) में अयोध्या में वानर सैनिक मधु, मांसादि का सेवन करते हुए मास भर रहे। परन्तु भक्तिलीन होने के कारण उन्हें वह समय मुहूर्त्तमात्र ही प्रतीत हुआ।" परन्तु वानरों को मांस खाने का संस्कार नहीं होता है। अतः मधु का अर्थ शहद और मांस का अर्थ फलों का भीतर का गूदा ही समझना चाहिये। क्योंकि मद्य में दुर्गन्धि ही होती है सुगन्धि नहीं। किन्तु प्रकृत में सुगन्धिमधुपान का वर्णन है—

"ते पिबन्तः सुगन्धीनि मधूनि मधुपिङ्गलाः।
मांसानि च सुमृष्टानि मूलानि च फलानि च॥
एवं तेषां निवसतां मासः साग्रो ययौ तदा।
मुहूर्तमिव ते सर्वे रामभक्त्या च मेनिरे॥"

बुल्के कई स्थानों के अनुसार हनुमान् द्वारा राम के उच्छिष्ट खाने और राम के साथ भोजन करने की चर्चा करते हैं। परन्तु यह सब मर्यादापुरुषोत्तम वैदिक वर्णाश्रमी राम की मर्यादा के विरुद्ध होने से कल्पनामात्र ही समझना चाहिये।

स्कन्दपुराण (अवन्तीखण्ड, रेवाखण्ड ८३।२९) में शिव ने हनुमान् के नामों को लोकों के कल्याणकारी कहा है—

"उपकाराय लोकानां नामानि तव मारुते।"

परन्तु बुल्के हनुमान् के देवत्व को आठवीं ईसवी शती की कल्पना मानते हैं, जो उनका भ्रम ही है। पुराणों का प्रामाण्य और प्राचीनता अच्छी तरह सिद्ध कर दी गयी है। व्यास भगवान् के समय से पूर्व ही हनुमान् के मन्त्र, नाम आदि का जप होता था। अतएव १० वीं तथा १५ वीं शती में हनुमद्भक्ति का पूर्ण विकास हुआ एवं १५ वीं शती में उनकी मूर्ति की पूजा प्रचलित हुई, बुल्के का यह कथन भी अत्यन्त भ्रमपूर्ण ही है; क्योंकि उनका उक्त कथन पुराणों की अर्वाचीनता मानने से ही सङ्गत हो सकता है। पर वह स्वयं ही निर्मूल है। पुराण अनादि हैं, द्वापर के अन्त में व्यास द्वारा उनका आविर्भाव हुआ है। राम का आविर्भाव भी गत त्रेता में न होकर २३ वें त्रेता में हुआ था जो करोड़ों वर्ष पूर्व का काल है। सुतरां हनुमान् की आराधना भी करोड़ों वर्षों से चली आ रही है।

आनन्दरामायण (१।१२) के अनुसार सीता ने हनुमान् को आशीर्वाद देते हुए कहा था कि विश्वशान्ति के उद्देश्य से गाँव-गाँव में तुम्हारी मूर्त्ति की पूजा की जायगी—

"ग्रामारामपत्तनेषु व्रजखेटकसद्मसु ।
वनदुर्गपर्वतेषु सर्वदेवालयेषु च ।।
वाटिकोपवनाश्वत्थवटवृन्दावनादिषु ।
नदीषु क्षेत्रतीर्थेषु जलाशयपुरेषु च ।।
त्वन्मूर्ति पूजयिष्यन्ति मानवा विघ्नशान्तये ।
भूतप्रेतपिशाचाद्या नश्यन्ति स्मरणात्तव ।।" (आ० रा० १।१२।१४७–१४९)

ग्रामों, उद्यानों, नगरों, गोशालाओं, कसबों, घरों में, वनों, पर्वतों, दुर्गों तथा सभी देवालयों में, नदियों में; क्षेत्रों, तीर्थों, जलाशयों में, पुरों में, वाटिकाओं, उपवनों, अश्वत्थों, वटों तथा वन्दावनादि में विघ्ननिवृत्ति के लिए मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम्हारे स्मरणमात्र से भूत, प्रेत, पिशाच आदि नष्ट हो जायेंगे। आज सीताजी का यह वरदान प्रत्यक्ष सिद्ध हो रहा है। सर्वत्र हनुमान् की मूर्ति की पूजा चल रही है। भूत, प्रेतों तथा विघ्नों के निवारणार्थ हनुमान् का स्मरण कारगर सिद्ध हो रहा है। कई स्थानों में बड़े बड़े प्रेतराज हनुमान् के सेवक बनकर दुखियों का दुःख दूर कर रहे हैं। इस तरह हनुमान् का देवत्व जाज्वल्यमान है। हनुमान् का संकटमोचन नाम भी प्रसिद्ध है।

बुल्के कहते हैं कि प्रायः भूतों और प्रेतों की निवृत्ति के उद्देश्य से ही हनुमत्पूजा होती है। परन्तु यह भी ठीक नहीं है। मुख्य रूप से राम-प्राप्ति के हेतु ही हनुमान् की पूजा की जाती है—

"तुम्हरे भजन राम कहँ भावे ।
जन्म जन्म कर दुख बिसरावे ।।" (हनु० चा०)

हनुमान् के ध्यान से राम का ध्यान होता है—

"बन्दहुँ पवनकुमार खलबन पावक ज्ञानघन ।
जासु हृदय आगार बसहिं राम शर चाप धर ।।" (रा० मा० १।१७)

"पवनतनय संकट हरन मंगल मूरति रूप ।
राम लखन सीता सहित बसहु सदा सुरभूप ।।" (हनु० चा०)

आनन्दरामायण (मनोहरकाण्ड १३) के अनुसार राम ने विभीषण को हनुमत्कवच प्रदान किया है। उसमें भूतों एवं ज्वरों से छुटकारा मिलने की चर्चा है। वहीं गरुड़जी राम को कपि (हनुमान्) पूजन का विधान बताते हैं। महामारीनिवृत्त्यर्थ उसका विधान बताते हैं। **आनन्दरामायण** (राज्यकाण्ड) में सीता ने भी हनुमान् की पूजा की थी—

"गोमयेनाञ्जनेयं सा कुड्ये कृत्वार्च्य जानकी ।
अकरोत् प्रत्यहं पुच्छवृद्धिं स्वाङ्गुलिमात्रतः ।।"

क्या राम ने या जानकी ने हनुमान् की पूजा १५ वीं ईसवी में सीखी है। बुल्के स्वयं ही सोचें। पर वे तो इसे कल्पनामात्र कहेंगे, यही दुःसाहस है।

लाङ्गूलोपनिषद् के अनुसार हनुमान् एकादशरुद्रावतार, श्रीरामसेवक, कुमारब्रह्मचारी एवं सब रोगों और शूलों के निवारक हैं। उन्हें गर्भदोषघ्न, पुत्रपौत्रद भी कहा गया है, यह ठीक ही है। **मारुतिस्तव** में तो हनुमान् को **पापतापसुसमापनतत्पर** कहा है, वह भी ठीक ही है। **हनुमत्सहस्रनामस्तोत्र** में उनको महावीर, सर्वविद्याविशारद, वेद-वेदान्तपारग, रामभक्तिविधायक, पिशाचग्रहघातक, अपस्मारहर आदि के साथ ही साथ संसारभयनाशक, शरणागत-

वत्सल, भगवान् जगन्नाथ, जगदीश, अनादि, परब्रह्म भी कहा गया हैं और रुद्रावतार होने से उनके वे सब नाम सङ्गत हैं—"एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे" के अनुसार वे ब्रह्मरूप ही हैं। अतएव बुल्के का यह कहना गलत है कि "इन शब्दावलियों को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिये। पूजा की दृष्टि से संकटमोचनरूप ही प्रधान है। भूतों, बीमारियों तथा बाँझपन से छुटकारा पाने के लिए उनकी अधिकतर शरण ली जाती है।" बुल्के की दृष्टि में तो यह भी कल्पना या विश्वासमात्र ही है। पर उनका यह कहना निरर्थक ही है।

७१० वें अनु० में बुल्के अपने मन की दुर्भावनाओं को स्पष्ट करते हुए कहते हैं। "हनुमत्पूजा के कारणों पर विचार करने से विदित होता है कि रुद्रावतार माने जाने के कारण उनके प्रति श्रद्धा जाग्रत् होना स्वाभाविक ही था। किन्तु १० वीं, १५ वीं ईसवी में हनुमद्भक्ति का पूर्ण विकास आश्चर्यजनक ही है। उनकी संकटमोचनरूप में उपासना जो आजकल व्यापक रूप से प्रचलित है, उसका मुख्य आधार **रामायण** में चित्रित राक्षसों का वध, ओषधिपर्वत का आनयन नहीं, किन्तु उसका मुख्य कारण यह है कि हनुमान् का सम्बन्ध यक्ष-पूजा से स्थापित किया गया था। अत्यन्त प्राचीन काल से गाँव गाँव में यक्षों की पूजा होती थी। वे रक्षक देवता (जातक ५४५), द्वारपाल, सन्तान देनेवाले तथा वृक्षों में निवास करनेवाले (जातक ३०७ और ५०९) माने जाते थे। यक्ष तथा वीर शब्द पर्यायवाची ही हैं। उधर महावीर हनुमान् की ख्याति **रामायण** की लोकप्रियता द्वारा शताब्दियों से चली आ रही थी। अतः अन्य यक्षों अर्थात् वीरों के साथ हनुमान् की भी पूजा होने लगी। इस अत्यन्त प्राचीन पूजा से सम्बन्ध हो जाने पर हनुमान् की लोकप्रियता बहुत ही बढ़ गयी। उस समय तक जिस उद्देश्य से और जिस रूप में यक्षों की पूजा होती रही अब उसी उद्देश्य और उसी रूप में महावीर हनुमान् की पूजा होने लगी। हनुमान् के संकटमोचन रूप तथा द्वारपालवाला रूप वीरपूजा से सम्बन्ध रखते हैं। प्राचीन वीरपूजा तथा हनुमत्पूजा के उद्देश्यों में जो सादृश्य है वह उपर्युक्त विकास की वास्तविकता सिद्ध करता है। परन्तु डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार आजकल तक हनुमान् की पूजा के दो रूप प्रचलित हैं—एक वीरपूजा या यक्षपूजा जिसमें मूर्त्ति से सम्बन्ध नहीं होता तथा एक दूसरा रूप जिसमें वानर की मूर्त्ति है और जो रामकथा पर निर्भर है।" वस्तुतः यह सब बुल्के की अनर्गल अटकल है। उपस्थित प्रत्यक्ष हेतुओं को छोड़कर अनुपस्थित हेतु ढूँढ़ने का कार्य "अव्यापारेषु" व्यापारमात्र है। यदि वीर-पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित थी तब तो हनुमत्पूजा भी अत्यन्त प्राचीन काल से ही माननी चाहिये, फिर १० वीं १५ वीं ई० में ही आश्चर्यजनक हनुमत्पूजा का पूर्ण विकास हुआ यह क्यों? यदि यह **रामायण** का प्रभाव है तो हनुमान् की पूजा में उससे अन्य प्रभाव ढूँढ़ने की क्या आवश्यकता है?

फिर **स्कन्दपुराण** के १२ नामों की सूची का एक नाम भी यक्षपूजा से सम्बन्ध नहीं रखता। द्वादश नाम निम्नोक्त हैं—हनुमान्, अञ्जनीसुत, वायुपुत्र, महाबल, रामेष्ट, फाल्गुनगोत्र, पिङ्गाक्ष, अमितविक्रम, उदधिक्रमणश्रेष्ठ, दशग्रीवदर्पहा, लक्ष्मणप्राणदाता तथा सीताशोकनिवर्तन (स्कन्दपु० अवन्तीखण्ड अ० ८३)।

आनन्दरामायण (मनोहरकाण्ड १३।८,९) में भी ये नाम हैं। **स्कन्दपुराण** के एक अन्य स्थल (ब्राह्मखण्ड धर्मारण्यमा० अ० ३७) में हनुमान् की स्तुति में १९ विशेषण मिलते हैं। उनमें से एक ही सर्वव्याधिहर संकटमोचन रूप से सम्बन्ध रखता है। परन्तु संकटमोचन रूप भी यक्षरूपनिरपेक्ष हनुमान् का ही है। शक्तिघात के समय लक्ष्मण का, अहिरावण की माया के समय राम-लक्ष्मण दोनों का, रावण के आतङ्क से सीता का तथा इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र-प्रयोग के समय राम, लक्ष्मण तथा सभी वानर भालू वीरों का संकट काटने के कारण हनुमान् ही वस्तुतः संकटमोचन-पदवाच्य हैं, न कि बुल्केकल्पित यक्ष।

भारतीय वाङ्मय की दृष्टि से वेद अनादि हैं। उन्हीं पर **वाल्मीकिरामायण** तथा अन्य रामायण, पुराण आदि आधारित हैं। इन सद्ग्रन्थों के आधार पर हनुमान् की पूजा अति-प्राचीनकाल से प्रचलित है। यक्षपूजा आदि

उसकी अपेक्षा अर्वाचीन ही है। **गीता** आदि की दृष्टि से ईश्वरपूजा, देवपूजा आदि ही सात्त्विकी पूजा है। यक्ष, राक्षस आदि की पूजा राजसी पूजा है। अनादि सिद्ध वैदिक धर्म के पूर्ण प्रचार के समय से ही ब्रह्म, परमात्मा, रुद्र, विष्णु, राम, हनुमान् आदि की पूजा प्रचलित है। वैदिक धर्म के प्रचार की मन्दता में ही यक्ष, राक्षस आदि की पूजा प्रचलित होती है। इस तरह वेदों, उपनिषदों, रामायण आदि के अनुसार ही हनुमान् की पूजा चिरकाल से ही प्रचलित है। अतः १० वीं १५ वीं शती में हनुमत्पूजा का विकास मानना सर्वथा असङ्गत ही है। उसपर यक्षपूजा का प्रभाव मानना और भी असङ्गत है। प्रचलित हनुमत्पूजकों में सभी को रामायण एवं रामभक्ति के कारण तथा रुद्ररूप से ही हनुमान् का महत्त्व विदित है। सिवा उच्छृङ्खल विचारवालों के और कोई यक्षपूजा एवं हनुमत्पूजा का सम्बन्ध नहीं मानता है। अतएव हनुमान् के चरित्रचित्रण में अतिशयोक्ति और कोई अलौकिकता की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है, यह कथन वस्तुस्थिति से सर्वथा अस्पृष्ट ही नहीं अपितु विरुद्ध भी है।

हनुमान् वानरगोत्रीय आदिवासी थे, यह कल्पना भी **रामायण** के विरुद्ध ही है। हनुमान् ने स्वयं ही अपने को वानर कहा है—

"**जातिरेव मम त्वेषा।**" यह दिखाया जा चुका है। इसी तरह हनुमान् की वायुपुत्र उपाधि नहीं, किन्तु **वाल्मीकिरामायण** तथा अन्य प्रामाणिक कथाओं के अनुसार हनुमान् वास्तव में वायु के पुत्र थे। आश्चर्य तो यही है कि पाश्चात्य एवं उनके अनुयायी सड़े से सड़े **जातक** को प्रमाण मान लेते हैं। परन्तु यहाँ के परम प्रमाण **वेद, उपनिषद्**, आर्ष इतिहास **रामायण** तथा **महाभारत** की बातों को जातकों के दृष्टिकोण से लगाने का प्रयास करते हैं। यह स्पष्ट ही बौद्धपक्षपात एवं वैदिकधर्मद्वेष है। इसी कारण वे वायुपुत्र एवं वीरपूजा या यक्षपूजा का हनुमत्पूजा पर प्रभाव भी जातकों पर ही अवलम्बित है, ऐसा अनर्गल प्रलाप करते हैं। वस्तुस्थिति तो यह है कि वैदिकधर्मद्वेषी बौद्धों तथा जैनों ने बहुतसी मनगढ़न्त वैदिकधर्म-विरुद्ध कल्पनाएँ कर रखी हैं। पाश्चात्यों की कूटनीति के शिकार बनकर अनेक उनके अनुयायी भारतीयों ने भी उन्हीं का अन्धानुकरण कर वैदिकधर्मविरुद्ध अनेक कल्पनाओं को प्रश्रय दिया है।

याकोबी का यह कथन भी सारशून्य है कि हनुमान् की असाधारण लोकप्रियता का आधार **रामायण** में अङ्कित उनका चरित्रचित्रणमात्र नहीं हो सकता। वास्तव में उनकी यह आश्चर्यजनक लोकप्रियता शताब्दियों तक बढ़ते हुए विकास का परिणाम है। इसीलिए बुल्के को भी लाचार होकर यह मानना पड़ता है कि "रामसाहित्य का अनुशीलन करने पर डा० याकोबी के मत के विपरीत मन में यह विचार अनायास उत्पन्न होता है कि राम-कथा ने ही हनुमान् को अमरत्व के शिखर पर पहुँचा दिया है और आजकल राम की अपेक्षा रामसेवक हनुमान् की पूजा कहीं अधिक व्यापक रूप से हो रही है", परन्तु बुल्के का यह मत भी शुद्ध नहीं है, क्योंकि उनके अनुसार रामकथा का विकास हुआ। वे यह तथ्य भी कहाँ मानते हैं कि वस्तुभूत रामचरित्र ही रामायणों द्वारा वर्णित हुआ है।

अनु० ७१२ में बुल्के पुनः कहते हैं कि "हनुमच्चरित विकास के अध्ययन से दो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। प्रथम हनुमान् के विषय में जो विस्तृत सामग्री परवर्ती कथाओं में मिलती है वह **वामीकिरामायण** में निहित तत्त्वों का स्वाभाविक विकास प्रतीत होती है। अतः वाल्मीकि के पूर्व राम-कथा से स्वतन्त्र हनुमद्विषय गाथाओं की कल्पना निराधार ही नहीं अनावश्यक भी हैं। दूसरे, उस सामग्री के विश्लेषण से स्पष्ट हैं कि हनुमान् का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा था, अतः हनुमान् वास्तव में किसी प्राचीन देवता से अभिन्न हैं, यह कल्पना उपलब्ध सामग्री के प्रतिकूल ही है। हनुमान् के चरित्र-चित्रण में शताब्दियों तक अतिशयोक्ति का प्रयोग होता रहा है। किन्तु आठवीं शती में उनको पहले पहल देवत्व की उपाधि से विभूषित किया गया।" परन्तु बुल्के की ये दोनों कल्पनाएँ प्रमाणशून्य हैं।

आधुनिक दृष्टि से यद्यपि यह ठीक हो सकता है कि राम-साहित्य से पृथक् हनमत्पूजा के विकास का कारण ढूंढ़ना व्यर्थ है। हनमत्पूजा में यक्षपूजा या वीरपूजा का प्रभाव मानना उपलब्ध सामग्री के प्रतिकूल ही है। पर साथ ही हनुमान् के चरित्रचित्रण में अतिशयोक्तियों का शताब्दियों तक प्रयोग होता रहा है, यह कथन प्रमाणहीन है। वास्तव में राम परब्रह्म हैं तथा हनुमान् रुद्र हैं। उनके सम्बन्ध में पूरी-पूरी वस्तुस्थिति का भी आज तक वर्णन नही हो सका है। देवदेव में देवत्व की कल्पना दूषण ही है भूषण नहीं।

"महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः॥ (महिम्नस्तोत्र १)

भगवान् की अनन्त महिमा का पर पार न जाननेवाले ब्रह्मादि के लिए भी भगवान् की स्तुति भगवान् की महिमा के अननुरूप ही है। निर्गुणरूप में सब के मन और वाणी पङ्गु होते हैं। अनन्त गुणगणों की दृष्टि से भी सब के मन और वाणी पार पाने में असमर्थ ही हैं। आकाश का अन्त कोई भी नहीं पा सकता है, परन्तु अपनी शक्तिभर मच्छर और गरुड़ सभी आकाश में उड़ते हैं—

"नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः।"
"निजनिज मति मुनि हरिगुन गावहिं।
निगम सेष सिव पार न पावहिं॥
तुमहि आदि खग मसक प्रजंता।
नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा।
तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥" (रा० मा० ७।९०।२,३)

ब्रह्मादि अपनी बुद्धि के अनुसार भगवद्गुणगान कर सकते हैं तब तो अस्मदादि भी अपनी बुद्धि के अनुसार भगवद्गुणगान कर ही सकते हैं। यदि किसी वीर या यक्ष की अभिन्नता के कारण हनुमान् का यह महत्त्व बढ़ा होता तो किसी यक्ष की महिमा तथा पूजा भी प्रख्यात होनी चाहिये थी। परन्तु उसका नितान्त अभाव है। अतः रामायण एवं राम और सीता की भक्ति एवं उनके वरप्रभाव से ही हनुमान् का महत्त्व युक्त है। इस तरह विकास या परिवर्धन नहीं हुआ। अपितु भगवान् एवं उनके भक्त रुद्रस्वरूप हनुमान् की महिमा वस्तुतः अपार है। उनके सभी विद्यमान गुणों का भी वर्णन असंभव है, फिर अविद्यमान गुणों के आरोप, विकास या परिवर्धन की कल्पना ही कैसे हो सकती है? हनुमच्चरितवर्णन करनेवाले पुराणों या रामायणांशों की अर्वाचीनता की कल्पना के आधार पर ही यह कहा जाता है कि ८वीं, १०वीं या १५वीं शती में हनुमान् की पूजा या माहात्म्य का पूर्ण विकास हुआ। परन्तु जब उक्त आधारभित्ति ही गलत है तब उस आधार पर आधारित सभी कल्पनाओं के महल सुतरां गलत एवं असङ्गत ठहरते हैं। पाश्चात्यों की काल-कल्पना सर्वथा भारतीय दृष्टिकोण से गलत है। वर्तमान रामायण शुद्ध रामायण है। उसका निर्माणकाल राम का राज्यारोहणकाल ही है। पुराण व्यासकालीन ही हैं। अतः इसके विपरीत सब कल्पनाएँ पाश्चात्यों की दुरभिसन्धिमूलक ही हैं।

अर्जुन के गर्व-निवारण के प्रसङ्ग में कहा गया था कि हनुमान् उसकी ध्वजा पर विराजमान होंगे। बुल्के कहते हैं, "**महाभारत** से विदित होता है कि प्रायः सब योद्धाओं के झण्डे पर पशुओं के चित्र अङ्कित थे। उदाहरणार्थ दुर्योधन की ध्वजा पर नाग (६।१७।२५), भीम की ध्वजा पर केसरी (६।९१।७०), घटोत्कच के ध्वज पर गृध्र

(७।१५०।१५), **वृषसेन के** ध्वज पर मयूर (७।८०।१६), जयद्रथ के झण्डे पर वराह (७।१२१।११) एवं **अश्वत्थामा के** झण्डे पर सिंह (६।१७।२१)। इसी तरह अर्जुन को लाङ्गूलकेतन (६।१७।२१), कृष्ण को गरुड़-ध्वज (७।५७।२) तथा प्रद्युम्न को मकरध्वज (७।९६।२५) कहा गया है। डब्लू हॉपकिन्स के अनुसार इन चित्रों का प्रयोजन पूजा न होकर प्रोत्साहन तथा अलङ्करणमात्र ही था। **महाभारत** के प्रामाणिक संस्करणों से विदित होता है कि अर्जुन के ध्वज में अन्य पशु भी अङ्कित थे, परन्तु कपि ही उनमें प्रमुख था (२।२२।२३)। अर्जुन को कपि-राजकेतन कहा गया है (६।५६।२६)। इसी प्रकार वानरध्वज (६।११२।१४), वानरप्रवरध्वज (७।१७।२१) तथा कपिप्रवरकेतन (७।१६।१५) भी कहा गया है।" वस्तुतः यह भी गलत है, क्योंकि सामान्य ध्वजों में चित्रों का प्रोत्साहनमात्र प्रयोजन हो सकता था, किन्तु **महाभारत** के प्रमाणानुसार अर्जुन का जैसा विशिष्ट रथ था, वैसा ही उसका ध्वज भी विशिष्ट ही था। उसमें केवल हनुमान् का चित्र ही नहीं था, किन्तु स्वयं हनुमान् उसपर विराजते थे और प्रत्यक्ष गर्जन करके शत्रुओं को भयभीत भी करते थे; जैसा कि द्रोणपर्व (अध्याय ६४) के अनुसार विदित होता है। जब अर्जुन ने रणभूमि में शङ्ख बजाया तब अर्जुन की ध्वजा पर विराजमान भूतगणों के साथ हनुमान् ने मुंह बाकर शत्रुओं को भयभीत करते हुए बड़े जोर से गर्जन किया—

"ततः कपिर्महानादं सह भूतैर्ध्वजालयैः।
अकरोद् व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान्॥" (म० भा० ६।६४।२५)

उद्योगपर्व (अध्याय ५५) में भी कहा गया है कि विश्वकर्मा, ब्रह्मा और इन्द्र ने मिलकर उसमें छोटी बड़ी अनेक प्रकार की बहुमूल्य दिव्य मूर्तियों का निर्माण कर रखा था—

"ध्वजे हि तस्मिन् रूपाणि चक्रुस्ते देवमायया।
महाधनानि चित्राणि महान्ति च लघूनि च॥" (म० भा० ५।५५।८)

इतना ही नहीं, **महाभारत** में यह भी उल्लेख है कि अर्जुन का रथ कहीं प्रतिहत नहीं होता था। वृक्षों तथा पर्वतों में भी कहीं टकराता नहीं था। अतः कहना होगा कि विशिष्ट रथों पर ध्वजों में विशेषता होती थी, केवल चित्रमात्र नहीं। आज भी ध्वजाओं का विशिष्ट सम्मान होता है। उसके सम्मान या अपमान में सारे राष्ट्र का सम्मान या अपमान माना जाता है। विशिष्ट सम्बन्धों एवं विशिष्ट कारणों से हनुमान्जी अर्जुन के रथ पर कभी अंशतः कभी युद्धादि के समय प्रत्यक्ष ही पूर्ण शक्ति के साथ विराजमान रहते थे। केवल हनुमान् की कीर्ति एवं लोकप्रियता के कारण अर्जुन की ध्वजा के साथ उनका सम्बन्ध जोड़ा नहीं गया। हनुमान् और भीम के संवाद से ही नहीं किन्तु उपर्युक्त—

"अकरोद् व्यादितास्यश्च भीषयंस्तव सैनिकान्।"

श्लोकानुसार भी हनुमान् का अर्जुन के रथ से विशिष्ट सम्बन्ध विदित होता ही है। भीम और अर्जुन पर अनुग्रह कर हनुमान् ने वर प्रदान किया था।

सीता-त्याग

उत्तरकाण्ड के सीतात्याग का अपलाप करते हुए बुल्के कहते हैं कि "आदिरामायण में रामकथा राम के अभिषेक तथा राम के सुखद राज्य के संक्षिप्त वर्णन पर समाप्त होती है और उसमें सीता-त्याग का निर्देश नहीं है। **महाभारत के रामोपाख्यान** में भी कहीं सीता-त्याग का उल्लेख नहीं है। प्राचीन पुराणों, जैसे **हरिवंश**, **वायुपुराण**, **विष्णुपुराण** तथा **नृसिंहपुराण** में सीतात्याग का संकेतमात्र भी नहीं मिलता है।" परन्तु उनका यह कहना निरर्थक है, क्योंकि आदिरामायण नाम का ग्रन्थ कोई है ही नहीं। वर्तमान **रामायण** में सीता-त्याग है ही। उसको प्रक्षिप्त कहना

निराधार ही है। उक्त पुराणों में भी रामकथा का संक्षेप में ही वर्णन है। सभी रामचरित्र ग्रन्थों का आकर ग्रन्थ **वाल्मीकिरामायण** ही है। **रामोपाख्यान** भी संक्षेप ही है। बौद्ध **अनामक जातक** में तो रामकथा का विकृत रूप ही है, फिर भी उसमें लोकापवाद का वर्णन है : राजा ने रानी से कहा—पति से अलग दूसरे के घरों में निवास करने के कारण चरित्र पर सन्देह किया जाता है। तुम्हें स्वीकार करने में परम्परा के अनुसार कहाँ तक औचित्य है ? रानी ने उत्तर दिया मैं उसमें पङ्कज की तरह रही थी। यदि मुझमें सतीत्व हो तो पृथ्वी फट जाय। पृथ्वी फ़ट गयी। रानी ने कहा मेरा सतीत्व प्रमाणित हुआ। इसके बाद राजा और रानी सुखपूर्वक राज्य करने लगे। परन्तु **वाल्मीकिरामायण** मूल आकर ग्रन्थ है। उत्तरकाण्ड के अनुसार गर्भवती सीता तपोवन देखने की इच्छा प्रकट करती हैं। राम ने उन्हें तपोवन भेजने का वचन दिया। संयोगवश राम भद्र से पूछते हैं कि मेरे, सीता तथा भरत आदि के विषय में लोग क्या कहते हैं ? तब भद्र सीता के कारण हो रहे लोकापवाद और जनता के आचरण पर पड़नेवाले उसके कुप्रभाव का उल्लेख करता है। लोग कहते हैं हमको भी अपनी स्त्रियों का ऐसा आचरण सहन करना होगा—

"अस्माकमपि दारेषु सहनीयं भविष्यति।
यथा हि कुरुते राजा प्रजास्तदनुवर्तते।" (वा० रा० ७।४३।१९)

यह सुनकर राम लक्ष्मण को बुलाते हैं। सीताको गङ्गा के उस पार छोड़ आने का आदेश देते हैं। वे तपोवन दिखाने के बहाने सीता को रथ पर बैठाते हैं। वाल्मीकि के आश्रम पर छोड़ देते हैं।

महाकवि कालिदास के रघुवंश (सर्ग १४) की कथा में भद्र मित्र न होकर गुप्तचर माना गया है। **उत्तररामचरित, कुन्दमाला** तथा **दशावतारचरित** में भी वैसा ही वर्णन है। **उत्तररामचरित** में गुप्तचर का नाम दुर्मुख है। **आनन्दरामायण** के अनुसार उसका नाम विजय है। **छलितराम** के अनुसार दो छद्मवेशी राक्षस राम को सीता के विरुद्ध उकसाते हैं।

पउमचरियं (पर्व ९२–९४) के अनुसार राम स्वयं गर्भिणी सीता को वन में विभिन्न चैत्यों को दिखला रहे थे। इतने में राजधानी के नागरिक उनके पास आकर अभयदान पाकर अपने आने का कारण बतलाते हैं— पापमोहितमति, परदोषग्रहणरत, स्वभावकुटिल जनता में सीतापवाद को छोड़कर कोई चर्चा नहीं है। नागरिकों की बात सुनकर राम ने लक्ष्मण से परामर्श किया, किन्तु लक्ष्मणने सीता-त्याग का विरोध किया। किन्तु राम ने अपने सेनापति कृतान्तवदन को बुलाकर आदेश दिया कि जिनमन्दिर दिखाने के बहाने सीता को गङ्गा पार भयानक वन में छोड़ दो। सेनापति ने वैसा ही किया। संयोग से पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजङ्घ ने उस वन में सीता का विलाप सुन लिया। वह सीता को अपने भवन ले गया और वहां सीता के दो पुत्रों का जन्म हुआ।

रविषेण के **पद्मचरित** (पर्व ९६) में सीता को ग्रहण करने के दुष्परिणाम के वर्णन में परिवर्धन किया गया है। समस्त प्रजा मर्यादारहित बतायी जाती है। स्त्रियों का हरण हुआ करता है। बाद में पुनः अपने अपने घर लौटकर स्वीकृत की जाती हैं—

"प्रजाऽधुनाखिला जाता मर्यादारहितात्मिका।
स्वभावादेव लोकोऽयं महाकुटिलमानसः॥
प्रकटं प्राप्य दृष्टान्तं न किञ्चित्तस्य दुष्करम्।" (प० च० ९६।४०–४२)

हेमचन्द्रकृत **योगशास्त्र** के अनुसार सीतात्याग के पश्चात् राम उनको खोजने वन में जाते हैं, किन्तु सीता का कहीं पता नहीं लगता। राम ने सोचा हिंस्र सिंह, व्याघ्र आदि ने सीता का भक्षण कर लिया होगा। उन्होंने सीता का श्राद्ध भी कर दिया। वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण** ही जैन रामकथाओं का आधार है। जैनों ने जैनधर्म

के दीक्षा-प्रचार के साधनरूप में रामकथाओं का भी उपयोग किया है और अनेक ढङ्ग का परिवर्तन और परिवर्धन किया है। उसका वस्तुस्थिति से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। सीता-त्याग के सम्बन्ध में नये नये नामों का सम्बन्ध जोड़ा गया है। तेरहपन्थी तुलसी ने कुछ जैनी रामकथा और कुछ रामायणों की रामकथाओं का मिश्रण कर एक नयी खिचड़ी बनायी है और उन्होंने धोबीवाली कथा भी जोड़ दी है। जिसमें वह अपनी पत्नी को, जो घर से निकली थी, वापिस लेने से इनकार करते हुए कहता है—मैं राम की तरह नहीं हूँ, जिन्होंने दीर्घकाल तक दूसरे के घर रहने के पश्चात् सीता को ग्रहण किया।

बुल्के की दृष्टि में "इसका वर्णन सर्वप्रथम गुणाढ्य की **बृहत्कथा** में विद्यमान था। वह सोमदेवकृत **कथासरित्सागर** में सुरक्षित है। उनके अनुसार गुप्तवेश में घूमते हुए राजा ने देखा कि एक पुरुष अपनी स्त्री को हाथ पकड़कर घर से बाहर निकाल रहा है और यह दोष दे रहा है कि दूसरे के घर गयी थी। वह स्त्री कहती है, राम ने सीता को राक्षस के घर में रहने पर भी नहीं छोड़ा। यह मेरा पति राम से भी बढ़कर है, क्योंकि यह मुझे बन्धु के घर जाने पर भी घर से निकाल रहा है। यह सुनकर राम को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने लोकापवाद के भय से गर्भवती सीता को वन में छोड़ दिया।" पर बुल्के की यह भ्रान्ति है जो वे इस कथा का सर्वप्रथम **बृहत्कथा** में उल्लेख मानते हैं, क्योंकि यह कथा **श्रीमद्भागवत** (९।११।८–१०) आदि पुराणों से ही गुणाढ्य ने उद्धृत की है। **श्रीभागवत** के निर्माण का काल गुणाढ्य से अर्वाचीन मानना भी भ्रान्ति ही है।

जैमियाश्वमेध (अ० ३६) तथा **पद्मपुराण** (५।५५) के अनुसार ही वह पुरुष धोबी था। **आनन्द-रामायण** (५।३), **तमिलरामायण**, **रामचरितमानस** लव-कुशकाण्ड आदि में भी इसका वर्णन है। वस्तुतः **रामायण के** पश्चात् रामचरित का शुद्ध आधार पुराण ही हैं, क्योंकि वे आर्ष हैं।

तिब्बती रामायण के अनुसार राम किसी व्यभिचारिणी स्त्री का और उसके पति का झगड़ा सुनते हैं। पति कहता है तुम अन्य स्त्रियों के समान नहीं हो। स्त्री कहती है तुम स्त्रियों के विषय में क्या जानो? सीता को देख लो वह एक लाख वर्ष दशग्रीव के साथ रही, फिर भी राम ने उसे ग्रहण कर लिया। यह सुनकर राम को सीता के सम्बन्ध में सन्देह उत्पन्न होता हैं। वे छिपकर उस स्त्री से मिलते हैं। उसने राम को बताया कि ज्वर-पीड़ित मनुष्य जैसे शीतल सरिता का निरन्तर स्मरण करता रहता है वैसे ही कामपीड़ित स्त्री रूपवान् पुरुष का निरन्तर स्मरण करती रहती है। जब तक कोई देखता, सुनता रहता है तबतक वह निन्दित कर्म नहीं करती, पर एकान्त में वह बन्धनमुक्त होकर परपुरुष से अपनी कामपीड़ा शान्तकर लेती है। यह सुनकर राम की शङ्का सुदृढ़ हो जाती है और वे सीताको वनवास दे देते हैं।

कहना न होगा कि यह भी वस्तुस्थिति से भिन्न काल्पनिक आधारों पर आधृत है। **वाल्मीकिरामायण के** अनुसार अग्निपरीक्षा के अनन्तर सीता की शुद्धि के प्रति राम को कभी भी अविश्वास का प्रश्न ही नहीं हुआ, केवल लोकापवाद की दृष्टि से ही राम ने सीता को वनवास दिया था।

हरिभद्र सूरि की **उपदेशपद** की एक संग्रहगाथा में सीता द्वारा रावण के चरणों का चित्र बनाने का संकेत मिलता है। टीकाकार मुनिचन्द्र सूरि १२वीं श० ई० के अनुसार सीता ने अपनी ईर्ष्यालु सपत्नी की प्रेरणा से रावण के चरणों का चित्र बनाया था। सपत्नी ने राम को वह चित्र दिखलाया और राम ने सीता का त्याग किया।

भद्रेश्वर की कहावली के अनुसार सीता के गर्भवती होने पर उन सपत्नी जनों की ईर्ष्या बहुत बढ़ गयी। उन्होंने ही छद्मव्यवहार से रावण का चित्र बनवाया। इसपर उन्हीं लोगों ने राम के पास जाकर सीता पर अभियोग लगाया कि सीता सदा रावण का स्मरण करती रहती है। उन्होंने प्रमाणस्वरूप रावण के चरण का वह चित्र

दिखलाया। राम ने इसपर अधिक ध्यान नहीं दिया। जिससे सपत्नियों ने रावणचित्र की कथा दासियों द्वारा जनता में फैला दी। वसन्त के समय सीता ने देवपूजा करने का दोहद प्रकट किया। पश्चात् राम ने गुप्तवेश में नगर के उद्यान में टहलते हुए लङ्कानिवास के पश्चात् सीता को ग्रहण करने के कारण अपनी निन्दा सुनी। तब उन्होंने लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण, हनुमान् को बुलाकर गुप्तचरों को आज्ञा दी कि तुम लोगों ने जो कुछ सुना है, उसका निःसंकोच विवरण दो। उन्होंने लोकापवाद की चर्चा की। यह सुनकर लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध हुए। गुप्तचरों ने जो सुना था, वह सुनाया। लक्ष्मण ने सीता का पक्ष लिया, किन्तु राम ने कृतान्तमुख द्वारा तीर्थयात्रा के बहाने सीता को जङ्गल में प्रेषित कर दिया। पश्चात् राम ने लक्ष्मण और विद्याधरों के साथ विमान में बैठकर सीता की खोज की। कहीं न देखकर समझ लिया कि सीता वन्य हिंस्र पशुओं की शिकार बन गयी।

हेमचन्द्र के **जैनरामायण** के अनुसार सीता के गर्भवती होने पर तीन सपत्नियों को ईर्ष्या बढ़ गयी। उन्हीं के अनुरोध से सीता ने रावण का चरण-चित्र बनाया। वस्तुतः किञ्चित् परिवर्तन के साथ जैन रामकथाओं का समान ही दृष्टिकोण है। जो सर्वथा निन्द्य ही है, क्योंकि **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार यज्ञों में अपेक्षित होने पर भी राम ने दूसरा विवाह नहीं किया। वे स्वर्णमयी सीता की प्रतिमा को ही पत्नी के रूप में यज्ञ में बैठाते थे। ऐसी स्थिति में राम का बहुपत्नीवाद **वाल्मीकिरामायण** विरुद्ध होने से सर्वथा असङ्गत ही है। सीता के प्रति राम को अग्निपरीक्षा के पहले ही व्यावहारिक दृष्टिकोण से ही सन्देह हुआ था, जो कि उचित ही था। सीता को ग्रहण कर लेने पर प्राकृत पुरुषों के समान जनश्रुति के आधार पर शङ्का की कोई सङ्गति ही नहीं बैठती। अग्निपरीक्षा के अनन्तर तो किसी भी समझदार को शङ्का होनी सम्भव नहीं। फिर, लोक के मुख को बन्द करना कठिन काम है। लङ्का की अग्निपरीक्षा का प्रचार लोकमुख-पिधायक हो सकता था, परन्तु राम के द्वारा किये गये उस प्रचार को सरकारी प्रोपेगण्डा कहकर झुठलाया जाना सम्भव था। इसी लिए एक आप्तकाम पूर्णकाम महर्षि के द्वारा वह परिस्थिति लायी गयी कि जिससे अग्निपरीक्षा का ही नहीं सम्पूर्ण सीता-चरित्र का दिव्य प्रचार हुआ।

कृत्तिवासरामायण (७।४४,४५) में तीनों कारणों का समन्वय है। राम ने भद्र द्वारा लोकापवाद की चर्चा सुनी। धोबी के मुख से अपनी निन्दा स्वयं सुनी और घर पहुँचकर सीता द्वारा अङ्कित रावण का चित्र देखा। सीता ने सखियों के अनुरोध से रावण का चित्र बनाया था और बनाकर सो गयी थी। चित्र देखकर राम का सन्देह दृढ़ हुआ। वे सीता-त्याग का संकल्प कर चले गये।

चन्द्रावलीकृत **रामायणगाथा** के अनुसार सीता कैकेयी की पुत्री कुकुआ के बहकावे में आकर रावण का चित्र खींचती है। **सेरीराम** के अनुसार कीकवी भरत और शत्रुघ्न की सहोदरी थी। उसके अनुरोध से पंखेपर चित्र खींच दिया। कीकवी ने सोती हुई सीता पर वह चित्र रख दिया और जाकर राम से कहा कि उन्होंने उस चित्र का चुम्बन किया था। राम ने विश्वास कर सीता को वन में भेज दिया। सीता परिचरों के साथ महरीसी कलि के पास चली गयी। सीता ने परमात्मा से प्रार्थना की थी कि मेरे सतीत्व के प्रमाणस्वरूप कीकवी गूंगी बन जाये तथा सभी पक्षी मौन रहें। परमात्मा ने सुन लिया। कीकवी १२ वर्ष तक गूंगी ही बनी रही।

काश्मीरीरामायण के अनुसार राम की सहोदरी बहन ने वह चित्र बनवाया था। जावा के **सेरतकाण्ड** के अनुसार कैकेयी स्वयं रावण का चित्र खींचती है और सोती हुई सीता के पलङ्ग पर रख देती है। **आनन्दरामायण** (जन्मखण्ड सर्ग ३) के अनुसार कैकेयी सीता से रावण का चित्र खींचने का आग्रह करती है। सीता कहती है—मैंने केवल उसके दाहिने पैर का अंगूठा ही देखा था और अंगूठे का ही चित्र बना दिया। कैकेयी इसी के आधार पर रावण का पूरा चित्र बनवाती है और राम को बुलाकर स्त्रीचरित्र की आलोचना करती है। राम सीता को वन भेजने का वचन देते हैं। राम ने सीता की दाहिनी भुजा काटने को भी कहा था, पर लक्ष्मण वैसा न कर सकने

के कारण देहत्याग का विचार कर रहे थे। इतने में विश्वकर्मा ने प्रकट होकर सीता का हाथ बनाकर उनको दिया।

इतना ही नहीं, हिन्देशिया के **हिकायत महाराज रावण** में कहा गया है—रावण-वध के बाद राम सात महीने तक लंका में रहे। रावण की एक पुत्री ने अपने पिता रावण का चित्र सोती हुई सीता की छाती पर रख दिया। सीता नींद में इस चित्र का चुम्बन करती है। उसी समय राम उसके पास आते हैं। क्रोध से सीता को कोड़ों से मारकर उसके बाल काटते हैं। लक्ष्मण को बुलाकर आदेश देते हैं कि सीता को मारकर प्रमाणस्वरूप उसका हृदय लाकर दो। लक्ष्मण सीता को उसके पितृगृह पहुँचा देते हैं। बकरी का हृदय लाकर राम को विश्वास दिलाते हैं कि सीता को मार दिया गया।

बुल्के भी कहते हैं कि "वृत्तान्त का इतना उग्र रूप केवल वहाँ हो सकता है जहाँ रामचरित्र का आदर्श क्षीण हो गया है।" किन्तु वास्तविक रामचरित्र से विमुख कुछ भी, अनर्गल कल्पना कर सकता है। इसका यही उदाहरण कहा जा सकता है। चन्द्र की चन्द्रिका, भानु की प्रभा तथा आनन्दसिन्धु के माधुर्य्य के समान राम से सीता सर्वथा अभिन्न हैं। मनसा, वाचा तथा कर्मणा वे सदा राम की अनन्य अनुरागिणी हैं। "अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा।" (वा० रा०) स्वप्न में भी अन्य की स्फूर्ति उनके मन में सम्भावित नहीं। राम सीता के हृदयेश्वर हैं, हृदय की गतिविधि जानते हैं। पारमार्थिक दृष्टि से दोनों ही सर्वज्ञ हैं, भ्रान्ति भी सम्भावित नहीं है। रावण-वध के बाद सीता, राम और लक्ष्मण लंका में रहे, यह कल्पना जैनों को रामकथाओं से उद्धृत हुई है। **वाल्मीकिरामायण** की दृष्टि से तो राम ने भरत से मिलने की उत्सुकता के कारण विभीषण का आतिथ्य भी नहीं ग्रहण किया था। फिर वे भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा आदि की उपेक्षा कर लङ्का में महीनों कैसे रुके रह सकते थे? सर्वथापि उक्त कथा निकृष्ट विकृति ही है। सिंहलद्वीप की कथा भी ऐसी ही है। उसे भी इसी कोटि की समझना चाहिये।

रामकेर्ति (सर्ग ७५) के अनुसार एक रावण की कुटुम्बिनी राक्षसी सीता की सखी का रूप धारण कर रावण का चित्र खिचवाती है और वह स्वयं उस चित्र में प्रविष्ट होती है। फलतः सीता प्रयत्न करने पर भी उस चित्र को मिटा नहीं पाती। निराश होकर सीता उसे पलङ्ग के नीचे छिपा देती है। राम उसपर लेटते हैं तो उन्हें तीव्र ज्वर हो जाता है। चित्र का पता लगने पर राम लक्ष्मण द्वारा सीता को मारकर कलेजा लाने का आदेश करते हैं। लक्ष्मण वन में सीता पर खड्ग चलाते हैं, खड्ग फूलों की माला बन जाता है। तब इन्द्र मृग का रूप धारणकर लक्ष्मण के सामने मर जाते हैं। लक्ष्मण उसका कलेजा निकाल कर ले जाते हैं। पश्चात् इन्द्र सीता को वाल्मीकि के आश्रम में ले जाते हैं।

रामकियेन के अनुसार शूर्पणखा की पुत्री सीता से रावण का चित्र खिचवाती है। **ब्रह्मचक्र** की कथा में शूर्पणखा ही छद्मवेश से सीता के पास आकर चित्र खिचवाती है। वस्तुतः **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार ही सभी कथाओं का सुधार करना उचित है। अपनी अपनी लौकिक भावनाओं को जोड़कर जाने अनजाने सीता की पवित्र-कथा में विकृतियाँ जोड़ दी गयी हैं। उनका परिहार कर ही सीताचरित्र समझना उचित है।

रामायण उत्तरकाण्ड के अनुसार लक्ष्मण को सान्त्वना देते हुए सुमन्त्र ने दुर्वासा और दशरथ का संवाद सुनाया था। विष्णु ने भृगुपत्नी की हत्या की थी। भृगु ने विष्णु को शाप दिया था कि तुमको मनुष्य बनकर पत्नी-वियोग का दुःख भोगना पड़ेगा—

"तस्मात् त्वं मानुषे लोके जनिष्यसि जनार्दन।
तत्र पत्नीवियोगं त्वं प्राप्स्यसे बहुवार्षिकम्॥"

बल्कि इस अंश को भी प्रक्षेप कहते हैं। उसके हेतुरूप में वे कहते हैं "**वाल्मीकिरामायण** गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ में यह नहीं मिलता। भृगुपत्नी-वध का उल्लेख वैदिक साहित्य, **महाभारत** तथा **रामायण** में नहीं मिलता। पौराणिक साहित्य में भृगुशाप विष्णु के अवतार धारण का कारण कहा गया है।" किन्तु उनका यह कहना निःसार है, क्योंकि दाक्षिणात्य पाठ का भी प्रामाण्य अब्याहत ही है। **रामायण**, **पुराण** आदि वेद के ही उपबृंहण हैं। अतः **रामायण** तथा **पुराण** के आधार पर ही जानना चाहिये कि किसी लुप्त वैदिकशाखा में उसका उल्लेख होगा। **वेद**, **पुराण**, **इतिहास**, **तन्त्र**, **आगम** कहीं भी जो अंश मिलता है उन सबका समन्वित अर्थ ही वेदार्थ होता है।

वाल्मीकिरामायण के उदीच्य, गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठों में तारा का शाप सीता-त्याग का परोक्ष कारण माना गया है। वालिवध के बाद तारा ने राम से कहा था कि मेरे शाप के कारण तुमको सीता की सङ्गति कम समय तक प्राप्त हो सकेगी—

"अचिरेण तु कालेन त्वया बाणैरुपार्जिता।
न सीता मम शापेन चिरं त्वयि भविष्यति॥
आत्मनः शौचमाधार्य पतिव्रतगुणा सती।
याच्यमाना त्वया सीता पुनर्यास्यति भूतले॥"

तारा ने कहा था कि बाणों द्वारा विजित सीता अधिक काल तक तुम्हारे पास नहीं रहेगी। अपने पवित्रता और पातिव्रत्य के गुण से युक्त वह तुम्हारे प्रार्थना करने पर भी भूतल में प्रवेश करेगी। **वाल्मीकिरामायण** गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय पाठ, **माधवकन्दली**, **कृत्तिवासरामायण**, **बलरामदासरामायण**, **भावार्थरामायण** आदि में भी ताराशाप का उल्लेख है। वस्तुतः अनेक कारणों से भी एक कार्य सम्पन्न होता है। अतः भृगुशाप तथा ताराशाप दोनों ही के सीता-त्याग के परोक्ष कारण होने में कोई विरोध नहीं है।

पद्मपुराण (पातालखण्ड अध्याय ५७) के अनुसार किसी दिन अविवाहिता सीता अपने उद्यान में शुकों के एक जोड़े से रामकथा सुनती हैं। इस कथा को विस्तार से सुनने के लिए वे इन पक्षियों को पकड़वा लेती हैं। वे दोनों वाल्मीकि के आश्रम में सीखे हुए रामायण का गान करते हैं। कथा समाप्त होने पर सीता अपना परिचय देकर उनसे कहती है कि जब तक राम मुझे नहीं ले जाते, मैं तुम दोनों को यहाँ बन्द रखूँगी। पक्षी विनय करते हैं, विशेषतः इसलिए कि शुकी गर्भवती थी। सीता केवल नरपक्षी (नर) को छोड़ देती है। शुकी यह शाप देकर पिंजड़े में मर जाती है—

"यथा त्वं पतिना सार्धं वियोजयसि मामितः।
तथा त्वमपि रामेण विमुक्ता भव गर्भिणी॥

अपनी मादा की मृत्यु जानकर शुक ने भी संकल्प किया कि मैं अयोध्या में जन्म लेकर सीता के राम-वियोग का कारण बन जाऊँगा। वही गङ्गा में डूबकर रजक के रूप में अयोध्या में प्रकट हुआ। उसने राम की निन्दा की, जिससे राम ने सीता का त्याग किया।

पउमचरियं (पर्व १०३) के अनुसार सीता ने पूर्वजन्म में सुदर्शन मुनि की निन्दा की थी। इसी लिए लोकापवाद की लक्ष्य बनीं। **भावार्थरामायण** (७।४८) के अनुसार सीता सोचती हैं कि मैंने वन में लक्ष्मण पर अधिक्षेप किया था; उसी का मुझे यह फल मिला है। इन सभी कारणों का योग भी सीता के वनवासदुःख का कारण हो सकता है। **तत्त्वसंग्रहरामायण** के अनुसार वाल्मीकि क्षीरसागर पर तपस्या करने गये थे। सागर की लहरों से उन्हें कष्ट हुआ। उन्होंने सोचा कि क्षीर-सागर लक्ष्मी का जन्मदाता होने के कारण अभिमानी हो गया है, अतः

मैं भी तपस्या द्वारा लक्ष्मी का पिता बनने का वर प्राप्त करूँगा। लक्ष्मी ने प्रकट होकर वाल्मीकि को वर प्रदान किया कि त्रेतायुग में जनकपुत्री बनकर मैं तुम्हारे आश्रम में पुत्री की तरह रहूँगी।

जो भी हो, **वाल्मीकिरामायण** में सीता-त्याग का अभाव नहीं कहा जा सकता। अतः **उत्तरकाण्ड** और उसमें भी सीता-त्याग को प्रक्षेप कहना सर्वथा गलत है। सीतात्यागसम्बन्धी देश-विदेशों का विशाल साहित्य भी उसकी प्रामाणिकता सिद्ध करता है। **"नह्यमूलं प्ररोहति।"** मूल के बिना अङ्कुरादि-प्ररोहण नहीं बन सकता।

अवास्तविक सीतात्याग

तुलसीकृत **गीतावली** में राम की आज्ञा के अनुसार लक्ष्मण सीता को वन में न छोड़कर महर्षि वाल्मीकि के हाथों में सौंप देते हैं। दशरथ अपनी आयु पूर्ण होने के पहले स्वर्गवासी हुए थे। राम को उनकी शेष आयु मिली थी, परन्तु सीता के साथ पिता की आयु भोगना अनुचित समझ कर राम ने अपनी आयु समाप्त होने पर सीता को वन में भेज दिया था (गीताव० ७।२५)। **अध्यात्मरामायण** (७।२) के अनुसार भी सीतात्याग वास्तविक नहीं है। देवताओं ने कहा यदि आप पहले वैकुण्ठ पहुँच जाओगी तो रघुनाथ आकर हम सबको सनाथ करेंगे। राम ने कहा मैं लोकापवाद के बहाने तुम्हें त्याग दूँगा। वाल्मीकि के आश्रम में तुम्हारे दो पुत्र होंगे। बाद में तुम मेरे पास आकर शपथकर पृथ्वी में प्रवेश कर बैकुण्ठ जाओगी। रसिक-सम्प्रदाय के लोग भी सीतात्याग को अवास्तविक मानते हैं। **आनन्दरामायण** (५। सर्ग २, ३) के अनुसार सत्त्वमयी सीता राम के रूप में अदृश्य रहकर रजस्तमोमयी स्वकीय छाया बनाकर बाह्यरूप में दृश्य थी। उन्हीं का वाल्मीकि आश्रम में लोकापवाद के कारण निवास हुआ था।

बुल्के उपसंहार में सीतात्याग एवं उसके विकास, त्याग के कारणों का क्रमिक विकास मानते हैं। अन्त में छायामयी सीतामात्र के परित्याग को विकास की परिणति मानते हैं, परन्तु उनकी यह कल्पना भी प्रमाण-विरुद्ध ही है।

वाल्मीकिरामायण के अनुसार सीतात्याग एक व्यावहारिक घटना है। उसका दृष्ट कारण लोकापवाद है एवं अदृष्ट कारण भृगु-शाप आदि हैं।

राम का सीता के प्रति पूर्ण अनुराग था। वह त्याग भी बहिरङ्ग ही था।

वस्तुस्थिति के अनुसार सीता और राम अभिन्न तत्त्व थे। आनन्दसुधासिन्धु राम थे एवं माधुर्य्यसारसर्वस्व की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी सीता थीं। गङ्गाजल से जैसे उसकी शीतलता, मधुरता और पवित्रता का पार्थक्य नहीं हो सकता है वैसे ही राम से सीता का पार्थक्य नहीं हो सकता था, अतः सीता का लङ्कानिवास या वाल्मीकि के आश्रम में निवास उनकी छाया का ही निवास समझना उचित है। कालक्रम से मूल ग्रन्थ **वाल्मीकिरामायण** के विपरीत अनेक प्रकार की विकृतियाँ कल्पनामात्र हैं।

कुश-लव चरित

७३५ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "प्राचीनतम रामकथाओं में कुश-लवसम्बन्धी सामग्री का नितान्त अभाव था। **वाल्मीकिरामायण** युद्धकाण्ड के अन्त में राम के दस हजार वर्ष के राज्यकाल का और उनके पुत्रों तथा भाइयों के साथ बहुत से यज्ञ करने का उल्लेख किया गया है, किन्तु कुश ओर लव का संकेत नहीं है। **महाभारत** की चारों रामकथाओं, **हरिवंश, ब्रह्मपुराण** तथा **नृसिंहपुराण** में कुश-लव का उल्लेख नहीं है।"

बुल्के का उक्त कथन भी सारशून्य तथा दुरभिसन्धिपूर्ण है। वर्तमान **वाल्मीकिरामायण** ही प्राचीनतम राम-कथा है। उसमें कुश और लव की कथा वर्णित है ही। युद्धकाण्ड के अन्तिम अध्याय में श्लोक ९१ से लेकर १०८

तक में अभिषेकोत्तर रामकथा का वर्णन है। इतने संक्षेप में कुश-लव के जन्म आदि की कथा कैसे हो सकती है? वाल्मीकि की दृष्टि से उत्तरकाण्ड में सविस्तर कुश-लव की कथा का वर्णन करना ही था। इसके अतिरिक्त सभी पुराणों की दृष्टि से राम के अनन्तर भी राम के उत्तराधिकारी अयोध्या के राजा हुए ही हैं। अतः ऐतिहासिक दृष्टि से भी कुश और लव का होना सिद्ध है। **वाल्मीकिरामायण** युद्धकाण्ड में भी कुश-लव का वर्णन है ही।

"ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुतभ्रातृबान्धवः।" (वा० रा० ७।१२८।१९७)

यहाँ सुत शब्द कुश और लव का वाचक स्पष्ट है।

बुल्के भी यह मानते ही हैं कि 'पुत्रों तथा भाइयों के साथ राम ने यज्ञ किये थे।' जब पुत्र थे तो उनके कुछ नाम भी होंगे ही। यदि कुश-लव उनके नाम नहीं तो क्या नाम थे? उपस्थित को छोड़कर अनुपस्थित की कल्पना असङ्गत ही है। **पद्मपुराण, रामाश्वमेध** आदि में कुश-लव का वर्णन है। **रघुवंश** आदि में भी उनका वर्णन है। **हरिवंश** आदि में लाघव की दृष्टि से ही कुश-लव के चरित का अभाव है।

राम का वैष्णव तेज में प्रवेश

बुल्के यह भी कहते हैं कि '**महाभारत** के **रामोपाख्यान** को छोड़कर उक्त रचनाओं में राम की मृत्यु का भी उल्लेख है।' परन्तु यह भी निरर्थक है। लौकिक दृष्टि से मृत्यु शब्द का व्यवहार किये जाने पर भी **उत्तरकाण्ड-रामायण** के अनुसार सरयू का जलस्पर्शमात्र करके राम ने विष्णुरूप धारण कर लिया। सूर्य के समान दीप्यमान राम गृह से निकले। राम के दक्षिण पार्श्व में पद्माश्री एवं वामभाग में महीदेवी उपस्थित हुईं। व्यवसाय शक्ति उनके आगे एवं उसके सहकारी नाना प्रकार के बाण एवं धनुष तथा अन्य आयुध पुरुष-विग्रह धारण करके स्थित थे। वेद तथा सर्वरक्षिणी गायत्री एवं तन्मूल ओंकार तथा वषट्कार मूर्तरूप में राम का अनुगमन कर रहे थे। वृद्ध, बालक आदि सहित सान्तःपुर भरत, शत्रुघ्न, अग्निहोत्रादि सहित मन्त्री आदि सभी राम के अनुगामी हुए (वा० रा० ७।१०९।५-१०)।

ब्रह्मा ने "**आगच्छ विष्णो**" कहकर स्वागत किया और प्रार्थना की कि चाहे अपने वैष्णव तेज में अथवा सनातन निर्गुण ब्रह्मरूप में प्रवेश करें। आप महद्भूत ब्रह्म अजर अक्षय अचिन्त्य हैं। विशालाक्षी ज्ञानशक्ति माया को छोड़कर आपको कोई नहीं जानते हैं—

"त्वं हि लोकगतिर्देव! न त्वां केचिद्विजानते॥
ऋते मायां विशालाक्षीं तब पूर्णपरिग्रहाम्। (वा० रा० ७।११०।१०,११)

पितामह की प्रार्थना सुनकर सशरीर सहानुज राम अपने वैष्णश तेज मैं प्रविष्ट हो गये। अर्थात् शरीर त्यागे बिना विष्णुरूप में प्रकट हुए। उन विष्णुरूपापन्न राम का साध्य, मरुद्गण, इन्द्र, अग्नि सहित सभी देवताओं ने एवं ऋषिगण, गन्धर्व, अप्सरा, सुपर्ण, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव और राक्षसों ने पूजन किया—

"विवेश वैष्णवं तेजः सशरीरः सहानुजः॥
ततो विष्णुमयं देवं पूजयन्ति स्म देवताः।" (वा० रा० ७।११०।१२,१३)

तिलक टीका के अनुसार यज्ञज्वाला के तुल्य राम उपेन्द्र (विष्णु) के तेज में प्रविष्ट हुए। एतावता भगवान् का मनुष्यादि देहरूप से गृहीत स्वरूप दिव्य तेजोरूप ही है। तेज में प्रवेश करने से जल में जल के समान सब तेजोमय ही हो गये। एतावता भरतादि का भी सशरीर ही प्रवेश सिद्ध है।

वस्तुतः ईसाई बुल्के ईसाइयत की दृष्टि से ही अपनी दुष्कल्पनाओं द्वारा **रामायण** को दूषित करने, राम को साधारण मनुष्य एवं उनकी मृत्यु सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। जहाँ-जहाँ **राम को** विष्णु या **ब्रह्मरूप** कहा

गया है, उन सब स्थलों को प्रक्षेप सिद्ध करने का उन्होंने घोर परिश्रम किया है। प्रामाणिक काण्डों में भी राम को ब्रह्मरूप कहा गया है। पर उन्हें भी वे अप्रामाणिक कहने में नहीं हिचकते हैं।

७३६ वें अनु० में बुल्के कहते हैं कि "बालकाण्ड के चतुर्थ सर्ग में कुशीलव की चर्चा है—"**कुशीलवौ भ्रातरौ राजपुत्रौ**" राम के अयोध्या लौटने के पश्चात् वाल्मीकि ने समस्त रामचरित के विषय में काव्यरचना की थी और उसे दो कुशीलव राजपुत्रों को सिखाया था। बाद में ये दोनों जाकर सभाओं में **रामायण** का गान करने लगे—

"**ऋषीणाञ्च द्विजातीनां साधूनां च समागमे।**" किसी दिन राम ने दोनों को अयोध्या के राजमार्ग में देखा और अपने महल में ले जाकर भरत आदि भाइयों के साथ रामायण का गान सुना। इस सर्ग में कहीं भी कुश और लव का अलग उल्लेख नहीं है। केवल दो भाइयों का वर्णन है जो राजपुत्र कुशीलव अर्थात् गायक हैं। रामायण के तीनों पाठों में ये दोनों राम के पुत्र माने गये हैं, लेकिन जिस श्लोक में इसका उल्लेख किया गया है वह तीनों पाठों में भिन्न है। अतः प्रतीत होता है कि यह तथ्य बाद में तीनों पाठों में जोड़ा गया है। उपर्युक्त वृत्तान्त के उत्तरार्ध में जहाँ राम दोनों का गान सुनते हैं कहीं भी इसका निर्देश नहीं किया गया है कि ये इनके पुत्र हैं। इससे यह अनुमान दृढ़ हो जाता है कि पहले इन दोनों कुशीलवों तथा राम के पितापुत्र सम्बन्ध का उल्लेख नहीं किया गया था।"

यह भी बुल्के की दुर्भावना का ही दुष्परिणाम है, क्योंकि उनके अनुसार भी कुश और लव राम के ही पुत्र थे। वाक्यशेष के अनुसार वाक्यार्थ एवं शब्दार्थ का निर्णय मीमांसासंमत है। इसी न्याय से यव वसन्त में मोदमान कणिशशाली ओषधि को कहा जाता है—

"वसन्ते सर्वशस्यानां जायते पत्रशातनम्।
मोदमानाश्च तिष्ठन्ति यवाः कणिशशालिनः॥"

पूर्वोक्त "**ईजे बहुविधैर्यज्ञैः**" श्लोक युद्धकाण्ड में राम के पुत्रों का वर्णन है। बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड में उनका नाम कुश-लव उक्त है। बालकाण्ड में बुल्के के अनुसार कुश-लव को राजपुत्र कहा गया है। वे किस राजा के पुत्र थे, क्यों वे रामायण के गान में प्रवृत्त हुए? इसका स्पष्टीकरण उत्तरकाण्ड में किया गया है। वहाँ महर्षि वाल्मीकि ने ही स्पष्टरूप में कहा था कि ये कुश और लव दोनों ही पुत्र आपके हैं।

"इमौ तु जानकीपुत्रावुभौ तु यमजातकौ।
सुतौ तवैव दुर्धर्षौ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥" (वा० रा० ७।९६।१७)

उत्तरकाण्ड में स्पष्ट कथा भी है कि गर्भिणी सीता लक्ष्मण द्वारा महर्षि वाल्मीकि के आश्रम के समीप में छोड़ी गयी थी। महर्षि वाल्मीकि उन्हें अपने आश्रम में ले गये। सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। उसी रात्रि में उस आश्रम में शत्रुघ्न भी पहुँचे थे। महर्षि ने ही उन बालकों का संस्कार करके उन्हें वेद, वेदाङ्ग, धनुर्वेद आदि पढ़ाया और वेद का उपबृंहण करने के लिए **रामायण** का अध्ययन कराया था।

क्रौञ्चवध से क्रौंची के विलाप से महर्षि वाल्मीकि में करुण रस का उद्रेक अकस्मात् नहीं हुआ था। किन्तु उस समय महर्षि के आश्रम में सीता निवास करती थीं। उनका करुण क्रन्दन क्रौंची के करुण क्रन्दन के तुल्य था। इसी संस्कार से महर्षि प्रभावित हुए थे। "**सीतायाश्चरितं महत्**" के अनुसार महर्षि ने सीता के लोकापवाद के निवारणार्थ ही स्पष्ट सीताचरित्र का वर्णन किया था। उसके प्रचारार्थ ही महर्षि ने जानकी के पुत्रों एवं अपने शिष्यों कुश और लव को रामायण-गानार्थ नियुक्त किया था। गानविद्योपजीवी कुशलव एक विशेष जाति के होते हैं।

उनमें **'कुशीलवौ'** द्विवचन प्रयोग नहीं होता। परन्तु ये दोनों सीता के पुत्र हैं। इसमें **'कुशीलवौ'** कुशी शब्द को पृषोदरादि मानकर सिद्ध किया गया है, **"कुशशब्दस्य कुशीभावः पृषोदरादित्वात्"** (वा० रा० १।४।४ तिलकटीका)। फिर भी दुराग्रहवशात् बुल्के रामपुत्र कुश और लव को गानविद्योपजीवी कहने का हठ करते हैं।

यह भी उत्तरकाण्ड में प्रसिद्ध है कि वे गानविद्योपजीवी नहीं थे। उन्होंने राम द्वारा दिलाये हुए बहुभार सुवर्ण को स्वीकार नहीं किया था और कहा था कि हम लोग कन्द, मूल और फल खानेवाले वनवासी हैं। तुम्हारे सुवर्ण हिरण्य से हमें क्या प्रयोजन ?

> "दीयमानं सुवर्णं तु नागृह्णीतां कुशीलवौ।
> वन्येन फलमूलेन निरतौ वनवासिनौ॥
> सुवर्णेन हिरण्येन किं करिष्यामहे वयम्॥" (वा० रा० ७।९४।१९,२०)

वहीं उनको प्रातीतिक दृष्टि से मुनिदारकौ कहा गया है (श्लोक २२)।

इतने पूर्वापरसम्बद्ध शब्दों से स्पष्टतः सिद्ध है कि कुश और लव दोनों राम के पुत्र ही 'कुशीलवौ' शब्द से निर्दिष्ट किये गये हैं। अतः तत्सम्बन्धी सामग्री को विकास या प्रक्षेप मानना सर्वथा निराधार ही है। बुल्के कई जगह तीनों पाठों में न होने से कई अंशों को प्रक्षेप कहते हैं। पर यहाँ रामायण के तीनों पाठों में कुश और लव दोनों राम के पुत्र माने गये हैं। तब भी बुल्के उसे प्रक्षेप मानते हैं। यह केवल दुराग्रह ही है।

७३७ वें अनु० में बुल्के स्वयं कहते हैं कि "उत्तरकाण्ड में सीता के वाल्मीकि आश्रम में दो पुत्रों को जन्म देने का वर्णन है। जिनका नाम वाल्मीकि ने कुश और लव रखा था (सर्ग ६६)। दोनों वाल्मीकि के (वेदाध्ययन आदि करने के कारण) शिष्य बनते हैं। राम के अश्वमेध के अवसर पर रामायण का गान करते हैं। तत्पश्चात् राम दोनों का परिचय प्राप्त कर सीता को बुलाने भेजते हैं। सीता के भूमि-प्रवेश के बाद कुश और लव उत्तरकाण्ड सुनाते हैं (वा० रा० ७।सर्ग ९३–९९)।"

रामायण के अन्त में ऐसा भी उल्लेख है कि कुश को कोशल देश तथा कुशावती राजधानी दी गयी। लव को उत्तरकोशल तथा श्रावस्ती प्राप्त होती है। (वा० रा० ७।सर्ग १०७,१०८)।

इन सब अंशों को अप्रामाणिक माना जाय तभी बुल्के की अटकल विश्वसनीय हो सकती है। पर कोई भी समझदार बुल्के की निस्सार कल्पनाओं के आधार पर इन प्रामाणिक सर्गों एवं श्लोकों को अप्रामाणिक कैसे मानेगा ?

✲

विंश अध्याय

रामचरितसिंहावलोकन

वेदों तथा पुराणों में अवतारवाद प्रसिद्ध है। विभिन्न शिव, विष्णु आदि देवताओं के भी अवतार होते हैं। विशेषतः विष्णु के तो असंख्य अवतार होते हैं। श्रीराम तो साक्षात् अवतारी विष्णु ही थे—

"भवान्नारायणो देवः।" "आदिकर्ता स्वयंप्रभुः॥ (वा० रा० ७।११९।१३,१८)

विष्णुपरक वेदमन्त्रों की व्याख्या

जो पृथिवी निमित्त पृथिवी में उपार्जित कर्मफल भोग के लिए भूरादि तीन लोकों का निर्माण करते हैं तथा उत्कृष्टतर उपासकों के सहस्थान सत्यलोक को ध्रुवरूप से स्थापित करते हैं, जो स्वरचित लोकों का त्रेधा क्रमण करते हुए अतिप्रभूत गीयमान होते हैं उनके वीर्य का मैं वर्णन करता हूँ।

"विष्णुर्गोपा अदाभ्यः अतो धर्माणि धारयन्।" (ऋ० सं० १।२२।१८)

पृथिवी के पालक विष्णु अहिंसनीय, अप्रधृष्य हैं। वे ही विविध धर्मों को धारण करते हैं। अन्तर्यामी रूप से सभी धर्मों तथा प्रपञ्चकार्यों के धारक हैं।

"इन्द्रस्य युज्यः सखा।" (ऋ० सं० १।२२।१९)

विष्णु इन्द्र के उपेन्द्ररूप से सदा अभिन्नहृदय सखा हैं।

"सदा पश्यन्ति सूरयः।" (ऋ० सं० १।२२।२०)

विद्वान् सदा ही उनका ब्रह्मरूप से दर्शन करते हैं।

"तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत् परमं पदम्॥" (ऋ० सं० १।२२।११)

व्यवहारातीत निवृत्तिनिष्ठ जागरूक विद्वान् विष्णु के स्वरूपभूत परम पद (प्राप्य) तत्त्व को जानते हैं।

"दिवो वा विष्ण उत महो वा उरोन्तरिक्षम्।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वाप्रयच्छ दक्षिणा दोतसव्यात्॥" (यजुः सं० ५।१९)

मेधातिथि कहते हैं हे विष्णो! पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश से विविध मणि, मुक्तादि धन-सम्पत्ति अपने दोनों हस्तों को भरकर मुझे प्रदान करो।

"यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कम्भायदुत्तरं सधस्थम्॥" (ऋ० सं० १।१५४।१)

"य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा।" (ऋ० सं० १।१५४।४)

जिस विष्णु ने पृथ्वीसम्बन्धी रञ्जनात्मक क्षित्यादि लोकत्रयसम्बन्धी अग्नि, वायु और आदित्य रूपों का विशेषरूप से निर्माण किया था।

"योस्यां पृथिव्यां द्वितीयस्यां तृतीयस्यां पृथिव्याम्।" (तै० सं० १।२।१२।१) के अनुसार अन्तरिक्ष आदि भी पृथिवी के ही भाग कहे गये हैं। अतः भूः, भुवः और स्वः तीनों लोक पृथिवीशब्दवाच्य हैं। जिस विष्णु

ने अतिविस्तीर्ण लोकत्रय के आश्रयभूत अन्तरिक्ष को उन सबके आश्रयरूप से बनाया है अथवा जिसने पृथिवीसम्बन्धी अधस्तन सप्त लोकों को बनाया है और जिसने उत्तरभावी पुण्यात्माओं के निवासयोग्य भूरादि ऊपर के सप्त लोकों को बनाया है, उन विष्णु का मैं गुणगान करता हूँ।

मन्त्रद्रष्टा दीर्घतमा कहते हैं—श्रीविष्णु ने इन पार्थिव लोकों का निर्माण किया है और आकाशमण्डल को भी उन्होंने धारण कर रखा है।

"प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण।" विष्णु अपने पराक्रम से स्तूयमान होते हैं।

विष्णु ने त्रिधातु पृथिवी, द्युलोक और सभी भुवनों को धारण कर रखा है।

"तदस्य प्रियमभिधामयाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्वा विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः॥" (ऋ० सं० १)

मैं उनके प्रियधाम को प्राप्त करना चाहता हूँ जहाँ उनकी उपासना में निरत सदा आनन्दमग्न रहते हैं। उनके परमधाम में माधुर्य का उत्स (निर्झर) रहता है। वे ही सभी सुकृतियों के बन्धुभूत हितकारी हैं। जो उन्हें प्राप्त कर लेते हैं उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती, इसलिए वे सुकृतियों के बन्धु हैं।

"प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।"
(शु० यजुः ५।२०; ऋ० सं० १।१५४।२)

वह महानुभाव अपने वीर्य (वीरकर्म) से सभी के द्वारा स्तूयमान होते हैं। जैसे अपने विरोधियों का सफाया करने के लिए ढूंढनेवाला भीम (भीतिजनक) तथा कुत्सित (हिंसादि) कर्म करनेवाला, दुर्गम प्रदेश गन्ता पर्वतादि उन्नतप्रदेश में रहनेवाला सिंह अपने वीर्य से ही संस्तुत होता है वैसे ही विष्णु भी शत्रुओं के अन्वेष्टा, भयानक शत्रुवधादि कार्य करनेवाले तथा लोकत्रय में सञ्चारी एवं उच्छ्रित लोक में स्थित रहने से सर्वसंस्तुत हैं। जिन विष्णु के तीन संख्यावाले विस्तीर्ण पादविक्षेपों में सम्पूर्ण विश्व तथा सम्पूर्ण भूत आश्रित होकर निवास करते हैं, वह विष्णु अपने पराक्रम के प्रभाव से स्तूयमान होते हैं।

"ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै।" (ऋ० १।१५४।६)

इस मन्त्र में यजमान एवं पत्नी को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि तुम दोनों के गन्तव्यरूप उन सुखवासयोग्य स्थानों की हम कामना करते हुए विष्णु की प्रार्थना करते हैं, जहाँ अत्यन्त उन्नत आश्रयणीय अत्यन्त प्रकाशयुक्त किरणें होती हैं अथवा बड़े शृङ्गवाली आश्रयणीय गायें टहलती रहती हैं। उन स्थानों के आधारभूत दिव्य गोलोक में बहुत महात्माओं द्वारा गीयमान तथा सर्वकामवर्षी विष्णु का निरतिशय परम उत्कृष्ट प्राप्य पद स्वरूप अतिप्रभूतरूप से भासमान होता है।

"अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि।" (ऋ० सं० १।१५४।६)

वर्षणशील उरुगाय विष्णु का परमपद देदीव्यमान होता है। **'महेशूराय विष्णवे'** पूजनीय वीर विष्णु की पूजा करो।

"त्रातुरवृकस्य मीढुषः।" (१।१५५।४)
"युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम्।" (१।१५५।४)
"यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत् सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत्॥"(ऋ० सं० १।१५६।२)

"तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद् ऋतस्य गर्भंजनुषा पिपर्त्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन ॥"(ऋ० सं० १।१५६।३)
"महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ।" (ऋ० सं० सं० १।१५६।३)
"न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।" (ऋ० सं० ७।९९।२)
"जनयन्ता सूर्य्यमुषासमग्निं ।" (ऋ० सं० ७।९९।४)
"क्षयन्तमस्य रजसः पराके ।" (ऋ० सं० ७।१००।५)
"पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।" (ऋ० सं० १०।९०।३)

दीर्घतमा ऋषि द्वारा दृष्ट १५५ वें सूक्त में भी यही कहा गया है—

हे अध्वर्यु आदि ऋत्विजो, आप लोग पालनस्वभाव पातव्य सोमरूप अन्न विष्णु के लिए सम्पादित करो अर्थात् सोम से विष्णु की अर्चा करो । विष्णु पूर्णकाम होने पर भी भक्तकृत स्तुति चाहते हैं । वे महान् एवं शूर (विक्रान्त) हैं । व्यापनशील विष्णुदेव हैं । महानुभाव विष्णु के पौंस्य उत्कृष्ट पराक्रम की मैं स्तुति करता हूँ । विष्णु सबके स्वामी, त्राता, अहिंसक तथा हितैषी हैं । सेक्ता नित्य तरुण हैं । विष्णु सदा सर्वत्र मिश्रणशील अथवा नित्य तरुण हैं और वे अकुमार अनल्प महान् हैं । भक्तों के आह्वान पर यज्ञदेश में आते हैं । जो मनुष्य पूर्व्य पूर्वकालीन नित्य वेधा जगत्कर्त्ता नित्य नूतन अत्यन्त रमणीय स्तुत्य स्वयमेव प्रादुर्भूत होनेवाले हैं अथवा स्वयं प्रहृष्ट तथा भक्तों को प्रहृष्ट करनेवाले सुमति महालक्ष्मीरूपा जिनकी पत्नी है उन विष्णु को हवि आदि प्रदान करता है और उन महानुभाव के महत्त्वपूर्ण जन्मादि का वर्णन करता है, वह दाता एवं स्तोता भी अन्नों एवं कीर्त्तियों से युक्त होकर उनके दिव्य पद को आभिमुख्येन प्राप्त करता है । हे स्तोतृगण ! उन पूर्व्य अनादिसिद्ध तथा यज्ञरूप से आविर्भूत या उदक-कारण हिरण्यगर्भ विष्णु को जानो और स्वतः स्तोत्रादि से उनको प्रसन्न करो और इन महानुभाव विष्णु के सभी द्वारा नमनीय सर्वात्मताप्रतिपादक विष्णु इस नाम को पुरुषार्थप्रद जानते हुए समन्तात् कीर्त्तन करो । अथवा द्रव्य, देवता आदि यज्ञरूप से विष्णु ही परिणत होते हैं यह जान कर उनकी स्तुति करो । ऋषि विष्णु का साक्षात्कार करके कहते हैं—हे विष्णो ! सर्वात्मक देव ! हम लोग आप महान् विष्णु की सुमति सुन्दर स्तुति या शोभन बुद्धि को भजते हैं ।

हे विष्णो ! आपकी महिमा या महत्त्व का अन्त जायमान या जात कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता है । आपकी महिमा का अन्त नहीं है । अतः उसका अन्त कोई भी नहीं जान सकता है । आपने दर्शनीय महान् द्युलोक को ऊपर ही धारण कर रखा है । आपकी धारणा शक्ति से ही द्युलोक नीचे नहीं गिरता है । भूमि की प्राची आदि दिशाओं को भी आपने ही धारण कर रखा है ।

हे इन्द्र एवं विष्णो ! आपने यजमान के लिए विस्तृत स्वर्गलोक बना रखा है । सर्वप्रेरक सूर्य तथा तमो-निवारक उषाकाल तथा असुरों से आवृत अग्नि को आप दोनों आविर्भूत करते हैं । हे नरौ नेतारौ ! आपने बृषशिप्रदास नामक उपक्षपिता असुर की मायाओं का हनन किया था ।

इसी प्रकार ७।१०० सूक्त के पाँचवें मन्त्र में कहा गया है—हे शिपिविष्ट रश्मियों द्वारा आविष्ट विष्णो, आपका वह प्रसिद्ध विष्णु नाम प्रख्यात है । वह सभी स्तुतियों का तथा सभी हवि का स्वामी है । ज्ञातव्य अर्थों का जाननेवाला मैं आपकी प्रकृष्ट स्तुति करता हूँ । मैं अबुद्ध साधारण प्राणी इस लोक से दूर प्रपञ्चातीत दिव्य धाम में निवास करनेवाले प्रबुद्ध विष्णु की स्तुति करता हूँ ।

"प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।" (शु० यजु० ५।२०)

भगवान् विष्णु अपने वीर्य (पराक्रम) से स्तूयमान होते हैं। वह कुचर अर्थात् परब्रह्मस्वरूप में रहते हुए पृथ्वी पर राम, कृष्ण आदि रूपों से विचरण करते हैं। नृसिंह, वराह आदि रूपों से पर्वतों में रहते हैं। उव्वट के अनुसार अपहतपाप्मा, इन्द्र, परमेश्वर इन विशेषणों से विशेषित हैं। मत्स्य, कूर्मादि रूप में इन्द्र—"**पृथिव्यां चरति**" **उव्वट**।

"प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते" (यजुः ३१।१९)

प्रजापति परमात्मा गर्भ के भीतर उत्पन्न न होता हुआ भी बहुत प्रकार से जायमान होता है।

ब्रह्मवैवर्त में इसी का विवरण है—

"पूर्णे च दशमे मासि गर्भः पूर्णो बभूव ह।
बभूव स चलस्पन्दा जड़जम्पा च नारद॥
गर्भे च वायुना पूर्णे निर्लिप्तो भगवान् स्वयम्।
हृत्पद्मदेशे देवक्या ह्यधिष्ठानं चकार सः॥" (श्रीकृष्णजन्मख० ७।४३,४४)

दसवें महीने में देवकी का गर्भ पूरा हो गया। गर्भ वायु से पूर्ण हो गया। परन्तु भगवान् ने वायु से निर्लिप्त देवकी के हृदय को अपना अधिष्ठान बनाया। अन्त में देवकी के पेट से वायु निकल जाती है। उसके हृत्पद्म से दिव्यरूप धारण कर भगवान् कृष्ण प्रकट होते हैं।

'तत्रैव भगवान् कृष्णो दिव्यं रूपं विधाय च।
हृत्पद्मकोशाद् देवक्या हरिराविर्बभूव ह॥" (७।७२)

यही भगवान् का दिव्य जन्म और कर्म है—

'जन्म कर्म च मे दिव्यम्' (गीता ४।९)

"एष ह देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥" (यजुःसं० ३२।४)

इसी का अर्थ गीता में व्यक्त है। मैं अज अव्ययात्मा तथा सभी भूतों का आत्मा होते हुए भी सच्चिदानन्दलक्षणा प्रकृति का आश्रयण करके अपनी माया से राम, कृष्ण आदि रूपों से आविर्भूत होता हूँ—

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥" (गीता ४।६)

"भद्रो भद्रया सचमानः आगात् स्वसारं जारो अभ्येति।
पाश्चात् सुप्रकेतैर्द्युभिर्विं तिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरिमि राममस्थात्॥" (ऋ० सं० १०।३।३)

रामभद्र राम का नाम प्रसिद्ध है। सत्यभामा के जैसे सत्य और भामा दोनों ही नाम माने जाते हैं वैसे ही यहाँ भी भद्र पद से राम का बोध होता है, क्योंकि व्याकरण के अनुसार पूर्वपद या उत्तरपद का लोप हो जाता है—

"विनाऽपि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्लोपः।" (वार्तिक ५।३।६३)

इसका अर्थ यह है कि भद्रा सीता से सेव्यमान रामभद्र वन में आये। पश्चात् राम के परोक्ष में जार रावण स्वसृतुल्य स्वसा सीता को ग्रहण (हरण) कर ले गया। शास्त्रों में उल्लेख है कि परदारा में मातृवत्, स्वसृवत् तथा दुहितृवत् बर्ताव करनेवाले स्वर्गगामी होते हैं।

"मातृवत् स्वसृवच्चैव तथा दुहितृवच्च ये।
परदारेषु वर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥"

रावण के मारे जाने पर अग्निश्रेष्ठ ज्ञानयुत्यै द्युभिर्दारैः सीतया रामदारा सीता के साथ राम के संमुख अपने श्वेतवर्ण तेज के साथ आये।

'इदं विष्णुर्विचक्रमे' (ऋ० सं० १।२२।१७) में सायण का कहना है कि "विष्णोस्त्रिविक्रमावतारे पादत्रयक्रमणस्य प्रसिद्धत्वात्" विष्णु के त्रिविक्रमावतार में पादत्रयक्रमण प्रसिद्ध है।

'ब्राह्मणो जज्ञे दशशीर्षो दशास्यः' (अथर्वसं० ४।६।१) दससिरवाला ब्राह्मण ही -रामायण तथा पुराणों में रावणरूप से प्रसिद्ध है।

अवतारवाद एवं सीता-राम का महत्त्व

"मनवे ह वै प्रातः। ····तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे।" (श० ब्रा० १।८।१।१)

अवनेजन करते हुए मनु के हाथों में मत्स्य आ गया। इससे मत्स्यावतार सिद्ध होता है।

"स यत् कूर्मो नाम।" (श० ब्रा० ७।५।१।५)

यह कूर्मावतार का मूल है।

वाराहावतार—

"आपो वा इदमग्रे वाराहो भूत्वाहरत्।" (तै० सं० ७।१।५।१)

इसमें वाराहावतार का सङ्केत है।

"वराहेण पृथिवी संविदाना सूकराय जिहीते मृगाय।" (अथर्वसं० १२।१।४६)

"उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।"

"भूमिधेनुर्धरणी लोकाधारिणी।" (तै० आ० १०।१)

नृसिंहावतार—

"प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः।" (ऋ० १।१५४।२)

"वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात्।" (तै० आ० १० परिशिष्ट)

इदं विष्णुर्विचक्रमे"—यह वामनावतार का सङ्केत है।

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः॥" (ऋ० १।२२।१८)

"यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुः।" (नौ० ब्रा० ६।४९।१३)

"वामनो विष्णुरास।" (श० ब्रा० १।२।५।५)

"क्रोधाद्विष्णुरुरुगायो विचक्रमे।" (तै० ब्रा० ३।१।२)

परशुराम (ऋ० सं० १।१।११) मन्त्र के ऋषि हैं।

"कालियो नाम सर्पो नवनागसहस्रबलः।

यमुनाह्रदे स जातो यो नारायणवाहनः॥" (ऋ० सं० ७।५५।४ खिल)

गजेन्द्रमोक्ष की कथा केवल श्रीमद्भागवत और वामनपुराण में ही उपलब्ध है। यह उपाख्यान अतिप्राचीन है, क्योंकि भरहूतस्तूप के प्राकार में अङ्कित गजकुलीरजातक का चित्र इसी का अनुकरण है। वह गजकुलीरजातक का चित्र ई० पू० २ श० का है। श्रीभागवत एवं वामनपुराण उस चित्र से सहस्रों वर्ष पूर्व के हैं तथा उनमें वर्णित रामकथा और राम का विष्णु होना इससे हजारों वर्ष पूर्व स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। कौशाम्बी ई० पू० २ श० में रावण के द्वारा सीता-हरण तथा अशोकवन में सीता की पक्की मिट्टी की बनी चित्रभित्ति प्राप्त हुई है। भरहूत और साँचीस्तूप ई० पू० २ श० में ऋषिशृंग एवं श्याम (सिन्धुवध) जातक के चित्र हैं। वे भी रामायण की कहानी की अनुकृतिस्वरूप हैं।

"आपो वा इदमासन् सलिलमेव। स प्रजापतिर्वराहो भूत्वोपन्यमज्जत। तस्य यावन्मुखमासीत्। तावतीं मृदमुदहरत। सेयमभवत्। यद्वराहविहतं भवत्यस्यामेवैनं प्रत्यक्षमाधत्ते। वराहो वा अस्यामन्नं पश्यति। तस्मा इयं विजिहीते यद्वराहविहतं भवति। तदेवान्नमवरुन्धे। यत् तदादत्त तदादितिर्यदप्रथत् तत्पृथिवी। यदभवत्तद्भूमिर्यद्वराहविहतं भवति प्रथत एव प्रजया पशुभिः।" (काठ० सं० ८।२।४)

यह समस्त जगत् अपनी उत्पत्ति के पहले आप (जल) ही था। प्रजापति वराह होकर जल में निमग्न हुए। उस वराह का जितना मुख था उतनी मृद् (पृथिवी) का उसने उद्धरण किया। वराह द्वारा खोदी हुई मिट्टी ही पृथ्वी है। वराहविहत पृथ्वी पर अग्नि का आधान करना आदिवराह उद्धृत पृथ्वी पर ही आधान करना है। वराह पृथ्वी को खोदता हुआ उसमें अन्न देखता है। उसके लिए पृथ्वी अपना रूप विवृत कर देती है। वही अन्न का अवरोध करती है। वही फैल गयी, इसलिए पृथ्वी हुई जो 'अभवत्', उत्पन्न हुई इसीलिए भूमि कही गयी। जो वराह-विहत मृत्तिका का आधान करता है वह प्रजा तथा पशु आदि द्वारा संसार में फैल जाता है, विख्यात होता है।

प्रशंसा के लिए यहाँ प्रसिद्ध वराहावतार के द्वारा उद्धृत मृत्तिका-दृष्टि सामान्य वराहोद्धृत मृत्तिका में की गयी इससे शतपथ की दृष्टि में वराहावतार सिद्ध है।

"इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे।" (ऋ० सं १।२२।१७)

"विष्णुः त्रिविक्रमावतारधारी। इदं प्रतीयमानं सर्व विश्वमुद्दिश्य। वि विशेषेण। चक्रमे क्रमणं कृतवान्। तदा त्रिभिः प्रकारैः। पदं निदधे स्वकीयं पादं प्रक्षिप्तवान्। अस्य विष्णोः। पांसुरे धूलियुक्ते पादस्थाने। समूढम् इदं सर्वं जगत् सम्यगन्तर्भूतम्।"

त्रिविक्रमावतारधारी विष्णु ने इस प्रतीयमान विश्व को नापने के उद्देश्य से त्रिधा पादप्रक्षेप किया। इन विष्णु के धूलियुक्त पाद-स्थान में यह सब जगत् अन्तर्भूत हो गया।

"त्रीणि पदा वि चक्रमे। विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्॥" (ऋ० सं० १।२२।१८)

"अदाभ्यः केनापि हिंसितुमशक्यः। गोपाः सर्वस्य जगतो रक्षकः। विष्णुः अतः एतेषु पृथिव्यादिस्थानेषु। त्रीणि पदानि। वि। किं कुर्वन् धर्माणि अग्निहोत्रादीनि। धारयन् पोषयन्।"

किसी के द्वारा जिसकी हिंसा नहीं हो सकती, जो सारे जगत् का रक्षक है, उस विष्णु ने अग्निहोत्रादि धर्मों का धारण करते हुए इन पृथिवी आदि स्थानों में पाद-प्रक्षेप किया अर्थात् धर्म के रक्षणार्थ बलि से तीन पग भूमि का दान लेकर उसके व्याज से त्रिलोकी इन्द्र को दे दी। असुरराज्य में धर्मादि का रक्षण नहीं हो सकता था, इसी लिए त्रिलोकी इन्द्र को प्रदान कर दी।

"नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः। अश्विना सोमिनो गृहम्॥" (ऋ० सं० १।२२।४)

"अश्विना हे अश्विनौ देवौ। सोमिनः सोमवतो यजमानस्य। गृहम्। रथेन। गच्छथः। स मार्गः वां युवयोः। दूरके दूरदेशे। नहि अस्ति। यद्वा यत्र गृहे गच्छथः तद् गृहं दूरे नहि भवति।"

हे अश्वि देवताओं, आप रथ के द्वारा सोमयाजी यजमान के घर में जाते हैं, आप दोनों के लिए यजमान का गृह कहीं भी हो दूर नहीं है।

इन सब वेद-मन्त्रों से विष्णु का अवतार तथा विष्णु आदि देवताओ का विग्रह एवं रथ आदि दोनों का होना सिद्ध होता है।

"स यत्कूर्मो नाम। एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत। यदसृजताकारोत्तद्यदकरोत्तस्मात्कूर्मः। कश्यपो वै कूर्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति।" (श० ब्रा० ७।५।१।५)

"अथ कूर्म इति नाम्नः प्रवृत्तिनिमित्तं दर्शयति—स यत्कूर्म इति। एतत् कूर्मसम्बन्धि। रूपम् आत्मनः कृत्वा। प्रजापतिः। प्रजा असृजत। असृजतेत्यस्य व्याख्यानम्—यदसृजताकरोदिति। असृजत इति यत् तत् अकरोत् इत्यर्थः। तत् तेन कूर्मरूपेण अकरोदिति यत् तस्मादकरोदिति कूर्मः इति कूर्मशब्दो नामधेयमित्यर्थः। कश्यपो वा इत्यादिकस्यायमर्थः कूर्मशब्दस्य करणप्रवृत्तिनिमित्तकत्वात्। कश्यपस्य प्रजापतित्वेन प्रजाकारकत्वात् कश्यपः कूर्मः खलु। अत एव सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति आहुर्जनाः। अतश्च कूर्मस्य कश्यपात्मकत्वात् तदुपधानं प्रशस्तमिति भावः।"

प्रजापति परमेश्वर ने कूर्मरूप धारण कर प्रजा की रचना की है। असृजत का अकरोत् अर्थ होता है। वह 'कृञ्' धातु का रूप है। करने के कारण ही उनका नाम 'कूर्म' हुआ। 'कूर्म' को 'कश्यप' कहा जाता है। उससे निर्मित होने के कारण प्रजा 'काश्यपी' कही जाती है। इससे ईश्वर का 'कूर्म' रूप धारण करना सिद्ध है।

अथ वराहविहतम्। इयत्यग्र आसीदितीयती ह वा इयमग्रे पृथिव्यास प्रादेशमात्री तामेष इति वराह उज्जघान सोऽस्याः पतिः प्रजापतिस्तेनैवैनमेतन्मिथुनेन प्रियेण धाम्ना समर्धयति कृत्स्नं करोति 'मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्या मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे' इत्यसावेव बन्धुः॥"

(श० ब्रा० १४।१।२।११)

वराह से विहत मृत्तिका की प्रशंसा के प्रसङ्ग में कहा गया है कि यह पृथिवी पहले प्रादेशमात्र ही थी; वराह ने उसका उत्खनन किया; वही वराह उसका पति हुआ, अतएव उस वराहविहत मृत्तिकारूप प्रिय मिथुन को अग्नि का धाम बनाकर सम्पूर्ण मख को समृद्ध बनाया जाता है और उससे देव-यजन में यज्ञ का शिरसंधान किया जाता है। यहाँ प्रसिद्ध रसातल से पृथिवी का उद्धार करनेवाले वराहरूपधारी विष्णु या प्रजापति का उल्लेख है।

'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्तस्मिन् प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाचरत्सः।
इमामपश्यत्तां वराहो भूत्वाहरत्तां विश्वकर्मा भूत्वा व्यमार्ट् सा प्रथत॥'(तै०सं० ७।१।५।१)

"अथ त्रिरात्रं विधातुं काचिदाख्यायिकोच्यते। तस्यां चाख्यायिकायामादौ पृथिव्युत्पत्तिं दर्शयति—आपो वेति। इदमितोदानीं दृश्यमानं गिरिनदीसमुद्रादिकं जगत् पृथिव्युत्पत्तेः पूर्वं सलिलमासीत्। तस्मिन्नेव सलिले केवला आप एव न तु भूतान्तरं तत्कार्यं वा किञ्चिदपि आसीत्। तदानीं प्रजापतिर्मूर्तस्य शरीरस्यावस्थातुं स्थानाभावाद् वायुरूपो भूत्वा तस्मिन् सलिले सर्वत्राचरत्। चरित्वा च सलिले निमग्नां भूमिं दृष्ट्वा स्वयं वराहो भूत्वा दंष्ट्राग्रेण तां भूमिं जलस्योपर्याहरत्। आहृत्य च वराहरूपमुत्सृज्य विश्वकर्मा भूत्वा विशेषेण मार्जनं कृत्वा तत्रत्यं द्रवमपनीय तां विस्तारितवान्। तत इयं दृश्यमाना सर्वप्राण्याधारभूता पृथिवी अभवत्। प्रथनादेव पृथिवीनाम सम्पन्नम्। (इति सायणभाष्यम्)

यहाँ 'त्रिरात्र' कर्म का विधान करने के लिए आख्यायिका कही जाती है। यह सब गिरि, समुद्रादि जगत् पहले सलिल ही था, इसमें कोई भूतान्तर या उसका कार्य नहीं था। उस समय ईश्वर ने वायुरूप से सलिल में सर्वत्र विचरण करते हुए स लिल में निमग्न पृथिवी को देखा और वराह होकर अपने दंष्ट्राग्र से भूमि को जल के ऊपर लाये। फिर वराह त्याग कर विश्वकर्मा होकर विशेषरूप से मार्जन किया; द्रवांश हटाकर पृथिवी को फैला कर विस्तारित कर । । इसी से सब प्राणियों की आधारभूत पृथिवी कहलायी। यहाँ प्रथम मन्त्र से भी अधिक वराह अवतार का वर्णन है।

अथ षष्ठं संभारं विधत्ते—

"आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। तेन प्रजापतिरश्राम्यत्।५। सोऽपश्यत् पुष्करपर्णं तिष्ठत्। सोऽमन्यत। अस्ति वै तत्। यस्मिन्निदमधितिष्ठतीति। स वराहो रूपं कृत्वोपन्यमज्जत्। स पृथिवीमध आर्च्छत्। तस्या उपहत्योदमज्जत्। तत्पुष्करपर्णेऽप्रथयत्। यदप्रथयत्।६। तत्पृथिव्याः पृथिवीत्वम्।"

(तै० ब्रा० १।१।३।५,६)

"इदमिदानीं दृश्यमानं गिरिनदीसमुद्रादिकं स्थावरं मनुष्यगवादिकं जङ्गमं च सृष्टेः पूर्वमीदृशं नासीत्। किन्तु सलिलरूपमासीत्। इदं दृश्यमानं जगत्सलिलं कारणेन सङ्गतमविभागापन्नम्। तदानीं प्रजापतिस्तेन सिसृक्षितजगन्निमित्तेनाश्राम्यत्। पर्यालोचनरूपं तपोऽकुरुत। कथं नामेदं जगद्भवेदिति विचार्य तस्य सलिलस्य मध्ये दीर्घनालाग्रेऽवस्थितमेकं पद्मपत्रमपश्यत्। तच्च दृष्ट्वा मनस्येवमतर्कयत। यस्मिन्नाधार इदं सनालं पद्मपत्रमधिश्रित्य तिष्ठति तद्वस्तु किञ्चिदधस्तादस्त्येवेति तर्कयित्वा च स प्रजापतिर्वराहो भूत्वा तदीयं रूपं च सम्यक् कृत्वा तस्य पद्मपत्रनालस्य समीपे जलमध्ये निमग्नोऽभूत्॥ मग्नश्चासावधस्तात् भूमिं प्राप्तवान्। तस्या भूमेः सकाशात् कियतीमप्यार्द्रां मृदं स्वदंष्ट्रया पृथक्कृत्य सलिलस्योपर्युन्मज्जनं कृतवान्। तच्च मृद्रूपं तस्मिन पुष्करपर्णे प्रसारितवान्। यस्मादियं मृत्तिका प्रथिता तस्मात्पृथिवीनाम सम्पन्नम्।"

यह सब पहले सलिल था। जगत् की रचना के लिए प्रजापति ने तप किया। सलिल के मध्य में दीर्घनाल के अग्र में अवस्थित पद्मपत्र उन्हें दिखायी दिया। उसे देख कर प्रजापति ने विचार किया कि जिस आधार में यह सनाल पद्मपत्र है, नीचे वह कोई वस्तु है। तब प्रजापति ने वराहरूप धारण कर नाल के समीप ही गोता लगाया। वहीं उसने भूमि को देखा। उस भूमि की कुछ गीली मिट्टी को अपनी दंष्ट्रा से अलग कर पानी के ऊपर आकर उसी मिट्टी को पद्मपत्र पर फैला दिया। वही मृत्तिका पृथिवी हो गयी।

अनादि मन्त्र, ब्राह्मण और वेद प्रसिद्ध आख्यायिका के प्रसङ्ग से ईश्वर के विविध अवतारों का वर्णन करते हैं। वेद स्वयं अनादि हैं। सृष्टि के पूर्वकाल में ही ईश्वर से निःश्वासरूप में प्रकट हुए हैं। अतः अवतार को विकास या आधुनिक कहना अनभिज्ञता ही है।

कामानन्तरभाविनीं सृष्टिं दर्शयति—

"स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। शरीरमधूनुत। तस्य यन्मांसमासीत्। ततो अरुणाः केतवो वातरशना ऋषय उदतिष्ठन्।२। ये नखाः। ते वैखानसाः। ये बालाः। ते बालखिल्याः। यो रसः। सोऽपाम् इति।"

"स प्रजापतिः सृष्टिं कामयित्वा तपः कृतवान्। नात्र तप उपवासादिरूपं किन्तु स्रष्टव्यं वस्तु कीदृशमिति—पर्यालोचनरूपम्। अत एव आथर्वणिका आमनन्ति—'यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।' इति। प्रजापतिः तपः पर्यालोचनरूपं कृत्वा स्रष्टव्यरूपं निश्चित्य स्वकीयं शरीरमधूनुत कम्पितवान्।

तस्य कम्पितस्य शरीरस्य यन्मांसमस्ति तस्मान्मांसादरुणादिनामकास्त्रिविधा ऋषय उदयन्त। प्रजापतेः सत्यसङ्कल्पत्वात् तत्सङ्कल्पानुसारेण तत्तद्वस्तूत्पद्यते। तस्य शरीरस्य ये नखा आसंस्ते वैखानसनामका मुनयोऽभवन्। ये शरीरबालाः केशास्ते बालखिल्यनामका मुनयोऽभवन्। यः शरीरस्य रसः सारांशः सोऽपां मध्ये कश्चित्कूर्मोऽभूदिति शेषः।"

कामना के अन्तर सृष्टि का वर्णन—प्रजापति ने तप किया (यहाँ स्रष्टव्य वस्तु का पर्यालोचन ही तप है; उपवास आदि रूप तप नहीं) और अपने शरीरको प्रकम्पित किया। प्रकम्पित प्रजापति के शरीर का जो मांस था उससे अरुण, केतु और वातरसन त्रिविध ऋषि प्रकट हुए। सत्यसंकल्पप्रजापति के संकल्प से तत्तद् वस्तुएँ उत्पन्न हुईं। उस शरीर के जो नख थे उनसे वैखानस (वानप्रस्थ) उत्पन्न हुए, उसके बालों से बालखिल्य और जो उसके शरीर का रस था वह जल के मध्य में कूर्म हुआ।

तेन कूर्मेण सह प्रजापतेः संवादं दर्शयति—

"अन्तरतः कूर्मभूतं सर्पन्तम्। तमब्रवीत्। मम वै त्वङ्मांसात् समभूः। (३) नेत्यब्रवीत्। पूर्वमेवाहमिहासमिति। तत्पुरुषस्य पुरुषत्वम्। सहस्राक्षः सहस्रपात्। भूत्वोदतिष्ठत्। तमब्रवीत्। त्वं वै पूर्वं समभूः। त्वमिदं पूर्वः कुरुष्वेति, इति।" (तै० आ० १।२३)

"अन्तरतो जलस्य मध्ये कूर्माकारेण निष्पन्नं तत्रैव संचरन्तं तं पुरुषं प्रजापतिरब्रवीत्, हे कूर्म मम वै त्वङ्मांसात् त्वचो मांसस्य च सम्बन्धिनो रसात्समभूस्त्वं समुत्पन्नोऽसीति। तदा स कूर्मो नेत्यब्रवीत्, यत्त्वयोक्तं तन्न, त्वदीयशरीररसान्नाहमुत्पन्नः किन्तु कूर्माकारं शरीरमेव निष्पन्नमभूत्, अहं तु सर्वगतनित्यचैतन्यस्वरूपत्वात् पूर्वमेवेहास्मिन् स्थाने स्थितोऽस्मि। यस्मात्पूर्वमासमित्युवाच तस्मात्पुरुष इति परमात्मनो नाम सम्पन्नम्। एवमुक्त्वा स कूर्मशरीरवर्ती परमात्मा स्वसामर्थ्यप्रकटनाय विराड्रूपं कृत्वा सहस्रसंख्याकैः शिरोभिरक्षिभिः पादैश्च युक्तो भूत्वा प्रादुरभूत्। तदानीं प्रजापतिस्तं विराड्रूपं दृष्ट्वा तत्रत्यं परमात्मानमेवमब्रवीत्। भोः परमात्मन् मच्छरीरात् पूर्वं त्वमेव सर्वदा विद्यमानोऽतो मत्तः पूर्वभावी संस्त्वमेवेदं सर्वं जगत्कुरुष्वेति।" (सायणभाष्यम्)

कूर्म होकर जल में संचार करते हुए कूर्म से प्रजापति ने कहा "हे कूर्म ! तुम हमारे त्वक्मांसादिसम्बन्धी रस से उत्पन्न हुए हो"; कूर्म ने कहा "जो तुमने कहा वह सही नहीं है, मैं तो पहले ही से था। अर्थात् कूर्मशरीरमात्र तुम्हारे त्वङ्मांसादि से उत्पन्न हुआ। मैं अनन्त चैतन्यरूप ईश्वर तो पहले से ही हूँ। पूर्व में होने से ही परमेश्वर का पुरुष नाम हुआ। वह कूर्मावतारधारी भगवान् अपना महत्त्व प्रकट करने के लिए विराडरूप धारण कर हजारों सिरों, आखों और चरणों से युक्त होकर आविर्भूत हुए। कूर्मावतारधारी परमेश्वर से प्रजापति ने कहा मैं पूर्व में ही था, इस कथन से तुम्हारा नाम पुरुष है। हे परमात्मन् ! तुम मुझसे भी पूर्वभावी हो, इस समस्त जगत् का निर्माण तुम्हीं करो। पूर्वोक्त वाक्यों में प्रजापति का अर्थ परमेश्वर है, क्योंकि वही मुख्यरूप से सम्पूर्ण प्रजा का प्रजापति है। पर यहाँ प्रजापति का जीवरूप ही प्रजापति अर्थ है, उसके शरीरगत मांसादि रस से भगवान् का कूर्मशरीर प्रकट हुआ।

'अर्कौघाभं किरीटान्वितमकरलसत्कुण्डलम्' इत्याद्यागमप्रसिद्धमूर्तिधरं देवं प्रार्थयते—

कोटि कोटि सूर्यतुल्य किरीट एवं मकराकार कुण्डल शोभित भगवान् हैं इत्यादि आगम प्रसिद्ध मूर्तिधारी भगवान् की स्तुति करते हैं—

"नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्, इति।" (तै० आ० १०।१।६)

"नरशरीराणामुपादानरूपाण्यन्नादिपञ्चभूतानि नारशब्देनोच्यन्ते। तेषु भूतेषु या आपो मुख्यास्ता अयनमाधारो यस्य विष्णोः सोऽयं नारायणः। समुद्रजलशायीत्यर्थः।

मनुष्य-शरीरों के उपादान भूमि आदि पञ्च महाभूत नार कहे जाते हैं। उनमें से मुख्य जल जिनका आश्रय है वह नारायण विष्णु हैं। क्षीरसिन्धु-शायी वही कृष्णावतार में वसुदेव-पुत्र होकर वासुदेव हुए।

तथा च स्मर्यते--

"आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥" (मनु० १।१०)

"स च कृष्णावतारे वसुदेवस्य पुत्रत्वाद् वासुदेवः। स च स्वकीयेन वास्तवेन परब्रह्मरूपेण व्यापित्वाद् विष्णुः।" इति सायणभाष्यम्।

वह अपने वास्तव परब्रह्मरूप से व्यापी हैं, अतः विष्णु हैं। इस दृष्टि से विष्णु गायत्री में कहे गये हैं। हम नारायण को तत्त्वतः जानते हैं और वासुदेवरूप से उनका ध्यान करते हैं। वह व्यापी ब्रह्मरूप विष्णु हमको सत्य प्रेरणा दें।

नरसिंहं प्रार्थयते—

"वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि।
तन्नो नारसिंहः प्रचोदयात्, इति॥" (तै० आ० परिशिष्ठ १०।१।६)

"नरसिंह एव नारसिंहः। वज्रनखाय तीक्ष्णदंष्ट्राय तस्मै। पदयोजना पूर्ववत्। आयसास्तम्भादवतीर्य स्वनखैर्हिरण्यकशिपुजठरभेत्तुः कृततदीयान्त्रयज्ञोपवीतस्य भगवतो नरकण्ठीरवरूपस्य वज्रनखत्वं तीक्ष्णदंष्ट्रत्वं च युक्तमेव।"

हम वज्रतुल्य नखवाले भगवान् को तत्त्वतः जानते हैं। तीक्ष्णदंष्ट्रावाले उन्हीं नृसिंह का ध्यान करते हैं प्रह्लादप्रतिपालक नृसिंह भगवान् ने आयसप्राय स्तम्भ से प्रकट होकर हिरण्यकशिपु का उदर अपने नखों से विदीर्ण कर दिया और उसकी आतों को यज्ञोपवीतवत् धारण कर लिया। उन श्रेष्ठ नरसिंह भगवान् के नख वज्रतुल्य थे।

"वामनो ह विष्णुरास" (शत० ब्रा० १।२।५।५) से बिष्णु का वामन होना सिद्ध है।

पद्मपुराण के अनुसार श्रीहरि का एक नाम समस्त वेदों के समान परम पावन है और हरि के सहस्र नामों के तुल्य एक श्रीरामनाम है। तभी तो भगवान् शिव पार्वती से कहते हैं—'हे वरानने! मैं मनोरम राम में राम राम, राम जपता हुआ सदा रमण करता हूँ। राम का एक-एक नाम हरि के सहस्र नामों के तुल्य है—

"विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकं मतम्।
तादृङ्नामसहस्रैस्तु रामनामसमं मतम्॥
राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥"

जैसे सच्चिदानन्दघन (मूर्ति) राम हैं वैसे ही राम की ह्लादिनी, सन्धिनी और संविन्मूर्ति जनकनन्दिनी जानकी हैं। आह्लादिनी आदि शक्तियों से विशिष्ट ही परिपूर्ण ब्रह्म होता है। उसी तरह सर्वालङ्कारों से अलङ्कृता सुवर्णवर्णा द्विभुजा चिद्रूपिणी कमलधारिणी जनकनन्दिनी सीता के द्वारा आश्लिष्ट होकर ही रामचन्द्र परात्पर परब्रह्म हैं—

"हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कृतया चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्टः कोशलजात्मजः ॥" (वा० ता० ४।९)

सकल सच्छास्त्रों का तात्पर्य श्रीसीता में है, क्योंकि सीतोपनिषद् के अनुसार ब्रह्मसत्तासामान्यरूप सीता है। तभी श्रीपराशरभट्ट स्वामी ने कहा है—केवल श्रीसूक्त एवं रामतापिनी उपनिषिद् ही हाथ उठाकर आपको ही जगत् की एकमात्र नियन्त्री नहीं कहते हैं, किन्तु **रामायण** महाग्रन्थ भी आपका चरित्र प्रतिपादन करके ही जीवन धारण करता है जितने स्मृतियों के प्रणेता मन्वादि हैं वे सभी पुराणों के सहित वेदों को आपकी महिमा में ही प्रमाण मानते हैं—

"उदवाहुस्त्वामुपनिषदसावाहु नैकां नियन्त्रीं श्रीमद्रामायणमपि वरं प्राणिति त्वच्चरित्रे।
स्मर्तारोऽस्मिञ्जननि यतमे सेतिहासैः पुराणैर्निन्युर्वेदानपि च ततमे त्वन्महिम्नि प्रमाणम् ॥"
(गुणरत्नकोश १४)

"काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत् ।"

वाल्मीकिरामायण के अनुसार सभी रामायण महाकाव्य सीता के ही महान् चरित्र हैं। सीताचरित्र होने से ही श्रीराम ने **रामायणश्रवण** किया था। अन्यथा धीरोदात्त नायक राम के लिए अपनी राज्य-सभा में अपना चरित्र सुनना सङ्गत न होता। शास्त्रों के अनुसार जैसे सम्राट् दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब निहार कर अपने वैभव का अनुभव करता है वैसे ही शिव शक्ति में निज प्रतिबिम्ब निहार कर अपनी पूर्णता एवं स्वतन्त्रता का अनुभव करते हैं। ठीक वैसे ही सीता की अनन्त महिमा में राम अपनी पूर्णता का अनुभव करते हैं।

वैष्णवाचार्य भक्त तो स्पष्ट कहते हैं कि हे मातः मैथिली! लङ्का में नित्य नया अपराध करनेवाली राक्षसियों की रुष्ट हनुमान् से अनेक हेतुदर्शक वाक्यों द्वारा बिना शरण में आये ही रक्षा करके आपने राघवेन्द्र की सभा को लघु बना दिया, क्योंकि राघवेन्द्र ने तो जयन्त एवं विभीषण की रक्षा शरण आने पर ही की थी, पर आप तो अपने क्षमागुण के प्राबल्य से शरणागतिनिरपेक्ष ही अहैतुकी कृपा से रक्षा करती हैं—

"मातर्मैथिलि राक्षसीस्त्वयि तदैवार्द्रापराधास्त्वया
रक्षन्त्या पवनात्मजाल्लघुतरा रामस्य गोष्ठी कृता।
काकं तं च विभीषणं शरणमित्युक्तिक्षमौ रक्षतः
सा नः सान्द्रमहागसः सुखयतु क्षान्तिस्तवाकस्मिकी ॥"

संमोहनतन्त्र के अनुसार गौर तेज के बिना श्याम तेज के भजन तथा ध्यान से पूर्ण सिद्धि आदि न मिलकर पातक ही हाथ लगता है—

"गौरतेजः परित्यज्य श्यामतेजः समर्चयेत्।
जपेद् वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे ॥"

श्रीरामानुजाचार्य के अनुसार अरविन्दनयन भगवान् की प्राणेश्वरी भगवती के प्रसाद के बिना सांसारिक वैभव, अक्षर ब्रह्म तथा वैष्णव-मार्ग की मुक्ति आदि भी नहीं मिलती—

"श्रेयो नह्यरविन्दलोचनमनःकान्ताप्रसादादृते
संसृत्यक्षरवैष्णवाध्वसु नृणां संभाव्यते कर्हिचित् ।"

शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मसत्तासामान्य ही सीता एवं राम के रूप में प्रकट होता है, दोनों ही सच्चिदानन्द-रस-सारसर्वस्व होने पर भी सौन्दर्यसारसर्वस्व का सीतारूप में एवं प्रेमसारसर्वस्व का रामरूप में प्रादुर्भाव है। लोक

में जैसे रूप, आलोक एवं नेत्र तीन होने पर भी मूलतः तीनों ही एक तेज हैं। वैसे ही लोक में सौन्दर्य, सौन्दर्यज्ञान एवं सौन्दर्यज्ञानजनित प्रेम तीन होने पर भी मूल में तो एक ही सत्यं शिवं सुन्दरं हैं। रसास्वादन की दृष्टि से सौन्दर्यसार सीता के रूप में एवं प्रेमसार राघवेन्द्र के रूप में प्रकट हैं। भक्तों ने यह भी माना है कि लीलाविग्रहदृष्टि से युवत्वादि गुण दोनों में समान होने पर भी पुरुषत्व के अनुरूप स्वातन्त्र्य, शत्रुदमन, स्थैर्यादि गुण भगवान् में हैं और स्त्रीत्व के अनुरूप मृदिमा, पतिपरायणता, करुणा, क्षमा आदि पराम्बा में हैं। इस तरह एक दूसरे के गुणों का रसास्वादन करने के लिए ही एकरूप होने पर भी उन्होंने दो रूप धारण कर रखे हैं।

"युवत्वादौ तुल्येऽप्यपरवशताशत्रुदमन-
स्थिरत्वादीन् कृत्वा भगवति गुणान् पुंस्त्वसुलभान्।
त्वयि स्त्रीत्वैकान्तान् मृदिमपतिपरार्थिकरुणा-
क्षमादीन् वा भोक्तुं भवति युवयोरात्मनि भिदा॥"

भक्त कहता है, हे जननि, आपके प्रेयान् राघवेन्द्र पिता के समान जीवों के हितार्थ उनके महान् अपराधों को देखकर जब कभी-कभी खूब कुपित होते हैं और क्षमा न करके उन अशुभों को आसुरी योनियों में ही भेजने पर प्रस्तुत हो जाते हैं—

"क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु।"

तब मैथिली भगवान् को रुष्ट देखकर प्रेम से प्रार्थना कर उन्हें समझा कर जीवों के अनुकूल बनाने का प्रयास करती हुई कहती हैं—इस दोषागार संसार में निर्दोष कौन है, अतः पुत्रों (जीवों) पर क्रोध न करके अपने सर्वरक्षक, सर्वशरण्य आदि विरुदावली के अनुसार कृपा ही करें। इस प्रकार विविध उपायों से प्रभु के समक्ष जीवों के अपराधों की स्मृति प्रभु के मन से निकाल कर प्रभु को उनके अनुकूल बनाकर उन्हें अपनाती हैं। राक्षसियों को हनुमान् से बचाने के लिए भगवती सीता ने कहा था कि कोई पापी हो, पुण्यात्मा हो, चाहे वध के योग्य भी क्यों न हो बड़ों को ऐसे जीवों पर भी कृपा ही करनी चाहिये, क्योंकि निरपराध कोई है नहीं—

"पापानां वाशुभानां वा वधार्हाणामथापि वा।
कार्यं कारुण्यमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति॥" (वा० रा० ६।११३।४५)

किं बहुना श्रीसीता और राम दोनों अत्यन्त अभिन्न होते हुए भी भगवान् की भक्ति, सेवा या आराधना का आदर्श स्थापन करने और भक्तों को रसास्वादन कराने तथा स्वयं भक्ति, प्रेम एवं माधुर्य रस का आस्वादन करने के लिए दो रूपों में प्रकट होते हैं। 'श्रिञ्' सेवायाम् धातु से 'श्रीशब्द' निष्पन्न होता है। उसके अनुरूप श्रीहरि की सेवा करनेवाली श्री है। श्रयते हरिं या सा श्रीः। चाहनेवालों से निरपेक्ष होकर श्री ने परमनिरपेक्ष हरि का वरण किया था। सब देवता लोग श्री को चाहते थे, परन्तु हरि अत्यन्त निरपेक्ष थे। फिर भी सापेक्ष अन्य देवों का वरण न करके निरपेक्ष हरि को ही श्री ने अपनाया। उनके इस लोकोत्तर गुण से श्रीहरि ने प्रसन्न होकर श्री को हृदय (वक्षःस्थल) पर आवासस्थान देकर उन्हें अपने हृदय की अधीश्वरी बना लिया। इससे समस्त गुण श्री की आराधना करने लगे। श्रीयते सर्वैर्गुणैर्या सा श्रीः। जो सब गुणों से सेवित हैं वही श्री हैं। अन्त में स्वयं हरि भी उनकी उपासना करने लगे। श्रीयते हरिणापि या सा श्रीः। आह्लादिनीसारसर्वस्व भक्तिस्वरूपा भगवती ही सर्वसेव्या हैं।

विष्णुपुराण के अनुसार जैसे विष्णु सर्वगत हैं वैसे ही उनकी अनपायिनी नित्या शक्ति भी सर्वगत एवं नित्य ही हैं एवं विष्णु अर्थ हैं तो लक्ष्मी वाणी हैं, भगवती नीति हैं तो भगवान् नय हैं, विष्णु बोध हैं तो लक्ष्मी

बुद्धि है। भगवान् धर्म हैं तो भगवती सत्क्रिया हैं। किं बहुना देव, तिर्यक्, मनुष्य आदि में पुंनाम से प्रसिद्ध सब विष्णु हैं एवं स्त्रीनाम से वाच्य सब श्री हैं—

"नित्यैवैषा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम॥
अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धर्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्॥
देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुंनामा भगवान् हरिः।
स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम्॥" (वि० पु० १।८।१७-१९)

इन्द्र ने स्तुति करते हुए कहा था कि आप सब लोकों की माता हैं और देवाधिदेव विष्णु सब लोकों के पिता हैं। यह सम्पूर्ण जगत् विष्णु एवं आप के द्वारा व्याप्त है—

त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता।
त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद् व्याप्तं चराचरम्॥ (वि० पु० १।९।१२६)
"विप्राः प्राहुस्तथा चैतद् यो भर्ता सा स्मृताङ्गना।" (मनु० ९।४५)

के अनुसार भी परब्रह्म एवं परब्रह्ममहिषी का अभेद ही है।

"राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः॥
अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी॥
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां सा करोत्येवात्मनस्तनुम्॥"(वि० पु० १।९।१४२-१४५)

महालक्ष्मी ही विष्णु के राघव हो जाने पर सीता बन जाती हैं। कृष्ण होने पर रुक्मिणी बन जाती हैं। जगत्स्वामी विष्णु जब जब अवतार धारण करते हैं, महालक्ष्मी उनकी सहायिनी बन कर प्रकट होती हैं। अन्य अवतारों में भी विष्णु के अनुरूप वे बन जाती हैं। मनुष्य बनने पर मानुषी बन जाती हैं। सर्वथापि विष्णु के अनुरूप ही अपना स्वरूप बना लेती हैं।

"कमलेयं जगन्माता लीलामानुषविग्रहा।
देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी॥
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषाऽऽत्मनस्तनुम्।"
(स्कन्दपु० ब्राह्मख० सेतुमाहात्म्य २२।१६,१७)

सीता मानुषविग्रहधारिणी कमला ही हैं। जब भगवान् देवरूप में होते हैं तब उनके अनुरूप ही देवदेहा महालक्ष्मीरूप में व्यक्त होती हैं।

"अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा।" (वा० रा० ५।११।१६)

राम और सीता दोनों ने स्वीकार किया है कि सीता राम से वैसे ही अनन्य हैं जैसे भास्कर से उसकी प्रभा अभिन्न होती है—

"अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।" (वा० रा० ५।२१।१६)

भगवान् शङ्कराचार्य ने 'स्मर्यतेऽपि च लोके' (३।१।१९) इस ब्रह्मसूत्र पर व्याख्या करते हुए **शारीरिक-भाष्य** में कहा है—सीता, द्रौपदी तथा धृष्टद्युम्न बिना माता-पिता के ही उत्पन्न हुए थे। सर्वसाधारण की उत्पत्ति द्यौ, पर्जन्य, पृथ्वी, पुरुष एवं योषित् क्रमशः पाँच अग्नियों के द्वारा होती है। परन्तु द्रोणाचार्य बिना माता के चार अग्नियों से ही उत्पन्न हुए थे। सीता, द्रौपदी आदि माता और पिता दोनों के सम्बन्ध बिना तीन अग्नियों से ही उद्भूत हुई थीं—

"द्रोणधृष्टद्युम्नप्रभृतीनां सीताद्रौपदीप्रभृतीनां चायोनिजत्वम्। तत्र द्रोणादीनां योषिद्विषयैकाहुतिर्नास्ति। धृष्टद्युम्नादीनान्तु योषित्पुरुषविषये द्वे अप्याहुती न स्तः।" (शा० भा०)

वाल्मीकिरामायण में सीता ने अपने अयोनिज होने की चर्चा की है—

"अयोनिजां हि मां ज्ञात्वा नाध्यगच्छत् स चिन्तयन्।
सदृशं चाभिरूपं च महीपालः पतिं मम॥" (वा० रा० २।११८।३७)

मुझे अयोनिज जानकर मेरे अनुरूप पति न पाकर राजा चिन्तित हुए। यद्यपि कुछ लोगों के अनुसार—

"धन्या प्रिया द्वितीया तु योगिनी जनकस्य तु।
तस्याः कन्या महालक्ष्मीः सीता नाम्ना भविष्यति॥"

इस **शिवपुराण**-वचन के अनुसार सीता जनक की धन्या नाम्नी योगिनी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हुई। तथापि उक्त वचन में भी गर्भ से उत्पन्न होने की बात सिद्ध नहीं होती। अतः धन्या ने हलाग्र उत्पन्न अयोनिजा कन्या का ही ममत्वातिशय से पालन किया था। इसी लिए उसकी महालक्ष्मी सीताविशेष पुत्री कहलायी। यदि कहीं वैसा पाठ हो तो उसे कल्पान्तरीय कथा का समझना चाहिये। **कूर्मपुराण** के अनुसार यह भी विदित होता है कि सीता की आराधना से अग्नि ने छायामयी सीता का निर्माण किया था। अतः रावण द्वारा हरण उसी का हुआ था, लङ्का की अग्निपरीक्षा के पश्चात् पुनः स्वाभाविक अग्निपुरनिवासिनी सीता का अग्नि के द्वारा पुनः प्राकट्य हुआ था।

"सीतयाराधितो वह्निश्छायासीतामजीजनत्।
तां जहार दशग्रीवो सीता वह्निपुरं गता॥
परीक्षासमये वह्निं छायासीता विवेश सा।
वह्निः सीतां समानीय स्वपुरादुदनीनयत्॥
(कूर्मपुराणीयं चैतन्यचरितामृतधृतं वचनम् २।९।१८७)

तुम पावक महु करहु निवासा। जब लगि करौं निसाचर नासा॥ (रा० मा० ३।२३।१)

एतावता सीता का अयोनिजा होना भक्तों की कल्पनामात्र है, बुल्के का यह कहना निर्मूल है। काशीकेदार-माहात्म्य (ब्रह्मवैवर्त खिल०) आदि ग्रन्थों में सीता की लक्ष्मीरूपता तथा राम की विष्णुरूपता कही गयी है—

"विष्णोः पत्न्यौ धरालक्ष्म्यौ धराजाता हि जानकी।
धर्मतः सा सुता विष्णोस्तामगृह्णाद् हरिः पुनः॥
कौशल्यातनयो जातस्तत्र दोषोऽस्ति को वद।" (काशीके० मा० १२।४७,४८)

माधवी (पृथ्वी) और लक्ष्मी दोनों ही विष्णु की पत्नियाँ हैं। जानकी भूमिजा भूमिपुत्री है, इस दृष्टि से सीता विष्णु की पुत्री होती हैं। विष्णु कौशल्यानन्दवर्धन रामरूप धारण कर जानकीपति हो गये। देवताओं में भी ऐसी ही स्थिति है। भिन्न क्षेत्रों में उत्पन्न होने से दाम्पत्य हो जाता है। ब्रह्मा की जिह्वा से उत्पन्न सरस्वती पार्वती से उत्पन्न होकर ब्रह्मा की पत्नी हो सकी थी।

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। अग्निहोत्रं जुहुयात्। दर्शपूर्णमासाभ्यां यजेत। सोमेन यजेत। अश्वमेधेन यजेत। ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च सत्यं च तपश्च दमश्च शमश्च। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि त्वया सेवितव्यानि नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि।" (तैत्ति० आ० १।९।११।१,२)

"सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥
अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥
ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागाः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥" (अथर्व० सं० ३।१।२,३,५,६)

स्वाध्यायपदवाच्य सकल वेदराशि का अध्ययन करना। अग्निहोत्र करना। दर्श, पूर्णमास, ज्योतिष्टोम, अश्वमेध आदि यज्ञ करना। सूनृता वाणी बोलना। स्वाध्याय तथा प्रवचन में संलग्न रहना। सत्य भाषण, तप, दम, शम और स्वाध्याय आदि करना। सत्य बोलना। धर्म का आचरण करना। स्वाध्याय में प्रमाद न करना। आचार्य को अभीष्ट दक्षिणा प्रदान कर के समावर्तन संस्कार कर गृहस्थ होकर प्रजातन्तु का व्यवच्छेद न करना, सत्य से, धर्म से, शुभ कर्म से तथा ऐश्वर्यप्राप्ति से प्रमाद न करना। माता को देवता मानना, पिता को देवता मानना, आचार्य को देवता मानना, अतिथि को देवता मानना, निर्दोष कर्म करना। सदोष कर्म से बचना। आचार्य जनों के सुचरितों का अनुवर्तन करना।

सांमनस्य सूक्तों द्वारा सबसे सहृदयता, सांमनस्य एवं अविद्वेष स्थापित करके परस्पर ऐसा प्रेम बढ़ाया जाता है जैसे गौ अपने नवजात बछड़े में प्रेम करती है। पुत्र पिता के प्रति अनुवर्ती हो, माता के प्रति भक्तिमान् हो, जाया पति के साथ मधुर तथा शान्तियुक्त वाणी बोले। भाई भाई से विद्वेष न करे, बहन बहन से द्वेष न करे। सभी पवित्र व्रत धारण करके एक दूसरे से भद्रबुद्धि से व्यवहार करें। बड़ों के प्रति उत्तम विचार रखो। परस्पर विलग मत होओ। सम्यक् कर्म करते हुए अग्रणी बनो। परस्पर मधुर भाषण करो। हम सबको सांमनस्य करते हैं। तुम लोगों की प्रपा एवं अन्नभाग समान हो। हम समान सूत्र में तुम सबको संबन्धित करते हैं। तुम लोग सम्यक् प्रकार से अग्नि तथा ज्योतिर्मय ब्रह्म की पूजा करो। जैसे रथचक्र की नाभि का आश्रयण अर करते हैं वैसे ही सब उस परमेश्वर का आश्रयण करें।

उक्त तथा अनुक्त सभी धर्म राम में परिलक्षित होते हैं। राम ने कहा था कि सत्य ही ईश्वर है। सत्य में ही धर्म स्थित है। दत्त, इष्ट, हुत, तप्त सब सत्यमूलक ही हैं—

'सत्यमेवेश्वरः', 'सत्ये धर्मः सदा स्थितः।' (वा० रा० २।१०९।१३)

राम ने कहा था कि पिता के वचन से मैं पावक में प्रविष्ट हो सकता हूँ, समुद्र में गिर सकता हूँ। चन्द्रमा से उसकी लक्ष्मी (शोभा) भले पृथक् हो जाय, हिमवान् हिमरहित हो जाय एवं समुद्र मर्यादा भले छोड़ दे, पर मैं पिता की आज्ञा नहीं टाल सकता—

"लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत्।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ॥" (वा० रा० २।११२।१८)

कैकेयी भी मानती हैं कि राम कौशल्या से अधिक मेरा मान करते हैं—

"कौशल्यातोऽतिरिक्तञ्च मम शुश्रूषते बहु।"

अन्य माताओं ने भी अनुभव किया था कि राम झूठा कलङ्क लगाने पर भी क्रोध नहीं करते और स्वयं क्रोध करानेवाली बातें नहीं करते। क्रुद्ध लोगों को भी प्रसन्न कर लेनेवाले तथा दूसरों के दुःख में समान दुःखवाले राम अब कहाँ चले जा रहे हैं। महातेजा राम जैसे कौशल्या में भक्ति रखते हैं वैसे ही हम सब में भी भक्ति रखते हैं।

"न क्रुध्यत्यभिशप्तोऽपि क्रोधनीयानि वर्जयन्।
क्रुद्धान् प्रसादयन् सर्वान् समदुःखः क्व गच्छति ॥
कौशल्यायां महातेजा यथा मातरि वर्तते।
तथा यो वर्त्ततेऽस्मासु महात्मा क्व नु गच्छति ॥" (वा० रा० २।४१।३,४)

भाइयों के प्रति राम ने कहा था—लक्ष्मण, मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वी का राज्य तुम भाइयों के लिए चाहता हूँ। भ्राताओं के संग्रहार्थ एवं सुखार्थ ही मैं राज्य भी चाहता हूँ। यह मैं आयुधका स्पर्श कर सत्य कहता हूँ। बिना भरत के, बिना तुम्हारे और बिना शत्रुघ्न के जो भी सुख हो अग्निदेव उसे जला कर भस्म कर दें—

"धर्ममर्थं च कामञ्च पृथिवीं चापि लक्ष्मण।
इच्छामि भवतामर्थे एतत् प्रतिशृणोमि ते ॥
भ्रातॄणां संग्रहार्थं च सुखार्थं चापि लक्ष्मण।
राज्यमप्यहमिच्छामि सत्येनायुधमालभे ॥
यद् विना भरतं त्वां वा शत्रुघ्नं वापि मानद।
भवेन्मम सुखं किञ्चिद् भस्म तत् कुरुतां शिखी ॥" (वा० रा० २।९७।५–८)

विभीषण ने लङ्का-विजय के बाद राम से अनुरोध किया कि लङ्का में कुछ समय रह कर मेरा आतिथ्य ग्रहण करके तब अयोध्या के लिए प्रस्थान किया जाय। इसपर शीलसिन्धु राम ने कहा कि मैं तुम्हारी बात न मानूं यह सर्वथा असंभव है। परन्तु मेरा मन उस भाई भरत के लिए त्वरावान् हो रहा है, जिसने चित्रकूट तक आकर मुझे लौटाने के लिए बहुत प्रार्थना की थी, किन्तु मैंने उसे स्वीकार नहीं किया था—

"न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥" (वा० रा० २।१२३।१८)

रामने बहुजनहिताय बहुजनसुखाय नहीं, किन्तु सर्वजनसुखाय सर्वजनहिताय अपनी प्राणेश्वरी स्वात्मभूता जनकनन्दिनी जानकी को वनवास देकर भाईभतीजावाद या कुनबापरस्ती का स्पर्श नहीं होने दिया। सीताजी की निन्दा करनेवाले का भी अघौघ नष्ट कर उसे भी बसाया—

"सिय निन्दक अघ ओघ नसाये। लोक विशोक बनाइ बसाये ॥"

देवताओं, वानरों और भालुओं के समक्ष होनेवाली अग्निपरीक्षा द्वारा सीताशुद्धि का प्रचार स्वयं न कर के उसकी जिम्मेदारी अब्भक्ष, वायुभक्ष, वल्कलवसनधारी महर्षियों पर डालकर स्वयं कर्त्तव्य-पालन में ही व्यस्त रहे और यह प्रतिज्ञा चरितार्थ कर दिखायी कि स्नेह, दया, सुख, राज्य आदि तथा जानकी को भी लोकरञ्जन के लिए त्यागने में मुझे व्यथा नहीं होगी—

"स्नेहं दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥" (उ० रा० च०)

इतने पर भी माधुर्य सारसर्वस्व की अधिष्ठात्री सीता के प्रति अखण्ड प्रेम ज्यों का त्यों बना ही रहा। राम की हृदयसिंहासनाधीश्वरी सीता ही रहीं। कुन्दमालाकार ने कितने सुन्दर शब्दों में राम के भावों का चित्रण किया है—

"त्वं देवि चित्तनिहिता गृहदेवता मे
स्वप्नागता शयनमध्यसखी त्वमेव।
दारान्तरग्रहणनिःस्पृहमानसस्य
यागे तव प्रतिकृतिर्मम धर्मपत्नी॥" (कुन्दमाला १।१४)

हे देवि, तुम मेरे चित्त की अधिष्ठात्री गृहलक्ष्मी हो। स्वप्न में भी एकमात्र तुम्हीं मेरे शयन की सखी हो। मेरे मन में दूसरी पत्नी का ग्रहण करने की किञ्चिन्मात्र भी स्पृहा नहीं है। तुम्हारी सुवर्णमयी प्रतिमा ही यज्ञ में मेरी धर्मपत्नी है।

राम ने अपने सौशील्य से वानर एवं भालुओं को अपना सखा स्वीकार किया। और उनका परिचय देते हुए अपने गुरु वसिष्ठ से कहा कि ये सब मेरे सखा हैं। समरसागर में इन्होंने बेड़े का काम किया है। मेरे हित के लिए इन्होंने अपना जन्म ही लगा दिया है। ये भरत से भी अधिक मेरे प्रिय हैं—

"ये सब सखा सुनिय मुनि मेरे।
भये समर सागर महं बेरे॥ (रा० मा० ७।७।४)

राम ने वानरों को गुरु वसिष्ठजी का परिचय देकर प्रणाम करने को कहा—

"गुरु वसिष्ठ कुलपूज्य हमारे।
इनकी कृपा दनुज रन मारे॥" (रा० मा० ७।७।३)

मित्रता के लिए यह राम का आदर्श वाक्य है—

"जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥" (रा० मा० ४।६।१)

आढ्य हो या दरिद्र हो, निर्दोष हो अथवा सदोष हो मित्र के लिए वही परम गति है—

"आढ्यो वापि दरिद्रो वा दुःखितः सुखितोऽपि वा।
निर्दोषश्च सदोषश्च वयस्यः परमा गतिः॥" (वा० रा० ४।८।८)

शरण में आये हुए को राम ने त्यागने में महान् दोष देखा है—

"शरणागत कहुँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥ (रा० मा० ५।४३)

राम सदा प्रशान्तात्मा और मृदुता के साथ बोलते थे। कोई रूक्षता या कठोरता से बोलता था तो भी वे उससे कठोर नही बोलते थे। वे भूल में भी किये गये एक उपकार से भी तुष्ट हो जाते थे। परन्तु सैकड़ों अपकारों को वे स्मरण भी नहीं करते थे, क्योंकि आत्मवान् थे। वे बुद्धिमान्, मधुरभाषी और पहले ही बोलते थे। वीर्यवान् थे, परन्तु अपने वीर्य से गर्व का अनुभव नहीं करते थे—

"सदा नित्यं प्रशान्तात्मा मृदुपूर्वं प्रभाषते।
उच्यमानोऽपि परुषं नोत्तरं प्रतिपद्यते॥
कदाचिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मवत्तया॥
बुद्धिमान् माधुराभाषी पूर्वभाषी प्रियंवदः।
वीर्यवान् न च वीर्येण महता स्वेन विस्मितः॥" (वा० रा० २।१।१०–१३)

राम कोई बात दो बार नहीं करते थे, जो कह दिया वह कह दिया। वह पाषाणरेखा के तुल्य अमिट होता था। राम यद्यपि अङ्गुल्यग्रमात्र से संसार के सभी दानवों, यक्षों, गन्धर्वों तथा राक्षसों को मार सकते हैं—

"पृथिव्यां दानवान् सर्वान् पिशाचान् गुह्यकांस्तथा।
अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर॥" (वा० रा० ६।१८।२३)

फिर क्या शत्रु-वध में वानर और भालुओं की सहायता अपेक्षित थी—

"किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः।"

फिर भी राम की कृतज्ञता उदारता देखते ही बनती है। आप हनुमान् से कहते हैं, जो तुमने मेरे साथ उपकार किया है उसका बदला मैं चुका नहीं सकता। यदि एक एक उपकार के बदले मैं प्राणों को भी समर्पण कर दूँ तो भी तुम्हारे बहुत उपकार शेष ही रहेंगे। उनके लिए मैं सदा ही ऋणी रहूँगा। फिर भी मैं चाहता हूँ कि वे ऋण मेरे अन्दर ही जीर्ण हो जायँ मेरे लिए उनके बदले प्रत्युपकार करने का अवसर ही न आये। क्योंकि प्राणी विपत्ति में ही प्रत्युपकार का पात्र बनता है। राम कभी यह नहीं चाहते हैं कि कभी हनुमान् पर विपत्ति आये और उस समय राम को उपकार के बदले में प्रत्युपकार करने का अवसर आये—

"एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्योपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणां आपत्स्वायाति पात्रताम्॥" (वा० रा० ७।४।२३,२४)

"रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।"

राम का पराक्रम दुर्धर्ष है। वैसे तो अनन्त ब्रह्माण्ड का उत्पादन, पालन तथा संहरण सबसे बड़ा पराक्रम है ही। व्यवहार में भी राम और रावण के संग्राम की दूसरी उपमा नहीं है—

आरम्भिक युद्धों में रावण ने घोर संग्राम में लक्ष्मण को शक्ति से आहत करके विभिन्न वीरों को आहत कर क्षत-विक्षत कर दिया। राम ने अपने तीक्ष्ण वाणों से धनुष तथा किरीट को ध्वस्त कर रावण को दयनीय बनाकर अनुकम्पा दिखाते हुए कहा कि तुमने महाभीम कर्म किया है। तुमने हमारे बड़े-बड़े योद्धाओं को मार दिया है। फिर भी तुम परिश्रान्त हो, इसलिए मैं इस समय तुम्हें नहीं मारता हूँ। जाओ लङ्का में विश्राम करो, रथी और धन्वी होकर आओ, फिर मेरा बल देखना।

राम के गुण तथा स्वभाव

"वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥" (उ० रा० च०)

उत्तररामचरित के अनुसार लोकोत्तर ईश्वरों के चरित वज्र से भी कठोर एवं कुसुम से भी कोमल होते हैं। उन्हें कौन जान सकता है।

"अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥" (वा० रा० ३।१।१८,१९)

राम कहते हैं—सीते, मैं लक्ष्मण और तुमको भी त्याग सकता हूँ, परन्तु मैं प्रतिज्ञा का, विशेषतः ब्राह्मणों के प्रति की गयी प्रतिज्ञा का, त्याग नहीं कर सकता हूँ।

"दद्यान्न प्रतिगृह्णीयात् सत्यं ब्रूयान्न चानृतम्।
अपि जीवितहेतोर्वा रामः सत्यपराक्रमः॥" (वा० रा० ५।३३।२५)

सत्यपराक्रमी राम देते ही हैं, प्रतिग्रह नहीं करते हैं। सत्य ही बोलते हैं, अनृत नहीं बोलते हैं।

"नास्य क्रोधः प्रसादश्च निरर्थोऽस्ति कदाचन।
हन्त्येष नियमाद् वध्यानवध्येषु न कुप्यति॥" (वा० रा० १।१।४५,४९)

राम के क्रोध और प्रसाद निरर्थक नहीं होते अर्थात् उनके क्रोध और प्रसाद अमोघ हैं। वे वध्य व्यक्ति का अवश्य वध करते हैं और निर्दोष अवध्य के प्रति कभी भी कुपित नहीं होते हैं।

"धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयिता चित्तेऽतिगम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रैऽतिज्ञानता
रूपे सुन्दरता हरौ भजनिता चैते गुणा राघवे॥" (चाणक्य १२।१५)

राम की धर्म में तत्परता एवं मुख में मधुरता स्तुत्य थी। दान में उनका समुत्साह तथा मित्र के प्रति अवञ्चकता भी लोकोत्तर थी। गुरु के प्रति वे विनयी थे। उनके चित्त में गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुणों में रुचि, शास्त्रों में अभिज्ञता, रूप में सुन्दरता एवं हरि में भक्ति भी अत्यन्त उत्कृष्ट था। इसी लिए ऋषियों की दृष्टि में राम से भिन्न कोई काव्यों के यश का भाजन हो ही नहीं सकता—

"नह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग् राघवादृते।"

"आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः।
राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम्॥" (वा० रा० २।३३।१२)

मृदुता, करुणा, श्रुत (परम्परा से वेदादि शास्त्रों का ज्ञान), शील, इन्द्रिय-निग्रह तथा मनोनिग्रह ये छः गुण राघवेन्द्र राम को शोभित करते हैं।

शोभा, कान्ति, छवि, वर्ण, लक्षण, लावण्य, आभिजात्य, सौभाग्य, राग आदि रूप के सभी भेद राम के सम्बन्ध से ही शोभित होते हैं।

"रूपं वर्णः प्रभा राग आभिजात्यं विलासिता।
लावण्यं लक्षणं छाया सौभाग्यं चेत्यमी गुणाः॥"

"अवयवानां रेखास्पाष्टद्यं रूपम्, गौरत्वादिधर्मविशेषो वर्णः, चाकचिक्यरूपा कान्तिः प्रभा, नैसर्गिकस्मेरत्वादिः सर्वेषां चक्षुर्बन्धको रागः, कुसुमधर्मा मार्दवादिस्पर्शविशेष आभिजात्यम्, कटाक्षादिः विलासः, तरलता लावण्यम् ।"

अङ्गों की रेखाओं की स्पष्टता रूप है, गौरत्वादि धर्मविशेष वर्ण है, चाकचिक्यादि कान्ति प्रभा है, चक्षुओं को बाँधनेवाला स्मितमुखत्वादि ही राग है, कुसुम के समान कोमल स्पर्शविशेष आभिजात्य है, कटाक्षादि विलास है एवं तरलता लावण्य है ।

गर्भिणी स्त्री जैसे गर्भस्थ शिशु की हित-दृष्टि से ही सब कार्य करती है वैसे ही राजा की सम्पूर्ण चेष्टाएँ प्रजाहित की दृष्टि से ही होती हैं । फिर लोकदृष्टि से कुछ असम्मत भी क्यों न हो । ताटका (ताड़का) के मारने में राम को स्त्रीवध के सम्बन्ध में अधिक संकोच था । तभी विश्वामित्र ने कहा था—

"नहि ते स्त्रीवधकृते घृणा कार्या नरोत्तम ।
चातुर्वर्ण्यहितार्थं हि कर्तव्यं राजसूनुना ॥
नृशंसमनृशंसं वा प्रजारक्षणकारणात् ।
पातकं वा सदोषं वा कर्तव्यं रक्षता सदा ॥" (वा० रा० १।२६।१७,१८)

तुम्हें स्त्रीवध के लिए घृणा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि चातुर्वर्ण्य के रक्षण के लिए राजपुत्र को ऐसी आततायी स्त्री का भी वध करना चाहिये । प्रजारक्षणार्थ राजा को नृशंस, अनृशंस, क्रुर, अक्रूर, पातकयुक्त, सदोष सब कुछ करना पड़ सकता है । जैसे हाथी के पैर में सबका पैर आ जाता है वैसे ही राजधर्म में सब धर्म आ जाते हैं । प्रजा एवं प्रजाकल्याणकारी वर्णाश्रमधर्म की रक्षा करना राजा का प्रधान कर्म है । और सब धर्मकर्म उसके ही अङ्गोपाङ्ग हैं । प्रधान के अविरुद्ध ही अन्य धर्मों का महत्त्व है । रामचन्द्र परम ब्रह्मण्य थे । **वाल्मीकिरामायण** में उन्हें ब्राह्मणों का उपासक कहा गया है—"**ब्राह्मणानामुपासिता**" फिर भी ब्राह्मण द्वारा आहत निरपराध श्वान को न्याय देने का जब प्रश्न आया तब राम को न्याय का हो पक्ष लेना पड़ा, क्योंकि उनकी दृष्टि में न्याय सबसे बड़ा था । इसी तरह २१ बार पृथ्वी को निःक्षत्र करनेवाले ब्राह्मण परशुराम का उग्ररूप जब राम के क्षात्र तेज को अभिभूत करने लगा तब राम ने बड़ी बुद्धिमानी से अपनी ब्रह्मण्यता की रक्षा करते हुए क्षात्र धर्म की भी रक्षा की और कहा—

"वीर्यहीनमिवाशक्तं क्षत्रधर्मेण भार्गव ।
अवजानासि मे तेजः पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥" (वा० रा० १।७६।३)
"ब्राह्मणोऽसीति पूज्यो मे विश्वामित्र कृतेन च ।
तस्माच्छक्तो न ते राम मोक्तुं प्राणहरं शरम् ॥
इमां वा त्वद्गतिं राम तपोबलसमर्जितान् ।
लोकानप्रतिमान् वापि हनिष्यामीति मे मतिः ॥" (वा० रा० १।७६।६,७)

भार्गव ! क्षात्रधर्मयुक्त होने पर भी मुझे आपने वीर्यहीन एवं असमर्थ समझकर क्षात्रतेज का आपमान किया है, अतः अब आप मेरा पराक्रम देखिये । यह कहकर राम ने उनसे धनुष लेकर क्षण में उसे चढ़ाकर कहा—आप ब्राह्मण होने से मेरे पूज्य हैं और विश्वामित्र की भगिनी सत्यवती के पौत्र हैं, इसलिए मैं आपके लिए प्राणहर बाण छोड़ नहीं सकता, किन्तु आपकी दिव्यगति अथवा तपोबल से अर्जित लोकों को नष्ट करूँगा ।

किन्तु जहाँ धर्मोल्लङ्घन का प्रश्न राम के सामने आया वहाँ राम ने जैसे धर्मविमुख शम्बूक शूद्र का वध कर ब्राह्मण शिशु को पुनर्जीवित किया वैसे ही धर्मविमुख ब्राह्मण रावण का वध कर सम्पूर्ण मानवता को जीवन प्रदान किया ।

माता-पिता की आज्ञा के पालन के प्रसङ्ग में श्रीराम ने अखण्ड भूमण्डल के राज्य को तृणवत् त्यागकर सहर्ष वनवास स्वीकार किया। बड़े आदरणीय कुलपूज्य महर्षि जाबालि से भी जब राम को लौटाने की दृष्टि से ही उनके द्वारा कही गयी वेदशास्त्रविरुद्ध माता-पिता के श्राद्ध, तर्पण, यज्ञ, होम तथा परलोक के अपलाप से युक्त नास्तिकता की बातें सुनीं तो राम क्षुब्ध हो उठे और उनके कथन का युक्तियुक्त खण्डन करके यहाँ तक कह दिया कि इस प्रकार की बुद्धि से व्यवहार करनेवाले तथा धर्म-मार्ग से हटे हुए आप जैसे नास्तिक को मेरे पिता ने याजक बनाया था मैं उनके उस कार्य की निन्दा करता हूँ—

"निन्दाम्यहं कर्म कृतं पितुस्तद् यस्त्वामगृह्णाद्विषमस्थबुद्धिम्।
बुद्ध्यानयैवंविधया चरन्तं सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम्॥"
(वा० रा० २।१०९।३३)

अपने प्रिय लक्ष्मण से भी जब कैकेयी की उचित निन्दा की तो राम ने स्पष्ट कह दिया—तात, मेरी मध्यमा अम्बा कैकेयी की निन्दा मत करो, भरत की ही चर्चा करो—

"न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।" (वा० रा ३।१६।३९)

यद्यपि वाली ने राम का कोई अपराध नहीं किया था तो भी सुग्रीव का अपराध करने से ही राम ने उसे अपना ही अपराधी माना और उसके वध की प्रतिज्ञा कर ली। वाली के वध के अनेक हेतुओं में राम ने उसका भी उल्लेख किया है—

"प्रतिज्ञा च मया दत्ता तदा वानरसंनिधौ।
प्रतिज्ञा च कथं शक्या मद्विधेनानवेक्षितुम्॥" (वा० रा० ४।१८।२६)

"धनुर्वेदविदां श्रेष्ठो लोकेऽतिरथसम्मतः।
अभियाता प्रहर्ता च सेनानयविशारदः॥
अप्रधृष्यश्च संग्रामे क्रुद्धैरपि सुरासुरैः।
अनसूयो जितक्रोधो न दृप्तो न च मत्सरी॥" (वा० रा० २।१।२९,३०)

राम धनुर्वेदविदों में सर्वश्रेष्ठ थे एवं अतिरथियों में भी उनकी धाक थी। वे शत्रु-सेना पर आक्रमण और प्रहार करने में दक्ष और सैन्यसंचालन में विशेष निपुण थे। संग्राम में क्रुद्ध देवता एवं दानव भी उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। इतने पर भी वे दूसरों की असूया नहीं करते थे और न ही क्रुद्ध होते थे। घमण्ड एवं परोत्कर्ष की असहिष्णुता उनमें नहीं थी। फिर भी उनकी युद्धकुशलता और दृढ़ प्रहार शत्रुओं पर अपना इतना गहरा प्रभाव डालते थे कि वे सदा आतङ्कित रहते थे। तभी तो मारीच राम से इतना प्रभावित था कि वह रत्न, रथ आदि शब्दों के रकार को सुनकर राम समझकर भयभीत हो जाता था—

"रकारादीनि नामानि रामत्रस्तस्य रावण।
रत्नानि च रथाश्चैव वित्रासं जनयन्ति मे॥" (वा० रा० ३।३९।१८)

रावण के गुप्तचर भी यह अनुभव करते हैं कि राम के कुपित होने पर उन्हें कोई वश में नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण लोकों का संहार करके नये सिरे से प्रजासृष्टि करने में समर्थ हैं। सब देवगण एवं असुर मिलकर भी उनका वध नहीं कर सकते। राम के अनुसार शत्रु भी यदि शरण में आये एवं हाथ जोड़ कर दया की याचना करे तो आनृशंस्य की दृष्टि से कभी भी उसपर प्रहार नहीं करना चाहिये। आर्त्त हो या दृप्त हो यदि वह शत्रु के शरण आया हो तो शत्रु को अपने प्राणों का त्याग कर भी उसकी रक्षा ही करनी चाहिये—

"बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप॥
आर्त्तो वा यदि वा दृप्तो परेषां शरणं गतः।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥" (वा० रा० ६।१८।२७,२८)

महर्षि वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा अगस्त्य से राम को उत्तमोत्तम शस्त्रास्त्र प्राप्त थे। वे चाहते तो उन्हें उपयोग में लाकर अनायास ही सबका संहार कर सकते थे, किन्तु राम ने कभी भी उन शस्त्रास्त्रों का प्रयोग नहीं किया। मेघनाद छलपूर्वक ऐसे दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर वानरों, मनुष्यों तथा राम और लक्ष्मण दोनों को परेशान करता था। एक बार लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करने की आज्ञा चाही, पर राम ने कहा एक के लिए पृथ्वी भर के अयुद्धचमान, प्रच्छन्न, प्राञ्जलि, शरणागत, पलायमान, मत्त सब राक्षसों को मारना उचित नहीं है। इन्द्रजित् के मारने के लिए मैं प्रयत्न करता हूँ—

"नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि।
अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम्॥
पलायमानं मत्तं वा न हन्तुं त्वमिहार्हसि।
तस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यामि महाभुज॥" (वा० रा० ६।८०।३८–४०)

उसी आदर्श के अनुसार ब्रह्मास्त्र तथा पाशुपतास्त्र रहने पर भी अर्जुन ने भारत-युद्ध में उसका प्रयोग नहीं किया था। इसी तरह यदि आज भी परमाणु बम तथा हाइड्रोजन बम बनाया जाय तो भी कोई आपत्ति नहीं। आवश्यकता है उसके प्रयोग पर नियन्त्रण की। शक्ति का दुरुपयोग निन्द्य होने पर भी सदुपयोग प्रशंसनीय ही है।

इतना ही क्यों राम ने तो श्रान्त, विरथ तथा निःशस्त्र रावण को भी अवसर दिया कि वह स्वस्थ, रथी और धन्वी होकर आये, तब उससे युद्ध किया जाये। तभी मारीच जैसे राक्षस ने भी राम को निर्दोष विग्रहवान् धर्म ही बतलाया था।

"रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः। (वा० रा० ३।३७।१३)

राम धर्म के मूर्तिमान् रूप हैं। साधु एवं सत्यपराक्रमी हैं। रावण-वध के बाद विभीषण ने पहले शोक व्यक्त करते हुए रावण के गुणों का वर्णन किया, परन्तु अन्त में जब उसकी अन्त्येष्टि का प्रसङ्ग आया तब उसके सीता-हरण आदि दुष्कृत्यों का स्मरण कर के अन्त्येष्टि करना उन्होंने अस्वीकार कर दिया। तब राम ने कहा—

"मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥" (वा० रा० ६।११९।१००,१०१)

मरने तक ही वैर रहता है। हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है। अब यह जैसा तुम्हारा भाई है वैसा ही मेरा भी है। तुम इसका दाहादि संस्कार करो। राम ने उसकी प्रशंसा भी की। रावण अधर्मी, असत्यवादी होने पर भी संग्राम में तेजस्वी, बलवान् तथा शूरवीर रहा है। इन्द्रादि देवता भी इसे परास्त नहीं कर सके थे। इसने अनेकों दान, यज्ञ एवं श्रेष्ठ कर्म भी किये हैं। विराध के इच्छानुसार राम ने विराध का अवटनिक्षेप (फारसी में दफन) कर तथा कबन्ध के इच्छानुसार उसका दाह कर उन्हें कृतार्थ किया।

लङ्का जैसे वैभवशाली राष्ट्र को जीतकर भी राम ने उसके वैभव पर दृष्टि नहीं डाली। रावण के भाई विभीषण को ही लङ्का सौंप दी।

"द्विः शरं नाभिसन्धत्ते", "रामो द्विर्नाभिभाषते ।" (वा० रा० २।१८।३०)

राम दो बार बाण नहीं चलाते और दो बार नहीं बोलते अर्थात् एक ही बाण से सब अभीष्टों की सिद्धि हो जाती थी । श्रीभागवत ने भी कृष्ण के सुदर्शन चक्र को राम के शर से उपमित किया है । ब्राह्मण-बालकों को लाने के लिए कृष्ण का सुदर्शन चक्र गहन अन्धकार को विदीर्ण करता ऐसे वेग से बढ़ रहा था जैसे राम के धनुष की प्रत्यञ्चा से छूटा हुआ बाण शत्रु-सेना में प्रविष्ट होता है—

"तमः सुघोरं गहनं कृतं महद् विदारयद् भूरितरेण रोचिषा ।
मनोजवं निर्विविशे सुदर्शनं गुणच्युतो रामशरो तथा चमूः ॥" (१०।८९।५१)

श्रीभागवत के अनुसार एक ही बाण से राम ने रावण का वध किया था—

"एवं क्षिपन् धनुषि सन्धितमुत्ससर्ज बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ।
सोऽसृग्वमन् दशमुखैर्न्यपतद्विमानाद्धा हेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥"(भाग० १०।८९।५१)

अर्थात् इस तरह धनुष पर सन्धान किये हुए बाण का प्रक्षेप करते हुए राम ने उस बाण से वज्रतुल्य रावण के हृदय को छिन्न-भिन्न कर डाला । वह दसों मुखों से रुधिर वमन करता हुआ वैसे ही विमान से गिर पड़ा जैमें सुकृतक्षय होने पर लोगों के हाहाकार के बीच सुकृती विमान में गिर पड़ता है ।

पाश्चात्यों की धारणा

पाश्चात्य विद्वानों विशेषतः यहूदी, ईसाई तथा इस्लाम मतानुयायियों के लिए अवतारवाद कठिन पड़ता है, क्योंकि उनके मतानुसार पुरुष मनुष्य को छोड़कर स्त्री आदि किसी प्राणी में आत्मा नहीं होती । उनके अनुसार वृक्ष, लता आदि भी आत्मविहीन हैं ।

मनुष्य-जन्म केवल एक ही बार होता है । इस जीवन के कर्मों के फलस्वरूप या तो अक्षय स्वर्ग या अनन्त नरक मिलता है । सुदूर भविष्य में कभी जिब्रायल देवदूत तुरही बजायेंगे तब जितने मनुष्य हैं सबके सब कब्र से पूर्ववत् रूप धारणकर ईश्वर के सिंहासन के सामने विचारार्थ उपस्थित होंगे । पुण्यवान् ईसाई, मुसलमान आदि दायीं ओर तद्भिन्न हिन्दू आदि बायीं ओर खड़े होंगे । पुण्यवान् स्वर्ग जायँगे । पापियों को दोजख की आग में झुलसना पड़ेगा । इसी दृष्टि से देह को कफन में लपेट कर कब्र में गाड़ने की प्रथा है । अभी स्वर्ग और दोजख दोनों के द्वार बन्द हैं या दोनों खाली पड़े हैं । इनके अनुसार स्वर्ग में देवी नहीं है । जुहोवा, गॉड या अल्लाह अकेले ही एकेश्वर हैं ।

रोमन कैथोलिक यद्यपि यीशु की कुमारी माता मेरी की उपासना करते हैं, परन्तु वह महामाया या मूल प्रकृति नहीं है ।

निर्गुण ब्रह्म या मोक्ष भी उन मतों में नहीं है ! साधारण जीव शिव तो है ही नहीं । उसका आत्मा नहीं है । जुहोवा, गॉड या अल्लाह देवदूतों की सहायता से पृथ्वी पर शासन चलाते हैं । ईसाइयों के अनुसार यीशु या ख्रीष्ट ईश्वर का पुत्र है । ईश्वर, पुत्र तथा पवित्र आत्मा ये तीनों दैवी शक्तियाँ है, जिनके ही जीव का उस मत में पुर्वजन्म नहीं होता तब फिर ईश्वर का अवतार कैसा ?

ईसाइयों के अनुसार ईश्वरपुत्ररूप यीशु मानवजाति के पाप ग्रहण करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं । मुसलमानों के अनुसार हजरत मुहम्मद एकमात्र पैगम्बर हैं । ईसाई-मत के अनुसार ई० पू० ४००४ अर्थात् आज से केवल ६ हजार वर्ष पूर्ष ही जगत् की सृष्टि हुई थी । परन्तु आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार कोटि-कोटि वर्षों के प्राचीन प्रस्तर उपलब्ध होते हैं । समुद्र की क्षारता के आधार पर पृथ्वी अरबों वर्ष पुरानी सिद्ध होती है । एक जन्म के कर्मों के फलस्वरूप अनन्त स्वर्ग या नरक की प्राप्ति

तथा मिश्रित पाप-पुण्यवालों की अनिश्चित गति आदि के कारण बुद्धिवादियों के मन में उक्त बातें बैठती नहीं। इसी कारण हिन्दुओं के असंख्य देवी-देवता एवं अवतारवाद उनकी समझ में नहीं आते।

विकासवादियों की सहायता से पाश्चात्य विद्वान् वेद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि तथा ईश्वरावतार आदि का छद्मपूर्वक खण्डन करते हैं। इनके अनुसार अमीवा हाइड्रा से प्राणियों की उत्पत्ति होती है। उसी से मत्स्य, सरीसृप, बहुपद, चतुष्पद, द्विपद, स्तन्यपायी जीवों का विकास होता है। इनकी दृष्टि में मनुष्य बन्दर नहीं तो बन्दर का चचेरा भाई अवश्य है। मनुष्य पहले असभ्य जङ्गली था। अब क्रमशः सभ्य हो रहा है। हिन्दुओं के पूर्व पुरुष आर्य जाति से निकले। ग्रीक, रोमन, स्लाव, नॉर्दिक, पारसीक सब एक जाति, एक भाषा और एक धर्म के थे। यह कल्पना एक शताब्दी के भीतर की ही है, परन्तु अब यह कल्पना विश्व के इतिहास को आधारशिला हो गयी है। आर्य, द्रविड़, ब्राह्मण, शूद्र आदि कल्पना भी इन्हीं लोगों के मस्तक का फितूर है। इनके अनुसार वेद अनादि न होकर ई० पूर्व तीन चार हजार वर्ष के आर्य कवियों के काव्यमात्र हैं। ऋग्वेद प्राचीन तथा यजुर्वेद और सामवेद अर्वाचीन हैं। अथर्ववेद और भी निम्न श्रेणी का वेद है। ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। उपनिषद् क्षत्रियों द्वारा प्रणीत ग्रन्थ हैं।

ब्राह्मण यज्ञसम्बन्धी कर्मकाण्ड के आडम्बर में व्यस्त रहते थे। वे बहुदेवपूजक होने से एकेश्वरवाद की कल्पना नहीं कर सके। निर्गुण निराकार ब्रह्मवाद की कल्पना पहले नहीं थी। कई लोगों के अनुसार तो भीरु, जंगली मनुष्यों की भूत-प्रेत की कल्पना ही सभ्यता के साबुन से धुल-धुलकर देवकल्पना और वही वैज्ञानिक चमत्कृति से चमत्कृत होकर निर्विकार ब्रह्मकल्पना बन गयी। इन मतों का विस्तृत खण्डन मार्क्सवाद और रामराज्य के विकास प्रकरण में तथा वेदस्वरूप एवं उसका प्रामाण्य में किया गया है।

इनके अनुसार रामायण तथा महाभारत महर्षि वाल्मीकि एवं कृष्णद्वैपायन व्यास की कृति नहीं हैं, अपितु चारण, भाट तथा काव्योपजीवी कुशीलवों द्वारा रचित गाथाएँ हैं, जो एक दूसरे के मुख से सुनकर कण्ठस्थ कर ली जाती थीं। उनका संकलन ही ये दोनों ग्रन्थ हैं। १८ पुराण गुप्त-युग के बाद के हैं। जो व्यास के नाम से लिखे गये हैं। सोलहवीं शती तक इनका विकास और परिवर्तन हुआ है। हिन्दुओं ने बौद्धों से संन्यास, मूर्तिपूजा, कथा आदि सीखी थी। जन्म द्वारा जातियाँ पहले नहीं थीं। क्रमशः श्रमविभाग के आधार पर जातिभेद की सृष्टि हुई है। ब्राह्मणों और क्षत्रियों का बराबर संघर्ष चलता रहता था। इस देश में प्राचीन आदिवासियों को ही दस्यु एवं क्रमेण दास संज्ञा दी गयी थी। 'चातुर्वर्ण्यसंस्कृति-मीमांसा' में इन सब बातों का खण्डन किया गया है।

इन लोगों के अनुसार अवतारवाद मिथ्या है। अवतारवाद क्रमविकास का प्रतीक है। मत्स्य, कूर्म, जलचर; कूर्म, वराह जलचर और स्थलचर; नृसिंह अर्द्धनर पशु, वामन असभ्य ह्रस्वकाय जाति, परशुराम निष्ठुर, दुर्दान्त, वन्य लोग, राम कृषि का विस्तार करनेवाले, बलराम हलधर कृषिविशेषज्ञ, शिव, दुर्गा आदि असभ्य जातियों से वैदिक धर्म में लिये गये हैं। राम और कृष्ण पहले विभिन्न जातियों के नेता थे। पश्चात् क्रमशः जातीय नायक हुए, अन्त में देव मान लिये गये। इन अंशों का भी विस्तृत खण्डन उसी ग्रन्थ में देखिये। संक्षेप से यहाँ भी जगह जगह पर है ही।

बेवर के अनुसार रामायण दाक्षिणात्य एवं सिंहलद्वीप स्थित आर्यसभ्यता के विकास की कहानी है। लासेन के अनुसार आर्यों की दक्षिणविजय की प्रथम चेष्टा का रूपक इसमें वर्णित है।

मैकडानल एवं याकोबी रामायण को प्राचीन भारतीय उपाख्यानों पर प्रतिष्ठित मानते हैं। उनके अनुसार सीता ऋग्वेद के खेत की हल-सम्बन्धी रेखा थी। राम इन्द्र या पर्जन्य देवता थे। राम और रावण का युद्ध इन्द्र तथा वृत्र के संग्राम की कहानी है। इन्द्रजित् या इन्द्रशत्रु ऋग्वेद में वृत्र का नाम है। इन्द्र की शुनी सरमा रामायण की सीता को सान्त्वना देनेवाली सरमा राक्षसी है। वायुपुत्र हनुमान् मरुद्गण सहित इन्द्र के वैभव का स्मरण दिलाते हैं।

मैकडानल के अनुसार याकोबी की यह कल्पना ठीक मालूम पड़ती है कि हनुमान् के साथ कृषि-कार्य का कुछ सम्पर्क था और वे वर्षा के एक उपदेवता थे।

इन पाश्चात्यों के अनुसार **रामायणग्रन्थ** अयोध्याकाण्ड से लेकर युद्ध काण्ड तक ही था। मागध और बन्दियों ने पीछे से बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड उसमें जोड़ दिये हैं। उनके अनुसार मूल काव्यखण्ड के जातीय नायक आगे जोड़े गये अंशों से जातीय नायक के रूप में परिवर्तित हो गये। वह समस्त जन-समाज के लिए नैतिक आदर्श के प्रतीक बन गये। कुछ प्रक्षिप्त अंशों को छोड़कर मूल पाँच काण्डों में मनुष्यनायक बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड में देवता के रूप में परिणत होकर भगवान् विष्णु के साथ एकाकार हो गये। प्रो० विंटरनित्स के अनुसार असल रामायण में राम की भगवत्ता या विष्णु का अवतार होने का कोई उल्लेख नहीं था। कीथ के अनुसार **रामायण** दो उपाख्यानों का तालमेल है। उनमें से दूसरा है सीताहरण के कारण राम और रावण का युद्ध।

यह मूलतः एक प्राकृतिक आख्यान है। इनमें अनेक काल्पनिक घटनाओं का समावेश है। इन्हीं आधारों पर कामिल बुल्के ने भी अनेक दुष्कल्पनाएँ की हैं।

समाधान

वस्तुतः वेद अनादि अपौरुषेय नित्य ग्रन्थ हैं। मन्त्र, ब्राह्मण और उपनिषद् उन्हीं के भेद हैं। **रामायण, महाभारत, पुराण** और **आगम** सब उन्हीं वेदों की व्याख्या एवं उपबृंहणमात्र हैं। पाश्चात्यों की कल्पनाएँ निर्मूल एवं दुरभिसन्धिपूर्ण हैं। **वेदों** और **उपनिषदों** में राम की कथा है। **वाल्मीकिरामायण** में उसी का विस्तृत विवेचन है।

वाल्मीकि राम के समसामयिक त्रिकालदर्शी महर्षि थे। कृष्णद्वैपायन कृष्ण के समय विद्यमान थे। फिर भी इन महर्षियों ने समाधिजा ऋतम्भरा प्रज्ञा से सीता, राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान् आदि के सभी स्थूल तथा सूक्ष्म चरित्रों का साक्षात्कार कर **रामायणकाव्य** या आर्ष **इतिहास** लिखा है। **रामायण** के अनुसार ही बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक ६ काण्ड और उत्तरकाण्ड वाल्मीकिकृत **रामायण** है। यह महर्षियों का उद्घोष परम्पराप्राप्त, महाभारतादि ग्रन्थों से समर्थित एवं महान् भाष्य-टीकाकारों से आदृत है। उसके विरुद्ध पाश्चात्य-कल्पना निःसार है। अयोध्या से युद्धकाण्ड तक ५ काण्डों में भी राम की भगवत्ता का वर्णन करनेवाले सहस्रों श्लोक हैं। सबको प्रक्षिप्त कह देना हठवादिता के सिवा और कुछ नहीं है। इस तरह बाइबिल आदि ग्रन्थों की भी प्रक्षिप्तता सिद्ध होगी।

"ममापि सफलं चक्षुः स्मारितश्चास्मि राघवम्।
रामाभिधानं विष्णुं हि जगद्धृदयनन्दनम्॥
सीतावक्त्रारविन्दार्कं दशास्यध्वान्तभास्करम्।
मानुषं गात्रसंस्पर्शं गत्वा भीम त्वया सह॥" (म० भा० ३।१५१।६–८)

हनुमान्‌जी भीमसेन से कहते हैं राम के दर्शन से मेरे चक्षु सफल हैं। आज पुनः मनुष्यगात्र के संस्पर्श से जगत् के हृदय को आनन्दित करनेवाले, सीतामुखपङ्कज को प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य एवं रावणरूपी अन्धकार को मिटानेवाले भास्कर राम का स्मरण हो रहा है।

ब्रह्मा ने कहा है, मेरी प्रार्थना से चतुर्भुज विष्णु अवतीर्ण हुए हैं। वे रावण-वधादि कार्य करेंगे—

"तदर्थमवतीर्णोऽसौ मन्नियोगाच्चतुर्भुजः।
विष्णुः प्रहरतां श्रेष्ठः स तत्कर्म करिष्यति॥" (म० भा० ३।२७६।५)

धौम्य ने कहा है, भीमकर्मा विष्णु ने दशरथ के गृह में अवतीर्ण होकर मनुष्यरूप से संग्राम में रावण को मारा था—

"विष्णुना वसता चापि गृहे दशरथस्य च।
दशग्रीवो हतश्छन्नं संयुगे भीमकर्मणा ॥" (म० भा० ३।३१५।२)

किं बहुना महाभारत में अनेक स्थलों पर राम का चरित्र एवं राम का परब्रह्म विष्णु होना वर्णित है। **हरिवंश महाभारत** का ही खिल है। उसमें भी **रामायण महाकाव्य** की चर्चा है।

"रामायणमहाकाव्यमुद्दिश्य नाटकं कृतम्।
जन्म विष्णोरमेयस्य राक्षसेन्द्रवधेप्सया ॥" (हरिवं० ९३।६)

कालिदास (ई० पू० १ म० श०) ने रघुवंश में राम को विष्णु का अवतार कहा है।

कौटिल्य चाणक्य ने (ई० सन् ५४ में) रावण-वध का उल्लेख किया है—

"मानाद्रावणः परदारानप्रयच्छन्।" (१६।९)

भास (ई० पू० ५ श०) ये मौर्ययुग के हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उनके प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक से **'नवं शरावं'** श्लोक उद्धृत है। उनके यज्ञफलनाटक, प्रतिमानाटक तथा अभिषेकनाटक इन नाटकों की विषयवस्तु रामायण की है। अभिषेकनाटक (४।१४) तथा अभिषेकनाटक (६।२८) में सीता के साथ राम के मायामानुषवेष में अवतार का उल्लेख है। एतावता ई० पू० १ श० राम को विष्णु माना जाने लगा था, बुल्के आदि की ये कल्पनाएँ सर्वथा मिथ्या हैं।

चरक में विष्णुसहस्रनाम का पाठ विहित है। 'विष्णुसहस्रनाम' में **"रामो विरामो विरतः"** आदि में राम का नाम आया है। चरक वैशम्पायन के समसामयिक हैं। आद्यशङ्कराचार्य स्वा० दयानन्द के अनुसार ई० पू० ३ शती के हैं। आधुनिक दृष्टिकोण से भी ई० ७वीं शती के हैं। किन्तु यह मत मिथ्या है। उन्होंने विष्णुसहस्रनाम-भाष्य में रामः ३९४, क्षमा ४४२, सुमुखः ४५६, कपीन्द्रः ५०१, जितामित्रः ५२४, भूषयः ६२८, शूरसेनः ७०४; धनुर्धरः ८५८ तथा क्षमिणांवरः ९१९ विष्णुनामों की रामवाचक व्याख्या की है। रामभुजङ्गप्रयात आदि अनेक स्तोत्रों में उन्होंने सीताराम की विष्णुरूप में चर्चा की है।

"राम दक्षिण भारत में आर्यसभ्यता फैलाते हैं, राम-रावणयुद्ध इन्द्र-वृत्रयुद्ध का प्रतीक है, इन्द्रजित्, इन्द्र-शत्रु और वृत्र एक ही व्यक्ति के नाम हैं, देवशुनी सरमा और विभीषणपत्नी सरमा अभिन्न थी एवं हनुमान् वर्षा के उपदेवता थे।" ये सब बातें पाश्चात्यों की निराधार अटकलमात्र हैं। विश्व की सृष्टि भारत से ही हुई हैं। "मनुष्य इधर-उधर फैले, भारतीय हिन्दू कहीं बाहर से आये" यह कल्पना वेदादि शास्त्रों और इतिहासों से विरुद्ध है।

सीता का आविर्भाव हलाग्र से होने के कारण उनका नाम सीता पड़ा, परन्तु राम का खेती से किसी विशेष सम्बन्ध की कल्पना निराधार है। बलराम का हल से सम्बन्ध है, राम का नहीं। वे दोनों एक नहीं हैं। बलराम हलधर थे, पर हल और मुसल उनके आयुध थे। वे हलधर किसान नहीं थे। राम तो धनुर्धर थे, फिर उनका कृषि से सम्बन्ध कैसा ? वे तो १४ वर्ष वनवास में रहे। कृषि करना तो दूर रहा, वे कृषि का अन्न भी ग्रहण नहीं करते थे।

पाश्चात्य लोग रामायण के वानर, भालू एवं राक्षसों को असभ्य जाति के मनुष्य ही मानते हैं। रामायण से विदित होता है कि रावण को वरदान मिला था कि मनुष्य, वानर तथा भालुओं के सिवा तुम देवता, दानव, राक्षस आदि से अवध्य होगे। इसी लिए उसके नाशार्थ विष्णु मायामानुष राम के रूप में प्रकट हुए थे। देवता भी ब्रह्मा के आदेश से वानर और भालू रूप में अवतीर्ण हुए थे। वे कामरूपी, कामचारी, प्रचण्ड पराक्रमी तथा दीर्घायु थे। पवनसुत हनुमान् समुद्र लाघने में समर्थ हुए। द्वापर में गन्धमादन पर्वत पर उनका रूप देखकर भीम भी मोहग्रस्त हो गये। वे अर्जन की ध्वजा पर बैठकर पाण्डवों की सहायता करते थे।

ब्रह्मा ऋक्षपति, इन्द्र वाली तथा सूर्य सुग्रीव के रूप में अवतीर्ण थे। ऋक्षपति की कन्या जाम्बवती कृष्ण की एक पट्टमहिषी थी। यद्यपि यह सब अलौकिक, अविश्वसनीय प्रतीत होगा, परन्तु शङ्कराचार्य के "**तस्मात् समूलमितिहासपुराणम्**" (ब्र० सू० १।३।३३) के भाष्य-वचन के अनुसार इतिहास-पुराण में विश्वास करना ही चाहिये (देखिये देवताधिकरण)। माता-पिता के गुण सन्तान में आते ही हैं। किसी में माता के और किसी में पिता के अधिकांश गुण आते हैं। अतः हनुमान् आदि में मातृपक्ष से वानरी आकृति और वानरी भाषा आदि गुण प्राप्त हुए तथा पितृपक्ष से देवताओं के जैसे अद्भुत तेज, पराक्रम तथा देवताओं की संस्कृत भाषा भी प्राप्त हुई। इसी प्रकार वाली आदि में देवताओं के समान ही वेदादि शास्त्रों का प्रतिभान भी हुआ। हनुमान् ने विशिष्ट ज्ञानार्थ सूर्य से अध्ययन भी किया। आज वैज्ञानिक प्राणियों एवं पौधों के जोड़-मेल से विलक्षण प्राणियों तथा पौधों की सृष्टि करते ही हैं।

राक्षस असुरों में ही योनिविशेष हैं। वे उग्र. कामरूपी और कामचारी थे। शूर्पणखा तथा हिडिम्बा ने सुन्दर मानवीरूप धारण किया था। विभीषण एवं उसके मन्त्री मनुष्यवेष में ही युद्ध करते थे। राक्षस भी दीर्घायु थे। तभी रावण ने मान्धाता एवं अनरण्य के साथ युद्ध किया था।

राम की ऐतिहासिकता

हिन्दू जाति के धार्मिक सांस्कृतिक एवं पारिवारिक जीवन पर मर्यादापुरुषोत्तम राम का अमिट प्रभाव है। हिन्दू-परिवार में जन्म एवं विवाह के अवसरों पर रामजन्म एवं राम-विवाह सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं। शरीर की अन्तिम यात्रा 'रामनाम सत्य है' की ध्वनि के साथ होती है। भारत के कोने-कोने में राम और उनके भक्त हनुमान् के मन्दिर हैं। लाखों व्यक्ति प्रतिदिन रामायण का पाठ करते हैं तथा अयोध्या, रामेश्वर, पञ्चवटी, चित्रकूट, आदि तीर्थों की यात्रा करते हैं। करोड़ों हिन्दुओं के ही नहीं श्याम, थाइलैण्ड आदि देशों के निवासियों के नाम भी रामायण से सम्बन्धित होते हैं। राम प्रत्येक हिन्दू के जीवन में रम रहे हैं। ईश्वर के नामों में सर्वप्रसिद्ध नाम राम ही है। भारत के बच्चे-बच्चे की जबान पर राम-नाम रहता है। काशी में जीवों को मुक्ति के लिए शिवजी राम-नाम का उपदेश करते हैं। फिर भी राम की ऐतिहासिकता पर शङ्का करना केवल मतिविभ्रम ही है। वह आधुनिक पाश्चात्य कूटनीतिज्ञों के दुष्प्रचार का परिणाम है। आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों के चमत्कारों से तथा वेदादि शास्त्रों, दर्शनों एवं तर्कशास्त्रों के अनभ्यासों से भारतीय प्रभावित से हो गये हैं। आत्मज्ञानशून्य देश परकीय चाकचिक्यों से प्रभावित होते ही हैं।

वस्तुतः परम्पराप्राप्त इतिहास तथा जीवनवृत्तसम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तकें तथा तत्कालीन या कालान्तरवर्ती पुस्तकों में तत्सम्बन्धी चर्चाएँ, उसके द्वारा लिखित पुस्तकें या तन्निर्मित मन्दिर, सेतु तथा तत्सम्बन्धी शिलालेख, ताम्रलेख या मुद्राएँ किसी के ऐतिहासिक होने में प्रमाण कही जाती हैं।

इस दृष्टि से देखने पर राम की भी ऐतिहासिकता सिद्ध है। राम के जीवन की प्रमुख घटनाएँ लोकपरम्परा में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। भारत में उनका नाम प्रत्येक जिह्वा पर है। संसार के इतिहास में ऐसी प्रसिद्धि किसी की भी नहीं है। भारत में ही नहीं सुदूरदेशों में भी राम के चरित्रों के आधार पर अनेक लीलाएँ तथा नाटक होते हैं। चौबीस हजार श्लोकों की **वाल्मीकिरामायण** में उनके जीवनवृत्त का ही वर्णन है।

वाल्मीकि के समान ही व्यास भी सर्वज्ञ थे। उनके महाभारत तथा पुराणों में राम व रामायण की भरपूर चर्चा है। महाभारत के अनुसार भीम जैसे महावीर हनुमान् की पूँछ नहीं उठा सके। अन्त में भीम के प्रश्न पर हनुमान् ने अपने परिचय में राम की कथा की चर्चा की (म० भा० ३।१४७)। महर्षि मार्कण्डेय ने वनवास के समय युधिष्ठिर से कहा था, आपकी यह विपत्ति देखकर मुझे रामचन्द्र का स्मरण हो आया। पिता की आज्ञा से

धनुष हाथ में लेकर घूमते हुए उन्हें ऋष्यमूक पर्वत पर मैंने देखा था। उन्होंने यह नहीं कहा कि मैंने केवल सुना है (म० भा० ३।२५।६–९)। गीता के कृष्ण कहते हैं कि शस्त्रधारियों में मैं राम हूँ। शङ्कराचार्य की रामपद की व्याख्या में दाशरथि राम कहा गया है। लगभग सभी पुराणों तथा काव्यों में श्रीमद्भागवत भागवतों का परमादरणीय ग्रन्थ है। प्रतिवर्ष जिसके हजारों सप्ताह होते हैं, उसमें भी रामायण एवं राम की चर्चा है।

श्रीराम की नीति

"न रामसदृशो राजा पृथिव्यां नीतिमानभूत्।
सुभृत्यता तु यन्नीत्या वानरैरपि स्वीकृता॥" (शु० नी० ४।६।१०।७८)

शुक्रनीति के अनुसार राम सदृश कोई भी नीतिमान् नहीं हुआ। उनकी नीतिमत्ता से ही वानरों तथा भालुओं ने भी उनकी सुभृत्यता स्वीकार की थी।

"यान्ति न्यायप्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम्।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति॥"

श्रीराम जैसे न्यायनिष्ठ के प्रभाव से वानर और भालु भी राम के साथी हो गये और दुर्मार्गनिष्ठता के कारण ही रावण का भाई भी साथ छोड़कर उससे पृथक् हो गया।

"ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति॥" (अथ० सं० ११।५।१७)

ब्रह्मचर्य एवं तपस्या से राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। इसके उदाहरण श्रीराम हैं।

"न हि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामा निवत्स्यति॥ (वा० रा० २।३७।२९)

जहाँ राम राजा नहीं वह देश राष्ट्र नहीं है, जहाँ राम निवास करेंगे वह वन भी राष्ट्र होगा। भगवान् के भक्त उनका मङ्गलाशासन करते हैं—

"मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम्॥"

भगवान् मङ्गलों के भी मङ्गल हैं। ब्राह्मण, गौ, अग्नि, हिरण्य, सर्पि, जल तथा राजा गरुड़पुराण (३०५।७४,७५) के अनुसार मङ्गल हैं तथा सिंह, साँड, हाथी, कलश, व्यजन, वैजयन्ती, भेरी एवं दीप भी मङ्गल हैं। दधि, दूर्वा आदि मङ्गलों के भी मङ्गल, देवताओं के दैवत, जो परन्तप एवं परमतेज हैं उन महनीयगुणागार चक्रवर्तिसुत सार्वभौम कोसलेन्द्र के लिए मङ्गलाशासन करना महत्त्वपूर्ण है। राम से बढ़कर सन्मार्गस्थित संसार में कोई है ही नहीं—

"नहि रामात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः।" (वा० रा० २।४४।२६)

श्रीराम धर्मज्ञ, सत्यसन्ध, प्रजाहितनिरत, यशस्वी, ज्ञानसम्पन्न, सर्वपोषक, रिपुसूदन, सर्वजीवलोक के रक्षक, तत्तत्वर्णाश्रममर्यादाओं का पालन करके धर्मका पालन करनेवाले, अपने यज्ञ, अध्ययन, दान आदि एवं युद्धादि रूप धर्म का सादर अनुष्ठान करनेवाले तथा स्वभक्त जनों के अवश्यम्भावी अनिष्टों को भी मिटाकर मोक्ष प्रदान कर रक्षण करनेवाले हैं। रघुवंश, भट्टिकाव्य आदि सैकड़ों काव्यों तथा नाटकों में राम की चर्चा है। अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, अगस्त्यसंहिता आदि संहिताओं में राम की चर्चा है ही। ऐसे बहुचर्चित राम को अनैतिहासिक कहना अनभिज्ञता का ही परिचय देना है। भागवत आदि पुराणों के अनुसार रामसेतु एवं रामेश्वर की स्थापना

भी राम के ऐतिहासिक होने में ज्वलन्त प्रमाण हैं। रामसेतु के खण्डों पर ही रामेश्वर पहुँचने का रेलवे मार्ग स्थित है।

राम की जन्मकुण्डली

यद्यपि पुराणों के अनुसार राम का जन्म २८ वें मन्वन्तर के २४ वें त्रेता में हुआ है फिर भी पाश्चात्यों ने अपनी अटकल से उनका जन्म ईसा पूर्व कुछ शतियों या सहस्राब्दियों में ही माना है। जोन्स नामक अंग्रेज इतिहासज्ञ राम का जन्म-काल ई० पूर्व २०२९ वर्ष मानता है। टॉड ने ई० पूर्व ११०० वर्ष राम का जन्म-समय माना है। वैन्थली ने ई० पूर्व ९५० वर्ष ही स्वीकार किया है। विल्फर्ड नामक इतिहासज्ञ ने ई० पूर्व १३६० वर्ष राम का जन्म-काल माना है।

महर्षि वाल्मीकि के अनुसार दशरथ के पुत्रेष्टियज्ञ की समाप्ति के १२ मास बीतने पर चैत्र शु० ९मी पुनर्वसु नक्षत्र कर्क लग्न में तथा जब पांच ग्रह अपनी उच्च राशि में स्थित थे एवं गुरु चन्द्र के साथ थे उस समय राम का अवतार हुआ—

"ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ॥
नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह॥" (वा० रा० १।१८।८,९)

ज्योतिषियों के अनुसार रवि, भौम, गुरु, शुक्र और शनि ये पाँच ग्रह उच्च के थे। अर्थात् रवि मेष के, मङ्गल मकर के, गुरु कर्क के, शुक्र मीन के एवं शनि तुला के थे। स्थूल रीति से सप्तर्षिगण लगभग सहस्र वर्ष, वरुण १४ वर्ष एवं शनि लगभग २॥ वर्ष एक राशि में रहते हैं। सूर्य एक राशि पर एक मास और गुरु एक राशि पर एक वर्ष रहते हैं। सूर्य, गुरु और शनि के विचारसे पाँचों उच्चस्थ ग्रहों की गणना करने से रामचन्द्र का जन्म-काल १,८५,०७१ वर्ष पूर्व हुआ था। इन्हीं ग्रहों के अनुसार रामराज्य की महनीयता तथा राम के लोकोत्तर बल, वैभव, प्रताप आदि अतुलनीय थे। मङ्गल उच्च ग्रहस्थ होने पर शुभप्रद नहीं होता, इसी लिए स्त्रीकष्ट आदि की प्राप्ति हुई। यह भी एक मत ही है। परन्तु पुराण प्रमाण के अनुसार जब चौबीसवाँ त्रेता राम का काल है तब तो उसी के आधार पर विचार करना उचित है। **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित ग्रहस्थिति उस समय भी रही होगी।

राम की नीतिमत्ता

वाल्मीकिरामायण के अनुसार राजतन्त्र होते हुए भी भारत में लोकतन्त्र था। इसी लिए महाराज दशरथ को राम को यौवराज्य देने के लिए जनस्वीकृति अपेक्षित हुई थी। इंग्लैण्ड तथा जापान में आज भी राजतन्त्र होते हुए भी जनतन्त्र है ही। शासन में भष्टाचार तथा भाई-भतीजावाद या कुनवापरस्ती न पनपने देने के लिए राजा और प्रजा दोनों पर ही धर्म का नियन्त्रण होता था। मन्त्रों, ब्राह्मणों तथा मन्वादिधर्मशास्त्रों, शुक्र, बृहस्पति आदिनिर्मित नीतिशास्त्रों ने इसके लिए राजा को सदाचारी, जितेन्द्रिय, आन्तरिक षड्रिपुओं का विजेता तथा कामज, क्रोधज अष्टादश व्यसनों से रहित बनाने पर पूर्ण बल दिया है। श्रीदशरथ ने पृथ्वी भर के समस्त प्रधान लोगों को बुलाया था—

"समानिनाय मेदिन्यां प्रधानान् पृथिवीपतिः।" (वा० रा० २।१।४६)

मन्त्री वही होते थे जो पौरों एवं जानपादों के विश्वासभाजन होते ते—

"तस्मै मन्त्रः प्रयोक्तव्यो दण्डमाधित्सता सता।
पौरजानपदा यस्मिन् विश्वासं धर्मतो गताः॥" (म० भा० १२।८३।४५,४६)

शुक्रनीति के अनुसार राजा क्रोध तथा लोभ से विवर्जित होकर धर्मशास्त्र के अनुसार न्यायाधीश, मन्त्री, एवं पुरोहित की सम्मति से शासन करता था।

"धर्मशास्त्रानुसारेण क्रोधलोभविवर्जितः।
सप्राड्विवाकः सामात्यः सब्राह्मणपुरोहितः॥" (शु० नी० ४।४।५२)

राजा की सभा में सभी जाति के मुख्य लोग सभ्य होते थे—

"सभ्याः सर्वासु जातिषु।" (शु० नी०)
"जातिजानपदान् धर्मान् श्रेणीधर्मांश्च धर्मवित्।
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्मं प्रतिपादयेत्॥" (मनु० ८।४१)

के अनुसार राम जातिधर्म, देशधर्म, श्रेणीधर्म तथा कुलधर्मों को यथावत् जानते एवं उनका पालन करते थे। भारतीय नीति एवं राजधर्म में राजा का आचरण ही आदर्श राज्य का आधार होता है। राजा चाहे व्यक्ति हो चाहे दल, वह अपने व्यवहार से समाज का उन्नायक होता है। अतएव राम ने अपने आचरण द्वारा प्रजा तथा समाज को आदर्शरूप में ढाला था। यद्यपि वैयक्तिक आचरण का निजी जीवन से ही सम्बन्ध होता है, परन्तु वस्तुतः राम का वैयक्तिक जीवन भी समाज के लिए ही था। जैसी गर्भिणी स्त्री का निजी व्यवहार भी गर्भस्थ शिशु के हित की दृष्टि से होता है। तभी वे लोकाराधन के लिए वैयक्तिक स्नेह, दया, सौख्य तथा जानकी तक को त्यागने को तैयार थे। यज्ञ आदि के प्रसङ्ग से राम निरन्तर दान तथा त्याग में ही लगे रहे। जहाँ आज देने में संकोच है तो चारों तरफ से लेने का ही संघर्ष है। पर राम के समय राम के आदर्शानुसार सब में देने की ही होड़ थी। लेने का संघर्ष सर्वथा समाप्त था। संग्रह-वृत्ति में ही संघर्ष होता है। तुलसीदासजी के अनुसार प्रजा के सुभाग से ही भानु जैसा भूपति होता है। भानु धरती से कब कितना रस खींचता है यह किसी को नहीं मालूम पड़ता है, पर भानुजनित मेघ से रसमय जल बरसते देखकर सभी हर्षित होते हैं—

"तुलसी प्रजासुभाग ते भूप भानु सो होय।
बरसत हरषत लोग सब करखत लखै न कोय॥"

कालिदास के अनुसार **'सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः'** हजारों गुना अधिक करके देने के लिए जैसे सूर्य पृथ्वी से अप्रत्यक्ष रसादान करता है वैसे ही राजा हजारों गुना अधिक देने के लिए प्रजा से सीमित अप्रत्यक्ष कर ग्रहण करता है। भारतीय नीति एवं रामराज्य में अलग से कोई विधान नहीं था। विधि या संविधान वेद ही हैं। आर्ष धर्मग्रन्थ एवं नीतिग्रन्थ उनकी व्याख्या थे। तुलसी के अनुसार—"श्रुतिपथ पालक धर्मधुरन्धर।" (रा०-मा० ७।२३।१) राम ने अनादि श्रुतिसिद्ध धर्म के सर्वमान्य रूप को, उसका पालन करके, व्यवहार की वस्तु बनाया। तभी तो भरत कहते हैं—

"चाहिय धर्मशील नरनाहू।" (रा० मा० २।१७७।१)

जब शासक ही विधायक बन जाता है तब निरङ्कुशता ही फैलती है। आजकल भी कार्यपालिका और विधायिका एवं न्यायपालिका को पृथक्-पृथक् रखने का नाटक किया जाता है। राम ने विधान नहीं बनाया, किन्तु आदर्श आचरण उपस्थित किया। तुलसी के राम ने राजधर्म का सर्वस्व यही कहा था—

"मुखिआ मुखु सो चाहिअइ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोसइ सकल अँग तुलसी सहित विवेक॥" (रा० मा० २।३१४)

प्रजा के विभिन्न वर्गों का उनकी स्थिति, क्षमता तथा संस्कार के अनुसार पालन-पोषण करना राजा का कर्तव्य है। परन्तु विवेक के साथ। मुख द्वारा भक्षित अन्न रसरूप से हस्त, पाद, नेत्र, श्रोत्र, हृदय, मन, बुद्धि आदि सबको प्रभावित करता है। परन्तु सबकी योग्यता एवं आवश्यकता एक नहीं है। सबको एक लाठी से हाँकना विवेक नहीं है। हाथी को मनभर चींटी को कनभर की कहावत प्रसिद्ध ही है। धर्मनियन्त्रित विवेकी राजा ही विभिन्न परिस्थितियों, व्यक्तियों एवं श्रेणियों के साथ यथोचित कुशलताके साथ व्यवहार कर सकता है। भारतीय राजा उतना शासक नहीं होता था, जितना प्रजा को हित का परामर्शदाता। शास्त्र की दृष्टि से राजा परमेश्वर का अंश होता है। छत्र, चँवर, सिंहासन आदि उसके विशिष्ट पद के अनुरूप आवश्यक हैं। फिर भी उनके अभिमान में अपने को प्रजा से अलग-बिलग समझ लेने में राजा प्रजा की पिता-पुत्र की सी आत्मीयता लुप्त हो जाती है। श्रीराम प्रजा को आत्मीयता दृष्टि से उपदेश करते हैं, राजा के रुआब में नहीं—

"जौ अनीति कछु भाखौं भाई।
तौ मोहि बरजऊ भय बिसराई॥" (रा० मा० ७।४२।३)

यहाँ 'राजा करे सो न्याय' को कोई स्थान नहीं है। ऐसा राजा प्रजा के हृदयसिंहासन का अधीश्वर होता है। कहा जा सकता है कि ऐसा राजतन्त्र प्रजातन्त्र पर ही आधृत होता है। जनता को निर्भीकता के साथ राजा के व्यक्तिगत जीवन की भी समालोचना करने की स्वतन्त्रता होती थी। तभी राम ने सीतानिन्दक का भी कल्याण ही किया। किसी की जुबान पर ताला नहीं था। वह राजा दण्ड के बल पर किसी का मुँह बन्द नहीं करता था, किन्तु आचरण बदल कर ही प्रजा का अनुरागभाजन होता था। ऐसा विनयी, सच्छास्त्र तथा सत्पुरुष सेवी राजा का शास्त्रसम्मत सरल जीवन ही संसार का मार्गदर्शक होता है। तभी रामराज्य में सब सुखी थे। सभी शोकरहित थे—

"हरषित भये गये सब सोका।" (रा० मा० ७।१९।४)

सबका वैर-विग्रह मिट गया। विषमता मिट गयी। महाराज्ञी वैदेही के शरीर में केवल माङ्गल्यसूत्र ही भूषण रह गया। यज्ञ के प्रसङ्ग से राम ने सर्वस्व दान दे दिया। राजा के आचरण का प्रभाव जनता पर पड़ता ही है। संग्रह या विषमता ही द्वेष का कारण बनती है। विषमता मिटने पर वैरनिवृत्ति स्वाभाविक ही है। फिर भी अध्यात्मनिष्ठा तथा स्वधर्मानुष्ठान आवश्यक होता है। उसके बिना सहज सन्तोष नहीं होता है। इसी लिए रामराज्य में सब अपने वर्णाश्रम-धर्म के अनुसार वेदमार्ग पर ही चलते हुए शोक और मोह से रहित तथा सुखी थे। राम ने—

"आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर ईषव्योतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्ध्रिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जयतां निकामे निकामे नः पर्जन्योभिवर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्।" (शु० यजु० २२) के अनुसार अपने राष्ट्र को बनाया था, जिसमें वसिष्ठादि जैसे ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मण थे। राम, लक्ष्मण, भरत जैसे शूरवीर राजन्य थे। उस राष्ट्र में पर्याप्त दूध देनेवाली गायें और महान् भार वहन करनेवाले बैल उत्पन्न होते थे। तीव्रगामी घोड़े एवं साध्वी-सती पुरन्ध्रियाँ होती थीं। राष्ट्र के रथी विजेता होते थे। राष्ट्र के यजमान सभा में बैठने योग्य सभ्य युवक उत्पन्न करनेवाले होते थे। राष्ट्र में समय-समय पर वृष्टि होती थी। औषधियाँ फलदायिनी परिपाक को प्राप्त होती थीं। राष्ट्र के योग एवं क्षेम (अप्राप्त की प्राप्ति एवं प्राप्त की रक्षा) की पूर्ण व्यवस्था थी। राम गौओं और ब्राह्मणों के रक्षणार्थ तथा देश के हितार्थ अप्रमेय गुरु के अनुसार सदा ही महत्कर्म की साधना में उद्यत रहे—

'गोब्राह्मणहितार्थाय देशस्य च हिताय वै।
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः॥" (वा० रा० १।६।५)

भौतिक समानता में भी आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तापों की निवृत्ति नहीं होती। त्रितापनिवृत्ति धर्म-ब्रह्मनिष्ठा से सम्भव है। कर्मनिष्ठा से ही ब्रह्मनिष्ठा होती है। उससे भौतिक प्रपञ्च ही बाधित हो जाता है। तभी रामराज्य में भौतिक आदि ताप किसी को नहीं व्यापते थे।

"दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा॥" (रा० मा० ७।२०।१)

उच्च धर्म-ब्रह्मनिष्ठा का ही परिणाम था कि किसी की अपमृत्यु नहीं होती थी। किसी को कोई पीड़ा नहीं होती थी। सब सुन्दर एवं नीरोग होते थे। कोई दुखी, दरिद्र एवं दीन नहीं होता था। कोई मूर्ख एवं दुर्लक्षण-वाला नहीं होता था—

"अलप मृत्यु नहिं कवनेउ पीरा।
सब सुन्दर सब निरुजसरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना॥" (रा० मा० ७।२०।३)

धार्मिक आध्यात्मिक अभ्युत्थान के बिना केवल भौतिक समानता एवं सौविध्य से यह सम्भव नहीं था। जहाँ राजा त्यागी, उदार तथा आदर्शचरित्रवाला होता है वहाँ प्रजा भी वैसी बन जाती हैं। यह स्वाभाविक बात है कि श्रद्धेय बड़े लोग जैसा आचरण करते हैं जनता भी वैसे ही आचरणवाली हो जाती है। तभी रामराज्य की जनता भी उदार, परोपकारी विप्रचरणरत थी। राम के समान ही सब एकनारीव्रत थे। नारियाँ भी मन, वचन और कर्म से पतिहितैषिणी थीं—

"सब उदार सब पर उपकारी।
विप्रचरन सेवक नर नारी॥
एकनारिव्रत रत सब झारी।
ते मन वच क्रम पतिहितकारी॥" (रा० मा० ७।२१।४)

सत्ययुग में राज्य, राजा एवं विधान के बिना ही धर्म के प्रभाव से प्रजा के लोग परस्पर एक दूसरे का रक्षण करते थे। सब एक दूसरे के रक्षक, पोषक एवं हितचिन्तक होते थे। कोई किसी का शोषक तथा भक्षक था ही नहीं, किन्तु रामराज्य में विधान, न्यायालय और कार्यपालिकाएँ थीं, परन्तु कोई अपराधी, अपराध तथा कोई समस्या नहीं थी, क्योंकि सब उदार तथा सब परोपकारी थे, अतः विधानकृत बाध्यता का प्रश्न ही नहीं था। वाल्मीकिरामायण के अनुसार श्रीराम का मन्त्रिमण्डल था। जिसमें विनयशील, सलज्ज, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, शस्त्र-शास्त्रकुशल, सुदृढ़, पराक्रमी, यशस्वी तथा सावधान एवं राजाज्ञानुसार कार्य करनेवाले तेजस्वी, क्षमावान्, कीर्तिमान्, स्मितपूर्वाभिभाषी धृष्ट, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्र ये आठ मन्त्री थे। वसिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ, जाबालि, कश्यप, गौतम, मार्कण्डेय तथा कात्यायन इन आठ महर्षियों का परामर्श सर्वोपरि होता था। राम के मन्त्री काम, क्रोध तथा स्वार्थवृत्ति और मिथ्यावादी नहीं थे। स्वराष्ट्र तथा परराष्ट्र के अतीत के ज्ञाता, वर्त्तमान के अनुभविता तथा अनागत के अनुमाता थे। स्वराष्ट्र एवं परराष्ट्र का इतिवृत्त जानने से अतीत का ज्ञान होता है। वृत्तपत्रों एवं गुप्तचरों द्वारा स्वराष्ट्र और परराष्ट्र की वर्तमान स्थिति ज्ञात होती है। अतीत तथा वर्तमान के अनुसार ही भविष्य का अनुमान लगाया जा सकता है। आत्मदोष जानने एवं प्रजा के गुप्त भावों को जानने में भी गुप्तचरों का उपयोग होता है। राम की ओर से ऐसे गुप्तचर क्रियाशील रहते थे। राम के मन्त्री पूर्ण परीक्षित थे। वे अन्याय-शील अपने पुत्रों को भी दण्डित करने में हिचकते नहीं थे तथा निरपराध शत्रु को भी दण्डित नहीं करते थे। वे उत्साह-वान्, शूर, राजनीतिज्ञ, सत्पुरुषों के रक्षक, न्यायोचित ढंग से राजकोशपूरक तथा यथोचित दण्ड के विधानज्ञ थे।

सन्धि, विग्रह के अवसर में दूरदर्शी, मन्त्रसंवरण में समर्थ, सूक्ष्मबुद्धिसम्पन्न, नीतिशास्त्र के विशेषज्ञ तथा प्रियवादी थे—

"मन्त्रसंवरणे शक्ताः शक्ताः सूक्ष्मासु बुद्धिषु।
नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः सततं प्रियवादिनः॥" (वा० रा० १।७।१९)

हे राघव, नीतिशास्त्रों में मन्त्रणा को ही राजाओं के विजय का मूल माना गया है।

शुक्र तथा कौटिल्य ने भी मन्त्रियों की आवश्यकता पर बल दिया है। दे० शुक्रनीति (२।८१) तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र (१।३)। कुशलप्रश्न के व्याज से भरत को उपदेश करते हुए राम ने कहा था—

"मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव।" (वा० रा० २।१००।१६)

हे राघव, तुम किसी गूढ़ विषय पर अकेले ही तो विचार नहीं करते अथवा बहुत लोगों के साथ बैठकर तो गुप्त मन्त्रणा नहीं करते, तुम्हारी निश्चित मन्त्रणा फूटकर शत्रुओं तक तो नहीं फैल जाती एवं तुम्हारे सब कार्य पूरे होने के समीप पहुँचने के पहले तो लोग नहीं जान जाते? (वा० रा० २।१००।१३–२०)। वहीं कहा गया है कि एक भी मन्त्री शूर, चतुर, नीतिज्ञ हो तो वह राजा या राजकुमार को महती श्री प्राप्त करा सकता है—

"एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्॥" (वा० रा० २।१००।२४)

सहस्र एवं दश हजार मूर्खों की भी सहायता संकटकाल में अकिञ्चित्कर होती है। मीठी बात करनेवाले पुरुष सुलभ होते हैं पर अप्रिय पथ्य के वक्ता दुर्लभ होते हैं (वा० रा० ६।१६।२१)। नन्दिनी धेनु चराने के प्रसङ्ग से दिलीप के वन में पहुँचते ही बिना वर्षा के ही दावाग्नि प्रशान्त हो गयी, जङ्गल में फलों, फूलों की भरमार हो गयी एवं प्रबल सत्त्व दुर्बलों को बाधित करना भूल गये। राम के सागर पार कर कटक में आने से—

"सब तरु फलेउ रामु हित लागी।
ऋतु अनरितुहिं कालगति त्यागी॥" (रा० मा० ६।४।३)

"शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निरासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं सत्त्वेष्वधिको बबाधे तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने॥" (रघुवं० २।१४)

इसलिए रामराज्य में दण्ड यतियों के ही हाथ में दिखता था। भेद गतिभेद, ताल, मूर्च्छना आदि के रूप में नर्त्तक-नृत्य-समाज में ही परिलक्षित होता था। मन के विजय में ही विजय शब्द सुनायी पड़ता था—

"दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस रामचंद्र के राज॥" (रा० मा० ७।२२)

रामराज्य में अभीष्ट वस्तु का अभाव नहीं था। काननों में फलों-फूलों की भरमार थी। मनुष्यों की कौन कहे चूहा-बिल्ली, बाघ-बकरी, हाथी-सिंह साथ-साथ क्रीडा करते थे। वृक्ष और लताएँ इच्छानुसार मधु प्रदान करती थीं। गायें इच्छानुसार दूध देती थीं। चन्द्रमा अपनी अमृत रश्मि से मही को आप्यायित करते थे। सूर्य आवश्यकता के अनुसार ही ताप पहुँचाते थे। बादल मनचाही वर्षा देते थे—

"फूलहिं फलहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
लता विटप माँगे मधु चवहीं। मन भावतो धेनु पय स्रवहीं॥" (रा० मा० ७।२२।१,३)

"विधु महि पूर मयूखन्हि, रवि तप जेतनहिं काज।
माँगे बारिद देहिं जल, रामचंद्र के राज।" (रा० मा० ७।२३)

केवल बाह्य भौतिक शासनों एवं व्यवस्थाओं से ही संसार की सभी समस्याओं का समाधान नहीं होता है। बाह्य शासन के बल पर बाघ-बकरे एक घाट पानी नहीं पी सकते और न ही उतनेमात्र से प्राकृतिक स्वभाव में परिवर्तन ही होता है। राजा राम के पहुँचने पर गुह ने राम का पूर्ण स्वागत किया और कहा मेरा सारा राज्य आपका है। हम सभी आपकी आज्ञाओं का अनुवर्तन करेंगे। आप स्वामी की तरह शासन करें। ये भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य, शयन एवं घोड़ों की पूर्ण खाद्यसामग्री भी उपस्थित हैं—

"स्वागतं ते महाभाग तवेयमखिला मही।
वयं प्रेष्या भवान् स्वामी साधु राज्यं प्रशाधि नः॥
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चैतदुपस्थितम्।
शयनानि च मुख्यानि वाजिनां खादनं च ते॥ (वा० रा० २।५०।३९)

आधुनिक दृष्टि से मित्र का ही क्यों शत्रु का भी भोजन, पान आदि ग्रहण न करना असभ्यता समझी जाती है। पर परिस्थिति के अनुसार यद्यपि राम ने निषादराज का भोजन, पान आदि कुछ भी ग्रहण नहीं किया, फिर भी अपने व्यवहार एवं स्नेह से उन्हें निहाल कर दिया। राम ने कहा आप मेरे पास पैदल ही चले आये, हम आपके परमोत्कृष्ट प्रेम से अत्यन्त प्रसन्न एवं अर्चित हो गये हैं। राम अपनी सुन्दर दोनों भुजाओं के पाश में गुह को निपीडित करते हुए बोले—हम कितने भाग्यशाली हैं जो स्वस्थ एवं प्रसन्न बान्धवों से युक्त आप जैसे मित्र का दर्शन कर रहे हैं। आपके मित्रों, वनों तथा राष्ट्र में कुशल तो है? आप जो कुछ भी भेंट लाये हैं वह सब मुझे स्वीकार है। आप स्वयं समझ लें कि मैंने तपस्वी वनचारी का व्रत धारण कर रखा है। मैं वल्कलवसन, कुश एवं अजिन धारण, कन्दमूल-फलाशन करता हूँ। अतः अन्य सब वस्तुएँ प्रत्यावर्तित कर दें। केवल घोड़ों के लिए चारा दाना ही मुझे अपेक्षित है। ये मेरे पिता के अत्यन्त प्रिय हैं, अतः इनको खिलाने पिलाने से ही मेरा पूर्ण सत्कार हो जावेगा—

"गुहमेवं ब्रुवाणं तु राघवः प्रत्युवाच ह।
अर्चिताश्चैव हृष्टाश्च भवता सर्वदा वयम्॥
पद्भ्यामभिगमाच्चैव स्नेहसंदर्शनेन च।
भुजाभ्यां साधुवृत्ताभ्यां पीडयन् वाक्यमब्रवीत्॥
दिष्ट्या त्वां गुह पश्यामि ह्यरोगं सह बान्धवैः।
अपि ते कुशलं राष्ट्रे मित्रेषु च वनेषु च॥
यत्त्विदं भवता किञ्चित् प्रीत्या समुपकल्पितम्।
सर्वं तदनुजानामि नहि वर्त्ते प्रतिग्रहे॥
कुशचीराजिनधरं फलमूलाशनं च माम्।
विद्धि प्रणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम्॥
अश्वानां खादनेनाहमर्थी नान्येन केनचित्।
एतावतात्र भवता भविष्यामि सुपूजितः॥
एते हि दयिता राज्ञः पितुर्दशरथस्य मे।
एतैः सुविहितैरश्वैर्भविष्याम्यहमर्चितः॥ (वा० रा० २।५०।४०–४७)

शुक और सारण रावण के मन्त्रिमण्डल के प्रभावशाली सदस्य थे। वे राम की सैन्यशक्ति की टोह लेने के लिए आये थे। दोनों गुप्त वेष में थे, पर पकड़ लिये गये। आधुनिक दृष्टि से उनका वध ही उचित था। जब वे राम के सामने लाये गये, राम ने उनसे कहा—यदि आपने हमारी सैन्य-शक्ति का पता पा लिया और सुसमाहित हम

लोगों को भी देख लिया और अपने राजा का कार्य कर लिया है तो आप स्वेच्छा से जा सकते हैं। यदि कुछ देखना बाकी बचा है तो फिर से देख लो। विभीषण पूर्णरूप से सब कुछ तुम्हें पुनः दिखा देंगे—

"यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम्॥
अथ किञ्चिददृष्टं वा भूयस्तद् द्रष्टुमर्हथः।
विभीषणो वा कार्त्स्न्येन पुनः संदर्शयिष्यति॥" (वा० रा० ६।२५।१८,१९)

राम रावण से अपनी पतिव्रता पत्नी के उद्धार के लिए एवं क्षात्र तेज की रक्षा के लिए लड़े और सानुबन्ध रावण का वध किया, परन्तु उसके हितैषी ही रहे।

"अरिहुँ क अनभल कीन्ह न रामा।" (रा० मा० २।१८१।१)

विजय के बाद उसकी प्रशंसा करते हुए राम ने कहा था—ये प्रचण्ड पराक्रमी थे। निश्चेष्ट होकर नहीं मरे। इनका महोत्साह अत्यन्त उन्नत था। ये निर्भीक होकर रणाङ्गण में जूझे हैं। इस प्रकार क्षात्र धर्म में व्यवस्थित होकर जो युद्ध में मरते हैं, युद्धभूमि में अपनी विजय के लिए आकांक्षा करते हुए मारे जाते हैं वे शोचनीय नहीं होते। युद्ध में सदैव किसी की विजय नहीं होती। युद्ध में वीर या तो दूसरों से मारा जाता है या दूसरों को मारता है। यह पूर्वजों से निर्दिष्ट क्षत्रियसम्मत गति है कि क्षत्रिय युद्ध में निहत होकर शोचनीय नहीं होता है—

"नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः।
अत्युन्नतसमुत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः॥
नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः।
वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे॥
नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन।
परैर्वा हन्यते वीरः परान् वा हन्ति संयुगे॥
इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता।
क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः॥" (वा०रा०६।१११।१४-१८)

शिष्टों में सार्वभौम प्रसिद्धि है कि राम के समान बर्ताव करना चाहिये रावण जैसा नहीं। भावी राजाओं से भी राम ने धर्मसेतु की रक्षा का अनुरोध किया था—

"भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्रः।
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां काले काले पालनीयो भवद्भिः॥"
(स्कन्द० ब्राह्मख० धर्मारण्य ३४।४)

"आन्वीक्षिक्यात्मविद्या स्यादीक्षणात् सुखदुःखयोः।
ईक्षमाणस्तया तत्त्वं हर्षशोकौ व्युदस्यति॥" (काम० नीति० २।३।१)

"प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥"

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया॥ (वा० रा० २।१९।३३)

"आपद्यभग्नधैर्यत्वं सम्पद्यनभिमानिता।
यदुत्साहस्य चात्यागः तद्धि सत्पुरुषव्रतम्॥"

"देखन कहँ प्रभु करुनाकंदा। प्रकट भये बहु जलचर वृंदा॥" (रा० मा० ६।३।२)
"यह सुधि कोल किरातन पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥" (रा० मा० २।१३३।१)
"देखि दखिन दिशि हय हिहिनाहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥" (रा० मा० २।१४०।४)

"नहिं तृन चरहिं न पियहिं जल मोचहिं लोचनबारि।
ब्याकुल भये निहारि सब रघुबर बाजि निहारि॥" (रा० मा० २।२४१)

"काम कोटि छबि श्याम शरीरा। नील कंज वारिद गंभीरा॥" (रा० मा० १।१९८।१)

"सोभा कोटि मनोज लजावन।" (रा० मा० १।३२६)
"धरमधुरीन भानुकुलभानू।" (रा० मा० २।२५२।१)

"बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥" (रा० मा० ७।२५।१)
"जौ अनीति कछु भाखौं भाई। तो मोहि बरजहु भय बिसराई॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सुहाई॥" (रा० मा० ७।४२।३,२)

प्राण तृणाग्रलग्न जलबिन्दु के समान हैं। धर्म ही सब का सुहृत् है, अतः उसका विरोध नहीं करना चाहिये—

"वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यं प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणाम्।
आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगा धर्मः परं सुहृदहो न विरोधनीयः॥"

"मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरु तां प्रति।
मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन॥" (वा० रा० २।११२।२७)
"व्यसनेषु मनुष्याणां भृशं भवति दुःखितः।
उत्सवेषु च सर्वेषु पितेव परिरक्षति॥" (वा० रा० २।२।४०,४१)
"इदं राज्यं च सकलं जीवितं च हृदि स्थितम्।
सर्वमेतद् द्विजार्थं मे सत्यमेतद् ब्रवीमि वः॥" (वा० रा० ७।६०।१९)
"साक्षाद् रामाद् विनिर्वृत्तो धर्मश्चापि श्रिया सह।" (वा० रा० २।२।२९)
"सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्।
विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे॥" (वा० रा० २।१८।३०)
"न तं पश्याम्यहं लोके परोक्षमपि यो नरः।
स्वमित्रोऽपि निरस्तोऽपि योऽस्य दोषमुदाहरेत्॥" (वा० रा० २।२१।५)
"रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता॥" (मू० रा० १।१।१४)

भारतीय परम्परा के अनुसार राजा या राजनीतिज्ञ को दण्डनीति से पहले आन्वीक्षिकी से ब्रह्मविद्या प्राप्त करनी चाहिये, जिसके प्रभाव से सुख और दुःख का तत्त्व जानकर शोक तथा मोह का अपाकरण किया जा सकता है। अपने अचिन्त्य तथा अनन्त ब्रह्मानन्दसुधासिन्धु में तृप्त रहने के कारण ही राम के राज्याभिषेक से मुखाम्बुज पर कोई प्रसन्नता नहीं हुई और वनवास-दुःख से कोई विक्रिया नहीं आयी। वसुधाधिपत्य त्यागकर वन जाते समय लोकातीत जैसी निर्विकारिता राम में परिलक्षित होती थी। आपत्ति में धैर्य-भङ्ग न हो यही तो महासत्त्व का लक्षण है। सदा प्रसन्न राम को निहारने के लिए समुद्र के जलचरवृन्द भी प्रकट होकर बिभोर हो जाते हैं। वन के कोल-किरात नव निधि समझ कर राम में अनुरक्त होते हैं। राम के वियोग में रथ के घोड़े व्याकुल होकर तृण और जल लेने से विरक्त हो जाते हैं। वे छविधाम श्रीराम मर्यादा-पालनार्थ स्वयं वेद, पुराण आदि सुनते हैं

और प्रजाको धर्माचरण का नम्र मधुर उपदेश देते हैं। भरत को अपनी और श्रीसीताजी की शपथ देकर कैकेयी के प्रति सौमनस्य ही वर्तने का अनुरोध करते हैं। जनदुःख में दुःखी तथा उत्सव में पिता के समान परितुष्ट होकर सबके साथ तादात्म्य का अनुभव करते हैं।

श्रीरामजी का अपना राज्य तथा सम्पूर्ण जीवित ही द्विजार्थ अर्पित है। इतना ही क्यों, सम्पूर्ण श्री वैभव के साथ साक्षात् धर्म ही श्रीरामजी से सुसम्पन्न होकर प्रकट हुआ है। सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, शुचिता, विद्या, गुरु-शुश्रूषा आदि धर्म श्रीरामजी में ध्रुव रूप से सुस्थिर हैं। गुरुजन कहते हैं हम संसार में ऐसे किसी राम के सुनिरस्त अपमानित घोर शत्रु को भी नहीं देखते हैं जो परोक्ष में भी राम का दोष या द्रोह बतलाता हो। इतना ही नहीं, राम अमित्रों की भी दृष्टि एवं मन का हरण करते हैं—

"अप्यमित्राणां दृष्टिश्रुतिमनोहरः।" (म० भा० रामोपाख्यान)

सर्वलोकप्रिय राम

श्रीरामजी धर्म तथा स्वजन के रक्षिता, सर्वलोकप्रिय, द्रष्टा, स्मर्ता, सभी लोगों के हितकारक, सहज असाधारण क्षात्रस्वभाव से अदीनात्मा, अतिदुःख, व्यसनादि परम्परा में भी अक्षुब्धस्वभाव एवं विचक्षण हैं। जैसे नदियां सदैव समुद्र की ओर जाती हैं वैसे ही राम सदैव सत्पुरुषों द्वारा सेवित होते हैं। वे आर्य, सर्वप्रियदर्शन, सर्वगुणोपेत, कौशल्यानन्दवर्धन हैं—

"सर्वलोकप्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः।
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः॥
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः।
स च सर्वगुणोपेतः कौशल्यानन्दवर्धनः॥"(वा० रा० १।१।१५-१७)

राम गंभीरता में समुद्र जैसे, धैर्य में हिमवान् जैसे, वीर्य (पराक्रम) में विष्णु जैसे तथा चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन हैं। क्रोध में कालाग्नि के तुल्य, क्षमा में पृथिवी के तुल्य, त्याग में कुबेर के तुल्य एवं सत्य में धर्म के तुल्य हैं। वनगमन तथा अखण्ड भूमण्डल के राज्य का त्याग करने में सर्वलोकातीत जीवन्मुक्त जैसे उनके चित्त में कोई विक्रिया परिलक्षित नहीं होती—

"न चास्य महतीं लक्ष्मीं राज्यनाशोऽपकर्षति।
लोककान्तस्य कान्तत्वाच्छीतरश्मेरिव क्षयः॥
न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुन्धराम्।
सर्वलोकातिगस्येव लक्ष्यते चित्तविक्रिया॥"(वा० रा० २।१९।३२, ३३)

राम के समुचित रूपसंनिवेश, लक्ष्मी (शोभा), सौकुमार्य, सुवेषता आदि गुणों को विस्मित होकर वनवासी देखने लगे—

"रूपसंहननं लक्ष्मीं सौकुमार्यं सुवेषताम्।
ददृशुर्विस्मिताकारा रामस्य वनवासिनः॥" (वा० रा० ३।१।१३)

रामचरितमानस के अनुसार राम की देह चिदानन्दमय है—

"चिदानन्दमय देह तुम्हारी।" (रा० मा० ३।१।१३)

तुलसीदास ने बड़ी बुद्धिमानी से राम की शोभा का वर्णन किया है। देवताओं का सौन्दर्य तो प्रसिद्ध है। फिर ब्रह्मा, विष्णु और शिव के सौन्दर्य का तो कहना ही क्या है? पर सखियां कहती हैं—विष्णु में चार भुजा और

ब्रह्मा में चार मुख होने और विकटवेष शिवजी के पाँच मुख होने से वे राम के समान कहाँ हो सकते हैं ? फिर और कौन तनुधारी देव उनके समान हो सकता है—

"विष्णु चारि भुज विधि मुख चारी। विकटभेष मुख पंच पुरारी।
अपर देव अस को जग माहीं। यह छवि सखि पटतरिये जाहीं ॥" (रा० म० १।२२१।४)

वे राम के एक-एक अङ्ग पर कोटि-कोटि शत कामों को निछावर करती हैं। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार तो राम सूर्य के सूर्य, अग्नि के अग्नि, प्रभु के भी प्रभु, श्री–शोभा के भी शोभा, कीर्ति के कीर्ति तथा क्षमा के क्षमा हैं—

"सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमा-क्षमा ॥"(वा० रा० २।४४।१५)

श्रीभागवत के अनुसार अलङ्कारों से भगवान् के अङ्ग अलङ्कृत नहीं होते हैं, अपितु भगवान् के अङ्गों से ही अलङ्कार अलङ्कृत होते हैं—"**भूषणभूषणाङ्गम्**" **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार अपार सौन्दर्यसिन्धु राम के स्वरूप से कोई भी अपने मन एवं चक्षु को लौटा ही नहीं सकता था। राम के सामने से पधार जाने पर भी उनका मङ्गलमय रूप मन एवं नेत्रों में जगमगाता रहता था—

"नहि तस्मान्मनः कश्चिच्चक्षुषी वा नरोत्तमात्।
नरः शक्नोत्यवाक्रष्टुमपक्रान्तेऽपि राघवे ॥" (वा० रा० २।१७।१३)

जिसने राम को न देखा और राम ने जिसे नहीं देखा वे दोनों सब लोकों में निन्दित हैं। इतना ही नहीं उसकी अन्तरात्मा भी उसको धिक्कारती है—

"यश्च राम न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः सर्वलोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हति ॥" (वा० रा० २।१७।१४)

वे कहती हैं, सखि ऐसा कौन तनधारी है जो इस रूप पर मोहित न हो जाय। इसी लिए शङ्कर को १५ नेत्रों से राम के अनुपम रूप-सौन्दर्य का रसास्वादन करने के कारण १५ नेत्र अतिप्रिय लगे—

"संकर राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अतिप्रिय लागे ॥" (रा० मा० १।३१६।१)

ब्रह्मा ८ नेत्रों से राम के माधुर्य का आस्वादन करते हुए शिव से कम अपने ८ ही नेत्र जानकर पछताने लगे। रमासहित रमापति भी रामरूप देखकर मोहित हो गये—

"हरि हित सहित राम जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे ॥" (रा० मा० १।३१६।२)

बारह नेत्रों से राम के सौन्दर्य का रसास्वादन करके कार्तिकेय प्रसन्न हो रहे थे और इन्द्र सहस्र नेत्रों से भगवान् का रूप देखकर अपने को धन्य-धन्य मान रहे थे। जनकादि जैसे ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न भी रामसौन्दर्य पर मोहित हो गये—

"सहज विराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा ॥
इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥" (रा० मा० १।२१५।२,३)

किं बहुना जिसने स्वप्न में भी एक बार भी राम-मुख-माधुर्य का अनुभव कर लिया है। वह ब्रह्मसुख को भी नहीं गिनता। सूर्यनारायण ने कोटि-कोटि किरणों से राम के रूप-सौन्दर्य को निहारते-निहारते मास भर अवध में बिता दिया।

"मासदिवस कर दिवस भा मरम न जाना कोइ। रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥
(रा० मा० १।१९५)

"सोइ सुख लवलेस जिन सपनेहु बारेक लहेउ। ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहिं सज्जन सुमति॥"
(रा० मा० ७।८८)

सनकादि भी भगवान् की अनुपम छवि देखकर विह्वल हो जाते हैं।

"मुनि रघुपतिछबि अतुल बिलोकी। भये मगन मन सके न रोकी॥" (रा० मा० ७।३२।१)

ज्ञानी भक्त सात्त्विक लोग ही नहीं खरदूषण जैसे क्रूरप्रकृति के लोग भी राम की शोभा देखकर मोहित होकर कहने लगते हैं—

"जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥" (रा० मा० ३।१८।३)

उनसे भी अधिक तीक्ष्ण विषवाली सर्पिणी एवं वृश्चिक आदि भी रामरूप देखकर अपनी सहज तामसी तीक्ष्णता को त्यागकर प्रेमपरिप्लुत हो जाते हैं—

"जिनहिं निरखि मग साँपिनि बीछी।
तजहिं सहज बिष तामस तीछी॥ (रा० मा० २।२६०।४)

फिर जिनकी निधि वही हैं उनके लोचन रामरूप पर क्यों न ललचा उठें?

"देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने॥" (रा० मा० १।२३१।२)

"लाजहिं तनु शोभा निरखि कोटि-कोटि सत काम।" (रा० मा० १।१४६)

श्रीभागवत के अनुसार भगवान् की चपला लक्ष्मी भगवान् के पादारविन्द का माधुर्यामृतरसास्वादन करने गयी। रसास्वादन करने में उसे शोभासिन्धु की थाह नहीं मिली। उसे उत्तरोत्तर क्षणों में पूर्व-पूर्व क्षण की शोभा से कोटि-कोटि गुणित अधिक शोभा अनुभूत होने लगी। अतः चला लक्ष्मी श्रीभगवान् के पादारविन्द को पाकर अचला हो गयी। अनन्तकाल तक अनुभव करने पर भी उत्तरोत्तर कोटि-कोटि गुणित शोभा की अनुभूति बढ़ती ही गयी—

"चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित्।" (भाग० १।१२।३३)

और तो और स्वयं भी सर्वज्ञशिरोमणि मणिमय स्तम्भों में प्रतिफलित निजप्रतिबिम्ब को निहारकर प्रेमोद्रेक में स्वयं भी नाच उठे—

"रूपरासि छबि अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिम्ब निहारी॥" (रा० मा० ७।७६।४)

वेद, उपनिषद्, महाभारत तथा अनेक रामायणों में रामचरित्र का वर्णन है। अग्निपुराण में २ से १२ और २४० से २६० अध्यायों में राम द्वारा राजनीति का वर्णन है। आदिपुराण, कल्किपुराण तथा कालिकापुराण के ६२ वें अध्याय में विस्तृत रामकथा है। कूर्मपुराण, गरुड़पुराण तथा नरसिंहपुराण में रामकथा है। पद्मपुराण में अनेक बार सविस्तर रामकथा वर्णित है। इसी में रामाश्वमेध ७० अध्यायों में वर्णित है। बृहन्नारदीयपुराण, बृहद्धर्म-पुराण, ब्रह्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, भविष्यपुराण, श्रीमद्भागवत, देवीपुराण तथा महाभागवत में भी रामकथा है। मार्कण्डेयपुराण, लिङ्गपुराण, वामनपुराण, वायुपुराण, वाराहपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, स्कन्दपुराण तथा हरिवंशपुराण में रामकथा वर्णित है। हनुमत्संहिता, शिवसंहिता, लोमशसंहिता, बृहद्ब्रह्मसंहिता, महाशम्भुसंहिता, अगस्त्यसंहित्ता, वाल्मीकिसंहिता, शुकसंहिता, वसिष्ठसंहिता, सदाशिवसंहिता, हिरण्यगर्भसंहिता, महासदाशिवसंहिता, ब्रह्मसंहिता, पुराणसंहिता, बृहत्सदाशिवसंहिता, सनत्कुमारसंहिता आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों में राम की उपासनाओं का वर्णन है।

अनादि काल से वाराणसी में मरनेवालों को शिवजी रामनाम का उपदेश करते हैं—

"पेयं पेयं श्रवणपुटके रामानामाभिरामं
ध्येयं ध्येयं मनसि सततं तारकं ब्रह्मरूपम्।
जल्पन् जल्पन् प्रकृतिविकृतौ प्राणिनां कर्णमूले
वीथ्यां वीथ्यामटति जटिलः कोऽपि काशीनिवासी ॥" (काशीरहस्य)

भक्तवर प्रह्लाद भी रामनाम का महत्त्व मानते हैं—

"रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वतापशमनैकभेषजम्।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥" (नृ० पु०)

प्रह्लाद कहते हैं राम-नाम जपनेवालों को भय कहाँ ? क्योंकि राम-नाम सब तापों की निवृत्ति का एकमात्र औषध है। हे तात ! देखिये मेरे शरीर के निकट आग भी जल के समान ठण्डी प्रतीत होती है। भक्तगण उन्हीं का आश्रयण करते हैं—

"अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु ॥"

नाथ, मैं सहस्रों अपराधों का भाजन हूँ, अतएव भयङ्कर भवार्णव में पड़ा हूँ। मेरा कोई सहारा नहीं है, मैं आपकी शरण में आया हूँ। हे हरे ! आप मुझे अपना लेने की कृपा करें।

"न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्मवेदी न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यं त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥"

न मैं धर्मनिष्ठ हूँ, न आत्मवेदी हूँ और न ही आपके चरणों में भक्तिमान् हूँ। अकिञ्चन एवं अनन्यगति मैं आपके शरणागतरक्षणपरायण चरणों की शरण में प्रपन्न हूँ।

स्कन्दयामल तन्त्र के निर्वाणखण्ड में रुद्रवाक्य है—

"रेफोऽग्निरहमेवोक्तो विष्णुः सोमो म उच्यते।
आवयोर्मध्यगो ब्रह्मा रविराकार उच्यते ॥"

राम-नाम का रेफ (र) अग्नि का वाचक है, वह अग्नि मैं ही हूँ। रामनाम का 'म' सोमात्मक विष्णु का वाचक है, दोनों के मध्य में रहनेवाले आकार का अर्थ ब्रह्मा है। वही आदित्य भी है। इस तरह प्रणव के समान ही रामनाम भी ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मक है।

"चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथौ हरौ।
रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः ॥
स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः।"(रा० पू० ता० १।१२)

रघुकुल में महाविष्णु के दाशरथि राम के रूप में प्रकट होने पर जो अखिल अभीष्ट देते हैं और भूमि में स्थित होकर देदीप्यमान हैं, उनका नाम राम पड़ा।

"रमन्ते योगिनो यस्मिन्नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनैतत्परं ब्रह्माभिधीयते ॥" (रा० उ० ता० १।६)

योगी जिस नित्य चिदानन्द आत्मा में रमण करते हैं वही राम हैं अथवा जो ज्ञानादि लक्ष्मी प्रदान करते हैं वही राम हैं। "**रां ज्ञानादिलक्ष्मीम् अमति ददातीति रामः, ज्ञानादीनां प्राप्तिर्यस्मात्स रामः।**" विविध ऐश्वर्यों, धनों, लक्ष्मी आदि की जिससे प्राप्ति होती है, वही राम है।

"यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः।
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥
रेफारूढमूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च।"

जैसे महान् वटवृक्ष वटबीज में रहता है, वैसे ही यह चराचर प्राकृत महान् जगत् राम के बीज 'रां' मन्त्र में रहता है। तीनों उत्पादिनी, पालिनी तथा संहारिणी शक्तियाँ रेफसमन्वित हैं।

"राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्॥" (रा० उ० ता० १।६)

राम ही परम ब्रह्म हैं, राम ही परम तप हैं, राम ही परम तत्त्व हैं एवं राम ही तारक ब्रह्म हैं।

"कांस्यघण्टानिनादस्तु यथालीयति शान्तये।
ॐकारस्तु तथा योज्यः शान्तये सर्वमिच्छता॥
यस्मिन् विलीयते शब्दस्तद् ब्रह्म परिगीयते।"

कांस्य घण्टा का नाद जैसे क्रमेण लीन हो जाता है उसी तरह प्रणव के उच्चारण में अ, उ और म के समाप्त होने पर अनुस्वार ध्वनि नाद से शान्ति की अनुभूति होती है। वही की वही स्थिति राम में होती है।

"राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः॥"

रा शब्द विश्व का वाचक है और म ईश्वर का वाचक है तथा विश्वों का ईश्वर ही राम है।

"रा चेति लक्ष्मीवचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः॥"

इसी तरह 'रा' लक्ष्मी का वाचक है और 'म' ईश्वर का वाचक है। लक्ष्मी का ईश्वर ही राम है।

"तरुणादित्यसंकाशं चतुर्वर्गप्रदायकम्।
पञ्चदेवमयं वर्णं पञ्चप्राणमयं तदा॥
त्रिशक्तिसहितं रामं त्रिबिन्दुसहितं सदा।
आत्मादितत्त्वसंयुक्तं हृदिस्थं प्रणमाम्यहम्॥" (कामधेनुतन्त्र)

तरुण आदित्य के समान 'रा' और 'म' वर्ण चतुर्वर्गप्रद एवं पञ्चदेवमय तथा पञ्चप्राणमय हैं। रामनाम की महिमा से निर्गुण एवं सगुण रामब्रह्म का प्राकट्य होता है।

"कदा पुनः शङ्खरथाङ्गकल्पकध्वजारविन्दाङ्कुशवज्रलाञ्छनम्।
त्रिविक्रम त्वच्चरणाम्बुजद्वयं मदीयमूर्धानमलङ्करिष्यति॥"(आलवन्दारस्तोत्र ३४)

श्रीयामुनाचार्य कहते हैं—शङ्ख, चक्र, ध्वज, कमल, अङ्कुश और वज्र के चिह्नों से अङ्कित आपके चरणारविन्द कब मेरे मस्तक को अलङ्कृत करेंगे ? अन्य भक्तों के अनुसार भगवच्चरणारविन्द में आकाश, गोष्पद, स्वस्तिक, जम्बूफल, कलश, सुधासरोवर, अर्धचन्द्र, षट्कोण, मीनबिन्दु, ऊर्ध्वरेखा आदि के भी चिह्न हैं।

"अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥" (अथर्वसं० १०।२।३१)

आठ आवरणोंवाली तथा नव द्वारवाली देवताओं की पुरी अयोध्या है। उसमें हिरण्मय ज्योतिर्मय स्वर्ग कोश है। वह ज्योति के द्वारा आवृत है।

"अयोध्या नगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठो गोलोकादिः प्रतिष्ठितः॥" (व० सं०)

वसिष्ठसंहिता के अनुसार अयोध्या नगरी सच्चिदानन्दरूपिणी है। वैकुण्ठ, गोलोकादि सब उसी के अंश हैं।

"तस्मिन् हिरण्मये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते तस्मिन्।
यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥" (अथर्वसं० १०।२।३२)

उस प्रकाशमय तीन अरों, तीन गुणों या सत्, चित् और आनन्द पर आधृत हिरण्मय कोश में आत्मतुल्य परमपूज्य राम ब्रह्म स्थित हैं।

"प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्।
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्माविवेशापराजिताम्॥" (अथर्वसं० १०।२।३)

अत्यन्त देदीप्यमान मन को हरण करनेवाली यश से परिवृत अपराजिता सर्वथा अजेय उस हिरण्मयी अयोध्या पुरी में ब्रह्म राम सम्यक् विराजमान हैं।

वाल्मीकिरामायण में उसी प्रेमपरिप्लुत अयोध्या पुरी का वर्णन है।

"तत्समाकुलसंभ्रान्तं मत्तसंकुपितद्विपम्।
हयशिञ्जितनिर्घोषं पुरमासीन्महास्वनम्॥" (वा० रा० २।४०।१९)

राम के वियोग से वह पुर ही व्याकुल एवं संभ्रान्त हो गया। मत्त गज भी राम के वियोग की सम्भावना से कुपित हो गये। घोड़ों के हिनहिनाने एवं उनके भूषणों के निःस्वनों से सारा नगर कोलाहलपूर्ण हो गया।

पुरवासी कहते हैं—

"अनुगन्तुमशक्तास्त्वां मूलैरुद्धतवेगिनः।
उन्नता वायुवेगेन विक्रोशन्तीव पादपाः॥" (वा० रा० २।४५।३०)

अपनी जड़ों के कारण वेगहीन पादप तुम्हारा अनुगमन करने में असमर्थ हैं। वायुवेग से स्वनवान् ये उन्नत पादप आप से लौटने के लिए चीत्कार कर रहे हैं।

"लीनपुष्करपत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः।
संतप्तपद्माः पद्मिन्यो लीनमीनविहङ्गमाः॥" (वा० रा० २।५९।७)

नदियों के जल मलिन हो गये हैं एवं उनके कमलों के पत्ते निलीनप्राय हो गये हैं (सूख गये हैं)। नदियों, सरोवरों के कमल एवं कमलिनियाँ संतप्त हो गयी हैं। उनके मीन एवं विहंगमगण लुप्त हो गये हैं।

"मम त्वश्वा निवृत्तस्य न प्रावर्तन्त वर्त्मनि।
उष्णमश्रु विमुञ्चन्तो रामे संप्रस्थिते वनम्॥

विषये ते महाराज महाव्यसनकर्शिताः ।
अपि वृक्षाः परिम्लानाः सपुष्पाङ्कुरकोरकाः ॥
उपतप्तोदका नद्यः पल्वलानि सरांसि च ।
परिशुष्कपलाशानि वनान्युपवनानि च ॥
न च सर्पन्ति सत्त्वानि व्याला न प्रसरन्ति च ।
रामशोकाभिभूतं तन्निष्कूजमिव तद्वनम् ॥
जलजानि च पुष्पाणि माल्यानि स्थलजानि च ।
न विभान्त्यल्पगन्धीनि फलानि च यथापुरम् ॥
अत्रोद्यानानि शून्यानि प्रलीनविहगानि च ।
न चाभिरामानारामान् पश्यामि मनुजर्षभ ॥''(वा०रा० २।५९।१,३–६,८,९)

सुमन्त्र ने कहा—राम के वन को प्रस्थित होने पर मैं जब लौटा रथ के घोड़े उष्ण आँसू गिराते हुए मार्ग पर चलने को प्रवृत्त नहीं हुए। महाराज, महाव्यसन से दुःखित आपके देश के वृक्ष पुष्पों, पल्लवों, अङ्कुरों तथा पुष्पमुकुलों के साथ परिम्लान (कुम्हलाये हुए) हो गये हैं। नदियों, सरोवरों तथा छोटे सरोवरों के जल तप्त एवं शुष्क हो गये हैं। वनों एवं उपवनों के पत्ते सूख गये हैं। कोई प्राणी आहार के लिए भी गमनागमन नहीं कर रहे हैं। व्याल भी प्रसर्पण नहीं कर रहे हैं। सारा वन रामशोक से अभिभूत होकर निःशब्द सा हो रहा है। जल और स्थल के सभी पुष्प पहले के समान सौन्दर्य तथा सौगन्ध्य से युक्त नहीं हैं। सारे उद्यान विहंगादिहीन हो शून्य से प्रतीत होते हैं। आराम और क्रीडोद्यान भी अभिरामताशून्य हो रहे हैं। इस तरह अचेतन वृक्ष और लताएँ भी रामप्रेम से व्याप्त हैं।

जो कहते हैं कि भले पुष्करनाभ के अनेक एक से एक अच्छे अवतार हैं तो भी लताओं में प्रेम प्रदान करनेवाला कृष्ण से अन्य कौन हैं ?

"सन्त्ववतारा बहवः पुष्करनाभस्य सर्वतो भद्राः ।
कृष्णादन्यः को वा लतास्वपि प्रेमदो भवति ॥''

उन्हें उपर्युक्त **वाल्मीकिरामायण** के श्लोकों का अध्ययन करना चाहिये। इस तरह राम, उनका मङ्गलमय धाम तथा मङ्गलमय नाम एवं राम की मङ्गलमयी कथा सभी स्वप्रकाश ब्रह्मरूप ही हैं और प्रत्येक के परम कल्याण के स्रोत हैं।

रघुवंश के अनुसार कुश ने अयोध्या का जीर्णोद्धार किया था।

''ऋषभं प्राप्य राजानं निवासमुपयास्यति ।'' (वा० रा० ७।१११।२०)

के अनुसार पूर्णरूप से वह जननिवास स्थान ऋषभ राजा के काल में ही हो सकी थी। सन्ध्याकरनन्दिकृत **रामचरित** (सर्ग ४) में वर्णित है कि कुश का कुमुद्वती के साथ विवाह हुआ था। आनन्दरामायण में भी कुश के अनेक विवाहों का वर्णन है। राम के २००० पौत्रों तथा २४ पौत्रियों का उल्लेख है। **सेरीराम** के अनुसार लव ने इन्द्रजित् की पुत्री, इसके बाद विभीषण की पुत्री से विवाह कर के लङ्का का राज्य स्वीकार किया था। परन्तु यह सब रामायणविरुद्ध होने से चिन्त्य है। राम ने लङ्का का राज्य विभीषण को दिया था। रामपुत्र उसे स्वीकार करते यह कथमपि सम्भव नहीं।

रावण ब्राह्मण था। उसके कुल की कन्या से विवाह क्षत्रिय कुल के लिए दोषावह ही था।

कुश और लव की जन्म-कथा

राम द्वारा परित्यक्त किये जाने के बाद सीता ने वाल्मीकि के आश्रम में यमल पुत्रों को जन्म दिया। **वाल्मीकिरामायण** (७।६६।३–९) के अनुसार कुशों के अग्रभाग से अग्रज का निर्मार्जन करने का तथा अनुज का कुशों के लव (अधोभाग) से मार्जन करने का आदेश महर्षि वाल्मीकि ने दिया था। अतः क्रम से दोनों का नाम कुश और लवपड़ा था—

> ''यस्तयोः पूर्वजो जातः स कुशैर्मन्त्रसत्कृतैः।
> निर्मार्जनीयस्तु तदा कुश इत्यस्य नाम तत्॥
> यश्चावरो भवेत्ताभ्यां लवेन सुसमाहितः।
> निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्लवेति च स नामतः॥'' (वा० रा० ७।६६।७,८)

इससे भी स्पष्ट है कि गानोपजीवी कुशीलव की यहाँ चर्चा नहीं है। यहाँ कुश और लव नाम के दो राजकुमार हैं और वे सीतापुत्र हैं। अतः बुल्के की यह कल्पना निरर्थक है कि कुशीलव गानविद्योपजीवी थे।

भवभूति के अनुसार लक्ष्मण के चले जाने पर सीता को वन में प्रसव-पीड़ा होती है। उससे निराश होकर वे आत्महत्या के विचार से गङ्गा में कूद पड़ती हैं। जल में ही उनके दो पुत्र होते हैं। पृथिवी तथा गङ्गा देवियाँ सीता को दो पुत्रों के साथ रसातल ले जाती हैं। बाद में कुछ बड़े होने पर गङ्गा दोनों पुत्रों को शिक्षा देने के लिए वाल्मीकि महर्षि को सौंप देती हैं। इसके अनुसार कुश और लव अपने माता-पिता के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे। अन्तिम अङ्क में वाल्मीकि की आज्ञा से सीता प्रकट होकर राम के साथ अयोध्या लौटती हैं। कुन्दमाला के अनुसार राम कुश और लव से उनके माता-पिता के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं। तो वे अपनी माता वनदेवी को बताते हैं। परन्तु पिता के सम्बन्ध में कुश ने कहा कि मैं नहीं जानता। लव ने कहा मैं जानता हूँ। मेरे पिता का नाम निरनुक्रोश है, क्योंकि एक दिन माँ ने क्रुद्ध होकर कहा था ''निरनुक्रोशतनयौ''। यह सुनकर राम के नेत्रों में अश्रु आ गये। यह कथा कल्पान्तर की हो सकती है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार तो वाल्मीकि के आश्रम में ही कुश और लव का जन्म हुआ था एवं वेदादि की शिक्षा भी उन्हें वहीं मिली थी। कथासरित्सागर तथा तिब्बती रामायण के अनुसार सीता ने एक ही पुत्र को जन्म दिया था। उसका नाम लव था। सीता लव को लेकर नदी में स्नान करने गयी। वाल्मीकि ने कुटी में आकर सोचा कि कोई हिंस्र पशु बालक को उठा ले गया, इसलिए उन्होंने तपोबल द्वारा कुश से एक बालक की सृष्टि की। लौटने पर सीता ने उसे पुत्रवत् ग्रहण किया। इस प्रकार सीता के कुश और लव दो पुत्र हुए।

काश्मीरीरामायण (९।१।८३–९३) के अनुसार दशरथ स्वप्न में पुत्र के लिए राम से अनुरोध करते हैं। राम वसिष्ठ की सम्मति से अश्वमेधयज्ञ करते हैं। फलस्वरूप सीता गर्भवती होती है। यह भी कल्पान्तरीय कथा है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार तो अश्वमेधयज्ञ में ही कुश और लव ने रामायण का गान किया था। किसी कथा के अनुसार सीता कुश को वाल्मीकि की रक्षा में छोड़ कर जाती है, किन्तु मार्ग में वानरियों का उपदेश सुनकर लौट आती है। वाल्मीकि नया पुत्र बनाकर देते हैं। **आनन्दरामायण** के अनुसार भी एक वानरी पाँच पुत्रों को ढोती है। इसपर सीता लौटकर वाल्मीकि को बिना बताये पुत्र को ले जाती हैं।

रामकियेन में वानरियों से सीता के मिलने का वृत्तान्त है। सीता वानरियों को बच्चों के साथ कूदती देख कर बच्चों की समुचित सुरक्षा न करने के कारण उनकी भर्त्सना करती हैं। वानरियों ने उत्तर दिया कि तुम तो अपना पुत्र ध्यानमग्न ऋषि के पास छोड़ कर आयी। तुम हमसे भी अधिक असावधान हो। यह सुनकर सीता अपने पुत्र को लेने के लिए लौट पड़ती है। अन्य वृत्तान्त के अनुसार सुग्रीव-सेना के वानर वन में सीता की सेवा करते हैं। वानर उनके पुत्र को टहलाने ले जाते थे। किसी दिन सीता नदी तट पर सो गयी। इतने में एक वानरी उनके पुत्र

को टहलाने ले गयी । बाद में सीता दुःख से द्रवित हो गयी । इस पर वाल्मीकि ने एक बालक की सृष्टि की । सिंहली रामकथा के अनुसार वाल्मीकि ने सीता-पुत्र न देखकर एक कमल से दूसरा बालक बनाया । ऐसी अन्य भी अनेक कल्पनाएँ हैं जो वाल्मीकिरामायण के विरुद्ध होने के कारण कल्पान्तरीय कही जा सकती हैं ।

वाल्मीकिरामायण में अश्वमेध की यज्ञभूमि में लव और कुश रामायण का गान करते हैं । वहीं राम अपने पुत्रों का परिचय पाते हैं । बहुत सी राम-कथाओं में कुश और लव राम की सेना से भी युद्ध करते हैं । युद्ध का मुख्य कारण यह है कि कुश और लव ने रामाश्वमेध के घोड़े को बाँध लिया था ।

पउमचरियं (पर्व ९७–१००) के अनुसार लवण तथा अंकुश (लव तथा कुश)- अपनी माता के साथ पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजङ्घ के यहाँ रहते हैं एवं सिद्धार्थ से शिक्षा पाते हैं । उनके यहाँ विवाह एवं दिग्विजय के बाद नारद आकर उनकी माता के त्याग की घटना का समाचार सुनाते हैं । इसपर लवण और अंकुश राम तथा लक्ष्मण से प्रतिशोध लेने के लिए सेना लेकर अयोध्या पर आक्रमण कर देते हैं । लवण राम से एवं अंकुश लक्ष्मण से युद्ध करते हैं । युद्ध के अनिश्चित होने पर नारद आकर राम और लक्ष्मण को लवण तथा अंकुश के जन्म का रहस्य बतलाते हैं । इसपर राम अपने पुत्रों से मिल कर उनको पास ही रखते हैं । बाद में सीता की अग्नि-परीक्षा होती है (पर्व १०२)। हनुमान् पुत्रों का पक्ष लेकर राम के विरुद्ध युद्ध करते हैं । कथासरित्सागर (९।१) के अनुसार कुश और लव शिवलिङ्ग से खेल खेलते हैं । प्रायश्चित्त के लिए वाल्मीकि लव को कुबेर के सरोवर से स्वर्णःकमल तथा वाटिका में मन्दार लाकर शिवपूजन का आदेश करते हैं । लक्ष्मण उस समय राम के पुरुषमेध के लिए शुभलक्षणसम्पन्न पुरुष खोज रहे थे । उन्होंने लव को बन्दी बना लिया । इसपर वाल्मीकि कुश को अयोध्या भेजते हैं । वाल्मीकि के दिव्य अस्त्रों से कुश ने लक्ष्मण और राम को पराजित किया । बाद में राम पुत्रों का परिचय प्राप्त करते हैं और सीता को बुला भेजते हैं । आनन्दरामायण (जन्मकाण्ड ६।८) के अनुसार वाल्मीकि के आश्रम में अपने पुत्रों के साथ रहनेवाली सीता नौ दिन का संयोगकरण व्रत करना चाहती हैं । इसके लिए अयोध्या के सरोवर के स्वर्णकमलों की आवश्यकता पड़ती है । पञ्चवर्षीय लव छिप कर ले आता है । आठवें दिन चौदह पहरे-दारों को परास्त कर उनसे कहता है कि मैं वाल्मीकि के आदेशानुसार यह कमल ले जा रहा हूँ । नवें दिन १००० रक्षकों को पराजित करता है । सीता व्रत पूरा करती है । बाद में शिष्यों सहित वाल्मीकि को रामाश्वमेध का निमन्त्रण आता है । वाल्मीकि सीता तथा शिष्यों सहित आकर सरयूतीर पर ठहरते हैं । इतने में वहाँ यज्ञाश्व पहुँचता है । लव उसे बाँध लेता है तथा राम की समस्त सेना को पराजित करता है । लक्ष्मण लव को पराजित करते हैं । कुश आकर लक्ष्मण को पराजित करता है । फिर देर तक राम कुश का युद्ध होता है । युद्ध में किसी की जीत नहीं होती । राम ने कुश और लव के सम्बन्ध में वाल्मीकि से प्रश्न किया । महर्षि ने कहा—कल इसका रहस्य ज्ञात होगा । दूसरे दिन कुश और लव रामायण का गान कर अपना परिचय देते हैं । पश्चात् सीता को बुलाया जाता है । सतीत्व का साक्ष्य देने के पश्चात् वह राम तथा पुत्रों के साथ अयोध्या में रहने लगती है । **भावार्थरामायण** (७।६६,६७) में भी यही वृत्तान्त है । बुल्के की कालकल्पना भारतीय संस्कृतिविरोधी पाश्चात्यों की कल्पना पर ही आधारित है, अतः विश्वसनीय नहीं है । बृहत्कथा तो भवभूति से प्राचीन है ही । **उत्तररामचरित** अङ्क ५,६ में लव का पहले यज्ञाश्व की रक्षा करनेवाली राम की सेना तथा अन्त में लक्ष्मण-पुत्र चन्द्रकेतु से युद्ध होता है । राम पहुँच कर तथा दोनों का युद्ध रोक कर परिचय प्राप्त करते हैं । अन्त में सीता को ग्रहण करते हैं । रामाश्वमेध के अनुसार लव का भरतपुत्र पुष्कल से युद्ध होता है । जैमिनीयाश्वमेध (अध्याय २९-३६) के अनुसार लव यज्ञाश्व को बाँधकर सैनिकों का वध कर शत्रुघ्न से पराजित होते हैं । कुश शत्रुघ्न को पराजित करते हैं । बाद में कुश और लव दोनों ही लक्ष्मण, हनुमान् तथा भरत पर विजय प्राप्त करते हैं एवं राम को आहत करते हैं । अन्त में वाल्मीकि राम की समस्त सेना को अमृत जल से पुनर्जीवित करते हैं ।

पद्मपुराण (पातालखण्ड अ० ६०-६४) में राम, लक्ष्मण तथा भरत युद्ध में नहीं आते। सीता अपने सतीत्व के प्रभाव से राम-सेना को जीवित करती है। पौराणिक आख्यानों के आधार पर भी काव्य और नाटकों की कथाएँ समझनी चाहिये। अतः पौराणिक आख्यान सुतरां काव्य और नाटकों से अति प्राचीन हैं।

रामकेर्ति के अनुसार सीतापुत्रों ने वाल्मीकि से धनुर्विद्या की शिक्षा पायी थी। किसी दिन अपने बाणों से उन्होंने एक विशाल वृक्ष को नष्ट कर दिया। जिससे अयोध्या में भूकम्प हुआ। ज्योतिषियों ने कहा यह एक महान् राजा की धनुर्विद्या का परिणाम है। उस राजा का पता लगाने के लिए एक अश्व छोड़ा गया। हनुमान्, भरत, और शत्रुघ्न ने उसका अनुसरण किया। सीतापुत्रों ने अश्व को बाँध लिया। हनुमान् को हराकर उनके हाथ बाँध दिये और उनके शरीर पर लिख दिया कि इसका स्वामी इसे खोलेगा। शत्रुघ्न आदि के असफल होने पर अयोध्या जाकर राम की शरण लेनी पड़ी। बाद में हनुमान् सीता के पुत्र को बन्दी बना कर अयोध्या ले जाते हैं। लक्ष्मण अपनी माता से एक मायामय अँगूठी पाकर अपने भाई को छुड़ाने अयोध्या गये। अयोध्या पहुँच कर जब लक्ष्मण ने छद्मवेशी रमा की सहायता से उस अँगूठी को राम के पास पहूँचा दिया। अँगूठी के प्रभाव से उसके बन्धन टूट गये। यहाँ राम और लक्ष्मण के बाणों ने पुष्पमाला बनकर अपने को राम के प्रति अर्पित किया। तब राम ने यह कहकर ब्रह्मास्त्र चलाया कि यदि ये पराये हैं तो ब्रह्मास्त्र इन्हें नष्ट कर दे। यदि ये सम्बन्धी हैं तो मिष्ठान्न के रूप में बदल जावे। ब्रह्मास्त्र मिष्ठान बन गया। इस प्रकार उनको सम्बन्धी जानकर तथा लक्ष्मण से सीतात्याग की वास्तविक कथा सुनकर राम ने सीता के पास जाकर क्षमा याचना की। परन्तु सीता ने अयोध्या लौटना स्वीकार नहीं किया, किन्तु बालकों को राम के पास भेज दिया। **सेरीराम** के अनुसार सीता के पुत्रों ने मृगया खेलते समय एक हरिण का वध किया जिसे राम ने पहले ही आहत किया था। लक्ष्मण उसका पीछा करते हुए बालकों के पास पहुँचे। हरिण को लेकर झगड़ा हुआ, बालक लक्ष्मण को बाँध कर कलि के पास पहुँचाते हैं। राम लक्ष्मण की खोज करते हुए महरीसि कलि के पास पहुँचे और पुत्रों का परिचय प्राप्त किया। ऐसी ही और भी कई प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं। जो कथा **वाल्मीकिरामायण** से जितनी दूर हुई उसमें उतनी ही विकृति आ गयी।

बुल्के का ७५२ वें अनु० में यह कहना सर्वथा असत्य है कि **आदिरामायण** राम के अभिषेक तथा उनके ऐश्वर्यशाली राज्य के संक्षिप्त वर्णन पर समाप्त होता था। राम द्वारा रावण की पराजय तथा सीता की पुनःप्राप्ति राम-कथाओं का वर्ण्य विषय था। क्योंकि संक्षिप्त वर्णन का सविस्तर वर्णन एवं उत्तर की घटनाओं तथा पुत्रों का जन्म तथा अन्त में राम का परमधाम गमन आदि अत्यावश्यक विषयों को छोड़कर इतने बड़े और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की समाप्ति सम्भव नहीं थी। तथाकथित **आदिरामायण** सर्वथा अप्रामाणिक है, क्योंकि संसार में आजतक कहीं उसका नामनिशान तक नहीं है।

गुणभद्र के **उत्तरपुराण** के अनुसार प्रतिनारायण रावण के मर जाने पर बलदेव जैन दीक्षा लेते हैं। लक्ष्मण की मृत्यु के बाद राम विरक्त होकर दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। सीता भी आर्यका बन अच्युत स्वर्ग प्राप्त करती हैं। वस्तुतः ये सब चण्ड खाने की गप्पें हैं। क्योंकि जैनी केवल **रामकथा** की लोकप्रियता का लाभ उठाकर जैन-दीक्षा का प्रचारमात्र करते हैं। उनकी कथा का वस्तुस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है। बुल्के उक्त कथाओं को सुखान्त कथा की संज्ञा देते हैं। पर यह भी चिन्त्य है, क्योंकि कल्पभेद से उत्तरकाण्ड की कथा में सुखान्त कथा का निर्वहण है ही। देशी और विदेशी अनेक कथाओं में राम तथा सीता दोनों पुत्रों के साथ अयोध्या में पुनः सुखपूर्वक निवास करते हैं।

वाल्मीकिरामायण के उत्तरकाण्ड की कथा दुःखान्त है। लोकापवाद के कारण राम अपनी निर्दोष पत्नी को त्याग देते हैं। अश्वमेध के अवसर पर पुत्रों को देखकर सीता को बुला भेजते हैं। वाल्मीकि सीता के साथ सभा

में पहुँच कर सीता के सतीत्व का साक्ष्य देते हैं। राम जनता को विश्वास दिलाने के उद्देश्य से सीता से अनुरोध करते हैं। सीता अपने सतीत्व का प्रमाण देती हुई कहती हैं—यदि मैं राघव से अन्य पुरुष का मन से भी चिन्तन नहीं करती हूँ तो माधवी देवी मुझे विवरस्थान प्रदान करे।

"याऽहं राघवादन्यं मनसाऽपि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति॥"

पृथ्वी एक दिव्य सिंहासन पर बैठी हुई भूमि से प्रकट होती है और सीता को अपने अङ्क में लेकर भूमि में पुनः प्रवेश करती है। राम विलाप करते हैं। पृथ्वी से सीता को लौटाने का अनुरोध करते हैं। अन्त में देवगणों के साथ ब्रह्मा आकर राम को उनके परम विष्णुरूप का स्मरण दिलाते हुए सान्त्वना देते हैं और परमधाम में सीता समागम की बात कहते हैं—

"राम राम न सन्तापं कर्त्तुमर्हसि सुव्रत।
स्मर त्वं पूर्वकं भावं स्मर त्वं जन्म वैष्णवम्॥" (वा० रा० ७।९७।१४)

सीता का भूमि-प्रवेश उत्तरकाण्ड निर्वहण का प्रथम सोपान है। द्वितीय सोपान लक्ष्मणत्याग पर समाप्त होता है। सीता के अन्तर्धान होने के पश्चात् कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी का वैकुण्ठवास होता है। लक्ष्मण के पुत्रों की राज्य-व्यवस्था के लिए अनेक विजय-यात्राएँ होती हैं। लक्ष्मण-त्याग इस प्रकार वर्णित हैं—काल तपस्वी के वेष में आकर एकान्त में ही बात करना चाहते हैं। राम से प्रतिज्ञा कराते हैं कि जो कोई हम दोनों को बात करते देखे व सुने वह राम द्वारा मारा जाय—

"यः शृणोति निरीक्षेद् वा स वध्यो भविता तव।" (वा० रा० ७।९८।१३)

राम लक्ष्मण को द्वार पर खड़े रहने का आदेश देते हैं, एकान्त पाकर काल राम को ब्रह्मा का सन्देश देते हैं कि रामावतार का समय समाप्त हो रहा है। इतने में दुर्वासा लक्ष्मण के पास पहुँच कर तुरन्त राम से मिलने का अनुरोध करते हैं। लक्ष्मण ने बड़ी नम्रता से कहा जो आज्ञा है, में पूर्ण करूँगा। राघव कार्यव्यग्र हैं, कुछ क्षण प्रतीक्षा कीजिये। मुनि ने क्रुद्ध होकर कहा, अभी जाकर राम से मेरा आना कहो अन्यथा तुम्हारे देश को, तुमको, राघव को, भरत को ओर तुम लोगों की सन्तानों को शाप दूँगा। लक्ष्मण-वंशनाश की अपेक्षा अपना ही मरण श्रेष्ठ समझ कर राम के पास अन्दर जाते हैं—

"एकस्य मरणं मेऽस्तु माऽभूत् सर्वविनाशनम्।" (१०३।१२) (१०५।९)

बाद में राम अपनी प्रतिज्ञा के वशीभूत होकर लक्ष्मण का परित्याग करते हैं—

"विसर्जये त्वां सौमित्रे मा भूद् धर्मविपर्ययः।
त्यागो वधो वा विहितः साधूनां ह्यभयं समम्॥" (१०७।१३)

इसपर लक्ष्मण सरयू के तट पर जाकर स्वासरोधकर समाधिस्थ हो गये। फिर सशरीर अपने दिव्य शेषरूप में प्रकट हो गये। इन्द्रादि देवता विष्णु का चतुर्थांश पाकर प्रसन्न होकर लक्ष्मण की पूजा करते हैं (सर्ग १०३ तथा १०६)। लक्ष्मण के वियोग के कारण दुःखी होकर राम ने भरत को राज्य सौंप कर वन जाने की इच्छा प्रकट की। किन्तु भरत ने तथा अयोध्या की प्रजा ने राम के साथ जाने की अनुमति ले ली। तब राम ने पुत्रों को कुशावती तथा श्रावस्ती में राजसिंहासन पर बैठा कर शत्रुघ्न को बुला भेजा। अयोध्या के दूतों से यह जान कर कि राम, भरत एवं प्रजा के साथ परम धाम जाने की तैयारियाँ कर रहे हैं। शत्रुघ्न ने अपने पुत्रों को राज्य देखकर अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। राम ने शत्रुघ्न को भी साथ चलने की अनुमति प्रदान कर दी। इतने

में सुग्रीव, विभीषण तथा सभी वानर, ऋक्ष आदि आ पहुँचे और सभी राम के साथ जाने को उत्सुक थे। राम ने सब को अपने साथ जाने को कहा, किन्तु विभीषण, हनुमान्, जाम्बवान्, मयन्द और द्विविद को कलियुग के अन्त तक रहने का आदेश दिया। दूसरे दिन प्रातः राम सब के साथ सरयूतीर पहुँचे। ब्रह्मा ने प्रकट होकर राम से निवेदन किया कि आप अपने भाइयों सहित विष्णुरूप में प्रवेश करें। राम ब्रह्मा का अनुरोध स्वीकार कर साक्षात् विष्णुरूप में प्रकट हो गये। ब्रह्मा ने रामस्वरूप विष्णु के आज्ञानुसार सब के लिए सन्तानक या साकेत लोक प्राप्त कराया। सबने सरयू के जल का स्पर्श कर अनायास देहत्याग कर साकेत धाम को गमन किया। ब्रह्मा ने यह भी कहा कि पशु-पक्षी आदि जो प्राणी आपका स्मरण करते हुए प्राणत्याग करेंगे सब साकेत लोक में प्रवेश करेंगे। वह सन्तानकलोक ब्रह्मलोक के अत्यन्त अव्यवहित है। सुग्रीवादि जो विशिष्ट देवांश थे वे अपने-अपने अंशों में पहुँच गये। अन्त में स्थावर और जङ्गम सभी सरयू-जल का स्पर्श कर परम धाम को पहुँच गये। ऐसा ही कथानिर्वहण **अध्यात्मरामायण**, **आनन्दरामायण**, रघुवंश आदि में पाया जाता है। भागवतपुराण के अनुसार सीता अपने पुत्रों को वाल्मीकि मुनि के हाथ में सौंप कर राम का ध्यान करती हुई भूमि में प्रवेश करती है। राम यह समाचार सुनकर बहुत दुःखी हुए। अन्य कई कथाओं में सीता के भूमि-प्रवेश को भिन्न-भिन्न रूप दिया गया है। **पउमचरियं** के अनुसार भी सीता ने अग्नि-परीक्षा से अपने सतीत्व को प्रमाणित किया था। जब राम ने सीता से अयोध्या में रहने का अनुरोध किया तो उन्होंने बाल कटाकर जैन दीक्षा ले ली। क्षुद्र स्वार्थी जैन लोग दीक्षा देने की धुन में सब कथाओं को मनमानी ढंग से विकृत करते हैं। पर्व १०२ में कहा गया है कि रत्नचूल, मणिचूल नामक देवताओं ने राम और लक्ष्मण के प्रेम की परीक्षा लेने के उद्देश्य से लक्ष्मण को राम की मृत्यु का मिथ्या समाचार सुना दिया, जिससे तत्काल लक्ष्मण का देहावसान हो गया। राम के पुत्र लवण और अंकुश लक्ष्मण की मृत्यु से विरक्त होकर तप करने चले गये। राम लक्ष्मण की अत्येष्टि करके लवण-पुत्र अङ्गरुह को राज्य सौंप कर तपस्वी के रूप में भ्रमण करने लगे। उनके अनुसार राम सब प्रलोभनों को ठुकराकर कैवल्य ज्ञान प्राप्त कर १७००० वर्ष जीवित रह कर निर्वाण प्राप्त करते हैं। जिनके नाम से संसार को निर्वाण मिलता है, निरीश्वरवादी जैन उन राम के लिए तपस्या द्वारा निर्वाणप्राप्ति की बात करते हैं। इनके द्वारा कल्पित नाम भी इनकी बातों को मिथ्या सिद्ध करते हैं, क्योंकि आज तक ये नाम व्यवहार में आये हो नहीं।

ब्रह्मपुराण (अध्याय १५४) के अनुसार अङ्गद और हनुमान् राम के अश्वमेध के अवसर पर अयोध्या पहुँच कर सीता-त्याग का वृत्तान्त सुनकर गोदावरी की ओर प्रस्थान करते हैं। इसपर राम सीता का स्मरण करते हुए अयोध्यावासियों के साथ गोदावरी के तट पर तपस्या करने जाते हैं। बुल्के कहते हैं कि यह **पउमचरियं** का प्रभाव है। परन्तु यह असङ्गत है, क्योंकि वैदिक पुराण जैन कथाओं से अत्यन्त प्राचीन हैं, यह कहा जा चुका है। **ब्रह्मपुराण** भी व्यासदेव की ही उक्ति है।

सुखान्त कथा

उत्तररामचरित के अनुसार राम अपने पुत्रों तथा सीता के साथ अयोध्या लौट आते हैं। क्षेमेन्द्रकृत **बृहत्कथामञ्जरी** के अनुसार राम वाल्मीकि द्वारा उक्त अपने पुत्र कुश और लव को एवं विशुद्धा दयिता पत्नी को अयोध्या लाये—

"पुत्रौ कुशलवाभिख्यौ उक्तौ वाल्मीकिना स्वयम्।
तौ प्राप्य रामो दयितां विशुद्धामानिनाय ताम्॥"

कुन्दमाला के अनुसार भी पृथिवी स्वयं प्रकट हो सीता के सतीत्व का साक्ष्य देकर लुप्त हो जाती है। तत्पश्चात् राम सीता तथा पुत्रों के साथ अयोध्या लौटते हैं। **आनन्दरामायण** के अनुसार राम धनुष पर बाण रख

कर सृष्टि का संहार करना आरम्भ करते हैं तब पृथिवी भयभीत होकर सीता को लोटा देती है। पूर्णकाण्ड के अनुसार सोमवंशी राजाओं के आक्रमण तथा सन्धि के पश्चात् हस्तिनापुर में ब्रह्मा ने राम से वैकुण्ठ पधारने का आग्रह किया। राम ने स्वीकार किया। राम ने एक विशाल सेना के साथ कुश को राजधानी में भेज दिया। मन्थरा तथा धोबी को स्वर्ग जाने की अनुमति नहीं मिली। विभीषण, जाम्बवान् तथा हनुमान् को पृथिवी पर रहने का आदेश मिला। राम विष्णु के रूप में व्यक्त हो गये, सीता लक्ष्मी, लक्ष्मण शेष भगवान् तथा भरत और शत्रुघ्न शङ्ख और चक्र के रूप में परिणत हो गये। वानर देवताओं के शरीर में और अयोध्यावासी अपना शरीर त्यागकर दिव्य देह-धारियों के रूप में सुशोभित होने लगे। **कथासरित्सागर** (१।१।११२), **जैमिनीयाश्वमेध** (**अ० ३६**), **पद्मपुराण** (**पातालखण्ड अ० ६७**), **रामचन्द्रिका** (**प्रकाश ३८**), **रामलिङ्गामृत** आदि के अनुसार कुश और लव युद्ध के बाद सीता राम से मिल कर उनके साथ अयोध्या लौट जाती हैं।

तिब्बतीरामायण के अनुसार हनुमान् अन्य वानरों के साथ अयोध्या आने का निमन्त्रण पाकर राम से मिलते हैं। सीता त्याग का वृत्तान्त सुनकर वह वर्णन करते हैं कि किस परिस्थिति में उन्होंने सीता को लङ्का में देखा था। हनुमान् का प्रमाण स्वीकार करके राम सीता को बुला भेजते हैं। जिसपर सीता पुत्रों के साथ लौटती हैं। **सेरीराम** में सीता की शपथ क्रिया के फलस्वरूप किकवी देवी तथा सब जानवरों को १२ वर्ष तक गूँगा देखकर राम को विश्वास हुआ कि सीता निर्दोष है। अतः वे सीता को अयोध्या लाने के लिए महरीसी कलि के यहाँ चले आये। उन्होंने राम का अभिप्राय जानकर राम और सीता के १४ दिवसीय विवाहोत्सव का आयोजन किया। जिसके अन्त में सीता अपने पुत्रों के साथ राम की राजधानी लौटीं। वहाँ किकवी देवी ने क्षमा याचना की। उससे उसका तथा सब जानवरों का गूँगापन दूर हो गया। पुत्रों के विवाह के बाद राम किसी तपस्वी के पास अयोध्या में तपस्वी जीवन बिताने लगे। चालीस वर्ष तक तपश्चर्या कर के राम परम धाम गये। **सेरतकाण्ड** में भी सीता-त्याग के बाद सीता और राम का सम्मिलन वर्णित है। लव को उत्तराधिकारी बना कर राम ने सीता, लक्ष्मण और विभीषण के साथ तपोमय जीवन बिताया। अन्त में वानर देवभाव में तथा सीता और राम लक्ष्मी तथा विष्णु के रूप में प्रकट हो गये। रघुनाथ महन्त के **अद्भुतरामायण** के अनुसार पातालप्रवेश के बाद सीता को अपने पुत्रों को देखने की इच्छा होती है। उन्होंने वासुकि को उन्हें लाने भेजा। वासुकि ब्राह्मण के वेष में बालकों को अस्त्र-विद्या सिखाने का बहाना बना कर उनको सीता के पास ले गये। राम ने उन्हें वापस लाने के लिए हनुमान् को भेजा। हनुमान् स्त्रीरूप धारण कर पाताल में प्रविष्ट होकर रत्नमञ्जरी नामक सीता की सखी कहकर सीता के पास जाने लगे। सीता ने नागों को आदेश दिया कि इस स्त्री को पकड़ लाओ। तब हनुमान् वानररूप से सबको परास्त करते हैं। तदनन्तर उन्होंने सीता से मिलकर लव और कुश को राम के पास ले जाने का निवेदन किया। सीता सहमत हुईं। वे स्वयं सिंहासन पर विराजमान होकर राम के समक्ष भूमि से प्रकट हुईं। राम के हाथों लव और कुश का समर्पण कर सीता यह प्रतिज्ञा कर अन्तर्धान होती हैं कि प्रतिदिन नित्य क्रिया के पश्चात् आपकी सेवा में उपस्थित हुआ करूँगी। **रामकेर्ति** एवं **रामकियेन** के अनुसार लव-कुश-युद्ध के बाद सीता ने दोनों पुत्रों को सौंप दिया। अयोध्या लौटाने का राम का अनुरोध स्वीकार नहीं किया। जब राम ने अपनी मृत्यु का समाचार भिजवाया तब सीता लौट कर राम के शरीर के सामने विलाप करने लगी। तब राम परदे की ओट से प्रकट होकर सान्त्वना देने लगे। तब वे क्रुद्ध होकर नागराज विरुण की शरण लेकर पृथ्वी में प्रवेश कर गयी। हनुमान् ने भी पाताल जाकर सीता से लौटने का अनुरोध किया। सीता ने अस्वीकार कर दिया। अन्त में राम के राक्षस-वध कार्य से सन्तुष्ट हो इन्द्र ने देवताओं की सभा में ईश्वर से राम के विरह का वर्णन किया। ईश्वर ने राम और सीता दोनों को कैलास बुला कर समझाया। राम ने सीता से क्षमा माँगी। अन्त में सीता ईश्वर का अनुरोध मान कर अपने पति के साथ अयोध्या लौट गयीं। इस तरह अनेक कथाएँ बुल्के ने उद्धृत कर रामकथा में अराजकता फैलाने का प्रयत्न किया

है। उनके मतभेद का अनुचित लाभ उठाकर वे सबको अप्रामाणिक एवं विकास या प्रक्षेप सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। वस्तुतः **वेद, उपनिषद्, वाल्मीकिरामायण, महाभारत** और **पुराणों** के अनुसार ही रामचरित का निर्धारण किया जा सकता है। अन्य कथाओं को उनके अनुकूल ही लगाना चाहिये। राम सीता के सम्बन्ध में सदा ही शङ्कारहित थे। लोकापवाद निवारण एवं लोकसंग्रह की दृष्टि से ही राम ने अग्निपरीक्षा के पहले ही शङ्का की थी। अग्नि-परीक्षा के वाद तो शङ्का का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था, किन्तु स्वयं राम के द्वारा अग्नि-परीक्षा तथा सीताशुद्धि का प्रचार इतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता, जितना एक कन्द-मूल-फलाशी, वल्कलवसनधारी तपोधन महर्षि के द्वारा उचित समझा गया। इसी लिए लोकापवाद के कारण सीता को वन में भेजना ही उचित समझा। **वाल्मीकिरामायण, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, रघुवंश, उत्तर-रामचरित** आदि में स्पष्ट देखा गया है कि राम का सीता में शुद्धप्रेम ज्यों का त्यों था, और यज्ञों में सीता की स्वर्णप्रतिमा ही यजमानपत्नी के रूप में विराजमान थी। सीता भी राम की इस स्थिति को जानती थी। रघुवंश के अनुसार उन्होंने यही कहा था कि प्राणीमात्र के प्रति कल्याण बुद्धि रखनेवाले आपका मुझपर कामचार नहीं है। यह दुःख वज्रपात मेरे ही कर्मों का फल हो सकता है—

"कल्याणबुद्धेरथवा तवायं न कामचारो मयि शङ्कनीयः।
ममेव जन्मान्तरपातकानां विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः॥"

आगे वह कहती हैं—

"साऽहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥"

मैं प्रसव के अनन्तर सूर्याभिमुख रहकर इसलिए तपश्चर्या करूँगी कि जिससे जन्मान्तर में भी आप ही मेरे भर्ता हों और पुनः कभी वियोग न हो। इससे विरुद्ध कल्पनाएँ देश और काल की परिस्थिति के प्रभाव से विकृति-स्वरूप ही समझनी चाहिये।

उपसंहार

उपसंहार में बुल्के ने पूर्व की वस्तुओं को दुहराया भर है। वे आदि कवि महर्षि वाल्मीकि की रचना का आधार उन प्रत्यक्ष अनुभवों एवं आर्ष विज्ञानों, जो **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित हैं, को न मानकर रामकथाविषयक गाथाओं तथा आख्यानकाव्यों को मानते हैं, जो कि उपस्थित का परित्याग एवं अनुपस्थित की कल्पना ही है। वे कहते हैं कि "जिस दिन प्राचीन गाथासाहित्य को वाल्मीकि ने एक कथासूत्र में ग्रथित कर आदिरामायण की सृष्टि की थी, उसी दिन से रामकथा की दिग्विजय प्रारम्भ हुई थी और वह काल भी ईसा की कुछ शती पूर्व का ही है।" परन्तु वह सत्य का अपलाप ही है। वाल्मीकिरामायण से ही विदित है कि राम के राज्यकाल में ही ब्रह्मा की प्रेरणा से आर्ष ज्ञान प्राप्त कर महर्षि ने सीताचरित्र या रामायण का निर्माण किया था। सीता के पुत्र कुश एवं लव को गानविद्योपजीवी कहना भी वाल्मीकिरामायण बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड के सर्वथा विरुद्ध है। महाभारत रामोपाख्यान, हरिवंश आदि सभी प्रचलित रामायण पर ही निर्भर हैं। उनका आधार बुल्के की तथाकथित आदिरामायण प्रमाणशून्य ही है। राम का अवतार भी भावना नहीं प्रमाण-सिद्ध वस्तुस्थिति है। बौद्ध और जैन साहित्य में जैनी साधक या बोधिसत्त्व बनकर स्थान प्राप्त करना राम के लिए कोई महत्त्व की बात नहीं है। किन्तु जैनों और बौद्धों ने रामकथा की लोकप्रियता का अनुचित लाभ उठाकर कथा को विकृत ही बनाया है। वे कहते हैं कि "जैनियों के अनुसार राम, लक्ष्मण तथा रावण जैनधर्मावलम्बी ही नहीं, जैनियों ने उन्हें अपने महापुरुषों में स्थान दिया है। राम ब्राह्मण-

धर्म में विष्णु के अवतार, बौद्धों में बोधिसत्त्व, तथा जैनधर्म में आठवें बलदेव माने गये हैं। संस्कृतसाहित्य, संस्कृत-ललितसाहित्य की प्रत्येक शाखा में, भारतीय भाषाओं एवं निकटवर्ती देशों के साहित्यों में रामकथा एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्तकर सकी। इस विस्तृत रामकथासाहित्य से रामकथा की व्यापकता और लोकप्रियता का अनुमान किया जा सकता है।" किन्तु राम के स्वाभाविक अनन्त गुणों एवं महिमा का यह अनिवार्य प्रभाव था। जैसे विरोधी भी किसी न किसी रूप में ईश्वर से प्रभावित होते हैं, उसी तरह राम के आदर्श एवं चरित्रों के विरोधी लोग भी रामकथा से असंस्पृष्ट नहीं रह सके।

अनु० ७६० वें में वे कहते हैं कि "संस्कृत-धार्मिकसाहित्य में रामकथा का व्यापक प्रभाव कम था, क्योंकि एक तो वैदिक साहित्य के निर्माणकाल में रामकथा प्रचलित नहीं थी, दूसरे रामभक्ति की उत्पत्ति से पूर्व जनसाधारण के धार्मिक जीवन में रामकथा के लिए व्यापक स्थान नहीं था। वैदिक साहित्य में रामकथा का नितान्त अभाव था। हरिवंश तथा प्राचीनतम पुराणों में अवतारों के साथ राम का नाम भी लिया गया है। इनकी संक्षिप्त कथा आदिरामायण पर समाश्रित थी। बाद के **महापुराणों** तथा **उपपुराणों** में रामकथाविषयक सामग्री बढ़ने लगी। विशेष कर **स्कन्दपुराण**, **पद्मपुराण** तथा **महाभागवत** देवीपुराणों में रामभक्ति पल्लवित होने के पश्चात् असंख्य साम्प्रदायिक रामायणसंहिताएँ प्रचलित हुईं, जिनमें **अध्यात्मरामायण**, **अद्भुतरामायण**, **आनन्दरामायण**, **तत्त्वसंग्रह** आदि उल्लेख्य हैं।"

इससे स्पष्ट ही है कि बुल्के अपनी काट-छांट से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि रामायण ई० दो तीन शताब्दी पूर्व लिखी गयी। उसमें भी राम को विष्णु या ब्रह्म नहीं माना गया था। वेदों के समय रामकथा नहीं थी। रामभक्ति एवं रामकथा अर्वाचीन ही हैं। रामभक्ति के प्रभाव से ही विविध रामायणों में परिवर्तन, परिवर्धन, विकास और प्रक्षेप हुए हैं। इस तरह वे छलछद्म से रामकथा के प्रशंसक बनकर भी वस्तुतः उसका एवं उसके नायक राम का अपकर्ष ही वर्णन करते हैं। पर वस्तुस्थिति ठीक इसके विपरीत है। वेद तथा उपनिषदें अनादि हैं। उनके उपबृंहणभूत **रामायण**, **महाभारत**, **पुराण** भी अनादि हैं। उनका समय-समय पर ऋषियों द्वारा आविर्भावमात्र होता है। उनके अनुसार राम अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक परब्रह्म हैं। उनकी भक्ति अनादि है। वैदिक साहित्य में भी रामकथा पर्याप्तमात्रा में है ही। **रामायण** उसी का उपबृंहणमात्र है। यह सब मेरे लिखे तत्तत् प्रकरणों से सिद्ध है। वे **रघुवंश**, **रावणवध**, **भट्टिकाव्य**, **महावीरचरित**, **जानकीहरण**, **कुन्दमाला**, **अनर्घराघव**, **बालरामायण**, **महानाटक** आदि तथा रामसम्बन्धी श्लेषकाव्य, **विलोमकाव्य**, **चित्रकाव्य** तथा **शृंगारिक** खण्डकाव्यों से संस्कृतसाहित्य में रामकथा का विकास मानते हैं। आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी रामकथा की व्यापकता अद्वितीय है। किन्तु इन सब भाषाओं का सर्वप्रथम महाकाव्य प्रायः कोई रामायण ही है तथा बाद की बहुत सी रचनाओं की कथावस्तु भी रामकथा से सम्बन्ध रखती है। इसके अतिरिक्त इन सब भाषाओं का सबसे लोकप्रिय काव्यग्रन्थ प्रायः कोई रामायण ही है। उनमें **तमिलरामायण**, **द्विपदरामायण**, **तोरवेरामायण**, **असमियारामायण**, **कृत्तिवासरामायण**, **रामचरितमानस**, **बलरामदासरामायण**, **भावार्थरामायण** आदि काव्य हैं। परन्तु बुल्के उनके प्रतिपाद्य सिद्धान्तों को महत्त्व नहीं देते। उन सिद्धान्तों एवं प्रतिपाद्य अंशों को भक्तभावना का विलास एवं विकासमात्र मानकर सन्तोष कर लेते हैं। वे अपने को तुलसीदास का विशेष भक्त कहते हैं, किन्तु तुलसी के परब्रह्म राम को वे उनकी भावनामात्र मानते हैं। वे भारतीय साहित्य में रामकथा की व्यापकता की अपेक्षा विदेश में उसको लोकप्रियता को आश्चर्यजनक मानते हैं। उनमें बौद्ध अनामकं जातकं, दशरथकथानं और उनके चीनी भाषानुवाद, तिब्बती, खोतानी आदि रामायण भी हैं। हिन्देशिया की **सेरीराम**, **सेरतकाण्ड**, **रामकेर्ति**, **रामकियेन** आदि प्रमुख हैं। बुल्के यह भी मानते हैं कि रामकथा की इस व्यापकता एवं लोकप्रियता का श्रेय वाल्मीकिकृत **रामायण** को ही है। विश्वसाहित्य के इतिहास में शायद ही किसी ऐसे कवि का प्रादुर्भाव हुआ हो जिसने भारत के आदि कवि के समान इतने व्यापक रूप

से परवर्त्ती साहित्य को प्रभावित किया हो। बुल्के का यह कथन तभी महत्त्वपूर्ण होता यदि वे **वाल्मीकिरामायण** के भारत एवं भारतीय टीकाकारों द्वारा स्वीकृत रूप को मानते और तदनुसार ही राम की नररूपता के साथ नारायण-रूपता भी समझ पाते। अतः पाश्चात्य ईसाई कूटनीतिज्ञों की प्रशंसा निस्सार तथा अविश्वसनीय ही होती हैं। जैसे कि मैक्समूलर ने एक जगह वेदों को मानव जाति की सर्वप्रथम भाषा कहकर प्रशंसा की है। अन्यत्र यह भी कह दिया है कि आज हम जिस परिस्थिति में रह रहे हैं उसमें वेदमन्त्र जैसे ऊलजलूल वस्तुओं को मँडराते रहने का कोई अधिकार नहीं है। वे कहते कि प्रस्तुत सिंहावलोकन सामग्री से स्पष्ट है कि रामकथा न केवल भारतीय वरन् एशियाई संस्कृति का महत्त्वपूर्ण तत्त्व बन गयी है। वस्तुतः तोड़-मरोड़ एवं विविध विकृतियाँ रामकथा में अगर न लायी गयी होतीं तो वह सम्पूर्ण विश्व एवं मानवता की संस्कृति का सर्वस्व होता। अब भी अविकृत **वाल्मीकिरामायण** महाकाव्य सम्पूर्ण संसार के सन्मुख सर्वाङ्गीण सर्वतोमुखी, सर्वतोभद्र अभ्युदय एवं निःश्रेयस का मार्ग और आदर्श उपस्थापित करता है।

७६५ वें अनु० में विभिन्न रामकथाओं की मौलिक एकता की चर्चा करते हुए वे डा० वेबर, डा० याकोबी, दिनेशचन्द्र आदि के मतों की आंशिक समालोचना भी करते हैं। बेचारे वेबर तो फिर भी सीताहरण, रावण आदि का मूल रूप वैदिक साहित्य में ही मानते हैं, परन्तु बुल्के वैसा नहीं मानते हैं। बुल्के यह भी कहते हैं कि "उनकी दृष्टि में दूसरे भाग की घटनाओं का मूल रूप वैदिक साहित्य में सुरक्षित है, इसके लिए कोई प्रमाण नहीं दिया गया। इस भाग की प्रधान कथावस्तु "स्त्रीहरण और उसके लिए युद्ध" असाधारणतया अलौकिक नहीं कही जा सकती। अतः राम के निर्वासन की भाँति सीताहरण तथा रावण-वध अर्थात् रामकथा की समस्त आधिकारिक कथावस्तु का ऐतिहासिक आधार मानना अधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। अतः रामकथा के दो अथवा तीन स्वतन्त्र भागों की कल्पना का कहीं भी समाचीन आधार नहीं मिलता, अतः रामकथाविषयक आख्यानकाव्य एक ही मूल स्रोत रह जाता है। अर्थात् एक ऐतिहासिक घटनासम्बन्धी प्राचीन आख्यानकाव्य के आधार पर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की।" परन्तु समुद्र पार के रहनेवाले तथा भारतीय परम्परा से सर्वथा अनभिज्ञ बुल्के को जानना चाहिये कि उनकी इस कल्पना से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण स्वयं रामायण के अविभाज्य अङ्ग बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड हैं, जिनमें रामायण का मूलस्रोत वेद, उपनिषद् तथा ब्रह्मा का वरदान, महर्षि वाल्मीकि की समाधिजा ऋतम्भरा प्रज्ञा तथा आर्षज्ञान द्वारा सम्पूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का प्रत्यक्ष दर्शन रामायण का मूल स्रोत है। वेद का उपबृंहण करने के लिए ही महर्षि ने अपने शिष्य सीतापुत्रों को **वाल्मीकिरामायण** महाकाव्य पढ़ाया था। पुराणों द्वारा भी इसी की पुष्टि होती है। पुराण तो स्पष्ट ही कहते हैं—वेदवेद्य परमात्मा जब दशरथनन्दन राम के रूप में प्रकट हुए तब साक्षात् वेद भी रामायण के रूप में महर्षि प्राचेतस के मुख से अवतीर्ण हुए—

"वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥"

लौकिक घटनाओं द्वारा भी अलौकिक तत्त्व का सम्बन्ध रहता है। लौकिक वाक्, त्वक् और चक्षु द्वारा भी सात्त्विकी, राजसी, वैदिकी तथा लौकिकी प्रवृत्तियों के संघर्ष से भी देवासुर-संघर्ष परिलक्षित होता है। यह छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक उपनिषदों की प्राणविद्या से स्पष्ट है। लौकिक भोजन में भी प्राणाग्निहोत्र का विधान है। उसी तरह राम और रावण एवं कौरव और पाण्डव संघर्ष द्वारा देवासुर-संग्राम बोधित होता है, पर वह गौणरूप से ही। उस स्थिति में कृषि की अधिष्ठात्री सीता तथा पर्जन्य एवं इन्द्र के अधिष्ठाता देवता राम एवं वृत्र का प्रतिनिधि रावण सरलता से समझा जा सकता है। वृत्र या रावण द्वारा परिम्लान कृषिदेवता सीता का संत्राण इन्द्र राम द्वारा होना स्वाभाविक है। आन्तर देवासुर-संघर्ष ही कभी बाह्य राम-रावण के संघर्ष तथा कौरव-पाण्डव के संघर्ष का रूप धारण

कर लेता है। **मन्त्ररामायण** के विवरण में वेदमन्त्रों द्वारा अनेक रामचरित वर्णित हैं। उपनिषदों में और व्यक्तरूप से रामचरित का वर्णन है। इस तरह अलौकिक तथा नित्य होने पर भी रामकथा लौकिक एवं ऐतिहासिक हो जाती है। ऐसे प्रामाणिक स्रोत को छोड़कर अप्रामाणिक अनुपलब्ध काल्पनिक गाथाओं एवं आख्यानों को रामायण का स्रोत मानना सर्वथा असङ्गत ही है। बौद्ध-त्रिपिटक की गाथाएँ तथा महाभारत वनपर्व तथा द्रोणपर्व की अत्यन्त संक्षिप्त रामकथाएँ भी **वाल्मीकिरामायण** पर ही निर्भर हैं, क्योंकि विस्तृत कथा से ही आवश्यकतानुसार संक्षेप किया जा सकता है। वेदों एवं उपनिषदों में बड़ी से बड़ी कथाओं का भी सूत्ररूप में वर्णन होता है। अतः उन्हें भी आख्यानकाव्यों पर आधृत मानना उचित है। वस्तुस्थिति तो यह है कि जैसे आज अनेक आख्यान **वाल्मीकिरामायण** पर ही निर्भर हैं वैसे ही पाली, चीन, बौद्ध रामकथाएँ भी **वाल्मीकिरामायण** का ही विकृत रूप हैं। अतएव बुल्के यह ठीक ही कहते हैं कि उनका मूल स्रोत ब्राह्मण-रामकथा ही है। चाहे गद्य हो चाहे संक्षिप्त हो उनका आधार अप्रामाणिक अनुपलब्ध आख्यान नहीं हैं। जैसे **महाभारत** का संक्षिप्त रामोपाख्यान **रामायण** पर निर्भर है वैसे ही अतिसंक्षिप्त पूर्वोक्त चीनी और पाली कथाएँ तथा द्रोणपर्व और शान्तिपर्व की अतिसंक्षिप्त कथाएँ भी **रामायण** पर निर्भर हैं। यह मानना उचित है। बुल्के कहते हैं कि जैन रामकथा में न केवल मिथ्या ब्राह्मण-रामकथा का उल्लेख है वरन् इनके कथानक के निरीक्षण से स्पष्ट है कि जैन कवि **वाल्मीकिरामायण** से भली-भाँति परिचित थे तथा उन्होंने उसकी कथावस्तु के प्रसङ्गों को जानबूझकर बदलकर एक नया रूप दिया है। इस सम्बन्ध में हम बुल्के से सर्वथा सहमत हैं। वज्रमुख की कन्या लङ्का देवी का वृत्तान्त, नल तथा नील द्वारा समुद्र, सेतु तथा सुवेल राजाओं की पराजय, द्रोणमेघ की कन्या बिशल्या के स्नानजल से लक्ष्मण की चिकित्सा करने का प्रसङ्ग इसके उदाहरण समझे जा सकते हैं। अन्य संस्कृत तथा भारतीय भाषाओं के साहित्यों तथा विदेशी रामकथा-साहित्य का मूल स्रोत **वाल्मीकिरामायण** की रामकथा ही है। यह भी बुल्के का कहना ठीक ही है।

इस अत्यन्त विस्तृत भारतीय तथा विदेशी रामकथा-साहित्य में कहीं परस्पर विरोधी बातें मिलती हैं। इस विरोध का साम्प्रदायिक साहित्य में समन्वय है ही। विभिन्न कल्पों में कोटि-कोटि रामावतार हुए हैं। इन असंख्य अवतारों के कारण रामचरित में विभिन्नता आ गयी है। परन्तु बुल्के इसे साम्प्रदायिक मत मानते हैं। लेकिन यह संगत नहीं है। बुल्के राम को ईश्वर नहीं मानते, न ही उन्हें ईश्वर का अवतार मानते हैं। इसी लिए उन्हें यह साम्प्रदायिक प्रतीत होता है। परन्तु **वाल्मीकिरामायण** में राम की ब्रह्मरूपता, युद्धकाण्ड जैसे सर्वसम्मत प्रामाणिक काण्ड में भी, स्वीकृत है। तभी **आनन्दरामायण** का यह कहना सम्मत हुआ है कि—

> "पुनः पुनः कल्पभेदाज्जाताः श्रीराघवस्य च।
> अवताराः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः क्वचित् क्वचित्॥" (पूर्णकाण्ड ७।२९)

तुलसीदास भी यही कहते हैं—

> **"कलप भेद हरिचरित सुहाये। भाँति अनेक मुनीसन गाये॥"**

मत्स्यपुराण (५३।१०), **अद्भुतरामायण** (सर्ग १), **आनन्दरामायण** (यात्राकाण्ड सर्ग २; राज्य-काण्ड सर्ग १), **पद्मपुराण** (४।१।२४) आदि में वाल्मीकिकृत एक शतकोटिप्रविस्तर रामायण का उल्लेख है, जिसके विभाजन से ही विभिन्न रामायणों का आविर्भाव है। सम्प्रदाय शब्द का अर्थ है—किसी विद्या का, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा अवान्तर किसी विषय का अनादि अविच्छिन्न पारम्पर्य। यहाँ सम्प्रदाय शब्द का अनुचित या संकीर्ण दलबन्दी या फिरकापरस्ती अर्थ नहीं है, जैसा कि आजकल समझा जाता है। उसी अविच्छिन्न आचार्य-पारम्पर्य रूप सम्प्रदाय के बल पर वेद की अपौरुषेयता तथा अनादिता स्थित है। उसी आधार पर मन्त्र के तुल्य ही ब्राह्मणभाग का भी अविच्छिन्न पारम्पर्य है–"तुल्यं साम्प्रदायिकम्" (जै० सू०) में कहा गया है कि जैसे मन्त्रों में साम्प्रदायिकता

के आधार पर अनादिता अपौरुषेयता है वैसे ही ब्राह्मणभाग में भी साम्प्रदायिकता अनादि अविच्छिन्न आचार्य-पारम्पर्य के कारण अपौरुषेय अनादि होने से स्वतः प्रामाण्य मान्य है। अतएव उस प्रामाणिक साहित्य में रामकथाओं का मूलस्रोत शतकोटिश्लोकात्मक रामायण ही है। विभिन्न अवतारों के कारण कथाओं में मौलिक भेद भी इसी तरह उपपन्न हो जाता है। परन्तु बुल्के इसे न मानने में हेतु देते हुए कहते हैं—"एक ओर इसी प्रकार की रामकथाओं के अस्तित्व के बहिरङ्ग प्रमाण नहीं दिये जा सकते और दूसरी ओर अन्तरङ्ग प्रमाण नहीं मिलते।" परन्तु उनके दोनों हेतु स्वयं में निष्प्रमाण हैं, क्योंकि अतीत घटनाओं में प्रमाण प्रामाणिक उल्लेख ही हो सकता है। प्रामाणिक उल्लेख पुराणों तथा रामायणों में मिलता ही है। विभिन्न गाथाओं या आख्यानकाव्यों का तो स्वरूप ही उपलब्ध नहीं है, फिर उनमें अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग प्रमाण का तो प्रश्न ही नहीं उठता। क्योंकि जिसका स्वरूप ही सिद्ध नहीं होता उसका किसी भी हेतु से त्राण नहीं होता—

"न तस्य हेतुभिस्त्राणमुत्पतन्नेव यो हतः।"

दार्शनिकों का मत है कि हेतुओं से उसकी रक्षा नहीं हो सकती जो उत्पन्न होते ही मर जाता है। फलतः **वाल्मीकिरामायण**, **आनन्दरामायण** तथा पुराणों आदि के अनुसार भी शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** ही सब रामकथाओं का मूलस्रोत है। उस मूल के भी मूलस्रोत वेद तथा उपनिषद ही हैं।

बुल्के की रामकथा में रामकथा-साहित्य की विभिन्नताओं का जो तुलनात्मक अध्ययन किया गया है वह स्वयं अशुद्ध, असङ्गत और अपूर्ण है, यह दिखाया जा चुका है। परन्तु आज शतकोटिप्रविस्तर रामायण प्रमाणसिद्ध होने पर भी सम्पूर्ण रूप से वैसे ही उपलब्ध नहीं है जैसे ११३१ वेदों की शाखाएँ होने पर भी उपलब्ध नहीं हैं। फलतः शतकोटिप्रविस्तर **रामायण** आज उपलब्ध नहीं है, किन्तु उसका सारभूत चतुर्विंशतिसाहस्री संहिता **वाल्मीकिरामायण** विद्यमान है। प्रायः अधिकांश भारतीय एवं अभारतीय रामकथाओं का आधार वही है। फिर भी **अध्यात्मरामायण**, **अद्भुतरामायण**, **आनन्दरामायण**, **वसिष्ठरामायण** तथा **पुराणों**, **संहिताओं** तथा विभिन्न रामायणों को जिनका **वाल्मीकिरामायण** से समन्वय नहीं हो सकता तथा जिनमें मौलिक भेद है उन सब **रामायणों को** शतकोटि प्रविस्तर **रामायण** का ही अंश मानना उचित है। बुल्के की दृष्टि है कि उन सबको विकास, परिवर्धन, परिवर्तन या मिथ्या कल्पना ही समझना चाहिए। किन्तु उनकी दृष्टि में प्रचलित **रामायण** भी प्रामाणिक नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** के बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड सर्वथा नवीन हैं तथा शेष काण्डों में भी पर्याप्त प्रक्षेप हैं। उनकी तथाकथित आदि-रामायण भी उन गाथाओं आख्यान काव्यों पर निर्भर है जिनका अस्तित्व ही न तो उपलब्ध है और न प्रमाणसिद्ध ही है। ऐसी स्थिति में उनके अनुसार प्रसिद्ध एवं उपस्थित का अपलाप, प्रामाणिक वेद, उपनिषद्, **शतकोटिप्रविस्तर रामायण**, वर्तमान **वाल्मीकिरामायण** तथा अन्य **रामायणसंहिताओं** और पुराणों की रामायणों का अप्रामाण्यापादन और अप्रसिद्ध की कल्पना तथा उसका प्रामाण्यापादन आदि अनेक दोष आते हैं।

७६८ वें अनु० में वे कहते हैं कि "रामायण के प्रामाणिक काण्डों (अर्थात् अयोध्या से लेकर युद्धकाण्ड तक पाँच काण्डों) के कथानक पर आदि कवि की छाप इतनी स्पष्ट है तथा इसमें आधिकारिक कथावस्तु की गति इस प्रकार अबाधरूप से आगे बढ़ती है कि बाद की रामकथाओं में इन काण्डों का कम विकास हुआ है।" इससे स्पष्ट ही है कि बुल्के **बालकाण्ड** तथा **उत्तरकाण्ड** को प्रामाणिक नहीं मानते तथा अवशिष्ट पाँच काण्डों में भी जिन्हें वे प्रामाणिक मानते हैं, उनमें भी परिवर्धन, विकास या प्रक्षेप मानते हैं। फलतः इन काण्डों में राम, सीता आदि की ब्रह्मरूपता, लक्ष्मीरूपता और हनुमान् आदि की दिव्यता देवरूपता आदि का जो वर्णन है उसे वे प्रक्षिप्त या विकास का परिणाम मान लेते हैं। इसी तरह बुल्के अर्वाचीन साहित्यों में मायासीता के हरण को महत्त्वपूर्ण परिवर्तन मानते हैं। और उसका आधार उनकी दृष्टि में आदर्शवाद और भक्तिभावना ही है। अतएव वे कहते हैं कि माया-सीता के इस

वृत्तान्त का क्रमिक विकास देखकर किसी स्वतन्त्र रामकथा की कल्पना नितान्त निर्मूल सिद्ध होती है। बुल्के का उक्त कथन भी निस्सार है, क्योंकि यह कहा जा चुका है कि ईश्वर के ऐश्वर्यपूर्ण और माधुर्यपूर्ण दो प्रकार के चरित्र होते हैं। प्रथम पक्ष में अलौकिकता तथा दिव्यता का वर्णन बाहुल्येन होता है। द्वितीय पक्ष में लौकिकता का प्राधान्य रहता है। प्रथम पक्ष वैधी भक्ति का विषय होता है एवं द्वितीय पक्ष रागानुगा भक्ति का विषय होता है। **बाल्मीकिरामायण** में अधिकांश माधुर्यपूर्ण चरित्र का वर्णन होने से लौकिकता का ही प्राधान्य है। उपनिषदों, पुराणों, संहिताओं तथा अध्यात्म आदि रामायणों में ऐश्वर्यपूर्ण चरित्र का प्राधान्येन वर्णन है। फलतः **बाल्मीकिरामायण** में सामान्यतया राम को एक आदर्श पुरुष तथा सीता को एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया गया है। क्वचित् क्वचित् प्रसंगानुसार उनकी ब्रह्मरूपता भी वर्णित है। परन्तु द्वितीय पक्षवाले ग्रन्थों में अलौकिक अंशों का ही प्राधान्येन वर्णन है, अतः उन ग्रन्थों में मायासीता-हरण का वर्णन ठीक ही है। इसके अतिरिक्त रावण आदि का मरण देवताओं और दानवों के द्वारा न होकर नर और वानरों द्वारा ही होता है; इसलिए भी राम, सीता, सुग्रीव, हनुमान् आदि के लौकिक रूप का ही प्राधान्येन वर्णन है।

स्वतन्त्र रामकथा न होने पर भी अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग, व्यक्त तथा अव्यक्त रूप, गुण आदि का वर्णन सर्वथा सङ्गत ही है। अतीत घटनाओं एवं वस्तुस्थितियों में तर्कों एवं कल्पनाओं का मूल्य कुछ भी नहीं है, क्योंकि वे वस्तुस्थिति के विपरीत हो सकती हैं। इतिहास एवं देवता, ऋषि आदि के वचन ही मूल्य प्रमाण होते हैं। अतः मायासीता-हरण या राम और सीता की दिव्यरूपता तथा अलौकिकता को भक्तिभावना या आदर्शवाद से प्रेरित कल्पनामात्र कहकर उनको अप्रमाण मानना सर्वथा कलुषित मनोवृत्ति का परिचायक है और आर्ष वचनों का अप्रामाण्य सिद्ध करने का साहसमात्र है। **बाल्मीकिरामायण** से अन्य रामकथाओं में भी अधिकांश का समन्वय ही है। सीता, कुश, लव, हनुमान् आदि के जन्म और सम्बन्ध की विभिन्नता को लेकर बुल्के क्रमिक विकास की पुष्टि करना चाहते हैं। परन्तु विकास या कल्पनामात्र मानकर तो तत्सम्बन्धी आर्ष प्रमाणवचनों को झुठलाना होगा। विपरीत कल्पनाओं को निस्संकोच अप्रमाण ही मानना उचित है, जैसा कि सीता के जन्म के सम्बन्ध में बुल्के भी मानते हैं। दशरथजातक के अनुसार राम और लक्ष्मण दशरथ के औरस पुत्र एवं सीता औरस पुत्री थीं। इस तरह सीता राम और लक्ष्मण की सहोदरी बहन थीं। बुल्के कहते हैं कि दशरथजातक की रामकथा न केवल ब्राह्मण-रामकथा का विकृत रूप है वरन् उसका रचनाकाल भी **बाल्मीकिरामायण** के काल से शताब्दियों बाद ही मानना चाहिये।

अतः सीता का दशरथ-पुत्री होना बौद्धों की दुष्कल्पनामात्र है। **बाल्मीकिरामायण** के अनुसार सीता का अयोनिजा होना ही सिद्ध है। वेदवती-वृत्तान्त का भी उसी के साथ समन्वय दिखलाया गया है। **बाल्मीकिरामायण** की सामग्री से ही सीता की विभिन्न जन्मकथाओं का विकास हुआ है, यह अंशतः ठीक ही है। भूमिजा या अयोनिजा होने पर भी व्यवहारतः सीता जनकजा तो है ही। रावणात्मजा सीता का आर्ष ग्रन्थों से समर्थन नहीं होता, अतः उसे भी विकृति ही मानना उचित है।

हनुमान् की कथा का भी आधार **बाल्मीकिरामायण** ही है। उनके सम्बन्ध में भी बुल्के की विकासकल्पना निराधार है। पुराणों के अनुसार वे शिवावतार हैं। रामायण से भी अप्रतिषिद्ध होने से वह अनुमत ही है। वे वायुपुत्र अंजनीनन्दन हैं। शिव से हनुमान् के उत्पन्न होने की बात कल्पना नहीं है, वह पुराणादि सम्मत है। जैसे कार्तिकेय शिवपुत्र होने पर अग्नि ने रुद्रतेज को धारण किया था उसी तरह शिवतेज के वायु द्वारा अञ्जना को प्राप्त होने से उनके वातात्मज एवं शिवांश होने में कोई विरोध नहीं रह जाता।

सीतात्याग की कथाओं की मिथ्या कल्पना द्वारा रामायण से संगति लगाना वस्तुतः असंगत ही है। कवियों को रसाभिव्यक्ति के लिए सौष्ठव या रोचकता के अनुकूल रूपकों की कल्पनाओं में कुछ स्वातन्त्र्य अवश्य है।

परन्तु उसका आधार इतिहास एवं पुराण होना ही चाहिये। अतः पुराणों तथा संहिताओं के अनुसार कल्पभेद के अनुसार उनकी वास्तविकता को स्वीकार कर ही समन्वय करना उचित है। यही स्थिति सीतात्याग के सम्बन्ध में भी समझनी चाहिये। सामान्यतया लोकापवाद और धोबी के अपवाद में समन्वय हो ही सकता है, फिर भी यह तय है कि धोबी जैसे कुछ इनेगिने लोग ही सीता के निन्दक थे, तो भी राम ने बहुमत का ही नहीं अल्पमत का भी सम्मान करने का उदाहरण उपस्थित किया था। अतएव बहुजनहिताय बहुजनसुखाय जैसे आधुनिक आदर्श वाक्यों की अपेक्षा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय के आदर्श को प्रोत्साहन दिया था। रावण-चित्र आदि की कल्पना किसी अंश में प्रामाणिक होने पर भी सर्वांश में प्रामाणिक नहीं। **वाल्मीकिरामायण** प्रोक्त सीता के आदर्श के विरुद्ध सभी कल्पनाएँ अप्रामाणिक ही हैं। प्रामाणिक कथाओं का ही समन्वय करना आवश्यक है। अप्रामाणिक कल्पनाओं का तो खण्डन करना ही उचित है। इसी तरह रजस्तमोमयी छाया सीता का त्याग तथा सात्त्विकी सीता का राम के वामाङ्क में निवास भी विकास की परिणति न होकर वस्तुस्थितिमूलक ही है। और जैसा कि पीछे कहा जा चुका है—चन्द्र-चन्द्रिका, भानु-प्रभा, जल-तरङ्ग, अमृत-माधुर्य एवं आनन्द-माधुर्यसार-सर्वस्व का जैसे विप्रलम्भ हो ही नहीं सकता वैसे ही सीता राम का तो विश्लेषण असंभव ही है। किन्तु जब स्थूलरूप से दोनों विग्रहवान् होते हैं, तभी संयोग और वियोग की कथा भी उपस्थित होती है। उनमें भी छायामयी काल्पनिक या मायामयी सीता का ही त्याग होना सङ्गत है। अचिन्त्यशक्तिसमुद्भूत सच्चिदानन्दमयी सीता का त्याग असंभव ही था, अतः लोकसंग्रहार्थ मायामयी सीता का त्याग ही वास्तविक है। इस स्थिति का माधुर्यलीला में स्पष्टीकरण न होकर ऐश्वर्यलीला में ही वर्णन करना उचित था। अतः पुराणादि में उसका वर्णन है, परन्तु बुल्के उसे नवीन कल्पना बता कर सन्तोष करते हैं। इसमें वे होमर काव्य की हेलन का भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जो अत्यन्त भद्दा एवं असङ्गत है।

इसी तरह कुश और लव के चरित तथा कथानिवर्हण की विभिन्नता को भी बुल्के स्वाभाविक विकास का परिणाम मानते हैं और वे समझते हैं कि कुश नाम के आधार पर कुश घास से उसकी सृष्टि की कथा उत्पन्न हुई। परन्तु यह उनकी निराधार ही दुष्कल्पना है। वेदों और शास्त्रों में अन्वर्थ नामों का बहुधा उल्लेख मिलता है। अतः **वाल्मीकिरामायण** में स्पष्ट उल्लिखित है कि कुश के ऊर्ध्व भाग से मार्जन करने से कुश तथा कुश के अधोभाग (लव) से मार्जन करने से लव ये नाम प्रसिद्ध हुए। केवल बुल्के की अटकल से उस आर्ष उल्लेख को अप्रामाणिक मानना सर्वथा असङ्गत है।

आगे बुल्के कहते हैं "**वाल्मीकिरामायण** उत्तरकाण्ड के अनुसार कुश और लव वाल्मीकि के साथ राम के अश्वमेधयज्ञ की भूमि में पहुँच कर रामायण का गान करते हैं। इनके वहाँ पहुँचने का कारणविशेष नहीं बताया जा सकता है। बाद की रामकथाओं में कुश और लव की वीरता दिखलाने के उद्देश्य से रामाश्वमेध के पूर्व राम-सेना से इनके युद्ध का वर्णन किया गया।"

परन्तु बुल्के का उक्त कथन अत्यन्त निस्सार है। कारण कि पूर्वापर प्रसङ्ग के अनुसार "कारण" स्पष्ट ही है। प्रथम तो **वाल्मीकिरामायण** से ही स्पष्ट है। रामाश्वमेध में राम ने जैसे अन्य ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों को यज्ञ में निमन्त्रित किया था, वैसे ही वाल्मीकि महर्षि को भी। महर्षि वाल्मीकि उसी यज्ञ में निमन्त्रित होकर गये थे। उनके साथ उनके आश्रमवासी सीता एवं उनके पुत्रों का जाना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त सीताचरित्र रामचरित्र का निर्माण कर वेदार्थ उपबृंहण तथा जनकल्याण के साथ सीताचरित्र की विशुद्धि भी उद्देश्य था। इसी उद्देश्य से राम के सदृश परम सुन्दर सीतापुत्र कुश और लव को तन्त्रीवादन के साथ रामायण-गान कराया गया था। उनके रामायण-गान प्रचार की योग्यता की परीक्षा भी आश्रम में ली गयी थी। जिसमें वे पूर्णरूप से उत्तीर्ण हुए थे। रामाश्वमेध के प्रसंग से भारत एवं विश्व के सभी श्रेणी के राजर्षि, विविध वर्गों के प्रतिनिधि तथा देवता, राक्षस,

वानर, भालू सभी एकत्रित थे। उस समारोह में रामायण के प्रचार तथा सीताचरित्र की शुद्धि के प्रचार का उत्तम अवसर था। रामायण की विशेषतः अयोध्याकाण्ड की घटनाओं को आँखों देखनेवाले लोगों की संख्या भी कम नहीं थी। उस बीच में रामायण की घटनाओं का गान हर दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ही था। उसका परिणाम भी वैसा ही हुआ। सारे समाज को सीता का लोकोत्तर चरित्र और महत्त्व विदित हुआ। स्थालीपुलाकन्याय से अयोध्याकाण्ड की घटनाओं का सत्य वर्णन सुनकर जनता को रामायण के अन्य काण्डों, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड एवं सुन्दरकाण्ड की घटनाओं पर विश्वास होना स्वाभाविक ही था। फलतः सीता की अनन्य रामभक्ति, अखण्ड पातिव्रत्य तथा अप्रतिम तेज पर भी विश्वास हुआ। लोगों की समझ में आ गया कि जो सीता हनुमान् की रक्षा के लिए अग्नि को भी शीतल होने (शीतो भव हनुमतः) का आदेश दे सकती थी वह सीता अपने पातिव्रत्य के तेज से रावण को भी भस्म होने का (भस्मीभूतो भव का) शाप दे सकती थी। उसने स्पष्ट कहा भी तो था—

> "असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
> न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा॥"

दशग्रीव, राम का सन्देश न होने तथा तपस्या के पालन के उद्देश्य से मैं अपने तेज से तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ।

बुल्के का यह कहना निस्सार है कि "वाल्मीकिकृत आदिरामायण ग्रन्थ राम के अभिषेक तथा उनके ऐश्वर्यशाली राज्य के वर्णन पर समाप्त होता था। इस सुखान्त कथावस्तु में आगे चलकर उत्तरकाण्ड जोड़ दिया गया जिससे कि प्रचलित रामायण ग्रन्थ दुःखान्त हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि बाद की रामकथाओं को पुनः सुखान्त बनाने के प्रयत्न किये गये।" परन्तु यह भी निस्सार है। सुखान्त कथावस्तु का होना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता जितना कि चरित्रनायक के जन्मादि पूर्वभाग एवं पुत्र, पौत्रादि तथा साङ्गोपाङ्ग जीवन का वर्णन करना। यह भी समझना गलत है कि केवल सुखान्त बनाने की दृष्टि से ही मिथ्या कल्पना करके सीता का अयोध्या लौट आना वर्णित किया गया है। इस मिथ्या कल्पना की अपेक्षा शतकोटिप्रविस्तर रामायण एवं पुराणादि में उक्त कल्पान्तरीय चरित्रों में भेद अङ्गीकार करना उचित है। तथा च किसी कल्प में वस्तुतः सीता का पुनः राम के साथ अयोध्या प्रत्यावर्तन मानना ही उचित है। आर्ष ग्रन्थों का अप्रमाण कहने का दुस्साहस बुल्के ही कर सकते हैं। कोई आस्तिक भारतीय वैसा नहीं कर सकता। अतएव यह सही नहीं है कि "वाल्मीकिकृत रामायण के विकास तथा उसके कथानक पर विभिन्न प्रभावों के परिणामस्वरूप विस्तृत रामकथा-साहित्य में वैभिन्य आया है", क्योंकि विभिन्न प्रभावों एवं विकासों का अन्तिम अर्थ है— वस्तुस्थिति के विपरीत मिथ्या कल्पना। इसमें और अप्रामाणिक में कोई अन्तर नहीं है। ऐसे छलछद्मपूर्ण शब्दों के प्रयोग की अपेक्षा अप्रामाण्य कह देना कहीं श्रेष्ठ है। किन्तु पुराणों की दृष्टि से कल्पभेद की कथा वस्तुस्थितिमूलक है। जो पूर्वजन्म तक में विश्वास नहीं करते, यह सिद्धान्त उनके गले भले ही न उतरे, परन्तु आस्तिक भारतीय के लिए वैसा स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है।

जनसाधारण में प्रचलित सर्वथा भिन्न कथाओं का अस्तित्व स्वीकार करने की आवश्यकता न होती यदि उनका मूल प्रमाणभूत आर्ष पुराणों में न होता। पुराणों को आधुनिक या अर्वाचीन मानना पाश्चात्यों के दुरभिसन्धि सहित दुस्संस्कारों का ही परिणाम है।

अनु० ७७३ में बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड तथा रामावतारविषयक सामग्री, कनकमृग-वृत्तान्त, सुग्रीव द्वारा वानरों के प्रेषण के समय दिग्वर्णन, लङ्कादहन, हनुमान् की हिमालय-यात्रा, अग्नि-परीक्षा, पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या-यात्रा आदि को बुल्के प्रक्षेप कहते हैं। जो कि दुस्साहस ही है। यथास्थान उनके तत्सम्बन्धी तर्कों का खण्डन किया गया है। इसी प्रकार अहल्योद्धार विकास, अवतारवाद विकास, राम के बालचरित्र पर कृष्ण की बाललीलाओं का प्रभाव,

सीता-स्वयंवर के विकास, सीता-जन्मकथा के बाहुल्य, मायासीता का हरण, वाली और सुग्रीव की जन्मकथा, सौदास, शम्बूकवध, रावणचरित, हनुमान् के जन्म की कथा, सीता त्याग, कुश-लवचरित आदि अनेक विषय ऐसे हैं जिनके अभाव में राम की कथा अधूरी ही रह जाती है। परन्तु बुल्के इन सभी विषयों को विकास, परिवर्धन आदि के नाम से मिथ्या कल्पना एवं अप्रमाण कहते हैं। हमने उक्त विषयो का यथास्थान उपपादन करके बुल्के के तर्कों का खण्डन कर दिया है।

"प्रामाणिक काण्डों की सुव्यवस्थित कथावस्तु पर वाल्मीकि की प्रतिभा की गहरी छाप है" इत्यादि बुल्के का कथन मायाजालमात्र है। सुन्दरकाण्ड के उत्तमोत्तम वर्णन, जिनको कोई भी भारतीय विद्वान् महत्त्वपूर्ण मानेगा, उनमें बुल्के को वाल्मीकि की प्रतिभा की छाप दिखायी नहीं देती। वे उसे धड़ल्ले से प्रक्षेप कह देते हैं। जब आदि-रामामण नाम की कोई सर्वसम्मत वस्तु है ही नहीं, तब "अतिशयोक्ति का अभाव, सन्तुलन तथा स्वाभाविकता उसके विशेष गुण हैं" यह भी कैसे सिद्ध होगा? प्रचलित रामायण ही वाल्मीकि की कृति है। उसी के आधार पर उनकी विशेषता कही जा सकती है। उससे अतिरिक्त वाल्मीकि का परिचय एवं उनकी कृति का ज्ञान बुल्के को किस तरह हुआ इसे तो वही जान सकते हैं।

यदि प्रचलित रामायण से अतिरिक्त वाल्मीकि की कोई सर्वसम्मत कृति उपलब्ध होती, तभी उसे कसौटी मानकर उसके आधार पर प्रचलित रामायण में काट-छाँट की कल्पना कथंचित् सङ्गत कही जा सकती थी। परन्तु खपुष्पतुल्य अप्रामाणिक कसौटी से प्रत्यक्ष विद्यमान रामायण के मुख्य विषयों का अपलाप करना सर्वथा निष्प्रमाण ही है।

वाल्मीकिरामायण से यह तो स्पष्ट ही है कि राम और उनका चरित्र वैदिक संस्कृति से प्रभावित है। वेद का प्रामाण्य और आदर रामायण में स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं। **अर्थवाद** वेदों में भी विद्यमान है—

"अनङ्गुलिरवयत् अमूर्धा प्रत्यमुञ्चत अन्धो मणिमविन्दत।"

तब रामायण में अर्थवाद क्यों न होगा? इसके अतिरिक्त हनुमान् का समुद्रलङ्घन यदि अतिशयोक्ति है तब उसका वर्णन भी आपकी तथाकथित आदिरामायण में नहीं होना चाहिये। यदि किसी बड़े लङ्घन को ही समुद्र-लङ्घन कहना है तब तो आदि कवि की कृति को मिथ्या ही कहना है। यदि समुद्रलङ्घन हनुमान् के लिए सम्भव है तब हिमालय-यात्रा भी असम्भव एवं असङ्गत क्यों कही जाय? और यदि यह सब संभव है तब तो हनुमान् द्वारा फल समझ कर सूर्य को पकड़ने के लिए छलाँग लगाना, इन्द्र के द्वारा वज्र से आहत होकर भी न मरना और ब्रह्मा, इन्द्र यदि देवताओं द्वारा विविध वरदान पाना भी अतिशयोक्ति क्यों? और उसका आदिरामायण में अभाव क्यों? काव्यों में अद्भुत रस भी एक आदरणीय रस है। यदि अलौकिक घटनाओं का बाहुल्य है तो उसका वर्णन दूषण नहीं भूषण ही है। अतएव दशरथ-यज्ञ, भूमिजा सीता की कथा तथा राम-विश्वामित्र-संवाद का अपलाप सिर्फ अलौकिकता के कारण नहीं किया जा सकता। यही स्थिति वाली और सुग्रीव की जन्मकथा, सीता के भूमि-प्रवेश आदि के सम्बन्ध में भी है। जिन्हें भारतीय वेदों, **महाभारत**, **रामायण** तथा पुराणों का परिचय है और उनके प्रामाण्य और अप्रामाण्य के विवेचन की बुद्धि है और जो ईश्वर की शक्ति से अनन्त ब्रह्माण्डों के निर्माण में विश्वास रखते हैं, उनकी दृष्टि में रामजन्म के समय अलौकिक घटनाओं का होना, राम का अपना स्वरूप दिखाना आदि सब कुछ सङ्गत ही है। इसी तरह अवतारवाद एवं राम की भक्ति को भी विकास मानना निराधार है। **वाल्मीकिरामायण** से ही सिद्ध है कि राम विष्णु या परब्रह्म हैं तब तो वे मुक्तिदाता हैं ही। इसमें वैसा चित्रण करना भावुकता या मिथ्या कल्पना नहीं है। इसी तरह शापों और वरों की भी कोई कल्पना नहीं कर ली गयी, किन्तु सर्वज्ञकल्प महर्षियों ने ऋतम्भरा प्रज्ञा से हस्तगत आमल के तुल्य सभी विषयों का अपरोक्ष साक्षात्कार कर के ही वैसा लिखा

है। "नाम पहले प्रसिद्ध होता है, कथा बाद में बनती है" यह सिद्धान्त ही गलत है। गौण नाम गुण के आधार पर होते हैं, जैसे पाककर्ता होने पर पाचक, छिदिक्रिया का कर्ता होने से ही छेत्ता आदि हो जाता है। वेदों का सयुग्वा रैक्व नाम भी गौण ही है। महर्षि का स्वाभाविक नाम रैक्व था। शकट साथ रखने के कारण बाद में उन्हें सयुग्वा कहा गया। कई स्थलों पर कोई सर्वज्ञकल्प ऋषि या देवता भविष्य के कार्यों के अनुसार पहले से ही वैसा नाम प्रसिद्ध करते हैं, परन्तु यह सर्वथा मिथ्या है कि नाम के आधार पर मिथ्या कथा की कल्पना कर ली जाती है, अतः विश्वभर में एटिमोलोजिकलेजेंटस गौण नामों के सम्बन्ध में होता है। मुख्य नामों में वैसा नहीं होता। हाँ कहीं-कहीं मुख्य नाम लुप्त हो जाते हैं। कथाओं एवं घटनाओं के नाम पर होनेवाले गौण नाम ही मुख्य नाम हो जाते हैं। वस्तुतः कथाओं एवं घटनाओं के आधार पर होनेवाले नामों को समाख्या कहा जाता है—जैसे वेदों की काठक आदि समाख्याएँ कठादि महर्षियों से किसी कल्प में प्रथम प्रवचन होने के कारण उन्हें काठक कहा जाता है। परन्तु कई समाख्याएँ निरर्थक भी होती हैं। सात पत्तोंवाले पत्र होने के कारण सप्तच्छद कहा जाता है। परन्तु अश्वकर्ण आदि समाख्याओं का अपने अवयवार्थ के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है, वह निरर्थक रूढ़िमात्र है। घोड़े के कान की तुलना उसमें कुछ भी नहीं है। अश्वकर्ण शब्द वृक्षविशेष में रूढ़ है। अतएव रामावतार, रामवनवास आदि वर, शाप आदि के कारण काल्पनिक नहीं हैं, किन्तु वस्तुस्थितिमूलक ही हैं। और सब आर्ष वचनों से प्रमाणित हैं। राम, सीता, लक्ष्मी और अहल्या के सम्बन्ध की कथाएँ जो आर्ष ग्रन्थों पर आधृत हैं सभी प्रामाणिक हैं। इस सम्बन्ध में बुल्के की सभी दुष्कल्पनाएँ निष्प्रमाण एवं निस्सार ही हैं। सीता शब्द लाङ्गल-पद्धति का बोधक होता हुआ भी लाङ्गलपद्धति या कृषि की अधिष्ठात्री देवी होने के कारण जनकनन्दिनी में सीता शब्द का प्रयोग हुआ है। जैसे ऐश्वर्य के योग से वैदिक इन्द्र शब्द देवराज में अन्वर्थ है वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये। पद्मा लक्ष्मी का नाम है, इस आधार पर पद्मजा सीता की कल्पना कर ली गयी है बुल्के की यह कल्पना भी निस्सार है। पद्मवत् अङ्गसौष्ठव के कारण पद्मजा इव होने से गौणी वृत्ति से ही सीता में पद्मजा नाम उपपन्न है।

हनुमान्, रावण, राक्षस, यक्ष, मेघनाद, इन्द्रजित्, कुश, लव, वाली, सुग्रीव, कल्माषपाद, अहल्या, वेदवती, सुर, असुर आदि नाम सकारण हैं और इन्हीं कारणों से गुणकृत गौण नाम हैं। यह नहीं कि नामों के अनुसार मिथ्या कथा गढ़ी गयी है। तीर्थमाहात्म्य दिखलाने के उद्देश्य से उनका सम्बन्ध रामकथा के प्रधान पात्रों से जोड़ा नहीं गया, किन्तु वस्तुस्थिति ही वैसी थी। राम, सीता आदि के विशेष सम्बन्धों के द्वारा उन तीर्थों का महत्त्व वर्णित हुआ है। जैसे अमुक तीर्थों के सम्बन्ध से अमुकों के अमुक दोष दूर हो गये, इसलिए तीर्थ का महत्त्व वर्णित किया जाता है। जैसे अमुक तीर्थ स्नान से किसी विशिष्ट पुरुष की मुक्ति हो जाने से उसका पिशाचमोचन नाम हो गया। अतएव रावण ने गोकर्ण में तपस्या की थी तथा महादेव से आत्मलिङ्ग प्राप्त कर उसे गोकर्ण में पृथ्वी पर रखकर खो दिया था। "उक्त कथा कल्पनामात्र है" इस कथन में कोई दम नहीं है। अवश्य ही अर्थवादों में कई काल्पनिक आख्यान होते हैं, परन्तु यह जानना चाहिये कि अर्थवाद एक ही तरह का नहीं होता है। प्रमाणान्तर-विरुद्ध अर्थवाद ही गुणवाद होने के कारण काल्पनिक आधार पर माना जाता है। प्रमाणान्तर सिद्ध अर्थ का बोधक अर्थवाद अनुवाद कहलाता है। उसका अर्थ लोकसिद्ध वस्तुस्थिति के अनुसार होता है। प्रमाणान्तर से असिद्ध एवं प्रमाणान्तर से अविरुद्ध अर्थ का बोधक अर्थवाद भूतार्थवाद कहलाता है। उसका स्वार्थ में प्रामाण्य ही होता है। विभीषण को जगन्नाथ या रङ्गनाथ की उपासना का उपदेश विरुद्ध नहीं है। यह भेद एक ही देवता के दो नाम होने से भी सङ्गत हो जाता है। कल्पभेद से भी दोनों पक्षों की प्रामाणिकता सिद्ध होती है।

वराहपुराण तथा **आनन्दरामायण** (७।६।४२–४५) के अनुसार रावण ने इन्द्र को पराजित कर उनके यहाँ से वराहमूर्ति को ले जाकर लङ्का में स्थापित किया था। विभीषण ने उसे राम को प्रदान किया। राम ने उसे मथुरा में स्थापित किया। **ब्रह्मपुराण** के अनुसार रावण ने वासुदेव-प्रतिमा की चोरी की थी। राम

ने अयोध्या ले जाकर स्वर्गारोहण से पूर्व उसे समुद्र को अर्पित कर दिया था। कृष्णावतार के समय सागर ने उसे पुरुषोत्तमक्षेत्र में स्थापित किया था। पद्मपुराण में वामनमूर्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि राम ने उसे विभीषण से प्राप्त कर के कान्यकुब्ज में स्थापित किया था। उपर्युक्त कथाओं को भी काल्पनिक मानने में कोई तर्क नहीं है।

वराहमूर्ति तथा वासुदेवप्रतिमा को एक ही मानना आवश्यक नहीं है। दोनों को स्वतन्त्र दो घटनाएँ हीं समझना चाहिये। वामनमूर्ति की घटना भी तीसरी स्वतन्त्र ही है।

अनु० ७८१ में बुल्के कहते हैं कि "आदिरामायण के वक्ता वाल्मीकि ही हैं, किन्तु प्रचलित बालकाण्ड के प्रथम सर्ग के अनुसार नारद वाल्मीकि को राम-कथा का संक्षिप्त वर्णन सुनाते हैं। इसी के आधार पर वाल्मीकि ने रामायण की रचना की है।" परन्तु बुल्के की प्रथम उक्ति में कोई प्रमाण नहीं है। परम्परा के अनुसार ही सभी भारतीय विद्याएँ प्रचलित होती हैं। **वाल्मीकिरामायण** के प्रथम सर्ग में इसका प्रमाण भी है। यदि इस प्रत्यक्ष उल्लेख पर अविश्वास करें तभी बुल्के की बातों में विश्वास किया जा सकता है, पर आर्ष वचन में अविश्वास का कोई कारण ही नहीं है। बुल्के की अविश्वसनीयता तो निराधार एवं प्रमाणविरुद्ध होने से भी सिद्ध ही है। रामोपाख्यान में मार्कण्डेय ने भी युधिष्ठिर के प्रति परम्परा से ही रामकथावर्णन किया था। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार वाल्मीकि ने उसे कुश-लव को प्रदान किया। बुद्ध भले ही जातकों के वक्ता हों, परन्तु भारतीय परम्परा में तो संस्कृत तथा प्राकृत सर्वत्र परम्परा से ही आदृत है। रामचरितमानस में भी परम्परा का ही आदर किया गया है।

अनु० ७८२ में बुल्के कहते हैं कि "जैनी रामकथाओं का आधार प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** ही है। किन्तु जैन कवियों ने ब्राह्मण-रामकथा को अपनाकर उसमें बहुत से परिवर्तन किये हैं। इसी से अन्य रामकथाओं में परिवर्तन आये हैं।" बुल्के की पहली बात तो ठीक है, पर दूसरी ठीक नही, क्योंकि पुराणों की कुछ रामकथाओं के भेद कल्पभेद पर ही निर्भर हैं। बुल्के के अनुसार "सीता-स्वयंवर के अवसर पर अन्य राजाओं की उपस्थिति, राम द्वारा धनुर्भङ्ग, कैकेयी का पश्चात्ताप, लङ्का में विभीषण से हनुमान् की भेंट, लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के पुत्र का वध, युद्ध के पूर्व राक्षस-राक्षसियों के संभोग शृङ्गार का वर्णन, रामसेना से कुश और लव का युद्ध वर्णन, वसुदेवहिण्डि में सीता का रावण-पुत्री के रूप में उल्लेख एवं सीतात्याग के प्रसङ्ग में रावण-चित्र का उल्लेख विकास हैं।" परन्तु यह सब भी असङ्गत है, कारण कि **नृसिंहपुराण** (अ० ४७), **भागवतपुराण** (९।१०), **अध्यात्मरामायण** (१।६।२४) आदि में सीता-स्वयंवर में अन्य राजाओं की उपस्थिति में राम धनुष चढ़ाते हैं। **नृसिंहपुराण** आदि को **पउमचरियं** से अर्वाचीन मानना बुद्धि का विपर्यास ही है। **पद्मपुराण** (पातालखण्ड अ० ११२) में भी सीता-स्वयंवर के आयोजन का उल्लेख है। उसमें भी सब राजाओं के समक्ष राम धनुष तोड़ते हैं। शिव से अजगव धनुष मिला था। उसे अन्य कोई राजा उठा नहीं सका। **रामचरितमानस** आदि ने पुराणों का ही अनुसरण किया है, **पउमचरियं** का नहीं।

इसी तरह कैकेयी का पश्चात्ताप भी **धर्मखण्ड** (अ० ३८) और **तत्त्वसंग्रहरामायण** (अ० २।११) से सिद्ध है। अयोध्यावासियों का दुःख देखकर वह द्रवित होती है और राम की आराधना करके क्षमा भी माँगती है। **अध्यात्मरामायण** में भी यह चर्चा है। इसी तरह **आनन्दरामायण** (१।९।२४) में लङ्का में हनुमान् और विभीषण की भेंट का वर्णन है। **अध्यात्मरामायण** (१।७।४१) में शूर्पणखा का पुत्र साम्ब ब्रह्मा से दिव्य खड्ग प्राप्त करता है। उसी खड्ग द्वारा वह लक्ष्मण द्वारा मारा जाता है। इसका भी आधार **पउमचरियं** नहीं है। **आनन्दरामायण** (६।८) तथा **जैमिनीयाश्वमेध** (अ० २९।३६) के अनुसार लव राम के यज्ञाश्व को बाँधते हैं। सैनिकों को परास्त करते हैं। शत्रुघ्न द्वारा लव पराजित होते हैं एवं कुश द्वारा शत्रुघ्न भी पराजित होते हैं। **पद्मपुराण** (पातालखण्ड अ० ६०–६४) में भी यह वृत्तान्त है।

प्रायः वैदिक लोग प्राचीन रामायणों, पुराणों तथा **वाल्मीकिरामायण**, **महाभारत** आदि से ही रामचरित्र का वर्णन करते हैं। उनके विश्वास के अनुसार जैसे श्वचर्म-दृति (कुप्पी) में निक्षिप्त कपिला-क्षीर भी अग्राह्य होता है उसी तरह अवैदिक मुखों से निःसृत अहिंसा, सत्य तथा रामचरित्र आदि भी अग्राह्य ही हैं। इसी दृष्टि से **रामचरितमानस** में स्पष्टरूप से कहा गया है कि—नाना पुराण, निगम, आगम तथा तदनुसारी सन्तों के आधार पर ही **रामचरितमानस** की रचना हुई है। जैन, बौद्ध आदि ग्रन्थ उसके आधार नहीं हैं।

"नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।"

अनु० ७८३ में बुल्के का यह कहना गलत है कि "**वाल्मीकिरामायण** के युद्धकाण्ड में जो शिवप्रतिष्ठा का निर्देश है वह केवल आल्मीकिरामायण दाक्षिणात्य पाठ में मिलता है, इसलिए प्रक्षिप्त है।" क्योंकि आपका हेतु असिद्ध है। राम के विष्णु या परब्रह्म होने की बात तो तीनों पाठों में मिलती है तो भी आप उसे प्रक्षिप्त मानते हैं। यदि शिवप्रतिष्ठा की बात भी तीनों पाठों में मिलती तो भी आप उसे प्रक्षिप्त ही कह सकते थे। उत्तरकाण्ड की रावण सम्बन्धी शिवभक्ति को भी प्रक्षिप्त कहना ईसाइयत का उन्माद ही है। यह आवश्यक नहीं कि शिवभक्त होने पर ब्रह्मा वरदान नहीं दे सकते। **महाभारत** में कृष्ण द्वारा शिव की भक्ति का वर्णन है। अन्यत्र वहीं कृष्ण की शक्तिभक्ति का भी वर्णन है। शिव का हनुमान् रूप से अवतरित होना प्रमाणसिद्ध है। यह किसी प्रभाव से कल्पना नहीं है। प्रायः अनेक रामकथाओं में राम की शिवभक्ति का उल्लेख है, उन सबको भ्रान्त या मिथ्या कल्पना मानना बुल्के का दुस्साहस ही है। उनकी ही कल्पना अगर बाइबिल के सम्बन्ध में जोड़ ली जाय तो फिर सारी बाइबिल एक मिथ्या कल्पना की पिटारी ही समझी जायेगी। पुराणों में ही नहीं, ऐतिहासिक दृष्टि से भी रामेश्वरम् का महान् शैव संस्थान राम की ही कृति है। वस्तुतः बुल्के की तथाकथित रामकथा शैव, वैष्णवों तथा रामभक्तों सभी के लिए चुनौती है। उन्होंने भी मैक्समूलर के समान ही यह ग्रन्थ लिखकर ईसाइयों को हिन्दूधर्म के खण्डन की सामग्री प्रस्तुत की है। जिसका कि मैंने पूर्णरूप से खण्डन करके आस्तिकों को सावधान किया है। **शिवमहापुराण**, **पद्मपुराण** आदि वैदिकों की दृष्टि में परम प्रमाण हैं। अतः शिव के आज्ञानुसार विष्णु का अवतार ग्रहण करना, **पद्मपुराण** के अनुसार राम का शिव से उनकी भक्ति माँगना आदि पूर्ण सङ्गत हैं। अतएव **आनन्दरामायण** आदि ग्रन्थों में राम तथा शिव की अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है। रामचरितमानस में भी स्पष्टरूप से कहा गया है—

"शिवपद कमल जिन्हहिं रति नाहीं।
रामहि ते सपनेहु न सुहाहीं॥"

इसी प्रकार शक्ति-प्रभाव के सम्बन्ध की बुल्के की कल्पना निर्मूल है। **बृहद्धर्मपुराण**, **कालिकापुराण** आदि भी प्रमाण ही हैं। अतएव **कालिकापुराण** (अ० ६२) में राम की विजय के लिए ब्रह्मा द्वारा देवी की पूजा का वर्णन है। **देवीभागवत** के अनुसार वर्षाकालीन देवी की पूजा का वर्णन है।

कृष्णकथा का प्रभाव भी पुराणादि अविश्वास का ही भाव समझना चाहिये। बुल्के कहते हैं कि रामकथा के विकास में दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व (अवतारवाद एवं भक्ति) आ गये हैं। जिनके कारण कथा का समस्त वातारण ही धीरे-धीरे बदलता गया। कृष्णावतार तथा कृष्णभक्ति के अनुकरण पर ही इन दोनों तत्त्वों का रामकथा में प्रवेश हुआ।" किन्तु बुल्के का सोचने का तरीका ही गलत है, और उनकी सभी बातें लगभग अन्योन्याश्रयादि दोषों से परिपूर्ण हैं। यदि उनकी कल्पना प्रमाणित हो जाय तभी **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित राम का अवतारत्व और राम की भक्ति "प्रक्षिप्त" सिद्ध हो सकती है। साथ ही वे यह भी समझ नहीं पाते हैं कि इतिहास और पुराणों द्वारा वेदार्थ का उपबृंहण होता है। अतएव वे वैदिक साहित्य का सूत्रपात मानते हुए विष्णु-प्राधान्य को नहीं समझ

पाते हैं। वेदों में शिखा और यज्ञोपवीत का उल्लेख है। परन्तु "वह क्या है, कहाँ धारण किया जाय?" इसका निर्णय गृह्यसूत्रों से होता है। इसी तरह वेदों में अवतार का वर्णन तो है, परन्तु इसका विशेष ज्ञान वेदोपबृंहणभूत पुराणादि के बिना समझ में नहीं आ सकता है। अतः यह कहना निस्सार है कि "वेदों में अवतारों की विशेष पूजा का निर्देश नहीं है।" बुल्के कहते हैं कि "कृष्णावतार के कारण अवतारवाद की भावना विष्णु में ही केन्द्रीभूत होने लगी तथा जनता की धार्मिक चेतना में इसका महत्त्व बढ़ने लगा। बाद में राम भी कृष्ण की भाँति विष्णु के अवतार माने जाने लगे (अर्थात् यह सब अतात्त्विक है, कृष्णावतार का अनुकरणमात्र है)"। ये सब बातें **वाल्मीकिरामायण** में व्यास अवतारवाद को क्षेपक मानने पर ही निर्भर हैं। उसके क्षेपकत्व में बुल्के जैसे लोगों की निर्मूल कल्पनाओं को छोड़कर कोई भी आधार नहीं है। इस तरह यह कहना भी अशुद्ध है कि "भक्तिमार्ग को लेकर ही रामकथा विकसित तथा पल्लवित हुई है। बहुत बाद में रामभक्ति का आविर्भाव हुआ है और जिन रचनाओं में इसका प्रारम्भिक शास्त्रीय प्रतिपादन किया गया है, वे प्रायः कृष्णभक्तिविषयक भक्तिशास्त्रों, संहिताओं तथा उपनिषदों के आधार पर लिखे गये हैं। कृष्णभक्ति-संप्रदायों के अनुकरण पर ही रसिकसम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई है।" क्योंकि **वाल्मीकिरामायण**, **महाभारत**, **पुराण** तथा **पञ्चरात्र** आदि आगमों में अति प्राचीनकाल से अवतारवाद एवं राम, कृष्ण, विष्णु तथा भगवती आदि की भक्ति वर्णित है। **महाभारत** के अनुसार स्वयं कृष्ण ने उपमन्यु आदि का शिष्यत्व ग्रहण कर शिव की भक्ति की थी। उपमन्यु आदि कृष्ण से भी प्राचीन शिवभक्त हैं। पुराण के अनुसार व्यास, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि सभी शिवभक्त थे। उपनिषद आदि में भक्ति एवं भगवान् के सगुण विग्रह का वर्णन है। अति-प्राचीन सामवेदीय केन उपनिषद् में भगवान् का सगुण और साकार यक्ष के रूप में आविर्भाव कहा गया है। बुल्के आदि पाश्चात्यों की उक्त ग्रन्थों से सम्बन्धित काल्पनिक पद्धति अशुद्ध है, यह भी दिखाया जा चुका है। **महाभारत** में मार्कण्डेय महर्षि ने युधिष्ठिर से रामकथा और राम का महत्त्व वर्णन किया है। वस्तुतः युग युग में रामभक्ति एवं राम के अवतार के बाद ही कृष्ण एवं कृष्ण की भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ है। यह पाश्चात्यों की दुष्कल्पना ही है कि भारत के पश्चात् एवं **महाभारत** के पूर्व **रामायण** का निर्माण हुआ है। अतएव राम की बाललीला स्वतन्त्र है, वह कृष्ण की बाललीला का अनुकरण नहीं कही जा सकती। बहुत सी बातें समानरूप से सर्वत्र विकसित होती हैं। प्रतिवर्ष वसन्त में कोकिल-कलरव एवं आम्रपुष्पों का प्रादुर्भाव होता है। प्रायः प्रत्येक बालक उत्पन्न होकर रोता है, हँसता है, विविध क्रीड़ाएँ करता है। "यह सब राम में नहीं था" इसका बुल्के आदि के पास कोई भी प्रमाण नहीं है। बालकों का कलभाषण, कान्ता-कटाक्ष आदि के समान ही, एक प्रधान सुख है, इसी लिए उपासना-ग्रन्थों में बाललीला-विशिष्ट भगवान् की उपासनाएँ होती हैं।

कृष्णचरित का प्रभाव होना कोई अनर्थ नहीं है, परन्तु बुल्के आदि का उद्देश्य तो कुछ और ही है। सनातन सिद्धान्त के अनुसार तो कृष्ण से प्रथम राम हैं और राम से पहले कृष्ण हैं, क्योंकि सभी अनादि हैं। अनेक कालों में राम, कृष्ण के अवतार होते हैं। हाँ, जिसने कृष्णसम्बन्धी साहित्य ही पहले पढ़ा है उसे रामचरित्र पर कृष्णचरित्र की छाप प्रतीत हो सकती है। उसी तरह जिसने पहले रामचरित्र ही पढ़ा है उसे कृष्णचरित्र पर भी रामचरित्र की छाप प्रतीत होती है। राम अनादि परमेश्वर हैं। विभिन्न भावनाओं से उपासक उनकी उपासना करते हैं। अनेक विद्वान् वेद के अपालासूक्त की शृङ्गार उपासनाओं का प्रभाव कृष्ण की उपासनाओं पर मानते हैं। उसके अनुसार अपाला ने इन्द्र की पतिबुद्धि से उपासना की थी। इन्द्र ने प्रकट होकर उसके मुख से सोमरस का पान किया था। कहा जाता है तभी से युवतियों के अधरोष्ठ-पान को सोमपान ही समझा जाता है।

परन्तु वह विचार भी तात्त्विक नहीं है। अनादि काल से ही भक्त भगवान् की माता, पिता, पति, पुत्र आदि के भावसे उपासना करते हैं। गीता भी कहती है—

"पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।"

अर्थात् पिता जैसे पुत्र के, सखा सखाके तथा प्रिय प्रिया के अपराध को क्षमा करता है वैसे ही आप मेरे अपराधों को क्षमा करना। इसी आधार पर रासलीला आदि की उपासना चलती है। इसी दृष्टि से ईश्वर होने के कारण कृष्ण के समान ही राम की रासलीला का भी वर्णन वस्तुस्थिति के अनुसार है। अनुकरणमात्र नहीं है। इतना ही क्यों ? शृङ्गाररस का आविर्भाव जब सामान्य स्त्री-पुरुषों में भी होता है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि राम में शृङ्गार स्वाभाविक न होकर कृष्ण का अनुकरणमात्र है। शृङ्गार-चेष्टाएँ सर्वत्र स्वाभाविक होती हैं। शिव-शक्ति की शृङ्गारिक चेष्टाएँ अत्यन्त प्राचीन काल से वर्णित हैं। उन्हें किसी का अनुकरण कहना हास्यास्पद ही है।

इसी प्रकार बुल्के का यह भी कहना गलत है कि "रामकथा के बहुत से पात्रों का कृष्णचरित के पात्रों से सम्बन्ध स्थापित कर लिया गया है। राम तथा कृष्ण की अभिन्नता के अतिरिक्त सीता और सुभद्रा तथा लक्ष्मण और बलभद्र की भी अभिन्नता का प्रतिपादन किया गया है। सीता के सम्बन्ध में माना गया है कि वह कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी बनकर दस पुत्र एवं एक पुत्री उपन्न करेगी (**आ० रा०** ७।१९।१३८)। मन्थरा और पूतना, शूर्पणखा और कुब्जा, वाली और भील, अयोध्या का धोबी और कंस का धोबी, जाम्बवान् और जाम्बवती के पिता का तत्त्वसंग्रहरामायण (७।१५) में एवं वानर तथा गोपों का **आनन्दरामायण** (९।५।४२) में अभेद माना गया है। राम ने दण्डकवासी (कामातुर) ऋषियों को आश्वासन दिया था कि वे कृष्णावतार में गोपियाँ बनेंगे **पद्मपुराण** (उत्तरखण्ड २७२।१६६, १६७), **गर्गसंहिता** (गोलोकखण्ड अ० ४; माधुर्यखण्ड अ० २), **कृष्णोपनिषद्** तथा **भक्तिरसामृतसिन्धु** (पूर्वभाग २।८४) **गर्गसंहिता** (गोलोकखण्ड अ० ४ तथा माधुर्यखण्ड **अ० ३—७**) के अनुसार राम ने मिथिला, कोशल और अयोध्या की स्त्रियों को गोपियाँ अथवा कृष्ण की पत्नियाँ बन जाने का आश्वासन दिया। देवकन्याएँ, कामपीड़ित स्त्रियाँ (७।४।४५-४७), १६००० क्षत्रिय एवं वैश्य कन्याएँ (राज्यकाण्ड सर्ग १२), यमुना (७।१२।११७), ब्राह्मणों को सोलह (४।७।२६) अथवा १०० स्वर्णमूर्तियाँ प्रदान करने के फलस्वरूप राम को कृष्णावतार में १६००० पत्नियाँ मिलेंगी। **गर्गसंहिता** (माधुर्यखण्ड अ० ८) के अनुसार रामाश्वमेध की स्वर्णसीताएँ भी गोपियों के रूप में प्रकट हुई हैं।" बुल्के की दृष्टि से उक्त बातें कल्पनामात्र हैं, वस्तुस्थिति नहीं हैं। परन्तु यह अर्धजरतीन्याय बुल्के का समझ में नहीं आता। बुल्के को जानना चाहिये कि वे ईसाई-सिद्धान्त की किसी पुस्तक की आलोचना नहीं कर रहे हैं जिसमें पुनर्जन्म होता ही नहीं, किन्तु **रामायण** आदि भारतीय ग्रन्थों पर विचार कर रहे हैं जिनमें पुनर्जन्म की व्यवस्था है। आप **वाल्मीकिरामायण** या **महाभारत, श्रीभागवत, गर्गसंहिता** आदि का प्रामाण्य मानने से ही राम और कृष्ण का अस्तित्व समझ सकते हैं। अन्य किसी प्रामाणिक इतिहास के आधार पर राम आदि का व्यक्तित्व नहीं सिद्ध होता। ऐसी स्थिति में यदि उक्त ग्रन्थों का प्रामाण्य है तो उनके अनुसार राम और कृष्ण की परमब्रह्मरूपता, सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता, अलौकिकता आदि सिद्ध होती हैं तथा उक्त ग्रन्थों के अनुसार राम-कृष्ण, सीता-रुक्मिणी आदि की अभिन्नता सिद्ध ही है। यदि उक्त ग्रन्थों का प्रामाण्य मान्य नहीं है तो केवल अटकल से उनमें किसी अंश का प्रामाण्य मानना और अंशान्तरों का अप्रामाण्य मानना युक्तिशून्य ही है। विषसंपृक्त मधुरान्न भी त्याज्य होता है। उसी प्रकार अप्रमाण ग्रन्थों से किसी वस्तु की सिद्धि का प्रयास व्यर्थ है। और फिर इसी तरह ईसाइयों के बाइबिल में बाइबिल की हिब्रूभाषावाली प्राचीन प्रति तथा अर्वाचीन न्यू टेस्टामेण्ट में अनेक वर्गों के मतभेद हैं। फिर अर्धजरतीन्याय से उसमें भी काम लिया जायेगा। साथ ही अनेक अंग्रेजों ने भी इंग्लिश इतिहासकारों की अप्रामाणिकता की चर्चा की है। जिसका कि '**भारत में अंग्रेजी राज**' पुस्तक में स्पष्ट उल्लेख है। भारतीय दृष्टिकोण से तो **वेद** अनादि तथा अपौरुषेय होने से स्वतःप्रमाण हैं। तन्मूलक **रामायण, महाभारत, पुराण** आदि अत्यन्त प्रमाण हैं। उनके अनुसार राम और कृष्ण की अभिन्नता सिद्ध ही है। हरिवंश आदि में एक विष्णु का ही राम और कृष्ण आदि रूपों में आविर्भाव माना गया है। **कृष्णोपनिषद्** वेद ही

है। उनके अनुसार दण्डकवासियों को गोपाङ्गनाओं के रूप में प्रादुर्भाव का वरदान मिला है। पुनर्जन्मवाद में सर्वसाधारण के भी अनेक जन्म मान्य हैं। फिर स्वेच्छया नरतनु धारण करनेवाले विष्णु के राम और कृष्णरूप में आविर्भाव होने में सन्देह का प्रश्न ही नहीं है। ईसा आप लोगों के अनुसार ईश्वर नहीं ईश्वर का पुत्र है। जब उसमें अनेक चमत्कार सम्भव हैं तो साक्षात् ईश्वर में, अलौकिक चमत्कार होने में कोई असङ्गति है ही नही।

विकास का सिंहावलोकन करते हुए वे फिर अपनी अनर्गल निर्मूल कल्पनाओं को दुहराते हुए कहते हैं—"इक्ष्वाकु-वंश के सूतों द्वारा जिस रामकथासम्बन्धी आख्यानकाव्य को सृष्टि प्रारम्भ हुई थी वह चौथी शती ईसवी पू० के अन्ततक पर्याप्तमात्रा में प्रचलित हो चुका था। वाल्मीकि ने उस स्फुट काव्य के आधार पर रामकथाविषयक एक विस्तृत काव्य की रचना की। इस वाल्मीकिकृत आदिरामायण में अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की कथावस्तु का उल्लेख था," बुल्के की यह कल्पना सर्वथा निराधार एवं अप्रमाण ही नहीं **वाल्मीकिरामायण** से विरुद्ध भी है। यह पीछे के प्रकरणों से सिद्ध है।

बुल्के को यह बतलाना चाहिये कि राम का आविर्भाव कब हुआ और उनमें क्या प्रमाण है? आधुनिक इतिहास तो छह हजार के भीतर ही ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक काल का अन्तर्भाव मानता है। परन्तु भारतीय इतिहास पुराणों के अनुसार २४ वें त्रेता में राम का आविर्भाव हुआ था। जो कि लाखों वर्ष पुरानी बात है। फिर इतनी पुरानी बात का इतने दिनों बाद किन लोगों ने किन प्रमाणों से स्फुट आख्यानकाव्य लिखे? इसमें बुल्के या किसी अन्य के पास प्रमाण है? फिर क्या लाखों वर्ष पहले कोई ऋषि, महर्षि, विद्वान् कवि नहीं था जिससे कि उस समय रामायणकाव्य का निर्माण न हो सका। यदि था तो कोई कारण नहीं कि **वाल्मीकिरामायण** बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड के अनुसार राम के समकाल के महान् कवि वाल्मीकि द्वारा **रामायण** का निर्माण न माना जाय। फिर इस प्रमाणसिद्ध तत्त्व को छोड़कर निराधार निष्प्रमाण स्फुट आख्यान काव्यों का निर्माण ४ शती ईसवी पूर्व के अन्त तक मानना सर्वथा असङ्गत ही है। यदि वाल्मीकि के पहले आख्यान काव्य हो तो उन्हें आदि कवि क्योंकर कहा जा सकता?

बुल्के कहते हैं बौद्ध **अभिधर्ममहाविभाषा** के अनुसार आदिरामायण का विस्तार केवल १२ हजार श्लोकों का था, परन्तु यह भी विडम्बना ही है कि वैदिकों के **रामायण** ग्रन्थ के परिमाण का निर्णय स्वयं **रामायण** तथा **महाभारत, पुराण** आदि से न कर के वैदिकधर्मविरोधी बौद्ध ग्रन्थों के आधार पर करना। बुल्के बौद्ध ग्रन्थों को इसी लिए प्रमाण मान लेते हैं, क्योंकि वे उनकी कल्पना के अनुकूल हैं। अथवा वैदिकधर्मविद्वेष के कारण ही वे वैदिक **रामायण** आदि को प्रमाण न मानकर बौद्ध **अभिधर्ममहाविभाषा** का सहारा पकड़ते हैं। इसे पक्षपात छोड़कर और क्या कहा जा सकता है? जब कि अभिधर्ममहाविभाषा मूल उपलब्ध भी नहीं। बुल्के के अनुसार चीनी अनुवाद में ही वह सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त वे स्वयं कहते हैं ये श्लोक दो विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। रावण द्वारा सीता का हरण और राम द्वारा सीता की पुनः प्राप्ति तथा (अयोध्या में) प्रत्यागमन (रामकथा अनु० ७९)। किन्तु उनके इस कथन में कोई दम नहीं है, क्योंकि इसके अनुसार तो अयोध्याकाण्ड भी रामायण से बहिर्भूत ही मानना पड़ेगा। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार **वाल्मीकिरामायण** ग्रन्थ २४००० श्लोकों का ही सिद्ध है। अन्तरङ्ग प्रमाण की अपेक्षा बहिरङ्ग असिद्ध ही होता है। **रामायण, पुराण** आदि रामायण के स्वरूप के निर्णय के अन्तरङ्ग प्रमाण हैं। **अभिधर्ममहाविभाषा** का चीनी अनुवाद अत्यन्त बहिरङ्ग है। उस सम्बन्ध में भी यह जानना चाहिए कि **रामायण** का कोई ऐसा भाग उस ग्रन्थ की चर्चा का विषय है जिसमें केवल सीताहरण और सीता-प्राप्ति का उल्लेख रहा हो।

वाल्मीकिरामायण के दाक्षिणात्य, गौड़ीय तथा पश्चिमोत्तरीय तीनों पाठ पूर्णतया ठीक हैं, परन्तु बुल्के की दृष्टि से परस्पर विरुद्ध होने से सुन्दोपसुन्दन्याय से स्वयं अप्रमाण ठहरेंगे। इस पाठभेद का दुरुपयोग करके बुल्के

रामायण के कलेवर में काटछाँट कर बहुत अंशों को प्रक्षेप बना देते हैं। सिद्धान्ततः सम्प्रदायभेद से जैसे **वैदिक** शाखाओं में पाठभेद तात्त्विक ही हैं, **सप्तशती** जिसके लाखों पाठ प्रतिवर्ष होते हैं, उसमें भी पाठभेद हैं। उसी तरह **वाल्मीकिरामायण** में भी पाठभेद प्रामाणिक ही हैं। वे कहते हैं "प्रारम्भ में वाल्मीकिकृत आदिरामायण का कोई प्रामाणिक लिखित रूप नहीं था, वह कई शतियों तक मौखिक रूप में ही प्रचलित था। जिससे उसका पाठ स्थिर न रह सका। काव्योपजीवी कुशीलव अपने श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखकर लोकप्रिय अंश बढ़ाते रहे, इस तरह आदिरामायण का कलेवर प्रक्षेपों के कारण बढ़ने लगा।" बुल्के के इस कथन से स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में वाल्मीकिकृत आदिरामायण का आज कोई प्रामाणिक रूप है ही नहीं, यह सब कुशीलवों की कल्पना है। इस तरह रामायण के स्वरूप पर एक ईसाई का यह कितना भीषण प्रहार है। पर उन्हें समझना चाहिये कि उनके ही तर्कों से उनकी **बाइबिल** भी पूर्ण अप्रामाणिक एवं कल्पनामात्र ही ठहरेगी। पर **रामायण** की वस्तुस्थिति उससे सर्वथा भिन्न है। **वेदों** एवं **सप्तशती** के अनुसार ही वाल्मीकि ने अपने विभिन्न शिष्यों में पाठभेद का ही उपदेश किया था। उन उन सम्प्रदायों के वही पाठ प्रामाणिक हैं। उनके पाठों और अनुष्ठानों से अदृष्ट एवं दृष्ट फल होते हैं। जैसे वेदों का मौखिक पाठ ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है वैसे ही **वाल्मीकिरामायण** का भी मौखिक पाठ ही मुख्य था। मेधाह्रास के कारण जैसे ग्रन्थरूप में वेदों का उल्लेख हुआ है वैसे ही **रामायण** का भी काव्योपजीवी कुशीलव जातिविशेष नहीं उच्च कुल के ब्राह्मण, व्यास आदि **रामायण** का श्रवण कराते रहे हैं। मनमानी नहीं, स्वाम्यूहित नहीं, परम्पराप्राप्त प्रामाणिक पाठ का ही पठन-पाठन होता रहा है। **रामायण** राम का वाङ्मय विग्रह है। उसमें एक अक्षर का भी निवेश करना कण्टक-प्रवेश है और एक अक्षर निकलना साङ्गोपाङ्ग अंग में छेदन करना है। यही धारणा मन्त्रब्राह्मणात्मक **वेदों**, **रामायण**, **महाभारत** तथा **पुराणों** के सम्बन्ध में रही है। इक्ष्वाकुवंश के कौन कुशीलव थे, उन्होंने कब, क्यों, कैसे स्फुट आख्यानकाव्य रचा तथा इसमें कौन सा आधार है और वह आधार कहाँ तक प्रामाणिक है? इन बातों का उचित उत्तर मिले बिना बुल्के की बातें सर्वथा निस्सार ही हैं।

रामायण में ही राम कौन थे? सीता कौन थी? उनका जन्म और विवाह कब तथा किस प्रकार हुआ? उनकी कितनी सन्तान हुई? इन बातों का समाधान था। उक्त प्रश्नों के समाधानार्थ **वाल्मीकिरामायण** के उत्तरकाण्ड का निर्माण पीछे हुआ, यह कल्पना सर्वथा निष्प्रमाण एवं प्रमाणविरुद्ध ही है। **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार वाल्मीकि ही बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड के भी रचयिता हैं।

बुल्के का यह कहना भी अशुद्ध है कि "रामायण (राम-अयन अर्थात् राम का पर्यटन) न रह कर वह पूर्ण रामचरितरूप में विकसित हुई।" अर्थात् उनकी दृष्टि में पहले राम का अयन ही रामायण थी। परन्तु उन्हें मालूम होना चाहिये कि राम का अयन अर्थात् निवासस्थान ही रामायण है। धात्वर्थ के अनुसार साङ्गोपाङ्ग, सचरित्र तथा सोपाख्यान राम का ज्ञान और प्राप्ति जिससे हो अथवा जिसमें निहित है उसी को रामायण कहते हैं। इण् गतौ या अय् गतौ धातु से अयन शब्द बनता है। ज्ञान, गमन, प्राप्ति सभी गति का अर्थ होता है।

"रामस्य सोपाख्यानस्य सचरित्रस्य अयनं ज्ञानं प्राप्तिर्यस्माद् यस्मिन् वा तद्रामायणम्।"

बुल्के का यह कहना निष्प्रमाण है कि "उस समय तक रामायण नरकाव्य ही कहा जाता रहा है और राम आदर्श क्षत्रिय के रूप में भारतीय जनसाधारण के सामने प्रस्तुत किये गये थे। इसका आभास गीता के 'रामः शस्त्रभृतामहम्' शस्त्रधारण करनेवालों में मैं राम हूँ' में मिलता है।" क्योंकि उसी गीता में 'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि' भी तो कहा गया है। क्या इससे यही समझना चाहिये कि वासुदेव कृष्ण भी गीता के समय तक केवल वृष्णिवंश के एक आदर्श पुरुष ही माने जाते थे? किन्तु ऐसा समझना मूर्खजनप्रतारणमात्र ही है। क्योंकि उसी गीता में 'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय' कृष्ण से बढ़ कर कोई तत्त्व ही नहीं है, 'मया ततमिदं सर्वं' मुझ सर्वकारण परमात्मा से

सारा विश्व व्याप्त है। उसी गीता में यह भी उल्लेख है जब-जब धर्मग्लानि, अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब-तब धर्मसंस्थापनार्थ, साधुपरित्राणार्थ, दुष्टदमनार्थ भगवान् अवतार धारण करते हैं।

किन्तु विभूति-वर्णन के प्रसंग में जैसे वृष्णियों में वासुदेव को कहा है वैसे ही राम को शस्त्रधारियों में भगवान् का रूप कहा गया है। वाल्मीकिरामायण के अनुसार कृष्ण भी राम के ही रूप में कहे गये हैं। "कृष्णश्चैव बृहद्बलः" (युद्धकाण्ड)।

७८९वें अनु० में बुल्के कहते हैं "भागवतों के इष्टदेव वासुदेव कृष्ण सम्भवतः तीसरी शती ई० पूर्व० विष्णु के अवतार माने जाने लगे थे। जिससे अवतारवाद की भावना को बहुत प्रोत्साहन मिला। दूसरी ओर लोकप्रियता के साथ-साथ राम का महत्त्व भी बढ़ने लगा था। उनके वर्णन में अलौकिकता आ गयी। इस प्रवृत्ति की स्वाभाविक परिणति यह हुई कि कृष्ण की भाँति राम भी पहली शती ई० पूर्व विष्णु के अवताररूप में स्वीकृत होने लगे। फलस्वरूप प्रचलित रामायण के कई स्थलों में रामावतारविषयक प्रक्षिप्त सामग्री का समावेश हो गया है।" किन्तु उनका यह सब कथन निराधार, निस्सार, निष्प्रमाण तथा प्रमाणविरुद्ध है। महाभारत के कालनिर्णयप्रसंग में यह दिखलाया गया है कि ई० पूर्व दो हजार वर्ष से पहले ही महाभारत का निर्माण हो चुका था। भगवद्गीता तो महाभारत के संग्राम के समय ही प्रकट हो चुकी थी, महाभारत-संग्राम ईसा से तीन हजार वर्ष से भी पूर्व हुआ था, उस गीता में कृष्ण का अवतार होना और ईश्वरत्व अत्यन्त प्रसिद्ध है। अतः ई० पूर्व तीसरी शती से कृष्ण को अवतार माने जाने लगा यह कथन निस्सार ही है। इतना ही नहीं इसी ग्रन्थ के पूर्व के प्रसंगों में अनादि वेदों में ही अवतारवाद भी प्रमाणित है। वाल्मीकिरामायण तो महाभारत से लाखों वर्ष प्राचीन है। महाभारतान्तर्गत विष्णुसहस्रनाम में राम का विष्णुनामों में उल्लेख किया गया है। अतः 'कृष्ण या राम का अवतारत्व किसी विकास की परिणति है' यह बुल्के का दिमागी फितूर ही है, अतएव रामायण की अवतारविषयक सामग्री को प्रक्षिप्त कहने का दुस्साहस करना अनभिज्ञता ही है। बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में पौराणिक गाथाएँ नहीं हैं। वे रामायणीय गाथाएँ ही हैं। जिनका कि संवादरूप में आना बिल्कुल स्वाभाविक है। ऋष्यशृंग तथा विश्वामित्र का वृत्तान्त, शम्बूकवध, रामाश्वमेध आदि प्रसंग स्वाभाविक हैं। राम विष्णु के अवतार थे ही न कि माने जाने लगे।

बुल्के कहते हैं, "रामाकथा के द्वितीय विकास का सोपान है रामकथा का आदर्श क्षत्रिय राम का चरित्रमात्र न रहकर विष्णु की अवतार-लीला के रूप में परिणत हो जाना। बौद्ध और जैन साहित्य को छोड़कर रामकथा का सर्वत्र यही रूप स्वीकृत हुआ है।" बुल्के का उक्त कथन भी दुरभिसंधिमूलक ही है, कारण राम का अनादिकाल से ही विष्णु अवतार के साथ-साथ व्यावहारिक रूप मर्यादापुरुषोत्तम ही रहा है। उस दृष्टि से राम अब भी आदर्श क्षत्रिय ही हैं। जैन साहित्य में भी राम को विष्णुरूप माना गया है। वासुदेव, प्रतिवासुदेव, बलभद्र आदि उनके अनुसार भी सदा ही होते रहते हैं। हिन्देशिया आदि की रामकथाओं में भी राम को विष्णु का अवतार माना गया है।

बौद्धों के साहित्य में बुद्ध को ही प्राचीन काल में रामरूप में आविर्भूत माना गया है। बुद्ध-भक्ति से बढ़कर बौद्धमत में कोई भक्ति नहीं।

बुल्के का यह कहना भी गलत है, "इस द्वितीय सोपान में जनसाधारण की धार्मिक चेतना में न तो राम के लिए कोई विशेष स्थान था और न रामभक्ति का आविर्भाव हुआ था। एक ओर उस समय के धार्मिक साहित्य में रामकथा का स्थान अपेक्षाकृत गौण था दूसरी ओर तत्कालीन ललितसाहित्य में उसकी व्यापकता, लोकप्रियता अद्वितीय है।" क्योंकि वाल्मीकिरामायण तथा विविध अन्य रामायणों तथा पुराणों से यह भली भाँति विदित है। ललितसाहित्य से भी अधिक राम एवं रामभक्ति को धार्मिक साहित्य में स्थान प्राप्त था। आज जैसे जनता की बुद्धि एवं जिह्वा पर रामनाम का बाहुल्य है वैसे ही तब भी हनुमान् भक्तों एवं ज्ञानियों में अग्रगण्य थे। श्रीमद्भागवत

आदि में भी उनका महत्त्व प्रख्यात है। धर्मराज युधिष्ठिर मार्कण्डेय से रामकथा का श्रवण करते थे। सनकादि भी राम के भक्त थे। यह उपनिषदों से भली भाँति विदित है। इन सब साहित्यों को अप्रमाण कहने से ही बुल्के की निराधार कल्पना को अवकाश मिल सकता था। परन्तु भारतीय जनता सदा ही **वेदों**, **रामायण** तथा **पुराणों** का आदर करती है और प्रामाण्य मानती है। प्रमाणपद्धतिपराङ्मुख पाश्चात्य एवं उनके अनुयायी कुछ भारतीय ही ऐसी दुष्कल्पनाओं में विश्वास रखते हैं। अतएव बुल्के का यह कथन भी असत्य है कि "अवतारवाद के कारण कथावस्तु में अलौकिकता अवश्य धीरे-धीरे बढ़ने लगी, फिर भी रामकथा का मुख्य दृष्टिकोण धार्मिक न होकर शताब्दियों तक साहित्यिक ही रहा, यह संस्कृत-ललितसाहित्य के स्वर्णकाल में महाकाव्यों तथा नाटकों से स्पष्ट है। राम-भक्ति के आविर्भाव के पूर्व रामकथा का यह साहित्यिक रूप विदेशों में फैल गया और उसपर बाद में रामभक्ति का प्रभाव नहीं पड़ा। इसी लिए सभी विदेशी रामकथा-साहित्य में रामभक्ति का अभाव है।" क्योंकि कहा जा चुका है कि राम के मर्यादापुरुषोत्तम और परब्रह्म दोनों रूप भारतीय साहित्य में साथ-साथ रहे हैं। **श्रीभागवत** आदि में जहाँ राम का परब्रह्मरूप सुस्पष्ट है वहाँ भी उनके मर्त्यावतार का उद्देश्य मर्त्यशिक्षण ही रहा है—

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।"

तुलसीदास ने भी कहा है—

"राम देखि सुनि चरित तुम्हारे।
जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥" (रा० मा० २।१२५।४)

सेरीराम, **रामकियेन** आदि में राम को विष्णु का अवतार माना ही गया है। अतः बुल्के का यह कहना सफेद झूठ ही है कि विदेशी रामकथाओं में रामभक्ति का अभाव है। सुतरां विष्णुभक्ति, रामभक्ति एक ही ठहरती है। लक्ष्मण, हनुमान्, जाम्बवान् आदि भी राम की भक्ति करते ही थे। बुल्के की ऐसी सैकड़ों दुष्कल्पनाओं का एक ही उत्तर है कि **वेद**, **उपनिषद्**, **रामायण**, **महाभारत** तथा **पुराणों** के सम्बन्ध में बुल्के का कालनिर्धारण अत्यन्त अशुद्ध है। उनका काल अनादि तथा लाखों वर्ष प्राचीन है। तभी से रामभक्ति और राम का महत्त्व आज से सहस्रों गुणा अधिक माना जाता रहा है। आस्तिक जनता रामायणकथा, राममन्त्र तथा रामनाम को जीवन-सर्वस्व मानती रही है। **शतकोटिप्रविस्तर रामायण** का सार जान कर महेश्वर रामनाम का ही जप करते रहे हैं।

"रामायण सतकोटि महँ, लिय महेस जिय जानि।" (तुलसी)

याज्ञिकपद्धतियों में अनादिकाल से यज्ञ, याग आदि के अन्त में भगवान् का द्वादश बार नामस्मरण का सम्प्रदाय रहा है।

"यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥"

राम अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के नायक परमात्मा हैं। वैदिकधर्म ही उनका धर्म है। उन्होंने अवतार लेकर कोई नया धर्म नहीं चलाया। अतः जो भी श्रौत या स्मार्त धर्मकर्म का अनुष्ठान करते हैं उसे ही परमात्मा के अर्पण करते हैं। परमात्मा निर्गुण और सगुण दोनों ही हैं। अतः "स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।" के अनुसार आस्तिक स्वानुष्ठित धर्मकर्म को नारायणार्पणमस्तु, रामार्पणमस्तु, श्रीकृष्णार्पणमस्तु, शिवार्पणमस्तु कहकर समर्पण करते रहे। मन्त्र, नामजप, ध्यान आदि भी राम, कृष्ण, शिव, विष्णु आदि के अनादिकाल से चलते ही रहे हैं। इसी तरह राम की शृङ्गारिक कथा की बात है। अनेक प्रकार की भक्तियों में मधुरभक्ति भी अन्यतम है। **पाञ्चरात्र** आदि आगमों में उसका प्रमुख स्थान है। विष्णु, शिव, राम, कृष्ण सभी की भक्तियों में न्यूनाधिकरूप में शृङ्गारिक भक्ति का उल्लेख है। वेदों में भी उसका उल्लेख है ही।

विकासवाद जैसे मिथ्या अपसिद्धान्त में ही ऐसा माना जाता है कि "भारतीय भक्तिमार्ग का आविर्भाव वैदिक साहित्य में ही हो चुका था। वह शताब्दियों के पश्चात् भागवतधर्म में पल्लवित हो सका। भागवतों के इष्टदेव वासुदेव कृष्ण विष्णु के अवतार माने जाने लगे। जिसके फलस्वरूप भक्तिभावना उन्हीं विष्णु वासुदेव कृष्ण में केन्द्रित होकर उत्तरोत्तर विकसित होने लगी। बाद में राम भी विष्णु के अवतार माने जाने लगे। किन्तु अवतार के रूप में स्वीकृत हो जाने पर भी शताब्दियों बाद रामभक्ति का आविर्भाव हुआ," पर यह सब भी अनर्गल प्रलाप ही है। विकास नहीं भागवतधर्म वैदिक भक्तिमार्ग की व्याख्या है। वेदों में विष्णु की ही भक्ति नहीं है, शिव और शक्ति की भी भक्ति का वर्णन है। फलतः **रामायण, महाभारत** तथा **पुराणों** एवं **शैव** और **वैष्णव आगमों** में उसकी व्याख्याएँ हुई हैं। **रामायण** में प्रधानतया रामभक्ति, **महाभारत** में प्रधानतया कृष्ण तथा शिव की भक्ति का वर्णन है। **पुराणों** में विष्णु, शिव, शक्ति, राम और कृष्ण की भक्ति का उपबृंहण है। **पुरुषसूक्त, रुद्रसूक्त, रुद्राध्याय** तथा **नारायण, महानारायण, रामतापनीय, रामरहस्य, गोपालतापनीय, त्रिपुरतापिनीय** आदि उपनिषदों में विविध भक्तियों का उल्लेख है। शङ्कर, रामानुज आदि शास्त्रप्रामाण्यवादी थे। मनमानी कल्पना नहीं करते थे। उन्हीं वेदादि शास्त्रों के अनुसार ही उन्होंने राम आदि की भक्ति का वर्णन किया था। कृष्ण एवं राम को विष्णु का अवतार मनमानी नहीं माना जाने लगा, किन्तु पूर्वोक्त शास्त्रों के अनुसार ही। ईसाइयों में जैसे ईसा को ईश्वर का पुत्र तथा कुमारीपुत्र माना जाने लगा बुल्के ने वैसी ही इधर भी कल्पना करने की भूल की है। **अध्यात्मरामायण** भी मनमानी कल्पना नहीं है, किन्तु पूर्वोक्त प्रमाणों पर ही वह आधृत है। वह भी **ब्रह्माण्डपुराण** का खिलभाग माना जाता है। युधिष्ठिर भी बड़े प्रभावशाली राजा थे। श्रीकृष्ण भी उनका महान् आदर करते थे तो भी उन्हें ईश्वर का अवतार नहीं माना गया, किन्तु **महाभारत** में तथा **विष्णुपुराण** में राम का महत्त्वपूर्ण सम्मान है। अतएव '**रामायण** की आधिकारिक कथावस्तु सीताहरण, रावणवध को एक नया रूप दिया गया' इत्यादि कल्पना भी असत्य है। सदा सर्वदा ही **वेदों, रामायणों, महाभारत** तथा **पुराणों** की आध्यात्मिक, आधिदैविक आधिभौतिक व्याख्याएँ होती रही हैं।

बुल्के कहते हैं—"**वाल्मीकिरामायण, हरिवंश, विष्णुपुराण, वायुपुराण** आदि के अनुसार चारों भाई विष्णु के एक-एक चतुर्थांश से समन्वित थे। भक्तिभाव के पल्लवित होने के पश्चात् राम परब्रह्म के पूर्णावतार माने जाने लगे एवं लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न क्रमशः शेष, शङ्ख तथा सुदर्शन के अवतार। प्राचीन पुराणों में सीता तथा लक्ष्मी की अभिन्नता का निर्देश नहीं मिलता। आगे चलकर लक्ष्मी सीता के रूप में अवतरित मानी गयी हैं। किन्तु रामभक्ति के प्रादुर्भाव के पश्चात् सीता परम शक्ति अथवा मूलप्रकृति स्वीकृत होने लगी।" परन्तु बुल्के की दृष्टि में प्राचीन पुराण भी कल्पना ही हैं, प्रमाण नहीं। सभी ईसा के पश्चात् बने हैं। अतः यदि उनमें सीता एवं राम को परब्रह्म या मूलप्रकृति माना भी गया होता तो भी ईसाइयत के प्रचारक बुल्के उसे कभी न मानते। हमारे यहाँ **वाल्मीकिरामायण, हरिवंश, विष्णुपुराण, वायुपुराण, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण** आदि सभी पुराण व्यास द्वारा प्रादुर्भूत होते हैं, अतः वे सभी प्राचीन हैं। सभी का प्रामाण्य है। सभी का समन्वय करके ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। पुराणों में विष्णु को परब्रह्मरूप ही माना गया है, अतः विष्णु का अवतार होने पर राम सुतरां परब्रह्मरूप ठहरते हैं। भरत आदि चतुर्थांश हैं, इसकी व्याख्या भी पीछे हो चुकी है। **माण्डूक्यउपनिषद्** में विराट्, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत, तुरीय भी चतुर्थांश हैं फिर भी विराट् आदि की अपेक्षा तुरीय की विशेषता है ही। वेदों तथा पुराणों का समन्वित अर्थ यही है कि राम परमार्थतः परब्रह्म हैं, सीता ऐश्वर्य और माधुर्य की अधिष्ठात्री महाशक्ति उनसे अभिन्न ही हैं। बुल्के आदि ने वेदों तथा रामायण आदि के सिद्धान्तों से सर्वथा अपरिचित तथा ईसाइयत प्रचार की भावना से प्रेरित होकर रामकथा के नाम पर अर्थ का अनर्थ करके पाप किया है। नास्तिकप्राय लोगों ने वस्तुस्थिति के विरुद्ध मनमानी सीता को लक्ष्मी और राम को विष्णु नहीं माना, किन्तु आस्तिकों ने वेदादि प्रमाणों के आधार पर वस्तुस्थिति को समझकर ही वैसा स्वीकार किया है।

छायामात्र सीता के हरण तथा मायासीता के त्याग का भी समाधान किया जा चुका है।

"प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि सुबहून्यपि" के अनुसार रावण के दोनों रूप स्पष्ट हैं। रावण का बाह्य रूप यही है कि उसने कामबुद्धि से सीता का हरण किया था, परन्तु आन्तर रूप यह भी है कि मुक्ति की कामना से उसने राम से वैरभाव अपनाया था। "क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः।" (वा० रा० दा० पाठ प्रक्षेप २।२२) अर्थात् देव का भगवान् विष्णु का क्रोध भी वर के तुल्य ही मुक्ति प्रदान करता है। जिन तुलसीदास का गुणगान करते हुए बुल्के भारतीय जनता के विश्वास के भाजन बनना चाहते हैं। उन्होंने भी रावण की ऐसी ही आन्तररूप भावना व्यक्त की थी—

"जो जगदीश लीन्ह अवतारा, सुररञ्जन भञ्जन महिभारा।
तौ मैं जाई वैर हठि करिहौं, प्रभु शर ते भवसागर तरिहौं॥"

बुल्के की तृतीय सोपान की कल्पना भी पिष्टपेषणमात्र है। राम विष्णु हैं, इतने से भक्तवत्सल हैं ही, अतः न केवल भक्तवत्सल राम का ही अपितु विष्णु का चरित्रवर्णन गुणकीर्तन ही है।

अन्त में बुल्के समस्त भारतीयों एवं भारतीय धर्म एवं संकृति को अज्ञानपूर्ण, मूर्खतापूर्ण और भावुकतापूर्ण सिद्ध करने की दुरभिसन्धि से कहते हैं कि इस प्रकार रामकथा अनेकरूप धारण करते हुए शनैः शनैः सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति में व्याप्त हो गयी। अर्थात् बुल्के की दृष्टि में वस्तुस्थिति के विपरीत भावुकतावशात् मिथ्याकल्पक मानव राम को विष्णु का अंश तथा विष्णु को परब्रह्म और भक्तवत्सल राम मानने लगे। सीता को लक्ष्मी से अभिन्न और फिर मूलप्रकृति मानने लगे। पर ये सब भारतीयों के प्रामाणिक **वेद, रामायण** आदि प्रमाणों को झुठलाने की ही कुटिल कुचेष्टा है।

वे कपटपूर्ण शब्दों में यह भी कहते जाते हैं—"उसकी (रामकथा की) अद्वितीय लोकप्रियता निरन्तर अक्षुण्ण ही नहीं वरन् शताब्दियों तक बढ़ती रही, क्योंकि मानवहृदय को आकर्षित करने की जो शक्ति रामकथा में विद्यमान है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है", परन्तु ऐसा क्यों? उसका उत्तर उनके पास नहीं है। परन्तु भारतीय दृष्टिकोण से उत्तर स्पष्ट है कि राम और कृष्ण की कथा केवल वाग्विलास या कण्ठशोषणमात्र नहीं है वह अनुपम शांति, भक्ति तथा मुक्ति देनेवाली है। इसी कारण उसकी लोकप्रियता है। श्रीभागवत में स्पष्ट उल्लेख है; शुकदेवजी कहते हैं—मैंने बड़े-बड़े यशस्वी महापुरुषों की कथा वैराग्य और विज्ञान की विवक्षा से ही कही है। उसमें परमार्थ नहीं है; किन्तु कृष्ण में अमल भक्ति चाहनेवालों को चाहिये कि जो उत्तम श्लोक भगवान् का अमङ्गलघ्न गुणानुवाद नित्य ही सन्तों में संगीयमान होता है, उसे ही सुनें—

"कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
वैराग्यविज्ञानविवक्षया विभो वचोविभूतिर्न तु पारमार्थ्यम्॥
यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः॥" (भाग० १२।३।१४,१५)

भारतीय साहित्य में वर्णित रामकथा का आदर्श ठीक यही है कि रामचरित स्वच्छ मनोवृत्ति प्रदान करता है।

जैमिनीयाश्वमेध (३६।४४) "सर्वे धर्माः समुद्दिष्टाः वर्णाश्रमविभागतः।"

बृहद्धर्मपुराण (२६।९), मम्मट का भी यह कहना ठीक ही है कि रामादि के समान ही वर्तना चाहिए रावणादि के समान नहीं—"रामादिवद् वर्तितव्यं न रावणादिवत्" (काव्य प्रकाश १।२)। पद्मपुराण (पाताल-खण्ड अ० ३६) के अनुसार रामचरित में पातिव्रत्य, भ्रातृस्नेह, गुरुभक्ति, स्वामिसेवा आदि का आदर्श प्रस्तुत है।

"यस्मिन् धर्मविधिः साक्षात् पातिव्रत्यं तु यत्स्थितम् ।
भ्रातृस्नेहो महान् यत्र गुरुभक्तिस्तथैव च ॥
स्वामिसेवकयोर्यत्र नीतिर्मूर्तिमती किल ।
अधर्मकरशास्तिर्वै यत्र साक्षाद् रघूद्वहात् ॥" (वा० रा० ११८, १२८)

क्या ही अच्छा होता यदि बुल्के अकुटिलभाव से राम के इसी आदर्श का प्रतिपादन करते। **वाल्मीकि-रामायण** में भी राम को विग्रहवान् धर्म ही कहा गया है—**"रामो विग्रहवान् धर्मः"**। श्रीभागवत आदि में मनुष्यों को धर्मशिक्षण देकर लोकसंग्रह करना ही राम के अवतार का मुख्य प्रयोजन कहा गया है। गीता के कृष्ण भी पूर्ण ब्रह्म होते हुए भी लोकसंग्रहदृष्टि से वर्णाश्रमानुसार कर्म करते हैं—

"यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।" (गीता० ३।२३)

"उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।" (गीता० ३।२४)

सीता का पातिव्रत्य, राम का आज्ञापालन, लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम, दशरथ की सत्यसन्धता, कौशल्या का वात्सल्य आदि आदर्श लोकशिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। अतः रामकथा में कथावस्तु भगवद्गुणवर्णन भक्ति-मुक्तिप्रद होने के साथ-साथ आदर्श जीवन का एक महान् मार्गप्रदर्शन भी है। बुल्के रामकथा को विकास, कल्पना, परिवर्तन और परिवर्धन मानते हैं। और कहते हैं उसे भारतीय प्रतिभा शताब्दियों से प्ररिष्कृत करती चली आ रही है। परन्तु भारतीय प्रतिभा सदा तथ्य तत्त्व की पक्षपातिनी रही है। मिथ्या कल्पना की नहीं 'तत्त्वपक्षपातो हि धियां स्वभावः।' तत्त्वपक्षपात बुद्धियों का स्वभाव होता है। बुल्के कहते हैं कि "कैकेयी की कुटिलता **वाल्मीकिरामायण** में स्पष्ट वर्णित है। आगे चलकर उसे निर्दोष ठहराने के लिए अनेकों उपायों का सहारा लिया गया है।"

पर यह भी गलत है, क्योंकि इन बातों का समुचित समाधान रामचरितमानस में भी है और अध्यात्म-रामायण में भी। सबसे मुख्य बात तो यह है कि रावणत्रस्त देवताओं की प्रार्थना पर ही परब्रह्म विष्णु मनुष्यरूप में अवतीर्ण हुए थे। उनकी सहायता के लिए देवता वानर और भालू रूप में अवतीर्ण हुए थे। परन्तु यदि कैकेयी वनवास का आग्रह न करती, सीताराम का वनवास न होता एवं सीता-हरण न होता तो रावणवध आदि कार्य कैसे होते ? और रामायण का आविर्भाव भी कैसे होता ?

तुलसीदासजी ने कहा है—

"दोस देहिँ जननिहिं जड़ तेई। जिन गुरु साधुसभा नहिँ सेई ॥" (रा० मा० २।२६१।४)

बालिवध को न्यायसङ्गत स्वयं वाली ने ही स्वीकार किया था। पर बुल्के उन अंशों को प्रक्षिप्त मान लेते हैं। जो अपने हठ को सिद्ध करने के लिए आर्ष प्रमाण को झुठलाना चाहता है और जिसने समाधान न मानने की प्रतिज्ञा कर रखी हो उसे कौन समझा सकता है ?

तुलसीदास के अनुसार राम कहते हैं—

"अनुजवधू भगिनी सुतनारी, सुन सठ ये कन्यासम चारी।
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकै जोई, ताहि बधे कछु पाप न होई ॥
मूढ़ तोहि अतिसय अभिमाना, नारिसिखावन करसि न काना।
मम भुजबल आश्रित तेहि जानो, मारा चाहसि अधम अभिमानी ॥" (रा० मा० ४।८।४)

अन्त में वाली कहता है—

"सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मैं पातकी, अन्तकाल गति तोरि॥" (रा० मा० ४।९)

वाल्मीकिरामायण में भी राम ने कहा—

"भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्।
अस्य त्वं धरमानस्य सुग्रीवस्य महात्मनः॥
रुमायां वर्तसे कामात् स्नुषायां पापकर्मकृत्।" (वा० रा० ४।१८।१८,१९)
"राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः।
निर्मलाः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥
शासनाद् वापि मोक्षाद् वा स्तेनः पापात्प्रमुच्यते।
राजा त्वशासन् पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्॥" (वा० रा० ४।१८।३१,३२)

अपराधी को दण्ड देना आवश्यक है। अपराधी से युद्ध करने का कोई प्रसङ्ग नहीं होता। निगृहीत अशस्त्र अपराधी को आज भी प्राणदण्ड दिया ही जाता है। मृगयाधर्म में भी सावधान, असावधान, युद्ध करता हुआ या न करता हुआ भी मृग मारा जा सकता है। उसमें कोई दोष नहीं है।

"अयुद्ध्यन् प्रतियुद्ध्यन् वा यस्माच्छाखामृगो ह्यसि। (वा० रा० ४।१८।४१)

एतावता अदृष्ट होकर मारना भी पाप नहीं, क्योंकि दण्डार्थ वध में दर्शन अपेक्षित नहीं है। वाली सन्ध्योपासनादि करता था और शास्त्रज्ञ था, इस दृष्टि से पूर्वोक्त समाधान है। यदि केवल शाखामृगमात्र है तो भी प्रच्छन्नवध में कोई दोष नहीं है, क्योंकि तृणच्छन्न श्वभ्रादि के निर्माण द्वारा विश्वस्त स्वपालित मृगों से युद्धादि करते हुए भी मृगों को राजर्षि लोग क्षत्रिय-स्वभावात् मृगया में मारते हैं। इन कार्यों में कोई बड़ा दोष नहीं होता। किन्तु प्राणायामादि से अपनोद्य स्वल्प ही दोष होता है। तुमने सुग्रीव के जीते हुए उसकी भार्या रुमा को सनातन धर्म छोड़कर भार्या बना लिया है। राजा का कर्तव्य है, तुम्हें दण्ड दे, दण्ड से शुद्ध होकर अपराधी स्वर्ग का भागी होता है। राजा दण्ड दे या छोड़ दे अपराधी शुद्ध हो जाता है। परन्तु दण्ड न देनेवाला राजा उस पाप का भागी होता है।

राम का वचन सुनकर भगवान् में मिथ्या दोषारोपण से वाली व्यथित हुआ और धर्म का तत्त्व जानकर उसने राम के प्रति दोष का अनुसन्धान नहीं किया—

"एवमुक्तस्तु रामेण वाली प्रव्यथितो भृशम्।
न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः॥" (वा० रा० ४।१८।४५)

इस तरह वाली स्वयं राम को निर्दोष समझकर उनके प्रति किये गये दोषारोपण के कारण अत्यन्त प्रव्यथित होता है और राम में दोष का ध्यान (चिन्तन) भी नहीं करता। फिर भी बुल्के, भदन्त कौसल्यायन आदि हठात् राम को दोषी मानते हैं और इन समाधानों तथा वाली के सन्तुष्टि आदि के बोधक वचनों को क्षेपक कहने का दुःसाहस करते हैं, जिसे सुस्त गवाह चुस्त वाग्मी कहावत ही कहा जा सकता है।

परन्तु यह सर्ग परम्परा प्राप्त है और टीकाकारों द्वारा व्याख्यात है, अतः इसे प्रक्षेप कहना सर्वथा असङ्गत है। नाटकों में रोचकता तथा रसाभिव्यक्ति के लिए ही राम से वाली का द्वन्द्वयुद्ध वर्णित है।

बुल्के कहते हैं "रामभक्ति के प्रादुर्भाव से रामकथा का समस्त वातावरण बदल दिया गया। तथा विभिन्न पात्रों की उग्रता तथा कुटिलता रामभक्ति में लीन कर दी गयी। दुष्ट राक्षस रावण भी पतितपावन राम के प्रभाव से पवित्र हो जाता है। इस प्रकार भारत की समस्त आदर्श भावनाएँ रामकथा में मर्यादापुरुषोत्तम राम तथा पतिव्रता सीता के चरित्रचित्रण में केन्द्रीभूत हो गयीं। फलस्वरूप रामकथा भारतीय संस्कृति के आदर्शवाद का उज्ज्वलतम प्रतीक बन गयी।"

इस सम्बन्ध में इतना ही कहना है कि रामभक्ति का यह चमत्कार स्वाभाविक है, परन्तु वह रामभक्ति वेदादि शास्त्रों से वर्णित अनादि एवं नित्य ही है। वह विकास का परिणाम नहीं है। रामकथा का वातावरण सदा से ही व्यावहारिक आदर्श मर्यादामय और पारमार्थिक भक्ति-भावनामय रहा है। भक्ति के प्रभाव से कुटिलता एवं उग्रता नष्ट होकर सरलता एवं नम्रता के रूप में परिणत होती ही है।

"पायी न केहि गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना।" (रा० मा० ७।१२९ के बाद छन्द)

रामकथा अनादिकाल से ही मर्यादापुरुषोत्तम, भक्तवत्सल, पतितपावन राम तथा अनन्तब्रह्माण्डों की ऐश्वर्य और माधुर्य की अधिष्ठात्री, पतिव्रता सीता के चरित्रचित्रण में ही पर्यवसित है।

अतएव सदा से ही रामकथा भारतीय आदर्श का उज्ज्वलतम प्रतीक है और रहेगी।

✲

एकविंश अध्याय

रामचरितसम्बन्धी लेख

मर्यादापुरुषोत्तम राम तथा जगज्जननी जानकी के प्रति वनमानव द्वारा प्रयुक्त अत्यन्त अशोभन अभद्र शब्दों का उत्तर

इसी प्रकार गणेशचन्द्र जोशी मन्वन्तर ने वनमानव महाकाव्य लिखकर जनकजा एवं अशोकवासिनी दो भागों में प्रकाशित किया है, जिसे राजस्थान सरकार ने उच्च माध्यमिक विद्यालयों में पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित किया है। जनकजाखण्ड के आपत्तिजनक अंश निम्नोक्त हैं। सम्पूर्ण पुस्तक कई प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नहीं हुई।

	पृष्ठ
(१) सीता विद्रोहिणी थी न कि पतिपरायणा	५
(२) सीता राम के साथ विवाह से असन्तुष्ट थी	१८२—१८५
(३) राम प्रपंचक थे	१६३
(४) बाल्मीकि और तुलसी खुशामदी थे	१६६
(५) राम दासता के समर्थक थे	१६८
(६) राम को आदर्श कहकर भक्त कवियों ने पाषण्ड का बाजार जोड़ा है	१७१
(७) राम दशरथ के नहीं वरन् वसिष्ठ के वीर्य से उत्पन्न थे	१७४
(८) राम छली थे	१७७
(९) लक्ष्मण सीता के अनुगामी और द्विवर थे	१७८
(१०) सीता स्वयं रावण के साथ गयी	२०७—२०८
(११) सीता रावण के ही योग्य थी	१८८
(१२) सीता रावण को चाहती थी	१९२—२०१
(१३) सीता लक्ष्मण की प्रेमिका थी	१९२
(१४) सीता वन से लौटने को तैयार न थी	१९७
(१५) राम का वनगमन नाटकमात्र था	१९५—१९६
(१६) सीता लङ्का में रहने को लालायित थी	१९९
(१७) लक्ष्मण सीता पर आसक्त थे	२०१
(१८) राम स्तेनवृत्ति के थे	२०७—२०८
(१९) सीता जनक की नहीं किसी अन्य की जायी थी	
(२०) लक्ष्मण व रावण में सीता के प्रति प्रेम की प्रतियोगिता थी	२१५
(२१) सीता के तीन प्रेमी राम, रावण और लक्ष्मण	२१६
(२२) लव लङ्का का वंशज था	२२०
(२३) सीता की तुलना गधी से	२२२
(२४) सीता रावण एवं लङ्का पर मुग्ध थी	२६२—२६३

अशोकवासिनी द्वितीय खण्ड में

उक्त कथन —**"मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतिकी ।"** न्याय के अनुसार निष्प्रमाण प्रलाप ही कहा जायगा । राम सीता कब हुए और क्या प्रमाण है । इस विषय में प्रत्यक्ष और अनुमान की प्रवृत्ति नहीं होती, क्योंकि प्रत्यक्ष से विद्यमान का ही बोध होता है और अनुमान भी लिङ्गलिङ्गीभाव, गम्यगमक, व्याप्यव्यापक सम्बन्धग्रह से ही होता है । यद्यपि आध्यात्मिक एवं आधिदैविक रूप से राम और राम की लीलाएँ आज भी विद्यमान हैं । पर बहिर्मुखों के लिए उनका अनुभव असम्भव ही है । ऐतिहासिकरूप से राम आधुनिक इतिहास के अविषय ही हैं । वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा पुराणों, तन्त्रों और आगमों से ही राम, सीता, लक्ष्मण, रावण एवं उनके चरित्रों का बोध हो सकता है । इन सद्ग्रन्थों से सीता, राम, लक्ष्मण का अत्यन्त पवित्र श्रौतस्मार्त धर्मों के अनुसार ही चरित्र है । वनमानव काव्याभास के द्वारा वर्णित दोष वेदादिप्रमाणों से सिद्ध नहीं हैं । निराधार एवं निष्प्रमाण ही कुछ कहना है तो कोई भी वनमानव एवं उसके लेखक को ही महापातकी, दुराचारी, वर्णसङ्कर, प्रतिलोम अन्त्यावसायी, षण्ढ, अभक्ष्यभक्षी, अपेयपायी आदि कुछ भी कह सकता है । **वाल्मीकिरामायण, रघुवंश** आदि काव्यों के द्वारा तो श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम, महान् योद्धा, पराक्रमी, परब्रह्म परमेश्वर विष्णु के अवतार हैं, लक्ष्मी अनन्त ब्रह्माण्डों की जननी ऐश्वर्य-माधुर्य की अधिष्ठात्री सीता हैं । शेष कारण ब्रह्म अनन्त शेष हैं । पतिपरायणा सीता को विद्रोहिणी लिखना लेखक की मूर्खता ही है । जल तथा तरङ्ग, चन्द्र-चन्द्रिका, भानु और प्रभा, अमृत और मधुरिमा के समान

सीता और राम दोनों अभिन्न थे। उनमें असन्तोष का प्रश्न ही कहाँ? राम प्रपञ्च के निर्माता होते हुए भी अधिष्ठानरूप से प्रपञ्चातीत ही थे। वाल्मीकि और तुलसी ही क्यों सभी ब्रह्मविद्वरिष्ठ ऋषि, मुनि आदि आस्तिक राम के प्रशंसक थे और हैं। श्रीराम 'दासोऽहं' के 'द' का अपहरण करके अधिकारियों में सोऽहं की भावना जगाते हैं। राम को आदर्श मानकर उनका अनुसरण करने से ही पाखण्ड का अन्त हो सकता है। राम सम्पूर्ण विश्व के माता, पिता एवं गुरु होते हुए भी अवतारवाद के सिद्धान्तानुसार दशरथनन्दन, कौशल्यानन्दवर्धन तथा वसिष्ठ के प्रिय शिष्य थे। राम छली नहीं, कूटमयी माया के पति और छल-छद्म के भेदक थे। लक्ष्मण सीता के अनुगत देवर 'रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।' के अनुसार राम को पिता एवं सीता को माता मानते थे। सीता रावण के विनाश के लिए रावण के साथ गयी भी हो तो भी कोई बाधा नहीं है। जगज्जननी विश्वकल्याणकारिणी सीता रावण का भी हित चाहती थी। तभी उन्होंने रावण के प्रति राम के अनन्त प्रभाव एवं तेज का वर्णन किया था। सीता लक्ष्मण की माता के तुल्य हितकारिणी थी। सीता सर्वकारण शक्ति होने से वन में, रण में सर्वत्र ही हैं और होंगी। सर्वव्यापी राम का वनगमन नाटक ही तो है। सीता सर्वत्र ही हैं। फिर लङ्का में ही क्यों? सर्वहितैषिणी हैं फिर लक्ष्मण की भी हितैषिणी होना युक्त ही है। राम का नाम दुर्वृत्तियों का विनाशक तथा सद्वृत्तियों का विधायक है। सीता सर्वकारण शक्ति अयोनिजा ही हैं। जगज्जननी सीता में सबकी स्वाभाविकी भक्ति युक्त है। भक्ति में उत्कर्ष सब को ही अभीष्ट है। सीता के निन्दक को गर्धभियों में भी स्थान दुष्प्राप्य है। रावण तथा लङ्का दोनों सीता-द्रोह के कारण नष्ट हो गये। लङ्का-निवास के कारण सीता की निन्दा करनेवाला अभिशप्त रजक ही था। सीता रामचन्द्र की चन्द्रिका ही हैं। सीता परम पुरुष राम की अनन्या हैं। सीता और राम के अखण्ड दिव्य दाम्पत्य से विश्वमङ्गल हुआ। सीता असङ्ग चिद्रूपिणी होने पर भी सर्वाभ्युदयरूपिणी भी थीं। ऋषियों एवं ब्राह्मणों पर अभक्ष्य भक्षण का दोषारोपण करनेवाला विड्वराह ही हो सकता है। भरत की माता कैकेयी के कारण ही रामायण बन सकती थी। कोल, भिल्ल, निषाद आदि सबके कल्याणार्थ ही सीता और राम का वनवास था। सीता और राम का ध्यान करने से सब रोगों की निवृत्ति तथा स्वर्णिम भगवत्प्रेम प्राप्त होता है। रामचरित सुनकर कापुरुषों में भी शौर्य जाग्रत् होता है। सर्वव्यापी, सर्वद्रष्टा राम के दर्शनमात्र से सब दोष दूर होते हैं। हनुमान् केसरी के क्षेत्र अञ्जना के गर्भ से उत्पन्न वातात्मज थे। हर नारी को दुराचारिणी कहनेवाला स्वयं को ही जारज सिद्ध करता है। वनमानव का लेखक श्रुति, स्मृति और पुराण के प्रमाण बिना सीता के विरुद्ध अनर्गल प्रलाप करनेवाला कुदानव ही है। उसने कलुषित मनोवृत्तियों के कारण राम के उपासकों, पूजकों, तथा भक्तों को ठेस पहुँचायी है।

रामचरित्र के सम्बन्ध में वर्तमान इतिहास का चञ्चु-प्रवेश नहीं हो सकता

इध देश में रामायण की घटनाओं की प्रामाणिकता के विषय में निरर्थक विवाद उपस्थित कर अपने को अधिक लोकप्रिय बनाने का प्रयास चल रहा है। कुछ दिन पहले भारतीय संस्कृति के मूल मन्त्र मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम की लीला के बदले रावणलीला मनाने का अभियान भी चला था। भारतीय बौद्धिक वर्ग ही ने इस प्रश्न का बौद्धिक स्तर पर उत्तर दिया और वह अभियान बन्द करना पड़ा। अब पुनः डाक्टर सांकलिया एवं उनके जैसे कुछ नवीन पुरातत्त्वविदों ने रामायण की कतिपय घटनाओं तथा विशिष्ट स्थानों की प्रामाणिकता तथा उनके सम्बन्ध में नये सूत्रों के अन्वेषण के बाद विवाद उठाया है।

डाक्टर सांकलिया ने वाल्मीकीय रामायण को पूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। वे उसे महाकाव्य मानते हैं। परन्तु उसमें वर्णित सेतुबन्धन, हनुमान् द्वारा समुद्र पार गमन, अंगूठी का प्रसङ्ग, लङ्का की स्थिति तथा कुछ ऐसी ही घटनाओं को वे अप्रामाणिक तथा काल्पनिक मानते हैं। इस सम्बन्ध में उनके तर्क अत्यन्त आधारहीन तथा परस्परविरोधी ज्ञात होते हैं।

यह नियम है कि जिन वस्तुओं का भाव जिस प्रमाण से सिद्ध होता है उनका अभाव भी उसी प्रमाण से विदित होता है। जिस प्रकार भूतल में घट का भाव आलोकादि सहकारी सहकृत मन-संयुक्त निर्दोष नेत्र से ही विदित होता है, उसी प्रकार घटाभाव भी उसी प्रमाण से विदित होता है। यह स्पष्ट है कि जिसके भाव का ज्ञान कर्णेन्द्रिय से होता है, उसके अभाव का ज्ञान नेत्रेन्द्रिय से नहीं हो सकता। शब्द का ज्ञान कर्णेन्द्रिय से होता है, शब्दाभाव के ज्ञान के लिए भी कर्णेन्द्रिय की ही आवश्यकता होती है किसी अन्य प्रमाण की नहीं।

प्रकृत में राम, सीता, लक्ष्मण, अयोध्या, लङ्का आदि का ज्ञान आधुनिक प्रत्यक्ष, अनुमान तथा आधुनिक इतिहास से नहीं हो सकता। रामायण एवं पुराणों के अनुसार राम का प्रादुर्भाव करोड़ों वर्ष पूर्व चौबीसवें त्रेता में हुआ है। आधुनिक ऐतिहासिक युग एवं प्रागैतिहासिक काल की सम्पूर्ण अवधि विद्वानों ने छह हजार वर्ष के भीतर ही मानी है। ऐसी स्थिति में राम के चरित्रों के सम्बन्ध में वर्तमान इतिहास का चञ्चु-प्रवेश हो ही नहीं सकता। उस सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी अब वाल्मीकीय रामायण से ही प्राप्त हो सकती है।

वाल्मीकिरामायण का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि रामायण का निर्माण कुछ संवाददाताओं या टेलीप्रिन्टरों से भेजे गये समाचारों के आधार पर नहीं हुआ। उसका निर्माण महर्षि वाल्मीकि ने समाधिजनित ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा अतीत, अनागत, वर्तमान, स्थूल, सूक्ष्म, सन्निकृष्ट तथा विप्रकृष्ट सभी वस्तुओं का साक्षात्कार कर के राम, लक्ष्मण, सीता आदि के हसित, भाषित, इङ्गित, चेष्टित आदि सभी व्यापारों का पूर्णरूप से साक्षात्कार किया। महर्षि वाल्मीकि अलौकिक मुनि थे। वे लौकिक गति और दिव्य गति द्वारा भी सब जगह आ जाकर सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते थे। अतः सेतुबन्धन और समुद्र आदि के सम्बन्ध में रामायण के वर्णन की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनके विषय में **वाल्मीकिरामायण** ही सबसे बड़ा प्रमाण माना जायेगा।

सेतुबन्धन कल्पना नहीं

रामायण में वर्णित रामेश्वर की स्थापना वर्तमान इतिहास से भी प्रमाणित होती है। सहस्राब्दियों से भारत के कोने-कोने से लोग रामेश्वर का दर्शन करने जाते हैं। गङ्गोत्री से जल लेकर अतिप्राचीन काल से धर्मप्राण जनता वहाँ चढ़ाने जाती है। धर्मशास्त्र की मान्यता के अनुसार सेतुबन्ध रामेश्वर के दर्शन से ब्रह्महत्याओं के पाप दूर होते हैं। पुराणों में इन बातों का विशद वर्णन है। कूर्मपुराण पूर्वभाग के इक्कीसवें अध्याय में आये इन श्लोकों से रामेश्वर की महत्ता तथा प्राचीनता स्पष्ट होती है—

"यत्त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीह द्विजातयः।
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनश्यतु॥ ४९॥
अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ।
दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशयः॥ ५०॥
यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी।
यावत्सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहितः॥ ५१॥

इसी प्रकार के अन्य वचन स्कन्दपुराण तथा अन्यान्य पुराणों में भी मिलते हैं। इन वचनों तथा मान्य ग्रन्थों के प्रमाणों के अतिरिक्त रामेश्वर नाम ही रामेश्वर की मूर्ति और मन्दिर का भगवान् राम के साथ असाधारण सम्बन्ध स्थापित करता है, अतः सेतुबन्ध रामेश्वर की घटना **वाल्मीकिरामायण** द्वारा वर्णित रामेश्वर से भिन्न वस्तु नहीं हो सकती।

सेतुनिर्माण की घटना मात्र कल्पना नहीं है। वाल्मीकिरामायण में सेतुनिर्माण की प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन किया गया है। उसका प्रारम्भ, समाप्ति और नाप-जोख सबपर इस रामायण में प्रकाश डाला गया है। वाल्मी-

किरामायण के युद्धकाण्ड के २२ वें सर्ग के ५० से ७२ वें श्लोक तक प्रतिदिन कितना निर्माण हुआ, कितने दिनों में सेतु बनकर तैयार हुआ इसका ब्योरेवार वर्णन किया गया है। पूर्ण सेतु का निर्माण पाँच दिनों में हुआ था। प्रथम दिन १४ योजन, दूसरे दिन २०, तीसरे दिन २१, चौथे दिन २२ एवं पांचवे दिन २३ योजन के अनुपात से पांच दिनों में पूर्ण सेतु बन कर तैयार हुआ था। उसकी लम्बाई १०० योजन तथा चौड़ाई १० योजन थी। आनुनिक युग में विभिन्न देशों में निर्मित अत्यन्त विशाल सेतुओं की उपस्थिति उक्त सेतुबन्धन की घटना को वास्तविक मानने को बाध्य करती है।

समुद्र-वर्णन तथा दक्षिण भारत की स्थिति

वाल्मीकिरामायण में समुद्र, समुद्र की लहरें, जलजन्तुओं, रत्नों, तटीय वस्तुओं, चन्द्रमा के कारण आनेवाले समुद्री ज्वारभाटों तथा समुद्र से सम्बद्ध अन्यान्य वस्तुओं का जितना सजीव वर्णन किया गया है, उसका जीवन्त वर्णन किसी भी ऐसे व्यक्ति के द्वारा सम्भव नहीं है जिसने कभी समुद्र देखा ही न हो। उदाहरण के लिए सुन्दरकाण्ड के प्रथम सर्ग में हनुमान्जी द्वारा समुद्र-गमन के समय का वर्णन प्रस्तुत है—

"यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः।
स तु तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते ॥ ६६ ॥
सागरस्योर्मिजालानामुरसा शैलवर्ष्मणा।
अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः ॥ ६७ ॥
मेरुमन्दरसंकाशानुद्वमन् (?) स महार्णवे।
अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान् गणयन्निव ॥ ७० ॥
तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा।
वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ७२ ॥

वाल्मीकिरामायण जैसे प्रामाणिक ग्रन्थ में वर्णित वस्तु के विषय में 'अमुक वस्तु अमुक स्थान पर ही रही होगी' की कल्पना निःसार है। उस रामायण में वर्णित वस्तुओं, घटनाओं एवं स्थानों के विषय में तो निश्चितता है, परन्तु आधुनिक लोगों द्वारा तथाकथित अन्वेषणों के विषय में तो अनिश्चय की स्थिति बनी ही हुई है। ऐसी स्थिति में निश्चित प्रमाण को छोड़कर अप्रामाणिक की ओर दौड़ना अन्धकारयुक्त मकान में वस्तुओं को खोजने के लिए प्रयास करने के समान है। महर्षि वाल्मीकि ने भगवान् राम के समुद्र तक पहुँचने के विभिन्न मार्गों का विशद वर्णन किया है। आज भी उन्हीं मार्गों से दक्षिण भारत की तीर्थयात्रा होती है। किष्किन्धा में वाली को मारकर राम ने चौमासा किया था। वह किष्किन्धा दक्षिण भारत में आज भी किष्किन्धा नाम से ही प्रसिद्ध है। **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित किष्किन्धा की स्थिति को छोड़कर बिना किसी प्रमाण के बेलारी या अन्य किसी स्थान पर उस स्थान की कल्पना करना वास्तविकता को अस्वीकार करना है। नासिक, पञ्चवटी आदि स्थानों के विषय में भी शङ्काएँ उठायी गयी हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि नासिक का सम्बन्ध रामायण की महत्त्वपूर्ण घटना शूर्पणखा के नासिका-छेदन से है। पञ्चवटी भी वहीं है। रामायण से भी दोनों स्थानों का पास पास होना प्रमाणित होता है। आधुनिक काल में भी पञ्चवटी और नासिक एक ही स्थान पर हैं। इन स्थानों का **वाल्मीकिरामायण** के वर्णन से साहचर्य सम्बन्ध प्रतीत होता है। महाकवि ने रामायण में लगभग दो सौ साठ स्थानों का वर्णन किया है। इनमें से अधिकांश स्थान आज भी दक्षिण भारत में ही हैं। गोदावरी, कृष्णा, वरदा आदि नदियां, आन्ध्र, चोल, पाण्डय, केरल आदि स्थान दक्षिण भारत में ज्यों के त्यों विद्यमान हैं।

समुद्रसम्बन्धी पर्वतों का वर्णन भी स्वाभाविक ढंग से हुआ है। वे पर्वत आज भी विभिन्न नामों से विभिन्न रूपों में अवस्थित हैं। **वाल्मीकिरामायण** में लङ्का जाते समय हनुमान् का महेन्द्र पर्वत किष्किन्धाकाण्ड (सर्ग-६७ श्लोक ३९) तथा लौटते समय अरिष्ट पर्वत (सुन्दरकाण्ड सर्ग ५६ श्लोक २६) पर चढ़ना बताया गया है।

इसी तरह सुबेल, सह्य, मलय इत्यादि पर्वतों का भी वर्णन किया गया है। इन सब **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित एवं आधुनिक जगत् में प्रसिद्ध वस्तुओं एवं स्थानों में **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित अर्थ ही प्रमाणित होता है। अतः यह कहना तथ्यों से विपरीत है कि महर्षि वाल्मीकि को दक्षिण भारत की भौगोलिक स्थिति एवं उसके रीति-रिवाजों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। जहाँ तक दक्षिण में शव गाड़ने की प्रथा का प्रश्न है, आधुनिक इतिहास के आधार पर उसे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। आधुनिक इतिहास मात्र ६ हजार वर्ष पुराना है, जब कि **वाल्मीकिरामायण** में वर्णित वाली के शव-दाह की घटना करोड़ों वर्ष पुरानी घटित घटना है। रामायण की संस्कृति सर्वथा वैदिक संस्कृति है। राम, रावण, वाली इत्यादि वैदिक संस्कृति के व्यक्ति थे। हनुमान्जी भारतीय संस्कृति के अध्येता थे। वैदिक संस्कृति में 'भस्मान्तं शरीरम्' इत्यादि वेदमन्त्र के अनुसार प्राधान्येन शवदाह का ही समर्थन किया गया है। अतः वाली एवं रावण के शव-दाह का आदेश देना वैदिक संस्कृति के अनुसार सर्वथा उपयुक्त था। शव को गाड़ने की कल्पना कथञ्चित् हो तो वह मध्यकाल की बात हो सकती है। इसको दक्षिण भारत का शाश्वतिक धर्म नहीं माना जा सकता।

उत्तर भारत में भी साधु-सन्यासी, सन्त, महात्मा इत्यादि को जलाया नहीं जाता, उनकी समाधि बनती है। छोटे एवं असंस्कृत बालकों के शव के साथ भी यही होता है। कहीं कहीं प्लेग इत्यादि की बीमारी में मरे वयस्क पुरुषों के शव को भी गाड़ा ही जाता है, उन्हें जलाया नहीं जाता है। हमारे यहाँ शवों के सम्बन्ध में सर्वत्र दहन, खनन एवं प्लावन की परम्परा है। अतः इनमें से किसी मुस्लिमबहुल प्रदेश में कब्रों को देखकर यह निर्विवाद निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि यहाँ केवल कब्र ही बनती रही हैं, उसी प्रकार किसी स्थान विशेष पर शव गाड़ने की प्रक्रिया को लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि वहाँ पर सदा शव गाड़े ही जाते रहे हैं। यह बात तात्कालिक ऐतिहासिक हो सकती है पर शाश्वतिक ऐतिहासिक नहीं है।

जहाँ तक **वाल्मीकिरामायण** वर्णित स्थानों का प्रश्न है वह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। वानरराज सुग्रीव ने बन्दरों द्वारा सीता के अन्वेषण के लिए जिन स्थानों का वर्णन किया है वे अत्यन्त सजीव हैं तथा किसी भी अन्वेषण करनेवाले के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री सिद्ध हो सकते हैं। प्रारम्भ में जो-जो घटनाएँ जिन-जिन स्थानों पर घटित हुई थीं, लङ्का-विजय के पश्चात् लौटते समय भगवान् राम ने भगवती सीता से उन सभी स्थानों तथा घटनाओं का वर्णन किया है—

"अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद् विभुः।
एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः॥ २०॥
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम्।
एतत्पवित्रं परमं महापातकनाशनम्॥ २१॥"
"एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे॥ १६॥"
"कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थितम्।
लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा॥ ३॥"
"यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात्।
एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शुभा॥४५॥"(वा० रा० ६। सर्ग १२३)

इसी तरह हिरण्यनाम पर्वत १८, किष्किन्धा २२, ऋष्यमूक ३८, पम्पा ४०, पर्णशाला आश्रम ४२-४४, शबरीमिलन स्थल ४१, अगस्त्य एवं शरभङ्ग मुनियों के आश्रम ४६, चित्रकूट ४९, भरद्वाज आश्रम ५१, शृंगवेरपुर ५२ इत्यादि स्थानों का वर्णन भगवान् राम ने किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि **वाल्मीकिरामायण** वर्णित स्थान पूर्ण प्रामाणिक हैं। अभी भी उन स्थानों की उपस्थिति तथा तीर्थ की दृष्टि से उनके महत्त्व पर किसी भी मान्य विद्वान् ने अपना मतभेद नहीं व्यक्त किया है। डाक्टर सांकलिया ने **वाल्मीकिरामायण** को पूर्ण प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। फिर उसी ग्रन्थ के किसी अंश को क्यों अप्रामाणिक माना जाय यह तर्क की दृष्टि से समझ में नहीं आता। ऐसा करना किसी मुर्गी के आधे अङ्ग को पकाकर खा जाने तथा आधे अंग को अण्डा देने के लिए रख छोड़ने की घटना के समान है।

लंका की स्थिति

ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि **रामायण** में वर्णित स्थानों के लिए **वाल्मीकिरामायण** ही सबसे बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ है। इस **रामायण** के अनुसार लङ्का समुद्र तट से सौ योजन दूर थी। इन लोगों द्वारा अभी तो पूर्वी मध्यप्रदेश, दक्षिणी विहार, पश्चिमी बंगाल एवं छोटा नागपुर के आस-पास लङ्का की स्थिति का निर्धारण करना है। उसके लिए अभी कोई प्रमाण भी नहीं है। आज भी लङ्का नाम से ही जब प्रसिद्ध द्वीप है तब फिर 'लक्का' को 'लङ्का' कहा होगा, यह कहने की आवश्यकता ही क्या है ? यह नहीं कहा जा सकता कि लङ्का नाम की कोई चीज नहीं थी। वर्तमान श्रीलङ्का भी हमारे मत में रावण की लङ्का नहीं है। इस लङ्का का दूसरा नाम सिलोन भी है। सिंहल के ग्रन्थों में इस सिंहलद्वीप को रावण की लङ्का से विभिन्न बतलाया गया है। भारतीय पौराणिक भूगोल के अनुसार आज की श्रीलङ्का महाभारत का सिंहलद्वीप ही है। वास्तविकता यह है कि वाल्मीकिरामायण में वर्णित रावण को लङ्का सर्वसाधारण के लिए आज लुप्त हो गयी है। वहाँ दीर्घजीवी लोग रहते हैं। वे सामान्य व्यक्तियों द्वारा नहीं देखे जा सकते। आधुनिक भूगोलवेत्ता भी यह मानते हैं कि सहस्राब्दियों में भूगोल में पर्याप्त परिवर्तन हो जाया करता है। यह मान्यता बहुसम्मत है कि जहाँ आज हिमालय है वहाँ पहले समुद्र था। स्वयं डाक्टर सांकलिया ने यह माना है कि कुछ टीले ऐसे रहे होंगे जो इस समय आस्ट्रेलिया की ओर बढ़ गये होंगे। अतः रावण की लङ्का आध्यात्मिक एवं भौगोलिक दोनों कारणों से ही लुप्त हो गयी है। लङ्का को मध्य प्रदेश अथवा इधर-उधर खोजना एक व्यर्थ का प्रयास है। वाल्मीकिरामायण की कतिपय घटनाओं को अप्रामाणिक मानने के लिए कुछ भी ठोस तर्क प्रस्तुत नहीं किये गये हैं।

जहाँ तक रावण की जाति एवं संस्कृति का सम्बन्ध है, **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार वह वैदिक संस्कृति में दीक्षित कर्मनिष्ठ ब्राह्मण था। वह परम तपस्वी पुलस्त्य का पौत्र तथा विश्रवा मुनि का पुत्र था। आज भी भारत में पुलस्त्य गोत्र प्रचलित है। इन प्रमाणों के रहते हुए भी उसे दूसरी जाति का व्यक्ति मानने की निराधार कल्पना करना सर्वथा अनुचित है।

यह सही है कि **वाल्मीकिरामायण** की कथाएँ युगों से गायी जाती रही हैं। ऐसी स्थिति में यदि उन कथाओं में प्रमाणविरुद्ध अंश आ जाय तो उसमें कुछ कल्पना का अंश आ सकता है। पर इन कथाओं में ऐसी कोई प्रमाणविरुद्ध बातें नहीं पायी गयी हैं। इसके विपरीत युगों से प्रचलित इन कथाओं में आश्चर्यजनक रूप से एकरूपता बनी हुई है। यह तथ्य **वाल्मीकिरामायण** की प्रामाणिकता के लिए सबसे बड़ा आधार है।

हमारे यहाँ वेदों की आचार्य-परम्परा मानी जाती है। गुरु-शिष्य-सम्प्रदाय-परम्परा से जैसे वेदों की रक्षा होती रही है, वैसे ही गुरु-शिष्यों की परम्परा से ही **रामायण** तथा **पुराणों** की भी रक्षा होती रही है। इसलिए

रामायण में यदि कोई नयी चीज प्रविष्ट हुई तो उसे रामायण का प्रसिद्ध अंश न मानकर क्षेपक की संज्ञा दे दी गयी। **वाल्मीकिरामायण के** टीकाकारों ने तत्तत् क्षेपकों को न मानने का हेतु यही आधार बताया कि 'यहाँ सम्प्रदाय-प्राप्त व्याख्या नहीं है, अतः क्षेपक प्रमाण नहीं माने जा सकते। इसी सम्प्रदाय विशेष के कारण ही **वाल्मीकिरामायण** के मौलिक रूप की रक्षा होती रही है। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि "**वाल्मीकिरामायण** की कथाओं में कालान्तर में व्यापक काटछाँट की गयी।" **रामायण** में **महाभारत** की चर्चा नहीं है। इधर काव्यों में तथा कालिदास अश्वघोष प्रभृति कवियों ने भी **रामायण** की चर्चा की है। बौद्ध जातकों तथा जैन **पउमचरियं** में **रामायण** का वर्णन है। इनके आधार पर ही रामकथाओं के भिन्न रूप बने भी हैं। अनेक विदेशी विद्वानों ने भी रामकथा के सम्बन्ध में **वाल्मीकिरामायण** को ही सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। भारतीय संस्कृति का सन्देशवाहक यह महान् ग्रन्थ रामकथासागर में युगों से भारतीयों को गोता लगवाकर आज भी प्रत्येक भारतीय को उसमें गोता लगवाकर उनके जीवन को मानवता के उदात्त आदर्शों के अनुसार जीने की पवित्र प्रेरणा दे रहा है। ऐसे प्रामाणिक ग्रंथ को छोड़कर निराधार कल्पना के सहारे नयी खोजों का दावा करना बौद्धिकस्तर से नीचे उतरने की बात है।

आधुनिक लोग **वाल्मीकिरामायण** के अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर एवं लङ्का इन पाँच ही काण्डों को प्रामाणिक मानते हैं, जो सर्वथा अनुचित है। वैसे तो **वाल्मीकिरामायण** में प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सर्वत्र ही राम को विष्णु का अवतार माना गया है। अतः राम को गुप्तकाल में विष्णु का अवतार कहा गया, यह बात पूर्णतया गलत है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि **वाल्मीकिरामायण** की सभी घटनाएँ पूर्ण प्रामाणिक हैं। भारतीय संस्कृति, परम्परा तथा धार्मिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के मूल रहस्य इसी ग्रन्थ में सुरक्षित हैं। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम को आधुनिक इतिहास की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। किसी मान्य ग्रन्थ के कुछ अंशों को प्रामाणिक तथा कुछ को अपनी आधारहीन बातों को सिद्ध न कर सकने की दशा में अप्रामाणिक मानने की दुराग्रही दृष्टि का परित्याग करना इस समय अत्यावश्यक है। सभी लोगों को धार्मिक तथा आध्यात्मिक ग्रन्थों की बातों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने के प्रयास से अपने को दूर रखने का प्रयास करना चाहिये।

धार्मिक ग्रन्थों के विषय में ऐसी बातों से तनाव एवं विवाद का वातावरण पैदा हो जाता है। हमें ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना है जिससे इस समय देश में कोई दूसरी समस्या उपस्थित हो। **रामायण** की घटनाओं के विषय में धर्माचार्यों का निर्णय ही एकमात्र दिशानिर्देक होना चाहिये। इस सम्बन्ध में हम सदैव आवश्यक विचार-विनिमय के लिए तत्पर हैं।

निगमागमसार मानस का प्रत्येक पद पापराशिनाशी एवं अकाट्य

गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने **रामचरितमानस में वेद, उपनिषद्, वाल्मीकिरामायण, महाभारत, पुराणों** तथा **आगमों, तन्त्रों** एवं **संहिताओं, धर्मशास्त्रों** के अनुसार उत्कृष्ट कोटि के विचारों से परिपूर्ण श्रीराम के चरित्र को उपस्थापित किया है और बड़ी निर्भीकता से शास्त्रीय सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं।

जीव यद्यपि सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् प्रभु का निर्मल निष्कलङ्क पवित्र अंश ही है—

"ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥" (रा० मा० ७।११६।१)

तथापि मायापराधीन होने के कारण और अविद्या, काम-कर्मों से उसकी ज्ञान-विज्ञान की परिधि बहुत सीमित हो जाती है। सच्छास्त्रों एवं सद्गुरुओं की कृपा से ही धर्म-ब्रह्म का प्रबोध होता है। अतः सभी

आस्तिक सम्प्रदायों ने वेदादि-शास्त्रों के प्रामाण्य का सर्वोत्कृष्ट महत्त्व माना है। वेदादि-शास्त्रों का ही परमसार **श्रीरामचरितमानस** है। शास्त्रों का अमुक अंश ही आदरणीय है, अमुक नहीं, यह आस्तिकता नहीं है। वेदादि-शास्त्रों के महातात्पर्य का विषय 'परब्रह्म' **रामचरितमानस** के 'राम' हैं। उनका परम-पवित्र चरित्र ही **रामचरितमानस** का वर्णनीय विषय है। राम के सम्बन्ध से ही रावण का भी चरित्र वर्णनीय कोटि में आता है; तभी तो—

"चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥"

के अनुसार शतकोटिप्रविस्तर रामायण का एक-एक अक्षर महापातकों को नष्ट करने की सामर्थ्य रखता है। फलतः रावण के चरित्र का वर्णन भी रामचरित्र का अङ्ग होने के नाते ही पापनाशन में सक्षम है, अतएव अनुष्ठान में सबका पाठ होता है। **श्रीवाल्मीकिरामायण** के सभी श्लोक संपुटितरूप से अनुष्ठान में पठनीय होते हैं। वेदों का प्रत्येक अक्षर सार्थक एवं सप्रयोजन है; यह उत्कृष्ट मीमांसापद्धति से सिद्ध है। ठीक वैसे ही **रामचरितमानस** का प्रत्येक अक्षर सार्थक एवं सप्रयोजन है। उसके किसी एक वाक्य को भी निरर्थक या गौण नहीं मानना चाहिये। वेदादि-शास्त्रों को भगवान् का वाङ्मय विग्रह माना जाता है। **महाभारत** तथा **श्रीभागवत** के सम्बन्ध में भी ऋषियों की वैसी ही धारणा है। भगवान् के वाङ्मय शरीर **वेद, रामायण, भारत, भागवत** में कोई नयी वस्तु डाल देना, वैसा ही अनिष्ट होगा, जैसे भगवान् के उपास्य विग्रह में काँटा चुभाना। उसमें से कुछ अंशों को प्रक्षिप्त कहकर निकाल देना भी वैसा ही अनिष्ट होगा, जैसे भगवान् के विग्रह से किसी अङ्गोपाङ्ग को पृथक् कर देना। ठीक उसी तरह **रामचरितमानस** भी भगवान् श्रीराम का विग्रह है, अतः उसमें नये अंश का सन्निवेश एवं विद्यमान अंशों का बहिष्करण भी पूर्वोक्त नीति से अनुचित होगा। **रामचरितमानस** का नियमित अनुष्ठान होता है। वह आज का पवित्र धर्म-ग्रन्थ है। अतः उसके किसी अंश को उपेक्षणीय या अपरिपक्व विचार की परणति नहीं कहा जा सकता है।

श्रद्धा और अन्धविश्वास में यही अन्तर होता है कि वेदादि-शास्त्रों एवं तदनुसारी गुरुओं के वचन में विश्वास श्रद्धा है। अप्रामाणिक वस्तुओं में विश्वास अन्ध श्रद्धा है। यह ठीक है कि किसी एक प्रसङ्ग या कुछ पंक्तियों के आधार पर ही **मानस** का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता, किन्तु सम्पूर्ण **मानस** के उपक्रम, उपसंहार की एकरूपता, अभ्यास, फल, अपूर्वता, अर्थवाद और उपपत्ति का विचारकर उसका निष्कर्ष निकाला जा सकता है, तो भी उन कुछ पंक्तियों का भी समन्वय करना पड़ेगा। उन्हें उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह भी **मानस** का अङ्ग ही है। उसका भी अनुष्ठान होता है। पर यदि ऐसा न हो सका तो अवश्य ही उन कुछ अंशों एवं पंक्तियों का दुरुपयोग होगा। **मानस वेद, रामायण, महाभारत, पुराण** तथा **धर्मशास्त्रों** के समन्वयात्मक अध्ययन का ही परिणाम नहीं, किन्तु सम्प्रदायपरम्पराप्राप्त सुनिश्चित परिपक्व सिद्धान्त में परिनिष्ठित, प्रामाणिक अधिकृत साक्षात् भगवान् शङ्कर और हनुमान्‌जी महाराज का प्रसादस्वरूप है—

"सपनेहु साचेहु मोहि पर जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहउँ सब भाषाभनिति प्रभाउ॥" (रा० मा० १।१५)

अतः उसके आधार पर द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि सिद्धान्तों का विश्लेशण भी अनुचित नहीं, किं बहुना धर्मनीति, राजनीति तथा व्यवहारों के औचित्य अनौचित्य का विश्लेषण भी अनुचित नहीं।

"ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥" (रा० मा० ५।५८।३)

वस्तुतः उक्त पंक्ति भी निरर्थक नहीं, वह भी तुलसी-साहित्य की उपेक्षणीय वस्तु नहीं है। वह बटलोई के किसी कोने के कच्चे चावल के एक कण के समान नहीं है। यदि बटलोई के सब चावल पके हैं, तो एक चावल

के कच्चे रहने का प्रश्न ही नहीं उठता है। प्रकृत पंक्ति का स्पष्ट अर्थ यही था कि गँवार समुद्र से भगवान् राम ने नम्रतापूर्वक लङ्का जाने का मार्ग माँगा था, पर समुद्र पर उसका कोई असर नहीं पड़ा। जब राम ने धनुष उठाकर शर-सन्धान किया, तब वह विनम्र होकर सामने आया और काम की बात करने लगा। अतः ऐसे स्थलों पर विनम्रता व्यर्थ होती है। वहाँ शर-सन्धान ही लाभदायक होता है। उस प्रसङ्ग में समुद्र ने ही गँवार आदि की बात कही, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि सभी गँवारों, ढोलों, पशुओं तथा नारियों को ताड़ना देते रहना चाहिये। ढोल को निरर्थक कौन ताड़ता है—जहाँ दूसरे वाद्यों से स्वर मिलाना होता है वहीं हथौड़ी से ठोंक-ठोंक कर ढोल, तबला या मृदङ्ग का स्वर मिलाया जाता है। निरर्थक कोई भी ढोल को नहीं ठोंकता है। पशु का भी कोई सदा ताड़न नहीं करता है, किन्तु जब बैल को हल में या गाड़ी में चलाना होता है तब शिक्षा के लिये उसकी ताड़ना भी अपेक्षित होती है। इतना ही क्यों? भारतीय परम्परा में तो उपाध्याय (अध्यापक) अपने छात्रों को भी चपेटिका प्रदान करता है। वह भी उसके हित के ही लिए, अहित के लिए नहीं। उसका प्रमाद तथा असावधानी मिटाने के लिए। इसी तरह कभी नारी की भी ताड़ना अपेक्षित होती है। बृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लेख है कि स्त्री को भूषण-वसन देकर प्रसन्न कर के काम लेना चाहिये। यदि कभी उससे अनुकूल न हो तो उसे ताड़न कर के भी अनुकूल बनाना चाहिये—

"सा चेदस्मै न दद्यात् काममेनामवक्रीणीयात् सा चेदस्मै नैव दद्यात् काममेनां यष्ट्या वा पाणिना वोपहत्यातिक्रामेदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव भवति।" (बृ० उ० ६।४।७)

अतः पति परिस्थिति विशेष में ताड़न कर सकता है, वैसा ताड़न स्त्री को अभीष्ट होता है। वह उसे बुरा नहीं मानती। किसी ने तो यह भी कहा है कि जो पति कभी ताड़न नहीं करता, स्त्री उससे सन्तुष्ट नहीं होती है। ताड़न और प्यार दोनों अपेक्षित हैं:

"कबहुँ न हँसि कर कर गह्यो कबहुँ न रिसि कर केस।
का कन्ता के घर रहे का भयो गये विदेस॥"

जो पति कभी प्यार नहीं करता और कभी क्रोध नहीं करता, वह स्त्री की दृष्टि में उपयुक्त पति होने का अधिकारी ही नहीं है। शास्त्रों की दृष्टि से बालकों का ताड़न विदित है—

"लालयेत् पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्॥"

प्रथम पाँच वर्ष तक बालक का लालन करना चाहिये और दस वर्ष तक ताड़न करके उसे शिक्षित करना चाहिये। सोलहवें वर्ष से पुत्र के साथ मित्र का सा व्यवहार करना चाहिये। इसी प्रकार शास्त्रानुसार स्त्रियों का विवाह ही उपनयन है—

"वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासः गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥" (मनु० २।६७)

पति-कुलवास ही उनका गुरुकुलवास है। पतिसेवा ही गुरुशुश्रूषा है। शास्त्रानुसार रजोदर्शन के प्रथम ही उपनयनकाल में ही यह सब होना चानिये। वह बाल्यावस्था ही होती है। उनका शिक्षण पति के द्वारा ही होता है। अतः जैसे माता-पिता तथा गुरु बालक का, सुशिक्षा के लिए ही, ताड़न करते हैं। उसी तरह पति भी सुशिक्षा के लिए स्त्री का ताड़न करता है। जैसे कोई बालकों का भी निरर्थक ताड़न नहीं करता, उसी तरह स्त्री का भी ताड़न निरर्थक नहीं। किन्तु शिक्षा की दृष्टि से आवश्यक होने पर ही उनका ताड़न विहित है। इसके अतिरिक्त एक ताड़न

शृङ्गाररस का अनिवार्य अङ्ग है। उसकी विशेष जानकारी "ऋग्वेद" के उर्वशी-पुरूरवा-संवाद से प्राप्त करनी चाहिये। जिस ताड़न को उर्वशी ने शर्त के रूप में रखा था।

ताड़न शब्द का प्रयोग केवल मारना, पीटना ही नहीं है, अनुशासन और डाँटना भी ताड़न है। प्रकृत में भी भिन्न भिन्न पात्रों में ताड़न एक जैसा नहीं कहा जा सकता है। ढोल के ताड़न का अर्थ हाथ से या हथौड़ी से स्वर मिलाना या कपड़ा लपेटे हुए छोटे काष्ठ के डण्डे से बजाना। गँवार का भी अर्थ अज्ञ होता है। शूद्र का भी अर्थ अशिक्षित शूद्र है। उसके ताड़न का अर्थ है। उसे शिक्षित करना। वैसे तुलसीदासजी ने निषाद, चित्रकूट के कोल, भिल्ल, किरातों का भी गुण-गान किया है. जो कि शूद्र से भी निकृष्ट कोटि के माने जाते थे। जिनकी छाया के स्पर्श से भी जल-प्रोक्षण किया जाता है—

"जासु छाँह छुइ लेइय सींचा।" (रा० मा० २।१९२।२)

घोड़ा, बैल आदि पशु यदि ठीक नहीं चलते हैं तो उनका छोटे हलके डण्डे या चाबुक आदि से भी ताड़न किया जाता है या शिक्षण के लिए भी कुछ ताड़न करना पड़ता है। अतः पाँचों के लिए एक प्रकार का ताड़न नहीं हो सकता।

उक्त सन्दर्भ में यह भी नहीं भूलना चाहिये कि श्रीतुलसीदासजी ने **मानस** में नारी-जाति के बहुत अधिक सम्मान का वर्णन किया है—

"जौ केवल पितु आयसु ताता।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥" (रा० मा० २।५५।१)

अर्थात् यदि केवल पिता की आज्ञा है वन जाने की, तो माता को बड़ी मान कर तुम मुझ माता के आज्ञानुसार वन मत जाओ। यह मनुजी की उस उक्ति के अनुसार कहा गया है जिसमें उन्होंने पिता से सहस्रगुना माता का सम्मान करना कहा है—

"सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते।" (मनु० २।१४५)

भगवती सुनयना, सुमित्रा, अनसूया, सीताजी आदि नारियों के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत कुछ कहा ही है। **अरण्यकाण्ड** में श्रीराम-नारद-संवाद में जो स्त्री-दोष का वर्णन है, वह शुद्ध वैराग्य के लिए ही और वह पुरुषों का भी उपलक्षण है। जैसे पुरुषों को परस्त्रियों से रागनिवृत्ति के लिए दुष्ट स्त्रियों का दोषानुसन्धान करके सावधान रहना चाहिये, उसी प्रकार स्त्रियों को दुष्ट पुरुषों का दोष जानकर सावधान हो स्वधर्म-निष्ठ होना चाहिये। इसी प्रकार **मानस** के प्रत्येक प्रसङ्ग को देश, काल, पात्र और परिस्थिति के सन्दर्भ में देखते हुए विचार करना चाहिये; तभी निर्णय में सुगमता सिद्ध होगी।

महाभारत केवल इतिवृत्त ही नहीं ज्ञानमय प्रदीप है

कहा जाता है कि "इतिहास यथार्थ घटना का वर्णन करता है, पर इससे व्यासजी को सन्तोष नहीं हुआ। इतिहास से राग-द्वेष ही बढ़ता है। एक-एक समाज या राष्ट्र इतिहास के कारण दुश्मन बन जाते हैं। उस राग-द्वेष की आँधी में पड़ी हुई नाव से किसी लक्ष्य पर नहीं पहुँचा जा सकता। अतः नारदजी के उपदेश से व्यासजी ने भावात्मक भक्ति का आश्रयण किया और सन्तुष्ट हुए। अतः जैसे शवच्छेदन के निष्कर्ष लेखरूप में उपयुक्त हो सकते हैं, पर उनका प्रदर्शन बीभत्स ही दृश्य उपस्थित करता है, उसी तरह इतिहास का निष्कर्ष लाभदायक हो सकता है, परन्तु स्वयं में वह बीभत्स ही होगा।"

कहना न होगा कि उक्त विचार भ्रामक एवं भ्रमपूर्ण हैं। वस्तुतः महाभारत कोरा इतिहास नहीं है, किन्तु महाभारत के व्याज से भगवान् व्यास ने वेदार्थ प्रदर्शित किया है—

"भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।" (भाग० पु० १।४।३०)

वस्तुतः **रामायण, महाभारत** एवं अष्टादश पुराण वेदों के आर्ष भाष्य ही हैं। इतिहास पुरानी घटनाओं का दुहराना मात्र नहीं है, क्योंकि वैसा करना गड़े मुर्दों को उखाड़ने के अतिरिक्त और कुछ न होगा, किन्तु उन्हीं घटनाओं एवं व्यक्तियों का उल्लेख इतिहास कहा जा सकता है जिनके स्मरण से समाज को धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में कुछ सबक सीखने को मिलता हो। इसी लिए तो हरएक घटना ऐतिहासिक घटना नहीं होती और न हरएक व्यक्ति ऐतिहासिक व्यक्ति होता है। वैसा होना सम्भव भी नहीं है। नगरपालिका में नगर में उत्पन्न होनेवाले और मरनेवाले मनुष्यों का उल्लेख होता है, परन्तु नगर में कितने मच्छर उत्पन्न हुए या मरे इसका लेखा-जोखा नहीं होता। क्योंकि वैसा करना संभव नहीं है और सार्थक भी नहीं। ठीक इसी तरह सभी मनुष्यों एवं घटनाओं का इतिहास में उल्लेख नहीं होता है, क्योंकि वैसा सम्भव नहीं और न उससे लाभ ही संभव हैं। यदि संसार भर के एक-एक साल का इतिहास एक ही पन्ने में रखा जाय तो भी आधुनिक ऐतिहासिकों की दृष्टि में सारी दुनियाँ ६-७ हजार वर्षों की है, परन्तु भारतीय शास्त्रों के अनुसार कुछ कम दो अरब वर्षों की सृष्टि है। सुतरां दो अरब पन्नों का संक्षिप्त इतिहास होगा। फिर उसे कितने दिनों में कौन पढ़ेगा, कब निष्कर्ष निकालेगा और कब उससे सबक सीखेगा? ऐसी स्थिति में भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के प्रसङ्ग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का प्रतिपादन करना ही इतिहास है। अतएव महाभारत में विस्तृतरूप से धर्म, अर्थ, नीति, काम, मोक्ष आदि का वर्णन है। गीता भी उसी का महत्त्वपूर्ण अंश है। फिर भी नारदजी का अभिप्राय यह था कि भगवान् के गुणों का वर्णन करने में ही अधिक शक्ति लगानी उचित है। इसी अभिप्राय से शुकदेवजी ने भी कहा कि मैंने जो बड़े-बड़े यशस्वी राजाओं का वर्णन किया है वह विज्ञान-वैराग्य के लिए ही है। उनके वर्णन में कुछ तात्पर्य नहीं है, परन्तु जो उत्तमश्लोक भगवान् के गुणों का वर्णन है उसी का श्रवण करना उचित है वही अमूल्य धन है और उसी से भगवान् में भक्ति हो सकती है। इतिहास सबक सिखानेवाली वस्तु है। पूर्वजों के महत्त्वपूर्ण वृत्तान्तों से शुभ कर्मों के लिए प्रोत्साहन मिलता है और विविध विषयों की शिक्षा मिलती है :

"कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञान-वैराग्य-विवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्॥
यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः संगीयतेऽभीक्ष्णमङ्गलघ्नः।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः॥" (भाग० १२।३।१४,१५)

यह आप मानते हैं कि भगवान् व्यास सच्चे इतिहासकार एवं अपने विषय में तथा अपने पात्रों के सम्बन्ध में निष्पक्ष सत्य वर्णन करने में सर्वाग्रणी हैं। यह भी मानते हैं कि यह एकदम सही है—

"यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥"

कहा जाता है—"इतनी उत्कृष्ट रचना के बाद भी व्यास का असन्तोष एक प्रश्नचिह्न बनकर सामने आ जाता है। वह असन्तोष जिसका अनुभव प्रत्येक यथार्थवादी इतिहासकार कर सकता है। प्रश्न यह है कि इतिहास व्यक्ति और समाज को क्या देता है? स्वयं इतिहासकार की उपलब्धि क्या है? जो लोग यथार्थ का उद्देश्य केवल यथार्थ ही मानते हैं, वे केवल इस गर्वमात्र से सन्तुष्ट हो सकते हैं, या उसका तात्त्विक समर्थन कर सकते हैं कि उन्होंने सत्य को बिना किसी आवरण के उपस्थित किया है। किन्तु यह तो बौद्धिक विवाद में विजयी बनने का एक कौशल है। विश्व के इतिहास में बड़ा से बड़ा यथार्थवादी भी जीवन को सर्वथा नग्नरूप में नहीं जी सकता है। उसे यह

सत्य ज्ञात होता है कि सर्वथा यथार्थ में जीना असम्भव है। इसी लिए वे स्वयं तो आवरण में ही जीते हैं। वस्त्र, भोजन, भाषण इन सबको परिवर्तन के आवरण से आवृत करके ही व्यक्ति जीवन को जीने योग्य बनाता है। यथार्थवाद के प्रति उसका आग्रह केवल बौद्धिक गोष्ठियों में विवाद के लिए ही दिखायी देता है। वह एक चतुर व्यापारी की भाँति यथार्थवाद को दूसरों के हाथ में बेचकर स्वयं के लिए सुख-सुविधा की सामग्री एकत्र करता है।''

यदि उक्त वक्ता को इतिहास और उसके यथार्थवाद का यही स्वरूप इष्ट है, तो स्पष्ट है कि उसने दोनों बातों को नहीं समझा और उसका यह कहना गलत है कि कृष्णद्वैपायन व्यास को सच्चे इतिहासकार के रूप में ही देखना चाहिये, क्योंकि इतिहासकार होने के साथ-साथ वे महान् दार्शनिक और महान् योगी भी थे। उन्होंने ''गीता'' जैसी वस्तु भी संसार को प्रदान की है, जिससे सारा संसार उपकृत है। उत्कृष्ट कोटि का नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र एवं धर्मशास्त्र प्रदान किया हैं। मोक्षधर्म द्वारा उत्कृष्ट ज्ञान-विज्ञान का भी वर्णन किया हैं। ब्रह्मसूत्र जैसे वेदान्तदर्शन द्वारा उन्होंने औपनिषद ब्रह्म के अपरोक्ष स्वरूपसाक्षात्कार का प्रकार और विधान भी बताया है। वे स्वयं साधक ही नहीं सिद्ध भी थे। फिर उनकी तुलना, उन इतिहासकारों से कैसे की जा सकती है, जो ''चतुर व्यापारी की भाँति यथार्थवाद को दूसरों के हाथ बेचकर स्वयं के लिए सुख-सुविधाओं की सामग्री एकत्र करते हैं।'' महाभारत एवं अन्य पुराणों की दृष्टि से ही नहीं, श्रीमद्भागवत की दृष्टि से भी महर्षि व्यास ऋतम्भरा प्रज्ञासम्पन्न महान् योगी थे। देवर्षि नारद से उन्होंने स्वयं कहा था—

''परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व।'' (भाग० १।५।९)

धर्मानुष्ठानों एवं व्रतों के द्वारा परावर ब्रह्म में मैंने अवगाहन किया है, फिर भी मुझे सन्तोष नहीं है। मेरी इस न्यूनता का जो कारण हो, वह आप कहिये। इसपर नारदजी ने यही कहा कि आपके असन्तोष का कारण यह है कि आपने धर्म आदि अर्थों का जितने विस्तार से वर्णन किया है, वैसा भगवान् की महिमा का वर्णन नहीं किया—

''यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः।
न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः॥'' (भाग० १।५।९)

इसी कारण नारदजी ने विस्तृत वर्णन किया है—चाहे कितने ही चित्र-पद वाक्य क्यों न हों अगर उनमें श्रीहरि के यश का वर्णन नहीं है तो वे वायसतीर्थमात्र हैं, और जिन काव्यों में भगवान् के यशोङ्कित नामों का वर्णन हो, वे भले असम्बद्ध हों तो भी सज्जन उनका सादर श्रवण, वर्णन और गान करते हैं। भगवत्प्रेमवर्जित नैष्कर्म्य ब्रह्मात्मसाक्षात्कारात्मक ज्ञान भी शोभित नहीं होता। फिर भला भगवत्प्रेम के बिना कर्म का क्या महत्त्व हो सकता है? श्रीनारदजी स्वयं भगवान् व्यास को सामान्य इतिहासकार न मानते हुए कहते हैं—

''अथो महाभाग भवानमोघदृक् शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनानुस्मर तद्विचेष्टितम्॥'' (भाग० १।५।१३)

अर्थात् हे महाभाग व्यासजी! आपकी दृष्टि अमोघ है, आपकी कीर्ति पवित्र है। आप सत्यरत एवं धृतव्रत हैं। आप सम्पूर्ण जीवों की बन्ध से मुक्ति के लिए समाधि द्वारा भगवान् की दिव्य लीलाओं का स्मरण करें और उनका वर्णन करें।

क्या अन्य इतिहासकार भी व्यास के समान सत्यरत, धृतव्रत एवं अमोघदृक् हैं? अन्त में व्यासजी ने भक्तियोग में समाहित हो निर्मल अन्तःकरण से साक्षात् परम पुरुष और माया, जीव तथा भक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव किया और श्रीभागवतसंहिता की रचना की।

"तस्मिन् स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमण्डिते।
आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम्॥
भक्तियोगेन मनसि सम्यक्प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत् पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम्॥" (भाग० १।७।३,४)

इस दृष्टि से भगवान् व्यास की तुलना सामान्य इतिहासकारों से करना अन्याय ही है। भारतीय दृष्टिकोण से तो व्यास भगवान् चौबीस अवतारों में एक हैं।

यह भी कहना गलत है कि "व्यास स्वयं को सत्यनिष्ठ मानकर ही ऐसे इतिहास का सृजन करते हैं। किन्तु वह सत्यनिष्ठा उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर पाती।" क्योंकि ऐसे वचनों का अभिप्राय आप जैसे लोग समझ नहीं पाते। सत्य एक महान् धर्म है। शास्त्रों ने कहा है कि तराजू पर एक तरफ एक सत्य रखो और दूसरी तरफ हजारों अश्वमेध रखो, पर हजार अश्वमेधों से एक सत्य ही उत्कृष्ट होगा। प्रकृत में तो भगवद्गुणवर्णन और श्रवण के बिना, भगवद्-भक्ति के बिना केवल अन्य साधन धर्मों से उतनी सफलता नहीं मिलती, जितनी भक्तियुक्त कर्मों से मिलती है। इसको यों समझना चाहिये कि—

"राम नाम एक अङ्क है, सब साधन हैं सून।
अङ्क गये कछु हाथ नहिं, अङ्क रहे दस गून॥"

रामनाम अङ्क के तुल्य है और साधन शून्य के समान हैं, फिर भी शून्य व्यर्थ नहीं। हाँ, अङ्क के न रहने पर शून्य का कोई महत्त्व नहीं है। परन्तु अङ्क के रहने पर उनका अत्यन्त महत्त्व है। एक अङ्क के सामने एक शून्य बना देने पर वही एक १० हो जाता है। दो शून्य हों तो वही एक १०० हो जाता है। यह बात ठीक है कि अङ्क न रहने पर लाखों शून्य बेकार होते हैं। परन्तु यदि किसी को १० अरब रुपया मिलने का सरकारी आर्डर हुआ हो और उसमें से शून्य सब हटा दिये जायें, तो १० अरब रुपयों के बदले एक ही रुपया मिलेगा। इस दृष्टि से सत्य आदि का परमोत्कृष्ट महत्त्व है। भगवच्चरित्र के वर्णन, श्रवण और कथन करने की दृष्टि से ही व्यासजी का वह असन्तोष कहा गया है। साथ ही दूसरी तरफ देखें, यदि कोई भगवद्गुण वर्णन और श्रवण करता हो और वह असत्यनिष्ठ हो तो कोई समझदार उसे भक्त कहेगा क्या? लोक-परलोक सब जगह सत्य से ही सब फल मिलते हैं। भगवच्चरित्र भी सत्य होने से ही आदरणीय है। यदि कोई झूठी कथा का वर्णन करे, तो वह असत्य में ही पर्यवसित होगी। इसी लिए महर्षि वाल्मीकि ने समाधि के द्वारा सत्य अबाधित चरित्रों का प्रत्यक्ष कर के वर्णन किया है। आज भी यदि जनता को विदित हो कि वक्ताजी बिना प्रमाण की सब काल्पनिक कथाएँ कहते हैं तो उसपर किसी भी समझदार की श्रद्धा नहीं होगी। भगवत्कथा के सम्बन्ध में भी सत्यता अपेक्षित है। अन्यथा उपन्यास और गल्प के तुल्य भगवत्कथा भी एक विनोद की वस्तु बन जायगी।

यह कहना भी गलत है कि "केवल व्यक्तियों के राग, द्वेष, संघर्ष, गुण, अवगुण की व्याख्या ही तो इतिहास है" क्योंकि भारतीय दृष्टिकोण से इतिहास में किन्हीं विशेष व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं के प्रसङ्ग से धर्म, उपासना और तत्त्वज्ञान का ही प्रतिपादन होता है। शुक्र के अनुसार राजचरित्र के वर्णन प्रसङ्ग से प्राग्वृत्त का कथन इतिहास है—

"प्राग्वृत्तकथनं चैकराज्यवृत्तमिषादितः।
यस्मिन् स इतिहासः स्यात् पुरावृत्तः स एव हि॥" (शुक्रनीति ४।२९३)

काव्यमीमांसा के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेशों से समन्वित कथायुक्त पूर्ववृत्त का वर्णन इतिहास है—

"धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम् ।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते ।।"

"पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतिहासः ।"
(कौटिल्य अर्थशास्त्र १।५।१४)

"इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत् ।"

इत्यादि प्रमाणों के अनुसार इतिहास और पुराण द्वारा वेदों का उपबृंहण या विवरण किया जाता है। साथ ही भारतीय इतिहास एक जाज्वल्यमान दीपक है। यह मोह का अन्धकार मिटाकर लोगों के अन्तःकरणरूप सम्पूर्ण अन्तरङ्ग-गृह को भली भाँति ज्ञानालोक से प्रकाशित कर देता है—

"इतिहासप्रदीपेन मोहावरणघातिना ।
लोकगर्भगृहं कृत्स्नं यथावत् सम्प्रकाशितम् ।।"

इसी लिए "**रामचरितमानस**" में भी यही कहा गया—

"सुनहु परम पुनीत इतिहासा । जो सुनि सकल लोकभ्रम नासा ।।" (रा० मा० ७।५४।४)

इसी तरह इतिहासकथन द्वारा शोकनिवारण का वर्णन भी **मानस** में ही आया है—

"तब वसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास ।
शोक निवारेउ सबहिं कर निज विज्ञान प्रकास ।।" (रा० मा० २।१५५)

साथ ही इतिहास-श्रवण का विधान भी गोस्वामीजी को इष्ट है तभी तो अपने इष्ट श्रीरामभद्र को चित्रकूट में वटछाया-वेदिका पर समासीन कर, मुनिजनों के साथ इतिहासश्रवण का उल्लेख करते हैं—

"जहाँ बैठि मुनिगन सहित नित सियराम सुजान ।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान ।।" (रा० मा० २।२३६)

स्मरण रहे कि श्रीरामचरितमानस भी इतिहास ही है, क्योंकि भगवान् शङ्करजी ने कथा का उपसंहार करते हुए पूरे श्रीरामचरितमानस को परम पुनीत इतिहास कहा है—

"कहेउँ परम पुनीत इतिहासा । सुनत श्रवन छूटहि भवपासा ।।"

अतः यह कहना कि केवल व्यक्तियों के राग-द्वेष, संघर्ष, गुण-अवगुण की व्याख्या ही तो इतिहास है। वह भी मानस के वक्ता द्वारा कहाँ तक उचित है ? साथ ही जिस भागवत की आड़ में लेखक ने **महाभारत** जैसे वेदतुल्य इतिहास पर कीचड़ उछाला है, उसी भागवत के तृतीय स्कन्द में यह कहा गया है कि सर्वदर्शी भगवान् ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से इतिहास-पुराण रूप पाँचवाँ वेद बनाया—

"इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः ।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ।।" (भा० ३।१२।३९)

इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् में इतिहास-पुराण को पञ्चम वेद कहा गया है—

"नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः ।
(छा० उ० ७।१।४)

यह कथन भी निर्मूल है कि "**इतिहास** मनुष्य की स्मृति को बोझिल बनाता है" क्योंकि दर्शन भी तो यही करता है, जिस वस्तु की स्मृति सुरक्षित रखनी आवश्यक होगी, वह बोझिल होगी। इस दृष्टि से तो ईश्वर

एवं आर्षकल्प ऋषियों की स्मृति को भी बोझिल कहना होगा। "इतिहास उन घटनाओं से स्मृति को बोझिल बनाता है, जो बीत चुकी हैं। वह देश, प्रान्त और जातियों में वैमनस्य की सृष्टि करता है।" यह सब कथन पूर्णतया असङ्गत है, क्योंकि किसी भी समझदार को अतीत का अध्ययन, वर्तमान का अनुभव, भविष्य का अनुमान कर के ही कर्तव्य-निर्धारण करना उचित होता है। फिर **महाभारत** और **रामायण** जैसे आर्ष इतिहासों को शवच्छेदन की उपमा देना, अत्यन्त अनभिज्ञता है। यह तो पद-पद पर शिक्षाप्रद एवं पुण्यप्रद ही है। कहा ही गया है—

"इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसम्मितम्।
व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः॥
स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक।
गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः॥"

अर्थात् जो मनुष्य व्यासजी के द्वारा कथित महान् अर्थमय और वेदतुल्य इस पवित्र **महाभारत** इतिहास को श्रेष्ठ ब्राह्मण द्वारा श्रवण करता है, वह इस लोक में सब मनोरथों को और कीर्ति को प्राप्त करता है और अन्त में परमसिद्धि मोक्ष को प्राप्त होता है। इसमें सन्देह नहीं है। **वाल्मीकिरामायण** के लिए प्रसिद्ध ही है कि—

"एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।"

शवच्छेद विद्यार्थी को सीखना पड़ता है और सीखकर जीवित पुरुषों के अङ्गच्छेदनादि चिकित्सा में उसका उपयोग किया जाता है।

"देवर्षि भक्तिशास्त्र के आचार्य हैं।" देवर्षि नारद ही नहीं भगवान् व्यास भी भक्तिशास्त्र के आचार्य हैं। इतना ही नहीं भगवान् के चौबीस अवतारों में एक हैं। नारदजी ने भागवत में कहा ही है—

"अजं प्रजातं जगतः शिवाय।" (भाग० १।५।२१)

यह कहना भी सङ्गत नहीं है कि "भक्ति का मुख्य उद्देश्य 'सत्यं शिवं सुन्दरं' की सृष्टि है। इसी लिए वह व्यक्ति के इतिहास के स्थान पर भगवान् की लीला को अपना मुख्य केन्द्र बनाती है।" क्योंकि 'सत्यं शिवं सुन्दरं' नित्य परमात्मा ही है। वह नित्य है, उसकी सृष्टि नहीं होती। भारतीय **महाभारत** और **रामायण** में भी व्यक्ति की कथाओं का प्राधान्य न होकर भगवान् की लीलाओं का ही प्राधान्य है। **महाभारत** ग्रन्थ के मुख्य विषय हैं—स्वयं सनातन परब्रह्मस्वरूप वासुदेव भगवान् कृष्ण, उन्हीं का इसमें कीर्तन किया गया है। वे ही सत्य, ऋत, पवित्र और पुण्य हैं।

"भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातनः।
स हि सत्यमृतं चैव पवित्रं पुण्यमेव च॥" (महा० आदिपर्व)

अतः **महाभारत** में भजनीय भगवान् कृष्ण की भक्ति, उनका तत्त्वज्ञान एवं भक्ति तथा ज्ञान के साधनरूप में ही धर्म, अर्थ, नीति आदि का भी वर्णन है।

कहा जाता है कि "इस लीला को गुण-दोष की दृष्टि से श्रवण और पठन का विषय नहीं बनाया जाना चाहिये।" परन्तु यह भी गलत है। भगवान् को मङ्गलमयी लीला का श्रवण, वर्णन स्वयं में परम पुरुषार्थ है, उससे दोषों का निराकरण तथा गुणों का संग्रह भी होता ही है।

कहा जाता है "श्रीमद्भागवत पुराण की रचना के पीछे यही प्रेरणा थी। देवर्षि ने बड़े विस्तार से इतिहास के स्थान पर भगवद्गुणगायन की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। उन्होंने ऐतिहासिक दृष्टि के जो दोष

बताये हैं, वे बड़े महत्त्व के हैं—जो मनुष्य भगवान् की लीला छोड़कर अन्य कुछ कहने की इच्छा करता है वह उस-इस इच्छा से ही निर्मित अनेक नाम और रूपों के चक्कर से पड़ जाता है। उसकी बुद्धि भेद-भाव से भर जाती है। जैसे हवा के झकोरों से डगमगाती हुई नौका को कहीं भी ठहरने का ठौर नहीं मिलता, वैसे ही उसकी चंचल बुद्धि कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती—

"ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः।
न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥ (भाग० १।५।१४)"

वस्तुतः उक्त वचन में न तो इतिहास की चर्चा है और न महान् **महाभारत** के पवित्र इतिहास की निन्दा है। **महाभारत** में तो अनेकधा भगवान् की दिव्य लीलाओं का ही वर्णन है। श्रीधर स्वामी आदि की टीकाओं के अनुसार उक्त श्लोक द्वारा काम्य कर्म आदि की निन्दा की गयी है—

"ततो भगवच्चेष्टितात् पृथग्दृशोऽत एवान्यथा प्रकारान्तरेण यत्किञ्चिदर्थान्तरं विवक्षतः तया विवक्षया तत्कृतैः स्फुरितै रूपैः नामभिश्च वक्तव्यत्वेनोपस्थितैः दुःस्थिताऽनवस्थिता मतिः कदाचित् क्वापि विषये आस्पदं न लभेत वाताहतनौरिव।"

अर्थात् भगवल्लीला से भिन्न अर्थान्तर की विवक्षा से वक्तव्यरूप से उपस्थित अनेक नाम और रूपों से दुःस्थिता बुद्धि वात से आहत नौका के समान कभी भी किसी विषय में स्थिति नहीं प्राप्त कर सकती। गीता में भी यही बात कही गयी है—

"व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ (गीता २।५१)

सर्ववेदों का परम तात्पर्य परब्रह्म में ही है। कर्मकाण्डों का तात्पर्य भी भगवच्चरण-पङ्कज में समर्पण बुद्धि से निष्काम कर्म द्वारा, बुद्धि-शुद्धिसाधन चतुष्टयसम्पत्ति द्वारा ब्रह्म में ही पर्यवसान होना है। परन्तु जिनकी ऐसी बुद्धि नहीं है उनकी बुद्धि नाना प्रकार की कामनाओं में भटकती है। एक-एक कामना की पूर्ति के लिए अनेक साधनों में दौड़ती है। कामनाओं की अगणित शाखाएँ होती हैं। **महाभारत** तथा अन्य पुराणों में ब्रह्मात्मतत्त्व का पर्याप्त वर्णन है; परन्तु उसके सम्बन्ध में भी नारदजी का कहना था कि कोई बड़ा विचक्षण विद्वान् ही निवृत्ति-मार्ग से अनन्तपार विभु, व्यापक ब्रह्म का सुख ले सकता है। सर्वसाधारण का उसमें अधिकार नहीं है। अतः आप गुणों से प्रवर्तमान प्राणियों के लिए भगवान् की लीला चेष्टित का वर्णन करो, जिससे सर्वसाधारण का भी कल्याण हो सके—

"जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान् व्यतिक्रमः।
यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥
विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम्।
प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान् दर्शय चेष्टितं विभोः ॥" (भाग० १।५।१५,१६)

काम्य कर्मों का उपदेश करते हुए आप से कहीं महान् व्यतिक्रम भी हो गया है। जिसको स्वभाव से ही राग है उसे जब किसी आप्त पुरुष से भी काम्य कर्मों का समर्थन मिल जाता है, तब वह उसी में अडिग हो जाता है। फिर अन्यत्र आपके निषेध करने पर भी वह उससे निवृत्त नहीं होता। वेदों और भगवान् के कहने पर भी उसे नहीं छोड़ता। यद्यपि—

"जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्।
न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम् ॥" (गीता० ३।२६)

के अनुसार विद्वान् का कर्तव्य है कि वह कर्माधिकारियों में भेद-बुद्धि न उत्पन्न कर के स्वयं भी कर्म करता हुआ उनको अधिकारानुसार कर्मों में लगाये, तथापि उत्तमाधिकारी के लिए काम्यकर्म का उपदेश नहीं ही करना चाहिये—

"स्वयं निःश्रेयसं विद्वान्न वक्त्यज्ञाय कर्म हि।
न राति रोगिणोऽपथ्यं वाञ्छतोऽपि भिषक्तमः ॥"

स्वयं निःश्रेयस को जानता हुआ भी पुरुष अज्ञों के लिए काम्य कर्म का उपदेश नहीं करते जैसे वैद्यप्रवर रोगी के माँगने पर भी कुपथ्य नहीं देता। यहाँ यह भी विवेक समझ लेना चाहिये कि सकाम अधिकारियों के लिए सकाम कर्म का विधान होता है। उत्तम अधिकारी भगवच्चरण में समर्पण बुद्धि से निष्काम कर्म करता है और उत्तम अधिकारियों के लिए भगवद्भक्ति, भगवच्चरित्र-स्मरणादि का अधिकार होता है।

कहा जाता है कि "इतिहास तो हमें उन लोगों से जोड़ देता है, जिनसे हमें आज कुछ भी लेना-देना नहीं है। उन पात्रों के प्रति भी हमारे मन में राग-रोष उत्पन्न करता है। इस तरह वह हमारा बोझ हल्का करने के स्थान पर ऐसा अनावश्यक बोझ लाद देता है, जिसे केवल ढोना-ही है। प्रत्येक जाति और देश उसी परम्परा को ढोने का प्रयास कर रहा है। किसी जाति ने किसी दूसरी जाति को उत्पीड़ित किया था, अतः उसका बदला लेने के लिए आज भी उस घृणा-वृत्ति को जीवित रखता है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र का प्रतिद्वन्द्वी है और अपनी श्रेष्ठता की सुरा पीकर अन्य राष्ट्रों के विरुद्ध संघर्ष करता है और इस तरह हिंसा-प्रतिहिंसा के चक्र को आगे बढ़ाता ही जाता है। घृणा और संघर्ष की ये प्रवृत्तियाँ मानव-मन में आदिम काल से विद्यमान है। उन्हें उकसाना बहुत सरल है। इससे नेतृत्व प्राप्त कर लेना अत्यन्त सरल हो जाता है। किन्तु इसके द्वारा व्यक्ति और समाज को क्या प्राप्त होता है? विचार करें तो देखेंगे कि अशान्ति ही इसकी उपलब्धि है। इसी को नारद हवा के थपेड़ों से भटकती हुई नौका के दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं। व्यक्ति और समाज के जीवन में आँधी की सृष्टि करने में इतिहास का बहुत बड़ा भाग है।"

कहना न होगा कि यह स्थाणु का दोष नहीं है, जो उसे अन्धा नहीं देख पाता। इसी से गोस्वामी जी कहते हैं—

"अज्ञ अकोविद अंध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी॥
कहहिं ते वेद असम्मत बानी। जिन्ह के सूझ लाभ नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥"(रा० मा० १।११४।१,२)

यह इतिहास का दोष नहीं, जो पढ़नेवाला उसका अभिप्राय न समझे। **श्रीमद्भागवत महाभारत** की प्रशंसा करता है और **महाभारत** की बहुत सी कथाओं का वह भी वर्णन करता है। फिर भी बिना प्रमाण के ही लेखक ने श्रीमद्भागवत के द्वारा **महाभारत** जैसे पवित्र ग्रन्थ पर एवं उसके रचयिता पर निरर्थक दोषारोपण करने का गर्हित प्रयास किया है। श्रीनारदजी का तो इतना ही तात्पर्य था कि आपने जैसे प्रधानता से धर्म, अर्थ, काम आदि का वर्णन किया है, वैसे भगवान् की महिमा का वर्णन नहीं किया। अतः चित्तशान्ति के लिए भगवान् के यश का वर्णन करें। **महाभारत** और **रामायण** आर्ष इतिहास हैं, इनमें सामान्य इतिहासों के दूषण भी नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों ग्रन्थ राग-द्वेष से ऊँचे उठे हुए महर्षियों द्वारा वर्णित हैं। उनका किसी से राग-द्वेष नहीं था। उन्होंने प्रजा के कल्याण की कामना से ही **महाभारत** एवं **रामायण** जैसे इतिहास की रचना की और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं उनके निर्दोष साधनों का वर्णन किया। श्रीभागवतकार ने कहा ही है—

"भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।" (भाग० १।४।३०)
"सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक्॥" (भाग० १।४।१८)

गुण और दोष को न देखना ही सबसे बड़ा गुण है। गुण एवं दोष देखना ही दोष है—

"गुणदोषदृशिर्दोषो गुणस्तूभयवर्जितः।" (भाग० ११।१९।४५)
"गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक ॥" (रा० मा० ७।३१)

परन्तु यह बहुत ऊँची स्थिति है। समाधिदशा में ही यह बात बन पाती है। व्यवहार में गुण-दोष को तो जानना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी होता है। जितना भर भी व्यवहार है, विधि-निषेध से ही सम्बद्ध है। गोस्वामीजी भी कहते हैं—

"विधिप्रपंच गुन अवगुन साना। (रा० मा० १।५।२)
"तेहि तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥ (रा० मा० १।५।१)

गुणों का ज्ञान होने पर ही उनका संग्रह किया जा सकता है और दोषों का ज्ञान होने से ही उनके त्याग का प्रयत्न सम्भव है। इसी लिए पूर्वमीमांसा में धर्मजिज्ञासा के साथ अधर्म की जिज्ञासा भी की जाती है। **महाभारत** एवं **रामायण** में भी दोनों पक्ष हैं। कौरवपक्ष, पाण्डवपक्ष, रावणपक्ष और रामपक्ष। प्रथम पक्ष में तामस तथा राजस भावों का प्राधान्य है। अन्य पक्ष में सत्त्व का प्राधान्य है। इसी लिए सिद्धान्त यह है—

"रामादिवत् वर्तितव्यं न रावणादिवत्।" (काव्यप्र० १।२)

रामादि के समान बर्ताव करना चाहिये रावणादि के समान बर्ताव नहीं करना चाहिये। यह रामायण का सार है।

"युधिष्ठिरादिवत् व्यवहर्तव्यं न दुर्योधनादिवत्।"

युधिष्ठिर आदि के समान व्यवहार करना चाहिये, दुर्योधन आदि के समान बर्ताव करना उचित नहीं है। यह **महाभारत** का सार है। संसार में भली-बुरी सब प्रकार की वस्तुएँ होती हैं। वेदादि-शास्त्रों ने गुण-दोष की दृष्टि से सबका विश्लेषण किया है—

"भलेउ पोच सब विधि उपजाए।
गनि गुन दोष बेद - बिलगाए ॥" (रा० मा० १।५।२)

जैसे हंस क्षीर-नीर का विश्लेपण करके विकार-वारि को त्यागकर क्षीर ग्रहणकर लेता है, उसी तरह सन्तजन गुण-दोषमय संसार से दोष त्यागकर गुण ग्रहणकर लेते हैं—

"संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार।" (रा० मा० १।६)

ऐसा बिना किये **रामायण** पढ़ने से भी लाभ न होगा, क्योंकि '**रामायण**' भी इतिहास ही है। उसमें भी दोनों ही पक्ष हैं। उसके पढ़ने से भी एक पक्ष मे राग और अन्य पक्ष में द्वेष सम्भव है। अतएव इतिहास के रूप में आरोपित पूर्वोक्त दोष आ सकते हैं; और घृणादि दोषों से मन का बोझ बढ़ जायगा। किन्तु सिद्धान्ततः ऐसा नहीं होता, क्योंकि उसके अनुसार रावण का दोष वर्णन ही केवल त्याग के लिए है। वह मन में धरने की वस्तु नहीं। राम के गुणों का वर्णन ही ग्रहण के लिए है। इतना ही नहीं, रामचरित्र का अङ्ग होने से रावण के चरित्र के वर्णन से भी पुण्य की उत्पत्ति मान्य है। तभी तो—

"एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्।"

की संगति बैठेगी। '**मानस**' की कथा कहनेवाले लोग भी जब तक उक्त सिद्धान्त नहीं समझेंगे, तब तक इस भ्रम से मुक्त नहीं हो सकते हैं। किन्तु जिनको समझना ही नहीं है, उनके सामने कोई कितना भी राम और रावण का अनैतिहासिक एवं आध्यात्मिक अर्थ लगाये, परन्तु उनपर उसका कुछ भी असर पड़नेवाला नहीं होता। इसी

लिए 'द्रविड़मुन्नेत्रकड़गम' वाले आपके अनुसार रावण को अपना पूर्वज मानकर उनका बदला चुकाने की दृष्टि से राम, सीता और लक्ष्मण का भी पुतला जलाते हैं। क्या लेखक के अनुसार राम-भक्तों को रामलीला बन्द कर देनी चाहिये ? क्या लेखक **रामायण** या **मानस** की कथा बन्द कर देंगे ?

यदि **महाभारत** की कथा से सामूहिक द्वेष की आँधी चल पड़ने पर बुद्धि की नौका गड़बड़ा सकती है तो **रामायण** की कथा से वैसा क्यों न होगा ? व्यक्ति और समाज के जीवन में इस आँधी की सृष्टि करने में यदि **महाभारत** के इतिहास का बड़ा भाग हो सकता है, तो वही की वही आपत्ति **रामायण** की कथा पर भी आ सकती है। क्योंकि यह भी इतिहास है। अतएव यह मिथ्या ही कल्पना है कि 'नारदजी ने **महाभारत** पर कटाक्ष किया है।' "**महाभारत** के जातीय युद्ध की गाथा और व्यक्तियों के इतिहास को लेकर वे प्रश्न-चिह्न अवश्य प्रस्तुत करते हैं। इस दृष्टि से **महाभारत** की उपयोगिता संदिग्ध है।" उक्त कथन सर्वथा निर्मूल है। व्यास-नारद संवाद में इसकी यत्कि-ञ्चित् भी चर्चा नहीं है, प्रत्युत श्रीमद्भागवत में भी भूमिका के रूप में **महाभारत** के युद्ध की ही चर्चा है। कौरव और पाण्डवों का भीषण संग्राम उभयपक्षीय वीरों के संहार के अनन्तर अश्वत्थामा के द्वारा अन्तिम भीषण संग्राम-लीला का वर्णन किया गया है।

यह कहना भी गलत है कि तुलसीदासजी ने—

"रामायन सिख अनुहरत, जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै, कलि कुचालि पर प्रीति ॥"

इस दोहे के द्वारा "मैं तो चाहता हूँ कि लोग **रामायण** की शिक्षा का अनुगमन करें, किन्तु समाज तो **महाभारत** का अनुकरण कर रहा है। मुझ जैसे दुष्ट की कौन सुने ? कलियुग का स्वभाव ही कुचाल से प्रेम करना है।" ऐसा कहकर '**महाभारत**' पर कटाक्ष किया है। "**महाभारत** के मुख्य नायक पाण्डव हैं और प्रतिपक्षी उनके ही बन्धु कौरव हैं। दोनों राज्य के लिए संघर्ष करते हैं और करोड़ों व्यक्तियों को कट जाने देते हैं। **रामचरित-मानस** में बन्धुत्व के आदर्श राम और भरत हैं, जो एक-दूसरे के लिए राज्य का परित्याग कर देने में सन्तोष का अनुभव करते हैं। स्वभावतः संघर्षप्रिय मानव-मन कौरव-पाण्डवों के चरित्र को अपना आदर्श बना लेता है। वह यह सोचकर सन्तुष्ट हो जाता है कि यदि द्वैपायन व्यास जैसा महापुरुष पाण्डवों को आदर्श मानता है तो उसका अनुगमन करना क्या बुरा है ?"

उक्त कथन सब अविचारितरमणीय हैं, क्योंकि श्रीमद्भागवत और रामायण में भी इतिहास की कमी नहीं है। सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओं का वर्णन और अनेक युद्धों का वर्णन है। रामायण के बराबर तो दुनियाँ में कोई युद्ध ही नहीं हुआ—

"रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव"

राम-रावण युद्ध राम-रावण के युद्ध के ही समान था। इससे यह सिद्ध हुआ कि राम-रावणयुद्ध के सदृश दूसरा युद्ध हुआ ही नहीं। तुलसीदासजी तो इतना ही कहना चाहते हैं कि राम और भरत के समान बन्धुत्व का अनुकरण नहीं करते किन्तु **महाभारत** के कौरव-पाण्डवों के संघर्ष का ही अनुकरण करते हैं। परन्तु इसमें **महाभारत** का क्या दोष ? उसने तो सच्ची घटनाओं का वर्णन किया है। काल का भी भेद है। रामायण का काल त्रेताकाल है। **महाभारत** का द्वापरकाल है। कलियुग की घटनाएँ उससे भी विलक्षण हो सकती हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या **महाभारत** में व्यासजी ने अपनी कल्पना के आधार पर कोई गलत आदर्श स्थापित किया है ? आप भी मानते हैं कि उन्होंने परमसत्यनिष्ठ होकर ही **महाभारत** लिखा है। तब इसमें उनपर या उनके **महाभारत** पर

कोई भी समझदार कैसे आक्षेप कर सकता है ? महाभारत में भी पाण्डवों का परस्पर दृढ़ प्रेम था ही। विपक्षियों के किसी प्रयत्न से उनमें आपस में फूट नहीं पड़ी, धर्मराज तो यह मानते थे कि हमारे आपस में संघर्ष होगा, तो कौरव १०० और पाण्डव पाँच होंगे, परन्तु अन्य से संघर्ष होने पर हम एक सो पाँच हैं—

"वयं पञ्च शतं च ते वयं पञ्चोत्तरं शतम्।"

यदि पाण्डवों के सामने जो स्थिति थी वही स्थिति राम के सामने होती तो राम को भी वही करना पड़ता, जो पाण्डवों ने किया था। जैसे पाण्डवों की पत्नी को भरी सभा में नग्न करने का प्रयास किया गया, यदि वैसी ही बात राम की पत्नी के साथ उनकी जाति का ही कोई करता तो क्या राम रावण के समान ही उसका संहार न करते ? वस्तुतः राम अपने भाई-बन्धुओं से भी ज्यादा सम्मान ब्राह्मणों का करते थे। वे ब्राह्मणों के उपासक थे—"ब्राह्मणानामुपासिता" किन्तु ब्राह्मण ने भी उनकी पत्नी का हरण किया तो उन्होंने उस ब्राह्मण को कुल-कुटुम्ब सहित मौत के घाट उतार दिया। फिर पाण्डवों ने ही कौन सा अपराध किया ? किसी भी समझदार को वही करना पड़ता। वस्तुतः युधिष्ठिर तो सदा ही युद्ध टालने का प्रयास करते थे। अर्जुन, भीम, द्रौपदी सात्यकि, सहदेव आदि ही युद्ध के पक्ष में थे। नकुल भी युद्ध के पक्षधर नहीं थे। फिर भी युद्ध के समय ऐन मौके पर अर्जुन ने युद्ध करने से इनकार कर दिया। उसने स्पष्ट कहा कि त्रैलोक्य के राज्य के लिए भी विपक्षियों को न मारूँगा, भले ही वे मुझपर शस्त्र चलाएँ। यदि मुझ अशस्त्र पर वे शस्त्रपाणि प्रहार भी करें तो अच्छा ही होगा। मैं भिक्षाचर्या द्वारा जीवन चलाना ठीक समझूँगा, किन्तु राज्य के लिए बन्धुओं का वध करना उचित नहीं—

"एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते॥" (गीता १।३५)
"श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके……… ……।" (गीता २।५)
"स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव।" (गीता २।३६)
"धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥" (गीता १।४५)

क्या कोई बन्धु-प्रेमी इससे अधिक औदार्य प्रदर्शित कर सकता है ? किन्तु क्या यह उचित था ? तुलसीदासजी महाराज इसे उचित मानते थे ? भगवान् कृष्ण ने, जो साक्षात् भगवान् राम ही थे, क्योंकि वाल्मीकि ने राम को बृहद्बल कृष्ण ही माना है—

"शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजित खड्गधृग् विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥" (वा० रा० ६।११६।१५)

स्पष्टरूप में इसे अनुचित माना और कहा—

"कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ! ॥" (गीता २।२)

अर्थात् हे अर्जुन ! अनार्यसेवित, अकीर्तिकर, अस्वर्ग्य कश्मल ऐसे विषम अवसर में तुम्हें कैसे प्राप्त हो गया है; फिर गीता ज्ञान का उपदेश करके उससे कहा कि यदि तुम इस धर्मयुक्त सङ्ग्राम से विमुख होगे तो स्वधर्म और कीर्ति को त्याग कर पाप के भागी होगे—

"अथ चेत् त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥" (गीता २।३३)

और कहा—"तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः।" (गीता २।३७)

स्वयं श्रीमद्भागवत के परम भागवत भीष्म ने शर-शय्या पर पड़े हुए, अन्तिम श्रीकृष्णस्तुति में कहा था—

"व्यवहितपृतनामुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद् विमुखस्य दोषबुद्धया।
कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु॥" (भाग० १।९।३६)

जब दोनों सेनाओं को आमने सामने निहार कर अर्जुन ममता, राग आदि दोष-बुद्धि के कारण स्वजनवध से विमुख हो गया। तब जिस भगवान् ने आत्मविद्या प्रदान कर के अर्जुन की उस कुमति का हरण किया था, उस परम पुरुष के चरणों में मेरी रति हो। इससे स्पष्ट है कि वैसे युद्ध से विमुख होना ही दोष था। वह युद्ध धर्म था, उसके त्यागने से ही अकीर्ति और पाप था। अब कहिये, क्या तुलसीदासजी इस युद्ध को अनुचित कहेंगे ? कदापि नहीं। फिर वे महाभारत पर कटाक्ष कैसे कर सकते थे ? श्रीनारद के उपदेश से श्रीव्यास ने जिस श्रीमद्भागवत का निर्माण किया है, उसमें भी अनेक युद्धों का वर्णन है। भगवान् कृष्ण का जन्म ही दुष्टों के संहार के लिए हुआ था। अर्जुन उन्हीं कृष्ण का अंश था। महाभारत संग्राम में भी भगवान् की प्रेरणा से ही क्षत्रियत्वरूप में प्रकट असुरों का संहार हुआ। अर्जुन और कृष्ण दोनों ने भूभार-हरण का कार्य किया था। यह मुख्य प्रश्न नहीं है कि किसने बन्धुओं को मारा और किसने गैर को मारा। विवेकी की दृष्टि में अपराधियों का वध होना चाहिये। चाहे वे बन्धु हों, चाहे गैर लोग हों। न्यायशील राजा निरपराध शत्रु-पुत्र का भी वध नहीं करेगा और अपराधी होने पर अपने औरस पुत्र को भी प्राणदण्ड दे सकता है। अपराधी होने से ही कौरवों का वध करना उचित था। अपराधी होने के कारण ही राम द्वारा रावण का वध उचित था। अपराधी बन्धु को न मारना, अन्य को मारना यह भारी पक्षपात और अन्याय कहा जायगा। फिर पाण्डवों ने तो श्रीकृष्ण पर छोड़ दिया था कि आप जैसा चाहें, कौरवों से सन्धि कर के युद्ध टालने का प्रयत्न करें। भगवान् कृष्ण स्वयं दूत बनकर अनेक महर्षियों को साथ लेकर कौरवों की सभा में गये। बहुत कुछ प्रयत्न किया, किन्तु सन्धि न हो सकी। अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण के परामर्श से तथा उन्हीं के नेतृत्व में पाण्डवों ने युद्ध किया। यदि पाण्डव युद्ध के दोषी हैं तो उनके पहले भगवान् कृष्ण दोषी ठहरेंगे ? क्योंकि पाण्डवों के तो एकमात्र चक्षु श्रीकृष्ण ही थे और कृष्ण की शक्ति से अर्जुन एक ही रथ से दुरत्यय कौरव-सैन्य-सागर पार कर सका था। सन्त तुलसीदासजी या कोई भी पाण्डवों को युद्ध का दोषी नहीं कह सकते हैं। श्रीमद्भागवत में भी युधिष्ठिर को अजातशत्रु और **'धर्मभृतां वरिष्ठः'** कहा गया है। कहाँ तक कहें श्रीभागवत के अनुसार भगवान् कृष्ण ने ब्रह्मशाप के व्याज से अपने कुल का भी संहार करा दिया, जो संसार में **'यादवन्याय'** के नाम से प्रसिद्ध है। इसे श्रीतुलसीदासजी क्या कहेंगे ? लेकिन भागवतकार कहते हैं—

"कण्टकं कण्टकेनैव द्वयं चापीशितुः समम्।" (भाग० १।१५।३४)

"एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान् विभुः।
यदून् यदुभिरन्योन्यं भूभारान् संजहार ह॥" (भाग० १।१५।२६)

श्रीभगवान् ने अतिशय बलिष्ठ यदुओं से इतर राजाओं का संहार कराकर, तत्पश्चात् उन्हें भी आपस में ही लड़ाकर भू-भार का संहार किया था। श्रीभागवत में भगवत्प्रिय पाण्डवों के संप्रयाण को परमपवित्र स्वस्त्ययन कहा गया है उसके श्रवण से हरिभक्ति की प्राप्ति कही गयी है—

"यः श्रद्धयैतद् भागवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति संप्रयाणम्।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम्॥" (भाग० १।१५।५२)

कहा जाता है कि "श्रीमद्भागवत में भी इतिहास का अभाव नहीं है। उसमें भी राजाओं का इतिहास और उनकी वंशावली का वर्णन है; किन्तु इसमें दो भिन्नताएँ हैं—पाण्डवों के स्थान पर इसके केन्द्र भगवान् कृष्ण हैं और इतिहास वर्णन का उद्देश्य इतिहास न होकर उसके प्रति वितृष्णा और वैराग्य उत्पन्न करना है। सारे इति-

हास का वर्णन करने के बाद उसकी निरर्थकता की घोषणा की गयी है। इतिहास किस दिशा में प्रेरित करता है, इसका बड़ा ही मार्मिक चित्र श्रीमद्भागवत के अन्तिम परिच्छेद में प्रस्तुत किया गया है—

"कथं सेयमखण्डा भूः पूर्वैर्मे पुरुषैर्धृता।
मत्पुत्रस्य च पौत्रस्य मत्पूर्वा वंशजस्य वा॥
तेजोऽबन्नमयं कायं गृहीत्वाऽऽत्मतयाऽबुधाः।
महीं ममतया चोभौ हित्वान्तेऽदर्शनं गताः॥
ये ये भूपतयो राजन् भुञ्जन्ति भुवमोजसा।
कालेन ते कृताः सर्वे कथामात्राः कथासु च॥" (भाग० १२।२।४२–४४)

वे लोग यही सोचा करते हैं कि मेरे दादा-परदादा इस अखण्ड भूमण्डल का शासन करते थे, अब वह मेरे वंशज किस प्रकार इसका उपभोग करें। वे मूर्ख इस आग, पानी और मिट्टी के शरीर को अपना आपा मान बैठते हैं, और बड़े अभिमान के साथ डींग हाँकते हैं कि यह पृथ्वी मेरी है। अन्त में शरीर और पृथ्वी, दोनों को छोड़कर स्वयं अदृश्य हो जाते हैं। सबको काल ने अपने विकराल गाल में धर दबाया। इतिहास में उनकी कहानी ही शेष रह गयी है।

संसार में बहुत-से महान् पुरुष हो गये हैं, जो सम्पूर्ण लोकों में अपने यश का विस्तार कर के यहाँ से चल बसे। उनकी कथाएँ तुम्हें ज्ञान और वैराग्य का उपदेश करने के लिए कही गयी हैं। **इन्हें वाणी का वैभव-मात्र न समझो। इनमें परमार्थ-तत्त्व भरा हुआ है।** भगवान् श्रीकृष्ण का गुणानुवाद समस्त अमङ्गलों का नाश करनेवाला है। बड़े-बड़े महात्मा उसी का गान करते हैं। जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में अनन्य प्रेममयी भक्ति की लालसा रखता हो, उसे नित्य-निरन्तर भगवान् के दिव्यगुणानुवाद का ही श्रवण करते रहना चाहिये—

"कथा इमास्ते कथिता महीयसां विताय लोकेषु यशः परेयुषाम्।
विज्ञान-वैराग्य-विवक्षया विभो वचोविभूतीर्न तु पारमार्थ्यम्॥
यस्तूत्तमश्लोक-गुणानुवादः सङ्गीयतेऽभीक्ष्णममङ्गलघ्नः।
तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः॥" (भाग० १२।३।१४,१५)

वस्तुतः लेखक को भ्रम है। गोस्वामी तुलसीदास ने ठीक ही कहा है—

"जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा।
सो कह पच्छिम उयउ दिनेसा॥" (रा० मा० ७।७२।२)

किन्हीं भी इतिहास की घटनाओं का दुहरानामात्र इतिहास का उद्देश्य नहीं है, किन्तु पूर्वजों के इतिहास से उत्तम-उत्तम शिक्षा ग्रहण करने के लिए ही इतिहास पढ़ा जाता है। पीछे लिखा जा चुका है कि किसी वृत्त-वर्णन के प्रसङ्ग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन इतिहास है। उक्त श्लोक का अर्थ यह है कि राजन्, संसार में यश फैलाकर अन्त में परलोक चले जानेवाले महापुरुषों की जो कथाएँ मैंने सुनायी हैं, वह विज्ञान तथा वैराग्य उपदेश के लिए ही हैं। इसके अतिरिक्त सब वाणी का वैभवमात्र है। उसमें परमार्थ कुछ नहीं है। "इन्हें वाणी का वैभव मात्र न समझो। इनमें परमार्थ-तत्त्व भरा हुआ है।" यह अर्थ असङ्गत है, क्योंकि वह संस्कृत शब्दों की मर्यादा के विरुद्ध है। पर इन पङ्क्तियों के लेखक के लिए संस्कृत का काला अक्षर भैंस बराबर है, फिर यदि कोई इनसे पूछे कि रामायण में भी वाली-सुग्रीव, रावण-विभीषण आदि की लड़ाई ठीक महाभारत के भाइयों की लड़ाई के समान क्यों न मान लें तो इन रामायणीजी की पैरों के नीचे की धरती खिसक जायेगी। **महाभारत** के अध्ययन से तो पद-पद पर विवेक, विज्ञान, वैराग्य और पुण्य का ही लाभ होता है। कहा ही है—

"भारताध्ययनं पुण्यमपि पादमधीयतः ।
श्रद्दधानस्य पूयन्ते सर्वपापान्यशेषतः ॥"

महाभारत का अध्ययन अन्तःकरण को शुद्ध करनेवाला है। जो कोई श्रद्धा के साथ इसके किसी एक श्लोक के एक पाद का भी अध्ययन करता है उसके सब पाप सम्पूर्णरूप से मिट जाते हैं। स्त्रीपर्व, श्राद्धादि, अनुशासनपर्व, शान्तिपर्व, मोक्षधर्म आदि में तो उच्चकोटि का विवेक-विज्ञान आदि का वर्णन है। श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है कि व्यास मुनि ने भगवद्गुणों की विवक्षा से ही **महाभारत** की रचना की थी—

"मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखापि ते भारतमाह कृष्णः ।" (भा० ३।५।१२)

इतिहास का वर्णन **वाल्मीकिरामायण** एवं श्रीमद्भागवत में भी है ही, वहाँ इतिहास-वर्णन का जो उद्देश्य अभीष्ट है, वही भारत में अभीष्ट है। यद्यपि **महाभारत** में मुख्यरूप से श्रीकृष्ण का ही वर्णन है, तथापि यदि धर्मराज, अर्जुन आदि पाण्डवों को ही उसका मुख्य नायक माना जाय, तो भी कोई हानि नहीं; क्योंकि श्रीमद्भागवत के अनुसार पाण्डव भगवत्प्रिय परमभक्त हैं। गोस्वामीजी के अनुसार "राम ते अधिक राम कर दासा।" श्रीभागवत के अनुसार जो सुख भगवान् के चरणारविन्दों के ध्यान और भगवद्भक्तजनों की कथा के श्रवण में मिलता है, वह सुख स्वमहिम ब्रह्म में भी नहीं मिलता। फिर, काल की तलवार से विलुलित विमानों से गिरनेवाले देवताओं के सुख की तो उससे तुलना ही कैसे की जा सकती है ?

"या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद् भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत् किन्त्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात् ॥"(भाग० ४।९।१०)

अतः यह कहना नितान्त अशुद्ध और पाप है—"यदि व्यास ने अपने उसी जन्म में महाभारत के बाद श्रीमद्भागवत की रचना करके अपनी भूल का परिमार्जन किया था, तो वाल्मीकि ने तुलसी के रूप में जन्म लेकर अपनी धारणा को संशोधित रूप दिया है। **वाल्मीकिरामायण** में ऐतिहासिक दृष्टि की प्रधानता थी। इसके स्थान पर **रामचरितमानस** भावनात्मक दर्शन को साकार रूप प्रदान करता है। इसके वर्ण्य भगवान् श्रीराम हैं।" ऐसे लोगों के लिए ही भगवान् शङ्कर उमाजी से कहते हैं—

"बातुल भूतबिबस मतवारे। ते नहिं बोलहि बचन सँभारे ॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना ॥" (रा० मा० १।११४।४)

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी स्वयं कपीश्वर हनुमान्जी के समान ही कवीश्वर वाल्मीकि को विशुद्ध विज्ञान-वाले मानते हैं और सीताराम-गुणग्राम-पुण्यारण्य विहारी मानकर दोनों की एक साथ वन्दना करते हैं—

"सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥" (रा० मा० १। मङ्गलाचरण ४)

इसी प्रकार महर्षि व्यासजी की वन्दना करके गोस्वामीजी उनसे मनोरथ-पूर्ति की कामना करते हैं—

"व्यास आदि कविपुङ्गव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥
चरनकमल बन्दौ तिन्ह केरे। पूरहु सकल मनोरथ मेरे ॥"(रा० मा० १।१३।१,२)

फिर उनकी भूल सुधार या उनकी पुरानी धारणा का तुलसीदास द्वारा संशोधन मानना घोर पाप है। इसे तुलसीदास कभी भी सहन नहीं कर सकते। वे स्वयं कहते हैं—जैसे किसी नृप द्वारा निर्मित सेतु के सहारे पिपीलिका (चींटी) बिना श्रम के नदी पार कर जाती है, वैसे ही व्यास, वाल्मीकि मुनिराजों से निर्मित रामायण का सहारा लेकर हम लोग भी रामचरित्र वर्णन का रस प्राप्त कर लेते हैं—

"अति अपार जे सरित बर, जौ नृप सेतु कराहिं।
चढ़ि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहिं जाहिं ॥" (रा० मा० १।१३)

यह लिखा जा चुका है कि **वाल्मीकिरामायण** के एक-एक अक्षर से ब्रह्महत्या का पातक दूर होता है, यह व्यास भगवान् ने कहा है। वाल्मीकिचरित में नाभादास ने भी यही स्वीकार किया है।

अतः रामायण का रावणचरित भी रामचरित्र का अङ्ग होने से पवित्र एवं पापनाशक है।

रामायण के अनुष्ठानों में सभी श्लोकों को मन्त्र मानकर संपुटित पाठ किया जाता है। तुलसी जिन्हें विशुद्ध-विज्ञान कहते हैं, उन्हीं को तुलसीदास के भक्त बननेवाले "मानसवक्ता" भ्रान्त कहते हुए लज्जित नहीं होते, यह आश्चर्य है। वस्तुतः रामचरितमानस जैसी ही वस्तु अध्यात्मरामायण है। तुलसीदास ने अधिकांश उसी का अनुसरण किया है। अध्यात्मरामायण के अनुसार ही तुलसी ने इतिहास की गौणता और श्रीराम के ऐश्वर्य-विशिष्ट चरित्र का चित्रण किया है। उसके अनुसार शिव-पार्वती-संवाद के रूप में रामचरित्र प्रस्तुत किया है; फिर तो यही कहना ज्यादा सङ्गत है कि अध्यात्मरामायण द्वारा वाल्मीकि की धारणा का संशोधन किया गया, परन्तु यह सब भी निःसार ही है; क्योंकि सभी रामचरित्रों के प्रामाण्य की कसौटी वाल्मीकिरामायण ही है। इसी लिए **महाभारत** की भावदीप टीका के रचयिता ने रामचरित्रों में **वाल्मीकिरामायण** का ही परम प्रामाण्य मानकर उसी के अनुसार **महाभारत** के रामचरित्र का अर्थ किया है। **महाभारत** में लक्ष्मण के द्वारा कुम्भकर्ण का वध वर्णित है। उसे उन्होंने यों कहकर समाहित किया कि लक्ष्मण के द्वारा कुम्भकर्ण मृतप्राय हो गया था किन्तु वध तो **वाल्मीकिरामायण** के अनुसार श्रीराम द्वारा ही मानना उचित है। ठीक ही है, महर्षि वाल्मीकि ने ब्रह्माजी के आदेशानुसार समाधि द्वारा श्रीराम, लक्ष्मण, श्रीसीता आदि सभी रामायण के पात्रों का चरित्र हसित, भाषित, इङ्गित, चेष्टित आदि का प्रत्यक्ष अनुभव करके वर्णन किया है। संवाददाताओं के तारों व टेलीपेण्टरों के अनुसार या सुनी-सुनायी कथाओं के अनुसार नहीं लिखा है। अतः ऐतिहासिक तथ्य न होने पर तो कोई भी **रामायण** या **महाभारत** या **भागवत** केवल गप्प या उपन्यासमात्र रह जायगा। इसलिए **रामचरितमानस** के राम एवं उनके चरित्र की तथ्यरूपता या सचाई का आधार **वाल्मीकिरामायण** ही है।

कहा जाता है कि "व्यास और तुलसीदास दोनों ही श्रीकृष्ण और श्रीराम को इतना ठोस मानते हैं कि उनकी तुलना में उन्हें सारा इतिहास मिथ्या प्रतीत होता है।" परन्तु यह कहना असङ्गत है, क्योंकि इसका अर्थ यह है कि राम और कृष्ण वेदान्तवेद्य पारमार्थिक सत्य हैं और इतिहास आदि मिथ्या है। यदि यही बात है तो क्या राम और कृष्ण के चरित्र आदि भी मिथ्या हैं? यदि इतिहास और चरित्र दोनों ही मिथ्या हैं तो भी उस पूर्वोक्त कथन का क्या अर्थ है? राजा आदि की कथाएँ मिथ्या हैं, राम और कृष्ण की कथाएँ सत्य हैं, तो इस कथन में क्या आधार है? वेदान्त का एक अंश लेकर एक अंश छोड़ देना तो अर्धजरतीय न्याय ही होगा।

महानुभाव! यदि आप इतिहास-पुराणों का प्रामाण्य न स्वीकार करेंगे और राम, कृष्ण आदि के जन्मों तथा चरित्रों को ऐतिहासिक तथ्य न मानेंगे तो लेने के देने पड़ जायेंगे।

यह भी कहना गलत है कि "श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों इस पृथ्वी पर स्थूलरूप में काल-विशेष में अवतरित होते हैं, किन्तु उनका जन्म नहीं होता। यद्यपि तत्कालीन अधिकांश व्यक्तियों ने उन्हें साधारण बालकों की भाँति ही जन्म लेते हुए देखा था।" यह सब भी अनर्गल प्रलापमात्र है। यदि भगवान् का जन्म नहीं होता, तो उनके जन्म और कर्म के चिन्तन, वर्णन का महत्त्व ही क्यों है? गीता तो स्पष्ट कहती है जो मेरे (भगवान् के) दिव्य जन्म और कर्म को तत्त्वतः जानते हैं, वे जन्म तथा कर्म के बन्धनों से मुक्त होकर मुझ (भगवान्) को प्राप्त करते हैं—

"जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ (गीता ४।९)

गीता में भगवान् यह भी कहते हैं कि मैं अज, अव्यय एवं सब भूतों का ईश्वर होकर भी अपनी सच्चिदानन्दलक्षणा प्रकृति का आश्रयण कर के माया कृपा शक्ति से उत्पन्न होता हूँ—

"अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥ (गीता ४।६-८)

तुलसीदासजी महाराज ठीक इसी प्रकार कहते हैं—

"जब जब होइ धरम कै हानी । बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी ॥
तब तब धरि प्रभु बिबिध सरीरा । हरहिं कृपानिधि सज्जनपीरा ॥(रा० मा० १।१२०।३-४)

"असुर मारि थापहिं सुरन्ह राखहिं निज श्रुतिसेतु ।
जग बिस्तारहिं बिसद जस रामजन्म कर हेतु ॥" (रा० मा० १।१२१)

"रामजनम के हेतु अनेका । परम बिचित्र एक तें एका ॥
जनम एक दुइ कहउँ बखानी । सावधान सुनु सुमति भवानी ॥ (रा० मा० १।१२१।१,२)

"एक जनम कर कारन एहा । जेहि लगि राम धरी नरदेहा ॥" (रा० मा० १।१२३।२)

"जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल ।
चर अरु अचर हर्षजुत रामजनम सुखमूल ॥" (रा० मा० ३।१९०)

"जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहिं ।" (रा० मा० १।३३।३)

इससे अधिक भगवान् के जन्म में क्या प्रमाण हो सकता है । आखिर शरीर धारण ही तो जन्म है । जीव भी तो देह ही ग्रहण कर जन्म लेता है । वस्तुतः देखा जाय तो जीव भी अजन्मा ही है—

"न जायते म्रियते वा कदाचित् ।" (गीता २।२०)

जीव के लिए भी कहा गया है कि वह कभी "जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति" इन षड्विध भाव-विकारों से संसृष्ट नहीं होता । भेद यही है कि जीवों के भौतिक शरीर होते हैं और ईश्वर अपनी दिव्य लीलाशक्ति के योग से सच्चिदानन्दमय दिव्य श्रीविग्रह धारण करते हैं । अविद्या वश जीव अल्पज्ञ एवं अल्पशक्ति होता है और परमेश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, नित्य तथा शुद्धबुद्ध-मुक्तस्वभाव होते हैं । उनका श्रीविग्रह प्रकटरूप से अमुक-अमुक देश और काल में अनुभूत होता है, अप्रकट रूप से वह नित्य एवं विभु भी है ।

"यथा अनेक वेष धरि, नृत्य करइ नट कोइ ।
सोइ सोइ भाव देखावइ, आपु न होइ न सोइ ॥ (रा० मा० ७।७२)

इस दोहे का यह अर्थ नहीं कि ऐतिहासिक दृष्टि के राम से भिन्न ही कोई राम तुलसी को अभीष्ट थे । किन्तु इसका अर्थ इतना ही है कि राम, कृष्ण, विष्णु, शिव आदि अनेक रूपों में वेदान्त-वेद्य परब्रह्म का प्रादुर्भाव होता है ।

यह भी कहना ठीक नहीं कि "रङ्गमञ्च पर अभिनेता के रूप में जो क्रियाएँ की जाती हैं, उनके द्वारा उनके चरित्र की आलोचना नहीं की जाती केवल अभिनय के उद्देश्य पर ही दृष्टि रखी जाती है।" क्योंकि अभिनय भी मनमानी नहीं किया जाता। उसके लिए भी नाट्यशास्त्र का आश्रयण करना पड़ता है। अप्रामाणिक अभिनय कभी भी लक्ष्यसिद्धि का साधक नहीं होता है। भगवान् राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। श्रीभागवत के अनुसार भी उनका अवतरण मर्त्यशिक्षण के लिए होता है—

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः॥" (भाग० ५।१९।५)

वाल्मीकिरामायण या **अध्यात्मरामायण** या **रामचरितमानस** की दृष्टि से राम के चरित्र मानवों के लिए आदर्श हैं। वेदादि-शास्त्रों ने मानव-जीवन का जो विधान बताया है, उसे कार्यान्वित कर के आदर्श रूप उपस्थित करना बहुत कठिन और महत्त्वपूर्ण काम है। इसी लिए इस कठिन काम को राम ने उठाया और निभाया। कर्म क्या हैं, कैसे हैं, उनका कैसे और कौन कब अनुष्ठान करें? उसे गीता स्पष्ट शब्दों में कहती है कि जो शास्त्रविधि का उल्लङ्घन करके यथेष्ट चेष्टा करता है उसे सिद्धि, परा गति कुछ भी नहीं मिलती—

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥" (गीता १६।२४)

अतः हर एक कर्तव्य और अकर्तव्य को शास्त्र के अनुसार जानकर ही कर्म करना उचित है। गोस्वामी तुलसीदास भी यही कहते हैं—

"बरनाश्रम निज-निज धरम निरत बेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग॥" (रा० मा० ७।२०)
"सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्मनिरत श्रुतिरीती॥"(रा० मा० ७।२०।१)

भक्ति के साधन रूप में यही कहा—

"निज निज धरम निरत श्रुतिरीती॥" (रा० मा० ३।१५।३)

श्रीकृष्ण ने गीता में भी यही कहा—यदि मैं शास्त्रानुसारी कर्म न करूँ तो ये लोग नष्ट हो जायेंगे और मैं सङ्कर का कर्ता बन जाऊँगा—

"उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥" (गीता ३।२४)

अतएव इस कथन में भी कुछ सार नहीं है कि "भगवान् यदि राम की भूमिका में उतरते हैं तो उनके पार्षद जय-विजय रावण-कुम्भकर्ण की भूमिका में आते हैं। सत्-असत् के शाश्वत संघर्ष को विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना ही उसका उद्देश्य था, जिससे व्यक्ति अपने हृदयस्थ रावण को पहचान कर उसके विनाश की प्रक्रिया को जान ले।" क्योंकि उस स्थिति में प्रश्न होगा कि राम-रावण नाम के कोई प्रामाणिक वस्तु हैं या केवल काल्पनिक भावरूप ही हैं? यदि पहली बात है तब तो ऐतिहासिकता से पिण्ड नहीं छूटेगा, यदि काल्पनिक ही हैं तब तो फिर रावण अपने भीतर की ही कोई दुर्वृत्तियों का पुञ्ज हैं, वैसे ही राम भी सद्वृत्तियों का पुञ्ज ही है, फिर राम नाम का जप, रामचरित्र का श्रवण, पठन, पाठ आदि का क्या महत्त्व होगा? सिद्धान्ततः राम ऐतिहासिक होने पर भी नित्य हैं, क्योंकि वेद के तुल्य ही **रामायण** तथा **महाभारत** भी नित्य हैं। इसी लिए वे वेद के उपबृंहण हैं। जैसे प्रतिकल्प में वेदों का प्रादुर्भाव होता है, वैसे ही महाभारत, रामायण का प्रादुर्भाव होता है। भेद यह है कि वेदों की अक्षरानुपूर्वी में कोई परिवर्तन नहीं होता है, किन्तु रामायण तथा महाभारत की आनुपूर्वी में परिवर्तन होता है। परार्थ और सिद्धान्त एक से रहने पर भी अक्षरानुपूर्वी में परिवर्तन हो सकता है। भगवान् का गोलोक, साकेत

में प्रकटरूप से रहना सिद्ध ही है। भगवान् नित्य एवं सर्वत्र सुलभ होने पर भी प्रकटरूप से ऐतिहासिक रूप में ही भगवान् के जन्म और कर्म होते हैं। उन्हीं का वर्णन और श्रवण होता है। उन्हीं से प्राणियों की सद्गति होती है।

"ऐतिहासिक दृष्टि से राम का चरित्र देखने पर अनगिनत प्रश्न उठ खड़े होते हैं।" यह कथन जल्पवाद है। केवल सहस्रों प्रश्न खड़े होंगे, इसलिए सत्य का अपलाप कर के भगवान् को एक भावात्मक वस्तु ही मान लेना उचित नहीं, "**सति कुड्ये चित्रोल्लेखः**" भित्ति होने पर हो चित्र होता है। यदि कोई ऐतिहासिक तथ्य वस्तु है, तभी उसमें आध्यात्मिक कल्पनाएँ भी सङ्गत हो सकेंगी। ऐसा नहीं तो आकाश-चित्रवत् सब कल्पनामात्र ही रह जायेगी और हर प्रश्न का समाधान है ही। "ऐतिहासिक दृष्टि से राम को एक भूतकालीन राजकुमार के रूप में देखना उसी दलदल में फँस जाना है जिससे भक्तों ने हमें उबारने की चेष्टा की है।" इसका उत्तर स्पष्ट है—श्रीराम ऐतिहासिक राजकुमार के रूप में परब्रह्म परमात्मा के अवतार थे और वे आज भी साकेत धाम में प्रकटरूप से रहते हैं। जहाँ भी भक्त उनका शुद्ध भाव से आह्वान करता है वहीं वे प्रकट होते हैं। इस सम्बन्ध में सम्पूर्ण महाभारत, रामायण तथा पौराणिक साहित्य प्रमाण हैं। किसी भक्त ने कहीं भी यह नहीं कहा कि श्रीराम दशरथ के यहाँ राजकुमाररूप से प्रकट नहीं हुए थे। तुलसी तो मानते हैं—

"जेहि इमि गावहिं बेद बुध जाहि धरहि मुनि ध्यान।
सुइ दशरथसुत भगतहित कोसलपति भगवान्॥" (रा० मा० १।११८)

इतना ही नहीं निर्गुण निराकार ब्रह्म के समान ही सगुण साकार ब्रह्म भी सर्वव्यापी होता है। इस विषय पर जीवगोस्वामी प्रभृति आचार्यों ने बहुत-कुछ लिखा है।

अतः राम का ऐतिहासिक स्वरूप मानना दलदल में फँसना नहीं है, किन्तु वैसा न मानना ही नास्तिकता के दलदल में फँस जाना है। कहा जाता है कि "आजकल ऐसे लोग बहुत बड़ी संख्या में हैं, जो श्रीराम को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर दुर्भावनाओं की सृष्टि में संलग्न हैं। कुछ लोग इसमें उत्तर और दक्षिण का सङ्घर्ष देखते हैं। यह आर्य और द्रविड़ के सङ्घर्ष के रूप में देखा जा रहा है। दक्षिण में यह बहुत प्रचलित तथ्य बनता जा रहा है कि उत्तर ने दक्षिण पर आक्रमण किया था। आर्य राम ने द्रविड़ रावण को परास्त किया। भूत काल का बदला अब श्रीराम के चित्रों से लेने की चेष्टा की जा रही है।"

श्रीरामचरित्र को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में रखकर दुर्भावनाओं की सृष्टि में जो लोग लगे हैं, वे वेदादिशास्त्रों का प्रामाण्य नहीं मानते। रामायण का भी प्रामाण्य नहीं मानते, उनको आप तो क्या! कोई भी नहीं मना सकता है। किन्तु जो रामायण पढ़ेगा, उसका प्रामाण्य स्वीकार करेगा, वह कभी राम-रावण के सङ्घर्ष को आर्य-द्रविड़ का सङ्घर्ष नहीं कह सकता, क्योंकि **वाल्मीकिरामायण** से ही सिद्ध है कि रावण महर्षि पुलस्त्य का पौत्र और विश्रवा का पुत्र था। मानस में भी कहा गया है—'उत्तम कुल पुलस्ति कर नातो।' (रा० मा० ६।१९।२) वह वैदिक ब्राह्मण था। पुलस्त्य आदि वैदिक आर्य थे, अनार्य नहीं थे। श्रीराम भी वैदिक आर्य थे—"**आर्यः सर्वसमश्चैव**....।" हाँ, वह (रावण) असुरों और राक्षसों की भावनाओं का पोषक था और स्वयं माता के सम्बन्ध द्वारा उनसे सम्बन्धित था। वस्तुतः भगवान् का पार्षद था और भगवान् की इच्छा से ही उनकी युद्ध की चिक्रीडिषा की पूर्ति के लिए सनकादि के शाप के व्याज से रावण रूप में अवतीर्ण था। यह सब रामायणप्रामाण्य से ही सिद्ध है। यदि रामायण का प्रामाण्य अमान्य है, तो न तो आपके भावात्मक राम सिद्ध होंगे और न रावण सिद्ध होगा। क्योंकि आधुनिक इतिहास में उनका अस्तित्व है ही नहीं। आधुनिक ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक काल सब ६ हजार वर्ष के भीतर का ही है; उसमें न राम हैं और न रावण है। अतएव यह सब निर्मूल है कि "उत्तर ने

दक्षिण पर आक्रमण किया। आर्य राम ने द्रविड़ रावण को परास्त किया। भूतकाल का बदला श्रीराम के चित्रों से लेने की चेष्टा की जा रही है।" क्योंकि रामायण की दृष्टि से वैसा सिद्ध नहीं है। अन्य प्रामाणिक इतिहास भी वैसा नहीं है। आपका यह कहना कि "वर्तमान युग की राजनीति को उसी परिप्रेक्ष्य में देखा जा रहा है—सावधान ! वही इतिहास फिर लौटने न पावे। मिथ्या उन्माद की सृष्टि करके राजनीतिक-लाभ प्राप्त करने की चेष्टा की जा रही है।" परन्तु इस उन्माद का समाधान है, ऐतिहासिक वस्तुस्थिति का सम्यक् प्रचार, न कि पलायनवाद। याद रहे। आप कितना भी कहें कि राम-रावण ऐतिहासिक पुरुष नहीं हैं, किन्तु वे आध्यात्मिक सत्-असत् के प्रतीक हैं तो भी राम का पुतला जलाना बन्द नहीं करेंगे। उनका स्पष्ट कहना है कि आप लोग रामलीला करना कराना बन्द कर दो। क्या आप यह स्वीकार करेंगे ? काशी में श्रीतुलसीदासजी के समय से ही रामलीला प्रचलित है और उस पराधीनता के युग में जब कि हिन्दुओं का अपना कोई राजा नहीं था। उस समय रामलीला के जादू से लोगों के मुर्दार मन में उत्साहित जीवन आया था और सभी बाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष गरज कर बोलते थे--बोलो राजा रामचन्द्र भगवान् की जय। आज भी वह गर्जन की परम्परा सुरक्षित है ही। वे स्पष्ट मानने लगे थे कि वास्तव में हम स्वतन्त्र हैं। हमारा राजा रामचन्द्र ही है और नहीं। यदि आप जैसे लोग रामलीला बन्द भी कर दें, तो उनका यह भी आग्रह होगा कि आप राम-रावण की कथा भी बन्द करो। अन्त में **वाल्मीकिरामायण** और **मानस** की पुस्तकों को जप्त करायेंगे और प्रत्यक्ष उनकी होली खेलेंगे। अतः पलायनवाद समाधान नहीं है। हम मन्दिरों में शङ्ख-घड़ियाल बजाते हैं। बहुत लोगों को बहुत बुरा लगता है और कुत्ते बेचारे तो रोने ही लगते हैं। क्या करें, बन्द कर दें घण्टा, घड़ियाल और शङ्ख बजाना, बन्द कर दें पूजा करना ?

इसी तरह यह भी कहना निरर्थक है कि "उत्तरभारत में भी राम निर्विवाद नहीं हैं। एक ओर तो उन्हें वर्ण-व्यवस्था के आधार पर आलोचना का विषय बनाया जा रहा है। राम शूद्रविरोधी और ब्राह्मणवादी हैं। इससे लगता होगा कि ब्राह्मण तो उनके समर्थक होंगे ही; किन्तु कई ब्राह्मणपुङ्गव कहते हैं कि क्षत्रिय राम के समक्ष भगवान् परशुराम की पराजय और स्तुति कराकर तुलसीदास ने अनर्थ कर डाला। कई लोग राम-रावण के युद्ध को ब्राह्मण-क्षत्रिय के संघर्ष के रूप में देखते हैं। हो सकता है आगे चलकर श्रीराम को ब्राह्मण-द्वेषी सिद्ध किया जाय।" उक्त सभी बातें **रामायण** के विरुद्ध ही हैं। अगर **रामायण** का प्रामाण्य मान्य नहीं, तो राम होना ही असिद्ध है। यदि **रामायण** का प्रामाण्य मान्य है तो उसके अनुसार श्रीराम एक निष्पक्ष वेदादिशास्त्रानुसारी सम्राट् के रूप में अवतीर्ण परब्रह्म थे। वे धर्मविरुद्ध आचरण करने पर रावण जैसे ब्राह्मण को भी प्राणदण्ड दे सकते हैं तो किसी धर्मविरुद्ध शूद्र को भी प्राणदण्ड दे सकते हैं। अतएव वसिष्ठादि ब्राह्मण और निषादराज, कोल, भिल्ल और किरात ही क्यों बन्दर, भालू, गीध, कौए आदि भी राम के अनन्य उपासक थे।-आज भी रामलीलाओं में स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध, ब्राह्मण-शूद्र सभी सम्मिलित होकर अपने निष्पक्ष सर्वहितकारी राजा रामचन्द्रजी महाराज की जय-जयकार करते हुए उनके रथ को खींचते हैं। उनके विमान में कन्धा लगाकर धन्य-धन्य होते हैं। राम-परशुराम की कथा शास्त्र-प्रामाण्यवादियों की दृष्टि में वस्तुस्थिति है, अपमान का वहाँ प्रश्न ही क्या है ? पुराणों के अनुसार एक भगवान् विष्णु ही राम हैं। विष्णु के ही अंश परशुराम हैं। वाल्मीकिरामायण के अनुसार श्रीराम "ब्राह्मणानामुपासिता" ब्राह्मणों के उपासक हैं। श्रीतुलसी के अनुसार श्रीराम विप्रपदपूजा का कवच पहनते हैं—

"**कवच अभेद विप्रपद पूजा।**" (रा० मा० ६।७९।५)

और उनकी भक्ति का मुख्य आधार ही विप्रचरणप्रीति है—

"**प्रथमहिं बिप्रचरन अति प्रीती।**" (रा० मा० ३।१५।३)

हाँ, पलायनवाद की नीति में भले ही ऐतिहासिक राम से पिण्ड छुड़ाकर कोई काल्पनिक राम का गुणगान करो तो भी वेदादि शास्त्र न माननेवालों का मन आप बदल नहीं सकते। संसार में लोग **रामायण** की कथा को एक सत्य घटना मानकर ही उसके अनुसार परमात्मा का श्रीरामरूप में अवतरण मानते हैं और उनके चरित्रों के सुनने में पुण्य-प्राप्ति है, अतः उससे लाभ उठाते हैं। वस्तुतः ऐतिहासिक दृष्टि से भगवान् राम के चरित्र की समीक्षा से घबड़ाने की बात नहीं है। राम अनादि अनन्त ब्रह्माण्ड में भी हैं और सब व्यक्तियों के अन्तरात्मा हैं। फिर भी अवतार की दृष्टि से वे व्यक्ति भी हैं। सर्वरहित एवं सर्वस्वरूप हैं तो भी वे धर्मसंस्थापन के लिए अवतीर्ण थे, अतः उस धर्म का पालन करते थे। साथ ही वे एक धार्मिक सम्राट् एवं वैदिक धर्म के रक्षक थे। वे आर्य, अनार्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र न होते हुए भी अवतार की दृष्टि से क्षत्रिय थे। उन्होंने कहा—

"हम क्षत्रिय मृगया बन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥" (रा० मा० ३।१८।५)

"राम जाति-पाँति नहीं मानते थे।" यह कहना सत्य का अपलाप करना है। जब वे धर्म-संस्थापनार्थ आये थे और वैदिक धर्म जातिमूलक ही है, तब यह कैसे हो सकता है कि राम जाति-पाँति न मानें।

"मानउँ एक भगति कर नाता।" (रा० मा० ३।३४।२)

का यही अर्थ है कि किसी भी जाति का व्यक्ति उनको भजकर कृतार्थ हो सकता है। भक्ति न होने पर जाति, पाँति, कुल, धर्म सब व्यर्थ होते हैं। किन्तु भक्ति के साथ वे वैसे ही महत्त्वपूर्ण होते हैं जैसे अङ्क रहने पर शून्य का गौरव होता है। कोई भी समझदार शून्य को निरर्थक नहीं कह सकता, क्योंकि शून्य अङ्क बिना शून्य हैं पर अङ्क रहने पर दशगुना विस्तार के हेतु होते हैं। इसी अर्थ में यह पंक्ति कही गयी है—

"भगतिहीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥" (रा० मा० ३।३४।३)

कहा जाता है कि—

"सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।
केवट मीत कहे सुख मानत वानर बन्धु बड़ाई॥"

कहा जाता है कि "ब्राह्मणों को समादर देते हैं पर आनन्द उन्हें तभी आता है जब केवट उन्हें मित्र कह कर पुकारता है।" परन्तु इससे यह कहाँ सिद्ध होता है कि राम जाति पाँति नहीं मानते। "नीचहूँ सो करत प्रीति····।" इस पद्य से तो स्पष्ट है कि राम जाति मानते थे क्योंकि उक्त पद में जातिवाचक शब्द का संप्रयोग है। रही बात प्रीति की सो जाति प्रेम में बाधक नहीं है। इसी लिए तो राम उच्च कुल के होते हुए भी नीच, कुजाति वालों से प्रेम करते थे। यह उनकी महत्ता है। गीध, शबरी, वानर, भालू, कोल-भील, किरातों से भगवान् राम प्रेम करते हैं, उनके मित्र हैं, इन बातों में विवाद नहीं है; परन्तु—

"बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहि भय सोक न रोग॥" (रा० मा० ७।२०)

यह वाणी श्रीराम को अस्वीकृत है क्या ?

कहा जाता है कि "ऐतिहासिक दृष्टि से राम के चरित्र को देखने से अनेक प्रश्न खड़े होते हैं।" यही क्यों परमेश्वर पर क्या कम विवाद है ? जैनों और बौद्धों का बहुत बड़ा समाज है। उनकी दृष्टि में जगत्कारण ईश्वर मानना भी अनेक मूर्खताओं में से एक है। सांख्य और मीमांसकों की दृष्टि में भी ईश्वर की समालोचना की गयी है। इस तरह क्या आस्तिक ईश्वर मानना छोड़ देंगे ? संसार में लोग अपने-अपने विश्वास एवं धारणाओं के अनुसार भिन्न-भिन्न मत रखते हैं, तो भी ईश्वरवादी अपनी-अपनी भावना के अनुसार ईश्वर की भक्ति करते ही हैं। वैसे ही

ऐतिहासिक दृष्टि से लोगों की समालोचनाओं के रहते हुए भी श्रीराम का ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, आधिदैविक रूप भी मान्य है। वाल्मीकि तथा व्यास के द्वारा रचित रामायण, महाभारत, पुराण, संहिता, तन्त्र, आगम एवं मन्त्र, ब्राह्मण, उपनिषद्, वेद के आधार पर ही राम व्यापक परमात्मा और ऐतिहासिक अवतारी भी हैं। उनकी विस्तृत कथा का आधार **वाल्मीकिरामायण** ही है। कोई भी कथा प्रामाणिक होने पर आदरणीय हो सकती है। श्रीराम वानरों के मित्र थे, शबरी के फल खानेवाले हैं। निषादराज के मित्र हैं। उनका गीध तथा भुशुण्डि से भी सम्बन्ध था, यह सब यदि ऐतिहासिक नहीं है, तब क्या कल्पनामात्र है? याद रहे, अपौरुषेय-वेद एवं तन्मूलक आर्ष वचनों के आधार पर ही श्रीराम एवं उनके मित्र सिद्ध होगें, अन्यथा निर्मूल गल्पमात्र सब बात समझी जा सकती है। किसी साधु-सन्त, महात्मा या वक्ता तथा कल्पक की कल्पना कल्पना ही रह जायेगी। तुलसीदास की रामायण भी उनकी अपनी कल्पना नहीं है। उन्होंने "नानापुराणनिगमागम" के आधार पर ही **रामचरित** गाया है। वे **वाल्मीकिरामायण के सेतु** द्वारा ही **रामचरित** का रसास्वादन करते हैं। यदि **वाल्मीकिरामायण** की उपेक्षा करनेवाला कोई भी हो निश्चित ही तुलसी एवं उनके राम का भक्त नहीं हो सकता। यह ठीक है कि "तुलसी के राम प्रत्येक देश, काल और व्यक्ति के हैं। उन्हें देश, काल तथा जाति की संकीर्ण परिधि में नहीं बाँधा जा सकता है। अनाथ तुलसी इन्हीं राम का आश्रय पाकर धन्य हुए थे।" परन्तु वे राम क्या दशरथनन्दन नहीं थे? क्या वे कौशल्यानन्दवर्धन नहीं थे? वस्तुतः कौन कहता है कि दशरथनन्दन ऐतिहासिक राम ईश्वर नहीं, वे प्रत्येक देश एवं काल के नहीं हैं? वे सब देश तथा सब काल के होते हुए भी ऐतिहासिक भी हैं। अयोध्या ऐतिहासिक नगरी थी। सूर्यवंशी राजा दशरथ उसके सम्राट् थे। वसिष्ठजी उनके पुरोहित थे। उनके प्रयत्न से सर्वव्यापी राम उनके पुत्ररूप में प्रकट हुए थे—

जग निवास प्रभु प्रगटे अखिललोक विश्राम।" (रा० मा० १।१९१)

इस ऐतिहासिक तथ्य का अपलाप करने से ईश्वर राम की भक्ति भी असम्भव ही है। निर्गुण निराकार राम को सगुण साकार रामरूप या श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट होने के लिए और अपनी लीलाओं का रसास्वादन कराने के लिए भी किसी देश और काल में किसी माता-पिता से प्रकट होना पड़ता है। लीलाओं के लिए भी अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों का उपयोग करना पड़ता है। इसी लिए तो "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति" के अनुसार "जब जब होइ धर्म कै हानी" तब तब भगवान् का प्रादुर्भाव माना जाता है।

यह कहना सङ्गत नहीं है कि "व्याकरण शब्दानुशासन है। वह व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति शब्दानुशासन के लिए। व्याकरण जब एक भवन की भाँति होता है। तब वह भाषा को सुरक्षा प्रदान करता है। किन्तु उसका अतिरेक व्याकरण को कारागार बना देता है। जहाँ भाषा का सहज स्वरूप समाप्त होकर केवल कृत्रिमता शेष रह जाती है।" (मा० मु० ३)

क्योंकि व्याकरण तो अपशब्दों से साधु शब्दों का विश्लेषण करता है। वही शब्दों का संस्कार है। शब्दों के सहज स्वरूप की अभिव्यक्ति व्याकरण के द्वारा होती है। सूत्रों से प्रकृति और प्रत्ययों द्वारा शब्द-संस्कार की पद्धति केवल बाल-व्युत्पादनार्थ है। शब्द तो नित्य ही हैं।

यदि शब्द का निश्चित स्वरूप न होगा तो उसके रूपान्तरण की कोई सीमा न रहेगी। फिर तो उसका अर्थसम्बन्ध भी न रह सकेगा। ऐसी स्थिति में अन्य भाषाओं के समान संस्कृत शब्दों का रूपान्तरण होने से कालान्तर में उनका ज्ञान भी असम्भव हो जायगा। नियमित रूप होने का ही परिणाम है कि लाखों वर्ष पुराने **वाल्मीकिरामायण** का अर्थ आज भी समझा जा सकता है। परन्तु जिन भाषाओं का रूप बदल जाता है उनका अर्थ पचास वर्षों में ही दुर्ज्ञेय हो जाता है।

जिस सम्बन्ध में पूर्ण परिचय न हो उचित है कि उस सम्बन्ध में प्राणी अनधिकार चेष्टा न करे। पृ० २३ मानसमुक्ता का सारा प्रसङ्ग काल्पनिक एवं आभासमय है।

"भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां बिना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥"

वस्तुतः भवानी और शङ्कर दोनों ही नित्य वस्तु हैं। शङ्कर अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के अधिपति परमेश्वर हैं। भवानी अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोत्पादिनी शक्ति हैं। केवल ब्रह्म की उपासना नहीं बनती, किन्तु शक्तिविशिष्ट ब्रह्म एवं साधिष्ठाना शक्ति की ही पूजा होती है। स्वरूपतः दोनों ही एक हैं। साधिष्ठाना शक्ति एवं शक्तिमद् ब्रह्म का एक ही अर्थ होता है। इसी लिए जैसे श्रीतुलसीदास ने—'नमामीशमीशान' आदि स्तोत्र में शिवजी को ब्रह्मरूप कहा है वैसे ही पार्वती के लिए भी—"**भव भव विभव पराभवकारिणि**" कहकर उन्हें भी ब्रह्मरूप ही कहा है, क्योंकि "जन्माद्यस्य यतः" (ब्रह्मसूत्र १।१।२) के अनुसार जो सम्पूर्ण जगत् का उत्पादक, पालक और संहारक है वही ब्रह्म है।

जैसे राम और कृष्ण दोनों ही में ब्रह्म के लक्षण सम्पूर्ण हैं वैसे ही शिव और पार्वती दोनों में ब्रह्म के सम्पूर्ण लक्षण हैं। वही बात सीता-राम और राधा-कृष्ण के सम्बन्ध में जाननी चाहिये। जैसे एक नट अनेक रूपों में रङ्गमञ्च पर आता है वैसे ही वेदान्तवेद्य परब्रह्म अनेक रूपों में आता है। ब्रह्म का ऊँचा से ऊँचा जो रूप है वह सीतोपरिषद् में सीता के लिए कहा गया है। सीता या राम, भवानी या शङ्कर दोनों ही निर्गुण निराकार, सगुण निराकार एवं सगुण साकार हैं।

यह बात वेदों, उपनिषदों, महाभारत, रामायण, पुराणों एवं तन्त्रों में स्पष्ट है। उन्हीं भवानी और शङ्कर में श्रद्धा और विश्वास का आरोप है : भवानी और शङ्कर के स्वरूप में ही श्रद्धा और विश्वास को महत्त्वपूर्ण मानकर उनका आदर करना चाहिये।

वस्तुतः वे दोनों तो नित्य ब्रह्मरूप हैं। किन्तु श्रद्धा तथा विश्वास दोनों ही अन्तःकरण के धर्म हैं। शास्त्रों ने तो गुरु तथा वेदान्त वाक्यों में विश्वास को ही श्रद्धा कहा है फिर भी जैसे भवानी और शङ्कर एक होते हुए भी व्यावहारिक रूप में एक में जननीस्वभाव-सुलभ कोमलता का अधिक प्राधान्य है—

"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।" (अपराधक्षमा० स्तो०)

और दूसरे में ईश्वर के अनुगुण मर्यादा-पालन में दृढ़ता का प्राधान्य है। श्रद्धा में कोमलता का झुकाव अधिक होता है। विश्वास में दृढ़ता, स्थिरता और कठोरता अधिक है। यदि और सूक्ष्मता से देखें तो शिव अग्निरूप हैं तथा भवानी सोमरूप हैं। सोम में कोमलता तथा सरसता है। अग्नि में प्रकाश, उष्णता और दृढ़ता होती है। सारा संसार ही अग्नीषोमात्मक है। संसार की जितनी भी कोमल वस्तुएँ हैं उन सब में सोम का प्राधान्य है। जितनी कठोर वस्तुएँ हैं उनमें अग्नि का प्राधान्य है।

उपनिषदों में यज्ञगत जल, दधि, दुग्ध, घृत, सोमरस आदि श्रद्धापदवाच्य कहे गये हैं। उन श्रद्धापदवाच्य पदार्थों से समवेत कर्मों एवं तज्जन्य अपूर्व या अदृष्ट को भी श्रद्धा या अप् शब्द से व्यवहृत किया जाता है। श्रद्धा होने पर ही प्राणी में इष्ट के प्रति झुकाव होता है। जिसके प्रति श्रद्धा होती है उसके प्रति प्राणी का अन्तःकरण, अन्तरात्मा और सिर झुक जाता है। विश्वास से उसमें दृढ़ता आ जाती है। भक्ति में भी द्रवता होती है, कोमलता रहती है।

अन्तःकरण को लाक्षा (लाह) के समान कठोर द्रव्य माना गया है। वह तापक भावों से द्रवीभूत हो जाता है। स्नेह, काम, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या आदि के सम्पर्क से अन्तःकरण पिघलता है। जैसे पिघली हुई लाक्षा

में डाला हुआ रङ्ग स्थिर हो जाता है वैसे ही पिघले हुए अन्तःकरण में अभिव्यक्त भगवान् भी अन्तःकरण में स्थिर हो जाते हैं।

हम अनेक पदार्थों को देखते हैं, किन्तु उनका स्मरण नहीं रहता है। परन्तु जिसे स्नेह, काम, भय, द्वेष आदि से द्रवीभूत मन से देखते हैं उसे भुलाने का प्रयत्न करने पर भी भुला नहीं पाते। किसी प्रिय मित्र या प्रेयसी कामिनी की विस्मृति नहीं होती। सर्प, व्याघ्र या शत्रु को भय तथा द्वेष से द्रुत अन्तःकरण से ग्रहण करने के कारण ही हम उन्हें भी नहीं भूल पाते हैं।

सोमजातीय होने के कारण ही जल, दुग्ध, दधि, सोमलता आदि में द्रवता–कोमलता है। सोमांश होने के कारण ही भक्ति, स्नेह, करुणा, श्रद्धा आदि अन्तःकरण के गुण प्रकट होते हैं। विश्वास भी अन्तःकरण का धर्म है। श्रद्धा और विश्वास जब दोनों ही निर्दोष प्रमाण के आधार पर होते हैं तभी आदरणीय होते हैं। अविवेक के कारण भी श्रद्धा तथा विश्वास होते हैं पर वे अन्धविश्वास एवं अन्धश्रद्धा ही होते हैं।

संसार अनन्त है। परन्तु मनुष्य का ज्ञान बहुत सीमित होता है। चक्षु, श्रोत्र, घ्राण आदि इन्द्रियाँ, मन आदि ज्ञान के साधन हैं। चक्षु तथा घ्राण के द्वारा बहुत सीमित वस्तुओं को जाना जा सकता है। मन, बुद्धि आदि भी आन्तर सुख, दुःखादि के ज्ञान में स्वतन्त्र होते हुए भी बाह्य विषयों में वे स्वतन्त्र नहीं हैं। चक्षुरादि के परतन्त्र होकर ही वे कुछ विषयों का ज्ञान करा सकते हैं।

योगशास्त्र के अनुसार यदि प्रातिभ ज्ञान या ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो तो अधिक ज्ञान हो सकता है। योगजनित दिव्य ज्ञान के सामने तो सम्पूर्ण ज्ञेय ही ज्ञान की अपेक्षा कम हो जाता है। पर जो उत्कृष्ट कोटि की सम्प्रज्ञात समाधि या असम्प्रज्ञात समाधि से सम्पन्न नहीं हैं उसके लिए ज्ञान के द्वार बहुत ही सीमित हैं। साथ ही दम्भ की महिमा से गैर योगी भी योगी होकर पूजित होते हैं। फिर किस प्रकार सत्य वस्तु का ज्ञान हो सकता है ? अतः अपौरुषेय मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद एवं वेदमूलक आर्ष ग्रन्थों के द्वारा ही प्राणी अपने अभ्युदय एवं निःश्रेयस के उपायों को जान सकता है।

जैसे अकारणकरुणावरुणालय भगवान् प्राणियों के कल्याणार्थ ही उनके कर्मों के अनुसार अनन्त कोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्च का निर्माण करते हैं, वैसे ही वही प्रभु अभ्युदय एवं निःश्रेयस के उपायों को प्रकट करते हैं। श्रीभागवत में कहा गया है कि वेद साक्षात् नारायण ही हैं—

"वेदो नारायणः साक्षात् स्वयंभूरिति शुश्रुमः।" (भाग० ६।१।४०)

उन वेदादिशास्त्रों एवं तदनुसारी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं के वाक्यों में विश्वास ही श्रद्धा है।

ऐसी स्थिति में कबीरदास का व्यङ्ग्यभरा निम्नोक्त उत्तर निःसार है—

"तू कहता कागज की लेखी। मैं कहता आँखिन की देखी॥"

वेदशास्त्र साक्षात् ईश्वर का निःश्वास है कागद की लेखी नहीं है। स्मृति क्षीण होने पर स्मृति की सहायता के लिए कागद की लेखी का भी उपयोग होता है।

धर्म और ब्रह्म दोनों ही आँखों के ही नहीं प्राणियों के मन और बुद्धि के भी सर्वथा अगोचर ही हैं। जिस वस्तु को प्रत्यक्ष या अनुमान से नहीं जाना जाता। उसी वस्तु के ज्ञान के लिए वेदों का आविर्भाव होता है—

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न वेद्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥"

अज्ञातज्ञापक होने से ही प्रमाण का प्रामाण्य होता है। चक्षु के बिना अन्य प्रमाणों से रूप का बोध नहीं होता। इसी लिए रूपज्ञान में नेत्र ही प्रमाण है। घ्राण के बिना गन्ध का बोध नहीं होता। इसी लिए गन्ध-ज्ञान में घ्राण का प्रामाण्य है।

तुलसी के शब्दों में ऐसी कोई बात नहीं मिलती जिससे वेदों का अनादर हो, वे तो स्वयं निरतवेदपथ लोगों का ही महत्त्व मानते हैं। भक्ति में ही निरतश्रुतिनीति का ही महत्त्व मानते हैं। वेद की निन्दा करने से बुद्ध अवतार धारण करनेवाला ईश्वर भी निन्दित होकर उपेक्षणीय हो जाता है—

"जेहि निन्दत निन्दित भयो विदित बुद्ध अवतार।"

वेदनिन्दकों की उन्होंने निम्नोक्त शब्दों में खबर ली है—

"शब्दी साखी दोहरा कहि नाना उपखान कहहिं खल निन्दहिं वेद पुरान।"

आश्चर्य है—तुलसी मानस के आधार पर सुख-सुविधाओं को प्राप्त करनेवाले लोग ऐसी बातें कैसे करते हैं!

यह कहना सर्वथा असङ्गत ही है कि कोई भी प्रमाण प्रत्यक्ष का स्थान नहीं ले सकता। क्योंकि प्रत्यक्ष और अनुमान तो केवल लौकिक वस्तुओं तक ही सीमित रहते हैं। वेदादि प्रमाण ही वस्तुतः प्रमाण हैं। अतएव प्रत्यक्ष तथा अनुमान का अतात्त्विक सांव्यावहारिक ही प्रामाण्य है। तात्त्विक प्रामाण्य तो वेदों का ही है। क्योंकि प्रत्यक्षादि के विषय घटादि व्यवहारकाल में ही अबाधित होते हैं। परमार्थतः ब्रह्मातिरिक्त सब वस्तुएँ बाधित होती हैं, वे अत्यन्त अबाध्य नहीं हैं। अत्यन्त अबाध्य तो केवल भगवान् ही हैं। अतएव तात्त्विक प्रामाण्य ब्रह्मबोधक वेद का ही है। अन्य प्रमाणों का अतात्त्विक सांव्यावहारिक ही प्रामाण्य है।

प्रत्यक्ष प्रमाण ज्येष्ठ प्रमाण ही आगम और अनुमान से प्रथम ही प्राणियों के व्यवहार में उपयुक्त होता है। परन्तु यह ज्येष्ठत्व बाध्यता का हेतु है अबाध्यता का नहीं है। अतएव शुक्तिका में रजतज्ञान यद्यपि ज्येष्ठ है तथापि पश्चाद्भावी कनीयान् शुक्ति ज्ञान से बाधित हो जाता है।

प्रामाण्यवाद का परिचय न होने से ही ऐसी बातें कही जा सकती हैं। आँखों की तो बात ही क्या? वर्णाश्रमानुसारी धर्मों एवं उपास्य स्वरूपों तथा शुद्ध ब्रह्म का प्रबोध तो वेद से अतिरिक्त प्रमाणों से हो ही नहीं सकता है। वेदोपनिषद् शास्त्राचार्योपदेश से संस्कृत निर्मल मन या एकाग्रमनःसहकृत उपनिषद्-महावाक्य ही ब्रह्मसाक्षात्कार के साधन हैं, आँख नहीं।

सगुण साकार ब्रह्म का साक्षात्कार भी भगवच्चरणपङ्कज में समर्पण बुद्धि से अनुष्ठित स्वधर्मों से प्रसन्न हुए भगवान् के द्वारा दत्त दिव्य दृष्टि से ही सम्भव होता है सामान्य चक्षुओं से नहीं। आश्चर्य तो यह है एक रामायण वक्ता वेदशास्त्र को प्रमाण न मानकर कबीर को मानते हैं।

यह कहना भी असङ्गत है कि "जो ऋषि ब्रह्म का साक्षात्कार कर चुके हैं। उन मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने जो वाक्य कहे हैं वे प्रामाणिक हैं।"

मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के वाक्य नहीं, किन्तु वे मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद ही प्रमाण हैं जिनका ऋषि लोग दर्शन करते हैं। ऋषियों के वे ही वाक्य प्रमाण हैं जो उन मन्त्रों और ब्राह्मणों के अविरुद्ध हैं। उनके विरुद्ध ऋषि वचन भी प्रमाण नहीं हो सकते।

"इस तर्क को सर्वथा अस्वीकार नहीं किया जा सकता। फिर भी शास्त्रों की प्रामाणिकता को असंदिग्ध बनाने के लिए यह आवश्यक है कि लेखी को देखी के रूप में परिणत किया जाय।" यह कथन भी असङ्गत ही है,

क्योंकि यह तर्क नहीं है । तर्क कोई प्रमाण नहीं होता । तर्क तो केवल व्याप्तिग्रह का सहायकमात्र होता है ।

किसी भी अंश में भी वेदप्रामाण्य को अस्वीकार करना नास्तिकता है । मनु के अनुसार वेद-निन्दक नास्तिक है—"नास्तिको वेदनिन्दकः ।" (मनु० २।११)

"जो कोइ दूषहिं श्रुति करि तरका । परहिं ते कोटि कल्पभरि नरका ॥" (रा० मा० ७।९९।२)

शास्त्र का प्रामाण्य सापेक्ष नहीं होता । सभी प्रमाणों का प्रामाण्य स्वतः होता है, परतः नहीं । यदि परतः प्रमाण कहेंगे तो प्रथम प्रमाण की प्रमाणता के लिए दूसरे प्रमाण की आवश्यकता होगी और दूसरे प्रमाण के प्रामाण्य के लिए तीसरा प्रमाण ढूँढना पड़ेगा । इसी तरह चोथे, पाँचवें, छठे आदि प्रमाणों की अपेक्षा होने से अनवस्था-प्रसङ्ग होगा ।

यदि किसी अन्तिम प्रमाण को स्वतः प्रमाण मानना ही है तो प्रथम प्रमाण को ही स्वतः प्रमाण क्यों न माना जाय ? अतः विषयबाध एवं करणदोष का ज्ञान होने से अप्रामाण्य का निर्णय होता है । अतः अप्रामाण्य परतः होता है । प्रमाण का प्रामाण्य तो स्वतः ही होता है । अर्थक्रियाकारित्व या प्रमाणान्तरसंवाद के कारण ससंदिग्धता की निवृत्ति परतः प्रामाण्यवाद में होती है, स्वतः प्रामाण्यवाद में नहीं ।

यह भी कहना गलत है कि "योगी ग्रन्थों के आधार पर नहीं, किन्तु अनुभूति के आधार पर स्वीकार करता है", क्योंकि बुद्ध और महावीर भी योगी थे । उन्होंने ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं की । अतः योग भी स्वतन्त्ररूप से ईश्वरसाक्षात्कार का हेतु नहीं है । किन्तु जैसा पूर्व में कहा गया है । वेदान्तादिसहकृत योगयुक्त मन या योगयुक्तमनःसापेक्ष वेदवेदान्त ही ब्रह्म-साक्षात्कार का हेतु है ।

"शब्दप्रमाण परोक्षज्ञान का ही जनक होता है", यह कहना भी गलत है, क्योंकि शब्द का विषय परोक्ष है तो वहाँ परोक्ष ही ज्ञान होता है जैसे धर्म, अपूर्व, अदृष्ट तथा वैदिक क्रियाओं का उनके फलों के साथ कार्यकारणभाव का ज्ञान परोक्ष रहता है । परन्तु ब्रह्मात्मा का ज्ञान वेदान्त शब्दों से उत्पन्न होने पर भी वह ज्ञान अपरोक्ष होता है परोक्ष नहीं, क्योंकि उसका विषय ब्रह्म अपरोक्ष ही है ।

दशमस्त्वमसि इस वाक्य से जनित 'दशमोऽहमस्मि' यह ज्ञान अपरोक्ष ज्ञान ही होता है । सुख के वर्तमान होने पर 'त्वं सुखी' इस वाक्य से जन्य 'अहं सुखी' इत्याकरक ज्ञान अपरोक्ष ज्ञान ही होता है ।

उपनिषदों के अनुसार साक्षात् अपरोक्ष व्यवधानशून्य प्रत्यक्ष ब्रह्म ही होता है। घटादि तो चक्षु एवं तज्जन्य अन्तःकरणवृत्ति के द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं । परन्तु बोधरूप ब्रह्म तो बोधरूप होने से वृत्ति-व्यवधान के बिना ही अपरोक्ष है ।

कहा जाता है कि "ईश्वर को देखने के लिए जिस दृष्टि की अपेक्षा है तुलसी की भाषा में उसका नाम है—श्रद्धा और विश्वास ।" परन्तु यह अत्यन्त असङ्गत है, कारण प्रमा चाहे परोक्ष हो चाहे अपरोक्ष हो उसका कारण प्रमाण ही होता है । श्रद्धा और विश्वास स्वयं प्रमाण नहीं हैं । प्रमा-करण ही प्रमाण है । तर्क भी प्रमाण नहीं है । इसी लिए तो गुरु और वेदान्तवाक्यों में विश्वास का नाम श्रद्धा है । श्रद् विश्वासं दधातीति श्रद्धा । कई बार असम्भावना आदि दोषों के कारण निर्दोष प्रमाण से उत्पन्न प्रमाज्ञान भी निरर्थक हो जाता है ।

भर्च्छुनाम के व्यक्ति के सम्बन्ध में यह धारणा दृढ़ बन गयी थी कि वह मर कर प्रेत हो गया है । इसी के कारण उसके मित्र राजा को अपने निर्दोष चक्षु से यह भर्च्छु है ऐसा ज्ञान होने पर भी उसी विपरीत भावना के कारण उसको अपने आँखों पर भी विश्वास नहीं हुआ और वह उसे प्रेत समझकर भाग चला । अतः परीक्षित प्रामाण्य-वाले प्रमाणों से किसी वस्तु का ज्ञान होने पर भी अविश्वास और अश्रद्धा की बात उठ सकती है । अतः निर्दोष प्रमाण

से निश्चित वस्तुनिश्चय को अडिग रखना संशय, विपर्यय आदि से उपप्लुत न होने देना विश्वास और श्रद्धा का ही काम है।

प्रामाणिक वस्तु में दृढ़ आस्था दृढ़ अस्तित्वबुद्धि विश्वास है। वही विश्वास जब स्नेह से द्रवीभूत प्रीतियुक्त बुद्धि में उद्भूत होता है तब श्रद्धापद से व्यपदेश्य होने लगता है। अतएव धर्म और ब्रह्म के सम्बन्ध में श्रद्धा एवं विश्वास परम महत्त्वपूर्ण प्राणतुल्य हैं। उनके बिना सब प्रमाण भी व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिए उन्हें भवानी और शङ्कर के तुल्य कहा गया है।

योगभाष्यकार का कहना है कि "**श्रद्धा जननीव योगिनं पाति**" जैसे जननी पुत्र की रक्षा करती है वैसे ही श्रद्धा उत्साहशक्ति योगी की रक्षा करती है। "पार्वती का जन्म हुआ है। परन्तु शिव अजन्मा हैं" यह कहना असङ्गत है। क्योंकि स्वरूप से दोनों एक ही अनादि अनन्त परमात्मा हैं। अवतार की दृष्टि से जैसे भगवती के अवतार होते हैं वैसे ही शिव के भी अवतार होते हैं। भगवान् शिव भी ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं। वैसे ही जैसे राम दशरथ से उत्पन्न हुए। जैसे सीता उत्पन्न होती हैं वैसे ही सती और उमा का भी अवतार ही होता है। अतएव यह कहना भी सङ्गत नहीं है कि "श्रद्धा का जन्म होता है विश्वास का जन्म नहीं होता है।" क्योंकि आस्तिकों के वातावरण में रहने से वेदादिशास्त्रों के संस्कार से ही विश्वास और श्रद्धा दोनों ही उत्पन्न होनेवाली चीज हैं। बुद्धि भी उत्पन्न होनेवाली चीज है तो फिर उसका कोई भी धर्म अनुत्पन्न कैसे कहा जा सकता है? हां, परम्पराप्राप्त आस्तिकता के संस्कार के समान विश्वास एवं श्रद्धा के संस्कार भी परम्पराप्राप्त हो सकते हैं।

तर्क

केवल शास्त्रोक्त जटिल अर्थों को बुद्धयारूढ़ करने के लिए ही तर्क का उपयोग मनन के रूप में किया जाता है। 'श्रोतव्यः' के पश्चात् 'मन्तव्यः' की स्थिति आती है। मनन ही तर्क है। परन्तु उच्छृङ्खल तर्क का आदर न कर शास्त्रसम्मत तर्कों का उपयोग करना चाहिये। अतएव यह कहना अनुचित है कि "तर्क व्यक्ति के अहं को तुष्ट करने का ही एक साधन है। मनन, युक्ति, उपपत्ति शास्त्रसिद्ध वस्तु को बुद्धयारूढ़ करने का श्रुत्युक्त उपाय है अहङ्कार की तुष्टि का उपाय नहीं।" उदयनाचार्य्य के अनुसार न्यायचर्चा या तर्क श्रवण के अनन्तर आनेवाली मननरूप उपासना ही है—"न्यायचर्चेयमीशस्य मननव्यपदेशभाक्। उपासनैव क्रियते श्रवणानन्तरागता।" (न्यायकुसुमाञ्जलि)।

बुद्धि

"बुद्धि प्रत्येक वस्तु को कार्यकारणभाव के आधारपर स्वीकार करती है। किन्तु हृदय की स्वीकृति के पीछे कोई तर्क नहीं होता।" यह कहना असङ्गत है, क्योंकि हृदयपद से हृदयस्थ बुद्धि ही कही जाती है। हृदयपद का वाच्यार्थपुण्डरीक के आकार का मांसपिण्ड ही है। 'मञ्चाः क्रोशन्ति' के समान गौण वृत्ति से ही 'हृदयेनाभिजानाति' आदि प्रयोग होते हैं। वस्तुतः मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार ये चारों ही अन्तःकरण हैं। ज्ञान-साधनरूप में अन्तः-करण, मन, बुद्धि या चित्त ही प्रसिद्ध हैं। स्वस्थ श्रद्धालु बुद्धि ही कभी कभी हृदयशब्द से कही जाती है।

श्रद्धा

"श्रद्धा पूर्वजन्म में दक्षपुत्री है। दक्ष चतुर हैं। उन्हें अपनी योग्यता एवं बुद्धिमत्ता पर गर्व था। सती जिज्ञासा हैं। बुद्धिमान् व्यक्ति में जिज्ञासा का पैदा होना स्वाभाविक है। परन्तु इस जिज्ञासा का सदुपयोग क्या है? लोकपितामह ब्रह्मा ने दक्ष को आदेश दिया। अपनी पुत्री शिव को अर्पित कर दो। जिज्ञासा की पूर्ति तो है—संशय का विनाश और विश्वास की उपलब्धि इत्यादि", परन्तु यह सब अटकलपच्चू भिड़न्त भिड़ानामात्र है।

वस्तुतः दक्षता गुण है दोष नहीं। अतएव गीता में भगवान् ने उच्च कोटि के ज्ञानी के लक्षणों में 'अनपेक्षः शुचिर्दक्षः' (गीता १२।१६) दक्ष होना भी कहा है। भगवान् के अनेक नामों में दक्ष भी भगवान् का एक नाम है—'उग्रः संवत्सरो दक्षः' (विष्णुसहस्रनाम)।

गर्व एवं अभिमान तो अविवेक का ही परिणाम है। अविवेक से कोई ज्ञानी होने का या कोई दक्ष होने का घमण्ड कर सकता है। कोई भक्त होने का भी तो अभिमान करता है। परन्तु क्या यह भक्ति का दोष है।

यह कहा जा चुका कि सती तथा उमा भगवान् शिव की स्वरूपभूता शक्ति हैं। उनके माया या मोह के वर्णन का तात्पर्य राम की महिमा बतलाने में है। भगवान् विष्णु और ब्रह्मा शिवजी के दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग का ओर-छोर देखने के लिए गये। परन्तु पार न पाकर लौट आये। इस वर्णन का तात्पर्य विष्णु के अपकर्ष-वर्णन में नहीं है, किन्तु शिव की महिमा के वर्णन में है। वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये।

यह कहा जा चुका है कि श्रद्धा, विश्वास, जिज्ञासा आदि सब अन्तःकरण की उत्कृष्ट वृत्तियाँ हैं। आदरणीयता की दृष्टि से उन्हें भवानी तथा शङ्कर से सन्तुलित किया जाता है। इसी कारण सती का जिज्ञासु या संशयालु होना नहीं कहा जा सकता है।

लोककल्याणार्थ तन्त्रों और आगमों में शिव-पार्वती-संवाद के रूप में बहुत से प्रश्नों एवं उत्तरों का वर्णन है। श्रीकृष्ण भगवान् नारदजी से अनेक प्रश्न राजनीतिक व्यवहार के सम्बन्ध में करते हैं। श्रीनारदजी उनका समाधान करते हैं। यह सब उनकी लीला ही है। उनको कोई संशय एवं जिज्ञासा नहीं है। तभी तो श्रीसीताजी पार्वती की स्तुति में उन्हें भव (विश्व) के भव, विभव और पराभव का कारण बतलाती हुई उन्हें स्ववशविहारिणी कहती हैं—

> "भव भव विभव पराभवकारिणि।
> बिश्वबिमोहिनि स्ववशबिहारिणि ॥" (रा० मा० १।१३४।४)

अतएव सती के सम्बन्ध में निम्नोक्त दुष्कल्पनाएँ करना बुद्धि का दुरुपयोग ही है।

"जिज्ञासा और विश्वास का परिणय लोकमङ्गल के लिए आवश्यक है। यही ब्रह्मा का दृष्टिकोण था। किन्तु विवाह का परिणाम यह नहीं हुआ, जिसकी कल्पना ब्रह्मा के मन में थी। यद्यपि सती ने समग्र समर्पण की भावना से ही शिव का वरण किया था। किन्तु वह अन्तश्चेतना की गहराइयों में छिपे हुए पिता के संस्कारों से स्वयं को मुक्त न कर पायी थीं। जबतक जिज्ञासा अहंशून्य नहीं होगी तबतक विश्वास के लिए अर्पित होना सम्भव भी नहीं है।" क्योंकि दक्ष होना कथमपि दोष नहीं है। दक्ष भगवान् विष्णु के परमभक्त थे। क्रियादक्ष तो थे ही। किन्तु वह शिवद्रोही थे। यही एक उनमें मुख्य दोष था। यह संस्कार सती में बिल्कुल ही नहीं था। तभी तो उन्होंने शिवद्रोही दक्ष से सम्भूत अपने शरीर को रखना अपने लिए लज्जाजनक माना था।

सतीजी का राम के सम्बन्ध में किया हुआ संशय ही पार्वती-जन्म में रामसम्बन्धी जिज्ञासाओं का मूल बना था। जिज्ञासा का बीज ही संशय होता है। पूर्वोत्तरमीमांसाओं में प्रत्येक अधिकरण में विषय, विशय (संशय), पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष तथा पूर्वपक्ष-निरसन-पूर्वक सिद्धान्त-व्यवस्थापन होता है। व्यावहारिक दृष्टि से शिवजी ने सती के उस मोह का कारण भगवान् की माया को ही माना था—

> "बहुरि हरि मायहि सिर नावा।
> प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा ॥" (रा० मा० १।५५।३)

अन्यथा शिव के कहने पर भी संशय क्यों न मिटता। माया का भी कुछ दोष नहीं था। इसी प्रकार

माया भगवान् के सम्बन्ध में संशय जिज्ञासा के द्वारा **रामायण** का विस्तृत वर्णन कराना चाहती थी। सती स्वयं भी मायामोहित होने का नाटक कर के श्रीराम की अत्यन्त महिमा का प्रख्यापन कराना चाहती थीं।

तर्क तथा प्रतितर्क से वैदिक सिद्धान्त का पूर्वोत्तरमीमांसाओं से परीक्षण किया जाता है। मीमांसा शब्द का पूजित विचार ही अर्थ है। इसी तरह बुद्धि को मस्तिष्कनिवासिनी कहना भी निर्मूल है। शास्त्रानुसार बुद्धि का निवासस्थान हृदय ही होता है। मस्तक में ही श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना इन चार ज्ञानेन्द्रियों का निवास होता है। मस्तिष्क में बुद्धिवृत्तिरूप ज्ञानतन्तुओं का बाहुल्य होने से भ्रान्तिवश ही कई लोग बुद्धि को मस्तिष्क-निवासिनी कहते हैं, अतएव दक्षपुत्री से चतुराई और शैलपुत्री होने से जड़ता की कल्पना भी निर्मूल है।

यह भी कहना सङ्गत नहीं है कि "जो स्वयं को काव्य के प्राकट्य का माध्यममात्र स्वीकार करते हैं, उनके हृदयप्राङ्गण में ईश्वर की प्रेरणा से सरस्वती नृत्य करती है।

"जेहि पर कृपा करहिं जन जानी। कबि उर अजिर नचावहिं बानी॥" (रा० मा० १।१०४।३)

ऐसे काव्य के अमित अर्थ की सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। रचयिता के उद्देश्य की सीमाओं का पता लगाना अनावश्यक श्रममात्र है।

वाटिका में खिले हुए गुलाब का क्या अर्थ है ? कवि उसमें मुस्कुराहट देखता है। माली को वाटिका के शृङ्गार के रूप में दिखायी देता है। कामिनी को शृंगार का प्रसाधन प्रतीत होता है। एक चिकित्सक को उसमें औषधि का तत्त्व दिखायी देता है। क्या कोई देखने के साथ कह सकता है कि रचयिता का इसमें मुख्य उद्देश्य कौन था ? रचयिता के असीम उद्देश्यों को किसी सीमा में बाँध पाना सम्भव नहीं है।

ईश्वर-प्रेरणा से निर्मित काव्य के विषय में भी यही बात है कि जब काव्य का प्रतिपाद्य भी ब्रह्म हो तब उसकी सीमाएँ खींच पाना और भी असम्भव है—

'हरि अनन्त हरिकथा अनन्ता। कहहिं सुनहिं बहुविधि सब सन्ता॥" (रा० मा० १।१३९।३)

बहुविधि कहने सुनने की स्वतन्त्रता भी रामचरित में इसी लिए प्राप्त है कि शब्द यहाँ केवल सरोवर के रूप में नहीं है जिसके अर्थ जल की कोई सीमा हो। सीमित सरोवर के जल का सूख जाना अवश्यम्भावी है, किन्तु शब्द जहाँ नदी की मूल धारा के समान हैं वहाँ शब्द मूलस्रोत की भाँति नूतन अर्थ का जल प्रवाहित करता रहता है। शाश्वत काव्य का स्वरूप भी यही है।" (मा० मु० १४)

उपर्युक्त बातें अविचारित रमणीय ही हैं, क्योंकि यदि शब्दों का कोई निश्चित अर्थ न होगा तब तो भिन्न-भिन्न वक्ता अपनी अपनी बुद्धि और रुचि के अनुसार ही उनका नया नया मनमानी अर्थ करते जायँगे। फिर तो तर्क और आगम में कोई भेद ही न रह जायगा। जैसे एक तार्किक अपनी बुद्धि से दूसरे तर्क द्वारा पहले तर्क को काट देता है। वैसे ही बुद्धिमान् लोग अपनी अपनी बुद्धि के बल पर आविर्भूत नये अर्थ से पुराने अर्थ को काट देंगे। फिर किसी भी वचन का निश्चित अर्थ ही न हो सकेगा। यह शब्द के लिए भूषण नहीं, किन्तु दूषण ही है। गुलाब का फूल शब्द नहीं है वह तो अर्थ ही है। उसका कोई अर्थ नहीं। उसके प्रयोजन तो अनेक हो ही सकते हैं। वह वाटिका का शृंगार भी है, कलिका की मुस्कुराहट भी है, कामिनी का शृंगार भी है एवं भक्त के पूजा का उपकरण भी है। चिकित्सक के लिए वह औषधि भी हो सकता है। परन्तु यही बात शब्दों और वाक्यों के लिए नहीं।

'गतोऽस्तमर्कः' इन शब्दों का अर्थ तो यही है कि सूर्य अस्ताचल को गये। पर अपनी अपनी परिस्थिति के अनुसार उससे चोर चोरी का समय समझे, ब्राह्मण सन्ध्या करने का समय समझे और अभिसारिका अभिसार की बात सोचे. परन्त यह शब्दार्थ नहीं है।

अनादि अपौरुषेय वेद ईश्वर की प्रेरणा से किसी कवि की वाणी नहीं हैं, किन्तु साक्षात् ईश्वर की वाणी हैं। यह वेदप्रमाण से सिद्ध है। परन्तु वेद के सम्बन्ध में यह विचार उठता है कि क्या वैदिक शब्द और वैदिक अर्थ अत्यन्त अलौकिक हैं या लौकिक हैं ? यदि प्रथम पक्ष माना जायगा तब तो उनके अर्थज्ञान का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि लौकिक मनुष्यों को तो लौकिक शब्दों और लौकिक अर्थों के साथ ही सङ्गतिग्रह होता है। अलौकिक शब्दों और अलौकिक अर्थों का उन्हें ज्ञान ही नहीं, फिर शक्तिग्रह कैसे होगा ? शक्तिग्रह के बिना वाक्यार्थबोध कैसे होगा ?

बौद्ध आदि कहते हैं कि शब्द और अर्थ का कोई सम्बन्ध निश्चित नहीं होता। उसका यथेष्ट विनियोग किया जा सकता है। इसी लिए वे कहते हैं कि **'अग्निहोत्रं जुहुयात्'** इस वाक्य का **'श्वमांसं भक्षयेत्'** ऐसा अर्थ क्यों न हो ? सिद्धान्ततः इसका उत्तर यही है कि लौकिक शब्द ही वैदिक शब्द होते हैं। अतएव अलग से शक्तिग्रह की भी अपेक्षा नहीं होती।

पद तथा पदार्थ लौकिक एवं वैदिक समान ही होते हैं। अपूर्व स्वर्ग तथा उनका यज्ञयागादि के साथ कार्य-कारणभाव अलौकिक वाक्यार्थ है पदार्थमात्र नहीं है। **"यत्परः शब्दः स शब्दार्थः"** शब्दों का जिसमें तात्पर्य होता है वही वास्तविक शब्दार्थ होता है।

तात्पर्यनिर्णय के लिए उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति का विचार करना पड़ता है। इस दृष्टि से ही कर्म, उपासना का अनुष्ठान वेदार्थनिर्णय पर ही निर्भर है। यदि निश्चित वेदार्थ निर्धारित न होगा तो कर्मोपासना का अनुष्ठान कैसे होगा ? ब्रह्मात्म-साक्षात्कार भी निश्चित शब्दार्थ के निर्धारण के बिना असम्भव है। अतः किसी काव्य का अमित अर्थ है, यह कहना असम्भव है। हाँ अमित का अर्थ ब्रह्म है। अतएव श्रीभगवान् कहते हैं कि--**'वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः'** सब वेदों से एकमात्र मैं ही वेद्य हूँ।

भगवान् अनन्त हैं, उनके जन्म अनन्त हैं, चरित्र अनन्त हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि कोई मन-मानी कल्पना करने में स्वतन्त्र है। चरित्र का भी मन्त्र, ब्राह्मण और उपनिषद् रूप वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि इतिहासों, संहिताओं, तन्त्रों एवं आगमों के आधार पर ही निर्धारण होता है। स्वतन्त्र कल्पनाएँ कल्पना ही समझी जायँगी। अपौरुषेय वेद एवं तदाश्रित आर्ष सद्ग्रन्थ ही धर्म और ब्रह्म में प्रमाण हैं। अन्य सन्त-महात्माओं के वचन भी उन्हीं पर निर्भर हैं।

संस्कृत पर मिथ्या आक्षेप

"वर्णाश्रमधर्म में ब्राह्मण ही वैश्य थे। संस्कृत भाषा उनके द्वारा प्रयुक्त थी।" (मानसमुक्तावली पृ० ६३)

संस्कृत भाषा या संस्कृत शब्द अनादि हैं। अन्य शब्द भी इसके अपभ्रंश एवं प्रवाह रूप से अनादि ही होते हैं। वेदाङ्ग व्याकरण के द्वारा अपभ्रष्ट असाधु शब्दों से साधु संस्कृत शब्दों का पृथक्करण ही उसका संस्कार है। इसी लिए वह संस्कृत कहलाती है। जैसे छालनी गालनी या चालनी ग्राह्य वस्तुओं से अग्राह्य वस्तुओं को पृथक् कर देती है। वैसे ही प्रकृत में व्याकरण के सूत्रों द्वारा साधु-असाधु शब्दों का पृथक्करण होता है।

वेद अनादि अपौरुषेय सबके कल्याणकारी हैं। वे सबके हैं। संस्कृत ब्राह्मणों की ही नहीं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों की भाषा है। इतना ही क्यों वह प्राणीमात्र की धर्मभाषा है। शूद्र बन्धुओं का उनके अधिकारानुसार संस्कृत के नमोऽन्त मन्त्रों में अधिकार है। वेदादिशास्त्रों के उपदेशों को ही विभिन्न भाषाओं में सन्त-सज्जन सबके कल्याणार्थ दुहराते हैं।

अरे यह तो पाश्चात्यों का प्रचार है कि संस्कृत एक वर्ग विशेष की भाषा है। वर्णाश्रमधर्म तो सबका ही धर्म है। तुलसी इसी के तो पोषक हैं। संस्कृत ग्रन्थों में स्वकीयत्व अपनात्व की भावना मिट जाना यह पाश्चात्य प्रचार का प्रभाव है।

कहा जाता है कि "संस्कृत के ग्रन्थों का आनन्द लेने के लिए विद्वान् की आवश्यकता होती है। विद्वान् व्याख्याता और ग्रन्थ उनकी परिधि से इतने दूर थे कि उन्हें स्पर्श करने का साहस भी नहीं सकते थे। यह स्थिति कुछ लोगों को अभीष्ट हो सकती थी। क्योंकि उसमें उनका व्यावहारिक स्वार्थ भी जुड़ गया था। पर लोक-मङ्गल की दृष्टि से यह स्थिति एक ऐसी अभिशाप थी जिसके द्वारा समाज धर्म से चला गया।"

यह सब द्वेषपूर्ण प्रचार है। यह कहने और लिखनेवालों का भी स्वार्थ इस प्रचार से जुड़ा है। आखिर **तुलसीरामायण** के बन जाने पर भी जनता को कथा चाहिये और **तुलसीरामायण** के भी सहस्रों वक्ता कथा कहने लगे और उसी से लाखों रुपये कमाने लगे। हाँ, जहाँ कथा के नाम पर मूल वेद, **वाल्मीकिरामायण**, **महाभारत**, **भागवत** आदि की चर्चा विद्वानों द्वारा चलती थी वह अब बन्द हो गयी। अब अधिकांश संस्कृतानभिज्ञ वक्ताओं तथा सिद्धान्त से अनभिज्ञ वक्ताओं द्वारा भाषाग्रन्थों की कथा चल पड़ी।

उच्च वर्गों के अहङ्कार और दुर्व्यवहार से जिस प्रतिक्रिया का उदय हुआ उससे ब्राह्मण, संस्कृत और वेद तीनों ही के प्रति तिरस्कार की भावना जैसे कबीर आदिकों में आयी थी वही आज मानस-वक्ताओं में भी आ रही है, यह आश्चर्य है।

"वेद कन्तेव की गम्म नाही तहाँ।
कहै कबीर कोई रमै सूरा॥"

कबीर की ऐसी उक्तियाँ कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित रह गयी हैं। परन्तु तुलसी वेद-प्रामाण्यवादी हैं। उनका नास्तिकता से समन्वय नही हो सकता था।

"तुलसी के इष्ट राम केवल तुलसी के ही इष्ट नहीं थे, किन्तु वेदादि शास्त्रों के सर्वस्व थे। राम ऋषियों, मुनियों की पूजा करते थे। किन्तु प्राचीन परम्परा के प्रति उनका यह समादर केवल कोल, भील और बन्दरों से उनकी मित्रता के बीच बाधक नही बना।" (मा० मु० ६४)

यह तुलसी की कोई नयी बात नहीं है। तुलसी ने वेदशास्त्र, पुराण, रामायण और भारत के विरुद्ध कुछ कहा ही नहीं। फिर इसमें प्राचीन और अर्वाचीन समन्वय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। यह तो सुधारक रामायणियों के मस्तिष्क का फितूरमात्र है।

यह कहना भी कुटिलता ही है कि "भले ही महर्षि वाल्मीकि की देवभाषा में प्रयुक्त वाणी भगवान् को प्रिय लगती है। पर केवट के ग्राम्य बोली में भी राम उतना ही आनन्द लेते थे। एक ओर यदि वे वाल्मीकि की वाणी सुनकर मुस्कराते हैं—

"मुनि मुनि वचन प्रेमरस साने।
सकुचि राम मन महँ मुस्काने॥" (रा० मा० २।१११।१)

तो दूसरी ओर केवट की वाणी उनमें उन्मुक्त आनन्द भर देती है—

"सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे राजिवनैन चितइ जानकी लखन तन॥" (रा० मा० २।१००)

मुस्कराहट में आनन्द की मर्यादित अभिव्यक्ति है। इसी प्रकार देवभाषा में संस्कृत भी व्याकरण से अनुशासित है। बिहँसना आनन्द की उन्मुक्त अभिव्यक्ति है। यह तो केवट की व्याकरणमुक्त ग्राम्यभाषा के अनुरूप है।" (मा० मु० ६५)

यह केवल बुद्धि का दुरुयोग ही है, क्योंकि तुलसी के वाल्मीकि राम से जिस भाषा में बात कर रहे हैं

वह तो संस्कृत भाषा नहीं थी। वह तो तुलसी के मानस की ही भाषा थी, क्योंकि मानस के वाल्मीकि और राम के संवाद की चर्चा **वाल्मीकिरामायण** में है भी नहीं। फिर मन महँ मुस्काने के आधार पर भी व्याकरण से अनुशासित देवभाषा के अनुरूप राम के मर्यादित आनन्द की अभिव्यक्ति का क्या सम्बन्ध है? तुलसी तो ऐसे दाँव-पेंच की बात न कर सीधे कहते हैं—

"बेदबचन मुनिमन अगम ते प्रभु करुना अयन।
सुनत किरातन के बचन जिमि पितु बालक बयन॥" (रा० मा० २।१३५)

"जिमि बालक कह तोतरि बाता।
सुनत मुदित मन पितु अरु माता॥" (रा० मा० १।७।५)

माता-पिता अपने बच्चों को तोतरी बातों को प्रसन्न मन से सुनते हैं। विहँसते भी हैं। परन्तु किसी ऋषि-मुनि या गुरुजनों की बात तो गम्भीरता से ही सुनी जाती है। उसी तरह श्रीराम केवट, कोल, भिल्ल और किरातों के प्रेमलपेटे अटपटे वचनों को सुनकर विहँसते हैं। मुनियों की गम्भीर बातों को सुनकर मुस्कराते हैं। वहाँ खिलखिलाकर हँसना अनुचित भी है।

इतना ही क्यों संस्कृत के कवियों ने भी प्रेम की एक विचित्र अवस्था का वर्णन किया है। जिसमें भगवान् की अटपटी लीला का चित्रण है। पर इसमें संस्कृत एवं ग्राम्यभाषा के विषाक्त संघर्ष का लेश भी नहीं है—

"गोपालाजिरकर्दमे विहरसे विप्राध्वरे लज्जसे
ब्रूषे गोधनहुंकृतैः स्तुतिशतैः मौनं विधत्से सताम्।
दास्यं गोकुलपुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु
जाने कृष्ण तवाद्भुतं प्रियमहो भक्तेः परच्छन्दितम्॥"

भक्त कहता है कि हे गोपाल, आप गोमूत्र और गोमय के कर्दमयुक्त गोपालों के प्राङ्गण में तो स्वच्छन्द विहार करते हैं। परन्तु विप्रों के ज्योतिष्टोम, वाजपेय आदि अध्वरों में पधारने में लज्जित होते हैं। गायों एवं बछड़ों के हूंकारों से बोल पड़ते हैं, परन्तु सन्तों की सैकड़ों स्तुतियों के सुनने पर भी मौनभङ्ग नहीं करते हैं। अरे आप गोकुल-पुंश्चलियों का तो खुशी से दास्य अङ्गीकार करते हैं, परन्तु बड़े बड़े जितेन्द्रिय महामुनियों का स्वामित्व भी अङ्गीकार नहीं करते हैं यह क्या है? हे कृष्ण! हम आपके उस अद्भुत भक्तिपराधीनता को जानते हैं।

वस्तुतः यह सिद्धान्त सर्वसम्मत है कि देववाणी परमपवित्र पुण्यजनक है। वेदवाणी उससे भी पवित्र साक्षात् परमेश्वर की वाणी है। अगर भगवान् की महिमा भगवान् का यश वेद के अधिकारियों को वेदवाणी में प्राप्त हो तो बहुत ही श्रेष्ठ है। संस्कृत भाषा में मिले तब भी श्रेष्ठ है। परन्तु यदि वही वस्तु अन्य भाषा में मिले तो भी वह श्रेष्ठ ही है।

यदि संस्कृत भाषा में ईश्वर का खण्डन सुनने को मिले, परन्तु प्राकृत ग्राम्य भाषा में भगवान् की महिमा सुनने को मिले तो सहज ही में यहाँ विषय की महत्ता के सामने भाषा का प्रश्न गौण हो जाता है। परन्तु यदि वही उत्कृष्ट तत्त्व वैदिक भाषा में मिले और प्राप्त करनेवाला उसका अधिकारी भी हो तब तो उसका उत्कर्ष निर्विवाद है ही।

"मणि भाजन विष पारई पूरन अमिअ निहारु।
का छोड़िय का संग्रही देखु बिबेक बिचारु॥"

मणिपात्र में विष भरा हुआ हो और मिट्टी के पात्र में अमृत रखा हुआ हो तो विवेकी किसे ग्रहण करेगा एवं किसे छोड़ेगा? यह कहने की जरूरत नहीं है।

पर इससे **वाल्मीकिरामायण** और **मानस** की तुलना करना निरी अनभिज्ञता ही होगी। यदि उत्तम मणिपात्र में अमृत ही रखा हो तो उसे छोड़कर मृण्मय पात्र के अमृत को कौन ग्रहण करेगा? क्योंकि वहाँ भाषा और विषय दोनों का ही उत्कर्ष है। भाषा संस्कृत हो विषय निकृष्ट हो तो वहाँ जितना उत्कृष्ट भाषा से पुण्य होगा उससे अधिक निकृष्ट विषय के अनुसन्धान से पाप होगा। किन्तु जहाँ भाषा ग्राम्य भी हो, किन्तु विषय हो भगवान् का मङ्गलमय नाम, गुण, यश तथा स्वरूप तो वहाँ विषय के उत्कर्ष से भाषा के यत्किञ्चित् दोष भी निरस्त हो जायेंगे। इससे संस्कृत एवं ग्राम्य गिरा के उत्कर्षापकर्ष की कल्पना नहीं करनी चाहिये।

जब देवताओं और लोक के कल्याणार्थ देवाधिदेव भगवान् विष्णु नर के रूप में प्रकट होते हैं तो देवताओं का भी उनकी सहायता—सेवा के लिए वानर तथा भालू के रूप में आविर्भाव होता है। देवताओं का पद मनुष्यों से ऊँचा है। फिर भी परमब्रह्मपद वैकुण्ठपद उससे भी ऊँचा है। देवतापद का सुख सातिशय है, निरतिशय नहीं है। सुतराँ उत्कर्षापकर्ष के कारण वहाँ ईर्ष्या, द्वेष आदि दोषों की सत्ता रहती है। इसी लिए देवतापद से आगे बढ़ने की अपेक्षा होती है। देवता भी हिरण्यगर्भ के अंश हैं। हिरण्यगर्भ परमेश्वर का ही समष्टि सूक्ष्म शरीर विशिष्ट सोपाधिक रूप है। फलतः देवराज इन्द्र ब्रह्मविद्वरिष्ठ ज्ञानी भी होते हैं।

परमेश्वर की कथा, स्तुति आदि तो अपनी अपनी भाषा में अपनी अपनी शक्ति के अनुसार सदा ही सभी करते हैं। तामिल, तेलगू, गुजराती, मराठी, पञ्जाबी, काश्मीरी, बङ्गला, उड़िया, मैथिली, हिन्दी आदि भाषाओं में ही नहीं अनेक अन्य भाषाओं में अनेक कवियों ने प्रभु के गुणगणों का वर्णन किया है। परन्तु उन सबका आधार **वेद**, **रामायण**, **महाभारत**, **पुराण**, **तन्त्र**, **आगम** आदि ही हैं। अतः अपने मूलभूत वेदादि शास्त्रों से कोई अलग नहीं था।

इतना ही क्यों अरबी के डेढ़ हजार वर्ष पूर्व कुरान आदि के द्वारा, अपनी भावना के अनुसार इङ्गलिश भाषा में दो हजार वर्ष पूर्व तथा जेन्दावेस्ता द्वारा उससे भी पहले भक्तों ने ईश्वर का गुणगान किया ही है।

''कबीर की जीवनी के आधार पर कहा जाता है कि कबीर के मन में उस वर्णव्यवस्था के प्रति कैसे राग हो सकता था जो उनको एक सन्त के निकट पहुँचाने में बाधक बनी। साथ ही श्रीरामचरित्र का वह अंश भी उनके स्मृति में रहा ही होगा जिसमें शम्बूक नाम के शूद्र तपस्वी का इसलिये वध कर दिया गया कि वह वर्णाश्रमव्यवस्था का उल्लङ्घन करके तपस्या में संलग्न था।

कबीर ऐसी परिस्थिति में उन राम को कैसे स्वीकार कर सकते थे जो एक शूद्र को सत्कर्म करने का अधिकार भी देने को प्रस्तुत नहीं हैं। दूसरी ओर राम-नाम की साधना से उन्हें अमित लाभ हुआ था। उसे अस्वीकार कर पाना उनके लिए सम्भव न था। अतः रामनाम को स्वीकार करते हुए भी दशरथनन्दन राम को ईश्वर के रूप में स्वीकार न करना उनके लिए स्वाभाविक था।''

यह सब शास्त्रीय व्यवस्था न समझने का ही दुष्परिणाम है। शास्त्रोक्त वर्णाश्रमव्यवस्था किसी का भी अपमान करना नहीं सिखलाती। श्रीरन्तिदेव ने पुल्कस जैसे अतिशूद्रों का भी ससम्मान आतिथ्य किया था। आतिथ्यवेला में नाम और गोत्र के प्रश्न के बिना ही वैश्वानर बुद्धि से किसी भी अतिथि का सम्मान करना शास्त्र-सम्मत है। शिवनाम, रामनाम सबके ही लिए कल्याणकारी हैं, यही वेदादि शास्त्रों का निश्चित मत है। पुराण में सहस्रों उदाहरण भरे पड़े हैं। श्रीभागवत का अजामिलोपाख्यान उनमें ज्वलन्त प्रमाण है। अतः श्रीरामानन्दाचार्य के पास जाकर कबीर अपनी जिज्ञासा नहीं प्रकट कर सकते थे, ऐसा इतिहास मनगढ़न्त ही है।

महाभारत के अनुसार तो विदुर शूद्र थे। परन्तु भगवान् कृष्ण उनके अतिथि होते थे। धर्मव्याध के समीप धर्मतत्त्वज्ञान के लिए पतिव्रता के वचन से ब्रह्मचारी भी जाकर तत्त्वज्ञान प्राप्त करता है। फिर कबीर का रामानन्दाचार्य के समीप तक पहुँचना कठिन था, यह कहना असङ्गत ही है।

शास्त्रों के अनुसार निराकार निर्गुणोपासना भी विहित है। उससे भी दोष दूर होते हैं। एक निर्गुणोपासक के हृदय में प्रतिशोध की भावना सङ्गत नहीं है। गुरु की उपासना के विपरीत निराकारवादी कबीर की प्रवृत्ति धर्मयुक्त नहीं हो सकती। यदि निराकार राम सगुण साकार राम हो सकते हैं तो यह सत्य वस्तुस्थिति सिद्ध संत कबीर के मन में अवश्य आनी चाहिये थी। सिद्ध के मन में ऐसी प्रतिक्रिया हो जिससे वह सत्य से मुंह मोड़ ले, यह कैसी सङ्गति और कैसी सिद्धि है ?

वेदों की प्रामाणिकता स्वीकार न करने से ब्रह्मात्मसाक्षात्कार वैसे ही सम्भव नहीं, जैसे नेत्र के बिना रूपसाक्षात्कार असम्भव है।

"दुनिया ऐसी बावरी पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोइ ना पूजे जाकर पीसा खाय॥"

यह कबीर का कथन असङ्गत है, क्योंकि आस्तिक पत्थर नहीं पूजते। किन्तु वेद प्रमाण के अनुसार पाषाणमयी प्रतिमा में आवाहित परमेश्वर की ही पूजा करते हैं। फिर कबीर को तो इतना भी ज्ञान नहीं था कि हिन्दू चाकी ही नहीं अपितु कुम्हार के चाक को भी पूजते हैं।

श्रीराम ने शम्बूक को सत्कर्म करने का अनधिकारी कभी नहीं माना। राम मर्यादापुरुषोत्तम थे। वर्णाश्रम-मर्यादा का उल्लङ्घन करने के कारण ही श्रीराम रावण जैसे ब्राह्मण को भी प्राणदण्ड देने को बाध्य हुए थे। फिर यदि वे वर्णाश्रममर्यादोल्लङ्घी किसी को दण्ड दें तो उनका क्या दोष है ?

शास्त्रानुसार ब्राह्मण भले अखण्ड भूमण्ड का स्वामी हो, राजा हो, परन्तु उसे राजसूय यज्ञ का अधिकार नहीं है, क्योंकि क्षत्रिय जाति का राजा ही राजसूय यज्ञ कर सकता है, अन्य नहीं। इस सत्य निष्पक्ष स्थिति में कबीर अगर दशरथनन्दन के रूप में प्रकट राम को ईश्वर नहीं मानते तो क्या प्रतिक्रियावादी या दुराग्रही नहीं कहे जयँगे ?

श्रीराम ने तो वर्णाश्रमधर्म का पालन और उपदेश करते हुए भी शबरी, गीध, कोल, भिल्ल, किरात, वानरों और भालुओं से मैत्री कर उनका परम कल्याण किया था। फिर, उन्हें किसी प्रकार भी अनीश्वर कैसे कहा जा सकता है ?

"एक दारुगत देखिय एकू। पावक युग सम ब्रह्मबिबेकू॥" (रा० मा० १।२२।२)

दारुगत अग्नि निराकार है। पर वही दाहकत्व और प्रकाशकत्व विशिष्ट होकर साकार भी हो जाता है।

"जो गुणरहित सगुन सो कैसे। जिमि हिम उपल बिलग नहिं जैसे॥"(रा० मा० १।११५।२)

जब दशरथनन्दन रघुवर ईश्वर हो सकते हैं तब राम को अनैतिहासिक भी कैसे कहा जा सकता है ? यदि कोई रघुवंश नहीं हो तो व्यापक नित्य राम को दशरथनन्दन कैसे कहा जा सकता था ?

"बन्दहुँ राम नाम रघुवर को" (रा० मा० १।१८।१)

"महर्षि वाल्मीकि राम के समकालीन थे। यदि उन्हें उनमें पूर्ण मानवता का साक्षात्कार हुआ था तो वह स्वाभाविक ही था। किन्तु तुलसी ने राम को देखा तब उन्हें वे केवल मानव के रूप में कैसे दिख सकते थे। काल की इस विशाल परिधि में स्वयं अपने को अभिव्यक्त करनेवाला ईश्वर को छोड़कर अन्य कोई नहीं हो सकता था।"

परन्तु यह भी असङ्गत है, क्योंकि वाल्मीकि श्रीराम को माधुर्यभाव की दृष्टि से, राजकुमार की दृष्टि से वर्णन करते हुए भी परमेश्वर ही मानते हैं।

"स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।
जज्ञे विष्णुर्महातेजा आदिकर्ता स्वयंप्रभुः॥"

"भवान्नारायणो देवः" (वा० रा० यु० का०)

तुलसीदास उक्त तर्क के आधार पर नहीं, किन्तु वेद और पुराण, महाभारत के आधार पर राम को परमेश्वर मानते थे। क्योंकि काल की इस विशाल परिधि के पार तो कई सिद्ध भी अपने को अभिव्यक्त कर सकते थे।

योगभाष्य के अनुसार जैगीषव्य दस महाकल्पों के अनन्तर भी अपने को व्यक्त कर सकते थे। "दशसु महाकल्पेषु विपरिवर्तमानेन मया यत्किञ्चिदनुभूतं तद् दुःखमेव।"

तभी तो तुलसीदास श्रीराम का कोशलपाल के रूप में ही स्मरण करते हैं।

"तुलसी तो को कृपालु जो कियो कोशलपाल।
चित्रकूट को चरित्र चेत चित करि सो॥"

यह कहना भी गलत है कि "गोस्वामी के मन में इतिहास के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। उनके लिए राम पुराण या त्रेतायुग के बीते हुए पात्र नहीं हैं। वह तो उनके शाश्वत विद्यमान रहनेवाले राम हैं।" क्योंकि उनकी दृष्टि में वाल्मीकि के अनुसार राम केवल त्रेतायुग के ही नहीं हैं। वे विष्णु, नारायण या वेदवेद्य परमात्मा ही थे। अतएव शाश्वत हैं। तभी तो राम को रघुवंशमणि एवं कोशलपाल कृपालु कहते हैं। अतः त्रेता युग में चक्रवर्ती दशरथनन्दन के रूप में प्रकट राम ही तुलसी के शाश्वत राम भी हैं।

वस्तुतः तुलसी के निर्मल पवित्र भाव पर जो उन्हें वर्णाश्रमधर्म पर छींटाकसी करनेवाला बताना चाहते हैं ऐसे वक्ताओं से जनता को ईश्वर ही बचाये।

वे कहते हैं कि "राघवेन्द्र केवट के उस दैन्य को मिटा देना चाहते थे, जिसे समाज ने उसपर लाद दिया था। वह धन की दृष्टि से ही नहीं, हर तरह से हीन कर दिया गया था। वह अस्पृश्य था।

"जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा।"

वह किसी राजा के समक्ष मुख खोलने की कल्पना भी नहीं कर सकता था।"

यह वही सुधारवाद है जिसका भूत आधुनिक लोगों पर सवार होता है। कथावाचक सज्जन भी उसके अपवाद नहीं हैं। परन्तु उनके अनुसार राम एवं तुलसी को अवश्य ही नयी आचारसंहिता प्रचलित करनी चाहिये थी। कम से कम "जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा" का उत्तर अवश्य देना चाहिये था। वक्ता कह सकता है कि भगवान् ने उसे गले लगाकर ही इसका उत्तर दे दिया था। परन्तु वह भूल करता है। क्योंकि शास्त्रसंस्कारी तो यह समझ लेगा कि आचार में धर्मशास्त्र प्रमाण होता है, इतिहास नहीं। हिन्दी व्यवहार में आदरणीय नहीं, किन्तु कांस्टिट्यूशन ही व्यवहार में आदरणीय है।

ईश्वरों का सब आचरण काम में नहीं लाना चाहिये, किन्तु उनकी आज्ञा का ही पालन करना चाहिये—

"ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।" (भाग० १०।३३।३२)

शास्त्राविरुद्ध ही आचरण अनुष्ठानयोग्य होता है। वैदिक भी यही कहते हैं—

"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।" (तै० उ० १।११।२)

जो हमारे अनवद्य निर्दोष शास्त्राविरुद्ध आचरण हैं उनका ही आदर करना चाहिये अन्य का नहीं।

समाज ने कोई चीज किसी पर लाद दी, यह निष्प्रमाण है। विशेषतः वह शास्त्रानुसारी समाज जिसमें श्रीराम का अवतरण हुआ उसने कोई अनुचित स्थिति किसी पर लादी होती तो क्या उसमें राम का प्रादुर्भाव होना

उचित था ? शास्त्रानुसारी समाज सदा से प्राणीमात्र को आदर देता है। 'वासुदेवः सर्वमिति' सब वासुदेव ही हैं। यह उसका दर्शन है। रन्तिदेव आदि का उदाहरण दिया जा चुका है।

तुलसी ने 'गिरा ग्राम्य सिय राम जस' इस वचन से नम्रता प्रकट की है। परन्तु वक्ता इससे भी संस्कृत काव्यों पर छीटाकसी करता है। ' जिनके अन्तःकरण में यह भय था कि वाल्मीकि, व्यास, भवभूति तथा कालिदास की दिव्य देवभाषा से अलंकृत रामकथा की तुलना में तुलसी के 'ग्राम्य गिरा सियराम जस' में आकर्षण होगा ? किन्तु समय ने उन्हें यह भी बता दिया कि उनकी शङ्का कितनी निर्मूल थी। कभी-कभी वस्त्रालङ्कार हमारी दृष्टि को इतना उलझा देते हैं कि अन्तराल में छिपे हुए सौन्दर्य को सहज रूप में देख पाना कठिन हो जाता है। आभूषणों का सौन्दर्य हमें व्यक्ति के स्थान पर आभूषणनिर्माता के कौशल की ओर ही ले जाता है। काव्य के रचयिता का पाण्डित्य भी कभी-कभी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न कर देता है।

किसी महाकाव्य को पढ़ते हुए यदि हमारी दृष्टि नायक के स्थान पर काव्यकौशल की ओर अधिक जाती हो तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि यह किसी कवि की सफलता है ? यदि किसी रचनाकार का उद्देश्य अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन हो तो उसको उसमें सफलता की अनुभूति हो सकती है। किन्तु एक भक्त के लिए यह स्थिति सर्वथा असह्य होगी। रचना का वास्तविक उद्देश्य तो नायक को ही पाठक के अन्तःकरण में प्रतिष्ठापित करना होना चाहिये। गोस्वामीजी का दृष्टिकोण यही था। गोस्वामीजी को ऐसा लगा कि वस्त्र और आभूषणों को हटा देने पर राघवेन्द्र का सौन्दर्य उसी रूप में झलक उठे जैसे काई को हटा देने पर जल। राम के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ।"

आधुनिक लोग समझते हैं कि संसार की सारी बुद्धि हमारे ही पास है और कुछ जानते ही नहीं। पर वस्तुतः आधुनिक तथोक्त अभिमानी ही सर्वज्ञान शून्य हैं, क्योंकि कोई भी भूषण, अलङ्कार मुख्य नायक का उपकरण है, अङ्ग है, स्वयं अङ्गी नहीं है। उस अञ्जन की कीमत नहीं जिससे आँख फूट जाय। उस अलङ्कार का कोई महत्त्व नहीं जिससे अलङ्करणीय की शोभा, आभा, प्रभा छिप जाय। श्रीभागवत में स्पष्ट ही कहा है कि—'परं पदं भूषण-भूषणाङ्गम्।'

भगवान् का मङ्गलमय अङ्ग भूषणों का भूषण है। अलङ्कारों से भगवान् के श्रीअङ्ग अलंकृत नहीं होते अपितु अलङ्कार ही भगवान् के अङ्गों से अलकृत होते हैं। अतएव वैसे भले ही अलङ्कार काई के तुल्य सौन्दर्य के आवरक हों, किन्तु प्रभु के अङ्गों से अलंकृत होने से वे कोटि-कोटि गुणित चमत्कृत होकर भगवान् के अङ्ग को अलंकृत करनेवाले हो जाते हैं। तभी दृश्य, अदृश्य, लोकिक, अलौकिक भगवान् के सभी श्रीविग्रहों को विविध वस्त्रालङ्कारों से विभूषित सुसज्जित अलंकृत किया ही जाता है। भूषणों की ही बात क्या ? गुणों का भी तो यही हाल है। प्रभु स्वयं कहते हैं कि—'निर्गुणं मां गुणाः सर्वे भजन्ति निरपेक्षकम्।' मुझ निरपेक्ष निर्गुण को गुण ही भजते हैं। जैसे प्रभु के मुकुट, किरीट, कुण्डल, कौस्तुभादि अलङ्कार जन्मजन्मान्तरों की तपस्याओं से प्रभु को प्रसन्न कर प्रभु से सम्बन्ध जोड़कर धन्य धन्य होते हैं। वैसे ही गुण भी तपस्याओं के द्वारा प्रभु को प्रसन्न कर प्रभु से सम्बन्धित होकर धन्य धन्य होते हैं। क्योंकि जैसे सीमित सौन्दर्यवाले व्यक्ति में ही अलङ्कारों से सौन्दर्य का आधान हो सकता है। निःसीम सौन्दर्य में अलङ्कारों से सौन्दर्य का आधान नहीं हो सकता है। वैसे ही गुण भी सातिशय महत्त्ववाले स्वाश्रय में महत्त्वातिशय का आधान कर सकते हैं। सीमित आनन्दवाले में आनन्दातिशय का आधान कर सकते हैं। परन्तु जिसका निःसीम स्वाभाविक महत्त्व तथा निःसीम स्वाभाविक आनन्द है उसमें गुण किस प्रकार महत्त्वातिशय या आनन्दातिशय का आधान कर सकते हैं ?

अनर्थ-निवर्हण भी गुण वहीं कर सकते हैं जहाँ अनर्थ की सत्ता हो, भगवान् तो नित्य निरस्तसमस्तानर्थ-सत्ताक हैं। वे ब्रह्म निरतिशय बृहत् हैं। अनन्तपदसमभिव्याहृत ब्रह्मपद से तो निरतिशय निरुपाधिक देश, काल और

वस्तुपरिच्छेद से रहित वृहत् ब्रह्म वस्तु ही बोधित होती है और वे निरतिशयानन्दस्वरूप हैं। फिर प्राकृत या अप्राकृत कोई भी गुण महत्त्वातिशयाधान द्वारा या अनर्थनिवर्हण द्वारा भगवान् में कैसे सार्थक हो सकते हैं। तो भी गुण जन्म-जन्मान्तरों की तपस्याओं एवं उपासनाओं द्वारा प्रभु से सम्बन्धित होते ही हैं।

तुलसी के मानस में भी काव्यगुणों की कमी नहीं है। एतावता भी उसकी उद्देश्यपूर्ति में बाधा नहीं पड़ी। फिर वसिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास आदि के काव्यगुणों से भगवान् के स्वरूप का आवरण कैसे होता है ? अतः व्यर्थ ही यहाँ वाल्मीकि, व्यास, भवभूति और कालिदास के काव्यों एवं तुलसी के–"गिराग्राम्य सियराम जस" के तारतम्य वर्णन का प्रयास किया गया है। तुलसी स्वयं जिन्हें पूज्य और वन्दनीय मानते हैं, उनके विरुद्ध तुलसी की पंक्तियों को जोड़ना धृष्टता ही नहीं, अक्षम्य अपराध भी है।

यह कथन नितरां असङ्गत है कि "भूतभावन शिव और तुलसीदास दोनों की दृढ़ मान्यता है कि श्रीराम एक व्यक्ति न होकर साक्षात् ईश्वर हैं। इसी लिए व्यक्ति के इतिहास की भाँति श्रीराम का चरित्र प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।" क्योंकि यह बात शिवजी एवं तुलसी की ही क्यों वसिष्ठ, वाल्मीकि और व्यास को भी यही सम्मत था। लेखक तो केवल तुलसी के मानस के अनुसार तुलसी और शिव के सम्बन्ध में राय प्रकट कर सकता है। अलग से तो शिवजी की मान्यता के सम्बन्ध में उसके पास कोई प्रमाण ही नहीं है।

यदि इतिहास और पुराणों के आधार पर कुछ कहेगा तो वह इतिहास-पुराणों का ही मत समझा जायगा। वस्तुतः यदि तुलसी के ही कथनानुसार तुलसी की बात मान्य है तब उसी तरह कबीर, सूर, नानक आदि की मान्यताएँ ठहरेंगी। उस स्थिति में मानस की कोई विशेषता नहीं सिद्ध होगी। वस्तुतः बेसिरपैर की निराधार कल्पनाओं की अपेक्षा तुलसी के अनुसार उनके मानस का आधार नानापुराणनिगमागम ही है। तुलसी की परम्परा और उसके मूल शिव का भी आधार नानापुराणनिगमागम ही है।

प्रत्यक्ष में भी सहस्रों चौपाइयों का आधार **अध्यात्मरामायण एवं श्रीभागवत** में ज्यों का त्यों मिलता है। **वाल्मीकिरामायण** को वे स्वयं महान् सेतु मानकर उसी के आधार पर चलनेवाली पिपीलिका के समान अपने आपको मानते हैं।

वेद, वाल्मीकिरामायण और व्यास के पुराण डङ्के की चोट पर इतिहास की भाँति श्रीराम का चरित्र प्रस्तुत करते हैं। "एक व्यक्ति जन्म लेकर कुछ वर्षों के पश्चात् मृत्यु का ग्रास बन जाता है। उसके जीवन में जो घटनाएँ घटती हैं, उन्हीं को इतिहास में रखा जाता है। व्यक्ति पुनः उसी रूप में लौट कर पृथिवी पर नहीं आ सकता।"

यह कोई वेदाज्ञा या राजाज्ञा नहीं। **'इति ह आस ऐतिह्य'** यही इतिहास है। वेद में भी इतिहास है। **'इतिहासः पुराणम्' बृहदारण्यकोपनिषद्, उर्वशी-पुरूरवा-संवाद,** यम-यमीसंवाद, याज्ञवल्क्य-मैत्रेयीसंवाद, याज्ञवल्क्यगार्गीसंवाद इतिहास है। परन्तु वेद अनादि हैं—**'अनादिनिधना नित्या'** (म० भा० शा० २३३।२४), **'वाचा विरूपनित्यया', 'अतएव च नित्यत्वम्'** (ब्र० सू० १।३।२९) इत्यादि वैदिक प्रमाण स्पष्ट हैं। यहाँ घटना के अनन्तर इस इतिहास का उल्लेख नहीं हुआ।

वेद और मनु के अनुसार वेदशब्दों के अनुसार सृष्टि होती है। यही बात **"शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्"** (ब्र० सू० १।३।२८) से कही गयी है। ऐसे इतिहास नित्य इतिहास कहे जाते हैं।

जैसे सामान्य नियम है कि कोई देहधारी नित्य नहीं होता। किन्तु राम, कृष्ण आदि के शरीरों के सम्बन्ध में यह अपवाद है। उनके शरीर नित्य हो सकते हैं। उसी तरह सामान्य ऐतिहासिक व्यक्ति उत्पन्न और नष्ट होने-

वाले होते हैं। वे फिर लौटकर नहीं आते, किन्तु वैदिक तथा रामायण और महाभारत, पुराण आदि के अनुसार श्रीराम, कृष्ण आदि ऐतिहासिक होते हुए भी नित्य हैं। वे ईश्वर के अवतार हैं, साक्षात् ब्रह्म हो हैं। यह सब उन्हीं ग्रन्थों से सिद्ध है। साथ ही यह भी सिद्ध है कि वे बार-बार लौटकर भी आते ही हैं।

वेद में घटनाओं के अनुसार आख्यान नहीं होते, किन्तु आख्यानों के अनुसार घटनाएँ होती हैं। अतएव **वाल्मीकिरामायण** पूर्व वर्णित होने पर भी तदनुसार अवतार घटना सम्पन्न हुई थी।

'कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं।" (रा० मा० १।१३९।१)

यह भी वेद, रामायण, भारत तथा पुराणों से ही सिद्ध है। केवल तुलसी की वाणी ही प्रमाण नहीं हो सकती है। तुलसी तो क्या कृष्ण साक्षात् परब्रह्म ही थे, फिर गीता केवल उनकी वाणी होने से ही प्रमाण नहीं मानी जाती। किन्तु वह उपनिषद्रूप गायों का दुग्ध है। कृष्ण उसके दोग्धा हैं—

"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।"

इसलिए वेदमूलक होने से ही उसका प्रामाण्य है।

बुद्ध भी भगवान् ही थे। फिर वेदनिन्दा के कारण वे स्वयं निन्दित हो गये। उनकी वाणी का प्रामाण्य वैदिक जनों में मान्य नहीं है। यह तुलसी का मत है—

"जेहि निन्दत निन्दित भयो बिदित बुद्ध अवतार।"

"विभिन्न रामायणों के घटनाक्रमों में बिलगाव क्यों? इसका उत्तर इतिहास की दृष्टि से प्राप्त नहीं होता है। इसके स्पष्टीकरण के लिए गोस्वामीजी ने लीला शब्द का आश्रयण किया है।" परन्तु यह कहना निरर्थक है क्योंकि लीला शब्द भी तुलसी का अपना नहीं है। यह भी व्यास के पुराणों का ही शब्द है—

"लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्" (ब्र० सू० २।१।३३), "लीलावतारचरितं पुरुषोत्तमस्य।"

मन्त्र, ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं और उपनिषद् भी वेद हैं। रामतापनीय उपनिषद् में भी रामचरित्र वर्णित है। उसमें भी इतिहास के रूप में रामचरित्र का वर्णन है और उसमें राम का परात्पर ब्रह्मरूप से ही वर्णन किया गया है। मन्त्रों में भी रामचरित्र तथा अयोध्या आदि का वर्णन है। किं बहुना, राम परमेश्वर हैं और शाश्वत हैं। वे लीलाविग्रह धारण करते हैं। यह भी इतिहास है। राम की ब्रह्मरूपता और अवतरण यह सब **वाल्मीकिरामायण**, **अध्यात्मरामायण**, **महाभारत**, श्रीमद्भागवतादि पुराणों से ही सिद्ध हैं।

"भगवान् शङ्कर के द्वारा रचित **रामचरितमानस** के रचनाकाल के विषय में मेरी सुनिश्चित धारणा है कि वह श्रीराम के अवतार के पूर्व ही निर्मित हुआ है। इसके समर्थन के लिए भगवान् शङ्कर की त्रिकालज्ञता की दुहाई नहीं देना चाहूँगा। भगवान् शङ्कर ने सारे रामचरित्र को लीला नाटक के रूप में प्रस्तुत किया है।

इतिहास व्यक्ति के बाद लिखा जाता है। किन्तु नाटक तो लिखे जाने के पश्चात् ही खेला जाता है। भगवान् शिव ने **रामचरितमानस** के रूप में एक महानाटक की रचना की और त्रेतायुग में अवतरित होकर भगवान् राम ने उसे विश्वरङ्गमञ्च पर प्रस्तुत किया।"

यह सब भी कोई नयी बात नहीं है। 'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्' के अनुसार अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों के निर्माण की घटना भी परमेश्वर की लीला ही है। फिर उनका ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में प्रकट होना भी लीला ही है। यह केवल तुलसी की ही मान्यता नहीं है। तुलसी ने तो पुरानी मान्यता को ही दुहराया है।

भगवान् के चरित्र का सम्यग् ज्ञान प्राप्त करने के लिए त्रिकालज्ञता की दुहाई की अनिवार्य आवश्यकता नहीं होती है। इसी लिए तो भले वाल्मीकि राम के समकालिक भी हों तो भी वे सुनी सुनायी बातों के आधार पर रामायण लिखते तब तो सीता-चरित्र के सम्बन्ध में भी उन्हें वैसी ही बात लिखनी पड़ती जैसी कुछ भ्रान्त जनों की धारणा थी। परन्तु उन्होंने तो ब्रह्मा के आज्ञानुसार समाधि द्वारा अतीत, अनागत और वर्तमान सब चरित्रों का साक्षात्कार करके ही रामायण ग्रन्थ लिखा था और उनके अनुसार भी वह इतिहास भी है और लीला भी है।

महानाट्य-निर्माता को भी त्रिकालज्ञ नहीं तो अतीतज्ञ तो होना ही चाहिये, क्योंकि नाट्य भी किसी ऐतिहासिक आधार पर ही होता है। भरत मुनि के अनुसार यही नाटक का रूप होता है। 'सति कुड्ये चित्रोल्लेखः' भित्ति होने पर ही चित्र का निर्माण होता है। अतः इतिहासप्रसिद्ध राम के आधार पर श्रीराम का नाटक लिखा जा सकता था। यदि ऐतिहासिक राम भिन्न हैं और उनका अनुकरण करनेवाले राम उनसे भिन्न हैं। तब दशरथ-सुत से भिन्न कोई राम हैं? पार्वती के इस प्रश्न से शिवजी को क्षोभ क्यों होता। फिर तो जैसे अभिनेता जिसका अभिनय करता है उससे भिन्न होता है। उसी तरह दशरथनन्दन राम का अभिनय करनेवाले राम स्पष्टतः उनसे भिन्न ही होंगे। उस स्थिति में "रघुकुलमणि सोइ स्वामि मम" इस कथन का क्या अर्थ रह जायगा। फिर त्रेतायुग में अभिनेता राम ने उस नाट्य का अनुसरण दशरथगृह में ही जन्म लेकर क्यों किया? नाटक में तो स्पष्टतः अभिनेय से अभिमेता भिन्न ही होता है। फिर आज के अभिनेता भी तो वैसे ही अभिनेय से भिन्न हैं। उनमें क्या भेद होगा?

श्रीशिवजी तो रघुपति चरित ही का वर्णन करते हैं—

"रघुपति चरित महेश तब हरषित बरनै लीन।" (रा० मा० १।१११।४)

चरित शब्द भी इतिहास का बोधक है। सतीजा का प्रश्न रघुपति-कथा प्रसङ्ग का ही है—

"पूछउ रघुपति कथा प्रसङ्गा।" (रा० मा० १।१११।४)

"तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रश्न जगतहित लागी॥"

(रा० मा० १।१११।४)

"बरनहुँ रघुपति बिसद जस श्रुतिसिद्धान्त निचोरि।" (रा० मा० १।१०९)

श्रीशिवजी ऐतिहासिक राम और सर्वव्यापी राम की एकता का ही वर्णन करते हैं—

"पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशनिधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमणि मम स्वामि सोइ कहि सिव नायउ माथ॥" (रा० मा० १।११६)

जो प्रसिद्ध पुरुष पुरुषोत्तम हैं, जो प्रकाशनिधि हैं, जो परावरनाथ हैं वही रघुकुलमणि मेरे स्वामी हैं। संस्कृत में 'सोऽयम्' वही यह इस प्रत्यभिज्ञा के द्वारा 'स एव अयम्' इन दोनों पदार्थों की एकता का बोध कराया जाता है।

ऊँचे से ऊँचे वेदान्तवेद्य ब्रह्म के रूप का निरूपण करके शिवजी उसको अवधपति कहते हैं।

"सब कर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥"(रा० मा० १।११६।३)

"जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरजा सोइ कृपालु रघुराई॥"(रा० मा० १।११६।२)

"बिन पद चलै सुनइ बिनु काना। कर बिनु कर्म करइ बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बक्ता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेषा॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी॥"(रा०मा० १।११७।३,४)

"जेहि इमि गावहिं बेद जाहि धरहिं मुनि ध्यान।
सोइ दशरथसुत भगतहित कोसलपति भगवान॥" (रा० मा० १।११८)

याद रहे कि रघुकुलमणि, अवधपति, रघुराई, दशरथनन्दन, कोशलपति आदि सभी शब्द ऐतिहासिक हैं—

"सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुवर सब उर अंतरयामी॥" (रा० मा० १।११०।१)

इसमें स्पष्ट ही रघुवर को अन्तरयामी कहा गया है।

"भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती।" (रा० मा० १।११८।४)

इतना ही नहीं, जो ऐतिहासिक रघुपति राम से पृथक् किसी सर्वव्यापी राम को मानते हैं उनका निराकरण करते हुए शिवजी स्वयं कहते हैं। एक बात तुम्हारी हमको अच्छी नहीं लगी। यद्यपि तुमने मोह के वश होकर ही वैसा कहा था। तुमने जो यह कहा था कि वह राम दशरथसुत राम से कोई अन्य हैं। जिनका मुनि ध्यान करते हैं।

भगवान् श्रीराम शाश्वत हैं इसमें दो मत नहीं हैं। फिर भी रघुकुलमणि रघुवंशभूषण, दशरथनन्दन, कौशल्यानन्दवर्धन, दशरथ-अजिरविहारी और अवधेश उनके असाधारण नाम हैं और रघुकुल, दशरथ, कौसल्या आदि की ऐतिहासिकता का अपलाप करना सर्वथा असङ्गत ही है। शाश्वत सिद्ध करने की धुन में इन नामों का अपलाप भी अनभिज्ञता ही होगी। फिर तो श्रीराम को आधुनिकतम बनाने की दृष्टि से श्रीराम के हाथ से धनुष-बाण हटाकर उनके हाथ में बन्दूक, तोप, परमाणु बम और हाइड्रोजन बम देना पड़ेगा। धनुष-बाण आदि तो पुराने जमाने की वस्तुएँ हैं। अतः यही मानना युक्त है कि भगवान् अनादि होते हुए भी ऐतिहासिक हैं और ऐतिहासिक होते हुए भी शाश्वत हैं।

जैसे भगवान् का पञ्चायतन श्रीविग्रह नित्य है। वैसे ही उनके लीलापरिकर भी नित्य ही हैं। धाम भी नित्य हैं। इस दृष्टि से अयोध्या, दशरथ, कौशल्या आदि भी नित्य ही हैं।

श्रीराम तथा सभी अवतारों के जन्म और कर्म दिव्य हैं। अतः ऐतिहासिक होने से उनमें जरा, मरण आदि की कल्पना करना भी अनभिज्ञता है। भगवान् के जन्म और कर्म का चिन्तन भवबन्धन काटने का परम उपाय है।

कहा जाता है—

"छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मरम तब श्राप कोप करि दीन्ह॥" (वा० रा० १।१२१)

कहा जाता है कि सती वृन्दा का व्रत भगवान् विष्णु ने छलपूर्वक नष्ट किया। जब उसने इस रहस्य को जाना तब उसने क्रुद्ध होकर शाप दिया। भगवान् ने केवल वृन्दा को ही पातिव्रत से च्युत किया, इतना ही नहीं, अपितु रामचरितमानस में ही ब्रह्मचर्य-व्रतनिष्ठ देवर्षि नारद को अपनी विश्वमोहिनी माया के द्वारा वासनाभिभूत कर दिया।

नारद को ब्रह्मचर्य से च्युत करना अथवा वृन्दा के पातिव्रत को नष्ट करना वस्तुतः एक ही सत्य को प्रकट करता है। देवर्षि का ब्रह्मचर्य यदि उन्हें अहङ्कारी बनाकर असुर बनने की प्रेरणा देता है तो ऐसे ब्रह्मचर्य को विनष्ट कर देना ही नारद के लिए और लोक के लिए परम कल्याणकारी था।

कामजय के पश्चात् जहाँ देवर्षि अहङ्कार में उन्मत्त हो उठते हैं, वहाँ कामग्रस्त होने के पश्चात् भगवान् के चरणों में नतमस्तक होकर अपनी त्रुटि स्वीकार करते हैं। पतिव्रता वृन्दा का व्रत नष्ट करना भी इसी सत्य को प्रकट करने के लिए था।

निष्ठा का तात्पर्य केवल इतना ही नहीं है कि व्यक्ति अपनी उस शक्ति के द्वारा अधर्म को अमर बनाने की चेष्टा करे। निष्ठा का केन्द्र भी व्यक्ति नहीं आदर्श को ही होना चाहिये। जब तक दोनों का समन्वय नहीं होगा तब तक ऐसा धर्म किसी व्यक्ति के अहं को, उसके गौरव को प्रतिष्ठापित तो कर सकता है, किन्तु उस व्यक्ति का वह धर्म लोकमङ्गल के लिए घातक सिद्ध होता है।

निष्ठा का वास्तविक तात्पर्य सर्वव्यापक ब्रह्म को एक केन्द्र से अभिव्यक्त करना चाहिये। जब पतिव्रता पति के प्रति निष्ठावती बनती है तब इसका अभिप्राय पति में ईश्वर का साक्षात्कार करना है। यदि पति के प्रति ऐसी पूर्णता की भावना पतिव्रता के मन में न हो तब उसके लिए निष्ठा का निर्वाह असम्भव है।

यदि व्यक्ति किसी आराध्य के चित्र को सामने रखकर पूजा कर रहा हो और उसी का आराध्य देव आकर द्वार खटखटाने लगे तब क्या पुजारी चित्र की पूजा ही करता रहे, अथवा उठकर आराध्य का स्वागत करे? निष्ठा की अन्तिम परिणति ईश्वर की उपलब्धि है।

वृन्दा ने जिसे अपने पातिव्रत की च्युति मान लिया था वस्तुतः वह उसको निष्ठा की सच्ची सार्थकता थी। इसी लिए वृन्दा तुलसी के रूप में परिणत हो गयी और भगवान् विष्णु शालिग्राम के रूप में तुलसी को मस्तक पर धारण करते हैं। विष्णु ने वैसा करके पतिव्रता को अतुल गौरव प्रदान किया। तुलसी के रूप में अपनी सङ्गिनी बनाकर वृन्दा को भी इस सत्य का साक्षात्कार करा दिया कि निष्ठा का चरम लक्ष्य ईश्वर का साक्षात्कार है। निष्ठा साधन है साध्य नहीं।

पातिव्रत की शक्ति जब किसी ऐसे व्यक्ति के प्रति निष्ठा से प्रेरित हो जिस व्यक्ति का जीवन समाज के लिए घातक हो उस समय धर्म और अधर्म के सूक्ष्म विवाद का अवसर आता है। वहाँ पतिव्रता की शक्ति का दुरुपयोग हो रहा था। ऐसी स्थिति में धर्म अधर्म का कवच बनकर उसे अनिष्ट से बचाने की चेष्टा करता है।

युद्ध में योद्धा पर विजय प्राप्त करने के लिए कवच को नष्ट करना ही पड़ता है, क्योंकि कवच व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करता है। जब धर्म अधर्म के लिए कवच का कार्य करे तो उस समय धर्म पर प्रहार न करने से अधर्म ही विजयी होता है। ऐसा धर्म जो अधर्म के विजय में सहायक हो, जो धर्म को ही नष्ट करने में सहायता दे तो क्या उसे धर्म के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिये? जालन्धर की मृत्यु से अगणित स्त्रियों के पातिव्रत का रक्षण हुआ है। अतः लोकधर्म की रक्षा के लिए एक व्यक्ति की निष्ठा को मिटाना आवश्यक ही था।

उक्त समाधान बहुत अंशों में ठीक हो सकता है। परन्तु इसपर भी सूक्ष्म विचार आवश्यक है। कई लोग तो इसी कारण कहते हैं कि वह विष्णु जो वृन्दा का पातिव्रत नष्ट करता है, ईश्वर ही नहीं है। वह कोई विषयी जीव था। इसी लिए उनकी दृष्टि में पुराणों पर अधिक विश्वास करना ही उचित नहीं है। इतना ही नहीं वे शास्त्रप्रामाण्य केवल व्याकरण तक ही सीमित मानते हैं। "शब्दप्रमाणका वयं तस्माद् यदाह शब्दः तदेव नः प्रमाणम्" परन्तु उनका उक्त कथन भ्रमपूर्ण है।

महाभाष्य से भी अधिक प्राचीन और प्राणभूत गीता तो हर एक कार्य और अकार्य की व्यवस्था में शास्त्र को ही प्रमाण कहती है। उसकी दृष्टि में शास्त्रविधि को छोड़कर मनमानी चेष्टा करनेवाले को सिद्धि, सुख, परागति इनमें कुछ भी नहीं मिलता है—

"यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥" (गीता १६।२३,२४)

यदि वेदादि शास्त्रों का प्रामाण्य स्वीकृत न होगा तो विष्णु, जालन्धर, वृन्दा आदि का अस्तित्व भी सिद्ध न हो सकेगा। यह नहीं हो सकता कि मुर्गी का आधा हिस्सा पकाकर खा लें और आधा भाग अण्डा देने के लिए छोड़ दें। शास्त्र के एक अंश को मान लें और अन्य अंश को छोड़ दें। नितरां स्थिति को ही निष्ठा कहा जाता है। सब निष्ठाओं का पर्यवसान भगवान् में नही होता। अधर्मनिष्ठा प्राणी को नरक ही ले जाती है। काम्यकर्मनिष्ठ प्राणी को स्वर्गादि में पहुँचाती है। भक्ति, ज्ञाननिष्ठा तथा निष्काम शास्त्रोक्त कर्मनिष्ठा साक्षात् या परम्परा से ब्रह्मप्राप्ति में हेतु होती है।

नारद की ब्रह्मचर्यनिष्ठा का कोई दोष नहीं था। दोष था अहङ्कार का। यदि किसी को भक्त होने का अहङ्कार हो तो उससे भी हानि ही होती है। भगवान् ने देवर्षि नारद के ब्रह्मचर्यव्रत को नष्ट नहीं किया था, किन्तु नष्ट होने से बचाया था। यदि विवाह हो जाने दिया जाता तो देवर्षि का ब्रह्मचर्य भङ्ग हो जाता।

जैसे कुपथ्य माँगनेवाले रोगी को कुपथ्य न देकर हितैषी उसकी रक्षा ही करता है। वैसे ही भगवान् ने नारद की कुपथ्यसम्बन्धी माँग को न देकर उनकी ब्रह्मचर्यनिष्ठा की रक्षा की थी। परन्तु शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो अधर्म प्रतीत होने पर भी धर्म ही होते हैं। जैसे झूठ बोलना पाप, सत्य बोलना धर्म है, यह अत्यन्त प्रसिद्ध है—

"साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।"
"अश्वमेधसहस्रञ्च सत्यञ्च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥"

सहस्रों अश्वमेधों की अपेक्षा एक सत्य ही श्रेष्ठ होता है, फिर अगर उसी सत्य से किसी गाय या ब्राह्मण की हत्या होती हो तो वह सत्य ही पाप है। वहाँ वैसी गोहत्या और ब्रह्महत्या रोकने के लिए झूठ ही बोलना उचित है। किसी महातपा के सामने से कोई गाय या सन्त एवं सज्जन ब्राह्मण भागकर जङ्गल में छिप गया हो और उसका पीछा करनेवाला हत्यारा (घातक) आकर उसके सम्बन्ध में पूछ-ताछ करता है तो महातपा को चाहिये कि यदि मौन रहने से काम चल जाता हो तो मौन रहकर वैसे सज्जनों के प्राण बचाने चाहिये। परन्तु यदि मौन रहने में घातकों के उस मार्ग से अपने शिकार के पास पहुँच जाने का सन्देह पैदा होता हो तो झूठ बोलकर भी उनकी रक्षा करनी चाहिये।

"येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धनमिच्छन्ति कस्यचित्।
तेभ्यस्तु न तदाख्येयं स धर्म इति निश्चयः॥
अकूजनेन चेन्मोक्षो नावकूजेत् कथञ्चन।
अवश्यं कूजितव्ये वा शङ्केरन् वाऽप्यकूजनात्॥
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं सत्यादिति विचारितम्।"(म० भा० शा० प० १०९।१४, १५)

जो चोर, डाकू आदि अन्याय से किसी का धन लेना चाहते हैं। उन्हें धनिक का पता नहीं बताना चाहिये। जो दान, भिक्षादि द्वारा धन लेना चाहते हैं। उन्हें बताने में कोई दोष नहीं है। इतना ही नहीं यदि मौन

रहने से काम चल जाय तो मौन रहना ठीक है। यदि मौन से साधु पुरुषों की रक्षा नहीं होती हो, न बोलने से शङ्का होती हो और अवश्य बोलना पड़े तो झूठ बोलकर भी सत्पुरुषों का बचाव करना चाहिये।

"यः पापैः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथादपि।
न तेभ्योऽपि धनं देयं शक्ये सति कथञ्चन॥
पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत्।" (म० भा० शान्ति प० १९।१६,१७)

झूठी शपथ द्वारा भी दुष्टों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करना चाहिये। यहाँ सत्य की अपेक्षा झूठ ही श्रेष्ठ है, क्योंकि दुष्टों को दिया हुआ धन दाता को भी पीड़ा ही पहुँचाता है।

"**मा हिंस्यात्**" इस वेदवचन से निषिद्ध होने के कारण यद्यपि हिंसा अधर्म है तथापि "**अग्नीषोमीयं पशुमालभेत**" के अनुसार क्रतु के उपकार के लिए की गयी हिंसा धर्म ही है। यह सब "**अशुद्धमिति चेन्न शब्दात्**" (ब्र० सू० ३।१।३५) में स्पष्ट है। कहीं सत्य कहीं अनृत ही बोलना चाहिये। जहाँ अहिंसा के कारण अनृत सत्य हो जाता हो और हिंसा के कारण सत्य अनृत हो जाता हो, जहाँ सत्य अहिंसा, उपकार आदि में पर्यवसित न होता हो उस स्थल में मूढ सत्यवादी भी बाधित होता है। सत्य और अनृत का यथावत् जाननेवाला धर्मतत्त्वज्ञ होता है। इसी आधार पर अकृतप्रज्ञ अतिदारुण अनार्य भी उसी तरह महान् पुण्य का भागी होता है जैसे बलाक सब प्राणियों के वधार्थ उद्यत अन्ध घ्राणचक्षु के वध से पुण्य का भागी हुआ था। इसमें आश्चर्य क्या है? धर्म की कामनावाला भी सत्यवादी अधर्म निश्चय के कारण डाकुओं एवं गोघातकों को साधुओं एवं गायों का पता बताकर पाप का भागी हुआ था। तत्त्वज्ञ उसी प्रकार पुण्य का भागी होता है, जैसे गङ्गातीर में सर्पिणी के अण्डों को नष्ट करके उलूक पुण्य का भागी हुआ था—

"भवेत् सत्यं न वक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं वाप्यनृतं भवेत्॥
तादृशो वध्यते बालो यत्र सत्यमनिश्चितम्।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित्॥
अप्यनार्योऽकृतप्रज्ञः पुरुषोऽप्यतिदारुणः।
सुमहत् प्राप्नुयात्पुण्यं बलाकोऽन्धवधादिव॥
किमाश्चर्यञ्च यन्मूढो धर्मकामोऽप्यधर्मवित्।
सुमहत्प्राप्नुयात्पुण्यं गङ्गायामिव कौशिकः॥"(म०भा० राजधर्मानुशासनपर्व १०२।५–८)

वस्तुतः प्राणियों में प्रभव के लिए अर्थात् अभ्युदय, अहिंसा, अपीडन और धारण के लिए ही धर्म का प्रवचन किया गया है। अतः व्यापक रूप से प्राणियों का अभ्युदय, अपीडन और संरक्षण जिससे होता है, वह चाहे सत्य हो चाहे असत्य, किन्तु वही धर्म है। यद्यपि अहिंसा और सत्य दोनों ही शास्त्रविहित हैं तथापि अहिंसाविरोधी सत्य अग्राह्य है। इसी लिए गीता ने हित, मित, प्रिय और सत्य भाषण को ही सत्य कहा है, केवल सत्य को नहीं—

"प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यात्प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥
धारणाद्धर्ममित्याहुः धर्मेण विधृताः प्रजाः।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः॥
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम्।
यः स्यादहिंसासंपृक्तः स धर्म इति निश्चयः॥"

जहाँ सत्य निरपराधों का संरक्षक न होकर उनके नाश का कारण बनता हो वह धर्म नहीं है।

इसी दृष्टि से यदि किसी एक स्त्री के पातिव्रत से सुरक्षित जालन्धर लाखों स्त्रियों का पातिव्रत्य-भङ्ग करता हो और शिव की पार्वती को अपनी पत्नी बनाने का प्रयत्न करता हो और संसार में हिंसा का विस्तार कर के सम्पूर्ण वैदिक धर्म-कर्म को नष्ट कर के लोक का उत्सादन करता हो और जिस पातिव्रत्य के कारण शिवजी के लिए भी अजेय बना हो उस एक स्त्री के पातिव्रत्य का भङ्ग करना धर्म ही है अधर्म नहीं, क्योंकि उससे लाखों का पातिव्रत्य बचेगा, लाखों की जानें बचेंगी। वेदोक्त धर्म-कर्म की रक्षा होगी। उससे उस अन्यायी असुर का विनाश होगा जिसके द्वारा अहिंसा, धर्म, न्याय और संसार की रक्षा को खतरा उत्पन्न हुआ है। अधर्म का बचाव करनेवाले कवच-रूपी धर्म का विनाश करना ही उचित है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि इसमें वृन्दा का क्या दोष है ? जो दोष है वह जालन्धर का है। वृन्दा तो अपना धर्म पालन करती है। पति को परमेश्वर मानकर पूजती है। यही उसका धर्म है। उस अपने इष्ट की रक्षा करना भी उसका कर्तव्य ही है। पर उसका उद्देश्य अधर्म, हिंसा या व्यभिचार फैलाना तो नहीं है। पर जिस किसी तरह से भी हो चाहे न चाहे उसके पातिव्रत्य से उसका अत्याचारी हिंसक जब अपरिगणित पतिव्रताओं का पातिव्रत्य नाशक असुर अमर होता है, अवध्य होता है तो उसके मूलभूत एक पातिव्रत्य का कोटि-कोटि पातिव्रत्यों की रक्षा के लिए ध्वंस होना ही उचित है। लाघव और गौरव की दृष्टि से भी यही धर्म है।

फिर भी जैसे अनधिकृत व्यक्ति द्वारा हत्यारे की भी हत्या पाप ही है। हत्यारे की हत्या करनेवाला अनधिकृत व्यक्ति भी मृत्युदण्ड पाता है। राजा ही दण्ड देने का अधिकारी होता है। उसके द्वारा नियुक्त अधिकृत व्यक्ति ही हत्यारे को प्राणदण्ड दे सकता है, अन्य नहीं। इसी तरह कर्मफल दाता भगवान् विष्णु ही हैं। वे ही लाखों के पातिव्रत्य के रक्षणार्थ, लोकरक्षणार्थ तथा धर्मरक्षणार्थ एक वृन्दा का पातिव्रत्य-भङ्ग कर सकते हैं और वृन्दा को पातिव्रत्य धर्म का सर्वोत्कृष्ट फल भी प्रदान कर सकते हैं। आखिर सभी धर्मों का अन्तिम परमफल तो भगवत्प्राप्ति ही है। भगवान् ने सीधे उसके धर्म का हरण करके उसके धर्म का परमफल भगवत्प्राप्ति उसे सुलभ करा दिया।

शास्त्रों के अनुसार जैसे विष्णु, विष्णुप्रतिमा शालग्राम की पूजा करते करते प्राणी विष्णु की प्राप्ति कर लेता है वैसे ही स्त्री परम मुख्य पति विष्णु की प्रतिमास्वरूप लौकिक पति की पूजा करते करते परम मुख्य पति विष्णु को प्राप्त कर लेती है। विवाह में वर को विष्णुरूप मानकर उसे लक्ष्मीरूपा कन्या का प्रदान किया जाता है। वैसा ही संकल्प पढ़ा जाता है—"इमां लक्ष्मीरूपां कन्यां विष्णुरूपाय वराय तुभ्यमहं संप्रददे"। इस स्थिति में जैसे विष्णु-प्राप्ति होने पर शालग्राम की पूजा का छूट जाना कोई दोष नहीं है उसी तरह परमपति विष्णु की प्राप्ति में वृन्दा का जालन्धरसम्बन्धी पातिव्रत्य-भङ्ग हो जाना कोई दोष नहीं है, क्योंकि उसका फल उसे प्राप्त हो गया।

भगवान् शङ्कराचार्य के अनुसार और तुलसी के अनुसार ईश्वर जीव का सम्बन्ध वारिवीचिसम्बन्ध जैसा ही है—

"सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन सामुद्रो न तारङ्गः॥" (षट्पदी)

"सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा। बारि बीचि जिमि गावहिं बेदा॥"(रा०मा० ७।११०।३)

हे नाथ ! यद्यपि हमारा आपका भेद नहीं है तथापि मैं आपका हूँ आप मेरे नहीं। जैसे समुद्र का तरङ्ग कहा जाता है, तरङ्ग का समुद्र नहीं कहा जाता है। वह तू है उसमें तुझमें भेद नहीं है। भेद वैसा ही है जैसा वारि और वीचि का भेद है।

इस दृष्टि से विष्णु सच्चिदानन्द-समुद्र हैं। अनन्तानन्त जीव उनकी अनन्तानन्त तरङ्गें ही हैं। अतएव वे भी चेतन, अमल, सहजसुखराशि हैं। संसार के सभी जीव तरङ्ग ही हैं। पति, पुत्रादि जीव का आपसी सम्बन्ध वैसा ही है जैसे तरङ्गों का आपसी सम्बन्ध। एक तरङ्ग का अपर तरङ्गों के साथ सम्बन्ध स्थायी नहीं होता है। तरङ्गों के समान ही संयोग-वियोग होता ही रहता है। जैसे चौराहे के प्याऊ पर चारों तरफ से राहगीर आकर इकट्ठे होते हैं। आपस में मेलजोल और प्रेम की बातें करते हैं। फिर अपने-अपने रास्ते सब चले जाते हैं। किसी का कोई स्थायी सम्बन्ध नहीं होता।

"कति नाम सुता न लालिताः कति वा नेह वधूरभुञ्जि हि।
क नु ते क नु ताश्च के वयं भवसङ्गः खलु पान्थसङ्गमः॥"

कितने पुत्रों का लालन-पालन नहीं किया, कितनी ही वधुओं का सम्बन्ध नहीं किया। परन्तु आज कहाँ वे सब हैं कहाँ हम हैं। निश्चित भवसङ्गम पान्थ-सङ्गम ही है।

नदी की बाढ़ में इधर-उधर से आकर काष्ठ मिल जाते हैं। कुछ दूर तक मिले भी रहते हैं। परन्तु प्रवाह के थपेड़ों से सब पुनः विभक्त होकर बह जाते हैं। वैसे ही जीव कर्मों के अनुसार पति-पत्नी आदि रूप से मिल जाते हैं—

"यथा काष्ठञ्च काष्ठञ्च समेयातां महोदधौ।
संयुज्य च व्यपेयातां तद्वज्जीवसमागमः॥"

परन्तु किसी भी हालत में तरङ्ग का जैसे जल के साथ वियोग नहीं होता है, उसी तरह जीवों का परमेश्वर के साथ वियोग नहीं होता। अतएव जीवों के सच्चे सङ्गी-साथी परमेश्वर ही हैं। जीव नहीं। मुख्य पति-पत्नी का सम्बन्ध भी वारि-वीचि जैसा ही है।

"गिरा अर्थ जल बीचि जिमि कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दहुँ सीतारामपद जिनहिं परम प्रिय खिन्न॥" (रा० मा० १।१८)

सीता और राम का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा गिरा एवं अर्थ का तथा जल एवं वीचि का।

इस दृष्टि से सब तरङ्गरूप जीवों के परम पति समुद्रस्वरूप भगवान् ही हैं। उनमें मुख्य निष्ठा ही मुख्य पातिव्रत्य है। उन्हें छोड़कर अन्य जीवों से सम्बन्ध जोड़ना ही पातिव्रत्य-भङ्ग है। इस तरह लौकिक पातिव्रत्य धर्म है तो परम परमेश्वर के साथ अखण्डसम्बन्ध-निष्ठारूप परम पातिव्रत्य परम धर्म है।

इस तरह वृन्दा के लौकिक पातिव्रत्य को भङ्ग कर के जहाँ भगवान् ने जालन्धर का वध कराकर अगणित पतिव्रताओं के पातिव्रत्य और लोक की रक्षा की वहीं वृन्दा को परम पातिव्रत्यरूप परम धर्म प्रदान कर उसे कृतार्थ कर लोकोत्तर पद प्रदान किया। बड़े बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र जिस भगवान् से प्रेम की भीख माँगते हैं वही भगवान् वृन्दा से प्रेम की भीख माँगते हैं। वृन्दा के लिए पागल होकर अपने लौकिक पति के साथ भस्मीभूत वृन्दा की चिता की भस्म में महीनों लोटते रहे।

इसके द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि भगवान् प्रेमास्पद ही नहीं, किन्तु प्रेमाश्रय भी हैं। जैसे भगवान् से मिलने के लिए भक्त लालायित होते हैं वैसे ही भगवान् वृन्दा से मिलने के लिए लालायित होते हैं। यहाँ तक कि छल-छद्म से भी वृन्दा की प्राप्ति के लिए सचेष्ट होते हैं। उसके प्रेम न करने पर भी उससे प्रेम करते हैं। उसके शाप देने पर भी उसके शाप को अङ्गीकार कर के शालग्राम शिला बनकर भी तुलसी का वियोग नहीं सहन कर सकते। हजारों व्यञ्जन समर्पण करने पर भी तुलसी बिना कोई नैवेद्य ग्रहण नहीं करते हैं।

तुलसी के पातिव्रत्य धर्म से ही सन्तुष्ट होकर अथवा उसके जन्म-जन्मान्तरों के पुण्यों एवं भक्ति-भावनाओं के वशीभूत होकर ही भगवान् तुलसीरूप में भी वृन्दा को अपनाते हैं। उसके रूपसौन्दर्य या यौवन के वशीभूत होकर नहीं।

सौन्दर्य और माधुर्य की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी जिसकी दासी है। सौन्दर्य-माधुर्य सारसर्वस्व राधारानी जिसकी अनन्य आराधिका है। अनन्त अनन्त लक्ष्मीरूप गोपाङ्गनाएँ जिसके पीछे पीछे पागल हुई भटकती हैं, उसे वृन्दा के रूप और यौवन की अपेक्षा का प्रश्न ही नहीं उठता। गोपाङ्गना ऊपर से नन्दरानी के पास गोपाल की शिकायत करने जाती थीं, परन्तु भीतर से चाहती थीं कि कृष्ण हमारे घरों में दधि, नवनीत की चोरी के लिए पधारें और उनकी बाट जोहती थीं। कृष्ण उनसे छाछ माँगते थे। दधि और नवनीत की चोरी करते थे। तभी तो भक्त कहता है कि—

> "गोपालाजिरकर्दमे विहरसे विप्राध्वरे लज्जसे
> ब्रूषे गोधनहुंकृतैः स्तुतिशतैर्मौनं विधत्से सताम्।
> दास्यं गोकुलपुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु"

यह ठीक है कि वेदविहित कर्म पुण्य है और वेदनिषिद्ध कर्म अधर्म है—

> "वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।" (भाग० ६।१।४०)

इस दृष्टि से पत्नी का एकपतिनिष्ठ होना शास्त्र विहित है, अतः पातिव्रत्य धर्म है और उत्कृष्ट धर्म है। उसके प्रभाव से सावित्री ने अपने पति को यम के हाथों से लौटा लिया था। उसी के प्रभाव से शाण्डिली ने सूर्योदय रोक दिया था। उसी के प्रभाव से वृन्दा का पति जालन्धर अजेय हो गया था।

फिर भी वही विहित कृत्य धर्म है जो अनर्थशून्य हो। वेदविहित भी वही कृत्य धर्म है, जो फलकाल में भी अनर्थ से सम्बद्ध न हो। जो केवल प्रीति का हेतु हो। इसी लिए–"**चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः**" (जै० सू० १।१।२) इस धर्मलक्षणबोधक जैमिनिसूत्र में अर्थ इस पद का संनिवेश है। इसी कारण श्येनादि अनर्थकारण याग अर्थरूप न होने से धर्म नहीं हैं।

भट्टपाद ने कहा है कि—

> "फलतोऽपि च यत्कर्म नानर्थेनानुबद्ध्यते।
> केवलप्रीतिहेतुत्वात् तद् धर्म इति कथ्यते॥"

फल द्वारा भी जो कर्म अनर्थ से संसृष्ट नहीं होता जो केवल सुख का हेतु हो वही धर्म है। श्येनादि याग का फल है शत्रुमरण। वह अन्त में नरक का हेतु होता है। अतः वह धर्म नहीं है।

> "नानापुराणनिगमागमसम्मतम्।" (रा० मा० १। मङ्गलाचरण ७)
> 'तदपि संत मुनि बेद पुराना। जस कछु कहहिं स्वमति अनुमाना॥
> तस मैं सुमुखि सुनावहुँ तोही।" (रा० मा० १।१२०।२,३)
> "अब सुनु परम विमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥" (रा० मा० ७।८५।१)

आदि अनेक वचनों से तुलसीदासजी वेदादि शास्त्रों का प्रामाण्य वर्णन करते हैं और उनकी सब उक्तियों का परम आधार वेदादि शास्त्र ही हैं। उसके सम्बन्ध में आजकल के वक्ताओं का किन्तु, परन्तु सर्वथा उपेक्षणीय ही है।

वृन्दा

"तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः स्वाभाविको वेदविधिर्न कल्कः ।
प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्कः तान्येव भावोपहतानि कल्कः ॥"

तप, अध्ययन, स्वाभाविक वेदविधान-यज्ञ, उञ्छ, शिल आदि वृत्तियाँ सुपुण्य हैं, पाप नहीं। किन्तु वही सब भावदुष्ट होने पर पाप बन जाती हैं।

भगवान् राम ने तपस्वियों के तप की रक्षा के लिए दण्डकवन की यात्रा की थी। परन्तु धुन्धु नामक दैत्य महान् तप कर रहा था। वह किसी समुद्र की रेती में विलीन रहकर प्राणायाम करता था। साल, साल के कुम्भक के बाद जब वह रेचक करता था तो धरित्री में कम्प होता था। धरित्री की धूलि चन्द्र, सूर्य को आच्छन्न कर देती थी। पर्वतों में हड़कम्प मच जाता था। समुद्र उद्वेलित हो अपनी उत्ताल तरङ्गों से विश्व को आप्लावित करने लगता था। पर उसके तप का लक्ष्य था शक्तिसम्पन्न होकर वेदादि शास्त्रोक्त वर्णाश्रम धर्म का विनाश करना। इसी लिए देवता और ऋषि उसके वध के लिए प्रयत्नशील हो धुन्धुमार नामक राजा को प्रेरित कर के उसका वध कराते हैं।

यज्ञ का बहुत बड़ा महत्त्व है। राम और लक्ष्मण ने विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए बड़ा परिश्रम किया था। परन्तु जब लङ्का में मेघनाद और रावण का यज्ञ चल रहा था तब उसके विनाश के लिए अङ्गद, हनुमान्, लक्ष्मण आदि ने प्रयत्न किया। क्यों? इसी लिए कि ऐसे तप एवं यज्ञ, भावदुष्ट होने के कारण, धर्म नहीं अधर्म हो गये हैं। यदि उनका यज्ञ सफल होता तो रावण और मेघनाद अजेय ही हो जाते। वस्तुतः उनका यज्ञ तो दूसरों की बहू-बेटियों के अपहरण के लिए ही था। ऐसा यज्ञ धर्म नहीं।

इसी तरह वृन्दा का पातिव्रत्य-धर्म भी हजारों ललनाओं के पातिव्रत्य-भङ्ग का हेतु हो रहा था। अतः वह अधर्मप्राय हो गया था। उसका विध्वंस ही उस परिस्थिति में धर्म था।

भगवान् आप्तकाम, पूर्णकाम एवं परम निष्काम थे। अनन्त ऐश्वर्य और माधुर्य की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी उनकी पत्नी थी। माधुर्यसार-सर्वस्व की अधिष्ठात्री सीता और राधा श्रीराम और श्रीकृष्ण रूप में उनकी पत्नी थीं। काम, वसन्त तथा अप्सराएँ उनके मन में क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सके थे।

लोग क्रोधवृत्ति से काम को नष्ट कर सकते हैं। परन्तु क्रोध का उपशमन करना उनके लिए कठिन ही है। वह क्रोध जिनके मन में प्रवेश नहीं कर सकता, जिनसे डरता है; उनके मन में काम कहाँ से कैसे आ सकता है?

भगवान् ने काम से और अप्सराओं से वर माँगने के लिए कहा और अपने ऊरु से उर्वशी जैसी दिव्य अप्सरा को प्रकट कर के इन्द्रलोक के लिए भूषण के रूप में प्रदान किया था। उसका सौन्दर्य, माधुर्य एवं कान्ति निहारकर देवता और अप्सराएँ दोनों हतप्रभ हो गये थे, अतः वे विषयभोग की दृष्टि से जालन्धर की पत्नी के पातिव्रत्य-भङ्ग के लिए प्रयत्न क्यों करते? उन्होंने अकीर्ति या शाप आदि की चिन्ता न करके लोककल्याण ही किया—

"छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह।" (रा० मा० १।१२३)

माता, पिता, गुरु और पति की महिमा शास्त्रों में बहुत वर्णित है। परन्तु वे ही सब यदि श्रीराम-प्राप्ति में बाधक हों तो उन सबका त्याग ही प्रशस्त है—

"जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिये तिन्हहिं कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही।

पितहिं तजे प्रह्लाद विभीषण बन्धु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कान्त व्रज वनितन भे जगमङ्गलकारी॥"

सीताहरण के कारण लंका जलायी गयी। बड़े-बड़े प्रबल राक्षसों का संहार हो गया। कुम्भकर्ण को जगाया गया। उससे सीताहरण आदि की चर्चा की गयी। उसने पहले रावण की इस अनीति के कारण भर्त्सना की। पश्चात् उसने कहा—'जब आप उस पतिव्रता धरित्री-सुता को लाये और वह पतिव्रता होने के कारण वशवर्तिनी नहीं होती थी तो माया द्वारा स्वयं राम का स्वरूप क्यों नहीं धारण कर लिया ?'

रावण ने कहा मैंने वह भी कर के देख लिया। जिस समय मैंने दूर्वादलश्यामल राम का रूप धारण किया तो मुझे ब्रह्मपद भी तुच्छ प्रतीत होने लगा फिर परस्त्रीसङ्ग की वासना का तो प्रसङ्ग ही कैसे उठ सकता था ?

"आनीता भवता यदा पतिरता साध्वी धरित्रीसुता
स्फूर्जद्राक्षसमायया न च कथं रामाङ्गमङ्गीकृतम्।
कर्तुश्चेतसि रामरूपममलं दुर्वादलश्यामलं
तुच्छं ब्रह्मपदं परवधूसङ्गप्रसङ्गः कुतः॥"

फिर स्वयं उन भगवान् में कामवासना से परस्त्री के पातिव्रत्य-भङ्ग में प्रवृत्ति कैसे हो सकती थी ?

जालन्धर दैत्य अपनी पतिव्रता पत्नी के बल के कारण अवध्य था। वह अनेक पतिव्रताओं का पातिव्रत्य-भङ्ग करता था। रुद्रपत्नी रुद्राणी का भी वह हरण करना चाहता था। परन्तु उसका वध वृन्दा के पातिव्रत्य रहते सम्भव ही नहीं था।

यहाँ धर्म ही अधर्म की रक्षा कर रहा था और अधर्म का अभेद्य दुर्ग बन रहा था। अतः जैसे शत्रु-वध के लिए उसके अभेद्य दुर्ग या अभेद्य कवच का विध्वंस आवश्यक होता है वैसे ही जालन्धर-वध के लिए वृन्दा का पातिव्रत-भङ्ग करना आवश्यक था। वही काम भगवान् ने किया। पर वह सब किया जगन्मंगल के लिए, धर्म-रक्षा के लिए एवं लाखों पतिव्रताओं के पातिव्रत की रक्षा के लिए; काम से या स्वार्थ से नहीं।

यह काम दूसरा नहीं कर सकता था, क्योंकि अन्य को वैसा करने का अधिकार नहीं था। हत्या के अपराधी को फाँसी देने का अधिकार राजा या उसके द्वारा अधिकृत व्यक्ति को ही होता है, अन्य को नहीं। अन्य व्यक्ति वैसा करेगा, तो उसको स्वयं भी फाँसी पर लटकना पड़ेगा। राजा के दण्ड से अपराधी पापों से मुक्त हो जाता है, परन्तु औरों के द्वारा वध से अपराधी अपराध से मुक्त भी न होगा और फाँसी देनेवाला भी स्वयं फाँसी पायेगा।

दूसरा कोई वृन्दा का पातिव्रत-भङ्ग करता तो वह भी नरक का भागी होता और वृन्दा का पातिव्रत-पालन निष्फल हो जाता, क्योंकि ईश्वर ब्रह्म भगवान् को छोड़कर सब जीव हैं। निषेधातिक्रमण से वे सभी पाप के भागी होते हैं। ईश्वर विधि-निषेधातीत होता है और वही कर्मफलदाता होता है।

भगवान् ने यद्यपि संसार के हित के लिए अगणित पतिव्रताओं की रक्षा के लिए वृन्दा का पातिव्रत-भंग किया तथापि वृन्दा के पातिव्रत का फल वृन्दा को प्रदान कर दिया, क्योंकि वही कर्मफल दाता हैं।

वस्तुतः पातिव्रतधर्म के द्वारा भी परमेश्वर की प्राप्ति का ही प्रयत्न किया जाता है। जैसे शालग्राम की पूजा से विष्णु-प्राप्ति का ही प्रयत्न किया जाता है एवं जैसे शालग्राम की विष्णुबुद्धि से ही पूजा की जाती है वैसे ही परमपति परमेश्वर की प्राप्ति के लिए नारी अपने पति की उपासना करती है। कन्यादान के अवसर पर संकल्प भी वैसा ही होता है—

"इमां लक्ष्मीरूपां कन्यां विष्णुरूपाय वराय तुभ्यमहं संप्रददे" इस लक्ष्मीरूपा कन्या को मैं विष्णुरूपी वर के लिए प्रदान करता हूँ।

भगवान् ने वृन्दा का पातिव्रत-भङ्ग कर के पातिव्रत का परमफल उसे प्रदान कर दिया अर्थात् उसे परम पति परमेश्वर भगवान् विष्णु की प्राप्ति हो गयी। बड़े बड़े योगीन्द्र मुनीन्द्र जिसकी प्राप्ति के लिए जप, तप, योग, समाधि का अभ्यास करते हैं वही भगवान् वृन्दा की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हुए। छल-छद्म से भी वे उसे प्राप्त करते हैं। भक्तों के लिए भगवान् प्रेम के विषय होते हैं। परन्तु यहाँ तो वृन्दा प्रेम का विषय थी, प्रेम की आस्पद थी। भगवान् तो प्रेम के आश्रय हुए। रहस्य विदित होने पर वृन्दा भगवान् को शाप देती है कि "तुम पाषाण हो जाओ" भगवान् उसके शाप को स्वीकार कर शालग्राम बन जाते हैं। फिर भी वृन्दा को तुलसी के रूप में साथ ही रखते हैं। हजारों पक्वानों के होने पर भी तुलसी-दल के बिना स्वीकार नहीं करते हैं।

वन्दा अपने पति जालन्धर के साथ चिता में जल जाती है, भगवान् की उपेक्षा कर के। फिर भी प्रभु उसके विप्रलम्भजन्य तीव्र ताप में विह्वल होकर उसके चिताभस्म में विलुण्ठित होते रहे। यह एकाङ्गी प्रेम अद्भुत है। भगवान् में भक्त का नहीं किन्तु भक्त में भगवान् का एकाङ्गी प्रेम, यह भक्त परवशता का उदाहरण है।

वस्तुतः वृन्दा भगवान् की ही सदा सर्वदा दिव्य शक्ति लक्ष्मी के समान ही थी। किसी शापादि वश वह जालन्धर की पत्नी बनी थी। उसी स्वाभाविकी प्राचीन भक्तिवशात् भगवान् हठात् छल-छद्म से उसे प्राप्त करते हैं। उसके अधीन सदा के लिए बन जाते हैं। इससे अधिक पातिव्रत का फल क्या होगा? वास्तव में भगवान् आनन्द-समुद्र हैं। जीव उनकी तरङ्ग चेतन अमर सहज सुखराशि हैं। तरङ्ग का जल के साथ स्थिर सम्बन्ध है। एक तरङ्ग का दूसरी तरङ्ग के साथ स्थिर सम्बन्ध नहीं है। पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री आदि के सम्बन्ध बनते बिगड़ते रहते हैं। अतः लौकिक पति-पत्नी का सम्बन्ध अस्थिर है, वही व्यभिचार है। भगवान् का सम्बन्ध ही स्थिर होने से अव्यभिचरित सम्बन्ध है।

जीवात्मा भगवान् से विमुख होकर इतर जीवों पति, पुत्रादि में आसक्त रहता है, तो वही व्यभिचार है। सबसे विमुख होकर भगवान् में अभिमुख होना ही उसका शुद्ध पातिव्रत है। यही गोपाङ्गना-भाव है। पति की काया की छाया बनना ही पातिव्रत है।

तरङ्ग की स्थिति, गति और प्रवृत्ति जल की स्थिति, गति और प्रवृत्ति के पराधीन होती है। प्रतिबिम्ब की स्थिति, गति तथा प्रवृत्ति बिम्ब की स्थिति, गति और प्रवृत्ति के पराधीन होती है। घटाकाश महाकाश के पराधीन होता है। जीवात्मा इसी प्रकार भगवान् की काया की छाया बनकर भगवान् को प्राप्त कर लेता है।

●

कुब्जा-कृष्ण-प्रसङ्ग का रहस्य

जीव का भगवान् के साथ रमण

कुछ लोग कुब्जा के प्रसङ्ग को लेकर श्रीकृष्ण के चरित्र पर आक्षेप करते हैं, परन्तु जिस ग्रन्थ में श्रीकृष्ण का कुब्जा के साथ अङ्गसङ्ग वर्णित है उसी में श्रीकृष्ण को परात्पर ब्रह्म कहा गया है और यह भी कहा गया है कि प्राणीमात्र के कल्याणार्थ निर्गुण निराकार भगवान् का श्रीकृष्णरूप में प्राकट्य हुआ है। अतः उनमें काम, क्रोध, भय और स्नेह से अथवा किसी तरह भी मन लगाने से प्राणी का कल्याण हो सकता है—

"नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतः प्रभोः ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥
कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥"

काम से और भय से जैसे प्राणी तन्मयता को प्राप्त होता है वैसे अन्य उपायों से नहीं ।

"यथा कामाद् भयाद् वापि मर्त्यस्तन्मयतामियात् ।
न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥"

वही वस्तु लोकसम्बन्ध में निन्द्य होने पर भी भगवत्सम्बन्ध से प्रशंसनीय हो जाती है । संसार की तृष्णा निन्द्य है, परन्तु भगवान् के पाने की तृष्णा प्रशंसनीय होती है । संसार की इच्छाएँ त्याज्य होती हैं, भगवत्तत्त्वज्ञान की इच्छा जिज्ञासा यज्ञ, तप, दान आदि से साध्य होती है—

"तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा नाशकेन ।"(बृ०उ० ४।४।२२)

जैसे चिन्तामणि की ओर दीपकबुद्धि से भी प्रवृत्ति होने से चिन्तामणि की ही प्राप्ति होती है, दीपक की नहीं । उसी तरह श्रीकृष्ण परमात्मा में जार (उपपति) बुद्धि से भी प्रवृत्ति होने पर परमेश्वर की ही प्राप्ति होती है, जार की नहीं । लौकिक जार धर्म, पुण्य और परलोक को जलाता है । किन्तु श्रीकृष्ण अविद्या-ग्रन्थि, कर्म-जाल तथा पञ्चकोशों को जलाते हैं । इसी लिए वे भी जार हैं ।

शास्त्रों के अनुसार भगवान् आनन्दसमुद्रतुल्य हैं । जीव सब उनके तरङ्गतुल्य हैं । यही शङ्कराचार्य भी मानते हैं—

"सामुद्रो हि तरङ्ग क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ।" (षट्पदी)
"बारि बीचि जिमि गावहिं बेदा ।" (रा० मा० ७।११०।३)

एक तरङ्ग का तरङ्गान्तरों के साथ सम्बन्ध अस्थिर तथा व्यभिचरित होता है । किन्तु तरङ्गों का समुद्र के साथ सम्बन्ध स्थिर नित्य होता है । वैसे ही पति, पुत्र और पत्नी रूप से जीवों का सम्बन्ध अस्थिर एवं अनित्य ही होता है । किन्तु उनका परमेश्वर के साथ सम्बन्ध ही स्थिर है ।

इस तरह कुब्जा एवं गोपाङ्गनाएँ तथा उनके पति सभी जीव हैं । उनका पारस्परिक सम्बन्ध अस्थिर है । भगवान् का सम्बन्ध ही समुद्र-तरङ्ग के तुल्य नित्य है । अतः कुब्जा आदि का लौकिक पति आदि जीवों का सम्बन्ध ही व्यभिचार है, भगवत्सम्बन्ध ही शुद्ध पातिव्रत है । पति-पत्नी का सम्बन्ध भी वारिवीचि से उपमित है—

"गिरा अर्थ जल बीचि जिमि कहियत भिन्न न भिन्न ।
बन्दहुँ सीता राम पद जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न ॥" (रा० मा० १।१८)

नन्ददासजी के अनुसार गोपाङ्गनाओं के अन्तःकरण, अन्तरात्मा, प्राणों तथा रोम रोम में श्रीकृष्ण इस तरह भरपूर हैं जैसे तरङ्गों में जल भरपूर होता है—"तरङ्गनि वारि ज्यों ।" सम्भोग भी भोक्ता का भोग्य के साथ तादात्म्यापत्ति ही है ।

"सविता गोभी रसं भुङ्क्ते" सविता अपनी किरणों से भूमि के रस का सम्भोग करते हैं । दिव्यदम्पती पति-पत्नी भी प्रेमोद्रेक में व्यवधानशून्य होकर मिलते हैं । हार, भूषण, कञ्चुकी आदि का व्यवधान असह्य होता है । प्रेमोद्रेकजनित रोमाञ्च-व्यवधान भी बाधक प्रतीत होता है । सर्वाधिक व्यवधानराहित्य तरङ्ग और जल में ही है ।

किसी दृष्टि से तो चन्द्र-चन्द्रिका तथा भानु-प्रभा जैसा अव्यवधान अभीष्ट होता है। जैसे गङ्गाजल से भी अन्तरङ्ग उसकी शीतलता, मधुरता एवं पवित्रता का सम्बन्ध होता है। आनन्दसिन्धु की तरङ्ग की अपेक्षा भी उसकी मधुरिमा का सम्बन्ध अन्तरङ्ग होता है। उसी तरह आनन्दसुधासिन्धु कृष्ण में तरंगस्थानीया गोपाङ्गनाएँ हैं किन्तु उनके माधुर्यसारसर्वस्व की अधिष्ठात्री श्रीराधा हैं। उनका सम्बन्ध अत्यधिक अन्तरंग है। इस अत्यन्त अभेद में रमण और सम्भोग शब्द का प्रयोग होता है। भारतीय शास्त्रों में इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग मिलते हैं जो कि अश्लील-से प्रतीत होते हैं। गीता में कहा गया है—

"मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। (गीता १४।३)

महद् ब्रह्म प्रकृति मेरी योनि है। इसमें मैं गर्भाधान करता हूँ। यहाँ प्रकृति में ब्रह्मरूपी बिम्ब का प्रतिबिम्ब डालना ही गर्भाधान है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लेख है कि जैसे कोई प्रियतमा भार्या का आलिंगन करके आनन्दोद्रेक में आन्तर और बाह्य सभी प्रपञ्चों को भूल जाता है वैसे ही जीवात्मा सुषुप्तिकाल में परमात्मा से मिलकर आनन्दोद्रेक में सब कुछ भूल जाता है—

"तद्यथा प्रियया स्त्रिया सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तर-
मेवमेवायं पुरुषः प्राज्ञेनात्मना सम्परिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्॥" (बृ०उ० ४।३।२१)

"सता सोम्य तदा सम्पन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते। (छा० उ० ६।८।१)

कबीरदास तक सातवें आसमान में अपने निर्गुण पिया की सेज की कल्पना कर वहाँ पहुँचने की तैयारी करते हैं। उसी प्रकार जीव और ब्रह्म के सम्मिलन में नायिका तथा नायक के सम्मिलन और रमण का आरोप किया जाता है। इसमें भी स्वसुखसुखित्व की भावना के कारण कुब्जा की साधारणी रति मणि तुल्य दुर्लभ होती है।

रुक्मिणी प्रभृति की समञ्जसा रति में तत्सुखसुखित्व एवं स्वसुखसुखित्व का समन्वय होने से वह चिन्तामणि के तुल्य अतिदुर्लभ है। गोपाङ्गनाओं की रति शुद्ध तत्सुखसुखित्व की होने से वह समर्था रति कौस्तुभमणि के तुल्य अनन्यलभ्य है।

संसार से विमुख होकर भगवत्सम्मिलन-सुख प्राप्त करना योगीन्द्र-मुनीन्द्रों का लक्ष्य होता है। परन्तु वहाँ भी "निःसंगः प्रज्ञया भवेत्" के अनुसार सुखास्वादन की आसक्ति का त्याग विवक्षित होता है। इसे पर वैराग्य कहा जा सकता है। दृष्ट एवं आनुश्रविक विविध विषयों से वितृष्णता अपर वैराग्य है। परन्तु गुणों से भी शान्ति, सत्त्वपुरुषान्यताख्याति आदि दिव्य सात्त्विक भावों से भी निःस्पृहता होनी 'पर वैराग्य' है। ब्रह्मरसास्वादन में भी स्वसुख के लिए नहीं, किन्तु कृष्णसुख के लिए ही सर्वचेष्टा तत्सुखसुखित्व है।

इसी प्रकार अन्यपरा श्रुतियाँ परकीया मानी जाती हैं। ब्रह्मपरा स्वकीया मानी जाती है।

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।" (क० उ० २।१५)

के अनुसार सभी वेद-मन्त्रों का महातात्पर्य ब्रह्म में ही है, फिर भी इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि के भी सूक्त हैं। वे इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओं का भी प्रतिपादन करते हैं। परन्तु इसका अभिप्राय यही है कि उन उन मन्त्रों और सूक्तों का अवान्तर तात्पर्य उन उन देवताओं में होने पर भी उनका मुख्य तात्पर्य ब्रह्म में ही है।

वस्तुतः जैसे किसी पादुका, पाषाण या प्रासाद कहीं पर भी पादविन्यास भूमण्डल पर ही पादविन्यास है, क्योंकि वे सभी भूमण्डल के ही विकार हैं। उसी तरह इन्द्र, वरुण, अग्नि किसी का भी प्रतिपादन ब्रह्म का ही

प्रतिपादन है, क्योंकि वे सभी ब्रह्म के ही विकार हैं। परन्तु 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' (तै० उ० २।१), 'विज्ञानं ब्रह्म' (तै० उ० ३।५), 'आनन्दो ब्रह्म' (तै० उ० ३।६) इत्यादि श्रुतियाँ अन्यसम्बन्ध के बिना शुद्धरूप से ब्रह्मसम्बद्ध ही हैं। प्रथम कोटि की श्रुतियाँ अन्यपूर्विका हैं, द्वितीय कोटि की अनन्यपूर्विका हैं। अन्यपूर्विका श्रुतियाँ कृष्ण की परकीया हैं तथा अनन्यपूर्विका स्वकीया हैं। उनके पति उनके प्रतिपाद्य इन्द्र, वरुण आदि भिन्न भिन्न देव हैं।

रघुवंश महाकाव्य में शिव एवं पार्वती को वाक् और अर्थ के समान परस्पर संपृक्त माना है—

"वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥" (रघुवं० १।१)

इस प्रकार के सम्बन्ध को ही 'गिरा अर्थ जल वीचि सम' इस पद्य में तुलसीदासजी ने भी व्यक्त किया है। ऐसे अभेद, तादात्म्य आदि सम्बन्धों को ही रमण और सम्भोग आदि संज्ञा दे दी जाती है।

विद्वानों की दृष्टि में 'स्वातन्त्र्यं पुंस्त्वम्' और 'पारतन्त्र्यं स्त्रीत्वम्' का सिद्धान्त है। सभी जीवों में परतन्त्रतारूप स्त्रीत्व स्वाभाविक है। स्वातन्त्र्य तो केवल एक परमेश्वर में ही है। इस दृष्टि से सभी जीव परतन्त्र होने से स्त्री ही हैं। स्वतन्त्र होने से पुरुष तो एकमात्र श्रीकृष्ण भगवान् ही हैं। इसी लिए गोपाङ्गना-भाव की प्राप्ति ही जीव के कल्याण का मार्ग है।

जैसे पतिव्रता पति की काया की छाया बन जाती है। पति के मन में मन, हृदय में हृदय एवं आत्मा में आत्मा मिलाकर तदधीन स्थिति, गति और प्रवृत्ति वाली हो जाती है। इसी तरह जीव भी यदि भगवान् की स्थिति, गति और प्रवृत्ति वाला हो तो उसकी स्थिति ही गोपाङ्गना-भाव है। इसी दृष्टि का चित्रण करते समय स्त्री-पुरुष के रमण का रूपक दे दिया जाता है। इसी दृष्टि से कुब्जा और कृष्ण की कथा है। केवल बाहुपाश और स्तन के भीतर ही नहीं, किन्तु अपने अन्तःकरण, अन्तरात्मा और रोम-रोम में श्रीकृष्ण को स्थापित करना ही जीव का भगवान् के साथ रमण है।

हरिश्चन्द्र

हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में भी लेखक का दोषारोपण निरर्थक ही है। हरिश्चन्द्र ने वरुण से कहा था कि यदि आपकी कृपा से मेरे पुत्र हो तो उसके द्वारा मैं आपका यजन करूँगा।

रोहिताश्व पुत्र उत्पन्न हुआ। वरुण ने कहा "पुत्र हो गया अब उससे यजन करो।" हरिश्चन्द्र ने कहा "अभी तो नामकरण नहीं हुआ, नामकरण के बाद यजन करेंगे।" नामकरण के बाद फिर वरुण आये। तब कहा कि अभी दन्तहीन है। दन्त होने के अनन्तर यजन करेंगे इत्यादि। युवक होते ही रोहिताश्व आखेट के प्रसङ्ग से अरण्य चला गया। वहाँ से कई बार नगर आने को प्रस्तुत हुआ, परन्तु इन्द्र उसे विचरण का ही उपदेश करके रोकते रहे।

अन्त में रोहिताश्व के पिता हरिश्चन्द्र जलोदर रोग से ग्रस्त हो गये। वरुण के प्रति की गयी प्रतिज्ञाओं को पूर्ण करने के लिए शुनःशेप को खरीद कर वरुण का यजन किया।

विश्वामित्र के उपदेश से शुनःशेप भी विभिन्न सूक्तों से वरुणादि की स्तुति कर मुक्त हो गया। इस ढंग की कथा ऐतरेयब्राह्मण आदि ब्राह्मणग्रन्थों में है। परन्तु अनादि जीव के अनादि जीवन में कौन-कौन घटनाएँ होती हैं। इसका ठिकाना नहीं। कभी का डाकू वाल्मीकि कालान्तर में महर्षि वाल्मीकि हो सकता है, हरिश्चन्द्र की पूर्वोक्त घटनाएँ तो कोई बहुत अनुचित नहीं हैं। अपने शिशु के बचाने की दृष्टि से कालातिक्रमण का प्रयत्न अनुचित

नहीं कहा जा सकता है। फिर 'अन्ते या मतिः सा गतिः', 'अन्त भला सो भला' के अनुसार हरिश्चन्द्र की अन्तिम स्थिति की सत्यनिष्ठा सर्वोत्कृष्ट रही। उन्होंने सत्यरक्षा के लिए राज्य त्याग दिया। पत्नी और पुत्र का विक्रय कर अपना भी विक्रय किया और डोम के गुलाम बनकर सत्यनिष्ठा से उसकी नौकरी बजायी।

मृत पुत्र के दहनादि के लिए अपेक्षित टैक्स वसूल करते समय पत्नी और पुत्र को पहचान लेने पर भी वे कर्तव्य पालन से नहीं हटे। अनादि काल में एक बार की ब्रह्मात्मनिष्ठा निर्णयरूप में आदरणीय होती है वैसे ही अन्तिम धर्मनिष्ठा, सत्यनिष्ठा प्राणी के जीवन को अलौकिक कर देती है।

विश्वामित्र

इसी प्रकार श्रीविश्वामित्र के सम्बन्ध में लेखक ने बहुत सी अनर्गल कल्पनाएँ की हैं। यहाँ भी भले उनके प्राक्कालिक जीवन में अनेक उग्रताएँ भी रही हों। परन्तु अन्तिम स्थिति में वे महातपा ब्रह्मविद्वरिष्ठ हो गये। महासिद्ध महर्षि वसिष्ठ ने भी उन्हें ब्रह्मर्षि कहा और वे महाभाष्य के अनुसार स्वयं ही नहीं, किन्तु अपने पिता, पितामह, प्रपितामह आदि के सहित ब्रह्मर्षि हो गये। सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण दोनों ने उनके शिष्य होकर पाद-संवाहनादि सेवाएँ कीं।

वसिष्ठ

श्रीवसिष्ठ के सम्बन्ध में भी लेखक ने और भी अनेक लोगों की तरह विविध दुष्कल्पनाएँ की हैं। परन्तु वसिष्ठ साक्षात् ब्रह्मा के पुत्र थे। निमि के शाप से देहपरित्याग कर मैत्रावरुण के तेज से महर्षि अगस्त्य के समान वे वसतीवरी यज्ञपात्र से उत्पन्न होकर कुम्भज भी कहलाये।

किसी दिव्य अप्सरा के दर्शनप्रसङ्ग से ही मित्र एवं वरुण के तेज का प्राकट्य हुआ था। इतने मात्र से उन्हें वेश्यापुत्र कहना सर्वथा उपेक्षणीय है।

सामान्यतया मनुष्यत्व, पशुत्व आदि जातियों में देह के रहते परिवर्तन नहीं हो सकता। इसी लिए पशु, पक्षी आदि जातियाँ जैसे उसी देह में बदलतीं नहीं उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि जातियाँ देह के रहते बदलती नहीं हैं। परन्तु जैसे विशेष तप या वर या शाप से राजा नहुष अजगर हो गया, नन्दी देवता हो गये, उसी प्रकार तपस्या विशेष से क्षत्रिय आदि ब्राह्मण हो सकते हैं।

प्रकृति में सब शक्तियाँ विद्यमान होती हैं। सिद्धों के सङ्कल्पविशेष से प्रकृति का आवरण भेद होकर प्रकृत्यापूर से जात्यन्तर परिणाम हो सकता है। पूर्वजात्यारम्भक परमाणुओं का विघटन होकर अभीष्ट जात्यारम्भक परमाणुओं के सङ्घटन द्वारा अभीष्ट जात्यन्तर का निर्माण हो जाता है।

विश्वामित्र स्वयं तो महर्षि ऋचीक के संकल्पित चरु एवं विधानों के द्वारा ब्राह्मतेज से पूर्ण थे ही। उन्हें तपस्या द्वारा केवल क्षेत्रान्तरजनित जात्यन्तरांश की निवृत्ति ही करनी पड़ी थी। परन्तु उनके पिता, पितामह, प्रपितामह आदि तो शुद्ध त्रत्रिय थे। तथापि विश्वामित्र के संकल्प विशेष से उनमें प्रकृत्यापूर द्वारा ब्रह्मर्षित्व सम्पन्न हुआ था।

महर्षि वसिष्ठ तो ब्रह्मर्षि-पुत्र ही थे। देहान्तर से वे शुद्ध मैत्रावरुण थे। अतः उनके सम्बन्ध किसी भी आक्षेप को अवकाश नहीं है। वे उच्चकोटि के महातपा, ब्रह्मविद्वरिष्ठ, ब्राह्मतेज से सम्पन्न, परमसिद्ध थे। सूर्यवंश एवं सूर्यवंशावतंस श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के गुरु थे। जिनकी महिमा सर्वविदित है।

दाक्षायणी

इसी तरह सती दाक्षायणी के सम्बन्ध में बहुत कुछ अनर्गल प्रलाप है। वस्तुतः—

"भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्॥" (रा० मा० १। मङ्गलाचरण २)

के अनुसार भवानी और शङ्कर श्रद्धा और विश्वास रूप हैं। श्रद्धा और विश्वास के बिना सिद्ध लोग भी स्वान्तस्थ परमेश्वर को भी नहीं पहचानते। भवानी और शङ्कर दोनों अभिन्नरूप हैं।

"वागार्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥" (रघुवं० १।१)

वाक् एवं अर्थ के समान दोनों सदा संपृक्त रहनेवाले हैं। जगत् के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर की वाग् एवं अर्थ की प्रतिपत्ति के लिए हम वन्दना करते हैं। जैसे शालग्राम की विष्णु-बुद्धि से पूजा की जाती है वैसे ही वाग् एवं अर्थ में पार्वती तथा परमेश्वर बुद्धि की जाती है। उसी तरह श्रद्धा और विश्वास को भवानी एवं शङ्कररूप कहा है। यद्यपि श्रद्धा एवं विश्वास दोनों अन्तःकरण के वृत्तिरूप हैं। वस्तुतस्तु शिव और विष्णु दोनों एक ही हैं। यह सब लीला शिव की महिमा के प्रख्यापनार्थ ही है।

ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार विष्णु के दसों अवतार भगवती के दस नखों से ही प्रकट होते हैं—"कराङ्गुलिनखोत्पन्ना नारायणदशाकृतिः।" जैसे विष्णु शिव की उपासना करके उनकी शरणागति ग्रहण कर उनके सम्बन्ध में मोह, अज्ञान और संशय प्रकट कर उनका माहात्म्य ख्यापन करते हैं वैसे ही भवानी और शङ्कर दोनों ही राम की महिमा का प्रख्यापन करने के लिए उनकी उपासना करते हैं।

वस्तुतः सती ही पार्वती हैं। वे अनन्त ब्रह्माण्डों की जननी परब्रह्मस्वरूपिणी हैं। उनमें अज्ञान, संशय, मोह और भ्रम की कल्पना नहीं की जा सकती है। जैसे राम ने कहा—

"आत्मानं मानुषं मन्ये जातं दशरथात्मजम्।" (वा० रा० ६।११९।११)

मैं अपने को मनुष्य मानता हूँ। यह सब जैसे लीलामात्र है वैसे ही सती का मोह भी। दाक्षायणी इतनी शिवभक्त थी कि वे शिव का अपमान नहीं सह सकीं। बल्कि उन्होंने अपने शरीर को इसी लिए त्याग दिया कि वह शिवद्रोही दक्ष के शुक्र से सम्भूत था।

वस्तुतः सती एवं पार्वती दोनों ही एक तत्त्व हैं। सती में न कुतर्क था और न संशय ही था। उन्होंने तो श्रीराम का लोकोत्तर माहात्म्य प्रकट करने के लिए मोह का रूपक उपस्थित किया था। श्रीराम ने जैसे अज्ञान और मोह का रूपक उपस्थित कर के अगस्त्यजी से शिव का माहात्म्य और भक्ति सीखी वैसे ही प्रकृत में भी समझना चाहिये।

ब्रह्मा और विष्णु दोनों ही ज्योतिर्लिङ्गमय भगवान् शिव का ओर-छोर जानने के लिए हजारों वर्ष तक भटकते रहे, अन्त नहीं पा सके। यह सब लीलामात्र है। संशय आदि सब श्रीरामकथा की भूमिका मात्र हैं। तभी तो सीताजी भगवती की स्तुति करती हुई उन्हें परब्रह्मरूपिणी ही कहती हैं—

"जय जय गिरिवरराजकिशोरी। जय महेशमुखचन्द चकोरी॥
जय गजबदन षडानन माता। जगतजननि दामिनिदुति गाता॥
भव भव विभव पराभव कारिनि। विश्वविमोहिनि स्वबशबिहारिनि॥
नहि तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव बेद नहिं जाना॥"(रा०मा० १।२३४।३,४)

श्रुति और सूत्रों के अनुसार विश्वप्रपञ्च का उत्पादक, पालक और संहारक ही ब्रह्म होता है। वही आदि, मध्य और अवसान से रहित होता है।

मानस में कहा गया है कि श्रीदशरथ और जनक के समान किसी ने शिव की आराधना नहीं की थी। इनके समान किसी ने फल नहीं साधा अर्थात् शिव की आराधना के प्रभाव से ही इनको सीता और राम की प्राप्ति हुई है—

"इन सम काहु न शिव आराधे। काहु न इन समान फल साधे॥" (रा०मा० १।३०७।१)

भुशुण्डिरामायण के अनुसार भी श्रीसीता-राम की सभी लीलाओं में पार्वती-परमेश्वर का ही हाथ रहता है। श्रीसहजानन्दिनी की जन्मजात जड़ता, मूकता, भावमूर्च्छा आदि के निवारण के लिए श्रीराम की प्रेरणा से शिवजी ही जाकर एकान्त में दिव्य स्तुतियों द्वारा उन्हें प्रबुद्ध एवं सचेष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

विवाहोत्तर पुनरपि जाड्यावस्थापन्न श्रीसहजानन्दिनी की स्वस्थता के लिए बटुवेषधारी श्रीराम कामेश्वर शिव की उपासना में उन्हें प्रवृत्त करते हैं और स्वयं आचार्य होकर उनसे श्रीशिव की आराधना सम्पन्न कराते हैं।

गोपकन्याओं का अभीष्ट सिद्ध करने के लिए श्रीराम ने शिवजी का मासपर्यन्त व्रत करके उन्हें प्रसन्न कर मार्गप्रदर्शन प्राप्त किया।

कहा जाता है कि "मानस के आचार्य अपने सिद्धान्त के समर्थन में वैदिक परम्परा का ही उल्लेख करते हैं। मानस के परमाराध्य भगवान् राम भी अपने वाक्य की पुष्टि के लिए वेद की दुहाई देते हैं। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे वेद, पुराणों की परम्परा की स्वीकृति से उत्पन्न समस्याओं से परिचित न रहे हों। वेद, पुराणों के लिए समुद्र की उपमा देकर जहाँ वे उनकी अगाधता और गम्भीरता की ओर इंगित करते हैं। वहीं साधारण व्यक्ति के लिए उनकी अगम्यता का भी परिचय देते हैं।

मेघ यद्यपि समुद्र से ही जल ग्रहण करता है। किन्तु उस जल के परिष्कृत होने पर यह विश्वास करना भी कठिन हो जाता है कि यह जल खारेपन से भरे समुद्र का ही है। कई बार आलोचकों ने गोस्वामीजी पर यह आरोप लगाया कि वे जो कुछ वेद के नाम पर कहते हैं। वह वेदों में उपलब्ध नहीं है। ऐसे आरोपों के सन्दर्भ में—

"वेद पुराण उदधि घन साधू।" (रा० मा० १।३५।२)

इस पङ्क्ति का स्मरण आता है। बेचारा आलोचक उसी व्यक्ति की भाँति है जो समुद्र में स्नान कर चुका है। उसके जल का स्वाद चख चुका है। किन्तु जब उससे कहा गया कि मेघ की वर्षा से प्राप्त जल भी समुद्र का ही है। तब उसके लिए इसपर विश्वास करना असम्भव हो गया, क्योंकि आकृति, प्रकृति और स्वाद किसी भी दृष्टि से उसे समुद्र के जल और मेघ के जल में सादृश्य की अनुभूति नहीं होती। परम्परा का तात्पर्य किसी सिद्धान्त को यदि शब्दशः स्वीकार करना हो तो इस प्रकार की परम्परावादिता गोस्वामीजी में नहीं है। इसे निःसंकोच मानूंगा। परम्परा के प्रति ऐसा आग्रह जड़ता ही है। परम्परावादियों के इस दुराग्रह से तुलसीदास परिचित थे।

"श्रुति पुरान बहु कहहिं उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥" (रा०मा० ७।११६।३)

इस पङ्क्ति से उनकी इसी दृष्टि का परिचय मिलता है।

वेद और पुराणों ने मनुष्य को बन्धनमुक्त करने के लिए अनेक उपाय बताये हैं। किन्तु व्यक्ति उनसे छूटने के स्थान पर अधिकाधिक उलझता ही गया। यह एक ऐसा यथार्थ सत्य है जिसका अनुभव समाज में पद पद पर होता है। जहाँ परम्परा के नाम पर स्थिरता होगी वहाँ जड़ता और अस्वस्थता को छोड़कर और आ ही क्या सकता है? गोस्वामीजी की परम्परावादिता उस नदी की भाँति है जो अपने मूल स्रोत से कभी भी विच्छिन्न नहीं होती, फिर भी उसमें प्रतिक्षण नूतन जल प्रवाहित होता है। अगणित वर्षों से प्रवाहित होनेवाली गंगा में स्नान करते

हुए व्यक्तियों को यह अनुभव होता है कि वे उसी जल में स्नान कर रहे हैं जिसमें उनके हजारों पुरुषों ने स्नान किया था। अपने आप में यह सत्य होते हुए भी शब्दशः यथार्थ नहीं है। एक सरोवर का जल कई वर्षों तक यह तो दावा कर सकता है कि वह सच्चा परम्परावादी है, क्योंकि उसका जल स्थिर है। किन्तु यही स्थिरता उसमें सड़न उत्पन्न कर देती है। जिसे देखकर न उसमें स्नान करने का मन होगा और न पीने का ही। इन दोनों नियमों का पालन करनेवाले सरोवर के समान घोर परम्परावादी व्यक्ति ही हो सकते हैं। दूसरी ओर स्थिरता का एक प्रतीक समुद्र भी है। अगणित युगों से समुद्र स्थिर है। उसमें अगाध जल विद्यमान है। अतः उसमें मलिनता का वैसा भय नहीं है जैसा कि सरोवर में। किन्तु उसका जल पीने योग्य बनाने की प्रक्रिया का पण्डित तो मेघ ही है।

गोस्वामीजी सन्तों की तुलना मेघ से करते हैं। तब उनका तात्पर्य यही है कि भले ही वेद, पुराण परम प्रमाण हैं। पर जनसमाज को सन्त के माध्यम से ही उनके सच्चे अर्थ का ज्ञान प्राप्त होता है।"

कहना न होगा कि उक्त कथन सुधारवाद के भूत से ही प्रेरित है। यही तो आधुनिक सुधारक भी कहते हैं कि हम जो कुछ भी कह रहे हैं वह वेदादि शास्त्रों का ही तात्पर्य है। कबीर आदि सन्त तो और आगे बढ़ कर कहते हैं कि हम वेद से भी आगे की बात कहते हैं। कोई भी व्यक्ति सन्त का बाना धारण कर के वेदविरुद्ध बात भी वेद के नाम पर कह सकता है। यदि उससे उसका आधारभूत वैदिक प्रमाण पूछा जाय तो वही आपका उत्तर सुना देगा। यह तो वेदों का सार है शब्दशः वेद नहीं है।

जैन और बौद्ध भी यही कह सकते हैं कि वेदों का सार और वेदों से भी उच्च सिद्धान्त ही हमारा सिद्धान्त है। अर्थात् यदि शब्दों को देखने की बात न हो तो वेदविरुद्ध बात भी वेद के नाम पर कही जा सकती है। जैसे समुद्र के जल की आकृति, प्रकृति और स्वाद से मेघ का जल विसदृश होने पर भी मेघ-जल समुद्र का ही है। उसी तरह हमारी बात भी वेद की आकृति, प्रकृति और स्वाद से विसदृश होने पर भी वेदसम्मत ही है। क्या यह उत्तर ठीक होगा? क्या किसी तत्त्व का निर्णय हो सकेगा?

परस्परविरोधी वादी और प्रतिवादी वेद प्रमाण पूछनेवाले को समुद्रजल के स्वाद से परिचित व्यक्ति का ही उदाहरण देकर समाधान कर देगा? किन्तु स्थिति इसके विपरीत है। द्वैतवादी, अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी तथा द्वैताद्वैतवादी अपनी अपनी बातों को प्रमाणित करने के लिए वेद प्रमाण उपस्थित करते हैं। उसपर विचार किया जाता है कि क्या इस वैदिक वाक्य के प्रकृति, प्रत्यय, प्रकरण और उपक्रम, उपसंहार आदि के आधार पर विवक्षित अर्थ सिद्ध होता है या नहीं? तात्पर्य का निर्धारण भी मनमानी से नहीं होता।

उपक्रम एवं उपसंहार के शब्दार्थों की एकरूपता, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति इन षड्विध लिङ्गों के आधार पर ही तात्पर्य का निर्धारण होता है, मनमाने ढंग से नहीं।

आधुनिक लोग भी कहते हैं कि वेद की बुद्धिसंगत बातों को हम मानते हैं पर शब्दशः मानने को तैयार नहीं। क्या तुलसीदास भी ऐसे ही सुधारक थे? किन्तु वे तो वेद को तर्क से दूषित करनेवाले को कोटि-कोटि कल्पभर नरक में पड़ने की बात कहते हैं। किसी भी दृष्टान्त की दार्ष्टान्तिक में आंशिक ही तुल्यता होती है। जब "पर्वतो वह्निमान् धूमात्" इस अनुमान में महानस का दृष्टान्त दिया जाता है तब धूम और वह्नि का सम्बन्धमात्र ही ग्राह्य होता है। भले महानस (रसोईघर) में रोटी, दाल और चावल पकाया जाता है और पर्वत में वैसा नहीं होता है तो भी धूम और वह्नि का सम्बन्ध उभयत्र तुल्य ही है। उसी तरह वेद को समुद्र के समान कहने का इतना ही अर्थ है कि वेद समुद्र के समान गम्भीर एवं अगाध है और सर्वसाधारण के लिए अगम्य है।

जैसे समुद्र-जल स्वयं समुद्र से ग्रहण करने से खारा ही जल मिलता है। परन्तु वही जल मेघ के द्वारा प्राप्त होता है तो मधुर होता है। उसी तरह मनमानी वेद को पढ़कर उसका मनमानी अर्थ ग्रहण करने पर वह खारे जल के समान ही अग्राह्य होगा। जैसे मेघ के द्वारा आनीत वही जल मधुर होता है, उसी तरह गुरु-परम्परा से या आचार्य-परम्परा से अधीत वेद एवं वेदार्थ ही ग्राह्य एवं उपयोगी होगा।

यह कथन भी मनमानी नहीं है, किन्तु "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" (शत० ब्रा० ११।५।६) इस विधि के आधार पर ऐसा अर्थ विदित होता है। अत्यन्त अप्राप्त की ही विधि होती है। प्राप्त की विधि में अज्ञातज्ञापकत्व न होने से प्रामाण्य नहीं होता, क्योंकि अनधिगत अबाधित अर्थज्ञान ही प्रमा कही जाती है उसके असाधारण कारण को ही प्रामाण कहा जाता है। अध्येतव्य अर्थ के ज्ञान में अध्ययन की हेतुता लोकसिद्ध है। "स्वाध्यायोऽध्येतव्यः" (शत० ब्रा० ११।५।६) यह नियमविधि होने से ही सार्थक हो सकती है।

गुरु-परम्परा से ही वेदों का अध्ययन करना चाहिये मनमाने तौर से नहीं। वेद को अनुश्रव कहते हैं। जिसका अर्थ ही यह है कि वे गुरु-परम्परा से ही सुने जाते हैं। उनका निर्माण नहीं होता। इसी प्रकार अर्थज्ञान भी पारम्पर्य से ही प्राप्त करना चाहिये इसके लिये भी प्रमाण है—"आचार्यवान् पुरुषो वेद" (छा० उ० ६।१४।२), "आचार्याद् ध्येव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति" (छा० उ० ४।९।३), "तद्विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्" (मुण्ड० उ० १।२।१२) अर्थात् आचार्य-परम्परा से प्राप्त विद्या ही फलदायिनी होती है। ब्रह्म के जानने के लिए समित्पाणि होकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु का ही अभिगमन करना चाहिये।

आजकल पुस्तकें सुलभ हैं। अनेक टीकाएँ एवं तर्जुमे भी हैं। उन्हीं के आधार पर लोग वेद और पुराण पढ़ते हैं। इसी लिए समुद्र के खारे पानी के समान ही उनको वेदार्थ सर्वथा अग्राह्य ही प्रतीत होता है। यही आज की नास्तिकता का मुख्य कारण है। उक्त विचारक महाशय भी उसी कोटि के हैं।

धर्म और ब्रह्म वेदैकसमधिगम्य हैं। अन्य प्रमाणों से उनका बोध होता ही नहीं। इसी लिए भगवान् शिवजी, राम तथा अन्य समस्त आस्तिक आचार्य तथा गोस्वामी भी धर्म और ब्रह्म के लिए पद पद पर वेद और पुराणों की दुहाई देते हैं।

वेदपरम्परा किसी नदी या गङ्गा नदी के समान नहीं मान्य है। गङ्गा में नित्यनूतन जल का प्रवाह उचित है, क्योंकि गोमुख से लेकर गंगासागर तक भगीरथरथखातावच्छिन्न अविच्छिन्न जलप्रवाह का ही नाम गङ्गा है। उस प्रवाह में इतर नदियों तथा झरनों की तो बात ही क्या रथ्योदक भी गङ्गाप्रवाह में पड़कर गङ्गा हो जाता है। "रथ्योदकमिव गङ्गाप्रवाहपातः पवित्रयति।" (भामती) इसी लिए उस प्रवाह में स्नान करनेवाला यह ठीक ही अनुभव करता है कि पूर्वजों ने जिस गङ्गा में स्नान किया था उसी में हम भी स्नान कर रहे हैं।

उक्त परिभाषा के अनुसार भगीरथरथखातावच्छिन्न जलप्रवाह ही गङ्गा है। उसी का माहात्म्य श्रुति, स्मृति और पुराणों में वर्णित है। वैदिक परम्परा तो गङ्गा के तुल्य तभी मानी जा सकती है जब गङ्गा में जैसे विभिन्न झरनों, नदियों तथा रथ्याओं के उदक मिलकर गङ्गा हो जाते हैं वैसे ही विभिन्न देश और काल के नये नये शब्द एवं नये अर्थ वैदिक परम्परा में मिलकर वेद ही हो जाते, परन्तु वेद के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। वेद तो नियत वर्णों की नियत वर्णानुपूर्वी को ही कहते हैं। उनमें तो एक वर्ण और स्वर का व्यत्यास हो जाने पर वेदत्व ही नहीं रहता।

'अग्निर्मूर्धा' वेद है **'मूर्धा अग्निः'** वेद नहीं है। ज्यों के त्यों शब्दों में भी पौर्वापर्य में परिवर्तन होने से

ही वेदत्व मिट जाता है। इतर ग्रन्थों में मूलपाठ की रक्षा पर पूर्ण ध्यान रखा जाता है। वेदों की आनुपूर्वी किसी कल्प में नहीं बदलती है। ईश्वर भी आनुपूर्वी बदलने में स्वतन्त्र नहीं होता। यही वेदों की अपौरुषेयता एवं नित्यता है।

अनादि काल से शिष्य अपने अपने आचार्यों द्वारा उच्चारित आनुपूर्वी का ही अनुकरण करते हुए समान आनुपूर्वी का ही अनुकरण करते हुए समान आनुपूर्वी का उच्चारण करते हैं। ईश्वर भी सृष्टि के समय पूर्वकल्प को वेदानुपूर्वी का स्मरण कर के वैसी आनुपूर्वी का उपदेश करते हैं। नवीन आनुपूर्वी का नहीं। "यत्नतः प्रतिषेध्या नः पुरुषाणां स्वतन्त्रता।" यदि उनमें नये नये शब्द नये नये अर्थ मिलते रहें। तब वे भी अपौरुषेय एवं अनादि नहीं रह सकते, फिर तो यह शङ्का बनी रहेगी कि किन्हीं भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषों से दूषित पुरुषों के भी शब्द और वाक्य वेदों में मिल गये होंगे। अतः वेद अपौरुषेय या ईश्वरवाक्य ही हैं यह नहीं कहा जा सकता।

इतिहास और पुराण वैसे (वेदों जैसे) अनादि और अपौरुषेय नहीं हैं, किन्तु वे प्रत्येक कल्प में सर्वज्ञ-कल्प महर्षियों के द्वारा वेदों के अनुसार निर्मित होते हैं। परन्तु सृष्टि से लेकर प्रलयपर्यन्त उनकी आनुपूर्वी एक सी ही रहती है। उनमें भी नदी के समान नये नये शब्द और मिलते जायँ तो वे भी आर्ष वचन के रूप में प्रमाण नहीं हो सकते। इतना ही क्यों मानस के ही शुद्ध पाठ की रक्षा का प्रयास यही सिद्ध करता है कि किसी भी ग्रन्थ में यदि नये नये शब्द और अर्थ मिलते रहेंगे तो वह प्रमाण रूप में आदरणीय नहीं हो सकेगा। अन्यथा विविध क्षेपकों सहित मानस भी गङ्गादि नदी के समान मानस ही माना जाना चाहिये। यदि नदी के समान उसमें नये नये शब्दों एवं विचारों का सन्निवेश माना जायगा तो वैदिक या आर्ष वचनों की शक्ति और चमत्कृति समाप्त हो जायेगी।

इतिहास और पुराणों की शब्दानुपूर्वी में परिवर्तन होने पर भी उनके विचार और सिद्धान्त अनादि ही हैं। किन्हीं भी ग्रन्थों में नदी के समान नये विचारों का सन्निवेश मानने पर तो उनका स्वरूप और प्रामाण्य सर्वथा भंग ही हो जायगा। प्रकृत में तो जैसे ईश्वर आत्मा नित्य है, स्थिर है उसी प्रकार ईश्वर के नित्यविज्ञान में स्थित वेदवाणी भी नित्य है।

जैसे सूर्य और अग्नि एकरस होकर ही संसार का प्रकाशन करते हैं वैसे ही नित्य स्थिर वेद ही स्थिर सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं। स्थिरता होने से सरोवर के समान सड़न आ जायगी एवं सरोवरजल के समान वेद अग्राह्य हो जायेंगे इत्यादि कल्पना निराधार ही है।

समुद्र के स्थिर रहने पर भी जैसे अगाधता के कारण उसमें सड़न नहीं होती है, वैसे ही वैदिक शब्द और अर्थ अपौरुषेय तथा ईश्वरीय होने से वे सदा अगाध एवं निर्विकार ही रहते हैं। सूर्य कल्पपर्यन्त स्थिर रहने पर भी जैसे निर्विकार रहते हैं, वैसे वेद भी निर्विकार हो रहते हैं। उनकी अस्थिरता ही अशुद्धि एवं विकार का कारण बनेगी। विकार नहीं अपितु घोर विकार अथवा सर्वनाश का भी कारण बन सकती है जैसे सूर्य, समुद्र आदि की अस्थिरता घोर विकार अथवा सर्वनाश का कारण बन जाती है। पर इसे सुधारोन्मादयुक्त कथावाचक कैसे समझें। मानस में भी यदि नये शब्द, नये विचार और सिद्धान्त आ आ कर मिलते रहेंगे तो वह भी अप्रमाण एवं विकृत हो जायेगा।

वैदिकों के यहाँ तो शब्द और अर्थ का औत्पत्तिक नित्य सम्बन्ध माना जाता है। अर्थात् वैदिक शब्द, उनका अर्थ तथा शब्दार्थ का सम्बन्ध तीनों ही नित्य माने जाते हैं और वस्तुतः वे नित्य हैं ही। इन स्थितियों को न जानने से ही अनर्गल प्रलाप चल सकते हैं। वस्तुतः विच्छू का मन्त्र भी न जानना और साँप के बिल में अँगुली डालने के समान वेदों के सम्बन्ध में पूर्वोक्त प्रलाप किये गये हैं।

गोस्वामीजी वैसे परम्परावादी नहीं थे, यह कहना ही जड़ता है। आचार्य-परम्परा से वेद एवं वेदार्थ का ग्रहण न करने से ही वे खारे समुद्र के समान अग्राह्य एवं अनिष्टकारक भी हो सकते हैं। वेदों के ही आधार पर यह सिद्ध है कि किसी भी मन्त्र में एक स्वर के व्यत्यास से वह मन्त्र वाग्वज्र होकर यजमान का ही घातक बन जाता है—

"मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥"

स्वरभेद के कारण 'इन्द्रस्य शत्रुर्घातयिता' यह अभीष्ट तत्पुरुषार्थ न होकर 'इन्द्रशत्रो विवर्धस्व' 'इन्द्रः शत्रुर्घातयिता यस्य' इस बहुव्रीहि के अनुसार अनिष्ट अर्थ होने से ही वृत्र इन्द्र का घातक न बन सका, किन्तु इन्द्र ही उसका घातक हुआ। अतएव

"श्रुति पुराण बहु कहहिं उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥ (रा० मा० ७।११६।३)

इस पंक्ति से उनको श्रुति और पुराणों पर आक्षेप करना अभीष्ट नहीं है। यह तो वेद और पुराणों के विरोधियों के दिमाग का फितूर है। यदि आलोकरूप सहकारी साधन के अभाव में निर्दोष नेत्र से भी रूप का ज्ञान न हो तो इसमें नेत्र प्रमाण का दोष नहीं कहा जा सकता। उसी तरह यदि विवेक, वैराग्य, शम, दमादि साधनचतुष्टय-सम्पत्तिरूप साधन के बिना वेद-वेदान्तों से ब्रह्मात्मसाक्षात्कार न हो तो इसमें वेदप्रमाण का कोई दोष नहीं है।

कहा जाता है कि "दिन रात रामनाम जपने वालों के आचरण और स्वभाव में परिवर्तन नहीं होता, यह क्या यथार्थ सत्य नहो है ?" परन्तु इसमें भगवन्नाम का क्या दोष है ? इसमें नामापराधराहित्य का अभाव ही कारण है। इसी तरह विवेक, वैराग्यादि साधन न होने से ही वेद और पुराणों के उपाय बतलाने पर भी ग्रन्थि नहीं खुलती उलटे उलझती ही जाती है।

"बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू।" (रा० मा० २।१७६।२)
"जैसे बिनु बिराग संन्यासी॥" (रा० मा० १।२५०।२)

आदि पंक्तिओं से उन्होंने अपना अभिप्राय व्यक्त कर दिया है। उन्होंने भक्ति के लिए वेद और पुराणों को आकर माना है—

"पावन पर्वत बेद पुराना। रामकथा रुचिराकर नाना।
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान बिराग नयन उरगारी॥" (रा० मा० ७।११९।७)

यहाँ भी मर्मी सज्जन और सुमति कुदारी न होने से ही वेद-पुराण पावन-पर्वत, रामकथा भी भक्तिमणि प्रकट नहीं कर सकते। एतावतापि पावन-पर्वत, वेद-पुराण और नाना रामकथा रूप रुचिराकर की कोई न्यूनता नहीं होती। कारण, जब ज्ञान, विरागरूप नयन न हो तो सफलता कैसे मिल सकती है ?

"आस्तिक हिन्दू वेद को परम प्रमाण मानता है। पुराणों को भी वेद का ही विस्तार स्वीकार किया जाता है। श्रीव्यास ने करुणा से प्रेरित होकर वेदों का उपबृंहण किया है। वही पुराण कहलाता है। शब्दशः विचार करने पर यह भी विरोधाभास सत्य ही प्रतीत होता है।

वैदिक मन्त्रों का सर्वाधिक समादृत देवता इन्द्र ही है। उसी को केन्द्रित कर के ऋचाएँ लिखी गयी हैं। उसी की स्तुतियाँ की गयी हैं। यज्ञ में आहुति देकर उससे विविध वस्तुओं की याचना की गयी है। किन्तु पुराणों में पहुँचकर इन्द्र अपनी महिमा खो बैठा है। उसके चरित्र की अनेक त्रुटियों का रहस्योद्घाटन किया गया है। वह दैत्यों से परास्त होता है। अन्त में उनसे त्राण पाने के लिए वह नारायण का आश्रय लेता है।

वेद के मुख्य देवता जहाँ इन्द्र, वरुण और अग्नि हैं वहाँ पुराणों में इनके स्थान में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की प्रतिष्ठा की गयी है। त्रिदेवों में भी ब्रह्मा की महिमा कम हो जाती है। मुख्य पूजा शिव और विष्णु को रह जाती है। पुराणों में उनकी अभिन्नता के प्रतिपादन के साथ कभी कभी उन्हें प्रतिद्वन्द्वी के रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है।

रामचरितमानस में वेदों और पुराणों की महिमा और साक्ष्य का वर्णन करते हुए भी भगवान् राम को ही सर्वोत्कृष्ट पद प्रदान किया है। विष्णु और शिव भी उनके अंश से ही समुद्भूत कहे गये हैं—

"शम्भु विरञ्चि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंश विधि नाना। (रा० मा० १।१४३।३)

स्थूल दृष्टि से देखने पर वेद और पुराण परस्पर विरोधी मत का प्रतिपादन करते हुए प्रतीत होते हैं। तब तीनों के एकत्व का तात्पर्य क्या हो सकता है ?

कई आलोचकों के अनुसार दशरथ, राम, सीता आदि के नाम वेदों में कहीं प्राप्त नहीं होते। वहीं दूसरे विद्वानों ने इनके नाम अनेक ऋचाओं में खोज निकाले हैं। इन खोजों को प्रामाणिक मानने के बाद भी यह तो असंदिग्धरूप से कहा ही जा सकता है कि उन्हें वह गौरवपूर्ण पद नहीं प्राप्त है जो पुराणों अथवा रामचरितमानस में दिया गया है।"

वस्तुतः सारी बिडम्बना वेदों और पुराणों के गुरु-परम्परा से अध्ययन न करने का ही परिणाम है। ठीक ही है मेघ बिना समुद्र का पानी खारा लगता है। आचार्य, गुरु और सन्तों के बिना वेदों का अर्थ और अभिप्राय कैसे समझ में आये ?

यह ठीक है कि वेदों और पुराणों के तात्पर्य को हृदयङ्गम करने के लिए व्यक्ति को अपनी पूर्वाग्रहयुक्त बुद्धि के स्थान पर सन्त का आश्रय लेना चाहिये। परन्तु शब्दप्रामाण्यवादी के लिए तो शब्दशः अर्थग्रहण की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। अतः पुराणों के शब्दों की उपेक्षा कर के मनमानी अर्थग्रहण करना वेदार्थ या पुराणार्थ नहीं ही हो सकता। अतः गुरु, आचार्य या सन्त भी शब्दों के अनुसार ही तात्पर्यार्थ वर्णन करते हैं अन्यथा तात्पर्य वर्णन के लिए पूर्वोक्त रीति से शब्दों के प्रकृति, प्रत्यय, प्रकरण, उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद, उपपत्ति षड्विधलिंग के विचार की आवश्यकता ही क्या है ? फिर सन्त तो विभिन्न सभी सम्प्रदायों में होते हैं। फिर तो उन सन्तों के अनुसार या "बाबावाक्यं प्रमाणम्" के अनुसार भिन्न भिन्न वेदों के तात्पर्य भी होंगे। ऐसी स्थिति में— "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" (ब्रह्मसू० १।१।१)। विचार-पूर्वोत्तरमीमांसा निरर्थक ही हो जायँगी। विचारविनिमय सम्बन्धी आचार्यों के महान् ग्रन्थ भी निरर्थक हो जायँगे। फिर तो विचार बिना ही विभिन्न सन्त जो कह दें वही मान लेना होगा। स्वयं विचार को अवकाश ही नहीं रहेगा। तब तो सांख्य, मीसांसक, जैन, बौद्ध आदि सन्तों के अनुसार अनीश्वरवाद भी मानना पड़ेगा, क्योंकि श्रद्धालु को शब्दतः विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है।

ऐसी स्थिति में यदि कोई वैदिक इतिहास और पुराणों को वेदविरुद्ध होने से, पौरुषेय होने से अप्रमाण कहे तथा कोई पौराणिक रामचरितमानस को वेदपुराणविरुद्ध होने के कारण अप्रमाण कहे तो उसका क्या समाधान किया जा सकता है ? यदि केवल सन्त का कहना ही पर्याप्त है तो सन्त को भी वेद-पुराण की दुहाई देने की क्या आवश्यकता ?

यदि कोई किसी सिद्धान्त को वैदिक सिद्धान्त कहे और उसे वेद से न सिद्ध कर सके तो वह वैदिक सिद्धान्त कैसे सिद्ध होगा ? जो हम कहते हैं कि श्रद्धालु होकर मान लो, विश्वास करो इतनेमात्र से तो काम नहीं चल सकता। यदि ऐसी ही बात थी तो रामचरितमानस पर भी ऊहापोह करने की क्या आवश्यकता ? फिर **मानसचिन्तन** तथा **मानसमुक्तावली** की क्या आवश्यकता ? क्या यह विचार अश्रद्धा का द्योतक न होगा ? क्या गोस्वामीजी के अभिप्रेत अर्थ का अनर्थ करना न होगा ?

गोस्वामी वेद-पुराण के पावन पर्वत में ही रामकथा रुचिराकर की सत्ता कहते हैं। परन्तु वेद में राम और सीता का वर्णन ही न हो और उनका वेदों में कोई महत्त्वपूर्ण पद ही न हो। वेदों में इन्द्र ही परम पूज्य हो और रामचरितमानस में श्वानतुल्य इन्द्र निन्दनीय हो; क्या यह प्रत्यक्ष वेद-विरोध नहीं है ? इसका समाधान केवल 'बाबावाक्यम्' से नहीं हो सकता।

महानुभाव ! वस्तुतः वेद, पुराण और मानस में विरोध खड़ा करना कुटिलता है। वेद और पुराण को नीचा दिखाने की दुश्चेष्टा है। इससे तुलसी या मानस की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ेगी, किन्तु प्रतिष्ठा घटेगी। तुलसी वाल्मीकि कवीश्वर को कपीश्वर के समान ही सीताराम-गुणग्राम-पुण्यारण्यविहारी कहते हैं। रामायण को दूषणसहित होने पर भी दोषरहित कहते हैं। सखर सकोमल कहते हैं। आप वाल्मीकि की भूल सुधार उन्हीं तुलसी द्वारा कराना चाहते हैं—

"अहो मोह महिमा बलवाना।"

हाँ, तो अब सुनिये वेद, रामायण और मानस का समन्वय। पहले आपको जानना चाहिये कि वसिष्ठ, वाल्मीकि, व्यास, जैमिनि, शङ्कर, रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ, शबरस्वामी, कुमारिल, विद्यारण्य, मधुसूदन, श्रीधर, उब्बट, महीधर, पाणिनि, पतञ्जलि तथा कात्यायन सभी वैदिक दयानन्दियों को छोड़कर मन्त्र, ब्राह्मण एवं उपनिषदों को मिलाकर वेद मानते हैं। साथ ही चार संहिता ही वेद नहीं हैं, किन्तु ११३१ ग्यारह सौ एकतीस संहिताएँ तथा उतने ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि सब वेद हैं। जिनमें से बहुत आज मर्त्यलोक में अप्राप्त भी हैं। अतएव उपलब्ध ऋचाएँ उनमें से कुछ अंश ही हैं। यजुःसंहिताएँ एवं उनके ब्राह्मण, उपनिषद् आदि भी वेद हैं और ऋचाएँ किसी के द्वारा लिखी या निर्मित नहीं होती हैं। किन्तु सभी वेद भगवान् के निःश्वास से प्रकट होते हैं—

"जाकी सहज श्वास श्रुतिचारी।" (रा० मा० १।२०३।३)

ईश्वर के तुल्य ही वे नित्य एवं अनादि हैं। वेदों में सर्वाधिक समादृत देवता इन्द्र हैं। उनको ही केन्द्रित करके ऋचाएँ लिखी गयी हैं। ये विचार पाश्चात्य वेदविरोधियों के हैं, आस्तिकों के नहीं।

बेबर, मैक्समूलर, राय आदि ही दुरभिसन्धिवशात् ऐसा लिखते हैं। यह हमारी रामायणमीमांसा में स्पष्टरूप से वर्णित है।

वेदों और उपनिषदों के अनुसार सब वेदों का तात्पर्य सच्चिदानन्द परब्रह्म में ही है—

"जाकी सहज श्वास श्रुतिचारी।" (रा० मा० १।२०३।३)

"ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्....यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।"
(श्वेता० उ० ४।८ तथा बह्वृचोपनिषत्)

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति।" (कठउ० २।१५)

ऋक् उपलक्षित सभी वेदों का तात्पर्य अक्षर ब्रह्म में ही है जो उसको नहीं जानता तो उसे ऋक् से क्या लाभ ? गीता भी यही कहती है—

"वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" (गीता० १५।१५)

सब वेदों से एकमात्र मैं ही वेद्य हूँ।

जैसे पादुका, शिविका, सिंहासन आदि पर पैर धरने से भी कोई नहीं कह सकता कि मैं पृथिवी पर पैर नहीं धरता। क्योंकि वे सब भी पृथिवी के विकार हैं। इसी तरह इन्द्र, वरुण, अग्नि का प्रतिपादन भी परमात्मा का ही प्रतिपादन है, क्योंकि वे सब परमात्मा के ही विकार हैं—

"कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम्।" (भाग० १०।८७।१५–वेदस्तुतिः)

वेदलक्षणा भारती उक्थजड़ों को अपनी अभिधा, लक्षणा, गौणी आदि वृत्तियों से भ्रमित कर देती है। वेदों में इन्द्र, अग्नि आदि की स्तुतियाँ अवश्य अधिक हैं। परन्तु शिव तथा विष्णु के भी बहुत से मन्त्र हैं। यह नहीं कहा जा सकता है कि वेदों में जिसका बहुत वर्णन हो वही वेदार्थ है। क्योंकि वेदों में तो कर्मकाण्ड का ही अधिक वर्णन है। उससे कम उपासना का वर्णन है। ज्ञानकाण्ड का तो बहुत ही कम वर्णन है, तथापि मुख्य ज्ञानकाण्ड ही है। साध्य-सिद्धि के लिए अधिकांश प्रयास तो साधन में ही करना पड़ता है। कुल्हाड़ी से वृक्ष काटा जाता है। सारा प्रयास कुठार के उद्यमन तथा निपातन में ही किया जाता है। काष्ठ का द्वैधीभाव फल तो साधन-व्यापार में ही सम्पन्न होता है। प्राणियों की ब्रह्म-प्राप्ति होने में मल, विक्षेप और आवरण ये तीन ही बाधक होते हैं। तीनों की निवृत्ति के लिए कर्म, उपासना और ज्ञान की अपेक्षा होती है। प्रत्येक शाखा के लक्ष संख्यावाले वेदों में अस्सी-हजार मन्त्र और ब्राह्मण कर्म का प्रतिपादन करते हैं। सोलह हजार उपासना का और चार हजार ज्ञानकाण्ड का प्रतिपादन करते हैं।

कर्मों में भी काम्य कर्मों का प्रतिपादन अधिक है, निष्काम कर्मों का कम, क्योंकि पाशविक काम, कर्म, ज्ञानरूप मृत्यु का अतिक्रमण करने के लिए पहले वैदिक कर्मज्ञान की अपेक्षा होती है।

"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।" (ईशोपनिषद् ११)

इन्द्र, अग्नि आदि कर्म के प्रधान देवता हैं अतः उनका अधिक वर्णन ठीक ही है।

देवता भी ईश्वर के ही अंश हैं। फिर उनका ऐश्वर्य निःसीम नहीं है। परन्तु कर्मफलदाता तो ईश्वर हैं। देवताओं में निरतिशय सर्वज्ञता नहीं होती। वे जगत् के कारण भी नहीं होते। अनन्त ब्रह्माण्डात्मक विश्व का कारण परमेश्वर होता है। यह नासदीय आदि सूक्तों और अपरिगणित मन्त्रों एवं उपनिषदों से सिद्ध है।

कर्माङ्गभूत इन्द्र की खूब महिमा वर्णित है। पर उसे जगत् का निरपेक्ष कारण नहीं कहा गया है। देवतारूप इन्द्र भी उत्कृष्ट कोटि का जीव ही है। यह ब्रह्मसूत्रों की प्रतर्दन-विद्या में स्पष्टतया कहा गया है। इसी लिए बृहदारण्यक और तैत्तिरीय उपनिषदों में अखण्ड भूमण्डलाधिपति द्रढिष्ठ, बलिष्ठ और धर्मिष्ठ सम्राट् के मानवानन्द से शतगुणित आनन्द मानवगन्धर्व का माना गया है। उससे सौ गुना देवगन्धर्व का आनन्द और उससे सौ गुना देवों का, उससे सौ गुना कर्मदेवों का, उससे सौ गुना बृहस्पति का आनन्द, उससे सौ गुना प्रजापति का, उससे सौ गुना ब्रह्मा का, उससे भी अनन्त गुना अधिक परब्रह्म का आनन्द होता है। ब्रह्मा आदि का आनन्द ब्रह्मानन्द का एक कणमात्र है। ब्रह्मानन्द तो अनन्त समुद्र तुल्य है—"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" (बृ० उ० २।५।२१) इत्यादि स्थलों में तो इन्द्रशब्द का अर्थ शुद्ध परमात्मा ही है, देवात्मा नहीं।

इसी तरह—'इन्द्रवरुणं मित्रवरुणम्' (ऋ० सं० १।१६४।४६), 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' (ऋ० सं १।१६४।४६) इत्यादि स्थलों में इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि शब्दों का परमेश्वर ही अर्थ है, परिच्छिन्न देवता नहीं। ब्रह्मसूत्रों के प्रकरणानुसार आकाश, प्राण आदि शब्दों से भी परमात्मतत्त्व ही विवक्षित कहा गया है। विशेष जानकारी के लिए उन उन प्रकरणों को देखें। परन्तु विष्णु, रुद्र आदि सूक्तों द्वारा शिव या विष्णु को जगत् का परम कारण परब्रह्म कहा गया है—

"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।

"दिवीव चक्षुराततम्" (ऋ० सं० १।२२।३०), "जागृवांसः समिन्धते ॥"(ऋ० सं० १।२२।२१),

"विष्णोः कर्माणि पश्यत।"

"इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधाऽस्य निदधे पदम्।" (ऋ० सं० १।२२।२०)

"पुरुष एवेदं सर्वम्।"

"एको रुद्रो न द्वितीयोऽवतस्थे।

शिव और विष्णु सम्बन्धी थोड़े मन्त्रों में भी उन्हें ईश्वर परमात्मा सर्वकारण कहा गया है। परन्तु इन्द्र, अग्नि आदि के बहुत मन्त्रों में भी उनकी ईश्वरता का वर्णन नहीं किया गया है।

"येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥" (गीता ९।२३)
"लभन्ते च ततः कामान्मयैव विहितान् हि तान्।" (गीता ७।२२)

इन्द्र, वरुण और अग्नि के यजन-पूजन से अपरिगणित फल मिलते हैं। इसी लिए उन्हें कर्मफल देनेवाला भी कहा जाता है। परन्तु जो अनन्त ब्रह्माण्डों एवं एक एक ब्रह्माण्ड के अनन्त जीवों एवं उनके अनन्त जन्मों एवं एक एक जन्म के अनन्त कर्मों को जान सकता है वह परमेश्वर ही मुख्य फलदाता है। उन देवताओं की पूजा भी परमेश्वर की ही पूजा है। उनका भी फल भगवान् ही देते हैं।

ईश्वर एक ही होता है। उनके नाम और स्वरूप भिन्न हो सकते हैं। परन्तु तत्त्व एक ही होता है। अतः भिन्न स्थलों में शिव, विष्णु, राम, कृष्ण, सीता, राधा आदि रूप में उसी का वर्णन होता है।

"यथा अनेक वेष धरि नृत्य करे नट कोइ।
जोइ जोइ रूप दिखावइ आपुनु होइ न सोइ ॥" (रा० मा ७।७२)

वेद के ही शिव का शिव, स्कन्द आदि पुराणों में सर्वातिशायी महत्त्व वर्णित है। वेद के ही विष्णु का विष्णुपुराण और पद्मपुराण में लोकोत्तर माहात्म्य वर्णित है। विष्णुपुराण के अनुसार विष्णु ही राम हैं। वही कृष्ण हैं। वाल्मीकिरामायण के अनुसार उन्हीं अनन्त ब्रह्माण्डनायक ईश्वर विष्णु का राम के रूप में वर्णन है। पुराणों, अध्यात्म आदि अनेक रामायणों में भी परब्रह्म रूप में राम का वर्णन है। वाल्मीकिरामायण में राम को कृष्ण भी कहा गया है—"कृष्णश्चैव बृहद्बलः" श्रीभागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि में उसी परमविष्णु का कृष्ण के रूप में वर्णन है।

भिन्न भिन्न नामों से एक वेदवेद्य परमात्मा का ही वर्णन है। समन्वय कर सकने में असमर्थ अनभिज्ञ लोग ही भिन्न भिन्न शिव, विष्णु, राम और कृष्ण को अलग अलग मानकर भ्रान्त होते हैं।

"वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥"

खण्डन-मण्डन तथा उत्कर्ष-अपकर्ष के वर्णन का तात्पर्य उन उन स्वरूपों की प्रशंसा में ही है, खण्डन या निन्दा में तात्पर्य नहीं है—"नहि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्तते अपितु विधेयं स्तोतुम्।" निन्दा का तात्पर्य निन्दा में न होकर विधेय की स्तुति में ही होता है।

इस दृष्टि से वेदों में कर्माङ्गदेवता के रूप से वर्णित इन्द्र का अधिक वर्णनमात्र देखकर अनभिज्ञ उन्हीं को सर्वोत्कृष्ट देवता मानने लगते हैं। पुराणों में नहीं, मन्त्रों और ब्राह्मणों में इन्द्र को वृत्र के हनन में विष्णु की

सहायता लेनी पड़ी है और वेदों में ही इन्द्र को अहल्या का जार आदि कहा गया है। कौषीतकि उपनिषद् में इन्द्र स्वयं अपने अनेक दोषों का वर्णन कर के कहता है कि मैंने त्रिशीर्ष त्वाष्ट्र का वध किया। अरुन्मुख यतियों को मारकर कुत्तों को खाने के लिए दे दिया। परन्तु ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से मेरा बाल भी बाँका नहीं हुआ—

"त्रिशीर्षाणं त्वाष्ट्रमहनम् अरुन्मुखान् यतीन् शालावृकेभ्यः प्रायच्छम्....लोम च नामीयते।" (कौषी० उ० ३।१)

वेदों में ही विष्णु का वर्णन है। विष्णु ही कृष्ण हैं और वही राम हैं। गोपालतापनीय आदि अनेक उपनिषदों में कृष्ण को ब्रह्म कहा गया है। रामतापनीय आदि अनेकों उपनिषदों में राम को परब्रह्म कहा गया है। उनमें रामकथा का भी वर्णन है। अतः यह स्पष्ट है कि भगवच्चरण-पङ्कज में समर्पण बुद्धि से अनुष्ठीयमान कर्मों से बुद्धि शुद्ध होने पर निष्काम उपासनाओं से मन एकाग्र होता है। एकाग्र मन से ही स्वप्रकाशब्रह्मात्मसम्बन्धी आवरण-भङ्ग होता है। तभी ब्रह्मात्मसाक्षात्कार होता है। तभी अनन्यप्रेमलक्षणा भक्ति सम्पन्न होती है। इस तरह कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड का वर्णन करती हुई श्रुतियों का ब्रह्मसाक्षात्कार में ही उपयोग होने से उनका तात्पर्य ब्रह्म-साक्षात्कार में ही होता है। ज्ञानकाण्ड स्पष्टरूप से परमेश्वर का प्रतिपादन करते ही हैं।

दूसरी वह दृष्टि है, जिसके अनुसार अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड और तद्गत सभी वस्तुएँ एक-मात्र अनन्त सत् ब्रह्म का ही विकार या विवर्त हैं, अतः इन्द्र, वरुणादि सभी वस्तुएँ ब्रह्मरूप ही हैं। उनका प्रतिपादन भी ब्रह्म का ही प्रतिपादन है।

इसके अतिरिक्त मीमांसकों ने सभी शब्दों की जाति में शक्ति मानी है। घटत्व, पटत्व आदि त्व, तलादि प्रत्ययों से संवेद्य जाति का भाव ही अर्थ है, क्योंकि भाव अर्थ में ही त्वत्, तलादि प्रत्यय होते हैं। तथा च घटशब्द का घटत्व अर्थ है, घटत्व का अर्थ है घटका भाव। अन्वय और व्यतिरेक से घटरूप में परिणत मृत्तिका ही घट का भाव है। वही घटत्व है। मृत्तिकाभाव अपने कारण जल में ही पर्यवसित होता है। अतः सभी शब्दों के जातिवाचक होने से तत्तद्रूप में परिणत ब्रह्म ही सब शब्दों का अर्थ है। इस प्रकार सभी शब्दों का आपात दृष्टि से तत्तत्प्रसिद्ध अर्थ होने पर भी सब शब्दों का अन्तिम अर्थ ब्रह्म ही है।

वेदवेदान्तवेद्य ब्रह्म ही वेदों का ब्रह्म है। वही रामायण का राम है, वही भागवत का कृष्ण, विष्णु-पुराण का विष्णु एवं शिवपुराण का शिव है। वही शाक्त, सौर, गाणपत्य आदि आगमों का शक्ति, सूर्य और महा-गणपति भी है। राम, विष्णु और कृष्ण एक ही वस्तु के भिन्न भिन्न नाममात्र हैं। एक-एक ब्रह्माण्ड के भी उत्पादक, पालक और संहारक भी ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र होते हैं और अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों के भी उत्पादक, पालक और संहारक भी ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र कहे जाते हैं। एक एक ब्रह्माण्ड के उत्पादक, पालक और संहारक कार्य ब्रह्म होते हैं। अनन्तानन्त ब्रह्माण्डों के उत्पादक, पालक एवं संहारक कारण ब्रह्म हैं।

"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् ब्रह्म॥" (तै० उ० ३।१)

रामायण के राम, भागवत के कृष्ण, विष्णुपुराण के विष्णु एवं शिवपुराण के शिव कारणब्रह्म ही हैं। जो शम्भु, विरञ्चि और विष्णु राम के अंश से उद्भूत होते हैं वे कार्यब्रह्म हैं, कारणब्रह्म नहीं। कृष्ण के भी एक एक रोम में अगणित ब्रह्माण्डों का वर्णन है—

"क्वाहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः।
क्वेदृग्विधाऽविगणिताण्डपराणुचर्यावाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम्॥" (भाग० १०।१४।११)

ब्रह्माजी कहते हैं कि तम प्रकृति, महान्, अहं, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी आदि अष्टावरणोंसे समावृत सात वितस्ति (बित्ता) परिमाणवाला ब्रह्माण्ड का अभिमानी कहाँ ब्रह्मा मैं और कहाँ अनन्त अनन्त ब्रह्माण्ड जिनके एक एक रोम में परिभ्रमण करते हैं ऐसी आपकी महिमा।

इसी प्रकार शिव की महिमा का भी वर्णन है। शिवजी के भी अंश से अनेक ब्रह्मा, रुद्र, विष्णु, इन्द्र आदि उत्पन्न होते हैं। शिवपुराण, शिवरहस्य, स्कन्दपुराण काशीखण्ड, केदारखण्ड आदि में यह स्पष्ट है। अतएव रामभक्ति की दृष्टि से श्रीराम ही वेदों, पुराणों, तन्त्रों और आगमों में अनेक नामों एवं रूपों में वर्णित हैं। वही नाम-रूपातीत निर्गुण निर्विशेष रूप में भी वर्णित हैं।

जब राम, कृष्ण, विष्णु, शिव एक ही वस्तु हैं तब कौन कह सकता है कि वेदों में उनको महत्त्वपूर्ण पद नहीं प्राप्त है। वेदों में ब्रह्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वही ब्रह्मा, विष्णु, राम और कृष्ण हैं।

सीता का भी मन्त्रों, ब्राह्मणों एवं उपनिषदों में महत्त्वपूर्ण वर्णन है। सीता लागङ्गलपद्धति के रूप में वर्णित होती हुई भी निर्विशेष सत्तासामान्यरूप में तथा ऐश्वर्य और माधुर्य की अधिष्ठात्री महालक्ष्मी के रूप में भी वर्णित है।

प्रणव बहुत छोटा सा मन्त्र है। परन्तु उसी से सम्पूर्ण वेद का प्रादुर्भाव होता है। वेद उसी की व्याख्या है। व्यक्ति और समाज को वेदादि शास्त्रानुसारी बनना चाहिए। वेदों, शास्त्रों और पुराणों को समाज के अनुसार बनाने की रीति भारतीय नहीं है।

फिर यह कहना कहाँ तक सङ्गत है कि "वेदों और पुराणों में बहुत कुछ ऐसा है जिसे शब्दशः ग्रहण करने पर व्यक्ति और समाज दोनों का अकल्याण ही हो सकता है।

हरिश्चन्द्र

पूर्वपक्ष—यद्यपि उनमें शतशः ऋषियों और अगणित राजपुरुषों के चरित्रों का वर्णन आता है। धर्म और जीवन के किसी किसी अङ्ग पर उनसे प्रकाश पड़ता है। किन्तु वे ऋषि या महापुरुष दुर्बलताओं से सर्वथा शून्य नहीं हैं। उनमें जीवन की समग्रता का आदर्श प्राप्त नहीं होता। महाराज हरिश्चन्द्र की गणना महा-पुरुषों में की जाती है। सत्यवादिता के प्रतीक के रूप में वे समाज में सर्वमान्य हैं। सत्य की रक्षा के लिए वे बड़ा से बड़ा बलिदान करने के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। पर उनके जीवन का दूसरा पक्ष भी है। वे सन्तान की कामना से प्रेरित होकर यह मनौती मान लेते हैं कि सन्तान होने पर मैं बालक का ही बलिदान कर दूंगा। इससे उनकी मोहान्धता का परिचय मिलता है। लगता है कि वे अनपत्यता के कलङ्क से इतने भयभीत थे कि समाज पुत्रहीन समझ कर उनको हेय दृष्टि से देखे यह उनको असह्य था। इस कलङ्क को मिटाने के लिए वे इस सीमा तक जाने को प्रस्तुत होते हैं। सोचा कि पहले पुत्र हो फिर देखा जायगा।

पुत्र होने के बाद बलिदान के वचन को टालते गये। अन्त में वे अपने पुत्र के प्राणों की रक्षा के लिए तथा स्वयं की रुग्णता के निवारणार्थ शुनःशेप नाम के बालक को खरीद कर उसका बलिदान करने को प्रस्तुत होते हैं। महर्षि विश्वामित्र की कृपा से बालक की रक्षा होती है। यह भाग उनके चरित्र के निम्नतम भावों एवं दुर्बलताओं का परिचायक है।

हरिश्चन्द्र का एक महापुरुष के रूप में वर्णन करने का भी दुष्परिणाम हो सकता है कि व्यक्ति जीवन के उत्तरार्द्ध में उनकी सत्यवादिता के स्थान पर बलिदान के द्वारा निःसन्तान को पुत्रप्राप्ति की परम्परा का अन्ध-

विश्वासी बन जाय अपने पुत्र की रक्षा और स्वास्थ्य के लिए दूसरे के पुत्र को बलि देने के लिए सङ्कोच का अनुभव न करे।

विश्वामित्र वेद और पुराणों के मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। उनके त्याग और तपस्या की अद्भुत गाथाओं से पुराणों के पृष्ठ अङ्कित हैं पर उनका चरित्र भी अपूर्णताओं का पुञ्ज है। अपनी महत्त्वाकाङ्क्षाओं की पूर्ति के लिए ब्रह्मर्षि वसिष्ठ के सौ पुत्रों को नष्ट कर देना एवं वसिष्ठ का वध करने के लिए प्रस्तुत हो जाना इसी अन्धकार पक्ष का परिचय देता है। अतः उनके ऋषित्व से समाज दिग्भ्रान्त हो सकता है। वह यह समझकर सन्तुष्ट हो सकता है कि अपनी महत्त्वाकाङ्क्षा की पूर्ति के लिए यदि विश्वामित्र सब कुछ कर सकते हैं तो हमारे लिए वह और भी स्वाभाविक है।

वेदों में बहुत कुछ ऐसा अग्राह्य अंश किसी विशेष काल के लिए ही समझना चाहिये। उसे भगवान् व्यास ने परिष्कृत करने का प्रयास किया था। किन्तु पुराण केवल आदर्श नहीं, अनादर्श भी प्रस्तुत करते हैं। इनके भी परिष्कार की आवश्यकता थी। यह कार्य रामकथा द्वारा सम्पन्न होता है सारे वेदों और पुराणों में चरित्र की समग्रता का यदि कोई मापदण्ड हो सकता है तो एकमात्र भगवान् श्रीराम। इतिहास में ऐसे सहस्रों व्यक्ति हुए जो किसी विशेष घटना के कारण लोकमानस में धूमकेतु के समान अचानक चमक उठे। किन्तु प्रकाश तो सूर्य का ही है। जो अगणित वर्षों से प्रतिदिन समाज और व्यक्ति को प्रकाश देता है और देता रहेगा।"

उत्तरपक्ष

यह है वेदों और पुराणों के प्रति आधुनिक मानसवक्ता महाशय की धारणा। उनको यह भी नहीं समझ में आया है कि हम मानस और उसके आचार्य शिव और परमाराध्य श्रीराम तथा तुलसी का आदर कर रहे हैं या निरादर कर रहे हैं। शायद उनका ध्यान तुलसी की—

"जो कोइ दूषइ श्रुति करि तरका। परइ ते कोटि कल्प भरि नरका॥"

इस पंक्ति पर नहीं गया है।

"तुलसी महिमा बेद की को करि सकै बिचार।
जेहि निन्दत निन्दित भयो बिदित बुद्ध अवतार॥"

मालूम होता है कि उनकी दृष्टि में जैसे वेद का परिष्कार व्यास ने पुराणों द्वारा किया तथा इतिहास एवं पुराणों का परिष्कार तुलसी ने मानस द्वारा किया, वैसे ही वे मानस का परिष्कार अपनी मानसमुक्तावली द्वारा कर रहे हैं। परिष्कार का अर्थ काटछाँट प्रसिद्ध ही है। दोषों को निकाल देना तथा गुणों का आधान करना, मलापनयन और गुणाधान ही तो परिष्कार हो सकता है, परन्तु सनातन वैदिक परम्परा के यह सर्वथा विरुद्ध है।

वेद अपौरुषेय होने से अपास्तसमस्तपुंदोषशङ्काकलङ्कपङ्क हैं। वेदों को सदोष मानने का अर्थ है कि उनका अप्रामाण्य मानना। पुरुष में भ्रम, प्रमाद आदि दोष होते हैं, अतः पौरुषेय ग्रन्थों में दोषों की शङ्का बनी रहती है। तभी तुलसी वेद को दूषणयुक्त कहनेवाले के लिए कोटिकल्प तक नरकवासी होना कहते हैं। वे तो रामायण को भी दूषणसहित होने पर भी दोषरहित कहते हैं। परन्तु उक्त वक्ता तुलसी को इतिहास और पुराणों का भी परिष्कार करनेवाला कहना चाहते हैं।

राम की दृष्टि में—

"सिबि दधीच हरिचन्द नरेसा। सहेउ धरम हित कोटि कलेसा॥" (रा० मा० २।९४।२)

हरिश्चन्द्र भारतीय संस्कृति के परम आदर्श हैं। विश्वामित्र के तो श्रीरामजी शिष्य ही थे। क्या श्रीराम और शिवजी और तुलसी ने यह नहीं सोचा कि हम हरिश्चन्द्र को महत्त्व दे रहे हैं। विश्वामित्र को गुरु मानकर पूज रहे हैं पादसंवाहन कर रहे हैं। परन्तु उसको महत्त्व देने से समाज दिग्भ्रान्त हो जायगा। हरिश्चन्द्र का अनुकरण कर अपने पुत्र के लिए दूसरे के पुत्रों का बलिदान देगा। विश्वामित्र की तरह अपनी महत्त्वाकाङ्क्षा के लिए वसिष्ठ जैसे ब्रह्मर्षियों की हत्या करने में न सँकुचायेगा।

वस्तुतः—"नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति" यह स्थाणु का दोष नहीं है, जो उसे अन्धा नहीं देख सकता। जो सुधारवाद के व्यामोह से वेद, पुराण और मानस का अर्थ न समझे या उसके अर्थ का अनर्थ करे तो उसमें न वेदादि का दोष है और न तुलसी आदि का दोष है।

वेदव्याख्याता जैमिनि, शबरस्वामी एवं कुमारिलभट्ट के अनुसार—"आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्" (जै० सू० १।२।१) आम्नाय सकल वेदराशि का वैदिक यज्ञादि क्रियाओं के प्रतिपादन में ही तात्पर्य है। जो क्रियार्थक भाग नहीं है, उसका स्वार्थ में तात्पर्य नहीं है—

"विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः" (जै० सू० १।२।७)

जो भाग क्रियार्थक नहीं हैं ऐसे अर्थवाद आदि विध्यर्थ के स्तावक होने से ही प्रमाण हैं। निषिद्ध से निवृत्ति के लिए निन्दार्थवाद होते हैं। व्यास, शङ्कर, रामानुज आदि पूर्व वेद के काण्डका जैमिनि के समान यज्ञक्रिया के प्रतिपादन में तात्पर्य मानते हुए भी सम्पूर्ण वेद का विशेषतः वेदान्तों का तात्पर्य परब्रह्म परमेश्वर के ही प्रतिपादन में मानते हैं। सृष्टि-प्रतिपादक वाक्यों का भी ब्रह्मस्वरूप के निरूपण में ही पर्यवसान है।

वेद के जितने व्याख्यान या इतिहास हैं वे लौकिक इतिहासों के समान नहीं हैं, क्योंकि लौकिक इतिहासों का उल्लेख घटनाओं के पश्चात् उल्लिखित किया जाता है। किन्तु वेद अनादि एवं नित्य हैं। अतः उनका घटना के पश्चात् उल्लेख का प्रश्न हो नहीं उठता। किन्तु जैसे किसी विद्यार्थी को गणित विद्या बताने के लिए अध्यापक कल्पित आख्यायिका का प्रयोग करता है, वैसे ही किसी तत्त्व को समझाने के लिए वेद में भी आख्यानों की कल्पना की जाती है। अध्यापक कहता है कि रामनगर के रामदत्त ने पाँच रुपये मन के हिसाब से भूसा खरीदा तो डेढ़ हजार रुपये का कितना भूसा हुआ ?

वस्तुतः अध्यापक का न रामनगर से प्रयोजन है और न रामदत्त से प्रयोजन है। उसका तात्पर्य केवल गणित समझाने में है। गणित समझाने के लिए आख्यायिका की कल्पना की है। इसी तरह वेद की आख्यायिका या इतिहास सब काल्पनिक आख्यानमात्र होते हैं।

वेदों और मन्वादि के अनुसार वैदिक शब्दों के अनुसार ही ईश्वर सृष्टि करता है। अतः उन आख्यायिकाओं या इतिहासों के आधार पर घटनाएँ भी हो सकती हैं। अतः वैदिक इतिहास घटनापूर्वक नहीं होते। किन्तु घटनाएँ तदनुसार हो सकती हैं। फिर भी आचरण में हिस्ट्री या इतिहास प्रमाण नहीं होता। किन्तु उसमें विधि, संविधान या कांस्टिट्यूशन कानून का ही आश्रयण किया जाता है—

"प्रजापतिरात्मनो वपामुदखिदत्"

प्रजापति ने अपनी वपा का उत्खनन करके यज्ञ किया। पर उसके अनुसार यह विधि नहीं होती कि मनुष्य को भी अपनी वपा का उत्खनन करके यज्ञ करना चाहिये। मन्त्र और अर्थवाद का जहाँ प्रत्यक्ष विधि से विरोध न हो वहाँ लिङ्गबलात् विधि की कल्पना हो सकती है। कल्पित विधि का प्रत्यक्ष विधि से विरोध होने पर कल्पित विधि बाधित हो जाती है। जहाँ प्रत्यक्ष विधि का विरोध न हो वहाँ कल्पित विधि से भी अनुष्ठान होता है।

हरिश्चन्द्र की कथा का सम्बन्ध ऋग्वेदीय ऐतरेय ब्राह्मण से है। अन्यत्र भी उसकी चर्चा है। पुत्रेष्टि याग का वह अर्थवाद है। पुत्रेष्टि याग की प्रशंसा में ही उसका तात्पर्य है।

"पुत्रेणायं लोको जय्यः कर्मणा पितृलोकः विद्यया देवलोकः।"

इन श्रुतियों के अनुसार पुत्र से मनुष्यलोक की प्राप्ति होती है, कर्म से पितृलोक और विद्या (उपासना) से देवलोक की प्राप्ति होती है। तीनों से जो विरक्त होता है उसके ही लिए ब्रह्मविद्या का उपदेश है।

"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।" (कैवल्योपनिषत् १।२)

"किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्मायं लोकः।" (बृ० उ० ४।४।२२)

हरिश्चन्द्र जैसे महान् सम्राट् ने भी पुत्र के लिए अपने को सङ्कट में डाला था। अतः पुत्र के लिए पुत्रेष्टि करनी चाहिये। प्रवृत्ति या निवृत्ति विधि या निषेध के ही बल पर होती है, आख्यान के बल पर नहीं। कई ऐतिहासिक घटनाएँ दौर्भाग्यपूर्ण भी होती हैं। पर उनका आचरण नहीं किया जाता है। इसी लिए विधि अथवा निषेध के अनुसार ही प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है। वेदों में ही—"न हिंस्यात् सर्वा भूतानि" के अनुसार हिंसा निषिद्ध है। फिर यदि पुत्रार्थ मनुष्य की हिंसा विहित होती तो उत्सर्ग अपवाद भाव हो सकता था। परन्तु ऐसी कोई विधि है नहीं। कल्पित विधि 'न हिंस्यात्' से विरुद्ध होने के कारण बाधित हो जाती है। अतः हरिश्चन्द्र के आख्यान पर वैसी दुष्कल्पनाएँ नहीं हो सकती हैं।

विधि का बोध लिङ् या लोट् लकार एवं तव्यादि प्रत्ययों से होता है। कहीं-कहीं अपूर्व द्रव्य देवता का ज्ञापक वाक्य होने से तो अन्यथा भी अर्थात् लट् लकार से भी विधिका बोध हो जाता है।

हरिश्चन्द्र का सत्यनिष्ठावाला आदर्श सत्यविधि के अनुकूल होने से सत्य एवं अनुकरणीय भी है। वेद केवल निवृत्तिमार्गीय के ही लिए नहीं हैं। वे राजस, तामस और सात्त्विक सभी प्राणियों के लिए हितोपदेश करते हैं। वेदों में शत्रुमरण की कामना से श्येनयाग का भी विधान है।

वेदों में जहाँ यज्ञ-पूर्ति के लिए हिंसा-विधि के द्वारा हिंसा विहित है वहाँ 'न हिंस्यात्' इस उत्सर्ग का बाध होता है। परन्तु जहाँ हिंसा की विधि नहीं है, किन्तु हिंसा विधेय न होकर हिंसा उद्देश्य है वहाँ 'न हिंस्यात्' यह उत्सर्ग वचन निषेध वचन ही प्रबल होता है। श्येनयाग में शत्रुमरण उद्देश्य है विधेय नहीं। अतः वहाँ 'न हिंस्यात्' इस निषेध का ही प्राबल्य होता है। फिर भी श्येनयाग की विधि प्राणी के हितार्थ ही है। हितशासन से ही वेद शास्त्र कहलाते हैं। अतः उनका तात्पर्य स्वाभाविक राग-द्वेषान्ध की प्रवृत्ति रोकने में ही है। काम, क्रोधादि जनित प्रवृत्ति को रोक देना सबसे बड़ा प्राणी का हित है।

लौकिक मार्ग से शत्रुहिंसा में प्रवृत्ति अधिक अनिष्टजनक है, क्योंकि हो सकता है कि अस्त्र-शस्त्रादि द्वारा वध में प्रवृत्त प्राणी को शत्रु ही मार दे अथवा शत्रु का सहायक भी मार सकता है। कथञ्चित् सफलता मिलने पर भी राजा के द्वारा मृत्युदण्ड का भागी होना पड़े। अतः शास्त्र लौकिक मार्ग से हिंसाप्रवृत्ति को रोकने के लिए उसकी अपेक्षा निरापद श्येनयाग को शत्रुमरण का साधन बताकर प्राणी की प्रवृत्ति को रोक देता है। एक बार प्रवृत्ति रुक जाने पर काम, क्रोध का वेग रुक जाने से विचार को अवकाश मिल जाता है। अतः श्येनयाग की प्रवृत्ति भी रुक सकती है। यदि अधिक कोधादि रहा तो भी श्येनयागसम्पादन के लिए अन्य वैदिक विद्वानों को भी बुलाना पड़ेगा और उनके उपदेश से परिणाम में हानिकारक होने से भी श्येनयाग की प्रवृत्ति रुक सकती है। यदि उपदेश से न रुकी तो भी सामग्री-सम्पादन की कठिनाई से भी निवृत्ति हो सकती है। यदि उससे भी प्रवृत्ति न रुकी तो श्येनयाग के अनुष्ठान में बहुत से देवता और ब्राह्मणों की पूजा और दान आदि से कुछ पुण्य भी साथ में अनिवार्यरूप से हो जायँगे। श्येनयाग में सफलता होने से वेदोक्त उपाय में दृढ़ विश्वास होने से उसके निवारणार्थ प्रायश्चित्त का

अनुष्ठान कर के अहिंसा, सत्यादि साधनों का अनुष्ठान कर के ब्रह्मज्ञान द्वारा मोक्षप्राप्ति की भी संभावना हो जाती है। इस तरह शब्दशः विचार करने पर भी श्येनयागविधि का तात्पर्य भी हिंसानिषेध में ही होता है।

इसी तरह पुत्र की कामनावाले प्राणी के लिए पुत्रेष्टि आदि का विधान होता है। अन्य भी काम्य कर्मों का तात्पर्य कामना-पूर्ति में न होकर पाशविक काम-कर्मनिवृत्ति में ही होता है। माता बच्चों को मोदक प्रदान का प्रलोभन देकर गुडूची-पान कराती है। बालक मोदक के लोभ से गुडूची-पान करता है। बालक गुडूची-पान का फल मोदकप्राप्ति समझता है। परन्तु माता तो गुडूची-पान का फल रोगनिवृत्ति ही मानती है। मोदकदान तो केवल प्रलोभनार्थ ही है। यदि प्रदान न करे तो बालक दूसरे दिन गुडूची-पान नहीं करेगा।

इसी तरह वेद पाशविक काम-कर्म-रूप मृत्यु से छुड़ाकर ब्रह्मज्ञान की ओर लगने के लिए विविध काम्य कर्मों का विधान करते हैं। जैसे कण्टकेन कण्टकोद्धार होता है, वैसे ही वैदिक काम-कर्म के द्वारा लौकिक पाशविक काम-कर्म को मिटाया जा सकता है। वैदिक काम-कर्मों द्वारा राजस काम-कर्मों से निवृत्ति करायी जाती है। अन्त में निष्काम कर्म के द्वारा सब प्रकार के काम-कर्म-ज्ञान को मिटाया जाता है। बुद्धि-शुद्धि, नित्यानित्यविवेक, वैराग्य, शम, दमादि द्वारा पूर्ण ब्रह्मज्ञान एवं नैष्कर्म्यसम्पत्ति सम्पन्न होती है। जिसका वर्णन इस प्रकार है—

"यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥" (क० उ० २।६।१०)

जब कर्मेन्द्रियों के साथ पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ अवस्थित (निरुद्ध) हो जाती हैं और बुद्धि भी निर्विचेष्ट हो जाती है। उसी को परा गति कहा जाता है। उसी निर्विकल्प समाधि से ब्रह्मात्मतत्त्व का साक्षात्कार सम्पन्न होता है।

श्रीभागवत में भगवान् उद्धव को यही बतलाते हैं कि जो प्राणी अज्ञ एवं अजितेन्द्रिय होने पर भी वेदोक्त कर्म नहीं करता वह अवश्य ही विकर्मरूप अधर्म से मृत्यु से पुनः मृत्यु को ही प्राप्त होता है।

"नाचरेद् यस्तु वेदोक्तं स्वयमज्ञोऽजितेन्द्रियः।
विकर्मणा ह्यधर्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः॥" (भाग० ११।३।४५)

तस्मात् निःसंग होकर भगवत्समर्पणबुद्धि से वेदोक्त कर्मों का अनुष्ठान करता हुआ प्राणी नैष्कर्म्यसिद्धि को प्राप्त होता है। स्वर्गादि फलश्रुति तो केवल रोचनार्थ ही है—

"वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे।
नैष्कर्म्यसिद्धिं लभते रोचनार्था फलश्रुतिः॥" (भाग० ११।३।४६)

इसलिए गीता भी वेदों के अर्थवादों में रतों की निन्दा करके निष्काम कर्म की ही प्रशंसा करती है।

व्यावहारिक दृष्टि से यदि हरिश्चन्द्र भी पहले अत्यन्त कामान्ध रहे हों और उन्होंने पुत्रप्राप्ति के लिए बलिदान की मनौती भी मानी हो और शुनःशेप को खरीदकर बलिदान देकर भी आत्मरक्षा का प्रयत्न किया भी हो तो भी अन्त में निष्काम उपासक तथा तत्त्वज्ञान-सम्पन्न होकर एवं महान् सत्यनिष्ठ होकर वे विश्वमान्य हो गये हैं।

सभी जीव अनादि हैं। प्रथम अवस्था में किसने क्या नहीं किया? "अन्ते या मतिः सा गतिः।" अन्त में जैसी मति होती है वैसी ही गति होती है। तपस्या में स्वधर्मानुष्ठान में उच्चपद प्राप्त कराने की सामर्थ्य होती ही है। तपस्या से वाल्मीकि क्या से क्या हो गये।

इसी प्रकार विश्वामित्र भी पूर्व में चाहे जैसे रहे हों। परन्तु उन्होंने तीव्र तपस्या द्वारा न केवल अपने को ही किन्तु अपने पिता, पितामह एवं प्रपितामह को भी ब्राह्मण बना दिया था। तभी तो स्वयं वसिष्ठ ने उनकी प्रशंसा की और राम ने उन्हें अपना गुरु माना और पादसंवाहन किया। "तपो हि दुरतिक्रमम्।" तुलसी ने भी माना कि तप के बल से ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, तप के बल से विष्णु पालन करते हैं एवं तपोबल से रुद्र संहार करते हैं। तप से ही शेष पृथ्वी का भार वहन करते हैं। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि आज भी कोई थोड़ा सा तप कर के ब्राह्मण बन जाय। जो तपस्या से या योगशक्ति से क्षात्रदेहारम्भक परमाणुओं को विघटित कर के ब्रह्मदेहारम्भक परमाणुओं को संघटित करने की सामर्थ्य रखता है वही वैसा कर सकता है। जो चूहे को बिल्ली भी नहीं बना सकता है, वह किसी भी जाति को कैसे बदल सकता है?

विश्वामित्र ने तो मेनका को शाप से ही पहाड़ी बना दिया था। तो भी उस स्थिति तक भी वे ब्राह्मण नहीं बन सके थे। यद्यपि उनके देह का उपादान ब्राह्मचरु ही था। वे क्षात्र क्षेत्र के कारण ही क्षत्रिय थे। अतः उनका ब्राह्मण बनना बहुत कठिन नहीं था। तथापि महाभाष्य के अनुसार उनके पिता, पितामह और प्रपितामह तो सर्वथा क्षत्रिय होते हुए भी उन्हीं के (विश्वामित्र के ही) तप से ब्राह्मण हो सके थे। तुलसी भी कहते हैं कि—

"बालमीकि नारद घटयोनी। निज निज मुखन कही निज होनी॥" (रा० मा० १।२।२)

ऐसी स्थिति में हरिश्चन्द्र या विश्वामित्र किसी की भी अन्तिम स्थिति का ही स्वरूप देखना चाहिये, पूर्वरूप देखने का कोई अर्थ नहीं।

सर्वथापि वेद, रामायण, महाभारत, पुराण, मानस सभी हमारे आदर्श ग्रन्थ हैं। निर्भ्रान्त होकर इनका प्रामाण्य मानना चाहिये। किसी का अप्रामाण्य नहीं है। किसका क्या अभिप्राय है, यही समझने का प्रयत्न करना उचित है।

स्थालीपुलाकन्याय से इतना लिखा गया। इसी प्रकार अन्य भी बहुत सी विवादास्पद बातें पुस्तक में हैं। पर सबपर विचार करने तथा लिखने का अवकाश न होने से विराम लेते हैं।

श्रीराम का प्रादुर्भाव मुख्यरूप से मर्त्यों को धर्म-शिक्षा देने के लिए हुआ है। यह श्रीमद्भागवत में स्पष्ट है—

"मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः॥" (भाग० ५।१९।५)

परन्तु श्रीभगवान् ने भी धर्म के सम्बन्ध में शास्त्र को ही प्रमाण माना है। उसी के अनुसार चलकर उन्होंने लोगों को धर्म की शिक्षा दी थी। अतएव यह कहना सही नहीं है कि संसार के अन्य मार्गों का पता तो अन्य व्यक्तियों को होता हैं परन्तु प्रभु का मार्ग कौन जाने?

मत समेत जहँ जाय न बानी।
तरकि न सकहिं सकल अनुमानी॥" (रा० मा० १।३४०।४)

इसका अर्थ यह है कि प्रभु का मार्ग स्वयं प्रभु को छोड़कर अन्य कोई नहीं जानता, किन्तु यह प्रभु के गीता-वचन से ही विरुद्ध है। गीता में भगवान् ने यह नहीं कहा कि जो मैं कहूँ वह धर्म है, किन्तु उन्होंने यही कहा कि शास्त्रविधि के अनुसार ही कर्तव्य को जानकर अनुष्ठान करना चाहिये। जो शास्त्रविधि का उल्लङ्घन करता है वह सुख, सिद्धि और शान्ति नहीं पाता। अतः शास्त्रविधानोक्त कर्म को जानकर ही उसका अनुष्ठान करना उचित है—

"यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि॥" (गीता १६।२३,२४)

मन समेत जहँ जाय न बानी" (रा० मा० १।३४०।४)

यह भी शास्त्र की ही बात है—"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।"

इस श्रुति का अर्थ उक्त चौपाई में कहा गया है।

सबसे बड़ी बात यह कि बुद्ध भी तो भगवान् ही थे। यदि राम और कृष्ण की बात मानी जाय तो उनकी वाणी क्यों न मानी जाय ? स्पष्ट है कि वेदविरुद्ध भगवान् की वाणी भी अमान्य ही है। यह गोस्वामी तुलसीदास को भी मान्य है—

"तुलसी महिमा बेद की को करि सकइ बिचार।
जेहि निन्दत निन्दित भयो बिदित बुद्ध अवतार॥"

श्रीकृष्ण की गीता उपनिषद्‌रूप गायों का दुग्धरूप है, वेदसम्मत है। इसी लिए मान्य है। वाल्मीकि-रामायण वेद का उपबृंहणरूप है। श्रीराम वेदमार्ग के अनुयायी एवं रक्षक हैं। इसी लिए उनकी उक्तियाँ एवं उनके आचरण धर्म में परम प्रमाण हैं। धर्म और ब्रह्म दोनों ही वेदैकसमधिगम्य हैं। अन्य किसी प्रमाण से विदित नहीं होते—

"चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" (जै० सू० १।१।२)

"शास्त्रयोनित्वात्" (ब्र० सू० १।१।३) "तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि" (बृ० उ० ३।९।२३)

अतः वेद-शास्त्र ही धर्म और ब्रह्म का स्वरूप बतलाते हैं एवं उनकी प्राप्ति का मार्ग बतलाते हैं। भगवान् राम और भगवान् कृष्ण भी उन्हीं वेदों का गुणगान करते हैं, यह कभी भी नहीं भूलना चाहिये।

राम ब्रह्म होते हुए भी शास्त्रानुसार ही सब क्रियाएँ करते हैं। इसी लिए धर्म भी उनका अनुसरण करता है। यही बात 'आगे राम पीछे सीता लक्ष्मण हैं' से स्पष्ट होती है। धर्म को मार्गदर्शक नहीं माना जाता। मार्गदर्शक शास्त्र और आचार्य होते हैं। भागवत के अनुसार राम धर्म के शिक्षक हैं। जब वह स्वयं शास्त्रानुसार चलते हैं तब सीतारूपिणी सत्क्रिया और लक्ष्मणरूपी धर्म उनके पीछे चलकर सम्पूर्ण संसार का कल्याण करते हैं। शुद्ध अन्तःकरणवाले की प्रत्येक क्रिया ऐसी होती है, जिसका धर्म समर्थन करता है। परन्तु अन्तःकरण की शुद्धि भी तो धर्म पर ही निर्भर है। तभी तो श्रीराम ने रामगीता में अन्तःकरण की शुद्धि के लिए वेदोक्त कर्मों का करना आवश्यक बतलाया था—"आदौ स्ववर्णाश्रम····।" अधर्म के कारण ही अशुद्ध अन्तःकरण में वासना और स्वार्थ अधिकार जमाते हैं। तभी वह अधर्म में प्रवृत्त होता है।

उपनिषदों तथा गीता ने भी अन्तःकरण को पवित्र करने के लिए स्वधर्मानुष्ठान द्वारा परमेश्वर की आराधना को ही आवश्यक कहा है—

"वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन।" (बृ० उ० ४।४।२२)

"स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः" (गीता १८।४६)

मूल प्रश्न है उन वासनाओं और स्वार्थों को मिटाकर हटाकर शास्त्रानुगामी बनना। यदि अन्तःकरण शुद्ध हो गया हो तब तो वह प्राणी उपासना और ज्ञान का अधिकारी हो जाता है। यह भी कहना गलत है कि जहाँ स्वार्थ और वासना का अभाव है वहाँ उसके द्वारा शास्त्र देखकर धर्म का पालन करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उसके द्वारा धर्म की क्रिया छोड़कर अधर्म की क्रिया हो नहीं सकती। क्योंकि उस स्थिति में वेदादि शास्त्र सभी व्यर्थ ही हो जायँगे। स्वार्थ और वासनाओं के रहने पर जब लाखों उपदेश करने पर भी वह अधर्म ही करेगा और स्वार्थ तथा वासनाओं के मिटने पर बिना शास्त्र देखे ही धर्म का अनुष्ठान अपने आप ही उससे होगा तब वेद शास्त्र की आवश्यकता ही क्या है? फिर भगवान् के द्वारा—**निज निज धर्मनिरत श्रुति नीति** के उपदेश का क्या अर्थ है? गोस्वामीजी के—

"वर्णाश्रम निज निज धरम निरत बेदपथ लोग" (रा० मा० ७।२०)

की चर्चा का क्या अर्थ है? यह भी कहना अत्यन्त अशुद्ध है कि वसिष्ठ ने उत्तर दिया—तुम मुझ से पूछते हो यह धर्म है अथवा अधर्म? अब अधर्म का निर्णय कैसे हो?

धर्म का निर्णय शास्त्रों द्वारा किया जाता है—

"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।" (गीता० १६।२४)

धर्मनिर्णायक शास्त्र हैं। पर शास्त्रों का अर्थ कौन लगाता है व्यक्ति की बुद्धि? और तब समस्या जहाँ की तहाँ अटक जाती है। व्यक्ति की बुद्धि में स्वार्थ है। तो वह शास्त्र का अर्थ भी वैसा ही लगा देगा जिसके द्वारा उसके स्वार्थ की सिद्धि हो, क्योंकि वसिष्ठजी ने ऐसा न कभी कहा है न कह ही सकते हैं। क्योंकि यह सब मनगढ़न्त और शास्त्रविरुद्ध ही है।

जब स्वार्थरहित एवं वासनारहित कोई है ही नहीं, शास्त्र का अर्थ किसी को लग ही नहीं सकता तो फिर श्रीराम आदि द्वारा शास्त्र की मान्यता का प्रचार सर्वथा व्यर्थ ही होगा। फिर तुलसी ने भी वेदादि शास्त्र समझा है कि नहीं? उनके मानस में भी सब बातें शास्त्र-सम्मत हैं यह भी कैसे निर्णय होगा और मानस का अर्थ भी किसी को लगता है कि नहीं? यह भी तो सन्देहास्पद ही रहेगा?

वस्तुतः वेदादि शास्त्रों के अर्थ आचार्य परम्परा से जाने जाते हैं। सहस्रों ऋषि-महर्षि स्वार्थ और वासनाओं से रहित होकर शास्त्रार्थ जानते हैं एवं उसका वर्णन करते हैं। वे भी अपने गुरुओं से शास्त्र एवं शास्त्रोक्त धर्म जानकर स्वार्थ और वासनाओं से रहित होते हैं।

श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई। छूट न अधिक अधिक अरुझाई॥" (रा० मा० ७।११६।३)

इस चौपाई का भी अर्थ लेखक ने उल्टा ही समझा है। इसका तो इतना ही अर्थ है कि भगवदनुग्रह के बिना केवल श्रुति और पुराणों के बताये हुए उपायों के अनुष्ठान में भी अनेक बाधाएँ आ जाती हैं। उपनिषदों ने भी यह कहा है—

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।" (कठ उ० २।२२)

गीता ने कहा—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥" (गीता ११।५३)

उक्त वचनों में भक्ति और अनुग्रह की प्रधानता कही गयी है, वेदादि साधनों की निरर्थकता नहीं, क्योंकि—

"नावेदविन्मनुते तं बृहन्तम्।"

अवेदवित् भगवान् को नहीं जानता इत्यादि श्रुतियों का विरोध स्पष्ट है। वहाँ भी वही—

"रामनाम एक अङ्क है सब साधन हैं शून्य।
अङ्क गये सब शून्य हैं अङ्क रहे दश गून॥"

का ही न्याय लागू होता है। तभी तो जिस भक्तिमणि से ग्रन्थि खुल सकती है उसकी प्राप्ति ही वेद और पुराण से ही कही गयी है—

"पावन पर्वत वेद पुराना। रामकथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञानविराग नयन उरगारी॥
भावसहित जो खोजहिं प्रानी। पाव भक्ति मणि सब सुखखानी॥"(रा०मा० ७।११९।७,८)

जैसे राम शास्त्रानुयायी परमधर्मनिष्ठ हैं वैसे ही उनके परमभक्त भरत भी हैं। अतएव उनका समझना, कहना, करना सब धर्मसार होना उचित है। क्या किसी वेदविरोधी का कहना, समझना, करना भी धर्मसार हो सकता है? इसी लिए तो—

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।" (अभि० शा० अङ्क १।२१)

वेदादि शास्त्रोक्त धर्मनिष्ठ सज्जनों की अन्तःकरणप्रवृत्तियाँ सन्देहछेदन में परम प्रमाण होती ही हैं।

गुरु वसिष्ठ के निर्णीत धर्म पर कुचोद्य करना सबसे अधिक दुर्बुद्धि का लक्षण है। यह कहना पूर्णतः असत्य है कि "वसिष्ठ के प्रत्युत्तर में भरत ने जो प्रश्न उठाये थे वे यथार्थ स्थिति के दिग्दर्शक थे। उनकी जिज्ञासा वास्तविक अनुभूति पर स्थित थी। इसी लिए गुरु वसिष्ठ को भरत के वाक्यों का उत्तर दे पाना सम्भव नहीं हुआ। उन्होंने पूछा वस्तुतः धर्म क्या है? क्या महाराज श्रीदशरथ ने राम को वन भेजकर धर्म की उचित रक्षा की और यदि वह धर्म था तो उसका परिणाम प्रत्यक्ष था। धर्म का तात्पर्य यदि समाज का धारण है और संरक्षण है तो फिर यह कैसा धर्म? जिसने स्वयं अपने पालन करनेवाले का ही प्राण ले लिया। सारी प्रजा अनाथ हो गयी। राम को वन जाना पड़ा। फिर यह धर्म किस कल्याण की सृष्टि करनेवाला है? जब इसी धर्म का पालन करने के लिए मुझे कहा जाता है तो मैं यह जानना चाहूँगा कि इसमें किसका हित निहित है।

वस्तुतः भरत ने कुछ रूढ़िगत वाक्यों को ही वास्तविक धर्म मान लेने की ही धारणा के विरुद्ध मृदु वाक्यों में बड़ा तीक्ष्ण प्रहार किया है। वे रूढ़िवाक्य जिनकी आज्ञा पालन करना ही सबसे बड़ा धर्म है। अथवा पिता जिसे देता है वही राज्य का अधिकारी है। क्या वस्तुतः ये वाक्य निर्विवाद हैं? पुत्र को आज्ञा देता हुआ स्वयं पिता पितृत्व पर आरूढ़ है या नहीं और यदि उस समय वह स्वयं भी किसी आवेशजन्य भावना से ग्रस्त हो। उस समय उसकी आज्ञा का पालन करना स्वयं आज्ञा देनेवाले के हित में होगा या नहीं। दृष्टान्त के रूप में स्वामी ने सुरापान कर लिया हो नशे में उन्मत्त होकर सेवक को आज्ञा दे कि सामनेवाले व्यक्ति का सिर तोड़ दो। स्वामी की आज्ञा मानना सेवक का धर्म है, परन्तु ऐसी स्थिति में योग्य सेवक स्वामी की आज्ञा मानने के स्थान पर उस नशे को ही दूर करने की चेष्टा करेगा। ठीक इसी तरह काम, क्रोध, लोभ या ममता के द्वारा ग्रस्त व्यक्ति भी उन्मादी ही है। ऐसी स्थिति में पिता की आज्ञा के नाम पर यदि आज्ञा स्वीकार की जाती है तो वह धर्म का उपहास ही होगा।" क्योंकि वस्तुतः यह सब कथन शास्त्रीय सिद्धान्तों युक्तियों तथा मानस से भी विरुद्ध ही है। यह महान् साहस ही नहीं किन्तु पाप भी है।

महर्षि वसिष्ठ चक्रवर्ती दशरथ महाराज को परम धार्मिक एवं सत्य के रक्षक मानते हैं कि—

"सोचयोग दशरथ नृप नाहीं।
सोचिय बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धर्म बिषय लवलीना।।
सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्राण समाना।।
सोचिय बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि प्रिय भगति सुजानू।।
सोचिय सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ज्ञानगुमानी।।
सोचिय पुनि पतिबंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी।।
सोचिय बटु निज ब्रत परिहरई। जो नहि गुरु आयसु अनुसरई।।
सोचिय गृही जो मोह बस करइ करमपथ त्याग।
सोचिय यती प्रपंचरत बिगत बिबेक बिराग।।
बैखानस सोइ सोचन योगू। तप बिहाइ जेहि भावहि भोगू।।
सोचिय पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुरु बंधु बिरोधी।।
सब विधि सोचिय पर अपकारी। निज तन पोषक निरदय भारी।।
सोचनीय सब ही बिधि सोई। जो न छाड़ि छल हरिजन होई।।
सोचनीय नहिं कोसल राऊ। भुवन चारि दस प्रकट प्रभाऊ।।"
(रा० मा० २।१७०।२ से १७१।३ तक)

श्रीवसिष्ठजी की एक एक पंक्ति धर्मशास्त्र, सन्त और शिष्ट सम्मत है।

"भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा।।
विधि हरिहर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुनगाथा।।"(रा०मा० २।१७१।४)

क्या ये बातें मिथ्या हैं ? आश्चर्य है अपने आप को एक मानसवक्ता होने का दावा करनेवाला इन तथ्यों को झुठलाने का साहस करता है—

"कहहु तात केहि भाँति कोउ करइ बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह शत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु।।" (रा० मा० २।१७२)

उक्त बातें स्वतःसिद्ध जैसी हैं। जो राम अनन्त ब्रह्माण्डों के नायक परब्रह्म, तद्रूप ही लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न जो हिरण्यर्भ, तुरीय अव्याकृत, तुरीय विराट् एवं तुरीय रूप हैं। वे सब जिनके पुत्र के रूप में प्रकट हैं उन दशरथ की तुलना में किसी शराबी या क्रोधी और कामी को उपस्थित करना कितना बड़ा पाप है।

"सब प्रकार भूपति बड़भागी"। (रा० मा० २।१७२।१)

लेखक अपने ज्ञान गुमान में उन्मत्त होकर श्रीराम के पिता का ही नहीं, राम के गुरु वसिष्ठ एवं राम के गुरु विश्वामित्र तथा श्रीराम के पूर्वज हरिश्चन्द्र की भी छीछालेदर करता है।

महर्षि वसिष्ठ धर्मसम्मत ही बात करते हैं। श्रीभरत को उपदेश करते हैं—

"सिर धरि राजरजायसु करहू।" (रा० मा० २।१७२।१)

राजा ने तुमको राज दिया है। उनके वचन को सत्य बनाना तुम्हारा कर्तव्य है।

"तजे राम जेहि बचनहिं लागी।
तन परिहरेउ राम बिरहागी।।" (रा० मा० २।२७२।२)

श्रीदशरथ परम भक्त तो थे ही तभी तो राम के विरहाग्नि में उन्होंने प्राणों को त्याग दिया। इस दृष्टि से दशरथ के तुल्य दशरथ ही हैं। दूसरा कोई उदाहरण नहीं। श्रीराम के विरह में उन्होंने प्राणों को तृण के तुल्य छोड़ दिया। उनमें किसी प्रकार के काम, क्रोध, लोभ या ममता की कल्पना कर के सुरापायी का दृष्टान्त देकर उनकी आज्ञा को उपेक्ष्य कहना आस्तिकता है या नास्तिकता ? समझदार समझें।

"नृपहिं बचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना॥" (रा० मा० २।१७२।३)

में दो मत हो ही नहीं सकते। श्रीराम तथा भरत किसी ने भी वसिष्ठ की उक्त बातों का विरोध नहीं किया। बल्कि सभी ने किसी न किसी रूप में उन्हें दुहराया ही है।

वसिष्ठ ने श्रीभरत के लिए भी राज करने में दोष नहीं है यही कहा है। काम करना ही चाहिये। राजा न बनने में अमुक अमुक दोष हैं या पाप लगेगा यह वसिष्ठजी ने कभी भी नहीं कहा है, क्योंकि राज करना तो रागप्राप्त ही था। कैकेयी ने भरत के हितार्थ ही वैसा वरदान माँगा था। यदि राम के वनगमन का वरदान न माँगा जाता तो उसके देने में कोई कठिनाई नहीं थी। राम के वनवास न देने से ही वचनभङ्ग का दोष उपस्थित हो सकता था। भरत को राज दे देने पर भी यदि भरत राज स्वीकार नहीं करते तो इसमें श्रीदशरथ के वचनभङ्ग का प्रसङ्ग ही नहीं उपस्थित होता। माता कैकेयी भी इस सम्बन्ध में चक्रवर्ती को दोषी नहीं ठहरा सकती थी। इसलिए वसिष्ठ ने अनेक दृष्टान्तों से यही कहा था कि यदि भरत राज करते हैं तो इसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि पिता की आज्ञा से अनुचित काम करने पर भी परशुराम आदि को कोई दोष नहीं लगा था। यद्यपि बड़े भाई के रहते हुए छोटे भाई का राजा होना अनुचित है, फिर भी पिता की आज्ञा के अनुसार राजा बनने में भरत को कोई दोष नहीं है।

"करहु तात पितु बचन प्रमाना।
करहु सीस धरि भूपरजाई। हइ तुम्ह कहँ सब भाँति भलाई॥
परसुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥
तनय ययातिहिं यौवन दयऊ। पितु आज्ञा अघ अजस न भयऊ॥
(रा० मा० २।१७२।३,४)

क्या महामति लेखक परशुराम और पुरु को पापी कहना चाहता है ?

"अनुचित उचित विचार तजि जे पालहिं पितु बयन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपुर अयन॥" (रा० मा० २।१७३)

उक्त वचन भी निर्विवाद है। श्रीराम, भरत तथा जनक आदि कोई भी उस परम तथ्य का विरोध कैसे कर सकता है ?

"सुरपुर नृप पावहिं परितोषू। तुम्ह कहँ सुकृत सुजस नहिं दोषू।
बेदबिदित सम्मत सब ही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥" (रा० मा० १७३।१,२)

अगर इन बातों में किसी को कोई भी आपत्ति होती तो चित्रकूट में कोई भी इसके विरोध में आवाज उठा सकता था। यद्यपि सामान्य नियम के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है फिर भी राजा चाहे तो अन्य को भी राज्य दे सकता है। तभी तो यज्ञों में राजा सर्वस्वदान कर सकता है। शतपथश्रुति में भी राजा अध्वर्यु, होता, उद्गाता, ब्रह्मा आदि के लिए सम्पूर्ण राज्य के प्राची आदि दिशाओं का दान कर देता है। जब अध्वर्यु आदि राज्य स्वीकार नहीं करते तब उसके बदले में राजा उनको बहुतसा धन प्रदान करता है। श्रीभागवत

के अनुसार श्रीराम ने भी अश्वमेधयज्ञ में ऐसा ही दान किया था।

"भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः।
सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान् मखैः॥" (भाग० ९।११।१)

भगवान् श्रीराम ने आचार्यवान् होकर उत्तम कल्पवाले यज्ञों से सर्वदेवमय आत्मा का ही यजन किया।

"होत्रेऽदाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः।
अध्वर्यवे प्रतीचीं तु उदीचीं सामगाय सः॥
आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा।
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः॥" (भाग० ९।११।२,३)

श्रीराम ने होता को प्राची दिशा प्रदान कर दी, ब्रह्मा को दक्षिण दिशा, अध्वर्यु को प्रतीची तथा उद्गाता को उदीची दिशा प्रदान कर दी। मध्य की सब भूमि आचार्य को प्रदान कर दी। महारानी वैदेही ने भी मङ्गलसूत्र के अतिरिक्त सम्पूर्ण अलङ्कारादि प्रदान कर दिये थे—

"तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता।" (भाग० ९।११।४)

अतः राजा चाहे तो छोटे पुत्र को भी राज्य दे ही सकता है।

वसिष्ठ ने कहा कि यह सुनकर श्रीराम और वैदेही भी प्रसन्न होंगे और कोई भी इसे अनुचित नहीं कहेगा—

सुनि सुख लहब राम वैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही।" (रा० मा० २।१७३।३)

कौशल्यादि माताएँ भी प्रसन्न होंगी। वे सभी प्रजा के सुख से सुखी होंगी। श्रीराम आपके हृदय को जानते हैं। वे सब तरह से तुम्हारी भलाई मानते हैं। जब राम आयेंगे तो उनका राज उन्हें सौंपकर सब प्रकार की सेवा करना।

श्रीवसिष्ठ का उक्त कथन में कोई विशेष तर्क नहीं है, जिसको उनकी तर्कप्रणाली कहा जाय। तर्क या कुतर्क तो लेखक का ही है, जो शास्त्रविरुद्ध है, मनमानी है।

वसिष्ठजी जिस सभा में बैठकर यह उपदेश कर रहे थे उसमें बड़े बड़े विद्वान् बैठे थे। धर्मज्ञ मन्त्रिमण्डल तथा कौशल्या आदि माताएँ उपस्थित थीं। मन्त्रियों ने भी वसिष्ठ के उपदेश का समर्थन किया—

"कीजिय गुरु आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आये उचित जस तब तस करिय बहोरि॥" (रा० मा० २।१७४)

श्रीकौशल्याजी ने भी कहा—

"पूत पथ्य गुरु आयसु अहई॥" (रा० २।१७४।१)

श्रीभरतजी ने स्पष्ट कहा कि—

"मोहि उपदेस दीन्ह गुरु नीका। प्रजा सचिव सम्मत सब ही का॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहिए कीन्हा॥
गुरु पितु मातु स्वामी हित बानी। सुनि मन मुदित करिय भलि जानी॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धरम जाइ सिर पातक भारू॥"

ये सब वचन निष्कपट भरत जैसे परम भक्त की उक्ति हैं। वह आज के लोगों जैसी कपटपूर्ण कोई पालसी नहीं कही जा सकती।

भरत के वचन में सरलता है कोई कौटल्य नहीं है। वसिष्ठादि के वचनों में उन्हें कोई दोष नहीं दिखाता है। उनके वचनों से वसिष्ठ के उपदेश का समर्थन मिलता है। परन्तु भरतजी यह जानते ही हैं कि गुरुदेव के वचन का स्पष्ट ही अभिप्राय यह नहीं है कि यदि मैं राज्य न करूँगा तो पापी बन जाऊँगा। हाँ, राज्य करूँगा तो दोष का भागी न बनूँगा। परन्तु जिसमें पुत्र को स्वतः राग हो वही पिता की आज्ञा भी हो तो उसके पालन में क्या कठिनाई है? कठिनाई तो वहाँ होती है जहाँ पिताजी राजत्याग की आज्ञा देते हों।

प्रकृत में सारी कठिनाई तो राम के सामने थी। उनका राज्य में स्वाभाविक अधिकार था। पिताजी भी उन्हें राज्य देना चाहते थे। पर माता कैकेयी ने पिताजी का कभी प्राण बचाया था। उन्होंने प्रसन्नता से उन्हें बरदान माँगने को कहा था। माता कैकेयी ने कहा कभी माँग लूंगी। उसके अनुसार उन्होंने राम को वनवास और मेरे लिए राज्य की माँग की। पिताजी ने सत्य-पालन की दृष्टि से उनकी माँग स्वीकार कर ली। मेरे लिए उन्होंने राज्य दे दिया। उनका वचन पूरा हो गया। मैं न लूं इससे उनकी सत्यनिष्ठा में, सत्य-पालन में कोई फरक नहीं पड़ता। वे राम को वनवास की आज्ञा न देते या मुझे राज्य न देते तो सत्य वचन में बाधा पड़ सकती थी। श्रीवसिष्ठजी पिताजी के द्वारा कैकेयी को दिये हुए वर प्रदान के अनुसार तथा श्रीराम और सीता के अभिप्राय के अनुसार, सचिवों, प्रजाओं तथा कौशल्या के अभिप्राय के अनुसार मुझसे राज्य करने के लिए कहते हैं।

परन्तु श्रीभरतजी भगवान् राम के अनन्य निःस्पृह धर्मनिष्ठ भक्त थे। उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा—

"तुम्ह तौ देहु सरल शिख सोई। जो आचरण मोर भल होई॥" (रा० मा० २।१७५।३)

यद्यपि इस बात को मैं समझता हूँ तथापि मेरे हृदय को इससे सन्तोष नहीं होता। कृपा कर मेरी प्रार्थना सुन ली जाय तब मेरे योग्य उपदेश किया जाय। मैं उत्तर देता हूँ मेरे अपराध को क्षमा करें, क्लोंकि साधु पुरुष दुःखित व्यक्ति के दोषों पर ध्यान नहीं देते—

"यद्यपि यह समुझत हउँ नीके। तदपि होत परितोष न जी के॥
अब तुम्ह बिनय मोर सुन लेहू। मोहि अनुहरत सिखावन देहू॥
उत्तर देहुं छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहिं न साधू। (रा०मा० २।१७५।३,४)

श्रीभरतजी लेखक के द्वारा उठाये हुए किसी तर्क की बात नहीं करते। वे तो अपनी निष्ठा और अभिरुचि को ही सरलता से कह देते हैं—

"पितु सुरपुर सियराम बन करन कहहु मोहिराज।
एहि ते जानहु मोर हित कै आपन बड़काज॥" (रा० मा० १।१७६)

पिताजी देवलोक चले गये। श्रीसीता-राम वन चले गये। आप लोग मुझे राज्य करने को कहते हैं क्या यह मेरा हित है? या इससे आप लोगों का कोई बड़ा काम बनेगा? जिसको राज्य चाहिए, उसके लिए आप लोगों की बात ठीक ही है। मेरी अपनी दृष्टि में परमहित है सीतापति राम की सेवकाई। परन्तु माँ की कुटिलता के कारण मेरे उस हित का अपहरण हो गया। मैं अच्छी तरह देख रहा हूँ, मेरा हित अन्य प्रकार से नहीं है।

"सोकसमाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय बिन पद देखे॥
बादि बसन बिनु भूषनभारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्मबिचारू॥

सरुज शरीर बादि बहु भोगा। बिन हरि भगति जायँ जप जोगा ॥
जायँ जीव बिन देह सुहाई। बादि मोर सब बिन रघुराई ॥"(रा०मा० २।१७६।२,३)

सचमुच भरत के इन वचनों में उनके सरल निष्कपट हृदय का भाव व्यक्त हुआ है। उसमें किसी पर आक्षेप नहीं है और किसी पर कटाक्ष भी नहीं है। वे अन्त में यही कहते हैं कि—

"जाउँ राम पहिं आयसु देहू। एकहिं आँक मोर हित एहू ॥" (रा० मा० २।१७६।४)

मेरी इच्छा, मेरी अभिरुचि यही है कि मैं राम के पास जाऊँ। उनकी शरण ग्रहण-ही मेरा सब कुछ है। यदि आप मुझे राजा बनाकर अपना और प्रजा का कल्याण चाहते हैं तो मैं यही कहूँगा कि आप स्नेहमयी विभोरता के कारण ही ऐसा कह रहे हैं—

"मोहि नृप करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू ॥" (रा० मा० ११।७६।४)

"कैकेयी सुअ कुटिलमति रामबिमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुख मोहबस मोहि से अधम के राज ॥" (रा० मा० २।१७७)

"कहउँ साँच सब सुनि पतिआहू। चाहिय धर्मशील नरनाहू ॥
मोहि राज हठि देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥
मोहि समान को पापनिवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू ॥"(रा० मा० २।१७७।१,२)

ये सब बातें यद्यपि वस्तुस्थिति के अनुगुण नहीं है तथापि लोकोत्तर रामभक्त भरत के मन में दीनता वश ऐसी ही प्रतीति हो रही है। यह दीनता भक्तों का असाधारण लक्षण है ही। "मो सम कौन कुटिल खल कामी" यह भी तो एक भक्त के मन की बात है।

इस प्रकार अपनी दीनता को प्रकट करते हुए भरतजी कहते हैं—कोई मनुष्य भूतादि ग्रहों से गृहीत हो। उसपर भी बिच्छू ने डङ्क मार दिया हो। उसपर भी उसको वारुणी पिला देना क्या उपचार है ?

"ग्रहग्रहीत पुनि बातबस तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिलाइय बारुनी कहहु काह उपचार ॥" (रा० मा० २।१७९)

इस दारुण दशा में वे राज्य देने की बात को अपने लिए वारुणी-पान के तुल्य समझते हैं।

भरतजी कहते हैं कि वास्तव में चतुर विरञ्चि ने मुझे कैकेयी के योग्य समझकर ही मुझे उसका पुत्र बनाया है। परन्तु इसके साथ मुझे श्रीदशरथ का पुत्र और श्रीराम का लघु भ्राता होने का गौरव प्रदान किया है, यह तो व्यर्थ ही है—

"दशरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि विधि बादि बड़ाई ॥" (रा० मा० २।१७९।१)

उसपर भी आप लोग मुझे राजसिंहासन देना चाहते हैं। मैं कैसे किस-किस को क्या उत्तर दूँ। भला मुझे छोड़कर चराचर प्रपञ्च में कौन ऐसा है जिसे श्रीसीताराम प्राण के समान प्रिय नहीं हैं।

"मो बिन को सचराचर माहीं। जेहि सिय राम प्राणप्रिय नाहीं ॥" (रा० मा० २।१७९।३)

श्रीकौशल्या अम्बा तो सरलचित्त हैं। मुझपर तो उनका सदा ही विशेष प्रेम है। वह मेरी दीनता देखकर स्वाभाविक स्नेह से मुझे राज्य करने को कहती हैं—

"राममात सुठि सरलचित मोपर प्रेम बिशेषि।
कहइ सुभाय सनेह बस मोरि दीनता देखि ॥" (रा० मा० २।१८०)

श्रीगुरुजी महाराज तो विवेक के समुद्र हैं। सम्पूर्ण विश्व जिनके लिए करतलगत बदर (बेर) के समान है। पर वे भी मुझे राजतिलक देने की बात करते हैं। वास्तव में विधाता के विमुख होने से ही सब मुझसे विमुख हो गये हैं। भरत को लगता है, ये सब लोग मेरे मन में राज्य करने की लालसा जानकर ही ऐसा कहते होंगे। इनके मन में यह भी होगा कि भरत की भी राम के वनगमन और राज्य पाने की भीतरी सहमति जरूर होगी। परन्तु एक सीताराम को छोड़कर कौन मानेगा कि मेरा वैसा मत नहीं है—

"गुरु बिबेकसागर जग जाना। जिन्हहि बिश्व करबदर समाना॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भये विधि विमुख विमुख सब कोऊ॥
परिहरि रामसीय जग माहीं। कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं॥"(रा०मा० २।१८०।१,२)

"आपनि दारुन दीनता कहहुँ सबहिं सिर नाय।
देखे बिन रघुनाथपद जिय कै जरनि न जाय॥" (रा० मा० २।१८१)

"आन उपाय मोहि नहि सूझा। को जिय कै रघुबर बिन बूझा॥
यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भै मोहि कारण सकल उपाधी॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा विसेषी॥
सील सकुच सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ॥
अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। मैं सिसु सेवक यद्यपि बामा॥"(रा०मा० २।१८१।१–३)

आप सब लोग आज्ञा और आशीर्वाद दें जिससे मेरी विनय सुनकर राम पुनः राजधानी में आ जायँ।

यद्यपि कैकेयी जैसी कुमाता से मेरा जन्म हुआ है और मैं अच्छी तरह सदोष हूँ तो भी अपना जानकर श्रीराम मुझे त्यागेंगे नहीं, ऐसा मुझे श्रीरघुवर पर दृढ़ भरोसा है। सरल, दुस्तर्करहित और आक्षेपरहित भरतजी के वचन सबको ही ऐसे प्रिय लगे जैसे रामसनेहसुधा से पगे हों—

"भरतबचन सब कहँ प्रिय लागे। रामसनेह सुधा जनु पागे॥" (रा० मा० २।१८२।१)

माताएँ, सचिव तथा गुरुदेव और सभी पुरवासी नरनारी परम स्नेह में विकल हो उठे और सभी भरत की भूरि-भूरि सराहना करते हैं—

"भरतहिं कहहिं सराहि सराही। रामप्रेम मूरति तनु आही॥"
तात भरत अस काहे न कहहू। प्रानसमान रामप्रिय अहहू॥
जो पाँवरु अपनीं जड़ताईं। तुम्हहि सुगाइ मातकुटिलाईं॥
सो सठ कोटिक पुरुष समेता। बसहि कलप सत नरकनिकेता॥(रा०मा० २।१८२।२–४)

भरत, तुम तो साक्षात् राम के मूर्तिमान् प्रेम ही हो। कोई पामर प्राणी अपनी जड़ता से ही तुम्हारे प्रति कुटिलता की शङ्का कर सकता है। जो माता की कुटिलता तुममें आरोप करेगा वह तो अपनी कोटि पीढ़ियों के साथ सैकड़ों कल्प तक नरक में रहेगा।

जैसे सर्प में रहती हुई भी मणि सर्प के अघ और अवगुण को नहीं ग्रहण करती। किन्तु वह गरल के दुःख और दरिद्रता की दाहक ही होती है। वैसे ही आप कैकेयी से उत्पन्न होने पर भी उसके कुटिलता आदि दोषों से मुक्त हैं। अज्ञान, भगवद्वैमुख्य आदि दोषों को दहन करनेवाले हैं।

इस तरह संक्षिप्त उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भरतजी के मन में वैसी कोई बात नहीं थी, जिसको लेखक ने उठाया है। श्रीभरत ऐसा प्रश्न कभी कर ही नहीं सकते थे—"धर्म क्या है? क्या महाराज ने राघवेन्द्र को वन भेजकर धर्म की उचित रक्षा की है""""यह कैसा धर्म जिसने अपने पालन करनेवाले का ही प्राण ले लिया। सारी प्रजा अनाथ हो गयी। राघवेन्द्र को वन जाना पड़ा, फिर यह धर्म किस कल्याण की सृष्टि करनेवाला है।"

भरतजी तो धर्म के परम फल साक्षात् भगवत्प्रेम के मूर्त रूप हैं। कोई सामान्य आस्तिक भी ऐसा प्रश्न नहीं कर सकता है।

सभी आस्तिक जानते हैं कि–"न सुखाल्लभते सुखम्" सुख से सुख नहीं मिलता। धर्म के आचरण में कठिनाइयाँ होती हैं। श्रीराम ने ही कहा है कि—

"सिबि दधीचि हरिचन्द नरेसू। सहेउ धर्महित कोटि कलेसू॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि संकट नाना॥" (रा०मा० २।९४।२)

शिबि ने धर्म-रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस काट काट कर कपोत के बराबर तराजू पर तौल तौल कर प्रदान किया था। हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए क्या क्या दुःख नहीं भोगा। दधीचि ने तथा स्वयं श्रीराम ने, धर्मराज युधिष्ठिर ने एवं राजा नल ने धर्म-रक्षण के लिए कितने ही कष्ट झेले हैं। हर एक तपस्या से कृच्छ्र, चान्द्रायण, पराक आदि व्रतों में भी तो प्रथम कष्ट ही होता है। विशेषतया ब्राह्मण के लिए तो तपोमय जीवन ही आदरणीय होता है—

"ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते।
कृच्छ्राय तपसे चैव प्रेत्यानन्तसुखाय च॥"

इसी लिए तो—

"तपबल बिप्र सदा बरियारा।" (रा० मा० १।१६४।२)

कहा गया है।

"यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्॥" (गीता १८।३७)

जो पहले विषतुल्य प्रतीत होता है और परिणाम में अमृतमय होता है। वही तो सात्त्विक सुख कहा जाता है।

महाराज दशरथ की वसिष्ठ महर्षि जैसे महापुरुष प्रशंसा कर रहे हैं। वे यह भी कह चुके हैं कि महाराज दशरथ के समान न कोई हुआ है, न है, न होनेवाला है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भी महाराज दशरथ की महिमा गाते हैं—

"बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दशरथ गुन गाथा॥" (रा०मा० २।२४१।४)

ये सब बातें वे वसिष्ठजी बोल रहे हैं जिनके लिए गोस्वामीजी कहते हैं—

"बड़ बसिष्ठ सम को जग माहीं।" (रा० मा० २।१७१।४)

तुलसी की दृष्टि से तो महाराज दशरथ धन्य धन्य हैं—

"जियन मरन फल दशरथ पावा। अंड अनेक अमल जस छावा॥
जियत राम बिधु बिदन निहारा। रामबिरह करि मरन सँवारा॥

भक्तिशास्त्र की दृष्टि से रामप्रेम में श्रीरामविरहाग्नि से प्राणप्रयाण स्वयं में परमपुरुषार्थ है और उनके द्वारा माँगे हुए अन्तिम वरदान के रूप में उन्हें मिला था। दशरथजी ने प्रभु से वरदान माँगा था—

"सुतबिषयक तव पद रति होऊ। मोहि बड़ मूढ़ कहै किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहिं अधीना॥

हे नाथ ! पुत्रवात्सल्यरूप अभङ्ग प्रीति मुझे प्राप्त हो भले कोई (पण्डितम्मन्य तथोक्त कथाकार) मुझे मूढ़ भी क्यों न कहें। जैसे मणिधर नाग का जीवन मणि बिना जीवित नहीं रहता, जल बिना मीन जीवित नहीं रहता, उसी प्रकार मेरा जीवन आपके अधीन रहे। अर्थात् आपके मुखचन्द्र-दर्शन के बिना मेरा जीवन नहीं ही रहना चाहिए।

धर्म रूढ़िगत वाक्यों से नहीं वेद-वाक्यों से सिद्ध होता है। गुरुदेव ने कहीं भी रूढ़िगत वाक्यों की दुहाई नहीं दी थी। "मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव" (तै० उ० १।११।२), "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्" (बृ० उ० ४।१।५) ये वेदवाक्य हैं। रूढ़िगत वाक्य नहीं। पिता जिसे देता है वही राज्य पाता है, यह भी रूढ़िवाक्य नहीं। शतपथादि वाक्यों से तथा श्रीभागवत के वाक्य से सिद्ध है, यह कहा जा चुका। यदि पिता किसी ब्राह्मण को होता और अध्वर्यु को राज्य दे देता है तो वह भी राज्य पा जाता है, फिर यदि छोटे पुत्र को राज्य दे दे तो वह क्यों नहीं पायेगा ?

पुत्र को आज्ञा देता हुआ पिता स्वयं पितृत्व में आरूढ़ है या नहीं ? यह कथन तो नास्तिकता और अव्यवस्था फैलानेवाला है। इस तरह तो किसी भी धर्म का अनुष्ठान ही असंभव होगा।

यदि पत्नी कहे कि पति ठीक हो तो हम पतिव्रता रहेंगी। पति कहे कि पत्नी ही पतिव्रता हो तो तब हम ठीक पति बनेंगे। पुत्र कहे पिता ही योग्य पिता हो तब हम ठीक पुत्र बनेंगे। पिता कहे कि पुत्र ठीक हो तब हम ठीक पिता बनेंगे तो क्या संसार का व्यवहार चल सकेगा ?

धर्म-पालन शर्तों के साथ नहीं होता। विधायक वचन भी ऐसी कोई शर्त नहीं रखते हैं, प्रत्येक के लिए विधान है। जो विधान का पालन करेगा वही ईश्वर का अनुग्राह्य होगा। इस प्रकार के धर्म आपसी समझौते पर आधारित नहीं, किन्तु ईश्वरीय विधानों पर ही आधारित हैं।

जो पिता अपना कर्तव्य नहीं पालन करेगा वह कर्म के अनुसार फल पायेगा। जो पुत्र अपना कर्तव्य पालन करेगा वह अपने कर्तव्य का फल पायेगा। इतना ही नहीं यह भी संभव होता है कि पुत्र अपना कर्तव्य पालन करके पिता का ही नहीं अनेक पीढ़ियों का भी कल्याण कर लेता है। साध्वी पतिव्रता पत्नी पातिव्रत धर्म के पालन से अपने दुराचारी पति का भी कल्याण करती है।

प्रकृत में तो ऐसा कोई प्रसङ्ग ही नहीं है। महाराज दशरथ के लिए शराबी स्वामी का दृष्टान्त नहीं दिया जा सकता। उन्हें आवेशजन्य भावनाग्रस्त उन्मादी भी नहीं कहा जा सकता। उन्हें काम, क्रोध या ममता से ग्रस्त उन्मादी भी नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में उनकी आज्ञा को स्वीकार करने में धर्म का उपहास ही होगा, यह कैसे कहा जा सकता है ?

यद्यपि सामान्यतया धर्म-पालन में विवेक की आवश्यकता होती है। जिससे आज्ञा देनेवाले और आज्ञापालन करनेवाले दोनों ही के लिए भी खतरा उपस्थित हो सकता हो वहाँ आज्ञा देनेवाले को स्वस्थ सावधान करना भी आवश्यक हो सकता है तथापि कई अवस्थाओं में आज्ञापालन का ही महत्त्व उत्कृष्ट होता है जैसा कि पीछे कहा गया है—

"परसुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मात लोक सब साखी॥
तनय ययातिहि यौवन दयऊ। पितु आज्ञा अघ अजस न भयऊ॥" (रा० मा० २।१७२।४)

ऊँची धर्मनिष्ठा में आज्ञा सर्वोपरि धर्म है। क्या इन दोनों पङ्क्तियों का कोई भी आस्तिक खण्डन कर सकता है? तभी तो वसिष्ठ ने कहा कि—

"अनुचित उचित विचार तजि जे पालहिं पित बयन।
ते भाजन सुख सुजसु के बसहिं अमरपति अयन॥" (रा० मा० २।१७३)

श्रीभरतजी का उनके वचनों पर शङ्का करना तो दूर उन्होंने तो और भी बढ़कर कहा कि—

"गुरु पित मात स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिय भल जानी॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू। जाई धर्म सिर पातक भारू॥"(रा०मा० १।१७५।२)

परन्तु महाराज की आज्ञा को तो अनुचित कहा ही नहीं जा सकता। कहीं भी और मानस में भी किसी ने भी अनुचित नहीं कहा। लखनलाल ने जो कुछ कहा था; उसे श्रीराम ने उनका लड़कपन या भावावेश मानकर सुमन्त्र से उसे न कहने का ही आग्रह किया था।

श्रीभरद्वाज भी वही कहते हैं जो श्रीवसिष्ठ ने कहा था कि—

"लोक वेद सम्मत सब कहई। जेहि पित देइ राज सो लहई॥" (रा० मा० २।२०५।४)

वसिष्ठ की तरह ही वह भी कहते हैं कि—

करतेहु राज त तुम्हहि न दोषू। रामहिं होत सुनत संतोषू॥" (रा० मा० २।२०५।४)

महाराज दशरथ में भरद्वाज भी कोई दोष नहीं देखते हैं। वे दशरथ की प्रशंसा करते हैं—

"दशरथ गुन गन बरनि न जाहीं। अधिक कहा जेहिं सम जग नाहीं॥"(रा०मा० २।२०७।४)

"जासु सनेह सकोच बस राम प्रकट भये आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ निरखे नाहिं अघाइ॥" (रा० मा० २।२०८)

भरद्वाज का स्पष्ट ही कहना है कि लोक वेद सबकी यही सम्मति है कि पिता जिसको राज्य देता है वही पाता है। ययाति ने ही ज्येष्ठ पुत्र यदु को राज्य नहीं दिया, किन्तु छोटे पुत्र पूरु को ही राज्य दिया।

दायभाग के अनुसार उपरमस्वत्ववाद चलता है, जिसमें पिता के मरने पर ही पुत्र को अधिकार मिलता है। मिताक्षरा के अनुसार जन्मना स्वत्ववाद मान्य होता है। जिसके अनुसार जन्म से कि वा गर्भ में ही पुत्र को अपनी बपौती सम्पत्ति का अधिकार होता है। उसके अनुसार पिता पुत्र की सम्मति के बिना मौरुसी सम्पत्ति का दान, विक्रय, वितरण कुछ भी नहीं कर सकता है। परन्तु यह नियम सामान्य जनों के लिए ही है।

राजाओं के नियम उनसे पृथक् होते हैं। इसी लिए सामान्य सम्पत्तियों के समान राज्य का बँटवारा नहीं होता है। सामान्यतया ज्येष्ठ का ही राज्य में अधिकार होता है। वह अपना राज्य किसी को भी दान कर सकता है किसी भी पुत्र को दे सकता है।

सामान्य नियम के अनुसार दशरथजी पहले श्रीराम को ही राज्य देना चाहते थे। परन्तु पूर्वदत्त वरदान के अनुसार सत्य वचन से बद्ध होने के कारण उन्हें अपना मन बदलना पड़ा। अपनी स्वाभाविक इच्छा को रोककर शास्त्र और सत्य के अनुसार उन्होंने कैकेयी की इच्छापूर्ति की।

जैसे भरत के प्रति किसी प्रकार के कौटिल्य की कल्पना पाप का परिणाम है, वैसे ही महाराज दशरथ के दिव्य गुणों में कालिमा की कल्पना अपने हृदय की ही कालिमा को प्रकट करना है। श्रीतुलसी तो वन्दना में ही कहते हैं कि—

"बन्दहुँ अवध भुवाल सत्यप्रेम जेहि रामपर।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तन तृण इव परिहरेउ॥" (रा० मा० १।१६)

हाँ, तो श्रीदशरथजी के वचन को शराबी के वचन से उपमा देना या उस भङ्गड़ की उपमा देना जो कहता है कि हमें स्मशान ले चलो या उन्हें काम, क्रोध, लोभ या ममता के आवेश का उन्मादी कहना वसिष्ठ, भरद्वाज, राम, भरत और तुलसी सबका ही अपमान करना है।

महाराज दशरथ का कैकेयी से प्रेम था। परन्तु वह अनुचित नहीं है। अपनी विवाहिता पत्नी में प्रेम कथमपि अनुचित नहीं कहा जा सकता। जिस क्षण उन्होंने कैकेयी का श्रीराम के विरुद्ध भाव देखा एकदम कैकेयी से उदासीन हो गये। कामी व्यक्ति तो राज्य, धन, पुत्र सबको ही त्यागकर कामिनी पर ही मुग्ध रहता है। परन्तु महाराज ने कैकेयी को समझाकर देख लिया कि यह असाध्य व्याधि है। तब महाराज ने यही कहा कि—

"चहत न भरत भूपतहि भोरे। बिधिबस कुमति बसी उर तोरे॥
सो सब मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुनधाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँपुर राम बड़ाई॥
तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयेहुँ न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठ मुँह गोई॥
फिर पछितैहसि अन्त अभागी। मारसि गाइ नहारू लागी॥" (रा० मा० २।३५।१-४)

यह कहना ही अनभिज्ञता ही है कि "पहले दशरथ ने कहा था कि ज्येष्ठ को ही राजा बनने का अधिकार है। परन्तु अब जब आज भरत से राज्य लेने के लिए कहा जाता है तब धर्म परिवर्तित रूप से उसके पक्ष में समर्थन दे देता है।" क्योंकि लेखक उत्सर्ग और अपवाद के सिद्धान्त से अपरिचित ही प्रतीत होता है। सामान्य नियम सर्वत्र प्रसिद्ध है।

हरि इ इस स्थिति में सामान्य शास्त्र "इको यणचि" (पा० सू० ६।१।७७) के अनुसार यण् प्राप्त होता है। परन्तु उससे प्रबल "अकः सवर्णे दीर्घः" (पा० सू० ६।१।१०१) के अनुसार यण् न होकर दीर्घ ही होता है।

सामान्यतया सदा सन्ध्या करने का विधान है। परन्तु सूतक-पातक में उसका संकोच भी होता है। उसी तरह सामान्यतया ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देना उचित ही था। वही वसिष्ठसम्मति के अनुसार महाराज करने जा रहे थे। परन्तु अब जब पूर्वदत्तवरा भरतमाता महारानी कैकेयी ने नयी परिस्थिति पैदा कर दी तो अब विशेष स्थिति में पूर्वधर्म की अपेक्षा प्रबल धर्म यही है कि भरत को राज्य दिया जाय। पूर्वोक्त वैदिक वचनों और श्रीभागवत के अनुसार जब राजा यज्ञों में अपना राज्य ब्राह्मणों में प्रदान कर सकता है और श्रीराम ने भी वैसा ही किया था। तब राजा को सुतरां कनिष्ठ पुत्र को राज्य देने का अधिकार तो है ही तो भी यहाँ किसी राग और द्वेष के वशीभूत होकर नहीं, किन्तु सत्य की रक्षा के लिए कैकेयी की माँग को पूर्ण करना ही इस समय का सबसे बड़ा धर्म है। महाराज ने यह सब अपनी इच्छा के विरुद्ध शुद्ध धर्म-पालन के लिए ही अपने प्रिय प्राणों का बलिदान कर के भी किया था। तभी वसिष्ठ और भरद्वाज दोनों ही उस समय के प्रख्यात महर्षियों ने उसका समर्थन किया।

"विदित वेदसम्मत सब ही का। जेहि पित देई सो पावइ टीका ॥" (वसिष्ठ)
"लोक वेद सम्मत सब कहई। जेहि पित देइ राज सो लहई ॥" (भरद्वाज)

अतः इन महर्षियों के वचनों के सामने किसी के दुस्तर्क का कोई महत्त्व ही नहीं है।

यह भी कहना गलत है कि "यद्यपि गुरु वसिष्ठ यह जानते हैं कि लोभग्रस्त कैकेयी ने महाराज श्रीदशरथ से दबाव डालकर ही राम के वनगमन की आज्ञा प्राप्त की है। फिर भी उसे आज्ञा-पालन का धर्म कहकर श्रीभरत से उसे मान लेने की आज्ञा दी जा रही है। यदि धर्म स्वार्थसमर्थन में ही प्रयुक्त किया जाने लगे तब उसके द्वारा लोकसंरक्षण का प्रश्न ही कहाँ उठता है।" क्योंकि भले ही माँ कैकेयी लोभग्रस्त रही होंगी। परन्तु महाराज तो लोभग्रस्त नहीं थे। यदि कैकेयी को पूर्व में वरदान न दिया होता तो क्या महाराज किसी तरह कैकेयी के दबाव से प्रभावित होते ?

पूर्वोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि महाराज सत्य के रक्षार्थ ही यह निर्णय लेने के लिए बाध्य हुए थे। उनके मन पर किसी भी काम, क्रोध, लोभ तथा ममता का प्रभाव या आवेश नहीं था। महाराज के लिए तथा महर्षि वसिष्ठ के लिए स्वार्थ का तो कोई प्रसङ्ग ही नहीं था। अतः शुद्ध धर्म की दृष्टि से ही महाराज ने राम को वनगमन और भरत को राज्य देने का निर्णय लिया था।

"श्रीराम गुरु वसिष्ठ के ज्येष्ठ पुत्र की परम्परावाले तर्क को वस्तु धर्म के रूप में मन से नहीं स्वीकार कर पाये। इसी लिए उन्होंने उसके औचित्य पर सन्देह प्रकट करते हुए सोचा था—

"जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई ॥
करनबेध उपवीत विवाहा। संग संग सब भये उछाहा ॥
विमल वंश यह अनुचित एकू। बन्धु विहाइ बड़ेहि अभिषेकू ॥" (रा० मा० २।९।३,४)

यह कहना भी अनभिज्ञता ही है, क्योंकि राम और भरत कोई भी ऐसे नहीं हैं जो गुरु वसिष्ठ के वचनों में सन्देह करते हों। आश्चर्य है कि मानस के ही पण्डित मानस की ही बात नही समझ पाते हैं।

यद्यपि वसिष्ठ ने ज्येष्ठ कनिष्ठ की कोई चर्चा नहीं की थी।

"स्रवन समीप भये सित केसा। मनहुँ चौथपन अस उपदेसा ॥
नृप जुवराम राम कहँ देहू। जीवन जन्म लाहु किन लेहू ॥" (रा० मा० २।१।४)

इस तरह वृद्धावस्था देखकर उससे ही महाराज दशरथ के मन में श्रीराम के यौवराज्य का विचार उठा था।

"यह बिचार उर आनि नृप उचित सुअवसर पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरुहिं सुनायउ जाइ ॥" (रा० मा० २।२)

गुरुदेव ने उसी का अनुमोदन किया था। महाराज ने फिर मन्त्रियों एवं पुरजनों की सम्मति लेकर मुनि को राम के भवन में विधि-विधान सिखाने के लिए भेजा—

"तब नरनाहु वसिष्ठ बुलाये। रामधाम सिख देन पठाये ॥" (रा० मा० २।८।१)

वहाँ भी वसिष्ठ ने अपनी तरफ से ज्येष्ठ कनिष्ठ की कोई बात नहीं कही थी। किन्तु यही कहा था कि राजा ने आपके यौवराज्याभिषेक का आयोजन किया है। तदर्थ आपको आवश्यक संयम-नियम का पालन करना चाहिये—

"भूप सजेउ अभिषेकसमाजू। चाहत देन तुमहिं युवराजू ॥" (रा० मा० २।९।१)

श्रीराम स्वयं भी यह नहीं कहते हैं कि गुरुदेव ने या पिताश्री ने यह अनुचित किया है अपितु वे कहते हैं कि हम सब भाइयों का जन्म, भोजन, शयन, खेल, उपवीत संस्कार, विवाह आदि सब साथ साथ हुआ अब अभिषेक केवल मेरा ही हो यह एक बात इस विमलवंश सूर्यवंश की अच्छी नहीं लगती। परन्तु तुलसी और उनके राम तो मर्यादापालक हैं। उस मर्यादा में तो वंशपरम्परा की बातों का परम आदर होता है। मनु ने भी श्रुति और स्मृति के साथ सदाचार को भी धर्म में प्रमाण माना है—

"वेदः स्मृतिः सदाचारः।" (मनु० २।१२)

भगवान् भी गीता में—

"उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः।" (गीता १।४३)

जातिधर्म और कुलधर्म की रक्षा को आवश्यक मानते हैं। फिर सूर्यवंश की परम्परा की किसी बात को राम अनुचित कैसे कह सकते हैं? इसी बात का समाधान करते हुए गोस्वामीजी भी कहते हैं—

'प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगतमन की कुटिलाई॥ (रा० मा० २।९।३)

अर्थात् यह प्रभु का पछताना स्वाभाविक प्रेम की परिणतिमात्र है। इससे यह सप्रेम पछताना भक्तों के मन की कुटिलता का ही हरण करता है। विमल वंश की असूया में उसका तात्पर्य नहीं है।

उक्त बात केवल सूर्यवंश में ही नहीं, किन्तु चन्द्रवंश में भी है और यौक्तिक भी है। राज्य के बँटवारे से व्यवस्था नहीं चल सकती। बारी-बारी सभी भाई राजा हों यह भी बात नही चल सकती। हाँ, मन्त्री आदि के रूप में तो भाइयों का सम्मान होता ही है। किसी क्षेत्र में अन्य भाई भी राजा हो सकते ही हैं। जैसा कि श्रीराम ने शत्रुघ्न को मथुरा का शासक बनवाया था और भरत तथा लक्ष्मण के पुत्रों को भी विभिन्न क्षेत्रों में राजा बनाया था।

मनु के अनुसार सम्पूर्ण पित्र्य धन को ज्येष्ठ पुत्र ही ग्रहण करता है। शेष सभी भाइयों को पिता के समान ही ज्येष्ठ बन्धु का ही अनुवर्तन करना चाहिये।

मन्थरा ने भी कहा था कि राजा के सभी पुत्र राज्य के रधिकारी नहीं होते। यदि सभी राजा हों तो महान् अन्याय एवं अव्यवस्था होगी। अतः राजा लोग शासन-व्यवस्था ज्येष्ठ पुत्र में ही स्थापित करते हैं। हाँ, कभी ज्येष्ठ के अयोग्य होने से गुणवान् कनिष्ठ पुत्रों के अधीन भी राज्यव्यवस्था स्थापित हो सकती है। फिर भी राज्य के अनेक शासक नहीं हो सकते; वैसा होने पर अव्यवस्था से महान् अन्याय हो सकता है—

"नहि राज्ञः सुताः सर्वे राज्ये तिष्ठन्ति भामिनि।
स्थाप्यमानेषु सर्वेषु सुमहाननयो भवेत्॥
तस्माज्ज्येष्ठे हि कैकेयि राज्यतन्त्राणि पार्थिवाः।
स्थापयन्त्यनवद्याङ्गि गुणवत्स्वितरेष्वपि॥"(वा० रा० २।८।२३,२४)

इस प्रकार मनु और वाल्मीकिरामायण के अनुसार स्वाभाविकरूप से ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता है। परन्तु विशेष अवस्था में गुणवान् कनिष्ठ राजपुत्र भी राज्य का अधिकारी हो सकता है। परन्तु राजा के सभी पुत्र राज्य के अधिकारी नहीं होते। इस तरह शास्त्रसम्मत सिद्धान्त का अपलाप मिथ्या दुस्तर्कों से नहीं हो सकता।

श्रीभरत ने किसी भी धर्म-व्याख्या के प्रति अपनी असहमति प्रकट नहीं की। पहले हम कह चुके हैं कि महाराज दशरथ अथवा श्रीवसिष्ठ किसी ने भरत को आज्ञा के रूप में राजा होने को कहा ही नहीं। किन्तु कैकेयी के लिए जो दो वर प्रदान किये थे। उसी दृष्टि से वसिष्ठ ने भरत को राजा होने को कहा था। भरद्वाज ने भी

उसी दृष्टि से कहा था कि यदि तुम राज्य करते तो भी कोई दोष नहीं था। वैसा सुनकर राम को सन्तोष ही होता। परन्तु अब तुमने और अच्छा किया जो श्रीराम को ही राजा बने रहने के लिए तुम राम से आग्रह करने जा रहे हो—

करतेहुँ राज तुम्हहिं नहिं दोषू। रामहि सुनतः होत संतोषू॥" (रा० मा० २।२०५।४)

"अब अति कीन्हेउ भरत भल तुम्हहिं उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग रघुपतिचरन सनेहु॥" (रा० मा० २।२०६)

श्रीवसिष्ठजी ने भी महाराज का वरदान और कैकेयी की इच्छा के अनुसार कौशल्या आदि माताओं तथा प्रजा के शान्ति और सन्तोषार्थ भरत के राज करने को लोकवेद-सम्मत कहा था। उनका राज करना अनुचित नहीं है—

"सुनि सुख लहब राम बैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही॥" (रा० मा० २।१७३।३)

राज्य करना सर्वसाधारण के लिए रागतः प्राप्त होता है। उसकी विधि अपेक्षित नहीं होती है। क्योंकि विधि तो अत्यन्त अप्राप्त की होती है, "विधिरत्यन्तमप्राप्तौ"—अतः प्राप्त राज्य त्याग देने में भी कोई दोष होने की संभावना नहीं होती है। अतः भरत के राज्य न करने से भरत पर किसी दोष की संभावना भी नहीं।

आज्ञा और विधियों में रागतः अप्राप्त कर्मों का ही विधान होता है। राज्य त्यागकर वन जाने की आज्ञा ही मुख्य आज्ञा है, क्योंकि वह रागतः प्राप्त नहीं है। उसी का गुणगान किया जाता है। भरतजी राज्य करते तो दोष न होने पर भी उसका कोई बड़ा महत्त्व नहीं था। महत्त्व तो भरत के त्याग का ही है।

"श्रीभरत धर्म को नया अर्थ प्रदान करते हैं। उनका सिद्धान्त यह है कि यदि राज्य के वास्तविक स्वामी महाराज दशरथ हों तो उन्हें ऐसा अधिकार हो सकता था। पर यह राज्य उन्हें क्रमशः उत्तराधिकार में मिला था। अतः राज्य के मूल स्वामी का अन्वेषण किया जाना चाहिये और अन्त में यह निष्कर्ष निकलेगा कि संसार में सम्पत्ति और राज्य के एकमात्र स्वामी भगवान् राम ही हैं—

"संपति सब रघुपति कै आही।" (रा० मा० २।१८४।२)

इस तरह की मान्यता से धर्म भक्तिपरक हो जाता है। धर्म और अधिकार जब तक व्यक्तिपरक होंगे तब तक स्वार्थ और संघर्ष की भावनाएँ बनी रहेंगी। व्यक्ति कितना भी भला क्यों न हो भय, प्रलोभन और वासना की वृत्तियाँ उसमें परिवर्तन ला ही सकती हैं। अतः धर्म का केन्द्र अधिकार के स्थान पर सेवा और व्यक्ति के स्थान पर प्रभु को ही होना चाहिये।"

किन्तु उक्त कथन सर्वथा लोक, वेद तथा तर्क के विरुद्ध है। धर्म का नया अर्थ किसी को भी मान्य नहीं होता। धर्म में तर्क का भी कोई आदर नहीं होता। भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, वसिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज कोई भी धर्म के निर्माता नहीं हो सकते। धर्म किसी का सिद्धान्त नहीं है। जब श्रीराम धर्म की व्यवस्था नहीं बना सकते तो भरत तो वैसा साहस कभी कर ही नहीं सकते।

व्यक्ति में भ्रम, प्रमाद, करणापाटव तथा विप्रलिप्सा हो सकती है। अतः किसी भी जीव या ईश्वर द्वारा निर्मित ग्रन्थ धर्म में प्रमाण नहीं है। ईश्वर में भी छलछद्म सम्भव होता है। मोहिनीरूपधारी भगवान् ने भी छल किया था। श्रीविष्णु ने भी छल किया था—

"छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुरकारज कीन्ह।"

भले ही वह छल संसार के हित में ही हो, परन्तु है तो छल ही। इसी दृष्टि से किसी ऋषि, आप्त या ईश्वर का वही वचन धर्म में प्रमाण है जो वेदसंमत एवं वेद के अविरुद्ध हो। इसलिए वेद को भगवान् का निःश्वासरूप माना जाता है—"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्।" श्वास अकृत्रिम पुरुषबुद्धि-प्रयत्नानपेक्ष होते हैं। अतः वेद के निर्माण में जीव की कौन कहे ईश्वर की भी बुद्धि और प्रयत्न नहीं खर्च होता। इसलिए वेद अपौरुषेय अपास्तसमस्तपुंदोष होने से निर्विवाद प्रमाण होते हैं। इसी लिए भगवान् राम, कृष्ण, शिव, व्यास, वसिष्ठ, वाल्मीकि, तुलसी सभी वेदों की हीं दुहाई पद पद पर देते हैं। अतः धर्म को नया रूप या नया अर्थ कोई भी नहीं प्रदान कर सकता है। यह तुलसी को कदापि मान्य नहीं है।

उत्तराधिकारप्राप्त धन एवं राज्य उपयोग के लिए ही होता है। यथेष्ट विनियोग-क्षमता ही स्वत्व होता है। अतः परम्पराप्राप्त राज्य का भी दान किया ही जा सकता है। भगवान् की गीता भी धर्म में शास्त्र को ही प्रमाण मानती है—"तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते" राज्य ही क्या सम्पूर्ण प्रपञ्च का मूल स्वामी परमेश्वर है। यह भरत का कोई नया मत नहीं है। "सर्वस्येशानः सर्वस्याधिपतिः" इत्यादि श्रुतियों से ही सिद्ध है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि कोई अपनी वस्तु का दान, व्यय, वितरण नहीं कर सकता, क्योंकि जैसे भूमिका मूल स्वामी राजा के होने पर भी अवान्तर स्वामी जमीन्दार, जागीरदार और काश्तकार भी होते ही हैं। वे भी अपनी भूमिसम्पत्ति का दान, वितरण या विक्रय कर ही सकते हैं। इसी तरह समस्त विश्व का मूल स्वामी परमेश्वर के होने पर भी भिन्न-भिन्न राजा भी अपनी अपनी सम्पत्तियों के मालिक होते ही हैं। तभी पृथ्वी के दान, विक्रय आदि की व्यवस्था होती है। यदि यह स्थिति न मानी जायगी तब तो भू-दान का शास्त्रोक्त विधान ही बाधित हो जायगा।

अतएव यदि सम्पत्ति किसी की हो ही नहीं सब ईश्वर की ही है। तब फिर सर्वस्वदान, भूमिदान, स्वर्ण-दान, रत्नदान, अन्नदान आदि की व्यवस्था कैसे बनेगी ?

यदि सब संपत्ति ईश्वर की है किसी व्यक्ति की नहीं हो तब तो चोर को दण्ड भी क्यों हो, क्योंकि सभी संपत्ति ईश्वर की है तो चोर ने ईश्वर की संपत्ति ली है फिर उसे ही दण्ड क्यों ? ईश्वर की सम्पत्ति रखने पर भी यदि दण्ड हो तब तो जिसके पास थी उसे भी दण्ड मिलना चाहिये।

"यदन्यद् ब्राह्मणस्य वित्तात् सभूमि सपुरुषं प्राची दिग्घोतुर्दक्षिणा ब्रह्मणः प्रतोच्यध्वर्योरुदीच्युद्गातुः।" (शत०ब्रा० १३।७।१।१३) में राजा ब्राह्मण का वित्त छोड़कर सभूमि सपुरुष राष्ट्र के मध्य से प्राची, दक्षिणा, प्रतीची और उदीची दिशाओं का होता, ब्रह्मा, अध्वर्यु एवं उद्गाता के लिए दक्षिणा के रूप में प्रदान करता है।

महाराज दशरथ ने भी अश्वमेधयज्ञ में अपनी भूमि का दान किया था—

"प्राचीं होत्रे ददौ राजा दिशं स्वकुलवर्धनः।
अध्वर्यवे प्रतीचीं तु ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम्॥
उद्गात्रे तु तथोदीचीं दक्षिणैषा विनिर्मिता।
अश्वमेधमहायज्ञे स्वयंभूविहिते पुरा॥
क्रतुं समाप्य तु तदा न्यायतः पुरुषर्षभः।
ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्धनः॥" (वा० रा० १।१४।४३-४५)
"ऋत्विजस्त्वब्रुवन् सर्वे राजानं गतकिल्बिषम्।
भवानेव महीं कृत्स्नामेकां रक्षितुमर्हति॥
न भूम्याः कार्यमस्माकं नहि शक्ताः स्म पालने।
रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप॥

निष्क्रयं किञ्चिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति।
गवां शतसहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृपः।
दशकोटि सुवर्णस्य रजतस्य चतुर्गुणम् ॥ ५१ ॥"

यदि सारी सम्पत्ति ईश्वर की है तो इस प्रकार के दान कैसे सम्भव हो सकते ?

श्रीराम ने भी ऐसा ही किया था। वह श्रीमद्भागवत से प्रमाणित ही है। अतः भरत कभी भी ऐसा शास्त्रविरुद्ध सिद्धान्त स्वीकार ही नहीं कर सकते हैं।

यह कहा जा चुका है कि श्रीवसिष्ठ ने कैकेयी के वर की दृष्टि से ही भरत को राजा होने की बात कही थी। महाराज के वैसा न करने पर उनके सत्य धर्म का नाश हो सकता था। परन्तु भरत उसे न स्वीकार करें तो इससे किसी के भी धर्म-नाश की सम्भावना नहीं।

वरदान देनेवाला यदि वरदान से मुकरता है तो उसका सत्य-भङ्ग होता है। पर यदि कोई भी प्रतिग्रहीता वचनबद्ध नहीं है तो वह प्रतिग्रह के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

राज्य स्वीकार कर लेने पर ही वसिष्ठजी की यह सलाह थी कि जब राम १४ वर्ष के बाद लौटकर आयें तब राम को राज्य पुनः प्रदान कर के उनकी सेवा करना। जब उन्होंने राज्य स्वीकार ही नहीं किया तो दूसरे परामर्श का प्रश्न ही नहीं उठता।

यह कहना भी गलत है कि "गुरु वसिष्ठ का विचार यह था कि महाराज दशरथ से राज्य पाने के बाद तुम्हें यह अधिकार होगा कि १४ वर्ष के बाद राम को राज्य दे सको।

इस तरह पिता की आज्ञा का पालन और राम को राजा बनाने की तुम्हारी आकाङ्क्षा पूरी हो जायगी। किन्तु श्रीभरत की दृष्टि में यह धृष्टता की पराकाष्ठा थी। वे स्वयं राज्य के स्वामी बनकर भगवान् राम को राज्य दान करने की चेष्टा करे क्यों ?"

पर यह ठीक नहीं क्योंकि यह तो प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि किसी तरह भी प्राप्त निज वस्तु को भगवान् के अर्पण करके भगवान् को ही उसका स्वामी बना दे। इसमें किञ्चित्मात्र भी धृष्टता का प्रश्न ही नहीं उठता है। भगवान् गीता में कहते हैं—

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्करिष्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥" (गीता ९।२७)

"कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्।
करोति यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत् तत् ॥"(भाग० ११।२।३६)

आप भी मानते हैं। सब सम्पत्ति भगवान् की ही है। यदि भगवान् को उसका अर्पण करना धृष्टता है तो भगवद्वचन की क्या गति होगी।

अपनी सब वस्तुओं को राम की बना देना ही रामराज्य है।

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।"

यह भी कहना गलत है कि "चित्रकूट की यात्रा का तात्पर्य था भगवान् राम से यह स्वीकार करा लेना कि वे अयोध्या के वास्तविक स्वामी है।"

भगवान् राम वैसी धर्मविरुद्ध बात कभी स्वीकार कर ही नहीं सकते थे। उन्होंने स्पष्ट ही चौदह वर्ष तक राज्य के स्वामित्व को स्वीकार करने से इनकार ही किया था।

जब भरत की दृष्टि से राम सकल विश्व के ही वास्तविक स्वामी थे तो अयोध्या के भी स्वामी थे ही। फिर उन्हें अयोध्या का स्वामी बनने के लिए आग्रह करना क्या धृष्टता की पराकाष्ठा नहीं थी।

यह भी कहना गलत हैं कि "प्रभु से पादुका प्राप्त करने के पश्चात् वे प्रसन्न हो गये। उन्होंने उसका अर्थ यही लिया कि पादुका तो पद के लिए ही दी जाती है। प्रभु ने पादुका देकर अयोध्या का राज्यपद स्वीकार कर लिया। इसी लिए भरत ने पादुकाओं को अयोध्या में ले जाकर सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया और उसके पश्चात् एक सेवक के रूप में वे राज्यसञ्चालन करते रहे।"

भरत जैसे निश्छल निष्कपट पुरुष में ऐसे छल की कल्पना करना ही धृष्टता की परा काष्ठा है। आज किसी व्यक्ति ने किसी वस्तु के न लेने का दृढ़ निश्चय कर रखा हो उसे स्पष्टरूप से बिना बताये छल से उसको उसका प्रतिग्राही मान लेना छल भी है और धृष्टता भी है।

यह भी कहना गलत है कि "गुरु वसिष्ठ स्मृतिमूलक धर्म के व्याख्याता थे। वहीं दूसरी ओर श्रीभरत प्रेमपरक धर्म के व्याख्याता थे। उनकी दृष्टि में जब तक जीव स्वयं दैन्यग्रस्त है तब तक उनसे यह आशा करना कि वह समाज में सुख और शान्ति का प्रसार करेगा मृगतृष्णामात्र है।"

वस्तुतः स्मृति कोई स्वतन्त्र प्रमाण ही नहीं है। वह तो श्रुतिमूलक ही है। इसी लिए किसी भी स्मृति-वचन का प्रामाण्य 'इयं स्मृतिः श्रुतिमूलिका, स्मृतित्वात्, मनुस्मृतिवत्' इस प्रकार श्रुतिमूलकता के आधार पर ही स्मृति प्रमाण होती है। जो स्मृति श्रुति से विरुद्ध होती है वह प्रमाण नहीं होती। स्मृति श्रुति के अनुगुण होने पर ही प्रमाण होती है।

प्रेमपरक धर्म भी कोई स्वतन्त्र धर्म नहीं है। धर्म तो एकमात्र वेदशास्त्रमूलक ही है वही धर्म भगवच्चरण-पङ्कजसमर्पणबुद्धि से अनुष्ठीयमान होकर प्रेमपरक हो जाता है। फिर कथावाचकजी के अनुसार वेश्यापरक प्रेम भी धर्म हो जायगा।

यह कहना अत्यन्त असंगत है कि "जिसमें वासना और स्वार्थ होगा वह लाखों उपदेश करने पर भी अवश्य अधर्म करेगा। जिसमें स्वार्थ ओर वासना का अभाव है उसके द्वारा शास्त्र देखकर धर्मपालन करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि शास्त्र तो साधक के लिए होते हैं सिद्धों के लिए नहीं; क्योंकि सिद्ध तो कृतार्थ ही होता है। जिसने नाव का सहारा लेकर नदी पार कर ली उसके लिए फिर नाव का आश्रयण आवश्यक नहीं है।"

ब्रह्मात्मसाक्षात्कार से ही मूलाज्ञान की निवृत्ति और वासनाक्षय होता है। जिसने अहन्ता को बाधित कर दिया उसमें अहन्तामूलक स्वार्थ भी नहीं होते। भरत आदि तो भगवान् के ही स्वरूप हैं। उनका धर्मानुसरण तो उसी तरह लोकसंग्रहार्थ है जैसे श्रीराम का। किन्तु सामान्यतया मनुष्य वासना और स्वार्थ से रहित नहीं होते हैं। उन्हीं के उद्धार के लिए शास्त्रों का प्रयास होता है। श्रीमद्भागवत में एकादशस्कन्ध में श्रीभगवान् ने कहा है कि जैसे माता कटु गिलोय पिलाने के लिए बालक को मोदक का प्रलोभन देती है। बालक मोदक पाने के लोभ से गिलोय पी लेता है। माता मोदक देती है। बालक समझता है कि गिलोय पीने का फल मोदक-प्राप्ति है। परन्तु माता समझती है उसका फल है रोगनिवृत्ति। ठीक इसी तरह स्वर्ग, पशु, पुत्र, धनादि का प्रलोभन देकर श्रुति जीव को विविध धर्मों के अनुष्ठान में लगाती है। जीव को उनके अनुष्ठानों से विविध फल भी मिलते हैं और जीव उन्हें उन कर्मों का वही फल समझता है। परन्तु श्रुति तो स्वाभाविक पाशविक काम-कर्म और ज्ञान की निवृत्ति के लिए ही वैदिक काम, कर्म

और ज्ञान की ओर उसे प्रवृत्त करती है। जैसे काँटों से काँटा निकलता है वैसे ही वैदिक काम, कर्म और ज्ञान से ही पाशविक काम, कर्म और ज्ञान की निवृत्ति होती है।

"वेदोक्तमेव कुर्वाणो निःसङ्गोऽर्पितमीश्वरे।
नैष्कर्म्यसिद्धिं लभते रोचनार्था फलश्रुतिः॥" (भाग० ११।३।४६)

प्राणी वेदोक्त कर्मों को भगवदाराधनबुद्धि से निःसंग होकर करता हुआ सर्वकर्मनिवृत्तिमूलक ब्रह्मात्मज्ञान को प्राप्त कर लेता है। विविध फलों की श्रुति तो केवल कर्मों में रुचि उत्पन्न करने के लिए ही है।

उधर प्रवृत्ति करने के लिए अर्थवादों के द्वारा उन कर्मों की प्रशंसा और महत्त्व का वर्णन किया जाता है। उनके प्रभाव से और फल के लोभ से प्राणियों की कर्मों में प्रवृत्ति होती ही है। विविध लाभों के लिए ही तो प्राणी लौकिक कठिन से कठिन कर्मों में प्रवृत्त होता ही है। विविध कठिन भाषाओं, कठिन साइन्स आदि की शिक्षाओं में प्राणी प्रवृत्त होता ही है। कर्मों में लगने से आलस्य, प्रमाद एवं निरर्थक चेष्टाओं से विरति होती ही है।

ब्राह्ममुहूर्त में उठने से प्रातःकालिक भगवत्स्मरण, स्नान, सन्ध्या, जप, अग्निहोत्रादि का नियम पालन करने से दो घण्टे दिन तक सोते रहने, उठते ही चाय पीने, गप-शप लड़ाने आदि की आदतें छूटती हैं। यही वेद कहता है—"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।"

प्राणी अविद्या (वैदिक काम, कर्म और ज्ञान) के द्वारा मृत्यु (पाशविक काम, कर्म और ज्ञान) का अतिक्रमण करके विद्या (उपासना) के द्वारा अमृतत्व को प्राप्त होता है। यद्यपि सभी ज्ञानवान् प्राणी अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार काम करते हैं। उसमें किसी का कोई वश नहीं चलता है—

"सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥ (गीता ३।३३)

परन्तु इस स्थिति में विधि-निषेधात्मक शास्त्र व्यर्थ होते हैं। जब सब अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार ही काम करेंगे तब फिर कोई किस प्रकार दुष्कर्म से बचकर स्वधर्म में प्रवृत्त हो सकेगा। फिर तो पापप्रकृतिवाला पुरुष अपनी प्रकृति के अनुसार पाप करेगा ही फिर उसकी निवृत्ति कैसे होगी? इस तरह पुरुष के पुरुषार्थ के लिए कोई अवकाश ही नहीं रह जाता है। वासना और स्वार्थ के वशीभूत प्राणी पाप करेगा ही। तब परमेश्वर वेदादि शास्त्र पुरुषार्थ के लिए क्यों आविर्भूत करते हैं। इन्हीं सब शङ्काओं का उत्तर देते हुए भगवान् कहते हैं—

"इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥" (गीता ३।३४)

इन्द्रिय के इन्द्रियार्थ में राग-द्वेष व्यवस्थित होते हैं। उनके वश में न होना ही पुरुषार्थ का मूल है। मृत्तिका घट के निर्माण का हेतु है तथापि जल उसका सहकारी कारण है। जैसे जलरूप सहकारी कारण के विघटन से मृत्तिका घट नहीं बना सकती है, उसी तरह राग-द्वेषरूप सहकारी कारणों के बिना प्रकृति भी स्वानुरूप कर्मों में प्राणी को नहीं प्रवृत्त कर सकती है। अतएव हिंसाप्रकृतिवाला सिंह भी अपने बच्चे की हिंसा में नहीं प्रवृत्त होता है, क्योंकि द्वेषरूप सहकारी कारण वहाँ नहीं है। चोरी की प्रकृतिवाला चोर भी उसी वस्तु को चुराता है जिसमें उसका राग होता है। जिन हीरा आदि बहुमूल्य रत्नों को वह नहीं पहचानता है, जिनमें राग नहीं है, उन्हें नहीं चुराता। रागास्पद सुवर्ण, रजतादि को चुराता है।

तस्मात् सत्पुरुषों के समागम और सच्छास्त्रों का अभ्यास करके स्वाभाविक राग-द्वेषों को मिटाकर प्रकृतिपारतन्त्र्य मिटाया जा सकता है और पुरुषार्थ को अवकाश मिल सकता है। भगवत्कृपा तो सर्वत्र सर्वोपरि है

ही। फिर भी भगवान् सर्वत्र समान हैं। उनका किसी से द्वेष या राग नहीं है। किन्तु जो उन्हें भजते हैं। उन्हें भगवान् अनुगृहीत करते हैं—

"यद्यपि सम नहि राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू॥
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा॥"(रा०मा० २।२१७।२,३)

यद्यपि सामान्यतया प्राणी अपने प्राक्तन कर्मों के अनुसार ही उन-उन वातावरणों में उन-उन माता, पिता आदि से जन्म लेकर उनकी शिक्षा-दीक्षा तथा संस्कारों के अनुसार प्रवृत्त होता है।

वैदिक आस्तिक सनातनी वातावरण में उत्पन्न प्राणी की वैसे माता-पिता और बन्धुओं के सङ्ग तथा शिक्षा संस्कारों से वैदिक शिक्षा, दीक्षा एवं संस्कारों के अनुसार वैदिक कर्मों में प्रवृत्ति होती है। तथापि जहाँ वैसी स्थिति में विकार आ जाता है वहाँ भी प्राणी जब निष्पक्ष हृदय से अपने हित तथा अहित का विचार करता है और सत्पुरुषों के समागम और शास्त्राभ्यास का महत्त्व समझता है तभी से प्रकृति से छुटकारा पाकर अभीष्ट पुरुषार्थ सम्पादनार्थ शास्त्रीय राग-द्वेष उत्पन्न करके पाशविक राग-द्वेष को मिटाकर अधर्म से बचने और कर्मानुष्ठान करने में प्रवृत्त होता है। उससे बुद्धि शुद्ध होने पर और सूक्ष्म विचार उत्पन्न होने पर कामनाओं से रहित भगवदाराधनबुद्धि से कर्मों का आचरण करता है। निष्काम कर्मानुष्ठान द्वारा भगवान् की भक्ति से बुद्धि और भी पवित्र हो जाती है। तब श्रवण, मनन, निदिध्यासन, भगवद्भक्ति, तत्त्वज्ञान और शुद्ध प्रेम उत्पन्न होता है। तभी समूल वासना एवं स्वार्थ का विनाश होता है। परन्तु इसके पहले भी शास्त्रों का उपदेश कारगर होता ही है।

राम ने कैकेयी और महाराज के सम्मुख कहा था, तत्रभवान् परम पूज्य पिताश्री के लिए जो भी प्रिय कार्य किया जा सकता है, प्राणों का भी परित्याग कर के वह सब करने के लिए मैं कृतसंकल्प हूँ। पिताश्री की शुश्रूषा और उनकी वचनक्रिया, आज्ञापालन से बढ़कर पुत्र के लिए दूसरा कोई भी महत्तर धर्माचरण है ही नहीं।

माँ कैकेयी से भगवान् ने कहा था, अत्रभवान् पिताजी न भी कहें तो भी आपकी आज्ञा से मैं विजन वन में १४ वर्ष निवास कर सकता हूँ। माँ, यदि आप मेरे गुणों में विश्वास रखतीं तो इसके लिए राजा से कहने की क्या आवश्यकता थी। मैं तो आपकी आज्ञा से ही सब कुछ कर सकता था। हे देवि, मैं अर्थपरायण होकर लोक में नहीं रहना चाहता। मैं ऋषियों के तुल्य विमल धर्म का आश्रयण कर के स्थित हूँ, ऐसा समझकर आप आश्वस्त हों—

"यत्तत्रभवतः किञ्चिच्छक्यं कर्तुं प्रियं मया।
प्राणानपि परित्यज्य सर्वथा कृतमेव तत्॥
नह्यतो धर्माचरणं किञ्चिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य च वचनक्रिया॥
अनुक्तोऽप्यत्रभवता भवत्या वचनादहम्।
वने यास्यामि विजने वर्षाणीह चतुर्दश॥
न नूनं मयि कैकेयि किञ्चिदाशंससे गुणान्।
यद्राजानमवोचस्त्वं ममेश्वरतरा सती॥" (वा० रा० २।१९।२१–२४)
"नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तुमुत्सहे।
विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं विमलं धर्ममास्थितम्॥" (वा० रा० २।१९।२०)
"पुरा देवासुरे युद्धे सह राजर्षिभिः पतिः।
अगच्छत् त्वामुपादाय देवराजस्य साह्यकृत्॥

दिशमास्थाय कैकेयि दक्षिणां दण्डकान् प्रति ।
वैजयन्तमिति ख्यातं पुरं यत्र तिमिध्वजः ॥
स शम्बर इति ख्यातः शतमायो महासुरः ।
ददौ शक्रस्य संग्रामं देवसंघैरनिन्दितः ॥
तस्मिन् महति संग्रामे पुरुषान् क्षतविक्षतान् ।
रात्रौ प्रसुप्तान् घ्नन्ति स्म तरसापास्य राक्षसाः ॥
तत्राकरोन्महायुद्धं राजा दशरथस्तदा ।
असुरैश्च महाबाहुः शस्त्रैश्च शकलीकृतः ॥
अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्टचेतनः ।
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया ॥
तुष्टेन तेन दत्तौ ते द्वौ वरौ शुभदर्शने ।
स त्वयोक्तः पतिर्देवि यदिच्छेयं तदा वरम् ॥
गृह्णीयां तु तदा भर्तस्तथेत्युक्तं महात्मना ।
अनभिज्ञो ह्यहं देवि त्वयैव कथितं पुरा ॥" (वा० रा० २।९।११–१८)
"यौ तौ देवासुरे युद्धे वरौ दशरथो ददौ ।
तौ स्मारय महाभागे सोऽर्थो न त्वाक्रमेदति ॥" (वा० रा० २।९।२८)

उपर्युक्त वचनों के अनुसार स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाराज चक्रवर्तीजी कभी इन्द्र की सहायता के लिए देवासुर संग्राम में सम्मिलित होकर असुरों से युद्ध कर रहे थे । महाराज कैकेयी को साथ ले गये थे । वहाँ वैजयन्तपुर में महामायावी शम्बरासुर से युद्ध था । उस महान् संग्राम में राक्षस लोग प्रसुप्त पुरुषों को क्षत-विक्षत कर देते थे । उस भीषण युद्ध में असुरों ने महाराज को नानाविध प्रभावशाली शस्त्रास्त्रों से क्षत-विक्षत कर दिया था । उस समय महारानी कैकेयी ने स्वयं रथचालन कर महाराज की रक्षा की थी । उस प्रसन्नता में महाराज ने उन्हें दो वर माँगने को कहा था । महारानी ने कहा था कि जब मेरी इच्छा होगी तब इन वरों को माँग लूँगी ।

मन्थरा ने श्रीराम के यौवराज्याभिषेक-काल में महारानी को याद दिलाकर एक से श्रीराम को वनवास और दूसरे से श्रीभरत को राज्य प्रदान का वर माँगने को कहा था । श्रीराम ने भी चित्रकूट में श्रीभरत को बतलाया था कि—

"देवासुरे च संग्रामे जनन्यै तव पार्थिवः ।
संप्रहृष्टो ददौ राजा वरमाराधितः पुरा ॥" (वा० रा० २।१०७।४)

श्रीराम भगवान् ने भरत को यह भी बतलाया था कि कैकेयी के पिता ने कैकेयी का विवाह महाराज के साथ इसी शर्त पर किया था कि इससे जो पुत्र होगा वही राज्य का भागी होगा ।

कौशल्या आदि किसी को पुत्र नहीं था, इसलिए महाराज ने भी वैसा स्वीकार कर लिया था—

"पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन् ।
मातामहे समाश्रौषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम् ॥" (वा० रा० २।१०७।३)
"भवानपि तथेत्येव पितरं सत्यवादिनम् ।
कर्तुमर्हसि धर्मज्ञ क्षिप्रमेवाभिषेचनात् ॥
ऋणान्मोचय राजानं मत्कृते भरत प्रभुम् ।
पितरं त्राहि धर्मज्ञ··· ···· ···· ···· ···· ॥" (वा० रा० २।१०७।९,१०)

श्रीराम ने कहा था कि हे धर्मज्ञ भरत ! इन अनेक कारणों से महाराज कैकेयी के इच्छानुसार तुम्हें राज्य देने के लिए बाध्य थे, अतः तुम राज्य स्वीकार कर के सत्यवादी पिताजी को ऋण से मुक्त करो ।

फिर आप कहते हैं कि "सेवक को जैसे सुरापायी स्वामी के आज्ञानुसार किसी का सिर नहीं तोड़ देना चाहिये, किन्तु स्वामी का नशा उतारने का प्रयास करना चाहिये । वैसे काम, क्रोध, लोभ एवं ममता के आवेश से उन्मादी महाराज दशरथ की आज्ञा न मानकर उनको उन दोषों से मुक्त करने का प्रयत्न करना चाहिये ।" परन्तु आपका यह कहना ही उन्मत्त-प्रलाप है, क्योंकि श्रीराम ने तो वैसा नहीं किया । क्या उन्होंने अनुचित किया था ? क्यों श्रीराम धर्मज्ञ, विज्ञानवान्, प्रतिभावान् नहीं थे ? क्या वे कर्तव्याकर्तव्य के निर्धारण में सक्षम नहीं थे ?

उल्टा वे तो आपके विपरीत कहते हैं कि महाराज दशरथ राजा हैं, गुरु हैं, पिता हैं, वृद्ध हैं वे चाहे क्रोध से, चाहे हर्ष से एवं चाहे काम से जो भी आज्ञा देते हैं धर्म की दृष्टि से कौन अनृशंसवृत्तिवाला पुत्र उसका पालन न करेगा—

"गुरुश्च राजा च पिता च वृद्धः कोधात् प्रहर्षादथवापि कामात् ॥
यद् व्यादिशेत् कार्यमवेक्ष्य धर्मं कस्तं न कुर्यादनृशंसवृत्तिः ॥"(वा०रा० २।२१।५९)

श्रीराम ने कौशल्या और लक्ष्मण के सामने कहा था जीवलोक में धर्म, अर्थ, काम एवं अभीष्ट अभ्युदय की सिद्धि में जो भी अपेक्षित होते हैं वे सभी धर्म के पालन से वैसे ही वशीभूत हो जाते हैं, जैसे पुत्रसहित भार्या अपने पति के वश में रहती है । जिस धर्म में सब असंकीर्ण होकर रहते हैं उस धर्म का ही उपक्रम (आरम्भ) श्रेष्ठ है—

"धर्मार्थकामाः खलु जीवलोके समीक्षिता धर्मफलोदयेषु ।
ये तत्र सर्वे स्युरसंशयं मे भार्येव वश्याभिमता सपुत्रा ॥
यस्मिस्तु सर्वे स्युरसंनिविष्टा धर्मो यतः स्यात्तदुपक्रमेत ॥"(वा०रा० २।२१।५७, ५८)

जाबालि भी श्रीराम को पिता के आज्ञा-पालन से विरत करने आये थे । उस समय राम ने कहा था लोक में सत्य ही ईश्वर है । सत्य में ही सब धर्म सदा आश्रित रहते हैं । अर्थात् बिना सत्य के अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, चातुर्मास्य, ज्योतिष्टोम आदि कोई धर्म सम्पन्न नहीं होता है । क्योंकि सब में सत्य का पालन अनिवार्य है । अतएव संसार की सभी वस्तुएँ सत्यमूलक ही हैं । वे भी सत्य में ही प्रतिष्ठित हैं, अतः सत्यपरायण होना उचित है । तस्मात् सत्य से उत्कृष्ट पद कुछ भी नहीं है । अतएव में पिता के निर्देश का पालन क्यों न करूँ । मैं किसी भी लोभ से, मोह से तथा अज्ञान् से सत्य के सेतु का भेदन नहीं कर सकता—

"सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः ।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम् ॥
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात्सत्यपरो भवेत् ।
सोऽहं पितुर्निदेशं तु किमर्थं नानुपालये ॥
नैव लोभान्न मोहाद्वा न चाज्ञानात्तमोन्वितः ।
सेतुं सत्यस्य भेत्स्यामि गुरोः सत्यप्रतिश्रवः ॥" (वा०रा० २।१०९।१३-१७)

वे राजा दशरथ मेरे पिता हैं, जनयिता हैं । उन्होंने मेरे लिए जो भी आज्ञा दी है, वह मिथ्या कदापि न होगी—

"स हि राजा दशरथः पिता जनयिता मम।
आज्ञापयन्मां यत्तस्य न तन्मिथ्या भविष्यति ॥" (वा० रा० २।१११।११)

पिता, माता और गुरु के कहने पर भी राज्य स्वीकार न करने पर भी भरत दोषी नहीं हुए, क्योंकि रागतः प्राप्त राज्य के स्वीकार करने में कोई विशेषता नहीं थी, विशेषता त्याग में ही थी।

चित्रकूट की उस महती सभा में, जिसमें वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षि जनक जैसे महान् तत्त्ववेत्ता तथा अवधराज्य के वरिष्ठ विद्वान् एवं नागरिक उपस्थित थे, कुछ अन्तर्हित महर्षियों ने भी कहा कि हम लोग पिता की आज्ञा का पालन कर के श्रीराम को अनृण देखना चाहते हैं। महाराज इस निष्ठा के कारण स्वर्ग में प्रतिष्ठित हुए हैं—

"सदानृणमिमं रामं वयमिच्छामहे पितुः।
अनृणत्वाच्च स्वर्गं....दशरथो गतः ॥" (वा० रा० २।११२।६)

जैसे पिता का मरण सुनकर राम ने निरम्बु व्रत किया। उस दिन सब ने ही निरम्बु (निर्जल) व्रत किया—

व्रत निरंबु तेहि दिन सब कीन्हा। मुनिहुँ कहे जल काहु न लीन्हा ॥ (रा० मा० २।२४५।४)

यह आज्ञा का लङ्घन नहीं है। क्योंकि रागप्राप्त होने से यहाँ गुरुजी का कथन आज्ञारूप नहीं है, किन्तु स्नेहवश ही है, वैसे प्रकृत में भी जानना चाहिये।

श्रीकौशल्या ने शोकव्याकुल होकर महाराज के लिए कुछ कहा था, पर सावधान होने पर उन्होंने महाराज से स्पष्ट कहा था—हे धर्मज्ञ ! मैं धर्म समझ रही हूँ। आप सत्यवादी हैं, यह भी जानती हूँ। परन्तु मैंने जो कुछ कहा वह शोकव्याकुल होकर कहा था—

"जानामि धर्मं धर्मज्ञ ! त्वां जाने सत्यवादिनम्।
पुत्रशोकार्तया तत्तु मया किमपि भाषितम् ॥
शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम् ॥" (वा० रा० २।६२।१४,१५)

आप कहते हैं कि 'काम और क्रोध के आवेश में उन्मादी पिता की आज्ञा नहीं माननी चाहिये।' परन्तु भगवान् राम तो स्पष्ट कह चुके हैं कि यदि क्रोधदृष्टि या काम के वश होकर भी पिता कुछ आदेश दे तो उसका भी पालन करना ही पुत्र का धर्म है।

श्रीराम ने कौशल्या से कहा था कि मैं पिता की आज्ञा का अतिक्रमण किसी तरह भी नहीं कर सकता और आपको शिरसा प्रणाम द्वारा प्रसन्नकर वन जाना चाहता हूँ। यहाँ उन्होंने कहा कि हमारे पूर्वज सगरपुत्र पिता के आज्ञानुसार भूमि का खनन करते हुए महान् वध को प्राप्त हुए थे। जामदग्न्य राम ने पिता के आज्ञानुसार अपनी माता रेणुका का वध किया था। इन लोगों तथा अन्य लोगों ने पिता का वचन पालन किया था, अतः मैं पिता का वचन-पालन अवश्य करूँगा—

"नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं समतिक्रमितुं मम।
प्रसादये त्वां शिरसा गन्तुमिच्छाम्यहं वनम् ॥
अस्माकं तु कुले जातैः सगरस्याज्ञया पितुः।
खनद्भिः सागरैर्भूमिमवाप्तो हि महान् वधः ॥
जामदग्न्येन रामेण रेणुका जननी स्वयम्।
कृत्ता परशुनाऽरण्ये पितुर्वचनकारणात् ॥

एतैरन्यैश्च बहुभिर्दिवि देवसमैः कृतम् ।
पितुर्वचनममक्लीबं करिष्यामि पितुर्हितम् ॥" (वा०रा० २।२१।३०-३४)

यही मानस में भी कहा है—

"परसुराम पित आज्ञा राखी । मारी मात लोक सब साखी ॥" (रा० मा० २।१७२।४)

यही भरत ने भी कहा था—

"उचित कि अनुचित किये बिचारू । जाय धर्म सिर पातक भारू ॥" (रा० मा० २।१७५।२)

श्रीलक्ष्मण ने कुछ महाराज के विरुद्ध रुख प्रकट किया था । उसपर राम ने प्यार से ही उन्हें डाँटकर कहा था कि ऐसी अनार्य बुद्धि को त्यागकर धर्म का ही आश्रयण करो । तीक्ष्णता को त्यागकर मेरी बुद्धि का ही अनुगमन करो—

"तदेनां विसृजानार्यां क्षत्रधर्माश्रितां मतिम् ।
धर्ममाश्रय मा तैक्ष्ण्यं मद्बुद्धिरनुगम्यताम् ॥" (रा० मा० २।२१।४४)

भरत की महिमा अपने आप में लोकोत्तर है । उनका धर्म की नयी व्याख्या से कोई सम्बन्ध नहीं है । भरत न तो कभी महाराज की सत्यनिष्ठा में सन्देह करते थे और न ही वसिष्ठ की धर्म-व्याख्या में ही सन्दिहान थे । वे तो सरल हृदय से स्वच्छ भगवान् राम के अनुरागी थे । उनको किसी नये धर्म की स्थापना नहीं करनी थी । उनके दर्शनमात्र से चर और अचर सभी प्रभावित होते हैं । ठीक ही है—

"होत न भूतल भाव भरत को । सचर अचर चर अचर करत को ॥" (वा० रा० २।२३६।४)

ठीक ही कहा गया है कि भरत एक गम्भीर क्षीरसमुद्र थे । विरह मन्दराचल था । कृपासिन्धु राघवेन्द्र ने साधुरूप देवताओं के लिए उस विरहरूपी मन्दराचल से भरतरूपी पयोधि को मथकर प्रेमरूपी अमृत प्रकट किया था—

"प्रेम अमिय मंदर बिरह भरत पयोधि गभीर ।
मथि प्रकटेउ सुर साधु हित कृपासिंधु रघुबीर ॥" (रा० मा० २।२३७)

तुलसी ने ठीक ही कहा है—

"अगम सनेह भरत रघुबर को । जहँ न जाइ मन बिधि हरि हर को ॥" (रा० मा० २।२३९,३)

मानस की किसी भी पङ्क्ति से यह नहीं प्रतीत होता है कि श्रीभरत वसिष्ठ के किसी पक्ष का खण्डन करते हैं या वे महाराज दशरथ के किसी कार्य को दोषपूर्ण ठहराते हैं । श्रीराम को अयोध्या लौटाकर ले जाना और राज्यसिंहासन पर विराजमान करना सभी को अभीष्ट था ही । केवल माँ कैकेयी को वह भी देवताओं की माया से कुछ समय तक के लिए भले कुछ कम अच्छा लगा हो । महाराज दशरथ को वह अभीष्ट ही था । गुरु वसिष्ठ भी वही चाहते थे ।

चित्रकूट में भी वसिष्ठने कभी भरत की कोई परीक्षा नहीं ली थी । केवल सबके साथ मिल-जुलकर विचार करते थे ।

चित्रकूट की प्रथम सभा में गुरु वसिष्ठ महाराज ने वस्तुस्थिति का वर्णन कर के सबसे राय जाननी चाही थी ।

"बोले मुनिवर समय समाना । सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरमधुरीन भानुकुलभानू । राजा राम स्वबस भगवानू ॥
सत्यसंघ पालक श्रुतिसेतू । राम जनम जग मंगल हेतू ॥
गुरु पितु मात बचन अनुसारी । खल दल दलन देव हितकारी ॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथ । कोउ न राम सम जान यथारथ ॥
बिधि हरि हर ससि रवि दिशिपाला । माया जीव करम कुलि काला ॥
अहिप महिप जहँ लगि प्रभुताई । योगसिद्धि निगमागम गाई ॥
करि बिचार जिय देखहु नीके । रामरजाय सीस सबही कें ॥"
(रा० मा० २।२५२।१–४)

"राखे रामरजाय रुख हम सब कर हित होई ।
समुझि सयाने करहु अस सब मिलि संमत सोई ॥"(रा० मा० २।२५३)

उपर्युक्त पङ्क्तियों में वसिष्ठ महाराज ने सब कुछ कह दिया । नीति, प्रीति, परमार्थ और प्राणी के वास्तविक स्वार्थ को राम के समान और कोई नहीं जानता । यह एक ही पङ्क्ति सम्पूर्ण कुशङ्काओं एवं दुस्तर्कों का उत्तर है ।

राम सर्वेश्वर तो हैं ही । परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से भी उनका रुख देखकर ही काम करने में सबकी भलाई है । स्वयं राम का रुख तो नीति, प्रीति, परमार्थ और वास्तविक स्वार्थ की दृष्टि से भी सर्वहितकारी है । क्यों वन जा रहे हैं, यह भी स्पष्ट कह दिया । अन्त में भरत को भी तदनुसार ही चलना भी था ।

मुनिवर की वह वाणी नीति, परमार्थ और स्वार्थ से युक्त थी । उसपर कोई क्या कहता । श्रीभरतजी प्रेममूर्ति या प्रेमावतार थे । उन्होंने जो कहा वह उनके योग्य ही था ।

"भानुवंस भये भूप घनेरे । अधिक एकते एक बड़ेरे ॥
जनम हेतु सब कहँ पित माता । करम सुभासुभ देइ विधाता ॥" (रा० मा० २।२५३।३)

परन्तु

"दलि दुख सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउर जग जाना ॥
सो गोसांइ विधिगति जेहि छेकी । सकइ को टार टेक जो टेकी ॥"(रा०मा०२।२५३।४)

इस वंश में कोई महान् प्रतापी धार्मिक राजा था । उसके यहाँ कोई राजा अपना धर्म-संकट लेकर आया था । उसकी पुत्री के जन्म-पत्र में ऐसा योग था कि वह सातवीं भाँवर में ही विधवा होगी, उसका पति मर जायगा । किसी ने भी उसके साथ विवाह करने की हिम्मत नहीं की थी । कौन करता, जान-बूझकर कौन मरना चाहता । धर्मात्मा सूर्यवंशी राजा तो ऐसे संकटों को मोल लेते ही रहते थे । उस राजा ने केवल धर्म-रक्षा की दृष्टि से ही विवाह स्वीकार कर लिया । वसिष्ठ महाराज पुरोहित थे ही । उन्होंने ही विवाह कराया । सातवीं भाँवर पड़ी । गुरु महाराज ने प्रत्येक भाँवर के समान स्वभावतः वर और कन्या के चिरञ्जीवी होने का आशीर्वाद दे दिया । आकाश-वाणी ने कहा कि मुनिवर ! यह आपने क्या किया ? आपके पिता ब्रह्माजी ने तो कन्या की भाग्यरेखा में वैधव्य-योग लिखा है ।

महर्षि ने अपनी भूल का अनुभव किया । वहीं वरकन्या को एक मङ्गलवस्त्र से प्रावृत करके कहा कि जब तक हम लौटकर न आयें इस प्रावरण को न हटाया जाय और आप ब्रह्मलोक पहुँच गये अपने पिता श्रीब्रह्माजी के पास । ब्रह्मा ने अपना हाथ बढ़ा दिया पुत्र, इस हाथ से गलती हो गयी इसे काट दो । महाराज वसिष्ठ ने अपनी जिह्वा

बढ़ा दी और सूचित किया कि आप से गलती नहीं गलती मुझसे हुई जो बिना बिचारे इस प्रकार की वाणी निकल गयी, अतः आप इस जिह्वा को काट दें। अन्त में सब ऋषि, देवता आदि ने मिलकर दोनों का समन्वय कराया और वरकन्या का चिरञ्जीवित्व स्वीकृत हुआ। तब वसिष्ठ महाराज ने आकर प्रावरण हटाया और दोनों ने ही चिरञ्जीवी होकर राज्य किया। यह कथा वृद्ध-परम्परा से प्रचलित है और गोस्वामीजी की—

"दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउर जग जाना॥
सो गोसांइ विधिगति जेहि छेकी। सकइ को टार टेक जो टेकी॥"(रा०मा०२।२५३।४)

इन दोनों पङ्क्तियों की श्रुतार्थापत्ति से सिद्धि भी होती है।

श्रीभरतजी कहते हैं कि—

"बूझिय मोहि उपाय अब सो सब मोर अभाग।
सुनि सनेहमय बचन गुरु उर उपजा अनुराग॥" (रा० मा० २।२५४)

मुनि बोले—

"तात बात फुर राम-कृपा ही। रामबिमुख सिधि सपनेहुँ नाही॥"(रा० मा० २।२५४।१)

तात! बात सच है, परन्तु यह सब श्रीराम-कृपा ही का प्रभाव है। रामविमुख प्राणी के लिए सपने में भी सिद्धि कहाँ सम्भव है।

राम-लक्ष्मण अवध लौट जायँ। उनके बदले में भरत और शत्रुहन वन में जायँ। मुनिवर को यह बात भरत को बड़ी ही प्रिय लगी, परन्तु उसका स्वीकृत होना श्रीराम पर ही निर्भर है, परन्तु इससे तो श्रीभरत का निःस्वार्थ प्रेम तो व्यक्त ही होता है।

श्रीभरत कहते हैं कि १४ वर्ष ही क्यों हम दोनों भाई जन्मभर कानन में वास करेंगे श्रीराम-लक्ष्मण अवध में लौटकर जायँ। गुरुदेव! सीताराम अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञ सुजान हैं। मैं हृदय से सत्य कहता हूँ। आपकी बात कार्यान्वित होनी चाहिये—

"कानन करहुँ जनमभर बासू। एहिते अधिक न मोहि सुपासू॥" (रा० मा० २।२५४।४)

श्रीभरत की महिमा मुनिवर को अपार जलराशि सी प्रतीत होती है। मुनिवर की महामति का भी उसे पाना कठिन प्रतीत होता है—

"भरत महामहिमा जलरासी। मुनिमति तीर ठाढ़ि अबलासी॥
गा चह पार जतन हिय हेरा। पावति नाव न बोहित बेरा॥"(रा०मा० २।२५५।१,२)

ठीक ही है वास्तव में राम-भरत एक ही तो थे।

भरतप्रेम में विह्वल मुनि ने श्रीराम से भी कहा—

"सुनहु राम सर्वग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥" (रा० मा० २।२५५।४)

आप सबके हृदय के भीतर अन्तर्यामीरूप से रहते हैं। आप सबके भाव कुभाव को जानते हैं। आपसे कुछ छिपा नहीं है। जिससे पुरजनों, माताओं तथा भरत का हित हो वही करें। भगवान् ने कहा कि मुनिवर! सब उपाय तो आप के हाथ में है। प्रसन्नतापूर्वक आपकी आज्ञा का पालन करने और सत्य बोलने में ही सबका हित है। प्रथम तो मेरे लिए जो आज्ञा हो मैं आपकी सिख मान माथे पर रख वही करूँगा। उसके पश्चात् जिसको भी जो कहेंगे सभी सब प्रकार से आपकी सेवकाई करेगा—

"सब कर हित रुख राउर राखे । आयसु किये मुदित फुर भाखे ॥
प्रथम जो आयसु मो कहँ होई । माथे मानि करौं सिख सोई ॥" (रा० मा० २।२५६।२)

यहाँ कितनी निष्ठा है गुरुभक्ति में और 'बिनहि बिचार करिय हित मानी' की भावना में परन्तु वसिष्ठ तो भरत के प्रेम के वशीभूत हो चुके थे ।

"कह मुनि राम सत्य तुम भाखा । भरत सनेह बिचार न राखा ॥" (रा० मा० २।२५६।३)

भरत का प्रेम देखकर मेरी मति विचारशून्यसी हो गयी है ।

"तेहि ते कहउं बहोरि बहोरी । भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥"

यहाँ कहाँ विचारों का संघर्ष है ? कहाँ कुतर्क है ? यदि है तो केवल कलियुगी कथक्कड़ के मन में । मुनि ने अपना निर्णय सुना दिया ।

"मोरे जान भरत रुचि राखी । जो कीजिय सो सुभ सिव साखी ॥"

अतः आप भरत की प्रार्थना को सुन फिर विचार कर के जो साधु-मत, लोक-मत और नृपनीति और निगम-संमत हो वैसा ही करें—

"भरत बिनय सादर सुनिय करिय बिचार बहोरि ।
करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि ॥" (रा० मा० २।२५७)

भरत की गुरुभक्ति देखकर भगवान् परमानन्द निमग्न हो गये और श्रीभरत को धर्म-धुरन्धर और मन, वचन और कर्म से अपना अनन्यभक्त समझ लिया । जो निश्छलरूप गुरुभक्त होता है, वह भगवान् का अनन्यभक्त होगा ही—

"गुर अनुराग भरत पर देखी । रामहृदय आनन्द बिसेखी ॥
भरतहिं धरमधुरन्धर जानी । निज सेवक तन मानस बानी ॥" (रा०मा० २।२५७।१)

और बोले—

'नाथ सपथ पित चरन दोहाई । भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥
जे गुरुपद अम्बुज अनुरागी । ते लोकहुं वेदहुं बड़भागी ॥
राउर जापर अस अनुरागू । को कहि सकइ भरत कर भागू ॥"(रा०मा० २।२५७।२,३)

कितने मधुरभाव, कितने सुन्दर सम्बन्ध, मुनि के, श्रीराम के एवं श्रीभरत के कहीं किसी कुतर्क, हार-जीत, खण्डन-मण्डन का कोई प्रसङ्ग ही नहीं है । फिर भी न जाने किंकर किंकर्तव्य मूढ़ क्यों ?

वास्तव में इस प्रसङ्ग में मानस की पङ्क्तियाँ ही सर्वोत्कृष्ट हैं । कुछ भी कहना सुनना उस महान् दिव्य रस में व्यवधान ही डाल सकता है । श्रीराम ने स्वीकार कर लिया कि भरत के कथन के अनुसार काम करने में सबकी भलाई है—

"भरत कहहिं सो किये भलाई ।" (रा० मा० २।२५७।४)

इससे बढ़कर विश्वास और क्या हो सकता है ? मुनि ने कहा कि तात ! अब संकोच छोड़कर कृपासिन्धु अपने प्रियबन्धु से अपने हृदय की सब बात कहो । भरतजी तो गुरुजी और स्वामी इष्टदेव प्रभु राम की परम अनुकूलता पाकर बोले—

"कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहब मैं काहा ॥
मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहुँ पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेह बिसेखी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी ॥
सिसुपनते परिहरेउँ न संगू। कबहुं न कीन्ह मोर मन भंगू ॥
मैं प्रभु कृपा रीति जिय जोही। हारेहुं खेल जितावहिं मोही ॥"(रा०मा० २।२५८।२-४)

"महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहै न बैन।
दरसन तृपित न आज लगि प्रेम पियासे नैन ॥" (रा० मा० २।२५९)

अब भरत को स्पष्ट भासित होता है—

"गुर गोसाइं साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू ॥" (रा० मा० २।२५९।४)

महाराज के सम्बन्ध में उनके प्रेमपन का ही स्मरण करते हैं—

भूपति मरन प्रेमपन राखी ॥" (रा० मा० २।२६०।१)

श्रीभरतजी अपने दैन्य, दोष तथा माँ कैकेयी के सम्बन्ध से ग्लानि का स्पष्टीकरण करते हैं। उसपर श्रीभगवान् कहते हैं कि तात ! मेरी दृष्टि में तुम्हारे समान त्रिभुवन में कोई पुण्यश्लोक नहीं हुआ। जो तुम्हारे ऊपर कुटिलता का आरोप करेगा उसके लोक-परलोक बिगड़ जायँगे। माँ कैकेयी के ऊपर भी वे ही लोग दोषारोपण करेंगे, जिन्होंने कभी गुरुओं एवं साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया है। तुम निरर्थक तर्क मत करो। वैर और प्रेम छिपाने से भी नहीं छिप सकता। विहङ्गम आदि भी मुनिगणों के पास ही जाते हैं, बाधक बधिकों को देखकर भागते हैं। वर्तमान कठिनाइयों को तुम अच्छी तरह समझते हो। महाराज ने मुझे त्यागकर भी सत्य की रक्षा की और प्रेमपन के लिए प्रिय तन को तृण के तुल्य त्याग दिया। उन महाराज का वचन टालने से मन में सोच अवश्य है। परन्तु उससे भी अधिक तुम्हारा संकोच है। उसके ऊपर भी गुरु महाराज की आज्ञा है। अतः जो कुछ भी तुम कहोगे वही मैं करना चाहूँगा—

"राखेउ राय सत्य मोहि त्यागी। तन परिहरेउ प्रेमपन लागी ॥
तासु वचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू ॥
ता पर गुर मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउँ सोइ कीन्हा ॥"(रा०मा० २।२६२।३,४)

देवता लोग यद्यपि घबड़ा गये। परन्तु सुरगुरु ने उन्हें बताया कि श्रीभरत को तुम श्रीराम की छाया समझो। जैसे छाया काया का ही अनुसरण करती है। उसी तरह भरत श्रीराम को काया की छाया ही हैं। भरत के मन में भी यही बात आयी।

"निज पन तजि राखेउ पन मोरा। छोहु सनेह कीन्ह नहि थोरा ॥" (रा० मा० २।२६४।४)

और बोले—

"कहौं कहावौं का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥
गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कलपित सूला ॥
अपडर डरेउ न सोच समूलें। रविहि न दोष देव दिशि भूलें ॥" (रा० मा०२।२६५।१,२)

नाथ ! मेरी कल्पनाएँ मेरे अपडर का ही परिणाम थीं। किसी को दिग्भ्रम होता है तो वह उसी का दोष होता है सूर्य का दोष नहीं होता। उसी प्रकार मेरे अभाग का ही परिणाम था।

"लखि सब विधि गुरु स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभ नहि मन संदेहू ॥
अब करुनाकर कीजिय सोई। जनहित प्रभुचित छोभ न होई ॥
जो सेवक साहिबहि सँकोची। निज हित चहहि तासु मति पोची ॥"(रा०मा० २।२६६।१,२)

बस ऐसा ही भरत पर विश्वास वसिष्ठजी का था, ऐसा ही सुरगुरु का था और ऐसा ही प्रभु श्रीराम का विश्वास था। राम की काया की छायारूप भरत से ऐसी आशा की ही जा सकती थी। इसके बाद अनेक प्रस्ताव एवं परिस्थितियाँ आयीं।

श्रीभरत के सम्बन्ध में कौशल्या की दृष्टि और ही विलक्षण है। वह श्रीसीता की माता से भरत के सम्बन्ध में कहती हैं कि मैं कभी राम की शपथ नहीं करती हूँ पर मैं भरत के सम्बन्ध में राम की शपथ कर के भी कह सकती हूँ कि भरत के शील, गुण, विनय एवं महत्ता, भ्रातृत्व, भक्ति, विश्वास और भलाई सब अनुपम एवं अवर्णनीय हैं। शारदा की मति भी उनके वर्णन में असमर्थ है। भला कहीं सीप के द्वारा महासमुद्र को उलचा जा सकता है। जैसे किसी निकष पर ही कनकमणि की परीक्षा हो सकती है, वैसे ही समय आने पर ही पुरुष की परीक्षा होती है। उन्होंने मिथिलेश रानी से कहा कि आप अवसर पाकर मिथिलेश से कहिये—

"रखिअहिं लखन भरत गवनहिं बन। जो यह मत मानै महीपमन ॥
गूढ सनेह भरत मन माहीं। रहे नीक मोहि लागत नाहीं ॥"(रा०मा० २।२८२।१,२)

श्रीजनकजी ने भी कौशल्या का सन्देश सुनकर कहा था कि श्रीभरत का व्यवहार सुवर्ण में सुगन्ध है एवं शशिसार की सुधा है—

"मूदे सजल नयन पुलके तन। सुजस सराहन लगे मुदित मन ॥" (रा०मा० २।२८६।१)
"धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ यथामति मोर प्रचारू ॥
सो मति मोरि भरत महिमाहीं। कहै काह छल छुअति न छाहीं ॥
भरत चरित कीरति करतूती। धरम शील गुन बिमल बिभूती ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू। सुचि सुरसरि रुचि निदर सुधाहू ॥"(रा०मा० २।२८६।२-४)

"निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि।
कहिय सुमेरु कि सेर सम कविकुलमति सकुचानि ॥" (रा० मा० २।२८७)

"भरत महा महिमा सुनु रानी। जानहिं राम न सकहिं बखानी ॥" (रा० मा० २।२८७।१)

महाराज जनक विचार करते हैं कि यद्यपि धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार में मेरी मति की अव्याहत गति है तथापि भरतमहिमा की छाया का भी वह स्पर्श नहीं कर पाती। ठीक ही हैं क्योंकि वसिष्ठ महर्षि की भी मति भरतमहामहिमा जलराशि के सामने अपने को अबला समझती है। वस्तुतः श्रीभरत तात्त्विक दृष्टि से अव्याकृत तुरीय तत्त्व होते हुए भक्ति की दृष्टि से साक्षात् भगवत्प्रेमस्वरूप ही हैं। भरत की महिमा भगवान् राम इसी लिए जानते है कि वे सर्वज्ञ और सर्वसाक्षी हैं। सर्वसाक्षौ से कुछ भी छिप नहीं सकता। परन्तु वर्णन तो साक्षी का विषय नहीं होता, क्योंकि साक्षी में कर्तृत्व और वर्णयितृत्व नहीं हो सकता।

श्रीकौशल्या के प्रस्ताव की चर्चा सुनयना रानी ने की थी। उसमें बहुत कुछ समन्वय की बात थी। परन्तु वे यह समझते हैं कि भरत की प्रीति और विश्वास दोनों ही अतर्क्य हैं। भरतजी स्नेह और ममता की सीमा हैं। क्योंकि—"निर्दोषं हि समं ब्रह्म" निर्दोष समत्व तो ब्रह्म में ही होता है—

"राम ब्रह्म परमारथरूपा।", "यद्यपि सम नहि राग न दोषू ॥"

परन्तु भरत के प्रेम पर उस समता के कारण कोई असर नहीं पड़ता, क्योंकि भरत ने परमार्थ-स्वार्थ सुखसार की ओर कभी स्वप्न में भी देखा नहीं। उनकी दृष्टि में तो रामपदारविन्द प्रेम ही साधन है वही सिद्धि भी है ऐसा स्वार्थ-परमार्थनिरपेक्ष कभी श्रीराम की आज्ञा के विपरीत सोच भी क्या सकता है।

"देवि परंतु भरत रघुवर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
भरत अवधि सनेह समता की। यद्यपि राम सीम समता की ॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुं निहारे ॥
साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥"(रा०मा० २।२८७।३,४)

श्रीजनकजी की दृष्टि में भी महाराज दशरथ की आज्ञा में कोई दोष नहीं था। वे सोचते हैं कि महाराज ने राम के लिए वनवास की आज्ञा प्रदानकर तृणतुल्य प्राणों को त्यागकर के अपने सत्यप्रेम को प्रमाणित किया।

"रामहिं राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आप प्रिय प्रेम प्रमाना ॥" (रा० मा० २।२९०।२)

भरत की दृष्टि उनके ही निम्न वचन से विदित होती है--

"राखि राम रुख धरम ब्रत पराधीन मोहि जानि।
सबकै संमत सर्वहित करिय प्रेम पहिचानी ॥" (रा० मा० २।२९२)

श्रीराम का रुख और धर्म तथा सत्यव्रत के पराधीन मुझे जानकर जो सर्वसम्मत हित हो वही करें।

इससे स्पष्ट है कि श्रीभरत को किसी नये धर्म, नये पन्थ का प्रचार अभीष्ट नहीं था। महाराज दशरथ और महर्षि के वेदादिशास्त्र-सम्मत सिद्धान्त से भिन्न उनका कोई पृथक् सिद्धान्त नहीं था। उनकी दृष्टि में स्वार्थ और स्वामि-सेवा में धर्म का वैसा ही वैर है जैसे अन्ध प्रेम और प्रबोध में विरोध होता है।

'प्रभु पित मात सुहद गुरु स्वामी। पूज्य परमहित अन्तरयामी ॥
सरल सुसाहिब सील निधानू। प्रनतपाल सर्वज्ञ सुजानू ॥
समरथ सरनागत हितकारी। गुनग्राहक अवगुन अघ हारी ॥
स्वामि गोसांइहि सरिस गोसांई। मोहि समान मैं साँइ दोहाई ॥
प्रभु पित बचन मोह बस पेली। आयउँ इहाँ समाज सकेली ॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिय अमरपद माहुर मीचू ॥
रामरजाइ मेट मन माहीं। देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं ॥
तो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई। प्रभु मानी सनेहसेवकाई ॥"(रा०मा०२।२९६।१-४)

"कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस सुजस चारु चहु ओर ॥" (रा० मा० २।२९७)

"राउरि रीति सुबानि बड़ाई। जगतबिदित निगमागम गाई ॥" (रा० मा० २।२९७।१)
"सोक सनेह कि बाल सुभायें। आयउँ लाय रजायसु बायें ॥
तबहुं कृपाल हेरि निज ओरा। सबहिं भांति भल मानेउ मोरा ॥
देखेउँ पाय सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामि सहज अनुकूला ॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू ॥
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच बिहाई ॥" (रा० मा० २।२९८।१-४)

"सुहृद सुजान सु साहिबहिं बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइय देव अब सबई सुधारी मोरि॥" (वा० रा० २।२९९)

"प्रभु पद पदम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सींव सोहाई॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपने की॥
सहज सनेह स्वामिसेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
आज्ञा सम न सुसाहिबसेवा। सो प्रसाद जनु पावै देवा॥"(रा०मा० २।२९९।१,२)

उपर्युक्त भरत के वचन गङ्गाजल के तुल्य निर्मल, निश्छल तथा परम पवित्र हैं। उनका अलग से कुछ अभिप्राय वर्णन करना कठिन है। इनमें किसी के प्रति कोई आक्षेप नहीं है।

भरत के परमपवित्र दैन्यपूर्ण भक्तिसुधासमुद्र में नयी धर्मव्याख्या का स्थान ही कहाँ है? वे समाज सहित प्रभु के समीप आने को भी अपनी धृष्टता, आज्ञापालन, सेवा में चलना मानते हैं और चारों पुरुषार्थों से विमुख होकर स्वार्थ एवं छलरहित स्वामी की सेवकाई को ही सर्वोत्कृष्ट धर्म मानते हैं। उनकी दृष्टि में सर्वोत्कृष्ट सेवा स्वामी की आज्ञा का पालन करना ही है। उन्होंने तीर्थराज प्रयाग से भी तो यही कहा था कि—

"अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निरबान।
जनम जनम रति रामपद यह बरदान न आन॥" (रा० मा० २।२०३)

श्रीराम प्रभु ने भरत के सम्बन्ध में जो कहा है वह उनके अनुरूप ही है—

"तात भरत तुम्ह धरमधुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥"(रा० मा० २।३०२।४)

श्रीराम के दरबार में धर्मधुरीण के रूप में भरत प्रसिद्ध हैं। उनके अनुसार ही वे लोक और वेद दोनों के ही ज्ञाता और प्रेम में परम प्रवीण हैं। अतएव श्रीराम कहते हैं कि—

"जानहु तात तरनिकुल रीति। सत्यसन्ध पित कीरति नीती॥

क्या श्रीराम के इन वचनों से महाराज दशरथ का किञ्चित् भी अपकर्ष प्रतीत होता है? उनमें क्रोध, लोभ या काम का आवेश सिद्ध होता है? वे भरत से आशा रखते हैं कि वे तरणिकुल की रीति और सत्यसन्ध पिता दशरथ की कीर्ति का पालन करेंगे।

"तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा॥" (रा० मा० २।३०३।२)

श्रीराम श्रीगुरु वसिष्ठ की कृपा से ही सबका कल्याण समझते हैं—

"तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरुकुल-कृपा सँभारी॥" (रा० मा० २।३०३।३)

"राजकाज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुरुप्रभाव पालिहि सबहिं भल होइहि परिनाम॥"(रा० मा० २।३०४)

"सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरुप्रसाद रखवारा॥" (रा० मा० २।३०४।१)

जब मर्यादापुरुषोत्तम वेदशास्त्रपालक भगवान् राम का गुरु के सम्बन्ध में ऐसे पवित्र भाव हैं तो श्रीराम परिछाईस्वरूप श्रीभरतजी का वैसा भाव स्वाभाविक ही है।

"मात पिता गुरु स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू॥" (रा० मा० २।३०४।१)

माता, पिता, गुरु और स्वामी की आज्ञा सकल धर्मरूप धरणी को धारण करनेवाला भगवान् शेष है। अतः उन सबकी आज्ञा पालन करना ही सब धर्मों का आधार है।

"सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुलपालक होहू॥" (रा० मा० २।३०४।२)

कितनी मधुर कितनी सुन्दर आज्ञा है या प्रिय परामर्श है। हे तात, उस आज्ञा का तुम भी पालन करो हम से पालन कराओ अर्थात् हमारे उस आज्ञापालन में मदद करो, सहयोगी बनो और ऐसा करके इस तरणिकुल सूर्यवंश की मर्यादा का रक्षण करो। गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना साधक के लिए समस्त सिद्धियों को देनेवाली कीर्ति, सुगति और भूति (ऐश्वर्य) की त्रिवेणी है। यद्यपि इसमें कठिनाई है, संकट है एवं प्रियवियोग आदि संकट सहना पड़ेगा। परन्तु इसमें सबका हित होगा। अतः इस आयी हुई विपत्ति को सब भाइयों को बाँटकर सह लेना चाहिये। चौदह वर्ष तक के लिए तुम्हारे लिए बड़ी कठिनाई है। तुम्हें परम मृदु जानते हुए भी यह कठोर बात कहना इस कुसमय में अनुचित नहीं। कुसमय और कुठाँव में सुबन्धु ही सहायक होता है। तलवार का घाव लगने पर अपने हाथ को ही ओढ़ना पड़ता है। सेवक हाथ, पैर तथा नयन के समान होता है। स्वामी मुख के समान होता है। सुकवि ऐसी प्रीति की रीति की सराहना करते हैं—

"बाँटी बिपति सबहिं मोहि भाई। तुम्हहि अवधि भरि अति कठिनाई॥
जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा॥
होंहिं कुठावँ सुबंधु सहाये। ओढ़िअहिं हाथ असनिहुँ के धाये॥"(रा०मा० २।३०४।३,४)

"सेवक कर पद नयन से मुख से साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकवि सराहहिं सोइ॥" (रा० मा० २।३०५)

प्रभु की प्रेमामृतसमुद्रमयी वाणी को सुनकर सम्पूर्ण समाज सनेह शिथिल होकर समाहित हो गया। ज्ञान-विज्ञान की अधिष्ठात्री महाशक्ति सरस्वती ने चुप्पी साध ली। श्रीभरतजी को परम संतोष हुआ। उससे स्वामी के सांमुख्य का और दुःखदोष के वैमुख्य का अनुभव किया, मुख प्रसन्न हो गया, मन का विषाद मिट गया। मानो मूंगे को गिरा का प्रसाद मिल गया और बोल पड़े—

"नाथ भयउ सुख साथ गये को। लहेउँ लाहु जग जनम भये को॥
अब कृपाल जस आयसु होई। करौं सीस धरि सादर सोई॥"(रा०मा० २।४०५।३,४)

इस प्रकार गोस्वामीजी के मानस में महाराज दशरथ के प्रति महर्षि वसिष्ठ, भरद्वाज, मन्त्रिपरिषद्, परिजन एवं पुरजन सहित श्रीभरत की तथा श्रीराम की परम श्रद्धा प्रकट होती है।

इसी प्रकार श्रीवसिष्ठ एवं उनकी आज्ञाओं के प्रति श्रीभरत तथा श्रीराम का परम विश्वास, परम श्रद्धा परिलक्षित होती है। वेदादिशास्त्रों एवं तदुक्त धर्म में तो सब की ही परम श्रद्धा है।

इसी तरह वेदस्वरूप के सम्बन्ध में भी कई लोगों की भ्रान्तिपूर्ण धारणा है।

"बेद बिदित तेहि दशरथ नाऊ।" (रा० मा० १।१८७।४)

"राम नाम कर अमित प्रभावा। बेद पुरान उपनिषद गावा॥" (रा० मा० १।४५।१)

उनके अनुसार "उपर्युक्त पङ्क्तियों में वेद शब्द का अर्थ आजकल के प्रसिद्ध वेदों का बोध नहीं है। उनके अनुसार अब आधुनिक काल में वेदों का जो स्वरूप उपलब्ध है, उसमें दशरथ या राम नाम की महिमा तो दूर नामोल्लेख भी नहीं है। कुछ आधुनिक टीकाकारों ने वेदमन्त्रों में दशरथ, राम और सीता आदि नामों के उल्लेख का समर्थन किया है। किन्तु ऐसे अर्थ शाब्दिक खींचतान के द्वारा किये गये लगते हैं।

वस्तुतः गोस्वामीजी वेदों का ठीक उतना ही स्वरूप नहीं मानते हैं, जितना ग्रन्थों के रूप में हमें आज उपलब्ध है। वे **"रामायन सतकोटि अपारा"** कहते हुए जिस मान्यता की स्थापना करते हैं। भले ही सौ करोड़ **रामायण** आज उपलब्ध नहीं हैं, वही दृष्टि उनकी वेदों के प्रति भी है।

भगवान् के निःश्वास से प्रादुर्भूत वेद भगवान् का स्वरूप ही है। वह ज्ञानमय वेद असीम और अनन्त हैं। समुद्र में जिसे जो पाना होता है, वह उससे अपनी आवश्यकता भर ले लेता है। इसी प्रकार वेद की स्थिति है।

यज्ञों की कर्मकाण्ड-प्रक्रिया में जिन वेदमन्त्रों का प्रयोग है, परम्परा से उनका उपयोग होते रहने से हमें आज वे ही उपलब्ध हैं। हम उनको ही पूर्ण प्रामाणिक मान बैठे हैं।"

उक्त कथन अत्यन्त असङ्गत ही है। **"अनन्ता वै वेदाः"** के अनुसार वेद अनन्त हैं। भगवान् के निःश्वास-भूत होने से अकृत्रिम हैं और अपास्त-समस्तपुंदोषशङ्काकलङ्क होने से परम-प्रमाण हैं। जैसे प्राण प्राणवान् का स्वरूप ही माना जाता है, वैसे ही निःश्वास निःश्वासवान् से अभिन्न हैं। सच्चिदानन्द भगवान् में सत्, चित् और आनन्द तीन रूप प्रतीत होते हैं। यद्यपि सत् की स्वप्रकाशता ही उसकी चिद्रूपता है। सच्चित् की सर्वोपद्रवशून्यता ही आनन्दरूपता है। फिर भी प्रातीतिक भेद के अनुसार सदंश से ज्ञेय प्रपञ्च तथा चित् से वृत्तिविशिष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है। उसी चित् से ही सम्पूर्ण वाङ्मयप्रपञ्च की उत्पत्ति होती है। अनन्त संवित् ही शब्दब्रह्म है। उसका ही मूलरूप प्रणव है। प्रणव का ही व्याख्यानभूत अनन्त वेद है। फिर भी वह ज्ञान-मय असीम और अनन्त है। वेद ईश्वर के समान ज्ञानमय असीम और अनन्त ही हैं—"वेदो नारायणः साक्षात्" (भाग० ६।१।४०), "वेदस्य चेश्वरात्मत्वात्" (भाग० ११।३।४३) इन वचनों का इतना ही अर्थ है कि वे ईश्वर के निःश्वासभूत होने से ईश्वर के अंश हैं।

यद्यपि वैयाकरणों और वेदान्तियों के अनुसार सभी शब्द एवं वेदशब्दराशि सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न होकर प्रलय में नष्ट हो जाती है तथापि ईश्वरीय शक्तिरूप से वे प्रलयकाल में विद्यमान रहते हैं। तभी पूर्वकल्पीय आनुपूर्वी के समान ही उत्तरकल्पीय आनुपूर्वी उत्पन्न होती है।

शक्ति की दृष्टि से और अविच्छिन्न पारम्पर्य की दृष्टि से वेदवाणी अनादि और अनन्त मानी जाती है। शब्द और वेद और शब्दराशि स्वरूप से सृष्टि से लेकर प्रलय पर्यन्त स्थायी होने से ही नित्य कही जाती हैं। यह नित्यता आपेक्षिक ही है। इसी लिए वेदों की वेदान्तरीति से उत्पत्ति होती है। उत्पन्न सभी पदार्थ कारण से अनन्य होते हैं। तभी वेद भी परमेश्वर से अनन्य हैं। अतः ब्रह्म की अद्वितीयता सिद्ध होती है।

अभिधानात्मक प्रपञ्चोत्पादनानुकूल शक्त्यवच्छिन्न संविदानन्द ब्रह्म के विवर्त होने से ही शब्दों को ज्ञानात्मक कहा जा सकता है। स्वरूपतः शब्द ज्ञान के जनक हैं, ज्ञानरूप नहीं हैं। परन्तु ब्रह्म किसी से उत्पन्न नही होता है। उसकी नित्यता आपेक्षिक नहीं है, किन्तु वास्तविक है। वह नित्य ज्ञानरूप हो सकता है। भगवान् प्रतिपाद्य हैं और वेद प्रतिपादक हैं, प्रतिपाद्य नहीं। यदि परमात्मरूप ही वेद हैं तो वे भी परमात्मा के समान ही परोक्ष एवं अग्राह्य रहेंगे। यदि वेद स्वयं ही अनुपलब्ध होंगे तब उनसे ब्रह्म का कैसे उपलम्भ हो सकेगा। हाँ, अनन्त वेद ब्रह्म, सूर्यादि देवताओं के लिए ही ग्राह्य हैं। मानवबुद्धिग्राह्य वेद की श्रीभागवत, महाभाष्य, सीतोपनिषद् आदि के अनुसार ११३१ ग्यारह सौ इकतीस या ११७२ ग्यारह सौ बहत्तर शाखाएँ मानवग्राह्य हैं। आज उनमें से किसी न किसी रूप में नौ या दस शाखाएँ मिलती हैं। साथ ही केवल मन्त्र ही नहीं, किन्तु मन्त्र और ब्राह्मण दोनों ही वेद हैं। ब्राह्मण में ही आरण्यक एवं उपनिषदें भी अन्तर्भूत हैं।

वेद केवल मन्त्रभाग ही नहीं हैं, किन्तु मन्त्रभाग और ब्राह्मणभाग दोनों ही वेद हैं। उपलब्ध वेदों से भिन्न समुद्रतुल्य कोई वेद उपलब्ध नहीं है। अनुपलब्ध वेद को तो हम किसी विषय के प्रमाण के रूप में नहीं

उपस्थित कर सकते हैं। अन्यथा तो कोई भी किसी ग्रन्थ या किसी बात को वेदसम्मत कह सकता है। फिर वेद-सम्मत क्या है क्या नहीं इसका निर्णय असम्भव ही हो जायगा। अतः परम्परा से प्राप्त मन्त्र और ब्राह्मण भाग को ही वेद माना जाता है और उसी के आधार पर धर्म और ब्रह्म का विचार किया जाता है।

शतकोटि रामायण की मान्यता तुलसी द्वारा स्थापित नहीं, किन्तु वह पुराणों द्वारा स्थापित है—

"चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।"

तुलसी ने उसी का प्रतिपादन किया है।

यह भी कहना गलत है कि "पौराणिक परम्परा में पराशरपुत्र कृष्णद्वैपायन को 'व्यास' उपाधि दी गयी है। व्यास का अर्थ विस्तार करनेवाला है। उन्होंने लोककल्याण के लिए वेदों का विस्तार करके पुराणों के रूप में सुलभ कर दिया।"

क्योंकि पुराणों को वेद परम्परा का अङ्ग मान लेने पर गोस्वामीजी की सैद्धान्तिक यथार्थता सिद्ध हो जाती है, क्योंकि पुराणों में ही वेदव्यास का अर्थ अनेकशाखोपबृंहित मन्त्र-ब्राह्मणात्मक सम्पूर्ण वेदराशि को शाखाभेद से और मन्त्रभाग तथा ब्राह्मणभाग रूप से उनका विभाजन करना ही हैं।

शुक्लयजु के मन्त्र और ब्राह्मण का स्पष्टतया विभाजन है। इसी लिए वह शुक्ल है। कृष्णयजु में शाखा-भेद होने पर भी मन्त्रसंहिता में भी ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणभाग में भी मन्त्र हैं। इसी लिए उसे कृष्ण कहा जाता हैं।

पुराण वेदों का विभाजन नहीं है, किन्तु वेदों का उपबृंहण है। पुराणनिर्माता होने के कारण कृष्णद्वैपायन वेदव्यास नहीं, किन्तु वेदों का विभाजन करने के कारण वे वेदव्यास हुए हैं। इसी लिए मन्त्र-ब्राह्मणरूप वेदों की पौर्वापर्यरूप आनुपूर्वी नहीं बदलती। सभी कल्पों में मन्त्र और ब्राह्मण एक जैसे ही होते हैं। उनकी आनुपुर्वी में रद्दोबदल नहीं होता है। परन्तु भिन्न-भिन्न कल्पों में पुराणों की आनुपूर्वी बदल जाती है।

आठ प्रकार के ब्राह्मणों में आनेवाले इतिहास और पुराण तो वेद हैं ही। उसी दृष्टि से उन्हें भी ईश्वर का निःश्वास कहा गया है—"अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राणि" (बृ० उ० २।४।१०) किन्तु छान्दोग्य में वर्णित इतिहास-पुराण विष्णु, पद्मादि पुराण हैं। वे ईश्वर के निःश्वास नही हैं, क्योंकि वहाँ 'निःश्वसितम्' पाठ नहीं है।

मानस में वर्णित वेदस्तुति एवं भागवत की वेदस्तुति से यह कदापि नहीं सिद्ध होता है कि उसी रूप में वह वेदमन्त्रों में विद्यमान है। किन्तु वेदों के अधिष्ठाता देवताओं या अधिष्ठात्री महाशक्तियों ने भगवान् की स्तुति की है। श्रीभागवत की वेदस्तुति के टीकाकारों ने टीकाओं में स्पष्ट कर दिया है—कौन कौन से वेदांशों ने किन किन अंशों को कहा है। विशेषतः श्रीधर स्वामी ने अपनी टीका में उन उन श्रुतियों का उल्लेख किया है। इस दृष्टि से मन्त्रों में, ब्राह्मणों में और उपनिषदों में दशरथ, राम, सीता आदि का स्पष्ट वर्णन हैं। उसे शब्दों की खींचा-तानी नहीं कहा जा सकता है।

यों तो वेदों के अनेक कठिन मन्त्रों के स्वाभाविक अर्थ में अनभिज्ञों को खींचा-तानी प्रतीत हो सकती है। उक्त बातों का विवरण इसी ग्रन्थ में अध्याय २ पर देखा जा सकता है।

कोई भी मनुष्य चाहे ऋषि हो चाहे देवता उन्हें वेदों में संकोच और विकास करने का अधिकार नहीं होता। मनुष्य, ऋषि तथा देवता वेदों का व्याख्यान या अर्थविश्लेषण कर सकते हैं। परन्तु मन्त्रों या ब्राह्मणों की पंक्तियों में हेरफेर, रद्दोबदल नहीं कर सकते। हाँ, यह हो सकता है कि वेदों से उनका अभिप्राय किसी ने न समझा हो तो उसे पुराणों से उनका अर्थ स्पष्ट हो जाता है। वेदों में ही इन्द्रशब्द का एक अर्थ परमेश्वर ही है—

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।" (ऋ० सं० १।१६४।४६)

अन्यत्र देवताविशेष इन्द्र है। प्रथम की शक्ति निःसीम है, दूसरे की शक्ति सीमित है।

पुराणों में तथा मानस में इन्द्र का स्मरण देवताविशेष के रूप में ही किया गया है। पुराणों में ही अनेक स्थलों में परमेश्वर के रूप में भी इन्द्र का स्मरण हो गया है।

यह ठीक है कि तुलसीदास का रामचरितमानस किसी सम्प्रदाय विशेष का ग्रन्थ नहीं है। किन्तु वह तो मन्त्र, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराण तथा रामायण का अनुसरण करनेवाला ग्रन्थ है। जैसे उन्हीं वेदादि ग्रन्थों के आधार पर विभिन्न सम्प्रदाय अपना अपना सम्प्रदाय सिद्ध करते हैं, उसी तरह तुलसी के मानस से भी भिन्न भिन्न सम्प्रदायों के सिद्धान्त सिद्ध होते हैं। अतएव पुराणादि के समान ही सभी सम्प्रदाय के लोग रामचरितमानस का आदर करते हैं। परन्तु उन उन सम्प्रदायों के महान् महान् आचार्य हुए हैं और उन उन सम्प्रदायों में ईश्वरतुल्य पूज्य भी हुए हैं। परन्तु अन्य सम्प्रदायों में उनके ग्रन्थों की और उनकी उतनी मान्यता नहीं हो सकी है।

सम्प्रदाय दर्शनों का अनुसरण करते हैं। उन्हें अनेक विषयों में अपना निर्णय देना पड़ता है। अतः उन निर्णयों का विरोध होना सम्भव है। जैसे सांख्य, योग, न्याय, वेदान्त, पूर्वोत्तरमीमांसा आदि के मतभेद होते हैं। फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वेदों, पुराणों, रामायण, महाभारत आदि का कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। भले संविधान या कानूनों की विभिन्न धाराओं के विभिन्न न्यायवादी विभिन्न अर्थ करते हों फिर भी उन धाराओं का निश्चित अर्थ होता ही है। उसी का निर्णय करना न्यायालय का कर्तव्य होता है। व्यास, वसिष्ठ आदि के भी अपने निश्चित सिद्धान्त होते ही हैं। इस दृष्टि से तुलसी की भी कुछ निश्चित धारणाएँ हैं ही।

यह कहना भी गलत है कि "इदमित्थं कहि जात न सोई" (रा० मा० १।१२०।१) यह अर्धाली ही उनकी मान्यता का सूत्र है।" क्योंकि इस रूप में तो यह भी कहा जा सकता है कि उनके राम भी पूर्ण सत्य नहीं हैं। वे भी सीमित ही सत्य हैं। परन्तु यह कथन श्रुति, स्मृति और युक्ति से विरुद्ध ही है। ब्रह्म का अवतार क्यों होता है केवल इसी अंश के लिए उक्त अर्धाली ठीक है, क्योंकि अनेक हेतु हो सकते हैं। यद्यपि ईश्वर मन और वाणी का विषय नहीं है। कोई तार्किक तर्क के द्वारा उसके विषय में ठीक अनुमान नहीं कर सकता। इसलिए ईश्वर के विषय में जो कुछ भी कहा जाय वह इदमित्थं (यह ऐसा ही) के रूप में सम्भव नहीं।

तथापि वेदादि शास्त्रों के द्वारा तथा वेदादिशास्त्रानुसारी तर्कों के द्वारा भगवान् के वास्तविक रूप को साधनचतुष्टयसम्पन्न भगवदनुगृहीत साधक अवश्य ही जानता है। निःसंशय ज्ञान ही मुक्ति का हेतु है—"तमेव विदित्वातिमृत्युमेति" परमेश्वर के परम सत्यरूप का साक्षात्कार करके ही प्राणी मृत्यु का अतिक्रमण कर सकता है—"नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" अन्य कोई भी पन्था भगवत्पदप्राप्ति का है ही नहीं। "संशयात्मा विनश्यति" संशयशील प्राणी नष्ट हो काता है। सीमित आपेक्षिक संशयात्मक ज्ञान अनर्थ का हेतु होता है। एक वस्तु में एक ज्ञान ही यथार्थ है। रज्जु में सर्प, धारा, माला, भूछिद्र आदि अनेक ज्ञान होते हैं, परन्तु उनमें समझौता संभव नहीं है।

रज्जुज्ञान ही यथार्थ है और सब ज्ञान अयथार्थ हो हैं। ईश्वर मन और वाणी का विषय नहीं है। इसका अर्थ यही है कि ब्रह्म फलव्याप्ति का विषय नहीं है। वृत्त्यभिव्यक्त चैतन्य के द्वारा जैसे घटादि का प्रकाश होता है वैसे मनोवृत्तिव्यक्त चैतन्य के द्वारा ब्रह्म का प्रकाश नहीं होता। क्योंकि वह स्वप्रकाश है। स्वप्रकाश के लिए अन्य प्रकाश की अपेक्षा नहीं होती है। परन्तु मनोवृत्ति द्वारा ब्रह्मावरक अज्ञान की निवृत्ति तो होती है। इसी लिए जैसे—

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।" (तै० उ० २।३)

"यन्मनसा न मनुते, यद्वाचा नाभ्युदितम्" आदि श्रुतियों में ब्रह्म को मन, बुद्धि तथा वाणी का अविषय कहा गया है। वैसे ही "मनसैवानुद्रष्टव्यम्", "दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या" आदि श्रुतियों में यह भी कहा गया है कि ब्रह्म मन के द्वारा जाना जाता है। श्रेष्ठ बुद्धि से ब्रह्म-दर्शन होता है। यह भी एक समन्वय है कि शास्त्राचार्योपदेशरूप संस्कार से संस्कृत मन या बुद्धि ब्रह्म को जानने में हेतु है। तद्रहित बुद्धि ब्रह्म-दर्शन में असमर्थ है।

इसी तरह अभिधा शक्ति के द्वारा ब्रह्मवाणी या वेद ब्रह्म का बोध नहीं करा सकते। क्योंकि जिसमें जाति, गुण और क्रिया द्वारा या सम्बन्ध द्वारा अथवा स्वरूप द्वारा शब्द के साथ संकेतग्रह सम्भव है, उसी का बोध शब्द से हो सकता है। ब्रह्म रूपादिरहित होने से चाक्षुषादि प्रत्यक्ष का अविषय होने से स्वरूपेण निर्देशार्ह नहीं है। अतः उसका किसी शब्द के साथ सम्बन्धग्रह होना सम्भव नहीं है।

डित्थः, डवित्थः आदि शब्दों की प्रवृत्ति स्वरूप से निर्देशयोग्य काष्ठमय मृग या काष्ठमय हस्ती में होती है। ब्राह्मण, गौ आदि में जाति के निमित्त से शब्द की प्रवृत्ति होती है। नीलमुत्पलम् आदि में शब्द गुण के आधार पर तथा पाचक आदि शब्द क्रिया के बल पर प्रवृत्त होते हैं। धनी, गोमान् आदि शब्द सम्बन्ध के आधार पर प्रवृत्त होते हैं।

समुदाय-शक्ति के आधार पर शब्द की प्रवृत्ति रूढ़िवृत्ति कही जाती है। अवयव-शक्ति से शब्द की प्रवृत्ति को योगवृत्ति कहते हैं। उभय योग से प्रवृत्ति को योगरूढ़ कहते हैं। गौः, ब्राह्मणः आदि शब्द रूढ़ शब्द हैं। पाचकः आदि योग शब्द हैं। पङ्कज आदि योगरूढ़ शब्द हैं।

ब्रह्म में जाति, गुण, क्रिया का सम्बन्ध न होने से किसी तरह भी शब्दों की अभिधा वृत्ति से ब्रह्म में प्रवृत्ति नहीं होती है। सम्बन्ध न होने से लक्षणा वृत्ति से भी ब्रह्म में किसी शब्द की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इसलिए कहा गया है कि कोई भी वाणी या वेद भी ब्रह्म का प्रकाशन नहीं कर सकते हैं। परन्तु सिद्धान्ततः तात्पर्यानुपपत्तिमूलक लक्षणा के द्वारा आध्यासिक सम्बन्धवाले ब्रह्म में वेद और वेदान्त शब्दों की प्रवृत्ति होती है। इसलिए "सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति", "वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः" (गीता १५।१५) इत्यादि वचनों से ब्रह्म को वेदवेदान्तवेद्य माना ही गया है। "मन्तव्य" श्रुति के द्वारा ब्रह्म में वेदानुसारी तर्क का भी अवकाश है ही।

हाँ, अवतार के कारणों में तो अनेक कारण हो सकते हैं। अतः अमुक ही कारण है, यह नहीं कहा जा सकता है। वहाँ किसी को अकारण या सीमित सत्य कहने की आवश्यकता नहीं है।

वैसे सिद्धान्त में भी अनेक वस्तुएँ सीमित सत्य कोटि में ही आती हैं। बल्कि यों कहना चाहिये कि परात्पर परब्रह्म भगवान् को छोड़कर इतर वस्तुएँ सीमित सत्य में ही हैं। विज्ञान के साथ वेदादि शास्त्रों के सिद्धान्त का मेल जितने अंशों में मिलता हो ठीक है। परन्तु विज्ञान का अभी तक कोई भी सिद्धान्त अन्तिम सिद्धान्त नहीं है। सर आइजक, न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त अन्तिम माना जाता रहा था वह आज धराशायी हो गया है। आज वह पूर्ण रीति से खण्डित हो चुका है। डार्विन, हैकल, स्पेंसर आदि के विकासवाद का सिद्धान्त भी पूरी तरह ध्वस्त हो चुका है। अतः विज्ञान के पीछे वेदादि शास्त्रों को चलाने की बात वैसे ही है जैसे किसी सभ्य पुरुष को किसी अन्धे और उन्मत्त भैंसे की पूंछ पकड़कर उसे उसके गन्तव्य स्थल पर पहुँच जाने का आश्वासन देना है।

विज्ञान अल्पज्ञ एवं अल्पशक्तिमान् व्यक्तियों के दिमाग का परिणाम है। उनमें अनेक त्रुटियाँ हो सकती हैं। पूर्व काल में जिस गणित के आधार पर सम्पूर्ण यान्त्रिक व्यवस्थाएँ प्रचलित थीं। आज उसमें भी परिवर्तन हो

गया है। यान्त्रिक आज भी प्रचलित है ही। इस विषय की विशेष जानकारी के लिए मेरे "मार्क्सवाद और रामराज्य" ग्रन्थ का विकासवाद देखें।

वेद सर्वज्ञ ईश्वर के निःश्वास होने से सर्वथा निर्भ्रान्त सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। वेदोक्त साधनों के अनुष्ठान से ऋषि-महर्षि भी सर्वज्ञकल्प हुए हैं। उनके ज्ञान और विज्ञान अपूर्ण नहीं हैं। तुलसी का मानस उन्हीं शास्त्रों का सार है। वह तुलसी का निजी विचार नहीं है। यह मानस की अनेक पङ्क्तियों से सिद्ध है।

संसार के सभी सत्य माया के भीतर की चीजें हैं। माया स्वयं ही भगवान् की सत्ता से ही सत्य प्रतीत होती है। जिस परम सत्य भगवान् से जड़ माया सत्यवत् प्रतीत होती है, वह भगवान् ही अन्तिम सत्य हैं। उनको बिना जाने मिथ्या जगत् एवं उसकी मूलभूत माया भी सत्य प्रतीत होती है। वही पारमार्थिक सत्य वस्तु है। अतएव यह कहना सर्वथा असत्य है कि "गोस्वामीजी किसी भी सिद्धान्त को अङ्गीकार करके तात्कालिक समस्या का समाधान कर लेते हैं। पर वे किसी भी सिद्धान्त को पूर्ण सत्य का पद देने को प्रस्तुत नहीं हैं", क्योंकि यह तो अवसरवादिता ही है।

'गोस्वामीजी किसी मत विशेष के घेरे में नहीं जाते', यह कहना भी अज्ञता ही है। क्योंकि गोस्वामीजी वेदवेदान्त-सिद्धान्त के घेरे में रहकर गर्व का अनुभव करते हैं। श्रीराम उनकी दृष्टि में भी परम सत्य हैं। पूर्ण सत्य हैं। जो ऐसा नहीं मानता वह नास्तिक, अज्ञ और अभागा है। उसके मनमुकुर में पाप की काई लगी है, यह उनकी ही पङ्क्तियों से सिद्ध है।

कहा जाता है—

"कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल कोउ माने।
तुलसिदास परिहरै तीन भ्रम तब आपन पहचाने ॥"

इस पङ्क्ति में गोस्वामीजी कहते हैं कि कुछ लोग सृष्टि को मिथ्या, कुछ लोग सत्य एवं कुछ लोग सत्यासत्य के रूप में प्रतिपादित करते हैं। पर ये तीनों भ्रम हैं।" परन्तु यह ठीक नहीं, क्योंकि शास्त्रानभिज्ञता के कारण ही उपर्युक्त भ्रम है। पङ्क्तियों का अर्थ आगे स्पष्ट होगा।

"शून्य भीति पर चित्र रङ्ग नहि तनु बिनु लिखे चितेरे।
धोये मिटै न मरइ भीति दुख पाइय यहि तनु हेरे ॥
रविकर नीर बसे अतिदारुण मकररूप तेहि माहीं।
वदनहीन सो ग्रसे चराचर पान करन जे जाहीं ॥

इन पङ्क्तियों का भी निष्कर्ष यही है कि यद्यपि दुनिया में बिना आधार के चित्र का उल्लेख नहीं हो सकता। बिना रङ्ग के और बिना शरीर के कोई चित्रकार चित्र नहीं लिख सकता है। चित्र धुल भी सकता है परन्तु जो चित्र धोने से भी नहीं धुल सकता है। परमेश्वर रूपी चित्रकार ने बिना आधार के ही जगच्चित्र का निर्माण किया है और बिना रङ्ग के यह चित्र बना है। चित्रकार को इसके निर्माण के लिए तन की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि वह तो बिना आँख के देखता है, बिना कान के सुनता है, बिना पैर के चलता है एवं बिना हाथ के नाना प्रकार के कर्म करता है। तन के बिना स्पर्श और घ्राण के बिना सर्वविध गन्धों को ग्रहण करता है—

"पग बिन चले सुने बिन काना। कर बिन् कर्म करे बिध नाना ॥
आनन रहित सकल रसभोगी। बिन बाणी बक्ता बड़ योगी ॥" (रा०मा० १।११७।३)

तत्त्वज्ञान के बिना यह जगत् किसी के मिटाये मिट भी नहीं सकता। यह सब भी उनकी निजी बात नहीं है। किन्तु श्रुतिसम्मत सिद्धान्त है। श्रुति भी यही कहती है—

"अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥" (श्वेताश्व० उ० ३।१९)

इसी बात को व्यतिरेकमुखेन शिवमहिम्न में कहा गया है। ईश्वर किस प्रकार की चेष्टा द्वारा, किस शरीर से, किस उपाय से, किस आधार पर एवं किस उपादान से विश्व का निर्माण करता है, इत्यादि कुतर्क कुछ हतबुद्धि लोगों को जगत् में व्यामोह फैलाने के लिए मुखरित (वाचाल) करते हैं।

प्रकृत में केवल सजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेद से शून्य एक अद्वितीय स्वप्रकाश भगवान् से भिन्न होकर कुछ भी नहीं है। आधार के बिना, उपादान के बिना, शरीर के बिना और चेष्टा के बिना जगत् कैसे बन सकता है? अतर्क्य ऐश्वर्यवाले कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु समर्थ भगवान् में उक्त दुस्तर्क अनवसरग्रस्त हैं। उनकी अघटित-घटनापटीयसी माया सब कुछ कर सकती है और स्वयं मिथ्या होने पर भी उनकी सत्ता से सत्य होकर सत्य प्रपञ्च निर्माण बिना आधार आदि के कर सकती है, या वह भगवान् ही अपनी इस अचिन्त्य माया शक्ति के द्वारा बिना साधनों के भी उक्त जगच्चक्र का निर्माण कर सकते हैं।

"किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥"

यह संसार रविकरनीर अर्थात् मरुमरीचिका जल ही है। इस मृगतृष्णिकोदक में एक मोह रूपी मकर है जो वदनहीन होने पर भी वहाँ जलपान करने जो जाते हैं उन सभी चराचरों को ग्रस लेता है।

यदि पानी ही सत्य नहीं तो उसमें सत्य मकर कैसे होगा? फिर उसके मुख भी कहाँ? फिर भी जब तक तत्त्व का साक्षात्कार नहीं होता, भ्रम नहीं मिट जाता, तब तक मिथ्या संसार व्यामोह सबको ग्रस्त करता ही है।

"कोउ कह सत्य झूठ कह कोई"

पङ्क्तियों का यह अर्थ है कि कुछ लोग जगत को सत्य (अत्यन्ताबाध्य) कहते हैं। कुछ झूठ वन्ध्यापुत्र तथा खपुष्पवत् अत्यन्त असत् कहते हैं। कुछ लोग सत् असत् उभयरूप मानते हैं। परन्तु ये तीनों ही पक्ष भ्रान्त हैं। त्रिविध भ्रम परित्याग से ही परमात्मज्ञान हो सकता है। जगत् ब्रह्म के समान सत् नहीं है, क्योंकि वह विनश्वर है, तत्त्वज्ञान से मिट जाता है। अत्यन्त असत् भी नहीं है, क्योंकि वह दुःखादि अनर्थ का मूल है। खपुष्पादि प्रतीत नहीं होते, यह प्रतीत होता है।

"क्वचिदप्युपाधौ सत्त्वेन प्रतीयमानत्वानधिकरणत्वमसत्त्वम्।" जो किसी स्थल में प्रतीयमानत्व धर्म का अधिकरण न हो अर्थात् कहीं सत् रूप से जिसकी प्रतीति न हो वही असत् है। ऐसे खपुष्पादि ही होते है, जगत् नहीं? क्योंकि जगत् सत् रूप से प्रतीत भी होता है एवं इसमें कार्यकरण क्षमता भी है। अतः यह जगत् न सत् है, न असत् है और न सदसत् है। क्योंकि सत् और असत् दोनों विरुद्ध होने से दोनों का समन्वय हो ही नहीं सकता है। अतएव वेदान्त के अनुसार जगत् अनिर्वचनीय है। अविचाररमणीय, मिथ्या और झूठ शब्दों के दो अर्थ होते हैं। एक अपलाप या अत्यन्त असत् अर्थ है। दूसरा पूर्वोक्त सदसद्विलक्षण अविचारितरमणीय अनिर्वचनीय अर्थ है। इसी लिए अध्यासभाष्य में भाष्यकार ने कहा है—मिथ्याशब्दो नापह्नववचनः किन्त्वनिर्वचनीयतावचनः। आक्षेप-भाष्य में मिथ्याशब्द का अर्थ अपह्नव अपलाप अर्थात् इनकार करना है। अनिर्वचनीयता यहाँ मिथ्या शब्द का अर्थ अभिप्रेत नहीं है।

लोक में जैसी वस्तु है उसे वैसा न कहकर उल्टा कहनेवाले को मिथ्यावादी कहा जाता है। बौद्धों का शून्य कोटिचतुष्टयविनिर्मुक्त कहा जाता है। वह सत्, असत्, सदसत् और सदसद्विलक्षण इन चारों पक्षों से भिन्न है। नास्ति बुद्धि का गोचर न होने से बौद्ध शून्य को असत् से विलक्षण मानते हैं।

वेदान्तियों का ब्रह्म कोटिचतुष्टयविनिर्मुक्त है। परन्तु उसका अर्थ बौद्धों के अर्थ से अलग यह है कि वह ब्रह्म असत्कार्यवादी नैयायिकों तथा वैशेषिकों एवं असत् कारणवादी बौद्धों के समान असत् नहीं है।

सांख्ययोग के सत्कार्यवाद के अनुसार ब्रह्म सत् नहीं है। अनेकान्तवादी के समान ब्रह्म सत्-असत् रूप नहीं है। वेदान्तियों के सदसद्विलक्षण अनिर्वचनीय जगत् के समान ब्रह्म अनिर्वचनीय नहीं है। किन्तु चारों से विलक्षण अत्यन्ताबाध्य स्वप्रकाश सत् रूप है। "सदेव सोम्येदमग्र आसीत्" (छा॰ उ० ६।९।१), "अस्तीत्येवोपलब्धव्यः।" (उपनिषद्)

यदि झूठ का अर्थ वेदान्तियों का मिथ्यात्व स्वीकार किया जायगा और युगल प्रबल का अर्थ पूर्वोक्त दोनों पक्षों का समुच्चय सत्यासत्य कहा जायेगा तो वह असम्भव ही होगा। क्योंकि वैसा किसी भी दार्शनिक का पक्ष ही नहीं। जगत् को सत्य भी मिथ्या भी दोनों मानना सर्वथा असम्भव है।

"करम उपासन ज्ञान वेदमत सो सब भाँति खरो" इस पद के पूर्वोक्त—"तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहचाने" इस पूर्वोक्त से विरुद्ध समझना भी गलत है, क्योंकि भगवान् की सत्यता से ही माया भी सत्य है, जगत् भी सत्य है। यह कहा ही जा चुका है। कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों ही निश्चितरूप से अपना फल प्रदान करते हैं। उनका अपने अपने फल के साथ कार्य-कारणभाव सत्य है। अव्यभिचरित है, व्यभिचरित नहीं। यही उसका खरा होना है।

जेहि जाने जग जाई हेराई। जागे यथा स्वप्नभ्रम जाई॥" (रा० मा० १।१११।१)
"एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। यदपि असत्य देत दुख अहई॥" (रा० मा० १।११७ १)

जग नभवाटिका रही है फल फूलि रे।
धुवाँ कैसे धौरहर देख तू न भूलि रे॥"

गोस्वामीजी इन पूर्वोक्त वर्णनों से भी सृष्टि के मिथ्यात्व का ही प्रतिपादन करते हैं। यह भी कहना गलत है कि "इस समाधान को एक सीमा तक गोस्वामीजी यत्र तत्र स्वीकार करते हैं। परन्तु वह सिद्धान्त भी किन्हीं कसौटियों पर खरा नहीं उतरा। अतएव सैद्धान्तिक दृष्टि से उसे भी भ्रम अथवा सीमित सत्य का ही नाम देना होगा" क्योंकि मानस में इसका विरोधी कोई वचन नहीं है।

शिवजी के द्वारा इस प्रसङ्ग में राम और जगत् दोनों के याथात्म्य का वर्णन है। जगत् का मिथ्या होना या सीमित सत्य होना दोनों एक ही बात है। हम कह ही चुके हैं कि शुक्ति-रजत एवं रज्जु-सर्प के समान होता हुआ भी संसार शुक्ति, रज्जु आदि के समान सत्य ही माना जाता है। इसी लिए जैसे व्यवहार में कल्पित सर्प और रजत बाधित होते हैं, उसी तरह उसके अधिष्ठानभूत शुक्ति और रज्जु बाधित नहीं होते। वेदान्त में घट, रज्जु, शुक्ति आदि को भी मिथ्या कहा गया है। किन्तु घट के कारण मृत्तिका आदि को सत्य कहा गया है—

"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्।" (छा० उ० ६।१।४)

इसी तरह मृत्तिकादि कारण भी अपने कारण की अपेक्षा कार्य विकार होने से मिथ्या हैं। अन्तिम परम कारण या कार्यकारणातीत राम ही परम सत्य हैं। तद्भिन्न सब मिथ्या या सीमित सत्य ही कहे जा सकते हैं। परन्तु सर्वाधिष्ठानभूत भगवान् परम सत्य हैं। सत्य के भी सत्य हैं। उन्हें सीमित सत्य नहीं कहा जा सकता।

मङ्गलाचरण में प्रायः ग्रन्थकार अपना सिद्धान्त ही प्रतिपादन करता है। गोस्वामीजी मङ्गलाचरण में अपने इष्ट देवता भगवान् राम की वन्दना करते हुए कहते हैं—सम्पूर्ण ब्रह्मादि देव एवं असुरसङ्घ सभी जिनकी माया के वशवर्ती हैं जिनके सत्त्व अर्थात् सत्ता से सब कुछ वैसे ही अमृषा अर्थात् सत्य प्रतीत होता है जैसे रज्जु में सर्प का भ्रम सत्य ही प्रतीत होता है एवं भवाम्भोधि तरने की इच्छावालों के लिए जिनके पादारविन्द ही प्लव-जहाज हैं, उन अशेष कारण रामनामवाले सर्वोत्कृष्ट ईश्वर हरि की मैं वन्दना करता हूँ—

"यन्मायावशवर्त्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवा सुरा
यत्सत्त्वादमृषेव भाति सकलं रज्ज्वां यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हृदि ॥"

रज्जु में सर्प-भ्रम के समान भगवान् में सकल प्रपञ्च है। ऐसा मङ्गलाचरण जगत् के मिथ्यात्व को अङ्गीकार करनेवाले ही करते हैं, अन्य नहीं। भगवान् शिव भी कथारम्भ के पहले मङ्गलाचरण उसी ढङ्ग से करते हैं—

"झूठेउ सत्य जाहि बिन जाने। जिमि भुजंग बिन रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाई हेराई। जागे यथा स्वप्नभ्रम जाई॥
बन्दउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जस नामू॥"(रा०मा० १।११२।१,२)

झूठा भी जगत् जिसको बिना जाने सत्य प्रतीत होता है। जैसे बिना रज्जु को पहचाने सर्प सत्य प्रतीत होता है। जिसको जानने से जगत् हराय जाता है, अत्यन्त बाधित हो जाता है। जगत् का पता नहीं लगता। जैसे जाग जाने पर स्वप्न चला जाता है। स्वप्न की वस्तुओं का कहीं पता भी नहीं लगता। उन बालरूप राम की मैं वन्दना करता हूँ। जिनका नाम जपने से सब प्रकार की सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं।

अपने भगवान् राम का ही स्वरूप निरूपण करते हुए भगवान् शिव कहते हैं—

"जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ज्ञान गुन धामू।
जासु सत्यताते जड़ माया। भास सत्य इव मोहसहाया॥ (रा० मा० १।११६।४)

"रजत सीप महँ भास जिमि यथा भानुकर बारि।
यद्यपि मृषा तिहुं काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि॥ (रा० मा० १।११७)

अव्यक्तादि विकारान्त सारा जगत् प्रकाश्य है। प्रकाशक अखण्डबोध राम हैं। जिसकी सत्यता से जड़ माया भी मोह की सहायता से सत्य प्रतीत होती है। यद्यपि सीप में रजत तथा सूर्यरश्मि में जल तीनों कालों में सम्भव नहीं, मिथ्या ही है तथापि जब तक सीप और सूर्यरश्मि का अपरोक्ष साक्षात्कार न हो तब तक उस भ्रम को कोई टाल नहीं सकता है।

"एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। यदपि असत्य देत दुख अहई॥" (रा० मा० १।११७।१)

इसी तरह जगत् हरि में आश्रित है। वह यद्यपि असत्य ही है तथापि वह दुःखदायी है ही। जैसे कोई स्वप्न में किसी का सिर काटता हो भले वह मिथ्या ही है तथापि जब तक मनुष्य जाग नहीं जाता तब तक स्वप्न के सिर काटने का दुःख होता ही है—

"जो सपने सिर काटे कोई। बिन जागे दुख दूर न होई॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥"(रा०मा० १।११७।१,२)

इससे बढ़कर कौन सी कसौटी चाहिये, जगत् की असत्यता में और भगवान् की सत्यता में। इसके विरोध में तुलसी, शिव, याज्ञवल्क्य, भुशुण्डि किसी ने कहीं भी कुछ नहीं कहा। फिर इन सिद्धान्त-वचनों को असत्य कैसे कहा जा सकता है।

"सुनि शिव के भ्रमभंजन बचना। मिट गइ सब कुतर्क की रचना॥" (रा० मा० १।११८।४)

भगवान् सिव के भवभञ्जन वचन में भी भ्रम की कल्पना सचमुच मोह एवं अहङ्कार रूपी भूत की ही करामात है।

इसी प्रकार कर्मसिद्धान्त भी सिद्धान्त ही है।

"कर्मप्रधान विश्व रचि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा॥" (रा० मा० १।२१७।१)

गोस्वामीजी भी यही कहते हैं—

"यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पुन्य पाप गुन दोषू॥
तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा॥"(रा० मा० २।२१७।२,३)

कर्मसिद्धान्त की व्यावहारिक स्थिति का सांकर्य करना असंगत ही है। भले ही किसी व्यक्ति को अपने कर्म के अनुसार मरना हो तथापि मारनेवाला यह कहकर मुक्त नहीं हो सकता कि वह अपने कर्म के अनुसार मरा है। इसमें हमारा दोष नहीं। किसी को फाँसी की सजा भी सुनायी गयी हो तथापि फाँसी देने के लिए अधिकृत व्यक्ति ही उसे फाँसी दे सकता है। अनधिकृत व्यक्ति वैसा करेगा तो वह स्वयं ही दण्ड का भागी होगा। हर व्यक्ति के सामने अपना कर्तव्य है।

भले ही व्यवहार में मुकाबले में प्रहार करनेवाले के प्रहार को विफल करने का एवं अपने रन्ध्रों के गोपन पर रन्ध्रान्वेषण करके प्रहर्त्ता को दण्ड देने का प्रयास भी किया जाता है और वैसा करना नीतिशास्त्र से सम्मत है। वैसा न करना ही दोष है। जैसा कि भगवान् ने कहा है कि—अर्जुन ! यदि तुम धर्मयुक्त संग्राम से मुँह मोड़ोगे तो स्वधर्म एवं कीर्ति को त्यागकर पाप के भागी बनोगे—

"अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि।
ततः स्वधर्मं कीर्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि॥" (गीता २।३३)

अतः वह विचार गलत है जो तुमने सोचा था कि यदि प्रतीकार न करनेवाले और शस्त्र न उठानेवाले मुझपर शस्त्रपाणि दुर्योधनादि धार्तराष्ट्र प्रहार कर हनन करेंगे तो यह मेरे लिए अच्छा है—

"यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत्॥" (गीता १।४६)

प्रारब्ध दैव और प्राक्तन कर्म सिद्धान्त को समझनेवाला व्यक्ति किसी भी इष्टानिष्ट घटनाओं के घट जाने पर उन्हें प्रारब्धजनित जानकर शोक-मोहरहित होकर रागद्वेष से अलिप्त होकर कर्तव्य पालन में लगता है।

सामान्यतया दैव अदृष्ट प्रारब्ध कर्म अचिन्त्य होता है। फल के पहले उसका ज्ञान ही नहीं होता है। वह फलबल से ही कल्प्य होता है। फल होने के बाद दैव का ज्ञान होता है। परन्तु तब वह रहता ही नहीं, फिर उससे युद्ध कैसा ?

यही बात श्रीराम ने लक्ष्मण को समझाते हुए तब कही थी जब उन्होंने कहा था कि आज मेरे बाणों से विदीर्ण हो रणाङ्गण में पड़े हुए दैव को लोग देखेंगे।

"यदचिन्त्यं तु तद्दैवम्·······।" (वा० रा० १।२२।२०)

तीव्रतम पुरुषार्थ करने पर भी सफलता नहीं मिलती तब फलबलकल्प्य प्रबल दैव को जानकर संतोष किया जा सकता है। यही अभिप्राय निम्नोक्त वचनों का है—

"काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता। निजकृत करम भोग सुन भ्राता।।"
"सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता। परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।।" इत्यादि

अधिक सूक्ष्म विचार करने पर यह भी सिद्ध होता है कि संसार में वास्तव में कोई शत्रु या मित्र नहीं। अपने आप ही प्राणी अपना मित्र है और वही अपना शत्रु है—"आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः" (गीता ६।५) प्राणी का शुभ कर्म ही उसका मित्र बनकर सुख देता है। उसका अशुभ कर्म ही उसका शत्रु बन उसे दुःख देता है। अतः व्यावहारिकरूप से धर्मशास्त्र तथा नीतिशास्त्र के अनुसार देश, काल तथा परिस्थिति के अनुसार उचित कर्तव्य पालन करते हुए भी प्राणी राग-द्वेष से मुक्त होकर स्वस्थ शोकमोहातीत हो सकता है।

यह कहना भी गलत है कि "कर्मसिद्धान्त अकाट्य प्रमाणित नहीं है। यह सिद्धान्त जितना शक्तिशाली है मूलका प्रश्न आते ही इसकी निर्बलता उतनी ही प्रकट होती है। यदि कर्म के अभाव में सृष्टि संभव न हो तो विश्वोद्भव के प्रथम अवसर पर कर्म का निर्माण कैसे हुआ? यदि पूर्व में कर्म नहीं था तो सृष्टि कैसे बनी? पर यदि सृष्टि ही न होगी तो कर्म कैसे होगा? अतः कर्म और सृष्टि के आदि का विचार करते हुए असंगति लगने लगती हैं। अनादि कहकर मूल पर विचार करने की परिस्थिति से बचने की प्रवृत्ति यहाँ स्पष्ट हो जाती है।" क्योंकि यह सब शास्त्रीय व्यवस्थाओं के न जानने का परिणाम है। सब ज्ञान मानस से ही नही होगा। शास्त्रों की भी अपेक्षा है। विवाह, जनेऊ आदि संस्कार भी केवल मानस की चौपाइयों से ही कराने की कोशिश करना मानस-भक्ति का दुरुपयोग ही है।

ब्रह्मसूत्र में विचार—श्रुति कहती है कि परमेश्वर जिसे उत्कृष्ट ब्रह्म, इन्द्र आदि लोकों में ले जाना चाहता है उससे साधु कर्म कराता है। ईश्वर जिसे निकृष्ट लोकों में ले जाना चाहता है उसे निकृष्ट कर्मों में लगा देता है—"एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषते एष उ एवासाधु कर्म कारयति तं यमधो निनीषते" (कौ० उ० ३।८) परन्तु ऐसी स्थिति में ईश्वर में वैषम्य और नैर्घृण्य दोष उपस्थित होते हैं। वह क्यों किसी से साधु कर्म कराता है और क्यों किसी से असाधु कर्म कराता है? क्यों किसी को उत्कृष्ट लोक में ले जाता है एवं क्यों किसी को निकृष्ट लोकों में ले जाता है? वह तो सर्वत्र समान है। उसका कोई द्वेष्य अप्रिय नहीं है। फिर ऐसी विषम सृष्टि रचना से किसी को उन्नत और किसी को दीन-हीन, दरिद्र, दुःखी बनाने से तो उसमें विषमता, निर्दयता आदि दोष उपस्थित होते ही हैं।

इन सब बातों का समाधान करते हुए कहा गया है कि "वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्तथाहि दर्शयति (ब्र० सू० २।१।३४) ईश्वर में वैषम्य और नैर्घृण्य दोष नहीं होंगे, क्योंकि वह कर्मसापेक्ष होकर कर्मों के अनुसार ही विषम सृष्टि की रचना करता है। प्राणियों के कर्मों की विषमता से ही सृष्टि में विषमता होती है। वृष्टि होने पर धरित्री से विविध विलक्षण पौधे उत्पन्न होते हैं। बीजों की विलक्षणता से ही पौधों में विलक्षणता होती है। शासन भी कर्मों के अनुसार ही निग्रहानुग्रह करता है। वैसे ही परमेश्वर भी कर्मों के अनुसार ही प्राणियों को विविध देह तथा सुख, दुःख एवं तदनुगुण सामग्रियाँ प्रदान करता है। ऐसी स्थिति में विश्वोद्भव के प्रथम अवसर का प्रश्न ही नहीं उठता है।

कर्म और सृष्टि की परम्परा को अनादि कहना मूल विचार से बचने की प्रवृत्ति नहीं है, किन्तु वस्तुस्थिति है। आम की गुठली और आम के पौधे की धारा या किसी भी बीज और अङ्कुर की धारा को अनादि बिना स्वीकार किये कैसे समाधान होगा ?

वहाँ अनादि कल्पना अन्धपरम्परा कही जाती है जहाँ कार्यकारणभाव के निर्णयार्थ अनादिता का सहारा लेना पड़ता है। प्रकृत में तो स्पष्ट ही बीज से अङ्कुर और अङ्कुर से बीज उत्पन्न होते हुए दिखायी देते हैं। अतः बीज एवं अङ्कुर की अनादि धारा मान्य ही हैं। जगने पर व्यक्ति के मन में सोने से पहले के संस्कार जग उठते हैं। पूर्व पूर्व दिनों के अनुसार ही उत्तरोत्तर दिनों के सब व्यवहार चलते हैं। अतएव सोने तथा जगने की धारा की अनादिता स्पष्ट ही है।

जन्म-मरण एवं सृष्टि-प्रलय भी एक प्रकार का सोना-जागना ही है। किसी कारण अत्यन्त विस्मृति होना ही मृत्यु है और सर्वरूप से विषयों की स्वीकृति ही जन्म है—

"जन्तोर्वै कस्यचिद्धेतोर्मृत्युरत्यन्तविस्मृतिः।
जन्म त्वात्मतया पुंसः सर्वभावेन भूरिद ॥
विषयस्वीकृतिं प्राहुर्यथा स्वप्नमनोरथौ ॥"

अतः जब सोने और जगने की धारा अनादि है ही तब इसी तरह जन्म-मरण और सृष्टि-प्रलय की धारा को भी अनादि मानना उचित ही है।

अनादि पदार्थ नहीं हैं यह भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जीव और ईश्वर अनादि रूप से सबको मान्य हैं ही।

'प्रकृतिं पुरुषञ्चैव विद्ध्यनादी उभावपि।" (गीता० १३।१९)

उसी अनादि जीव के सम्बन्ध से अनादि जन्म-मरण की धारा चलती है। अनादि ईश्वर के आश्रित अनादि सृष्टि से संहार की परम्परा मान्य है। जैसे कर्मों के अनुसार जन्म-मरण की धारा चलती है। वैसे कर्मों के अनुसार ही सृष्टि-प्रलय की धारा भी चलती है। अनादि होने पर भी जैसे पाकज क्रिया से परमाणु की श्यामता नष्ट होती है एवं बीज में अनादि परम्पराप्राप्त अङ्कुरोत्पादिनी शक्ति बीजाग्निसंयोग से नष्ट हो जाती है, वैसे ही अनादि होने पर भी तत्त्वज्ञान के सम्बन्ध से अनादि सृष्टि कर्म की धारा तथा कर्म जन्म धारा बन्द हो जाती है। अतएव माया, जीव आदि अनादि सान्त होते हैं। केवल एक परमेश्वर ही अनादि-अनन्त होता है। इसलिए अनादि माया, अज्ञान एवं संसार की बाधसामग्री ब्रह्मात्मज्ञान है और अनादि ब्रह्म के बाध की सामग्री नहीं है। अतः वह अनन्त है।

सुख, दुःख, सम्पत्ति, विपत्ति सब व्यावहारिक लौकिक वस्तुएँ हैं उन्हीं की व्यवस्थाओं का नियामक कर्म है। परन्तु तत्त्वज्ञान के द्वारा जैसे माया अज्ञान कार्य संसार बाधित हो जाता है। वैसे ही कर्म भी बाधित हो जाता है—

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥" (मु० उ० २।२।८)

परावर ब्रह्म का अपरोक्ष साक्षात्कार होने पर हृदयग्रन्थि (आत्मा एवं अनात्मा का अन्योन्याध्यास) भिन्न हो जाती हैं। सत्य रज्जु की ग्रन्थि तो ज्ञानमात्र से नहीं खुलती और खुलने पर भी दोनों रस्सियाँ विद्यमान रहती हैं। परन्तु चिज्जड की ग्रन्थि तो सत्यानृत की ग्रन्थि है। यहाँ तो ग्रन्थि खुलने पर सत्य ही रह जाता है। अनृत मिट जाता है। तभी तो तुलसी ने इसे मृषा मिथ्या कहा है—

"जड़ चेतनहिं ग्रन्थि परि गयी। यद्यपि मृषा छूटत कठिनयी ॥

सब संशय छिन्न हो जाते हैं। प्रारब्ध से अतिरिक्त सब कर्म क्षीण हो जाते हैं। गीता भी कहती है—

"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।" (गीता ४।३७)

जब सुख, दुःख, हानि लाभ नहीं तब कर्म का उपयोग भी क्या है ? इसी लिए लखनलाल ठीक ही कहते हैं कि—

"योग वियोग भोग भल मन्दा। हित अनहित मध्यम भ्रम फन्दा ॥
जनम करम जहँ लगि जग जालू। संपति विपति करम अरु कालू ॥
देखिय सुनिय गुनिय मन माहीं। मोहमूल परमारथ नाहीं ॥ (रा० मा० २।९१।३,४)

एक ब्रह्म ही भगवान् ही परमार्थ परम सत्य है। तद्भिन्न सब कुछ मोहमूलक है। परमार्थ नहीं है, मिथ्या है, सीमित सत्य है। यह भी सृष्टि के मिथ्यात्व की कसौटी ही तो है।

"सपने होइ भिखारि नृप रङ्क नाकपति होइ।
जागे हानि न लाभ कछु तिमि प्रपञ्च जग जोइ ॥" (रा० मा० २।९१)

इतने स्पष्ट रूप से प्रपञ्च का मिथ्यात्व परमेश्वर का परम सत्यत्व वर्णित होने पर भी मानस के नाम पर सभी सत्यों को सीमित कहकर अव्यवस्था फैलाना अनुचित है।

यदि ब्रह्मात्मसाक्षात्कार से सुख, दुःखादि प्रपञ्च बाधित हो सकते हैं तब यही तो उसका मिथ्यात्व है।

वासनानिवृत्ति, वैराग्य आदि तो वास्तविक ज्ञानाभ्यास के सहभावी होते हैं। तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासनाक्षय का सहाभ्यास ही लाभदायक होता है। जब तत्त्वज्ञान से दृश्य प्रपञ्च का मार्जन हो जाता है तब निर्दृश्य विशुद्ध ब्रह्मात्मा का अवशेष रहता है। फिर चित्त की एकाग्रता या मनोनाश तथा वासनाक्षय होने से पूर्ण जीन्मुक्ति होती ही है। अतएव मिथ्यात्व सिद्धान्त के साथ वैराग्य के दृष्टिकोण को जोड़ लेने का प्रश्न ही नहीं उठता।

"मोह निशा सब सोवनि हारा। देखिय सपन अनेक प्रकारा ॥
एहि जग जामिनि जागहिं योगी। परमारथी प्रपञ्च बियोगी ॥
जानिय तबहिं जीव जब जागा। जब सब विषय विलास बिरागा ॥
होइ बिबेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथचरन अनुरागा ॥" (रा०मा०२।९२।१-३)

श्रीराम ही परमार्थ सत्य हैं। तद्भिन्न सब अपरमार्थ है। व्यावहारिक या सीमित सत्य है। वस्तुतः शास्त्रों के प्रसिद्ध सिद्धान्तों का ही मानस में वर्णन है। राम ने, लक्ष्मण ने, भरत ने एवं शिवजी ने कोई नया सिद्धान्त नहीं कहा।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अचल अनादि अनूपा ॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा ॥" (रा०मा०२।९२।३)

मिथ्यात्व सिद्धान्त किस कसौटी पर खरा नहीं उतरता, यह नहीं दिखलाया गया। प्रतिज्ञामात्र से वस्तु-सिद्ध नहीं होती। उसके लिए प्रमाण की अपेक्षा होती है।

कहा जाता है कि "बाह्य वर्णव्यवस्था के स्थान पर आन्तर मन की वर्णव्यवस्था को बनाकर विचार करना चाहिये। बाह्य व्यवहार में हम अपने वर्गविशेष से इतने बँध चुके हैं कि सत्य भी हममें आक्रोश की सृष्टि करता है। वह संघर्ष अपनों और परायों का भी बन जाता है। आन्तर में भी वही भेद हैं। पर वहाँ अपने पराये

का भेद नहीं है। सत्ता की भूख, ऐश्वर्य की भूख एवं शरीर की भूख यह तो जीवन के साथ जुड़ी हुई है। हमारा मन अलग अलग समयों में किसी को महत्त्व देता रहता है। सत्ता की भूख ही मन का क्षत्रियत्व है। कभी वैभव ऐश्वर्य के लिए योजना बनाता है तब मन का वैश्यत्व जाग उठता है। कभी शरीर की आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यग्र हो उठता है, यह मन का शूद्रभाव है। जब मन ऊँचे आदर्शों की ओर प्रेरित होता है। व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति से हटकर समाज के कल्याण की भावना से भर उठता है। सुख-सुविधाओं को छोड़कर कष्ट और तप का जीवन अपनाना चाहता है यही वृत्ति ब्राह्मण है।"

परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि उक्त गुण तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब में ही समय समय पर आविर्भूत होते ही रहते हैं। फिर तो इससे कोई व्यवस्था नहीं बनती है। आप स्वयं मानते हैं कि किसी भी व्यक्ति के लिए एक सी मनःस्थिति न सदा सम्भव ही है न आवश्यक ही है। ऐसी स्थिति में व्यवहारतः किसको ब्राह्मण एवं किसको क्षत्रियादि कहा जाय ? ब्राह्मण मनोवृत्ति आवश्यक है तो सभी के लिए आवश्यक है।

वस्तुतः शास्त्रों में तो ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था संस्कारों एवं कर्मों के लिए अपेक्षित है। जैसे ब्राह्मण का वसन्त में उपनयन किया जाय, क्षत्रिय का ग्रीष्म में एवं वैश्य का शरद् में। शूद्र का उपनयन संस्कार नहीं, जिनका उपनयन संस्कार होगा वही वेदाध्ययन एवं वेदार्थानुष्ठान के अधिकारी होंगे। प्रश्न तो यह है कि यदि जन्मना शूद्र में ब्राह्मण या क्षत्रिय की वृत्ति पैदा हो जाय तो उसे वेदाध्ययन, वेदार्थानुष्ठान का अधिकार है या नहीं ? निषाद में बड़े उत्तम गुण आ गये थे। क्या उसको ब्राह्मण मान लिया गया था और उसे वेदाध्ययन एवं वेदोक्त यज्ञों के अनुष्ठान का अधिकार मिल गया था ? शास्त्रों की दृष्टि से तो यह सब असम्भव ही है।

वाजपेय यज्ञ में ब्राह्मण और क्षत्रिय का ही अधिकार है। राजसूय में केवल क्षत्रिय का एवं जन्मना क्षत्रिय का ही अधिकार है। वैश्यस्तोम में वैश्य का ही अधिकार है। किसी कर्म में निषाद का एवं किसी में रथकार जाति का ही अधिकार है। इन सब बातों का वृत्ति और गुण से मुख्य सम्बन्ध नहीं है।

जैसे सिंह से सिंही में उत्पन्न एवं शौर्य, क्रौर्यादि गुणों से युक्त मुख्य सिंह होता है। केवल गुण होने से मनुष्य को भी सिंह कहा जा सकता है। परन्तु गुण न होने पर योनिमात्र सम्बन्ध से जातिसिंह का ही व्यवहार होता है। निकृष्ट अधम यहाँ तक कि मृत सिंह को भी सिंह ही कहा जाता है। ठीक इसी तरह विद्या, तप और योनि तीनों के होने पर मुख्य ब्राह्मण होता है। विद्या और तप न होने से तो केवल जातिब्राह्मण ही होता है। यह महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलि का कहना है—

> "विद्या तपश्च योनिश्च त्रयं ब्राह्मणकारणम्।
> विद्यातपोभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव सः॥"

शास्त्रों में साङ्कर्य को महान् दोष माना गया है। अब यदि वृत्ति से ही ब्राह्मणादि वर्ण माने जायँ तब तो ब्राह्मण पति-पत्नी में भी समय समय पर वृत्ति एवं गुणों में रद्दोबदल होता ही है। इस स्थिति में यदि पत्नी में ब्राह्मण गुण बढ़े हों पति में क्षत्रिय या शूद्रगुण आ गये हों तब तो आपके मत से चाण्डाल आदि प्रतिलोम सङ्करों की सृष्टि सम्भव है ही।

नामकरण में व्यवस्था है और जन्म से दस दिनों के बाद ही नामकरण संस्कार होता है। दस दिन के बालक में ब्राह्मण, क्षत्रियादि वृत्तियों का निर्णय होना संभव ही न होगा। अतः शर्मा, वर्मा, गुप्त, दास आदि नामकरण कैसे होगा ? अतएव वेदों में जन्मना वर्णव्यवस्था का ही वर्णन है।

> "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
> ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽअजायत॥"

यह मन्त्र ऋक्, यजु एवं अथर्व तीनों ही वेदों में आता है। साम तो ऋग्वेद के मन्त्रों का गीतिविशेष ही है। इस मन्त्र में यह सन्देह हो सकता था कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भगवान् के मुख, बाहु और ऊरु रूप कहे गये हैं। मन्त्र में यह नहीं कहा गया है कि भगवान् के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ है। परन्तु "पद्भ्यां शूद्रोऽजायत" इस अन्तिम पङ्क्ति से स्पष्ट निर्णय हो जाता है। जैसे शूद्र भगवान् के पैर से उत्पन्न हुआ है वैसे ही ब्राह्मणादि भगवान् के मुखादि से ही उत्पन्न हुए हैं। जैसे मृद् (मिट्टी) से उत्पन्न घट के साथ मृद् का "मृद् घटः" इस प्रकार सामानाधिकरण्य देखा जाता है। उसी तरह मुख से जन्म होने के कारण 'ब्राह्मणो मुखम्' यह सामानाधिकरण्य है। इसी का स्पष्टीकरण करते हुए मनु ने "मुखबाहूरुपज्जानाम्" इस पद्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को मुखबाहूरुपज्ज कहा है। अर्थात् ब्राह्मणादि भगवान् के मुखादि से उत्पन्न हुए हैं।

छान्दोग्य उपनिषद् में श्वयोनि, सूकरयोनि के समान ही ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि, शूद्रयोनि तथा चाण्डाल योनि का वर्णन किया है।

"तद्य इह रमणीयचरणा अभ्याशो ह यत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ब्राह्मणयोनिं क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशो ह यत्ते कपूयां योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा ॥" (छा० उ० ५।१०।७)

अतः जैसे श्वयोनि, सूकरयोनि में जन्म पाने पर जब तक वह देह रहता है जाति नहीं बदल सकती है वैसे ही ब्राह्मणादि जातियों में भी यावत् देह जाति रहती है तब तक जाति नहीं बदल सकती है। जहाँ भी कहीं कर्म या गुण से जाति का वर्णन है वह वैसे ही गौण ब्राह्मणादि का वर्णन है जैसे सिंह के गुण होने से मनुष्य को भी सिंह गौणी वृत्ति से कहा जाता है। मनुष्य मुख्य सिंह नहीं ही कहा जाता है। अवश्य ही उत्तम गुण होने से उत्तम जाति में जन्म होता है।

कुछ लोग कहते हैं कि हनुमान्‌जी ने रावण के बगीचों के फल खाये। रावण उसको चोरी कहता है। परन्तु हनुमान् की दृष्टि में सारी वस्तु-सम्पत्ति परमेश्वर की है, राम की है। रावण की सम्पत्ति ही नहीं थी।

बलि ने वामन भगवान् को दान लेने को कहा, परन्तु यह उसका साहस था। उसकी वस्तु ही क्या थी जो वह देता। वस्तु तो सब भगवान् की ही थी। परन्तु यह सब बुद्धि का अतिरेक ही है। यह बात पीछे भी कही जा चुकी है कि व्यावहारिक सत्ता का अपलाप करने से शास्त्रीय व्यवहार भी बाधित होते हैं। अवश्य अनन्तकोटि ब्रह्माण्डाधिपति परमेश्वर का ही सब कुछ है। तब भी शास्त्रों में जीवों के लिए यज्ञ, दान, व्रत आदि का विधान है और वह सब धन-सम्पत्ति होने पर ही संभव है। यदि जीव का अपना कुछ है ही नहीं तो अन्नदान, अश्वदान आदि कैसे बनेगा?

भगवान् की ही दी हुई वस्तुओं को भगवान् में अर्पित करके भक्त निहाल होता है—"त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये" सूर्य के दिये हुए जल से सूर्य भगवान् को जलाञ्जलि दी जाती है। सूर्य के ही अंश दीप से सूर्य की आरती उतारी जाती है। जैसे सब भूमि राजा की होने पर भी अवान्तर स्वत्व करद राजाओं, जागीरदारों, काश्तकारों का भी उन उन भूमियों पर होता ही है।

राजा को कोई भूमि लेना हो तो उसका प्रतिकर या मुवावजा देना ही पड़ता है। मनमानी अपहरण की बात नहीं चलती है। कई बार ऐसी कार्यवाहियाँ न्यायालयों से अवैध घोषित होती रहती हैं।

भले रावण भी भगवान् की शक्ति सीता को चुरानेवाला चोर था। फिर भी इतनेमात्र से चोर की वैध सम्पत्ति भी अवैध नहीं हो जाती है। परन्तु यदि व्यक्तिगत सम्पत्ति मान्य ही नहीं तब जो चोर नहीं हैं उनकी भी

सम्पत्ति उनकी न मानी जायगी। फिर तो कोई डाकू और चोर भी किसी मालिक से कह सकता है कि तुम्हारी सम्पत्ति ही नहीं है यह तो भगवान् की है। फिर तो यह जैसे तुम्हारी है वैसे ही हमारी है। पर क्या यह कथन उचित होगा ?

वस्तुतः उक्त प्रसङ्ग में हनुमान् पर चौर्य का आरोप था भी नहीं और हो भी नहीं सकता था, क्योंकि युद्ध ठन जाने पर एक राजा दूसरे की प्रभुसत्ता को अस्वीकार कर देता है। इसी दृष्टि से राजसूय यज्ञ में राजाओं को जीतकर उनका धन लाकर यज्ञ के काम में लगाया जाता है। जैसे दाय से सम्पत्ति पर वैध अधिकार प्राप्त होता है, वैसे ही जय के द्वारा भी सम्पत्ति पर वैध अधिकार प्राप्त होता है—

"सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो लाभो जयः क्रयः।" (मनु १०।११५)

रावण भी देवताओं को जीतकर उनके विविध रत्नों का स्वामी हुआ था। लङ्का भी तो कुबेर की ही थी। उसने जय के द्वारा उसपर अधिकार प्राप्त किया था। अतः जब सीताहरण के कारण युद्ध छिड़ गया तब आक्रामक राम के दूत हनुमान् को अधिकार है ही कि वे रावण की प्रभुसत्ता को अस्वीकार कर दें।

रावण का मुख्य प्रश्न यही था कि तू कौन है ? और किसके बलपर तूने बन उजाड़ा ? और किस अपराध पर राक्षसों को मारा—

"कह लंकेश कौन तैं कीसा। केहिके बल घालेसि बन खीसा॥
मारे निसचर केहि अपराधा।" (रा० मा० ५।२०।१,२)

इसी का उत्तर हनुमान् ने दिया था—

"सुन रावन ब्रह्माण्डनिकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
जाके बल बिरञ्चि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा॥" (रा० मा० ३।२०।२,३)
जाके बल लवलेस ते जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जासु कर हरि आनेसि प्रिय नारि॥" (रा० मा० ५।२१)

जिसके बल से माया अनन्त ब्रह्माण्डों का निर्माण करती है। जिसके बल से ब्रह्मादि विश्व की सृष्टि आदि करते हैं। जिसके ही बल से लवलेश से तुमने चराचर को जीता है। मैं उसी का दूत हूँ, तुमने जिसकी प्रिय नारी का अपहरण या चौर्य किया है।

प्रह्लाद ने भी हिरण्यकशिपु से कहा था कि राजन् ! मेरा ही नहीं आपका बल भी वही है और सभी बलवानों का भी बल वही है।

केन उपनिषद् की आख्यायिका से यह सिद्ध ही है कि जिन अग्नि और वायु के सम्बन्ध से सभी देवता, दानव और मानव बलवान् पहलवान् होते हैं एवं जिनका सम्बन्ध भङ्ग होने से सब ठण्डे निष्प्राण मुर्दे हो जाते हैं, वे अग्नि और वायु भी भगवान् के अनुग्रह के बिना तृण भी जलाने और उड़ाने में समर्थ नहीं हो सके थे। अतः उन्हीं के बल से सब बलवान् हैं, यह सिद्धान्त मानना चाहिये।

मुझे भूख लगी थी, इसी लिए फल खाये। वानर-जाति के स्वभावानुसार मैंने कुछ वृक्षों को तोड़ डाला। जिन लोगों ने मुझे मारा उन्हें मैंने भी मारा।

हनुमान् जी ने कहीं भी यह नहीं कहा कि यह सम्पत्ति तुम्हारी नहीं है, रामजी की सम्पत्ति है, मैंने वाटिका की स्वामिनी से आज्ञा ले ली है—

"खायउँ फल प्रभु लागी भूखा । कपिस्वभाव तें तोरेउँ रूखा ॥
जिन मोहिं मारा तिन मैं मारा" (रा० मा० ४।२१।२,३)

इतना ही नहीं वे यह भी कहते हैं कि तुम श्रीराम के चरणारविन्द को हृदय में धारण कर के लङ्का का अचल राज्य करो—

"रामचरन पंकज उर धरहू । लंका अचल राज तुम करहू ॥" (रा० मा० ५।२२।१)

उधर भगवान् वामन भी विजय द्वारा प्राप्त बलि की त्रिभुवनसम्पत्ति को दान द्वारा प्राप्त कर के ही इन्द्र को प्रदान करते हैं । यदि बलि की उसमें प्रभुता ही नहीं थी तो दान लेने की अपेक्षा भी क्यों होती । अतः शास्त्र-विरुद्ध ऐसी सब कल्पनाएँ उपेक्ष्य ही समझनी चाहिये ।

यह तो दाता के सोचने की बात है । वस्तुतः भगवान् की सब वस्तुएँ हैं । उनको समर्पण का अर्थ है— उनकी ही दी हुई वस्तु का उन्हें ही समर्पण करना । जैसा कि बलि की पत्नी विन्ध्यावलि ने कहा था—

"क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते
स्वाम्यं च तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ।
कर्तुः प्रभोस्तव किमस्य त आवहन्ति
त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥" (भाग० ८।२२।२०)

हे भगवन् ! आपने अपनी क्रीड़ा के लिए त्रिजगत् का निर्माण किया है । आपके निर्मित विश्व में कुबुद्धि लोग अपना स्वामित्व जमा लेते हैं । वास्तव में सम्पूर्ण विश्व के परमकर्ता आपको वे लोग क्या दे सकते हैं । वे निर्लज्ज हैं जो आपको देने का अभिमान करते हैं, क्योंकि कर्तृवाद का आरोप भी तो आपमें ही है । अधिष्ठानभूत परात्पर परब्रह्म में ही कर्तृत्वविशिष्ट जीव भी तो कल्पित ही है ।

पर इसका अर्थ यह नहीं है कि नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र द्वारा प्रतिपादित स्वत्व का अपलाप कर दिया जाय । भले सब कुछ भगवान् का ही है तो भी जगत् के निर्माण में जहाँ भगवान् उपादान और निमित्त कारण है । वहीं जीव भी अपने शुभाशुभ कर्मों द्वारा विश्वप्रपञ्च के निर्माण में हेतु होता है । तभी वह विश्व के द्वारा सुख दुःख का भोक्ता होता है और तभी ईश्वर विषम सृष्टि निर्माण करने पर भी नैर्घृण्य (निर्दयता) और विषमता रूप दोष का भागी नहीं होता ।

जैसे स्वामी के द्वारा प्रदान की हुई वस्तु का सेवक स्वामी होता है, उसी तरह अपने कर्मों द्वारा और वैध मार्ग दाय, जय, क्रय आदि द्वारा प्राप्त वस्तुओं का स्वामी जीव भी होता ही है । तभी तो भगवान् ने भी अदिति की तपस्या से सन्तुष्ट होकर अदिति-पुत्रों देवताओं के हितार्थ बलि से दान के रूप में त्रिजगत् प्राप्त कर के देवताओं को प्रदान किया था ।

"भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।"

इस प्रकार के वचनों से यह नहीं समझना चाहिये कि श्रद्धा और विश्वास ही भवानी और शङ्कर हैं । श्रद्धा और विश्वास से अतिरिक्त भवानी और शङ्कर नहीं हैं ।

श्रीराम, जानकी तथा लक्ष्मण के लिए जीव, ब्रह्म और माया का दृष्टान्त किया गया है—

"उभय मध्य सिय सोहै कैसी । जीव ब्रह्म बिच माया जैसी ॥
उपमा बहुरि कहहुँ जिय जोही । जिमि बिधु बुध बिच रोहिनी सोही ॥"(रा०मा० २।१२३।१,२)

"लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदन मुनि बेष जनु रति ऋतुराज समेत॥" (रा० मा० २।१३२)

स्पष्ट ही है। वस्तुतः जीव, ब्रह्म, माया या विधु, बुध, रोहिणी रूप ही राम, सीता और लक्ष्मण नहीं हैं। इसी तरह मदन, रति और ऋतुराज भी वे नहीं हैं। वस्तुतः रति को तो गोस्वामीजी ने सीता की उपमा के योग्य भी नहीं समझा—

"केहि पटतरिय तीय सम सीया। जग अस युवति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥
विष वारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि वैदेही॥"

(रा० मा० १।२४६।२,३)

✲

द्वाविंश अध्याय

रामायण आदि का रचना-काल

कहा जाता है कि ईसा से एक शताब्दी पूर्व **रामायण** महाकाव्य पहले पहल पाश्चात्य देशों में विख्यात होने लगा था। उस समय अनेक लोगों का मत था कि इसकी रचना अत्यन्त प्राचीन काल में हुई थी। ए० श्लेगल के अनुसार ११ शती ई० पू० तथा जी० गोरेसियों के अनुसार लगभग १२ शती ई० पू०। इस मत के प्रतिक्रिया-स्वरूप जी० टी ह्वीलर तथा डाक्टर वेबर ने **रामायण** पर यूनानी तथा बौद्ध प्रभाव मानकर उसकी रचना अपेक्षाकृत नवीन समझी है। इन दोनों मतों का खण्डन **रामकथा** के द्वितीय भाग में श्रीबुल्के ने किया है। आगे चलकर **रामायण** के रचना-काल के विषय में लिखते हुए विद्वान् प्रायः **आदिरामायण** तथा प्रचलित **वाल्मीकिरामायण** का अलग-अलग रचना-काल मानते हैं।

एम्० विंटरनित्स इस प्रश्न का विस्तृत विश्लेषण करने के बाद एच्० याकोबी के परिणाम पर पहुँचते हैं। एच्० याकोबी पहली अथवा दूसरी शताब्दी ई० को **प्रचलित रामायण** का रचना-काल मानते हैं। एम्० विंटरनित्स दूसरी शती ई० अधिक समीचीन समझते हैं। सी० वी० वैद्य इसका काल दूसरी शती ई० पू० तथा दूसरी श० ई० के बीच में मानते हैं। यद्यपि वह पहिली शती ई० पू० अधिक सम्भव समझते हैं। कालिदास के समय में रामायण ने अपना प्रचलित रूप धारण कर लिया था तथा **भारत** के आरण्यक पर्व के रचना-काल में **बालकाण्ड** तथा उत्तरकाण्ड की कुछ सामग्री प्रचलित हो गयी थी, अतः अधिक सम्भव है कि **प्रचलित-रामायण** का रूप दूसरी शती ई० के बाद का नहीं है। प्रामाणिक वाल्मीकिकृत रामायण में बौद्ध धर्म की ओर निर्देश नहीं है, अतः इसकी रचना बुद्ध के पूर्व ही अथवा पाँचवीं शती ई० पू० में हुई होगी, यह एम्० मोनियेर विलियम्स तथा सी० वी० वैद्य का प्रधान तर्क प्रतीत होता है। डा० याकोबी रामायण का रचना-काल पाँचवीं शती ई० पू० से छठी और आठवीं शती ई० पू० के बीच में मानते हैं। ए० ए० मैकडोनेल भी याकोबी के तर्क दुहराकर रामायण की उत्पत्ति बौद्ध धर्म से पूर्व मानते हैं। ए० बी० कीथ डा० याकोबी के ग्रन्थ के बीस वर्ष बाद उनके तर्कों का विस्तृत विश्लेषण तथा खण्डन करके रामायण की रचना चौथी शती ई० पू० में रखते हैं। श्रीबुल्के **महाभारत** और **रामायण** शीर्षक में कहते हैं कि **रामायण** में **महाभारत** के वीरों का निर्देश नहीं मिलता दूसरी ओर **महाभारत** में न केवल राककथा का वरन् वाल्मीकिकृत **रामायण** का भी उल्लेख है इससे स्पष्ट है कि रामायण की रचना के पश्चात् महाभारत को अपना वर्तमान रूप मिला हो। फिर भी बहुत सम्भव है कि भारत (अर्थात् महाभारत का प्राचीन रूप) रामायण के पूर्व उत्पन्न हुआ हो। चतुर्विंशतिसाहस्री **भारतसंहिता** तथा **शतसहस्र महाभारत** इन दो सोपानों का **महाभारत** में ही उल्लेख मिलता है। प्रायः समस्त विद्वानों की सम्मति से रामायण का रचनाकाल भारत तथा महाभारत के बीच में माना जाता है। **शाङ्खायन** आदि सूत्रों तथा पाणिनि की **अष्टाध्यायी** में भारत के विषय में निर्देश मिलते हैं, रामायण के विषय में नहीं। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि भारत की रचना रामायण पूर्व हो चुकी थी। यह निर्विवाद है कि भारत तथा रामायण स्वतन्त्ररूप से उत्पन्न हुए हैं, भारत पश्चिम में तथा रामायण पूर्व में। दोनों के सम्पर्क के पश्चात् भारत ने महाभारत का रूप धारण कर लिया है।

आधुनिक विद्वानों के मतानुसार भारत और महाभारत के मध्य में ही रामायण का निर्माण हुआ है। वस्तुतः यह मत सर्वथा असङ्गत तथा रामायण और महाभारत दोनों से ही विरुद्ध है।

महाभारत और पाश्चात्य विद्वान्

महाभारत के आलोचनात्मक अध्ययन की ओर सर्वप्रथम क्रिश्चियन लासेन का ध्यान गया। सन् १९७३ में उन्होंने उसपर विचार करना आरम्भ किया। उनकी "**इण्डियन एंटिक्विटीज**" नामक पुस्तक में उनके विचार मिलते हैं। उनके अनुसार जिस महाभारत को सूत ने कहा वह वास्तव में मूल **पुराण भारत** का द्वितीय संस्करण है। **आश्वलायनगृह्यसूत्र** में भारत के साथ महाभारत का भी उल्लेख मिलता है। आश्वलायन का समय ३५० वर्ष ईसा पूर्व हो सकता है। सन् १८५२ के प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् वेबर के विचार **इण्डिया स्टुडियेन** में मिलते हैं। उसके अनुसार ऋग्वेद की नाराशंस्यगाथाएँ और दानस्तुतियाँ महाभारत का मूल स्रोत हैं। यज्ञों के अवसर पर इनका गान होता था। कुरुवंश की कुछ ऐसी ही गाथाएँ रही होंगी। विस्तार होते होते उन्हीं का महाभारत बनाया गया। पाणिनि के समय तक महाभारत नहीं रचा गया था। सन् १८८४ से लुडविग ने विचार प्रारम्भ किया। सन् १८९५ में प्राग में **यूबेरवाइमिथिश गुंड लेड दे भारत** पुस्तक में अपना विचार व्यक्त किया था कि पाण्डव कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे। उनके अनुसार महाभारत में देव और देवियों की कथाएँ हैं। महाभारत एक प्रकार से ऋतुपरिवर्तन का आलङ्कारिक भाषा में रूपक है। पाण्डव से अभिप्राय पीले सूर्य का है, धृतराष्ट्र के अन्धे होने का अर्थ है शक्तिहीन शरत्कालीन सूर्य। जर्मन विद्वान् होज्मान के अनुसार कौरव ही धर्मभीरु एवं न्यायप्रिय थे। यद्यपि द्यूत उन्होंने छल से जीता तथापि युद्ध में सारा छल पाण्डवों की ओर से हुआ। कौरव शैव और पाण्डव वैष्णव थे। जर्मन विद्वान् फान श्राडर के अनुसार ईसा के जन्म से ५०० या ४०० वर्ष पहले महाभारत के आदि कवि ने जन्म ग्रहण किया। वह कुरुभूमि का रहनेवाला था। कुरुवंश का पराभव और एक अज्ञात जाति के हाथ से उनकी पराजय की कहानी उसने सुनी थी। उसी वियोगान्त घटना के आधार पर उसने स्वदेशीय वीरों को क्षात्र-धर्म के मूर्तिमान् आदर्श तथा वीर कृष्ण के साथ पाण्डव, मत्स्य आदि विजातीयों को नीचकुलोद्भव और अन्याय से जयकारी बतलाकर चित्रित किया था। बहुत समय बाद जब कृष्ण ने अवतार लिया तब पाण्डववंशियों की सहायता से कृष्णभक्त पुरोहितों ने बुद्ध के विरुद्ध कृष्ण या बुद्ध को खड़ा किया। उन लोगों की चेष्टा सफल हुई। चौथी शती में विष्णु ही प्रधान देव हुए। उनके भक्त पुरोहितों ने भारत काव्य से उसे लेकर बिलकुल बदल डाला। उनके प्रधान सहायक पाण्डु-वंशधर थे। महाभारत में उनकी कीर्ति और कुरुओं की निन्दा की गयी है।

मैक्समूलर भारतीय वेदादिशास्त्रों के विद्वान् माने जाते हैं। उन्होंने भी अपने '**प्राचीन संस्कृत साहित्य इतिहास**' ग्रन्थ में विविध अनर्गल कल्पना की हैं। उनका कहना है कि महाभारत किसी एक कवि की कृति कभी नहीं हो सकती है। पर रचयिता अवश्य मनुप्रोक्त धर्म के पक्के अनुयायी ब्राह्मण रहे होंगे। परन्तु उनके लीपा-पोती करने पर भी पाण्डवों की प्राचीन परम्परा जहाँ-तहाँ फूट हो निकलती है। बचपन में पाण्डवों की ब्राह्मण-सम्प्रदाय में शिक्षा हुई। ब्राह्मणों से बराबर उनका संसर्ग रहा। पर वे भी पाँचों भाई एक ही स्त्री से विवाह कर बैठे। प्रत्यक्षविरुद्ध इस घटना पर महाभारत के ब्राह्मण सम्पादकों ने तरह तरह के रङ्ग चढ़ाये, पर यह दाग नहीं छिप सका। पाण्डु ने दो विवाह किये थे। पर दूसरी स्त्री माद्री उसके साथ सती हुई, कुन्ती नहीं। यह भी धर्म-विरुद्ध ही था।

डेनमार्क के डाक्टर सोर्यनसेन, कोपेन हेगन विश्वविद्यालय के अध्यापक थे, उन्होंने अपने निबन्ध 'महा-भारत और भारतीय संस्कृति में उसका स्थान' में लिखा है कि महाभारत का मूल कोई पौराणिक गाथा रही होगी। उसकी एकता से उसका रचयिता कोई एक ही व्यक्ति रहा होगा। उसमें परस्परविरोधी सिद्धान्त, पुनरुक्ति और बिना प्रसङ्ग की बातें नहीं आनी चाहिये। अतः ऐसे अंशों को प्रक्षिप्त ही मानना चाहिए। इस कसौटी पर उन्हें सात-आठ हजार श्लोकों से अधिक नहीं मिले जिनको उपलब्ध महाभारत का मूल कहा जा सके।

डालमान के **'जेनेसिस दे भारत'** (महाभारत का मूल) में उन्होंने कहा है कि कई पीढ़ियों में धीरे-धीरे इस महाकाव्य का विकास हुआ है, यह मत भ्रान्त है। उनके अनुसार वास्तविक युद्ध केवल कवि की कल्पना है। यदि कोई युद्ध हुआ होता तो उसका ऐतिहासिक प्रमाण मिलता। इसमें तो धर्म और अधर्म के ही संग्राम का वर्णन है। विंटरनित्स का **'भारतीय साहित्य का इतिहास'** जर्मन भाषा में प्राग से प्रकाशित हुआ। उसके अनुसार महाभारत को कला की कृति नहीं कहा जा सकता। महाभारत सचमुच एक साहित्यिक दानव है। यदि महाभारत का रचयिता कोई एक ही व्यक्ति माना जाय तो यह भी मानना पड़ेगा कि वह एक साथ महाकवि और टुच्चा लेखक, एक चतुर साधु और मूर्ख एवं सुयोग्य कलाकार तथा पक्का नक्काल रहा होगा। यह विचित्र व्यक्ति, अत्यन्त परस्पर विरोधी धार्मिक भावों और दार्शनिक सिद्धान्तों में विश्वास रखता था फिर भी इस काव्य के जङ्गल में जिसको साफ करना विद्वानों ने आरम्भ कर दिया है, घास-फूस और लता-पत्तों में छिपे हुए सच्ची कविता के भी कुछ पौधे मिल जाते हैं। साहित्य के इस बेतुके ढेर में अमर कलाकृति और गम्भीर बुद्धि के कुछ रत्न भी चमकते हैं।

सर मोनियर विलियम्स हापकिन्स, ग्रियर्सन आदि ने भी मनमाने विचार प्रकट किये हैं।

वस्तुतः जैसे बादलों द्वारा लाया हुआ ही समुद्र का पानी मधुर और तृप्ति का हेतु होता है। स्वतः ग्रहण करने पर वह खारा ही रहता है। उसी तरह भारतीय आचार, विचार, संस्कार तथा गुरुपरम्पराओं से ही भारतीय शास्त्रों के रहस्य विदित होते हैं। वैसा न होने पर उनका उलटा ही अर्थ भासित होता है। पाश्चात्यों का विद्या-व्यसन, अनुसन्धान तथा अनोखी सूझ किसी अंश में प्रशंसनीय हैं, परन्तु उनका यह परिश्रम किसी गूढ़ उद्देश्य से ही है और वह है भारतीयों को अपने धर्म से विमुख करना।

उनकी प्रवृत्ति ज्ञान की उच्च भावना से प्रेरित नहीं है। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रबल प्रचारक लार्ड मैकाले ने कहा था कि हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए हिन्दु-धर्म के खण्डन की आवश्यकता नहीं है। पाश्चात्य शिक्षा में आये हुए हिन्दू का मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं रह जायगा। स्वयं मैक्समूलर, जो भारत-प्रेम के लिए प्रसिद्ध हैं, ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि वेदमन्त्र दकियानूसी और निरर्थक हैं। जिस वातावरण में हम रह रहे हैं, उसमें मँडराते रहने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। उन्हें अजायबघरों में प्रतिष्ठित पद देने के लिए हम तैयार हैं, परन्तु हम कभी अपने जीवन को उनके द्वारा प्रभावित नहीं होने दे सकते। दूसरी पुस्तक 'चिप्स फ्राम दि जर्मन वर्कशाप' में उन्होंने और खुलकर कहा है—वेद हिन्दू-धर्म की चाभी हैं। उनका अच्छा ज्ञान, उनके दृढ़ तथा दुर्बल स्थानों का ज्ञान धर्म के विद्यार्थियों के लिए विशेषतः ईसाई मिशनरियों के लिए अनिवार्य है। ऐसी दशा में यही बात मन में आयी कि भारतवर्ष में ईसाई धर्म-प्रचारकों के काम की चीज वेद के एक संस्करण से बढ़कर और कुछ न होगी। इससे पाश्चात्य विद्वानों के मानसिक भावों का पता चलता है। भारतीय शास्त्रों के अनुवाद एवं लम्बी चौड़ी समालोचनाओं के पीछे उनकी यही दुरभिसन्धि रहती है। भारत में अंग्रेजीराज पुस्तक में भी पाश्चात्यों द्वारा ही पाश्चात्यों के इतिहाससम्बन्धी दुरभिसन्धियों का भण्डाफोड़ किया गया है।

डॉ० वेबर के अनुसार महाभारत में वर्णित नारायणीय भागवत-धर्म में जो भक्तिपक्ष है वह श्वेतद्वीप से अर्थात् हिन्दुस्थान के बाहर से आया है। अर्थात् ईसाई-धर्म से भागवत-धर्म में भक्ति का प्रवेश हुआ है। परन्तु पाणिनि जो कि ईसा से बहुत पहले हुए थे। उनको वासुदेवभक्ति का तत्त्व मालूम था। इतना ही नहीं बौद्ध तथा जैन धर्मों में भी भागवत-धर्म तथा भक्ति के उल्लेख पाये जाते हैं।

राघव चिन्तामणिराव वैद्य ने कहा है कि श्रीकृष्ण, यादव, पाण्डव तथा भारतीय युद्ध का एक ही काल है और वह कलियुग का आरम्भ है। पुराणों के अनुसार पाँच हजार वर्ष से भी अधिक काल बीत गया है। **भागवत** और **विष्णुपुराण** के अनुसार परीक्षित् राजा के जन्म से लेकर नन्द के अभिषेक तक ११०५ या १०१५ वर्ष होते

हैं (भाग० १२।२।२६), (वि० पु० ४।२४।३२)। पाश्चात्य विद्वानों ने माना है कि ईसवी सन् से लगभग १४०० वर्ष पूर्व भारतीय युद्ध और पाण्डव हुए होंगे। अतः कृष्ण का भी वही काल है। कुछ लोगों के अनुसार कृष्ण एक क्षत्रिय योद्धा थे। उनको पहले महापुरुष पद प्राप्त हुआ, पश्चात् विष्णुपद मिला। अन्त में परब्रह्म का रूप मिला। इन अवस्थाओं के आरम्भ से अब तक बहुत सा काल चाहिये। अतः भारतीय धर्म का उदय और भारतीय युद्ध का एक ही काल नहीं, परन्तु यह शङ्का ठीक नहीं है। क्योंकि उपनिषदों में ज्ञानी को ब्रह्मरूप कहा है (बृ० उ० ४।४।६)। मैत्रायणी उपनिषद् में रुद्र, विष्णु, नारायण ये सब ब्रह्म ही हैं यह कहा गया है। बुद्ध भी अपने को ब्रह्मभूत कहते हैं (**सेलसुत्त** १४ तथा **थेरगाथा** ८३१)। वस्तुतः ये सब विचार-सरासर गलत हैं।

क्योंकि वेदादि प्रमाणों के आधार पर कृष्ण वस्तुतः परब्रह्म थे। उनको किसी ने ब्रह्मपद प्रदान नहीं किया था। पश्चिमी पण्डितों में अधिकांश का मत है कि **ऋग्वेद** का काल ईसा से पूर्व १५०० वर्ष या बहुत हुआ तो २००० वर्ष पूर्व का है। इसी लिए उनकी दृष्टि में ईसा से १४०० वर्ष पूर्व भागवत-धर्म मानने में झिझक होती है। क्योंकि उनके अनुसार **ऋग्वेद** के बाद यज्ञादिप्रतिपादक **यजुर्वेद** और ब्राह्मणग्रन्थ बने। तदनन्तर ज्ञानप्रधान उपनिषद्, सांख्यशास्त्र और अन्त में भक्तिप्रधान ग्रन्थ बने। उनके अनुसार भागवत-धर्म के उदय से पहले इन धर्माङ्गों की उत्पत्ति और वृद्धि के लिए कम से कम तो दस बारह शतक अवश्यक लगने चाहिये। अतः भागवत-धर्म का उदय बुद्ध के बाद हुआ होगा। परन्तु जब बौद्ध और जैन धर्मों में भी भागवत-धर्म (भक्ति) मिलते हैं तो यही कहना उचित है कि ओरायन आदि के अनुसार वेदकाल को ही और प्राचीन मानना चाहिये। वैदिक काल की पूर्व मर्यादा ईसा पूर्व ४५०० वर्ष होनी चाहिये। यह भी आधुनिक दृष्टि है।

भाषा की दृष्टि से वेदकाल

मैत्रायणी उपनिषद् पाणिनि से भी प्राचीन है। उसके अनुसार ऐसी कई शब्दसन्धियों के प्रयोग हैं जो केवल **मैत्रायणीसंहिता** में ही पाये जाते हैं और जिनका प्रचार पाणिनि के समय बन्द हो गया था। ज्योतिर्गणित से यह सिद्ध होता है कि **वेदाङ्गज्योतिष** में कही गयी उदगयनस्थिति ई० सं० के लगभग १२०० या १४०० वर्ष पहले की है। मैत्रायणी उपनिषद् में—'मघाद्यं श्रविष्ठार्धमाग्नेयं क्रमेणोत्क्रमेण सर्पाद्यं श्रविष्ठार्धान्तं सौम्यम्' (६।१४) में काल रूपी या संवत्सररूपी ब्रह्म का विवेचन करते हुए यह वर्णन मिलता है कि मघा नक्षत्र के आरम्भ से क्रमशः श्रविष्ठा अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्र के आधे भाग पर पहुँचने तक दक्षिणायन रहता है और सार्प अर्थात् आश्लेषा नक्षत्र से विपरीत क्रमेण आश्लेषा, पुष्य आदि क्रम से पीछे गिनते हुए धनिष्ठा नक्षत्र के आधे भाग तक उत्तरायण रहता है। उदगयनस्थिति के दर्शक वचन तत्कालीन उदगयनस्थिति को लक्ष्य कर कहे गये हैं। पर उसी से इस उपनिषद् का कालनिर्णय भी गणितरीति से सहज ही में किया जा सकता है। यह स्थिति **वेदाङ्गज्योतिष** की उदगयनस्थिति से पहले की है। उसका आरम्भ धनिष्ठा नक्षत्र के आरम्भ से होता है। मैत्रायणी उपनिषद् के 'श्रविष्ठार्ध' इस पद का अर्थ धनिष्ठार्ध किया गया है। इस तरह **वेदाङ्गज्योतिष** की उदगयनस्थिति जब ई० सन् से १२०० या १४०० वर्ष पहले की है तो आधे नक्षत्र से उदगयन के पीछे हटने में लगभग ४८० वर्ष लग जाते हैं। इस तरह गणित से विदित होता है कि मैत्रायणी उपनिषद् ई० पूर्व १८८० से १६८० के बीच कभी बनी होगी। **छान्दोग्य** आदि के अवतरण उसमें दिये जाने के कारण वे उससे भी प्राचीन हैं। वस्तुतः वेद, उपनिषद् सब अनादि अपौरुषेय ही हैं।

भारत

लोकमान्य के अनुसार वैशम्पायन ने जनमेजय को गीतासहित भारत सुनाया, आगे चलकर जब सौति ने शौनक को सुनाया तब से भारत प्रचलित हुआ।

भारतीय युद्ध से ५०० वर्ष के भीतर आर्ष महाकाव्यात्मक भारत का निर्मित होना सम्भव है, क्योंकि **बौद्ध धर्म के ग्रन्थ बुद्ध** की मृत्यु के बाद इससे भी जल्दी तैयार हुए थे। नायकों के कार्यों का धार्मिक तथा नैतिक दृष्टिकोण से समर्थन करना महाकाव्य का मुख्य विषय होता है। इस दृष्टि से तत्काल प्रचलित भागवत-धर्म से उनका सम्बन्ध और तदनुकूल व्यवहार-वर्णन आवश्यक है। उसका तर्कपूर्ण वर्णन गीता में हुआ है, अतः गीता कम से कम ईसा से ९०० वर्ष पूर्व की होनी चाहिये।

लोकमान्य की दृष्टि से महाभारत-कालनिर्णय

महाभारत लक्षश्लोकात्मक बड़ा ग्रन्थ है। राव बहादुर चिन्तामणि के अनुसार उस संख्या में कुछ न्यूनाधिकता भी है। **हरिवंश** के श्लोक यदि मिला दिये जायँ तो भी एक लाख योगफल नहीं होता।

इस **महाभारत** में यास्क के **निरुक्त, मनुसंहिता** और **गीता** में ब्रह्मसूत्रों का भी उल्लेख है। अतः इनके पीछे का ही **महाभारत** होगा।

प्रमाण (१) अठारह पर्वों का भारत तथा **हरिवंश** ये दोनों ही संवत् ५३५ और ६३५ के मध्य में जावा और वाली के द्वीपों में थे तथा वहाँ की प्राचीन कवि नाम की भाषा में उनका अनुवाद हुआ है। इस अनुवाद के आदि, विराट, उद्योग, भीष्म, आश्रमवासिक, मुसल, प्रास्थानिक और स्वर्गारोहण ये आठ पर्व वालीद्वीप में उपलब्ध हैं। अनुवाद यद्यपि कविभाषा में है, तथापि स्थान-स्थान पर **महाभारत** के मूल संस्कृत श्लोक ही रखे गये हैं।

अतः **लक्षश्लोकात्मक महाभारत** संवत् ४३५ के लगभग दो सौ वर्ष तक हिन्दुस्तान में प्रमाणभूत माना जाता था। अन्यथा जावा तथा वाली वाले उसे न ले गये होते। तिब्बत की भाषा में भी **महाभारत** का अनुवाद है। परन्तु वह बाद का है। (२) गुप्त राजाओं का लेख हाल में उपलब्ध हुआ है जो कि चेदि संवत् १९७ विक्रमी सं० ५०२ में लिखा गया था। उसमें यह स्पष्टरूप से निर्देश है कि **महाभारत** ग्रन्थ एक लाख श्लोकों का था। संवत् ५०२ के लगभग दो सौ वर्ष पहले उसका अस्तित्व अवश्य रहा होगा।

भास कवि के नाटकों में जो कि भारत के आधार पर लिखे गये थे, **बालचरित नाटक** में श्रीकृष्ण की शिशु अवस्था की बातों एवं गोपियों का उल्लेख पाया जाता है। इसी से हरिवंश का भी उस समय अस्तित्व सिद्ध होता है। भास कवि का समय ई० सन् के दूसरे तीसरे शतक के इस ओर का नहीं माना जा सकता। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार अश्वघोष कवि शालिवाहन शक संवत्सर के आरम्भ में हुआ है। उसके बुद्धचरित्र और सौन्दरनन्द में भारतीय कथाओं का उल्लेख है।

महाभारत के नारायणीयाख्यान में विष्णु के अवतारों में बुद्ध का नाम नहीं है। **महाभारतशान्ति पर्व** ३६९।१०० में दस अवतारों में हंस से लेकर कल्कि तक को दस अवतारों में गिना जाता है। पर वनपर्व में कलियुग के भविष्य का वर्णन करते हुए कहा है—

"एडूकचिह्ना पृथिवी न देवगृहभूषिता।"

अर्थात् कलियुग में देवगृहों के स्थान पर एडूक होंगे (म० भा० ३।१९०।६८)। बुद्ध के बाल, दाँत आदि स्मारक वस्तुओं को जमीन में गाड़कर उसके ऊपर बने हुए स्तम्भ या मीनार को ही एडूक कहा जाता है। आजकल उसे डागोवा कहते हैं। इससे मालूम होता है कि बुद्ध के बाद किन्तु उनकी अवतारों में गणना होने के पहले **महाभारत** रचा गया होगा। महाभारत में यद्यपि बुद्ध तथा प्रतिबुद्ध का वर्णन (शा० प० १९४।५९; ३०७। ४९; ३४३।५३) में है तथापि वह ज्ञानी के अर्थ में ही है। बौद्धों ने इन शब्दों को वैदिक धर्म से लिया होगा।

महाभारत में काल-गणना अश्विनी आदि नक्षत्रों से न होकर कृत्तिका आदि से है। (म० भा० अनु० ६४ और ८९)। मेष, वृषभ आदि राशियों का **महाभारत** में कहीं उल्लेख नहीं है। इससे यह समझा जाता है कि यूनानियों के सहवास से हिन्दुस्तान में मेष, वृष आदि राशियों के आने से पहले अर्थात् सिकन्दर से पहले ही **महाभारत** रचा गया होगा।

इससे भी अधिक महत्त्व की बात है श्रवण आदि नक्षत्र-गणना के विषय की। **महाभारत** आदि पर्व (७१।३४) में कहा है कि विश्वामित्र ने श्रवण आदि की नक्षत्र-गणना आरम्भ की थी। टीकाकारों के अनुसार उस समय श्रवण से उत्तरायण का आरम्भ होता था। **वेदाङ्गज्योतिष** के समय धनिष्ठा से उत्तरायण आरम्भ होता था। वह काल शकसंवत्सर से १५०० वर्ष पूर्व होता है। **ज्योतिर्गणित** के अनुसार एक नक्षत्र पीछे हटने में उदगयन होने का काल शक के पहले ५०० वर्ष पूर्व आता है। उसी समय **महाभारत** बना होगा। भारतीय ज्योतिःशास्त्र में यही अनुमान किया गया है (पृ० ८७-९०, १११।१४७)। किन्तु महाभारत में मेष, वृषभ आदि राशियों का उल्लेख नहीं है, अतः **महाभारत** बौधायन के पहले का ही है।

बौद्ध धर्म

बौद्ध ग्रन्थों से यह स्पष्ट है कि बुद्ध के समय चार वेद, वेदाङ्ग-व्याकरण, ज्योतिष आदि, इतिहास, निघण्टु आदि धर्मग्रन्थ प्रचलित हो चुके थे। बुद्ध अध्यात्मदृष्टि से अनात्मवादी थे। तथापि आचरण की दृष्टि से उपनिषदों के संन्यास धर्म से प्रभावित थे। पर अशोक के समय से बौद्ध भिक्षु जङ्गल में रहना छोड़कर प्रचार और परोपकार में लगे थे। **महावग्ग** (५।१।२७) में बुद्ध के एक शिष्य सोनकोलीविस की कथा में कहा है कि जो भिक्षु निर्वाणपद तक पहुँच चुका है उसके लिए न तो कोई काम ही अवशिष्ट रहता है और न किया हुआ कार्य ही भोगना पड़ता है। यह शुद्ध संन्यासमार्ग है "तस्य कार्यं न विद्यते" इस **गीतावचन** के समानार्थक है। बौद्धों के नये मत के प्रकट होने पर पुराने मत से झगड़ा हो गया। पुराने लोग अपने को थेरवाद स्थविर या वृद्ध पन्थ कहने लगे। नवीन पन्थ के लोग अपने मत को महायान तथा पुराने को हीनयान कहने लगे।

अश्वघोष महायानपन्थ का था। इसलिए उसने **सौन्दरनन्द** (१८।५४) में वर्णन किया है कि जब नन्द अर्हन् अवस्था में पहुँच गया तब बुद्ध ने उपदेश दिया था—

"अवाप्तकार्योऽसि परां गतिं गतो न तेऽस्ति किञ्चत् करणीयमण्वपि।
विहाय तस्मादिह कार्यमात्मनः कुरु स्थिरात्मन् परकार्यमप्यथो॥"

तेरा कार्य हो चुका, तुझे उत्तम गति मिल गयी। अब तेरे लिए तिल भर भी कर्म नहीं रहा, अतः अब तू अपना कार्य छोड़कर परकार्य कर।

"तस्य कार्यं न विद्यते॥" (गीता ३।१७)

और "तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार।" (गीता ३।१९)

इन गीतावचनों से मेल मिलता है। अतः मानना होगा कि अश्वघोष को ये सब तर्क गीता से ही मिले। बुद्धधर्मानुयायी तारानाथ ने अपने बुद्धधर्मविषयक इतिहाससम्बन्धी ग्रन्थ में, जो तिब्बती भाषा में लिखा है, कहा है—बौद्धों के पूर्वकालीन संन्यासमार्ग में महायान पन्थ ने जो कर्मविषयक सुधार किया था, उसे ज्ञानी श्रीकृष्ण और गणेश से महायान के पुरस्कर्ता नागार्जुन के गुरु राहुलभद्र ने जाना। इस ग्रन्थ का अनुवाद रूसी भाषा से जर्मनी भाषा में किया गया है। डा० केर्न ने १८९९ ई० में बुद्धधर्म पर एक पुस्तक लिखी थी। उसी से लोकमान्य तिलक ने यह अंश **गीतारहस्य** में लिखा है। संन्यासधर्मप्रधान बौद्धधर्म में कर्मप्रधान तथा भक्तिप्रधान महायान पन्थ की उत्पत्ति गीता से हुई थी।

जैन और बौद्ध दोनों ही धर्म वैदिक धर्म के पुत्र

लोकमान्य के अनुसार यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि जैनधर्म के समान ही बौद्धधर्म भी अपने वैदिक धर्म पिता का ही पुत्र है। अपनी सम्पत्ति का हिस्सा लेकर ये किसी कारण विभक्त हो गये। बुद्ध के अनुसार आत्मा ब्रह्म यथार्थ में कुछ नहीं है। केवल भ्रम है। इसलिए आत्मा अनात्मा के विचार या ब्रह्मचिन्तन के पचड़े में पड़कर किसी को अपना समय न खोना चाहिये। सब्बासवसूत्र (९।१३) बुद्ध के सिद्धान्त में दुःख, समुदय, निरोध और मार्ग ये चार आर्य सत्य मान्य हैं। संसार छोड़कर मन को निर्विषय तथा निष्काम करना ही मनुष्य का कर्तव्य है। **बृहदारण्यक उपनिषद्** (४।४।६) के इसी अंश को बुद्ध ने स्वीकार किया है। **महानिर्वाणसुत्त** (१–२४) के अनुसार सिद्ध है कि वैदिक हिंसात्मक यज्ञ आदि धर्म बुद्ध को अग्राह्य थे। केवल स्मार्त पञ्चमहायज्ञ, दान, परोपकार आदि आचरण गृहस्थ के धर्म ही बुद्ध को ग्राह्य थे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, सर्वभूतानुकम्पा, आत्मौपम्य, शौच तथा मन की पवित्रता आदि मान्य थे। जैनों के मतानुसार अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर थे, पर वे अध्यात्मवादी थे। लोकमान्य कहते हैं खाने की ही दृष्टि से जो प्राणी मारे न गये हों उनके पवत्त (संस्कृत प्रवृत्त) अर्थात् तैयार किये हुए मांस को स्वयं बुद्ध खाते थे और पवत्त मांस तथा मछलियाँ खाने की आज्ञा बौद्ध भिक्षुओं को भी दी गयी है। जैन और बौद्ध के पुराणादि वैदिक कथाओं के ही विकृत रूप हैं। अहिंसा, सत्य, दम आदि बहुत से ऐसे निवृत्तिमार्गीय धर्म वैदिक संन्यासियों और बौद्ध भिक्षुओं के समान रूप से वर्णित हैं। इसका कारण यही है कि वे सब अंश वैदिक धर्म के ही हैं। इतना ही नहीं **दशरथजातक** के समान वैदिक पुराण तथा इतिहास की सभी कथाओं का बौद्धधर्म के अनुसार रूपान्तर तैयार किया गया है। जैनों ने भी अपने अभिनव पुराणों में वैदिक कथाओं के ऐसे ही रूपान्तर किये हैं। सेल साहब ने लिखा है ईसा के अनन्तर प्रचलित मोहम्मदी धर्म में ईसा के चरित्र का इसी तरह विपर्यास किया गया है। पुरानी बाइबिल में सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय तथा नूह आदि कथाएँ प्राचीन खाल्दीजाति की धर्म-कथाओं के रूपान्तर हैं। उपनिषद्, प्राचीन धर्मसूत्र तथा मनुस्मृति में वर्णित कथाएँ तथा विचार बौद्ध ग्रन्थों में पाये जाते हैं। कई बार तो बिल्कुल शब्दशः वही के वही होते हैं। जय से वैर की वृद्धि होती है, वैर से वैर शान्त नहीं होता (म० भा० उद्योग० ६१।५९—६३)। क्रोध को शान्ति से जीतना चाहिये, **विदुरनीति** तथा महाभारत उद्योगपर्व (३८।७३)।

यदि मेरी एक भुजा में चन्दन लगाया जाय और दूसरी काटकर अलग कर दी जाय तो मुझे दोनों बातें समान ही हैं (म० भा० ३२०।२६)। ये ही सब बातें **धम्मपद** (५।२२३) तथा **मिलिन्दप्रश्न** (७।३।५) में हैं।

गीता और ईसाई-धर्म

डॉक्टर लरिनसर ने **गीता** के जर्मन भाषानुवाद के अन्त में लिखा है कि गीता में नयी बाइबिल के एक सौ से अधिक शब्दसादृश्य पाये जाते हैं। जैसे उस दिन तुम जानोगे कि तुम अपने पिता में, तुम मुझमें और मैं तुम में हूँ (जान० १४।२०)।

"येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि।" (गीता ४।३५)

वे कहते हैं गीताकार **बाइबिल** से प्रभावित थे। **ईसा से** लगभग ५०० वर्षों बाद गीता बनी (**इण्डियन एण्टीक्वेरी**)। परन्तु जब पूर्वोक्त प्रमाणों से गीता का काल ईसा से ५०० वर्ष पूर्व सिद्ध होता है तो यही मानना होगा कि गीता से ही बाइबिलकार ने उन अंशों को बाइबिल में सङ्गृहीत किया है। अंग्रेजी ग्रन्थकार लिलि तथा फ्रेञ्च पण्डित एमिल बुर्नफ ने भी यही अनुमान किया है।

बाइबिल में इस बात का कहीं भी वर्णन नहीं मिलता कि ईसा अपनी आयु के बारहवें वर्ष से तीस वर्ष तक क्या करता था और कहाँ था। इससे प्रकट है कि उसने यह समय धर्मचिन्तन और प्रवास में ज्ञानार्जन में बताया होगा।

अतएव विश्वासपूर्वक यह कौन कह सकता है कि आयु के इस भाग में उनका बौद्ध भिक्षुओं से प्रत्यक्ष या पर्याय से कुछ भी सम्बन्ध हुआ न होगा। क्योंकि उस समय बौद्ध यतियों का दौरदौरा यूनान तक हो चुका था। नेपाल के बौद्धमठ के ग्रन्थ में स्पष्ट वर्णन है कि उस समय ईसा हिन्दुस्थान में आया था और वहाँ उसे बौद्धों से ज्ञान प्राप्त हुआ था। यह ग्रन्थ निकोलुसनोटोविश नाम के एक रूसी के हाथ लग गया था। उसने फ्रेञ्च भाषा में इसका अनुवाद सन् १८९४ ई० में प्रकाशित किया था।

ईसाई पण्डित कहते हैं कि नोटोविश का अनुवाद भले ही सच हो, परन्तु मूल ग्रन्थ का प्रणेता लफङ्गा था। जो भी हो, परन्तु ईसाई-धर्म का मूल बौद्ध धर्म और परम्परा से गीता और वैदिक धर्म ही हो सकता है।

जब दो ग्रन्थों के सिद्धान्त एक से होते हैं तो समानता के बल पर यह कहना सम्भव नहीं होता कि अमुक ग्रन्थ पहले रचा गया और अमुक बाद में। क्योंकि यहाँ दो बातें सम्भव हो सकती हैं। इन दोनों ग्रन्थों में से पहले ग्रन्थ के विचार दूसरे ग्रन्थ से लिये गये हों अथवा दूसरे ग्रन्थ के विचार पहले से। अतएव जब दोनों ग्रन्थों के काल स्वतन्त्ररूप से निश्चित कर लिये जायँ तभी यह सम्भव है।

दूसरे यह भी होता है कि दो विभिन्न देशों में दो ग्रन्थकारों को एक ही से विचारों का एक ही समय में अथवा आगे पीछे स्वतन्त्र रीति से सूझ पड़ना कोई अशक्य बात नहीं है। अतः वहाँ यह भी विचार करना पड़ता है कि वे स्वतन्त्ररूप से आविर्भूत होने योग्य हैं या नहीं और उन दोनों देशों में आवागमन द्वारा एक देश के विचारों का दूसरे देश में पहुँचना सम्भव था या नहीं।

इस तरह चारों तरफ से विचार करने पर स्पष्ट विदित होता है कि ईसाई-धर्म से किसी भी बात का लिया जाना सम्भव नहीं। बल्कि गीता से ही बाइबिल में अनेक अंशों का सङ्कलन सम्भव है।

ईसाई-धर्म का मूल यहूदियों की पुरानी **बाइबिल** है। अग्नि में पशु या अन्य वस्तुओं का हवन करना और ईश्वर के बनाये हुए नियमों का पालन कर के जिह्वोवा को सन्तुष्ट करना आदि से वह कर्म-प्रधान था। नयी **बाइबिल** उसका ही सुधारा हुआ रूपान्तर है।

जैसे वैदिक यज्ञादि धर्मों के अनन्तर अहिंसा तथा ज्ञानप्रधान संन्यासधर्म का प्रादुर्भाव हुआ ऐसी पाश्चात्यों की धारणा है वैसे ही कर्म-प्रधान यहूदियों के धर्म में भी अहिंसा तथा ज्ञानप्रधान ईसाई-धर्म का उद्भव हुआ है ऐसा क्यों न माना जाय? कई लोग **पाईथा गोरस** के तत्त्वज्ञान का प्रभाव **बाइबिब** पर मानते हैं। परन्तु उसकी अपेक्षा बौद्ध धर्म से ही इसमें समता है।

जैसे ईसा को भ्रम में फँसाने का शैतान ने प्रयत्न किया वैसे ही बुद्ध को सिद्धावस्था प्राप्ति में अनेक विघ्न उत्पन्न हुए। जैसे ईसा ने ४० दिन तक उपवास किया, वैसे ही ४९ दिन तक बुद्ध निराहार रहे।

जब बौद्ध धर्म की निर्विवाद प्राचीनता सिद्ध है। तब ईसाई तथा बौद्ध धर्म में दिखनेवाले साम्य के सम्बन्ध में दो ही पक्ष रह जाते हैं। वह साम्य स्वतन्त्र रीति से दोनों ओर उत्पन्न हो अथवा इन तत्त्वों को ईसा ने या ईसा के शिष्यों ने बौद्धधर्म से लिया हो। प्रो० हिसडेविड्स के अनुसार बुद्ध और ईसा की परिस्थिति एक सी होने के कारण दोनों ओर यह सादृश्य अपने आप स्वतन्त्र रीति से हुआ है।

परन्तु विचार करने से यह ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि जब कोई बात किसी स्थान में स्वतन्त्ररूप से उत्पन्न होती है, तब उसका प्रचार सदैव क्रमशः होता है। उदाहरणस्वरूप जैसे वैदिक कर्मकाण्ड से ज्ञानकाण्ड, भक्ति, पातञ्जलयोग, अन्त में बौद्धधर्म का उदय हुआ। परन्तु कर्ममय यहूदी-धर्म से एकाएक संन्यासप्रधान ईसाई-धर्म का

उदय कैसे हो सकता है ? अतः उसमें किसी बाहरी शक्ति का हाथ अवश्य ही मानना चाहिये। बौद्ध धर्म के साथ ईसाई-धर्म की पूर्ण समता दिखायी देती है। वैसी समता का स्वतन्त्र रीति से उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। यदि बौद्ध धर्म से उसका सम्बन्ध होना असम्भव होता तो दूसरी बात थी। परन्तु प्रकृत में तो इतिहास से सिद्ध होता है कि सिकन्दर के समय ही नहीं, अशोक के समय भी यूनान तक बौद्ध भिक्षुओं का सञ्चार हो रहा था।

बाइबिल-काल

मेथ्यू (२।१) में यह वर्णन है कि जब ईसा पैदा हुआ तब पूर्व की ओर से कुछ ज्ञानी पुरुष यरूशलम गये थे। उस समय बौद्ध धर्म काश्मीर, काबुल, ईरान तथा तुर्किस्तान तक पहुँचा था। अतः वे ज्ञानी बौद्ध ही हो सकते हैं। अतः भक्तियुक्त संन्यास प्रधान बौद्धधर्म से ही ईसाई धर्म का विकास होना सम्भव है।

बौद्ध धर्म का मुख्य स्रोत वैदिक धर्म है। यह भी स्पष्ट ही है, अतः वैदिक धर्म **उपनिषद्**, **गीता** आदि से ही बौद्ध धर्म एवं बौद्ध धर्म से ही ईसाई-धर्म में भक्ति, ज्ञान आदि का आविर्भाव हुआ है। पूर्वोक्त उद्धरणों से स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म के आचरण-सम्बन्धी आधार वैदिक ही हैं।

लोकमान्य तिलक ने अपने **गीता-रहस्य** ग्रन्थ में पूर्वोक्त रीति से पाश्चात्यों की शैली से गीता का काल ईसा से ५०० वर्ष पूर्व बतलाया है। उनके अनुसार बुद्ध-निर्वाण के बाद तथा शक से ५०० वर्ष पहले **महाभारत** का निर्माण हुआ था।

किन्तु उनका यह निर्णय भी पाश्चात्य-प्रभाव से ही प्रभावित है। भारतीय शास्त्रीय दृष्टिकोण से **महाभारत** का ही काल ईसा से तीन हजार वर्ष से भी प्राचीन है। **गीता** का तो सुतरां **महाभारत** से भी प्राचीन काल है।

सर विलियम जोन्स, जनरल प्रिसेप, जनरल बकिङ्घम आदि पाश्चात्य विद्वानों ने **महाभारत** का युद्धकाल लगभग १७०० वर्ष पीछे हटाया है। पर यह विचार भ्रमपूर्ण ही है। उसका आधार है मेगस्थनीज़ की पुस्तक में लिखित सैण्ड्राकोट्स को मौर्य चन्द्रगुप्त और उसकी राजधानी पालिवोथ्रा को पाटलिपुत्र मान लेना और उसी के समर्थन के लिए **अशोक की धर्मलिपियों** के प्रज्ञापन दूसरे और तेरहवें में अन्तियोकस आदि पश्चिम भारत के पाँच राज्यों में यूनान देश के पाँच राजाओं के नामों की कल्पना की गयी है। इस भ्रान्ति के पोषण के लिए **महाभारत** के युद्धकाल से लेकर मौर्य चन्द्रगुप्त अथवा अशोकवर्धन के समय तक जितने राजा हुए हैं, जिनकी राजवंशावलियाँ उनके राजत्वकाल के सहित हमारे पुराणों में स्पष्ट पायी जाती हैं, उन राजवंशावलियों के राजत्वकालों के अशुद्ध पाठों के आधार पर मनमाना अर्थ किया गया है। उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों ने भी उसी का समर्थन किया है।

परीक्षित् के जन्म से महापद्म के अभिषेक तक बार्हद्रथों के १००० वर्ष, प्रद्योतों के १३८ वर्ष और शिशुनाकों के ३६२ वर्ष सब मिलाकर १५०० वर्ष होते हैं।

"महापद्माभिषेकात्तु यावज्जन्म परीक्षितः।
एकवर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चशतोत्तरम्[1]॥ (म० पु० १७२।४५)

कलियुगारम्भ विक्रम संवत् पूर्व ३०४५ और ईसवी सन् पूर्व ३१०२ का समय है। महापद्मनन्द का अभिषेक काल युधिष्ठिर स० १५०१, विक्रम पूर्व १५४५ एवं ई० सन् पू० १६०२ प्रमाणित होता है। चन्द्रगुप्त मौर्य का राजत्वकाल कलि सं० १६०१, विक्रम पूर्व १४४५, ई० पू० १५०२ से कलि सं० १६२५ विक्रम सं० पु० १४२१

---

१. पञ्चाशदुत्तरमित्येव पाठो लभ्यते।

तक एवं अशोक का राजत्वकाल कलि सं० १६५०, वि० पू० १३९६ से २६ वर्षो तक ई० पू० १४२७ तक प्रमाणित होता है।

सेण्ड्राकोट्स

ऐसी स्थिति में जिस सैण्ड्राकोट्स (चन्द्रगुप्त) का शासनारम्भ विलियम जोन्स आदि विद्वानों ने ई० पू० ३२३ वर्ष के आसपास माना है उसे चन्द्रगुप्त मानना भ्रम है। शिलालेखों के अनुसार मौर्य अशोक का शासनकाल यूनान के पाँच राजाओं के समसामयिक ई० पू० २५८ की कल्पना करना भी साहस ही है। शिलालेखों में पश्चिम-भारतीय राजाओं के यवनादि पञ्च गणराज्यों को यूनान के पाँच राजाओं के नाम पढ़ना भी साहस ही है।

श्रीजोन्स आदि विद्वानों के अनुसार यूनानी लेखकों की दृष्टि में पालिबोथ्रा नगरी को पाटलिपुत्र और सैण्ड्राकोट्स को मौर्य चन्द्रगुप्त का अपभ्रंश माना जाता है। यूनानी इतिहास के आधार पर उसका काल ई० पू० ३२२ है। यह सब सिद्ध किया जाता है मेगस्थनीज की उक्त पुस्तक के आधार पर जिसे उसने पाँच वर्ष तक सेल्यूकस राजा के राजदूत के रूप में सैण्ड्राकोट्स के दरबार में उसकी राजधानी पालिबोथ्रा में रहकर लिखा था और अब वह कहीं नहीं मिलती। उसके कुछ प्रकीर्ण अंश यूनानी इतिहासकारों की पुस्तकों में मिलते हैं। जिनको पाश्चात्य विद्वानों ने एकत्रित किया था जिनका अंग्रेजी अनुवाद वेक साहब ने किया है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल द्वारा अनूदित मेगस्थनीज का **भारतभ्रमण** (हिन्दी) में उल्लेख है कि डायनुशस् पश्चिम से आया था। उसी वंश में हेराक्लीज हुआ था जो साधारण मनुष्यों से बल और बुद्धि में बड़ा था। उसने बहुत-सी स्त्रियों से विवाह कर के बहुत से पुत्र उत्पन्न किये और बहुत से नगर बसाये, जिनमें सबसे बड़ा पालिबोथ्रा है। मेगस्थनीज की पुस्तक का जो अवतरण **ओरायन** ने दिया है उसमें हेराक्लीज से सैण्ड्राकोट्स तक १३६ पीढ़ियाँ दी हैं। देखो **महाभारतमीमांसा** (पृ० ९१ प्रकरण ४)। इससे यह सिद्ध होता है कि सैण्ड्राकोट्स से १३८ पीढ़ी पहले पालिबोथ्रा नगरी बसी थी। इतिहासविशारद **प्लायनी** के अनुसार पालिबोथ्रा नगर गङ्गा और ईरानावोअस के सङ्गम से २०० मील ऊपर की ओर स्थित है। प्लायनी फ्रैगमेन्ट्स आफ इण्डिया (पृ० १३०)। एम० डी० आनविल्ले के अनुसार ईरानावोअस यमुना नदी है। इससे गङ्गा और यमुना के सङ्गम से २०० मील ऊपर पालिबोथ्रा का होना सिद्ध होता है। प्लायनी फ्रैगमेंट्स आफ इण्डिया (पृ० १३०)। जोन्स के वक्तव्य में ओरायन के मत से गङ्गा और ईरानावोअस का सङ्गम प्रसई (प्रस्सी) जनपद में था। कार्टियस का मत है कि मेगस्थनीज का पालिबोथ्रा प्रभद्रक या पारिभद्रक जनपद में है। इस तरह यदि प्रति पीढ़ी बीस वर्ष का समय मानें तो सैण्ड्राकोट्स द्वारा २७६० वर्ष पूर्व पालिबोथ्रा का बसाया जाना सिद्ध होता है। इधर वायुपुराण के अनुसार पाटलिपुत्र नगर शिशुनाक-वंश के आठवें राजा उदायी ने अपने अभिषेक से चौथे वर्ष में बसाया था—

> "उदायी भविता तस्मात् त्रयस्त्रिंशत् समा नृपः।
> स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्॥
> गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थेऽब्दे करिष्यति॥" (वायु० पु० ९९।३१८,३१९)

दर्शक का पुत्र उदायी ३३ वर्ष तक राज्य करेगा। वह अपने अभिषेक से चौथे वर्ष में गङ्गा के तट पर कुसुम नामक नगर बसायेगा। ब्रह्माण्डपुराण उपोद्घात ३ पा० १३२ श्लोक में भी उदायी का अभिषेक कलि सं० १३८५, विक्रम पूर्व १६५७, ई० पू० १७१६ से चौथे वर्ष ई० पू० १७१३ के कुसुमपुर बसाया गया। जैनपुस्तक **'पटवन'** में भी पाटलिपुत्र को शिशु नामक वंश में आठवें राजा ने बसाया लिखा है। परन्तु पालिभाषा के बौद्ध ग्रन्थ **महामग्ग सुत्तनिपात** में लिखा है कि शिशुनामक वंश में छठे राजा अजातशत्रु ने कुसुमपुर बसाया। देखो **भारत के प्राचीन नगर** पुस्तक पृष्ठ ३२। कुसुमपुर, पुष्पपुर, पाटलिग्राम, पाटलिपुत्र, पाटलिनगरी ये सब पर्यायवाची शब्द हैं।

इन सब प्रमाणों से जोन्स का यह मत खण्डित हो जाता है कि पालिवोथ्रा पाटलिपुत्र का अपभ्रंश है। मेगस्थनीज़ के किसी भी अवतरण में पालिवोथ्रा का मगध देश में होने का वर्णन नहीं है। पाटलिपुत्र उदायी द्वारा ई० पू० १७१३ में बसाया गया और पालिवोथ्रा ई० पू० ३०८२ वर्ष में हेराक्लीज द्वारा बसाया गया।

इसी तरह पालिवोथ्रा का राजा सैण्ड्राकोट्स पौराणिक मौर्य चन्द्रगुप्त नहीं हो सकता। मौर्य चन्द्रगुप्त के शासनारम्भकाल से ११८० वर्ष पीछे सैण्ड्राकोट्स का शासनारम्भ हुआ।

हो सकता है शूरसेन देश के पुसई जनपद के प्रभद्रनगर का कोई दूसरा चन्द्रगुप्त या चन्द्रकेतु रहा हो या इसी से मिलते जुलते नाम का शासक रहा हो।

जोन्स के वक्तव्य के समर्थन में प्रिसेप **बकिङ्घम**, ने जिन गुहाभिलेखों और स्तम्भाभिलेखों को खोज निकाला है। उनको बड़े परिश्रम से पढ़कर यह प्रतिपादित किया गया है कि ये सब अशोक के हैं। चौदह प्रज्ञापन-वाले लेख में भी अन्तियोकस, मग, अन्तेकिन, तुरमय और अलीकसिन्धुर पाँच नामों के विषय में यूनान के भिन्न-भिन्न भागों के राजाओं के नामों की कल्पना की है। तथा उन सब राजाओं के समसामयिक ई० पू० २५८ वर्ष पर उन प्रशासनों को अङ्कित होना मानकर अभिलेखों के लिखनेवाले राजा को मौर्य अशोक प्रतिपादित किया गया है। उसी के आधार पर अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त का राजत्वकाल वही लिखा है जो जोन्स के अनुसार मान्य होता है।

परन्तु ये सब कल्पनाएँ भी भ्रान्तिमूलक ही हैं। वस्तुतः अशोक के नाम से प्रख्यात—"देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा" देवानां प्रिय एवं बिना नाम के किसी व्यक्ति के लिखाये गये जितने धर्मलेख गुहाओं, स्तम्भों और शिलाओं के पाये गये हैं, वे धर्मलेख कब लिखे गये इसका कोई उल्लेख नहीं है, केवल इतना ही उल्लेख है कि प्रज्ञापन लिखानेवाले व्यक्ति के अभिषेक से कितने वर्ष पर लिखे गये हैं।

अतएव जबतक लिखानेवाले राजा का अभिषेक का काल ज्ञात न हो तब तक उन लेखों का समय नहीं जाना जा सकता। म० म० पं० हीराचन्द्र ओझा के अनुसार किसी लेख या दानपत्र का निश्चित संवत् न होने पर उसकी लिपि के आधार पर समय स्थिर करना चाहिये। पर उसमें भी सैकड़ों वर्षों की चूक होना सम्भव है। प्रथम लघु शिलालेख में जो २५६ वाँ अङ्क है उसको बहुत से इतिहासज्ञ बुद्ध-निर्वाण संवत् मानते थे। हिन्दी टॉड **राजस्थान** के सम्पादक ओझाजी ने भी प्रकरण ६ की टिप्पणी ४४ में इसका समर्थन किया है, किन्तु पं० जनार्दन-भट्ट ने **अशोक के धर्मलेख** पृष्ठ ७९ की टिप्पणी १२ में कहा है कि आजकल इस मत का पूरा पूरा खण्डन हो गया है। अतः धर्मलेखों का निश्चित समय निरूपण करना सम्भव नहीं। कहा जाता है उपलब्ध समस्त अभिलेख अशोक के हैं। पर यह असंदिग्ध नहीं है, क्योंकि केवल मासकी के खण्ड प्रथम लघु शिलालेख से अशोकस्तम्भ में अशोकस ये चार अक्षर मिले हैं। शेषों में अशोक का नाम नहीं है। इन अभिलेखों में **"देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा"** की द्विरुक्ति त्रिरुक्ति तो की गयी है, पर 'अशोक' ये तीन अक्षर नहीं लिखे गये। अतः इन अभिलेखों को मौर्य अशोकवर्धन के मानना युक्तिसङ्गत नहीं है, क्योंकि जिन विषयों का वर्णन सातवें स्तम्भाभिलेख और तेरहवें विज्ञापन में है। ठीक उसी प्रकार का वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने भारत के बर्णन प्रसङ्ग में अपने आश्रयदाता हर्षवर्धन (शिलादित्य द्वितीय) के विषय में किया है। देखिये रमेशचन्द्रदत्तकृत **प्राचीन भारत की सभ्यता** भाग ४ अ० २ पृ० २६। ऐसी स्थिति में देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा शब्दों को, जो बौद्ध राजाओं की उपाधियाँ थीं, राजा हर्षवर्धन के लिए भी उपयुक्त मान सकते हैं। देखिये अशोक की लिपियाँ पृ० ७ की टिप्पणी। यदि उक्त धर्मलेख अशोकवर्धन के मान-कर पौराणिक राजवंशावलियों के राजत्वकालों के आधार पर विचार करें तो मौर्य अशोकवर्धन का राजत्वकाल कलि संवत् १६५०, विक्रम संवत् पूर्व १३९६, ई० पू० १४५३ से कलि संवत् १६७६, वि० पू० १३७०, ई० पू० १४२७

तक २६ वर्ष होता है। ऐसी स्थिति में शिलालेख के प्रज्ञापनों में यूनान के उन पांच राजाओं का नाम पढ़ना जिनका राजत्वकाल ई० पू० २८५ से २३९ तक माना जाता है। सर्वथा असङ्गत ही ठहरेगा।

अतः उन्हें मौर्य अशोकवर्धन के समसामयिक मानना महान् भ्रम है। वस्तुतः उक्त शिलालेखों के अन्तियोक्स, तुरमय, अन्तेकिन, मग तथा अलीकसिन्धुर ये नाम भारत के पश्चिमीय राज्यों के नाम हैं जो वारुण भारत के पञ्चगण नाम से अयोध्या के महाराज सगर के पूर्व काल से प्रसिद्ध हैं और जो चन्द्रवंशीय ययाति के तुर्वसु आदि तीनों पुत्रों के वंशधर राजाओं के अधिकार में थे। समयानुसार शासकों के नाम तथा प्रदेशों की प्राकृतिक दशाओं के कारण इन गणराज्यों के नामों और सीमाओं में परिवर्तन होता रहा। फिर भी ये पञ्चगण राज्य संस्कृत साहित्य में सिन्धु नदी के पश्चिम भारत के मुख्य राज्य माने गये हैं। इन्हीं का उल्लेख तथाकथित अशोक प्रियदर्शी प्रज्ञापनवाले शिलालेख के दूसरे, पाँचवें और तेरहवें विज्ञापनों में है।

एलेक्जेण्डर को एपिरस का राजा कहना कथमपि सङ्गत नहीं। किसी भारतीय सम्राट् के लिखाए हुए भारतीय धार्मिक शिलालेख में यूनानी राजाओं के नामोल्लेख की कोई भी सङ्गति नहीं। इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि पाश्चात्यों को हमारे वेदादि शास्त्रों की तथा आर्ष इतिहास, पुराण, धर्मशास्त्र आदि की अपौरुषेयता तथा प्राचीनता खटकती है। इसी लिए तो वेदों को भी वे ई० पू० दो हजार वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं मानना चाहते। आधुनिकों के दृष्टिकोण से किसी ग्रन्थ का या उसके रचयिता का नामोल्लेख किसी ग्रन्थ में देखकर अथवा उस ग्रन्थ का नाम और उसके रचयिता का नाम दूसरे किसी ग्रन्थ में न देखकर दोनों ग्रन्थों के रचना-काल का पूर्वापरत्व निर्णय किया जाता है। अथवा यवनादि जाति अथवा व्यक्तिविशेष के नामों, वारों के नाम, राशियों के नाम, नक्षत्र-गणना के आधार पर निर्धारण किया जाता है। इस दृष्टि से **महाभारत** में आये हुए नामों एवं ग्रन्थों के आधार पर **महाभारत** के रचनाकाल का निर्णय किया जाता है। परन्तु जब तक उन नामों और ग्रन्थों का निर्माण-काल निश्चित न कर लिया जाय तब तक **महाभारत** का निर्माण-काल भी निर्धारित नहीं हो सकता है।

पाश्चात्यों के मतानुसार भारतीय ज्योतिर्विज्ञान की महास्थूल गणना **वेदाङ्गज्योतिष** की गणना से भी स्थूल थी, जिसके अनुसार भीष्मपितामह ने तेरह वर्ष के सौरमान में तेरह वर्ष पाँच महीने बारह दिन की व्यवस्था विराटपर्व में दी थी। सिद्धान्तगणित का ज्ञान तो भारत को यूनानी ज्योतिषियों से हुआ था। नक्षत्र-मण्डल के बारह विभाग (राशियों का विभाग) भी यूनानियों की ही देन है। भारत में सप्ताह के स्थान षडह की गणना होती थी। वारों का ज्ञान भारतीयों को कल्डियावालों से हुआ था। इसी दृष्टि से जिन संस्कृत ग्रन्थों में (भले वे किसी विषय के हों) राशियों के बारह विभाग एवं सूर्यादि वारों तथा ज्योतिष की सिद्धान्तगणना का उल्लेख हो वे सभी ग्रन्थ ई० पू० ४०० वर्ष से पूर्व के नहीं हैं। चैत्रादि मासों का नाम भी जिन ग्रन्थों में हो उन्हें **वेदाङ्गज्योतिष** के पूर्व और ब्राह्मण ग्रन्थों के मध्यकाल का निर्माण मानते हैं। पाश्चात्यों के अनुसार **महाभारत, पुराण, पातञ्जल महाभाष्य** और जिन ज्योतिषग्रन्थों में यवन जाति की विद्वत्ता, आक्रमणकारिता और वीरता का उल्लेख है वे सभी ग्रन्थ सिकन्दर के आक्रमण ई० पू० ३२३ के पीछे के हैं। अर्थात् ई० पू० ५०० वर्ष के प्रथम के नहीं हो सकते। इसी दृष्टि से लोकमान्य ने भी **महाभारत** में राशिविभाग का वर्णन न होने से उसे सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व का और **बौधायनगृह्यसूत्र** में मेष, वृष आदि का नाम होने से उसे सिकन्दर के बाद का माना है।

परन्तु उपर्युक्त बातें भी निःसार ही हैं, क्योंकि **महाभारत** आदि में आये हुए यवन शब्द ग्रीक या यूनानियों के अर्थ में है ही नहीं। किन्तु उन्हें महाराज ययाति के पुत्र तुर्वसु के पुत्र यवन राजाओं के लिए ही समझना चाहिये।

"यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः स्मृताः।" (म० भा० १।८५।३४)

यदु से यादव तथा तुर्वसु से यवन लोग हुए। इस तरह ययातिपौत्र यवनों के वंशधर यवन हैं, यूनानी नहीं। उन्हीं का राज्य यवनराज्य के नाम से प्रख्यात हुआ है।

ब्रह्मपुराण के अनुसार सूर्यवंशीय राजा बाहु पर हैहयादि राजाओं के आक्रमण के समय पञ्चगणाधिपति यवन भी उनके साथ थे—

"हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं द्विजोत्तम।
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा॥
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहायार्थे पराक्रमन्॥" (ब्र० पु० २।३ इन्द्रविजय पृष्ठ ४४)

जब राजा बाहु के पुत्र सगर ने पितृशत्रुभूत पञ्चगणों को पराजित किया तब वसिष्ठ के शरणागत होने के कारण उनको धर्मभ्रष्ट, आचारभ्रष्ट तथा आर्यसंस्कृतिहीन कर के निर्वासित कर दिया था—

"अर्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत्।
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च॥
पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिण।
सर्वे ते क्षत्रिया विप्रा धर्मस्तेषां निराकृतः॥" (इन्द्रविजय पृ० ४४।१०,११)

मनुस्मृति के अध्याय १० श्लोक ४३, ४४ में कहा गया है। पाण्ड्य, चोल, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद, पह्लव, चीन, किरात, दरद, खश आदि क्षत्रियजातियाँ थीं। ब्राह्मणों के अदर्शन से संस्कारहीन होते हुए वे सब म्लेच्छप्राय हो गये—

"शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः।
वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेन च॥" (मनु १०।४३)
"पौण्ड्रकाश्चौड्रद्रविड़ाः काम्बोजा यवनाः शकाः।
पारदाः पह्लवाश्चीनाः किराता दरदाः खशाः॥" (मनु० १०।४४)

इस तरह यवनों का नाम देखकर उन्हें यूनानी समझना अत्यन्त भ्रम है। इसी लिए शक, यवन आदि प्रयोग अनिर्वासित शूद्रों में प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह भारतीय ज्योतिष ज्योतिर्विज्ञान-कालगणना के आधार पर स्थित है। भारतीय कालगणना सृष्टि के आदि से अन्त तक समान रहती है। विराटपर्ववाली भीष्मपितामह की गणना भी उससे विरुद्ध नहीं है। उस समय भी सौरमान और चान्द्रमान दोनों ही मान प्रचलित थे।

दोनों के समन्वय के लिए अधिकमास की व्यवस्था थी। उस दृष्टि से भीष्मजी ने व्यवस्था के रूप में कहा था कि इस समय तेरह वर्ष पाँच महीने बारह दिन द्यूतक्रीड़ा के दिन से बीत चुके हैं। उसी के अनुसार भगवान् रामचन्द्र ने भी चौदह वर्ष का वनवास पूर्ण किया था। उसी के अनुसार पाण्डवों ने भी तेरह वर्ष की प्रतिज्ञा पूरी की थी। वह गणना सौरचान्द्रगणना है। जिसका वर्ष चैत्र शुक्लप्रतिपदा से आरम्भ होकर चैत्रकृष्ण अमावस्या को पूरा होता है। उसके दिन कम से कम ३५४ और अधिक से अधिक ३८४ होते हैं। उसी के अनुसार कौरवों के ठीक चौदहवें वर्ष के प्रथम दिन में **वेदाङ्गज्योतिष** की गणना के अनुसार तेरह वर्ष पाँच महीने बारह दिन होते हैं। यदि द्यूतक्रीडा की मिति वि० सं० १९९० ज्येष्ठ कृष्ण ८मी बुधवार को मान लें तो उस दिन राश्यादि सूर्य (१।३।३०।४१) ता० १७ मई ई० १९३३ और अर्जुन के प्रकट होने की मिति वि० सं० २००३ ज्येष्ठ कृष्णाष्टमी शुक्रवार को मान लें तो उस दिन राश्यादि सूर्य १।९।५२।९ ता० १४ मई १९४६ ई० द्यूतक्रीडा और अर्जुन का प्रकट होना इन दोनों का अन्तर सौरचान्द्रमान से तेरह वर्ष एक दिन अर्थात् चौदहवें वर्ष का पहला दिन, सौरमान से होगा तेरह वर्ष ६ दिन अर्थात्

चौदहवें वर्ष का छठा दिन तथा अंग्रेजी मान से होगा १३ वर्ष ७ दिन अर्थात् चौदहवें वर्ष का सातवाँ दिन। **वेदाङ्गज्योतिष** चान्द्रमान के अनुसार तेरह वर्ष ५ महीने १२ दिन होंगे। यही भीष्मजी की व्यवस्था है। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि महाभारत-युद्धकाल में सिद्धान्तज्योतिष के अनुसार ही पञ्चाङ्गगणना होती थी, क्योंकि ऊपर की गणना सिद्धान्तज्योतिषगणना के पञ्चाङ्ग द्वारा ही की गयी है। चान्द्र, सावन और सौर भेद से तीन प्रकार के मास होते हैं। संवत्सर भी चान्द्र, सावन और सौर भेद से तीन प्रकार के होते हैं।

पहला चैत्र शुक्ला प्रतिपद् से आरम्भ होकर फाल्गुन दर्शान्त होता है, मेष राशि से मीन राश्यन्त सौर संवत्सर होता है एवं तीन सौ साठ अहोरात्र का सावन संवत्सर होता है। चन्द्रकलाओं की वृद्धि और ह्रास के अनुसार प्रतिपदादि ३६० तिथियों का चान्द्र संवत्सर होता है तथा द्वादश राशियों में सूर्य-संक्रमण से निष्पन्न सौर संवत्सर होता है।

सोमयाग में प्रातःसवन, मध्याह्नसवन और सायंसवन रूप से तीन सवन अहोरात्रसाध्य होते हैं, अतः सवनत्रय अहोरात्रसंपाद्य होने के कारण अहोरात्र ही सावन शब्द से कहे जाते हैं। तीन सौ साठ अहोरात्रों से सम्पन्न संवत्सर ही सावन संवत्सर कहा जाता है। गोसत्र आदि यज्ञों में तथा लोकव्यवहार में भी सावन संवत्सर का ही उपयोग होता है। यही विष्णुधर्मोत्तरपुराण में कहा गया है—

"सत्राण्युपास्यान्यथ सावनेन
लोक्यञ्च यत्स्यात् व्यवहारकर्म।"

श्रुति में गवामयन सत्र का संवत्सर नाम से व्यवहार होता है। अतः संवत्सरकाल उसका अङ्ग है।

"गोसत्रं वै संवत्सरो य एवं विद्वांसः
संवत्सरमुपयन्त्यृध्नुवन्त्येव।" (तै० सं० ७।५।१।१)

अतः उस सत्र में सावन ही संवत्सर ग्राह्य है, सौर और चान्द्र नहीं। एक अहोरात्र साध्य सोमयाग वेदों में अहःशब्द से व्यवहृत होता है। ऐसे अहर्विशेषों का गण एक षडह कहा जाता है। षडह अभिप्लव और पृष्ठ्य भेद से दो प्रकार का होता है। चार अभिप्लव षडह एवं एक पृष्ठ्य षडह इन पाँच षडहों से एक मास बनता है। तादृश द्वादश मासों से सावन संवत्सर बनता है। चान्द्र संवत्सर में छः अहोरात्र कम होते हैं। सौर में सपाद पाँच अहोरात्र अधिक होते हैं।

"संवत्सरे संवत्सरे यजेत" इस श्रुति में चान्द्र संवत्सर ही ग्राह्य है, क्योंकि 'सर्वान्लोकान् पशुबन्धयाजी अभिजयति तेन यक्ष्यमाणोऽमावस्यायां वा' इस तरह कल्पसूत्रकारों ने चान्द्र तिथि में ही उसका अनुष्ठान विहित किया है। सौर संवत् सुजन्मप्राप्ति व्रतों में उपयुक्त होता है। **विष्णुधर्मोत्तर** में वैसा व्रत विहित है।

अतः भारतीय विद्वानों ने नक्षत्र-मण्डल के बारह विभाग कर १२ राशि और सात वासरों का ज्ञान यूनान से सीखा है, यह पाश्चात्यों का कथन सर्वथा निराधार है। क्योंकि वासर-ज्ञान के बिना अहर्गण की गणना ही नहीं हो सकती। सिद्धान्तज्योतिषगणना अहर्गण द्वारा मध्यम सूर्य, चन्द्रादि ग्रहों में मन्दोच्च शीघ्रोच्च संस्कार देकर ही सम्पादित होती है।

"एको अश्वो वहति सप्तनामा।" (ऋ० सं० १।१६४।२)

इस मन्त्र से सप्तवासरों का प्रमाण मिलता है—

"अमा सोमे तथा भौमे गुरुवारे यदा भवेत्।
तत्पर्वं पुष्करं नाम सूर्यपर्वशताधिकम्॥"

हेमाद्रि-दानखण्ड तृतीय प्रकरण में उद्धृत महाभारतवचन। अर्थात् सोम, भौम तथा गुरुवार को अमावास्या होने पर पुष्कर पर्व होता है और वह सौ सूर्य पर्वों से भी अधिक पुण्य काल है।

इसी तरह अयन (कर्क और मकर), विषुव (मेष और तुला), षड़शीतिमुख (मिथुन, कन्या, धनु और मीन) तथा पर्व अर्थात् विष्णुपद (वृषभ, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ) नामों से संक्रान्तियों का वर्णन **महाभारत** में विद्यमान है—

"ऋतुषु दशगुणं वदन्ति दत्तं शतगुणमृत्वयनादिषु ध्रुवम्।
भवति सहस्रगुणं दिनस्य राहोर्विषुवति चाक्षयमश्नुते फलम् ॥"(म०भा० ३।२००।२६)

"अयने विषुवे चैव षडशीतिमुखे ध्रुवम्।
चन्द्रसूर्योपरागे च दत्तमक्षयमुच्यते ॥" (म० भा० ३।२००।२५)

इन वचनों में अयन, विषुव, षडशीतिमुख आदि उक्त राशियों के संकेत हैं। अतः वेदादि शास्त्रों के समान ही यह गणना भी अनादि ही है।

वृद्धवसिष्ठ ने संक्रान्तियों के उक्त नाम बतलाये हैं—

"अयने द्वे विषुवे द्वे चतस्रः षड़शीतयः।
चतस्रो विष्णुपद्यश्च संक्रान्त्यो द्वादश स्मृताः ॥"

पञ्चाङ्गों के तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण यह ज्योतिषपञ्चाङ्ग प्रसिद्ध ही है।

पञ्चाङ्गों के अनुसार आज से (ग्रन्थ निर्माण दिन से) २०२९ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् तथा ५०७३ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर संवत् एवं कलि सम्वत् का आरम्भ हुआ था। धृतराष्ट्र के दिवङ्गत होने के अनन्तर युधिष्ठिर के शासनकाल में ही **महाभारत** का निर्माण हुआ था। भारतीय साहित्यों के अनुसार तथा विविध लेखों के अनुसार भी **महाभारत-निर्माण** का काल यही था।

संवत् ९७७ **शिशुपालवध माघकाव्य** के टीकाकार वल्लभदेव ने **महाभारत** के श्लोकों की सवा लाख संख्या बतलायी है। वल्लभदेव के पुत्र चन्द्रादित्य थे तथा पौत्र कैय्यट थे। कैय्यट ने देवीशतक की विवृति में अपना समय कलि संवत् ४०७८ अर्थात् विक्रम १०३४ लिखा है (माघ का० २।३८)।

सपाद लक्ष संख्या **हरिवंश** सहित **महाभारत** की समझनी चाहिये।

संवत् ९३७ के राजशेखर ने अपनी **काव्यमीमांसा** में **भारतसंहिता** को शतसाहस्री (लक्षश्लोकोंवाली) कहा है। **गीता** की पुष्पिका में भी **महाभारत** को शतसाहस्रीसंहिता के रूप में स्मरण किया गया है। विक्रम नवमशती के आनन्दवर्धनाचार्य ने **ध्वन्यालोकवृत्ति** ३।१५ में **महाभारत** शान्तिपर्व अ० १५३ के गृध्रगोमायुसंवाद की चर्चा की है। वे अनुक्रमणिकाध्याय और **हरिवंश** को **महाभारत** का ही भाग मानते हैं।

"ननु महाभारते यावान् विवक्षाविषयः सोऽनुक्रमण्यां सर्व एवानुक्रान्तः....महाभारतावसाने हरिवंशवर्णनेन तेनैव कविवेधसा कृष्णद्वैपायनेन सम्यक् स्फुटीकृतः।" (ध्वन्यालोक चतुर्थ उद्योत)

सातवीं शती के आचार्य कवि दण्डी अपनी **अवन्तिसुन्दरी** में **महाभारत** एवं उसके निर्माता व्यासजी का स्मरण करते हैं—

"मर्त्ययन्त्रेषु चैतन्यं महाभारतविद्यया।
अर्पयामास तत्पूर्वं यस्तस्मै मुनये नमः ॥" (अवन्तिसुन्दरी)

जिसने मर्त्यरूपी यन्त्र में महाभारतविद्या से चैतन्य का सञ्चार किया था उन व्यास मुनि को नमस्कार है।

दण्डिपूर्वभावी बाणभट्ट अपनी कृति **कादम्बरी** तथा **हर्षचरित** में अनेक बार **महाभारत** और व्यास का उल्लेख करते हैं। यथा—

पार्थरथपताकेव वानराक्रान्ता, विराटनगरीव कीचकशतावृता। (पृ० ६०)
भीष्ममिव शिखण्डिशत्रुम्, पराशरमिव योजनगन्धानुसारिणम्। (पृ० १०७,१०८)
महाभारते शकुनिवधः। (पृ०१४३)
महाभारतपुराणरामायणानुरागिणा (पृ० १७९)
आस्तीकतनुरिवानन्दितभुजङ्गलोका। (पृ० १८२)
महाभारते दुःशासनापराधाकर्णनम्। (पृ० १९९, कादम्बरीपूर्वभागे)

एकाकी तपस्वी वनमृगैः सह संवर्धितः सहजब्राह्मणमार्दवसुकुमारमनाः कृतनिश्चयः समग्रमुद्यतमेकविंशतिकृत्वः कृत्तवंशमुत्खातवान् राजन्यकं रामः। (उच्छ्वास षष्ठ, पृ० २९१)

हिडम्बामुखचुम्बनास्वादितमिव रिपुरुधिरामृतमपायि पवनात्मजेन। (उच्छ्वास षष्ठ, पृ० २९२)

जामदग्न्येन क्षत्रियक्षतमहाह्रदेषु अस्नायि। (हर्षचरित उच्छ्वास षष्ठ, २९२)

"नमः सर्वविदे तस्मै व्यासाय कविवेधसे।
चक्रे पुण्यं सरस्वत्या यो वर्षमिव भारतम्॥
किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिनी।
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्॥"(श्रीहर्षचरिते उपोद्घाते ४ और १०)

उपर्युक्त वचनों में वानराक्रान्ता पार्थरथपताका को तथा कीचकों से आवृत विराटनगरी को उपमान के रूप में देखा है। शिखण्डिशत्रु भीष्म तथा योजनगन्धानुसारी पराशर को भी उपमान बनाया गया है। महाभारत के शकुनिवध, नागसमुदाय को आनन्दित करनेवाले आस्तीक मुनि, दुःशासन के अपराध, जामदग्न्य के इक्कीस वार क्षत्रोन्मूलन, हिडिम्बा, भीम तथा दुःशासन के रक्तपान, जामदग्न्य का क्षत्रियरक्तमहाह्रद में स्नान आदि का उल्लेख है। यह सब कथावस्तु महाभारत की ही है। श्लोकों में सर्वविद् व्यास एवं उनकी जगत्त्रय-व्यापिनी भारतीय कथा की चर्चा है।

काशिकाकार जयादित्य भी बाणभट्ट के समकालिक हैं—

"द्रोणपर्वतजीवन्तादन्यतरस्याम्।" (पा० सू० ४।१।१०३) में
"नैवात्र महाभारतद्रोणो गृह्यते" इस वाक्य द्वारा महाभारत की चर्चा करते हैं।

मेघदूत में कालिदास ने **रामायण** और **महाभारत** दोनों की चर्चा की है।

रामायण—

"जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु।
इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा।"

महाभारत—

"क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद् भजेथाः।"

जयादित्य से प्राचीन भट्टपाद कुमारिल व्यासजी एवं उनके श्लोक का स्मरण करते हैं—

"प्रसिद्धौ हि तथा चाह पाराशर्योऽत्र वस्तुनि।
इदं पुण्यमिदं पापम्............ ॥(श्लोकवार्तिक)

धर्मकीर्ति भी भारत की चर्चा करता है—

"भारतादिष्वपि इदानीन्तनानामशक्तावपि कस्यचित् शक्तिसिद्धेः। (प्र० वार्तिक ४४७, ४४८)

संवत् ६२७ से पूर्ववर्ती वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने **वाक्यपदीय** काण्ड १।१४२ में अश्वमेध पर्व का श्लोक उद्धृत किया है—"गौरिव प्रक्षरत्येका"।

वासवदत्ता में उद्धृत न्यायवार्तिककार उद्योतकरसूत्र ४।१।२१ वार्तिक में महाभारत वनपर्व के ३०।२८ वां श्लोक उद्धृत करते हैं—

"अज्ञो जन्तुरनीशोऽयमात्मनः सुखदुःखयोः।
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा॥"

योगभाष्य में योगभाष्यकार द्वारा १।४७ और २।४२ में **महाभारत** शान्तिपर्व १७।२०, १५१।११ तथा **महाभारत** शान्तिपर्व १७४।४६, २७७।५१, ७७।७ उद्धृत है।

"प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति॥"

महाराज सर्वनाथ के शिलालेख संवत् १९१-२१४ तक के मिल चुके हैं। पाश्चात्य-पद्धति के लोग इस संवत् को कलियुगी संवत् मानते हैं। सर्वनाथ के ताम्रलेख में भारत के १ लाख श्लोक माने गये हैं—

उक्तं च महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां परमर्षिणा पराशरसुतेन व्यासेन।
(गुप्तशिलालेख भाग ३ पृ० १३४)

शाबरभाष्य के लेखक शबरस्वामी इससे भी प्राचीन हैं। इन्होंने भी ८।१२ में **महाभारत** आदिपर्व १।४९ का श्लोक उद्धृत किया है—

"विस्तीर्य हि महज्जालमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम्॥"

इस उद्धरण के अनुसार **महाभारत** का अनुक्रमणीपर्व भी व्यासकृत है और महाभारत लक्षश्लोकात्मक है, यह सिद्ध होता है।

कामसूत्रकार वात्स्यायन ने १।४ में इस श्लोक को उद्धृत किया—

"धर्मकामार्थयुक्तानि शास्त्राणि विविधानि च।
लोकयात्राविधानं च सर्वं तद् दृष्टवानृषिः॥"

आचार्य गर्ग स्कन्दस्वामी के पूर्ववर्ती हैं। उन्होंने निरुक्तभाष्य ४।१ में आदिपर्व का यह वचन उद्धृत किया है—

"विस्तीर्य हि महज्ज्ञानमृषिः संक्षेपतोऽब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम्॥"

एष चाख्यानसमयः ७।७ पर दुर्गाचार्य कहते हैं। भारते आख्यानसमयः इसके आगे के आख्यानों का निर्देश करते हैं। पृथिवी स्त्रीरूप में ब्रह्मा से याञ्चा करती है (म० भा० १।६४)। अग्नि ने ब्राह्मणरूप में वासुदेव एवं अर्जुन से खाण्डव वन की याञ्चा की थी (म० भा० १।२२४–२२५)।

"व्यासः कणाद ऋषभः कपिलः शाक्यनायकः।
निर्वृते मम पश्चात्तु भविष्यन्त्येवमादयः॥
मयि निर्वृते वर्षशते व्यासो वै भारतस्तथा।
पाण्डवाः कौरवा राम पश्चान्मौर्यो भविष्यति॥
मौर्या नन्दाश्च गुप्ताश्च ततो म्लेच्छा नृपाधमाः।
म्लेच्छान्ते शस्त्रसंक्षोभः शस्त्रान्ते च कलिर्युगः॥"

लङ्कावतारसूत्र का चीनी अनुवाद सन् ५७ ई० में हुआ है। उक्त श्लोक **लङ्कावतारसूत्र** के हैं। इसमें व्यास और भारत का नाम है। वररुचिकृत वाररुच **निरुक्तसमुच्चय** मिलता है।

उसमें "बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।"

'इति व्यासवचनम्' कहा गया है। इससे महाभारत व्यासकृत सिद्ध होता है। वररुचि विक्रमादित्य का पुरोहित था। अतः विक्रम १ शती का था। **पैशाची बृहत्कथा** के लेखक गुणाढ्य के अनुसार उसके समय में **महाभारत** विद्यमान था। अतएव उसके अनुवादभूत **कथासरित्सागर** में रुरु मुनि की कथा १४।७६ आदिपर्व अध्याय ८ में मिलती है। सुन्दोपसुन्द कथा ५।१३५ आदि २।१ में मिलती है। कुन्ती दुर्वासा १६।३६ आ० प० ११३।३२ में, पाण्डुमुनिवध-कथा २१–२० आदिपर्व १०८ में तथा शकुन्तला ३२।१०८ आदिपर्व ६२ में मिलती है।

अश्वघोष के **बुद्धचरित** १।४७ में नष्ट वेद का सारस्वत द्वारा उपदेश का वर्णन है। वह **महाभारत** शल्यपर्व अध्याय ५१ में ही है।

आद्य कालिदास ही रघुवंश, कुमारसम्भव, अभिज्ञानशाकुन्तल आदि के प्रणेता हैं। 'यतो हि रसविशेषदीक्षागुरोः श्रीविक्रमादित्यसाहसाङ्कस्याभिरूपपण्डितभूयिष्ठेयं परिषद्' इस अभिज्ञानशाकुन्तल के वचन से विक्रमादित्य के स्पष्ट सङ्केत तथा विक्रमोर्वशीयम् एवं मालविकाग्निमित्रम् आदि ग्रन्थों से विक्रमादित्य, अग्निमित्र, शूद्रक आदि से उनका विशेष सम्बन्ध निश्चित होता है। कालिदास विक्रमादित्य की सभा के रत्न थे यह प्रसिद्धि ठीक ही है।

मृच्छकटिक में शूद्रक अपने को द्विज मुख्यतम कहते हैं। वे अपने को कवि, महासत्त्व, **ऋग्वेद**, **सामवेद**, गणितकला, हस्तिशिक्षा आदि में निष्णात, शिवजी के प्रसाद से सर्वज्ञानलब्धा, अश्वमेधयाजी, साग्रशतसंवत्सरजीवी, प्रमादशून्य, वेदविदां ककुद्, तपोधन तथा समरव्यसनी भी कहते हैं—

"ऋग्वेदं सामवेदं गणितमथ कलां वैशिकीं हस्तिशिक्षां
ज्ञात्वा शर्वप्रसादाद् व्यपगततिमिरे चक्षुषी चोपलभ्य।
राजानं वीक्ष्य पुत्रं परमसमुदयेनाश्वमेधेन चेष्ट्वा
लब्ध्वा चायुः शताब्दं दशदिनसहितं शूद्रकोऽग्निं प्रविष्टः॥" (मृच्छकटिक १।४)

उपर्युक्त श्लोकों में यह भी उल्लेख है कि शूद्रक अन्त में अग्नि में प्रविष्ट हो गया था। यहाँ यह शङ्का होती है कि स्वयं शूद्रक अपने भावी अग्निप्रवेश की 'अग्निं प्रविष्टः' अतीतरूप से कैसे लिख सकता है। अतः ये श्लोक शूद्रकरचित न होकर किसी अन्य के ही होने चाहिये। परन्तु यह शङ्का निरर्थक ही है, क्योंकि शूद्रक शिवजी

का गण था। शिवप्रसाद से ही जैसे उसने अन्य चमत्कारपूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त की थीं वैसे ही भावी अग्निप्रवेश का भी ज्ञान एवं उल्लेख उसके द्वारा सम्भव है। भावी वृत्तान्त का निर्देश भी सौकर्य-द्योतन के लिए परोक्ष अतीत रूप से किया जाता है। तभी तो **'व्यातेने किरणावलीमुदयनः'** प्रयोग हुआ है। किरणावलीकार ग्रन्थ के आरम्भ में ही कहते हैं—'व्यातेने किरणावलीम्' **किरणावली** का निर्माण मेरे लिए इतना सुकर है कि समझ लेना चाहिये कि उदयन ने **किरणावली** का निर्माण किया और इतने अनायास से किया कि उसको भी नहीं ज्ञात हुआ। कवि दण्डी भी शूद्रक का वैसा ही स्मरण करते हैं। वे **हर्षचरित** के टीकाकार रङ्गनाथ अग्निमित्र को ही शूद्रक मानते हैं। वही समरों में आदित्यवत् प्रकाशमान होने में विक्रमादित्य की संज्ञा को प्राप्त हुए थे। उनकी ऐतिहासिकता में उनका प्रचलित विक्रमीय संवत् ही परम प्रमाण है। वह युधिष्ठिरसंवत्, कलिसंवत्, बुद्धसंवत्, वीरसंवत् आदि सबसे अधिक प्रसिद्ध है। विशेषतः आसेतु हिमाचल वैदिक सम्प्रदाय तथा पञ्चाङ्गों में उसी का सर्वाधिक प्राधान्य है।

कहा जाता है कि जो पर्याप्त सुवर्णदान के द्वारा भूतल में सभी का ऋण उतार देता है। वही संवत्सर की स्थापना कर सकता है। वीर विक्रमादित्य के सम्बन्ध में जैनसम्प्रदाय में ऐसी ही प्रसिद्धि है। **प्रभावकचरित्र** नामक ग्रन्थ में निम्नोक्त श्लोक मिलते हैं—

"शकानां वंशमुच्छेद्य कालेन कियतापि हि।
राजा श्रीविक्रमादित्यः सार्वभौमोपमोऽभवत्॥
स चोन्नतमहासिद्धिसौवर्णपुरुषोदयात्।
मेदिनीमनृणां कृत्वाऽचीकरद् वत्सरं निजम्॥"

अर्थात् कुछ ही काल में शकों का वंशोच्छेद कर राजा विक्रमादित्य सार्वभौम तुल्य हो गये थे। उनकी महासिद्धि से सौवर्ण पुरुष का उदय होने से सम्पूर्ण मेदिनी को अनृण कर के उन्होंने अपना संवत्सर चलाया था। फिर भी कुछ लोगों का आक्षेप है कि यह संवत् अपनी प्रारम्भ की शताब्दियों में विक्रम के नाम से सम्बद्ध नहीं था। उस समय के ज्योतिषियों ने अपने ग्रन्थों में शक संवत्सर का ही प्रयोग किया है, विक्रम संवत् का नहीं। साथ ही राजस्थान आदि तत्समीपवर्ती प्रान्तों में प्राप्त लेखों में कृत नाम से इस संवत् का उल्लेख है।

उदयपुर में नन्दसायूपाभिलेख में कृत संवत् २८२ तथा चैत्र पूर्णिमा तिथि का उल्लेख है—

"कृतयोर्द्वयोर्वर्षशतयोः द्व्यशीत्योः चैत्रपूर्णमास्याम्।"

राजस्थान के कोटाराज्य में उपलब्ध वडवायूपाभिलेख में कृत संवत् २९५ का उल्लेख है। मालव में उपलब्ध दशपूर (मंदसौर) के अभिलेख में कृत संवत् और मालव संवत् —"श्रीमालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञके।" कुमारगुप्त के दशपुराभिलेख में मालवगण संवत् दिया है—

"मालवगणस्थितिवशात् कालज्ञानाय लिखितेषु।"

कोटाराज्य में उपलब्ध किसी शिवगणाभिधेय ने कनस्वामिलेख में मालवेश से संवत् का उल्लेख किया है—'संवत्सरशतैर्याते''''मालवेशानाम्।" चण्डमहासेन के धौलपुर के अभिलेख में ८९८ विक्रम संवत् का उल्लेख है—"वसुनवाष्टौ वर्षगतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य।"

विदग्धराज के बीजापूरीय लेख में ९७३ विक्रमकाल का उल्लेख है—"विक्रमकाले गते।" बोधगया के लेख में विक्रम संवत् १००५ का उल्लेख है। उदयपुर के राज्य में नरवाहन नामक एकलिङ्ग के अभिलेख में विक्रमादित्य संवत् १०२८ का उल्लेख है—

"विक्रमादित्यभभतः अष्टाविंशतियक्ते शते दशगुणे सति।"

सिरोहि पूर्णपाल के वसन्तगढ़ीय लेख में १०९९ विक्रम संवत् का उल्लेख है—"नवनवतिरिहासीद् विक्रमादित्यकाले।" विद्वानों का मत है कि कृत, मालवा तथा विक्रम नाम से प्रख्यात संवत् एक ही है।

यहाँ प्रश्न होता है कि यदि विक्रम ही इस संवत् के स्थापक हैं तो पहले ही से इनके नाम से इसकी प्रख्याति क्यों नहीं हुई? पहले कृत नाम से, फिर मालव नाम से और फिर विक्रम नाम से प्रख्याति क्यों हुई? इसका समाधान यह हो सकता है कि विक्रमादित्य मालवगण के प्रमुख थे, निरङ्कुश राजा नहीं थे। अतः उन्होंने मालव संवत् की ही स्थापना की होगी। अपने नाम से ही संवत् स्थापन करने में गणभेद की सम्भावना हो सकती थी। मालवगण के द्वारा बर्बर शकों के पराजित होने पर शान्तियुग का समय आया होगा। जनता में शान्ति और समृद्धि का युग होने के कारण उसे पहले कृत नाम से कहा जाने लगा, परन्तु विक्रम राज्यारोहण से १३५ वर्ष बाद शक फिर से विजयी हो गये थे जैसा कि 'प्रभावकचरित' में उल्लेख है—

'ततो वर्षशते पञ्चत्रिंशता साधिके पुनः तस्य राज्ञोऽन्वयं हत्वा वत्सरः स्थापितः शकैः।"

परन्तु मालवगण का विजयी शकों से सङ्घर्ष बना ही था। फिर भी मालवगण जीवित था। तब कृत काल तो स्वप्नप्राय ही हो गया, अतः अब मालवगण नाम से वही संवत्सर चलने लगा।

चौथी शती पूर्वार्ध में गुप्तसाम्राज्य के वृद्धिगत होने पर भी मालवशक्ति विद्यमान थी ही। सम्राट् समुद्र गुप्त ने मालवगण को पराजित करके छोड़ दिया था। इसी लिए समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में गणतन्त्र-नामावली में मालव का प्रथम नाम है।

"मालवार्जुनायनयौधेयभाद्रकाभीरप्रार्जुनसनकानीककाकखर्परिकादिगणानुन्मूल्य साम्राज्यसीमा विस्तारिता पश्चात् महत्त्वमाकाङ्क्षमाणेन द्वितीयचन्द्रगुप्तेन।" पश्चात् द्वितीय चन्द्रगुप्त ने पूर्वोक्त गणों का उन्मूलन करके अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ायी थी।

गुप्त राजाओं ने भी गुप्तसंवत् चलया था, परन्तु विक्रमादित्य की न्यायप्रियता का प्रभाव जनमानस में बद्धमूल था। अतः गुप्तशासनकाल में भी प्रजा ने विक्रमसंवत्सर का ही आदर किया था। अतः महान् सम्राट् कुमार-गुप्त ने अपने अभिलेख में मालव-संवत्सर का ही उल्लेख किया। फलतः गुप्तसाम्राज्य समाप्त होने पर मालवीय प्रजा फलतः विक्रम संवत् को ही दृढ़ता से ग्रहण करती रही। आठवीं शती में भारत में निरङ्कुश राजतन्त्र की स्थापना हुई। गणतन्त्र की भावना जनमानस से लुप्त हो गयी तब लोकप्रिय प्रभविष्णु विक्रमादित्य सम्राट् के नाम से वही संवत्सर प्रसिद्ध हो गया।

प्रारम्भिक शताब्दियों में विक्रम संवत् जैसे विक्रम नाम से प्रख्यात नहीं हुआ, वैसे ही शक-संवत् भी स्वस्थापना से ५०० वर्ष बाद शकनाम से प्रचलित हुआ। सन् संवत् भी स्वप्रचलन से पाँच छः सौ वर्ष बाद ईसा के नाम से सम्बद्ध हुआ था। गुप्त संवत् २२१ वर्ष तक गुप्त नाम से निर्दिष्ट नहीं होता था।

हाल प्रतिष्ठान के राजा (सातवाहन) प्रथम शती में विद्यमान थे। उन्होंने गाथा-सप्तशती में विक्रमा-दित्य का उल्लेख किया है। "संवाहण सुहरसतो सियेण देन्तेण तुह करे लक्खख्य चललेण विक्कमा इव चरियम् अणु सिक्खियम् तिस्सा।" टीकाकार गदाधर के अनुसार "विक्रमादित्योऽपि भृत्यकृत्येन तुष्टः सन् भृत्यस्य करे लक्षं ददाति स्म।"

अर्थात् विक्रमादित्य भृत्य के कार्य से तुष्ट होकर उसके हाथ में लक्ष मुद्रा देते थे। बृहत्कथा के अनुसार भी विक्रमादित्य ईसवीय सन् से पहले के ही हैं। गुणाढ्य ने पिशाची भाषा में बृहत्कथा लिखी थी। गुणाढ्य सात-वाहन को सभा के अलङ्कार थे। अतः सातवाहन के समकालीन ही थे। बृहत्कथा का अनुवाद काश्मीरपरम्परा में ११वीं शती के क्षेमेन्द्र ने बृहत्कथामञ्जरी के नाम से किया था।

दूसरा अनुवाद सोमदेव ने **कथासरित्सागर** नाम से किया है। क्षेमेन्द्र ने यद्यपि लम्बकों के पौर्वापर्य में कुछ स्वातन्त्र्य का भी अवलम्बन किया था, किन्तु सोमदेव तो कहते हैं—मैं यथामूल ही लिख रहा हूँ। इसमें किञ्चित् भी मूल का अतिक्रम नहीं है—

"यथा मूलं तथैवैतत् न मनागप्यतिक्रमः।"

नेपालपरम्परा में आठवीं शती से भी पूर्व बुद्धस्वामी ने **श्लोकसंग्रह** नाम से बृहत्कथा का अनुवाद किया था। उस बृहत्कथा में कहा गया है कि भगवान् शिव का माल्यवान् नामक गण ही उनके आज्ञानुसार विक्रमादित्य के रूप में आया था। ऋषि सर्वज्ञकल्प होते हैं, अतः विक्रम से कई सौ वर्ष पूर्व नरवाहनदत्त को कण्व द्वारा विक्रम की कथा सुनाना असम्भव नहीं है।

जैन मेरुतुङ्गाचार्य ने अपने **विचारश्रेणी** नामक प्राकृत ग्रन्थ में विशाला (उज्जयिनी) के इतिहास का वर्णन करते हुए कहा है कि महावीरनिर्वाण ईसवी सन् प्रारम्भ से ५२७ वर्ष पूर्व हुआ था। महावीरनिर्वाण के ४७० वर्षों के पश्चात् शकों का उन्मूलनकर मालव के राजा विक्रमादित्य उदित होंगे—

"कालान्तरेण केण वि उप्पाडिता सगाणतं वंशं हो हि।
मालव राया नामेण विक्कमा इच्चो॥"

ज्योतिर्विदों की परम्परा में भी संवत्सरकर्त्ता के रूप से विक्रमादित्य का स्मरण होता है—

"युधिष्ठिरो विक्रमशालिवाहनौ नराधिनाथो विजयाभिनन्दनः।
इमे तु नागार्जुनमेदिनीविभुर्बली क्रमात् षट् शककारकाः कलौ॥"

संवत् १६९९ की लिखित अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रति में निम्न वाक्य है—

"आर्ये, रसभावविशेषदीक्षागुरोः श्रीविक्रमादित्यसाहसाङ्कस्य अभिरूपपण्डितभूयिष्ठेयं परिषद्। अस्यां च कालिदासप्रयुक्तेन अभिज्ञानशाकुन्तलनाम्ना नवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः।"

इसमें स्पष्ट ही विक्रमादित्य की पण्डितभूयिष्ठा परिषद् में कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तल के अभिनय की बात कही गयी है। कालिदास के ज्योतिर्विदाभरण में उसके निर्माण का काल कलि संवत् ३०६८ वैशाख कहा गया है—

"वर्षैः सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणैर्याते कलौ सम्मिते।
मासे माधवसंज्ञिते च विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः॥"

यह कलि का ५०७३ व्यतीत संवत् है और विक्रमराज्य से २०२९ गताब्द हैं। इस तरह विक्रमादित्य के सिंहासनारोहण से २४ वर्ष बाद २५वें वर्ष के वैशाख में इस ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ हुई है।

"काव्यत्रयं सुमतिकृद्रघुवंशपूर्वं पूर्वं ततः कियदहो श्रुतिकर्मवादः।
ज्योतिर्विदाभरणकालविधानशास्त्रं श्रीकालिदासकवितो द्विजतो बभूव॥"

इस श्लोक से स्पष्ट है कि कालिदास की कृतियों में रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत काव्यत्रय तथा कोई मीमांसाग्रन्थ श्रुतिकर्मवाद एवं ज्योतिर्विदाभरण प्रधान ग्रन्थ हैं।

कालिदास ने विक्रमादित्य के सभासदों की गणना भी वहीं बतायी है—

"शङ्कुः सुवाग् वररुचिर्मणिरङ्गुदत्तो जिष्णुस्त्रिलोचनहरी घटखर्पराख्यः।
अन्येऽपि सन्ति कवयोऽमरसिंहपूर्वा यस्यैव विक्रमनृपस्य सभासदोऽमी॥"

उसी ग्रन्थ में विक्रमसभा के नवरत्नों की भी गणना है—

"धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥"

उपर्युक्त वचनों में धन्वन्तरि १, क्षपणक २, अमरसिंह ३, शङ्कु ४, वेतालभट्ट ५, घटखर्पर ६, कालिदास ७, वराहमिहिर ८ वररुचि ९ ये विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्न हैं। पहले श्लोक में मणि, अङ्गुदत्त, विष्णु, त्रिलोचन और हरि अन्य विद्वानों के नाम हैं। ११७३ के महाराज लक्ष्मणसेन के सभापण्डित कवि धोयी ने जिनकी चर्चा जयदेव ने धोयीकविक्ष्मापतिः कहकर की है, अपने को वररुचि के तुल्य प्रशंसित बतलाते हुए वररुचि की चर्चा की है—

"ख्यातो यश्च श्रुतधरतया विक्रमादित्यगोष्ठी-
विद्याभर्तुः खलु वररुचेराससाद प्रतिष्ठाम् ॥"

कथासरित्सागर में वररुचि को सकृच्छ्रुतधर कहा गया है। जिनप्रभसूरि विरचित **विविधतीर्थकल्प** ग्रन्थ की अनुश्रुति के अनुसार सिद्धसेन दिवाकर के आज्ञानुसार वररुचि ने विक्रमादित्य की शासनपट्टिका (जिसमें विक्रमादित्य के शासन सिद्धान्त का निर्देश है) विक्रम प्रथम संवत् के चैत्रशुक्ल प्रतिपदा तिथि में लिखी है। जिनप्रभ ने स्वयं उसे देखा था। कात्यायन ही वररुचि हैं। वे स्वयं **पत्रकौमुदी** ग्रन्थ में लिखते हैं—

"विक्रमादित्यभूपस्य कीर्तिसिद्धेर्निदेशतः।
श्रीमान् वररुचिर्धीमान् तनोति पत्रकौमुदीम् ॥"

विक्रमसभा के नवरत्नों में ८वें वराहमिहिर हैं।

प्रसिद्ध **पञ्चतन्त्र** नीति ग्रन्थ का पारसी भाषा में अनुवाद ईसा की पाँचवीं शती में हुआ है, यह निर्विवाद है। उस **पञ्चतन्त्र** में मित्रभेद-प्रसङ्ग में वराहमिहिर का नाम ग्रहणपूर्वक उनके चार श्लोक उद्धृत हैं।

"रोहिणीशकटमर्कनन्दनश्चेद् भिनत्ति रुधिरोऽथवा शशी।
किं वदामि तदनिष्टसागरे सर्वलोक उपयाति संक्षयम् ॥" इत्यादि।

ग्रन्थ खण्डखाद्य की आमराजकृत टीका में लिखा है—

"नवाधिकपञ्चशतसंख्याके शके वराहमिहिरो दिवं गतः।"

अर्थात् ५०९ शक संवत्सर में वराहमिहिर स्वर्ग चले गये। यदि इस वाक्य के शक का अर्थ प्रचलित शक संवत्सर गृहीत है तब तो ५८७ ईसवीय वर्ष में उनकी मृत्यु मानना होगा। ऐसी स्थिति में ईसा की पाँचवी शती में पारसी भाषा में अनूदित **पञ्चतन्त्र** में वराहमिहिर का नाम कैसे आ सकता था। **मूल पञ्चतन्त्र** जिसका पाँचवीं ईसवी में पारसी भाषा में अनुवाद हुआ था और भी प्राचीन सिद्ध होता है। फिर उसमें ईसा की छठी शती में मृत वराहमिहिर का नाम कैसे आ सकता है? अतः यही विदित होता है कि वर्तमान शक संवत्सर से भिन्न कोई शक संवत्सर ईसा से पूर्व ही प्रचलित था। शक शब्द से संवत्सर ही गृहीत है। शकविशेष नहीं। उसी का उल्लेख **खण्डखाद्य** की टीका में किया गया है। वराहमिहिर ने भी अपने **बृहत्संहिता** ग्रन्थ में उसका उल्लेख किया है।

"आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥" (बृ० सं० १३।३)

अर्थात् प्रस्तुत महाराज युधिष्ठिर का समय क्या है? इस जिज्ञासा का उत्तर देते हुए वराहमिहिर ने कहा था कि शककाल में २५२६ संख्या जोड़ देने से युधिष्ठिर का काल निकल आता है। २०२९ विक्रम संवत्सर बीतने

पर युधिष्ठिर शक या कलिगत संवत् ५०७३ होता है। इस समय से २५४७ वर्ष पूर्व विक्रम संवत्सर आरम्भ से ५१८ वर्ष पूर्व ईसवीय सन् से ५७५ वर्ष पूर्व किसी शक संवत्सर की प्रवृत्ति वराहमिहिराचार्य को मान्य है। इस दृष्टि से स्पष्ट हो जाता है कि वराहमिहिर की स्थिति का काल ईसा की पाँचवीं या छठी शती नहीं है। किन्तु ईसा के जन्म से पूर्व विक्रम एवं कालिदास की स्थिति का काल ही उनकी स्थिति का काल है। उसी काल का संकेत खाद्यखण्ड टीका में है। उस शक संवत्सर के अनुसार ४०९ में वराहमिहिर स्वर्गवासी हुए थे।

युधिष्ठिरशासन के समय सप्तर्षि मघा पर थे। इसका समर्थक वृद्धगर्ग का भी वचन है, जिसका उद्धरण भट्टोत्पल ने बृहत्संहिता की टीका में किया है—

"कलिद्वापरसन्धौ तु स्थितास्ते पितृदेवतम्।
मुनयो धर्मनिरताः प्रजानां पालने रताः॥
एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम्।" बृहत्संहिता १३।४)

इस वचन से एक-एक नक्षत्र पर सप्तर्षियों की स्थिति सौ-सौ वर्ष रहती है। श्रीमद्भागवत में भी इसी का समर्थन है—

"ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः।" (भाग० १२।२।२८)

हे राजन् परीक्षित्, तुम्हारे जन्म के समय और अब मृत्यु के समय भी सप्तर्षि मघा पर ही हैं। राजा सुधन्वा के दानपत्र से (संस्कृतचन्द्रिका खण्ड १-३) तथा राजा सर्वजित् वर्मा के दानपत्र से (संस्कृतचन्द्रिका खण्ड १४ संख्या २-२) और पञ्चाङ्गों की प्रचलित अविच्छिन्न परम्परा के अनुसार भी युधिष्ठिर संवत् और कलि संवत् का ऐक्य ही सिद्ध होता है।

पीछे कहा गया है कि ईसवी सन् से ५७५ वर्ष पूर्व कोई शक संवत्सर आरम्भ हुआ था उसमें २५२६ जोड़ने से ३१०१ होता है। वराहमिहिर और आमराज ने उसी संवत् की चर्चा की है। इस शक शब्द से बहुतों को प्रचलित शक संवत्सर का ही भ्रम हुआ है। कल्हण को भी उसी से भ्रम हुआ है। इस लिए उन्होंने ६५३ वर्ष काल घटाकर पाण्डवकाल घोषित किया था।

पञ्चसिद्धान्तिका में वराहमिहिर ने उसका निर्माण-काल निम्नोक्त कहा है—

"सप्ताश्विवेदसंख्यं शककालमपास्य चैत्रशुक्लादौ।
अर्धास्तमिते भानौ यवनपुरे सौम्यदिवसाद्यः॥"

अर्थात् शक काल में ४२७ घटाने पर चैत्र शुक्ल १ प्रतिपदा को बुधवासर था, भानु का अर्ध अस्तंगमन हो रहा था, भारत में अर्धोदय हो रहा था इस समय इसका निर्माण प्रारम्भ हुआ है। पं० सुधाकर द्विवेदी ने शक शब्द से शालिवाहन शक ग्रहण कर के देखा तो चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को बुधवार नहीं मिला तब उन्होंने सौम्य का अर्थ सोमवार ग्रहण किया है। इस तरह वराहमिहिर के शब्द का उन्हें परिवर्तन करना पड़ा।

परन्तु मद्रास के प्रसिद्ध गणितवेत्ता श्रीवेङ्कटाचार्य ने अपने 'दी एण्टी क्यूटी ऑफ हिन्दू एस्ट्रोनोमी एण्ड दी तामिल' ग्रन्थ में ईसवी सन् पूर्वभावी शक को ही शक शब्द से लेकर गणना करके यह घोषित किया है कि ४२७ वर्ष व्यवकलन करने (घटाने) पर अर्थात् ईसा सन् के प्रारम्भ से १२४ वर्ष पूर्व ३ मार्च बुधवार को शुक्लप्रतिपदा थी और उस समय यवनपुर में सूर्य का अर्धास्तगमन भी होता था।

अलबरूनी ने भी ३२७ शक काल में पञ्चसिद्धान्तिका का निर्माण माना है। परन्तु यह शक विक्रम संवत् के पूर्व का है। जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है।

८८७ प्रचलित शकाब्द के भट्टोत्पल ने वराहमिहिर के ग्रन्थों पर विवृत्ति लिखी है। उसमें उन्होंने किसी यवनेश्वर का मत लिखा है।

"यवनेश्वरेण स्फुजिध्वजेनान्यच्छास्त्रं कृतम्। तथा च स्फुजिध्वजः गतेन साम्यर्धशतेन युक्ताप्यङ्केन तेषां न गताब्दसंख्याकालः शकानां १०४४ संविशोध्य तस्मादतीतवर्षाद् युगवर्षं जातम्। एवं स्फुजिध्वजकृतं शककालस्यार्वाग् ज्ञायते॥"

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि स्फुजिध्वज का समय उन्होंने नहीं लिखा तथापि भट्टोत्पल से अति प्राचीन स्फुजिध्वज थे। उनके समय में किसी शक के १०४४ शकाब्द व्यतीत हुए थे। अतः ईसा के पूर्व कई शकाब्द थे। उनमें से ही एक वराहमिहिर द्वारा निर्दिष्ट काल है। जिसके अनुसार वराहमिहिर ने युधिष्ठिर की स्थिति बतायी है।

श्रीशङ्करबालकृष्ण दीक्षित ने रघुनाथ टेंभुकर द्वारा परम्पराप्राप्त एक श्लोक अपने (भारतीय ज्योतिष) ग्रन्थ पृष्ठ २९४ में उद्धृत किया है—

"स्वस्तिश्रीनृपसूर्यसूनुजशके याते द्विवेदाम्बर-
त्रैमानाब्दमिते त्वनेहिसि जये वर्षे वसन्तादिके।
चैत्रे श्वेतदले शुभे वसुतिथावादित्यदासादभूद्
वेदाङ्गे निपुणो वराहमिहिरो विप्रो रवेराशिषा॥"

अर्थात् सूर्यपुत्र धर्म उनके पुत्र राजा युधिष्ठिर संवत् ३०४२ वर्ष बीतने पर जय नाम संवत् के चैत्र शुक्ल ८मी को सूर्य के आशीर्वाद से आदित्यदास नामक विप्र से वेदवेदाङ्गनिपुण वराहमिहिर उत्पन्न हुए। वराहमिहिर दीर्घायु थे अतएव ईसवी सन् प्रारम्भ से १४८ वर्ष पूर्व उन्होंने पञ्चसिद्धान्तिका लिखी। बीच में अन्य अनेक ग्रन्थ लिखे। वे ई० ५७ पूर्व विक्रमादित्य सिंहासनारोहण के पश्चात् उनकी सभा के रत्नरूप में थे। आज भी रूस आदि देशों में १५०, २०० वर्ष की आयुवाले लोग मिलते हैं। वराहमिहिर की स्थिति दीर्घकाल तक रही हो, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

पुष्यमित्र के पुरोहित पतञ्जलि महाभाष्य में किसी प्राचीन नाटक का श्लोक उद्धृत करते हैं—

"यस्मिन् दशसहस्राणि पुत्रे जाते गवां ददौ।
ब्राह्मणेभ्यः प्रियाख्येभ्यः सोऽयमुञ्छेन जीवति॥"

यह श्लोक

"यस्मिञ्जाते ददौ द्रोणो गवां दशशतं धनम्।
ब्राह्मणेभ्यो महार्हभ्यः सोऽश्वत्थामैष गर्जति॥"

द्रोणपर्व १९६।२९ वें श्लोक से मिलता है।

३।३।१६७ पा० सू० में 'कालः पचति भूतानि' श्लोक उद्धृत है, जो महाभारत आदि पर्व १।२४८ में है—

"कालः पचति भूतानि कालः संहरति प्रजाः।"

चरक संहिता का तीसरा अध्याय दृढ़बल से पूर्व का है। यह पतञ्जलि से भी पहले का है, इसमें विष्णुसहस्रनाम के पाठ का विधान है।

"विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम्।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति॥४१२॥

चक्रपाणि आदि टीकाकारों ने लिखा है यह सहस्रनाम भारत में है। विष्णुसहस्रनाम में 'रामो विरामो विरतः' राम का नाम आता है। फलतः राम और रामायण आदि प्राचीन हैं। विष्णुगुप्त (कौटिल्य) के अर्थशास्त्र में महाभारत की छायावाले श्लोक हैं—

"एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥" (उद्योग पर्व ३३।४२)

"एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुः क्षिप्तो धनुष्मता।
प्राज्ञेन तु मतिः क्षिप्ता हन्याद् गर्भगतानपि ॥३२४॥" (अर्थशास्त्र १०।६)

पाणिनि इनसे पूर्व के हैं। वे सूत्र ६।२।३८ में महाभारत शब्दसिद्धि लिखते हैं। 'महान्व्रीहि-अपराह्ण-गृष्टि-इष्वास....भार-भारत....रौरव प्रवृद्धेषु' सूत्र में महाभारत के महान् शब्द में प्रकृतिस्वर का विधान किया गया है। उसमें 'विष्वक्सेनार्जुनौ' २।२।३१, 'सात्यकि' २।४।५९, 'भीमभीष्म' ३।४।७४, 'जरत्कारु' ४।१।११२, 'गाण्डीव' २।४।३१, 'श्वाफल्कि' २।४।६२, 'रुक्मिणी' ४।१।१२३ आदि शब्दों की सिद्धि पाणिनि ने की है। इन सबका महाभारत से विशेष सम्बन्ध है।

आश्वलायनगृह्यसूत्र में भारत तथा महाभारत दो नाम मिलते हैं ३।३।५। ये शौनक शिष्य थे। शौनक महाभारतयुद्ध से ३०० वर्ष पश्चात् दीर्घ सत्र कर रहे थे। कौषीतकि गृ० सूत्र २।५।३ में महाभारत नाम पठित है। इससे निश्चित होता है कि कौरव और पाण्डवों के युद्ध के पश्चात् ३०० वर्ष के भीतर महाभारत नाम प्रख्यात था।

आन्ध्र और गुप्त काल के शिलालेखों में महाभारत काल के अनेक व्यक्तियों का स्मरण किया गया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय के पण्डित महाभारत के इतिहास में विश्वस्त थे।

वेबर आदि महाभारत में यवन शब्द का प्रयोग देखकर सिकन्दर के आगमन के बाद का महाभारत समझते हैं। पर यह भ्रान्ति है। क्योंकि यवन शब्द यूनानियों के अर्थ में प्रयुक्त नहीं, किन्तु मनु १०।४३,४४ से मालूम पड़ता है वे कभी आर्य ही थे। कालान्तर में यवन आदि बन गये। अतएव देवकीपुत्र कृष्ण ने कारुमान् यवन को मारा था। अतएव यवन शब्द के आधार पर अष्टाध्यायी और मनुस्मृति का कालनिर्णय करना सर्वथा असंगत है। महाभारत में अर्थशास्त्र या राजशास्त्र के अनेक आचार्यों की चर्चा है।

"बृहस्पतिर्हि भगवान् न्याय्यं धर्मं प्रशंसति।
विशालाक्षश्च भगवान् काव्यश्चैव महातपाः ॥
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च तथा प्राचेतसो मनुः।
भरद्वाजश्च भगवान् तथा गौरशिरा मुनिः ॥
राजशास्त्रप्रणेतारो ब्रह्मण्या ब्रह्मवादिनः।" (म० भा० शा० ५८)

इसी प्रकार महाभारत में वाल्मीकि के श्लोकों का भी उद्धरण है—

"श्लोकश्चायं पुरा गीतो भार्गवेण महात्मना।
आख्याते रामचरिते नृपतिं प्रति भारत ॥
राजानं प्रथमं विन्देत् ततो भार्यां ततो धनम्।
राजन्यसति लोकस्य कुतो भार्या कुतो धनम् ॥" ४१ (शा० ५७)

"प्राचेतसेन मुनिना श्लोकौ चेमावुदाहृतौ।
राजधर्मेषु राजेन्द्र तदिहैकमनाः शृणु ॥४३॥

षडेतान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ॥४४॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम् ।
ग्रामकामञ्च गोपालं वनकामञ्च नापितम् ॥४५॥ (शा० ५७)
"सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा ।
पीड़ाकरममित्राणां यत्स्यात् कर्तव्यमेव तत् ॥" (शा० १४३।६७,६८)

इस तरह महाभारत में प्राचीन विशिष्ट पुरुषों का वर्णन है । आधुनिक व्यक्तियों का उल्लेख नहीं है । अतः महाभारत की प्राचीनता सिद्ध है ।

भास कवि के बालचरित नाटक में कृष्ण की बालक्रीड़ाओं का वर्णन है । गोपियों का भी उल्लेख है । इससे निःसन्देह सिद्ध होता है कि भास से पहले ही महाभारत एवं हरिवंश की कथाएँ खूब प्रचलित थीं । भास के नाटकों के प्रकाशक गणपति शास्त्री ने स्वप्नवासवदत्त नाटक की भूमिका में लिखा है कि भास के नाटक का एक श्लोक कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उद्धृत है । इससे भास चाणक्य से भी प्राचीन सिद्ध होते हैं । कुछ जैनों के अनुसार महावीर स्वामी विक्रम संवत् से ४०७ वर्ष पूर्व के हैं । महावीर स्वामी ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र को मिथ्या शास्त्र कहा है । इससे कौटिल्य उनसे भी पूर्व के सिद्ध होते हैं ।

प्रो० वेबर ने सन् १८६० में जर्मनी देश में अश्वघोष-व्याख्या सहित वज्रसूचिकोपनिषद् प्रकाशित किया था । उस व्याख्या में 'सप्त व्याधा दशार्णेपु' श्लोक उद्धृत है । जो कि हरिवंश २४।२०,२१ शान्ति पर्व का है । अतः अश्वघोष के समय महाभारत एवं हरिवंश प्रख्यात थे ।

बौधायनगृह्यसूत्र में विष्णुसहस्रनामस्तव का उल्लेख है तथा गीता के 'पत्रं पुष्पं फलं तोयम्' इस श्लोक का उद्धरण है । इससे ईसवीय सन् से अति प्राचीन बौधायन से भी प्राचीन महाभारत सिद्ध होता है ।

इस तरह अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग सभी परीक्षाओं से लक्षश्लोकात्मक महाभारत पाँच हजार वर्ष प्राचीन सिद्ध होता है । ५०७३ वर्ष पूर्व कृष्ण का लीलासंवरण हुआ । वर्तमान कल्पारम्भ से अब तक १९७२९४९०७३ एवं सृष्ट्यारम्भ से अब तक १९५५८८५०७३ वर्ष व्यतीत हुए हैं । इतने समय में ६ मनु बीत गये । सप्तम वैवस्वत मनु के २७ महायुग व्यतीत हो गये । २८ वें महायुग के तीन युग बीत गये । चतुर्थ युग कलि के ५०७३ वर्ष बीत गये । यही युधिष्ठिर का संवत्सर है । विक्रमी प्रारम्भ से २०२९ तथा शकारम्भ से १८९४ वर्ष व्यतीत हुए हैं ।

"सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः ।" (पातञ्जल सू० २।४२) के

व्यासभाष्य में एक वचन उद्धृत है—

"यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥"

यह श्लोक महाभारत शा० प० १०४।१४६;१७७।५२ में मिलता है । धर्मराज युधिष्ठिर के प्रपौत्र महाराज जनमेजय का ताम्र शासनपत्र सबसे बड़ा प्रमाण है । उसकी प्रतिलिपि सन् १८७५ नवम्बर में मुद्रित इण्डियन एन्टिक्वेरी पुस्तक में निम्नरूप में है—

श्रीगणाधिपतये नमः ।

"पान्तु नो जलदश्यामाः शार्ङ्गज्याघातकर्कशाः ।
त्रैलोक्यमण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरिबाहवः ॥"

स्वस्ति श्रीजयाभ्युदये युधिष्ठिरशके प्लवङ्गाख्ये एकोननवतिसंवत्सरे सहस्य (पौष) मासे अमावस्यायां सौम्यवासरे श्रीमन्महाराजाधिराजपरमेश्वरो वीरप्रतापशाली कुरुकुलोद्भवो वैयाघ्रपाद-गोत्रजः श्रीजनमेजयभूपः किष्किन्धानगर्यां सिंहासनस्थः सकलवर्णाश्रमधर्मप्रतिपालकः पश्चिमदेशस्थ-सीतापुरकेदारक्षेत्रे तत्रत्यमुनिवृन्दमठस्य गरुड़वाहनतीर्थश्रीमद्शिष्यकैकयनाथैराराधितसीतारामस्य पूजार्थं कृतभूदानसाधनमस्मत्प्रपितामहयुधिष्ठिराधिष्ठितमुनिवृन्दक्षेत्रेऽस्मिन् चतुःसीमापरमितिक्रमः पूर्वभागे उत्तरवाहिन्याः तुङ्गभद्रायाः पश्चिमे दक्षिणभागे अगस्त्याश्रमसंगमादुत्तरे पश्चिमे पाषाणनद्याः पूर्वे उत्तरभागे भिन्ननद्या दक्षिणे एतन्मध्यस्थमुनिवृन्दक्षेत्रे भवच्छिष्यपरम्परया आचन्द्रार्कपर्यन्तं निधिनिक्षेप-जल-पाषाण-अक्षिणी आगामिसिद्धसाध्यतेजःस्वाम्यसहितं स्वबुद्ध्यनुकूलेन अस्मन्मातापित्रोः विष्णुलोकप्राप्त्यर्थं हरिहरसन्निधौ उपरागसमये सहिरण्येन तुङ्गभद्राजलधारापूर्वकं क्षेत्रं यतिहस्ते दत्तवानस्मि। एतद्धर्मसाधनस्य साक्षिणः आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च द्यौर्भूमिरापौ हृदयं यमश्च। अहश्च रात्रिश्च उभे च सन्ध्ये धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम् ॥ दानपालनयोर्मध्ये दानाच्छ्रेयोऽनुपालनम्। दानात्स्वर्गमवाप्नोति पालनादच्युतं पदम्। स्वदत्ताद् द्विगुणं पुण्यं परदत्तानुपालनम्। परदत्तापहारेण स्वदत्तं निष्फलं भवेत्। स्वदत्ता पुत्रिका ज्ञेया पितृदत्ता सहोदरा। अन्यदत्ता तु जननी दत्तभूमिं परित्यजेत्। अन्यैस्तु छर्दितं शूद्रैः श्वभिश्च छर्दितं ननु। ततः कष्टस्ततो नीचः स्वयं दत्तापहारकः। स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः। षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ इति ॥

उक्त ताम्रपत्र जनमेजय राजा का है। उसमें कृष्ण की वन्दना करके युधिष्ठिर शक प्लवङ्गम संवत् में नवासी वर्ष में सहस्य मास (पौष मास) अमावस्या सौम्य वासर के दिन वैयाघ्रपादगोत्रज कुरुकुलोद्भव राजा जनमेजय ने किष्किन्धा नगरी में सिंहासनस्थ होकर तुङ्गभद्रा अगस्त्याश्रम आदि अमुक अमुक तीर्थ सीमायुक्त हिरण्यसहित भूक्षेत्र का दान किया आदि आदि। इसमें जनमेजय द्वारा सीताराम की पूजा के लिए भूक्षेत्र का दान कहा गया है।

सुतरां सीताराम-पूजा ईसा से हजारों वर्ष पूर्व से प्रचलित सिद्ध होती है, अतः बुल्के का यह कहना निराधार ही है कि ई० पू० पहली या दूसरी शती में राम की पूजा होने लगी थी। कुछ लोग कहते हैं प्लवङ्गम संवत्सर सहित उक्त योग अब से पहले तेरहवीं शती में आया था, अतः वही महाभारत का समय है। परन्तु वाराणसेय राजकीय संस्कृत महाविद्यालयीय गणिताध्यापक वापूदेव शास्त्री ने उस मत का निराकरण कर के ताम्रशासन का काल ही निर्धारित किया है।

उपर्युक्त अनेक उद्धरणों, शिलालेखों एवं ताम्रलेखों से २०२९ वर्तमान विक्रमीय संवत्सर से ३०४४ वर्ष पूर्व ५०७३ कलि संवत्सर युधिष्ठिर संवत् सिद्ध है। धृतराष्ट्र के मरणोपरान्त युधिष्ठिर के राज्यकाल में **महाभारत** का निर्माण हो चुका था। **गीता** तो इससे भी पहले युद्धारम्भ के दिन ही प्रकट हुई थी। **महाभारत** तथा **गीता** में चर्चित राम एवं उनके समय का ही **रामायणग्रन्थ** अति प्राचीन सिद्ध होते हैं। तथा च पाश्चात्यों की यह कल्पना अत्यन्त असंगत है कि बुद्ध के पश्चात् ईसा से पूर्व तीसरी शती में **रामायण** का निर्माण हुआ है।

पुराणों के आधार पर भी रामायण एवं राम की अतिप्राचीनता सिद्ध होती है—

> "द्वापरस्य कलेश्चैव सन्धौ पर्यवसानिके।
> प्रादुर्भावः कंसहेतोर्मथुरायां भविष्यति ॥ (म० भा० शा० ३२९।८९)

द्वापर और कलि की सन्धि में कंसवधार्थ मथुरा में कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ है। इस वचन से कृष्ण का भी आविर्भाव काल वही सिद्ध होता है।

चालुक्यवंशीय महाराज पुलकेशिन द्वितीय के बीजापुर एहोल नामक पर्वतीय क्षेत्र में स्थित जैनमन्दिर में उत्कीर्ण शिलालेख से भी महाभारत-संग्राम का यही समय सिद्ध होता है। शिलालेख के श्लोक निम्नोक्त हैं—

"त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भरतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतीषु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥"

अर्थात् महाभारत युद्ध से ३७३५ वर्ष बीतने पर तथा कलि में शक राजाओं के ५५६ वर्ष बीतने पर यह शिलालेख उत्कीर्ण हुआ है। जो आज से १३५८ वर्ष पूर्वका है। ३७३५ में १३३८ मिला लेने पर ५०७३ वर्ष पर्व भारत-युद्ध का होना सिद्ध होता है। आश्चर्य है कि इस प्रकार समस्त प्राचीन भारतीय साहित्यकार, रामायण तथा महाभारत को वाल्मीकि और व्यासकृत मानते हैं किन्तु कुछ पाश्चात्य तथा उनके अनुयायी अपना हठ नहीं छोड़ते।

पुराणों की मान्यता

नवीं शताब्दी में मेधातिथि लिखते हैं 'पुराणानि व्यासादिप्रणीतानि'(३।२२२)। ६८७ के ऋग्भाष्यकार स्कन्दस्वामी पुराणों का उद्धरण करते हैं—१।२०।७ पुराणेषु प्रसिद्धम्, (१।२५।१३), पौराणिकाः कक्षीवन्तमङ्गिरसं स्मरन्ति (१।११६।७)। **सांख्यकारिका** २२ के भाष्य में गौडपादाचार्य पुराणों का उल्लेख करते हैं। दुर्गाचार्य वसिष्ठोत्पत्ति की कथा देकर कहते हैं—इति पुराणे श्रूयते (निरुक्त ५।१४)। यह कथा **मत्स्यपुराण** (२०।२३-२९) में मिलती है।

विक्रम १ श० वररुचि '**निरुक्तसमुच्चय**' में कहते हैं—'तथा चाहुः पौराणिकाः।'

न्यायभाष्यकार वात्स्यायन पुरातन ब्राह्मण ग्रन्थ का वाक्य लिखते हैं और कहते हैं कि प्रमाणभूत **ब्राह्मण** से **इतिहास** और **पुराण** का प्रामाण्य सिद्ध होता है। जो ऋषि मन्त्र तथा ब्राह्मणों के द्रष्टा और प्रवक्ता हैं **वे** ही **इतिहास-पुराण** तथा धर्मशास्त्र के कर्ता हैं—

"प्रमाणेन खलु ब्राह्मणेन इतिहासपुराणस्य प्रामाण्यमभ्यनुज्ञायते। ते वा खल्वेते अथर्वाङ्गिरस एनदितिहासपुराणमभ्यवदन् 'इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः' इति। य एव मन्त्रब्राह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति।"

पतञ्जलि पुरातन वाङ्मय का परिगणन करते हुए पुराण और इतिहास की भी चर्चा करते हैं—

"वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमिति।"

कौटिल्य भी इन पुराणों का उल्लेख करते हैं 'इतिहासपुराणाभ्यां बोधयेदर्थशास्त्रवित्।' अ० ९६। वह पौराणिक सूत और सारथि सूत में भेद भी करते हैं 'ब्राह्मण्यां क्षत्रियात् सूतः पौराणिकस्त्वन्यः सूतो मागधश्च ब्रह्मक्षत्राद्विशेषतः।' पौराणिक सूत अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने से विशिष्ट है (अध्याय ६४)। याज्ञवल्क्य उनसे भी प्राचीन हैं। वे भी पुराणों को जानते हैं—

"पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानाम्।"(१।३)

गौतमधर्मसूत्रभाष्यकार मस्करी सूत्र १।३९ में कण्वधर्मसूत्र का एक वचन देता है 'अथर्ववेदेतिहास-पुराणानि ध्यायन्' इससे प्रतीत होता है—कण्वसूत्रकार को पुराण विदित थे। गौतमध० सू० ८।६ और ११।२१ में पुराणशब्द मिलता है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र १।६।१९।१३।१४ पुराण के दो श्लोक उद्धृत हैं। यह कहा ही गया है कि सर्वप्राचीन मनु ने भी इतिहास-पुराण को श्राद्ध में श्रवण करना कहा है। चरकसंहिता के शारीरस्थान ४।४४ में 'श्लोकाख्यायिकेतिहासपुराणेषु कुशलम्' उल्लेख है। यह बुद्ध से बहुत पहले का है। आरण्यकों और ब्राह्मणों में भी पुराण शब्द है। 'ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् नाराशंसीः' (तै० आ० २।९)। "तानुपदिशति पुराणं वेदः सोऽयमिति सोऽयमिति किञ्चित् पुराणमाचक्षीत् ।" (श० ब्रा० ११।४।३।१३)।

पराशरज्योतिषसंहिता में "वेदवेदाङ्गेतिहासपुराणशास्त्रावदातम् ।" पुराण इतिहास की चर्चा है।

वा० रा० बालकाण्ड अ० २ "नरेन्द्र श्रूयतां तावत् पूराणे यन्मया श्रुतम्" ।।५।।

अथर्ववेद (१५।३०१) में अनेक विद्याओं के साथ पुराणों का भी वर्णन है। तमितिहासं पुराणं च ऋचः सामानिच्छन्दांसि। पुराणं यजुषा सह उच्छिष्टाज्जज्ञिरे तस्माद्दिवि देवाः ।।

प्रसिद्ध ऐतिहासिक अलबेरुनी सं० १०८७, १८ पुराणों की स्वल्पभेदवाली दो सूचियाँ देता है।

राजशेखर ९९७ काव्यमीमांसा अ० २ में कहता है 'तत्र वेदाख्यानोपनिबन्धनप्रायं पुराणमष्टादशधा।' बालभारत में "राजशेखर अष्टादशपुराणसारसंग्रहकारिन् ।" (पृ० ४)

गौतमधर्मसूत्रमस्करीभाष्य (८।६) 'पुराणं ब्रह्माण्डादि'। वाचस्पतिमिश्र ८०८ योगभाष्य टीका में विष्णुपुराण २।३२—५२।५४ में और १।१९-२५, ४।१ में वायुपुराण की चर्चा करते हैं। आद्यशङ्कराचार्य विष्णुसहस्रनामभाष्य में भविष्योत्तरपुराण. विष्णुपुराण, ब्रह्मपुराण तथा पद्मपुराण की चर्चा करते हैं।

६७७ संवत् के बाणभट्ट ने हर्षचरित में लिखा है 'पवनप्रोक्तं पुराणं पपाठ। महाभारत के वनपर्व (१९४।१९) में वायुप्रोक्त पुराण का उल्लेख है। महाभारत दा० पा० में पुराणविदों की दाशरथिरामविषयक गाथाएँ उद्धृत हैं। ये गाथाएँ वायुपुराण (८८।१९६) में हैं।

कुमारिल ने तन्त्रवार्तिक १।३ में पुराणप्रामाण्य कहा हैं। सांख्यकारिका माठरवृत्ति (१२।०) में पुराणवर्णित भविष्य, कल्कि का उल्लेख है। योगभाष्य (३।२३) का एक वचन न्यायवार्तिक एवं न्यायभाष्य (१।६) में मिलता है—

"यस्मिन् परिणम्यमाने तत्त्वं न विहन्यते तन्नित्यम् ।"

महाभाष्यकार ने भी लिखा है—

"तदपि नित्यं यस्मिन् तत्त्वं न विहन्यते।"
"स्वाध्यायाद्योगमासीत योगात् स्वाध्यायमासते।
स्वाध्याययोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते ।।"

यहाँ वाचस्पतिमिश्र कहते हैं 'वैयासिकीं गाथामुदाहरति' यह वचन विष्णुपुराण (६।६।२) में मिलता है।

बाण हर्षचरित में पुरूरवा के मरने की एक कथा लिखते हैं। सुबन्धु की वासदवत्ता, अश्वघोष का बुद्धचरित तथा कौटिल्य भी इसका संकेत करते हैं। यह कथा वायुपुराण में मिलती है।

"पुरूरवा ब्राह्मणधनतृष्णया विननाश ।" (वायु० पु० ३।२०–२३)

पाश्चात्यों ने अर्थशास्त्र को ई० ३री शती का माना है। वस्तुतः वे मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त के महामात्य थे। ई० सन् पूर्व के थे। दण्डी ने दशकुमारचरित में कहा है विष्णुगुप्त ने ६००० श्लोकों के परिमाण में अर्थशास्त्र रचा—

"आचार्यविष्णुगुप्तेन मौर्यार्थे षड्भिः श्लोकसहस्रैः संक्षिप्ता।"

वात्स्यायन **न्यायभाष्य** में अर्थशास्त्र का वचन उद्धृत करते हैं—

"पदसमूहो वाक्यमर्थसमाप्तौ" (अ० शा० अध्या० २१)। **न्यायभाष्य** (२।१५४) में लिखा है—

"पदसमूहो वाक्यमर्थसमाप्ताविति।"

न्यायभाष्य १।१।१ में लिखा है—

"प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तितः॥"

ठीक यही श्लोक अर्थशास्त्र के विद्यासमुद्देश प्रकरण में मिलता है। **न्यायवार्तिक** का काल वि० २य शती से पहले का है। **न्यायभाष्य** विक्रम १ श० पूर्व का है। **अर्थशास्त्र** वि० पू० ३ श० का है।

क्षमाकल्याण के दीपमालाकल्प में निर्वाण संवत् ५०९ कल्कि का होना लिखा है। नेमिचन्द्र अपने **तिलोसार ग्रन्थ** में निर्वाण संवत् १००० कल्कि को मानता है। इस भेद का कारण परम्पराविच्छेद ही है। महावीरजी का निर्वाण बहुत पुराने काल की बात है। जैन भिक्षु उस काल को भूल गये। विक्रम सं० ४७० यह विवरण नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० अंक ४ में मिलता है। यह विवरण मुनि कल्याणविजय का है।

बौद्धपरम्परा

ह्यूनसांग, जो नालन्दा विश्वविद्यालय में वर्षों पढ़ता था, जिसने अनेक बौद्ध आचार्यों का साक्षात्कार किया था, उसके काल से बौद्धनिर्वाणकाल १२००, १३००, १५०२ और ९०० से १००० वर्ष पूर्व तक का काल भिन्न-भिन्न विद्वान् मानते हैं। हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ३०४ तथा शमनह्वीली कृत ह्यूनसांग का जीवनचरित, एसवील का अंग्रेजी अनुवाद सन् १९१४ पृ० ९८ बुद्धनिर्वाण काल के विषय में सन् ४०१ से लेकर कई वर्ष तक भारत में भ्रमण करनेवाले फाह्यान कहता हैं मूर्ति की स्थापना बुद्धदेव के परिनिर्वाणकाल से ३०० वर्ष पीछे हुई है। उस समय देश में चाववंशी महाराजा पुञ्ज का राज्य था। (हिन्दी अनुवाद पृ० १६ अनुवादक की टिप्पणी यों है पुञ्ज का शासन काल ७५०-७८९ तक ई० पू० था।) अर्थात् बुद्धनिर्वाण ई० पू० ११वीं श० अधिक से अधिक ई० से १०९० वर्ष पूर्व हुआ।

सिंहल देश की उपलब्ध परम्परा के अनुसार बुद्धनिर्वाण की तिथि और ही है। **तत्त्वसंग्रह** की भूमिका में पाश्चात्य लेखकों ने सब मतों को छोड़कर उसे ही प्रधानता दी है। जब बौद्ध सम्प्रदाय में अपने धर्मप्रवर्तक के काल के विषय में इतने मत हैं, तब अन्य ऐतिहासिक विषयों में उनका प्रामाण्य कितना हो सकता है? इसी लिए तो **दशरथजातक** में सीता को राम की भगिनी कहा है। **धम्मपद** की टीका में **वासवदत्ता** को चन्द्रमहासेन की भगिनी कहा है अर्थात् इन बौद्ध ग्रन्थों का सर्वथा प्रामाण्य कहना कठिन है।

वेदों में रामायणसम्बन्धी व्यक्तियों का उल्लेख

"चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः" ऋ० १।१२६।४ में दशरथ का उल्लेख है। अथर्ववेद १०।२।२८ "देवानां पूरयोध्या।" में अयोध्या राजधानी का वर्णन है।

"नीचीनवारं वरुणः कबन्धं प्रससर्ज" ऋ० सं० ५।८५।३ में कबन्ध तथा "स इद्दासं तुवीरवं प्रतिदंनषडक्षं त्रिशीर्षाणम्॥" ऋ० १०।९९।६ में त्रिशिरा का वर्णन है।

"ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकार रसं विषम् ।।" (अथ० सं० ४।६।१)

में दसमुख रावण का वर्णन है—

"इन्द्रः सीतां निगृह्णातु" (ऋ०सं० ४।५७), "घृतेन सीता मधुना समक्ता" (अथ०सं० ३।१७।९) में सीता का वर्णन है। "अघो रामो सवित्रिः" (यजुःस० २९।५९) सवितृकुल के राम का वर्णन है। "भद्रो भद्रया सचमान आगात्" (ऋ० सं० १०।२।३) मे रामभद्र का उल्लेख है।

वेदों में राम के पूर्वजों का संकेत निम्नोक्त प्रकार से मिलता है—

"मनुर्वै यत्किञ्चावदत् तद् भेषजमेवावदत् ।" (का० सं० ११।५।४९)

मनु की उक्ति को भेषज तुल्य कहा गया है।

"यं त्वा वेद इक्ष्वाको" (अथ०सं० १९।३९।९) तथा "ईज इक्ष्वाको राज" (श० ब्रा० १३।५।४।९५) में इक्ष्वाकु की चर्चा है।

"सुद्युम्नो द्युम्नः यजमानाय धेहि" (मैत्रायणीसं० १।२।१९) में सुद्युम्न की चर्चा है।

"विश्वामित्रो यदव हृते सुदासम्" (ऋ० सं० ३।५३।९) में सुदास की चर्चा है।

"षष्टिं सहस्रानवति च कौरम् ।" (अथ०सं० २०।१२७।१) में सगर के साठ हजार पुत्रों का संकेत है।

"रघुः श्येनः पतयत् ।" (ऋ० सं० ५।४५।९) में रघु का संकेत है।

"अथ किमेतैर्वाऽपरेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित् सुद्युम्न-भूरिद्युम्नेन्द्रकुवलयाश्व-यौवनाश्व-वध्र्यश्वाश्वपति-शशबिन्दुहरिश्चन्द्रऽम्बरीषो ननक्तुः शर्यातिर्ययातिरनरण्योऽश्वसेनादयोऽथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानो मिषतो बन्धुवर्गस्य महतीं श्रियं त्यक्त्वाऽस्माल्लोकादमुं लोकं प्रयाताः" (मैत्रायणीयोपनिषद् अन्तिम आख्यायिका ११।४) में।

"यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥" (वायुपु० १।२००, २०१)

"जातमात्रं च यं वेदः उपतस्थे ससंग्रहः ।" (वायुपु० १।४१)

"प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः ।
अनित्यभावाद् देवानां मन्त्रोत्पत्तिः पुनः पुनः ॥" (वायुपु० उपो० ६१।७५)

जो चारों साङ्गवेदों को जानकर भी पुराणों को नहीं जानता वह विचक्षण नहीं होता है। अल्पश्रुत से वेद भयभीत होता है और यह समझता है कि यह अल्पश्रुत, अर्थ का अनर्थ कर, मुझपर प्रहार करेगा।

भारतीय दृष्टिकोण से पैमाना—१८ निमेष की (१) एक काष्ठा
३० काष्ठा की (१) एक कला
३० कला का (१) एक मुहूर्त
३० मुहूर्त का (१) एक अहोरात्र

पितरों का एक अहोरात्र = १ मास
देवताओं का एक अहोरात्र = १ वर्ष

सत्ययुग काल—
४००० × ३६० = १४४०००० वर्ष
सन्धि— ४०० × ३६० = १४४००० वर्ष
सन्ध्यंश— ४०० × ३६० = १४४००० वर्ष
योग— = १७,२८००० वर्ष

त्रेता काल—
३००० × ३६० = १०८,०००० वर्ष
सन्धि— ३०० × ३६० = १०८,००० वर्ष
सन्ध्यंश— ३०० × ३६० = १०८,००० वर्ष
योग— = १२,९६००० वर्ष

द्वापर काल—
२००० × ३६० = ७२,०००० वर्ष
सन्धि— २०० × ३६० = ७२,००० वर्ष
सन्ध्यंश— २०० × ३६० = ७२,००० वर्ष
योग— = ८,६४००० वर्ष

कलियुग काल—
१००० × ३६० = ३६,०००० वर्ष
सन्धि— १०० × ३६० = ३६००० वर्ष
सन्ध्यंश— १०० × ३६० = ३६००० वर्ष
योग— = ४३२,००० वर्ष

चतुर्युग काल—
१७२८००० वर्ष
१२९६००० ,,
८६४००० ,,
४३२००० ,,
४३२०००० वर्ष

ब्राह्म दिन =
४३२०००० × १००० = ४३२,०००००० वर्ष

ब्राह्म अहोरात्र =
८६४,००००००० वर्ष

ब्राह्म वर्ष =

८६४,०००००००×३६०

= ३११०४,०००००००० वर्ष

(३१ खरब, १० अरब, ४० करोड़ वर्ष)

ब्रह्मा का प्रथम परार्ध =

६११०४,०००००००० × ५० = १५५५२०००००००००० वर्ष

(१५ नील, ५५ खरब, २० अरब वर्ष)

∵ १४ मनु = ४३२,०००००००

∴ १ ,, = $\frac{४३२००००००००}{१४}$ ३० करोड़, ८५ लाख, ७१ हजार, ४२८ वर्ष, २०५ दिन, २१ मुहूर्त, १२ कला, २५ काष्ठा, १२$\frac{६}{७}$ निमेष।

ब्रह्मा का इस संवत् २०२९ विक्रम तक का काल =

१५ नील, ५५ खरब, २० अरब, १२ करोड़, ५ लाख, तैंतीस हजार ७३ वर्ष ब्रह्मायु का काल विष्णु का एक घड़ी काल होता है। १२ लाख विष्णु का काल रुद्र का कलार्ध होता है। अर्बुदरुद्रों का अक्षर ब्रह्म होता है—

"चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्मणो दिनमुच्यते।
पितामहसहस्रेण विष्णोश्च घटिका स्मृता॥
विष्णोर्द्वादशलक्षाणि कलार्धं रौद्रमुच्यते।
रुद्रस्यार्वुदसंख्यानां ततो ब्रह्माक्षरं भवेद्॥"

विश्वामित्र ने समुद्र-मन्थन का वर्णन किया है। वह वाल्मीकिरामायण के अनुसार ११ करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था, क्योंकि क्षीरसमुद्र का मन्थन वैवस्वतमन्वन्तर के द्वितीय कृत युग के अन्त में हुआ था—

"प्रह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने।" (मत्स्यपु० ४७।४५)। वेद में भी इसकी चर्चा है। देवता और असुर लोगों ने जलों के रस क्षीरसमुद्र का मन्थन किया था—

देवाश्चासुराश्चापां रसममन्थत। तस्मान्मथ्यमानादमृतमुदतिष्ठत। ततः सर्वतो रसमस्रवत्। स सोमः तत्सोमस्य सोमत्वम्।" (तै० सं०), काठकब्राह्मण और वायुपुराण के अनुसार वर्तमान वैवस्वतमन्वन्तर के १६वें कृत युग में शाकुन्तल भरत थे। उन्हीं के नाम से भारत देश प्रख्यात हुआ है। उन्होंने प्रजा का विशेषरूप से भरण किया था।

"षोडशतमे हि राजा दुष्यन्तश्च कृते युगे।
शकुन्तलायां भरतस्तन्नाम्ना तु भारतम्॥" (वायु० पु० ९९।५५)

"विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम्।" (ऋ० सं० ३।५३।१२)

इस मन्त्र में भारतसम्बन्धी जन की रक्षा की बात कही गयी है। कुरु, पाञ्चाल आदि देश भारत नाम से विख्यात थे।

"शकुन्तलायां भरतनाम्ना तु भारतं कृते।
षोडशतमे प्राप्ते प्रजानां भरणं कृतम् ॥" (वायु० पु०)

श्रीभागवत के पञ्चम स्कन्ध में कहा गया है कि अजनाभवर्ष नाम से प्रसिद्ध यह देश ऋषभपुत्र भरत के नाम से भारत हुआ था। कल्पभेद से दोनों व्यवस्थाएँ प्रामाणिक समझनी चाहिये। एक अन्य दृष्टि से मनु का नाम भी भरत है। उनके नाम से भी इस देश का भारतवर्ष नाम है—

"भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते।
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद् भारतं स्मृतम् ॥" (वायुपु० उपो० १०।४५।७६)

पुराणों में तारकामय संग्राम का वर्णन है। उसका समय विक्रम शती से १२ करोड़ वर्ष पूर्व है, क्योंकि वृत्रवध के बाद कृतयुग में तारकामय संग्राम हुआ, यह हरिवंश में वर्णित है—

"वृत्ते वृत्रवधे तावद् वर्तमाने कृते युगे।
आसीत् त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः ॥" (१।४२।१०)

उस संग्राम में आङ्गिरस बृहस्पति देवताओं के सहायक थे, अतः बृहस्पति को ई० शती २-४ के मध्य में मानना अत्यन्त असंगत है। भाषाविज्ञान के अनुसार आयुर्वेद को ब्राह्मणकाल से अर्वाचीन मानना भी प्रामाणिक नहीं है। संस्कृत प्रकृति, प्रत्यय, समास, तद्धित आदि अनादि ही हैं। मन्वन्तरसम्बन्धी विचारों के अनुसार मन्वन्तरों में इन्द्र होते हैं। उनके गुरु बृहस्पति भी होते हैं। इसी प्रकार न्यायसूत्रकार गौतम एवं न्यायभाष्यकार वात्स्यायन भी अर्वाचीन नहीं हैं। तभी आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व महाभारत शान्तिपर्व में गौतम का वर्णन है—

"न्यायतन्त्रं हि कार्त्स्न्येन गौतमो वेत्ति तत्त्वतः।" (म० भा० शान्ति० २१२।३४)।

वैवस्वत मन्वन्तर की सन्धि में उत्पन्न बौधायन, आपस्तम्ब आदि भी प्राचीन ही हैं। दैत्यराज विरोचन की कन्या वृत्रज्वाला कुम्भकर्ण की पत्नी थी (वा० रा०)। उसका भ्राता बलि वैवस्वत मन्वन्तर के द्वितीय त्रेता में हुआ था। भृगु, पुलस्त्य, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ ये सप्तर्षि एवं स्वायम्भुव मनु आदि त्रेतायुग में उत्पन्न हुए थे। बुद्धि एवं प्रयत्न के बिना ही उन लोगों को नक्षत्रों के तुल्य वेदमन्त्रों का दर्शन हुआ था। यह वायुपुराण के उपोद्घात से सिद्ध है—

"सप्तर्षीणां मनोश्चैव आद्ये त्रेतायुगस्य तु।
अबुद्धिपूर्वकं तेषामक्रियापूर्वमेव च ॥
अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्राः तारकाद्यैर्निदर्शनैः।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभाससमुत्थिताः ॥"
ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणानि च।" (वा० पु० उ० ४३–४५)

ब्रह्मा की प्रेरणा से मन्वादि ने उसी समय श्रौतस्मार्त धर्म का उपदेश किया।

"आद्ये त्रेतायुगे पूर्वमासन् स्वायम्भुवोऽन्तरे।" (ब्रह्माण्ड पु० २।३६।९)
"तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ते।
श्रौतस्मार्तञ्च धर्मञ्च ब्रह्मणा च प्रचोदितम् ॥" (प्राहुः)
"दाराग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुःसामसंश्रितम्······।
परम्परागतं धर्मं स्मार्तञ्चाचारलक्षणम् ॥
वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥" (वायु० पु० १।४०, ४१)

अतः वर्तमान मनुस्मृति सर्वप्राचीन संविधान है। ब्रह्मर्षियों की सभा में सर्वसंमति से भृगु ने उसे लिखा था। आधुनिक दृष्टि से भी विक्रमशती से ४०० वर्ष पूर्व यूनान में हेरोडोक्स हुआ है। उसके एमिसिस ग्रन्थ के अनुसार १७ सहस्रवर्ष पूर्व ८ या १२ देव हुए हैं। उनमें विष्णु एक थे। डायोनिसियस दानवों के और विष्णु के नेता थे। भारतीय दृष्टि के अनुसार कश्यपपत्नी दाक्षायणी अदिति के इन्द्र आदि बारह पुत्र प्रसिद्ध हैं। उनमें एक विष्णु हैं—

सेवेन्टीन थाउजेन्ड इयर्स बिफोर दी रिजिन आफ अमेसिस दी ट्वेल्व गाडस् वेयर दे ए फेर्म प्रोड्यूस्ड फ्रॉम दि एट ऑपरीजवेल्व हिक्यूलिस इज वन बुक ११ चेप्टर ४३ ईरानी और फारसी भाषा में विवस्वत् के लिए विवहन्त का प्रयोग किया गया है। उसके चार मनु, श्राद्धदेव यम और अश्विद्वय हुए थे।

प्रायः पुराणों के पुरुषों की संख्या के अनुसार कालनिर्धारण की गलती आधुनिक लोग करते हैं। परन्तु यह वेद प्रमाण से सिद्ध है कि कई लोगों की आयु सामान्य मनुष्यों से बड़ी होती थी। जैसे दीर्घतमा महर्षि की आयु दस पुरुषायु के बराबर थी—

"त उ दीर्घतमा दशपुरुषायुषाणि जिजीव।" (शाङ्खायनारण्यक २।१७)। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार "मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमाभिषिषेच" (८।२३)। कक्षीवान् वैवस्वत मन्वन्तर के तृतीय द्वापर में हुए थे जो कि विक्रम सं० से १२ करोड़ वर्ष पूर्व का काल होता है। दीर्घतमा १६ वें कृत युग के थे। दौष्यन्ति भरत के समकालिक थे। वह विक्रम से ५ करोड़ १८ लाख ८६ हजार १ सौ ४४ वर्ष पूर्व का काल है। प्रथम त्रेता के अत्रिपुत्र सोम हुए। उनके पुत्र बुध हुए। बुध के पुत्र पुरूरवा हुए।

"पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप।" (भाग० ९।१४।४९)

त्रेता में परशुराम का आविर्भाव हुआ था—

"एकोनविंशयां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकोऽभवत्।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः॥" (वायुपु० १८।९१)

त्रेताद्वापरयोः सन्धौ रामः शस्त्रभृतांवरः।
असकृत् पार्थिवं क्षत्रं जघानामर्षचोदितः॥" (म० भा० ३।२।३)

इसी प्रकार २४ वें त्रेता में वसिष्ठ पुरोधा के साथ दशरथपुत्र राम रावण के वधार्थ विष्णु का अवतार होगा। (विष्णुवचन है) त्रेता द्वापर की सन्धि में २४ वें त्रेता में मैं विश्वामित्र पुरस्सर दाशरथि राम राजा हूँगा।

"चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा।
सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः॥" (वायुपु० १८।७२)

"सन्ध्यंशे समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च।
अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः॥" (म० भा० १२।३३९)

'चतुर्विंशयुगे चापि विश्वामित्रपुरःसरः।
रामो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥"
(हरिवंश ४।४१, ब्रह्माण्डपुराण १०४।११)

"अष्टाविंशतिमे तद्वत् द्वापरस्यांशसंक्षये।
नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः॥" (वायुपु० ९८।९७)

वैवस्वत मन्वन्तर के २८ वें द्वापर के अन्त में धर्म एवं यज्ञ के नष्टप्राय होने पर विष्णु वृष्णिकुल में कृष्णरूप से उत्पन्न होंगे।

गाधिकन्या सत्यवती में महर्षि ऋचीक से ज्येष्ठ पुत्र जमदग्नि हुए थे। अग्निवेश, वल्मीक आदि ९९ पुत्र अन्य भी हुए थे। उन्हीं वल्मीक के पुत्र वाल्मीकि हुए थे। वे अग्नि वाल्मीकि भी कहे जाते थे। उन्होंने रामायण का निर्माण किया था। उनके पुत्र अग्निवेश हुए थे जो कि आयुर्वेद और धनुर्वेद के आद्याचार्य थे। उन्होंने भरद्वाज से आग्नेय अस्त्र आदि प्राप्त किये थे—

"अग्निवेशं महाभागं भरद्वाजः प्रतापवान्।
प्रत्यपादयदाग्नेयमस्त्रं वेदविदांवरः॥" (म० भा० आदि पर्व २२१।१५)

दीर्घजीवी अग्निवेश से द्रोण ने तथा द्रोण से अर्जुन ने आग्नेय आदि अस्त्र प्राप्त किये थे—

"अग्निवेश इति ख्यातस्तस्य शिष्योऽस्ति भारत।
तपसा यन्मया प्राप्तममोघमशनिप्रभम्॥
अस्त्रं ब्रह्मशिरो नाम यद् दहेत् पृथिवीमपि।
त्वया प्राप्तमिदं बीर दिव्यं नान्योऽर्हति त्विदम्॥" (म० भा० आदि पर्व १४१)

वाल्मीकिरामायण के अनुसार भी वाल्मीकि राम के समकालिक थे। उन्होंने राम के पुत्रों का संस्कार कर उन्हें वेदादि शास्त्र पढ़ा कर वेद के उपबृंहणार्थ उन्हें रामायण महाकाव्य पढ़ाया था (वा० रा० उ०)

इससे सुतरां रामायण की अतिप्राचीनता सिद्ध होती है। पूर्वोक्त पुराणवचन के अनुसार राम २४ वें त्रेता में प्रकट हुए थे। उसी समय रामायण का निर्माण हुआ।

पाश्चात्यों एवं तदनुयायी भारतीयों की दृष्टि में भारत के तीन संस्करण हुए हैं—पहला संस्करण व्यासकृत चौबीस हजार श्लोकों की चतुर्विंशतिसाहस्री भारतसंहिता, दूसरा संस्करण वैशम्पायन-जनमेजय-संवादरूप और तीसरा संस्करण सौति-शौनकसंवादरूप। वही महाभारत है। अन्तिम दोनों व्यास की कृति नहीं हैं।

इस तरह कुछ लोगों के अनुसार व्यास, वैशम्पायन एवं सौति इन तीनों कवियों ने महाभारत की रचना की है। व्यासकृत ग्रन्थ का नाम जय था, वैशम्पायन विरचित भारत ग्रन्थ था एवं सौतिकृत ग्रन्थ महाभारत है। उसी में जय एवं भारत दोनों ग्रन्थ लीन हो गये।

प्रमाण में कहा जा सकता है—

"वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम्॥
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च।
संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः॥ (म० भा० १।६३,८९,९०)

इससे मालूम होता है कि सुमन्तु आदि ने पृथक्-पृथक् भारतीय संहिताएँ प्रकाशित की हैं। इससे भी भारत की कई संहिताएँ प्रतीत होती हैं। सुमन्तु-जैमिनि-वैशम्पायन-पैल-सूत्रभाष्य-भारत-महाभारतधर्माचार्याः इस आश्वलायनसूत्र के अनुसार भारत और महाभारत का पृथक्-पृथक् उल्लेख है—

"अस्मिस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान्।
एकं शतसहस्रं तु मयोक्तं वै निबोधत॥"

अनुक्रमणिका अध्याय में—

"इदं शतसहस्राख्यं लोकानां पुण्यकर्मणाम् ।
उपाख्यानैः सह ज्ञेयं श्राव्यं भारतमुत्तमम् ॥
चतुर्विंशतिसाहस्रं चक्रे भारतसंहिताम् ।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ॥
मन्वादि भारतं केचिद् आस्तीकादि तथापरे ।
तथोपरिचरादन्ये विप्रा सम्यगधीयते ॥" (म० भा० १।१।५२)

कोई प्रथम मन्त्र से, कोई आस्तीक की कथा से और कोई उपरिचर वसु की कथा से भारत कहते हैं । परन्तु उपर्युक्त वचनों पर भी विचार करने से महाभारत अनेक कवियों की कृति है, यह नहीं सिद्ध होता, क्योंकि—

"संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः ।"

इस वचन से भारत की संहिताओं का प्रकाशन ही कहा गया है, निर्माण नहीं; अतः सुमन्तु आदि भारत की पृथक्-पृथक् संहिताओं के प्रकाशक ही माने जा सकते हैं, प्रणेता नहीं ।

जो उक्त जय, भारत और महाभारत का भेद मानते हैं उन्हें यह भी बताना चाहिये कि उस स्थिति में तो यही कहना चाहिये था कि व्यास ने सुमन्तु आदि को जयग्रन्थ पढ़ाया था, महाभारत नहीं । तथा च—

"वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान् ।"

इस उक्ति का क्या अर्थ होगा ? इससे तो महाभारत को ही पञ्चम वेद और उसी का पढ़ाना कहा गया है । व्यास से जिस महाभारत का सुमन्तु आदि ने अध्ययन किया वह व्यासनिर्मित है या अन्यनिर्मित ? सौतिनिर्मित महाभारत को पञ्चम वेद मानकर व्यास ने पढ़ाया यह कहना निराधार है और उपहासास्पद भी है ।

भारतसंहिता का क्या अर्थ है ? यदि सुमन्तु आदि ने भारतसम्बन्धिनी संहिताओं का प्रकाशन किया तो इससे यही निश्चित होता है कि भारत नहीं, किन्तु भारत से भिन्न संहिताओं का ही उन्होंने प्रकाशन किया ।

यहाँ यह भी प्रश्न होगा कि संहितासम्बन्धी भारत कौन है ? जिसे उन्होंने व्यास से पढ़ा था, वही था या स्वविरचित भारत नाम का कोई और ही ग्रन्थ था ? यदि प्रथम पक्ष मान्य है । तब तो यह नहीं सिद्ध होता है कि महाभारत अनेक कवियों की कृति है । पक्षान्तर भी असंगत है, क्योंकि स्वनिर्मित ग्रन्थान्तर के व्यास से अध्ययन का कोई प्रयोजन नहीं सिद्ध होता । यदि भारतस्य संहिता इस वाक्य में अभेद अर्थ में ही षष्ठी मानें तब भी मूल भारत ग्रन्थ ही संहिता है या व्याख्यानरूपा संहिता है ?

प्रथम पक्ष के अनुसार यह अर्थ होगा कि व्यासकृत मूल भारत ग्रन्थ का अध्ययन करके उनके शिष्यों ने मूल ग्रन्थ का निर्माण किया, जो कि उपहासास्पद है । यदि व्याख्याग्रन्थरूप संहिता है तो इससे मूलभारत ग्रन्थ अनेक कवियों की कृति है, यह नहीं सिद्ध होता । इस दृष्टि से तो व्यास ने सुमन्तु आदि को भारत पढ़ाया और उन्होंने तत्सम्बन्धी व्याख्याभूत संहिताएँ बनायीं ।

यह भी प्रश्न है कि "वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्" यह क्यों कहा गया है ? यदि कहा जाय कि उनके द्वारा अधीत सब ग्रन्थों का निर्देश करना उद्देश्य है तो वह भी ठीक नहीं, क्योंकि अष्टादशपुराण और ब्रह्म-सूत्रादि भी अधीत ग्रन्थ हैं ही । फिर उनका निर्देश न होने से न्यूनता दोष होगा ।

अतः वेदों के साथ पञ्चम वेद महाभारत का अध्ययन किया और संहिताएँ प्रकाशित कीं । इस तरह अध्ययन और संहिताप्रकाशन में हेतु-हेतुमद्भाव करना चाहिये, पर वह भी संगत नहीं है ।

अतएव भारतभावदीपकार ने उस वाक्य का अर्थ किया है कि भारत की मूलभूत संहिताएँ मन्त्रब्राह्मणरूप वेद ही हैं। उन्हें सुमन्तु आदि ने प्रकाशित किया है। भारत के इस अंश का मूल यह मन्त्र या ब्राह्मण है, यह स्पष्टीकरण किया था। इससे यह दिखाया गया कि भारत प्रत्यक्ष मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदमूलक ही है। यही श्रीभागवत में कहा गया है—

"भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।"

भारत के व्याज से भगवान् व्यास ने वेदार्थ ही प्रकाशित किया है। आश्वलायनसूत्र से भारत और महाभारतग्रन्थ का भेद वर्णन नहीं है, किन्तु आश्वलायनशाखियों के ब्रह्मयज्ञ में आचार्यतर्पण के प्रसङ्ग में वह सूत्र है। 'समन्तु-जैमिनि-वैशम्पायन-पैल-सूत्र-भाष्य-भारत-महाभारतधर्माचार्याः' इसके द्वारा भारत के अनेक कर्ता सिद्ध नहीं होते, क्योंकि उक्त सूत्रधर्माचार्यों को ही बतलाता है। समन्तु सूत्राचार्य, जैमिनि भाष्याचार्य, वैशम्पायन भारताचार्य और पैल महाभारताचार्य इस तरह क्रमिक अन्वय नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आधुनिकों के मत में महाभारत के कर्तारूप से सौति की प्रसिद्धि है। पैल की नहीं। इसके अतिरिक्त पूर्व में सुमन्तु आदि को महाभारत सहित वेदों का अध्यापन कराना कहा गया है, फिर सूत्र में केवल वैशम्पायन को भारताचार्य और पैल को महाभारताचार्य क्यों कहा गया है? इसका भी कोई समाधान नहीं है।

वस्तुतः उक्त सूत्र के अनुसार सुमन्तु आदि के समान ही सूत्र, भाष्य, भारत और महाभारत भी धर्माचार्य ही है। देवीभागवत में स्पष्टरूप से उपर्युक्त अर्थ का ही समर्थन मिलता है—

"समन्तुजैमिनी वैशम्पायनः पैलसूत्रयुक्।
भाष्यभारतपूर्वश्च महाभारत इत्यपि॥
धर्माचार्या इमे सर्वे तृप्यन्त्विति च कीर्तयेत्।" (देवीभाग० ११।२०)

तथा च सूत्र में सुमन्तु से लेकर महाभारताचार्यान्त ग्रन्थ के नाम न होकर आचार्यों के नाम ही हैं। सुमन्त्वाचार्यः, जैमिन्याचार्यः, वैशम्पायनाचार्यः, सूत्राचार्य, भाष्याचार्यः, भारताचार्यः, महाभारताचार्य इतीमे आचार्याः तृप्यन्तु, ये सब आचार्य तृप्त हों। अतः उक्त सूत्र से भारत अनेक पुरुषों की कृति है यह नहीं सिद्ध होता।

इसी तरह 'अस्मिस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान्।' इस वचन के आधार पर भी यह नहीं सिद्ध होता है कि महाभारत के कर्ता वैशम्पायन हैं, क्योंकि—

"अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः।
जन्मेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः॥
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके।
स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम्॥" (अनुक्र० अ० ९७, ९८)

इत्यादि अनुक्रमणिकाध्याय के वचनों से यही निश्चित होता है कि व्यास ने पहले महाभारत बनाकर मानुष लोक में प्रकट किया। सर्पसत्र में जनमेजय के प्रश्न करने पर अपने शिष्य वैशम्पायन को महाभारत सुनाने का आदेश दिया और वैशम्पायन ने व्यास के मुख से सुनी हुई कथा जनमेजय को सुनायी और उसी को सौति ने शौनक को सुनाया। यह सब बातें निम्नोक्त श्लोकों से स्पष्ट हैं—

"कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः सुपुण्या विविधाः कथाः।
कथिताश्चापि विधिवद् याश्च द्वैपायनेन वै॥
श्रुत्वाहं ता विचित्रार्था महाभारतसंश्रिताः।" (म० भा० १।१।११)

"मन्वादि भारतं केचिदास्तीकादि तथापरे।
तथोपरिचरादन्ये विप्राः सम्यगधीयते ॥"

इस वचन से भी महाभारत के तीन संस्करण या तीन कर्ता नहीं सिद्ध होते।

इससे तो पाठारम्भ का सम्प्रदायभेद वर्णन है। महाभारत का ही कोई (नारायणं नमस्कृत्य) से पाठारम्भ करके ग्रन्थ समाप्त करते हैं, कोई जरत्कारु पुत्र आस्तीक की कथा से प्रारम्भ करते हैं और कोई उपरिचरवसु की कथा से आरम्भ करके ग्रन्थ पूरा करते हैं।

नीलकण्ठ के अनुसार वर्णानुपूर्वी का भेद रहने पर भी प्रतिकल्प नाम, रूप और कर्मों की समानता रहती है, अतः कल्पभेद से भारतारम्भ में भेद कहा गया है। मनु शब्द का अर्थ (नारायणं नमस्कृत्य) यह मन्त्र है। किसी की दृष्टि में प्रणवपूर्वक "नमो भगवते वासुदेवाय" यह मन्त्र ही मनु है।

आस्तिकों की दृष्टि में।

"धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र मन्नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥" (म० भा० १।६२।५२)

जो महाभारत में है वही अन्यत्र है जो महाभारत में नहीं, वह कहीं भी नहीं है।

परन्तु दुरभिसन्धि-वशात् या अज्ञानवशात् पाश्चात्यों ने उसमें अनेक दुःशङ्काएँ उठायी हैं। मूलग्रन्थ का सम्यग् विचार करने से उक्त शङ्काएँ निर्मूल सिद्ध होती हैं।

निम्नोक्त वचनों पर विचार करना आवश्यक है।

"इदं शतसहस्रं तु श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्।
उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम् ॥
उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।
ततोऽध्यर्धशतं भूयः संक्षेपं कृतवानृषिः ॥
अनुक्रमणिकाध्यायं वृत्तान्तानां सपर्वणाम्।
इदं द्वैपायनः पूर्वं पुत्रमध्यापयच्छुकम् ॥
ततोऽन्येभ्योऽनुरूपेभ्यः शिष्येभ्यः प्रददौ विभुः।
षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम् ॥
त्रिंशच्छतसाहस्रं देवलोके प्रतिष्ठितम्।
पित्र्ये पञ्चदश प्रोक्तं गन्धर्वेषु चतुर्दश ॥
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रतिष्ठितम्।
नारदोऽश्रावयद् देवानसितो देवलः पितॄन् ॥
गन्धर्वयक्षरक्षांसि श्रावयामास वै शुकः।
अस्मिंस्तु मानुषे लोके वैशम्पायन उक्तवान् ॥
शिष्यो व्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदां वरः।
एकं शतसहस्रं तु मयोक्तं वै निबोधत ॥" (म० भा० १।१)

सौति कहते हैं पुण्य कर्मवाले लोगों के उपाख्यानों के सहित एक लाख श्लोकों का आदि भारत है उपाख्यान से रहित वही भारत है। इसके बाद में पुनः संक्षेप करके डेढ़ सौ श्लोकों की पर्वों के साथ वृत्तान्तों की एक अनुक्रमणिका रची।

कृष्णद्वैपायन ने यह भारत पहले पुत्र शुक को पढ़ाया। उसके बाद समर्थ ऋषि ने अन्य योग्य शिष्यों को प्रदान किया। पश्चात् महर्षि व्यास ने साठ लाख श्लोकों की एक दूसरी भारतसंहिता रची उसमें से तीस लाख श्योक देवलोक में प्रतिष्ठित हैं। नारदजी ने देवलोक में उन्हें सुनाया। असित देवल ने पितरों को १५ लाख श्लोक सुनाये। शुकदेव ने उसमें से ही १४ लाख श्लोक गन्धर्वों और यक्षों को सुनाये। मनुष्यलोक में वैशम्पायन ने एक लाख श्लोक सुनाये। उसी वैशम्पायनोक्त लक्ष श्लोकों को मैं कहता हूँ। आप लोग उसे धारण करें।

उपर्युक्त वाक्यों से स्पष्ट है कि श्रीव्यासजी ने केवल चौबीस हजार श्लोकों की भारतसंहिता ही नहीं बनायी, किन्तु एक लाख श्लोकों की, चौबीस हजार श्लोकों की, डेढ सौ श्लोकों की और साठ लाख श्लोकों की पृथक्-पृथक् चार संहिताएँ बनायीं। साठ लाख श्लोकोंवाली संहिता से ५९ लाख श्लोक देवादि लोकों में हैं। मर्त्यलोक में एक लाख श्लोकवाली संहिता ही है। पहले का एक लाख भी साठ लाख श्लोकों में ही अन्तर्निहित समझना चाहिये।

अन्यथा एक लाख श्लोकोंवाली दो पृथक्-पृथक् भारतसंहिताएँ मिलनी चाहिये, परन्तु ऐसी कोई भिन्न संहिता मिलती नहीं। २४ हजार श्लोकोंवाली भारतसंहिता भी कहीं नहीं मिलती है।

अतः यही समझना चाहिये कि जैसे बड़ा मकान बनाने या उपन्यास लिखने के पहले उसकी सामान्य रूप-रेखा बनानी पड़ती है उसी तरह व्यास ने पहले उपाख्यान से रहित केवल भारतवंशीय लोगों के इतिहास के रूप में ग्रन्थ तैयार किया था। पश्चात् उसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सम्बन्धित उपाख्यान आदि को जोड़कर एक लाख श्लोकों का महाभारत तैयार किया और उसी में चौबीस हजार श्लोकों का अन्तर्भाव हो गया। डेढ़ सौ श्लोकों की अनुक्रमणिका भी अनुक्रमणिकाध्याय के रूप में इसमें सम्मिलित है।

वर्तमान काल में उपलभ्यमान लक्षश्लोकात्मक ग्रन्थ ही महाभारत है। वही भारत या महाभारत एवं वही जय नाम का इतिहास भी है। जैसे रामायण के सीताचरित एवं पौलस्त्यवध भी नाम हैं—

"काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवध इत्येव चकार चरितव्रतः॥" (वा० रा० १।४।७)

"तदाप्रभृति लोकेऽस्मिन् महाभारतमुच्यते।
महत्त्वे च गुरुत्वे च ध्रियमाणं यतोऽधिकम्॥" (म० भा० १।१।२७३)

सत्य की तराजू पर तौलने से यह ग्रन्थ महत्त्व और गुरुत्व में वेदों से भी अधिक हुआ। इसी लिए यह महाभारत कहा जाता है। व्यास ने ही लक्षश्लोकात्मक भारत बनाया, यह अन्य वचनों से भी स्पष्ट है—

"इदं शतसहस्रं तु श्लोकानां पुण्यकर्मणाम्।
सत्यवत्यात्मजेनेह व्याख्यातममितौजसा॥" (म० भा० १।६२।१४)

"मुच्यते सर्वपापेभ्यो राहुणा चन्द्रमा यथा।
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा॥" (म० भा० १।६२।२०)

भरतों का महान् जन्मवृत्तान्त-वर्णन के कारण भी इसे महाभारत कहा है—

"भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते।" (म० भा० १।६२।३९)

आगम-प्रामाण्य

भारतीय संस्कृति में प्रत्यक्ष, अनुमान से अतिरिक्त एक स्वतन्त्र आगम प्रमाण भी मान्य है। आगम में वेद अपौरुषेय एवं आर्ष इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र पौरुषेय माने जाते हैं।

प्रत्यक्ष और अनुमान से अज्ञात धर्म, ब्रह्म आदि तत्त्वों का प्रतिपादन करनेवाला वेद अपौरुषेय आगम है। वेद एवं वेदाविरुद्ध प्रत्यक्षानुमान तथा आर्षज्ञान ऋतम्भरा-प्रज्ञा आदि के आधार पर रचे हुए आगम पौरुषेय आगम हैं। विशेष विवरण वेदप्रामाण्यप्रसङ्ग में देखें।

महाभारत

वेद के उपबृंहणार्थ आर्षविज्ञानसम्पन्न त्रिकालज्ञ परम वैदिक व्यास महर्षि के द्वारा महाभारत की रचना हुई है। महाभारत तथा अन्य पुराणादि प्रमाणों के द्वारा यह सिद्ध है कि वे भगवान् विष्णु के अवतार थे—

"ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः॥" (भाग० १।४।१६)

सत्रहवें अवतार में भगवान् विष्णु पराशर से सत्यवती में व्यासरूप में अवतीर्ण हुए और उन्होंने पुरुषों को अल्पबुद्धि जानकर वेदरूपी तरु को अनेक शाखाओं के रूप में विभक्त किया।

महाभारत के अनुसार उत्पन्न होते ही इच्छानुसार उन्होंने देह बढ़ा ली। इतिहास सहित साङ्ग वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

पुनः वेदविदों में श्रेष्ठ, धर्म-ब्रह्मनिष्णात, सत्यव्रत, पवित्र एवं क्रान्तदर्शी ब्रह्मर्षि व्यास ने एक मिले-जुले वेद को हौत्र, आध्वर्य्यव, औद्गात्र, ब्राह्म आदि कर्मों की सुविधा के लिए ऋक्, यजु, साम और अथर्व भेद से चतुर्धा विभक्त किया—

"जातमात्रश्च यः सद्यः इष्टया देहमवीवृधत्।
वेदांश्चाधिजगे साङ्गान् सेतिहासान् महायशाः॥
विव्यासैकं चतुर्धा यो वेदं वेदविदां वरः।
परावरज्ञो ब्रह्मर्षिः कविः सत्यव्रतः शुचिः॥" (म० भा० १।५०।३,४)

अतीत और अनागत का वर्णन

सर्वज्ञकल्प भगवान् व्यास को वेद तथा आर्ष विज्ञान से भूत, भविष्य, वर्तमान, सन्निकृष्ट, विप्रकृष्ट, स्थूल एवं सूक्ष्म धर्म-ब्रह्म-सम्बन्धी सब वस्तुएँ विज्ञात थीं। उनके वर के प्रभाव से युद्धव्यस्त सञ्जय को भी भारत-संग्राम की सभी घटनाएँ हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष थीं।

"व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात् कृष्णात् साक्षात् कथयतः स्वयम्॥" (गीता १८।१५)

श्रीव्यास के वरप्रसाद से मैंने साक्षात् योग-निरूपण करते हुए योगेश्वर श्रीकृष्ण के मुख से इस योग को सुना था। अतः सर्वज्ञकल्प व्यास को वैशम्पायन और जनमेजय सम्बन्धी प्रश्नोत्तर भी ज्ञात थे, अतः महाभारत के एक लाख श्लोकों में ही उन सब प्रश्नोत्तरों का सङ्कलन होना पूर्णरूप से सम्भव था। इसी लिए वनपर्व में अनेक भविष्य की बातों का उल्लेख करते हुए उन्होंने बौद्धों के एडूक (गाडोवा) का भी उल्लेख किया है।

महाभारत की रचना का समय तथा द्वैपायन व्यास की काव्यशक्ति तथा श्रीगणेश के द्वारा लिखा जाना भी यह सिद्ध करते हैं कि चतुर्विंशत्साहस्री संहिता नहीं, किन्तु लक्षश्लोकात्मक ही भारत व्यासनिर्मित है—

"त्रिभिर्वर्षैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम्॥" (म० भा० १।६२।५२)

नित्य योगरत होकर कृष्णद्वैपायन मुनि ने तीन वर्षों में इस महाभारत आख्यान की रचना की।

गणेशजी के द्वारा महाभारत का लिखा जाना भी लक्षश्लोकात्मक महाभारत का व्यासकृतत्व सिद्ध करता है।

तप से और ब्रह्मचर्य से वेदों का शाखाभेद से विस्तार करके सत्यवतीसुत व्यास ने महाभारत इतिहास की रचना की। महाभारत को रचकर वे विचारने लगे कि इसे किसे पढ़ाया जाय।

इसी बीच वहाँ ब्रह्माजी आये। उनका स्वागत और पूजन करके उनके आज्ञानुसार उनके समीप ही व्यासजी बैठ गये और उन्होंने ब्रह्माजी को बताया कि वेदों का रहस्य, वेदाङ्ग, उपनिषद, वेदों का विस्तार तथा अन्य जो कुछ वेद में है वह सब पुनः इतिहास पुराणरूप में भूत, भविष्य और वर्तमान की स्थिति, जरा, मृत्यु, व्याधि के अस्तित्व तथा विनाश का निश्चय, धर्मों तथा आश्रमों के लक्षण, चारों वर्णों के धर्म, पुराणों का समग्र-तात्पर्य, तप, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा तथा युगों का प्रमाण, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दान, अन्तर्यामी का माहात्म्य, कर्मानुरूप दिव्य तथा मानुष जन्म, पवित्र तीर्थ, देश, नदियाँ, पर्वत, वन, समुद्र, दिव्य नगर, नगरव्यूहरचना, विभिन्न कोटि के मनुष्यों की भाषणपद्धति, नीतिशास्त्र तथा सर्वव्यापक ब्रह्म का मैंने निरूपण किया है। परन्तु मुझको कोई लेखक नहीं मिलता।

ब्रह्माजी बोले तुम रहस्यज्ञान के निधि हो, जन्म से लेकर तुम्हारी वेदवादिनी सत्यवादिनी वाणी को मैं जानता हूँ। तीनों आश्रम जैसे गृहस्थाश्रम से बढ़कर नहीं होते वैसे ही तुम्हारे काव्य से बढ़कर काव्य करने की सामर्थ्य कवियों में नहीं होगी। तुम अपना काव्य लिखने के लिए गणपति का स्मरण करो।

"उवाच च महातेजा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्॥
ब्रह्मन् वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया।
साङ्गोपनिषदां चैव वेदानां विस्तरक्रिया॥
इतिहासपुराणानामुन्मुखं निर्मितञ्च यत्।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च त्रिविधं कालसंज्ञितम्॥
जरा-मृत्यु-भय-व्याधि-भावाभावविनिश्चयः।
विविधस्य च धर्मस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम्॥
चातुर्वर्ण्यविधानञ्च पुराणानां च कृत्स्नशः।
तपसो ब्रह्मचर्यस्य पृथिव्याश्चन्द्रसूर्ययोः॥
ग्रहनक्षत्रताराणां प्रमाणं च युगैः सह।
न्यायशिक्षा चिकित्सा च दानं पाशुपतं तथा॥
हेतुनैव समं जन्म दिव्यं मानुषसंज्ञितम्।
तीर्थानाञ्चैव पुण्यानां देशानाञ्चैव कीर्तनम्॥
नदीनां पर्वतानाञ्च वनानां सागरस्य च।
पुराणाञ्चैव दिव्यानां कल्पानां युद्धकौशलम्॥
वाक्यजातिविशेषाश्च लोकयात्राक्रमश्च यः।
यच्चापि सर्वगं वस्तु तच्चापि प्रतिपादितम्॥
परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते।" (म० भा० १।१।६१-७०)

महाभारत में ही इन अनन्त ज्ञानों का भण्डार है। चतुर्विंशत्साहस्री संहिता में नहीं है। सौति ने कहा कि इस प्रकार आदेश देकर ब्रह्माजी अपने स्थान को चले गये। सत्यवतीपुत्र व्यास ने गणपति का स्मरण किया। भक्तमनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाले गणपति वहाँ आ पहुँचे।

व्यासजी ने उनकी विधिवत् पूजा करके कहा मैं मन में तैयार इस महाभारत को स्वयं बोलता हूँ आप लेखक बनें। गणपति ने कहा कि ठीक है, परन्तु लिखते लिखते मेरी लेखनी क्षण भर के लिए भी रुकनी नहीं चाहिये। इस तरह लिखा सको तो बोलो, मैं लिखने को तैयार हूँ। व्यास ने कहा आप समझे बिना कदापि न लिखें। व्यास की बात स्वीकार करके गणपति भगवान् स्वयं लिखने लगे।

व्यासजी कुतूहलपूर्वक गूढ़ रचना करने लगे, भारत के आठ हजार आठ सौ आठ श्लोक बड़े ही गूढ़ कहे जाते हैं। स्वयं व्यासजी की प्रतिज्ञा है कि उन्हें मैं स्वयं जानता हूँ एवं शुक जानते हैं, सञ्जय समझते हैं या नहीं, इसमें संशय है—

"अहं वेद्मि शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा।"

समर्थ गणपति भी इन श्लोकों का विचार करने के लिए क्षणभर रुक जाते थे। इस बीच व्यास बहुत से श्लोकों का निर्माण कर लेते थे।

किसी छोटे लेख के लेखक के लिए गणपति को लेखक बनाने का प्रसङ्ग सङ्गत नहीं। इस दृष्टि से भी लक्षश्लोकात्मक महाभारत व्यासदेव निर्मित और गणपति द्वारा लिखित है, यह मानना ही चाहिये।

इस प्रकार महाभारत में ही स्पष्ट उल्लेख होने पर तद्विपरीत कल्पना सर्वथा निराधार ही है। चतुर्विंशतिसाहस्री संहिता में आठ हजार आठ सौ आठ गूढ़ श्लोक नहीं हो सकते। उसके लिए तीन वर्ष का समय भी अनावश्यक नहीं है।

"त्रिभिर्वर्षैरिदं पूर्णं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
अखिलं भारतश्चेदं चकार भगवान् मुनिः॥
आकर्ण्य सततं भक्त्या जयाख्यं भारतं महत्।
श्रीश्च कीर्तिस्तथा विद्या भवन्ति सहिताः सदा॥"(म०भा०स्वर्गारोहण५।४८।४९)

"तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम्।
अब्रवीद् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः॥
जनमेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः।
शशास शिष्यमासीनं श्रावयामास भारतम्॥
कर्मान्तरेषु यज्ञस्य चोद्यमानः पुनः पुनः।" (म० भा० १।१।९७,९८)

के अनुसार धृतराष्ट्र आदि के परम गति को प्राप्त होने के पश्चात् जनमेजय तथा सहस्रों ब्राह्मणों के प्रश्न करने पर महान् ऋषि भगवान् व्यास ने अपने शिष्य वैशम्पायन को आदेश दिया और वैशम्पायन ने यज्ञकर्म के बीच बीच में बार बार प्रेरित होकर सदस्यों के साथ समासीन होकर भारत का श्रवण कराया। इससे भी स्पष्ट है कि पहले व्यास ने अपने शिष्यों को भारत सुनाया था। उसी को सर्पसत्र में वैशम्पायन ने जनमेजय को सुनाया। वैशम्पायन ने यही कहा भी था—

"शृणु राजन् पुरा सम्यग् मया द्वैपायनाच्छ्रुतम्।"

इसी को सौति ने भी शौनक को सुनाया—

"कृष्णद्वैपायनप्रोक्ताः सुपुण्या विविधाः कथाः।
कथिताश्चापि विधिवद् या वैशम्पायनेन वै ॥
श्रुत्वाहं ता विचित्रार्था महाभारतसंश्रिताः।" (म० भा० १।१।११)

कृष्णद्वैपायन व्यास के द्वारा कही हुई अतिशय पुण्यजनक जो कथाएँ वैशम्पायन ने कही थीं। महाभारत-संश्रित उन्हीं कथाओं को उनसे सुनकर मैं विविध तीर्थों और आयतनों में घूमता हुआ उस क्षेत्र में गया जहाँ युद्ध हुआ था। वहाँ से आप लोगों की दर्शनेच्छा से यहाँ आया हूँ।

ये सबकी सब शङ्काएँ मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदों के सम्बन्ध में भी उठती हैं।

"वाचाविरूपनित्यया", "अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा।"

के अनुसार मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद नित्य हैं, उनका सम्प्रदाय-प्रवर्तन ही विभिन्न कल्पों में होता है, निर्माण नहीं। परन्तु यदि घटना के अनुसार ग्रन्थ का उल्लेख माना जाय तब तो उर्वशीपुरूरवा तथा यम-यमी या यज्ञवल्क्य-मैत्रेयी के अनन्तर ही तत्संवादरूप ग्रन्थ का निर्माण मानना होगा।

परन्तु यह मानना पूर्वोक्त वचनों के विरुद्ध ही होगा। अतः वहाँ यही मानना पड़ता है कि वे आख्यायिकाएँ घटना पर निर्भर नहीं हैं। वे तो सुखावबोधनार्था आख्यायिकाएँ नित्य ही हैं। कभी उन्हीं के अनुसार घटनाएँ भी घट जाती हैं। इसीलिए वेद में घटनापूर्विका आख्यायिका नहीं, किन्तु आख्यायिकापूर्विका घटनाएँ होती हैं, यह सिद्धान्त देवताधिकरण में स्पष्टरूप से देखा जा सकता है।

महाभारत व्यास द्वारा ही रचित है इस सम्बन्ध में बालव्यास पं० ब्रह्मश्री सुब्रह्मण्य शास्त्री ने विभिन्न पुराणों के भी प्रमाण दिये हैं।

विष्णुपुराणे अ० ३ एवं पाद्मे सृष्टिखण्डं १

"कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।
को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षाद् महाभारतकृद् भवेत् ॥"

मार्कण्डेयपुराणे अध्याय १

"तपःस्वाध्यायनिरतं मार्कण्डेयं महामुनिम्।
व्यासशिष्यो महातेजा जैमिनिः पर्यपृच्छत ॥
भगवन् भारताख्यानं व्यासेनोक्तं महात्मना।
पूर्णमस्तमलैः शुभ्रैः नानाशास्त्रसमुच्चयैः ॥
जातिशुद्धसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम्।
पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥"

ततः "त्रिदशानां यथा विष्णुः" इत्यादि = "आचारस्थितिसाधनम्। इत्यन्तं भारतस्य बहु प्रशंसां कृत्वा पुनः—

"प्रोक्तमेतन्महाभाग वेदव्यासेन धीमता।
तथा तात कृतं ह्येतद् व्यासेनोदारकर्मणा ॥
यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते।
व्यासवाक्यजलौघेन कुतर्कतरुहारिणा ॥

वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्का मही कृता।
कलशब्दमहाहंसं महाख्यानपराम्बुजम्॥
कथाविस्तीर्णसलिलं कार्ष्णं वेदं महाह्रदम्।
तदिदं भारताख्यानं बह्वर्थमिह विस्तरम्॥
तत्त्वतो ज्ञातुकामोऽहं भगवंस्त्वामुपस्थितः।"

इति एतेन उपाख्यानसहितस्य महाभारतस्य वेदव्यासैककर्तृकत्वं सिद्धयति। किञ्च विरोधाभावत्वं सकलशास्त्रसम्प्रदायसमन्वितत्वं च।

सूतसंहितायां अ० १—"व्यस्तवेदतया व्यास इति लोके श्रुतो मुनिः।
अयं साक्षान्महायोगी व्यासः सर्वज्ञ ईश्वरः॥
महाभारतमाश्चर्यं निर्ममे भगवान् गुरुः।" इति
"कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्।
को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षाद् महाभारतकृद् भवेत्॥

देवीभागवते अ० १—"अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमतुलं चक्रे तदुपबृंहितम्॥"

श्रीमद्भागवते स्कन्ध १ अ० ५—
"स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा।
इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम्॥"

मत्स्यपु० अ० ५५—"अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्॥"
"प्रकाशो जनितो लोके महाभारतचन्द्रमाः।" इति

स्कन्दपु० प्रभासखण्ड अ० २
'सत्यवतीसुतः···· ···· ···· ···· ···· ···· ···· ।
भारताख्यानमकरोद् वेदार्थैरुपबृंहितम्॥
लक्षेणैकेन तत् प्रोक्तं द्वापरान्ते महात्मना।"

शौनकोक्तचरणव्यूहपरिशि० ९
"लक्षं तु चतुरो वेदा लक्षं भारतमेव च॥"

गीताध्यायान्ते इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्याम् इत्यादि।

आर्यासप्तशत्यां गोवर्द्धनाचार्यकृतायाम् (१०८०-११३० मध्ये)
"व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे।
भूषणतयेव संज्ञां तदंकतां भारती वहति॥"

एतानि सर्वाणि वचनानि महाभारतस्य लक्षग्रन्थात्मकतां व्यासैककर्तृकतां महाभारतभारतनामभ्यामेक एव ग्रन्थः इत्यादिकं ऐककण्ठ्येन निःसंशयेन च उद्घोषयन्ति।

उपर्युक्त विविध पुराणवचनों में कहा गया है कि लक्ष श्लोकों का महाभारत व्यासकृत है। व्यास सर्वज्ञ विष्णु के अवतार ही हैं। महाभारत सब वेदों का एवं शास्त्रों का समन्वित सार है।

"जयो नामेतिहासोऽयम्"

यह भी लक्षश्लोकात्मक महाभारत के लिए ही कहा गया है।

विशेषरूप से उद्योगपर्व के अध्याय १३३ से १३६ तक कुन्ती द्वारा कथित विदुलोपाख्यान नाम से प्रसिद्ध इतिहास जय नाम से कहा गया है।

"जयनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजगीषुणा।" (म० भा० ५।१३६।१८)

इसी जयोपाख्यानरूप बीज का महान् वृक्षरूप महाभारत को मानकर उसका भी जयनाम लें तो उचित ही है।

इतना ही क्यों, शब्दकल्पद्रुम में उद्धृत निम्नोक्त वचन के आधार पर अठारह पुराण, रामायण, कृष्ण-द्वैपायनोक्त पञ्चमवेद महाभारत, शाश्वत विष्णुधर्म एवं शिवधर्म इन सबका जय नाम है।

इस तरह महाभारत का ही जय नाम है उसी का भारत तथा महाभारत नाम है—

"अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा।
कार्ष्णं वेदं पञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः॥
तथैव विष्णुधर्माश्च शिवधर्माश्च शाश्वताः।
जयेति नाम तेषाञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः॥"

इसी दृष्टि से आरम्भ में और अनेकों बार महाभारत में—

"नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

कहा गया है। अर्थात् नारायण परमेश्वर कृष्ण और नर अर्जुन तथा नरोत्तम प्रत्यक्चैतन्याभिन्न शुद्ध ब्रह्म तथा ब्रह्मविद्यारूपिणी सरस्वती को नमस्कार करके ही जय का वर्णन करना चाहिये।

पूर्वोक्त रीति से पुराणादि सभी का नाम जय है। तथापि विशेषरूप से १८ संख्यावाले महाभारत ग्रन्थ का जय यह संकेत है। वाल्मीकिरामायण के टीकाकार सर्ग के श्लोकों की संख्या अक्षरों के संकेत से करते हैं। यथा—

"कादयोऽङ्काष्टादयोऽङ्का पाद्या पञ्च प्रकीर्तिताः।
यादयोऽष्टौ ञनौ पूर्णे विज्ञेयस्वरशास्त्रके॥"

क से झ तक के अक्षर क्रमशः एक से नौ तक के वाचक हैं। ट से ध तक के अक्षर भी एक से नौ तक के वाचक हैं। प से म तक एक से पाँच तक के वाचक हैं। य से ह तक के अक्षर एक से आठ तक के वाचक हैं। ञ और न ये दो अक्षर पूर्ण संख्या के वाचक हैं।

जैमिनिसूत्र तथा आर्षसिद्धान्त भी ऐसी संख्या का वर्णन करते हैं।

उपर्युक्त रीति से ज ८ का वाचक है और य एक का वाचक है। 'अङ्कानां वामतो गतिः' के अनुसार जय शब्द १८ संख्या का बोधक है। महाभारत १८ पर्व का है, महाभारतयुद्ध भी अठारह दिन हुआ। दोनों दलों में सेना १८ अक्षौहिणी थी। गीता १८ अध्याय की है। इस तरह ग्रन्थ का नाम जय हुआ।

कुछ लोग कहते हैं, भारत के पात्र युधिष्ठिर, अर्जुन आदि ऐतिहासिक पुरुष नहीं हैं, किन्तु धर्म, अधर्म, देव, असुर के तुल्य ही कौरव तथा पाण्डव कल्पनामात्र हैं, पर यह ठीक नहीं, क्योंकि महाभारत के पात्र यदि कल्पित होते, ऐतिहासिक न होते तो दूसरे ग्रन्थ अपने ग्रन्थों में उन्हें स्थान न देते, परन्तु महाभारत के युधिष्ठिर आदि

पाण्डवों का उल्लेख पुराणों, ज्योतिषशास्त्रों "शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।" बृहत्संहिता ज्योतिषशास्त्र तथा पाणिनिसूत्र 'वासुदेवार्जुनाभ्यां वुन्' ४।३।९८ में उल्लेख आता है। मनु के आख्यानानीतिहासांश्च ३।२३२ की टीका मेधातिथि एवं कुल्लूक ने 'इतिहासा भारतादयः' कहा है। भारतीय इतिहास का निम्नोक्त लक्षण है—

"धर्मार्थकाममोक्षाणामुपदेशसमन्वितम्।
पूर्ववृत्तकथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते॥"

गड़े मुर्दों के उखाड़ने जैसी पुरानी बातों को बार-बार दुहराना ही इतिहास नहीं है, किन्तु धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के उपदेश के साथ वृत्तान्तों का वर्णन ही इतिहास है। भले ही कहीं कहीं महाभारत को पुराण कहा है—

"द्वैपायनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा।
इतिहासमिमं विप्राः पुराणं परिचक्षते॥" (१।२।१७)

तथापि महाभारत में इसे इतिहास और महाभारतकाव्य ही कहा गया है—

"कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम्।" (१।१।९१)

"तपसा ब्रह्मचर्येण व्यस्य वेदं सनातनम्।
इतिहासमिमं चक्रे पुण्यं सत्यवतीसुतः॥" (म० भा० आ० प० १।५४)

कविता के भेद से कर्ता के भेद की कल्पना भी निःसार है, क्योंकि स्वयं व्यास ने ही स्वीकार किया है कि आठ हजार आठ सौ श्लोक बड़े ही कठिन हैं उन्हें कोई नहीं जान सकता है और उनका निर्माण गणेश भगवान् की लेखनी के किञ्चित् अवरोध के लिए ही किया गया है—

"ग्रन्थग्रन्थिं तदा चक्रे मुनिर्गूढं कुतूहलात्।
यस्मिन् प्रतिज्ञया प्राह मुनिर्द्वैपायनस्त्विदम्॥
अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।
अहं वेद्मि शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा॥" (म० भा० १।१।८०, ८१)

और यह अन्य कवियों में भी देखा ही जाता है। विषयभेद से, परिस्थितिभेद से एवं मानस के उल्लास और अनुल्लास आदि के भेद से भी काव्यभेद होता ही है। इसी तरह समास-व्यास-भेद से पुनरुक्तियों का भी समाधान किया जा सकता है।

"विस्तीर्यैतन्महज्ज्ञानमृषिः संक्षिप्य चाब्रवीत्।
इष्टं हि विदुषां लोके समासव्यासधारणम्॥" (म० भा० १।१।५१)

महाभारत का काल-निर्णय

महाभारत में ही महाभारत के निर्माण का काल निर्दिष्ट है—

"त्रीनग्नीनिव कौरव्यान् जनयामास वीर्यवान्।
उत्पाद्य धृतराष्ट्रं च पाण्डुं विदुरमेव च॥
जगाम तपसे धीमान् पुनरेवाश्रमं प्रति।
तेषु जातेषु वृद्धेषु गतेषु परमां गतिम्॥

अब्रवीत् भारतं लोके मानुषेऽस्मिन् महानृषिः।
जनमेजयेन पृष्टः सन् ब्राह्मणैश्च सहस्रशः॥
शशास शिष्यमासीनं वैशम्पायनमन्तिके।
स सदस्यैः सहासीनः श्रावयामास भारतम्॥"

अर्थात् महर्षि व्यास तीन अग्नियों के समान तेजस्वी कुरुवंशीय धृतराष्ट्र, पाण्डु तथा विदुर को उत्पन्न करके तपस्या के लिए वन में अपने आश्रम में चले गये। जब तीनों ही पुत्र परमगति को प्राप्त हो गये तब महर्षि व्यास ने मनुष्य-लोक में महाभारत का निरूपण किया। हजारों ब्राह्मणों के साथ जनमेजय के प्रश्न करने पर अपने शिष्य वैशम्पायन को आज्ञा दी कि तुम इन लोगों को महाभारत सुनाओ। वैशम्पायन ने यज्ञ के सदस्यों के साथ आसीन होकर यज्ञ के बीच बीच में बारम्बार उनसे प्रेरित होकर महाभारत सुनाया। इससे स्पष्ट है कि जनमेजय के सर्पसत्रयज्ञ से पूर्व और पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुर के देहावसान के पश्चात् महाभारतसंहिता की रचना हुई। पाण्डु युद्ध के पहले ही देह त्याग चुके थे। महाभारतयुद्ध के २०वें वर्ष में धृतराष्ट्र को परम पद प्राप्त हुआ था। युद्ध के पश्चात् १५ वर्ष तक धृतराष्ट्र युधिष्ठिर के साथ रहे थे। सोलहवें वर्ष भीम के वाग्बाण से पीड़ित हो विरक्त होकर विदुर के साथ वन चले गये।

"ततः पञ्चदशे वर्षे समतीते नराधिपः।
राजा निर्वेदमापेदे भीमवाग्बाणपीड़ितः॥" (आश्रमवासिक पर्व अध्याय ६।१५)

वहाँ धर्माचरण करते हुए एक वर्ष बीतने पर देवर्षि नारद ने युधिष्ठिर से कहा था कि धृतराष्ट्र के जीवन के अभी तीन वर्ष शेष हैं—

"तत्राहमिदमश्रौषं शक्रस्य वदतः स्वयम्।
वर्षाणि त्रीणि शिष्टानि राज्ञोऽस्य परमायुषः॥" (आश्रमवासिक पर्व २।३२)

मैंने इन्द्र के मुख से सुना है कि धृतराष्ट्र की परमायु अभी ३ वर्ष शेष है। तथा च भारत युद्ध के २० वर्ष बीतने पर महाभारत का निर्माण हुआ।

भारत युद्ध के ३६ वर्ष बीतने पर परीक्षित् का राज्याभिषेक हुआ। परीक्षित् ने ६० वर्ष तक राज्य किया।

"प्रजा इमास्तव पिता षष्टिवर्षाण्यपालयत्।
ततो दिष्टान्तमापन्नः सर्वेषां दुःखमावहन्॥" (आदिपर्व ४९।७)

मन्त्रियों ने जनमेजय से कहा था कि तुम्हारे पिता ६० वर्ष तक पृथिवी का पालन करके हम सबकी दुःखजनक मृत्यु को प्राप्त हुए। सौप्तिक पर्व में भी यही कहा है—

"विदित्वा परमास्त्राणि क्षत्रधर्मव्रते रतः।
षष्टिवर्षाणि धर्मात्मा वसुधां पालयिष्यति॥" (सौप्तिक पर्व १६।१४)

महाभारत-युद्ध से ९६ वर्ष पर बाल्यदशा में ही जनमेजय का राज्याभिषेक हुआ। वयस्क होने पर विवाह हुआ और कुछ ही दिनों बाद उत्तङ्क की प्रेरणा से जनमेजय ने सर्पसत्रयज्ञ आरम्भ किया। उसी में वैशम्पायन ने महाभारत सुनाया। उसी महाभारत को महर्षि व्यास ने जयनामक महाकाव्य के रूप में विविध उपाख्यानों के सहित लिखा। वही भारतीय युद्ध का विशद इतिहास है। यह युधिष्ठिर के विजय के उपलक्ष्य में लिखा गया था। इसीलिए युद्ध के २० वर्ष बाद और युधिष्ठिर के स्वर्गारोहण के १६ वर्ष पहले युधिष्ठिर के समय में ही लिखा गया था। यद्यपि ऐसे काव्य विजय के बाद शीघ्र ही लिखे जाते हैं तथापि धृतराष्ट्र के सामने उसका लिखा जाना उचित नहीं था, क्योंकि युधिष्ठिर बड़ी तत्परता से धृतराष्ट्र को प्रसन्न और तुष्ट रखने का प्रयत्न करते रहते थे।

"यथा पुत्रवियुक्तोऽयं न किञ्चिद् दुःखमाप्नुयात्।
इति तानन्वशाद्राजा नित्यमेव युधिष्ठिरः ॥
निदेशे धृतराष्ट्रस्य यस्तिष्ठति स मे सुहृद्।
विपरीतश्च मे शत्रुः नियम्यश्च भवेन्नरः ॥" (म०भा०आदिपर्व २५।२,३)

महाभारत में वासुदेव की महिमा और युधिष्ठिर की प्रशंसा के साथ धार्तराष्ट्रों की निन्दा भी है—

"वासुदेवस्य माहात्म्यं पाण्डवानां च सत्यताम्।
दुर्वृत्तं धार्तराष्ट्राणामुक्तवान् भगवानृषिः ॥"

अतः धृतराष्ट्र के परमपदप्राप्ति के पश्चात् ही महाभारत का उल्लेख सङ्गत है, किन्तु गीता का प्रादुर्भाव तो युद्धारम्भ के प्रथम दिन ही हुआ था।

महाभारत युद्धकाल

पुराणों में कलियुग का आरम्भकाल, महाभारत-युद्धकाल और परीक्षित् का जन्मकाल एक ही माना गया है। महाभारत-युद्धकाल का पुष्ट प्रमाण निम्नोक्त है—

"अन्तरे चैव सम्प्राप्ते कलिद्वापरयोरभूत्।
समन्तपञ्चके युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥" (म० भा० आदिपर्व २।१३)

कलियुग और द्वापर के मध्य में समन्तपञ्चक कुरुक्षेत्र में कौरवों और पाण्डवों की सेनाओं का युद्ध हुआ था। कलिसंवत् एवं भारतयुद्धसंवत् के रूप में वही काल कहा जाता है। ज्योतिषग्रन्थों तथा पञ्चाङ्गों के अतिरिक्त कुछ शिलालेखों में भी इसका उल्लेख है। श्रीमद्भागवत से भी उक्त काल पुष्ट होता है—

"तेनैव ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्।
ते त्वदीये द्विजाः काले अधुना चाश्रिता मघाः ॥
यदा देवर्षयः सप्त मघासु विचरन्ति हि।
तदा प्रवृत्तस्तु कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः ॥"

प्रत्येक नक्षत्र पर सप्तर्षि १०० वर्ष रहते हैं। वे सप्तर्षि तुम्हारे जन्मकाल में मघा नक्षत्र पर थे और आज तुम्हारे अन्तकाल में भी मघा नक्षत्र पर ही हैं। और जब सप्तर्षि मघा पर आये हैं तभी से दिव्य (देवताओं के) १२०० वर्षों का ४ लाख बत्तीस हजार मानव वर्षोंवाला कलियुग प्रवृत्त हुआ है। इसका आरम्भ ईसवीय सन् के प्रारम्भ से ३१०२ वर्ष पूर्व फरवरी मास की ८वीं तारीख के प्रातःकाल से हुआ था।

इस तरह महाभारत की प्राचीनता सिद्ध होने से पाश्चात्यों एवं बुल्के का मत सुतरां खण्डित हो जाता है। जब महाभारत पाँच हजार वर्ष से भी अधिक प्राचीन है तब महाभारत में वर्णित रामायण की अत्यधिक प्राचीनता सुतरां सिद्ध होती है। पुराणवचनों के अनुसार भी २४वें त्रेता में वसिष्ठसहित राम का प्रादुर्भाव हुआ था। उसी समय महर्षि वाल्मीकि का भी आविर्भाव हुआ था। इस दृष्टि से २४वें त्रेता में द्वापर की सन्धि में अर्थात् इस वर्ष से एक करोड़ सतहत्तर लाख उनचास हजार तिहत्तर १७७४९०७३ वर्ष पूर्व श्रीराम के शासनकाल में रामायण का निर्माण हुआ था। इस तरह रामायण संसार का सर्वाधिक प्राचीन आर्ष इतिहासग्रन्थ है।

✽

३ पृष्ठ खाली

प रि शि ष्ट

(१)

रामोपासना

अथ भूशुद्ध्यादि—"देवो भूत्वा यजेद् देवान् नादेवो देवमर्चयेत्" (आह्निककारिका) के अनुसार सभी प्रकार की उपासनाओं में भूशुद्ध्यादि अपेक्षित होते हैं। स्नान, सन्ध्यादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर प्रातःकाल पवित्र आसन पर बैठकर 'केशवाय नमः, नारायणाय नमः, माधवाय नमः तीन बार आचमन कर प्राणायाम करना चाहिये। रां बीज से प्राणायाम करते हुए मूलाधार में ज्योतिर्मयलिङ्ग को साढ़े तीन वलय से वेष्टित करके स्थित कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये। हुँ बीज से कुण्डलिनी को जागरित कर हृदयप्रदेश में अवस्थित प्रकाशपुञ्जमय जीव को मुख में रखकर ब्रह्मरन्ध्र में ले जाकर हंसः सोहम् इस मन्त्र से ब्रह्म के साथ जीव की एकरूपता के साथ मिलाप की भावना करनी चाहिये। दक्षिण कुक्षि में अवस्थित अधोमुख पापपुरुष का ध्यान करते हुए पूरक में यं बीज का १६ बार उच्चारण करते हुए पापपुरुष का शोषण कर कुम्भक में रं बीज का ६४ बार उच्चारण कर पाप-पुरुष को भस्म कर देना चाहिये। पुनः रेचक में ३२ बार यं बीज का उच्चारण कर पापपुरुष का भस्म बाहर निकाल देना चाहिये। ब्रह्मरन्ध्रगत चन्द्रमण्डल में अवस्थित होकर अमृतवर्षा करनेवाली अमृतेश्वरी देवी का ध्यान कर उनके शरीर से झरनेवाली अमृत-वर्षा से अपने को आप्लावित होने की भावना करनी चाहिए इसका नाम भूशुद्धि है।

"ब्रह्मरन्ध्रगते चन्द्रमण्डलेऽमृतवर्षिणीम्।
भवानीं भूमिशुद्ध्यर्थं भावयेदमृतेश्वरीम् ॥
ततस्तन्मौलिनिष्यन्दसुधाकल्लोलवृष्टिभिः।
चिन्तयेन्मनसात्मानं भूमिशुद्धिरियं भवेत् ॥"

अथ भूतशुद्धिः—प्राणायाम करके कुम्भक में लं वं रं यं हं इन पाँच महाभूतों के बीजों की एक आवृत्ति करके अपवादप्रक्रिया द्वारा समस्त पार्थिव प्रपञ्च पृथिवी में, पृथिवी जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंतत्त्व में, अहंतत्त्व महत्तत्त्व में, महत्तत्त्व अव्यक्त तत्त्व में एवं अव्यक्त तत्त्व परम सत्तत्त्व में में लीन हो गया ऐसी भावना करनी चाहिए। वं बीज से प्राणायाम करते हुए कुम्भक में अध्यारोपप्रक्रिया द्वारा पर-ब्रह्म से महदादिक्रमेण आकाश, आकाश से वायु, वायुसे तेज, तेज से जल, जल से पृथिवी और पृथिवी से सद्वासनात्मक दिव्य तेजोमय उपासनायोग्य अपना शरीर उत्पन्न कर सोहं इस मन्त्र से परब्रह्म में मिली हुई कुण्डलिनी का अवहार कर उसके मुख में स्थित जीव को हृदयदेश में रखकर मूलाधार में ज्योतिर्लिङ्ग को साढ़े तीन घेरों से वेष्टित कर अवस्थित हुई कुण्डलिनी की भावना करनी चाहिये। इसके पश्चात् आं ह्रीं क्रों तीन बीजों का उच्चारण कर 'मम प्राणा इह प्राणाः, मम जीव इह स्थितः, मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि, मम श्रोत्रत्वक्चक्षूरसन-घ्राणवाक्पादपाणिपायूपस्थानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' यह मन्त्र पढ़कर हृदय प्रदेश में अङ्गुष्ठ-स्थापित कर असुनी ते० और मनो जूति० दोनों मन्त्र पढ़ने चाहिये यह प्राणप्रतिष्ठा है।

"रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढ़ा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमथगुणमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान् ॥
बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ॥

इस मन्त्र का उच्चारण करे। इष्टमन्त्र से पाँच प्राणायाम कर के—

"अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥"

इस मन्त्र का उच्चारण कर एक साथ वामपाद की एड़ी से भूतल का तीन बार ताड़न, तीन बार कर का आस्फोटन और क्रूर दृष्टयवलोकन एवं तालत्रय से भौम, आन्तरिक्ष तथा दिव्य सभी विघ्नों का उत्सारण करना चाहिए। पश्चात् आत्मा में देवत्व-भावना करते हुए देह में न्यास आदि करने चाहिये।

अथ मातृकान्यासः—

अस्य मातृकान्यासमहामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीछन्दः मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः बिन्दवः कीलकानि न्यासे विनियोगः।

ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि। गायत्रीछन्दसे नमो मुखे। मातृकासरस्वतीदेवतायै नमो हृदये। हल्भ्यो बीजेभ्यो नमो गुह्ये। स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः पादयोः। बिन्दुभ्यः कीलकेभ्यो नमो नाभौ। विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे।

करसम्पुट में (अर्थात् अञ्जलि बाँधकर) सभी मातृकाओं की भावना करके तीन बार अपने सर्वाङ्ग में व्यापक न्यास करना चाहिये।

हृदयादिन्यास और करादिन्यास में उपनीत त्रैवर्णिक प्रणव का प्रयोग कर सकते हैं। अन्य लोगों को ऐं ह्रीं श्रीं अथवा रां बीज का प्रयोग करना चाहिये। रां अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। रां इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः। रां उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः। रां एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः। रां ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। रां अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

रां अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः। रां इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा।
रां उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्। रां तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्।
रां ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्राय वौषट्। रां अं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः
अस्त्राय फट्।

ये दोनों करादिन्यास और हृदयादिन्यास करने चाहिये।

इसी प्रकार "पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोःपादयुक्कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत्कपर्दाकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम्।
अक्षस्रक्कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्रीक्षणामब्जसंस्था-
मच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामः ॥"

इस मन्त्र से मातृका सरस्वती का ध्यान करके निम्नोक्त रीति से एक एक वर्ण का अङ्गों में न्यास करना चाहिये।

अं नमः शिरसि । आं नमो मुखे । इं नमो दक्षनेत्रे । ईं नमो वामनेत्रे । उं नमो दक्षकर्णे । ऊं नमो वामकर्णे । ऋं नमो दक्षनासायाम् । ॠं नमो वामनासायाम् । लृं नमो दक्षगण्डे । ॡं नमो वामगण्डे । एं नम ऊर्ध्वोष्ठे । ऐं नमोऽधरोष्ठे । ओं नम ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ । औं नमोऽधोदन्तपङ्क्तौ । अं नमः शिरसि मुखान्ते जिह्वाग्रे । अः नमो मुखान्ते कण्ठे च । कं नमो दक्षबाहुमूले । खं नमो दक्षबाहुमध्यसन्धौ । गं नमो दक्षमणिबन्धे । घं नमो दक्षाङ्गुलिमूले । ङं नमो दक्षाङ्गुल्यग्रे । चं नमो वामबाहुमूले । छं नमो वामबाहुसन्धौ । जं नमो वाममणिबन्धे । झं नमो वामाङ्गुलिमूले । ञं नमो वामाङ्गुल्यग्रे । टं नमो दक्षोरुमूले । ठं नमो दक्षजानुनि । डं नमो दक्षजङ्घापादसन्धौ । ढं नमो दक्षपादाङ्गुलिमूले । णं नमो दक्षपादाङ्गुल्यग्रे । तं नमो वामोरुमूले । थं नमो वामजानुनि । दं नमो वामजङ्घापादसन्धौ । धं नमो वामपादाङ्गुलिमूले । नं नमो वामपादाङ्गुल्यग्रे । पं नमो दक्षपार्श्वे । फं नमो वामपार्श्वे । बं नमः पृष्ठे । भं नमो नाभौ । मं नमो जठरे । यं नमो हृदि । रं नमो दक्षस्कन्धे । लं नमो वामस्कन्धे गलपृष्ठे ककुदि । वं नमो वामस्कन्धे । शं नमो हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम् । षं नमो हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम् । सं नमो हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम् । हं नमो हृदयादिवामपादाङ्गुल्यन्तम् । लं नमो हृदयादिगुह्यान्तम् । क्षं नमो हृदयादिमूर्धान्तम् ।

अथान्तर्मातृकान्यासः—

"आधारे लिङ्गनाभौ हृदयसरसिजे तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्धे चतुष्के ।
वासान्ते भालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हं क्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकल दलगतं वर्णरूपं नमामि ।।

के अनुसार मूलाधार चतुर्दलकमल के चारों दलों पर वं शं षं सं इन चारों वर्णों का ध्यान करके सिद्धि-बुद्धिसहित महागणपति का स्मरण कर पञ्चोपचार मानस पूजन कर ६०० हंसः सोहम् इस अजपागायत्री मन्त्र का जप उन्हें समर्पण करना चाहिए । स्वाधिष्ठान के षट् दलों पर बं भं मं यं रं लं इन ६ बीजों का ध्यान कर उन बीजों पर अधिष्ठित महासरस्वती सहित ब्रह्मा का पञ्चोपचार मानस पूजन कर उन्हें छः हजार अजपागायत्री का जप समर्पण करना चाहिये । मणिपूर में दशदलों पर डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं इन दश बीजों का ध्यान कर उनपर अधिष्ठित महालक्ष्मीसहित विष्णु का पञ्चोपचार मानस पूजन कर उन्हें ६००० अजपागायत्री का जप समर्पण करना चाहिये । अनाहत के द्वादश दलों पर कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं इन बीजों का ध्यान कर उन बीजों पर अधिष्ठित पार्वतीसहित परमशिव का पञ्चोपचार मानस पूजन कर उन्हें छः हजार अजपागायत्री का जप समर्पण करना चाहिये । विशुद्ध के षोडश दलों पर अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः इन षोडश बीजों का ध्यान कर उनपर अधिष्ठित प्राणशक्तिसहित जीव का पञ्चोपचार मानस पूजन कर उसे एक हजार अजपागायत्री का जप समर्पण करना चाहिये । आज्ञाचक्र में द्विदलपद्म पर हं क्षं इन वर्णों का ध्यान कर वहाँ अधिष्ठित ज्ञानशक्ति सहित गुरु को एक सहस्र अजपागायत्री जप का समर्पण करना चाहिये । ब्रह्मरन्ध्र से सहस्र दलों पर उक्त सभी बीजों का विंशति आवर्तन करके उनपर स्थित इष्टदेवता के लिए एक सहस्र अजपाजप निवेदन करना चाहिये ।

अजपाजपस्वरूप—

"हकारेण बहिर्याति सकारेणाविशेत् पुनः ।
हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ।।
शतानि षट् दिवारात्रं सहस्राण्येकविंशतिः ।।६२।।

एतत्संख्यान्वितं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा ।।
अस्याः सङ्कल्पमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते ।।६३।।"

प्रत्येक प्राणी के श्वास लेने पर स एवं श्वास निकालने पर ह का स्वाभाविक रूप से उच्चारण होता है। हंकार उच्चारण करता हुआ श्वास बाहर जाता है एवं सकार उच्चारण करता हुआ भीतर वापस लौटता है। इसी प्रकार रा एवं म इन दोनों अक्षरों की भावना की जा सकती है। राममन्त्र के समान ही हंसमन्त्र परमेश्वर का मन्त्र है। अद्वैतसिद्धान्त के अनुसार हंसः सोहं इस प्रकार अनुलोम विलोम में मैं (जीव) सः वह (परमात्मा) है और वह (परमात्मा) मैं त्वंपदलक्ष्यार्थ साक्षी रूप हूँ इत्यादि अर्थ होता है। स्वभाव से इस मन्त्र का अहोरात्र में २१ हजार ६ सौ जप हो जाता है। प्रातः नियमित समय में पूर्वोक्त विधि से भावनापूर्वक तत्तत् चक्रस्थ देवताओं को समर्पणमात्र से महान् फल होता है।

उसका संक्षिप्त सङ्कल्प निम्नोक्त है—"षट्शताधिकैकविंशतिसाहस्रिकां निःश्वासोच्छ्वासरूपां अजपागायत्रीं मूलाधारादिब्रह्मरन्ध्रान्तसप्तचक्रनिवासिनीभ्यो देवताभ्यो निवेदयामि ।

पृथक् पृथक् सङ्कल्प निम्नोक्त है—मूलाधारे रक्तवर्णे वं शं षं सं चतुरक्षरे चतुर्दलपद्मे ऐरावतवाहनस्थिते चतुष्कोणयन्त्रे लं बीजे स्थिताय कुङ्कुमवर्णाय सिद्धिबुद्धिसहिताय महागणपतये षट्शतपरिमितमजपागायत्रीजपं समर्पयामि। स्वाधिष्ठाने सिन्दूरवर्णे बं भं मं यं रं लं षडक्षरे षड्दलपद्मे मकरवाहनस्थिते अर्धचन्द्रयन्त्रे वं बीजे स्थिताय महासरस्वतीसहिताय ब्रह्मणे षट्सहस्रपरिमितमजपागायत्रीजपं समर्पयामि ।

मणिपूरे नीलवर्णे डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं दशाक्षरे दशदलपद्मे मेषवाहनस्थिते त्रिकोणयन्त्रे रं बीजे स्थिताय महालक्ष्मीसहिताय विष्णवे षट्सहस्रपरिमितमजपागायत्रीजपं समर्पयामि ।

अनाहतचक्रे अरुणवर्णे कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं द्वादशाक्षरे द्वादशदलपद्मे हरिणवाहनस्थिते षट्कोणयन्त्रे यं बीजे स्थिताय पार्वतीसहिताय परमशिवाय षट्सहस्रपरिमितमजपागायत्रीजपं समर्पमामि ।

विशुद्धौ धूम्रवर्णे अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः षोडशाक्षरे षोडशदलपद्मे हस्तिवाहनस्थिते शून्ययन्त्रे हं बीजे स्थिताय प्राणशक्तिसहिताय जीवाय सहस्रमेकमजपागायत्रीजपं निवेदयामि ।

आज्ञाचक्रे श्वेतवर्णे हं क्षं द्व्यक्षरे द्विदलपद्मे नादवाहनस्थिते ॐकारान्तर्गते लिङ्गमन्त्रे स्थिताय ज्ञानशक्तिसहिताय गुरवे सहस्रमेकमजपागायत्रीजपं समर्पयामि। ब्रह्मरन्ध्रे चित्रवर्णे सहस्रदलपद्मे पञ्चाशद्भिर्मातृकाभिर्विंशतिकृत्वोऽधिष्ठिते बिन्दुवाहनस्थिते विसर्गयन्त्रे पूर्णचन्द्रमण्डले आनन्दमहासमुद्रमध्ये चिन्मयमणिद्वीपे चित्सारचिन्तामणिमन्दिरे कल्पवृक्षाधस्तले अव्यक्तब्रह्ममहासिंहासने स्थिताय चिच्छक्तिसहिताय परमात्मने सहस्रमेकमजपागायत्रीजपं समर्पयामि ।

जपप्रकारो यथा—अस्य श्रीरामषडक्षरमहामन्त्रराजस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः श्रीरामचन्द्रपरमात्मा देवता रां बीजं नमः शक्ती रामायेति कीलकम् चतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः। अथ ऋष्यादिन्यासः—ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि। गायत्रीछन्दसे नमो मुखे। रामचन्द्रपरमात्मदेवतायै नमो हृदये। रां बीजाय नमो गुह्ये। नमः शक्त्ये नमः पादयोः। रामायेति कीलकाय नमो नाभौ। विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

कुछ क्षण हंसः सोहं इस प्रकार श्वासोच्छ्वास में भावना करनी चाहिये। फिर मन्त्रजप करना चाहिये।

अथ करन्यासः—रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। रीं तर्जनीभ्यां नमः। रूं मध्यमाभ्यां नमः। रैं अनामिकाभ्यां नमः। रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अथ हृदयादिषडङ्गन्यासः—रां हृदयाय नमः। रीं शिरसे स्वाहा। रूं शिखायै वषट्। रैं कवचाय हुम्। रौं नेत्राभ्यां वौषट्। रः अस्त्राय फट्। उपनीत द्विजाति को ही स्वाहा का उच्चारण करना चाहिये। अन्य लोगों को नमः का उच्चारण करना चाहिये।

अथ अङ्गन्यासः—रां नमो ब्रह्मरन्ध्रे। रां नमो भ्रुवोर्मध्ये। मां नमो हृदि। यं नमो नाभौ। नं नमो लिङ्गे (उदकस्पर्शः)। मं नमः पादयोः।

अथ ध्यानम्— "कालाम्भोधरकान्तिकान्तमनिशं वीरासनाध्यासितं
मुद्रां ज्ञानमयीं दधानमपरं हस्ताम्बुजं जानुनि।
सीतां पार्श्वगतां सरोरुहकरां विद्युन्निभां राघवं
पश्यन्तीं मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाङ्गं भजे॥"

आनन्दसमुद्र के मध्य में चिन्मयमणिद्वीप में चित्सारचिन्तामणिमन्दिर में कल्पवृक्ष के मूल में अव्याकृत ब्रह्ममय दिव्य सिंहासन पर श्रीरामचन्द्र प्रभु विराजमान हैं। बायें करकमल को घुटने पर रखकर दाहिने से ज्ञानमयी मुद्रा धारण किये हुए अविरत वीरासन से स्थित नीलनीरद नीलकमल नीलमणि के तुल्य मञ्जुल कान्तिवाले, मुकुट, अङ्गद आदि विविध भूषणालङ्कारों से अलंकृत, दिव्य अङ्गवाले श्रीराम और उनके पार्श्व में विराजमान निर्निमेष नयनों से श्रीराम की ओर निहारती हुई करकमलधारिणी विद्युद्वर्णा भगवती सीता का हम भजन करते हैं। इस प्रकार ध्यान करके सर्वतोभद्रमण्डल में श्रीराम की अर्चा की जाती है।

सर्वप्रथम सर्वतोभद्रमण्डल में मं मण्डूकादि परतत्त्वान्त पीठदेवताभ्यो नमः इस मन्त्र से पीठदेवताओं की गन्धपुष्पसमर्पण द्वारा पूजा करनी चाहिए।

सर्वतोभद्रपीठ में पूर्वादि प्रदक्षिणक्रम से विमला आदि आठ शक्तियों का और मध्य में एक शक्ति का ध्यान करते हुए नमः मन्त्र से पूजन करना चाहिये।

पीठे पूर्वादिक्रमेण—(१) विमलायै नमः (२) उत्कर्षिण्यै नमः (३) ज्ञानायै नमः (४) क्रियायै नमः (५) योगायै नमः (६) प्रह्व्यै नमः (७) सत्यायै नमः (८) ईशानायै नमः मध्ये (९) अनुग्रहायै नमः, नमो भगवते रामाय सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः, इति पुष्पासनं दत्त्वा (इस मन्त्र से पुष्प का आसन समर्पण कर) पीठमध्ये स्वेष्टदेवं संस्थाप्य (पीठ के मध्य में भगवान् श्रीराम की मूर्ति या यन्त्र की स्थापना करके प्राणप्रतिष्ठा करके ध्यानपूर्वक पुष्पान्त पूजा करके) प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा पुनर्ध्यात्वा पुष्पान्तैरुपचारैः सम्पूज्य, देवाज्ञां गृहीत्वा आवरणपूजां कुर्यात्। इष्टदेव की आज्ञा लेकर आवरणपूजा करनी चाहिये। अञ्जलि में पुष्प लेकर—

"संविन्मयः परो देवः परामृतरसप्रिय।
अनुज्ञां देहि मे राम परिवारार्चनाय ते॥"

इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि अर्पण करके आवरणपूजा करनी चाहिये।

(१) देववामपार्श्वे सीतायै नमः सीताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (२) अग्निकोणे शां शार्ङ्गाय नमः शार्ङ्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (३) दक्षिणे शं शराय नमः शरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (४) वामे चां चापाय नमः चापश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा "अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्॥"

पुनः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रथमावरणदेवताः पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः।"

केसरेषु षट्कोणे अग्निकोणं प्रारभ्य—

(१) रां हृदयाय नमः हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (२) नैर्ऋते रीं शिरसे स्वाहा शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (३) पश्चिमायां रूं शिखायै वषट् शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजनामि तर्पयामि नमः (४) वायव्ये रैं कवचाय हुम् कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (५) ऐशान्यां रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रत्रयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (६) पूर्वस्यां रः अस्त्राय फट् अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा— "अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्॥
पुनः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा द्वितीयावरणदेवताः पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः।"

षट्कोणाद् बहिरष्टदलेषु पूर्वादिप्रादक्षिण्यक्रमेण—(१) हं हनुमते नमः हनुमच्छ्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (२) सुं सुग्रीवाय नमः सुग्रीवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (३) भं भरताय नमः भरतश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (४) विं विभीषणाय नमः विभीषणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (५) लं लक्ष्मणाय नमः लक्ष्मण श्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (६) अं अङ्गदाय नमः अङ्गदश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (७) शं शत्रुघ्नाय नमः शत्रुघ्नश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (८) जां जाम्बवते नमः जाम्बवच्छ्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा— "अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्॥
पुनः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा— तृतीयावरणदेवताः पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः।"

अष्टदलाग्रेषु तेनैव क्रमेण—(१) धृं धृष्टये नमः धृष्टिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (२) जं जयन्ताय नमः जयन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (३) विं विजयाय नमः विजयश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (४) सुं सुराष्ट्राय नमः सुराष्ट्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः (५) रां राष्ट्रवर्धनाय नमः राष्ट्रवर्धनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (६) अं अकोपनाय नमः अकोपनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (७) धं धर्मपालाय नमः धर्मपालश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (८) सुं सुमन्ताय नमः सुमन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा— "अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्॥
पुनः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा— चतुर्थावरणदेवताः पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः।"

भूपुरे प्रवेशद्वारेषु सूर्योदयप्रागादिषु प्रादक्षिण्यक्रमेण—(१) लं इन्द्राय नमः इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (२) रं अग्नये नमः अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (३) मं यमाय नमः यमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (४) क्षं निर्ऋतये नमः निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (५) वं वरुणाय नमः वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (६) यं वायवे नमः वायुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (७) कुं कुबेराय नमः कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (८) हं ईशानाय नमः ईशानश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (९) ईशानीप्रागन्तराले आं ब्रह्मणे नमः ब्रह्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (१०) निर्ऋतिवरुणान्तराले ह्रीं शेषाय नमः शेषश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा— "अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्॥
पुनः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा— पञ्चमावरदेवताः पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः।"

भूपुरप्रवेशद्वाराद् बहिः पूर्वादिक्रमेण—(१) वं वज्राय नमः वज्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (२) शं शक्त्यै नमः शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (३) दं दण्डाय नमः दण्डश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (४) खं खड्गाय नमः खड्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (५) पां पाशाय नमः पाशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (६) अं अङ्कुशाय नमः अङ्कुशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (७) गं गदायै नमः गदाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (८) त्रिं त्रिशूलाय नमः त्रिशूलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः । (९) पं पद्माय नमः पद्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः ।

पुष्पाञ्जलिं दत्वा— "अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठाख्यावरणार्चनम् ॥

पुनः पुष्पाञ्जलिं दत्वा— षष्ठावरणदेवताः पूजितास्तर्पिताः सन्तु नमः ।"

इत्यावरपूजां कृत्वा धूपादि नमस्कारान्तं सम्पूज्य नमस्कुर्यात् ।

अथ प्रार्थना— "रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥

श्रीराम राम रघुनन्दन राम राम श्रीराम राम भरताग्रज राम राम ।
श्रीराम राम रणकर्कश राम राम श्रीराम राम शरणं भव राम राम ॥
श्रीराम चन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि ।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥"

"वर्णलक्षं जपेमन्त्री तद्दशांशं सरोरुहैः ।
जुहुयादर्चिते वह्नौ ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः ॥"

श्रीसुतीक्ष्ण के प्रश्न पर अगस्त्य ने कहा था—

"रामं पद्मपलाशाक्षं कालाम्बुदसमप्रभम् ।
स्मितवक्त्रं सुखासीनं चिन्तयेत् चिन्तिताप्तये ॥"

पद्मपलाश के तुल्य नेत्रवाले नीलाम्बुदश्यामल स्मितमुख सुखासीन श्रीराम का अभीष्टसिद्धि के लिए ध्यान करना चाहिये—

"रागादिकलुषं चित्तं वैराग्येण सुनिर्मलम् ।
कृत्वा ध्यायेत् सदा रामं भवबन्धविमुक्तये ॥"

रागादिदूषित चित्त को वैराग्य से निर्मल करके भवबन्ध विमुक्ति के लिए श्रीराम का ध्यान करना चाहिये। प्रातः शुद्ध होकर विविक्त देश में ध्यान, पूजादि करने चाहिये । नाभिकन्द में उद्भूत कदलीपुष्प के तुल्य स्निग्ध वर्ण-वाले अष्टदल हृदयकमल का ध्यान करना चाहिये । श्रीराम-नाम से ही उस पङ्कज को प्रफुल्लित करके उसके पत्रों पर क्रमेण सोम, सूर्य तथा अग्निमण्डल का चिन्तन करना चाहिये । उसके ऊपर दिव्य रत्नमय उज्ज्वलपीठ या सिंहा-सन स्थापित करके उसपर कोटि-कोटिसूर्यसमप्रभ श्रीराम का ध्यान करना चाहिए ।

"नाभिकन्दसमुद्भूतं कदलीकुसुमोपमम् ।
अष्टपत्रं स्निग्धवर्णं ध्यायेद्धृदयपङ्कजम् ॥
तत्पत्रं रामनाम्नैव फुल्लं कृत्वास्य मध्यमे ।
भावयेत् सोमसूर्याग्निमण्डलान्युत्तरोत्तरम् ॥

तस्योपरिन्यसेद्दिव्यं पीठं रत्नमयोज्ज्वलम् ।
तन्मध्ये राघवं ध्यायेत् सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥"

नीलकमल के तुल्य विशाल नेत्र और विशाल वक्षःस्थलवाले उदीयमान भास्कर के तुल्य कुण्डलों से शोभित सुन्दर वस्त्र एवं सुन्दर किरीट से युक्त शुभ्रकपोल तथा शुचिस्मित ज्ञानमुद्रायुक्त दो भुजाओं से शोभित कम्बुग्रीव सुन्दर स्निग्ध सुचिक्कण श्यामल अलकावलियों से युक्त श्रीराम का ध्यान करना चाहिये। नाना रत्नों से युक्त दिव्यहारों से भूषित अव्यय विद्युत्पुञ्ज के समान देदीप्यमान धौतवस्त्र और उत्तरीयवस्त्र धारण किये हुए सन्तानतरुमूल में वे दिव्य सिंहासन पर स्थित हैं। दिव्य गन्ध, अङ्गविलेपन तथा वनमाला से सुशोभित श्रीराम के वामपार्श्व में तप्तस्वर्ण-वर्ण्य लीलापङ्कजधारिणी चारुहासिनी शुभानना भूषणों से अलंकृत स्निग्ध दृष्टि से श्रीराम को निहारती हुई श्रीसीता विराजमान हैं। छत्र-चामर हाथ में लेकर श्रीलक्ष्मण उनकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। हनुमान्, सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद आदि वानरों से सेवित, सनन्दनादि तथा अन्य योगिवृन्दों से संस्तुत, सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ तथा योगसिद्धिप्रद श्रीराम का सदैव हृदय में ध्यान करना चाहिये।

१. आवाहन— "आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं विभुम् ।
कौशल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम् ॥"

हम उन विश्व के स्वामी जानकीवल्लभ विभु कौशल्यानन्दवर्धन प्रकृति से पर विष्णुस्वरूप श्रीराम का आवाहन करते हैं। उक्त मन्त्र से आवाहनीमुद्रा में श्रीराम का आवाहन करना चाहिये।

२. आसनम्— "राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते ।
रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो ॥"

हे राजाधिराज, हे राजेन्द्र, हे रामचन्द्र, हे महीपते, आपके लिए रत्नमय दिव्य सिंहाशन अर्पित करता हूँ, इसे स्वीकार कीजिये।

३. सन्निधापन— "श्रीरामागच्छ भगवन् रघुवीर नृपोत्तम ।
जानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा ॥
रामचन्द्र महेष्वास रावणान्तक राघव ।
यावत्पूजां समाप्येऽहं तावत् सन्निहितो भव ॥"

हे श्रीराम, हे भगवन्, हे रघुवीर नृपोत्तम, हे राजेन्द्र, जानकी के साथ आइये और हे महेष्वास सुस्थिर होकर, हे रामचन्द्र, हे रावणान्तक जब तक मैं पूजा करूँ तब तक आप सन्निहित रहिये। उक्त मन्त्र से सन्निधापनी मुद्रा से सन्निधापन करना चाहिये।

४. सम्मुखीकरण— "रघुनन्दन राजर्षे राम राजीवलोचन ।
रघुनन्दन मे देव श्रीरामाभिमुखो भव ॥"

हे रघुनन्दन, हे राजर्षे, हे राजीवलोचन, हे देवेश पूजा के लिए मेरे अभिमुख हों उक्त मन्त्र से सम्मुखी-करण करना चाहिये।

५. प्रार्थना— "शरणं मे जगन्नाथः शरणं भक्तवत्सलः ।
वरदो भव मे राजन् शरणं मे रघूत्तम ॥"

जगन्नाथ भक्तवत्सल श्रीराम ही मेरे शरण हैं, आश्रय हैं। राजन्, श्रीराम आप ही मेरे लिए वरद हैं और आप ही मेरे रक्षक हैं उक्त मन्त्र से प्रार्थना करनी चाहिये।

६. पाद्य— "त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक।
पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन॥"

हे त्रैलोक्यपावन, हे अनन्त, हे रघुनायक, हे राजीवलोचन राजर्षे, आप पाद्य (पाद प्रक्षालनार्थ जल) ग्रहण करें। उक्त मन्त्र से दूर्वा, कमल, विष्णुकान्ता तथा विविध पुष्पों से युक्त जल श्रीराम के चरण में अर्पित करना चाहिये।

७, अर्घ्य— "परिपूर्णपरानन्द नमो रामाय वेधसे।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृष्ण विष्णो जनार्दन॥"

हे परिपूर्णपरानन्द, सर्वोत्पादक श्रीरामरूप में आपको नमस्कार है। हे कृष्ण, हे विष्णो, आप मेरे द्वारा प्रदत्त अर्घ्य ग्रहण करें। उक्त मन्त्र से गन्ध, पुष्प, यव, सर्षप, दूर्वा, तिल, कुश, अक्षत के साथ रत्नमय स्वर्णपात्र में गङ्गादि का जल डालकर भगवान् के हस्तारविन्द में अर्घ्य प्रदान करना चाहिये।

८. आचमन— "राजराजेन्द्र देवेश शरणागतवत्सल।
गृहाणाचमनं देव नित्यशुद्ध परात्पर॥"

हे देवेश, हे शरणागतवत्सल, हे नित्यशुद्ध आप आचमन स्वीकार करें। इस मन्त्र से जातीफल, कङ्कोल, लवङ्ग और गन्ध से युक्त अमृततुल्यजल आचमन के लिए प्रदान करना चाहिये।

९. मधुपर्क "ॐ (श्री) नमो वासुदेवाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे।
मधुपर्कं गृहाणेमं राजराजाय ते नमः॥"

सत्यज्ञानस्वरूप हे राजन्, आप मधुपर्क ग्रहण करें, इस मन्त्र से रत्नपात्र में दधि, मधु और घृत रखकर रत्नमय पात्रान्तर से ढँककर मधुपर्क समर्पण करना चाहिये। फिर भगवान् से निम्नलिखित मन्त्र से प्रसन्न होने की प्रार्थना करनी चाहिये—

"प्रसीद जानकीनाथ सुप्रसीद सुरेश्वर।
प्रसन्नो भव मे राजन् प्रसन्नो मधुसूदन॥"

१०. मधुपर्काङ्ग आचमन— "नमः सत्याय शुद्धाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे।
गृहाणाचमनं नाथ सर्वलोकैकनायक॥"

सत्य, शुद्ध और तत्त्वज्ञान स्वरूप भगवान् श्रीराम को नमस्कार है, हे त्रैलोक्यनायक आप आचमन स्वीकार करें। इस मन्त्र से शुद्ध जल आचमन के लिए प्रदान करे।

११. स्नान— "ब्रह्माण्डोदरमध्यस्थैस्तीर्थैश्च रघुनन्दन।
स्नपयिष्याम्यहं भक्त्या सङ्गृहाण जनार्दन॥"

इस मन्त्र से विविध तीर्थोदकों तथा गङ्गोदक से भगवान् श्रीराम को स्नान कराना चाहिये।

१२. पञ्चामृतस्नान— "पञ्चामृतं समानीतं पयो दधि घृतं मधु।
सशर्करं मया दत्तं श्रीराम प्रतिगृह्यताम्॥"

इस मन्त्र से भगवान् श्रीराम का दूध, दही, घी, मधु और शर्करा से पृथक् पृथक् स्नान कराकर इन पाँचों को सम्मिलित कर पञ्चामृत स्नान कराना चाहिये। उसके पश्चात् उष्णोदक से स्नान कराना चाहिये।

१३. वस्त्र— "सन्तप्तकाञ्चनप्रख्यं पीताम्बरमिदं हरे।
सङ्गृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥"

इस मन्त्र से तपाये हुए स्वर्ण के तुल्य दिव्य पीताम्बर आदि विविध वस्त्र सीतासहित राम को अर्पित करने चाहिये।

१४. यज्ञोपवीत— "श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्त राघव।
ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनायक ॥"

इस मन्त्र से उत्तरीय (दुपट्टा) सहित यज्ञोपवीत अर्पित करना चाहिये।

१५. नाना प्रकार के आभूषण—"किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमेखलाः ।
ग्रैवेयकौस्तुभोदाररत्नकङ्कणनूपुराः ॥
एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि नृपोत्तम।
अहं दास्यामि सद्भक्त्या सङ्गृहाण जनार्दन ॥"

इस मन्त्र से दिव्यदम्पती श्रीसीताराम को किरीट, हार, केयूर, रत्नकुण्डल, मेखला, ग्रैवेयक, कौस्तुभ, सुन्दर रत्नकङ्कण, नूपुर आदि विविध आभूषण अर्पित करने चाहिये।

१६. गन्ध— "प्रधानदेवनीयश्च सर्वमाङ्गल्यकर्मणि।
प्रगृह्यतां दीनबन्धो गन्धोऽयं मङ्गलप्रदः ॥"

इस मन्त्र से कुङ्कुम-कर्पूरयुक्त दिव्यगन्ध (यक्षकर्दम आदि) अर्पित करना चाहिये।

"कुङ्कुमागुरुकस्तूरीकर्पूरोन्मिश्रचन्दनम् ।
तुभ्यं दास्यामि विश्वेश श्रीराम स्वीकुरु प्रभो ॥"

इस मन्त्र से दिव्य चन्दन अर्पण करना चाहिये।

१७. पुष्पमाला तथा तुलसी—"तुलसीकुन्दमन्दारजातीपुन्नागचम्पकैः ।
कदम्बकरवीरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः ॥
नीलाम्बुजैर्बिल्वदलैः पुष्पमाल्यैश्च राघव।
पूजयिष्याम्यहं भक्त्या सङ्गृहाण जनार्दन ॥"

इस मन्त्र से तुलसी, कुन्द, मन्दार, जाती (चमेली), पुन्नाग, कमल, बिल्वपत्र, पुष्प आदि समर्पण करने चाहिये।

१८. अङ्गपूजा—

निम्नोक्त मन्त्रों से तुलसीदल, कमल अथवा अन्य पुष्पों से अङ्गपूजा करनी चाहिये।

१. श्रीरामभद्राय नमः पादौ पूजयामि
२. श्रीराजीवलोचनाय नमः गुल्फौ पूजयामि
३. श्रीविश्वरूपाय नमः जङ्घे पूजयामि
४. श्रीरावणान्तकाय नमः जानुनी पूजयामि
५. श्रीलक्ष्मणाग्रजाय नमः कटिं पूजयामि
६. श्रीविश्वमूर्तये नमः मेढ्रं पूजयामि

७. श्रीविश्वामित्रप्रियाय नमः नाभिं पूजयामि
८. श्रीपरमात्मने नमः हृदयं पूजयामि
९. श्रीश्रीकण्ठाय नमः कण्ठं पूजयामि
१०. श्रीसर्वास्त्रधारिणे नमः बाहू पूजयामि
११. श्रीरघूद्वहाय नमः मुखं पूजयामि
१२. श्रीपद्मनाभाय नमः जिह्वां पूजयामि
१३. श्रीदामोदराय नमः दन्तान् पूजयामि
१४. श्रीजलदवर्णाय नमः नासिकां पूजयामि
१५. श्रीश्रुतिगोचराय नमः कर्णौ पूजयामि
१६. श्रीपुण्डरीकाक्षाय नमः नेत्रे पूजयामि
१७. श्रीसीतापतये नमः ललाटं पूजयामि
१८. श्रीज्ञानगम्याय नमः शिरः पूजयामि
१९. श्रीसर्वात्मने नमः सर्वाङ्गं पूजयामि

१९. धूप— "वनस्पतिरसैर्दिव्यैर्गन्धाढ्यैः सुमनोहरैः ।
रामचन्द्र महीपाल धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥"

इस मन्त्र से भगवान् को दिव्य धूप अर्पण करना चाहिये ।

२०. दीप— "ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे ।
गृहाण दीपकं राजन् त्रैलोक्यतिमिरापह ॥

इस मन्त्र से दीपक निवेदन करना चाहिये ।

२१. नैवेद्य—हाथ धोकर नैवेद्य समर्पण करना चाहिये ।

"इदं दिव्यान्नममृतं रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
श्रीराम राम राजेन्द्र नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥
कर्पूरवासितं तोयं सुवर्णकलशे स्थितम् ।
गृहाणाचमनं नाथ जानक्या सह राघव ॥"

कर्पूरवासित जल सुवर्णकलश में रखकर जानकी के साथ श्रीराम को अर्पण करते हैं, इस मन्त्र से आचमन कराकर शालि का भात, दाल, हजारों प्रकार के शाक, दही, बड़ी, पकौड़ी, पूड़ी, मालपूआ, खीर, रबड़ी, हलुआ, जिलेबी, गुलाबजामुन, रसगुल्ला, पञ्चामृत, मक्खन, मिश्री आदि विविध प्रकार का नैवेद्य भगवान् श्रीराम को भोग लगाना चाहिये ।

२२. फल— "इदं फलं मया देव स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सुफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥"

इस मन्त्र से भगवान् श्रीराम के सम्मुख आम, जामुन, नारङ्ग, एरण्ड, कपित्थ, पनस, दाडिम, गान्धार-दाडिम, सेव, कदली आदि फल समर्पण कर सभी परिवार के सहित भगवान् श्रीराम भोजन कर रहे हैं ऐसी भावना करनी चाहिये । अन्त में 'अमृतापिधानमसि स्वाहा' से आपोऽशान कराकर हस्तप्रक्षालन, मुखप्रक्षालन आदि कराना चाहिये । हाथ को चिकनाई दूर करने के लिए चन्दन देना चाहिये ।

२३. ताम्बूल— "नागवल्लीदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम् ।
ताम्बूलं गृह्यतां राम कर्पूरादिसमन्वितम् ॥"

इस मन्त्र से ताम्बूल समर्पण करना चाहिये ।

२४. राजोपचार— "नृत्यगीतादिवाद्यानि (?) पुराणपठनादिभिः ।
राजोपचारैरखिलैः सन्तुष्टो भव राघव ॥"

इस मन्त्र से छत्र, चामर, व्यजन, नृत्य, गीत, वाद्य, पुराणपठनादि राजोपचार समर्पण करने चाहिये ।

२५. उत्तरार्घ्य— "नमस्ते जानकीनाथ रामचन्द्र महीपते ।
पूर्णानन्दैकरूपस्त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥"

इस मन्त्र से उत्तरार्घ्य समर्पण करना चाहिये ।

२६. नीराजन— "मङ्गलार्थं महीपाल नीराजनमिदं हरे ।
सङ्गृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते ॥"

इस मन्त्र से आरार्तिक्य समर्पण करना चाहिये ।

२७. प्रार्थना— "नमो भगवते श्रीरामायाथ परमात्मने ।
सर्वभूतान्तरस्थाय ससीताय नमो नमः ॥
नमो भगवते श्रीमद्रामचन्द्राय व्यापिने ।
सर्ववेदान्तवेद्याय ससीताय नमो नमः ॥
नमो भगवते श्रीमद्विष्णवे परमात्मने ।
परात्पराय रामाय ससीताय नमो नमः ॥"

इस मन्त्र से प्रार्थना करनी चाहिये ।

२८. दक्षिणा— "कार्तिकीपूर्णिमायान्तु रासे राधामहोत्सवे ।
आविर्भूता दक्षिणांशात्तेन कृष्णस्य दक्षिणा ॥
यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च ।
कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः ॥"

इस मन्त्र से दक्षिणा समर्पण करना चाहिये ।

२९. अपराधक्षमापन— "अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर ॥"

इस मन्त्र से अपराधक्षमापन करना चाहिये ।

३०. समर्पण— "साधु वासाधु वा कर्म यद्यदा चरितं मया ।
तत्सर्वं कृपया देव गृहाणाराधनं मम ॥"

इस मन्त्र से यह पूजारूप शुभ कर्म भगवान् को समर्पण करना चाहिये ।

३१. पूर्णता की प्रार्थना— "प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद् विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥

इस मन्त्र से कर्मसम्पूर्णता की प्रार्थना भगवान् से करनी चाहिए।

३२. शान्तिपाठ— "स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम्॥
सर्वेषां मङ्गलं भूयात् सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥"

इस मन्त्र को पढ़कर सबके कल्याण के लिए भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए।

अथाग्निमुखम्— "सूर्यग्रहणकाले तु नान्यदन्वेषितं भवेत्।
सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति कश्चन॥
तत्र यद्यत्कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्।"

अन्यथा गुरुशुक्रशुद्धौ शुभनक्षत्रयोगवारादिषु शुद्धाहात् प्रथमेऽहनि सङ्कल्पपूर्वकमुपोष्य अङ्कुरारोपणस्वस्ति-पुण्याहवाचननान्दीमुखश्राद्धादिपञ्चाङ्गं कर्म स्वगृह्यानुसारं विदधीत। मण्डपं निर्माय तत्र वेद्यां नीलपीतसीतासि-तैस्तण्डुलैः सर्वतोभद्रमुल्लिख्य धान्याञ्जलिद्वयं निधाय तीर्थोदपूरितं वस्त्रयुग्मवेष्टितं पञ्चरत्नसमन्वितं आम्राश्वत्थप्रसूनाढ्यं शाखाभिरुपेतं नारिकेलफलोपेतं कलशं मङ्गलैः स्थापयित्वा तत्र हरिमर्चयेत्। ऋग्यजुःसामसूक्तैः स्मार्तैः पौराणिकै-स्तान्त्रिकैर्वा मन्त्रैर्देवमर्चयित्वा वासःकुण्डलादिभूषणैर्ब्राह्मणान् वरयेत्। गुरुः भूतशुद्ध्यादिकं न्यासजालं च विधिवत् कुर्यात्। गन्धपुष्प-ताम्बूल-सद्वासो-भूषणादिकमन्नपानीयादिकं पुण्यस्त्रीभ्यो गृहस्थेभ्यो दद्यात्। रात्रौ जागरणं दिवा रात्रौ च त्रिकालं पूजयेत्। तथैव परेऽहनि विधिवद्रामं पूजयित्वाग्निकार्यं कुर्यात्।

तत्रादौ मण्डप-कुण्ड-वेद्यादिकं विधिवन्निर्माय कुण्डस्थलं सम्यग्गोमयेनोपलिप्य सूपविष्टः प्राणानायम्य अनन्यधीर्मनसा मन्त्रं जपेत्। सङ्कल्प्य कुण्डे मध्यतस्तिस्रः पूर्वाग्रा उत्तराग्राश्चापरास्तिस्रो रेखाः कृत्वा षट्कोणे त्रिकोणे वा वह्निमादधीत।

"प्रोक्ष्योपसार्य तत्पश्चाद् दत्त्वा विष्टरमादरात्।
लक्ष्मीमृतुमतीं तत्र प्रभोर्नारायणस्य च॥
ग्राम्यधर्मेण सञ्जातमग्निं तत्र विचिन्तयेत्।"

विधिनाग्निं प्रमथ्य आहिताग्निगृहाद् वानीयाधाय कुशैः प्रज्वाल्य सम्प्रोक्ष्य क्रव्यादाग्निं बहिष्कृत्य निरस्य यज्ञियैः काष्ठैः पुनः प्रज्वालयेत्। प्राणानायम्य कुशाङ्कुरैः परिस्तीर्य स्वगृह्योक्तविधानेन वासुदेवादिनामभिः पात्राण्या-साद्य इध्ममन्त्रेण तान्यपोक्ष्य पवित्रेण चोत्तानानि विधाय पुनः प्रोक्ष्य पात्रमानीय शुभाम्बुनाऽऽपूर्य तत्राक्षतान् पवित्रं च दत्वा उत्पूय उत्तरस्यां निधाय तत्र प्रणीतापात्रे विष्णुं ब्राह्मणैर्युतं ब्रह्माणं च पूजयेत्। आज्यं संस्कृत्य विधिवत्स्रुक्स्रुवा-वोमिति ब्रुवन्। गर्भाधानादिकं वह्नेर्विवाहान्तं समाचरेत्॥ एकैकस्य संस्कारस्य कृते तारेणाष्टावष्टौ जुहुयात्। अर्चितेऽग्नौ वौषडन्तं कर्म समाप्य कर्मान्तरं समारभ्य तदपि समापयेत्। इध्माधानादि आज्यभागौ पुनर्जुहुयात्। तत्राग्नौ वैष्णवं

चरुं श्रपयेत् । अत्राग्नौ साङ्गावरणं रामं पूजयेत् । समिदाज्यचरूणां प्रत्येकं षोडशाहुतीः मूलमन्त्रेण जुहुयात् । परिवारेभ्यो विनायकादिभ्यस्तिस्र आहुतीः, द्वाराङ्गपरिवारेभ्यः सुरेभ्यः पुनस्तिस्र आहुतीराज्येन तत्तद्द्रव्यैश्च मनोहरैर्द्वारपीठसुरेभ्यो जुहुयात् । अङ्गादिवैष्णवान्तेभ्यः पृथक् पृथक् तिस्र आज्याहुतीर्दत्वा घृतेन स्विष्टकृतं हुत्वा जलेन विधिवत् समन्ततः परिषिञ्चेत् । प्रणीतामार्जनं कृत्वा स्ववित्तानुसारेण ब्रह्मणे दक्षिणां दद्यात् । ततो ब्रह्माणमुद्वास्य ब्राह्मणान् भोजयेत् । अग्निमध्यगतं देवं पुनः स्वात्मनि योजयेत् । एकीभूतं विचिन्त्य स्वस्तिवाचनं कारयेत् । विदुषामाशीर्वचोभिरेधमानः हुतशेषं प्राश्य कुक्कुटाण्डप्रमाणकं रामगायत्र्याभिमन्त्रितं तस्मै बलिं हरेत् । इति अग्निमुखविधानम् ।

अथाभिषेकः—कलशस्थाय रामाय पुष्पाञ्जलिं दत्वा शिष्यमुपानीय प्राणानायम्य भूतशुद्धयादिकं विधाय बहुभिः ब्राह्मणैः सह तं मूर्ध्नि अभिषिञ्चेत् । तत्र मन्त्राः—

"सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः ॥
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ।
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा ॥
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथाश्विनौ ।
ब्रह्मणा सहिता ह्येते दिक्पालाः पान्तु ते सदा ॥
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः ।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिर्माया निद्रा च भावना ॥
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु तुष्टिः कान्तिः क्षमा तथा ।
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधजीवसितार्कजा ॥
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः ।
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥
ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च ।
देवपत्न्यो ध्रुवा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः ॥
अस्त्राणि चैव शस्त्राणि राजानो वाहनानि च ।
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये ॥
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये ॥"

इति वशिष्ठसंहितोक्ता मन्त्रा रामार्चनचन्द्रिकायाम् ।

"नारायणः स्वयं रामः शिष्ये सन्निदधातु वै ।
सर्वगः सर्वतोऽप्यस्ति प्रसीदतु दयानिधिः ॥
इति संस्मृत्य संस्मृत्य तज्जलैरभिषेचयेत् ।" इत्यभिषेकः ।

अथ मन्त्रदीक्षा—

सुवासः परिधाय चन्दनाद्यवलिप्य कुण्डले अङ्गुलीयञ्च धारयित्वा न्यसेत् । शिष्यशिरसि स्वस्य हस्तं दत्वा मनुमष्टोत्तरशतं जपित्वा उदकपूर्वकं मन्त्रं दद्यात् । आवयोस्तुल्यफलदो भवत्वेवमुदीरयेत् । प्रसन्नवदनो गुरुर्ज्योतिर्मयीं विद्यां शिष्ये गच्छन्तीं भावयेत् । शिष्यश्च तादृशीमागतां विद्यां भावयेत् ।

"कृतकृत्यस्तदा शिष्यः सर्वं तस्मै निवेदयेत्।
यच्च यावच्च तद् भक्त्या गुरवे हृष्टचेतनः॥
गोभूहिरण्यविपिनगृहक्षेत्रादिकं बहु!
न चेदर्धं तदर्धं वा तद्दशांशमथापि वा॥
अक्लेशादन्नवस्त्रादि दद्याद् वित्तानुसारतः।
ब्राह्मणाशीर्वचोभिर्गुर्वाशीर्वचोभिः समेधितः कृतार्थः स्यात्॥

अथ संक्षेपतो दीक्षाप्रकारः—

"मुहूर्ते सर्वतोभद्रे नवं कुम्भं निधाय च।
सोदकं गन्धपुष्पाभ्यामर्चितं वस्त्रसंवृतम्॥
सर्वौषधीपञ्चरत्नपञ्चपल्लवसंयुतम्।
ततो देवार्चनं कृत्वा हुनेदष्टोत्तरं शतम्॥
शिष्यं स्वलङ्कृतं वेद्यामुपाग्निमुपवेशयेत्।
मन्त्रितं प्रोक्षणीतोयैः शान्तिकुम्भजलैस्तथा॥
मूलमन्त्रेणाष्टशतं मन्त्रितैरभिषेचयेत्।
अथ सम्पादयेन्मन्त्रं हस्तं शिरसि धारयन्॥
समोऽस्त्वित्यक्षतान् दद्यादथ शिष्योऽर्चयेद् गुरुम्।"

अथ स्वधर्मनिष्ठा—"विना स्वधर्मं यत्किञ्चिद्देवताराधनादिकम्।
सद्यो नश्येत् कृतं यस्मात् क्षणात्सैकतहर्म्यवत्॥"

स्वधर्म का पालन करते हुए ही देवता की आराधना करनी चाहिए। अन्यथा सैकतहर्म्य (बालू के महल) के तुल्य सब शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

अथ प्रातःस्मरणम्—"ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय चिन्तयेद् रघुनन्दनम्।
राम रामेति रामेति तारकाख्यं शुभं परम्॥
श्रीपूर्वं जयमध्यस्थं द्विर्जयान्तं विचक्षणः।"

"प्रातः स्मरामि दिननायकवंशभूषं वेदान्तवेद्यमभयं कृतराजवेषम्।
वैदेहिलक्ष्मणयुतं स्वजनाभिरामं संसारसर्पगरलोपशमाय रामम्॥ १॥
प्रातर्गृणामि चरितं दुरितं निहन्तुं रामस्य तस्य पलभक्षकृतान्तकस्य।
यः सिन्धुबन्धकथया भवबन्धहन्ता राज्यं तनोति च विभीषणराज्यरत्या॥ २॥
प्रातः करोमि कलिकल्मषनाशकर्म तच्छर्मदं भवतु भक्तिकरं परं मे।
अन्तःस्थितेन सुखभानुचिदात्मकेन रामेण ब्राह्मगुरुदेहवता नियुक्तः॥ ३॥"

प्रातः सूर्यवंशभूषण, वेदान्तवेद्य, अभय, राजवेष धारण किये हुए, वैदेही और लक्ष्मण से युक्त, स्वजनाभिराम, संसारसर्प के विष का शमन करनेवाले राम का मैं स्मरण करता हूँ। समुद्रबन्धन की कथा से भवबन्ध दूर करने वाले, राक्षसों का अन्त करनेवाले, विभीषण के राज्य की रति के कारण उसको राज्य प्रदान करनेवाले भगवान् राम के चरित्र का मैं प्रातः स्मरण करता हूँ। कलिकल्मष का नाश करनेवाला श्रीराम का कर्म मेरे लिए शान्ति तथा भक्ति देनेवाला हो। सब प्राणियों के अन्तःस्थित सुखरूप, सूर्यरूप और चिद्रूप से तथा बाहर श्रीगुरुदेहधारी राम से

नियुक्त होकर प्रातःकाल कलिकल्मष नाश करनेवाला कर्म करता हूँ जो श्रीराम को सुख देनेवाला तथा मुझे भक्ति देनेवाला हो।

"अहं रामो न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं नित्यमुक्तस्वभाववान्॥"

मैं स्वयंप्रकाश राम ही हूँ, ब्रह्म ही हूँ, शोकभाजन जीव नहीं हूँ। नित्यमुक्तस्वभाव सच्चिदानन्द ही मेरा स्वरूप है।

"त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये॥"

हे त्रिलोकी को चेतना युक्त करनेवाले आदिदेव, हे लक्ष्मीकान्त, हे विष्णो, आपकी आज्ञा से ही मैं संसार यात्रा सम्पन्न कर रहा हूँ।

धौताङ्घ्रिपाणिराचान्तः रामार्चनाङ्गतया स्नायात्।

"स्वस्थितं पुण्डरीकाक्षं मन्त्रमूर्ति प्रभुं स्मरेत्।
अनन्तादित्यसंकाशं वासुदेवं चतुर्भुजम्॥
शङ्खचक्रगदापद्ममुकुटं वनमालिनम्।
श्यामलं शान्तवदनं प्रसन्नं विश्वरूपिणम्॥
तत्पादोदकजां धारां निपतन्तीं स्वमूर्धनि।
चिन्तयेद् ब्रह्मरन्ध्रेण प्रविशन्तीं स्वकां तनुम्॥
तया संक्षालयेत् सर्वमन्तर्देहगतं मलम्।
तत्क्षणाद् विरजा मन्त्रो जायते स्फटिकोपमः॥
श्रीसूर्यमण्डलात् तीर्थमाकृष्याङ्कुशमुद्रया।
वमित्यनेन चाप्लाव्य कवचेनावगुण्ठयेत्॥
संरक्ष्यास्त्रेण मूलेन मन्त्रयेद् रुद्रसंख्यया।
वारिक्षेपं ततः कुर्यादस्त्रेणाथार्कसंख्यया॥
निमज्ज्य तस्मिन् ध्यायेच्छ्रीरामं शक्त्या जपन् मनुम्।
सिसृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः शुक्रं प्रजापतेः॥
मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम्।
शालग्रामशिलातोयं तुलसीगन्धमिश्रितम्॥
कृत्वा शङ्खे भ्रामयंस्त्रिः प्रक्षिपेन्निजमूर्धनि।"

अथ आचमनविधि—

केशवाद्यैस्त्रिभिराचमनम्। द्वाभ्यां करक्षालनम्। द्वाभ्यामोष्ठसंमार्जनम्। एकेन हस्तक्षालनम्। एकेन पादप्रक्षालनम्। एकेन मूर्धसम्प्रोक्षणम्। ततः सङ्कर्षणादिभिः—

"आस्यनासाक्षिकर्णांश्च नाभ्युरः कं भुजौ स्पृशेत्।
एवमाचमनं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत्॥"

तानि चतुर्विंशतिनामानि यथा—(१) केशवाय नमः (२) नारायणाय नमः (३) माधवाय नमः (४) गोविन्दाय नमः (५) विष्णवे नमः (६) मधुसूदनाय नमः (७) त्रिविक्रमाय नमः (८) वामनाय नमः (९) श्रीधराय नमः (१०) हृषीकेशाय नमः (११) पद्मनाभाय नमः (१२) दामोदराय नमः (१३) सङ्कर्षणाय नमः (१४) वासुदेवाय नमः (१५) प्रद्युम्नाय नमः (१६) अनिरुद्धाय नमः (१७) पुरुषोत्तमाय नमः (१८) अधोक्षजाय नमः (१९) नारसिंहाय नमः (२०) अच्युताय नमः (२१) जनार्दनाय नमः (२२) उपेन्द्राय नमः (२३) हरये नमः (२४) श्रीकृष्णाय नमः ।

अथ तिलकधारणम्— "ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे ।
माधवं हृदये ध्यायेद् गोविन्दं कण्ठकूपके ॥
उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुं व्याप्तं विचिन्तयेत् ।
तत्पार्श्वे बाहुमूले तु चिन्तयेन्मधुसूदनम् ॥
त्रिविक्रमं च तत्स्कन्धे वामपार्श्वे तु वामनम् ।
श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कन्धरे ॥
अधरे पद्मनाभं च ककुद्दामोदरं न्यसेत् ।
तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवेति मूर्धनि ॥"

अथ सन्ध्याप्रकारः—

रामात्मानं गुरुं ध्यात्वा जलमस्त्रेण संशोध्य कवचेनावगुण्ठ्य चक्रीकृत्य मूलेनाभिमन्त्र्य तत्र आवाहनादिभिमुद्राभिस्तीर्थमावाह्य पूजयेत् । तद्यथा—

"ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे ।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर ॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥"

इत्यावाह्य दक्षिणहस्ते जलमादाय मालामनुं सकृज्जपन् तज्जलं सव्यहस्ते विनिक्षिपेत् । तन्निःसृताम्बुना मूर्ध्नि सिञ्चेत् । तच्छेषं जलं दशाक्षरेणाभिमन्त्र्य पिबेत् । पुनरञ्जलिना जलमादाय मूर्ध्नि त्रिरुत्क्षिपेत् । सूर्यमण्डलस्थाय रामाय अर्घ्यं कल्पयेत् । रामोऽहमस्मीति गायत्रीं नियतो जपेत् । दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात् । अस्याः श्रीरामगायत्र्या अगस्त्य ऋषिर्गायत्री छन्दः श्रीरामचन्द्रो देवता अर्घ्यार्थं विनोयोगः ।

"सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम् ।
नमामि पुण्डरीकाक्षमाञ्जनेयगुरुं परम् ॥"

इति ध्यात्वार्घ्यत्रयं कल्पयेत्—

"नमस्ते रामदेवाय ज्योतिषां पतये नमः ।
साक्षिणे सर्वभूतानामत्यन्तानन्दमूर्तये ॥
रघुनाथाय दीप्ताय महाकारुणिकाय च ।
नमोस्तु कौशिकानन्ददायिने ब्रह्मरूपिणे ॥
स्तुवंश्च प्रणमेद् रामं यथाशक्त्या मुनीश्वर ।
कृत्वैतत् प्रत्यहं सम्यक् त्रिसन्ध्यञ्च यथाविधि ॥
कृतकृत्यो भवेन्मन्त्री सत्यं सत्यं न चान्यथा ।"

॥ इति सन्ध्या सम्पूर्णा ॥

अथ दिनद्वितीयभागकृत्यम्—"दिवसस्य द्वितीयेंऽशे वेदस्याभ्यसनं चरेत्।
मीमांसातर्कधर्मार्थशास्त्रादीनामपि द्विजः॥
सालङ्कारः ससुमनाः सम्पश्येन्मङ्गलाष्टकम्।
गोभूविप्राम्बुहेमद्युमणिस्नेहनृपानिह ॥"
यो देवः पूजकश्चाथ पूजाद्रव्याणि तत्फलम्।
प्राणबुद्धयादिकं सर्वं तस्मै रामात्मने नमः॥"

इति विभाव्य अगस्त्यसंहिताक्रमेण पूजयेत्।

तद्यथा—"ॐ नमो रामभद्राय गं गणेशाय ते नमः।
सं सवित्रे ह्रौं शिवाय ऐं ह्रीं श्रीं परशक्तये॥
ॐ दिं दीं दीपनाथाय क्षं क्षेत्रपतये नमः॥
पुष्पाक्षतादिभिः पूज्याः श्रीरामद्वारदेवताः।
षड्द्वारपुरतः स्वस्मिन् प्रथमामर्चयेत् सुधीः॥
द्वारश्रियै नमश्चोर्ध्वं देहल्यै तदधस्ततः।
द्वारस्य शोभनस्याथ शाखयोर्दक्षवामयोः॥
धात्रे विधात्रे गङ्गायै यमुनायै च पूर्वतः।
ॐ भद्राय सुभद्राय गोदां कृष्णां च दक्षिणे॥
ॐ चण्डाय प्रचण्डाय रेवां तापीं च पश्चिमे।
शङ्खाय पद्मनिधये वेणीं वेणां तथोत्तरे॥
चतुर्द्वारं सुसम्पूज्य गृहोपरि ततोऽर्चयेत्।
गृहेशाय गृहायाथ कुलदेव्यै नमोऽस्त्विति॥
नमः सशरशाङ्गीय विनायकाय फण्नमः।
आभ्यामन्तर्गतं पुष्पं शरयोगेन वामतः॥
निःसार्य विघ्नसङ्घं त्रिः पार्ष्णिघातं समभ्ययेत्।
देहलीमस्पृशन् दक्षपादपूर्वं प्रविश्य च॥
शेषाय विद्यापीठाय वास्तुपुंसे नमोऽर्चयेत्।" इति द्वारपूजा।

अथासनविचारः—

कृष्णाजिनव्याघ्रचर्मकौशेयकम्बलाद्यन्यतमं मृदु आसनमास्तीर्य पात्रासादनं कुर्यात्। विविधैः पुष्पैः पूर्णां पुष्पडालिकां दक्षिणे, तीर्थादिशुद्धवारिपूर्णं कलशं वामे, पुरतश्च शङ्खं करक्षालनाद्यर्थं पात्रं दर्पणच्छत्रचामरादीनि वामभागे तैलदीपं दक्षिणे घृतदीपं च स्थापयेत्। रुद्राक्ष-शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-पादुकाद्याकारेण परिणततुलसीकाष्ठरचितां मालिकां कण्ठे विधायार्चनमारभेत।

"मौक्तिकं च प्रवालं च रुद्राक्षं तुलसीमणिम्।
जपपूजनवेलायां धारयेद् यः स वैदिकः॥
धारयेदक्षमालां च पद्माक्षं वाथ धारयेत्।
कुर्यादाराधनं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः॥"

अथ शुद्धिचतुष्टयम्—

पुष्पाक्षतादिद्रव्याणां क्षालनादिना जन्त्वादिशुद्धिम्, अनुलेपाद्यैर्मूर्तिशुद्धिम्, अव्यग्रत्वेन आत्मशुद्धिम्, मृद्गोमयादिना मण्डलादिनिर्माणैर्भूमिशुद्धिं च कुर्यात् । वेदिकां विलिप्य रक्तैर्नीलपीतैः सितासितैश्च तण्डुलैर्मण्डलं विधाय मध्ये षट्कोणं कोणाग्रैरुपशोभितं वृत्तत्रयम्, ततः परं चतुरस्रं तद्बहिरष्टदलं भूपुरत्रयं च निर्माय तत्र सिंहासनं न्यसेत् ।

"चन्द्रातपपताकैश्च तोरणैरपि सर्वतः ।
चित्रितं तत्र तत्रापि भित्तिस्तम्भस्थलादिषु ॥
अणुमात्रं तु यः कुर्यान्मण्डलं राघवाग्रतः ।
मृद्गोमयैर्धातुभिर्वा सोऽनन्तफलमश्नुते ॥"

पूजादिस्थानं त्रिः प्रोक्ष्य, पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनस्थापने विनियोगः । ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता । त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अनन्तासनाय नमः कूर्मासनाय नमः आधारशक्तये नमः दुष्टविद्रावणनृसिंहासनाय नमः । मध्ये परमसुखासनाय नमः इत्यासनस्थानं कुशैरक्षतैश्च सम्पूज्य आसनमास्तीर्य तत्र पद्मस्वस्तिकसिंहासनादिभिरुपविश्य—

"ऊर्ध्वकेशि विरूपाक्षि मांसशोणितभोजने ।
तिष्ठ देवि शिखाबन्धे चामुण्डे चापराजिते ॥

इति शिखाबन्धनं कृत्वा वामपादपार्ष्णिघातत्रयेण भूतसङ्घान् समुत्सार्य ॐ रः अस्त्राय फट् इति दिग्बन्धं कृत्वा करस्फालनक्रूरदृष्ट्यवलोकनाद्यैः दिव्यान् भौमान् आन्तरिक्षांश्च विघ्नानुत्सारयेत् ।

तत्र मन्त्रा "अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते गच्छन्तु ममाज्ञया ॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम् ।
सर्वेषामविरोधेन पूजाकर्म समारभे ॥
तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥"

इति भूतोत्सारणपूर्वकं भैरवानुज्ञां गृहीत्वा गुर्वादीन्नमस्कुर्यात् ।

"विनायकं नमस्कृत्य सव्यांसे च सरस्वतीम् ।
दक्षिणांसे पूर्ववच्च दुर्गां च क्षेत्रपं तथा ॥"

ततो गुरुपरम्परामनुस्मृत्य—

"नमो गुरुभ्यो गुरुपादुकाभ्यो नमः परेभ्यः परपादुकाभ्यः ।
आचार्यसिद्धेश्वरपादुकाभ्यो नमोऽस्तु सीतापतिपादुकाभ्यः ॥"

पूर्वमजपाजपसमर्पणप्रसङ्गेन भूशुद्धयादय उक्ताः । इदानीं कर्माङ्गतया पुनरभिधीयन्ते । ततो देवं नमस्कृत्य कुर्यात्तालत्रयं पुनः । कालं स्मृत्वा करिष्येऽहं श्रीरामप्रीतयेऽर्चनम् ॥ इति सङ्कल्प्य प्रातिलोम्येन मात्राः संहरेत् । तद्यथा-क्षकारं लकारे संहरामि । लकारं हकारे संहरामि । हकारं सकारे संहरामि । सकारं षकारे संहरामि । षकारं शकारे संहरामि । एवं क्रमेण अकारपर्यन्तं संहृत्य अकारम् ओङ्कारे संहरामि ॐकारं सहस्राब्जे नियोजयामि । ततो ज्योतिर्मयं देवं सच्चित्सुखात्मकं सर्वत्रानुस्यूतं विभाव्य परितो वह्निप्राकारत्रयं परिचिन्त्य अद्भिः पुष्पाक्षतादीन्निःक्षिपेत् । रः अस्त्राय फट् इति भयविघ्नापदो निरस्येत् । हृदयकमले दीपकलिकाकारं जीवं विभाव्य पूर्वोक्तरीत्या भूतशुद्धिमाचरेत् ।

भूतशुद्धौ विशेषो यथा

अथ भूतोपसंहारः—

"पादाद्याजान्वम्बुजान्तां पीतां द्रुहिणदेवताम् ।
चतुरस्रां पञ्चगुणां ह्लां ह्लः फट् भुवं जले ॥"
जान्वाद्या नाभिपद्मान्ताश्चैतदर्धेन्दुवैष्णवम् ।
रसरूपस्पर्शशब्दं वं ह्लीं ह्लः फट् जलं शुचौ ॥
नाभ्या हृदन्तं प्राद्युम्नं त्रिकोणं स्वस्तिकारुणम् ।
वह्निं रूपरसस्पर्शं रं ह्लूं ह्लः फट् समीरणे ॥
भ्रूपर्यन्तं हृदो वायोः षड्बिन्दु स्पर्शशब्दवत् ।
वृत्तं सांकर्षणं धूम्रं यं ह्लैं ह्लः फट् विहायसि ॥
भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रान्तं वासुदेवं सशब्दखम् ।
हं ह्लौं ह्लः फडहङ्कारे हं महत्तत्त्वके च तत् ॥
प्रकृतौ तां च रामाख्ये परे ब्रह्मणि संहरेत् ।"

॥ इति भूतोपसंहारः ॥

अथ भूतशुद्धिः—

"शरीराकारभूतानां भूतानां यद्विशोधनम् ।
अव्यक्तब्रह्मसम्पर्काद् भूतशुद्धिरियं मता ॥"

शरीररूप में परिणत भूतों का लयक्रम से अव्यक्त ब्रह्मरूपता सम्पादन द्वारा संशोधन ही भूतशुद्धि है। नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म की भावना करके मूलाज्ञान और उसके कारण उत्पन्न जन्मादि दुःखप्रद पापपुरुष को वामकुक्षि में भावना करनी चाहिये। पापपुरुष के सिर ब्रह्महत्या, भुजाएँ स्वर्णस्तेय, सुरापान हृदय, गुरुतल्पगमन कटि, तत्संसर्ग पाद एवं उपपातक रोम हैं। वह अत्यन्त क्रूर अतिभीषण काले वर्ण का है। उसकी आँखें और दाढ़ी लाल हैं। वह अचेतन है। उसका सिर नीचे की ओर है। उसने खड्ग और चर्म धारण कर रखे हैं। उसका चिन्तन करके—

"महापातकपञ्चाङ्गं पातकोपाङ्गसंश्रयम् ।
उपपातकरोमाणं कृष्णं क्रूरातिभीषणम् ॥"

वाम नासिका से पूरक करते हुए 'यं' वायुबीज से पापपुरुष का शोषण, 'रं' कुम्भक में उसका दहन और रेचक में 'वं' अमृतबीज से पीयूषप्रवाह में उस भस्म को प्लावित कर उसे बहिष्कृत कर देना चाहिये।

वाग्बीज से या पञ्चमहाभूतबीज से पञ्चमहाभूतों का कारण में विलयन ही पापपुरुष के भस्म का प्लावन है। अखण्ड सच्चिदानन्द ब्रह्मरन्ध्रसहस्राब्ज में स्थित श्रीराम की प्रेरणा से वं बीज द्वारा महदादिक्रमेण पञ्चभूतों का उत्पादन कर दिव्यदेह निर्माण कर परमात्मस्वरूप के साथ एकीभूत जीवकला को हंसः सोहं मन्त्र से हृदय में स्थापित करना चाहिये।

अथ प्राणप्रतिष्ठा—अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः ऋग्यजुःसामानि च्छन्दांसि अतिच्छन्दो वा छन्दः प्राणो देवता आं बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकम् प्राणप्रतिष्ठायां विनियोगः।

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि। ऋग्यजुःसामच्छन्दोभ्यो नमो मुखे। प्राणदेवतायै नमो हृदये। आं बीजाय नमो गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः पादयोः। क्रों कीलकाय नमो लिङ्गे।

आं ह्रीं क्रों ॐ अं कं खं गं घं ङं आं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।
आं ह्रीं क्रों ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने तर्जनीभ्यां नमः ।
आं ह्रीं क्रों ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने मध्यमाभ्यां नमः ।
आं ह्रीं क्रों ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं वाक्पाणिपादपायूपस्थात्मने अनामिकाभ्यां नमः ।
आं ह्रीं क्रों ॐ ओं पं फं बं भं मं औं वक्तव्यादानगमनविसर्गानन्दात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
आं ह्रीं क्रों ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः मनोबुद्धचहङ्कारचित्तात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

एवं हृदयादिषडङ्गन्यासान् विधाय—

आं नाभेरधः । ह्रीं हृदयादिनाभिपर्यन्तम् । क्रों मस्तकादिहृदयपर्यन्तम् । यं त्वगात्मने नमो हृदि । रं असृगात्मने नमो दक्षदोर्मूले । लं मांसात्मने नमः ककुदि । वं मेदआत्मने नमो वामांसे । शं अस्थ्यात्मने नमो हृदयादि-पाणियुगले । षं मज्जात्मने नमो हृदयादिपादयुगले । सं शुक्रात्मने नमो जठरे । हं प्राणात्मने नम आनने । लं जीवात्मने नमो व्यापकम् ।

हृदि अङ्गुष्ठं दत्त्वा आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं हंसः सोहं मम प्राणा इह प्राणाः । पुनरेतान्येव बीजान्युच्चार्य मम जीव इह स्थितः । पुनरेतान्येव बीजान्युच्चार्य मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि । पुनरेतान्येव बीजान्यु-च्चार्य मम वाङ्मनस्त्वक्चक्षुर्जिह्वाश्रोत्रघ्राणप्राणाः सर्वे इहागत्य स्वस्तये चिरं सुखेन तिष्ठन्तु स्वाहा ।

अथ प्राणशक्तेर्ध्यानम्—

"रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमथ गुणमप्यङ्कुशं पञ्चबाणान् ।
बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ॥"

ततो जन्मादिषोडशसंस्कारसिद्धचर्थं षोडशवारं प्रणवं जपित्वा परां शक्तिं स्मरेत् भगवन्नामोच्चारणं च कुर्यात् ।

"यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥" (इति प्राणप्रतिष्ठा)

अथ निवृत्त्यादिन्यासः—अं निवृत्त्यै नमो मौलौ । आं प्रतिष्ठायै नमो मुखवृत्ते । इं विद्यायै नमो दक्षिणनेत्रे । ईं ईशानायै नमो वामनेत्रे । उं इन्धिकायै नमो दक्षिणकर्णे । ऊं दीपिकायै नमो वामकर्णे । ऋं रेचिकायै नमो दक्षिण-नासापुटे । ॠं मोचिकायै नमो वामनासापुटे । ऌं परायै नमो दक्षिणकपोले । ॡं सूक्ष्मायै नमो वामकपोले । एं मृडायै नमो ऊर्ध्वोष्ठे । ऐं ज्ञानायै नमः अधरोष्ठे । ओं आप्यायिन्यै नमः ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ । औं व्यापिन्यै नमः अधोदन्त-पङ्क्तौ । अं व्योमरूपायै नमो मूर्ध्नि । अः अनन्तायै नमः मुखमध्ये जिह्वायां च । कं सृष्टयै नमः दक्षबाहुमूले । खं ऋद्धयै नमः कूर्परे । गं स्मृत्यै नमो मणिबन्धे । घं मेधायै नमः अङ्गुलिमूले । ङं कान्त्यै नमः अङ्गुल्यग्रे । चं लक्ष्म्यै नमो वामबाहुमूले । छं द्युत्यै नमः कूर्परे । जं स्थिरायै नमो मणिबन्धे । झं स्थित्यै नमः अङ्गुलिमूले । ञं सिद्धयै नमः अङ्गुल्यग्रे । टं जरायै नमो दक्षपादमूले । ठं पालिन्यै नमो जानुनि । डं क्षान्त्यै नमो गुल्फे । ढं ऐश्वर्यै नमः अङ्गुलि-मूले । णं रत्यै नमः अङ्गुल्यग्रे । तं कामिकायै नमो वामपादमूले । थं वरदायै नमो जानुनि । दं आह्लादिन्यै नमः गुल्फे । धं प्रीत्यै नमः अङ्गुलिमूले । नं दीर्घायै नमः अङ्गुल्यग्रे । पं तीक्ष्णायै नमः दक्षपार्श्वे । बं अभयायै नमः पृष्ठे । भं निद्रायै नमः नाभौ । मं तन्द्रायै नमः उदरे । यं क्षुधायै नमः हृदि । रं क्रोधिन्यै नमो दक्षदोर्मूले । लं क्रियायै नमः

ककुदि । वं उल्कायै नमः वामबाहुमूले । शं मृत्यवे नमः हृदादिदक्षकरे । षं पीतायै नमः हृदादिवामकरे । सं श्वेतायै नमः हृदादिदक्षिणचरणे । हं अरुणायै नमः हृदादिवामचरणे । लं असितायै नमः जठरे । क्षं अनन्तायै नमः मुखे ।

अथ अष्टात्रिंशत्कलान्यासः—

(१) अं अमृतायै नमो दक्षबाहुमूले । (२) आं आनन्दायै नमः कूर्परे (३) इं पूषायै नमः मणिबन्धे (४) ईं तुष्टयै नमः अङ्गुलिमूले (५) उं पुष्ट्यै नमः अङ्गुल्यग्रे (६) ऊं रत्यै नमः वामबाहुमूले (७) ऋं धृत्यै नमः कूर्परे (८) ॠं शशिन्यै नमः मणिबन्धे (९) ऌं चन्द्रिकायै नमः अङ्गुलिमूले (१०) ॡं कान्त्यै नमः अङ्गुल्यग्रे (११) एं ज्योत्स्नायै नमः दक्षपादमूले (१२) ऐं श्रियै नमः दक्षजानुनि (१३) ओं प्रीत्यै नमः दक्षगुल्फे (१४) औं अङ्गदायै नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले (१५) अं पूर्णायै नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे (१६) अः पूर्णामृतायै नमः सर्वाङ्गे (१७) कं भं तपिन्यै नमः दक्षबाहुमूले (१८) खं बं तापिन्यै नमः कूर्परे (१९) गं फं धूम्रायै नमः मणिबन्धे (२०) घं पं मरीच्यै नमः अङ्गुलिमूले । (२१) ङं नं ज्वालिन्यै नमः अङ्गुल्यग्रे । (२२) चं धं रुच्यै नमः वामबाहुमूले (२३) छं दं सुषुम्णायै नमः कूर्परे (२४) जं थं भोगदायै नमः मणिबन्धे (२५) झं तं विश्वायै नमः अङ्गुलिमूले (२६) ञं णं बोधिन्यै नमः अङ्गुल्यग्रे (२७) टं ढं धारिण्यै नमः दक्षपादमूले (२८) ठं डं क्षमायै नमः दक्षजानुनि (२९) यं धूम्रार्चिषे नमः दक्षगुल्फे (३०) रं ऊष्मायै नमः दक्षाङ्गुलिमूले (३१) लं ज्वालिन्यै नमः दक्षाङ्गुल्यग्रे (३२) वं ज्वालामालिन्यै नमः वामपादमूले (३३) शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः वामजानुनि (३४) षं सुश्रियै नमः वामगुल्फे (३५) सं सुरूपायै नमः वामाङ्गुलिमूले (३६) हं कमलायै नमः वामाङ्गुल्यग्रे (३७) लं हव्यवाहनायै नमः मस्तके (३८) क्षं कव्यवाहनायै नमः इति व्यापकम् ।

अथ केशवादिमातृकान्यासः—अस्य श्रीकेशवादिमातृकान्यासस्य साध्यनारायण ऋषिः देवीगायत्री च्छन्दः श्रीमहालक्ष्मीनारायणो देवता हलो बीजं स्वराः शक्तिः इष्टार्थे न्यासे विनियोगः । ॐ श्रीं ॐ नमो नारायणाय हंसः सोहं अं कं खं गं घं ङं आं ह्रीं सोहं हंसः ॐ नमो नारायणाय क्रुद्धोल्काय स्वाहा श्रीं देव्यै हृदयाय नमः, हृदये । ॐ श्रीं ॐ नमो नारायणाय हंसः सोहं इं चं छं जं झं ञं ईं ह्रीं सोहं हंसः ॐ नमो नारायणाय महोल्काय स्वाहा श्रीं पद्मिन्यै नमः शिरसे स्वाहा, शिरसि । ॐ श्रीं ॐ नमो नारायणाय हंसः सोहं उं टं ठं डं ढं णं ऊं ह्रीं सोहं हंसः ओं नमो नारायणाय वीरोल्काय स्वाहा श्रूं विष्णुपत्न्यै नमः शिखायै वषट् । ॐ श्रीं ॐ नमो नारायणाय हंसः सोहं एं तं थं दं धं नं ऐं ह्रीं सोहं हंसः ॐ नमो नारायणाय विद्युदुल्काय स्वाहा श्रों वरदायै नमः कवचाय हुम् । ॐ श्रीं ॐ नमो नारायणाय हंसः सोहं ओं पं फं बं भं मं औं ह्रां सोहं हंसः अं नारायणाय सहस्रोल्काय स्वाहा श्रौं कमलरूपायै नमः नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ श्रीं ओं नमः नारायणाय हंसः सोहं अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः ह्रीं सोहं हंसः ॐ नमो नारायणाय अनन्तोल्काय स्वाहा श्रः शूलिन्यै नमः अस्त्राय फट् । इति षडङ्गन्यासः ।

अथ केशवादिमातृकाध्यानम्—

"विद्यारविन्दमुकुरामृतकुम्भपद्मकौमोदकीदरसुदर्शनशोभिहस्तम् ।
सौदामिनीमुकुरकान्तिविकासिलक्ष्मीनारायणात्मकखण्डितमादिमूर्तिम् ॥"

(१)	ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं	अं	क्लीं श्रीं ह्रीं	केशवाय कीर्त्यै नमो मौलौ ।
(२)	,, ,,	आं	,,	नारायणाय कान्त्यै नमो मुखवृत्ते ।
(३)	,, ,,	इं	,,	माधवाय तुष्ट्यै नमो दक्षिणनेत्रे ।
(४)	,, ,,	ईं	,,	गोविन्दाय पुष्ट्यै नमो वामनेत्रे ।
(५)	,, ,,	उं	,,	विष्णवे धृत्यै नमो दक्षिणकर्णे ।

(६)	ॐ ह्रीं	श्रीं क्लीं	ऊं	क्लीं श्रीं ह्रीं	मधुसूदनाय क्षान्त्यै नमो वामकर्णे ।
(७)	,,	,,	ऋं	,,	त्रिविक्रमाय क्रियायै नमो दक्षिणनासापुटे
(८)	,,	,,	ॠं	,,	वामनाय दयायै नमो वामनासापुटे ।
(९)	,,	,,	ऌं	,,	श्रीधराय मेधायै नमो दक्षकपोले ।
(१०)	,,	,,	ॡं	,,	हृषीकेशाय हर्षायै नमो वामकपोले ।
(११)	,,	,,	एं	,,	पद्मनाभाय श्रद्धायै नमो ऊर्ध्वोष्ठे ।
(१२)	,,	,,	ऐं	,,	दामोदराय लज्जायै नमोऽधरोष्ठे ।
(१३)	,,	,,	ओं	,,	सङ्कर्षणाय सरस्वत्यै नमो ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ ।
(१४)	,,	,,	औं	,,	वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमोऽधोदन्तपङ्क्तौ ।
(१५)	,,	,,	अं	,,	प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमो मूर्ध्नि ।
(१६)	,,	,,	अः	,,	अनिरुद्धाय रत्यै नमो मुखमध्ये जिह्वायाम् ।
(१७)	,,	,,	कं	,,	चक्रिणे जयायै नमो दक्षबाहुमूले ।
(१८)	,,	,,	खं	,,	गदिने दुर्गायै नमो दक्षकूर्परे ।
(१९)	,,	,,	गं	,,	शार्ङ्गिणे प्रभायै नमो दक्षमणिबन्धे ।
(२०)	,,	,,	घं	,,	खड्गिने सत्यायै नमो दक्षाङ्गुलिमूले ।
(२१)	,,	,,	ङं	,,	शङ्खिने चण्डायै नमो दक्षाङ्गुल्यग्रे ।
(२२)	,,	,,	चं	,,	हलिने वाण्यै नमो वामबाहुमूले ।
(२३)	,,	,,	छं	,,	मुसलिने विलासिन्यै नमो वामकूर्परे ।
(२४)	,,	,,	जं	,,	शूलिने विजयायै नमो वाममणिबन्धे ।
(२५)	,,	,,	झं	,,	पाशिने विरजायै नमो वामाङ्गुलिमूले ।
(२६)	,,	,,	ञं	,,	अङ्कुशिने विश्वायै नमो वामाङ्गुल्यग्रे ।
(२७)	,,	,,	टं	,,	मुकुन्दाय विमदायै नमो दक्षपादमूले ।
(२८)	,,	,,	ठं	,,	नन्दजाय सुनन्दायै नमो दक्षजानुनि ।
(२९)	,,	,,	डं	,,	नन्दाय स्मृत्यै नमो दक्षगुल्फे ।
(३०)	,,	,,	ढं	,,	नादाय ऋद्ध्यै नमो दक्षपादाङ्गुलिमूले ।
(३१)	,,	,,	णं	,,	नरकजिते समृद्ध्यै नमो दक्षपादाङ्गुल्यग्रे ।
(३२)	,,	,,	तं	,,	हरये शुद्ध्यै नमो वामपादमूले ।
(३३)	,,	,,	थं	,,	कृष्णाय भुक्त्यै नमो वामजानुनि ।
(३४)	,,	,,	दं	,,	सत्याय मुक्त्यै नमो वामगुल्फे ।
(३५)	,,	,,	धं	,,	सात्वताय मत्यै नमो पादाङ्गुलिमूले ।
(३६)	,,	,,	नं	,,	शौरिणे क्षमायै नमो वामपादाङ्गुल्यग्रे ।
(३७)	,,	,,	पं	,,	शूराय परमायै नमो दक्षपार्श्वे ।
(३८)	,,	,,	फं	,,	जनार्दनाय उमायै नमो वामपार्श्वे ।
(३९)	,,	,,	बं	,,	भूधराय क्लेदिन्यै नमः पृष्ठे ।
(४०)	,,	,,	भं	,,	विश्वमूर्तये क्लिन्नायै नमो नाभौ ।
(४१)	,,	,,	मं	,,	वैकुण्ठाय वसुदेवायै नमो जठरे ।

(४२) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं यं क्लीं श्रीं ह्रीं त्वगात्मने पुरुषोत्तमाय वसुधायै नमो हृदि ।
(४३) ,, ,, रं ,, असृगात्मने बलिने परायै नमो दक्षदोर्मूले ।
(४४) ,, ,, लं ,, मांसात्मने बलानुजाय परायणायै नमः ककुदि ।
(४५) ,, ,, वं ,, मेदआत्मने बलाय सूक्ष्मायै नमो वामबाहुमूले ।
(४६) ,, ,, शं ,, अस्थ्यात्मने वृषघ्नाय सन्ध्यायै नमो हृदादिदक्षकरान्तम् ।
(४७) ,, ,, षं ,, मज्जात्मने वृषाय प्रज्ञायै नमो हृदादिवामकरान्तम् ।
(४८) ,, ,, सं ,, शुक्रात्मने हंसाय प्रभायै नमो हृदादिदक्षिणचरणान्तम् ।
(४९) ,, ,, हं ,, प्राणात्मने वराहाय निशायै नमो हृदादिवामचरणान्तम् ।
(५०) ,, ,, लं ,, क्रियाशक्त्यात्मने विमलाय अमोघायै नमो जठरे ।
(५१) ,, ,, क्षं ,, परमात्मने नृसिंहाय विद्युतायै नमो मुखे ।

"केशवादिरयं न्यासो न्यासमात्रेण देहिनाम् ।
अच्युतत्वं ददात्येव सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥"

इति केशवादिमातृकान्यासः ।

अथ श्रीकण्ठादिमातृकान्यासः—

"वाङ्मायाद्यादिकान् वर्णान् मातृकायाः सबिन्दुकान् ।
श्रीकण्ठादीनथादित्यान् न्यसेत् स्थानेषु तेषु हि ॥"

अस्य श्रीकण्ठादिमातृकान्यासस्याम्बरीष ऋषिः । अनुष्टुप् छन्दः अर्धनारीश्वरो देवता । हलो बीजानि स्वराः शक्तयः ज्ञानविज्ञानार्थे न्यासे विनियोगः ।

(१) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । (हृदयाय नमः)
(२) ,, ,, इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः । (शिरसे स्वाहा)
(३) ,, ,, उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः । (शिखायै वषट्)
(४) ,, ,, एं तं थं द धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः । (कवचाय हुम्)
(५) ,, ,, ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठिकाभ्यां नमः । (नेत्रत्रयाय वौषट्)
(६) ,, ,, अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।
(अस्त्राय फट्)

एवं करादिन्यासान् हृदयादिषडङ्गन्यासांश्च विधाय ध्यायेत् । तद्यथा—

"सिन्दूरकाञ्चनसमोभयभागमर्धनारीश्वरं गिरिसुताहरभूषचिह्नम् ।
पाशाभयाक्षवलयेष्टदहस्तमीशं स्मृत्वा न्यसेत् सकलवाञ्छितवस्तुसिद्धयै ॥"

(१) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं श्रीकण्ठेशपूर्णोदरीभ्यां नमः । मौलौ—इत्यादि केशवादिमातृकान्यासवत्स्थानेषु न्यसेत् ।
(२) ,, ,, आं अनन्तेशविरजाभ्यां नमः ।
(३) ,, ,, इं सूक्ष्मेशशाल्मलिभ्यां नमः ।

(४) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ईं त्रिमूर्तीशलोलाक्षीभ्यां नमः ।
(५) ,, ,, उं अमरेश्वरवर्तुलाक्षीभ्यां नमः ।
(६) ,, ,, ऊं अर्धीशदीर्घघोणाभ्यां नमः ।
(७) ,, ,, ऋं भारभूतेशदीर्घघोणाभ्यां नमः ।
(८) ,, ,, ॠं अतिथीशदीर्घमुखीभ्यां नमः ।
(९) ,, ,, ऌं स्थाण्वीशदीर्घजिह्वाभ्यां नमः ।
(१०) ,, ,, ॡं हरेशकुण्डोदरीभ्यां नमः ।
(११) ,, ,, एं झिण्टीशोर्ध्वकेशिनीभ्यां नमः ।
(१२) ,, ,, ऐ भौतिकेशविकृतमुखीभ्यां नमः ।
(१३) ,, ,, ओं सद्योजातेशज्वालामुखीभ्यां नमः ।
(१४) ,, ,, औं अनुग्रहेशोल्कामुखीभ्यां नमः ।
(१५) ,, ,, अं क्रूरेशश्रीमुखीभ्यां नमः ।
(१६) ,, ,, अः महासेनेशविद्यामुखीभ्यां नमः ।
(१७) ,, ,, कं क्रोधीशमहाकालीभ्यां नमः ।
(१८) ,, ,, खं चण्डेशसरस्वतीभ्यां नमः ।
(१९) ,, ,, गं पञ्चान्तकेशगौरीभ्यां नमः ।
(२०) ,, ,, घं शिवोत्तमेशत्रैलोक्यविद्याभ्यां नमः ।
(२१) ,, ,, ङं एकरूद्रेशमन्त्रशक्तिभ्यां नमः ।
(२२) ,, ,, चं कूर्मेशात्मशक्तिभ्यां नमः ।
(२३) ,, ,, छं एकनेत्रेशभूतमातृभ्यां नमः ।
(२४) ,, ,, जं चतुराननेशलम्बोदरीभ्यां नमः ।
(२५) ,, ,, झं अजेशद्राविणीभ्यां नमः ।
(२६) ,, ,, ञं सर्वेशनागरीभ्यां नमः ।
(२७) ,, ,, टं सोमेश्वरेशखेचरीभ्यां नमः ।
(२८) ,, ,, ठं लाङ्गलीशमञ्जरीभ्यां नमः ।
(२९) ,, ,, डं दारुकेशरूपिणीभ्यां नमः ।
(३०) ,, ,, ढं अर्धनारीश्वरेशवीरिणीभ्यां नमः ।
(३१) ,, ,, णं उमाकान्तेशवृकोदरीभ्यां नमः ।
(३२) ,, ,, तं आषाढीशपूतनाभ्यां नमः ।
(३३) ,, ,, थं दण्डीशभद्रकालीभ्यां नमः ।
(३४) ,, ,, दं अत्रीशयोगिनीभ्यां नमः ।
(३५) ,, ,, धं मीनेशशङ्खिनीभ्यां नमः ।
(३६) ,, ,, नं मेषेशगर्जिनीभ्यां नमः ।
(३७) ,, ,, पं लोहितेशकालरात्रिभ्या नमः ।
(३८) ,, ,, फं शिखीशकुण्डिनीभ्यां नमः ।
(३९) ,, ,, बं बगलेशकपर्दिनीभ्यां नमः ।

(४०) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भं द्विरदेशजयाभ्यां नमः ।
(४१) ,, ,, मं महाकालेशाजयाभ्यां नमः ।
(४२) ,, ,, यं त्वगात्मने वालीशसुमुखेश्वरीभ्यां नमः ।
(४३) ,, ,, रं असृगात्मने भुजङ्गेशरेवतीभ्यां नमः ।
(४४) ,, ,, लं मांसात्मने पिनाकीशमाधवीभ्यां नमः ।
(४५) ,, ,, वं मेदआत्मने खड्गीशवारुणीभ्यां नमः ।
(४६) ,, ,, शं अस्थ्यात्मने बकेशवायवीयाभ्यां नमः ।
(४७) ,, ,, षं मज्जात्मने श्वेतेशरक्षोवधारिणीभ्यां नमः ।
(४८) ,, ,, सं शुक्रात्मने भृग्वीशसहजाभ्यां नमः ।
(४९) ,, ,, हं प्राणात्मने नकुलीशलक्ष्मीभ्यां नमः।
(५०) ,, ,, त्रं शक्त्यात्मने संवर्तकेशमहामायाभ्यां नमः ।
(५१) ,, ,, क्षं क्रोधात्मने शिवेशव्यापिनीभ्यां नमः ।

"शुद्धा सबिन्दुकायुक्ता कलादिः केशवादिभिः ।
श्रीकण्ठमातृका चात्र न्यासेङ्गे पञ्चमी स्मृता ।।
रुद्रैर्युक्तां केवलां वा मनूनां कर्मारम्भे मातृकां विन्यसेद् यः ।
मन्त्राः सर्वे कुर्वते तस्य सिद्धिं दोषैः सार्धं याति नाशं जरा च ।।"

इति श्रीकण्ठादिमातृकान्यासः ।

अथ बृहत्तत्त्वन्यासः—"अथ तत्त्वं प्रवक्ष्यामि तत्त्वन्यासं तदर्थिनाम् ।
यत्तत्त्वन्यासमात्रेण तत्त्वमेव प्रजायते ।।"

ॐ मं नमः पराय जीवात्मने नमः, ॐ भं नमः पराय प्राणात्मने नमः, एतद्द्वयं सर्वाङ्गे । ॐ बं नमः पराय बुद्ध्यात्मने नमः, ॐ फं नमः पराय अहङ्कारात्मने नमः, ॐ पं नमः पराय मनआत्मने नमः, एतत्त्रयं हृदये । ॐ नं नमः पराय शब्दात्मने नमो मूर्ध्नि । ॐ धं नमः पराय स्पर्शात्मने नमो मुखे । ॐ दं नमः पराय रूपात्मने नमो हृदये । ॐ थं नमः पराय रसात्मने नम उपस्थे । ॐ तं नमः पराय गन्धात्मने नमः पादयोः । ॐ णं नमः पराय श्रोत्रात्मने नमः श्रोत्रयोः । ॐ ढं नमः पराय वागात्मने नमस्त्वचि । ॐ डं नमः पराय चक्षुरात्मने नमश्चक्षुषोः । ॐ ठं नमः पराय जिह्वात्मने नमो जिह्वायाम् । ॐ टं नमः पराय घ्राणात्मने नमो घ्राणे । ॐ ञं नमः पराय वागात्मने नमो वाचि । ॐ झं नमः पराय पाण्यात्मने नमः पाण्योः । ॐ जं नमः पराय पाय्वात्मने नमः पायौ । ॐ छं नमः पराय पादात्मने नमः पादयोः । ॐ चं नमः पराय उपस्थात्मने नमः उपस्थे । ॐ ङं नमः पराय आकाशात्मने नमो मूर्ध्नि । ॐ घं नमः पराय वाय्वात्मने नमो मुखे । ॐ गं नमः पराय तेजआत्मने नमो हृदये । ॐ खं नमः पराय सलिलात्मने नमो गुह्ये । ॐ कं नमः पराय पृथिव्यात्मने नमः पादयोः । ॐ शं नमः पराय हृत्पुण्डरीकात्मने नमो गुह्ये । ॐ हूं नमः पराय सोममण्डलात्मने षोडशकलात्मने । ॐ सं नमः पराय सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने, ॐ रं नमः पराय वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, एतत्त्रितयं हृदि । ॐ षं नमः पराय परमेष्ठ्यात्मने वासुदेवाय नमो मूर्ध्नि । ॐ यं नमः पराय पुरुषात्मने संकर्षणाय नमो मुखे । ॐ वं नमः पराय विश्वात्मने प्रद्युम्नाय नमो हृदये । ॐ लं नमः पराय निवृत्त्यात्मने अनिरुद्धाय नमो गुह्ये । ॐ क्षं नमः पराय सर्वात्मने नारायणाय नमः पादयोः । ॐ क्षों नमः पराय कोपात्मने नृसिंहाय नमः इति व्यापकम् ।

"अतत्त्वस्याप्यरूपस्य तत्प्राप्तेर्हेतुना पुनः ।
तत्त्वन्यासमिति प्राहुर्न्यासतत्त्वविदो बुधाः ॥
यः कुर्यात् तत्त्वविन्यासं स पूतो भवति ध्रुवम् ।
तदात्मनानुप्रविश्य भगवानिह तिष्ठति ॥
यतः स एव तत्त्वानि सर्वं तस्मिन् प्रतिष्ठितम् ।"

मातृकादेवतयोरन्ते नमः पदं दातव्यम् । इति बृहत्तत्त्वन्यासः ।

अथ मूर्तिपञ्जरन्यासः— "तन्मूर्तिपञ्जरन्यासं कथयिष्येऽधुना परम् ।
यस्मात्फलान्तरं नास्ति पुंसस्तन्मूर्तिसिद्धये ॥"

ॐ अं ॐ रां केशवाय धात्रे नमो ललाटे । ॐ आं णं रां नारायणायार्यम्णे नमो नाभौ । ॐ इं मों मां माधवाय मित्राय नमो हृदये । ॐ ईं मं यं गोविन्दाय वरुणाय नमः कण्ठे । ॐ उं गं नं विष्णवेंऽशवे नमो दक्षिणपार्श्वे । ॐ ऊं वं मं मधुसूदनाय भगाय नमो दक्षिणांसे । ॐ एं तें रां त्रिविक्रमाय विवस्वते नमो दक्षिणकन्धरे । ॐ ऐं वां रां वामनाय इन्द्राय नमो वामपार्श्वे । ॐ ओं सुं मां श्रीधराय पूष्णे नमो वामांसे । ॐ औं दें यं हृषीकेशाय पर्जन्याय नमो वामकन्धरे । ॐ अं वां नं पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः पृष्ठे । ॐ अः यं मं दामोदराय विष्णवे नमः ककुदि । ॐ नमो भगवते वासुदेवाय मूर्ध्नि ।

"तन्मूर्तिपञ्जरन्यासोऽभिहितः परमेष्ठिना ।
सकृन्न्यासाद् भवेन्मन्त्री राममूर्तिरनुत्तमः ॥"

इति मूर्तिपञ्जरन्यासः ।

अथ किरीटन्यासः—ॐ किरीटहारकेयूरमकरकुण्डलचक्रशङ्खगदाम्बुजहस्तपीताम्बरधरश्रीवत्साङ्कितवक्षः-स्थलश्रीभूमिसहितात्मज्योतिर्द्वयदीप्तिकरसहस्रादित्यतेजसे नमः । इति मन्त्रं स्वशरीरे परतेजोव्याप्तिं स्मरन् किरीटमुद्राय मूर्ध्नि विन्यसेत् ।

इति किरीटन्यासः ।

अथेन्द्रियन्यासः — "वक्ष्येऽहमिन्द्रियन्यासमिन्द्रियाणां विशुद्धये ।
यथा सम्प्राप्यते रामो देशिकेन्द्रेण धीमता ॥"

ॐ दिग्भ्यो नमः श्रोत्रयोः । ॐ वायवे नमस्त्वचि । ॐ आदित्याय नमश्चक्षुषोः । ॐ वरुणाय नमो जिह्वा-याम् । ॐ अश्विभ्यां नमो घ्राणयोः । ॐ अग्नये नमो वाचि । ॐ इन्द्राय नमः पाण्योः । ॐ विष्णवे नमः पादयोः । ॐ मित्राय नमः पायौ । ॐ प्रजापतये नमः उपस्थे । ॐ चन्द्रमसे नमो मनसि । ॐ ब्रह्मणे नमो बुद्धौ । ॐ रुद्राय नमः अहङ्कारे । ॐ क्षेत्रज्ञाय नमः चित्ते । ॐ अं ईश्वराय नमो मनसि । इति इन्द्रियन्यासः । अथ ऋष्यादिन्यासः—

"न्यासमस्य प्रवक्ष्यामि मनोः सर्वफलप्रदम् ।
न्यासं विना जपं प्राहुरासुरं विफलं बुधाः ॥
ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्रं छन्द उच्यते ।
रामाख्यं वैष्णवं धाम देवता परिकीर्तिता ॥
आद्यं बीजं नतिः शक्ती रामायेति च कीलकम् ।
ऋषिर्गुरुत्वात् शिरसैव धार्यश्छन्दोऽक्षरत्वात् रसनागतं स्यात् ॥

धियावगन्तव्यतया सदैव हृदि प्रतिष्ठा मनुदेवतायाः।
बीजं सुगुह्यं भवतीति गुह्ये शक्तिः पदोर्माधवसंश्रितत्वात् ॥"

अर्थात्—ब्रह्मण ऋषये नमः शिरसि। गायत्रीछन्दसे नमो मुखे। श्रीरामचन्द्रपरमात्मदेवतायै नमो हृदये। रां बीजाय नमो गुह्ये। नमः शक्तये नमः पादयोः। इति ऋष्यादिन्यासः। अथ करादिन्यासहृदयादिषडङ्गन्यासौ—

(१) रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, हृदयाय नमः।
(२) रीं तर्जनीभ्यां नमः, शिरसे स्वाहा।
(३) रूं मध्यमाभ्यां नमः, शिखायै वषट्।
(४) रैं अनामिकाभ्यां नमः, कवचाय हुम्।
(५) रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, नेत्राभ्यां वौषट्।
(६) रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः, अस्त्राय फट्॥

"शिरोभ्रूमध्यहृदयनाभिगुह्यपदस्थले। मूलमन्त्राक्षरैर्न्यासस्त्वक्षरन्यास उच्यते॥"

इति करादिन्यासहृदयादिन्यासौ।

अथ पदन्यासः—ॐ रां नमः शिरसि। ॐ रामाय नमो नाभौ। ॐ नमो नमः पादयोः।

इति पदन्यासः।

अथ व्यापकन्यासः—ॐ मण्डूकाय नमः आधारे। ॐ कालाग्निरुद्राय नमः स्वाधिष्ठाने। ॐ कच्छपाय नमो नाभौ। ॐ आधारशक्तये नमो हृदये। ॐ धर्माय नमो दक्षिणस्कन्धे। ॐ ज्ञानाय नमो वामस्कन्धे। वैराग्याय नमो वामपादमूले। ॐऐश्वर्याय नमः दक्षिणपादमूले। ॐ अधर्माय नमो वक्त्रे। ॐ अज्ञानाय नमो लिङ्गमूले। ॐ अवैराग्याय नमः दक्षिणपार्श्वे। ॐ अनैश्वर्याय नमो वामपार्श्वे। ॐ सप्ततिवलयोपेताय सहस्रफणायानन्ताय नम इति हृदयकमलमध्ये न्यसेत्। तन्मध्ये फणोपरि। ॐ आनन्दकन्दाय नमः (१) ॐ संविन्नालाय नमः (२) ॐ सर्वतत्त्वकमलाय नमः (३) ॐ प्रकृतिपत्रेभ्यो नमः (४) ॐ विकारमयकेसरेभ्यो नमः (५) ॐ पञ्चाशद्वर्णाढ्यकर्णिकायै नमः (६) ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः (७) ॐ सं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नमः (८) ॐ रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः (९) ॐ सं सत्त्वाय प्रबोधात्मने नमः (१०) ॐ रं रजसे प्रवृत्त्यात्मने नमः (११) ॐ तं तमसे मोहात्मने नमः (१२) तस्य दक्षिणे आं आत्मने नमः। पश्चिमे ॐ अन्तरात्मने नमः। उत्तरे ॐ परमात्मने नमः। पूर्वे ॐ ज्ञानात्मने नमः। अत्रैव एकैकोपरि चतुर्ष्वपि—(१) ॐ मायातत्त्वाय नमः (२) ॐ कलातत्त्वाय नमः (३) ॐ विद्यातत्त्वाय नमः (४) ॐ परमतत्त्वाय नमः। प्रागादिदलेषु मध्ये च—(१) ॐ विं विमलायै नमः (२) ॐ उं उत्कर्षिण्यै नमः (३) ॐ ज्ञां ज्ञानायै नमः (४) ॐ क्रिं क्रियायै नमः (५) ॐ यों योगायै नमः (६) ॐ अं अनुग्रहायै नमः। ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्वभूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मसंयोगपद्मपीठात्मने नमः इति मध्ये विन्यसेत्। तस्मिन् पीठे सहस्रादित्यसंकाशं मन्त्रं ध्यात्वा श्वासभार्गेणाञ्जलावानीय व्यापकं न्यसेत्। इति व्यापकन्यासः।

अथ पूजाविधिः। तत्रादौ ध्यानम्—

"अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डलमध्यगे।
ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नप्रवेष्टितम्।
तत्र श्रीरामचन्द्राख्यं ध्यायेत्तेजः परात्परम्॥
प्रकृत्या सीतया श्यामं स्थित्युत्पत्त्यप्ययापहम्।
देवासुरमुनीन्द्रैश्च योगिवृन्दैश्च सेवितम्॥
चतुर्भुजं शङ्खचक्रगदापङ्कजधारिणम्।
किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलशोभितम् ॥
देवतागुरुमन्त्राणां भावयेदैक्यमात्मना।"

"गदारिशङ्खाब्जधरं भवारिं सद्यो ध्यायेन्मोक्षमाप्नोति सर्वः" इति श्रुतेः ।

"सिंहासने तस्मिन् वीरासनसमाश्रितम् ।
सम्यग् ज्ञानमयीं मुद्रां दधानं दक्षिणे करे ॥
तेजःप्रकाशनं वामजानुमूर्धनि चापरम् ।
जानकीवल्लभं देवमिन्द्रनीलमणिप्रभम् ॥
व्याख्याननिरतं देवं द्विभुजं रघुनन्दनम् ।
वसिष्ठवामदेवादिमुनिभिः परिसेवितम् ॥
वामभागे समासीनां सीतां काञ्चनसन्निभाम् ।
भजतां कामदां नित्यं रक्तोत्पलकराम्बुजाम् ॥
लक्ष्मणं पश्चिमे भागे धृतच्छत्रं सचामरम् ।
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तधरावुभौ ॥"

श्रीरामतापनीय उपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि विश्वभावन सौमित्रि प्रणव के अकार अक्षर से आविर्भूत होते हैं । उकार अक्षर से तैजसरूप शत्रुघ्न का आविर्भाव होता है । अर्धमात्रास्वरूप ब्रह्मानन्दविग्रह श्रीराम हैं । वहीं यह स्पष्ट उल्लेख है कि यह सब कुछ 'ॐ' इस अक्षर का ही, जो भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान त्रिकालातीत है, विस्तार है । वह आत्मा चतुष्पाद है । व्यष्टि प्राज्ञ, समष्टि विराट् स्थूलप्रपञ्चाभिमानी चेतन प्रथमपाद है । उसका जागरित स्थान है । इन्द्रियादिजनित बहिर्विषयक उसकी प्रज्ञा होती है । उसके भी सात अङ्ग एवं इक्कीस मुख (द्वार) होते हैं । वह स्थूल विषयों का भोक्ता होता है । इसी प्रकार व्यष्टि तैजस समष्टि हिरण्यगर्भ सूक्ष्मप्रपञ्चाभिमानी चेतन द्वितीय पाद है । उसका स्वप्न स्थान है तथा बाह्यविषयेन्द्रियनिरपेक्ष बाह्यविषयसंस्कारजन्य अन्तःप्रज्ञा ही उसमें होती है । उसके भी सात ही अङ्ग एवं २१ मुख होते हैं । वह सूक्ष्म विषयों का ही भोक्ता होता है । व्यष्टि प्राज्ञ एवं समष्टि अव्याकृत कारण प्रपञ्चाभिमानी चेतन तृतीय पाद है । उसका सुषुप्ति स्थान होता है । उस समय का आत्मा किसी काम्य की कामना नहीं करता, किसी स्वप्न को नहीं देखता, वही सुषुप्त है । उस स्थान में एकीभूत प्राज्ञ प्रज्ञानमूर्ति रहता है । वह आनन्दमय तथा आनन्द का ही भोक्ता होता है । वही सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, अन्तर्यामी तथा सर्वकारण होता है । वही सबकी उत्पत्ति तथा प्रलय का कारण होता है । कार्यकारणातीत शुद्ध परब्रह्म ही अर्धमात्रा का अर्थ है । वह न अन्तःप्रज्ञ है, न बहिःप्रज्ञ है और न वह उभयतःप्रज्ञ है । न तो वह प्रज्ञरूप है न अप्रज्ञरूप है, किन्तु प्रज्ञानघनरूप अदृश्य, अग्राह्य, अव्यवहार्य, अलक्षण, अचिन्त्य तथा अव्यपदेश्य है । एकात्मप्रत्ययसार, जिसमें प्रपञ्च का उपशम है उसी को तत्त्ववित् अद्वैत शिव एवं चतुर्थ मानते हैं । वही आत्मा है, वही विज्ञेय है । वह सदा ही उज्ज्वल तथा अविद्यातत्कार्यहीन है । स्वात्मबन्धरहित आनन्दरूप है । वही सर्वाधिष्ठान सत्तामात्र तथा अविद्यामय तमोमोह से रहित है । वही मैं हूँ । वही ओम्, तत् सत् आदि पदों का लक्ष्यार्थ है । वही ब्रह्म है, वही चिदात्मक रामचन्द्र हैं । वही रामचन्द्र परम ज्योति हैं । वही मैं हूँ । इस प्रकार अद्वय आत्मा का ध्यान करके विशुद्ध मन द्वारा ब्रह्म के साथ आत्मा की एकता का निश्चय कर जो देहादि को बाधितकर तत्त्वतः मैं अखण्डबोधस्वरूप राम हूँ यह भावना करते हैं, वे संसारी नहीं, किन्तु राम ही होते हैं ।

'ॐ इत्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भव्यं भवद् भविष्यमिति सर्वम् ओङ्कार एव । यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः, स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः, यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते न कंचन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तं सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन

एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् तेजोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः, एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्, नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतःप्रज्ञं न प्रज्ञं नाप्रज्ञं न प्रज्ञानघनमदृश्यमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमैकात्मप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा विज्ञेयः सदोज्ज्वलोऽविद्यातत्कार्यहीनः स्वात्मबन्धरहित आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः सन्मात्रो निरस्ताविद्यातमोमोहोऽहमेवेति सम्भाव्याहमों तत्सत् परं ब्रह्म रामचन्द्रश्चिदात्मकः सोऽहमों तद्रामभद्रः परं ज्योती रसोऽहमित्यात्मानमद्वयं मनसा ब्रह्मणैकीकुर्यात् ।

"सदा रामोऽहमित्येतत्तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः॥" इत्युपनिषत्॥

अथार्घ्यपात्रासादनम्—कलशोदकेन चतुरस्रं षट्कोणं त्रिकोणं मण्डलं कृत्वा शङ्खमुद्रयावष्टभ्य पुष्पाक्षतैराग्नेयनैर्ऋत्यवायव्येशानेषु हृदयशिरःशिखाकवचानि मध्ये नेत्रं पूर्वादिदिक्षु चास्त्रं सम्पूजयेत् ।

आग्नेये रां हृदयाय नमः हृदयशक्तिं पूजयामि । ईशाने यं कवचाय हुँ कवचशक्तिं पूजयामि ।

नैर्ऋत्ये रां शिरसे स्वाहा शिरःशक्तिं पूजयामि । मध्ये नं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशक्तिं पूजयामि ।

वायव्ये मां शिखायै वषट् शिखाशक्तिं पूजयामि । पूर्वादिसर्वदिक्षु मः अस्त्राय फट् अस्त्रशक्तिं पूजयामि ।

ॐ अं अग्निमण्डलाय दशकलात्मने श्रीरामार्घ्यपात्राधाराय नमः इत्याधारं प्रतिष्ठाप्य, तत्र पूर्वाद्यष्टदिक्षु उपर्यधश्चाग्नेर्दशकलाः पूजयेत् ।

पूर्व से प्रारम्भ कर आठ दिशाओं में ऊपर और नीचे अग्नि की दश कलाओं का पूजन करना चाहिये ।

(१) ॐ यं धूम्रार्चिषे नमः (४) ॐ वं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः (७) ॐ सं हव्यवाहिन्यै नमः
(२) ॐ रं नीलरक्तायै नमः (५) ॐ शं ज्वालायै नमः (८) ॐ हं कव्यवाहिन्यै नमः
(३) ॐ लं कपिलायै नमः (६) ॐ षं निष्पत्तिकायै नमः (९) ॐ ळं रौद्र्यै नमः

(१०) ॐ क्षं संहारिण्यै नमः ।

शङ्खं मन्त्रेण संशोध्य, ॐ सं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने श्रीरामार्घ्यपात्राय नमः इति शङ्खमाधारे निधाय तत्र सूर्यस्य द्वादशकलाः सम्पूजयेत्—

(१) ॐ कं भं तपिन्यै नमः (५) ॐ ङं नं कालिन्यै नमः (९) ॐ झं तं वैष्णव्यै नमः
(२) ॐ खं बं तापिन्यै नमः (६) ॐ चं धं शोषिण्यै नमः (१०) ॐ ञं णं विष्णुविद्यायै नमः ।
(३) ॐ गं फं सन्धिन्यै नमः (७) ॐ छं दं वरेण्यै नमः (११) ॐ टं ढं ज्योत्स्नायै नमः
(४) ॐ घं पं बोधिन्यै नमः (८) ॐ जं थं आकर्षिण्यै नमः (१२) ॐ ठं डं हिरण्यायै नमः

ततो मातृकाः प्रातिलोम्येनोच्चरन् शुद्धोदकेन शङ्खं सम्पूर्य ॐ सों सोममण्डलाय षोडशकलात्मने श्रीरामार्घ्यामृताय नमः इति सम्पूज्य तत्रैव चन्द्रमसः षोडशकलाः पूजयेत् ।

(१) ॐ अं अमृतायै नमः (५) ॐ उं प्रीत्यै नमः (९) ॐ ऌं स्वधायै नमः
(२) ॐ आं मानदायै नमः (६) ॐ ऊं रत्यै नमः (१०) ॐ ॡं रात्र्यै नमः
(३) ॐ इं तुष्ट्यै नमः (७) ॐ ऋं लज्जायै नमः (११) ॐ एं ज्योत्स्नायै नमः
(४) ॐ ईं पुष्ट्यै नमः (८) ॐ ॠं श्रियै नमः (१२) ॐ ऐं हंसवत्यै नमः

(१३) ॐ ओं छायायै नमः (१५) ॐ अं वामायै नमः
(१४) ॐ औं पूरिण्यै नमः (१६) ॐ अः अमायै नमः । इति ।

शङ्खजले— "गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥"

इति तीर्थान्यावाह्य गन्धाद्यैरर्चयेत्—

"शङ्खे पाणितलं दत्त्वा जपेन्मन्त्रं षडक्षरम्।
चिन्मयं चिन्तयेत्तीर्थमानीयाङ्कुशमुद्रया ॥"

धेनुमुद्रां प्रदर्श्य शङ्खचक्रगरुडमुद्राः प्रदर्शयेत्। परमीकरणमुद्रया परमीकृत्य।

"करावेकत्र संयोज्यावारार्तिकमिव प्रिये।
परमीकरणं नाम मुद्रेयं सर्वकामदा ॥
देवस्य मूर्ध्नि तत्सिञ्चेत् पूजाद्रव्येषु चात्मनः।
अवेक्षणं प्रोक्षणं च वीक्षणं ताडनं तथा ॥
अर्चनं चैव सर्वेषां पावनं तत्प्रकल्पयेत्।
पूतमेवाखिलं पूजायोग्यं भवति सार्थकम् ॥" इति शङ्खप्रतिष्ठा

ताम्रहेमरजतादिमयानि पाद्यार्घ्यमधुपर्काचमनीयार्थं चत्वारि पात्राणि स्थापनीयानि। तत्रार्घ्यपात्रे गन्धपुष्पयवाक्षतान् कुशाग्रतिलदूर्वाः सर्षपांश्चार्घ्यपात्रे, श्यामाकमब्जं विष्णुक्रान्ताञ्च पाद्यपात्रे, जातीफलं लवङ्गं कङ्कोलं च आचमनीयपात्रे, दधिमधुघृतानि मधुपर्कपात्रे च स्थापयेत्। सर्वोपचारवस्तूनामलाभे भावनयैव सर्वमुपस्थापनीयम्। निर्मलोदकेनैव वा सर्वस्य पूर्णतेति नारदवचनम्।

अन्तर्यागः— "धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञाननालं सुशोभनम्।
ऐश्वर्याष्टदलं पद्मं परं वैराग्यकर्णिकम् ॥
तस्मिन् पीठे चिदात्मानं रामचन्द्रस्वरूपिणम्।
ध्यात्वा यजेच्चन्दनाद्यैर्मानसैर्धूपदीपकैः ॥
भोजनावसरे किञ्चिज्जपं कृत्वा निवेदयेत्।
स्वाधिष्ठानगते कुण्डे त्रिकोणे वह्निमुज्ज्वलेत् ॥
चिद्रूपं प्रणवेनाथ तत्राहन्तादिकं हुनेत्।
पूजाहोमादिकं देव कृतं यत् त्वदनुग्रहात् ॥
तेन प्रीतो भव त्वं भोः शुद्धं मे मानसं कुरु।
निवेदयामि चात्मानं त्वं गतिः परमेश्वर ॥
मानसैः कुसुमैरर्चा सात्त्विकी सा शुभा मता।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मानसं यजनं ध्रुवम्।
आदौ चैव प्रकर्तव्यं पश्चाद् द्रव्यैः सविस्तरैः ॥" इत्यन्तर्यागः।

अथ बहिर्यागः—आत्मानं चिन्मयं ध्यात्वा गन्धादिभिरर्चयेत्। (१) ॐ आत्मतत्त्वाय नमः (२) ॐ कलातत्त्वाय नमः (३) ॐ विद्यातत्त्वाय नमः (४) ॐ रामतत्त्वाय नमः इत्यात्मानमभ्यर्च्य बहिर्यागं कुर्यात्।

अथ श्रीराममहायन्त्रम्—

"कामक्रोधादिदोषोत्थदीर्घदुःखनियन्त्रणात्।
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् रामः प्रीणाति पूजितः ॥

यन्त्रं मन्त्रमयं प्रोक्तं मन्त्रात्मा देवतेति च।
देहात्मनोर्यथा भेदो मन्त्रदेवतयोस्तथा॥
सौवर्णे राजते ताम्रे पीठे भूर्जेऽथवा भुवि।
विना यन्त्रेण चेत् पूजा देवता न प्रसीदति॥
त्रिरेखापुटमालिख्य मध्ये तारद्वयं लिखेत्।
तन्मध्ये बीजमालिख्य तदधः साध्यमालिखेत्॥
द्वितीयान्तं च तस्योर्ध्वं षष्ठ्यन्तं साधकं तथा।
कुरुद्वयं च तत्पार्श्वे लिखेद् बीजान्तरे रमाम्॥
तत्सर्वं प्रणवाभ्याञ्च वेष्टयेच्छुचिबुद्धिमान्।
दीर्घभाजि षडस्रेषु लिखेद् बीजं हृदादिभिः॥
कोणपार्श्वे रमामाये तदग्रेऽनङ्गमालिखेत्।
क्रोधं कोणाग्रान्तरे तु लिखेन्मन्त्र्यभितो गुरुम्॥
वृत्तत्रयं चाष्टपत्रं सरोजे विलिखेत् स्वरान्।
केसरे चाष्टपत्रे च वर्गाष्टकमथालिखेत्॥
तेषु मालामनोर्वर्णान् विलिखेदूर्मिसंख्यया।
अन्तं पञ्चाक्षराण्येवं पुनरष्टदलं लिखेत्॥
तेषु नारायणाष्टार्णान् लिखेत् तत्केसरे रमाम्।
तद्बहिर्द्वादशदलं विलिखेद् द्वादशाक्षरम्॥
तथोम् नमो भगवते वासुदेवाय इत्ययम्।
आदिक्षान्तान् केसरेषु वृत्ताकारेण संलिखेत्॥
तद्बहिः षोडशदलं लिखेत् तत्केसरे ह्रियम्।
वर्मास्त्रनतिसंयुक्तं दलेषु द्वादशाक्षरम्॥
तत्सन्धिष्विरजादीनां मन्त्रान् मन्त्री समालिखेत्।
हृं सृं भृं वृं ल्वृं अं सृं जृं श्च लिखेत् सम्यक् ततो बहिः
द्वात्रिंशारं महापद्मं नादबिन्दुसमायुतम्।
विलिखेन्मन्त्रराजार्णांस्तेषु पत्रेषु यत्नतः॥"

"तेषु पत्रेषु यत्नतः" इत्यत्र तत्र त्वानुष्टुभं रघोः, इति वा पाठः।

"श्रुत्यनुक्तमपि ग्राह्यं यदेतत्साम्प्रदायिकम्। ध्यायेदष्टवसूनेकादश रुद्रांश्च तत्र वै॥
द्वादशार्कांश्च धातारं वषट्कारं च तद्बहिः। भूगृहं वज्रशूलाढ्यं रेखात्रयसमन्वितम्॥
द्वारोपेतं च राश्यादिभूषितं फणिसंयुतम्। अनन्तो वासुकिश्चैव तक्षककर्कोटपद्मकाः॥
महापद्मस्तथा शङ्खः कुलिकोऽष्टौ कुलानि च। अनन्तकुलिकौ विप्रौ वह्निवर्णावुदाहृतौ॥
प्रत्येकं तु सहस्रेण फणानां समलङ्कृतौ। वासुकिः शङ्खपालश्च क्षत्रियौ पीतवर्णकौ॥
प्रत्येकं तु फणासप्तशतसंख्याविराजितौ। तक्षकश्च महापद्मो वैश्यावेतावही स्मृतौ॥
नीलवर्णौ फणापञ्चशततुङ्गोत्तमाङ्गकौ। पद्मकर्कोटकौ शूद्रौ फणात्रिशतकान्वितौ॥
एवं मण्डलमालिख्य तस्य दिक्षु विदिक्षु च। नारसिंहं वराहं च लिखेन्मन्त्रद्वयं तथा॥

इदं सर्वात्मकं यन्त्रं प्रागुक्तमृषिसेवितम् । इदं रहस्यं परममीश्वरेणापि दुर्गमम् ॥
एवं यन्त्रं समाख्यातं न देयं प्राकृते जने । गुरुदर्शितमार्गेण स्वबुद्ध्या नैव तल्लिखेत् ॥
गुर्वनुक्ताः क्रियाः सर्वा निष्फलाः स्युर्यतो ध्रुवम् ।

अथ पीठपूजाप्रकारः—

इस महाचक्र में राघवेन्द्र रामचन्द्र की पूजा करनी चाहिये । प्रथम पीठपूजा आवश्यक है । अपने सम्मुख वामभाग में (१) श्रीगुरुभ्यो नमः (२) श्रीपरमगुरुभ्यो नमः (३) श्रीपरमेष्ठिगुरुभ्यो नमः (४) श्रीपरस्परगुरुभ्यो नमः इस प्रकार गुरु की अर्चा कर के स्वदक्षिण भाग में (१) गं गणपतये नमः (२) सं सरस्वत्यै नमः (३) दुं दुर्गायै नमः (४) क्षं क्षेत्रपालाय नमः (५) ह्रीं बटुकाय नमः इन मन्त्रों से गणपति आदि देवताओं की पूजा करनी चाहिये । यागगृह के मध्य में वास्तुपुरुषाय नमः से पूजन कर पीठ के मध्य में मण्डूकाय नमः से पूजन करना चाहिये । पीठ के ऊपर (१) कालाग्निरुद्राय नमः (२) कूर्माय नमः (३) आधारशक्तये नमः (४) पृथिव्यै नमः इन आधार शक्तियों का पूजन कर (१) क्षीरसमुद्राय नमः (२) रत्नद्वीपाय नमः (३) मणिमण्डपाय नमः (४) कल्पवृक्षेभ्यो नमः (५) रत्नवेदिकायै नमः (६) रत्नसिंहासनाय नमः इन मन्त्रों से भगवान् के निवासस्थल की पूजा पीठ में ही करनी चाहिये । पीठ के आग्नेयादि चार पादों में (१) धर्माय नमः (२) ज्ञानाय नमः (३) वैराग्याय नमः (४) ऐश्वर्याय नमः इस मन्त्र से पूजन करके पीठगात्र में पूर्वादि क्रम से (१) अधर्माय नमः (२) अज्ञानाय नमः (३) अवैराग्याय नमः (४) अनैश्वर्याय नमः इस मन्त्र से पूजा करनी चाहिये । कर्णिका में (१) आनन्दकन्द, (२) नाल, (३) सरोरुह, (४) पत्र और (५) केसर की पूजा करनी चाहिये । (१) आनन्दकन्दाय नमः, (२) संविन्नालाय नमः, (३) चित्सरोरुहाय नमः, (४) ज्ञानमयपत्रेभ्यो नमः (५) केसरेभ्यो नमः कर्णिका में प्रणव, अर्कबीज, चन्द्रबीज और अग्निबीजपूर्वक अर्कमण्डल, अग्निमण्डल तथा इन्दुमण्डल इन तीनों मण्डलों, सत्त्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों, आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा इन आत्मचतुष्टयों, मायातत्त्व, कलातत्त्व, विद्यातत्त्व तथा परतत्त्व इन तत्त्वचतुष्टयों का एक-एक के ऊपर पूजन करके—(१) विमला, (२) उत्कर्षिणी, (३) ज्ञान, (४) क्रिया, (५) योगा, (६) प्रह्वी, (७) सत्या, (८) ईशाना तथा (९) अनुग्रहा इन शक्तियों का यजन पूर्वादि अष्ट पत्रों और कर्णिका में करना चाहिये ।

(१) ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः (२) ॐ रं अग्निमण्डलाय नमः (३) ॐ इं इन्दुमण्डलाय नमः, (१) ॐ सं सत्त्वाय नमः (२) ॐ रं रजसे नमः (३) ॐ तं तमसे नमः, (१) ॐ आत्मने नमः (२) ॐ अन्तरात्मने नमः (३) ॐ परमात्मने नमः (४) ॐ परतत्त्वाय नमः (१) ॐ विमलायै नमः (२) ॐ उत्कर्षिण्यै नमः (३) ॐ ज्ञानायै नमः (४) ॐ क्रियायै नमः (५) ॐ योगायै नमः (६) ॐ प्रह्वयै नमः (७) ॐ सत्यायै नमः (८) ॐ ईशानायै नमः (९) ॐ अनुग्रहायै नमः ।

मूर्ति में भगवान् श्रीराम का आवाहन—

हाथ में पुष्पाञ्जलि लेकर हृदयपङ्कज में स्थित चैतन्यविग्रह श्रीराम का ध्यान कर पादुका मुद्रा से हृदयकमल से श्वासमार्ग द्वारा पुष्पाञ्जलि में समागत भगवान् श्रीराम की भावना कर सिद्ध मुद्रा से मूर्ति में संयोजित करके आवाहनादि सात मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिये ।

"चैतन्यविग्रहं रामं स्थितं हृदयपङ्कजे । श्वासमार्गेणागतञ्च चिन्तयेत् कुसुमाञ्जलौ ॥

'मूलाधाराद् द्वादशान्तमानीतः कुसुमाञ्जलिः' मूलाधार से कुसुमपरिपूर्ण अञ्जलि को ललाट स्थान में लाना कुसुमाञ्जलि मुद्रा है । उत्तान हस्तद्वय का संहत अञ्जलिबन्ध करके अङ्गुष्ठ को अनामिका के मूल में रखने से आवाहनीया मुद्रा होती है । वही अधोमुखी स्थापनी मुद्रा है ।

"एषैवाधोमुखी मुद्रा स्थापनीत्युच्यते बुधैः।"
"उत्तानाङ्गुष्ठयोगेन मुष्टीकृतकरद्वयम्।
सन्निधीकरणं नाम मुद्रा देवार्चनाविधौ॥"

दोनों हाथों की मुष्टि बाँधकर उत्तान अङ्गुष्ठों को मिलाने से सन्निधीकरण मुद्रा बनती है। दोनों अङ्गुष्ठों को मुष्टिगर्भित कर लेने पर वही सन्निरोधिनी मुद्रा होती है।

"अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव मुद्रा स्यात् सन्निरोधिनी।"

दोनों मुष्टियाँ उत्तान होकर मिल जायँ तो सम्मुखीकरण मुद्रा बनती है।

"उत्तानमुष्टियुगला सम्मुखीकरणी तथा। देवताङ्गे षडङ्गानां न्यासः स्यात्सकलीकृतिः॥
अन्योन्याङ्गुष्ठसंल्लग्ना विस्तारितकरद्वया। महामुद्रेयमाख्याता न्यूनाधिकसमापनी॥"

दोनों अङ्गुष्ठ परस्पर संलग्न रखकर दोनों हाथों को अधोमुख फैलाकर हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र का स्पर्श करना सकलीकरण मुद्रा होती है। दोनों अङ्गुष्ठों को संलग्नकर दोनों हाथों की समस्त अङ्गुलियों को प्रसारित करना ही परमीकरण मुद्रा है।

"अन्योन्यग्रथिताङ्गुष्ठा प्रसारितकराङ्गुली। महामुद्रेयमुदिता परमीकरणं बुधैः॥"

बाँयें हाथ की मुष्टि बनाकर दीर्घ अधोमुखतर्जनी को मुष्टि के चारों ओर घुमाना अवगुण्ठन मुद्रा है।

"सव्यहस्तकृता मुष्टिर्दीर्घाधोमुखतर्जनी। अवगुण्ठनमुद्रेयमभितो भ्रमिता मता॥"

धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करना चाहिये।

"वामाङ्गुष्ठं तु सङ्गृह्य दक्षिणेन तु मुष्टिना।
कृत्वोत्तानां ततो मुष्टिमङ्गुष्ठं तु प्रसारयेत्॥
वामाङ्गुल्या तथा श्लिष्टाः संयुक्ताः स्युः प्रसारिताः।
दक्षिणाङ्गुष्ठसंस्पृष्टा मुद्रैषा शङ्खमुद्रिका॥"

बायें अङ्गुष्ठ को दक्षिण मुष्टि से पकड़कर मुष्टि को उत्तान कर बाँये हाथ की संहत अङ्गुलियों से प्रसारित दक्षिण अङ्गुष्ठ का सम्बन्ध होने से शङ्खमुद्रा बनती है। अन्योन्य अभिमुख स्पर्श-व्यत्यय से रङ्गुलियों द्वारा प्रयत्न से मण्डलीकरण चक्रमुद्रा बनती है।

"अन्योन्याभिमुखस्पर्शव्यत्ययेन तु वेष्टयेत्।
अङ्गुलीभिः प्रयत्नेन मण्डलीकरणं मुने।
चक्रमुद्रेयमाख्याता गदामुद्रा ततः परम्॥"

जिसमें अङ्गुलियाँ अन्योन्य अभिमुख होकर आश्लिष्ट हों और मध्यमा प्रोन्नत हो वह गदामूद्रा है।

"अन्योन्याभिमुखा श्लिष्टाङ्गुलिः प्रोन्नतमध्यमा।
अथाङ्गुष्ठद्वयं मध्ये दत्त्वापि परितः करौ॥
मण्डलीकरणं सम्यगङ्गुलीनां तपोधन।
पद्ममुद्रा भवेदेषा धेनुमुद्रा ततः परम्॥"

दोनों अङ्गुष्ठों को मध्य में देकर अङ्गुलियों का मण्डलीकरण ही पद्ममुद्रा है।

"अनामिके कनिष्ठाभ्यां तर्जनीभ्यां च मध्यमे । अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टा ॥"

दोनों अनामिकाओं को दोनों कनिष्ठिकाओं से दोनों तर्जनियों को दोनों मध्यमाओं से अन्योन्य संश्लिष्ट करना धेनुमुद्रा है ।

"कनिष्ठेऽन्योन्यसंलग्नेऽभिमुखेऽपि परस्परम् । वामस्य तर्जनीमध्ये मध्यानामिकयोरपि ॥
वामानामिकसंस्पृष्टा तर्जनीमध्यशोभिता । पर्यायेण नताङ्गुष्ठद्वयी कौस्तुभलक्षणा ॥"

दोनों कनिष्ठिकाएँ अन्योन्य अभिमुख और संलग्न होने पर भी परस्पर वामहस्त की तर्जनी और मध्यमा, मध्यमा और अनामिका में वाम अनामिका से तर्जनी और मध्यमा पर्याय से शोभित हों और दोनों अङ्गुष्ठ नत रहें यही कौस्तुभमुद्रा है ।

"हस्तौ तु सम्मुखौ कृत्वा संहृतप्रोन्नताङ्गुली ।
तलान्तमिलिताङ्गुष्ठौ कृत्वैषा पद्ममुद्रिका ॥"
"कनिष्ठान्योन्यसंलग्ना विपरीतं तु योजिता ।
अधस्तात् प्रापिताङ्गुष्ठा मुद्रा गारुड़संज्ञिता ॥"

दोनों कनिष्ठकाएँ अन्योन्य संलग्न होकर विपरीत योजित हों और अङ्गुष्ठ अधः पातित हों तो गरुड़मुद्रा होती है ।

"तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यस्था मध्यमानामिकाद्वयी ।
कनिष्ठानामिकामध्या तर्जन्यग्रकरद्वयी ॥ मुने श्रीवत्समुद्रेयम्"
"कनिष्ठानामिकामध्या मुष्टिरुन्नततर्जनी ।
परिश्रान्ता शिरस्युच्चैस्तर्जनीभ्यां दिवौकसः ॥ मुद्रा योनिः"
"हस्तौ च सम्मुखौ कृत्वा सुभुग्नौ सुप्रसारितौ ।
कनिष्ठाङ्गुष्ठकौ लग्नौ मुद्रैषा चक्रसंज्ञिका ॥"
"अन्योन्याभिमुखौ हस्तौ कृत्वा तु ग्रथिताङ्गुली ।
अङ्गुष्ठमध्यमे भूयः संलग्ने सम्प्रसारिते ॥
गदामुद्रेयमाख्याता विष्णोः सन्तोषवर्धनी ।"
"दक्षमुष्टेस्तु तर्जन्या दीर्घया बाणमुद्रिका ।
तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यान्तस्थितानामिकयुग्मका ॥
मध्यमूलास्थिताङ्गुष्ठाग्रचेयं शस्ताऽर्चने मुने ।"

"अन्योन्यस्पृष्टकरयोर्मध्यमानामिकाङ्गुली ।
अङ्गुष्ठेन तु बध्नीयात् कनिष्ठामूलसंस्थिते ॥
तर्जन्यौ कारयेदेषा मुद्रा श्रीवत्ससंज्ञका ।
अनामां पृष्ठसंलग्नां दक्षिणस्य कनिष्ठिकाम् ॥
कनिष्ठयान्ययाबद्धय तर्जन्या दक्षया तथा ।
वामानामां च बध्नीयात् दक्षिणाङ्गुष्ठमूलके ॥
अङ्गुष्ठमध्यमे वामे संयोज्य सरलाः पराः ।
चतस्रोऽप्यग्रसंलग्ना मुद्रा कौस्तुभसंज्ञका ॥

हस्तौ तु विमुखौ कृत्वा ग्रथयित्वा कनिष्ठिके।
मिथस्तर्जनिके श्लिष्टे श्लिष्टाङ्गुलिकरौ तथा ॥"

"मध्यमानामिके द्वे तु द्वौ पक्षाविव चालयेत्।
एषा गरुड़मुद्राख्या विष्णोः सन्तोषवर्धिनी ॥
वामस्य मध्यमाग्रं तु तर्जन्यग्रेण योजयेत्।
अनामिकां कनिष्ठां च तस्याङ्गुष्ठेन पीडयेत् ॥"

"दर्शयेत् वामके स्कन्धे धनुर्मुद्रेयमीरिता।
स्पृशेत् कण्ठादिपादान्तं तर्जन्याऽङ्गुष्ठयुक्तया ॥
करद्वयेन मालावन्मुद्रेयं वनमालिका।
ज्ञानमुद्रा रामचन्द्रस्य प्रेयसी ॥"

"ऊर्ध्वस्थाङ्गुष्ठमुष्टी द्वे मुद्रा त्रैलोक्यमोहिनी।"

इति जगन्मोहिनी मुद्रा।

"हस्तौ तु सम्पुटौ कृत्वा प्रसृताङ्गुलिकौ तथा।
तर्जन्यौ मध्यमापृष्ठे ह्यङ्गुष्ठौ मध्यमाश्रितौ ॥
काममुद्रेयमाख्याता सर्वदेवप्रियङ्करी।
उच्छ्रितं दक्षिणाङ्गुष्ठं वामाङ्गुष्ठेन बन्धयेत्।
वामाङ्गुलीर्दक्षिणाभिरङ्गुलीभिश्च बन्धयेत्।
लिङ्गमुद्रेयमाख्याता शिवसान्निध्यकारिणी ॥
मुष्टिं कृत्वा तु हस्ताभ्यां वामस्योपरि दक्षिणम्।
कुर्यान्मुसलमुद्रेयं सर्वविघ्नविनाशिनी ॥
मुष्टिं कृत्वा कराभ्यां तु वामस्योपरि दक्षिणम्।
ततः शिरसि संयोगात् दुर्गामुद्रेयमीरिता ॥
अधोमुखे वामहस्ते ऊर्ध्वं स्याद् दक्षहस्तकम्।
क्षिप्त्वाङ्गुलीरङ्गुलीभिः संग्रथ्य परिवर्तयेत् ॥
एषा संहारमुद्रा स्यात् विसर्जनविधौ स्मृता।"

मत्स्यमुद्रा कूर्ममुद्रा—

मिथः कनिष्ठिके बद्ध्वा तर्जनीभ्यामनामिके।
अनामिकोर्ध्वसंश्लिष्टे दीर्घमध्यमयोरधः ॥

अङ्गुष्ठाग्रद्वयं न्यस्येत् योनिमुद्रेयभीरिता।
दक्षिणाङ्गुष्ठतर्जन्यावग्रलग्ने पराङ्मुखे ॥

प्रसार्य संहितोत्ताना ह्येषा व्याख्यानमुद्रिका।
दक्षिणा निबिडामुष्टिरनामार्पिततर्जनी ॥

मुद्रा विस्मयसंज्ञा स्याद्विस्मयावेशकारिणी।
तर्जन्यनामिकामध्ये कनिष्ठाक्रमयोगतः ॥

करयोर्योजयत्येव कनिष्ठामूलदेशतः ।
अङ्गुष्ठाग्रे तु निःक्षिप्य महायोनिः प्रकीर्तिता ॥
मध्यमामध्यगे कृत्वा कनिष्ठेङ्गुष्ठरोधिते ।
तर्जन्यौ दण्डवत्कुर्यात् मध्यमोपर्यनामिके ॥
एषा सा प्रथमा मुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणी ।
एतस्या एव मुद्राया मध्यमे सरले तथा ॥
ध्रियेते परमेशानि सर्वविद्राविणी परा ।
मध्यमातर्जनीभ्यां च कनिष्ठानामिके समे ॥
अङ्कुशाकाररूपाभ्यां मध्यमे परमेश्वरि ।
अङ्गुष्ठं तु नियुञ्जीत कनिष्ठानामिकोपरि ॥
इयमाकर्षिणी मुद्रा त्रैलोक्याकर्षिणी मता ।
पुटाकारौ करौ कृत्वा तर्जन्यावङ्कुशाकृती ॥
परिवर्तक्रमेणैव मध्यमे तदधोगते ।
क्रमेण देवि तेनैव कनिष्ठानामिकादयः ॥
संयोज्या निबिड़ाः सर्वा अङ्गुष्ठावग्रदेशतः ।
मुद्रेयं परमेशानि सर्ववश्यकरी मता ॥
सम्मुखौ तु करौ कृत्वा मध्यमा मध्यमेन्त्यजे ।
अनामिके तु सरले तद्बहिस्तर्जनीद्वयम् ॥
दण्डाकारौ ततोऽङ्गुष्ठौ मध्यमानखदेशिकौ ।
मुद्रैवोन्मादिनी नाम क्लेदिनी सर्वयोषिताम् ॥ उन्मादिनी ।"
"अस्यां त्वनामिकायुग्ममधः कृत्वाङ्कुशाकृति ।
तर्जन्यावपि तेनैव क्रमेण विनियोजयेत् ॥
इत्थं महाङ्कुशा मुद्रा सर्वकामार्थसाधनी ।
दक्षिणभुजमध्यस्थे कूर्परे च यथाविधि ॥
बाहुं कृत्वा महादेवि हस्तौ सम्परिवर्तयेत् ।
कनिष्ठानामिके देवि मुक्ते तेन क्रमेण च ॥
तर्जनीभ्यां समाक्रान्ते सर्वोर्ध्वमपि मध्यमे ।
अङ्गुष्ठौ च महादेवि सरलावपि कारयेत् ॥
इयं सा खेचरी मुद्रा पार्थिवस्थानयोजिता ।
परिवृत्य करौ स्पृष्टावर्धचन्द्राकृती प्रिये ।
तर्जन्यङ्गुष्ठयुगलं युगपत् कारयेत् ततः ।
अध कनिष्ठिकाष्टब्धे मध्यमे विनियोजयेत् ॥
अथैव कुटिले कृत्वा तर्जन्युपरिसंस्थिते ।
अनामिकामध्यगते तथैव हि कनिष्ठिके ॥
सर्वा एकत्र संयोज्य अङ्गुष्ठपरिपीड़िताः ।
एषा तु प्रथमा मुद्रा योनिमुद्रेति संज्ञिता ॥

वामहस्तेन मुष्टिं तु बद्ध्वाकर्णप्रदेशकम्।
तर्जनीं सरलां कृत्वा भ्रामयेन्मनुवित्तमः॥
सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा न्यासकालेऽपि सूचिता।
अन्तरङ्गुष्ठमुष्ट्या तु निरुद्धय तर्जनीमिमाम्॥
रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा न्यासकाले तु सूचिता।
बद्ध्वा तु योनिमुद्रां वै मध्यमे कुटिले कुरु॥
अङ्गुष्ठेन तदग्रे तु मुद्रेयं भूतिनी मता।
वाममुष्टिं विधायाथ तर्जनीमध्यमे ततः
प्रसार्य तर्जनी मुद्रा निर्दिष्टा वज्रपाणिना।''

अथ प्रधानपूजा—

शालग्राम अथवा प्रतिष्ठित मूर्ति में आवाहन और विसर्जन नहीं होते, क्योंकि वहाँ श्रीहरि सदा ही सन्निहित रहते हैं।

''शालग्रामे स्थावरे वा नावाहनविसर्जने।
शालग्रामशिलादौ यन्नित्यं सन्निहितो हरिः॥''

मूल और श्रीरामगायत्री का उच्चारण करके 'साङ्गाय सायुधाय सवाहनाय सपरिवाराय सशक्तिकाय रामाय पुष्पाञ्जलिं कल्पयामि नमः' इस मन्त्र से पुष्पाञ्जलि अर्पित कर पूर्वोक्त विधियों से पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क, उद्वर्तन और अभ्यङ्ग देकर महास्नान अभिषेक करके वस्त्रादि देकर भगवान् श्रीराम का नीराजन करना चाहिये। पुरुष-सूक्त से शुद्ध शङ्खोदक, क्षीर, दधि, घृत, मधु और शर्करा से पृथक्-पृथक् स्नान कराना चाहिये। नारिकेलजल और तालफल के जल से, बहुत सुगन्ध द्रव्यों से, गन्धोदक से, इक्षुरस तथा कूर्परगन्धवासित जल से, कदली, पनस तथा आम्र के सुगन्धित रस से शत, सहस्र, अयुत यथाशक्ति अभिषेक करना चाहिये। शङ्ख को पुष्पसहित रसों से पूर्ण करके उससे अभिषेक करना चाहिये। बीच-बीच में कृष्णागुरु आदि से धूप करना चाहिये। पुनः शुद्ध जल से स्नान करना चाहिये। राज्यार्थी राज्यप्राप्ति के लिए नित्य इसी प्रकार वत्सरपर्यन्त पूजा करे। अभिषेकानन्तर आचमन के लिए जल देकर वस्त्रयुगल अर्पण करना चाहिये। पुनः आचमन के अनन्तर उत्तरीयसहित यज्ञोपवीत प्रदान करना चाहिये। पादुका मुद्रा से पीठ पर भगवान् को लाकर तुलसीदलमिश्रित विविध आभूषणों से आभूषित करना चाहिये। मूलमन्त्र से गन्ध समर्पण करके आठ पुष्पाञ्जलियाँ देना चाहिये।

''ॐ श्रीसीतायै स्वाहा' इस मन्त्र से तप्तकाञ्चनवर्णाभा सीता का वामभाग में पूजन करना चाहिये। त्रिकोण के दक्षिण कोणाग्र में लक्ष्मण की 'ॐ लं लक्ष्मणाय नमः' इस मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। त्रिकोण के वाम-पार्श्व में 'ॐ शां शार्ङ्गाय नमः' इस मन्त्र से शार्ङ्गधनुष की और दक्षिणपार्श्व में 'ॐ शं शरेभ्यो नमः' इस मन्त्र से शरों की पूजा करनी चाहिये। फिर बहिरङ्ग पूजा की अनुज्ञा लेकर आवरणपूजा करनी चाहिये। सर्वत्र अनुपनीत एवं उपनयनानधिकृत लोगों को प्रणवरहित नाममन्त्र से ही पूजा करनी चाहिये।

इति पुष्पार्पणान्ता प्रधानपूजा।

अथ आवरणपूजा

तत्र प्रथमावरणम्—षट्कोणे वह्न्याशामारभ्य (१) ॐ रां हृदयाय नमः हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (२) ॐ रीं शिरसे स्वाहा शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (३) रूं शिखायै वषट् शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (४) ॐ रैं कवचाय हुम् कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

(५) ॐ रौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रत्रयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। (६) ॐ रः अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। इति प्रथमावरणम्। सब शक्तियाँ हाथ में वर और अभय धारण की हुई हैं।

"वरदाभयधारिण्यो वह्न्याशामारभ्य पूजयेत्।
हारेन्दुश्यामनीलाभाः कृष्णारुणरुचः स्त्रियः॥"

हस्तौ प्रक्षाल्य—

अथ द्वितीयावरणम्—अष्टदले मूले—ॐ आं आत्मने नमः। ॐ यं परमात्मने नमः। ॐ विं विद्यायै नमः। ॐ सं ज्ञानात्मने नमः। ॐ शां शान्त्यै नमः।

"द्वितीयात्मादिकैर्देवैरष्टाब्जमूलके तथा।
यथा रामस्तथैवेताः शक्तयश्च कराम्बुजाः॥"

इति द्वितीयावरणम्।

अथ तृतीयावरणम्—अष्टासु पर्वसु—(१) ॐ वां वासुदेवाय नमः, वासुदेवश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। एवं सर्वत्र (२) श्रीं श्रियै नमः। (३) सं संकर्षणाय नमः। (४) शां शान्त्यै नमः। (५) प्रं प्रद्युम्नाय नमः। (६) रं रत्यै नमः। (७) अं अनिरुद्धाय नमः। (८) प्रीं प्रीत्यै नमः। तत्र स्फटिकस्वर्णदूर्वेन्द्रनीलाभा देवाः स्वच्छाच्छपद्मकिञ्जल्कश्यामलाः शक्तयः। इति तृतीयावरणम्।

चतुर्थावरणम्—अष्टपत्राग्रेषु—(१) हं हनुमते नमः हनुमच्छ्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः। एवं सर्वत्र। (२) सुं सुग्रीवाय नमः। (३) भं भरताय नमः (४) विं विभीषणाय नमः। (५) लं लक्ष्मणाय नमः (६) अं अङ्गदाय नमः। (७) शं शत्रुघ्नाय नमः। (८) जां जाम्बवते नमः।

"वाचयन्तं हनूमन्तं देवस्याग्रे सपुस्तकम्।
रम्यौ भरतशत्रुघ्नौ धृतातपत्रं सौमित्रिम्॥
कृताञ्जलिपुटान् परान्। अत्र सौमित्रिः सहस्रफणातपत्रधरः।"

पञ्चमावरणम्—द्वितीयेऽष्टदले—(१) सृं सृष्टयै नमः। (२) जं जयन्ताय नमः। (३) विं विजयाय नमः। (४) सौं सौराष्ट्राय नमः। (५) रां राष्ट्रवर्धनाय नमः। (६) अं अकोपाय नमः। (७) धं धर्मपालाय नमः (८) सुं सुमन्त्राय नमः। एतान् मन्त्रिणः कृताञ्जलीन् आन्वीक्षिकीं मन्त्रयतो द्वितीयाष्टदलेऽर्चयेत्॥

षष्ठावरणम्—द्वादशारे—(१) वं वसिष्ठाय नमः। (२) वां वामदेवाय नमः। (३) जां जाबालये नमः। (४) गौं गौतमाय नमः। (५) भं भरद्वाजाय नमः। (६) कौं कौशिकाय नमः। (७) वां वाल्मीकये नमः (८) नां नारदाय नमः। (९) सं सनकाय नमः। (१०) सं सनन्दनाय नमः (११) सं सनातनाय नमः। सं सनत्कुमाराय नमः।

"कमण्डलुधरान् सर्वान् मन्त्रमुच्चरतो मुनीन्।
द्वादशारेऽर्चयेत् पूर्वादिक्रमेण ततः परान्॥"

सप्तमावरणम्—षोडशारे—(१) नीं नीलाय नमः। (२) नं नलाय नमः। (३) सुं सुषेणाय नमः। (४) मैं मैन्दाय नमः। (५) शं शरभाय नमः (६) द्विं द्विविदाय नमः। (७) चं चन्दनाय नमः। (८) गं गवाक्षाय नमः। (९) किं किरीटाय नमः। (१०) कुं कुण्डलाभ्यां नमः। (११) श्रीं श्रीवत्साय नमः। (१२) कौं कौस्तुभाय नमः। (१३) शं शङ्खाय नमः। (१४) चं चक्राय नमः। (१५) गं गदायै नमः। (१६) पं पद्माय नमः। षोडशदलाब्जे पूर्वादिक्रमेणार्चयेत् कृताञ्जलीन्।

अष्टमावरणम्—द्वात्रिंशद्दलेषु—(१) ध्रुं ध्रुवाय नमः। (२) धं धराय नमः। (३) सों सोमाय नमः। (४) आं आपाय नमः। (५) अं अनिलाय नमः। (६) अं अनलाय नमः। (७) प्रं प्रत्यूषाय नमः (८) प्रं प्रभासाय नमः। (९) वीं वीरभद्राय नमः। (१०) शं शम्भवे नमः। (११) गिं गिरीशाय नमः। (१२) अं अजैकपदे नमः। (१३) अं अहिर्बुध्न्याय नमः। (१४) पिं पिनाकिने नमः। (१५) भुं भुवनाधीश्वराय नमः। (१६) कं कपालिने नमः। (१७) दिं दिक्पतये नमः। (१८) स्थां स्थाणवे नमः। (१९) भं भगाय नमः। (२०) वं वरुणाय नमः। (२१) सूं सूर्याय नमः (२२) वें वेदाङ्गाय नमः। (२३) भां भानवे नमः। (२४) इं इन्द्राय नमः। (२५) रं रवये नमः। (२६) गं गभस्तिने नमः। (२७) यं यमाय नमः। (२८) हिं हिरण्यरेतसे नमः। (२९) दिं दिवाकराय नमः। (३०) मिं मित्राय नमः। (३१) विं विष्णवे नमः। (३२) धां धात्रे नमः।

"ध्रुवाद्यैरष्टमावृत्तिर्द्वात्रिंशद्दलपङ्कजे ।
ध्रुवो धरश्च सोमश्च आपश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥
शूलं खड्गं तथा चक्रं पट्टिशं कुलिशं छुरीम् ।
कोदण्डं मुद्गरं चैव वसूनामायुधक्रमः ॥
वीरभद्रश्च शम्भुश्च गिरीशश्च महायशाः ।
अजैकपादहिर्बुध्न्यः पिनाकी चापराजितः ॥
भुवनाधीश्वरश्चैव कपाली च दिशां पतिः ।
स्थाणुर्भगश्च भगवान् रुद्रा एकादश स्मृताः ॥
शल्लकं डमरुं शूलं शिखरं यमदंष्ट्रकम् ।
कृष्णादिकं ? पिनाकं च अघोरास्त्र तथाङ्कुशम् ॥
खट्वाङ्गं च स्थाणुपरं शक्तिहेतिधरास्तथा ।
रुद्रायुधानि चैतानि प्रोक्तवान् क्रमशः शिवः ॥
वरुणः सूर्यवेदाङ्गौ भानुरिन्द्रो रविस्तथा ।
गभस्तिश्च यमश्चैव स्वर्णरेता दिवाकरः ॥
मित्रो विष्णुरिति प्रोक्ता आदित्या आदितः क्रमात् ।
पाशं च मुद्गरं शङ्खं शल्यं शृङ्गं कृपाणकम् ॥
गदां दण्डं वज्रमब्जं तथा सर्पं सुदर्शनम् ।
आदित्यानां द्वादशानामायुधानि विदुः क्रमात् ॥"

इत्यष्टमावरणम्

अथ नवमावरणम्—द्वात्रिंशद्दलबाह्ये प्रथमभूपुराद् बहिः—(१) लं इन्द्राय सुराधिपतये सायुधाय सपरिवाराय सवाहनाय स्वशक्तियुताय नमः। एवं सर्वत्र (२) रं अग्नये तेजोधिपतये सायुधाय। (३) यं यमाय प्रेताधिपयये सा०। (४) क्षं निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये सायुधाय०। (५) बं वरुणाय जलाधिपतये। (६) यं वायवे प्राणाधिपतये। (७) सं सोमाय नक्षत्राधिपतये (८) ईं ईशानाय विद्याधिपतये० इति पूर्वाद्यष्टदिक्षु। (९) आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये ईशानपूर्वयोर्मध्ये। (१०) ह्रीं विष्णवे भूताधिपतये नैर्ऋत्यपश्चिममध्ये।

अथ दशमावरणम्—नवमावरणार्चनक्रमेण द्वितीयभूपुरे—(१) वं वज्राय नमः। (२) शं शक्त्यै नमः। (३) दं दण्डाय नमः। (४) खं खड्गाय नमः। (५) पां पाशाय नमः। (६) ध्वं ध्वजाय नमः। (७) गं गदायै नमः। (८) त्रिं त्रिशूलाय नमः। (९) अं अम्बुजाय नमः। (१०) चं चक्राय नमः। वज्राद्यायुधवर्गं तु द्वितीये भूगृहेऽर्चयेत्।

तदेवं संग्रहः— "षट्कोणे प्रथमावृत्तिः स्यादङ्गैरग्नितः क्रमात् ।
द्वितीयात्मादिकैर्देवैरष्टाब्जमूलके तथा ।
तृतीया वासुदेवाद्यैरष्टपत्रे तथैव च ॥
चतुर्थी वायुपुत्राद्यैः पत्राग्रे पूर्वतः क्रमात् ।
सृष्ट्याद्यैः पञ्चमावृत्तिर्द्वितीयाष्टदले तथा ॥
षष्ठी द्वादशपत्रेषु वसिष्ठाद्यैर्महर्षिभिः ।
सप्तमी षोडशाब्जे स्यात् नीलाद्यैः कपिपुङ्गवैः ॥
ध्रुवाद्यैरष्टमी ज्ञेया द्वात्रिंशद्दलपङ्कजे ।
इन्द्राद्यैर्भूगृहे बाह्ये नवमावरणं भवेत् ॥
तदस्त्रैर्वज्रशक्त्याद्यैर्दशमावरणं तथा ।
दशावरणपूजेयं कर्तव्या साधकोत्तमैः ॥
आराधनासमर्थश्चेद् दद्यादर्चनसाधनम् ।
यो दातुं नैव शक्नोति कुर्यादर्चनदर्शनम् ॥
निस्ताराय तेदवालं भवाब्धेर्मुनिसत्तम ।"

स्वार्जितसामग्र्या पूजने समग्रं फलम्, परोनीतद्रव्यैः पूजनेऽर्घं फलम् ।

ॐ श्रीरामपार्षदेभ्यो नमः इति तृतीये भूगृहेऽर्चयेत् । ततो बहिर्निर्गम्यः पुष्पाञ्जलिं दत्वा सपरिवाराय भगवते धूपदीपादीनुपचारान् कल्पयेत् । इत्यावरणपूजा ।

"वामे कोदण्डदण्डं निजकरकमले दक्षिणे बाणमेकं
पश्चाद्भागे च नित्यं दधतमभिमतं सासितूणीरभारम् ।
वामेऽवामे लसद्भ्यां सह मिलिततनुं जानकीलक्ष्मणाभ्यां
श्यामं रामं भजेऽहं प्रणतजनमनःखेदविच्छेददक्षम् ॥
ध्यायेदाजानुबाहुं धृतशरधनुषं बद्धपद्मासनस्थं
पीतं वासो वसानं नवकमलदलस्पर्धिनेत्रं प्रसन्नम् ।
वामाङ्कारूढसीतामुखकमलमिलल्लोचनं नीरदाभं
नानालङ्कारदीप्तं दधतमुरुजटामण्डलं रामभद्रम् ॥
यश्चिन्तारत्नकल्पद्रुमविभवभुवां मण्डनं मण्डनानां
सर्वासां सम्पदां यस्त्रिजगति जगतां मङ्गलं मङ्गलानाम् ।
हेमामत्रस्थदूर्वादधिमधुलवणैर्दृष्टिमुत्तार्य चार्यैं
र्नीराज्यो रामचन्द्रो दिनकरकरजिद्रत्नदीपावलीभिः ॥"

होमः— आहवनीयं गार्ह्यं लौकिकं वाग्निमानीयास्त्रेण क्रव्यादांशं नैर्ऋत्ये परित्यज्य मूलमन्त्रेण देवांशं संस्थाप्य मूलमन्त्रेण वीक्ष्य शरेण संप्रोक्ष्य तेनैव ताडयित्वा दर्भैर्वर्मणाभ्युक्ष्य अन्वाधाय पर्युक्ष्य परिस्तीर्य यथाविधि । प्राणानायम्य यथाविधि होमतर्पणमार्जनब्राह्मणतर्पणादिकं कुर्यात् ।

"अग्न्याधानादिकं कर्म नित्यहोमे न विद्यते ।"

वलिप्रदानम्— "ध्यात्वानीतं तु मूर्तौ तं श्रीरामं पीठमागतम् ।
मुख्यादीशानतः पात्रान्नैवेद्यांशं समुद्धरेत् ॥

शतांशं वा सहस्रांशमन्यथा निष्फलं भवेत् ।
सर्वदेवस्वरूपाय पराय परमेष्ठिने ॥
श्रीराम सेनायुक्ताय विष्वक्सेनाय ते नमः ।
वामतो रामचन्द्राय तीर्थक्लिन्नं समर्पयेत् ॥
गणेशे वक्रतुण्डाय सूर्ये चण्डांशवेऽर्पयेत् ।
शक्तावुच्छिष्टचाण्डाल्यै शिवे चण्डेश्वराय च ॥
हस्तावासं सकर्पूरं मुकुटं भूषणानि च ।
कुण्डलादीनि शङ्खादिदशमुद्राः प्रदर्शयेत् ॥"

प्रार्थना— "ध्येयं सदापरिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥
यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टं पादाम्बुजं रघुपतेः शरणं प्रपद्ये ॥"

प्रदक्षिणा— "नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्चिताङ्घ्रये ॥
सप्तद्वीपधरादानपुण्यं विद्धि पदे पदे ।
प्रदक्षिणं तु यः कुर्याद्धरेर्भक्त्या समन्वितः ॥"

श्रीरामोत्तरतापनीमन्त्रैः श्रीरामस्तुतिः—'अथ हैनं भारद्वाजो याज्ञवल्क्यमुवाचाथ कैर्मन्त्रैः स्तुतः श्रीरामचन्द्रः प्रीतो भवति । स्वात्मानं दर्शयति तन्नो ब्रूहि भगवन्निति स होवाच याज्ञवल्क्यः पूर्वं सत्यलोके श्रीरामचन्द्रेणैवं शिक्षितो ब्रह्मा पुनरेतया गाथया नमस्करोति—

"विश्वाधारं महाविष्णुं नारायणमनामयम् ।
पूर्णानन्दैकविज्ञानं परं ज्योतिःस्वरूपिणम् ॥
मनसा संस्मरन् ब्रह्मा तुष्टाव परमेश्वरम् ।"

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अद्वैतपरमानन्द आत्मा यत्र परं ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (१) यथा प्रथममन्त्रोक्तौ आद्यन्तौ तथा सर्वमन्त्रेषु ज्ञातव्यौ । यो हवै श्रीरामचन्द्रः स भगवान यश्चाखण्डैकरसात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (२) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् परमानन्दरसामृतं भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (३) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानव्ययस्तारकं ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (४) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् विष्णुरीश्वरो यः सर्वदेवतात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (५) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अन्ये सर्वे वेदाः शाङ्गाः सशाखाः सपुराणा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (६) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अन्ये पञ्चाग्नयो भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (७) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अन्याः सप्तव्याहृतयो भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (८) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानन्यो जीवात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (९) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानन्यः सर्वभूतान्तरात्मा भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (१०) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानन्ये मत्स्यकूर्मवराहाद्या भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (११) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानन्यः प्राणो भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः । (१२) यो ह वै

श्रीरामचन्द्रः स भगवानन्योऽन्तःकरणचतुष्टयात्मा भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः। (१३) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अन्यानि पञ्चभूतानि भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः। (१४) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानन्यः कालो भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः। (१५) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानन्यश्च मनुर्भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः। (१६) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् अन्यो यमो भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः। (१७) यो ह वै श्रोरामचन्द्रः स भगवान् अन्योऽन्तको भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः। (१८) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानन्यो मृत्युर्भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः। (१९) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानमृतं भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः। (२०) यो ह वै श्रीरमचन्द्रः स भगवान् विद्या भूर्भुवःस्वस्तस्मै वै नमो नमः। (२१) यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान् सरस्वती भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः। २२

यो	ह	वै श्रीरामचन्द्रः	स भगवान्	लक्ष्मीर्भूर्भुवःस्वस्तस्मै	वै नमो	नमः	२३
	,,	,,	,,	गौरी ,,	,,	,,	२४
	,,	,,	,,	जानकी ,,	,,	,,	२५
	,,	,,	,,	त्रैलोक्यं ,,	,,	,,	२६
	,,	,,	,,	सूर्यः ,,	,,	,,	२७
	,,	,,	,,	सोमः ,,	,,	,,	२८
	,,	,,	,,	नक्षत्राणि ,,	,,	,,	२९
	,,	,,	,,	अष्टौ लोकपालाः ,,	,,	,,	३०
	,,	,,	,,	अष्टौ वसवः ,,	,,	,,	३१
	,,	,,	,,	नव ग्रहाः ,,	,,	,,	३२
	,,	,,	,,	एकादश रुद्राः ,,	,,	,,	३३
	,,	,,	,,	द्वादशादित्याः ,,	,,	,,	३४
	,,	,,	,,	भूतं भव्यं भविष्यद्	,,	,,	३५
	,,	,,	,,	ब्रह्माण्डस्यान्तर्बहिर्व्याप्नोति यो विराट्भूं०		,,	३६
	,,	,,	,,	अन्ये हिरण्यगर्भो महादेवो महेश्वरः		,,	३७
	,,	,,	,,	अन्यश्चोङ्कारः ,,	,,	,,	३८
	,,	,,	,,	चतस्रोऽर्धमात्राः ,,	,,	,,	३९
	,,	,,	,,	प्रकृतिपरमपुरुषः ,,	,,	,,	४०
	,,	,,	,,	ॐ नमो भगवते वासुदेवाय यो महाविष्णुर्भूं०			४१
	,,	,,	,,	ज्ञानात्मा ,,	,,	,,	४२
	,,	,,	,,	परमात्मा ,,	,,	,,	४३
	,,	,,	,,	सर्वान्तरात्मा ,,	,,	,,	४४
	,,	,,	,,	सच्चिदानन्दकाद्वैतैकरसानन्दो		,,	४५
	,,	,,	,,	अन्ये देवासुरमनुष्यादिभावाः स्थावरजङ्गमाः			४६
	,,	,,	,,	विज्ञानात्मा ,,	,,	,,	४७

इत्येतान् ब्रह्माब्रवीत् ब्रह्माऽब्रवीत्। सप्तचत्वारिंशन्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तौति ततो देवः प्रीतो भवति स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद् यस्तैर्मन्त्रैर्नित्यं देवं स्तवीति स देवं पश्यति सोऽमृतत्वं गच्छतीति इत्याथर्वणश्रीरामोत्तरतापनीयं मन्त्रस्तुतिः।

गीतनृत्यादि। ततः दण्डवत्प्रणम्य प्रार्थना—

"त्वय्येव भक्तिं जनय त्वमेव मामुद्धरास्मात् कृपया भवाब्धेः।
क्लिष्टं कृपालो न दयास्ति ते चेत्तर्हीश हा कर्मवशो हतोऽस्मि॥"

तीर्थग्रहणम्—

"देवदेव जगन्नाथ शङ्खचक्रगदाधर।
देहि राम ममानुज्ञां तव तीर्थनिषेवणे॥
लब्ध्वानुज्ञां ततस्तीर्थे पात्रस्थे मन्त्रमालिखेत्।
कुशैर्मूलं लिखित्वा तु पठेन्मन्त्रमघापहम्॥
अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णोः पादोदकं तीर्थं शिरसा धारयाम्यहम्॥

तुलस्यर्चा—

"या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुःपावनी
रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्ताऽन्तकत्रासिनी।
प्रत्यासत्तिविधायिनी भगवतः कृष्णस्य संरोपिता
न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥"

अपराधक्षमापनम्—

"यानैर्वा पादुकैर्वापि गमनं भगवद्गृहे।
देवोत्सवाद्यसेवा च अप्रणामस्तदग्रतः॥
उच्छिष्टे चैव चाशौचे भगवद्वन्दनादिकम्।
एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात् प्रदक्षिणम्॥
पादप्रसारणं चाग्रे तथा पर्यङ्कबन्धनम्।
शयनं भक्षणं वापि मिथ्याभाषणमेव च॥
उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः।
निग्रहानुग्रहौ चैव स्त्रीषु च क्रूरभाषणम्॥
कम्बलावरणं चैव परनिन्दा परस्तुतिः।
अक्लिष्ट (अश्लील) भाषणं चैव अधोवायुविमोक्षणम्॥
शक्तौ गौणोपचारश्च अनिवेदितभक्षणम्।
तत्तत्कालोद्भवानां च फलादीनामनर्पणम्॥
विनियुक्तावशिष्टस्य व्यञ्जनादेः प्रदानकम्।
पृष्ठे कृत्वासनञ्चैव परेषामभिवन्दनम्॥
गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा।
अपराधास्तथा विष्णोर्द्वाविंशत्परिकीर्तिताः॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व मधुसूदन॥
इमं मन्त्रं समुच्चार्य प्रणमेद् दण्डवद् भुवि।
अपराधसहस्राणि क्षमते सर्वगो हरिः॥"

"एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय॥"

अथ कर्मार्पणम्— "कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृतस्वभावात् ।
करोति यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत् ।।
साधु वाऽसाधु वा कर्म यद् यदाचरितं मया ।
तत्सर्वं भगवन् विष्णो गृहाणाराधनं परम् ।।
इति शङ्खजलं दद्याद् देवस्य दक्षिणे करे ।"

इति कर्मार्पणम् ।

अथात्मार्पणम्— "सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ।।
सोऽहं दासोऽहमिति वा बुद्धिर्यस्यामला दृढ़ा ।
कर्मभिर्न स बद्ध्येत ह्यकर्तृत्वाच्छिवेषुवत् ।।
त्वमेवाहमहं च त्वं सच्चिन्मात्रवपुर्धरः ।
आवयोरन्तरं भ्रान्तिर्नश्यत्वाज्ञाबलात् तव ।।"

शेषग्रहणम्— "त्वयोपभुक्तस्रग्गन्धवासोलङ्कारचर्चिताः ।
उच्छिष्टभोजिनो दासास्तव मायां जयेमहि ।।"

विसर्जनम्— "ध्यात्वा रामं जपेन्मन्त्रं तिष्ठेद् यावन्मनो हृदि ।
गुह्यातिगुह्यमन्त्रेण राघवाय निवेदयेत् ।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं रमापते ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ।।
इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा सहृत्यावरणान् हरौ ।
भक्त्या संशोधितं स्वान्तं विश विश्रामहेतवे ।।
अहं रामो न चान्योऽस्मि मन्त्रमेनमुदीरयेत् ।
आत्मानं सततं रामं संभाव्य विहरन्ति ये ।।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः ।।"

षष्ठे दिनविभागे पञ्च महामखान् कुर्यात् । सप्तमे विभागे इतिहासपुराणाभ्यामंशं सप्तमकं नयेत् । **अष्टमभागे** सन्ध्यां राघवीमुपासीत । हुत्वाग्निहोत्रं विधिना ततो होमं समापयेत् ।

रात्रिप्रथमभागकृत्यम्—

"न्यासं षडङ्गं कृत्वा तु प्राणायामपुरस्सरम् ।
सकृदभ्यर्च्य नीराज्य प्रार्थयेज्जानकीपतिम् ।।
आगच्छ शयनागारं सीतया सह राघव ।
पर्यङ्के तिलके प्रशस्तफलके भोगीन्द्रचित्राङ्कके
स्वच्छप्रच्छदभानुके मृदुशिरःस्थानोपधानादिके ।
उन्मीलत्कुलशीलया दयितया श्रीसीतया सत्कृते
शेते नित्यमगण्यपुण्यफलदः श्रीकोशलेन्द्रो नृपः ।।"

प्राणाग्निहोत्रम्— "सत्यं त्वर्ते तेनेति मन्त्रैः प्रोक्षयेदन्नमादरात्।
धर्मराजाय चित्राय चित्रगुप्ताय वै बलिः॥
अश्नीयान्मन्त्रराजेन स्वन्नं समाभिमन्त्रितम्।
अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः॥
एवं ज्ञात्वा तु यो भुङ्क्ते सोऽन्नदोषैर्न लिप्यते।"

अन्तश्चरसि भूतानां गुहायां विश्वतोमुखः त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वं विष्णोः परमं पदम्। अमृतोपस्तरणमसि इति जलं प्राश्य तत्र मध्ये इन्द्रवरुणशशियमदिग्गतानि हृदि कुण्डानि। अन्वाहार्याहवनीयगार्हपत्यसभ्यावसथ्यानि। तत्र गार्हपत्ये हुनेत् प्राणाय स्वाहेति हिरण्यया जुह्वा, अनामाङ्गुष्ठतः क्रमात्। अन्वाहार्ये अपानाय स्वाहा मध्यमाङ्गुष्ठयुग्मेन। आहवनीये रत्नवर्णस्रुचा व्यानाय स्वाहा मध्यमाङ्गुष्ठयुग्मेन। सभ्ये तु कृष्णवर्णस्रुचा तर्जन्यङ्गुष्ठयुग्मेनोदानाय स्वाहा। आवसथ्ये सुप्रभावर्णया स्रुचा सर्वाभिरङ्गुलीभिः समानाय स्वाहेति।

"नैवेद्यशेषं तुलसीविमिश्रं विशेषतः पादजलेन विष्णोः।
योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नोति यज्ञायुतकोटिपुण्यम्॥"

"प्रतिविद्धं च नाश्नीयात् पवित्रमपि नावृतम्।
सन्ध्ययोरुभयोर्जाप्ये भोजने दन्तधावने॥
पितृकार्येषु दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः।
गुरूणां संनिधौ दाने स्नाने चैव विशेषतः॥
एवं मौनं समातिष्ठन् स्वर्गं प्राप्नोति मानवः।
वामाङ्गे जलं न निधेयम्॥
तृप्तो दद्यादन्नशेषं भूमौ दुर्गततृप्तये।
यत्र क्वचन संस्थानां क्षुत्तृषोपहतात्मनाम्॥
दुर्गतानां मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु।
अमृताभिधानमसि इति पुनरपि जलमाचम्य॥
भुक्तं तदन्नं तीर्थवारिणापिदध्यात्।
आचमनशेषमर्धं तदम्बु भूभागे दद्याद् दुर्गततृप्तये॥
सम्यगाचम्य दक्षाङ्घ्रेरङ्गुष्ठे वारि निःक्षिपेत्।
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ह्यङ्गुष्ठञ्च समाश्रितः॥
ईशः सर्वस्य जगतः प्रभुः प्रीणातु विश्वभुक्।
ततः संस्मृत्य संतुष्टः पुष्टिदामिष्टदेवताम्॥
अगस्त्यं कुम्भकर्णं च शनिञ्च वड़वानलम्।
अन्नसंपाचनार्थाय स्मरेद् भीमं च पञ्चमम्॥
विष्णुः समस्तेन्द्रियदेहदेही प्रधानभूतो भगवान् यथैकः।
सत्येन तेनान्नमशेषमेतदारोग्यदं मे परिणाममस्तु॥"

भगवत्प्रसादताम्बूलं भक्षयेद्दिव्यं भगवन्नाम दिव्यं जपन्।

शयनम्— "मृद्भिः शौचविधिं विधाय चरणौ प्रक्षाल्य चोपस्पृशेद्
द्भिः संस्मृत्य जगत्पतिं कुलपतिं श्रीकोशलेन्द्रं नृपम्।

प्रेयस्या निमिषं पिबन् प्रियसुधाधारायमाणं गिरां
वस्त्रेणाङ्घ्रियुगं प्रमृज्य शयनं चासाद्य सद्यः स्वपेत् ॥
रामं स्कन्दं हनूमन्तं वैनतेयं वृकोदरम् ।
शयने यः स्मरेन्नित्यं स दुःस्वप्नं न पश्यति ॥
मूलं स्मृत्वा जपेद् रामरक्षां विघ्नोपशान्तये ।''

पुरश्चरणम्—

आदौ नियतो नित्यं त्रिकालं पुरुषोत्तममर्चयन् षड् लक्षं जपेत् । शुद्धवारिणा पुष्पाक्षतादियुक्तेन पूजितेन तद्दशांशेन तर्पयेत् । यतो बिल्वदलैः पुष्पैः पत्रैश्च हुताशने राममावाह्य पूजयेत् । मधुरत्रयसंयुक्तैः पद्मैर्वा पायसेन वा तिलैर्वान्यितमेनैषां होमः कार्यः । ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ।

''पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च ।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते ॥
गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य प्रसन्नाच्च यथाविधि ।
पञ्चाङ्गोपासनं सिद्धेः परश्चैतद्विधीयते ॥
निष्कामाणामनेनैव साक्षात्कारो भवेदपि ।
अर्थसिद्धिः सकामानां सर्वं तन्निष्फलं न चेत् ॥
पञ्चाङ्गमेतत् कुर्वीत यः पुरश्चरणं बुधः ।
स वै विजयते लोके विद्यैश्वर्यसुतादिभिः ॥
आदावन्ते च मध्ये च ब्राह्मणान् भोजयेद् बहून् ।
दिने दिने यथाशक्त्या राममुद्दिश्य भक्तितः ॥''

होमतर्पणमार्जनाशक्तौ दशमांशद्विगुणजपेनाङ्गपूर्णता । मार्जनदशमांशब्राह्मणभोजनन्त्वनिवार्यमेव । शक्तौ तु शुभपुण्यनक्षत्रवारतिथ्यादौ लौकिकेऽग्नौ यथाविधि संस्कृत्य तिलैः कमलैर्बिल्वप्रसूनैः पलाशकुसुमैर्दूर्वाभिः यथाकामं जुहुयात् ।

''ध्यात्वापि मन्मथं रामं सीतां चापि रतिं स्मरेत् ।
सर्ववश्यप्रयोगेषु जपहोमादिकर्मसु ॥
न सन्ति गुरवो यस्य नैव दीक्षाविधिक्रमः ।
रामरक्षां वदन्नेव तुलसीदलमर्पयेत् ॥
दीक्षान्तरशतेनापि न तत्फलमवाप्यते ।''

अथ चैत्रमासादिकृत्यानि । तत्रादौ दोलोत्सवः

''रामभक्तस्य सिद्ध्यर्थं यदुक्तं नारदादिभिः ।
मधौ शुक्लतृतीयायां जानकीरमणं प्रभुम् ॥
राजोपचारैः सम्पूज्य मासमान्दोलयेत् कलौ ।
दक्षिणाभिमुखं देवं दोलमानं सुरेश्वरम् ॥
सुपूजितं सकृद् दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
दोलारूढस्य देवस्य येऽग्रे कुर्वन्ति जागरम् ॥
सर्वपुण्यफलावाप्तिर्निमिषे निमिषे भवेत ।''

अथ चैत्रशुक्लनवम्यां रामनवमीव्रतम् । इदं नित्यं नैमित्तिकं काम्यञ्च ।

"मुमुक्षवोऽपि हि सदा श्रीरामनवमीव्रतम् ।
न त्यजन्ति सुरश्रेष्ठो देवेन्द्रोऽपि विशेषतः ॥
चैत्रमासे नवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूत्तमः ।
प्रादुरासीत्पुरा ब्रह्म परं ब्रह्मैव केवलम् ॥
तस्मिन् दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा ।"

अत्र सदा पदश्रवणात् अस्य व्रतस्य यावज्जीवविभाव्यत्वं गम्यते ।

"प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः ।
उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते ॥"

इति तदकरणे महादोष श्रवणात् फलश्रवणेऽस्य न नित्यत्वम् । फलश्रवणं च—

"सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे महादानैः कृतैर्मुहुः ।
तत्फलं समवाप्नोति श्रीरामनवमीव्रतात् ॥
कुर्याद् रामनवम्यां य उपोषणमतन्द्रितः ।
मातुर्गर्भं न चाप्नोति स वै रामो भवेत् स्वयम् ॥
तस्मात् सर्वात्मना सर्वैः कर्तव्यं नवमीव्रतम् ।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥"

इति पापक्षयद्वारा मोक्षार्थत्वं च गम्यते । तस्माद् रात्रिसत्रयागवदस्य नित्यत्वादिकं न विरुद्धम् ।

अथ रामनवमीनिर्णयः—"पुनर्वस्वृक्षयोगो हि स्वल्पोऽपि यदि दृश्यते ।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु सा तिथिः सर्वकामदा ॥
श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका ।
चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि ॥
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ।"

तत्र अष्टमीविद्धा नवमी त्याज्या । 'दशम्यादिषु वृद्धिश्चेद्विद्धा त्याज्यैव वैष्णवैः ।' इति वचनात् । तदन्येषां तु विद्धापि नवमी ग्राह्या । 'उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम्' इति दशम्यामेव पारणाविधानात् ।

वैष्णवास्तु— "साङ्गं समुद्रं सन्यासं सऋषिच्छन्ददैवतम् ।
सदीक्षाविधि सध्यानं समन्त्रं द्वादशाक्षरम् ॥
अष्टाक्षरमथान्यं वा ये मन्त्रं समुपासते ।
ज्ञेयास्ते वैष्णवा लोके विष्ण्वर्चनरताः सदा ॥"

अथवा

"सदीक्षाविधि सन्यासं मन्त्रराजं सयन्त्रकम् ।
सहस्राक्षरसंयुक्तं मूलव्यूहादिभेदतः ॥
पञ्चायतनरूपं वा ये विप्राः समुपासते ।
महावैष्णवसंज्ञास्ते महाविष्णोरतिप्रियाः ॥"

"न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे ।
न हरति न च हन्ति किंचिदुच्चैर्जितमनसं तमवेहि वैष्णवाग्रयम् ॥"

इति पाद्मे ।

"त्रिभुवनविभवहेतवेऽप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविदाल्लवनिमिषार्धमपि यः स वैष्णवाग्रयः ॥"

इति श्रीमद्भागवते ।

अथ व्रते प्रतिनिधिः—

एकादश्यादौ शरीरासामर्थ्ये धर्मपत्नीं पुत्रं शिष्यं वा व्रतं कारयेत् ।

"अलङ्कारं पुष्पवस्त्रं गन्धाक्षतानुलेपनम् ।
उपवासे न दुष्येत पुण्यस्त्रीणां तथाञ्जनम् ॥
मन्वादिमुनिभिः प्रोक्तं चतुर्विधमुपोषणम् ।
सताम्बूलमताम्बूलं सभोजनमभोजनम् ॥
त्रिरात्रादि सताम्बूलमेकादश्यामभोजनम् ।
अताम्बूलं च पक्षान्ते सभोजनमुदाहृतम् ॥
एकभक्तेन नक्तेनायाचितेन हविष्यतः ।
पयोमूलफलैर्वापि बालवृद्धातुरः क्षिपेत् ॥
हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवम् ।
अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजी षडाचरेत् ॥
अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥"

अथ रामपूजा—

"सर्वेषां राममन्त्राणां मन्त्रराजः षडक्षरः ।
तारकं ब्रह्म चेत्युक्तं तेन पूजा प्रकाश्यते ॥
यद्वा पुरुषसूक्ताद्यैः दीक्षाविधिमजानतः ।
वैदिकस्याप्यभावे तु नाममन्त्रैर्भवेद् ध्रुवम् ॥"

एवं रामं संपूज्य अष्टमीकृत्यम्—चैत्रशुक्लाष्टम्यां नद्यादौ यथाविधि स्नात्वा वेदशास्त्ररताय दम्भवर्जिताय दान्ताय विप्रवराय भक्त्या सम्पूज्य श्रीरामप्रतिमादानं करिष्य इति सङ्कल्प्य तमेवाचार्यत्वेन वृत्वा विप्रमाज्येन स्नपयित्वा स्वमात्मानं तैलेनाभ्यज्य स्नायात् । श्वेताम्बरधरः श्वेतगन्धमाल्यानि धारयन् कृतमाध्याह्निक आचार्यं सात्त्विकान्नैर्भोजयेत् । हृदि रामं स्मरन् स्वयं भुञ्जीत ।

"नवम्या अङ्गभूतेन एकभक्तेन राघव ।
इक्ष्वाकुवंशतिलक प्रीतो भव भवप्रिय ॥"

एकभक्तव्रती सहाचार्यो जितेन्द्रियः रामकथां शृण्वन्नहःशेषं नयेत् । आचार्यसहितो रात्रावधःशायी एकान्ते श्रीरामार्पितमानसो वसेत् । ततो नवम्यां प्रातः समुत्थाय स्नात्वा सन्ध्यामुपास्य सर्वाणि कर्माणि शीघ्रं समाप्य—

"उपोष्ये नवमीमद्य यामेष्वष्टसु राघव ।
तेन प्रीतो भव त्वं मे संसारात् त्राहि मां हरे ॥"

इत्युपवासनियमं गृह्णीयात् । स्वगृहोत्तरभागे चतुर्द्वारं सुवितानं सुतोरणं मनोरमं महोत्सेधं पुष्पाद्यैः समलङ्कृतं मण्डपं कारयेत् ।

"शङ्खचक्रहनूमद्भिः प्राग्द्वारे समलङ्कृतम् ।
गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षिणं समलङ्कृतम् ॥
पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेरे समलङ्कृतम् ।
गदाखड्गाङ्गदैश्चैव पश्चिमे समलङ्कृतम् ॥
मध्ये हस्तचतुष्काढ्यं वेदिकायुक्तमायतम् ।
प्रविश्य नृत्यगीतैश्च वाद्यैश्चापि सुसंयुतम् ॥"

एवं मण्डपं प्रविश्य श्रीरामं स्मरन्नुपोष्य अष्टासु यामेषु यथाविधि पूजयित्वा इमां स्वर्णमयीं प्रतिमां श्रीरामप्रीतये रामभक्ताय दास्ये । तेन—

"प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहूनि मे ।
अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च ॥"

इति त्रिरुच्चार्य सङ्कल्प्य

"कोमलाङ्गं विशालाक्षमिन्द्रनीलसमप्रभम् ।
दक्षिणाङ्गे दशरथं पुत्रस्येक्षणतत्परम् ॥
पृष्ठतो लक्ष्मणं देवं सच्छत्रं कनकप्रभम् ।
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ ॥
अग्रेऽव्यग्रं हनूमन्तं रामानुग्रहकाङ्क्षिणम् ।
वित्तशाठ्यमकृत्वैव मूर्ति कुर्यात् प्रयत्नतः ॥"

अथ पूजा—आसनोपरि संविश्य न्यासजालं विधाय शङ्खं कलशं सम्पूज्य पूजाद्रव्याणि आत्मानं च मन्त्र-मुच्चरन् पाणिना प्रोक्षयेत् । ततः सर्वतोभद्रं निर्माय प्रथमयामपूजामारभेत । तत्प्रकारो यथा—सर्वतोभद्रमध्ये तीर्थोदकैः पूर्णं रत्नोदरं शुभं कुम्भं चूतपल्लवपुष्पैः संयुक्तं संस्थाप्य सौवर्णादिपत्रे यन्त्रमालिखेद् । कलशोपरि वस्त्रयुगच्छन्नं यन्त्रं स्थापयित्वा तत्र दिव्यसिंहासनं स्थापयित्वा अर्चयेत् । आवाहनादिमुद्राभिर्देवमावाह्य सम्पूज्य नानारत्नविचित्राणि भूषणादीनि दद्यात् । यक्षकर्दमादिभिर्गन्धैः कह्लारकेतकीजातीपुन्नागादिपुष्पैः पूजयेत् ।

अथ कौशल्यापूजा— "रामस्य जननी चासि रामात्मकमिदं जगत् ।
अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥"

दशरथपूजा— "नमो दशरथायेति पूजयेत् पितरं तथा ।"

तत आवरणक्रमेण पीठदेवताः पूजयेत् । तद्यथा—

"ततोऽनुज्ञाप्य देवेशं परिवारान् समर्चयेत् ।
पूर्वषट्कोणकोणेषु हृदयादीनि षट् क्रमात् ॥"

एवमनुज्ञां गृहीत्वा सपरिवारं देवं पूजयेत् । द्वितीये यामे मध्याह्ने जन्म भावयेत् । उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां मधौ लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि । निर्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मेध्यादयोध्या-रणेराविर्भूतमभूतपूर्वविभवं यत्किञ्चिदेकं महः ।

"मत्वैवं वादयेद् वाद्यान्यर्घ्यं दद्याज्जगत्पतेः ।
फलपुष्पाम्बुसम्पूर्णं गृहीत्वा शङ्खमुज्ज्वलम् ॥
अशोकचूतकुसुमैर्युक्तं च तुलसीदलैः ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥"

इत्यर्घ्यमन्त्रः ।

"पुनः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा प्रतिमाममतन्द्रितोऽर्चयेत् ।"

अथ दशमीकृत्यम्—दशम्यां स्नात्वा सन्ध्यादिकं कृत्वा श्रीरामं यथाविधि सम्पूज्य साज्येन पायसेनाष्टोत्तरशतं मन्त्रैर्हुत्वा आचार्यं भक्त्या सन्तोष्य रत्नकुण्डलाङ्गुलीयकादिभिः पूजयेत् । ततः—

"इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम् ।
चित्रवस्त्रयुगच्छन्नां रामोऽहं राघवाय ते ॥
श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः ।"

इति प्रतिमां दत्त्वा भुवं दद्यात् । अन्येभ्योऽपि यथान्यायं गोहिरण्यादिकं दद्यात् । वासोयुगं धान्यं यथाविभवं दत्त्वा ब्राह्मणैः सह भुञ्जीत । तेभ्यो दक्षिणां दद्यात् । अथ पारणासङ्कल्पः—

'तव प्रसादस्वीकारः कृतं यत्पारणं मया ।
व्रतेनानेन सन्तुष्टः स्वामिन् भक्तिं प्रयच्छ मे ॥
कृत्वैवं ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते ध्रुवम् ।
बहुना किमिहोक्तेन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥
कुरुक्षेत्रे महापुण्ये सूर्यपर्वण्यनेकशः ।
तुलापुरुषदानाद्यैः कृतैर्यल्लभ्यते फलम् ॥
तत्फलं लभते मर्त्यो दानेनानेन सुव्रत ।"

अथाकिंचनव्रतम्— "अकिंचनोऽपि नियतमुपोष्य नवमीदिने ।
कृत्वा जागरणं भक्त्या रामभक्तैः समन्वितः ॥
स्मरन् रामं धिया भक्त्या पूजयेत् विधिवन्मुने ।"

शक्तावुद्यापनमपि कर्तव्यम् । अशक्तौ तु—

"वर्षे वर्षेऽसमर्थस्य व्रतेनैव प्रपूर्णता ।
न तस्योद्यापनं किञ्चिद् व्रतादन्यद् विधीयते ॥
सर्वव्रतस्य पूर्त्यर्थमिदं रामव्रतं चरेत् ।
नान्येनास्याब्धिवत्पूर्तिरनेनैवास्य पूर्णता ॥"

अथ चैत्रद्वादश्यां दमनकोत्सवः—प्रातः स्नात्वा देवेशं समभ्यर्च्य—

"गच्छेद् दमनकाराममेकादश्यां सुशोभितम् ।
क्रमेणादाय तत्रैव पूजयेच्चन्दनादिना ॥
नेष्यामि रामपूजार्थमिति सम्प्रार्थ्य तं नमेत् ।
उत्पाट्य पञ्चगव्येन प्रोक्ष्य प्रक्षाल्य वारिणा ॥

अशोकमूले गन्धाद्यैः स्थण्डिले पूजयेत् क्रमात् ।
अशोकं च तथा कालं वसन्तं काममेव च ।।
ॐ अशोकाय नमस्तुभ्यं कामस्त्रीशोकनाशन ।
शोकार्त्तो हर मे नित्यमानन्दं जनयस्व मे ।।
त्रुट्यादिकालपर्यन्तः कालरूपी महाबलः ।
फलते चैव यः सर्वं तस्मै कालात्मने नमः ।।
वसन्ताय नमस्तुभ्यं वृक्षगुल्मलताप्रिय ।
सहस्रमुखसंवाह कामरूप नमोऽस्तु ते ।।
कामभस्मसमुद्भूत रतिवाष्पपरिप्लुत ।
ऋषिगन्धर्वदेवादिविमोहक नमोऽस्तु ते ।।
सङ्गृह्य दमनं पुण्यं पूजयेन्मनुनाऽमुना ।
नमोऽस्तु पुष्पबाणाय जगदाह्लादकारिणे ।।
मन्मथाय जगन्नेत्रे रतिप्रीतिप्रियाय ते ।"

अनेन मन्त्रेण दमनकमुपस्थाय परिवारसमन्वितं कामरूपिणं दमनकं पूजयित्वा धौतेन वाससाच्छाद्य घण्टा-पुरुषसूक्तादिभिः स्वगृहमानयेत् । ततो निशायां श्रीरामस्याग्रे सर्वतोभद्रं निर्माय तत्र कुम्भं संस्थाप्य पुण्येनाम्बुनाऽऽपूर्य तत्र पूजयेत् । पञ्चवर्णाढ्यवितानमारोप्य महतीं पूजां कृत्वा तदधिवासनं कुर्यात् । 'दमन त्वमिहागच्छ सान्निध्यं कुरु ते नमः ।' इत्यावाह्य (१) क्लीं कामदेवाय नमः (२) श्रीं ह्रीं रत्यै नमः (३) ॐ मन्मथाय रामाय क्लीं वसन्तसखाय च । स्मराय चेक्षुचापाय पुष्पास्त्रायेति पूजयेत् । ॐ तत्स्वरूपाय विद्महे कामदेवाय धीमहि । तन्नोऽनङ्गः प्रचोदयात् । इत्यादिभिः सम्पूज्य प्रातस्तुभ्यं दमनकं निवेदयिष्यामीति भगवन्तमामन्त्र्य प्रातर्भगवन्तं सम्पूज्य ।

"देवदेव जगन्नाथ वाञ्छितार्थप्रदायक ।
हृदिस्थान् पूरयेः कामान् मम कामेश्वरप्रिय ।।
इमं दमनकं देव गृहाण मदनुग्रहात् ।
वनमालां यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि ।।
तद्वद् दामनकीं मालां पूजां च हृदये वह ।"

इति चैत्रकृत्यम्

अथ वैशाखज्येष्ठयोः कृत्यम्—वैशाखे ज्येष्ठे च द्वादश्यां स्वर्णरौप्यादिपात्रे तोयस्थं हरिं पूजयेत् ।

अथाषाढ़कृत्यम्

"आषाढ़शुक्लद्वादश्यां क्षीराब्धिशयनोत्सवः ।
कार्योऽन्यथा त्वनावृष्टिर्भवेत्पौराणवाक्यतः ।।"

अथ रामशयनविधिः—गीतवादित्रादिघोषेण शिविकया देवं जलाशयं नीत्वा पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पुरुष-सूक्तादिभिः सम्पूज्य देवं तत्र तोरणाद्यलङ्कृतायां नावि शेषपर्यङ्के फणामणिगणामले स्वापयेत् । विविधोपचारैः सम्पूज्य—

"सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम् ।
विबुद्धे च विबुध्येत प्रसन्नो मे भवाव्यय ।।"

इति प्रार्थयेत

अथ श्रावणमासकृत्यम्—तत्र पवित्रारोपणम् । वासुकेः कनीयान् भ्राता पवित्रो नाम सर्पराट् तपोभिर्भगवन्तं शिवमाराध्य भगवतः कण्ठाभरणतां प्राप्तुं वरं वव्रे । भगवता शिवेन वरं दत्त्वोक्तम्—

"ये त्वां न बहु मन्यन्ते यथा सम्भावितो मया ।
जपहोमादिकं तेषां फलं त्वामेतु निश्चयात् ।।
अत्रैव श्रावणे मासे नक्षत्रे चापि वैष्णवे ।
तस्मादाराधयन्तु त्वां नित्यनैमित्तिकोद्यताः ।।"

वैदिकाः सक्तुहोमेन तव पूजां कुर्वन्तु । तान्त्रिकास्त्वत्सादृश्यानुकारेण निवीतेन त्वामाराध्य देवतायै पवित्रकमारोपयन्तु ।

अथ पवित्रलक्षणम्— "हेमरूप्यताम्रक्षोमैः सूत्रैः कौशेयपद्मजैः ।
कुशैः काशैश्च कार्पासैर्ब्राह्मणीकर्तितैः शुभैः ।।
कन्यया वा पवित्रं स्यान्न पुंश्चल्यादिभिः कृतैः ।
स्नात्वा त्रिगुणितं सूत्रं त्रिगुणीकृत्य शोधयेत् ।।
हृन्मन्त्रेण पञ्चगव्यैरद्भिः प्रक्षालयेत् पुनः ।
मूलेनाष्टोत्तरशतं गायत्र्या रामसंज्ञया ।।
शङ्खोदकेनाभिमन्त्र्य पवित्राणि विनिर्मयेत् ।"

शतग्रन्थि पञ्चाशद्ग्रन्थि वा पवित्रकं रचयेत् । तत्र षष्टया सह त्रिभिः शतैः सूत्रैः उत्तमम्, सप्तत्या सह द्वाभ्यां शताभ्यां मध्यमं साशीतिना शतेन कनिष्ठं, अष्टोत्तरशतेन तदर्धेन वा त्रिभिर्वा पवित्रं भवति । जानूरुनाभिपर्यन्तं पवित्रमुत्तमादिकं भवति । पवित्रं कुङ्कुमरोचनादिभिः संरज्य अष्टाक्षराद्यभिमन्त्रितमधिवास्य महतीं पूजां कृत्वा यथाविधि देवायार्पयेत् ।

अथ भाद्रपदकृत्यम्— "भाद्रशुक्लद्वादश्यां शयन्युत्सववत् कटदानोत्सवं कुर्यात् ।
तदानीमेव भगवतः पार्श्वं परिवर्तयेत् ।।
ॐ वासुदेव जगन्नाथ प्राप्तेयं द्वादशी तव ।
पार्श्वेन परिवर्तस्व सुखं स्वपिहि माधव ।।"

अथाश्विनमासकृत्यम्—आश्विनशुक्लदशम्यां विजयोत्सवः कार्यः । तत्र हनुमद्वाक्यहृष्टया जनकात्मजया सहितं सौमित्रिसुग्रीवादिभिर्युतं रथारूढं श्रीरामं देवं राजोपचारैः सम्पूज्य शमीवृक्षं प्रति नयेत् । शमीवृक्षं मन्त्रयित्वा साक्षतामार्द्रां शमीमूलगतां मृदं गृहीत्वा गीतवादित्रघोषैर्देवं गृहं नयेत् ।

"कैश्चिदृक्षैस्तत्र भाव्यं कैश्चिदन्यैश्च वानरैः ।
कैश्चिद्वक्रमुखैर्भाव्यं कोसलेन्द्रस्य तुष्टये ।।
निर्जिता राक्षसा दैत्या वैरिणो जगतीतले ।
रामराज्यं रामराज्यं रामराज्यमिति ब्रुवन् ।।
दिव्यसिंहासने देवं सुस्थं कृत्वा नीराज्य प्रणमेत् ।

अथ कार्तिककृत्यम्—तत्र शुक्लैकादश्यां शयन्युत्सववत् विष्णुप्रबोधोत्सवं कुर्यात् । आश्विनशुक्लैकदशीमारभ्य देवं प्रबोध्य जागरं कुर्यात् ।

"कार्तिके पश्चिमे यामे स्तवं गीतं करोति यः।
वसते श्वेतवैकुण्ठे पितृभिः सह नारद ॥
नीराज्येशं ततः स्नायाद्विधिना हरितुष्टये।"

वाद्यघोषैर्देवं जलाशयं नीत्वा सङ्कल्प्य मन्त्रान् पठेत्।

"ब्रह्मेन्द्ररुद्राग्निकुबेरसूर्यसोमादिभिर्वन्दितपादपीठ।
बुध्यस्व देवेश जगन्निवास मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव॥
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते।
त्वयि सुप्ते जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदम्॥
उत्थिते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव।"

'इदं विष्णु' रित्यादिवैदिकांश्च मन्त्रान् पठेत्। तीरे देवं समुपवेश्यानुग्रहं प्रार्थयेत॥

"सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् प्रबुद्धः प्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन्।
उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिरापनयतात् पुरुषः पुराणः॥"

इति पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा पञ्चामृतैः संस्नाप्य वस्त्रालङ्कारचन्दनैः स्रग्धूपदिव्यालङ्कारताम्बूलादिभिरर्चयेत्। चातुर्मास्यव्रतादिकं समर्प्य गीतवाद्यस्वनैर्देवं रथमारोहयेत्।

"रथस्थितो नरैर्विप्रपूजितो मधुसूदनः।
ददाति वाञ्छितं तेषामन्ते च परमां गतिम्॥
दोलायमानं गोविन्दं रथस्थं मधुसूदनम्।
नृणां भक्त्या सकृद् दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥"

पौर्णमास्यां सन्ध्यायां त्रिपुरोत्सवः कार्यः। तत्र—

"कीटाः पतङ्गा मशकाश्च वृक्षा जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः।
दृष्ट्वा प्रदीपं न च जन्मभागिनो भवन्ति सत्यं श्वपचोऽपि विप्राः॥"

इति स्कान्दे त्रिपुरोत्सवः

मार्गशीर्षे एकभक्तं नक्तव्रतं कृत्वा हरिं सम्पूज्य ब्राह्मणांस्तर्पयेत्।

अथ पौषमाघयोः कृत्यम्—

"पौषस्यैकादशीं शुक्लामारभ्य स्थण्डिलेशयः।
मासमात्रं रघुप्रीत्यै द्विवारं स्नानमाचरेत्॥

त्यक्तभोगो जितेन्द्रियः त्रिकालं श्रीरामं दध्योदनादिभिरर्चयेत्।

अथ फाल्गुनमासकृत्यम्—तत्र पौर्णमास्यां होलिकोत्सवं वसन्तार्चां कुर्यात्। विमले प्रभाते प्रतिपद्भास्करोदये नित्यकर्मादिकं निर्वाह्य पितृदेवताः सन्तर्प्य सर्वोपद्रवशान्तये होलिकाविभूतिवन्दनं कुर्यात्।

तत्र मन्त्रः— "वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च।
अतस्त्वं पाहि भूतेभ्यो भूते भूतिप्रदा भव॥"

आम्रकुसुमप्राशनम्—आम्रकुसुमानि देवाय निवेदयेत्। विविधगीतविनोदननृत्यैर्देवं सन्तोषयेत्। उपलिप्ते गृहाजिरे अक्षतैश्चतुष्कं कृत्वा तन्मध्ये पीठं स्थापयित्वा पल्लवैर्युतं शुक्लवस्त्रोत्तरच्छदं कलशं स्थापयित्वा तत्रासन उपविष्टस्य भगवतोऽभिषेकं सदूर्वैश्चूतपल्लवैः कुर्यात्।

"कुसुमं चूतवृक्षस्य वसन्तनवपल्लवम् ।
सम्प्राशयामि सुखदमायुरारोग्यवर्धनम् ॥"

इति भगवते निवेद्य प्राश्नीयात् ।

"ये पिबन्ति वसन्तादौ चूतपुष्पं सचन्दनम् ।
सम्यग्हृदिस्थकामस्य पूजां ते कुर्वते जनाः ॥
अनन्तरं द्विजेन्द्राणां सूतमागधवन्दिनाम् ।
दद्याद्दानं यथाशक्ति कामात्मा प्रीयतामिति ॥
सायं चतुष्कगश्वेतच्छदपीठस्थितान् शुचीन् ।
रत्नकुम्भाम्भसा चूतपल्लवैरभिषेचयेत् ॥"

अथाधिकमासकृत्यम्—"अधिकमासे तु सम्प्राप्ते स्मृत्वा सीतापतिं हरिम् ।
सुवर्णेनाज्यसंयुक्तांस्त्रयस्त्रिंशदपूपकान् ॥
दद्याच्च वेदविदुषे श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ।
नश्यत्यकरणे शीघ्रं पुण्यं द्वादशमासजम् ॥"

अथ दशमीसङ्कल्पः—द्वादशस्वपि मासेषु, उभयोरपि पक्षयोर्दशम्यां प्रातरुत्थाय नित्यं निर्वाह्य दशमीदिनमारभ्य व्रतमहं करिष्य इति सङ्कल्प्य श्रीरामपादयोः पुष्पाञ्जलिं दत्वा शङ्खोदकेन सङ्कल्प्य प्रणमेत् । एकादश्यां पर्णाद्यैर्दन्तधावनं कृत्वा स्नात्वा देवार्चनं कृत्वा व्रतसङ्कल्पं कुर्यात् ।

"एकादश्यां निराहारः स्थित्वाहमपरेऽहनि ।
भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत ॥
गृहीत्वौदुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः ।
उपवासं गृहीत्वाथ मन्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥
कृत्वा चावश्यकं सर्वं द्वादश्यां व्रतमर्पयेत् ।"
"कार्कश्यं दशकन्धरो मधुपतेः सन्मार्दवं मैथिली
दातृत्वं च विभीषणो बहुविधं स्नेहं पुनर्लक्ष्मणः ।
स्वामित्वं हनुमानुपेत्युपकृतिं देवा वियोगं पिता
कोपानुग्रहमम्बुधिर्वयमपि प्रेमाङ्घ्रिजं साम्प्रतम् ॥

एवं श्रीरामपूर्वोत्तरतापनीयरामरहस्याद्युपनिषदगस्त्यसंहितावाशिष्ठसंहितारामार्चनचन्द्रिकाद्यनुसारिश्रीरामोपासनसंक्षेपः ।

"वेदेषु चेतिहासेषु पुराणेषु महत्स्वपि ।
महाकाव्येषु चम्प्वादिनिबन्धेषु महोज्ज्वलम् ॥
आर्याणां जीवनोपायमनार्याणां कुतूहलम् ।
इतरेषां जनानां यदाश्चर्योन्मादकारकम् ॥
अतिक्रान्तैर्भविष्यद्भिर्वर्तमानैः सुधीश्वरैः ।
हृद्गतोत्तापशान्त्यर्थं गुह्यमाणतयाऽऽस्थितम् ॥
सौजन्योपशमन्तःस्थगाढध्वान्तनिवारकम् ।
यद्धि सुश्लोकयामास वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥

पाश्चात्यः कश्चनागत्य भारतं तददूषत् ।
मलीमसः पुरोभागी प्रतीतं चरितं हरेः ॥
तेन रामकथानाम्ना निबन्धः प्रकटीकृतः ।
शोधरूपः स चात्यर्थमाक्षेपादिसमन्वितः ॥
एतादृशा दुर्निबन्धा उपेक्ष्यन्ते मनीषिभिः ।
साधुभिः प्रतिभावद्भिर्लेखनीं कः कलङ्कयेत् ॥
तद्रामायणमीमांसानिबन्धे तर्ककर्कशे ।
प्रक्षालिता मया सम्यग्दोषा दुरभिसन्धिजाः ॥
नूतनाक्षेपसम्बन्धे काचिद् दिक् सम्प्रदर्शिता ।
ययाञ्जसा तरिष्यन्ति जना मोहमहार्णवम् ॥
आधृत्य मतमार्याणामितिहासोऽपि दर्शितः ।
रामपूजाविधिः प्रोक्तो हार्दध्वान्तनिवारकः ॥
महेश्वरस्य कृपया निर्मितेन मया विभुः ।
एतेन सुनिबन्धेन प्रीयतां राघवो हरिः ॥"

●

प रि शि ष्ट

(२)

उद्धृत ग्रन्थों की अनुक्रमणिका